ओ३म्
यानन्द संस्थान, नई दिल्ली-५

दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली-५

प्रकाशक:-

दयानन्द-संस्थान

नई दिल्ली-५

अथर्ववेद

संपूर्ण

ज्योतिर्मय प्रसाद स्वीकार करें

परम पिता परमात्मा की अमरवाणी ऋग्०, यजु०, साम० अथर्ववेद के रूप में मानव मात्र का मार्ग दर्शन कर रही है। ज्ञान, कर्म और उपासना जीवन की सफलता के आधार हैं। जिनका वर्णन ऋग्०, यजु०, साम० में मिलता है, और इन सबकी सिद्धि का ज्ञान विज्ञान संशयरहित अथर्ववेद की ऋचाओ मे वर्णित है। प्राचीन वैदिक साहित्य मे अथर्ववेद को निगद, ब्रह्म, अथर्व० और छन्द भी कहा गया है।

निगद, नाम इसकी सरलता के कारण पडा, ब्रह्मवेद इसका नाम इसलिए पडा कि यज्ञ का अधिष्ठाता ब्रह्मा इसी वेद के साथ नियुक्त होता है। स्वय अथर्व० १५-७-८ मे लिखा है -**तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म च।** ब्राह्मण ग्रथो मे स्पष्ट वर्णन है-- '**अथर्वाङ्गिरोभिर्ब्रह्मत्वम् अथर्वाङ्गिरोविद् ब्रह्मा**' अर्थात् अथर्व० का जानने वाला ब्रह्मा होता है। तात्पर्य यह कि चारो वेदो का जानकर ही ब्रह्मा पद प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त होता है। अथर्ववेद मे ज्ञान का विज्ञान भडार भरा है। कौन सी ऐसी विद्या है जिसका मूल इसमें न हो। चिकित्सा का सांगोपाग वैज्ञानिक वर्णन इसमें परिपूर्ण है। परिवार की समृद्धि, ब्रह्म विज्ञान, प्रकृति विज्ञान, क्रिया योग, पुनर्जन्म, कर्म सिद्धान्त, न्याय योग, मोक्ष राष्ट्र धर्म आदि जीवनोपयोगी सभी विषयों पर परमपिता परमात्मा का मार्गदर्शन अथर्ववेद मे सुस्पष्ट है।

'वेद' की यह अपनी अनुपम विशेषता है कि उसका ज्ञान मानवमात्र के लिए कल्याणकारी है। उसकी शिक्षाओ पर चलने से ससार स्वर्ग (सुख) बन जाता है और दुःख, कष्ट-क्लेश की छाया भी समीप नहीं फटकती! प्राणी की गति और उत्थान की प्रेरणा का अजस्र प्रवाह 'वेद' के अतिरिक्त और कहीं इतने उदात्त रूप में मिलना कठिन है।

व्यक्ति प्रभु से प्रार्थना करता है--**समुद्र ईशे स्रवतामग्निः पृथिव्या वशी।**
चन्द्रमा नक्षत्राणां ईशे त्वमेकवृषो भव।। अथर्व० ६।८६

"नदियों का स्वामी समुद्र है। पृथिवी को वश मे रखने वाली अग्नि है। चन्द्रमा नक्षत्रो का स्वामी है। इस तरह तुम भी बलवान बनो।" सम्पूर्ण 'वेद' इसी तरह की प्रेरक शिक्षाओ उन्नत कल्पनाओ, और ज्ञान की गरिमा के स्रोतो से परिपूर्ण है। धन्य है वे, जो इस प्रभु की वाणी से प्रेरणा लेकर अपना जीवन सफल करते है। धन्य हैं वे, जिन्होंने अपना जीवन "वेद-माता" के प्रति अर्पित किया और पवित्र हो गए। जिन्होंने वरदा-माता का आशीर्वाद पाया।

हमारा यह सुदृढ विश्वास है कि पावन पूत ज्ञान स्रोत की इस मदाकिनी मे जिसने भी स्नान कर लिया, उसने अपना मानव जीवन सफल कर लिया! अन्धकार मन का, अज्ञान मस्तिष्क का, वेद-ज्योति के दर्शन-स्पर्श के पश्चात् ठहर नही सकता। गुत्थियां, उलझन, निराशा सभी कुछ शक्ति, प्रेरणा और उमग मे बदल जाती है जब हम प्रभु के ज्ञान सागर से मोती चुनकर जीवन पथ निर्माण करते हैं।

प्रभु पुत्रो! धरती को साकार स्वर्ग बनाने के लिए आओ, वेद-माता की अमृत बूंदे ग्रहण करो। भूल जाओ मनुष्यो द्वारा भटकाने वाली शिक्षा को, और धर्म के सच्चे प्रकाश स्वरूप रूप को ग्रहण कर मन मन्दिर में अपने प्रभु को धारण करो! हम इस पवित्र वाणी को आपकी सेवा में अर्पित करते हुए कामना करते हैं कि आप, हम, सभी, एक प्रभु के पुत्र बनकर, भाई-भाई की तरह इस धरती पर रहना सीखें, चलना और आपस मे, प्यार करना सीखें।

सत्य की पुकार धरती पर गुंजाने के लिए हमने व्रत लिया है। भेद-भाव, नीच-ऊँच, देश जाति, वर्ण, वर्ग, काल की दीवारो को गिराने का सकल्प लेकर हम अमर ज्योति 'वेद' का प्रकाश लेकर चल रहे हैं। हमारी इच्छा है कि इस महान् अभियान मे सभी प्रभु भक्त हमारे साथी बनें। 'वेद' का प्रकाश अन्धकार को समाप्त करने में समर्थ हो। ज्ञान, अज्ञान को मिटा सके, धर्म अधर्म को कहीं भी न रहने दे। यह हमारे मन की एकमात्र भावना है।

प्रभु के आशीर्वाद और प्रभु भक्तो के सहयोग से अथर्ववेद का प्रकाशन भी पूर्ण हुआ। १२५०० परिवारो मे वेद मन्दिरो की स्थापना का पुण्य प्रसाद हम ग्रहण कर 'वेद' का आशीर्वाद प्राप्त कर सकें। किन्तु लक्ष्य अभी दूर है। इस धरती पर अभी करोडो व्यक्ति ऐसे हैं जिन्होंने वेद-माता के दर्शनों से अपने को पवित्र नही किया। हम प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि वह हमे शक्ति दे कि हम धरती के हर परिवार में, प्रत्येक धर्म मन्दिर मे 'वेद' ज्योति प्रतिष्ठित कर सकें।

परम पवित्र इस धर्म ग्रन्थ को हम मंगल कामनाओं और शुभ आशीर्वाद के साथ आपको अर्पित कर रहे हैं। प्रभु आपको सदा सत्पथ, ज्ञान का आलोक प्रदान करे। आपका जीवन मंगलमय हो। सब भांति सुख आपके परिवार पर बरसे आपका सब विधि कल्याण हो! धरती एक बने, मनुष्य एक बने, अनेकता समाप्त हो। द्वेष, युद्ध, घृणा, ईर्ष्या का अस्तित्व मिटे और प्यार का अमृत सर्वत्र बरसे। सब जन सरसें, फलें, फूलें! श्रद्धा से, आदर से, स्वीकार कीजिए, परमात्मा की दिव्य वाणी का ज्योतिर्मय प्रसाद यह अथर्ववेदभाष्य--

दीपमाला संवत् २०३१
अध्यक्ष दयानन्द संस्थान
नई दिल्ली-५

मानव मात्र की कल्याण कामना के साथ -
आपका
भारतेन्द्र नाथ

भाष्यकार की भूमिका

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् । सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम् । स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥२॥

अथर्व० का० १० सू० ७ । म० २० ॥

(यस्मात्) जिस परमेश्वर से प्राप्त करके (ऋचः) पदार्थों के गुण प्रकाशक मन्त्रों को (अप-अतक्षन्) उन्होंने [ऋषियों ने] सूक्ष्म किया [भले प्रकार विचारा], (यस्मात्) जिस ईश्वर से प्राप्त करके (यजुः) सत्कर्मों के ज्ञान को (अप-अकषन्) उन्होंने कसा, अर्थात् कसौटी पर रक्खा, (सामानि) मोक्ष विद्यायें (यस्य) जिसके (लोमानि) रोम के समान व्यापक हैं, और (अथर्वाङ्गिरसः) अथर्व अर्थात् निश्चल जो परब्रह्म है उसके ज्ञान के मन्त्र (मुखम्) मुख के समान मुख्य हैं, (सः) वह (एव) निश्चय करके (कतमः स्वित्) कौन सा है । [इसका उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) खम्भ के समान ब्रह्माण्ड का सहारा देने वाला ईश्वर (ब्रूहि) तू कह ॥

इससे सिद्ध है कि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ईश्वरकृत है, और चारो वेद सामान्यता से सार्वलौकिक सिद्धान्तों से परिपूर्ण होने के कारण मनुष्य मात्र और सब संसार के लिये कल्याणकारक है ।

उस परम पिता जगदीश्वर का अति धन्यवाद है कि उसने संसार की भलाई के लिये सृष्टि के आदि मे अपने अटल नियमो को इन चारो वेदो के द्वारा प्रकाशित किया । यह चारो वेद एक तो सांसारिक व्यवहारो की शिक्षा से परमात्मा के ज्ञान का, और दूसरे परमात्मा के ज्ञान से सांसारिक व्यवहारो का उपदेश करते हैं । संसार में यही दो मुख्य पदार्थ हैं जिनकी यथार्थ प्राप्ति और अभ्यास पर मनुष्य मात्र की उन्नति निर्भर है । इन चारो वेदो को ही त्रयी विद्या [तीन विद्याओ का भण्डार] कहते हैं, जिनका अर्थ परमेश्वर के कर्म उपासना और ज्ञान से संसार के साथ उपकार करना है ।

वेदों में सार्वभौम विज्ञान का उपदेश है—

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।

आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥१ ।

अथर्ववेद—का० ११, सू० ५, म० १७ ।

(ब्रह्मचर्येण) वेदविचार और जितेन्द्रियता रूपी (तपसा) तप से (राजा) राजा (राष्ट्रम) राज्य की (वि) अनेक प्रकार से (रक्षति) रक्षा करता है । (आचार्य) अङ्गो और उपाङ्गो सहित वेदो का अध्यापक, आचार्य (ब्रह्मचर्येण) वेद विद्या और इन्द्रियदमन के कारण (ब्रह्मचारिणम्) वेद विचारने वाले जितेन्द्रिय पुरुष से (इच्छते) प्रेम करता है, अर्थात् वेदों के यथावत् ज्ञान, अभ्यास, और इन्द्रियो के दमन से मनुष्य सांसारिक और पारमार्थिक उन्नति की परा सीमा तक पहुंच जाता है ॥

भगवान् कणादमुनि कहते हैं—

बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे ॥ वैशे० अ० ६ । १ । १ ॥

वेद मे वाक्य रचना बुद्धिपूर्वक है [अर्थात् वेद में सब बातें बुद्धि के अनुकूल हैं] ॥

पण्डित अन्नम्भट्ट तर्कसंग्रह पुस्तक के शब्दखण्ड में लिखते हैं ।

वाक्यं द्विविधं वैदिकं लौकिकं च । वैदिकमीश्वरोक्तत्वात् सर्वमेव प्रमाणम् । लौकिकं त्वाप्तोक्तं प्रमाणम् ॥

वाक्य दो प्रकार का है, वैदिक और लौकिक । वैदिक वाक्य ईश्वरोक्त होने से सब ही प्रमाण हैं । लौकिक वाक्य केवल सत्यवक्ता पुरुष का वचन प्रमाण है ॥

वेदमेव सदाभ्यसेत् तपस्तप्यन् द्विजोत्तमः ।

वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ॥ मनु० २।१६६॥

द्विजो [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यो,] मे श्रेष्ठ पुरुष, [ब्रह्मचर्य आदि] तप तपता हुआ, वेद ही का सदा अभ्यास करे । वेदो का अभ्यास ही पंडित पुरुष का परम तप यहां [इस जन्म मे] कहा जाता है ॥१॥

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ।

भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति ॥मनु० १२।९७॥

चार वर्ण [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र,] तीन लोक [स्वर्ग, अन्तरिक्ष भूलोक], चार आश्रम [ब्रह्मचर्य गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास] और भूत, वर्तमान और भविष्यत्, अलग-अलग सब वेद से प्रसिद्ध होता है ॥२॥

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।

सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ मनु० १२ १००॥

वेद शास्त्र का जानने वाला पुरुष सेनापति के अधिकार, और राज्य, और भी दण्ड देने के पद, और सब लोगो पर आधिपत्य [चक्रवर्ति राज्य] के योग्य होता है ॥३॥

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन् ।

इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥मनु० १२।१०२॥

वेद शास्त्र के अर्थ का तत्व जानने वाला पुरुष चाहे किसी आश्रम मे रहे, वह इस लोक [जन्म] मे ही रहकर मोक्ष [परम आनन्द] पद के लिये योग्य होता है ॥४॥

इसी प्रकार सब शास्त्रो मे वेदो की अपूर्व महिमा का वर्णन है ।

ऊपर कह आये है कि ईश्वर कृत चारो वेदों मे से अथर्ववेद एक वेद है । उसके नाम छन्द (छन्दांसि), अथर्वाङ्गिरा (अथर्वाङ्गिरस) और ब्रह्मवेद हैं । इन शब्दो के अर्थ इस प्रकार हैं । (१) अथर्ववेद, यह अथर्व [अथर्वन्] और वेद इन दो शब्दो का समुदाय है । थर्व० धातु का अर्थ चलना और अथर्व का अर्थ निश्चल है, और वेद का अर्थ ज्ञान, अर्थात् अथर्व० निश्चल, जो एक रस सर्वव्यापक परब्रह्म है उसका ज्ञान अथर्ववेद है । (२) छन्द, इसका अर्थ आनन्ददायक है, अर्थात् उसमे आनन्ददायक पदार्थों का वर्णन है । (३) अथर्वाङ्गिरा, इस पद का अर्थ यह है कि उसमे अथर्व, निश्चल परब्रह्म बोधक अङ्गिरा अर्थात् ज्ञान के मन्त्र है । (४) ब्रह्मवेद अर्थात् जिसमे ब्रह्म जगदीश्वर का ज्ञान है, और जिनके मनन और साक्षात् करने से ब्रह्मा ओ [ब्राह्मणों, ब्रह्मज्ञानियो] को मोक्ष सुख प्राप्त होता है ॥

नि सन्देह अब वह समय है कि सब स्त्री पुरुष घर-घरमे वेदों का अर्थ जाने और धर्मज्ञ होकर पुरुषार्थी बने । भारतीय और अन्यदेशीय विद्वान् भी वेदो का अर्थ खोजने और प्रकाशित करने में बड़ा परिश्रम उठा रहे हैं । मेरा भी संकल्प है कि अथर्ववेद का यथाशक्ति सरल, स्पष्ट, प्रामाणिक, और अल्पमूल्य भाष्य एक एक पूरे काण्ड के पुस्तक रूप में प्रस्तुत करूं, जिससे सब लोग स्वाध्याय [वेद के अर्थ समझने और विचारने] में लाभ उठावें । और यदि वैदिक जिज्ञासु वेदों के सत्यार्थ और तत्वज्ञान प्राप्ति में कुछ भी सहायता पावेंगे तो मै अपना परिश्रम सफल समझूंगा ।

५२ लूकरगंज, प्रयाग (अलाहाबाद) ।

माद्र कृष्णा जन्माष्टमी १९६९ वि०, ५ सितम्बर १९१२ ।

—क्षेमकरणदास त्रिवेदी ।
जन्म, कार्तिकशुक्ला ७ संवत् १९०५ विक्रमीय, (ता० ३ नवम्बर १८४८ ईस्वी)
जन्मस्थान, ग्राम शाहपुर मड़राक, जिला अलीगढ़ ॥

卐 ओ३म् 卐

अथर्ववेद भाषा-भाष्यम्

प्रथमं काण्डम्

प्रथमोऽनुवाकः

卐 सूक्तम् १ 卐

मन्त्रा १-४ । अथर्वा ऋषिः । वाचस्पतिर्देवता ।

१-३ अनुष्टुप्छन्दः. ४ चतुष्पदा विराडुरोबृहती ॥

बुद्धि की वृद्धि के लिये उपदेश ।

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।

वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥१॥

पदार्थ—(**ये**) जो पदार्थ (**त्रि-सप्ता**) १—सबके सतारक, रक्षक परमेश्वर के सम्बन्ध में, यद्वा, २—रक्षणीय ... [यद्वा—तीन में सम्बद्ध ३—तीनों काल भूत, भविष्यत् और वर्तमान । ४—तीनों लोक, स्वर्ग, मध्य और भूलोक । ५—तीनों, गुण, सत्त्व, रज और तम । ६—ईश्वर, जीव और प्रकृति । यद्वा, तीन और सात - दस । ७—चार दिशा, चार विदिशा, एक ऊपर की और एक नीचे की दिशा । ८—पाच ज्ञान इन्द्रिया, अर्थात् कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका और पाच कर्म इन्द्रियाँ, अर्थात् वाक्, हाथ, पांव, पायु, उपस्थ । यद्वा, तीन गुणित सात इक्कीस । ९—महाभूत ५ + प्राण ५ + ज्ञान इन्द्रियाँ ५ + कर्म इन्द्रियाँ ५ + अन्त करण १ इत्यादि] के सम्बन्ध में [वर्तमान] होकर, (**विश्वा विश्वानि**) सब (**रूपाणि**) वस्तुओं का (**बिभ्रत**) धारण करते हुए (**परि**) सब ओर (**यन्ति**) व्याप्त हैं । (**वाचस्पति**) वेदरूप वाणी का स्वामी परमेश्वर (**तेषाम्**) उनके (**तन्व**) शरीर के (**बला बलानि**) बलों को (**अद्य**) आज (**मे**) मेरे लिये (**दधातु**) दान करे ॥१॥

भावार्थ—आशय यह है कि तृण से लेकर परमेश्वर पर्यन्त जो पदार्थ ससार की स्थिति के कारण है, उन सबका तत्त्वज्ञान (वाचस्पति) वेदवाणी के स्वामी सबगुरु जगदीश्वर की कृपा से सब मनुष्य वेद द्वारा प्राप्त करें और उस अन्तर्यामी पर पूर्ण विश्वास करके पराक्रमी और परोपकारी होकर सदा आनन्द भोगें ॥१॥

पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह ।

वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥२॥

पदार्थ—(**वाचस्पते**) हे वाणी के स्वामी परमेश्वर ! तू (**पुन**) वारवार (**एहि**) आ । (**वसो॰ पते**) हे श्रेष्ठ गुण के रक्षक ! (**देवेन**) प्रकाशमय (**मनसा सह**) मन के साथ (**नि**) निरन्तर (**रमय**) [मुझे] रमण करा, (**मयि**) मुझ में (**वर्तमान**), (**श्रुतम्**) वेदविज्ञान (**मयि**) मुझ में (**एव**) ही (**अस्तु**) रहे ॥२॥

भावार्थ—मनुष्य प्रयत्नपूर्वक (वाचस्पति) परम गुरु परमेश्वर का ध्यान निरन्तर करता रहे और पूरे स्मरण के साथ वेदविज्ञान से अपने हृदय को शुद्ध करके सदा सुख भोगे ।

इहैवाभि वि तनूभे आर्त्नी इव ज्यया ।

वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥३॥

पदार्थ—(**इह**) इसके ऊपर (**एव**) ही (**अभि**) चारों ओर से (**वि तनु**) तू अच्छे प्रकार फैल, (**इव**) जैसे (**उभे**) दोनों (**आर्त्नी**) धनुष कोटियें (**ज्यया**) जय के साधन, चिल्ला के साथ [तन जाती है] । (**वाचस्पतिः**) वाणी का स्वामी (**नि यच्छतु**) नियम में रक्खे, (**मयि**) मुझ में [वर्तमान] (**श्रुतम्**) वेद विज्ञान (**मयि**) मुझ में (**एव**) ही (**अस्तु**) रहे ॥२॥

भावार्थ—जैसे सग्राम में शूरवीर धनुष की दोनों कोटियों को डोरी में चढ़ाकर बाण से रक्षा करता है उसी प्रकार आदिगुरु परमेश्वर अपने कृपायुक्त दोनों हाथों को [अर्थात् अज्ञान की हानि और विज्ञान की वृद्धि को] इस मुझ ब्रह्मचारी पर फैलाकर रक्षा करे और नियम पालन में दृढ़ करके परम सुखदायक ब्रह्मविद्या का दान करे और विज्ञान का पूरा स्मरण मुझ में रहे । २॥

उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम् ।

सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि ॥४॥

पदार्थ—(**वाचस्पति**) वाणी का स्वामी, परमेश्वर (**उपहूत**) समीप बुलाया गया है, (**वाचस्पति**) वाणी का स्वामी (**अस्मान्**) हमको (**उपह्वयताम्**) समीप बुलावे । (**श्रुतेन**) वेदविज्ञान से (**स गमेमहि**) हम मिले रहें । (**श्रुतेन**) वेद विज्ञान में (**मा वि राधिषि**) मैं अलग न हो जाऊँ ॥४॥

भावार्थ—ब्रह्मचारी लोग परमेश्वर का आवाहन करके निरन्तर अभ्यास और सत्कार से वेदाध्ययन करें जिससे प्रीतिपूर्वक आचार्य की पढ़ाई ब्रह्मविद्या उनके हृदय में स्थिर होकर यथावत् उपयोगी होवे ॥४॥

卐 सूक्तम् २ 卐

१—४ । अथर्वा ऋषि । पर्जन्यो देवता ॥ १, २, ४ ।

अनुष्टुप् । ३ त्रिपदा विराड् गायत्री ॥

बुद्धि की वृद्धि के लिये उपदेश ।

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम् ।

विद्मो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम् ॥१॥

पदार्थ—(**शरस्य**) शत्रुनाशक [बाणधारी] शूर पुरुष के (**पितरम्**) रक्षक, पिता, (**पर्जन्यम्**) सींचने वाले मेघरूप (**भूरिधायसम्**) बहुत प्रकार से पोषण करनेवाले [परमेश्वर] को (**विद्म**) हम जानते है । (**अस्य**) इस शूर की (**मातरम्**) माननीया माता, (**पृथिवीम्**) विख्यात वा विस्तीर्ण पृथिवी रूप (**भूरिवर्पसम्**) अनेक वस्तुओं से युक्त [ईश्वर] को (**सु**) भली भाँति (**विद्म उ**) हम जानते ही हैं ॥१॥

भावार्थ—जैसे मेघ, जल की वर्षा करके और पृथ्वी, अन्न आदि उत्पन्न करके प्राणियों का बड़ा उपकार करते है, वैसे ही वह जगदीश्वर परब्रह्म सब मेघ, पृथ्वी आदि लोक लोकान्तरों का धारण और पोषण नियमपूर्वक करता है । जितेन्द्रिय शूरवीर विद्वान् पुरुष उस परब्रह्म को अपने पिता के समान रक्षक, और माता के समान माननीय और मानकर्त्ता जानकर (भूरिधाया) अनेक प्रकार से पोषण करनेवाला और (भूरिवर्पा) अनेक वस्तुओं से युक्त होकर परोपकार में सदा प्रसन्न रहे ॥१॥

ज्याके परि णो नमाश्मानं तन्वं कृधि ।

वीडुर्वरीयोऽरातीरप द्वेषांस्या कृधि ॥ २ ॥

पदार्थ—[हे इन्द्र] (**ज्याके**) जय के लिये (**न**) हमको (**परि**) सर्वथा (**नम**) तू झुका, (**तन्वम्**) [हमारे] शरीर को (**अश्मानम्**) पत्थर-सा [सुदृढ] (**कृधि**) बना दे । (**वीडु**) तू दृढ होकर (**अराती.**) विरोधों और (**द्वेषांसि**) द्वेषों को (**अप—अपहृत्य**) हटाकर (**वरीय**) बहुत दूर (**आ कृधि**) कर दे ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर में पूर्ण विश्वास करके मनुष्य आत्मबल और शरीरबल प्राप्त करें और सब विरोधों को मिटावें ॥२॥

वृक्षं यद् गावः परिषस्वजाना अनुस्फुरं शरमर्चन्त्यृभुम् ।

शरुमस्मद् यावय दिद्युमिन्द्र ॥ ३ ॥

पदार्थ—(**यत्**) जब (**वृक्षम्**) धनुष से (**परि-सस्वजाना**) लिपटी हुई (**गाव·**) चिल्ले की डोरियां (**अनुस्फुरम्**) फुरती करते हुए (**ऋभुम्**) विस्तीर्ण ज्योतिवाले, अथवा सत्य से प्रकाशमान वा वर्तमान, बड़े बुद्धिमान् (**शरम्**) बाणधारी शूरपुरुष की (**अर्चन्ति**) स्तुति करें । [तब] (**इन्द्र**) हे बड़े ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर ! [वा, हे वायु !] (**शरुम्**) बाण और (**दिद्युम्**) वज्र का (**अस्मत्**) हमसे (**यावय**) तू अलग रख ॥३॥

भावार्थ—जब दोनों ओर से (आध्यात्मिक वा आधिभौतिक) घोर सग्राम होता हो, बुद्धिमान् चतुर सेनापति ऐसा साहस करे कि सब योद्धा लोग उसकी बड़ाई करें, और वह परमेश्वर का सहारा लेकर और अपने प्राण वायु को साधकर शत्रुओं को निरुत्साह करके, और जय प्राप्त करके आनन्द भोगे ॥३॥

यथा द्यां च पृथिवीं चान्तस्तिष्ठति तेजनम् ।

एवा रोगं चास्त्रावं चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत् ॥ ४ ॥

पदार्थ—(**यथा**) जैसे (**तेजनम्**) प्राण (**द्यां च**) सूर्यलोक (**च**) और (**पृथिवीम्**) पृथिवी लोक के (**अन्त**) बीच मे (**तिष्ठति**) रहता है। (**एव**) वैसे ही (**मुञ्ज**) शोधनेवाला परमेश्वर [वा औषध] (**इत**) भी (**रोग च**) शरीर रोग (**च**) और (**आस्रावम्**) रुधिर के बहाव वा घाव के (**अन्त**) बीच मे (**तिष्ठतु**) स्थित होवे ॥४॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपने बाहिरी और भीतरी क्लेशो मे (मुञ्ज) हृदय संशोधक परमेश्वर का स्मरण रखते हैं वे दुःखो से पार होकर तेजस्वी होते हैं। अथवा जैसे सद्वैद्य (मुञ्ज) संशोधक औषधि से बाहिरी और भीतरी रोग का प्रतीकार करता है, वैसे ही आचार्य विद्याप्रकाश से ब्रह्मचारी के अज्ञान का नाश करता है ॥४॥

卐 सूक्तम् ३ 卐

१—९ । अथर्वा ऋषिः । पर्जन्यादयो देवता ।

१-५ पथ्या पङ्क्तिः, ६-९ अनुष्टुप् छन्दः ॥

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं शतवृष्ण्यम् ।

तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं

बहिष्टे अस्तु बालिति ॥ १ ॥

पदार्थ—(**शरस्य**) शत्रुनाशक [वा बाणधारी] शूर के (**पितरम्**) रक्षक पिता, (**पर्जन्यम्**) सींचनेवाले मेघ रूप (**शतवृष्ण्यम्**) सैकड़ो सामर्थ्य वाले [परमेश्वर] को (**विद्म**) हम जानते है। (**तेन**) उस [ज्ञान] से (**ते**) तेरे (**तन्वे**) शरीर के लिए (**शम्**) नीरोगता (**करम्**) मैं करूं, और (**पृथिव्याम्**) पृथिवी पर (**ते**) तेरा (**निषेचनम्**) बहुत सेचन [वृद्धि] होवे, और (**ते**) तेरा (**बाल्**) वैरी (**बहिः**) बाहिर (**अस्तु**) होवे, (**इति**) बस यही ॥१॥

भावार्थ—जैसे मेघ अन्न आदि उत्पन्न करता है वैसे ही मेघ के भी मेघ अनन्त शक्तिवाले परमेश्वर का साक्षात् करके जितेन्द्रिय पुरुष (शतवृष्ण्यम्) सैकड़ो सामर्थ्यवाला होकर अपने शत्रुओं का नाश करता और आत्मबल बढ़ाकर संसार में वृद्धि करता है ॥१॥

विद्मा शरस्य पितरं मित्रं शतवृष्ण्यम् ।

तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं

बहिष्टे अस्तु बालिति ॥ २ ॥

पदार्थ—(**शरस्य**) शत्रुनाशक शूर [वा बाणधारी] के (**पितरम्**) रक्षक, पिता, (**मित्रम्**) सबके चलानेवाले [वा स्नेहवान्] वायु रूप (**शतवृष्ण्यम्**) सैकड़ो सामर्थ्यवाले [परमेश्वर] को (**विद्म**) हम जानते हैं। (**तेन**) उस [ज्ञान] से (**ते**) तेरे (**तन्वे**) शरीर के लिए (**शम्**) नीरोगता (**करम्**) मैं करूं, और (**पृथिव्याम्**) पृथिवी पर (**ते**) तेरा (**निषेचनम्**) बहुत सेचन [वृद्धि] होवे, और (**ते**) तेरा (**बाल्**) वैरी (**बहिः**) बाहिर (**अस्तु**) होवे, (**इति**) बस यही ॥२॥

विद्मा शरस्य पितरं वरुणं शतवृष्ण्यम् ।

तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं

बहिष्टे अस्तु बालिति ॥ ३ ॥

पदार्थ—(**शरस्य**) शत्रु नाशक [वा बाणधारी] शूर के (**पितरम्**) रक्षक, पिता, (**वरुणम्**) लोकों के ढकने वाले आकाश रूप विस्तीर्ण (**शतवृष्ण्यम्**) सैकड़ो सामर्थ्य वाले [परमेश्वर] को (**विद्म**) हम जानते है। (**तेन**) उस [ज्ञान] मे (**ते**) तेरे (**तन्वे**) शरीर के लिए (**शम्**) नीरोगता (**करम्**) मैं करूँ, और (**पृथिव्याम्**) पृथिवी पर (**ते**) तेरा (**निषेचनम्**) बहुत सेचन [वृद्धि] होवे, और (**ते**) तेरा (**बाल्**) वैरी (**बहिः**) बाहिर (**अस्तु**) होवे, (**इति**) बस यही ॥३॥

भावार्थ—आकाश में सूर्य, भूमि आदि लोक स्थित हैं और परमेश्वर के आधीन आकाश भी है ॥३॥

विद्मा शरस्य पितरं चन्द्रं शतवृष्ण्यम् ।

तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं

बहिष्टे अस्तु बालिति ॥ ४ ॥

पदार्थ—(**शरस्य**) शत्रुनाशक [वा बाणधारी] शूर के (**पितरम्**) रक्षक, पिता (**चन्द्रम्**) आनन्द देने वाले, चन्द्रमा रूपी उपकारी (**शतवृष्ण्यम्**) सैकड़ो सामर्थ्य वाले [परमेश्वर को] (**विद्म**) हम जानते हैं। (**तेन**) उस [ज्ञान] से (**ते**) तेरे (**तन्वे**) शरीर के लिए (**शम्**) नीरोगता (**करम्**) मैं करूँ, और (**पृथिव्याम्**) पृथिवी पर (**ते**) तेरा (**निषेचनम्**) बहुत सेचन [वृद्धि] होवे, और (**ते**) तेरा (**बाल्**) वैरी (**बहिः**) बाहिर (**अस्तु**) होवे, (**इति**) बस यही ॥४॥

भावार्थ—[चन्द्र] आनन्द देने वाला अर्थात् अपनी किरणो मे अन्न आदि औषधो को पुष्ट करके प्राणियो को बल देता है। उस चन्द्रमा का भी आह्लादक वह परमेश्वर है, ऐसे ही मनुष्य को आनन्द देने वाला होना चाहिये ॥४॥

विद्मा शरस्य पितरं सूर्यं शतवृष्ण्यम् ।

तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं

बहिष्टे अस्तु बालिति ॥ ५ ॥

पदार्थ—(**शरस्य**) शत्रुनाशक [बाणधारी] शूर के (**पितरम्**) रक्षक, पिता (**सूर्यम्**) चलनेवाले वा चलानेवाले सूर्य समान [उपकारी] (**शतवृष्ण्यम्**) सैकड़ो सामर्थ्य वाले [परमेश्वर] को (**विद्म**) हम जानते है। (**तेन**) उस [ज्ञान] मे (**ते**) तेरे (**तन्वे**) शरीर के लिए (**शम्**) नीरोगता (**करम्**) मैं करूँ और (**पृथिव्याम्**) पृथिवी पर (**ते**) तेरा (**निषेचनम्**) बहुत सेचन [वृद्धि] होवे और (**ते**) तेरा (**बाल्**) वैरी (**बहिः**) बाहिर (**अस्तु**) होवे, (**इति**) बस यही ॥५॥

भावार्थ—'सूर्य' आकाश मे वायु से चलता है और लोकों को चलाता तथा वृष्टि आदि उपकार करता और बड़ा तेजस्वी है। वह परब्रह्म उस सूर्य का भी सूर्य है। उसके उपकारों को जान कर तेजस्वी मनुष्य परस्पर उन्नति करते हैं ॥५॥

यदान्त्रेषु गवीन्योर्यद् वस्तावधि संश्रुतम् ।

एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—(**यत्**) जैसे (**यत्**) कि (**आन्त्रेषु**) आंतों मे और (**गवीन्योः**) दोनो पार्श्वस्थ नाड़ियों मे और (**वस्तौ अधि**) मूत्राशय के भीतर (**संश्रुतम्**) एकत्र हुआ [मूत्र छुटता है]। (**एव**) वैसे ही (**ते मूत्रम्**) तेरा मूत्र रूप (**बाल्**) वैरी (**बहिः**) बाहिर (**मुच्यताम्**) निकाल दिया जावे (**इति सर्वकम्**) यही बस है ॥६॥

भावार्थ—जैसे शरीर में रुका हुआ सारहीन मलविशेष, मूत्र अर्थात् प्रस्राव क्लेश देता है और उसके निकाल देने से चैन मिलता है वैसे ही मनुष्य आत्मिक, शारीरिक और सामाजिक शत्रुओं के निकाल देने से सुख पाता है ॥६॥

प्र ते भिनद्मि मेहनं वर्त्रं वेशन्त्या इव ।

एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—(**ते**) तेरे (**मेहनम्**) मूत्र द्वार को (**प्रभिनद्मि**) मैं खोले देता हूँ, (**इव**) जैसे (**वेशन्त्या**) भील का पानी (**वर्त्रम्**) बन्ध का [खोल देता है] (**एव**), वैसे ही (**ते मूत्रम्**) तेरा मूत्र रूप (**बाल्**) वैरी (**बहिः**) बाहिर (**मुच्यताम्**) निकाल दिया जावे (**इति सर्वकम्**) यही बस है ॥७॥

भावार्थ—जैसे सद्वैद्य लोह शलाका से रोगी के रुके हुए मूत्र को भील के पानी के समान खोलकर निकाल देता है वैसे ही मनुष्य अपने शत्रु को निकाल देवे ॥७॥

विषितं ते वस्तिबिलं समुद्रस्योदधेरिव ।

एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—(**ते**) तेरा (**वस्तिबिलम्**) मूत्र मार्ग (**विषितम्**) खोल दिया गया है, (**इव**) जैसे (**उदधेः**) जल से भरे (**समुद्रस्य**) समुद्र का [मार्ग] (**एव**) वैसे ही (**ते मूत्रम्**) तेरा मूत्र रूप (**बाल्**) वैरी (**बहिः**) बाहिर (**मुच्यताम्**) निकाल दिया जावे (**इति सर्वकम्**) यही बस है ॥८॥

यथेषुका परापतदवसृष्टाधि धन्वनः ।

एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥ ९ ॥

पदार्थ—(**यथा**) जैसे (**धन्वन अधि**) धनुष् से (**अवसृष्टा**) छूटा हुआ (**इषुका**) बाण (**परा-अपतत्**) शीघ्र चला गया हो। (**एव**) वैसे ही (**ते**) तेरा (**मूत्रम्**) मूत्र रूप (**बाल्**) वैरी (**बहिः**) बाहिर (**मुच्यताम्**) निकाल दिया जावे (**इति सर्वकम्**) यही बस है ॥९॥

卐 सूक्तम् ४ 卐

१—४ सिन्धुद्वीप कृतिर्वा ऋषिः । आपो देवता । १—३ गायत्री, ४ पङ्क्तिः ।

परस्पर उपकार के लिए उपदेश ॥

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम् ।

पृञ्चतीर्मधुना पयः ॥ १ ॥

पदार्थ—(**अम्बयः**) पाने योग्य मातायें और (**जामयः**) मिलकर भोजन करनेहारी, बहिनें [वा कुलस्त्रियां] (**मधुना**) मधु के साथ (**पयः**) दूध को (**पृञ्चतीः**) मिलाती हुई (**अध्वरीयताम्**) हिंसा न करने हारे यजमानों के (**अध्वभिः**) सन्मार्गों में (**यन्ति**) चलती हैं ॥१॥

भावार्थ—जो पुरुष, पुत्रों के लिए माताओं के समान, और भाइयों के लिए बहिनों के समान, हितकारी होते हैं, वे सन्मार्गों में आप चलते और सब को चलाते हैं ॥१॥

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह ।

ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥ २ ॥

पदार्थ—(**अमूः**) वह (**याः**) जो [मातायें और बहिनें] (**उप—उपेत्य**) समीप होकर (**सूर्ये**) सूर्य के प्रकाश में रहती है, (**वा**) और (**याभिः सह**) जिन [माताओं और बहिनों] के साथ (**सूर्यः**) सूर्य का प्रकाश है। (**ताः**) वह (**नः**) हमारे (**अध्वरम्**) उत्तम मार्ग देने हारे वा हिंसारहित कर्म को (**हिन्वन्तु**) सिद्ध करें वा बढ़ावें ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो बातों का वर्णन है एक यह कि किसी में उत्तम गुणों का होना, दूसरे यह कि उन उत्तम गुणों को फैलाना ॥२॥

अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः ।

सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥ ३ ॥

पदार्थ—(**यत्र**) जिस जल में से (**गावः**) सूर्य की किरणें [वा गौएं आदि जीव वा भूमि प्रदेश] (**नः**) हमारे लिए (**हविः**) देने वा लेने योग्य अन्न वा जल (**कर्त्वम्**) उत्पन्न करने को (**सिन्धुभ्यः**) बहने वाले समुद्रों में (**पिबन्ति**) पान करती है। (**देवीः**) उस उत्तम गुण वाले (**अपः**) जल को (**उप**) आदर से (**ह्वये**) मैं बुलाता हूँ ॥३॥

भावार्थ—जल को सूर्य की किरणें समुद्र आदि से खींचती है वह जल फिर बरस कर हमारे लिए अन्न आदि पदार्थ उत्पन्न करके सुख देता है अथवा गौ आदि सब प्राणी जल द्वारा उत्पन्न पदार्थों से सुखी होकर सबको सुखी करते है, वैसे ही हमको परस्पर सहायक और उपकारी होना चाहिए ॥३॥

अप्स्व१न्तरमृतमप्सु भेषजम् ।

अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ वाजिनो

गावो भवथ वाजिनीः ॥ ४ ॥

पदार्थ—(**अप्सु अन्तः**) जल के बीच में (**अमृतम्**) रोगनिवारक अमृत रस है और (**अप्सु**) जल में (**भेषजम्**) भय जीतने वाला औषध है, (**उत**) और (**अपाम्**) जल के (**प्रशस्तिभिः**) उत्तम गुणों से (**अश्वाः**) हे घोड़ो ! तुम, (**वाजिनः**) वेग वाले (**भवथ**) होते हो, (**गावः**) हे गौओ, तुम (**वाजिनीः—०—न्यः**) वेग वाली (**भवथ**) होती हो ॥४॥

भावार्थ—जल से रोग निवारक और पुष्टिवर्धक पदार्थ उत्पन्न होते हैं। जैसे जल से उत्पन्न हुए घास आदि से गौएं और घोड़े बलवान् होकर उपकारी होते हैं, उसी प्रकार सब मनुष्य अन्न आदि के सेवन से पुष्ट रह कर और ईश्वर की महिमा जान कर सदा परस्पर उपकारी बनें ॥४॥

卐 सूक्तम् ५ 卐

१—४ । सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवता । गायत्री छन्दः ॥

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन ।

महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥

पदार्थ—(**आपः**) हे जलो ! [जल के समान उपकारी पुरुषो] (**हि**) निश्चय करके (**मयोभुवः**) सुखकारक (**स्थ**) होते हो, (**ताः**) सो तुम (**नः**) हमको (**ऊर्जे**) पराक्रम वा अन्न के लिए (**महे**) बड़े-बड़े (**रणाय**) संग्राम वा रमण के लिए और (**चक्षसे**) [ईश्वर के] दर्शन के लिए (**दधातन**) पुष्ट करो ॥ १ ॥

भावार्थ—जैसे जल खान, पान, खेती, बाड़ी, कला, यन्त्र आदि में उपकारी होता है, वैसे मनुष्यों को अन्न, बल और विद्या की वृद्धि से परस्पर वृद्धि करनी चाहिए ॥१॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥२॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (**यः**) जो (**वः**) तुम्हारा (**शिवतमः**) अत्यन्त सुखकारी (**रसः**) रस है, (**इह**) यहां [संसार में] (**नः**) हमको (**तस्य**) उसका (**भाजयत**) भागी करो, (**इव**) जैसे (**उशतीः**) प्रीति करती हुई (**मातरः**) मातायें ॥२॥

भावार्थ—जैसे मातायें प्रीति के साथ सन्तानों को सुख देती हैं और जैसे जल संसार में उपकारी पदार्थ है, वैसे ही सब मनुष्य परस्पर उपकारी बनकर लाभ उठावें और आनन्द भोगें ॥२॥

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।

आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥

पदार्थ—[हे पुरुषार्थी मनुष्यो !] (**तस्मै**) उस पुरुष के लिए (**वः**) तुमको (**अरम्**) शीघ्र वा पूर्ण रीति से (**गमाम**) हम पहुँचावें, (**यस्य**) जिस पुरुष के (**क्षयाय**) ऐश्वर्य के लिए (**जिन्वथ**) तुम अनुग्रह करते हो। (**आपः**) हे जलो [जल समान उपकारी लोगो] (**नः**) हमको (**च**) अवश्य (**जनयथ**) तुम उत्पन्न करते हो ॥३॥

भावार्थ—जैसे जल, अन्न आदि को उत्पन्न करके शरीर के पुष्ट करने और नौका, विमान आदि के चलाने में उपयोगी होता है इसी प्रकार जल के समान उपकारी पुरुष सब लोगों को लाभ और कीर्ति के साथ पुनर्जन्म देते हैं ॥३॥

ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् । अपो याचामि भेषजम् ॥४॥

पदार्थ—(**वार्याणाम्**) चाहने योग्य धनों की (**ईशानाः**) ईश्वरी और (**चर्षणीनाम्**) मनुष्यों को (**क्षयन्तीः**) स्वामिनी (**अपः**) जल धाराओं [जल के समान उपकारी प्रजाओं] में मैं, (**भेषजम्**) भय जीतने वाले औषध को (**याचामि**) मांगता हूँ ॥४॥

भावार्थ—जल से अन्न आदि औषध उत्पन्न होकर मनुष्य के धन और बल का कारण है, वैसे जल के समान गुणी महात्माओं से सहाय लेकर मनुष्यों को आनन्दित रहना चाहिए ॥४॥

卐 सूक्तम् ६ 卐

१—४ । सिन्धुद्वीपोऽथर्वाकृतिर्वा ऋषिः । आपो देवताः ।

१-३ गायत्री ४ पङ्क्तिः ।

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्रवन्तु नः ॥१॥

पदार्थ—(**देवीः**) दिव्य गुण वाले (**आपः**) जल [जल के समान उपकारी पुरुष] (**नः**) हमारे (**अभिष्टये**) अभीष्ट सिद्धि के लिए और (**पीतये**) पान वा रक्षा के लिए (**शम्**) सुखदायक (**भवन्तु**) होवें। और (**नः**) हमारे (**शम्**) रोग की शान्ति के लिए, और (**योः**) भय दूर करने के लिए (**अभि**) सब ओर से (**स्रवन्तु**) वर्षा करें ॥१॥

भावार्थ—वृष्टि में जल के समान उपकारी पुरुष सब के दुःख की निवृत्ति और सुख की प्रवृत्ति में प्रयत्न करते रहें ॥१॥

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।

अग्निं च विश्वशंभुवम् ॥ २ ॥

पदार्थ—(**सोमः**) बड़े ऐश्वर्य वाले परमेश्वर ने [चन्द्रमा वा सोमलता ने] (**मे**) मुझे (**अप्सु अन्तः**) व्यापनशील जलों में (**विश्वानि**) सब (**भेषजा—०—नि**) औषधों को, (**च**) और (**विश्वशम्भुवम्**) संसार के सुखदायक (**अग्निम्**) अग्नि [बिजुली वा पाचनशक्ति] को (**अब्रवीत्**) बताया है ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर सब विद्याओं का प्रकाशक है, चन्द्रमा औषधियों को पुष्ट करता है, और सोमलता मुख्य औषधि है। यह सब पदार्थ जैसे जल द्वारा औषधों, अन्न आदि और शरीरों के बढ़ाने, बिजुली और पाचनशक्ति पहुँचाने और तेजस्वी करने में मुख्य कारण होते हैं वैसे ही मनुष्यों को परस्पर सामर्थ्य बढ़ाकर उपकार करना चाहिए ॥२॥

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥३॥

पदार्थ—(**आपः**) हे व्यापनशील जलो [जल समान उपकारी पुरुषो] (**मम**) मेरे (**तन्वे**) शरीर के लिए (**च**) और (**ज्योक्**) बहुत काल तक (**सूर्यम्**) चलने वा चलाने वाले सूर्य को (**दृशे**) देखने के लिए (**वरूथम्**) कवचरूप (**भेषजम्**) भय निवारक औषध को (**पृणीत**) पूर्ण करो ॥३॥

भावार्थ—जैसे युद्ध में योद्धा की रक्षा झिलम से होती है वैसे ही जल समान उपकारी पुरुष परस्पर सहायक होकर सबका जीवन आनन्द से बढ़ाते हैं ॥३॥

शं न आपो धन्वन्या३ः शमु सन्त्वनूप्याः । शं नः खनित्रिमा

आपः शमु याः कुम्भ आभृताः शिवा नः सन्तु वार्षिकीः ॥ ४ ॥

पदार्थ—(**नः**) हमारे लिए (**धन्वन्याः**) निर्जल देश के (**आपः**) जल (**शम्**) सुखदायक, (**उ**) और (**अनूप्याः**) जलवाले देश के [जल] (**शम्**) सुखदायक (**सन्तु**) होवें। (**नः**) हमारे लिए (**खनित्रिमाः**) खनती वा फावड़े से निकाले गये (**आपः**) जल (**शम्**) सुखदायक होवें, (**उ**) और (**याः**) जो (**कुम्भे**) घड़े में (**आभृताः**) लाए गए वह भी (**शम्**) सुखदायी होवें, (**वार्षिकी**) वर्षा के जल (**नः**) हमको (**शिवाः**) सुखदायी (**सन्तु**) होवें ॥४॥

भावार्थ—जैसे जल सब स्थानों में उपकारी होता है, वैसे ही जल समान उपकारी मनुष्यों को प्रत्येक कार्य और प्रत्येक स्थान में परस्पर लाभ पहुँचाकर सुखी होना चाहिये ॥४॥

卐 इति प्रथमोऽनुवाकः 卐

卐

अथ द्वितीयोऽनुवाकः

卐 सूक्तम् ७ 卐

१—७ चातनः । अग्निः (जातवेदाः), ३ अग्नीन्द्रौ ।
१—४, ६—७ अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप् ।

स्तुवानमग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम् ।
त्वं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्बभूविथ ॥ १ ॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे अग्ने ! [अग्नि समान प्रतापी] (**स्तुवानम्**) [तेरी] स्तुति करते हुए (**यातुधानम्**) पीड़ा देने हारे (**किमीदिनम्**) यह क्या यह क्या हो रहा है ऐसा कहने वाले लुतरे को (**आवह**) ले आ । (**हि**) क्योंकि (**देव**) हे राजन् ! (**त्वम्**) तू (**वन्दित**) स्तुति को प्राप्त करके (**दस्यो**) चोर वा डाकू का (**हन्ता**) हनन कर्ता (**बभूविथ**) हुआ था ॥१॥

भावार्थ—जब अग्नि के समान तेजस्वी और यशस्वी राजा दुःखदायी लुतरो [चुगलखोरो], डाकुओ और चोरो को आधीन करता है तो शत्रु लोग उसके बल और प्रताप की प्रशंसा करते है और राज्य मे शान्ति फैलती है ॥१॥

आज्यस्य परमेष्ठिन् जातवेदस्तनूवशिन् ।
अग्ने तौलस्य प्राशान यातुधानान् वि लापय ॥ २ ॥

पदार्थ—(**परमेष्ठिन्**) हे बड़े ऊँचे पदवाले ! (**जातवेद**) हे ज्ञान वा धन के देने वाले ! (**तनूवशिन्**) शरीरो को वश मे रखने हारे ! (**अग्ने**) अग्नि, राजन् ! तू (**तौलस्य**) तोल से पाये हुए (**आज्यस्य**) घृत का (**प्र अशान**) भोजन कर और (**यातुधानान्**) दुःखदायी राक्षसो से (**वि लापय**) विलाप करा ॥२॥

भावार्थ—जैसे अग्नि स्रुवादि के तोल वा परिमाण से दिए हुए घृतादि हवन सामग्री को पाकर प्रज्वलित होता है वैसे ही प्रतापी राजा प्रजा का दिया हुआ कर लेकर दुष्टो को दण्ड देता है, उससे प्रजा सदा आनन्दयुक्त रहती है ॥२॥

वि लपन्तु यातुधाना अत्त्रिणो ये किमीदिनः ।
अथेदमग्ने नो हविरिन्द्रश्च प्रति हर्यतम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—(**ये**) जो (**यातुधाना**) पीड़ा देने हारे, (**अत्त्रिण**) पेट भरनेवाले (**किमीदिन**) यह क्या यह क्या, ऐसा करनेवाले लुतरे [है], [वे] (**वि लपन्तु**) विलाप करें । (**अथ**) और (**अग्ने**) हे अग्नि (**च**) और (**इन्द्र**) हे वायु, तुम दोनो (**इदम्**) इस (**हवि**) होम सामग्री को (**प्रति हर्यतम्**) अंगीकार करो ॥३॥

भावार्थ—जैसे अग्नि, वायु के साथ हवन सामग्री मे प्रचण्ड होकर दुर्गन्धादि दोषो का नाश करती है वैसे ही अग्नि के समान तेजस्वी और वायु के समान वेगवान् महाप्रतापी राजा से दुःखदायी, स्वार्थी, बकबके लोग अपने किये का दण्ड पाकर विलाप करते है, तब उसके राज्य मे शान्ति होती है ॥३॥

अग्निः पूर्व आ रभतां प्रेन्द्रो नुदतु बाहुमान् ।
ब्रवीतु सर्वो यातुमानयमस्मीत्येत्य ॥ ४ ॥

पदार्थ—(**पूर्व**) मुखिया (**अग्नि**) अग्नि रूप राजा (**आरभताम्**) [शत्रुओ को] पकड़ लेवे (**बाहुमान्**) प्रबल भुजावाला (**इन्द्र**) वायु रूप सेनापति (**प्रनुदतु**) निकाल देवे । (**सर्व**) एक एक (**यातुमान्**) दुःखदायी राक्षस (**एत्य**) आकर (**अयम् अस्मि**) यह मै हूँ—(**इति**) ऐसा (**ब्रवीतु**) कहे ॥४॥

भावार्थ—जब अग्नि के समान तेजस्वी और वायु के समान वेगवान् महाप्रतापी राजा उपद्रवियो को पकड़ता और देश से निकालता है तब उपद्रवी लोग अपना अपना नाम लेकर उस के शरणागत होते हैं ॥४॥

पश्याम ते वीर्यं जातवेदः प्र णो ब्रूहि यातुधानान् नृचक्षः ।
त्वया सर्वे परितप्ताः पुरस्तात् त आयन्तु प्रब्रुवाणा उपेदम् ॥५॥

पदार्थ—(**जातवेद**) हे ज्ञान देने हारे वा धन देने वाले राजा ! (**ते**) तेरे (**वीर्यम्**) पराक्रम को (**पश्याम**) हम देखें, (**नृचक्ष**) हे मनुष्यो के देखने हारे ! (**न**) हमें (**यातुधानान्**) दुःखदायी राक्षसो को (**प्रब्रूहि**) बता दे । (**त्वया**) तुझ से (**परितप्ता**) जलाए हुए (**ते सर्वे**) वे सब (**प्रब्रुवाणा**) जय बोलते हुए (**पुरस्तात्**) [तेरे] आगे (**इदम्**) इस स्थान मे (**उप आ यन्तु**) चले आवें ॥५॥

भावार्थ—राजा को योग्य है कि अपने राज्य मे विद्याप्रचार करे, सब प्रजा पर दृष्टि रक्खे और उपद्रवियो को अपने आधीन सर्वथा रक्खे कि वे लोग उसकी आज्ञा को सर्वदा मानते रहें ॥५॥

आ रभस्व जातवेदोऽस्माकार्थाय जज्ञिषे ।
दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् वि लापय ॥ ६ ॥

पदार्थ—(**जातवेदः**) हे ज्ञान वा धन देने वाले राजन् ! (**आ रभस्व**) [वैरियो को] पकड़ ले, (**अस्माक**) हमारे (**अर्थाय**) प्रयोजन के लिए (**जज्ञिषे**) तू उत्पन्न हुआ है (**अग्ने**) हे अग्ने [सेनापते] (**न**) हमारा (**दूत.**) दूत (**भूत्वा**) होकर (**यातुधानान्**) दुःखदायियों से (**वि लापय**) विलाप करा ॥६॥

भावार्थ—दूत का अर्थ शीघ्रगामी और सन्तापकारी है । जैसे दूत शीघ्र चल कर सन्देश पहुँचाता है वैसे ही बिजुली रूप अग्नि शरीरो मे प्रविष्ट होकर वेग उत्पन्न करता है अथवा काष्ठ आदि को जलाता है । इसी प्रकार अग्नि के समान तेजस्वी और प्रतापी राजा अपनी प्रजा की दशा को जानकर यथोचित न्याय करता और दुष्टो को दण्ड देता है ।

त्वमग्ने यातुधानानुपबद्धाँ इहा वह ।
अथैषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृश्चतु ॥ ७ ॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे अग्नि ! (**त्वम्**) तू (**उपबद्धान्**) दृढ़ बांधे हुए (**यातुधानान्**) दुःखदायी राक्षसो को (**इह**) यहां पर (**आ वह**) ले आ । (**अथ**) और (**इन्द्र**) वायु (**वज्रेण**) कुल्हाड़े से (**एषाम्**) इनके (**शीर्षाणि**) मस्तको को (**अपि**) भी (**वृश्चतु**) काट डाले ॥७॥

भावार्थ—अग्नि के समान प्रतापी और (इन्द्र) वायु के समान वेगवान् राजा उत्पातियो को कारागार मे डाल दे और उनके सिर उड़ा दें ॥७॥

卐 सूक्तम् ८ 卐

१—४ चातनः । १—२ बृहस्पति अग्नीषोमौ च । ३—४ अग्नि. (जातवेदा) ।
१—३ अनुष्टुप्, ४ बार्हतगर्भा त्रिष्टुप् ।

इदं हविर्यातुधानान् नदी फेनमिवा वहत् ।
य इदं स्त्री पुमानकरिह स स्तुवतां जनः ॥ १ ॥

पदार्थ—(**इदम्**) यह (**हवि**) [हमारी] भक्ति (**यातुधानान्**) राक्षसो को (**आ वहत्**) ले आवे, (**इव**) जैसे (**नदी**) नदी (**फेनम्**) फेन को । (**य**) जिस किसी (**पुमान्**) मनुष्य ने अथवा (**स्त्री**) स्त्री ने (**इदम्**) इस [पापकर्म] को (**अक**) किया है (**स जन**) वह पुरुष (**इह**) यहां (**स्तुवताम्**) [तेरी] स्तुति करे ॥१॥

भावार्थ—प्रजा की पुकार सुनकर जब राजा दुष्टो को पकड़ते हैं, अपराधी स्त्री और पुरुष अपने अपराध को अंगीकार कर लेते और उस प्रतापी राजा की स्तुति करते हैं ॥१॥

अयं स्तुवान आगमदिमं स्म प्रति हर्यत ।
बृहस्पते वशे लब्ध्वाग्नीषोमा वि विध्यतम् ॥ २ ॥

पदार्थ—(**अयम्**) यह [शत्रु] (**स्तुवान**) स्तुति करता हुआ (**आ अगमत्**) आया है, (**इमम्**) इसको (**स्म**) अवश्य (**प्रति हर्यत**) तुम सब स्वागत करो । (**बृहस्पते**) हे बड़े बड़ो के रक्षक राजन् ! [दूसरे वैरी को] (**वशे**) वश मे (**लब्ध्वा**) लाकर [वर्तमान हो], (**अग्नीषोमा** ०—**मौ**) हे अग्नि और चन्द्रमा ! तुम दोनो [अन्य वैरियो को] (**वि**) अनेक भांति से (**विध्यतम्**) ताड़ो ॥२॥

भावार्थ—जो शत्रु राजा का प्रभुत्व मानकर शरणागत हो, राजा और कर्मचारी उसका स्वागत करें । प्रतापी राजा दूसरे वैरी को शम दम आदि से अपने आधीन रक्खे । और अन्य वैरियो को (अग्नीषोमा) दण्ड देने मे अग्नि-सा प्रचण्ड और न्याय करने मे (सोम) चन्द्रमा-सा शान्त स्वभाव रहे ॥२॥

यातुधानस्य सोमप जहि प्रजां नयस्व च ।
नि स्तुवानस्य पातय परमक्ष्युतावरम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—(**सोमप**) हे अमृत पीने हारे [राजन्] तू (**यातुधानस्य**) पीड़ा देने हारे पुरुष के (**प्रजाम्**) मनुष्यो को (**जहि**) मार, (**च**) और (**नयस्व**) ले आ । (**नि स्तुवानस्य**) अपस्तुति [निन्दा] करते हुए [शत्रु का] (**परम्**) उत्तम [हृदय] की (**उत**) और (**अवरम्**) नीची [शिर की] (**अक्षि**) आंख को (**पातय**) निकाल दे ॥३॥

भावार्थ—(सोमप) अमृत पीने हारा अर्थात् शान्त स्वभाव यशस्वी राजा दुष्टो का नाश करे और पकड़ लावे । निन्दा फैलाने हारे मिथ्याचारी शत्रु को नष्ट भ्रष्ट कर दे कि वह पापी अपने मन के भीतरी कुविचार और बाहरी कुचेष्टा और पाप कर्म छोड़ दे ॥३॥

यत्रैषामग्ने जनिमानि वेत्थ गुहा सतामत्त्रिणां जातवेदः ।
तांस्त्वं ब्रह्मणा वावृधानो जह्येषां शततर्हमग्ने ॥ ४ ॥

पदार्थ—(**जातवेदः**) हे अनेक विद्या वाले वा धन वाले ! (**अग्ने**) अग्नि [अग्निस्वरूप राजन्] (**यत्र**) जहां पर (**गुहा**) गुफा मे (**सताम्**) वर्तमान (**एषाम्**) इन (**अत्त्रिणाम्**) उदर पोषको के (**जनिमानि**) जन्मो को (**वेत्थ**) तू जानता है । (**अग्ने**) हे अग्निरूप राजन् ! (**ब्रह्मणा**) वेद ज्ञान [वा अन्न वा

धन] से (वावृधानः) बढ़ता हुआ (त्वम्) तू (तान्) उनकी और (एषाम्) इनकी (शततर्हम्) सैकड़ों प्रकार की हिंसा को (जहि) नाश कर ॥४॥

भावार्थ—अग्नि के समान तेजस्वी महाबली राजा गुप्त उपद्रवियों की खोज करे और उनको यथानीति कड़े-कड़े दण्ड देकर प्रजा में शान्ति रक्खे ॥४॥

卐 सूक्तम् ९ 卐

१—४ अथर्वा । १ वसव , इन्द्र , पूषा, वरुणः, मित्र , अग्निः, आदित्याः , विश्वेदेवाः, २ देवा , सूर्य , अग्नि , हिरण्य, ३—४ अग्नि. (जातवेदाः), त्रिष्टुप् ।

अस्मिन् वसु वसवो धारयन्त्विन्द्रः पूषा वरुणो मित्रो अग्निः ।
इममादित्या उत विश्वे च देवा उत्तरस्मिन् ज्योतिषि धारयन्तु ॥१॥

पदार्थ—(वसव.) प्राणियों के बसानेवाले वा प्रकाशमान, श्रेष्ठ देवता [अर्थात्] (इन्द्र॰) परमेश्वर वा सूर्य, (पूषा) पुष्टि करनेवाली पृथिवी, (वरुण॰) मेघ, (मित्र.) वायु, और (अग्नि) आग, (अस्मिन्) इस पुरुष में [मुझ में] (वसु) धन को (धारयन्तु) धारण करें। (आदित्या.) प्रकाशवाले [बड़े विद्वान् शूरवीर पुरुष] (उत च) और भी (विश्वे) सब (देवा) व्यवहार जाननेहारे महात्मा (इमम्) इसको [मुझको] (उत्तरस्मिन्) अति उत्तम (ज्योतिषि) ज्योति में (धारयन्तु) स्थापित करें ॥१॥

भावार्थ—चतुर पुरुषार्थी मनुष्य के लिए परमेश्वर और संसार के सब पदार्थ उपकारी होते हैं। अथवा जो सूर्य, भूमि, मेघ, वायु और अग्नि के समान उत्तम गुणवाले और दूसरे शूरवीर विद्वान् लोग (आदित्या) जो विद्या के लिए और धरती अर्थात् सब जीवों के लिए पुत्र समान सेवा करते हैं और जो सूर्य के समान उत्तम गुणों से प्रकाशमान हैं, वे सब नरभूषण पुरुषार्थी मनुष्य के सदा सहायक और शुभ-चिन्तक रहते हैं ॥१॥

अस्य देवाः प्रदिशि ज्योतिरस्तु सूर्यो अग्निरुत वा हिरण्यम् ।
सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ २ ॥

पदार्थ—(देवा) हे व्यवहार जाननेहारे महात्माओ ! (अस्य) इसके [मेरे] (प्रदिशि) शासन में (ज्योति) तेज, [अर्थात्] (सूर्य.) सूर्य, (अग्नि) अग्नि, (उत वा) और भी (हिरण्यम्) सुवर्ण (अस्तु) होवे। (सपत्ना) सब वैरी (अस्मत्) हमसे (अधरे) नीचे (भवन्तु) रहें। (उत्तमम्) अति ऊंचे (नाकम्) सुख में (इमम्) इसको [मुझको] (अधि) ऊपर (रोहय — ०—यत) तुम चढ़ाओ ॥२॥

भावार्थ—प्रकाशवाले, सूर्य, अग्नि की और सुवर्ण आदि की विद्यायें, अथवा सूर्य, अग्नि और सुवर्ण के समान प्रकाशवाले लोग, पुरुषार्थी मनुष्य के अधिकार में रहें और वह यथायोग्य शासन करके सर्वोत्तम सुख भोगें ॥२॥

येनेन्द्राय समभरः पयांस्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेदः ।
तेन त्वमग्न इह वर्धयेमं सजातानां श्रैष्ठ्य आ धेह्येनम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—(जातवेद) हे विज्ञानयुक्त, परमेश्वर ! तूने (येन उत्तमेन ब्रह्मणा) जिस उत्तम वेद विज्ञान से (इन्द्राय) पुरुषार्थी जीव के लिए (पयांसि) दुग्धादि रसों को (समभर) भर रक्खा है। (तेन) उसी से (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! (त्वम्) तू (इह) यहां पर (इमम्) इसे [मुझे] (वर्धय) वृद्धि-युक्त कर, (सजातानाम्) तुल्य जन्मवाले पुरुषों में (श्रैष्ठ्ये) श्रेष्ठ पद पर (एनम्) इसको [मुझको] (आ) यथाविधि (धेहि) स्थापित कर ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर पुरुषार्थियों को सदा पुष्ट और आनन्दित करता है। मनुष्य को प्रयत्न करके अपनी श्रेष्ठता और प्रतिष्ठा बढ़ानी चाहिए ॥३॥

ऐषां यज्ञमुत वर्चो ददेऽहं रायस्पोषमुत चित्तान्यग्ने ।
सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर ! (एषाम्) इनके [अपने लोगों के] दिए (यज्ञम्) सत्कार, (उत) और (वर्च.) तेज, (राय) धन की (पोषम्) बढ़ती (उत) और (चित्तानि) मानसिक बलों को (अहम्) मैं (आ ददे) ग्रहण करता हूँ। (सपत्नाः) वैरी लोग (अस्मत्) हमसे (अधरे) नीचे (भवन्तु) होवें, (उत्तमम्) अति ऊँचे (नाकम्) सुख में (इमम्) इसको [मुझे] (अधि) ऊपर (रोहय) चढ़ा ॥४॥

भावार्थ—बुद्धिमान् नीति निपुण पुरुष अपने पक्ष वालों के किए हुए उपकार, और सत्कार को सधन्यवाद स्वीकार करे और विपक्षियों को नीचा दिखाकर अपनी प्रतिष्ठा बढ़ावे ॥४॥

卐 सूक्तम् १० 卐

१—४ अथर्वा । १ असुर ; २—४ वरुणः । त्रिष्टुप्, ३ ककुम्मती अनुष्टुप्, ४ अनुष्टुप् ।

अयं देवानामसुरो वि राजति वशा हि सत्या वरुणस्य राज्ञः ।
ततस्परि ब्रह्मणा शाशदान उग्रस्य मन्योरुदिमं नयामि ॥ १ ॥

पदार्थ—(अयम्) यह (देवानाम्) विजयी महात्माओं का (असुर) प्राणदाता [वा प्रज्ञावान् वा प्राणवान्] परमेश्वर (वि राजति) बड़ा राजा है, (वरुणस्य) वरुण अर्थात् अति श्रेष्ठ (राज्ञ) राजा परमेश्वर की (वशा) इच्छा (सत्या) सत्य (हि) ही है। (तत) इसलिए (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान से (परि) सर्वथा (शाशदान) तीक्ष्ण होता हुआ मैं (उग्रस्य) प्रचण्ड परमेश्वर के (मन्यो.) क्रोध से (इमम्) इसको [अपने को] (उत् नयामि) छुड़ाता हूँ ॥१॥

भावार्थ—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के क्रोध से डर कर मनुष्य पाप न करे और सदा उसे प्रसन्न रक्खें ॥१॥

नमस्ते राजन् वरुणास्तु मन्यवे विश्वं ह्युग्र निचिकेषि द्रुग्धम् ।
सहस्रमन्यान् प्र सुवामि साकं शतं जीवाति शरदस्तवायम् ॥२॥

पदार्थ—(वरुण) हे अति श्रेष्ठ (राजन्) बड़े ऐश्वर्यवाले राजा ! (ते) तुझ (मन्यवे) क्रोधरूप को (नम) नमस्कार (अस्तु) होवे, (उग्र) हे प्रचण्ड ! तू (विश्वम्) सम्पूर्ण (हि) ही (द्रुग्धम्) द्रोह को (नि-चिकेषि) सदा जानता है। [मैं] (सहस्रम्) सहस्र (अन्यान्) दूसरे जीवों को (साकम्) एक साथ (प्रसुवामि) आगे बढ़ाता हूँ, (ते) तेरा (अयम्) यह [सेवक] (शतम्) सौ (शरद) शरद् ऋतुओं तक (जीवाति) जीता रहे ॥२॥

भावार्थ—सर्वज्ञ परमेश्वर के महाक्रोध से भय मानकर मनुष्य पातकों से बचें और सबके साथ उपकार करके जीवन भर आनन्द भोगें ॥२॥

यदुवक्थानृतं जिह्वया वृजिनं बहु ।
राज्ञस्त्वा सत्यधर्मणो मुञ्चामि वरुणादहम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—[हे आत्मा !] (यत्) जो (बहु) बहुत-सा (अनृतम्) असत्य और (वृजिनम्) पाप (जिह्वया) जिह्वा से (उवक्थ) तू बोला है। (अहम्) मैं (त्वा) तुझको (सत्यधर्मण) सच्चे धर्मात्मा वा न्यायी, (वरुणात्) सबसे श्रेष्ठ परमेश्वर (राज्ञ) राजा से (मुञ्चामि) छुड़ाता हूँ ॥३॥

भावार्थ—जो मनुष्य मिथ्यावादी दुराचारी भी होकर उस प्रभु की शरण लेते और सत्कर्मों में प्रवृत्त होते हैं, वे लोग उस जगदीश्वर की न्याय व्यवस्था के अनुसार दुःखपाश से छूटकर आनन्द भोगते हैं ॥३॥

मुञ्चामि त्वा वैश्वानरादर्णवान्महतस्परि ।
सजातानुग्रेहा वद ब्रह्म चाप चिकीहि नः ॥ ४ ॥

पदार्थ—[हे आत्मा !] (महत) विशाल (अर्णवात्) समुद्र के समान गम्भीर (वैश्वानरात्) सब नरों के हितकारक वा सबके नायक परमेश्वर से (त्वा) तुझको (परि मुञ्चामि) मैं छुड़ाता हूँ। (उग्र) हे प्रचण्ड स्वभाव [परमेश्वर !] (सजातान्) [मेरे] तुल्य जन्म वालों को (इह) इस विषय में (आ वद) उपदेश कर (च) और (न) हमारे (ब्रह्म) वैदिक ज्ञान को (अप) आनन्द से (चिकीहि) तू जान ॥४॥

भावार्थ—मनुष्य पापकर्म छोड़ने से सर्वहितकारी परमेश्वर के कोप से मुक्त होते हैं। परमात्मा सब प्राणियों को उपदेश करता और सब की सत्य भक्ति को स्वीकार कर यथार्थ आनन्द देता है ॥४॥

卐 सूक्तम् ११ 卐

१—६ अथर्वा । पूषा, अर्यमा, वेधा , दिश , देवा । १ पंक्ति , २ अनुष्टुप्, ३ चतुष्पदोष्णिग्गर्भा ककुम्मत्यनुष्टुप् ४—६ पथ्यापंक्ति ।

वषट् ते पूषन्नस्मिन्त्सूतावर्यमा होता कृणोतु वेधाः ।
सिस्रतां नार्यृतप्रजाता वि पर्वाणि जिहतां सूतवा उ ॥ १ ॥

पदार्थ—(पूषन्) हे सर्वपोषक, परमेश्वर ! (ते) तेरे लिए (वषट्) यह आहुति [भक्ति] है। (अस्मिन्) इस समय पर (सूतौ) सन्तान के जन्म को (अर्यमा) न्यायकारी, (होता) दाता, (वेधा) सबका रचनेवाला ईश्वर (कृणोतु) करे। (ऋतप्रजाता) पूरे गर्भवाली (नारी) नर का हित करने हारी स्त्री (सिस्रताम्) सावधान रहे, (पर्वाणि) इसके सब अंग (उ) भी (सूतवै) संतान उत्पन्न करने के लिए (विजिहताम्) कोमल हो जावें ॥१॥

भावार्थ—प्रसव समय होने पर पति आदि विद्वान् लोग परमेश्वर की भक्ति के साथ हवनादि कर्म प्रसूता स्त्री की प्रसन्नता के लिए करें और वह स्त्री सावधान होकर श्वास प्रश्वास आदि द्वारा अपने अंगों को कोमल रक्खे जिससे बालक सुख-पूर्वक उत्पन्न होवे ॥१॥

चतस्रो दिवः प्रदिशश्चतस्रो भूम्या उत ।
देवा गर्भं समैरयन् तं व्यूर्णुवन्तु सूतवे ॥ २ ॥

पदार्थ—(दिव) आकाश की (चतस्र) चारों (उत) और (भूम्या) भूमि की (चतस्र) चारों (प्रदिश) दिशाओं ने और (देवा) दिव्य गुणवाले [अग्नि वायु आदि] देवताओं ने (गर्भम्) गर्भ को (समैरयन्) संगत किया है, वे सब (तम्) उस गर्भ को (सूतवे) उत्पन्न होने के लिए (व्यूर्णुवन्तु) प्रस्तुत करें ॥२॥

भावार्थ—अग्नि आदि दिव्य पदार्थों के यथार्थ संयोग से ईश्वरीय नियम के अनुसार यह गर्भ स्थिर हुआ है, मनुष्य उन तत्त्वों की अनुकूलता को, माता और गर्भ में स्थिर रखने के लिए सदा प्रयत्न करते रहें जिससे बालक बलवान् और नीरोग होकर पूरे समय पर उत्पन्न होवे ॥२॥

सूषा व्यूर्णोतु वि योनिं हापयामसि ।
श्रथया सूषणे त्वमव त्वं बिष्कले सृज ॥ ३ ॥

पदार्थ—(**सूषा**) सन्तान उत्पन्न करनेवाली माता (**व्यूर्णोतु**) अंगों को कोमल करे (**योनिम्**) प्रसूतिका गृह को (**विहापयामसि**) हम प्रस्तुत करते हैं। (**सूषणे**) हे जन्म देनेहारी माता ! (**त्वम्**) तू (**श्रथया**) प्रसन्न हो। (**बिष्कले**) हे वीर स्त्री ! (**त्वम्**) तू (**अव सृज**) [बालक को] उत्पन्न कर ॥३॥

भावार्थ—गर्भ के पूरे दिनों में गर्भिणी की शारीरिक और मानसिक अवस्था को विशेष ध्यान से स्वस्थ रक्खे। माता के प्रसन्न और सुखी रहने से बालक भी प्रसन्न और सुखी होता है। प्रसूतिका गृह भी पहिले से देश, काल विचार कर प्रस्तुत रक्खें कि प्रसूता स्त्री और बालक भले प्रकार स्वस्थ और हृष्ट पुष्ट रहें ॥३॥

नेव मांसे न पीवसि नेव मज्जस्वाहतम् ।
अवैतु पृश्नि शेवलं शुने जराय्वत्तवेऽव जरायु पद्यताम् ॥४॥

पदार्थ—[वह जरायु] (**नेव**) न तो (**मांसे**) मांस में (**न**) न (**पीवसि**) शरीर की मुटाई में (**नेव**) और न (**मज्जसु**) हड्डियों की मींग में (**आहतम्**) बंधी हुई है। (**पृश्नि**) पसली (**शेवलम्**) सेवार घास के समान (**जरायु**) जेली वा झिल्ली (**शुने**) कुत्ते के लिए (**अत्तवे**) खाने को (**अव**) नीचे (**एतु**) आवे, (**जरायु**) जरायु (**अव**) नीचे (**पद्यताम्**) गिर जावे ॥४॥

भावार्थ—जरायु एक झिल्ली होती है जिसे जेली वा जेरी कहते हैं और जिसमें बालक गर्भ के भीतर लिपटा रहता है, कुछ उसमें से बालक के साथ निकल आती है और कुछ पीछे। यह जरायु बालक उत्पन्न होने पर नाभि आदि के बन्धन से छूट जाती है और साररहित होकर माता के उदर में ऐसे फिरती है जैसे सेवार नामक घास जलाशय में। शरीर में उसके रह जाने से रोग हो जाता है। इससे उस जरायु का उदर से निकल जाना आवश्यक है जिससे प्रसूता नीरोग होकर सुखी रहे ॥४॥

वि ते भिनद्मि मेहनं वि योनिं वि गवीनिके ।
वि मातरं च पुत्रं च वि कुमारं जरायुणाव जरायु पद्यताम् ॥५॥

पदार्थ—(**ते**) तेरे (**मेहनम्**) गर्भ मार्ग को (**वि**) विशेष करके और (**योनिम्**) गर्भाशय को (**वि**) विशेष करके और (**गवीनिके**) पार्श्वस्थ दोनों नाडियों को (**वि**) विशेष करके (**भिनद्मि**) [मलसे] अलग करती हूँ (**च**) और (**मातरम्**) माता को (**च**) और (**कुमारम्**) क्रीडा करने वाले (**पुत्रम्**) पुत्र को (**जरायुणा**) जरायु से (**वि वि**) अलग-अलग [करती हूँ], (**जरायु**) जरायु (**अव**) नीचे (**पद्यताम्**) गिर जावे ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में धात्री [धायी] अपने कर्म का वर्णन करके प्रसूता को उत्साहित करती है, अर्थात् धायी बड़ी सावधानी से प्रसव समय प्रसूता के अंगों को आवश्यकतानुसार कोमल मर्दन करे और उत्पन्न होने पर माता और सन्तान की यथायोग्य शुद्धि करके सुधि रक्खे और ऐसा यत्न करे कि जरायु अपने आप गिर जावे जिससे दोनों माता और सन्तान सुखी रहें ॥५॥

यथा वातो यथा मनो यथा पतन्ति पक्षिणः ।
एवा त्वं दशमास्य साकं जरायुणा पताव जरायु पद्यताम् ॥६॥

पदार्थ—(**यथा**) जैसे (**वातः**) पवन और (**यथा**) जैसे (**मनः**) मन और (**यथा**) जैसे (**पक्षिणः**) पक्षी (**पतन्ति**) चलते हैं। (**एव**) वैसे ही (**दशमास्य**) हे दश महीनेवाले [गर्भ के बालक !] (**त्वम्**) तू (**जरायुणा साकम्**) जरायु के साथ (**पत**) नीचे आ, (**जरायु**) जरायु (**अव**) नीचे (**पद्यताम्**) गिर जावे ॥६॥

भावार्थ—(दशमास्य) दशवें महीने में बालक माता के गर्भ में बहुत शीघ्र चेष्टा करता है तब वह उत्पन्न होता है और जरायु वा जेली कुछ उसके साथ और कुछ उसके पीछे निकलती है ॥६॥

卐 इति द्वितीयोऽनुवाकः 卐

卐

अथ तृतीयोऽनुवाकः

卐 सूक्तम् १२ 卐

१—४ भृग्वङ्गिराः । यक्ष्मनाशनम् । जगती । त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप् ।

जरायुजः प्रथम उस्रियो वृषा वातभ्रजा स्तनयन्नेति वृष्ट्या । स नो मृडाति तन्व ऋजुगो रुजन् य एकमोजस्त्रेधा विचक्रमे ॥१॥

पदार्थ—(**जरायुजः**) झिल्ली से [जरायुरूप प्रकृति से] उत्पन्न करने वाला, (**प्रथमः**) पहले से वर्तमान, (**उस्रियः**) प्रकाशमान [हिरण्यगर्भनाम], (**वातभ्रजाः**) पवन के साथ पाकशक्ति वा तेज देने वाला, (**वृषा**) मेघरूप परमेश्वर (**स्तनयन्**) गरजता हुआ (**वृष्ट्या**) बरसा के साथ (**एति**) चलता रहता है। (**सः**) वह (**ऋजुगः**) सरलगामी (**रुजन्**) [दोषों को] मिटाता हुआ, (**नः**) हमारे (**तन्वे**) शरीर के लिए (**मृडाति**) सुख देवे, (**यः**) जिस (**एकम्**) अकेले (**ओजः**) सामर्थ्य ने (**त्रेधा**) तीन प्रकार से (**विचक्रमे**) सब ओर को पद बढ़ाया था ॥१॥

भावार्थ—जैसे माता के गर्भ से जरायु में लिपटा हुआ बालक उत्पन्न होता है वैसे ही [उस्रिय] प्रकाशवान् हिरण्यगर्भ और मेघरूप परमेश्वर [वातभ्रजा] सृष्टि में प्राण डाल कर पाचन शक्ति और तेज देता हुआ सब संसार को प्रलय के पीछे प्रकृति, स्वभाव वा सामर्थ्य से उत्पन्न करता है, वही त्रिकालज्ञ और त्रिलोकीनाथ आदिकारण जगदीश्वर हमें सदा आनन्द देवे ॥१॥

अङ्गेअङ्गे शोचिषा शिश्रियाणं नमस्यन्तस्त्वा हविषा विधेम ।
अङ्कान्त्समङ्कान् हविषा विधेम यो अग्रभीत् पर्वास्या ग्रभीता ॥२॥

पदार्थ—(**शोचिषा**) अपने प्रकाश से (**अङ्गेअङ्गे**) अङ्ग अङ्ग में (**शिश्रियाणम्**) ठहरे हुए (**त्वा**) तुझको (**नमस्यन्तः**) नमस्कार करते हुए हम (**हविषा**) भक्ति से (**विधेम**) सेवा करते रहें। [उसके] (**अङ्कान्**) पृथक्-पृथक् चिह्नों को और (**समङ्कान्**) मिले हुए चिह्नों को (**हविषा**) भक्ति से (**विधेम**) हम आराधें, (**यः**) जिस (**ग्रभीता**) ग्रहण करने हारे परमेश्वर ने (**अस्य**) इस [सेवक वा जगत्] के (**पर्व**) अवयव अवयव को (**अग्रभीत्**) ग्रहण किया है ॥२॥

भावार्थ—वह (वृषा—म० १) परमात्मा हमारे और सब व्यष्टि और समष्टि रूप जगत् के रोम रोम में परिपूर्ण है। उस प्रकाशस्वरूप के गुणों को यथावत् जानकर हम लोग उस पर पूरी श्रद्धा से आत्मसमर्पण करें। वह हमारे शरीर और आत्मा को बल देकर सहाय और आनन्द देता है ॥२॥

मुञ्च शीर्षक्त्या उत कास एनं परुष्परुराविवेशा यो अस्य ।
यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतीन्त्सचतां पर्वतांश्च ॥३॥

पदार्थ—(**एनम्**) इस पुरुष को (**शीर्षक्त्याः**) शिर की पीड़ा से (**उत**) और [उस खांसी से] (**मुञ्च**) छुड़ा (**यः कासः**) जिस खांसी ने (**अस्य**) इस पुरुष के (**परुः परुः**) जोड़ जोड़ में (**आविवेश**) घर कर लिया है। (**यः**) जो खांसी (**अभ्रजाः**) मेघ से उत्पन्न, (**वातजाः**) वायु से उत्पन्न (**च**) और (**यः**) जो (**शुष्मः**) सूखी [होवे और जो] (**वनस्पतीन्**) वृक्षों से (**च**) और (**पर्वतान्**) पहाड़ों से (**सचताम्**) सम्बन्ध वाली होवे ॥३॥

भावार्थ—खांसी सब रोगों की माता है जैसा कि प्रसिद्ध है "लड़ाई का घर हांसी और रोग का घर खांसी।" जैसे सद्वैद्य मन्त्र में कहे अनुसार मस्तक की पीड़ा और खांसी आदि बाहिरी और भीतरी रोगों का निदान जानकर रोगी को स्वस्थ करता है इसी प्रकार परमेश्वर वेदज्ञान से मनुष्य को दोषों से छुड़ा कर और ब्रह्मज्ञान देकर अत्यन्त सुखी करता है। इसी प्रकार राजप्रबन्ध और गृहप्रबन्ध आदि व्यवहार में विचारना चाहिए ॥३॥

शं मे परस्मै गात्राय शमस्त्ववराय मे ।
शं मे चतुर्भ्यो अङ्गेभ्यः शमस्तु तन्वे मम ॥ ४ ॥

पदार्थ—(**मे**) मेरे (**परस्मै**) ऊपर के (**गात्राय**) शरीर के लिए (**शम्**) सुख और (**मे**) मेरे (**अवराय**) नीचे के [शरीर के] लिए (**शम्**) सुख (**अस्तु**) होवे। (**मे**) मेरे (**चतुर्भ्यः**) चारों (**अङ्गेभ्यः**) अङ्गों के लिए (**शम्**) सुख और (**मम**) मेरे (**तन्वे**) सब शरीर के लिए (**शम्**) सुख (**अस्तु**) होवे ॥४॥

भावार्थ—चारों अंग दो हाथ और दो पद हैं। मनुष्य को योग्य है कि परमेश्वर की प्रार्थनापूर्वक अपने सब अमूल्य शरीर को प्रयत्न से सर्वथा स्वस्थ रक्खे और मानसिक बल बढ़ा कर संसार में उपकारी हो और सदा सुख भोगे ॥४॥

卐 सूक्तम् १३ 卐

१—४ भृग्वङ्गिराः । विद्युत् । अनुष्टुप्, ३ चतुष्पाद्विराड् जगती, ४ त्रिष्टुप्परा बृहतीगर्भा पङ्क्तिः ।

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते अस्त्वश्मने येना दूडाशे अस्यसि ॥ १ ॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (**ते**) तुझ (**विद्युते**) कौंधा लेती हुई, बिजुली समान को (**नमः**) नमस्कार (**अस्तु**) होवे, (**ते**) तुझ (**स्तनयित्नवे**) गड़गड़ाते हुए, बादल समान को (**नमः**) नमस्कार होवे। (**ते**) तुझ (**अश्मने**) पाषाण समान को (**नमः**) नमस्कार (**अस्तु**) होवे, (**येन**) जिस [पत्थर] से (**दूडाशे**) दुःखदायी पुरुष को (**अस्यसि**) तू ढा देता है ॥१॥

भावार्थ—न्यायकारी परमात्मा दुःखदायी अधर्मी पापियों को आधिदैविक आदि दण्ड देकर असह्य विपत्तियों में डालता है, इसलिए सब मनुष्य उसके कोप से डर कर उसकी आज्ञा का पालन करें और सदा आनन्द भोगें ॥१॥

नमस्ते प्रवतो नपाद् यतस्तपः समूहसि ।
मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (**प्रवतः**) अपने भक्त के (**नपात्**) न गिराने हारे ! (**ते**) तुभको (**नमः**) नमस्कार है, (**यतः**) क्योंकि तू [दुष्टों पर] (**तप**) सताप को (**समूहसि**) सयुक्त करता है । (**नः**) हमे (**तनूभ्य**) हमारे शरीरो के लिए (**मृडय**) सुख दे और (**तोकेभ्य**) हमारे सन्तानो के लिए (**मय.**) सुख (**कृधि**) प्रदान कर ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर भक्तो को आनन्द और पापियो को कष्ट देता है । सब मनुष्य नित्य धर्म मे प्रवृत्त रहें और ससार भर मे सुख की वृद्धि करे ॥२॥

प्रवतो नपान् नम एवास्तु तुभ्यं नमस्ते हेतये तपुषे च कृण्मः ।
विद्म ते धाम परमं गुहा यत् समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः ॥३॥

पदार्थ—हे (**प्रवत**) अपने भक्त के (**नपात्**) न गिराने वाले ! (**तुभ्यम्**) तुभको (**एव**) अवश्य (**नम.**) नमस्कार (**अस्तु**) होवे, (**ते**) तुभ (**हेतये**) वज्र समान को (**च**) और (**तपुषे**) तपाने वाले ताप आदि अस्त्र समान को (**नम.**) नमस्कार (**कृण्मः**) हम करते है । (**यत्**) क्योकि (**ते**) तेरे (**परमम्**) बडे ऊँचे (**धाम**) धाम [निवास] को (**गुहा** गुहायाम्) गुफा मे [अपने हृदय और प्रत्येक गम्य स्थान मे] (**विद्म**) हम जानते है । (**समुद्रे अन्त**) आकाश के बीच मे (**नाभि**) बन्ध मे रखने वाली नाभि के समान तू (**निहिता**) ठहरा हुआ (**असि**) है ॥३॥

भावार्थ—उस भक्त रक्षक, दुष्ट नाशक परमात्मा का [परमधाम] महत्त्व सबके हृदयो मे और सब अगम्य स्थानो मे वर्तमान है । जैसे [नाभि] सब नाडियो को बन्धन मे रखकर शरीर के भार का समान तोलकर रखती है, वैसे ही परमेश्वर [समुद्र] अन्तरिक्ष वा प्रकाश मे स्थित मनुष्य आदि प्राणियो और सब पृथिवी, सूर्य्य आदि लोको का धारण करने वाला केन्द्र है । विद्वान् लोग उसको माथा टेकते और उसकी महिमा को जानकर ससार मे उन्नति करते है ॥३॥

यां त्वा देवा असृजन्त विश्व इषुं कृण्वाना असनाय धृष्णुम् ।
सा नो मृड विदथे गृणाना तस्यै ते नमो अस्तु देवि ॥ ४ ॥

पदार्थ—(**विश्वे**) सब (**देवा**) विद्वानो ने (**याम् त्वा**) जिस तुभ [परमेश्वर] को (**असनाय**) नाश के लिए (**धृष्णुम्**) बहुत दृढ (**इषुम्**) शक्ति अर्थात् बरछी (**कृण्वाना**) बनाकर (**असृजन्त**) माना है । (**सा**) सो तू (**विदथे**) यज्ञ मे (**गृणाना**) उपदेश करती हुई (**नः**) हमको (**मृड**) सुख दे, (**देवि**) हे देवि [दिव्य बरछी] (**तस्यै ते**) उस तेरे लिए (**नम**) नमस्कार (**अस्तु**) होवे ॥४॥

भावार्थ—विद्वान् लोग परमेश्वर के क्रोध को सब ससार के दोषो के नाश के लिए बरछी रूप समझ कर सदा सुधार और उपकार करते है । तब ससार मे प्रतिष्ठा और मान पाकर सुख भोगते और परमात्मा के क्रोध का धन्यवाद देते हैं ॥४॥

卐 सूक्तम् १४ 卐

१—४ भृग्वङ्गिरा । वरुणो (यमो) वा । अनुष्टुप्, १ ककुम्मती अनुष्टुप्, ३ चतुष्पाद्विराट् ।

भगमस्या वर्च आदिष्यधि वृक्षादिव स्रजम् ।
महाबुध्न इव पर्वतो ज्योक् पितृष्वास्ताम् ॥ १ ॥

पदार्थ—(**अस्याः**) इस [वधू] से (**भगम्**) [अपने] ऐश्वर्य का और (**वर्चः**) तेज का (**आ अदिषि**) मैंने माना है, (**इव**) जैसे (**वृक्षात् अधि**) वृक्ष से (**स्रजम्**) फूलो की माला का (**महाबुध्न**) विशाल जड वाले (**पर्वत. इव**) पर्वत के समान [यह वधू] (**पितृषु**) [मेरे] माता पिता आदि बान्धवो मे (**ज्योक्**) बहुत काल तक (**आस्ताम्**) रहे ॥१॥

भावार्थ—यह वर का वचन है । विद्वान् पुरुष खोज कर अपने समान गुणवती स्त्री से विवाह करके ससार मे ऐश्वर्य और शोभा पाता है जैसे वृक्ष के सुन्दर फूलो से शोभा होती है । वधू अपने सास ससुर आदि माननीयो की सेवा और शिक्षा से दृढचित्त होकर घर के कामो का सुप्रबन्ध करके गृहलक्ष्मी की पक्की नेव जमावे और पति पुत्र आदि कुटुम्बियो मे बडी आयु भोग कर आनन्द करे ॥१॥

एषा ते राजन् कन्या वधूर्नि धूयतां यम ।
सा मातुर्बध्यतां गृहेऽथो भ्रातुरथो पितुः ॥ २ ॥

पदार्थ—(**यम**) हे नियम मे चलने वाले, वर (**राजन्**) राजा ! (**एषा**) यह (**कन्या**) कामना योग्य कन्या (**ते**) तेरी (**वधूः**) वधू (**नि**) नियम से (**धूयताम्**) व्यवहार करे । (**सा**) वह (**मातुः**) [तेरी] माता के (**अथो**) और भी (**पितु**) पिता के (**अथो**) और (**भ्रातुः**) भ्राता के साथ (**गृहे**) घर में (**बध्यताम्**) नियम से बंधी रहे ॥२॥

भावार्थ—मन्त्र २—४ वधू पक्ष के वचन हैं । वधू के माता पिता आदि वर से कहें कि यह सुशिक्षिता गुणवती कन्या आप को सौंपी जाती है । यह आप के माता, पिता और भ्राता आदि सब कुटुम्बियो मे रहकर अपने सुप्रबन्ध से सबको प्रसन्न रक्खे और सुख भोगे ॥२॥

एषा ते कुलपा राजन् तामु ते परि दद्मसि ।
ज्योक् पितृष्वासाता आ शीर्ष्णः समोप्यात् ॥ ३ ॥

पदार्थ—(**राजन्**) हे वर राजा (**एषा**) यह कन्या (**ते**) तेरे (**कुलपाः**) कुल की रक्षा करने हारी है, (**ताम्**) उसको (**उ**) ही (**ते**) तेरे लिए (**परि**) आदर से (**दद्मसि**) हम दान करते है । यह (**ज्योक्**) बहुत काल तक (**पितृषु**) तेरे माता पिता आदिको मे (**आसाते**) निवास करे, और (**आ शीर्ष्णः**) अपने मस्तक तक [जीवन पर्यन्त वा बुद्धि की पहुँच तक] (**समोप्यात्**) ठीक ठीक बढती का बीज बोवे ॥३॥

भावार्थ—फिर वधू पक्ष वाले माता पिता आदि इस मन्त्र से जामाता की विनति करते और स्त्री धर्म का उपदेश करते हुए कन्यादान करके गृहाश्रम मे प्रविष्ट कराते हैं ॥३॥

असितस्य ते ब्रह्मणा कश्यपस्य गयस्य च ।
अन्तः कोशमिव जामयोऽपि नह्यामि ते भगम् ॥४॥

पदार्थ—(**असितस्य**) जो तू बन्धन रहित, (**कश्यपस्य**) [सोम] रस पीने हारा (**च**) और (**गयस्य**) कीर्तन के योग्य है उस (**ते**) तेरे (**ब्रह्मणा**) वेदज्ञान के कारण (**ते**) तेरे लिए (**भगम्**) ऐश्वर्य को (**अपि**) अवश्य (**नह्यामि**) मैं बाधता हूँ । (**इव**) जैसे (**जामय**) कुल स्त्रिया [वा बहिनें] (**अन्तः कोशम्**) मञ्जूषा वा पिटारे को [बाधती] है ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र के अनुसार वधू पक्ष वाले पुरुष और स्त्रिया विनति करके श्रेष्ठ वर और कन्या को धन, भूषण और वस्त्र आदि से सत्कार के साथ विदा करे ॥४॥

卐 सूक्तम् १५ 卐

१—४ अथर्वा । सिन्धव , (वाता , पतत्रिण) । अनुष्टुप्, २ भुरिक्पथ्या पक्तिः ।

सं सं स्रवन्तु सिन्धवः सं वाताः सं पतत्रिणः ।
इमं यज्ञं प्रदिवो मे जुषन्तां संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥१॥

पदार्थ—(**सिन्धव**) सब समुद्र (**सम् सम्**) अत्यन्त अनुकूल (**स्रवन्तु**) बहें, (**वाता.**) विविध प्रकार के पवन और (**पतत्रिण.**) पक्षी (**सम् सम्**) बहुत अनुकूल [बहें] (**प्रदिव.**) बड़े तेजस्वी विद्वान् लोग (**इमम्**) इस (**मे**) मेरे (**यज्ञम्**) सत्कार को (**जुषन्ताम्**) स्वीकार करें, (**संस्राव्येण**) बहुत आर्द्र भाव [कोमलता] से भरी हुई (**हविषा**) भक्ति के साथ [उनको] (**जुहोमि**) मैं स्वीकार करता हूँ ॥१॥

भावार्थ—मनुष्यो को योग्य है कि नौका आदि से समुद्र यात्रा को, विमान आदि से वायुमण्डल मे जाने आने के मार्गों को, और यथायोग्य व्यवहार से पक्षी आदि सब जीवो को अनुकूल रक्खें, और विज्ञानपूर्वक सब पदार्थों से उपकार लेवें । और विद्वानो मे पूर्ण प्रीति और श्रद्धा रक्खें जिससे वे भी उत्साहपूर्वक बर्ताव करें ॥१॥

इहैव हवमा यात म इह संस्रावणा उतेमं वर्धयता गिरः ।
इहैतु सर्वो यः पशुरस्मिन् तिष्ठतु या रयिः ॥ २ ॥

पदार्थ—(**संस्रावणा**) हे बहुत आर्द्र भाव वाले [बडे कोमल स्वभाव वाले] (**गिर**) स्तुति योग्य विद्वानो ! (**इह**) यहा पर (**एव**) ही (**मे**) मेरे (**हवम्**) आवाहन को (**आ यात**) तुम पहुँचो, (**उत**) और (**इमम्**) इस पुरुष को (**वर्धयत**) बढाओ । (**य सर्वः पशु**) जो प्रत्येक जीव है [वह] (**इह**) यहा (**एतु**) आवे और (**या रयि**) जो लक्ष्मी है [वह भी सब] (**अस्मिन्**) इस [पुरुष] मे (**तिष्ठतु**) ठहरी रहे ॥२॥

भावार्थ—विद्वान् लोग विद्या के बल से ससार की उन्नति करते है । इससे मनुष्य विद्वानो का सत्सग पाकर सदा अपनी वृद्धि करें और उपकारी जीवो और धन का उपार्जन पूर्ण शक्ति से करते रहें ॥२॥

ये नदीनां संस्रवन्त्युत्सासः सदमक्षिताः ।
तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि ॥३॥

पदार्थ—(**नदीनाम्**) नाद करने वाली नदियो के (**ये**) जो (**अक्षिताः**) अक्षय (**उत्सासः**) सोते (**सदम्**) सर्वदा (**संस्रवन्ति**) मिलकर बहते है । (**तेभि सर्वैः**) उन सब (**संस्रावैः**) जलप्रवाहो के साथ (**मे**) अपने (**धनम्**) धन को (**सम्**) उत्तम रीति से (**स्रावयामसि**) हम व्यय करें ॥३॥

भावार्थ—जैसे पर्वतो पर जल के सोते मिलने से वेगवती और उपकारिणी नदियाँ बनती हैं जो ग्रीष्म ऋतु मे भी नही सूखती, इसी प्रकार हम सब मिलकर विज्ञान और उत्साह पूर्वक तडित्, अग्नि, वायु, सूर्य, जल, पृथिवी आदि पदार्थों से उपकार लेकर अक्षय धन बढावें । और उसे उत्तम कर्मों मे व्यय करें ॥३॥

ये सर्पिषः संस्रवन्ति क्षीरस्य चोदकस्य च ।
तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि ॥४॥

पदार्थ—(सर्पिष) घृत की (च) और (क्षीरस्य) दूध की (च) और (उदकस्य) जल की (ये) जो धारायें (संस्रवन्ति) मिलकर बह चलती हैं । (तैः सर्वैः) उन सब (संस्रावैः) धाराओं के साथ (मे) अपने (धनम्) धन को (सम्) उत्तम रीति से (स्रावयामसि) हम व्यय करें ॥४॥

भावार्थ—जैसे घी, दूध और जल की बूंद-बूंद मिलकर धारें बन जाती और उपकारी होती है, इसी प्रकार हम लोग उद्योग करके थोड़ा थोड़ा सचय करने से बहुत सा विद्या धन और सुवर्ण आदि धन प्राप्त करके उत्तम कार्यों में व्यय करें ॥४॥

卐 सूक्तम् १६ 卐

१—४ चातन । १ अग्नि, इन्द्र., वरुण., ३—४ दधत्य सीसम् । अनुष्टुप्, ४ ककुम्मती अनुष्टुप् ।

येमावास्यां३ रात्रिमुदस्थुर्व्राजमत्त्रिणः ।
अग्निस्तुरीयो यातुहा सो अस्मभ्यमधि ब्रवत् ॥१॥

पदार्थ—(ये) वे जो (अत्त्रिण) उदर पोषक [खाऊ लोग] (अमावास्याम्) अमावसी में (रात्रिम्) विश्राम देने हारी रात्रि को (व्राजम्) गोशालाओं पर [अथवा समूह के समूह] (उदस्थु) चढ़ आये हैं । (स) वह (तुरीय) वेगवान् (यातुहा) राक्षसों का नाश करने हारा (अग्नि) अग्नि [अग्नि सदृश तेजस्वी राजा] (अस्मभ्यम्) हमारे हित के लिए (अधि) [उन पर] अधिकार जमा कर (ब्रवत्) घोषणा करे ॥१॥

भावार्थ—जो दुष्ट जन अंधेरी रातों में गोशाला आदि पर धावा करके प्रजा को सतावें तो प्रतापी राजा ऐसे राक्षसों से रक्षा करके राज्य भर में शान्ति फैलावे ॥१॥

सीसायाध्याह वरुणः सीसायाग्निरुपावति ।
सीसं म इन्द्रः प्रायच्छत् तदङ्ग यातुचातनम् ॥२॥

पदार्थ—(वरुण) चाहने योग्य, समुद्रादि का जल (सीसाय) बन्धन काटने वाले सामर्थ्य [ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति] के लिए (अधि) अधिकार पूर्वक (आह) कहता है, (अग्नि) व्यापक, सूर्य, बिजुली आदि अग्नि (सीसाय) बन्धन काटने वाले सामर्थ्य [ब्रह्मज्ञान के लिए] (उप) समीप रहकर (अवति) रक्षा करता है । (इन्द्र) महाप्रतापी परमेश्वर ने (सीसम्) बन्धन काटने वाला सामर्थ्य [ब्रह्मज्ञान] (मे) मुझको (प्र—अयच्छत्) दिया है, (अङ्ग) हे भाई (तत्) वह सामर्थ्य (यातुचातनम्) पीड़ानाशक है ॥२॥

भावार्थ—जल, अग्नि, वायु, आदि पदार्थ ईश्वर की आज्ञा से परस्पर मिल कर हमारे लिए बाहिर और भीतर से उपकारी होते हैं । वह ब्रह्मज्ञान प्रत्येक मनुष्य आदि प्राणी को परमेश्वर ने दिया है । उस ज्ञान को साक्षात् करके प्राणी दु खों से छूट कर शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक आनन्द पाते हैं ॥२॥

इदं विष्कन्धं सहत इदं बाधते अत्त्रिणः ।
अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाच्याः ॥३॥

पदार्थ—(इदम्) यह [सामर्थ्य] (विष्कन्धम्) विघ्न को (सहते) जीतता है और (इदम्) यह (अत्त्रिण) उदर पोषक खाउओं को (बाधते) हटाता है । (अनेन) इससे (विश्वा विश्वानि) उन सब दु खों को (ससहे) मैं जीतता हूँ (या यानि) जो (पिशाच्या) मांस खाने हारी [कुवासना] से (जातानि) उत्पन्न है ॥३॥

भावार्थ—दूरदर्शी पुरुषार्थी मनुष्य उत्तम ज्ञान के सामर्थ्य से अपने क्लेशों के कारणों को जानने और कुवासनाओं के कुसंस्कारों को अपने हृदय में नहीं जमने देते ॥३॥

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम् ।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा ॥४॥

पदार्थ—(यदि) जो (न.) हमारी (गाम्) गाय को, (यदि) जो (अश्वम्) घोड़े को और (यदि) जो (पूरुषम्) पुरुष को (हंसि) तू मारता है (तम् त्वा) उस तुझको (सीसेन) बन्धन काटने हारे सामर्थ्य [ब्रह्मज्ञान] से (विध्याम.) हम वेधन है (यथा) जिससे तू (न) हमारे (अवीरहा असः) वीरों का नाश करनेहारा न होवे ॥४॥

भावार्थ—मनुष्य वर्तमान क्लेशों को देखकर आने वाले क्लेशों को यत्नपूर्वक रोककर आनन्द भोगें ॥४॥

卐 इति तृतीयोऽनुवाक. 卐

卐

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् १७ 卐

१—४ ब्रह्मा । योषित धमन्यश्च । अनुष्टुप्, १ भुरिगनुष्टुप् ४ त्रिपदार्षी गायत्री ।

अमूर्या यन्ति योषितो हिरा लोहितवाससः ।
अभ्रातर इव जामयस्तिष्ठन्तु हतवर्चसः ॥ १ ॥

पदार्थ—(अमू:) वे (या:) जो (योषित) सेवायोग्य वा सेवा करने हारी [अथवा स्त्रियों के समान हितकारी] (लोहितवासस.) लोहू से ढकी हुई (हिरा) नाड़िया (यन्ति) चलती हैं, वे, (अभ्रातरः) बिना भाइयों की (जामय इव) बहिनों के समान, (हतवर्चस) निस्तेज होकर (तिष्ठन्तु) ठहर जायें ॥१॥

भावार्थ—इस सूक्त में नाड़ी [फस्द] खोलने का वर्णन है । मन्त्र का अभिप्राय यह है कि नाड़िया रुधिर संचार का मार्ग होने से शरीर की (योषित) सेवा करनेहारी और सेवा योग्य हैं । जब किसी रोग के कारण वैद्यराज नाड़ीछेदन करे और रुधिर निकलने से रोग बढ़ाने में नाड़िया ऐसी असमर्थ हो जायें जैसे माता-पिता और भाइयों के बिना कन्यायें असहाय हो जाती हैं, तब नाड़ियों को रुधिर बहने से रोक दे ॥१॥

तिष्ठावरे तिष्ठ पर उत त्वं तिष्ठ मध्यमे ।
कनिष्ठिका च तिष्ठति तिष्ठादिद् धमनिर्मही ॥२॥

पदार्थ—(अवरे) हे नीचे की [नाड़ी] (तिष्ठ) तू ठहर, (परे) हे ऊपर वाली (तिष्ठ) तू ठहर, (उत) और (मध्यमे) हे बीच वाली (त्वम्) तू (तिष्ठ) ठहर, (च) और (कनिष्ठिका) अति छोटी नाड़ी (तिष्ठति) ठहरती है, (मही) बड़ी (धमनि) नाड़ी (इत्) भी (तिष्ठात्) ठहर जावे ॥२॥

भावार्थ—१—चिकित्सक सावधानी से सब नाड़ियों को अधिक रुधिर बहने से रोक देवे ।२—मनुष्य अपने चित्त की वृत्तियों को ध्यान देकर कुमार्ग से हटावे, और हड़बड़ी करके अपने कर्त्तव्य को न बिगाड़ने दे किन्तु यत्नपूर्वक सिद्ध करे ॥२॥

शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणाम् ।
अस्थुरिन्मध्यमा इमाः साकमन्ता अरंसत ॥३॥

पदार्थ—(शतस्य धमनीनाम्) सौ प्रधान नाड़ियों में से और (सहस्रस्य हिराणाम्) सहस्र शाखा नाड़ियों में से (इमा) ये सब (मध्यमा) बीचवाली (इत्) भी (अस्थु) ठहर गयी, (अन्ता) अन्त की [अवशिष्ट नाड़िया] (साकम्) एक साथ (अरंसत) क्रीड़ा करने लगी हैं ॥३॥

भावार्थ—१—नाड़ीछेदन से असंख्य धमनी और सिरा नाड़ियों का रुधिर यथाविधि चिकित्सक निकाल कर बन्ध कर देवे कि नाड़िया पहिले के समान चेष्टा करने लगें ।

२—मनुष्य अपनी अनन्त चित्तवृत्तियों को कुमार्ग से रोक कर सुमार्ग में चलावें ॥३॥

परि वः सिकतावती धनूर्बृहत्यक्रमीत् ।
तिष्ठतेलयता सु कम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—(सिकतावती) सेचन स्वभाव [कोमल रखने वाली] बालू आदि से भरी हुई (बृहती) बड़ी (धनू:) पट्टी ने (व) तुम [नाड़ियों] को (परि अक्रमीत्) लपेट लिया है । (तिष्ठत) ठहर जाओ, (सु) अच्छे प्रकार (कम्) सुख से (इलयत) चलो ॥४॥

भावार्थ—१—(धनु) अर्थात् धनु चार हाथ परिमाण को कहते हैं । इसी प्रकार की पट्टी से जो सूक्ष्म चूर्ण बालू से वा बालू के समान राल आदि औषध से युक्त होवे, चिकित्सक घाव को बांध देवे कि रक्त बहने से ठहर जाए और घाव पुर कर सब नाड़िया यथानियम चलने लगें, मन प्रसन्न और शरीर पुष्ट हो ।

२—मनुष्य कुमार्गगामिनी मनोवृत्तियों को रोककर यत्नपूर्वक हानि पूरी करे, और लाभ के साथ अपनी वृद्धि करे और आनन्द भोगे ॥४॥

卐 सूक्तम् १८ 卐

१—४ द्रविणोदा । विनायक (२ सविता, वरुणः, मित्रः, अर्यमा, देवा, ३ सविता) । १ विराडुपरिष्टाद्बृहती, २ निचृज्जगती, ३ विराडास्तार पङ्क्तिस्त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप् ।

निर्लक्ष्म्यं ललाम्यं १ निररातिं सुवामसि ।
अथ या भद्रा तानि नः प्रजाया अरातिं नयामसि ॥१॥

पदार्थ—(ललाम्यम् ०—मीम्) [धर्म से] रुचि हटानेवाली (निर्लक्ष्म्यम् ०—क्ष्मीम्) अलक्ष्मी [निर्धनता] और (अरातिम्) शत्रुता को (निःसुवामसि ०—मः) हम निकाल देवें, (अथ) और (या—यानि) जो (भद्रा—भद्राणि) मंगल हैं (तानि) उनको (नः) अपनी (प्रजायै) प्रजा के लिए (अरातिम्) सुख न देनेहारे शत्रु से (नयामसि ०—मः) हम लावें ॥१॥

भावार्थ—राजा अपने और प्रजा की निर्धनता आदि दुर्लक्षणों को मिटावे और शत्रु को दण्ड देकर प्रजा में आनन्द फैलावे ॥१॥

निरर॑णिं सवि॒ता सा॑विषत् प॒दोर्निर्हस्त॑योर्वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा ।
निर॒स्मभ्य॒मनु॑मती॒ ररा॑णा॒ प्रेमां दे॒वा अ॑साविषुः सौभ॑गाय ॥२॥

पदार्थ—(सविता) [सबका चलाने हारा] सूर्य [सूर्य रूप तेजस्वी] (वरुणः) सबके चाहने योग्य जल [जल समान शान्त स्वभाव] (मित्रः) चेष्टा देने हारा वायु [वायु समान वेगवान् उपकारी], (अर्यमा) श्रेष्ठों का मान करने हारा न्यायकारी राजा (अरणिम्) पीड़ा को (पदोः) दोनों पदों और (हस्तयोः) दोनों हाथों से (निः) निरन्तर (निः साविषत्) निकाल देवे । (रराणा) दानशीला (अनुमतिः) अनुकूल बुद्धि (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (निः—निः साविषत्) [पीड़ा को] निकाल देवे, (देवाः) उदार चित्तवाले महात्माओं ने (इमाम्) इस [अनुकूल बुद्धि] को (सौभगाय) बड़े ऐश्वर्य के लिए (प्र असाविषुः) भेजा है ॥२॥

भावार्थ—मन्त्रोक्त शुभ लक्षणों वाला राजा और प्रजा परस्पर हितबुद्धि से और शुभचिन्तक महात्माओं के सहाय से क्लेशों का नाश करके सबका ऐश्वर्य बढ़ावें ॥२॥

यत्त॑ आ॒त्मनि॑ त॒न्वां॑ घो॒रमस्ति॒ यद्वा॒ केशे॑षु प्रति॒चक्ष॑णे वा ।
सर्वं॒ तद् वा॒चाप॑ हन्मो व॒यं दे॒वस्त्वा॑ सवि॒ता सू॑दयतु ॥ ३ ॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (यत्) जो कुछ (ते) तेरे (आत्मनि) आत्मा में और (तन्वाम्) शरीर में (वा) अथवा (यत्) जो कुछ (केशेषु) केशों में (वा) अथवा (प्रतिचक्षणे) दृष्टि में (घोरम्) भयानक (अस्ति) है । (वयम्) हम (तत् सर्वम्) उस सबको (वाचा) वाणी से [विद्याबल से] (अप) हटाकर (हन्मः) मिटाय देते हैं । (देव) दिव्य स्वरूप (सविता) सर्वप्रेरक परमेश्वर (त्वा) तुझको (सूदयतु) अंगीकार करे ॥३॥

भावार्थ—जब मनुष्य अपने आत्मिक और शारीरिक दुर्गुणों और दुर्लक्षणों को विद्वानों के उपदेश और सत्संग से छोड़ देता है, परमेश्वर उसे अपना करके अनेक सामर्थ्य देता और आनन्दित करता है ॥३॥

रिश्य॑पदीं॒ वृष॑दतीं गोषे॒धां वि॑ध॒माम॒त ।
वि॒ली॒ढ्यं॑ ल॒ला॒म्यं१॒ ता अ॒स्मन्ना॑शयामसि ॥४॥

पदार्थ—(रिश्यपदीम्) हरिण के समान [बिना जमाये शीघ्र] पद की चेष्टा, (वृषदतीम्) बैल के समान दांत चबाना, (गोषेधाम्) बैल की सी चाल, (उत) और (विधमाम्) बिगड़ी भाथी [धौंकनी] के समान श्वास क्रिया, (ललाम्यम् ०—मीम्) रुचि नाश करने हारी (विलीढ्यम् ०—ढिम्) चाटने की बुरी प्रकृति, (ताः) इन सब [कुचेष्टाओं] को (अस्मत्) अपने से (नाशयामसि ०—मः) हम नाश करें ॥४॥

भावार्थ—सब स्त्री पुरुष मनुष्यस्वभाव से विरुद्ध कुचेष्टाओं को छोड़कर विद्वानों के सत्सङ्ग से सुन्दर स्वभाव बनावें और मनुष्यजन्म को सुफल करके आनन्द भोगें ॥४॥

卐 सूक्तम् १९ 卐

१—४ ब्रह्मा । ईश्वर. (इन्द्रः, २ मनुष्येषव., ३ रुद्र., ४ देवा.) ।
अनुष्टुप्, २ पुरस्ताद्बृहती, ३ पथ्यापङ्क्तिः ।

मा नो॑ विदन् विव्या॒धिनो॒ मो अ॑भिव्या॒धिनो॑ विदन् ।
आ॒रा॒च्छ॑र॒व्या॑ अ॒स्मद् विषू॑चीरिन्द्र पातय ॥ १ ॥

पदार्थ—(विव्याधिन.) अत्यन्त बेधने हारे शत्रु (नः) हम तक (मा विदन्) न पहुँचें, और (अभिव्याधिन.) चारों ओर से मारने हारे (मो विदन्) कभी न पहुँचें । (इन्द्र) हे परम ऐश्वर्य वाले राजन् (विषूची.) सब ओर फैले हुए (शरव्याः) बाण समूहों को (अस्मत्) हमसे (आरात्) दूर (पातय) गिरा ॥१॥

भावार्थ—सर्वरक्षक जगदीश्वर पर पूर्ण श्रद्धा करके चतुर सेनापति अपनी सेना की रणक्षेत्र में इस प्रकार रक्षा करे कि शत्रु लोग पास न आ सकें और न उनके अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार अपने किसी के लगें ॥१॥

विष्व॑ञ्चो अ॒स्मच्छर॑वः पतन्तु॒ ये अ॒स्ता ये चा॒स्याः॑ ।
दैवी॑र्मनुष्येषवो॒ ममा॒मित्रा॒न् वि वि॑ध्यत ॥ २ ॥

पदार्थ—(ये) जो बाण (अस्ताः) छोड़े गये हैं (च) और (ये) जो (आस्याः) छोड़े जायेंगे, (विष्वञ्चः) [वे] सब ओर फैले हुए (शरवः) बाण (अस्मत्) हमसे [दूर] (पतन्तु) गिरें । (दैवीः मनुष्येषवः) हे [हमारे] मनुष्यों के दिव्य बाणो ! [बाण चलाने वाले तुम] (मम) मेरे (अमित्रान्) पीड़ा देने हारे शत्रुओं को (वि विध्यत) छेद डालो ॥२॥

भावार्थ—सेनापति इस प्रकार अपनी सेना का व्यूह करे कि शत्रुओं के अस्त्र-शस्त्र जो चल चुके हैं अथवा चलें वे सेना के न लगें और उस निपुण सेनापति के योद्धाओं के (दैवी) दिव्य अथवा आग्नेय [अग्नि बाण] और वारुणेय [जल बाण जो बन्दूक आदि जल में वा जल में छोड़े जावें] अस्त्र शत्रुओं को निरन्तर छेद डालें ॥२॥

यो नः॒ स्वो यो अर॑णः सजा॒त उ॒त निष्ट्यो॒ यो अ॒स्माँ अ॑भि॒दास॑ति ।
रु॒द्रः श॑र॒व्य॑यै॒तान् ममा॒मित्रा॒न् वि वि॑ध्यतु ॥ ३ ॥

पदार्थ—(यः) जो (नः) हमारी (स्वः) जाति वाला अथवा (यः) जो (अरणः) न जानने योग्य शत्रु वा विदेशी, अथवा (सजातः) कुटुम्बी (उत) अथवा (यः) जो (निष्ट्यः), वर्णसङ्कर नीच (अस्मान्) हम पर (अभिदासति) चढ़ाई करे (रुद्रः) शत्रुओं का रुलाने वाला महा शूरवीर सेनापति (शरव्यया) बाणों के समूह से (मम) मेरे (एतान्) इन (अमित्रान्) पीड़ा देने हारे वैरियों को (वि विध्यतु) छेद डाले ॥३॥

भावार्थ—राजा को अपने और पराये का पक्षपात छोड़कर दुष्टों को यथोचित दण्ड देकर राज्य में शान्ति रखनी चाहिए ॥३॥

यः स॒पत्नो॒ योऽस॑पत्नो॒ यश्च॑ द्वि॒षन् छपा॑ति नः ।
दे॒वास्तं सर्वे॑ धूर्वन्तु॒ ब्रह्म॒ वर्म॒ ममान्त॑रम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—(यः) जो पुरुष (सपत्नः) प्रतिपक्षी और (यः) जो (असपत्नः) प्रकट प्रतिपक्षी नहीं है (च) और (यः) जो (द्विषन्) द्वेष करता हुआ (नः) हमको (शपाति) कोसे [कोसे] । (सर्वे) सब (देवाः) विजयी महात्मा (तम्) उसको (धूर्वन्तु) नाश करें, (ब्रह्म) परमेश्वर, (वर्म) कवचरूप (मम) मेरे (अन्तरम्) भीतर है ॥४॥

भावार्थ—छानबीन करके प्रकट और अप्रकट प्रतिपक्षियों और अनिष्टचिन्तकों को [देवा] शूरवीर विद्वान् महात्मा नाश कर डालें । वह परब्रह्म सर्वरक्षक, कवच रूप होकर, धर्मात्माओं के रोम रोम में भर रहा है । वही आत्मबल देकर युद्ध-क्षेत्र में सदा उनकी रक्षा करता है ॥४॥

卐 सूक्तम् २० 卐

१—४ अथर्वा । सोम , मरुत , २ मित्रावरुणौ, ३ वरुण , ४ इन्द्र ।
अनुष्टुप्, १ त्रिष्टुप् ।

अदा॑रसृद् भवतु देव सोमा॒स्मिन् य॒ज्ञे म॑रुतो मृ॒डता॑ नः ।
मा नो॑ विदद॒भि॒भा मो अश॑स्ति॒र्मा नो॑ विदद् वृजि॒ना द्वेष्या॒ या ॥१॥

पदार्थ—(देव) हे प्रकाशमय, (सोम) उत्पन्न करने वाले परमेश्वर ! [वह शत्रु] (अदारसृत्) डर का न पहुँचाने वाला अथवा अपने स्त्री आदि के पास न पहुँचने वाला (भवतु) होवे, (मरुत.) हे [शत्रुओं के] मारने वाले देवताओ ! (अस्मिन्) इस (यज्ञे) पूजनीय काम में (नः) हम पर (मृडत) अनुग्रह करो । (अभिभा) सम्मुख चमकती हुई, आपत्ति (न.) हम पर (मा विदत्) न आ पड़े, और (मो—मा उ) न कभी (अशस्तिः) अपकीर्ति और (या) जो (द्वेष्या) द्वेषयुक्त (वृजिना) पाप बुद्धि है [वह भी] (नः) हम पर (मा विदत्) न आ पड़े ॥१॥

भावार्थ—सब मनुष्य परमेश्वर के सहाय से शत्रुओं को निर्बल कर दें अथवा घर वालों से अलग रक्खें और विद्वान् शूरवीरों से भी सम्मति लेवें, जिससे प्रत्येक विपत्ति, अपकीर्ति और कुमति हट जाए और निर्विघ्न अभीष्ट सिद्ध होवे ॥१॥

यो अ॒द्य सेन्यो॑ व॒धो॑ऽघा॒यू॒नामु॒दीर॑ते ।
यु॒वं तं मि॑त्रावरुणाव॒स्मद् या॑वयतं॒ परि॑ ॥२॥

पदार्थ—(अद्य) आज (अघायूनाम्) बुरा चीतने वाले शत्रुओं की (सेन्यः) सेना का चलाया हुआ (यः) जो (वधः) शस्त्र प्रहार (उदीरते) उठ रहा है । (मित्रावरुणौ) हे [हमारे] प्राण और अपान (युवम्) तुम दोनों (तम्) उस [शस्त्र प्रहार] को (अस्मत्) हम लोगों से (परि) सर्वथा (यावयतम्) अलग रक्खो ॥२॥

भावार्थ—जिस समय युद्ध में शत्रु सेना आ दबावे उस समय अपने प्राण अपान वायु को यथायोग्य सम रख कर और सचेत होकर शरीर में बल बढ़ाकर लोग युद्ध करें, तो शत्रुओं पर शीघ्र जीत पावें । श्वास के साधने से मनुष्य स्वस्थ और बलवान् होते हैं । प्राण और अपान के समान उपकारी और बलवान् होकर योद्धा लोग परस्पर रक्षा करें ॥२॥

इ॒तश्च॒ यद॒मुत॑श्च॒ यद् व॒धं व॑रुण यावय ।
वि म॒हच्छर्म॑ यच्छ॒ वरी॑यो यावया व॒धम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—(**वरुण**) हे सबसे श्रेष्ठ, परमेश्वर ! (**इत च**) इस दिशा मे (**च**) और (**अमुत**) उस दिशा मे (**यत् यत्**) प्रत्येक (**वधम्**) शत्रु प्रहार को (**यावय**) हटा दे। (**महत्**) [अपनी] बड़ी (**शर्म**) शरण को (**वि**) अनेक प्रकार से (**यच्छ**) [हमे] दान कर, और (**वधम्**) [शत्रुओ के] प्रहार को (**वरीय**) बहुत दूर (**यावय**) फेंक दे ॥३॥

भावार्थ—जो सेनापति ईश्वर पर विश्वास करके अपनी सेना को प्रयत्नपूर्वक शत्रु के प्रहार से बचाता और उसमे वैरी को जीतने का उत्साह बढाता है वह शूरवीर जीत पाकर आनन्द पाता है ॥३॥

शास इत्था महाँ अस्यमित्रसाहो अस्तृतः ।

न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदा चन ॥४॥

पदार्थ—(**इत्था**) सत्य सत्य (**महान्**) बड़ा (**शास**) शासनकर्ता (**अमित्रसाह**) शत्रुओ का हराने हारा और (**अस्तृत**) कभी न हारने हारा (**असि**) तू है (**यस्य**) जिसका (**सखा**) मित्र (**कदा चन**) कभी भी (**न**) न (**हन्यते**) मारा जाता है और (**न**) न (**जीयते**) जीता जाता है ॥४॥

भावार्थ—वह परमात्मा (वरुण) सर्वशक्तिमान् शत्रुनाशक है इस प्रकार श्रद्धा करके जो मनुष्य प्रयत्नपूर्वक, आत्मिक, शारीरिक और सामाजिक बल बढाते रहते है वे ईश्वर के भक्त दृढ विश्वासी अपने शत्रुओ पर सदा जय प्राप्त करते है ॥४॥

卐 सूक्तम् २१ 卐

१—४ अथर्वा । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी ।

वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः ॥ १ ॥

पदार्थ—(**स्वस्तिदा**) मगल का देने हारा, (**विशाम्**) प्रजाओ का (**पति**) पालने हारा (**वृत्रहा**) अन्धकार मिटाने हारा (**विमृधः**) शत्रुओ को (**वशी**) वश मे करने हारे (**वृषा**) महा बलवान् (**सोमपा**) अमृत रस का पीने हारा (**अभयकर**) अभय दान करने हारा (**इन्द्र**) बडे ऐश्वर्य वाला राजा (**न**) हमारे (**पुर**) आगे-आगे (**एतु**) चले ॥१॥

भावार्थ—जो मनुष्य मन्त्रोक्त गुणो से युक्त राजा को अपना अगुआ बनाते हैं, वे अपने सब कामो मे विजय पाते है। वह जगदीश्वर सब राजा महाराजाओ का लोकाधिपति है उसको अपना अगुआ समझकर सब मनुष्य जितेन्द्रिय हो ॥१॥

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।

अधमं गमया तमो यो अस्माँ अभिदासति ॥ २ ॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे बड़े ऐश्वर्य वाले राजन ! (**न**) हमारे (**मृध**) शत्रुओ को (**वि जहि**) मार डाल, (**पृतन्यत**) और सेना चढाकर लानेहारो को (**नीचा**) नीचे करके (**यच्छ**) रोक दे। (**य**) जो (**अस्मान्**) हमको (**अभिदासति**) हानि पहुँचावे उसको (**अधमम्**) नीच (**तम**) अन्धकार मे (**गमय**) पहुँचा दे ॥२॥

भावार्थ—न्यायशील, प्रतापी राजा अन्यायी दुराचारियो को परमेश्वर के दिये हुए बल से सब प्रकार परास्त करके दृढ बन्दीगृह मे डाल दे। महाबली परमेश्वर को हृदयस्थ समझकर सब मनुष्य अपनी कुवृत्तियो का दमन करे ॥२॥

वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।

वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥ ३ ॥

पदार्थ—(**रक्ष = रक्षांसि**) राक्षसो और (**मृध**) हिसको को (**वि वि**) सर्वथा (**जहि**) तू मार डाल, (**वृत्रस्य**) शत्रु के (**हनू**) दोनो जाबडो को (**विरुज**) तोड दे, (**वृत्रहन्**) हे अन्धकार मिटाने हारे (**इन्द्र**) बडे ऐश्वर्य वाले राजन् ! (**अभिदासत**) चढाई करने हारे (**अमित्रस्य**) पीडाप्रद शत्रु के (**मन्युम्**) ताप को (**वि - वि रुज**) भग कर दे ॥३॥

भावार्थ—राजा को पुरुषार्थी होकर शत्रुओ का नाश करके और प्रजा मे शान्ति फैलाकर आनन्द भोगना चाहिये। सबरक्षक परमेश्वर के प्रताप से मनुष्य अपने बाहिरी और भीतरी शत्रुओ का निवारण करे ॥३॥

अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम् ।

वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥४॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे बड़े ऐश्वर्य वाले राजन् ! (**द्विषत**) वैरी के (**मन**) मन को (**अप = अपकृत्य**) तोड़कर, और (**जिज्यासत**) [हमारी] आयु की हानि चाहने हारे शत्रु के (**वधम्**) प्रहार को (**अप = अपकृत्य**) छिन्न भिन्न करके (**महत् शर्म**) [अपना] विस्तीर्ण शरण (**वि यच्छ**) [हमे] दान कर, और (**वधम्**) [शत्रु के] प्रहार को (**वरीय**) बहुत दूर (**यावय**) फेंक दे ॥४॥

भावार्थ—परमेश्वर के विश्वास से मनुष्य अपने पुरुषार्थ और बुद्धिबल से शत्रु को निरुत्साही करके विजयी होवें ॥४॥

卐 इति चतुर्थोऽनुवाकः 卐

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् २२ 卐

१—४ ब्रह्मा । सूर्यो, हरिमा हृद्रोगश्च । अनुष्टुप् ।

अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते ।

गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि ॥१॥

पदार्थ—(**ते**) तेरे (**हृद्-द्योत**) हृदय की सन्ताप [चमक] (**च**) और (**हरिमा**) शरीर का पीलापन (**सूर्यम् अनु**) सूर्य के साथ साथ (**उद्‌अयताम्**) उड जावे। (**रोहितस्य**) निकलते हुए लाल रग वाले (**गो**) सूर्य के (**तेन**) प्रसिद्ध (**वर्णन**) रग से (**त्वा**) तुझ को (**परि**) सब प्रकार से (**दध्मसि**) हम पुष्ट करते है ॥१॥

भावार्थ—प्रात और सायकाल सूर्य की किरणे तिरछी पडने से रक्त वर्ण दीखती है, और वायु शीतल, मन्द, सुगन्ध चलता है। उस समय मानसिक और शारीरिक रोगी को सद्वैद्य वायुसेवन और औषधिसेवन करावें, जिससे वह स्वस्थ हो जाये और रुधिर के सचार से उसका रग रक्त सूर्य के समान लाल चमकीला हो जाये ॥१॥

परि त्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्वाय दध्मसि ।

यथायमरपा असदथो अहरितो भुवत् ॥ २ ॥

पदार्थ—(**रोहितै**) लाल (**वर्णै**) रगो के साथ (**त्वा**) तुझको (**दीर्घायुत्वाय**) चिर काल जीवन के लिए (**परि**) सब प्रकार से (**दध्मसि**) हम पुष्ट करते है। (**यथा**) जिससे (**अयम्**) यह (**अरपा**) नीरोग (**असत्**) हो जाये, (**अथो**) और (**अहरित**) पीले वर्ण रहित (**भुवत्**) रहे ॥२॥

भावार्थ—सद्वैद्य और कुटुम्बी लोग रोगी को प्रात साय वायुसेवन और औषधिसेवन कराकर स्वस्थ करें कि रुधिर-संचार से उसका शरीर रक्त वर्ण हो जाय और ज्वर, पीलिया आदि रोग का पीलापन शरीर से जाता रहे ॥२॥

या रोहिणीर्देवत्या गावो या उत रोहिणीः ।

रूपंरूपं वयोवयस्ताभिष्ट्वा परि दध्मसि ॥ ३ ॥

पदार्थ—(**या**) जो (**देवत्या**) दिव्य गुण युक्त (**रोहिणी**) स्वास्थ्य उत्पन्न करने वाली औषधें (**उत**) और (**या**) जो (**रोहिणीः**) लाल वर्ण वाली (**गाव**) दिशायें हैं। (**ताभि**) उन सबके साथ (**त्वा**) तुझ को (**रूपम् रूपम्**) सब प्रकार की सुन्दरता और (**वय वय**) सब प्रकार के बल के लिए (**परि दध्मसि**) हम सर्वथा पुष्ट करते है ॥३॥

भावार्थ—जब सूर्य की किरणो से दिशाये रक्त वर्ण दिखायी देती है तब प्रात साय दोनो समय सद्वैद्य रोगी को सुपरीक्षित औषधो और यथायोग्य वायुसेवन से स्वस्थ करके सब प्रकार से हृष्ट पुष्ट और बलवान् करे ॥३॥

शुकेषु ते हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि ।

अथो हारिद्रवेषु ते हरिमाणं नि दध्मसि ॥४॥

पदार्थ—(**शुकेषु**) उत्तम उत्तम उपदेशो मे और (**रोपणाकासु**) लेप आदि क्रियाओ मे (**ते**) तेरे (**हरिमाणम्**) सुख हरने वाले शरीर रोग को (**दध्मसि**) हम रखते है। (**अथो**) और भी (**हारिद्रवेषु**) रुचिर रसो मे (**ते**) तेरे (**हरिमाणम्**) चित्त विकार को (**नि**) निरन्तर (**दध्मसि**) हम रखते हैं ॥४॥

भावार्थ—सद्वैद्य बाहिरी शारीरिक रोगो को यथायोग्य औषधि और लेप आदि से, तथा भीतरी मानसिक रोगो को उत्तम उत्तम औषधिरसो से नाश करके रोगी को स्वस्थ करें ॥४॥

卐 सूक्तम् २३ 卐

१—४ अथर्वा । वनस्पति । (असिक्नि) । अनुष्टुप् ।

नक्तंजातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च ।

इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत् ॥ १ ॥

पदार्थ—(**ओषधे**) हे उष्णता रखने हारी, ओषधि तू (**नक्तंजाता**) रात्रि मे उत्पन्न हुई (**असि**) है जो तू (**रामे**) रमण करने हारी (**कृष्णे**) चित्त को खीचने हारी, (**च**) और (**असिक्नी**) निर्बन्ध [पूर्ण सार वाली] है। (**रजनि**) हे उत्तम रग करने हारी ! तू (**इदम्**) यह (**यत्**) जो (**किलासम्**) रूप का बिगाडने हारा कुष्ठ आदि (**च**) और (**पलितम्**) शरीर का श्वेतपन रोग है [उसको] (**रजय**) रग दे ॥१॥

भावार्थ—सद्वैद्य उत्तम परीक्षित औषधो से रोगो की निवृत्ति करे। रात मे उत्पन्न हुई ओषधि से यह आशय है कि औषधें, गेहूँ, जौ, चावल आदि अन्न, और कमल आदि रोगनिवर्त्तक पदार्थ, चन्द्रमा की किरणो से पुष्ट होकर उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार मनुष्यो को गर्भाधान क्रिया रात्रि मे करनी चाहिये। ओषधि आदि मूर्ति-

मान् पदार्थ पाँच तत्त्वों से बने हैं तो भी उनके भिन्न-भिन्न आकार और भिन्न-भिन्न गुण हैं। यह मूल संयोग-वियोग क्रिया ईश्वर के अधीन है, वस्तुतः मनुष्य के लिए यह कर्म रात्रि अर्थात् अन्धकार वा अज्ञान में है। प्रलय रूपी रात्रि के पीछे, पहिले अन्न आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं। फिर मनुष्य आदि की सृष्टि होती है ॥१॥

कि॒लासं॑ च पलि॒तं च॒ निरि॒तो ना॑शया॒ पृष॑त् ।

आ त्वा॒ स्वो वि॑श॒तां वर्णः॒ परा॑ शु॒क्लानि॑ पातय ॥२॥

पदार्थ—[हे ओषधि !] (**इतः**) इस [पुरुष] से (**किलासम्**) रूप बिगाड़ने वाले कुष्ठ आदि रोग को (**च**) और (**पलितम्**) शरीर के श्वेतपन (**च**) और (**पृषत्**) विकृत चिह्न को (**निर्नाशय**) निरन्तर नाश कर दे। (**स्वः वर्णः**) [रोग का] अपना रंग (**त्वा**) तुझ में [ओषधि में] (**आ विशताम्**) प्रविष्ट हो जाए और (**शुक्लानि**) [उसके] श्वेत चिह्नों को (**परा पातय**) दूर गिरा दे ॥२॥

भावार्थ—सद्वैद्य की उत्तम ओषधि से रोगी के शरीर का बिगड़ा हुआ रूप फिर यथापूर्व सुन्दर, रुचिर और मनोहर हो जाता है ॥२॥

असि॑तं ते प्र॒लय॑नमा॒स्थान॒मसि॑तं॒ तव॑ ।

असि॑क्न्यस्योषधे॒ निरि॒तो ना॑शया॒ पृष॑त् ॥३॥

पदार्थ—(**ओषधे**) हे ओषधि (**ते**) तेरा (**प्रलयनम्**) लाभ (**असितम्**) निर्बन्ध वा अक्षय है, और (**तव**) तेरा (**आस्थानम्**) विश्राम स्थान (**असितम्**) निर्बन्ध है, (**असिक्नी असि**) और तू निर्बन्ध [सारवाली] है, (**इतः**) इस [पुरुष] से (**पृषत्**) [विकृत] चिह्न को (**निर्नाशय**) सर्वथा नाश कर दे ॥३॥

भावार्थ—सद्वैद्य विचार करे कि यह ओषधि पूर्ण लाभयुक्त है, यथायोग्य स्थान में उत्पन्न हुई है और सब अंशों में सारयुक्त है, ऐसी ओषधि के प्रयोग से रोग-निवृत्ति होती है ॥३॥

अ॒स्थि॒जस्य॑ कि॒लास॑स्य तनू॒जस्य॑ च॒ यत् त्व॒चि ।

दू॒ष्या॑ कृ॒तस्य॒ ब्रह्म॑णा॒ लक्ष्म॑ श्वे॒तम॑नीनशम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—(**दूष्या**) दुष्ट क्रिया से (**कृतस्य**) उत्पन्न हुए, (**अस्थिजस्य**) हड्डी से उत्पन्न हुए (**च**) और (**तनूजस्य**) शरीर से निकले हुए (**किलासस्य**) रूप बिगाड़ने हारे, कुष्ठ आदि रोग का (**यत्**) जो (**श्वेतम्**) श्वेत (**लक्ष्म**) चिह्न (**त्वचि**) त्वचा पर है [उसको] (**ब्रह्मणा**) वेद विज्ञान से (**अनीनशम्**) मैंने नाश कर दिया है ॥४॥

भावार्थ—भारी रोग दो प्रकार के होते हैं-एक अस्थिज (हड्डी) में उत्पन्न होने वाले अर्थात् भीतरी रोग जो ब्रह्मचर्य के खण्डन और कुपथ्य भोजन आदि के कारण मज्जा और वीर्य के विकार से हो जाते हैं, और दूसरे [तनुज] शरीर से उत्पन्न हुए बाहरी रोग जो मलिन वायु, मलिन घर, आदि के कारण होते हैं, इस प्रकार [ब्रह्मणा] वैदिक ज्ञान से रोगों का निदान करके उत्तम परीक्षित ओषधियों से रोगियों को स्वस्थ करे ॥४॥

卐 सूक्तम् २४ 卐

१—४ ब्रह्मा । आसुरी वनस्पतिः । अनुष्टुप्, २ निचृत्पथ्यापङ्क्तिः ।

सु॒प॒र्णो जा॒तः प्र॑थ॒मस्तस्य॒ त्वं पि॒त्तमा॑सिथ ।

तदा॑सु॒री यु॒धा जि॒ता रू॒पं च॑क्रे वन॒स्पती॑न् ॥१॥

पदार्थ—(**सुपर्णः**) उत्तम रीति से पालन करने हारा, वा अति पूर्ण परमेश्वर (**प्रथमः**) सबका आदि (**जातः**) प्रसिद्ध है। (**तस्य**) उस [परमेश्वर] के (**पित्तम्**) पित्त [बल] को, [हे ओषधि !] (**त्वम्**) तूने (**आसिथ**) पाया था। (**तत्**) उस (**युधा**) संग्राम से (**जिता**) जीती हुई (**आसुरी**) असुर [प्रकाशमय परमेश्वर] की माया [प्रजा वा बुद्धि] ने (**वनस्पतीन्**) सेवा करने वालों के रक्षा करने हारे, वृक्षों को (**रूपम्**) रूपवान् (**चक्रे**) किया था ॥१॥

भावार्थ—सृष्टि से पहिले वर्त्तमान परमेश्वर की नित्य शक्ति से ओषधि अन्न आदि में पोषण सामर्थ्य रहता है। वह (आसुरी) परमेश्वर की शक्ति (युधाजिता) युद्ध अर्थात् प्रलय के अन्धकार के उपरान्त प्रकाशित होती है, जैसे अन्न, और घास पात आदि का बीज शीत और ग्रीष्म ऋतुओं में भूमि के भीतर पड़ा रहता और वृष्टि का जल पाकर हरा हो जाता है ॥१॥

आ॒सु॒री च॑क्रे प्रथ॒मेदं कि॑लासभेष॒जमि॒दं कि॑लास॒नाश॑नम् ।

अनी॑नश॒त् कि॒लासं॒ सरू॑पामकर॒त् त्वच॑म् ॥ २ ॥

पदार्थ—(**प्रथमा**) प्रथम प्रकट हुई (**आसुरी**) प्रकाशमय परमेश्वर की माया [बुद्धि वा ज्ञान] ने (**इदम्**) इस [वस्तु] को (**किलासभेषजम्**) रूपनाशक महारोग की ओषधि और (**इदम्**) इस [वस्तु] को ही (**किलासनाशनम्**) रूप बिगाड़ने वाले महारोग की नाश करने हारी (**चक्रे**) बनाया। [उसने] [ईश्वर माया ने] (**किलासम्**) रूप बिगाड़ने वाले महारोग को (**अनीनशत्**) नाश किया और (**त्वचम्**) त्वचा को (**सरूपाम्**) सुन्दर रूप वाली (**अकरत्**) बना दिया ॥ २ ॥

भावार्थ—[आसुरी] प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की शक्ति से प्रलय के पश्चात् अनेक विघ्नों के हटाने पर मनुष्य के सुखदायक पदार्थ उत्पन्न हुए जिससे पृथिवी पर समृद्धि और क्षुधा आदि रोगों की निवृत्ति हुई ॥२॥

स॒रूपा॒ नाम॑ ते मा॒ता स॒रूपो॒ नाम॑ ते पि॒ता ।

स॒रू॒प॒कृत् त्वमो॑षधे॒ सा स॒रूप॑मि॒दं कृ॑धि ॥ ३ ॥

पदार्थ—(**ओषधे**) हे उष्णता रखने हारे अन्न आदि ओषधि (**सरूपा**) समान गुण वा स्वभाव वाली (**नाम**) नाम (**ते**) तेरी (**माता**) माता है, (**सरूपः**) समान गुण वा स्वभाव वाला (**नाम**) नाम (**ते**) तेरा (**पिता**) पिता है। (**त्वम्**) तू (**सरूपकृत्**) सुन्दर वा समान गुण करने हारी है, (**सा सा त्वम्**) सो तू (**इदम्**) इस [अंग] को (**सरूपम्**) सुन्दर रूपयुक्त (**कृधि**) कर ॥३॥

भावार्थ—[ओषधि] क्षुधा रोगादि निवर्तक वस्तु को कहते हैं जिससे शरीर में उष्णता रहती है, उसकी [माता] प्रकृति वा पृथिवी और [पिता] परमेश्वर वा मेघ वा सूर्य्य है जिनके गुण वा स्वभाव सब प्राणियों के लिए समान है। ईश्वर से प्रेरित प्रकृति से अथवा भूमि और मेघ वा सूर्य्य के संयोग से सब पुष्टिदायक और रोगनाशक पदार्थ उत्पन्न होते हैं। विद्वान् लोग पदार्थों के गुणों को यथार्थ जानकर नियमपूर्वक उचित भोजन आदि के सेवन और यथोचित उपकार लेने से अपने को और अपने सन्तानों को रूपवान् और वीर्य्यवान् बनावें ॥३॥

श्या॒मा स॑रू॒पं॑क॒रणी॑ पृथि॒व्या अध्युद्भृ॑ता ।

इ॒दमू॒ षु प्र सा॑धय॒ पुन॑ रू॒पाणि॑ कल्पय ॥४॥

पदार्थ—(**श्यामा**) व्यापनशीला वा सुखप्रदा, (**सरूपकरणी**) सुन्दरता करने हारी तू ((**पृथिव्याः अधि**) विख्यात वा विस्तीर्ण पृथिवी में से (**उद्भृता**) उखाड़ी गई है। (**इदम् उ**) इस [कर्म] को (**सु**) भली भांति से (**प्र साधय**) सिद्ध कर, (**पुनः**) और (**रूपाणि**) [इस पुरुष] की सुन्दरताओं को (**कल्पय**) पूर्ण कर ॥४॥

भावार्थ—जैसे उत्तम वैद्य उत्तम ओषधियों से रोग को निवृत्त कर रोगी को सर्वाङ्ग पुष्ट करके आनन्दयुक्त करते हैं, इसी प्रकार दूरदर्शी पुरुष सब विघ्नों को हटाकर कार्य्यसिद्धि कर आनन्द भोगते हैं ॥४॥

卐 सूक्तम् २५ 卐

१—४ भृग्वङ्गिराः । यक्ष्मानाशनोऽग्निः । त्रिष्टुप्, २—३ विराड्गर्भा, ४ पुरोऽनुष्टुप् ।

यद॒ग्निरापो॒ अद॑हत् प्र॒विश्य॒ यत्राकृ॑ण्वन् धर्म॒धृतो॒ नमां॑सि ।

तत्र॑ त आहुः पर॒मं ज॒नित्रं॒ स नः॑ संवि॒द्वान् परि॑ वृङ्ग्धि तक्मन् ॥१॥

पदार्थ—(**यत्**) जिस [सामर्थ्य] से (**अग्निः**) व्यापक अग्नि [ताप] ने (**प्रविश्य**) प्रवेश करके (**अपः**) व्यापनशील जल को (**आ अदहत्**) तपा दिया है और (**यत्र**) जिस [सामर्थ्य] के आगे (**धर्मधृतः**) मर्यादा के रखने वाले पुरुषों ने (**नमांसि**) अनेक प्रकार से नमस्कार (**अकृण्वन्**) किया है। (**तत्र**) उस [सामर्थ्य] में ((**ते**) तेरे (**परमम्**) सबसे ऊँचे (**जनित्रम्**) जन्म स्थान को (**आहुः**) वह [मर्यादापुरुष] बताते हैं, (**सः सः त्वम्**) सो तू, (**तक्मन्**) हे जीवन का कष्ट देने वाले ज्वर ! [ज्वर समान पीड़ा देने वाले ईश्वर !] (**संविद्वान्**) [यह बात] जानता हुआ (**नः**) हमको (**परिवृङ्ग्धि**) छोड़ दे ॥१॥

भावार्थ—जो परमेश्वर उष्ण स्वभाव अग्नि द्वारा शीतल स्वभाव जल को तपाता है अर्थात् विरुद्ध स्वभाव वालों को संयोग वियोग से अनुकूल करके सृष्टि को धारण करता है, जिस परमेश्वर से बढ़कर कोई मर्यादापालक नहीं है, जो स्वयम्भू सबका अधिपति है, और ज्वर आदि रोगों से पापियों को दण्ड देता है उस न्यायी जगदीश्वर का स्मरण करते हुए हम पापों से बचकर सदा आनन्द भोगें। सब विद्वान् लोग उस ईश्वर के आगे सिर झुकाते हैं ॥१॥

यद्य॒र्चिर्यदि॒ वासि॑ शो॒चिः श॑कल्ये॒षि यदि॑ वा ते ज॒नित्र॑म् ।

ह्रू॒डुर्नामा॑सि हरितस्य देव॒ स नः॑ संवि॒द्वान् परि॑ वृङ्ग्धि तक्मन् ॥२॥

पदार्थ—(**यदि**) चाहे तू (**अर्चिः**) ज्वाला रूप (**यदि वा**) अथवा (**शोचिः**) ताप रूप (**असि**) है (**यदि वा**) अथवा (**ते**) तेरा (**जनित्रम्**) जन्म स्थान (**शकल्येषि**) अंग अंग की गति में है। (**हरितस्य**) हे पीले रंग के (**देव**) देने वाले ! (**ह्रूडुः**) दबाने की कल (**नाम असि**) तेरा नाम है, (**सः**) सो तू (**तक्मन्**) जीवन को कष्ट देने वाले ज्वर ! [ज्वर समान पीड़ा देने वाले ईश्वर] (**संविद्वान्**) [यह बात] जानता हुआ (**नः**) हमको (**परिवृङ्ग्धि**) छोड़ दे ॥२॥

भावार्थ—वह परब्रह्म ज्वर आदि रोग से दुष्कर्मियों की नाड़ी-नाड़ी को दुःख से दबा डालता है जैसे कोई किसी को दबाने की कल में दबावे। उस न्यायी जगदीश्वर का स्मरण करते हुए पापों से बचकर सदा आनन्द भोगें ॥२॥

यदि॑ शो॒को यदि॑ वाभिशो॒को यदि॑ वा॒ राज्ञो॒ वरु॑ण॒स्यासि॑ पु॒त्रः ।

ह्रू॒डुर्नामा॑सि हरितस्य देव॒ स नः॑ संवि॒द्वान् परि॑ वृङ्ग्धि तक्मन् ॥३॥

पदार्थ—(**यदि**) चाहे तू (**शोक**) हृदयपीडक (**यदि वा**) चाहे (**अभिशोक**) सर्वशरीर पीड़क है, (**यदि वा**) अथवा तू (**राज्ञः**) तेज वाले (**वरुणस्य**) सूर्य वा जल का (**पुत्रः**) पुत्र रूप (**असि**) है। (**हरितस्य**) हे पीले रंग के (**देव**) देने वाले! (**हूडु**) दबाने की कल (**नाम असि**) तेरा नाम है (**सः**) सो तू, (**तक्मन्**) हे जीवन को कष्ट देने वाले ज्वर! [ज्वर समान पीडा देने हारे!] (**संविद्वान्**) [यह बात] जानता हुआ (**नः**) हमको (**परिवृङ्धि**) छोड दे ॥३॥

भावार्थ—मानसिक और शारीरिक पीडा, सूर्य की ताप वा जल से उत्पन्न ज्वर, और पीलिया आदि रोग, ताप अर्थात् ईश्वरीय नियम से विरुद्ध आचरण का फल है, इसलिए मनुष्य पुरुषार्थपूर्वक परमेश्वर के नियमों का पालन करें, और दुष्ट आचरण छोड़कर सुखी रहें ॥३॥

नमः शीताय तक्मने नमो रूराय शोचिषे कृणोमि ।

यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येति तृतीयकाय नमो अस्तु तक्मने ॥४॥

पदार्थ—(**शीताय**) शीत (**तक्मने**) जीवन का कष्ट देने हारे ज्वर [ज्वर रूप परमेश्वर] को (**नमः**) नमस्कार, और (**रूराय**) क्रूर (**शोचिषे**) ताप के ज्वर को [ज्वर रूप परमेश्वर को] (**नमः**) नमस्कार (**कृणोमि**) मैं करता हूँ। (**यः**) जो (**अन्येद्युः**) एकान्तरा ज्वर और (**उभयद्युः**) दो अन्तरा ज्वर (**अभि एति**) चढता है, (**तस्मै**) [उस ज्वर रूप को और] (**तृतीयकाय**) तिजारी (**तक्मने**) ज्वर [ज्वर रूप परमेश्वर] को (**नमः**) नमस्कार (**अस्तु**) होवे ॥४॥

भावार्थ—परमेश्वर अनेक प्रकार के ज्वर आदि रोगों से पापियों को कष्ट देता है। उसके क्रोध से भय मान कर हम खोटे कामों से बचकर सदा शान्त चित्त और आनन्द में मग्न रहें ॥४॥

卐 सूक्तम् २६ 卐

१—४ ब्रह्मा। १ देवा २ इन्द्र, भग, सविता, ३—४ मरुत। गायत्री. २ त्रिपदा एकावसाना साम्नी त्रिष्टुप् ४ एकावसाना पादनिचृत्।

आरे३ऽसावस्मदस्तु हेतिर्देवासो असत् ।

आरे अश्मा यमस्यथ ॥ १ ॥

पदार्थ—(**देवासः**) हे विजयी शूरवीरो! (**असौ**) वह (**हेतिः**) सांग वा बरछी (**अस्मत्**) हमसे (**आरे**) दूर (**अस्तु**) रहे, और (**अश्मा**) वह पत्थर (**आरे**) दूर (**असत्**) रहे (**यम्**) जिसे (**अस्यथ**) तुम फेंकते हो ॥१॥

भावार्थ—युद्धकुशल सेनापति लोग चक्रव्यूह, पद्मव्यूह, मकरव्यूह, क्रौञ्चव्यूह सूचीव्यूह आदि से अपनी सेना का विन्यास इस प्रकार करें कि शत्रु के अस्त्र-शस्त्र का प्रहार अपनी प्रजा और सेना के न लगे, और न अपने अस्त्र-शस्त्र उलट कर अपने ही लगें, किन्तु शत्रुओं का विध्वंस करें ॥१॥

सखासावस्मभ्यमस्तु रातिः सखेन्द्रो भगः ।

सविता चित्रराधाः ॥ २ ॥

पदार्थ—(**असौ**) वह (**रातिः**) दानशील राजा (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिए (**सखा**) मित्र (**अस्तु**) होवे, (**भगः**) सबका सेवनीय, (**सविता**) लोकों को चलाने वाले सूर्य के समान प्रतापी, (**चित्रराधाः**) अद्भुत धन युक्त (**इन्द्रः**) बड़े ऐश्वर्य वाला (**सखा**) मित्र होवे ॥२॥

भावार्थ—राजा अपनी प्रजा, सेना, और कर्मचारियों पर सदा उदारचित्त रहे और सूर्य के समान महाप्रतापी और ऐश्वर्यशाली और महाधनी होकर सबका हितकारी बने और सबकी उन्नति से अपनी उन्नति करे ॥२॥

यूयं नः प्रवतो नपान् मरुतः सूर्यत्वचसः ।

शर्म यच्छाथ सप्रथः ॥ ३ ॥

पदार्थ—(**प्रवतः**) हे [अपने] भक्तों के (**नपात्**) न गिराने हारे राजन्! और (**सूर्यत्वचसः**) हे सूर्य समान प्रताप वाले (**मरुतः**) शत्रुओं के मारने हारे शूरवीर महात्माओ! (**यूयम्**) तुम सब (**नः**) हमारे लिए (**सप्रथः**) बहुत विस्तीर्ण (**शर्म**) सुख वा शरण (**यच्छाथ**) दान करो ॥३॥

भावार्थ—अपने भक्तों की रक्षा करने हारा राजा और महाप्रतापी धर्म धुरंधर शूरवीर मन्त्री आदि मिल कर प्रजा की सर्वथा रक्षा करके अपने शरण में रक्खें ॥३॥

सुषूदत मृडत मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥ ४ ॥

पदार्थ—(**सुषूदत**) तुम सब [हमें] अंगीकार करो, और (**मृडत**) सुखी करो, [हे राजन्!] तू (**नः**) हमारे (**तनूभ्यः**) शरीरों को (**मृडय**) सुख दे और (**तोकेभ्यः**) बालकों को (**मयः**) आनन्द (**कृधि**) कर ॥४॥

भावार्थ—महाप्रतापी राजा और सुयोग्य कर्मचारी मिलकर सब प्रजा और उनकी सन्तानों की उत्तम शिक्षा आदि से उन्नति करें और सुख पहुँचाते रहें ॥४॥

卐 सूक्तम् २७ 卐

१—४ अथर्वा (स्वस्त्ययनकाम) (चन्द्रमा) इन्द्राणी (च)। अनुष्टुप्, १ पथ्यापंक्तिः।

अमूः पारे पृदाक्वस्त्रिषप्ता निर्जरायवः ।

तासां जरायुभिर्वयमक्ष्या३वपि

व्ययामस्यघायोः परिपन्थिनः ॥ १ ॥

पदार्थ—(**अमूः**) वह (**त्रिषप्ताः**) तीन [ऊंचे, मध्यम और नीचे] स्थान में खडी हुई, (**निर्जरायवः**) जरायु [गर्भ की झिल्ली] से निकली हुई (**पृदाक्वः**) सर्पिणी [वा बाघिनी] रूप शत्रु सेनायें (**पारे**) उस पार [वर्तमान] हैं। (**तासाम्**) उनकी (**जरायुभिः**) जरायु रूप गुप्त चेष्टाओं सहित [वर्तमान] (**अघायोः**) बुरा चीतने वाले, (**परिपन्थिनः**) उलटे आचरण वाले शत्रु की (**अक्ष्यौ**) दोनों आंखों को (**वयम्**) हम (**अपि व्ययामसि**) ढके देते हैं ॥१॥

भावार्थ—जब शत्रु की सेना अपने पड़ावों से निकल कर घात स्थानों पर ऐसी खडी होवे, जैसे सर्पिणी वा बाघिन माता के गर्भ से निकल कर बहुत से उपद्रव फैलाती है, तब युद्धकुशल सेनापति शत्रुसेना की गुप्त कपट चेष्टाओं का मर्म समझ कर ऐसी हलचल मचा दे कि शत्रु की दोनों आंखें हृदय की और मस्तक की मुंद जावें और घबरा कर हार मान लेवे ॥१॥

विषूच्येतु कृन्तती पिनाकमिव बिभ्रती ।

विष्वक् पुनर्भुवा मनोऽसमृद्धा अघायवः ॥ २ ॥

पदार्थ—(**पिनाकम् इव**) त्रिशूल सा (**बिभ्रती**) उठाये हुए (**कृन्तती**) काटती हुई [हमारी सेना] (**विषूची**) सब ओर फैल कर (**एतु**) चले। और (**पुनर्भुवा**) फिर जुड कर आई हुई [शत्रु सेना] का (**मनः**) मन (**विष्वक्**) इधर उधर उडाऊ [हो जावे] (**अघायवः**) बुरा चीतने वाले शत्रु लोग (**असमृद्धाः**) निर्धन हो जावें ॥२॥

भावार्थ—जैसे चतुर सेनापति अस्त्र-शस्त्र वाली अपनी साहसी सेना के अनेक विभाग करके शत्रुओं पर झपट कर धावा मारता और उन्हें व्याकुल करके भगा देता है जिससे वे लोग फिर न तो एकत्र हो सकते और न धन जोड सकते हैं, ऐसे ही बुद्धिमान मनुष्य कुमार्गगामिनी इन्द्रियों को वश में करके सुमार्ग में चलावें और आनन्द भोगें ॥२॥

न बहवः समशकन् नार्भका अभि दाधृषुः ।

वेणोरद्गा इवाभितोऽसमृद्धा अघायवः ॥ ३ ॥

पदार्थ—(**न**) न तो (**बहवः**) बहुत से शत्रु (**समशकन्**) समर्थ हुए (**न**) और न (**अर्भकाः**) वह निर्बल हो जाने पर (**अभि दाधृषुः**) कुछ साहस कर सके, (**वेणोः**) बांस के (**अद्गाः**) गालपुओं के (**इव**) समान (**अघायवः**) बुरा चीतने वाले शत्रु (**असमृद्धाः**) निर्धन [होवें] ॥३॥

भावार्थ—राजा दुराचारी दुष्टों को ऐसा वश में करे कि वे एकत्र न हो सकें और न सता सकें, जैसे नीरस सूखे बांस आदि तृण का भोजन पुष्टिदायक नहीं होता, इसी प्रकार सर्वथा निर्बल कर दिए जावें। इसी प्रकार मनुष्य आत्मरक्षा करे ॥३॥

प्रेतं पादौ प्र स्फुरतं वहतं पृणतो गृहान् ।

इन्द्राण्येतु प्रथमाजीतामुषिता पुरः ॥ ४ ॥

पदार्थ—(**पादौ**) हे हमारे दोनों पांव (**प्र इतम्**) आगे बढ़ो, (**प्र स्फुरतम्**) फुरती कर जाओ, (**पृणतः**) तृप्त करने वाले (**गृहान्**) कुटुम्बियों के पास [हमें] (**वहतम्**) पहुँचाओ। (**प्रथमा**) अपूर्व वा विख्यात (**अजीता—अजिता**) बिना जीती और (**अमुषिता**) बिना लुटी हुई (**इन्द्राणी**) इन्द्र की शक्ति, महा सम्पत्ति (**पुरः**) [हमारे] आगे आगे (**एतु**) चले ॥४॥

भावार्थ—महाप्रतापी शूरवीर पुरुषार्थी राजा विजय करके और बहुत धन प्राप्त करके सावधान होकर अपने घर को लौटे, और अपने मित्रों में अनेक प्रकार से उन्नति करके सुख भोग करे॥ जितेन्द्रिय पुरुष आत्मस्थ परमेश्वर के दर्शन से परोपकार करके सुख प्राप्त करे ॥४॥

卐 सूक्तम् २८ 卐

१—४ चातनः। १—२ अग्निः, ३—४ यातुधानी। अनुष्टुप्, विराट्पथ्या-बृहती, ४ पथ्यापंक्तिः॥

उप प्रागाद् देवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः ।

दहन्नप द्वयाविनो यातुधानान् किमीदिनः ॥१॥

पदार्थ—(**रक्षोहा**) राक्षसों को मार डालने वाला (**अमीवचातनः**) दुःख मिटाने वाला (**देवः**) विजयी (**अग्निः**) अग्निरूप सेनापति (**द्वयाविनः**) दुमुंहे कपटी, (**यातुधानान्**) पीडा देने वाले (**किमीदिनः**) यह क्या है यह क्या है ऐसा करने वाले छली लुतरों वा लपटों को (**अप दहन्**) मिटाकर भस्म करता हुआ (**उप**) हमारे समीप (**प्र=प्रकर्षेण**) आ पहुँचा है ॥१॥

भावार्थ—जब सेनापति अग्निरूप होकर शतघ्नी [तोप] भुशुण्डी [बन्दूक], धनुष, बाण, तलवार आदि अस्त्र-शस्त्रों से शत्रुओं का नाश करता है तब राज्य में शान्ति रहती है ॥१॥

प्रति दह यातुधानान् प्रति देव किमीदिनः ।
प्रतीचीः कृष्णवर्तने सं दह यातुधान्यः ॥ २ ॥

पदार्थ—(देव) हे विजयी सेनापति (यातुधानान्) दुःखदायी राक्षसों और (किमीदिन) क्या क्या करने हारे छली सूचकों को (प्रति) एक एक करके (प्रति दह) जला दे (कृष्णवर्तने) हे धुँआधाड़ मार्गवाले अग्निरूप सेनापति (प्रतीचीः) सन्मुख धावा करती हुई (यातुधान्य = ०—नीः) दुःखदायिनी शत्रु सेनाओं को (सम् दह) चारों ओर से भस्म कर दे ॥२॥

भावार्थ—युद्धकुशल सेनापति अपने घातस्थानों से तोप, तुपक आदि द्वारा अग्नि के समान धुआँधाड़ करता हुआ शत्रुओं के मुखियाओं और सेनादलों को व्याकुल करके भस्म कर देवे ॥२॥

या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे ।
या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ॥३॥

पदार्थ—(या) जिस [शत्रुसेना] ने (शपनेन) शाप [कुवचन] से (शशाप) कोसा है और (या) जिसने (अघम्) दुःख की (मूरम्) मूल को (आदधे) आकर जमाया है । और (या) जिसने (रसस्य) रस (बलादि) के (हरणाय) हरण के लिये (जातम्) (हमारे) समूह का (आरेभे) हाथ लगाया है, (सा) वह (शत्रुसेना) (तोकम्) अपनी बढ़ती वा सन्तान को (अत्तु) खा लेवे ॥३॥

भावार्थ—रणक्षेत्र में जब शत्रुसेना कोलाहल मचाती, धावा मारती और लूट खसोट करती आगे बढ़ती आवे, तो युद्धकुशल सेनापति शत्रुओं में भेद डाल दे कि वह लोग आपस में लड़ मरें और अपने सन्तान अर्थात् हितकारियों का ही नाश कर दें ॥३॥

पुत्रमत्तु यातुधानीः स्वसारमुत नप्त्यम् ।
अधा मिथो विकेश्यो ३ वि घ्नतां यातुधान्यो ३
वि तृह्यन्तामराय्यः ॥ ४ ॥

पदार्थ—(यातुधानीः = ०—नी) दुःखदायिनी (शत्रुसेना) (पुत्रम्) (अपने) पुत्र को, (स्वसारम्) भली भाँति काम पूरा करने हारी बहिन को (उत) और (नप्त्यम् = नप्त्रीम्) नातिनी वा धेवती को (अत्तु) खा लेवे अर्थात् नष्ट करे । (अध) और (विकेश्यः) केश बिखेरे हुए वह सब (सेनायें) (मिथः) आपस में (विघ्नताम्) मर मिटें और (अराय्यः) दान अर्थात् कर न देने हारी (यातुधान्यः) दुःख पहुँचाने हारी (शत्रु प्रजायें) (वितृह्यन्ताम्) विविध प्रकार के दुःख उठावें ॥४॥

भावार्थ—चतुर सेनापति राजा अपनी बुद्धि के बल से दुष्ट शत्रु सेना में हलचल मचा दे कि वह सब घबराकर आपस में कट मर कर एक दूसरे को सताने लगें और जो प्रजागण हठ दुराग्रह करके कर आदि न देवें उनको दण्ड देकर वश में कर लेवे ॥४॥

卐 इति पञ्चमोऽनुवाकः 卐

卐

अथ षष्ठोऽनुवाकः ।

卐 सूक्तम् २९ 卐

१—६ वसिष्ठः । ब्रह्मणस्पतिः, अभीवर्तमणिः । अनुष्टुप् ।

अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृधे ।
तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय ॥ १ ॥

पदार्थ—(येन) जिस (अभीवर्तेन) विजय करने वाले (मणिना) मणि से (प्रशंसनीय सामर्थ्य वा धन से) (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला पुरुष (अभि) सर्वथा (वावृधे) बढ़ा था । (तेन) उसी से, (ब्रह्मणस्पते) हे वेद वा ब्रह्म (वेदवेत्ता) के रक्षक परमेश्वर ! (अस्मान्) हम लोगों को (राष्ट्राय) राज्य भोगने के लिए (अभि) सब ओर से (वर्धय) तू बढ़ा ॥१॥

भावार्थ—जिस प्रकार हमसे पहिले मनुष्य उत्तम सामर्थ्य और धन को पाकर महाप्रतापी हुए हैं, वैसे ही उस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर के अनन्त सामर्थ्य और उपकार का विचार करके हम लोग पूर्ण पुरुषार्थ के साथ (मणि) विद्याधन और सुवर्ण आदि धन की प्राप्ति से सर्वदा उन्नति करके राज्य का पालन करें ॥१॥

अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः ।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति ॥ २ ॥

पदार्थ—[हे ब्रह्मणस्पते] (सपत्नान्), [हमारे] प्रतिपक्षियों को और (याः) जो (नः) हमारी (अरातयः) कर न देने हारी प्रजायें हैं [उनको] (अभि) सर्वथा (अभिवृत्य) जीतकर (पृतन्यन्तम्) सेना चढ़ा कर लाने वाले शत्रु को [और उस पुरुष को] (यः) जो (नः) हमसे (दुरस्यति) दुष्ट आचरण करे, (अभि) सर्वथा (अभितिष्ठ) तू दबा ले ॥२॥

भावार्थ—राजा परमेश्वर पर श्रद्धा करके अपने स्वदेशी और विदेशी दोनों प्रकार के शत्रुओं को यथायोग्य दण्ड देकर वश में रक्खे ॥२॥

अभि त्वा देवः सवितामि सोमो अवीवृधत् ।
अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि ॥३॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (देव) प्रकाशमय (सविता) लोकों के चलाने हारे, सूर्य्य और (सोमः) अमृत देने वाले, चन्द्रमा ने (त्वा) तेरी (अभि अभि) सब प्रकार से (अवीवृधत्) बड़ाई की है । और (विश्वा) सब (भूतानि) सृष्टि के पदार्थों ने (त्वा) तेरी (अभि) सब प्रकार [बड़ाई की है] (यथा) क्योंकि तू (अभिवर्तः) [शत्रुओं का] दबाने वाला (असासि) है ॥३॥

भावार्थ—सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल पदार्थों की रचना और उपकार से उस परमेश्वर की महिमा दीख पड़ती है, उसी अन्तर्यामी के दिये हुए आत्मबल से शूरवीर पुरुष रणभूमि में राक्षसों को जीत कर राज्य में शांति फैलाते हैं ॥३॥

अभीवर्तो अभिभवः सपत्नक्षयणो मणिः ।
राष्ट्राय मह्यं बध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे ॥४॥

पदार्थ—(अभिवर्तः) शत्रुओं का जीतने वाला, और (अभिभवः) हराने वाला, और (सपत्नक्षयणः) प्रतिपक्षियों का नाश करने वाला (मणिः) मणि [प्रशंसनीय सामर्थ्य], रत्न आदि राज्यचिह्न (मह्यम्) मुझ पर (राष्ट्राय) राज्य की वृद्धि के लिए और (सपत्नेभ्यः) वैरियों को (पराभुवे) हराने के लिए (बध्यताम्) बाँधा जावे ॥४॥

भावार्थ—राज्यलक्ष्मी का प्रभाव जताने के लिये राजा मणि, रत्न आदि को धारण करके अपना सामर्थ्य बढ़ावे और राजसभा में राजसिंहासन पर विराजे कि जिससे शत्रुदल भयभीत होकर आज्ञाकारी बने रहें और राज्य में ऐश्वर्य की सदा वृद्धि होवे ॥४॥

उदसौ सूर्यो अगादुदिदं मामकं वचः ।
यथाहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा ॥५॥

पदार्थ—(असौ) वह (सूर्यः) लोकों को चलाने हारा सूर्य (उत् अगात्) उदय हुआ है और (इदम्) यह (मामकम्) मेरा (वचः) वचन (उत्—उत् अगात्) उदय हुआ है (यथा) जिससे कि (अहम्) मैं (शत्रुहः) शत्रुओं का मारने वाला, और (सपत्नहा) रिपु दल का नाश करने वाला होकर (असपत्नः) शत्रुरहित (असानि) रहूँ ॥५॥

भावार्थ—राजा राजसिंहासन पर विराजकर राजघोषणा करे कि जिस प्रकार पृथिवी पर सूर्य प्रकाशित है उसी प्रकार से यह राजघोषणा [ढिंढोरा] प्रकाशित की जाती है कि राज्य में कोई उपद्रव न मचावे, और न अराजकता फैलावे ॥५॥

सपत्नक्षयणो वृषाभिराष्ट्रो विषासहिः ।
यथाहमेषां वीराणां विराजानि जनस्य च ॥ ६ ॥

पदार्थ—(यथा) जिससे कि (सपत्नक्षयणः) शत्रुओं का नाश करने वाला (वृषा) ऐश्वर्य वाला (विषासहिः) सदा विजय वाला (अहम्) मैं (अभिराष्ट्रः) राज्य पाकर (एषाम्) इन (वीराणाम्) वीर पुरुषों का (च) और (जनस्य) लोकों का (विराजानि) राजा रहूँ ॥६॥

भावार्थ—राजा सिंहासन पर विराजकर राजघोषणा करते हुए शूरवीर योद्धाओं और विद्वान् जनों का सत्कार और मान करके शासन करे ॥६॥

卐 सूक्तम् ३० 卐

१—४ अथर्वा (आयुष्कामः) । विश्वेदेवाः.
(१ वसवः, आदित्याः, १—४ देवाः) । त्रिष्टुप्, ३ शाक्वरगर्भा विराड् जगती ।

विश्वे देवा वसवो रक्षतेममुतादित्या जागृत यूयमस्मिन् ।
मेमं सनाभिरुत वान्यनाभिर्मेमं प्रापत् पौरुषेयो वधो यः ॥१॥

पदार्थ—(वसवः) हे श्रेष्ठ (विश्वे) सब (देवाः) प्रकाशमान महात्माओ ! (इमम्) इस पुरुष की (रक्षत) रक्षा करो, (उत) और (आदित्याः) हे सूर्य समान तेज वाले विद्वानो ! (यूयम्) तुम (अस्मिन्) इस राजा के विषय में (जागृत) जागते रहो । (सनाभिः) अपने बन्धु का (उत वा) अथवा (अन्यनाभिः) अबन्धु का, अथवा (पौरुषेयः) किसी और पुरुष का किया हुआ, (यः) जो (वधः) वध की यत्न है [वह] (इमम्) इस (इमम्) इस पुरुष को (मा मा) कभी न (प्रापत्) पहुँच सके ॥१॥

भावार्थ—राजा अपने सुपरीक्षित न्यायमन्त्री और युद्धमन्त्री आदि कर्मचारी शूरवीरों को राज्य की रक्षा के लिए सदा चैतन्य करता रहे कि कोई सजातीय वा स्वदेशी वा विदेशी पुरुष प्रजा में अराजकता न फैलावे ॥१॥

ये वो देवाः पितरो ये च पुत्राः सचेतसो मे शृणुतेदमुक्तम् ।
सर्वेभ्यो वः परि ददाम्येतं स्वस्त्येनं जरसे वहाथ ॥२॥

पदार्थ—(**देवा**) हे विजयी देवताओ ! और (**ये**) जो (**वः**) तुम्हारे (**पितरः**) पितृगण (**च**) और (**ये**) जो (**पुत्राः**) पुत्रगण है, वह तुम सब (**सचेतसः**) सावधान होकर (**मे**) मेरे (**इदम्**) इस (**उक्तम्**) वचन को (**शृणुत**) सुनो (**सर्वेभ्यः वः**) तुम सब को मैं (**एतम्**) इसे [अपने को] (**परि ददामि**) सौंपता हूँ, (**एनम्**) इस पुरुष के लिए [मेरे लिए] (**स्वस्ति**) कल्याण और मंगल (**जरसे**) स्तुति के अर्थ (**वहाथ**) तुम पहुँचाओ ॥२॥

भावार्थ—जो बुद्धिमान् मनुष्य शास्त्रवित्, विजयशील वृद्ध, युवा और ब्रह्मचारियों की सेवा में आत्मसमर्पण करता है वह पुरुष उन महात्माओं के सत्संग, उपदेश और सत्कर्मों से लाभ उठाकर संसार में अपनी स्तुति फैलाता है ॥२॥

ये देवा दिवि ष्ठ ये पृथिव्यां ये अन्तरिक्ष ओषधीषु पशुष्वप्स्व १ न्तः ।
ते कृणुत जरसमायुरस्मै शतमन्यान् परि वृणक्तु मृत्यून् ॥३॥

पदार्थ—(**देवा**) हे विद्वान् महात्माओ ! (**ये**) जो तुम (**दिवि**) सूर्य लोक में, (**ये**) जो (**पृथिव्याम्**) पृथिवी में, (**ये**) जो (**अन्तरिक्षे**) आकाश वा मध्यलोक में (**ओषधीषु**) ओषधियों में, (**पशुषु**) सब जीवों में और (**अप्सु**) व्यापक सूक्ष्म तन्मात्राओं वा जल में (**अन्तः**) भीतर (**स्थ**) वर्तमान हो, (**ते**) वह तुम (**अस्मै**) इस पुरुष के लिये (**जरसम्**) कीर्तियुक्त (**आयुः**) जीवन (**कृणुत**) करो, [यह पुरुष] (**अन्यान्**) दूसरे प्रकार के (**शतम्**) सौ (**मृत्यून्**) मृत्युओं को (**परि वृणक्तु**) हटावे ॥३॥

भावार्थ—जो विद्वान् सूर्यविद्या, भूमिविद्या, वायुविद्या, ओषधि अर्थात् अन्न, वृक्ष, जड़ी, बूटी आदि की विद्या, पशु अर्थात् सब जीवों की पालनविद्या और जलविद्या वा सूक्ष्म तन्मात्राओं की विद्या में निपुण है उनके सत्संग और उनके कर्मों के विचार से शिक्षा ग्रहण करके और पदार्थों के गुण, उपकार और सेवन को यथार्थ समझ कर मनुष्य अपना सब जीवन शुभ कर्मों में व्यतीत करें और दुराचरणों में अपने जन्म को न गवा कर सुफल करें ॥३॥

येषां प्रयाजा उत वानुयाजा हुतभागा अहुतादश्च देवाः ।
येषां वः पञ्च प्रदिशो विभक्तास्तान् वो अस्मै सत्रसदः कृणोमि ॥४॥

पदार्थ—(**येषाम्**) जिन [तुम्हारे] (**प्रयाजाः**) उत्तम पूजनीय कर्म (**उत वा**) और (**अनुयाजाः**) अनुकूल पूजनीय कर्म, और (**हुतभागाः**) देने लेने के विभाग (**च**) और (**अहुतादः**) यज्ञ वा दान से बचे पदार्थों के आहार (**देवाः**) विजय करने हारे [वा प्रकाश वाले] हैं। और (**येषाम् वः**) जिन तुम्हारे (**पञ्च**) विस्तीर्ण [वा पाच] (**प्रदिशः**) उत्तम दान क्रियायें [वा प्रधान दिशायें] (**विभक्ताः**) अनेक प्रकार बटी हुई हैं (**तान् वः**) उन तुम को (**अस्मै**) इस [पुरुष] के हित के लिये [अपने लिये] (**सत्रसदः**) सभासद् (**कृणोमि**) बनाता हूँ ॥४॥

भावार्थ—जो धर्मात्मा विद्वान् पुरुष स्वार्थ छोड़कर दान करते हों और सब संसार के हित में दत्तचित्त हों, राजा उन महात्माओं को चुनकर अपनी राजसभा का सभासद् बनावे ॥४॥

卐 सूक्तम् ३१ 卐

१—४ ब्रह्मा । आशापाला वास्तोष्पति ।
अनुष्टुप्, ३ विराट् त्रिष्टुप्, ४ परानुष्टुप् त्रिष्टुप् ।

आशानामाशापालेभ्यश्चतुर्भ्यो अमृतेभ्यः ।
इदं भूतस्याध्यक्षेभ्यो विधेम हविषा वयम् ॥१॥

पदार्थ—(**इदम्**) इस समय (**वयम्**) हम (**आशानाम्**) सब दिशाओं के मध्य (**आशापालेभ्यः**) आशाओं के पालन हारे, (**चतुर्भ्यः**) प्रार्थना के योग्य पुरुषों [अथवा, चार धर्म अर्थ काम और मोक्ष पदार्थों] के लिए (**अमृतेभ्यः**) अमर रूप वाले, (**भूतस्य**) संसार के (**अध्यक्षेभ्यः**) प्रधानों की (**हविषा**) भक्ति से (**विधेम**) सेवा करें ॥१॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को उत्तम गुण वाले पुरुषों अथवा चतुर्वर्ग, धर्म, अर्थ, काम [ईश्वर में प्रेम] और मोक्ष की प्राप्ति के लिए सदा पूर्ण पुरुषार्थ करना चाहिये। इनके ही पाने से मनुष्य की सब आशायें वा कामनायें पूर्ण होती हैं ॥१॥

य आशानामाशापालाश्चत्वार स्थन देवाः ।
ते नो निर्ऋत्याः पाशेभ्यो मुञ्चतांहसो अंहसः ॥२॥

पदार्थ—(**देवाः**) हे प्रकाशमय देवताओ ! (**ये**) जो तुम (**आशानाम्**) सब दिशाओं के मध्य (**चत्वारः**) प्रार्थना के योग्य [अथवा चार] (**आशापालाः**) आशाओं के रक्षक (**स्थन**) वर्तमान हो, (**ते**) वे तुम (**नः**) हमें (**निर्ऋत्याः**) अलक्ष्मी वा महामारी के (**पाशेभ्यः**) फंदों से और (**अंहसः अंहसः**) प्रत्येक पाप से (**मुञ्चत**) छुड़ाओ ॥२॥

भावार्थ—मनुष्यों को प्रयत्नपूर्वक सब उत्तम पदार्थों [अथवा चारों पदार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष] को प्राप्त करके सब क्लेशों का नाश करना चाहिये ॥२॥

अस्रामस्त्वा हविषा यजाम्यश्लोणस्त्वा घृतेन जुहोमि ।
य आशानामाशापालस्तुरीयो देवः स नः सुभूतमेह वक्षत् ॥३॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (**अस्रामः**) श्रमरहित मैं (**त्वा**) तुझ को (**हविषा**) भक्ति से (**यजामि**) पूजता हूँ, (**अश्लोणः**) लगड़ा न होता हुआ मैं (**त्वा**) तुझ को (**घृतेन**) [ज्ञान के] प्रकाश से [अथवा घृत से] (**जुहोमि**) स्वीकार करता हूँ। (**यः**) जो (**आशानाम्**) सब दिशाओं में (**आशापालः**) आशाओं का पालन करने वाला, (**तुरीयः**) बड़ा वेगवान् परमेश्वर [अथवा, चौथा मोक्ष] (**देवः**) प्रकाशमय है, (**सः**) वह (**नः**) हमारे लिये (**इह**) यहां पर (**सुभूतम्**) उत्तम ऐश्वर्य (**आ वक्षत्**) पहुँचावे ॥३॥

भावार्थ—जो मनुष्य निरालस्य होकर परमेश्वर की आज्ञा का पालन करते हैं अथवा जो घृत से अग्नि के समान प्रतापी होते हैं वे शीघ्र ही जगदीश्वर का दर्शन करके [अथवा धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि से पाये हुए चौथे मोक्ष के लाभ से] महासमर्थ हो जाते हैं ॥३॥

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः ।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ॥४॥

पदार्थ—(**नः**) हमारी (**मात्रे**) माता के लिये (**उत**) और (**पित्रे**) पिता के लिये (**स्वस्ति**) आनन्द (**अस्तु**) होवे, और (**गोभ्यः**) गौओं के लिए (**पुरुषेभ्यः**) पुरुषों के लिये और (**जगते**) जगत् के लिये (**स्वस्ति**) आनन्द [होवे]। (**विश्वम्**) सम्पूर्ण (**सुभूतम्**) उत्तम ऐश्वर्य और (**सुविदत्रम्**) उत्तम ज्ञान वा कुल (**नः**) हमारे लिये (**अस्तु**) हो, (**ज्योक्**) बहुत काल तक (**सूर्यम्**) सूर्य को (**एव**) ही (**दृशेम**) हम देखते रहें ॥४॥

भावार्थ—जो मनुष्य माता पिता आदि अपने कुटुम्बियों और अन्य माननीय पुरुषों और गौ आदि पशुओं से लेकर सब जीवों और संसार के साथ उपकार करते हैं, वे पुरुषार्थी सब प्रकार का उत्तम धन, उत्तम ज्ञान और उत्तम कुल पाते और वही सूर्य जैसे प्रकाशमान होकर दीर्घ आयु अर्थात् बड़े नाम को भोगते हैं ॥४॥

卐 सूक्तम् ३२ 卐

१—४ ब्रह्मा । द्यावापृथिवी । अनुष्टुप्, २ ककुम्मती अनुष्टुप् ॥

इदं जनासो विदथ महद् ब्रह्म वदिष्यति ।
न तत् पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः ॥१॥

पदार्थ—(**जनासः**) हे मनुष्यो ! (**इदम्**) इस बात को (**विदथ**) तुम जानते हो, वह [ब्रह्मज्ञानी] (**महत्**) पूजनीय (**ब्रह्म**) परब्रह्म का (**वदिष्यति**) कथन करेगा। (**तत्**) वह ब्रह्म (**न**) न तो (**पृथिव्याम्**) पृथिवी में (**नो**) और न (**दिवि**) सूर्यलोक में है (**येन**) जिसके सहारे से (**वीरुधः**) यह उगती हुई जड़ी बूटी [लता रूप सृष्टि के पदार्थ] (**प्राणन्ति**) श्वास लेती हैं ॥१॥

भावार्थ—यद्यपि वह सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान् परब्रह्म भूमि वा सूर्य आदि किसी विशेष स्थान में वर्तमान नहीं है तो भी वह अपनी सत्ता मात्र से ओषधि अन्न आदि सब सृष्टि का नियमपूर्वक प्राणदाता है। ब्रह्मज्ञानी लोग उस ब्रह्म का उपदेश करते हैं ॥१॥

अन्तरिक्ष आसां स्थाम श्रान्तसदामिव ।
आस्थानमस्य भूतस्य विदुष्टद् वेधसो न वा ॥२॥

पदार्थ—(**अन्तरिक्षे**) सब के भीतर दिखाई देने हारे आकाशरूप परमेश्वर में (**आसाम्**) इनका [नानारूप सृष्टियों का] (**स्थाम**) ठहराव है (**श्रान्तसदाम् इव**) जैसे थक कर बैठे हुए यात्रियों का पड़ाव। (**वेधसः**) बुद्धिमान् लोग (**तत्**) उस ब्रह्म को (**अस्य भूतस्य**) इस संसार का (**आस्थानम्**) आश्रय (**विदुः**) जानते हैं, (**वा**) अथवा (**न**) नहीं [जानते हैं] ॥२॥

भावार्थ—सूर्य आदि असंख्य लोक उसी परमब्रह्म में ठहरे हैं, वही समस्त जगत् का केन्द्र है। इस बात को विद्वान् लोग विधि और निषेध रूप विचार से निश्चित करते हैं जैसे ब्रह्म जड़ नहीं है किन्तु चैतन्य है, इत्यादि, अथवा जितना अधिक ब्रह्मज्ञान होता जाता है उतना ही वह ब्रह्म अत्यधिक अनन्त और अगम्य जान पड़ता है इससे वह ब्रह्मज्ञानी अपने को अज्ञानी समझते हैं ॥२॥

यद् रोदसी रेजमाने भूमिश्च निरतक्षतम् ।
आर्द्रं तदद्य सर्वदा समुद्रस्येव स्रोत्याः ॥३॥

पदार्थ—(**रोदसी** [illegible]) हे सूर्य (**च**) और (**भूमिः**) भूमि ! (**रेजमाने**) कांपते हुए तुम दोनों ने (**यत्**) जिस [रस] को (**निरतक्षतम्**) उत्पन्न किया है,

(**तत्**) वह (**आर्द्रम्**) रस (**अद्य**) आज (**सर्वदा**) सदा से (**समुद्रस्य**) सींचने वाले समुद्र के (**स्रोत्या**) प्रवाहों के (**इव**) समान वर्त्तमान है ॥३॥

भावार्थ—जिस रस वा उत्पादन शक्ति को, परमेश्वर ने सूर्य और भूमि को (कपमान) वश मे रखके, सृष्टि के आदि मे उत्पन्न किया था वह शक्ति मेघ आदि रस रूप से सदा ससार मे सृष्टि की उत्पत्ति और स्थिति का कारण है ॥३॥

विश्वमन्यामभीवार तदन्यस्यामधि श्रितम् ।
दिवे च विश्ववेदसे पृथिव्यै चाकरं नमः ॥४॥

पदार्थ— (**विश्वम्**) उस सर्वव्यापक [रस ने] (**अन्याम्**) एक [सूर्य वा भूमि] को (**अभि**) आगे ओर से (**वार—ववार**) घेर लिया, (**तत्**) वही [रस] (**अन्यस्याम्**) दूसरी मे (**अधि श्रितम्**) आश्रित हुआ । (**च**) और (**दिवे**) सूर्य रूप वा आकाश रूप (**च**) और (**पृथिव्यै**) पृथिवी रूप (**विश्ववेदसे**) सबके जानने वाले [वा सब धनो के रखने वाले, वा सब मे विद्यमान ब्रह्म] को (**नमः**) नमस्कार (**अकरम्**) मैने किया है ॥४॥

भावार्थ—सृष्टि का कारण रस अर्थात् जल, सूर्य की किरणो से आकाश मे जाकर फिर पृथिवी मे प्रविष्ट होता, वही फिर पृथिवी से आकाश मे जाता और पृथिवी पर आता है । इस प्रकार उन दोनो का परस्पर आकर्षण जगत् को उपकारी होता है । विद्वान् लोग इसी प्रकार जगदीश्वर की अनन्त शक्तियो का विचार कर सत्कारपूर्वक उपकार लेकर आनन्द भोगते हैं ॥४॥

卐 सूक्तम् ३३ 卐

१—४ शन्तातिः । (चन्द्रमाः) आप (च) । त्रिष्टुप् ।

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥१॥

पदार्थ—[जो] (**हिरण्यवर्णा**) व्यापनशील वा कमनीय रूप वाली (**शुचय**) निर्मल स्वभाव वाली और (**पावका**) शुद्धि की जताने वाली हैं (**यासु**) जिनमे (**सविता**) चलाने हारा वा उत्पन्न करने हारा सूर्य और (**यासु**) जिनमे (**अग्नि**) [पार्थिव] अग्नि (**जात**) उत्पन्न हुई । (**या**) जिन (**सुवर्णा**) सुन्दर रूप वाली (**आप**) तन्मात्राओ ने (**अग्निम्**) [बिजुली रूप] अग्नि को (**गर्भम्**) गर्भ के समान (**दधिरे**) धारण किया था, (**ता**) वे [तन्मात्राये] (**न**) हमारे लिये (**शम्**) शुभ करने हारी और (**स्योना**) सुख देने वाली (**भवन्तु**) होवे ॥१॥

भावार्थ—जैसे परमात्मा ने कामना के और खोजने के योग्य तन्मात्राओ के सयोग वियोग से अग्नि, सूर्य और बिजुली इन तीन तेजधारी पदार्थ आदि सब ससार का उत्पन्न किया है, उसी प्रकार मनुष्यो को शुभ गुणो के ग्रहण और दुर्गुणो के त्याग से आपस मे उपकारी होना चाहिये ॥१॥

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम् ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥२॥

पदार्थ—(**यासाम्**) जिन तन्मात्राओ के (**मध्ये**) बीच मे (**वरुण**) सर्वश्रेष्ठ (**राजा**) राजा परमेश्वर (**जनानाम्**) सब जन्म वाले जीवो के (**सत्यानृते**) सत्य और असत्य को (**अवपश्यन्**) देखता हुआ (**याति**) चलता है । (**या**) जिन (**सुवर्णा**) सुन्दर रूप वाली (**आप**) तन्मात्राओ ने (**अग्निम्**) [बिजुली रूप] अग्नि को (**गर्भम्**) गर्भ के समान (**दधिरे**) धारण किया था, (**ता**) वे [तन्मात्रायें] (**न**) हमारे लिये (**शम्**) शुभ करने हारी और (**स्योना**) सुख देने वाली (**भवन्तु**) होवे ॥२॥

भावार्थ—इन तन्मात्राओ का नियन्ता अर्थात् सयोजक और वियोजक (वरुण राजा) परमेश्वर है । वही सब जीवो के पुण्य पाप को देखकर यथावत् फल देता है । इन गुणो से उपकार लेकर मनुष्यो को सुख भोगना चाहिये ॥२॥

यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥३॥

पदार्थ—(**देवा**) सब प्रकाशमय पदार्थ (**दिवि**) व्यवहार के योग्य आकाश मे (**यासाम्**) जिनका (**भक्षम्**) भोजन (**कृण्वन्ति**) करते है और (**या**) जो [तन्मात्राये] (**अन्तरिक्षे**) सबके मध्यवर्ती आकर्षण मे (**बहुधा**) अनेक रूपो से (**भवन्ति**) वर्त्तमान है । और (**या**) जिन (**सुवर्णा**) सुन्दर रूप वाली (**आप**) तन्मात्राओ ने (**अग्निम्**) [बिजुली रूप] अग्नि को (**गर्भम्**) गर्भ के समान (**दधिरे**) धारण किया था, (**ता**) वे [तन्मात्रायें] (**न**) हमारे लिये (**शम्**) शुभ करने हारी और (**स्योना**) सुख देने वाली (**भवन्तु**) होवें ॥३॥

भावार्थ—अपरिमित तन्मात्रायें ईश्वरकृत परस्पर आकर्षण से ससार के (देवा) सूर्य अग्नि, वायु आदि सब पदार्थों के धारण और पोषण का कारण हैं । (देवा) विद्वान् लोग इनके सूक्ष्म विचार से ससार में अनेक उपकार करके सुख पाते हैं ॥३॥

शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ।
घृतश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥४॥

पदार्थ—(**आप**) हे तन्मात्राओ ! (**शिवेन**) सुखप्रद (**चक्षुषा**) नेत्र से (**मा**) मुझको (**पश्यत**) तुम देखो, (**शिवया**) अपने सुखप्रद (**तन्वा**) रूप से (**मे**) मेरे (**त्वचम्**) शरीर को (**उप स्पृशत**) तुम पास से छूओ । (**या**) जो (**आप**) तन्मात्रायें (**घृतश्चुत**) अमृत बरसाने वाली, (**शुचय**) निर्मल स्वभाव और (**पावका**) शुद्धि जताने वाली है, (**ता**) वे [तन्मात्रायें] (**न**) हमारे लिये (**शम्**) शुभ करने हारी और (**स्योना**) सुख देने वाली (**भवन्तु**) होवें ॥४॥

भावार्थ—(आप) तन्मात्रायें मुझे नेत्र से देखें, अर्थात् पूर्ण ज्ञान हमे प्राप्त हो और उससे हमारे शरीर और आत्मा स्वस्थ रहें । अथवा, (आप) शब्द से तन्मात्राओ के ज्ञाता और वशयिता परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष का ग्रहण है । जो मनुष्य सृष्टि के विज्ञान से शरीर का स्वास्थ्य और आत्मा की उन्नति करके उपकारी होते हैं उनके लिये परमेश्वर की कृपा से सदा अमृत अर्थात् स्थिर सुख बरसता है ॥४॥

卐 सूक्तम् ३४ 卐

१-५ ॥ अथर्वा ऋषिः । वीरुद्देवता । अनुष्टुप्छन्दः

इयं वीरुन्मधुजाता मधुना त्वा खनामसि ।
मधोरधि प्रजातासि सा नो मधुमतस्कृधि ॥१॥

पदार्थ—(**इयम्**) यह तू (**वीरुत्**) बढ़ती हुई [विद्या] (**मधुजाता**) ज्ञान मे उत्पन्न हुई है, (**मधुना**) ज्ञान के साथ (**त्वा**) तुझको (**खनामसि**) हम खोदते हैं । (**मधो अधि**) विद्या से (**प्रजाता असि**) तू जन्मी है (**सा**) सो तू (**न**) हमको (**मधुमत**) उत्तम विद्या वाले (**कृधि**) कर ॥१॥

भावार्थ—मधु शब्द [मन जानना—उ, न = ध] का अर्थ ज्ञान है । धात्वर्थ के अनुसार यह आशय है कि शिक्षा के ग्रहण, अभ्यास, अन्वेषण और परीक्षण मे मनुष्य को उत्तम सुखदायक विद्या मिलती है ॥१॥

दूसरा अर्थ

पदार्थ—(**इयम् वीरुत्**) यह तू फैलती हुई बेल (**मधुजाता**) मधु [शहद] से उत्पन्न हुई है, (**मधुना**) मधु के साथ (**त्वा**) तुझको (**खनामसि**) हम खोदते हैं । (**मधो अधि**) वसन्त ऋतु से (**प्रजाता असि**) तू जन्मी है, (**सा**) सो तू (**न**) हमको (**मधुमत**) मधु रस वाले (**कृधि**) कर ॥१॥

भावार्थ—मधु शब्द उसी धातु [मन जानना] से सिद्ध होकर [शहद] के रस का वाचक है । इस अर्थ मे विद्या को मधु लता अर्थात् शहद की बेल व प्रमलता माना है । (मधु) शहद वसन्त ऋतु मे अनेक पुष्पो के रस से मधुमक्षिकाओ द्वारा मिलता है, इसी प्रकार (मधुना) प्रेम रस के साथ [खोदने] अर्थात् अन्वेषण और परीक्षण से विद्वान् लोग अनेक विद्वानो से विद्यारूप मधु को पाकर (मधु) आनन्द रस का भोग करते है ॥१॥

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम् ।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥२॥

पदार्थ—(**मे**) मेरी (**जिह्वाया**) रस जीतने वाली, जिह्वा के (**अग्रे**) सिरे पर (**मधु**) ज्ञान [वा मधु का रस] होवे और (**जिह्वामूले**) जिह्वा की मूल मे (**मधूलकम्**) ज्ञान का लाभ [वा मधु का स्वाद] होवे । (**मम**) मेरे (**क्रतौ**) कर्म वा बुद्धि मे (**इत्**) ही (**अह**) अवश्य (**असः**) तू रह, (**मम चित्तम्**) मेरे चित्त मे (**उपायसि**) तू पहुँच करती है ॥२॥

भावार्थ—जब मनुष्य विद्या को अध्ययन, मनन और परीक्षण मे प्रेमपूर्वक प्राप्त करते है, तब विद्या उनके हृदय मे घर करके सुख का वरदान देती है ॥२॥

मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः ॥३॥

पदार्थ—(**मे**) मेरा (**निक्रमणम्**) पास आना (**मधुमत्**) बहुत ज्ञान वाला वा रस मे भरा हुआ और (**मे**) मेरा (**परायणम्**) बाहिर जाना (**मधुमत्**) बहुत ज्ञान वाला वा रस मे भरा हुआ होवे । (**वाचा**) वाणी से मैं (**मधुमत्**) बहुत ज्ञान वाला वा रसयुक्त (**वदामि**) बोलूं और मैं (**मधुसन्दृश**) ज्ञान रूप वाला वा मधुर रूप वाला (**भूयासम्**) रहूँ ॥३॥

भावार्थ—जो मनुष्य घर, सभा, राजद्वार, देश, परदेश आदि मे आने जाने, निरीक्षण, परीक्षण, अभ्यास आदि समस्त चेष्टाओ और वाणी से बोलने अर्थात् शुभ गुणो के ग्रहण और उपदेश करने से (मधुमान्) ज्ञानवान् वा रस से भरे अर्थात् प्रेम मे मग्न होते हैं, वही महात्मा (मधुसन्दृश) रसीले रूप वाले अर्थात् ससार भर मे शुभकर्मी होकर उपकार करते है ॥३॥

मधोरस्मि मधुतरो मदुघान्मधुमत्तरः ।
मामित् किल त्वं वनाः शाखां मधुमतीमिव ॥४॥

पदार्थ—(**मधो**) मधुर रस से, मैं (**मधुतर**) अधिक मधुर (**अस्मि**) होऊँ (**मधुघात्**) लड्डू [वा मुलहटी ओषधि] से भी (**मधुमत्तर**) अधिक मधुर रस वाला होऊँ । (**त्वम्**) तू (**माम् इत्**) मुझसे ही (**किल**) निश्चय करके (**वना**) प्रेम कर, (**इव**) जैसे (**मधुमतीम्**) मधुर रसवाली (**शाखाम्**) शाखा से [अनुराग करते हैं] ॥४॥

भावार्थ—विद्या का रस सासारिक स्वादिष्ट मिष्टान्न आदि रोचक पदार्थों से बहुत ही रसीला अर्थात् अधिक लाभदायक और उपकारी होता है । जैसे-जैसे ब्रह्मचारी यत्नपूर्वक विद्या की लालसा करता है वैसे ही वैसे विद्या देवी भी उससे अनुराग करती है ॥४॥

परि त्वा परितत्नुनेक्षुणागामविद्विषे ।

यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥५॥

पदार्थ—(**परितत्नुना**) बहुत फैली हुई (**इक्षुणा**) लालसा के साथ [अथवा, ऊख जैसी मधुरता के साथ (**अविद्विषे**) वैर छोड़ने के लिए (**त्वा**) तुझको (**परि**) सब ओर से (**अगाम्**) मैंने पाया है । (**यथा**) जिससे तू (**माम् कामिनी**) मेरी कामना करने वाली (**असः**) होवे, और (**यथा**) जिससे तू (**मत्**) मुझसे (**अपगा.**) बिछुड़न वाली (**न**) न (**असः**) होवे ॥५॥

भावार्थ—जब ब्रह्मचारी पूर्ण अभिलाषा से विद्या के लिए प्रयत्न करता है तो कठिन से कठिन भी विद्या उसको अवश्य मिलती और अभीष्ट आनन्द देती है ॥५॥

卐 सूक्तम् ३५ 卐

१—४ अथर्वा (आयुष्काम) । हिरण्यम्, इन्द्राग्नी, विश्वेदेवाः ।

जगती, ४ अनुष्टुब्गर्भा ।

यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः ।

तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥१॥

पदार्थ—(**यत्**) जिस (**हिरण्यम्**) कामनायोग्य विज्ञान वा सुवर्णादि को (**दाक्षायणाः**) बल की गति रखने वाले, परम उत्साही, (**सुमनस्यमानाः**) शुभचिन्तकों ने (**शतानीकाय**) सौ सेनाओं के लिए (**अबध्नन्**) बाधा है । (**तत्**) उसको (**आयुषे**) लाभ के लिए, (**वर्चसे**) यश के लिए, (**बलाय**) बल के लिए और (**शतशारदाय**) सौ शरद् ऋतुओं वाले (**दीर्घायुत्वाय**) चिरकाल जीवन के लिए (**ते**) तेरे (**बध्नामि**) मैं बाधता हूँ ॥१॥

भावार्थ—जिस प्रकार कामनायोग्य उत्तम विज्ञान और धन आदि से दूर-दर्शी, शुभचिन्तक, शूरवीर विद्वान् लोग बहुत सेना लेकर रक्षा करते हैं, उसी प्रकार सब मनुष्य विज्ञान और धन की प्राप्ति से ससार में कीर्ति और सामर्थ्य बढावें और अपना जीवन सुफल करें ॥१॥

नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्ये३तत् ।

यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः ॥२॥

पदार्थ—(**न**) न तो (**रक्षांसि**) हिंसा करने हारे राक्षस और (**न**) न (**पिशाचाः**) मांसाहारी पिशाच (**एनम्**) इस पुरुष को (**सहन्ते**) दबा सकते है, (**हि**) क्योंकि (**एतत्**) यह [विज्ञान वा सुवर्ण] (**देवानाम्**) विद्वानों का (**प्रथमजम्**) प्रथम उत्पन्न (**ओजः**) सामर्थ्य है । (**यः**) जो पुरुष (**दाक्षायणम्**) बल की गति बढाने वाले (**हिरण्यम्**) कमनीय तेज स्वरूप विज्ञान या सुवर्ण को (**बिभर्ति**) धारण करता है, (**सः**) वह (**जीवेषु**) सब जीवों में (**आयुः**) अपनी आयु को (**दीर्घम्**) दीर्घ (**कृणुते**) करता है ॥२॥

भावार्थ—जो पुरुष [प्रथमजम्] प्रथम अवस्था में गुणी माता, पिता और आचार्य से ब्रह्मचर्य सेवन करके शिक्षा पाते हैं, वे उत्साही जन सब विघ्नों को हटाकर दुष्ट हिंसकों के फंदे में फंसते हैं, और वही सत्कर्मी पुरुष विज्ञान और सुवर्ण आदि धन को प्राप्त करके संसार में यश पाते हैं इसी का नाम दीर्घ आयु करना है ॥२॥

अपां तेजो ज्योतिरोजो बलं च वनस्पतीनामुत वीर्याणि ।

इन्द्र इवेन्द्रियाण्यधि धारयामो अस्मिन् तद् दक्षमाणो बिभरद्धिरण्यम् ॥३॥

पदार्थ—(**अपाम्**) प्राणों वा प्रजाओं के (**तेजः**) तेज, (**ज्योतिः**) कांति, (**ओजः**) पराक्रम (**च**) और (**बलम्**) बल को (**उत**) और भी (**वनस्पतीनाम्**) सेवनीय गुणों के रक्षक विद्वानों की (**वीर्याणि**) शक्तियों को (**अस्मिन् अधि**) इस [पुरुष] में (**धारयाम**) हम धारण करते हैं, (**इव**) जैसे (**इन्द्रे**) बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष में (**इन्द्रियाणि**) इन्द्र के चिह्न, [बड़े ऐश्वर्य वाले] होते हैं । [इसलिए] (**दक्षमाणः**) वृद्धि करता हुआ यह पुरुष (**तत्**) उस (**हिरण्यम्**) कमनीय विज्ञान वा सुवर्ण आदि को (**बिभरत्**) धारण करे ॥३॥

भावार्थ—विद्वानों के सत्सग से महाप्रतापी, विक्रमी, तेजस्वी, गुणी पुरुष वृद्धि करके विज्ञान और धन सञ्चय करे और सामर्थ्य बढावे ॥३॥

समानां मासामृतुभिष्ट्वा वयं संवत्सरस्य पयसा पिपर्मि ।

इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ॥४॥

पदार्थ—(**वयम्**) हम लोग (**त्वा**) तुझको [आत्मा को] (**समानाम्**) अनुकूल (**मासाम्**) महीनों को (**ऋतुभिः**) ऋतुओं से और (**संवत्सरस्य**) वर्ष के (**पयसा**) दुग्ध वा रस से (**पिपर्मि**—**पिपर्म**) पूर्ण करते हैं (**इन्द्राग्नी**) वायु और अग्नि [वायु और अग्नि के समान गुण वाले] (**ते**) वे (**विश्वे देवाः**) सब दिव्य गुण युक्त पुरुष (**अहृणीयमानाः**) सकोच न करते हुए (**अनु मन्यन्ताम्**) [हम पर] अनुकूल रहें ॥४॥

भावार्थ—जो मनुष्य महीनों, ऋतुओं और वर्ष का अनुकूल विभाग करते हैं, वे वर्ष भर की उपज, अन्न, दूध, फल, पुष्प आदि से पुष्ट रहते हैं, तथा वायु के समान वेग वाले, एवं अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् महात्मा उस पुरुषार्थी मनुष्य के सदा शुभचिन्तक होते हैं ॥४॥ **इति षष्ठोऽनुवाकः ॥**

卐 इति प्रथमं काण्डम् 卐

卐

द्वितीयं काण्डम्

प्रथमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् १ 卐

१—५ वेन । ब्रह्म, *आत्मा । त्रिष्टुप्*, ३ जगती ।

वेनस्तत् पश्यत् परमं गुहा यद् यत्र विश्वं भवत्येकरूपम् ।

इदं पृश्निरदुहज्जायमानाः स्वर्विदो अभ्यनूषत व्राः ॥१॥

पदार्थ—(**वेनः**) बुद्धिमान् पुरुष (**तत्**) उस (**परमम्**) अति श्रेष्ठ परब्रह्म को (**पश्यत्** ०—ति) देखता है, (**यत्**) जो ब्रह्म (**गुहा** = **गुहायाम्**) गुफा के भीतर [वर्तमान है], और (**यत्र**) जिसमें (**विश्वम्**) सब जगत् (**एक रूपम्**) एक रूप [निरन्तर व्याप्त] (**भवति**) वर्तमान है । (**इदम्**) इस परम ऐश्वर्य के कारण [ब्रह्मज्ञान] को (**पृश्निः**) [ईश्वर से] स्पर्श रखने वाले मनुष्य ने (**जायमानाः**) उत्पन्न होती हुई अनेक रचनाओं से (**अदुहत्**) दुहा है, और (**स्वर्विदः**) सुखस्वरूप वा आदित्यवर्ण ब्रह्म के जानने वाले (**व्राः**) वरणीय विद्वानों ने [उस ब्रह्म की] (**अभि**) विविध प्रकार से (**अनूषत**) स्तुति की है ॥१॥

भावार्थ—वह परमब्रह्म सूक्ष्म तो ऐसा है कि वह [गुहा] हृदय आदि प्रत्येक सूक्ष्म स्थान का अन्तर्यामी है और स्थूल भी ऐसा है कि सपूर्ण ब्रह्मांड उसके भीतर समा रहा है । धीर ध्यानी महात्मा उस जगदीश्वर की अनन्त रचनाओं से विज्ञान और उपकार प्राप्त करके मुक्त कण्ठ से आत्मसमर्पण करते हुए उसकी स्तुति करते और ब्रह्मानन्द में मग्न रहते हैं ॥१॥

प्र तद् वोचेदमृतस्य विद्वान् गन्धर्वो धाम परमं गुहा यत् ।

त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुष्पितासत् ॥२॥

पदार्थ—(**विद्वान्**) विद्वान् (**गन्धर्वः**) विद्या का धारण करने वाला पुरुष (**अमृतस्य**) अविनाशी ब्रह्म के (**तत्**) उस (**परमम्**) सबसे ऊँचे (**धाम**) पद का (**प्रवोचत्**) उपदेश करे (**यत्**) जो पद (**गुहा**=**गुहायाम्**) गुफा [प्रत्येक अगम्य पदार्थ हृदय आदि] के भीतर है । (**अस्य**) इस [ब्रह्म] की (**गुहा**) गुफा [अगम्य शक्ति] में (**त्रीणि**) तीनों (**पदानि**) पद (**निहिता** = ०—**तानि**) ठहरे हुए हैं, (**यः**) जो [विद्वान् पुरुष] (**तानि**) उनको (**वेद**) जान लेता है, (**सः**) वह (**पितुः**) पिता का (**पिता**) पिता (**असत्**) हो जाता है ॥२॥

भावार्थ—विद्वान् महात्मा पुरुष उस परब्रह्म की महिमा का सदा उपदेश करते रहते हैं । वह ब्रह्म सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से महान् है । उसके ही वश में तीन पद, अर्थात् ससार की सृष्टि, स्थिति और नाश यह तीनों अवस्थायें, अथवा भूत, भविष्यत् और वर्तमान, तीनों काल, अथवा सत्त्व, रज और तम, तीनों गुण वर्तमान हैं । जिस महापुरुष योगी को इन अवस्थाओं का विज्ञान व्यष्टि और समष्टि रूप से होता है, वह पिता का पिता अर्थात् महाविज्ञानियों में महाविज्ञानी होता है ॥२॥

स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।

यो देवानां नामध एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ॥३॥

पदार्थ—(**सः**) वही [ईश्वर] (**नः**) हमारा (**पिता**) पालक और (**जनिता**) जनक (**उत**) और (**सः**) वही (**बन्धुः**) बान्धव है, वह (**विश्वा - विश्वानि**) सब (**धामानि**) पदों ([अवस्थाओं] और (**भुवनानि**) लोकों को (**वेद**) जानता है (**यः**) जो [परमेश्वर] (**एकः**) अकेला (**एव**) ही (**देवानाम्**) दिव्य गुणवाले पदार्थों का (**नामधः**) नाम रखने वाला है (**सम्प्रश्नम्**) यथाविधि पूछने योग्य (**तम्**) उसको (**सर्वा - सर्वाणि**) सब (**भुवना** ०—**नानि**) प्राणी (**यन्ति**) प्राप्त होते हैं ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर संसार का माता, पिता, बन्धु और सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी है। वही पिता के समान सृष्टि के पदार्थों का नामकरण संस्कार करता है, जैसे सूर्य, पृथिवी, मनुष्य, गौ, घोड़ा आदि। विद्वान् लोग सत्सग करके उस जगदीश्वर को पाते और आनन्द भोगते हैं ॥३॥

परि द्यावापृथिवी सद्य आयमुपातिष्ठे प्रथमजामृतस्य ।
वाचमिव वक्तरि भुवनेष्ठा धास्युरेष नन्वे॒ षो अग्निः ॥४॥

पदार्थ—(**सद्यः**) अभी (**द्यावापृथिवी** ०—**व्यौ**) सूर्य और पृथिवीलोक मे (**परि - परीत्य**) घूमता हुआ (**आयम्**) मैं [प्राणी] आया हूँ। (**ऋतस्य**) सत्य नियम के (**प्रथमजाम्**) पहिले से उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] को (**उप आतिष्ठे**) मैं प्राप्त करता हूँ, (**इव**) जैसे [श्रोतागण] (**वक्तरि**) वक्ता मे [वर्तमान] (**वाचम्**) वाणी को [प्राप्त होते हैं]। (**भुवनेष्ठाः**) सम्पूर्ण जगत् मे स्थित (**एषः**) यह परमेश्वर (**धास्युः**) पोषण करने वाला और (**ननु**) अवश्य करके (**एषः**) यह (**अग्निः**) अग्नि [सदृश उपकारी वा व्यापक परमात्मा] है ॥४॥

भावार्थ—सत्यवेत्ता पुरुष सूर्य और पृथिवी आदि प्रत्येक कार्यरूप पदार्थ के आकर्षण, धारणादि का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके परमात्मा को साक्षात करता है, जैसे श्रोता लोग वक्ता के बोलने पर उसकी वाणी के अभिप्राय को अपने आत्मा मे ग्रहण करते हैं। वही ईश्वर वेदरूप सत्य नियम को सृष्टि के पहिले प्रकट करता और सब जगत् का धारण और पोषण करता रहता है, जैसे सूर्य का ताप अन्न आदि को परिपक्व करके और जाठर अग्नि भोजन को पचा कर और उससे रुधिर आदि को उत्पन्न करके शरीर को पुष्ट करता है ॥४॥

परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्य तन्तुं विततं दृशे कम् ।
यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनावध्यैरयन्त ॥५॥

पदार्थ—(**विश्वा - विश्वानि**) सब (**भुवनानि**) लोकों मे (**परि - परीत्य**) घूम कर (**ऋतस्य**) सत्य नियम के (**विततम्**) सब ओर फैले हुए (**तन्तुम्**) फैलने वाले [अथवा वस्त्र मे सूत के समान सर्वव्यापक] (**कम्**) प्रजापति परमेश्वर को (**दृशे**) देखने के लिए (**आयम्**) मैं [प्राणी] आया हूँ। (**यत्र**) जिस [परमात्मा] मे (**देवाः**) तेजस्वी महात्मा (**अमृतम्**) अमृत [अमरण अर्थात् जीवन की सफलता वा अनश्वर आनन्द] को (**आनशानाः**) भोगते हुए (**समाने**) साधारण (**योनौ**) आदि कारण ब्रह्म मे [प्रविष्ट होकर] (**अधि**) ऊपर (**ऐरयन्त**) पहुँचे है ॥५॥

भावार्थ—ध्यानी धीर वीर पुरुष सामान्यत समष्टि रूप से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की परीक्षा करके सब स्थान मे व्यापक जगदीश्वर का साक्षात् करके आनन्द भोगते हैं और यह अनुभव करते हैं कि सब महात्मा अपने को उस परम पिता मे लय करके आत्मा की परम उन्नति करते है, अर्थात् जो स्वार्थ छोड़ कर आत्मसमर्पण करते हैं वही परोपकारी सज्जन परम आनन्द की सिद्धि [मुक्ति] को सदा हस्तगत करते हैं ॥५॥

卐 सूक्तम् २ 卐

१—५ मातृनामा । गन्धर्वाप्सरस । त्रिष्टुप् ।

१ विराड्जगती, ४ त्रिपाद्विराण्नाम गायत्री, ५ भुरिगनुष्टुप् ।

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः ।
तं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम् ॥१॥

पदार्थ—(**यः**) जो तू (**दिव्यः**) दिव्य [अद्भुत स्वभाव] (**गन्धर्वः**) गन्धर्व [भूमि, सूर्य, वेदवाणी वा गति का धारण करने वाला] (**भुवनस्य**) सब ब्रह्माण्ड का (**एकः**) एक (**एव**) ही (**पतिः**) स्वामी, (**विक्षु**) सब प्रजाओं [वा मनुष्यों] मे (**नमस्यः**) नमस्कार योग्य और (**ईड्यः**) स्तुति योग्य है। (**तम्**) उस (**त्वा**) तुझसे, (**दिव्य**) हे अद्भुत स्वभाव (**देव**) जयशील परमेश्वर ! (**ब्रह्मणा**) वेद द्वारा (**यौमि**) मैं मिलता हूँ, (**ते**) तेरे लिए (**नमः**) नमस्कार (**अस्तु**) हो (**दिवि**) प्रत्येक व्यवहार मे (**ते**) तेरा (**सधस्थम्**) सहवास है ॥१॥

भावार्थ—धीर, वीर, ऋषि, मुनि पुरुष उस परम पिता जगदीश्वर की सत्ता को अपने मे और प्रत्येक पदार्थ मे वैदिक ज्ञान की प्राप्ति से साक्षात् करके अभिमान छोड़ कर आत्मबल बढ़ाते हुए आनन्द भोगते हैं ॥१॥

दिवि स्पृष्टो यजतः सूर्यत्वगवयाता हरसो दैव्यस्य ।
मृडाद् गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यः सुशेवाः ॥२॥

पदार्थ—(**दिवि**) प्रत्येक व्यवहार मे (**स्पृष्टः**) स्पर्श किये हुए, (**यजतः**) पूजनीय, (**सूर्यत्वक्**) सूर्य को त्वचा अर्थात् रूप देने वाला, (**दैव्यस्य**) मदशील [प्रमत्त] मनुष्य के, अथवा आधिदैविक (**हरसः**) क्रोध का (**अवयाता**) हटाने वाला वह परमेश्वर (**मृडात्**) [सबको] आनन्द देवे, (**यः**) जो (**गन्धर्वः**) गन्धर्व, [भूमि, सूर्य, वेदवाणी वा गति का धारण करने वाला] (**भुवनस्य**) सब जगत् का (**एकः**) एक (**एव**) ही (**पतिः**) स्वामी (**नमस्यः**) नमस्कार योग्य और (**सुशेवाः**) अत्यन्त सेवायोग्य है ॥२॥

भावार्थ—वह सर्वव्यापी, सूर्यादि प्रकाशक जगत्पिता परमेश्वर हमें सामर्थ्य देकर हमारे कुक्रोध और आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक क्लेश का नाश करता है। उस अद्वितीय, सर्वसेवनीय परमेश्वर की उपासना से सबको आनन्द मिलता है ॥२॥

अनवद्याभिः समु जग्म आभिरप्सरास्वपि गन्धर्व आसीत् ।
समुद्र आसां सदनं म आहुर्यतः सद्य आ च परा च यन्ति ॥३॥

पदार्थ—(**गन्धर्वः**) गन्धर्व (**आभिः**) इन (**अनवद्याभिः**) निर्दोष [अप्सराओं] के साथ (**उ**) अवश्य (**सम् जग्मे**) सङ्गति वाला था, और (**अप्सरासु**) अप्सराओं मे [सब प्राणियों, वा अन्तरिक्ष वा बीज रूप जल मे व्यापक, वा उत्तम रूप वाली अपनी शक्तियों मे] (**अपि**) निःसन्देह (**आसीत्**) वर्त्तमान था। (**आसाम्**) इन [अप्सराओं] का (**सदनम्**) घर (**समुद्रे**) अन्तरिक्ष मे [वा समुद्र रूप गम्भीर स्थान मे] (**मे**) मुझको (**आहुः**) वे बताते है (**यतः**) जिस स्थान से वे (**सद्यः**) अवश्य (**आ यन्ति**) आती (**च**) और (**परा - परायन्ति**) दूर चली जाती है ॥३॥

भावार्थ—(गन्धर्व) भूमि आदि लोकों और वेदवाणी का धारक (अप्सराओं) अर्थात् सब प्राणियों और जल आदि सृष्टि के उपादान कारण पदार्थों मे वर्त्तमान अपनी शक्तियों के साथ विराजमान रहता है। ये अद्भुत शक्तियां अति विस्तीर्ण आकाश मे वर्त्तमान रहतीं और मनुष्य आदि के शरीरों मे परमाणुओं की संयोग दशा मे दृश्य और उनकी वियोग दशा मे अदृश्य हो जाती हैं ॥३॥

अभ्रिये दिद्युन्नक्षत्रिये या विश्वावसुं गन्धर्वं सचध्वे ।
ताभ्यो वो देवीर्नम इत् कृणोमि ॥४॥

पदार्थ—(**अभ्रिये**) अभ्र [मेघ] मे [रहने वाली], (**विद्युत** ०—**ति**) बिजुली मे [वर्त्तमान] और (**नक्षत्रिये**) नक्षत्रों मे [रहने वाली] (**याः**) जो तुम सब (**विश्वावसुम्**) सब प्रकार के धनों के वा सब निवासस्थानों [लोकों] के स्वामी (**गन्धर्वम्**) गन्धर्व [पृथिवी सूर्य वा वेदवाणी के धारण करने वाले परमेश्वर] की (**सचध्वे**) सेवा करती हो। (**देवीः - हे देव्यः !**) हे देवियो ! [दिव्य अर्थात अद्भुत गुण वालियो !] (**ताः**) उन (**वः**) तुमको (**नमः**) नमस्कार (**इत्**) अवश्य (**कृणोमि**) मैं करता हूँ ॥४॥

भावार्थ—यहां शक्तियों से शक्तिमान परमेश्वर का ग्रहण है। संसार के प्रत्येक पदार्थ के अवलोकन से देखा जाता है कि ये अप्सराएं [परमेश्वर की अनन्त और अद्भुत शक्तियां] परमेश्वर के वशीभूत होकर सब सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और अन्त का कारण है। उन शक्तियों अर्थात् उनके स्वामी जगदीश्वर को बड़े छोटे प्राणी नम्रता से स्वीकार करने और उपकारों को विचार कर उपकारी बन कर आनन्द भोगते है ॥४॥

याः क्लन्दास्तमिषीचयोऽक्षकामा मनोमुहः ।
ताभ्यो गन्धर्वपत्नीभ्योऽप्सराभ्योऽकरं नमः ॥५॥

पदार्थ—(**याः**) जो (**क्लन्दाः**) आवाहन करने हारी (**तमिषीचयः**) इच्छा की सींचन [पूर्ण करने] हारी, (**अक्षकामाः**) व्यवहारों मे कामना कराने वाली, (**मनोमुहः**) मन को आश्चर्य मे करने वाली है। (**ताभ्यः**) उन (**गन्धर्व-पत्नीभ्यः**) गन्धर्व की पत्नी [परमेश्वर की रक्षा मे रहने वाली] (**अप्सराभ्यः**) अप्सराओं [प्राणियों मे रहने वाली ईश्वरी शक्तियों] को मैंने (**नमः**) नमस्कार (**अकरम्**) किया है ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे भी अप्सराओं अर्थात् शक्तियों से उनके स्वामी परमेश्वर का ग्रहण है। वह परमेश्वर दुष्टों पर गरजता और शिष्टों का आवाहन करता, अनन्त बलवान्, उत्तम कर्मों मे प्रीति कराने वाला और मनोहर स्वभाव है। सब जड़ और चेतन नमस्कार करके उस सर्वशक्तिमान् की आज्ञा मानते और आनन्दित होते है ॥५॥

卐 सूक्तम् ३ 卐

१—६ अङ्गिरा । भैषज्य, आयु, धन्वन्तरि.। अनुष्टुप्, ६ त्रिपदा, स्वराडुपरिष्टान्महाबृहती ।

अदो यदवधावत्यवत्कमधि पर्वतात् ।
तत् ते कृणोमि भेषजं सुभेषजं यथाससि ॥ १ ॥

पदार्थ—(**अदः**) वह (**यत्**) जो मानने योग्य ब्रह्म (**अवत्कम्**) नित्य चलने वाला जल प्रवाह [के समान] (**पर्वतात् अधि**) पर्वत के ऊपर से (**अवधावति**) नीचे को दौड़ता आता है। [हे औषध !] (**तत्**) उस [ब्रह्म] को [(**ते**)

तेरे लिए (**भेषजम्**) औषध (**कृणोमि**) मैं बनाता हूँ, (**यथा**) जिससे कि (**सुभेषजम्**) उत्तम औषध (**असति**) तू हो जावे ॥१॥

भावार्थ—हिमवाले पवनों से नदियाँ ग्रीष्म ऋतु में भी बहती रहती और अन्न आदि औषधों को हरा भरा करके अनेक विधि से जगत् का पोषण करती हैं। इसी प्रकार औषध का औषध, वह ब्रह्म सब के हृदय में व्यापक हो रहा है। सब मनुष्य ब्रह्मचर्य-सेवन और सुविद्या ग्रहण से शारीरिक और मानसिक रोगों की निवृत्ति करके सदा उपकारी बनें और आनन्द भोगें ॥१॥

आदुङ्ग कुविदुङ्ग शुतं या भेषुजानि ते ।

तेषांमसि त्वमुंत्तममंनास्रावमरोंगणम् ॥२॥

पदार्थ—(**अङ्ग**) हे ! (**अङ्ग**) हे [ब्रह्म !] (**आत्**) फिर (**कुवित्**) अनेक प्रकार से (**या - यानि**) जो (**ते**) तेरी [बनाई] (**शतम्**) सौ [असंख्य] (**भेषजानि**) भयनिवर्त्तक औषधें हैं, (**तेषाम्**) उनमें से (**त्वम्**) तू (**उत्तमम्**) उत्तम गुण वाला, (**अनास्रावम्**) बड़े क्लेशों का हटाने वाला और (**अरोगम्**) रोग दूर करने वाला (**असि**) है ॥२॥

भावार्थ—संसार की सब ओषधियों में क्लेशनाशक और रोगनिवर्तक शक्ति का देने वाला वही ओषधियों का ओषधि परब्रह्म है ॥२॥

नीचैः खंनन्त्यसुंरा अरुस्राणमिदं महत् ।

तदांस्रावस्यं भेषुजं तदु रोगंमनीनशत् ॥३॥

पदार्थ—(**असुरा**) बुद्धिमान् पुरुष (**इदम्**) इस (**अरुस्राणम्**) व्रण [स्फोट फोड़े] को पका कर भर देने वाली (**महत्**) उत्तम औषध को (**नीचैः**) नीचे नीचे (**खनन्ति**) खोदते जाते हैं। (**तत्**) वही विस्तृत ब्रह्म (**आस्रावस्य**) बड़े क्लेश की (**भेषजम्**) औषध है, (**तत्**) उसने (**उ**) ही (**रोगम्**) रोग को (**अनीनशत्**) नाश कर दिया है ॥३॥

भावार्थ—जैसे सद्वैद्य बड़े-बड़े परिश्रम और परीक्षा करके उत्तम औषधों को लाकर रोगों की निवृत्ति करके प्राणियों को स्वस्थ करते हैं, वैसे ही विज्ञानियों ने निर्णय किया है कि उस परमेश्वर ने आदि सृष्टि में ही मानसिक और शारीरिक रोगों की ओषधि उत्पन्न कर दी है ॥३॥

उपुजीका उद्भंरन्ति समुद्रादधि भेषुजम् ।

तदांस्रावस्यं भेषुजं तदु रोगंमशीशमत् ॥४॥

पदार्थ—(**उपजीका**) [परमेश्वर के] आश्रित पुरुष (**समुद्रात् अधि**) आकाश [समस्त जगत्] में से (**भेषजम्**) भयनिवारक ब्रह्म को (**उद्भरन्ति**) ऊपर निकालते हैं। (**तत्**) वही [ब्रह्म] (**आस्रावस्य**) बड़े क्लेश का (**भेषजम्**) औषध है, (**तत्**) उसने (**उ**) ही (**रोगम्**) रोग को (**अशीशमत्**) शान्त कर दिया है ॥४॥

भावार्थ—परमेश्वर का सहारा रखने वाले पुरुष संसार के प्रत्येक पदार्थ में ईश्वर को पाते हैं। और उस आदिकारण की महिमा का साक्षात् करके अपने सब क्लेशों का नाश करके आनन्द भोगते हैं ॥४॥

अरुस्राणमिदं महत् पृंथिव्या अध्युद्भृंतम् ।

तदांस्रावस्यं भेषुजं तदु रोगंमनीनशत् ॥५॥

पदार्थ—(**इदम्**) यह (**अरुस्राणम्**) फोड़े को पका कर भरने वाला (**महत्**) उत्तम [औषध] (**पृथिव्याः**) पृथिवी से (**अधि**) ऊपर (**उद्भृतम्**) निकाल कर लाया गया है। (**तत्**) वही [ज्ञान] (**आस्रावस्य**) बड़े क्लेश का (**भेषजम्**) औषध है (**तत्**) उसने (**उ**) ही (**रोगम्**) रोग को (**अनीनशत्**) नाश कर दिया है ॥५॥

भावार्थ—महाक्लेश नाशक ब्रह्मज्ञानरूप औषध पृथिवी आदि लोकों के प्रत्येक पदार्थ में वर्त्तमान है। मनुष्य उसको प्रयत्नपूर्वक प्राप्त करें और रोगों की निवृत्ति करके स्वस्थचित्त होकर आनन्दित रहें ॥५॥

शं नों भवन्त्वुाप ओषंधयः शिवाः ।

इन्द्रंस्य वज्रो अपं हन्तु रुक्षसं आराद् विसृंष्टा इषंवः पतन्तु रक्षसांम् ॥६॥

पदार्थ—(**आपः**) जल और (**ओषधयः**) उष्णता धारण करनेवाली वा ताप नाश करने वाली अन्नादि ओषधियें (**नः**) हमारे लिये (**शम्**) शान्तिकारक और (**शिवाः**) मङ्गलदायक (**भवन्तु**) होवें। (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्य वाले पुरुष का (**वज्रः**) वज्र (**रक्षसः**) राक्षस का (**अपहन्तु**) हनन कर डाले। (**रक्षसाम्**) राक्षसों के (**विसृष्टाः**) छोड़े हुए (**इषवः**) बाण (**आरात्**) दूर (**पतन्तु**) गिरें ॥६॥

भावार्थ—परमेश्वर के अनुग्रह से हम पुरुषार्थ करते रहें, जिससे जल, अन्न आदि सब पदार्थ शुद्ध रहकर प्रजा में आरोग्य बढ़ावें, और जैसे राजा चोर, डाकू आदि दुष्टों को दण्ड देता है कि प्रजा गण कष्ट न पावें और सदा आनन्द भोगें, ऐसे ही हम अपने दोषों का नाश करके आनन्द भोगें ॥६॥

卐 सूक्तम् ४ 卐

१—६ अथर्वा । (चन्द्रमा,) जङ्गिडः । अनुष्टुप्, १ विराट् प्रस्तार पंक्तिः ।

दीर्घायुत्वायं बृहते रणायारिष्यन्तो दक्षंमाणाः सदैव ।

मुणिं विष्कन्धुदूषंणं जङ्गिडं बिभृमो वयम् ॥१॥

पदार्थ—(**दीर्घायुत्वाय**) बड़ी आयु के लिये और (**बृहते**) बड़े (**रणाय**) रण में [जीत] वा रमण के लिये (**अरिष्यन्तः**) [किसी को] न सताते हुए और (**सदा एव**) सदा ही, (**दक्षमाणाः**) वृद्धि करते हुए (**वयम्**) हम लोग (**विष्कन्धदूषणम्**) विघ्ननिवारक और (**मणिम्**) प्रशंसनीय (**जङ्गिडम्**) शरीरभक्षक रोग वा पाप के निगलने वाले [औषध वा परमेश्वर] को (**बिभृम**) धारण करें ॥१॥

भावार्थ—जगत् में कीर्तिमान् होना ही आयु का बढ़ाना है। मनुष्यों को परमेश्वर के ज्ञान और पथ्य पदार्थों के सेवन से पुरुषार्थपूर्वक पाप और रोगरूप विघ्नों को हटा कर सत्पुरुषों की वृद्धि से अपनी और संसार की उन्नति समझ कर सदा सुख भोगना चाहिये ॥१॥

जङ्गिडो जम्भाद्विंशराद् विष्कंन्धादभिशोचंनात् ।

मुणिः सहस्रंवीर्युः परिं णः पातु विश्वतः ॥२॥

पदार्थ—(**सहस्रवीर्यः**) सहस्रों सामर्थ्य वाला, (**जङ्गिडः**) शरीरभक्षक रोगों का निगलने वाला (**मणिः**) मणिरूप अति श्रेष्ठ औषध वा परमेश्वर (**नः**) हमको (**जम्भात्**) नाश से, (**विशरात्**) हिंसा से (**विष्कन्धात्**) विघ्न से, और (**अभिशोचनात्**) महा शोक से, (**विश्वतः**) सब प्रजा और (**परि**) सब ओर (**पातु**) बचावे ॥२॥

भावार्थ—मनुष्य सर्वरक्षक और सर्वशक्तिमान् परमेश्वर में श्रद्धालु होकर पथ्य पदार्थों का सेवन करता हुआ पुरुषार्थ करे कि आलस्य आदि दुर्व्यसन और हिंसक, राक्षस आदि न सतावें, किन्तु सब मनुष्य सुरक्षित होकर आनन्द प्राप्त करें ॥२॥

अयं विष्कंन्धं सहतेऽयं बाधते अत्रिणः ।

अयं नो विश्वभेंषजो जङ्गिडः पात्वंहंसः ॥३॥

पदार्थ—(**अयम्**) यह (**विश्वभेषजः**) सर्वौषध (**जङ्गिडः**) पापों वा रोगों का भक्षक [परमेश्वर वा औषध] (**विष्कन्धम्**) विघ्न को (**सहते**) दबाता है, (**अयम्**) यही (**अत्रिणः**) खाउओं वा रोगों को (**बाधते**) रोकता है (**अयम्**) यही (**नः**) हमको (**अंहसः**) पाप से (**पातु**) बचावे ॥३॥

भावार्थ—उत्साही विचारवान् पुरुष परमेश्वर में विश्वास और पथ्य पदार्थों का सेवन करके अपनी दूरदर्शिता से मानसिक और शारीरिक बाधाओं को हटाकर अटल सुख भोगते हैं ॥३॥

देवैर्दुत्तेनं मुणिना जङ्गिडेनं मयोभुवां ।

विष्कंन्धुं सर्वा रक्षांसि व्यायामे संहामहे ॥४॥

पदार्थ—(**देवैः**) विद्वानों के (**दत्तेन**) दिये हुए [उपदेश किये हुए] (**मणिना**) मणि [अतिश्रेष्ठ] (**मयोभुवा**) आनन्द के देने हारे (**जङ्गिडेन**) रोगों के भक्षक [परमेश्वर वा औषध] द्वारा (**विष्कन्धम्**) विघ्न और (**सर्वा - सर्वाणि**) सब (**रक्षांसि**) राक्षसों को (**व्यायामे**) संग्राम में (**सहामहे**) हम दबावें ॥४॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि विद्वानों के सत्सङ्ग से दुःखनाशक परमेश्वर के उपकारों पर दृष्टि करके पुरुषार्थ के साथ पथ्य द्रव्यों का सेवन करके विघ्नकारी दुष्ट जीवों, पापों और रोगों को हटाकर सदा आनन्द में रहें ॥४॥

शुणश्चं मा जङ्गिडश्चु विष्कंन्धादुभि रंक्षताम् ।

अरंण्यादुन्य आभृंतः कृष्या अुन्यो रसेंभ्यः ॥५॥

पदार्थ—(**च**) निश्चय करके (**शणः**) आत्मदान वा उद्योग (**च**) और (**जङ्गिडः**) रोगभक्षक परमेश्वर वा औषध दोनों, (**मा**) मुझको (**विष्कन्धात्**) विघ्न से (**अभि**) सर्वथा (**रक्षताम्**) बचावें। (**अन्यः**) एक (**अरण्यात्**) तप के साधन वा विद्याभ्यास से और (**अन्यः**) दूसरा (**कृष्याः**) कर्षण अर्थात् खोजने से (**रसेभ्यः**) रसों अर्थात् पराक्रमों वा आनन्दों के लिये (**आभृतः**) लाया जाता है ॥५॥

भावार्थ—आत्मदानी, उद्योगी, पथ्यसेवी और परमेश्वर के विश्वासी पुरुष अपनी और सबकी रक्षा कर सकते हैं। वही योगी जन तपश्चर्या, विद्याभ्यास और खोज करने से आत्मदान [ध्यानशक्ति] और परमेश्वर में श्रद्धा प्राप्त करके अनेक सामर्थ्य और आनन्द का अनुभव करते हैं ॥५॥

कृत्यादूषिरुयं मुणिरथो अरातिदूषिः ।

अथो सहंस्वान् जङ्गिडः प्र णु आयूंषि तारिषत् ॥६॥

पदार्थ—(**अयम्**) यह (**मणि**) प्रशसनीय पदार्थ (**कृत्यादूषि.**) पीडा देने हारी विरुद्ध क्रियाओ मे दोष लगाने वाला (**अथो**) और भी (**अरातिदूषि**) अदानशीलो [कजूसो] मे दोष लगाने वाला है। (**अथो**) और भी (**सहस्वान्**) वही महाबली (**जङ्गिड**:) रोगभक्षक परमेश्वर वा औषध (**न**) हमारे (**आयूंषि**) जीवनो को (**प्र तारिषत्**) बढानेवाला करे ॥६॥

भावार्थ—जो कुचाली मनुष्य विरुद्ध मार्ग मे चलते और सत्य पुरुषार्थों मे आत्मदान अर्थात् ध्यान नही करते, वे ईश्वरीय नियम से महादुख उठाते हैं। सत्य पराक्रमी और पथ्यसेवी पुरुष उस महाबली परमेश्वर के गुणो के अनुभव से अपने जीवन को बढाते हैं, अर्थात् ससार मे अनेक प्रकार से उन्नति करके आनन्द भोगते और अपना जन्म सफल करते है ॥६॥

卐 सूक्तम् ५ 卐

१—७ भृगुराथर्वण । इन्द्रः । त्रिष्टुप्, १—उपरिष्टान्निचृद्बृहती,
२—उपरिष्टाद्विराड्बृहती, ३—विराट्पथ्या बृहती, ४—जगती पुरोविराट् ।

इन्द्र॑ जुषस्व॒ प्र व॑हा याहि शूर॒ हरि॑भ्याम् ।
पिबा॑ सु॒तस्य॑ म॒तेरि॒ह मधो॑श्चका॒नश्चारु॒र्मदा॑य ॥१॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे परम ऐश्वर्यवाले राजन् ! (**जुषस्व**) तू प्रसन्न हो, (**प्र वह**) आगे बढ, (**शूर**) हे शूर ! (**हरिभ्याम्**) हरणशील दिन और रात अथवा प्राण और अपान के हित के लिए (**आ याहि**) तू आ। (**चारु:**) मनोहर स्वभाववाला (**मदाय**) हर्ष के लिए (**चकान**:) तृप्त होता हुआ तू, (**इह**) यहाँ पर (**मते**) बुद्धिमान् पुरुष के (**सुतस्य**) निचोड के (**मधो**) मधुर रस का (**पिब**) पान कर ॥१॥

भावार्थ—राजा को योग्य है कि सदा प्रसन्न रहकर उन्नति करे और करावे, और सब के (हरिभ्याम्) दिन और रात अर्थात् समय को यद्वा प्राण और अपान वायु अर्थात् जीवन को परोपकार मे लगावे और बुद्धिमानो के ज्ञान के साराश [निचोड] के रस का ग्रहण करके आनन्द भोगे ॥१॥

इन्द्र॑ ज॒ठरं॑ न॒व्यो न पृण॑स्व॒ मधो॑र्दि॒वो न ।
अ॒स्य सु॒तस्य॒ स्व॑१र्णोप॑ त्वा॒ मदाः॑ सु॒वाचो॑ अगुः ॥२॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे राजन् ! (**नव्य**) नवीन [बहुत तृषित] के (**न**) समान, (**दिव**) स्वर्ग के (**न**) सदृश (**मधो**) मधुर रस से (**जठरम्**) अपने उदर को (**पृणस्व**) तृप्त कर। (**अस्य**) इस (**सुतस्य**) निचोड [तत्त्व] के (**सुवाच:**) सुन्दर वाणियो से युक्त (**मदा**:) आनन्द (**स्वर्**) स्वर्ग मे (**न**) जैसे [वर्त्तमान] (**त्वा**) तुझ को (**उप अगु**) उपस्थित हुए हैं ॥२॥

भावार्थ—राजा विद्वानो के साथ सभाषण करके बडी प्रीति से नीति का साराश ग्रहण करके आनन्द प्राप्त करे ॥२॥

इन्द्र॑स्तुरा॒षाण्मि॒त्रो वृ॒त्रं यो ज॒घान॑ य॒तीर्न ।
बि॒भेद॑ व॒लं भृ॒गुर्न स॑सहे॒ शत्रू॒न् मदे॒ सोम॑स्य ॥३॥

पदार्थ—(**यती**) यति [यत्नशील] पुरुष के (**न**) समान (**य**:) जिस (**तुराषाट्**) शीघ्र जीतने वाले, (**मित्र**) सब के प्रेरक (**इन्द्र**) प्रतापी राजा ने (**वृत्रम्**) अन्धकार वा डाकू को (**जघान**) नाश किया था। (**भृगु**) ज्ञान मे परिपक्व ऋषि के (**न**) सदृश उस ने (**वलम्**) हिंसक दैत्य को (**बिभेद**) तोड फोड डाला और (**सोमस्य**) अपने ऐश्वर्य [ठाठ] के (**मदे**) मद मे (**शत्रून्**) शत्रुओ को (**ससहे**) हराया था ॥३॥

भावार्थ—महा प्रतापी राजा बडे बडे यत्न वाले और बुद्धिनिपुण वीरो का अनुकरण करके विरोधी शत्रुओ और अज्ञान का नाश करके प्रजा को आनन्द देते और आप आनन्द पाते हैं ॥३॥

आ त्वा॑ विशन्तु सु॒तास॑ इन्द्र पृ॒णस्व॑ कु॒क्षी वि॒ड्ढि श॑क्र धि॒येह्या नः॑ ।
श्रु॒धी हवं॒ गिरो॑ मे जु॒षस्वेन्द्र॑ स्वयु॒ग्भिर्मत्स्वे॒ह म॒हे रणा॑य ॥४॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे राजन् ! (**सुतास**) ये निचोडे हुए रस (**त्वा**) तुझमे (**आ**) यथाविधि (**विशन्तु**) प्रवेश करें, (**कुक्षी**) दोनो कुक्षियो को (**पृणस्व**) तू भर, और (**विड्ढि—विष**) शासन कर, (**शक्र**) हे शक्तिमान् (**धिया**) [अपनी अनुग्रह] बुद्धि से (**न**:) हमारे पास (**आ + इहि—एहि**) आ। (**हवम्**) पुकार (**श्रुधि**) सुन, (**इन्द्र**) हे राजन् ! (**मे**) मेरी (**गिर.**) वाणियो को (**जुषस्व**) स्वीकार कर, और (**स्वयुग्भि:**) अपनी युक्तियो से (**इह**) यहाँ पर (**महे**) बडे (**रणाय**) रण [जीतने] के लिए (**आ**) यथानियम (**मत्स्व**) हर्षित हो ॥४॥

भावार्थ—राजा अनेक श्रेष्ठ विद्याओ के रस से अपने आत्मा को सन्तुष्ट करे, और न्यायपूर्वक प्रजा की रक्षा करता हुआ शत्रुओ को जीतकर आनन्द भोगे ॥४॥

इन्द्र॑स्य॒ नु प्र वो॑चं वी॒र्या॑णि॒ यानि॑ च॒कार॑ प्रथ॒मानि॑ व॒ज्री ।
अह॒न्नहि॒मन्व॒पस्त॑तर्द॒ प्र व॒क्षणा॑ अभिन॒त् पर्व॑तानाम् ॥५॥

पदार्थ—(**इन्द्रस्य**) परम ऐश्वर्य वाले पुरुष के (**वीर्याणि**) पराक्रमो को (**नु**) शीघ्र (**प्र**) अच्छे प्रकार (**वोचम्**) मैं कहूँ (**यानि**) जिन (**प्रथमानि**) प्रसिद्ध, अथवा प्रथम श्रेणी के अति श्रेष्ठ कर्मों को (**वज्री**) उस वज्रधारी पुरुष ने (**चकार**) किया था, [अर्थात्] (**अहिम्**) सर्प के समान [हनन करने वाले], अथवा, बादल के समान [प्रकाश रोकने वाले] हिंसक जन को (**अहन्**) उसने मारडाला (**अनु**) अनुक्रम से (**अप**) [उस दुष्ट के] कर्म का (**ततर्द**) अपमान किया, और (**पर्वतानाम्**) मेघो के समान [अन्धकार से छाये हुए] अथवा पहाडो के समान [दृढ स्वभाव वाले] दुराचारियो की, अथवा पहाडो मे गुप्त (**वक्षणा**) रुष्ट वा क्रुद्ध सेनाओ को (**प्र**) सर्वथा (**अभिनत्**) छिन्न-भिन्न कर दिया ॥५॥

भावार्थ—मनुष्य पूर्वकालीन [इन्द्र] प्रतापी और [वज्री] तेजस्वी नीतिकुशल पुरुषो का यशकीर्तन इतिहास द्वारा करे, और उनका अनुकरण करके कुरीतियो के त्याग और सुरीतियो के प्रचार से आनन्द भोगे ॥५॥

अह॒न्नहिं॒ पर्व॑ते शिश्रिया॒णं त्वष्टा॑स्मै॒ वज्रं॑ स्व॒र्यं॑ ततक्ष ।
वा॒श्रा इ॑व धे॒नवः॒ स्यन्द॑माना॒ अञ्जः॑ समु॒द्रमव॑ जग्मु॒रापः॑ ॥६॥

पदार्थ—(**त्वष्टा**) सूक्ष्म करने वाले [सूक्ष्मदर्शी] पुरुष ने (**पर्वते**) बादल [के समान प्रकाश रोकने वाले जन समूह] मे, अथवा पहाड पर (**शिश्रियाणम्**) ठहरे हुए (**अहिम्**) सर्परूप वा मेघरूप [हिंसक वा प्रकाश रोकने वाले] को (**अहन्**) वध किया, (**अस्मै**) इस [प्रयोजन] के लिए (**स्वर्यम्**) ताप वा पीडा देने वाला (**वज्रम्**) वज्र (**ततक्ष**) उसने तीक्ष्ण किया। (**वाश्रा**) रभाती हुई (**धेनव: इव**) गौओ के समान, (**स्यन्दमाना**) वेग मे बहते हुए (**अञ्ज**) प्रकट (**आप**:) जल [जलस्वरूप प्रजागण] (**समुद्रम्**) समुद्र मे [राजा के पास] (**अव**) उतर कर (**जग्मु**) पहुँच गये ॥६॥

भावार्थ—पूर्वज विवेकी राजाओ ने दण्ड व्यवस्था स्थापन करके अपने प्रकट और गुप्त शत्रुओ को मारा, तब प्रजागण प्रसन्न होकर उस हितकारी राजा को अभिनन्दन देने गये, जैसे रभाती हुई गौए बछडो के पास, अथवा वृष्टि के जल एकत्र होकर समुद्र मे दौड कर जाते हैं। इसी प्रकार सब राजा और प्रजा गण परस्पर रहकर आनन्द मनाते रहें ॥६॥

वृ॒षा॒यमा॑णो अवृणीत॒ सोमं॒ त्रिक॑द्रुकेष्वपिबत्सु॒तस्य॑ ।
आ साय॑कं म॒घवा॑दत्त॒ वज्र॒मह॑न्नेनं प्रथम॒जामही॑नाम् ॥७॥

पदार्थ—(**वृषायमाण**) ऐश्वर्यवाले के समान आचरण करते हुए पुरुष ने (**सुतस्य**) उत्पन्न ससार के (**त्रिकद्रुकेषु**) तीन आवाहनो [उत्पत्ति, स्थिति और विनाश अथवा, शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति के विधानो] के निमित्तो मे (**सोमम्**) ऐश्वर्य वा अमृत रस [कीर्ति] को (**अवृणीत**) अङ्गीकार किया और (**अपिबत्**) पान किया [आत्मा मे दृढ किया]। (**मघवा**) उस पूजनीय पुरुष ने (**सायकम्**) काटने वाले बाण वा खड्ग और (**वज्रम्**) वज्र हथियार को (**आ अदत्त**) लिया और (**अहीनाम्**) बडे घातको [प्रकाश नाशक] मेघ वा सर्प रूप असुरो के बीच (**प्रथमजाम्**) प्रधानता से प्रसिद्ध अर्थात् अग्रगामी (**एनम्**) इस [समीपस्थ अर्थात् आत्मा मे स्थित दुष्ट] को (**अहन्**) मार डाला ॥७॥

भावार्थ—इस सूक्त के ५—७ तीन मन्त्रो मे [इन्द्र] का [अहि] को मार कर उन्नति करने का वर्णन है और मन्त्र ७ मे [त्रिकद्रुकेषु] पद तीन आवाहनो का द्योतक है। इसका प्रयोजन यह है कि जैसे तपस्वी, धैर्यवान्, शूरवीर पुरुषो ने जितेन्द्रिय वशिष्ठ होकर अपने आत्मिक, कायिक और सामाजिक शत्रु कुक्रोध आदि को मारा, उन्होने ही ससार की वृद्धि, पालन और नाश के कारण को खोजा, और तीन प्रकार की आत्मिक, शारीरिक और सामाजिक उन्नति करके अमर अर्थात् महाकीर्तिमान् हुए। इसी प्रकार सब स्त्री पुरुष जितेन्द्रिय होकर ससार मे उन्नति करके कीर्ति पाकर अमर हो और आनन्द भोगे ॥७॥

卐 इति प्रथमोऽनुवाक. 卐

卐

अथ द्वितीयोऽनुवाक ॥

卐 सूक्तम् ६ 卐

१—५ शौनकः (सम्पत्काम) । अग्नि ।
त्रिष्टुप्, ४ चतुष्पदार्षी, ५ विराट् प्रस्तारपङ्क्ति ।

समा॑स्त्वाग्न ऋ॒तवो॑ वर्धयन्तु संवत्स॒रा ऋष॑यो॒ यानि॑ स॒त्या ।
सं दि॒व्येन॑ दीदिहि रोच॒नेन॒ विश्वा॒ आ भा॑हि प्र॒दिश॒श्चत॑स्रः ॥१॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे अग्निवत् तेजस्वी विद्वान्! (**समा**) अनुकूल (**ऋतव**) ऋतुएँ (**संवत्सरा**) वर्ष, (**ऋषय**) ऋषि लोग, और (**यानि**) जो (**सत्या—सत्यानि तानि**) सत्य कर्म हैं [वे सब] (**त्वा**) तुझ को (**वर्धयन्तु**) बढ़ावें। (**दिव्येन**) अपनी दिव्य वा मनोहर (**रोचनेन**) झलक से (**सम्**) भले प्रकार (**दीदिहि**) प्रकाशमान हो, और (**विश्वा**) सब (**चतस्र**) चारों (**प्रदिश**) महादिशाओं को (**आभाहि**) प्रकाशमान कर ॥१॥

भावार्थ—मनुष्य बड़े प्रयत्न से अपने समय को यथावत् उपयोग से अनुकूल बनावें, ऋषियों और आप्त पुरुषों से मिलकर उत्तम शिक्षा प्राप्त करें, और सत्य-संकल्पी, सत्यवादी और सत्यकर्मी सदा रहें। इस प्रकार संसार में उन्नति करें और कीर्तिमान् होकर प्रसन्नचित्त रहें ॥१॥

सं चेध्यस्वाग्ने प्र च वर्धयेममुच्च तिष्ठ महते सौभगाय।

मा ते रिषन्नुपसत्तारो अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये ॥२॥

पदार्थ—(**च**) और (**अग्ने**) हे अग्निवत् तेजस्वी विद्वान्! (**सम्**) भले प्रकार (**इध्यस्व**) प्रकाशमान हो, (**च**) और (**इमम**) [इस समाज] को (**प्र वर्धय**) समृद्ध कर, (**च**) और (**महते**) बड़े (**सौभगाय**) उत्तम ऐश्वर्य के लिए (**उत् तिष्ठ**) ऊपर खड़ा हो। (**अग्ने**) हे विद्वान्! (**ते**) तेरे (**उपसत्तार**) पास बैठने हारे [उपासक] (**मा रिषन्**) कभी दुःख न पावें, (**ते**) तेरे [समीपवर्ती] (**ब्रह्माण**) वेद जानने वाले ब्राह्मण (**यशस यशसा**) यशस्वी (**सन्तु**) होवें और (**अन्ये**) दूसरे (**मा मा सन्तु**) न होवें ॥२॥

भावार्थ—राजा को योग्य है कि ब्रह्मचर्य से आत्मरक्षा, प्रजारक्षा, शिल्पविद्या, युद्ध विद्या आदि सामान्य और विशेष विद्याओं में निपुण होकर अपने सभासदों को निपुण करे, और विद्वानों का सत्कार तथा अविद्वानों का तिरस्कार करता हुआ सदा आनन्दयुक्त रहे ॥२॥

त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणे भवा नः।

सपत्नहाग्ने अभिमातिजिद् भव स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥३॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे अग्निवत् तेजस्वी राजन्! (**इमे**) ये (**ब्राह्मणा**) वेदवेत्ता विद्वान् लोग (**त्वा**) तुझ को (**वृणते**) चुनते हैं, (**अग्ने**) हे तेजस्वी राजन्! (**न**) हमारे (**संवरणे**) चुनाव में (**शिव**) मङ्गलकारी (**भव**) हो। (**अग्ने**) हे तेजस्वी राजन्! (**सपत्नहा**) वैरियों का नाश करने वाला और (**अभिमातिजित्**) अभिमानियों का जीतने वाला (**भव**) हो, और (**स्वे**) अपने (**गये**) सन्तान पर [वा धन पर] वा घर अर्थात् अधिकार में (**अप्रयुच्छन्**) चूक न करता हुआ, (**जागृहि**) जागता रह ॥३॥

भावार्थ—वेदवेत्ता चतुर सभासद् ऐसे परमार्थी विद्वान को अपना राजा वा प्रधान बनावें कि जो सब दोषों और दुःखों का निवारण करे और अपने अधिकार का सावधान होकर चलावे, जिससे राजा और प्रजा आनन्दयुक्त रहें ॥३॥

क्षत्रेणाग्ने स्वेन सं रभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधा यतस्व।

सजातानां मध्यमेष्ठा राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥४॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे तेजस्वी राजन्! (**स्वेन**) अपने (**क्षत्रेण**) क्षत्रिय धर्म वा धन के साथ (**सम्रभस्व**) उत्साह कर, (**अग्ने**) हे तेजस्वी राजन्! (**मित्रेण**) मित्र वर्ग के साथ (**मित्रधा**) मित्रों का पोषण करने वाला होकर (**यतस्व**) प्रयत्न कर। और (**अग्ने**) हे तेजस्वी राजन्! (**सजातानाम्**) तुल्य जन्म वालों के बीच (**मध्यमेष्ठा**) पंचों में बैठने वाला, और (**राज्ञाम**) क्षत्रियों के बीच में (**विहव्य**) विशेष करके आवाहन योग्य होकर (**इह**) यहां पर (**दीदिहि**) प्रकाशमान हो ॥४॥

भावार्थ—नीतिकुशल राजा धर्मात्माओं में स्फूर्ति रक्खे, और हितकारियों के साथ हित करे और सदैव न्याययुक्त व्यवहार रक्खे, जिससे सब छोटों और बड़ों में प्रेम के साथ उसकी कीर्ति बढ़े ॥४॥

अति निहो अति स्रुधोऽत्यचित्तीरति द्विषः।

विश्वा ह्यग्ने दुरिता तर त्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः ॥५॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे तेजस्वी राजन्! (**अति**) अत्यन्त (**निह**) शत्रुनाशक शूर होकर [अथवा] (**निह**) नीच गति वालों को (**अति—अतीत्य**) लांघकर, (**स्रुध**) हिंसकों को (**अति**) लांघकर, (**अचित्ती**) पापबुद्धि प्रजाओं को (**अति**) लांघकर, और (**द्विष**) द्वेष करने वालों का (**अति**) तिरस्कार करके, (**त्वम्**) तू (**हि**) ही (**विश्वा- विश्वानि**) सब (**दुरिता ०—तानि**) संकटों को (**तर**) पारकर, (**अथ**) और (**अस्मभ्यम्**) हमें (**सहवीरम्**) वीर पुरुषों के सहित (**रयिम्**) धन (**दा**) दे ॥५॥

भावार्थ—राजा सावधानी से प्रजा के सब क्लेशों को हरे, और ऐसा प्रयत्न करे कि प्रजा के सब पुरुष उत्साही, शूर, वीर और धनाढ्य हों ॥५॥

卐 सूक्तम् ७ 卐

१—५ अथर्वा। भैषज्य, आयुः, वनस्पति। अनुष्टुप्, १ भुरिक्, ४ विराडुपरिष्टाद् बृहती।

अघद्विष्टा देवजाता वीरुच्छपथयोपनी।

आपो मलमिव प्राणैक्षीत् सर्वान् मच्छपथाँ अधि ॥१॥

पदार्थ—(**अघद्विष्टा**) पाप से द्वेष [अप्रीति] करने वाली (**देवजाता**) विद्वानों में प्रसिद्ध (**वीरुत्**) ओषधि [ओषधि के समान फैली हुई ईश्वर शक्ति] (**शपथयोपनी**) शाप [क्रोध वचन को] हटाने वाली है। उसने (**मत् अधि**) मुझ से (**सर्वान्**) सब (**शपथान्**) शापों [कुवचनों] को (**प्र+अनैक्षीत्**) धो डाला है, (**इव**) जैसे (**आप**) जल (**मलम्**) मल को ॥१॥

भावार्थ—जैसे उत्तम ओषधि से शरीर के रोग मिट जाते, और जल से मलिन वस्त्र आदि शुद्ध होते हैं, वैसे ही पापी कुक्रोधी मनुष्य भी ब्रह्मज्ञान द्वारा पापों से छूट कर शुद्धात्मा हो जाते और ईश्वर के उपकारों का विचार कर उपकारी बनते और सदा आनन्द भोगते हैं ॥१॥

यश्च सापत्नः शपथो जाम्याः शपथश्च यः।

ब्रह्मा यन्मन्युतः शपात् सर्वं तन्नो अधस्पदम् ॥२॥

पदार्थ—(**च**) और (**य**) जो (**सापत्न**) वैरियों का किया हुआ (**शपथ**) शाप [क्रोधवचन], (**च**) और (**य**) जो (**जाम्या**) कुलस्त्री का (**शपथ**) शाप है, और (**ब्रह्मा**) वेदवेत्ता ब्राह्मण (**मन्युत**) क्रोध से (**यत**) जो कुछ (**शपात्**) शाप दे, [क्रोध वचन कहे] (**तत्**) वह (**सर्वम्**) सब (**न**) हमारे (**अधस्पदम्**) उद्योग के नीचे रहे ॥२॥

भावार्थ—यदि हमसे कोई वेदविरुद्ध खोटा कर्म हो जावे, जिस से हमारे शत्रु, हमारी स्त्रियां, हमारे ब्राह्मणादि विद्वान् लोग क्रुद्ध हों, तब हम पूरा-पूरा प्रयत्न करें कि हमारे शिष्टाचार और वैदिक कर्म से शापमोचन हो जावे, अर्थात् वे सब हम से पूर्ववत् फिर प्रीति करने लगें ॥२॥

दिवो मूलमवततं पृथिव्या अध्युत्ततम्।

तेन सहस्रकाण्डेन परि णः पाहि विश्वतः ॥३॥

पदार्थ—जो (**मूलम्**) मूल [तत्त्वज्ञान] (**दिव**) सूर्यलोक से (**अवततम्**) नीचे को फैला हुआ है, और जो (**पृथिव्या अधि**) पृथिवी पर से (**उत्ततम्**) ऊपर को फैला है। [हे ईश्वर!] (**तेन**) उस (**सहस्रकाण्डेन**) सहस्रों शाखा वाले [तत्त्वज्ञान] के द्वारा (**विश्वत**) सब प्रकार से (**न.**) हमारी (**परि**) सब ओर (**पाहि**) रक्षा कर ॥३॥

भावार्थ—सूर्य द्वारा वृष्टि, प्रकाश आदि भूमि पर आते और भूमि से जल सूर्यलोक वा मेघमण्डल में जाता, और सब छोटे बड़े लोक परस्पर आकर्षण और धारण रखते हैं। इसी प्रकार ईश्वरीय अनन्त नियमों को देख कर सब प्रजागण राज-नियमों में चलकर परस्पर उपकार करें ॥३॥

परि मां परि मे प्रजां परि णः पाहि यद् धनम्।

अरातिर्नो मा तारीन्मा नस्तारिषुरभिमातयः ॥४॥

पदार्थ—(**माम्**) मेरी (**परि परित**) सब प्रकार (**मे**) मेरी (**प्रजाम्**) प्रजा [पुत्र, पौत्र, भृत्य आदि] की (**परि**) सब प्रकार और (**न**) हमारा (**यत्**) जो (**धनम**) धन है [उसकी भी] (**परि**) सब प्रकार (**पाहि**) तू रक्षा कर। (**अराति**) कोई अदानी, कंजूस, पुरुष (**न**) हमें (**मा तारीत्**) न दबावे, और (**अभिमातय**) अभिमानी लोग भी (**न.**) हमें (**मा तारिषु.**) न दबावें ॥४॥

भावार्थ—मनुष्य आत्मरक्षा, प्रजारक्षा और धनरक्षा करके दुष्टों को न्याय-युक्त दण्ड देकर सदा आनन्द में रहें ॥४॥

शप्तारमेतु शपथो यः सुहार्त् तेन नः सह।

चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणीमसि ॥५॥

पदार्थ—(**शपथ**) [हमारा] क्रोधवचन (**शप्तारम्**) कुवचन बोलने वाले को (**एतु**) प्राप्त हो और (**य.**) जो (**सुहार्त्**) अनुकूल हृदय वाला [शुभ-चिन्तक] है (**तेन**) उस [मित्र] के साथ (**न**) हमारा (**सह = सहवासः**) सहवास हो। (**चक्षुर्मन्त्रस्य**) आंख से गुप्त बात करने वाले, (**दुर्हार्द**) दुष्ट हृदय वाले पुरुष की (**पृष्टी**) पसलियों को (**अपि**) ही (**शृणीमसि = ०—म**) हम तोड़ डालें ॥५॥

भावार्थ—राजा को उचित है कि निन्दकों पर क्रोध और शुभचिन्तक सत्पुरुषों का आदर करे, और जो अनिष्टचिन्तक कपटी छली हों उनको भी दण्ड देता रहे ॥५॥

卐 सूक्तम् ८ 卐

१—५ भृग्वङ्गिरा। वनस्पति, यक्ष्मनाशनम्। अनुष्टुप्, ३ पथ्या पङ्क्ति, ४ विराट्, ५ निचृत्पथ्या पङ्क्ति।

उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके।

वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ॥१॥

पदार्थ—(**भगवती**—० **स्यौ**) दो ऐश्वर्यवाले (**विचृतौ**) [अन्धकार से] छुड़ाने हारे (**नाम**) प्रसिद्ध (**तारके**) तारे [सूर्य और चन्द्रमा] (**उदगाताम्**) उदय हुए है। वे दोनो (**क्षेत्रियस्य**) शरीर वा वश के दोष वा रोग के (**अधमम्**) नीचे और (**उत्तमम्**) ऊँचे (**पाशम्**) पाश को (**वि+मुञ्चताम्**) छुड़ा देवें ॥१॥

भावार्थ—जैसे सूर्य और चन्द्रमा ससार मे उदय होकर अपने ऊपर और नीचे के अन्धकार का नाश करके प्रकाश करते है, इसी प्रकार मनुष्य छोटे और बड़े मानसिक, शारीरिक और वाचिक रोगो तथा दोषो को निवृत्त करके स्वस्थ और प्रतापी हो ॥१॥

अपेयं रात्र्युच्छत्वपोच्छन्त्वभिकृत्वरीः ।
वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥२॥

पदार्थ—(**इयम्**) यह (**रात्री**) रात (**अप+उच्छतु**) नष्ट हो जावे, (**अभि—कृत्वरी** ०—**स्वर्य**) कतरने वाली वा हिंसाशील [कुवासनाय] (**अप+उच्छन्तु**) निकल जावे। (**क्षेत्रियनाशनी**) शरीर वा वश के दोष वा रोग को नाश करने वाली (**वीरुत्**) ओषधि (**क्षेत्रियम्**) शरीर वा वश के दोष वा रोग को (**अप+उच्छतु**) निकाल देवे ॥२॥

भावार्थ—जैसे रात्रि के समाप्त होने पर आलस्य आदि का नाश होता, और जैसे औषध से शरीर रोगनिवृत्त होता है, वैसे ही मनुष्यो को अपने और अपने वश के अज्ञान का नाश करके ज्ञान के प्रकाश मे आनन्दित रहना चाहिए ॥२॥

बभ्रोरर्जुनकाण्डस्य यवस्य ते पलाल्या तिलस्य तिलपिञ्ज्या ।
वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥३॥

पदार्थ—[हे ईश्वर !] (**ते**) तेरे [दिये] (**बभ्रोः**) पोषण करने वाले, (**अर्जुनकाण्डस्य**) श्वेत स्तम्भ [डाठा] वाले (**यवस्य**) यव अन्न की (**पलाल्या**) पालन शक्ति से और (**तिलस्य**) तिल की (**तिलपिञ्ज्या**) चिकनाई से (**क्षेत्रियनाशनी**) शरीर वा वश के रोग नाश करने वाली (**वीरुत्**) ओषधि (**क्षेत्रियम्**) शरीर वा वश के दोष वा रोग को (**अप+उच्छतु**) निकाल देवे ॥३॥

भावार्थ—जैसे परिपक्व और नवीन यव, तिल आदि पदार्थों के यथावत् उपयोग से और औषधो के सेवन से शारीरिक बल स्थिर रहता है, वैसे ही मनुष्य उत्तम विद्या के प्रकाश से आत्मिक दोषो की निवृत्ति करके आनन्द प्राप्त करे ॥३॥

नमस्ते लाङ्गलेभ्यो नम ईषायुगेभ्यः ।
वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥४॥

पदार्थ—[हे ईश्वर !] (**लाङ्गलेभ्य**) हलो [की दृढ़ता] के लिए (**नम ते** **नमस्ते**) तुझे नमस्कार है और (**ईषायुगेभ्य**) हरस [हल की लम्बी लकड़ी] और जूआ [की दृढ़ता] के लिए (**नम**) नमस्कार है। (**क्षेत्रियनाशनी**) शरीर वा वश के दोष वा रोग की नाश करने वाली (**वीरुत्**) ओषधि (**क्षेत्रियम्**) शरीर वा वश के दोष वा रोग को (**अप+उच्छतु**) निकाल देवे ॥४॥

भावार्थ—जैसे किसान लोग हल आदि उपयोगी और दृढ़ सामग्री के प्रयोग से अन्न उत्पन्न करते है, वैसे ही सब मनुष्य परमेश्वर के नियमो को साक्षात् करके उद्योग के साथ प्रयत्न से शरीर और अन्तःकरण की दृढ़ता रख उपकारी बने और सदा आनन्द भोगें ॥४॥

नमः सनिस्रसाक्षेभ्यो नमः सन्देश्येभ्यः ।
नमः क्षेत्रस्य पतये वीरुत्क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥५॥

पदार्थ—(**सनिस्रसाक्षेभ्य.**) डबडबाती हुई आखो वाले [रोगो से पीड़ित दीनो] के लिए (**नमः**) अन्न हो, और (**सदेश्येभ्य**) यथार्थ दानशीलो के लिए (**नम**) अन्न हो। (**क्षेत्रस्य**) खेत के (**पतये**) स्वामी के लिए (**नम**) अन्न हो। (**क्षेत्रियनाशनी**) शरीर वा वश के रोग की नाश करने वाली (**वीरुत्**) औषध (**क्षेत्रियम्**) शरीर वा वश के दोष वा रोग को (**अप+उच्छतु**) निकाल देवे ॥५॥

भावार्थ—सब मनुष्य ऐसा सुप्रबन्ध करें कि दीन दुखियो का यथावत् पालन हो, उद्योगी दानी पुरुष और किसान लोग अन्न आदि प्राप्त करे। और जैसे परमेश्वर ने औषध आदि उत्पन्न करके उपकार किया है, उसी प्रकार सब को परस्पर उपकारी बनना चाहिए ॥५॥

卐 सूक्तम् ९ 卐

१—५ भृग्वङ्गिरा । वनस्पतिः यक्ष्मनाशनम् । अनुष्टुप्, १ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः ।

दशवृक्ष मुञ्चेमं रक्षसो ग्राह्या अधि यैनं जग्राह पर्वसु ।
अथो एनं वनस्पते जीवानां लोकमुन्नय ॥१॥

पदार्थ—(**दशवृक्ष**) हे प्रकाश वाले वा दर्शनीय विद्वानो के क्लेश काटने वाले वा स्वीकार करने वाले, अथवा, हे दस दिशाओ मे सेवनीय परमेश्वर ! (**इमम्**) इस पुरुष को (**रक्षस**) राक्षस [दुष्ट अज्ञान] की (**ग्राह्या**) जकड़ने वाली पीड़ा [गठिया रोग] से (**अधि**) सर्वथा (**मुञ्च**=**मोचय**) छुड़ा दे, (**या**) जिस [पीड़ा] ने (**एनम्**) इस [पुरुष] को (**पर्वसु**) सब जोड़ो मे (**जग्राह**) पकड़ लिया है। (**अथो**) और (**वनस्पते**) हे वननीय, सेवनीय, सत्पुरुषो के पति [रक्षक] (**एनम्**) इस [पुरुष] को (**जीवानाम्**) जीवधारियो के (**लोकम्**) ससार मे (**उन्नय**) ऊँचा उठा ॥१॥

भावार्थ—सब चर और अचर के सेवनीय और सत्पुरुषो के रक्षक परमेश्वर के उपकारो पर दृष्टि करके मनुष्य अपने शारीरिक और मानसिक क्लेशो और विघ्नो को हटाकर सदा अपनी उन्नति करे ॥१॥

आगादुदगादयं जीवानां व्रातमप्यगात् ।
अभूदु पुत्राणां पिता नृणां च भगवत्तमः ॥२॥

पदार्थ—(**अयम्**) यह [प्राणी] (**आ+अगात्**) आया है, (**उत्+अगात्**) ऊपर आया है, (**जीवानाम्**) जीवितो [पुरुषार्थियो] के (**व्रातम्**) समूह मे (**अपि**) भी (**अगात्**) प्राप्त हुआ है। वह (**पुत्राणाम्**) पुत्रो का (**पिता**) पिता (**च**) और (**नृणाम्**) मनुष्यो मे (**भगवत्तम.**) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् (**उ**) अवश्य (**अभूत्**) हुआ है ॥२॥

भावार्थ—पुरुषार्थी मनुष्य ही जीवित होते है। इससे मनुष्य ससार मे जन्म पाकर ब्रह्मचर्यसेवन से विद्या ग्रहण करें, और पुरुषार्थी होकर पुत्रादि सब प्रजा का पालन पोषण करके महाप्रतापी और यशस्वी होवे ॥२॥

अधीतीरध्यगादयमधि जीवपुरा अगन् ।
शतं ह्यस्य भिषजः सहस्रमुत वीरुधः ॥३॥

पदार्थ—(**अयम**) इस पुरुष ने (**अधीती**) अध्ययन योग्य शास्त्रो को (**अधि+अगात्**) अध्ययन किया है, और (**जीवपुरा**) प्राणियो के पुरो वा नगरो को (**अधि+अगन्**) जान लिया है। (**हि**) क्योकि (**अस्य**) इस [पुरुष] के (**शतम्**) सौ [बहुत से] (**भिषज**) वैद्य, (**उत**) और (**सहस्रम्**) सहस्र [बहुत से] (**वीरुध**) औषध है ॥३॥

भावार्थ—मनुष्य वेदादि शास्त्रो के अध्ययन, मनुष्यो मे निवास, विद्वानो के सत्सग और पदार्थों के गुणो का बोध करने से ससार मे उन्नति करते है ॥३॥

देवास्ते चीतिमविदन् ब्रह्माण उत वीरुधः ।
चीतिं ते विश्वे देवा अविदन् भूम्यामधि ॥४॥

पदार्थ—[हे मनुष्य] (**ते**) तेरे लिए (**देवा**) प्रकाशमान (**ब्रह्माण**) ब्रह्मज्ञानियो ने (**उत**) और (**वीरुध**) ओषधियो ने (**चीतिम्**=**चितिम्**) ज्ञान (**अविदन**) प्राप्त किया है। (**विश्वे**) सब (**देवा**) दिव्य पदार्थों [सूर्य, चन्द्र, वायु आदि] ने (**ते**) तेरे लिए (**चीतिम्**) चैतन्यता को (**भूम्याम् अधि**) पृथिवी के ऊपर (**अविदन्**) प्राप्त किया है ॥४॥

भावार्थ—मनुष्य विद्वान् वेदवेत्ताओ के उपदेश से, तथा अन्न आदि ओषधियो और सूर्य, चन्द्र, वायु, जल, आकाश आदि दिव्य पदार्थों मे ईश्वरीय अटल नियमो से शिक्षा और उपकार प्राप्त करके ईश्वर की महिमा के ध्यान मे निमग्न होकर और परोपकार करके आनन्द पाते है ॥४॥

यश्चकार स निष्करत् स एव सुभिषक्तमः ।
स एव तुभ्यं भेषजानि कृणवद् भिषजा शुचिः ॥५॥

पदार्थ—(**य**) जिस [परमेश्वर] ने (**चकार**) बनाया है, (**स**) वही (**निष्करत्**) निस्तार करेगा, (**स**) वह (**एव**) ही (**सुभिषक्तम**) बड़ा भारी वैद्य है। (**स**) वह (**एव**) ही (**शुचि**) पवित्रात्मा (**भिषजा**) वैद्य रूप से (**तुभ्यम्**) तेरे लिए (**भेषजानि**) औषधो को (**कृणवत्**) करेगा ॥५॥

भावार्थ—जिस परमेश्वर ने इस सृष्टि को रचा है, वही जगदीश्वर अपने आज्ञाकारी, और पुरुषार्थी सेवको का क्लेश हरण करके आनन्द देता है ॥५॥

卐 सूक्तम् १० 卐

१—८ भृग्वङ्गिरा । १—८ द्यावापृथिवी, ब्रह्म, २ अग्नि, आप, ओषधयः, सोम, ३ वात., दिश, ४—८ वातपत्नी, सूर्य, यक्ष्म, निर्ऋति । १ त्रिष्टुप्, २ सप्तपदाष्टि, ३—५, ७—८ सप्तपदा धृति, ६ सप्तपदात्यष्टि, ८ (२—३) द्वौ पादौ उष्णिहौ ।

क्षेत्रियात् त्वा निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् । अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥१॥

पदार्थ—[हे पुरुष !] (**त्वा**) तुझ को (**क्षेत्रियात्**) शरीर वा वश के रोग से, (**निर्ऋत्या**) अलक्ष्मी [महामारी, दरिद्रता आदि] से, (**जामिशसात्**)

भक्षणशील मूर्ख के सताने से, (**द्रुहः**) द्रोह [अनिष्ट चिन्ता] से और (**वरुणस्य**) दुष्कर्मों से रोकने वाले न्यायाधीश के (**पाशात्**) दण्ड पाश वा बन्ध से (**मुञ्चामि**) मैं छुड़ाता हूँ। (**ब्रह्मणा**) वेदज्ञान से (**त्वा**) तुमको (**अनागसम्**) निर्दोष (**कृणोमि**) करता हूँ। (**ते**) तेरे लिए (**उभे**) दोनों (**द्यावापृथिवी**) आकाश और पृथिवी (**शिवे**) मंगलमय (**स्ताम्**) होवें ॥१॥

भावार्थ—मनुष्य वेदज्ञानप्राप्ति में ऐसा प्रयत्न करे कि आत्मिक, शारीरिक और दैवी विपत्तियों और मूर्खों के दुष्ट आचरणों से पृथक् रहे और न कभी कोई पाप करे जिस से परमेश्वर वा राजा उसे दण्ड न देवे, किन्तु सुशीलता के कारण संसार के सब पदार्थ आनन्दधारी हों ॥१॥

शं ते॑ अ॒ग्निः स॒हाद्भिर॑स्तु॒ शं सोमः॑ स॒हौष॑धीभिः। ए॒वाहं त्वां क्षे॑त्रि॒यान्निर्ऋ॑त्या जामिशं॒साद् द्रु॒हो मु॑ञ्चामि॒ वरु॑णस्य॒ पाशा॑त्। अ॒ना॒गसं॒ ब्रह्म॑णा त्वा कृणोमि शि॒वे ते॒ द्यावा॑पृथि॒वी उ॒भे स्ता॑म् ॥२॥

पदार्थ—(**ते**) तेरे लिए (**अग्निः**) अग्नि (**अद्भिः सह**) जल के साथ (**शम्**) सुखदायक (**अस्तु**) हो, (**सोमः**) अमृत [ऐश्वर्य] (**ओषधीभिः सह**) अन्न आदि ओषधियों के साथ (**शम्**) सुखदायक हो। (**एव**) ऐसे ही (**अहम्**) मैं (**त्वाम्**) तुझको (**क्षेत्रियात्**) शरीर वा वंश के रोग से (**निर्ऋत्याः**) अलक्ष्मी [महामारी, दरिद्रता आदि] से (**जामिशंसात्**) भक्षणशील मूर्ख के सताने से (**द्रुहः**) द्रोह, अनिष्टचिन्ता से और (**वरुणस्य**) दुष्कर्मों से रोकने वाले न्यायाधीश के (**पाशात्**) दण्डपाश व बन्ध से (**मुञ्चामि**) मैं छुड़ाता हूँ। (**ब्रह्मणा**) वेदज्ञान से (**त्वा**) तुमको (**अनागसम्**) निर्दोष (**कृणोमि**) करता हूँ। (**ते**) तेरे लिए (**उभे**) दोनों (**द्यावापृथिवी**) आकाश और पृथिवी (**शिवे**) मंगलमय (**स्ताम्**) होवें ॥२॥

भावार्थ—मनुष्य को विज्ञानपूर्वक देश, काल, अग्नि, जल, वायु, खान, पान आदि पदार्थों का ठीक उपयोग करके स्वस्थ और ऐश्वर्यवान् रहकर आनन्द भोगना चाहिए ॥२॥

शं ते॒ वातो॑ अ॒न्तरि॑क्षे॒ वयो॑ धाच्छं ते॑ भवन्तु प्र॒दिश॒श्चत॑स्रः। ए॒वाहं त्वां क्षे॑त्रि॒यान्निर्ऋ॑त्या जामिशं॒साद् द्रु॒हो मु॑ञ्चामि॒ वरु॑णस्य॒ पाशा॑त्। अ॒ना॒गसं॒ ब्रह्म॑णा त्वा कृणोमि शि॒वे ते॒ द्यावा॑पृथि॒वी उ॒भे स्ता॑म् ॥३॥

पदार्थ—(**ते**) तेरे लिये (**अन्तरिक्षे**) मध्य में दीखने वाले आकाश में वर्त्तमान (**शम्**) सुखदायक (**वातः**) पवन (**वयः**) अन्न वा यौवन [शारीरिक बल] को (**धात्**—**धेयात्**) पुष्ट करे, (**ते**) तेरे लिये (**चतस्रः**) चारों (**प्रदिशः**) महादिशायें (**शम्**) सुखदायक (**भवन्तु**) होवें। (**एव**) ऐसे ही (**अहम्**) मैं (**त्वाम्**) तुझको (**क्षेत्रियात्**) शारीरिक वा वंशागत रोग से (**निर्ऋत्याः**) अलक्ष्मी [महामारी, दरिद्रता आदि] से (**जामिशंसात्**) भक्षणशील मूर्ख के सताने से (**द्रुहः**) द्रोह अनिष्ट चिन्ता से और (**वरुणस्य**) दुष्कर्मों से रोकने वाले न्यायाधीश के (**पाशात्**) दण्डपाश व बन्ध से (**मुञ्चामि**) मैं छुड़ाता हूँ। (**ब्रह्मणा**) वेदज्ञान से (**त्वा**) तुमको (**अनागसम्**) निर्दोष (**कृणोमि**) करता हूँ। (**ते**) तेरे लिये (**उभे**) दोनों (**द्यावापृथिवी**) आकाश और पृथिवी (**शिवे**) मंगलमय (**स्ताम्**) होवें ॥३॥

भावार्थ—मनुष्य प्रयत्न और परिश्रम करके अपने शरीरस्थ प्राण वायु और देशस्थ वायु, और सब स्थानों को यथोचित शुद्ध और स्वस्थ रख कर आनन्द प्राप्त करे ॥३॥

इ॒मा या दे॒वीः प्र॒दिश॒श्चत॑स्रो॒ वात॑पत्नीर॒भि सूर्यो॑ वि॒चष्टे॑। ए॒वाहं त्वां क्षे॑त्रि॒यान्निर्ऋ॑त्या जामिशं॒साद् द्रु॒हो मु॑ञ्चामि॒ वरु॑णस्य॒ पाशा॑त्। अ॒ना॒गसं॒ ब्रह्म॑णा त्वा कृणोमि शि॒वे ते॒ द्यावा॑पृथि॒वी उ॒भे स्ता॑म् ॥४॥

पदार्थ—(**सूर्यः**) चलने वा चलाने वाला सूर्यलोक (**इमाः**) इन (**याः**) जिन (**देवीः**) दिव्यगुणवाली (**वातपत्नीः**) वायु मण्डल से रक्षित (**चतस्रः**) चारों (**प्रदिशः**) महादिशाओं को (**अभि**) सब प्रकार (**विचष्टे**) देखता है। (**एव**) ऐसे ही (**अहम्**) मैं (**त्वाम्**) तुझको (**क्षेत्रियात्**) शारीरिक वा वंशागत रोग से (**निर्ऋत्याः**) अलक्ष्मी [महामारी, दरिद्रता आदि] से (**जामिशंसात्**) भक्षणशील मूर्ख के सताने से (**द्रुहः**) द्रोह, अनिष्ट चिन्ता से और (**वरुणस्य**) दुष्कर्मों से रोकने वाले न्यायाधीश के (**पाशात्**) दण्डपाश व बन्ध से (**मुञ्चामि**) मैं छुड़ाता हूँ। (**ब्रह्मणा**) वेद ज्ञान से (**त्वा**) तुझको (**अनागसम्**) निर्दोष (**कृणोमि**) करता हूँ। (**ते**) तेरे लिये (**उभे**) दोनों (**द्यावापृथिवी**) आकाश और पृथिवी (**शिवे**) मंगलमय (**स्ताम्**) होवें ॥४॥

भावार्थ—जैसे सूर्य अपनी किरणों से आकर्षण करके पृथिवी आदि लोकों को धारण करता और वायुमण्डल पतन हो जाने से उन की रक्षा करता है, ऐसे ही मनुष्य को अपनी प्रजा का पोषण करके सुखी रहना चाहिये ॥४॥

तासु॑ त्वा॒न्तर्ज॒रस्या द॑धामि॒ प्र यक्ष्म॑ एतु॒ निर्ऋ॑तिः परा॒चैः। ए॒वाहं त्वां क्षे॑त्रि॒यान्निर्ऋ॑त्या जामिशं॒साद् द्रु॒हो मु॑ञ्चामि॒ वरु॑णस्य॒ पाशा॑त्। अ॒ना॒गसं॒ ब्रह्म॑णा त्वा कृणोमि शि॒वे ते॒ द्यावा॑पृथि॒वी उ॒भे स्ता॑म् ॥५॥

पदार्थ—(**तासु**) उन [दिशाओं] में (**त्वा**) तुझको (**जरसि**) स्तुति के (**अन्तः**) मध्य में (**आ**) भले प्रकार से (**दधामि**) धारण करता हूँ, (**यक्ष्मः**) राज रोग [क्षयी आदि] और (**निर्ऋतिः**) अलक्ष्मी [महामारी, दरिद्रता आदि] भी (**पराचैः**) औंधे मुँह होकर (**प्र + एतु**) चली जावे। (**एव**) ऐसे ही (**अहम्**) मैं (**त्वाम्**) तुझको (**क्षेत्रियात्**) शारीरिक वा वंशागत रोग से (**निर्ऋत्याः**) अलक्ष्मी [महामारी, दरिद्रता आदि] से (**जामिशंसात्**) भक्षणशील मूर्ख के सताने से (**द्रुहः**) द्रोह [अनिष्ट चिन्ता से] और (**वरुणस्य**) दुष्कर्मों से रोकने वाले न्यायाधीश के (**पाशात्**) दण्डपाश व बन्ध से (**मुञ्चामि**) मैं छुड़ाता हूँ। (**ब्रह्मणा**) वेदज्ञान से (**त्वा**) तुझको (**अनागसम्**) निर्दोष (**कृणोमि**) करता हूँ। (**ते**) तेरे लिए (**उभे**) दोनों (**द्यावापृथिवी**) आकाश और पृथिवी (**शिवे**) मंगलमय (**स्ताम्**) होवें ॥५॥

भावार्थ—मनुष्य को परमेश्वर ने सब प्राणियों में श्रेष्ठ बनाया है। इसलिए पुरुष पुरुषार्थ करके सब विघ्नों को हटावे और कीर्तिमान् होकर सदा आनन्द भोगे और अमर होवे ॥५॥

अमु॑क्था॒ यक्ष्मा॑द् दुरि॒ताद॑व॒द्याद् द्रु॒हः पाशा॑द् ग्राह्या॒श्चोद॑मुक्थाः। ए॒वाहं त्वां क्षे॑त्रि॒यान्निर्ऋ॑त्या जामिशं॒साद् द्रु॒हो मु॑ञ्चामि॒ वरु॑णस्य॒ पाशा॑त्। अ॒ना॒गसं॒ ब्रह्म॑णा त्वा कृणोमि शि॒वे ते॒ द्यावा॑पृथि॒वी उ॒भे स्ता॑म् ॥६॥

पदार्थ—(**यक्ष्मात्**) राज रोग [क्षयी आदि] से, (**दुरितात्**) दुर्गति से और (**अवद्यात्**) अकथनीय निन्दनीय कर्म से (**अमुक्थाः**) तू मुक्त हो गया है, और (**द्रुहः**) द्रोह [अनिष्ट चिन्तन] से (**च**) और (**ग्राह्याः**) जकड़ने वाली पीड़ा के (**पाशात्**) पाश वा बन्ध से (**उत् + अमुक्थाः**) तू छूट चुका है। (**एव**) ऐसे ही (**अहम्**) मैं (**त्वाम्**) तुझको (**क्षेत्रियात्**) शारीरिक वा वंशागत रोग से (**निर्ऋत्याः**) अलक्ष्मी [महामारी, दरिद्रता आदि] से (**जामिशंसात्**) भक्षणशील मूर्ख के सताने से (**द्रुहः**) द्रोह [अनिष्ट चिन्ता से] और (**वरुणस्य**) दुष्कर्मों से रोकने वाले न्यायाधीश के (**पाशात्**) दण्डपाश व बन्ध से (**मुञ्चामि**) छुड़ाता हूँ। (**ब्रह्मणा**) वेदज्ञान से (**त्वा**) तुझको (**अनागसम्**) निर्दोष (**कृणोमि**) करता हूँ। (**ते**) तेरे लिये (**उभे**) दोनों (**द्यावापृथिवी**) आकाश और पृथिवी (**शिवे**) मंगलमय (**स्ताम्**) होवें ॥६॥

भावार्थ—जैसे उत्तम वैद्य रोगी के रोगों को निवृत्त करके स्वस्थ कर देता है, ऐसे ही ब्रह्मचारी वेद विज्ञान की प्राप्ति से निर्मल होकर सुखी होता है ॥६॥

अहा॒ अरा॑ति॒मवि॑दः स्यो॒नम॒प्यभू॑र्भ॒द्रे सु॑कृ॒तस्य॑ लो॒के। ए॒वाहं त्वां क्षे॑त्रि॒यान्निर्ऋ॑त्या जामिशं॒साद् [illegible] ञ्चामि॒ वरु॑णस्य॒ पाशा॑त्। अ॒ना॒गसं॒ ब्रह्म॑णा त्वा कृणोमि शि॒वे ते॒ द्यावा॑पृथि॒वी उ॒भे स्ता॑म् ॥७॥

पदार्थ—(**अरातिम्**) कंजूसी वा वैर को (**अहाः**—**अहासीः**) तूने त्याग दिया है, (**स्योनम्**) सुख को (**अविदः**) तूने पाया है, (**अपि**) और भी (**सुकृतस्य**) सुकृत [पुण्य कर्म] के (**भद्रे**) आनन्दमय (**लोके**) लोक में (**अभूः**) तू वर्त्तमान हुआ है। (**एव**) ऐसे ही (**अहम्**) मैं (**त्वाम्**) तुझ को (**क्षेत्रियात्**) शारीरिक वा वंशागत रोग से (**निर्ऋत्याः**) अलक्ष्मी [महामारी, दरिद्रता आदि] से (**जामिशंसात्**) भक्षणशील मूर्ख के सामने से (**द्रुहः**) द्रोह [अनिष्ट चिन्ता से] और (**वरुणस्य**) दुष्कर्मों से रोकने वाले न्यायाधीश के (**पाशात्**) दण्डपाश व बन्ध से (**मुञ्चामि**) मैं छुड़ाता हूँ। (**ब्रह्मणा**) वेदज्ञान से (**त्वा**) तुझको (**अनागसम्**) निर्दोष (**कृणोमि**) करता हूँ। (**ते**) तेरे लिये (**उभे**) दोनों (**द्यावापृथिवी**) आकाश और पृथिवी (**शिवे**) मंगलमय (**स्ताम्**) होवें ॥७॥

भावार्थ—मनुष्य वैर छोड़कर उदार, उपकारी सर्वमित्र बनकर अनेक बल अर्थात् मुक्ति के आनन्द को पाता है ॥७॥

सूर्य॑मृ॒तं तम॑सो॒ ग्राह्या॒ अधि॑ दे॒वा मु॒ञ्चन्तो॑ असृज॒न्निरेण॑सः। ए॒वाहं त्वां क्षे॑त्रि॒यान्निर्ऋ॑त्या जामिशं॒साद् द्रु॒हो मु॑ञ्चामि॒ वरु॑णस्य॒ पाशा॑त्। अ॒ना॒गसं॒ ब्रह्म॑णा त्वा कृणोमि शि॒वे ते॒ द्यावा॑पृथि॒वी उ॒भे स्ता॑म् ॥८॥

पदार्थ—(**देवाः**) [ईश्वर के] दिव्य सामर्थ्यों ने (**ऋतम्**) चलने वाले (**सूर्यम्**) सूर्य को (**तमसः**) अन्धकार की (**ग्राह्याः**) पकड़ से और (**एनसः अधि**) कष्ट से (**मुञ्चन्तः**) छुड़ा कर (**नि + असृजन्**) उत्पन्न किया है। (**एव**) ऐसे ही (**अहम्**) मैं (**त्वाम्**) तुझ को (**क्षेत्रियात्**) शारीरिक वा वंशागत रोग से, (**निर्ऋत्याः**) अलक्ष्मी [महामारी, दरिद्रता आदि] से (**जामिशंसात्**) भक्षणशील मूर्ख के सताने से (**द्रुहः**) द्रोह [अनिष्ट चिन्ता] से और (**वरुणस्य**) दुष्कर्मों से रोकने वाले न्यायाधीश के (**पाशात्**) दण्ड पाश वा बन्ध से (**मुञ्चामि**) मैं छुड़ाता हूँ। (**ब्रह्मणा**) वेदविज्ञान से (**त्वा**) तुझ को (**अनागसम्**) निर्दोष (**कृणोमि**) करता हूँ, (**ते**) तेरे लिए (**उभे**) दोनों (**द्यावापृथिवी**) आकाश और पृथिवी (**शिवे**) मंगलमय (**स्ताम्**) होवें ॥८॥

भावार्थ—जैसे परमेश्वर की शक्ति से सूर्य प्रलय वा ग्रहण के अन्धकार से छूट कर प्रकाशित होकर क्लेश हरण करता है, ऐसे ही मनुष्य अपने सब विघ्नो का नाश करके आत्मिक बल बढ़ा कर संसार मे उपकार करे, और आनन्द भोगे ॥८॥

卐 सूक्तम् ११ 卐

१—५ शुक्र । कृत्यादूषणम् । १ चतुष्पदा विराट् गायत्री, २—५ त्रिपदा परोष्णिक्, ४ पिपीलिकमध्या निचृत् ।

दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मेनिरसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥१॥

पदार्थ—[हे पुरुष !] तू (**दूष्याः**) दूषित क्रिया का (**दूषिः**) खण्डनकर्ता (**असि**) है, और (**हेत्याः**) बरछी का (**हेतिः**) बरछी (**असि**) है, (**मेन्याः**) वज्र का (**मेनिः**) वज्र (**असि**) है । (**श्रेयांसम्**) अधिक गुणी [परमेश्वर वा मनुष्य] को (**आप्नुहि**) तू प्राप्त कर, (**समम्**) तुल्य बल वाले [मनुष्य] से (**अति — अतीत्य**) बढ़ कर (**क्राम**) पद आगे बढ़ा ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर ने मनुष्य को बड़ी शक्ति दी है । जो पुरुष उन शक्तियो को परमेश्वर के विचार और अधिक गुण वालो के सत्सग से काम मे लाते है वे निर्विघ्न होकर अन्य पुरुषो से अधिक उपकारी होकर आनन्द भोगते हैं ॥१॥

स्रक्त्योऽसि प्रतिसरोऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥२॥

पदार्थ—तू (**स्रक्त्यः**) गतिशील (**असि**) है, (**प्रतिसरः**) प्रत्यक्ष चलने वाला (**असि**) है और (**प्रत्यभिचरणः**) अभिचार [दुष्ट कर्म] का हटाने वाला (**असि**) है । (**श्रेयांसम्**) अधिक गुणी [परमेश्वर वा मनुष्य] को (**आप्नुहि**) तू प्राप्त कर, (**समम्**) तुल्य बल वाले [मनुष्य] से (**अति — अतीत्य**) बढ़ कर (**क्राम**) पद आगे बढ़ा ॥२॥

भावार्थ—जो पुरुषार्थी मनुष्य निष्कपट, सरल स्वभाव होकर अग्रगामी होता है वह सकटो को हटा कर आनन्द प्राप्त करता है ॥२॥

प्रति तमभि चर योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥३॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (**तम् प्रति**) उस [दुराचारी पुरुष] की ओर (**अभिचर**) चढ़ाई कर (**यः**) जो (**अस्मान्**) हम से (**द्वेष्टि**) बैर करता है, और (**यम्**) जिससे (**वयम्**) हम (**द्विष्मः**) अप्रीति करते हैं । (**श्रेयांसम्**) अधिक गुणी [परमेश्वर वा मनुष्य] को (**आप्नुहि**) तू प्राप्त कर, (**समम्**) तुल्य बल वाले [मनुष्य] से (**अति — अतीत्य**) बढ़ कर (**क्राम**) पद आगे बढ़ा ॥३॥

भावार्थ—जो छली कपटी धर्मात्माओ से अप्रीति करें और जिन दुष्कर्मियो से धर्मात्मा लोग घृणा करते हो, राजा उन दुष्टो को वश मे करके दण्ड देवे। सब मनुष्य शारीरिक और मानसिक रोगो को हटा कर सत्य धर्म मे प्रवृत्त हो और प्रयत्नपूर्वक सदैव उन्नति करें ॥३॥

सूरिरसि वर्चोधा असि तनूपानोऽसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥४॥

पदार्थ—हे राजन् ! तू (**सूरिः**) विद्वान (**असि**) है (**वर्चोधाः**) अन्न वा तेज का धारण करने वाला (**असि**) है, (**तनूपानः**) हमारे शरीरो का रक्षक (**असि**) है । (**श्रेयांसम्**) अधिक गुणी [परमेश्वर वा मनुष्य] को (**आप्नुहि**) तू प्राप्त कर, (**समम्**) तुल्य बल वाले [मनुष्य] से (**अति अतीत्य**) बढ़ कर (**क्राम**) पद आगे बढ़ा ॥४॥

भावार्थ—विद्वान् प्रतापी राजा अन्न आदि से अपनी प्रजा की सदा रक्षा और उन्नति करे ॥४॥

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥५॥

पदार्थ—(**शुक्रः**) तू वीर्यवान् (**असि**) है (**भ्राजः**) प्रकाशमान (**असि**) है, (**स्वः**) तू स्वर्ग [सुखधाम] (**असि**) है, (**ज्योतिः**) [सूर्यादि के समान] तेज स्वरूप (**असि**) है । (**श्रेयांसम्**) अधिक गुणी [परमेश्वर वा मनुष्य] को (**आप्नुहि**) तू प्राप्त कर, (**समम्**) तुल्य बल वाले [मनुष्य] से (**अति — अतीत्य**) बढ़ कर (**क्राम**) पद आगे बढ़ा ॥५॥

भावार्थ—राजा महाशक्तिमान्, प्रतापी और ऐश्वर्यवान् ईश्वर पर श्रद्धालु होकर अपनी और प्रजा की सदा वृद्धि करे ॥५॥

卐 सूक्तम् १२ 卐

१—८ भरद्वाजः । १ द्यावापृथिवी, अन्तरिक्षम्, २ देवाः ३ इन्द्रः, ४ आदित्या वसवोऽङ्गिरसः पितरः, ५ सोम्यासः पितरः, ६ मरुतः, ७ यमसादनम् ब्रह्म, ८ अग्निः, त्रिष्टुप्, २ जगती, ७—८ अनुष्टुप् ।

द्यावापृथिवी उर्व१न्तरिक्षं क्षेत्रस्य पत्न्युरुगायोऽद्भुतः ।
उतान्तरिक्षमुरु वातगोपं त इह तप्यन्तां मयि तप्यमाने ॥१॥

पदार्थ—(**द्यावापृथिवी**) सूर्य और पृथिवी (**उरु**) विस्तीर्ण (**अन्तरिक्षम्**) मध्य मे दीखने वाला आकाश, (**क्षेत्रस्य**) निवास स्थान, ससार की (**पत्नी**) रक्षा करने वाली [दिशा वा वृष्टि], (**अद्भुतः**) आश्चर्यस्वरूप (**उरुगायः**) विस्तृत स्तुति वाला परमेश्वर, (**उत**) और (**उरु**) विस्तीर्ण (**वातगोपम्**) प्राण वायु से रक्षा किया हुआ (**अन्तरिक्षम्**) मध्यवर्ती अन्तःकरण [य सब जो देव हैं] (**ते**) वे सब (**इह**) यहा पर [इस जन्म मे] (**मयि**) मुझ (**तप्यमाने**) तपश्चर्या करते हुए पर (**तप्यन्ताम्**) ऐश्वर्य वाले होवें ॥१॥

भावार्थ—जब मनुष्य ब्रह्मचर्य आदि नियमो के पालन से विद्या ग्रहण करके देख भाल करता है, परमेश्वर और सम्पूर्ण सृष्टि के पदार्थ उस पुरुषार्थी पुरुष को ऐश्वर्य प्राप्त कराते हैं ॥१॥

इदं देवाः शृणुत ये यज्ञिया स्थ भरद्वाजो मह्यमुक्थानि शंसति ।
पाशे स बद्धो दुरिते नि युज्यतां यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥२॥

पदार्थ—(**देवाः**) हे दिव्य गुण वाले महात्माओ ! (**ते**) जो तुम (**यज्ञियाः**) सत्कार योग्य (**स्थ**) हो, (**इदम्**) वह (**शृणुत**) सुनो, (**भरद्वाजः**) पुष्टिकारक अन्न एव बल वा विज्ञान का धारण करने वाला, परमेश्वर (**मह्यम्**) मुझ को (**उक्थानि**) वेद वचनो का (**शंसति**) उपदेश करता है । (**सः**) वह मनुष्य (**दुरिते**) बड़े कठिन (**पाशे**) फास मे (**बद्धः**) बधा हुआ (**नि — युज्यताम्**) आज्ञा मे रहे, (**यः**) जो मनुष्य (**अस्माकम्**) हमारे (**इदम्**) इस [सन्मार्ग मे लगे हुए] (**मनः**) मन को (**हिनस्ति**) सतावे ॥२॥

भावार्थ—विद्वानो को परस्पर मिल कर ब्रह्मविचार करना चाहिये । वह सर्वशक्तिमान् दुष्कर्मियो को क्लेश और सुकर्मियो को आनन्द देता है । उस सर्वपोषक ने यह आज्ञा वेद द्वारा मनुष्यमात्र के लिए प्रकाशित की है ॥२॥

इदमिन्द्र शृणुहि सोमप यत्त्वा हृदा शोचता जोहवीमि ।
वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षं यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥३॥

पदार्थ—(**सोमप**) हे ऐश्वर्य के रक्षक [वा अमृत पीने वाले वा अमृत की रक्षा करने वाले (**इन्द्र**) राजन् ! परमेश्वर ! (**इदम्**) इस [वचन] को (**शृणुहि**) तू सुन (**यत्**) क्योंकि (**शोचता**) शोक करते हुए (**हृदा**) हृदय से (**त्वा**) तुझे (**जोहवीमि**) आवाहन करता रहता हूँ । (**इव**) जैसे (**कुलिशेन**) कुठारी से (**वृक्षम्**) वृक्ष को [काटते है वैसे ही] मैं (**तम्**) उस [मनुष्य] को (**वृश्चामि**) काट डालू (**यः**) जो (**अस्माकम्**) हमारे (**इदम्**) [सन्मार्ग मे लगे हुए] (**मनः**) मन को (**हिनस्ति**) सतावे ॥३॥

भावार्थ—जैसे प्रजागण दुष्टो से पीड़ित होकर राजा के सहाय से उद्धार पाते है, वैसे ही बलवान् राजा उस परम पिता जगदीश्वर के आवाहन से पुरुषार्थ करके अपने कष्टो से छुटकारा पावे ॥३॥

अशीतिभिस्तिसृभिः सामगेभिरादित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः ।
इष्टापूर्तमवतु नः पितॄणामामुं ददे हरसा दैव्येन ॥४॥

पदार्थ—(**तिसृभिः**) तीन (**अशीतिभिः**) व्याप्तियो [अर्थात् ईश्वर, जीव, और प्रकृति] से (**सामगेभिः — ०—गैः**) मोक्ष विद्या [ब्रह्म विद्या] के गाने वाले (**आदित्येभिः = ०—त्यैः**) सर्वथा दीप्यमान, (**वसुभिः**) प्रशस्त गुण वाले (**अङ्गिरोभिः**) ज्ञानी पुरुषो के साथ (**पितॄणाम्**) रक्षक पिताओ [पिता के समान उपकारियो] के (**इष्टापूर्तम्**) यज्ञ, वेदाध्ययन, अन्न दानादि पुण्य कर्म (**नः**) हमें (**अवतु**) तृप्त करें, (**दैव्येन**) विद्वानो के सम्बन्धी (**हरसा**) तेज से (**अमुम्**) उस [दुष्ट] को (**आ — ददे**) मैं पकड़ता हूँ ॥४॥

भावार्थ—राजा बहुत से सत्यवादी, सत्यपराक्रमी, सर्वहितैषी, निष्कपट, विद्वानो की सम्मति और सहाय और बड़े-बड़े पुरुषो के पुण्य कर्मों के अनुकरण, तथा दुष्टो को दण्ड दान से प्रजा मे शान्ति स्थापित करके सदा सुखी रहे ॥४॥

द्यावापृथिवी अनु मा दीधीथां विश्वे देवासो अनु मा रभध्वम् ।
अङ्गिरसः पितरः सोम्यासः पापमार्छत्वपकामस्य कर्ता ॥५॥

पदार्थ—(**द्यावापृथिवी — ०—व्यौ**) हे सूर्य और पृथिवी ! (**मा**) मुझ पर (**अनु — अनुलक्ष्य**) अनुग्रह करके (**आ**) भले प्रकार (**दीधीथाम्**) दोनो प्रकाशित हो, (**विश्वे**) हे सब (**देवासः = ०—वाः**) उत्तम गुण वाले महात्माओ ! (**मा**) मुझ पर (**अनु**) अनुग्रह करके (**आ**) भले प्रकार (**रभध्वम्**) उत्साही बनो ! (**अङ्गिरसः**) हे ज्ञानी पुरुषो ! (**पितरः**) हे रक्षक पिताओ ! (**सोम्यासः = ०—म्याः**) हे सौम्य, मनोहर गुण वाले विद्वानो ! (**अपकामस्य**) अनिष्ट का (**कर्ता**) कर्त्ता (**पापम्**) दुःख (**आ — ऋच्छतु**) प्राप्त करे ॥५॥

भावार्थ—मनुष्य को प्रयत्न करना चाहिये कि सूर्य और पृथिवी अर्थात् ससार के सब पदार्थ अनुकूल रहें और बड़े-बड़े उपकारी विद्वानो के सत्सग से डाकू, उचक्के आदि को यथोचित दण्ड देकर और वश मे करके शान्ति रक्खे ॥५॥

अतीव यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यो निन्दिषत् क्रियमाणम् ।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषं द्यौरभिसंतपाति ॥६॥

पदार्थ—(**मरुत**) हे शत्रुओं को मारने वाले शूरो ! (**य**) जो [दुष्ट पुरुष] (**न**) हम पर (**अतीव अतीत्य एव**) हाथ बढ़ा कर (**मन्यते मानयते**) मान करे, (**वा**) अथवा (**य**) जो (**क्रियमाणम्**) उपयुक्त किये हुए (**ब्रह्म**) [हमारे] वेद विज्ञान वा धन की (**निन्दिषत्**) निन्दा करे, (**वृजिनानि**) [उसके] पाप कर्म (**तस्मै**) उसके लिए (**तपूंषि**) तापकारी [तुपक रूप] (**सन्तु**) हो, (**द्यौ**) दीप्यमान परमेश्वर (**ब्रह्मद्विषम्**) वेद विरोधी जन को (**अभिसंतपाति**) सब प्रकार से सन्ताप दे ॥६॥

भावार्थ—जो मनुष्य वेदो की सर्वोपकारी आज्ञाओं का उल्लघन करे, उसे शूरवीर पुरुष योग्य दण्ड देवें। वह दुराचारी परमेश्वर की न्यायव्यवस्था में भी कष्ट भोगता है ॥६॥

सप्त प्राणानष्टौ मन्यस्तांस्ते वृश्चामि ब्रह्मणा ।
अया यमस्य सादनमग्निदूतो अरंकृतः ॥७॥

पदार्थ—[हे दुष्ट जीव] (**ते**) तेरे (**तान्**) उन [प्रसिद्ध] (**सप्त**) सात (**प्राणान्**) प्राणो को और (**अष्टौ**) आठ (**मन्य मन्या**) नाड़ियो को (**ब्रह्मणा**) वेद नीति से (**वृश्चामि**) मैं ताड़ता हूँ। तू (**अग्निदूत**) अग्नि को दूत बनाता हुआ और (**अरंकृत**) शीघ्रता करता हुआ (**यमस्य**) न्यायकारी वा मृत्यु के (**सादनम्—सदनम्**) घर में (**अया**) आ पहुँचा है ॥७॥

भावार्थ—सात प्राण अर्थात् दो आँख, दो नथुने, दो कान और एक मुख एव आठ प्रधान नाड़ियाँ वा अवयव अर्थात् दो दो दोनो भजाओ और दोनो टागो के है। तात्पर्य यह है कि दण्ड के द्वारा शत्रु के अगो को छेद कर अनेक क्लेशो के साथ भस्म करके शीघ्र नाश कर देना चाहिये कि फिर अन्य पुरुष दुष्ट कर्म न करने पावे ॥७॥

आ दधामि ते पदं समिद्धे जातवेदसि ।
अग्निः शरीरं वेवेष्ट्वसुं वागपि गच्छतु ॥८॥

पदार्थ—[हे दुराचारी] (**ते**) तेरे (**पदम्**) पद [वा स्थान] को (**समिद्धे**) जलती हुई (**जातवेदसि**) वेदना अर्थात् पीड़ा देने वाली अग्नि मे (**आ + दधामि**) डाले देता हूँ। (**अग्नि**) अग्नि (**शरीरम्**) [तेरे] शरीर मे (**वेवेष्टु**) प्रवेश करे, और (**वाक्**) वाणी (**अपि**) भी (**असुम्**) [अपने] प्राण [प्रश] मे (**गच्छतु**) जावे ॥८॥

भावार्थ—दुराचारी मनुष्य राजदण्ड और ईश्वरनियम से ऐसा शारीरिक और मानसिक ताप पाता है जैसे कोई प्रज्वलित अग्नि मे जल कर कष्ट पाता है ॥८॥

卐 सूक्तम् १३ 卐

१—५ अथर्वा । अग्नि , २—३ बृहस्पति ४—५ विश्वेदेवा ।
त्रिष्टुप् ४ अनुष्टुप्, ६ विराडजगती ।

आयुर्दा अग्ने जरसं वृणानो घृतप्रतीको घृतपृष्ठो अग्ने ।
घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रानभि रक्षतादिमम् ॥१॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे तेजस्विन् परमेश्वर ! तू (**आयुर्दा**) जीवनदाता और (**जरसम्**) स्तुतियोग्य कर्म को (**वृणान**) स्वीकार करने वाला, (**घृतप्रतीक**) प्रकाशस्वरूप और (**घृतपृष्ठ**) प्रकाश [वा सार तत्त्व] से सींचने वाला है। (**अग्ने**) हे तेजस्विन् ईश्वर ! [अग्नि के समान] (**मधु**) मधुर, (**चारु**) निर्मल, (**गव्यम्**) गौ के (**घृतम**) घृत को (**पीत्वा**) पीकर, (**पिता इव**) पिता के समान (**पुत्रान्**) पुत्रो को (**इमम्**) इस [ब्रह्मचारी] की (**अभि**) सब ओर से (**रक्षतात्**) रक्षा कर ॥१॥

भावार्थ—जैसे अग्नि गौ के घृत, काष्ठ आदि हवन सामग्री से प्रज्वलित होकर, हवन, अन्न संस्कार, शिल्प प्रयोग आदि मे उपयोगी होता है वैसे ही परमेश्वर वेद विद्या के और बुद्धि, अन्न आदि पदार्थो के दान से मनुष्यो पर उपकार करता है। इसी प्रकार मनुष्यो को परस्पर उपकारी होना चाहिये ॥१॥

परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः ।
बृहस्पतिः प्रायच्छद् वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ॥२॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] (**न**) हमारे लिए (**इमम्**) इस [ब्रह्मचारी] को (**परि + धत्त**) वस्त्र पहराओ और (**वर्चसा**) तेज वा अन्न से (**धत्त**) पुष्ट करो, [तथा इसको] (**दीर्घम्**) बड़ा (**आयु**) आयु, वा आय, अर्थात् धन-प्राप्ति, और (**जरामृत्युम्** —जरा-अमृत्यु जरा-मृत्यु वा) स्तुति मे अमरपन, अथवा स्तुति वा बुढ़ापे में मृत्यु (**कृणुत**) करो। (**बृहस्पति**) बड़े-बड़े [विद्वानो] के रक्षक [राजा वा प्रधानाचार्य] ने (**एतत**) यह (**वास**) वस्त्र (**सोमाय**) सूर्य समान (**राज्ञे**) ऐश्वर्य वाले [ब्रह्मचारी] को (**उ**) ही (**परिधातवै**) धारण करने के लिए (**प्र + अयच्छत्**) दान किया है ॥२॥

भावार्थ—जब ब्रह्मचारी विद्या समाप्त कर चुके, तब विद्वान् पुरुष परस्पर उपकार के लिए उसकी योग्यता का सत्कार करे, और राजा वा आचार्य विशेष वस्त्र आदि से अलकृत करके उसका मान बढ़ावे, जिससे विद्या का प्रचार और आपस में प्रीति अधिक होवे। जैसे विद्वान् पुरुष विद्यादि चिह्नो से अलकृत होकर पुरुषो मे दर्शनीय होता है, वैसे ही मनुष्य शरीर का चोला पाकर सृष्टि मे सर्वश्रेष्ठ गिना जाता है ॥२॥

परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्गृष्टीनामभिशस्तिपा उ ।
शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ॥३॥

पदार्थ—[हे ब्रह्मचारिन् !] (**इदम्**) इस (**वास**) वस्त्र को (**स्वस्तये**) आनन्द बढ़ाने के लिए (**परि अधिथा**) तूने धारण किया है, और (**गृष्टीनाम्**) ग्रहणीय गौओ को (**अभिशस्तिपा**) हिंसा से रक्षा करने वाला (**उ**) अवश्य (**अभू**) तू हुआ है। (**च**) निश्चय करके (**पुरूची**) बहुत पदार्थो से व्याप्त (**शतम्**) सौ (**शरद**) शरद ऋतुओ तक (**जीव**) तू जीवित रह, (**च**) और (**राय**) धन की (**पोषम्**) पुष्टि [वृद्धि] को (**उप + सं + व्ययस्व**) अपने सब ओर धारण कर ॥३॥

भावार्थ—विद्वान लोग ब्रह्मचारी को विदित कर दे कि यह उसकी विद्या का सन्मान इसलिए किया गया है कि ससार मे गौ आदि उपकारी पदार्थों और विद्या, धन और सुवर्ण आदि धन की वृद्धि करके नीतियुक्त जीवन व्यतीत करे ॥३॥

एह्यश्मानमा तिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः ।
कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम् ॥४॥

पदार्थ—[हे ब्रह्मचारिन्] (**एहि आ + इहि**) तू आ, (**अश्मानम्**) इस शिला पर (**आ + तिष्ठ**) चढ़, (**ते**) तेरा (**तनू**) तन [शरीर] (**अश्मा**) शिला [शिला जैसा दृढ़] (**भवतु**) होवे। (**विश्वे**) सब (**देवा**) उत्तम गुण वाले [पुरुष और पदार्थ] (**ते**) तेरी (**आयु**) आयु को (**शतम्**) सौ (**शरद**) शरद् ऋतुओ तक (**कृण्वन्तु**) [दीर्घ] करें ॥४॥

भावार्थ—ब्रह्मचारी को शिक्षा दे कि वह यथानियम पथ्यसेवन, व्यायाम, ब्रह्मचर्य और पौरुष करके अपने शरीर को दृढ़ और स्वस्थ रक्खे, और विद्वानो के मेल और उत्तम पदार्थो के सेवन से पूर्ण आयु भोगकर ससार में उपकार करे ॥४॥

यस्य ते वासः प्रथमवास्यं हरामस्तं त्वा विश्वेऽवन्तु देवाः ।
तं त्वा भ्रातरः सुवृधा वर्धमानमनु जायन्तां बहवः सुजातम् ॥५॥

पदार्थ—[हे ब्रह्मचारिन्] (**यस्य**) जिस (**ते**) तेरे (**प्रथमवास्यम्**) प्रधानता के धारण योग्य (**वास**) वस्त्र को (**हराम**) हम लाते हैं [धारण करते हैं] (**तम**) उस (**त्वा**) तेरी (**विश्वे**) सब (**देवा**) उत्तम गुण (**अवन्तु**) रक्षा करें, और (**तम्**) उस (**सुवृधा**) उत्तम सम्पत्ति से (**वर्धमानम्**) बढ़ते हुए, (**सुजातम्**) पूजनीय जन्म वाले (**त्वा**) तेरे (**अनु**) पीछे (**बहव**) बहुत से (**भ्रातर**) भाई (**जायन्ताम्**) प्रकट हो ॥५॥

भावार्थ—जब ब्रह्मचारी इस प्रकार विद्वानो मे बड़ा मान पावे, तब वह उत्तम गुणो की प्राप्ति से ऐसी वृद्धि और उन्नति करे कि उसी के समान उसके दूसरे भ्रातगण ससार में यश प्राप्त करें ॥५॥

卐 सूक्तम् १४ 卐

१—६ चातन । शालाग्निर्देवत्यम् । अनुष्टुप्, २ भुरिक्, ४ उपरिष्टा-द्विराड्बृहती ।

निः सालां धृष्णुं धिषणमेकवाद्यां जिघत्स्वम् ।
सर्वाश्चण्डस्य नप्त्यो नाशयामः सदान्वाः ॥१॥

पदार्थ—(**नि सालाम**) बिना शाला - घर वाली, (**धृष्णुम्**) भयानक रूपवाली, (**एकवाद्याम्**) [दीनता से] एक वचन बोलने वाली, (**धिषणाम्**) बोध वा उत्तम वाणी को (**जिघत्स्वम्**) खा लेने वाली, (**चण्डस्य**) क्रोध की (**सर्वा**) इन सब (**नप्त्य नप्त्री**) सन्तानो (**सदान्वा**) सदा चिल्लाने वाली वा दानवो, दुष्कर्मियों के साथ रहने वाली [निर्धनता की पीड़ाओ] को (**नाशयाम**) हम मिटा देवें ॥१॥

भावार्थ—निर्धनता के कारण मनुष्य घर से निकल जाता, कुरूप हो जाता, दीन वचन बोलता और मतिभ्रष्ट हो जाता है, और निर्धनता की पीड़ाएँ क्रोध अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दुष्टताओ में उत्पन्न होती है। मनुष्य को चाहिये कि दूरदर्शी होकर पुरुषार्थ से धन प्राप्त करके निर्धनता को न आने दे और सदा सुखी रहे ॥१॥

निर्वो गोष्ठादजामसि निरक्षान्निरुपानसात् ।
निर्वो मगुन्द्या दुहितरो गृहेभ्यश्चातयामहे ॥२॥

पदार्थ—(**व**) तुमको (**गोष्ठात्**) [अपनी] गोठ अर्थात् वाचनालय वा गोशाला से (**निर् + अजामसि**) हम निकाले देते है, (**अक्षात्**) व्यवहार से

(**निर्**) निकाले, (**उपानसात्**) अन्नगृह वा धान्य की गाडी से (**निर्**) निकाले देते है। (**मगुन्धा**) हे ज्ञान की मिथ्या करने वाली [कुवासना वा निर्धनता] की (**दुहितर**) पुत्रियो ! [पुत्री समान उत्पन्न पीडाओ] (**व**) तुम को (**गृहेभ्य**) [अपने] घरो से (**निर्**) निकालकर (**चातयामहे**) हम नाश करते हैं ॥२॥

भावार्थ—मनुष्य धन के उपार्जन और व्यय करने मे ऐसा प्रबन्ध कर कि पठनपाठन, गौ आदि पशुओ, व्यापार और अन्न आदि मे हानि न हो किन्तु सब पदार्थों के यथावत् सग्रह से सर्वदा सुख की वृद्धि रहे ॥२॥

असौ यो अधुराद् गृहस्तत्र सन्त्वराय्यः ।

तत्र सेदिर्न्युच्यतु सर्वाश्च यातुधान्यः ॥३॥

पदार्थ—(**असौ**) वह (**य**) जो (**गृह**) घर (**अधरात्**) नीचे की ओर है, (**तत्र**) वहा पर (**अराय्य**) निर्धनता वाली [विपत्तिया] (**सन्तु**) रहे। (**तत्र**) वहा ही (**सेदि**) महामारी आदि क्लेश (**नि+उच्यतु**) नित्य निवास करे, (**च**) और (**सर्वा**) सब (**यातुधान्य**) पीडा देने वाली क्रियायें भी ॥३॥

भावार्थ—जैसे राजा चोर आदि दुष्टो को पकड कर कारागार मे रखता है, ऐसे ही मनुष्यो को प्रयत्नपूर्वक निर्धनता, और दु खदायी रोगो को हटाकर आनन्दित रहना चाहिये ॥३॥

भूतपतिर्निरजत्विन्द्रश्चेतः सदान्वाः ।

गृहस्य बुध्न आसीनास्ता इन्द्रो वज्रेणाधि तिष्ठतु ॥४॥

पदार्थ—(**भूतपति**) न्याय, सत्य वा प्राणियो का रक्षक (**च**) और (**इन्द्र**) परम ऐश्वर्य वाला पुरुष (**सदान्वा**) सदा चिल्लाने वाली, अथवा, दानवो दुष्कर्मियो के साथ रहने वाली [निर्धनता की पीडाओ] का (**इत**) यहा से (**निर्+अजतु**) निकाल देवे। (**इन्द्र**) वही महाप्रतापी पुरुष (**गृहस्य**) [हमारे] घर की (**बुध्ने**) जड मे (**आसीना**) बैठी हुई (**ता**) उन [पीडाओ] को (**वज्रेण**) वज्र [कुल्हाडे आदि] से (**अधि+तिष्ठतु**) वश मे करे ॥४॥

भावार्थ—क्लेशो के भीतरी कारणो को भली भांति विचार कर राजा और गृहपति सब पुरुषो को सचेत करके क्लेशो से बचावें और आनन्द मे रक्खे ॥४॥

यदि स्थ क्षेत्रियाणां यदि वा पुरुषेषिताः ।

यदि स्थ दस्युभ्यो जाता नश्यतेतः सदान्वाः ॥५॥

पदार्थ—[हे पीडाओ !] (**यदि**) यदि (**क्षेत्रियाणाम्**) शरीर सम्बन्धी, वा वश सम्बन्धी रोगो की (**वा**) अथवा (**यदि**) यदि (**पुरुषेषिता**) अन्य पुरुषो को प्रेषित (**स्थ**) हो, (**यदि**) जो (**दस्युभ्य**) चोर आदिको से (**जाता**) प्रकट हुई, (**स्थ**) हो, वह तुम (**सदान्वा**) हे सदा चिल्लाने वाली, अथवा दानवो के साथ रहने वाली [पीडाओ !] (**इत**) यहा से (**नश्यत**) हट जाओ ॥५॥

भावार्थ—मनुष्यो को अपने कुपथ्य सेवन, ब्रह्मचर्य आदि के खण्डन से अथवा माता पिता आदि के कुसस्कार से शारीरिक वा आध्यात्मिक और शत्रु, चोर आदि के अन्यथा व्यवहार से आधिभौतिक पीडायें प्राप्त होती हैं। मनुष्य पुरुषार्थ से सब प्रकार के क्लेशो का नाश करके आनन्द से रहें ॥५॥

परि धामान्यासामाशुर्गाष्ठामिवासरन् ।

अजैषं सर्वानाजीन् वो नश्यतेतः सदान्वाः ॥६॥

पदार्थ—[वे विद्वान्] (**आसाम्**) इन [पीडाओ] के (**धामानि**) घरो का (**परि**) सब प्रकार (**असरन्**) पहुँच गये है। (**आशु इव**) जैसे शीघ्रगामी घोडा (**गाष्ठाम्**) अपने गमन स्थान [थान] पर। (**व**) तुम्हारे (**सर्वान्**) सब (**आजीन्**) सग्रामो का (**अजैषम्**) मैने जीत लिया है। (**सदान्वा**) हे सदा चिल्लाने वाली, अथवा दानवो के साथ रहने वाली [पीडाओ !] (**इत**) यहा से (**नश्यत**) चपत हो जाओ ॥६॥

भावार्थ—जिस प्रकार पूर्वज विद्वान् लोग क्लेशो के कारण शीघ्र जान चुके हैं, जैसे कि घोडा मार्ग मे लौटते समय अपने थान की ओर शीघ्र चलता है, अथवा, जैसे शूरवीर पुरुष सग्राम मे शत्रुओ को हराकर शीघ्र विजयी होता है, वैसे ही मनुष्य आई हुई विपत्तियो का कारण सावधानी से जानकर शीघ्र प्रतिकार करे और सुख से आयु को भोगे ॥६॥

卐 सूक्तम् १५ 卐

१—६ ब्रह्मा । प्राण , अपान , आयु । त्रिपाद्गायत्री ।

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः ।

एवा मे प्राण मा बिभेः ॥ १ ॥

पदार्थ—(**यथा**) जैसे (**च**) निश्चय करके (**द्यौः**) आकाश (**च**) और (**पृथिवी**) दोनो (**न**) न (**रिष्यतः**) दु ख देते हैं, और (**न**) न (**बिभीत.**) डरते हैं। (**एव**) ऐसे ही, (**मे**) मेरे (**प्राण**) प्राण ! तू (**मा बिभे.**) मत डर ॥१॥

भावार्थ—ये आकाश और पृथिवी आदि लोक परमेश्वर के नियम-पालन से अपने-अपने स्थान और मार्ग मे स्थिर रह कर जगत का उपकार करते है। ऐसे ही मनुष्य ईश्वर की आज्ञा मानने से पापो को छोड कर और सुकर्मों को कर के सदा निर्भय और सुखी रहता है ॥१॥

यथाहश्च रात्री च न बिभीतो न रिष्यतः ।

एवा मे प्राण मा बिभेः ॥ २ ॥

पदार्थ—(**यथा**) जैसे (**च**) निश्चय करके (**अह**) दिन (**च**) और (**रात्री**) रात दोनो (**न**) न (**रिष्यत**) दु ख देते हैं और (**न**) न (**बिभीत**) डरते है, (**एव**) वैसे ही (**मे**) मेरे (**प्राण**) प्राण ! तू (**मा बिभे**) मत डर ॥२॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपने काल प्रयाग मे नही चूकते वे अपने सुप्रबन्ध से सदा निर्भय रहते है ॥२॥

यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः ।

एवा मे प्राण मा बिभेः ॥३॥

पदार्थ—(**यथा**) जैसे (**च**) निश्चय करके (**सूर्य**) सूर्य (**च**) और (**चन्द्र**) चन्द्र दोनो (**न**) न (**रिष्यत.**) दु ख देते हैं और (**न**) न (**बिभीत**) डरते हैं, (**एव**) वैसे ही (**मे**) मेरे (**प्राण**) प्राण ! तू (**मा बिभे**) मत डर ॥३॥

भावार्थ—जैसे ईश्वर के नियम से सूर्य अपनी राशियो मे घूमकर ससार में किरणो और प्रकाश द्वारा वृष्टि आदि से, और चन्द्रमा सूर्य से प्रकाश लेकर अन्न आदि ओषधो को पुष्ट करके उपकार करते और निर्भय विचरते है, ऐसे ही मनुष्य भी वेदविहित धर्म की रक्षा करके सदा प्रसन्न रहें॥३॥

यथा ब्रह्म च क्षत्रं च न बिभीतो न रिष्यतः ।

एवा मे प्राण मा बिभेः ॥४॥

पदार्थ—(**यथा**) जैसे (**च**) निश्चय करके (**ब्रह्म**) ब्राह्मण [ब्रह्मज्ञानी] जन (**च**) और (**क्षत्रम्**) क्षत्रिय जन, दोनो (**न**) न (**रिष्यत**) दु ख देते और (**न**) नही (**बिभीत**) डरते है (**एव**) वैसे ही (**मे**) मेरे (**प्राण**) प्राण ! तू (**मा बिभे**) मत डर ॥४॥

भावार्थ—जैसे सत्यवक्ता ब्राह्मण और सत्य पराक्रमी क्षत्रिय न सताते और न भय करते हैं, वैसे ही प्रत्येक मनुष्य सत्यपराक्रमी होकर ईश्वराज्ञा-पालन मे निर्भय होकर आनन्द उठावे ॥४॥

यथा सत्यं चानृतं च न बिभीतो न रिष्यतः ।

एवा मे प्राण मा बिभेः ॥५॥

पदार्थ—(**यथा**) जैसे (**च**) निश्चय करके (**सत्यम्**) यथार्थ (**च**) और (**अनृतम्**) अयथार्थ (**न**) न (**रिष्यत**) दु ख देते, और (**न**) न (**बिभीत**) डरते हैं। (**एव**) वैसे ही (**मे**) मेरे (**प्राण**) प्राण ! तू (**मा बिभे**) मत डर ॥५॥

भावार्थ—सत्य अर्थात् धर्म का विधान, और असत्य अर्थात् अधर्म का निषेध, ये दो प्रधान अग न्याय के हैं। मनुष्य विधि और निषेध के यथावत् रूप को समझ कर, कुमार्ग छोड कर सुमार्ग मे निर्भय चलें और अचल आनन्द भोगें ॥५॥

यथा भूतं च भव्यं च न बिभीतो न रिष्यतः ।

एवा मे प्राण मा बिभेः ॥६॥

पदार्थ—(**यथा**) जैसे (**च**) निश्चय करके (**भूतम्**) अतीत काल (**च**) और (**भव्यम्**) भविष्यत् [होने हारा] काल (**न**) न (**रिष्यत**) दु ख देते और (**न**) न (**बिभीत**) डरते हैं (**एव**) वैसे ही (**मे**) मेरे (**प्राण**) प्राण ! तू (**मा बिभे**) मत डर ॥६॥

भावार्थ—समर्थ, सत्य प्रतिज्ञा वाले मनुष्य पहले विजयी हुए है और आगे होगे। इसी प्रकार सब मनुष्य भूत और भविष्यत् का विचार करके जो कार्य करते हैं वे सुखी रहते है ॥६॥

卐 सूक्तम् १६ ॥ 卐

१—५ ब्रह्मा । प्राणः, अपान , आयु । (एकावसानम्) १, ३ एकपादासुरी त्रिष्टुप्, २ एकपादासुरी उष्णिक्, ४ एकपादासुरी गायत्री ।

प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा ॥१॥

पदार्थ—(**प्राणापानौ**) हे प्राण और अपान ! तुम दोनो (**मृत्यो**) मृत्यु से (**मा**) मुझे (**पातम्**) बचाओ, (**स्वाहा**) यह सुन्दर वाणी [आशीर्वाद] हो ॥१॥

भावार्थ—मनुष्य ब्रह्मचर्य, व्यायाम, प्राणायाम, पथ्य भोजन आदि से प्राण अर्थात् भीतर जाने वाले श्वास, और अपान, अर्थात् बाहिर आने वाले श्वास की स्वस्थता स्थापित करें और बलवान् रह कर चिरजीवी होवें ॥१॥

द्यावापृथिवी उपश्रुत्या मा पातं स्वाहा ।।२।।

पदार्थ—(**द्यावापृथिवी** - ०—व्यौ) हे आकाश और पृथिवी ! दोनो (**उपश्रुत्या**) पूर्ण श्रवण शक्ति के साथ (**मा**) मेरी (**पातम्**) रक्षा करो (**स्वाहा**) यह सुवाणी [सुन्दर आशीर्वाद] हो ।।२।।

भावार्थ—सब दिशाओ मे मनुष्य को अपनी श्रवणशक्ति बढानी चाहिये ।।२।।

सूर्य चक्षुषा मा पाहि स्वाहा ।।३।।

पदार्थ—(**सूर्य**) हे सूर्य, तू (**चक्षुषा**) दृष्टि के साथ (**मा**) मेरी (**पाहि**) रक्षा कर, (**स्वाहा**) यह सुवाणी हो ।।३।।

भावार्थ—सूर्य प्रकाश का आधार है, और उसी से नेत्र मे ज्योति आती है। मनुष्य को सूर्य के समान अपनी दर्शनशक्ति ससार मे स्थिर रखनी चाहिये ।।३।।

अग्ने वैश्वानर विश्वैर्मा देवैः पाहि स्वाहा ।।४।।

पदार्थ—(**वैश्वानर**) हे सबको चलाने वाले (**अग्ने**) अग्नि ! (**विश्वैः**) सब (**देवैः**) इन्द्रियो [वा विद्वानो] के साथ (**मा**) मेरी (**पाहि**) रक्षा कर, (**स्वाहा**) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ।।४।।

भावार्थ—शरीर मे अग्नि अर्थात् उष्णता का होना बल, तेज और प्रताप का लक्षण है और इन्द्रिय आदि का चलाने वाला है । सब मनुष्य अन्न की पाचन शक्ति से शरीर मे अग्नि स्थिर रखकर सब इन्द्रियो को पुष्ट करें और उत्तम पुरुषो के सत्सग से स्वस्थ और सुखी रहे ।।४।।

विश्वंभर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा ।।५।।

पदार्थ—(**विश्वम्भर**) हे सर्वपोषक परमेश्वर ! (**विश्वेन**) सब (**भरसा**) पोषणशक्ति से (**मा**) मेरी (**पाहि**) रक्षा कर, (**स्वाहा**) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ।।५।।

भावार्थ—सब शरीर को स्वस्थ रखकर मनुष्य उस (विश्वम्भर) परमेश्वर के अनन्त पथ्य, पोषक द्रव्यो और शक्तियो का उपयोग करें और अपनी शारीरिक और आत्मिक शक्ति बढा कर सदा बलवान् रहकर (विश्वम्भर) सर्वपोषक बने और आनन्द भोगें ।।५।।

卐 सूक्तम् १७ 卐

१—७ ब्रह्मा । प्राण , अपान , आयु ।

ओजोऽस्योजो मे दाः स्वाहा ।।१।।

पदार्थ—[हे ईश्वर] तू (**ओज**) शारीरिक सामर्थ्य (**असि**) है, (**मे**) मुझे (**ओज**) शारीरिक सामर्थ्य (**दा** दद्या) दे, (**स्वाहा**) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ।।१।।

भावार्थ—ओज बल और प्रकाश का नाम है। वैद्यक मे रसादि सात धातुओ से उत्पन्न, आठवे धातु शरीर के बल और पुष्टि के कारण, और ज्ञानेन्द्रियो की नीरोगता को ओज कहते है । जैसे ओज हमारे शरीरो के लिये है वैसे ही परमात्मा सब ब्रह्माण्ड के लिये है ऐसा विचार कर मनुष्यो को शारीरिक शक्ति बढानी चाहिये ।।१।।

सहोऽसि सहो मे दाः स्वाहा ।।२।।

पदार्थ— [हे परमात्मा] ! तू (**सह**) पराक्रम स्वरूप (**असि**) है, (**मे**) मुझे (**सह**) आत्मिक पराक्रम (**दा**) दे, (**स्वाहा**) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ।।२।।

भावार्थ—अनन्त ब्रह्माण्डो का रचक और धारक परमेश्वर पराक्रम स्वरूप है। ऐसा सोचकर विद्यादि उपायो से मनुष्य अपनी आत्मिक शक्ति बढ़ावें ।।२।।

बलमसि बलं मे दाः स्वाहा ।।३।।

पदार्थ—[हे ईश्वर] तू (**बलम्**) सामाजिक बल (**असि**) है, (**मे**) मुझे (**बलम्**) सामाजिक बल (**दा**) दे, (**स्वाहा**) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ।।३।।

भावार्थ—परमेश्वर मे सब देवता, मनुष्य आदि समाजो का बल है, ऐसा जान कर मनुष्य अपने कुटुम्बी आदि से प्रीति बढा कर सामाजिक बल बढावे ।।३।।

आयुरस्यायुर्मे दाः स्वाहा ।।४।।

पदार्थ—[हे ईश्वर !] तू (**आयु**) आयु [जीवन शक्ति] (**असि**) है, (**मे**) मुझे (**आयु**) आयु (**दा**) दे (**स्वाहा**) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ।।४।।

भावार्थ—ईश्वर ने हमे अन्न, बुद्धि, ज्ञान आदि जीवन-सामग्री देकर बडा उपकार किया है । ऐसे ही हम भी परस्पर उपकार मे अपना जीवन बढावें ।।४।।

श्रोत्रमसि श्रोत्रं मे दाः स्वाहा ।।५।।

पदार्थ—[हे ईश्वर !] तू (**श्रोत्रम्**) श्रवण शक्ति (**असि**) है (**मे**) मुझे (**श्रोत्रं**) श्रवण शक्ति (**दा**) दे, (**स्वाहा**) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ।।५।।

भावार्थ—परमेश्वर अपनी अनन्त श्रवण शक्ति से हमारी टेर सुनता और सकटो को काटता है । ऐसे ही हम अपनी श्रवण शक्ति को नीरोग रख कर दूसरो के दु खो का निवारण करें और वेदादि शास्त्रो का श्रवण करें ।।५।।

चक्षुरसि चक्षुर्मे दाः स्वाहा ।६।

पदार्थ—[हे ईश्वर !] तू (**चक्षु**) दृष्टि [दर्शन शक्ति] (**असि**) है, (**मे**) मुझे (**चक्षु**) दर्शन शक्ति (**दा**) दे, (**स्वाहा**) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ।।६।।

भावार्थ—ऋग्वेद पुरुष सूक्त १० । ६० । १ में भी परमेश्वर का नाम (सहस्राक्ष) अनन्त दर्शन शक्ति वाला है । इस प्रकार परमात्मा को सर्वद्रष्टा समझ कर मनुष्य अपनी दर्शन शक्ति उत्तम रक्खे और यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर के बहुदर्शी और न्यायकारी होवे ।।६।।

परिपाणमसि परिपाणं मे दाः स्वाहा ।।७।।

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] तू (**परिपाणम्**) सब प्रकार पालन शक्ति (**असि**) है, (**मे**) मुझे (**परिपाणम्**) सब प्रकार की पालन शक्ति (**दा**) दे, (**स्वाहा**) यह आशीर्वाद हो ।।७।।

भावार्थ—परमेश्वर को अथर्व० १६ । ६ । १ । मे (सहस्रबाहु) अनन्त भुजाओ की शक्ति वाला कहा है । मनुष्य उसकी अनन्त रक्षण शक्ति देख कर आप भी मनुष्यो मे (सहस्रबाहु) महा रक्षक और (शतक्रतु) शतकर्मा अर्थात् बहुकार्यकर्त्ता होवे ।।७।।

卐 इति तृतीयोऽनुवाकः 卐

卐

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ।।

卐 सूक्तम् १८ 卐

१—५ चातन । अग्नि । (द्वैपदम्) साम्नी बृहती ।

भ्रातृव्यक्षयणमसि भ्रातृव्यचातनं मे दाः स्वाहा ।।१।।

पदार्थ—(**भ्रातृव्यक्षयणम्**) वैरियो की नाशनशक्ति (**असि**) तू है, (**मे**) मुझे (**भ्रातृव्यचातनम्**) वैरियो के मिटाने का बल (**दा**) दे, (**स्वाहा**) यही सुन्दर आशीर्वाद हो ।।१।।

भावार्थ—(भ्रातृव्य) वह छली पुरुष है जो देखने मे भ्राता के समान प्रीति, और भीतर से दुष्ट आचरण करे । परमेश्वर वा राजा ऐसे दुराचारियो का नाश करता है । ऐसे ही मनुष्य मृगतृष्णारूप, इन्द्रिय लोलुपता और अन्य आत्मिक दोषो का नाश कर के सुख से रहें ।।१।।

सपत्नक्षयणमसि सपत्नचातनं मे दाः स्वाहा ।।२।।

पदार्थ—[हे ईश्वर !] तू (**सपत्नक्षयणम्**) प्रकट शत्रुओ की नाशशक्ति (**असि**) है, (**मे**) मुझे (**सपत्नचातनम्**) प्रकट शत्रुओ के मिटाने का बल (**दा**) दे, (**स्वाहा**) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ।।२।।

भावार्थ—जैसे ईश्वर वा राजा प्रकट कुचालियो का नाश करता है, वैसे ही मनुष्य अपने प्रकट दोषो का नाश करके सुख भोगे ।।२।।

अरायक्षयणमस्यरायचातनं मे दाः स्वाहा ।।३।।

पदार्थ—[हे ईश्वर !] तू (**अरायक्षयणम्**) निर्धनता की नाशशक्ति (**असि**) है, (**मे**) मुझे (**अरायचातनम्**) निर्धनता के मिटाने का बल (**दा**) दे, (**स्वाहा**) यही सुन्दर आशीर्वाद हो ।।३।।

भावार्थ—ईश्वर सर्वशक्तिमान् और महाधनी है, ऐसा विचार कर मनुष्य अपनी दुष्टता और दुर्मति से अथवा अन्य विघ्नो से उत्पन्न निर्धनता को उद्योग कर के मिटावें ।।३।।

पिशाचक्षयणमसि पिशाचचातनं मे दाः स्वाहा ।।४।।

पदार्थ—हे ईश्वर ! तू (**पिशाचक्षयणम्**) मांस खाने वालो की नाशशक्ति (**असि**) है, (**मे**) मुझे (**पिशाचचातनम्**) मास खाने वालो के मिटाने का बल (**दा**) दे, (**स्वाहा**) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ।।४।।

भावार्थ—परमेश्वर की न्यायशक्ति का विचार करके मनुष्य कुविचार, कुशीलता और रोगादि दोषो को जो शरीर और आत्मा के हानिकारक हैं मिटावें तथा हिंसक सिंह, सर्पादि जीवो का भी नाश करें ।।४।।

सदान्वाक्षयणमसि सदान्वाचातनं मे दाः स्वाहा ।।५।।

पदार्थ—[हे ईश्वर !] तू (**सदान्वाक्षयणम्**) सदा चिल्लाने वाली वा दानवो के साथ रहने वाली [निर्धनता वा दुर्भिक्षता] की नाशशक्ति (**असि**) है, (**मे**) मुझे (**सदान्वाचातनम्**) सदा चिल्लाने वाली वा दानवो के साथ रहने

वाली [निर्धनता वा दुर्भिक्षता] के मिटाने का बल (वा) दे, (स्वाहा) यही सुन्दर आशीर्वाद हो ॥५॥

भावार्थ—निर्धनता और दुर्भिक्षता [अकाल] आदि विपत्तियों के मारे सब प्राणी महादु खी होकर आर्त्तध्वनि करते, और चोर आदि उन्हें सताते हैं। परमेश्वर की दयालुता और पूर्णता पर ध्यान करके, मनुष्य प्रयत्नपूर्वक प्रभूत धन और अन्न का संचय करके आनन्द से रहें ॥५॥

卐 सूक्तम् १९ 卐

१—५ अथर्वा । अग्नि (एकावसानम्) १—४ निचृद्विषमा गायत्री, ५ भुरिग्विषमा ।

अग्ने यत्ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि [अग्नि पदार्थ] (यत्) जो (ते) तेरा (तप) प्रताप [ऐश्वर्य] है, (तेन) उस से (तम् प्रति) उस [दोष] पर (तप) प्रतापी हो, (य) जो (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) अप्रिय करता है [अथवा] (यम्) जिस से (वयम्) हम (द्विष्म) अप्रिय करते हैं ॥१॥

भावार्थ—दुराचारी, कामी, क्रोधी आदि पुरुष की मति भ्रष्ट हो जाती है, और कुप्रयोग से शारीरिक और बाह्य अग्नि दु खदायी होती, और वही अग्नि सुप्रयोग से विचारशील सदाचारियों को सुखप्रद होती है ॥१॥

अग्ने यत्ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥२॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि (यत्) जो (ते) तेरी (हर) नाशशक्ति है, (तेन) उस से (तम्) उस [दोष] को (प्रति हर) नाश कर दे (य) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) अप्रिय करता है [अथवा] (यम्) जिस से (वयम्) हम (द्विष्म) अप्रिय करते है ॥२॥

भावार्थ—मन्त्र १ के समान ॥२॥

अग्ने यत्तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥३॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि (यत्) जो (ते) तेरी (अर्चि) दीपन शक्ति है, (तेन) उससे (तम् प्रति) उस [दोष] पर (अर्च) प्रदीप्त हो, (य) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) अप्रिय करता है [अथवा] (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्म) अप्रिय करते हैं ॥३॥

अग्ने यत्ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥४॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि (यत्) जो (ते) तेरी (शोचि) शोधनशक्ति है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (प्रति शोच) शुद्ध कर दे, (य) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) अप्रिय करता है, [अथवा] (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्म) अप्रिय करते हैं ॥४॥

अग्ने यत्ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि [अग्नि पदार्थ] (यत्) जो (ते) तेरा (तेज) तेज है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (अतेजसम्) निस्तेज (कृणु) कर दे, (य) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) अप्रिय करता है, [अथवा] (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्म) अप्रिय करते हैं ॥५॥

卐 सूक्तम् २० 卐

१—५ अथर्वा । वायु (एकावसानम्) १—४ निचृद्विषमा गायत्री, ५ भुरिग्विषमा ।

वायो यत्ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥१॥

पदार्थ—(वायो) हे पवन [पवन तत्त्व !] (यत्) जो (ते) तेरा (तप) प्रताप है, (तेन) उससे (तम् प्रति) उस [दोष] पर (तप) प्रतापी हो, (य) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) अप्रिय करता है, [अथवा] (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्म) अप्रिय करते हैं ॥१॥

भावार्थ—कुप्रयोग से वायु तत्त्व दु ख देता और सुप्रयोग से आनन्द बढ़ाता है। सू० १९ म० १ देखें ॥१॥

वायो यत्ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥२॥

पदार्थ—(वायो) हे पवन [पवन तत्त्व !] (यत्) जो (ते) तेरी (हर) नाशन शक्ति है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (प्रति हर) नाश कर दे, (य) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) अप्रिय करता है, [अथवा] (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्म) अप्रिय करते हैं ॥२॥

वायो यत्तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥३॥

पदार्थ—(वायो) हे पवन [पवन तत्त्व !] (यत्) जो (ते) तेरी (अर्चि) दीपन शक्ति है, (तेन) उससे (तम् प्रति) उस [दोष] पर (अर्च) प्रदीप्त हो, (य) जो (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) अप्रिय करता है, [अथवा] (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्म) अप्रिय करते हैं ॥३॥

वायो यत्ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥४॥

पदार्थ—(वायो) हे पवन [पवन तत्त्व !] (यत्) जो (ते) तेरी (शोचि) शोधन शक्ति है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (प्रति शोच) शुद्ध कर दे, (य) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) अप्रिय करता है [अथवा] (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्म) अप्रिय करते हैं ॥४॥

वायो यत्ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५॥

पदार्थ—(वायो) हे पवन [पवन तत्त्व !] (यत्) जो (ते) तेरा (तेज) तेज है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (अतेजसम्) निस्तेज (कृणु) कर दे, (य) जो (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) अप्रिय करे, [अथवा] (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्म) अप्रिय करें ॥५॥

卐 सूक्तम् २१ 卐

१—५ अथर्वा । सूर्य । (एकावसानम्) १—४ निचृद्विषमा गायत्री, ५ भुरिग्विषमा ।

सूर्य यत्ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥१॥

पदार्थ—(सूर्य) हे सूर्य [आदित्य मण्डल !] (यत्) जो (ते) तेरा (तप) प्रताप है, (तेन) उस से (तम् प्रति) उस [दोष] पर (तप) प्रतापी हो, (य) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) अप्रिय करे, [अथवा] (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्म) अप्रिय करें ॥१॥

भावार्थ—सूर्य सृष्टि के पदार्थों को वीर्यवान् और तेजस्वी करता है, किन्तु वही कुप्रयोग से दु खदायी और सुप्रयोग से सुखदायी होता है ॥१॥

सूर्य यत्ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥२॥

पदार्थ—(सूर्य) हे सूर्य [सूर्य मण्डल !] (यत्) जो (ते) तेरी (हर) नाशन शक्ति है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (प्रति हर) नाश कर डाल, (य) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) अप्रिय करे [अथवा] (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्म) अप्रिय करें ॥२॥

सूर्य यत्तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥३॥

पदार्थ—(सूर्य) हे सूर्य [सूर्य मण्डल !] (यत्) जो (ते) तेरी (अर्चि) दीपन शक्ति है, (तेन) उससे (तम् प्रति) उस [दोष] पर (अर्च) प्रदीप्त हो, (य) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) अप्रिय करे [अथवा] (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्म) अप्रिय करें ॥३॥

सूर्य यत्ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥४॥

पदार्थ—(सूर्य) हे सूर्य [सूर्य मण्डल !] (यत्) जो (ते) तेरी (शोचि) शोधन शक्ति है, (तेन) उस से (तम्) उस [दोष] को (प्रति शोच) शुद्ध कर दे, (य) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) अप्रिय करे [अथवा] (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्म) अप्रिय करें ॥४॥

सूर्य यत्ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५॥

पदार्थ—(**सूर्य**) हे सूर्य [सूर्य मण्डल !] (**यत**) जो (**ते**) तेरा (**तेज**) तेज है, (**तेन**) उस से (**तम**) उस [दोष] का (**अतेजसम्**) निस्तेज (**कृणु**) कर दे, (**य**) जो (**अस्मान**) हम से (**द्वेष्टि**) अप्रिय करे, [अथवा] (**यम्**) जिससे (**वयम्**) हम (**द्विष्म**) अप्रिय करें ॥५॥

卐 सूक्तम् २२ 卐

१—५ अथर्वा । चन्द्र । (एकावसानम्) १—४ निचृद्विषमा गायत्री, ५ भुरिग्विषमा ।

चन्द्र॒ यत्ते॒ तप॒स्तेन॒ तं प्रति॑ तप॒ यो३॒॑ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः ॥१॥

पदार्थ—(**चन्द्र**) हे चन्द्र [चन्द्रमण्डल !] (**यत्**) जो (**ते**) तेरा (**तप**) प्रताप है, (**तेन**) उससे (**तम् प्रति**) उस [दोष] पर (**तप**) प्रतापी हो, (**य**) जो (**अस्मान्**) हमसे (**द्वेष्टि**) अप्रिय करे, [अथवा] (**यम्**) जिससे (**वयम्**) हम (**द्विष्म**) अप्रिय करें ॥१॥

भावार्थ—शीतल स्वभाव चन्द्रमा स्वभावत अपनी किरणो से अनिष्टो को हटाकर अन्न आदि ओषधियो को पुष्ट करके प्राणियो को आनन्द देता है । परन्तु उसी चन्द्रमा के कुप्रयोग से मनुष्य पागल [Lunatic] और घोडे आदि पशु रोगी हो जाते है । इस कुप्रयोग का त्याग करके सुप्रयोग से आनन्द प्राप्त करना चाहिये ॥१॥

चन्द्र॒ यत्ते॒ हर॒स्तेन॒ तं प्रति॑ हर॒ यो३॒॑ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः ॥२॥

पदार्थ—(**चन्द्र**) हे चन्द्र [चन्द्र लोक !] (**यत्**) जो (**ते**) तेरी (**हर**) नाशन शक्ति है, (**तेन**) उससे (**तम्**) उस [दोष] का (**प्रति हर**) नाश कर डाल, (**य**) जो (**अस्मान्**) हमसे (**द्वेष्टि**) अप्रिय करें, [अथवा] (**यम्**) जिससे (**वयम**) हम (**द्विष्म**) अप्रिय करें ॥२॥

चन्द्र॒ यत्तेऽर्चि॒स्तेन॒ तं प्रत्य॑र्च॒ यो३॒॑ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः ॥३॥

पदार्थ—(**चन्द्र**) हे चन्द्र [चन्द्र लोक !] (**यत्**) जो (**ते**) तेरी (**अर्चि**) दीपन शक्ति है, (**तेन**) उससे (**तम् प्रति**) उस [दोष] पर (**अर्च**) प्रदीप्त हो, (**य**) जो (**अस्मान्**) हमसे (**द्वेष्टि**) अप्रिय करे, [अथवा] (**यम्**) जिससे (**वयम्**) हम (**द्विष्म**) अप्रिय करे ॥३॥

चन्द्र॒ यत्ते॒ शोचि॒स्तेन॒ तं प्रति॑ शोच॒ यो३॒॑ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः ॥४॥

पदार्थ—(**चन्द्र**) हे चन्द्र [चन्द्र लोक !] (**यत्**) जो (**ते**) तेरी (**शोचि**) शोधन शक्ति है, (**तेन**) उससे (**तम्**) उस [दोष] का (**प्रति शोच**) शुद्ध कर दे (**य**) जो (**अस्मान्**) हमसे (**द्वेष्टि**) अप्रिय करे, [अथवा] (**यम्**) जिससे (**वयम्**) हम (**द्विष्म**) अप्रिय करें ॥४॥

चन्द्र॒ यत्ते॒ तेज॒स्तेन॒ तम॑तेजसं॑ कृणु॒ यो३॒॑ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः ॥५॥

पदार्थ—(**चन्द्र**) हे चन्द्र [चन्द्रलोक !] (**यत्**) जो (**ते**) तेरा (**तेज**) तेज है, (**तेन**) उससे (**तम्**) उस [दोष] का (**अतेजसम्**) निस्तेज (**कृणु**) कर दे, (**य**) जो (**अस्मान्**) हमसे (**द्वेष्टि**) अप्रिय करे, [अथवा] (**यम्**) जिससे (**वयम्**) हम (**द्विष्म**) अप्रिय करें ॥५॥

卐 सूक्तम् २३ 卐

१—५ अथर्वा । आप (एकावसानम्) १—४ निचृद्विषमा गायत्री, ५ भुरिग्विषमा ।

आपो॒ यद् व॒स्तप॒स्तेन॒ तं प्रति॑ तपत॒ यो३॒॑ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः ॥१॥

पदार्थ—(**आप**) हे जल [जल पदार्थ !] (**यत्**) जो (**व**) तुम्हारा (**तप**) प्रताप है, (**तेन**) उससे (**तम् प्रति**) उस [दोष] पर (**तपत**) प्रतापी हो, (**य**) जो (**अस्मान्**) हमसे (**द्वेष्टि**) अप्रिय करे, [अथवा] (**यम्**) जिससे (**वयम्**) हम (**द्विष्म**) अप्रिय करें ॥१॥

भावार्थ—वृष्टि, नदी, कूप आदि का जल अनावृष्टि दोषो को मिटाकर अन्न आदि पदार्थों को उत्पन्न करके प्राणियो को बल और सुख देता है, और वही कुप्रबन्ध से दुख का कारण होता है । ऐसे ही राजा सामाजिक नियमो के विरोधी दुष्टो का नाश करके प्रजा को समृद्ध करता और सुख देता है ॥१॥

आपो॒ यद् वो॒ हर॒स्तेन॒ तं प्रति॑ हरत॒ यो३॒॑ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः ॥२॥

पदार्थ—(**आप**) हे जलो (**यत्**) जो (**व**) तुम्हारी (**हर**) नाशन शक्ति है, (**तेन**) उससे (**तम्**) उस [दोष] को (**प्रति हरत**) नाश कर डालो, (**य**) जो (**अस्मान्**) हमसे (**द्वेष्टि**) अप्रिय करे, [अथवा] (**यम्**) जिससे (**वयम्**) हम (**द्विष्म**) अप्रिय करें ॥२॥

आपो॒ यद् वो॑ऽर्चि॒स्तेन॒ तं प्रत्य॑र्चत॒ यो३॒॑ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः ॥३॥

पदार्थ—(**आप**) हे जलो ! (**यत्**) जो (**व**) तुम्हारी (**अर्चि**) दीपन शक्ति है, (**तेन**) उससे (**तम् प्रति**) उस [दोष] पर (**अर्चत**) प्रदीप्त हो, (**य**) जो (**अस्मान्**) हमसे (**द्वेष्टि**) अप्रिय करे, [अथवा] (**यम्**) जिससे (**वयम्**) हम (**द्विष्म**) अप्रिय करें ॥३॥

आपो॒ यद् वः॒ शोचि॒स्तेन॒ तं प्रति॑ शोचत॒ यो३॒॑ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः ॥४॥

पदार्थ—(**आप**) हे जलो ! (**यत्**) जो (**व**) तुम्हारी (**शोचि**) शोधन शक्ति है, (**तेन**) उससे (**तम्**) उस [दोष] को (**प्रति शोचत**) शुद्ध कर दो, (**य**) जो (**अस्मान्**) हमसे (**द्वेष्टि**) अप्रिय करे, [अथवा] (**यम्**) जिससे (**वयम्**) हम (**द्विष्म**) अप्रिय करें ॥४॥

आपो॒ यद् व॒स्तेज॒स्तेन॒ तम॑तेजसं॑ कृणुत॒ यो३॒॑ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः ॥५॥

पदार्थ—(**आप**) हे जलो ! (**यत्**) जो (**व**) तुम्हारा (**तेज**) तेज है, (**तेन**) उससे (**तम्**) उस [दोष को (**अतेजसम**) निस्तेज (**कृणुत**) कर दो (**य**) जो (**अस्मान्**) हमसे (**द्वेष्टि**) अप्रिय करे [अथवा] (**यम्**) जिससे (**वयम्**) हम (**द्विष्म**) अप्रिय करें ॥५॥

卐 सूक्तम् २४ 卐

१—८ ब्रह्मा । आयुष्यम् पङ्क्ति , १—२ पुर उष्णिक्, ३—४ पुरोदेवत्या पङ्क्ति (१—४ विराट्), ५—८ पञ्चपदा पथ्यापङ्क्ति । (५ भुरिक्, ६—७ निचृत्, ५ चतुष्पदाबृहती, ७—८ भुरिक्)

शेर॑भक॒ शेर॑भ॒ पुन॑र्वो यन्तु या॒तवः॒ पुन॑र्हे॒तिः कि॑मीदिनः ।
यस्य॒ स्थ तम॑त्त॒ यो वः॒ प्राहै॑त् तम॑त्त॒ स्वा मां॒सान्य॑त्त ॥१॥

पदार्थ—(**शेरभक**) अरे बधकपन मे मन लगाने वाले ! (**शेरभ**) अरे रग मे भग डालने वाले ! [दुष्ट !] और (**किमीदिन**) अरे लुतरे लोगो ! (**व**) तुम्हारी (**यातव**) पीडायें, और (**हेति**) चोट (**पुन पुन**) लौट लौट कर (**यन्तु**) चली जावें । तुम (**यस्य**) जिसके [साथी] (**स्थ**) हो, (**तम**) उस (**पुरुष**) को (**अत्त**) खाओ, (**य**) जिस [पुरुष] ने (**व**) तुमको (**प्राहैत्**=**प्राहैषीत्**) भेजा है, (**तम्**) उसको (**अत्त**) खाओ, (**स्वा**=**स्वानि**) अपने ही (**मांसानि**) मास की बोटियाँ (**अत्त**) खाओ ॥१॥

भावार्थ—जैसे नीतिनिपुण राजा अपने बुद्धिबल से ऐसा प्रबन्ध करता है कि शत्रु जो कुछ छलबल करे वह उसी को ही उलटा दुखदायी हो और उसके मनुष्य उसकी कुनीतियो को जान कर उसका ही नाश कर दें, और वे लोग आपस मे विरोध करके परस्पर मार डालें । इसी प्रकार आत्मजिज्ञासु पुरुष अपने शरीर और आत्मा की निर्बलता और दोषो और उनसे उत्पन्न दुष्ट फलो को समझ कर बुद्धिपूर्वक उन्हे एक-एक करके नाश करदे, और जितेन्द्रिय हो कर आनन्द भोगे ॥१॥

शेवृ॑धक॒ शेवृ॑ध॒ पुन॑र्वो यन्तु या॒तवः॒ पुन॑र्हे॒तिः कि॑मीदिनः ।
यस्य॒ स्थ तम॑त्त॒ यो वः॒ प्राहै॑त् तम॑त्त॒ स्वा मां॒सान्य॑त्त ॥२॥

पदार्थ—(**शेवृधक**) अरे बधकपन मे बढने वाले ! (**शेवृध**) अरे सुख के नाश करने वाले [दुष्ट !] और (**किमीदिन**) अरे लुतरे लोगो ! (**व**) तुम्हारी (**यातव**) पीडायें और (**हेति**) चोट (**पुन पुन**) लौट लौट कर (**यन्तु**) चली जावें । तुम (**यस्य**) जिसके [साथी] (**स्थ**) हो, (**तम्**) उस (**पुरुष**) को (**अत्त**) खाओ, (**य:**) जिस [पुरुष] ने (**व**) तुमको (**प्राहैत्**=**प्राहैषीत्**) भेजा है, (**तम्**) उसको (**अत्त**) खाओ, (**स्वा**=**स्वानि**) अपने ही (**मांसानि**) मास की बोटियाँ (**अत्त**) खाओ ॥२॥

म्रोका॑नुम्रोक॒ पुन॑र्वो यन्तु या॒तवः॒ पुन॑र्हे॒तिः कि॑मीदिनः ।
यस्य॒ स्थ तम॑त्त॒ यो वः॒ प्राहै॑त् तम॑त्त॒ स्वा मां॒सान्य॑त्त ॥३॥

पदार्थ—(**स्तोक**) अरे चोर ! (**अनुस्तोक**) अरे चोरों के साथी ! (**किमीदिनः**) अरे तुम लुटेरे लोगो ! (**वः**) तुम्हारी (**यातवः**) पीडायें और (**हेतिः**) चोट (**पुनः पुनः**) लौट लौट कर (**यन्तु**) चली जावें । तुम (**यस्य**) जिसके [साथी] (**स्थ**) हो, (**तम्**) उस [पुरुष] को (**अत्त**) खाओ, (**यः**) जिस [पुरुष] ने (**वः**) तुमको (**प्राहैत्**=**प्राहैषीत्**) भेजा है, (**तम्**) उसको (**अत्त**) खाओ, (**स्वा**=**स्वानि**) अपने ही (**मांसानि**) मास की बोटियाँ (**अत्त**) खाओ ॥३॥

सर्पानुसर्प पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥४॥

पदार्थ—(**सर्प**) अरे सांप [क्रूर स्वभाव !] (**अनुसर्प**) अरे सांपों के साथी ! (**किमीदिनः**) अरे तुम लुटेरे लोगो ! (**वः**) तुम्हारी (**यातवः**) पीडायें और (**हेतिः**) चोट (**पुनः पुनः**) लौट लौट कर (**यन्तु**) चली जावें । तुम (**यस्य**) जिसके [साथी] (**स्थ**) हो, (**तम्**) उस [पुरुष] को (**अत्त**) खाओ, (**यः**) जिस [पुरुष] ने (**वः**) तुमको (**प्राहैत्**= **प्राहैषीत्**) भेजा है, (**तम्**) उसको (**अत्त**) खाओ, (**स्वा**=**स्वानि**) अपने ही (**मांसानि**) मास की बोटियां (**अत्त**) खाओ ॥४॥

जूर्णि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥५॥

पदार्थ—(**जूर्णि**) अरी जूडी [जाडे के ज्वर] ! (**किमीदिनीः**=०—**न्यः**) अरी तुम लुतरियो ! [कुवासनाओ !] (**वः**) तुम्हारी (**यातवः**) पीडायें और (**हेतिः**) चोट (**पुनः पुनः**) लौट लौट कर (**यन्तु**) चली जावें । तुम (**यस्य**) जिसके [साथी] (**स्थ**) हो, (**तम्**) उस [पुरुष] को (**अत्त**) खाओ, (**यः**) जिस [पुरुष] ने (**वः**) तुमको (**प्राहैत्**=**प्राहैषीत्**) भेजा है, (**तम्**) उसको (**अत्त**) खाओ, (**स्वा**=**स्वानि**) अपने ही (**मांसानि**) मास की बोटियाँ (**अत्त**) खाओ ॥५॥

भावार्थ—जो नीतिज्ञ पुरुष अपने मन की कुवासनाओं और उनके कारण को जानकर उनको सर्वथा मिटाता है, वह वशिष्ठ महाउपकारी जितेन्द्रिय होकर संसार का उपकार करके आनन्दित होता है ॥५॥

उपब्दे पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥६॥

पदार्थ—(**उपब्दे**) अरी चिघाडने वाली ! और (**किमीदिनीः**=०—**न्यः**) अरी तुम लुतरियो [कुवासनाओ !] (**वः**) तुम्हारी (**यातवः**) पीडायें और (**हेतिः**) चोट (**पुनः पुनः**) लौट लौट कर (**यन्तु**) चली जावें तुम (**यस्य**) जिसके [साथी] (**स्थ**) हो, (**तम्**) उस [पुरुष] को (**अत्त**) खाओ, (**यः**) जिस [पुरुष] ने (**वः**) तुमको (**प्राहैत्**=**प्राहैषीत्**) भेजा है, (**तम्**) उसको (**अत्त**) खाओ, (**स्वा**=**स्वानि**) अपने ही (**मांसानि**) मास की बोटियाँ (**अत्त**) खाओ ॥६॥

भावार्थ—कुवासनाओं और कुचिन्ताओं से मनुष्य कठोरवादी हो जाता है ॥६॥

अर्जुनि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥७॥

पदार्थ—(**अर्जुनि**) अरे कुटिनी [दूती !] (**किमीदिनीः**=०—**न्यः**) अरी तुम लुतरियो ! [कुवासनाओ !] (**वः**) तुम्हारी (**यातवः**) पीडायें और (**हेतिः**) चोट (**पुनः पुनः**) लौट लौट कर (**यन्तु**) चली जावें । तुम (**यस्य**) जिसके [साथी] (**स्थ**) हो, (**तम्**) उस [पुरुष] को (**अत्त**) खाओ, (**यः**) जिस [पुरुष] ने (**वः**) तुमको (**प्राहैत्**=**प्राहैषीत्**) भेजा है, (**तम्**) उसको (**अत्त**) खाओ, (**स्वा**=**स्वानि**) अपने ही (**मांसानि**) मास की बोटियाँ (**अत्त**) खाओ ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में कुवासनाओं को कुटिनी वा दूती इत्यादि माना है। जो नीतिज्ञ पुरुष अपने मन की कुवासनाओं और उनके कारण को जानकर उनको सर्वथा मिटाता है, वह वशिष्ठ महाउपकारी जितेन्द्रिय होकर संसार का उपकार करके आनन्दित होता है ॥७॥

भरूजि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥८॥

पदार्थ—(**भरूजि**—**भरुजि**) अरी नीच शृगाली [गीदडनी, लोमडी !] (**किमीदिनीः**=०—**न्यः**) अरी तुम लुतरियो [कुवासनाओ !] (**वः**) तुम्हारी (**यातवः**) पीडायें, और (**हेतिः**) चोट (**पुनः पुनः**) लौट लौट कर (**यन्तु**) चली जावें । तुम (**यस्य**) जिसकी [साथिनी] (**स्थ**) हो, (**तम्**) उस [पुरुष] को (**अत्त**) खाओ, (**यः**) जिस [पुरुष] ने (**वः**) तुम को (**प्राहैत्**) भेजा है, (**तम्**) उसे (**अत्त**) खाओ, (**स्वा**=**स्वानि**) अपने ही (**मांसानि**) मास की बोटियाँ (**अत्त**) खाओ ॥८॥

भावार्थ—[भरूजी वा भरुजी] गीदडनी को कहते हैं। जैसे गीदडनी छल-कपट करके पीडा देती है, ऐसे ही मनुष्य कुवासनाओं के कारण कपटी छली होकर सताने लगता है। कुवासनाओं के नाश करने का उपाय पुरुष को प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये ॥८॥

卐 सूक्तम् २५ 卐

१—५ चातन । वनस्पति । अनुष्टुप् । ४ भुरिक् ।

शं नो देवी पृश्निपर्ण्यशं निर्ऋत्या अकः ।
उग्रा हि कण्वजम्भनी तामभक्षि सहस्वतीम् ॥१॥

पदार्थ—(**देवी**) दिव्य गुण वाली (**पृश्निपर्णी**) सूर्य वा पृथिवी की पालने वाली [अथवा, सूर्य वा पृथिवी जैसे पत्तेवाली ओषधि रूप परमेश्वरी शक्ति] ने (**नः**) हमारे [पुरुषार्थियों के] लिए (**शम्**) सुख, और (**निर्ऋत्यै**) दुःखदायिनी अलक्ष्मी, महामारी आदि पीडा के लिए (**अशम्**) दुःख (**अकः**=**अकार्षीत्**) किया है। (**हि**) क्योंकि वह शक्ति (**उग्रा**) प्रचण्ड और (**कण्वजम्भनी**) पाप का नाश करने वाली है, [इसलिए] (**ताम्**) उस (**सहस्वतीम्**) बलवती को (**अभक्षि**) मैंने भजा वा पूजा है ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर ने सूर्य आदि बडे-बडे लोकों को धारण किया है और जैसे पृथिवी पर अन्नादि ओषधियां अपने पत्ते, फलादि से उपकार करती हैं, वैसे ही परमेश्वर की सृष्टि में सूर्यादि लोक आकर्षण, धारण, वृष्टि आदि से परस्पर उपकारी होते हैं, परमेश्वर अपने आज्ञापालक पुरुषार्थियों को सुख, और आज्ञानाशक कर्महीनों को दुःख देता है। उस दयालु और प्रचण्ड परमात्मा की आज्ञा मानकर हम सदा आनन्द भोगें ॥१॥

सहमानेयं प्रथमा पृश्निपर्ण्यजायत ।
तयाहं दुर्णाम्नां शिरो वृश्चामि शकुनेरिव ॥२॥

पदार्थ—(**सहमाना**) जीतने वाली (**इयम्**) यह (**पृश्निपर्णी**) सूर्य वा पृथिवी की पालने वाली [अथवा सूर्य वा पृथिवी जैसे पत्तेवाली ओषधि रूप परमेश्वरी शक्ति] (**प्रथमा**) सबसे पहिले (**अजायत**) प्रकट हुई है। (**तया**) उस [शक्ति] से (**अहम्**) मैं (**दुर्णाम्नाम्**) बुरे नाम वाले दोषों के (**शिरः**) शिर को (**वृश्चामि**) तोड डालूं, (**इव**) जैसे (**शकुनेः**) पक्षी के [शिर को तोड डालते हैं] ॥२॥

भावार्थ—मनुष्य आदि कारण परमेश्वर के विश्वास पर अपना शारीरिक और आत्मिक बल बढाकर अपने शत्रुओं और दोषों का नाश करके आनन्द भोगें ॥२॥

अरायमसृक्पावानं यश्च स्फातिं जिहीर्षति ।
गर्भादं कण्वं नाशय पृश्निपर्णि सहस्व च ॥३॥

पदार्थ—(**पृश्निपर्णि**) हे सूर्य वा पृथिवी की पालने वाली [अथवा सूर्य वा पृथिवी जैसे पत्तेवाली ओषधि रूप परमेश्वरी शक्ति] (**अरायम्**) निर्धनता को, (**च**) और (**यः**) जो [रोग] (**स्फातिम्**) बढवार को (**जिहीर्षति**) छीनना चाहे, [उस] (**असृक्पावानम्**) रक्त पीने वाले, और (**गर्भादम्**) गर्भ खाने वाले [गर्भाधान शक्ति का नाश करने वाले] (**कण्वम्**) पाप [रोग] को (**सहस्व**) जीत ले (**च**) और (**नाशय**) मिटा दे ॥३॥

भावार्थ—जिन आलस्यादि दोषों और ब्रह्मचर्यादि के खण्डन रूप कुकर्मों से हम धनहीन तनक्षीण, मनमलीन होकर वंशच्छेद करें, ऐसे दोषों को हम सर्वथा त्यागें, और उस [पृश्निपर्णी] सूर्यादि जगत् के रक्षक, पोषक, अखण्डव्रत परमात्मा का ध्यान करके विद्यावृद्धि, धनवृद्धि और कुलवृद्धि करके आनन्द भोगें ॥३॥

गिरिमेनाँ आ वेशय कण्वान् जीवितयोपनान् ।
तांस्त्वं देवि पृश्निपर्ण्यग्निरिवानुदहन्निहि ॥४॥

पदार्थ—(**देवि**) हे दिव्य गुण वाले (**पृश्निपर्णि**) सूर्य वा पृथिवी की पालने वाली [अथवा सूर्य वा पृथिवी जैसे पत्तेवाली ओषधिरूप परमेश्वरी शक्ति] (**एनान्**) इन (**जीवितयोपनान्**) प्राणों के मोहने वाले [व्याकुल करने वाले] (**कण्वान्**) पाप रोगों को (**गिरिम्**) पहाड [अगम्य स्थान] में (**आ वेशय**) गाड दे। और (**त्वम्**) तू (**अनुदहन्**) क्रम से दाह करती हुई (**अग्निः इव**) आग के समान (**तान्**) उन पर (**इहि**) पहुँच ॥४॥

भावार्थ—जिन [कण्वान्] आत्मदोषों से मनुष्य का जीवन द्विविधा में और विघ्न में फसकर अपकीर्ति मिले, उन दुःखदायी दोषों को परमेश्वर का सहाय लेकर सर्वथा नाश करे ॥४॥

पराच एनान् प्र णुद कण्वान् जीवितयोपनान् ।
तमांसि यत्र गच्छन्ति तत् क्रव्यादो अजीगमम् ॥५॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर] (**एतान्**) इन (**जीवितयोपनान्**) प्राणों के मोहने वाले (**क्रव्यान्**) पाप रोगों को (**पराच**) औंधेमुख (**प्र सुव**) ढकेल दे। (**यत्र**) जहां (**तमांसि**) अन्धकार (**गच्छन्ति**) व्याप्त रहते है, (**तत्**—**तत्र**) वहां (**क्रव्याद**) मांस खाने वाले [रोगों] को (**अजीगमम्**) मैंने पहुँचा दिया है ॥५॥

भावार्थ—जैसे राजा महापापी दुराचारी पुरुष को बन्ध करके अंधेरे कारागार में डाल देता है, इसी प्रकार पुरुषार्थी पुरुष व्यायाम करने और पथ्य पदार्थों के सेवन से आलस्य, ज्वर आदि शारीरिक रोगों को मिटाकर अविद्यादि मानसिक रोगों का नाश करें ॥५॥

卐 सूक्तम् २६ 卐

१—५ सविता। पशव। त्रिष्टुप्, ३ उपरिष्टाद्विराड् बृहती, ४ भुरिगनुष्टुप्, ५ अनुष्टुप्।

एह यन्तु पशवो ये परेयुर्वायुर्येषां सहचारं जुजोष।
त्वष्टा येषां रूपधेयानि वेदास्मिन् तान् गोष्ठे सविता नि यच्छतु ॥१॥

पदार्थ—(**पशव**) वे पशु [गौ आदि वा मनुष्यादि प्राणी] (**इह**) यहां (**आ यन्तु**) आ जावे, (**ये**) जो (**परेयु**) भटक गये है। (**येषाम्**) जिनके (**सहचारम्**) साथ साथ चलना (**वायु**) पवन ने (**जुजोष**) अङ्गीकार किया है। (**त्वष्टा**) सूक्ष्म क्रियाओं का रचने वाला [सूक्ष्मदर्शी पुरुष] (**येषाम्**) जिनके (**रूपधेयानि**) रूपों [शारीरिक रूपों और मानसिक स्वभावों] को (**वेद**) पहिचानता है, (**सविता**) वह सब का चलाने वाला [गोपाल वा सभाप्रधान पुरुष] (**तान्**) उन [पशुओं] को (**अस्मिन्**) इस (**गोष्ठे**) [गोठ, अर्थात् गोशाला वा सभा] में (**नियच्छतु**) बाध कर रक्खे ॥१॥

भावार्थ—इस सूक्त मे [पशु] शब्द का अर्थ गौ आदि और सब प्राणी मात्र है। "पशु व्यक्त वाणी वाले और अव्यक्त वाणी वाले है—" निरु० ११। २९। अर्थात् मनुष्य आदि और गौ आदि। जैसे विचारशील गोपाल, गोरक्षक वायु लगने से इधर उधर भटकते हुए गौआदि पशुओं को प्रेम के साथ बाड़े मे लाकर बाधता है, वैसे ही सूक्ष्मदर्शी प्रधान पुरुष अपने आश्रितों और सम्बन्धियों को जो वायु लगने अर्थात् कुसंस्कार पाने से भटक गये हो, उन्हे उपकार और प्रीति की दृष्टि से एकत्र करके सभा मे नियमबद्ध करे ॥१॥

इमं गोष्ठं पशवः सं स्रवन्तु बृहस्पतिरा नयतु प्रजानन्।
सिनीवाली नयत्वाग्रमेषामाजग्मुषो अनुमते नि यच्छ ॥२॥

पदार्थ—(**पशव**) सब पशु [गौ आदि वा मनुष्यादि प्राणी] (**इमम्**) इस (**गोष्ठम्**) स्थिर वचन वाले पुरुष [गोपाल वा प्रधान] से (**सम् स्रवन्तु**) आ आकर मिलें और वह (**बृहस्पति**) बड़े बड़ों का स्वामी [गोपाल वा सभापति] (**प्रजानन्**) पहचान पहचान कर [उनको] (**आ नयतु**) ले आवे (**सिनीवाली**) अन्न देने वाली देवी [गृहपत्नी वा नीतिविद्या, आप] (**एषाम्**) इन का (**अग्रम्**) आगमन (**आ नयतु**) स्वीकार करे। (**अनुमते**) हे अनुकूल बुद्धि वाली [गृहपत्नी वा नीतिविद्या] (**आजग्मुष**) इन आये हुओं को (**नियच्छ**) नियम मे बाध कर रख ॥२॥

भावार्थ—जैसे सायकाल मे गौ आदि मिल कर अपने गो वाले के पास आते है, और [बृहस्पति] बड़े उपकारी गौ आदि का रक्षक उनको ढूढ-ढूढ कर लाता है, और उस की गृहपत्नी आगे आकर उनको अन्न तृण आदि देकर प्रसन्न करती और अपने-अपने स्थान पर बाध देती हैं, इसी प्रकार उत्तम सभापति अपने सगठित सभासदों को यथायोग्य आसन दे और नीति अर्थात् सुशीलता और विनय के साथ उनका आदर-सत्कार करके नियम मे रक्खे ॥२॥

सं संस्रवन्तु पशवः समश्वाः समु पूरुषाः।
सं धान्यस्य या स्फातिः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥३॥

पदार्थ—(**पशव**) गौ आदि (**सम्**) मिलकर, (**अश्वा**) घोड़े (**सम्**) मिल कर, (**उ**) और (**पूरुषा**) सब पुरुष (**सम् सम्**) मिल मिल कर (**स्रवन्तु**) चलें। और (**या**) जो (**धान्यस्य**) धान्य [अन्न] की (**स्फाति**) बढ़ती है, [वह भी] (**सम्—सम् स्रवन्तु**) मिल कर चले। (**संस्राव्येण**) कोमलता से युक्त (**हविषा**) भक्ति वा अन्न के साथ [उन सब को] (**जुहोमि**) मैं ग्रहण करूं ॥३॥

भावार्थ—सब उपकारी गौ, अश्व आदि पशु और मनुष्य नियम के साथ मिल कर रहे एव प्रयत्नपूर्वक पुष्कल जीविका प्राप्त करें, और प्रधान पुरुष उन के शिक्षा-दान तथा भरण-पोषण की यथोचित सुधि रक्खे ॥३॥

सं सिञ्चामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम्।
संसिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावो मयि गोपतौ ॥४॥

पदार्थ—(**गवाम्**) गौओं का (**क्षीरम्**) दूध [अपने मनुष्यों पर] (**सम्**) यथानियम (**सिञ्चामि**) मैं सींचता हूँ, और [उन मनुष्यों के] (**बलम्**) बल और (**रसम्**) शरीर पोषक धातु को (**आज्येन**) घृत से (**सम्**) यथानियम [सींचता हूँ] (**अस्माकम्**) हमारे (**वीरा**) वीर पुरुष [दूध घी आदि से] (**संसिक्ता**) अच्छे प्रकार सिंचे रहे, [इसलिए] (**मयि**) मुझ (**गोपतौ**) गोपति मे (**गाव**) गौएँ (**ध्रुवा**) स्थायी [रहे] ॥४॥

भावार्थ—मनुष्य प्रयत्न से गौओं की रक्षा करके उन के दूध घी आदि के सेवन से अपने और अपने पुरुषों के शारीरिक धातुओं को पुष्ट करके और बल और बुद्धि बढ़ा कर शूरवीर बनावें। इसी प्रकार जो प्रधान पुरुष अपने उपकारी सभासदों का भरण, पोषण आदि उचित व्यवहार से पुष्ट करते रहते हैं, वही नीतिनिपुण ससार की वृद्धि करते है ॥४॥

आ हरामि गवां क्षीरमाहार्षं धान्यं रसम्।
आहृता अस्माकं वीरा आ पत्नीरिदमस्तकम् ॥५॥

पदार्थ—(**गवाम्**) गौओं के (**क्षीरम्**) दूध को (**आ हरामि**) मैं प्राप्त करूं, [क्योंकि दूध से] (**धान्यम्**) पोषण वस्तु अन्न और (**रसम्**) शारीरिक धातु को (**आ अहार्षम्**) मैंने पाया है। (**अस्माकम्**) हमारे (**वीरा**) वीर पुरुष (**आहृता**) लाये गये है, और (**पत्नी**—**पत्न्य**) पत्निया भी (**इदम्**) इस (**अस्तकम्** **अस्तम्**) घर मे (**आ**—**आहृता**) लाई गई हैं ॥५॥

भावार्थ—मनुष्यों को सदा गौओं की रक्षा करनी चाहिये, जिससे सब स्त्री-पुरुष दूध घी का सेवन करके हृष्ट पुष्ट होकर शूरवीर रहे और घरो मे सब प्रकार की सम्पत्ति बढ़ती जावे ॥५॥

卐 इति चतुर्थोऽनुवाक. 卐

卐

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् २७ 卐

१—७ कपिंजल। १—५ वनस्पति, ६ रुद्र, ७ इन्द्र, अनुष्टुप्।

नेच्छत्रुः प्राशं जयाति सहमानाभिभूरसि।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥१॥

पदार्थ—(**शत्रु**) वैरी (**प्राशम्**) प्रश्नकर्ता [मुझ] को (**न इत्**) कभी न (**जयाति**) जीते, [हे बुद्धि] तू (**सहमाना**) जयशील और (**अभिभू**) प्रबल (**असि**) है। (**प्राशम्**) [मुझ] प्रश्नकर्ता के (**प्रतिप्राश**) प्रतिकूलवादियों को (**जहि**) मिटादे, (**ओषधे**) हे ताप को पीने वाली [ज्वरादि ताप हरने वाली औषध के समान बुद्धि ! उन सबको] (**अरसान्**) नीरस [फीका] (**कृणु**) कर ॥१॥

भावार्थ—इस सूक्त मे ओषधि के उदाहरण से बुद्धि का ग्रहण है। ओषधि का अर्थ निरु० ९।२७ मे किया है 'ओषधियें ओषत्, दाह वा ताप को पी लेती हैं अथवा ताप मे इन को पीते है, अथवा ये दोष को पी लेती हैं'।

मन्त्र का आशय यह है कि जिस प्रकार शुद्ध परीक्षित ओषधि के सेवन करने से ज्वर आदि रोग नाश होते हैं, ऐसे ही मनुष्य के बुद्धिपूर्वक, प्रमाणयुक्त विवाद करने से बाहिरी और भीतरी प्रतिपक्षी हार जाते है ॥१॥

सुपर्णस्त्वान्वविन्दत् सूकरस्त्वाखनन्नसा।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥२॥

पदार्थ—(**सुपर्ण**) सुन्दर पक्ष वाले [गरुड, गिद्ध आदि पक्षी के समान दूरदर्शी पुरुष] ने (**त्वा**) तुझ को (**अनु**—**अन्विष्य**) ढूढ कर (**अविन्दत्**) पाया है, (**सूकर**) सूकर [सूअर पशु के समान तीव्रबुद्धि और बलवान् पुरुष] ने (**त्वा**) तुझ को (**नसा**) नासिका से (**अखनत्**) खोदा है। (**प्राशम्**) मुझ प्रश्न कर्त्ता के (**प्रतिप्राश**) प्रतिवादियों को (**जहि**) मिटा दे, (**ओषधे**) हे ताप को पी लेने वाली [ओषधि के समान बुद्धि ! उन सब को] (**अरसान्**) फीका (**कृणु**) कर ॥२॥

भावार्थ—[सुपर्ण] गिद्ध, मोर आदि पक्षी बड़े तीव्रदृष्टि होते हैं। और सूकर एक बलवान् पशु अपनी नासिका से अपने खाद्य तृणों को पृथिवी में से खोद कर खा जाता है। इसी प्रकार दूरदर्शी, परिश्रमी और बलवान् पुरुष बुद्धि की महिमा को साक्षात् करके यथायोग्य इसका प्रयोग करते हैं और सदा जय पाते हैं ॥२॥

इन्द्रो ह चक्रे त्वा बाहावसुरेभ्य स्तरीतवे।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥३॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष ने (**ह**) ही (**त्वा**) तुझको (**बाहौ**) अपनी भुजा पर (**असुरेभ्य**) असुरों से (**स्तरीतवे**) रक्षा के लिये (**चक्रे**) किया है। (**प्राशम्**) [मेरे] प्रश्न के (**प्रतिप्राश**) प्रतिवादियों को (**जहि**) मिटा

दे, (ओषधे) हे ताप को पीने वाली [ओषधि के समान बुद्धि ! उन सब को] (अरसान्) फीका (कृधि) कर ॥३॥

भावार्थ—(इन्द्र) महाप्रतापी महाबली पुरुष ही अपने बुद्धिबल से (असुर) देवताओं के विरोधी अधर्मियों का नाश करते आये हैं, करते हैं और करेंगे ॥३॥

पाटामिन्द्रो व्याश्नादसुरेभ्य स्तरीतवे ।

प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्र) बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष ने (पाटाम्) चमकती हुई [ओषधि रूप बुद्धि] को (असुरेभ्य) असुरों से (स्तरीतवे) रक्षा के लिए (वि) विविध प्रकार से (आश्नात्) भोजन किया है । (प्राशम्) मुझ वादी के (प्रतिप्राश) प्रतिवादियों को (जहि) मिटा दे । (ओषधे) हे ताप को पी लेने वाली [ओषधि के समान बुद्धि ! उन सब को] (अरसान्) फीका (कृधि) कर ॥४॥

भावार्थ—जैसे उत्तम ओषधि के सेवन से रोग का नाश होकर शरीर और चित्त को आनन्द मिलता है, वैसे ही ऐश्वर्यशाली पुरुष बुद्धि के यथावत प्रयोग से शत्रुओं का नाश करके शान्तिलाभ करते हैं ॥४॥

तयाहं शत्रून्त्साक्ष इन्द्रः सालावृकाँ इव ।

प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ।५।

पदार्थ—(अहम्) मैं (तया) उस [ओषधि रूप बुद्धि] से (शत्रून्) वैरियों को (साक्षे) हरा दूं, (इन्द्र) ऐश्वर्यशाली [गृह पति] (सालावृकान् इव) जैसे घर के भेड़ियों, कुत्ते, बिलाव आदिकों को (प्राशम्) मुझ वादी के (प्रतिप्राश) प्रतिवादियों को (जहि) मिटा दे । (ओषधे) हे ताप को पी लेने वाली [ओषधि के समान बुद्धि ! उन सब को] (अरसान्) फीका (कृधि) कर ॥५॥

भावार्थ—जैसे ओषधि बल से रोग निवृत्त होता है, वैसे ही मनुष्य बुद्धि-बल से, अपने दोषों और शत्रुओं का नाश करके आनन्द लाभ करे ॥५॥

रुद्र जलाषभेषज नीलशिखण्ड कर्मकृत् ।

प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥६॥

पदार्थ—(रुद्र) हे ज्ञान प्रापक ! हे दु ख विनाशक ! (जलाषभेषज) हे सुखदायक ओषधि वाले ! (नीलशिखण्ड) हे निधियों वा निवास स्थानों के प्राप्त कराने वाले ! (कर्मकृत्) हे कार्य्य मे कुशल पुरुष ! (प्राशम्) मुझ वादी के (प्रतिप्राश) प्रतिवादियों को (जहि) मिटा दे, (ओषधे) हे ताप को पीने वाली [ओषधि रूप बुद्धि ! उन सब को] (अरसान्) फीका (कृधि) कर दे ॥६॥

भावार्थ—जैसे उपकारी चतुर सद्वैद्य सुपरीक्षित ओषधियों से संसार में उपकार करते हैं, वैसे ही मनुष्यों को अपने बुद्धिप्रभाव से कार्यकुशल होकर सदा उपकारी रहना चाहिये ॥६॥

तस्य प्राशं त्वं जहि यो न इन्द्राभिदासति ।

अधि नो ब्रूहि शक्तिभिः प्राशि मामुत्तरं कृधि ।।७॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले [पुरुष !] (त्वम्) तू (तस्य) उस पुरुष के (प्राशम्) प्रश्न को (जहि) मिटा दे, (य) जो (न) हमको (अभि—दासति) दबावे । (न) हमसे (शक्तिभि) अपनी शक्तियों के साथ (अधि) अधिकार पूर्वक (ब्रूहि) कथन कर, और (प्राशि) विवाद मे (माम्) मुझ को (उत्तरम्) अधिक उत्तम (कृधि) कर दे ॥७॥

भावार्थ—जैसे न्यायी राजा सत्यवादी को जिताता और मिथ्यावादी को हराता है, वैसे ही प्रत्येक मनुष्य अपने कुविचारों को दबाकर और सुविचारों को प्रबल करके आनन्द भोगे । ऐसे ही मनुष्य [इन्द्र] परम सामर्थ्य वाले होते है ॥७॥

卐 सूक्तम् २८ 卐

१—५ शम्भु । १—३ जरिमा, आयु, मित्रावरुणौ, ३—५ द्यावापृथिव्यादयो देवता । त्रिष्टुप्, १ जगती, ५ भुरिक् ।

तुभ्यमेव जरिमन् वर्धतामयं मेममन्ये मृत्यवो हिंसिषुः शतं ये ।

मातेव पुत्रं प्रमना उपस्थे मित्र एनं मित्रियात् पात्वंहसः ॥१॥

पदार्थ—(जरिमन्) हे स्तुतियोग्य परमेश्वर ! (तुभ्यम्) तेरे [शासन मानने के] लिये (एव) ही (अयम्) यह पुरुष (वर्धताम्) बढ़े, (ये) जो (अन्ये) दूसरे (शतम्) सौ (मृत्यव) मृत्यु हैं, [वे] (इमम्) इस पुरुष को (मा हिंसिषुः) न मारें । (प्रमना) प्रसन्न मन (माता इव) माता जैसे (पुत्रम्) कुलशोधक पुत्र को (उपस्थे) गोद मे [पालती है वैसे ही] (मित्र) मृत्यु से बचाने वाला, वा बड़ा स्नेही परमेश्वर (एनम्) इस पुरुष को (मित्रियात्) मित्र सम्बन्धी (अंहस) पाप से (पातु) बचावे ॥१॥

भावार्थ—मनुष्य अपने जीवन को सदैव ईश्वर की आज्ञा पालन अर्थात् शुभ कर्म करने मे बितावे, और प्रयत्न करे कि उसकी मृत्यु निन्दनीय कामों मे कभी न हो और न उसके मित्रों मे फूट पड़े और न वे दुष्कर्मी हों । और न कोई दुष्ट पुरुष अपने मित्रों को सता सके । जैसे प्रसन्नचित्त विदुषी माता की गोद मे बालक निर्भय क्रीडा करता है, वैसे ही वह नीतिज्ञ पुरुष परमेश्वर की शरण पाकर अपने भाई बन्धुओं के बीच सुरक्षित रह कर आनन्द भोगे ॥१॥

मित्र एनं वरुणो वा रिशादा जरामृत्युं कृणुतां संविदानौ ।

तदग्निर्होता वयुनानि विद्वान् विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति ॥२॥

पदार्थ—(मित्र) सर्व प्रेरक, काम मे लगाने वाला दिन का समय (वा) और (रिशादा) श्रम का भक्षण करने वाला (वरुण) रात्रि का समय (संविदानौ) दोनों मिले हुए (एनम्) इस पुरुष को (जरामृत्युम्=जरा-अमृत्यु जरा-मृत्युं वा) स्तुति के साथ अमर, अथवा, स्तुति वा बुढ़ापे से मृत्यु वाला (कृणुताम्) करें । (तत्) इसलिये (होता) महादानी और (वयुनानि) सब व्यवस्थाओं को (विद्वान्) जानने वाला (अग्नि) अग्नि [तेजस्वी परमेश्वर] (देवानाम्) दिव्य पदार्थों वा महात्माओं के (विश्वा=विश्वानि) सब (जनिमा=०—मानि) जन्म विधानों को (विवक्ति) बतलावे ॥२॥

भावार्थ—जो मनुष्य दिन और रात ईश्वर की आज्ञा पालन मे लगे रहते हैं, वे ही अन्त मे यशस्वी होते हैं, और सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी परमेश्वर उनके हृदय मे सब उत्तम-उत्तम व्यवस्थाओं और नियमों को प्रकट करता जाता है ॥२॥

त्वमीशिषे पशूनां पार्थिवानां ये जाता उत वा ये जनित्राः ।

मेमं प्राणो हासीन्मो अपानो मेमं मित्रा वधिषुर्मो अमित्राः ॥३॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (त्वम्) तू (पार्थिवानाम्) पृथिवी पर के (पशूनाम्) पशुओं [जीवों] का (ईशिषे) स्वामी है, (ये) जो (जाता) उत्पन्न हो चुके है (उत) और (वा) अथवा (ये) जो (जनित्रा) उत्पन्न होंगे । (इमम्) इस पुरुष को (प्राण) प्राण [बाहिर जाने वाला श्वास] (मा हासीत्) न त्यागे, (मो=मा+उ) और न (अपान) अपान [भीतर आने वाला प्रश्वास] (इमम्) इस पुरुष को (मित्रा) मित्र (मा वधिषु) न मारें, (मो=मा+उ) और न (अमित्रा) अमित्र [विरोधी अर्थात् वैरी लोग] ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर महा उपकार करके संसार के चर और अचर का शासक और नियन्ता है, इसी प्रकार मनुष्य को उपकारी होकर प्रयत्न करना चाहिए कि उसका स्वयं, आत्मा और अन्य मित्र अथवा शत्रु सब प्रीति से आनन्द बढ़ाते रहें ॥३॥

द्यौष्ट्वा पिता पृथिवी माता जरामृत्युं कृणुतां संविदाने ।

यथा जीवा अदितेरुपस्थे प्राणापानाभ्यां गुपितः शतं हिमाः ॥४॥

पदार्थ—(पिता) पिता [के समान रक्षक] (द्यौः) सूर्य लोक और (माता) माता [के समान प्रीति करने वाली] (पृथिवी) पृथिवी लोक, (संविदाने) दोनों मिले हुए, (त्वा) तुझको (जरामृत्युम्=जरा-अमृत्यु जरा-मृत्युं वा) स्तुति के साथ अमर, अथवा, स्तुति वा बुढ़ापे से मृत्यु वाला (कृणुताम्) करें । (यथा) जिस से (अदिते) अखण्ड परमेश्वर [अथवा अदीन प्रकृति, वा पृथिवी] की (उपस्थे) गोद मे (प्राणापानाभ्याम्) प्राण और अपान से (गुपित) रक्षा किया हुआ तू (शतम्) सौ (हिमा) हेमन्त ऋतुओं तक (जीवा) जीता रहे ॥४॥

भावार्थ—पुरुषार्थी पुरुष प्रबन्ध रक्खे कि सूर्य का तेज और आकर्षण आदि सामर्थ्य और पृथिवी की अन्न आदि की उत्पादनादि शक्ति, और अन्य सब पदार्थ अनुकूल रहें, जैसे माता-पिता सन्तानों पर प्रीति रखते हैं, जिससे वह पुरुष परमेश्वर के अनुग्रह से पृथिवी पर यशस्वी होकर पूर्ण आयु भोगे ॥४॥

इममग्न आयुषे वर्चसे नय प्रियं रेतो वरुण मित्र राजन् ।

मातेवास्मा अदिते शर्म यच्छ विश्वे देवा जरदष्टिर्यथासत् ।।५॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि तत्त्व ! (वरुण) हे जल तत्त्व ! (राजन्) हे बड़ी शक्ति वाले (मित्र) चेष्टा कराने वाले प्राण वायु ! (इमम्) इस पुरुष को (आयुषे) आयु [बढ़ाने] के लिए और (वर्चसे) तेज वा अन्न के लिए (प्रियम्) प्रसन्न करने वाला (रेत) वीर्य का सामर्थ्य (नय) प्राप्त करा । (अदिते) हे अदीन वा अखण्ड प्रकृति वा भूमि ! (माता इव) माता के समान (अस्मै) इस जीव को (शर्म) आनन्द (यच्छ) दान कर । (विश्वे) हे सब (देवा) दिव्य पदार्थ वा महात्माओं ! (यथा) जिससे [यह पुरुष] (जरदष्टिः) स्तुति के साथ प्रवृत्ति वा भोजन वाला (असत्) होवे ॥५॥

भावार्थ—मनुष्य अग्नि, जल, वायु, और पृथिवी तत्त्वों को प्रयत्नपूर्वक उचित खान पान, ब्रह्मचर्यादि के नियम पालन से अनुकूल रक्खे, जिससे शरीर की पुष्टि और आत्मा की उन्नति करके उत्साही और यशस्वी होवें ॥५॥

卐 सूक्तम् २९ 卐

१—७ अथर्वा । १ अग्नि सूर्य, बृहस्पति, २ जातवेदा सविता, ३ इन्द्र, ४—५ द्यावापृथिवी विश्वेदेवा, मरुत, आप, ६ अश्विनौ, ७ इन्द्र । त्रिष्टुप्, १ अनुष्टुप्, ४ पराबृहती निचृत्प्रस्तारपंक्ति ।

पार्थिवस्य रसे देवा भगस्य तन्वो३ बले ।
आयुष्यमस्मा अग्निः सूर्यो वर्च आ धाद् बृहस्पतिः ॥१॥

पदार्थ—(देवा) हे व्यवहारकुशल महात्माओ ! (अग्नि) सर्वव्यापक, (सूर्य) लोकों में चलने वाला, वा लोकों का चलाने वाला, (बृहस्पति) बड़े बड़े [ब्रह्माण्डों] का रक्षक परमेश्वर ! (पार्थिवस्य) पृथिवी पर वर्त्तमान (भगस्य) ऐश्वर्य के (तन्व) विस्तार के (रसे) रस अर्थात् तत्त्व ज्ञान, और (बले) बल में (अस्मै) इस [जीव] को (आयुष्यम्) आयु बढ़ाने वाला (वर्च) तेज [शरीर कान्ति और ब्रह्मवर्चस्] (आ) सब ओर से (धात् धत्तात्) देवे ॥१॥

भावार्थ—मनुष्य विद्वानों के सत्सग से आध्यात्मिक पक्ष में परमेश्वर के ज्ञान से, और आधिभौतिक पक्ष में (अग्नि) जो बिजुली आदि रूप से सब शरीरों में बड़ा उपयोगी पदार्थ है, और (सूर्य) जो अनेक बड़े बड़े लोकों को अपने आकर्षण आदि में रखता है, इनके विज्ञान से, अपनी शरीर कान्ति और आत्मिक शक्ति बढ़ावें और पृथिवी आदि पदार्थों के सारतत्त्व से उपकार लेकर प्रतापी, यशस्वी, और चिरजीवी बनें ॥१॥

आयुरस्मै धेहि जातवेदः प्रजां त्वष्टरधिनिधेह्यस्मै ।
रायस्पोषं सवितरा सुवास्मै शतं जीवाति शरदस्तवायम् ॥२॥

पदार्थ—(जातवेद) हे प्राणियों को जानने वा धन देने वाले परमेश्वर ! [वा अग्नि] (अस्मै) इस [जीव] को (आयु) आयु (धेहि) दे, (त्वष्ट) हे सूक्ष्म रचना करने वाले परमेश्वर ! [वा सूर्य] (अस्मै) इसको (प्रजाम्) प्रजा जन (अधि-निधेहि) अधिक अधिक संग्रह कर । (सवित) हे परम ऐश्वर्य वाले परमेश्वर ! [वा सूर्य] (अस्मै) इसको (राय) धन की (पोषम्) पुष्टता (आसुव) भेज दे, (तव) तेरा [सेवक] (अयम्) यह [जीव] (शतम्) सौ (शरद) शरद् ऋतुओं तक (जीवाति) जीता रहे ॥२॥

भावार्थ—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के गुणों का विचार कर मनुष्य को (जातवेदा) अपने लोगों का जानने वाला, (त्वष्टा) विश्वकर्मा, सब कामों में कुशल और (सविता) महाप्रतापी होकर अपनी सामाजिक और आर्थिक शक्ति बढ़ा कर और संसार में कीर्ति फैला कर पूर्ण आयु भोगनी चाहिए। अग्नि के प्रभाव से शरीर में चेष्टा होती है, और सूर्य से वृष्टि, वृष्टि से अन्न, अन्न से बल होता है। जो मनुष्य योग्य प्रयोग से इनको अनुकूल रखता है वह प्रजावान्, धनवान् और आयुष्मान् होता है ॥२॥

आशीर्ण ऊर्जमुत सौप्रजास्त्वं दक्षं धत्तं द्रविणं सचेतसौ ।
जयं क्षेत्राणि सहसायमिन्द्र कृण्वानो अन्यानधरान्त्सपत्नान् ॥३॥

पदार्थ—(न) हमारे लिए (आशी) आशीर्वाद [हो] (सचेतसौ) हे समान चित्त वाले [माता पिता तुम दोनो] ! (ऊर्जम्) अन्न, (सौप्रजास्त्वम् ०=अस्त्वम्) उत्तम प्रजायें, (दक्षम्) बल, (उत) और (द्रविणम्) धन (धत्तम्) दान करो। (इन्द्र) हे परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर ! (अयम्) यह [जीव](सहसा) [आप के] बल से (जयम्) जय और (क्षेत्राणि) ऐश्वर्य के कारण खेतों को (कृण्वान) करता हुआ, और (अन्यान्) जीवित [वा भिन्न भिन्न] (सपत्नान्) विपक्षियों को (अधरान्) नीचे [करता हुआ] [जीवाति—जीता रहे—मन्त्र २ से] ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में (जीवाति) जीता रहे, इस पद की अनुवृत्ति मन्त्र २ से है। माता-पिता प्रयत्न करें कि उनके पुत्र-पुत्री सब सन्तान बड़े अन्नवान्, बलवान् और धनवान् होकर, उत्तम गृहस्थ बनें और जितेन्द्रिय होकर अपने दोषों और शत्रुओं का नाश करें ॥३॥

इन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टो मरुद्भिरुग्रः प्रहितो न आगन् ।
एष वां द्यावापृथिवी उपस्थे मा क्षुधन्मा तृषत् ॥४॥

पदार्थ—(एष) यह [जीव] (इन्द्रेण) बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा करके (दत्त) दिया हुआ, (वरुणेन) श्रेष्ठ गुण वाले पिता करके (शिष्ट) शिक्षा किया हुआ, और (मरुद्भि) शूरवीर महात्माओं करके (प्रहित) भेजा हुआ, (उग्र) तेजस्वी होकर, (न) हम लोगों में (आ अगन्—आगमत्) आया है। (द्यावापृथिवी =०-व्यौ) हे सूर्य और भूमि ! (वाम्) तुम दोनों की (उपस्थे) गोद में [यह जीव] (मा क्षुधत्) न भूखा रहे और (मा तृषत) न प्यासा मरे ॥४॥

भावार्थ - परमेश्वर ने अपनी न्याय व्यवस्था से इस जीव को मनुष्य जन्म दिया है, माता-पिता ने शिक्षा दी है, विद्वानों ने उत्तम विद्याओं का अभ्यास कराया है। इस प्रकार वह अध्ययन-समाप्ति पर समावर्तन करके ससार में प्रवेश करे, और सूर्य पृथिवी आदि सब पदार्थों से उपकार लेकर आनन्द भोगे ॥४॥

ऊर्जमस्मा ऊर्जस्वती धत्तं पयो अस्मै पयस्वती धत्तम् ।
ऊर्जमस्मै द्यावापृथिवी अधातां विश्वे देवा मरुत ऊर्जमापः ॥५॥

पदार्थ—(ऊर्जस्वती=०—त्यौ) हे अन्न वाली [पिता और माता] दोनो ! (अस्मै) इस [जीव को] (ऊर्जम्) अन्न (धत्तम्) दान करो, [पयस्वती=०—त्यौ) हे दूध वाली तुम दोनो ! (अस्मै) इसको (पय) दूध वा जल (धत्तम्) दान करो। (द्यावापृथिवी—०—व्यौ) सूर्य और पृथिवी ने (अस्मै) इस [जीव] को (ऊर्जम्) अन्न (अधाताम्) दिया है, (विश्वे) सब (देवा) दिव्यगुण वाले (मरुत) दोषनाशक, प्राण अपानादि वायु और (आप) व्यापनशील जल ने (ऊर्जम्) अन्न (अधु) दिया है ॥५॥

भावार्थ—माता पिता सन्तानों को ऐसी शिक्षा देकर उद्यमी करें कि वे खान-पान आदि प्राप्त करके सदा सुखी रहें। सूर्य भूमि वायु जलादि प्राकृतिक पदार्थ खान-पानादि देकर बड़ा उपकार कर रहे हैं, उन से सब को लाभ उठाना चाहिए ॥५॥

शिवाभिष्टे हृदयं तर्पयाम्यनमीवो मोदिषीष्ठाः सुवर्चाः ।
सवासिनौ पिबतां मन्थमेतमश्विनो रूपं परिधाय मायाम् ॥६॥

पदार्थ—[हे जीव !] (शिवाभि) मङ्गल करने वाली [विद्याओं वा शक्तियों से (ते) तेरे (हृदयम्) हृदय को (तर्पयामि) मैं तृप्त करता हूँ, तू (अनमीव) नीरोग और (सुवर्चा) उत्तम कान्ति वाला होकर (मोदिषीष्ठा) हर्ष प्राप्त कर। (सवासिनौ) मिलकर निवास करने वाले दोनों [स्त्री पुरुष] (अश्विनो.) माता पिता के (रूपम्) स्वभाव और (मायाम्) बुद्धि को (परिधाय) सर्वथा धारण करके (एतम्) इस (मन्थम्) रस का (पिबताम्) पान करें ॥६॥

भावार्थ—परमेश्वर कहता है कि हे मनुष्य ! तेरे आनन्द के लिये मैंने तुझे अनेक विद्यायें और शक्तियाँ दी हैं। तुम दोनों स्त्री-पुरुषो ! माता-पिता रूप से ससार का उपकार करके इस [मेरे दिये] आनन्द रस को भोगो ॥६॥

इन्द्र एतां ससृजे विद्धो अग्र ऊर्जां स्वधामजरां सा त एषा ।
तया त्वं जीव शरदः सुवर्चा मा त आ सुस्रोद् भिषजस्ते अक्रन् ॥७॥

पदार्थ—(विद्ध) सेवा किये हुए (इन्द्र) परमेश्वर ने (एताम्) इस (अजराम्) अक्षय (ऊर्जाम्) अन्नयुक्त (स्वधाम्) अमृत को (अग्रे) पहिले से (ससृजे) उत्पन्न किया है। (सा एषा) सो यह (ते) तेरे लिये [है], (तया) उस [अमृत] से (त्वम्) तू (सुवर्चा) उत्तम कान्ति वाला होकर (शरद) बहुत शरद् ऋतुओं तक (जीव) जीता रह, (आ) और (सा स्वधा) [वह] (ते) तेरे लिये (मा सुस्रोत्) न घट जावे। (भिषज) वैद्यों ने (ते) तेरे लिए [उस अमृत को] (अक्रन्) बनाया है ॥७॥

भावार्थ—अनादि परमेश्वर ने सृष्टि के पहिले मनुष्य को अमृत रूप सार्वभौम ज्ञान दिया है। उसकी कभी हानि नहीं होती। मनुष्य जितना-जितना उसे काम में लाता है उतना ही वह बढ़ता जाता है और सुखदायक होता है। उसके उचित प्रयोग से मनुष्य पूर्ण आयु भोगता है। बुद्धिमानों ने वृद्धि को महौषधि बनाया है ॥७॥

卐 सूक्तम् ३० 卐

१—५ प्रजापति । १ मन, २ अश्विनौ, ३—४ औषधि, ५ दम्पती । अनुष्टुप्, १ पथ्यापंक्ति, ३ भुरिक् ।

यथेदं भूम्या अधि तृणं वातो मथायति । एवा मथ्नामि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥१॥

पदार्थ—(यथा) जिस प्रकार (वात) वायु (भूम्या) भूमि के (अधि) ऊपर (इदम्) इस (तृणम्) तृण को (मथायति) चलाता है। (एव) वैसे ही (ते) तेरे (मन) मन को (मथ्नामि) मैं चलाता हूँ, (यथा) जिससे तू (माम् कामिनी) मेरी कामना वाली (असः) होवे, और (यथा) जिससे तू (मत्) मुझ से (अपगा) वियोग करने वाली (न) न (असः) होवे ॥१॥

भावार्थ—विद्यासमाप्ति पर ब्रह्मचारी अपने अनुरूप गुणवती कन्या को ढूंढे और कन्या भी अपने सदृश वर ढूंढे। इस प्रकार विवाह होने से वियोग न होकर आपस में प्रेम बढ़ता और आनन्द मिलता है ॥१॥

सं चेन्नयाथो अश्विना कामिना सं च वक्षथः ।
सं वां भगासो अग्मत सं चित्तानि समु व्रता ॥२॥

पदार्थ—(च) और (अश्विना=०—नौ) हे कार्य में व्याप्ति वाले माता और पिता, तुम दोनों, (इत्) ही (कामिना-०—नौ) कामना वाले दोनों [वर-कन्या] को (सम्) मिल कर (नयाथ) ले चलो, (च) और (सम्) मिल कर (वक्षथ) आगे बढ़ाओ। (वाम्) तुम दोनों के (भगास - भगा) सब ऐश्वर्य (सम् अग्मत) [हम को] मिल गये हैं, (चित्तानि) [हमारे] चित्त (सम्=सम् + अग्मत) मिल गये हैं, (उ) और भी (व्रता - व्रतानि) नियम और कर्म (सम +अग्मत) मिल गये हैं ॥२॥

भावार्थ—वर और कन्या माता-पिता आदि बड़ों की भी सम्मति प्राप्त करें-उनके अनुग्रह से दोनों ने विद्याधन और सुवर्ण आदि धन, तथा परस्पर एक चित्त होने और नियम पालन की शक्ति को पाया है। यह मूल मन्त्र गृहस्थाश्रम में आनन्दवर्धक है ॥२॥

यत् सुपर्णा विवक्षवो अनमीवा विवक्षवः ।
तत्र मे गच्छताद्धवं शल्य इव कुल्मलं यथा ॥३॥

पदार्थ—(यत्=यत्र) जहां (सुपर्णा) बड़ी पूर्ति वाले [अथवा गरुड गिद्ध, मोर आदि के समान दूरदर्शी पुरुष] (विवक्षव) विविध प्रकार से राशि वा समूह करने वाले, और (अनमीवा) रोगरहित स्वस्थ पुरुष (विवक्षव) बोलने वाले हों, (तत्र) उस स्थान मे [वह वर वा कन्या] (मे) मेरी [वर व कन्या की] (हवम्) पुकार [विज्ञापन] को (गच्छतात्) पावे, (शल्य इव) जैसे बाण की कील (यथा) जिस प्रकार (कुल्मलम्) अपने दण्डे मे [पहुँचती है] ।।३।।

भावार्थ—जहाँ विद्वान् पुरुषो में रहकर वर ने, और विदुषी स्त्रियो मे रह कर कन्या ने विद्या और सुवर्णादि धन प्राप्त किये हो, और नीरोग रहने औरमेधर्म-उपदेश करने की शिक्षा पायी हो, वहां पर उन दोनो के विवाह की बातचीत पहुँचे और ऐसी दृढ हो जावे जैसे बाण की कील, बाण की दण्डी मे पक्की जम जाती है ।।३।।

यदन्तरं तद् बाह्यं यद् बाह्यं तदन्तरम् ।

कन्यानां विश्वरूपाणां मनो गृभायौषधे ।।४।।

पदार्थ—[हे वर !] (यत) जो कुछ [प्रीतिभाव आदि] (अन्तरम्) भीतर [तेरे हृदय मे] है, (तत्) वह (बाह्यम्) बाहिर [कन्या को प्रकट] हो और (यत) जो कुछ [प्रीतिभाव] (बाह्यम्) बाहिर [प्रकट किया जाय] (तत्) वह (अन्तरम्) भीतर [कन्या के हृदय म स्थित हो] (ओषधे) हे ताप-नाशक [ओषधि रूप वर] (विश्वरूपाणाम्) सर्वसुन्दरी (कन्यानाम्) कन्याओ [कन्या] के (मन) मन को (गृभाय) ग्रहण कर ।।४।।

भावार्थ - वर हार्दिक प्रीति से कन्या के साथ व्यवहार करे, और पत्नी भी पति से हार्दिक प्रीति रक्खे । इस प्रकार परस्पर प्रसन्नता से गृहलक्ष्मी बढेगी और नित्य प्रति आनन्द रहेगा । [कन्यानाम्] बहुवचन एक के लिए आदरार्थ है और मन्त्र मे जो वर को उपदेश है वही कन्या के लिए भी समझना चाहिये ।।४।।

एयमगन् पतिकामा जनिकामोऽहमागमम् ।

अश्वः कनिक्रदद् यथा भगेनाहं सहागमम् ।।५।।

पदार्थ—(इयम्) यह (पतिकामा) पति की कामना करती हुई कन्या (आ—अगन् आगमत्) आयी है, और (जनिकाम) पत्नी की कामना वाला (अहम्) मैं (आ+अगमम्) आया हूँ । (अहम्) मैं (भगेन) ऐश्वर्य के (सह) साथ (आ+अगमम्) आया हूँ । (यथा) जैसे (कनिक्रदत्) हींसता हुआ (अश्व) घोडा ।।५।।

भावार्थ—जैसे बलवान् घोडा मार्गगमन, अन्न, घास आदि भोजन के समय हिनहिनाकर प्रसन्नता प्रकट करता है, इसी प्रकार विद्या-समाप्ति पर पूर्ण विद्वान् और समर्थ कन्या और वर गृहाश्रम मे प्रवेश करके आनन्द भोगते है ।।५।।

卐 सूक्तम् ३१ 卐

१—५ कण्व । मही, चन्द्रमा । अनुष्टुप्, २, ४ उपरिष्टाद्विराड् बृहती, ३, ५ आर्षी त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य या मही दृषत् क्रिमेर्विश्वस्य तर्हणी ।

तया पिनष्मि सं क्रिमीन् दृषदा खल्वाँ इव ।।१।।

पदार्थ—(इन्द्रस्य) बडे ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर की (या) जो (मही) विशाल [सर्वव्यापिनी विद्यारूप] (दृषत्) शिला (विश्वस्य) प्रत्येक (क्रिमे) क्रिमि [कीड़े] की [तर्हणी] नाश करने वाली है, (तया) उससे (क्रिमीन्) सब क्रिमियो को (सम्) यथा नियम (पिनष्मि) पीस डालू, (इव) जैसे (दृषदा) शिला से (खल्वान्) चनो को [पीसते है] ।।१।।

भावार्थ—परमेश्वर अपनी अटूट न्याय व्यवस्था से प्रत्येक दुराचारी को दड देता है इस प्रकार मनुष्य अपने छोटे-छोटे दोषो का नाश करे । क्योकि छोटे-छोटो से ही बडे-बडे दोष उत्पन्न होकर अन्त मे बडी हानि पहुँचाते हैं । जैसे कि शिर वा उदर मे छोटे-छोटे कीडे उत्पन्न होकर बडी व्याकुलता और रोग के कारण होते हैं ।।१।।

दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरूरुमतृहम् । अल्गण्डून्त्सर्वाञ्छलुनान्

क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि ।।२।।

पदार्थ—(दृष्टम्) दीखते हुए और (अदृष्टम्) न दीखते हुए [क्रिमिगण] को (अतृहम्) मैंने नष्ट कर दिया है, (अथो) और भी (कुरूरुम्) भूमि पर रेंगने वाले, वा बुरे प्रकार से सताने वा भिनभिनाने वाले को (अतृहम्) मैंने नष्ट कर दिया है । (सर्वान्) सब (अल्गण्डून्) उपधानो [तकियों] मे भरे हुए (शलुनान्) वेग वेग चलने वाले (क्रिमीन्) कीडो को (वचसा) वचन से (जम्भयामसि =०—म) हम मार डालें ।।२।।

भावार्थ—जैसे मनुष्य बडे और छोटे क्षुद्र जन्तुओ को, जो अशुद्धि, मलिनता आदि से उत्पन्न होकर बडे-बडे रोगो के कारण होते हैं, मार डालते हैं, इसी प्रकार अपने छोटे-छोटे दोषो का शीघ्र ही नाश करना चाहिये ।।२।।

अल्गण्डून् हन्मि महता वधेन दूना अदूना अरसा अभूवन् ।

शिष्टानशिष्टान् नि तिरामि वाचा यथा क्रिमीणां नकिरुच्छिषातै ।।३।।

पदार्थ—(अल्गण्डून्) उपधानो [तकियो] मे भरे हुए जन्तुओ को (महता) बड़ी (वधेन) चोट से (हन्मि) मैं मारता हूँ । (दूना) तपे हुए और (अदूना) बिना तपे हुए [पक्के और कच्चे कीडे] (अरसा) नीरस [निर्बल] (अभूवन्) हो गए है । (शिष्टान्) बचे हुए (अशिष्टान्) दुष्टो को (वाचा) वचन से (नि) नीचे डाल कर (तिरामि) मार डालू, (यथा) जिससे (क्रिमीणाम्) कीडो में से (नकि.) कोई भी न (उच्छिषातै) बचा रहे ।।३।।

भावार्थ—मन्त्र १ और २ के समान है ।।३।।

अन्वान्त्र्यं शीर्षण्य१मथो पार्ष्टेयं क्रिमीन् ।

अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि ।।४।।

पदार्थ—(अन्वान्त्र्यम्) आँतो मे के (शीर्षण्यम्) शिर पर वा शिर मे के (अथो अथ-उ) और भी (पार्ष्टेयम्) पसलियो मे के (क्रिमीन्) इन सब कीडो को, (अवस्कवम्) नीचे-नीचे रेंगने वाले [जैसे दद्रु क्रिमि] और (व्यध्वरम्) छेद करने वाले वा पीडा देने वाले, वा यज्ञ के विरोधी (क्रिमीन्) इन सब कीडो को (वचसा) बात मात्र से (जम्भयामसि=०—म) हम नाश करें ।।४।।

ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेष्वोषधीषु पशुष्वप्स्व१न्तः ।

ये अस्माकं तन्वमाविविशुः सर्वं तद्धन्मि जनिम क्रिमीणाम् ।।५।।

पदार्थ - (ये) जो (क्रिमय) कीडे (पर्वतेषु) पहाडो म, (वनेषु) वनो मे (ओषधीषु) अन्न आदि ओषधियो मे, (पशुषु) गौ आदि पशुओ मे और (अप्सु) जल के (अन्त) भीतर हैं । और (ये) जो (अस्माकम्) हमारे (तन्वम्) शरीर म (आविविशु) प्रविष्ट हो गए हैं, (क्रिमीणाम्) क्रिमियो के (तत्) उस (सर्वम्) सब (जनिम) जन्म को (हन्मि) मैं नाश करू ।।५।।

भावार्थ - मनुष्यो को उचित है कि सब स्थानो, सब वस्तुओ और अपने शरीरो को शुद्ध रक्खे कि छोटे-बडे कोई अन्य क्लेश न देवें, ऐसे ही सब पुरुष आत्म-शुद्धि करके अपने भीतरी-बाहिरी, छोटे-बडे दोषो को मिटाकर आनन्द से रहे ।।५।।

卐 इति पञ्चमोऽनुवाक. 卐

卐

अथ षष्ठोऽनुवाकः

卐 सूक्तम् ३२ 卐

१—६ कण्व । आदित्य । अनुष्टुप्, १ त्रिपाद्भुरिग्गायत्री, ६ चतुष्पान्निचृदुष्णिक् ।

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः ।

ये अन्तः क्रिमयो गवि ।।१।।

पदार्थ—(उद्यन्) उदय होता हुआ (आदित्य) प्रकाशमान सूर्य (क्रिमीन्) उन कीडो को (हन्तु) मारे और (निम्रोचन्) अस्त हुआ [भी सूर्य] (रश्मिभि) अपनी किरणो से (हन्तु) मारे, (ये) जो (क्रिमय) कीडे (गवि) पृथिवी के (अन्त) भीतर है ।।१।।

भावार्थ—(१) प्रात काल और सायकाल मे सूर्य की कोमल किरणो और शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु के सेवन से शारीरिक रोग क कीडो का नाश होकर मन हृष्ट और शरीर पुष्ट होता है । उदय और अस्त होते हुए सूर्य के समान मनुष्य बालपन से बुढापे तक अपने दोषो का नाश करके सदा प्रसन्न रहे ।।१।।

विश्वरूपं चतुरक्षं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम् ।

शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ।।२।।

पदार्थ—(विश्वरूपम्) नाना आकार वाले (चतुरक्षम्) [चार दिशाओं मे] नेत्र वाले, (सारंगम्) रेंगने वाले [वा चितकबरे] और (अर्जुनम्) सचय शील [वा श्वेत वर्ण] (क्रिमिम्) कीडे को (शृणामि) मैं मारता हूँ (अस्य) इसकी (पृष्टी) पसलियो को (अपि) भी, और (यत्) जो (शिर) शिर है [उसको भी] (वृश्चामि) तोडे डालता हूँ ।।२।।

भावार्थ—पृथिवी और अन्तरिक्ष के नाना आकार और नाना वर्ण वाले मकडी, मक्खी आदि क्षुद्र जन्तुओ को शुद्धि आदि द्वारा पृथक् रखने से शरीर स्वस्थ रहता है । इसी प्रकार आत्मिक दोषो की निवृत्ति से आत्मिक शान्ति होती है ।।२।।

अत्रिवद् वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत् ।

अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ।।३।।

पदार्थ—(**क्रिमय**) हे कीड़ो ! (**व**) तुमको (**अत्रिवत्**) दोष भक्षक, वा गतिशील, मुनि के समान, (**कण्ववत्**) स्तुति योग्य मेधावी पुरुष के समान, (**जमदग्निवत्**) आहुति खाने वाले अथवा प्रज्वलित अग्नि के सदृश तेजस्वी पुरुष के समान, (**हन्मि**) मैं मारता हूँ । (**अगस्त्यस्य**) कुटिल गति पाप के छेदने में समर्थ परमेश्वर के (**ब्रह्मणा**) वेदज्ञान से (**अहम्**) मैं (**क्रिमीन्**) कीड़ों को (**सम् पिनष्मि**) पीसे डालता हूँ ॥३॥

भावार्थ—मनुष्य को ऋषि, मुनि, धर्मात्माओं के अनुकरण से वेदज्ञान प्राप्त करके पाप का नाश करना चाहिये ॥३॥

हुतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हुतः ।

हुतो हुतमाता क्रिमिर्हुतभ्राता हुतस्वसा ॥४ ।

पदार्थ—(**एषाम्**) इन (**क्रिमीणाम्**) कीड़ों का (**राजा**) राजा (**हत**) नष्ट होवे, (**उत**) और (**स्थपति**) द्वारपाल (**हत**) नष्ट होवे । (**हतमाता**) जिसकी माता नष्ट हो चुकी है, (**हतभ्राता**) जिसका भ्राता नष्ट हो चुका है और (**हतस्वसा**) जिसकी बहिन नष्ट हो चुकी है, (**क्रिमी**) वह चढ़ाई करने वाला कीड़ा (**हत**) मार डाला जावे ॥४॥

भावार्थ—मनुष्य अपने दोषों और उनके कारणों को उचित प्रकार से समझ-कर नष्ट करे, जैसे वैद्य दोषों के प्रधान और गौण कारणों को समझ कर रोग-निवृत्ति करता है ॥४॥

हुतासो अस्य वेशसो हुतासः परिवेशसः ।

अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हुताः ॥५॥

पदार्थ—(**अस्य**) इस [क्रिमि] के (**वेशस**) मुख्य सेवक (**हतास** हता) नष्ट हो, और (**परिवेशस**) साथी भी (**हतास**) नष्ट हो, (**अथो** = अथ—उ) और भी (**ये**) जो (**क्षुल्लका इव**) बहुत सूक्ष्म आकार वाले से है, (**ते**) वे (**सर्वे**) सब (**क्रिमय**) कीड़े (**हता**) नष्ट हो ॥५॥

भावार्थ—मनुष्य अपनी स्थूल और सूक्ष्म कुवासनाओं का और उनकी सामग्री का सर्वनाश कर दे, जैसे रोगजनक जन्तुओं को औषध आदि से नष्ट करते है ॥५॥

प्र ते शृणामि शृङ्गे याभ्यां वितुदायसि ।

भिनद्मि ते कुषुम्भं यस्ते विषधानः ॥६ ।

पदार्थ—(**ते**) तेरे (**शृङ्गे**) दो सींगों को (**प्र+शृणामि**) मैं तोड़े डालता हूँ (**याभ्याम्**) जिन दोनों से (**वितुदायसि**) तू सब ओर टक्कर मारता है । (**ते**) तेरे (**कुषुम्भम्**) जलपात्र को (**भिनद्मि**) तोड़ता हूँ (**य**) जो (**ते**) तेरे (**विषधान**) विष की थैली है ॥६॥

भावार्थ—जैसे दुष्ट वृषभ अपने सींगों से अन्य जीवों को सताता है, इसी प्रकार जो क्षुद्र क्रिमियों के समान आत्मदोष दिन रात काट देते है, उनको और उनके कारणों को खोजकर नष्ट करना चाहिये ॥६॥

卐 सूक्तम् ३३ 卐

१—७ ब्रह्मा यक्ष्मविबर्हणं, चन्द्रमा, आयुष्यम् । अनुष्टुप्, ३ ककुम्मती, ४ चतुष्पदा भुरिगुष्णिक, ५ उपरिष्टाद्विराड् बृहती, ६ उष्णिग्गर्भा निचृदनुष्टुप्, ७ पथ्यापङ्क्ति ।

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।

यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥१॥

पदार्थ—[हे प्राणी] (**ते**) तेरी (**अक्षीभ्याम्**) दोनों आँखों से (**नासिकाभ्याम्**) दोनों नथुनों से (**कर्णाभ्याम्**) दोनों कानों से (**छुबुकात्** = चुबुकात् **अधि**) ठोडी में से, (**ते**) तेरे (**मस्तिष्कात्**) भेजे से, और (**जिह्वाया**) जिह्वा से (**शीर्षण्यम्**) शिर में के (**यक्ष्मम**) क्षयी [छयी] रोग को (**वि वृहामि**) मैं उखाड़े देता हूँ ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में शिर के अवयवों का वर्णन है । जैसे सद्वैद्य उत्तम औषधों से रोगों की निवृत्ति करता है, ऐसे ही मनुष्य अपने आत्मिक और शारीरिक दोषों को विचारपूर्वक नाश करे ॥१॥

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात्

यक्ष्मं दोषण्यं मंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥२॥

पदार्थ—(**ते**) तेरे (**ग्रीवाभ्य**) गले की नाड़ियों से, (**उष्णिहाभ्य**) गुद्दी की नाड़ियों से, (**कीकसाभ्य**) हंसली की हड्डियों से, (**अनूक्यात्**) रीढ़ से और (**ते**) तेरे (**अंसाभ्याम्**) दोनों कन्धों से और तेरे (**बाहुभ्याम्**) दोनों भुजाओं से (**दोषण्यम्**) मुड्ढे वा बक्खे के (**यक्ष्मम्**) क्षयी रोग को (**वि वृहामि**) मैं उखाड़े देता हूँ ॥२॥

हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् ।

यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि ॥३॥

पदार्थ—(**ते**) तेरे (**हृदयात्**) हृदय से, (**क्लोम्न**) फेफड़े से, (**हलीक्ष्णात्**) पित्त से, (**पार्श्वाभ्याम् परि**) दोनों काँखों [कक्षाओं वा बगलों] से और (**ते**) तेरे (**मतस्नाभ्याम्**) दोनों मतस्नों [गुर्दों] से, (**प्लीह्न**) प्लीहा, वा पिलई [तिल्ली] से, और (**यक्न**) यकृत् [काल खण्ड वा जिगर] से (**यक्ष्मम्**) क्षयी रोग को (**वि वृहामसि**—०—**म**) हम उखाड़े देते है ॥३॥

आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।

यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते ॥४॥

पदार्थ—(**ते**) तेरी (**आन्त्रेभ्य**) आँतों से, (**गुदाभ्य**) गुदा की नाड़ियों से, (**वनिष्ठो**) वनिष्ठु [भीतरी मलस्थान] से, (**उदरात् अधि**) उदर में से, और (**ते**) तेरी (**कुक्षिभ्याम**) दोनों कोखों से, (**प्लाशे**) कोख में की थैली से, और (**नाभ्या**) नाभि से (**यक्ष्मम्**) क्षयी रोग को (**वि वृहामि**) मैं उखाड़े देता हूँ ॥४॥

ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।

यक्ष्मं भसद्यं१ श्रोणिभ्यां भासदं भंससो वि वृहामि ते ॥५॥

पदार्थ—(**ते**) तेरे (**ऊरुभ्याम्**) दोनों जंघाओं से, (**अष्ठीवद्भ्याम्**) दोनों घुटनों से, (**पार्ष्णिभ्याम्**) दोनों एड़ियों से, (**प्रपदाभ्याम्**) दोनों पैरों के पंजों से, और (**ते**) तेरे (**श्रोणिभ्याम्**) दोनों कूल्हों से [वा नितम्बों से] और (**भसस**) गुह्य स्थान से (**भसद्यम्**) कटि [कमर] के और (**भासदम्**) गुह्य के (**यक्ष्मम्**) क्षयी रोग को (**वि वृहामि**) मैं जड़ से उखाड़ता हूँ ॥५॥

अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।

यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते ॥६॥

पदार्थ—(**ते**) तेरे (**अस्थिभ्य**) हड्डियों से (**मज्जभ्य**) मज्जा धातु [अस्थि के भीतर के रस] से (**स्नावभ्य**) पुट्ठों से और (**धमनिभ्य**) नाड़ियों से, और (**ते**) तेरे (**पाणिभ्याम्**) दोनों हाथों से, (**अङ्गुलिभ्य**) अंगुलियों से, और (**नखेभ्य**) नखों से (**यक्ष्मम्**) क्षयी रोग को (**वि वृहामि**) मैं जड़ से उखाड़ता हूँ ॥६॥

भावार्थ—मनुष्य अपने शरीर के भीतरी धातुओं, नाड़ियों और हाथ आदि बाहिरी अंगों को यथायोग्य आहार, विहार से पुष्ट और स्वस्थ रक्खें, जिससे आत्मिक शक्ति सदा बढ़ती रहे ॥६॥

अङ्गेअङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि । यक्ष्मं

त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्चं वि वृहामसि ॥७॥

पदार्थ—(**य**) जो [क्षयी रोग] (**ते**) तेरे (**अङ्गे-अङ्गे**) अङ्ग अङ्ग में, (**लोम्नि-लोम्नि**) रोम रोम में (**पर्वणि-पर्वणि**) गांठ गांठ में है । (**वयम्**) हम (**ते**) तेरे (**त्वचस्यम्**) त्वचा के और (**विष्वञ्चम्**) सब अवयवों में व्यापक (**यक्ष्मम्**) क्षयी रोग को (**कश्यपस्य**) ज्ञान दृष्टि वाले विद्वान् के (**विबर्हेण**) विविध उद्यम से (**वि वृहामसि**) जड़ से उखाड़ते है ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपसंहार वा समाप्ति है अर्थात् प्रसिद्ध अवयव का वर्णन करके अन्य सब अवयवों का कथन है । जिस प्रकार सद्वैद्य निदानपूर्वक रोगी के जोड़-जाड़ में से रोग का नाश करता है, वैसे ही ज्ञानी पुरुष निदिध्यासन पूर्वक आत्मिक दोषों को मिटा कर प्रसन्नचित्त होता है ॥७॥

卐 सूक्तम् ३४ 卐

१—५ अथर्वा । १ पशुपति, २ देवा, ३ अग्नि विश्वकर्मा, ४ वायु प्रजापति, ५ आशी । त्रिष्टुप् ।

य ईशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुत यो द्विपदाम् ।

निष्क्रीतः स यज्ञियं भागमेतु रायस्पोषा यजमानं सचन्ताम् ॥१॥

पदार्थ—(**य**) जो (**पशुपति**) पशुओं [जीवों] का स्वामी परमेश्वर (**चतुष्पदाम्**) चौपाये, (**उत**) और (**य**) जो (**द्विपदाम्**) दोपाये (**पशूनाम्**) जीवों का (**ईशे**—**ईष्टे**) राजा है (**स**) वह परमेश्वर (**निष्क्रीत**) अनुकूल होकर (**यज्ञियम्**) हमारे पूजा योग्य (**भागम्**) भजन वा अंश को (**एतु**) प्राप्त करे । (**राय**) धन की (**पोषा**) वृद्धियां (**यजमानम्**) पूजनीय कर्म करने वाले को (**सचन्ताम्**) सींचती रहें ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर सब मनुष्यादि दोपाये और गौ आदि चौपाये तथा सब संसार का स्वामी है । वह मनुष्यों के धर्मानुकूल चलने से उनका [निष्क्रीत] मोल लिया हुआ अर्थात् उन का इच्छावर्ती होकर उन को सब प्रकार का आनन्द देता है ॥१॥

प्रमुञ्चन्तो भुवनस्य रेतो गातुं धत्त यजमानाय देवाः ।

उपाकृतं शशमानं यदस्थात् प्रियं देवानामप्येतु पाथः ॥२॥

पदार्थ—(देवा) हे विद्वान् महात्माओ ! (भुवनस्य) ससार के (रेत) बीज [वृद्धि सामर्थ्य] का (प्रमुञ्चन्त) दान करते हुए तुम, (यजमानाय) पूजनीय कर्म करने वाले पुरुष को (गातुम्) मार्ग (धत्त) दान करो, (यत्) जो (उद्गमानम्) उछल कर प्राप्त होता हुआ (उपाकृतम्) समीप लाया गया (पाथ) रक्षा साधन अन्नादि (देवानाम्) विद्वानो का (प्रियम्) प्रिय [हितकारक] (अस्थात्) स्थित हुआ है [वह हमे] (अपि) अवश्य (एतु) प्राप्त होवे ॥२॥

भावार्थ—विद्वान् महात्मा लोग वेद द्वारा ससार की वृद्धि और स्थिति का कारण विचार कर सबको सत्य मार्ग का उपदेश करें जिससे मनुष्य ईश्वरकृत रक्षा-साधन, ज्ञान, खान पान आदि पदार्थों का [जो सब को सब जगह सुलभ हैं] यथावत् ज्ञान प्राप्त कर दु खों से मुक्त होकर आनन्द भोगें ॥२॥

ये बध्यमानमनु दीध्याना अन्वैक्षन्त मनसा चक्षुषा च ।
अग्निष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवो विश्वकर्मा प्रजया संरराणः ॥३॥

पदार्थ—(ये) जो [महाविद्वान्] (बध्यमानम् अनु) बन्धन मे पडते हुए [जीव] पर (दीध्याना + सन्त) प्रकाश करते हुए, (मनसा) मन से (च) और (चक्षुषा) नेत्र से (अन्वैक्षन्त) दया से देख चुके है, (तान्) उन (अग्रे = अग्रे-वर्तमानान्) अग्रगामियो का (अग्नि) सर्वव्यापक, (देव) प्रकाशस्वरूप, (विश्वकर्मा) सबका रचने वाला परमेश्वर, (प्रजया) प्रजा [सृष्टि] के साथ (संरराण = सरममाण) आनन्द करता हुआ (प्र) भली प्रकार (मुमोक्तु) [विघ्न] से मुक्त करे ॥३॥

भावार्थ—जो महात्मा अपनी मानसिक और शारीरिक शक्ति से अज्ञान के कारण से दु ख मे डूबे हुओ के उद्धार मे समर्थ होते हैं, वह सर्वशक्तिमान् सर्वकर्त्ता परमेश्वर उन परोपकारी जनो का सदा सहायक और आनन्ददायक होता है ॥३॥

ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपा विरूपाः सन्तो बहुधैकरूपाः ।
वायुष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवः प्रजापतिः प्रजया संरराणः ॥४॥

पदार्थ—(ये) जो (ग्राम्या) ग्राम मे बसने वाले, (विश्वरूपा) सब वर्ण वाले (पशव) जीव (बहुधा) प्राय (विरूपा) पृथक्-पृथक् रूप वाले (सन्त) होकर (एकरूपा) एक स्वभाव वाले है, (तान्) उन (अग्रे = अग्रे वर्तमानान् पशून्) अग्रवर्ती जीवो को (वायु) सर्वव्यापी वा बलदायक (देव) प्रकाशस्वरूप, (प्रजापति) प्रजाओ का रक्षक परमेश्वर (प्रजया) प्रजा [अपने जनो] से (संरराण = सरममाण) आनन्द करता हुआ (प्र) भली प्रकार (मुमोक्तु) मुक्त करे ॥४॥

भावार्थ—जो [ग्राम्या] मिलकर भोजन करने वाले मनुष्य भिन्न देश, भिन्न अन्न जल वायु होने से भिन्न वर्ण होकर भी एक ईश्वर की आज्ञा-पालन मे [एकरूप] तत्पर रहते हैं, परमेश्वर प्रसन्न होकर उन पुरुषार्थी महात्माओ को दु ख से छुडा कर सदा आनन्द देता है । शुद्ध वायु सब प्राणियो को शारीरिक और आत्मिक सुख देता है ॥४॥

प्रजानन्तः प्रति गृह्णन्तु पूर्वे प्राणमङ्गेभ्यः पर्याचरन्तम् ।
दिवं गच्छ प्रति तिष्ठा शरीरैः स्वर्गं याहि पथिभिर्देवयानैः ॥५॥

पदार्थ—(प्रजानन्त) बडे ज्ञान वाले (पूर्वे = पूर्वे वर्तमाना + भवन्तः) प्रथम स्थान मे वर्तमान महात्मा पुरुष आप (अङ्गेभ्य) सब के अङ्गो के हित के लिए (परि) सब ओर (आचरन्तम्) चलने वाले (प्राणम्) अपने प्राण [बल] को (प्रति) प्रत्यक्ष (गृह्णन्तु) ग्रहण करें [हे मनुष्य !] (दिवम्) ज्ञान प्रकाश वा व्यवहार को (गच्छ) प्राप्त कर, (शरीरै) सब अङ्गो के साथ (प्रति तिष्ठ) तू प्रतिष्ठित रह, (देवयानै) देवताओ के चलने योग्य (पथिभि) मार्गों से (स्वर्गम्) स्वर्ग [महा आनन्द] मे (याहि) तू पहुँच ॥५॥

भावार्थ—ज्ञानी महात्मा पुरुष जो श्वास लें वह ससार के उपकार के लिए ही लें, अर्थात् प्रतिक्षण परोपकार मे लगकर अपना सामर्थ्य और जीवन बढावें । और प्रत्येक मनुष्य को योग्य है कि अपने आत्मा मे ज्ञान का प्रकाश करके सब व्यवहारो मे चतुर हो, और आँख, कान, हाथ, पग आदि अङ्गो से शुभ कर्म करके प्रतिष्ठा बढावें, और जिन मार्गों पर देवता चलकर स्वर्ग भोगते हैं उन्हीं वेदरूपी राजपथो पर चल कर जीवन्मुक्त होकर आनन्द भोगें ॥५॥

卐 सूक्तम् ३५ 卐

१—५ अङ्गिरा । विश्वकर्मा । त्रिष्टुप्, १ बृहतीगर्भा ४—५ भुरिक् ।

ये भक्षयन्तो न वसून्यानृधुर्यानग्नयो अन्वतप्यन्त धिष्ण्याः ।
या तेषामवया दुरिष्टिः स्विष्टिं नस्तां कृणवद् विश्वकर्मा ॥१॥

पदार्थ—(ये) जिन मनुष्यो ने (भक्षयन्त) पेट भरते हुए (वसूनि) धनो को (न) नहीं (आनृधु) बढाया, और (यान्) जिन पर (धिष्ण्या) बोलने, काम वा बुद्धि मे चतुर (अग्नय) गतिशील ज्ञानी [वा अग्नि समान तेजस्वी] पुरुषों ने (अन्वतप्यन्त) अनुताप किया है । [शोक माना है] (तेषाम्) उन [कंजूसों] की (या) जो (अवया) विनाश हेतु (दुरिष्टि) खोटी सङ्गति है, (विश्वकर्मा) सब कर्मों मे चतुर [वा ससार का रचने वाला] परमेश्वर (ताम्) उस [कुसगति] को (न) हमारे लिए (स्विष्टिम्) उत्तम फलदायक (कृणवत्) करे ॥१॥

भावार्थ—जो स्वार्थी मनुष्य केवल अपना पेट भरना जानते है और जो धन एकत्र करके उपकार नही करते, उनकी दशा उदारशील महात्माओ को शोचनीय होती है । सब कर्मकुशल मनुष्यो को [परमेश्वर] सुमति दे कि उनका मन स्वार्थपन छोड कर जगत् की भलाई मे लगे । सब मनुष्य [विश्वकर्मा] विहित कर्मों मे कुशल होकर, और कुसगति का दुष्ट फल देख कर दुष्कर्मों से बचें और सदा आनन्द से रहें ॥ १ ॥

यज्ञपतिमृषय एनसाहुर्निर्भक्तं प्रजा अनुतप्यमानम् ।
मथव्यान्त्स्तोकानप यान् रराध सं नष्टेभिः सृजतु विश्वकर्मा ॥२॥

पदार्थ—(ऋषय) सूक्ष्मदर्शी ऋषि (प्रजा) मनुष्यादि प्रजाओ पर (अनुतप्यमानम्) अनुताप [अनुकम्पा] करने वाले (यज्ञपतिम्) उत्तम कर्मों के रक्षक पुरुष को (एनसा) पाप से (निर्भक्तम्) पृथक् किया हुआ (आहु) बताते हैं । उसने (यान्) जिन (मथव्यान्) मथने योग्य (स्तोकान्) प्रसन्न करने वाले, सूक्ष्म विषयो का (अप) आनन्द से (रराध) सिद्ध किया है (विश्वकर्मा) ससार का रचने वाला परमेश्वर (तेभि - तै) उन [सूक्ष्म विषयो] के साथ (न) हमें (ससृजतु) सयुक्त करे ॥२॥

भावार्थ—ऋषि लोग उस पुरुषार्थी पुरुष को निष्पाप और पुण्यात्मा मानते है जो सब जीवो पर दया और उपकार करता है । वही धर्मात्मा, आप्तपुरुष, सत्य सिद्धान्तो का साक्षात् करके आनन्द से ससार मे प्रकाशित करता है । [विश्वकर्मा] परमेश्वर उन अटल वैदिक धर्मों को हम सब के हृदय मे स्थापित करे, जिससे हम पुरुषार्थपूर्वक सदा आनन्द भोगें ॥२॥

अदान्यान्त्सोमपान् मन्यमानो यज्ञस्य विद्वान्त्समये न धीरः ।
यदेनश्चकृवान् बद्ध एष तं विश्वकर्मन् प्र मुञ्चा स्वस्तये ॥३॥

पदार्थ—(अदान्यान्) दान के अयोग्य पुरुषो को (सोमपान्) अमृत पान करने वाले (मन्यमान) मानता हुआ पुरुष, (यज्ञस्य) शुभ कर्म का (विद्वान्) जानने वाला और (समये) समय पर (धीर) धीर (न) नही होता । (एष) इस पुरुष ने (बद्ध) [अज्ञान मे] बन्ध होकर (यत्) जो (एन) पाप (चकृवान्) किया है, (विश्वकर्मन्) हे ससार के रचने वाले परमेश्वर ! (तम्) उस पुरुष को (स्वस्तये) आनन्द भोगने के लिये (प्र मुञ्च) मुक्त कर दे ॥३॥

भावार्थ—मनुष्य अविवेक के कारण मूढ होकर अपनी और ससार की हानि कर डालता है । वह पुरुष अपने प्रमाद पर पश्चात्ताप कर और पाप कर्म छोडकर ईश्वर-आज्ञा का पालन करके आनन्द भोगे ॥३॥

घोरा ऋषयो नमो अस्त्वेभ्यश्चक्षुर्यदेषां मनसश्च सत्यम् ।
बृहस्पतये महिष द्युमन्नमो विश्वकर्मन् नमस्ते पाह्यस्मान् ॥४॥

पदार्थ—(ऋषय) सूक्ष्मदर्शी पुरुष (घोरा) [पाप कर्मों पर] क्रूर होते है, (एभ्य) उन [ऋषियो] को (नम) अन्न वा नमस्कार (अस्तु) होवे (यत्) क्योंकि (एषाम्) उन [ऋषियो] के (मनस) मन की (चक्षु) आँख (च) निश्चय करके (सत्यम्) यथार्थ [देखने वाली] है । (महिष) हे पूजनीय परमेश्वर ! (बृहस्पतये) सब बडे बडे ब्रह्माण्डो के स्वामी [आप] को (द्युमत्) स्पष्ट (नम) नमस्कार है, (विश्वकर्मन्) हे ससार के रचने वाले ! (नमस्ते) तेरे लिये नमस्कार है (अस्मान्) हमारी (पाहि) रक्षा कर ॥४॥

भावार्थ—जिन महात्मा, आप्त ऋषियो के मानसिक, वाचिक और कायिक कर्म, ससार को दु ख से मुक्त करने के लिए होते हैं, उनके उपदेशो को सब मनुष्य प्रीतिपूर्वक ग्रहण करें और जो परमेश्वर समस्त सृष्टि का कर्त्ता धर्त्ता है, उस के उपकारो को हृदय मे धारण करके उनकी उपासना करें और सदा पुरुषार्थ करके श्रेष्ठो की रक्षा करते रहें ॥४॥

यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।
इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥५॥

पदार्थ—[जो पुरुष] (यज्ञस्य) पूजनीय कर्म का (चक्षु) नेत्र [नेत्र समान प्रदर्शक], (प्रभृति) पुष्टि (च) और (मुखम्) मुख [समान मुख्य] है, [उस को] (वाचा) वाणी से, (श्रोत्रेण) कान से और (मनसा) मन से (जुहोमि) मैं स्वीकार करता हूँ । (सुमनस्यमाना) शुभ चिन्तको के जैसे आचरण वाले (देवा) व्यवहारकुशल महात्मा (विश्वकर्मणा) ससार के रचने वाले परमेश्वर के (विततम्) फैलाये हुए (इमम्) इस (यज्ञम्) पूजनीय धर्म को (आ यन्तु) प्राप्त करें ॥५॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि सत्य सकल्पी, सत्यसन्ध, ऋषि महात्माओ के वैदिक उपदेश को वाणी से पठन पाठन, श्रोत्र से श्रवण श्रावण, और मन से निदिध्यासन अर्थात् बारम्बार विचार करके ग्रहण करें और सब अनुग्रहशील महात्मा परमेश्वर के दिये हुए विज्ञान और धर्म का प्रचार करते रहें ॥५॥

卐 सूक्तम् ३६ 卐

१—८ पतिवेदन । १ अग्नि, ३ सोम, अर्यमा, धाता, २ अग्नीषोमौ, ४ इन्द्र, ५ सूर्य, ६ धनपति, ७ भग, ८ ओषधि । त्रिष्टुप्, १ भुरिक्, २, ५—७ अनुष्टुप्, ८ निचृत्पुरउष्णिक् ।

आ नो॑ अग्ने सुम॒तिं सं॑भ॒लो ग॑मेदि॒मां कु॑मा॒रीं स॒ह नो॒ भगे॑न ।

जु॒ष्टा व॒रेषु॒ सम॑नेषु व॒ल्गुरो॒षं पत्या॒ सौभ॑गमस्त्व॒स्यै ॥१॥

पदार्थ—(**अग्ने**) अग्निवत् तेजस्वी राजन् (**सम्भल**) यथाविधि सम्भाषण वा निरूपण करने वाला वर (**इमाम्**) इस (**सुमतिम्**) सुन्दर बुद्धि वाली (**कुमारीम्**) कुमारी को (**नः**) हमारे लिए (**भगेन सह** | **वर्तमान सन्**) ऐश्वर्य के साथ वर्तमान होकर (**नः**) हमसे (**आ आगत्य**) आकर (**गमेत्**) ले जावे । [इयम् कुमारी] [यह कन्या] (**वरेषु**) वर पक्ष वालों में (**जुष्टा**) प्रिय और (**समनेषु**) साधु विचार वालों में (**वल्गु**) मनोहर है । (**अस्यै**) इस [कन्या] के लिए (**ओषम्**) शीघ्र (**पत्या**) पति के साथ (**सौभगम्**) सुहागपन (**अस्तु**) होवे ॥१॥

भावार्थ—यहाँ [अग्नि] शब्द राजा के लिए है । माता पिता आदि राज-व्यवस्था के अनुसार योग्य आयु में गुणवती कन्या का विवाह गुणवान् वर से करें, जिससे वह कन्या पतिकुल में सबको प्रसन्न रक्खे और आप आनन्द में रहे ॥१॥

सोम॑जुष्टं ब्र॒ह्म॑जुष्टमर्य॒म्णा संभृ॑तं॒ भग॑म् ।

धा॒तुर्दे॒वस्य॑ स॒त्येन॑ कृणोमि पति॒वेद॑नम् ॥२॥

पदार्थ—(**धातुः**) सबके धारण करने वाले (**देवस्य**) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर के (**सत्येन**) सत्यनियम से (**सोमजुष्टम्**) ऐश्वर्यवान् पुरुषों के प्रिय (**ब्रह्मजुष्टम्**) ब्रह्म ज्ञानी पुरुषों से सेवित और (**अर्यम्णा**) श्रेष्ठों के मान करनेवाले राजा से (**सम्भृतम्**) पुष्ट किये हुए (**भगम्**) सेवनीय वा ऐश्वर्ययुक्त (**पतिवेदनम्**) पत्नी [वा पति] की प्राप्ति [विवाह] (**कृणोमि**) मैं करता [वा करती] हूँ ॥२॥

भावार्थ—यह गृहस्थाश्रम ईश्वरकृत नियम है । इसकी रक्षा के लिए सब बड़े-बड़े महात्मा प्रयत्न करते और राजा नियम बनाता है । उसके निर्वाह के लिए माता पिता आदि वर और कन्या का यथावत् उपदेश करें और उनका विवाह करें ॥२॥

इ॒यम॑ग्ने॒ नारी॒ पतिं॑ विदेष्ट॒ सोमो॒ हि राजा॑ सु॒भगां॑ कृ॒णोति॑ ।

सुवा॑ना पु॒त्रान् महि॑षी भवाति ग॒त्वा पतिं॑ सु॒भगा॒ वि रा॑जतु ॥३॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! (**इयम्**) यह (**नारी**) नर [अपने पति] का हित करने वाली कन्या (**पतिम्**) पति को (**विदेष्ट**) प्राप्त करे, (**हि**) क्योंकि (**सोमः**) ऐश्वर्यवान् वा चन्द्रसमान आनन्दप्रद (**राजा**) राजा [ऐश्वर्यवान् वर] [उसको] (**सुभगाम्**) सौभाग्यवती (**कृणोति**) करता है । [यह कन्या] (**पुत्रान्**) कुलशोधक वा बहुरक्षक वीर पुत्रों को (**सुवाना**) उत्पन्न करती हुई (**महिषी**) पूजनीय महारानी (**भवाति**) होवे, और (**पतिम्**) पति को (**गत्वा**) पाकर (**सुभगा**) सौभाग्यवती होकर (**वि**) अनेक प्रकार से (**राजतु**) राज्य करे ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर के अनुग्रह से यह दोनों पति और पत्नी, बड़े ऐश्वर्य वा ठाठ वाले राजा और रानी के समान गृहकार्यों को चलावें और वीर पुत्र पौत्र आदिकों को उत्तम शिक्षा देते हुए सदा आनन्द भोगें ॥३॥

यथा॑ख॒रो म॑घवं॒श्चारु॑रे॒ष प्रि॒यो मृ॒गाणां॑ सु॒षदा॑ ब॒भूव॑ ।

ए॒वा भग॑स्य जु॒ष्टेयम॑स्तु॒ नारी॒ संप्रि॑या॒ पत्या॒विराधयन्ती ॥४॥

पदार्थ—(**मघवन्**) हे पूजनीय, वा महाधनी परमेश्वर, (**यथा**) जैसे (**एषः**) यह (**चारुः**) सुन्दर (**आखरः**) खोह और माद (**मृगाणाम्**) जंगली पशुओं का (**प्रियः**) [प्रिय और (**सुषदाः**) रमणीक घर (**बभूव**) हुआ है [होता है], (**एव - एवम्**) ऐसे ही (**इयम्**) यह (**नारी**) नारी (**भगस्य**) ऐश्वर्यवान् [पति] की (**जुष्टा**) [दुलारी और (**संप्रिया**) प्रियतमा होकर (**पत्या**) पति से (**अविराधयन्ती**) वियोग न करती हुई (**अस्तु**) रहे ॥४॥

भावार्थ—जिस प्रकार आरण्यक नर नारी पशु आनन्दपूर्वक अपने बिलों में विश्राम करते हैं, इसी प्रकार मनुष्यजातीय पति पत्नी परस्पर मिलजुल कर उपकार करते हुए सदा सुख से रहें ॥४॥

भग॑स्य ना॒वमा रो॑ह पू॒र्णामनु॑पदस्वतीम् ।

तयो॑प॒प्रता॑रय॒ यो व॒रः प्र॑ति॒काम्यः॑ ॥५॥

पदार्थ—[हे कन्या !] (**भगस्य**) ऐश्वर्य की (**पूर्णाम्**) भरी भरायी और (**अनुपदस्वतीम्**) अटूट (**नावम्**) नाव पर (**आ रोह**) चढ़ । और (**तया**) उस [नाव] से [अपने वर को] (**उप-प्रतारय**) आदर पूर्वक पार लगा, (**यः**) जो (**वरः**) वर (**प्रति-काम्यः**) प्रतिज्ञा करके चाहने [प्रीति करने] योग्य है ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में गृहपत्नी की भारी उत्तरदातृता [जिम्मेदारी] का वर्णन है । जैसे नाविक खान पान आदि आवश्यक सामग्री से लदी लदायी और बड़ी दृढ़ नौका से जल यात्रियों को समुद्र से पार लगाता है, वैसे ही गृहपत्नी अपने घर का धन धान्य आदि ऐश्वर्य से भरपूर और दृढ़ रक्खे और पति को नियम में बाँधकर पूरे प्रेम से प्रसन्न रखकर गृहस्थाश्रम से पार लगावे ॥५॥

आ क्र॑न्दय धनपते व॒रमाम॑नसं कृणु ।

सर्वं॑ प्रदक्षि॒णं कृ॑णु॒ यो व॒रः प्र॑ति॒काम्यः॑ ॥६॥

पदार्थ—(**धनपते**) हे धनों की रक्षा करने वाली [कन्या !] (**वरम्**) वर को (**आ**) आदरपूर्वक (**क्रन्दय**) बुला, और (**आमनसम्**) अपने मन के अनुकूल (**कृणु**) कर । [उस वर को] (**सर्वम्**) सर्वथा (**प्रदक्षिणम्**) अपनी दाहिनी ओर (**कृणु**) कर, (**यः**) जो (**वरः**) वर (**प्रतिकाम्यः**) नियम करके चाहने योग्य है ॥६॥

भावार्थ—पत्नी धनों की रक्षा करती है, वह पति को आदरपूर्वक बुलावे और उसकी प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता जाने, और सदा उसे अपनी दाहिनी ओर रक्खे, अर्थात् जैसे दाहिना हाथ बायें हाथ की अपेक्षा अधिक सहायक होता है, इसी प्रकार पत्नी अपने पति को सबसे अधिक अपना हितकारी जानकर सदा प्रीति से सत्कार मान करती रहे । इसी विधि से पति भी पत्नी को अपना हितकारी जाने, और उसके साथ प्रीति और प्रतिष्ठा के साथ वर्ताव रक्खे ॥६॥

इ॒दं हिर॑ण्यं॒ गुल्गु॑ल्व॒यमौ॒क्षो अथो॒ भगः॑ ।

ए॒ते पति॑भ्य॒स्त्वाम॑दुः प्रति॒का॒माय॒ वेत्त॑वे ॥७॥

पदार्थ—(**इदम्**) यह (**हिरण्यम्**) सुवर्ण और (**गुल्गुलु**) गुल्गुले [गुड़ का पका भोजन] (**अथो**) और (**अयम्**) यह (**औक्षः**) महात्माओं के योग्य [वा ऋषभ औषध सम्बन्धी] (**भगः**) ऐश्वर्य है [और हे कन्या !] (**एते**) इन कन्या के पक्ष वालों ने (**पतिभ्यः**) पति पक्ष वालों के हितार्थ (**त्वाम्**) तुझे (**प्रतिकामाय**) प्रतिज्ञापूर्वक कामनायोग्य [पति] के लिए (**वेत्तवे**) लाभ पहुँचाने को (**अदुः**) दिया है ॥७॥

भावार्थ—कन्या के माता पिता आदि कन्या और वर को विवाह के उपरान्त दाय अर्थात् यौतुक [दैजा, दहेज] में सुन्दर अलंकार, वस्त्र, भोजन पदार्थ, वाहन, गौ धन आदि देवें और कन्या को पति सेवा की यथायोग्य शिक्षा करें, जिससे पति पत्नी मिलकर सदा आनन्द भोगें ॥७॥

आ ते॑ नयतु सवि॒ता न॑यतु॒ पति॒र्यः प्र॑ति॒काम्यः॑ ।

त्वम॑स्यै धेह्योषधे ॥८॥

पदार्थ—[हे कन्ये] (**सविता**) सर्वप्रेरक, सर्वजनक परमेश्वर (**ते**) तेरे लिए [उस पति को] (**आ नयतु**) मर्यादापूर्वक चलावे, और (**नयतु**) नायक बनावे, (**यः पतिः**) जो पति (**प्रतिकाम्यः**) प्रतिज्ञापूर्वक चाहने योग्य है । (**ओषधे**) हे तापनाशक परमेश्वर ! (**त्वम्**) तू (**अस्यै**) इस [कन्या] के लिए [उस पति को] (**धेहि**) पुष्ट रख ॥८॥

भावार्थ—यह आशीर्वाद का मन्त्र है । पति और पत्नी उस सर्वनियन्ता परमेश्वर का सदा ध्यान करते हुए परस्पर हार्दिक प्रीति रखकर वेदोक्त मर्यादा पर चलें, जिससे वे दोनों प्रधान पुरुष और प्रधान स्त्री होकर संसार में कीर्तिमान् होवें, और अन्न आदि ओषधि के समान सुखदायक होकर सदा हृष्ट पुष्ट बने रहें ॥८॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

इति द्वितीय काण्डम् ॥

卐

तृतीयं काण्डम् : प्रथमोऽनुवाकः

卐 सूक्तम् १ 卐

१—६ अथर्वा । सेनामोहनं, १ अग्निः, २ मरुतः, ३—६ इन्द्रः । त्रिष्टुप्, २ विराड्गर्भा भुरिक्, ३—६ अनुष्टुप्, ५ विराट्पुरउष्णिक् ।

अग्निर्नः शत्रून् प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम् ।

स सेनां मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः ॥१॥

पदार्थ—(अग्निः) अग्नि [के समान तेजस्वी] (विद्वान्) विद्वान् राजा (अभिशस्तिम्) मिथ्या अपवाद और (अरातिम्) शत्रुता को (प्रतिदहन्) सर्वथा भस्म करता हुआ, (नः) हमारे (शत्रून्) शत्रुओं पर (प्रति, एतु) चढ़ाई करे । (सः) वह (जातवेदाः) प्रजाओं का जानने वाला वा बहुत धन वाला राजा (परेषाम्) शत्रुओं की (सेनाम्) सेना को (मोहयतु) व्याकुल कर देवे, (च) और [उन वैरियों को] (निर्हस्तान्) निहत्था (कृणवत्) कर डाले ॥१॥

भावार्थ—जो मनुष्य प्रजा में अपकीर्ति और अशान्ति फैलावे, विद्वान् अर्थात् नीतिनिपुण राजा ऐसे दुष्टों और उनके साथियों को यथावत् दण्ड देवे, जिससे वे लोग उपद्रव न मचा सकें ॥१॥

यूयमुग्रा मरुत ईदृशे स्थाभि प्रेत मृणत सहध्वम् ।

अमीमृणन् वसवो नाथिता इमे अग्निर्ह्येषां दूतः प्रत्येतु विद्वान् ॥२॥

पदार्थ—(मरुतः) हे शत्रुघातक शूरो ! (यूयम्) तुम (ईदृशे) ऐसे [कर्म संग्राम] में (उग्राः) तीव्रस्वभाव (स्थ) हो । (अभि, प्र, इत) आगे बढ़ो, (मृणत) मारो, और (सहध्वम्) जीत लो । (इमे) इन (नाथिताः) प्रार्थना किए हुए (वसवः) श्रेष्ठ पुरुषों [मरुत् गणों] ने [दुष्टों को] (अमीमृणन्) मरवा डाला है । (एषाम्) इन शत्रुओं का (दूतः) दाहकारी (अग्निः) अग्नि [समान] (विद्वान्) विद्वान् राजा (हि) अवश्य करके (प्रत्येतु) चढ़ाई करे ॥२॥

भावार्थ—जो शूरवीर संग्रामविजयी हों, जो वैरियों के नाश करने में सहायक रहे हों, उन वीरों को अग्रगामी करें और उनका उत्साह बढ़ाते रहें, और राजा विजयी सेनापतियों की पुष्टि करता हुआ शत्रुओं पर चढ़ाई करे ॥२॥

अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रूयतीमभि ।

युवं तानिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥३॥

पदार्थ—(मघवन्) हे धनवान्, (वृत्रहन्) अन्धकार वा शत्रुओं के नाश करने वाले, (इन्द्र) सूर्य [समान तेजस्वी] (च) और (अग्निः) हे अग्नि [समान शत्रुदाहक] ! (युवम्) तुम दोनों (अस्मान्) हम पर (शत्रूयतीम्) शत्रुओं के समान आचरण करती हुई (अमित्रसेनाम्) वैरियों की सेना को (अभि=अभिभूय) हराकर (तान्) उन चोरों या म्लेच्छों को (प्रति, दहतम्) जला डालो ॥३॥

भावार्थ—जैसे सूर्य अन्धकार का नाश करके और अग्नि अशुद्धतादि दुर्गुणों को जलाकर हटाने और अनेक प्रकार से उपयोगी होते हैं, ऐसे ही धनी और प्रतापी राजा कुमार्गियों को हटाकर उपकारी होवें ॥३॥

प्रसूत इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून् ।

जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विष्वक् सत्यं कृणुहि चित्तमेषाम् ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परम ऐश्वर्य वाले राजन् ! (प्रवता) उत्तम गति वा मार्ग से (हरिभ्याम्) स्वीकरण और प्रापण [ग्रहण और दान] के साथ (ते) तेरा (प्रसूतः) चलाया हुआ (वज्रः) वज्र अर्थात् दण्ड (शत्रून्) शत्रुओं को (प्रमृणन्) पीड़ा देता हुआ (प्र, एतु) आगे चले । (प्रतीचः) सम्मुख आते हुए, (अनूचः) पीछे से आते हुए और (पराचः) तिरस्कार करके चलते हुए [शत्रुओं] को (जहि) नाश करदे, और (एषाम्) इन [शत्रुओं] के (चित्तम्) चित्त को (विष्वक्) सब प्रकार (सत्यम्) सत्पुरुषों का हितकारी (कृणुहि) बना दे ॥४॥

भावार्थ—नीतिज्ञ राजा प्रजा और शत्रुओं से कर लेकर उनके हितकार्य में लगावे, जिससे सब बाहिरी-भीतरी शत्रु लोग नष्ट होकर दबे रहें और श्रेष्ठों का पालन किया करें ॥४॥

इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम् ।

अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय ॥५॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले राजन् (अमित्राणाम्) शत्रुओं की (सेनाम्) सेना को (मोहय) व्याकुल कर दे । (अग्नेः) अग्नि के और (वातस्य) पवन के (ध्राज्या) झोंके से (विषूचः) सब ओर फिरने वाले (तान्) चोरों को (वि, नाशय) नष्ट कर डाल ॥५॥

भावार्थ—राजा अपनी सेना के बल से शत्रुसेना को जीते और जैसे दावानल वन को भस्म करता और प्रचण्ड वायु वृक्षादि को गिरा देता है, वैसे ही विघ्नकारी वैरियों को मिटाता रहे ॥५॥

इन्द्रः सेनां मोहयतु मरुतो घ्नन्त्वोजसा ।

चक्षूंष्यग्निरा दत्तां पुनरेतु पराजिता ॥६॥

पदार्थ—(इन्द्रः) प्रतापी सूर्य (सेनाम्) [शत्रु] सेना को (मोहयतु) व्याकुल करदे । (मरुतः) दोष नाशक पवन के झोंके (ओजसा) बल से (घ्नन्तु) नाश करदें । (अग्निः) अग्नि (चक्षूंषि) नेत्रों को (आ, दत्ताम्) निकाल लेवे, [जिससे] (पराजिता) हारी हुई सेना (पुनः) पीछे (एतु) चली जावे ॥६॥

भावार्थ—युद्धकुशल सेनापति राजा अपनी सेना का व्यूह ऐसा करे जिससे उसकी सेना सूर्य, वायु और अग्नि वा बिजुली और जल के प्रयोग वाले अस्त्र, शस्त्र, विमान, रथ, नौकादि के बल से शत्रु सेना को नेत्रादि में भंग भंग करके हराकर भगा दे ॥६॥

卐 सूक्तम् २ 卐

१—६ अथर्वा । सेनामोहनं, १ अग्निः, २ मरुतः, ३—६ इन्द्रः । त्रिष्टुप्, २ विराड्गर्भा भुरिक्, ३—६ अनुष्टुप्, ५ विराट्पुरउष्णिक् ।

अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम् ।

स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः ॥१॥

पदार्थ—(अग्निः) अग्नि [के समान तेजस्वी] (दूतः) अग्रगामी वा तापकारी (विद्वान्) विद्वान् राजा (नः) हमारे लिए (अभिशस्तिम्) मिथ्या अपवाद और (अरातिम्) शत्रुता को (प्रतिदहन्) सर्वथा भस्म करता हुआ (प्रत्येतु) चढ़ाई करे । (सः) वह (जातवेदाः) प्रजाओं का जानने वाला [सेनापति] (परेषाम्) शत्रुओं के (चित्तानि) चित्तों को (मोहयतु) व्याकुल कर देवे (च) और [उनको] (निर्हस्तान्) निहत्था (कृणवत्) कर डाले ॥१॥

भावार्थ—राजा सेनादि में ऐसा प्रबन्ध रक्खे कि प्रजा गण आपस में मिथ्या कलङ्क न लगावें और न वैर करें और दुराचारियों को दण्ड देता रहे कि वे शक्तिहीन होकर सदा दबे रहें, जिससे श्रेष्ठों को सुख मिले और राज्य बढ़ता रहे ॥१॥

अयमग्निरमूमुहद् यानि चित्तानि वो हृदि ।

वि वो धमत्वोकसः प्र वो धमतु सर्वतः ॥२॥

पदार्थ—(अयम्) इस (अग्निः) अग्नि [समान तेजस्वी राजा] ने (चित्तानि) उन ज्ञानों को (अमूमुहत्) उलट पलट कर दिया है (यानि) जो (वः) तुम्हारे (हृदि) हृदय में [थे] । वह (वः) तुमको (ओकसः) घर से (वि, धमतु) निकाल देवे, वह (वः) तुमको (सर्वतः) सब स्थान से (प्र, धमतु) बाहिर कर देवे ॥२॥

भावार्थ—जिस सेनापति राजा ने दुष्टों को वश में करके रक्खा था, वह राजा विरोधियों को प्रतिज्ञा भंग करने पर देशनिकाला आदि दण्ड देवे ॥२॥

इन्द्र चित्तानि मोहयन्नर्वाङाकूत्या चर ।

अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे महाप्रतापी राजन् ! [शत्रुओं के] (चित्तानि) चित्तों को (मोहयन्) व्याकुल करता हुआ (अर्वाङ्) हमारे सन्मुख (आकूत्या) उत्तम सङ्कल्प से (चर) आ । (अग्नेः) अग्नि के और (वातस्य) पवन के (ध्राज्या) झोंके से (तान्) उन (विषूचः) विरुद्ध गति वालों को (वि, नाशय) नष्ट कर डाल ॥३॥

भावार्थ—जैसे अग्नि और वायु मिलकर प्रचण्ड हो जाते हैं, इसी प्रकार राजा प्रचण्ड होकर दुष्टों को दण्ड देवे और सत्कर्मी पुरुषों का शिष्टाचार करे ॥३॥

व्याकूतय एषामिताथो चित्तानि मुह्यत ।

अथो यदद्यैषां हृदि तदेषां परि निर्जहि ॥४॥

पदार्थ—हे (एषाम्) इन [शत्रुओं] के (आकूतयः) विचारो ! (वि) उलट पलट होकर (इत) चले जाओ, (अथो) और हे (चित्तानि) इनके चित्तो ! (मुह्यत) व्याकुल हो जाओ । (अथो) और [हे राजन्] (यत्) जो कुछ [मनोरथ] (अद्य)

अब (एषाम्) इनके (हृदि) हृदय मे है, (एषाम्) इनके (तत्) उस [मनोरथ] को (परि) सर्वथा (निर्जहि) नष्ट कर दे ।।४।।

भावार्थ—नीतिकुशल राजा दुराचारियो मे परस्पर मतभेद करा दे और उनका मनोरथ सिद्ध न होने दे ।।४।।

अमीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैर्ग्राह्यामित्रांस्तमसा विध्य शत्रून् ।।५।।

पदार्थ—(**अप्वे**) हे शत्रुओ को मार डालने वा हटा देने वाली सेना (**अमीषाम्**) उन [शत्रुओ] के (**चित्तानि**) चित्तो, और (**अङ्गानि**) शरीर के अवयवो और सेना-विभागो को (**प्रतिमोहयन्ती**) व्याकुल करती हुई (**गृहाण**) पकड ले, और (**परा, इहि**) पराक्रम मे चल । (**अभि**) चारो ओर से (**प्र, इहि**) धावा कर (**हृत्सु**) उनके हृदयो मे (**शोकैः**) शोको से (**निर्दह**) जलन करदे, और (**ग्राह्या**) ग्रहण शक्ति [बन्धनादि] से और (**तमसा**) अन्धकार से (**अमित्रान्**) पीडा देनेवाले (**शत्रून्**) शत्रुओ को (**विध्य**) छेद डाल ।।५।।

भावार्थ—सेनापति इस प्रकार व्यूह रचना करे कि उसकी उत्साहित सेना धावा करके अश्ववार अश्ववारो को, रथी रथियो को, पदाति पदातियो को व्याकुल करदें, अर्थात् आग्नेय अस्त्रो से धूआं धडक, और वारुणेय अस्त्रो से बन्धन मे करके जीत लें ।।५।।

असौ या सेना मरुतः परेषामस्मानैत्यभ्योजसा स्पर्धमाना ।
तां विध्यत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्यं न जानात् ।।६।।

पदार्थ—(**मरुत**) हे शूर पुरुषो (**परेषाम्**) वैरियो की (**असौ**) वह (**या**) जो (**सेना**) सेना (**अस्मान्**) हम पर (**अभि**) चारो ओर से (**ओजसा**) बल के साथ (**स्पर्धमाना**) ललकारती हुई (**आ-एति**) चढी आती है । (**ताम्**) उसको (**अपव्रतेन**) क्रियाहीन कर देने वाले (**तमसा**) अन्धकार से (**विध्यत**) छेद डालो, (**यथा**) जिससे (**एषाम्**) इनमे से (**अन्य**) कोई (**अन्यम्**) किसी को (**न**) न (**जानात्**) जाने ।।६।।

भावार्थ—सेनापति अपनी पलटनो को घातस्थानो मे इस प्रकार खडा करे कि आती हुई शत्रुसेना को रोक कर सब नष्ट कर देवें ।।६।।

卐 सूक्तम् ३ 卐

१-६ इन्द्रो देवता । १-४ त्रिष्टुप् ।

५-६ अनुष्टुप् छन्द ।।

अचिक्रदत् स्वपा इह भुवदग्ने व्यचस्व रोदसी उरूची ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आमुं नय नमसा रातहव्यम् ।।१।।

पदार्थ—(**अचिक्रदत्**) उस [परमेश्वर] ने पुकार कर कहा है, "(**इह**) यहा पर (**स्वपा**) अपने जनो का पालने वाला, अथवा, उत्तम कर्मो वाला प्राणी (**भुवत्**) होवे ।"(**अग्ने**) हे अग्नि [समान तेजस्वी राजन् !] (**उरूची**) बहुत पदार्थो को प्राप्त करने वाले (**रोदसी**) सूर्य और पृथिवी मे (**वि**) विविध प्रकार से (**अचस्व**) गति कर । (**विश्ववेदस**) सब प्रकार के ज्ञान या ध्यान वाले (**मरुत**) शूर और विद्वान् पुरुष (**त्वा**) तुझसे (**युञ्जन्तु**) मिलें । [हे राजन्] (**रातहव्यम्**) भेंट वा भक्ति का दान करने वाले (**अमुम्**) उस [प्रजागण] को (**नमसा**) अन्न वा सत्कार के साथ (**आ, नय**) अपने समीप ला ।।१।।

भावार्थ—इस प्रकार राजा परमेश्वर की आज्ञा पालन और स्वप्रजापालन मे कुशल होकर सूर्य विद्या और पृथिवी आदि विद्या मे निपुण बनकर विज्ञानी होवे । शूरवीर विद्वान् लोग उससे मिलें और राजा उन भक्त प्रजागणो का सत्कार करे ।।१।।

दूरे चित् सन्तमरुषास इन्द्रमा च्यावयन्तु सख्याय विप्रम् ।
यद् गायत्रीं बृहतीमर्कमस्मै सौत्रामण्या दधृषन्त देवाः ।।२।।

पदार्थ—(**अरुषास.** =०—**सः**) गतिशील [उद्यमी] पुरुष (**दूरे**) दुर्गम वा दूर देश मे (**चित्**) भी (**सन्तम्**) विद्यमान (**विप्रम्**) बुद्धिमान् (**इन्द्रम्**) बडे प्रतापी राजा को (**सख्याय**) अपना सखा बनाने के लिए (**आ, च्यावयन्तु**) ले आवें । (**यत्**) क्योंकि (**देवा**) व्यवहार कुशल महात्माओ ने (**गायत्रीम्**) गानक्रिया, (**बृहतीम्**) स्तुतिक्रिया और (**अर्कम्**) अन्न वा सत्कारक्रिया को (**अस्मै**) इस [इन्द्र] के लिए (**सौत्रामण्या**) सुत्रामा [उत्तम रक्षक] के योग्य भक्ति के साथ (**दधृषन्त**) एकत्र किया है ।।२।।

भावार्थ—उद्योगी प्रजागण प्रजापालक नीतिकुशल राजा को दूर देश से भी अपनी सहायता के लिए बुलावें, और अनेक प्रकार से उसका उत्साह और अपना आनन्द बढाने के लिए उसका योग्य अभिनन्दन करें, और गायत्री, बृहती आदि छन्दो से भी उसका यश गावें ।।२।।

अद्भ्यस्त्वा राजा वरुणो ह्वयतु सोमस्त्वा ह्वयतु पर्वतेभ्यः ।
इन्द्रस्त्वा ह्वयतु विड्भ्य आभ्यः श्येनो भूत्वा विश आ पतेमाः ।।३।।

पदार्थ—[हे राजराजेश्वर !] (**वरुण**) अति श्रेष्ठ (**राजा**) शासन कर्ता पुरुष (**त्वा**) तुझको (**अद्भ्य**) प्राणो के लिए (**ह्वयतु**) बुलावे, (**सोम.**) ओषधों का रस निकालने वाला [वैद्यराज] (**त्वा**) तुझको (**पर्वतेभ्य**) [शरीर की] पुष्टियो के लिए (**ह्वयतु**) बुलावे । (**इन्द्र**) बडा प्रतापी सेनापति वा तिथिपति (**त्वा**) तुझको (**आभ्य विड्भ्य**) इन प्रजाओ के लिए (**ह्वयतु**) बुलावे । [हे महाराजाधिराज !] (**श्येन**) शीघ्र गति वाला [वा बाज पक्षी के समान शीघ्र गति वाला] (**भूत्वा**) होकर (**इमा**) इन (**विश**) प्रजाओ मे (**आ, पत**) उड़कर आ ।।३।।

भावार्थ—राजा वरुण, सोम, इन्द्रादि पदवी वाले बड़े-बड़े अधिकारी अपने अधिकार की उन्नति के लिए राजाज्ञा का पालन करें और प्रधान राजा अपनी प्रजा के हित का उद्योग सदा करता रहे ।।३।।

श्येनो हव्यं नयत्वा परस्मादन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तम् ।
अश्विना पन्थां कृणुतां सुगं त इमं सजाता अभिसंविशध्वम् ।।४।।

पदार्थ—(**श्येन**) शीघ्रगति वाले आप (**अन्यक्षेत्रे**) परदेश मे (**अपरुद्धम्**) रोक दिये गए (**चरन्तम्**) उत्तम आचरण करते हुए (**हव्यम्**) बुलाने योग्य पुरुष को (**परस्मात्**) दूर देश से (**आ नयतु**) समीप लावें । (**अश्विना** = ०—**नौ**) सूर्य और चन्द्रमा (**ते**) तेरे (**पन्थाम्** **पन्थानम्**) मार्ग को (**सुगम्**) सुगम (**कृणुताम्**) करें । (**सजाता**) हे सजातीय लोगो ! (**इमम्**) इस [वीर पुरुष] से (**अभि—सं—विशध्वम्**) चारों ओर से मिलो ।।४।।

भावार्थ—यदि कोई सत्पुरुष प्रजागण परदेश मे रोक दिया गया हो, राजा उसे प्रयत्नपूर्वक बुला लेवे और सूर्य चन्द्रमा के समान नियम से प्रजा पालन करे, जिस से सब प्रजागण उससे मिले रहें ।।४।।

ह्वयन्तु त्वा प्रतिजनाः प्रति मित्रा अवृषत ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्ते विशि क्षेममदीधरन् ।।५।।

पदार्थ—(**प्रतिजना**) प्रतिकूल जन (**त्वा**) तुझे [**ह्वयन्तु**) बुलावें । (**मित्रा**) स्नेही पुरुषो ने (**प्रति**) प्रत्यक्ष (**अवृषत**) सेवा की है । (**इन्द्राग्नी**) [वायु और अग्नि] के समान गुण वाले] (**ते**) उन (**विश्वे देवा**) सब तेजस्वी पुरुषो ने (**विशि**) प्रजा मे (**क्षेमम्**) कुशल (**अदीधरन्**) स्थापित की है ।।५।।

भावार्थ—जिस राजा को प्रजागण चुनते हैं, वैरी लोग उस राजा के आधीन रहते हैं और विद्वान् शूरवीर पुरुष प्रजा मे उन्नति करते हैं ।।५।।

यस्ते हवं विवदत् सजातो यश्च निष्ट्यः ।
अपाञ्चमिन्द्र तं कृत्वाथेममिहाव गमय ।।६।।

पदार्थ—(**अथ**) और (**इन्द्र**) हे महाप्रतापी राजन् ! (**य**) जो (**सजात**) सजातीय (**च**) और (**य**) जो (**निष्ट्य**) विजातीय पुरुष (**ते**) तेरे (**हवम्**) विज्ञापन मे (**विवदत्**)विवाद करे, (**तम्**) उसको (**अपाञ्चम्**) बहिष्कृत [देश-बाहिर] (**कृत्वा**) करके (**इमम्**) इस [विज्ञापन] को (**इह**) यहा पर (**अव, गमय**) जना दे ।।६।।

भावार्थ—राजा अपने और पराये का विचार छोड पक्षपातरहित होकर शान्तिनाशक विवादी पुरुष को देश-बाहिर कर दे, और यह विज्ञापन राज्य भर में प्रसिद्ध कर दे, जिससे फिर कोई धर्म विरुद्ध चेष्टा न करे ।।६।।

卐 सूक्तम् ४ 卐

१-७ इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।।

आ त्वा गन् राष्ट्रं सह वर्चसोदिहि प्राङ् विशां पतिरेकराट् त्वं वि राज ।
सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो ह्वयन्तूपसद्यो नमस्यो भवेह ।।१।।

पदार्थ—(**राजन्**) हे राजन् ! (**राष्ट्रम्**) यह राज्य (**त्वा**) तुझको (**आ, गन्** = **अगमत्**) प्राप्त हुआ है । (**वर्चसा सह**) तेज के साथ (**उत्** + **इहि** = **उदिहि**) उदय हो । (**प्राङ्**) अच्छे प्रकार पूजा हुआ, (**विशाम्**) प्रजाओ का (**पतिः**) रक्षक, (**एकराट्**) एक महाराजाधिराज (**त्वम्**) तू (**वि, राज**) विराजमान हो । (**सर्वा**) सब (**प्रदिश**) पूर्वादि दिशायें (**त्वा**) तुझको (**ह्वयन्तु**) पुकारें । (**उपसद्य**) सबका सेवनीय और (**नमस्य**) नमस्कार योग्य (**इह**) यहा पर [अपने राज्य मे] (**भव**) तू हो ।।१ ।

भावार्थ—राजा सिंहासन पर विराज कर महाप्रतापी और प्रजापालक हो, सब दिशाओ मे उसकी दुहाई फिरे, और सब प्रजागण उसकी न्यायव्यवस्था पर चल कर उसका सदा आदर और अभिनन्दन करते रहें ।।१।।

त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः ।
वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ।।२।।

पदार्थ—[हे राजन्] (त्वाम्) तुझको (राज्याय) राज्य के लिए (विशः) प्रजायें, और (त्वाम्) तुझको ही (इमाः) यह सब (पञ्च) विस्तीर्ण वा पाच (दैवी.=०—व्यः) दिव्य गुण वाली (प्रदिशः) महा दिशायें (वृणताम्) स्वीकार करें। (राष्ट्रस्य) राज्य के (वर्ष्मन्=०—णि) ऐश्वर्ययुक्त वा ऊचे (ककुदि) शिखर पर (श्रयस्व) आश्रय ले। (ततः) फिर (उग्रः) तेजस्वी तू (नः) हमारे लिए (वसूनि) धनो का (वि, भज) विभाग कर ॥२॥

भावार्थ—राजा को सब प्रजागण चुनें। और सब मनुष्यादि प्रजा और चारो पूर्वादि दिशाओ और पाचवीं ऊपर नीचे की दिशा के पदार्थ [जैसे आकाश मार्ग और भूगर्भादि के पदार्थ] सब राजा के आधीन रहे और यह बडा ऐश्वर्यवान् होकर राजभक्त सुपात्रो को विद्या और सुवर्णादि धनों का दान करता रहे ॥२॥

अच्छ॑ त्वा यन्तु ह॒विनः॑ सजा॒ता अ॒ग्निर्दू॒तो अ॑जि॒रः सं च॑रातै ।

जा॒याः पु॒त्राः सु॒मन॑सो भवन्तु ब॒हुं ब॒लिं प्रति॑ पश्यासा उ॒ग्रः ॥३॥

पदार्थ—(हविनः) पुकार करने वाले (सजाताः) सजातीय लोग (त्वा) तुझको (अच्छ) सम्मुख आकर (यन्तु) मिलें। (अग्निः) आग के समान (दूतः) तापकारी और (अजिरः) वेगवान् [आप] (सम्) यथायोग्य (चरातै) आचरण करें। (जायाः) हमारी धर्मपत्निया और (पुत्राः) कुलशोधक वा बहुरक्षक सन्तान (सुमनसः) प्रसन्नमन (भवन्तु) रहे। (उग्रः) तेजस्वी तू (बहुं बलिम्) बहुत भेंट को (प्रति) सन्मुख (पश्यासै) देखे ॥३॥

भावार्थ—सब भाई बन्धु और प्रजागण राजा से मिले रहे, और प्रसन्न होके (बलि) राजग्राह्य भाग कर आदि देवें और वह राजा भी उनकी रक्षा मे सदा तत्पर रहे ॥३॥

अ॒श्विना॒ त्वाग्रे॑ मि॒त्रावरु॑णो॒भा विश्वे॑ दे॒वा म॒रुत॑स्त्वा ह्वयन्तु ।

अधा॒ मनो॑ वसु॒देया॑य कृणुष्व॒ ततो॑ न उ॒ग्रो वि भ॑जा॒ वसू॑नि ॥४॥

पदार्थ—(अग्रे) अगले वा मुख्य पद पर [विराजमान] (त्वा) तुझको (अश्विना=०—नौ) सूर्य और चन्द्र, और (उभा=उभौ) दोनो (मित्रावरुणा=०—णौ) प्राण और अपान वा दिन और रात और (विश्वे देवाः) सब व्यवहार-कुशल (मरुतः) शूर पुरुष (त्वा) तुझको (ह्वयन्तु) पुकारें [मार्गदर्शक हो]। (अधा) और, तू (मनः) अपने मन को (वसुदेयाय) धन का दान करने के लिए (कृणुष्व) स्थिर कर। (ततः) फिर (उग्रः) तेजस्वी तू (नः) हमारे लिए (वसूनि) धनो का (वि, भज) विभाग कर ॥४॥

भावार्थ—जैसे सूर्य और चन्द्र परस्पर आकर्षण से, दिन और रात, प्राण और अपान अपने अपने क्रम से और शूर विद्वान् पुरुष नियम पर चलने से संसार का उपकार करते हैं, इसी प्रकार ऐश्वर्यवान् राजा विचारपूर्वक सुपात्रो को दान देकर प्रजा की उन्नति करे ॥४॥

आ प्र द्र॑व पर॒मस्याः॑ परा॒वतः॑ शि॒वे ते॒ द्यावा॑पृथि॒वी उ॒भे स्ता॑म् ।

तद॒यं राजा॒ वरु॑ण॒स्तथा॑ह॒ स त्वा॒यम॑ह्वत् स उ॒पेदमेहि॑ ॥५॥

पदार्थ—(परमस्याः) अत्यन्त (परावतः) दूर देश से (आ, प्र, द्रव) आकर पधार। (ते) तेरे लिए (उभे) दोनो (द्यावापृथिवी=०—व्यौ) सूर्य और पृथिवी (शिवे) मङ्गलकारी (स्ताम्) होवें। (तथा) वैसा ही (अयम्) यह (राजा) राजा (वरुणः) सब मे श्रेष्ठ परमेश्वर (तत्) वह (आह) कहता है। सो (सः अयम्) इस [वरुण परमेश्वर] ने (त्वा) तुझको (अह्वत्) बुलाया है। (सः—स त्वम्) सो तू (इदम्) इस [राज्य] को (उप) आदर पूर्वक (आ) आकर (इहि) प्राप्त कर ॥५॥

भावार्थ—प्रजागण श्रेष्ठ राजा को दूर देश से भी बुला लेवें, और वह अपने बुद्धिबल से ऐसा प्रबन्ध करे कि राज्य भर मे दैवी और पार्थिव शान्ति रहे, अर्थात् अनावृष्टि और दुर्भिक्षादि मे भी उपद्रव न मचे, और आकाश, पृथिवी और समुद्रादि के मार्ग अनुकूल रहें। यही आज्ञा परमेश्वर ने वेदो मे दी है, उसको राजा यथावत् माने ॥५॥

इन्द्रे॑न्द्र मनु॒ष्या॒३ः परे॑हि॒ सं ह्यज्ञा॑स्था॒ वरु॑णैः संविदा॒नः ।

स त्वा॒यम॑ह्वत् स्वे स॒धस्थे॒ स दे॒वान् य॑क्ष॒त् स उ॑ कल्पया॒द् विशः॑ ॥६॥

पदार्थ—(इन्द्रेन्द्र) हे राजराजेश्वर ! (मनुष्याः—मनुष्यान्) मनुष्यो को (परेहि) समीप से प्राप्त कर, (हि) क्योकि (वरुणैः) श्रेष्ठ पुरुषो से (संविदानः) मिलाप करता हुआ तू (सम्) यथाविधि (अज्ञास्थाः) जाना गया है। (सः अयम्) सो इस [प्रत्येक मनुष्य] ने (त्वा) तुझको (स्वे सधस्थे) अपने समाज में (अह्वत्) बुलाया है। (सः—स भवान्) सो आप (देवान्) व्यवहार-कुशल पुरुषो का (यक्षत्) सत्कार करें, (स उ—स उ भवान्) वही आप (विशः) प्रजाओ को (कल्पयात्) समर्थ करें ॥६॥

भावार्थ—प्रजापालक राजा विद्वान् चतुर मनुष्यों से मिलता रहे और सुपात्रो को योग्यतानुसार पदाधिकारी करे ॥६॥

प॒थ्या॑ रे॒वती॑र्बहु॒धा विरू॑पाः॒ सर्वाः॑ सं॒गत्य॒ वरी॑यस्ते अक्रन् ।

तास्त्वा॒ सर्वाः॑ संविदा॒ना ह्व॑यन्तु दश॒मीमु॒ग्रः सु॒मना॑ वशे॒ह ॥७॥

पदार्थ—(पथ्या) मार्ग पर चलने वाली, (रेवतीः=०—त्य) धन वाली (बहुधा) प्राय (विरूपाः) विविध आकार वा स्वभाव वाली (सर्वाः) सब [प्रजाओ] ने (संगत्य) मिलकर (ते) तेरे लिए (वरीयः) अधिक विस्तीर्ण वा श्रेष्ठ [पद] (अक्रन्) किया है। (ताः सर्वाः) वे सब [प्रजायें] (संविदानाः) एकमत हो कर (त्वा) तुझको (ह्वयन्तु) पुकारें। (उग्रः) तेजस्वी और (सुमनाः) प्रसन्न-चित्त तू (इह) इस [राज्य] मे (दशमीम्) दसवी [नब्बे वर्ष से ऊपर] अवस्था को (वश) वश मे कर ॥७॥

भावार्थ—सब प्रजा गण मिलकर और सुमार्ग मे चलकर राजा को सिंहासन पर बिठलावें और अपना रक्षक बनावें और वह राजा भी इस प्रकार से न्याय और आनन्द करता हुआ नीरोग हो पूर्ण आयु भोगे ॥७॥

卐 सूक्तम् ५ 卐

१—८ अथर्वा । सोमः । १ पुरोऽनुष्टुप्त्रिष्टुप् । २—३ ५—७ अनुष्टुप्, ४ त्रिष्टुप्, ८ विराडुरो बृहती ।

आय॑मगन् पर्णम॒णिर्ब॒ली बले॑न प्रमृ॒णन्त्स॒पत्ना॑न् ।

ओजो॑ दे॒वानां॒ पय॒ ओष॑धीनां॒ वर्च॑सा मा जिन्वत्वप्रयावन् ॥१॥

पदार्थ—(अयम्) यह (बली) बली (पर्णमणिः) पालन करने वालो मे प्रशंसनीय [परमेश्वर] (बलेन) अपने बल से (सपत्नान्) हमारे वैरियो को (प्रमृणन्) विध्वंस करता हुआ (आ अगन्) प्राप्त हुआ है। (देवानाम्) इन्द्रियो का (ओजः) बल और (ओषधीनाम्) अन्नादि औषधो का (पयः) रस, (अप्रयावन्=०—वा) भूल न करने वाला वह (मा) मुझको (वर्चसा) तेज से (जिन्वतु) सन्तुष्ट करे ॥१॥

भावार्थ—जैसे अन्तर्यामी परम कारण परमेश्वर अपने सामर्थ्य से हमारे विघ्नो को हटाकर हमें ओजस्वी इन्द्रिया और पुष्टिकारक अन्नादि पदार्थ देकर उपकार करता है, वैसे ही हम ओजस्वी, पराक्रमी होकर परस्पर उपकार करते रहे ॥१॥

मयि॑ क्ष॒त्रं प॑र्णमणे॒ मयि॑ धारयताद् र॒यिम् ।

अ॒हं रा॒ष्ट्रस्या॑भीव॒र्गे नि॒जो भू॑यासमुत्त॒मः ॥२॥

पदार्थ—(पर्णमणे) हे पालन करने वालों मे प्रशंसनीय ! तू (मयि) मुझ में (क्षत्रम्) बल, और (मयि) मुझ मे ही (रयिम्) सम्पत्ति (धारयतात्) स्थापित कर। (अहम्) मैं (राष्ट्रस्य) राज्य के (अभीवर्गे) मण्डल मे (निजः) आप ही (उत्तमः) उत्तम (भूयासम्) बना रहूँ ॥२॥

भावार्थ—मनुष्य सर्वशक्तिमान् परमेश्वर का ध्यान करता हुआ अपने बुद्धि-बल और बाहुबल से शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति और सुवर्णादि धन प्राप्त करके संसार भर में कीर्त्ति बढावे और आनन्द भोगे ॥२॥

यं नि॒दधु॒र्वन॒स्पतौ॒ गुह्यं॑ दे॒वाः प्रि॒यं म॒णिम् ।

तम॒स्मभ्यं॑ स॒हायु॑षा दे॒वा द॑दतु॒ भर्त॑वे ॥३॥

पदार्थ—(यम्) जिस (गुह्यम्) गुप्त, (प्रियम्) प्रिय वा हितकारी (मणिम्) प्रशंसनीय [परमेश्वर] को (देवाः) व्यवहार जानने वाले देवताओ ने (वनस्पतौ) वननीय अर्थात् सेवनीय गुणो के रक्षक [पुरुष] मे (निदधुः) अवश्य दान किया है, (तम्) उस [परमेश्वर] को (अस्मभ्यम्) हमे (देवाः) तेजस्वी महात्मा पुरुष (आयुषा सह) बड़ी आयु के साथ (भर्तवे) हमारा पोषण करने के लिए (ददतु) दान करें ॥३॥

भावार्थ—सूक्ष्मदर्शी देवताओ ने निश्चय किया है कि वह अन्तर्यामी, सर्व-हितकारी परमेश्वर प्रत्येक शुभचिन्तक पुरुष मे वर्तमान रह कर साहस बढाता है। उसी परमात्मा का उपदेश विद्वान् महात्मा संसार मे करें ॥३॥

सोम॑स्य प॒र्णः सह॑ उ॒ग्रमाग॒न्निन्द्रे॑ण द॒त्तो वरु॑णेन शि॒ष्टः ।

तं प्रि॑यासं ब॒हु रोच॑मानो दीर्घायु॒त्वाय॑ श॒तशा॑रदाय ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्रेण) बड़े ऐश्वर्य वाले और (वरुणेन) स्वीकरणीय श्रेष्ठ, गुरु आदि करके (दत्तः) हमे दिया हुआ और (शिष्टः) सिखाया हुआ (सोमस्य) अमृत का (पर्णः) पूर्ण करने वाला परमेश्वर, (उग्रम्) पराक्रम वाला (सहः) बल [बलरूप], (आ) सब ओर से (अगन्) मिला है। (बहु) अनेक प्रकार से (रोचमानः) रुचि करता हुआ मैं (तम्) उस [अमृतपूरक परमेश्वर] को (शतशारदाय) सौ शरद् ऋतु युक्त (दीर्घायुत्वाय) बड़े जीवन के लिए (प्रियासम्) प्रसन्न करू ॥४॥

भावार्थ—जब मनुष्य विद्वानो की शिक्षा पाकर शुद्ध मुक्त स्वभाव परमेश्वर के ज्ञान से आत्मा मे बल पाता है, तब वह धर्मात्मा बड़े उत्साह से परमात्मा की आज्ञा पालता हुआ बड़े अर्थात् यशस्वी जीवन के साथ आनन्द भोगता है ॥४॥

आ मा॑रुक्षत् पर्णम॒णिर्म॒ह्या अ॑रिष्टता॑तये ।

यथा॒हमु॑त्त॒रोऽसा॑न्यर्य॒म्ण उ॒त सं॒विदः॑ ॥५॥

पदार्थ—(पर्णमणि) पालन करने वालो मे श्रेष्ठ परमेश्वर (मह्यं अरिष्टतातये) बडी कुशलता के लिए (मा) मेरे (आ, अरुक्षत्) ऊपर बैठा है। (यथा) जिससे (अहम्) मैं (अर्यम्ण) श्रेष्ठो के मान करने वाले, (उत) और (संविद) ज्ञानी पुरुष से (उत्तर) अधिक श्रेष्ठ (असानि) हो जाऊ ॥५॥

भावार्थ—सर्वोपरि परमेश्वर अन्तर्यामी होकर हमे दुष्कर्मों से बचने की प्रेरणा करता है, जिससे हम श्रेष्ठो मे अति श्रेष्ठ और ज्ञानियो मे अति ज्ञानी होवें ॥५॥

ये धीवा॑नो रथका॒राः क॒र्मा॒रा ये म॑नी॒षिणः॑ ।

उ॒प॒स्तीन् प॑र्ण॒ मह्यं॒ त्वं सर्वा॑न् कृण्व॒भितो॒ जना॑न् ॥६॥

पदार्थ—(ये) जो (धीवान) तीक्ष्ण बुद्धि वाले (रथकारा) रथो के बनाने वाले और (ये) जो (मनीषिण) बडे पण्डित (कर्मारा) कर्मों मे गति रखने वाले शिल्पी जन है। (पर्ण) हे पालन करने वाले परमेश्वर ! (त्वम्) तू (मह्यम्) मेरे लिए (सर्वान्) उन सब (जनान्) जनो को (अभित) चारो ओर से (उपस्तीन्) समीपवर्ती (कृणु) कर ॥६॥

भावार्थ—सब मनुष्यो और विशेष कर राजा लोगो को चाहिए कि भूमिरथ, आकाशरथ, जलरथ आदि के बनाने वाले और अन्य शिल्पकर्मी विश्वकर्मा चतुर विद्वानो का सत्कार करते रहे, जिससे अनेक व्यापारो से ससार मे उन्नति होवे ॥६॥

ये राजा॑नो राज॒कृतः॑ सू॒ता ग्रा॑म॒ण्य॑श्च॒ ये ।

उ॒प॒स्तीन् प॑र्ण॒ मह्यं॒ त्वं सर्वा॑न् कृण्व॒भितो॒ जना॑न् ॥७॥

पदार्थ—(ये) जो (राजान) ऐश्वर्य वाले (राजकृत) राजाओ के बनाने वाले, (च) और (ये) जो (सूता) सर्वप्रेरक, (ग्रामण्य) ग्रामो के नेता लोग हैं। (पर्ण) हे पालन करने वाले परमेश्वर ! (त्वम्) तू (मह्यम्) मेरे लिए (सर्वान्) उन सब (जनान्) जनो को (अभित) चारो ओर से (उपस्तीन्) समीपवर्ती (कृणु) कर ॥७॥

भावार्थ—चक्रवर्ती राजा सब के राजाधिराज परमेश्वर का ध्यान करता हुआ अपने हितकारी माण्डलिक राजाओ और अन्य प्रधान पुरुषो को यथोचित व्यवहार से अपना इष्ट मित्र बनाए रक्खे ॥७॥

प॒र्णो॑ऽसि तनू॒पानः॒ सयो॑निर्वी॒रो वी॒रेण॒ मया॑ ।

सं॒व॒त्स॒रस्य॒ तेज॑सा॒ तेन॑ बध्नामि त्वा मणे ॥८॥

पदार्थ—(मणे) हे प्रशसनीय परमेश्वर ! तू (पर्ण) हमारा पूर्ण करने वाला, (तनूपान) शरीर रक्षक और (वीरेण मया) मुझ वीर के साथ (सयोनि) मिलने योग्य घर मे रहने वाला (वीर) वीर (असि) है। (संवत्सरस्य) सब मे यथानियम वास करने वाले [तेरे] (तेन तेजसा) उस तेज से (त्वा) तुझको (बध्नामि) मैं बाधता हूँ ॥८॥

भावार्थ—मनुष्य उस उत्तम कामनाओके पूरक, और शरीर रक्षक महापराक्रमी परमेश्वर को अपने साथ सब स्थानो मे निवास करता हुआ जानकर, और उस के तेजोमय स्वरूप को हृदय मे धारण करके पराक्रमी और तेजस्वी होकर आनन्द भोगे ॥८॥

卐 इति प्रथमोऽनुवाक 卐

卐

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ६ 卐

१—८ जगद्बीज पुरुष । वानस्पति , अश्वत्थ , अनुष्टुप् ।

पु॒मान् पुं॒सः परि॑जातो॒ऽश्व॒त्थः ख॑दि॒रादधि॑ ।

स ह॑न्तु॒ शत्रू॑न् माम॒कान् यान॒हं द्वेष्मि॒ ये च॒ माम् ॥१॥

पदार्थ—(स) वह (पुमान्) रक्षाशील (अश्वत्थ) अश्वत्थामा अर्थात् अश्वो, बलवानो मे ठहरने वाला पुरुष, अथवा वीरो के ठहरने का स्थान पीपल का वृक्ष, (पुंस) रक्षाशील (खदिरात् अधि) स्थिर स्वभाव वाले परमेश्वर से, अथवा खैर वृक्ष से (परिजात) प्रकट होकर (मामकान् शत्रून्) मेरे उन शत्रुओ वा रोगो को (हन्तु) नाश करे (यान्) जिन्हे (अहम) मैं (द्वेष्मि) वैरी जानता हूँ (च) और (ये) जो (माम्) मुझे [वैरी जानते है] ॥१॥

भावार्थ—जो पुरुष सर्वरक्षक दृढ स्वभावादि गुण वाले परमेश्वर को विचार करके अपने को सुधारते है, वे शूरो मे महाशूर होकर कुकर्मी शत्रुओ से बचा कर ससार मे कीर्ति पाते हैं ॥१॥

२—अश्वत्थ, पीपल का वृक्ष, दूसरे वृक्षो के खोखले, घरो की भीतो, और अन्य स्थानो मे उगता है और बहुत गुणकारी है। खैर के वृक्ष पर उगने से अधिक गुणदायक हो जाता है। लोग बडा आदर करके पीपल की चित्तप्रसादक छाया और वायु मे सन्ध्या, हवन, व्यायाम आदि करते, और इसके दूध, पत्ते, फल, लकड़ी से बहुत औषधियां बनाते है। शब्दकल्पद्रुम कोष मे इसको मधुर, कसैला, शीतल, कफ पित्त विनाशी, रक्तदाहशान्तिकारक आदि, और खदिर अर्थात् खैर को शीतल, तीखा, कसैला, दातो का हितकारी, कृमि, प्रमेह, ज्वर, फोडे, कुष्ठ, शोथ, आम, पित्त, रुधिर पाडु और कफ का विनाशक आदि लिखा है ॥

ताना॑श्वत्थ॒ निः शृ॑णीहि॒ शत्रू॑न् वैबाध॒दोध॑तः ।

इन्द्रे॑ण वृत्र॒घ्ना मे॒दी मि॒त्रेण॒ वरु॑णेन च ॥२॥

पदार्थ—(अश्वत्थ) हे बलवानो मे ठहरने वाले शूर [वा पीपल वृक्ष !] (वृत्रघ्ना) अन्धकार मिटाने वाले (इन्द्रेण) सूर्य से, (मित्रेण) प्रेरणा करने वाले वायु से (च) और (वरुणेन) स्वीकार करने योग्य जल से (मेदी—मद्) स्नेही होकर (तान्) उन (वैबाधदोधत) विविध बाधा डालने वाले क्रोधशील (शत्रून्) शत्रुओ वा रोगो को (नि) सर्वथा (शृणीहि) मार डाल ॥२॥

भावार्थ—राजा सूर्यादि के समान गुणयुक्त होकर भीतरी और बाहरी वैरियों का और सद्वैद्य पीपल के प्रयोग से रोगो का नाश करके प्रजा मे शान्ति रक्खे ॥२॥

यथा॑श्वत्थ निर॒भ॑नो॒ऽन्तर्म॑ह॒त्य॑र्ण॒वे ।

ए॒वा तान्त्सर्वा॒न्निर्भ॑ङ्ग्धि॒ यान॒हं द्वेष्मि॒ ये च॒ माम् ॥३॥

पदार्थ—(अश्वत्थ) हे वीरो मे ठहरने वाले राजन् ! [वा पीपल वृक्ष !] (यथा) जैसे (महति) बडे (अर्णवे अन्त) समुद्र के बीच मे (निरभन) निश्चय करके तू भद्र करने वाला हुआ है। (एव) वैसे ही (तान सर्वान्) उन सब को (निर्) निरन्तर (भङ्ग्धि) नष्ट कर दे, (यान्) जिन्हे (अहम्) मैं (द्वेष्मि) वैरी जानता हूँ, (च) और (ये) जो (माम्) मुझे [वैरी जानते है] ॥३॥

भावार्थ—मनुष्यो को शूरवीर और सद्वैद्य होकर दु खसागर मे डूबे हुए प्रजागणो के उभारने मे प्रयत्न करना चाहिये ॥३॥

यः सह॑मान॒श्चर॑सि सास॒हान इ॑व ऋष॒भः ।

तेना॑श्वत्थ॒ त्वया॑ व॒यं स॒पत्ना॑न्त्सहिषीमहि ॥४॥

पदार्थ—(अश्वत्थ) हे शूरो मे ठहरने वाले राजन् ! [वा पीपल वृक्ष] ! (य) जो तू (सहमान) [वैरियो को] दबाता हुआ, (सासहान) महाबली (ऋषभ इव) श्रेष्ठ पुरुष वा बलीवर्द वा ऋषभ औषध के समान (चरसि) विचरता है। (तेन त्वया) उस तेरे साथ (वयम्) हम (सपत्नान्) वैरियो को (सहिषीमहि) हरा देवें ॥४॥

भावार्थ—प्रजागण शूरवीर नीतिनिपुण राजा और सद्वैद्य के सहाय से शत्रुओ को वश मे करते रहे। ऋषभ औषधविशेष है। इसको शब्दकल्पद्रुम कोष मे मीठा, शीतल, रक्त-पित्त विशेष नाशक, वीर्य-श्लेष्मकारी और दाहक्षय ज्वरहारी आदि लिखा है ॥४॥

सि॒नात्वे॑नान् निर्ऋ॑ति॒र्मृत्यो॒ः पाशै॑रमो॒क्यैः ।

अश्व॑त्थ॒ शत्रू॑न् माम॒कान् यान॒हं द्वेष्मि॒ ये च॒ माम् ॥५॥

पदार्थ—(अश्वत्थ) हे शूरो मे ठहरने वाले राजन् ! [वा पीपल वृक्ष !] (निर्ऋति) अलक्ष्मी (मृत्यो) मृत्यु के (अमोक्यै) न खुल सकने वाले (पाशै) पाशो से (एनान्) उन (मामकान् शत्रून्) मेरे शत्रुओ को (सिनातु) बाध लेवे (यान्) जिन्हे (अहम्) मैं (द्वेष्मि) वैरी जानता हूँ, (च) और (ये) जो (माम्) मुझे [वैरी जानते है] ॥५॥

भावार्थ—राजा सत्पुरुषो के विरोधी दुराचारियो को दृढ बन्धना मे डालकर निर्धन और नष्ट कर दे ॥५॥

यथा॑श्वत्थ वानस्प॒त्याना॒रोह॑न् कृणु॒षेऽध॑रान् ।

ए॒वा मे॒ शत्रो॑र्मू॒र्धानं॒ विष्व॑ग् भिन्द्धि॒ सह॑स्व च ॥६॥

पदार्थ—(यथा) जिस प्रकार से (अश्वत्थ) हे शूरो मे ठहरने वाले अश्वत्थामा राजन् ! [वा पीपल वृक्ष !] (वानस्पत्यान्) सेवको वा सेवनीय गणों के रक्षक [आप] से सम्बन्ध वाले पुरुषो [वा वृक्ष समूहो] पर (आरोहन्) ऊचा होकर (अधरान्) नीचे (कृणुषे) तू करता है (एव) वैसे ही (मे शत्रो) मेरे शत्रु के (मूर्धानम्) मस्तक को (विष्वक) सब विधि से (भिन्द्धि) तोड दे (च) और (सहस्व) जीत ले ॥६॥

भावार्थ—समस्त और प्रत्येक प्रजागण समर्थ शूरवीर पुरुष वा सद्वैद्य को नायक बनाकर शत्रुओ और रोगो से अपने को बचावें ॥६॥

ते॑ऽध॒राञ्चः॒ प्र प्ल॑वन्तां छि॒न्ना नौरि॑व॒ बन्ध॑नात् ।

न वै॑बाध॒प्रणु॑त्तानां॒ पुन॑रस्ति नि॒वर्त॑नम् ॥७॥

पदार्थ—(**ते**) वे (**अधराञ्च**) अधोगति वाले लोग वा रोग (**बन्धनात्**) बन्धन से (**छिन्ना**) छुटी हुई (**नौ इव**) नाव के समान (**प्र प्लवन्ताम्**) बहते चले जावें जिससे (**वैबाधप्रणुत्तानाम्**) विविध बाधा डालने वालो मे पडे हुए लोगो का (**पुन**) फिर (**निवर्तनम्**) लौटना (**न**) नहीं (**अस्ति**) हो ॥७॥

प्रैणा॑न्नुदे॒ मन॑सा॒ प्र चि॒त्तेनो॒त ब्रह्म॑णा ।

प्रैणा॑न् वृ॒क्षस्य॒ शाख॑याश्व॒त्थस्य॑ नुदामहे ॥८॥

पदार्थ—(**एनान्**) इन [शत्रुओ] को (**मनसा**) मनन शक्ति से, (**चित्तेन**) ज्ञान शक्ति से (**उत**) और (**ब्रह्मणा**) वेदशक्ति से (**प्र प्र**) सर्वथा (**नुदे**) मैं हटाता हूँ । (**एनान्**) इनको (**वृक्षस्य**) स्वीकार करने योग्य (**अश्वत्थस्य**) बलवानो मे ठहरने वाले शूर [वा पीपल] की (**शाखया**) व्याप्ति [वा शाखा] से (**प्र नुदामहे**) हम निकाल देते हैं ॥८॥

卐 सूक्तम् ७ 卐

१—७ भृग्वङ्गिरा । १—३ हरिण , ४ तारके, ५ आप , ६—७ यक्ष्मनाशनम् । अनुष्टुप्, ६ भुरिक् ।

ह॒रि॒णस्य॑ रघु॒ष्यदोऽधि॑ शी॒र्षणि॑ भेष॒जम् ।

स क्षे॑त्रि॒यं वि॑षा॒णया॑ विषू॒चीन॑मनीनशत् ॥१॥

पदार्थ—(**रघुष्यद**) शीघ्रगामी (**हरिणस्य**) अन्धकार हरने वाले सूर्य रूप परमेश्वर के (**शीर्षणि अधि**) आश्रय मे ही (**भेषजम्**) भय जीतने वाला औषध है, (**स**) उस [ईश्वर] ने (**विषाणया**) विविध भोगो से (**क्षेत्रियम्**) शरीर वा वश के रोग को (**विषूचीनम्**) सब ओर से (**अनीनशत्**) नष्ट कर दिया है ॥१॥

अनु॑ त्वा हरि॒णो वृषा॑ प॒द्भिश्च॒तुर्भि॑रक्रमीत् ।

विषा॑णे॒ वि ष्य॑ गुष्पि॒तं यद॑स्य क्षेत्रि॒यं हृ॒दि ॥२॥

पदार्थ—[हे मनुष्य] (**वृषा**) परम ऐश्वर्यवाला (**हरिण**) विष्णु भगवान् (**चतुर्भि**) मागने योग्य [अथवा चार—धर्म, अर्थ काम, मोक्ष] (**पद्भि**) पदार्थों के साथ (**त्वा अनु**) तेरे साथ-साथ (**अक्रमीत्**) पद जमा कर आगे बढा है । (**विषाणे**) [परमेश्वर के] विविध दान मे [उस रोग को] (**विष्य**) नाश कर दे (**यत्**) जो (**क्षेत्रियम्**) शरीर वा वश का रोग (**अस्य**) इसके (**हृदि**) हृदय मे (**गुष्पितम् गुफितम्**) गुथा हुआ है ॥२॥

अ॒दो यद॑व॒रोच॑ते॒ चतु॑ष्पक्षमिव च्छ॒दिः ।

तेना॑ ते॒ सर्वं॑ क्षेत्रि॒यमङ्गे॑भ्यो नाशयामसि ॥३॥

पदार्थ—(**अद**) वह (**यत**) जो [वा पूजनीय ब्रह्म] (**चतुष्पक्षम्**) याचनीय व्यवहारो से युक्त, अथवा चार पक्ष वाले (**छदि इव**) घर के समान (**अवरोचते**) चमकता है । (**तेन**) उसके द्वारा (**ते अङ्गेभ्य**) तेरे अङ्गो से (**सर्वम्**) सब (**क्षेत्रियम्**) शरीर वा वश के रोग को (**नाशयामसि=-०—म**) हम नाश करते है ॥३॥

अ॒मू ये दि॒वि सु॒भगे॑ वि॒चृतौ॒ नाम॒ तार॑के ।

वि क्षे॑त्रि॒यस्य॑ मुञ्चताम॒धमं॒ पाश॑मुत्त॒मम् ॥४॥

पदार्थ—(**अमू**) वे (**ये**) जो (**सुभगे**) बडे ऐश्वर्य वाले (**विचृतौ**) [अन्धकार से] छुडाने वाले (**नाम**) प्रसिद्ध (**तारके**) दो तारे [सूर्य और चन्द्रमा] (**दिवि**) आकाश मे हैं, वे दोनो (**क्षेत्रियस्य**) शरीर वा वश के दोष वा रोग के (**अधमम्**) नीचे और (**उत्तमम्**) ऊँचे (**पाशम्**) पाश को (**वि+मुञ्चताम्**) छुडा देवे ॥४॥

आप॒ इद् वा उ॑ भेष॒जीरापो॑ अमीव॒चात॑नीः ।

आपो॒ विश्व॑स्य भेष॒जीस्तास्त्वा॑ मुञ्चन्तु क्षेत्रि॒यात् ॥५॥

पदार्थ—(**आप**) सर्वव्यापक परमेश्वर वा जल (**इत् वै उ**) अवश्य ही (**भेषजी —०—ञ्य**) भय निवारक है, (**आप**) परमेश्वर, वा जल (**अमीवचातनी =०—ञ्य**) पीडानाशक है । (**आप**) परमेश्वर वा जल (**विश्वस्य**) सब का (**भेषजीः**) भय निवारक है, (**ता**) वह (**त्वा**) तुझ को (**क्षेत्रियात्**) शरीर वा वश के दोष वा रोग से (**मुञ्चन्तु**) छुडावे ॥५॥

यदा॑सु॒तेः क्रि॒यमा॑णायाः क्षेत्रि॒यं त्वा॑ व्यान॒शे ।

वे॒दाहं तस्य॑ भेष॒जं क्षे॑त्रि॒यं ना॑शयामि॒ त्वत् ॥६॥

पदार्थ—(**यत्**) जो (**क्षेत्रियम्**) शरीर वा वंश का रोग (**क्रियमाणाया**) बिगडते हुए (**आसुतेः**) काढे से (**त्वा**) तुझमे (**व्यानशे**) व्याप गया है । (**अहम्**) मैं (**तस्य**) उसका (**भेषजम्**) औषध (**वेद**) जानता हूँ । (**क्षेत्रियम्**) शरीर वा वंश के रोग को (**त्वत्**) तुम से (**नाशयामि**) नाश करता हूँ ॥६॥

अ॒प॒वा॒से नक्ष॑त्राणा॒मप॑वास उ॒षसा॑मुत ।

अपा॒स्मत् सर्वं॑ दुर्भू॒तमप॑ क्षेत्रि॒यमु॑च्छतु ॥७॥

पदार्थ—(**नक्षत्राणाम्**) नक्षत्रो के (**अपवासे**) छिपने पर (**उत**) और (**उषसाम्**) प्रभात वेलाओ के (**अपवासे**) चले जाने पर (**अस्मत्**) हमसे (**सर्वम्**) सब (**दुर्भूतम्**) अनिष्ट (**अप—अप उच्छतु**) चला जावे, और (**क्षेत्रियम्**) शरीर वा वश का रोग (**अप**) हट जावे ॥७॥

卐 सूक्तम् ८ 卐

१—६ अथर्वा । १ मित्र', पृथिवी, वरुण', वायु , अग्नि , २ धाता, सविता, इन्द्र , त्वष्टा, अदिति , ३ सोम , सविता, आदित्य , अग्नि , ४ विश्वेदेवाः, ५—६ मन' । त्रिष्टुप्, २—६ जगती, ४ चतुष्पदी विराड् बृहतीगर्भा, ५ अनुष्टुप् ।

आ या॑तु मि॒त्र ऋ॒तुभिः॒ कल्प॑मानः संवे॒शय॑न् पृथि॒वीमु॒स्रिया॑भिः ।

अथा॒स्मभ्यं॒ वरु॑णो वा॒युर॒ग्निर्बृ॒हद् रा॒ष्ट्रं सं॑वे॒श्यं॑ दधातु ॥१॥

पदार्थ—(**ऋतुभि**) ऋतुओ से (**कल्पमान**) समर्थ होता हुआ और (**उस्रियाभि**) किरणो से (**पृथिवीम्**) पृथिवी को (**संवेशयन्**) सुखी करता हुआ (**मित्र**) मरण से बचाने वाला वा लोको का चलाने वाला सूर्य (**आयातु**) आवे । (**अथ**) और (**वरुण**) वृष्टि आदि का जल (**वायु**) पवन और (**अग्नि**) अग्नि (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिए (**बृहत्**) विशाल (**संवेश्यम्**) शान्तिदायक (**राष्ट्रम्**) राज्य को (**दधातु**) स्थिर करे ॥१॥

धा॒ता रा॒तिः स॑वि॒तेदं जु॑षन्ता॒मिन्द्र॒स्त्वष्टा॒ प्रति॑ हर्यन्तु मे॒ वचः॑ ।

हु॒वे दे॒वीमदि॑तिं॒ शूर॑पुत्रां सजा॒ताना॑ मध्यमे॒ष्ठा यथासा॑नि ॥२॥

पदार्थ—(**धाता**) पोषणकर्ता, (**राति**) दानकर्त्ता, (**सविता**) सर्वप्रेरक (**इन्द्र**) बडा ऐश्वर्यवान्, और (**त्वष्टा**) देदीप्यमान वा विश्वकर्मा [ये सब पुरुष] (**मे**) मेरे (**इदम्**) परम ऐश्वर्य के कारण (**वच**) वचन को (**जुषन्ताम्**) विचारें और (**प्रति**) प्रत्यक्ष रूप से (**हर्यन्तु**) स्वीकार करें । (**देवीम्**) दिव्य गुणवाली, (**शूरपुत्राम्**) शूर पुत्रो वाली (**अदितिम्**) अदीन वा अखण्ड व्रतवाली देव माता [चतुर स्त्री वा विद्या] को (**हुवे**) मै आवाहन करता हूँ, (**यथा**) जिससे मै (**सजातानाम**) अपने समान जन्मवाले भाई बन्धुओ मे (**मध्यमेष्ठा**) प्रधान मध्यस्थ [mediator] होकर (**असानि**) रहूँ ॥२॥

हु॒वे सोमं॑ सवि॒तारं॒ नमो॑भि॒र्विश्वा॑नादि॒त्याँ अ॒हमु॑त्तर॒त्वे ।

अ॒यम॒ग्निर्दी॑दायद् दी॒र्घमे॒व स॑जा॒तैरि॒द्धोऽप्र॑तिब्रुवद्भिः ॥३॥

पदार्थ—(**अहम्**) मै (**सोमम्**) ऐश्वर्य वाले और (**सवितारम्**) सर्वप्रेरक पुरुष को और (**विश्वान्**) सब (**आदित्यान्**) अदीन देवमाता के पुत्रो वा तेजस्वी शूर जनो को (**उत्तरत्वे**) श्रेष्ठता के निमित्त (**नमोभि**) अनेक सत्कारो से (**हुवे**) आवाहन करता हूँ । (**अप्रतिब्रुवद्भि**) प्रतिकूल न बोलने वाले (**सजातै**) समान जन्म वाले भाई बन्धुओ करके (**इद्ध**) प्रकाशित करता हुआ (**अयम्**) यह (**अग्नि**) अग्नि [सदृश तेजस्वी पुरुष] (**दीर्घम्**) बहुत काल तक (**एव**) अवश्य (**दीदायत्**) ज्योति वाला रहे ॥३॥

इ॒हेद॑साथ॒ न प॒रो ग॑माथे॒र्यो गो॒पाः पु॑ष्ट॒पति॑र्व॒ आज॑त् ।

अ॒स्मै कामा॒योप॑ का॒मिनी॒र्विश्वे॑ वो दे॒वा उ॑प॒संय॑न्तु ॥४॥

पदार्थ—[हे प्रजाओ ! स्त्री पुरुषो !] (**इह इत्**) यहां पर ही (**असाथ**) रहो, (**पर**) दूर (**न**) मत (**गमाथ**) जाओ, (**इर्य**) अन्नवान् वा विद्यावान् (**गोपा**) भूमि, वा विद्या वा गौ का रक्षक, (**पुष्टपति**) पोषण का स्वामी पुरुष (**व**) तुम को (**आ, अजत्**) यहा लावे । (**अस्मै**) इस [पुरुष] के अर्थ (**कामाय**) कामना [की पूर्ति] के लिए (**विश्वे**) सब (**देवा**) उत्तम-उत्तम गुण (**कामिनी**) उत्तम कामना वाली (**व**) तुम प्रजाओ को (**उप**) अच्छे प्रकार से (**उपसंयन्तु**) आकर प्राप्त हो ॥४॥

सं वो॒ मनां॑सि॒ सं व्र॒ता समाकू॑ती॒र्नमा॑मसि ।

अ॒मी ये विव्र॑ता॒ स्थन॒ तान् वः॒ सं न॑मयामसि ॥५॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (**व**) तुम्हारे (**मनांसि**) मनो को (**सम्**) ठीक रीति से, (**व्रता - व्रतानि**) कर्मों को (**सम्**) ठीक रीति से, (**आकूती**) संकल्पों को (**सम्**) ठीक रीति से (**नमामसि=० —म**) हम झुकते हैं । (**अमी ये**) ये जो तुम (**विव्रता**) विरुद्ध कर्मी (**स्थन**) हो, (**तान् व**) उन तुम को (**सम्**) ठीक रीति से (**नमयामसि=०—म**) हम झुकाते हैं ॥५॥

अ॒हं गृ॑भ्णामि॒ मन॑सा॒ मनां॑सि॒ मम॑ चि॒त्तमनु॑ चि॒त्तेभि॒रेत॑ ।

मम॒ वशे॑षु॒ हृद॑यानि वः कृणोमि॒ मम॑ या॒तमनु॑वर्त्मान॒ एत॑ ॥६॥

पदार्थ—(**अहम्**) मैं (**मनसा**) अपने मन से (**मनांसि**) तुम्हारे मनो को (**गृम्णामि गृह्णामि**) थामता हूँ, (**मम**) मेरे (**चित्तम् अनु**) चित्त के पीछे पीछे **चित्तेभि चित्तै**) अपने चित्तो से (**आ इत**) आओ। (**मम वशेषु**) अपने वश मे (**व हृदयानि**) तुम्हारे हृदयो को (**कृणोमि**) मैं करता हूँ, (**मम यातम्**) मेरी चाल पर (**अनुवर्त्मान**) मार्ग चलते हुए (**आ इत**) यहाँ आओ ॥६॥

卐 सूक्तम् ९ 卐

१—६ वामदेव । द्यावापृथिवी, देवा । अनुष्टुप्, ४ चतुष्पदा निचृद्बृहती, ६ भुरिक् ।

कर्शफस्य विशफस्य द्यौः पिता पृथिवी माता ।
यथाभिचक्र देवास्तथापं कृणुता पुनः ॥१॥

पदार्थ—(**कर्शफस्य**) निर्बल का और (**विशफस्य**) प्रबल का (**द्यौ**) प्रकाशमान परमेश्वर (**पिता**) पिता और (**पृथिवी**) विस्तीर्ण परमेश्वर (**माता**) निर्मात्री, माता है। (**देवा**) हे विजयी पुरुषो ! (**यथा**) जैसे [शत्रुओं को] (**अभिचक्र**) तुमने हराया था, (**तथा**) वैसे ही (**पुन**) फिर [उन्हें] (**अपकृणुत**) हटा दो ॥१॥

अश्रेष्माणो अधारयन् तथा तन्मनुना कृतम् ।
कृणोमि वध्रि विष्कन्धं मुष्काबर्हो गवामिव ॥२॥

पदार्थ—(**अश्रेष्माण**) दाह [डाह] न करने वाले पुरुषो ने [जगत् को] (**अधारयन्**) धारण किया है (**तथा**) उसी प्रकार से ही (**तत्**) वह [जगत् का धारण] (**मनुना**) सर्वज्ञ परमेश्वर करके (**कृतम्**) किया गया है। (**विष्कन्धम्**) विघ्न को (**वध्रि**) निर्बल (**कृणोमि**) मैं करता हूँ, (**गवाम् इव**) जैसे बैलो के (**मुष्काबर्ह**) अण्डकोष ताड़ने वाला [बैलो को निर्बल कर देता है] ॥२॥

पिशङ्गे सूत्रे खृगलं तदा बध्नन्ति वेधसः ।
श्रवस्युं शुष्मं काबवं वध्रिं कृण्वन्तु बन्धुरः ॥३॥

पदार्थ—(**वेधस**) बुद्धिमान् पुरुष (**पिशङ्गे**) व्यवस्था वा अवयवो से युक्त वा दृढ़ (**सूत्रे**) सूत में (**तत्**) विस्तीर्ण (**खृगलम्**) खपती वा छिद्र में गलाने वाले, विघ्न को (**आ**) सब ओर से (**बध्नन्ति**) बाधते है। (**बन्धुर** —०—**रा**) बन्धुजन (**श्रवस्युम्**) प्रसिद्ध, (**शुष्मम्**) सुखाने वाले (**काबवम्**) स्तुतिनाशक शत्रु को (**वध्रिम्**) निर्वीर्य (**कृण्वन्तु**) कर देवें ॥३॥

येना श्रवस्यवश्चरथ देवा इवासुरमायया ।
शुनां कपिरिव दूषणो बन्धुरा काबवस्य च ॥४॥

पदार्थ—(**येन**) जिस [बल] के साथ (**श्रवस्यव**) हे प्रसिद्ध महापुरुषो ! (**देवा इव**) विजयी लोगो के समान (**असुरमायया**) प्रकाशमान ईश्वर की बुद्धि से (**चरथ**) तुम आचरण करते हो, [उसी बल के साथ] (**शुनाम्**) कुत्तो के (**दूषण**) तुच्छ जानने वाले (**कपि इव**) बन्दर के समान (**बन्धुरा**) बन्धन शक्ति [नीति विद्या] (**च**) निश्चय करके (**काबवस्य**) स्तुतिनाशक शत्रु की [तुच्छ करने वाली होती है ॥४॥

दुष्ट्यै हि त्वा भत्स्यामि दूषयिष्यामि काबवम् ।
उदाशवो रथा इव शपथेभिः सरिष्यथ ॥५॥

पदार्थ—(**दुष्ट्यै**) दुष्टता [हटाने] के लिए (**हि**) ही (**काबवम्**) स्तुतिनाशक (**त्वा**) तुझ को (**भत्स्यामि**) मैं बाधूंगा और (**दूषयिष्यामि**) दोषी ठहराऊंगा। (**आशव**) शीघ्रगामी (**रथा इव**) रथो के समान (**शपथेभि** = ०—**थैः**) हमारे शाप अर्थात् दण्ड वचनो से (**उत् सरिष्यथ**) तुम सब बन्धन से चले जाओगे। ५॥

एकशतं विष्कन्धानि विष्ठिता पृथिवीमनु ।
तेषां त्वामग्र उज्जहरुर्मणिं विष्कन्धदूषणम् ॥६॥

पदार्थ—(**एकशतम्**) एक सौ एक (**विष्कन्धानि**) विघ्न (**पृथिवीम् अनु**) पृथिवी पर (**विष्ठिता** = ०—**तानि**) फैले हुए है। [हे शूर !] (**तेषाम् अग्रे**) उनके सन्मुख (**विष्कन्धदूषणम्**) विघ्न नाशक (**मणिम्**) प्रशसनीय मणिरूप (**त्वाम्**) तुझ को उन्होने [देवताओ ने] (**उत् अहरु**) ऊँचा उठाया है ॥६॥

卐 सूक्तम् १० 卐

१—१३ अथर्वा । अष्टका, १ धेनु, २—४ रात्रि, धेनु., ५ एकाष्टका, ६ जातवेद, पशव, ७ रात्रि, यशाः, ८ संवत्सर., ९ ऋतव, १० धाता-विधातारौ, ऋतव, ११ देवा, १२ इन्द्र, देवा, १३ प्रजापति । अनुष्टुप्, ४—६, १२ त्रिष्टुप्, ७ व्यवसाना षट्पदा विराड्गर्भातिजगती ।

प्रथमा ह व्युवास सा धेनुरभवद् यमे ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥१॥

पदार्थ—(**सा**) वह [ईश्वरी वा लक्ष्मी] (**प्रथमा**) प्रसिद्ध वा पहली शक्ति [प्रकृति] (**ह**) निश्चय करके (**वि उवास**) प्रकाशित हुई। वह (**यमे**) नियम मे (**धेनु**) तृप्त करने वाली [वा गौ के समान] (**अभवत्**) हुई है। (**सा**) वह (**पयस्वती**) दुधेल [प्रकृति] (**न**) हम को (**उत्तराम् उत्तराम्**) उत्तम-उत्तम (**समाम्**) सम [समान वा निष्पक्ष] शक्ति से (**दुहाम्**) भरती रहे ॥१॥

यां देवाः प्रतिनन्दन्ति रात्रिं धेनुमुपायतीम् ।
संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥२॥

पदार्थ—(**देवा**) महात्मा पुरुष, वा सूर्य, वायु चन्द्रादि दिव्य पदार्थ (**उपायतीम्**) पास आती हुई (**धेनुम्**) तृप्त करने वाली (**याम्**) जिस (**रात्रिम्**) दानशीला और ग्रहणशीला शक्ति, वा रात्रि रूप [प्रकृति] को (**प्रतिनन्दन्ति**) अभिनन्दन करते [धन्य मानते] हैं और (**या**) जो (**संवत्सरस्य**) यथावत् निवास देने वाले [परमेश्वर] की (**पत्नी**) पालन शक्ति है, (**सा**—**सा सा**) वह ईश्वरी (**न**) हमारे लिए (**सुमङ्गली**) बड़े-बड़े मंगल करने वाली (**अस्तु**) होवे ॥२॥

संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपास्महे ।
सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ॥३॥

पदार्थ—(**रात्रि**) हे सुखदात्री वा दुःखहर्त्री वा रात्रिरूप [प्रकृति] (**संवत्सरस्य**) यथावत् निवास देनेवाले परमेश्वर की (**प्रतिमाम्**) प्रतिमा [प्रतिरूप वा प्रतिनिधि] (**याम्**) सर्वत्र व्यापिनी (**त्वा**) तुझको (**उपास्महे**) हम भजते है। (**सा**) वह लक्ष्मी तू (**न**) हमारे लिए (**आयुष्मतीम्**) चिरजीविनी (**प्रजाम्**) प्रजा को (**राय**) धन की (**पोषेण**) बढ़ती के साथ (**संसृज**) संयुक्त कर ॥३॥

इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा ।
महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ॥४॥

पदार्थ—(**इयम् एव**) यही (**सा**) वह ईश्वरी [रात्रि, प्रकृति] है (**या**) जो (**प्रथमा**) प्रथम (**वि-औच्छत्**) प्रकाशमान हुई है, और (**आसु**) इन सब और (**इतरासु**) दूसरी [सृष्टियो] मे (**प्रविष्टा**) प्रविष्ट होकर (**चरति**) विचरती है। (**अस्याम् अन्त**) इसके भीतर (**महान्त**) बड़ी-बड़ी (**महिमान**) महिमायें है। उस (**नवगत्**) नवीन-नवीन गति वाली (**वधू**) प्राप्ति योग्य (**जनित्री**) जननी ने [अनर्थों को] (**जिगाय**) जीत लिया है ॥४॥

वानस्पत्या ग्रावाणो घोषमक्रत हविष्कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।
एकाष्टके सुप्रजसः सुवीरा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥५॥

पदार्थ—(**वानस्पत्या**) वनस्पति अर्थात् सेवकों वा सेवनीय गुणो के रक्षक परमेश्वर से सम्बन्ध वाले (**ग्रावाण**) सूक्ष्मदर्शी, स्तोता पुरुषो ने, (**परिवत्सरीणम्**) परिवत्सर, सब प्रकार निवास देने वाले परमेश्वर से सिद्ध किये हुए (**हवि**) ग्राह्य वस्तु को (**कृण्वन्त**) उत्पन्न करते हुए, (**घोषम्**) ध्वनि (**अक्रत**) की है। "(**एकाष्टके**) हे अकेली व्याप्ति वाली वा अकेली भोजन स्थान शक्ति [प्रकृति] ! (**वयम्**) हम लोग (**सुप्रजस**) उत्तम सन्तान वाले, (**सुवीरा**) उत्तम वीरो वाले और (**रयीणाम्**) सब प्रकार के धनो के (**पतय**) पति (**स्याम**) होवें ॥५॥

इडायास्पदं घृतवत् सरीसृपं जातवेदः प्रति हव्या गृभाय ।
ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपास्तेषां सप्तानां मयि रन्तिरस्तु ॥६॥

पदार्थ—(**जातवेद**) हे उत्पन्न पदार्थों के ज्ञान वाले पुरुष ! (**इडाया:**) प्राप्ति योग्य [प्रकृति] के (**घृतवत्**) सारयुक्त और (**सरीसृपम्**) अत्यन्त रेंगते हुए (**पदम् प्रति**) पद से (**हव्या:** = **हव्यानि**) देने लेने योग्य वस्तुओ को (**गृभाय**) ग्रहण कर। (**ये**) जो (**ग्राम्या**) ग्राम निवासी, (**विश्वरूपा**) नाना रूप वाले (**पशव**) व्यक्त और अव्यक्त वाणी वाले जीव है (**तेषाम्**) उन सब (**सप्तानाम्**) आपस मे मिले हुए प्राणियों की (**रन्ति**) प्रीति वा क्रीड़ा (**मयि**) मुझ मे (**अस्तु**) होवे ॥६॥

आ मा पुष्टे च पोषे च रात्रि देवानां सुमतौ स्याम ।
पूर्णा दर्वे परा पत सुपूर्णा पुनरा पत ।
सर्वान् यज्ञान्त्संभुञ्जती मूर्जं न आ भर ॥७॥

पदार्थ—(**रात्रि**) हे सुख देने वाली वा दुःख हरने वाली, वा रात्रि रूप [प्रकृति] ! (**पुष्टे**) धन की समृद्धि (**च**) और (**पोषे**) अन्नादि की वृद्धि में (**च**) निश्चय करके (**आ**) मुझको (**आ**—**आ भर**) भर दे, [जिससे]

(**देवानाम्**) देवताओं की (**सुमतौ**) सुमति में (**स्याम**) हम रहें । (**दर्वे**) हे दुःख दलने वाली ! [वा चमसारूप !] (**पूर्णा**) भरी भराई (**परापत**) ऊपर आ, और (**पुनः**) बार-बार (**सुपूर्णा**) भले प्रकार भरी भराई (**आ पत**) पास आ ! (**सर्वान्**) सब (**यज्ञान्**) पूजनीय गुणों का (**सम्भुञ्जती**) ठीक-ठीक पालन करती हुई तू (**इषम्**) अन्न और (**ऊर्जम्**) बल (**नः**) हमें (**आ भर**) लाकर भर दे ॥७॥

आयमगन्त्संवत्सरः पतिरेकाष्टके तव ।
सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ॥८॥

पदार्थ—(**एकाष्टके**) अकेली व्यापक रहने वाली, वा अकेली भोजन स्थान शक्ति ! [प्रकृति] (**अयम्**) यह (**संवत्सरः**) यथावत् निवास देने वाला, (**तव**) तेरा (**पतिः**) पति वा रक्षक [परमेश्वर] (**आ अगन्**) प्राप्त हुआ है । (**सा**) लक्ष्मी तू (**नः**) हमारे लिए (**आयुष्मतीम्**) बड़ी आयु वाली (**प्रजाम्**) प्रजा को (**रायः**) धन की (**पोषेण**) बढ़ती के साथ (**सं सृज**) संयुक्त कर ॥८॥

ऋतून् यज ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् ।
समाः संवत्सरान् मासान् भूतस्य पतये यजे ॥९॥

पदार्थ—(**ऋतून्**) ऋतुओं, (**ऋतुपतीन्**) ऋतुओं के स्वामियों [सूर्य, वायु आदिकों], (**आर्तवान्**) ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले (**हायनान्**) पाने योग्य चावल आदि पदार्थों से (**संवत्सरान्**) यथाविधि निवास देनेवाले (**मासान्**) कर्मों के नापने वाले महीनों (**उत**) और (**समाः**) सब अनुकूल क्रियाओं को (**भूतस्य**) सत्ता में आये हुए जगत् के (**पतये**) पति के (**यज यजे**) मैं बार बार अर्पण करता हूँ ॥९॥

ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः ।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥१०॥

पदार्थ—[हे काष्टके प्रकृति !] (**त्वा**) तुझ को (**ऋतुभ्यः**) ऋतुओं के लिए, (**आर्तवेभ्यः**) ऋतुओं में उत्पन्न पदार्थों के लिए, (**माद्भ्यः**) महीनों के लिए और (**संवत्सरेभ्यः**) यथावत् निवास देने वाले वर्षों के [सुधार के] लिए, (**धात्रे**) धारण करने वाले, (**विधात्रे**) रचने वाले, (**समृधे**) यथानियम बढ़ाने वाले (**भूतस्य**) जगत के (**पतये**) पति के लिए (**यजे**) मैं समर्पण करता हूँ ॥१०॥

इडया जुह्वतो वयं देवान् घृतवता यजे ।
गृहानलुभ्यतो वयं सं विशेमोप गोमतः ॥११॥

पदार्थ—(**इडया**) स्तुति योग्य प्रकृति [की विद्या] से (**घृतवता घृतवता कर्मणा**) सार युक्त [कर्म] के द्वारा (**जुह्वतः**) होम [आत्म दान] करने वाले (**देवान्**) देवताओं को (**वयम्**) हम (**यजे यजामहे**) पूजते हैं [जिससे] (**अलुभ्यतः**) तृष्णा रहित [सर्वथा भरे पूरे] और (**गोमतः**) बहुत-सी उत्तम-उत्तम गौओं वाले (**गृहान्**) घरों में (**उप उपेत्य**) आकर (**वयम्**) हम (**सविशेम**) सुख से रहें ॥११॥

एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमानमिन्द्रम् ।
तेन देवा व्यसहन्त शत्रून् हन्ता दस्यूनामभवच्छचीपतिः ॥१२॥

पदार्थ—(**एकाष्टका**) अकेली व्यापक रहने वाली वा अकेली भोजन स्थान शक्ति [प्रकृति] ने (**तपसा**) बड़े ऐश्वर्य वाले ब्रह्म द्वारा (**तप्यमाना**) ऐश्वर्य वाली होकर (**गर्भम्**) स्तुति योग्य (**महिमानम्**) पूजनीय (**इन्द्रम्**) परम ऐश्वर्य वाले जीव को (**जजान**) प्रकट किया । (**तेन**) उस [इन्द्र, जीव] के द्वारा (**देवाः**) प्रकाशमान इन्द्रियों ने (**शत्रून्**) शत्रुओं [दोषों] को (**वि**) विविध प्रकार से (**असहन्त**) हराया है, और (**शचीपतिः**) वाणियों वा कर्मों वा बुद्धियों का पति [इन्द्र, जीव] (**दस्यूनाम्**) दस्युओं को (**हन्ता**) मारने वाला (**अभवत्**) हुआ है ॥१२॥

इन्द्रपुत्रे सोमपुत्रे दुहितासि प्रजापतेः ।
कामानस्माकं पूरय प्रति गृह्णाहि नो हविः ॥१३॥

पदार्थ—(**इन्द्रपुत्रे**) हे सूर्य जैसे पुत्र वाली ! (**सोमपुत्रे**) हे चन्द्रमा जैसे पुत्र वाली ! [प्रकृति] तू (**प्रजापतेः**) प्रजा रक्षक परमेश्वर के (**दुहिता**) कार्यों की पूर्ण करने वाली (**असि**) है, (**अस्माकम्**) हमारे (**कामान्**) मनोरथों को (**पूरय**) पूर्ण कर, (**नः**) हमारी (**हविः**) भक्ति को (**प्रति गृह्णाहि**) स्वीकार कर ॥१३॥

卐 इति द्वितीयोऽनुवाकः 卐

卐

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ११ 卐

१—८ ब्रह्मा, भृग्वङ्गिराश्च । इन्द्राग्नी, आयुष्यं, यक्ष्मनाशनम् । त्रिष्टुप्, ४ शक्वरीगर्भा जगती, ५—६ अनुष्टुप्, ७ उष्णिग्बृहतीगर्भा पथ्यापङ्क्तिः, ८ त्र्यवसाना षट्पदा बृहतीगर्भा जगती ।

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥१॥

पदार्थ—[हे प्राणी !] (**त्वा**) तुझ को (**हविषा**) भक्ति के साथ (**कम्**) सुख से (**जीवनाय**) जीवन के लिए (**अज्ञातयक्ष्मात्**) अप्रकट रोग से (**उत**) और (**राजयक्ष्मात्**) राज रोग से (**मुञ्चामि**) मैं छुड़ाता हूँ । (**यदि**) जो (**ग्राहिः**) जकड़ने वाली पीड़ा [गठिया रोग] ने (**एतत्**) इस समय में (**एनम्**) इस प्राणी को (**जग्राह**) पकड़ लिया है, (**तस्याः**) उस [पीड़ा] से (**इन्द्राग्नी**) हे सूर्य और अग्नि ! (**एनम्**) इस [प्राणी] को (**प्र मुमुक्तम्**) तुम छुड़ाओ ॥१॥

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय ॥२॥

पदार्थ—(**यदि**) चाहे [यह] (**क्षितायुः**) टूटी आयु वाला, (**यदि वा**) अथवा (**परेतः**) अंग भङ्ग है, (**यदि**) चाहे (**मृत्योः**) मृत्यु के (**अन्तिकम्**) समीप (**एव**) ही (**नीतः नि—इतः**) आ चुका है । (**तम्**) उसको (**निर्ऋतेः**) महामारी की (**उपस्थात्**) गोद से (**आ हरामि**) लिए आता हूँ (**एनम्**) इसको (**शतशारदाय [जीवनाय**) सौ शरद् ऋतुओं वाले [जीवन] के लिए (**अस्पार्शम्**) मैंने प्रबल किया है ॥२॥

सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥३॥

पदार्थ—(**सहस्राक्षेण**) सहस्रों नेत्र वाले, (**शतवीर्येण**) सैकड़ों सामर्थ्य वाले, (**शतायुषा**) सैकड़ों जीवनशक्ति वाले (**हविषा**) आत्मदान वा भक्ति से (**एनम्**) इस [आत्मा] को (**आ अहार्षम्**) मैंने उभारा है । (**यथा**) जिससे (**इन्द्रः**) ऐश्वर्यवान् मनुष्य (**एनम्**) इस [देही] को (**विश्वस्य**) प्रत्येक (**दुरितस्य**) कष्ट के (**पारम्**) पार (**अति अतीत्य**) निकाल कर (**शरदः**) [सौ] शरद ऋतुओं तक (**नयाति**) पहुँचावे ॥३॥

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् ।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥४॥

पदार्थ—(**वर्धमानः** + **त्वम्**) बढ़ती करता हुआ तू (**शतम् शरदः**) सौ शरद् ऋतुओं तक (**शतम् हेमन्तान्**) सौ शीत ऋतुओं तक (**उ**) और (**शतम् वसन्तान्**) सौ वसन्त ऋतुओं तक (**जीव**) जीता रह । (**इन्द्रः**) ऐश्वर्यवान् (**अग्निः**) तेजस्वी विद्वान् (**सविता**) सबका चलाने वाला, (**बृहस्पतिः** + **अहं जीव**) बड़ों बड़ों के रक्षक मैंने (**शतम्**) अनेक प्रकार से (**ते**) तेरे लिए (**शतायुषा**) सैकड़ों जीवन शक्ति वाले (**हविषा**) आत्मदान वा भक्ति से (**एनम्**) इस [आत्मा] को (**आ अहार्षम्**) उभारा है ॥४॥

प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् ।
व्यन्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितराञ्छतम् ॥५॥

पदार्थ—(**प्राणापानौ**) हे श्वास और प्रश्वास तुम दोनों, [इस शरीर में] (**प्र विशतम्**) प्रवेश करते रहो, (**अनड्वाहौ—इव**) रथ ले चलने वाले दो बैलों जैसे (**व्रजम्**) गोशाला में (**अन्ये**) दूसरे (**मृत्यवः**) मृत्यु के कारण (**वि यन्तु**) उलटे चले जावें (**यान्**) जिन (**इतरान्**) कामना नाशक [मृत्युओं] को (**शतम्**) सौ प्रकार का (**आहुः**) बतलाते हैं ॥५॥

इहैव स्तं प्राणापानौ माप गातमितो युवम् ।
शरीरमस्याङ्गानि जरसे वहतं पुनः ॥६॥

पदार्थ—(**प्राणापानौ**) हे श्वास प्रश्वास ! (**युवम्**) तुम दोनों (**इह एव**) इसमें ही (**स्तम्**) रहो, (**इतः**) इससे (**मा अप गातम्**) दूर मत जाओ । (**अस्य**) इस [प्राणी] के (**शरीरम्**) शरीर और (**अङ्गानि**) अंगों को (**जरसे**) स्तुति के लिए (**पुनः**) अवश्य (**वहतम्**) तुम दोनों ले चलो ॥६॥

जरायै त्वा परि ददामि जरायै नि धुवामि त्वा ।
जरा त्वा भद्रा नेष्ट व्यन्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितराञ्छतम् ॥७॥

पदार्थ—[हे प्राणी !] (त्वा) तुझे (जरायै) स्तुति पाने के लिए (परि) सब प्रकार (ददामि) दान करता हूँ। (जरायै) स्तुति के लिए (त्वा) तेरे (नि धुवामि) निहारे करता हूँ [अथवा, तुझे भकभोरता हूँ] (जरा) स्तुति (त्वा) तुझे (भद्रा भद्राणि) सबसे सुख (नेष्ट) पहुँचावे। (अन्ये) दूसरे (मृत्यव) मृत्यु के कारण (वि यन्तु) उलट चले जावें, (यान्) जिन (इतरान्) कामनाशक [मृत्युओं] को (शतम्) सौ प्रकार का (आहु) बतलाते हैं ॥७॥

अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्ज्वा ।

यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया ।

तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमुञ्चद् बृहस्पतिः ॥८॥

पदार्थ—[हे प्राणी !] (जरिमा) निबलता ने (त्वा) तुझको (अभि अहित) बाधा है, (उक्षणम्) बलवान् (गाम् इव) बैल को जैसे (रज्ज्वा) रस्सी से (य मृत्यु) जिस मृत्यु ने (जायमानम्) उत्पन्न वा प्रसिद्ध होते हुए (त्वा) तुझको (सुपाशया) दृढ फंदे से (अभि अधत्त) बन्धन में किया है, (तम्) उस [मृत्यु] को (सत्यस्य) सत्य के (ते) तेरे (हस्ताभ्याम्) दोनों हाथों के हित के लिए (बृहस्पति) बड़ों-बड़ों के रक्षक [देवगुरु] परमेश्वर वा आचार्य ने [तुझ से] (उत् अमुञ्चत्) छुड़ा दिया है ॥८॥

卐 सूक्तम् १२ 卐

१—९ ब्रह्मा। शाला, वास्तोष्पति. त्रिष्टुप्, । २ विराड् जगती, ३ बृहती, ६ शक्वरीगर्भा जगती, ७ आर्षी अनुष्टुप्, ८ भुरिक्, ९ अनुष्टुप्।

इहैव ध्रुवां नि मिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठाति घृतमुक्षमाणा ।

तां त्वा शाले सर्ववीराः सुवीरा अरिष्टवीरा उप सं चरेम ॥१॥

पदार्थ—(इह एव) यहा पर ही (ध्रुवाम्) ठहराऊ (शालाम्) शाला को (नि मिनोमि) जमाकर बनाता हूँ। वह (घृतम्) घी (उक्षमाणा) सींचती हुई (क्षेमे) लब्ध वस्तु की रक्षा मे (तिष्ठाति) ठहरी रहे। (शाले) हे शाला (ताम् त्वा) उस तुझमें (उप–उपेत्य) आकर (सर्ववीरा) सब वीर पुरुषो वाले (सुवीरा) अच्छे-अच्छे पराक्रमी पुरुषो वाले और (अरिष्टवीरा) नीरोग पुरुष वाले (सचरेम) हम चलते फिरते रहे ॥१॥

इहैव ध्रुवा प्रति तिष्ठ शालेऽश्वावती गोमती सूनृतावती ।

ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥२॥

पदार्थ—(शाले) हे शाला ! तू (इह एव) यहा पर ही (अश्वावती) बहुत घोड़ो वाली, (गोमती) बहुत गौओं वाली और (सूनृतावती) बहुत प्रिय सत्य वाणियों वाली होकर (ध्रुवा) ठहराऊ (प्रति तिष्ठ) जमी रह। (ऊर्जस्वती) बहुत अन्न वाली, (घृतवती) बहुत घी वाली और (पयस्वती) बहुत दूध वाली होकर (महते) बडे (सौभगाय) सुन्दर सौभाग्य के लिए (उत् श्रयस्व) ऊँची हो ॥२॥

धरुण्यसि शाले बृहच्छन्दाः पूतिधान्या ।

आ त्वा वत्सो गमेदा कुमार आ धेनवः सायमास्पन्दमानाः ॥३॥

पदार्थ—(शाले) हे शाला ! तू (बृहच्छन्दा) विशाल छतवाली, वा बहुत से छन्द वा वेद मन्त्रो वाली, (पूतिधान्या) शुद्ध धान्य वाली (धरुणी) भण्डार (असि) है। (त्वा) तुझमें (वत्स) बछड़ा (आ) और (कुमार) बालक (आ गमेत्) आवे। (सायम्) सायकाल मे (आस्पन्दमाना) कूदती हुई (धेनव) दुधैल गौएँ (आ–आगच्छन्तु) आवे ॥३॥

इमां शालां सविता वायुरिन्द्रो बृहस्पतिर्नि मिनोतु प्रजानन् ।

उक्षन्तूद्ना मरुतो घृतेन भगो नो राजा नि कृषिं तनोतु ॥४॥

पदार्थ—(इमाम् शालाम्) इस शाला को (सविता) सबका चलाने वाला पुरुष [वा सूर्य,] (वायु) वेगवान् पुरुष [वा पवन] (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् पुरुष [वा मेघ] और (प्रजानन्) ज्ञानवान् (बृहस्पति) बड़े-बड़े कामो का रक्षक पुरुष [प्रत्येक] (नि मिनोतु) जमाकर बनावे। (मरुत) शूर देवता [विद्वान् लोग] (उद्ना) जल से और (घृतेन) घी से (उक्षन्तु) सीचें, और (भग) भाग्यवान् (राजा) राजा [प्रधान पुरुष] (न) हमारे लिए (कृषिम्) खेती को (नि) सदैव (तनोतु) बढ़ावे ॥४॥

मानस्य पत्नि शरणा स्योना देवी देवेभिर्निमितास्यग्रे ।

तृणं वसाना सुमना असस्त्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः ॥५॥

पदार्थ—(मानस्य) हे मान अर्थात् प्रतिष्ठा की (पत्नि) रक्षा करने वाली, (शरणा) शरण देने वाली, (स्योना) सुखदायिनी, (देवी) उजियाले वाली तू (देवेभिः–देवैः) देवताओं [विश्वकर्मा पुरुषो] करके (निमिता) मापी हुई (अग्रे) हमारे सन्मुख (असि) वर्तमान है। (तृणम्) घास को (वसाना) पहिने हुए (त्वम्) तू (सुमना) प्रसन्न मन वाली (अस) हो, (अथ) और (अस्मभ्यम्) हमे (सहवीरम्) वीर पुरुषो के सहित (रयिम्) धन (दा) दे ॥५॥

ऋतेन स्थूणामधि रोह वंशोग्रो विराजन्नप वृङ्क्ष्व शत्रून् । मा ते रिषन्नुपसत्तारो गृहाणां शाले शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः ॥६॥

पदार्थ—(वंश) हे बांस ! तू (ऋतेन) अपने सत्य से (स्थूणाम्) थूनी [टेक वा खूटी] पर (अधि रोह) चढ जा, और (उग्रः) दृढ वा प्रचंड होकर (विराजन्) विशेष रूप से प्रकाशित होता हुआ तू (शत्रून्) शत्रुओं को (अप वृङ्क्ष्व) दूर हटा दे। (शाले) हे शाला ! (ते) तेरे (गृहाणाम्) घरो के (उपसत्तार) रहने वाले पुरुष (मा रिषन्) दुखी न होवें। (सर्ववीरा) सब वीरो को रखते हुए हम लोग (शतम्) सौ (शरद) शरद् ऋतुओं तक (जीवेम) जीते रहें ॥६॥

एमां कुमारस्तरुण आ वत्सो जगता सह ।

एमां परिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशैरगुः ॥७॥

पदार्थ—(इमाम्) इस [शाला] में (कुमार) बालक, (आ) और (तरुण) युवा, (आ) और (जगता सह) चलने वाले गौ आदि के साथ (वत्स) बछड़ा, (आ) और (इमाम्) इस [शाला] में (परिस्रुत) पिघलते हुए रस का (कुम्भ) घड़ा (दध्न) दही के (कलशै) कलशो के साथ (आ अगु) आये हैं ॥७॥

पूर्णं नारि प्र भर कुम्भमेतं घृतस्य धाराममृतेन संभृताम् ।

इमां पातॄनमृतेना समङ्ग्धीष्टापूर्तमभि रक्षात्येनाम् ॥८॥

पदार्थ—(नारि) हे नर का हित करने वाली गृहपत्नी ! (एतम्) इस (पूर्णम्) पूरे (कुम्भम्) घड़े मे से (अमृतेन) अमृत [हितकारी पदार्थ] से (संभृताम्) भरी हुई (घृतस्य) घी की (धाराम्) धारा को (प्र, भर–हर) अच्छे प्रकार ला। (इमाम्) इस [शाला] को और (पातॄन्) पालनकर्ताओं व रक्षकों को (अमृतेन) अमृत से (सम्) अच्छे प्रकार (अङ्ग्धि) पूर्ण कर। (इष्टापूर्तम्) यज्ञ और वेदों का अध्ययन, अन्नदानादि पुण्य कर्म (एनाम्) इस [शाला] की (अभि) सब ओर से (रक्षाति) रक्षा करे ॥८॥

इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः ।

गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥९॥

पदार्थ—(इमा) इस (अयक्ष्मा) रोगरहित (यक्ष्मनाशनी) रोगनाशक (आप) जल को (प्र) अच्छे प्रकार (आ भरामि) मैं लाता हूँ। (अमृतेन) मृत्यु से बचाने वाले अन्न, घृत, दुग्धादि सामग्री और (अग्निना सह) अग्नि के सहित (गृहान्) घरों में (उप–उपेत्य) आकर (प्र) अच्छे प्रकार (सीदामि) मैं बैठता हूँ ॥९॥

卐 सूक्तम् १३ 卐

१—७ भृगु। वरुण, सिन्धुः, आप, २—३ इन्द्र। अनुष्टुप्, १ निचृत्, ५ विराड्जगती, ६ निचृदनुष्टुप्।

यददः संप्रयतीरहावनदता हते ।

तस्मादा नद्यो३ नाम स्थ ता वो नामानि सिन्धवः ॥१॥

पदार्थ—(सिन्धव) हे बहने वाली नदियो ! (सम्प्रयती–संप्रयत्यः+यूयम्) मिलकर आगे बढती हुई तुमने (अहौ हते) मेघ के ताडे जाने पर (अद) वह (यत्) जो (अनदत) नाद किया है। (तस्मात) इसलिये (आ) ही (नद्य) नाद करने वाली, नदी (नाम) नाम (स्थ) तुम हो, (ता–तानि) वह [वैसे ही] (व) तुम्हारे (नामानि) नाम हैं ॥१॥

यत् प्रेषिता वरुणेनाच्छीभं समवल्गत ।

तदाप्नोदिन्द्रो वो यतीस्तस्मादापो अनु ष्ठन ॥२॥

पदार्थ—(यत्) जब (आत्) फिर (वरुणेन) सूर्य करके (प्रेषिता) भेजे हुए तुम (शीभम्) शीघ्र (समवल्गत) मिलकर चलो, (तत्) तब (इन्द्र) जीव ने [वा सूर्य ने] (यती) चलते हुए (व) तुमको (आप्नोत्) प्राप्त किया। (तस्मात्) उससे (अनु) पीछे (आप) प्राप्ति योग्य जल [नाम] (स्थन) तुम हो ॥२॥

अपकामं स्यन्दमाना अवीवरत वो हि कम् ।

इन्द्रो वः शक्तिभिर्देवीस्तस्माद् वार्नाम वो हितम् ॥३॥

पदार्थ—(व) वेगवान् वा वरणीय (इन्द्र) जीव [वा सूर्य] ने (हि) ही (अपकामम्) व्यर्थ (स्यन्दमाना) बहते हुए (व) तुमको (शक्तिभि)

अपनी शक्तियो द्वारा (कम्) सुख से (अवीवरत) वरण [स्वीकार] अथवा, वारण [रोकना] किया, (तस्मात्) इससे (देवी = देव्यः) हे दिव्य गुण वाली वा खेलवाली जलधाराओ ! (वः) तुम्हारा (नाम) नाम (वाः) वरण योग्य वा वारण योग्य जल (हितम्) रक्खा गया है ॥३॥

एको वो देवोऽप्यतिष्ठत् स्यन्दमाना यथावशम् ।

उदानिषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते ॥४॥

पदार्थ—(एक) अकेला (देव) जयशील परमात्मा (यथावशम्) इच्छानुसार (स्यन्दमानाः) बहते हुए (वः) तुम्हारा (अपि अतिष्ठत्) अधिष्ठाता हुआ । (महीः = महत्यः) शक्ति वाले [आप जल] ने (इति) इस प्रकार (उत्+आनिषु) ऊपर को श्वास ली, (तस्मात्) इस लिये (उदकम्) ऊपर को श्वास लेने वाला उदक वा जल (उच्यते) कहा जाता है ॥४॥

आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौ बिभ्रत्याप इत् ताः ।

तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत् ॥५॥

पदार्थ—(आप) जल (भद्राः) मगलमय, और (आप) जल (इत्) ही (घृतम्) घृत (आसन्) था । (ताः) वह (इत्) ही (आप) जल (अग्नीषोमौ) अग्नि और चन्द्रमा को (बिभ्रति) पुष्ट करता है । (मधुपृचाम्) मधुरता से भरी जलधाराओ का (अरंगम) परिपूर्ण मिलन वाला, (तीव्र) तीव्र [तीक्ष्ण, शीघ्र प्रवेश होने वाला] (रस) रस (मा) मुझको (प्राणेन) प्राण और (वर्चसा सह) कान्ति वा बल के साथ (आ गमेत्) आगे ले चले ॥५॥

आदित् पश्याम्युत वा शृणोम्या मा घोषो गच्छति वाङ्मासाम् ।

मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः ॥६॥

पदार्थ—(आत्) तब (इत्) ही (पश्यामि) मैं देखता हूँ, (उत) और (वा) अथवा (शृणोमि) मैं सुनता हूँ, (आसाम्) इनकी [जल के रस की] (घोष) ध्वनि (मा) मुझे (आ गच्छति) आती है और (वाक्) वाक् शक्ति (मा) मुझे [आती है] । (हिरण्यवर्णाः) हे कमनीय पदार्थ वा सुवर्ण वा विस्तार करने वाले [जल] ! (तर्हि) तभी (अमृतस्य) अमृत का (भेजानः) भोग करता हुआ मैं (मन्ये) अपने को मानूं, (यदा) जब (वः) तुम्हारी (अतृपम्) तृप्ति मैंने पाई हो ॥६॥

इदं व आपो हृदयमयं वत्स ऋतावरीः ।

इहेत्थमेत शक्वरीर्यत्रेदं वेशयामि वः ॥७॥

पदार्थ—(आप) हे प्राप्ति के योग्य जलधाराओ ! (इदम्) यह (वः) तुम्हारा (हृदयम्) स्वीकार योग्य हृदय वा कर्म है । (ऋतावरीः) हे सत्यशील [जल धाराओ !] (अयम्) यह (वत्स) निवास देने वाला, आश्रय है । (शक्वरीः) हे शक्ति वालियो ! (इत्थम्) इस प्रकार से (इह) यहाँ पर (आ इत) आओ, (यत्र) जहा (वः) तुम्हारे (इदम्) जल को (वेशयामि) प्रवेश करूं ॥७॥

卐 सूक्तम् १४ 卐

१—६ ब्रह्मा । गोष्ठ , अह , २ अर्यमा, पूषा, बृहस्पति , इन्द्रः, १—६ गाव , ५ गोष्ठश्च । अनुष्टुप्, ६ आर्षी त्रिष्टुप् ।

सं वो गोष्ठेन सुषदा सं रय्या सं सुभूत्या ।

अहर्जातस्य यन्नाम तेना वः सं सृजामसि ॥१॥

पदार्थ—[हे गौओ !] (वः) तुम को (सुषदा) सुख मे बैठने योग्य (गोष्ठेन) गोशाला से (सम्) मिलाकर (रय्या) धन से (सम्) मिलाकर और (सुभूत्या) बहुत सम्पत्ति से (सम्) मिलाकर और (अहर्जातस्य) प्रतिदिन उत्पन्न होने वाले [प्राणी] का (यत् नाम) जो नाम है, (तेन) उस [नाम] से (वः) तुम को (सम्, सृजामसि = ०—मः) हम मिलाकर रखते है ॥१॥

सं वः सृजत्वर्यमा सं पूषा सं बृहस्पतिः ।

समिन्द्रो यो धनंजयो मयि पुष्यत यद् वसु ॥२॥

पदार्थ—(वः) तुमको (अर्यमा) अरि अर्थात् हिंसको का नियामक [गोपाल] (सम्) मिलाकर (पूषा) पोषण करने वाला [गृहपति] (सम्) मिलाकर और (बृहस्पतिः) बडे बडो का रक्षक [विद्वान् वैद्यादि पुरुष] (सम्) मिलाकर, और (इन्द्रः) बडे ऐश्वर्य वाला राजा, (यः धनंजयः) जो धनो का जीतने वाला है, (सम् सृजतु) मिलाकर रक्खे । (मयि) मुझमे (यत्) पूजनीय (वसु) धन को (पुष्यत) तुम पुष्ट करो ॥२॥

संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः ।

बिभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन ॥३॥

पदार्थ—(अस्मिन् गोष्ठे) इस गोशाला मे (संजग्माना) मिलकर चलती हुई, (अबिभ्युषी ०—ष्य) निर्भय रहती हुई, (करीषिणी ०—ण्य) गोबर करने वाली, (सोम्यम्) अमृतमय (मधु) रस (बिभ्रती —०—त्य) धारण करती हुई, (अनमीवा.) नीरोग तुम(उपेतन — उप, आ, इत) चली आओ ॥३॥

इहैव गाव एतनेहो शकेव पुष्यत ।

इहैवोत प्र जायध्वं मयि संज्ञानमस्तु वः ॥४॥

पदार्थ—(गाव) हे गौओ ! (इह एव) यहा ही (एतन) आओ (इहो इह+उ) यहा ही (शका इव) समर्था [गृहपत्नी] के समान (पुष्यत) पोषण करो । (उत) और (इह एव) यहा पर ही (प्रजायध्वम्) बच्चो से बढ़ो । (मयि) मुझ मे (वः) तुम्हारा (संज्ञानम्) प्रेम (अस्तु) होवे ॥४॥

शिवो वो गोष्ठो भवतु शारिशाकेव पुष्यत ।

इहैवोत प्र जायध्वं मया वः सं सृजामसि ॥५॥

पदार्थ—(वः) तुम्हारी (गोष्ठ) गोशाला (शिव) मङ्गलदायक (भवतु) होवे । (शारिशाका इव) शालि [साठी चावल] की शाखा [उपज] के समान (पुष्यत) पोषण करो । (उत) और (इह एव) यहा ही (प्रजायध्वम्) बच्चो से बढ़ो । (मया = अस्माभि) अपने साथ (वः) तुमको (संसृजामसि = ०—म) हम मिलाकर रखते हैं ॥५॥

मया गावो गोपतिना सचध्वमयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः ।

रायस्पोषेण बहुला भवन्तीर्जीवा जीवन्तीरुप वः सदेम ॥६॥

पदार्थ—(गावः) हे गौओ ! (मया गोपतिना) मुझ गोपति से (सचध्वम्) मिली रहो । (इह) यहाँ (अयम्) यह (पोषयिष्णु) पोषण करने वाली (वः) तुम्हारी (गोष्ठ) गोशाला है । (राय) धन की (पोषेण) पुष्टि से (बहुलाः) बहुत पदार्थ देने वाली अथवा वृद्धि करने वाली (भवन्ती) होती हुई और (जीवन्ती) जीती हुई (वः) तुमको (जीवा) जीते हुए हम लोग (उप) आदर से (सदेम) प्राप्त करते रहें ॥६॥

卐 सूक्तम् १५ 卐

१—८ अथर्वा (पण्यकामः) । विश्वेदेवा , इन्द्राग्नी । त्रिष्टुप्, १ भुरिक् ४ त्र्यवसाना षट्पदा बृहतीगर्भा विराडत्यष्टिः, ५ विराड्जगती, ७ अनुष्टुप्, ८ निचृत् ।

इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि स न ऐतु पुरएता नो अस्तु ।

नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम् ॥१॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (इन्द्रम्) बडे ऐश्वर्य वाले (वणिजम्) वणिक् को (चोदयामि) आगे बढ़ाता हूँ, (सः) वह (नः) हम मे (एतु) आवे, और (नः) हमारा (पुरएता) अगुआ (अस्तु) होवे । (अरातिम्) वैरी, (परिपन्थिनम्) डाकू और (मृगम्) बनैले पशु को (नुदन्) रगेदता हुआ (सः) वह (ईशानः) समर्थ पुरुष (मह्यम्) मुझे (धनदाः) धन देने वाला (अस्तु) होवे ॥१॥

ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति ।

ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमाहराणि ॥२॥

पदार्थ—(ये) जो (देवयानाः) विद्वान् व्यापारियो के यानो रथादिको के योग्य (बहवः) बहुत से (पन्थानः) मार्ग (द्यावापृथिवी = ०—व्यौ) सूर्य और पृथिवी के (अन्तरा) बीच (संचरन्ति) चलते रहते है, (ते) वे [मार्ग] (पयसा) दूध से और (घृतेन) घी से (मा) मुझको (जुषन्ताम्) तृप्त करें, (यथा) जिससे (क्रीत्वा) मोल लेकर [व्यापार करके] (धनम्) धन (आहराणि) मैं लाऊं ॥२॥

इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय ।

यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ॥३॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि सदृश तेजस्वी विद्वान् ! (इच्छमान) [लाभ की] इच्छा करता हुआ मैं (इध्मेन) ईंधन और (घृतेन) घृत से (तरसे) तराने वाले वा जिताने वाले (बलाय) बल के लिए (हव्यम्) हवन सामग्री का (जुहोमि) होम करता हूँ, (यावत्) जहाँ तक (ब्रह्मणा) ब्रह्म द्वारा [दी हुई] (इमाम्) इस (देवीम्) व्यवहार कुशल (धियम्) निश्चल बुद्धि की (वन्दमानः) वन्दना करता हुआ मैं (शतसेयाय) सैकड़ो उद्यम के लिए (ईशे) समर्थ हूँ ॥३॥

इमामग्ने शरणिं मीमृषो नो यमध्वानमगाम दूरम् । शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु । इदं हव्यं संविदानौ जुषेथां शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च ॥४॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि सदृश तेजस्वी विद्वान् ! (नः) हमारी (इमाम्) इस (शरणिम्) पीड़ा को [उस मार्ग में] (मीमृषः) तूने सहा है (यम् दूरम् अध्वानम्) जिस दूर मार्ग को (अगाम) हम चले गये हैं । (नः) हमारा (प्रपणः) क्रय [माल लेना] (च) और (विक्रयः) बिक्री (शुनम्) सुखदायक (अस्तु) हो, (प्रतिपणः) वस्तुओं का लौट फेर (मा) मुझ को (फलिनम्) बहुत लाभ वाला (कृणोतु) करे । (संविदानौ) एक मत होते हुए तुम दोनों [हम और तुम] (इदम् हव्यम्) इस भेंट को (जुषेथाम्) सेवें । (नः) हमारा (चरितम्) व्यापार (च) और (उत्थितम्) उठान [लाभ] (शुनम्) सुखदायक (अस्तु) होवे ॥४॥

येन॒ धने॑न प्रप॒णं चरा॑मि॒ धने॑न देवा॒ धन॑मि॒च्छमा॑नः ।

तन्मे॒ भूयो॑ भवतु॒ मा कनी॒योऽग्ने॑ सात॒घ्नो दे॒वान् ह॒विषा॒ नि षे॑ध ॥५॥

पदार्थ—(देवाः) हे व्यवहारकुशल व्यापारियो ! (धनेन) मूल धन से (धनम्) धन (इच्छमानः) चाहने वाला मैं (येन धनेन) जिस धन से (प्रपणम्) व्यापार (चरामि) चलाता हूँ, (तत्) वह धन (मे) मेरे लिये (भूयः) अधिक अधिक (भवतु) होवे, (कनीयः) थोड़ा (मा) न [होवे] । (अग्ने) हे अग्निसदृश तेजस्वी विद्वान् ! (सातघ्नः) लाभ नाश करने वाले (देवान्) मूर्खों को (हविषा) हमारी भक्ति द्वारा (निषेध) रोक दे ॥५॥

येन॒ धने॑न प्रप॒णं चरा॑मि॒ धने॑न देवा॒ धन॑मि॒च्छमा॑नः ।

तस्मि॑न् म॒ इन्द्रो॒ रुचि॒मा द॑धातु प्र॒जाप॑तिः सवि॒ता सोमो॑ अ॒ग्निः ॥६॥

पदार्थ—(देवाः) हे व्यवहारकुशल व्यापारियो ! (धनेन) मूल धन से (धनम्) धन (इच्छमानः) चाहता हुआ मैं (येन धनेन) जिस धन से (प्रपणम्) व्यापार (चरामि) चलाता हूँ (तस्मिन्) उस [धन] में (मे) मुझे (प्रजापतिः) प्रजापालक (सविता) ऐश्वर्यवान् (सोमः) चन्द्र [समान शान्त स्वभाव] (अग्निः) अग्नि [समान तेजस्वी], (इन्द्रः) बड़ा समर्थ प्रधान पुरुष (रुचिम्) रुचि (आदधातु) देवे ॥६॥

उप॑ त्वा॒ नम॑सा व॒यं होत॑र्वैश्वानर स्तु॒मः ।

स नः॑ प्र॒जास्वा॒त्मसु॒ गोषु॑ प्रा॒णेषु॑ जागृहि ॥७॥

पदार्थ—(होतः) हे दानशील ! (वैश्वानर) हे सब नरों के हितकारक, वा सब के नायक पुरुष ! (वयम्) हम लोग (नमसा) नमस्कार के साथ (त्वा) तुझको (उप) आदर से (स्तुमः) सराहते हैं । (सः सः त्वम्) सो तू (नः) हमारी (प्रजासु) प्रजाओं पर, (आत्मसु) आत्माओं वा शरीरों पर (गोषु) गौओं पर और (प्राणेषु) प्राणों वा जीवनों पर (जागृहि) जागता रह ॥७॥

वि॒श्वाहा॑ ते॒ सद॒मिद् भ॑रे॒माश्वा॑येव॒ तिष्ठ॑ते जातवेदः ।

रा॒यस्पोषे॑ण॒ समि॒षा मद॑न्तो॒ मा ते॑ अग्ने॒ प्रति॑वेशा रिषाम ॥८॥

पदार्थ—(जातवेदः) हे उत्तम धन वाले पुरुष ! (विश्वाहा ०—हानि) सब दिनों (ते) तेरे [उद्देश्य के] लिए (इत्) ही (सदम्) समाज को (भरेम) भरते रहें, (इव) जैसे (तिष्ठते) थान पर ठहरे हुए (अश्वाय) घोड़े को [घास अन्नादि भरते हैं] । (अग्ने) हे अग्नि समान तेजस्वी विद्वान् ! (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि से और (इषा) अन्न से (सम्) अच्छे प्रकार (मदन्तः) आनन्द करते हुए (ते) तेरे (प्रतिवेशाः) सन्मुख रहने वाले हम लोग (मा रिषाम) दुःखी न होवें ॥८॥

卐 इति तृतीयोऽनुवाकः 卐

卐

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् १६ 卐

१-७ *अथर्वा* । १ *अग्नि, इन्द्र, मित्रावरुणौ, अश्विनौ, भग, पूषाः, ब्रह्मणस्पतिः, सोम, रुद्र*, २-३, ५ *भग, आदित्य*, ४ *इन्द्र*, ६ *दधिक्रावा, अश्वा*, ७ *उषा* । *त्रिष्टुप्*, १ *आर्षी जगती*, ४ *भुरिक्पङ्क्ति* ॥

प्रा॒तर॒ग्निं प्रा॒तरिन्द्रं॑ हवामहे प्रा॒तर्मि॒त्रावरु॑णा प्रा॒तर॒श्विना॑ ।

प्रा॒तर्भगं॑ पू॒षणं॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिं॑ प्रा॒तः सोम॑मु॒त रु॒द्रं ह॑वामहे ॥१॥

पदार्थ—(प्रातः) प्रातःकाल (अग्निम्) [पार्थिव] अग्नि को, (प्रातः) प्रातःकाल (इन्द्रम्) बिजली वा सूर्य को, (प्रातः) प्रातःकाल (मित्रावरुणा = ०—णौ) प्राण और अपान को, (प्रातः) प्रातःकाल (अश्विना) कामों में व्याप्ति रखने वाले माता पिता को (हवामहे) हम बुलाते हैं । (प्रातः) प्रातःकाल (भगम्) ऐश्वर्यवान्, (पूषणम्) पोषण करने वाले (ब्रह्मणः) वेद, ब्रह्माण्ड, अन्न वा धन के (पतिम्) पति, परमेश्वर को, (प्रातः) प्रातःकाल (सोमम्) ऐश्वर्य कराने वाले वा मथन किये हुए पदार्थ वा आत्मा [अपने बल] वा अमृत [मोक्ष, वा अन्न, दुग्ध, घृतादि] को (उत) और (रुद्रम्) दुःखनाशक वा ज्ञानदाता आचार्य को (हवामहे) हम बुलाते हैं ॥१॥

प्रा॒त॒र्जितं॒ भग॑मु॒ग्रं ह॑वामहे व॒यं पु॒त्रमदि॑ते॒र्यो वि॑ध॒र्ता ।

आ॒ध्रश्चि॒द् यं मन्य॑मानस्तु॒रश्चि॒द् राजा॑ चि॒द् यं भगं॑ भ॒क्षीत्याह॑ ॥२॥

पदार्थ—(वयम्) हम (प्रातर्जितम्) प्रातःकाल में [अन्धकारादि को] जीतने वाले (भगम्) सूर्य [समान] (उग्रम्) तेजस्वी (पुत्रम्) पवित्र, अथवा बहुविधि से रक्षा करने वाले, अथवा नरक से बचाने वाले [परमेश्वर] को (हवामहे) बुलाते हैं, (यः) जो [परमेश्वर] (अदितेः) प्रकृति वा भूमि का (विधर्ता) धारण करने वाला और (यम्) जिस [परमेश्वर] को (मन्यमानः) पूजता हुआ (आध्रः) सब प्रकार धारण योग्य कंगाल, (चित्) भी, और (तुरः) शीघ्रकारी बलवान् (चित्) भी, और (राजा) ऐश्वर्यवान् राजा (चित्) भी (इति) इस प्रकार (आह) कहता है, "(यम्) यश और (भगम्) धन को (भक्षि—अहं भक्षीय) मैं सेवूँ" ॥२॥

भग॒ प्रणे॑त॒र्भग॒ सत्य॑राधो॒ भगे॒मां धिय॒मुद॑वा॒ दद॑न्नः ।

भग॒ प्र णो॑ जनय॒ गोभि॒रश्वै॒र्भग॒ प्र नृभि॑र्नृ॒वन्तः॑ स्याम ॥३॥

पदार्थ—(भग) हे भगवान् ! (प्रणेतः) हे बड़े नेता ! (भग) हे सेवनीय ! (सत्यराधः) हे सत्य धनी ! (भग) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! (इमाम्) इस [वेदोक्त] (धियम्) बुद्धि को (ददत्) देता हुआ तू (नः) हमारी (उत्) उत्तमता से (अव) रक्षा कर । (भग) हे ज्योति स्वरूप ! (नः) हम को (गोभिः) गौओं से और (अश्वैः) घोड़ों से (प्र जनय) अच्छे प्रकार बढ़ा । (भग) हे शिव ! (नृभिः) नेता पुरुषों के साथ हम (नृवन्तः) नेता पुरुषों वाले होकर (प्र स्याम) समर्थ होवें ॥३॥

उ॒तेदानीं॒ भग॑वन्तः स्यामो॒त प्र॑पि॒त्व उ॒त मध्ये॒ अह्ना॑म् ।

उ॒तोदि॑तौ मघव॒न्त्सूर्य॑स्य व॒यं दे॒वानां॑ सुम॒तौ स्या॑म ॥४॥

पदार्थ—(उत) और (इदानीम्) इस समय (उत उत) और भी (अह्नाम्) दिनों के (मध्ये) मध्य (प्रपित्वे) पाये हुए [ऐश्वर्य] में हम (भगवन्तः) बड़े ऐश्वर्य वाले (स्याम) होवें । (उत) और (मघवन्) हे महाधनी ईश्वर ! (सूर्यस्य) सूर्य के (उदितौ) उदय में (देवानाम्) विद्वानों की (सुमतौ) सुमति में (वयम्) हम (स्याम) रहें ॥४॥

भग॑ ए॒व भग॑वाँ अस्तु देवा॒स्तेना॑ व॒यं भग॑वन्तः स्याम ।

तं त्वा॑ भग॒ सर्व॒ इज्जो॑हवीमि॒ स नो॑ भग पुरए॒ता भ॑वे॒ह ॥५॥

पदार्थ—"(भग) सेवनीय (देव) विद्वान विजयी पुरुष (एव) ही (भगवान्) भगवान् [भाग्यवान्, बड़े ऐश्वर्य वाला] (अस्तु) होवे" (तेन) इसी [कारण] से (वयम्) हम (भगवन्तः) भाग्यवान् (स्याम) होवें । (तम् त्वा) उस तुझ को, (भग) हे ईश्वर ! (सर्वः सर्वः अहम्) मैं सब (इत्) ही (जोहवीमि) बार बार पुकारता हूँ । (सः—सः त्वम्) सो तू, (भग) हे शिव ! (इह) यहाँ पर (नः) हमारा (पुरएता) अगुआ (भव) हो ॥५॥

सम॑ध्व॒रायो॒षसो॑ नमन्त दधि॒क्रावे॑व॒ शुच॑ये प॒दाय॑ ।

अ॒र्वा॒ची॒नं व॑सु॒विदं॒ भगं॑ मे॒ रथ॑मि॒वाश्वा॑ वा॒जिन॒ आ व॑हन्तु ॥६॥

पदार्थ—(उषसः) उषायें [प्रभात वेलायें] (अध्वराय) मार्ग देने के लिए अथवा हिंसारहित यज्ञ के लिए (सम् नमन्त—०—न्ते) झुकती हैं, (दधिक्रावा इव) जैसे चढ़ाकर चलने वाला, वा हींसने वाला घोड़ा (शुचये) शुद्ध [प्रभूक] (पदाय) पद रखने के लिए । (वाजिनः) अन्नवान् वा बलवान् वा ज्ञानवान् (अर्वाचीनम्) नवीन नवीन और (वसुविदम्) धन प्राप्त कराने वाले (भगम्) ऐश्वर्य को (मे) मेरे लिए (आ वहन्तु) लावें (अश्वाः इव) जैसे घोड़े (रथम्) रथ को [लाते हैं] ॥६॥

अश्वा॑वती॒र्गोम॑तीर्न उ॒षासो॑ वी॒रव॑तीः॒ सद॑मुच्छन्तु भ॒द्राः ।

घृ॒तं दुहा॑ना वि॒श्वतः॒ प्रपी॑ता यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥७॥

पदार्थ—(अश्ववतीः ०—त्यः) उत्तम-उत्तम घोड़ों वाली, (गोमतीः) उत्तम-उत्तम गौओं वाली, (वीरवतीः) बहुत वीर पुरुषों वाली और (भद्राः) मङ्गल करने वाली (उषासः—उषसः) उषायें (नः सदम्) हमारे समाज पर (उच्छन्तु) चमकती रहें । (घृतम्) घृत [सार पदार्थ] को (दुहानाः) दुहते हुए और (विश्वतः) सब प्रकार से (प्रपीताः) भरे हुए (यूयम्) तुम [वीर पुरुषो !] (स्वस्तिभिः) अनेक सुखों से (सदा) सदा (नः) हमारी (पात) रक्षा करो ॥७॥

卐 सूक्तम् १७ 卐

१—९ विश्वामित्रः । सीता । अनुष्टुप्, १ आर्षी गायत्री, २, ५, ९ त्रिष्टुप्, ३ पथ्यापङ्क्ति, ७ विराट् पुर उष्णिक्, ८ निचृत् ।

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् ।

धीरा देवेषु सुम्नयौ ॥१॥

पदार्थ—(**धीराः**) धीर (**कवयः**) बुद्धिमान् [किसान] लोग (**देवेषु**) व्यवहारी पुरुषो पर (**सुम्नयौ**) सुख पाने [की आशा] मे (**सीरा = सीराणि**) हलो को (**युञ्जन्ति**) जोडते हैं, और (**युगा = युगानि**) जुओ को (**पृथक्**) अलग अलग करके [दोनो ओर] (**वि तन्वते**) फैलाते हैं ॥१॥

युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम् ।

विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमा यवन् ॥२॥

पदार्थ—(**विराज**) हे शोभायमान [किसानो !] (**सीरा = सीराणि**) हलो को (**युनक्त**) जोडो, (**युगा = युगानि**) जूओ को (**वितनोत**) फैलाओ, और (**कृते**) बने हुए (**योनौ**) खेत मे (**इह**) यहां पर (**बीजम्**) बीज (**वपत**) बोओ । (**श्नुष्टिः**) [तुम्हारी] अन्न की उपज (**नः**) हमारे लिए (**सभराः**) भरी पूरी (**असत्**) होवे, (**सृण्यः**) हसुए वा दरात (**इत्**) भी (**पक्वम्**) पके अन्न को (**नेदीय**) अधिक निकट (**आ यवन्**) लावें ॥२॥

लाङ्गलं पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु ।

उदिद् वपतु गामविं प्रस्थावद् रथवाहनं पीबरीं च प्रफर्व्यम् ॥३॥

पदार्थ—(**पवीरवत्**) अच्छे फाले वाला (**सुशीमम्**) बहुत सुख देने वाला, और (**सोमसत्सरु सोमसत् + सरु, षद्गा, स—अम, उम वा, + सरु**) ऐश्वर्य युक्त व अमृत युक्त मूठ वाला, अथवा रस्सी वाला और मूठ वाला (**लाङ्गलम्**) हल (**इत्**) ही (**अविम्**) रक्षा करने वाली, और (**पीबरीम्**) वृद्धि वाली (**गाम्**) भूमि को (**च**) और (**प्रस्थावत्**) प्रस्थान वा चढाई के योग्य और (**प्रफर्व्यम्**) शीघ्र गति वाले (**रथवाहनम्**) रथयान [गाडी] को (**उत्**) उत्तमता से (**वपतु**) उत्पन्न करे ॥३॥

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाभि रक्षतु ।

सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥४॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) भूमि जोतने वाला (**सीताम्**) हल की रेखा [जुती धरती] को (**नि**) नीचे (**गृह्णातु**) दबावे, (**पूषा**) पोषण करने वाला [किसान] (**ताम्**) उस [जुती धरती] की (**अभिरक्षतु**) सब ओर से रखवाली करे । (**सा**) वह (**पयस्वती**) पानी से भरी [जुती धरती] (**न**) हम को (**उत्तराम् उत्तराम्**) उत्तम उत्तम (**समाम्**) अनुकूल क्रिया से (**दुहाम्**) भरती रहे ॥४॥

शनं सुफाला वि तुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अनु यन्तु वाहान् ।

शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै ॥५॥

पदार्थ—(**सुफालाः**) सुन्दर फाले (**शुनम्**) सुख से (**भूमिम्**) भूमि को (**वि तुदन्तु**) जोतें । (**कीनाशाः**) क्लेश सहने वाले किसान (**वाहान् अनु**) बैलादि वाहनो के पीछे पीछे (**शुनम्**) सुख से (**यन्तु**) चलें । (**हविषा**) जल से (**तोशमाना तोशमानौ**) सन्तुष्ट करने वाले (**शुनासीरा = ०—रौ**) हे पवन और सूर्य तुम दोनो ! (**अस्मै**) इस पुरुष के लिए (**सुपिप्पलाः**) सुन्दर फलवाली (**ओषधीः**) जौ, चावल आदि औषधियां (**कर्तम्**) करो ॥५॥

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।

शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥६॥

पदार्थ—(**वाहाः**) बैल आदि पशु (**शुनम्**) सुख से रहे । (**नरः**) हाकने वाले किसान (**शुनम्**) सुख से रहे । (**लाङ्गलम्**) हल (**शुनम्**) सुख से (**कृषतु**) जोते । (**वरत्राः**) हल की रस्सियां (**शुनम्**) सुख से (**बध्यन्ताम्**) बांधी जावें । (**अष्ट्राम्**) पैना [आर वा कांटे] को (**शुनम्**) सुख से (**उत् इङ्गय**) ऊपर चला ॥६॥

शुनासीरेह स्म मे जुषेथाम् ।

यद् दिवि चक्रथुः पयस्तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥७॥

पदार्थ—(**शुनासीरा = ०—रौ**) हे वायु और सूर्य तुम दोनो ! (**इह स्म**) यहां पर ही (**मे**) मेरी [विनय] (**जुषेथाम्**) स्वीकार करो, (**यत् पयः**) जो जल (**दिवि**) आकाश मे (**चक्रथुः**) तुम दोनों ने बनाया है, (**तेन**) उससे (**इमाम्**) इस [भूमि] को (**उप सिञ्चतम्**) सींचते रहो ॥७॥

सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव ।

यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः ॥८॥

पदार्थ—(**सीते**) हे जुती धरती ! [लक्ष्मी, खेती] (**त्वा**) तेरी (**वन्दामहे**) हम वन्दना करते हैं, (**सुभगे**) हे सौभाग्यवती [बड़े ऐश्वर्य वाली] (**अर्वाची**) हमारे सन्मुख (**भव**) रह, (**यथा**) जिससे तू (**नः**) हमारे लिए (**सुमनाः**) प्रसन्न मन वाली (**असः**) होवे, और (**यथा**) जिससे (**नः**) हमारे लिए (**सुफला**) सुन्दर फल वाली (**भुवः**) होवे ॥८॥

घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः ।

सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना ॥९॥

पदार्थ—(**घृतेन**) घी से और (**मधुना**) मधु [शहद] से (**समक्ता**) यथाविधि सानी हुई (**सीता**) जुती धरती (**विश्वैः**) सब (**देवैः**) व्यवहारकुशल (**मरुद्भिः**) विद्वान् देवताओ करके (**अनुमता**) अङ्गीकृत है । (**सीते**) हे जुती धरती ! (**सा**) सो (**ऊर्जस्वती**) बलवती और (**घृतवत्**) घृतयुक्त [अन्न आदि] से (**पिन्वमाना**) सींचती हुई तू (**पयसा**) दूध के साथ (**नः**) हमारे (**अभ्याववृत्स्व**) सब ओर से सन्मुख वर्तमान हो ॥९॥

卐 सूक्तम् १८ 卐

१—६ अथर्वा । वनस्पति । अनुष्टुप्, ४ अनुष्टुब्गर्भा चतुष्पदा उष्णिक्, ६ उष्णिग्गर्भा पथ्यापङ्क्ति ।

इमां खनाम्योषधिं वीरुधां बलवत्तमाम् ।

यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम् ॥१॥

पदार्थ—(**वीरुधाम्**) उगती हुई लताओ [सृष्टि के पदार्थों] मे (**इमाम्**) इस (**बलवत्तमाम्**) बडी बल वाली (**ओषधिम्**) रोगनाशक ओषधि [ब्रह्मविद्या] को (**खनामि**) मैं खोदता हूँ, (**यया**) जिस [ओषधि] से [प्राणी] (**सपत्नीम्**) विरोधिनी [अविद्या] को (**बाधते**) हटाता है, और (**यया**) जिससे (**पतिम्**) सर्वरक्षक वा सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को (**संविन्दते**) यथावत् पाता है ॥१॥

उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति ।

सपत्नीं मे परा णुद पतिं मे केवलं कृधि ॥२॥

पदार्थ—(**उत्तानपर्णे**) हे विस्तृत पालन वाली ! (**सुभगे**) हे बडे ऐश्वर्य वाली ! (**देवजूते**) हे विद्वानो करके प्राप्त की हुई ! (**सहस्वति**) हे बलवती [ब्रह्मविद्या] ! (**मे**) मेरी (**सपत्नीम्**) विरोधिनी [अविद्या] को (**परा णुद**) दूर हटा दे और (**पतिम्**) सर्वरक्षक वा सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को (**मे**) मेरा (**केवलम्**) सेवनीय (**कृधि**) कर ॥२॥

नहि ते नाम जग्राह नो अस्मिन् रमसे पतौ ।

परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि ॥३॥

पदार्थ—[हे सपत्नी अविद्या] (**ते**) तेरा (**नाम**) नाम (**नहि**) कभी नही (**जग्राह**) मैने लिया है, (**अस्मिन्**) इस (**पतौ**) जगत् पति परमेश्वर मे (**नो**) कभी नही (**रमसे**) तू रमण करती है । (**पराम्**) वैरिणी (**सपत्नीम्**) विरोध डालने वाली [अविद्या] को (**परावतम् एव**) बहुत दूर ही (**गमयामसि**) हम पहुँचाते है ॥३॥

उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः ।

अधः सपत्नी या ममाधरा साधराभ्यः ॥४॥

पदार्थ—(**उत्तरे**) हे अति उत्तम [ब्रह्मविद्या] (**अहम्**) मैं [प्रजा] (**उत्तरा**) अधिक उत्तम [भूयासम् = हो जाऊं], (**उत्तराभ्यः**) अन्य उत्तम [पशु आदि प्रजाओ] से (**इत्**) तो (**उत्तरा**) अधिक उत्तम [प्रजा अस्मि = प्रजा हूँ] (**मम**) मेरी (**या**) जो (**अधरा**) नीच (**सपत्नी**) विरोधिनी [अविद्या है], (**सा**) वह (**अधराभ्यः**) नीच [विपत्तियो] से (**अधः**) नीची है ॥४॥

अहमस्मि सहमानाथो त्वमसि सासहिः ।

उभे सहस्वती भूत्वा सपत्नीं मे सहावहै ॥५॥

पदार्थ—[हे विद्या] (**अहम्**) मैं (**सहमाना**) जयशील [प्रजा] (**अस्मि**) हूँ, (**अथो**) और (**त्वम्**) तू भी (**सासहिः = ससहिः**) जयशील (**असि**) है । (**उभे**) दोनो हम [तू और मैं] (**सहस्वती = ०—त्यौ**) जयशील (**भूत्वा**) होकर (**मे**) मेरी (**सपत्नीम्**) विरोधिनी [अविद्या] को (**सहावहै**) जीत लें ॥५॥

अभि तेऽधां सहमानामुप तेऽधां सहीयसीम् ।

मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु ॥६॥

पदार्थ—[हे जीव !] (**ते**) तेरे लिए (**सहमानाम्**) प्रबल [अविद्या] को (**अभि अभिभूय**) हराकर (**अधाम**) मैंने रक्खा है, और (**ते**) तेरे लिये (**सहीयसीम्**) अधिक प्रबल [ब्रह्मविद्या] को (**उप**) आदर से (**अधाम्**) मैंने रक्खा है, सो (**ते मन**) तेरा मन (**माम् अनु**) मेरे पीछे पीछे [योगी के स्वरूप मे] (**प्रधावतु**) दौडता रहे और (**धावतु**) दौडता रहे, (**गौ. इव**) जैसे गौ (**वत्सम्**) अपने बछडे के पीछे, और (**वा इव**) जैसे जल (**पथा**) अपने मार्ग से [दौडता है] ॥६॥

卐 सूक्तम् १९ 卐

१—८ वसिष्ठ'। विश्वेदेवा., चन्द्रमा, इन्द्रः। अनुष्टुप्, १ पथ्याबृहती, ३ भुरिग्बृहती, ५ त्रिष्टुप्, ६ त्र्यवसाना, षट्पदा त्रिष्टुप्ककुम्मतीगर्भातिजगती, ७ विराडास्तारपंक्ति, ८ पथ्यापंक्ति।

संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं बलम्।
संशितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुर्येषामस्मि पुरोहितः ॥१॥

पदार्थ—(**मे**) मेरे लिए [इन वीरो को] (**इदम्**) यह (**ब्रह्म**) वेद-ज्ञान वा अन्न वा धन (**संशितम्**) यथाविधि सिद्ध किया गया है, और (**वीर्यम्**) वीरता और (**बलम्**) सेना दल (**संशितम**) यथाविधि सिद्ध किया गया है, (**संशितम्**) यथाविधि सिद्ध किया हुआ (**क्षत्रम्**) राज्य (**अजरम्**) अटल (**अस्तु**) होवे, (**येषाम्**) जिनका मैं (**जिष्णु**) विजयी (**पुरोहित**) पुरोहित अर्थात् प्रधान (**अस्मि**) हूँ ॥१॥

समहमेषां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं बलम्।
वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाहम् ॥२॥

पदार्थ—(**अहम्**) मैं (**एषाम्**) इन [अपने वीरो] के (**राष्ट्रम्**) राज्य (**ओज**) शारीरिक बल, (**वीर्यम**) वीरता और (**बलम्**) सेना दल को (**सम्**) भले प्रकार (**सस्यामि**) जोडता हूँ। (**अहम्**) मैं (**शत्रूणाम्**) शत्रुओ की (**बाहून्**) भुजाओ को (**अनेन**) इस (**हविषा**) अन्न वा आवाहन से (**वृश्चामि**) काटता हूँ ॥२॥

नीचैः पद्यन्तामधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान्।
क्षिणामि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वानहम् ॥३॥

पदार्थ—ये [शत्रु] (**नीचैं**) नीचे (**पद्यन्ताम्**) गिरे और (**अधरे**) नीचे (**भवन्तु**) रहे, (**ये**) जो (**न**) हमारे (**मघवानम्**) धनी (**सूरिम**) सूरमा राजा पर (**पृतन्यान्**) सेना चढावे। (**अहम्**) मैं (**ब्रह्मणा**) वेद ज्ञान से (**अमित्रान्**) शत्रुओ को (**क्षिणामि**) मारे डालता हूँ और (**स्वान्**) अपने लोगो को (**उन्नयामि**) ऊचा करता हूँ ॥३॥

तीक्ष्णीयांसः परशोरग्नेस्तीक्ष्णतरा उत।
इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः ॥४॥

पदार्थ—वे वीर (**परशो**) परसे [कुल्हाडी] से (**तीक्ष्णीयांस**) अधिक तीक्ष्ण, (**अग्ने**) अग्नि से (**तीक्ष्णतरा**) अधिक तीक्ष्ण (**उत**) और (**इन्द्रस्य**) मेघ के (**वज्रात**) वज्र [बिजुली] से (**तीक्ष्णीयांस**) अधिक तीक्ष्ण है, (**येषाम्**) जिनका मैं (**पुरोहित**) पुरोहित वा मुखिया (**अस्मि**) हूँ ॥४॥

एषामहमायुधा सं स्याम्येषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि।
एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्ण्वे३षां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः ॥५॥

पदार्थ—(**अहम्**) मैं (**एषाम्**) इन [वीरो] के (**आयुधा = ०—नि**) हथियारो को (**सस्यामि**) जोडता हूँ [दृढ करता हूँ], (**एषाम्**) इनके (**सुवीरम्**) साहसी वीरो वाले (**राष्ट्रम्**) राज्य को (**वर्धयामि**) बढाता हूँ, (**एषाम्**) इनका (**क्षत्रम्**) क्षत्रियपन (**अजरम**) अजर [अटल] और (**जिष्णु**) विजयी (**अस्तु**) होवे। (**विश्वे**) सब (**देवा**) दिव्य [विजयी कमनीय, वा प्रशंसनीय धार्मिक] गुण (**एषाम्**) इनके (**चित्तम्**) चित्त को (**अवन्तु**) तृप्त करें ॥५॥

उद्धर्षन्तां मघवन् वाजिनान्युद् वीराणां जयतामेतु घोषः। पृथग् घोषा उलुलयः केतुमन्त उदीरताम्। देवा इन्द्रज्येष्ठा मरुतो यन्तु सेनया ॥६॥

पदार्थ—(**मघवन्**) हे बड़े धनी राजन् ! (**वाजिनानि**) सेना दल (**उत् हर्षन्ताम्**) मन को ऊचा उठावें और (**जयताम्**) जीतते हुए (**वीराणाम्**) वीरो का (**घोष.**) जयजयकार वा सिंहनाद (**उत् एतु**) ऊचा उठे। (**उलुलय.**) जलाने वालो के जलाने वाले, (**केतुमन्तः**) ऊचे झण्डे वाले (**घोष.**) जयजयकार शब्द (**पृथक्**) नाना रूप मे (**उत् ईरताम्**) ऊपर चढ़ें। (**इन्द्रज्येष्ठा.**) इन्द्र प्रतापी पुरुष को ज्येष्ठ वा स्वामी रखने वाले (**मरुत**) शूर (**देवा.**) जय चाहने वाले देवता लोग (**सेनया**) सेना के साथ (**यन्तु**) चले ॥६॥

प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः।
तीक्ष्णेषवोऽबलधन्वनो हतोग्रायुधा अबलानुग्रबाहवः ॥७॥

पदार्थ—(**नर'**) हे नरो (**प्र इत**) धावा करो, (**जयत**) जीतो। (**वः**) तुम्हारी (**बाहव**) भुजाये (**उग्रा**) प्रचण्ड [कट्टर] (**सन्तु**) होवें। (**तीक्ष्णेषवः**) हे तीखे बाण वाले ! (**उग्रायुधा.**) हे कट्टर हथियारो वाले (**उग्रबाहव.**) हे कट्टर भुजाओ वाले वीरो ! (**अबलधन्वन'**) निर्बल धनुष वाले (**अबलान्**) निर्बल [शत्रुओ] को (**हत**) मारो ॥७॥

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते।
जयामित्रान् प्र पद्यस्व जह्येषां वरंवरं मामीषां मोचि कश्चन ॥८॥

पदार्थ—(**ब्रह्मसंशिते**) हे ब्रह्माओ, वेदवेत्ताओ से प्रशसित वा यथावत् तीक्ष्ण की हुई (**शरव्ये**) बाण विद्या मे चतुर सेना ! (**अवसृष्टा**) छोडी हुई तू (**परा**) पराक्रम के साथ (**पत**) झपट। (**अमित्रान्**) वैरियो को (**जय**) जीत, (**प्र पद्यस्व**) आगे बढ, (**एषाम्**) इनमे से (**वरंवरम्**) एक एक बडे वीर को (**जहि**) मार डाल, (**अमीषाम**) इनमे से (**कश्चन**) कोई भी (**मा मोचि**) न छूटे ॥८॥

卐 सूक्तम् २० 卐

१, २, ५ अग्निर्देवता,। १-५-७, ९, १० अनुष्टुप् ६ पंक्ति, ८ जगती॥

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः।
तं जानन्नग्न आ रोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥१॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे विद्वान् पुरुष ! (**अयम्**) यह [सर्वव्यापी परमेश्वर] (**ते**) तेरा (**ऋत्विय**) सब ऋतुओ [कालो] मे मिलने वाला (**योनि**) कारण है, (**यत**) जिससे (**जात'**) प्रकट होकर (**अरोचथा**) तू प्रकाशमान हुआ है, (**तम्**) उस [योनि] को (**जानन्**) पहिचान कर (**आ रोह**) ऊचा चढ, (**अथ**) और (**न**) हमारे लिए (**रयिम**) धन (**वर्धय**) बढा ॥१॥

अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ् नः सुमना भव।
प्र णो यच्छ विशां पते धनदा असि नस्त्वम् ॥२॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे विद्वान् पुरुष ! (**अच्छ**) अच्छे प्रकार से (**इह**) यहा पर (**न**) हमसे (**वद**) बोल, और (**प्रत्यङ**) प्रत्यक्ष होकर (**न.**) हमारे लिए (**सुमना**) प्रसन्न मन (**भव**) हो। (**विशाम् पते**) हे प्रजाओ के रक्षक ! (**न'**) हम (**प्र यच्छ**) दान दे, (**त्वम्**) तू (**न**) हमारा (**धनदाः**) धन दाता (**असि**) है ॥२॥

प्र णो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः।
प्र देवीः प्रोत सूनृता रयिं देवी दधातु मे ॥३॥

पदार्थ—(**अर्यमा**) वैरियो का नियन्ता वीर पुरुष, (**प्र**) अच्छे प्रकार (**भग.**) ऐश्वर्यवान् धनी पुरुष (**प्र**) अच्छे प्रकार, और (**बृहस्पति**) बडी बडी विद्याओ का स्वामी, प्रधान आचार्य (**प्र**) अच्छे प्रकार (**नः**) हमे (**देवीः**) दिव्य शक्तिया (**प्र यच्छतु**) प्रदान करे। (**उत**) और (**सूनृता**) प्रिय सत्य वाणी (**देवी**) देवी [दिव्य गुण वाली] (**मे**) मुझे (**रयिम्**) ऐश्वर्य (**प्र**) अच्छे प्रकार (**दधातु**) देवे ॥३॥

सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे।
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥४॥

पदार्थ—(**अवसे**) रक्षा के लिए (**गीर्भिः**) स्तुतियो से (**सोमम्**) ऐश्वर्य के कारण, (**राजानम्**) सबके शासक (**अग्निम्**) विद्वान् (**आदित्यम्**) बडे दीप्यमान, (**विष्णुम्**) सबमे व्यापक, (**सूर्यम्**) सबके चलाने वाले, (**ब्रह्माणम्**) सबमे बडे वेद प्रकाशक ब्रह्मा (**च**) और (**बृहस्पतिम्**) बडे बडों के रक्षक बृहस्पति [परमेश्वर वा मनुष्य] को (**हवामहे**) हम बुलाते हैं ॥४॥

त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय।
त्वं नो देव दातवे रयिं दानाय चोदय ॥५॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे विद्वान् ! [परमेश्वर वा पुरुष] (**अग्निभिः**) विद्वानों के द्वारा (**त्वम्**) तू (**नः**) हमारे (**ब्रह्म**) वेदज्ञान वा ब्रह्मचर्य (**च**) और (**यज्ञम्**) यज्ञ [१—विद्वानों के पूजन, २—पदार्थों के संगतिकरण, और ३—विद्यादि के दान] को (**वर्धय**) बढा (**देव**) हे दानशील ! (**त्वम्**) तू (**नः**) हममे से (**दातवे**) दानशील पुरुष को (**दानाय**) दान के लिए (**रयिम्**) धन (**चोदय**) भेज ॥५॥

इन्द्रवायू उभाविह सुहवेह हवामहे । यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असद् दानकामश्च नो भुवत् ॥६॥

पदार्थ—(उभौ) दोनों (सुहवा=०—वौ) सुख से बुलाने योग्य (इन्द्रवायू) सूर्य और पवन [के समान स्त्री पुरुष] को (इह इह) यहां पर ही (हवामहे) हम बुलाते हैं, (यथा) जिससे (सर्वः इत्) सभी (जनः) जन (नः) हमारी (संगत्याम्) संगति में (सुमनाः) प्रसन्न चित्त वाले (असत्) होवें, (च) और (नः) हमारी (दानकामः) दान के लिए कामना (भुवत्) होवे ॥६॥

अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।

वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥७॥

पदार्थ—[हे ईश्वर !] (अर्यमणम्) वैरियों के रोकने वाले राजा, (बृहस्पतिम्) बड़े वड़ों के रक्षक गुरु और (इन्द्रम्) बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष और (वातम्) पवन, (विष्णुम्) यज्ञ, (च) और (वाजिनम्) वेग वाले, वा अन्नवाले, वा बलवाले (सवितारम्) लोकों के चलाने वाले सूर्य से (सरस्वतीम्) विज्ञानों के भण्डार सरस्वती, वेद विद्या को (दानाय) दान के लिए (चोदय) प्रवृत्त कर ॥७॥

वाजस्य नु प्रसवे सं बभूविमेमा च विश्वा भुवनान्यन्तः ।

उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानन् रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ ॥८॥

पदार्थ—(वाजस्य) बल की (प्रसवे) उत्पत्ति में (नु) ही (संबभूविम) हम समर्थ हुए हैं, (च) और (इमाः इमानि) ये (विश्वा=विश्वानि) सब (भुवनानि) लोक (अन्तः) [उसी के] भीतर हैं, (प्रजानन्) ज्ञानवान् ईश्वर (अदित्सन्तम्) देने की इच्छा न करने वाले से (उत) भी (दापयतु) दिलावे । (च) और [हे ईश्वर] (नः) हमें (सर्ववीरम्) सर्ववीरों से युक्त (रयिम्) धन (नि) नित्य (यच्छ) दे ॥८॥

दुह्रां मे पञ्च प्रदिशो दुह्रामुर्वीर्यथाबलम् ।

प्रापेयं सर्वा आकूतीर्मनसा हृदयेन च ॥९॥

पदार्थ—(पञ्च) फैली हुई [वा पांच] (प्रदिशः) उत्तम दान क्रियायें [वा प्रधान दिशायें] (मे) मेरे लिए (उर्वीः) फैली हुई शक्तियों को (यथाबलम्) यथाशक्ति (दुह्राम्) भरती रहें, (दुह्राम्) भरती रहें, (मनसा) मन [मनन शक्ति] से (च) और (हृदयेन) हृदय [ग्रहण शक्ति] से (सर्वाः) सब (आकूतीः) संकल्पों को (प्र, आपेयम्) मैं पाता रहूं ॥९॥

गोसनिं वाचमुदेयं वर्चसा माभ्युदिहि ।

आ रुन्धां सर्वतो वायुस्त्वष्टा पोषं दधातु मे ॥१०॥

पदार्थ—(गोसनिम्) गोलोक [गौओं वा स्वर्ग] की देने वाली (वाचम्) वाणी को (उदेयम्) मैं बोलूं । [हे ईश्वर !] (वर्चसा) तेज के साथ (मा=माम्) मेरे ऊपर (अभ्युदिहि) सब ओर से उदय हो । (वायुः) प्राण वायु [मुझको] (सर्वतः) सब प्रकार से (आ रुन्धाम्) घेरे रहे । (त्वष्टा) विश्वकर्मा परमेश्वर वा सूर्य (मे) मेरे लिए (पोषम्) पोषण (दधातु) देता रहे ॥१०॥

卐 इति चतुर्थोऽनुवाकः 卐

卐

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् २१ 卐

१-१० वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप्, १ पुरोनुष्टुप्, २, ३, ८ भुरिक्, ५ जगती, ६ उपरिष्टाद्विराड्बृहती, ७ विराड्गर्भा, ९ निचृदनुष्टुप्, १० अनुष्टुप् ।

ये अग्नयो अप्स्व१न्तर्ये वृत्रे ये पुरुषे ये अश्मसु ।

य आविवेशौषधीर्यो वनस्पतींस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥१॥

पदार्थ—(ये) जो (अग्नयः) अग्नियां [ईश्वर के तेज] (अप्सु अन्तः) जल के भीतर, (ये) जो (वृत्रे) मेघ में, (ये) जो (पुरुषे) पुरुष [मनुष्य शरीर] में और (ये) जो (अश्मसु) शिलाओं में हैं । (यः) जिस [अग्नि] ने (ओषधीः) ओषधियों [अन्न, सोमलता आदि] में, और (यः) जिसने (वनस्पतीन्) वनस्पतियों [वृक्ष आदि] में (आ विवेश) प्रवेश किया है, (तेभ्यः) उन (अग्निभ्यः) अग्नियों [ईश्वर तेजों] को (एतत्) यह (हुतम्) दान [आत्मसमर्पण] (अस्तु) होवे ॥१॥

यः सोमे अन्तर्यो गोष्वन्तर्य आविष्टो वयःसु यो मृगेषु ।

य आविवेश द्विपदो यश्चतुष्पदस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो [अग्नि] (सोमे) सोम [चन्द्र, अमृत वा दूध, घी आदि] के (अन्तः) भीतर, (यः) जो (गोषु अन्तः) गौ आदि पालतू पशुओं में, (यः) जो (वयःसु) पक्षियों में और (यः) जो (मृगेषु) बनैले जीवों में (आविष्टः) प्रविष्ट है, और (यः) जिसने (द्विपदः) दोपायों, और (यः) जिसने (चतुष्पदः) चौपायों में (आविवेश) प्रवेश किया है, (तेभ्यः) उन (अग्निभ्यः) अग्नियों [ईश्वर तेजो] को (एतत्) यह (हुतम्) दान [आत्मसमर्पण] (अस्तु) होवे ॥२॥

य इन्द्रेण सरथं याति देवो वैश्वानर उत विश्वदाव्यः ।

यं जोहवीमि पृतनासु सासहिं तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो (देवः) प्रकाशमान वा जय चाहने वाला [अग्नि] (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् शूर के साथ (सरथम्) एक रथ पर चढ़कर (याति) चलता है, और [जो हमारे] (वैश्वानरः) सब नरों का हितकारी, (उत) और [जो शत्रु का] (विश्वदाव्यः) सब कुछ जलाने वाला है, और (यम्) जिस (सासहिम्) विजयी [अग्नि] को (पृतनासु) संग्रामों में (जोहवीमि) बारंबार आवाहन करता हूँ, (तेभ्यः) उन (अग्निभ्यः) अग्नियों [ईश्वर तेजों] को (एतत्) यह (हुतम्) दान [आत्मसमर्पण] (अस्तु) होवे ॥३॥

यो देवो विश्वाद् यमु काममाहुर्यं दातारं प्रतिगृह्णन्तमाहुः ।

यो धीरः शक्रः परिभूरदाभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥४॥

पदार्थ—(यः) जो (देवः) प्रकाशमान अग्नि, [वैरियों में] (विश्वात्) सबका खाने वाला है (यम्) जिसको (उ) ही (कामम्) कमनीय वा कामना पूरी करने वाला (आहुः) लोग कहते हैं, (यम्) जिसको (दातारम्) देने वाला और (प्रतिगृह्णन्तम्) लेने वाला (आहुः) बताते हैं । (यः) जो (धीरः) पुष्टि करने वाला, (शक्रः) शक्तिमान् (परिभूः) सर्वव्यापक और (अदाभ्यः) न दबने योग्य है, (तेभ्यः) उन (अग्निभ्यः) अग्नियों [ईश्वर तेजों] को (एतत्) यह (हुतम्) दान [आत्मसमर्पण] (अस्तु) होवे ॥४॥

यं त्वा होतारं मनसाभि संविदुस्त्रयोदश भौवनाः पञ्च मानवाः ।

वर्चोधसे यशसे सूनृतावते तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥५॥

पदार्थ—(त्रयोदश) तेरह [दो कान, दो नथने, दो आंखें और एक मुख यह सात शिर के, और दो हाथ, दो पद, एक उपस्थेन्द्रिय, और एक गुदास्थान, यह छः शिर के नीचे के] (भौवनाः) भुवनों से संबन्ध वाले प्राणी, और (पञ्च) पांच [पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश, इन पांच तत्त्व] से सबन्ध वाले (मानवाः) मनुष्य (मनसा) मनन शक्ति से (वर्चोधसे) तेज धारण कराने वाले और (सूनृतावते) प्रिय सत्य वाणी वाले (यशसे) यश के लिए (यम्) जिस (त्वा) तुझ [अग्नि] को (होतारम्) दानी (अभि) सब प्रकार (संविदुः) ठीक ठीक जानते हैं, (तेभ्यः) उन (अग्निभ्यः) अग्नियों [ईश्वर तेजों] को (एतत्) यह (हुतम्) दान [आत्मसमर्पण] (अस्तु) होवे ॥५॥

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे ।

वैश्वानरज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥६॥

पदार्थ—(उक्षान्नाय) प्रबलों के अन्नदाता, (वशान्नाय) वशीभूत निर्बल प्रजाओं के अन्नदाता, (सोमपृष्ठाय) अमृत सींचने वाले और (वेधसे) उत्पन्न करने वाले (तेभ्यः) उन [चार प्रकार के] (वैश्वानरज्येष्ठेभ्यः) सब नरों के हितकारी [परमेश्वर] को प्रधान रखने वाले (अग्निभ्यः) अग्नियों [ईश्वर तेजों] को (एतत्) यह (हुतम्) दान [आत्मसमर्पण] (अस्तु) होवे ॥६॥

दिवं पृथिवीमन्वन्तरिक्षं ये विद्युतमनुसंचरन्ति ।

ये दिक्ष्व१न्तर्ये वाते अन्तस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥७॥

पदार्थ—(ये) जो [तेज] (दिवम्) सूर्यलोक में, (पृथिवीम्) पृथिवी में और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष में (अनु) लगातार और (विद्युतम्) बिजुली में (अनुसंचरन्ति) लगातार चलते रहते हैं, (ये) जो (दिक्षु अन्तः) दिशाओं के भीतर और (ये) जो (वाते अन्तः) पवन के भीतर हैं, (तेभ्यः) उन (अग्निभ्यः) अग्नियों [ईश्वर तेजों] को (एतत्) यह (हुतम्) दान [आत्मसमर्पण] (अस्तु) होवे ॥७॥

हिरण्यपाणिं सवितारमिन्द्रं बृहस्पतिं वरुणं मित्रमग्निम् ।

विश्वान् देवानङ्गिरसो हवामह इमं क्रव्यादं शमयन्त्वग्निम् ॥८॥

पदार्थ—(हिरण्यपाणिम्) सूर्य आदि तेजों से स्तुति किये हुए (सवितारम्) सब के प्रेरक (इन्द्रम्) बड़े ऐश्वर्य वाले (बृहस्पतिम्) बड़े लोकों के रक्षक (वरुणम्) सबसे श्रेष्ठ, (मित्रम्) हितकारी (अग्निम्) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर से (विश्वान्) सब (देवान्) विजय कराने वाले (अङ्गिरसः) ज्ञानों वा पुरुषार्थों को (हवामहे) हम मांगते हैं । (इमम्) इस (क्रव्यादम्) मांस खाने वाले (अग्निम्) अग्नि [समान दुःख] को (शमयन्तु) वे शान्त कर दें ॥८॥

शान्तो अग्निः क्रव्याच्छान्तः पुरुषरेषणः ।
अथो यो विश्वदाव्य१स्तं क्रव्यादमशीशमम् ॥९॥

पदार्थ—(क्रव्यात्) मांस खाने वाला (अग्निः) अग्नि [समान तापकारी दुःख] (शान्तः) शान्त हो। (पुरुषरेषणः) पुरुषों को सताने वाला [कष्ट] (शान्तः) शान्त हो। (अथो) और भी (यः) जो (विश्वदाव्यः) सब [सुखों] का जलाने वाला है (तम्) उस (क्रव्यादम्) मांस खाने वाले [अग्निरूप दुःख] को (अशीशमम्) मैंने शान्त कर दिया है ॥९॥

ये पर्वताः सोमपृष्ठा आप उत्तानशीवरीः ।
वातः पर्जन्य आदग्निस्ते क्रव्यादमशीशमन् ॥१०॥

पदार्थ—(ये) जो (पर्वताः) पहाड़ (सोमपृष्ठाः) सोम [अमृत अर्थात् ओषधि वा जल] को पीठ पर रखने वाले हैं, [उन्होंने और] (उत्तानशीवरी ०—र्यः.) ऊपर को मुख करके सोने वाले [सूर्य की ओर चलने वाले] (आपः) जल, (वातः) पवन, (पर्जन्यः) मेघ, (आत्) और (अग्निः) अग्नि, (ते) उन सब ने (क्रव्यादम्) मांस भक्षक [अग्नि रूप दुःख] को (अशीशमन्) शान्त कर दिया है ॥१०॥

卐 सूक्तम् २२ 卐

१-६ वसिष्ठ । वर्चः, बृहस्पति, विश्वेदेवा । अनुष्टुप्, १ विराट् त्रिष्टुप्, ३ पञ्चपदा परानुष्टुप् विराडतिजगती, ४ त्र्यवसाना षट्पदा जगती ।

हस्तिवर्चसं प्रथतां बृहद् यशो अदित्या यत् तन्वः संबभूव ।
तत् सर्वे समदुर्मह्यमेतद् विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ॥१॥

पदार्थ—(हस्तिवर्चसम्) हाथी के बल से युक्त (बृहत्) बड़ा (यशः) यश (प्रथताम्) फैले, (यत्) जो (अदित्याः) अदीन वेद वाणी वा प्रकृति के (तन्वः) विस्तार से (संबभूव) उत्पन्न हुआ है, (तत्) सो (एतत्) यह [यश] (मह्यम्) मुझ को (सजोषाः) समान प्रीति वाली (अदितिः) अखण्ड वेदवाणी वा प्रकृति और (विश्वे) सब (देवाः) प्रकाशमान गुणों ने (सर्वे) सर्वव्यापक विष्णु भगवान् में (सम्) ठीक प्रकार से (अदुः) दिया है ॥१॥

मित्रश्च वरुणश्चेन्द्रो रुद्रश्च चेततु ।
देवासो विश्वधायसस्ते माञ्जन्तु वर्चसा ॥२॥

पदार्थ—(मित्रः) सबका मित्र, (च) और (वरुणः) अति श्रेष्ठ (च) और (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् (च) और (रुद्रः) ज्ञानदाता वा दुःखनाशक परमेश्वर (चेततु) चेताता रहे, और (ते) वे [प्रसिद्ध] (विश्वधायसः) सब जगत् के पोषण करने वाले (देवासः—देवाः) दिव्य पदार्थ [पृथिवी, जल, वायु, तेज, आकाश आदि] (मा) मुझ को (वर्चसा) तेज वा बल से (अञ्जन्तु) कान्ति वाला करें ॥२॥

येन हस्ती वर्चसा संबभूव येन राजा मनुष्येष्वप्स्व१न्तः । येन देवा देवतामग्र आयन् तेन मामद्य वर्चसाग्ने वर्चस्विनं कृणु ॥३॥

पदार्थ—(येन) जिस (वर्चसा) तेज से (हस्ती) हाथी, और (येन) जिस [तेज] से (राजा) ऐश्वर्यवान् राजा (मनुष्येषु) मनुष्यों और (अप्सु अन्तः) जल और अन्तरिक्ष के भीतर (संबभूव) पराक्रमी हुआ है, और (येन) जिस [तेज] से (देवाः) देवताओं [महात्मा पुरुषों] ने (अग्रे) पहिले काल में (देवताम्) देवतापन (आयन्) पाया है, (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप जगदीश्वर ! (तेन वर्चसा) उस तेज से (माम्) मुझको (अद्य) आज (वर्चस्विनम्) तेजस्वी (कृणु) कर ॥३॥

यत् ते वर्चो जातवेदो बृहद् भवत्याहुतेः ।
यावत् सूर्यस्य वर्च आसुरस्य च हस्तिनः ।
तावन्मे अश्विना वर्च आ धत्तां पुष्करस्रजा ॥४॥

पदार्थ—(यत्) जिस कारण से (जातवेदः) उत्पन्न संसार के ज्ञानवाले परमेश्वर ! (ते) तेरे लिए (आहुतेः) आहुति [आत्मदान] से [हमारा] (वर्चः) तेज (बृहत्) बड़ा (भवति) होता है, (यावत्) जितना (वर्चः) तेज वा बल (आसुरस्य) प्राणियों वा मेघों के हितकारक (सूर्यस्य) सूर्य का (च) और (हस्तिनः) हाथी का है, (तावत्) उतना (वर्चः) तेज वा बल (मे) मेरे लिए (पुष्करस्रजा =०—जौ) पोषण देने वाले (अश्विना =०—नौ) माता पिता वा सूर्य चन्द्रमा (आ धत्ताम्) सब प्रकार देवें ॥४॥

यावच्चतस्रः प्रदिशश्चक्षुर्यावत् समश्नुते ।
तावत् समैत्विन्द्रियं मयि तद्धस्तिवर्चसम् ॥५॥

पदार्थ—(यावत्) जितनी दूर (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) महादिशायें हैं, और (यावत्) जितनी दूर (चक्षुः) आँख [दर्शन शक्ति] (समश्नुते) फैलती है, (तावत्) वहाँ तक (मयि) मुझमें (तत्) वह (हस्तिवर्चसम्) हाथी के बल वाला (इन्द्रियम्) परम ऐश्वर्य (समैतु) आकर मिले ॥५॥

हस्ती मृगाणां सुषदामतिष्ठावान् बभूव हि ।
तस्य भगेन वर्चसाभि षिञ्चामि मामहम् ॥६॥

पदार्थ—(हि) क्योंकि (सुषदाम्) सुख से चढ़ने योग्य (मृगाणाम्) पशुओं में (हस्ती) हाथी (अतिष्ठावान्) प्रतिष्ठा वाला (बभूव) हुआ है, (तस्य) उसके (भगेन) सेवनीय (वर्चसा) कान्ति से (अहम्) मैं (माम्) अपने को (अभिषिञ्चामि) भले प्रकार सींचूँ [शुद्ध करूँ] ॥६॥

卐 सूक्तम् २३ 卐

१—६ ब्रह्मा । चन्द्रमाः, योनि, द्यावापृथिवी, अनुष्टुप्, ५ उपरिष्टाद् भुरिग्बृहती, ६ स्कन्धोग्रीवी बृहती ।

येन वेहद् बभूविथ नाशयामसि तत् त्वत् ।
इदं तदन्यत्र त्वदप दूरे नि दध्मसि ॥१॥

पदार्थ—[हे स्त्री] (येन) जिस कारण से तू (वेहत्) वन्ध्या [बांझ] (बभूविथ) हुई है (तत्) उस कारण को (त्वत्) तुझ से (नाशयामसि) हम नष्ट करते हैं। (इदम्=इदानीम्) अभी (तत्) उस को (त्वत्) तुझ से (अन्यत्र) और कहीं (दूरे) दूर (अप=अपहृत्य) हटाकर (नि दध्मसि=०—ध्मः) हम रखते हैं ॥१॥

आ ते योनिं गर्भ एतु पुमान् बाण इवेषुधिम् ।
आ वीरोऽत्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः ॥२॥

पदार्थ—[हे सुभगे] (पुमान्) रक्षा करने वाला, पराक्रमी (गर्भः) गर्भ (ते) तेरे (योनिम्) गर्भाशय में (आ एतु) आवे, (बाणः इव) जैसे बाण (इषुधिम्) तूणीर [तीरों के थैले] में। (अत्र) इस घर में (दशमास्यः) दश महीने तक पुष्ट हुआ, (ते) तेरा (वीरः) वीर, (पुत्रः) कुल शोधक बालक (आ जायताम्) अच्छे प्रकार उत्पन्न हो ॥२॥

पुमांसं पुत्रं जनय तं पुमाननु जायताम् ।
भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च यान् ॥३॥

पदार्थ—[हे वधू] (पुमांसम्) रक्षा करने वाला (पुत्रम्) बहुरक्षक, वीर सन्तान (जनय) उत्पन्न कर, (तम् अनु) उसके पीछे (पुमान्) रक्षा करने वाला वीर बालक (जायताम्) उत्पन्न होवे, (जातानाम्) उत्पन्न हुए (पुत्राणाम्) नरक से बचाने वाले सन्तानों की (माता) माननीय माता (भवासि (हो, (च) और [उनकी भी] (यान्) जिनको (जनयाः) तू उत्पन्न करे ॥३॥

यानि भद्राणि बीजान्यृषभा जनयन्ति च ।
तैस्त्वं पुत्रं विन्दस्व सा प्रसूर्धेनुका भव ॥४॥

पदार्थ—(च) और (यानि) जैसे (भद्राणि) मङ्गलदायक (बीजानि) बालकों को (ऋषभाः) सूक्ष्मदर्शी ऋषि लोग, अथवा, ऋषभ ओषधि के रस (जनयन्ति) उत्पन्न करते हैं, (तैः) वैसे ही [सन्तानों] के साथ (त्वम्) तू (पुत्रम्) कुल-शोधक वा बहुरक्षक बालक को (विन्दस्व) प्राप्त कर, (सा=सा त्वम्) सो तू (प्रसूः) जनने वाली (धेनुका) दूध पिलाने वाली माता [अथवा दुधैल गौ के समान] (भव) हो ॥४॥

कृणोमि ते प्राजापत्यमा योनिं गर्भ एतु ते ।
विन्दस्व त्वं पुत्रं नारि यस्तुभ्यं शमसच्छमु तस्मै त्वं भव ॥५॥

पदार्थ—(ते) तेरे लिए (प्राजापत्यम्) सन्तानरक्षक कर्म [गर्भाधान, पुंसवनादि संस्कार] (कृणोमि) मैं करता हूँ, (ते) तेरा (गर्भः) गर्भ (योनिम्) गर्भाशय में (आ एतु) आवे। (नारि) हे नर की हितकारिणी ! (त्वम्) तू (पुत्रम्) कुलशोधक सन्तान (विन्दस्व) प्राप्त कर (यः) जो (तुभ्यम्) तुझको (शम्) सुखदायक (असत्) होवे, (उ) और (त्वम्) तू (तस्मै) उसको (शम्) सुखदायक (भव) हो ॥५॥

यासां द्यौः पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव ।
तास्त्वा पुत्रविद्याय दैवीः प्रावन्त्वोषधयः ॥६॥

पदार्थ—(यासाम् वीरुधाम्) जिन उगने वाली अन्नादि ओषधियों का (द्यौः) सूर्य (पिता) पालने वाला, (पृथिवी) पृथिवी (माता) उत्पन्न करने

ये३ स्यां स्थ प्राच्यां दिशि हेतयो नाम देवास्तेषां वो अग्निरिषवः। ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥१॥

पदार्थ—(ये) जो तुम (अस्याम्) इस (प्राच्याम्) पूर्व वा सन्मुख (दिशि) दिशा मे (हेतयः) वज्र रूप (नाम) नाम (देवाः) विजय चाहने वाले (स्थ) हो (तेषाम् वः) उन तुम्हारी (अग्निः) [अग्नि विद्या] (इषवः) तीर हैं, (ते) वे तुम (नः) हमें (मृडत) सुखी करो, (ते) वे तुम (नः) हमारे लिए (अधि) अधिकारपूर्वक (ब्रूत) बोलो, (तेभ्यः वः) उन तुम्हारे लिए (नमः) सत्कार वा अन्न होवे, (तेभ्यः वः) उन तुम्हारे लिए (स्वाहा) सुन्दर वाणी [प्रशसा] होवे ॥१॥

ये३ स्यां स्थ दक्षिणायां दिश्यविष्यवो नाम देवास्तेषां वः काम इषवः। ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥२॥

पदार्थ—(ये) जो तुम (अस्याम्) इस (दक्षिणायाम्) दक्षिण वा दाहिनी (दिशि) दिशा में (अविष्यवः) रक्षा की इच्छा वाले (नाम) नाम (देवाः) विजय चाहने वाले वीर (स्थ) हो, (तेषाम् वः) उन तुम्हारा (कामः) मनोरथ (इषवः) तीर हैं, (ते) वे तुम (नः) हमे (मृडत) सुखी करो, (ते) वे तुम (नः) हमारे लिए (अधि) अधिकारपूर्वक (ब्रूत) बोलो, (तेभ्यः वः) उन तुम्हारे लिए (नमः) सत्कार वा अन्न होवे, (तेभ्यः वः) उन तुम्हारे लिए (स्वाहा) सुन्दर वाणी [प्रशसा] होवे ॥२॥

ये३ स्यां स्थ प्रतीच्यां दिशि वैराजा नाम देवास्तेषां व आप इषवः। ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥३॥

पदार्थ—(ये) जो तुम (अस्याम्) इस (प्रतीच्याम्) पश्चिम वा पीछे वाली (दिशि) दिशा मे (वैराजाः) विविध ऐश्वर्य वाले क्षत्रिय (नाम) नाम (देवाः) विजय चाहने वाले वीर (स्थ) हो, (तेषाम् वः) उन तुम्हारा (आपः) जल [जल विद्या] (इषवः) तीर हैं, (ते) वे तुम (नः) हमे (मृडत) सुखी करो, (ते) वे तुम (नः) हमारे लिए (अधि) अधिकारपूर्वक (ब्रूत) बोलो, (तेभ्यः वः) उन तुम्हारे लिए (नमः) सत्कार वा अन्न होवे, (तेभ्यः वः) उन तुम्हारे लिए (स्वाहा) सुन्दर वाणी [प्रशसा] होवे ॥३॥

ये३ स्यां स्थोदीच्यां दिशि प्रविध्यन्तो नाम देवास्तेषां वो वात इषवः। ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥४॥

पदार्थ—(ये) जो तुम (अस्याम्) इस (उदीच्याम्) उत्तर वा बायीं ओर वाली (दिशि) दिशा मे (प्रविध्यन्तः) वेधने वाले (नाम) नाम (देवाः) विजय चाहने वाले वीर (स्थ) हो, (तेषाम् वः) उन तुम्हारा (वातः) पवन (इषवः) तीर हैं, (ते) वे तुम (नः) हमें (मृडत) सुखी करो, (ते) वे तुम (नः) हमारे लिए (अधि) अधिकारपूर्वक (ब्रूत) बोलो, (तेभ्यः वः) उन तुम्हारे लिए (नमः) सत्कार वा अन्न होवे, (तेभ्यः वः) उन तुम्हारे लिए (स्वाहा) सुन्दर वाणी [प्रशसा] होवे ॥४॥

ये३ स्यां स्थ ध्रुवायां दिशि निलिम्पा नाम देवास्तेषां व ओषधीरिषवः। ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥५॥

पदार्थ—(ये) जो तुम (अस्याम्) इस (ध्रुवायाम्) स्थिर वा निश्चित (दिशि) दिशा मे (निलिम्पाः) लेप करने वाले वैद्य (नाम) नाम (देवाः) विजय चाहने वाले वीर (स्थ) हो, (तेषाम् वः) उन तुम्हारी (ओषधीः) अन्न, सोमलतादि ओषधियां (इषवः) तीर हैं, (ते) वे तुम (नः) हमें (मृडत) सुखी करो, (ते) वे तुम (नः) हमारे लिए (अधि) अधिकारपूर्वक (ब्रूत) बोलो, (तेभ्यः वः) उन तुम्हारे लिए (नमः) सत्कार वा अन्न होवे, (तेभ्यः वः) उन तुम्हारे लिए (स्वाहा) सुन्दर वाणी [प्रशसा] होवे ॥५॥

ये३ स्यां स्थोर्ध्वायां दिश्यवस्वन्तो नाम देवास्तेषां वो बृहस्पतिरिषवः। ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥६॥

पदार्थ—(ये) जो तुम (अस्याम्) इस (ऊर्ध्वायाम्) ऊपर वाली (दिशि) दिशा में (अवस्वन्तः) रक्षा के अधिकारी (नाम) नाम (देवाः) विजय चाहने वाले वीर (स्थ) हो, (तेषाम् वः) उन तुम्हारा (बृहस्पतिः) बड़ों का स्वामी, मुख्य सेनापति (इषवः) तीर है, (ते) वे तुम (नः) हमें (मृडत) सुखी करो, (ते) वे तुम (नः) हमारे लिए (अधि) अधिकारपूर्वक (ब्रूत) बोलो, (तेभ्यः वः) उन तुम्हारे लिए (नमः) सत्कार वा अन्न होवे, (तेभ्यः वः) उन तुम्हारे लिए (स्वाहा) सुन्दर वाणी [प्रशंसा] होवे ॥६॥

॥ सूक्तम् २७ ॥

१—६ अथर्वा । दिशः, रुद्राः, १ अग्निः, असितः, आदित्याः; २ इन्द्रः, तिरश्चिराजी, पितरः, ३ वरुणः, पृदाकुः, अन्नं, ४ सोमः, स्वजः, अशनिः, ५ विष्णुः, कल्माषग्रीवो वीरुधः, ६ बृहस्पतिः श्वित्रं, वर्षम् । १—६ पञ्चपदा ककुम्मतीगर्भाष्टिः, १२ अत्यष्टिः, ५ भुरिक् ।

प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३ स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥१॥

पदार्थ—(प्राची=प्राच्याः) पूर्व वा सन्मुख वाली (दिक्=दिशः) दिशा का (अग्निः) अग्नि [अग्नि विद्या में निपुण सेनापति] (अधिपतिः) अधिष्ठाता हो, (असितः) कृष्ण सर्प [के समान सेना व्यूह] (रक्षिता) रक्षक हो, (आदित्याः) सूर्य से सबन्ध वाले (इषवः) बाण हो। (तेभ्यः) उन (अधिपतिभ्यः) अधिष्ठाताओं और (रक्षितृभ्यः) रक्षकों के लिये (नमो नमः) बहुत बहुत सत्कार वा अन्न और (एभ्यः) इन (इषुभ्यः) बाणो [बाण वालों] के लिये (नमो नमः) बहुत बहुत सत्कार वा अन्न (अस्तु) होवे। (यः) जो [वैरी] (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) वैर करता है, [अथवा] (यम्) जिस [वैरी से] (वयम्) हम (द्विष्मः) वैर करते हैं, [हे शूरो] (तम्) उसको (वः) तुम्हारे (जम्भे) जबड़े मे (दध्मः) हम धरते हैं ॥१॥

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३ स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥२॥

पदार्थ—(दक्षिणा—०—णायाः) दक्षिण वा दाहिनी ओर वाली (दिक्=दिशः) दिशा का (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला इन्द्र [अधिकारी सेनापति] (अधिपतिः) अधिष्ठाता हो, (तिरश्चिराजिः) तिरछी धारी वाले सांप वा पशु-पक्षी आदि की पंक्ति [के समान सेना व्यूह] (रक्षिता) रक्षक हो, (पितरः) रक्षा करने हारे (इषवः) बाण होवें। (तेभ्यः) उन (अधिपतिभ्यः) अधिष्ठाताओं और (रक्षितृभ्यः)। रक्षकों के लिये (नमो नमः) बहुत-बहुत सत्कार वा अन्न और (एभ्यः) इन (इषुभ्यः) बाणो [बाण वालों] के लिये (नमो नमः) बहुत-बहुत सत्कार वा अन्न (अस्तु) होवे (यः) जो [वैरी] (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) वैर करता है, [अथवा] (यम्) जिस [वैरी से] (वयम्) हम (द्विष्मः) वैर करते हैं, [हे शूरो] (तम्) उस को (वः) तुम्हारे (जम्भे) जबड़े में (दध्मः) हम धरते हैं ॥२॥

प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३ स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥३॥

पदार्थ—(प्रतीची—०—च्याः) पश्चिम वा पीछे की (दिक्=दिशः) दिशा का (वरुणः) शत्रुओं का रोकने वाला, वरुण [पद वाला सेनापति] (अधिपतिः) अधिष्ठाता हो, (पृदाकुः) अजगर, बिच्छू, बाघ, चीता वा हाथी [के समान सेना व्यूह] (रक्षिता) रक्षक हो, और (अन्नम्) अन्न (इषवः) बाण होवें। (तेभ्यः अधिपतिभ्यः) उन अधिष्ठाताओं और (रक्षितृभ्यः)। रक्षकों के लिये (नमो नमः) बहुत-बहुत सत्कार वा अन्न और (एभ्यः) इन (इषुभ्यः) बाणों [बाण वालों] के लिये (नमो नमः) बहुत बहुत सत्कार वा अन्न (अस्तु) होवे (यः) जो [वैरी] (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) वैर करता है, [अथवा] (यम्) जिस [वैरी से] (वयम्) हम (द्विष्मः) वैर करते हैं, [हे शूरो] (तम्) उस को (वः) तुम्हारे (जम्भे) जबड़े में (दध्मः) हम धरते हैं ॥३॥

उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३ स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥४॥

पदार्थ—(उदीची—०—च्याः) उत्तर वा बाईं ओर वाली (दिक्=दिशः) दिशा का (सोमः) प्रेरक वा उत्पादक [सोम पद वाला सेनापति] (अधिपतिः) अधिष्ठाता हो, (स्वजः) आप उत्पन्न होने वाला वा बहुत दौड़ने वाले सांप [के समान सेना व्यूह] (रक्षिता) रक्षक होवे, और (अशनिः) बिजुली (इषवः) बाण होवें। (तेभ्यः अधिपतिभ्यः) उन अधिष्ठाताओं और (रक्षितृभ्यः) रक्षकों के लिये (नमो नमः) बहुत-बहुत सत्कार वा अन्न और (एभ्यः) इन (इषुभ्यः) बाणों [बाण वालों] के लिये (नमो नमः) बहुत-बहुत सत्कार वा अन्न (अस्तु) होवे (यः) जो [वैरी] (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) वैर करता है, [अथवा] (यम्) जिस [वैरी से] (वयम्) हम (द्विष्मः) वैर करते हैं, [हे शूरो] (तम्) उस को (वः) तुम्हारे (जम्भे) जबड़े में (दध्मः) हम धरते हैं ॥४॥

(प्रदाता) अच्छे प्रकार दान करने वाला (पितृणाम्) रक्षक पुरुषों [बलवानों और विद्वानों] के (लोके) लोक में (अक्षितम्) अक्षयता [नित्य वृद्धि] को (उपजीवति) भोगता है ॥४॥

पञ्चापूपं शितिपादमविं लोकेन संमितम् ।

प्रदातोप जीवति पितॄणां लोकेऽक्षितम् ॥५॥

पदार्थ—(पञ्चापूपम्) विस्तीर्ण वा [पूर्वादिक चार और ऊपर नीचे की पांचवी] पांचों दिशाओं में अटूट शक्ति वाले, अथवा बिना सड़ी रोटी देने वाले, (शितिपादम्) प्रकाश और अंधकार में गति वाले, (लोकेन) संसार करके (संमितम्) सम्मान किये गए (अविम्) रक्षक प्रभु का [अपने आत्मा में] (प्रदाता) अच्छे प्रकार दान करने वाला (सूर्यामासयोः) सूर्य और चन्द्रमा में [उनके नियम में] (अक्षितम्) अक्षयता [नित्यवृद्धि] को (उपजीवति) भोगता है ॥५॥

इरेव नोप दस्यति समुद्र इव पयो महत् ।

देवौ सवासिनाविव शितिपान्नोप दस्यति ॥६॥

पदार्थ—(शितिपात्) प्रकाश और अंधकार में गति वाला परमेश्वर (इरा इव) भूमि वा विद्या के समान और (समुद्रः) समुद्र, अर्थात् (महत्) बड़े (पयः इव) जलराशि के समान (न) नहीं (उप दस्यति) घटता है, और (देवौ) दिव्य गुण वाले (सवासिनौ इव) साथ-साथ निवास करने वाले दोनों [प्राण और अपान वा दिन-रात] के समान वह (न) नहीं (उप दस्यति) घटता है ॥६॥

क इदं कस्मा अदात् कामः कामायादात् ।

कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामः समुद्रमा विवेश ।

कामेन त्वा प्रति गृह्णामि कामैतत् ते ॥७॥

पदार्थ—(कः) किसने (इदम्) यह [कर्मफल] (कस्मै) किसको (अदात्) दिया है ? [इसका उत्तर] (कामः) मनोरथ [वा कामना योग्य परमेश्वर] ने (कामाय) मनोरथ [वा कामना करने वाले जीव] का (अदात्) दिया है । (कामः) मनोरथ [वा कमनीय ईश्वर] (दाता) देने वाला और (कामः) मनोरथ [वा कामना वाला जीव] (प्रतिग्रहीता) लेने वाला है । (कामः) मनोरथ ने (समुद्रम्) समुद्र [पार्थिव समुद्र वा अंतरिक्ष] में (आ विवेश) प्रवेश किया है । (काम) हे मनोरथ ! [वा कमनीय ईश्वर] (त्वा) तुझको (प्रति गृह्णामि) मैं जीव ग्रहण करता हूँ, (एतत्) यह [सब काम] (ते) तेरा ही ॥७॥

भूमिष्ट्वा प्रति गृह्णात्वन्तरिक्षमिदं महत् ।

माहं प्राणेन मात्मना मा प्रजया प्रतिगृह्य वि राधिषि ॥८॥

पदार्थ—(हे) काम (भूमिः) भूमि और (इदम्) यह (महत्) बड़ा (अंतरिक्षम्) अंतरिक्ष भी (त्वा) तुझको (प्रति गृह्णातु) स्वीकार करे । (अहम्) मैं जीव, (प्रतिगृह्य) पाकर (मा) न (प्राणेन) प्राण [शरीर बल] से, (मा) न (आत्मना) आत्मबल से, और (मा) न (प्रजया) प्रजा से, (वि राधिषि) अलग हो जाऊँ ॥८॥

卐 सूक्तम् ३० 卐

१—७ अथर्वा । चन्द्रमा, सामनस्यम् । अनुष्टुप्,
५ विराड्जगती, ६ प्रस्तारपङ्क्ति, ७ त्रिष्टुप् ।

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।

अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥१॥

पदार्थ—(सहृदयम्) एकहृदयता, (सांमनस्यम्) एकमनता और (अविद्वेषम्) निर्वैरता (वः) तुम्हारे लिये (कृणोमि) मैं करता हूँ । (अन्यो अन्यम्) एक दूसरे को (अभि) सब ओर से (हर्यत) तुम प्रीति से चाहो (अघ्न्या इव) जैसे न मारने योग्य, गौ (जातम्) उत्पन्न हुए (वत्सम्) बछड़े को [प्यार करती है] ॥१॥

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥२॥

पदार्थ—(पुत्रः) कुल शोधक पवित्र, बहुरक्षक वा नरक से बचाने वाला पुत्र [सन्तान] (पितुः) पिता के (अनुव्रतः) अनुकूल व्रती होकर (मात्रा) माता के साथ (संमनाः) एक मन वाला (भवतु) होवे । (जाया) पत्नी (पत्ये) पति से (मधुमतीम्) जैसे मधु में सनी और (शन्तिवाम्) शांति से भरी (वाचम्) वाणी (वदतु) बोले ॥२॥

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।

सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥३॥

पदार्थ—(भ्राता) भ्राता (भ्रातरम्) भ्राता से (मा द्विक्षत्) द्वेष न करे (उत) और (स्वसा) बहिन (स्वसारम्) बहिन से भी (मा) नहीं । (सम्यञ्चः) एक मत वाले और (सव्रताः) एक व्रती (भूत्वा) होकर (भद्रया) कल्याणी रीति से (वाचम्) वाणी (वदत) बोलो ॥३॥

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः ।

तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥४॥

पदार्थ—(येन) जिस [वेद पथ] से (देवाः) विजय चाहने वाले पुरुष (न) नहीं (वियन्ति) विरुद्ध चलते हैं (च) और (नो) न कभी (मिथः) आपस में (विद्विषते) विद्वेष करते हैं । (तत्) उस (ब्रह्म) वेद पथ को (वः) तुम्हारे (गृहे) घर में (पुरुषेभ्यः) सब पुरुषों के लिए (संज्ञानम्) ठीक-ठीक ज्ञान का कारण (कृण्मः) हम करते हैं ॥४॥

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः । अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ॥५॥

पदार्थ—(ज्यायस्वन्तः) बड़ों का मान रखने वाले (चित्तिनः) उत्तम चित्त वाले, (संराधयन्तः) समृद्धि [धन धान्य की वृद्धि] करते हुए और (सधुराः) एकधुरा होकर (चरन्तः) चलते हुए तुम लोग (मा वि यौष्ट) अलग अलग न होओ, और (अन्यो अन्यस्मै) एक दूसरे से (वल्गु) मनोहर (वदन्तः) बोलते हुए (एत) आओ । (वः) तुमको (सध्रीचीनान्) साथ-साथ गति [उद्योग वा विज्ञान] वाले और (संमनसः) एक मन वाले (कृणोमि) मैं करता हूँ ॥५॥

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।

सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥६॥

पदार्थ—(वः) तुम्हारी (प्रपा) जलशाला (समानी) एक हो, और (अन्नभागः) अन्न का भाग (सह) साथ-साथ हो, (समाने) एक ही [योक्त्रे] जोत में (वः) तुमको (सह) साथ-साथ (युनज्मि) मैं जोड़ता हूँ । (सम्यञ्चः) मिलकर गति [उद्योग वा ज्ञान] रखने वाले तुम (अग्निम्) अग्नि [ईश्वर वा भौतिक अग्नि] को (सपर्यत) पूजो (इव) जैसे (अराः) अरे [पहिये के दण्डे] (नाभिम्) नाभि [पहिये के बीच वाले काठ] में (अभितः) चारों ओर से [सटे होते हैं] ॥६॥

सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान् ।

देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥७॥

पदार्थ—(संवननेन) यथावत् सेवन वा व्यापार से (वः सर्वान्) तुम सबको (सध्रीचीनान्) साथ-साथ गति [उद्योग वा ज्ञान] वाले, (संमनसः) एक मन वाले और (एकश्नुष्टीन्) एक भोजन वाले (कृणोमि) मैं करता हूँ । (देवाः इव) विजय चाहने वाले पुरुषों के समान (अमृतम्) अमरपन [जीवन की सफलता] को (रक्षमाणाः) रखते हुए तुम [बने रहो] । (सायं प्रातः) सायंकाल और प्रातःकाल में (सौमनसः) चित्त की प्रसन्नता (वः) तुम्हारे लिए (अस्तु) होवे ॥७॥

卐 सूक्तम् ३१ 卐

१—११ ब्रह्मा । पाप्महा; १ अग्निः, २ शक्रः, ३ पशवः, ४ द्यावापृथिवी,
५ त्वष्टा, ६ अग्निः, इन्द्रः, ७ देवाः, सूर्यः, ८—१० आयुः, ११ पर्जन्यः ।
अनुष्टुप्, ४ भुरिक्, ५ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः ।

वि देवा जरसावृतन् वि त्वमग्ने अरात्या ।

व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥१॥

पदार्थ—(देवाः) विजय चाहने वाले पुरुष (जरसा) आयु के घटाव से (वि) अलग (अवृतन्) रहे हैं । (अग्ने) हे विद्वान् पुरुष (त्वम्) तू (अरात्या) कंजूसी वा शत्रुता से (वि—वि वर्तस्व) अलग रह । (अहम्) मैं (सर्वेण) सब (पाप्मना) पाप कर्म से (वि) अलग और (यक्ष्मेण) राजरोग, क्षयी आदि से (वि—विवर्ते) अलग रहूँ और (आयुषा) जीवन [उत्साह] से (सम्—सम्वर्ते) मिला रहूँ ॥१॥

व्यार्त्या पवमानो वि शक्रः पापकृत्यया ।

व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥२॥

[अर्थात्] "(तस्मै) उस (प्रथमाय) सबसे ऊपर विराजमान (धास्यवे) संसार का कारण पोषण चाहने वाले परमात्मा के लिए (एतम्) इस (सुरुचम्) बड़े रुचिर (ह्वारम्) अनिष्ट को झुका देने वाले (अह्रयम्) प्राप्ति के योग्य, वा प्रतिदिन वर्तमान (घर्मम्) यज्ञ को (श्रीणन्तु) सब लोग परिपक्व करें" ॥२॥

प्र यो जज्ञे विद्वानस्य बन्धुर्विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति ।
ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्यान्नीचैरुच्चैः स्वधा अभि प्र तस्थौ ॥३॥

पदार्थ—(यः विद्वान्) जो विद्वान् परमेश्वर (अस्य) इस [जगत्] का (बन्धुः) बन्धन या नियम करने वाला, अथवा, बन्धु हितकारी (प्र) अच्छे प्रकार (जज्ञे) प्रकट हुआ था, और जो (देवानाम्) भूमि, सूर्य आदि दिव्य पदार्थों वा महात्माओं के (विश्वा विश्वानि) सब (जनिमा) जन्मों को (विवक्ति) बतलाता है। उसने (ब्रह्मणः) ब्रह्म [अपने परब्रह्म स्वरूप] के (मध्यात्) मध्य से (ब्रह्म) वेद को (उज्जभार) उभारा था, वही (नीचैः) नीचे और (उच्चैः) ऊँचे (स्वधाः) अनेक अमृतों वा अन्नों को (अभि—अभिलक्ष्य) सन्मुख करके (प्र) उत्तमता से (तस्थौ) स्थित हुआ था ॥३॥

स हि दिवः स पृथिव्या ऋतस्था मही क्षेमं रोदसी अस्कभायत् ।
महान् मही अस्कभायद् वि जातो द्यां सद्म पार्थिवं च रजः ॥४॥

पदार्थ—(सः) उस (सः) विष्णु वा शिव ने (हि) ही (दिवः) सूर्य के और (पृथिव्याः) पृथिवी के (ऋतस्थाः+सन्) सत्य वा कारण मे स्थित होकर (मही= महत्यौ) विशाल (रोदसी=०—स्यौ) सूर्य और पृथिवी को (क्षेमम्) क्षेम के साथ (अस्कभायत्) ठहराया। (महान्) उस विशाल परमेश्वर ने (जातः+सन्) प्रकट होकर (मही=महत्यौ) दोनों विशालो, अर्थात् (द्याम्) सूर्यरूप (सद्म) घर (च) और (पार्थिवम्) पृथिवी वाले (रजः) लोक को (वि) अलग-अलग (अस्कभायत्) स्थिर किया ॥४॥

स बुध्न्यादाष्ट्र जनुषोऽभ्यग्रं बृहस्पतिर्देवता तस्य सम्राट् ।
अहर्यच्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्टाथ द्युमन्तो वि वसन्तु विप्राः ॥५॥

पदार्थ—(सः) ईश्वर (जनुषः) उत्पन्न जगत् के (बुध्न्यात्) मूल देश से लेकर (अग्रम् अभि) उपरि भाग तक (आष्ट्र—आष्ट) व्याप्त हुआ। (बृहस्पतिः) बड़े-बड़ो का स्वामी (देवता) प्रकाशमान परमेश्वर (तस्य) उस [जगत्] का (सम्राट्) सम्राट् [राजराजेश्वर] है। (यत्) क्योंकि (ज्योतिषः) ज्योतिःस्वरूप परमेश्वर से (शुक्रम्) चमचमाता हुआ (अहः) दिन [सूर्य] (जनिष्ट—अजनिष्ट) उत्पन्न हुआ, (अथ) तभी (विप्राः) इन्द्रियां वा बुद्धिमान् लोग (द्युमन्तः) प्रकाशमान होकर (वि) विविध प्रकार से (वसन्तु) निवास करें ॥५॥

नूनं तदस्य काव्यो हिनोति महो देवस्य पूर्व्यस्य धाम ।
एष जज्ञे बहुभिः साकमित्था पूर्वे अर्धे विषिते ससन् नु ॥६॥

पदार्थ—(काव्यः) स्तुति योग्य परमेश्वर [वेन, म० १] (अस्य) इस (पूर्व्यस्य) समग्र जगत् के हित करनेवाले (देवस्य) प्रकाशमान सूर्य के (तत्) उस (महः) विशाल (धाम) तेज को (नूनम्) अवश्य (हिनोति) भेजता है। (ससन्) सोता हुआ (एषः) यह परमेश्वर (पूर्वे) समस्त (अर्धे) प्रवृद्ध जगत् के (विषिते) खुलने पर (इत्था) इस प्रकार से [जैसे सूर्य] (बहुभिः साकम्) बहुत [लोकों] के साथ (नु) शीघ्र (जज्ञे) प्रकट हुआ है ॥६॥

योऽथर्वाणं पितरं देवबन्धुं बृहस्पतिं नमसाव च गच्छात् ।
त्वं विश्वेषां जनिता यथासः कविर्देवो न दभायत् स्वधावान् ॥७॥

पदार्थ—(यः) गतिवाला, पुरुषार्थी पुरुष (अथर्वाणम्) निश्चल, (पितरम्) पिता, (देवबन्धुम्) विद्वानों वा मर्यादि दिव्य लोकों का बन्धु वा नियामक, (बृहस्पतिम्) बड़े-बड़ो के स्वामी परमेश्वर को (नमसा) नमस्कार के साथ (च) निश्चय करके (अव गच्छात्) पहिचाने। [हे परमेश्वर !] (त्वम्) तू (विश्वेषाम्) सब [सुखों] का (जनिता) उत्पादक (असः) हो, (यथा) क्योंकि (कविः) मेधावी, (स्वधावान्) अन्नवान् वा स्वय धारण सामर्थ्य वाला (देवः) परमेश्वर (न) कभी नहीं (दभायत्) ठगता है ॥७॥

卐 सूक्तम् २ 卐

१—८ वेन । आत्मा । त्रिष्टुप्, ६ पुरोऽनुष्टुप्, ७ उपरिष्टाज्ज्योति ।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥

पदार्थ—(यः) जो (आत्मदाः) प्राण [आत्मबल] का देने वा शुद्ध करने वाला और (बलदाः) शारीरिक बल का देने वा शुद्ध करने वाला है, (यस्य) जिस (यस्य) व्यापक वा पूजनीय के (प्रशिषम्) उत्तम शासन को (विश्वे) सब (देवाः) देवता [सूर्य चन्द्रादि सब लोक] (उपासते) सेवते हैं (यः) जो (यः) व्यापक वा पूजनीय (अस्य) इस (द्विपदः) दोपाये और (चतुष्पदः) चौपाये जीवसमूह का (ईशे—ईष्टे) ईश्वर है, उस (कस्मै—काय) प्रजापति सुखदाता परमेश्वर की (देवाय) दिव्य गुण के लिए (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) हम सेवा किया करें ॥१॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैको राजा जगतो बभूव ।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (महित्वा—०—त्वेन) अपनी महिमा से (प्राणतः) श्वास लेते हुए, चेतन और (निमिषतः) आंख मूंदे हुए, अचेतन (जगतः) जगत् का (एकः) एक (राजा) राजा (बभूव) हुआ है (यस्य) जिसकी (छाया) छाया [छाया समान अनुगामी अथवा आश्रय वा कान्ति अर्थात् ज्ञान] (अमृतम्) अमरपन [जीवन का पुरुषार्थ वा जीवन की सफलता, मोक्ष पद] है और (यस्य—यस्यच्छाया) जिसकी [छाया अर्थात् छाया समान अनुगामी अथवा अनाश्रय, वा प्रकाश का रुकना, अज्ञान] (मृत्युः) मरण [शरीर त्याग वा निरुत्साह, वा जीवन की विफलता, नरक] है, उस (कस्मै) प्रजापति सुखदाता परमेश्वर की (देवाय) श्रेष्ठ गुण के लिए (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) सेवा किया करें ॥२॥

यं क्रन्दसी अवतश्चस्कभाने भियसाने रोदसी अह्वयेथाम् ।
यस्यासौ पन्था रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

पदार्थ—(यम्) जिसको (चस्कभाने) परस्पर रोकती हुई (क्रन्दसी) ललकारती हुई दो सेनायें (अवतः) प्राप्त होती हैं, और [जिसको] (भियसाने) हे डरती हुई (रोदसी) सूर्य और भूमि ! (अह्वयेथाम्) तुम दोनों ने पुकारा है। (यस्य) जिसका (असौ पन्था) यह मार्ग (रजसः) संसार का (विमानः) विविध प्रकार नापने वाला वा विमान रूप है, उस (कस्मै) प्रजापति सुखदाता परमेश्वर की (देवाय) उत्तम गुण के लिए (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) हम सेवा किया करें ॥३॥

यस्य द्यौरुर्वी पृथिवी च मही यस्याद उर्वन्तरिक्षम् ।
यस्यासौ सूरो विततो महित्वा कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥

पदार्थ—(यस्य) जिसकी (महित्वा=०—त्वेन) महिमा से (उर्वी) विस्तीर्ण (द्यौः) सूर्य (च) और (मही) विशाल (पृथिवी) पृथिवी है, (यस्य) जिसकी [महिमा से] (अदः) यह (उरु) चौड़ा (अन्तरिक्षम्) मध्य लोक है (यस्य) जिसकी [महिमा से] (असौ) यह (सूरः) धर्म प्रचारक विद्वान् मनुष्य (विततः) विस्तार वाला है, उस (कस्मै) प्रजापति सुखदाता परमेश्वर की (देवाय) दिव्य गुण के लिये (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) हम सेवा किया करें ॥४॥

यस्य विश्वे हिमवन्तो महित्वा समुद्रे यस्य रसामिदाहुः ।
इमाश्च प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥

पदार्थ—(यस्य) जिसकी (महित्वा=०—त्वेन) महिमा से (विश्वे) सब (हिमवन्तः) हिम वाले पहाड हैं, और (यस्य) जिसकी [महिमा से] (समुद्रे) समुद्र [अन्तरिक्ष, वा पार्थिव समुद्र] मे (रसाम्) नदी को (इत्) भी (आहुः) बताते हैं। (च) और (इमाः) ये (प्रदिशः) बड़ी दिशायें (यस्य) जिसकी (बाहू) दो भुजायें है, उस (कस्मै) सुखदायक प्रजापति परमेश्वर की (देवाय) दिव्य गुण के लिये (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) हम सेवा किया करें ॥५॥

आपो अग्रे विश्वमावन् गर्भं दधाना अमृता ऋतज्ञाः ।
यासु देवीष्वधि देव आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६॥

पदार्थ—(गर्भम्) बीज को (दधानाः) धारण करते हुए, (अमृताः) मरण रहित [जीवन शक्ति वाले] (ऋतज्ञाः) सत्य नियम को जानने वाले (आपः) उन व्यापक जलों [वा तन्मात्राओं] ने (अग्रे) पहिले (विश्वम्) जगत् की (आवन्) रक्षा की थी, (यासु देवीषु अधि) जिन दिव्य गुण वालों के ऊपर (देवः) परमेश्वर (आसीत्) था, उस (कस्मै) सुखदायक प्रजापति परमेश्वर की (देवाय) दिव्य गुण के लिये (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) हम सेवा किया करें ॥६॥

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीमुत द्यां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥७॥

पदार्थ—(हिरण्यगर्भः) तेज वाले लोकों का आधार (अग्रे) पहिले ही पहिले (सम्) ठीक-ठीक (अवर्तत) वर्तमान था। वही (जातः) प्रकट होकर (भूतस्य) पृथिवी आदि पंचभूत का (एकः) एक (पतिः) पति, ईश्वर (आसीत्) हुआ, (सः) उसने (पृथिवीम्) पृथिवी (उत) और (द्याम्) सूर्य को (दाधार) धारण किया, उस (कस्मै) सुखदायक प्रजापति परमेश्वर की (देवाय) दिव्य गुण के लिये (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) हम सेवा किया करें ॥७॥

आपो वत्सं जनयन्तीर्गर्भमग्रे समैरयन् । तस्योत जायमानस्योल्ब आसीद्धिरण्ययः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥८॥

पदार्थ—(अग्रे) पहिले ही पहिले (वत्सम्) निवास स्थान संसार को वा बालक रूप संसार को (जनयन्तीः=०—न्यः) उत्पन्न करते हुए (आपः) जलधाराओं [वा तन्मात्राओं] ने (गर्भम्) बालक [रूप संसार] को (समैरयन्) यथावत् प्रकट किया, (उत) और (तस्य) उस (जायमानस्य) उत्पन्न होते हुए [बालक, संसार] का (उल्वः) जरायु [गर्भ की झिल्ली] (हिरण्ययः) तेजोमय परमात्मा (आसीत्) था, इस (कस्मै) सुखदायक प्रजापति परमेश्वर की (देवाय) दिव्य गुण के लिये (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) हम सेवा किया करें ॥८॥

卐 सूक्तम् ३ 卐

१—७ अथर्वा । रुद्रः, व्याघ्रः । अनुष्टुप्, १ पथ्यापंक्तिः, ३ गायत्री, ७ ककुम्मतीगर्भोपरिष्टाद्बृहती ।

उदितस्त्रयो अक्रमन् व्याघ्रः पुरुषो वृकः । हिरुग्घि यन्ति सिन्धवो हिरुग् देवो वनस्पतिर्हिरुङ् नमन्तु शत्रवः ॥१॥

पदार्थ—(त्रयः) तीनो, (व्याघ्रः) सूंघकर पकड़ने वाला, बाघ, (पुरुषः) आगे बढ़ने वाला, [चोर] मनुष्य, और (वृकः) हुँडार वा भेड़िया (इतः) यहा से (उदक्रमन्) फलांगकर निकल गए । (सिन्धवः) नदिया (हि) अवश्य (हिरुक्) नीचे को (यन्ति) जाती हैं, (देवः) दिव्य गुण वाला (वनस्पतिः) सेवकों का रक्षक, वृक्ष भी (हिरुक्) नीचे को, [इसी प्रकार] (शत्रवः) हमारे वैरी (हिरुक्) नीचे को (नमन्तु) झुकें ॥१॥

परेणैतु पथा वृकः परमेणोत तस्करः ।

परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥२॥

पदार्थ—(वृकः) हुण्डार वा भेड़िया (परेण) दूर (पथा) मार्ग से (एतु) चला जावे, (उत) और (तस्करः) पीड़ा देने वाला चोर (परमेण) अधिक दूर मार्ग से (दत्वती) दाँत वाली (रज्जुः) रसरी अर्थात् साँप (परेण) दूर से, और (अघायुः) बुरा चीतने वाला पापी (परेण) दूर से (अर्षतु) भाग जावे ॥२॥

अक्ष्यौ च ते मुखं च ते व्याघ्र जम्भयामसि ।

आत् सर्वान् विंशतिं नखान् ॥३॥

पदार्थ—(व्याघ्र) हे बाघ ! (ते) तेरी (अक्ष्यौ) दोनो [हृदय और मस्तक की] आँखों को (च) और (च) भी (ते मुखम्) तेरे मुख को, (आत्) और भी (सर्वान्) सब (विंशतिम्) बीसों (नखान्) नखों को (जम्भयामसि—०—मः) हम नष्ट करते हैं ॥३॥

व्याघ्रं दत्वतां वयं प्रथमं जम्भयामसि ।

आदु ष्टेनमथो अहिं यातुधानमथो वृकम् ॥४॥

पदार्थ—(दत्वताम्) दाँत वालों में से (प्रथमम्) पहिले (व्याघ्रम्) बाघ, (आत् उ) और भी (अहिम्) साँप, (अथो) और भी (वृकम्) भेड़िये, (स्तेनम्) चोर (अथो) और भी (यातुधानम्) पीड़ा देने वाले राक्षस को (वयम्) हम (जम्भयामसि) नष्ट करते हैं ॥४॥

यो अद्य स्तेन आयति स संपिष्टो अपायति ।

पथामपध्वंसेनैत्विन्द्रो वज्रेण हन्तु तम् ॥५॥

पदार्थ—(यः स्तेनः) जो कोई चोर (अद्य) आज (आयति) आवे, (संपिष्टः) चूर-चूर किया हुआ (सः) वह (अप अयति) हट जावे, और (पथाम्) मार्गों के (अपध्वंसेन) विनाश से (एतु) चला जावे, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रतापी मनुष्य (वज्रेण) वज्र से (तम्) उसको (हन्तु) मार डाले ॥५॥

मूर्णा मृगस्य दन्ता अपिशीर्णा उ पृष्टयः ।

निम्रुक् ते गोधा भवतु नीचायच्छशयुर्मृगः ॥६॥

पदार्थ—[हे चोर !] (मृगस्य) पशु [अर्थात् तेरी गाय] के (दन्ताः) दाँत (मूर्णाः) कुन्द वा भोंथरे (उ) और (पृष्टयः) पसलियाँ (अपि शीर्णाः) चूर-चूर [हो जावें], (ते) तेरी (गोधा) गोह (निम्रुक्) नीचे (भवतु) हो जावे, और (मृगः) वह पशु (शशयुः) सोता हुआ [निकम्मी होकर] (नीचा) नीचे (अयात्) आ जावे ॥६॥

यत् संयमो न वि यमो वि यमो यन्न संयमः ।

इन्द्रजाः सोमजा आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम् ॥७॥

पदार्थ—(यत्) जिससे (इन्द्रजाः) परमेश्वर से प्रकट हुआ, और (सोमजाः) जीवन करने वाले तत्त्ववेत्ताओं अथवा सर्वप्रेरक शूरवीर पुरुषों से प्रकाशित हुआ (संयमः) यथावत् नियम (वि यमः) विरुद्ध नियम (न) नहीं होता, और (यत्) जिससे (वि यमः) विरुद्ध नियम (संयमः) यथावत् नियम (न) नहीं होता है, [इसलिये हे मनुष्य तू] (आथर्वणम्) निश्चल वा मंगलप्रद परमेश्वर से आया हुआ (व्याघ्रजम्भनम्) व्याघ्रों [व्याघ्र स्वभाव वाले शत्रुओं और विघ्नों] के नाश का सामर्थ्य (असि) है ॥७॥

卐 सूक्तम् ४ 卐

१—८ अथर्वा । वनस्पतिः, १—२ सूर्यः ; प्रजापतिः, इन्द्रः ; ५ आपः, सोमः, ६ अग्निः, सरस्वती, ब्रह्मणस्पतिः । अनुष्टुप्, ४ पुरउष्णिक्, ६—७ भुरिक् ।

यां त्वा गन्धर्वो अखनद् वरुणाय मृतभ्रजे ।

तां त्वा वयं खनामस्योषधिं शेपहर्षणीम् ॥१॥

पदार्थ—(याम् त्वा) जिस तुझको (गन्धर्वः) वेद विद्या धारण करने वाले पुरुष ने (मृतभ्रजे) नष्ट बल वाले (वरुणाय) उत्तम गुणयुक्त मनुष्य के लिए (अखनत्) खना है, (ताम् त्वा) उस तुझ (शेपहर्षणीम्) सामर्थ्य बढ़ाने वाली (ओषधिम्) ओषधि को (वयम्) हम (खनामसि) खनते हैं ॥१॥

उदुषा उदु सूर्य उदिदं मामकं वचः ।

उदेजतु प्रजापतिर्वृषा शुष्मेण वाजिना ॥२॥

पदार्थ—(वाजिना) वेग रखने वाले (शुष्मेण) बल वा प्रभाव से (उषाः) प्रभात वेला (उत्=उदेजतु) ऊँची होवे, (उ) और (सूर्यः) सूर्य (उत्) ऊँचा चढ़े, (इदम्) यह (मामकम्) मेरा (वचः) वचन (उत्) ऊँचा होवे, (प्रजापतिः) प्रजाओं का पालन करने वाली (वृषा) बल बढ़ाने वाली [कोई ओषधि वा मूसाकन्नी ओषधिविशेष] (उदेजतु) ऊँची होवे ॥२॥

यथा स्म ते विरोहतोऽभितप्तमिवानति ।

ततस्ते शुष्मवत्तरमियं कृणोत्वोषधिः ॥३॥

पदार्थ—[हे मनुष्य] (यथा स्म) जिस प्रकार से ही (ते विरोहतः) तुझ वृद्धिशील का [मन विद्या से] (अभितप्तमिव) प्रतापयुक्त सा (अनति) चेष्टा करता है, (ततः) उस प्रकार से ही (ते=त्वाम्) तुझे (इयम् ओषधिः) यह ओषधि (शुष्मवत्तरम्) अधिक बलयुक्त (कृणोतु) करे ॥३॥

उच्छुष्मौषधीनां सार ऋषभाणाम् ।

सं पुंसामिन्द्र वृष्ण्यमस्मिन् धेहि तनूवशिन् ॥४॥

पदार्थ—(ऋषभाणाम्) श्रेष्ठ [अथवा कांकड़ासिंगी आदि] (ओषधीनाम्) ओषधियों में से (शुष्मा) बल वाली (सारा) श्रेष्ठ [वा वृषा नाम ओषधि] (उत्=उदेजतु) उदय हो । (तनूवशिन्) हे शरीरों को वश में रखने वाले (इन्द्र) बड़े ऐश्वर्य वाले सद्वैद्य ! (पुंसाम्) रक्षाशील पुरुषों के मध्य (वृष्ण्यम्) बल (अस्मिन्) इस मनुष्य में (संधेहि) यथावत् धारण कर दे ॥४॥

अपां रसः प्रथमजोऽथो वनस्पतीनाम् ।

उत सोमस्य भ्रातास्युतार्शमसि वृष्ण्यम् ॥५॥

पदार्थ—[हे ओषध !] तू (अपाम्) व्यापनशील जलों का (अथो) और भी (वनस्पतीनाम्) अपने सेवा करने वालों के पालक वृक्षों का (प्रथमजः) प्रथम उत्पन्न होने वाला (रसः) रस, (उत) और (सोमस्य) अमृत वा ऐश्वर्य का (भ्राता) प्रकाशक वा धारक और पोषक (असि) है, (उत) और (आर्शम्) शूरों का हितकारक (वृष्ण्यम्) बल (असि) है ॥५॥

अद्याग्ने अद्य सवितरद्य देवि सरस्वति ।

अद्यास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ॥६॥

पदार्थ—(अद्य) आज (अग्ने) हे भौतिक अग्नि ! (अद्य) आज (सवितः) हे लोकप्रेरक सूर्य ! (अद्य) आज (देवि) दिव्य गुण वाली (सरस्वति) विज्ञानवती विद्या ! (अद्य) आज (ब्रह्मणस्पते) हे अन्न, वा धन, वा वेद, वा ब्राह्मण के रक्षक परमेश्वर ! (अस्य) इसके (पसः) राज्य को (धनुः इव) धनुष् के समान (आ) भले प्रकार (तानय) फैला ॥६॥

आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि ।

क्रमस्वर्श इव रोहितमनवग्लायता सदा ॥७॥

पदार्थ—(अहम्) मैं [हे मनुष्य !] (ते) तेरे (पसः) राज्य को (आ) यथावत् (तनोमि) फैलाता हूँ (ज्याम् इव) जैसे डोरी को (धन्वनि अधि) धनुष् में । (अनवग्लायता) बिना ग्लानि वा थकावट के (सदा) सदा

[शत्रुओं पर] (क्रमस्व) धावा कर, (व्याघ्रः इव) जैसे हिंसक जन्तु, सिंह आदि (रोहितम्) हरिण पर ॥७॥

अश्वस्याश्वतरस्याजस्य पेत्वस्य च ।

अथ ऋषभस्य ये वाजास्तानस्मिन् धेहि तनूवशिन् ॥८॥

पदार्थ—(अश्वस्य) घोड़े के, (अश्वतरस्य) खच्चर के, (अजस्य) बकरे के, (च) और (पेत्वस्य) मेढ़े के, (अथ) और भी (ऋषभस्य) बलीवर्द के (ये वाजाः) जो बल हैं, (तान्) उनको, (तनूवशिन्) हे शरीरों को वश मे रखने वाले शूर ! (अस्मिन्) इस पुरुष मे (धेहि) धारण कर ॥८॥

卐 सूक्तम् ५ 卐

१—७ ब्रह्मा । स्वापनं, वृषभः । अनुष्टुप्, २ भुरिक्,
७ पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुप्

सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ।

तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि ॥१॥

पदार्थ—(यः) जो (वृषभः) सुख बरसाने वाला (सहस्रशृङ्गः) सहस्रों अर्थात् तेज नक्षत्रो वाला चन्द्रमा [अथवा सहस्रो किरणो वाला सूर्य] (समुद्रात्) आकाश से (उदाचरत्) उदय हुआ है, (तेन) उस (सहस्येन) बल के लिए हितकारक [चन्द्रमा] से (वयम्) हम लोग (जनान्) सब जनो को (नि स्वापयामसि) सुला दें ॥१॥

न भूमिं वातो अति वाति नाति पश्यति कश्चन ।

स्त्रियश्च सर्वाः स्वापय शुनश्चेन्द्रसखा चरन् ॥२॥

पदार्थ—(न) न (वातः) पवन (भूमिम्) भूमि पर (अति) अत्यन्त (वाति) चलता है, और (न) न (कश्चन) कोई जन (अति) ऊपर से (पश्यति) देखता है । [हे पवन !] (इन्द्रसखा) इन्द्र अर्थात् जीवात्मा को अपना सखा रखने वाला तू, (चरन्) चलता हुआ, (सर्वाः स्त्रियः) सब स्त्रियो (च) और (शुनः) कुत्तों को (च) भी (स्वापय) सुला दे ॥२॥

प्रोष्ठेशयास्तल्पेशया नारीर्या वह्यशीवरीः ।

स्त्रियो याः पुण्यगन्धयस्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥३॥

पदार्थ—(प्रोष्ठेशयाः) बड़े घर या बड़े आगन मे सोने वाली, (तल्पेशयाः) खाटो पर सोने वाली, और (वह्यशीवरीः —०— र्याः) हिंडोला आदि मे सोने वाली (याः) जो (नारीः याः) नारियाँ हैं और (याः) जो (स्त्रियः) स्त्रियाँ (पुण्यगन्धयः) पुण्य गति वाली है, (ताः सर्वाः) उन सबको (स्वापया—मसि—०—म) हम सुलाते है ॥३॥

एजदेजदजग्रभं चक्षुः प्राणमजग्रभम् ।

अङ्गान्यजग्रभं सर्वा रात्रीणामतिशर्वरे ॥४॥

पदार्थ—(एजदेजत्) इधर-उधर पड़ी हुई प्रत्येक वस्तु को (अजग्रभम्) मैंने सग्रह कर लिया है, (चक्षुः) नेत्र और (प्राणम्) प्राण मार्ग [नासिका] को (अजग्रभम्) मैने ग्रहण कर लिया है, और (रात्रीणाम्) रात्रियो के मध्य (अतिशर्वरे) अत्यन्त अन्धकार मे (सर्वा सर्वाणि) सब (अङ्गानि) अङ्गो को (अजग्रभम्) मैंने थाम लिया है ॥४॥

य आस्ते यश्चरति यश्च तिष्ठन् विपश्यति ।

तेषां सं दध्मो अक्षीणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥५॥

पदार्थ—(यः) जो कोई (आस्ते) बैठता है, (यः) जो (चरति) चलता है, (च) और (यः) जो (तिष्ठन्) खड़े होकर (विपश्यति) विविध प्रकार से देखता है, (तेषाम्) उनकी (अक्षीणि) आखो का (तथा) उस प्रकार से (संदध्मः) हम मूँदते हैं, (यथा) जैसे (इदम्) इस (हर्म्यम्) हर्म्य [धनियो के मनोहर घर] को ॥५॥

स्वप्तु माता स्वप्तु पिता स्वप्तु श्वा स्वप्तु विश्पतिः ।

स्वपन्त्वस्यै ज्ञातयः स्वप्त्वयमभितो जनः ॥६॥

पदार्थ—(अस्यै) इस [सन्तति, पुत्री वा पुरुष के हित] के लिए (माता) माता (स्वप्तु) सोवे, (पिता) पिता (स्वप्तु) सोवे, (श्वा) कुत्ता (स्वप्तु) सोवे, (विश्पतिः) प्रजापालक गृहपति (स्वप्तु) सोवे । (ज्ञातयः) जाति के लोग (स्वपन्तु) सोवें, और (अयम्) यह (जनः) सब जने (अभितः) चारों ओर (स्वप्तु) सोवें ॥६॥

स्वप्न स्वप्नाभिकरणेन सर्वं नि ष्वापया जनम् । ओत्सूर्यमन्यान्त्स्वापयाव्युषं जागृतादहमिन्द्रइवारिष्टो अक्षितः ॥७॥

पदार्थ—(स्वप्न) हे निद्रा ! (स्वप्नाभिकरणेन) नींद के उपाय वा साधन से (सर्वं जनम्) सब जनो को (नि, स्वापय) सुला दे । (अन्यान्) दूसरे पुरुषो को (ओत्सूर्यम्) सूर्य उदय तक (स्वापय) सुला, (अहम्) मैं (इन्द्रः इव) प्रतापी मनुष्य के समान (अरिष्टः) नाशरहित और (अक्षितः) हानि रहित (आव्युषम्) प्रभात तक (जागृतात्=जागराणि) जागरण करूँ ॥७॥

卐 इति प्रथमोऽनुवाकः 卐

卐

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ६ 卐

१—८ गरुत्मान् । तक्षक, १ ब्राह्मण, २ द्यावापृथिवी सप्तसिन्धव; ३ सुपर्णः ।
४—८ विषम् । अनुष्टुप् ।

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः ।

स सोमं प्रथमः पपौ स चकारारसं विषम् ॥१॥

पदार्थ—(प्रथमः) सब वर्णों में प्रधान, (दशशीर्षः) दस प्रकार के [१—दान, २—शील, ३—क्षमा, ४—वीर्य, ५—ध्यान, ६—बुद्धि, ७—सेना ८—उपाय, ९—गुप्तदूत, और १०—ज्ञान] बलो से शिर रखने वाला और (दशास्यः) दस दिशाओ मे मुख के समान पोषण शक्ति वाला वा दश दिशाओ मे स्थिति वाला (ब्राह्मणः) ब्राह्मण अर्थात् वेदवेत्ता पुरुष (जज्ञे) उत्पन्न हुआ । (सः प्रथमः) उस प्रधान पुरुष ने (सोमम्) सोम नाम ओषधि का रस (पपौ) पिया, और (सः) उसने (विषम्) विष को (अरसम्) निर्गुण कर दिया ॥१॥

यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावत् सप्त सिन्धवो वितष्ठिरे ।

वाचं विषस्य दूषणीं तामितो निरवादिषम् ॥२॥

पदार्थ—(द्यावापृथिवी =०—व्यौ) सूर्य और पृथिवी लोक (वरिम्णा) अपने विस्तार से (यावती=०—त्यौ) जितने हैं, और (सप्त) जीव से मिली हुई वा गमन शील, वा सात (सिन्धवः) बहने वाली नदी रूप इन्द्रियां [दो कान, दो नथुने, दो आखें, और एक मुख] (यावत्) जितने (वितष्ठिरे) फैलकर स्थित हैं । (इतः) इस स्थान से (विषस्य) विष की (दूषणीम्) खंडन करने वाली (ताम्) उस (वाचम्) वाणी को (निरवादिषम्) मैंने कह दिया है ॥२॥

सुपर्णस्त्वा गरुत्मान् विष प्रथममावयत् ।

नामीमदो नारूरुप उतास्मा अभवः पितुः ॥३॥

पदार्थ—(विष) हे विष ! (सुपर्णः) शीघ्रगामी (गरुत्मान्) सुन्दर पख वाले गरुड़ ने (प्रथमम्) प्रसिद्ध (त्वा) तुझ को (आवयत्) खाया, तूने [उसे] (न) न तो (अमीमदः) मस्त किया और (न) न (अरूरुपः) घबरा दिया, (उत) किन्तु तू (अस्मै) उसके लिए (पितुः) अन्न (अभवः) हुआ है ॥३॥

यस्त आस्यत् पञ्चाङ्गुरिर्वक्राच्चिदधि धन्वनः ।

अपस्कम्भस्य शल्यान्निरवोचमहं विषम् ॥४॥

पदार्थ—(यः) जिस किसी पुरुष ने (पञ्चाङ्गुरिः) पाचो अगुली जमा कर (वक्रात्) टेढ़े (चित्) ही (धन्वनः अधि) धनुष पर से (अपस्कम्भस्य) तीर के बन्धन की (शल्यात्) अणि व पैनी कील से (ते) तेरे लिए [विष] (आस्यत्) चलाया है, (अहम्) मैंने (विषम्) उस विष को (निः) निकाल कर (अवोचम्) वचन बोला है ॥४॥

शल्याद् विषं निरवोचं प्राञ्जनादुत पर्णधेः ।

अपाष्ठाच्छृङ्गात् कुल्मलान्निरवोचमहं विषम् ॥५॥

पदार्थ—(शल्यात्) बाण की अणि से, (प्राञ्जनात्) लेप से (उत) और (पर्णधेः) पख वाले तीर के भाग से (विषम्) विष को (निः) निकाल कर (अवोचम्) मैंने वचन बोला है । (शृङ्गात्) तीक्ष्ण (अपाष्ठात्) बाण के फल से और (कुल्मलात्) बाण छिद्र से (विषम्) विष को (निः=निर्गमय्य) निकाल कर (अहम्) मैंने (अवोचम्) वचन कहा है ॥५॥

अरसस्त इषो शल्योऽथो ते अरसं विषम् ।

उतारसस्य वृक्षस्य धनुष्टे अरसारसम् ॥६॥

पदार्थ—(इषो) हे हिंसक बैरी ! (ते) तेरे (शल्यः) बाण की अणि (अरसः) निर्बल, (अथो) और भी (ते) तेरा (विषम्) विष (अरसम्) निर्बल [हो जावे] । (उत) और (अरस) हे निर्बल शत्रु ! (अरसस्य) निर्बल (वृक्षस्य) वृक्ष का (ते धनुः) तेरा धनुष (अरसम्) निकम्मा [हो जावे] ॥६॥

ये अपी॑बन् ये अदि॑हुन् य आस्य॒न् ये अ॒वासृ॑जन् ।

सर्वे॑ ते वध्र॑यः कृता वध्रिर्वि॑षगि॒रिः कृतः ॥७॥

पदार्थ—(ये) जिन शत्रुओं ने [विष को] (अपीबन्) पीया है, (ये) जिन्हो ने (अदिहन्) लेप किया है, (ये) जिन्होंने (आस्यन्) दूर से फेंका है, और (ये) जिन्होंने (अवासृजन्) पास से छोड़ा है। (ते सर्वे) वे सब (वध्रय) असमर्थ (कृताः) कर दिये गये, और (विषगिरिः) विष पर्वत भी (वध्रिः) निर्वीर्य (कृतः) कर दिया गया है ॥७॥

वध्र॑यस्ते खनि॒तारो॑ वध्रि॒स्त्वम॑स्योषधे ।

वध्रिः स पर्वतो गि॒रिर्यतो॑ जा॒तमि॒दं वि॒षम् ॥८॥

पदार्थ—(ओषधे) हे दाह [जलन] के धारण करने वाले विष ! (ते) तेरे (खनितारः) खोदने वाले (वध्रय.) असमर्थ [हो जावें] और (त्वम्) तू भी (वध्रि.) निर्वीर्य (असि) है। (सः) वह (पर्वतः) अवयव वाला (गिरिः) पहाड़ (वध्रिः) असमर्थ [हो जावे] (यतः) जिससे (इदम् विषम्) यह विष (जातम्) उत्पन्न हुआ है ॥८॥

卐 सूक्तम् ७ 卐

१—७ गरुत्मान् । वनस्पतिः । अनुष्टुप्, ४ स्वराट् ।

वा॒रिदं वा॑रयातै वर॒णाव॑त्या॒मधि॑ ।

तत्रा॒मृत॒स्यासि॑क्तं तेना॑ ते वारये वि॒षम् ॥१॥

पदार्थ—(वरणावत्याम् अधि) उत्तम गुण वाली क्रिया में [अथवा वरुण नाम वाली ओषधि में] वर्तमान (इदम्) यह (वाः) जल (वारयातै) [विष को] हटावे ! (तत्र) उस [जल] मे (अमृतस्य) अमृत अर्थात् स्वास्थ्य का (आसिक्तम्) रस है। (तेन) उस [जल] से (ते विषम्) तेरे विष को (वारये) मैं हटाता हूँ ॥१॥

अ॒रसं॑ प्रा॒च्यं॑ वि॒षम॑र॒सं यदु॑दी॒च्य॑म् ।

अथे॒दम॑धरा॒च्यं॑ कर॒म्भेण॒ वि क॑ल्पते ॥२॥

पदार्थ—(प्राच्यम्) पूर्व वा सन्मुख दिशा का (विषम्) विष (अरसम्) अरस होवे, और (यत्) जो (उदीच्यम्) उत्तर वा बाईं दिशा मे है [वह भी] (अरसम्) अरस होवे। (अथ) और (इदम्) यह (अधराच्यम्) नीचे की दिशा का [विष] (करम्भेण) जल सेचन से [वा दही मिले सत्तुओ से] (विकल्पते) असमर्थ हो जाता है ॥२॥

क॒र॒म्भं कृ॒त्वा ति॒र्यं॑ पीबस्पा॒कमु॑दार॒थिम् ।

क्षु॒धा किल॑ त्वा दुष्टनो जक्षि॒वान्त्स न रू॑रुपः ॥३॥

पदार्थ—(दुष्टनो) हे शरीर के दुःखदायक [विष !] (किल) तिरस्कार के साथ (त्वा) तेरे लिए [तेरे हटाने के लिए] (तिर्यम्) रोग जीतने मे समर्थ, (पीबस्पाकम्) मुटाई वा चर्बी रोग पचाने वाले और (उदारथिम्) जाठर अग्नि बढ़ाने वाले (करम्भम) जल सेचन [वा दही सत्तुओं] को (कृत्वा) बनाकर (क्षुधा) भूख के कारण (जक्षिवान्—प. जक्षिवान् तम्) जिसने खा लिया, उसको (सः=स त्वम्) उस तूने (न) नहीं (रूरुपः) मूर्छित किया है ॥३॥

वि ते॒ मदं॑ मदावति श॒रमि॑व पातयामसि ।

प्र त्वा॑ च॒रुमि॑व॒ येष॑न्तं॒ वच॑सा स्थापयामसि ॥४॥

पदार्थ—(मदावति) हे मूर्छा करने वाली [विष पीड़ा] (ते) तेरे (मदम्) मदमन को (शरमिव) तीर की समान (वि) अलग (पातयामसि=०—मः) हम फेंक देते हैं। और (येषन्तम्) खदबदाते हुए (चरुमिव) बरतन के समान (त्वा) तुझको (वचसा) वचन मात्र से [शीघ्र] (प्रस्थापयामसि=०—मः) हम हटाते हैं ॥४॥

परि॒ ग्राम॑मि॒वाचि॑तं॒ वच॑सा स्थापयामसि ।

तिष्ठा॑ वृ॒क्ष इ॑व॒ स्थाम्न्यभ्रि॑खाते॒ न रू॑रुपः ॥५॥

पदार्थ—(आचितम्) एकत्र हुए (ग्रामम् इव) जनसमूह [शत्रु वृन्द] के समान [तुझको] (वचसा) वचन मात्र से (परि स्थापयामसि =०—मः) हम घेरते हैं। (वृक्षः इव) वृक्ष की समान (स्थाम्नि) अपने स्थान पर (तिष्ठ) ठहर। (अभ्रिखाते) हे कुदाल से खोदी हुई ! तूने (न) नहीं (रूरुपः) मूर्छित किया है ॥५॥

प॒वस्तै॑स्त्वा॒ पर्य॑क्रीणन् दू॒र्शेभि॑र॒जिनै॑रु॒त ।

प्र॒क्रीर॑सि॒ त्वमो॑षधेऽभ्रिखाते॒ न रू॑रुपः ॥६॥

पदार्थ—(त्वा) तुझ से (पवस्तैः) मडप वा घरो के लिए, (दूर्शेभि = दूर्शैः) वस्त्र गृहो के लिए, (उत) और (अजिनैः) चर्म के लिए (परि अक्रीणन्) उन्होंने [पुरुषो ने] व्यापार किया है। (ओषधे) हे दाहधारण करने वाली ! (त्वम्) तू (प्रक्री) बिकाऊ वस्तु (असि) है। (अभ्रिखाते) हे कुदाल से खोदी हुई ! तूने (न) नहीं (रूरुप) मूर्छित किया है ॥६॥

अना॑प्ता ये वः प्रथ॒मा यानि॒ कर्मा॑णि चक्रि॒रे ।

वी॒रान् नो॒ अत्र॒ मा द॑भ॒न् तद् व॑ ए॒तत् पु॒रो द॑धे ॥७॥

पदार्थ—(ये) जिन (प्रथमा) प्रधान (अनाप्ता.) अत्यन्त यथार्थ ज्ञानी पुरुषो ने (वः) तुम्हारे लिए (यानि) जो पूजनीय (कर्माणि) कर्म (चक्रिरे) किये हैं, वे (नः) हम (वीरान्) वीरों को (अत्र) यहां पर (मा दभन्) न मारें (तत्) सो (एतत्) इस कर्म को (वः) तुम्हारे (पुरः) आगे (दधे) मैं धरता हूँ ॥७॥

卐 सूक्तम् ८ 卐

१—७ अथर्वाङ्गिरा । चन्द्रमाः, आपः, राज्याभिषेकः ; १ राजा, २ देवाः, ३ विश्वरूपः, ४—५ आपः । अनुष्टुप्, १—७ भुरिक् त्रिष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्, ५ विराट् प्रस्तारपंक्तिः ।

भू॒तो भू॒तेषु॒ पय॒ आ द॑धाति॒ स भू॒ताना॒मधि॑पतिर्बभूव ।

तस्य॑ मृ॒त्युश्च॑रति राज॒सूयं॒ स राजा॑ रा॒ज्यमनु॑ मन्यतामि॒दम् ॥१॥

पदार्थ—(भूतः) विभूति वा ऐश्वर्य वाला पुरुष (भूतेषु) सब स्थावर जंगम पदार्थों में (पयः) दूध, अन्न, जल आदि (आ) अच्छे प्रकार (दधाति) धारण करता है, (सः) वही (भूतानाम्) प्राणियों और अप्राणियो का (अधिपति) अधिष्ठाता (बभूव) हुआ है। (मृत्युः) मृत्यु [मारणसामर्थ्य] (तस्य) उसके (राजसूयम्) राजतिलक यज्ञ मे (चरति) अनुचर होता है। (सः राजा) वह राजा (इदम् राज्यम्) इस राज्य को (अनु मन्यताम्) अङ्गीकार करे ॥१॥

अ॒भि प्रेहि॒ माप॑ वेन उ॒ग्रश्चे॒त्ता स॑पत्न॒हा ।

आ ति॑ष्ठ मित्रवर्धन॒ तुभ्यं॑ दे॒वा अधि॑ ब्रुवन् ॥२॥

पदार्थ—[हे राजन्] (उग्र.) तेजस्वी, (चेत्ता) चैतन्य स्वभाव और (सपत्नहा) शत्रुनाशक तू (अभि) सब ओर से (प्रेहि) आगे बढ (मा अप वेन.) पीछे न हट। (मित्रवर्धन) हे मित्रो के बढ़ाने हारे ! (आतिष्ठ) [सिंहासन वा हाथी आदि पर] आकर बैठ। (देवाः) विजय चाहने वाले वीर विद्वानो ने (तुभ्यम्) तेरे लिए (अधिब्रुवन्) यह अनुग्रह वचन दिया है ॥२॥

आ॒तिष्ठ॑न्तं॒ परि॒ विश्वे॑ अभूषञ् छ्रियं॒ वसा॑नश्चरति॒ स्वरो॑चिः ।

म॒हत् तद् वृष्णो॒ असु॑रस्य॒ नामा वि॒श्वरू॑पो अ॒मृता॑नि तस्थौ ॥३॥

पदार्थ—(विश्वे) सब जनो ने (आतिष्ठन्तम्) [सिंहासन आदि पर] बैठते हुए राजा को (परि अभूषन्) सब प्रकार से अलकृत वा प्राप्त किया है। (श्रियम्) राजलक्ष्मी को (वसान) धारण करता हुआ, (स्वरोचिः) स्वयं प्रकाशमान वह (चरति) वर्तमान होता है। (वृष्णः) उस ऐश्वर्य वाले (असुरस्य) प्राणदाता का (तत्) वह (महत्) विशाल (नाम) नाम है। (विश्वरूपः) अनेक प्रकार के स्वभाव वाले उससे (अमृतानि) अनश्वर सुखो को (आ तस्थौ) प्राप्त किया है ॥३॥

व्या॒घ्रो अधि॒ वैया॑घ्रे॒ वि क्र॑मस्व॒ दिशो॑ म॒हीः ।

विश॑स्त्वा॒ सर्वा॑ वाञ्छ॒न्त्वापो॑ दि॒व्याः पय॑स्वतीः ॥४॥

पदार्थ—[हे राजन्] (व्याघ्र.) बाघ के समान पराक्रमी तू (वैयाघ्र अधि) बाघ के स्वभाव मे [स्थित होकर] (महीः दिशः) बड़ी दिशाओं को (वि क्रमस्व) विक्रम से जीत। (सर्वाः) सब (विशः) प्रजायें, और (दिव्याः) उत्तम (पयस्वतीः=०—त्यः) सार वाली (आपः) जलधारायें (त्वा) तुझको (वाञ्छन्तु) चाहें ॥४॥

या आपो॑ दि॒व्याः पय॑सा॒ मद॑न्त्य॒न्तरि॑क्ष उ॒त वा॑ पृथि॒व्याम् ।

तासां॑ त्वा॒ सर्वा॑सा॒मपा॑म॒भि षि॑ञ्चामि॒ वर्च॑सा ॥५॥

पदार्थ—(अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष मे की (उत वा) और भी (पृथिव्याम्) पृथिवी पर की (याः) जो (दिव्याः) दिव्य (आपः) जल धारायें (पयसा) अपने रस से (मदन्ति) [प्राणियों को] तृप्त करती हैं, (तासाम्) उन (सर्वासाम्) सब (अपाम्) जलधाराओं के (वर्चसा) बलदायक सार से (त्वा) तुझको (अभि षिञ्चामि) अभिषेक करता हूँ ॥५॥

अ॒भि त्वा॒ वर्च॑सासिच॒न्नापो॑ दि॒व्याः पय॑स्वतीः ।

यथासो॑ मित्र॒वर्ध॑न॒स्तथा॑ त्वा सवि॒ता क॑रत् ॥६॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (त्वा) तुझको (दिव्याः) दिव्य (पयस्वतीः—०—स्वः) सारयुक्त (आपः) जल धाराओं ने (वर्चसा) अपने बलदायक सार से (अभि असिचन्) सब प्रकार सींचा है, (यथा) जिससे तू (मित्रवर्धनः) मित्रों की वृद्धि करने वाला (असः) होवे। (सविता) सर्वप्रेरक परमेश्वर (त्वा) तुझको (तथा) वैसे गुण वाला [जैसा जल] (करत्) करे ॥६॥

एना व्याघ्रं परिषस्वजानाः सिंहं हिन्वन्ति महते सौभगाय।

समुद्रं न सुभुवस्तस्थिवांसं मर्मृज्यन्ते द्वीपिनमप्स्व१न्तः ॥७॥

पदार्थ—(परिषस्वजानाः) सब ओर से चिपटे हुए लोग (एना—एनम्) इस (व्याघ्रम्) व्याघ्ररूप और (सिंहम्) सिंह समान [पराक्रमी राजा] को (महते) बहुत ही (सौभगाय) बड़े ऐश्वर्य के लिये (हिन्वन्ति) तृप्त करते हैं, और (सुभुवः) सुन्दर जन्म वा बड़ी भूमिवाले पुरुष (अप्सु अन्तः) जलों के भीतर (तस्थिवांसम्) स्थित हुए, (समुद्रम् न) समुद्र के समान [गम्भीर स्वभाव] और (द्वीपिनम्) चीते [के तुल्य पराक्रमी राजा] को (मर्मृज्यन्ते) अनेक प्रकार से शुद्ध करते वा सजाते हैं ॥७॥

卐 सूक्तम् ९ 卐

१—१० भृगु। त्रैककुदाञ्जनम्। अनुष्टुप्, २ ककुम्मती, ३ पथ्यापङ्क्ति।

एहि जीवं त्रायमाणं पर्वतस्यास्यक्ष्यम्।

विश्वेभिर्देवैर्दत्तं परिधिर्जीवनाय कम् ॥१॥

पदार्थ—(एहि) आ (जीवम्) जीव को (त्रायमाणम्) पालता हुआ (पर्वतस्य) पूर्ति करने वाले वा अवयवों वाले मेघ के (अक्ष्यम्) व्यवहार के लिये हितकारक, (विश्वेभिः) सब (देवैः) दिव्य गुणों के साथ (दत्तम्) दिया हुआ (कम्) तू सुखस्वरूप ब्रह्म (जीवनाय) हमारे जीवन के लिये (परिधिः) परकोटा रूप (असि) है ॥१॥

परिपाणं पुरुषाणां परिपाणं गवामसि।

अश्वानामर्वतां परिपाणाय तस्थिषे ॥२॥

पदार्थ—तू (पुरुषाणाम्) अग्रगामी मनुष्यों का (परिपाणम्) रक्षासाधन, और (गवाम्) गौओं का (परिपाणम्) रक्षा साधन (असि) है। और (अर्वताम्) शीघ्रगामी (अश्वानाम्) घोड़ों के (परिपाणाय) पूर्ण रक्षा के लिये (तस्थिषे) तू ही स्थित हुआ है ॥२॥

उतासि परिपाणं यातुजम्भनमाञ्जन। उतामृतस्य त्वं वेत्थाथो

असि जीवभोजनमथो हरितभेषजम् ॥३॥

पदार्थ—(उत) और (आञ्जन) हे संसार के व्यक्त करने वाले ब्रह्म! तू (परिपाणम्) हमारी रक्षा का साधन, (यातुजम्भनम्) पीड़ाओं का नाश करने वाला (असि) है, (उत) और (त्वम्) तू (अमृतस्य) अमृत अर्थात् मोक्ष सुख का (वेत्थ) ज्ञाता है, (अथो) और भी तू (जीवभोजनम्) जीवों का पालन वाला (अथो) और भी (हरितभेषजम्) रोग से उत्पन्न पीतरंग की औषधि (असि) है ॥३॥

यस्याञ्जन प्रसर्पस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः।

ततो यक्ष्मं वि बाधस उग्रो मध्यमशीरिव ॥४॥

पदार्थ—(आञ्जन) हे संसार के प्रकट करने वाले ब्रह्म! तू (यस्य) जिसके (अङ्गमङ्गम्) अङ्ग अङ्ग में और (परुष्परुः) जोड़ जोड़ में (प्रसर्पसि) व्याप जाता है, (ततः) उस पुरुष से (यक्ष्मम्) राजरोग को (विबाधसे) तू सर्वदा हटा देता है, (इव) जैसे (उग्रः) प्रबल (मध्यमशीः) बिचौलिया पुरुष ॥४॥

नैनं प्राप्नोति शपथो न कृत्या नाभिशोचनम्।

नैनं विष्कन्धमश्नुते यस्त्वा बिभर्त्याञ्जन ॥५॥

पदार्थ—(न) न तो (एनम्) उस [पुरुष] को (शपथः) क्रोध वचन, (न) न (कृत्या) हिंसा क्रिया और (न) न (अभिशोचनम्) महाशोक (प्राप्नोति) पहुँचता है, और (न) न (एनम्) इसको (विष्कन्धम्) विघ्न (अश्नुते) व्यापता है, (यः) जो [पुरुष] (आञ्जन) हे संसार को व्यक्त करने वाले ब्रह्म! (त्वा) तुझको (बिभर्ति) धारण करता है ॥५॥

असन्मन्त्राद् दुःष्वप्न्याद् दुष्कृताच्छमलादुत।

दुर्हार्दश्चक्षुषो घोरात् तस्मान्नः पाह्याञ्जन ॥६॥

पदार्थ—(आञ्जन) हे संसार के व्यक्त करने वाले ब्रह्म! तू (असन्मन्त्रात्) असत्य भाषण से, (दुःष्वप्न्यात्) बुरी निद्रा में उठे हुए कुविचार से, (दुष्कृतात्) दुष्ट कर्म से, (शमलात्) मलिनता से (उत) और (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वाले (घोरात्) घोर वा भयानक (चक्षुषः) नेत्र से (तस्मात्) इस सबसे (नः) हमें (पाहि) बचा ॥६॥

इदं विद्वानाञ्जन सत्यं वक्ष्यामि नानृतम्।

सनेयमश्वं गामहमात्मानं तव पूरुष ॥७॥

पदार्थ—(आञ्जन) हे संसार के व्यक्त करने वाले ब्रह्म! तेरे (इदम्) परम ऐश्वर्य को (विद्वान्) जानता हुआ मैं (सत्यम्) सत्य (वक्ष्यामि) बोलूँगा, (अनृतम्) असत्य (न) नहीं। (पूरुष—पुरुष) हे सबके अगुआ पुरुष, परमेश्वर! (तव) तेरे [दिये हुए] (अश्वम्) घोड़े, (गाम्) गौ वा भूमि और (आत्मानम्) आत्मबल का (अहम्) मैं (सनेयम्) सेवन करूँ ॥७॥

त्रयो दासा आञ्जनस्य तक्मा बलास आदहिः।

वर्षिष्ठः पर्वतानां त्रिककुन्नाम ते पिता ॥८॥

पदार्थ—(तक्मा) जीवन को कष्ट देने वाला ज्वर, (बलासः) बल का गिराने वाला सन्निपात, कफादि रोग, (आत्) और (अहिः) जीवों को मारने वाला साँप, (त्रयः) ये तीनों (आञ्जनस्य) संसार के व्यक्त करने वाले ब्रह्म के (दासाः) दास हैं। [हे आञ्जन, ईश्वर!] (वर्षिष्ठः) सबसे वृद्ध, (पर्वतानाम्) अवयव वाले स्थूल लोकों का (पिता) पालनकर्त्ता, (त्रिककुत्) तीन प्रकार के [आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक] सुखों का पहुँचाने वाला यद्वा तीनों लोकों वा कालों में गति वाला (ते) तेरा (नाम) नाम है ॥८॥

यदाञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि।

यातूंश्च सर्वाञ्जम्भयत् सर्वाश्च यातुधान्यः ॥९॥

पदार्थ—(यत्) सबका पूजनीय वा पदार्थों की संगति करने वाला, (त्रैककुदम्) तीन प्रकार के [आध्यात्मिक आदि] सुखों के पहुँचाने वाले यद्वा तीनों लोकों वा कालों में गति वाले पुरुषों का ईश्वर, (जातम्) सबमें प्रसिद्ध, (हिमवतः) हिंसा वाले कर्म से (परि) पृथक् वर्त्तमान, (आञ्जनम्) संसार का व्यक्त करने वाला ब्रह्म (सर्वान्) सब (यातून्) पीड़ा देने वाले दुष्टों (च) और (सर्वाः) सब (यातुधान्यः—०—नीः) पीड़ा देने वाली शत्रु सेनाओं को (च) भी (जम्भयत्) नाश करने वाला है ॥९॥

यदि वासि त्रैककुदं यदि यामुनमुच्यसे।

उभे ते भद्रे नाम्नी ताभ्यां नः पाह्याञ्जन ॥१०॥

पदार्थ—(यदि वा) चाहे तू (त्रैककुदम्) तीन प्रकार के [आध्यात्मिक आदि] सुखों को पहुँचाने वाले, यद्वा तीनों लोकों वा कालों में गति वाले पुरुषों का ईश्वर (असि) है, (यदि—यदि वा) चाहे तू (यामुनम्) यमों, नियन्ताओं, न्यायकारियों का हितकारी (उच्यसे) कहा जाता है, (उभे) दोनों (ते) तेरे (नाम्नी) नाम (भद्रे) कल्याणकारक हैं, (आञ्जन) हे संसार के व्यक्त करने वाले ब्रह्म! (ताभ्याम्) उन दोनों से (नः पाहि) हमारी रक्षा कर ॥१०॥

卐 सूक्तम् १० 卐

१—७ अथर्वा। शङ्खमणिः, कृशनः। अनुष्टुप्, ६ पथ्यापङ्क्ति, ७ पञ्चपदी परानुष्टुप्शक्वरी।

वाताज्जातो अन्तरिक्षाद् विद्युतो ज्योतिषस्परि।

स नो हिरण्यजाः शङ्खः कृशनः पात्वंहसः ॥१॥

पदार्थ—(वातात्) पवन से, (अन्तरिक्षात्) आकाश से (विद्युतः) बिजुली से, और (ज्योतिषः) सूर्य से, (परि) ऊपर (जातः) प्रकट होने वाला, (सः) दुःखनाशक ईश्वर (हिरण्यजाः) सूर्यादि तेजों का उत्पन्न करने वाला, (कृशनः) सूक्ष्म रचना करने वाला, (शङ्खः) सबों का विवेचन करने वाला वा देखने वाला, वा शान्ति देने वाला परमेश्वर (नः) हमको (अंहसः) रोगजनक दुष्कर्म से (पातु) बचावे ॥१॥

यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधि जज्ञिषे।

शङ्खेन हत्वा रक्षांस्यत्त्रिणो वि षहामहे ॥२॥

पदार्थ—(यः—यः त्वम्) जो तू (रोचनानाम्) प्रकाशमान लोकों के (अग्रतः) आगे और (समुद्रात्) जल समूह समुद्र से भी (अधि) ऊपर [देश और काल में] (जज्ञिषे) प्रकट हुआ था, [उस तुझ] (शङ्खेन) सबों के विवेचन करने वाले, वा देखने वाले, वा शान्ति देने वाले, परमेश्वर [के आश्रय] से (रक्षांसि) जिनसे रक्षा की जावे उन राक्षसों को (हत्वा) मारकर (अत्त्रिणः) पेटार्थियों को (वि) विविध प्रकार से (सहामहे) हम दबाते हैं ॥२॥

शङ्खेनामीवाममतिं शङ्खेनोत सदान्वाः।

शङ्खो नो विश्वभेषजः कृशनः पात्वंहसः ॥३॥

पदार्थ—(शङ्खेन) सबों के विचार करने वाले परमेश्वर से (अमीवाम्) अपनी पीड़ा और (अमतिम्) कुमति को (उत) और भी (शङ्खेन) सबों के देखने वाले परमेश्वर से (सदान्वाः) सदा चिल्लाने वाली, यद्वा, दानवों, दुष्टों के साथ

बहने वाली निर्धनता आदि विपत्तियों को [विषहामहे म० २] [हम दबाते हैं म० २] । (शंख:) शान्ति देने वाला, (विश्वभेषज) सब भय का जीतने वाला, (कृशनः) सूक्ष्म रचना करने वाला परमात्मा (नः) हमको (अंहसः) पाप से (पातु) बचावे ॥३॥

दिवि जातः समुद्रजः सिन्धुतस्पर्याभृतः ।

स नो हिरण्यजाः शङ्ख आयुष्प्रतरणो मणिः ॥४॥

पदार्थ—(दिवि) सूर्यमण्डल में (जातः) प्रकट, (समुद्रजः) अन्तरिक्ष में प्रकट, (सिन्धुतः) पार्थिव समुद्र से (परि) ऊपर (आभृतः) सर्वथा पुष्टि को प्राप्त, (सः) दु:खनाशक, (हिरण्यजाः) सूर्यादि तेजों का उत्पन्न करने वाला (शङ्ख.) शान्तिकारक, (मणिः) प्रशंसा योग्य परमेश्वर (नः) हमारा (आयुष्प्रतरणः) जीवन बढ़ाने वाला है ॥४॥

समुद्राज्जातो मणिर्वृत्राज्जातो दिवाकरः ।

सो अस्मान्त्सर्वतः पातु हेत्या देवासुरेभ्यः ॥५॥

पदार्थ—(वृत्रात्) ढकने वाले मेघ से (जातः) प्रकट हुए (दिवाकरः) सूर्य [के समान] (समुद्रात्) अन्तरिक्ष से (जातः) प्रकट हुआ, (मणिः) प्रशंसा योग्य (सः) दु:खनाशक, विष्णु (अस्मान्) हमको (सर्वतः) सब ओर से (हेत्या) अपने वज्र द्वारा (देवासुरेभ्य.) देवताओं के गिराने वाले शत्रुओं से (पातु) बचावे ॥५॥

हिरण्यानामेकोऽसि सोमात् त्वमधि जज्ञिषे ।

रथे त्वमसि दर्शत इषुधौ रोचनस्त्वं प्रण आयूंषि तारिषत् ॥६॥

पदार्थ—(हिरण्यानाम्) सूर्यादि तेजों के बीच तू (एक) एक (असि) है, (त्वम्) तू (सोमात्) सूर्य लोक से (अधि) ऊपर (जज्ञिषे) प्रकट हुआ था, (त्वम्) तू (रथे) रथ में (दर्शत) दृश्यमान और (त्वम्) तू (इषुधौ) तूणीर में (रोचन) प्रकाशमान (असि) है । [आप] (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनों को (प्रतारिषत्) बढ़ावें ॥६॥

देवानामस्थि कृशनं बभूव तदात्मन्वच्चरत्यप्स्वन्तः । तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय कार्शनस्त्वाभि रक्षतु ॥७॥

पदार्थ—(कृशनम्) सूक्ष्म रचना करने वाला ब्रह्म (देवानाम्) दिव्य गुणों और प्रकाशमान पदार्थों का (अस्थि) प्रकाशक (बभूव) हुआ था । (तत्) विस्तृत ब्रह्म (अप्सु अन्तः) अन्तरिक्ष के भीतर [ठहरे हुए] (आत्मन्वत्) आत्मा वाले जगत् में (चरति) विचरता है । [हे प्राणी !] (तत्) उस ब्रह्म को (ते) तेरे (आयुषे) लाभ के लिये, (वर्चसे) तेज वा यश के लिये (बलाय) बल के लिये, और (शतशारदाय) सौ शरद् ऋतुओं वाले (दीर्घायुत्वाय) चिरकाल जीवन के लिये [अन्तःकरण के भीतर] (बध्नामि) मैं बाँधता हूँ । (कार्शनः) अनेक सुवर्णादि धनों और तेजों वाला परमेश्वर (त्वा) तुझको (अभि) सब प्रकार (रक्षतु) पाले ॥७॥

卐 इति द्वितीयोऽनुवाकः 卐

卐

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ११ 卐

१—२ भृग्वङ्गिरा । अनड्वान्, इन्द्रः । त्रिष्टुप्, १, ४ जगती, २ भुरिक्, ७ त्र्यवसाना षट्पदानुष्टुब्गर्भोपरिष्टाज्जागतानिचृच्छक्वरी, ८-१२ अनुष्टुप् ।

अनड्वान् दाधार पृथिवीमुत द्यामनड्वान् दाधारोर्वन्तरिक्षम् । अनड्वान् दाधार प्रदिशः षडुर्वीरनड्वान् विश्वं भुवनमा विवेश ॥१॥

पदार्थ—(अनड्वान्) प्राण और जीविका पहुँचाने वाले परमेश्वर ने (पृथिवीम्) पृथिवी (उत) और (द्याम्) सूर्य को (दाधार) धारण किया था । (अनड्वान्) प्राण और जीविका पहुँचाने वाले परमेश्वर ने (उरु) चौड़े (अन्तरिक्षम्) मध्य लोक वा आकाश को (दाधार) धारण किया था । (अनड्वान्) प्राण और जीविका पहुँचाने वाले परमेश्वर ने (षट्) पूर्वादि, नीचे और ऊपर की छह (उर्वीः) चौड़ी (प्रदिशः) महादिशाओं को (दाधार) धारण किया था । (अनड्वान्) प्राण और जीविका पहुँचाने वाले परमेश्वर ने (विश्वं भुवनम्) सब जगत् में (आ विवेश) सब प्रकार प्रवेश किया था ॥१॥

अनड्वानिन्द्रः स पशुभ्यो वि चष्टे त्रयाञ्छक्रो वि मिमीते अध्वनः । भूतं भविष्यद् भुवना दुहानः सर्वा देवानां चरति व्रतानि ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (इन्द्र.) परम ऐश्वर्य वाला (अनड्वान्) प्राण और जीविका पहुँचाने वाला परमेश्वर (पशुभ्यः) व्यक्त वाणी वाले और अव्यक्त वाणी वाले जीवों के लिए (वि) विविध प्रकार से (चष्टे) देखता है । (शक्रः) वह समर्थ परमात्मा (त्रयान्) तीन अवयव [भूमि, सूर्य और अन्तरिक्ष] वाले (अध्वन.) मार्गों को (वि) विशेष करके (मिमीते) नापता है । (भूतम्) भूत, (भविष्यत्) भविष्यत् और (भुवना .०—नि) लोकों वा वर्त्तमान वस्तुओं को (दुहान) परिपूर्ण करता हुआ वह (देवानाम्) इन्द्रियों के (सर्वा व्रतानि) सब कामों को (चरति) सिद्ध करता है ॥२॥

इन्द्रो जातो मनुष्येष्वन्तर्घर्मस्तप्तश्चरति शोशुचानः । सुप्रजाः सन्त्स उदारे न सर्षद् यो नाश्नीयादनडुहो विजानन् ॥३॥

पदार्थ—(तप्तः) तपते हुए (घर्मः) सूर्य के समान (शोशुचान·) अत्यन्त प्रकाशमान (इन्द्र) परमेश्वर (मनुष्येषु अन्तः) मननशील मनुष्यों के भीतर (जात) प्रकट होकर (चरति) विचरता है । (यः) जो पुरुष (अनडुह) प्राण और जीविका पहुँचाने वाले परमेश्वर का (न विजानन्) विज्ञान न रखता हुआ (अश्नीयात्) भोजन करे, (स) वह (सन्) विद्यमान पुरुष (उदारे) बड़े पद पर वर्तमान (सुप्रजाः) उत्तम प्रजा गणों को (न सर्षत्) न पावे ॥३॥

अनड्वान् दुहे सुकृतस्य लोक ऐनं प्याययति पवमानः पुरस्तात् । पर्जन्यो धारा मरुत ऊधो अस्य यज्ञः पयो दक्षिणा दोहो अस्य ॥४॥

पदार्थ—(अनड्वान्) प्राण वा जीविका पहुँचाने वाला परमेश्वर (सुकृतस्य) पुण्य के (लोके) स्थान में (दुहे = दुग्धे) पूर्ण करता है, (पवमानः) शुद्ध करने वाला परमात्मा (पुरस्तात्) पहिले से ही (एनम्) इस [जीव] को (आ प्याययति) सब प्रकार बढ़ाता है । (अस्य) इस [परमेश्वर] की (धारा.) धारण शक्तियाँ (पर्जन्य.) मेघ [के समान] हैं और (ऊधः) वहन वा ले चलने का सामर्थ्य (मरुत·) पवन [के समान] है । (अस्य) इसकी (यज्ञ·) संगति क्रिया (पयः) दूध [के समान] है, और (दक्षिणा) दान शक्ति (दोहः) दोहनी [के समान] है ॥४॥

यस्य नेशे यज्ञपतिर्न यज्ञो नास्य दातेशे न प्रतिग्रहीता । यो विश्वजिद् विश्वभृद् विश्वकर्मा घर्मं नो ब्रूत यतमश्चतुष्पात् ॥५॥

पदार्थ—(न) न तो (यज्ञपतिः) सगतिकर्ता पुरुष, और (न) न (यज्ञः) सगतिकर्म (यस्य) जिस [परमेश्वर] का (ईशे—ईष्टे) ईश्वर है, (न) न तो (दाता) दाता (न) न (प्रतिग्रहीता) ग्रहणकर्ता (अस्य) इसका (ईशे) ईश्वर है, (यः) जो (विश्वजित्) सबका जीतने वाला, (विश्वभृत्) सबका पोषण करने वाला, (विश्वकर्मा) सब काम करने वाला, और (यतमः) जौन सा (चतुष्पात्) चारों दिशाओं में स्थित वा गति वाला है, (घर्मम्) उस प्रकाशमान सूर्यसदृश परमात्मा को (नः) हमें [हे ऋषियो !] (ब्रूत) बताओ ॥५॥

येन देवाः स्वरारुरुहुर्हित्वा शरीरममृतस्य नाभिम् । तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं घर्मस्य व्रतेन तपसा यशस्यवः ॥६॥

पदार्थ—(येन) जिस [परमात्मा] के द्वारा (देवाः) व्यवहारकुशल पुरुष (शरीरम्) नाशमान शरीर [देह अभिमान] (हित्वा) छोड़कर (अमृतस्य) अमरपन के (नाभिम्) केन्द्र (स्वः) स्वर्ग को (आरुरुहुः) चढ़े थे । (तेन) उसी [ईश्वर] के सहारे से (यशस्यव·) यश चाहने वाले हम लोग (घर्मस्य) दीप्यमान सूर्य के [समान] (व्रतेन) कर्म और (तपसा) सामर्थ्य से (सुकृतस्य) पुण्य के (लोकम्) लोक [परमात्मा] को (गेष्म) खोजें ॥६॥

इन्द्रो रूपेणाग्निर्वहेन प्रजापतिः परमेष्ठी विराट् । विश्वानरे अक्रमत वैश्वानरे अक्रमतानडुह्यक्रमत । सोऽदृंहयत सोऽधारयत ॥७॥

पदार्थ—(प्रजापति) उत्पन्न पदार्थों का रक्षक, (परमेष्ठी) ऊंचे स्थान पर ठहरने वाला, (विराट्) विविध प्रकाशमान, (अग्निः) व्यापक वा अग्निरूप (इन्द्र) सूर्य (रूपेण) अपने रूप से और (वहेन) चलाने के सामर्थ्य से (विश्वानरे) सबके नायक परमात्मा में (अक्रमत) प्रविष्ट हुआ, (वैश्वानरे) सब नायकों के हितकारी परमेश्वर में (अक्रमत) प्राप्त हुआ (अनडुहि) जीवन पहुँचाने वाले जगदीश्वर में (अक्रमत) प्रविष्ट हुआ है (सः) उस [जगदीश्वर] ने [सूर्य को] (अदृंहयत) दृढ़ किया और (सः) उसने ही (अधारयत्) धारण किया है ॥७॥

मध्यमेतदनडुहो यत्रैष वह आहितः ।

एतावदस्य प्राचीनं यावान् प्रत्यङ् समाहितः ॥८॥

पदार्थ—(अनडुहः) जीविका पहुँचाने वाले परमात्मा का (एतत्) यह [स्थान वा काल] (मध्यम्) मध्य है (यत्र) जहाँ (एषः) यह (वहः) [जाकर्षित] भार (आहितः) धरा हुआ है । (अस्य) सर्वव्यापक वा सर्वरक्षक विष्णु का (एतावत्) उतना ही (प्राचीनम्) प्राचीन काल वा देश है, (यावान्) जितना (प्रत्यङ्) आगामी काल वा देश (समाहितः) सिद्ध है ॥८॥

यो वेदानडुहो दोहान्त्सप्तानुपदस्वतः ।

प्रजां च लोकं चाप्नोति तथा सप्तऋषयो विदुः ॥९॥

पदार्थ—(यः) जो कोई (अनडुहः) जीवन पहुँचाने वाले परमेश्वर के (दोहान्) पूर्ति के प्रवाहों को (सप्त) नित्य सम्बन्ध वाले और (अनुपदस्वतः) अक्षय (वेद) जानता है, वह (प्रजाम्) प्रजा (च) और (लोकम्) लोक (च) भी (आप्नोति) पाता है, (तथा) ऐसा (सप्तऋषयः) सात व्यापनशील वा दर्शनशील, [अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि, अथवा दो कान, दो नथुने, दो आंख और मुख ये सात छिद्र] (विदुः) जानते हैं [प्रत्यक्ष करते हैं] ॥९॥

पद्भिः सेदिमवक्रामन्निरां जङ्घाभिरुत्खिदन् ।

श्रमेणानड्वान् कीलालं कीनाशश्चाभि गच्छतः ॥१०॥

पदार्थ—(कीनाशः) निन्दित कर्म का नाश करने वाला (अनड्वान्) जीवन पहुँचाने वाला परमेश्वर, (श्रमेण) परिश्रम से (अभिगच्छतः) चलते-फिरते पुरुष के (सेदिम्) विषाद को (पद्भिः) अपनी स्थितियों से (अवक्रामन्) दबाता हुआ, (च) और (जङ्घाभिः) अपनी अत्यन्त व्याप्तियों से [उसके] (कीलालम्) बन्ध के निवारण, अर्थात् (इराम्) अन्न को (उत् खिदन्) उत्पन्न करता हुआ [वर्तमान] है ॥१०॥

द्वादश वा एता रात्रीर्व्रत्या आहुः प्रजापतेः ।

तत्रोप ब्रह्म यो वेद तद् वा अनडुहो व्रतम् ॥११॥

पदार्थ—(द्वादश) बारह (एताः) प्राप्तियोग्य (रात्रीः) विषय ग्रहण करने वाली और विज्ञान देने वाली मन बुद्धि सहित पांच ज्ञानेन्द्रियों और पांच कर्मेन्द्रियों को (प्रजापतेः) प्रजापालक परमात्मा के (व्रत्याः) व्रतयोग्य (वै) निश्चय करके [वे विज्ञानी] (आहुः) बताते हैं। (तत्र) उन [मन बुद्धि-सहित इन्द्रियों] में (यः) गतिशील पुरुषार्थी पुरुष (अनडुहः) जीवन पहुँचाने वाले परमेश्वर के (तत्) विस्तृत (ब्रह्म) वेद विज्ञान और (व्रतम्) व्रत को (वै) निश्चय करके (उप) आदर से (वेद) जानता है ॥११॥

दुहे सायं दुहे प्रातर्दुहे मध्यंदिनं परि ।

दोहा ये अस्य संयन्ति तान् विद्मानुपदस्वतः ॥१२॥

पदार्थ—वह [परमेश्वर] (सायम्) सायकाल में (परि) सब ओर से (दुहे - दुग्धे) पूर्ण करता है। (प्रातः) प्रातःकाल (दुहे) पूर्ण करता है। (मध्यंदिनम्) मध्याह्न में (दुहे) पूर्ण करता है। (अस्य) सर्वव्यापक वा सर्वरक्षक विष्णु के (ये) जो (दोहाः) पूर्ति प्रवाह (संयन्ति) बटुरते रहते हैं। (तान्) उनको (अनुपदस्वतः) अक्षय (विद्म) हम जानते हैं ॥१२॥

卐 सूक्तम् १२ 卐

१—७ ऋभुः । रोहिणी—वनस्पतिः । अनुष्टुप्, १ त्रिपदा गायत्री, ६ त्रिपदा यवमध्या भुरिग्गायत्री, ७ बृहती ।

रोहण्यसि रोहण्यस्थ्नश्छिन्नस्य रोहणी ।

रोहयेदमरुन्धति ॥१॥

पदार्थ—[हे मानुषी प्रजा ! तू] (छिन्नस्य) टूटी (अस्थ्नः) हड्डी की (रोहणी) पूरने वाली (रोहणी) रोहिणी वा लाक्षा [के समान] (रोहणी) पूरने वाली शक्ति (असि) है। (अरुन्धति) हे रोक न डालने वाली शक्ति तू ! (इदम्) ऐश्वर्य को (रोहय) सम्पूर्ण कर ॥१॥

यत् ते रिष्टं यत् ते द्युत्तमस्ति पेष्ट्रं त आत्मनि ।

धाता तद् भद्रया पुनः सं दधत् परुषा परुः ॥२॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (यत्) जो कुछ (ते) तेरा (रिष्टम्) टूटा हुआ और (यत्) जो (ते) तेरा (द्युत्तम्) जलता हुआ, और जो (ते) तेरे (आत्मनि) शरीर में (पेष्ट्रम्) पिसा हुआ (अस्ति) है। (धाता) पोषण करने वाला वैद्य (भद्रया) कल्याण करने वाली क्रिया से (तत् परुः) उस जोड को (परुषा) दूसरे जोड से (पुनः) फिर (सं दधत्) सन्धि कर देवे ॥२॥

सं ते मज्जा मज्ज्ञा भवतु समु ते परुषा परुः ।

सं ते मांसस्य विस्रस्तं समस्थ्यपि रोहतु ॥३॥

पदार्थ—[हे विद्वान् !] (ते) तेरे (मज्जा) हाड की मींग (मज्ज्ञा) हाड की मींग से (संभवतु) मिल जावे (उ) और (ते परुः) तेरा जोड (परुषा) जोड से (सम्—संभवतु) मिल जावे। (ते) तेरे (मांसस्य) मांस का (विस्रस्तम्) हटा हुआ अंश (सम्—सं रोहतु) जुड जावे, और (अस्थि) हाड (अपि) भी (संरोहतु) जुड कर ठीक हो जावे ॥३॥

मज्जा मज्ज्ञा सं धीयतां चर्मणा चर्म रोहतु ।

असृक् ते अस्थि रोहतु मांसं मांसेन रोहतु ॥४॥

पदार्थ—(मज्जा) हाड की मींग (मज्ज्ञा) हाड की मींग से (सं धीयताम्) मिल जावे (चर्म) चाम (चर्मणा) चाम के साथ (रोहतु) जम जावे। (ते) तेरा (असृक्) रुधिर और (अस्थि) हाड (रोहतु) जमें, और (मांसम्) मांस (मांसेन) मांस के साथ (रोहतु) जमे ॥४॥

लोम लोम्ना सं कल्पया त्वचा सं कल्पया त्वचम् ।

असृक् ते अस्थि रोहतु च्छिन्नं सं धेह्योषधे ॥५॥

पदार्थ—(ओषधे) हे तापनाशक ओषधि [के समान मनुष्य !] (लोम) रोम को (लोम्ना) रोम के साथ (संकल्पय) जमा दे, (त्वचम्) त्वचा को (त्वचा) त्वचा के साथ (संकल्पय) जोड दे, (ते) तेरा (असृक्) रुधिर और (अस्थि) हाड (रोहतु) उगे, (छिन्नम्) टूटा अंग भी (संधेहि) अच्छे प्रकार मिला दे ॥५॥

स उत् तिष्ठ प्रेहि प्र द्रव रथः सुचक्रः सुपविः सुनाभिः ।

प्रति तिष्ठोर्ध्वः ॥६॥

पदार्थ—(सः—स त्वम्) सो तू (उत्तिष्ठ) उठ, (प्रेहि) आगे बढ़, (सुचक्रः) सुन्दर पहिये वाले, (सुपविः) दृढ नेमि वा पुट्टी वाले, (सुनाभिः) सुन्दर मध्य छिद्र वाले (रथः) रथ [के समान] (प्र द्रव) वेग से चल और (ऊर्ध्वः) ऊँचा होकर (प्रति तिष्ठ) प्रतिष्ठित हो ॥६॥

यदि कर्तं पतित्वा संशश्रे यदि वाश्मा प्रहृतो जघान ।

ऋभू रथस्येवाङ्गानि सं दधत् परुषा परुः ॥७॥

पदार्थ—(यदि) यदि (कर्तम्) कटारी आदि हथियार ने (पतित्वा) गिर कर (संशश्रे) काट दिया है, (यदि वा) अथवा (प्रहृतः) फेंके हुए (अश्मा) पत्थर ने (जघान) चोट लगाई है। (ऋभुः) बुद्धिमान् पुरुष (रथस्य अङ्गानि इव) रथ के अंगों के समान (परुः) एक जोड को (परुषा) दूसरे जोड से (सं दधत्) मिला देवे ॥७॥

卐 सूक्तम् १३ 卐

१—७ शंतातिः । चन्द्रमाः, विश्वेदेवाः, १ देवाः, २—३ वातः, ४ मरुतः, ६—७ हस्तः । अनुष्टुप्

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः ।

उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥१॥

पदार्थ—(देवाः) हे व्यवहारकुशल (देवाः) विद्वान् लोगो ! (अवहितम्) अधोगत पुरुष को (उत) अवश्य (पुनः) फिर (उन्नयथ) तुम उठाते हो (उत) और भी, (देवाः) हे दानशील (देवाः) महात्माओ ! (आगः) अपराध (चक्रुषम्) करने वाले प्राणी को (पुनः) फिर (जीवयथ) तुम जिलाते हो ॥१॥

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः ।

दक्षं ते अन्य आवातु व्यन्यो वातु यद् रपः ॥२॥

पदार्थ—(इमौ) ये (द्वौ) दोनों (वातौ) पवन, अर्थात् प्राण और अपान वायु (आ सिन्धोः) बहने वाले इन्द्रियदेश तक और (आ परावतः) बाहिर दूर स्थान तक (वातः) चलते रहते हैं। (अन्यः) एक [प्राण वायु] (ते) तेरे (दक्षम्) वृद्धि करने वाले बल को (आवातु) बह कर लावे और (अन्यः) दूसरा [अपान वायु] (यत् रपः) जो दोष है उसे (विवातु) बह कर निकाल देवे ॥२॥

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद् रपः ।

त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे ॥३॥

पदार्थ—(वात) हे वायु (भेषजम्) स्वास्थ्य को (आ वाहि) बह कर ला और (वात) हे वायु (यत् रपः = यत् रपः तत्) जो दोष है उसे (विवाहि) बह कर निकाल दे (हि) क्योंकि (विश्वभेषज) हे सर्वरोगनाशक वायु ! (त्वम्) तू (देवानाम्) इन्द्रियों, विद्वानों और सूर्यादि लोकों के बीच (दूतः) चलने वाला वा दूत [समान सन्देश पहुँचाने वाला] होकर (ईयसे) फिरता रहता है ॥३॥

त्रायन्तामिमं देवास्त्रायन्तां मरुतां गणाः ।

त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ॥४॥

पदार्थ—(देवाः) इन्द्रियां (इमम्) इस [जीव] की (त्रायन्ताम्) रक्षा करें, और (मरुताम्) पवनों [श्वास प्रश्वासों] के (गणाः) प्रवाह (त्रायन्ताम्) रक्षा करें। और (विश्वा—०—नि) सब (भूतानि) पृथिवी, जल, तेज, वायु और

आकाश, पांच तत्त्व (त्रायन्ताम्) रक्षा करें, (यथा) जिससे (अयम्) यह [प्राणी] (अरपाः) दोष रहित (असत्) रहे ॥४॥

आ त्वागमं शंतातिभिरथो अरिष्टतातिभिः ।

दक्षं त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते ॥५॥

पदार्थ—[हे प्राणी !] (त्वा) तुझको (शन्तातिभिः) शान्तिदायक कर्मों से (अथो) और भी (अरिष्टतातिभिः) अहिंसाकारक कर्मों से (आगमम्) मैं प्राप्त हुआ हूँ । (ते) तेरे लिये (उग्रम्) उग्र (दक्षम्) वृद्धिकारक बल (आ अभारिषम्) मैं लाया हूँ, [उससे] (ते) तेरे (यक्ष्मम्) महारोग को (परा सुवामि) दूर हटाता हूँ ॥५॥

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः ।

अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥६॥

पदार्थ—(अयम्) यह (मे) मेरा (हस्तः) [बायां] हाथ (भगवान्) भाग्यवान् है, और (अयम्) यह (मे) मेरा [दायां हाथ] (भगवत्तरः) अधिक भाग्यवान् है । (अयम्) यह (मे) मेरा [हाथ] (विश्वभेषजः) सर्वरोगनाशक, और (अयम्) यह (शिवाभिमर्शनः) छूने में मंगलदायक है ॥६॥

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।

अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभि मृशामसि ॥७॥

पदार्थ—(दशशाखाभ्याम्) दश शाखा वाले (हस्ताभ्याम्) दोनो हाथों के द्वारा (जिह्वा) जिह्वा (वाचः) वाणी को (पुरोगवी) आगे ले चलने वाली है । (ताभ्याम्) उन (अनामयित्नुभ्याम्) आरोग्य देने वाले (हस्ताभ्याम्) दोनो हाथों से (त्वा) तुझको (अभि मृशामसि) हम छूते हैं ॥७॥

卐 सूक्तम् १४ 卐

१—९ भृगु । आज्यं, अग्निः । त्रिष्टुप्, २, ४ अनुष्टुप्, ३ प्रस्तारपंक्ति ; ७, ९ जगती ; ८ पञ्चपदातिशक्वरी ।

अजो ह्य१ग्नेरजनिष्ट शोकात् सो अपश्यज्जनितारमग्रे ।

तेन देवा देवतामग्र आयन् तेन रोहान् रुरुहुर्मेध्यासः ॥१॥

पदार्थ—(अजः) अजन्मा, वा गतिशील अज अर्थात् जीवात्मा (शोकात्) दीप्यमान (अग्नेः) सर्वव्यापक अग्नि अर्थात् परमेश्वर से (हि) ही (अजनिष्ट) प्रकट हुआ । (सः) उस [जीवात्मा] ने (अग्रे) पहिले से वर्त्तमान (जनितारम्) अपने जनक [परमात्मा] को (अपश्यत्) देखा । (तेन) उस [ज्ञान] से (देवाः) देवताओं ने (अग्रे) पहिले काल में (देवताम्) देवतापन (आयन्) पाया, (तेन) उससे ही (मेध्यासः) मेधावी वा पवित्रस्वभाव पुरुष (रोहान्) चढ़ने योग्य पदों पर (रुरुहुः) चढ़े ॥१॥

क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यान् हस्तेषु बिभ्रतः ।

दिवस्पृष्ठं स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम् ॥२॥

पदार्थ—[हे वीरो !] (उख्यान्) पके हुए आहारों को (हस्तेषु) हाथों में (बिभ्रतः) भरे हुए तुम (अग्निना) अग्नि अर्थात् परमेश्वर के सहारे से [अथवा अपने शरीर की उष्णता वा बल से] (नाकम्) पूर्ण सुख (क्रमध्वम्) पराक्रम से प्राप्त करो । और (देवेभिः) विद्वानों के साथ (मिश्राः) मिलते हुए, तुम (दिवः) व्यवहार के (पृष्ठम्) सींचने वा बढ़ाने वाले अथवा पीठ के समान सहायक (स्वः) सुखस्वरूप परमात्मा को (गत्वा) प्राप्त होकर (आध्वम्) बैठो ॥२॥

पृष्ठात् पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद् दिवमारुहम् ।

दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्व१र्ज्योतिरगामहम् ॥३॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (पृथिव्याः) पृथिवी के (पृष्ठात्) पृष्ठ से (अन्तरिक्षम्) मध्य लोक, आकाश को (आ अरुहम्) चढ़ गया (अन्तरिक्षात्) आकाश लोक से (दिवम्) सूर्य लोक को (आ अरुहम्) मैं चढ़ गया । (नाकस्य) सुख देने हारे (दिवः) प्रकाशमान सूर्य लोक के (पृष्ठात्) पृष्ठ से (अहम्) मैंने (स्वः) सुखस्वरूप और (ज्योतिः) ज्योतिःस्वरूप परमात्मा को (अगाम्) प्राप्त किया ॥३॥

स्व१र्यन्तो नापेक्षन्त आ द्यां रोहन्ति रोदसी ।

यज्ञं ये विश्वतोधारं सुविद्वांसो वितेनिरे ॥४॥

पदार्थ—(ये) जो (सुविद्वांसः) बड़े विद्वान् योगी जन (द्याम्) अन्तरिक्ष और (रोदसी) सूर्य और पृथिवी लोक तक (आरोहन्ति) चढ़ते हैं, और जिन्होंने (विश्वतोधारम्) सब प्रकार से धारण शक्ति वाले (यज्ञम्) देव अर्थात् ब्रह्म के पूजन को (वितेनिरे) फैलाया है, वे ही योगी पुरुष (यन्तः न) चलते-फिरते उद्योगी पुरुषों के समान (स्वः) सुखस्वरूप परब्रह्म को (अपेक्षन्ते) हृदय से चाहते हैं ॥४॥

अग्ने प्रेहि प्रथमो देवतानां चक्षुर्देवानामुत मानुषाणाम् ।

इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥५॥

पदार्थ—(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! (प्रेहि) प्राप्त हो, तू (देवतानाम्) सब विद्वानों में (प्रथमः) पहिला और (देवानाम्) सूर्य आदि लोकों का (उत) और भी (मानुषाणाम्) मनुष्य जातियों का (चक्षुः) नेत्र [के समान देखने वाला] है । (इयक्षमाणाः) संगति चाहने वाले (भृगुभिः) परिपक्व विज्ञानी वेदज्ञ ब्राह्मणों के साथ (सजोषाः) एक-सी प्रीति करते हुए, (यजमानाः) दानशील यजमान लोग (स्वः) सुखस्वरूप परब्रह्म और (स्वस्ति) कल्याण को (यन्तु) प्राप्त होवें ॥५॥

अजमनज्मि पयसा घृतेन दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तम् ।

तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥६॥

पदार्थ—(दिव्यम्) दिव्य गुण वाले, (सुपर्णम्) बड़े पूर्ण शुभ लक्षण वाले (पयसम्) गतिमान् वा उद्योगी (बृहन्तम्) बड़े बली (अजम्) जीवात्मा को (घृतेन) प्रकाशमान (पयसा) ज्ञान से (अनज्मि) मैं [मनुष्य] संयुक्त करता हूँ । (तेन) उस [ज्ञान] से (उत्तमम्) उत्तम (नाकम्) दुःखरहित (स्वः) सुखस्वरूप परब्रह्म को (अभि=अभिलक्ष्य) लक्षकर (आरोहन्तः) चढ़ते हुए हम (सुकृतस्य लोकम्) पुण्य लोक को (गेष्म) खोजें ॥६॥

पञ्चौदनं पञ्चभिरङ्गुलिभिर्दर्व्योद्धर पञ्चधैतमोदनम् । प्राच्यां

दिशि शिरो अजस्य धेहि दक्षिणायां दिशि दक्षिणं धेहि पार्श्वम् ॥७॥

पदार्थ—(एतम्) इस (पञ्चधा) पांच प्रकार पर (पञ्चौदनम्) पांच भूतों से सींचे हुए (ओदनम्) वृद्धि करने वाले आत्मा को (पञ्चभिः) विस्तृत (अङ्गुलिभिः) चेष्टाओं के साथ (दर्व्या) विदारण वा पृथक्करण शक्ति से (उद्धर=उत्हर) ऊपर ला, (प्राच्याम्) अपने से पूर्व वा सन्मुख (दिशि) दिशा में (अजस्य) जीवात्मा का (शिरः) शिर (धेहि) धर, (दक्षिणायाम् दिशि) दक्षिण दिशा में (दक्षिणम्) दाहिने (पार्श्वम्) कक्षा के नीचे भाग को (धेहि) धर ॥७॥

प्रतीच्यां दिशि भसदमस्य धेह्युत्तरस्यां दिश्युत्तरं धेहि पार्श्वम् ।

ऊर्ध्वायां दिश्य१जस्यानूकं धेहि दिशि ध्रुवायां धेहि पाजस्यमन्तरिक्षे

मध्यतो मध्यमस्य ॥८॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (प्रतीच्याम्) पश्चिम वा पीछे वाली (दिशि) दिशा में (अस्य) इस [जीवात्मा] के (भसदम्) दीप्ति वा कटि भाग को (धेहि) धर, (उत्तरस्याम्) उत्तर वा बाईं (दिशि) दिशा में (उत्तरम्) बायें (पार्श्वम्) कक्षा के नीचे भाग को (धेहि) धर । (ऊर्ध्वायाम्) ऊपर वाली (दिशि) दिशा में (अजस्य) जीवात्मा की (अनूकम्) रीढ़ को (धेहि) धर, (ध्रुवायाम्) स्थिर (दिशि) दिशा में (अस्य) इसके (पाजस्यम्) बल देने वाले उदर को, और (अन्तरिक्षे) आकाश में (मध्यतः) बीचोबीच (मध्यम्) मध्य भाग को (धेहि) धर ॥८॥

शृतमजं शृतया प्रोर्णुहि त्वचा सर्वैरङ्गैः संभृतं विश्वरूपम् ।

स उत् तिष्ठेतो अभि नाकमुत्तमं पद्भिश्चतुर्भिः प्रति तिष्ठ दिक्षु ॥९॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (विश्वरूपम्) संपूर्ण रूप से (सर्वैः) सब (अङ्गैः) अंगों के साथ (संभृतम्) भले प्रकार पुष्ट, और (शृतम्) परिपक्व [दृढ़ ज्ञानी] (अजम्) जीवात्मा को (शृतया) परिपक्व (त्वचा) विस्तृत शक्ति से (प्र) भले प्रकार (ऊर्णुहि) ढक ले । (सः) सो तू (इतः) यहां से (उत्तमम्) सर्वोत्तम (नाकम्) सुखस्वरूप परब्रह्म को (अभि=अभिलक्ष्य) लक्षकर (उत् तिष्ठ) उठ, और (चतुर्भिः पद्भिः) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार पदार्थों के सहित (दिक्षु) सब दिशाओं में (प्रतितिष्ठ) प्रतिष्ठित हो ॥९॥

卐 सूक्तम् १५ 卐

१—१६ अथर्वा । १ दिशः, २—३ वीरुधः, ४ मरुत्पर्जन्यौ, ५—१० मरुतः आपः, ११ प्रजापतिः, स्तनयित्नुः, १२ वरुणः, १३—१५ मण्डूकाः पितरश्च, १६ वातः । त्रिष्टुप्,१—२, ५ विराड् जगती, ४ विराट् पुरस्ताद्बृहती ७—१३ अनुष्टुप्, ९ पथ्यापंक्तिः, १० भुरिक्, १२ पञ्चपदानुष्टुब्गर्भा भुरिक्, १५ शंकुमत्यनुष्टुप् ।

समुत्पतन्तु प्रदिशो नभस्वतीः समभ्राणि वातजूतानि यन्तु ।

महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ॥१॥

पदार्थ—(नभस्वतीः=०—त्यः) बादल से छायी हुई (प्रदिशः) दिशायें

(समुत्पतन्तु) भले प्रकार उदय हों, (वातजूतानि) पवन से चलाये गये (अभ्राणि) जल भरे बादल (संयन्तु) छा जावें। (महऋषभस्य) बड़े गमन शील (नदतः) गरजते हुए (नभस्वतः) आकाश में छाए [बादल] की (वाश्राः) धड़धड़ाती (आपः) जल धारायें (पृथिवीम्) पृथिवी को (तर्पयन्तु) तृप्त करें ॥१॥

समीक्षयन्तु तविषाः सुदानवोऽपां रसा ओषधीभिः सचन्ताम्।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग् जायन्तामोषधयो विश्वरूपाः ॥२॥

पदार्थ—(तविषाः) विशाल गुण वाले (सुदानवः) बड़े दान करने वाले [मेघ, हमें वृष्टि] (समीक्षयन्तु) दिखावें (अपाम्) जल के (रसाः) रस (ओषधीभिः) अन्नादि ओषधियों से (सचन्ताम्) एकरस हो जावें। (वर्षस्य) वर्षा की (सर्गाः) धारायें (भूमिम्) भूमि का (महयन्तु) समृद्ध करें (विश्वरूपाः) नाना रूप वाली (ओषधयः) चावल, यवादि ओषधें (पृथक्) नाना प्रकार से (जायन्ताम्) उत्पन्न होवें ॥२॥

समीक्षयस्व गायतो नभांस्यपां वेगासः पृथगुद् विजन्ताम्।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग् जायन्तां वीरुधो विश्वरूपाः ॥३॥

पदार्थ—[हे ईश्वर !] (गायतः) गान करने वाले लोगों को (नभांसि) बादलों का (समीक्षयस्व) दर्शन करा। (अपाम्) जल के (वेगासः) प्रवाह (पृथक्) नाना प्रकार से (उद् विजन्ताम्) उमड़ कर चलें। (वर्षस्य) वर्षा की (सर्गाः) धारायें (भूमिम्) भूमि को (महयन्तु) समृद्ध करें, (विश्वरूपाः) नाना रूप (वीरुधः) झाड़ लतायें (पृथक्) नाना प्रकार से (जायन्ताम्) उपजें ॥३॥

गणास्त्वोप गायन्तु मारुताः पर्जन्य घोषिणः पृथक्।
सर्गा वर्षस्य वर्षतो वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥४॥

पदार्थ—(पर्जन्य) हे मेघ ! (घोषिणः) आनन्द ध्वनि करने वाले (मारुताः) ऋत्विज् लोगों के (गणाः) समूह (त्वा) तेरा (पृथक्) नाना प्रकार से (उप) आदर पूर्वक (गायन्तु) गान करें। (वर्षतः) बरसते हुए (वर्षस्य) वृष्टिजल की (सर्गाः) धारायें (पृथिवीम्) पृथिवी पर (अनु) अनुकूल (वर्षन्तु) बरसें ॥४॥

उदीरयत मरुतः समुद्रतस्त्वेषो अर्को नभ उत् पातयाथ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ॥५॥

पदार्थ—(मरुतः) हे वायुवेगो ! (अर्कः = अर्कस्य) सूर्य के (त्वेषः = त्वेषेण) प्रकाश द्वारा (नभः) जल को (समुद्रतः) समुद्र से (उदीरयत) उठाओ और (उत् पातयाथ) ऊपर ले जाओ। (महऋषभस्य) बड़े गमनशील, (नदतः) गरजते हुए, (नभस्वतः) आकाश में छाये [बादल] की (वाश्राः) धड़धड़ाती (आपः) जल धारायें (पृथिवीम्) पृथिवी को (तर्पयन्तु) तृप्त करें ॥५॥

अभि क्रन्द स्तनयार्दयोदधिं भूमिं पर्जन्य पयसा समङ्धि।
त्वया सृष्टं बहुलमैतु वर्षमाशारैषी कृशगुरेत्वस्तम् ॥६॥

पदार्थ—(पर्जन्य) हे मेघ ! तू (अभि) सब ओर (क्रन्द) गड़गड़ कर, (स्तनय) गरज, (उदधिम्) समुद्र को (अर्दय) हिला दे, (भूमिम्) भूमि को (पयसा) जल से (समङ्ग्धि) भरदे। (त्वया) तुझ करके (सृष्टम्) भेजा हुआ (बहुलम्) बहुत पदार्थ लाने वाला, (वर्षम्) वृष्टि जल (ऐतु) आवे, (आशारैषी) शरण चाहने वाला, (कृशगुः) दुबली गौ बैल वाला किसान (अस्तम्) अपने घर (एतु) जावे ॥६॥

सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥७॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (सुदानवः) महादानी, (अजगराः) अजगर [समान स्थूल आकार वाले] (उत्साः) स्रोते (वः) तुम्हें (उत) अत्यन्त करके (सम्) यथावत् (अवन्तु) तृप्त करें। (मरुद्भिः) पवन से (प्रच्युताः) चलाये गए (मेघाः) मेघ (पृथिवीम्) पृथिवी पर (अनु) अनुकूल (वर्षन्तु) बरसें ॥७॥

आशामाशां वि द्योततां वाता वान्तु दिशोदिशः।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः सं यन्तु पृथिवीमनु ॥८॥

पदार्थ—(वाताः) पवनें (दिशोदिशः) दिशा दिशा से (द्योतताम्) दीप्यमान (आशाम्-आशाम्) प्रत्येक दिशा को (वि) विविध प्रकार से (वान्तु) चलें। (मरुद्भिः) पवनों से (प्रच्युताः) चलाये गए (मेघाः) मेघ (पृथिवीम्) पृथिवी पर (अनु) अनुकूल (सं यन्तु) उमड़ कर आवें ॥८॥

आपो विद्युदभ्रं वर्षं सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः प्रावन्तु पृथिवीमनु ॥९॥

पदार्थ—(आपः) जल धारायें, (विद्युत्) बिजुली, (अभ्रम्) जल से भरा मेह (वर्षम्) बरसा और (सुदानवः) महादानी, (अजगराः) अजगर [समान स्थूल आकार वाले] (उत्साः) स्रोते (वः) तुम्हें (उत) अत्यन्त करके (सम्) यथावत् (अवन्तु) तृप्त करें। (मरुद्भिः) पवनों से (प्रच्युताः) चलाये गए (मेघाः) मेघ (पृथिवीम्) पृथिवी को (अनु) अनुकूल (प्र) भले प्रकार (अवन्तु) तृप्त करें ॥९॥

अपामग्निस्तनूभिः संविदानो य ओषधीनामधिपा बभूव।
स नो वर्षं वनुतां जातवेदाः प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्परि ॥१०॥

पदार्थ—(यः) जो (अग्निः) [सूर्य ताप] (अपाम्) जलों के (तनूभिः) विस्तारों से (संविदानः) मिलता हुआ (ओषधीनाम्) चावल, यवादिकों का (अधिपाः) विशेष पालन कर्ता (बभूव) हुआ है। (सः) वह (जातवेदाः) धनों का उत्पन्न करने वाला, वा उत्पन्न पदार्थों में सत्ता वाला अग्नि (नः प्रजाभ्यः) हम प्रजाओं के लिये (दिवः) अन्तरिक्ष से (परि) सब ओर (वर्षम्) बरसा, (प्राणम्) प्राण और (अमृतम्) अमृत [मरण से बचाव का साधन] (वनुताम्) देवे ॥१०॥

प्रजापतिः सलिलादा समुद्रादाप ईरयन्नुदधिमर्दयाति।
प्र प्यायतां वृष्णो अश्वस्य रेतोऽर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेहि ॥११॥

पदार्थ—(प्रजापतिः) प्रजापालक सूर्य (सलिलात्) व्यापक (समुद्रात्) आकाश से (आपः = अपः) जल (आ ईरयन्) भेजता हुआ (उदधिम्) [पार्थिव] समुद्र को (अर्दयाति) दबावे [जल खैंचे]। (अश्वस्य) व्यापक (वृष्णः) बरसने वाले मेघ का (रेतः) जल (प्र प्यायताम्) अच्छे प्रकार बढ़े। [हे पर्जन्य ! तू] (एतेन) इस (स्तनयित्नुना) गर्जन के साथ (अर्वाङ्) सन्मुख (आ इहि) आ ॥११॥

अपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः श्वसन्तु गर्गरा अपां वरुणाव
नीचीरपः सृज। वदन्तु पृश्निबाहवो मण्डूका इरिणानु ॥१२॥

पदार्थ—(नः) हमारा (पिता) पालन करने वाला (असुरः) प्राणदाता मेघ (अपः) जल धारायें (निषिञ्चन्) उंडेलता हुआ [वर्तमान हो]। (अपाम्) जल के (गर्गराः) गड़गड़ाते हुए गगरे (श्वसन्तु) श्वास लेवें। (वरुण) हे वरणीय मेघ ! (अपः) जलधाराओं को (नीचीः) नीचे की ओर (अव सृज) छोड़ दे। (पृश्निबाहवः) छोटी-छोटी भुजा वाले (मण्डूकाः) शोभा बढ़ाने वाले वा डुबकी लगाने वाले मेंढक (इरिणा = इरिणानि) ऊसर भूमियों को (अनु = अनुहाय) छोड़कर (वदन्तु) ध्वनि करें ॥१२॥

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥१३॥

पदार्थ—(संवत्सरम्) बोलने के समय तक (शशयानाः) शयन करने वाले (मण्डूकाः) शोभा बढ़ाने वाले वा डुबकी लगाने वाले मेंढक, (व्रतचारिणः) व्रतधारी (ब्राह्मणाः) ब्राह्मणों के समान, (पर्जन्यजिन्विताम्) मेह से तृप्त की हुई (वाचम्) वाणी को (प्र) अच्छे प्रकार (अवादिषुः) बोलें ॥१३॥

उपप्रवद मण्डूकि वर्षमा वद तादुरि।
मध्ये ह्रदस्य प्लवस्व विगृह्य चतुरः पदः ॥१४॥

पदार्थ—(मण्डूकि) हे शोभा बढ़ाने वाली वा डुबकी लगाने वाली मेंढकी (उप प्रवद) पास आकर बोल, (तादुरि) हे तैरने वाली वा उतने [शरीर जितना] उदरवाली (वर्षम्) वर्षा को (आवद) बुला। (ह्रदस्य) पोखर के (मध्ये) बीच में (चतुरः) चारों (पदः) पदों को (विगृह्य) फैला कर (प्लवस्व) तैर ॥१४॥

खण्वखा३इ खैमखा३इ मध्ये तदुरि।
वर्षं वनुध्वं पितरो मरुतां मन इच्छत ॥१५॥

पदार्थ—(खण्वखा ३ इ = खण्वखे) हे खनती में लगड़ाने वाली (खैमखा ३ इ = खैमखे) हे कष्ट में ठहरी हुई (तदुरि = तदुरि) हे [भूमि वा काल] फोड़ने वाली दादुरी ! (मध्ये) [जल के] भीतर वर्तमान ! और (पितरः) हे पालन करने वाले विद्वान् किसान आदि लोगो ! (वर्षम्) वर्षा का (वनुध्वम्) सेवन करो। (मरुताम्) याजकों के (मनः) मन को (इच्छत) चाहो [प्रसन्न करो] ॥१५॥

महान्तं कोशमुदचाभि षिञ्च सविद्युतं भवतु वातु वातः।
तन्वतां यज्ञं बहुधा विसृष्टा आनन्दिनीरोषधयो भवन्तु ॥१६॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] (महान्तम्) बड़े (कोशम्) जल भण्डार को (उत् अच) ऊंचा कर, (अभि) सब ओर से (सिञ्च) बरसा दे। (सविद्युतम्) समान विविध प्रकाशित [जगत्] (भवतु) होवे। (वातः) वायु (वातु) [अनुकूल] चले। (बहुधा) अनेक प्रकार से (विसृष्टाः) फैली हुई (ओषधयः) चावल, यव आदि ओषधें (यज्ञम्) यज्ञ को (तन्वताम्) फैलावें, और (आनन्दिनीः = ०—न्यः) आनन्दयुक्त (भवन्तु) होवें ॥१६॥

इति तृतीयोऽनुवाकः

अथ चतुर्थोऽनुवाक.

卐 सूक्तम् १६ 卐

१—९ ब्रह्मा । वरुण, सत्यानृतान्वीक्षणम् । त्रिष्टुप्, १ अनुष्टुप्, ५ भुरिक्, ७ जगती, त्रिपान्महाबृहती, ९ विराण्नाम त्रिपाद्गायत्री ।

बृहन्नेषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति ।
यस्तायन्मन्यते चरन्त्सर्वं देवा इदं विदुः ॥१॥

पदार्थ—(एषाम्) इन [लोको] का (बृहन्) बडा (अधिष्ठाता) अधिष्ठाता [वह वरुण] (अन्तिकात् इव) समीप मे वर्तमान सा (पश्यति) देखता है, (यः) जो [वरुण] (तायत्) विस्तार वा पालन (चरन्) करता हुआ (सर्वम्) सब जगत् को (मन्यते) जानता है । (देवा) व्यवहार म कुशल देवता लोग (इदम्) यह बात (विदु) जानते हैं ॥१॥

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम् ।
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद् वेद वरुणस्तृतीयः ॥२॥

पदार्थ—(य) जो पुरुष (तिष्ठति) खडा होता है, वा (चरति) चलता है, (च) और (य.) जो पुरुष (वञ्चति) ठगी करता है, और (य) जो (निलायम्) भीतर घुस कर, और (य) जो (प्रतङ्कम्) बाहिर निकल कर (चरति) काम करता है और (द्वौ) दो जने (सनिषद्य) एक साथ बैठकर (यत्) जो कुछ (मन्त्रयेते) कानाफूसी करते है, (तृतीय) तीसरा (राजा) राजा (वरुण) वरणीय वा दुष्टनिवारक वरुण परमेश्वर (तत्) उसे (वेद) जानता है ॥२॥

उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ उतासौ द्यौर्बृहती दूरेअन्ता ।
उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः ॥३॥

पदार्थ—(इयम् भूमि) यह भूमि (उत) भी, (उत) और (असौ) वह (बृहती) बडा, (दूरे अन्ता) [पृथिवी से] दूर गति वाला (द्यौ.) प्रकाशमान सूर्य (वरुणस्य राज्ञ) वरुण राजा का है, (उतो) और भी [पृथिवी और आकाश के] (समुद्रौ) दोनो समुद्र (वरुणस्य) वरुण की (कुक्षी) दो कोखें हैं, (उत) और वह (अस्मिन्) इस (अल्पे) थोडे से (उदके) जल मे भी (निलीनः) लीन हो रहा है ॥३॥

उत यो द्यामतिसर्पात् परस्तान्न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः ।
दिव स्पशः प्र चरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम् ॥४॥

पदार्थ—(उत) और (य) जो [दुष्ट] (परस्तात्) दूर देश मे (द्याम्) सूर्य लोक को (अतिसर्पात्) पार करके चुपके से रेंग जावे, (स) वह पुरुष (वरुणस्य राज्ञ) वरुण राजा की (न मुच्यातै) मुक्ति न पा सके । (दिव) प्रकाशमान (अस्य) इस [वरुण] के (स्पश) बन्धन सामर्थ्य (इदम्) इस [जगत्] मे (प्र चरन्ति) चलते रहते है, [उनको] (सहस्राक्षा) सहस्र प्रकार की दृष्टि वा व्यवहार वाले पुरुष (भूमिम् अति) भूमि के पार (पश्यन्ति) देखते हैं ॥४॥

सर्वं तद् राजा वरुणो वि चष्टे यदन्तरा रोदसी यत् परस्तात् ।
संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिव श्वघ्नी नि मिनोति तानि ॥५॥

पदार्थ—(राजा वरुण) राजा वरुण (तत् सर्वम्) वह सब (वि चष्टे) देखता रहता है, (यत्) जो कुछ (रोदसी अन्तरा) सूर्य और भूमि के बीच मे और (यत्) जो कुछ (परस्तात्) परे है । (जनानाम्) मनुष्यो के (निमिष) पलक मारने (अस्य) इस [वरुण] के (संख्याता) गिने हुए हैं, वह (तानि) हिंसा कर्मों को (नि मिनोति) गिरा देता है (श्वघ्नी इव) जैसे धन हारने वाला जुआरी (अक्षान्) पासो को [गिरा देता है] ॥५॥

ये ते पाशा वरुण सप्तसप्त त्रेधा तिष्ठन्ति विषिता रुशन्तः ।
छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं यः सत्यवाद्यति तं सृजन्तु ॥६॥

पदार्थ—(वरुण) हे दुष्ट निवारक परमेश्वर ! (सप्तसप्त=सप्तसप्ता) सात धाम [पृथिवी, जल, अग्नि, वायु विराट् अर्थात् स्थूल जगत्, परमाणु और प्रकृति] से सम्बन्ध वाले, (त्रेधा) तीन प्रकार से [भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल मे] (विषिता) फैले हुए (रुशन्त) [दुष्टो वा दोषो को] नाश करते हुए (ये) जो (ते) तेरे (पाशाः) फांस वा जाल (तिष्ठन्ति) स्थित हैं । (सर्वे) वे सब [फांस] (अनृतं वदन्तम्) मिथ्या बोलने वाले को (छिनन्तु) छिन्न-भिन्न करें, और (य) जो (सत्यवादी) है (तम्) उसको (अति) सत्कार पूर्वक (सृजन्तु) छोड़ें ॥६॥

शतेन पाशैरभि धेहि वरुणैनं मा ते मोच्यनृतवाङ् नृचक्षः ।
आस्तां जाल्म उदरं श्रंशयित्वा कोश इवाबन्धः परिकृत्यमानः ॥७॥

पदार्थ—(वरुण) हे दुष्ट निवारक परमेश्वर ! (शतेन) सौ (पाशैः) फांसो से (एनम्) इस [मिथ्यावादी] को (अभि धेहि) बांध ले (नृचक्ष) हे मनुष्यो के देखने वाले ! (अनृतवाक्) मिथ्यावादी पुरुष (ते) तेरी (मा मोचि) मुक्ति न पावे । (जाल्म) नीच अन्यायी (उदरम्) युद्ध कर्म को (श्रंशयित्वा = स्रंसयित्वा) नीचे गिरा कर (परिकृत्यमान) कटी हुई, (अबन्ध) अपन से छुटी (कोश इव) फूल की कली के समान (आस्ताम्) बैठा रहे ॥७॥

यः समाम्यो३ वरुणो व्याम्यो३ यः संदेश्यो३ वरुणो
यो विदेश्यः । यो दैवो वरुणो यश्च मानुषः ॥८॥

पदार्थ—(वरुण) वरुण परमेश्वर (य) व्यापक, (समाम्य) समान सवनीय, (य) सर्वनियन्ता और (व्याम्य) पीडारहित है, (वरुण) वरुण ही (य) यत्नशील, (संदेश्य) समान देशीय, (य) संयोग और वियोग करने वाला, (विदेश्य) विदेशीय है । (वरुण.) वरुण ही (य) पूजनीय, (दैव) दिव्य गुण वालो मे वर्त्तमान, (च) और (य) दाता, और (मानुषः) मनन-शील मनुष्यो मे वर्त्तमान है ॥८॥

तैस्त्वा सर्वैरभि ष्यामि पाशैरसावामुष्यायणामुष्याः पुत्र ।
तानु ते सर्वाननु संदिशामि ॥९॥

पदार्थ—(असौ—असौ त्वम्) वह तू (आमुष्यायण) हे अमुक पिता के पुत्र ! और (अमुष्या पुत्र) हे अमुक माता के पुत्र ! (त्वा) तुझको (तै सर्वै) उन सब (पाशै) नियम बन्धनो से (अभिष्यामि) मैं [वरुण] बाधता हूँ, और (तान् सर्वान्) उन सबो को (उ) अवश्य (ते) तेरे लिये (अनुसंदिशामि) समीप से समझाता हूँ ॥९॥

卐 सूक्तम् १७ 卐

१—८ शुक्र । अपामार्गो वनस्पति. । अनुष्टुप् ।

ईशानां त्वा भेषजानामुज्जेष आ रभामहे ।
चक्रे सहस्रवीर्यं सर्वस्मा ओषधे त्वा ॥१॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (ईशानाम्) समर्थ (भेषजानाम्) भय निवारक पुरुषो मे (त्वा) तेरा (उज्जेषे) [शत्रुओ को] जीतने के लिये (आरभामहे) हम आश्रय लेते हैं । (ओषधे) हे तापनाशक [वा अन्न आदि ओषधि के समान उपकारक !] (सर्वस्मै) सब जनो के लिये (त्वा) तुझे (सहस्रवीर्यम्) सहस्रो सामर्थ्य वाला (चक्रे) उस [परमात्मा] ने बनाया है ॥१॥

सत्यजितं शपथयावनीं सहमानां पुनः सराम् ।
सर्वाः समह्वयोषधीरितो नः पारयादिति ॥२॥

पदार्थ—(सत्यजितम्) सत्य से जीतने वाली, (शपथयावनीम्) शाप वा क्रोध वचन हटाने वाली, (सहमानाम्) शत्रुओ को हराने वाली और (पुन सराम्) वारवार आगे बढाने वाली सेना को, और (सर्वा) सब (ओषधी.) ताप नाश करने वाली प्रजाओ को (सम् अह्वि) यथावत् मैंने आवाहन किया है, (इत) इस [कठिन कर्म] से (न) हमें (पारयात्) वह [पुरुषार्थी] पार लगावे, (इति) इस अभिप्राय से ॥२॥

या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे ।
या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ॥३॥

पदार्थ—(या) जिस [शत्रुसेना] ने (शपनेन) शाप [कुवचन] से (शशाप) कोसा है और (या) जिसने (अघम्) दु:ख देने वाली (मूरम्) मूल को (आदधे) जमा लिया है, और (या) जिसने (रसस्य) रस के (हरणाय) हरण के लिए (जातम्) [हमारे] समूह को (आरेभे) छुआ है, (सा) वह [शत्रुसेना] (तोकम्) अपनी बढती वा सतान को (अत्तु) खा लेवे ॥३॥

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्नीललोहिते ।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुस्तया कृत्याकृतो जहि ॥४॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (याम्) जिस [हिंसा] को (ते) तेरे (आमे) भोजन मे, वा (पात्रे) पानी मे (चक्रु.) उन्होंने [हिंसाकारियो ने] किया है, (याम्) जिसको [तेरे] (नीललोहिते = नीलरोहिते) नीलो अर्थात् निधियो की उत्पत्ति मे (चक्रु) उन्होने किया है । (याम्) जिस (कृत्याम्) हिंसा को [तेरे] (आमे) चलने मे वा (मांसे) ज्ञान काल वा मास मे (चक्रु:) उन्होंने किया है, (तया) उस [हिंसा] के कारण (कृत्याकृत) हिंसाकारियों को (जहि) नाश करदे ॥४॥

दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः ।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ॥५॥

पदार्थ—(दौष्वप्न्यम्) नींद में बेचैनी, (दौर्जीवित्यम्) जीवन का कष्ट, (अभ्वम्) बड़े (रक्षः) राक्षस, (अराय्यः) अनेक अलक्ष्मियों और (दुर्णाम्नीः) दुष्ट नाम वाली (दुर्वाचः) कुवाणियों, (ताः सर्वाः) इन सबको (अस्मत्) अपने से (नाशयामसि) हम नाश करें ॥५॥

क्षुधामारं तृष्णामारमगोतामनपत्यताम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥६॥

पदार्थ—(क्षुधामारम्) भूख से मरना, (तृष्णामारम्) पियास से मरना, (अगोताम्) गौओं की हानि, और (अनपत्यताम्) बच्चों का अभाव, (तत् सर्वम्) इस सब को, (अपामार्ग) हे सर्वसंशोधक! [वा अपामार्ग औषध के समान उपकारी राजन्!] (त्वया) तेरे साथ (वयम्) हम (अप मृज्महे) शोधते हैं ॥६॥

तृष्णामारं क्षुधामारमथो अक्षपराजयम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥७॥

पदार्थ—(तृष्णामारम्) पियास से मरना, (क्षुधामारम्) भूख से मरना, (अथो) और भी (अक्षपराजयम्) व्यवहारों वा इन्द्रियों की हार, (तत् सर्वम्) इस सब को (अपामार्ग) हे सर्वसंशोधक राजन्! (त्वया) तेरे साथ (वयम् अप-मृज्महे) हम शोधते हैं ॥७॥

अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेक इद् वशी ।
तेन ते मृज्म आस्थितमथ त्वमगदश्चर ॥८॥

पदार्थ—(अपामार्ग) सब दोषों का शोधने वाला परमेश्वर (सर्वासाम्) सब (ओषधीनाम्) तापनाशक अन्न आदि पदार्थों का (एक इत्) एक ही (वशी) वश में रखने वाला है। (तेन) उस [के आश्रय] से [हे राजन्!] (ते) तेरे (आस्थितम्) उपस्थित [भय] को (मृज्म) हम शोधते हैं, (अथ) इसलिये (त्वम्) तू (अगदः) नीरोग होकर (चर) विचर ॥८॥

卐 सूक्तम् १८ 卐

१—८ शुक्र । अपामार्गो वनस्पतिः । अनुष्टुप्, ६ बृहतीगर्भा ।

समं ज्योतिः सूर्येणाह्ना रात्री समावती ।
कृणोमि सत्यमूतयेऽरसाः सन्तु कृत्वरीः ॥१॥

पदार्थ—(ज्योतिः) ज्योति (सूर्येण समम्) सूर्य के साथ साथ और (रात्री) रात्री (अह्ना समावती) दिन के साथ वर्तमान है, [ऐसे ही] मैं (सत्यम्) सत्य-कर्म को (ऊतये) रक्षा के लिये (कृणोमि) करता हूँ, (कृत्वरीः कृत्वर्यः) कतरने वाली विपत्तियां (अरसाः) नीरस (सन्तु) हो जावें ॥१॥

यो देवाः कृत्यां कृत्वा हरादविदुषो गृहम् ।
वत्सो धारुरिव मातरं तं प्रत्यगुप पद्यताम् ॥२॥

पदार्थ—(देवाः) हे विद्वानो! (यः) जो पुरुष (कृत्याम्) हिंसा (कृत्वा) करके (अविदुषः) अजान मनुष्य के (गृहम्) घर का (हरात्) हर लेवे, वह दुष्कर्म (प्रत्यक्) लौट कर (तम्) उसी [दुष्कर्मी] को (उप पद्यताम्) जा मिले (इव) जैसे (धारुः) दूध पीने वाला (वत्सः) बछड़ा (मातरम्) अपनी माता [गौ के पीछे पीछे दौड़ता है] ॥२॥

अमा कृत्वा पाप्मानं यस्तेनान्यं जिघांसति ।
अश्मानस्तस्यां दग्धायां बहुलाः फट् करिक्रति ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो पुरुष (तेन अमा) चोर या म्लेच्छ के साथ होकर (पाप्मानम्) पाप कर्म (कृत्वा) करके (अन्यम्) दूसरे को (जिघांसति) मारना चाहे, (बहुलाः) वृद्धि करने वाले (अश्मानः) व्यापनशील वा पाषाण के समान दृढ़ स्वभाव पुरुष (तस्याम्) उस [दुष्क्रिया] के (दग्धायाम्) भस्म किये जाने पर (फट्) [उस दुष्ट का] नाश (करिक्रति) कर डालें ॥३॥

सहस्रधामन् विशिखान् विग्रीवाञ्छायया त्वम् ।
प्रति स्म चक्रुषे कृत्यां प्रियां प्रियावते हर ॥४॥

पदार्थ—(सहस्रधामन्) हे सहस्रों धारण, पोषण और दान वाले राजन्! (त्वम्) तू (विशिखान्) विरुद्ध प्रकार से सोने वाले, वा विरुद्ध गति वाले, (विग्रीवान्) विरुद्ध प्रकार से खाने वाले, [दुष्टों] को (शायय) सुला दे [गिरा दे]। (कृत्याम्) दुष्क्रिया (चक्रुषे) करने वाले पुरुष को (प्रति) प्रत्यक्ष (स्म) अवश्य [वैसी ही दण्ड पीड़ा] (हर) पहुँचा [जैसे] (प्रियाम्) प्रिया, भार्या को (प्रियावते) उसके स्वामी के पास [प्रत्यक्ष पहुँचाते हैं] ॥४॥

अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम् ।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥५॥

पदार्थ—(अहम्) मैंने (अनया ओषध्या) इस ओषधिरूप [तापनाशक तुझ राजा] के साथ (सर्वाः कृत्याः) सब हिंसाओं को (अदूदुषम्) खण्डित कर दिया है, (याम्) जिस [हिंसा] को (क्षेत्रे) खेत में, अथवा (याम्) जिसको (गोषु) गौओं में (वा) अथवा (याम्) जिसको (ते) तेरे (पुरुषेषु) पुरुषों में (चक्रुः) उन लोगों ने किया था ॥५॥

यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम् ।
चकार भद्रमस्मभ्यमात्मने तपनं तु सः ॥६॥

पदार्थ—(यः) जिस दुष्ट ने (कर्तुम्) हिंसा को (चकार) किया था, वह (न शशाक) समर्थ न था, उसने (पादम्) अपना पैर और (अङ्गुरिम्) अंगुली (शश्रे) तोड़ ली। (सः) उसने (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (भद्रम्) आनन्द, और (आत्मने) अपने लिये (तु) तो (तपनम्) तपन (चकार) कर लिया ॥६॥

अपामार्गोऽप मार्ष्टु क्षेत्रियं शपथश्च यः ।
अपाह यातुधानीरप सर्वा अराय्यः ॥७॥

पदार्थ—(अपामार्गः) दोषों का शोधने वाला राजा (क्षेत्रियम्) देह वा वंश के दोष को, (च) और (यः) जो कुछ (शपथः) दुर्वचन हो [उसे भी] (अप मार्ष्टु) शुद्ध कर देवे। (अह) अरे (यातुधानीः) यातना देने वाली शत्रुसेनाओं को (अप — अप मार्ष्टु) शुद्ध कर डाले, और (सर्वाः) सब (अराय्यः = अरायीः) अलक्ष्मियों को (अप = अप मार्ष्टु) शुद्ध कर डाले ॥७॥

अपमृज्य यातुधानानप सर्वा अराय्यः ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥८॥

पदार्थ—(यातुधानान्) पीड़ा देने वाले राक्षसों को (अपमृज्य) शोधकर, और (सर्वाः) सब प्रकार की (अराय्यः) दरिद्रताओं को (अप — अपमृज्य) शोधकर, (अपामार्ग) हे सर्वसंशोधक राजन्! (त्वया) तेरे साथ (वयम्) हम लोग (तत् सर्वम्) उस सब [कष्ट कर्म] को (अप मृज्महे) शोधते हैं ॥८॥

卐 सूक्तम् १९ 卐

१—८ शुक्र, अपामार्गो वनस्पतिः । अनुष्टुप्, २ पथ्यापङ्क्तिः ।

उतो अस्यबन्धुकृदुतो असि नु जामिकृत् ।
उतो कृत्याकृतः प्रजां नडमिवा च्छिन्धि वार्षिकम् ॥१॥

पदार्थ—[हे राजन्] तू (अबन्धुकृत्) अबन्धुओं का काटने वाला (उतो) भी (असि) है, (नु) और (जामिकृत्) बन्धुओं का बनाने वाला (उतो) भी (असि) है। (उतो) इससे (कृत्याकृतः) हिंसा करने वालों और (प्रजाम्) उनके सेवकों को (आच्छिन्धि) काट डाल, (इव) जैसे (वार्षिकम्) वर्षा में उत्पन्न (नडम्) नरकट घास को ॥१॥

ब्राह्मणेन पर्युक्तासि कण्वेन नार्षदेन । सेनेवैषि त्विषीमती
न तत्र भयमस्ति यत्र प्राप्नोष्योषधे ॥२॥

पदार्थ—[हे राजन्!] तू (ब्राह्मणेन) वेदज्ञानी ब्राह्मण, (कण्वेन) मेधावी, (नार्षदेन) नायकों की सभा के हितकारी पुरुष करके (पर्युक्ता) उपदिष्ट [औषध समान] (असि) है। (त्विषीमती) प्रकाशयुक्त (सेना) सेना अर्थात् सूर्य की किरण पुञ्ज के (इव) समान (एषि) तू चलता है। (तत्र) वहां पर (भयम्) भय (न अस्ति) नहीं होता, (यत्र) जहां पर (ओषधे) हे ओषधि तुल्य तापनाशक राजन्! (प्राप्नोषि) तू व्यापक होता है ॥२॥

अग्रमेष्योषधीनां ज्योतिषेवाभिदीपयन् ।
उत त्रातासि पाकस्याथो हन्तासि रक्षसः ॥३॥

पदार्थ—[हे राजन्!] (ज्योतिषा इव) अपने तेज से जैसे (अभिदीपयन्) सब ओर प्रकाश फैलाता हुआ (ओषधीनाम्) ओषधि तुल्य उपकारी पुरुषों में (अग्रम्) आगे आगे (एषि) तू चलता है। (उत) और तू (पाकस्य) पक्का (बुद्ध) करने योग्य अथवा रक्षा योग्य दुर्बल पुरुष का (त्राता) रक्षक (असि) है (अथो) और भी तू (रक्षसः) राक्षस का (हन्ता) हनन करने वाला (असि) है ॥३॥

यददो देवा असुरांस्त्वयाग्रे निरकुर्वत ।
ततस्त्वमध्योषधेऽपामार्गो अजायथाः ॥४॥

पदार्थ—(अदः) वह (यत्) जो (अग्रे) पूर्वकाल में (त्वया) तेरे साथ होकर (देवाः) देवताओं [विद्वान् शूरों] ने (असुरान्) असुरों को (निरकुर्वत) निकाल दिया है, (तत्) उसी से (ओषधे) हे ओषधि समान तापनाशक राजन्! (त्वम्) तू (अपामार्गः) संशोधक (अधि) अधिक करके (अजायथाः) प्रकट हुआ है ॥४॥

विभिन्दती शतशाखा विभिन्दन् नाम ते पिता ।
प्रत्यग् वि भिन्धि त्वं तं यो अस्माँ अभिदासति ॥५॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (विभिन्दती) रोगों को छिन्न भिन्न करने वाली (शतशाखा:) सैकड़ों शाखा वाली [ओषधि के समान] (विभिन्दन्) शत्रुओं को छिन्न भिन्न करने वाला (नाम) प्रसिद्ध (ते) तेरा (पिता) पिता है। (त्वम्) तू भी (प्रत्यक्) लौटाकर (तम्) उसको (विभिन्धि) छिन्न भिन्न करदे, (य) जो (अस्मान्) हम को (अभिदासति) सताता रहता है ॥५॥

असद् भूम्याः समभवत् तद्यामेति महद् व्यचः ।

तद् वै ततो विधूपायत् प्रत्यक् कर्तारमृच्छतु ॥६॥

पदार्थ—(तत्) वह (महत्) बड़ा (व्यच) परस्पर मिला वा फैला हुआ (असत्) अनित्य जगत् (भूम्या:) भूमि से (समभवत्) उत्पन्न हुआ है, [जो जगत्] (याम्) जिस [भूमि] को (एति) चला जाता है। (ततः) उसी कारण से (तत्) वह [दुष्ट कर्म] (वै) अवश्य (प्रत्यक्) लौटकर (कर्तारम्) हिंसक को (विधूपायत्) सताप देता हुआ [उसको ही] (ऋच्छतु) पहुँचे ॥६॥

प्रत्यङ् हि संबभूविथ प्रतीचीनफलस्त्वम् ।

सर्वान् मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया वधम् ॥७॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (त्वम्) तू (हि) ही (प्रत्यङ्) प्रत्यक्ष होकर (प्रतीचीनफल) प्रतिकूल गति में रहने वालों का नाश करने वाला (सबभूविथ) हुआ है, [इस कारण] (मत्) मुझसे [शत्रु के] (सर्वान्) सब (शपथान्) शापों को और (वरीय:) अधिक विस्तीर्ण (वधम्) हथियार को (अधि) अधिकारपूर्वक (यवय) पृथक् कर ॥७॥

शतेन मा परि पाहि सहस्रेणाभि रक्ष मा ।

इन्द्रस्ते वीरुधां पत उग्र ओज्मानमा दधत् ॥८॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (शतेन) सौ [उपाय] से (मा) मेरा (परि पाहि) सब प्रकार पालन कर, (सहस्रेण) सहस्र साधन से (मा) मेरी (अभि) सब ओर से (रक्ष) रक्षा कर। (वीरुधां पते) हे विविध प्रकार बढ़ने वाली प्रजाओं के पालक ! (उग्र) महाबली (इन्द्र) परमेश्वर (ते) तुमको (ओज्मानम्) पराक्रम (आ) यथावत् (दधत्) देता हुआ वर्तमान है ॥८॥

卐 सूक्तम् २० 卐

१—६ मातृनामा । मातृनामा । अनुष्टुप्, १ स्वराट्, ६ भुरिक् ।

आ पश्यति प्रति पश्यति परा पश्यति पश्यति ।

दिवमन्तरिक्षमाद् भूमिं सर्वं तद् देवि पश्यति ॥१॥

पदार्थ—(देवि) हे दिव्यशक्ति परमात्मन् ! तू, (तत्) विस्तार करने वाला वा विस्तीर्ण ब्रह्म आप (आ) अभिमुख (पश्यति) देखता है, (प्रति) पीछे से (पश्यति) देखता है, (परा) दूर से (पश्यति) देखता है, और (पश्यति) सामान्यता देखता है। (दिवम्) सूर्य लोक, (अन्तरिक्षम्) मध्यलोक (आत्) और भी (भूमिम्) भूमि अर्थात् (सर्वम्) सबको (पश्यति) देखता है ॥१॥

तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीः षट् चेमाः प्रदिशः पृथक् ।

त्वयाहं सर्वा भूतानि पश्यानि देव्योषधे ॥२॥

पदार्थ—(देवि) हे दिव्यशक्ति, (ओषधे) तापनाशक परमात्मन् ! (त्वया) तेरे सहारे से (अहम्) मैं (तिस्रः) तीनों (दिवः) सूर्य लोकों, (तिस्रः) तीनों (पृथिवी:) भूमियों (च) और (इमा:) इन (षट्) छह (प्रदिश:) फैली हुई दिशाओं और (सर्वा) सब (भूतानि) सृष्ट पदार्थों को (पृथक्) नाना प्रकार से (पश्यानि) देखूं ॥२॥

दिव्यस्य सुपर्णस्य तस्य हासि कनीनिका ।

सा भूमिमा रुरोहिथ वह्यं श्रान्ता वधूरिव ॥३॥

पदार्थ—(तस्य) उस (दिव्यस्य) दिव्य गुण वाले (सुपर्णस्य) यथावत् पालनीय जीव की, तू (ह) अवश्य (कनीनिका) कमनीया देवी, अथवा नेत्र तारा समान (असि) है। (सा = सा त्वम्) उस तूने (भूमिम्) हृदय भूमि को (आ रुरोहिथ) प्राप्त किया है, (इव) जैसे (श्रान्ता) थकी हुई, शान्त स्वभाव, वा जितेन्द्रिय (वधू) स्त्री (वह्यम्) अपने पाने योग्य पदार्थ को [प्राप्त करती है] ॥३॥

तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत् ।

तयाहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यः ॥४॥

पदार्थ—(सहस्राक्ष) असंख्य दर्शन शक्ति वाला अथवा सहस्रों व्यवहारों वाला (देव:) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (दक्षिणे) प्रवृद्ध (हस्ते) प्रकाश के निमित्त (ताम्) उपकारशक्ति (मे) मुझको (आ) सब ओर से (दधत्) दान कर रहा है, (तया) उस [उपकारशक्ति] से (अहम्) मैं (सर्वम्) सबको (पश्यामि) देखता हूँ, (य: च) जो कोई (शूद्र:) शोचनीय शूद्र अर्थात् मूर्ख (उत) अथवा (आर्य:) प्राप्त करने योग्य आर्य अर्थात् विद्वान् [ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य] हो ॥४॥

आविष्कृणुष्व रूपाणि मात्मानमप गूहथाः ।

अथो सहस्रचक्षो त्वं प्रति पश्याः किमीदिनः ॥५॥

पदार्थ—(रूपाणि) [पदार्थों के] रूपों अर्थात् बाहिरी आकार को (आविष्कृणुष्व) प्रकट कर दे, (आत्मानम्) [वस्तुओं के] आत्मा अर्थात् भीतरी स्वभाव को (मा अप गूहथा:) गुप्त मत रख (अथो) और भी (सहस्रचक्षो) हे असंख्य दर्शन शक्ति वाले परमात्मन् ! (त्वम्) तू (किमीदिन:) अब क्या, यह क्या हो रहा है, ऐसे गुप्त कर्म करने वाले लुतरे लोगों को (प्रति) प्रत्यक्ष (पश्या:) देख ले ॥५॥

दर्शय मा यातुधानान् दर्शय यातुधान्यः ।

पिशाचान्त्सर्वान् दर्शयेति त्वा रभ ओषधे ॥६॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] (यातुधानान्) यातना देने वाले दोषों को (मा) मुझे (दर्शय) दिखा, (यातुधान्य:) महापीड़ा देने वाली कुवासनाओं को (दर्शय) दिखा, (सर्वान्) सब (पिशाचान्) मांस खाने वाले विघ्नों को (दर्शय) दिखा, (ओषधे) हे तापनाशक परमेश्वर ! (इति) इसके लिये (त्वा) तेरा (आरभे) मैं सहारा लेता हूँ ॥६॥

कश्यपस्य चक्षुरसि शुन्याश्च चतुरक्ष्याः ।

वीध्रे सूर्यमिव सर्पन्तं मा पिशाचं तिरस्करः ॥७॥

पदार्थ—[हे परमात्मन्] तू (कश्यपस्य) रस पीने वाले सूर्य का (च) और (चतुरक्ष्या:) पूर्वादि चार प्रकार से व्याप्ति वाली (शुन्या:) बढ़ी हुई दिशा का (चक्षु:) देखने वाला ब्रह्म (असि) है। (पिशाचम्) मांस खाने वाले [पीड़ादायक] विघ्न को (मा तिरस्कर:) गुप्त मत रख [प्रकाश करदे]। (वीध्रे) विशेष चमकने के समय अर्थात् मध्याह्न में (सर्पन्तम्) चलते हुए (सूर्यमिव) सूर्य को जैसे [नहीं छिपा सकते] ॥७॥

उदग्रभं परिपाणाद् यातुधानं किमीदिनम् ।

तेनाहं सर्वं पश्याम्युत शूद्रमुतार्यम् ॥८॥

पदार्थ—(परिपाणात्) रक्षास्थान [अपने हृदय देश] से (यातुधानम्) पीड़ा देने हारे (किमीदिनम्) पिशुन रूप अपने दोष को (उत् अग्रभम्) मैंने पकड़ लिया है। (तेन) उसी के (अहम्) मैं (सर्वम्) सबको (पश्यामि) देखता हूँ, (उत) जो कोई (शूद्रम्) शोचनीय शूद्र अर्थात् मूर्ख, (उत) अथवा (आर्यम्) प्राप्त करने योग्य आर्य अर्थात् विद्वान् [ब्राह्मण क्षत्रिय वा वैश्य] हो ॥८॥

यो अन्तरिक्षेण पतति दिवं यश्चातिसर्पति ।

भूमिं यो मन्यते नाथं तं पिशाचं प्र दर्शय ॥९॥

पदार्थ—(य) जो [उपद्रवी] (अन्तरिक्षेण) मध्यवर्ती हृदय अवकाश द्वारा (पतति) नीचे गिरता है, (च) और (य) जो (दिवम्) व्यवहार वा प्रकाश को (अतिसर्पति) लाघकर रेंगता है, और (य) जो (भूमिम्) अपनी सत्ता को [अहकार से] (नाथम्) ईश्वर (मन्यते) मानता है, (तम्) उस (पिशाचम्) मांसभक्षक, दुःखदायक, आत्मा को (प्रदर्शय) तू दिखा दे ॥९॥

卐 इति चतुर्थोऽनुवाकः 卐

卐

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ।

卐 सूक्तम् २१ 卐

१—७ ब्रह्मा गावः । त्रिष्टुप्, २—४ जगती ।

आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।

प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥१॥

पदार्थ—(गाव:) पाने वा स्तुति योग्य विद्याएं (आ अग्मन्) प्राप्त हुई हैं, (उत) और उन्होंने (भद्रम्) कल्याण (अक्रन्) किया है। वे (गोष्ठे) हमारी गोठ अर्थात् विद्यासमाज में (सीदन्तु) प्राप्त होवें और (अस्मे) हमें (रणयन्तु = रमयन्तु) सुख देवें। वे (इह) यहां समाज में (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य वाले पुरुष के लिये (पूर्वी:) बहुत (उषस) प्रभात वेलाओं तक (प्रजावती:) उत्तम मनुष्यों वाली, (पुरुरूपा:) अनेक लक्षण वाली होकर (दुहाना:) [कामनाओं को] पूर्ण करती हुई (स्यु:) रहें ॥१॥

इन्द्रो यज्वने पृणते च शिक्षत्युपेद् ददाति न स्वं मुषायति ।

भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम् ॥२॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) बड़े ऐश्वर्य वाला राजा (**यज्वने**) यज्ञ करने वाले (**च**) और (**गृणते**) उपदेशक पुरुष को (**शिक्षते**) शिक्षा देता है, और (**उप** उपेत्य) आदर करके (**स्वम्**) धन (**ददाति**) देता है, और (**न**) न (**मुषायति**) चुराता है, और (**देवयुम्**) दिव्य गुण वा विद्वानों के प्राप्त कराने वाले (**रयिम्**) धन को (**भूयोभूय**) अधिक अधिक (**इत्**) ही (**वर्धयन्**) बढ़ाता हुआ (**इत अस्य**) इस संसार के (**अभिन्ने**) अटूट (**खिल्ये**) कण कण प्राप्ति के लाभ में (**निदधाति**) निधि रूप से रखता है ॥२॥

न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति ।

देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित् ताभिः सचते गोपतिः सह ॥ ३ ॥

पदार्थ—(**ता**) वे [विद्यायें] (**न**) नहीं (**नशन्ति**) नष्ट होती हैं, (**न**) न [उन्हें] (**तस्कर**) चोर (**दभाति**) ठगता है, (**न**) न (**अमित्र**) पीड़ा देने वाला (**व्यथि**) व्यथाकारी शत्रु (**आसाम्**) इनकी (**आ दधर्षति**) हंसी उड़ाता है। (**च**) और (**गोपति**) विद्याओं का स्वामी, वाचस्पति (**याभि**) जिन [विद्याओं] से (**देवान्**) दिव्य गुणों को (**यजते**) पूजता (**च**) और (**ददाति**) देता है, (**ताभि सह**) उन [विद्याओं] के साथ (**ज्योक् इत्**) बहुत ही काल तक वह (**सचते**) मिला रहता है ॥३॥

न ता अर्वा रेणुककाटोऽश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि ।

उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ॥४॥

पदार्थ—(**न**) न तो (**अर्वा**) घोड़े के समान विषयासक्त, अथवा हिंसक पुरुष, और (**न**) न (**रेणुककाट**) धूलि के कण के समान गिर जाने वाला मनुष्य (**ता**) उन [विद्याओं] को (**अश्नुते**) पाता है। (**ता**) वे विद्यायें (**संस्कृतत्रम्**) संस्कृत [शुद्ध] विद्याओं के रक्षक जन को (**अभि**) सब ओर से (**उप यन्ति**) आती हैं। (**ता गाव**) वे विद्यायें (**तस्य**) उस (**यज्वन**) देवताओं के पूजन वाले (**मर्तस्य**) मनुष्य के (**उरुगायम्**) बड़े प्रशंसनीय (**अभयम्**) निर्भय राज्य में (**अनु**) अनुकूलता से (**विचरन्ति**) विचरती हैं ॥४॥

गावो भगो गाव इन्द्रो म इच्छाद् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।

इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामि हृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥५॥

पदार्थ—(**गाव**) विद्यायें ही (**भग**) धन हैं, (**गाव**) विद्यायें (**इन्द्र**) परम ऐश्वर्य हैं, (**गाव**) विद्यायें (**प्रथमस्य**) अतिश्रेष्ठ (**सोमस्य**) सोमरस अर्थात् अमृत वा मोक्ष का (**भक्ष**) सेवन हैं, [इति] (**मे इच्छात्**) [यह] मेरी इच्छा हो। (**जनास**) हे मनुष्यो ! (**इमा**) ये (**या**) जो (**गाव**) विद्यायें हैं, (**स**) सो ही (**इन्द्र**) परम ऐश्वर्य है। (**इन्द्रम्**) परम ऐश्वर्य को (**चित्**) ही (**हृदा**) हृदय अर्थात् आत्मा और (**मनसा**) विज्ञान के साथ (**इच्छामि**) मैं चाह करता हूँ ॥५॥

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम् ।

भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद् वो वय उच्यते सभासु ॥६॥

पदार्थ—(**गाव**) हे विद्याओ ! (**यूयम्**) तुम (**कृशम**) दुर्बल को (**चित्**) भी (**अश्रीरम्**) श्री रहित निर्धन को (**चित्**) भी (**मेदयथ**) स्नेह करती हो और (**सुप्रतीकम्**) बड़ी प्रतीति वाला वा बड़े रूप वाला (**कृणुथ**) बना देती हो। (**भद्रवाच**) हे कल्याणी विद्याओ ! (**गृहम्**) घर को (**भद्रम्**) मंगलमय (**कृणुथ**) कर देती हो, (**सभासु**) विद्वानों से प्रकाशमान सभाओं में (**व.**) तुम्हारा ही (**वय**) बल (**बृहत्**) बड़ा (**उच्यते**) बखाना जाता है ॥६॥

प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।

मा व स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु ॥७॥

पदार्थ—[हे मनुष्य प्रजाओ !] (**प्रजावती**) उत्तम सन्तान वाली, (**सुयवसे**) सुन्दर यव आदि अन्न वाले [घर] में [अन्न] (**रुशन्ती**) खाती हुई, और (**सुप्रपाणे**) सुन्दर जल स्थान में (**शुद्धा**) शुद्ध (**अप**) जलों को (**पिबन्ती**) पीती हुई (**व**) तुमको (**स्तेन**) चोर (**मा ईशत**) वश में न करे, और (**मा**) न (**अघशंस.**) बुरा चीतने वाला, डाकू उचक्का आदि [वश में करे]। (**रुद्रस्य**) पीड़ा नाशक परमेश्वर की (**हेति**) हनन शक्ति (**व**) तुमको (**परि**) सब ओर से (**वृणक्तु**) त्यागे रहे ॥७॥

卐 सूक्तम् २२ 卐

१—७ वसिष्ठ, अथर्वा वा । क्षत्रियो राजा, इन्द्रश्च । त्रिष्टुप् ।

इममिन्द्र वर्धय क्षत्रियं म इमं विशामेकवृषं कृणु त्वम् ।

निरमित्रानक्ष्णुह्यस्य सर्वांस्तान् रन्धयास्मा अहमुत्तरेषु ॥१॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे परमेश्वर ! (**त्वम्**) तू (**इमम्**) इस (**क्षत्रियम्**) राज्य करने में चतुर राजा को (**मे**) मेरे लिये (**वर्धय**) बढ़ा, और (**इमम्**) इसको (**विशाम्**) मनुष्यों का (**एकवृषम्**) अद्वितीय प्रधान अर्थात् सार्वभौम शासक (**कृणु**) बना। (**अस्य**) इसके (**सर्वान्**) सब (**अमित्रान्**) वैरियों को (**निरक्ष्णुहि**) निर्बल करदे, और (**तान्**) उन्हें (**अस्मै**) इसके लिए (**अहमुत्तरेषु**) मैं ऊँचा होता हूँ, मैं ऊँचा होता हूँ, ऐसे कथनस्थान रणक्षेत्रों में (**रन्धय**) नाश कर वा वश में कर ॥१॥

एमं भज ग्रामे अश्वेषु गोषु निष्टं भज यो अमित्रो अस्य ।

वर्ष्म क्षत्राणामयमस्तु राजेन्द्र शत्रुं रन्धय सर्वमस्मै ॥२॥

पदार्थ—(**इमम्**) इसको (**ग्रामे**) ग्राम में, (**अश्वेषु**) घोड़ों में, और (**गोषु**) गौ आदिकों में (**आभज**) भाग्यवान् कर और (**य.**) जो (**अस्य**) इसका (**अमित्र**) वैरी है, (**तम्**) उसको (**निर्भज**) अलग करदे। (**अयम्**) यह (**राजा**) राजा (**क्षत्राणाम्**) क्षत्रियों का (**वर्ष्म**) मस्तक [समान ऊँचा] (**अस्तु**) होवे। (**इन्द्र**) हे परम ऐश्वर्य वाले इन्द्र भगवान् ! (**अस्मै**) इसके लिए (**सर्वम्**) सब (**शत्रुम्**) शत्रु को (**रन्धय**) वश में कर ॥२॥

अयमस्तु धनपतिर्धनानामयं विशां विश्पतिरस्तु राजा ।

अस्मिन्निन्द्र महि वर्चांसि धेह्यवर्चसं कृणुहि शत्रुमस्य ॥३॥

पदार्थ—(**अयम्**) यह (**धनानाम्**) बहुत प्रकार के धनों का (**धनपति**) धनपति (**अस्तु**) होवे। (**अयम्**) यह (**राजा**) राजा (**विशाम्**) बहुत प्रजाओं का (**विश्पति**) प्रजापति (**अस्तु**) होवे। (**इन्द्र**) हे परमेश्वर ! (**अस्मिन्**) इस राज्य में (**महि** महीनि) बड़े-बड़े (**वर्चांसि**) तेजों को (**धेहि**) धारण कर, (**अस्य**) इसके (**शत्रुम्**) वैरी को (**अवर्चसम्**) निस्तेज (**कृणुहि**) कर दे ॥३॥

अस्मै द्यावापृथिवी भूरि वामं दुहाथां घर्मदुघे इव धेनू ।

अयं राजा प्रिय इन्द्रस्य भूयात् प्रियो गवामोषधीनां पशूनाम् ॥४॥

पदार्थ—(**द्यावापृथिवी**) हे सूर्य और पृथिवी तुम दोनों ! (**अस्मै**) इस राजा के लिए (**घर्मदुघे**) यज्ञ की पूर्ति करने वाली (**धेनू इव**) दो गौओं के समान (**भूरि**) बहुत (**वामम्**) उत्तम धन (**दुहाथाम्**) पूर्ण करो। (**अयम्**) यह (**राजा**) राजा (**इन्द्रस्य**) परमेश्वर का (**प्रिय**) प्रिय (**गवाम्**) विद्याओं का (**ओषधीनाम्**) सब अन्नों का और (**पशूनाम्**) दोपाये और चौपाये जीवों का (**प्रिय**) प्रिय (**भूयात्**) होवे ॥४॥

युनज्मि त उत्तरावन्तमिन्द्रं येन जयन्ति न पराजयन्ते ।

यस्त्वा करदेकवृषं जनानामुत राज्ञामुत्तमं मानवानाम् ॥५॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (**ते**) तेरे लिए (**उत्तरावन्तम्**) अत्यन्त उत्तम गुण वाले (**इन्द्रम्**) परमेश्वर को (**युनज्मि**) मैं संयुक्त करता हूँ, (**येन**) जिसके साथ [शूर जन] (**जयन्ति**) जय पाते हैं, और (**न**) कभी नहीं (**पराजयन्ते**) हारते हैं। (**य**) जो (**त्वा**) तुझको (**जनानाम्**) मनुष्यों के बीच (**एकवृषम्**) अद्वितीय प्रधान, और (**मानवानाम्**) मननशील अथवा माननीय (**राज्ञाम्**) राजाओं में (**उत्तमम्**) अतिश्रेष्ठ (**करत्**) करे ॥५॥

उत्तरस्त्वमधरे ते सपत्ना ये के च राजन् प्रतिशत्रवस्ते ।

एकवृष इन्द्रसखा जिगीवाञ्छत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥६॥

पदार्थ—[राजन् !] हे राजन् ! (**त्वम्**) तू (**उत्तर**) अधिक ऊँचा हो, (**च**) और (**ये के**) जो कोई (**ते**) तेरे (**प्रतिशत्रव**) प्रतिकूलवर्ती शत्रु और (**ते**) तेरे (**सपत्ना**) साथ झगड़ने वाले हैं, [वे] (**अधरे**) नीचे होवें। (**इन्द्रसखा**) परमेश्वर का मित्र, (**जिगीवान्**) विजयी और (**एकवृष.**) अद्वितीय प्रधान तू (**शत्रूयताम्**) शत्रुओं जैसे आचरण वाले मनुष्यों के (**भोजनानि**) भोगों के साधन, धनधान्यों को (**आभर**) लाकर भरदे ॥६॥

सिंहप्रतीको विशो अद्धि सर्वा व्याघ्रप्रतीकोऽव बाधस्व शत्रून् ।

एकवृष इन्द्रसखा जिगीवाञ्छत्रूयतामा खिदा भोजनानि ॥७॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (**सिंहप्रतीक**) सिंह तुल्य पराक्रमी तू (**सर्वाः**) सब [शत्रुओं को] (**विश**) मनुष्यों को (**अद्धि**) खाले, (**व्याघ्रप्रतीक.**) व्याघ्र समान झपट कर (**शत्रून्**) दुष्ट वैरियों को (**अव बाधस्व**) हटा दे। (**इन्द्रसखा**) परमेश्वर का मित्र, (**जिगीवान्**) विजयी और (**एकवृष**) अद्वितीय प्रधान तू (**शत्रूयताम्**) शत्रु जैसे आचरण वाले मनुष्यों के (**भोजनानि**) भोगों के साधन धनधान्यों को (**आ खिद**) छीन ले ॥७॥

卐 सूक्तम् २३ 卐

१—७ मृगार । प्रचेता अग्निः । त्रिष्टुप् । ३ पुरस्ताज्ज्योतिष्मती, ४ अनुष्टुप्, ६ प्रस्तारपंक्ति ।

अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसः पाञ्चजन्यस्य बहुधा यमिन्धते ।

विशोविशः प्रविशिवांसमीमहे स नो मुञ्चत्वंहसः ॥१॥

पदार्थ—(**प्रथमस्य**) सबसे पहिले वर्तमान, (**प्रचेतस**) बड़े ज्ञान वाले (**पाञ्चजन्यस्य**) पांच भूतों से उत्पन्न मनुष्य आदि के हितकारक (**अग्ने**) सर्वव्यापक अग्नि, अर्थात् परमेश्वर का (**मन्वे**) मैं मनन करता हूँ, (**यम्**) जिसको [ऋषि लोग] (**बहुधा**) बहुत प्रकार से (**इन्धते**) प्रकाशित करते हैं। (**विशोविश**) सब प्रवेश स्थानों में (**प्रविविशिवांसम्**) प्रवेश करने वाले परमेश्वर को, (**ईमहे**) हम पहुँचते हैं। (**स**) वह (**न**) हमें (**अंहस**) पीड़ा से (**मुञ्चतु**) छुड़ावे ॥१॥

यथा हुव्यं वहसि जातवेदो यथा यज्ञं कुल्पयसि प्रजानन् ।
एवा देवेभ्यः सुमतिं नु आ वह स नो मुञ्चत्वंहसः ॥२॥

पदार्थ—(**जातवेद**) हे उत्पन्न पदार्थों के जानने वाले परमेश्वर ! (**यथा**) जिस प्रकार से (**हव्यम्**) देने वा खाने योग्य अन्न को (**वहसि**) तू पहुँचाता है, (**यथा**) जिस प्रकार से (**यज्ञम्**) पूजनीय कर्म को (**प्रजानन्**) अच्छे प्रकार जानता हुआ (**कल्पयसि**) तू रचता है। (**एव**) वैसे ही (**देवेभ्य**) दिव्य गुणों के लिये (**सुमतिम्**) सुमति (**न**) हमें (**आवह**) पहुँचा, (**स**) वह (**न**) हमें (**अंहस**) पीड़ा से (**मुञ्चतु**) छुड़ावे ॥२॥

यामन्यामन्नुपयुक्तं वहिष्ठं कर्मङ्कर्मन्नाभगम् ।
अग्निमीडे रक्षोहणं यज्ञवृधं घृताहुतं स नो मुञ्चत्वंहसः ॥३॥

पदार्थ—(**यामन् यामन्**) प्रत्येक गति वा उद्योग में (**उपयुक्तम्**) उपयोग किये, (**कर्मन् कर्मन्**) प्रत्येक कर्म में (**आभगम्**) अच्छे प्रकार से भक्ति योग्य, (**वहिष्ठम्**) अतिबली, (**रक्षोहणम्**) राक्षसों के हनन करने हारे, (**यज्ञवृधम्**) पूजनीय कर्म के बढ़ाने वाले, (**घृताहुतम्**) प्रकाश के भली भाँति देने वाले, (**अग्निम्**) सर्वज्ञ अग्नि, परमात्मा की (**ईडे**) मैं स्तुति करता हूँ। (**स**) वह (**न**) हमें (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतु**) छुड़ावे ॥३॥

सुजातं जातवेदसमग्निं वैश्वानरं विभुम् ।
हुव्यवाहं हवामहे स नो मुञ्चत्वंहसः ॥४॥

पदार्थ—(**सुजातम्**) बड़े प्रसिद्ध, (**जातवेदसम्**) उत्पन्न पदार्थों के जानने वाले अथवा धन प्राप्त कराने हारे (**वैश्वानरम्**) सब नरों [नायकों] के हित करने वाले, (**विभुम्**) सर्वशक्तिमान् (**हव्यवाहम्**) उत्तम अन्न पहुँचाने वाले (**अग्निम्**) सर्वव्यापक परमेश्वर को (**हवामहे**) हम पुकारते हैं, (**स**) वह (**न**) हमें (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतु**) छुड़ावे ॥४॥

येन ऋषयो बलमद्योतयन् युजा येनासुराणामयुवन्त मायाः ।
येनाग्निना पणीनिन्द्रो जिगाय स नो मुञ्चत्वंहसः ॥५॥

पदार्थ—(**येन**) जिस (**युजा**) मित्र परमेश्वर के साथ (**ऋषय**) ऋषि लोगों ने (**बलम्**) बल (**अद्योतयन्**) प्रकाशित किया है, और (**येन**) जिसके साथ (**असुराणाम्**) असुरों की (**माया**) मायाओं [छलों] को (**अयुवन्त**) हटाया है। और (**येन**) जिस (**अग्निना**) सर्वव्यापक परमेश्वर के साथ (**इन्द्र**) बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष ने (**पणीन्**) कुव्यवहारी मनुष्यों को (**जिगाय**) जीता है, (**स**) वह (**न**) हमें (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतु**) छुड़ावे ॥५॥

येन देवा अमृतमन्वविन्दन् येनौषधीर्मधुमतीरकृण्वन् ।
येन देवाः स्वरा॒भरन्त्स नो मुञ्चत्वंहसः ॥६॥

पदार्थ—(**येन**) जिसके द्वारा (**देवा**) विद्वान् देवताओं ने (**अमृतम्**) अमरपन [मृत्यु से छुटकारा अर्थात् मोक्ष वा कीर्ति] को (**अनु—अविन्दन्**) अनन्तर पाया है, और (**येन**) जिसके आश्रय से (**ओषधी**) यव आदि पदार्थों को (**मधुमती**) मधुर रस वाली (**अकृण्वन्**) बनाया है और (**येन**) जिसके द्वारा (**देवा**) देवताओं ने (**स्व**) स्वर्ग अर्थात् महा आनन्द (**आ आभरन्**) यथावत् धारण किया है, (**सः**) वह (**न**) हमें (**अंहसः**) कष्ट से (**मुञ्चतु**) छुड़ावे ॥६॥

यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते यज्जातं जनितव्यं च केवलम् ।
स्तौम्यग्निं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ॥७॥

पदार्थ—(**केवलम्**) केवल (**यस्य**) जिस परमेश्वर के (**प्रदिशि**) शासन में (**इदम्**) यह [जगत्] है अर्थात् (**यत्**) जो कुछ (**विरोचते**) चमकता है और (**यत्**) जो कुछ (**जातम्**) उत्पन्न हुआ है (**च**) और (**जनितव्यम्**) उत्पन्न होगा। (**नाथित**) मैं भक्त (**अग्निम्**) उस सर्वव्यापक परमेश्वर को (**स्तौमि**) सराहता हूँ और (**जोहवीमि**) बारबार पुकारता हूँ। (**स**) वह (**न**) हमें (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतु**) छुड़ावे ॥७॥

卐 सूक्तम् २४ 卐

१—७ मृगारः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्, १ शाक्वरीगर्भा पुरः शक्वरी ।

इन्द्रस्य मन्महे शश्वदिदस्य मन्महे वृत्रघ्न स्तोमा उप मेम आगुः ।
यो दाशुषः सुकृतो हवमेति स नो मुञ्चत्वंहसः ॥१॥

पदार्थ—(**इन्द्रस्य**) परम ऐश्वर्य वाले परमात्मा का (**मन्महे**) हम मनन करते हैं, (**शश्वत इत्**) सदा ही (**अस्य**) इस (**वृत्रघ्न**) शत्रुनाशक वा अन्धकार-निवारक का (**मन्महे**) हम मनन करते हैं। (**इमे**) ये (**स्तोमा**) स्तुति के ज्ञान (**मा**) मुझको (**उप आ अगु**) प्राप्त हुए हैं। (**य**) जो परमेश्वर (**दाशुष**) दानशील और (**सुकृत**) सुकर्मी पुरुष के (**हवम्**) आवाहन को (**एति**) प्राप्त होता है, (**स**) वह (**नः**) हमें (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतु**) छुड़ावे ॥१॥

य उग्रीणामुग्रबाहुर्ययुर्यो दानवानां बलमारुरोज ।
येन जिताः सिन्धवो येन गावः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥२॥

पदार्थ—(**य**) जो (**ययु**) शीघ्रगामी परमात्मा (**उग्रीणाम्**) प्रचण्ड सेनाओं की (**उग्रबाहु**) भुजाओं को प्रचण्ड करने वाला है, (**य**) जिसने (**दानवानाम्**) छेदनशील राक्षसों का (**बलम्**) बल (**आरुरोज**) तोड़ दिया है, (**येन**) जिस परमेश्वर करके (**सिन्धव**) जल और (**येन**) जिस करके (**गाव**) वायु, सूर्य, और भूलोक (**जिता**) जीते गये हैं, (**स**) वह (**न**) हमें (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतु**) छुड़ावे ॥२॥

यश्चर्षणिप्रो वृषभः स्वर्विद् यस्मै ग्रावाणः प्रवदन्ति नृम्णम् ।
यस्याध्वरः सुप्तहोता मदिष्ठः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥३॥

पदार्थ—(**य**) जो परमेश्वर (**चर्षणिप्र**) उद्योगी पुरुषों का मनोरथ पूरा करने वाला, (**वृषभ**) सुख की वर्षा करने वाला, श्रेष्ठ और (**स्वर्वित्**) स्वर्ग अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने हारा है। और (**यस्मै**) जिसके [आज्ञा पालन के] लिये (**ग्रावाण**) शास्त्रवेत्ता पण्डित जन (**नृम्णम्**) बल वा धन (**प्रवदन्ति**) बताते हैं। (**यस्य**) जिसका (**अध्वर**) सन्मार्गदर्शक वा हिंसारहित व्यवहार (**सप्तहोता**) सात होताओं से [अर्थात् विषयों के ग्रहण करने और देने वाले त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि से] साक्षात् किया हुआ (**मदिष्ठ**) अतिशय आनन्द-दायक है, (**स**) वह (**न**) हमें (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतु**) छुड़ावे ॥३॥

यस्य वृशास ऋषभास उक्षणो यस्मै मीयन्ते स्वरवः स्वर्विदे ।
यस्मै शुक्रः पवते ब्रह्मशुम्भितः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥४॥

पदार्थ—(**यस्य**) जिस परमेश्वर के (**वशास**) वशीभूत होकर (**ऋषभासः**) धर्म जानने वाले ऋषि लोग (**उक्षणः**) सुख की वर्षा करने वाले होते हैं, और (**यस्मै**) जिस (**स्वर्विदे**) सुख प्राप्त कराने वाले के लिये (**स्वरव**) जयस्तम्भ (**मीयन्ते**) गाड़े जाते हैं। (**यस्मै**) जिसके लिये (**ब्रह्मशुम्भित**) वेदों से कहा गया (**शुक्र**) निर्मल सोम रस [अमृत वा मोक्षानन्द] (**पवते**) शुद्ध किया जाता है। (**स**) वह (**न**) हमें (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतु**) छुड़ावे ॥४॥

यस्य जुष्टिं सोमिनः कामयन्ते यं हवन्त इषुमन्तं गविष्टौ ।
यस्मिन्नर्कः शिश्रिये यस्मिन्नोजः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥५॥

पदार्थ—(**सोमिनः**) सोम अर्थात् ऐश्वर्य वाले पुरुष (**यस्य**) जिस परमात्मा की (**जुष्टिम्**) प्रीति की (**कामयन्ते**) कामना करते हैं, (**यम्**) जिस (**इषुमन्तम्**) दृष्टि वाले परमात्मा को (**गविष्टौ**) वज्रों के दान स्थान, संग्राम में [शूर लोग] (**हवन्ते**) पुकारते हैं। (**यस्मिन्**) जिसमें (**अर्क**) अन्न और (**यस्मिन्**) जिसमें (**ओज**) पराक्रम (**शिश्रिये**) आश्रित हुआ है, (**स**) वह (**न**) हमें (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतु**) छुड़ावे ॥५॥

यः प्रथमः कर्मकृत्याय जज्ञे यस्य वीर्यं प्रथमस्यानुबुद्धम् ।
येनोद्यतो वज्रोऽभ्यायताहिं स नो मुञ्चत्वंहसः ॥६॥

पदार्थ—(**य**) जो (**प्रथम**) मुख्य परमात्मा (**कर्मकृत्याय**) कर्म करने वाले के हित के लिये (**जज्ञे**) प्रकट हुआ है, (**यस्य**) जिस (**प्रथमस्य**) श्रेष्ठ परमात्मा का (**वीर्यम्**) सामर्थ्य (**अनुबुद्धम्**) सर्वत्र जाना गया है। (**येन**) जिस परमात्मा करके (**उद्यत**) उठाये गये (**वज्र**) वज्र ने (**अहिम्**) हनन करने वाले शत्रु का (**अभ्यायत**) हनन कर दिया है, (**स**) वह (**न**) हमें (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतु**) छुड़ावे ॥६॥

यः संग्रामान् नयति सं युधे वशी यः पुष्टानि संसृजति द्वयानि ।
स्तौमीन्द्रं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ॥७॥

पदार्थ—(**यः**) जो (**वशी**) स्वतन्त्र परमात्मा (**संग्रामान्**) संग्राम करने वाले योद्धाओं को (**युधे**) युद्ध करने के लिये (**संनयति**) यथावत् ले चलता है, और (**य**) जो (**द्वयानि**) दो प्रकार की [शारीरिक और आत्मिक] (**पुष्टानि**) पुष्टियाँ (**संसृजति**) यथावत् देता है। (**नाथित**) मैं भक्त (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्य वाले परमात्मा को (**स्तौमि**) सराहता हूँ और (**जोहवीमि**) बारबार पुकारता हूँ। (**स**) वह (**न**) हमें (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतु**) छुड़ावे ॥७॥

卐 सूक्तम् २५ 卐

१—७ मृगार । सविता, वायु । त्रिष्टुप्, ३, अतिशक्वरी, ७ पथ्याबृहती ।

वायोः सवितुर्विदथानि मन्महे यावात्मन्वद् विशथो यौ च रक्षथः ।
यौ विश्वस्य परिभू बभूवथुस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥१॥

पदार्थ—(**वायो**) गतिशील वा दोषनाशक पवन के और (**सवितु**) सर्व-प्रेरक सूर्य के (**विदथानि**) कर्मों को (**मन्महे**) हम विचारते हैं । (**यौ**) जो तुम (**यौ**) गमनशील होकर (**आत्मन्वत्**) आत्मावाले जगत् मे (**विशथ**) प्रवेश करते हो (**च**) और (**रक्षथः**) रक्षा करते हो, (**यौ**) जो तुम दोनो (**विश्वस्य**) सब जग के (**परिभू**) सहारा देने वाले (**बभूवथु**) हुए हो, (**तौ**) तुम दोनो (**न**) हमे (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतम्**) छुडाओ ॥१॥

ययोः संख्याता वरिमा पार्थिवानि याभ्यां रजो युपितमन्तरिक्षे ।
ययोः प्रायं नान्वानशे कश्चन तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥२॥

पदार्थ—(**ययो**) जिन दोनो [वायु सूर्य] के (**संख्याता**) गिने हुए (**पार्थिवानि**) पृथिवी के (**वरिमा**) विस्तार है, (**याभ्याम्**) जिन दोनो करके (**अन्तरिक्षे**) आकाश मे (**रज**) जल वा जगत् (**युपितम्**) विमोहित किया गया [मेघ मण्डल मे ताडन शक्ति से रोका गया] है । (**ययो**) जिन दोनों की (**प्रायम्**) उत्तम गति को (**कश्चन**) कोई भी जीव (**न**) नही (**अन्वानशे**) पहुँचा है, (**तौ**) वे तुम दोनो (**न**) हमे (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतम्**) छुडाओ ॥२॥

तव व्रते निविशन्ते जनासस्त्वय्युदिते प्रेरते चित्रभानो ।
युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥३॥

पदार्थ—[हे वायु] (**तव**) तेरे (**व्रते**) वरणीय नियम मे (**जनास**) सब जने (**निविशन्ते**) प्रवेश होते है, और (**चित्रभानो**) हे विचित्र प्रकाश वाले सूर्य ! (**त्वयि उदिते**) तेरे उदय होने पर [कामो मे] (**प्रेरते**) लगते है, (**वायो**) हे वायु ! (**च**) और (**सविता**) हे सूर्य ! (**युवम्**) तुम दोनो (**भुवनानि**) सब प्राणियो को (**रक्षथ**) बचाते हो, (**तौ**) तुम दोनो (**न**) हमे (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतम्**) छुडाओ ॥३॥

अपेतो वायो सविता च दुष्कृतमप रक्षांसि शिमिदां च सेधतम् ।
सं ह्यू३र्जया सृजथः सं बलेन तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४॥

पदार्थ—(**वायो**) हे वायु (**च**) और (**सविता**) हे सूर्य ! तुम दोनो (**इत**) यहां से (**दुष्कृतम्**) मलिन काम को (**अप अप सेधतम्**) हटा दो, (**रक्षांसि**) निवारणीय रोगो (**च**) और (**शिमिदाम्**) कर्म छेदन करने हारी पीडा को (**अप सेधतम्**) निकाल दो । (**हि**) क्योकि (**ऊर्जया**) आत्मिक पुष्टि के साथ (**ससृजथ**) तुम दोनो मिलाते हो और (**बलेन**) शारीरिक बल के साथ (**सम् - ससृजथ**) तुम दोनो संयुक्त करते हो । (**तौ**) सो तुम दोनो (**न**) हमे (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतम्**) छुडाओ ॥४॥

रयिं मे पोषं सवितोत वायुस्तनू दक्षमा सुवतां सुशेवम् ।
अयक्ष्मतातिं मह इह धत्तं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥५॥

पदार्थ—(**सविता**) सूर्य (**उत**) और (**वायु**) पवन (**मे**) मेरे लिये (**तनू = तन्वाम्**) अपने शरीर मे वर्त्तमान (**सुशेवम्**) अति सुखदायक (**रयिम्**) धन, (**पोषम्**) पुष्टि और (**दक्षम्**) बल को (**आ सुवताम्**) भेजें । (**इह**) यहां पर (**अयक्ष्मतातिम्**) नीरोगता और (**मह**) तेज (**धत्तम्**) तुम दोनो दान करो, (**तौ**) सो तुम दोनो (**न**) हमे (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतम्**) छुडाओ ॥५॥

प्र सुमतिं सवितर्वाय ऊतये महस्वन्तं मत्सरं मादयाथः ।
अर्वाग् वामस्य प्रवतो नि यच्छतं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥६॥

पदार्थ—(**सवित**) हे सूर्य ! (**वायो**) हे वायु ! (**ऊतये**) हमारी रक्षा के लिये (**सुमतिम्**) सुमति और (**महस्वन्तम्**) तेज वाले (**मत्सरम्**) हर्ष को (**प्र**) अच्छे प्रकार (**मादयाथ**) तुम दोनो परिपूर्ण करो । (**अर्वाक्**) हमारे सन्मुख (**प्रवत**) बडाई वाले (**वामस्य**) धन का (**नि**) नियमपूर्वक (**यच्छतम्**) तुम दोनों दान करो । (**तौ**) सो तुम दोनो (**न**) हमे (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतम्**) छुडाओ ॥६॥

उप श्रेष्ठा न आशिषो देवयोर्धामन्नस्थिरन् ।
स्तौमि देवं सवितारं च वायुं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥७॥

पदार्थ—(**देवयो**) उन दोनो देवो की [--के लिये] (**श्रेष्ठा**) श्रेष्ठ (**आशिषः**) कामनाये (**न**) हमारे (**धामन्**) देह मे (**उप अस्थिरन्**) उपस्थित हुई हैं । (**देवम्**) दिव्य (**सवितारम्**) सूर्य (**च**) और (**वायुम्**) वायु की (**स्तौमि**) मैं स्तुति करता हूँ । (**तौ**) सो तुम दोनो (**न**) हमे (**अंहस.**) कष्ट से (**मुञ्चतम्**) छुडाओ ॥७॥

卐 इति पञ्चमोऽनुवाक 卐

卐

अथ षष्ठोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् २६ 卐

१—७ मृगार । द्यावापृथिवी । त्रिष्टुप्, १ अष्टिः, २—३जगती, ७ शाक्वरगर्भातिमध्ये ज्योति ।

मन्वे वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ सचेतसौ ये अप्रथेथाम् अमिता योजनानि । प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां ते नो मुञ्चतमंहसः ॥१॥

पदार्थ—(**सुभोजसौ**) हे उत्तम भोग देने वाली वा पालन करने वाली (**सचेतसौ**) समान ज्ञान कराने वाली (**द्यावापृथिवी**) सूर्य पृथिवी ! (**वाम्**) तुम दोनो को (**मन्वे**) मै मनन करता हूँ, (**ये**) जिन तुम दोनो ने (**अमिता**) अगणित (**योजनानि**) संयोग कर्मों को (**अप्रथेथाम्**) प्रसिद्ध किया है और (**हि**) अवश्य ही (**वसूनाम्**) धनो की (**प्रतिष्ठे**) आधार (**अभवतम्**) हुई हो, (**ते**) वे तुम दोनो (**न**) हमे (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतम्**) छुडाओ ॥१॥

प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां प्रवृद्धे देवी सुभगे उरूची ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥२॥

पदार्थ—(**प्रवृद्धे**) हे बडी वृद्धि वाली, (**देवी**) दिव्य स्वरूप (**सुभगे**) बडे ऐश्वर्य वाली, (**उरूची**) बहुत पदार्थ प्राप्त कराने वाली तुम दोनो (**हि**) ही (**वसूनाम्**) धनो की (**प्रतिष्ठे**) आधार (**अभवतम्**) हुई हो । (**द्यावापृथिवी**) हे सूर्य और पृथिवी तुम दोनो (**मे**) मेरे लिये (**स्योने**) सुखवती (**भवतम्**) होओ (**ते**) वे तुम दोनो (**न**) हमे (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतम्**) छुडाओ ॥२॥

असंतापे सुतपसौ हुवेऽहमुर्वी गम्भीरे कविभिर्नमस्ये ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥३॥

पदार्थ—(**सुतपसौ**) सुन्दर ताप रखने वाली, (**असंतापे**) संताप न देने वाली, (**उर्वी**) चौडी, (**गम्भीरे**) गहरी [शान्त स्वभाव वाली] (**कविभि**) विद्वानो से (**नमस्ये**) नमस्कार योग्य तुम दोनो को (**अहम्**) मै (**हुवे**) पुकारता हूँ । (**द्यावापृथिवी**) हे सूर्य और पृथिवी तुम दोनो (**मे**) मेरे लिये (**स्योने**) सुखवती (**भवतम्**) होओ । (**ते**) वे तुम दोनो (**न**) हमे (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतम्**) छुडाओ ॥३॥

ये अमृतं बिभृथो ये हवींषि ये स्रोत्या बिभृथो ये मनुष्यान् ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥४॥

पदार्थ—(**ये**) जो तुम दोनो (**अमृतम्**) मृत्यु से बचने के साधन और (**ये**) जो तुम (**हवींषि**) देने और ग्रहण करने योग्य अन्न आदि पदार्थों को (**बिभृथ.**) धारण करती हो, (**ये**) जो तुम दोनो (**स्रोत्या**) जल वा नदियों को और (**ये**) जो तुम दोनो (**मनुष्यान्**) मनुष्यो को (**बिभृथ**) धारण करती हो, (**द्यावापृथिवी**) हे सूर्य और पृथिवी, तुम दोनो (**मे**) मेरे लिये (**स्योने**) सुखवती (**भवतम्**) होओ । (**ते**) वे तुम दोनो (**न**) हमें (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतम्**) छुडाओ ॥४॥

ये उस्रिया बिभृथो ये वनस्पतीन् ययोर्वां विश्वा भुवनान्यन्तः ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥५॥

पदार्थ—(**ये**) जो तुम दोनो (**उस्रिया**) गौओ को और (**ये**) जो तुम दोनो (**वनस्पतीन्**) वनस्पतियो को (**बिभृथ**) धारण करती हो, (**ययोः वाम्**) जिन तुम दोनो के (**अन्त**) भीतर (**विश्वा**) सब (**भुवनानि**) लोक हैं । (**द्यावापृथिवी**) हे सूर्य और पृथिवी तुम दोनो (**मे**) मेरे लिये (**स्योने**) सुखवती (**भवतम्**) होओ । (**ते**) वे तुम दोनो (**न**) हमे (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतम्**) छुडाओ ॥५॥

ये कीलालेन तर्पयथो ये घृतेन याभ्यामृते न किंचन शक्नुवन्ति ।
द्यावापृथि_ी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥६॥

पदार्थ—(**ये**) जो तुम दोनो (**कीलालेन**) जाठराग्नि के निवारण करने वाले अन्न से, और (**ये**) जो तुम दोनो (**घृतेन**) जल से (**तर्पयथ**) तृप्त करती हो, (**याभ्याम् ऋते**) जिन तुम दोनो के बिना [सब प्राणी] (**किम् चन**) कुछ भी (**न**) नही (**शक्नुवन्ति**) शक्ति रखते हैं । (**द्यावापृथिवी**) हे सूर्य और पृथिवी (**मे**) मेरे लिये (**स्योने**) सुखवती (**भवतम्**) हो । (**ते**) वे तुम दोनों (**नः**) हमे (**अंहसः**) कष्ट से (**मुञ्चतम्**) छुडाओ ॥६॥

यन्मेदमभिशोचति येनयेन वा कृतं पौरुषेयान्न दैवात् ।

स्तौमि द्यावापृथिवी नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चतमंहसः ।।७।।

पदार्थ—(येन येन) जिस किसी कारण से (पौरुषेयात्) पुरुष [इस शरीर] से किया हुआ (वा) अथवा (दैवात्) दैव [प्रारब्ध, पूर्वजन्म] के फल से प्राप्त हुआ (यत्) जो (इदम्) यह (कृतम्) कर्म (न) इस समय (मा) मुझको (अभिशोचति) शोक मे डालता है। [इसलिये] (नाथित) मैं अधीन होकर (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी को (स्तौमि) सराहता हूँ और (जोहवीमि) वारवार पुकारता हूँ। (ते) वे तुम दोनो (न.) हमे (अहस.) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुडाओ ।।७।।

卐 सूक्तम् २७ 卐

१—७ मृगारः । मरुत । त्रिष्टुप् ।

मरुतां मन्वे अधि मे ब्रुवन्तु प्रेमं वाजं वाजसाते अवन्तु ।

आशूनिव सुयमानह्व ऊतये ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।१।।

पदार्थ—(मरुताम्) दोष नाशक वायुओं का (मन्वे) मैं मनन करता हूँ। (मे) मेरे लिये (अधि) अनुग्रह से (ब्रुवन्तु) बोलें और (इमम्) इस (वाजम्) बल को (वाजसाते) अन्न के सुख वा दान के निमित्त (प्र) अच्छे प्रकार (अवन्तु) तृप्त करें। (आशून् इव) शीघ्रगामी घोडो के समान (सुयमान्) उन सुन्दर नियम वालो को (ऊतये) अपनी रक्षा के लिये (अह्वे) मैने पुकारा है। (ते) वे (न) हमें (अंहस) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुडावें ।।१।।

उत्समक्षितं व्यचन्ति ये सदा य आसिञ्चन्ति रसमोषधीषु ।

पुरो दधे मरुतः पृश्निमातॄंस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।२।।

पदार्थ—(ये) जो [मरुत् देवता] (सदा) सदा (अक्षितम्) अक्षय (उत्सम्) सींचने वाले जल को (व्यचन्ति) विविध प्रकार से पहुँचाते हैं, और (ये) जो (रसम्) रस को (ओषधीषु) अन्न आदि ओषधियो में (आसिञ्चन्ति) सींच देते है। (पृश्निमातॄन्) छूने योग्य पदार्थों को वा आकाश के नापने वाले (मरुत) उन वायु देवताओं को (पुरो दधे) मैं सन्मुख रखता हूँ। (ते) वे (न) हमे (अंहस.) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुडावें ।।२।।

पयो धेनूनां रसमोषधीनां जवमर्वतां कवयो य इन्वथ ।

शग्मा भवन्तु मरुतो नः स्योनास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।३।।

पदार्थ—(ये) जो तुम (कवय) चलने फिरने वाले अथवा सुखाने वाले [मरुत् देवता] (धेनूनाम्) गौओ का (पय) दूध, (ओषधीनाम्) अन्न आदि ओषधियो का (रसम्) रस और (अर्वताम्) घोडो का (जवम्) वेग (इन्वथ) भर देते हो। (शग्मा) शक्ति वाले (मरुत) वे आप दोषनाशक वायुगण (न) हमारे लिये (स्योना.) सुखदायक (भवन्तु) होवें। (ते) वे (न) हमे (अहस) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुडावें ।।३।।

अपः समुद्राद् दिवमुद्वहन्ति दिवस्पृथिवीमभि ये सृजन्ति ।

ये अद्भिरीशाना मरुतश्चरन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।४।।

पदार्थ—(ये) जो [वायुगण] (अप) जल को (समुद्रात्) पार्थिव समुद्र से (दिवम्) आकाश मे (उद्वहन्ति) उठाकर पहुँचाते है और (दिव) आकाश से (पृथिवीम् अभि) पृथिवी पर (सृजन्ति) छोड देते है। और (ये) जो (ईशाना) समर्थ (मरुत) वायुगण (अद्भि) जल के साथ (चरन्ति) चलते रहते हैं। (ते) वे (न) हमे (अहस) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुडावें ।।४।।

ये कीलालेन तर्पयन्ति ये घृतेन ये वा वयो मेदसा संसृजन्ति ।

ये अद्भिरीशाना मरुतो वर्षयन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।५।।

पदार्थ—(ये) जो [मरुत्गण] (वय) जीवन का (कीलालेन) अन्न से और (ये) जो (घृतेन) जल से (तर्पयन्ति) तृप्त करते है, (वा) और (ये) जो (मेदसा) मेदा अर्थात् चर्बी से (संसृजन्ति) सयुक्त करते है। और (ये) जो (ईशाना) समर्थ (मरुत) वायुगण (अद्भि) जल से [प्राणियो को] (वर्षयन्ति) सींचते हैं। (ते) वे (नः) हमे (अहस) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुडावें ।।५।।

यदीदिदं मरुतो मारुतेन यदि देवा दैव्येनेदृगार ।

यूयमीशिध्वे वसवस्तस्य निष्कृतेस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।६।।

पदार्थ—(देवा.) हे विजयशील (मरुत) दोषनाशक वायुगण ! (यदि) यत्नशील (इदम्) चलता हुआ जगत् (इत्) निश्चय करके [तुम्हारे] (मारुतेन) दोषनाशक धर्म से और (दैव्येन) दिव्यपन से (ईदृक्) ऐसा (यदि) यत्नशील (आर) प्राप्त हुआ है। (वसव) हे निवास कराने वाले ! (यूयम्) तुम (तस्य) उस जगत् के (निष्कृते) उद्धार के (ईशिध्वे) समर्थ होते हो। (ते) वे (न) हमे (अंहस.) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुडावें ।।६।।

तिग्ममनीकं विदितं सहस्वन्मारुतं शर्धः पृतनासूग्रम् ।

स्तौमि मरुतो नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।७।।

पदार्थ—(मारुतम्) दोषनाशक वायु गणो का (अनीकम्) सेनादल और (शर्ध) बल (पृतनासु) सग्रामो मे (तिग्मम्) तीक्ष्ण, (सहस्वत्) बडा साहसी और (उग्रम्) बडा प्रचण्ड (विदितम्) विदित है। (नाथित) अधीन मैं (मरुत) वायु गणो को (स्तौमि) सराहता हूँ और (जोहवीमि) वारवार पुकारता हूँ। (ते) वे (न) हमे (अहस) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुडावें ।।७।।

卐 सूक्तम् २८ 卐

१—७ मृगारो अथर्वा वा । भवाशर्वौ रुद्रो वा । त्रिष्टुप्, १ अतिजागतगर्भा भुरिक् ।

भवाशर्वौ मन्वे वां तस्य वित्तं ययोर्वामिदं प्रदिशि यद् विरोचते ।

यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ।।१।।

पदार्थ—(भवाशर्वौ) हे सुख उत्पन्न करने वाले और शत्रु नाशक [परमेश्वर के गुणो !] (वाम्) तुम दोनो का (मन्वे) मैं मनन करता हूँ। (तस्य) उस [जगत्] का (वित्तम्) वे तुम दोनो ज्ञान रखते हो, (ययो वाम्) जिन तुम दोनों के (प्रदिशि) शासन मे (इदम्) यह (यत्) जो कुछ जगत् (विरोचते) प्रकाशमान है। (यौ) जो तुम दोनो (अस्य) इस (द्विपद) दोपाये समूह के और (यौ) जो तुम दोनो (चतुष्पद) चौपाय ससार के (ईशाथे) ईश्वर हो, (तौ) वे तुम दोनो (न) हमें (अंहस) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुडावें ।।१।।

ययोरभ्यध्व उत यद् दूरे चिद् यौ विदिताविषुभृतामसिष्ठौ ।

यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ।।२।।

पदार्थ—(ययो) जिन दोनो का [वह सब है] (यत् चित्) जो कुछ (अभ्यध्वे) समीप मे (उत) और (दूरे) दूर देश मे है। (यौ) जो तुम दोनो (इषुभृताम्) हिंसाकारियों के (असिष्ठौ) अत्यन्त गिराने वाले (विदितौ) विदित हो। (यौ) जो तुम दोनो (अस्य) इस (द्विपद) दोपाये समूह के और (यौ) जो तुम दोनो (चतुष्पद) चौपाये ससार के (ईशाथे) ईश्वर हो, (तौ) वे तुम दोनो (न) हमें (अहस) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुडावें ।।२।।

सहस्राक्षौ वृत्रहणा हुवेऽहं दूरेगव्यूती स्तुवन्नेम्युग्रौ ।

यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ।।३।।

पदार्थ—(अहम्) मैं (स्तुवन्) स्तुति करता हुआ (उग्रौ) उग्र स्वभाव वाले, (सहस्राक्षौ) सहस्रो व्यवहारो मे व्यापक रहने वाले या दृष्टि रखने वाले, (वृत्रहणा ०—णौ) शत्रुओ वा अन्धकार के नाश करने वाले, (दूरेगव्यूती) दूर तक प्रकाश का सयोग रखने वाले, दोनो को (हुवे) मैं पुकारता हूँ और (एमि) प्राप्त होता हू। (यौ) जो तुम दोनो (अस्य) इस (द्विपद) दोपाये समूह के और (यौ) जो तुम दोनो (चतुष्पद) चौपाये ससार के (ईशाथे) ईश्वर हो, (तौ) वे तुम दोनो (न) हमें (अहस) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुडावें ।।३।।

यावारेभाथे बहु साकमग्रे प्र चेदस्राष्ट्रमभिभां जनेषु ।

यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ।।४।।

पदार्थ—(यौ) जिन तुम दोनो ने (बहु) बहुत-सा जगत् (साकम्) एक साथ (अग्रे) पूर्वकाल मे (आरेभाथे) प्रारम्भ किया (च) और जिन तुम दोनों ने (इत्) ही (जनेषु) प्राणियो मे (अभिभाम्) प्रतिभा अर्थात् बुद्धि को (प्र अस्राष्ट्रम्) अच्छे प्रकार उत्पन्न किया। (यौ) जो तुम दोनो (अस्य) इस (द्विपद.) दोपाय समूह के और (यौ) जो तुम दोनो (चतुष्पद.) चौपाये ससार के (ईशाथे) ईश्वर हो, (तौ) वे तुम दोनो (न) हमे (अहस) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुडावें ।।४।।

ययोर्वधान्नापपद्यते कश्चनान्तर्देवेषूत मानुषेषु ।

यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ।।५।।

पदार्थ—(ययो) जिन तुम दोनो के (वधात्) हनन सामर्थ्य से (देवेषु) प्रकाशमान सूर्य आदि लोको (उत) और (मानुषेषु अन्त) मनुष्यो के बीच (कश्चन) कोई भी (न) नही (अपपद्यते) छूटकर जाता है। (यौ) जो तुम दोनो (अस्य) इस (द्विपद.) दोपाये समूह के और (यौ) जो तुम दोनो (चतुष्पद) चौपाये ससार के (ईशाथे) ईश्वर हो, (तौ) वे तुम दानो (न) हमे (अहस) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुडावें ।।५।।

यः कृत्याकृन्मूलकृद् यातुधानो नि तस्मिन् धत्तं वज्रमुग्रौ ।

यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ।।६।।

पदार्थ—(**य**) जो (**कृत्याकृत्**) हिंसाकारी, (**मूलकृत्**) मूल कतरने वाला और (**यातुधान**) पीड़ा देने वाला पुरुष है, (**तस्मिन्**) उस पर (**उग्रौ**) हे उग्र स्वभाव वाले तुम दोनो (**वज्रम्**) वज्र (**नियत्तम्**) गिराओ। (**यौ**) जो तुम दोनो (**अस्य**) इस (**द्विपद**) दोपाये समूह के और (**यौ**) जो तुम दोनो (**चतुष्पद**) चौपाये संसार के (**ईशाथे**) ईश्वर हो, (**तौ**) वे तुम दोनो (**न**) हमें (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतम्**) छुड़ाओ ॥६॥

अधि नो ब्रूतं पृतनासूग्रौ सवज्रेण सृजतं यः किमीदी।

स्तौमि भवाशर्वौ नाथितो जोहवीमि तौ नौ मुञ्चतमंहसः ॥७॥

पदार्थ—(**उग्रौ**) हे उग्र स्वभाव वाले तुम दोनो (**न**) हमसे (**पृतनासु**) संग्रामो में (**अधि**) अनुग्रह से (**ब्रूतम्**) बोलो और [उसको] (**वज्रेण**) वज्र के साथ (**सम् सृजतम्**) संयुक्त करो (**य**) जो (**किमीदी**) अब क्या हो रहा है, यह क्या हो रहा है, ऐसा खोजने वाला लुतरा पुरुष है, (**नाथित**) मैं अधीन होकर (**भवाशर्वौ**) सुख उत्पन्न करने वाले और शत्रु नाश करने वाले तुम दोनो को (**स्तौमि**) सराहता हूँ और (**जोहवीमि**) वारंवार पुकारता हूँ। (**तौ**) वे तुम दोनो (**न**) हमें (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतम्**) छुड़ाओ ॥७॥

卐 सूक्तम् २९ 卐

१—७ मृगार । द्यावापृथिवी । त्रिष्टुप्, १ अष्टि, २—३ जगती, ७ शाक्वरगर्भातिमध्येज्योति ।

मन्वे वां मित्रावरुणावृतावृधौ सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे।

प्र सत्यावानमवथो भरेषु तौ नौ मुञ्चतमंहसः ॥१॥

पदार्थ—(**ऋतावृधौ**) हे सत्य के बढ़ाने वाले (**सचेतसौ**) समान ज्ञान कराने हारे (**मित्रावरुणौ**) मित्र और वरुण [प्राण और अपान अथवा दिन और रात] (**वाम्**) तुम दोनो का (**मन्वे**) मैं मनन करता हूँ, (**यौ**) जो तुम दोनो (**द्रुह्वण**) द्रोहकारियों को (**नुदेथे**) निकाल देते हो और (**सत्यावानम्**) सत्यवान् पुरुष को (**भरेषु**) संग्रामो में (**प्र**) अच्छे प्रकार (**अवथ**) बचाते हो। (**तौ**) वे तुम दोनो (**न**) हमें (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतम्**) छुड़ाओ ॥१॥

सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे प्र सत्यावानमवथो भरेषु।

यौ गच्छथो नृचक्षसौ बभ्रुणा सुतं तौ नौ मुञ्चतमंहसः ॥२॥

पदार्थ—(**सचेतसौ**) हे समान ज्ञान कराने वाले ! (**यौ**) जो तुम दोनों (**द्रुह्वण**) उपद्रवियों को (**नुदेथे**) निकाल देते हो और (**सत्यावानम्**) सत्यवान् पुरुष को (**भरेषु**) संग्रामो में (**प्र**) अच्छे प्रकार (**अवथ**) बचाते हो। (**नृचक्षसौ**) मनुष्यों के देखने वाले (**यौ**) जो तुम दोनो (**बभ्रुणा**) पोषण के साथ (**सुतम्**) उत्पन्न जगत् वा पराक्रमी वा पुत्र समान सेवक पुरुष को (**गच्छथ**) प्राप्त होते हो। (**तौ**) वे तुम दोनो (**न**) हमें (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतम्**) छुड़ाओ ॥२॥

यावङ्गिरसमवथो यावगस्तिं मित्रावरुणा जमदग्निमत्रिम्।

यौ कश्यपमवथो यौ वसिष्ठं तौ नौ मुञ्चतमंहसः ॥३॥

पदार्थ—(**यौ**) जो (**मित्रावरुणा**) मित्र और वरुण तुम दोनो (**अङ्गिरसम्**) उद्योगी वा ज्ञानी पुरुष को और (**यौ**) जो तुम दोनो (**अगस्तिम्**) वक्रगति पाप के गिरा देने वाले, (**जमदग्निम्**) [यज्ञ वा शिल्प सिद्धि में] प्रकाशमान अग्नि वाले और (**अत्रिम्**) दोष के नाश करने वाले, यद्वा निरन्तर गतिशील, यद्वा कायिक, वाचिक और मानसिक तीन दोषरहित महात्मा को (**अवथ**) बचाते हो। (**यौ**) जो तुम दोनो (**कश्यपम्**) सोमरस पीने वाले वा सूक्ष्मदर्शी पुरुष को और (**यौ**) जो तुम दोनों (**वसिष्ठम्**) बड़े धनी और बड़े श्रेष्ठ जन को (**अवथ**) बचाते हो। (**तौ**) वे तुम दोनो (**न**) हमें (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतम्**) छुड़ाओ ॥३॥

यौ श्यावाश्वमवथो वध्र्यश्वं मित्रावरुणा पुरुमीढमत्रिम्।

यौ विमदमवथः सप्तवध्रिं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४॥

पदार्थ—(**यौ**) जो (**मित्रावरुणा**) मित्र और वरुण तुम दोनो (**श्यावाश्वम्**) ज्ञान में व्याप्ति रखने वाले को, (**वध्र्यश्वम्**) मित भोजन करने वाले को, (**पुरुमीढम्**) बड़े धनी को और (**अत्रिम्**) नित्य उद्योगी को (**अवथ**) बचाते हो। (**यौ**) जो तुम दोनो (**विमदम्**) मदरहित वा अदीन पुरुष को और (**सप्तवध्रिम्**) [पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि इन] सात को संयम में रखने वाले पुरुष को (**अवथ**) बचाते हो। (**तौ**) वे तुम दोनो (**न**) हमें (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतम्**) छुड़ाओ ॥४॥

यौ भरद्वाजमवथो यौ गविष्ठिरं विश्वामित्रं वरुण मित्र कुत्सम्।

यौ कक्षीवन्तमवथः प्रोत कण्वं तौ नौ मुञ्चतमंहसः ॥५॥

पदार्थ—(**यौ**) जो (**मित्र वरुण**) मित्र और वरुण तुम दोनो (**भरद्वाजम्**) अन्न वा बल, वा ज्ञान के धारण करने वाले को, (**यौ**) जो तुम (**गविष्ठिरम्**) वेद वाणी में स्थिर को, (**विश्वामित्रम्**) सब के मित्र को, वा सब हैं मित्र जिसके उसको, और (**कुत्सम्**) संगतिशील वा दोषों के कतरने वाले को (**अवथ**) बचाते हो, (**यौ**) जो तुम दोनो (**कक्षीवन्तम्**) उद्योगी वा शासनशील (**उत**) और (**कण्वम्**) स्तुति करने वाले मेधावी पुरुष को (**प्र**) अच्छे प्रकार (**अवथ**) बचाते हो। (**तौ**) वे तुम दोनो (**न**) हमें (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतम्**) छुड़ाओ ॥५॥

यौ मेधातिथिमवथो यौ त्रिशोकं मित्रावरुणावुशनां काव्यं यौ।

यौ गोतममवथः प्रोत मुद्गलं तौ नौ मुञ्चतमंहसः ॥६॥

पदार्थ—(**यौ**) जो (**मित्रावरुणौ**) दिन रात वा प्राण और अपान तुम दोनो ! (**मेधातिथिम्**) धारणावती बुद्धि के नित्य प्राप्त करने वाले को और (**यौ**) जो तुम दोनो (**त्रिशोकम्**) कायिक, वाचिक, और मानसिक तीन दोषों पर शोक करने वाले को, और (**यौ**) जो तुम दोनो (**उशनाम्**) कामनायोग्य नीति को और (**काव्यम्**) बुद्धिमानों के कर्म को (**अवथ**) बचाते हो। (**यौ**) जो तुम दोनों (**गोतमम्**) अतिशय स्तुति करने वाले वा विद्या की कामना करने वाले को (**उत**) और (**मुद्गलम्**) मोद अर्थात् हर्ष देने वाले को (**प्र**) अच्छे प्रकार (**अवथ**) बचाते हो, (**तौ**) वे तुम दोनो (**न**) हमें (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतम्**) छुड़ाओ ॥६॥

ययो रथः सत्यवर्त्मर्जुरश्मिर्मिथुया चरन्तमभियाति दूषयन्।

स्तौमि मित्रावरुणौ नाथितो जोहवीमि तौ नौ मुञ्चतमंहसः ॥७॥

पदार्थ—(**ययो**) जिन दोनो का (**सत्यवर्त्मा**) सत्यमार्ग वाला, (**ऋजुरश्मिः**) सरल व्याप्ति वा डोरी वाला (**रथ**) रथ (**मिथुया**) हिंसा के साथ (**चरन्तम्**) चलने हुए पुरुष को (**दूषयन्**) सताता हुआ (**अभियाति**) चढ़ाई करता है। (**नाथित**) मैं अधीन होकर (**मित्रावरुणौ**) दिन रात वा प्राण अपान को (**स्तौमि**) सराहता हूँ और (**जोहवीमि**) वारंवार पुकारता हूँ। (**तौ**) वे तुम दोनो (**न**) हमें (**अंहस**) कष्ट से (**मुञ्चतम्**) छुड़ाओ ॥७॥

卐 सूक्तम् ३० 卐

१—८ अथर्वा । सर्वरूपा सर्वात्मिका सर्वदेवमयी वाक् । त्रिष्टुप्, ६ जगती ।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।

अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१॥

पदार्थ—(**अहम्**) मैं [परमेश्वर] (**रुद्रेभिः**) ज्ञानदाताओं वा दुःखनाशकों (**वसुभिः**) निवास कराने वाले पुरुषों के साथ (**उत**) और (**अहम्**) मैं ही (**विश्वदेवैः**) सब दिव्य गुण वाले (**आदित्यैः**) प्रकाशमान अथवा अदीन प्रकृति से उत्पन्न हुए सूर्य आदि लोकों के साथ (**चरामि**) चलता हूँ। (**अहम्**) मैं (**उभा**) दोनो (**मित्रावरुणा**) दिन और रात को, (**अहम्**) मैं (**इन्द्राग्नी**) पवन और अग्नि को (**अहम्**) मैं ही (**उभा**) दोनो (**अश्विना**) सूर्य और पृथिवी को (**बिभर्मि**) धारण करता हूँ ॥१॥

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।

तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तः ॥२॥

पदार्थ—(**अहम्**) मैं (**वसूनाम्**) धनों की (**संगमनी**) पहुँचाने वाली और (**यज्ञियानाम्**) संगति योग्य पूजनीय विषयों की (**चिकितुषी**) जानने वाली (**प्रथमा**) पहिली (**राष्ट्री**) नियम करने वाली शक्ति हूँ। (**देवा**) विद्वानों ने (**पुरुत्रा**) बहुत प्रकारों से (**भूरिस्थात्राम्**) अनेक पदार्थों में ठहरी हुई (**ताम् मा**) उस मुझको (**भूरि**) अनेक विधि से (**आवेशयन्तः**) [अपने आत्मा में] प्रवेश कराके (**व्यदधुः**) विविध प्रकार धारण किया है ॥२॥

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम्।

यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥३॥

पदार्थ—(**अहम्**) मैं (**एव**) ही (**स्वयं**) आप (**देवानाम्**) सूर्य आदि लोकों (**उत**) और (**मानुषाणाम्**) मननशील मनुष्यों का (**जुष्टम्**) प्रिय (**इदम्**) यह वचन (**वदामि**) कहता हूँ। [अर्थात्] (**यम्**) जिस जिसको (**कामये**) मैं चाहता हूँ (**तम्-तम्**) उस उस को ही [कर्मानुसार] (**उग्रम्**) तेजस्वी, (**तम्**) उसको ही (**ब्रह्माणम्**) वृद्धिशील ब्रह्मा, (**तम्**) उसी को (**ऋषिम्**) सन्मार्गदर्शक ऋषि, (**तम्**) उसी को (**सुमेधाम्**=०—धम्) उत्तम बुद्धि वाला (**कृणोमि**) बनाता हूँ ॥३॥

मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।

अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धेयं ते वदामि ॥४॥

पदार्थ—(**मया**) मेरे द्वारा ही (**स**) वह (**अन्नम्**) अन्न (**अत्ति**) खाता है (**य**) जो कोई (**विपश्यति**) विशेष करके देखता है, (**यः**) जो (**प्राणिति**) श्वास लेता है और (**य**) जो (**ईम्**) यह (**उक्तम्**) वचन (**शृणोति**) सुनता है। (**माम्**) मुझे (**अमन्तवः**) न जानने वाले (**ते**) वे पुरुष (**उप**) हीन होकर (**क्षियन्ति**) नष्ट हो जाते हैं। (**श्रुत**) हे सुनने में समर्थ जीव ! (**श्रुधि**) तू सुन, (**ते**) तुझसे (**श्रद्धेयम्**) आदर योग्य सत्य (**वदामि**) बताता हूँ ॥४॥

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।

अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥५॥

पदार्थ—(**अहम्**) मैं (**रुद्राय**) दुःखनाशक शूर के लिये (**ब्रह्मद्विषे**) ब्राह्मणों के द्वेषी (**शरवे**) हिंसक के (**हन्तवै**) मारने को (**उ**) ही (**धनुः**) धनुष (**आ तनोमि**) सब ओर से तानता हूं । (**अहम्**) मैं (**जनाय**) भक्त जन के लिये (**समदम्**) आनन्दयुक्त [जगत्] (**कृणोमि**) करता हूं । (**अहम्**) मैंने (**द्यावापृथिवी**) सूर्य और पृथिवी लोक में (**आ**) सब ओर से (**विवेश**) प्रवेश किया है ॥५॥

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।

अहं दधामि द्रविणा हविष्मते सुप्राव्या३ यजमानाय सुन्वते ॥६॥

पदार्थ—(**अहम्**) मैं (**आहनसम्**) प्राप्तियोग्य (**सोमम्**) ऐश्वर्य को (**अहम्**) मैं (**त्वष्टारम्**) रसों के छिन्न भिन्न करने हारे सूर्य को (**उत**) और (**पूषणम्**) पोषण करने हारी पृथिवी को और (**भगम्**) सेवनीय चन्द्रमा को (**बिभर्मि**) धारण करता हूं । (**अहम्**) मैं (**हविष्मते**) भक्ति रखने वाले, (**सुन्वते**) विद्या रस का निचोड़ करने हारे (**यजमानाय**) देवताओं की पूजा वा संगति करने हारे पुरुष को (**सु प्राव्या — ०—णि**) सुन्दर सुन्दर रक्षा योग्य (**द्रविणा**) अनेक धन (**दधामि**) देता हूं ॥६॥

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्व१न्तः समुद्रे ।

ततो वि तिष्ठे भुवनानि विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ॥७॥

पदार्थ—(**अहम्**) मैं (**अस्य**) इस जगत् के (**मूर्धन्**) नियम के निमित्त (**पितरम्**) पालन करने वाले गुण को (**सुवे**) उत्पन्न करता हूं । (**मम**) मेरा (**योनिः**) घर (**समुद्रे**) अन्तरिक्ष में वर्तमान (**अप्सु अन्तः**) व्यापनशील रचनाओं के भीतर है, (**ततः**) इसी से (**विश्वा**) सब (**भुवनानि**) प्राणियों में (**वितिष्ठे**) व्यापक होकर वर्तमान हूं (**उत**) और (**अमूम् द्याम्**) उस प्रकाशमान सूर्य को (**वर्ष्मणा**) अपने ऐश्वर्य से (**उप स्पृशामि**) छूता रहता हूं ॥७॥

अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।

परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिम्ना सं बभूव ॥८॥

पदार्थ—(**अहम् एव**) मैं ही (**विश्वा**) सब (**भुवनानि**) प्राणियों को (**आरभमाणा — आलभमाना**) छूती हुई शक्ति (**वातः इव**) पवन के समान (**प्रवामि**) चलती रहती हूं । (**दिवा**) सूर्य लोक से (**परः**) परे और (**एना**) (**पृथिव्या**) इस पृथिवी से (**परः**) परे [वर्तमान होकर] (**एतावती**) इतनी बड़ी शक्ति (**महिम्ना**) अपनी महिमा से (**सम्बभूव**) हो गई हूं ॥८॥

卐 इति षष्ठोऽनुवाकः 卐

卐

अथ सप्तमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ३१ 卐

१—७ ब्रह्मास्कन्द । मन्यु । त्रिष्टुप्; २—४ भुरिक्, ५—७ जगती ।

त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणा हृषितासो मरुत्वन् ।

तिग्मेषव आयुधा संशिशाना उप प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः ॥१॥

पदार्थ—(**मरुत्वन्**) हे शूरवीरता वाले (**मन्यो**) क्रोध ! (**त्वया**) तेरे साथ (**सरथम्**) एक रथ पर चढ़ कर [शत्रुओं को] (**आरुजन्तः**) तोड़ते फोड़ते हुए, (**हर्षमाणाः**) हर्ष मानते हुए, (**हृषितासः**) सन्तुष्ट मन, (**तिग्मेषवः**) तीक्ष्ण बाणों वाले, (**आयुधा**) शस्त्रों को (**संशिशानाः**) तीक्ष्ण करते हुए, (**अग्निरूपाः**) अग्निरूप [अग्नि तुल्य प्रचण्ड कर्मों वाले, अथवा सन्नद्ध कवच पहिने हुए] (**नरः**) हमारे नर [मुखिया लोग] (**उप प्र यन्तु**) व्यापकर चढ़ाई करें ॥१॥

अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि ।

हत्वाय शत्रून् वि भजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व ॥२॥

पदार्थ—(**मन्यो**) हे क्रोध ! (**अग्निः इव**) अग्नि के समान (**त्विषितः**) प्रज्वलित होकर (**सहस्व**) समर्थ हो । (**सहुरे**) हे प्रबल ! (**हूतः**) आवाहन किया हुआ तू (**नः**) हमारा (**सेनानीः**) सेनापति (**एधि**) हो । (**शत्रून्**) शत्रुओं को (**हत्वाय**) मारकर (**वेदः**) उनका धन (**वि भजस्व**) बांट दे, और (**ओजः**) बल (**मिमानः**) दिखाता हुआ तू (**मृधः**) हिंसक लोगों को (**वि नुदस्व**) इधर उधर फेंक दे ॥२॥

सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मै रुजन् मृणन् प्रमृणन् प्रेहि शत्रून् ।

उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे वशी वशं नयासा एकज त्वम् ॥३॥

पदार्थ—(**मन्यो**) हे क्रोध (**अस्मै**) इस पुरुष के लिये (**अभिमातिम्**) अभिमानी शत्रु को (**सहस्व**) दबा दे, और (**शत्रून्**) वैरियों को (**रुजन्**) तोड़ता हुआ, (**मृणन्**) मारता हुआ, (**प्रमृणन्**) कुचलता हुआ (**प्रेहि**) चढ़ाई कर । (**ते**) तेरे (**उग्रम्**) उग्र (**पाजः**) बल को (**ननु**) कभी नहीं (**आ रुरुध्रे**) वे रोक सकें । (**एकज**) हे एक [परमात्मा] से उत्पन्न हुए (**वशी**) बलवान् (**त्वम्**) तू [उनको] (**वशम्**) वश में (**नयासै**) ले आ ॥३॥

एको बहूनामसि मन्य ईडिता विशंविशं युद्धाय सं शिशाधि ।

अकृत्तरुक् त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्मसि ॥४॥

पदार्थ—(**मन्यो**) हे क्रोध ! (**एकः**) अकेला ही तू (**बहूनाम्**) बहुत से शूरों का (**ईडिता**) सत्कार करने वाला (**असि**) है । (**विशंविशम्**) प्रत्येक प्रजा वा मनुष्य को (**युद्धाय**) युद्ध के लिये (**सम्**) यथावत् (**शिशाधि**) शिक्षा दे वा तीक्ष्ण कर । (**अकृत्तरुक्**) हे पूर्ण कान्तिवाले ! (**त्वया युजा**) तुझ मित्र के साथ (**वयम्**) हम लोग (**द्युमन्तम्**) हर्षयुक्त (**घोषम्**) ध्वनि [सिंहनाद वा मारू गीत] (**विजयाय**) विजय के लिये (**कृण्मसि**) करते हैं ॥४॥

विजेषकृदिन्द्र इवानवब्रवो३स्माकं मन्यो अधिपा भवेह ।

प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ ॥५॥

पदार्थ—(**मन्यो**) हे क्रोध ! (**अनवब्रवः**) नीच वचन न बोलने वाला, (**विजेषकृत्**) विजय करने वाला तू (**इन्द्रः इव**) बड़े प्रतापी पुरुष के समान (**इह**) यहां पर (**अस्माकम्**) हमारा (**अधिपाः**) बड़ा स्वामी (**भव**) हो । (**सहुरे**) हे शक्तिमान् ! (**ते**) तेरा (**प्रियम्**) प्रिय (**नाम**) नाम (**गृणीमसि**) हम सराहते हैं । (**तम्**) उस (**उत्सम्**) स्रोत [परमेश्वर को] (**विद्म**) हम जानते हैं (**यतः**) जिससे (**आबभूथ**) तू आकर प्रकट हुआ है ॥५॥

आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो बिभर्षि सहभूत उत्तरम् ।

क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्येधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि ॥६॥

पदार्थ—(**वज्र**) हे वज्ररूप ! (**सायक**) हे शत्रुओं का अन्त करने वाले ! (**सहभूते**) हे सम्पत्ति के साथ वर्तमान ! (**आभूत्या सहजाः**) विभूति के साथ साथ उत्पन्न होने वाला तू (**उत्तरम्**) अधिक उत्तम (**सहः**) बल (**बिभर्षि**) धारण करता है, (**पुरुहूत**) बहुतों से आवाहन किये हुये (**मन्यो**) क्रोध ! (**महाधनस्य**) बड़े धन प्राप्त कराने हारे संग्राम के (**संसृजि**) भिड़ जाने पर (**क्रत्वा सह**) बुद्धि के साथ (**नः**) हमारा (**मेदी**) स्नेही (**एधि**) हो ॥६॥

संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं दत्तां वरुणश्च मन्युः ।

भियो दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अप नि लयन्ताम् ॥७॥

पदार्थ—(**वरुणः**) श्रेष्ठ शूर (**च**) और (**मन्युः**) क्रोध (**संसृष्टम्**) संग्रह किया हुआ और (**समाकृतम्**) उगाही किया हुआ (**उभयम्**) दो प्रकार का [आत्मिक और सामाजिक] (**धनम्**) धन (**अस्मभ्यम्**) हमें (**दत्ताम्**) देवें । (**पराजितासः**) हारे हुये, और (**हृदयेषु**) हृदयों में (**भियः**) अनेक भय (**दधानाः**) रखते हुए (**शत्रवः**) शत्रु लोग (**अप — अपक्रम्य**) भागकर (**नि लयन्ताम्**) खिसक जावें ॥७॥

卐 सूक्तम् ३२ 卐

१—७ ब्रह्मास्कन्द । मन्यु । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

यस्ते मन्योऽविधद् वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक् ।

साह्याम दासमार्यं त्वया युजा वयं सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥१॥

पदार्थ—(**वज्र**) हे वज्र रूप ! (**सायक**) हे शत्रुनाशक ! (**मन्यो**) दीप्तिमान् क्रोध ! (**यः**) जिस पुरुष ने (**ते**) तेरी (**अविधत्**) सेवा की है, वह (**विश्वम्**) सब (**सहः**) शरीर बल और (**ओजः**) समाज बल से (**आनुषक्**) लगातार (**पुष्यति**) पुष्ट करता है । (**सहस्कृतेन**) बल से उत्पन्न हुए, (**सहस्वता**) बलवान्, (**त्वया युजा**) तुझ सहायक के साथ (**सहसा**) बल से (**वयम्**) हम लोग (**दासम्**) दास, काम बिगाड़ देने वाले मूर्ख और (**आर्यम्**) आर्य अर्थात् विद्वान् का (**साह्याम**) निर्णय करें ॥१॥

मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः ।

मन्युर्विश ईडते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः ॥२॥

पदार्थ—(**मन्युः**) हे प्रकाशमान क्रोध ! (**इन्द्रः**) ऐश्वर्यवान्, (**मन्युः**) क्रोध (**एव**) ही (**देवः**) दिव्यगुण वाला, (**मन्युः**) क्रोध (**होता**) दाता वा ग्रहीता, (**वरुणः**) वरणीय अङ्गीकारयोग्य, और (**जातवेदाः**) धन प्राप्त कराने वाला

(आस) हुआ है । (मन्यु - मन्युम) क्रोध को (या) उद्योग करने वाली (मानुषी = ० - ष्य) मनुष्य जातीय (विश) प्रजाएं (ईडते) सराहती हैं । (मन्यो) हे क्रोध ! (तपसा) ऐश्वर्य से (सजोषा) प्रीति करता हुआ तू (न) हमें (पाहि) बचा ॥२॥

अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान् तपसा युजा वि जहि शत्रून् ।

अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः ॥३॥

पदार्थ—(मन्यो) हे प्रकाशमान क्रोध ! (तवस) महान् से भी (तवीयान्) अति महान् तू (अभीहि) इधर आ, (तपसा युजा) अपने ऐश्वर्य, मित्र के साथ (शत्रून्) शत्रुओं को (विजहि) मिटा दे । (च) और (अमित्रहा) पीड़ा देने वालों का मारने वाला, (वृत्रहा) अन्धकार नाश करने वाला, (दस्युहा) डाकुओं का मारने वाला (त्वम) तू (विश्वा) सब (वसूनि) धन को (न) हमारे लिये (आ) सब ओर से (भर) भर दे ॥३॥

त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयंभूर्भामो अभिमातिषाहः ।

विश्वचर्षणिः सहुरिः सहीयानस्मास्वोजः पृतनासु धेहि ॥४॥

पदार्थ—(मन्यो) हे क्रोध ! (त्वम हि) तू ही (अभि भूत्योजा) शत्रु पराजय का सामर्थ्यवाला, (स्वयभू) अपने आप उत्पन्न होने वाला, (भाम) प्रकाशमान और (अभिमातिषाह) अभिमानियों को हराने वाला है । (विश्वचर्षणि) सब देखने वाला, (सहुरि) शक्तिमान्, (सहीयान्) अधिक बलवान् तू (पृतनासु) संग्रामों के बीच (अस्मासु) हममें (ओज) पराक्रम (धेहि) धारण कर ॥४॥

अभागः सन्नप परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेतः ।

तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीडाहं स्वा तनूर्बलदावा न एहि ॥५॥

पदार्थ—(प्रचेत) हे उत्तम ज्ञान वाले ! मैं (अभाग सन्) अभागा होकर (तव तविषस्य) तुझ बलवान् के (क्रत्वा) कर्म वा बुद्धि से (अप - अपेत्य) हटकर (परेत) दूर गया हुआ (अस्मि) हूँ । (मन्यो) हे क्रोध ! (अक्रतु) बुद्धिहीन वा कर्म हीन (अहम्) मैंने (तम् त्वा) उस तुझ को (जिहीड) क्रुद्ध कर दिया है, (बलदावा) बलदाता तू (स्वा तनू) अपने स्वरूप से (न) हमको (आ इहि) प्राप्त हो ॥५॥

अयं ते अस्म्युप न एह्यर्वाङ् प्रतीचीनः सहुरे विश्वदावन् ।

मन्यो वज्रिन्नभि न आ ववृत्स्व हनाव दस्यूंरुत बोध्यापेः ॥६॥

पदार्थ—(अयम्) यह मैं (ते) तेरा (अस्मि) हूँ । (सहुरे) हे समर्थ ! (विश्वदावन्) हे सर्वदाता ! (प्रतीचीन) प्रत्यक्ष चलता हुआ तू (न) हमारे (अर्वाङ्) सन्मुख होकर (उप एहि) समीप आ । (वज्रिन्) हे वज्रधारी (मन्यो) क्रोध ! (न अभि) हमारी ओर (ववृत्स्व) वर्तमान हो जा (उत) और (आपे) अपने बन्धु का (बोधि) बोध कर, [जिससे हम दोनों] (दस्यून्) दुष्टों को (हनाव) मारें ॥६॥

अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा नोऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ।

जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुभावुपांशु प्रथमा पिबाव ॥७॥

पदार्थ—(अभि प्र इहि) आगे आ और (न) हमारी (दक्षिणत) दाहिनी ओर (भव) वर्तमान हो, (अध) तब (भूरि) बहुत से (वृत्राणि) अन्धकारों को (जङ्घनाव) हम दोनों मिटा देवें । (मध्व) मधुर रस का (अग्रम्) श्रेष्ठ (धरुणम्) धारण करने योग्य [स्तुतिरूप] रस (ते) तुझे (जुहोमि) भेंट करता हूँ । (प्रथमा - ०—मौ) पहिले वर्तमान (उभौ) हम दोनों (उपांशु) एकान्त में (पिबाव) [रसपान] करें ॥७॥

卐 सूक्तम् ३३ 卐

१—८ ब्रह्मा । पाप्मनाशनो अग्नि । गायत्री ।

अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् ।

अप नः शोशुचदघम् ॥१॥

पदार्थ—(न) हमारा (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) दूर धुल जावे । (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! (रयिम्) धन को (आ) अच्छे प्रकार (शुशुग्धि) पवित्र करो । (न) हमारा (अघम्) पाप (अपशोशुचत्) दूर धुल जावे ॥१॥

सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे ।

अप नः शोशुचदघम् ॥२॥

पदार्थ—(सुक्षेत्रिया) उत्तम खेत के लिये, (सुगातुया) उत्तम भूमि के लिये (च) और (वसुया) धन के लिये (यजामहे) हम [परमेश्वर को] पूजते हैं । (न) हमारा (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) दूर धुल जावे ॥२॥

प्र यद् भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः ।

अप नः शोशुचदघम् ॥३॥

पदार्थ—(यत्) जिस प्रकार से (एषाम्) इन प्राणियों के मध्य (भन्दिष्ठ) अत्यन्त सुखी होकर (प्र) प्रकृष्ट [होजाऊं] (च) और (अस्माकास) हमारे (सूरय) विद्वान् लोग (प्र) प्रकृष्ट [होवें] [उसी प्रकार से] (न.) हमारा (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) दूर धुल जावे ॥३॥

प्र यत् ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् ।

अप नः शोशुचदघम् ॥४॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमात्मन् ! (सूरय) विद्वान् लोग (यत् ते) जिस तरह (प्र - प्रजायन्ते) प्रजा हैं, (ते) उस तेरे ही (वयम) हम लोग (प्र जायेमहि) प्रजा होवें । (न) हमारा (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) दूर धुल जावे ॥४॥

प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः ।

अप नः शोशुचदघम् ॥५॥

पदार्थ—(यत्) जिस कारण से (सहस्वत) बलवान् (अग्ने) परमात्मा के (भानव) अनेक प्रकाश (विश्वत) सब ओर (प्र) भली प्रकार (यन्ति) चलते रहते हैं । (न) हमारा (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) दूर धुल जावे ॥५॥

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि ।

अप नः शोशुचदघम् ॥६॥

पदार्थ—(हि) जिस कारण से (विश्वतोमुख) हे सब ओर मुख वाले [मुख के समान सर्वोपदेशक सर्वोत्तम] परमेश्वर ! (त्वम्) तू (विश्वत) सब ओर से (परिभू) व्यापक (असि) है । (न) हमारा (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) दूर धुल जावे ॥६॥

द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय ।

अप नः शोशुचदघम् ॥७॥

पदार्थ—(विश्वतोमुख) हे सब ओर मुख वाले [मुख के समान, सर्वोपदेशक सर्वोत्तम] परमेश्वर ! (द्विष) द्वेषियों को (अति अतीत्य) लांघ कर (न) हमें (पारय) पार लगा, (नावा इव) जैसे नाव से [समुद्र को पार करते हैं], (न) हमारा (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) दूर धुल जावे ॥७॥

स नः सिन्धुमिव नावाति पर्षा स्वस्तये ।

अप नः शोशुचदघम् ॥८॥

पदार्थ—(स) सो तू (न) हमें (स्वस्तये) आनन्द के लिये (पर्ष) पार लगा, (इव) जैसे (नावा) नाव से (सिन्धुम्) समुद्र को (अति अतीत्य) लांघ कर [पार करते] हैं, (न) हमारा (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) दूर धुल जावे ॥८॥

卐 सूक्तम् ३४ 卐

१—८ अथर्वा । ब्रह्मौदनम् । त्रिष्टुप्, ४ उत्तमा भुरिक्, ५ त्र्यवसाना सप्तपदा कृति, ६ पञ्चपदातिशक्वरी, ७ भुरिक्शक्वरी, ८ जगती ।

ब्रह्मास्य शीर्षं बृहदस्य पृष्ठं वामदेव्यमुदरमोदनस्य ।

छन्दांसि पक्षौ मुखमस्य सत्यं विष्टारी जातस्तपसोऽधि यज्ञः ॥१॥

पदार्थ—(अस्य) इस (ओदनस्य) सेचन समर्थ वा अन्नरूप परमेश्वर का (शीर्षम्) शिर (ब्रह्म) वेद है, (अस्य) इसकी (पृष्ठम्) पीठ (बृहत्) प्रवृद्ध जगत् और (उदरम्) उदर (वामदेव्यम्) मनोहर परमात्मा से जताया गया [भूतपञ्चक] है । (अस्य) इसके (पक्षौ) दोनों पार्श्व (छन्दांसि) आनन्दप्रद वा पूजनीय कर्म और (मुखम्) मुख (सत्यम्) सत्य है । (विष्टारी) वह विस्तार वाला (यज्ञ) पूजनीय परमात्मा (तपस) अपने ऐश्वर्य से (अधि) सब से ऊपर (जात) प्रकट हुआ है ॥१॥

अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः शुचयः शुचिमपि यन्ति लोकम् ।

नैषां शिश्नं प्र दहति जातवेदाः स्वर्गे लोके बहु स्त्रैणमेषाम् ॥२॥

पदार्थ—(अनस्थाः) न गिराने योग्य (पवनेन) शुद्ध आचरण से (पूता) शुद्ध किये गए, (शुद्धा) शुद्ध स्वभाव, (शुचय) प्रकाशमान महात्मा लोग (अपि) ही (शुचिम्) ज्योति स्वरूप (लोकम्) लोक [परमात्मा] को (यन्ति) पाते हैं । (जातवेदा) प्राणियों का जानने वाला परमेश्वर (एषाम्) इनकी (शिश्नम्) गति वा सामर्थ्य को (न) नहीं (प्रदहति) जलाता है । [इसलिये कि] (एषाम्) इन [महात्माओं] का (स्त्रैणम्) सृष्टि का हितकर्म (स्वर्गे) अच्छे प्रकार पाने योग्य सुखदायक (लोके) लोक [परमात्मा] में (बहु) बहुत है ॥२॥

विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनानवर्तिः सचते कदा चन ।
आस्ते यम उप याति देवान्त्सं गन्धर्वैर्मदते सोम्येभिः ॥३॥

पदार्थ—(**ये**) जो महात्मा लोग (**विष्टारिणम्**) विस्तारवान् (**ओदनम्**) सेचन समर्थ वा अन्नरूप परमात्मा को [हृदय मे] (**पचन्ति**) परिपक्व करते है, (**एनान्**) इन लोगो को (**अवर्तिः**) दरिद्रता (**कदा चन**) कभी भी (**न**) नही (**सचते**) मिलती है। [जो पुरुष] (**यमे**) नियम वा न्यायकारी परमात्मा मे आस्ते रहता है, [वह] (**देवान्**) उत्तम गुणो को (**उप**) अधिक अधिक (**याति**) पाता है, और (**गन्धर्वैः**) पृथिवी आदि लोको वा वेदवाणियो को धारण करने वाले (**सोम्येभिः**) सोम अर्थात् ऐश्वर्य योग्य महात्माओ से (**सम्**) मिल कर (**मदते**) आनन्द भोगता है ॥३॥

विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनान् यमः परि मुष्णाति रेतः ।
रथी ह भूत्वा रथयान ईयते पक्षी ह भूत्वाति दिवः समेति ॥४॥

पदार्थ—(**ये**) जो महात्मा (**विष्टारिणम्**) विस्तारवान् (**ओदनम्**) सेचन शील वा अन्नरूप परमात्मा को [हृदय मे] (**पचन्ति**) पक्का करते हैं, (**एनान्**) इनसे (**यमः**) नियम (**रेतः**) सामर्थ्य को (**न**) नही (**परि मुष्णाति**) मूस लेता है। वह पुरुष (**रथयाने**) शरीर से चलने योग्य ससार मे (**ह**) निश्चय करके (**रथी**) क्रीडाशील (**भूत्वा**) होकर (**ईयते**) विचरता है और (**ह**) अवश्य (**पक्षी**) सबका पक्ष करने वाला (**भूत्वा**) होकर (**अति**) अत्यन्त (**दिवः**) प्रकाशमान लोकों को (**सम्**) यथावत् (**एति**) पाता है ॥४॥

एष यज्ञानां विततो वहिष्ठो विष्टारिणं पक्त्वा दिवमा विवेश ।
आण्डीकं कुमुदं सं तनोति बिसं शालूकं शफको मुलाली ।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥५॥

पदार्थ—(**एष**) यह (**यज्ञानाम्**) उत्तम कर्मो के बीच (**विततः**) फैला हुआ (**वहिष्ठः**) अत्यन्त बहुत शुभ गुणो वाला पुरुष (**विष्टारिणम्**) बडे विस्तार वाले परमात्मा को [हृदय मे] (**पक्त्वा**) पक्का, दृढ करके (**दिवम्**) प्रकाश स्वरूप परमात्मा मे (**आ विवेश**) प्रविष्ट हुआ है।

(**शफकः**) शान्ति की कामना करने वाला, (**मुलाली**) कर्म फल के रोपण, उत्पत्ति को सुधारने वाला पुरुष (**आण्डीकम्**) प्राप्तियोग्य (**कुमुदम्**) पृथिवी मे आनन्द करने वाली वस्तु को, (**बिसम्**) बलदायक गुण को (**शालूकम्**) वेगशील कर्म को (**सम्**) यथावत् (**तनोति**) फैलाता है।

(**एताः**) ये (**सर्वाः**) सब (**धाराः**) धारण शक्तियां (**स्वर्गे लोके**) स्वर्ग लोक मे (**मधुमत्**) मधु नाम ज्ञान की पूर्णता से (**त्वा**) तुझको (**पिन्वमाना**) सीचती हुई (**उप**) आदर से (**यन्तु**) मिलें और (**समन्ताः**) सम्पूर्ण (**पुष्करिणी**—**०—ण्यः**) पोषणवती शक्तियां (**त्वा**) तुझमे (**उपतिष्ठन्तु**) उपस्थित होवें ॥५॥

घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना । एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥६॥

पदार्थ—(**घृतह्रदाः**) प्रकाश की ध्वनि वाली, (**मधुकूलाः**) मधु अर्थात् ज्ञान के रक्षा साधन वाली, (**सुरोदकाः**) सुरा अर्थात् ऐश्वर्य वा तत्त्व मथन का सेवन करने वाली, (**क्षीरेण**) भोजन साधन से, (**उदकेन**) सेचन वा वृद्धि साधन से और (**दध्ना**) धारण पोषण सामर्थ्य से (**पूर्णाः**) परिपूर्ण,

(**एताः**) वे (**सर्वाः**) सब (**धाराः**) धारण शक्तियां (**स्वर्गे लोके**) स्वर्ग लोक मे (**मधुमत्**) मधु नाम ज्ञान की पूर्णता से (**त्वा**) तुझको (**पिन्वमानाः**) सीचती हुई, (**उप**) आदर से (**यन्तु**) मिलें, और (**समन्ताः**) सम्पूर्ण (**पुष्करिणी**—**०—ण्यः**) पोषणवती शक्तियां (**त्वा**) तुझमे (**उपतिष्ठन्तु**) उपस्थित होवें ॥६॥

चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना । एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥७॥

पदार्थ—(**क्षीरेण**) भोजन साधन से, (**उदकेन**) सेचन वा वृद्धि साधन से और (**दध्ना**) धारण पोषण सामर्थ्य से (**पूर्णान्**) परिपूर्ण (**कुम्भान्**) भूमि को पूर्ण करने वाले (**चतुरः**) चार अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को (**चतुर्धा**) चार प्रकार से अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास आश्रम वा चारो वेद द्वारा (**ददामि**) दान करता हूँ।

(**एताः**) ये (**सर्वाः**) सब (**धाराः**) धारण शक्तियां (**स्वर्गे लोके**) स्वर्ग लोक में (**मधुमत्**) मधु नाम ज्ञान की पूर्णता से (**त्वा**) तुझको (**पिन्वमानाः**) सीचती हुई (**उप**) आदर से (**यन्तु**) मिलें, और (**समन्ताः**) सम्पूर्ण (**पुष्करिणी**—**०—ण्यः**) पोषणवती शक्तियां (**त्वा**) तुझमें (**उप तिष्ठन्तु**) उपस्थित होवें ॥७॥

इममोदनं नि दधे ब्राह्मणेषु विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम् । स मे मा क्षेष्ट स्वधया पिन्वमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघा मे अस्तु ॥८॥

पदार्थ—(**ब्राह्मणेषु**) ब्रह्मज्ञानियो के बीच (**विष्टारिणम्**) विस्तार वाले (**लोकजितम्**) सर्व लोक के जीतने वाले (**स्वर्गम्**) सुख स्वरूप (**इमम्**) इस (**ओदनम्**) सींचने वा बढाने वाले वा अन्नरूप परमात्मा को (**नि**) निरन्तर (**दधे**) धरता हूँ। (**स्वधया**) अपनी धारण शक्ति से (**पिन्वमानः**) बढता हुआ (**सः**) वह ईश्वर (**मे**) मेरे लिये (**मा क्षेष्ट**) कभी न घटे। (**विश्वरूपा**) सब अङ्गो से सिद्ध (**धेनुः**) यह तृप्त करने वाली वेदवाणी (**मे**) मेरे लिये (**कामदुघा**) उत्तम कामनाओ को पूर्ण करने वाली (**अस्तु**) होवे ॥८॥

卐 सूक्तम् ३५ 卐

१—७ प्रजापति । अतिमृत्यु । त्रिष्टुप्, ३ भुरिग्जगती ।

यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपचत् ।
यो लोकानां विधृतिर्नाभिरेषात् तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥१॥

पदार्थ—(**ऋतस्य**) सत्य के (**यम्**) जिस (**ओदनम्**) वृद्धि करने वाले परमात्मा को (**प्रथमजाः**) प्रख्यात पुरुषो मे उत्पन्न हुए (**प्रजापतिः**) प्रजापालक योगी जन ने (**तपसा**) अपने तप, सामर्थ्य से (**ब्रह्मणे**) ब्रह्म की प्राप्ति के लिये (**अपचत्**) परिपक्व अर्थात् हृदय म दृढ किया है। (**यः**) जो परमात्मा (**लोकानाम्**) सब लोको का (**विधृतिः**) विधाता (**न**) कभी नहीं (**अभिरेषात्**) घटता है, (**तेन**) उस (**ओदनेन**) बढाने वाले वा अन्न रूप परमात्मा के साथ (**मृत्युम्**) मृत्यु के कारण [निरुत्साह आदि दोष] को (**अति**—**अतीत्य**) लांघकर (**तराणि**) मै तर जाऊ ॥१॥

येनातरन् भूतकृतोऽति मृत्युं यमन्वविन्दन् तपसा श्रमेण ।
यं पपाच ब्रह्मणे ब्रह्म पूर्वं तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥२॥

पदार्थ—(**येन**) जिस परमात्मा के साथ (**भूतकृतः**) प्राणियों को [उत्तम] बनाने वाले पुरुष (**मृत्युम्**) मृत्यु के कारण निरुत्साह आदि को (**अति**—**अतीत्य**) लांघकर (**अतरन्**) तर गये हैं, और (**यम्**) जिसको (**तपसा**) ब्रह्मचर्य आदि तप और (**श्रमेण**) परिश्रम से (**अन्वविन्दन्**) उन्होने अनुक्रम से पाया है और (**यम्**) जिसको (**ब्रह्मणे**) ब्रह्मा, [वेदज्ञानी] के लिये (**ब्रह्म**) वेद मे (**पूर्वम्**) पहिले ही (**पपाच**) परिपक्व वा दृढ किया था। (**तेन**) उस (**ओदनेन**) बढाने वाले वा अन्नरूप परमात्मा के साथ (**मृत्युम्**) मृत्यु के कारण [निरुत्साह आदि दोष] को [**अति**—**अतीत्य**] लांघकर (**तराणि**) मैं तर जाऊ ॥२॥

यो दाधार पृथिवीं विश्वभोजसं यो अन्तरिक्षमापृणाद् रसेन ।
यो अस्तभ्नाद् दिवमूर्ध्वो महिम्ना तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥३॥

पदार्थ—(**यः**) जिस परमेश्वर ने (**विश्वभोजसम्**) सबका पालन करने वाली (**पृथिवीम्**) पृथिवी को (**दाधार**) धारण किया था, (**यः**) जिसने (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष को (**रसेन**) रस अर्थात् अन्न वा जल से (**आ अपृणात्**) भर दिया है। (**यः**) जिसने (**महिम्ना**) अपनी महिमा से (**ऊर्ध्वः**) ऊंचा होकर (**दिवम्**) प्रकाशमान सूर्य को (**अस्तभ्नात्**) ठहराया है। (**तेन**) उस (**ओदनेन**) बढाने वाले वा अन्नरूप परमात्मा के साथ (**मृत्युम्**) मृत्यु के कारण [निरुत्साह आदि दोष] को (**अति**—**अतीत्य**) लांघकर (**तराणि**) मैं तर जाऊ ॥३॥

यस्मान्मासा निर्मितास्त्रिंशदराः संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः ।
अहोरात्रा यं परियन्तो नापुस्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥४॥

पदार्थ—(**यस्मात्**) जिस [परमात्मा] से (**त्रिंशदराः**) तीस अरो वाले (**मासाः**) महीने (**निर्मिताः**) बने हैं, (**यस्मात्**) जिससे (**द्वादशारः**) बारह अरो [के समान महीनो] वाला (**संवत्सरः**) संवत्सर (**निर्मितः**) बना है। (**यम्**) जिसको (**परियन्तः**) घूमते हुए (**अहोरात्राः**) दिन रात (**न**) नही (**आपुः**) पकड सके है। (**तेन**) उस (**ओदनेन**) बढाने वाले वा अन्नरूप परमात्मा के साथ (**मृत्युम्**) मृत्यु के कारण [निरुत्साह आदि दोष] को (**अति**—**अतीत्य**) लांघकर (**तराणि**) मैं तर जाऊ ॥४॥

यः प्राणदः प्राणदवान् बभूव यस्मै लोका घृतवन्तः क्षरन्ति ।
ज्योतिष्मतीः प्रदिशो यस्य सर्वास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥५॥

पदार्थ—(**यः**) जो परमेश्वर (**प्राणदः**) प्राण देने वाला और (**प्राणदवान्**) प्राणदाताओ [सूर्य पृथिवी, वायु, आदि] का रखने वाला (**बभूव**) हुआ, और (**यस्मै**) जिसके लिये (**घृतवन्तः**) प्रकाशमान वा सारवान् (**लोकाः**) सब लोक (**क्षरन्ति**) बहते हैं। और (**यस्य**) जिसकी ही (**सर्वाः**) सब (**ज्योतिष्मतीः**—**०—त्यः**) तेजोमय (**प्रदिशः**) बड़ी दिशायें हैं। (**तेन**) उस (**ओदनेन**) बढाने वाले वा अन्नरूप परमात्मा के साथ (**मृत्युम्**) मृत्यु के कारण [निरुत्साह आदि दोष] को (**अति**—**अतीत्य**) लांघकर (**तराणि**) मैं तर जाऊं ॥५॥

यस्मात् पक्वादमृतं संबभूव यो गायत्र्या अधिपतिर्बभूव ।

यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥६॥

पदार्थ—(**यस्मात् पक्वात्**) जिस परिपक्व परमात्मा से (**अमृतम्**) मोक्ष (**संबभूव**) उत्पन्न हुआ, (**यः**) जो (**गायत्र्याः**) गायत्री [स्तुति या वेदवाणी] का (**अधिपतिः**) अधिपति (**बभूव**) हुआ, (**यस्मिन्**) जिसमें (**विश्वरूपाः**) सबसे कीर्तन योग्य अथवा सब का निरूपण करने वाले (**वेदाः**) वेद (**निहिताः**) निधिरूप से स्थित हैं, (**तेन**) उस (**ओदनेन**) बढ़ाने वाले वा अन्नरूप परमात्मा के साथ (**मृत्युम्**) मरण के कारण [निरुत्साह आदि दोष] को (**अति** —**अतीत्य**) लांघ कर (**तराणि**) मैं तर जाऊं ॥६॥

अव बाधे द्विषन्तं देवपीयुं सपत्ना ये मेऽप ते भवन्तु ।

ब्रह्मौदनं विश्वजितं पचामि शृण्वन्तु मे श्रद्दधानस्य देवाः ॥७॥

पदार्थ—(**द्विषन्तम्**) द्वेष करने वाले (**देवपीयुम्**) देवताओं के हिंसक को (**अव बाधे**) मैं हटाता हूं। (**ये**) जो (**मे**) मेरे (**सपत्नाः**) प्रतिपक्षी हैं, (**ते**) वे (**अप भवन्तु**) हट जावें। (**विश्वजितम्**) संसार के जीतने वाले (**ब्रह्मौदनम्**) सबसे बड़े सीचने वाले वा अन्नरूप परमात्मा को (**पचामि**) पक्का [हृदय में दृढ़] करता हूं। (**देवाः**) व्यवहारकुशल विद्वान् लोग (**श्रद्दधानस्य**) श्रद्धा रखने वाले (**मे**) मेरी [वार्ता] (**शृण्वन्तु**) सुनें ॥७॥

卐 इति सप्तमोऽनुवाकः 卐

卐

अथ अष्टमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ३६ 卐

१—१० चातनः । सत्यौजा अग्निः । अनुष्टुप्, ९ भुरिक् ।

तान्त्सत्यौजाः प्र दहत्वग्निर्वैश्वानरो वृषा ।

यो नो दुरस्याद् दिप्साच्चाथो यो नो अरातियात् ॥१॥

पदार्थ—(**सत्यौजाः**) सत्य बल वाला, (**वैश्वानरः**) सब नरों का हित करने वाला, (**वृषा**) सुख बरसाने वाला वा ऐश्वर्यवान् (**अग्निः**) सर्वव्यापक परमेश्वर (**तान्**) उन सबको (**प्र दहतु**) भस्म कर डाले। (**यः**) जो (**नः**) हम (**दुरस्यात्**) दुष्ट माने, (**च**) और जो (**दिप्सात्**) मारना चाहे, (**अथो**) और भी (**यः**) जो (**नः**) हमसे (**अरातियात्**) बैरी सा बर्ताव करे ॥१॥

यो नो दिप्सददिप्सतो दिप्सतो यश्च दिप्सति ।

वैश्वानरस्य दंष्ट्रयोरग्नेरपि दधामि तम् ॥२॥

पदार्थ—(**यः**) जो पुरुष (**अदिप्सतः**) न सताने वाले (**नः**) हमको (**दिप्सत्**) सताना चाहे, (**च**) और (**यः**) जो (**दिप्सतः**) सताने वाले [हम] को (**दिप्सति**) सताना चाहता है, (**तम्**) उसको (**वैश्वानरस्य**) सब नरों के हितकारक (**अग्नेः**) ज्ञानी पुरुष के (**दंष्ट्रयोः**) दोनों डाढ़ों के बीच जैसे (**अपि**) अवश्य (**दधामि**) धरता हूं ॥२॥

य आगरे मृगयन्ते प्रतिक्रोशेऽमावास्ये ।

क्रव्यादो अन्यान् दिप्सतः सर्वांस्तान्त्सहसा सहे ॥३॥

पदार्थ—(**ये**) जो दुष्ट (**आगरे**) घर में (**प्रतिक्रोशे**) गूंजते हुए (**अमावास्ये**) अमावस के अन्धकार में (**मृगयन्ते**) खोजते फिरते हैं। (**अन्यान्**) दूसरों को (**दिप्सतः**) सताने वाले (**तान् सर्वान्**) उन सब (**क्रव्यादः**) मांसभक्षी सिंह आदिकों को (**सहसा**) बल से (**सहे**) मैं जीतता हूं ॥३॥

सहे पिशाचान्त्सहसैषां द्रविणं ददे ।

सर्वान् दुरस्यतो हन्मि सं म आकूतिर्ऋध्यताम् ॥४॥

पदार्थ—(**पिशाचान्**) मांसभक्षियों को (**सहसा**) बल से (**सहे**) मैं जीतता हूं, और (**एषाम्**) इनका (**द्रविणम्**) धन [सुपात्रों को] (**ददे**) मैं देता हूं, (**दुरस्यतः**) सताने वाले (**सर्वान्**) सबों को (**हन्मि**) मैं मारता हूं। (**मे**) मेरा (**आकूतिः**) शुभ संकल्प (**सम् ऋध्यताम्**) यथावत् सिद्ध होवे ॥४॥

ये देवास्तेन हासन्ते सूर्येण मिमते जवम् ।

नदीषु पर्वतेषु ये सं तैः पशुभिर्विदे ॥५॥

पदार्थ—(**ये**) जो (**देवाः**) विजयी शूर (**तेन**) पुण्य के साथ (**हासन्ते**) चलना चाहते हैं, और (**ये**) जो (**नदीषु पर्वतेषु**) नदियों और पर्वतों पर (**सूर्येण**) सूर्य के साथ (**जवम्**) अपना वेग (**मिमते**) करते हैं (**तैः**) उन (**पशुभिः**) दृष्टि वाले देवताओं से (**सम् विदे**) मैं मिलता हूं ॥५॥

तपनो अस्मि पिशाचानां व्याघ्रो गोमतामिव ।

श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा ते न विन्दन्ते न्यञ्चनम् ॥६॥

पदार्थ—मैं (**पिशाचानाम्**) मांसाहारियों का (**तपनः**) संताप देने वाला (**अस्मि**) हूं, (**इव**) जैसे (**व्याघ्रः**) बाघ (**गोमताम्**) गौ वालों का होता है। (**ते**) वे लोग (**न्यञ्चनम्**) छिपने का स्थान (**न**) नहीं (**विन्दन्ते**) पाते हैं, (**इव**) जैसे (**श्वानः**) कुत्ते (**सिंहम्**) सिंह को (**दृष्ट्वा**) देखकर [घबड़ा जाते हैं] ॥६॥

न पिशाचैः सं शक्नोमि न स्तेनैर्न वनर्गुभिः ।

पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे ॥७॥

पदार्थ—(**न**) न तो (**पिशाचैः**) पिशाचों के साथ, (**न**) न (**स्तेनैः**) चोरों के साथ, और (**न**) न (**वनर्गुभिः**) वनचर डाकुओं के साथ (**सम् शक्नोमि**) रह सकता हूं। (**यम्**) जिस (**ग्रामम्**) ग्राम में (**अहम्**) मैं (**आविशे**) घुसता हूं, (**पिशाचाः**) पिशाच लोग (**तस्मात्**) उस स्थान से (**नश्यन्ति**) भाग जाते हैं ॥७॥

यं ग्राममाविशत इदमुग्रं सहो मम ।

पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुप जानते ॥८॥

पदार्थ—(**यम् ग्रामम्**) जिस ग्राम में (**इदम्**) यह (**उग्रम्**) उग्र (**मम**) मेरा (**सहः**) बल (**आ विशते**) प्रवेश करता है, (**पिशाचाः**) पिशाच लोग (**तस्मात्**) उस स्थान से (**नश्यन्ति**) भाग जाते हैं और (**पापम्**) पाप को (**न**) नहीं (**उप जानते**) जानते हैं ॥८॥

ये मा क्रोधयन्ति लपिता हस्तिनं मशका इव ।

तानहं मन्ये दुर्हितान् जने अल्पशयूनिव ॥९॥

पदार्थ—(**ये**) जो (**लपिताः**) बकवादी लोग (**मा**) मुझे (**क्रोधयन्ति**) क्रोध कराते हैं, (**मशकाः इव**) जैसे मच्छड़ (**हस्तिनम्**) हाथी को। (**तान्**) उन (**दुर्हितान्**) दुष्कर्मियों को (**जने**) मनुष्यों के बीच (**अल्पशयून् इव**) थोड़े सोने-वाले कीट पतंगों के समान (**अहम्**) मैं (**मन्ये**) मानता हूं ॥९॥

अभि तं निर्ऋतिर्धत्तामश्वमिवाश्वाभिधान्या ।

मल्वो यो मह्यं क्रुध्यति स उ पाशान्न मुच्यते ॥१०॥

पदार्थ—(**तम्**) उसको (**निर्ऋतिः**) अलक्ष्मी (**अभिधत्ताम्**) बांध लेवे (**अश्वम् इव**) जैसे घोड़े को (**अश्वाभिधान्या**) घोड़ा बांधने की रसरी से। (**यः मल्वः**) जो मलिन पुरुष (**मह्यम्**) मुझ पर (**क्रुध्यति**) क्रोध करता है, (**सः**) वह (**पाशात्**) फांसी से (**उ न**) कभी नहीं (**मुच्यते**) छूटता है ॥१०॥

卐 सूक्तम् ३७ 卐

१—२ बादरायणिः । अजशृङ्गी, १ अप्सरसः, १—२, ६ ओषधी अजशृङ्गी, ३—५ अप्सरसः, ७—१२ गन्धर्वाप्सरसः । अनुष्टुप्, ३ त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुप्, ५ प्रस्तारपङ्क्तिः, ७ परोष्णिक्, ११ षट्पदा जगती, १२ निचृत् ।

त्वया पूर्वमथर्वाणो जघ्नू रक्षांस्योषधे ।

त्वया जघान कश्यपस्त्वया कण्वो अगस्त्यः ॥१॥

पदार्थ—(**ओषधे**) हे तापनाशक परमेश्वर! (**त्वया**) तेरे सहारे से (**पूर्वम्**) पहिले (**अथर्वाणः**) निश्चल स्वभाव वाले अथवा मंगल के लिये व्यापक महात्माओं ने (**रक्षांसि**) राक्षसों को (**जघ्नुः**) मारा था। (**त्वया**) तेरे साथ ही (**कश्यपः**) तत्त्वदर्शी पुरुष ने, और (**त्वया**) तेरे साथ ही (**कण्वः**) मेधावी, तथा (**अगस्त्यः**) कुटिलगति, पाप के फेंकने में समर्थ जीव ने (**जघान**) मारा था ॥१॥

त्वया वयमप्सरसो गन्धर्वांश्चातयामहे ।

अजशृङ्ग्यज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय ॥२॥

पदार्थ—(**अजशृङ्गि**) हे जीवात्मा के दुःखनाशक शक्ति परमेश्वर! (**त्वया**) तेरे साथ (**वयम्**) हम लोग (**अप्सरसः**) आकाश, जल, प्राण और प्रजाओं में व्यापक शक्तियों को और (**गन्धर्वान्**) विद्या वा पृथिवी धारण करने वाले गुणों को (**चातयामहे**) मांगते हैं। (**गन्धेन**) अपनी व्याप्ति से (**सर्वान्**) सब (**रक्षः**) राक्षसों को (**अज**) हटा दे और (**नाशय**) नाश कर दे ॥२॥

नदीं यन्त्वप्सरसोऽपां तारमवश्वसम् । गुल्गुलूः पीला नलद्यौ३क्षगन्धिः प्रमन्दनी । तत्परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥३॥

पदार्थ—(**अप्सरस**) आकाश, जल, प्राण, और प्रजाओं में व्यापक शक्तियां (**अपाम्**) जल के (**तारम्**) तट को (**अवश्वसम्**) भरती हुई (**नदीम्**) नदी [नदी के समान पूर्णता] को (**यन्तु**) प्राप्त हों।

[जो प्रत्येक] (**गुल्गुलू**) रक्षा साधन से रक्षित, (**पीला**) सबको घेरने वाली, (**नलदी**) बन्धन काटने वाली, (**औक्षगन्धि**) बड़ों के योग्य गतिवाली, और (**प्रमन्दनी**) आनन्द देने वाली शक्ति है।

(**तत्**) इसलिये (**अप्सरस**) हे आकाश, जल प्राण और प्रजाओं में व्यापक शक्तियों ! (**परा**) पराक्रम से (**इत**) प्राप्त हो, तुम (**प्रतिबुद्धा**) प्रत्यक्ष जानी हुई (**अभूतन**) हो चुकी हो ॥३॥

यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिखण्डिनः।

तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥४॥

पदार्थ—(**यत्र**) जहां पर (**अश्वत्थाः**) वीरों में खड़े होने वाले, (**न्यग्रोधा**) शत्रुओं को रोक देने वाले, (**महावृक्षा**) अत्यन्त स्वीकार करने योग्य, और (**शिखण्डिन**) अत्यन्त उद्यमी पुरुष हों।

(**तत्**) वहां (**अप्सरस**) हे आकाश आदि में व्यापक शक्तियों ! (**परा**) पराक्रम से (**इत**) प्राप्त हो, तुम (**प्रतिबुद्धा**) प्रत्यक्ष जानी हुई (**अभूतन**) हो चुकी हो ॥४॥

यत्र वः प्रेङ्खा हरिता अर्जुना उत यत्राघाटाः कर्कर्यः संवदन्ति।

तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥५॥

पदार्थ—(**यत्र**) जहां (**प्रेङ्खा**) उत्तम गति वाली, (**हरिता**) स्वीकार करने योग्य, (**अर्जुना**) उपार्जन करने वाली, (**उत**) और (**यत्र**) जहां (**आघाटा**) चेष्टा करती हुई (**कर्कर्य**) उत्तम कर्म ग्रहण करने वाली प्रजायें (**व**) तुम्हारा (**संवदन्ति**) संवाद करती हैं।

(**तत्**) वहां (**अप्सरस**) हे आकाशादि में व्यापक शक्तियों ! (**परा**) पराक्रम से (**इत**) प्राप्त हो, तुम (**प्रतिबुद्धा**) प्रत्यक्ष जानी हुई (**अभूतन**) हो चुकी हो ॥५॥

एयमगन्नोषधीनां वीरुधां वीर्यावती।

अजशृङ्ग्यराटकी तीक्ष्णशृङ्गी व्यृषतु ॥६॥

पदार्थ—(**ओषधीनाम्**) ताप नाशक (**वीरुधाम्**) विविध प्रकार से उगने वाली प्रजाओं के बीच (**वीर्यावती**) बड़ी सामर्थ्य वाली (**इयम्**) यह शक्ति (**आ अगन्**) प्राप्त हुई है। वही (**अजशृङ्गी**) जीवात्मा का दुःख काटने वाली, (**अराटकी**) शीघ्र प्राप्त होने वाली, (**तीक्ष्णशृङ्गी**) बड़े तेज वाली शक्ति परमेश्वर (**वि ऋषतु**) व्याप्त होवे ॥६॥

आ नृत्यतः शिखण्डिनो गन्धर्वस्याप्सरापतेः।

भिनद्मि मुष्कावपि यामि शेपः ॥७॥

पदार्थ—(**आनृत्यत**) सब ओर चेष्टा करने वाले (**शिखण्डिन**) महा उद्योगी (**गन्धर्वस्य**) वेदवाणी और पृथिवी आदि को धारण करने वाले (**अप्सरापते**) आकाश, जल, प्राण और प्रजाओं में व्यापक शक्तियों के रक्षक परमेश्वर का (**शेप**) सामर्थ्य (**यामि**) मैं मांगता हूं, [जिस से] (**मुष्कौ**) [काम क्रोध रूप] दो चोरों को (**अपि**) अवश्य (**भिनद्मि**) छिन्न भिन्न करूं ॥७॥

भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीरयस्मयीः।

ताभिर्हविरदान् गन्धर्वानवकादान् व्यृषतु ॥८॥

पदार्थ—(**इन्द्रस्य**) परमेश्वर की (**शतम्**) सौ (**हेतय**) हनन शक्तियां (**अयस्मयी**) लोहे की बनी हुई (**ऋष्टी**) खड्गों के समान (**भीमा**) भयानक हैं। (**ताभि**) उनके साथ [दुष्ट दमन के लिये] (**हविरदान्**) ग्राह्य अन्न के भोजन करने वाले (**अवकादान्**) हिंसाओं के नाश करने वाले, (**गन्धर्वान्**) वेदवाणी और पृथिवी धारण करने वाले पुरुषों को [वह परमेश्वर] (**वि ऋषतु**) व्याप्त होवे ॥८॥

भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीर्हिरण्ययीः।

ताभिर्हविरदान् गन्धर्वानवकादान् व्यृषतु ॥९॥

पदार्थ—(**इन्द्रस्य**) परमेश्वर की (**शतम्**) सौ (**हेतय**) हनन शक्तियां (**हिरण्ययीः**) तेजोमयी (**ऋष्टीः**) तलवारों के समान (**भीमा**) भयानक हैं। (**ताभि.**) उनके साथ [दुष्ट दमन के लिये] (**हविरदान्**) ग्राह्य अन्न के भोजन करने वाले (**अवकादान्**) हिंसाओं को नाश करने वाले (**गन्धर्वान्**) वेदवाणी और पृथिवी के धारण करने वाले पुरुषों को [वह परमेश्वर] (**वि ऋषतु**) व्याप्त होवे ॥९॥

अवकादानभिशोचानप्सु ज्योतय मामकान्।

पिशाचान्त्सर्वानोषधे प्र मृणीहि सहस्व च ॥१०॥

पदार्थ—(**अवकादान्**) हिंसाओं के नाश करने वाले, (**अभिशोचान्**) सब ओर प्रकाशमान (**मामकान्**) मेरे पुरुषों को (**अप्सु**) व्याप्यमान प्रजाओं के बीच (**ज्योतय**) ज्योति वाला कर। (**ओषधे**) हे औषध समान तापनाशक परमेश्वर ! (**सर्वान्**) सब (**पिशाचान्**) मांसभक्षक रोग वा जीवों को (**प्रमृणीहि**) मार डाल (**च**) और (**सहस्व**) हरा दे ॥१०॥

श्वेवैकः कपिरिवैकः कुमारः सर्वकेशकः। प्रियो दृश इव भूत्वा गन्धर्वः सचते स्त्रियस्तमितो नाशयामसि ब्रह्मणा वीर्यावता ॥११॥

पदार्थ—(**एक इव**) एक ही परमेश्वर (**श्वा**) गतिशील वा वृद्धिशील है, (**एक इव**) एक ही (**कपि**) कंपाने वाला वा क्रोधशील, (**कुमारः**) कामना योग्य, (**सर्वकेशक**) सर्व प्रकाशक है। (**प्रिय इव**) प्रिय ही परमेश्वर (**गन्धर्वः**) वेदवाणी वा पृथिवी का धारण करने वाला (**भूत्वा**) होकर (**दृशे**) सबके देखने के लिए (**स्त्रिय**) आपस में संगति रखने वाले समूहों में (**सचते**) मिला रहता है। (**वीर्यावता**) उस सामर्थ्य वाले (**ब्रह्मणा**) परब्रह्म के साथ (**तम्**) चोट करने वाले चोर को (**इत.**) यहां से (**नाशयामसि**) हम नाश करते हैं ॥११॥

जाया इद् वो अप्सरसो गन्धर्वाः पतयो यूयम्।

अप धावतामर्त्या मर्त्यान् मा सचध्वम् ॥१२॥

पदार्थ—(**गन्धर्वा**) हे वेदवाणी वा पृथिवी लोक को धारण करने वाले पुरुषों ! (**अप्सरस**) आकाश आदि में व्यापक शक्तियां (**व**) तुम्हारे लिये (**इत्**) ही (**जाया**) सुख उत्पन्न करने वाली हैं। (**यूयम्**) तुम [उनके] (**पतयः**) रक्षक [बनो]। (**अप**) आनन्द से (**धावत**) धावो और (**अमर्त्या**) हे अमर [नित्य उत्साही] पुरुषों ! (**मर्त्यान्**) मरते हुए [निरुत्साही] मनुष्यों के हित करने वाले पुरुषों को (**मा॰ मया**) लक्ष्मी के साथ (**सचध्वम्**) सदा मिलो ॥१२॥

卐 **सूक्तम् ३८** 卐

१—७ बादरायणि, १—४ अप्सरा, ५—७ ऋषभः। अनुष्टुप्, ३ षट्पदा त्र्यवसाना जगती, ५ भुरिगत्यष्टि, ६ त्रिष्टुप्, ७ त्र्यवसाना पञ्चपदानुष्टुब्गर्भा पुरउपरिष्टा ज्ज्योतिष्मती जगती।

उद्भिन्दतीं संजयन्तीमप्सरां साधुदेविनीम्।

ग्लहे कृतानि कृण्वानामप्सरां तामिह हुवे ॥१॥

पदार्थ—(**उद्भिन्दतीम्**) [शत्रुओं को] उखाड़ने वाली, (**संजयन्तीम्**) यथावत् जीतने वाली, (**अप्सराम्**) अद्भुत रूप वाली, (**साधुदेविनीम्**) उचित व्यवहार वाली, (**ग्लहे- ग्रहे**) [अपने] अनुग्रह में (**कृतानि**) कर्मों को (**कृण्वानाम्**) करती हुई (**ताम्**) उस (**अप्सराम्**) आकाश, जल, प्राण और प्रजाओं में व्यापक [परमेश्वर] की शक्ति को (**इह**) यहां पर (**हुवे**) मैं बुलाता हूं ॥१॥

विचिन्वतीमाकिरन्तीमप्सरां साधुदेविनीम्।

ग्लहे कृतानि गृह्णानामप्सरां तामिह हुवे ॥२॥

पदार्थ—(**विचिन्वतीम्**) [पदार्थों को] समेटने वाली, (**आकिरन्तीम्**) फैलाने वाली, (**अप्सराम्**) अद्भुत रूप वाली, (**साधुदेविनीम्**) उचित व्यवहार वाली, (**ग्लहे**) [अपने] अनुग्रह में (**कृतानि**) कर्मों को (**गृह्णानाम्**) ग्रहण करती हुई (**ताम्**) उस (**अप्सराम्**) आकाश आदि में व्यापक शक्ति को (**इह**) यहां पर (**हुवे**) मैं बुलाता हूं ॥२॥

यायैः परिनृत्यत्याददाना कृतं ग्लहात्।

सा नः कृतानि सीषती प्रहामाप्नोतु मायया।

सा नः पयस्वत्यैतु मा नो जैषुरिदं धनम् ॥३॥

पदार्थ—(**या**) जो शक्ति (**अयैः**) मङ्गल अनुष्ठानों के साथ (**ग्लहात्**) [अपने] अनुग्रह से (**कृतम्**) कर्म (**आददाना**) स्वीकार करती हुई (**परिनृत्यति**) सब ओर चेष्टा करती है। (**सा**) वही (**न**) हमारे (**कृतानि**) कर्मों को (**मायया**) बुद्धि के साथ (**सीषती**) नियमबद्ध चाहती हुई (**प्रहाम्**) उत्तम गति (**आप्नोतु**) प्राप्त करे [अर्थात् प्रसन्न हो] (**सा**) वही (**न**) हमारे लिये (**पयस्वती**) अन्न वाली होकर (**ऐतु**) आवे। (**न**) हमारे (**इदम्**) इस (**धनम्**) धन को [शत्रु लोग] (**मा जैषु**) न जीतें ॥३॥

या अक्षेषु प्रमोदन्ते शुचं क्रोधं च बिभ्रती।

आनन्दिनीं प्रमोदिनीमप्सरां तामिह हुवे ॥४॥

पदार्थ—(**या.=या**) जो शक्ति (**शुचम्**) शुद्धि (**च**) और (**क्रोधम्**) क्रोध (**बिभ्रती**) धारण करती हुई 'अक्षेषु' सब व्यवहारों में (**प्रमोदन्ते**—०—**दते**) हर्ष पाती है। (**आनन्दिनीम्**) आनन्द दायिनी, (**प्रमोदिनीम्**) हर्ष कारिणी

(ताम्) उस (अप्सराम्) आकाश आदि मे व्यापक शक्ति को (इह) यहा पर (हुवे) मैं बुलाता हूँ ॥४॥

सूर्यस्य रश्मीनन याः संचरन्ति मरीचीर्वा या अनुसंचरन्ति ।

यासामृषभो दूरतो वाजिनीवान्त्सद्यः सर्वान् लोकान् पर्येति रक्षन् ।

स न ऐतु होममिमं जुषाणो३ऽन्तरिक्षेण सह वाजिनीवान् ॥५॥

पदार्थ—(या) जो [शक्तियां] (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मीन् अनु) व्यापक किरणो के साथ-साथ (संचरन्ति) चलती रहती है, (वा) और (याः) जो (मरीचीः) सब प्रकाशो के (अनुसंचरन्ति) साथ-साथ फिरती हैं ।

(यासाम् — तासाम्) उनका (ऋषभ) दर्शक परमेश्वर (वाजिनीवान्) अन्नवती क्रिया धारण करता हुआ (दूरत) दूर से (सद्य) तुरन्त ही (सर्वान् लोकान्) सब लोको का (रक्षन्) पालता हुआ (पर्येति) घेरकर आता है ।

(अन्तरिक्षेण सह) सबमे दृश्यमान सामर्थ्य के साथ (वाजिनीवान्) बलवती क्रिया वाला (स) वह परमेश्वर (न) हमारे (इयम्) इस (होमम) आत्मदान का (जुषाण) स्वीकार करता हुआ (ऐतु) आवे ॥५॥

अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन् कर्की वत्सामिह रक्ष वाजिन् ।

इमे ते स्तोका बहुला एह्यर्वाङियं ते कर्कीह ते मनोऽस्तु ॥६॥

पदार्थ—(अन्तरिक्षेण सह) सब मे दृश्यमान सामर्थ्य के साथ (वाजिनीवन्) हे अन्नवती वा बलवती क्रिया वाले, (वाजिन्) हे बलवान् परमेश्वर ! (इह) यहा पर (कर्कीम्) अपनी बनाने वाली और (वत्साम) निवास देने वाली शक्ति की (रक्ष) रक्षा कर । (इमे) ये सब (ते) तेरे (स्तोका) अनुग्रह (बहुला) बहुत पदार्थ देने वाले है । (अर्वाङ्) सम्मुख (एहि) तू आ । (इयम्) यह (ते) तेरी (कर्की) रचना शक्ति है । (इह) इसमे (ते) तेरा (मन) मनन (अस्तु) होवे ॥६॥

अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन् कर्की वत्सामिह रक्ष वाजिन् । अयं घासो अयं व्रज इह वत्सां नि बध्नीमः । यथानाम व ईश्महे स्वाहा ॥७॥

पदार्थ —(अन्तरिक्षेण सह) सबमे दृश्यमान सामर्थ्य के साथ (वाजिनीवन्) हे अन्नवती वा बलवती क्रिया वाले, (वाजिन्) हे बलवान् परमेश्वर ! (इह) यहा पर (कर्कीम्) अपनी बनाने वाली और (वत्साम्) निवास देने वाली शक्ति की (रक्ष) रक्षा कर । (अयम्) यह (घास) भोजन है, (अयम्) यह (व्रज) आने जाने का स्थान है, (इह) यहां पर [हृदय मे] (वत्साम्) तेरी निवास देने वाली शक्ति को (नि) निरन्तर (बध्नीम) हम बाधने है ।

(व) तुम्हारा (यथानाम) जैसा नाम है [वैसे ही] (ईश्महे) हम ऐश्वर्यवान् होवे । (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥७॥

卐 सूक्तम् ३९ 卐

१—१० अंगिरा । १—२ पृथिव्यग्नी, ३—४ वाय्वन्तरिक्षे, ५—६ दिवादित्यौ, ७—८ दिक्चन्द्रमस , ९—१० ब्रह्मा जातवेदसोऽग्नि । सगति । पङ्क्ति १—३, ५—७ त्रिपदा महाबृहती, २, ४, ६, ८ सम्नारपङ्क्ति , ९—१० त्रिष्टुप् ।

पृथिव्यामग्नये समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।

यथा पृथिव्यामग्नये समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥१॥

पदार्थ—(पृथिव्याम्) पृथिवी पर (अग्नये) भौतिक अग्नि के लिये वे [ऋषि लोग] (सम्) यथाविधि (अनमन्) नमे है, (स) उसने [उन्हे] (आर्ध्नोत्) बढाया है । (यथा) जैसे (पृथिव्याम) पृथिवी पर (अग्नये) अग्नि के लिये वे (सम् अनमन्) यथावत नमे है । (एव) वैसे ही (मह्यम) मेरे लिये (सनम) सब सम्पत्तिया (सम्) यथावत् (नमन्तु) नमे ॥१॥

पृथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्वत्सः ।

सा मेऽग्निना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।

आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥२॥

पदार्थ—(पृथिवी) पृथिवी (धेनु) दुधैल गौ के समान है, (तस्या) उस [धेनु] का (वत्सः) बच्चा सदृश (अग्नि) है । (सा) वह [धेनु] (मे) मुझे (वत्सेन) बच्चे रूप (अग्निना) अग्नि के साथ (इषम्) अन्न, (ऊर्जम्) पराक्रम, (कामम्) उत्तम मनोरथ, (प्रथमम् आयु.) प्रधान जीवन, (प्रजाम्) प्रजा (पोषम्) पोषण और (रयिम्) धन (दुहाम्) परिपूर्ण करे । (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥२॥

अन्तरिक्षे वायवे समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।

यथान्तरिक्षे वायवे समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥३॥

पदार्थ—(अन्तरिक्षे) मध्यलोक मे (वायवे) वायु को वे [ऋषि लोग] (सम्) यथाविधि (अनमन्) नमे है, (स) उसने [उन्हें] (आर्ध्नोत्) बढाया है । (यथा) जैसे (अन्तरिक्षे) मध्यलोक मे (वायवे) वायु को (सम् अनमन्) वे यथावत् नमे है, (एव) वैसे ही (मह्यम) मुझको (सन्नम) सब सम्पत्तियां (सम्) यथावत् (नमन्तु) नमे ॥६॥

अन्तरिक्षं धेनुस्तस्या वायुर्वत्सः ।

सा मे वायुना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।

आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥४॥

पदार्थ—(अन्तरिक्षम्) मध्यलोक (धेनु) दुधैल गौ के समान है । (तस्याः) उस [धेनु] का (वत्स) बच्चा रूप (वायु) वायु है । (सा) वह [धेनु] (मे) मुझे (वत्सेन) बच्चारूप (वायुना) वायु के साथ (इषम्) अन्न, (ऊर्जम्) पराक्रम, (कामम्) उत्तम मनोरथ, (प्रथमम् आयु) प्रधान जीवन, (प्रजाम्) प्रजा, (पोषम्) पोषण और (रयिम्) धन (दुहाम्) परिपूर्ण कर । (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥४॥

दिव्यादित्याय समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।

यथा दिव्यादित्याय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥५॥

पदार्थ—(दिवि) आकाश मे वर्तमान (आदित्याय) सूर्य को वे [ऋषि लोग] (सम्) यथाविधि (अनमन्) नमे हैं, (स) उसने [उन्हे] (आर्ध्नोत्) बढाया है । (यथा) जैसे (दिवि) आकाश मे वर्तमान (आदित्याय) सूर्य को (सम्-अनमन्) वे यथावत नमे है, (एव) वैसे ही (मह्यम्) मुझ को (सन्नम) सब सम्पत्तियां (सम) यथावत् (नमन्तु) नमे ॥५॥

द्यौर्धेनुस्तस्या आदित्यो वत्सः ।

सा म आदित्येन वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।

आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥६॥

पदार्थ—(द्यौ) सूर्यलोक (धेनु) दुधैल गौ के समान है, (तस्या) उस [धेनु] का (वत्स) बच्चा रूप (आदित्य) सूर्य है । (सा) वह [धेनु] (मे) मुझे (वत्सेन) बच्चा रूप (आदित्येन) सूर्य के साथ (इषम्) अन्न (ऊर्जम्) पराक्रम, (कामम्) उत्तम मनोरथ (प्रथमम् आयु) प्रधान जीवन, (प्रजाम्) प्रजा, (पोषम्) पोषण और (रयिम्) धन (दुहाम्) परिपूर्ण करे, (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥६॥

दिक्षु चन्द्राय समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।

यथा दिक्षु चन्द्राय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥७॥

पदार्थ—(दिक्षु) सब दिशाओ मे (चन्द्राय) चन्द्रमा को वे [ऋषि लोग] (सम) यथाविधि (अनमन्) नमे हैं । (स) उसने [उन्हे] (आर्ध्नोत्) बढाया है । (यथा) जैसे (दिक्षु) सब दिशाओ मे (चन्द्राय) चन्द्रमा को (सम्-अनमन्) वे यथावत् नमे है, (एव) वैसे ही (मह्यम्) मुझको (सन्नम) सब सम्पत्तिया (सम) यथावत् (नमन्तु) नमे ॥७॥

दिशो धेनवस्तासां चन्द्रो वत्सः ।

ता मे चन्द्रेण वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।

आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥८॥

पदार्थ—(दिश) सब दिशाएं (धेनव) दुधैल गौओ के समान हैं । (तासाम्) उन [गौ रूपा] का (वत्स) बच्चा रूप (चन्द्र) चन्द्रमा है । (ता) वे [गौ रूप] (मे) मुझे (वत्सेन) बच्चा रूप (चन्द्रेण) चन्द्रमा के साथ (इषम्) अन्न (ऊर्जम्) पराक्रम, (कामम्) उत्तम मनोरथ (प्रथमम् आयु.) प्रधान जीवन, (प्रजाम्) प्रजा, (पोषम्) पोषण और (रयिम्) धन (दुहाम् = दुहताम्) परिपूर्ण करे । (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥८॥

अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिपा उ ।

नमस्कारेण नमसा ते जुहोमि मा देवानां मिथुया कर्म भागम् ॥९॥

पदार्थ—(ऋषीणाम्) धर्म के साक्षात् करने वाले मुनियो वा विषय देखने वाली इन्द्रियो का (पुत्र) शुद्ध करने वाला, (अभिशस्तिपा) हिंसा के भय से बचाने वाला (अग्नि.) सर्वव्यापक परमेश्वर (उ) निश्चय करके (अग्नौ) सूर्य, अग्नि आदि तेज मे (प्रविष्ट·) प्रवेश किये हुआ (चरति) चलता है । (ते) [उस] तुझको (नमस्कारेण) नमस्कार और (नमसा) आदर के साथ (जुहोमि) मैं आत्मदान करता हूँ । (देवानाम्) महात्माओ के (भागम्) ऐश्वर्य वा सेवनीय कर्म को (मिथुया = मिथुना) दुष्टता से (मा कर्म) हम नष्ट न करें ॥९॥

हृदा पूतं मनसा जातवेदो विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
सप्तास्यानि तव जातवेदस्तेभ्यो जुहोमि स जुषस्व हव्यम् ॥१०॥

पदार्थ—(जातवेदः) हे ज्ञानवान् ! (देव) हे प्रकाशवान् परमेश्वर ! तू (विश्वानि) सब (वयुनानि) ज्ञानो को (विद्वान्) जानने वाला है । (जातवेद.) हे बड़े धन वाले ! [मेरी] (सप्त) सात (आस्यानि) [मस्तक की] गोलकें (तव) तेरी [तेरे तत्पर] हो । (तेभ्य.) उनके हित के लिये (हृदा) हृदय और (मनसा) मन से (पूतम्) शोधे हुए कर्म को (जुहोमि) समर्पण करता हूँ । (सः) सो तू [मेरे] (हव्यम्) आवाहन को (जुषस्व) स्वीकार कर ॥१०॥

卐 सूक्तम् ४० 卐

१—८ शुक्र । ब्रह्म, १ अग्नि, २ यमः, ३ वरुण , ४ सोम , ५ भूमि , ६ वायु , ७ सूर्य , ८ दिश । त्रिष्टुप्, २ जगती, ८ पुरोऽतिशक्वरी पादयुग्जगती ।

ये पुरस्ताज्जुह्वति जातवेदः प्राच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
अग्निमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥१॥

पदार्थ—(जातवेद) हे ज्ञानवान् परमेश्वर ! (ये) जो लोग (पुरस्तात्) सन्मुख होकर (प्राच्या.) पूर्व वा सन्मुख (दिश) दिशा से (अस्मान्) हमको (जुह्वति) खाते और (अभिदासन्ति) चढ़ाई करते है (ते) वे (अग्निम्) [तुझ] सर्वव्यापक को (ऋत्वा) पाकर (पराञ्च·) पीठ देते हुए (व्यथन्ताम्) व्यथा मे पड़ें । (एनान्) इनको (प्रतिसरेण) [तुझ] अग्रगामी के साथ (प्रत्यक्) उलटा (हन्मि) मैं मारता हूँ ॥१॥

ये दक्षिणतो जुह्वति जातवेदो दक्षिणाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
यममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥२॥

पदार्थ—(जातवेद) हे ज्ञानवान् परमेश्वर ! (ये) जो लोग (दक्षिणत) दाहिनी ओर से (दक्षिणाया) दक्षिण वा दाहिनी (दिश) दिशा से (अस्मान्) हम को (जुह्वति) खाते और (अभिदासन्ति) चढ़ाई करते है । (ते) वे (यमम्) [तुझ] धर्मराज न्यायकारी को (ऋत्वा) पाकर (पराञ्च.) पीठ देते हुए (व्यथन्ताम्) व्यथा मे पड़ें । (एनान्) इनको (प्रतिसरेण) [तुझ] अग्रगामी के साथ (प्रत्यक्) उलटा (हन्मि) मैं मारता हूँ ॥२॥

ये पश्चाज्जुह्वति जातवेदः प्रतीच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
वरुणमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥३॥

पदार्थ—(जातवेद·) हे ज्ञानवान् परमेश्वर ! (ये) जो लोग (पश्चात्) पीछे की ओर से (प्रतीच्या.) पश्चिम वा पीछे वाली (दिश) दिशा से (अस्मान्) हमको (जुह्वति) खाते और (अभिदासन्ति) चढ़ाई करते हैं (ते) वे वरुणम् [तुझ] सर्वश्रेष्ठ को (ऋत्वा) पाकर (पराञ्च·) पीठ देते हुए (व्यथन्ताम्) व्यथा मे पड़ें । (एनान्) इनको (प्रतिसरेण) [तुझ] अग्रगामी के साथ (प्रत्यक्) उलटा (हन्मि) मैं मारता हूँ ॥३॥

य उत्तरतो जुह्वति जातवेद उदीच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
सोममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥४॥

पदार्थ—(जातवेद) हे ज्ञानवान् परमेश्वर ! (ये) जो लोग (उत्तरत) बायी ओर से (उदीच्या) उत्तर वा बायीं (दिश.) दिशा से (अस्मान्) हमको (जुह्वति) खाते और (अभिदासन्ति) चढ़ाई करते हैं (ते) वे (सोमम्) [तुझ] ऐश्वर्य वाले को (ऋत्वा) पाकर (पराञ्च.) पीठ देते हुए (व्यथन्ताम्) व्यथा मे पड़ें । (एनान्) इनको (प्रतिसरेण) [तुझ] अग्रगामी के साथ (प्रत्यक्) उलटा (हन्मि) मैं मारता हूँ ॥४॥

ये ३ऽधस्ताज्जुह्वति जातवेदो ध्रुवाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
भूमिमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥५॥

पदार्थ—(जातवेद) हे ज्ञानवान् परमेश्वर ! (ये) जो लोग (अधस्तात्) नीचे की ओर से (ध्रुवाया) स्थिर (दिश) दिशा से (अस्मान्) हम को (जुह्वति) खाते और (अभिदासन्ति) चढ़ाई करते है । (ते) वे (भूमिम्) [तुझ] सर्वाधार को (ऋत्वा) पाकर (पराञ्च·) पीठ देते हुए (व्यथन्ताम्) व्यथा मे पड़ें । (एनान्) इनको (प्रतिसरेण) [तुझ] अग्रगामी के साथ (प्रत्यक्) उलटा (हन्मि) मैं मारता हूँ ॥५॥

ये ३ऽन्तरिक्षाज्जुह्वति जातवेदो व्यध्वाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
वायुमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥६॥

पदार्थ—(जातवेद) हे ज्ञानवान् परमेश्वर ! (ये) जो लोग (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष वा आकाश से (व्यध्वाया) विविध मार्ग वाली (दिश.) दिशा से (अस्मान्) हमको (जुह्वति) खाते और (अभिदासन्ति) चढ़ाई करते हैं (ते) वे (वायुम्) [तुझ] बलवानो मे महाबलवान् को (ऋत्वा) पाकर (पराञ्च·) पीठ देते हुए (व्यथन्ताम्) व्यथा मे पड़े । (एनान्) इनको (प्रतिसरेण) [तुझ] अग्रगामी के साथ (प्रत्यक्) उलटा (हन्मि) मैं मारता हूँ ॥६॥

य उपरिष्टाज्जुह्वति जातवेद ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
सूर्यमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥७॥

पदार्थ—(जातवेद) हे ज्ञानवान् परमेश्वर ! (ये) जो लोग (उपरिष्टात्) ऊँचे स्थान मे (ऊर्ध्वाया) ऊपर वाली (दिश) दिशा से (अस्मान्) हमको (जुह्वति) खाते और (अभिदासन्ति) चढ़ाई करते हैं (ते) वे (सूर्यम्) [तुझ] सर्वव्यापक वा सर्वप्रेरक को (ऋत्वा) पाकर (पराञ्च) पीठ देते हुए (व्यथन्ताम्) व्यथा मे पड़ें । (एनान्) इनको (प्रतिसरेण) [तुझ] अग्रगामी के साथ (प्रत्यक्) उलटा (हन्मि) मैं मारता हूँ ॥७॥

ये दिशामन्तर्देशेभ्यो जुह्वति जातवेदः सर्वाभ्यो दिग्भ्योऽभिदासन्त्यस्मान् । ब्रह्मर्त्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥८॥

पदार्थ—(जातवेद) हे ज्ञानवान् परमेश्वर ! (ये) जो लोग (दिशाम्) दिशाओं के (अन्तर्देशेभ्य.) मध्य देशो से (सर्वाभ्य) सब (दिग्भ्यः) दिशाओं से (अस्मान्) हम को (जुह्वति) खाते और (अभिदासन्ति) चढ़ाई करते हैं । (ते) वे (ब्रह्म) [तुझ] ब्रह्म को (ऋत्वा) पाकर (पराञ्च) पीठ देते हुए (व्यथन्ताम्) व्यथा मे पड़ें । (एनान्) इनको (प्रतिसरेण) [तुझ] अग्रगामी के साथ (प्रत्यक्) उलटा (हन्मि) मैं मारता हूँ ॥८॥

卐 इति अष्टमोऽनुवाकः 卐

इति चतुर्थं काण्ड समाप्तम् ॥

卐

पञ्चमं काण्डम्

प्रथमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् १ 卐

१—९ बृहद्दिवोऽथर्वा । वरुण । त्रिष्टुप्, ५ पराबृहती त्रिष्टुप्, ७ विराट्, ९ त्र्यवसाना षट्पदा अत्यष्टि ।

ऋधङ्मन्त्रो योनिं य आबभूवामृतासुर्वर्धमानः सुजन्मा ।
अदब्धासुर्भ्राजमानोऽहेव त्रितो धर्ता दाधार त्रीणि ॥१॥

पदार्थ—(यः) जो (ऋधक्‌मन्त्रः) सत्य मन्त्र वा मनन वाला, (अमृतासुः) अमर प्राण वाला, (वर्धमानः) बढ़ता हुआ, (सुजन्मा) अद्‌भुत जन्म वाला (योनिम्) प्रत्येक घर वा कारण में (आबभूव) व्यापक हुआ है, उस (अदब्धासु·) अचूक बुद्धि वाले, (अहा इव = अहानि इव) दिनों के समान (भ्राजमानः) प्रकाशमान, (धर्ता) सब के धारण करने वाले, (त्रित·) पालन करने वाले वा सबसे बड़े वा तीनो कालो वा लोको में फैले हुए त्रित परमात्मा ने (त्रीणि) तीनो [धामो, अर्थात् स्थान, नाम और जन्म वा जाति] को (दाधार) धारण किया था ॥१॥

आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि ।
धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेशा यो वाचमनुदितां चिकेत ॥२॥

पदार्थ—(यः) जिस (प्रथम) प्रख्यात परमेश्वर ने (धर्माणि) धारण योग्य धर्मों वा व्यवस्थाओं को (आ) यथावत् (ससाद) प्राप्त किया, (तत·) उसी [धर्म] से वह [संसार के (पुरूणि) अनेक (वपूंषि) रूपों को (कृणुषे = कृणुते) बनाता है । (प्रथम) उस पहिले (धास्यु.) धारण की इच्छा करने वाले परमेश्वर ने (योनिम्) प्रत्येक कारण में (आ) यथावत् (विवेश) प्रवेश किया,

(**य**) जिसने (**अनुदिताम्**) बिना कही हुई (**वाचम्**) वाणी को (**आ**) ठीक-ठीक (**चिकेत**) जाना था ॥२॥

यस्ते शोकाय तन्वं रिरेच क्षरद्धिरण्यं शुचयोऽनु स्वाः ।
अत्रा दधेते अमृतानि नामास्मे वस्त्राणि विश एरयन्ताम् ॥३॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] (**य**) जिस पुरुष ने (**ते**) तेरा (**शोकाय**) प्रकाश पाने के लिये (**तन्वम्**) अपना शरीर (**रिरेच**) जोड दिया है, [क्योकि] (**शुचय**) शुद्धस्वभाव (**स्वा**) बन्धु लोग (**क्षरत्**) चलता हुए (**हिरण्यम्**) कमनीय ज्योति स्वरूप परमात्मा के (**अनु**) पीछे-पीछे वर्तमान रहते है। (**अत्र**) इस पुरुष मे ही (**अमृतानि**) अमर (**नाम=नामानि**) नामो को (**दधेते**) वे दोनो [सूर्य पृथिवी लोक] धरते है। (**विश**) सब प्रजाये (**अस्मे**) हमारे लिये (**वस्त्राणि**) ओढने वा निवासस्थान आदि (**आ ईरयन्ताम्**) लावें ॥३॥

प्र यदेते प्रतरं पूर्व्यं गुः सदः सद आतिष्ठन्तो अजुर्यम् ।
कविः शुषस्य मातरा रिहाणे जाम्यै धुर्यं पतिमेरयेथाम् ॥४॥

पदार्थ—(**यत्**) जिस कारण से कि (**एते**) इन [शुद्धस्वभाव बन्धुओ] ने (**अजुर्यम**) जरा रहित (**सद सद**) पाने योग्य पदार्थों मे पाने योग्य मोक्ष पद पर (**आतिष्ठन्त**) चढ कर (**प्रतरम्**) अति उत्तम (**पूर्व्यम्**) सब के हितकारक परमात्मा को (**प्र गु**) प्राप्त किया है। (**कवि=कवे**) बुद्धिमान् (**शुषस्य**) बलवान पुरुष के (**मातरा=०—रौ**) माताओ, (**धुर्यम्**) धुरन्धर (**पतिम्**) जगत्पति परमात्मा की (**रिहाणे**) स्तुति करती हुई तुम दोनो [सूर्य और पृथिवी लोक] (**जाम्यै**) भगिनी के समान हितकारक प्रजा के लिए (**आ ईरयेथाम**) प्राप्त कराओ ॥४॥

तदू षु ते महत् पृथुज्मन् नमः कविः काव्येना कृणोमि ।
यत् सम्यञ्चावभियन्तावभि क्षामत्रा मही रोधचक्रे वावृधेते ॥५॥

पदार्थ—(**तत्**) उस कारण से (**पृथुज्मन्**) हे विस्तृत गतिवाले परमात्मन् ! (**ते**) तेरे लिए (**उ**) ही (**कवि**) मैं बुद्धिमान् पुरुष (**काव्येन**) बुद्धिमत्ता के साथ (**सु**) सुन्दर रीति से (**महत्**) बहुत बहुत (**नम**) नमस्कार (**कृणोमि**) करता हूँ (**यत्**) जिससे (**सम्यञ्चौ**) आपस मे मिले हुए (**अभियन्तौ**) सब ओर गति वाले [दोनो लोक अर्थात्] (**मही**) विशाल (**रोधचक्रे**) [प्राणियो को] रोकने के कर्म वाले [सूर्य पृथिवी अर्थात् ऊचे नीचे लोक] (**क्षाम् अभि**) हमारे निवास, उद्योग, वा ऐश्वर्य के लिए (**अत्र**) यहां पर (**वावृधेते**) बढते हैं ॥५॥

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामिदेकामभ्यंहुरो गात् ।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥६॥

पदार्थ—(**कवय**) ऋषि लोगो ने (**सप्त**) सात (**मर्यादा**) मर्यादायें [कुमर्यादायें] (**ततक्षु**) ठहरायी है, (**तासाम्**) उनमें से (**एकाम्**) एक पर (**इत्**) भी (**अभि गात्**) चलता हुआ पुरुष (**अंहुर**) पापवान् [होता है] [क्योकि] (**आयो**) मार्ग [सुमार्ग] का (**स्कम्भ.**) थांभने वाला पुरुष (**ह**) ही (**पथाम्**) उन मार्गों (**कुमार्गों**) के (**विसर्गे**) त्याग पर (**उपमस्य**) समीपवर्ती वा सब के निर्माता परमेश्वर के (**नीडे**) धाम के भीतर (**धरुणेषु**) धारण सामर्थ्यों मे (**तस्थौ**) स्थित हुआ है ॥६॥

उतामृतासुर्व्रत एमि कृण्वन्नसुरात्मा तन्वं १ स्तत् सुमद्गुः ।
उत वा शक्रो रत्नं दधात्यूर्जया वा यत् सचते हविर्दाः ॥७॥

पदार्थ—(**अमृतासु**) अमर बुद्धि वा प्राण वाला, (**व्रत**) उत्तम कर्म वाला मैं (**कृण्वन्**) कर्म करता हुआ (**उत**) ही (**एमि**) चलता हूं, (**तत**) तब (**असु**) मेरी बुद्धि (**आत्मा**) आत्मा और (**तन्व=तनू**) देह (**सुमद्गु**) उत्तम मननशील वा तृप्ति कारक विद्यायुक्त [होता है] (**उत**) और (**वा**) अवश्य (**शक्र**) शक्तिमान् परमेश्वर (**रत्नम्**) रत्न (**दधाति**) देता है, (**यत्**) जब (**हविर्दा**) भक्ति का देने वाला पुरुष (**ऊर्जया**) बल के साथ (**वा**) निश्चय करके [उसको] (**सचते**) सेवता है ॥७॥

उत पुत्रः पितरं क्षत्रमीडे ज्येष्ठं मर्यादमह्वयन्त्स्वस्तये ।
दर्शन्नु ता वरुण यास्ते विष्ठा आवर्वततः कृणवो वपूंषि ॥८॥

पदार्थ—(**पुत्र.**) मैं पुत्र (**पितरम्**) पालनकर्ता पिता परमेश्वर से (**उत**) ही (**क्षत्रम्**) धन (**ईडे**) मांगता हूँ, (**ज्येष्ठम्**) अत्यन्त वृद्ध (**मर्यादम्**) मर्यादा वाले परमात्मा को (**स्वस्तये**) आनन्द के लिए (**अह्वयन्**) [ऋषियो ने] आवाहन किया है। (**वरुण**) हे वरणीय परमेश्वर ! (**या**) जो (**ते**) तेरी (**विष्ठा**) व्यवस्थायें हैं (**ता.**) उन्हें (**नु**) शीघ्र (**दर्शन्**) वे लोग देखें, (**आवर्वतत**) यथावत् अनेक प्रकार घूमने वाले [ससार] के (**वपूंषि**) रूपो को (**कृणव**) तू प्रकट कर ॥८॥

अर्धमर्धेन पयसा पृणक्ष्यर्धेन शुष्म वर्धसे असुर । अविं वृधाम शग्मियं सखायं वरुणं पुत्रमदित्या इषिरम् । कविशस्तान्यस्मै वपूंष्यवोचाम रोदसी सत्यवाचा ॥९॥

पदार्थ—(**शुष्म**) हे बलवान् ! (**असुर**) हे किसी से न घेरे गये परमेश्वर ! (**अर्धम्**) बढे हुए ससार को (**अर्धेन**) बढे हुए (**पयसा**) अपने व्यापकपन से (**पृणक्षि**) तू सयुक्त करता है और उस (**अर्धेन**) बढे हुए [व्यापकपन] से (**वर्धसे**) तू बढता है। (**अविम्**) रक्षक, (**शग्मियम्**) सुखवान्, (**सखायम्**) सब के मित्र, (**वरुणम्**) सब मे श्रेष्ठ, (**पुत्रम्**) सब के शुद्ध करने हारे, और (**अदित्या**) अखण्ड प्रकृति के (**इषिरम्**) चलाने वा देखने वाले परमेश्वर को (**वृधाम**) हम बडा मानें। (**कविशस्तानि**) बुद्धिमानो से बडे माने गये (**वपूंषि**) रूपों को (**अस्मै**) इस [परमेश्वर] के लिए (**अवोचाम**) हम ने कथन किया है, (**रोदसी**) सूर्य और पृथिवी दोनो (**सत्यवाचा**) सत्य बोलने वाले हैं ॥९॥

卐 सूक्तम् २ 卐

१—९ बृहद्दिवो अथर्वा । वरुण । त्रिष्टुप्, ९ भुरिक्परातिजागता त्रिष्टुप् ।

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूनन यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः ॥१॥

पदार्थ—(**तत्**) विस्तीर्ण ब्रह्म (**इत्**) ही (**भुवनेषु**) लोको के भीतर (**ज्येष्ठम्**) सब मे उत्तम और सब मे बडा (**आस**) प्रकाशमान हुआ (**यत**) जिस ब्रह्म से (**उग्र**) तेजस्वी (**त्वेषनृम्ण**) तेजोमय बल वा धन वाला पुरुष (**जज्ञे**) प्रकट हुआ। (**सद्य**) शीघ्र (**जज्ञान.**) प्रकट होकर (**शत्रून्**) गिराने वाले विघ्नो को (**निरिणाति**) नाश कर देता है। (**यत**) जिससे (**एनम अनु**) इस [परमात्मा] के पीछे पीछे (**विश्वे**) सब (**ऊमा**) परस्पर रक्षक लोग (**मदन्ति**) हर्षित होते हैं ॥१॥

वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥२॥

पदार्थ—(**शवसा**) बल से (**वावृधान**) बढता हुआ, (**भूर्योजा.**) महाबली, (**शत्रु**) हमारा शत्रु (**दासाय**) दानपात्र दास को (**भियसम्**) भय (**दधाति**) देता है। (**अव्यनत्**) गतिशून्य स्थावर (**च**) और (**व्यनत्**) गतिवाला जङ्गम जगत् (**च**) निश्चय करके [परमात्मा मे] (**सस्नि**) लपेटा हुआ है, (**प्रभृता**) अच्छे प्रकार पुष्ट किये हुए प्राणी (**मदेषु**) आनन्दो मे (**ते**) तेरी (**सम् नवन्त=०—न्ते**) यथावत् स्तुति करते है ॥२॥

त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः । स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥३॥

पदार्थ—[हे परमात्मन !] (**त्वे अपि**) तुझ मे ही (**क्रतुम्**) अपनी बुद्धि को (**भूरि**) बहुत प्रकार से [सब प्राणी] (**पृञ्चन्ति**) जोडते हैं। (**एते**) ये सब (**ऊमा**) रक्षक प्राणी (**द्वि**) दो बार [स्त्री पुरुष रूप से] (**त्रि:**) तीन बार (**स्थान, नाम और जन्म रूप से**) (**भवन्ति**) रहते हैं। (**यत्**) क्योकि (**स्वादो**) स्वादु से (**स्वादीय**) अधिक स्वादु मोक्ष सुख को (**स्वादुना**) स्वादु [सांसारिक सुख] के साथ (**सम् सृज**) सयुक्त कर (**अद**) उस (**मधु**) मधुर मोक्ष सुख का (**मधुना**) मधुर [सांसारिक] ज्ञान के साथ (**सु**) भले प्रकार (**अभि**) सब ओर से (**योधी**) तूने पहुँचाया है ॥३॥

यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः । ओजीयः शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन् दुरेवासः कशोकाः ॥४॥

पदार्थ—(**यदि**) जो (**चित**) निश्चय करके (**विप्रा**) पडित जन (**रणे रणे**) प्रत्येक रण मे (**नु**) शीघ्र (**धना**) धनो को (**जयन्तम्**) जीतने वाले (**त्वा**) तेरे (**अनु मदन्ति**) पीछे पीछे आनन्द पाते है। (**शुष्मिन्**) हे बलवन् परमात्मन् ! (**ओजीय**) अधिक बलवान (**स्थिरम्**) स्थिर मोक्ष सुख (**आ**) सब ओर से (**तनुष्व**) फैला। (**दुरेवास दुरेवा**) दुष्ट गतिवाले (**कशोका**) परसुख मे शोक करने वाले जन (**त्वा**) तुझ को (**मा दभन्**) न सतावें ॥४॥

त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥५॥

पदार्थ—(**भूरि**) बहुत से (**युधेन्यानि**) युद्धो को (**प्रपश्यन्त:**) देखते हुए (**वयम्**) हम लोग (**त्वया**) तेरे साथ (**रणेषु**) रणक्षेत्रो मे [शत्रुओ को] (**शाशद्महे**) मार गिराते है। (**ते**) तेरे (**वचोभि**) वचनो से (**आयुधा**) अपने शस्त्रो को (**चोदयामि**) मैं आगे बढाता हूँ और (**ते**) तेरे (**ब्रह्मणा**) ब्रह्मज्ञान से (**वयांसि**) अपने जीवनो का (**सम**) यथावत् (**शिशामि**) तीक्ष्ण करता हूँ ॥५॥

नि तद् दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।

आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि ॥६॥

पदार्थ—[हे परमात्मन्] (अवरे) छोटे (च) और (परे) बडे मनुष्य मे (तत्) उस [घर] को (नि) निश्चय करके (दधिषे) तू ने पोषण किया है (यस्मिन्) जिस (दुरोणे) कष्ट से भरने योग्य घर मे (अवसा) अन्न से (आविथ) तूने रक्षा की है। [हे मनुष्यो !] (जिगत्नुम्) सर्वव्यापक (मातरम्) माता [परमेश्वर] को (आ) भली भांति (स्थापयत) [हृदय में] ठहराओ और (अत) इसी से (भूरि) बहुत से (कर्वराणि) कर्मों को (इन्वत) सिद्ध करो ॥६॥

स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्तमाप्त्यानाम् ।

आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ॥७॥

पदार्थ—(वर्ष्मन्) हे ऐश्वर्यवान् पुरुष ! (पुरुवर्त्मानम्) बहुत मार्ग वाले (ऋभ्वाणम्) दूर दूर तक चमकने वाले, (इनतमम्) महाप्रभु और (आप्त्यानाम्) आप्त [यथार्थवक्ता] पुरुषो मे रहने वाले गुणो के (आप्तम्) यथार्थवक्ता परमेश्वर की (सम्) यथावत् (स्तुष्व) स्तुति कर। (भूर्योजाः) वह महाबली (शवसा) अपने बल से (आ) सब ओर (दर्शति) देखता है, और वह (पृथिव्याः) पृथिवी का (प्रतिमानम्) प्रतिमान होकर (प्र) भली भांति (सक्षति) व्यापता है ॥७॥

इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।

महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद् विश्वमर्णवत् तपस्वान् ॥८॥

पदार्थ—(बृहद्दिवः) बडे व्यवहार या गतिवाला, (अग्रियः) अगुआ और (स्वर्षाः) स्वर्ग का सेवन करने वाला पुरुष (इन्द्राय) परमेश्वर के लिए (इमा) इन (ब्रह्म = ब्रह्माणि) बडे स्तोत्रो को (शूषम्) अपना बल (कृणवत्) बनावे। (स्वराजा) वह स्वतन्त्र राजा परमेश्वर (महः) बडे (गोत्रस्य) भूपति राजा का (क्षयति) राजा है, और वह (तुरः) शीघ्र स्वभाव, (तपस्वान्) सामर्थ्यवाला परमात्मा (चित्) ही (विश्वम्) सब जगत् मे (अर्णवत्) व्यापता है ॥८॥

एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वावोचत् स्वां तन्वमिन्द्रमेव ।

स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च ॥९॥

पदार्थ—(महान्) महान् (बृहद्दिवः) बडे व्यवहार वाले, (अथर्वा) निश्चल स्वभाव पुरुष ने (स्वाम्) अपनी (तन्वम्) विस्तृत स्तुति (इन्द्रम्) परमेश्वर के लिये (एव) ही (एव) इस प्रकार से (अवोचत्) कही है। (मातरिभ्वरी) आकाश मे वर्तमान (स्वसारौ) अच्छे प्रकार ग्रहण करने वाले वा गति वाले [वा दो बहिनो के समान सहायकारी] दिन और रात (च) और (अरिप्रे) निर्दोष (एने) ये दोनों [सूर्य और पृथिवी] (शवसा) अपने सामर्थ्य से [उसी को] (हिन्वन्ति) प्रसन्न करती (च) और (वर्धयन्ति) सराहती है ॥९॥

卐 सूक्तम् ३ 卐

१—११ बृहद्दिवोऽथर्वा । १—२ अग्निः, ३—४ देवा, ५ द्रविणोदाः, ६ देवी, ७ सोम, ८, ११ इन्द्र, ९ धाता, विधाता, सविता, आदित्याः, रुद्रा, अश्विनौ, १० आदित्या, रुद्राः । त्रिष्टुप्, २ भुरिक्, १० विराड्जगती ।

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।

मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सर्वव्यापक परमात्मन् ! (विहवेषु) सग्रामो मे (मम) मेरा (वर्चः) प्रकाश (अस्तु) होवे। (वयम्) हम लोग (त्वा) तुझको (इन्धानाः) प्रकाशित करते हुए (तन्वम्) अपना शरीर (पुषेम) पोषें। (चतस्रः) चारो (प्रदिशः) बडी दिशायें (मह्यम्) मेरे लिये (नमन्ताम्) नमे, (त्वया) तुझ (अध्यक्षेण) अध्यक्ष के साथ (पृतनाः) सग्रामो को (जयेम) हम जीतें ॥१॥

अग्ने मन्युं प्रतिनुदन् परेषां त्वं नो गोपाः परि पाहि विश्वतः ।

अपाञ्चो यन्तु निवता दुरस्यवोऽमैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत् ॥२॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! (परेषाम्) शत्रुओ के (मन्युम्) क्रोध को (प्रतिनुदन्) हटाता हुआ, (गोपाः) रक्षक, (त्वम्) तू (नः) हम लोगो को (विश्वतः) सब प्रकार से (परिपाहि) बचा ले। (अपाञ्चः) दूर हटे हुए (दुरस्यवः) अनिष्ट चिंतक लोग (निवता) नीचे की ओर से (यन्तु) चले जावें और (अमा) अपने घर मे (प्रबुधाम्) जागने वाले (एषाम्) इन लोगो का (चित्तम्) चित्त (विनेशत्) नष्ट हो जावे ॥२॥

मम देवा विहवे सन्तु सर्व इन्द्रवन्तो मरुतो विष्णुरग्निः ।

ममान्तरिक्षमुरुलोकमस्तु मह्यं वातः पवतां कामायास्मै ॥३॥

पदार्थ—(सर्वे) सब (देवाः) चाहने योग्य गुण (विहवे) सग्राम मे (मम) मेरे (सन्तु) हों, और (इन्द्रवन्तः) ऐश्वर्ययुक्त (मरुतः) शूर देवता गण और (विष्णुः) व्यापक सूर्य और (अग्निः) अग्नि [भी मेरे हो]। (उरुलोकम्) विस्तीर्ण लोकोंवाला (अन्तरिक्षम्) आकाश (मम) मेरा (अस्तु) होवे, (अस्मै कामाय) इस कामना के लिये (वातः) पवन (मह्यम्) मेरे हित (पवताम्) शुद्ध चले ॥३॥

मह्यं यजन्तां मम यानीष्टाकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु ।

एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वे देवा अभि रक्षन्तु मेह ॥४॥

पदार्थ—(मम) मेरे (यानि) पाने योग्य (इष्टा = इष्टानि) इष्ट कर्म (मह्यम्) मुझ को (यजन्ताम्) मिलें, (मे) मेरे (मनसः) मन का (आकूतिः) सकल्प (सत्या) सत्य (अस्तु) होवे। (अहम्) मैं (कतमत् चन) किसी भी (एनः) पाप कर्म को (मा नि गाम्) कभी न प्राप्त होऊ, (विश्वे) सब (देवाः) उत्तम गुण (मा) मेरी (इह) इस विषय मे (अभि) सब ओर से (रक्षन्तु) रक्षा करें ॥४॥

मयि देवा द्रविणमा यजन्तां मय्याशीरस्तु मयि देवहूतिः ।

दैवा होतारः सनिषन् न एतदरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः ॥५॥

पदार्थ—(देवः) सब उत्तम गुण (मयि) मुझ मे (द्रविणम्) धन (आ यजन्ताम्) लाकर दें। (मयि) मुझ मे (आशीः) आशीर्वाद, और (मयि) मुझ मे (देवहूतिः) विद्वानो का आवाहन (अस्तु) होवे। (दैवाः) दिव्य गुण वाले (होतारः) दाता पुरुष (नः) हमे (एतत्) यह [दान] (सनिषन्) देवें। (तन्वा) अपने शरीर से (अरिष्टाः) निर्दुःखी और (सुवीराः) बडे-बडे वीरों वाले (स्याम) हम होवें ॥५॥

दैवीः षडुर्वीरुरु नः कृणोत विश्वे देवास इह मादयध्वम् ।

मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ॥६॥

पदार्थ—(दैवीः) हे दिव्य गुण वाली (षट्) छह [पूर्वादि चार और ऊँची नीची दो] (उर्वीः) फैली हुई दिशाओ ! (नः) हमारे लिये (उरु) फैला हुआ स्थान (कृणोत) करो। (विश्वे) सब (देवासः) विद्वान् लोगो ! (इह) इस विषय मे [हमें] (मादयध्वम्) आनन्दित करो। (अभिभा) सम्मुख चमकती हुई, आपत्ति (नः) हम पर (मा विदत्) न आ पडे, और (मो = मा उ) न कभी (अशस्तिः) अपकीर्ति, और (या) जो (द्वेष्या) द्वेष योग्य (वृजिना) वर्जनीय पाप बुद्धि है, [वह भी] (नः) हम पर (मा विदत्) न आ पडे ॥६॥

तिस्रो देवीर्महि नः शर्म यच्छत प्रजायै नस्तन्वे यच्च पुष्टम् ।

मा हास्महि प्रजया मा तनूभिर्मा रधाम द्विषते सोम राजन् ॥७॥

पदार्थ—(तिस्रः देवीः) हे तीनो कमनीय गुण वाली शक्तियो ! (नः) हमे (महि) बडी (शर्म) शरण वा सुख, (च) और (नः) हमारी (प्रजायै) प्रजा के लिये और (तन्वे) शरीर के लिये और (यत्) जो कुछ (पुष्टम्) पोषण है [वह भी] (यच्छत) दान करो। (प्रजया) प्रजा से (मा हास्महि) हम न छूटे और (मा) न (तनूभिः) अपने शरीरो से, (सोम) हे ऐश्वर्य वाले (राजन्) राजन् परमेश्वर ! (द्विषते) वैरी के लिये (मा रधाम) हम न दुःखी होवें ॥७॥

उरुव्यचा नो महिषः शर्म यच्छत्वस्मिन् हवे पुरुहूतः पुरुक्षु ।

स नः प्रजायै हर्यश्व मृडेन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः ॥८॥

पदार्थ—(उरुव्यचाः) बडी व्याप्ति वाला, (महिषः) पूज्य, (पुरुहूतः) अत्यन्त करके पुकारा गया परमेश्वर (अस्मिन् हवे) इस आवाहन मे (नः) हमें (पुरुक्षु) बहुत अन्नो से युक्त (शर्म) घर (यच्छतु) देवे। (सः) सो तू (हर्यश्व) हे आकर्षण विकर्षण से व्यापक (इन्द्र) परमेश्वर ! (नः) हमारी (प्रजायै) प्रजा के लिये (मृड) सुखी हो, (नः) हमे (मा रीरिषः) मत दुःख दे और (मा परा दाः) मत त्याग कर ॥८॥

धाता विधाता भुवनस्य यस्पतिर्देवः सविताभिमातिषाहः ।

आदित्या रुद्रा अश्विनोभा देवाः पान्तु यजमानं निर्ऋथात् ॥९॥

पदार्थ—(धाता) धारण करने वाला, (विधाता) सृष्टि करने वाला (देवः) प्रकाशमान, (सविता) सबका चलाने वाला, (अभिमातिषाहः) अभिमानियो का जीतने वाला परमेश्वर, (यः) जो (भुवनस्य) ससार का (पतिः) पति है, और (आदित्याः) प्रकाशमान, (रुद्राः) दुःख नाश करने वाले विद्वान् शूर पुरुष, (उभा) दोनो (अश्विना) सूर्य और पृथिवी लोक, और (देवाः) सब दिव्य पदार्थ (यजमानम्) यजमान को (निर्ऋथात्) विनाश से (पान्तु) बचावें ॥९॥

ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामह एनान् ।

आदित्या रुद्रा उपरिस्पृशो न उग्रं चेत्तारमधिराजमक्रत ॥१०॥

पदार्थ—(**ये**) जो (**नः**) हमारे (**सपत्नाः**) शत्रु है (**ते**) वे (**अपभवन्तु**) दूर हो जावें, (**इन्द्राग्निभ्याम्**) वायु और अग्नि [प्राण और पराक्रम] द्वारा (**एनान्**) इनको (**अव बाधामहे**) हम हटाते हैं। (**आदित्याः**) प्रकाशमान, (**रुद्राः**) दु:ख नाशक, (**उपरिस्पृशः**) उच्च पद धारण करने वाले पुरुषों ने (**चेतारम्**) सर्वज्ञ, (**उग्रम्**) तेजस्वी परमात्मा को (**नः**) हमारा [अधिराजम्] राजाधिराज (**अक्रत**) बनाया है ॥१०॥

अर्वाञ्चमिन्द्रममुतो हवामहे यो गोजिद् धनजिदश्वजिद् यः ।

इमं नो यज्ञं विहवे शृणोत्वस्माकमभूर्हर्यश्व मेदी ॥११॥

पदार्थ—(**अमुतः**) वहाँ से (**अर्वाञ्चम्**) सन्मुख विराजमान (**इन्द्रम्**) इन्द्र परमेश्वर को (**हवामहे**) हम पुकारते हैं, (**यः**) जो (**गोजित्**) पृथिवी जीतने वाला, (**धनजित्**) धन जीतने वाला और (**यः**) जो (**अश्वजित्**) घोड़ों का जीतने वाला है। वह (**नः**) हमारे (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) देवपूजन को (**विहवे**) संग्राम में (**शृणोतु**) सुने। (**हर्यश्व**) हे आकर्षण और विकर्षण शक्ति से व्यापक इन्द्र ! (**अस्माकम्**) हमारा (**मेदी**) स्नेही (**अभूः**) तू रहा है ॥११॥

卐 **सूक्तम् ४** 卐

१—१० भृग्वङ्गिरा कुष्ठो, यक्ष्मनाशनम् । अनुष्टुप्, ५ भुरिक्, ६ गायत्री, १० उष्णग्गर्भा निचृत् ।

यो गिरिष्वजायथा वीरुधां बलवत्तमः ।

कुष्ठेहि तक्मनाशन तक्मानं नाशयन्नितः ॥१॥

पदार्थ—(**यः**) जो तू (**गिरिषु**) स्तुति योग्य पुरुषों में (**वीरुधाम्**) विविध उत्पन्न प्रजाओं के बीच (**बलवत्तमः**) अत्यन्त बलवान (**अजायथाः**) उत्पन्न हुआ है। (**तक्मनाशन**) हे दु:खित जीवन नाश करने वाले (**कुष्ठ**) गुणपरीक्षक पुरुष (**इतः**) यहाँ से (**तक्मानम्**) दु:खित जीवन को (**नाशयन्**) नाश करता हुआ (**आ इहि**) तू आ ॥१॥

सुपर्णसुवने गिरौ जातं हिमवतस्परि ।

धनैरभि श्रुत्वा यन्ति विदुर्हि तक्मनाशनम् ॥२॥

पदार्थ—(**सुपर्णसुवने**) उत्तम पालन सामर्थ्य उत्पन्न करने हारे (**गिरौ**) स्तुति योग्य कुल में (**हिमवतः**) उद्योगी पुरुष से (**परि**) अच्छे प्रकार (**जातम्**) उत्पन्न पुरुष को (**धनैः**) धनों के साथ वर्तमान (**श्रुत्वा**) सुनकर [विद्वान् लोग] (**अभि यन्ति**) सन्मुख पहुँचते हैं, [और उस को] (**तक्मनाशनम्**) दु:खित जीवन नाश करने हारा (**हि**) निश्चय करके (**विदुः**) जानते हैं ॥२॥

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि ।

तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥३॥

पदार्थ—(**देवसदनः**) विद्वानों के बैठने योग्य (**अश्वत्थः**) वीरों का ठहरने का देश (**तृतीयस्याम्**) तीसरी [निकृष्ट और मध्यम अवस्था से परे, श्रेष्ठ] (**दिवि**) गति में (**इतः**) प्राप्त होता है। (**तत्र**) उसमें (**अमृतस्य**) अमृत के (**चक्षणम्**) दर्शन (**कुष्ठम्**) गुणपरीक्षक पुरुष को (**देवाः**) महात्माओं ने (**अवन्वत**) माँगा है ॥३॥

हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि ।

तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥४॥

पदार्थ—(**हिरण्ययी**) तेजोमयी, (**हिरण्यबन्धना**) तेजोमय बन्धन वाली (**नौः**) नाव (**दिवि**) प्रकाशलोक में (**अचरत्**) चलती थी। (**तत्र**) वहाँ पर (**अमृतस्य**) अमरपन के (**पुष्पम्**) विकास, (**कुष्ठम्**) गुणपरीक्षक पुरुष को (**देवाः**) विद्वान् लोगों ने (**अवन्वत**) माँगा है ॥४॥

हिरण्ययाः पन्थान आसन्नरित्राणि हिरण्यया ।

नावो हिरण्ययीरासन् याभिः कुष्ठं निरावहन् ॥५॥

पदार्थ—(**हिरण्ययाः**) तेजोमय (**पन्थानः**) मार्ग और (**हिरण्यया**) तेजोमय (**अरित्राणि**) बल्लियाँ वा डाँड (**आसन्**) थे। (**हिरण्ययीः**) तेजोमय (**नावः**) नावें (**आसन्**) थीं (**याभिः**) जिनसे (**कुष्ठम्**) गुणपरीक्षक पुरुष को (**निरावहन्**) वे निश्चय करके लाये हैं ॥५॥

इमं मे कुष्ठ पूरुषं तमा वह तं निष्कुरु ।

तमु मे अगदं कृधि ॥६॥

पदार्थ—(**कुष्ठ**) हे गुणपरीक्षक पुरुष ! (**मे**) मेरे (**इमम्**) इस (**तम्**) पीड़ित (**पुरुषम्**) पुरुष को (**आ वह**) ले, और (**तम्**) उसको [दु:ख से] (**निष्कुरु**) बाहिर कर। (**तम् उ**) उसको ही (**मे**) मेरे लिए (**अगदम्**) नीरोग (**कृधि**) कर ॥६॥

देवेभ्यो अधि जातोऽसि सोमस्यासि सखा हितः ।

स प्राणाय व्यानाय चक्षुषे मे अस्मै मृड ॥७॥

पदार्थ—(**देवेभ्यः**) विद्वान् पुरुषों से (**अधि**) ऐश्वर्य के साथ (**जातः असि**) तू उत्पन्न है, और (**सोमस्य**) ऐश्वर्यवान् पुरुष का (**हितः**) हितकारी (**सखा**) सुहृद् (**असि**) तू है। (**सः**) सो तू (**मे**) मेरे (**प्राणाय**) प्राण के लिए, (**व्यानाय**) व्यान के लिए और (**चक्षुषे**) नेत्र के लिए (**अस्मै**) इस पुरुष पर (**मृड**) सुखी हो ॥७॥

उदङ् जातो हिमवतः स प्राच्यां नीयसे जनम् ।

तत्र कुष्ठस्य नामान्युत्तमानि वि भेजिरे ॥८॥

पदार्थ—(**सः**) सो तू (**हिमवतः**) उद्योगी पुरुष से (**जातः**) उत्पन्न होकर और (**उदङ्**) ऊँचा पद पाकर (**प्राच्याम्**) प्रकृष्ट गति के बीच (**जनम्**) मनुष्यों में (**नीयसे**) लाया जाता है। (**तत्र**) वहाँ पर (**कुष्ठस्य**) गुणपरीक्षक राजा के (**उत्तमानि**) उत्तम उत्तम (**नामानि**) यशों का (**वि**) विविध प्रकार से (**भेजिरे**) उन्हों ने सेवन किया है ॥८॥

उत्तमो नाम कुष्ठास्युत्तमो नाम ते पिता ।

यक्ष्मं च सर्वं नाशय तक्मानं चारसं कृधि ॥९॥

पदार्थ—(**कुष्ठ**) हे गुणपरीक्षक राजन् ! तू (**नाम**) अवश्य (**उत्तमः**) अतिश्रेष्ठ (**असि**) है, (**ते**) तेरा (**पिता**) पिता (**नाम**) प्रसिद्ध (**उत्तमः**) अति उत्तम है। (**सर्वम्**) सब (**यक्ष्मम्**) राज रोग को (**च**) अवश्य (**नाशय**) नाश कर (**च**) और (**तक्मानम्**) दु:खित करने वाले ज्वर को (**अरसम्**) असमर्थ (**कृधि**) बना ॥९॥

शीर्षामयमुपहत्यामक्ष्योस्तन्वो३ रपः ।

कुष्ठस्तत् सर्वं निष्करद् दैवं समह वृष्ण्यम् ॥१०॥

पदार्थ—(**शीर्षामयम्**) शिर के रोग, (**अक्ष्योः**) दोनों नेत्रों के (**उपहत्याम्**) उपद्रव और (**तन्वः**) शरीर के (**रपः**) दोष, (**तत् सर्वम्**) इस सबको (**कुष्ठः**) गुणपरीक्षक पुरुष (**निष्करत्**) बाहिर करे। (**समह**) हे सत्कार के साथ वर्तमान राजन् ! तेरा (**वृष्ण्यम्**) जीव का हितकारक बल (**दैवम्**) दिव्य गुण वाला है ॥१०॥

卐 **सूक्तम् ५** 卐

१—९ अथर्वा । लाक्षा । अनुष्टुप् ।

रात्री माता नभः पितार्यमा ते पितामहः ।

सिलाची नाम वा असि सा देवानामसि स्वसा ॥१॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] (**ते**) तेरी (**माता**) निर्माण शक्ति (**रात्री**) विश्राम देने वाली रात्रि के समान, (**पिता**) पालने वाला गुण (**नभः**) आकाश वा मेघ के समान और (**पितामहः**) हमारे पालने वाले का पालन वाला तेरा गुण (**अर्यमा**) विघ्नों को रोकने वाले सूर्य के समान है। (**सिलाची**) सब से मेल रखने वाली शक्ति (**नाम**) नाम (**वै**) अवश्य ही (**असि**) तू है, (**सा**) सो तू (**देवानाम्**) दिव्य गुणों की (**स्वसा**) अच्छे प्रकार प्रकाश करने हारी शक्ति (**असि**) है ॥१॥

यस्त्वा पिबति जीवति त्रायसे पुरुषं त्वम् ।

भर्त्री हि शश्वतामसि जनानां च न्यञ्चनी ॥२॥

पदार्थ—(**यः**) जो पुरुष (**त्वा**) तेरा (**पिबति**) पान करता है, वह (**जीवति**) जीता है। (**त्वम्**) तू (**पुरुषम्**) उस पुरुष की (**त्रायसे**) रक्षा करती है। (**शश्वताम्**) अनेक (**जनानाम्**) जनों की (**हि**) निश्चय करके (**भर्त्री**) पालन करने हारी (**च**) और (**न्यञ्चनी**) नित्य व्यापक शक्ति (**असि**) है ॥२॥

वृक्षंवृक्षमा रोहसि वृषण्यन्तीव कन्यला ।

जयन्ती प्रत्यातिष्ठन्ती स्परणी नाम वा असि ॥३॥

पदार्थ—(**वृक्षं वृक्षम्**) प्रत्येक स्वीकार योग्य पदार्थ में (**आ**) सब प्रकार (**रोहसि**) तू प्रकट है, (**वृषण्यन्ती इव**) जैसे ऐश्वर्यवान् सूर्य को चाहने वाली (**कन्यला**) प्रकाश पाने हारी उषा [सूर्य में] है। (**जयन्ती**) जय करने हारी (**प्रत्यातिष्ठन्ती**) प्रत्यक्ष स्थिर रहने हारी और (**स्परणी**) प्रीति करने वाली शक्ति (**नाम**) नाम (**वै**) अवश्य (**असि**) तू है ॥३॥

यद् दण्डेन यदिष्वा यद् वारुर्हरसा कृतम् ।

तस्य त्वमसि निष्कृतिः सेमं निष्कृधि पूरुषम् ॥४॥

पदार्थ—(यत्) जो कुछ (दण्डेन) दण्डे से, (यत्) जो कुछ (इष्वा) तीर से, (वा) अथवा (यत्) जो कुछ (अरुः) घाव (हरसा) बल से (कृतम्) किया गया है। (तस्य) उस को (त्वम्) तू (निष्कृतिः) चंगा करने वाली शक्ति (असि) है, (सा) सो तू (इमम्) इस (पुरुषम्) पुरुष को (निष्कृधि) चंगा कर दे ॥४॥

भद्रात् प्लक्षान्निस्तिष्ठस्यश्वत्थात् खदिराद्धवात्।

भद्रान्न्यग्रोधात् पर्णात् सा न एह्यरुन्धति ॥५॥

पदार्थ—(प्लक्षात्) परिपूर्ण, (अश्वत्थात्) वीरों में रहने वाले, (खदिरात्) स्थिर, (धवात्) शुद्ध (भद्रात्) कल्याण से, (न्यग्रोधात्) शत्रुओं को नीचे रोकने वाले (पर्णात्) पालन करने वाले (भद्रात्) आनन्द से (नि) निश्चय करके (तिष्ठसि) तू ठहरी है। (सा) सो तू, (अरुन्धति) हे रोक न डालने वाली शक्ति ! (नः) हम में (आ इहि) आ ॥५॥

हिरण्यवर्णे सुभगे सूर्यवर्णे वपुष्टमे।

रुतं गच्छासि निष्कृते निष्कृतिर्नाम वा असि ॥६॥

पदार्थ—(हिरण्यवर्णे) हे सुवर्ण के रूप वाली ! (सुभगे) हे बड़े ऐश्वर्य वाली ! (सूर्यवर्णे) हे सूर्य समान वर्ण वाली ! (वपुष्टमे) हे अतिशय उत्तम रूप वाली ! (निष्कृते) हे उद्धारशक्ति ! (रुतम्) हमारे दुःख में (गच्छासि) तू पहुँच (निष्कृतिः) उद्धार शक्ति (नाम वै) अवश्य ही (असि) है ॥६॥

हिरण्यवर्णे सुभगे शुष्मे लोमशवक्षणे।

अपामसि स्वसा लाक्षे वातो ह्यात्मा बभूव ते ॥७॥

पदार्थ—(हिरण्यवर्णे) हे तेज स्वरूपिणी ! (सुभगे) हे बड़े ऐश्वर्य वाली (शुष्मे) हे महाबल वाली ! (लोमशवक्षणे) हे छेदनशीलों पर रोष वाली ! (लाक्षे) हे दर्शनीय शक्ति परमात्मन् ! तू (अपाम्) व्यापक प्रजाओं की (स्वसा) अच्छे प्रकार प्रकाश करने हारी (असि) है। (ते) तेरा (आत्मा) आत्मा (ह) निश्चय करके (वातः) व्यापक (बभूव) हुआ है ॥७॥

सिलाची नाम कानीनोऽजबभ्रु पिता तव।

अश्वो यमस्य यः श्यावस्तस्य हास्नास्युक्षिता ॥८॥

पदार्थ—(सिलाची) सब में मेल रखने वाली शक्ति (नाम) तू प्रसिद्ध है। (तव) तेरा (पिता) पालने वाला गुण (कानीनः) कन्या अर्थात् कमनीय शक्ति [परमेश्वर] से आया हुआ, (अजबभ्रु) जीवात्माओं का पोषक है। (यमस्य) सर्वनियामक परमेश्वर का (यः) जो (श्यावः) गतिशील (अश्वः) व्यापक गुण है, (तस्य) उसके (आस्ना) प्रकाश से (ह) निश्चय करके तू (उक्षिता) सींची हुई (असि) है ॥८॥

अश्वस्यास्नः संपतिता सा वृक्षाँ अभि सिष्यदे।

सरा पतत्रिणी भूत्वा सा न एह्यरुन्धति ॥९॥

पदार्थ—(अश्वस्य) उस व्यापक गुण के (आस्नः) प्रकाश से (संपतिता) अच्छे प्रकार प्राप्त हुई (सा) उस [शक्ति] ने (वृक्षान्) सब स्वीकार करने योग्य पदार्थों को (अभि) भले प्रकार से (सिष्यदे) सींचा है। (सा) वह तू, (अरुन्धति) हे रोक न डालने वाली शक्ति ! (पतत्रिणी) नीचे गिरने वाले (सरा) झरने के समान (भूत्वा) होकर (नः) हमें (एहि) प्राप्त हो ॥९॥

卐 इति प्रथमोऽनुवाकः 卐

卐

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ६ 卐

१—१४ अथर्वा। सोमारुद्रौ। १ ब्रह्म, २ कर्माणि, ३—४ रुद्रगणाः, ५—८ सोमारुद्रौ, ९ हेतिः, १०—१४ सर्वात्मा रुद्रः। त्रिष्टुप्, २ अनुष्टुप्, ३ जगती, ४ अनुष्टुबुष्णिक्त्रिष्टुब्गर्भा पञ्चपदा जगती, ५—७ त्रिपदा विराण्नाम गायत्री, ८ एकावसाना द्विपदार्च्यनुष्टुप्, १० प्रस्तारपङ्क्तिः, ११—१२ पङ्क्तिः, १४ स्वराट् पङ्क्तिः।

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः।

स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥१॥

पदार्थ—(वेनः) प्रकाशमान वा मेधावी परमेश्वर ने (पुरस्तात्) पहिले काल में (प्रथमम्) प्रख्यात (जज्ञानम्) उपस्थित रहने वाले (ब्रह्म) वृद्धि के कारण अन्न को और (सुरुचः) बड़े रुचिर लोकों को (सीमतः) सीमाओं से (वि आवः) फैलाया है। (सः) उसने (बुध्न्याः) अन्तरिक्ष में वर्त्तमान (उपमाः) [परस्पर आकर्षण से] तुलना रखने वाले (विष्ठाः) विशेष स्थानों, अर्थात् (अस्य) इस (सतः) विद्यमान [सूक्ष्म जगत्] के (योनिम्) घर को (च) निश्चय करके (वि वः) खोला है ॥१॥

अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे।

वीरान् नो अत्र मा दभन् तद् व एतत् पुरो दधे ॥२॥

पदार्थ—(ये) जिन (प्रथमाः) प्रधान (अनाप्ताः) अत्यन्त यथार्थ ज्ञानी पुरुषों ने (वः) तुम्हारे लिये (यानि) पूजनीय (कर्माणि) कर्म (चक्रिरे) किये हैं, वे (नः) हम (वीरान्) वीरों को (अत्र) यहाँ पर (मा दभन्) न मारें, (तत्) सो (एतत्) इस कर्म को (वः) तुम्हारे (पुरः) आगे (दधे) मैं धरता हूँ ॥२॥

सहस्रधार एव ते समस्वरन् दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः। तस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवे ॥३॥

पदार्थ—(दिवः) प्रकाश के (सहस्रधारे) सहस्र प्रकार से धारण करने वाले (नाके) दुःख रहित परमात्मा में (एव) ही (ते) उन (मधुजिह्वाः) ज्ञान से जीतने वाले वा मधुर भाषी (असश्चतः) निश्चल स्वभाव वाले पुरुषों ने (सम्) यथावत् (अस्वरन्) शब्द किया है। (तस्य) उसके (भूर्णयः) धुड़कने वाले (स्पशः) बन्धन गुण (न) कभी नहीं (नि मिषन्ति) आँख मींचते हैं। (पाशिनः) फाँस रखने वाले वे (पदेपदे) पद पद पर (सेतवे) बाँधने के लिये (सन्ति) रहते हैं ॥३॥

पर्यू षु प्र धन्वा वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः। द्विषस्तदध्यर्णवेनेयसे सनिस्रसो नामासि त्रयोदशो मास इन्द्रस्य गृहः ॥४॥

पदार्थ—(वृत्राणि) घेरने वाले राक्षसों को (परि) सब ओर से (सक्षणिः) हराने वाला (वाजसातये) हमें अन्न देने के लिये (उ) अवश्य ही (सु) अच्छे प्रकार (परि प्र धन्व) सब ओर से प्राप्त हो। (तत्) इसी लिये (अर्णवेन) जल से भरे समुद्र द्वारा (द्विषः) वैरियों पर (अधि) ऐश्वर्य से (ईयसे) तू पहुँचाता है। (सनिस्रसः) शत्रुओं का अतिशय नीचे गिराने वाला तू (नाम) प्रसिद्ध (त्रयोदशः) दश इन्द्रिय मन और बुद्धि से परे तेरहवां परमेश्वर, (मासः) परिमाण करने वाला (इन्द्रस्य) जीवात्मा का (गृहः) घर (असि) है ॥४॥

न्वे३तेनारात्सीरसौ स्वाहा। तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥५॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (एतेन) अपनी व्याप्ति से (असौ) उस तूने (नु) शीघ्र [धर्मात्मा को] (अरात्सीः) समृद्ध किया है, (स्वाहा) यह सुन्दर वाणी वा स्तुति है। (तिग्मायुधौ) हे तेज शस्त्रों वाले, (तिग्महेती) पैने वज्रों वाले, (सुशेवौ) बड़े सुख वाले (सोमारुद्रौ) ऐश्वर्य के कारण और ज्ञानदाता, अथवा चन्द्रमा और प्राण के तुल्य, राजा और वैद्य जनो तुम दोनों (इह) यहां पर (सु) अच्छे प्रकार (नः) हमें (मृडतम्) सुखी करो ॥५॥

अवैतेनारात्सीरसौ स्वाहा। तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥६॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर] (एतेन) अपनी व्याप्ति से (असौ) उस तूने अधर्मी को (अव अरात्सीः) निर्धन बनाया है, (स्वाहा) यह सुन्दर वाणी वा स्तुति है। (तिग्मायुधौ) हे तेज शस्त्रों वाले, (तिग्महेती) पैने वज्रों वाले, (सुशेवौ) बड़े सुख वाले (सोमारुद्रौ) ऐश्वर्य के कारण और ज्ञानदाता, अथवा चन्द्रमा और प्राण के तुल्य, राजा और वैद्य जनो तुम दोनों (इह) यहां पर (सु) अच्छे प्रकार (नः) हमें (मृडतम्) सुखी करो ॥६॥

अपैतेनारात्सीरसौ स्वाहा। तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥७॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (एतेन) अपनी व्याप्ति से (असौ) उस तूने [दुष्ट जन को] (अप अरात्सीः) अपराधी ठहराया है, (स्वाहा) यह सुन्दर वाणी वा स्तुति है। (तिग्मायुधौ) हे तेज शस्त्र वाले, (तिग्महेती) पैने वज्रों वाले, (सुशेवौ) बड़े सुख वाले, (सोमारुद्रौ) ऐश्वर्य के कारण और दान दाता, अथवा चन्द्रमा और प्राण के तुल्य, राजा और वैद्य जनो तुम दोनों (इह) यहां पर (सु) अच्छे प्रकार (नः) हमें (मृडतम्) सुखी करो ॥७॥

मुमुक्तमस्मान्दुरितादवद्याज्जुषेथां यज्ञममृतमस्मासु धत्तम् ॥८॥

पदार्थ—[हे ऐश्वर्य के कारण और ज्ञानदाता तुम दोनों !] (अस्मान्) हमें (दुरितात्) दुर्गति और (अवद्यात्) अकथनीय निन्दनीय कर्म से (मुमुक्तम्) छुड़ाओ, (यज्ञम्) देवपूजन को (जुषेथाम्) स्वीकार करो, (अमृतम्) अमरण

अर्थात्, पुरुषार्थ अथवा अमरपन अर्थात् कीर्तिमत्ता (अस्मासु) हममें (धत्तम्) धारण करो ॥८॥

चक्षुषो हेते मनसो हेते ब्रह्मणो हेते तपसश्च हेते ।

मेन्या मेनिरस्यमेनयस्ते सन्तु ये॒३स्माँ अभ्यघायन्ति ॥९॥

पदार्थ—[हे अग्ने परमात्मन् !] (चक्षुषः) [शत्रुओं की] आंख की (हेते) बरछी ! (मनसः) हे मन की (हेते) बरछी ! (ब्रह्मणः) हे अन्न की (हेते) बरछी ! (च) और (तपसः) सामर्थ्य की (हेते) बरछी ! तू (मेन्याः) वज्र का (मेनिः) वज्र (असि) है। (ते) वे लोग (अमेनयः) वेवज्र (सन्तु) होवें (ये) जो (अस्मान्) हमें (अभ्यघायन्ति) सताना चाहते हैं ॥९॥

यो॒३स्माँश्चक्षुषा मनसा चित्त्याकूत्या च यो अघायुरभिदासात् ।

त्वं तानग्ने मेन्यामेनीन् कृणु स्वाहा ॥१०॥

पदार्थ—(यः) जो (यः) घबडा देने वाला (अघायुः) बुरा चीतने वाला (अस्मान्) हमें (चक्षुषा) आंख से, (मनसा) मन से, (चित्त्या) बुद्धि से (च) और (आकूत्या) सकल्प से (अभिदासात्) सतावे। (अग्ने) हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! (त्वम्) तू (तान्) उन्हें (मेन्या) वज्र से (अमेनीन्) वज्र रहित (कृणु) कर, (स्वाहा) यह सुवाणी वा नम्र प्रार्थना है ॥१०॥

इन्द्रस्य गृहोऽसि । तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥११॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] तू (इन्द्रस्य) जीवात्मा का (गृहः) आश्रय (असि) है। (सर्वगुः) सब गौ आदि पशुओं सहित, (सर्वपूरुषः) सब पुरुषों सहित, (सर्वात्मा) पूरे आत्मबल सहित, (सर्वतनूः) सब शरीर सहित मैं (तम् त्वा) उस तुझको (प्र पद्ये) प्राप्त होता हूँ, (तम् त्वा) उस तुझमें (प्रविशामि) प्रवेश करता हूँ। और (यत्) जो कुछ (मे) मेरा (अस्ति) है (तेन सह) उसके साथ भी ॥११॥

इन्द्रस्य शर्मासि । तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥१२॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] तू (इन्द्रस्य) जीवात्मा का (शर्म) शरण (असि) है (सर्वगुः) सब गौ आदि पशुओं सहित, (सर्वपूरुषः) सब पुरुषों सहित (सर्वात्मा) पूरे आत्मबल सहित, (सर्वतनूः) सब शरीर सहित मैं (तम् त्वा) उस तुझ को (प्र पद्ये) प्राप्त होता हूँ, (तम् त्वा) उस तुझ में (प्रविशामि) प्रवेश करता हूँ। और (यत्) जो कुछ (मे) मेरा (अस्ति) है (तेन सह) उसके साथ भी ॥१२॥

इन्द्रस्य वर्मासि । तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥१३॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] तू (इन्द्रस्य) जीवात्मा का (वर्म) कवच (असि) है। (सर्वगुः) सब गौ आदि पशुओं सहित, (सर्वपूरुषः) सब पुरुषों सहित, (सर्वात्मा) पूरे आत्मबल सहित, (सर्वतनूः) सब शरीर सहित मैं (तम् त्वा) उस तुझ को (प्र पद्ये) प्राप्त होता हूँ, (तम् त्वा) उस तुझ में (प्रविशामि) प्रवेश करता हूँ। और (यत्) जो कुछ (मे) मेरा (अस्ति) है (तेन सह) उसके साथ भी ॥१३॥

इन्द्रस्य वरूथमसि । तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥१४॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] तू (इन्द्रस्य) जीवात्मा का (वरूथम्) ढाल (असि) है। (सर्वगुः) सब गौ आदि पशुओं सहित, (सर्वपूरुषः) सब पुरुषों सहित, (सर्वात्मा) पूरे आत्मबल सहित, (सर्वतनूः) सब शरीर सहित मैं (तम् त्वा) उस तुझ को (प्र पद्ये) प्राप्त होता हूँ, (तम् त्वा) उस तुझ में (प्रविशामि) प्रवेश करता हूँ। और (यत्) जो कुछ (मे) मेरा (अस्ति) है (तेन सह) उसके साथ भी ॥१४॥

卐 सूक्तम् ७ 卐

१—१० अथर्वा । बहुदैवत्यम्, १—३, ६—१० अरातयः ४—५ सरस्वती अनुष्टुप्, १ विराड्गर्भा प्रस्तारपङ्क्तिः, ४ पथ्याबृहती ६ प्रस्तारपङ्क्तिः ।

आ नो भर मा परि ष्ठा अराते मा नो रक्षीर्दक्षिणां नीयमानाम् ।

नमो वीर्त्साया असमृद्धये नमो अस्त्वरातये ॥१॥

पदार्थ—(अराते) हे अदान शक्ति ! (नः) हमें (आ) आकर (भर) पुष्ट कर (मा परि स्थाः) अलग मत खड़ी हो, (नः) हमारे लिए (नीयमानाम्) लायी हुई (दक्षिणाम्) दक्षिणा [दान वा प्रतिष्ठा] को (मा रक्षीः) मत रख ले। (वीर्त्सायै) अवृद्धि इच्छा, (असमृद्धये) असम्पत्ति अर्थात् (अरातये) अदान शक्ति [निर्धनता] को [नमो नमः] बार-बार नमस्कार (अस्तु) होवे ॥१॥

यमराते पुरोधत्से पुरुषं परिरापिणम् ।

नमस्ते तस्मै कृण्मो मा वनिं व्यथयीर्मम ॥२॥

पदार्थ—(अराते) हे अदान शक्ति ! (यम्) जिस (परिरापिणम्) बड-बडिया (पुरुषम्) पुरुष को (पुरोधत्से) तू आगे धरती है (ते) तेरे (तस्मै) उस पुरुष को (नमः) नमस्कार (कृण्मः) हम करते हैं। (मम) मेरी (वनिम्) भक्ति को (मा व्यथयीः) तू व्यथा में मत डाल ॥२॥

प्र णो वनिर्देवकृता दिवा नक्तं च कल्पताम् ।

अरातिमनुप्रेमो वयं नमो अस्त्वरातये ॥३॥

पदार्थ—(देवकृता) महात्माओं की उत्पन्न की हुई (नः) हमारी (वनिः) भक्ति (दिवा) दिन (च) और (नक्तम्) रात (प्र) अच्छे प्रकार (कल्पताम्) समर्थ होवे। (वयम्) हम लोग (अरातिम्) अदान शक्ति [निर्धनता] को (अनुप्रेमः) ढूंढ कर पावें, (अरातये) अदान शक्ति को (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥३॥

सरस्वतीमनुमतिं भगं यन्तो हवामहे ।

वाचं जुष्टां मधुमतीमवादिषं देवानां देवहूतिषु ॥४॥

पदार्थ—(यन्तः) चलने फिरते हम लोग (सरस्वतीम्) विज्ञानवती विद्या, (अनुमतिम्) अनुकूल मति और (भगम्) सेवनीय ऐश्वर्य को (हवामहे) बुलाते हैं। (देवानाम्) महात्माओं की (जुष्टाम्) प्रीतियुक्त, (मधुमतीम्) बड़ी मधुर (वाचम्) इस वाणी को (देवहूतिषु) दिव्य गुणों के बुलाने में (अवादिषम्) मैं बोला हूँ ॥४॥

यं याचाम्यहं वाचा सरस्वत्या मनोयुजा ।

श्रद्धा तमद्य विन्दतु दत्ता सोमेन बभ्रुणा ॥५॥

पदार्थ—(यम्) जिस गुण को (अहम्) मैं (सरस्वत्या) विज्ञानयुक्त, (मनोयुजा) मन से जुड़ी हुई (वाचा) वाणी से (याचामि) मांगता हूँ (बभ्रुणा) पोषण करने वाले (सोमेन) परमेश्वर करके (दत्ता) दी हुई (श्रद्धा) श्रद्धा (तम्) उस गुण को (अद्य) आज (विन्दतु) पावे ॥५॥

मा वनिं मा वाचं नो वीर्त्सीरुभाविन्द्राग्नी आ भरतां नो वसूनि ।

सर्वे नो अद्य दित्सन्तोऽरातिं प्रति हर्यत ॥६॥

पदार्थ—[हे अदान शक्ति !] (मा) न तो (नः) हमारी (वनिम्) भक्ति को और (मा) न (वाचम्) वाणी को (वि ईर्त्सीः) असिद्ध कर। (उभौ) दोनों (इन्द्राग्नी) जीव और अग्नि [पराक्रम] (नः) हमारे लिये (वसूनि) अनेक धन (आ भरताम्) लाकर भरें। (अद्य) आज (नः) हमें (दित्सन्तः) दान की इच्छा करने वाले (सर्वे) हे सब गुणो ! (अरातिम्) अदान शक्ति को (प्रति) प्रतिकूलपन से (हर्यत) प्राप्त हो ॥६॥

परोऽपेह्यसमृद्धे वि ते हेतिं नयामसि ।

वेद त्वाहं निमीवन्तीं नितुदन्तीमराते ॥७॥

पदार्थ—(असमृद्धे) हे असमृद्धि ! (परः) परे (अप इहि) चली जा, (ते) तेरी (हेतिम्) बरछी को (वि नयामसि) हम अलग हटाते हैं। (अराते) हे अदान शक्ति ! [निर्धनता !] (अहम्) मैं (त्वा) तुझको (निमीवन्तीम्) निर्बल करने वाली और (नितुदन्तीम्) भीतर चुभने वाली (वेद) जानता हूँ ॥७॥

उत नग्ना बोभुवती स्वप्नया सचसे जनम् ।

अराते चित्तं वीर्त्सन्त्याकूतिं पुरुषस्य च ॥८॥

पदार्थ—(उत) और (अराते) हे अदानशक्ति [निर्धनता] ! (पुरुषस्य) मनुष्य के (चित्तम्) चित्त (च) और (आकूतिम्) संकल्प को (वीर्त्सन्ती) असिद्ध करती हुई (नग्ना) लज्जित (बोभुवती) बार बार होती हुई तू (स्वप्नया) नींद [आलस्य] के साथ (जनम्) जनसमूह को (सचसे) प्राप्त होती है ॥८॥

या महती महोन्माना विश्वा आशा व्यानशे ।

तस्यै हिरण्यकेश्यै निर्ऋत्या अकरं नमः ॥९॥

पदार्थ—(या) जो (महती) बलवती, (महोन्माना) बड़े डीलवाली [निर्धनता] (विश्वाः) सब (आशाः) दिशाओं में (व्यानशे) व्याप्त हुई है (तस्यै) उस (हिरण्यकेश्यै) सुवर्ण का प्रकाश कराने वाली (निर्ऋत्यै) क्रूर विपत्ति को (नमः अकरम्) मैंने नमस्कार किया है ॥९॥

हिरण्यवर्णा सुभगा हिरण्यकशिपुर्मही ।

तस्यै हिरण्यद्रापयेऽरात्या अकरं नमः ॥१०॥

पदार्थ—[जो] (**सुभगा**) बड़े ऐश्वर्य वाली (**हिरण्यवर्णा**) सुवर्ण का रूप रखने वाली (**हिरण्यकशिपुः**) सुवर्ण के वस्त्र वाली (**मही**) बलवती है । (**तस्यै**) उस (**हिरण्यद्रापये**) सुवर्ण द्वारा निन्दित गति से बचाने वाली (**अरात्यै**) अदान शक्ति [निर्धनता] को (**नमः अकरम्**) मैंने नमस्कार किया है ॥१०॥

卐 सूक्तम् ८ 卐

१—९ अथर्वा । नाभादैवत्य, १—२ अग्नि., ३ विश्वेदेवा., ४—९ इन्द्र । अनुष्टुप्, २ त्र्यवसाना षट्पदा जगती, ३—४ भुरिक् पथ्यापंक्तिः, ६ प्रस्तार-पंक्ति ७ उष्णिग्गर्भा पथ्यापंक्ति , ९ त्र्यवसाना षट्पदा द्व्यनुष्टुब्गर्भा जगती ।

वैकङ्कतेनेध्मेन देवेभ्य आज्यं वह ।

अग्ने ताँ इह मादय सर्व आ यन्तु मे हवम् ॥१॥

पदार्थ—(**वैकङ्कतेन**) विज्ञान सम्बन्धी (**इध्मेन**) प्रकाश के साथ (**देवेभ्य**) व्यवहार कुशल पुरुषों को (**आज्यम्**) पाने योग्य वस्तु (**वह**) पहुँचा । (**अग्ने**) हे अग्नि समान तेजस्वी राजन् ! (**तान्**) उन लोगों को (**इह**) यहाँ पर (**मादय**) प्रसन्न कर । (**सर्वे**) वे सब (**मे**) मेरी (**हवम्**) पुकार को (**आ यन्तु**) आकर प्राप्त हों ॥१॥

इन्द्रा याहि मे हवमिदं करिष्यामि तच्छृणु ।

इम ऐन्द्रा अतिसरा आकूतिं सं नमन्तु मे ।

तेभिः शकेम वीर्यं१ जातवेदस्तनूवशिन् ॥२॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे परम ऐश्वर्य वाले राजन् ! (**मे हवम्**) मेरी पुकार को (**आ याहि**) तू पहुँच । (**इदम्**) ऐश्वर्य सम्बन्धी कर्म (**करिष्यामि**) मैं करूंगा । (**तत्**) सो (**शृणु**) तू सुन । (**इमे**) ये (**ऐन्द्रा**) ऐश्वर्यवान् राजा के (**अतिसरा**) प्रयत्न (**मे**) मेरे (**आकूतिम्**) सकल्प को (**सम् नमन्तु**) सिद्ध करें । (**जातवेद**) हे बहुत धनवाले (**तनूवशिन्**) हे शरीरों को वश में रखने वाले राजन् ! (**तेभि**) उन [प्रयत्नों] से (**वीर्यम्**) वीरपन (**शकेम**) पा सकें ॥२॥

यदसावमुतो देवा अदेवः संश्चिकीर्षति ।

मा तस्याग्निर्हव्यं वाक्षीद्धवं देवा अस्य मोप गुर्ममैव हवमेतन ॥३॥

पदार्थ—(**देवा**) हे विजयी पुरुषो ! (**असौ**) वह (**अदेव सन्**) राज-द्रोही होकर (**अमुतः**) उस स्थान से (**यत्**) जो कुछ [कुमन्त्र] (**चिकीर्षति**) करना चाहता है । (**अग्नि.**) अग्नि समान तेजस्वी राजा (**तस्य तस्मै**) उसको (**हव्यम्**) अन्न (**मा वाक्षीत्**) न पहुँचावे । (**देवा**) व्यवहार कुशल लोग (**अस्य**) इसकी (**हवम्**) पुकार को (**मा उप गु**) न प्राप्त करें । (**मम एव**) मेरी ही (**हवम्**) पुकार को (**आ-इतन**) तुम आकर प्राप्त होओ ॥३॥

अति धावतातिसरा इन्द्रस्य वचसा हत । अविं वृक इव

मथ्नीत स वो जीवन् मा मोचि प्राणमस्यापि नह्यत ॥४॥

पदार्थ—(**अतिसरा**) हे उद्योगी शूरो ! (**अति धावत**) अत्यन्त करके धावा मारो । (**इन्द्रस्य**) परम ऐश्वर्य वाले राजा के (**वचसा**) वचन से (**हत**) मारो । [उसे] (**मथ्नीत**) मथ डालो, (**वृक इव**) जैसे भेडिया (**अविम्**) भेड को । (**स**) वह (**जीवन्**) जीता हुआ (**व**) तुम्हारी (**मा मोचि**) मुक्ति न पावे । (**अस्य**) इसके (**प्राणम्**) प्राण को (**अपि**) भी (**नह्यत**) बाँध लो ॥४॥

यममी पुरो दधिरे ब्रह्माणमपभूतये ।

इन्द्र स ते अधस्पदं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे ॥५॥

पदार्थ—(**अमी**) इन [शत्रुओं] ने (**यम्**) जिस (**ब्रह्माणम्**) बुद्धिशील पुरुष को (**अपभूतये**) हमारी हार के लिये (**पुरो दधिरे**) उच्च पद पर रक्खा है । (**इन्द्र**) हे बड़े ऐश्वर्य वाले राजन् ! (**सः**) वह मैं (**ते**) तेरे (**अधस्पदम्**) पांव के नीचे (**तम्**) उसको (**मृत्यवे**) मृत्यु के लिये (**प्रति**) प्रतिकूलता से (**अस्यामि**) फेंकता हूँ ॥५॥

यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे । तनूपानं परिपाणं

कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि ॥६॥

पदार्थ—(**यदि**) जो [शत्रुओं ने] (**देवपुराः**) राजा के नगरों पर (**प्रेयुः**) चढ़ाई की है, और (**ब्रह्म**) हमारे धन को (**वर्माणि**) अपने रक्षा-साधन (**चक्रिरे**) बनाया है । (**तनूपानम्**) हमारे शरीर रक्षासाधन को (**परिपाणम्**) अपना रक्षा साधन (**कृण्वानाः**) बनाते हुए उन लोगों ने (**यत्**) जो कुछ (**उपोचिरे**) डींग मारी है, (**तत् सर्वम्**) उस सब को (**अरसम्**) नीरस वा फीका (**कृधि**) करदे ॥६॥

यानसावतिसरांश्चकार कृणवच्च यान् । त्वं तानिन्द्र

वृत्रहन् प्रतीचः पुनरा कृधि यथामुं तृणहां जनम् ॥७॥

पदार्थ—(**असौ**) उसने (**यान्**) जिन (**अतिसरान्**) प्रयत्नों को (**चकार**) किया है, (**च**) और (**यान्**) जिनको (**कृणवत्**) करे, (**वृत्रहन्**) हे अन्धकार नाशक (**इन्द्र**) बड़े ऐश्वर्यवाले राजन् ! (**त्वम्**) तू (**तान्**) उन [प्रयत्नों] को (**प्रतीच.**) औंधे मुख करके (**पुन**) अवश्य (**आकृधि**) तुच्छ करदे, (**यथा**) जिस से (**अमुम् जनम्**) उस जनसमूह को वे [हमारे लोग] (**तृणहान्**) मार डालें ॥७॥

यथेन्द्र उद्वाचनं लब्ध्वा चक्रे अधस्पदम् ।

कृण्वेऽहमधरां स्तथामूंछश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥८॥

पदार्थ—(**यथा**) जैसे (**इन्द्र**) परम ऐश्वर्यवाले पुरुष ने (**उद्वाचनम्**) ऊंचा बोलने वाले, बड़बड़िया शत्रु को (**लब्ध्वा**) पाकर (**अधस्पदम्**) पाँव तले (**चक्रे**) किया है । (**तथा**) वैसे ही (**अहम्**) मैं (**शश्वतीभ्य**) सनातन (**समाभ्य.**) प्रजाओं के लिये (**अमून्**) उन [शत्रुओं] को (**अधरान्**) नीचे (**कृण्वे**) करता हूँ ॥८॥

अत्रैनानिन्द्र वृत्रहन्नुग्रो मर्मणि विध्य ।

अत्रैवैनानभि तिष्ठेन्द्र मेद्य१हं तव ।

अनु त्वेन्द्रा रभामहे स्याम सुमतौ तव ॥९॥

पदार्थ—(**अत्र**) यहां (**वृत्रहन्**) हे अन्धकार नाशक ! (**इन्द्र**) हे बड़े ऐश्वर्य वाले राजन् ! (**उग्र**) तेजस्वी तू (**एनान्**) इन लोगों को (**मर्मणि**) मर्म स्थान में (**विध्य**) छेद । (**इन्द्र**) हे परम ऐश्वर्य वाले राजन् ! (**अत्र एव**) यहाँ पर ही (**एनान्**) इनको (**अभि तिष्ठ**) दबा ले । (**अहम्**) मैं (**तव**) तेरा (**मेदी**) स्नेही हूँ । (**इन्द्र**) हे परम ऐश्वर्यवान् राजन् ! (**त्वा अनु**) तेरे पीछे पीछे (**आरभामहे**) हम आरम्भ करते हैं । (**तव**) तेरी (**सुमतौ**) सुमति में (**स्याम**) हम रहें ॥९॥

卐 सूक्तम् ९ 卐

१—८ ब्रह्मा । वास्तोष्पति , आत्मा । १, ५ दैवी बृहती, २, ६ दैवी त्रिष्टुप् ३—४ दैवी जगती, ७ विराडुष्णिग्बृहतीगर्भा पञ्चपदा जगती , ८ पुरस्कृति-त्रिष्टुब्बृहतीगर्भा चतुष्पदा त्र्यवसाना जगती ।

दिवे स्वाहा ॥१॥

पदार्थ—(**दिवे**) प्रकाशमान परमेश्वर के लिये (**स्वाहा**) सुन्दर वाणी है ॥ १ ॥

पृथिव्यै स्वाहा ॥२॥

पदार्थ—(**पृथिव्यै**) विस्तृत नीति के लिये (**स्वाहा**) सुन्दर वाणी है ॥२॥

अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥३॥

पदार्थ—(**अन्तरिक्षाय**) भीतर दिखाई देने हारे हृदय [की शुद्धि] के लिये (**स्वाहा**) प्रार्थना है ॥३॥

अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥४॥

पदार्थ—(**अन्तरिक्षाय**) मध्य लोक, वायु मण्डल [के ज्ञान] के लिये (**स्वाहा**) प्रार्थना है ॥४॥

दिवे स्वाहा ॥५॥

पदार्थ—(**दिवे**) व्यवहार के लिये (**स्वाहा**) प्रार्थना है ॥५॥

पृथिव्यै स्वाहा ॥६॥

पदार्थ—(**पृथिव्यै**) पृथिवी [के राज्य] के लिये (**स्वाहा**) सुन्दर वाणी है ॥६॥

सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणो३ऽन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम् । अस्तृतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं नि दधे द्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय ॥७॥

पदार्थ – (**मे**) मेरा (**चक्षु**) नेत्र (**सूर्य**) सूर्य [के सदृश प्रकाशमान], (**प्राण**) प्राण (**वातः**) वायु [के समान चलने वाला], (**आत्मा**) आत्मा (**अन्तरिक्षम्**) मध्य लोक [के समान मध्यवर्ती], (**शरीरम्**) शरीर (**पृथिवी**) पृथिवी [के समान सहनशील] है । (**अयम्**) यह (**अहम्**) मैं (**अस्तृत.**) बिना ढका हुआ (**नाम**) प्रसिद्ध (**अस्मि**) हूँ । (**स.—सः अहम्**) वह मैं (**आत्मानम्**) अपना आत्मा (**द्यावापृथिवीभ्याम्**) सूर्य और पृथिवी को (**गोपीथाय**) रक्षा

[अथवा पृथिवी, इन्द्रिय आदि की रक्षा] के लिये (नि) नित्य (दधे) देता रहता हूँ ॥७॥

उदायुरुद्बलमुत् कृतमुत् कृत्यामुन्मनीषामुदिन्द्रियम् ।

आयुष्कृदायुष्पत्नी स्वधावन्तौ गोपा मे स्तं गोपायतं मा ।

आत्मसदौ मे स्तं मा मा हिंसिष्टम् ॥८॥

पदार्थ—(आयु) मेरा जीवन (उत्) उत्तम, (बलम) बल (उत्) उत्तम, (कृतम्) किया हुआ काम (उत्) उत्तम, (कृत्याम) कर्तव्य कर्म (उत्) उत्तम, (मनीषाम) बुद्धि (उत्) उत्तम, (इन्द्रियम्) इन्द्रपन अर्थात् परम ऐश्वर्य (उत् उत्कर्षतम) उत्तम बनाओ । (आयुष्पत्नि) जीवन पालन वाली माता और (आयुष्कृत्) जीवन करने वाले पिता तुम दोनों (स्वधावन्तौ) अन्न वाले होकर (मे) मेरे (गोपा गोपौ) रक्षक (स्तम्) होओ । (मा) मुझको (गोपायतम्) बचाओ । (मे) मेरे (आत्मसदौ) आत्मा में रहने वाले (स्तम्) होओ । (मा) मुझे (मा हिंसिष्टम्) दुःखी मत होने दो ॥८॥

卐 सूक्तम् १० 卐

१—८ ब्रह्मा । वास्तोष्पतिः । १—६ यवमध्या त्रिपदा गायत्री, ७ यवमध्या ककुप्, ८ पुरोधृत्यनुष्टुब्गर्भा पराष्टिः त्र्यवसाना चतुष्पदातिजगती ।

अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्राच्या दिशोऽघायुरभिदासात् ।

एतत् स ऋच्छात् ॥१॥

पदार्थ—[हे ब्रह्म !] (मे) मेरे लिये तू (अश्मवर्म) पत्थर के घर [के समान दृढ़] (असि) है । (यः) जो (अघायुः) बुरा चीतने वाला मनुष्य (प्राच्याः) पूर्व वा सन्मुखवाली (दिशः) दिशा से (मा) मुझ पर (अभिदासात्) चढ़ाई करे (सः) वह दुष्ट (एतत्) व्यापक दुःख (ऋच्छात्) पावे ॥१॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मा दक्षिणाया दिशोऽघायुरभिदासात् ।

एतत् स ऋच्छात् ॥२॥

पदार्थ—[हे ब्रह्म !] (मे) मेरे लिये तू (अश्मवर्म) पत्थर के घर [के समान दृढ़] (असि) है । (यः) जो (अघायुः) बुरा चीतने वाला मनुष्य (दक्षिणायाः) दक्षिण वा दाहिनी (दिशः) दिशा से (मा) मुझ पर (अभिदासात्) चढ़ाई करे, (सः) वह दुष्ट (एतत्) व्यापक दुःख (ऋच्छात्) पावे ॥२॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्रतीच्या दिशोऽघायुरभिदासात् ।

एतत् स ऋच्छात् ॥३॥

पदार्थ—[हे ब्रह्म !] (मे) मेरे लिए तू (अश्मवर्म) पत्थर के घर [के समान दृढ़] (असि) है । (यः) जो (अघायुः) बुरा चीतने वाला मनुष्य (प्रतीच्याः) पश्चिम वा पीछे वाली (दिशः) दिशा से (मा) मुझ पर (अभिदासात्) चढ़ाई करे (सः) वह दुष्ट (एतत्) व्यापक दुःख (ऋच्छात्) पावे ॥३॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मोदीच्या दिशोऽघायुरभिदासात् ।

एतत् स ऋच्छात् ॥४॥

पदार्थ—[हे ब्रह्म !] (मे) मेरे लिए तू (अश्मवर्म) पत्थर के घर [के समान दृढ़] (असि) है । (यः) जो (अघायुः) बुरा चीतने वाला मनुष्य (उदीच्याः) उत्तर वा बायीं (दिशः) दिशा से (मा) मुझ पर (अभिदासात्) चढ़ाई करे, (सः) वह दुष्ट (एतत्) व्यापक दुःख (ऋच्छात्) पावे ॥४॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मा ध्रुवाया दिशोऽघायुरभिदासात् ।

एतत् स ऋच्छात् ॥५॥

पदार्थ—[हे ब्रह्म !] (मे) मेरे लिए तू (अश्मवर्म) पत्थर के घर [के समान दृढ़] (असि) है । (यः) जो (अघायुः) बुरा चीतने वाला मनुष्य (ध्रुवायाः) स्थिर वा नीचे वाली (दिशः) दिशा से (मा) मुझ पर (अभिदासात्) चढ़ाई करे, (सः) वह दुष्ट (एतत्) व्यापक दुःख (ऋच्छात्) पावे ॥५॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मोर्ध्वाया दिशोऽघायुरभिदासात् ।

एतत् स ऋच्छात् ॥६॥

पदार्थ—[हे ब्रह्म !] (मे) मेरे लिए तू (अश्मवर्म) पत्थर के घर [के समान दृढ़] (असि) है । (यः) जो (अघायुः) बुरा चीतने वाला मनुष्य (ऊर्ध्वायाः) ऊपर वाली (दिशः) दिशा से (मा) मुझ पर (अभिदासात्) चढ़ाई करे, (सः) वह दुष्ट (एतत्) व्यापक दुःख (ऋच्छात्) पावे ॥६॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मा दिशामन्तर्देशेभ्योऽघायुरभिदासात् ।

एतत् स ऋच्छात् ॥७॥

पदार्थ—हे ब्रह्म !] (मे) मेरे लिए तू (अश्मवर्म) पत्थर के घर [के समान दृढ़ (असि) है । (यः) जो (अघायुः) बुरा चीतने वाला मनुष्य (दिशाम्) दिशाओं के (अन्तर्देशेभ्यः) मध्य देशों से (मा) मुझ पर (अभिदासात्) चढ़ाई करे, (सः) वह दुष्ट (एतत्) व्यापक दुःख (ऋच्छात्) पावे ॥७॥

बृहता मन उप ह्वये मातरिश्वना प्राणापानौ ।

सूर्याच्चक्षुरन्तरिक्षाच्छ्रोत्रं पृथिव्याः शरीरम् ।

सरस्वत्या वाचमुप ह्वयामहे मनोयुजा ॥८॥

पदार्थ—(बृहता) बढ़े हुए ज्ञान के साथ (मनः) मन को, (मातरिश्वना) आकाशगामी वायु के साथ (प्राणापानौ) भीतर और बाहिर जाने वाले श्वास को, (सूर्यात्) सूर्य से (चक्षुः) दृष्टि, (अन्तरिक्षात्) आकाश से (श्रोत्रम) श्रवण शक्ति, और (पृथिव्याः) पृथिवी से (शरीरम्) शरीर को (उप ह्वये) मैं आदर से मांगता हूं । (मनोयुजा) मन से जुड़ी हुई (सरस्वत्या) विज्ञान वाली विद्या के साथ (वाचम) वाणी को (उप) आदर से (ह्वयामहे) हम मांगते हैं ॥८॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

卐

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ११ ॥ 卐

१—११ अथर्वा । वरुणः (प्रश्नोत्तरम्) त्रिष्टुप्, १ भुरिक्, ३ पङ्क्तिः, ६ पञ्चपदा अतिशक्वरी, ११ त्र्यवसाना षट्पदा अत्यष्टिः ।

कथं महे असुरायाब्रवीरिह कथं पित्रे हरये त्वेषनृम्णः ।

पृश्निं वरुण दक्षिणां ददावान् पुनर्मघ त्वं मनसाचिकित्सीः ॥१॥

पदार्थ—(त्वेषनृम्णः) तेजोमय बल वाले तूने (कथम् कथम्) कैसे कैसे (महे) महान् (असुराय) प्राणदाता वा बुद्धिमान्, (पित्रे) जगत्पिता, (हरये) दुःख नाशक हरि, परमेश्वर [की प्राप्ति] के लिए (इह) यहां (अब्रवी) कथन किया है । (वरुण) हे वरणीय विद्वान् ! तूने (पृश्निम्) वेद विद्या और (दक्षिणाम्) प्रतिष्ठा (ददावान्) दान की है । (पुनर्मघ) हे बार बार धन देने वाले पुरुष ! (त्वम्) तूने (मनसा) मन से (अचिकित्सीः) हमारी चिकित्सा की है ॥१॥

न कामेन पुनर्मघो भवामि सं चक्षे कं पृश्निमेतामुपाजे ।

केन नु त्वमथर्वन् काव्येन केन जातेनासि जातवेदाः ॥२॥

पदार्थ—(कामेन) शुभ कामना से (न) अब (पुनर्मघः) अवश्य धन देने वाला मैं (भवामि) होता हूं [क्योंकि] (एताम्) इस (पृश्निम्) वेद विद्या को (कम्) सुख से (सम्) ठीक-ठीक (चक्षे) देखता हूं और (उप) आदर से (अजे) प्राप्त करता हूं । (अथर्वन) हे निश्चल स्वभाव वाले पुरुष ! (त्वम) तू (नु) निश्चय करके (केन) कामना योग्य (काव्येन) स्तुति योग्य (जातेन) प्रसिद्ध (केन) सुखप्रद प्रजापति परमेश्वर के साथ (जातवेदाः) बहुत धन वा बुद्धिवाला (असि) है ॥२॥

सत्यमहं गभीरः काव्येन सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः ।

न मे दासो नार्यो महित्वा व्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये ॥३॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (सत्यम सत्यम्) सत्य सत्य (काव्येन) स्तुति योग्य (जातेन) प्रसिद्ध ब्रह्म के साथ (गभीरः) शान्त (जातवेदाः) बड़ी बुद्धि वाला (अस्मि) हूं । (न आर्यः) अनार्य, अविद्वान् (दासः) दास, शूद्र (मे) मेरे (व्रतम्) व्रत को (न) नहीं (मीमाय) तोड़ सका, (यत्) जिसको (अहम्) मैं (महित्वा) बड़ेपन से (धरिष्ये) धारण करूंगा ॥३॥

न त्वदन्यः कवितरो न मेधया धीरतरो वरुण स्वधावन् ।

त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ स चिन्नु त्वज्जनो मायी बिभाय ॥४॥

पदार्थ—(स्वधावन्) हे आत्मधारण वाले, स्वाधीन, (वरुण) श्रेष्ठ पुरुष ! (मेधया) अपनी बुद्धि के कारण (त्वत्) तुझ से (अन्यः) अन्य [मूर्ख] (न) न तो (कवितरः) अधिक सूक्ष्मदर्शी और (न) न (धीरतरः) अधिक बुद्धिमान् है । (त्वम्) तू (ता) उन (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (वेत्थ) जानता है । (सः) वह (मायी) मायावी (जनः) जन (त्वत्) तुझ से (चित् नु) अवश्य ही (बिभाय) भयभीत हुआ है ॥४॥

त्वं ह्यङ्ग वरुण स्वधावन् विश्वा वेत्थ जनिमा सुप्रणीते ।

किं रजस एना परो अन्यदस्त्येना किं परेणावरममुर ॥५॥

पदार्थ—(अङ्ग) हे (स्वधावन्) आत्मधारण वाले, स्वाधीन (सुप्रणीते) हे उत्तम नीति वाले (वरुण) श्रेष्ठ पुरुष ! (त्वम्) तू (हि) ही (विश्वा) सब (जनिमा) उत्पन्न लोकों को (वेत्थ) जानता है (किम्) क्या (एना) इस (रजसः) लोक से (परः) परे (अन्यत्) और कुछ (अस्ति) है। (असुर) हे गतिशील ! (किम्) क्या (एना) इस (परेण) पर की अपेक्षा (अवरम्) कुछ पीछे [अधिक दूर] रहने वाला है ॥५॥

एकं रजस एना परो अन्यदस्त्येना पर एकेन दुर्णशं चिदर्वाक्। तत् ते विद्वान् वरुण प्र ब्रवीम्यधोवचसः पणयो भवन्तु नीचैर्दासा उप सर्पन्तु भूमिम् ॥६॥

पदार्थ—(एना) इस (रजसः) लोक से (परः) परे (अन्यत्) और कुछ (एकम्) अकेला [ब्रह्म] (अस्ति) है। (एना) इस (एकेन) अकेले [ब्रह्म] की अपेक्षा (परः) परे (दुर्णशम्) दुष्प्राप्य और (अर्वाक्) पीछे वर्तमान (चित्) भी [वही है]। (वरुण) हे श्रेष्ठ पुरुष ! (विद्वान्) विद्वान् मैं (ते) तुझको (तत्) वह बात (प्र) अच्छे प्रकार (ब्रवीमि) कहता हूँ। (पणयः) कुव्यवहारी लोग (अधोवचसः) तुच्छ वचन वाले [असत्यवादी] (भवन्तु) होवें। (दासाः) दास अर्थात् शूद्र (नीचैः) नीचे की ओर (भूमिम्) भूमि पर (उप) हीन होकर (सर्पन्तु) रेंग जावें ॥६॥

त्वं ह्य१ङ्ग वरुण ब्रवीषि पुनर्मघेष्ववद्यानि भूरि। मो षु पणीँरभ्ये३तावतो भून्मा त्वा वोचन्नराधसं जनासः ॥७॥

पदार्थ—(अङ्ग) हे (वरुण) वरुण श्रेष्ठ पुरुष ! (त्वम्) तू (हि) ही (पुनर्मघेषु) बार बार धन देने वालों के बीच [वर्तमान होकर] (भूरि) बहुत से (अवद्यानि) अनिन्दनीय अर्थात् प्रशंसनीय वचनों को (ब्रवीषि) बोलता है। (एतावतः) इतने (पणीन् अभि) कुव्यवहारी पुरुषों की ओर (सु) अनायास [सहज स्वभाव से] (मो भूत्) कभी मत हो, [जिससे] (जनासः) लोग (त्वा) तुझको (अराधसम्) अदानी (मा वोचन्) न कहें ॥७॥

मा मा वोचन्नराधसं जनासः पुनस्ते पृश्निं जरितर्ददामि। स्तोत्रं मे विश्वमा याहि शचीभिरन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु ॥८॥

पदार्थ—(जनासः) मनुष्य (मा) मुझको (अराधसम्) अदाता (मा वोचन्) न कहें। (जरितः) हे स्तुति करने वाले पुरुष ! (पुनः) अवश्य (ते) तुझे (पृश्निम्) वेदविद्या (ददामि) देता हूँ। (विश्वासु) सब (मानुषीषु) मनुष्य सम्बन्धिनी (दिक्षु अन्तः) दिशाओं के भीतर (शचीभिः) बुद्धियों के साथ (मे) मेरे (विश्वम्) सब (स्तोत्रम्) स्तुतियोग्य कर्म को (आयाहि) प्राप्त हो ॥८॥

आ ते स्तोत्राण्युद्यतानि यन्त्वन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु। देहि नु मे यन्मे अदत्तो असि युज्यो मे सप्तपदः सखासि ॥९॥

पदार्थ—[हे विद्वान् !] (विश्वासु) सब (मानुषीषु) मनुष्य सम्बन्धिनी (दिक्षु अन्तः) दिशाओं के भीतर (ते) तेरे (उद्यतानि) प्रवृत्त किये हुए (स्तोत्राणि) स्तुति योग्य कर्म (आ यन्तु) प्राप्त हों। (मे) मुझे (नु) निश्चय करके वह (देहि) दे (यत्) जो कुछ (मे) मुझ को (अदत्तः असि) तू ने नहीं दिया है। (मे) मेरा (युज्यः) योग्य (सप्तपदः) अधिकार पाया हुआ (सखा) सखा (असि) तू है ॥९॥

समा नौ बन्धुर्वरुण समा जा वेदाहं तद्यन्नावेषा समा जा। ददामि तद्यत् ते अदत्तो अस्मि युज्यस्ते सप्तपदः सखास्मि ॥१०॥

पदार्थ—(वरुण) हे श्रेष्ठ पुरुष ! (नौ) हम दोनों की (बन्धुः) बन्धुता (समा) एक ही है और (जा) जाति भी (समा) एक ही है। (अहम्) मैं (तत्) वह (वेद) जानता हूँ (यत्) जिसमें (नौ) हम दोनों की (एषा) यह (जा) उत्पत्ति (समा) एक है। (तत्) वह (ददामि) देता हूँ (यत्) जो (ते) तुझे (अदत्तः) बिना दिये हुए [अस्मि] हूँ (ते) तेरा (युज्यः) योग्य (सप्तपदः) अधिकार पाया हुआ (सखा) सखा (अस्मि) हूँ ॥१०॥

देवो देवाय गृणते वयोधा विप्रो विप्राय स्तुवते सुमेधाः। अजीजनो हि वरुण स्वधावन्नथर्वाणं पितरं देवबन्धुम्। तस्मा उ राधः कृणुहि सुप्रशस्तं सखा नो असि परमं च बन्धुः ॥११॥

पदार्थ—(स्वधावन्) हे आत्मधारण वाले, स्वाधीन (वरुण) श्रेष्ठ ! तू (गृणते) तेरी स्तुति करने वाले (देवाय) विद्वान् पुरुष को (वयोधाः) बल वा अन्न धारण करने वाला (देवः) देव है। (और (स्तुवते) तेरी स्तुति करने वाले (विप्राय) पंडित के लिये (सुमेधाः) उत्तम बुद्धि वाला (विप्रः) पंडित है। तूने (हि) ही (पितरम् हमारे पालन कर्त्ता (देवबन्धुम्) विद्वानों के बन्धु (अथर्वाणम्) निश्चलस्वभाव पुरुष को (अजीजनः) उत्पन्न किया है। (तस्मै) उसके लिये (उ) ही (सुप्रशस्तम्) अति उत्तम (राधः) धन (कृणुहि) कर, तू (नः) हमारा (सखा) (च) और (परमम्) अतिशय करके (बन्धुः) बन्धु (असि) है ॥११॥

卐 सूक्तम् १२ 卐

१—११ अङ्गिरा। जातवेदा। १, २, ४, ११ त्रिष्टुप्, ३ पङ्क्तिः।

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान् यजसि जातवेदः। आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान् त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥१॥

पदार्थ—(जातवेद) हे बहुत ज्ञान वा धन वाले पुरुष ! (समिद्धः) प्रकाशयुक्त (देवः) दाता तू (अद्य) इस समय (मनुषः) मनुष्य के (दुरोणे) घर में (देवान्) दिव्य गुणों से (यजसि) सगति रखता है। (मित्रमहः) हे मित्रों के सत्कार करने हारे ! [उन दिव्य गुणों को] (च) निश्चय करके (आवह) तू ला। (त्वम्) तू (चिकित्वान्) विज्ञानवान (दूतः) गमनशील वा दुष्टतापक, (कविः) बुद्धिमान् और (प्रचेताः) उत्तम चेतना वाला (असि) है ॥१॥

तनूनपात् पथ ऋतस्य यानान् मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व। मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन् देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥२॥

पदार्थ—(तनूनपात्) हे विस्तृत पदार्थों के न गिराने वाले, (सुजिह्व) हे बड़े जयशील वा मधुरभाषी विद्वान् ! (ऋतस्य) सत्य के (यानान्) चलने योग्य (पथः) मार्गों को (मध्वा) ज्ञान से (समञ्जन्) प्रकट करता हुआ (स्वदय) स्वाद ले। (धीभिः) कर्मों के साथ (मन्मानि) ज्ञानों (उत) और (यज्ञम्) पूजनीय व्यवहार को (ऋन्धन्) सिद्ध करता हुआ तू (देवत्रा) विद्वानों के बीच (नः) हमारे लिये (अध्वरम्) सन्मार्ग देने वाला वा हिंसा रहित व्यवहार को (च) अवश्य (कृणुहि) कर ॥२॥

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः। त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान् यक्षीषितो यजीयान् ॥३॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि समान तेजस्वी विद्वान् ! (आजुह्वानः) सत्कार करने वाला, (ईड्यः) स्तुति योग्य (च) और (वन्द्यः) वन्दना योग्य तू (वसुभिः) निवास के हेतु श्रेष्ठों के साथ (सजोषाः) समान प्रीति निबाहने वाला होकर (आयाहि) आ। (यह्व) हे पूजनीय ! (त्वम्) तू (देवानाम्) दिव्य गुणों का (होता) दाता (असि) है। (सः) सो तू (इषितः) इष्ट और (यजीयान्) अत्यन्त दाता हो कर (एनान्) इन [उत्तम गुणों] का (यक्षि) दान कर ॥३॥

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम्। व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥४॥

पदार्थ—(अह्नाम्) दिनों के (अग्रे) पहिले [वर्तमान] (प्राचीनम्) प्राचीन (बर्हिः) प्रवृद्ध ब्रह्म (प्रदिशा) अपने निर्देश वा शासन से (अस्याः) इस (पृथिव्याः) पृथिवी के (वस्तोः) ढक लेने के लिये (वृज्यते) छोड़ा जाता है [वर्तमान रहता है]। (वितरम्) विशेष कर तारने वाला, (देवेभ्यः) प्रकाशमान सूर्य आदि लोकों से (वरीयः) अधिक विस्तार वाला, (स्योनम्) सुखदायक ब्रह्म (अदितये) अखण्ड मोक्ष सुख [देने] के लिये (वि उ) विशेष करके ही (प्रथते) फैलता है ॥४॥

व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः। देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥५॥

पदार्थ—(व्यचस्वतीः) व्याप्ति वाली प्रजायें (उर्विया) विस्तीर्ण कर्म को (वि) विशेष करके (श्रयन्ताम्) सेवन करें (न) जैसे (शुम्भमानाः) शोभायमान (जनयः) स्त्रियां (पतिभ्यः) अपने पतियों के लिये। (देवीः) प्रकाशमान (बृहतीः) बड़ी (विश्वमिन्वाः) सब व्यवहार में व्याप्ति रखने वाली प्रजाओ ! तुम (देवेभ्यः) उत्तम गुणों के लिये (सुप्रायणाः) बड़े उत्तम घर वाले (द्वारः) द्वारों के समान (भवत) हो जाओ ॥५॥

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ। दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने ॥६॥

पदार्थ—(सुष्वयन्ती = सुसुअयन्त्यौ) अति सुन्दरता से चलती हुई, (यजते) संगति योग्य, (उपाके) पास पास रहने वाली, (दिव्ये) दिव्य गुण वाली, (योषणे) सेवा योग्य (बृहती) वृद्धि करने वाली (सुरुक्मे) सुन्दर शोभा वाली, (शुक्रपिशम्) शुद्ध रूप युक्त (श्रियम्) सेवनीय श्री को (अधि) अधिक (दधाने) धारण करने वाली (उषासानक्ता) रात और प्रभात वेलायें [दिन और रात] (योनौ) हमारे घर में (नि) नित्य (आ सदताम्) आवें ॥६॥

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै। प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥७॥

पदार्थ—(प्रथमा) प्रख्यात, (सुवाचा) सुन्दर वाणी वाले, (दैव्या) दिव्य गुण वाले, (होतारा) दानी दाता [अग्नि और वायु] (मनुषः) मनुष्य के (यज्ञम्) श्रेष्ठ कर्म का (यजध्यै) पूरा करने के लिये (मिमाना) निर्माण करते हुए (विदथेषु) विज्ञानों में (प्रचोदयन्ता) प्रेरणा करते हुए, (कारू) दो शिल्पी रूप, (प्राचीनम्) प्राचीन (ज्योति) ज्योति (प्रदिशा) अपने अनुशासन से (दिशन्ता) देते हुए [आवें—म० ६] ॥७॥

आ नो॑ य॒ज्ञं भार॑ती॒ तूय॑मे॒त्विळा॑ मनु॒ष्वदि॒ह चे॒तय॑न्ती ।

ति॒स्रो दे॒वीर्ब॒र्हिरे॒दं स्यो॒नं सर॑स्वती॒ः स्वप॑सः सदन्ताम् ॥८॥

पदार्थ—(चेतयन्ती) चेताने वाली (भारती) पोषण करने वाली विद्या (नः) हमारे (यज्ञम्) पूजनीय, (मनुष्वत्) मनुष्यों से युक्त (तूयम्) वृद्धि करने वाले कर्म में (इह) यहां पर (आ एतु) आवे (इडा) स्तुति योग्य नीति, और (सरस्वती = सरस्वती) विज्ञान वाली बुद्धि [भी आवे] । (तिस्रः) तीनों (देवीः) देवियां (इदम्) इस (स्योनम्) सुखकारी (बर्हिः) बढ़े हुए काम में (स्वपसः) उत्तम कर्मों वाले पुरुषों को (आ सदन्ताम्) आकर प्राप्त होवें ॥८॥

य इ॒मे द्यावा॑पृथि॒वी जनि॑त्री रू॒पैरपिं॑शद् भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ।

तम॒द्य हो॑तरिषि॒तो यजी॑यान् दे॒वं त्वष्टा॑रमि॒ह य॑क्षि वि॒द्वान् ॥९॥

पदार्थ—(यः) जिस [परमेश्वर] ने (इमे) इन दोनों (जनित्री) उत्पन्न करने वाली (द्यावा पृथिवी) सूर्य और पृथिवी को और (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (रूपैः) अनेक रूपों से (अपिंशत्) अवयव वाला बनाया है । (होतः) हे दानशील पुरुष ! (यजीयान्) अधिक संगति करने वाला, (इषितः) प्रेरणा किया गया (विद्वान्) विद्वान् तू (अद्य) आज (इह) यहां पर (तम्) उस (देवम्) प्रकाशमय (त्वष्टारम्) विश्वकर्मा को (यक्षि) पूज ॥९॥

उ॒पाव॑सृज॒ त्मन्या॑ सम॒ञ्जन् दे॒वानां॒ पाथ॑ ऋतु॒था ह॒वींषि॑ ।

वन॒स्पति॑ः शमि॒ता दे॒वो अ॒ग्निः स्वद॑न्तु ह॒व्यं मधु॑ना घृ॒तेन॑ ॥१०॥

पदार्थ—[हे विद्वान् पुरुष तू] (त्मन्या) आत्म बल से (समञ्जन्) यथावत प्रकट करता हुआ (देवानाम्) विद्वानों के (पाथः) रक्षा साधन अन्न और (हवींषि) देने लेने योग्य पदार्थों को (ऋतुथा) ऋतु ऋतु में (उप—अव—सृज) आदरपूर्वक दिया कर । (वनस्पतिः) किरणों का स्वामी सूर्य (शमिता) शान्तिकर्ता (देवः) दान शील मेघ और (अग्निः) अग्नि (हव्यम्) अन्न को (मधुना) मीठे रस वाले (घृतेन) जल के साथ (स्वदन्तु) स्वादु बनावें ॥१०॥

स॒द्यो जा॒तो व्य॑मिमीत य॒ज्ञम॒ग्निर्दे॒वाना॑मभवत् पुरो॒गाः ।

अ॒स्य होतु॑ः प्र॒शिष्यृ॒तस्य॑ वा॒चि स्वाहा॑कृतं ह॒विर॑दन्तु दे॒वाः ॥११॥

पदार्थ—(सद्यः) शीघ्र (जातः) प्रसिद्ध होकर (अग्निः) विद्वान् पुरुष ने (यज्ञम्) पूजनीय व्यवहार को (वि) विशेष करके (अमिमीत) निर्माण किया, और (देवानाम्) विद्वान् लोगों का (पुरोगाः) अगुआ (अभवत्) हुआ । (अस्य) इस (होतुः) दानशील, (ऋतस्य) सत्यशील पुरुष के (प्रशिषि) अनुशासन और (वाचि) वाणी में (देवाः) विद्वान् लोग (स्वाहाकृतम्) सुन्दर वाणी से सिद्ध किया हुआ (हविः) खाने योग्य अन्न आदि (अदन्तु) खावें ॥११॥

卐 सूक्तम् १३ 卐

१—११ गरुत्मान् । तक्षकः । जगती, २ आस्तारपङ्क्तिः, ४, ७, ८ अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप्, ६ पथ्यापङ्क्तिः, ९ भुरिक्, १०, ११ निचृद्गायत्री ।

द॒दिर्हि मह्यं॒ वरु॑णो दि॒वः क॒विर्वचो॑भिरु॒ग्रैर्नि रि॑णामि ते वि॒षम् ।

खा॒तमखा॑तमु॒त स॒क्तम॑ग्रभ॒मिरे॑व॒ धन्व॒न्नि ज॑जास ते वि॒षम् ॥१॥

पदार्थ—(दिवः) व्यवहार की (कविः) बुद्धि वाला (वरुणः) श्रेष्ठ परमेश्वर (हि) ही (मह्यम्) मुझ को (ददिः) देता है । (उग्रैः) प्रचण्ड (वचोभिः) वचनों से [हे सर्प !] (ते विषम्) तेरे विष को (नि रिणामि) मिटाये देता हूँ । (खातम्) खुदे हुए (अखातम्) बिना खुदे (उत) और (सक्तम्) चिपटे हुए [विष] को (अग्रभम्) मैंने पकड़ लिया है । (ते विषम्) तेरा विष (धन्वन्) रेतीले देश में (इरा इव) जल के समान (नि जजास) नष्ट हो गया है ॥१॥

यत् ते॑ अ॒पोद॑कं वि॒षं तत् त॑ ए॒तास्व॑ग्रभम् ।

गृ॒ह्णामि॑ ते मध्य॒ममु॑त्त॒मं रस॑मु॒ताव॒मं भि॒यसा॑ नेशदा॒दु ते॑ ॥२॥

पदार्थ—(यत्) जो कुछ (ते) तेरा (अपोदकम्) जल [रुधिर] का सुखाने वाला (विषम्) विष है, (ते) तेरे (तत्) उसको (एतासु) इन [नाड़ियों] के भीतर (अग्रभम्) मैंने पकड़ लिया है । (ते) तेरे (मध्यमम्) मध्य के, (उत्तमम्) ऊपर के (उत) और (अवमम्) नीचे के (रसम्) रस को (गृह्णामि) मैं पकड़ता हूँ । (आत्) और (ते) वह तेरा (उ) निश्चय करके (भियसा) भय से (नेशत्) नष्ट हो जावे ॥२॥

वृषा॑ मे॒ रवो॒ नभ॑सा॒ न त॑न्य॒तुरु॒ग्रेण॑ ते॒ वच॑सा बाध॒ आदु॑ ते ।

अ॒हं तम॑स्य॒ नृभि॑रग्रभं॒ रसं॒ तम॑स इव॒ ज्योति॒रुदे॑तु॒ सूर्य॑ः ॥३॥

पदार्थ—(मे) मेरा (रवः) शब्द (नभसा) मेघ के साथ (तन्यतुः न) गर्जन के समान (वृषा) शक्ति वाला है । (आत् उ) और भी (वचसा) अपने वचन से (ते) तेरे [रस को] (बाधे) हटाता हूँ । (अहम्) मैंने (नृभिः) मनुष्यों के साथ (अस्य) इसके (तम् रसम्) उस रस को (तमसः) अन्धकार से (ज्योतिः इव) ज्योति के समान (अग्रभम्) पकड़ लिया है । [अब] (सूर्यः) सूर्य (उदेतु) उदय होवे ॥३॥

चक्षु॑षा ते॒ चक्षु॑र्हन्मि वि॒षेण॑ हन्मि ते वि॒षम् ।

अहे॑ म्रि॒यस्व॒ मा जी॑वीः प्र॒त्यग॒भ्ये॑तु त्वा वि॒षम् ॥४॥

पदार्थ—(चक्षुषा) इस नेत्र से (ते) तेरे (चक्षुः) नेत्र को (हन्मि) नाश करता हूँ । (विषेण) इस विष से (ते) तेरे (विषम्) विष को (हन्मि) नाश करता हूँ, (अहे) हे बड़े हननशील, सर्प (म्रियस्व) तू मर जा, (मा जीवीः) मत जीता रहा । (विषम्) विष (त्वा) तुझ को (प्रत्यक्) प्रतिकूल गति से (अभि) सब ओर (एतु) प्राप्त हो ॥४॥

कैरा॑त॒ पृश्न॒ उप॑तृण्य॒ बभ्र॒ आ मे॑ शृणुतासि॒ता अली॑काः ।

मा मे॒ सख्यु॑ः स्ता॒मान॒मपि॑ ष्ठाताश्रा॒वय॑न्तो॒ नि वि॒षे र॑मध्वम् ॥५॥

पदार्थ—(कैरात) हे किरात अर्थात् शूकरादि के फिरने के स्थान में रहने वाले ! (पृश्ने) हे चिपटने वाले ! (उपतृण्य) हे घास [घासस्थान] में छुपक जाने वाले ! (बभ्रो) हे भूरे रंग वाले ! (असिताः) हे काले वर्ण वालो ! (अलीकाः) हे तुच्छ जीवो ! तुम (मे) मेरी (आ) भले प्रकार (शृणुत) सुनो । (मे) मेरे (सख्युः) मित्र के (स्तामानम्) घर के (अपि = अभि) पास (मा स्थात) मत ठहरो । (आश्रावयन्तः) अच्छे प्रकार सुनते हुए तुम (विषे) इस विष में (नि रमध्वम्) चुपचाप ठहरे रहो ॥५॥

अ॒सि॒तस्य॑ तैमा॒तस्य॑ ब॒भ्रोरपो॑दकस्य च । सा॒त्रा॒सा॒हस्या॒हं म॒न्योरव॒

ज्यामि॑व॒ धन्व॑नो॒ वि मु॑ञ्चामि॒ रथाँ॑ इव ॥६॥

पदार्थ—(असितस्य) काले वर्ण वाले, (तैमातस्य) आर्द्र स्थान में रहने वाले, (बभ्रोः) भूरे वर्ण वाले, (अपोदकस्य) जल से बाहर रहने वाले, (च) और (सात्रासाहस्य) मिलकर रहने वाली प्रजाओं के हराने वाले [सर्प] के (मन्योः) क्रोध के (रथान् इव) रथों को जैसे, (धन्वनः) धनुष की (ज्याम् इव) डोरी को जैसे (अहम्) मैं (अव) अलग (वि मुञ्चामि) ढीला करता रहूँ ॥६॥

आलि॑गी च॒ विलि॑गी च पि॒ता च॑ मा॒ता च॑ ।

वि॒द्म वः॑ स॒र्वतो॒ बन्ध्वर॑साः॒ किं क॑रिष्यथ ॥७॥

पदार्थ—(च) और (आलिगी) चारों ओर घूमने वाली (च) और (विलिगी) टेढी टेढी चलने वाली [सांपिनी] (च) और (पिता) उसका पिता [सांप] (च) और (माता) उसकी माता [सांपिनी तुम, सब] (वः) तुम्हारे (बन्धु) बन्धुपन को (सर्वतः) सब प्रकार से (विद्म) हम जानते हैं । (अरसाः) निर्वीर्य तुम (किम्) क्या (करिष्यथ) करोगे ॥७॥

उ॒रु॒गू॒लाया॑ दुहि॒ता जा॒ता दा॒स्यसि॑क्न्या ।

प्र॒तङ्कं॑ द॒द्रुषी॑णां॒ सर्वा॑सामर॒सं वि॒षम् ॥८॥

पदार्थ—(उरुगूलायाः) बहुत डसने वाली [सांपिनी] की (दुहिता) पुत्री (असिक्न्या) उस काली [नागिनी] से (जाता) उत्पन्न हुई (दासी) डसने वाली [सांपिनी] है । (सर्वासाम्) सब (दद्रुषीणाम्) दद्रु अर्थात् दुर्गति वा खुजली देने वाली (सांपिन !) (प्रतङ्कम्) जीवन का कष्ट देने वाला (विषम्) विष (अरसम्) निर्बल है ॥८॥

कर्णा॑ श्वा॒वित् तद॑ब्रवीद् गि॒रेर॑वचरन्ति॒का ।

याः काश्चे॒माः खनि॒त्रिमा॒स्तासा॑मर॒सत॑मं वि॒षम् ॥९॥

पदार्थ—(गिरेः) पहाड़ के (अवचरन्तिका) नीचे घूमने वाली (कर्णा) कान वाली (श्वावित्) साही (तत्) यह (अब्रवीत्) बोली, (याः काः) जो कोई (च) (इमाः) ये सब (खनित्रिमाः) खनती में रहने वाली [सांपिनी] हैं (तासाम्) उनका (विषम्) विष (अरसतमम्) अत्यन्त निर्बल होवे ॥९॥

ता॒बु॒वं न ता॒बु॒वं न घेत् त्वम॑सि ता॒बु॒वम् ।

ता॒बु॒वेना॑र॒सं वि॒षम् ॥१०॥

पदार्थ—(ताबुवम्) वृद्धि करने वाली वस्तु (ताबुवम्) पीड़ा देने वाली वस्तु (न) नहीं होती, (त्वम्) तू [सर्प] (घ इत्) अवश्य ही (ताबुवम्) दुःख

नाशक वस्तु (न) नहीं (अस्ति) है। (तास्तुवेन) हमारी वृद्धि करने वाले कर्म से (विषम्) तेरा विष (अरसम्) निर्बल हो जावे ॥१०॥

तस्तुवं न तस्तुवं न घेत् त्वमसि तस्तुवम् ।

तस्तुवेनारसं विषम् ॥११॥

पदार्थ—(तस्तुव न) निन्दादायक वस्तु के समान (तस्तुवम्) निन्दाप्रापक (न) नहीं है (त्वम्) तू (घ इत्) अवश्य ही (तस्तुवम्) निन्दा प्रापक वस्तु (असि) है। (तस्तुवेन) निन्दानाशक कर्म से (विषम्) तेरा विष (अरसम्) शक्तिहीन होवे ॥११॥

卐 सूक्तम् १४ 卐

१—१३ शुक्र । वनस्पति कृत्यापरिहरणम् । अनुष्टुप्, ३, ५, १२ भुरिक्, ८ त्रिपदा विराट्, १० निचृद्बृहती, ११ त्रिपदा साम्नी त्रिष्टुप्, १३ स्वराट् ।

सुपर्णस्त्वान्वविन्दत् सूकरस्त्वाखनन्नसा ।

दिप्सौषधे त्वं दिप्सन्तमव कृत्याकृतं जहि ॥१॥

पदार्थ—(सुपर्णः) सुन्दर पक्षवाले वा शीघ्रगामी [गरुड, गिद्ध आदि पक्षी के समान दूरदर्शी पुरुष] ने (त्वा) तुझ को (अनु—अन्विष्य) ढूंढ कर (अविन्दत्) पाया है, (सूकरः) सूकर [सूअर पशु के समान तीव्र बुद्धि और बलवान् पुरुष] ने (त्वा) तुझको (नसा) नासिका से (अखनत्) खोदा है। (ओषधे) हे तापनाशक पुरुष (त्वम्) तू (दिप्सन्तम्) मारने की इच्छा करने वाले को (दिप्स) मारना चाह, और (कृत्याकृतम्) हिंसाकारी पुरुष को (अव जहि) मार डाल ॥१॥

अव जहि यातुधानानव कृत्याकृतं जहि ।

अथो यो अस्मान् दिप्सति तमु त्वं जह्योषधे ॥२॥

पदार्थ—(यातुधानान्) पीड़ा देने वालो को (अव जहि) मार डाल, और (कृत्याकृतम्) हिंसा करने वाले को (अव जहि) नाश करदे। (अथो) और भी (यः) जो (अस्मान्) हमे (दिप्सति) मारना चाहता है (तम् उ) उसे भी (त्वम्) तू (ओषधे) हे अन्न आदि ओषधि के समान तापनाशक ! (जहि) नाश कर ॥२॥

रिश्यस्येव परीशासं परिकृत्य परि त्वचः ।

कृत्यां कृत्याकृते देवा निष्कमिव प्रति मुञ्चत ॥३॥

पदार्थ—(रिश्यस्य) हिंसक के (परिशासम्) हिंसा सामर्थ्य को (इव) अवश्य (त्वचः परि) उसके चर्म वा शरीर से (परिकृत्य) काट डालकर, (देवाः) हे विद्वानो ! (कृत्याकृते) हिंसा करने वाले के लिये (कृत्याम्) हिंसा को (निष्कम् इव) नलछट के समान (प्रति मुञ्चत) फेंक दो ॥३॥

पुनः कृत्यां कृत्याकृते हस्तगृह्य परा णय ।

समक्षमस्मा आ धेहि यथा कृत्याकृतं हनत् ॥४॥

पदार्थ—(कृत्याम्) हिंसा को (कृत्याकृते) हिंसाकारी के लिये (हस्तगृह्य) हाथ मे लेकर (पुनः) अवश्य (परा नय) दूर ले जा। (अस्मै) इस पुरुष के लिये (समक्षम्) सामने (आ धेहि) रख दे, (यथा) जिससे [वह पुरुष] (कृत्याकृतम्) हिंसाकारी को (हनत्) मारे ॥४॥

कृत्याः सन्तु कृत्याकृते शपथः शपथीयते ।

सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥५॥

पदार्थ—(कृत्याः) शत्रुनाशक सेनायें (कृत्याकृते) हिंसाकारी के लिये (सन्तु) होवें, और (शपथः) दुर्वचन (शपथीयते) दुर्वचन बोलने वाले पुरुष के से आचरण वाले को [होवे]। (कृत्या) शत्रुनाशक सेना (कृत्याकृतम्) हिंसाकारी पर (पुनः) अवश्य (वर्तताम्) घूमे, (इव) जैसे (सुखः) अच्छा बना हुआ (रथः) रथ [घूमता है] ॥५॥

यदि स्त्री यदि वा पुमान् कृत्यां चकार पाप्मने ।

तामु तस्मै नयामस्यश्वमिवाश्वाभिधान्या ॥६॥

पदार्थ—(यदि) चाहे (स्त्री) स्त्री ने (यदि वा) अथवा (पुमान्) पुरुष ने जो (कृत्याम्) हिंसा (पाप्मने) पाप करने के लिये (चकार) की है। (ताम्) उसको (उ) निश्चय करके (तस्मै) उसी पुरुष के लिये (नयामसि) हम लिये चलते हैं, (इव) जैसे (अश्वम्) घोड़े को (अश्वाभिधान्या) घोड़े बांधने की रस्सी से ॥६॥

यदि वासि देवकृता यदि वा पुरुषैः कृता ।

तां त्वा पुनर्णयामसीन्द्रेण सयुजा वयम् ॥७॥

पदार्थ—(यदि वा) चाहे (देवकृता) गतिशील सूर्य आदि लोकों द्वारा की गई (यदि वा) चाहे (पुरुषैः) पुरुषों से (कृता) की गई (असि) तू है। (ताम् त्वा) उस तुझ को (पुनः) फिर (वयम्) हम (इन्द्रेण) ऐश्वर्य के साथ (सयुजा) समान संयोग से (नयामसि) लिये चलते हैं ॥७॥

अग्ने पृतनाषाट् पृतनाः सहस्व ।

पुनः कृत्यां कृत्याकृते प्रतिहरणेन हरामसि ॥८॥

पदार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् सेनापति ! (पृतनाषाट्) संग्राम जीतने वाला तू (पृतनाः) संग्रामो को (सहस्व) जीत। (पुनः) निश्चय करके (कृत्याम्) हिंसा को (कृत्याकृते) हिंसा करने वाले पुरुष की ओर (प्रतिहरणेन) लौटा देने से (हरामसि) हम नाश करते हैं ॥८॥

कृतव्यधनि विध्य तं यश्चकार तमिज्जहि ।

न त्वामचक्रुषे वयं वधाय सं शिशीमहि ॥९॥

पदार्थ—(कृतव्यधनि) हे छेदने वाले शस्त्रयुक्त सेना ! (तम्) चोर को (विध्य) छेद ले। (यः) जिसने (चकार) हिंसा की है, (तम्) उसको (इत्) अवश्य (जहि) नाश कर। (अचक्रुषे) हिंसा न करने वाले पुरुष को (वधाय) मारने के लिये (वयम्) हम लोग (त्वाम्) तुझे (न) नही (सम् शिशीमहि) तीक्ष्ण करें ॥९॥

पुत्र इव पितरं गच्छ स्वज इवाभिष्ठितो दश ।

बन्धमिवावक्रामी गच्छ कृत्ये कृत्याकृतं पुनः ॥१०॥

पदार्थ—(पुत्रः इव) पुत्र के समान (पितरम्) अपने पिता के पास (गच्छ) पहुँच, (अभिष्ठितः) ठोकर खाये हुए (स्वजः इव) लिपटने वाले साप के समान [शत्रु को] (दश) डस ले। (कृत्ये) हे हिंसाशक्ति ! (बन्धम्) बन्ध (अवक्रामी इव) छोड़कर भागने वाले के समान (कृत्याकृतम्) हिंसाकारी को (पुनः) अवश्य (गच्छ) पहुँच ॥१०॥

उदेणीव वारण्यभिस्कन्दं मृगीव । कृत्या कर्तारमृच्छतु ॥११॥

पदार्थ—(वारणी) हथिनी, अथवा (एणी इव) कृष्णमृगी के समान (मृगी इव) और मृगी के समान (अभिस्कन्दम्) धावा करने वाले पुरुष पर (कृत्या) शत्रु नाशक सेना (कर्तारम्) हिंसक को (उद्) उछल कर (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥११॥

इष्वा ऋजीयः पततु द्यावापृथिवी तं प्रति ।

सा तं मृगमिव गृह्णातु कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥१२॥

पदार्थ—(द्यावापृथिवी) हे सूर्य और पृथिवी ! (सा) वह (कृत्या) शत्रुनाशक सेना (तम्) चोर (प्रति) पर (इष्वाः) बाण से (ऋजीयः) अधिक सीधी (पततु) गिरे और (पुनः) फिर (तम्) उस (कृत्याकृतम्) हिंसाकारी को (मृगम् इव) आखेट पशु के समान (गृह्णातु) पकड़ लेवे ॥१२॥

अग्निरिवैतु प्रतिकूलमनुकूलमिवोदकम् ।

सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥१३॥

पदार्थ—वह [सेना] (अग्निः इव) अग्नि के समान (प्रतिकूलम्) विरुद्ध गति से, और (अनुकूलम्) तट-तट से चलने वाले (उदकम् इव) जल के समान [शीघ्र] (एतु) चले। (कृत्या) शत्रु नाशक सेना (कृत्याकृतम्) हिंसाकारी पर (पुनः) अवश्य (वर्तताम्) घूमे, (इव) जैसे (सुखः) अच्छा बना हुआ (रथः) रथ [घूमता है] ॥१३॥

卐 सूक्तम् १५ 卐

१—११ विश्वामित्र । मधुला वनस्पति । अनुष्टुप्, ४ पुरस्ताद्बृहती, ५, ७, ८, ९ भुरिक् ।

एका च मे दश च मेऽपवक्तार ओषधे ।

ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥१॥

पदार्थ—(मे) मेरे लिये (एका) एक [संख्या] (च च) और (मे) मेरे लिये (दश) दस (अपवक्तारः) निन्दा करने वाले व्यवहार हैं। (ऋतजाते) हे सत्य में उत्पन्न हुई, (ऋतावरि) हे सत्यशील, (ओषधे) हे तापनाशक शक्ति परमेश्वर ! (मधुला) ज्ञान वा मिठास देने वाली तू (मे) मेरे लिये (मधु) ज्ञान वा मिठास (करः) कर ॥१॥

द्वे च मे विंशतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।

ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥२॥

पदार्थ—(मे) मेरे लिये (द्वे) दो (च च) और (मे) मेरे लिये (विंशतिः)

बीस (अपवक्तार) निन्दा करने वाले व्यवहार हैं। (ऋतजाते) हे सत्य में उत्पन्न हुई, (ऋतावरि) हे सत्यशील, (ओषधे) हे तापनाशक शक्ति परमेश्वर ! (मधुला) ज्ञान वा मिठास देने वाली तू (मे) मेरे लिये (मधु) ज्ञान वा मिठास (कर) कर ॥२॥

त्रिश्च मे त्रिंशच्च मेऽपवक्तार ओषधे ।

ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥३॥

पदार्थ—(मे) मेरे लिये (तिस्र) तीन (च च) और (मे) मेरे लिये (त्रिंशत्) तीस (अपवक्तार) निन्दा करने वाले व्यवहार हैं। (ऋतजाते) हे सत्य में उत्पन्न हुई, (ऋतावरि) हे सत्यशील, (ओषधे) हे तापनाशक शक्ति परमेश्वर ! (मधुला) ज्ञान वा मिठास देने वाली तू (मे) मेरे लिये (मधु) ज्ञान वा मिठास (कर) कर ॥३॥

चतस्रश्च मे चत्वारिंशच्च मेऽपवक्तार ओषधे ।

ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥४॥

पदार्थ—(मे) मेरे लिये (चतस्र) चार (च च) और (मे) मेरे लिये (चत्वारिंशत्) चालीस (अपवक्तार) निन्दा करने वाले व्यवहार हैं (ऋतजाते) हे सत्य में उत्पन्न हुई, (ऋतावरि) हे सत्यशील, (ओषधे) हे तापनाशक शक्ति परमेश्वर ! (मधुला) ज्ञान वा मिठास देने वाली तू (मे) मेरे लिये (मधु) ज्ञान वा मिठास (कर) कर ॥४॥

पञ्च च मे पञ्चाशच्च मेऽपवक्तार ओषधे ।

ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥५॥

पदार्थ—(मे) मेरे लिये (पञ्च) पाँच (च च) और (मे) मेरे लिये (पञ्चाशत्) पचास (अपवक्तार) निन्दा करने वाले व्यवहार हैं। (ऋतजाते) हे सत्य में उत्पन्न हुई, (ऋतावरि) हे सत्यशील, (ओषधे) हे तापनाशक शक्ति परमेश्वर ! (मधुला) ज्ञान वा मिठास देने वाली तू (मे) मेरे लिये (मधु) ज्ञान वा मिठास (कर) कर ॥५॥

षट् च मे षष्टिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।

ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥६॥

पदार्थ—(मे) मेरे लिये (षट्) छह (च च) और (मे) मेरे लिये (षष्टिः) साठ (अपवक्तार) निन्दा करने वाले व्यवहार हैं। (ऋतजाते) हे सत्य में उत्पन्न हुई, (ऋतावरि) हे सत्यशील, (ओषधे) हे तापनाशक शक्ति परमेश्वर ! (मधुला) ज्ञान वा मिठास देने वाली तू (मे) मेरे लिये (मधु) ज्ञान वा मिठास (कर) कर ॥६॥

सप्त च मे सप्ततिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।

ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥७॥

पदार्थ—(मे) मेरे लिये (सप्त) सात (च च) और (मे) मेरे लिये (सप्तति) सत्तर (अपवक्तार) निन्दा करने वाले व्यवहार हैं। (ऋतजाते) हे सत्य में उत्पन्न हुई, (ऋतावरि) हे सत्यशील, (ओषधे) हे तापनाशक शक्ति परमेश्वर ! (मधुला) ज्ञान वा मिठास देने वाली तू (मे) मेरे लिये (मधु) ज्ञान वा मिठास (कर) कर ॥७॥

अष्ट च मेऽशीतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।

ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥८॥

पदार्थ—(मे) मेरे लिए (अष्ट) आठ (च च) और (मे) मेरे लिए (अशीति.) अस्सी (अपवक्तार) निन्दा करने वाले व्यवहार है। (ऋतजाते) हे सत्य में उत्पन्न हुई, (ऋतावरि) हे सत्यशील, (ओषधे) हे तापनाशक शक्ति परमेश्वर ! (मधुला) ज्ञान वा मिठास देने वाली तू (मे) मेरे लिए (मधु) ज्ञान वा मिठास (कर) कर ॥८॥

नव च मे नवतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।

ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥९॥

पदार्थ—(मे) मेरे लिए (नव) नौ (च च) और (मे) मेरे लिए (नवति) नब्बे (अपवक्तार) निन्दा करने वाले व्यवहार हैं। (ऋतजाते) हे सत्य में उत्पन्न हुई, (ऋतावरि) हे सत्यशील, (ओषधे) हे तापनाशकशक्ति परमेश्वर ! (मधुला) ज्ञान वा मिठास देने वाली तू (मे) मेरे लिये (मधु) ज्ञान वा मिठास (कर.) कर ॥९॥

दश च मे शतं च मेऽपवक्तार ओषधे ।

ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥१०॥

पदार्थ—(मे) मेरे लिये (दश) दस (च च) और (मे) मेरे लिये (शतम्) सौ (अपवक्तार) निन्दा करने वाले व्यवहार हैं (ऋतजाते) हे सत्य में उत्पन्न हुई, (ऋतावरि) हे सत्यशील, (ओषधे) हे तापनाशक शक्ति परमेश्वर ! (मधुला) ज्ञान वा मिठास देने वाली तू (मे) मेरे लिये (मधु) ज्ञान वा मिठास (कर) कर ॥१०॥

शतं च मे सहस्रं चापवक्तार ओषधे ।

ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥११॥

पदार्थ—(मे) मेरे लिये (शतम्) सौ (च च) और (सहस्रम्) सहस्र (अपवक्तार) निन्दक व्यवहार हैं। (ऋतजाते) हे सत्य में उत्पन्न हुई (ऋतावरी) हे सत्यशील, (ओषधे) हे तापनाशक शक्ति परमेश्वर ! (मधुला) ज्ञान वा मिठास देने वाली तू (मे) मेरे लिये (मधु) ज्ञान वा मिठास (करः) कर ॥११॥

卐 इति तृतीयोऽनुवाकः 卐

卐

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् १६ 卐

१—११ विश्वामित्र । एकवृष । एकावसान द्विपदम्, १, ४, ५, ७—१० साम्नी उष्णिक्, २, ३, ६ आसुरी अनुष्टुप, ११ आसुरी गायत्री ।

यद्येकवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥१॥

पदार्थ—(यदि) जो तू (एकवृष.) एक [परमेश्वर] के साथ ऐश्वर्यवान् (असि) है । [सुख] (सृज) उत्पन्न कर, [नहीं तो] तू (अरस) निर्बल (असि) है ॥१॥

यदि द्विवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥२॥

पदार्थ—(यदि) जो तू (द्विवृष.) दो [परमात्मा और आत्मा] के साथ ऐश्वर्य वान् है [सुख] (सृज) उत्पन्न कर, [नहीं तो] तू (अरस) निर्बल (असि) है ॥२॥

यदि त्रिवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥३॥

पदार्थ—(यदि) जो तू (त्रिवृष) तीन [सत्त्व, रज और तम गुणों] पर ऐश्वर्यवान् (असि) है [सुख] (सृज) उत्पन्न कर, [नहीं तो] तू (अरस) निर्बल (असि) है ॥३॥

यदि चतुर्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥४॥

पदार्थ—(यदि) जो तू (चतुर्वृष) चार (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) के द्वारा समर्थ (असि) है [सुख] (सृज) उत्पन्न कर, [नहीं तो] तू (अरस) निर्बल (असि) है ॥४॥

यदि पञ्चवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥५॥

पदार्थ—(यदि) जो तू (पञ्चवृष) पाच भूतों [पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश] पर ऐश्वर्यवान् (असि) है (सृज) [सुख] उत्पन्न कर, नहीं तो तू (अरस) निर्बल (असि) है ॥५॥

यदि षड्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥६॥

पदार्थ—(यदि) जो तू (षड्वृषः) छह [काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, अहंकार] पर समर्थ (असि) है (सृज) [सुख] उत्पन्न कर, नहीं तो तू (अरसः) निर्बल (असि) है ॥६॥

यदि सप्तवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥७॥

पदार्थ—(यदि) जो तू (सप्तवृषः) सात [ऋषियों, पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि] पर समर्थ (असि) है (सृज) [सुख] उत्पन्न कर, नहीं तो तू (अरसः) निर्बल (असि) है ॥७॥

यद्यष्टवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥८॥

पदार्थ—(यदि) जो तू (अष्टवृषः) आठ [योग के अङ्गों, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि] में समर्थ (असि) है (सृज) [सुख] उत्पन्न कर, नहीं तो तू (अरसः) निर्बल (असि) है ॥८॥

यदि नववृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥९॥

पदार्थ—(यदि) जो तू (नववृषः) नव [अर्थात् नव द्वार वाले शरीर]

से ऐश्वर्यवान (असि) है, (सृज) [सुख] उत्पन्न कर, नहीं तो तू (अरसः) निर्बल (असि) है ॥९॥

यदि दशवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥१०॥

पदार्थ—(यदि) जो तू (दशवृषः) दस [दस बल अर्थात् दान शील, क्षमा, वीर्य, ध्यान, प्रज्ञा, सेनायें, उपाय, दूत, और ज्ञान] से ऐश्वर्यवान् (असि) है, (सृज) [सुख] उत्पन्न कर, [नही तो] तू (अरसः) निर्बल (असि) है ॥१०॥

यद्येकादशोऽसि सोऽपोदकोऽसि ॥११॥

पदार्थ—(यदि) जो तू (एकादशः) ग्यारहवा [पूर्वोक्त दस से भिन्न पुरुषार्थहीन] (असि) है, (सः) वह तू (अपोदकः) वृद्धि सामर्थ्य रहित (असि) है ॥११॥

卐 सूक्तम् १७ 卐

१—१८ मयोभू. । ब्रह्मजाया । अनुष्टुप्, १—६ त्रिष्टुप् ।

तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा ।
वीडुहरास्तप उग्रं मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋतस्य ॥१॥

पदार्थ—(ऋतस्य) सत्यस्वरूप परमात्मा से (प्रथमजाः) प्रथम उत्पन्न हुए (ते) उन (प्रथमाः) मुख्य देवताओं अर्थात् (वीडुहरा.) बड़े तेज वाले, (मयोभू.) सुख देने वाले, (अकूपारः) अकुत्सित वा बड़े पार वाले सूर्य, (सलिल) जल वाले समुद्र, (मातरिश्वा) आकाश म चलने वाले वायु, (उग्रम्) उग्र (तप.) अग्नि, (देवी:) दिव्यगुणवाली (आप.) व्यापनशील प्रजाओ ने (ब्रह्मकिल्बिषे) ब्रह्मवादी के अपराध के विषय मे (अवदन्) बातचीत की ॥१॥

सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः ।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय ॥२॥

पदार्थ—(अहृणीयमानः) क्रोध नही करते हुए, (प्रथमः) मुख्य (राजा) राजा (सोमः) बड़े ऐश्वर्यवान् परमात्मा ने (पुनः) अवश्य (ब्रह्मजायाम्) ब्रह्म विद्या को (प्रायच्छत्) दान किया है । (वरुण.) श्रेष्ठ, (मित्रः) सर्वप्रेरक, (अग्निः) ज्ञानवान् पुरुष (अन्वर्तिता) अनुकूलगामी और (होता) ग्रहीता (आसीत्) था और (हस्तगृह्य) हाथ में लेकर [वही उसे] (आनिनाय) लाया ॥२॥

हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेति चेदवोचत् ।
न दूताय प्रहेया तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥३॥

पदार्थ—(च) और [उस विद्वान् ने] (इत्) ही (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) कहा है । (ब्रह्मजाया) यह ब्रह्म विद्या है, (अस्या) इसका (आधि) आधार वा आश्रय (हस्तेन एव) हाथ से ही (ग्राह्य) पकड़ना चाहिये । (एषा) यह (दूताय) सताने वाले को (प्रहेया) देने योग्य (न तस्थे) नहीं स्थित हुई है, (तथा) उसी से (क्षत्रियस्य) क्षत्रिय का (राष्ट्रम्) राज्य (गुपितम्) रक्षा किया गया [रहता है] ॥३॥

यामाहुस्तारकैषा विकेशीति दुच्छुनां ग्राममवपद्यमानाम् ।
सा ब्रह्मजाया वि दुनोति राष्ट्रं यत्र प्रापादि शश उल्कुषीमान् ॥४॥

पदार्थ—(ग्रामम्) गांव पर (अवपद्यमानाम्) गिरती हुई (याम्) जिस (दुच्छुनाम्) दुष्ट गति अविद्या को (आहु·) वे लोग बताते हैं कि (एषा) यह (विकेशी) विरुद्ध प्रकाश वाला (तारका इति) तारा है । (सा) वह (ब्रह्मजाया) ब्रह्मविद्या (राष्ट्रम्) उस राज्य को (वि दुनोति) उलट पलट कर देती है (यत्र) जिसमे (उल्कुषीमान्) उल्काओ का कोष वा संग्रह वाला (शश.) गतिशील तारा (प्र अपादि) गिरा हो ॥४॥

ब्रह्मचारी चरति वेविषद् विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम् ।
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः ॥५॥

पदार्थ—(विषः) व्याप्तव्य कर्म मे (वेविषत्) प्रवेश करता हुआ (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी अर्थात् वेद के लिये ब्रह्मचर्य आचरण करने वाला पुरुष (चरति) विचरता है, (सः) वह (देवानाम्) विद्वानों का (एकम्) मुख्य (अङ्गम्) अङ्ग (भवति) होता है । (देवा.) हे विद्वान् लोगो ! (तेन) उसी कारण से (बृहस्पतिः) बड़ी बड़ी विद्याओं के रक्षक, बृहस्पति [उस ब्रह्मचारी] ने (सोमेन) परमेश्वर करके (नीताम्) लायी गई (जुह्वम्) दानशीला (जायाम्) सुख उत्पन्न करने हारी विद्या को (न) अब (अनु अविन्दत्) पा लिया है ॥५॥

देवा वा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसा ये निषेदुः ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्यापनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥६॥

पदार्थ—(पूर्वे) पूर्व काल मे (देवा·) वे दिव्य गुण वाले महात्मा (वै) निश्चय करके (एतस्याम्) इस [ब्रह्म विद्या] के विषय मे (अवदन्त) बोले, (ये) जो (सप्त ऋषय) सात [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] द्वारा देखने वाले (तपसा) तपके साथ (निषेदुः) बैठे थे । (अपनीता) कुनीति वा खण्डन को प्राप्त हुई (ब्राह्मणस्य) वेदाधिपति परमेश्वर की (जाया) विद्या (भीमा) भयकर होकर (परमे) सब से श्रेष्ठ (व्योमन्) रक्षणीय स्थान मे (दुर्धाम्) दुष्टव्यवस्था (दधाति) जमाती है ॥६॥

ये गर्भा अवपद्यन्ते जगद् यच्चापलुप्यते ।
वीरा ये तृह्यन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिनस्ति तान् ॥७॥

पदार्थ—(ये) जो (गर्भा·) गर्भ (अवपद्यन्ते) गिर पड़ते है, (च) और (यत्) जो (जगत्) जगत् पशु आदि वृन्द (अपलुप्यते) नष्ट हो जाता है । और (ये) जो (वीराः) वीर लोग (मिथः) आपस मे (तृह्यन्ते) कट मरते हैं, [कुनीति वा खण्डन को प्राप्त हुई] (ब्रह्मजाया) ब्रह्मविद्या (तान्) उन्हे (हिनस्ति) मार डालती है ॥७॥

उत यत् पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अब्राह्मणाः ।
ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत् स एव पतिरेकधा ॥८॥

पदार्थ—(उत) और (यत्) जो (स्त्रियाः) शब्दकारिणी विद्या के (दश) दस (पतयः) रक्षक (पूर्वे) सब (अब्राह्मणा) ब्राह्मण से भिन्न होवें (च) और [जो] (ब्रह्मा) ब्रह्मा, ब्रह्मज्ञानी ने (इत्) ही (हस्तम्) हाथ (अग्रहीत्) पकड़ा, (सः एव) वही (एकधा) मुख्य प्रकार से (पतिः) रक्षक है ॥८॥

ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो न वैश्यः ।
तत् सूर्यः प्रब्रुवन्नेति पञ्चभ्यो मानवेभ्यः ॥९॥

पदार्थ—(ब्राह्मण·) वेदवेत्ता ब्राह्मण (एव) ही (पति) रक्षक है, (न) न (राजन्य) क्षत्रिय और (न) न (वैश्य) वैश्य है । (तत्) यह बात (सूर्य) सर्वप्रेरक परमेश्वर (पञ्चभ्य) विस्तृत (मानवेभ्य) मननशील मनुष्यो को (प्रब्रुवन्) कहता हुआ (एति) चलता है ॥९॥

पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या अददुः ।
राजानः सत्यं गृह्णाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥१०॥

पदार्थ—(देवा) सूर्यादि देवताओ ने (पुन·) निश्चय करके (वै) ही (अददु·) दान किया है और (मनुष्या.) मनुष्यो ने (पुनः) निश्चय करके (अददुः) दान किया है । (सत्यम्) सत्य (गृह्णाना·) ग्रहण करते हुए (राजान) राजा लोगो ने (ब्रह्मजायाम्) ब्रह्मविद्या को (पुन) अवश्य (ददु) दिया है ॥१०॥

पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्निकिल्बिषम् ।
ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वोरुगायमुपासते ॥११॥

पदार्थ—[मनुष्य] (ब्रह्मजायाम्) वेद विद्या को (पुनर्दाय) अवश्य देकर और (देवै.) उत्तम गुणो के कारण (निकिल्बिषम्) पाप से छुटकारा (कृत्वा) करके [पृथिव्या] पृथिवी के (ऊर्जम्) बलदायक अन्न को (भक्त्वा) बांट कर (उरुगायम्) बड़ी कीर्तिवाले परमात्मा को (उपासते) भजते हैं ॥११॥

नास्य जाया शतवाही कल्याणी तल्पमा शये ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥१२॥

पदार्थ—(अस्य) उसकी (जाया) विद्या (शतवाही) सैकड़ो कार्य निबाहने वाली (कल्याणी) कल्याणी होकर (तल्पम्) प्रतिष्ठा (न) नहीं (आ शये - शेते) पाती है । (यस्मिन्) जिस (राष्ट्रे) राज्य मे (ब्रह्मजाया) वेद विद्या (अचित्त्या) अचेतपन से (निरुध्यते) रोकी जाती है ॥१२॥

न विकर्णः पृथुशिरास्तस्मिन् वेश्मनि जायते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥१३॥

पदार्थ—(विकर्णः) विशेष श्रवण-शक्ति वाला और (पृथुशिरा) विस्तीर्ण मस्तक शक्ति वाला पुरुष (तस्मिन्) उस (वेश्मनि) घर में (न) नहीं (जायते) होता है (यस्मिन्) जिस (राष्ट्रे) राज्य मे (ब्रह्मजाया) वेदविद्या (अचित्त्या) अचेतपन से (निरुध्यते) रोकी जाती है ॥१३॥

नास्य क्षत्ता निष्कग्रीवः सूनानामेत्यग्रतः ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥१४॥

पदार्थ—(अस्य) उसका (निष्कग्रीव·) सोने के कण्ठे वाला (क्षत्ता) द्वारपाल (सूनानाम्) ऐश्वर्य वाले पुरुषो के (अग्रतः) सम्मुख (न) नहीं (एति)

जाता है। (यस्मिन् राष्ट्रे) जिस राज्य मे (ब्रह्मजाया) वेद विद्या (अचित्त्या) अचेतपन से (निरुध्यते) रोकी जाती है ॥१४॥

नास्य॑ श्वेतः कृ॑ष्णकर्णो॒ धुरि॑ यु॒क्तो म॑हीयते ।

यस्मि॑न् राष्ट्रे नि॑रु॒ध्यते॑ ब्रह्मजा॒याचि॑त्त्या ॥१५॥

पदार्थ—(अस्य) उसका (श्वेत) श्वेत, (कृष्णकर्ण) श्यामकर्ण घोडा (धुरि) रथ के जुए मे (युक्त) जुता हुआ (न) नहीं (महीयते) बडाई पाता है। (यस्मिन् राष्ट्रे) जिस राज्य मे (ब्रह्मजाया) वेदविद्या (अचित्त्या) अचेतपन मे (निरुध्यते) रोकी जाती है ॥१५॥

नास्य॒ क्षेत्रे॑ पु॒ष्करि॒णी ना॒ण्डीकं॑ जायते॒ बिस॑म् ।

यस्मि॑न् राष्ट्रे नि॑रु॒ध्यते॑ ब्रह्मजा॒याचि॑त्त्या ॥१६॥

पदार्थ—(अस्य) उसके (क्षेत्रे) खेत मे (न) न (पुष्करिणी) पायरणवती शक्ति, और (न) न (आण्डीकम) पालन योग्य और (बिसम) बलदायक वस्तु (जायते) होती है। (यस्मिन् राष्ट्रे) जिस राज्य मे (ब्रह्मजाया) वेदविद्या (अचित्त्या) अचेतपन से (निरुध्यते) रोकी जाती है ॥१६॥

नास्मै॑ पृश्नि॒ं वि दु॑हन्ति॒ ये॑ऽस्या॒ दोह॑मु॒पास॑ते ।

यस्मि॑न् राष्ट्रे नि॑रु॒ध्यते॑ ब्रह्मजा॒याचि॑त्त्या ॥१७॥

पदार्थ—(अस्मै) उस [राजा] के लिये (पृश्निम्) स्पर्शवती पृथिवी को [वे लोग (वि) विशेष करके (न) नहीं (दुहन्ति) दुहते है (ये) जो (अस्या) इस [भूमि] के (दोहम्) रस का (उपासते) सेवन करते है। (यस्मिन् राष्ट्रे) जिस राज्य मे (ब्रह्मजाया) वेद विद्या (अचित्त्या) अचेतपन मे (निरुध्यते) रोकी जाती है ॥१७॥

नास्य॑ धे॒नुः क॑ल्या॒णी ना॑न॒ड्वान्त्स॑हते॒ धुर॑म् ।

विजा॑नि॒र्यत्र॑ ब्राह्म॒णो रात्रि॑ वस॑ति पा॒पया॑ ॥१८॥

पदार्थ—(न) न तो (अस्य) उसकी (धेनु) दुधैल गौ (कल्याणी) कल्याणी [होती है] और (न) (अनड्वान्) छकडा न चलने वाला बैल (धुरम्) धुर वा जूए को (सहते) सहता है। (यत्र) जहा (विजानि) विद्याभ्यास बिना (ब्राह्मण) ब्राह्मण (रात्रिम्) रात को (पापया) कष्ट से (वसति) वसता है ॥१८॥

卐 सूक्तम् १८ 卐

१—१५ मयोभू । ब्रह्मगवी । अनुष्टुप्, ४ भुरिक् त्रिष्टुप्, ५, ८—६, १३ त्रिष्टुप् ।

नैतां ते॑ दे॒वा अ॑ददु॒स्तुभ्यं॑ नृपते॒ अत्त॑वे ।

मा ब्रा॑ह्म॒णस्य॑ राजन्य॒ गां जि॑घत्सो अना॒द्याम् ॥१॥

पदार्थ—(नृपते) हे नरपति राजन् ! (ते) तेरे (देवा) दिव्य गुण वाले पुरुषो ने (तुभ्यम्) तुझे (एताम्) इस [वाणी] को (अत्तवे) नाश करने को (न) नहीं (अददु) दिया है। (राजन्य) हे राजन् ! (ब्राह्मणस्य) वेदवेत्ता पुरुष की (गाम्) वाणी को, (अनाद्याम्) जो नष्ट नहीं हो सकती है, (मा जिघत्स) मत नाश कर ॥१॥

अ॒क्षद्रु॑ग्धो राज॒न्यः॑ पा॒प आ॑त्मपरा॒जितः॑ ।

स ब्रा॑ह्म॒णस्य॒ गाम॑द्याद॒द्य जीवा॑नि॒ मा श्वः ॥२॥

पदार्थ—(अक्षद्रुग्ध.) इन्द्रियो से नष्ट किया हुआ, (पाप) पापी (आत्मपराजित) आत्मा से हारा हुआ (स) वह (राजन्य) क्षत्रिय जो (ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण, वेदवेत्ता की (गाम्) वाणी को (अद्यात्) नाश करे, (अद्य) आज (जीवानि - जीवतु) वह जीवे, (श्व) कल (मा) नहीं ॥२॥

आवि॑ष्टिता॒घवि॑षा पृ॒दाकू॑रिव॒ चर्म॑णा ।

सा ब्रा॑ह्म॒णस्य॑ राजन्य तृ॒ष्टैषा गौर॑ना॒द्या ॥३॥

पदार्थ—(चर्मणा) कैंचुली से (आविष्टिता) वियोग रखने वाली, (अघविषा) घोर विषैली (पृदाकू इव) फुकारती सापिनी के समान (सा एषा) वह यह (ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण की (गौ) वाणी, (राजन्य) हे राजन् ! (तृष्टा) प्यास से व्याकुल के समान है (अनाद्या) जिसे कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥३॥

निर्वै क्ष॒त्रं न॑यति॒ हन्ति॒ वर्चो॒ऽग्निरि॒वार॑ब्धो॒ वि दु॑नोति॒ सर्व॑म् ।

यो ब्रा॑ह्म॒णं मन्य॑ते॒ अन्न॑मे॒व स वि॒षस्य॑ पिबति तैमा॒तस्य॑ ॥४॥

पदार्थ—(य) जो मनुष्य (ब्राह्मणम्) ब्रह्म ज्ञानी को (अन्नम्) अन्न (एव) ही (मन्यते) मानता है, (स) वह (तैमातस्य) जल मे भीगे (विषस्य) विष का (पिबति) पान करता है, (वै) निश्चय करके (क्षत्रम्) अपना धन वा बल (निर्नयति) बाहर फेंकता है, (वर्च.) अपना तेज (हन्ति) खोता है, और (आरब्ध) चारो ओर से लगी हुई (अग्नि इव) अग्नि के समान (सर्वम्) अपना सब कुछ (वि दुनोति) जला देता है ॥४॥

य ए॑नं॒ हन्ति॑ मृ॒दुं मन्य॑मानो देवपी॒युर्ध॒नका॑मो॒ न चि॒त्तात् ।

सं तस्येन्द्रो॒ हृद॑येऽग्निमि॑न्ध उ॒भे ए॑नं द्विष्टो॒ नभ॑सी॒ चर॑न्तम् ॥५॥

पदार्थ—(य) जो (देवपीयु) विद्वानो का हिंसक, (धनकाम) धन चाहने वाला पुरुष (न चित्तात्) बिना विचारे (एनम्) इस [ब्राह्मण] को (मृदुम्) कोमल (मन्यमान) मानता हुआ (हन्ति) नाश करता है, (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् पुरुष [ब्राह्मण वा परमेश्वर] (तस्य) उसके (हृदये) हृदय मे (अग्निम्) अग्नि (सम् इन्धे) जला देता है, (उभे) दोनो (नभसी) सूर्य और पृथिवी लोक (चरन्तम्) विचरते हुए (एनम्) इस पुरुष से (द्विष्ट) द्वेष करते हैं ॥५॥

न ब्रा॑ह्म॒णो हिं॑सित॒व्यो॒३॒॑ग्निः प्रि॒यत॑नोरिव ।

सोमो॒ ह्य॑स्य दाया॒द इन्द्रो॑ अस्याभिशस्ति॒पाः ॥६॥

पदार्थ—(प्रियतनो.=०—नु) तन को प्रिय लगने वाले (अग्नि इव) अग्नि के समान वर्तमान (ब्राह्मण) ब्रह्मज्ञानी (न) नहीं (हिंसितव्य) सताया जा सकता है। (हि) क्योकि (सोम) चन्द्रमा (अस्य) इसका (दायाद) दायभागी [के समान] और (इन्द्र.) सूर्य (अस्य) इसका (अभिशस्तिपाः) अपवाद से बचाने वाला है ॥६॥

श॒ताप॑ष्ठां॒ नि गि॑रति॒ तां न श॑क्नोति निः॒खिद॑न् ।

अन्नं॒ यो ब्र॒ह्मणां॑ म॒ल्वः स्वा॒द्व१॒॑द्मीति॒ मन्य॑ते ॥७॥

पदार्थ—वह [दुष्ट] (शतापाष्ठाम्) सैकडो दुर्मार्गो वाली विपत्ति को (नि गिरति) निगलता है [पाता है] और (ताम्) उसको (नि खिदन्) पचाता हुआ [पचाने को] (न) नहीं (शक्नोति) समर्थ होता है, (ब्रह्मणाम्) ब्राह्मणो के (अन्नम्) अन्न को (स्वादु) स्वाद मे (अद्मि) मै खाता हूँ, (य) जो (मल्व) मलिन पुरुष (इति) ऐसा (मन्यते) मानता है ॥७॥

जि॒ह्वा ज्या भ॑वति॒ कुल्म॑लं॒ वाङ्ना॑डी॒का दन्ता॒स्तप॑सा॒भिदि॑ग्धाः ।

तेभि॑र्ब्र॒ह्मा वि॑ध्यति देवपी॒यून् हृ॑द्ब॒लैर्धनु॑र्भिर्दे॒वजू॑तैः ॥८॥

पदार्थ—[ब्राह्मण की] (जिह्वा) जीभ (ज्या) धनुष की डोरी, (वाक्) वाणी (कुल्मलम्) बाण का दण्डा (भवति) होती है और [उस की] (नाडीका) गले के भाग (तपसा) आग से (अभिदिग्धा) पोते हुए (दन्ता) तीर के दांत है। (ब्रह्मा) ब्राह्मण (हृद्बलै) हृदय ताडने वाले, (देवजूतै) विद्वानो के भेजे हुए (तेभि) उन (धनुभि) धनुषो से (देवपीयून्) विद्वानो के सताने वालों को (विध्यति) छेदता है ॥८॥

ती॒क्ष्णेष॑वो ब्राह्म॒णा हे॑ति॒मन्तो॒ यामस्य॑न्ति शर॒व्या॒३॒॑ न सा मृषा॑ ।

अ॒नु॒हाय॒ तप॑सा म॒न्युना॑ चो॒त दू॒राद॑व भिन्दन्त्येनम् ॥९॥

पदार्थ—(तीक्ष्णेषव.) तीक्ष्ण बाण वाले, (हेतिमन्त) बरछियो वाले (ब्राह्मणा.) ब्राह्मण लोग (याम्) जिस (शरव्याम्) बाणो की झडी को (अस्यन्ति) छोडते है, (सा) वह (मृषा) मिथ्या (न) नहीं होती। (तपसा) तप से (च) और (मन्युना) क्रोध से (अनुहाय) पीछा करके (दूरात्) दूर से (उत) ही (एनम) इस [वैरी] को (अवभिन्दन्ति) वे लोग छेद डालते है ॥९॥

ये स॒हस्र॒मरा॑ज॒न्नास॑न् दशश॒ता उ॒त ।

ते ब्रा॑ह्म॒णस्य॒ गां ज॒ग्ध्वा वै॑तह॒व्याः परा॑भवन् ॥१०॥

पदार्थ—(ये) जो (सहस्रम्) बलवान् सेना दल पर (अराजन्) राज करते थे और (उत) आप भी (दशशता) दस सौ (आसन्) थे। (ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण की (गाम्) वाणी को (जग्ध्वा) नाश करके (ते) वे (वैतहव्या) देवताओ के अन्न खाने वाले (पराभवन्) हार गये ॥१०॥

गौरे॒व तान् ह॒न्यमा॑ना वैतह॒व्याँ अवा॑तिरत् ।

ये केस॑रप्राबन्धायाश्चर॒माजा॒मपे॑चिरन् ॥११॥

पदार्थ—(हन्यमाना) नाश की जाती हुई (गौ) वाणी ने (एव) अवश्य (तान्) उन (वैतहव्यान्) देवताओ के अन्न खाने वालो को (अवातिरत्) उतार दिया है। (ये) जिन्हो ने (केसरप्राबन्धाया.) आत्मा मे चलने वाली प्रबन्ध शक्ति [परमेश्वर] की (चरमाजाम्) व्यापक विद्या को (अपेचिरन्) पचाया है [नष्ट कर दिया है] ॥११॥

एकंशतं ता जनता या भूमिर्व्यधूनुत ।

प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराभवन् ॥१२॥

पदार्थ—(ताः) वे (जनता) लोग (एकशतम्) एक सौ एक [थे] (याः) जिन को (भूमिः) भूमि ने (व्यधूनुत) हिला दिया है और जो (ब्राह्मणीम्) ब्राह्मण सम्बन्धिनी (प्रजाम्) प्रजा को (हिंसित्वा) सता कर (असंभव्यम्) संभावना [शक्यता] के बिना (पराभवन्) हार गये हैं ॥१२॥

देवपीयुश्चरति मर्त्येषु गरगीर्णो भवत्यस्थिभूयान् ।

यो ब्राह्मणं देवबन्धुं हिनस्ति न स पितृयाणमप्येति लोकम् ॥१३॥

पदार्थ—(देवपीयुः) विद्वानों का सताने वाला (मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच (चरति) फिरता है, (गरगीर्णः) विष खाया हुआ वह (अस्थिभूयान्) हाड ही हाड (भवति) रह जाता है। (यः) जो मनुष्य (देवबन्धुम्) महात्माओं के बन्धु (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण को (हिनस्ति) सताता है, (सः) वह (पितृयाणम्) पालन करने वाले विद्वानों के पाने योग्य (लोकम्) लोक को (न अपि) कभी नहीं (एति) पाता है ॥१३॥

अग्निर्वै नः पदवायः सोमो दायाद उच्यते ।

हन्ताभिशस्तेन्द्रस्तथा तद् वेधसो विदुः ॥१४॥

पदार्थ—(अग्निः) अग्नि [सूर्य] (वै) ही (नः) हमारा (पदवायः) पथदर्शक और (सोमः) चन्द्रमा (दायादः) दायभागी (उच्यते) कहा जाता है। (इन्द्रः) परमेश्वर (अभिशस्ता —०—स्तु) अपवादी का (हन्ता) नाश करने वाला है। (तथा) वैसा ही (तत्) उस बात को (वेधसः) विद्वान् लोग (विदुः) जानते हैं ॥१४॥

इषुरिव दिग्धा नृपते पृदाकूरिव गोपते ।

सा ब्राह्मणस्येषुर्घोरा तया विध्यति पीयतः ॥१५॥

पदार्थ—(नृपते) हे नरपालक ! (गोपते) हे भूमिपालक ! (दिग्धा) विष में भरे (इषुः इव) बाण के समान और (पृदाकूः इव) फुकारती हुई सांपिनी के समान (सा) वह (ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण की (घोरा) भयानक (इषुः) बरछी है, (तया) उस से (पीयतः) सताने वालों को (विध्यति) वह छेदता है ॥१५॥

卐 सूक्तम् १९ ॥ 卐

१—१५ मयोभू । ब्रह्मगवी । अनुष्टुप्, २ विराट्पुरस्ताद्बृहती, ७ उपरिष्टाद्बृहती ।

अतिमात्रमवर्धन्त नोदिव दिवमस्पृशन् ।

भृगुं हिंसित्वा सृञ्जया वैतहव्याः पराभवन् ॥१॥

पदार्थ—(सृञ्जयाः) पाये हुए शत्रुओं को जीतने वाले, (वैतहव्याः) देवताओं का अन्न खाने वाले लोग (अतिमात्रम्) अत्यन्त (अवर्धन्त) बढ़े, (न = इति न) यही नहीं, (दिवम्) सूर्यलोक को (इव) जैसे (उत्) ऊंचे होकर (अस्पृशन्) उन्होंने छू लिया। [परन्तु] (भृगुम्) परिपक्व ज्ञानी को (हिंसित्वा) सताकर (पराभवन्) हार गये ॥१॥

ये बृहत्सामानमाङ्गिरसमार्पयन् ब्राह्मणं जनाः ।

पेत्वस्तेषामुभयादमविस्तोकान्यावयत् ॥२॥

पदार्थ—(ये जनाः) जिन पुरुषों ने (बृहत्सामानम्) बड़े दुःखनाशक ज्ञान (वाले, (आङ्गिरसम्) विज्ञान वाले, (ब्राह्मणम्) ब्रह्मज्ञानी को (आर्पयन्) सताया है, (पेत्वः) उस ज्ञानवान्, (अविः) रक्षक पुरुष ने (उभयादम् = उभयादः) हमारी पूर्ति करने वाले स (तेषाम्) उन के (तोकानि) वृद्धि कर्मों को (आवयत्) गिरा दिया है ॥२॥

ये ब्राह्मणं प्रत्यष्ठीवन् ये वास्मिञ्छुल्कमीषिरे ।

अस्नस्ते मध्ये कुल्यायाः केशान् खादन्त आसते ॥३॥

पदार्थ—(ये) जिन्होंने (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण को (प्रत्यष्ठीवन्) निकाल ही दिया, (वा) अथवा (ये) जिन्होंने (अस्मिन्) उस पर से (शुल्कम्) कर (ईषिरे) उगाहा। (ते) वे लोग (अस्नः) रुधिर की (कुल्यायाः) नदी के (मध्ये) बीच में (केशान्) क्लिष्ट पदार्थों को (खादन्तः) खाते हुए (आसते) ठहरते हैं ॥३॥

ब्रह्मगवी पच्यमाना यावत् साभि विजङ्गहे ।

तेजो राष्ट्रस्य निर्हन्ति न वीरो जायते वृषा ॥४॥

पदार्थ—(सा) वह (ब्रह्मगवी) ब्रह्मवाणी (पच्यमाना) पचायी [तपायी] हुई (यावत्) जब तक (अभि) चारों ओर (विजङ्गहे = विजङ्गति) फड = फड़ाती रहती है वह (राष्ट्रस्य) राज्य का (तेजः) तेज (निर्हन्ति) मिटा देती है, और (न वीरः) न कोई वीर पुरुष (वृषा) ऐश्वर्यवान् (जायते) उत्पन्न होता है ॥४॥

क्रूरमस्या आशसनं तृष्टं पिशितमस्यते ।

क्षीरं यदस्याः पीयते तद् वै पितृषु किल्बिषम् ॥५॥

पदार्थ—(अस्याः) इस [वेदवाणी] का (आशसनम्) सताना (क्रूरम्) क्रूर, और (पिशितम्) खडन (तृष्टम्) प्यास के समान दाहजनक (अस्यते) जाना जाता है। (अस्य) इसका (यत्) जो (क्षीरम्) पीडा हटाने वाला कर्म (पीयते) नष्ट किया जाता है, (तत्) वह (वै) निश्चय करके (पितृषु) पालन करने वाले शूर वीरों में (किल्बिषम्) पाप होता है ॥५॥

उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति ।

परा तत् सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते ॥६॥

पदार्थ—(यः) जो (उग्रः) प्रचण्ड (राजा) राजा (मन्यमानः) गर्व करता हुआ (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण को (जिघत्सति) नष्ट करना चाहता है (तत्) वह (राष्ट्रम्) राज्य (परा सिच्यते) बह जाता है, (यत्र) जहां (ब्राह्मणः) वेदवेत्ता (जीयते) दबाया जाता है ॥६॥

अष्टापदी चतुरक्षी चतुःश्रोत्रा चतुर्हनुः ।

द्व्यास्या द्विजिह्वा भूत्वा सा राष्ट्रमव धूनुते ब्रह्मज्यस्य ॥७॥

पदार्थ—(सा) वह [वेद विद्या] (अष्टापदी) [छोटाई, हल्काई, प्राप्ति, स्वतन्त्रता, बडाई, ईश्वरपन, जितेन्द्रियता और सत्य संकल्प, आठ ऐश्वर्य] आठ पद प्राप्त करने वाली (चतुरक्षी) [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र] चार वर्णों में व्याप्ति वाली, (चतुःश्रोत्रा) [ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और सन्यास] चार आश्रमों में श्रवण शक्ति वाली, (चतुर्हनुः) [धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष] चार पदार्थों में गति वाली, (द्व्यास्या) [परमात्मा और जीवात्मा] दोनों का ज्ञान कराने वाली और (द्वि जिह्वा) [बाहरी और भीतरी] दोनों के सुखों को जीत कराने वाली (भूत्वा) होकर (ब्रह्मज्यस्य) ब्राह्मण के हानि करने वाले के (राष्ट्रम्) राज्य को (अवधूनुते) हिला डालती है ॥७॥

तद् वै राष्ट्रमा स्रवति नावं भिन्नामिवोदकम् ।

ब्रह्माणं यत्र हिंसन्ति तद् राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना ॥८॥

पदार्थ—(तत्) वह [दुष्ट कर्म] (वै) निश्चय करके (राष्ट्रम्) राज्य को (आ स्रवति) बहा देता है (उदकम् इव) जैसे जल (भिन्नाम्) टूटी (नावम्) नाव को। (यत्र) जहां (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण को (हिंसन्ति) वे सताते हैं, (दुच्छुना) दुर्गति वा दरिद्रता (तत् राष्ट्रम्) उस राज्य को (हन्ति) मिटा देती है ॥८॥

तं वृक्षा अप सेधन्ति छायां नो मोपगा इति ।

यो ब्राह्मणस्य सद्धनमभि नारद मन्यते ॥९॥

पदार्थ—(तम्) उसको (वृक्षाः) वृक्ष (अप सेधन्ति) हटा देते हैं, (नः) हमारी (छायाम्) छाया में (मा उप गाः) "मत आ" (इति) ऐसा कह कर, (यः) जो पुरुष, (नारद) हे नर [सर्वनायक, परमात्मा] के ज्ञान देने वाले मनुष्य! (ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण के (सत्) श्रेष्ठ (धनम्) धन को (अभि = अभिभूय) दबा कर (मन्यते) अपना मानता है ॥९॥

विषमेतद् देवकृतं राजा वरुणोऽब्रवीत् ।

न ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा राष्ट्रे जागार कश्चन ॥१०॥

पदार्थ—(राजा) राजा (वरुणः) श्रेष्ठ परमात्मा ने (अब्रवीत्) कहा है "(एतत्) यह (देवकृतम्) इन्द्रियों से किया हुआ (विषम्) विष [समान पाप] है, (कश्चन) कोई भी (ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण की (गाम्) विद्या को (जग्ध्वा) हड़पकर (राष्ट्रे) राज्य में (न) नहीं (जागार) जागता रहा है" ॥१०॥

नवैव ता नवतयो या भूमिर्व्यधूनुत ।

प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराभवन् ॥११॥

पदार्थ—(ताः) वे लोग (नव नवतयः) नव बार नब्बे [९×९० वा ८१०] (अपि) भी [थे] (याः) जिनको (भूमिः) भूमि ने (व्यधूनुत) हिला दिया है, और जो (ब्राह्मणीम्) ब्राह्मण सम्बन्धिनी (प्रजाम्) प्रजा को (हिंसित्वा) सताकर (असंभव्यम्) संभावना [शक्यता] के बिना (पराभवन्) हार गये हैं ॥११॥

यां मृतायानुबध्नन्ति कूद्यं पदयोपनीम् ।
तद् वै ब्रह्मज्य ते देवा उपस्तरणमब्रुवन् ॥१२॥

पदार्थ—(याम्) जिस (पदयोपनीम्) पद व्याकुल करने वाली (कूद्यम्=कूदीम्) दुःखित शब्द देने वाली बेडी को (मृताय) मरने के लिए (अनुबध्नन्ति) जकड देते हैं। (ब्रह्मज्य) हे ब्राह्मण के हानिकारक ! (देवा) महात्माओं ने (तत्) उसको (वै) अवश्य (ते) तेरे लिए (उपस्तरणम्) बिस्तर (अब्रुवन्) कहा है ॥१२॥

अश्रूणि कृपमाणस्य यानि जीतस्य वावृतुः ।
तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥१३॥

पदार्थ—(कृपमाणस्य) दुःख पाते हुए, (जीतस्य) हारे हुए पुरुष के (यानि) जो (अश्रूणि) आंसू (वावृतुः) बहे हैं। (ब्रह्मज्य) हे ब्राह्मण को हानि पहुँचाने वाले ! (देवाः) महात्माओं ने (ते) तेरे लिये (तम् वै) वही (अपाम्) जल का (भागम्) भाग (अधारयन्) ठहराया है ॥१३॥

येन मृतं स्नपयन्ति श्मश्रूणि येनोन्दते ।
तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥१४॥

पदार्थ—(येन) जिस [जल] से (मृतम्) मृतक को (स्नपयन्ति) स्नान कराते हैं और (येन) जिससे (श्मश्रूणि) अपने शरीर में आश्रित केश वा अङ्गों को (उन्दते) सींचते हैं। (ब्रह्मज्य) हे ब्राह्मण का हानि पहुंचाने वाले ! (देवाः) महात्माओं ने (ते) तेरे लिए (अपाम्) जल का (तम् वै) वही (भागम्) भाग (अधारयन्) ठहराया है ॥१४॥

न वर्षं मैत्रावरुणं ब्रह्मज्यमभि वर्षति ।
नास्मै समितिः कल्पते न मित्रं नयते वशम् ॥१५॥

पदार्थ—(मैत्रावरुणम्) वायु और सूर्य से किया हुआ (वर्षम्) वर्षाजल (ब्रह्मज्यम् अभि) ब्राह्मण को हानि पहुँचाने वाले पर (न) नहीं (वर्षति) बर्षता है। और (न) न (अस्मै) उसके लिए (समिति) सभा (कल्पते) समर्थ होती है, और (न) न वह (मित्रम्) मित्र को (वशम्) अपने वश में (नयते) लाता है ॥१५॥

卐 सूक्तम् २० 卐

१—१२ ब्रह्मा । वनस्पति, दुन्दुभि । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

उच्चैर्घोषो दुन्दुभिः सत्वनायन् वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिः ।
वाचं क्षुणुवानो दमयन्त्सपत्नान्त्सिंह इव जेष्यन्नभि तंस्तनीहि ॥१॥

पदार्थ—(उच्चैर्घोषः) ऊंचा शब्द करने वाला, (सत्वनायन्) पराक्रमियों के समान आचरण करने वाला, (वानस्पत्य) सेवनीयों के पालकों [सेनापति आदिकों] से प्राप्त हुआ, (उस्रियाभि) बस्तियों की रक्षक सेनाओं से (संभृतः) यथावत् रक्खा गया, (वाचम्) शब्द (क्षुणुवान) करता हुआ (सपत्नान्) वैरियों को (दमयन्) दबाता हुआ, (दुन्दुभि) दुन्दुभि [ढोल वा नगारा] तू (सिंह इव) सिंह के समान (जेष्यन्) जीत चाहता हुआ (अभि) सब ओर (तंस्तनीहि) गरजता रहे ॥१॥

सिंह इवास्तानीद् द्रुवयो विबद्धोऽभिक्रन्दन्नृषभो वासितामिव ।
वृषा त्वं वध्रयस्ते सपत्ना ऐन्द्रस्ते शुष्मो अभिमातिषाहः ॥२॥

पदार्थ—(वासिताम्) गौ पर (अभिक्रन्दन्) दहाडते हुए (ऋषभः इव) बलीवर्द के समान, (विबद्ध) विशेष करके जकड़ा हुआ (द्रुवय) वह ढाचा (सिंह इव) सिंह के समान (अस्तानीत्) गरजा । (त्वम्) तू (वृषा) बलवान् है, (ते) तेरे (सपत्नाः) वैरी लोग (वध्रय) निर्बल हैं, (ते) तेरा (ऐन्द्र) ऐश्वर्यवान् (शुष्म) बल (अभिमातिषाहः) अभिमानियों का हराने वाला है ॥२॥

वृषेव यूथे सहसा विदानो गव्यन्नभि रुव संधनाजित् ।
शुचा विध्य हृदयं परेषां हित्वा ग्रामान् प्रच्युता यन्तु शत्रवः ॥३॥

पदार्थ—(वृषा इव) बैल के समान (यूथे) अपने झुंड में (सहसा) बल से (विदानः) जाना गया, (गव्यन्) भूमि चाहता हुआ । (संधनाजित्) यथावत् धन जीतने वाला तू (अभि) चारों ओर (रुव) गरज । (परेषाम्) वैरियों का (हृदयम्) हृदय (शुचा) शोक से (विध्य) छेद डाल । (प्रच्युताः) गिरे हुए (शत्रवः) वैरी (ग्रामान्) अपने गावों को (हित्वा) छोड़ कर (यन्तु) चले जावें ॥३॥

संजयन् पृतना ऊर्ध्वमायुर्गृह्या गृह्णानो बहुधा वि चक्ष्व ।
दैवीं वाचं दुन्दुभ आ गुरस्व वेधाः शत्रूणामुप भरस्व वेदः ॥४॥

पदार्थ—(ऊर्ध्वमायुः) ऊंचा शब्द करता हुआ, (पृतनाः) संग्रामों को (संजयन्) जीतता हुआ, (गृह्याः) ग्रहण करने योग्य सेनाओं को (गृह्णानः) ग्रहण करता हुआ तू (बहुधा) बहुत प्रकार से (वि चक्ष्व) देखता रह। (दुन्दुभे) हे दुन्दुभि ! (दैवीम्) दिव्य गुण वाली (वाचम्) वाणी को (आगुरस्व) उच्चारण कर, (वेधाः) विधान करने वाला तू (शत्रूणाम्) वैरियों का (वेदः) धन (उप भरस्व) लाकर भर दे ॥४॥

दुन्दुभेर्वाचं प्रयतां वदन्तीमाशृण्वती नाथिता घोषबुद्धा ।
नारी पुत्रं धावतु हस्तगृह्यामित्री भीता समरे वधानाम् ॥५॥

पदार्थ—(दुन्दुभे) दुन्दुभि की (प्रयताम्) नियमयुक्त, (वदन्तीम्) गूंजती हुई, (वाचम्) ध्वनि को (आशृण्वती) सुनती हुई, (घोषबुद्धा) गर्जन से जागी हुई, (नाथिता) अधीन हुई, (वधानाम्) मारू शस्त्रों के (समरे) समर में (भीता) डरी हुई (अमित्री) वैरी की (नारी) नारी (पुत्रम्) पुत्र को (हस्तगृह्य) हाथ में पकड़ कर (धावतु) भाग जावे ॥५॥

पूर्वो दुन्दुभे प्र वदासि वाचं भूम्याः पृष्ठे वद रोचमानः ।
अमित्रसेनामभिजञ्जभानो द्युमद् वद दुन्दुभे सूनृतावत् ॥६॥

पदार्थ—(दुन्दुभे) हे ढोल ! (पूर्वः) सब से पहिले तू (वाचम्) ध्वनि (प्रवदासि) ऊंची कर, और (रोचमान) रुचि करके (भूम्याः) भूमि की (पृष्ठे) पीठ पर (वद) शब्द कर। (दुन्दुभे) हे ढोल ! (अमित्रसेनाम्) वैरियों की सेना को (अभिजञ्जभानः) सर्वथा मेट डालता हुआ तू (द्युमत्) स्पष्ट स्पष्ट और (सूनृतावत्) सत्य प्रिय वाणी से (वद) बोल ॥६॥

अन्तरेमे नभसी घोषो अस्तु पृथक् ते ध्वनयो यन्तु शीभम् ।
अभि क्रन्द स्तनयोत्पिपानः श्लोककृन्मित्रतूर्याय स्वर्धी ॥७॥

पदार्थ—(इमे) इन (नभसी) सूर्य और पृथिवी के (अन्तरा) बीच (घोष) तेरा शब्द (अस्तु) होवे, (ते) तेरी (ध्वनयः) ध्वनें (शीभम्) शीघ्र (पृथक्) नाना रूप से (यन्तु) जावें। (उत्पिपान) ऊपर चढ़ता हुआ, (श्लोककृत्) बड़ाई करने वाला, (स्वर्धी) बड़ी वृद्धि वाला तू (मित्रतूर्याय) मित्रों के वेग के लिये (अभि) चारों ओर (क्रन्द) शब्द कर और (स्तनय) गड़गड़ाकर गर्ज ॥७॥

धीभिः कृतः प्र वदाति वाचमुद्धर्षय सत्वनामायुधानि ।
इन्द्रमेदी सत्वनो नि ह्वयस्व मित्रैरमित्राँ अव जङ्घनीहि ॥८॥

पदार्थ—(धीभि) शिल्पकर्म से (कृतः) बनाया गया वह (वाचम्) शब्द (प्रवदाति) अच्छे प्रकार बोले। (सत्वनाम्) हमारे वीरों के (आयुधानि) शस्त्रों को (उत् हर्षय) ऊंचा उठा। (इन्द्रमेदी) ऐश्वर्यवान् सेनापति का मित्र तू (सत्वन) हमारे वीरों को (नि) नियम से (ह्वयस्व) बुला। (मित्रैः) मित्रों के साथ (अमित्रान्) वैरियों को (अव जङ्घनीहि) गिरा कर मार डाल ॥८॥

संक्रन्दनः प्रवदो धृष्णुषेणः प्रवेदकृद् बहुधा ग्रामघोषी ।
श्रेयो वन्वानो वयुनानि विद्वान् कीर्तिं बहुभ्यो वि हर द्विराजे ॥९॥

पदार्थ—(संक्रन्दन) शब्द करने वाला, (प्रवद) गर्जने वाला, (धृष्णुषेण) निडर सेना वाला, (प्रवेदकृत्) चेतना करने वाला, (बहुधा) अनेक प्रकार से (ग्रामघोषी) सेनादलों में शब्द करने वाला, (श्रेयः) हमारे आनन्द का (वन्वानः) उद्योग करने वाला, (वयुनानि) धर्मों को (विद्वान्) जानने वाला तू (द्विराजे) दो राजाओं के युद्ध में (बहुभ्यः) बहुतों का (कीर्तिम्) कीर्ति (वि) विविध प्रकार से (हर) प्राप्त कर ॥९॥

श्रेयःकेतो वसुजित् सहीयान्त्संग्रामजित् संशितो ब्रह्मणासि ।
अंशूनिव ग्रावाधिषवणे अद्रिर्गव्यन् दुन्दुभेऽधि नृत्य वेदः ॥१०॥

पदार्थ—(श्रेयःकेत) कल्याण का ज्ञान देने वाला, (वसुजित्) धन जीतने वाला, (सहीयान्) अधिक बल वाला, (संग्रामजित्) संग्रामों का जीतने वाला, और (ब्रह्मणा) वेद द्वारा (संशित) तीक्ष्ण किया हुआ (असि) तू है। (अद्रिः) निश्चल स्वभाव, (ग्रावा इव) जैसे सूक्ष्मदर्शी पण्डित (अधिषवणे) तत्त्व मथन में (अंशून्) सूक्ष्म अंशों को [वश में करता है वैसे ही] (दुन्दुभे) हे दुन्दुभि ! (गव्यन्) भूमि चाहता हुआ तू (वेदः) शत्रु का धन (अधि=अधिकृत्य) वश में करके (नृत्य) नृत्य कर ॥१०॥

शत्रूषाण्नीषाडभिमातिषाहो गवेषणः सहमान उद्भित् ।
वाग्वीव मन्त्रं प्र भरस्व वाचं सांग्रामजित्यायेषमुद् वदेह ॥११॥

पदार्थ—(शत्रूषाट्) वैरियों को हराने वाला, (नीषाट्) नित्य जीतने वाला, (अभिमातिषाहः) अभिमानियों का वश में करने वाला, (गवेषणः) भूमि वा विद्या का ढूंढने वाला, (सहमानः) शासन करने वाला, (उद्भित्) बहुत तोड़ फोड़ करने वाला तू (वाचम्) वाणी को (प्र भरस्व) अच्छे प्रकार भरदे, (इव) जैसे (वाग्मी) उत्तम बोलने वाला पुरुष (मन्त्रम्) अपने मनन वा उपदेश को। और (संग्रामजित्याय) संग्राम जीतने के लिये (इह) यहां पर (इषम्) अन्न का (उत्) अच्छे प्रकार (वद) कथन कर ॥११॥

अच्युतच्युत् समदो गमिष्ठो मृधो जेता पुरएतायोध्यः।

इन्द्रेण गुप्तो विदथा निचिक्यद्धृद्द्योतनो द्विषतां याहि शीभम् ॥१२॥

पदार्थ—(अच्युतच्युत्) न गिरे हुओं [शत्रुओं] का गिराने वाला, (समदः) हर्षसहित (गमिष्ठः) अतिशय गति वाला, (मृधः) संग्रामों को (जेता) जीतने वाला, (पुरएता) आगे आगे चलने वाला, (अयोध्यः) न रुकने योग्य, (इन्द्रेण) (ऐश्वर्यवान्) सेनापति से (गुप्तः) रक्षा किया गया, (विदथा=०—थानि) जानने योग्य कर्मों को (निचिक्यत्) जानता हुआ, (द्विषताम्) वैरियों के (हृद्द्योतन.) निश्चय करके हृदयों का जलाने वाला तू (शीभम्) शीघ्र (याहि) प्राप्त हो ॥१२॥

卐 सूक्तम् २१ 卐

१—१२ ब्रह्मा। वनस्पति दुन्दुभि, १०—१२ आदित्यादय., अनुष्टुप् १, ४—५ पथ्यापंक्ति, ६ जगती, ११ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्, १२ त्रिपदा यवमध्या गायत्री।

विहृदयं वैमनस्यं वदामित्रेषु दुन्दुभे। विद्वेषं कश्मशं

भयममित्रेषु नि दध्मस्यवैनान् दुन्दुभे जहि ॥१॥

पदार्थ—(दुन्दुभे) हे दुन्दुभि वा ढोल ! (अमित्रेषु) वैरियों में (विहृदयम्) हृदय व्याकुल करने हारी (वैमनस्यम) मन की ग्लानि (वद) कह दे। (विद्वेषम्) फूट, (कश्मशम्) गति की रोक और (भयम्) भय (अमित्रेषु) वैरियों के बीच (निदध्मसि) हम डाले देते हैं। (दुन्दुभे) हे दुन्दुभि ! (एनान्) इन [शत्रुओं] को (अव जहि) निकाल दे ॥१॥

उद्वेपमाना मनसा चक्षुषा हृदयेन च।

धावन्तु बिभ्यतोऽमित्राः प्रत्रासेनाज्ये हुते ॥२॥

पदार्थ—(आज्ये हुते) घृत आग में चढ़ाने पर (मनसा) मन से (चक्षुषा) नेत्र से (च) और (हृदयेन) हृदय से (उद्वेपमाना) थरथराते हुए (बिभ्यत) भय मानते हुये (अमित्रा) वैरी लोग (प्रत्रासेन) घबराहट के साथ (धावन्तु) भागें ॥२॥

वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिर्विश्वगोत्र्यः।

प्रत्रासममित्रेभ्यो वदाज्येनाभिघारितः ॥३॥

पदार्थ—[हे दुन्दुभि ! (वानस्पत्य·) सेवनियों के पालक [सेनापति] से प्राप्त हुआ, (उस्रियाभिः) बस्तियों की रक्षक सेनाओं से (सभृत) यथावत् रक्खा गया, (विश्वगोत्र्यः) समस्त कुलों का हितकारक तू (अमित्रेभ्य) वैरियों को (प्रत्रासम्) अति भय (वद) कह दे, [जैसे] (आज्येन) घी से (अभिघारित) सींचा हुआ [अग्नि प्रकाशित होता है] ॥३॥

यथा मृगाः संविजन्त आरण्याः पुरुषादधि। एवा त्वं

दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥४॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (आरण्या) वनवासी (मृगाः) पशु (पुरुषात्) मनुष्य से (अधि) अतिशय (संविजन्ते) डरकर भागते हैं, (एव) वैसे ही (दुन्दुभे) हे दुन्दुभि ! (त्वम्) तू (अमित्रान् अभि) वैरियों पर (क्रन्द) गर्ज, और (प्र त्रासय) डरा दे (अथो) और (चित्तानि) उनके चित्तों को (मोहय) घबड़ा दे ॥४॥

यथा वृकादजावयो धावन्ति बहु बिभ्यतीः। एवा त्वं

दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥५॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (वृकात्) भेड़िये से (बहु) बहुत (बिभ्यती·) डरती हुई (अजावय) बकरियाँ और भेड़ें (धावन्ति) भाग जाती हैं। (एव) वैसे ही (दुन्दुभे) हे दुन्दुभि ! (त्वम्) तू (अमित्रान् अभि) वैरियों पर (क्रन्द) गरज और (प्रत्रासय) डरा दे (अथो) और (चित्तानि) उनके चित्तों को (मोहय) घबड़ा दे ॥५॥

यथा श्येनात् पतत्रिणः संविजन्ते अहर्दिवि सिंहस्य स्तनथोर्यथा।

एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥६॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (श्येनात्) श्येन [बाज] से (पतत्रिणः) पक्षी (अहर्दिवि) प्रति दिन (संविजन्ते) डर कर भागते हैं, और (यथा) जैसे (सिंहस्य) सिंह के (स्तनथो) गर्जन से, (एव) वैसे ही (दुन्दुभे) हे दुन्दुभि ! (त्वम्) तू (अमित्रान् अभि) वैरियों पर (क्रन्द) गर्ज और (प्रत्रासय) डरा दे, (अथो) और भी (चित्तानि) उनके चित्तों को (मोहय) घबड़ा दे ॥६॥

पराभित्रान् दुन्दुभिना हरिणस्याजिनेन च।

सर्वे देवा अतित्रसन् ये संग्रामस्येशते ॥७॥

पदार्थ—(ये) जो विद्वान् लोग (संग्रामस्य) संग्राम के (ईशते) स्वामी होते हैं उन (सर्वे) सब (देवाः) महात्मा लोगों ने (हरिणस्य) हरिण के (अजिनेन) चर्म से युक्त (दुन्दुभिना) दुन्दुभि से (च) निश्चय करके (परा=पराजित्य) हरा कर (अतित्रसन्) डरा दिया है ॥७॥

यैरिन्द्रः प्रक्रीडते पद्घोषैश्छायया सह।

तैरमित्रास्त्रसन्तु नोऽमी ये यन्त्यनीकशः ॥८॥

पदार्थ—(इन्द्र) ऐश्वर्यवान् सेनापति (छायया सह) छाया के साथ (यैः) जिन (पद्घोषैः) पैरों के खटकों से (प्रक्रीडते) क्रीड़ा करता रहता है, (तै) उनसे (न·) हमारे (अमी) वे (अमित्रा.) शत्रु (त्रसन्तु) डर जावें (ये) जो (अनीकश) श्रेणी श्रेणी (यन्ति) चलते हैं ॥८॥

ज्याघोषा दुन्दुभयोऽभि क्रोशन्तु या दिशः।

सेनाः पराजिता यतीरमित्राणामनीकशः ॥९॥

पदार्थ—(ज्याघोषा.) हमारी प्रत्यञ्चा के शब्द और (दुन्दुभय) सब दुन्दुभि (याः) व्यापक (दिशः) दिशाओं में (अनीकश) श्रेणी श्रेणी (यती·) चलती हुई (अमित्राणाम्) वैरियों की (पराजिता.) हारी (सेना. अभि) सेनाओं पर (क्रोशन्तु) पुकार मचावें ॥९॥

आदित्य चक्षुरा दत्स्व मरीचयोऽनु धावत।

पत्सङ्गिनीरा सजन्तु विगते बाहुवीर्ये ॥१०॥

पदार्थ—(आदित्य) हे सूर्य समान सेनापति ! [शत्रुओं की] (चक्षुः) दृष्टि (आ दत्स्व) ले ले, (मरीचयः) हे किरणों के समान सेनादलो ! (अनु) पीछे पीछे (धावत) दौड़ो। (बाहुवीर्ये) बाहु बल (विगते) चले जाने पर (पत्सङ्गिनी.) पांव में पड़ी बेड़ियों का (आ सजन्तु) वे [शत्रु] लिपटा लेवें ॥१०॥

यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून्।

सोमो राजा वरुणो राजा महादेव उत मृत्युरिन्द्रः ॥११॥

पदार्थ—(पृश्निमातर.) हे छूने योग्य पदार्थों के वा आकाश के नापने वाले (उग्राः) प्रचण्ड (मरुत) शूर लोगो ! (यूयम्) तुम (इन्द्रेण) बड़े ऐश्वर्य वाले सेनापति (युजा) मित्र के साथ (शत्रून्) वैरियों को (प्र मृणीत) मार डालो। (इन्द्र·) वह बड़े ऐश्वर्य वाला सेनापति (सोम) तत्त्वों का मथन करने वाला (राजा) प्रकाशमान, (वरुण) श्रेष्ठ (राजा) राजा (उत) और (मृत्यु.) मृत्यु के समान (महादेव) बड़ा देवता है ॥११॥

एता देवसेनाः सूर्यकेतवः सचेतसः।

अमित्रान् नो जयन्तु स्वाहा ॥१२॥

पदार्थ—(एताः) ये सब (सूर्यकेतवः) सूर्य समान पताका वाली, (सचेतस) समान चित्तवाली (देवसेना) विजयी सेनापति की सेनायें (न) हमारे (अमित्रान्) वैरियों को (जयन्तु) जीतें, (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥१२॥

卐 इति चतुर्थोऽनुवाकः 卐

卐

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् २२ 卐

१—१४ भृग्वङ्गिराः। तक्मनाशन। अनुष्टुप्, १ भुरिक् त्रिष्टुप् २ त्रिष्टुप्, ५ विराट् पथ्याबृहती।

अग्निस्तक्मानमप बाधतामितः सोमो ग्रावा वरुणः पूतदक्षाः।

वेदिर्बर्हिः समिधः शोशुचाना अप द्वेषांस्यमुया भवन्तु ॥१॥

पदार्थ—(अग्निः) ज्ञानवान्, (सोम·) तत्त्व मथन करने वाला, (ग्रावा) सूक्ष्मदर्शी, (वरुणः) वरणयोग्य, (पूतदक्षाः) पवित्र बल करने वाला, (शोशुचाना)

बहुत जलते हुए (समिध) इन्धन के समान (बर्हि) प्रकाशमान (वेदि) पडित (इतः) यहाँ से (तक्मानम्) दुःखित जीवन करने हारे ज्वर को (अप बाधताम्) निकाल देवे । (द्वेषांसि) हमारे सब अनिष्ट (अमुया) उधर (अप भवन्तु) हट जावें ॥१॥

अयं यो विश्वान् हरितान् कृणोष्युच्छोचयन्नग्निरिवाभिदुन्वन् ।

अधा हि तक्मन्नरसो हि भूया अधा न्यङ्ङधराङ् वा परेहि ॥२॥

पदार्थ—(अयम्) यह (य) जो तू (विश्वान्) सब [मनुष्यो] को (उच्छोचयन्) शोक मे डालता हुआ, और (अग्नि इव) अग्नि के समान (अभिदुन्वन्) तपाता हुआ, (हरितान्) पीला (कृणोषि) कर देता है । (अध) सो (हि) इसलिए (तक्मन्) हे दुःखित जीवन करने हारे ज्वर ! तू (हि) अवश्य (अरस) निर्बल (भूयाः) हो जा । (अध) और (वा) अथवा (न्यङ्) नीच स्थान से (अधराङ्) नीच स्थान को (परा इहि) चम्पत हो जा ॥२॥

यः परुषः पारुषेयोऽवध्वंस इवारुणः ।

तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परा सुवा ॥३॥

पदार्थ—(य) जो (परुष) निठुर (पारुषेयः) निठुर मे उत्पन्न हुए (अरुण) रक्तवर्ण (अवध्वंसः इव) नीचे गिरने वाले राक्षसादि के समान है । (विश्वधावीर्य) हे सब प्रकार सामर्थ्य वाले वैद्य ! (तक्मानम्) उस दुःखित जीवन करने वाले ज्वर को (अधराञ्चम्) नीचे देश में (परा सुव) दूर गिरा दे ॥३॥

अधराञ्चं प्र हिणोमि नमः कृत्वा तक्मने ।

शकम्भरस्य मुष्टिहा पुनरेतु महावृषान् ॥४॥

पदार्थ—(तक्मने) दुःखित जीवन करने वाले ज्वर को (नम) नमस्कार (कृत्वा) करके (अधराञ्चम्) नीचे देश को (प्र हिणोमि) मैं भेजता हूँ । (शकम्भरस्य) शक्ति धारण करने वाले पुरुष का (मुष्टिहा) मुष्टि से मारने वाला [ज्वर] (महावृषान्) बडी वृष्टि वाले देशो को (पुन) लौटकर (एतु) चला जावे ॥४॥

ओको अस्य मूजवन्त ओको अस्य महावृषाः ।

यावज्जातस्तक्मंस्तावानसि बल्हिकेषु न्योचरः ॥५॥

पदार्थ—(अस्य) इसका (ओक) घर (मूजवन्त) मूज आदि घास वाले पर्वत हैं, और (अस्य) इसका (ओक) घर (महावृषा) महावृष्टि वाले देश हैं । (तक्मन्) हे दुःखित जीवन करने हारे ज्वर ! (यावत्) जब से (जात) तू उत्पन्न हुआ है, (तावान् तावान्) तब से तू (बल्हिकेषु) हिंसा वाले देशो मे (न्योचर.) नित्य संगति वाला (असि) है ॥५॥

तक्मन् व्याल वि गद व्यङ्ग भूरि यावय ।

दासीं निष्टक्वरीमिच्छ तां वज्रेण समर्पय ॥६॥

पदार्थ—(तक्मन्) हे ज्वर ! (व्याल) हे सर्प ! हे धूर्त ! (व्यङ्ग) हे कुरूप ! (विगद) तू बात, (भूरि) बहुत दूर (यावय) चला जा (निष्टक्वरीम्) ठठोल, निलज्ज (दासीम्) दासी [नीच स्त्री] का (इच्छ) ढूंढ और (ताम्) उसको (वज्रेण) अपने वज्र से (समर्पय) मार गिरा ॥६॥

तक्मन् मूजवतो गच्छ बल्हिकान् वा परस्तराम् ।

शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यं१ तां तक्मन् वीव धूनुहि ॥७॥

पदार्थ—(तक्मन्) हे ज्वर ! (मूजवत) मूज वाले पहाडो और (बल्हिकान्) हिंसा वाले देशो को, (वा) अथवा (परस्तराम्) और पर (गच्छ) चला जा । (प्रफर्व्यम् प्रफर्वरीम्) इधर-उधर घूमने वाली (शूद्राम्) शूद्रा स्त्री को (इच्छ) ढूढ, और (ताम्) हिंसको को (तक्मन्) हे ज्वर ! (वीव) विशेष कर के ही (धूनुहि) कपा दे ॥७॥

महावृषान् मूजवतो बन्ध्वद्धि परेत्य ।

प्रैतानि तक्मने ब्रूमो अन्यक्षेत्राणि वा इमा ॥८॥

पदार्थ—(परेत्य) दूर जाकर (महावृषान्) बडी वृष्टि वाले देशो और (मूजवत) मूज वाले पहाडो, (बन्धु -बन्धून्) अपने बन्धुओ को (अद्धि) खा ले । (एतानि) इन और (इमा —इमानि) इन (अन्यक्षेत्राणि) अन्य निवास स्थानो को (तक्मने) ज्वर के लिए (वै) अवश्य (प्रब्रूम) हम बताय देते हैं ॥८॥

अन्यक्षेत्रे न रमसे वशी सन् मृडयासि नः ।

अभूदु प्रार्थस्तक्मा स गमिष्यति बल्हिकान् ॥९॥

पदार्थ—(अन्यक्षेत्रे) दूर देश मे (न) इस समय (वशी) वश में करने वाला (सन्) होकर (रमसे—रमस्व) तू ठहर, और (नः) हमें (मृडयासि) सुख दे । (तक्मा) ज्वर (प्रार्थ.) चालू (उ) अवश्य (अभूत्) हो गया है, (सः) वह (बल्हिकान्) हिंसा वाले देशो का (गमिष्यति) चला जावगा ॥९॥

यत् त्वं शीतोऽथो रूरः सह कासावेपयः ।

भीमास्ते तक्मन् हेतयस्ताभिः स्म परि वृङ्ग्धि नः ॥१०॥

पदार्थ—(यत्) जिस कारण (शीतः) शीत (अथो) और (रूरः) क्रूर (त्वम्) तूने (कासा—कासेन) (सह) खासी के साथ [हमे] (अवेपयः) कपा दिया है । (तक्मन्) हे दुःखित जीवन करने वाले ज्वर ! (ते) तेरी (हेतयः) चोटें (भीमा) भयानक है, (ताभि.) उनसे (नः) हमको (स्म) अवश्य (परि वृङ्ग्धि) छोड दे ॥१०॥

मा स्मैतान्त्सखीन् कुरुथा बलासं कासमुद्युगम् ।

मा स्मातोऽर्वाङैः पुनस्तत् त्वा तक्मन्नुप ब्रुवे ॥११॥

पदार्थ—(बलासम्) बल गिराने वाले सन्निपात, कफ आदि (कासम्) कुत्सित शब्द करने वाली खासी और (उद्युगम्) सुख रोकने वाले, क्षयी रोग, (एतान्) इनको (सखीन्) अपना मित्र (मा स्म कुरुथ.) कभी मत बना ! [अत.] उस स्थान से (पुन) फिर (अर्वाङ्) हमारे सम्मुख होकर (मा स्म आ ऐ) कभी मत आ । [तत्] यह बात (तक्मन्) हे ज्वर ! (त्वा) तुझ से (उप ब्रुवे) मैं कहे देता हूँ ॥११॥

तक्मन् भ्रात्रा बलासेन स्वस्रा कासिकया सह ।

पाप्मा भ्रातृव्येण सह गच्छामुमरणं जनम् ॥१२॥

पदार्थ—(तक्मन्) हे ज्वर ! (भ्रात्रा) अपने भ्राता (बलासेन) बल गिराने वाले सन्निपात, कफ आदि (स्वस्रा) अपनी बहिन (कासिकया सह) कुत्सित खांसी के साथ, (भ्रातृव्येण) अपने भतीजे (पाप्मा —पाप्मना) चर्म रोग के (सह) साथ (अमुम) उस (अरणम्) न भावना करने योग्य निन्दित (जनम्) जन के पास (गच्छ) चला जा ॥१२॥

तृतीयकं वितृतीयं सदन्दिमुत शारदम् ।

तक्मानं शीतं रूरं ग्रैष्मं नाशय वार्षिकम् ॥१३॥

पदार्थ—[हे वैद्य !] (तृतीयकम्) तिजारी, (वितृतीयम्) चौथिया आदि अंतरिया, (सदन्दिम्) सदा फुटन करने वाले, निरन्तर (उत) और (शारदम्) शरद् ऋतु मे आने वाले, (शीतम) शीत, (रूरम्) क्रूर, (ग्रैष्मम्) ग्रीष्म मे आने वाले, (वार्षिकम्) वर्षा म होने वाले (तक्मानम्) दुःखित जीवन करने वाले ज्वर को (नाशय) मिटा दे ॥१३॥

गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्योऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः ।

प्रैष्यन् जनमिव शेवधिं तक्मानं परि दद्मसि ॥१४॥

पदार्थ—(गन्धारिभ्य) हिंसा पहुंचाने वाले, (मूजवद्भ्य) मूज आदि घास वाले, (अङ्गेभ्य) अप्रधान और (मगधेभ्य) दोष धारण करने वाले देशो के लिए (जनम इव) पामर पुरुष के समान, (शेवधिम्) सोने के आधार (तक्मानम्) दुःखित जीवन करने वाले ज्वर को (प्रैष्यन् प्रैष्यन्त) आगे बढ़ते हुए (परि दद्मसि) हम त्यागते हैं ॥१४॥

॥ सूक्तम् २३ ॥

१—१३ कण्व । इन्द्र । अनुष्टुप्, १३ विराट् ।

ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती ।

ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च क्रिमिं जम्भयतामिति ॥१॥

पदार्थ—(मे) मेरे लिए (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूलोक (ओते) बने हुए हैं (देवी) दिव्य गुण वाली (सरस्वती) विज्ञानवती विद्या (ओता) परस्पर बुनी हुई है । (ओतौ) परस्पर बुने हुए (इन्द्र.) मेघ (च) और (अग्निः) अग्नि (च) भी (मे) मेरे लिए (क्रिमिम्) कीडे को (जम्भयताम्) नाश करें (इति) यह प्रार्थना है ॥१॥

अस्येन्द्र कुमारस्य क्रिमीन् धनपते जहि ।

हता विश्वा अरातय उग्रेण वचसा मम ॥२॥

पदार्थ—(धनपते) हे धन के स्वामी (इन्द्र.) बड़े ऐश्वर्य वाले वैद्य ! (अस्य) इस (कुमारस्य) कमनीय बालक के (क्रिमीन्) कीडो को (जहि) मिटा दे । (मम) मेरे (उग्रेण) प्रचण्ड (वचसा) [वैदिक] वचन से (विश्वाः) सब (अरातय) वैरी (हताः) मारे गये ॥२॥

यो अक्ष्यौ परिसर्पति यो नासे परिसर्पति ।

दुतां यो मध्यं गच्छति तं क्रिमिं जम्भयामसि ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो ([कीडा] (अक्ष्यौ) दोनो आँखों में (परिसर्पति) रेंग जाता है, (यः) जो (नासे) दोनो नथनो में (परिसर्पति) रेंग जाता है, और (यः) जो (दताम्) दाँतो के (मध्यम्) बीच में (गच्छति) चलता है, (तम्) उस (क्रिमिम्) कीडे को (जम्भयामसि) हम नाश करते हैं ॥३॥

सरूपौ द्वौ विरूपौ द्वौ कृष्णौ द्वौ रोहितौ द्वौ ।

बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च गृध्रः कोकश्च ते हताः ॥४॥

पदार्थ—(द्वौ) दो (सरूपौ) एक से रूप वाले, (द्वौ) दो (विरूपौ) विरुद्ध रूप वाले (द्वौ) दो (कृष्णौ) काले, (द्वौ) दो (रोहितौ) लाल (च) और (बभ्रुः) भूरा (च) और (बभ्रुकर्णः) भूरे कान वाला और (गृध्रः) गिद्ध, (च) और (कोकः) भेड़िया, (ते) वे सब (हताः) मारे गये ॥४॥

ये क्रिमयः शितिकक्षा ये कृष्णाः शितिबाहवः ।

ये के च विश्वरूपास्तान् क्रिमीन् जम्भयामसि ॥५॥

पदार्थ—(ये) जो (क्रिमयः) कीडे (शितिकक्षाः) काली कांख वाले, (ये) जो (कृष्णाः) काले वर्ण वाले, और (शितिबाहवः) काली भुजाओं वाले, (च) और (ये के) जो कोई (विश्वरूपाः) सब वर्ण वाले है, (तान्) उन (क्रिमीन्) कीडो को (जम्भयामसि) हम नष्ट करते है ॥५॥

उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।

दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणन् क्रिमीन् ॥६॥

पदार्थ—(विश्वदृष्टः) सबो करके देखा गया, (अदृष्टहा) अगोचर पदार्थों में गति वाला (सूर्यः) सूर्य (दृष्टान्) न दीखने हुए (सर्वान्) सब (क्रिमीन्) कीडो को (च) अवश्य (घ्नन्) मारता हुआ (च) और (प्रमृणन्) मिटाता हुआ (पुरस्तात्) पूर्व दिशा में (उत् एति) उदय होता है ॥६॥

येवाषासः कष्कषास एजत्काः शिपवित्नुकाः ।

दृष्टश्च हन्यतां क्रिमिरुतादृष्टश्च हन्यताम् ॥७॥

पदार्थ—(येवाषासः = एवाषाः) शीघ्र गति वाले, (कष्कषासः = कष्कषाः) अत्यन्त पीडा देने वाले, (एजत्काः) चमकने वा थरथराने वाले और (शिपवित्नुकाः) तीक्ष्ण स्वभाव वाले हैं। (दृष्टः) दीखता हुआ (क्रिमिः) कीडा (च) अवश्य (हन्यताम्) मारा जावे, (उत) और (अदृष्टः) न दीखता हुआ (च) भी (हन्यताम्) मारा जावे ॥७॥

हतो येवाषः क्रिमीणां हतो नदनिमोत ।

सर्वान् नि मष्मषाकरं दृषदा खल्वाँ इव ॥८॥

पदार्थ—(क्रिमीणाम्) कीडो म से (येवाषः = एवाषः) शीघ्रगामी (हतः) मारा गया, (उत) और (नदनिमा) नाद करने वाला (हतः) मारा गया। (सर्वान्) सब (कीडों) को (मष्मषा) मसल मसल कर (नि अकरम्) मैंने नष्ट कर दिया है, (खल्वान् इव) जैसे चनो को (दृषदा) शिला से [दल डालते हैं] ॥८॥

त्रिशीर्षाणं त्रिककुदं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम् ।

शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥९॥

पदार्थ—(त्रिशीर्षाणम्) तीन—ऊँचे, नीचे और मध्य—स्थानो मे आश्रय वाले, (त्रिककुदम्) तीन [कायिक, वाचिक, मानसिक] सुखो की भूमि काटने वाले, (सारङ्गम्) रेंगने वाले [वा चितकबरे] और (अर्जुनम्) सञ्चय करने वाले [वा श्वेतवर्ण] (क्रिमिम्) कीडो को (शृणामि) मैं मारता हूँ। (अस्य) इसकी (पृष्टीः) पसलियो को (अपि) भी, और (यत्) जो (शिरः) शिर है [उसको भी] (वृश्चामि) तोड़े डालता हूँ ॥९॥

अत्रिवद् वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत् ।

अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ॥१०॥

पदार्थ—(क्रिमयः) हे कीडो ! (वः) तुमको (अत्रिवत्) दोष भक्षक वा गतिशील, मुनि के समान, (कण्ववत्) स्तुतियोग्य मेधावी पुरुष के समान, (जमदग्निवत्) आहुति खाने वाले अथवा प्रज्वलित अग्नि के सदृश तेजस्वी पुरुष के समान (हन्मि) मैं मारता हूँ। (अगस्त्यस्य) कुटिल गति वाले पाप के छेदने मे समर्थ परमेश्वर के (ब्रह्मणा) वेदज्ञान से (अहम्) मैं (क्रिमीन्) कीडो को (सम् पिनष्मि) पीसे डालता हूँ ॥१०॥

हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः ।

हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ॥११॥

पदार्थ—(एषाम्) इन (क्रिमीणाम्) कीडो का (राजा) राजा (हतः) नष्ट होवे, (उत) और (स्थपतिः) द्वारपाल (हतः) नष्ट होवे। (हतमाता) जिसकी माता नष्ट हो चुकी है, (हतभ्राता) जिसका भ्राता नष्ट हो चुका, और (हतस्वसा) जिसकी बहिन नष्ट हो चुकी है, (क्रिमिः) वह चढाई करने वाला कीडा (हतः) मार डाला जावे ॥११॥

हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः ।

अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः ॥१२॥

पदार्थ—(अस्य) इस [क्रिमि] के (वेशसः) मुख्य सेवक (हतासः = हताः) नष्ट हो, और (परिवेशसः) साथी भी (हतासः) नष्ट हो। (अथो—अथ—उ) और भी (ये) जो (क्षुल्लकाः इव) बहुत सूक्ष्म आकार वाले से हैं, (ते) वे (सर्वे) सब (क्रिमयः) कीड़े (हताः) नष्ट हो ॥१२॥

सर्वेषां च क्रिमीणां सर्वासां च क्रिमीणाम् ।

भिनद्म्यश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम् ॥१३॥

पदार्थ—(च) और (सर्वेषाम्) सब (क्रिमीणाम्) कीडो का (च) और (सर्वासाम्) सब (क्रिमीणाम्) कीडो की स्त्रियो का (शिरः) शिर (अश्मना) पत्थर से (भिनद्मि) मैं फोडता हूँ और (मुखम्) मुख (अग्निना) अग्नि से (दहामि) जलाता हूँ ॥१३॥

卐 सूक्तम् २४ 卐

१—१७ अथर्वा । ब्रह्मकर्मात्मा, १ सविता, २ अग्नि, ३ द्यावापृथिवी, ४ वरुण, ५ मित्रावरुणौ, ६ मरुत ७ सोमः, ८ वायुः, ९ सूर्य, १० चन्द्रमा, ११ इन्द्र १२ मरुतां पिता, १३ मृत्यु, १४ यम, १५ पितर, १६ तता., १७ ततामहा, । अतिशक्वरी, १—१०, १२ १४ चतुष्पादतिशक्वरी, ११ शक्वरी, १५—१६ त्रिपदा भुरिग्जगती, १७ त्रिपदा विराड् शक्वरी ।

सविता प्रसवानामधिपतिः स मावतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१॥

पदार्थ—(सविता) सब का उत्पन्न करने वाला वा सम्पूर्ण ऐश्वर्य वाला जगदीश्वर (प्रसवानाम्) उत्पन्न पदार्थों वा अच्छे अच्छे ऐश्वर्यों का (अधिपतिः) अधिष्ठाता है, (सः) वह (मा) मुझे (अवतु) बचावे। (अस्मिन्) इस (ब्रह्मणि) बडे वेदज्ञान मे (अस्मिन्) इस (कर्मणि) कर्तव्य कर्म मे, (अस्याम्) इस (पुरोधायाम्) पुरोहित पदवी मे, (अस्याम्) इस (प्रतिष्ठायाम्) प्रतिष्ठा वा सत्क्रिया मे, (अस्याम्) इस (चित्त्याम्) चेतना मे, (अस्याम्) इस (आकूत्याम्) सङ्कल्प वा उत्साह मे, (अस्याम्) इस (आशिषि) अनुशासन मे और (अस्याम्) इस (देवहूत्याम्) विद्वानो के बुलावे में, (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥१॥

अग्निर्वनस्पतीनामधिपतिः स मावतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥२॥

पदार्थ—(अग्निः) [पार्थिव] अग्नि (वनस्पतीनाम्) सेवकों के रक्षकों वा वृक्षों का (अधिपतिः) अधिष्ठाता है, (सः) वह (मा) मुझे (अवतु) बचावे। (अस्मिन्) इस (ब्रह्मणि) बडे वेदज्ञान मे, (अस्मिन्) इस (कर्मणि) कर्तव्य कर्म मे (अस्याम्) इस (पुरोधायाम्) पुरोहित पदवी मे, (अस्याम्) इस (प्रतिष्ठायाम्) प्रतिष्ठा वा सत्क्रिया मे (अस्याम्) इस (चित्त्याम्) चेतना मे, (अस्याम्) इस (आकूत्याम्) सङ्कल्प वा उत्साह मे, (अस्याम्) इस (आशिषि) अनुशासन में, और (अस्याम्) इस (देवहूत्याम्) विद्वानो के बुलावे मे, (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥२॥

द्यावापृथिवी दातृणामधिपत्नी ते मावताम् । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥३॥

पदार्थ—(द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी (दातृणाम्) दाताओं की (अधिपत्नी) अधिष्ठात्री हैं (ते) वे दोनो (मा) मुझे (अवताम्) बचावें।

(**अस्मिन्**) इस (**ब्रह्मणि**) बड़े वेदज्ञान मे, (**अस्मिन्**) इस (**कर्मणि**) कर्तव्य कर्म मे, (**अस्याम्**) इस (**पुरोधायाम्**) पुरोहित पदवी मे, (**अस्याम्**) इस (**प्रतिष्ठायाम्**) प्रतिष्ठा वा सत्क्रिया मे (**अस्याम्**) इस (**चित्याम्**) चेतना मे, (**अस्याम्**) इस (**आकूत्याम्**) सकल्प वा उत्साह मे (**अस्याम्**) इस (**आशिषि**) अनुशासन मे और (**अस्याम्**) इस (**देवहूत्याम्**) विद्वानो के बुलावे मे, (**स्वाहा**) यह आशीर्वाद हो ॥३॥

वरु॑णो॒ऽपामधि॑पतिः॒ स मा॑वतु । अ॒स्मिन् ब्रह्म॑ण्य॒स्मिन् कर्म॑ण्य॒स्यां पु॑रो॒धाया॑म॒स्यां प्र॑ति॒ष्ठाया॑म॒स्यां चित्त्या॑म॒स्यामाकू॑त्याम॒स्यामा॒शिष्य॒स्यां दे॒वहू॑त्यां॒ स्वाहा॑ ॥४॥

पदार्थ—(**वरुण**) वरणीय मेघ (**अपाम्**) जल धाराओं का (**अधिपति**) अधिष्ठाता है (**स**) वह (**मा**) मुझे (**अवतु**) बचावे । (**अस्मिन्**) इस (**ब्रह्मणि**) बड़े वेदज्ञान मे, (**अस्मिन्**) इस (**कर्मणि**) कर्तव्य कर्म मे, (**अस्याम्**) इस (**पुरोधायाम्**) पुरोहित पदवी मे, और (**अस्याम्**) इस (**प्रतिष्ठायाम्**) प्रतिष्ठा वा सत्क्रिया मे, (**अस्याम्**) इस (**चित्याम्**) चेतना मे, (**अस्याम्**) इस (**आकूत्याम्**) सकल्प वा उत्साह मे, (**अस्याम्**) इस (**आशिषि**) अनुशासन मे, और (**अस्याम्**) इस (**देवहूत्याम्**) विद्वानो के बुलावे मे, (**स्वाहा**) यह आशीर्वाद हो ॥४॥

मि॒त्रावरु॑णौ वृ॒ष्ट्याधि॑पती॒ तौ मा॑वताम् । अ॒स्मिन् ब्रह्म॑ण्य॒स्मिन् कर्म॑ण्य॒स्यां पु॑रो॒धाया॑म॒स्यां प्र॑ति॒ष्ठाया॑म॒स्यां चित्त्या॑म॒स्यामाकू॑त्याम॒स्यामा॒शिष्य॒स्यां दे॒वहू॑त्यां॒ स्वाहा॑ ॥५॥

पदार्थ—(**मित्रावरुणौ**) प्राण और अपान वायु (**वृष्ट्या - वृष्ट्याः**) वृष्टि के (**अधिपती**) दो अधिष्ठाता हैं, (**तौ**) वे दोनो (**मा**) मुझे (**अवताम्**) बचावें । (**अस्मिन्**) इस (**ब्रह्मणि**) बड़े वेदज्ञान मे, (**अस्मिन्**) इस (**कर्मणि**) कर्तव्य कर्म मे, (**अस्याम्**) इस (**पुरोधायाम्**) पुरोहित पदवी मे, (**अस्याम्**) इस (**प्रतिष्ठायाम्**) प्रतिष्ठा वा सत्क्रिया मे (**अस्याम्**) इस (**चित्याम्**) चेतना मे, (**अस्याम्**) इस (**आकूत्याम्**) सकल्प वा उत्साह मे, (**अस्याम्**) इस (**आशिषि**) अनुशासन मे और (**अस्याम्**) इस (**देवहूत्याम्**) विद्वानो के बुलावे मे, (**स्वाहा**) यह आशीर्वाद हो ॥५॥

म॒रुतः॒ पर्व॑ताना॒मधि॑पतय॒स्ते मा॑वन्तु । अ॒स्मिन् ब्रह्म॑ण्य॒स्मिन् कर्म॑ण्य॒स्यां पु॑रो॒धाया॑म॒स्यां प्र॑ति॒ष्ठाया॑म॒स्यां चित्त्या॑म॒स्यामाकू॑त्याम॒स्यामा॒शिष्य॒स्यां दे॒वहू॑त्यां॒ स्वाहा॑ ॥६॥

पदार्थ—(**मरुत**) ऋत्विक् लोग (**पर्वतानाम्**) पहाड़ो के (**अधिपतय**) अधिष्ठाता हैं, (**ते**) वे (**मा**) मुझे (**अवन्तु**) बचावें । (**अस्मिन्**) इस (**ब्रह्मणि**) बड़े वेदज्ञान मे, (**अस्मिन्**) इस (**कर्मणि**) कर्तव्य कर्म मे, (**अस्याम्**) इस (**पुरोधायाम्**) पुरोहित पदवी मे, (**अस्याम्**) इस (**प्रतिष्ठायाम्**) प्रतिष्ठा वा सत्क्रिया मे, (**अस्याम्**) इस (**चित्याम्**) चेतना मे (**अस्याम्**) इस (**आकूत्याम्**) सकल्प वा उत्साह मे (**अस्याम्**) इस (**आशिषि**) अनुशासन मे, और (**अस्याम्**) इस (**देवहूत्याम्**) विद्वानो के बुलावे मे, (**स्वाहा**) यह आशीर्वाद हो ॥६॥

सोमो॑ वी॒रुधा॒मधि॑पतिः॒ स मा॑वतु । अ॒स्मिन् ब्रह्म॑ण्य॒स्मिन् कर्म॑ण्य॒स्यां पु॑रो॒धाया॑म॒स्यां प्र॑ति॒ष्ठाया॑म॒स्यां चित्त्या॑म॒स्यामाकू॑त्याम॒स्यामा॒शिष्य॒स्यां दे॒वहू॑त्यां॒ स्वाहा॑ ॥७॥

पदार्थ—(**सोम**) ऐश्वर्य का कारण सोमलता (**वीरुधाम्**) उगने वाली जड़ी बूटियो का (**अधिपति**) अधिष्ठाता है, (**स**) वह (**मा**) मुझे (**अवतु**) बचावे (**अस्मिन्**) इस (**ब्रह्मणि**) बड़े वेदज्ञान मे, (**अस्मिन्**) इस (**कर्मणि**) कर्तव्य कर्म मे, (**अस्याम्**) इस (**पुरोधायाम्**) पुरोहित पदवी मे, (**अस्याम्**) इस (**प्रतिष्ठायाम्**) प्रतिष्ठा वा सत्क्रिया मे, (**अस्याम्**) इस (**चित्याम्**) चेतना मे, (**अस्याम्**) इस (**आकूत्याम्**) सकल्प वा उत्साह मे, (**अस्याम्**) इस (**आशिषि**) अनुशासन मे, और (**अस्याम्**) इस (**देवहूत्याम्**) विद्वानो के बुलावे मे, (**स्वाहा**) यह आशीर्वाद हो ॥७॥

वा॒युर॒न्तरि॑क्ष॒स्याधि॑पतिः॒ स मा॑वतु । अ॒स्मिन् ब्रह्म॑ण्य॒स्मिन् कर्म॑ण्य॒स्यां पु॑रो॒धाया॑म॒स्यां प्र॑ति॒ष्ठाया॑म॒स्यां चित्त्या॑म॒स्यामाकू॑त्याम॒स्यामा॒शिष्य॒स्यां दे॒वहू॑त्यां॒ स्वाहा॑ ॥८॥

पदार्थ—(**वायुः**) वायु (**अन्तरिक्षस्य**) मध्य लोक का (**अधिपतिः**) अधिष्ठाता है, (**सः**) वह (**मा**) मुझे (**अवतु**) बचावे । (**अस्मिन्**) इस (**ब्रह्मणि**) बड़े वेदज्ञान में, (**अस्मिन्**) इस (**कर्मणि**) कर्तव्य कर्म में, (**अस्याम्**) इस (**पुरोधायाम्**) पुरोहित पदवी मे (**अस्याम्**) इस (**प्रतिष्ठायाम्**) प्रतिष्ठा वा सत्क्रिया में, (**अस्याम्**) इस (**चित्याम्**) चेतना मे, (**अस्याम्**) इस (**आकूत्याम्**) सकल्प वा उत्साह मे, (**अस्याम्**) इस (**आशिषि**) अनुशासन में, और (**अस्याम्**) इस (**देवहूत्याम्**) विद्वानो के बुलावे मे, (**स्वाहा**) यह आशीर्वाद हो ॥८॥

सूर्य॒श्चक्षु॑षा॒मधि॑पतिः॒ स मा॑वतु । अ॒स्मिन् ब्रह्म॑ण्य॒स्मिन् कर्म॑ण्य॒स्यां पु॑रो॒धाया॑म॒स्यां प्र॑ति॒ष्ठाया॑म॒स्यां चित्त्या॑म॒स्यामाकू॑त्याम॒स्यामा॒शिष्य॒स्यां दे॒वहू॑त्यां॒ स्वाहा॑ ॥९॥

पदार्थ—(**सूर्यः**) सूर्य (**चक्षुषाम्**) नेत्रो का (**अधिपतिः**) बड़ा रक्षक है (**स**) वह (**मा**) मुझे (**अवतु**) बचावे । (**अस्मिन्**) इस (**ब्रह्मणि**) बड़े वेदज्ञान मे, (**अस्मिन्**) इस (**कर्मणि**) कर्तव्य कर्म मे, (**अस्याम्**) इस (**पुरोधायाम्**) पुरोहित पदवी मे, (**अस्याम्**) इस (**प्रतिष्ठायाम्**) प्रतिष्ठा वा सत्क्रिया मे, (**अस्याम्**) इस (**चित्याम्**) चेतना मे, (**अस्याम्**) इस (**आकूत्याम्**) सकल्प वा उत्साह मे, (**अस्याम्**) इस (**आशिषि**) अनुशासन मे, और (**अस्याम्**) इस (**देवहूत्याम्**) विद्वानो के बुलावे मे, (**स्वाहा**) यह आशीर्वाद हो ॥९॥

च॒न्द्रमा॒ नक्ष॑त्राणा॒मधि॑पतिः॒ स मा॑वतु । अ॒स्मिन् ब्रह्म॑ण्य॒स्मिन् कर्म॑ण्य॒स्यां पु॑रो॒धाया॑म॒स्यां प्र॑ति॒ष्ठाया॑म॒स्यां चित्त्या॑म॒स्यामाकू॑त्याम॒स्यामा॒शिष्य॒स्यां दे॒वहू॑त्यां॒ स्वाहा॑ ॥१०॥

पदार्थ—(**चन्द्रमा**) आनन्द देने वाला चन्द्र (**नक्षत्राणाम्**) चलने वाले अश्विनी आदि नक्षत्रो का (**अधिपति**) अधिष्ठाता है, (**स**) वह (**मा**) मुझे (**अवतु**) बचावे । (**अस्मिन्**) इस (**ब्रह्मणि**) बड़े वेदज्ञान मे, (**अस्मिन्**) इस (**कर्मणि**) कर्तव्य कर्म मे, (**अस्याम्**) इस (**पुरोधायाम्**) पुरोहित पदवी मे, (**अस्याम्**) इस (**प्रतिष्ठायाम्**) प्रतिष्ठा वा सत्क्रिया मे, (**अस्याम्**) इस (**चित्याम्**) चेतना मे, (**अस्याम्**) इस (**आकूत्याम्**) सकल्प वा उत्साह मे, (**अस्याम्**) इस (**आशिषि**) अनुशासन मे, और (**अस्याम्**) इस (**देवहूत्याम्**) विद्वानो के बुलावे मे, (**स्वाहा**) यह आशीर्वाद हो ॥१०॥

इन्द्रो॑ दि॒वोऽधि॑पतिः॒ स मा॑वतु । अ॒स्मिन् ब्रह्म॑ण्य॒स्मिन् कर्म॑ण्य॒स्यां पु॑रो॒धाया॑म॒स्यां प्र॑ति॒ष्ठाया॑म॒स्यां चित्त्या॑म॒स्यामाकू॑त्याम॒स्यामा॒शिष्य॒स्यां दे॒वहू॑त्यां॒ स्वाहा॑ ॥११॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) बिजुली (**दिव**) व्यवहार का (**अधिपति**) अधिष्ठाता है, (**स**) वह (**मा**) मुझे (**अवतु**) बचावे (**अस्मिन्**) इस (**ब्रह्मणि**) बड़े वेदज्ञान मे, (**अस्मिन्**) इस (**कर्मणि**) कर्तव्य कर्म मे, (**अस्याम्**) इस (**प्रतिष्ठायाम्**) प्रतिष्ठा वा सत्क्रिया मे, (**अस्याम्**) इस (**चित्याम्**) चेतना मे, (**अस्याम्**) इस (**आकूत्याम्**) सकल्प वा उत्साह मे, (**अस्याम्**) इस (**आशिषि**) अनुशासन मे और (**अस्याम्**) इस (**देवहूत्याम्**) विद्वानो के बुलावे मे, (**स्वाहा**) यह आशीर्वाद हो ॥११॥

म॒रुतां॑ पि॒ता प॑शू॒नामधि॑पतिः॒ स मा॑वतु । अ॒स्मिन् ब्रह्म॑ण्य॒स्मिन् कर्म॑ण्य॒स्यां पु॑रो॒धाया॑म॒स्यां प्र॑ति॒ष्ठाया॑म॒स्यां चित्त्या॑म॒स्यामाकू॑त्याम॒स्यामा॒शिष्य॒स्यां दे॒वहू॑त्यां॒ स्वाहा॑ ॥१२॥

पदार्थ—(**मरुताम्**) सुवर्ण आदि धनो का (**पिता**) पालक (**पशूनाम्**) सब जीवो का (**अधिपति**) अधिष्ठाता है, (**स**) वह (**मा**) मुझे (**अवतु**) बचावे (**अस्मिन्**) इस (**ब्रह्मणि**) बड़े वेदज्ञान मे, (**अस्मिन्**) इस (**कर्मणि**) कर्तव्य कर्म में, (**अस्याम्**) इस (**पुरोधायाम्**) पुरोहित पदवी मे, (**अस्याम्**) इस (**चित्याम्**) चेतना मे, (**अस्याम्**) इस (**आकूत्याम्**) सकल्प वा उत्साह मे, (**अस्याम्**) इस (**आशिषि**) अनुशासन मे, और (**अस्याम्**) इस (**देवहूत्याम्**) विद्वानो के बुलावे में, (**स्वाहा**) यह आशीर्वाद हो ॥१२॥

मृ॒त्युः प्र॒जाना॒मधि॑पतिः॒ स मा॑वतु । अ॒स्मिन् ब्रह्म॑ण्य॒स्मिन् कर्म॑ण्य॒स्यां पु॑रो॒धाया॑म॒स्यां प्र॑ति॒ष्ठाया॑म॒स्यां चित्त्या॑म॒स्यामाकू॑त्याम॒स्यामा॒शिष्य॒स्यां दे॒वहू॑त्यां॒ स्वाहा॑ ॥१३॥

पदार्थ—(**मृत्यु**) मृत्यु (**प्रजानाम्**) उत्पन्न प्राणियो का (**अधिपति**) अधिष्ठाता है, (**स**) वह (**मा**) मुझे (**अवतु**) बचावे (**अस्मिन्**) इस (**ब्रह्मणि**) बड़े वेदज्ञान मे, (**अस्मिन्**) (**कर्मणि**) कर्तव्य कर्म मे, (**अस्याम्**) इस (**पुरोधायाम्**) पुरोहित पदवी मे, (**अस्याम्**) इस (**प्रतिष्ठायाम्**) प्रतिष्ठा वा सत्क्रिया में, (**अस्याम्**) इस (**चित्याम्**) चेतना मे, (**अस्याम्**) इस (**आकूत्याम्**) सकल्प वा उत्साह में, (**अस्याम्**) इस (**आशिषि**) अनुशासन मे, और (**अस्याम्**) इस (**देवहूत्याम्**) विद्वानों के बुलावे में, (**स्वाहा**) यह आशीर्वाद हो ॥१३॥

य॒मः पि॑तॄ॒णामधि॑पतिः॒ स मा॑वतु । अ॒स्मिन् ब्रह्म॑ण्य॒स्मिन् कर्म॑ण्य॒स्यां पु॑रो॒धाया॑म॒स्यां प्र॑ति॒ष्ठाया॑म॒स्यां चित्त्या॑म॒स्यामाकू॑त्याम॒स्यामा॒शिष्य॒स्यां दे॒वहू॑त्यां॒ स्वाहा॑ ॥१४॥

पदार्थ—(यमः) नियम (पितृणाम्) रक्षक पुरुषो का (अधिपतिः) अधिष्ठाता है, (सः) वह (मा) मुझे (अवतु) बचावे । (अस्मिन्) इस (पुरोधायाम्) पुरोहित पदवी में, (अस्याम्) इस (प्रतिष्ठायाम्) प्रतिष्ठा वा सत्क्रिया में, (अस्याम्) इस (चित्त्याम्) चेतना मे, (अस्याम्) इस (आकूत्याम्) सकल्प वा उत्साह में, (अस्याम्) इस (आशिषि) अनुशासन मे, और (अस्याम्) इस (देवहूत्याम्) विद्वानो के बुलाने में, (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥१४॥

पितरः परे ते मावन्तु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१५॥

पदार्थ—(परे) पूर्व काल मे वर्तमान (ते) वे (पितरः) रक्षक लोग (मा) मुझे (अवन्तु) बचावें । (अस्मिन्) इस (ब्रह्मणि) बडे वेदज्ञान मे, (अस्मिन्) इस (कर्मणि) कर्त्तव्य कर्म मे, (अस्याम्) इस (चित्त्याम्) चेतना में, (अस्याम्) इस (आकूत्याम्) सकल्प वा उत्साह मे, (अस्याम्) इस (आशिषि) अनुशासन मे, और (अस्याम्) इस (देवहूत्याम्) विद्वानो के बुलाने मे, (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥१५॥

तता अवरे ते मावन्तु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१६॥

पदार्थ (अवरे) पिछले काल मे वर्तमान (ते) वे (तताः —ताताः) विस्तार करने वाले पूज्य पुरुष (मा) मुझे (अवन्तु) बचावें । (अस्मिन्) इस (ब्रह्मणि) बडे वेदज्ञान मे, (अस्मिन्) इस (कर्मणि) कर्त्तव्य कर्म मे, (अस्याम्) इस (पुरोधायाम्) पुरोहित पदवी मे, (अस्याम्) इस (प्रतिष्ठायाम्) प्रतिष्ठा वा सत्क्रिया मे, (अस्याम्) इस (चित्त्याम्) चेतना मे, (अस्याम्) इस (आकूत्याम्) सकल्प वा उत्साह मे, (अस्याम्) इस (आशिषि) अनुशासन मे, और (अस्याम्) इस (देवहूत्याम्) विद्वानो के बुलाने मे, (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥१६॥

ततस्ततामहास्ते मावन्तु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१७॥

पदार्थ—(ततः) और भी (ते) वे (ततामहाः —तातामहाः) पूजनीयो के पूजनीय पुरुष (मा) मुझे (अवन्तु) बचावें । (अस्मिन्) इस (ब्रह्मणि) वेद ज्ञान मे, (अस्मिन् कर्मणि) इस कर्त्तव्य व्रत मे, (अस्याम् पुरोधायाम्) इस पुरोहित पदवी मे, (अस्याम् प्रतिष्ठायाम्) इस प्रतिष्ठा वा सत्क्रिया मे, (अस्याम् चित्त्याम्) इस चेतना मे, (अस्याम् आकूत्याम्) इस सकल्प वा उत्साह मे, (अस्याम् आशिषि) इस अनुशासन मे, और (अस्याम् देवहूत्याम्) इस विद्वानो के बुलाने मे, (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥१७॥

卐 सूक्तम् २५ 卐

१—१३ ब्रह्मा । योनिगर्भ , पृथिव्यादयो देवता । अनुष्टुप्, १३ विराट्पुरस्ताद्बृहती ।

पर्वताद् दिवो योनेरङ्गादङ्गात् समाभृतम् ।
शेपो गर्भस्य रेतोधाः सरौ पर्णमिवा दधत् ॥१॥

पदार्थ—(रेतोधाः) वीर्य वा पराक्रम का रखने वाला पुरुष (पर्वतात्) पर्वत से [पर्वत आदि की ओषधियो से], (दिवः) आकाश के (योनेः) गर्भ आशय से [आकाशस्थ मेघ, वायु, प्रकाश आदि से] और (अङ्गात्—अङ्गात्) अपने अङ्ग अङ्ग से (समाभृतम्) एकत्र किया हुआ (गर्भस्य) स्तुतियोग्य सन्तान के (शेपः) उत्पन्न करने के सामर्थ्य को (आ) यथावत् (दधत्) स्थापित करे, (पर्णम् इव) जैसे पंख को (सरौ) तीर मे [लगाते हैं] ॥१॥

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे ।
एवा दधामि ते गर्भं तस्मै त्वामवसे हुवे ॥२॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (इयम्) इस (मही) बडी (पृथिवी) पृथिवी ने (भूतानाम्) सब जीवो का (गर्भम्) गर्भ (आदधे) धारण किया है । (एव) वैसे ही (ते) तेरा (गर्भम्) गर्भ (आ) यथावत् (दधामि) स्थापित करता हूँ, (तस्मै) उस [गर्भ] के लिये (अवसे) रक्षा करने को (त्वाम्) तुझे (हुवे) मैं बुलाता हूँ ॥२॥

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनोभा धत्तां पुष्करस्रजा ॥३॥

पदार्थ—(सिनीवालि) हे अन्नवाली पत्नी ! (गर्भम्) स्तुति योग्य गर्भ (धेहि) धारण कर, (सरस्वति) हे उत्तम ज्ञान वाली ! (गर्भम्) गर्भ (धेहि) धारण कर । (पुष्करस्रजा) पुष्टि देने वाले (उभा) दोनो (अश्विना) दिन और रात (ते) तेरे (गर्भम्) गर्भ के बालक को (आ) अच्छे प्रकार (धत्ताम्) पुष्ट करें ॥३॥

गर्भं ते मित्रावरुणौ गर्भं देवो बृहस्पतिः ।
गर्भं त इन्द्रश्चाग्निश्च गर्भं धाता दधातु ते ॥४॥

पदार्थ—(मित्रावरुणौ) प्राण और अपान वायु (ते) तेरे (गर्भम्) गर्भ को [आधत्ताम्—अच्छे प्रकार पुष्ट करें—म० ३] । (देवः) प्रकाशमान (बृहस्पतिः) बडे बडे लोको का रक्षक सूर्य (गर्भम्) गर्भ को, (इन्द्रः) बिजुली (ते) तेरे (गर्भम्) गर्भ को (च) और (धाता) धारण करने वाला (अग्निः) और अग्नि (च) भी (ते) तेरे (गर्भम्) गर्भ को (दधातु) पुष्ट करे ॥४॥

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥५॥

पदार्थ—(विष्णुः) सर्वव्यापक परमेश्वर (योनिम्) गर्भाशय को (कल्पयतु) समर्थ करे, और वही (त्वष्टा) विश्वकर्मा ईश्वर [गर्भ के] (रूपाणि) आकारो को (पिंशतु) जोड जोड बनावे । (धाता) सर्व पोषक (प्रजापतिः) प्रजाओ का रक्षक परमात्मा (ते) तेरे (गर्भम्) गर्भ को (आ) सब प्रकार (सिञ्चतु) सींचे और (दधातु) पुष्ट करे ॥५॥

यद् वेद राजा वरुणो यद् वा देवी सरस्वती ।
यदिन्द्रो वृत्रहा वेद तद् गर्भकरणं पिब ॥६॥

पदार्थ—(यत्) जो औषध (राजा) राजा (वरुणः) वरणीयोग्य पति (वेद) जानता है, (वा) और (यत्) जो (देवी) दिव्य गुण वाली, (सरस्वती) विज्ञानवती पत्नी [जानती है] और (यत्) जो (वृत्रहा) शत्रु वा रोग नाशक (इन्द्रः) बडे ऐश्वर्य वाला वैद्य (वेद) जानता है, (तत्) वह (गर्भकरणम्) गर्भजनक औषध (पिब) पान कर ॥६॥

गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्य सो अग्ने गर्भमेह धाः ॥७॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! तू (ओषधीनाम्) सोमलता अन्न आदि ओषधियो का (गर्भः) स्तुति योग्य आश्रय, (वनस्पतीनाम्) सेवनीय गुणो के पदार्थो का (गर्भः) ग्रहण करने वाला और (विश्वस्य) सब (भूतस्य) पञ्च भूत का (गर्भः) आधार (असि) है, (सः) सो तू (इह) इसमे (गर्भम्) गर्भ शक्ति (आ) अच्छे प्रकार (धाः—धेयाः) धारण कर ॥७॥

अधि स्कन्द वीरयस्व गर्भमा धेहि योन्याम् ।
वृषासि वृष्ण्यावन् प्रजायै त्वा नयामसि ॥८॥

पदार्थ—(अधि स्कन्द) उठकर खडा हो, (वीरयस्व) वीरता कर, और (योन्याम्) गर्भ आशय में (गर्भम्) सन्तान जनक सामर्थ्य (आ) अच्छे प्रकार (धेहि) स्थापित कर । (वृष्ण्यावन्) हे वीर्यवान् पुरुष ! तू (वृषा) ओजस्वी (असि) है, (प्रजायै) सन्तान के लिये (त्वा) तुझे (आ नयामसि) हम समीप लाते हैं ॥८॥

वि जिहीष्व बार्हत्सामे गर्भस्ते योनिमा शयाम् ।
अदुष्टे देवाः पुत्रं सोमपा उभयाविनम् ॥९॥

पदार्थ—(बार्हत्सामे) हे अत्यन्त करके प्रिय कर्म वा सामवेद जानने वाली पत्नी ! तू (वि) विशेष करके (जिहीष्व) उद्योग कर, (गर्भः) सन्तानजनक सामर्थ्य (ते) तेरे (योनिम्) गर्भ आशय मे (आ शयाम्—शेताम्) प्राप्त हो । (सोमपाः) अमृत पान करने वाले (देवाः) उत्तम गुणो ने (उभयाविनम्) दोनों [माता पिता] की रक्षा करने वाला (पुत्रम्) कुल शोधक सन्तान (अदुः) दिया है ॥९॥

धातः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥१०॥

पदार्थ—(धातः) हे पोषक परमात्मा ! (श्रेष्ठेन) श्रेष्ठ (रूपेण) रूप के साथ (अस्याः) इस (नार्याः) नारी की (गवीन्योः) दोनो पार्श्वस्थ नाडियों मे (पुमांसम्) रक्षा करने वाला (पुत्रम्) कुल शोधक सन्तान (दशमे) दसवें (मासि) महीने मे (सूतवे) उत्पन्न होने को (आ) अच्छे प्रकार (धेहि) स्थापित कर ॥१०॥

त्वष्टः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥११॥

पदार्थ—(त्वष्ट) हे विश्वकर्मा परमात्मन् ! (श्रेष्ठेन) श्रेष्ठ (रूपेण) रूप के साथ (अस्या) इस (नार्या) नारी की (गवीन्यो) दोनो पार्श्वस्थ नाड़ियो मे (पुमांसम्) रक्षा करने वाला (पुत्रम्) कुल शोधक सन्तान (दशमे) दसवें (मासि) महीने मे (सूतवे) उत्पन्न होने को (आ) अच्छे प्रकार (धेहि) स्थापित कर ॥११॥

सवितः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।

पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥१२॥

पदार्थ—(सवित) हे सबके उत्पन्न करने वाले परमेश्वर (श्रेष्ठेन) श्रेष्ठ (रूपेण) रूप के साथ (अस्या) इस (नार्या) नारी का (गवीन्यो) दोनो पार्श्वस्थ नाड़िया मे (पुमांसम्) रक्षा करने वाला (पुत्रम्) कुल शोधक सन्तान (दशमे) दसवें (मासि) महीने मे (सूतवे) उत्पन्न होने को (आ) अच्छे प्रकार (धेहि) स्थापित कर ॥१२॥

प्रजापते श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।

पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥१३॥

पदार्थ—(प्रजापते) हे सृष्टिपालक जगदीश्वर ! (श्रेष्ठेन) श्रेष्ठ (रूपेण) रूप के साथ (अस्या) इस (नार्या) नारी की (गवीन्यो) दोनो पार्श्वस्थ नाड़ियो मे (पुमांसम्) रक्षा करने वाला (पुत्रम्) कुल शोधक सन्तान (दशमे) दसवें (मासि) महीने मे (सूतवे) उत्पन्न होने को (आ) अच्छे प्रकार (धेहि) स्थापित कर ॥१३॥

卐 सूक्तम् २६ 卐

१—१२ ब्रह्मा वास्तोष्पति , १ अग्नि २ सविता, ३, ११ इन्द्र, ४ निविद , ५ मरुत , ६ अदिति , ७ विष्णु , ८ त्वष्टा, ९ भग , १० सोम , १२ अश्विनौ, बृहस्पति । १—५ द्विपदार्ची उष्णिक् २, ४, ६, ७, ८, १०, ११ द्विपदा प्राजापत्या बृहती, त्रिपदा विराड् गायत्री, ९ त्रिपदा पिपीलिकमध्या पुर-उष्णिक्, (१—११ एकावसाना,) १२ परातिशक्वरी चतुष्पदा गायत्री ।

यजूंषि यज्ञे समिधः स्वाहाग्निः प्रविद्वानिह वो युनक्तु ॥१॥

पदार्थ—(प्रविद्वान्) बडा विद्वान् (अग्नि) तेजस्वी पुरुष (इह) यहा (यज्ञे) सगति मे (यजूंषि) पूजनीय कर्मों और (समिध) विद्यादि प्रकाश क्रियाओ को (व) तुम्हारे लिये (स्वाहा) उत्तम वाणी से (युनक्तु) उपयुक्त करे ॥१॥

युनक्तु देवः सविता प्रजानन्नस्मिन् यज्ञे महिषः स्वाहा ॥२॥

पदार्थ—(महिष) महान् (देव) व्यवहारकुशल (प्रजानन्) बडा ज्ञानी (सविता) प्रेरक पुरुष (अस्मिन्) इस (यज्ञे) सगति मे (स्वाहा) सुन्दर वाणी से [पूजनीय कर्मों और विद्या आदि प्रकाश क्रियाओ को—म० १] (युनक्तु) उपयुक्त करे ॥२॥

इन्द्र उक्थामदान्यस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥३॥

पदार्थ—(प्रविद्वान्) बडा विद्वान्, (सुयुज) सुयोग्य (इन्द्र) बडे ऐश्वर्य वाला पुरुष (उक्थामदानि) शास्त्रो और सुखो को (अस्मिन्) इस (यज्ञे) सगति मे (स्वाहा) सुन्दर वाणी से (युनक्तु) उपयुक्त करे ॥३॥

प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा शिष्टाः पत्नीभिर्वहतेह युक्ताः ॥४॥

पदार्थ—(पत्नीभि) पालन शील शक्तियो से (युक्ता) युक्त (शिष्टा) हे शिष्ट पुरुषो ! (प्रैषा) भजने योग्य (निविद) निश्चित विद्याओ को (इह) यहा (यज्ञे) सगति मे (स्वाहा) सुन्दर वाणी से (वहत) लाओ ॥४॥

छन्दांसि यज्ञे मरुतः स्वाहा मातेव पुत्रं पिपृतेह युक्ताः ॥५॥

पदार्थ—(युक्ता) हे योग्य (मरुत) शूर पुरुषो ! (स्वाहा) सुन्दर वाणी से (इह) यहा (यज्ञे) परस्पर मिलाप मे (छन्दांसि) आनन्द बढाने वाले कर्मों को [इस प्रकार] (पिपृत) पालो (माता इव) जैसे माता (पुत्रम्) कुल शोधक सन्तान को ॥५॥

एयमगन् बर्हिषा प्रोक्षणीभिर्यज्ञं तन्वानादितिः स्वाहा ॥६॥

पदार्थ—(इयम्) यह (अदिति) अखण्ड नीति (स्वाहा) सुन्दर वाणी के साथ (बर्हिषा) उद्यम से और (प्रोक्षणीभि) अच्छी-अच्छी वृद्धियो से (यज्ञम्) आपस मे मिलाप (तन्वाना) फैलाती हुई (आ अगन्) आई है ॥६॥

विष्णुर्युनक्तु बहुधा तपांस्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥७॥

पदार्थ—(सुयुज) सुयोग्य (विष्णु) कामो मे व्यापक पुरुष (स्वाहा) सुन्दर वाणी से (बहुधा) अनेक प्रकार (तपांसि) अपनी विभूतियो को (अस्मिन्) इस (यज्ञे) परस्पर मेल में (युनक्तु) लगावे ॥७॥

त्वष्टा युनक्तु बहुधा नु रूपा अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥८॥

पदार्थ—(सुयुज) सुयोग्य (त्वष्टा) सूक्ष्मदर्शी पुरुष (स्वाहा) सुन्दर वाणी से (बहुधा) अनेक प्रकार (नु) शीघ्र (रूपा) अनेक रूप वाली क्रियाओं का (अस्मिन्) इस (यज्ञे) परस्पर मेल मे (युनक्तु) प्रयुक्त करे ॥८॥

भगो युनक्त्वाशिषो न्वस्मा अस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान्

युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥९॥

पदार्थ—(प्रविद्वान्) बडा विद्वान्, (सुयुज) सुयोग्य, (भग) ऐश्वर्यवान् पुरुष (आशिष) अपनी इष्ट प्रार्थनाओ को (नु) शीघ्र (अस्मै) इस [ससार के हित] के लिए (अस्मिन्) इस (यज्ञे) परस्पर मेल मे (स्वाहा) सुन्दर वाणी से (युनक्तु) लगावे, (युनक्तु) लगावे ॥९॥

सोमो युनक्तु बहुधा पयांस्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥१०॥

पदार्थ—(सुयुज) बडा योग्य (सोम) शान्त स्वभाव पुरुष (स्वाहा) सुन्दर वाणी से (बहुधा) अनेक प्रकार (पयांसि) अन्नो को (अस्मिन्) इस (यज्ञे) परस्पर मेल मे (युनक्तु) लगावे ॥१०॥

इन्द्रो युनक्तु बहुधा वीर्याण्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥११॥

पदार्थ—(सुयुज) सुयोग्य (इन्द्र) प्रतापी पुरुष (स्वाहा) सुन्दर वाणी से (बहुधा) अनेक प्रकार (वीर्याणि) अनेक वीर कर्मों को (अस्मिन्) इस (यज्ञे) परस्पर मेल मे (युनक्तु) लगावे ॥११॥

अश्विना ब्रह्मणा यातमर्वाञ्चौ वषट्कारेण यज्ञं वर्धयन्तौ । बृहस्पते ब्रह्मणा याह्यर्वाङ् यज्ञो अयं स्वरिदं यजमानाय स्वाहा ॥१२॥

पदार्थ—(अश्विना) हे कर्म कुशल स्त्री पुरुषो ! (ब्रह्मणा) वेदज्ञान से और (वषट्कारेण) दान कर्म से (यज्ञम्) समाज को (वर्धयन्तौ) बढाते हुए (अर्वाञ्चौ) सम्मुख होते हुए (आयातम्) तुम दोनो आवो । (बृहस्पते) हे बडे-बडे लोको के रक्षक परमात्मन् ! (ब्रह्मणा) वृद्धि साधन के साथ (अर्वाङ्) हमारे सम्मुख (आ याहि) तू आ । (अयम्) यह (यज्ञ) समाज (यजमानाय) सगतिशील पुरुष के लिए (इदम्) ऐश्वर्य देने वाला (स्व) सुख होवे, (स्वाहा) यह सुन्दर वाणी है ॥१२॥

卐 इति पञ्चमोऽनुवाकः 卐

卐

अथ षष्ठोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् २७ 卐

१—१२ ब्रह्मा । अग्नि । बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्, २ द्विपदा साम्नी भुरिगनुष्टुप्, द्विपदार्ची बृहती, ४ द्विपदा साम्नी भुरिग्बृहती, ५ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप्, ६ द्विपदा विराण्नाम गायत्री, ७ द्विपदा साम्नी बृहती, ८ संस्तारपङ्क्ति, ९ षट्पदानुष्टुब्गर्भा परातिजगती, १०—१२ पुरउष्णिक् (२—७ एकावसाना) ।

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचींष्यग्नेः ।

द्युमत्तमा सुप्रतीकः ससूनुस्तनूनपादसुरो भूरिपाणिः ॥१॥

पदार्थ—(अस्य) उस (अग्ने) विद्वान् पुरुषो की (समिध) विद्या आदि प्रकाश क्रियायें (ऊर्ध्वा) ऊची, और (शुक्रा) अनेक वीर कर्म और (शोचींषि) तेज (ऊर्ध्वा) ऊचे (भवन्ति) होते है [जो विद्वान्] (द्युमत्तमा) अतिशय प्रकाश वाला (सुप्रतीकः) बडी प्रतीति वाला (ससूनु) प्रेरक अर्थात् प्रधान पुरुषो के साथ वर्तमान (तनूनपात्) विस्तृत पदार्थों का न गिराने वाला (असुर) बडी बुद्धि वाला, और (भूरिपाणि) बहुत व्यवहारों मे हाथ रखने वाला होता है ॥१॥

देवो देवेषु देवः पथो अनक्ति मध्वा घृतेन ॥२॥

पदार्थ—(देवेषु) व्यवहारकुशल लोगो के बीच (देव) व्यवहार कुशल और (देव) विजय चाहने वाला पुरुष (मध्वा) ज्ञान से और (घृतेन) प्रकाश से (पथ) मार्गों को (अनक्ति) खोलता है ॥२॥

मध्वा यज्ञं नक्षति प्रैणानो नराशंसो अग्निः सुकृद्

देवः सविता विश्ववारः ॥३॥

पदार्थ—(नराशंसः) मनुष्यो मे प्रशसा वाला, (सुकृत) उत्तम कर्म करने

वाला (देव) व्यवहार में चतुर, (सविता) ऐश्वर्य वाला (विश्ववार) सबसे अङ्गीकार करने योग्य (अग्नि) विद्वान् पुरुष (मध्वा) ज्ञान से (यज्ञम्) समाज को (प्रैरणानः) आगे बढ़ाता हुआ (यजति) चलता है ।।३।।

अच्छायमेति शवसा घृता चिदीडानो वह्निर्नमसा ।।४।।

पदार्थ—(अयम्) यह [शुभ गुणों की] (ईडानः) स्तुति करता हुआ (वह्निः) निर्वाह करने वाला पुरुष (चित्) ही (शवसा) बल, (घृता) जल और (नमसा) अन्न के साथ (अच्छ) अच्छे प्रकार (एति) चलता है ।।४।।

अग्निः स्रुचो अध्वरेषु प्रयक्षु स यक्षदस्य महिमानमग्नेः ।।५।।

पदार्थ—(सः) वह (अग्नि) विद्वान् पुरुष (अध्वरेषु) सन्मार्ग वाले (प्रयक्षु) बड़े यज्ञों वा समाजों में (अस्य) इस (अग्नेः) सर्वव्यापक परमेश्वर की (स्रुचः) गति की (महिमानम्) महिमा को (यक्षत्) पूजे ।।५।।

तरी मन्द्रासु प्रयक्षु वसवश्चातिष्ठन् वसुधातरश्च ।।६।।

पदार्थ—(मन्द्रासु) आनन्द क्रियाओं में और (प्रयक्षु) बड़े समाजों में (तरी) तारने वाला विद्वान् (च) और (वसुधातरः) अधिक धनों का धारण करने वाला पुरुष (च) और (वसव) उत्तम-उत्तम गुणी लोग (अतिष्ठन्) स्थित हुए हैं ।।६।।

द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रतं रक्षन्ति विश्वहा ।।७।।

पदार्थ—(विश्वे) सब [उत्तम गुण] (अस्य) इसके (व्रतम्) व्रत की ओर (देवी) प्रकाश वाले (द्वार) घर के द्वारों की (विश्वहा = विश्वधा) अनेक प्रकार (अनु) अनुकूल रीति से (रक्षन्ति) रक्षा करें ।।७।।

उरुव्यचसाग्नेर्धाम्ना पत्यमाने । आ सुष्वयन्ती यजते

उपाके उषासानक्तेमं यज्ञमवतामध्वरं नः ।।८।।

पदार्थ—(अग्ने) सर्वव्यापक परमेश्वर के (उरु—व्यचसा) दूर-दूर तक व्यापक (धाम्ना) तेज में (पत्यमाने) ऐश्वर्य करती हुई, (सुष्वयन्ती = सुसु अयन्ती) अति सुन्दरता से चलती हुई, (यजते) संगति योग्य, (उपाके) पास-पास रहने वाली (उषासानक्ता) रात और प्रभात वेलायें [दिन और रात] (न) हमारे (इमम्) इस (अध्वरम्) सन्मार्ग वाले (यज्ञम्) समाज को (आ अवताम्) आती रहें ।।८।।

दैवा होतार ऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वयाभि गृणत गृणता नः स्विष्टये ।

तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तामिडा सरस्वती मही भारती गृणाना ।९।।

पदार्थ—(दैवा.) विद्वानों में रहने वाले विद्वान् (होतार·) हे दानशील पुरुषो ! (न.) हमारे (ऊर्ध्वम्) ऊंचे (अध्वरम्) अकुटिल व्यवहार को (अग्नेः) [शारीरिक और बाह्य] तेज की (जिह्वया) जय से (न) हमारे (स्विष्टये) अच्छे समागम के लिए (अभि) अच्छे प्रकार (गृणत) वर्णन करो और (गृणत) वर्णन करो । (तिस्र.) तीनों (देवी) देवियां (मही) विशाल गुण वाली (गृणाना) उपदेश करती हुई (इडा) स्तुति योग्य नीति, (सरस्वती) विज्ञानवती बुद्धि और (भारती) पोषण करने वाली विद्या (इदम्) इस (बर्हि) बढ़े हुए कर्म में (आसदन्ताम्) आवें ।।९।।

तन्नस्तुरीपमद्भुत पुरुक्षु ।

देव त्वष्टा रायस्पोषं वि ष्य नाभिमस्य ।।१०।।

पदार्थ—(देव) हे व्यवहार में चतुर (त्वष्ट·) सूक्ष्मदर्शी पुरुष ! (न·) हमारे लिए (तत्) वह (तुरीपम्) शीघ्र रक्षा करने वाला, (अद्भुतम्) अद्भुत, (पुरुक्षु) बहुत अन्न और (राय.) धन की (पोषम्) पुष्टि (अस्य) इस [घर] के (नाभिम्) मध्यदेश में (वि ष्य) खोल दे ।।१०।।

वनस्पतेऽव सृजा रराणः ।

त्मना देवेभ्यो अग्निर्हव्यं शमिता स्वदयतु ।।११।।

पदार्थ—(वनस्पते) हे सेवनीय शास्त्र के रक्षक (रराण.) दानशील तू (अव सृज) दान कर । (शमिता) शान्ति करने वाला (अग्नि) विद्वान् पुरुष (त्मना) आत्मबल से (देवेभ्यः) विद्वानों के लिए (हव्यम्) ग्राह्य पदार्थ अन्न आदि को (स्वदयतु) स्वादु बनावे ।।११।।

अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेदः ।

इन्द्राय यज्ञं विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ।।१२।।

पदार्थ—(जातवेदः) हे विद्या में प्रसिद्ध (अग्ने.) विद्वन् पुरुष ! (स्वाहा) सुन्दर वाणी से (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिए (यज्ञम्) पूजनीय व्यवहार को (कृणुहि) कर । (विश्वे) सब (देवा.) विद्वान् लोग (इदम्) इस (हविः) ग्राह्य उत्तम वस्तु को (जुषन्ताम्) सेवन करें ।।१२।।

॥ सूक्तम् २८ ॥

१—१४ अथर्वा । त्रिवृत् अग्न्यादयः । त्रिष्टुप्, ६ पञ्चपदातिशक्वरी, ७, ९, १०, १२ ककुम्मत्यनुष्टुप् १३ पुर उष्णिक् ।

नव प्राणान्नवभिः सं मिमीते दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।

हरिते त्रीणि रजते त्रीण्ययसि त्रीणि तपसाविष्ठितानि ।।१।।

पदार्थ—वह [परमेश्वर] (नव) नौ (प्राणान्) जीवन शक्तियों को (नवभिः) नौ [इन्द्रियों] के साथ (शतशारदाय) सौ शरद् ऋतुओं वाले (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन के लिए (संमिमीते) यथावत् मिलाता है । [उसी करके] (हरिते) दरिद्रता हरने वाले पुरुषार्थ में (त्रीणि) तीनों (रजते) प्रिय होने वाले प्रबन्ध [वा रूप्य] में (त्रीणि) तीनों और (अयसि) प्राप्त योग्य कर्म [वा सुवर्ण] में (त्रीणि) तीनों [सुख] (तपसा) सामर्थ्य से (आविष्ठितानि) स्थित किये गये हैं ।।१।।

अग्निः सूर्यश्चन्द्रमा भूमिरापो द्यौरन्तरिक्षं प्रदिशो दिशश्च ।

आर्तवा ऋतुभिः संविदाना अनेन मा त्रिवृता पारयन्तु ।।२।।

पदार्थ—(अग्नि.) अग्नि, (सूर्य) सूर्य, (चन्द्रमाः) चन्द्रमा, (भूमि·) भूमि, (आप) जल, (द्यौ·) आकाश, (अन्तरिक्षम) मध्यलोक, (दिश·) दिशायें, (प्रदिश) विदिशायें (च) और (ऋतुभि.) ऋतुओं से (संविदानाः) मिले हुए (आर्तवाः) ऋतुओं के विभाग (अनेन) इस (त्रिवृता) त्रिवृति [तीन जीवन साधन म० १] से (मा) मुझे (पारयन्तु) पूर्ण करें ।।२।।

त्रयः पोषास्त्रिवृति श्रयन्तामनक्तु पूषा पयसा घृतेन ।

अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम् ।।३।।

पदार्थ—(त्रय.) तीन (पोषाः) पोषण सामर्थ्य (त्रिवृति) त्रिवृति [तीन जीवन साधन म० १] में (श्रयन्ताम्) बनी रहें । (पूषा) पोषण करने वाला अधिकारी (पयसा) दूध और (घृतेन) घृत से (अनक्तु) संयुक्त करे । (अन्नस्य) अन्न की (भूमा) बहुतायत, (पुरुषस्य) पुरुषों की (भूमा) बहुतायत और (पशूनाम्) पशुओं की (भूमा) बहुतायत (ते) ये सब (इह) यहां पर (श्रयन्ताम्) ठहरी रहें ।।३।।

इममादित्या वसुना समुक्षतेममग्ने वर्धय वावृधानः ।

इममिन्द्र सं सृज वीर्येणास्मिन् त्रिवृच्छ्रयतां पोषयिष्णु ।।४।।

पदार्थ—(आदित्या·) हे तेजस्वी पुरुषो ! (इमम्) इस पुरुष को (वसुना) धन से (सम्) अच्छे प्रकार (उक्षत) सींचो, (अग्ने) हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! (वावृधान·) बढ़ता हुआ तू (इमम्) इस पुरुष को (वर्धय) बढ़ा, (इन्द्र) हे परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर ! (इमम्) इस पुरुष को (वीर्येण) वीरता से (स सृज) संयुक्त कर । (अस्मिन्) इस पुरुष में (पोषयिष्णु) पुष्टि देने वाली (त्रिवृत्) त्रिवृति [म० १] (श्रयताम्) ठहरी रहे ।।४।।

भूमिष्ट्वा पातु हरितेन विश्वभृदग्निः पिपर्त्वयसा सजोषाः ।

वीरुद्भिष्टे अर्जुनं संविदानं दक्षं दधातु सुमनस्यमानम् ।।५।।

पदार्थ—(विश्वभृत्) सबको धारण करने वाली (भूमि.) भूमि (हरितेन) दरिद्रता हरने वाले पुरुषार्थ से (त्वा) तुझे (पातु) पाले, (सजोषाः) प्रीतियुक्त (अग्नि.) अग्नि (अयसा) प्राप्ति योग्य कर्म से (पिपर्तु) पूर्ण करे । (वीरुद्भिः) उगती हुई लता रूप प्रजाओं से (संविदानम्) मिला हुआ (ते) तेरा (अर्जुनम्) अर्थसंग्रह (सुमनस्यमानम्) मन का शुभ करने वाला (दक्षम्) बल (दधातु) धारण करे ।।५।।

त्रेधा जातं जन्मनेदं हिरण्यमग्नेरेकं प्रियतमं बभूव सोमस्यैकं हिंसितस्य परापतत् । अपामेकं वेधसां रेत आहुस्तत् ते हिरण्यं त्रिवृदस्त्वायुषे ।।६।।

पदार्थ—(इदम्) यह प्रसिद्ध (हिरण्यम्) कमनीय तेज [ब्रह्म] (त्रेधा) तीन प्रकार से (जन्मना) जन्म से (जातम्) उत्पन्न हुआ, (एकम्) एक (अग्ने) अग्नि का (प्रियतमम्) अति प्रीति वाला (बभूव) हुआ, (एकम्) एक (हिंसितस्य) पीडित (सोमस्य) चन्द्रमा का (प्रियतम) अतिप्रिय होकर (परा अपतत्) [सूर्य से] आकर गिरा । (एकम्) एक को (वेधसाम्) विधान करने वाली (अपाम्) जल धाराओं का (रेत) बीज (आहु.) वे कहते हैं । (तत्) वह (हिरण्यम्) तेज स्वरूप ब्रह्म (ते) तेरी (आयुषे) आयु के लिए (त्रिवृत्) त्रिवृति [तीनों जीवन साधन] (अस्तु) होवे ।।६।।

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।

त्रेधामृतस्य चक्षणं त्रीण्यायूंषि तेऽकरम् ।।७।।

पदार्थ—(जमदग्ने) प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष के [अथवा नेत्र अर्थात् नेत्र आदि इन्द्रियों के (त्र्यायुषम्) तीन जीवन साधन [म० १] [अथवा, शुद्धि, बल और पराक्रमयुक्त तीन गुण आयु], और (कश्यपस्य) तत्त्वदर्शी ऋषि के [अथवा, ईश्वर की व्यवस्था में सिद्ध] (त्र्यायुषम्) बालकपन, यौवन और बुढ़ापा, तीन प्रकार की आयु [अथवा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रमों का सुखकारक तीन गुण आयु], (त्रेधा) तीन प्रकार से [अर्थात् विद्या, शिक्षा और परोपकार सहित तीन गुण आयु से] (अमृतस्य) अमरपन वा मोक्ष का (दर्शनम्) दर्शक होवे । [हे पुरुषार्थी ! वे ही] (त्रीणि) तीन (आयूंषि) जीवन साधन (ते) तेरे लिए (अकरम्) मैंने किये हैं ॥७॥

त्रयः सुपर्णास्त्रिवृता यदायन्नेकाक्षरमभिसंभूय शक्राः ।
प्रत्यौहन्मृत्युममृतेन साकमन्तर्दधाना दुरितानि विश्वा ॥८॥

पदार्थ—(त्रय.) तीन (शक्राः) समर्थ (सुपर्णाः) बड़े पोषक पदार्थ (त्रिवृता) त्रिवृत्ति [तीन जीवन साधन] के साथ (एकाक्षरम्) एक अविनाशी ब्रह्म को (अभिसंभूय) सब ओर से प्राप्त कर के (यत्) जब (आयन्) प्राप्त हुए । (विश्वा) सब (दुरितानि) अनिष्टों को (अन्तर्दधाना) ढकते हुए उन्होंने (अमृतेन साकम्) मृत्यु से बचने के साधन के साथ [वर्त्तमान होकर] (मृत्युम्) मृत्यु के कारण को (प्रति औहन्) मिटा दिया ॥८॥

दिवस्त्वा पातु हरितं मध्यात् त्वा पात्वर्जुनम् ।
भूम्या अयस्मयं पातु प्रागाद् देवपुरा अयम् ॥९॥

पदार्थ—(हरितम्) दरिद्रता हरने वाला पुरुषार्थ (त्वा) तुझको (दिवः) सूर्य से (पातु) बचावे और (अर्जुनम्) अर्थ संग्रह (मध्यात्) मध्यलोक से (त्वा) तुझे (पातु) बचावे । (अयस्मयम्) प्राप्तियोग्य कर्म (भूम्या) भूमि से (पातु) बचावे । (अयम्) यह पुरुष (देवपुराः) विद्वानों की अग्रगतियों को (प्र) अच्छे प्रकार (अगात्) पहुँचा है ॥९॥

इमास्तिस्रो देवपुरास्तास्त्वा रक्षन्तु सर्वतः ।
तास्त्वं बिभ्रद् वर्चस्व्युत्तरो द्विषतां भव ॥१०॥

पदार्थ—(इमाः) यह समीपस्थ और (ताः) वे दूरस्थ (तिस्रः) तीनों (देवपुराः) विद्वानों की अग्रगतियां (त्वा) तुझे (सर्वतः) सब ओर से (रक्षन्तु) बचावें । (ताः) उनको (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (त्वम्) तू (वर्चस्वी) तेजस्वी और (द्विषताम्) वैरियों में (उत्तरः) उच्च पदवाला (भव) हो ॥१०॥

पुरं देवानाममृतं हिरण्यं य आबेधे प्रथमो देवो अग्रे ।
तस्मै नमो दश प्राचीः कृणोम्यनु मन्यतां त्रिवृदाबधे मे ॥११॥

पदार्थ—(यः) जिस (प्रथमः) प्रख्यात (देवः) प्रकाशमय परमेश्वर ने (अग्रे) पहिले काल में (देवानाम्) विद्वानों के (पुरम्) आगे चलने वाले (अमृतम्) अमर (हिरण्यम्) कमनीय तेज को (आबेधे) सब ओर से बांधा था । (तस्मै) उस परमेश्वर को (दश) दस (प्राचीः) फैली हुई दिशाओं में (नमः) नमस्कार (कृणोमि) मैं करता हूँ । (त्रिवृत्) त्रिवृत्ति [म० १, २] (अनु मन्यताम्) अनुकूल होवे [जिसे] (मे) अपने लिए (आबधे) मैं बांधता हूँ ॥११॥

आ त्वा चृतत्वर्यमा पूषा बृहस्पतिः ।
अहर्जातस्य यन्नाम तेन त्वाति चृतामसि ॥१२॥

पदार्थ—(अर्यमा) अरि अर्थात् हिंसकों का नियामक (आ) और (पूषा) पोषण करने वाला (आ) और (बृहस्पतिः) बड़े बड़ों का रक्षक पुरुष (त्वा) तुझ [परमेश्वर] को (आ) अच्छे प्रकार (चृततु) बांधे । [हृदय में रक्खे] (अहर्जातस्य) प्रतिदिन उत्पन्न होने वाले [प्राणी] का (यत् नाम) जो नाम है, (तेन) उस [नाम से] (त्वा) तुझ को (अति) अत्यन्त करके (चृतामसि—०स) हम बांधते हैं ॥१२॥

ऋतुभिष्ट्वार्तवैरायुषे वर्चसे त्वा ।
संवत्सरस्य तेजसा तेन संहनु कृण्मसि ॥१३॥

पदार्थ—(ऋतुभिः) ऋतुओं से (त्वा) तुझ परमेश्वर को, (आर्तवैः) ऋतुओं के विभागों से (त्वा) तुझ को और (संवत्सरस्य) सब के निवास देने वाले सूर्य के (तेन) उस (तेजसा) तेज से (आयुषे) अपने जीवन के लिए और (वर्चसे) तेज के लिए (संहनु) संयुक्त (कृण्मसि) हम करते हैं ॥१३॥

घृतादुल्लुप्तं मधुना समक्तं भूमिदृंहमच्युतं पारयिष्णु ।
भिन्दत् सपत्नानधरांश्च कृण्वदा मा रोह महते सौभगाय ॥१४॥

पदार्थ—(घृतात्) प्रकाश से (उल्लुप्तम्) ऊपर खींचा गया, (मधुना) ज्ञान से (समक्तम्) अच्छे प्रकार प्रकट किया गया, (भूमिदृंहम्) भूमि को दृढ़ करने वाला, (अच्युतम्) अटल, (पारयिष्णु) पार करने वाला [ब्रह्म] (सपत्नान्) वैरियों को (भिन्दत्) छिन्न भिन्न करता हुआ (च) और (अधरान्) नीचा (कृण्वत्) करता हुआ तू [ब्रह्म] (मा) मुझ को (महते) बड़े (सौभगाय) सौभाग्य के लिए (आ रोह) ऊँचा कर ॥१४॥

卐 सूक्तम् २९ 卐

१—१५ चातन । जातवेदा, मन्त्रोक्ता । त्रिष्टुप्; ३ त्रिपदा विराण्नाम गायत्री, ५ पुरोऽतिजगती विराड्जगती, १२—१५ अनुष्टुप् (१२ भुरिक्, १४ चतुष्पदा पराबृहती ककुम्मती ।)

पुरस्ताद् युक्तो वह जातवेदोऽग्ने विद्धि क्रियमाणं यथेदम् ।
त्वं भिषग् भेषजस्यासि कर्ता त्वया गामश्वं पुरुषं सनेम ॥१॥

पदार्थ—(जातवेद) हे विद्या में प्रसिद्ध (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! (युक्तः) योग्य होकर तू (पुरस्तात्) हमारे आगे (वह) प्राप्त हो (यथा) जिस से (इदम्) इस (क्रियमाणम्) किये जाते हुए कर्म को (विद्धि) तू जान ले । (त्वम्) तू (भिषक्) वैद्य (भेषजस्य) औषध का (कर्ता) करने वाला (असि) है । (त्वया) तेरे साथ (गाम्) गौ, (अश्वम्) घोड़ा (पुरुषम्) पुरुष का (सनेम) हम सेवन करें ॥१॥

तथा तदग्ने कृणु जातवेदो विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ।
यो नो दिदेव यतमो जघास यथा सो अस्य परिधिष्पताति ॥२॥

पदार्थ—(तत्) सो (जातवेदः) हे विद्या में प्रसिद्ध (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! (विश्वेभिः) सब (देवैः सह) उत्तम गुणों के साथ (संविदानः) मिलता हुआ तू (तथा) वैसा (कृणु) कर । (यथा) जिस से (अस्य) उस [शत्रु] का (सः परिधिः) वह परकोटा (पताति) गिर पड़े, (यः) जिस [शत्रु] ने (नः) हम (दिदेव) सताया है, अथवा (यतमः) जिस किसी ने (जघास) खाया है ॥२॥

यथा सो अस्य परिधिष्पताति तथा तदग्ने कृणु जातवेदः ।
विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ॥३॥

पदार्थ—(यथा) जिस प्रकार से (अस्य) उस [शत्रु का] (सः परिधिः) वह परकोटा (पताति) गिर पड़े, (तत्) सो (जातवेद) हे विद्या में प्रसिद्ध ! (अग्ने) विद्वान पुरुष ! (विश्वेभिः) सब (देवैः सह) उत्तम गुणों के साथ (संविदानः) मिलता हुआ तू (तथा) वैसा (कृणु) कर ॥३॥

अक्ष्यौ३नि विध्य हृदयं नि विध्य जिह्वां नि तृन्द्धि प्र दतो मृणीहि । पिशाचो अस्य यतमो जघासाग्ने यविष्ठ प्रति तं शृणीहि ॥४॥

पदार्थ—(अक्ष्यौ) उसकी दोनों आंखें (नि विध्य) छेद डाल, (हृदयम्) हृदय (नि विध्य) छेद डाल, (जिह्वाम्) जीभ (नि तृन्द्धि) काट डाल, और (दतः) दांतों को (प्र मृणीहि) तोड़ दे, (यतमः) जिस किसी (पिशाचः) मांस खाने वाले पिशाच ने (अस्य) इसका (जघास) भक्षण किया है, (यविष्ठ) हे महाबलवान् (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! (तम्) उसको (प्रति) प्रत्यक्ष (शृणीहि) टुकड़े टुकड़े कर दे ॥४॥

यदस्य हृतं विहृतं यत् पराभृतमात्मनो जग्धं यतमत् पिशाचैः ।
तदग्ने विद्वान् पुनरा भर त्वं शरीरे मांसमसुमेरयामः ॥५॥

पदार्थ—(पिशाचैः) पिशाचों करके (अस्य) इसके (आत्मनः) शरीर से (यत्) जो (हृतम्) हरा गया, (विहृतम्) लूटा गया, (यत्) जो (पराभृतम्) हटाया गया, और (यतमत्) जो कुछ (जग्धम्) खाया गया है, (अग्ने) हे तेजस्वी पुरुष ! (विद्वान्) विद्वान् (त्वम्) तू (तत्) उसको (पुनः) फिर (आ भर) लाकर भर दे, (शरीरे) इसके शरीर में (मांसम्) मांस और (असुम्) प्राण को (आ ईरयामः) हम स्थापित करते हैं ॥५॥

आमे सुपक्वे शबले विपक्वे यो मा पिशाचो अशने ददम्भ ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३यमस्तु ॥६॥

पदार्थ—(यः) जिस (पिशाचः) पिशाच समूह ने (आमे) कच्चे (सुपक्वे) अच्छे पक्के, (शबले) चितकबरे अथवा (विपक्वे) विविध प्रकार पके हुए (अशने) भोजन में (मा) मुझे (ददम्भ) धोखा दिया है (तत्) उससे (पिशाचाः) वे मांसभक्षक (आत्मना) अपने जीवन और (प्रजया) प्रजा के साथ (वि) विविध प्रकार (यातयन्ताम्) पीड़ा पावें, और (अयम्) यह पुरुष (अगदः) नीरोग (अस्तु) होवे ॥६॥

क्षीरे मा मन्थे यतमो ददम्भाकृष्टपच्ये अशने धान्ये यः ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदोऽयमस्तु ॥७॥

पदार्थ—(**यतम**) जिस किसी ने (**क्षीरे**) दूध मे अथवा (**मन्थे**) मट्ठे मे, अथवा (**य**:) जिसने (**अकृष्टपच्ये**) बिना जुते खेत से उत्पन्न (**अशने**) भोजन में, अथवा (**धान्ये**) यव आदि धान्य मे (**मा**) मुझे (**ददम्भ**) धोखा दिया है । (**तत्**) उससे (**पिशाचाः**) वे मांस भक्षक (**आत्मना**) अपने जीवन और (**प्रजया**) प्रजा के साथ (**वि**) विविध प्रकार (**यातयन्ताम्**) पीड़ा पावें, और (**अयम्**) यह पुरुष (**अगदः**) नीरोग (**अस्तु**) होवे ॥७॥

अपां मा पाने यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदोऽयमस्तु ॥८॥

पदार्थ—(**यतमः**) जिस किसी (**क्रव्यात्**) मांसभक्षक ने (**अपाम्**) जल के (**पाने**) पान करने मे (**यातूनाम्**) यात्रियो के (**शयने**) शयन स्थान मे (**शयानम्**) सोते हुए (**मा**) मुझ को (**ददम्भ**) ठगा है । (**तत्**) उससे (**पिशाचाः**) वे मांस भक्षक (**आत्मना**) अपने जीव और (**प्रजया**) प्रजा के साथ (**वि**) विविध प्रकार (**यातयन्ताम्**) पीड़ा पावें, और (**अयम्**) यह पुरुष (**अगदः**) नीरोग (**अस्तु**) होवें ॥८॥

दिवा मा नक्तं यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदोऽयमस्तु ॥९॥

पदार्थ—(**यतम**) जिस किसी (**क्रव्यात्**) मासभक्षक ने (**दिवा**) दिन मे (**नक्तम्**) रात मे (**यातूनाम्**) यात्रियों के (**शयने**) शयनस्थान मे (**शयानम्**) सोते हुए (**मा**) मुझ को (**ददम्भ**) ठगा है (**तत्**) उससे (**पिशाचाः**) वे मांसभक्षक (**आत्मना**) अपने जीवन और (**प्रजया**) प्रजा के साथ (**वि**) विविध प्रकार (**यातयन्ताम्**) पीड़ा पावें, और (**अयम्**) यह पुरुष (**अगदः**) नीरोग (**अस्तु**) होवे ॥९॥

क्रव्यादमग्ने रुधिरं पिशाचं मनोहनं जहि जातवेदः ।
तमिन्द्रो वाजी वज्रेण हन्तु छिनत्तु सोमः शिरो अस्य धृष्णुः ॥१०॥

पदार्थ—(**जातवेदः**) हे विद्या मे प्रसिद्ध (**अग्ने**) विद्वान् पुरुष ! (**क्रव्यादम्**) मांस खाने वाले, (**रुधिरम्**) रोकने वाले और (**मनोहनम्**) मन बिगाड़ देने वाले (**पिशाचम्**) राक्षस को (**जहि**) मार डाल । (**तम्**) उसको (**वाजी**) पराक्रमी (**इन्द्र**) बड़े ऐश्वर्यवाले आप (**वज्रेण**) वज्र से (**हन्तु**) मारें, और (**धृष्णु**) निर्भय (**सोम**) प्रतापी आप (**अस्य**) इसका (**शिर**) सिर (**छिनत्तु**) काटें ॥१०॥

सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
सहमूराननु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥११॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे विद्वान् [वा भौतिक अग्नि] तू (**यातुधानान्**) पीड़ा देने हारे [प्राणियो वा रोगियो] को (**सनात्**) नित्य (**मृणसि**) नष्ट करता है, (**रक्षांसि**) उन राक्षसो ने (**त्वा**) तुझे (**पृतनासु**) संग्रामो मे (**न**) नहीं (**जिग्यु**) जीता है । (**सहमूरान्**) समूल (**क्रव्याद**) उन मासभक्षको को (**अनु दह**) भस्म कर दे । (**ते**) तेरे (**दैव्यायाः**) दिव्य गुण वाले (**हेत्या**) वज्र से (**मा मुक्षत**) वे न छूटें ॥११॥

समाहर जातवेदो यद्धृतं यत् पराभृतम् ।
गात्राण्यस्य वर्धन्तामंशुरिवा प्यायतामयम् ॥१२॥

पदार्थ—(**जातवेद**) हे विद्या मे प्रसिद्ध ! उसे ! (**समाहर**) भर दे (**यत्**) जो कुछ (**हृतम्**) हर लिया गया, अथवा (**यत्**) जो कुछ (**पराभृतम्**) हटाया गया है । (**अस्य**) इस [मनुष्य] के (**गात्राणि**) सब अंग (**वर्धन्ताम्**) बढ़ें । (**अयम्**) यह पुरुष (**अंशु इव**) वृक्ष के अंकुर के समान (**आ प्यायताम्**) बढ़ता रहे ॥१२॥

सोमस्येव जातवेदो अंशुरा प्यायतामयम् ।
अग्ने विरप्शिनं मेध्यमयक्ष्मं कृणु जीवतु ॥१३॥

पदार्थ—(**जातवेद**) हे विद्या में प्रसिद्ध ! (**अयम्**) यह पुरुष (**सोमस्य अंशुः इव**) चन्द्रमा की किरण अथवा सोमलता के अंकुर के समान (**आ प्यायताम्**) बढ़ता रहे । (**अग्ने**) हे विद्वान् पुरुष ! तू (**विरप्शिनम्**) विविध प्रकार से कथने योग्य महागुणी पुरुष को (**अयक्ष्मम्**) नीरोग और (**मेध्यम्**) बुद्धि के लिये हितकारी (**कृणु**) कर, और (**जीवतु**) वह जीता रहे ॥१३॥

एतास्ते अग्ने समिधः पिशाचजम्भनीः ।
तास्त्वं जुषस्व प्रति चैना गृहाण जातवेदः ॥१४॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे विद्वान् पुरुष ! (**ते**) तेरे (**एताः**) ये (**समिधः**) विद्यादि की प्रकाश क्रियायें (**पिशाचजम्भनीः**) मासभक्षक [प्राणियो वा रोगो] को नाश करने वाली हैं । (**जातवेदः**) हे विद्या मे प्रसिद्ध ! (**त्वम्**) तू (**ताः**) उन से (**जुषस्व**) प्रसन्न हो, (**च**) और (**एताः**) इनको (**प्रति गृहाण**) प्रतीति से अंगीकार कर ॥१४॥

तार्ष्टाघीरग्ने समिधः प्रति गृह्णाह्यर्चिषा ।
जहातु क्रव्याद्रूपं यो अस्य मांसं जिहीर्षति ॥१५॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे विद्वान् जन ! (**तार्ष्टाघीः**) तृष्णाओं की निन्दा करने वाली (**समिधः**) विद्यादि प्रकाश क्रियाओं को (**अर्चिषा**) पूजा के साथ (**प्रति**) निश्चय पूर्वक (**गृह्णाहि**) तू अंगीकार कर ! (**क्रव्यात्**) वह मांसभक्षक [प्राणी वा रोग] (**रूपम्**) अपने रूप को (**जहातु**) छोड़ देवे, (**यः**) जो (**अस्य**) इस पुरुष का (**मांसम्**) मांस (**जिहीर्षति**) हरना चाहता है ॥१५॥

卐 **सूक्तम् ३०** 卐

१—१७ उन्मोचनः (आयुष्काम.) । आयुष्यम् । अनुष्टुप् , १ पथ्यापंक्ति., ९ भुरिक्, १२ चतुष्पदा विराड् जगती, १४ विराद् प्रस्तारपंक्ति., १७ त्र्यवसाना षट्पदा जगती

आवतस्त आवतः परावतस्त आवतः ।
इहैव भव मा नु गा मा पूर्वाननु गाः पितॄनसुं बध्नामि ते दृढम् ॥१॥

पदार्थ—(**ते**) तेरे (**आवतः**) समीप स्थान से, (**आवतः**) समीप से (**ते**) तेरे (**परावत**) दूर देश से और (**आवत**) अति समीप से [मैं प्रार्थना करता हूँ] । (**इह एव**) यहाँ ही (**भव**) रह, (**नु**) निश्चय करके (**मा गा**) कभी भी मत जा, (**पूर्वान्**) पहिले (**पितॄन्**) पिता आदि लोगो के (**अनु**) पीछे (**गाः=गच्छ**) चल । (**ते**) तेरे (**असुम्**) प्राण को (**दृढम्**) दृढ़ (**बध्नामि**) मैं बांधता हूँ ॥१॥

यत् त्वाभिचेरुः पुरुषः स्वो यदरणो जनः ।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥२॥

पदार्थ—(**यत्**) चाहे (**स्व**) अपनी जाति वाले (**पुरुषः**) पुरुष ने और (**यत्**) चाहे (**अरण**) न बात करने योग्य, अबोध (**जनः**) जन ने (**त्वा**) तुझसे (**अभिचेरु**) दुष्कर्म किया है । (**उभे**) दोनो (**उन्मोचनप्रमोचने**) अलग रहना और छुटकारा (**ते**) तुझको (**वाचा**) वेद वाणी से (**वदामि**) मैं बतलाता हूँ ॥२॥

यद् दुद्रोहिथ शेपिषे स्त्रियै पुंसे अचित्त्या ।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥३॥

पदार्थ— (**यत्**) जो (**स्त्रियै**) स्त्री के लिए वा (**पुंसे**) पुरुष के लिये (**अचित्त्या**) अचेतना से (**दुद्रोहिथ**) तू ने अनिष्ट चीता है वा (**शेपिषे**) शाप दिया है । (**उभे**) दोनो (**उन्मोचनप्रमोचने**) अलग रहना और छुटकारा (**ते**) तुझको (**वाचा**) वेद वाणी से (**वदामि**) मैं बतलाता हूँ ॥३॥

यदेनसो मातृकृताच्छेषे पितृकृताच्च यत् ।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥४॥

पदार्थ—(**यत्**) यदि (**मातृकृतात्**) माता के किये हुए (**च**) और (**यत्**) यदि (**पितृकृतात्**) पिता के किये हुए (**एनसः**) अपराध से (**शेषे**) तू सोता है । (**उभे**) दोनो (**उन्मोचनप्रमोचने**) अलग रहना और छुटकारा (**ते**) तुझ को (**वाचा**) वेद वाणी से (**वदामि**) मैं बताता हूँ ॥४॥

यत् ते माता यत् ते पिता जामिर्भ्राता च सर्जतः ।
प्रत्यक् सेवस्व भेषजं जरदष्टिं कृणोमि त्वा ॥५॥

पदार्थ—(**यत्**) जो [औषध] (**ते**) तेरे (**माता**) माता (**पिता**) पिता (**च**) और (**यत्**) जो (**ते**) तेरे (**जामिः**) मिलकर भोजन करने वाली बहिन और (**भ्राता**) पोषक वा पोषणीय भाई (**सर्जतः**) लाते हैं, (**भेषजम्**) उस औषध को (**प्रत्यक्**) प्रत्यक्ष (**सेवस्व**) सेवन कर, (**त्वा**) तुझको (**जरदष्टिम्**) स्तुति के साथ व्याप्ति वा भोजन वाला (**कृणोमि**) मैं करता हूँ ॥५॥

इहैधि पुरुष सर्वेण मनसा सह ।
दूतौ यमस्य मानु गा अधि जीवपुरा इहि ॥६॥

पदार्थ—(**पुरुष**) हे पुरुष ! (**सर्वेण**) संपूर्ण (**मनसा सह**) मन [साहस] के साथ (**इह**) यहां पर (**एधि**) रह । (**यमस्य**) मृत्यु के (**दूतौ**

अनु) तपाने वाले प्राण और अपान वायु [उलटे श्वास] के पीछे (मा गा) मत जा । (जीवपुरा) जीवित प्राणियो के नगरो मे (अधि इहि) पहुँच ॥६॥

अनुहूतः पुनरेहि विद्वानुदयनं पथः ।

आरोहणमाक्रमणं जीवतोजीवतोऽयनम् ॥७॥

पदार्थ—(पथ) मार्ग के (उदयनम्) चढाव का (विद्वान्) जानता हुआ, (अनुहूत) प्रीति से बुलाया गया तू (पुन) फिर (आ इहि) आ । (आरोहणम्) चढना और (आक्रमणम्) आगे बढना (जीवतोजीवत) प्रत्येक जीव का (अयनम्) मार्ग है ॥७॥

मा बिभेर्न मरिष्यसि जरदष्टिं कृणोमि त्वा ।

निरवोचमहं यक्ष्ममङ्गेभ्यो अङ्गज्वरं तव ॥८॥

पदार्थ—(मा बिभे.) तू मत डर, (न मरिष्यसि) तू नही मरेगा । (त्वा) तुझे (जरदष्टिम्) स्तुति के साथ व्याप्ति वा भोजन वाला (कृणोमि) मैं करता हूँ । (तव) तेरे (अङ्गेभ्य.) अगो से (अङ्गज्वरम्) अग अग मे ज्वर करने वाले (यक्ष्मम्) राजरोग वा क्षय रोग को (नि = निः सार्य) निकाल कर (अहम्) मैं ने (अवोचम्) वचन कहा है ॥८॥

अङ्गभेदो अङ्गज्वरो यश्च ते हृदयामयः ।

यक्ष्मः श्येन इव प्रापप्तद् वाचा साढः परस्तराम् ॥९॥

पदार्थ—(ते) तेरी (अङ्गभेद) हडफूटन, (अङ्गज्वर) शरीर का ज्वर, (च) और (य) जो (हृदयामय.) हृदय का रोग है वह और (यक्ष्म) राज रोग, (वाचा) वेदवाणी से (साढ) हारा हुआ [वह सब रोग] (श्येन इव) श्यन पक्षी के समान (परस्तराम्) बहुत दूर (प्र अपप्तत्) भाग गया है ॥९॥

ऋषी बोधप्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृविः ।

तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम् ॥१०॥

पदार्थ—(ऋषी) दो देखने वाले (बोधप्रतीबोधौ) बोध और प्रतिबोध [अर्थात् विवेक और चेतनता] हैं, (यः) जो एक एक (अस्वप्न) न सोने वाला (च) और (जागृविः) जागने वाला है । (ते) तेरे (प्राणस्य) प्राण के (गोप्तारौ) रखवाले (तौ) वे दोनों (दिवा) दिन (च) और (नक्तम्) रात (जागृताम्) जागते रहें ॥१०॥

अयमग्निरुपसद्य इह सूर्य उदेतु ते ।

उदेहि मृत्योर्गम्भीरात् कृष्णाच्चित् तमसस्परि ॥११॥

पदार्थ—(अयम) यह (अग्नि) सर्वव्यापक परमेश्वर (उपसद्य) सेवा योग्य है । (इह) इस मे (ते) तेरे लिये (सूर्य) सूर्य (उदेतु) उदय होवे । (गम्भीरात) गहरे (मृत्यो) मृत्यु से (चित) और (कृष्णात्) काले (तमस) अन्धकार से (परि) अलग होकर (उदेहि) तू ऊपर आ ॥११॥

नमो यमाय नमो अस्तु मृत्यवे नमः पितृभ्य उत ये नयन्ति ।

उत्पारणस्य यो वेद तमग्निं पुरो दधे अस्मा अरिष्टतातये ॥१२॥

पदार्थ—(यमाय) न्यायकारी परमात्मा को (मृत्यवे) मृत्यु नाश करने के लिये (नम) (नम) वारवार नमस्कार (अस्तु) होवे, (उत) और (पितृभ्य) उन रक्षक महापुरुषो को (नम) नमस्कार हो (ये) जो [हमे] (नयन्ति) ले चलते हैं । (य.) जो परमेश्वर (उत्पारणस्य) पार लगाना (वेद) जानता है, (तम्) उस (अग्निम्) ज्ञानवान् परमेश्वर को (अस्मै) इस जीव के लिये (अरिष्टतातये) कल्याण करने को (पुर) आगे (दधे) रखता हूँ [पूजता हूँ] ॥१२॥

ऐतु प्राण ऐतु मन ऐतु चक्षुरथो बलम् ।

शरीरमस्य सं विदां तत् पद्भ्यां प्रति तिष्ठतु ॥१३॥

पदार्थ—(प्राण) प्राण, पुरुषार्थ [इसमे] (आ एतु) आवे, (मन) मन (आ एतु) आवे, (अथो) और भी (चक्षु) दृष्टि और (बलम्) बल (आ एतु) आवे । (तत्) उससे (अस्य) इस पुरुष का (शरीरम्) शरीर (विदां प्रति) बुद्धि की ओर (पद्भ्याम्) दोनो पैरो से (सम्) ठीक ठीक (तिष्ठतु) खडा होवे ॥१३॥

प्राणेनाग्ने चक्षुषा सं सृजेमं समीरय तन्वा३ सं बलेन ।

वेत्थामृतस्य मा नु गान्मा नु भूमिगृहो भुवत् ॥१४॥

पदार्थ— (अग्ने) हे ज्ञानमय परमात्मन् ! (इमम्) इस पुरुष को (प्राणेन) प्राण [जीवन सामर्थ्य] से और (चक्षुषा) दृष्टि से (संसृज) संयुक्त कर, और [उसे] (तन्वा) शरीर से और (बलेन) बल से (सम् समीरय) अच्छे प्रकार आगे बढा । तू (अमृतस्य) अमरपन का (वेत्थ) जानने वाला है । वह [पुरुष] (नु) अब (मा गात्) न चला जावे, और (मा नु) न कभी (भूमिगृह) भूमि मे घरवाला [अर्थात् गुप्त निवासवाला] (भुवत्) होवे ॥१४॥

मा ते प्राण उप दसन्मो अपानोऽपि धायि ते ।

सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः ॥१५॥

पदार्थ—(ते) तेरा (प्राणः) प्राण [भीतर आने वाला श्वास] (मा उप दसत्) नष्ट न होवे, और (ते) तेरा (अपानः) अपान [बाहिर आने वाला श्वास] (मो अपि धायि) न रुक जावे । (अधिपति.) प्रभु (सूर्य) सर्वप्रेरक परमेश्वर (त्वा) तुझको (मृत्यो·) मृत्यु से (रश्मिभि·) अपनी व्याप्तियों द्वारा (उदायच्छतु) उठावे ॥१५॥

इयमन्तर्वदति जिह्वा बद्धा पनिष्पदा ।

त्वया यक्ष्मं निरवोचं शतं रोपीश्च तक्मनः ॥१६॥

पदार्थ—(अन्त) [मुख के] भीतर (बद्धा) बधी हुई, (पनिष्पदा) थरथराकर चलती हुई (इयम्) यह (जिह्वा) जीभ (वदति) बोलती रहती है । (त्वया) तेरे साथ वर्त्तमान (यक्ष्मम) राज रोग (च) और (तक्मन·) ज्वर की (शतम्) सौ (रोपी) पीड़ाओ को (नि = निः सार्य) निकाल कर (अवोचम्) मैने वचन कहा है ॥१६॥

अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः ।

यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः पुरुष जज्ञिषे ।

स च त्वानु ह्वयामसि मा पुरा जरसो मृथाः ॥१७॥

पदार्थ—(अयम्) यह (लोकः) ससार, (देवानाम्) विद्वानो का (अपराजित.) न जीता हुआ, (प्रियतम) अति प्रिय है । (यस्मै) जिस [लोक] के लिये (इह) यहाँ पर (मृत्यवे) मृत्यु नाश करने को (दिष्ट.) ठहराया हुआ (त्वम्) तू, (पुरुष) हे पुरुष ! (जज्ञिषे) प्रकट हुआ है । (स) वह [लोक] (च) और हम (त्वा) तुझको (अनु ह्वयामसि) बुला रहे हैं । (जरसः) बुढापे से (पुरा) पहिले (मा मृथाः) मत मर ॥१७॥

卐 सूक्तम् ३१ 卐

१—१२ शुक्र· । कृत्यादूषणम् । अनुष्टुप, ११ बृहतीगर्भा, १२ पथ्याबृहती ।

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्मिश्रधान्ये ।

आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥१॥

पदार्थ— [हे राजन्] (याम्) जिस [हिंसा] को (ते) तेरे (आमे) भोजन मे वा (पात्रे) पानी मे (चक्रु) उन्होने [हिंसको ने] किया है, (याम्) जिसको [तेरे] (मिश्रधान्ये) इकट्ठे किये धान्य मे (चक्रु·) उन्होंने किया है । (याम्) जिस (कृत्याम्) हिंसा को [तेरे] (आमे) चलने मे वा (मांसे) ज्ञान वा काल वा मांस मे (चक्रु) उन्होने किया है, (ताम्) उसको (पुन) अवश्य मैं (प्रति) उलटा (हरामि) मिटाता हूँ ॥१॥

यां ते चक्रुः कृकवाकावजे वा यां कुरीरिणि ।

अव्यां ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥२॥

पदार्थ —(याम) जिस [हिंसा] को (ते) तेरे (कृकवाकौ) गले से बोलने वाले कुक्कुट वा मोर पर (वा) अथवा (याम्) जिसको (कुरीरिणि) केश वाले (अजे) बकरे पर (चक्रु) उन्होने [शत्रुओ ने] किया है वा (याम्) जिस (कृत्याम्) हिंसा को (ते) तेरी (अव्याम्) भेडी पर (चक्रुः) उन्होने किया है, (ताम्) उसको (पुन) अवश्य मैं (प्रति) उलटा (हरामि) मिटाता हूँ ॥२॥

यां ते चक्रुरेकशफे पशूनामुभयादति ।

गर्दभे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥३॥

पदार्थ — (याम्) जिस [हिंसा] को (ते) तेरे (पशूनाम्) पशुओं के मध्य (एकशफे) एक खुर वाले और (उभयादति) दोनो ओर दांत वाले [अश्व आदि] पर (चक्रुः) उन्होने किया है । (याम्) जिस (कृत्याम्) हिंसा को (गर्दभे) गधे पर (चक्रु) उन्होने किया है, (ताम्) उसको (पुनः) अवश्य मैं (प्रति) उलटा (हरामि) मिटाता हूँ ॥३॥

यां ते चक्रुरमूलायां वलगं वा नराच्याम् ।

क्षेत्रे ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥४॥

पदार्थ—(याम्) जिस [हिंसा] को (बलगम्) गुप्त कर्म से (ते) तेरे (अमूलायाम्) प्राप्ति योग्य (वा) अथवा (नराच्याम्) मनुष्यों से सत्कार योग्य [ओषधि] में (चक्रुः) उन्होंने किया है । अथवा (याम्) जिस (कृत्याम्) हिंसा को (ते) तेरे (क्षेत्रे) ऐश्वर्य के हेतु खेत में (चक्रुः) उन्होंने किया है, (ताम्) उसको (पुनः) अवश्य मैं (प्रति) उलटा (हरामि) मिटाता हूँ ॥४॥

यां ते चक्रुर्गार्हपत्ये पूर्वाग्नावुत दुश्चितः ।

शालायां कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥५॥

पदार्थ—(याम्) जिस [हिंसा] को (दुश्चितः) बुरा चीतने वालों ने (ते) तेरे (गार्हपत्ये) गृहस्थ काम में (उत) और (पूर्वाग्नौ) निवास के हेतु अग्नि आदि में (चक्रुः) किया है । अथवा (शालायाम्) शाला में (याम्) जिस (कृत्याम्) हिंसा को (चक्रुः) उन्होंने किया है, (ताम्) उसको (पुनः) अवश्य मैं (प्रति) उलटा (हरामि) मिटाता हूँ ॥५॥

यां ते चक्रुः सभायां यां चक्रुरधिदेवने ।

अक्षेषु कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥६॥

पदार्थ—(याम्) जिस [हिंसा] को (ते) तेरी (सभायाम्) सभा में (चक्रुः) उन्होंने [शत्रुओं ने] किया है, और (याम्) जिसको तेरे (अधिदेवने) क्रीडा स्थान उपवन आदि में (चक्रुः) उन्होंने किया है । (याम्) जिस (कृत्याम्) हिंसा को (अक्षेषु) व्यवहारों में (चक्रुः) उन्होंने किया है, (ताम्) उसको (पुनः) अवश्य मैं (प्रति) उलटा (हरामि) मिटाता हूँ ॥६॥

यां ते चक्रुः सेनायां यां चक्रुरिष्वायुधे ।

दुन्दुभौ कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥७॥

पदार्थ—(याम्) जिस [हिंसा] को (ते) तेरी (सेनायाम्) सेना में (चक्रुः) उन [शत्रुओं] ने किया है, और (याम्) जिसको तेरे (इष्वायुधे) बाण आदि शस्त्रों में (चक्रुः) उन्होंने किया है । (याम्) जिस (कृत्याम्) हिंसा को तेरी (दुन्दुभौ) दुन्दुभि में (चक्रुः) उन्होंने किया है, (ताम्) उसको (पुनः) अवश्य मैं (प्रति) उलटा (हरामि) मिटाता हूँ ॥७॥

यां ते कृत्यां कूपेऽवदधुः श्मशाने वा निचख्नुः ।

सद्मनि कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥८॥

पदार्थ—(याम्) जिस (कृत्याम्) हिंसा को (ते) तेरे (कूपे) कुएं में (अवदधुः) उन [शत्रुओं] ने कर दिया है, (वा) अथवा (श्मशाने) मरघट में (निचख्नुः) उन्होंने खोद कर रक्खा है । (याम्) जिस (कृत्याम्) हिंसा को (सद्मनि) तेरे घर में (चक्रुः) उन्होंने किया है, (ताम्) उसको (पुनः) अवश्य मैं (प्रति) उलटा करके (हरामि) मिटाता हूँ ॥८॥

यां ते चक्रुः पुरुषास्थे अग्नौ संकसुके च याम् ।

म्रोकं निर्दाहं क्रव्यादं पुनः प्रति हरामि ताम् ॥९॥

पदार्थ—(याम्) जिस [हिंसा] को (ते) तेरे (पुरुषास्थे) पुरुषों की हड्डी में (च) और (याम्) जिसको (संकसुके) भभकती (अग्नौ) आग में (चक्रुः) उन [शत्रुओं] ने किया है, (ताम्) उसको (म्रोकम्) चोर समान भयानक (क्रव्यादम्) मांस खाने वाले (निर्दाहम् प्रति) जला देने वाली अग्नि में (पुनः) अवश्य (हरामि) मैं नाश करता हूँ ॥९॥

अपथेना जभारैणां तां पथेतः प्र हिण्मसि ।

अधीरो मर्याधीरेभ्यः सं जभाराचित्त्या ॥१०॥

पदार्थ—(अपथेन) कुमार्ग से (एनाम्) इस [हिंसा] को (आ जभार) वह लाया था, (ताम्) उसको (पथा) सुमार्ग से (इतः) इस स्थान से (प्र हिण्मसि) हम निकालते हैं । (अधीरः) वह अधीर [शत्रु] (मर्याधीरेभ्यः) मर्यादा धारण करने वाले पुरुषों के लिये (अचित्त्या) अपने अज्ञान से [उस] हिंसा को (सम् जभार) लाया था ॥१०॥

यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम् ।

चकार भद्रमस्मभ्यमभगो भगवद्भ्यः ॥११॥

पदार्थ—(यः) जिस [दुष्ट] ने (कर्तुम्) हिंसा को (चकार) किया था, वह (न शशाक) समर्थ न था । उसने (पादम्) अपना पैर और (अङ्गुरिम्) अंगुली (शश्रे) तोड़ डाली । उस (अभगः) अभागे पुरुष ने (अस्मभ्यम्) हम (भगवद्भ्यः) ऐश्वर्यवालों को (भद्रम्) आनन्द (चकार) किया ॥११॥

कृत्याकृतं वलगिनं मूलिनं शपथेय्यम् ।

इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेनाग्निर्विध्यत्वस्तया ॥१२॥

पदार्थ—(इन्द्रः) प्रतापी राजा (वलगिनम्) गुप्त काम करने वाले (मूलिनम्) जड़ पकड़ने वाले, (शपथेय्यम्) कुवचन बोलने वालों के प्रधान, (कृत्याकृतम्) हिंसा करने वाले शत्रु को (महता) अपने बड़े (वधेन) वज्र से (हन्तु) मारे और (अग्निः) वही ज्ञानी राजा (अस्तया) अपने अस्त्र से (तम्) उस वैरी को (विध्यतु) बध डाले ॥१२॥

卐 इति षष्ठोऽनुवाकः 卐

इति पञ्चमं काण्डम् समाप्तम् ॥

卐

षष्ठं काण्डम्

प्रथमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् १ 卐

१—३ अथर्वा । सविता । उष्णिक्, १ त्रिपदापिपीलिकमध्या साम्नी जगती, २—३ पिपीलिकमध्या पुर उष्णिक् ।

दोषो गाय बृहद् गाय द्युमद्धेहि ।

आथर्वण स्तुहि देवं सवितारम् ॥१॥

पदार्थ—(आथर्वण) हे निश्चल ब्रह्म के जानने वाले महर्षि ! (देवम्) प्रकाश स्वरूप (सवितारम्) सब के प्रेरक परमात्मा को (दोषो) रात्रि में भी (गाय) गा, (बृहत्) विशाल रूप से (गाय) गा, (द्युमत्) स्पष्ट रीति से (धेहि) धारण कर और (स्तुहि) बड़ाई कर ॥१॥

तमु ष्टुहि यो अन्तः सिन्धौ सूनुः ।

सत्यस्य युवानमद्रोघवाचं सुशेवम् ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (सत्यस्य) सत्य का (सूनुः) प्रेरक परमात्मा (सिन्धौ अन्तः) समुद्र [हृदय आदि गहरे स्थान] के भीतर है, (तम् उ) उस ही (युवानम्) संयोग-वियोग करने वाले, अथवा महाबली, (अद्रोघवाचम्) द्रोहरहित वाणी वाले, (सुशेवम्) अत्यन्त सुख देने वाले परमेश्वर की (स्तुहि) स्तुति कर ॥२॥

स घा नो देवः सविता साविषदमृतानि भूरि ।

उभे सुष्टुती सुगातवे ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह (घ) ही (देवः) प्रकाशस्वरूप (सविता) सर्वप्रेरक परमेश्वर (उभे) दोनों [प्रातः सायकालीन] (सुष्टुती) सुन्दर स्तुतियों को (सुगातवे) अच्छे प्रकार गाने के लिए (नः) हमें (भूरि) बहुत से (अमृतानि) अक्षय सुख (साविषत्) देता रहे ॥३॥

卐 सूक्तम् २ 卐

१—३ अथर्वा । सविता, उष्णिक्, १ त्रिपदापिपीलिकमध्या साम्नी जगती, २—३ पिपीलिकमध्या पुर उष्णिक् ।

इन्द्राय सोममृत्विजः सुनोता च धावत ।

स्तोतुर्यो वचः शृणवद्धवं च मे ॥१॥

पदार्थ—(ऋत्विजः) हे ऋतु ऋतुओं में यज्ञ करने वाले पुरुषो ! (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य वाले परमात्मा के लिए (सोमम्) अमृत रस [तत्त्वज्ञान] (सुनोत) निचोड़ो (च) और (आ) अच्छे प्रकार (धावत) शोधो । (यः) जो परमेश्वर (स्तोतुः) स्तुति करने वाले (मे) मेरे (वचः) वचन (च) और (हवम्) पुकार को (शृणवत्) सुने ॥१॥

आ यं विशन्तीन्दवो वयो न वृक्षमन्धसः ।

विरप्शिन् वि मृधो जहि रक्षस्विनीः ॥२॥

पदार्थ—(यम्) जिसमे (इन्दवः) अमृत रस वा ऐश्वर्य (आ) आकर (विशन्ति) प्रवेश करते हैं, (न) जैसे (वय.) पक्षी (अन्धसः) अन्न के (वृक्षम्) वृक्ष म [वह तू] (विरप्शिन्) हे महागुणी परमेश्वर ! (रक्षस्विनी) राक्षसो [विघ्नो] से युक्त (मृध·) हिंसाकारिणी सेनाओ [कुवासनाओ] को (वि) विविध प्रकार से (जहि) नाश कर ॥२॥

सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे ।

युवा जेतेशानः स पुरुष्टुतः ॥३॥

पदार्थ—[हे विद्वानो] (सोमपाव्ने) ऐश्वर्य की रक्षा करने वाले, (वज्रिणे) वज्र वाले (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (सोमम्) अमृत रस (सुनोत) निचोड़ो । (स.) वह (युवा) सयोग वियोग करने वाला वा महाबली, (जेता) विजयी (ईशान) ईश्वर (पुरुष्टुत) सबसे स्तुति किया गया है ॥३॥

卐 सूक्तम् ३ 卐

१—३ अथर्वा । १ इन्द्रापूषणौ, अदिति, मरुत, अपांनपात्, सिन्धव, विष्णु, द्यौ, २ द्यावापृथिवी, ग्रावा, सोम, सरस्वती, अग्नि, ३ अश्विनौ, उषासानक्ता, अपांनपात्, त्वष्टा । जगती, १ पथ्याबृहती ।

पातं न इन्द्रापूषणादितिः पान्तु मरुतः ।

अपां नपात् सिन्धवः सप्त पातन पातु नो विष्णुरुत द्यौः ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रापूषणा) हे बिजुली और वायु (नः) हमे (पातम्) बचाओ । (अदितिः) अदीन प्रकृति और (मरुतः) विद्वान् लोग (पान्तु) बचावें । (अपाम्) हे जीवों के (नपात्) न गिराने वाले, अग्नि [शरीर बल] और (सप्त) हे नित्य सम्बन्ध वाले वा सात (सिन्धव.) गतिशील [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] (पातन) बचाओ । (विष्णु) सर्वव्यापक परमेश्वर (उत) और (द्यौः) प्रकाशमान बुद्धि (नः) हमे (पातु) बचावे ॥१॥

पातां नो द्यावापृथिवी अभिष्टये पातु ग्रावा पातु सोमो नो अंहसः ।

पातु नो देवी सुभगा सरस्वती पात्वग्निः शिवा ये अस्य पायवः ॥२॥

पदार्थ—(द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी (नः) हमे (अभिष्टये) अभीष्ट सिद्धि के लिए (पाताम्) बचावें । (ग्रावा) मेघ (नः) हमे (अंहस·) कष्ट से (पातु) बचावे और (सोम) जल (पातु) बचावे । (देवी) व्यवहार वाली, (सुभगा) सुन्दर ऐश्वर्य देने वाली (सरस्वती) विज्ञानवाली वेदविद्या (नः) हमे (पातु) बचावे, (अग्नि) अग्निविद्या (पातु) बचावे और (ये) जो (अस्य) इसके (शिवा) सुखदायक (पायव) रक्षक गुण है [वे भी बचावें] ॥२॥

पातां नो देवाश्विना शुभस्पती उषासानक्तोत न उरुष्यताम् ।

अपां नपादभिह्रुती गयस्य चिद् देव त्वष्टर्वर्धय सर्वतातये ॥३॥

पदार्थ—(देवा) व्यवहार मे चतुर, (शुभ) शुभ कर्म के (पती) पालन करने हारे (अश्विना) कर्मों मे व्याप्ति वाले माता पिता (नः) हमे (पाताम्) बचावें, (उत) और (उषासानक्ता) दिन और रात (नः) हम (उरुष्यताम्) बचावें । (अपाम्) हे जीवो के (नपात्) न गिराने वाले (देव) प्रकाशमान (त्वष्टः) विश्वकर्मा परमेश्वर ! (अभिह्रुती) कुटिल दशा मे वर्तमान (गयस्य) घर के (सर्वतातये) सम्पूर्ण सुख के लिये [हमें] (चित्) अवश्य (वर्धय) बढ़ा ॥३॥

卐 सूक्तम् ४ 卐

१—३ अथर्वा । १ त्वष्टा पर्जन्य, ब्रह्मणस्पति, अदिति, अंश, भग, मित्र, वरुण, मित्र अर्यमा, अदितिः, मरुतः, ३ अश्विनौ, द्यौष्पिता । पथ्याबृहती, २ प्रस्तारपङ्क्ति, ३ त्रिपदा विराड्गायत्री ।

त्वष्टा मे दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।

पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रायमाणं सहः ॥१॥

पदार्थ—(त्वष्टा) सबका बनाने वाला, (पर्जन्य) सींचने वाला (ब्रह्मण.) ब्रह्माण्ड का (पति.) रक्षक, (अदिति.) अविनाशी परमेश्वर (पुत्रै) पुत्रो और (भ्रातृभिः) भ्राताओ के सहित (मे) मेरे (दैव्यम्) देवताओ के हितकारक (वच) वचन को और (न.) हमारे (दुस्तरम्) अजेय, (त्रायमाणम्) रक्षा करने वाले (सहः) बल को (नु) शीघ्र (पातु) रक्षा करे ॥१॥

अंशो भगो वरुणो मित्रो अर्यमादितिः पान्तु मरुतः ।

अप तस्य द्वेषो गमेदभिह्रुतो यावयच्छत्रुमन्तितम् ॥२॥

पदार्थ—(अंशः) विभाग करने वाला, (भग) सेवन योग्य (वरुणः) अपान वायु, (मित्रः) प्राण वायु, (अर्यमा) अन्धकार नाशक सूर्य, और (अदितिः) अदीन भूमि (मरुत) शूर देवताओं की (पान्तु) रक्षा करें । वे (अभिह्रुतः) कुटिलताशील (तस्य) हिंसक चोर की (द्वेष.) दुष्टता को (अप गमेत् = गमयेयु·) हटा देवें और (अन्तितम्) बन्ध में डालने वाला (शत्रुम्) शत्रु को (यवयत् = यवयेयुः) पृथक् करें ॥२॥

धिये समश्विना प्रावत न उरुष्या ण उरुज्मन्नप्रयुच्छन् ।

द्यौ३ष्पितर्यावय दुच्छुना या ॥३॥

पदार्थ—(अश्विना) हे सब कामो में व्यापक रहने वाले माता पिता ! (धिये) सत् कर्म या सत् बुद्धि के लिए (नः) हमारी (सम्) मिल कर (प्र) अच्छे प्रकार (अवतम्) रक्षा करो । (उरुज्मन्) हे विस्तीर्ण गति वाले परमात्मन् ! (अप्रयुच्छन्) चूक न करता हुआ तू (न.) हमारी (उरुष्य) रक्षा कर । (द्यौः) हे प्रकाशमान (पितः) पिता परमेश्वर ! (या) जो (दुच्छुना) दुर्मति है [उसको] (यवय) तू हटा दे ॥३॥

卐 सूक्तम् ५ 卐

१—३ अथर्वा । १ अग्नि, २ इन्द्र ३ अग्नि, सोम, ब्रह्मणस्पति, अनुष्टुप्, २ भुरिक् ।

उदेनमुत्तरं नयाग्ने घृतेनाहुत ।

समेनं वर्चसा सृज प्रजया च बहुं कृधि ॥१॥

पदार्थ—(घृतेन) घृत से (आहुत) आहुति पाये हुए (अग्ने) हे अग्नि के समान तेजस्वी परमेश्वर ! (एनम्) इस पुरुष को (उत्तरम्) अधिक ऊँचा (उत् नय) उठा । (एनम्) इस को (वर्चसा) तेज से (सम् सृज) सयुक्त कर, (च) और (प्रजया) प्रजा मे (बहुम्) प्रबुद्ध (कृधि) कर ॥१॥

इन्द्रेमं प्रतरं कृधि सजातानामसद् वशी ।

रायस्पोषेण सं सृज जीवातवे जरसे नय ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर ! (इमम्) इस पुरुष को (प्रतरम्) अधिक ऊचा (कृधि) कर, यह (सजातानाम्) समान जन्म वाले बन्धुओ का (वशी) वश मे रखने वाला अधिष्ठाता (असत्) होवे । (राय) धन की (पोषेण) पुष्टि से (सम् सृज) सयुक्त कर और (जीवातवे) बड़े जीवन के लिए और (जरसे) स्तुति के लिये (नय) आगे बढ़ा ॥२॥

यस्य कृण्मो हविर्गृहे तमग्ने वर्धया त्वम् ।

तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥३॥

पदार्थ—(यस्य) जिस पुरुष के (गृहे) घर मे (हवि) देने और लेने योग्य व्यवहार (कृण्म) हम करते हैं, (तम्) उसको (अग्ने) हे सर्वव्यापक परमेश्वर (त्वम्) तू (वर्धय) बढ़ा । (तस्मै) उसी पुरुष के लिये (अयम्) यह (सोम) ऐश्वर्यवान् (च) और (ब्रह्मण) वेद विद्या का (पति) रक्षक पुरुष (अधि) अधिक (ब्रवत्) कथन करे ॥३॥

卐 सूक्तम् ६ 卐

१—३ अथर्वा । सोमः, अदिति, ३ देवा । गायत्री, १ निचृत् ।

योऽस्मान् ब्रह्मणस्पतेऽदेवो अभिमन्यते ।

सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते ॥१॥

पदार्थ—(ब्रह्मणः पते) हे ब्रह्माण्ड के रक्षक ! (यः) जो (अदेवः) नास्तिक वा कुव्यवहारी पुरुष (अस्मान्) हम से (अभिमन्यते) अभिमान करता है, (तम्) उस (सर्वम्) सब को (सुन्वते) तत्त्व मथन करने वाले, (यजमानाय) विद्वानो का आदर करने वाले (मे) मेरे लिये (रन्धयासि) वश में कर ॥१॥

यो नः सोम सुशंसिनो दुःशंस आदिदेशति ।

वज्रेणास्य मुखे जहि स संपिष्टो अपायति ॥२॥

पदार्थ—(सोम) हे बड़े ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर ! (यः) जो (दुःशंसः) अति दुर्गति वाला शत्रु (सुशंसिनः) बड़ी स्तुति वाले (नः) हम लोगों पर (आदिदेशति) आदेश वा आज्ञा करे । (अस्य) उसके (मुखे) मुख पर (वज्रेण) वज्र से

(जहि) ताड़ना कर। (सः) वह (सपिष्टः) चूर-चूर होकर (अप अयति) भाग जावे ॥२॥

यो नः सोमाभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः ।

अप तस्य बलं तिर महीव द्यौर्वधत्मना ॥३॥

पदार्थ—(सोम) हे परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर ! (यः) जो कोई (सनाभिः) अपना सपिण्डी (च) और (यः) जो कोई (निष्ट्यः) म्लेच्छ (नः) हमे (अभिदासति) सताता है, (तस्य) उसके (बलम्) बल को (वधत्मना) अपने वध रूप स्वभाव से (अप तिर) गिरा दे, (इव) जैसे (मही) बड़ा (द्यौः) प्रकाशवान सूर्य [अन्धकार को] ॥३॥

सूक्तम् ७

१—३ अथर्वा । सोम , अदितिः, ३ देवाः । गायत्री, निचृत्

येन सोमादितिः पथा मित्रा वा यन्त्यद्रुहः ।

तेना नोऽवसा गहि ॥१॥

पदार्थ—(सोम) हे बड़े ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर ! (येन पथा) जिस मार्ग से (अदितिः) अदीन पृथिवी (वा) और (मित्राः) प्रेरणा करने हारे सूर्य आदि लोक (अद्रुहः) द्रोह रहित होकर (यन्ति) चलते हैं। (तेन) उसी से (अवसा) रक्षा के साथ (नः) हमे (आ गहि) आकर प्राप्त हो ॥१॥

येन सोम साहन्त्यासुरान् रन्धयासि नः ।

तेना नो अधि वोचत ॥२॥

पदार्थ—(साहन्त्य) हे विजयी शूरो मे रहने वाले (सोम) बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन् ! (येन) जिस [मार्ग] से (असुरान्) असुरो को (नः) हमारे लिये (रन्धयासि) तू वश में करे (तेन) उसीसे (नः) हमारे लिये (अधि) अनुग्रह से (वोचत = अवोचत) आपने कथन किया है ॥२॥

येन देवा असुराणामोजांस्यवृणीध्वम् ।

तेना नः शर्म यच्छत ॥३॥

पदार्थ—(देवाः) हे विजयी देवताओ ! (येन) जिस [मार्ग] से (असुराणाम्) असुरो के (ओजांसि) बलो को (अवृणीध्वम्) तुम ने रोका है, (तेन) उसी से (नः) हमें (शर्म) सुख (यच्छत) दान करो ॥३॥

सूक्तम् ८

१—३ जमदग्नि । कामात्मा, २ सुपर्ण , ३ द्यावापृथिवी, सूर्यः । पथ्यापङ्क्तिः ।

यथा वृक्षं लिबुजा समन्तं परिषस्वजे । एवा परि ष्वजस्व

मां यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥१॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (लिबुजा) बढ़ाने वाले आश्रय के साथ उत्पन्न होने वाली, बेल (वृक्षम्) वृक्ष को (समन्तम्) सब ओर से (परिषस्वजे - परिष्वजते) लिपट जाती है। (एव) वैसे ही [हे विद्या] (माम्) मुझ से (परिष्वजस्व) तू लिपट जा, (यथा) जिस से तू (माम् कामिनी) मेरी कामना करने वाली (असः) होवे, और (यथा) जिस से तू (मत्) मुझ से (अपगा) बिछुड़ने वाली (न) न (असः) होवे ॥१॥

यथा सुपर्णः प्रपतन् पक्षौ निहन्ति भूम्याम् । एवा नि हन्मि

ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥२॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (प्रपतन्) उड़ता हुआ (सुपर्णः) शीघ्रगामी पक्षी (पक्षौ) दोनों पंखों को (भूम्याम्) भूमि पर (निहन्ति) जमा देता है। (एव) वैसे ही (ते) तेरे लिये (मनः) अपना मन (नि हन्मि) मैं जमाता हूँ (यथा) जिस से तू (माम् कामिनी) मेरी कामना करने वाली (असः) होवे, और (यथा) जिस से तू (मत्) मुझ से (अपगा) बिछुड़ने वाली (न) न (असः) होवे ॥२॥

यथेमे द्यावापृथिवी सद्यः पर्येति सूर्यः । एवा पर्येमि ते

मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥३॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (इमे) इन (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि मे (सूर्यः) लोकों का चलाने वाला सूर्य (सद्यः) शीघ्र (पर्येति) व्याप जाता है। (एव) वैसे ही (ते) तेरे लिये (मनः) अपना मन (परि एमि) मैं व्यापक करता हूँ (यथा) जिस से तू (माम कामिनी) मेरी कामना करने वाली (असः) होवे, और (यथा) जिस से तू (मत्) मुझ से (अपगा) बिछुड़ने वाली (न) न (असः) होवे ॥३॥

सूक्तम् ९

१—३ जमदग्निः । कामात्मा, ३ गावः । अनुष्टुप् ।

वाञ्छ मे तन्वं पादौ वाञ्छाक्ष्यौ३ वाञ्छ सक्थ्यौ ।

अक्ष्यौ वृषण्यन्त्याः केशा मां ते कामेन शुष्यन्तु ॥१॥

पदार्थ—(मे) मेरे (तन्वम्) शरीर की और (पादौ) दोनों पैरो की (वाञ्छ) कामना कर, (अक्ष्यौ) दोनो नेत्रो की (वाञ्छ) कामनाकर, (सक्थ्यौ) दोनो जंघाओ की (वाञ्छ) कामना कर। (वृषण्यन्त्याः) ऐश्वर्यवान् पुरुष की इच्छा करती हुई (ते) तेरी (अक्ष्यौ) दोनो आँखें और (केशाः) केश (कामेन) सुन्दर कामना से (माम्) मुझ को (शुष्यन्तु) सुखावें ॥१॥

मम त्वा दोषणिश्रिषं कृणोमि हृदयश्रिषम् ।

यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥२॥

पदार्थ—(त्वा) तुझको (मम) अपने (दोषणिश्रिषम्) भुजा पर आश्रय वाली और (हृदयश्रिषम्) हृदय में आश्रय वाली (कृणोमि) मैं करता हूँ। (यथा) जिससे (मम) मेरे (क्रतौ) कर्म वा बुद्धि मे (असः) तू रहे, (मम) मेरे (चित्तम्) चित्त मे (उपायसि) तू पहुँचती है ॥२॥

यासां नाभिरारेहणं हृदि संवननं कृतम् ।

गावो घृतस्य मातरोऽमूं सं वानयन्तु मे ॥३॥

पदार्थ—(यासाम्) जिन [स्त्रियो] के (हृदि) हृदय मे (नाभिः) स्नेह, (आरेहणम्) प्रशंसा और (संवननम्) भक्ति (कृतम्) की गई है, (घृतस्य) घृत की (मातरः) बनाने वाली (गावः) गौएं (अमूम्) उस [पत्नी] को (मे) मेरे लिये (सम्) यथावत् (वानयन्तु) सेवन करें ॥३॥

सूक्तम् १०

१—३ शन्तातिः । १ पृथिवी, श्रोत्र, वनस्पतिः, अग्निः, प्राणः, अन्तरिक्षं, वयः, वायुः, द्यौः, चक्षुः, नक्षत्राणि, सूर्यः । दैवतम्, १ साम्नी त्रिष्टुप्, २ प्राजापत्या बृहती, ३ साम्नी बृहती ।

पृथिव्यै श्रोत्राय वनस्पतिभ्योऽग्नयेऽधिपतये स्वाहा ॥१॥

पदार्थ—(श्रोत्राय) श्रवण शक्ति के लिये (पृथिव्यै) पृथिवी को, और (वनस्पतिभ्यः) सेवा करने वालो के रक्षको वृक्ष आदिको के लिये (अधिपतये) [पृथिवी के] बड़े रक्षक (अग्नये) अग्नि को (स्वाहा) सुन्दर स्तुति है ॥१॥

प्राणायान्तरिक्षाय वयोभ्यो वायवेऽधिपतये स्वाहा ॥२॥

पदार्थ—(प्राणाय) प्राण के लिये (अन्तरिक्षाय) अन्तरिक्ष लोक को, और (वयोभ्यः) अन्न आदि पदार्थों के लिये (अधिपतये) [अंतरिक्ष के] बड़े रक्षक (वायवे) वायु को (स्वाहा) सुन्दर स्तुति है ॥२॥

दिवे चक्षुषे नक्षत्रेभ्यः सूर्यायाधिपतये स्वाहा ॥३॥

पदार्थ—(चक्षुषे) दृष्टि शक्ति के लिये (दिवे) प्रकाश को, और (नक्षत्रेभ्यः) नक्षत्रो के लिये (अधिपतये) [प्रकाश के] बड़े रक्षक (सूर्याय), सूर्य को (स्वाहा) सुन्दर स्तुति है ॥३॥

इति प्रथमोऽनुवाकः

卐

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ११

१—३ प्रजापतिः । रेतः, ३ प्रजापतिः, अनुमतिः, सिनीवाली । अनुष्टुप् ।

शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसुवनं कृतम् ।

तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रीष्वा भरामसि ॥१॥

पदार्थ—(अश्वत्थः) बलवानो में ठहरने वाला पुरुष (शमीम्) शान्तस्वभाव स्त्री के प्रति (आरूढः) आरूढ़ ही चुका है, (तत्र) उस काल में (पुंसुवनम्) सन्तान का उत्पत्ति कर्म (कृतम्) किया जाता है। (तत्) वह कर्म (वै) ही (पुत्रस्य) कुलशोधक संतान की (वेदनम्) प्राप्ति का कारण है (तत्) उस कर्म को (स्त्रीषु) स्त्रियों में (आ भरामसि) हम पहुँचाते हैं ॥१॥

पुंसि वै रेतो भवति तत् स्त्रियामनु षिच्यते ।

तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् प्रजापतिरब्रवीत् ॥२॥

पदार्थ—(**पुंसि**) रक्षा स्वभाव पुरुष मे (**वै**) ही (**रेत**) वीर्य (**भवति**) होता है, (**तत्**) वह वीर्य (**स्त्रियाम**) स्त्री मे (**अनु**) अनुकूल विधि से (**सिच्यते**) सींचा जाता है। (**तत्**) वह कर्म (**वै**) ही (**पुत्रस्य**) कुलशोधक सतान की (**वेदनम्**) प्राप्ति का कारण है (**तत्**) वही (**प्रजापति**) प्रजाओ के रक्षक ईश्वर ने (**अब्रवीत्**) बताया है ॥२॥

प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्यचीकॢपत् ।

स्त्रैषूयमन्यत्र दधत् पुमांसमु दधदिह ॥३॥

पदार्थ—(**अनुमति.**) अनुकूल बुद्धि वाली, (**सिनीवाली**) अन्नवाली (**प्रजापति**) प्रजापालक शक्ति परमेश्वर ने (**अचीकॢपत्**) यह शक्ति दी है। (**अन्यत्र**) दूसरे प्रकार मे [स्त्री का रज अधिक होने मे] (**स्त्रैषूयम**) स्त्री जन्म सम्बन्धी क्रिया (**दधत् दधते**) वह [ईश्वर] धारण करता है और (**इह**) इसमे [पुरुष का वीर्य अधिक होने पर] (**उ**) निश्चय करके (**पुमासम**) बलवान् सतान को (**दधत्**) वह स्थापित करता है ॥३॥

卐 **सूक्तम् १२** 卐

१—३ गरुत्मान् । तक्षक । अनुष्टुप् ।

परि द्यामिव सूर्योऽहीनां जनिमागमम् ।

रात्री जगदिवान्यद्धंसात् तेना ते वारये विषम् ॥१॥

पदार्थ—(**सूर्य**) सूर्य (**इव**) जैसे (**द्याम्**) आकाश को, [वैसे ही] (**अहीनाम**) सर्पों [सर्प समान दापो] के (**जनिम्**) जन्म को (**परि**) सब ओर से (**अगमम्**) मैंने जान लिया है। (**रात्री इव**) जैसे रात्रि (**हंसात्**) सूर्य से (**अन्यत्**) अन्य (**जगत्**) जगत् को [ढक लेती है], (**तेन**) उसी प्रकार से ही [हे मनुष्य] (**ते**) तेरे (**विषम्**) विष को (**वारये**) मैं हटाता हूँ ॥१॥

यद् ब्रह्मभिर्यदृषिभिर्यद् देवैर्विदितं पुरा ।

यद् भूतं भव्यमासन्वत् तेना ते वारये विषम् ॥२॥

पदार्थ—(**यत्**) जो [ज्ञान] (**ब्रह्मभि**) वेद जानने वाले ब्राह्मणो करके (**यत्**) जो (**ऋषिभि**) सन्मार्गदर्शक ऋषियो करके और (**यत्**) जो (**देवै**) व्यवहार कुशल महात्माओ करके (**पुरा**) पूर्व काल मे (**विदितम्**) जाना गया है। और (**यत**) जो (**भूतम्**) भूत काल मे और (**भव्यम्**) भविष्यत् काल मे (**आसन्वत्**) व्याप्ति वाला है, (**तेन**) उसी से [हे जीव !] (**ते**) तेरे (**विषम्**) विष को (**वारये**) मैं हटाता हूँ ॥२॥

मध्वा पृञ्चे नद्यः पर्वता गिरयो मधु ।

मधु परुष्णी शीपाला शमास्ने अस्तु शं हृदे ॥३॥

पदार्थ—(**मध्वा**) अमृत से [तुझ को] (**पृञ्चे**) मैं संयुक्त करता हूँ। (**नद्य**) नदियां, (**पर्वता**) पर्वत और (**गिरय**) छोटे पहाड़ (**मधु**) अमृत [होवें]। (**परुष्णी**) पालन सामर्थ्य वाली, (**शीपाला**) निद्रा लाने वाली ओषधि (**मधु**) अमृत [होवे], (**आस्ने**) तेरे मुख के लिये (**शम्**) शान्ति और (**हृदे**) हृदय के लिये (**शम्**) शान्ति (**अस्तु**) होवे ॥३॥

卐 **सूक्तम् १३** 卐

१—३ अथर्वा (स्वस्त्ययनकाम) । मृत्यु. । अनुष्टुप् ।

नमो देववधेभ्यो नमो राजवधेभ्यः ।

अथो ये विश्यानां वधास्तेभ्यो मृत्यो नमोऽस्तु ते ॥१॥

पदार्थ—(**देववधेभ्य**) ब्राह्मणो के शस्त्रो को (**नम**) नमस्कार और (**राजवधेभ्य**) क्षत्रियो के शस्त्रो को (**नम**) नमस्कार है। (**अथो**) और भी (**ये**) जो (**विश्यानाम्**) वैश्यो के (**वधा**) शस्त्र हैं (**तेभ्य**) उनको, और (**मृत्यो**) हे मृत्यु ! (**ते**) तुझ को (**नम**) नमस्कार (**अस्तु**) होवे ॥१॥

नमस्ते अधिवाकाय परावाकाय ते नमः ।

सुमत्यै मृत्यो ते नमो दुर्मत्यै त इदं नमः ॥२॥

पदार्थ—(**ते**) तेरे (**अधिवाकाय**) अनुग्रह वचन को (**नम**) नमस्कार और (**ते**) तेरे (**परावाकाय**) पराजय वचन को (**नम**) नमस्कार है। (**मृत्यो**) हे मृत्यु ! (**ते**) तेरी (**सुमत्यै**) सुमति को (**नम**) नमस्कार है और (**ते**) तेरी (**दुर्मत्यै**) दुर्मति को (**इदम्**) यह (**नम**) नमस्कार है ॥२॥

नमस्ते यातुधानेभ्यो नमस्ते भेषजेभ्यः ।

नमस्ते मृत्यो मूलेभ्यो ब्राह्मणेभ्य इदं नमः ॥३॥

पदार्थ—(**ते**) तेरे (**यातुधानेभ्यः**) पीडाप्रद रोगो को (**नम**) नमस्कार और (**ते**) तेरे (**भेषजेभ्य**) सुख देने वाले वैद्यो को (**नम.**) नमस्कार है। (**मृत्यो**) हे मृत्यु ! (**ते**) तेरे (**मूलेभ्य**) कारणो को (**नम.**) नमस्कार और (**ब्राह्मणेभ्यः**) वेदवेत्ता विद्वानो को (**इदम्**) यह (**नम.**) नमस्कार है ॥३॥

卐 **सूक्तम् १४** 卐

१—३ बभ्रुपिङ्गलः । बलास । अनुष्टुप् ।

अस्थिस्रंसं परुःस्रंसमास्थितं हृदयामयम् ।

बलासं सर्वं नाशयाङ्गेष्ठा यश्च पर्वसु ॥१॥

पदार्थ—[हे वैद्य !] (**अस्थिस्रंसम्**) हड्डियाँ गला देने वाले, (**परुःस्रंसम्**) जोड़ो को ढीला कर देने वाले (**आस्थितम्**) स्थिर (**हृदयामयम्**) हृदय रोग, अर्थात् (**सर्वम्**) सब (**बलासम्**) बल गिरा देने वाले क्षय रोग [खाँसी, कफ आदि] को (**नशय**) नाश कर दे, (**य**) जो (**अङ्गेष्ठा**) अङ्ग अङ्ग मे बैठा हुआ (**च**) और (**पर्वसु**) सब जोड़ो मे है ॥१॥

निर्बलासं बलासिनः क्षिणोमि मुष्करं यथा ।

छिनद्म्यस्य बन्धनं मूलमुर्वार्वा इव ॥२॥

पदार्थ—(**बलासिन**) क्षय रोग वाले से (**बलासम्**) बल घटाने वाले क्षय रोग को (**निः क्षिणोमि**) उखाड़ कर नाश करता हूँ (**यथा**) जैसे (**मुष्करम्**) कतरन को। (**अस्य**) इस रोग के (**बन्धनम्**) बन्धन को (**छिनद्मि**) काटे डालता हूँ, (**इव**) जैसे (**उर्वार्वा**) ककड़ी की (**मूलम्**) जड़ को ॥२॥

निर्बलासेतः प्र पताशुगः शिशुको यथा ।

अथो इट इव हायनोऽप द्राह्यवीरहा ॥३॥

पदार्थ—(**बलास**) हे बल घटाने वाले क्षय रोग ! (**इतः**) यहाँ से (**निः = निष्क्रम्य**) निकल कर (**प्रपत**) चला जा, (**यथा**) जैसे (**आशुगः**) शीघ्रगामी (**शिशुक.**) छोटा बछड़ा। (**अथो**) और भी (**अवीरहा**) वीरों का न नाश करने वाला तू (**अप = अपेत्य**) हटकर (**द्राहि**) भाग जा (**इव**) जैसे (**हायनः**) प्रति वर्ष होने वाला (**इट**) घास ॥३॥

卐 **सूक्तम् १५** 卐

१—३ उद्दालक । वनस्पति । उष्णिक् ।

उत्तमो अस्योषधीनां तव वृक्षा उपस्तयः ।

उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति ॥१॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (**ओषधीनाम्**) सब तापनाशक ओषधियो में तू (**उत्तमः**) उत्तम (**असि**) है, (**वृक्षा**) सब स्वीकार करने योग्य गुण (**तव**) तेरे (**उपस्तय.**) उपासक [अधीन] हैं। (**स**) वह पुरुष (**अस्माकम्**) हमारे (**उपस्ति.**) अधीन (**अस्तु**) होवे, (**य**) जो (**अस्मान्**) हमे (**अभिदासति**) सतावे ॥१॥

सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति ।

तेषां सा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः ॥२॥

पदार्थ—(**य**) जो शत्रुसमूह (**सबन्धु**) बन्धुओ सहित (**च**) और (**असबन्धु**) बिना बन्धुओ के होकर (**अस्मान्**) हमें (**अभिदासति**) सतावे (**वृक्षाणाम्**) श्रेष्ठ पदार्थों मे (**सा इव**) लक्ष्मी के समान, (**अहम्**) मैं (**तेषाम्**) उनके बीच (**उत्तमः**) उत्तम (**भूयासम्**) हो जाऊ ॥२॥

यथा सोम ओषधीनामुत्तमो हविषां कृतः ।

तलाशा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः ॥३॥

पदार्थ—(**यथा**) जैसे (**सोमः**) अमृत [अन्न वा सोम लता] (**ओषधीनाम्**) तापनाशक ओषधियो और (**हविषाम्**) ग्राह्य पदार्थों में (**उत्तमः**) उत्तम (**कृत**) बनाया गया है। और (**वृक्षाणाम् इव**) जैसे उत्तम पदार्थों में (**तलाशा**) आश्रय प्राप्त करने वाली लक्ष्मी है, [वैसे ही] (**अहम्**) मैं (**उत्तमः**) उत्तम (**भूयासम्**) हो जाऊ ॥३॥

卐 सूक्तम् १६ 卐

१—४ शौनकः । चन्द्रमाः, मन्त्रोक्तदेवता । अनुष्टुप्, १ निचृत्पदा गायत्री, ३ बृहतीगर्भा ककुम्मत्यनुष्टुप्, ४ त्रिपदा प्रतिष्ठा ।

आबयो अनाबयो रसस्त उग्र आबयो ।

आ ते करम्भमद्मसि ॥१॥

पदार्थ—(आबयो) हे चारो ओर गति वाले ! (अनाबयो) हे बिना गति वाले ! (आबयो) हे चारो ओर कान्ति वाले ईश्वर ! (ते) तेरा (रस) रस [आनन्द] (उग्र) नित्य सम्बन्ध वाला है । हम (ते) तेरे (करम्भम्) सत्तू [अन्न] (आ) भले प्रकार (अद्मसि) खाते हैं ॥१॥

विहह्लो नाम ते पिता मदावती नाम ते माता ।

स हिन त्वमसि यस्त्वमात्मानमावयः ॥२॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (ते) तेरा (पिता) पालन करने वाला गुण (विहह्लः) विशेष कपाने वाला [आश्चर्यजनक] (नाम) प्रसिद्ध है, और (ते) तेरी (माता) निर्माण शक्ति (मदवती) हर्षयुक्त (नाम) प्रसिद्ध है (सः) वह (हिन=हि) ही (त्वम्) तू (असि) है, (यः) जिस (त्वम्) तू ने (आत्मानाम्) हमारे आत्मा की (आवयः) रक्षा की है ॥२॥

तौविलिकेऽवेलयावायमैलब ऐलयीत् ।

बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्चापेहि निराल ॥३॥

पदार्थ—(तौविलिके) वृद्धि से जीतने वाले व्यवहार मे [हमे] (अव) अवश्य (ईलय=ईरय) आगे बढ़ा । (अयम्) इस (ऐलबः) पृथिवी के पदार्थों में व्यापक तू ने [ऋषियो को] (अव) अवश्य (ऐलयीत्=०—यी) आगे बढ़ाया है । (आल) हे समर्थ परमेश्वर ! (बभ्रुः) पोषण करने वाला (च च) और (बभ्रुकर्णः) पोषक मनुष्यो का पतवाररूप तू (निः) नित्य (अप) आनन्द से (इहि) प्राप्त हो ॥३॥

अलसालासि पूर्वा सिलाञ्जालास्युत्तरा । नीलागलसाला ॥४॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] तू (अलसाला) आलसियो को रोकने वाली (पूर्वा) प्रधान शक्ति (असि) है, और तू (सिलाञ्जाला) कण-कण को प्रकट करने वाली और (नीलागलसाला) सब लोकों के घर [ब्रह्माण्ड मे] व्यापक (उत्तरा) अति उत्तम शक्ति (असि) है ॥४॥

卐 सूक्तम् १७ 卐

१—४ अथर्वा । गर्भदृंहणम्, पृथिवी । अनुष्टुप् ।

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे ।

एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥१॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (इयम्) इस (मही) बड़ी (पृथिवी) पृथिवी ने (भूतानाम्) पञ्च महाभूतो के (गर्भम्) गर्भ को (आदधे) यथावत् धारण किया है । (एव) वैसे ही (ते) तेरा (गर्भः) गर्भ (सूतुम्) संतान को (अनु) अनुकूलता से (सवितवे) उत्पन्न करने के लिये (ध्रियताम्) स्थिर होवे ॥१॥

यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान् वनस्पतीन् ।

एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥२॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (इयम्) इस (मही) बड़ी (पृथिवी) पृथिवी ने (इमान्) इस (वनस्पतीन्) सेवा करने वालो के रक्षक, वृक्ष आदि को (दाधार) धारण किया है (एव) वैसे ही (ते) तेरा (गर्भः) गर्भ (सूतुम्) सन्तान को (अनु) अनुकूलता से (सवितवे) उत्पन्न करने के लिये (ध्रियताम्) स्थिर होवे ॥२॥

यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन् ।

एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥३॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (इयम्) इस (मही) विशाल (पृथिवी) पृथिवी ने (पर्वतान्) पहाड़ों और (गिरीन्) पहाड़ियो को (दाधार) धारण किया है, (एव) वैसे ही (ते) तेरा (गर्भः) गर्भ (सूतुम्) संतान को (अनु) अनुकूलता से (सवितवे) उत्पन्न करने के लिये (ध्रियताम्) स्थिर होवे ॥३॥

यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत् ।

एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥४॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (इयम्) इस (मही) बड़ी (पृथिवी) पृथिवी ने (विष्ठितम्) विविध प्रकार से स्थित (जगत्) जगत् को (दाधार) धारण किया है । (एव) वैसे ही (ते) तेरा (गर्भः) गर्भ (सूतुम्) संतान को (अनु) अनुकूलता से (सवितवे) उत्पन्न करने के लिये (ध्रियताम्) धारण किया जावे ॥४॥

卐 सूक्तम् १८ 卐

१—३ अथर्वा । ईर्ष्याविनाशनम् । अनुष्टुप् ।

ईर्ष्याया ध्राजिं प्रथमां प्रथमस्या उतापराम् ।

अग्निं हृदय्यं शोकं तं ते निर्वापयामसि ॥१॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरी (ईर्ष्यायाः) डाह की (प्रथमाम्) पहली (ध्राजिम्) गति को (उत) और (प्रथमस्याः) पहली गति की (अपराम्) दूसरी गति को, (हृदय्यम्) हृदय में भरी (तम्) सताने वाली (अग्निम्) अग्नि और (शोकम्) शोक को (निः) सर्वथा (वापयामसि) हम नष्ट करते हैं ॥१॥

यथा भूमिर्मृतमना मृतान्मृतमनस्तरा ।

यथोत मम्रुषो मन एवेर्ष्योर्मृतं मनः ॥२॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (भूमिः) भूमि (मृतमना) मेरे मन वाली [ऊसर] होकर (मृतात्) मरे से भी (मृतमनस्तरा) अधिक मरे मन वाली है । (उत) और (यथा) जैसे (मम्रुषः) मरे हुए मनुष्य का (मनः) मन है (एव) वैसे ही (ईर्ष्योः) डाह करने वाले का (मनः) मन (मृतम्) मरा होता है ॥२॥

अदो यत्ते हृदि श्रितं मनस्कं पतयिष्णुकम् ।

ततस्त ईर्ष्यां मुञ्चामि निरूष्माणं दृतेरिव ॥३॥

पदार्थ—(अदः) वह (यत्) जो (ते) तेरे (हृदि) हृदय में (श्रितम्) रक्खा हुआ (पतयिष्णुकम्) धड़कता हुआ (मनस्कम्) छोटा मन है (ततः) उससे (ते) तेरी (ईर्ष्याम्) ईर्ष्या को (निर्मुञ्चामि) बाहिर निकालता हूँ, (इव) जैसे (दृतेः) धौंकनी से (ऊष्माणम्) श्वास को ॥३॥

卐 सूक्तम् १९ 卐

१—३ शन्तातिः । चन्द्रमाः, १ देवजनाः, मनवः, विश्वाभूतानि, पवमानः; २ पवमानः, ३ सविता । गायत्री, १ अनुष्टुप् ।

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया ।

पुनन्तु विश्वा भूतानि पवमानः पुनातु मा ॥१॥

पदार्थ—(देवजनाः) विजय चाहने वाले वा व्यवहार कुशल पुरुष (मा) मुझे (धिया) कर्म वा बुद्धि से (पुनन्तु) शुद्ध करें, (मनवः) मननशील विद्वान् लोग (पुनन्तु) शुद्ध करें । (विश्वा) सब (भूतानि) प्राणिमात्र (मा) मुझे (पुनन्तु) शुद्ध करें, (पवमानः) पवित्र परमात्मा (पुनातु) शुद्ध करे ॥१॥

पवमानः पुनातु मा क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।

अथो अरिष्टतातये ॥२॥

पदार्थ—(पवमानः) पवित्र परमेश्वर (मा) मुझे (क्रत्वे) उत्तम कर्म वा बुद्धि के लिये, (दक्षाय) बल के लिये, (जीवसे) जीवन के लिए (अथो) और भी (अरिष्टतातये) कल्याण करने के लिये (पुनातु) शुद्ध आचरण वाला करे ॥२॥

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च ।

अस्मान् पुनीहि चक्षसे ॥३॥

पदार्थ—(देव) हे दानशील (सवितः) सत्य कर्मों मे प्रेरक जगदीश्वर ! (उभाभ्याम्) दोनो अर्थात् (पवित्रेण) शुद्ध आचरण से (च) और (सवेन) ऐश्वर्य से (अस्मान्) हमे (चक्षसे) देखने के लिये (पुनीहि) पवित्र कर ॥३॥

卐 सूक्तम् २० 卐

१—३ भृग्वङ्गिरा । यक्ष्मनाशनम् । १ जगती, २ ककुम्मतीप्रस्तारपङ्क्तिः, ३ सत पङ्क्तिः ।

अग्नेरिवास्य दहत एति शुष्मिण उतेव मत्तो विलपन्नपायति ।

अन्यमस्मदिच्छतु कं चिदव्रतस्तपुर्वधाय नमो अस्तु तक्मने ॥१॥

पदार्थ—वह [ज्वर] (दहतः) दहकती हुई, (शुष्मिणः) बलवान् (अस्य) इस (अग्नेः) अग्नि के [ताप के] (इव) समान (एति) व्यापता है, (उत) और (मत्तः इव) उन्मत्त के समान (विलपन्) विलपता हुआ (अप अयति) भाग जाता है। (अस्मत्) हम से (अन्यम्) दूसरे (कम् चित्) किसी [कुनियमी] को (अव्रतः) वह व्रतहीन (इच्छतु) ढूढ लेवे, (तपुर्वधाय) तपते हुए अस्त्र रखने वाले (तक्मने) दुःखित जीवन करने वाले ज्वर को (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥१॥

नमो॑ रु॒द्राय॒ नमो॑ अस्तु त॒क्मने॒ नमो॒ राज्ञे॒ वरु॑णाय॒ त्विषी॑मते ।

नमो॑ दि॒वे नमः॑ पृथि॒व्यै नम॒ ओष॑धीभ्यः ॥२॥

पदार्थ—(रुद्राय) दुःखनाशक वैद्य को (नमः) नमस्कार, (तक्मने) दुःखित जीवन करने वाले ज्वर को (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, (त्विषीमते) प्रकाशमान, (राज्ञे) सब के राजा, (वरुणाय) श्रेष्ठ परमेश्वर को (नमः) नमस्कार हो। (दिवे) प्रकाशमान सूर्य को (नमः) नमस्कार, (पृथिव्यै) फैली हुई पृथिवी को (नमः) नमस्कार, और (ओषधीभ्यः) तापनाशक अन्न आदि पदार्थों को (नमः) नमस्कार हो ॥२॥

अ॒यं यो अ॑भिशोचयि॒ष्णुर्विश्वा॑ रू॒पाणि॒ हरि॑ता कृ॒णोषि॑ ।

तस्मै॑ तेऽरु॒णाय॑ ब॒भ्रवे॒ नमः॑ कृणोमि॒ वन्या॑य त॒क्मने॑ ॥३॥

पदार्थ—(अयम्) यह (यः) जो (अभिशोचयिष्णुः) बहुत ही शोक में डालने वाला तू (विश्वा) सब (रूपाणि) रूपों को (हरिता) हरे वा पीले (कृणोषि) कर देता है। (तस्मै) उस (ते) तुझ (अरुणाय) रक्त, (बभ्रवे) भूरे और (वन्याय) बनैले (तक्मने) दुःखित जीवन करने वाले ज्वर को (नमः) नमस्कार (कृणोमि) करता हूँ ॥३॥

卐 इति द्वितीयोऽनुवाकः 卐

卐

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् २१ 卐

१—३ शन्तातिः । चन्द्रमाः । अनुष्टुप् ।

इ॒मा यास्ति॒स्रः पृ॑थि॒वीस्तासां॑ ह॒ भूमि॑रुत्त॒मा ।

तासा॒मधि॑ त्व॒चो अ॒हं भे॑ष॒जं समु॑ जग्रभम् ॥१॥

पदार्थ—(इमाः) ये (याः) जो (तिस्रः) तीन [सूर्य, पृथिवी और अन्तरिक्ष] (पृथिवीः) विस्तृत लोक हैं, (तासाम्) उन में (ह) निश्चय करके (भूमिः) भूमि, सब का आधार परमेश्वर (उत्तमा) उत्तम है। (तासाम्) उन [लोकों] के (त्वचः अधि) विस्तार से ऊपर (भेषजम्) भयनाशक ब्रह्म को (उ) अवश्य (अहम्) मैंने (सम् अग्रभम्) यथावत् ग्रहण किया है ॥१॥

श्रेष्ठ॑मसि भेष॒जानां॒ वसि॑ष्ठं वीरु॑धानाम् ।

सोमो॒ भग॑ इव॒ यामे॑षु दे॒वेषु॒ वरु॑णो यथा॑ ॥२॥

पदार्थ—(हे ब्रह्म !) तू (भेषजानाम्) भयनाशक पदार्थों में (श्रेष्ठम्) श्रेष्ठ और (वीरुधानाम्) विविध प्रकार से उगती हुई प्रजाओं के बीच (वसिष्ठम्) अत्यन्त धन वाला वा बसने वाला (असि) है, (इव) जैसे (भगः) ऐश्वर्यवान् (सोमः) चन्द्रमा (यामेषु) चलने वाले तारागणों के बीच, और (यथा) जैसे (वरुणः) सूर्य (देवेषु) प्रकाशमान पदार्थों में है ॥२॥

रेव॑ती॒रना॑धृषः सिषा॒सवः॑ सिषासथ ।

उ॒त स्थ॑ केश॒दृंह॑णी॒रथो॑ ह केश॒वर्ध॑नीः ॥३॥

पदार्थ—(रेवतीः) हे धनवाली ! (अनाधृषः) कभी हिंसा न करने वाली ! (सिषासवः) हे दान करने वा सेवा करने की इच्छा वाली प्रजाओ ! तुम (सिषासथ—०—सत) सेवा करने की इच्छा करो। तुम (उत) अत्यन्त (केशदृंहणीः) प्रकाश दृढ़ करने वाली (अथो ह) और भी (केशवर्धनीः) प्रकाश बढ़ाने वाली (स्थ) हो ॥३॥

卐 सूक्तम् २२ 卐

१—३ शन्तातिः । १ आदित्यरश्मिः, २—३ मरुतः । त्रिष्टुप्, २ चतुष्पदा भुरिग्जगती ।

कृ॒ष्णं नि॒यानं॒ हर॑यः सुप॒र्णा अ॒पो वसा॑ना॒ दिव॒मुत् प॑तन्ति ।

त आव॑वृत्र॒न्त्सद॑नादृ॒तस्यादिद् घृ॒तेन॑ पृथि॒वीं व्यू॑दुः ॥१॥

पदार्थ—(हरयः) रस खींचने वाली, (सुपर्णाः) अच्छा उड़ने वाली किरणें (अपः) जल को (वसानाः) ओढ़ कर (कृष्णम्) खींचने वाले (नियानम्) नित्य गमन स्थान अन्तरिक्ष में होकर (दिवम्) प्रकाशमय सूर्य मण्डल को (उत् पतन्ति) चढ़ जाती हैं। (ते) वे (इत्) ही (आत्) फिर (ऋतस्य) जल के (सदनात्) घर [सूर्य] से (आ अववृत्रन्) लौट आती हैं, और उन्होंने (घृतेन) जल से (पृथिवीम्) पृथिवी को (वि) विविध प्रकार से (ऊदुः) सींच दिया है ॥१॥

पय॑स्वतीः कृणुथा॒प ओष॑धीः शि॒वा यदेज॑था मरुतो रुक्मवक्षसः ।

ऊर्जं॑ च॒ तत्र॑ सुम॒तिं च॑ पिन्वत॒ यत्रा॑ नरो मरुतः सि॒ञ्चथा॒ मधु॑ ॥२॥

पदार्थ—(रुक्मवक्षसः) हे तेज [बिजुली] को हृदय में रखने वाले (मरुतः) वायु के वेगो ! (यत्) जब (एजथ) तुम चलते हो, (अपः) जल और (ओषधीः) अन्न आदि ओषधियों को (पयस्वतीः) रसवाली और (शिवाः) कल्याणकारी (कृणुथ) तुम करते हो। (च) और (तत्र) वहाँ (ऊर्जम्) बल देने वाला अन्न (च) और (सुमतिम्) उत्तम बुद्धि (पिन्वत) बरसाते हो, (यत्र) जहाँ पर (नरः) हे नायक (मरुतः) वायुगणो ! (मधु) जल (सिञ्चथ) सींचते हो ॥२॥

उ॒द॒प्रुतो॑ म॒रुत॒स्ताँ इ॑यर्त वृ॒ष्टिर्या विश्वा॑ नि॒वत॑स्पृ॒णाति॑ ।

एजा॑ति॒ ग्लहा॑ क॒न्ये॑व तु॒न्नैरुं॒ तुन्दा॑ना॒ पत्ये॑व जा॒या ॥३॥

पदार्थ—(उदप्रुतः) हे जल के भेजने वाले (मरुतः) वायुगणो ! (तान्—ताम्) उस [वृष्टि] को (इयर्त) तुम भेजो, (या) जो (वृष्टिः) वर्षा (विश्वाः) सब (निवतः) नीचे स्थानों को (पृणाति) भर देती है। (ग्लहा) वह ग्रहण करने योग्य [वृष्टि] (एरुम्) गतिशील समुद्र को (एजाति=एजति) पहुँचती है, (इव) जैसे (तुन्ना) व्यथा में पड़ी (कन्या) कन्या [अपने माता पिता आदि को], और (इव) जैसे (तुन्दाना) दुःख पाती हुई (जाया) पत्नी (पत्या=पतिम्) अपने पति को [पहुँचती है] ॥३॥

卐 सूक्तम् २३ 卐

१—३ शन्तातिः । आपः । १ अनुष्टुप्, २ त्रिपदा गायत्री, ३ परोष्णिक् ।

स॒स्रुषी॒स्तद॒पसो॒ दिवा॒ नक्तं॑ च स॒स्रुषीः॑ ।

वरे॑ण्यक्रतुर॒हम॒पो दे॒वीरुप॑ ह्वये ॥१॥

पदार्थ—(वरेण्यक्रतुः) उत्तम कर्म वा बुद्धि वाला (अहम्) मैं (अपसः) व्यापक (तत्—तस्य) विस्तृत ब्रह्म की (दिवा) दिन (च) और (नक्तम्) रात्रि (सस्रुषीः सस्रुषीः) अत्यन्त उद्योगशील, (देवीः) प्रकाशमय (अपः) व्यापक शक्तियों को (उप) आदर से (ह्वये) बुलाता हूँ ॥१॥

ओता॒ आपः॑ कर्म॒ण्या॑ मु॒ञ्चन्त्वि॒तः प्रणी॑तये ।

स॒द्यः कृ॑ण्व॒न्त्वेत॑वे ॥२॥

पदार्थ—(ओताः) अच्छे प्रकार बुनी हुई (कर्मण्याः) कामों में कुशल (आपः) [परमेश्वर की] व्यापक शक्तियाँ [हमें] (इतः) इस [कष्ट] से (प्रणीतये) उत्तम नीति के लिये (मुञ्चन्तु) मुक्त करें। और (सद्यः) तुरन्त (एतवे) चलने को (कृण्वन्तु) बनावें ॥२॥

दे॒वस्य॑ सवि॒तुः स॒वे कर्म॑ कृण्वन्तु॒ मानु॑षाः ।

शं नो॑ भवन्त्व॒प ओष॑धीः शि॒वाः ॥३॥

पदार्थ—(मानुषाः) सब मनुष्य (देवस्य) प्रकाशमय (सवितुः) सर्व प्रेरक परमेश्वर के (सवे) शासन में (कर्म) कर्म (कृण्वन्तु) करते रहें। (शिवाः) कल्याणकारक (ओषधीः—०—धयः) अन्न आदि पदार्थ (शम्) शान्ति से (नः) हमारे (अपः) कर्म को (भवन्तु) प्राप्त हों ॥३॥

卐 सूक्तम् २४ 卐

१—३ शन्तातिः । आपः । अनुष्टुप् ।

हि॒मव॑तः॒ प्र स्र॑वन्ति॒ सिन्धौ॑ समह सङ्ग॒मः ।

आपो॑ ह॒ मह्यं॒ तद्दे॒वीर्दद॑न् हृद्द्योतभेष॒जम् ॥१॥

पदार्थ—(आपः) व्यापक शक्तियाँ [वा जलधारायें] (हिमवतः) वृद्धिशील वा गतिशील परमेश्वर से [वा हिमवाले पहाड़ से] (प्रस्रवन्ति) बहती रहती हैं, और (समह) हे महिमा के साथ वर्तमान पुरुष ! (सिन्धौ) बहने वाले संसार [वा समुद्र] में (सङ्गमः) उनका सङ्गम है। (देवीः) वे दिव्य गुण वाली शक्तियाँ [वा जलधारायें] (ह) निश्चय करके (मह्यम्) मेरे लिये (तत्) वह (हृद्द्योतभेषजम्) हृदय की चमक का भय जीतने वाला औषध (ददन्) देवें ॥१॥

यन्मे अक्ष्योरादिद्योत पार्ष्ण्योः प्रपदोश्च यत् ।

आपस्तत् सर्वं निष्करन् भिषजां सुभिषक्तमाः ॥२॥

पदार्थ—(यत्) जो [दुःख] (मे) मेरे (अक्ष्योः) दोनों नेत्रों मे (पार्ष्ण्योः) दोनों एड़ियों में, (च) और (यत्) जो (प्रपदोः) पांव के दोनो पंजों में (आदिद्योत) चमक उठा है । (भिषजाम्) वैद्यो में (सुभिषक्तमाः) अति पूजनीय वैद्य रूप (आपः) परमेश्वर की व्यापक शक्तियां या जलधारायें (तत्) उस (सर्वम्) सब को (निष्करन्) हटावें ॥२॥

सिन्धुपत्नीः सिन्धुराज्ञीः सर्वा या नद्य१स्थन ।

दत्त नस्तस्य भेषजं तेना वो भुनजामहै ॥३॥

पदार्थ—(सिन्धुपत्नीः) बहने वाले ससार [वा समुद्र] की पालने वाली, (सिन्धुराज्ञीः) बहने वाले जगत् की शासन करने वाली [वा समुद्र की शोभा बढ़ाने वाली] (याः) जो तुम (सर्वाः) सब शक्तियां (नद्यः) [परमेश्वर की] स्तुति करने वाली [वा नदियां] (स्थन) हो । वे तुम (नः) हमे (तस्य) हिंसक रोग की (भेषजम्) श्रोषधि (दत्त) दो, (तेन) उससे (वः) तुम्हारे [गुणों को] (भुनजामहै) हम भोगें ॥३॥

卐 सूक्तम् २५ 卐

१—३ शुनःशेपः । मन्याविनाशनम् । अनुष्टुप् ।

पञ्च च याः पञ्चाशच्च संयन्ति मन्या अभि ।

इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥१॥

पदार्थ—(पञ्च) पाँच (च च) और (पञ्चाशत्) पचास (याः) जो पीडायें (मन्याः अभि) गले की नसो मे (संयन्ति) सब ओर से व्याप्त होती हैं । (ताः सर्वाः) वे सब (इतः) यहाँ से (नश्यन्तु) नष्ट हो जावें, (इव) जैसे (अपचिताम्) निर्बलो के (वाकाः) वचन [नष्ट हो जाते हैं] ॥१॥

सप्त च याः सप्ततिश्च संयन्ति ग्रैव्या अभि ।

इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥२॥

पदार्थ—(सप्त) सात (च च) और (सप्ततिः) सत्तर (याः) जो पीडाय (ग्रैव्याः अभि) कण्ठ की नाड़ियों मे (संयन्ति) सब ओर से व्याप्त होती हैं (ताः सर्वाः) वे सब (इतः) यहा से (नश्यन्तु) नष्ट हो जावें, (इव) जैसे (अपचिताम्) निर्बलों के (वाकाः) वचन [नष्ट हो जाते हैं] ॥२॥

नव च या नवतिश्च संयन्ति स्कन्ध्या अभि ।

इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥३॥

पदार्थ—(नव) नव (च च) और (नवतिः) नब्बे (याः) जो पीड़ायें (स्कन्ध्याः अभि) कन्धे की नाड़ियो में (संयन्ति) व्याप्त होती है । (ताः सर्वाः) वे सब (इतः) यहा से (नश्यन्तु) नष्ट हो जावें, (इव) जैसे (अपचिताम्) निर्बलों के (वाकाः) वचन [नष्ट हो जाते हैं] ॥३॥

卐 सूक्तम् २६ 卐

१—३ ब्रह्मा । पाप्मा । अनुष्टुप् ।

अव मा पाप्मन्त्सृज वशी सन् मृडयासि नः ।

आ मा भद्रस्य लोके पाप्मन् धेह्यविह्रुतम् ॥१॥

पदार्थ—(पाप्मन्) हे पापी विघ्न ! (मा) मुझे (अव सृज) छोड़ दे और (वशी) वश मे रहने वाला (सन्) होकर तू (नः) हमे (मृडयासि) सुख दे । (पाप्मन्) हे पापी विघ्न ! (भद्रस्य) आनन्द के (लोके) लोक मे (मा) मुझे (अविह्रुतम्) पीड़ा रहित (आ) अच्छे प्रकार (धेहि) रख ॥१॥

यो नः पाप्मन् न जहासि तमु त्वा जहिमो वयम् ।

पथामनु व्यावर्तनेऽन्यं पाप्मानु पद्यताम् ॥२॥

पदार्थ—(पाप्मन्) हे पापी विघ्न ! (यः) जो तू (नः) हमे (न) नहीं (जहासि) छोड़ता है, (तम्) उस (त्वा) तुझ को (उ) ही (वयम्) हम (जहिमः) छोडते है । (अनु) फिर (पथाम्) मार्गों के (व्यावर्तने) घुमाव पर (अन्यम्) दूसरे [अधर्मी] को (पाप्मा) दुःखदायी विघ्न (अनु पद्यताम्) प्राप्त होवे ॥२॥

अन्यत्रास्मन्न्युच्यतु सहस्राक्षो अमर्त्यः ।

यं द्वेषाम तमृच्छतु यमु द्विष्मस्तमिज्जहि ॥३॥

पदार्थ—(सहस्राक्षः) सहस्रों [दोषों] मे दृष्टि रखने वाला, (अमर्त्यः) मनुष्यो का हित न करने वाला [विघ्न] (अस्मत्) हम से (अन्यत्र) दूसरों मे (नि) नित्य (उच्यतु) प्राप्त हो । (यम्) जिसको (द्वेषाम) हम बुरा जानें, (तम्) उसको (ऋच्छतु) वह [विघ्न] प्राप्त हो । और (यम्) जिसको (उ) ही (द्विष्मः) हम बुरा जानते हैं, (तम्) उस को (इत्) ही (जहि) नाश कर ॥३॥

卐 सूक्तम् २७ 卐

१—३ भृगुः । यमः, निर्ऋतिः । जगती, २ त्रिष्टुप् ।

देवाः कपोत इषितो यदिच्छन् दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम ।

तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१॥

पदार्थ—(देवाः) हे विद्वानो ! (इषितः) प्राप्तियोग्य, (निर्ऋत्याः) अलक्ष्मी का (दूतः) नाश करने वाला, (कपोतः) वरणीय वा स्तुतियोग्य [अथवा, कबूतर पक्षी के समान दूरदर्शी और तीक्ष्ण बुद्धि] पुरुष (यत्) पूजनीय ब्रह्म को (इच्छन्) खोजता हुआ, (इदम्) इस स्थान में (आजगाम) आया है । (तस्मै) उस विद्वान् के लिये (अर्चाम) हम पूजा करें और (निष्कृतिम्) अपनी निर्मुक्ति (कृणवाम) हम करें, [जिस से] (नः) हमारे (द्विपदे) दोपाये समूह को (शम्) शान्ति और (चतुष्पदे) चौपाये समूह को (शम्) शान्ति (अस्तु) होवे ॥१॥

शिवः कपोत इषितो नो अस्त्वनागा देवाः शकुनो गृहं नः ।

अग्निर्हि विप्रो जुषतां हविर्नः परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु ॥२॥

पदार्थ—(देवाः) हे विद्वानो ! (इषितः) प्राप्ति योग्य (अनागाः) निर्दोष (शकुनः) समर्थ (कपोतः) स्तुतियोग्य विद्वान् (नः) हमारे लिये और (नः) हमारे (गृहम् = गृहाय) घर के लिये (शिवः) मंगलकारी (अस्तु) होवे । (अग्निः) वह विद्वान् (विप्रः) बुद्धिमान् पुरुष (नः) हमारे (हविः) देने लेने योग्य कर्म को (हि) अवश्य (जुषताम्) स्वीकार करे । (पक्षिणी) पक्षपात वाली (हेतिः) चोट (नः) हमें (परि) सब ओर से (वृणक्तु) छोड़े ॥२॥

हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मानाष्ट्री पदं कृणुते अग्निधाने । शिवो गोभ्य उत पुरुषेभ्यो नो अस्तु मा नो देवा इह हिंसीत् कपोतः ॥३॥

पदार्थ—(पक्षिणी) पक्षपात वाली (हेतिः) चोट (अस्मान्) हमे (न) न (दभाति) दबावे । (आष्ट्री) व्याप्त सभा के बीच (अग्निधाने) विद्वानों के स्थानो पर [वह विद्वान्] (पदम्) अपना अधिकार (कृणुते) करता है । (देवाः) हे विद्वानो ! (कपोतः) स्तुति योग्य पुरुष (नः) हमारी (गोभ्यः) गौओं के लिये (उत) और (पुरुषेभ्यः) पुरुषों के लिये (शिवः) मगलकारी (अस्तु) होवे और (नः) हमे (इह) यहा पर (मा हिंसीत्) न दुःख देवे ॥३॥

卐 सूक्तम् २८ 卐

१—३ भृगुः । यम, निर्ऋतिः । त्रिष्टुप्, २ अनुष्टुप् ३ जगती ।

ऋचा कपोतं नुदत प्रणोदमिषं मदन्तः परि गां नयामः ।

संलोभयन्तो दुरिता पदानि हित्वा न ऊर्जं प्र पदात् पथिष्ठः ॥१॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] (ऋचा) स्तुति से (प्रणोदम्) आगे बढ़ाने वाले (कपोतम्) स्तुति योग्य विद्वान् को (नुदत) आगे बढ़ाओ । (मदन्तः) हर्ष करते हुए और (दुरिता) दुर्गति के कारण (पदानि) चिह्नों को (संलोभयन्तः) मिटाते हुए हम लोग (इषम्) अन्न और (गाम्) विद्या को (परि) सब ओर (नयामः) पहुँचाते हैं । (पथिष्ठः) वह अति शीघ्रगामी विद्वान् (नः) हमे (ऊर्जम्) पराक्रम (हित्वा) देकर (प्र पदात्) आगे ठहरे ॥१॥

परीमेऽग्निमर्षत परीमे गामनेषत ।

देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ आ दधर्षति ॥२॥

पदार्थ—(इमे) इन पुरुषो ने (अग्निम्) विद्वान् को (परि) सब ओर (अर्षत) प्राप्त किया है, (इमे) इन्होंने (गाम्) विद्या को (परि) सब ओर (अनेषत) पहुँचाया है । और (देवेषु) विद्वानों में (श्रवः) यश (अक्रत) किया है । (कः) कौन (इमान्) इन लोगों को (आ दधर्षति) जीत सकता है ॥२॥

यः प्रथमः प्रवतमाससाद बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानः ।

योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदस्तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो (प्रथमः) गुणियों में पहिला पुरुष (बहुभ्यः) अनेकों के लिये (पन्थाम्) मार्ग (अनुपस्पशानः) खोजता हुआ (प्रवतम्) उत्तम पाने योग्य अधिकार पर (आससाद) आया है । और (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) दोपाये समूह का (यः) और जो (चतुष्पदः) चौपाये समूह का (ईशे = ईष्टे)

राजा है, (तस्मै) उस (यमाय) न्यायकारी पुरुष को (मृत्यवे) मृत्यु नाश करने के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥३॥

卐 सूक्तम् २९ 卐

१—३ भृगुः । यमः, निर्ऋतिः । (बृहती) १—२ विराण्नाम गायत्री, ३ त्र्यवसाना सप्तपदा विराडष्टिः ।

अमून् हेतिः पतत्रिणी न्येतु यदुलूको वदति मोघमेतत् ।
यद् वा कपोतः पदमग्नौ कृणोति ॥१॥

पदार्थ—(पतत्रिणी) नीचे गिरने वाली (हेतिः) चोट (अमून्) उन [शत्रुओं] को (नि) नीचे (एतु) ले जावे । (उलूकः) अज्ञान से ढकने वाला उल्लू के समान मूर्ख पुरुष (यत्) जो कुछ (वदति) बोलता है, (एतत्) वह (मोघम्) निरर्थक होवे । (यत्) क्योंकि (कपोतः) स्तुतियोग्य अथवा कबूतर के समान तीव्रबुद्धि पुरुष (अग्नौ) विद्वानों के समूह में (वा) निश्चय करके (पदम्) अधिकार (कृणोति) करता है ॥१॥

यौ ते दूतौ निर्ऋत इदमेतोऽप्रहितौ प्रहितौ वा गृहं नः ।
कपोतोलूकाभ्यामपदं तदस्तु ॥२॥

पदार्थ—(निर्ऋते) हे नित्य मङ्गल देने वाले परमेश्वर ! (यौ) जो (अप्रहितौ) अहित करने वाले (वा) और (प्रहितौ) हित करने वाले (ते) तेरे (दूतौ) विज्ञान कराने वाले दोनों गुण (नः) हमारे (इदम्) इस (गृहम्) घर में (आ—इतः) आते हैं । (कपोतोलूकाभ्याम्) उन विज्ञान से स्तुति के योग्य और अज्ञान से ढकने वाले गुणों द्वारा (तत्) विस्तृत ब्रह्म (अपदम्) न प्राप्ति योग्य दुःख को (अस्तु=अस्यतु) गिरा देवे ॥२॥

अवैरहत्यायेदमा पपत्यात् सुवीरताया इदमा ससद्यात् । पराङेव परा वद पराचीमनु संवतम् । यथा यमस्य त्वा गृहेऽरसं प्रतिचाकशानाभूकं प्रतिचाकशान् ॥३॥

पदार्थ—[स्तुति के योग्य कपोत विद्वान्] (अवैरहत्याय) वीरों के न मारने के लिये (इदम्) इस स्थान पर (आ—आगत्य) आकर (पपत्यात्) समर्थ होवे और (सुवीरतायै) बड़े वीरों के हित के लिये (इदम्) इस स्थान पर (आ) आकर (ससद्यात्) बैठे । [हे उल्लू के समान मूर्ख शत्रु !] (पराङ्) औंधेमुख होकर (पराचीम्) अधोगत (संवतम्) सङ्गति की (अनु) अनुलक्ष्य और (परा) दूर होकर (एव) ही (वद) बात कर । (यथा) क्योंकि (यमस्य) न्यायकारी पुरुष के (गृहे) घर में (त्वा) तुझ को (अरसम्) निर्बल (प्रतिचाकशान्) लोग देखें, और (आभूकम्) असमर्थ (प्रतिचाकशान्) वे देखें ॥३॥

卐 सूक्तम् ३० 卐

१—३ उपरिबभ्रवः । शमी । जगती, २ त्रिष्टुप्, ३ चतुष्पोच्छङ्कुमत्यनुष्टुप् ।

देवा इमं मधुना संयुतं यवं सरस्वत्यामधि मणावचर्कृषुः । इन्द्र आसीत् सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः ॥१॥

पदार्थ—(देवाः) विद्वान लोगों ने (मधुना) मधुर रस वा ज्ञान से (संयुतम्) मिले हुए (इमम्) इस (यवम्) यव अन्न को (सरस्वत्याम् अधि) (विज्ञान से युक्त वेद विद्या को अधिष्ठात्री मानकर (मणौ) उसके श्रेष्ठपन में (अचर्कृषुः) वार वार जोता । (शतक्रतुः) सैकड़ों कर्म वा बुद्धि वाला (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् आचार्य (सीरपतिः) हल का स्वामी (आसीत्) था और (सुदानवः) बड़े दानी (मरुतः) विद्वान् पुरुष (कीनाशाः) परिश्रमी किसान (आसन्) थे ॥१॥

यस्ते मदोऽवकेशो विकेशो येनाभिहस्यं पुरुषं कृणोषि ।
आरात् त्वदन्या वनानि वृक्षि त्वं शमि शतवल्शा वि रोह ॥२॥

पदार्थ—(शमि) हे शान्ति करने वाली [सरस्वती !] (यः) जो (ते) तेरा (मदः) आनन्द (अवकेशः) शुद्ध प्रकाश वाला और (विकेशः) विविध प्रकाश वाला है, (येन) जिससे (पुरुषम्) पुरुष को (अभिहस्यम्) बड़ा खिलने योग्य (कृणोषि) तू करती है । (त्वत्) तुझ से (अन्या) भिन्न [अविद्यारूप] (वनानि) मांगने के कर्मों को (आरात्) दूर (वृक्षि) मैंने छोड़ दिया है । (त्वम्) तू (शतवल्शा) सैकड़ों अंकुर वा शाखा वाली होकर (वि) विविध प्रकार से (रोह) प्रकट हो ॥२॥

बृहत्पलाशे सुभगे वर्षवृद्ध ऋतावरि ।
मातेव पुत्रेभ्यो मृड केशेभ्यः शमि ॥३॥

पदार्थ—(बृहत्पलाशे) हे बहुत पालनशक्ति से व्याप्त ! (सुभगे) हे बड़े ऐश्वर्यवाली ! (वर्षवृद्धे) हे वरणीय गुणों से बढ़ी हुई ! (ऋतावरि) हे सत्यशीला ! (शमि) हे शान्तिकारिणी सरस्वती ! (केशेभ्यः) प्रकाश के लिये (मृड) सुखी हो, (माता इव) जैसे माता (पुत्रेभ्यः) पुत्रों के लिये ॥३॥

卐 सूक्तम् ३१ 卐

१—३ उपरिबभ्रवः । गौः । गायत्री ।

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः ।
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥१॥

पदार्थ—(अयम्) यह (गौः) चलने वा चलाने वाला, (पृश्निः) रसों वा प्रकाश का छूने वाला सूर्य (आ अक्रमीत्) घूमता हुआ है, (च) और (पितरम्) पालन करने वाले (स्वः) आकाश में (प्रयन्) चलता हुआ (पुरः) सन्मुख हो कर (मातरम्) सब की बनाने वाली पृथिवी माता को (असदत्) व्यापा है ॥१॥

अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः ।
व्यख्यन्महिषः स्वः ॥२॥

पदार्थ—(प्राणात्) भीतर की श्वास के पीछे (अपानतः) बाहर को श्वास निकालते हुए (अस्य) इस [सूर्य] की (रोचना) रोचक ज्योति (अन्तः) [जगत् के] भीतर (चरति) चलती है, और वह (महिषः) बड़ा सूर्य्य (स्वः) आकाश को (वि) विविध प्रकार (अख्यत्) प्रकाशित करता है ॥२॥

त्रिंशद् धामा वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत् ।
प्रति वस्तोरहर्द्युभिः ॥३॥

पदार्थ—(पतङ्गः) चलने वाला वा ऐश्वर्यवाला सूर्य (त्रिंशत् धामा) तीस धामों पर [दिन रात्रि के तीस मुहूर्तों पर] (वस्तोः अहः) दिन दिन (द्युभिः) अपनी किरणों और गतियों के साथ (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से (वि) विविध प्रकार (राजति) राज करता वा चमकता है, (वाक्) इस वचन ने [उस सूर्य में] (अशिश्रियत्) आश्रय लिया है ॥३॥

卐 इति तृतीयोऽनुवाकः 卐

卐

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ३२ 卐

(१—३) १—२ चातनः, ३ अथर्वा । १ अग्निः, २ रुद्रः, ३ मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप्, २ प्रस्तारपङ्क्तिः ।

अन्तर्दावे जुहुता स्वे३तद् यातुधानक्षयणं घृतेन ।
आराद् रक्षांसि प्रति दह त्वमग्ने न नो गृहाणामुप तीतपासि ॥१॥

पदार्थ—[हे विद्वानो] (एतत्) इस (यातुधानक्षयणम्) पीड़ा देने वालों के नाश करने वाले कर्म का (घृतेन) प्रकाश के साथ (अन्तर्दावे) भीतरी सन्ताप में (सु) अच्छे प्रकार (जुहुत) छोड़ो । (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! (त्वम्) तू (रक्षांसि) राक्षसों को (आरात्) दूर करके (प्रतिदह) भस्म कर दे और (नः) हमारे (गृहाणाम्) घरों का (उप) कुछ भी (न तीतपासि) मत तापकारी हो ॥१॥

रुद्रो वो ग्रीवा अशरैत् पिशाचाः पृष्टीर्वोऽपि शृणातु यातुधानाः ।
वीरुद् वो विश्वतोवीर्या यमेन समजीगमत् ॥२॥

पदार्थ—(पिशाचाः) हे मांसभक्षक ! [रोगो व प्राणियो] (रुद्रः) दुःखनाशक सेनापति ने (वः) तुम्हारे (ग्रीवाः) गले को (अशरैत्) तोड़ डाला है । (यातुधानाः) हे पीड़ादायको ! (वः) तुम्हारी (पृष्टीः) पसलियां (अपि) भी (शृणातु) तोड़े । (विश्वतोवीर्या) सब ओर से सामर्थ्य वाली (वीरुत्) विविध प्रकार से प्रकाशित होने वाली शक्ति [परमेश्वर] ने (वः) तुमको (यमेन) नियम के साथ (सम् अजीगमत्) संयुक्त किया है ॥२॥

अभयं मित्रावरुणाविहास्तु नोऽर्चिषात्त्रिणो नुदतं प्रतीचः ।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् ॥३॥

पदार्थ—(मित्रावरुणौ) हे प्राण और अपान ! [अथवा हे दिन और रात्रि !] (नः) हमारे लिये (इह) यहां पर (अभयम्) अभय (अस्तु) होवे, [तुम

दोनों अपने] (अर्चिषा) तेज से (अत्त्रिणः) खा डालने वालों को (प्रतीचः) उलटा (नुदतम्) हटा दो । वे लोग (मा) न तो (आतारम्) सन्तोषक पुरुष को और (मा) न (प्रतिष्ठाम्) प्रतिष्ठा को (विदन्त) पावें, (मिथः) आपस में (विघ्नानाः) मारते हुए (मृत्युम्) मृत्यु को (उप यन्तु) प्राप्त हों ॥३॥

सूक्तम् ३३

१—३ जाटिकायनः । इन्द्रः । गायत्री, २ अनुष्टुप् ।

यस्येदमा रजो युजस्तुजे जना वनं स्वः ।

इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥१॥

पदार्थ—(यस्य) जिस (युजः) संयोग करने वाले परमेश्वर के (तुजे) बल में (इदम्) यह (रजः) लोक, (जना) सब मनुष्य, (वनम्) जल (आ) और (स्वः) सूर्य्य है। (इन्द्रस्य) उस बड़े ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर का (रन्त्यम्) क्रीड़ा स्थान (बृहत्) बड़ा है ॥१॥

नाधृष आ दधृषते धृषाणो धृषितः शवः ।

पुरा यथा व्यथिः श्रव इन्द्रस्य नाधृषे शवः ॥२॥

पदार्थ—(धृषितः) हारा हुआ शत्रु (धृषाणः=०—णस्य) हराने वाले [इन्द्र] का (शव) बल (न) नहीं (आधृषे—०—षते) कुछ भी हराता है, (आ) कुछ भी (दधृषते) हराता है। (यथा) क्योंकि (व्यथिः) व्यथा में पड़ा हुआ शत्रु (पुरा) निकट होकर (इन्द्रस्य) बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष के (श्रव) बल को (न) नहीं (आधृषे) कुछ भी हराता है ॥२॥

स नो ददातु तां रयिमुरुं पिशङ्गसंदृशम् ।

इन्द्रः पतिस्तुविष्टमो जनेष्वा ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह (नः) हमें (उरुम्) विस्तृत (पिशङ्गसंदृशम्) अपने अवयवों को दिखाने वाली (ताम्) उस (रयिम्) लक्ष्मी को (ददातु) देवे। (आ) हां, (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर (पतिः) पालने वाला और (जनेषु) सब मनुष्यों में (तुविष्टमः) सब से महान् है ॥३॥

सूक्तम् ३४

१—५ चातनः । अग्निः । गायत्री ।

प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम् ।

स नः पर्षदति द्विषः ॥१॥

पदार्थ—[हे विद्वन् !] (क्षितीनाम्) पृथिवी आदि लोकों के बीच (वृषभाय) महाबली (अग्नये) ज्ञान स्वरूप परमेश्वर के लिये (वाचम्) वाणी (प्र-ईरय) अच्छे प्रकार उच्चारण कर, (सः) वह (द्विषः) वैरियों को (अति=अतीत्य) उलांघ कर (नः) हमें (पर्षत्) पाले ॥१॥

यो रक्षांसि निजूर्वत्यग्निस्तिग्मेन शोचिषा ।

स नः पर्षदति द्विषः ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (अग्निः) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (तिग्मेन) तीव्र (शोचिषा) तेज से (रक्षांसि) राक्षसों को (निजूर्वति) मार गिराता है। (सः) वह (द्विषः) वैरियों को (अति) उलांघ कर (नः) हमें (पर्षत्) भरपूर करे ॥२॥

यः परस्याः परावतस्तिरो धन्वातिरोचते ।

स नः पर्षदति द्विषः ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो परमेश्वर (परस्याः) दूर दिशा के भी (परावतः) दूर स्थान से (धन्व) अन्तरिक्ष को (तिरः=तिरस्कृत्य) पार करके (अतिरोचते) अत्यन्त चमकता है। (सः) वह (द्विषः) वैरियों को (अति) उलांघ कर (नः) हमें (पर्षत्) भरपूर करे ॥३॥

यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति ।

स नः पर्षदति द्विषः ॥४॥

पदार्थ—(यः) जो परमेश्वर (विश्वा) सब (भुवना) भुवनों को (अभि) चारों ओर से (विपश्यति) अलग-अलग देखता है (च) और (सम् पश्यति) मिले हुए देखता है। (सः) वह (द्विषः) वैरियों को (अति) उलांघ कर (नः) हमें (पर्षत्) भरपूर करे ॥४॥

यो अस्य पारे रजसः शुक्रो अग्निरजायत ।

स नः पर्षदति द्विषः ॥५॥

पदार्थ—(यः) जो (शुक्रः) शुद्ध स्वभाव (अग्निः) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (अस्य) इस (रजसः) अन्तरिक्ष के (पारे) पार (अजायत) प्रकट हुआ है। (सः) वह (द्विषः) वैरियों को (अति) उलांघ कर (नः) हमें (पर्षत्) भरपूर करे ॥५॥

सूक्तम् ३५

१—३ कौशिकः । वैश्वानरः । गायत्री ।

वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु परावतः । अग्निर्नः सुष्टुतीरुप ॥१॥

पदार्थ—(वैश्वानरः) सब नरों का हितकारक परमेश्वर (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (परावतः) दूर वा उत्कृष्ट स्थान से (आ) सन्मुख (प्रयातु) आवे। (अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर (नः) हमारी (सुष्टुतीः) यथाशास्त्र स्तुतियों को (उप=उपयातु) प्राप्त हो ॥१॥

वैश्वानरो न आगमदिमं यज्ञं सजूरुप । अग्निरुक्थेष्वंहसु ॥२॥

पदार्थ—(वैश्वानरः) सब का नायक, (सजूः) प्रीति वाला (अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर (अंहसु) प्राप्ति योग्य (उक्थेषु) प्रकथनीय गुणों में वर्तमान होकर (इमम्) इस (यज्ञम्) पूजनीय कर्म को (उप=उपेत्य) प्राप्त करके (नः) हम को (आ अगमत्) प्राप्त हुआ है ॥२॥

वैश्वानरोऽङ्गिरसां स्तोममुक्थं च चाक्लृपत् ।

ऐषु द्युम्नं स्वर्यमत् ॥३॥

पदार्थ—(वैश्वानरः) सब नरों का नायक परमेश्वर (अङ्गिरसाम्) ज्ञानी महर्षियों के (स्तोमम्) स्तुति-योग्य कर्म (च) और (उक्थम्) प्रकथनीय गुण को (चाक्लृपत्) समर्थ करे। (एषु) इन [महर्षियों] में (द्युम्नम्) प्रकाशमान यश वा अन्न और (स्वः) अच्छे प्रकार प्राप्ति योग्य सुख (आ) सब ओर से (यमत्) स्थिर रहे ॥३॥

सूक्तम् ३६

१—३ अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः) । चन्द्रमाः । अनुष्टुप् ।

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् ।

अजस्रं घर्ममीमहे ॥१॥

पदार्थ—(ऋतावानम्) सत्यमय, (ऋतस्य) धन के और (ज्योतिषः) प्रकाश के (पतिम्) पति (वैश्वानरम्) सब के नायक परमेश्वर से (अजस्रम्) निरन्तर (घर्मम्) प्रकाश को (ईमहे) हम मांगते हैं ॥१॥

स विश्वा प्रति चाक्लृप ऋतूंरुत् सृजते वशी ।

यज्ञस्य वय उत्तिरन् ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (विश्वा प्रति) सब लोकों में व्यापकर (चाक्लृपे) समर्थ हुआ है। (वशी) वह वश में रखने वाला (यज्ञस्य) पूजनीय व्यवहार के (वयः) बल को (उत्तिरन्) बढ़ाता हुआ (ऋतून्) सब ऋतुओं को (उत्) उत्तमता से (सृजते) बनाता है ॥२॥

अग्निः परेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।

सम्राडेको वि राजति ॥३॥

पदार्थ—(कामः) कामना के योग्य, (एकः) एक (सम्राट्) राजाधिराज (अग्निः) सर्वव्यापक परमात्मा (भूतस्य) बीते हुए और (भव्यस्य) होनहार काल के (परेषु) दूर दूर (धामसु) धामों में (वि) विविध प्रकार (राजति) राज करता है ॥३॥

सूक्तम् ३७

१—३ अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः) । चन्द्रमाः । अनुष्टुप् ।

उप प्रागात् सहस्राक्षो युक्त्वा शपथो रथम् ।

शप्तारमन्विच्छन् मम वृक इवाविमतो गृहम् ॥१॥

पदार्थ—(सहस्राक्षः) सहस्रों व्यवहारों में दृष्टि वाला (शपथः) शांतिपथ बताने वाला (रथम्) रथ को (युक्त्वा) जोत कर (मम) मेरे (शप्तारम्) कुवचन बोलने वाले को (अन्विच्छन्) ढूंढता हुआ (उप) समीप (प्र अगात्) आया है, (इव) जैसे (वृकः) भेड़िया (अविमतः) भेड़ वाले के (गृहम्) घर में [आता है] ॥१॥

परि णो वृङ्ग्धि शपथ ह्रदमग्निरिवा दहन् ।

शप्तारमत्र नो जहि दिवो वृक्षमिवाशनिः ॥२॥

पदार्थ—(शपथ) हे शान्तिमार्ग दिखाने वाले राजन् ! (नः) हमे [परि वृङ्धि] छोड दे (इव) जैसे (दहन्) जलता हुआ (अग्निः) अग्नि (ह्रदम्) अथाह झील को [छोड जाता है] । (अत्र) यहाँ पर (नः) हमारे (शप्तारम्) कोसने वाले को (जहि) नाश कर दे, (इव) जैसे (दिवः) आकाश से (अशनिः) बिजुली (वृक्षम्) स्वीकरणीय वृक्ष को ॥२॥

यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात् ।

शुने पेष्ट्रमिवावक्षामं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो (अशपतः) न शाप देने वाले (नः) हम लोगो को (शपात्) शाप देवे । (च) और (यः) जो (शपतः) शाप देने वाले (नः) हम लोगो को (शपात्) शाप देवे । (अवक्षामम् तम्) उस निर्बल को (मृत्यवे) मृत्यु के सामने (प्रति अस्यामि) मैं फेंक देता हूँ (इव) जैसे (पेष्ट्रम) रोटी का टुकडा (शुने) कुत्ते के सामने ॥३॥

卐 सूक्तम् ३८ 卐

१—४ अथर्वा (वर्चस्काम.) । त्विषि , बृहस्पति । त्रिष्टुप् ।

सिंहे व्याघ्र उत या पृदाकौ त्विषिरग्नौ ब्राह्मणे सूर्ये या ।

इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥१॥

पदार्थ—(या) जो (त्विषि) ज्योति (सिंहे) सिंह मे, (व्याघ्रे) बाघ मे (उत) और (पृदाकौ) फुकारते हुए साप मे, और (या) जो (अग्नौ) अग्नि में (ब्राह्मणे) वेदवेत्ता पुरुष मे और (सूर्ये) सूर्य मे है । (या) जिस (देवी) दिव्य गुणवाली, (सुभगा) बडे ऐश्वर्य वाली [ज्योति] ने (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को (जजान) उत्पन्न किया है, (सा) वह (वर्चसा) अन्न से (संविदाना) मिलती हुई (नः) हमे (आ) आकर (एतु) मिले ॥१॥

या हस्तिनि द्वीपिनि या हिरण्ये त्विषिरप्सु गोषु या पुरुषेषु ।

इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥२॥

पदार्थ—(या) जो (त्विषिः) ज्योति (हस्तिनि) हाथी मे, (द्वीपिनि) चीते मे, (या) जो (हिरण्ये) सुवर्ण मे, और (या) जो (अप्सु) जल मे (गोषु) गौ आदिको मे और (पुरुषेषु) पुरुषो मे है । (या) जिस (देवी) दिव्य गुणवाली, (सुभगा) बडे ऐश्वर्य वाली [ज्योति] ने (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को (जजान) उत्पन्न किया है, (सा) वह (वर्चसा) अन्न से (संविदाना) मिलती हुई (नः) हमे (आ) आकर (एतु) मिले ॥२॥

रथे अक्षेष्वृषभस्य वाजे वाते पर्जन्ये वरुणस्य शुष्मे ।

इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥३॥

पदार्थ—(रथे) रथ मे, (अक्षेषु) पहियो मे, (ऋषभस्य) बैल के (वाजे) बल मे (वाते) पवन मे, (पर्जन्ये) मेघ मे, और (वरुणस्य) सूर्य के (शुष्मे) सुखाने वाले सामर्थ्य मे [जो ज्योति है] । (या) जिस (देवी) दिव्य गुणवाली, (सुभगा) बडे ऐश्वर्य वाली [ज्योति] ने (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को (जजान) उत्पन्न किया है, (सा) वह (वर्चसा) अन्न से (संविदाना) मिलती हुई (नः) हमे (आ) आकर (एतु) मिले ॥३॥

राजन्ये दुन्दुभावायतायामश्वस्य वाजे पुरुषस्य मायौ ।

इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥४॥

पदार्थ—(राजन्ये) क्षत्रिय मे, (आयतायाम्) फैली हुई (दुन्दुभौ) दुन्दुभी में, (अश्वस्य) घोडे के (वाजे) बल में, (पुरुषस्य) मनुष्य के (मायौ) पित्त वा शब्द में [जो ज्योति है] (या) जिस (देवी) दिव्य गुणवाली, (सुभगा) बडे ऐश्वर्यवाली [ज्योति] ने (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को (जजान) उत्पन्न किया है, (सा) वह (वर्चसा) अन्न से (संविदाना) मिलती हुई (नः) हमे (आ) आकर (एतु) मिले ॥४॥

卐 सूक्तम् ३९ 卐

१—३ अथर्वा (वर्चस्काम) । त्विषि , बृहस्पति । जगती, २ त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप् ।

यशो हविर्वर्धतामिन्द्रजूतं सहस्रवीर्यं सुभृतं सहस्कृतम् ।

प्रसर्स्राणमनु दीर्घाय चक्षसे हविष्मन्तं मा वर्धय ज्येष्ठतातये ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रजूतम्) परमेश्वर का भेजा हुआ (सहस्रवीर्यम्) सहस्रो सामर्थ्यवाला (सुभृतम्) अच्छे प्रकार भरा गया (सहस्कृतम्) पराक्रम से किया गया (यशः) यश और (हविः) अन्न (वर्धताम्) बढे । [हे परमेश्वर !] (दीर्घाय) बडे और (ज्येष्ठतातये) अत्यन्त प्रशंसनीय (चक्षसे) दर्शन के लिये (प्रसर्स्राणम्) आगे बढने वाले और (हविष्मन्तम्) भक्तिवाले (मा) मुझको (अनु) निरन्तर (वर्धय) तू बढा ॥१॥

अच्छा न इन्द्रं यशसं यशोभिर्यशस्विनं नमसाना विधेम ।

स नो रास्व राष्ट्रमिन्द्रजूतं तस्य ते रातौ यशसः स्याम ॥२॥

पदार्थ—(यशसम्) यशस्वी, (यशोभिः) अपनी व्याप्तियों से (यशस्विनम्) बडे कीर्ति वाले (इन्द्रम्) सम्पूर्ण ऐश्वर्य वाले परमेश्वर को (नमसानाः) नमस्कार करते हुए हम (नः) अपने लिए (अच्छ) अच्छे प्रकार (विधेम) पूजें । (सः) वह तू (इन्द्रजूतम्) तुझ परमेश्वर से भेजा हुआ (राष्ट्रम्) राज्य (नः) हमें (रास्व) दे, (तस्य ते) उस तेरे (रातौ) दान मे हम लोग (यशसः) यशस्वी (स्याम) होवें ॥२॥

यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत ।

यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र) सूर्य (यशाः) यश वाला, (अग्निः) अग्नि (यशाः) यश वाला, और (सोमः) चन्द्रमा (यशाः) यश वाला (अजायत) हुआ है । (यशाः) यश चाहने वाला (अहम्) मैं (विश्वस्य) सब (भूतस्य) ससार के बीच (यशस्तमः) अतियशस्वी (अस्मि) हूँ ॥३॥

卐 सूक्तम् ४० 卐

१—३ अथर्वा । द्यावापृथिवी, सोमः सविता, अन्तरिक्ष, सप्तऋषय , २, सविता, इन्द्रः, ३ इन्द्रः । १—२ जगती, ३ अनुष्टुप् ।

अभयं द्यावापृथिवी इहास्तु नोऽभयं सोमः सविता नः कृणोतु ।

अभयं नोऽस्तूर्वन्तरिक्षं सप्तऋषीणां च हविषाभयं नो अस्तु ॥१॥

पदार्थ—(द्यावापृथिवी) हे सूर्य और पृथिवी ! (इह) यहां पर (नः) हमारे लिये (अभयम्) अभय (अस्तु) होवे, (सोमः) बडे ऐश्वर्य वाला (सविता) सबका उत्पन्न करने वाला परमेश्वर (नः) हमारे लिये (अभयम्) अभय (कृणोतु) करे । (उरु) बडा (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (नः) हमारे लिये (अभयम्) अभय (अस्तु) होवे, (च) और (सप्तऋषीणाम्) सात व्यापनशीलो वा दर्शनशीलो के [अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि, अथवा दो कान, दो नथने, दो आँख, और मुख इन सात छिद्रो के] (हविषा) ठीक ठीक दान और ग्रहण से (नः) हमारे लिये (अभयम्) अभय (अस्तु) होवे ॥१॥

अस्मै ग्रामाय प्रदिशश्चतस्र ऊर्जं सुभूतं स्वस्ति सविता नः कृणोतु ।

अशत्र्विन्द्रो अभयं नः कृणोत्वन्यत्र राज्ञामभि यातु मन्युः ॥२॥

पदार्थ—(सविता) सबका चलाने वाला परमेश्वर (अस्मै) इस (ग्रामाय) गाव के लिये और (नः) हमारे लिये (चतस्रः) चारो (प्रदिशः) दिशाओ मे (ऊर्जम्) पराक्रम, (सुभूतम्) बहुत धन और (स्वस्ति) कल्याण (कृणोतु) करे । (इन्द्र) बडे ऐश्वर्य वाला परमात्मा (नः) हमारे लिये (अशत्रु) निर्वैर (अभयम्) अभय (कृणोतु) करे, (राज्ञाम्) राजाओं का (मन्युः) क्रोध (अन्यत्र) औरो पर (अभियातु) चला जावे ॥२॥

अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात् ।

इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे महाप्रतापी परमेश्वर ! (नः) हमारे लिये (अधरात्) नीचे से (अनमित्रम्) निर्वैरता, (नः) हमारे लिये (उत्तरात्) ऊपर से (अनमित्रम्) निर्वैरता, (नः) हमारे लिये (पश्चात्) पीछे से (अनमित्रम्) निर्वैरता और (पुरः) आगे से (अनमित्रम्) निर्वैरता (कृधि) तू कर ॥३॥

卐 सूक्तम् ४१ 卐

१—३ ब्रह्मा । चन्द्रमा , सरस्वती, दैव्या., ऋषय. । अनुष्टुप् १ भुरिक्, ३ त्रिष्टुप् ।

मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये ।

मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम् ॥१॥

पदार्थ—(मनसे) उत्तम मनन साधन मन के लिये, (चेतसे), ज्ञान के साधन चित्त के लिये, (धिये) धारणावती बुद्धि के लिये, (आकूतये) अच्छे संकल्प वा उत्साह के लिये (उत) और (चित्तये) स्मृति के हेतु विवेक के लिये, (मत्यै) समझ के लिए, (श्रुताय) श्रवण के लिये और (चक्षसे) दर्शन के लिये (वयम्) हम लोग (हविषा) भक्ति से [परमेश्वर को] (विधेम) पूजें ॥१॥

अपानाय व्यानाय प्राणाय भूरिधायसे ।

सरस्वत्या उरुव्यचे विधेम हविषा वयम् ॥२॥

पदार्थ—(अपानाय) बाहिर निकलने वाले अपानवायु के लिये, (व्यानाय) शरीर में व्यापक व्यान वायु के लिये, (भूरिधायसे) अनेक प्रकार से धारण करने

वाले (प्राणाय) जीवन वायु प्राण के लिये और (उरुव्यचे) दूर दूर तक फैलने वाले (सरस्वत्यै) विज्ञानवती सरस्वती (विद्या) के लिये (वयम्) हम लोग (हविषा) भक्ति से [परमेश्वर को] (विधेम) पूजें ॥२॥

मा नो॑ हासिषुर्ऋष॑यो दैव्या॒ ये त॑नूपा ये न॑स्तन्व॑स्तनूजाः ।

अम॑र्त्या मर्त्यां॑ अ॒भि नः॑ सचध्व॒मायु॑र्धत्त प्रत॒रं जी॒वसे॑ नः ॥३॥

पदार्थ—(दैव्याः) दिव्यगुण वाले (ऋषयः) व्यापनशील वा दर्शनशील [अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि, अथवा दो कान, दो नथने दो आंख और मुख] (नः) हमें (मा हासिषुः) न त्यागें, (ये) जो (तनूपाः) शरीर की रक्षा करने हारे और (नः) हमारे (तन्वः) शरीर के (तनूजाः) विस्तार के साथ उत्पन्न हुए हैं। (अमर्त्याः) हे अमर ! [नित्य उत्साहियो !] (मर्त्यान्) मरते हुए [निरुत्साही] मनुष्यों के हित करने वाले (नः) हम से (अभि) सब ओर से (सचध्वम्) मिले रहो, और (नः) हमें (प्रतरम्) अधिक श्रेष्ठ (आयुः) आयु (जीवसे) जीवन के लिये (धत्त) दान करो ॥३॥

卐 इति चतुर्थोऽनुवाकः 卐

卐

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ४२ 卐

१—३ भृग्वङ्गिराः (परस्पर चित्तैकीकरणकाम) । मन्युः । अनुष्टुप्, १—२ भुरिक् ।

अव॒ ज्यामि॑व॒ धन्व॑नो म॒न्युं त॑नोमि ते हृ॒दः ।

यथा॒ संम॑नसौ भू॒त्वा सखा॑याविव॒ सचा॑वहै ॥१॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे (हृदः) हृदय से (मन्युम्) क्रोध को (अव तनोमि) मैं उतारता हूं, (इव) जैसे (धन्वनः) धनुष से (ज्याम्) डोरी को। (यथा) जिस से (संमनसौ) एक मन (भूत्वा) होकर (सखायौ इव) दो मित्रों के समान (सचावहै) हम दोनों मिले रहें ॥१॥

सखा॑याविव सचावहा॒ अव॑ म॒न्युं त॑नोमि ते ।

अ॒धस्ते॒ अश्म॑नो म॒न्युमुपा॑स्यामसि॒ यो गु॒रुः ॥२॥

पदार्थ—(सखायौ इव) दो मित्रों के समान (सचावहै) हम दोनों मिले रहें, (ते) तेरे (मन्युम्) क्रोध को (अव तनोमि) मैं उतारता हूं। (ते) तेरे (मन्युम्) क्रोध को (अश्मनः) उस पत्थर के (अधः) नीचे (उप अस्यामसि) दबाकर हम गिराते हैं (यः) जो (गुरुः) भारी [पत्थर] है ॥२॥

अ॒भि ति॑ष्ठामि ते म॒न्युं पार्ष्ण्या॒ प्रप॑देन च ।

यथा॑व॒शो न वादि॑षो॒ मम॑ चि॒त्तमु॒पाय॑सि ॥३॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे (मन्युम्) क्रोध को [तेरी] (पार्ष्ण्या) एड़ी से (च) और (प्रपदेन) ठोकर से (अभि तिष्ठामि) मैं दबाता हूं। (यथा) जिस से (अवशः) परवश (न—न भूत्वा) न होकर (वादिषः) तू बातचीत करे, (मम) मेरे (चित्तम्) चित्त में (उप—आयसि) तू पहुँच करता है ॥३॥

卐 सूक्तम् ४३ 卐

१—३ भृग्वङ्गिराः (परस्परचित्तैकीकरणकामः) । मन्युशमनम् । अनुष्टुप् ।

अ॒यं द॒र्भो विम॑न्युकः॒ स्वाय॒ चार॑णाय च ।

म॒न्योर्विम॑न्युकस्या॒यं म॑न्यु॒शम॑न उच्यते ॥१॥

पदार्थ—(अयम्) यह (दर्भः) दर्भ अर्थात् दुःख नाश करने वाला वा सुकर्म गूँथने वाला पुरुष (स्वाय) अपने समुदाय के लिये (च च) और (अरणाय) प्राप्ति योग्य शूद्र अन्त्यज आदि के लिये (विमन्युकः) क्रोध हटाने वाला है। (अयम्) यह (मन्योः) क्रोधी का (विमन्युकः) क्रोध दूर करने वाला और (मन्युशमनः) क्रोध शान्त करने वाला (उच्यते) कहा जाता है ॥१॥

अ॒यं यो भू॒रिमू॑लः समु॒द्रम॑वति॒ष्ठति॑ ।

द॒र्भः पृ॑थि॒व्या उत्थि॑तो मन्यु॒शम॑न उच्यते ॥२॥

पदार्थ—(अयम्) यह (यः) जो (भूरिमूलः) बहुत प्रतिष्ठा वाला होकर (समुद्रम्) अन्तरिक्ष लोक तक (अवतिष्ठति) फैलता है। (दर्भः) यह दर्भ सुकर्मों का गूँथने वाला पुरुष (पृथिव्याः) पृथिवी से (उत्थितः) उठकर (मन्युशमनः) क्रोध शान्त करने वाला (उच्यते) कहा जाता है ॥२॥

वि ते॒ हन॒व्यां॑ श॒रणिं॒ वि ते॒ मुख्यां॑ नयामसि ।

यथा॑व॒शो न वादि॑षो॒ मम॑ चि॒त्तमु॒पाय॑सि ॥३॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे (हनव्याम्) ठोडी में वर्त्तमान और (ते) तेरे (मुख्याम्) मुख पर वर्त्तमान (शरणिम्) हिंसा के चिह्न को (वि वि नयामसि) सर्वथा हम हटाते हैं। (यथा) जिससे (अवशः) परवश (न—न भूत्वा) न होकर (वादिषः) तू बातचीत करे, (मम) मेरे (चित्तम्) चित्त में (उप आयसि) तू पहुँच करता है ॥३॥

卐 सूक्तम् ४४ 卐

विश्वामित्रः । वनस्पतिः । अनुष्टुप्, ३ त्रिपदा महाबृहती ।

अस्था॒द् द्यौरस्था॑त् पृथि॒व्यस्था॒द् विश्व॑मि॒दं जग॑त् ।

अस्थु॑र्वृ॒क्षा ऊ॒र्ध्वस्व॑प्ना॒स्तिष्ठा॒द् रोगो॑ अ॒यं तव॑ ॥१॥

पदार्थ—(द्यौः) सूर्य लोक (अस्थात्) ठहरा है, (पृथिवी) पृथिवी (अस्थात्) ठहरी है। (इदम्) यह (विश्वम्) सब (जगत्) जगत् (अस्थात्) ठहरा है। (ऊर्ध्वस्वप्नाः) ऊपर को मुख करके सोने वाले (वृक्षाः) वृक्ष (अस्थुः) ठहरे हुए हैं, [ऐसे ही] (तव) तेरा (अयम्) यह (रोगः) रोग (तिष्ठात्) ठहर जावे [और न बढ़े] ॥१॥

श॒तं या भे॑ष॒जानि॑ ते स॒हस्रं॒ संग॑तानि च ।

श्रेष्ठ॑मास्राव॒भेष॒जं वसि॑ष्ठं रोग॒नाश॑नम् ॥२॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (या) जो (शतम्) सौ (च) और (सहस्रम्) सहस्र (भेषजानि) औषधियां (संगतानि) परस्पर मेल वाली हैं, [उनमें से] (वसिष्ठम्) अतिशय धनी वा निवास करने वाला बड़ा, (श्रेष्ठम्) अतिश्रेष्ठ (आस्रावभेषजम्) रुधिर के बहाव वा घाव की औषध और (रोगनाशनम्) रोगों का नाश करने वाला है ॥२॥

रु॒द्रस्य॒ मूत्र॑मस्य॒मृत॑स्य॒ नाभिः॑ । वि॒षाण॒का नाम॒ वा

अ॑सि पितॄ॒णां मूला॒दुत्थि॑ता वातीकृत॒नाश॑नी ॥३॥

पदार्थ—[हे पुरुष] (रुद्रस्य) रुलाने वाले भीषण क्लेश का (मूत्रम्) छुड़ाने वा बन्ध करने वाला बल और (अमृतस्य) अमरपन वा मुक्ति का (नाभिः) मध्यस्थ (असि) तू है। (विषाणका) विविध भक्ति का उपदेश करने वाली (नाम) प्रसिद्ध (पितॄणाम्) पालन करने वाले गुणों के (मूलात्) मूल से [आदि कारण परमेश्वर से] (उत्थिता) प्रकट हुई और (वातीकृतनाशनी) हिंसाकर्म का नाश करने वाली शक्ति (वै) निश्चय करके (असि) तू है ॥३॥

卐 सूक्तम् ४५ 卐

१—३ अङ्गिरा प्रचेता यमश्च । दुःष्वप्ननाशनम् । १ विष्टारपङ्क्तिः, २ त्र्यवसाना शक्वरीगर्भा पञ्चपदा जगती, ३ अनुष्टुप्

प॒रोऽपे॑हि मनस्पाप॒ किमश॑स्तानि शंससि । परे॑हि॒ न त्वा॑

कामये वृ॒क्षां वना॑नि॒ सं च॑र गृ॒हेषु॒ गोषु॑ मे॒ मनः॑ ॥१॥

पदार्थ—(मनस्पाप) हे मानसिक पाप ! (परः) दूर (अप इहि) हट जा, (किम्) क्या (अशस्तानि) बुरी बातें (शंससि) तू बताता है। (परा इहि) दूर चला जा, (त्वा) तुझको (न कामये) मैं नहीं चाहता, (वृक्षान्) वृक्षों और (वनानि) वनों में (सम् चर) फिरता रह, (गृहेषु) घरों में और (गोषु) गौ आदि पशुओं में (मे) मेरा (मनः) मन है ॥१॥

अ॒व॒शसा॑ निः॒शसा॒ यत् प॑रा॒शसो॑पारि॒म जाग्र॑तो॒ यत् स्व॒पन्तः॑ ।

अ॒ग्निर्विश्वा॒न्यप॑ दुष्कृ॒तान्यजु॑ष्टान्या॒रे अ॒स्मद् द॑धातु ॥२॥

पदार्थ—(यत्) जो पाप (अवशसा) विश्वासघात से (निःशसा) कुवाद से, और (पराशसा) अपवाद से, अथवा (यत्) जो पाप (जाग्रतः) जागते हुए वा (स्वपन्तः) सोते हुए (उपारिम) हम ने किया है। (अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर (विश्वानि) सब (अजुष्टानि) अप्रिय (दुष्कृतानि) दुष्कर्मों को (अस्मत्) हम से (आरे) दूर (अप दधातु) हटा रक्खे ॥२॥

यदि॑न्द्र ब्रह्मणस्प॒तेऽपि॑ मृ॒षा चरा॑मसि ।

प्रचे॑ता न आङ्गिर॒सो दु॑रि॒तात् पा॒त्वंह॑सः ॥३॥

पदार्थ—(ब्रह्मणस्पते) हे बड़े बड़े लोकों के स्वामी (इन्द्र) सम्पूर्ण ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर ! (यत् अपि) जो कुछ भी पाप (मृषा) असत्य व्यवहार से (चरामसि) हम करें। (आङ्गिरसः) ज्ञानियों का हितकारी (प्रचेताः) बड़ी बुद्धि वाला परमात्मा (नः) हमें (दुरितात्) दुर्गति और (अंहसः) पाप से (पातु) बचावे ॥३॥

卐 सूक्तम् ४६ 卐

१—३ अङ्गिरा प्रचेता यमश्च । दुःष्वप्ननाशनम् । १ विष्टारपङ्क्ति, २ त्र्यवसाना शक्वरीगर्भा पञ्चपदा जगती, ३ अनुष्टुप् ।

यो न जीवोऽसि न मृतो देवानाममृतगर्भोऽसि स्वप्न ।
वरुणानी ते माता यमः पितारुर्नामासि ॥१॥

पदार्थ—(**स्वप्न**) हे स्वप्न ! (**य**) जो तू (**न**) न तो (**जीव**) जीवित और (**न**) न (**मृत**) मृतक (**असि**) है, [परन्तु] (**देवानाम्**) इन्द्रियों के (**अमृतगर्भः**) अमरपन का आधार (**असि**) तू है । (**वरुणानी**) वरुण अर्थात् ढकने वाले अन्धकार की शक्ति, रात्रि (**ते**) तेरी (**माता**) माता और (**यम**) नियम में चलाने वाला सूर्य (**पिता**) पिता है, और तू (**अररु**) हिंसक (**नाम**) नाम (**असि**) है ॥१॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि । तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ॥२॥

पदार्थ—(**स्वप्न**) हे स्वप्न (**ते**) तेरे (**जनित्रम्**) जन्म स्थान को (**विद्म**) हम जानते हैं, तू (**देवजामीनाम्**) इन्द्रियों की गतियों का (**पुत्र**) शुद्ध करने वाला और (**यमस्य**) नियम का (**करणः**) बनाने वाला (**असि**) है । तू (**अन्तक**) अन्त करने वाला (**असि**) है, और तू (**मृत्यु**) मरण करने वाला (**असि**) है । (**स्वप्न**) हे स्वप्न ! (**तम्**) उस (**त्वा**) तुझको (**तथा**) वैसे ही (**सम्**) अच्छे प्रकार (**विद्म**) हम जानते है, (**स**) सो तू (**स्वप्न**) हे स्वप्न ! (**नः**) हमें (**दुःस्वप्न्यात्**) बुरी निद्रा में उठे कुविचार से (**पाहि**) बचा ॥२॥

यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति ।
एवा दुःष्वप्न्यं सर्वं द्विषते सं नयामसि ॥३॥

पदार्थ—(**यथा यथा**) जैसे जैसे (**कलाम्**) सोलहवां अंश और (**यथा**) जैसे (**शफम्**) आठवा अंश [देकर] (**ऋणम्**) ऋण को (**सनमयन्ति**) लोग चुकाते है । (**एव**) वैसे ही (**सर्वम्**) सब (**दुःस्वप्न्यम्**) नींद में उठे बुरे विचार को (**द्विषते**) वैरी के लिये (**सम् नयामसि**) हम यथावत् छोड़ते है ॥३॥

卐 सूक्तम् ४७ 卐

१—३ अङ्गिरा प्रचेता । १ अग्नि, २ विश्वेदेवा, ३ सुधन्वा । त्रिष्टुप् ।

अग्निः प्रातःसवने पात्वस्मान् वैश्वानरो विश्वकृद् विश्वशंभूः ।
स नः पावको द्रविणे दधात्वायुष्मन्तः सहभक्षाः स्याम ॥१॥

पदार्थ—(**वैश्वानर**) सब नरों का हितकारी, (**विश्वकृत्**) जगत् का बनाने वाला (**विश्वशंभू**) संसार को सुख पहुँचाने वाला (**अग्नि**) सर्वव्यापक परमेश्वर (**प्रातः सवने**) प्रात काल के यज्ञ में (**अस्मान्**) हमारी (**पातु**) रक्षा करे । (**स**) वह (**पावक**) शुद्ध करने वाला जगदीश्वर (**न**) हमको (**द्रविणे**) धन के बीच (**दधातु**) रक्खे, (**आयुष्मन्त**) उत्तम आयु वाले और (**सहभक्षाः**) साथ साथ भोजन करने वाले (**स्याम**) हम रहें ॥१॥

विश्वे देवा मरुत इन्द्रो अस्मानस्मिन् द्वितीये सवने न जह्युः ।
आयुष्मन्तः प्रियमेषां वदन्तो वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥२॥

पदार्थ—(**विश्वे**) सब (**देवाः**) उत्तम गुण, (**मरुत**) विद्वान् लोग और (**इन्द्र**) बड़े ऐश्वर्य वाला जगदीश्वर (**अस्मान्**) हमको (**अस्मिन्**) इस (**द्वितीये**) दूसरे (**सवने**) यज्ञ में (**न**) नहीं (**जह्युः = जहतु**) त्याग करें (**आयुष्मन्त**) उत्तम जीवन रखने वाले, (**प्रियम्**) प्रिय (**वदन्त**) बोलते हुए (**वयम्**) हम लोग (**एषाम्**) इन (**देवानाम्**) उत्तम गुणों की (**सुमतौ**) सुमति में (**स्याम**) रहें ॥२॥

इदं तृतीयं सवनं कवीनामृतेन ये चमसमैरयन्त ।
ते सौधन्वनाः स्वरानशानाः स्विष्टिं नो अभि वस्यो नयन्तु ॥३॥

पदार्थ—(**ये**) जिन [महात्माओं] ने (**कवीनाम्**) बुद्धिमानों के (**ऋतेन**) सत्य से (**इदम्**) इस (**तृतीयम्**) तीसरे (**सवनम्**) यज्ञ में (**चमसम्**) अन्न (**ऐरयन्त**) प्राप्त कराया है । (**ते**) वे (**स्व**) सुख (**आनशानाः**) भोगते हुए (**सौधन्वनाः**) अच्छे अच्छे धनुष वा विज्ञान वाले पुरुष (**न**) हमारे (**स्विष्टिम्**) अच्छे यज्ञ को (**वस्यः अभि**) उत्तम फल की ओर (**नयन्तु**) ले चलें ॥३॥

卐 सूक्तम् ४८ 卐

१—३ अङ्गिरा प्रचेताः । १ श्येनः, २ ऋभु०, ३ वृषा, उष्णिक् ।

श्येनोऽसि गायत्रच्छन्दा अनु त्वा रभे ।
स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा ॥१॥

पदार्थ—तू (**गायत्रच्छन्दा**) गाने योग्य आनन्द कर्मों वाला (**श्येनः**) महाज्ञानी परमात्मा (**असि**) है, (**त्वा**) तुझ को (**अनु**) निरन्तर (**आ रभे**) मैं ग्रहण करता हूँ । (**मा**) मुझ को (**अस्य**) इस (**यज्ञस्य**) पूजनीय कर्म को (**उदृचि**) उत्तम स्तुति में (**स्वस्ति**) आनन्द से (**सम्**) यथावत् (**वह**) ले चले, (**स्वाहा**) यह आशीर्वाद हो ॥१॥

ऋभुरसि जगच्छन्दा अनु त्वा रभे ।
स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा ॥२॥

पदार्थ—तू (**जगच्छन्दा**) जगत में स्वतन्त्र (**ऋभुः**) मेधावी परमात्मा (**असि**) है, (**त्वा**) तुझ को (**अनु**) निरन्तर (**आ रभे**) मैं ग्रहण करता हूँ । (**मा**) मुझ को (**अस्य**) इस (**यज्ञस्य**) पूजनीय कर्म को (**उदृचि**) उत्तम स्तुति में (**स्वस्ति**) आनन्द से (**सम्**) यथावत् (**वह**) ले चल, (**स्वाहा**) यह आशीर्वाद हो ॥२॥

वृषासि त्रिष्टुप्छन्दा अनु त्वा रभे ।
स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा ॥३॥

पदार्थ—तू (**त्रिष्टुप्छन्दा**) तीनों [आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक] ताप छुड़ाने में समर्थ (**वृषाः**) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (**असि**) है, (**त्वा**) तुझको (**अनु**) निरन्तर (**आ रभे**) मैं ग्रहण करता हूँ । (**मा**) मुझ को (**अस्य**) इस (**यज्ञस्य**) पूजनीय कर्म को (**उदृचि**) उत्तम स्तुति में (**स्वस्ति**) आनन्द से (**सम्**) यथावत् (**वह**) ले चल, (**स्वाहा**) यह आशीर्वाद हो । १ ॥३॥

卐 सूक्तम् ४९ 卐

१—३ गार्ग्य । अग्नि । १ अनुष्टुप्, २ जगती ३ विराड्जगती ।

नहि ते अग्ने तन्वः क्रूरमानंश मर्त्यः ।
कपिर्बभस्ति तेजनं स्वं जरायु गौरिव ॥१॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! (**मर्त्य**) मनुष्य ने (**ते**) तेरे (**तन्व**) स्वरूप की (**क्रूरम्**) क्रूरता को (**नहि**) नहीं (**आनंश**) पाया है । (**कपि**) कंपाने वाले आप (**तेजनम्**) प्रकाशमान सूर्य मण्डल को (**बभस्ति**) खा जाते हैं (**इव**) जैसे (**गौ**) गौ (**स्वम्**) अपनी (**जरायु**) जरायु को [खा लेती है ॥१॥

मेष इव वै सं च वि चोर्वच्यसे यदुत्तरद्रावुपरश्च खादतः ।
शीर्ष्णा शिरोऽप्ससाप्सो अर्दयन्नंशून् बभस्ति हरितेभिरासभिः ॥२॥

पदार्थ—[हे अग्ने परमात्मन्] (**मेष इव**) मेढ़े के समान तू (**वै**) निश्चय करके (**सम् अच्यसे**) सिमट जाता है (**च च**) और (**उरु**) बहुत (**वि—वि अच्यसे**) फैल जाता है, (**यत्**) जबकि (**उत्तरद्रौ**) ऊंची शाखा पर (**खादत = खादन्**) खाता हुआ तू (**च**) निश्चय करके (**उपरः**) ठहरने वाला होता है । (**शीर्ष्णा**) शिर से (**शिर**) शिर को, और (**अप्ससा**) रूप से (**अप्स.**) रूप को (**अर्दयन्**) दबाते हुए आप (**हरितेभि**) हरण शील (**आसभिः**) गिराने के सामर्थ्यों से (**अंशून्**) सूर्य आदि लोकों को (**बभस्ति**) खा जाते हैं ॥२॥

सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यव्याखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः ।
नि यन्नियन्त्युपरस्य निष्कृतिं पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्रितः ॥३॥

पदार्थ—(**सूर्यश्रित.**) सूर्य में ठहरी हुई (**सुपर्णाः**) अच्छे प्रकार पालन करने वाली वा बड़ी शीघ्रगामी किरणों ने (**आखरे**) खनन योग्य (**द्यवि**) अन्तरिक्ष में (**उप- उपेत्य**) मिलकर (**वाचम्**) शब्द (**अक्रत**) किया, और (**कृष्णाः**) रस खींचने वाली (**इषिरा**) चलने वाली [उन किरणों] ने (**अनर्तिषु**) नृत्य किया । (**यत्**) जब वे (**उपरस्य**) मेघ की (**निष्कृतिम्**) रचना की ओर (**नि**) नियम से (**नियन्ति**) झुकती हैं, [तब] उन्होंने (**पुरु**) बहुत (**रेत**) वृष्टि जल (**दधिरे**) धारण किया है ॥३॥

卐 सूक्तम् ५० 卐

१—३ अथर्वा (अभयकाम) । अश्विनौ । १ विराड् जगती, २—३ पथ्यापङ्क्ति ।

हतं तर्दं समङ्कमाखुमश्विना छिन्तं शिरो अपि पृष्टीः शृणीतम् ।
यवान्नेददानपि नह्यतं मुखमथाभयं कृणुतं धान्याय ॥१॥

पदार्थ—(**अश्विना**) हे कामों में व्याप्त रहने वाले स्त्री पुरुषो ! (**तर्दम्**) हिंसा करने वाले कौवे आदि को, (**समङ्कम्**) पृथिवी में अङ्क करने वाले सूकर

आदि को, और (आखुम्) कुतरने वाले चूहे आदि को (हतम्) तुम मारो, (शिर) उनका शिर (छिन्तम्) काटो और (पृष्टी॰) पसलिया (अपि) भी (शृणीतम्) तोड़ो। वे (यवान्) जवादि अन्नों को (न इत्) कभी न (अदान्) खावें, (मुखम्) उनका मुख (अपि) भी (नह्यतम्) तुम बांधो, (अथ) और (धान्याय) धान्य के लिये (अभयम्) अभय (कृणुतम्) करो ॥१॥

तर्द्र है पतङ्ग है जभ्य हा उपक्वस । ब्रह्मेवासंस्थितं

हुविरनदन्त इमान् यवानहिंसन्तो अपोदित ॥२॥

पदार्थ– (है) हे (तर्द) हिंसक काक आदि ! (है) हे (पतङ्ग) फुदकने वाले टिड्डी आदि। (है) हे (जभ्य) वधयोग्य (उपक्वस) भूमि पर रेंगने वाले कीड़े ! (ब्रह्मा इव) विद्वान् पुरुष ब्रह्मा के समान (असंस्थितम्) विना संस्कार किये हुए (हवि) अन्न को, (इमान्) इन (यवान्) यव आदि अन्न को (अनदन्त:) न खाते हुए और (अहिंसन्त) न तोड़ते हुए (अपोदित) उड जाओ ॥२॥

तर्दापते वघापते तृष्टजम्भा आ शृणोत मे । य आरण्या

व्यद्वरा ये के च स्थ व्यद्वरास्तान्त्सर्वान् जम्भयामसि ॥३॥

पदार्थ—(तर्दपते) हे हिंसको के स्वामी ! (घघापते) हे टिड्डी आदिको के स्वामी ! (तृष्टजम्भा.) हे प्यासे मुखवाले कीड़ो ! (मे) मेरी (आ) अच्छे प्रकार (शृणोत) सुनो (ये) जो तुम (आरण्या) जगली और (व्यद्वरा) विविध प्रकार खाने वाले (च) और (ये) (के) जो कोई दूसरे जन्तु (व्यद्वरा॰) खा लेने वाले (स्थ) हो, (तान्) उन तुम (सर्वान्) सब को (जम्भयामसि) हम नाश करते हैं ॥३॥

卐 सूक्तम् ५१ 卐

१—३ शन्तातिः । आपः, ३, वरुण । त्रिष्टुप्, १ गायत्री, ३ जगती ।

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अति द्रुतः ।

इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥१॥

पदार्थ—(वायो) सर्वव्यापक परमेश्वर के [बनाये हुए] (पवित्रेण) शुद्ध आचरण से (पूतः) शुद्ध किया हुआ, (प्रत्यङ्) प्रत्यक्ष पूजनीय, (अति) अति (द्रुत) शीघ्रगामी (सोम) ऐश्वर्यवान् वा अच्छे गुण वाला पुरुष (इन्द्रस्य) परमेश्वर का (युज्य) योग्य (सखा) सखा होता है ॥१॥

आपो अस्मान् मातरः सूदयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।

विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥२॥

पदार्थ—(मातर) माता के समान पालन करने वाले (आप॰) जल (अस्मान्) हम को (सूदयन्तु) सींचे, (घृतप्व) घृत को पवित्र करने वाले [जल] (घृतेन) घृत से (न) हमको (पुनन्तु) पवित्र करें। (देवी.) दिव्यगुणयुक्त जल (विश्वम्) सब (हि) ही (रिप्रम्) मल को (प्रवहन्ति) बहा देते हैं, (आभ्यः) इन जलो से (इत्) ही (शुचि) शुद्ध और (आ पूत) सर्वथा पवित्र होकर (उत् एमि) मै ऊचा चलता हूँ ॥२॥

यत् किंचेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरन्ति । अचित्त्या

चेत् तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥३॥

पदार्थ—(वरुण) हे अति उत्तम परमेश्वर ! (मनुष्या) मनुष्य (इदम्) यह (यत् किम् च) जो कुछ भी (अभिद्रोहम्) अपकार (दैव्ये) विद्वानो के बीच विद्वान् (जने) मनुष्य पर (चरन्ति) करते हैं (च) और (इत्) भी (अचित्त्या) अचेतनपन से (तव) तेरे (धर्मा) धर्म को (युयोपिम) हमने तोड़ा है, (देव) हे प्रकाशमय परमात्मन् ! (न.) हमे (तस्मात्) उस (एनस) पाप से (मा रीरिष॰) मत नष्ट कर ॥३॥

卐 इति पञ्चमोऽनुवाकः 卐

卐

अथ षष्ठोनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ५२ 卐

१—३ भागलिः । १ सूर्य, २ गावः, ३ भेषजम् । अनुष्टुप् ।

उत् सूर्यो दिव एति पुरो रक्षांसि निजूर्वन् ।

आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥१॥

पदार्थ—(आदित्यः) सब ओर प्रकाश वाला, (विश्वदृष्ट:) सबो करके देखा गया और (अदृष्टहा) न दीखते हुए पदार्थों में गति वाला (सूर्यः) सूर्य (दिव.) अन्तरिक्ष के बीच (रक्षांसि) राक्षसो [अन्धकार आदि उपद्रवों] को (निजूर्वन्) सर्वथा नाश करता हुआ (पर्वतेभ्य) मेघो वा पहाड़ो से (पुरः) सन्मुख (उत् एति) उदय होता है ॥१॥

नि गावो गोष्ठे असदुन् नि मृगासो अविक्षत ।

न्यू३र्मयो नदीनां न्य१दृष्टा अलिप्सत ॥२॥

पदार्थ—(गावः) किरणें (गोष्ठे) किरणो के स्थान, अन्तरिक्ष मे (नि) पैठ कर (असदन्) ठहरी हैं, (मृगासः) खोजने वाले पुरुषो ने (नि अविक्षत) [अपने कामो मे] प्रवेश किया है। (नदीनाम्) स्तुति करने वाली प्रजाओं की (ऊर्मय) गति क्रियाओं मे (अदृष्टाः) न दीखती हुई पक्तियों को (नि नि) अति निश्चय करके (अलिप्सत) पाने की इच्छा की है ॥२॥

आयुर्ददं विपश्चितं श्रुतां कण्वस्य वीरुधम् ।

आभारिषं विश्वभेषजीमस्यादृष्टान् नि शमयत् ॥३॥

पदार्थ—(कण्वस्य) बुद्धिमान् पुरुष की (आयुर्ददम्) जीवन देने वाली, (विपश्चितम्) भले प्रकार चेताने वाली, (श्रुताम्) प्रसिद्ध, (वीरुधम्) विविध प्रकार प्रकट होने वाली, (विश्वभेषजीम्) ससार का भय जीतने वाली वेद विद्या को (आ अभारिषम्) मैंने पाया है। वह (अस्य) इस पुरुष के (अदृष्टान्) न दीखते हुए दोषों को (नि शमयत्) शान्त कर देवे ॥३॥

卐 सूक्तम् ५३ 卐

१—३ बृहच्छुक्र । १ द्यौः, पृथिवी, शुक्र., सोम , अग्निः, वायु॰, सविता, २ वैश्वानरः, ३ त्वष्टा । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

द्यौश्च म इदं पृथिवी च प्रचेतसौ शुक्रो बृहन् दक्षिणया पिपर्तु ।

अनु स्वधा चिकितां सोमो अग्निर्वायुर्नः पातु सविता भगश्च ॥१॥

पदार्थ—(प्रचेतसौ) उत्तम ज्ञान देने वाले (द्यौ.) आकाश (च) और (पृथिवी) पृथिवी (च) और (बृहन्) बड़ा (शुक्रः) प्रकाशमान सूर्य (मे) मेरे लिए (इदम्) इस घर को (दक्षिणया) दक्षिणा [दान वा प्रतिष्ठा] से (पिपर्तु) भरपूर करे। (सोम) चन्द्रमा और (अग्निः) अग्नि (अनु) अनुग्रह करके (स्वधा) अन्न को (चिकिताम्) जतावे, (वायु) वायु (च) और (सविता) सबका उत्पन्न करने हारा (भग.) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (न) हमारी (पातु) रक्षा करे ॥१॥

पुनः प्राणः पुनरात्मा न ऐतु पुनश्चक्षुः पुनरसुर्न ऐतु ।

वैश्वानरो नो अदब्धस्तनूपा अन्तस्तिष्ठाति दुरितानि विश्वा ॥२॥

पदार्थ—(पुन) बार-बार (प्राण) प्राण, (पुन) बार-बार (आत्मा) आत्मबल (न॰) हमे (ऐतु) प्राप्त हो, (पुन) बार-बार (चक्षुः) देखने का सामर्थ्य, (पुनः) बार-बार (असु) बुद्धि (नः) हमे (ऐतु) प्राप्त हो। (अदब्धः) बेचूक, (तनूपाः) शरीरो का रक्षक, (वैश्वानर) सब नरो का हितकारी परमात्मा (न) हमारे (विश्वा) सब (दुरितानि) कष्टो के (अन्तः) बीच मे (तिष्ठाति) स्थित रहे ॥२॥

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन ।

त्वष्टा नो अत्र वरीयः कृणोत्वनु नो मार्ष्टु तन्वो यद् विरिष्टम् ॥३॥

पदार्थ—(वर्चसा) अन्न के साथ, (पयसा) विज्ञान के साथ (सम्) यथावत् (तनूभिः) शरीरो के साथ (सम्) यथाविधि, और (शिवेन) मङ्गलकारी (मनसा) मन के साथ (सम् अगन्महि) हम सगत हुए हैं। (त्वष्टा) विश्वकर्मा परमेश्वर (न) हमारे लिए (अत्र) यहाँ पर (वरीय.) अति विस्तीर्ण धन (कृणोतु) करे और (न) हमारे (तन्व) शरीर का (यत्) जो (विरिष्टम्) विविध कष्ट है उसे (अनु मार्ष्टु) शुद्ध करता रहे ॥३॥

卐 सूक्तम् ५४ 卐

१—३ ब्रह्मा । अग्नीषोमौ । अनुष्टुप् ।

इदं तद् युज उत्तरमिन्द्रं शुम्भाम्यष्टये ।

अस्य क्षत्रं श्रियं महीं वृष्टिरिव वर्धया तृणम् ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रम्) सम्पूर्ण ऐश्वर्य वाले राजा को (अष्टये) इष्ट प्राप्ति के लिए (शुम्भामि) सुशोभित करता हूँ, [जिससे] (युजे) उसके मित्र के लिये (इदम्) यह और (तत्) वह (उत्तरम्) अधिक ऊंचा पद होवे। [हे जगदीश्वर !] (अस्य) इस पुरुष के (क्षत्रम्) राज्य और (महीम्) बड़ी (श्रियम्) सम्पत्ति को (वर्धय) बढ़ा, (वृष्टि इव) जैसे बरसा (तृणम्) घास को ॥१॥

अस्मै क्षत्रमग्नीषोमावस्मै धारयतं रयिम् ।

इमं राष्ट्रस्याभीवर्गे कृणुतं युज उत्तरम् ॥२॥

पदार्थ—(अग्नीषोमौ) हे सूर्य और चन्द्रमा ! तुम दोनो (अस्मै) इस पुरुष के लिये (क्षत्रम्) राज्य को और (अस्मै) इसके लिये (रयिम्) सम्पत्ति को (धारयतम्) दृढ करो । (इमम्) इस पुरुष को (राष्ट्रस्य) राज्य के (अभीवर्गे) मण्डल मे (युजे) मित्रवर्ग के लिये (उत्तरम्) अधिक ऊंचा (कृणुतम्) करो ॥२॥

सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति ।

सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते ॥३॥

पदार्थ—(य) जो शत्रु (सबन्धु) बन्धुओ सहित (च च) और (असबन्धु) बिना बन्धुओ के होकर (अस्मान्) हमे (अभिदासति) सतावे । (तम्) उस (सर्वम) सबको (सुन्वते) तत्त्वमथन करने वाले (यजमानाय) विद्वानो का सत्कार करने वाले (मे) मेरे लिये (रन्धयासि) वश मे कर ॥

卐 सूक्तम् ५५ 卐

१—३ ब्रह्मा । विश्वेदेवा २-३ रुद्रः । जगती, २ त्रिष्टुप् ।

ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति ।

तेषामज्यानिं यतमो वहाति तस्मै मा देवाः परि धत्तेह सर्वे ॥१॥

पदार्थ—(ये) जो (देवयाना) विद्वानो के यानो, रथादिको के योग्य (बहव) बहुत से (पन्थान) मार्ग (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी के (अन्तरा) बीच (संचरन्ति) चलते रहते हैं । (तेषाम) उन मार्गों में से (यतम) जो कोई मार्ग (अज्यानिम्) अभङ्ग शान्ति (वहाति) पहुँचावे । (सर्वे देवा) हे सब विद्वानो ! (तस्मै) उस मार्ग के लिये (मा) मुझे (इह) यहा पर (परि) अच्छे प्रकार (धत्त) स्थिर करो ॥१॥

ग्रीष्मो हेमन्तः शिशिरो वसन्तः शरद् वर्षाः स्विते नो दधात ।

आ नो गोषु भजता प्रजायां निवात इद् वः शरणे स्याम ॥२॥

पदार्थ—(वसन्त) वसन्तकाल [चैत, वैशाख] (ग्रीष्म.) घाम ऋतु [ज्येष्ठ, आषाढ] (वर्षा) बरसा [श्रावण, भाद्रमास] (शरत्) शरद् ऋतु [आश्विन, कार्तिक] (हेमन्तः) शीतकाल [अग्रहायण, पौष] (शिशिरः) उतरता शीतकाल [माघ, फाल्गुन] ये तुम सब (न) हमे (स्विते) अच्छे प्रकार प्राप्त कुशल मे (दधात) स्थापित करो । (न) हम (गोषु) गौ आदि पशुओ में (आ) और (प्रजायाम्) प्रजा मे (आ) सब ओर से (भजत) भागी करो, (व) तुम्हारे (इत्) ही (निवाते) हिंसारहित (शरणे) शरण मे (स्याम) हम रहें ॥२॥

इदावत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय कृणुता बृहन्नमः ।

तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥३॥

पदार्थ—(परिवत्सराय) सब ओर से निवास कराने वाले पिता को, (इदावत्सराय) विद्या मे निवास कराने वाले आचार्य को और (संवत्सराय) यथानियम निवास कराने वाले राजा को तुम (बृहत) बहुत बहुत (नम) नमस्कार (कृणुत) करो । (तेषाम) उन (यज्ञियानाम्) उत्तम व्यवहार करने हारो के (अपि) ही (सुमतौ)सुमति वाले और (भद्रे) कल्याणकारक (सौमनसे) हार्दिक स्नेह मे (वयम्) हम लोग (स्याम) रहे ॥३॥

卐 सूक्तम् ५६ 卐

१—३ शन्ताति । १ विश्वेदेवा , २—३ रुद्र. । १ उष्णिग्गर्भा पथ्यापङ्क्ति , २ अनुष्टुप्, ३ निचृत् ।

मा नो देवा अहिर्वधीत् सतोकान्त्सहपूरुषान् ।

संयतं न वि ष्परद् व्यात्तं न सं यमन्नमो देवजनेभ्यः ॥१॥

पदार्थ—(देवाः) हे विद्वानो ! (सतोकान्) सन्तानो सहित और (सह पूरुषान्) पुरुषों सहित (नः) हमको (अहि) चोट देने वाला सर्प [सर्प तुल्य अपना दोष] (मा वधीत्) न काटे । वह (संयतम्) मुंदे हुए मुख को (न) न (वि स्परत्) खोले और (व्यात्तम्) खुले मुख को (न) न (सम् यमत्) मूंदे । (देवजनेभ्यः) विद्वान् जनों को (नम) नमस्कार है ॥१॥

नमोऽस्त्वसिताय नमस्तिरश्चिराजये ।

स्वजाय बभ्रवे नमो नमो देवजनेभ्यः ॥२॥

पदार्थ—(असिताय) काले सांप के लिये (नम) वज्र (अस्तु) होवे, (तिरश्चिराजये) तिरछी धारी वाले सांप के लिये (नम) वज्र और (स्वजाय) लिपटने वाले (बभ्रवे) भूरे सांप के लिये (नम) वज्र होवे । (देवजनेभ्य) विद्वान् जनो के लिये (नम) सत्कार है ॥२॥

सं ते हन्मि दता दतः समु ते हन्वा हनू ।

सं ते जिह्वया जिह्वां सम्वास्नाह आस्यम् ॥३॥

पदार्थ—(अहे) हे सर्प ! (ते) तेरे (दता) दांत से (दत.) दांतों को (सम् हन्मि) मिला कर तोडता हूँ, (उ) और (ते) तेरे (हन्वा) जाबडे से (हनू) दोनो जाबडो को (सम्) मसल कर, (ते) तेरी (जिह्वया) जीभ से (जिह्वाम्) जीभ को (सम्) मसलकर (उ) और (आस्ना) मुख से (आस्यम्) मुख को (सम्) मिला कर [तोडता हूँ] ॥३॥

卐 सूक्तम् ५७ 卐

१—३ शन्ताति । रुद्र । १—२ अनुष्टुप्, ३, पथ्याबृहती ।

इदमिद् वा उ भेषजमिदं रुद्रस्य भेषजम् ।

येनेषुमेकतेजनां शतशल्यामपब्रवत् ॥१॥

पदार्थ—(इदम्) यह [वेद ज्ञान] (इत्) ही (वै) निश्चय करके (भेषजम) भय निवारक वस्तु है, (इदम्) यह (उ) ही (रुद्रस्य) दु खनाशक परमेश्वर का (भेषजम्) औषध है । (येन) जिससे [मनुष्य] (एकतेजनाम्) देहरूप एक दण्डवाले और (शतशल्याम्) व्याधिरूप सैकडो अणी वाले (इषुम्) बाण को (अपब्रवत्) हटा कर बोले ॥१॥

जालाषेणाभि षिञ्चत जालाषेणोप सिञ्चत ।

जालाषमुग्रं भेषजं तेन नो मृड जीवसे ॥२॥

पदार्थ—(जालाषेण) जल सम्बन्धी द्रव्य से [फोडे को] (अभि सिञ्चत) सब ओर से सीचो । (जालाषेण) सुख कारक पदार्थों से [उसे] (उपसिञ्चत) पास से सीचो । (जालाषम्) सुखो का समूह [वेदज्ञान] (उग्रम्) तीक्ष्ण (भेषजम्) औषध है, (तेन) उससे [हे रुद्र] (न) हमे (जीवसे) जीने के लिये (मृड) सुखी रख ॥२॥

शं च नो मयश्च नो मा च नः किं चनाममत् ।

क्षमा रपो विश्वं नो अस्तु भेषजं सर्वं नो अस्तु भेषजम् ॥३॥

पदार्थ—(च) निश्चय करके (नः) हमारे लिये (शम्) शान्ति (च) और (न) हमारे लिये (मय) सुख होवे, (च) और (न.) हमे (किं चन) कोई भी दु.ख (मा आममत्) न पीडा देवे । (रप. = रपस) पाप की (क्षमा) क्षमा हो । (विश्वम्) सब जगत् (न) हमारे लिये (भेषजम्) भय निवारक (अस्तु) होवे, (सर्वम्) सब (न) हमारे लिये (भेषजम्) रोगनाशक (अस्तु) होवे ॥३॥

卐 सूक्तम् ५८ 卐

१—३ अथर्वा (यशस्कामः) । बृहस्पति , १—२ इन्द्र., द्यावापृथिवी, सविता, ३ अग्नि , इन्द्र , सोम । १ जगती, २ प्रस्तारपङ्क्ति , ३ अनुष्टुप् ।

यशसं मेन्द्रो मघवान् कृणोतु यशसं द्यावापृथिवी उभे इमे । यशसं मा देवः सविता कृणोतु प्रियो दातुर्दक्षिणाया इह स्याम् ॥१॥

पदार्थ—(मघवान्) बडा धनी (इन्द्र) परमेश्वर (मा) मुझे (यशसम्) यशस्वी (कृणोतु) करे, (इमे) ये (उभे) दोनो (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी लोक (यशसम्) कीर्तिमान् [करें] । (देव) व्यवहारकुशल (सविता) विद्याप्रेरक आचार्य (मा) मुझे (यशसम्) यशस्वी (कृणोतु) करे । (दक्षिणायाः) दक्षिणा वा प्रतिष्ठा के (दातु.) देने वाले राजा का (प्रिय) प्रिय (इह) यहाँ पर (स्याम्) मैं रहूँ ॥१॥

यथेन्द्रो द्यावापृथिव्योर्यशस्वान् यथाप ओषधीषु यशस्वतीः ।

एवा विश्वेषु देवेषु वयं सर्वेषु यशसः स्याम ॥२॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (इन्द्रः) परमेश्वर (द्यावापृथिव्योः) सूर्य और पृथिवी लोक मे (यशस्वान्) कीर्तिमान् है, और (यथा) जैसे (आपः) जल (ओषधीषु) अन्न आदि ओषधियो मे (यशस्वतीः) यश वाले हैं । (एव) वैसे ही (विश्वेषु) सब (देवेषु) व्यवहारकुशल महात्माओं मे और (सर्वेषु) सब गुणों मे (वयम्) हम लोग (यशसः) यश चाहने वाले (स्याम) होवें ॥२॥

यथा इन्द्रो यथा अग्निर्यशाः सोमो अजायत ।
यथा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः ॥३॥

पदार्थ—यह मन्त्र इसी काण्ड के सूक्त ३९ मन्त्र ३ में आ चुका है, वहां देख लेवें ॥३॥

卐 सूक्तम् ५९ 卐

१—३ अथर्वा । रुद्र: अरुन्धती, ओषधि , अनुष्टुप् ।

अनुडुद्भ्यस्त्वं प्रथमं धेनुभ्यस्त्वमरुन्धति ।
अधेनवे वयसे शर्म यच्छ चतुष्पदे ॥१॥

पदार्थ—(अरुन्धति) हे रोक न डालने वाली शक्ति ! परमात्मन् (त्वम्) तू (अनडुद्भ्यः) प्राण और जीविका पहुँचाने वाले पुरुषो को (त्वम्) तू (धेनुभ्य) तृप्त करने वाली स्त्रियों को और (अधेनवे) बिना दूध वाले (चतुष्पदे) चौपाये को (वयसे) अन्नप्राप्ति के लिये (प्रथमम्) विस्तृत (शर्म) घर (यच्छ) दे ॥१॥

शर्म यच्छत्वोषधिः सह देवीररुन्धती ।
करत् पयस्वन्तं गोष्ठमयक्ष्माँ उत पूरुषान् ॥२॥

पदार्थ—(ओषधि:) तापनाशक (अरुन्धती) न रोक डालने वाली शक्ति परमेश्वर (देवी: सह=देवीभि: सह) उत्तम क्रियाओ के साथ (शर्म) शरण (यच्छतु) देवे । (गोष्ठम्) हमारी गोशाला को (पयस्वन्तम्) बहुत दुग्ध वाली (उत) और (पूरुषान्) पुरुषों को (अयक्ष्मान्) नीरोग (करत्) करे ॥२॥

विश्वरूपां सुभगामच्छावदामि जीवलाम् ।
सा नो रुद्रस्यास्तां हेतिं दूरं नयतु गोभ्यः ॥३॥

पदार्थ—(विश्वरूपाम्) सबका रूप [रचना] करने वाली, (सुभगाम्) बड़े ऐश्वर्य वाली, (जीवलाम्) जीवन देने वाली अथवा जीवन सामर्थ्य वाली शक्ति परमात्मा को (अच्छावदामि) मैं स्वागत करके आवाहन करता हूँ । (सा) वह (रुद्रस्य) दु:खनाशक परमेश्वर की (अस्ताम्) गिराई हुई (हेतिम्) ताड़ना को (न) हमारी (गोभ्य) भूमियो से (दूरम्) दूर (नयतु) ले जावे ॥३॥

卐 सूक्तम् ६० 卐

१—३ अथर्वा । अर्यमा । अनुष्टुप् ।

अयमा यात्यर्यमा पुरस्ताद् विषितस्तुपः ।
अस्या इच्छन्नग्रुवै पतिमुत जायामजानये ॥१॥

पदार्थ—(अयम्) यह (विषितस्तुप:) प्रसिद्ध स्तुति वाला (अर्यमा) अन्धकारनाशक सूर्य (अस्यै) इस (अग्रुवै) ज्ञानवती कन्या के लिये (पतिम्) पति, (उत) और (अजानये) अविवाहित पुरुष के लिये (जायाम्) पत्नी (इच्छन्) चाहता हुआ (पुरस्तात्) हमारे आगे (आ याति) आता है ॥१॥

अश्रमदियमर्यमन्नन्यासां समनं यती ।
अङ्गो न्वर्यमन्नस्या अन्याः समनमायति ॥२॥

पदार्थ—(अर्यमन्) हे शत्रुनाशक परमेश्वर ! (अन्यासाम्) दूसरी कन्याओ के (समनम्) विवाह मे (यती) जाती हुई (इयम्) इस कन्या ने (अश्रमत्) तप किया है । (अङ्गो) हे (अर्यमन्) न्यायकारी परमेश्वर ! (अन्या) दूसरी कन्यायें (अस्या:) इस कन्या के (समनम्) विवाह मे (नु) अवश्य (आयति) आवें ॥२॥

धाता दाधार पृथिवीं धाता द्यामुत सूर्यम् ।
धातास्या अग्रुवै पतिं दधातु प्रतिकाम्यम् ॥३॥

पदार्थ—(धाता) विधाता ने (पृथिवीम्) पृथिवी को, (उत) और (धाता) विधाता ने (द्याम्) आकाश और (सूर्यम्) सूर्य को (दाधार) धारण किया । (धाता) वही विधाता (अस्यै) इस (अग्रुवै) उद्योगशील कन्या को (प्रतिकाम्यम्) प्रतिज्ञा करके चाहने योग्य (पतिम्) पति (दधातु) देवे ॥३॥

卐 सूक्तम् ६१ 卐

१—३ अथर्वा । रुद्र: । त्रिष्टुप्, २—३ भुरिक् ।

मह्यमापो मधुमदेरयन्तां मह्यं सूरो अभरज्ज्योतिषे कम् ।
मह्यं देवा उत विश्वे तपोजा मह्यं देवः सविता व्यचो धात् ॥१॥

पदार्थ—(मह्यम्) मेरे लिये (आप.) व्यापनशील जल (मधुमत्) मधुरपन से (आ ईरयन्ताम्) आकर बहें, (मह्यम्) मेरे लिये (सूर.) लोकों को चलाने वाले सूर्य ने (ज्योतिषे) ज्योति करने को (कम्) सुख (अभरत्) धारण किया है । (उत) और (मह्यम्) मेरे लिए (तपोजा.) तप से उत्पन्न होने वाले (विश्वे) सब (देवा) उत्तम गुण हैं, (मह्यम्) मेरे लिये (देव) व्यवहार मे चतुर (सविता) ऐश्वर्यवान् मनुष्य ने (व्यच) विस्तार (धात्=अधात्) धारण किया है ॥१॥

अहं विवेच पृथिवीमुत द्यामहमृतूँरजनयं सप्त साकम् ।
अहं सत्यमनृतं यद् वदाम्यहं दैवीं परि वाचं विशश्च ॥२॥

पदार्थ—(अहम्) मैंने (पृथिवीम्) पृथिवी (उत) और (द्याम्) सूर्य को (विवेच) पृथक् पृथक् किया, (अहम्) मैंने (सप्त) सात (ऋतून्) व्यापनशील [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] को (साकम्) आपस में मिला हुआ (अजनयम्) उत्पन्न किया है । (अहम्) मैं (यत्) जो कुछ (सत्यम्) सत्य और (अनृतम्) झूठ है [उसे] (च) और (अहम्) मैं (दैवीम्) विद्वानों में होने वाली (वाचम्) वाणी को (विश: परि) सब मनुष्यो मे भरपूर (वदामि) बताता हूँ ॥२॥

अहं जजान पृथिवीमुत द्यामहमृतूँरजनयं सप्त सिन्धून् ।
अहं सत्यमनृतं यद् वदामि यो अग्नीषोमावजुषे सखाया ॥३॥

पदार्थ—(अहम्) मैंने (पृथिवीम्) पृथिवी (उत) और (द्याम्) सूर्य को (जजान) उत्पन्न किया, (अहम्) मैंने (सप्त) सात (ऋतून्) [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] को और (सिन्धून्) उनकी व्यापक शक्तियो को (अजनयम्) उत्पन्न किया है । (अहम्) मैं (सत्यम्) सत्य और (अनृतम्) झूठ (यत्) जो कुछ है [उसे] (वदामि) बताता हूँ, (य) जिसमें (सखाया) आपस मे मित्र (अग्नीषोमौ) अग्नि और जल को (अजुषे) तृप्त किया है ॥३॥

卐 इति षष्ठोऽनुवाकः 卐

卐

अथ सप्तमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ६२ 卐

१—३ अथर्वा । रुद्र: वैश्वानर: वात. द्यावापृथिवी । त्रिष्टुप् ।

वैश्वानरो रश्मिभिर्नः पुनातु वातः प्राणेनेषिरो नभोभिः ।
द्यावापृथिवी पयसा पयस्वती ऋतावरी यज्ञिये नः पुनीताम् ॥१॥

पदार्थ—(वैश्वानर) सब नरो का हितकारी परमेश्वर (रश्मिभि) विद्या प्रकाशों से और (इषिर:) शीघ्रगामी (वात:) पवन (प्राणेन) प्राण से और (नभोभि.) मेघो से (न:) हमे (पुनातु) पवित्र करे । (पयस्वती) रसवाली (ऋतावरी) सत्यशील और (यज्ञिये) संगति करने योग्य (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी लोक (पयसा) अपने रस से (न.) हमे (पुनीताम्) शुद्ध करें ॥१॥

वैश्वानरीं सूनृतामा रभध्वं यस्या आशास्तन्वो वीतपृष्ठाः ।
तया गृणन्तः सधमादेषु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥२॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (वैश्वानरीम्) सब नरों का हित करने वाली (सूनृताम्) प्रिय सत्य वेद वाणी को (आ रभध्वम्) तुम आरम्भ करो, (यस्या.) जिसके (तन्व) शरीर के (आशा:) विस्तार (वीतपृष्ठा) सेवन सामर्थ्य पहुँचाने वाले हैं । (तया) उस [वेद वाणी] से) (सधमादेषु) परस्पर आनन्द उत्सवों पर (गृणन्त:) बातचीत करते हुए (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनों के (पतय:) स्वामी (स्याम) होवें ॥२॥

वैश्वानरीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
इहेडया सधमादं मदन्तो ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तम् ॥३॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (शुद्धा:) शुद्ध, (शुचय:) पवित्र और (पावका.) शुद्ध करने वाले (भवन्त.) होते हुए तुम (वैश्वानरीम्) सब नरों का हित करने वाली [वेद वाणी] को (वर्चसे) तेज पाने के लिए (आरभध्वम्) आरम्भ करो । (इह) यहां पर (इडया) वेद वाणी से (सधमादम्) परस्पर हर्ष उत्सव को (मदन्त) आनन्दित करते हुए हम (ज्योक्) बहुत काल तक (उच्चरन्तम्) चढ़ते हुए (सूर्यम्) सूर्य को (पश्येम) देखते रहें ॥३॥

卐 सूक्तम् ६३ 卐

१—४ द्रुह्वण । निर्ऋति, २ यम, ३ मृत्यु, ४ अग्नि । जगती, २ अतिजगतीगर्भा, ४ अनुष्टुप् ।

यत् ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध दाम ग्रीवास्वविमोक्यं यत् ।
तत् ते वि ष्याम्यायुषे वर्चसे बलायादोमदमन्नमद्धि प्रसूतः ॥१॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (देवी) प्राप्त हुई (निर्ऋतिः) अलक्ष्मी ने (यत्) जो (दाम) रस्सी (ते) तेरे (ग्रीवासु) गले में (आबबन्ध) बांध दी है, (यत्) जो [ज्ञानाद् ऋते, ज्ञान बिना] (अविमोक्यम्) न खुलने वाली है। (तत्) उसको (ते) तेरे (आयुषे) उत्तम जीवन के लिये, (वर्चसे) तेज के लिए, और (बलाय) बल के लिए, [ज्ञानेन = ज्ञान से] (वि स्यामि) मैं खोलता हूँ, (प्रसूतः) आगे बढाया गया तू (अदोमदम्) अक्षय हर्षयुक्त (अन्नम्) अन्न को (अद्धि) भोग कर ॥१॥

नमोऽस्तु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान् ।
यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥२॥

पदार्थ—(तिग्मतेजः) हे तेज नाश करने वाली (निर्ऋते) अलक्ष्मी (ते) तेरे लिये (नमः) वज्र (अस्तु) होवे, (अयस्मयान्) लोह की बनी (बन्धपाशान्) बन्धन की बेडियों को (वि चृत) तोड डाल (यमः) न्यायकारी परमेश्वर (मह्यम्) मेरे लिये (पुनः) बार-बार (इत्) ही (त्वाम्) तुझको (ददाति) देता है, (तस्मै) उस (यमाय) न्यायकारी परमेश्वर को (मृत्यवे) दुःख रूप मृत्यु नाश करने के लिए (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥२॥

अयस्मये द्रुपदे बेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम् ।
यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥३॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (इह) यहां पर (मृत्युभिः) मृत्यु के कारणों से, (ये) जो (सहस्रम्) सहस्र प्रकार हैं, (अभिहितः) घिरा हुआ तू (अयस्मये) लोहे से जकडे हुए (द्रुपदे) काठ के बन्धन में (बेधिषे = बध्यसे) बंध रहा है। (यमेन) नियम के साथ (पितृभिः) पालन करने वाले ज्ञानियों से (संविदानः) मिला हुआ (त्वम्) तू (इमम्) इस पुरुष को (उत्तमम्) उत्तम (नाकम्) आनन्द में (अधि रोहय) ऊपर चढा ॥३॥

संसमिद् युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥४॥

पदार्थ—(वृषन्) हे बलवान् (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! (अर्यः) स्वामी होकर तू (विश्वानि इत्) सब ही [सुखों] को (सम्सम्) यथावत् रीति से (आ = आनीय) ला कर (युवसे) मिलाता है। और (इडः) प्रशंसा के (पदे) पद पर (सम् इध्यसे) तू सुशोभित होता है, (सः) सो तू (नः) हमारे लिये (वसूनि) अनेक धनों को (आ भर) भर दे ॥४॥

卐 सूक्तम् ६४ 卐

अथर्वा । सांमनस्यम् । १ देवाः । अनुष्टुप् । २ त्रिष्टुप् ।

सं जानीध्वं सं पृच्यध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥१॥

पदार्थ—(सम् जानीध्वम्) आपस में जान पहिचान करो, (सम् पृच्यध्वम्) आपस में मिले रहो, (जानताम् वः) ज्ञानवाले तुम लोगों के (मनांसि) मन (सम्) एक से होवें [अथवा-(वः) तुम्हारे (मनांसि) मन (सम्) एक से (जानताम्) होवें]। (यथा) जैसे (पूर्वे) प्रथम स्थान वाले, (संजानानाः) यथावत् ज्ञानी (देवाः) विद्वान् लोग (भागम्) सेवनीय परमेश्वर अथवा ऐश्वर्यों के समूह को (उपासते) सेवन करते हैं ॥१॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं व्रतं सह चित्तमेषाम् ।
समानेन वो हविषा जुहोमि समानं चेतो अभिसंविशध्वम् ॥२॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो ! तुम्हारा] (मन्त्रः) मन्त्र, विचार (समानः) एकसा और (समितिः) समिति [सामाजिक व्यवस्था] (समानी) एक सी, (व्रतम्) धर्म का आचरण (समानम्) एकसा और (एषाम्) इन तुम सब का (चित्तम्) चित्त [सब पदार्थों का ज्ञान] (सह) मिला हुआ होवे। (समानेन) एक से (हविषा) ग्राह्य धर्म के साथ (वः) तुम को (जुहोमि) मैं ग्रहण करता हूँ, (समानम्) एक से (चेतः) चिन्तन [भूत, भविष्यत् के अनुभव के स्मरण] में (अभिसंविशध्वम्) तुम भली भांति प्रवेश करो ॥२॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥३॥

पदार्थ—(वः) तुम्हारा (आकूतिः) निश्चय, उत्साह, अथवा सङ्कल्प (समानी) एकसा और (वः) तुम्हारे (हृदयानि) हृदय [हार्दिक कर्म] (समाना) एक से होवें। (वः) तुम्हारा (मनः) मन [मनन कर्म] (समानम्) एकसा (अस्तु) होवे, (यथा) जिससे (वः) तुम्हारी (असति) गति (सुसहा) बड़ा सहाय करने वाली होवे ॥३॥

卐 सूक्तम् ६५ 卐

१—३ अथर्वा । (चन्द्रः), इन्द्र, पराशरः । अनुष्टुप्, १ पथ्यापंक्तिः ।

अव मन्युरवायताव बाहू मनोयुजा । पराशर त्वं
तेषां पराञ्चं शुष्ममर्दयाधा नो रयिमा कृधि ॥१॥

पदार्थ—(मन्युः) क्रोध (अव = अवगच्छतु) ढीला होवे (आयता) फैले हुए शस्त्र (अव = अवगच्छन्तु) ढीले होवें। (मनोयुजा) मन के साथ संयोग वाली (बाहू) भुजायें (अव = अवगच्छताम्) नीचे होवें। (पराशर) हे शत्रुनाशक सेनापति ! (त्वम्) तू (तेषाम्) उन [शत्रुओं] का (शुष्मम्) बल (पराञ्चम्) औंधा करके (अर्दय) मिटा दे, (अध) और (नः) हमारे लिए (रयिम्) धन (आ कृधि) सन्मुख कर ॥१॥

निर्हस्तेभ्यो नैर्हस्तं यं देवाः शरुमस्यथ ।
वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाहम् ॥२॥

पदार्थ—(देवाः) हे विजयी लोगो ! (निर्हस्तेभ्यः) निहत्थे [निर्बल हम लोगों] के हित के लिये (नैर्हस्तम्) निहत्थे [निर्बल शत्रुओं] के ऊपर (यम्) जिस (शरुम्) बाण को (अस्यथ) तुम छोडते हो, (अनेन) उसी ही (हविषा) ग्राह्य शस्त्र से (अहम्) मैं [प्रजागण वा राजगण] (शत्रूणाम्) शत्रुओं की (बाहून्) भुजाओं को (वृश्चामि) काटता हूँ ॥२॥

इन्द्रश्चकार प्रथमं नैर्हस्तमसुरेभ्यः ।
जयन्तु सत्वानो मम स्थिरेणेन्द्रेण मेदिना ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रः) बडे ऐश्वर्य वाले सेनापति ने (असुरेभ्यः) असुर शत्रुओं को (नैर्हस्तम्) निहत्थापन (प्रथमम्) पहिले (चकार) किया था। (स्थिरेण) स्थिर स्वभाव, (मेदिना) स्नेही (इन्द्रेण) उस बडे सेनापति के साथ (मम) मेरे (सत्वानः) वीर लोग (जयन्तु) जीतें ॥३॥

卐 सूक्तम् ६६ 卐

१—३ अथर्वा । इन्द्रः । अनुष्टुप्, १ त्रिष्टुप् ।

निर्हस्तः शत्रुरभिदासन्नस्तु ये सेनाभिर्युधमायन्त्यस्मान् ।
समर्पयेन्द्र महता वधेन द्रात्वेषामघहारो विविद्धः ॥१॥

पदार्थ—(शत्रुः) शत्रु (नः) हम पर (अभिदासन्) चढ़ाई करता हुआ (निर्हस्तः) निहत्था (अस्तु) होवे, [और वे भी,] (ये) जो (सेनाभिः) अपनी सेनाओं के साथ (युधम्) युद्ध करने के लिये (अस्मान्) हम पर (आयन्ति) चले आते हैं। (इन्द्रः) हे प्रतापी सेनापति इन्द्र ! [उन सब को] (महता) बडे (वधेन) वध के साथ (समर्पय) मार गिरा, (एषाम्) इन सब का (अघहारः) दुःखदायी प्रधान (विविद्धः) आर पार छिदकर (द्रातु) भाग जावे ॥१॥

आतन्वाना आयच्छन्तोऽस्यन्तो ये च धावथ ।
निर्हस्ताः शत्रवः स्थनेन्द्रो वोऽद्य पराशरीत् ॥२॥

पदार्थ—(ये) जो तुम (आतन्वानाः) [धनुष बाण] तानते हुए (च) और (आयच्छन्तः) [तलवारें] खींचते हुए और (अस्यन्तः) चलाते हुए (धावथ) दौडे चले आते हो। (शत्रवः) हे शत्रुओ ! तुम सब (निर्हस्ताः) निहत्थे (स्थन) हो जाओ, (इन्द्रः) महाप्रतापी सेनापति इन्द्र ने (वः) तुम को (अद्य) आज (परा अशरीत्) मार गिराया है ॥२॥

निर्हस्ताः सन्तु शत्रवोऽङ्गैषां म्लापयामसि ।
अथैषामिन्द्र वेदांसि शतशो वि भजामहै ॥३॥

पदार्थ—(शत्रवः) शत्रु लोग (निर्हस्ताः) निहत्थे (सन्तु) हो जावें, (एषाम्) उन के (अङ्गा) अंगों को (म्लापयामसि) हम शिथिल करते हैं। (अथ) फिर (इन्द्र) हे महाप्रतापी सेनापति इन्द्र ! (एषाम्) उनके (वेदांसि) सब धनों को (शतशः) सैंकडों प्रकार से (वि भजामहै) हम बांट लेवें ॥३॥

卐 सूक्तम् ६७ 卐

१—३ अथर्वा । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

परि वर्त्मानि सर्वत इन्द्रः पूषा च सस्रतुः ।
मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां परस्तराम् ॥१॥

पदार्थ—(**इन्द्रः**) बड़े ऐश्वर्यवाला राजा (**च**) और (**पूषा**) पोषण करनेवाला मन्त्री (**वर्त्मानि**) मार्गों पर (**सर्वतः**) सब दिशाओं में (**परि सस्रतु**) सब ओर चलते रहे हैं । (**अमित्राणाम्**) पीड़ा देनेवाले शत्रुओं की (**अमूः**) वे सब (**सेना.**) सेनाएं (**अद्य**) आज (**परस्तराम्**) बहुत दूर (**मुह्यन्तु**) घबड़ा कर चली जावें ॥१॥

मूढा अमित्राश्चरताशीर्षाण इवाहयः ।
तेषां वो अग्निमूढानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ॥२॥

पदार्थ—(**मूढाः**) हे घबड़ाये हुए (**अमित्रा**) पीड़ा देने वाले शत्रुओ ! (**अशीर्षाण·**) बिना सिर वाले [शिर कटे] (**अहय· इव**) सांपों के समान (**चरत**) चेष्टा करो । (**इन्द्र·**) प्रतापी वीर राजा (**अग्निमूढानाम्**) अग्नि [आग्नेय शस्त्रों] से घबड़ाये हुए (**तेषां वः**) उन तुम सबों में से (**वरंवरम्**) अच्छे-अच्छों को चुन कर (**हन्तु**) मारे ॥२॥

ऐषु नह्य वृषाजिनं हरिणस्या भियं कृधि ।
पराङमित्र एषत्वर्वाची गौरुपेषतु ॥३॥

पदार्थ—[हे सेनापति !] (**एषु**) इन [अपने वीरों] में (**वृषा**=**वृष्ण.**) ऐश्वर्यवान् पुरुष का (**अजिनम्**) चर्म [कवच] (**आ नह्य**) पहिना दे, और [शत्रुओं में] (**हरिणस्य**) हरिण का (**भियम्**) डरपोकपन (**कृधि**) करदे । (**अमित्र.**) शत्रु (**पराङ्**) उलटे मुख होकर, (**एषतु**) चला जावे । (**गौ.**) भूमि [युद्ध भूमि और राज्य] (**अर्वाची**) हमारी ओर (**उप एषतु**) चली आवे ॥३॥

卐 सूक्तम् ६८ 卐

१—३ अथर्वा । १ सविता, आदित्या, रुद्रा, वसव·, २ अदिति·, आप·, प्रजापतिः, ३ सविता, सोम., वरुण । १ पुरोविराडतिशाक्वरीगर्भा चतुष्पदा जगती, २ अनुष्टुप्, ३ अतिजगतीगर्भा त्रिष्टुप् ।

आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि । आदित्या
रुद्रा वसव उन्दन्तु सचेतसः सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतसः ॥१॥

पदार्थ—(**अयम्**) यह (**सविता**) काम का चलानेवाला फुरतीला नापित (**क्षुरेण**) छुरा सहित (**आ अगन्**) आया है, (**वायो**) हे शीघ्रगामी पुरुष ! (**उष्णेन**) तप्त [तत्ते] (**उदकेन**) जलसहित (**आ इहि**) तू आ । (**आदित्या**) प्रकाशमान, (**रुद्रा·**) ज्ञानवान् (**वसव·**) श्रेष्ठ पुरुष आप (**सचेतस**) एकचित्त होकर [बालक के केश] (**उन्दन्तु**) भिगोवें, (**प्रचेतस·**) प्रकृष्ट ज्ञानवाले पुरुषो ! तुम (**सोमस्य**) शान्तस्वभाव (**राज्ञ**) तेजस्वी बालक का (**वपत**=**वापयत**) मुण्डन कराओ ॥१॥

अदितिः श्मश्रु वपत्वाप उन्दन्तु वर्चसा ।
चिकित्सतु प्रजापतिर्दीर्घायुत्वाय चक्षसे ॥२॥

पदार्थ—(**अदितिः**) अखण्डित छुरा (**श्मश्रु**) केश (**वपतु**) काटे । (**आप**) जल (**वर्चसा**) अपनी शोभा से (**उन्दन्तु**) सींचें । (**प्रजापति**) सन्तान का पालन करने वाला पिता (**दीर्घायुत्वाय**) दीर्घ जीवन के लिये और (**चक्षसे**) दृष्टि बढ़ाने के लिये (**चिकित्सतु**) [बालक के] रोग की निवृत्ति करे ॥२॥

येनावपत् सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् ।
तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान् ॥३॥

पदार्थ—(**येन**) जिस विधि के साथ (**विद्वान्**) अपना कर्म जानने वाले (**सविता**) फुरतीले नापित ने (**क्षुरेण**) छुरे से (**सोमस्य**) शान्त स्वभाव, (**राज्ञ·**) तेजस्वी, (**वरुणस्य**) उत्तम स्वभाव वाले बालक का (**अवपत्**) मुण्डन किया है । (**तेन**) उसी विधि से (**ब्रह्माण**) हे ब्राह्मणो ! (**अस्य**) इस बालक का (**इदम्**) यह शिर (**वपत**) मुण्डन कराओ, (**अयम्**) यह बालक (**गोमान्**) उत्तम गौओं वाला (**अश्ववान्**) उत्तम घोड़ों वाला और (**प्रजावान्**) उत्तम सन्तानों वाला (**अस्तु**) होवे ॥३॥

卐 सूक्तम् ६९ 卐

१—३ अथर्वा । बृहस्पति, अश्विनौ । अनुष्टुप् ।

गिरावरगराटेषु हिरण्ये गोषु यद् यशः ।
सुरायां सिच्यमानायां कीलाले मधु तन्मयि ॥१॥

पदार्थ—(**गिरौ**) उपदेश करने वाले संन्यासी में, (**अरगराटेषु**) ज्ञान के उपदेशकों में विचरने वालों [ब्रह्मचारी आदिकों] के बीच, (**हिरण्ये**) सुवर्ण में और (**गोषु**) विद्याओं में (**यत्**) जो (**यश·**) यश है और (**सिच्यमानायाम् सुरायाम्**) बहते हुए जल [अथवा बढ़ते हुए ऐश्वर्य] में और (**कीलाले**) अन्न में (**मधु**) जो मीठापन है, (**तत्**) वह (**मयि**) मुझ में होवे ॥१॥

अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती ।
यथा भर्गस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु ॥२॥

पदार्थ—(**शुभ**) शुभ कर्म के (**पती**) पालन करने वाले (**अश्विना**) हे कर्मों में व्याप्ति वाले माता पिता ! (**सारघेण**) सार अर्थात् बल वा धन के पहुँचाने वाले (**मधुना**) ज्ञान से (**मा**) मुझ को (**अङ्क्तम्**) प्रकाशित करो । (**यथा**) जिससे (**जनान् अनु**) मनुष्यों के बीच (**भर्गस्वतीम्**) तेजोमयी (**वाचम्**) वाणी को (**आवदानि**) मैं बोला करूं ॥२॥

मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत् पयः ।
तन्मयि प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥३॥

पदार्थ—(**मयि**) मुझ में (**वर्च**) प्रताप, (**अथो**) और (**यशः**) यश हो, (**अथो**) और (**यज्ञस्य**) देव पूजा आदि यज्ञ का (**यत्**) जो (**पय.**) सार है, (**तत्**) उसको भी (**मयि**) मुझ में (**प्रजापति**) प्रजा पालक परमेश्वर (**दृंहतु**) दृढ़ करे, (**इव**) जैसे (**दिवि**) अन्तरिक्ष में (**द्याम्**) सूर्यमण्डल को ॥३॥

卐 सूक्तम् ७० 卐

१—३ काङ्कायन । अघ्न्या । जगती ।

यथा मांसं यथा सुरा यथाक्षा अधिदेवने ।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ।
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥१॥

पदार्थ—(**यथा**) जैसे (**मांसम्**) ज्ञान, (**यथा**) जैसे (**सुरा**) ऐश्वर्य (**यथा**) जैसे (**अक्षा**) अनेक व्यवहार (**अधिदेवने**) बहुत व्यवहारयुक्त राजद्वार में रहते हैं । (**यथा**) जैसे (**वृषण्यत.**) अपने को ऐश्वर्यवान् मानने वाले (**पुंस.**) पुरुष का (**मन.**) मन (**स्त्रियाम्**) स्तुति क्रिया [वा अपनी पत्नी] में (**निहन्यते**) स्थिर रहता है । (**एव**) वैसे ही (**अघ्न्ये**) हे न मारने योग्य प्रजा ! (**ते**) तेरा (**मनः**) मन (**वत्से**) सब में निवास करने वाले परमेश्वर में (**अधि**) अच्छे प्रकार (**निहन्यताम्**) दृढ़ होवे ॥१॥

यथा हस्ती हस्तिन्याः पदेन पदमुद्युजे ।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ।
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥२॥

पदार्थ—(**यथा**) जैसे (**हस्ती**) हाथी (**हस्तिन्या.**) हथिनी के (**पदेन**) पद चिह्न से (**पदम्**) अपना पद (**उद्युजे**) बढ़ाये जाता है । (**यथा**) जैसे (**वृषण्यत**) अपने को ऐश्वर्यवान् मानने वाले (**पुंस.**) पुरुष का (**मन**) मन (**स्त्रियाम्**) स्तुति क्रिया [वा अपनी पत्नी] में (**निहन्यते**) स्थिर रहता है । (**एव**) वैसे ही (**अघ्न्ये**) हे न मारने योग्य प्रजा ! (**ते**) तेरा (**मन**) मन (**वत्से**) सब में निवास करने वाले परमेश्वर में (**अधि**) अच्छे प्रकार (**निहन्यताम्**) दृढ़ होवे ॥२॥

यथा प्रधिर्यथोपधिर्यथा नभ्यं प्रधावधि ।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ।
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥३॥

पदार्थ—(**यथा**) जैसे (**प्रधि**) पहिये की पुट्ठी [अरों के जोड़ सि] और (**यथा**) जैसे (**उपधि**) अरों का जोड़ [पुट्ठी से] और (**यथा**) जैसे (**नभ्यम्**) नाभि स्थान (**प्रधौ अधि**) पुट्ठी के भीतर [जमा होता है], (**यथा**) जैसे (**वृषण्यतः**) अपने को ऐश्वर्यवान् मानने वाले (**पुंस**) पुरुष का (**मन**) मन (**स्त्रियाम्**) स्तुति क्रिया [वा अपनी पत्नी] में (**निहन्यते**) स्थिर रहता है । (**एव**) वैसे ही (**अघ्न्ये**) हे न मारने योग्य प्रजा ! (**ते**) तेरा (**मनः**) मन (**वत्से**) सब में निवास करने वाले परमेश्वर में (**अधि**) अच्छे प्रकार (**निहन्यताम्**) दृढ़ होवे ॥३॥

卐 सूक्तम् ७१ 卐

१—३ ब्रह्मा । अग्निः, ३ वैश्वानरः, देवा । जगती, ४ त्रिष्टुप् ।

यदन्नमद्मि बहुधा विरूपं हिरण्यमश्वमुत गामजामविम् ।
यदेव किं च प्रतिजग्रहाहमग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥१॥

पदार्थ—(विश्वरूपम्) अनेक रूप वाला (यत्) जो कुछ (अन्नम्) अन्न (बहुधा) प्राय (अधि) मैं खाता हूँ, (उत) और (हिरण्यम्) सुवर्ण, (अश्वम्) घोड़ा, (गाम्) गौ (अजाम्) बकरी, (अविम्) भेड, और (यत् एव किम् च) कुछ भी (अहम्) मैंने (प्रतिजग्रह) ग्रहण किया है, (होता) दाता (अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर (तत्) उसको (सुहुतम्) धार्मिक रीति से स्वीकार किया हुआ (कृणोतु) करे ॥१॥

यन्मा हुतमहुतमाजगाम दत्तं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः ।

यस्मान्मे मन उदिव रारजीत्यग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥२॥

पदार्थ—(हुतम्) दिया हुआ [माता पिता आदि से पाया हुआ], अथवा (अहुतम्) न दिया हुआ [स्वय प्राप्त किया] (पितृभि) दूसरे विद्वान् महाशयो करके (दत्तम्) दिया हुआ और (मनुष्यैः) मननशील पुरुषो कर के (अनुमतम्) अङ्गीकार किया हुआ (यत्) जो कुछ द्रव्य (मा) मुझ को (आजगाम) प्राप्त हुआ है। (यस्मात्) जिसके कारण से (मे) मेरा (मन) मन (उत् इव) उदय होता हुआ सा (रारजीति) अत्यन्त शोभित रहता है, (होता) दाता (अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर (तत्) उसको (सुहुतम्) धार्मिक रीति से स्वीकार किया हुआ (कृणोतु) करे ॥२॥

यदन्नमद्म्यनृतेन देवा दास्यन्नदास्यन्नुत संगृणामि ।

वैश्वानरस्य महतो महिम्ना शिवं मह्यं मधुमदस्त्वन्नम् ॥३॥

पदार्थ—(देवा) हे विद्वान् पुरुषो ! (यत्) जो कुछ (अन्नम्) अन्न (अनृतेन) असत्य व्यवहार से (अद्मि) मैं खाता हूँ, (उत) और (दास्यन्) देना चाहता हुआ [अथवा] (अदास्यन्) न देना चाहता हुआ मैं [जो कुछ] (संगृणामि =संगिरामि) खा जाता हूँ। (महत) पूजनीय (वैश्वानरस्य) सब नरों के हितकारी परमेश्वर की (महिम्ना) महिमा से (अन्नम्) वह अन्न (मह्यम्) मेरे लिये (शिवम्) सुखकारक और (मधुमत्) मीठे रस वाला (अस्तु) होवे ॥३॥

卐 सूक्तम् ७२ 卐

१—३ अथर्वाङ्गिरा । शेपोऽर्क । अनुष्टुप्, १ जगती, ३ भुरिक् ।

यथासितः प्रथयते वशाँ अनु वपूंषि कृण्वन्नसुरस्य मायया ।

एवा ते शेपः सहसायमर्कोऽङ्गेनाङ्गं संसमकं कृणोतु ॥१॥

पदार्थ—(यथा) जिस प्रकार से (असित) बन्धनरहित, स्वतन्त्र परमात्मा (वशान् अनु) अपने वशवर्ती प्राणियो के लिये (असुरस्य) बुद्धिमान् की (मायया) बुद्धि से (वपूंषि) अनेक शरीरो को (कृण्वन्) बनाता हुआ (प्रथयते) विस्तार करता है। (एव) वैसे ही (अयम्) यह (अर्क) मन्त्र [विचार] (ते) तेरे (शेप) सामर्थ्य को (सहसा) सहनशक्ति के साथ और (अङ्गम्) अङ्ग को (अङ्गेन) अङ्ग के साथ (संसमकम्) भली भांति संयुक्त (कृणोतु) करे ॥१॥

यथा पसस्तायादरं वातेन स्थूलभं कृतम् ।

यावत् परस्वतः पसस्तावत् ते वर्धतां पसः ॥२॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (तायादरम्) प्रबन्ध से आदर योग्य (पस) राज्य (वातेन) उद्योग से (स्थूलभम्) मनुष्यो मे प्रकाश वाला (कृतम्) बनाया जाता है, (यावत्) जितना (परस्वत) पालने मे समर्थ पुरुष का (पस) राज्य होता है, (तावत्) उतना (ते) तेरा (पस) राज्य (वर्धताम्) बढ़े ॥२॥

यावदङ्गीनं पारस्वतं हास्तिनं गार्दभं च यत् ।

यावदश्वस्य वाजिनस्तावत् ते वर्धतां पसः ॥३॥

पदार्थ—(यावदङ्गीनम्) जितने अङ्ग है उनसे सिद्ध, (पारस्वतम्) पालन समर्थ पुरुषो से सिद्ध, (च) और (गार्दभम्) [बोझ उठाने वाले] गदहो से सिद्ध, (यत्) जितना राज्य है। और (यावत्) जितना (वाजिन) अन्नयुक्त (अश्वस्य) बलवान् पुरुष का [राज्य] है, (तावत्) उतना (ते) तेरा (पस) राज्य (वर्धताम्) बढ़े ॥३॥

卐 इति सप्तमोऽनुवाकः 卐

卐

अथाष्टमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ७३ 卐

१—३ अथर्वा । सामनस्यम्, वरुणसोमोऽग्निबृहस्पतिवसव , ३ वास्तोष्पति । त्रिष्टुप्, १, ३ भुरिक् ।

एह यातु वरुणः सोमो अग्निर्बृहस्पतिर्वसुभिरेह यातु ।

अस्य श्रियमुपसंयात सर्व उग्रस्य चेत्तुः संमनसः सजाताः ॥१॥

पदार्थ—(वरुण) सूर्य समान प्रतापी और (सोमः) चन्द्र समान शान्तस्वभाव पुरुष (इह) यहां पर (आ यातु) आवे और (अग्निः) अग्नि समान तेजस्वी (बृहस्पतिः) बड़ी वेदवाणी की रक्षा करने वाला पुरुष (वसुभिः) उत्तम उत्तम गुणो वा धनो के साथ (इह) यहां पर (आ यातु) आवे। (सजाता.) हे समान जन्मवाले बान्धवो ! (सर्वे) तुम सब (संमनसः) एक मन होकर, (अस्य) इस (उग्रस्य) तेजस्वी (चेत्तु) ज्ञानवान् पुरुष की (श्रियम्) सम्पदा को (उपसंयात) भली भांति प्राप्त करो ॥१॥

यो वः शुष्मो हृदयेष्वन्तराकूतिर्या वो मनसि प्रविष्टा ।

तान्त्सीवयामि हविषा घृतेन मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥२॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] (य) जो (शुष्म) पराक्रम (वः) तुम्हारे (हृदयेषु अन्त) हृदयो मे भरा है, और (या) जो (आकूति) उत्साह वा शुभसकल्प (व) तुम्हारे (मनसि) मन मे (प्रविष्टा) प्रविष्ट हो रहा है। [उसी के कारण] (हविषा) उत्तम अन्न से और (घृतेन) जल से (तान्) उन तुम सब की (सीवयामि सेवे) मैं सेवा करता हूँ, (सजाता) हे समान जन्म वाले बान्धवो ! (व) तुम्हारी (रमति) क्रीडा [प्रसन्नता] (मयि) मुझ में (अस्तु) होवे ॥२॥

इहैव स्त माप याताध्यस्मत् पूषा परस्तादपथं वः कृणोतु ।

वास्तोष्पतिरनु वो जोहवीतु मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥३॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] (इह) यहा पर (एव) ही (स्त) रहो (अस्मत् अधि) हम से (मा अप यात) हट कर न जाओ, (पूषा) पोषण करने वाला गृहस्थ (परस्तात्) उत्तर उत्तर काल मे (व) तुम्हारे लिये (अपथम्) अभय (कृणोतु) करे। (वास्तो.) घर का (पति) स्वामी [गृहस्थ] (व) तुमको (अनु) निरन्तर (जोहवीतु) बुलाता रहे। (सजाता) हे समान जन्मवाले बान्धवो ! (व) तुम्हारी (रमति) क्रीडा [प्रसन्नता] (मयि) मुझ मे (अस्तु) होवे ॥३॥

卐 सूक्तम् ७४ 卐

१—३ अथर्वा । सामनस्यम् नाना देवता , त्रिणामा । अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप् ।

सं वः पृच्यन्तां तन्वः सं मनांसि समु व्रता ।

सं वोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्भगः सं वो अजीगमत् ॥१॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] (व) तुम्हारी (तन्व) विस्तृत विद्याए (सम्) यथावत् (मनांसि) मनन सामर्थ्य (सम्) यथावत् (उ) और (व्रता) सब कर्म (सम्) यथावत् (पृच्यन्ताम्) मिले रहे। (अयम्) इस (ब्रह्मण) ब्रह्माण्ड के (पति) पति (भग) भगवान् [ऐश्वर्यवान् परमेश्वर] ने (व.) तुम को (व) तुम्हारे हित के लिए (सम्) यथावत् (सम् अजीगमत्) मिलाया है ॥१॥

संज्ञपनं वो मनसोऽथो संज्ञपनं हृदः ।

अथो भगस्य यच्छ्रान्तं तेन संज्ञपयामि वः ॥२॥

पदार्थ—(व) तुम्हारे (मनस.) मन का (संज्ञपनम्) विज्ञापन (अथो) और भी (हृद.) हृदय का (संज्ञपनम्) सतोषक कर्म होवे। (अथो) और भी (भगस्य) भगवान् [की प्राप्ति] का (यत्) जो (श्रान्तम्) तप है, (तेन) उस कारण से (व) तुमको (संज्ञपयामि) मैं सतुष्ट करता हूँ ॥२॥

यथादित्या वसुभिः संबभूवुर्मरुद्भिरुग्रा अहृणीयमानाः ।

एवा त्रिणामन्नहृणीयमान इमान् जनान्त्संमनसस्कृधीह ॥३॥

पदार्थ—(यथा) जिस प्रकार से (उग्रा) तेजस्वी (आदित्या) प्रकाशमान विद्वान् [अथवा अदीन देव माता अदिति, पृथ्वी वा वेदवाणी के पुत्र समान मान करने वाले] पुरुष (अहृणीयमाना) सङ्कोच न करते हुए (वसुभिः) उत्तम गुणो और (मरुद्भि) शत्रुनाशक वीरो के साथ (संबभूवु) पराक्रमी हुए हैं। (एव) वैसे ही (त्रिणामन्) हे तीनो कालो और तीनो लोको को झुकाने वाले परमेश्वर ! (अहृणीयमान) क्रोध न करता हुआ तू (इमान्) इन सब (जनान्) जनो को (इह) यहां पर (संमनसः) एकमन (कृधि) कर दे ॥३॥

卐 सूक्तम् ७५ 卐

१—३ कबन्ध । इन्द्र । अनुष्टुप्, ३ षट्पदा जगती ।

निरमुं नुद ओकसः सपत्नो यः पृतन्यति ।

नैर्बाध्येन हविषेन्द्र एनं पराशरीत् ॥१॥

पदार्थ—मैं (अमुम्) उस [शत्रु] को (ओकस.) उसके घर से (निर्नुदे) निकालता हूँ, (य सपत्न) जो शत्रु (पृतन्यति) सेना चढ़ाता है। (इन्द्र) प्रतापी राजा ने (एनम्) उसको (नैर्बाध्येन) अपने निर्विघ्न (हविषा) ग्राह्य व्यवहार से (परा अशरीत्) मार गिराया है ॥१॥

पुमां सं परावतमिन्द्रो नुदतु वृत्रहा ।
यतो न पुनरायति शश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥२॥

पदार्थ—(वृत्रहा) शत्रुओं वा अन्धकार का नाश करने वाला (इन्द्रः) प्रतापी राजा (तम्) चोर को (परमाम्) अतिशय (परावतम्) दूर भूमि में (नुदतु) भेज देवे । (यतः) जहां से वह (शश्वतीभ्यः) बहुत (समाभ्यः) बरसों तक (पुनः) फिर (न) न (आयति) आवे ॥२॥

एतु तिस्रः परावत एतु पञ्च जनाँ अति ।
एतु तिस्रोऽति रोचना यतो न पुनरायति ।
शश्वतीभ्यः समाभ्यो यावत् सूर्यो असद् दिवि ॥३॥

पदार्थ—जो पुरुष (तिस्रः) तीन [अपने मानुष स्थान, नाम और जाति रूप] (परावतः) उत्कृष्ट भूमियों [वा धामों] को (अति = अतीत्य) उलांघ कर (एतु) चले, और (पञ्च जनान्) पांच [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, चारों वर्ण, और पांचवें नीच योनि, पशु, पक्षी, वृक्ष आदि] प्राणियों [की मर्यादा] को [उलांघ कर] (एतु) चले । वह पुरुष (तिस्रः रोचना) तीन [जीव, प्रकृति और परमेश्वर की] रुचि योग्य विद्याओं को [अथवा सूर्य, चन्द्र और अग्नि के] प्रकाशों को (अति = अतीत्य) उलांघकर [वहां] (एतु) चला जावे, (यतः) जहां से वह (शश्वतीभ्यः समाभ्यः) बहुत बरसों तक (पुनः) फिर (न) न (आयति) आवे, (यावत्) जब तक (सूर्यः) सूर्य (दिवि) अन्तरिक्ष में (असत्) रहे ॥३॥

卐 सूक्तम् ७६ 卐

१—४ कबन्धः । सान्तपनाग्निः । अनुष्टुप्, ३ ककुम्मती ।

य एनं परिषीदन्ति समादधति चक्षसे ।
सं प्रेद्धो अग्निर्जिह्वाभिरुदेतु हृदयादधि ॥१॥

पदार्थ—(ये) जो पुरुष (चक्षसे) दर्शन के लिये (एनम्) इस [अग्नि] की (परिषीदन्ति) सेवा करते और (समादधति) ध्यान करते हैं । (संप्रेद्धः) [उन करके] अच्छे प्रकार प्रकाशित किया हुआ (अग्निः) अग्नि (जिह्वाभिः) अपनी जिह्वाओं सहित (हृदयात्) हमारे हृदय से (अधि) अधिकारपूर्वक (उदेतु) उदय होवे ॥१॥

अग्नेः सांतपनस्याहमायुषे पदमा रभे ।
अद्धातिर्यस्य पश्यति धूममुद्यन्तमास्यतः ॥२॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (सांतपनस्य) ताप गुण वाले (अग्नेः) उस अग्नि के (पदम्) प्राप्तियोग्य गुण को (आयुषे) आयु बढ़ाने के लिये (आरभे) प्रस्तुत करता हूँ, (यस्य) जिस [अग्नि] के (आस्यतः) मुख से (उद्यन्तम्) निकलते हुए (धूमम्) धुए को (अद्धातिः) सत्य जानने वाला पुरुष (पश्यति) देखता है ॥२॥

यो अस्य समिधं वेद क्षत्रियेण समाहिताम् ।
नाभिह्वारे पदं नि दधाति स मृत्यवे ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो पुरुष (क्षत्रियेण) दुःख से बचाने वाले क्षत्रिय करके (समाहिताम्) सम्हाली हुई (अस्य) इस [अग्नि] की (समिधम्) प्रकाश क्रिया को (वेद) जानता है, (सः) वह पुरुष (अभिह्वारे) कुटिल स्थान में (मृत्यवे) मृत्यु पाने के लिये (पदम्) अपना पैर (न) नहीं (निदधाति) जमाता है ॥३॥

नैनं घ्नन्ति पर्यायिणो न सन्नाँ अव गच्छति ।
अग्नेर्यः क्षत्रियो विद्वान्नाम गृह्णात्यायुषे ॥४॥

पदार्थ—(एनम्) उस [क्षत्रिय] को (पर्यायिणः) घेरने वाले शत्रु (न) नहीं (घ्नन्ति) मारते हैं, और (न) न वह (सन्नान्) घात में बैठने वालों को (अवगच्छति) जानता है । (यः) जो (विद्वान्) विद्वान् (क्षत्रियः) क्षत्रिय (अग्नेः) अग्नि के (नाम) नाम को (आयुषे) आयु बढ़ाने के लिये (गृह्णाति) लेता है ॥४॥

卐 सूक्तम् ७७ 卐

१—३ कबन्धः । जातवेदाः । अनुष्टुप् ।

अस्थाद् द्यौरस्थात् पृथिव्यस्थाद् विश्वमिदं जगत् ।
आस्थाने पर्वता अस्थुः स्थाम्न्यश्वाँ अतिष्ठिपम् ॥१॥

पदार्थ—(द्यौः) सूर्य लोक (अस्थात्) ठहरा हुआ है, (पृथिवी) पृथिवी (अस्थात्) ठहरी हुई है, (इदम्) यह (विश्वम्) सब (जगत्) जगत् (अस्थात्) ठहरा हुआ है, (पर्वताः) सब पर्वत (आस्थाने) विश्राम स्थान में (अस्थुः) ठहरे हुए हैं । (अश्वान्) घोड़ों को (स्थाम्नि) स्थान पर (अतिष्ठिपम्) मैंने खड़ा कर दिया है ॥१॥

य उदानट् परायणं य उदानण्न्यायनम् ।
आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे ॥२॥

पदार्थ—(यः) जिस (गोपाः) भूमिपालक राजा ने (परायणम्) निकल जाने का सामर्थ्य (उदानट्) पाया है, (यः) जिस ने (न्यायनम्) भीतर आने का सामर्थ्य, और (यः) जिसने (आवर्तनम्) घूमने और (निवर्तनम्) लौटने का सामर्थ्य (उदानट्) पाया है, (तम्) उसको (अपि) ही (हुवे) मैं बुलाता हूं ॥२॥

जातवेदो नि वर्तय शतं ते सन्त्वावृतः ।
सहस्रं त उपावृतस्ताभिर्नः पुनरा कृधि ॥३॥

पदार्थ—(जातवेदः) हे बहुत धन वाले पुरुष ! [हमारी ओर] (निवर्तय) लौट आ । (ते) तेरे (आवृतः) आगमन के उपाय (शतम्) सौ, और (ते) तेरे (उपावृतः) समीप में क्रमण मार्ग (सहस्रम्) सहस्र (सन्तु) होवें । (ताभिः) उन क्रियाओं से (नः) हमें (पुनः) अवश्य (आ कृधि) स्वीकार कर ॥३॥

卐 सूक्तम् ७८ 卐

१—३ अथर्वा । १—२ चन्द्रमाः, ३ त्वष्टा । अनुष्टुप् ।

तेन भूतेन हविषायमा प्यायतां पुनः ।
जायां यामस्मा आवाक्षुस्तां रसेनाभि वर्धताम् ॥१॥

पदार्थ—(अयम्) यह पुरुष (तेन) उस [प्रसिद्ध] (भूतेन) बहुत (हविषा) ग्राह्य अन्न के साथ (आ) सब ओर से (पुनः) अवश्य (प्यायताम्) बढ़ती करे । (अस्मै) इस पुरुष को (याम् जायाम्) जो वीरों को उत्पन्न करने वाली पत्नी (आवाक्षुः) उन लोगों ने प्राप्त कराई है, (ताम् अभि) उस पत्नी के लिये वह [पति] (रसेन) अनुराग से वा पराक्रम से (वर्धताम्) बढ़े ॥१॥

अभि वर्धतां पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम् ।
रय्या सहस्रवर्चसेमौ स्तामनुपक्षितौ ॥२॥

पदार्थ—(पयसा) प्राप्तियोग्य अन्न से और (राष्ट्रेण) राज्य वा ऐश्वर्य से (अभि) पत्नी के लिये (वर्धताम्) पति बढ़े और (अभि) पति के लिये (वर्धताम्) पत्नी बढ़े । (सहस्रवर्चसा) सहस्र प्रकार के तेज वाले (रय्या) धन से (इमौ) ये दोनों (अनुपक्षितौ) घटती बिना [सदा भरपूर] (स्ताम्) रहें ॥२॥

त्वष्टा जायामजनयत् त्वष्टास्यै त्वां पतिम् ।
त्वष्टा सहस्रमायूंषि दीर्घमायुः कृणोतु वाम् ॥३॥

पदार्थ—(त्वष्टा) विश्वकर्मा परमेश्वर ने [तेरे हित के लिये] (जायाम्) वीरों को उत्पन्न करने वाली पत्नी को, और (त्वष्टा) विश्वकर्मा ने (अस्यै) इस पत्नी के लिये (त्वाम्) तुझे (पतिम्) पति (अजनयत्) उत्पन्न किया है । (त्वष्टा) वही विश्वकर्मा (सहस्रम् = सहस्राणि) बल देने वाले (आयूंषि) जीवन साधन और (दीर्घम्) दीर्घ (आयुः) आयु (वाम्) तुम दोनों के लिये (कृणोतु) करे ॥३॥

卐 सूक्तम् ७९ 卐

१—३ अथर्वा । संस्फानम् । गायत्री, ३ त्रिपदा प्राजापत्या गायत्री ।

अयं नो नभसस्पतिः संस्फानो अभि रक्षतु ।
असमातिं गृहेषु नः ॥१॥

पदार्थ—(अयम्) यह (नभसः) सूर्य लोक का (पतिः) स्वामी परमेश्वर (संस्फानः) यथावत् बढ़ता हुआ (नः) हमारे लिये (नः) हमारे (गृहेषु) घरों में (असमातिम्) असामान्य [विशेष] लक्ष्मी वा बुद्धि (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्खे ॥१॥

त्वं नो नभसस्पत ऊर्जं गृहेषु धारय । आ पुष्टमेत्वा वसु ॥२॥

पदार्थ—(नभसस्पते) हे सूर्यलोक के स्वामी ! (त्वम्) तू (नः) हमारे (गृहेषु) घरों में (ऊर्जम्) बल बढ़ाने वाला अन्न (धारय) धारण कर । (पुष्टम्) पुष्टि (आ) और (वसु) धन (आ एतु) चला आवे ॥२॥

देवं संस्फान सहस्रापोषस्येशिषे । तस्य नो रास्व
तस्य नो धेहि तस्य ते भक्तिवांसः स्याम ॥३॥

पदार्थ—(संस्फान) हे सब प्रकार वृद्धि वाले (देव) प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (सहस्रपोषस्य) सहस्र प्रकार के पोषण का (ईशिषे) तू स्वामी है। (तस्य) उस [पोषण] का (नः) हमें (रास्व) दान कर, (तस्य) उसका (नः) हमारे लिये (धेहि) धारण कर, (तस्य ते) उस तेरी (भक्तिवांसः) भक्तिवाले (स्याम) हम होवें ॥३॥

卐 सूक्तम् ८० 卐

१—३ अथर्वा । चन्द्रमा । अनुष्टुप्, १ भुरिक्, ३ प्रस्तारपंक्तिः ।

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा भूतावचाकशत् ।
शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम ॥१॥

पदार्थ—वह [परमेश्वर] (अन्तरिक्षेण) आकाश के समान अन्तर्यामी रूप से (विश्वा) सब (भूता) जीवों को (अवचाकशत्) अत्यन्त देखता हुआ (पतति) ईश्वर होता है। (शुनः) उस व्यापक (दिव्यस्य) दिव्य स्वरूप परमेश्वर का (यत् महः) जो महत्त्व है, (तेन) उसी [महत्त्व] से (ते) तेरे लिये [हे परमेश्वर !] (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) हम सेवा करें ॥१॥

ये त्रयः कालकाञ्जा दिवि देवा इव श्रिताः ।
तान्त्सर्वानह्व ऊतयेऽस्मा अरिष्टतातये ॥२॥

पदार्थ—(ये) जो (कालकाञ्जा) काल अर्थात् सब की सख्या करने वाले परमेश्वर के प्रकाश (दिवि) आकाश में (श्रिता) आश्रित (त्रयः) तीन (देवा इव) देवताओं [अग्नि, वायु और सूर्य] के समान वर्तमान हैं। (तान्) उन (सर्वान्) सब [परमेश्वर के प्रकाशों] को (अस्मै) इस [जीव] के हित के लिये (ऊतये) रक्षा करने और (अरिष्टतातये) क्षेम करने को (अह्वे) मैंने बुलाया है ॥२॥

अप्सु ते जन्म दिवि ते सधस्थं समुद्रे अन्तर्महिमा ते पृथिव्याम् ।
शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम ॥३॥

पदार्थ—(अप्सु) प्राणों में [हे परमेश्वर] (ते) तेरा (जन्म) प्रादुर्भाव है, (दिवि) सूर्य मण्डल में (ते) तेरा (सधस्थम्) सहवास है, (समुद्रे अन्तः) अन्तरिक्ष के भीतर और (पृथिव्याम्) पृथिवी में (ते) तेरी (महिमा) महिमा है। (शुनः) व्यापक (दिव्यस्य) दिव्यस्वरूप परमेश्वर का (यत् महः) जो महत्त्व है (तेन) उसी [महत्त्व] से (ते) तेरे लिये [हे परमेश्वर !] (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) हम सेवा करें ॥३॥

卐 सूक्तम् ८१ 卐

१—३ अथर्वा । आदित्य, ३ त्वष्टा । अनुष्टुप् ।

यन्तासि यच्छसे हस्तावप रक्षांसि सेधसि ।
प्रजां धनं च गृह्णानः परिहस्तो अभूदयम् ॥१॥

पदार्थ—[हे पुरुष] ! तू (यन्ता) नियम में चलने वाला (असि) है, तू (हस्तौ) अपने दोनों हाथों को [सहायता के लिए] (यच्छसे) देने वाला है, तू (रक्षांसि) राक्षसों [विघ्नों] को (अप सेधसि) हटाता है। (प्रजाम्) प्रजा (च) और (धनम्) धन को (गृह्णानः) सहारा देते हुए (अयम्) यह आप (परिहस्तः) हाथ का सहारा देने वाले (अभूत्) हुए हैं ॥१॥

परिहस्त वि धारय योनिं गर्भाय धातवे ।
मर्यादे पुत्रमा धेहि तं त्वमा गमयागमे ॥२॥

पदार्थ—(परिहस्त) हे हाथ का सहारा देने वाले पुरुष ! (योनिम्) घर को (गर्भाय धातवे) गर्भ पुष्ट करने के लिये (वि) विशेष करके (धारय) संभाल। (मर्यादे) हे मर्यादायुक्त पत्नी ! (पुत्रम्) [गर्भस्थ] कुलशोधक सन्तान को (आ) भले प्रकार से (धेहि) पुष्ट कर। (त्वम्) तू (तम्) उस [सन्तान] को (आगमे) योग्य समय पर (आ गमय) उत्पन्न कर ॥२॥

यं परिहस्तमबिभरदितिः पुत्रकाम्या ।
त्वष्टा तमस्या आ बध्नाद् यथा पुत्रं जनादिति ॥३॥

पदार्थ—(पुत्रकाम्या) उत्तम सन्तान की कामना वाली (अदितिः) अखण्डव्रता स्त्री ने (यम्) जिस [जैसे] (परिहस्तम्) हाथ का सहारा देने वाले पति को (अबिभः) धारण किया है। (त्वष्टा) विश्वकर्मा वा शिल्पी परमात्मा (तम्) उस [वैसे ही पति] को (अस्यै) इस पत्नी के लिए (आ बध्नात्) नियमबद्ध करे (यथा) जिससे वह पत्नी (पुत्रम्) कुलशोधक सन्तान (जनात्) उत्पन्न करे, (इति) यही प्रयोजन है ॥३॥

卐 सूक्तम् ८२ 卐

१—३ भग । इन्द्र । अनुष्टुप् ।

आगच्छत आगतस्य नाम गृह्णाम्यायतः ।
इन्द्रस्य वृत्रघ्नो वन्वे वासवस्य शतक्रतोः ॥१॥

पदार्थ—(आयत) अति यत्नशाली वा नियमवान् मैं (आगच्छत) आते हुए और (आगतस्य) आये हुए पुरुष का (नाम) नाम [कीर्ति] (गृह्णामि) स्वीकार करता हूँ। (वृत्रघ्नः) अन्धकारनाशक, (वासवस्य) बहुत धन वाले और (शतक्रतोः) सैकड़ों कर्मों वाले (इन्द्रस्य) सपूर्ण ऐश्वर्य वाले परमात्मा की (वन्वे) मैं प्रार्थना करता हूँ ॥१॥

येन सूर्या सावित्रीमश्विनोहतुः पथा ।
तेन मामब्रवीद् भगो जायामा वहतादिति ॥२॥

पदार्थ—(येन पथा) जिस मार्ग से (अश्विना) दिन और रात्रि ने (सावित्रीम्) सूर्य सम्बन्धी (सूर्याम्) ज्योति को (ऊहतु) प्राप्त किया है। (तेन) उसी [मार्ग से] (जायाम्) वीरों को उत्पन्न करने वाली भार्या को (आ) मर्यादापूर्वक (वहतात्) तू प्राप्त कर, (इति) यह बात (भग.) बड़े ऐश्वर्यवाले भगवान् ने (माम्) मुझसे (अब्रवीत्) कही है ॥२॥

यस्तेऽङ्कुशो वसुदानो बृहन्निन्द्र हिरण्ययः ।
तेना जनीयते जायां मह्यं धेहि शचीपते ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर ! (यः) जो (ते) तेरा (अंकुश) गगना व्यवहार [अथवा अंकुश, दुष्कर्मों का दण्ड] (बृहन्) बहुत बड़ा और (हिरण्ययः) ज्योतिस्वरूप और (वसुदान.) धन देने वाला है (तेन) उसी के द्वारा, (शचीपते) वाणी वा कर्म वा बुद्धि के रक्षक परमेश्वर ! (जनीयते) पत्नी की इच्छा वाले (मह्यम्) मुझे (जायाम्) वीरों को उत्पन्न करने वाली पत्नी (धेहि) दे ॥३॥

卐 इत्यष्टमोऽनुवाकः 卐

卐

अथ नवमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ८३ 卐

१—३ भग । सूर्या, चन्द्रमा, २ रोहिणी, ३ रामायणी । अनुष्टुप्, ४ एकावसाना द्विपदा निचृदार्च्यनुष्टुप् ।

अपचितः प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव ।
सूर्यः कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोऽपोच्छतु ॥१॥

पदार्थ—(अपचितः) हे सुख नाश करने वाली गण्डमाला आदि पीड़ाओ ! (प्र पतत) चली जाओ, (सुपर्णः इव) जैसे शीघ्रगामी पक्षी [श्येन] (वसतेः) अपनी बस्ती से। (सूर्यः) प्रेरणा करने वाला [वैद्य वा सूर्य लोक] (भेषजम्) औषध (कृणोतु) करे और (चन्द्रमा) आनन्द देने वाला [वैद्य वा चन्द्र लोक] (वः) तुम को (अप उच्छतु) निकाल देवे ॥१॥

एन्येका श्येन्येका कृष्णैका रोहिणी द्वे ।
सर्वासामग्रभं नामावीरघ्नीरपेतन ॥२॥

पदार्थ—(एका) एक [गण्डमाला आदि] (एनी) चितकबरी (एका) एक (श्येनी) श्वेतवर्ण, (एका) एक (कृष्णा) काली और (द्वे) दो (रोहिणी) लाल रंग हैं। (सर्वासाम्) सब [गण्डमाला आदि पीड़ाओं] का (नाम) नाम (अग्रभम्) मैंने ग्रहण किया है, (अवीरघ्नीः) अवीरों—कातरों को नाश करती हुई (अप इतन) तुम चली जाओ ॥२॥

असूतिका रामायण्यपचित् प्र पतिष्यति ।
ग्लौरितः प्र पतिष्यति स गलुन्तो नशिष्यति ॥३॥

पदार्थ—(रामायणी) प्राण वायु के रमणस्थान नाड़ियों में मार्गवाली (अपचित्) सुख नाश करने वाली गण्डमाला आदि पीड़ा (असूतिका) बाँझ होकर (प्र पतिष्यति) चली जायगी। (ग्लौः) हर्षनाशक घाव (इतः) इस [रोगी] से (प्र पतिष्यति) चला जावेगा (सः) वह [घाव] (गलुन्तः) गलाव से कोमल होकर (नशिष्यति) नष्ट हो जावेगा ॥३॥

वीहि स्वामाहुतिं जुषाणो मनसा स्वाहा मनसा यदिदं जुहोमि ॥४॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (मनसा) मन से (जुषाणः) प्रीति करता हुआ तू (स्वाम्) अपनी (आहुतिम्) धर्म से देने लेने योग्य क्रिया को (वीहि) प्राप्त हो, (यत्) क्योंकि (स्वाहा) सुन्दर वाणी से और (मनसा) उत्तम विचार से (इदम्) ऐश्वर्य का कारण ज्ञान (जुहोमि) मैं देता हूँ ॥४॥

卐 सूक्तम् ८४ 卐

१—४ भग । निर्ऋतिः । १ भुरिग्जगती, २ त्रिपदार्षी बृहती, ३ जगती, ४ भुरिक् त्रिष्टुप् (जगती) ।

यस्यास्त आसनि घोरे जुहोम्येषां बद्धानामवसर्जनाय कम् । भूमिरिति त्वाभिप्रमन्वते जना निर्ऋतिरिति त्वाहं परि वेद सर्वतः ॥१॥

पदार्थ—(यस्याः) जिस (ते) तेरे (घोरे) भयानक (आसनि) मुख में (एषाम्) इन (बद्धानाम्) बधे हुए प्राणियों के (अवसर्जनाय) छुड़ाने के लिये (कम्) कमनीय व्यवहार को (जुहोमि) मैं देता हूँ । (त्वा) उस तुझको (जनाः) पामर लोग (भूमिः इति) यह भूमि अर्थात् आश्रय देने वाली है (अभिप्रमन्वते) मानते हैं, (अहम्) मैं (त्वा) तुझको (निर्ऋतिः इति) यह अलक्ष्मी है (सर्वतः) सब प्रकार से (परि वेद) भली भांति जानता हूँ ॥१॥

भूते हविष्मती भवैष ते भागो यो अस्मासु ।
मुञ्चेमानमूनेनसः स्वाहा ॥२॥

पदार्थ—(भूते) हे चिन्ता योग्य [अलक्ष्मी !] [हमारे लिये] (हविष्मती) देने और लेने योग्य क्रिया वाली (भव) हो, (एषः) यह (ते) तेरा (भागः) सेवनीय व्यवहार है, (यः) जो (अस्मासु) हम लोगों के बीच होवे । "(इमान्) इन [इस जन्म वाले] और (अमून्) उन [अगले वा पिछले जन्म वाले] जीवों को (एनसः) पाप से (मुञ्च) मुक्त करदे, (स्वाहा) यह सुन्दर वाणी है" ॥२॥

एवो ष्व१स्मन्निर्ऋतेऽनेहा त्वमयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान् ।
यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥३॥

पदार्थ—(निर्ऋते) हे अलक्ष्मी ! (त्वम्) तू (अनेहा) न मारने वाली होकर (अस्मत्) हमसे (अयस्मयान्) लोहे की बनी (बन्धपाशान्) बन्धन की बेड़ियों को (एवो) अवश्य ही (सु) भले प्रकार (विचृत) खोल दे । (यमः) न्यायकारी परमेश्वर (मह्यम्) मेरे लिये (पुनः) बारबार (इत्) ही (त्वाम्) तुझको (ददाति) देता है, (तस्मै) उस (यमाय) न्यायकारी परमेश्वर को (मृत्यवे) दुःखरूप मृत्यु नाश करने के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥३॥

अयस्मये द्रुपदे बेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम् ।
यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥४॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (इह) यहाँ पर (मृत्युभिः) मृत्यु के कारणों से (ये) जो (सहस्रम्) सहस्र प्रकार हैं (अभिहितः) घिरा हुआ तू (अयस्मये) लोहे से जकड़े हुए (द्रुपदे) काठ के बन्धन में (बेधिषे=बध्यसे) बंध रहा है । (यमेन) नियम से (पितृभिः) पालन करने वाले ज्ञानियों से (संविदानः) मिला हुआ (त्वम्) तू (इमम्) इस पुरुष को (उत्तमम्) उत्तम (नाकम्) आनन्द में (अधि रोहय) ऊपर चढ़ा ॥४॥

卐 सूक्तम् ८५ 卐

१—३ अथर्वा । वनस्पतिः । अनुष्टुप् ।

वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः ।
यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन् ॥१॥

पदार्थ—(अयम्) यह (देवः) दिव्य गुण वाला, (वनस्पतिः) सेवनीय गुणों का रक्षक (वरणः) स्वीकार करने योग्य [वैद्य अथवा वरण अर्थात् वरुण वृक्ष] [राजरोग आदि को] (वारयातै) हटावे । (यः) जो (यक्ष्मः) राजरोग (अस्मिन्) इस पुरुष में (आविष्टः) प्रवेश कर गया है (तम्) उसको (उ) निश्चय करके (देवाः) व्यवहार जाननेवाले विद्वानों ने (अवीवरन्) हटाया है ॥१॥

इन्द्रस्य वचसा वयं मित्रस्य वरुणस्य च ।
देवानां सर्वेषां वाचा यक्ष्मं ते वारयामहे ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्रस्य) प्रतापी, (मित्रस्य) स्नेही (च) और (वरुणस्य) सेवनीय पुरुष के (वचसा) वचन से और (सर्वेषाम्) सब (देवानाम्) व्यवहार जानने वाले विद्वानों के (वाचा) वचन से (ते) तेरे (यक्ष्मम्) राजरोग को (वयम्) हम लोग (वारयामहे) हटाते हैं ॥२॥

यथा वृत्र इमा आपस्तस्तम्भ विश्वधा यतीः ।
एवा ते अग्निना यक्ष्मं वैश्वानरेण वारये ॥३॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (वृत्रः) मेघ ने (विश्वधा) सब ओर (यतीः) बहती हुई (इमाः) इन (आपः = अपः) जलधाराओं को (तस्तम्भ) रोका था । (एव) वैसे ही (ते) तेरे (यक्ष्मम्) राजरोग को (वैश्वानरेण) सब मनुष्यों के हित करने वाले (अग्निना) अग्नि से (वारये) मैं हटाता हूँ ॥३॥

卐 सूक्तम् ८६ 卐

वृषकामो अथर्वा । एकवृष । अनुष्टुप् ।

वृषेन्द्रस्य वृषा दिवो वृषा पृथिव्या अयम् ।
वृषा विश्वस्य भूतस्य त्वमेकवृषो भव ॥१॥

पदार्थ—(अयम्) यह [परमेश्वर] (इन्द्रस्य) सूर्य का (वृषा) स्वामी (दिवः) अन्तरिक्ष का (वृषा) स्वामी, (पृथिव्याः) पृथिवी का (वृषा) स्वामी और (विश्वस्य) सब (भूतस्य) प्राणियों का (वृषा) स्वामी है, [हे पुरुष !] (त्वम्) तू (एकवृषः) अकेला स्वामी (भव) हो ॥१॥

समुद्र ईशे स्रवतामग्निः पृथिव्या वशी ।
चन्द्रमा नक्षत्राणामीशे त्वमेकवृषो भव ॥२॥

पदार्थ—(समुद्रः) समुद्र (स्रवताम्) बहते हुए जलों का (ईशे=ईष्टे) स्वामी है, (अग्निः) सूर्यरूप अग्नि (पृथिव्याः) पृथिवी का (वशी) वश में करने वाला है । (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (नक्षत्राणाम्) चलने वाले नक्षत्रों का (ईशे) अधिष्ठाता है, [हे पुरुष !] (त्वम्) तू (एकवृषः) अकेला स्वामी (भव) हो ॥२॥

सम्राडस्यसुराणां ककुन्मनुष्याणाम् ।
देवानामर्धभागसि त्वमेकवृषो भव ॥३॥

पदार्थ—[हे पुरुष !] (असुराणाम्) बुद्धिमानों का (सम्राट्) सम्राट्, और (मनुष्याणाम्) मननशील—मनुष्यों का (ककुत्) शिखा (असि) है । (देवानाम्) जय चाहने वालों की (अर्धभाक्) वृद्धि का बांटने वाला (असि) है, [हे पुरुष !] (त्वम्) तू (एकवृषः) अकेला स्वामी (भव) हो ॥३॥

卐 सूक्तम् ८७ 卐

१—३ अथर्वा । ध्रुवः । अनुष्टुप् ।

आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलत् ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत् ॥१॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (त्वा) तुझको (आ=आनीय) लाकर (अहार्षम्) मैंने स्वीकार किया है । (अन्तः) सभा के मध्य (अभूः) तू वर्तमान हुआ है । (ध्रुवः) निश्चित बुद्धि और (अविचाचलत्) निश्चलस्वभाव होकर (तिष्ठ) स्थिर हो (सर्वाः) सब (विशः) प्रजायें (त्वा वाञ्छन्तु) तेरी कामना करें, (राष्ट्रम्) राज्य (त्वत्) तुझसे (मा अधिभ्रशत्) कभी भ्रष्ट न होवे ॥१॥

इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलत् ।
इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय ॥२॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (पर्वतः इव) पहाड़ के समान (अविचाचलत्) निश्चल स्वभाव तू (इह एव) यहाँ ही (एधि) रह, (मा अप च्योष्ठाः) कदापि मत गिर । (इन्द्रः इव) सूर्य के समान (इह) यहाँ पर (ध्रुवः) स्थिर स्वभाव होकर (तिष्ठ) ठहर, (उ) और (इह) यहाँ पर (राष्ट्रम्) राज्य को (धारय) अधिकार में रख ॥२॥

इन्द्र एतमदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा ।
तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रः) परमेश्वर ने (ध्रुवेण) दृढ़ (हविषा) देने लेने योग्य शुभ कर्म के साथ (एतम्) इस राजा को (ध्रुवम्) दृढ़ (अदीधरत्) स्थापित किया है । (अयम्) यही (सोमः) सबका उत्पन्न करने वाला (च) और (ब्रह्मणस्पतिः) ब्रह्माण्ड और वेद का पालक परमेश्वर (तस्मै) उस राजा को (अधि) अधिक-अधिक (ब्रवत्) उपदेश करे ॥३॥

卐 सूक्तम् ८८ 卐

१—३ अथर्वा । ध्रुव । अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप् ।

ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् ।

ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवो राजा विशामयम् ॥१॥

पदार्थ—(द्यौ) सूर्यलोक (ध्रुवा) दृढ है, (पृथिवी) पृथिवी (ध्रुवा) दृढ है। (इदम्) यह (विश्वम्) सब (जगत) जगत (ध्रुवम्) दृढ है। (इमे) ये सब (पर्वता) पहाड (ध्रुवासः) दृढ है, (विशाम्) प्रजाओं का (अयम्) यह (राजा) राजा (ध्रुव) दृढस्वभाव है ॥१॥

ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः ।

ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥२॥

पदार्थ—(राजा) सबका राजा (वरुण) वरुण, सेवनीय परमेश्वर (ते) तेरे लिये (ते) तेरे (राष्ट्रम्) राज्य को (ध्रुवम्) स्थिर, (देव) प्रकाशमान (बृहस्पति) बडे बडे लोकों का पालन करने वाला परमात्मा (ध्रुवम्) स्थिर, (च) और (इन्द्र) सम्पूर्ण ऐश्वर्य वाला जगदीश्वर (ध्रुवम्) स्थिर, (च) और (अग्नि) सर्वव्यापक ईश्वर (ध्रुवम्) स्थिर (धारयताम्) रक्खे ॥२॥

ध्रुवोऽच्युतः प्र मृणीहि शत्रूञ्छत्रूयतोऽधरान् पादयस्व ।

सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीर्ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह ॥३॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (ध्रुव.) दृढ और (अच्युत) अचल होकर तू (शत्रून्) शत्रुओं को (प्र मृणीहि) नाश कर दे और (शत्रूयत.) शत्रु समान आचरण करने वाले (अधरान्) नीचों को (पादयस्व) अपने पैर से दबा दे। (इह) यहाँ पर (ध्रुवायते) तुझ निश्चल स्वभाव के लिये (सध्रीचीः) साथ-साथ रहने वाली (सर्वा) सब (दिश) दिशायें (संमनस) एक मनवाली हों, और (समितिः) यह सभा (कल्पताम्) समर्थ होवे ॥३॥

卐 सूक्तम् ८९ 卐

१—३ अथर्वा । (रुद्र), १ सोम , २ वात , ३ मित्रावरुणौ । अनुष्टुप् ।

इदं यत् प्रेण्यः शिरो दत्तं सोमेन वृष्ण्यम् ।

ततः परि प्रजातेन हार्दिं ते शोचयामसि ॥१॥

पदार्थ—(प्रेण्य'=प्रेण्या) तृप्त करने वाली ओषधि का (यत्) जो (इदम्) यह (शिर) मस्तकबल और (सोमेन) सब के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर द्वारा (दत्तम्) दिया हुआ (वृष्ण्यम) जो वीरत्व है। (तत) उससे (परि) सब प्रकार (प्रजातेन) उत्पन्न हुए [साहस] से (ते) तेरी (हार्दिम्) हार्दिक शक्ति को (शोचयामसि) हम शोक मे डालते है ॥१॥

शोचयामसि ते हार्दिं शोचयामसि ते मनः ।

वातं धूम इव सध्र्य१ङ् मामेवान्वेतु ते मनः ॥२॥

पदार्थ—[हे शत्रु !] (ते) तेरी (हार्दिम्) हार्दिक शक्ति को (शोचयामसि) हम शोक मे डालते है। (ते) तेरे (मन) मन अर्थात् मनन सामर्थ्य को (शोचयामसि) हम शोक मे डालते हैं, (ते) तेरा (मन') मन (माम् एव अनु) मेरे ही पीछे-पीछे (एतु) चले, (इव) जैसे (सध्र्यङ्) [वायु से] मिला हुआ (धूम.) धुआ (वातम्) वायु के [साथ-साथ चलता है] ॥२॥

मह्यं त्वा मित्रावरुणौ मह्यं देवी सरस्वती ।

मह्यं त्वा मध्यं भूम्या उभावन्तौ समस्यताम् ॥३॥

पदार्थ—[हे शत्रु !] (मित्रावरुणौ) मेरे प्राण और अपान वायु (त्वा) तुझको, और (देवी) दिव्यगुणवाली (सरस्वती) विज्ञानयुक्त विद्या (त्वा) तुझको (मह्यम्) मुझ से, और (भूम्या) भूमि का (मध्यम्) मध्यस्थान और (उभौ) दोनों (अन्तौ) अन्त (त्वा) तुझको (मह्यम्) मुझसे (सम् अस्यताम्) संयुक्त करें ॥३॥

卐 सूक्तम् ९० 卐

१—३ अथर्वा । रुद्र., अनुष्टुप्, ३ आर्षी भुरिगुष्णिक् ।

यां ते रुद्र इषुमास्यदङ्गेभ्यो हृदयाय च ।

इदं तामद्य त्वद् वयं विषूचीं वि वृहामसि ॥१॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (रुद्रः) पापियों के रुलाने वाले परमेश्वर ने (ते) तेरे (अङ्गेभ्यः) अङ्गों [शरीर] को पीड़ा देने (च) और (हृदयाय) हृदय [आत्मा] दु खाने के लिये (याम्) जिस (इषुम्) बरछी [पीड़ा] को (आस्यत्) छोड़ा है। (इदम्) सो (अद्य) अब (विषूचीम्) नाना गति वाली (ताम्) उस [बरछी] को (वयम्) हम लोग (त्वत्) तुझ से (वि वृहामसि =०—म.) उखाड़ते हैं ॥१॥

यास्ते शतं धमनयोऽङ्गान्यनु विष्ठिताः ।

तासां ते सर्वासां वयं निर्विषाणि ह्वयामसि ॥२॥

पदार्थ—(या) जो (शतम्) सौ [असंख्य] (धमनयः) नाड़ियाँ (ते) तेरे (अङ्गानि अनु) अङ्गों मे (विष्ठिता') फैली हुई हैं। (ते) तेरी (तासाम्) उन (सर्वासाम्) सब [नाडियों] के (विषाणि) विषों को (नि.=निष्कृष्य) निकाल कर (वयम) हम (ह्वयामसि=० म) पुकारते हैं ॥२॥

नमस्ते रुद्रास्यते नमः प्रतिहितायै ।

नमो विसृज्यमानायै नमो निपतितायै ॥३॥

पदार्थ—(रुद्र) हे पापियों के रुलाने वाले परमेश्वर ! (अस्यते) [बरछी वा बाण] छोडने वाले (ते) तुझको (नमः) नमस्कार है, (प्रतिहितायै) तानी हुई [बरछी] को (नम) नमस्कार है, (विसृज्यमानायै) छुटती हुई को (नम) नमस्कार है, और (निपतितायै) लक्ष्य पर पडी हुई [बरछी] को (नम) नमस्कार है ॥३॥

卐 सूक्तम् ९१ 卐

१—३ भृग्वङ्गिरा । यक्ष्मनाशनम्, ३ आप. । अनुष्टुप् ।

इमं यवमष्टायोगैः षड्योगेभिरचर्कृषुः ।

तेना ते तन्वो३ रपोऽपाचीनमप व्यये ॥१॥

पदार्थ—(इमम्) इस [सर्वव्यापी] (यवम्) सयोग-वियोग करने वाले परमेश्वर को (अष्टायोगैः) आठ प्रकार के [यम नियम आदि] योगों से और (षड्योगेभि) छह प्रकार के [पढ़ना पढाना आदि] ब्राह्मणों के कर्मों से (अचर्कृषु) उन [महात्माओं] ने कर्षण अर्थात् परिश्रम से प्राप्त किया है। (तेन) उसी [कर्म] से (ते) तेरे (तन्व) शरीर के (रप) पाप को (अपाचीनम्) विपरीत गति करके (अप व्यय) मैं हटाता हूँ ॥१॥

न्य१ग् वातो वाति न्यक् तपति सूर्यः ।

नीचीनमघ्न्या दुहे न्यग् भवतु ते रपः ॥२॥

पदार्थ—(वात.) वायु (न्यक्) नीचे की ओर (वाति) बहता है, (सूर्यः) सूर्य (न्यक्) नीचे की ओर (तपति) तपता है (अघ्न्या) न मारने योग्य गौ (नीचीनम्) नीचे का (दुहे=दुग्धे) दूध देती है, [हे मनुष्य !] (ते) तेरा (रप') दोष (न्यक्) नीचे की ओर (भवतु) होवे ॥२॥

आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।

आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥३॥

पदार्थ—(आप) शुभकर्म वा जल (इत् वै उ) अवश्य ही (भेषजीः=०—ज्य) भय निवारक हैं, (आप) शुभकर्म वा जल (अमीवचातनीः=०—न्य) पीड़ानाशक हैं। (आप) शुभकर्म वा जल (विश्वस्य) सब के (भेषजी.) भयनिवारक है, (ता) वे (ते) तेरा (भेषजम्) भय निवारण (कृण्वन्तु) करें ॥३॥

卐 सूक्तम् ९२ 卐

१—३ अथर्वा । इन्द्र , वाजी । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

वातरंहा भव वाजिन् युज्यमान इन्द्रस्य याहि प्रसवे मनोजवाः ।

युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु ॥१॥

पदार्थ—(वाजिन्) हे अन्न वा बलवाले राजन् ! (युज्यमानः) सावधान होकर (वातरंहा) वायु के समान वेगवाला (भव) हो और (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर की (प्रसवे) आज्ञा मे (मनोजवा) मन के समान गति वाला होकर (याहि) चल। (विश्ववेदस) समस्त विद्याओं वा धनों वाले (मरुत') दोषों के नाश करने वाले विद्वान् लोग (त्वा) तुझको (युञ्जन्तु) [राजकार्य मे] युक्त करें, (त्वष्टा) सूक्ष्मदर्शी मनुष्य (ते) तेरे (पत्सु) पगों में (जवम्) वेग को (आ) अच्छे प्रकार (दधातु) धारण करे ॥१॥

जवस्ते अर्वन् निहितो गुहा यः श्येने वात उत योऽचरत् परीत्तः ।

तेन त्वं वाजिन् बलवान् बलेनाजिं जय समने पारयिष्णुः ॥२॥

पदार्थ—(अर्वन्) हे विज्ञानयुक्त राजन् ! (यः) जो (जवः) वेग (ते) तेरे (गुहा=गुहायाम्) हृदय मे (निहितः) धरा हुआ है, और (य.) जो (परीत्त.) सब प्रकार दिया हुआ [वेग] (श्येने) श्येन अर्थात् बाज पक्षी मे (उत) और (वाते) पवन में (अचरत्) विचरा है। (वाजिन्) हे वेगयुक्त राजन् (त्वम्) तू (तेन) उस (बलेन) बल से (बलवान्) बलवान् और

(समत्ने) संग्राम में (पारयिष्णुः) पार लगाने वाला होकर (आजिम्) युद्ध को (जय) जीत ॥२॥

तनूष्टे वाजिन् तन्वं१ नयन्ती वाममस्मभ्यं धावतु शर्म तुभ्यम् ।

अह्रुतो महो धरुणाय देवो दिवीव ज्योतिः स्वमा मिमीयात् ॥३॥

पदार्थ—(वाजिन्) हे बलवान् राजन् ! (ते) तेरा (तनूः) शरीर (तन्वम्) हमारे शरीर को (नयन्ती) ले चलता हुआ (अस्मभ्यम्) हमारे लिए और (तुभ्यम्) तेरे लिए (वामम्) सेवनीय धन और (शर्म) सुख (धावतु) शीघ्र पहुँचावे । (अह्रुतः) कुटिलता रहित (देवः) विजय चाहने वाले आप (धरुणाय) हमारे धारण के लिए (महः) बड़ी (स्वम्) अपनी (ज्योतिः) ज्योति (आ) भले प्रकार (मिमीयात्) निर्माण करें (दिवि इव) जैसे सूर्यमण्डल में [ज्योति] ॥३॥

इति नवमोऽनुवाकः ॥

卐

अथ दशमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ९३ 卐

१—३ शन्तातिः । रुद्रः, १ यमो मृत्युः शर्वः, भवः शर्वः, ३ विश्वे देवाः मरुतः अग्नीषोमौ वरुणः वातपर्जन्यौ । त्रिष्टुप् ।

यमो मृत्युरघमारो निर्ऋथो बभ्रुः शर्वोऽस्ता नीलशिखण्डः ।

देवजनाः सेनयोत्तस्थिवांसस्ते अस्माकं परि वृञ्जन्तु वीरान् ॥१॥

पदार्थ—(यमः) न्यायकारी परमेश्वर [पापियों का] (अघमारः) पाप के कारण मारने वाला, (मृत्युः) प्राण छुड़ाने वाला, (निर्ऋथः) निरन्तर पीड़ा देने वाला और [धर्मात्माओं का] (बभ्रुः) पालन करने वाला और (शर्वः) कष्ट काटने वाला (अस्ता) ग्रहण करने वाला और (नीलशिखण्डः) निधियों वा निवासों का देने वाला है । (सेनया) अपनी सेना के साथ (उत्तस्थिवांसः) उठे हुए (ते) वे (देवजनाः) विजय चाहने वाले पुरुष (अस्माकम्) हमारे (वीरान्) वीर लोगों को [विघ्न से] (परि) सर्वथा (वृञ्जन्तु) छुड़ावें ॥१॥

मनसा होमैर्हरसा घृतेन शर्वायास्त्र उत राज्ञे भवाय ।

नमस्येभ्यो नम एभ्यः कृणोम्यन्यत्रास्मदघविषा नयन्तु ॥२॥

पदार्थ—(मनसा) विज्ञान के साथ, (होमैः) देने और लेने योग्य व्यवहारों के साथ, (हरसा) अन्धकार हरने वाले (घृतेन) प्रकाश के साथ वर्तमान (शर्वाय) [धर्मात्माओं के] कष्टनाशक, (अस्त्रे) ग्रहण करने वाले (उत) और (भवाय) सुख देने वाले (राज्ञे) राजा परमेश्वर को, और (एभ्यः) इन (नमस्येभ्यः) नमस्कार योग्य महात्माओं को (नमः) विनति (कृणोमि) करता हूँ । वे सब (अस्मत्) हम से (अन्यत्र) दूसरों पर [दुष्कर्मियों पर] (अघविषाः) पाप रूप विष वाली पीड़ाओं को (नयन्तु) ले जावें ॥२॥

त्रायध्वं नो अघविषाभ्यो वधाद् विश्वे देवा मरुतो विश्ववेदसः ।

अग्नीषोमा वरुणः पूतदक्षा वातापर्जन्ययोः सुमतौ स्याम ॥३॥

पदार्थ—(विश्वे) हे सब (देवाः) दिव्यगुणवाले (विश्ववेदसः) संसार के जानने वाले (मरुतः) दोषनाशक विद्वान् पुरुषो ! (नः) हमें (अघविषाभ्यः) पापरूप विष वाली पीड़ाओं के (वधात्) हनन से (त्रायध्वम्) बचाओ । (अग्नीषोमा) अग्नि और चन्द्रलोक और (वरुणः) सूर्यलोक (पूतदक्षाः) पवित्र बलवाले हैं, [उनकी और] (वातापर्जन्ययोः) वायु और मेघ की (सुमतौ) श्रेष्ठ बुद्धि में (स्याम) हम रहें ॥३॥

卐 सूक्तम् ९४ 卐

१—३ अथर्वाङ्गिराः । सरस्वती । अनुष्टुप्, २ विराड् जगती ।

सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि ।

अमी ये विव्रता स्थन तान् वः सं नमयामसि ॥१॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (वः) तुम्हारे (मनांसि) मनों को (सम्) ठीक रीति से (व्रता=व्रतानि) कर्मों को (सम्) ठीक रीति से (आकूतीः) संकल्प को (सम्) ठीक रीति से (नमामसि=०—मः) हम झुकाते हैं । (अमी ये) ये जो तुम (विव्रताः) विरुद्धकर्मी (स्थन) हो, (तान् वः) उन तुमको (सम्) ठीक रीति से (नमयामसि=०—मः) हम झुकाते हैं ॥१॥

अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत ।

मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मान एत ॥२॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (मनसा) अपने मन से (मनांसि) तुम्हारे मनों को (गृभ्णामि=गृह्णामि) थामता हूँ (मम) मेरे (चित्तम् अनु) चित्त के पीछे पीछे (चित्तेभिः—चित्तैः) अपने चित्तों से (आ इत) आओ । (मम वशेषु) अपने वश में (वः हृदयानि) तुम्हारे हृदयों को (कृणोमि) मैं करता हूँ । (मम यातम्) मेरी चाल पर (अनुवर्त्मानः) मार्ग चलते हुए (आ इत) यहाँ आओ ॥२॥

ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती ।

ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्चर्ध्यास्मेदं सरस्वति ॥३॥

पदार्थ—(मे) मेरे लिये (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूलोक (ओते) बुने हुए हैं, (देवी) दिव्य गुण वाली (सरस्वती) विज्ञानवती विद्या (ओता) परस्पर बुनी हुई है । (च) और (मे) मेरे लिये (इन्द्रः) मेघ (च) और (अग्निः) अग्नि (ओतौ) परस्पर बुने हुए हैं । (सरस्वति) हे विज्ञानवती विद्या (इदम्) अब (ऋध्यास्म) हम श्रीमान् होवें ॥३॥

卐 सूक्तम् ९५ 卐

१—३ भृग्वङ्गिराः । वनस्पतिः । अनुष्टुप् ।

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि ।

तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥१॥

पदार्थ—(देवसदनः) विद्वानों के बैठने योग्य (अश्वत्थः) वीरों के ठहरने का देश [अधिकार] (तृतीयस्याम्) तीसरी [निकृष्ट और मध्यम अवस्था से परे, श्रेष्ठ] (दिवि) गति में (इतः) प्राप्त होता है । (तत्र) उसमें (अमृतस्य) अमृत [पूर्ण सुख] के (चक्षणम्) दर्शन (कुष्ठम्) गुण परीक्षक पुरुष को (देवाः) महात्माओं ने (अवन्वत) माँगा है ॥१॥

हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि ।

तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥२॥

पदार्थ—(हिरण्ययी) तेज वाली [अग्नि वा बिजुली वा सूर्य से चलने वाली] (हिरण्यबन्धना) तेजोमय बन्धन वाली (नौः) नाव (दिवि) चलने के व्यवहार में (अचरत्) चलती थी । (तत्र) वहाँ पर (अमृतस्य) अमृत के (पुष्पम्) विकाश (कुष्ठम्) गुण परीक्षक पुरुष को (देवाः) विद्वान् लोगों ने (अवन्वत) माँगा है ॥२॥

गर्भो अस्योषधीनां गर्भो हिमवतामुत ।

गर्भो विश्वस्य भूतस्येमं मे अगदं कृधि ॥३॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] तू (ओषधीनाम्) ताप रखने वाले [सूर्य आदि] लोकों का (गर्भः) स्तुतियोग्य आधार (उत) और (हिमवताम्) शीतस्पर्शवालों [जल मेघ आदि] का (गर्भः) ग्रहण करने वाला और (विश्वस्य) सब (भूतस्य) प्राणिसमूह का (गर्भः) आधार (असि) है । (मे) मेरे लिये (इमम्) इस [संसार] को (अगदम्) नीरोग (कृधि) तू कर ॥३॥

卐 सूक्तम् ९६ 卐

१—३ भृग्वङ्गिराः, वनस्पतिः, ३ सोमः । अनुष्टुप्, ३ त्रिपाद्विराण्नाम गायत्री ।

या ओषधयः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः ।

बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१॥

पदार्थ—(सोमराज्ञीः) बड़े ऐश्वर्य वाले परमेश्वर वा चन्द्रमा वा सोमलता को राजा रखने वाली, (शतविचक्षणाः) सैकड़ों कथनीय और दर्शनीय शुभ गुणों वाली और (बृहस्पतिप्रसूताः) बृहस्पतियों, बड़े विद्वानों द्वारा काम में लायी गयीं, (बह्वीः) बहुत सी (याः) जो (ओषधयः) ताप नाश करने वाली ओषधियाँ हैं, (ताः) वे (नः) हमको (अंहसः) रोग से (मुञ्चन्तु) मुक्त करें ॥१॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्या३दथो वरुण्या३दुत ।

अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात् ॥२॥

पदार्थ—हे [ओषधे] (मा) मुझको (शपथ्यात्) शपथसम्बन्धी (अथो) और (वरुण्यात्) श्रेष्ठों में हुए [अपराध] से (अथो) और (यमस्य) न्यायकारी राजा के (पड्वीशात्) बेड़ी डालने से (उत) और (विश्वस्मात्) सब (देवकिल्बिषात्) इन्द्रियों के दोष से (मुञ्चन्तु) मुक्त करें ॥२॥

यच्चक्षुषा मनसा यच्च वाचोपारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः ।

सोमस्तानि स्वधया नः पुनातु ॥३॥

पदार्थ—(यत्) जो कुछ पाप (चक्षुषा) नेत्र से (च) और (यत्)

जो कुछ (मनसा) मन से और (यत्) जो कुछ (वाचा) वाणी से (जाग्रत.) जागते हुए [अथवा] (स्वपन्तः) सोते हुए (उपारिम) हमने किया है । (सोम.) बड़े ऐश्वर्य वाला जगदीश्वर (न) हमारे (तानि) उन पापो को (स्वधया) अपनी धारण शक्ति से (पुनातु) शुद्ध करे ॥३॥

卐 सूक्तम् ९७ 卐

१—३ अथर्वा । १, ३ देव , २ मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप्, २ जगती, ३ भुरिक् ।

अभिभूर्यज्ञो अभिभूरग्निरभिभूः सोमो अभिभूरिन्द्रः ।
अभ्य१हं विश्वाः पृतना यथासान्येवा विधेमाग्निहोत्रा इदं हविः ॥१॥

पदार्थ—(यथा) जिस प्रकार से (अहम्) मैं (अभिभूः) दुष्टो का तिरस्कार करने वाला (यज्ञ) पूजनीय, (अभिभूः) शत्रुओं का जीतनेवाला (अग्नि) अग्निसमान तेजस्वी, (अभिभूः) वैरियो का वश मे करने वाला (सोम.) चन्द्रसमान सुख देनेवाला और (अभिभूः) दुराचारियो का हराने वाला (इन्द्र) महाप्रतापी होकर (विश्वा) सब (पृतना) शत्रु सेनाओं को (अभि असानि) हरा दूँ । (एव) वैसे ही (अग्निहोत्रा) अग्नि [परमेश्वर, सूर्य, बिजुली और आग की विद्या] के लिए वाणी वाले हम लोग (इदम्) यह (हविः) देने लेने योग्य कर्म (विधेम) करें ॥१॥

स्वधास्तु मित्रावरुणा विपश्चिता प्रजावत् क्षत्रं मधुनेह पिन्वतम् ।
बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत् ॥२॥

पदार्थ—(विपश्चिता) हे बड़े बुद्धिमान (मित्रावरुणा) प्राण और अपान के समान प्रिय माता पिता ! [हम में] (स्वधा) आत्मधारण शक्ति (अस्तु) होवे, (प्रजावत्) उत्तम प्रजाओ से युक्त (क्षत्रम्) राज्य को (मधुना) मधुविद्या से [ईश्वर ज्ञान से] (इह) यहाँ पर (पिन्वतम्) सीचो । (निर्ऋतिम्) अलक्ष्मी को (पराचैः) अधोमुख करके (दूरम्) दूर (बाधेथाम्) हटाओ और [इसके] (कृतम्) किये हुए (एनः) दुःख को (चित्) भी (अस्मत्) हम से (प्र) (अच्छे प्रकार) (मुमुक्तम्) छुड़ाओ ॥२॥

इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ।
ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ॥३॥

पदार्थ—(सखाय.) हे परस्पर सहायक मित्रो ! (इमम्) इस (वीरम् अनु) वीर सेनापति के साथ (हर्षध्वम्) हर्ष करो, (ओजसा) अपने शरीर, बुद्धि और सेना बल से (ग्रामजितम्) शत्रुओ के समूह को जीतने वाले, (गोजितम्) उनकी भूमि को जीतने वाले, (वज्रबाहुम्) अपनी भुजाओ मे शस्त्र रखने वाले, (अज्म) संग्राम को (जयन्तम्) विजय करने वाले (प्रमृणन्तम्) वैरियो को मार डालने वाले (उग्रम्) तेजस्वी, (इन्द्रम् अनु) महा प्रतापी सेनाध्यक्ष के साथ होकर (सम्) अच्छे प्रकार (रभध्वम्) युद्ध आरम्भ करो ॥३॥

卐 सूक्तम् ९८ 卐

१—३ अथर्वा । इन्द्रः, त्रिष्टुप्, २ बृहतीगर्भास्तारपङ्क्ति ।

इन्द्रो जयाति न परा जयाता अधिराजो राजसु राजयातै ।
चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यो नमस्यो भवेह ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) सम्पूर्ण ऐश्वर्य वाला परमात्मा [हमे] (जयाति) विजय करावे, और (न पराजयातै) कभी न हरावे, (अधिराज.) महाराजाधिराज जगदीश्वर [हमे] (राजयातै) राजा बनाये रक्खे । [हे महाराजेश्वर !] (चर्कृत्य) अत्यन्त करने योग्य कर्मों मे चतुर, (ईड्य) प्रशसनीय, (वन्द्य) वन्दना योग्य, (उपसद्य) शरण लेने योग्य (च) और (नमस्य) नमस्कार योग्य तू (इह) यहाँ [हमारे बीच] (भव) वर्तमान हो ॥१॥

त्वमिन्द्राधिराजः श्रवस्युस्त्वं भूरभिभूतिर्जनानाम् ।
त्वं दैवीर्विश इमा वि राजायुष्मत् क्षत्रमजरं ते अस्तु ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे सम्पूर्ण ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर, (त्वम्) तू (श्रवस्युः) सब की सुनने वाला (अधिराज.) राजराजेश्वर, (त्वम्) तू ही (जनानाम् अभिभूतिः) अपने भक्तो का सब प्रकार ऐश्वर्यदाता [यद्वा, पामर जनो का तिरस्कार करने वाला] (भूः = अभू.) हुआ है । (त्वम्) तू (इमा) इन (दैवी) दिव्य गुणवाली (विश) प्रजाओ पर (वि) विविध प्रकार से (राज) राज्य कर, (ते) तेरा (क्षत्रम्) राज्य [हमारे लिये] (आयुष्मत्) उत्तम जीवन वाला और (अजरम्) जरारहित [नित्य तरुण] (अस्तु) होवे ॥२॥

प्राच्या दिशस्त्वमिन्द्रासि राजोतोदीच्या दिशो वृत्रहञ्छत्रुहोऽसि ।
यत्र यन्ति स्रोत्यास्तज्जितं ते दक्षिणतो वृषभ एषि हव्यः ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमात्मन् ! (त्वम्) तू (प्राच्या. दिशः) पूर्व वा सन्मुख वाली दिशा का (उत) और (उदीच्या· दिश) उत्तर वा बाईं दिशा का (राजा असि) राजा है, (वृत्रहन्) हे अन्धकारनाशक ! तू (शत्रुहः) हमारे शत्रुओ का नाश करने वाला (असि) है । (यत्र) जिस स्थान मे (स्रोत्याः) जल धारायें (यन्ति) चलती हैं (तत्) वह स्थान [समुद्र वा अन्तरिक्ष] (ते) तेरा (जितम्) जीता हुआ है, (वृषभ) महापराक्रमी, (हव्य) आवाहन योग्य तू (दक्षिणत) हमारी दाहिनी ओर (एषि) पहुँचता है ॥३॥

卐 सूक्तम् ९९ 卐

१—३ अथर्वा । इन्द्र , सोम सविता च । अनुष्टुप्, ३ भुरिग्बृहती ।

अभि त्वेन्द्र वरिमतः पुरा त्वांहूरणाद्धुवे ।
ह्वयाम्युग्रं चेत्तारं पुरुणामानमेकजम् ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे सम्पूर्ण ऐश्वर्यवाले इन्द्र जगदीश्वर ! (त्वा त्वा) तुझको, तुझको (वरिमत) तेरे विस्तार के कारण (अंहूरणात्) पाप वाले कर्म से (पुरा) पहिले (अभि) सब ओर से (हुवे) मैं बुलाता हूँ । (उग्रम्) तेजस्वी, (चेत्तारम्) सत्य और असत्य के जानने वाले, (पुरुणामानम्) अनेक उत्तम नाम वाले, (एकजम) अकेले उत्पन्न [अद्वितीय, तुझ प्रभु] को (ह्वयामि) मैं पुकारता हूँ ॥१॥

यो अद्य सेन्यो वधो जिघांसन् न उदीरते ।
इन्द्रस्य तत्र बाहू समन्तं परि दद्मः ॥२॥

पदार्थ—(अद्य) आज (य.) (सेन्य) शत्रुसेना सम्बन्धी (वधः) शस्त्रसमूह (जिघांसन्) मारने की इच्छा करता हुआ (न) हम पर (उदीरते) चढ़ा आता है । (तत्र) उसमें (इन्द्रस्य) महाप्रतापी इन्द्र परमात्मा के (बाहू) भुजाओ के तुल्य बल पराक्रम को (समन्त) सब प्रकार (परिदद्म) हम ग्रहण करते है ॥२॥

परि दद्म इन्द्रस्य बाहू समन्तं त्रातुस्त्रायतां नः ।
देव सवितः सोम राजन्त्सुमनसं मा कृणु स्वस्तये ॥३॥

पदार्थ—(त्रातु.) रक्षा करने वाले (इन्द्रस्य) महाप्रतापी इन्द्र परमात्मा के (बाहू) भुजाओ के तुल्य बल पराक्रम को (समन्तम्) सब प्रकार (परिदद्म·) हम ग्रहण करते हैं, वह (न) हमारी (त्रायताम्) रक्षा करे । (देव) प्रकाश-स्वरूप, (सवित) सर्वप्रेरक (सोम) संपूर्ण ऐश्वर्ययुक्त (राजन्) राजन् जगदीश्वर ! (स्वस्तये) कल्याण पाने के लिये (मा) मुझे (सुमनसम्) उत्तम विचार वाला (कृणु) कर ॥३॥

卐 सूक्तम् १०० 卐

१—३ गरुत्मान । वनस्पति. । अनुष्टुप ।

देवा अदुः सूर्यो अदाद् द्यौरदात् पृथिव्यदात् ।
तिस्रः सरस्वतीरदुः सचित्ता विषदूषणम् ॥१॥

पदार्थ—(देवा.) जलदाता मेघो ने (विषदूषणम्) विषनाशक औषध रूप विज्ञान को (अदु) दिया है, (सूर्य) सूर्य ने (अदात्) दिया है, (द्यौ·) अन्तरिक्ष ने (अदात्) दिया है, (पृथिवी) पृथिवी ने (अदात्) दिया है । (सचित्ता) समान ज्ञानवाली (तिस्र) तीनो (सरस्वती) विज्ञान वाली देवियो ने (अदु.) दिया है ।

यद् वो देवा उपजीका आसिञ्चन् धन्वन्युदकम् ।
तेन देवप्रसूतेनेदं दूषयता विषम् ॥२॥

पदार्थ—(उपजीका·) हे [परमेश्वर के] आश्रित प्राणियो ! (व.) तुम्हारे लिये (देवा) विद्वानो ने (धन्वनि) निर्जल स्थान मे (यत् उदकम्) जिस जल को (आ—असिञ्चन्) लाकर सीचा है । (देवप्रसूतेन) विद्वानो के दिए हुए (तेन) अमृत से (इदम् विषम्) इस विष को (दूषयता) नाश करो ॥२॥

असुराणां दुहितासि सा देवानामसि स्वसा ।
दिवस्पृथिव्याः संभूता सा चकर्थारसं विषम् ॥३॥

पदार्थ—[हे ओषधि !] (असुराणाम्) श्रेष्ठ बुद्धिमानों की (दुहिता) कामनाएं पूरी करने वाली (असि) है, (सा) सो तू (देवानाम्) उत्तम गुणो की (स्वसा) अच्छे प्रकार प्रकाश करने वाली (असि) है । (दिवः) सूर्य से और (पृथिव्या.) पृथिवी से (संभूता) उत्पन्न हुई (सा) उस तुझ ने (विषम्) विष को (अरसम्) निर्बल (चकर्थ) कर दिया है ॥३॥

卐 सूक्तम् १०१ 卐

१—३ अथर्वाङ्गिरा: । ब्राह्मणस्पतिः । अनुष्टुप् ।

आ वृषायस्व श्वसिहि वर्धस्व प्रथयस्व च ।

यथाङ्गं वर्धतां शेपस्तेन योषितमिज्जहि ॥१॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (आ) भले प्रकार (वृषायस्व) इन्द्र—बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष के समान आचरण कर, (श्वसिहि) जीता रह, (वर्धस्व) बढ़ती कर (च) और [हमें] (प्रथयस्व) फैला । (यथाङ्गम्) प्रत्येक अङ्ग में [तेरा] (शेपः) सामर्थ्य (वर्धताम्) बढ़े, (तेन) इसलिए (योषितम्) सेवनीय नीति को (इत्) ही (जहि) तू प्राप्त हो ॥१॥

येन कृशं वाजयन्ति येन हिन्वन्त्यातुरम् ।

तेनास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ॥२॥

पदार्थ—(येन) जिस कर्म से (कृशम्) दुर्बल को (वाजयन्ति) बली करते हैं और (येन) जिस से (आतुरम्) अशान्त पुरुष को (हिन्वन्ति) प्रसन्न करते हैं । (तेन) उसी कर्म से (ब्रह्मणस्पते) हे अन्न, वा धन, वा वेद वा ब्राह्मण के रक्षक परमेश्वर ! (अस्य) इसके (पसः) राज्य को (धनुः इव) धनुष के समान (आ) भले प्रकार (तानय) फैला ॥२॥

आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि ।

क्रमस्वर्श इव रोहितमनवग्लायता सदा ॥३॥

पदार्थ—(अहम्) मैं [हे मनुष्य !] (ते) तेरे (पसः) राज्य को (आ) यथावत् (तनोमि) फैलाता हूँ (ज्याम् इव) जैसे डोरी को (धन्वनि अधि) धनुष में । (अनवग्लायता) बिना ग्लानि वा थकावट के (सदा) सदा [शत्रुओं पर] (क्रमस्व) धावा कर, (ऋश इव) जैसे हिंसक जन्तु सिंह आदि (रोहितम्) हरिण पर ॥३॥

卐 सूक्तम् १०२ 卐

१—३ जमदग्नि । अश्विनौ । अनुष्टुप् ।

यथायं वाहो अश्विना समैति सं च वर्तते ।

एवा मामभि ते मनः समैतु सं च वर्तताम् ॥१॥

पदार्थ—(अश्विना) हे सूर्य और चन्द्रमा [के समान नियम वाले पुरुष !] (यथा) जैसे (अयम्) यह (वाहः) लद्दू पशु [घोड़ा बैल आदि] (समैति) मिलकर आता है (च) और (सम्) ठीक-ठीक (वर्तते) वर्तता है । (एव) वैसे ही [हे जीव !] (माम् अभि) मेरी ओर (ते मनः) तेरा मन (समैतु) मिल कर आवे (च) और (सम् वर्तताम्) ठीक-ठीक वर्ताव करे ॥१॥

आहं खिदामि ते मनो राजाश्वः पृष्ट्यामिव ।

रेष्मच्छिन्नं यथा तृणं मयि ते वेष्टतां मनः ॥२॥

पदार्थ—[हे प्राणी !] (अहम्) मैं (ते मनः) तेरे मन को (आखिदामि) ऐसे खींचता हूँ (इव) जैसे (राजाश्वः) बड़ा अश्ववार (पृष्ट्याम्) बागडोर को । (मयि) मुझ में (ते मनः) तेरा मन (वेष्टताम्) लिपटा रहे (यथा) जैसे (रेष्मच्छिन्नम्) व्याकुल करने वाली आँधी से तोड़ा गया (तृणम्) घास ॥२॥

आञ्जनस्य मदुघस्य कुष्ठस्य नलदस्य च ।

तुरो भगस्य हस्ताभ्यामनुरोधनमुद्भरे ॥३॥

पदार्थ—(आञ्जनस्य) संसार के प्रकट करने वाले, (मदुघस्य) आनन्द के सींचने वाले, (कुष्ठस्य) गुण जाँचने वाले, (नलदस्य) बन्धन काटने वाले, (तुरः) शीघ्रकारी, (च) और (भगस्य) बड़े ऐश्वर्य वाले ब्रह्म के (अनुरोधनम्) यथावत् पूजन का (हस्ताभ्याम्) अपने दोनों हाथों [में बल] के लिये (उत्) उत्तम रीति से (भरे) मैं धारण करता हूँ ॥३॥

॥ इति दशमोऽनुवाकः ॥

卐

अथैकादशोऽनुवाकः

卐 सूक्तम् १०३ 卐

१—३ उच्छोचन । इन्द्राग्नी, १ बृहस्पतिः सविता मित्रो अर्यमा भगो अश्विनौ, २ इन्द्रोऽग्नि , ३ इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

संदानं वो बृहस्पतिः संदानं सविता करत् ।

संदानं मित्रो अर्यमा संदानं भगो अश्विना ॥१॥

पदार्थ—[हे शत्रु लोगो !] (बृहस्पतिः) बड़े-बड़े सैनिकों का स्वामी (वः) तुम्हारा (सन्दानम्) खण्डन (सविता) प्रेरणा करनेवाला सेनाध्यक्ष (सन्दानम्) तुम्हारा बन्धन, (मित्रः) सब का मित्र (अर्यमा) न्यायाधीश (सन्दानम्) तुम्हारा खण्डन, (अश्विना) सूर्य चन्द्रमा के समान नियम वाला (भग) ऐश्वर्यवान् राजा (सन्दानम्) तुम्हारा बन्धन (करत्) करे ॥१॥

सं परमान्त्समवमानथो सं द्यामि मध्यमान् ।

इन्द्रस्तान् पर्यहार्दाम्ना तानग्ने सं द्या त्वम् ॥२॥

पदार्थ—(परमान्) ऊँचे वैरियों को (सम) यथावत्, (अवमान्) नीचे शत्रुओं को (सम्) यथावत् (अथो) और (मध्यमान्) बीच वाले शत्रुओं को (सम्) यथावत् (द्यामि) खण्ड-खण्ड करता हूँ । (इन्द्र) महाप्रतापी राजा ने (तान्) चोरों को (परि) सब ओर से (अहाः) नाश कर दिया है, (अग्ने) हे विद्वान् राजन् ! (त्वम्) तू (दाम्ना) पाश से (तान्) म्लेच्छों को (सम् द्य) बाँध ले ॥२॥

अमी ये युधमायन्ति केतून् कृत्वानीकशः ।

इन्द्रस्तान् पर्यहार्दाम्ना तानग्ने सं द्या त्वम् ॥३॥

पदार्थ—(अमी ये) वे जो शत्रु (केतून्) ध्वजा पताकायें (कृत्वा) बनाकर (अनीकशः) टोली टोली से (युधम्) युद्ध में (आयन्ति) आते हैं । (इन्द्र) महाप्रतापी राजा ने (तान्) उन चोरों को (परि) सब ओर से (अहा) नाश कर दिया है, (अग्ने) हे विद्वान् राजन् ! (त्वम्) तू (दाम्ना) पाश से (तान्) म्लेच्छों को (सम् द्य) बाँध ले ॥३॥

卐 सूक्तम् १०४ 卐

१—३ प्रशोचन । इन्द्राग्नी, २ इन्द्राग्नी, सोम इन्द्रश्च । अनुष्टुप् ।

आदानेन संदानेनामित्राना द्यामसि ।

अपाना ये चैषां प्राणा असुनासून्त्समच्छिदन् ॥१॥

पदार्थ—(आदानेन) आकर्षणपाश से और (सन्दानेन) बन्धन पाश से (अमित्रान्) अपने शत्रुओं को (आ द्यामसि) हम बाँधते हैं । (च) और (एषाम्) इनके (ये) जो (अपानाः) अपान वायु और (प्राणाः) प्राण वायु हैं, (असून्) उनके प्राणों को (असुना) अपनी बुद्धि से (सम् अच्छिदन्) उन [हमारे वीरों] ने छिन्न-भिन्न कर दिया है ॥१॥

इदमादानमकरं तपसेन्द्रेण संशितम् ।

अमित्रा येऽत्र नः सन्ति तानग्न आ द्या त्वम् ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्रेण) बड़े ऐश्वर्य वाले आचार्य द्वारा (संशितम्) तीक्ष्ण किया गया (इदम्) यह (आदानम्) आकर्षण यन्त्र (तपसा) तप से (अकरम्) मैं ने बनाया है । (अत्र) यहाँ पर (नः) हमारे (ये) जो (अमित्राः) शत्रु (सन्ति) हैं, (तान्) उनको (अग्ने) हे तेजस्वी राजन् ! (त्वम्) तू (आ द्य) बाँध ले ॥२॥

ऐनान् द्यतामिन्द्राग्नी सोमो राजा च मेदिनौ ।

इन्द्रो मरुत्वानादानममित्रेभ्यः कृणोतु नः ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि के समान गुणवान् (मेदिनौ) प्रीति करनेवाले (सोम) सेनाप्रेरक युद्धमन्त्री (च) और (राजा) ऐश्वर्यवान् न्यायाधीश दोनों (एनान्) इन शत्रुओं को (आद्यताम्) बाँध सकें । (मरुत्वान्) शूरों को साथ रखनेवाला (इन्द्र) महाप्रतापी राजा (नः) हमारे (अमित्रेभ्यः) शत्रुओं के लिये (आदानम्) आकर्षण यन्त्र (कृणोतु) बनावे ॥३॥

卐 सूक्तम् १०५ 卐

१—३ उन्मोचन । कासा । अनुष्टुप् ।

यथा मनो मनस्केतैः परापतत्याशुमत् ।

एवा त्वं कासे प्र पत मनसोऽनु प्रवाय्यम् ॥१॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (मनः) मन (मनस्केतैः) मन के विषयों के साथ (आशुमत्) शीघ्रता से (परापतति) आगे बढ़ता जाता है । (एव) वैसे ही [हे मनुष्य !] (त्वम्) तू (कासे) ज्ञान वा उपाय के बीच (मनसः) मन के (प्रवाय्यम् अनु) प्राप्तियोग्य देश की ओर (प्र पत) आगे बढ़ ॥१॥

यथा बाणः सुसंशितः परापतत्याशुमत् ।

एवा त्वं कासे प्र पत पृथिव्या अनु संवतम् ॥२॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (सुसंशितः) यथाविधि तीक्ष्ण किया हुआ (बाणः)

बाण वा शब्द (आशुमत्) वेग से (परापतति) आगे बढ़ा जाता है। (एव) वैसे ही [हे मनुष्य !] (त्वम्) तू (कासे) ज्ञान वा उपाय के बीच (पृथिव्या) पृथिवी के (संवतम् अनु) यथावत सेवनीय देश की ओर (प्रपत) आगे बढ ॥२॥

यथा सूर्यस्य रश्मयः परापतन्त्याशुमत् ।

एवा त्वं कासे प्र पत समुद्रस्यानु विक्षरम् ॥३॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मय) किरणें (आशुमत्) शीघ्र (परापतन्ति) आगे बढती जाती है। (एव) वैसे ही [हे मनुष्य !] (त्वम्) तू (कासे) ज्ञान वा उपाय के बीच (समुद्रस्य) अन्तरिक्ष के (विक्षरम् अनु) प्रवाहस्थान [मेघ मण्डल आदि] की ओर (प्रपत) आगे बढ ॥३॥

卐 सूक्तम् १०६ 卐

१—३ प्रमोचन । दूर्वाशाला । अनुष्टुप् ।

आयने ते परायणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः ।

उत्सो वा तत्र जायतां ह्रदो वा पुण्डरीकवान् ॥१॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे (आयने) आगमनमार्ग और (परायणे) निकास मे (पुष्पिणी) फूलवाली (दूर्वा) दूब घासें (रोहन्तु) उगें (वा) और (तत्र) वहा (उत्स) कुआं (वा) और (पुण्डरीकवान्) कमलो वाला (ह्रद) ताल (जायताम्) होवे ॥१॥

अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम् ।

मध्ये ह्रदस्य नो गृहाः पराचीना मुखा कृधि ॥२॥

पदार्थ—(अपाम्) प्रजाओ का (इदम्) यह (न्ययनम्) निवासस्थान (समुद्रस्य) जलसमूह का (निवेशनम्) प्रवेश हो। (न गृहा) हमारे घर (ह्रदस्य) ताल वा खाई के (मध्ये) बीच मे हो, [हे राजन् ! शत्रुओ के] (मुखा) मुखो को (पराचीना) उलटा (कृधि) करदे ॥२॥

हिमस्य त्वा जरायुणा शाले परि व्ययामसि ।

शीतह्रदा हि नो भुवोऽग्निष्कृणोतु भेषजम् ॥३॥

पदार्थ—(शाले) हे शाला ! (हिमस्य) शीत के (जरायुणा) जीर्ण करने वाले वस्त्र वा अग्नि के साथ (त्वा) तुझको (परि) अच्छे प्रकार (व्ययामसि) हम प्राप्त होते है। (हि) क्योंकि [जब] तू (न) हमारे लिये (शीतह्रदा) ताल के समान शीतल (भुव) होवे, (अग्नि) अग्नि [ताप] (भेषजम्) भय निवारक कर्म (कृणोतु) करे ॥३॥

卐 सूक्तम् १०७ 卐

१—४ शनाति । विश्वजित् । अनुष्टुप् ।

विश्वजित् त्रायमाणायै मा परि देहि । त्रायमाणे

द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम् ॥१॥

पदार्थ—(विश्वजित्) हे ससार के जीतने वाले परमेश्वर ! (त्रायमाणायै) त्रायमाणा, रक्षा करने वाली [शाला वा ओषधि विशेष] को (मा) मुझे (परि देहि) सौप। (त्रायमाणे) हे रक्षा करने वाली शाला ! (न.) हमारे (सर्वम्) सब (द्विपात्) दोपाये (च) और (चतुष्पात्) चौपाये (च) और (न) हमारे (यत् स्वम्) सब कुछ धन की (रक्ष) रक्षा कर ॥१॥

त्रायमाणे विश्वजिते मा परि देहि । विश्वजिद्

द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम् ॥२॥

पदार्थ—(त्रायमाणे) हे त्रायमाणा, रक्षा करने वाली ! (विश्वजिते) ससार के जीतने वाले परमेश्वर को (मा) मुझे (परिदेहि) सौप। (विश्वजित्) हे संसार के जीतने वाले परमेश्वर (न) हमारे (सर्वम्) सब (द्विपात्) दोपाये (च) और (चतुष्पात्) चौपाये (च) और (न) हमारे (यत् स्वम्) सब कुछ धन की (रक्ष) रक्षा कर ॥२॥

विश्वजित् कल्याण्यै मा परि देहि । कल्याणि

द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम् ॥३॥

पदार्थ—(विश्वजित्) हे ससार के जीतने वाले परमेश्वर ! (कल्याण्यै) कल्याणी, मङ्गल करने वाली [शाला अथवा ओषधि विशेष] को (मा) मुझे (परिदेहि) सौप। (कल्याणि) हे कल्याणि ! (न) हमारे (सर्वम्) सब (द्विपात्) दोपाये (च) और (चतुष्पात) चौपाये (च) और (नः) हमारे (यत् स्वम्) सब कुछ धन की (रक्ष) रक्षा कर ॥३॥

कल्याणि सर्वविदे मा परि देहि । सर्वविद् द्विपाच्च

सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम् ॥४॥

पदार्थ—(कल्याणि) हे कल्याणि, मगलकारिणी ! [शाला वा ओषधि-विशेष] (सर्वविदे) सर्वज्ञ परमेश्वर को (मा) मुझे (परिदेहि) सौंप। (सर्व विद्) हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! (न.) हमारे (सर्वम्) सब (द्विपात्) दोपाये (च) और (चतुष्पात्) चौपाये (च) और (नः) हमारे (यत् स्वम्) सब कुछ धन की (रक्ष) रक्षा कर ॥४॥

卐 सूक्तम् १०८ 卐

१—५ शौनक. । मेधा, ४ अग्नि । अनुष्टुप् ।

त्वं नो मेधे प्रथमा गोभिरश्वेभिरा गहि ।

त्वं सूर्यस्य रश्मिभिस्त्वं नो असि यज्ञिया ॥१॥

पदार्थ—(मेधे) हे धारणावती बुद्धि वा सपत्ति ! (प्रथमा) प्रख्यात (त्वम्) तू (गोभि.) गौओ और (अश्वेभि) घोडो के साथ (न) हमको (आ गहि) प्राप्त हो। (त्वम्) तू (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मिभिः) फैलने वाली किरणो के साथ वर्तमान, और (त्वम्) तू (न.) हमारी (यज्ञिया) पूजनीय (असि) है ॥१॥

मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम् ।

प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे ॥२॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (प्रथमाम्) पहिली [अति श्रेष्ठ] (ब्रह्मण्वतीम्) ब्रह्म अर्थात् ईश्वर, वा वेद वा अन्न वा धन की धारणा करनेवाली, (ब्रह्मजूताम्) ब्राह्मणो, ब्रह्मज्ञानियो से प्राप्त वा प्रीति की गयी, (ऋषिष्टुताम्) ऋषियो, वेदार्थ जानने वाले मुनियो से स्तुति की गई, (ब्रह्मचारिभि.) ब्रह्मचारियो अर्थात् वेदपाठ और वीर्यनिग्राहक पुरुषो से (प्रपीताम्) अच्छे प्रकार पान की गयी (मेधाम्) सत्य धारणा करने वाली बुद्धि वा सपत्ति को (देवानाम्) दिव्य गुणो की (अवसे) रक्षा के लिये (हुवे) आवाहन करता हूँ ॥२॥

यां मेधामृभवो विदुर्यां मेधामसुरा विदुः ।

ऋषयो भद्रां मेधां यां विदुस्तां मय्या वेशयामसि ॥३॥

पदार्थ—(याम्) जिस (मेधाम्) शुभ गुण धारण करनेवाली बुद्धि वा सम्पत्ति को (ऋभव.) सत्य के साथ चमकने वाले महात्मा (विदु·) जानते है, (याम्) जिस (मेधाम्) धारणावती बुद्धि वा सम्पत्ति को (असुरा.) बडे बुद्धिमान् पुरुष (विदु) जानते हैं। (याम्) जिस (भद्राम्) कल्याण करनेवाली (मेधाम्) निश्चल बुद्धि वा सम्पत्ति को (ऋषयः) ऋषि लोग (विदुः) जानते हैं (ताम्) उसी को (मयि) अपने मे (आ) सब ओर से (वेशयामसि) हम स्थापित करते हैं ॥३॥

यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः ।

तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कृणु ॥४॥

पदार्थ—(याम्) जिस (मेधाम्) धारणावती बुद्धि वा सम्पत्ति को (भूतकृत) उचित कर्म करने वाले, (मेधाविन·) उत्तमबुद्धि वा सम्पत्ति वाले (ऋषय) ऋषि लोग (विदु) जानते हैं। (अग्ने) हे विद्याप्रकाशक परमेश्वर वा आचार्य ! (तया मेधया) उसी धारणावती बुद्धि वा सम्पत्ति से (माम्) मुझको (अद्य) आज (मेधाविनम्) उत्तम बुद्धि वा सम्पत्ति वाला (कृणु) कर ॥४॥

मेधां सायं मेधां प्रातर्मेधां मध्यन्दिनं परि ।

मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वेशयामहे ॥५॥

पदार्थ—(मेधाम्) शुभ गुण वाली बुद्धि वा सम्पत्ति को (सायम्) सायकाल, (मेधाम्) शास्त्रादि विषयवाली बुद्धि वा सपत्ति को (प्रात) प्रातःकाल (मेधाम्) धर्म का स्मरण रखने वाली बुद्धि वा सम्पत्ति को (मध्यन्दिनम् परि) मध्याह्न समय में, (मेधाम्) सत्य व्यवहार वाली बुद्धि वा सम्पत्ति को (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मिभि·) फैलने वाली किरणो के साथ (वचसा) परस्पर बातचीत से (आ) भले प्रकार (वेशयामहे) हम स्थापित करते हैं ॥५॥

卐 सूक्तम् १०९ 卐

१—३ अथर्वा । अग्नि । त्रिष्टुप्, १ पंक्ति. ।

पिप्पली क्षिप्तभेषज्युतातिविद्धभेषजी ।

तां देवाः समकल्पयन्नियं जीवितवा अलम् ॥१॥

पदार्थ—(पिप्पली) पालन करने वाली, पिप्पली [ओषधि विशेष] (क्षिप्तभेषजी) विक्षिप्त, उन्मत्त की ओषधि, (उत) और (अतिविद्धभेषजी)

बड़े घाव वाले की ओषधि है। (देवाः) विद्वानों ने (ताम्) उसको (सम् अकल्पयन्) अच्छे प्रकार माना है कि (इयम्) यह (जीवितवे) जिलाने के लिये (अलम्) समर्थ है ॥१॥

पिप्पल्यः समवदन्तायतीर्जननादधि ।

यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥२॥

पदार्थ—(पिप्पल्यः) पीपली ओषधियों ने (जननात् अधि) जन्म से ही (आयतीः) आती हुई (सम्) आपस में (अवदन्त) बातचीत की (यम्) जिस (जीवम्) जीव को (अश्नवामहै) हम प्राप्त होवें, (सः पुरुषः) वह पुरुष (न) नहीं (रिष्याति) नष्ट होवे ॥२॥

असुरास्त्वा न्यखनन् देवास्त्वोदवपन् पुनः ।

वातीकृतस्य भेषजीमथो क्षिप्तस्य भेषजीम् ॥३॥

पदार्थ—[हे पिप्पली] (असुराः) बुद्धिमान् पुरुषों ने (वातीकृतस्य) गठिया के रोगी की (भेषजीम्) ओषधि (अथो) और (क्षिप्तस्य) उन्मत्त की (भेषजीम्) ओषधि (त्वा) तुझको (नि) निरन्तर (अखनन्) खोदा है और (देवाः) व्यवहारकुशल पुरुषों ने (त्वा) तुझको (पुनः) फिर (उत्) उत्तम रीति से (अवपन्) बोया है ॥३॥

卐 सूक्तम् ११० 卐

१—३ अथर्वा । अग्निः । त्रिष्टुप्, १ पङ्क्तिः ।

प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि ।
स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रायस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् आचार्य ! (प्रत्नः) प्राचीन, [अनुभवी] (च) और (नव्यः) नूतन [उद्योगी] (ईड्यः) स्तुतियोग्य (च) और (होता) दाता होकर (सनात्) सदा से (अध्वरेषु) सन्मार्ग देने वाले वा हिंसा रहित व्यवहारों में (हि) अवश्य (कम्) सुख से (सत्सि) तू बैठता है। (च) निश्चय करके (स्वाम्) अपने (तन्वम्) शरीर को (पिप्रायस्व) प्रीतियुक्त कर (च) और (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (सौभगम्) अनेक सुन्दर ऐश्वर्य (आ) आकर (यजस्व) दान कर ॥१॥

ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात् परि पाह्येनम् ।
अत्येनं नेषद् दुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥२॥

पदार्थ—(ज्येष्ठघ्न्याम्) ज्येष्ठ अर्थात् अतिवृद्ध वा उत्तम ब्रह्म को प्राप्त करने वाली क्रिया में (जातः) प्रसिद्ध तू (विचृतोः) अन्धकार से छुड़ाने वाले सूर्य और चन्द्रमा के (यमस्य) नियम के (मूलबर्हणात्) मूल छेदन से (एनम्) इस जीव को (परि पाहि) सब प्रकार बचा। (विश्वा) सब (दुरितानि) विघ्नों को (अति = अतीत्य) उलाँघ कर (शतशारदाय) सौ वर्ष वाले (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन के लिये (एनम्) इस [प्राणी] को (नेषत्) आप ले चलें ॥२॥

व्याघ्रेऽह्न्यजनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः ।

स मा वधीत् पितरं वर्धमानो मा मातरं प्र मिनीज्जनित्रीम् ॥३॥

पदार्थ—(वीरः) यह वीर पुरुष (नक्षत्रजाः) नक्षत्र के समान गति, उपाय उत्पन्न करने वाला (सुवीरः) महावीर (जायमानः) होता हुआ (व्याघ्रे) व्याघ्र के समान बलवान् (अह्नि) दिन में [माता-पिता के बल के समय] (अजनिष्ट) उत्पन्न हुआ है। (सः) वह (वर्धमानः) बढ़ता हुआ (पितरम्) पिता को (मा वधीत्) न मारे और (जनित्रीम्) जन्म देनेवाली (मातरम्) माता को (मा प्र मिनीत्) कभी न सतावे ॥३॥

卐 सूक्तम् १११ 卐

१—४ अथर्वा । अग्निः । अनुष्टुप्, १ परानुष्टुप् त्रिष्टुप् ।

इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्ध्ययं यो बद्धः सुयतो लालपीति ।

अतोऽधि ते कृणवद् भागधेयं यदानुन्मदितोऽसति ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् पुरुष (मे) मेरे लिये (इमम् पुरुषम्) इस पुरुष को [आत्मा को] (मुमुग्धि) मुक्त कर, (अयम् यः) यह जो [जीव] (बद्धः) बंधा हुआ और (सुयतः) बहुत जकड़ा हुआ (लालपीति) अत्यन्त बर्राता है। (अतः) फिर यह (ते) तेरे (भागधेयम्) सेवनीय भाग को (अधि) अधिकारपूर्वक (कृणवत्) करे, (यदा) जब वह (अनुन्मदितः) उन्मादरहित (असति) हो जावे ॥१॥

अग्निष्टे नि शमयतु यदि ते मन उद्युतम् ।

कृणोमि विद्वान् भेषजं यथानुन्मदितोऽससि ॥२॥

पदार्थ—(अग्निः) विद्वान् पुरुष (ते) तेरे [मन को] (नि शमयतु) शान्त करता रहे, (यदि) जब (ते मनः) तेरा मन (उद्युतम्) व्याकुल होवे। (विद्वान्) विद्वान् मैं (भेषजम्) औषध (कृणोमि) करता हूँ, (यथा) जिससे तू (अनुन्मदितः) उन्मादरहित (अससि) होवे ॥२॥

देवैनसादुन्मदितमुन्मत्तं रक्षसस्परि ।

कृणोमि विद्वान् भेषजं यदानुन्मदितोऽसति ॥३॥

पदार्थ—(देवैनसात्) विद्वानों के लिये [किये] पाप से (उन्मदितम्) उन्मत्त, अथवा (रक्षसः) राक्षस [दुःखदायी जीव वा रोग] से (उन्मत्तम् परि) उन्मत्त पुरुष के लिए (विद्वान्) विद्वान् मैं (भेषजम्) औषध (कृणोमि) करता हूँ (यदा) जिस से वह (अनुन्मदितः) उन्माद रहित (असति) हो जावे ॥३॥

पुनस्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्भगः ।

पुनस्त्वा दुर्विश्वे देवा यथानुन्मदितोऽससि ॥४॥

पदार्थ—[हे रोगी !] (अप्सरसः) आकाश, जल वा प्रजाओं में रहने वाली बिजुलियां (त्वा) तुझको [विद्वानों में] (पुनः) फिर (दुः) देवें, (इन्द्रः) सूर्य (पुनः) फिर, (भगः) चन्द्रमा (पुनः) फिर [देवे।] (विश्वे) सब (देवाः) उत्तम पदार्थ (त्वा) तुझे (पुनः) फिर (दुः) देवें, (यथा) जिससे तू (अनुन्मदितः) उन्मादरहित (अससि) होवे ॥४॥

卐 सूक्तम् ११२ ॥ 卐

१—३ अथर्वा । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां मूलबर्हणात् परि पाह्येनम् ।

स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् तुभ्यं देवा अनु जानन्तु विश्वे ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् पुरुष ! (अयम्) यह [रोग] (एषाम्) इन [पुरुषों] के बीच (ज्येष्ठम्) विद्या और वय में बहुत बड़े पुरुष को (मा वधीत्) न मारे, (एनम्) इस [पुरुष] को (मूलबर्हणात्) मूल छेदन से (परि पाहि) सर्वथा बचा। (सः) सो तू (प्रजानन्) ज्ञानी होकर (ग्राह्याः) जकड़ने वाले गठिया आदि रोग के (पाशान्) फन्दों को (विचृत) खोल दे, (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (तुभ्यम्) तुझ को (अनु जानन्तु) अनुमति देवें ॥१॥

उन्मुञ्च पाशांस्त्वमग्न एषां त्रयस्त्रिभिरुत्सिता येभिरासन् । स

ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् पितापुत्रौ मातरं मुञ्च सर्वान् ॥२॥

पदार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् ! (त्वम्) तू (एषाम्) इन [पिता पुत्र और माता] के (पाशान्) फन्दों को (उन्मुञ्च) खोल दे, (त्रयः) जो तीनों (एभिः) जिन (त्रिभिः) तीनों [ऊंचे, नीचे, मध्यम पाशों] से (उत्सिताः) जकड़े हुए (आसन्) हैं। (सः) सो तू (प्रजानन्) ज्ञानी होकर (ग्राह्याः) जकड़ने वाले गठिया आदि रोग के (पाशान्) फन्दों को (वि चृत) खोल दे, (पितापुत्रौ) पिता पुत्र, (मातरम्) माता, (सर्वान्) सब को (मुञ्च) [दुःख से] मुक्त कर ॥२॥

येभिः पाशैः परिवित्तो विबद्धोऽङ्गेअङ्ग आर्पित उत्सितश्च ।

वि ते मुच्यन्तां विमुचो हि सन्ति भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व ॥३॥

पदार्थ—(परिवित्तः) विवाहित छोटे भाई का बिना विवाहित बड़ा भाई जिन (पाशैः) फन्दों से (अङ्गे—अङ्गे) अङ्ग अङ्ग में (विबद्धः) बंधा हुआ, (आर्पितः) दुखाया गया (च) और (उत्सितः) जकड़ा गया है। (ते) वे [फन्दे] (विमुच्यन्ताम्) खुल जावें, (हि) क्योंकि वे (विमुचः) खुलने योग्य (सन्ति) हैं, (पूषन्) हे पोषण करने वाले विद्वान् ! (भ्रूणघ्नि) स्त्री के गर्भघाती रोग में [वर्तमान] (दुरितानि) कष्टों को (मृक्ष्व) दूर कर ॥३॥

卐 सूक्तम् ११३ 卐

१—३ अथर्वा । पूषा । त्रिष्टुप्, ३ पङ्क्तिः ।

त्रिते देवा अमृजतैतदेनस्त्रित एनन्मनुष्येषु ममृजे ।

ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥१॥

पदार्थ—(त्रिते) तीनों कालों वा लोकों में फैले हुए त्रित परमात्मा के बीच [वर्तमान] (देवाः) विद्वानों ने (एतत्) इस (एनः) पाप को (अमृजत) शुद्ध किया है, (त्रितः) त्रिलोकीनाथ त्रित परमेश्वर ने (एनत्) इस [पाप] को (मनुष्येषु) मनुष्यों में [ज्ञान द्वारा] (ममृजे) शोधा है। [हे मनुष्य !] (ततः) इस पर भी (यदि) जो (त्वा) तुझको (ग्राहिः) जकड़ने वाली पीड़ा [गठिया आदि] ने (आनशे) घेर लिया है, (देवाः) विद्वान् लोग (ते) तेरा (ताम्) उस [पीड़ा] को (ब्रह्मणा) वेद द्वारा (नाशयन्तु) नाश करें ॥१॥

मरीचीर्धूमान् प्र विशानु पाप्मन्नुदारान् गच्छोत वा नीहारान् ।
नदीनां फेनाँ अनु तान् वि नश्य भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व ॥२॥

पदार्थ—(पाप्मन्) हे पाप ! तू (मरीची) किरणों और (धूमान्) धूमों का (अनु) अनुसरण करके (प्र विश) प्रवेश कर, (उत) और (उदारान्) बड़े दाता वा ऊपर चढ़ने वाले मेघों (वा) और (नीहारान्) कोहरों को (गच्छ) प्राप्त हो। ((नदीनाम्) नदियों के (तान्) उन (फेनान्) फेनों के (अनु) पीछे-पीछे (वि नश्य) विनष्ट हो जा। (पूषन्) हे पोषण करने वाले विद्वान् ! (भ्रूणघ्नि) स्त्री के गर्भघाती रोग में [वर्तमान] (दुरितानि) कष्टों को (मृक्ष्व) दूर कर ॥२॥

द्वादशधा निहितं त्रितस्यापमृष्टं मनुष्यैनसानि ।
ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥३॥

पदार्थ—(द्वादशधा) बारह [मन और बुद्धि सहित पांच ज्ञानेन्द्रियों और पांच कर्मेन्द्रियों] में (निहितम् - ० - तानि) ठहरे हुए (मनुष्यैनसानि) मनुष्यों के पाप (त्रितस्य—त्रितेन) त्रित परमेश्वर द्वारा [वेद द्वारा] (अपमृष्टम् - ०—ष्टानि) शुद्ध किये गये हैं। (ततः) इस पर भी (यदि) जो (त्वा) तुझ को (ग्राहिः) जकड़ने वाली पीड़ा [गठिया आदि] ने (आनशे) घेर लिया है, (देवा) विद्वान् लोग (ते) तेरा (ताम्) उस [पीड़ा] को (ब्रह्मणा) वेद द्वारा (नाशयन्तु) नाश करें ॥३॥

卐 इत्येकादशोऽनुवाकः 卐

卐

अथ द्वादशोऽनुवाकः

卐 सूक्तम् ११४ 卐

१—३ ब्रह्मा । विश्वेदेवा । अनुष्टुप् ।

यद् देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम् ।
आदित्यास्तस्मान्नो यूयमृतस्यर्तेन मुञ्चत ॥१॥

पदार्थ—(देवा) हे विद्वानो ! (देवासः) खेल करते हुए (वयम्) हम लोगों ने (यत्) जो (देवहेडनम्) विद्वानों का अनादर (चकृम) किया है (आदित्याः) हे सूर्य समान तेजस्वी ! (यूयम्) तुम लोग (तस्मात्) उस [पाप] से (नः) हमको (ऋतस्य) धर्म के (ऋतेन) सत्य व्यवहार द्वारा (मुञ्चत) छुड़ाओ ॥१॥

ऋतस्यर्तेनादित्या यजत्रा मुञ्चतेह नः ।
यज्ञं यद् यज्ञवाहसः शिक्षन्तो नोपशेकिम ॥२॥

पदार्थ—(आदित्याः) हे विद्या से प्रकाशमान (यजत्राः) पूजनीय सगति-योग्य पुरुषो ! (ऋतस्य) धर्म के (ऋतेन) सत्य व्यवहार से (इह) इस [पाप-कर्म] से (नः) हमें (मुञ्चत) मुक्त करो ! (यत्) क्योंकि (यज्ञवाहसः) हे यज्ञ अर्थात् परमेश्वर की उपासना वा शिल्प विद्या प्राप्त कराने वाले महाशयो ! (यज्ञम्) देवताओं की पूजा (शिक्षन्तः) करने की इच्छा करते हुए हम लोग (न उपशेकिम) उसे न कर सके ॥२॥

मेदस्वता यजमानाः स्रुचाज्यानि जुह्वतः ।
अकामा विश्वे वो देवाः शिक्षन्तो नोपशेकिम ॥३॥

पदार्थ—(यजमानाः) यजमान, ईश्वर उपासक वा पदार्थों के संयोग-वियोग करने वाले विज्ञानी लोग (मेदस्वता) चिकने घृत आदि पदार्थ वाले (स्रुचा) स्रुचा [चमसे] से (आज्यानि) यज्ञ के साधन घृत, तेल आदि द्रव्यों को (जुह्वतः) होमते हुए [रहते हैं] ! (विश्वे देवाः) हे सब विद्वानो ! (वः) तुम्हारी (अकामाः) कामना न करने वाले (शिक्षन्तः) [यज्ञ] करने की इच्छा करते हुए हम लोग (न उपशेकिम) उसे न कर सके ॥३॥

卐 सूक्तम् ११५ 卐

१—३ ब्रह्मा । विश्वेदेवा । अनुष्टुप् ।

यद् विद्वांसो यदविद्वांस एनांसि चकृमा वयम् ।
यूयं नस्तस्मान्मुञ्चत विश्वे देवाः सजोषसः ॥१॥

पदार्थ—(यत्) यदि (विद्वांसः) जानते हुए, (यत्) यदि (अविद्वांसः) न जानते हुए (वयम्) हम ने (एनांसि) पाप कर्म (चकृम) किये हैं। (विश्वे देवा) हे सब विद्वानो ! (सजोषसः) समान प्रीति युक्त (यूयम्) तुम (नः) हमें (तस्मात्) उस [अपराध] से (मुञ्चत) मुक्त करो ॥१॥

यदि जाग्रद् यदि स्वपन्नेन एनस्योऽकरम् ।
भूतं मा तस्माद् भव्यं च द्रुपदादिव मुञ्चताम् ॥२॥

पदार्थ—(यदि) जो (जाग्रत्) जागते हुए, (यदि) जो (स्वपन्) सोते हुए (एनस्यः) पापी मैंने (एनः) पाप (अकरम्) किया है (भूतम्) वर्तमान प्राणीसमूह (च) और (भव्यम्) भविष्यत् प्राणीसमूह (द्रुपदात् इव) काठ के बन्धन के सदृश वर्तमान (तस्मात्) उस [पाप] से (मा) मुझ को (मुञ्चताम्) छुड़ावें ॥२॥

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नात्वा मलादिव ।
पूतं पवित्रेणेवाज्यं विश्वे शुम्भन्तु मैनसः ॥३॥

पदार्थ—(द्रुपदात्) काष्ठ बन्धन से (मुमुचानः इव) छूटे हुए पुरुष के समान, (स्विन्नः) पसीने में डूबे हुए (स्नात्वा) स्नान करके (मलात्) मल से [छूटे हुए के] (इव) समान (पवित्रेण) शुद्ध करने वाले छन्ना वा अग्नि से (पूतम्) शुद्ध किये हुए (आज्यम् इव) घृत के समान, (विश्वे) सब [दिव्यगुण] (मा) मुझको (एनसः) पाप से (शुम्भन्तु) शुद्ध करें ॥३॥

卐 सूक्तम् ११६ 卐

१—३ जाटिकायन । विवस्वान् । जगती, २ त्रिष्टुप् ।

यद् यामं चक्रुर्निखनन्तो अग्रे कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया ।
वैवस्वते राजनि तज्जुहोम्यथ यज्ञियं मधुमदस्तु नोऽन्नम् ॥१॥

पदार्थ—(अग्रे) पहिले (निखनन्तः) [भूमि को] खोदते हुए (कार्षीवणाः) खेती के सेवन करने वाले किसानों ने (विद्यया) विद्या के साथ (अन्नविदः न) अन्न प्राप्त करने वाले पुरुषों के समान, (यत् यामम्) जिस नियम समूह को (चक्रुः) किया है। (तत्) उसी [नियम समूह] को (वैवस्वते) मनुष्यों के स्वामी (राजनि) राजा परमेश्वर में (जुहोमि) मैं समर्पण करता हूँ, [जिससे] (अथ) फिर (नः) हमारा (अन्नम्) प्राण साधन अन्न (यज्ञियम्) यज्ञ के योग्य और (मधुमत्) ज्ञानयुक्त (अस्तु) होवे ॥१॥

वैवस्वतः कृणवद् भागधेयं मधुभागो मधुना सं सृजाति ।
मातुर्यदेन इषितं न आगन् यद् वा पितापराद्धो जिहीडे ॥२॥

पदार्थ—(मधुभागः) ज्ञान का भाग करने वाला, (वैवस्वतः) मनुष्यों का स्वामी परमेश्वर (भागधेयम्) भाग (कृणवत्) करे और (मधुना) [उस पाप के] ज्ञान के साथ [हमें] (सम् सृजाति) संयुक्त करे। (मातुः) माता को प्राप्त करके (इषितम्) उतावली से किया हुआ (नः) हमारा (यत्) जो (एनः) पाप (आगन्) हो गया है, (वा) अथवा (यत्) जिस पाप के कारण (पिता) पिता, (अपराद्धः) जिसका हमने अपराध किया है, (जिहीडे) क्रोधित हुआ है ॥२॥

यदीदं मातुर्यदि वा पितुर्नः परि भ्रातुः पुत्राच्चेतस एन आगन् ।
यावन्तो अस्मान् पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मन्युः ॥३॥

पदार्थ—(यदि) जो (मातुः) माता के प्रति, (यदि वा) अथवा, (पितुः) पिता के प्रति, (भ्रातुः) भ्राता के प्रति, अथवा (पुत्रात्) पुत्र के प्रति (नः) हमारे (चेतसः) चित्त से (इदम्) यह (एनः) पाप (परि) सब ओर से (आगन्) हो गया है। (यावन्तः) जितने (पितरः) पिता के समान माननीय (अस्मान्) हमको (सचन्ते) सदा मिलते हैं [उनके विषय में भी जो पाप हुआ है] (तेषाम् सर्वेषाम्) उन सब का (मन्युः) क्रोध (शिवः) शान्त (अस्तु) होवे ॥३॥

卐 सूक्तम् ११७ 卐

१—३ कौशिक । अग्नि । त्रिष्टुप् ।

अपमित्यमप्रतीत्तं यदस्मि यमस्य येन बलिना चरामि ।
इदं तदग्ने अनृणो भवामि त्वं पाशान् विचृतं वेत्थ सर्वान् ॥१॥

पदार्थ—(यमस्य) नियम करने वाले [ऋणदाता] के (अप्रतीत्तम्) बिना चुकाये (यत्) जिस (अपमित्यम्) अपमान के हेतु ऋण को (अस्मि = असानि) मैं ग्रहण करता हूँ, और (येन बलिना) जिस बलवान् के साथ [ऋण लेकर] (चरामि) मैं चेष्टा करता हूँ। (इदम्) अब (तत्) उससे, (अग्ने) हे विद्वान् ! मैं (अनृणः) ऋण रहित (भवामि) हो जाऊं, (त्वम्) तू (सर्वान्) सब (पाशान्) बन्धनों को (विचृतम्) खोलना (वेत्थ) जानता है ॥१॥

इहैव सन्तः प्रति दद्म एनज्जीवा जीवेभ्यो नि हराम एनत् ।
अपमित्य धान्यं यज्जघसाहमिदं तदग्ने अनृणो भवामि ॥२॥

पदार्थ—(इह) यहां [इस शरीर मे] (एव) ही (सन्त.) रहते हुए हम (एतत्) इस [ऋण] को (प्रति दद्म) चुका देवें, (जीवा) जीते हुए हम (जीवेभ्यः) जीते हुए पुरुषों को (एतत्) यह [उधार] (नि) नियम से (हराम:) दे देवें। (यत्) जो (धान्यम्) धान्य (अपमित्य) उधार लेकर (अहम्) मैंने (जघास) खाया है, (अग्ने) हे विद्वान् ! (इदम्) अभी (तत्) उससे मैं (अनृणः) ऋण रहित (भवामि) हो जाऊ ॥२॥

अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन् तृतीये लोके अनृणाः स्याम । ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम ॥३॥

पदार्थ—हम (अस्मिन् लोके) इस लोक [बालकपन] मे (अनृणाः) ऋण रहित, (परस्मिन्) दूसरे [युवापन] में (अनृणा) ऋण रहित और (तृतीये) तीसरे [बुढापे] मे (अनृणा) ऋण रहित(स्याम) होवें। (देवयाना) विजय चाहने वाले और व्यापारियों के यान अर्थात् विमान रथ आदि के चलने योग्य (च) और (पितृयाणा) पालन करने वाले विज्ञानियों के गमन योग्य (ये) जो (लोका) लोक [स्थान] और (पथ =पन्थान·) मार्ग हैं, (सर्वान्) उन सब मे (अनृणा) हम ऋणरहित होकर (आ) सब ओर से (क्षियेम) चलते रहे ॥५॥

卐 सूक्तम् ११८ 卐

१—३ कौशिक । अग्नि । त्रिष्टुप् ।

यद्धस्ताभ्यां चकृम किल्बिषाण्यक्षाणां गत्नुमुपलिप्समानाः । उग्रंपश्ये उग्रजितौ तदद्याप्सरसावनु दत्तामृणं नः ॥१॥

पदार्थ—(यत्) यदि (अक्षाणाम्) इन्द्रियों के (गत्नुम्) पाने योग्य विषय के (उपलिप्समाना) लाभ की इच्छा करते हुए हमने (हस्ताभ्याम्) दोनो हाथो से (किल्बिषाणि) अनेक पाप (चकृम) किये हैं। (उग्रपश्ये) तीव्र दृष्टि वाली, (उग्रजितौ) उग्र होकर जीतने वाली, (अप्सरसौ) अन्तरिक्ष मे विचरने वाली अप्सरायें सूर्य भूमि दोनो (अद्य) आज (न.) हमारे (तत्) उस (ऋणम्) ऋण को (अनु) अनुग्रह करके (दत्ताम्) द देवें ॥१॥

उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत् किल्बिषाणि यदक्षवृत्तमनु दत्तं न एतत् । ऋणान्नो नर्णमेर्त्समानो यमस्य लोके अधिरज्जुरायत् ॥२॥

पदार्थ—(उग्रपश्ये) हे तीव्र दृष्टि वाली ! (राष्ट्रभृत्) हे राज्य को पालने वाली ! [सूर्य और पृथिवी] (किल्बिषाणि) हमारे अनेक पाप हैं। (यत्) जो (अक्षवृत्तम्) इन्द्रियों का सदाचार है, (एतत्) वह (न) हमे (अनु) अनुग्रह करके (दत्तम्) तुम दोनो दान करो। (ऋणात् ऋणम्) ऋण के पीछे ऋण को (एर्त्समान.) लगातार बढाने की इच्छा करता हुआ, (अधिरज्जु.) रसरी लिये हुए [उधार देने वाला] (यमस्य) न्यायाधीश के (लोके) समाज मे (न) हमको (आ) आकर (न) न (अयत्) प्राप्त हो ॥२॥

यस्मा ऋणं यस्य जायामुपैमि यं याचमानो अभ्यैमि देवाः । ते वाचं वादिषुर्मोत्तरां मद्देवपत्नी अप्सरसावधीतम् ॥३॥

पदार्थ—(देवा.) हे विद्वानो ! (यस्मै ऋणम्) जिस का मुझ पर उधार है, (यस्य) जिसकी (जायाम्) स्त्री के पास (उपैमि) मै जाऊ, अथवा (याचमान.) अनुचित मांगता हुआ मैं (यम्) जिसके पास (अभ्यैमि) पहुँचू। (ते) वे लोग (मत्) मुझसे (उत्तराम्) (वाचम्) बढ़ कर बात (मा वादिषु) न बोलें, (देवपत्नी) हे दिव्य पदार्थों की रक्षा करने वाली (अप्सरसौ) आकाश मे चलने वाली, सूर्य और पृथिवी ! (अधीतम्) [यह बात] स्मरण रक्खो ॥३॥

卐 सूक्तम् ११९ 卐

१—३ कौशिक । वैश्वानरोऽग्नि. । त्रिष्टुप् ।

यददीव्यन्नृणमहं कृणोम्यदास्यन्नग्न उत संगृणामि । वैश्वानरो नो अधिपा वसिष्ठ उदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! (अदीव्यन्) व्यवहार न करता हुआ (अहम्) मैं (यत्) जो (ऋणम्) ऋण (कृणोमि) करू। (उत) अथवा (अदास्यन्) चुकाना न चाहता हुआ (संगृणामि) प्रण करू (वैश्वानरः) सब नरों का स्वामी, (अधिपाः) अधिक पालन करने वाला, (वसिष्ठः) अति उत्तम परमेश्वर (इत्) ही (नः) हमें (सुकृतस्य) पुण्य कर्म के (लोकम्) लोक [समाज] में (उन्नयाति) ऊंचा चढ़ावे ॥१॥

वैश्वानराय प्रति वेदयामि यद्यृणं संगरो देवतासु । स एतान् पाशान् विचृतं वेद सर्वानथ पक्वेन सह सं भवेम ॥२॥

पदार्थ—(वैश्वानराय) सब नरों के हितकारी परमेश्वर से (प्रति) प्रत्यक्ष (वेदयामि) निवेदन करता हूं कि (देवतासु) विद्वानों के विषय [मेरी ओर से] (यत्) जो (ऋणम्) ऋण और (संगरः) प्रण है। (सः) वह परमेश्वर (एतान्) इन (सर्वान्) सब (पाशान्) फन्दो को (विचृतम्) खोल देना (वेद) जानता है, (अथ) सो (पक्वेन सह) उस पक्के [दृढ] स्वभाववाले परमेश्वर के साथ (सम् भवेम) हम बने रहे ॥२॥

वैश्वानरः पविता मा पुनातु यत् संगरमभिधावाम्याशाम् । अनाजानन् मनसा याचमानो यत् तत्रैनो अप तत् सुवामि ॥३॥

पदार्थ—(पविता) सब शुद्ध करने वाला (वैश्वानर.) सब नरो का हितकारी (मा) मुझे (पुनातु) शुद्ध करे, (यत्) यदि (मनसा) मन से (अनाजानन्) अजान होकर (याचमान) [अनुचित] मांगता हुआ मै (संगरम्) अपनी प्रतिज्ञा और (आशाम्) उनकी आशा पर (अभिधावामि) पानी फेर दूं। (तत्र) उस [कर्म] मे (यत्) जो (एन.) पाप है, (तत्) उसको (अप सुवामि) मैं हटाऊ ॥३॥

卐 सूक्तम् १२० 卐

१—३ कौशिक । अन्तरिक्ष, पृथिवी, द्यौ., अग्नि । १ जगती, २ पंक्ति, ३ त्रिष्टुप ।

यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वा जिहिंसिम । अयं तस्माद् गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥१॥

पदार्थ—(यत्) यदि (अन्तरिक्षम्) आकाश [वहां के प्राणियों को] (पृथिवी) भूमि [वहां के जीवो] को (उत) और (द्याम्) प्रकाशमान लोक [प्रकाश के जीवो] को, (यत्) यदि (मातरम्) माता (वा) अथवा (पितरम्) पिता को (जिहिंसिम) हमने सताया है। (अयम्) यह (गार्हपत्य) घर के स्वामियो का संयोगी (अग्नि) अग्नि, सर्वज्ञ परमेश्वर (तस्मात्) उस [पाप] से पृथक् करके (न) हमे (सुकृतस्य) धर्म के (लोकम्) समाज मे (इत्) अवश्य (उन्नयाति) ऊचा चढ़ावे ॥१॥

भूमिर्मातादितिर्नो जनित्रं भ्रातान्तरिक्षमभिशस्त्या नः । द्यौर्नः पिता पित्र्याच्छं भवाति जामिमृत्वा माव पत्सि लोकात् ॥२॥

पदार्थ—(अदिति) अविनाशिनी प्रकृति (न.) हमारी (जनित्रम्) उत्पत्ति का निमित्त है, (भूमिः) सब के आधार पृथिवी के समान (माता) माता, (अन्तरिक्षम्) मध्यवर्ती आकाश के समान (नः) हमारा (भ्राता) भ्राता, (द्यौ) प्रकाशमान सूर्य के समान (न) हमारा (पिता) पिता (अभिशस्त्या = ० - शस्त्या) अपवाद से [अलग करके] (शम्) शान्तिकारक (भवाति) होवे, (जामिम्) बन्धुवर्ग को (ऋत्वा) पाकर (पित्र्यात्) पितरो, विज्ञानियों के प्रिय (लोकात्) समाज से (मा अव पत्सि) मैं कभी न गिरू ॥२॥

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः । अश्लोणा अङ्गैरह्रुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान् ॥३॥

पदार्थ—(यत्र) जहां पर (सुहार्द) सुन्दर हृदय वाले (सुकृत) पुण्यात्मा लोग (स्वाया) अपने (तन्व) शरीर का (रोगम्) रोग (विहाय) छोड़कर (मदन्ति) आनन्द भोगते हैं। (तत्र) वहां पर (स्वर्गे) स्वर्ग [सुख विशेष] मे (अश्लोणा) बिना लगडे हुए और (अङ्गै.) अगो से (अह्रुता.) बिना टेढ़े हुए हम (पितरौ) माता-पिता (च) और (पुत्रान्) पुत्रों को (पश्येम) देखते रहे ॥३॥

卐 सूक्तम् १२१ 卐

१—३ कौशिक । अग्नि, ४ तारके । १—२ त्रिष्टुप्, ३—४ अनुष्टुप् ।

विषाणा पाशान् वि ष्याध्यस्मद् य उत्तमा अधमा वारुणा ये । दुःष्वप्न्यं दुरितं निः ष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥१॥

पदार्थ—[हे शूर !] (विषाणा: =०—णेन) विविध भक्ति के साथ (पाशान्) फंदो को (अस्मत्) हमसे (अधि) अधिकारपूर्वक (वि ष्य) खोल दे, (ये) जो (उत्तमा) ऊचे और (ये) जो (अधमा) नीचे फदे (वारुणा.) जो दोष निवारक वरुण परमात्मा से आये हैं। (दु.ष्वप्न्यम्) नीद मे उठे कुविचार और (दुरितम्) विघ्न को (अस्मत्) हम से (नि) निकाल दे, (अथ) फिर (सुकृतस्य) धर्म के (लोकम्) समाज मे (गच्छेम) जावें ॥१॥

यद् दारुणि बध्यसे यच्च रज्ज्वां यद् भूम्यां बध्यसे यच्च वाचा । अयं तस्माद् गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥२॥

पदार्थ—[हे जीव !] (यत्) यदि तू (दारुणि) काष्ठ में, (च) और (यत्) यदि तू (भूम्याम्) भूमि मे (च) और (यत्) यदि (वाचा) वचन के साथ (बध्यसे) बधा है। (अयम्) यह (गार्हपत्य.) घर के स्वामियो का संयोगी (अग्नि) अग्नि, सर्वज्ञ परमेश्वर (तस्मात्) उस [कष्ट] से पृथक् करके

(न) हमें (सुकृतस्य) धर्म के (लोकम्) समाज में (इत्) अवश्य (उन्नयाति) ऊंचा चढ़ावे ॥२॥

उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके ।

प्रेहामृतस्य यच्छतां प्रैतु बद्धकमोचनम् ॥३॥

पदार्थ—(भगवती=०—त्यौ) दो ऐश्वर्य वाले (विचृतौ) [अन्धकार से] छुड़ाने हारे (नाम) प्रसिद्ध (तारके) तारे [सूर्य और चन्द्रमा] (उदगाताम्) उदय हुए हैं। वे दोनो (इह) यहां पर (अमृतस्य) मरण से बचाव [पुरुषार्थ] का (प्रयच्छताम्) दान करें, [तब] (बद्धकमोचनम्) बधुवे [आत्मा] की मुक्ति (प्र एतु) हो जावे ॥३॥

वि जिहीष्व लोकं कृणु बन्धान्मुञ्चासि बद्धकम् ।

योन्या इव प्रच्युतो गर्भः पथः सर्वा अनु क्षिय ॥४॥

पदार्थ—[हे पुरुष !] (वि जिहीष्व) विविध प्रकार से चल, (लोकम्) समाज को (कृणु) बना, (बद्धकम्) बड़े बधुवे [आत्मा] को (बन्धात्) बन्ध से (मुञ्चासि) तू छुड़ा दे (योन्या) गर्भाशय से (प्रच्युत.) बाहर निकले हुए (गर्भ इव) बालक के समान (सर्वान्) सब (पथ अनु) मार्गों की ओर (क्षिय) चल ॥४॥

卐 सूक्तम् १२२ 卐

१—५ भृगु । *विश्वकर्मा । त्रिष्टुप् । ४—५ जगती ।*

एतं भागं परि ददामि विद्वान् विश्वकर्मन् प्रथमजा ऋतस्य ।

अस्माभिर्दत्तं जरसः परस्तादच्छिन्नं तन्तुमनु सं तरेम ॥१॥

पदार्थ—(प्रथमजा.) श्रेष्ठों में प्रसिद्ध, (विद्वान्) विद्वान् मैं (ऋतस्य) सत्य धर्म के (एतम्) इस (भागम्) सेवनीय व्यवहार को (विश्वकर्मन्) जगत् के रचने वाले विश्वकर्मा परमेश्वर में (परि ददामि) समर्पण करता हूँ। (जरस.) बुढ़ापे से (परस्तात्) दूर देश में (अस्माभि दत्तम्) अपने दिए हुए (अच्छिन्नम्) बिना टूटे (तन्तुम् अनु) फैले हुए [अथवा वस्त्र में सूत के समान सर्वव्यापक] परब्रह्म के पीछे-पीछे (सम्) यथावत (तरेम) हम पार करें ॥१॥

ततं तन्तुमन्वेके तरन्ति येषां दत्तं पित्र्यमायनेन ।

अबन्ध्वेके ददतः प्रयच्छन्तो दातुं चेच्छिक्षान्त्स स्वर्ग एव ॥२॥

पदार्थ—(येषाम्) जिन लोगों का (पित्र्यम्) पितरों, माननीयों का प्रिय (दत्तम्) दान (आयनेन) यथाशास्त्र होता है, (एके) वे कोई (ततम्) फैले हुए (तन्तुम् अनु) वस्त्र में सूत के समान सर्वव्यापक ब्रह्म के पीछे-पीछे (तरन्ति) तरते हैं। (एके) कोई-कोई (अबन्धु) बन्धुरहितों [अनाथों] को (ददत) देते हुए और (प्रयच्छन्त·) सौंपते हुए रहते हैं, [जो] (दातुम्) दान करने को (च इत्) अवश्य ही (शिक्षान्) समर्थ हों, (स एव) वही [उनको] (स्वर्ग) स्वर्ग है ॥२॥

अन्वारभेथामनुसंरभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ।

यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दम्पती सं श्रयेथाम् ॥३॥

पदार्थ—(दम्पती) हे स्त्री-पुरुषो ! [सत्कर्म को] (अन्वारभेथाम्) निरन्तर आरम्भ करो, (अनुसंरभेथाम्) मिल कर आरम्भ करते रहो, (श्रद्दधाना) श्रद्धा वाले लोग (एतम्) इस [स्वर्ग] (लोकम्) लोक को (सचन्ते) निरन्तर सेवते हैं। (अग्नौ) अग्नि में (पक्वम्) पका हुआ (यत्) जो [अन्न] (वाम्) तुम्हारे लिये (परिविष्टम) उपस्थित है, (तस्य गुप्तये) उसकी रक्षा के लिये (सम् (श्रयेथाम्) तुम दोनों परस्पर आश्रय लो ॥३॥

यज्ञं यन्तं मनसा बृहन्तमन्वारोहामि तपसा सयोनिः ।

उपहूता अग्ने जरसः परस्तात् तृतीये नाके सधमादं मदेम ॥४॥

पदार्थ—(मनसा) विज्ञान और (तपसा) तप अर्थात् उत्साह के साथ (सयोनिः) निवास करता हुआ मैं (यन्तम) व्याप्तिशील (बृहन्तम्) सब से बड़े (यज्ञम्) पूजनीय ब्रह्म को (अन्वारोहामि) निरन्तर ऊंचा होकर प्राप्त करता हूँ। (अग्ने) हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! (जरसः) वयोहानि से (परस्तात्) दूर देश में (उपहूता.) बुलाये गये हम (तृतीये) तीसरे [जीव और प्रकृति से भिन्न] (नाके) सुखस्वरूप परमात्मा में (सधमादम्) हर्षोत्सव (मदेम) मनावें ॥४॥

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।

यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददातु तन्मे ॥५॥

पदार्थ—(शुद्धा.) शुद्ध स्वभाव वाली, (पूता.) पवित्र आचरण वाली, (यज्ञिया) पूजनीय (इमा) इन (योषित·) सेवायोग्य स्त्रियों को (ब्रह्मणाम्) ब्रह्मज्ञानी पुरुषों के (हस्तेषु) हाथों के बीच [विज्ञान के बलों में] (प्रपृथक्) नाना प्रकार से (सादयामि) मैं बैठालता हूँ। [हे विद्वान् स्त्री पुरुष !] (यत्कामः) जिस उत्तम कामना वाला (अहम्) मैं (इदम्) इस समय (व.) तुम्हारा (अभिषिञ्चामि) अभिषेक करता हूँ, (स) वह (मरुत्वान्) दोषनाशक गुणों वाला (इन्द्र) सम्पूर्ण ऐश्वर्यवाला जगदीश्वर (तत्) वह वस्तु (मे) मुझे (ददातु) देवे ॥५॥

卐 सूक्तम् १२३ 卐

१—५ भृगु । *विश्वे देवा । त्रिष्टुप्, ३ द्विपदा साम्न्यनुष्टुप्, ४ एकावसाना द्विपात्प्राजापत्या भुरिगनुष्टुप् ।*

एतं सधस्थाः परि वो ददामि यं शेवधिमावहाज्जातवेदाः ।

अन्वागन्ता यजमानः स्वस्ति तं स्म जानीत परमे व्योमन् ॥१॥

पदार्थ—(सधस्था) हे साथ साथ बैठने वाले सज्जनो ! (व) तुम्हारे लिये (एतम्) इस (शेवधिम्) सुखनिधि परमेश्वर को (परिददामि) सब प्रकार से देता हूँ [उपदेश करता हूँ] (यम्) जिस [परमेश्वर] को (जातवेदाः) विज्ञान को प्राप्त वेदार्थ जानने वाला पुरुष (आवहात्) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे, और [जिसके द्वारा] (यजमानः) परमेश्वर का पूजने वाला (स्वस्ति) कल्याण (अन्वागन्ता) लगातार पावेगा, (परमे) परम उत्तम (व्योमन्) आकाश में वर्तमान (तम्) उस परमेश्वर को तुम (स्म) अवश्य (जानीत) जानो ॥१॥

जानीत स्मैनं परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद लोकमत्र ।

अन्वागन्ता यजमानः स्वस्तीष्टापूर्तं स्म कृणुताविरस्मै ॥२॥

पदार्थ—(सधस्था) हे साथ-साथ बैठने वाले (देवाः) विद्वानो ! (परमे) परम उत्तम (व्योमन्) आकाश में वर्तमान (एनम्) इस [परमात्मा] को (स्म) अवश्य (जानीत) जानो, और (अत्र) इस [परमात्मा] में (लोकम्) संसार को (विद) जानो [और जिसके द्वारा] (यजमान) परमेश्वर का पूजने वाला (स्वस्ति) कल्याण (अन्वागन्ता) लगातार पावेगा, (इष्टापूर्तम्) यज्ञ, वेदाध्ययन, अन्नदान आदि पुण्यकर्म को (अस्मै) इस परमेश्वर की प्राप्ति के लिये (स्म) अवश्य (आवि) प्रकाशित (कृणुत) करो ॥२॥

देवाः पितरः पितरो देवाः । यो अस्मि सो अस्मि ॥३॥

पदार्थ—(देवा·) विद्वान् लोग (पितरः) माननीय, और (पितर) पालन करने वाले लोग (देवा) विजयी होते हैं। मैं (य) चलने फिरने वाला [उद्योगी] (अस्मि) हूँ, मैं ही (स) दुःख मिटाने वाला (अस्मि) हूँ ॥३॥

स पचामि स ददामि स यजे स दत्तान्मा यूषम् ॥४॥

पदार्थ—(स) क्लेशनाशक मैं [अन्न] का (पचामि) परिपक्व करता हूँ, (स) वही मैं (ददामि) दान करता हूँ, (सः) वही मैं (यजे) विद्वानों का पूजता हूँ (स) वह मैं (दत्तात) दान से [सुपात्रों के लिये] (मा यूषम्) पृथक् न होऊं ॥४॥

नाके राजन् प्रति तिष्ठ तत्रैतत् प्रति तिष्ठतु ।

विद्धि पूर्तस्य नो राजन्त्स देव सुमना भव ॥५॥

पदार्थ—(राजन्) हे समर्थ मनुष्य ! (नाके) सुख स्वरूप परमात्मा में (प्रति तिष्ठ) प्रतिष्ठा पा, (तत्र) उसी [परमात्मा] में ही (एतत्) यह [तेरा पुण्य कर्म] (प्रति तिष्ठतु) प्रतिष्ठा पावे। (राजन्) हे विद्या से प्रकाशमान ! (न) हमारे लिये (पूर्तस्य) अन्न दान आदि पुण्य कर्म का (विद्धि) ज्ञान कर, (स) वह तू, (देव) हे गतिशील ! (सुमना.) प्रसन्नचित्त (भव) हो ॥५॥

卐 सूक्तम् १२४ 卐

१—३ अथर्वा । *दिव्य आप । त्रिष्टुप् ।*

दिवो नु मां बृहतो अन्तरिक्षादपां स्तोको अभ्यपप्तद् रसेन ।

समिन्द्रियेण पयसाहमग्ने छन्दोभिर्यज्ञैः सुकृतां कृतेन ॥१॥

पदार्थ—(दिव) प्रकाशमान सूर्य से, (नु) अथवा (बृहतः) [सूर्य से] बड़े (अन्तरिक्षात्) आकाश से (अपाम्) जल का (स्तोक) बिन्दु (माम् अभि) मेरे ऊपर (रसेन) रस के साथ (अपप्तत्) गिरा है। (सुकृताम्) सुकर्मियों के (कृतेन) कर्म से, (अग्ने) हे सर्वव्यापी परमेश्वर ! (इन्द्रियेण) इन्द्रपन अर्थात् सम्पूर्ण ऐश्वर्य के साथ, (पयसा) अन्न के साथ (छन्दोभिः) आनन्ददायक कर्मों के साथ (यज्ञै) विद्या आदि दानों के साथ (अहम्) मैं (सम्=सङ्गच्छेय) मिला रहूँ ॥१॥

यदि वृक्षादभ्यपप्तत् फलं तद् यद्यन्तरिक्षात् स उ वायुरेव ।

यत्रास्पृक्षत् तन्वो यच्च वाससः आपो नुदन्तु निर्ऋतिं पराचैः ॥२॥

पदार्थ—(यदि) यदि (वृक्षात्) वृक्ष से (तत् फलम्) वह [अशुद्ध] फल, और (यदि) यदि (अन्तरिक्षात्) आकाश से (स उ वायुः) वही [अशुद्ध]

वायु (एव) वैसे ही (अभ्यपप्तत्) गिर पड़ा है और (यत्) जिसने (यत्र) जहा पर (तन्वः) शरीर का (च) और (वाससः) वस्त्र का (अस्पृक्षत्) स्पर्श किया है, (आपः) जल (निर्ऋतिम्) अलक्ष्मी [अशुद्धि] को (पराचैः) उलटे-मुह (नुदन्तु) हटा देवें ॥२॥

अभ्यञ्जनं सुरभि सा समृद्धिर्हिरण्यं वर्चस्तदु पूत्रिममेव ।

सर्वा पवित्रा वितताध्यस्मत् तन्मा तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः ॥३॥

पदार्थ—(अभ्यञ्जनम्) तेल आदि लगाना, (सुरभि) सुगन्ध चन्दनादि, (सा समृद्धिः) वह सम्पत्ति, (हिरण्यम्) सुवर्ण, (वर्चः) तेज, (तदु) वही (पूत्रिमम्) पवित्रता (एव) वैसे ही है (सर्वा) सब (पवित्रा) शोधन के साधन (अस्मत् अधि) हमारे ऊपर (वितता) फैले हुए हैं, (तत्) इस लिये [हम को] (मा) न तो (निर्ऋतिः) अलक्ष्मी (मो) और न (अरातिः) कजूस पुरुष (तारीत्) दबावे ॥३॥

卐 इति द्वादशोऽनुवाकः 卐

卐

अथ त्रयोदशोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् १२५ 卐

१—३ *अथर्वा । वनस्पति । त्रिष्टुप्, २ जगती ।*

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।

गोभिः संनद्धो असि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥१॥

पदार्थ—(वनस्पते) हे किरणो के पालन करनेवाले सूर्य के समान राजन् ! (वीड्वङ्गः) बलिष्ठ अङ्गों वाला तू (हि) ही (प्रतरणः) बढ़ाने वाला (सुवीरः) अच्छे-अच्छे वीरो से युक्त (अस्मत्सखा) हमारा मित्र (भूयाः) हो । तू (गोभिः) बाणों और वज्रो से (संनद्धः) अच्छे प्रकार सजा हुआ (असि) है, [हमे] (वीडयस्व) दृढ़ बना, (ते) तेरा (आस्थाता) श्रद्धावान् सेनापति (जेत्वानि) जीतने योग्य शत्रुओ की सेनाओ को (जयतु) जीते ॥१॥

दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः ।

अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज ॥२॥

पदार्थ—(दिवः) बिजुली वा सूर्य से और (पृथिव्याः) भूमि वा अन्तरिक्ष से (उद्भृतम्) उत्तम रीति से धारण किये गये (ओजः) बल को (परि) प्राप्त करके, (वनस्पतिभ्यः) वट आदि वनस्पतियो से (आभृतम्) अच्छे प्रकार पुष्ट किये गये (सहः) बल को (परि) प्राप्त करके (गोभिः) किरणो से (आवृतम्) ढापे हुए (अपाम्) जलो के (ओज्मानम्) बल को (परि) प्राप्त करके (वज्रम्) शस्त्र समूह और (रथम्) रथ को (इन्द्रस्य) बिजुली के (हविषा) ग्राह्य गुण के साथ (यज) संयुक्त कर ॥२॥

इन्द्रस्यौजो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः ।

स इमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥३॥

पदार्थ—[हे राजन् ! यहा पर] (मरुताम्) शूरो का (अनीकम्) सेना-दल, (इन्द्रस्य) बिजुली का (ओजः) बल, (मित्रस्य) प्राण [बढ़ाने वाले वायु] का (गर्भः) गर्भ [अधिष्ठान] और (वरुणस्य) अपान [उतरने वाले वायु] का (नाभिः) नाभि [मध्यस्थान] है । (सः) सो तू (देव) हे प्रकाशमान ! (रथ) रमणीयस्वरूप विद्वान् ! (नः) हमारे लिये (इमाम्) इस (हव्यदातिम्) देनेयोग्य पदार्थों की दानक्रिया को (जुषाणः) सेवता हुआ (हव्या) ग्राह्य वस्तुओ को (प्रति) प्रतीति के साथ (गृभाय) ग्रहण कर ॥३॥

卐 सूक्तम् १२६ 卐

१—३ *अथर्वा । दुन्दुभिः । भुरिक् त्रिष्टुप्, ३ पुरोबृहतीगर्भा त्रिष्टुप् ।*

उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते वन्वतां विष्ठितं जगत् ।

स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद् दवीयो अप सेध शत्रून् ॥१॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (पृथिवीम्) भूमि वा अन्तरिक्ष को (उत) और (द्याम्) सूर्य वा बिजुली मे (उप) उपयोग के साथ (श्वासय) जीवन डाल, (पुरुत्रा) अनेक पदार्थों मे (ते) तेरे लिये (विष्ठितम्) व्याप्त (जगत्) जगत् की (वन्वताम्) वे [वीर लोग] याचना करें । (दुन्दुभे) हे दुन्दुभि [ढोल] के समान गर्जन वाले वीर ! (सः) सो तू (इन्द्रेण) ऐश्वर्य व बिजुली के अस्त्र-समूह से और (देवैः) विजयी वीरो से (सजूः) प्रीति करता हुआ (दूरात्) दूर से (दवीयः) अति दूर (शत्रून्) शत्रुओं को (अपसेध) हटा दे ॥१॥

आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा अभि ष्टन दुरिता बाधमानः ।

अप सेध दुन्दुभे दुच्छुनामित इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ॥२॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (बलम्) बल और (ओजः) पराक्रम (नः) हमे (आ धाः) अच्छे प्रकार दे, [शत्रुओ को] (आ क्रन्दय) सब ओर से रुला और (दुरिता) कष्टो को (बाधमानः) हटाता हुआ (अभि) सब ओर (स्तन) मेघध्वनि कर (दुन्दुभे) हे दुन्दुभि [के समान गरजने वाले !] (इतः) यहां से (दुच्छुनाम्) दुष्ट गति को (अप सेध) हटा दे, तू (इन्द्रस्य) बिजली की (मुष्टिः) मूठ [के समान दुष्टो को मारने वाला] (असि) है, [राज्य को] (वीडयस्व) दृढ़ कर ॥२॥

प्रामूं जयाभी३मे जयन्तु केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीतु ।

समश्वपर्णाः पतन्तु नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥३॥

पदार्थ—(अमूम्) उस [शत्रु सेना] को (प्र) अच्छे प्रकार (जय) जीत ले, (इमे) ये (केतुमत्) ध्वजा पताका वाले शूर (अभि) सब ओर से (जयन्तु) जीत लेवें, (दुन्दुभिः) ढोल (वावदीतु) ऊंचे स्वर से बजता है । (अश्वपर्णाः) घुड़चढ़ो के पक्ष [सेना दल] वाले (नः) हमारे (नरः) नायक लोग (सम्) ठीक रीति से (पतन्तु) धावा करें, (इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले राजन् ! (अस्माकम्) हमारे (रथिनः) अच्छे अच्छे रथों पर चढ़े हुए वीर (जयन्तु) जीतें ॥३॥

卐 सूक्तम् १२७ 卐

१—३ *भृग्वङ्गिराः । यक्ष्मनाशनम्, वनस्पतिः । अनुष्टुप्, ३ त्र्यवसाना षट्पदा जगती ।*

विद्रधस्य बलासस्य लोहितस्य वनस्पते ।

विसल्पकस्यौषधे मोच्छिषः पिशितं चन ॥१॥

पदार्थ—(वनस्पते) हे वटादि वृक्ष ! (ओषधे) हे अन्न आदि ओषधि ! (विद्रधस्य) ज्ञाननाशक, हृदय के फोड़े के, (बलासस्य) बल के गिराने वाले सन्निपात, कफादि रोग के, (लोहितस्य) रुधिर विकार, सूजन आदि के, (विसल्पकस्य) शरीर मे फैलने वाले हड़फूटन के (पिशितम् चन) थोड़े अंश को भी (मा उत् शिषः) शेष मत छोड़ ॥१॥

यौ ते बलास तिष्ठतः कक्षे मुष्कावपश्रितौ ।

वेदाहं तस्य भेषजं चीपुद्रुरभिचक्षणम् ॥२॥

पदार्थ—(बलास) हे सन्निपात कफ आदि रोग ! (यौ) जो (ते) तेरी (मुष्कौ) दो गिलटियां (कक्षे) [रोगी की] कोख मे (अपश्रितौ) आश्रय लिये हुए (तिष्ठतः) स्थित हैं । (अहम्) मैं (तस्य भेषजम्) उसकी ओषधि (वेद) जानता हूं, (चीपुद्रुः) ग्रहण करने योग्य चीपुद्रु [ओषधि विशेष] (अभिचक्षणम्) औषध है ॥२॥

यो अङ्ग्यो यः कर्ण्यो यो अक्ष्योर्विसल्पकः ।

वि वृहामो विसल्पकं विद्रधं हृदयामयम् ।

परा तमज्ञातं यक्ष्ममधराञ्चं सुवामसि ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो (अङ्ग्यः) अङ्गो मे रहने वाला, (यः) जो (कर्ण्यः) कानो मे होने वाला, (यः) जो (अक्ष्योः) दोनों आंखो का (विसल्पकः) हड़-फूटन है । (विसल्पकम्) उस हड़फूटन रोग को, (विद्रधम्) हृदय के फोड़े को और (हृदयामयम्) हृदय की पीडा को (वि वृहामः) हम उखाड़े देते हैं । (अज्ञातम्) अप्रकट (यक्ष्मम्) उस राजरोग को (अधराञ्चम्) नीचे की ओर (परा) दूर (सुवामसि) हम फेंकते हैं ॥३॥

卐 सूक्तम् १२८ 卐

१—४ *अथर्वाङ्गिराः । सोम । शकधूम, अनुष्टुप् ।*

शकधूमं नक्षत्राणि यद् राजानमकुर्वत ।

भद्राहमस्मै प्रायच्छन्निदं राष्ट्रमसादिति ॥१॥

पदार्थ—(यत्) जिस कारण से (नक्षत्राणि) चलने वाले नक्षत्रों ने (शकधूमम्) समर्थ [सूर्य आदि] लोको को कपाने वाले परमेश्वर को (राजानम्) राजा (अकुर्वत) बनाया, और (अस्मै) उसी के लिये (भद्राहम्) शुभ दिन का (प्र अयच्छन्) अच्छे प्रकार समर्पण किया, (इति) इसी कारण से (इदम्) यह जगत् (राष्ट्रम्) उस का राज्य (असात्) होवे ॥१॥

भद्राहं नो मध्यन्दिने भद्राहं सायमस्तु नः ।

भद्राहं नो अह्नां प्राता रात्री भद्राहमस्तु नः ॥२॥

पदार्थ—(**नः**) हमारे लिये (**मध्यन्दिने**) मध्य दिन में (**भद्राहम्**) शुभ दिन, (**नः**) हमारे लिये (**सायम्**) सायकाल मे (**भद्राहम्**) शुभ दिन, (**नः**) हमारे लिये (**अह्नाम्**) सब दिनो के (**प्रातः**) प्रात काल मे (**भद्राहम्**) शुभ दिन (**अस्तु**) होवे, (**नः**) हमारे लिये (**रात्री**) रात्रि मे (**भद्राहम्**) शुभ दिन (**अस्तु**) होवे ॥२॥

अहोरात्राभ्यां नक्षत्रेभ्यः सूर्याचन्द्रमसाभ्याम् ।

भद्राहमस्मभ्यं राजञ्छकधूम त्वं कृधि ॥३॥

पदार्थ—(**शकधूम**) हे समर्थ सूर्य आदि लोको के कपाने वाले (**राजन्**) परमेश्वर ! (**त्वम्**) तू (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिये (**अहोरात्राभ्याम्**) दिन और रात्रि से, (**नक्षत्रेभ्यः**) नक्षत्रो से और (**सूर्याचन्द्रमसाभ्याम्**) सूर्य और चन्द्रमा से (**भद्राहम्**) शुभ दिन (**कृधि**) कर ॥३॥

यो नो भद्राहमकरः सायं नक्तमथो दिवा ।

तस्मै ते नक्षत्रराज शकधूम सदा नमः ॥४॥

पदार्थ—(**यः**) जिस तू ने (**नः**) हमारे लिये (**सायम्**) सायकाल मे, (**नक्तम्**) रात्रि मे (**अथो**) और (**दिवा**) दिन मे (**भद्राहम्**) शुभ दिन (**अकरः**) किया है । (**नक्षत्रराज**) हे नक्षत्रो के राजा ! (**शकधूम**) हे समर्थ सूर्य आदि लोको के कपाने वाले परमेश्वर ! (**तस्मै ते**) उस तेरे लिये (**सदा**) सदा (**नमः**) नमस्कार होवे ॥४॥

卐 सूक्तम् १२९ 卐

१—३ *अथर्वाङ्गिरा । भग , अनुष्टुप् ।*

भगेन मा शांशपेन साकमिन्द्रेण मेदिना ।

कृणोमि भगिनं माप द्रान्त्वरातयः ॥१॥

पदार्थ—(**मेदिना**) परममित्र (**इन्द्रेण साकम्**) सम्पूर्ण ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर के साथ वर्तमान (**शांशपेन**) शान्ति के स्पर्श से युक्त (**भगेन**) ऐश्वर्य से (**मा मा**) अपने को अवश्य (**भगिनम्**) बडे ऐश्वर्य वाला (**कृणोमि**) मैं करू । (**अरातयः**) हमारे सब कजूस स्वभाव (**अप द्रान्तु**) दूर भाग जावें ॥१॥

येन वृक्षाँ अभ्यभवो भगेन वर्चसा सह ।

तेन मा भगिनं कृण्वप द्रान्त्वरातयः ॥२॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर] (**वर्चसा सह**) तेज के साथ वर्तमान (**येन भगेन**) जैसे ऐश्वर्य से तू (**वृक्षान्**) सब स्वीकारयोग्य पदार्थों से (**अभ्यभवः**) बढ गया है, (**तेन**) वैसे ऐश्वर्य से (**मा**) मुझको (**भगिनम्**) बडे ऐश्वर्य वाला (**कृणु**) कर, (**अरातयः**) हमारे सब कजूस स्वभाव (**अप द्रान्तु**) दूर भाग जावें ॥२॥

यो अन्धो यः पुनःसरो भगो वृक्षेष्वाहितः ।

तेन मा भगिनं कृण्वप द्रान्त्वरातयः ॥३॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] (**यः**) जो (**अन्धः**) जीवन का आधार और (**यः**) जो (**पुनःसरः**) वारवार आगे बढने वाला (**भगः**) ऐश्वर्य (**वृक्षेषु**) सब स्वीकारयोग्य पदार्थों मे (**आहितः**) अच्छे प्रकार धारण किया गया है (**तेन**) उस ऐश्वर्य से (**मा**) मुझको (**भगिनम्**) ऐश्वर्य वाला (**कृणु**) कर, (**अरातयः**) हमारे सब कजूस स्वभाव (**अप द्रान्तु**) दूर भाग जावे ॥३॥

卐 सूक्तम् १३० 卐

१—४ *अथर्वाङ्गिरा । स्मर । अनुष्टुप्, १ विराट् पुरस्ताद्बृहती ।*

रथजितां राथजितेयीनामप्सरसामयं स्मरः ।

देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥१॥

पदार्थ—(**रथजिताम्**) रमणीय पदार्थों को जिताने वाली, और (**राथजितेयीनाम्**) रमणीय पदार्थों के विजयी पुरुषो के समीप रहने वाली (**अप्सरसाम्**) आकाश, जल, प्राण और प्रजाओ मे व्यापक शक्तियो का (**अयम्**) यह जो (**स्मरः**) स्मरण सामर्थ्य है । (**देवाः**) हे विद्वानो ! (**स्मरम्**) उस स्मरण सामर्थ्य को (**प्र**) अच्छे प्रकार (**हिणुत**) बढाओ, (**असौ**) वह [स्मरण सामर्थ्य] (**माम् अनु**) मुझ में व्यापकर (**शोचतु**) शुद्ध रहे ॥१॥

असौ मे स्मरतादिति प्रियो मे स्मरतादिति ।

देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥२॥

पदार्थ—(**असौ**) वह [स्मरण सामर्थ्य] (**मे**) मेरा (**स्मरतात्**) स्मरण रक्खे, (**इति**) बस यही, (**प्रियः**) वह प्यारा [सामर्थ्य] (**मे**) मेरा (**स्मरतात्**) चिन्तन करे, (**इति**) बस यही । (**देवाः**) हे विद्वानो ! (**स्मरम्**) उस स्मरण सामर्थ्य को (**प्र**) अच्छे प्रकार (**हिणुत**) बढाओ, (**असौ**) वह [स्मरण सामर्थ्य] (**माम् अनु**) मुझ मे व्यापकर (**शोचतु**) शुद्ध रहे ॥२॥

यथा मम स्मरादसौ नामुष्याहं कदा चन ।

देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥३॥

पदार्थ—(**यथा**) जिससे (**असौ**) वह [स्मरण सामर्थ्य] (**मम**) मेरा (**स्मरात्**) स्मरण रक्खे, और (**अहम्**) मैं (**कदा चन**) कभी भी (**अमुष्य**) उसकी (**न**) न [भूल करू] । (**देवाः**) हे विद्वानो ! (**स्मरम्**) उस स्मरण-सामर्थ्य को (**प्र**) अच्छे प्रकार (**हिणुत**) बढाओ, (**असौ**) वह [स्मरण सामर्थ्य] (**माम् अनु**) मुझ मे व्यापकर (**शोचतु**) शुद्ध रहे ॥३॥

उन्मादयत मरुत उदन्तरिक्ष मादय ।

अग्न उन्मादया त्वमसौ मामनु शोचतु ॥४॥

पदार्थ—(**मरुतः**) हे वायुगणो ! (**उत्**) उत्तम प्रकार से (**मादयत**) प्रसन्न करो, (**अन्तरिक्ष**) हे मध्यलोक ! (**उत्**) अच्छे प्रकार (**मादय**) हर्षित कर । (**अग्ने**) हे अग्नि ! (**त्वम्**) तू (**उत्**) उत्तम रीति से (**मादय**) आनन्दित कर, (**असौ**) वह [स्मरण सामर्थ्य] (**माम्**) मुझको (**अनु**) व्यापकर (**शोचतु**) शुद्ध रहे ॥४॥

卐 सूक्तम् १३१ 卐

१—३ *अथर्वाङ्गिरा । स्मर । अनुष्टुप् ।*

नि शीर्षतो नि पत्तत आध्यो३नि तिरामि ते ।

देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥१॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (**ते**) तेरे लिये (**शीर्षतः**) अपने मस्तक [सामर्थ्य] से (**नि**) निश्चय करके, (**पत्ततः**) अपने पद [के सामर्थ्य] से (**नि**) नियम करके (**आध्यः**) यथावत् ध्यान धर्मों को (**नि**) लगातार (**तिरामि**) मैं पार करू । (**देवाः**) हे विद्वानो ! (**स्मरम्**) स्मरण सामर्थ्य को (**प्र**) अच्छे प्रकार (**हिणुत**) बढाओ, (**असौ**) वह [स्मरण सामर्थ्य] (**माम् अनु**) मुझ मे व्यापकर (**शोचतु**) शुद्ध रहे ॥१॥

अनुमतेऽन्विदं मन्यस्वाकूते समिदं नमः ।

देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥२॥

पदार्थ—(**अनुमते**) हे अनुकूल बुद्धि ! तू (**इदम्**) इसको (**अनु मन्यस्व**) प्रसन्नता से स्वीकार कर, (**आकूते**) हे उत्साह शक्ति ! (**इदम्**) यह (**नमः**) अन्न (**सम्**) ठीक रीति से [हमारे लिये हो] । (**देवाः**) हे विद्वानो ! (**स्मरम्**) स्मरण सामर्थ्य को (**प्र**) अच्छे प्रकार (**हिणुत**) बढाओ, (**असौ**) वह [स्मरण-सामर्थ्य] (**माम् अनु**) मुझमे व्यापकर (**शोचतु**) शुद्ध रहे ॥२॥

यद् धावसि त्रियोजनं पञ्चयोजनमाश्विनम् ।

ततस्त्वं पुनरायसि पुत्राणां नो असः पिता ॥३॥

पदार्थ—[हे विद्वान् !] (**यत्**) जो तू (**त्रियोजनम्**) तीन योजन, (**पञ्चयोजनम्**) पाच योजन, अथवा (**आश्विनम्**) अश्ववार से चलने योग्य देश को (**धावसि**) दौड कर जाता है । (**ततः**) उससे (**त्वम्**) तू (**पुनः**) फिर (**आयसि**) आ । और (**नः**) हमारे (**पुत्राणाम्**) पुत्र आदिको का (**पिता**) पिता [पालने वाला] (**असः**) हो ॥३॥

卐 सूक्तम् १३२ 卐

१—५ *अथर्वाङ्गिरा । स्मर । अनुष्टुप, १ त्रिपादनुष्टुप; २, ४, ५ बृहती, ३ भुरिक् ।*

यं देवाः स्मरमसिञ्चन्नप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या ।

तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥१॥

पदार्थ—(**देवाः**) विजयी लोगों ने (**अप्सु अन्तः**) प्रजाओ के बीच (**आध्या सह**) ध्यान शक्ति के साथ (**शोशुचानम्**) अत्यन्त प्रकाशमान (**यम्**) जिस (**स्मरम्**) स्मरण सामर्थ्य को (**असिञ्चन्**) सींचा है । (**तम्**) उस [स्मरण सामर्थ्य] को (**ते**) तेरे लिये (**वरुणस्य**) सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर के (**धर्मणा**) धर्म अर्थात् धारण सामर्थ्य से (**तपामि**) मैं ऐश्वर्ययुक्त करता हूँ ॥१॥

यं विश्वे देवाः स्मरमसिञ्चन्नप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या ।

तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥२॥

पदार्थ—(**विश्वे**) सब (**देवाः**) उत्तम गुणो ने (**अप्सु अन्तः**) प्रजाओं के बीच (**आध्या सह**) ध्यान शक्ति के साथ (**शोशुचानम्**) अत्यन्त प्रकाशमान (**यम्**) जिस (**स्मरम्**) स्मरण सामर्थ्य को (**असिञ्चन्**) सींचा है । (**तम्**) उस [स्मरण सामर्थ्य] को (**ते**) तेरे लिये (**वरुणस्य**) सर्व श्रेष्ठ परमेश्वर के (**धर्मणा**) धर्म अर्थात् धारण सामर्थ्य से (**तपामि**) मैं ऐश्वर्ययुक्त करता हूँ ॥२॥

यमिन्द्राणी स्मरमसिञ्चदप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्राणी) परम ऐश्वर्य करने वाली नीति ने (अप्सु अन्तः) प्रजाओं के बीच (आध्या सह) ध्यानशक्ति के साथ (शोशुचानम्) अत्यन्त प्रकाशमान (यम्) जिस (स्मरम्) स्मरण सामर्थ्य को (असिञ्चत्) सींचा है (तम्) उस [स्मरणसामर्थ्य] को (ते) तेरे लिये (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर के (धर्मणा) धर्म अर्थात् धारण सामर्थ्य से (तपामि) ऐश्वर्ययुक्त करता हूँ ॥३॥

यमिन्द्राग्नी स्मरमसिञ्चतामप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) बिजुली और भौतिक अग्नि ने (अप्सु अन्तः) प्रजाओं के बीच (आध्या सह) ध्यानशक्ति के साथ (शोशुचानम्) अत्यन्त प्रकाशमान (यम् स्मरम्) जिस स्मरणसामर्थ्य को (असिञ्चताम्) सींचा है (तम्) उस [स्मरणसामर्थ्य] को (ते) तेरे लिये (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर के (धर्मणा) धर्म अर्थात् धारणसामर्थ्य से (तपामि) ऐश्वर्ययुक्त करता हूँ ॥४॥

यं मित्रावरुणौ स्मरमसिञ्चतामप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥५॥

पदार्थ—(मित्रावरुणौ) प्राण और अपान वायु ने (अप्सु अन्तः) प्रजाओं के बीच (आध्या सह) ध्यानशक्ति के साथ (शोशुचानम्) अत्यन्त प्रकाशमान (यम् स्मरम्) जिस स्मरणसामर्थ्य को (असिञ्चताम्) सींचा है (तम्) उस [स्मरणसामर्थ्य] को (ते) तेरे लिये (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर के (धर्मणा) धर्म अर्थात् धारणसामर्थ्य से (तपामि) ऐश्वर्ययुक्त करता हूँ ॥५॥

卐 सूक्तम् १३३ 卐

१—५ अगस्त्य । मेखला । १ भुरिक् त्रिष्टुप्, २,५ अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्, ४ जगती ।

य इमां देवो मेखलामाबबन्ध यः संननाह य उ नो युयोज ।
यस्य देवस्य प्रशिषा चरामः स पारमिच्छात् स उ नो वि मुञ्चात् ॥१॥

पदार्थ—(यः देवः) जिस विद्वान् [आचार्य] ने (नः) हमारे (इमाम्) यह (मेखलाम्) मेखला [तागड़ी, पेटी, कटिबन्धन] (आबबन्ध) अच्छे प्रकार बांधी है, (यः) जिसने (संननाह) सजाई है । (उ) और (यः) जिसने (युयोज) संयुक्त की है । (यस्य देवस्य) जिस विद्वान् के (प्रशिषा) उत्तम शासन से (चराम) हम विचरते हैं (सः) वह (नः) हमें (पारम्) पार (इच्छात्) लगावे, (सः उ) वही [कष्ट से] (विमुञ्चात्) मुक्त करे ॥१॥

आहुतास्यभिहुत ऋषीणामस्यायुधम् ।
पूर्वा व्रतस्य प्राश्नती वीरघ्नी भव मेखले ॥२॥

पदार्थ—(मेखले) हे मेखला ! तू (आहुता) यथाविधि दान की गई (असि) है, (ऋषीणाम्) धर्ममार्ग बताने वाले ऋषियों का (आयुधम्) शस्त्ररूप (असि) है । (व्रतस्य) उत्तम व्रत या नियम के (पूर्वा) पहिले (प्राश्नती) व्याप्त होने वाली और (वीरघ्नी) वीरों को प्राप्त होने वाली तू (भव) हो ॥२॥

मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि निर्याचन् भूतात् पुरुषं यमाय ।
तमहं ब्रह्मणा तपसा श्रमेणानयैनं मेखलया सिनामि ॥३॥

पदार्थ—(भूतात्) प्राप्त (मृत्योः) मृत्यु से (पुरुषम्) इस पुरुष, आत्मा को (निर्याचन्) बाहिर निकालता हुआ (अहम्) मैं (यमाय) नियम पालन के लिये (यत्) जो (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी, वेदपाठी और वीर्य निग्राहक पुरुष (अस्मि) हूँ, (तम्) वैसे (एनम्) इस आत्मा को (ब्रह्मणा) वेदज्ञान, (तपसा) तप [योगाभ्यास] और (श्रमेण) परिश्रम के साथ (अनया मेखलया) इस मेखला से (अहम्) मैं (सिनामि) बांधता हूँ ॥३॥

श्रद्धाया दुहिता तपसोऽधि जाता स्वसा ऋषीणां भूतकृतां बभूव ।
सा नो मेखले मतिमा धेहि मेधामथो नो धेहि तप इन्द्रियं च ॥४॥

पदार्थ—[वह मेखला] (श्रद्धायाः) श्रद्धा [आस्तिक बुद्धि, विश्वास] की (दुहिता) पूर्ण करने हारी [अथवा पुत्री समान प्रिय], (तपसः) तप [योगाभ्यास] से (अधि) अच्छे प्रकार (जाता) उत्पन्न हुई, (भूतकृताम्) सत्यकर्मी (ऋषीणाम्) ऋषियों [सन्मार्गदर्शकों] की (स्वसा) अच्छे प्रकार प्रकाश करने हारी [अथवा बहिन के समान हितकारिणी] (बभूव) हुई है । (सा) सो तू (मेखले) हे मेखला ! (नः) हमें (मतिम्) मननशक्ति और (मेधाम्) निश्चल बुद्धि (आ) सब ओर से (धेहि) दान कर, (अथो) और भी (नः) हमें (तपः) योगाभ्यास (च) और (इन्द्रियम्) इन्द्र का चिह्न [पराक्रम वा परम ऐश्वर्य] (धेहि) दान कर ॥४॥

यां त्वा पूर्वे भूतकृत ऋषयः परिबेधिरे ।
सा त्वं परि ष्वजस्व मां दीर्घायुत्वाय मेखले ॥५॥

पदार्थ—(याम् त्वा) जिस तुझको (पूर्वे) पहिले (भूतकृतः) सत्यकर्मी (ऋषयः) ऋषियों ने (परि बेधिरे) चारों ओर बांधा था (सा त्वम्) सो तू, (मेखले) हे मेखला ! (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ आयु के लिये (माम्) मुझ में (परि) सब ओर से (स्वजस्व) चिपट जा ॥५॥

卐 सूक्तम् १३४ 卐

१—३ शुक्र । वज्र । १ परानुष्टुप् त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप्, ३ भुरिक् त्रिपदा गायत्री ।

अयं वज्रस्तर्पयतामृतस्यावास्य राष्ट्रमप हन्तु जीवितम् ।
शृणातु ग्रीवाः प्र शृणातूष्णिहा वृत्रस्येव शचीपतिः ॥१॥

पदार्थ—(अयम्) यह (वज्रः) वज्र [दण्ड] (ऋतस्य) सत्य धर्म की (तर्पयताम्) तृप्ति करे (अस्य) इस [शत्रु] के (राष्ट्रम्) राज्य को (अव=अवहत्य) नाश करके [उसके] (जीवितम्) जीवन को (अप हन्तु) नाश कर देवे, (ग्रीवाः) गले की नाड़ियों को (शृणातु) काटे और (उष्णिहाः) गुद्दी की नाड़ियों को (प्रशृणातु) तोड़ डाले, (इव) जैसे (शचीपतिः) कर्मों वा बुद्धियों का पति [मनुष्य] (वृत्रस्य) अपने शत्रु की [ग्रीवा आदि] को ॥१॥

अधरोऽधर उत्तरेभ्यो गूढः पृथिव्या मोत्सृपत् ।
वज्रेणावहतः शयाम् ॥२॥

पदार्थ—[वह शत्रु] (उत्तरेभ्यः) ऊंचे लोगों से (अधरोऽधरः) नीचे नीचे और (गूढः) गुप्त होकर (पृथिव्याः) पृथिवी से (मा उत् सृपत्) कभी न उठे, और (वज्रेण) वज्र से (अवहतः) मार डाला गया (शयाम्) पड़ा रहे ॥२॥

यो जिनाति तमन्विच्छ यो जिनाति तमिज्जहि ।
जिनतो वज्र त्वं सीमन्तमन्वञ्चमनु पातय ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो पुरुष (जिनाति) अत्याचार करे, (तम्) उसको (अनु इच्छ) ढूंढ ले, (यः) जो (जिनाति) उपद्रव करे (तम् इत्) उसी को (जहि) मार डाल, (वज्र) हे वज्रधारी (त्वम्) तू (जिनतः) अत्याचारी के (सीमन्तम्) मस्तक को (अन्वञ्चम्) लगातार (अनुपातय) गिराये जा ॥३॥

卐 सूक्तम् १३५ 卐

१—३ शुक्र । वज्र । अनुष्टुप् ।

यदश्नामि बलं कुर्व इत्थं वज्रमा ददे ।
स्कन्धानमुष्य शातयन् वृत्रस्येव शचीपतिः ॥१॥

पदार्थ—(यत्) जो कुछ (अश्नामि) मैं खाता हूँ [उसे] (बलम्) बल (कुर्वे) बना देता हूँ, (इत्थम्) तब मैं (वज्रम्) वज्र को (आ ददे) ग्रहण करता हूँ । (अमुष्य) उस [शत्रु] के (स्कन्धान्) कन्धों को (शातयन्) तोड़ता हुआ, (इव) जैसे (शचीपतिः) कर्म वा बुद्धि का स्वामी [शूर] (वृत्रस्य) शत्रु वा अन्धकार के ॥१॥

यत् पिबामि सं पिबामि समुद्र इव संपिबः ।
प्राणानमुष्य संपाय सं पिबामो अमुं वयम् ॥२॥

पदार्थ—(यत्) जो कुछ [जल दुग्ध आदि] (पिबामि) मैं पीता हूँ, (सम्) यथाविधि (पिबामि) पीता हूँ (इव) जैसे (संपिबः) यथाविधि पीने वाला (समुद्रः) समुद्र [खाकर पचा लेता है] । (अमुष्य) उस [पदार्थ] के (प्राणान्) जीवन बलों को (संपाय) चूस कर (अमुम्) उस [पदार्थ] को (सम्) यथाविधि (वयम्) हम (पिबाम) पीवें ॥२॥

यद् गिरामि सं गिरामि समुद्र इव संगिरः ।
प्राणानमुष्य संगीर्य सं गिरामो अमुं वयम् ॥३॥

पदार्थ—(यत्) जो कुछ वस्तु (गिरामि) मैं खाता हूँ, (सम्) यथा-

विधि (गिरामि) खाता हूँ, (इव) जैसे (संगिर.) यथाविधि खाने वाला (समुद्र) समुद्र [खाकर पचा लेता है] । (अमुष्य) उस [पदार्थ] के (प्राणान्) जीवन शक्तियों को (सगीर्य) पचाकर (अमुम्) उस [पदार्थ] को (सम) यथाविधि (वयम्) हम (गिरामः) खावें ॥३॥

卐 सूक्तम् १३६ 卐

१—३ वीतहव्यः । नितत्नी वनस्पतिः । अनुष्टुप्, २ एकावसाना द्विपदा साम्नी बृहती ।

देवी देव्यामधि जाता पृथिव्यामस्योषधे ।

तां त्वा नितत्नि केशेभ्यो दृंहणाय खनामसि ॥१॥

पदार्थ—(ओषधे) हे ओषधि ! तू (देव्याम्) दिव्य [प्रकाशवाली, अच्छे गुणवाली] (पृथिव्याम्) पृथिवी मे (अधि) ठीक ठीक (जाता) उत्पन्न हुई (देवी) दिव्य गुणवाली (असि) है (नितत्नि) हे नीचे को फैलने वाली, नितत्नी ! [ओषधि विशेष] (ताम् त्वा) उस तुझ को (केशेभ्य) केशो के (दृंहणाय) दृढ करने और बढ़ाने के लिये (खनामसि) हम खोदते हैं ॥१॥

दृंह प्रत्नान् जनयाजातान् जातानु वर्षीयसस्कृधि ॥२॥

पदार्थ—[हे नितत्नी !] (प्रत्नान्) पुराने [केशो] को (दृंह) दृढ़ कर, (अजातान्) विना उत्पन्न हुओ को (जनय) उत्पन्न कर, (उ) और (जातान्) उत्पन्न हुओ को (वर्षीयस) बहुत लम्बा (कृधि) बना ॥२॥

यस्ते केशोऽवपद्यते समूलो यश्च वृश्चते ।

इदं तं विश्वभेषज्याभि षिञ्चामि वीरुधा ॥३॥

पदार्थ—[हे मनुष्य] (य) जो (ते) तेरा (केश) केश (अवपद्यते) गिर जावे (च) और (य) जो (समूल) समूल (वृश्चते) टूट जावे । (इदम्) अब (तम्) उस को (विश्वभेषज्या) सब [केश रोगो] की ओषधि (वीरुधा) उस जड़ी बूटी से (अभि षिञ्चामि) चुपड़ कर ठीक करता हूँ ॥३

卐 सूक्तम् १३७ 卐

१—३ वीतहव्य । वनस्पति । अनुष्टुप् ।

यां जमदग्निरखनद् दुहित्रे केशवर्धनीम् ।

तां वीतहव्य आभरदसितस्य गृहेभ्यः ॥१॥

पदार्थ—(केशवर्धनीम्) केश बढ़ाने वाली (याम्) जिस [नितत्नी ओषधि] को (जमदग्नि.) जलती अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष ने (दुहित्रे) पूर्ति करने वाली क्रिया के लिये (अखनत्) खोदा है । (ताम्) उस [ओषधि] को (वीतहव्य.) पानेयोग्य पदार्थ का पानेवाला ऋषि (असितस्य) मुक्त स्वभाव महात्मा के (गृहेभ्य) घरो से (आ अभरत्) लाया है ॥१॥

अभीशुना मेया आसन् व्यामेनानुमेयाः ।

केशा नडा इव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिताः परि ॥२॥

पदार्थ—(केशा) केश (अभीशुना) अगुली से (मेया) मापने योग्य, फिर (व्यामेन) दोनो [ऊपर नीचे के] भुज दण्ड स (अनुमेया) मापने योग्य (आसन्) हो गये हैं । वे (असिता) काले होकर (ते) तेरे (शीर्ष्ण) शिर से (नडा इव) नरकट घास के समान (परि वर्धन्ताम) भले प्रकार बढ़ें ॥२॥

दृंह मूलमाग्रं यच्छ वि मध्यं यामयौषधे ।

केशा नडा इव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिताः परि ॥३॥

पदार्थ—(ओषधे) हे ओषधि ! [केशों के] (मूलम्) मूल को (दृंह) दृढ़ कर, (अग्रम्) अग्र भाग ॥ (आ यच्छ) बढ़ा, (मध्यम्) मध्यभाग को (वि यामय) लम्बा कर । (केशा.) केश (असिता) काले होकर (ते शीर्ष्ण) तेरे शिर से (नडा इव) नरकट घास के समान (परि वर्धताम्) भले प्रकार बढ़ें ॥३॥

卐 सूक्तम् १३८ 卐

१—५ अथर्वा । वनस्पति । अनुष्टुप ३ पथ्यापंक्ति ।

त्वं वीरुधां श्रेष्ठतमाभिश्रुतास्योषधे

इमं मे अद्य पूरुषं क्लीबमोपशिनं कृधि ॥१॥

पदार्थ—(ओषध) हे ओषधि ! (त्वम) तू (वीरुधाम्) सब ओषधियो मे (श्रेष्ठतमा) अति श्रेष्ठ और (अभिश्रुता) बड़ी विख्यात (असि) है । (मे) मेरे लिये (अद्य) अब (इमम्) इस (क्लीबम्) बलहीन (पुरुषम्) पुरुष को (ओपशिनम्) सब प्रकार उपयोगी (कृधि) बना ॥१॥

क्लीबं कृध्योपशिनमथो कुरीरिणं कृधि ।

अथास्येन्द्रो ग्रावभ्यामुभे भिनत्त्वाण्ड्यौ ॥२॥

पदार्थ—(क्लीबम्) बलहीन पुरुष का (ओपशिनम्) उपयोगी (कृधि) बना, (अथो) और भी (कुरीरिणम) कर्मकारी (कृधि) बना । (अथ) और (इन्द्र) बड़े ऐश्वर्य वाले वैद्य आप (ग्रावभ्याम्) पत्थर समान दो दृढ़ शस्त्रों से (अस्य) इस [रोगी] के (उभे) दोनो (आण्ड्यौ) आंडी [वा आंडिनी, दोनों अण्डकोश के रोग] को (भिनत्तु) छेदें ॥२॥

क्लीब क्लीबं त्वाकरं वध्रे वध्रिं त्वाकरमरसारसं त्वाकरम् ।

कुरीरमस्य शीर्षणि कुम्बं चाधिनिदध्मसि ॥३॥

पदार्थ—(क्लीब) हे निर्बल करने वाले रोग ! (त्वा) तुझको मैंने (क्लीबम्) निर्बल (अकरम्) कर दिया है, (वध्रे) हे बल को बाधने वाले रोग ! (त्वा) तुझको (वध्रिम्) शक्तिहीन (अकरम्) मैंने कर दिया है, (अरस) हे नीरस करने वाले रोग ! (त्वा) तुझे (अरसम्) नीरस (अकरम्) मैंने कर दिया है । (अस्य) इस [स्वस्थ] पुरुष के (शीर्षणि) शिर पर (कुरीरम्) कर्म सामर्थ्य (च) और (कुम्बम्) विस्तृत आभूषण (अधि निदध्मसि) हम अधिकार पूर्वक रखते हैं ॥३॥

ये ते नाड्यौ देवकृते ययोस्तिष्ठति वृष्ण्यम् ।

ते ते भिनद्मि शम्ययामुष्या अधि मुष्कयोः ॥४॥

पदार्थ—[हे रोगी !] (ये) जो (ते) तेरी (नाड्यौ) दो नाड़ियाँ (देवकृते) मद अर्थात् उन्माद से पीड़ित है और (ययो) जिन दोनो मे (वृष्ण्यम्) ढीलापन (तिष्ठति) स्थित है । (ते) तेरे लिये (ते) उन दोनो [नाड़ियो] को (अमुष्या·) उस [स्वस्थ नाड़ी] से अलग (मुष्कयो.) दोनो अण्डकोशो मे (शम्यया) शान्तिकारक शम्या [हल के जुए के कील के समान] शस्त्र से (अधि) अधिकारपूर्वक (भिनद्मि) मैं छेदता हूँ ॥४॥

यथा नडं कशिपुने स्त्रियो भिन्दन्त्यश्मना ।

एवा भिनद्मि ते शेपोऽमुष्या अधि मुष्कयोः ॥५॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (स्त्रिय.) स्त्रियाँ (नडम्) नरकट घास आदि को (कशिपुने) अन्न वा वस्त्र के लिये (अश्मना) पत्थर से (भिन्दन्ति) खेडती हैं । (एव) वैसे ही (ते) तेरे लिये (अमुष्या) उस [नीरोग नाड़ी] से अलग (मुष्कयोः) दोनो अण्डकोशो के (शेप·) रोग बल को (अधि) अधिकार के साथ (भिनद्मि) मैं तोड़ता हूँ ॥५॥

卐 सूक्तम् १३९ 卐

१—५ अथर्वा । वनस्पतिः । अनुष्टुप, १ त्र्यवसाना षट्पदा विराड् जगती ।

न्यस्तिका रुरोहिथ सुभगंकरणी मम ।

शतं तव प्रतानास्त्रयस्त्रिंशन्नितानाः ।

तया सहस्रपर्ण्या हृदयं शोषयामि ते ॥१॥

पदार्थ—[हे विद्या !] (न्यस्तिका) नित्य प्रकाशमान और (मम) मेरी (सुभगकरणी) सुन्दर ऐश्वर्य करने वाली तू (रुरोहिथ) प्रकट हुई है । (ते) तेरे (प्रतानाः) उत्तम फैलाव (शतम्) सौ [अनेक], और (नितानाः) नियमित विस्तार (त्रयस्त्रिंशत्) तैंतीस [तैंतीस देवताओं के जानने वाले] हैं । [हे ब्रह्मचारिणि !] (तया) उस (सहस्रपर्ण्या) सहस्रो पालन शक्ति वाली विद्या से (ते) तेरे (हृदयम्) हृदय को (शोषयामि) मैं सुखाता हूँ [प्रेममग्न करता हूँ] ॥१॥

शुष्यतु मयि ते हृदयमथो शुष्यत्वास्यम् ।

अथो नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ॥२॥

पदार्थ—[हे ब्रह्मचारिणि !] (मयि) मेरे विषय मे (ते हृदयम्) तेरा हृदय (शुष्यतु) सूख जावे, (अथो) और (आस्यम्) मुख (शुष्यतु) सूख जावे । (अथो) और भी (माम्) मुझ को (कामेन) अपने प्रेम से (नि) नित्य (शुष्य) सुखा, (अथो) और तू भी (शुष्कास्या) सूखे मुखवाली होकर (चर) विचर ॥२॥

सं वनंनी समुष्पला बभ्रु कल्याणि सं नुंद ।

अमूं च मां च सं नुद समानं हृदयं कृधि ॥३॥

पदार्थ—(बभ्रु) हे पालनशील ! (कल्याणि) हे मङ्गलकारिणि विद्या ! (सवननी) यथावत् सेवनीय और (समुष्पला) यथाविधि निवास की रक्षा करने हारी तू [हम दोनो को] (सम्) मिला कर (नुद) आगे बढ़ा । (अमूम्) उस [विदुषी] को (च च) और (माम) मुझ को (सम्) मिला कर (नुद) आगे बढ़ा, [हम दोनो के] (हृदयम्) हृदय को (समानम्) एक (कृधि) कर दे ॥३॥

यथोदकमपंपुषोऽपशुष्यंत्यास्यम् ।

एवा नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कांस्या चर ॥४॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (उदकम्) जल को (अपपुष.) न पीनेवाले पुरुष का (आस्यम्) मुख (अपशुष्यति) सूख जाता है । (एव) वैसे ही (माम्) मुझ को (कामेन) अपने प्रेम से (नि) नित्य (शुष्य) सुखा (अथो) और तू भी (शुष्कास्या) सूखे मुख वाली होकर (चर) विचर ॥४॥

यथां नकुलो विच्छिद्य संदधात्यहिं पुनः ।

एवा कामस्य विच्छिन्नं सं धेहि वीर्यावति ॥५॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (नकुल) कुत्सित कर्म न ग्रहण करने वाला, नेवला (अहिम्) सांप को (विच्छिद्य) टुकड़े-टुकड़े करके (पुन.) फिर (सन्दधाति) समाहित चित्त हो जाता है । (एव) वैसे ही (वीर्यवति) हे बलवती ! (कामस्य) कामना के (विच्छिन्नम्) घाव को (सधेहि) भर दे ॥५॥

卐 सूक्तम् १४० 卐

१—३ अथर्वा । ब्रह्मणस्पति, दन्ता । (अनुष्टुप् ?) १ उरोबृहती, उपरिष्टाज्ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्, ३ आस्तारपंक्ति ।

यौ व्याघ्राववंरूढौ जिघंत्सतः पितरं मातरं च ।

तौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते शिवौ कृणु जातवेदः ॥१॥

पदार्थ—(व्याघ्रौ) व्याघ्र के समान बलवान् (यौ) जो (दन्तौ) ऊपर नीचे के दांत (अवरूढौ) उत्पन्न होकर (पितरम्) पिता को (च) और (मातरम्) माता को (जिघत्सतः) काटने की इच्छा करते हैं । (ब्रह्मण) हे अन्न के (पते) स्वामी ! (जातवेदः) हे उत्पन्न पदार्थों के ज्ञानवाले गृहस्थ ! (तौ) उन दोनो को (शिवौ) सुखकारक (कृणु) कर ॥१॥

व्रीहिमंत्तं यवंमत्तमथो माषमथो तिलम् । एष वां भागो

निहिंतो रत्नधेयाय दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ॥२॥

पदार्थ—[हे दांतो की दोनो पंक्तियो !] (व्रीहिम्) चावल (अत्तम्) खाओ (यवम्) जौ (अत्तम्) खाओ (अथो) फिर (माषम्) उड़द, (अथो) फिर (तिलम्) तिल [खाओ], (वाम्) तुम दोनो का (एषः) यह (भाग) भाग [चावल, जौ आदि] (रत्नधेयाय) रत्नो के रखने योग्य कोश के लिये (निहितः) अत्यन्त हित है, (दन्तौ) हे ऊपर नीचे के दांतो ! (पितरम्) बालक के पिता (च) और (मातरम्) माता को (मा हिंसिष्टम्) मत काटो ॥२॥

उपंहूतौ सयुजौ स्योनौ दन्तौ सुमङ्गलौ । अन्यत्र वां

घोरं तन्वः परैतु दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ॥३॥

पदार्थ—(उपहूतौ) आपस में स्पर्धा वाले, (सयुजौ) एक-दूसरे से मिले हुए (दन्तौ) दोनो ओर के दांत (स्योनौ) सुख देने वाले और (सुमङ्गलौ) बड़े मङ्गल वाले होवें । (दन्तौ) हे दोनो ओर के दांतो ! (वाम्) तुम्हारा (घोरम्) दुःखदायी कर्म [बालक के] (तन्वः) शरीर से (अन्यत्र) अलग (परा एतु) चला जावे । (पितरम्) इसके पिता (च) और (मातरम्) माता को (मा हिंसिष्टम्) मत काटो ॥३॥

卐 सूक्तम् १४१ 卐

१—३ विश्वामित्र: । अश्विनौ । अनुष्टुप् ।

वायुरेनाः समाकरत् त्वष्टा पोषाय ध्रियताम् ।

इन्द्र आभ्यो अधि ब्रवद् रुद्रो भूम्ने चिकित्सतु ॥१॥

पदार्थ—(वायु) शीघ्रगामी आचार्य (एना) इन [प्रजाओं] को (समाकरत्) एकत्र करे, (त्वष्टा) सूक्ष्मदर्शी वह (पोषाय) [उनके मानसिक और शारीरिक] पोषण के लिये (ध्रियताम्) स्थिर रहे । (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला वही (आभ्य) इन [प्रजाओं] से (अधि) अनुग्रहपूर्वक (ब्रवत्) बोले, (रुद्र) ज्ञानदाता अध्यापक (भूम्ने) उनकी वृद्धि के लिये (चिकित्सतु) शासन करे ॥१॥

लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि ।

अकर्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु ॥२॥

पदार्थ [हे आचार्य !] (लोहितेन) प्रकाश के साथ और (स्वधितिना) आत्मधारण सामर्थ्य के साथ (कर्णयोः) हमारे दोनो कानो मे (मिथुनम्) विज्ञान (कृधि) कर । (अश्विना) कामो मे व्याप्ति वाले माता पिता ने (लक्ष्म) [हम मे] शुभ लक्षण (अकर्ताम्) किया है, (तत्) वह [शुभ लक्षण] (प्रजया) सन्तान के साथ (बहु) अधिक समृद्ध (अस्तु) होवे ॥२॥

यथा चक्रुर्देवासुरा यथा मनुष्या उत ।

एवा सहस्रपोषाय कृणुतं लक्ष्माश्विना ॥३॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (देवासुरा) व्यवहार जाननेवाले बुद्धिमानों ने (उत) और (यथा) जैसे (मनुष्या.) मननशील पुरुषो ने [शुभ लक्षण को] (चक्रु:) किया है । (अश्विना) हे कर्तव्यो मे व्यापक माता पिता ! (एव) वैसे ही (सहस्रपोषाय) सहस्रो प्रकार के पोषण के लिये [हम मे] (लक्ष्म) शुभलक्षण (कृणुतम्) तुम करो ॥३॥

卐 सूक्तम् १४२ 卐

१—३ विश्वामित्र. । वायु । अनुष्टुप् ।

उच्छ्रयस्व बहुर्भव स्वेन महसा यव ।

मृणीहि विश्वा पात्राणि मा त्वा दिव्याशनिर्वधीत् ॥१॥

पदार्थ—(यव) हे जौ अन्न ! तू (स्वेन) अपने (महसा) बल से (उत् श्रयस्व) ऊंचा आश्रय लेकर और (बहु) समृद्ध (भव) हो । (विश्वा) सब (पात्राणि) जिनमे रक्षा की जावे ऐसे राक्षसो [विघ्नो] को (मृणीहि) मार, (दिव्या) आकाशीय (अशनि) बिजुली आदि उत्पात (त्वा) तुझको (मा वधीत्) नही नष्ट करें ॥१॥

आशृण्वन्तं यवं देवं यत्र त्वाच्छावदामसि ।

तदुच्छ्रयस्व द्यौरिव समुद्र इवैध्यक्षितः ॥२॥

पदार्थ—(आशृण्वन्तम्) [हमे] अंगीकार करने वाले (त्वा) तुझ (देवम्) दिव्य गुण वाले (यवम्) जौ आदि अन्न को (यत्र) जहां पर (अच्छावदामसि) हम अच्छे प्रकार चाहे, (तत्) वहां पर (द्यौ इव) सूर्य के समान (उत् श्रयस्व) ऊंचा आश्रय ले और (समुद्र. इव) अन्तरिक्ष के समान (अक्षितः) क्षयरहित (एधि) हो ॥२॥

अक्षितास्त उपसदोऽक्षिताः सन्तु राशयः ।

पृणन्तो अक्षिताः सन्त्वत्तारः सन्त्वक्षिताः ॥३॥

पदार्थ—[हे जौ आदि अन्न !] (ते) तेरे (उपसद:) निकटवर्ती कार्यकर्ता लोग (अक्षिता.) विना घाटे और तेरी (राशय:) राशें (अक्षिताः) विना घाटे (सन्तु) होवें । (पृणन्त) तेरे भरती करने वाले लोग (अक्षिताः) विना घाटे (सन्तु) होवें और (अत्तार) तेरे खानेवाले (अक्षिताः) विना हानि (सन्तु) होवें ॥३॥

卐 इति त्रयोदशोऽनुवाकः 卐

॥ इति षष्ठं काण्डं समाप्तम् ॥

卐

सप्तमं काण्डम्

प्रथमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् १ 卐

१—२ अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकामः) । आत्मा । त्रिष्टुप्, २ विराड्जगती ।

धीती वा ये अनयन् वाचो अग्रं मनसा वा येऽवदन्नृतानि ।

तृतीयेन ब्रह्मणा वावृधानास्तुरीयेणामन्वत नाम धेनोः ॥१॥

पदार्थ—(ये) जिन लोगों ने [एक] (धीती) अपने कर्म से (वाचः) वेदवाणी के (अग्रम्) श्रेष्ठपन को (वा) निश्चय करके (अनयन्) पाया है, (वा) और (ये) जिन्होंने [दूसरे] (मनसा) विज्ञान से (ऋतानि) सत्य वचन (अवदन्) बोले हैं। और वा (तृतीयेन) तीसरे [हमारे काम और विज्ञान से परे] (ब्रह्मणा) प्रवृद्ध ब्रह्म [परमात्मा] के साथ (वावृधानाः) वृद्धि करते रहे हैं, उन लोगों ने (तुरीयेण) चौथे [कर्म विज्ञान और ब्रह्म से अथवा धर्म, अर्थ और काम से प्राप्त मोक्ष पद] के साथ (धेनोः) तृप्त करने वाली शक्ति, परमात्मा के (नाम) नाम अर्थात् तत्त्व को (अमन्वत) जाना है ॥१॥

स वे॑द पु॒त्रः पि॒तरं॒ स मा॒तरं॒ स सू॒नुर्भु॑वत् स भु॑वत् पु॒नर्म॑घः ।

स द्यामौ॑र्णोद॒न्तरि॑क्षं॒ स्व१ः स इ॒दं विश्व॑मभव॒त् स आभ॑वत् ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (पुत्रः) अनेक प्रकार रक्षा करने वाला परमेश्वर (पितरम्) पालन के हेतु सूर्य को (सः) वह (मातरम्) निर्माण के कारण भूमि को (वेद) जानता है, (सः) वह (सूनुः) सर्वप्रेरक (भुवत्) है, (सः) वह (पुनर्मघः) वारवार धनदाता (भुवत्) है। (सः) उसने (अन्तरिक्षम्) आकाश और (द्याम्) प्रकाशमान (स्वः) सूर्यलोक को (और्णोत्) घेर लिया है, (सः) वह (इदम्) इस (विश्वम्) जगत में (अभवत्) व्याप रहा है, (सः) वही (आ) समीप होकर (अभवत्) वर्तमान हुआ है ॥२॥

卐 सूक्तम् २ 卐

१ अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकाम) । आत्मा । त्रिष्टुप् ।

अथ॑र्वाणं पि॒तरं॑ दे॒वब॑न्धुं मा॒तुर्गर्भं॑ पि॒तुर॑सुं॒ युवा॑नम् ।

य इ॒मं य॒ज्ञं मन॑सा चि॒केत॒ प्र णो॑ वोच॒स्तमि॒हेह ब्र॑वः ॥१॥

पदार्थ—(यः) जिस आप ने (इमम्) इस (यज्ञम्) पूजनीय, (पितरम्) पालनकर्त्ता, (देवबन्धुम्) विद्वानों के हितकारी, (मातुः) निर्माण के कारण पृथिवी के (गर्भम्) गर्भ [गर्भ समान व्यापक], (पितुः) पालन हेतु सूर्य के (असुम्) प्राण, (युवानम्) संयोजक वियोजक (अथर्वाणम्) निश्चल परमेश्वर को (मनसा) विज्ञान के साथ (चिकेत) जाना है, और जिस तूने (नः) हमें (प्र) अच्छे प्रकार (वोचः) उपदेश किया है, सो तू (तम्) उस [ब्रह्म] का (इह इह) यहां पर ही (ब्रवः) उपदेश कर ॥१॥

卐 सूक्तम् ३ 卐

अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकाम) । आत्मा । त्रिष्टुप् ।

अ॒या वि॒ष्ठा ज॒नय॒न् कर्व॑राणि॒ स हि घृणि॑रु॒रुर्वरा॑य गा॒तुः ।

स प्र॒त्युदै॑द् ध॒रुणं॒ मध्वो॒ अग्रं॒ स्वया॑ त॒न्वा त॒न्व॑मैरयत ॥१॥

पदार्थ—(अया विष्ठा) इस रीति से (कर्वराणि) कर्मों को (जनयन्) प्रकट करते हुए (सः) दुःखनाशक, (घृणिः) प्रकाशमान, (उरुः) विस्तीर्ण, (गातुः) पाने योग्य वा गाने योग्य प्रभु ने (हि) ही (वराय) उत्तम फल के लिये (मध्वः) ज्ञान के (धरुणम्) धारण योग्य (अग्रम्) श्रेष्ठपन को (प्रत्युदैत्) प्रत्यक्ष उदय किया है और (स्वया) अपनी (तन्वा) विस्तृत शक्ति से (तन्वम्) विस्तृत सृष्टि को (ऐरयत) प्रकट किया है ॥१॥

卐 सूक्तम् ४ 卐

अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकाम) । वायु । त्रिष्टुप् ।

एक॑या च द॒शभि॑श्च सुहुते॒ द्वाभ्या॑मि॒ष्टये॑ विंश॒त्या च॑ ।

ति॒सृभि॑श्च॒ वह॑से त्रिं॒शता॑ च वि॒युग्भि॑र्वाय इ॒ह ता वि मु॑ञ्च ॥१॥

पदार्थ—(सुहुते) हे बड़े दानी परमात्मन् ! (इष्टये) हमारी इच्छापूर्ति के लिये (एकया च च दशभिः) एक और दश [ग्यारह], (द्वाभ्यां च विंशत्या) दो और बीस [बाईस], (च) और (तिसृभिः च त्रिंशता) तीन और तीस [तैंतीस] (वियुग्भिः) विशेष योजनाओं के साथ [हमें] (वहसे) तू ले चलता है, (वायो) हे सर्वव्यापक ईश्वर (ता) उन [योजनाओं] को (इह) यहां [हम में] (वि) विशेष करके (मुञ्च) छोड़दे ॥१॥

卐 सूक्तम् ५ 卐

१—५ अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकाम) आत्मा । त्रिष्टुप्, ३ पंक्ति, ४ अनुष्टुप्

य॒ज्ञेन॑ य॒ज्ञम॑यजन्त दे॒वास्तानि॒ धर्मा॑णि प्रथ॒मान्या॑सन् ।

ते ह॒ नाकं॑ महि॒मानः॑ सचन्त॒ यत्र॒ पूर्वे॑ सा॒ध्याः सन्ति॑ दे॒वाः ॥१॥

पदार्थ—(देवाः) विद्वानों ने (यज्ञेन) अपने पूजनीय कर्म से (यज्ञम्) पूजनीय परमात्मा को (अयजन्त) पूजा है, (तानि) वे [उन के] (धर्माणि) धारण योग्य ब्रह्मचर्य आदि धर्म (प्रथमानि) मुख्य, प्रथम कर्तव्य (आसन्) थे। (ते) उन (महिमानः) महापुरुषों ने (ह) ही (नाकम्) दुःखरहित परमेश्वर को (सचन्त) पाया है, (यत्र) जिस परमेश्वर में रहकर (पूर्वे) पहिले, बड़े बड़े (साध्याः) साधनीय, श्रेष्ठ कर्मों के साधने वाले लोग (देवाः) देवता अर्थात् विजयी (सन्ति) होते हैं ॥१॥

य॒ज्ञो ब॑भूव॒ स आ ब॑भूव॒ स प्र ज॑ज्ञे॒ स उ॑ वावृधे॒ पुनः॑ ।

स दे॒वाना॒मधि॑पतिर्बभूव॒ सो अ॒स्मासु॒ द्रवि॑ण॒मा द॑धातु ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह परमेश्वर (यज्ञः) पूजनीय (बभूव) हुआ और (आ) सब ओर (बभूव) व्यापक हुआ, (सः) वह (प्र) अच्छे प्रकार (जज्ञे) जाना गया (स उ) वही (पुनः) निश्चय करके (वावृधे) बढ़ा। (सः) वह (देवानाम्) दिव्य वायु सूर्य आदि लोकों का (अधिपतिः) अधिपति (बभूव) हुआ, (सः) वही (अस्मासु) हमारे बीच (द्रविणम्) प्रापणीय बल (आ) सब ओर से (दधातु) धारण करे ॥२॥

यद् दे॒वा दे॒वान् ह॒विषाय॑ज॒न्ताम॑र्त्यान् मन॒साम॑र्त्येन ।

मदे॑म॒ तत्र॑ पर॒मे व्यो॑म॒न् पश्ये॑म॒ तदुदि॑तौ॒ सूर्य॑स्य ॥३॥

पदार्थ—(देवाः) जितेन्द्रिय विद्वानों ने (यत्) जिस ब्रह्म के (अमर्त्यान्) न मरे हुए [अविनाशी] (देवान्) उत्तम गुणों का (हविषा) अपने देने और लेने योग्य कर्म से और (अमर्त्येन) न मरे हुए [जीते जागते] (मनसा) मन से (अयजन्त) सत्कार संगति करण और दान किया है। (तत्र) उस (परमे) सब से बड़े (व्योमन्) विविध रक्षक ब्रह्म में (मदेम) हम आनन्द भोगें और (तत्) उस ब्रह्म को (सूर्यस्य) सूर्य के (उदितौ) उदय में [विना रोक] (पश्येम) हम देखते रहें ॥३॥

यत् पुरु॑षेण ह॒विषा॑ य॒ज्ञं दे॒वा अत॑न्वत ।

अस्ति॒ नु तस्मा॒दोजी॑यो॒ यद् वि॒हव्ये॑नेजि॒रे ॥४॥

पदार्थ—(यत्) जब (देवाः) विद्वानों ने (पुरुषेण) अपने अग्रगामी आत्मा के साथ (हविषा) देने और लेने योग्य व्यवहार से (यज्ञम्) पूजनीय ब्रह्म को (अतन्वत) फैलाया। वह ब्रह्म (नु) अब (तस्मात्) उस [आत्मा] से (ओजीयः) अधिक बलवान् (अस्ति=आसीत्) हुआ, (यत्) जिस [ब्रह्म] को उन्होंने (विहव्येन) विशेष देने योग्य व्यवहार से (ईजिरे) पूजा था ॥४॥

मु॒ग्धा दे॒वा उ॒त शु॒नाय॑ज॒न्तोत गोरङ्गैः॑ पुरु॒धाय॑जन्त ।

य इ॒मं य॒ज्ञं मन॑सा चि॒केत॒ प्र णो॑ वोच॒स्तमि॒हेह ब्र॑वः ॥५॥

पदार्थ—(देवाः) विद्वान् लोग [ईश्वर की सीमा के विषय में] (मुग्धाः) मूढ़ होकर (उत) भी (शुना) ज्ञान से [परमात्मा को] (अयजन्त) मिले हैं, (उत) और (गोः) वेदवाणी के (अङ्गैः) अंगों से ([उसे] (पुरुधा) विविध प्रकार से (अयजन्त) पूजा है। (यः) जिस आपने (इमम् यज्ञम्) इस पूजनीय परमेश्वर को (मनसा) विज्ञान के साथ (चिकेत) जाना है, और जिस तूने (नः) हमें (प्र) अच्छे प्रकार (वोचः) उपदेश किया है, सो तू (तम्) उस परमेश्वर का (इह इह) यहां पर ही (ब्रवः) उपदेश कर ॥५॥

卐 सूक्तम् ६ 卐

१—४ अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकामः) । अदिति । त्रिष्टुप्, २ भुरिक्, ३-४ विराड्जगती ।

अदि॑ति॒र्द्यौरदि॑तिर॒न्तरि॑क्ष॒मदि॑तिर्मा॒ता स पि॒ता स पु॒त्रः ।

विश्वे॑ दे॒वा अदि॑तिः॒ पञ्च॒ जना॒ अदि॑तिर्जा॒तमदि॑ति॒र्जनि॑त्वम् ॥१॥

पदार्थ—(अदितिः=अदिते) अदीन वा अखण्डित अदिति अर्थात् प्रकृति से (द्यौः) प्रकाशमान सूर्य, (अदितिः) अदिति से (अन्तरिक्षम्) मध्यवर्ती आकाश, (अदितिः) अदिति से (माता) हमारी माता, (सः पिता) वह हमारा पिता, (स पुत्रः) वह हमारा पुत्र [सन्तान] है। (अदितिः) अदिति से (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य गुण वाले पदार्थ, (अदितिः) अदिति से (पञ्च) विस्तृत [वा पञ्चभूत रचित] (जनाः) सब जीव (अदितिः) अदिति से (जातम्) उत्पन्न जगत् और (जनित्वम्) उत्पन्न होने वाला जगत् है ॥१॥

म॒हीमू॒ षु मा॒तरं॑ सुव्र॒ताना॑मृ॒तस्य॒ पत्नी॒मव॑से हुवेम ।

तु॒वि॒क्ष॒त्राम॒जर॑न्तीमुरू॒चीं सु॒शर्मा॑ण॒मदि॑तिं सु॒प्रणी॑तिम् ॥२॥

पदार्थ—(महीम्) पूजनीय, (मातरम्) माता [के समान हितकारिणी], (सुव्रतानाम्) सुकर्मियों के (ऋतस्य) सत्यधर्म की (पत्नीम्) रक्षा करनेवाली,

(तुविक्षत्राम्) बहुत बल वा धन वाली, (अजरन्तीम्) न घटने वाली, (उरूचीम्) बहुत फैली हुई, (सुशर्म्माणम्) उत्तम घर वा सुख वाली, (सुप्रणीतिम्) बहुत सुन्दर नीति वाली (अदितिम्) अदिति, अदीन पृथ्वी को (उ) ही (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (सु) अच्छे प्रकार (हुवामहे) हम बुलाते हैं ॥२॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।

दैवीं नावं स्वरित्रामनागसो अस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥३॥

पदार्थ—(सुत्रामाणम्) अच्छे प्रकार रक्षा करने हारी, (पृथिवीम्) फैली हुई, (द्याम्) प्राप्ति योग्य, (अनेहसम्) अखण्डित, (सुशर्म्माणम्) अत्यन्त सुख देनेवाली, (सुप्रणीतिम्) बहुत सुन्दर नीतिवाली (अदितिम्) अदिति, अदीन वेद विद्यारूप, (दैवीम्) देवताओं, विद्वानों की बनाई हुई, (स्वरित्राम्) सुन्दर बल्लियों वाली, (अस्रवन्तीम्) न चूने वाली (नावम्) नाव पर (स्वस्तये) आनन्द के लिये (अनागस) निर्दोष हम (आ रुहेम) चढ़ें ॥३॥

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे ।

यस्या उपस्थ उर्व१न्तरिक्षं सा नः शर्म त्रिवरूथं नि यच्छात् ॥४॥

पदार्थ—(वाजस्य) अन्न वा बल के (प्रसवे) उत्पन्न करने मे (नु) अब (मातरम्) निर्माण करने वाली, (महीम्) विशाल, (अदितिम्) अदीन शक्ति, परमेश्वर को (नाम) प्रसिद्ध रूप से (वचसा) वेदवाक्य के साथ (करामहे) हम स्वीकार करें । (यस्या) जिस [शक्ति] की (उपस्थे) गोद मे (उरु) यह बड़ा (अन्तरिक्षम्) आकाश है, (सा) वह (नः) हमे (त्रिवरूथम्) तीन प्रकार के, आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक सुखो वाला (शर्म) घर (नि) नियम के साथ (यच्छात्) देवे ॥४॥

卐 सूक्तम ७ 卐

१ अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकाम) अदितिः । आर्षी जगती ।

दितेः पुत्राणामदितेरकारिषमव देवानां बृहतामनर्मणाम् ।

तेषां हि धाम गभिषक् समुद्रियं नैनान्नमसा परो अस्ति कश्चन ॥१॥

पदार्थ—(दिते) दीनता से (पुत्राणाम्) शुद्ध करने वाले वा बहुत बचाने वाले, (अदितेः) अदीनता के (देवानाम्) देने वाले वा प्रकाश करने वाले, (बृहताम्) बड़े गुण वाले, (अनर्मणाम्) हिंसा न करने वाले वा अजेय (तेषाम्) उन पुरुषों के (धाम) धारण सामर्थ्य को (हि) ही (गभिषक्) गहराई से युक्त, (समुद्रियम्) [पार्थिव और अन्तरिक्ष] समुद्र मे रहनेवाला (अव) निश्चय करके (अकारिषम्) मैंने जाना है, (क चन) कोई भी (पर) शत्रु (एनान्) इनको (नमसा) [उनके] अन्न वा सत्कार के कारण (न) नहीं (अस्ति) पाता है ॥१॥

卐 सूक्तम् ८ 卐

१ उपरिबभ्रवः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् ।

भद्रादधि श्रेयः प्रेहि बृहस्पतिः पुरएता ते अस्तु ।

अथेममस्या वर आ पृथिव्या आरेशत्रुं कृणुहि सर्ववीरम् ॥१॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (भद्रात्) एक मङ्गल कर्म से (श्रेयः) अधिक मङ्गलकारी कर्म को (अधि) अधिकारपूर्वक (प्र इहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हो, (बृहस्पतिः) बड़े-बड़े लोको का पालक परमेश्वर (ते) तेरा (पुर एता) अग्रगामी (अस्तु) होवे । (अथ) फिर तू (इमम्) इस [अपने आत्मा] को (अस्या पृथिव्याः) इस पृथिवी के (वरे) श्रेष्ठ फल मे (आरे-शत्रुम्) शत्रुओ से दूर (सर्ववीरम्) सर्ववीर, सबमे वीर (आ) सब ओर से (कृणुहि) बना ॥१॥

卐 सूक्तम् ९ 卐

१—४ उपरिबभ्रव । पूषा । त्रिष्टुप्, ३ त्रिपदा आर्षी गायत्री, ४ अनुष्टुप् ।

प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।

उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ॥१॥

पदार्थ—(पूषा) पूषा, पोषण करनेवाला परमेश्वर (पथाम्) सब मार्गों मे से (प्रपथे) चौड़े मार्ग मे (दिवः) सूर्य के (प्रपथे) चौड़े मार्ग मे और (पृथिव्याः) पृथिवी के (प्रपथे) चौड़े मार्ग में (अजनिष्ट) प्रकट हुआ है । (प्रजानन्) बड़ा विद्वान् वह (उभे) दोनों (प्रियतमे) [परस्पर] अति प्रिय (सधस्थे) एक साथ स्थिति करने वाले [सूर्य और पृथिवी लोक] (अभि) में (आ) हमारे निकट (च च) और (परा) दूर (चरति) विचरता रहता है ॥१॥

पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।

स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन् पुर एतु प्रजानन् ॥२॥

पदार्थ—(पूषा) पूषा, पोषण करनेवाला परमेश्वर (इमाः) इन (सर्वाः) सब (आशाः) दिशाओं को (अनु) लगातार (वेद) जानता है, (सः) वह (अस्मान्) हमे (अभयतमेन) अत्यन्त अभय [मार्ग] से (नेषत्) ले चले । (स्वस्तिदाः) मङ्गलदाता, (आघृणिः) बड़ा प्रकाशमान (सर्ववीरः) सब में वीर, (प्रजानन्) बड़ा विद्वान् वह (अप्रयुच्छन्) बिना चूक किये हुए (पुरः) हमारे आगे-आगे (एतु) चले ॥२॥

पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन ।

स्तोतारस्त इह स्मसि ॥३॥

पदार्थ—(पूषन्) हे पूषा, पालन करने वाले परमेश्वर ! (तव) तेरे (व्रते) वरणीय नियम में [रहकर] (वयम्) हम (कदा चन) कभी भी (न) न (रिष्येम) दुःखी होवें । (इह) यहाँ पर (ते) तेरे (स्तोतार) स्तुति करने वाले (स्मसि) हम लोग हैं ॥३॥

परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् ।

पुनर्नो नष्टमाजतु सं नष्टेन गमेमहि ॥४॥

पदार्थ—(पूषा) पूषा, पोषण करनेवाला परमात्मा (दक्षिणम्) अपना दाहिना (हस्तम्) हाथ (परस्तात्) पीछे से [हमारे पुरुषार्थानुकूल] (परि) सब ओर (दधातु) धारण करे । वह (नः) हमे (नष्टम्) नष्ट बल को (पुनः) फिर (आ अजतु) लावे, [पाये हुए] (नष्टेन) नष्ट बल के साथ (सम् गमेमहि) हम मिले रहें ॥४॥

卐 सूक्तम् १० 卐

१ शौनक । सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

यस्ते स्तनः शशयुर्यो मयोभूर्यः सुम्नयुः सुहवो यः सुदत्रः ।

येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवे कः ॥१॥

पदार्थ—(सरस्वति) हे सरस्वती, विज्ञानवती स्त्री ! [वा वेदविद्या] (यः) जो (ते) तेरा (स्तनः) स्तन, दूध का आधार (शशयुः) प्रशंसा पाने वाला, (यः) जो (मयोभूः) सुख देने वाला और (यः) जो (सुम्नयुः) उपकार करने वाला, (सुहवः) अच्छे प्रकार ग्रहणयोग्य और (यः) जो (सुदत्रः) बड़ा दानी है । (येन) जिस स्तन से (विश्वा) सब (वार्याणि) स्वीकरणीय अंगो को (पुष्यसि) तू पुष्ट करती है (तम्) उस स्तन को (इह) यहाँ (धातवे) पीने के लिये (कः) तू ने ठीक किया है ॥१॥

卐 सूक्तम् ११ 卐

१ शौनकः । सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

यस्ते पृथु स्तनयित्नुर्य ऋष्वो दैवः केतुर्विश्वमाभूषतीदम् ।

मा नो वधीर्विद्युता देव सस्यं मोत वधी रश्मिभिः सूर्यस्य ॥१॥

पदार्थ—(देव) हे जलदाता मेघ ! (यः) जो (ते) तेरा (पृथु) विस्तीर्ण और (यः) जो (ऋष्वः) इधर-उधर चलनेवाला वा बड़ा, (दैवः) आकाश मे रहने वाला, (केतुः) जताने वाला झंडा रूप (स्तनयित्नुः) गर्जन (इदम् विश्वम्) इस सब स्थान मे (आभूषति) व्यापता है । (नः) हमारे (सस्यम्) धान्य को (विद्युता) चमचमाती बिजुली से (मा वधीः) मत नाश कर, और (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मिभिः) किरणो से (उत) भी (मा वधीः) मत सुखा ॥१॥

卐 सूक्तम् १२ 卐

१—४ शौनक । सभा । १—२ सभा, पितर, ३ इन्द्रः, ४ मनः । अनुष्टुप्, १ भुरिक् त्रिष्टुप् ।

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने

येना संगच्छा उप मा स शिक्षाच्चारु वदानि पितरः संगतेषु ॥१॥

पदार्थ—(प्रजापतेः) प्रजापति अर्थात् प्रजारक्षक पुरुषार्थ की (दुहितरौ) पूरण करने वाली [वा दो पुत्रियों के समान हितकारी] (संविदाने) यथावत् मेल वाली (सभा) सभा, विद्वानो की संगति (च च) और (समितिः) एकता (मा) मुझे (अवताम्) तृप्त करें । (येन) जिस पुरुष के साथ (संगच्छै) मैं मिलूं, (सः) वह (मा) मुझे (उप) आदर से (शिक्षात्) समर्थ करे, (पितरः) हे पितरो, पालन करने वाले विद्वानो ! (संगतेषु) सम्मेलनों के बीच में (चारु) ठीक-ठीक (वदानि) बोलूं ॥१॥

विद्म ते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि ।

ये ते के च सभासदस्ते मे सन्तु सवाचसः ॥२॥

पदार्थ—(सभे) हे सभा ! (ते) तेरा (नाम) नाम (विद्म) हम जानते हैं, तू (नरिष्टा) नरों की इष्ट देवी (वै) ही (नाम) नाम वाली (असि) है। (च) और (ये के) जो कोई (ते) तेरे (सभासदः) सभासद हैं, (ते) वे सब (मे) मेरे लिये (सवाचसः) एक वचन (सन्तु) होवें ॥२॥

एषामहं समासीनानां वर्चो विज्ञानमा ददे ।

अस्याः सर्वस्याः संसदो मामिन्द्र भगिनं कृणु ॥३॥

पदार्थ—(अहम्) मैं [सभापति] (एषाम्) इन (समासीनानाम्) यथावत् बैठे हुए पुरुषों का (वर्चः) तेज और (विज्ञानम्) विज्ञान (आ ददे) अंगीकार करता हूँ। (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (माम्) मुझ को (अस्याः) इस (सर्वस्याः संसदः) सब सभा का (भगिनम्) ऐश्वर्यवान (कृणु) कर ॥३॥

यद् वो मनः परागतं यद् बद्धमिह वेह वा ।

तद् व आ वर्तयामसि मयि वो रमतां मनः ॥४॥

पदार्थ—[हे सभासदो !] (यत्) जो (वः) तुम्हारा (मनः) मन (परागतम्) उचट गया है (वा) अथवा (यत्) जो (इह वा इह) इधर उधर [प्रतिकूल विषयों में] (बद्धम्) बंधा हुआ है (वर्तयामसि) हम लौटाते हैं [जिससे] (वः मनः) तुम्हारा मन (मयि) मुझ में (रमताम्) ठहर जावे ॥४॥

卐 सूक्तम् १३ 卐

१—२ अथर्वा (द्विषो वर्चो हर्तुकाम)। सूर्य। अनुष्टुप्।

यथा सूर्यो नक्षत्राणामुद्यंस्तेजांस्याददे ।

एवा स्त्रीणां च पुंसां च द्विषतां वर्च आ ददे ॥१॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (उद्यन्) उदय होते हुए (सूर्यः) सूर्य ने (नक्षत्राणाम्) नक्षत्रों के (तेजांसि) तेजों को (आददे) ले लिया है। (एव) वैसे ही (द्विषताम्) द्वेषी (स्त्रीणाम्) स्त्रियों (च च) और (पुंसाम्) पुरुषों का (वर्चः) तेज (आ ददे) मैंने ले लिया है ॥१॥

यावन्तो मा सपत्नानामायन्तं प्रतिपश्यथ ।

उद्यन्त्सूर्य इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आ ददे ॥२॥

पदार्थ—(सपत्नानाम्) शत्रुओं में से (यावन्तः) जितने लोग तुम (मा आयन्तम्) मुझे आते हुए को (प्रतिपश्यथ) निहारते हो। (द्विषताम्) उन वैरियों का (वर्चः) तेज (आ ददे) मैं लिये लेता हूँ। (इव) जैसे (उद्यन् सूर्यः) उदय होता हुआ सूर्य (सुप्तानाम्) सोते हुए पुरुषों का ॥२॥

卐 इति प्रथमोऽनुवाकः 卐

卐

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ।

卐 सूक्तम् १४ 卐

१—४ अथर्वा। सविता। अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्, ४ जगती।

अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुम् ।

अर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियं मतिम् ॥१॥

पदार्थ—(त्यम्) उस (देवम्) सुखदाता (ओण्योः) सूर्य और पृथिवी के (सवितारम्) उत्पन्न करने वाले, (कविक्रतुम्) सर्वज्ञ बुद्धि वा कर्म वाले, (सत्यसवम्) सच्चे ऐश्वर्य वाले, (रत्नधाम्) रमणीय विज्ञानों वा हीरा आदिकों वा लोकों के धारण करने वाले, (प्रियम्) प्रीति करने वाले, (मतिम्) मनन करने वाले, परमेश्वर को (अभि अभि) बहुत भले प्रकार (अर्चामि) मैं पूजता हूँ ॥१॥

ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत् सवीमनि ।

हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपात् स्वः ॥२॥

पदार्थ—(यस्य) जिसकी (ऊर्ध्वा) ऊँची, (अमतिः) व्यापनेवाली, (भाः) चमक (सवीमनि) सृष्टि के बीच (अदिद्युतत्) चमकी हुई है। (हिरण्यपाणिः) अन्धकार वा दरिद्रता हरने वाले सूर्य आदि और सुवर्ण आदि तेजों के व्यवहार वाले, (सुक्रतुः) उत्तम बुद्धि वा कर्मवाले उस ईश्वर ने (कृपात्) अपने सामर्थ्य से (स्वः) स्वर्ग अर्थात् मोक्ष सुख (अमिमीत) रचा है ॥२॥

सावीर्हि देव प्रथमाय पित्रे वर्ष्माणमस्मै वरिमाणमस्मै ।

अथास्मभ्यं सवितर्वार्याणि दिवोदिव आ सुवा भूरि पश्वः ॥३॥

पदार्थ—(देव) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! तू ने (हि) ही (प्रथमाय) हमसे पहले वर्तमान (पित्रे) पालन करने वाले (अस्मै) इस [पुरुष] को और (अस्मै) इस [दूसरे पुरुष] को (वर्ष्माणम्) उच्च स्थान और (वरिमाणम्) फैलाव वा उत्तमपन (सावीः) दिया है। (अथ) सो (सवितः) हे सर्वप्रेरक परमेश्वर ! (अस्मभ्यम्) हमें (दिवोदिवे) सब दिनों (वार्याणि) उत्तम विज्ञान और धन और (भूरि) बहुत (पश्वः) मनुष्य, गौ घोड़ा, हाथी आदि (आ सुव) भेजता रहे ॥३॥

दमूना देवः सविता वरेण्यो दधद् रत्नं दक्षं पितृभ्य आयूंषि ।

पिबात् सोमं ममददेनमिष्टे परिज्मा चित् क्रमते अस्य धर्मणि ॥४॥

पदार्थ—(दमूनाः) दमनशील शान्त स्वभाव, (देवः) व्यवहारकुशल, (वरेण्यः) स्वीकार योग्य (सविता) चलाने वाला पुरुष (पितृभ्यः) पालन करने वाले विद्वानों के हित के लिये (रत्नम्) रमणीय धन, (दक्षम्) बल और (आयूंषि) जीवन साधनों को (दधत्) धारण करता हुआ (सोमम्) अमृत का (पिबात्) पान करे और (एनम्) इस [परमेश्वर] को (इष्टे) यज्ञ में (ममदत्) प्रसन्न करे, (परिज्मा) सब ओर चलने वाला पुरुष (चित्) ही (अस्य) इस [परमेश्वर] के (धर्मणि) धर्म अर्थात् नियम में (क्रमते) चला जाता है ॥४॥

卐 सूक्तम् १५ 卐

१ भृगु। सविता। त्रिष्टुप्।

तां सवितः सत्यसवां सुचित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्ववाराम् ।

यामस्य कण्वो अदुहत् प्रपीनां सहस्रधारां महिषो भगाय ॥१॥

पदार्थ—(सवितः) हे सब ऐश्वर्य वाले आचार्य ! (ताम्) उस (सत्यसवाम्) सत्य ऐश्वर्यवाली, (सुचित्राम्) बड़ी विचित्र, (विश्ववाराम्) सबसे स्वीकार करने योग्य (सुमतिम्) सुमति [यथावत् विषय वाली बुद्धि] को (अहम्) मैं (आ) आदरपूर्वक (वृणे) मांगता हूँ, (याम्) जिस (प्रपीनाम्) बहुत बढ़ी हुई, (सहस्रधाराम्) सहस्रों विषयों की धारण करने वाली [सुमति] को (अस्य) इस [जगत] के (भगाय) ऐश्वर्य के लिये (कण्वः) मेधावी, (महिषः) पूजनीय परमात्मा ने (अदुहत्) परिपूर्ण किया है ॥१॥

卐 सूक्तम् १६ 卐

१ भृगु। सविता। त्रिष्टुप्।

बृहस्पते सवितर्वर्धयैनं ज्योतयैनं महते सौभगाय ।

संशितं चित् संतरं सं शिशाधि विश्व एनमनु मदन्तु देवाः ॥१॥

पदार्थ—(बृहस्पते) हे बड़े सज्जनों के रक्षक ! (सवितः) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त उपदेशक ! (एनम्) इस [राजा] को (महते) बड़े (सौभगाय) उत्तम ऐश्वर्य के लिये (वर्धय) बढ़ा और (ज्योतय) ज्योति वाला कर। (चित्) और (संशितम्) तीक्ष्ण बुद्धिवाले (एनम्) इस [राजा] को (संतरम्) अतिशय करके (सम्) यथावत् (शिशाधि) शिक्षा दे, (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् सभ्य लोग (एनम्) इस [राजा] के (अनु मदन्तु) अनुकूल प्रसन्न हों ॥१॥

卐 सूक्तम् १७ 卐

१—४ भृगु। धाता, सविता, ४ अग्नि। त्वष्टा, विष्णु। अनुष्टुप्, त्रिपदा, आर्षी, गायत्री ३—४ त्रिष्टुप्।

धाता दधातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः ।

स नः पूर्णेन यच्छतु ॥१॥

पदार्थ—(ईशानः) ऐश्वर्यवान् (जगतः पतिः) जगत् का पालने वाला, (धाता) धाता विधाता [सृष्टि कर्ता] (नः) हमें (रयिम्) धन (दधातु) देवे। (सः) वही (नः) हमको (पूर्णेन) पूर्ण बल से (यच्छतु) ऊँचा करे ॥१॥

धाता दधातु दाशुषे प्राचीं जीवातुमक्षिताम् ।

वयं देवस्य धीमहि सुमतिं विश्वराधसः ॥२॥

पदार्थ—(धाता) सबका पोषण करने वाला परमेश्वर (दाशुषे) उदारचित्त पुरुष को (प्राचीम्) अच्छे प्रकार आदरयोग्य (अक्षिताम्) अक्षय (जीवातुम्) जीविका (दधातु) देवे। (विश्वराधसः) सर्वधनी (देवस्य) प्रकाशस्वरूप ईश्वर की (सुमतिम्) सुमति [यथावत् विषय वाली बुद्धि] को (वयम्) हम (धीमहि) धारण करें ॥२॥

धाता विश्वा वार्या दधातु प्रजाकामाय दाशुषे दुरोणे ।

तस्मै देवा अमृतं सं व्ययन्तु विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ॥३॥

पदार्थ—(धाता) सब का धारण करने वाला परमेश्वर (विश्वा) सब (वार्या) उत्तम विज्ञान और धन (प्रजाकामाय) प्रजा, उत्तम सन्तान, भृत्य आदि चाहने वाले (दाशुषे) दानशील पुरुष को (दुरोणे) उसके घर में (दधातु) देवे। (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग और (देवा) उत्तम गुण और (सजोषाः) समान प्रीति वाली (अदितिः) अदीन भूमि (तस्मै) उस पुरुष को (अमृतम्) अमृत [पूर्ण सुख] (सम्) यथावत् (व्ययन्तु) पहुँचावें ॥३॥

धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपतिर्नो अग्निः ।

त्वष्टा विष्णुः प्रजया संरराणो यजमानाय द्रविणं दधातु ॥४॥

पदार्थ—(सविता) सर्वप्रेरक, (धाता) धारण करने वाला (रातिः) दानाध्यक्ष, (प्रजापतिः) प्रजापालक, (निधिपतिः) निधिपति [कोषाध्यक्ष] और (अग्निः) अग्नि-समान [अविद्या रूपी अन्धकार का नाश करने वाला] विद्वान् पुरुष [ये सब अधिकारी] (नः) हमारे (इदम्) इस [गृहस्थ कर्म] को (जुषन्ताम्) सेवन करें। (विष्णुः) सर्वव्यापक, (संरराणः) सम्यक् दाता, (त्वष्टा) निर्माता परमेश्वर (प्रजया) प्रजा के सहित वर्त्तमान (यजमानाय) पदार्थों के संयोजक-वियोजक विज्ञानी को (द्रविणम्) बल या धन (दधातु) देवे ॥४॥

卐 सूक्तम् १८ 卐

१—२ अथर्वा । पृथिवी, पर्जन्यः । १ चतुष्पाद्भुरिगुष्णिक्, २ त्रिष्टुप् ।

प्र नभस्व पृथिवि भिन्द्धी३दं दिव्यं नभः ।

उद्नो दिव्यस्य नो धातरीशानो वि ष्या दृतिम् ॥१॥

पदार्थ—(पृथिवी) हे अन्तरिक्ष ! [वायु] (इदम्) इस (दिव्यम्) आकाश में छाये हुए (नभः) जल को (प्र) उत्तम रीति से (नभस्व) गिरा और (भिन्द्धि) छिन्न-भिन्न कर दे [फैला दे]। (धातः) हे पोषक, सूर्य ! (ईशानः) समर्थ तू (नः) हमारे लिये (दिव्यस्य) दिव्य [उत्तम गुण वाले] (उद्नः) जलके (दृतिम्) पात्र [मेघ] को (वि ष्य) खोल दे ॥१॥

न घ्रंस्तताप न हिमो जघान प्र नभतां पृथिवी जीरदानुः ।

आपश्चिदस्मै घृतमित् क्षरन्ति यत्र सोमः सदमित् तत्र भद्रम् ॥२॥

पदार्थ—(घ्रन्) चमकता हुआ सूर्य (न तताप) न तपावे (न) न (हिमः) शीत (जघान) मारे, [किन्तु] (जीरदानुः) गति देने वाला (पृथिवी) अन्तरिक्ष [जल को] (प्र) अच्छे प्रकार (नभताम्) गिरावे। (आपः) सब प्रजायें (चित्) भी (अस्मै) इस [जगत्] के लिये (घृतम्) सार रस (इत्) ही (क्षरन्ति) बरसाती हैं, (यत्र) जहां (सोमः) ऐश्वर्य है (तत्र) वहाँ (सदम् इत्) सदा ही (भद्रम्) कल्याण है ॥२॥

卐 सूक्तम् १९ 卐

१ ब्रह्मा । प्रजापतिः । जगती ।

प्रजापतिर्जनयति प्रजा इमा धाता दधातु सुमनस्यमानः ।

संजानानाः संमनसः सयोनयो मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ॥१॥

पदार्थ—(प्रजापतिः) प्रजापालक परमेश्वर (इमाः) इन सब (प्रजाः) सृष्टि के जीवों को (जनयति) उत्पन्न करता है, वह (सुमनस्यमानः) शुभचिन्तक (धाता) पोषक परमात्मा [इनका] (दधातु) पोषण करे [जो] (संजानानाः) एक ज्ञान वाली, (संमनसः) एक मन वाली और (सयोनयः) एक कारण वाली हैं, (पुष्टपतिः) वह पोषण का स्वामी [प्रजायें] (मयि) मुझ में (पुष्टम्) पोषण (दधातु) धारण करे ॥१॥

卐 सूक्तम् २० 卐

१—६ अथर्वा । अनुमतिः । अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्, ४ भुरिक्, ५ जगती, ६ अतिशाक्वरगर्भा जगती ।

अन्वद्य नोऽनुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् ।

अग्निश्च हव्यवाहनो भवतां दाशुषे मम ॥१॥

पदार्थ—(अनुमतिः) अनुमति, अनुकूल बुद्धि (अद्य) आज (नः) हमारे (यज्ञम्) संगति व्यवहार को (देवेषु) विद्वानों में (अनु मन्यताम्) निरन्तर माने। (च) और (अग्निः) अग्नि [पराक्रम] (मम दाशुषे) मुझ दाता के लिये (हव्यवाहनः) ग्राह्य पदार्थों का पहुँचाने वाला (भवताम्) होवे ॥१॥

अन्विदनुमते त्वं मंससे शं च नस्कृधि ।

जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ॥२॥

पदार्थ—(अनुमते) हे अनुमति ! [अनुकूल बुद्धि] (त्वम्) तू (इत्) अवश्य [हमारी प्रार्थना] (अनु मंससे) सदा मानती रहे, (च) और (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याण (कृधि) कर। (हव्यम्) ग्रहण योग्य (आहुतम्) यथावत् दिया पदार्थ (जुषस्व) स्वीकार कर, (देवि) हे देवी ! (नः) हमें (प्रजाम्) सन्तान भृत्य आदि (ररास्व) दे ॥२॥

अनु मन्यतामनुमन्यमानः प्रजावन्तं रयिमक्षीयमाणम् ।

तस्य वयं हेडसि मापि भूम सुमृडीके अस्य सुमतौ स्याम ॥३॥

पदार्थ—(अनुमन्यमानः) निरन्तर जानने वाला परमेश्वर (प्रजावन्तम्) उत्तम सन्तान, भृत्य आदि वाला, (अक्षीयमाणम्) न घटने वाला (रयिम्) धन (अनु) अनुग्रह करके (मन्यताम्) जनावे। (वयम्) हम (तस्य) उसके (हेडसि) क्रोध में (अपि) कभी (मा भूम) न होवें, (अस्य) इसके (सुमृडीके) उत्तम सुख में और (सुमतौ) सुमति [कल्याणी बुद्धि] में (स्याम) बने रहें ॥३॥

यत् ते नाम सुहवं सुप्रणीतेऽनुमते अनुमतं सुदानु ।

तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥४॥

पदार्थ—(सुप्रणीते) हे उत्तम नीतिवाली ! [वा भले प्रकार चलाने वाली] (अनुमते) अनुमति ! [अनुकूल बुद्धि] (यत्) जो (ते) तेरा (नाम) नाम [यश] (सुहवम्) आदर से आवाहन योग्य, (सुदानु) बड़ा दानी (अनुमतम्) निरन्तर माना गया है। (विश्ववारे) हे वरणीय पदार्थों वाली ! (तेन) उस [अपने यश] से (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] को (पिपृहि) पूर्ण कर दे, (सुभगे) हे बड़े ऐश्वर्य वाली ! (नः) हमें (सुवीरम्) अच्छे वीरों वाला (रयिम्) धन (धेहि) दे ॥४॥

एमं यज्ञमनुमतिर्जगाम सुक्षेत्रतायै सुवीरतायै सुजातम् ।

भद्रा ह्यस्याः प्रमतिर्बभूव सेमं यज्ञमवतु देवगोपा ॥५॥

पदार्थ—(अनुमतिः) अनुमति, [अनुकूल बुद्धि] (सुजातम्) बहुत प्रसिद्ध (इमम्) इस (यज्ञम्) हमारे यज्ञ [संगति व्यवहार] में (सुक्षेत्रतायै) अच्छी भूमियों और (सुवीरतायै) साहसी वीरों की प्राप्ति के लिये (आ जगाम) आई है। और (अस्याः) इसकी (हि) ही (प्रमतिः) अनुग्रह बुद्धि (भद्रा) कल्याणी (बभूव) हुई है, (सा) वही (देवगोपा) विद्वानों की रक्षिका [अनुमति] (इमम्) इस (यज्ञम्) हमारे यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] की (अवतु) रक्षा करे ॥५॥

अनुमतिः सर्वमिदं बभूव यत् तिष्ठति चरति यदु च विश्वमेजति ।

तस्यास्ते देवि सुमतौ स्यामानुमते अनु हि मंससे नः ॥६॥

पदार्थ—(अनुमतिः) अनुमति [अनुकूल बुद्धि] (इदम्) इस (सर्वम्) सब में (बभूव) व्यापी है, (यत्) जो कुछ (तिष्ठति) खड़ा होता है, (चरति) चलता है (च) और (विश्वम्) सब (यत् उ) जो कुछ भी (एजति) चेष्टा करता है [हाथ पांव चलाता है]। (देवि) हे देवी ! (तस्याः ते) उस तेरी (सुमतौ) सुमति [अनुग्रह बुद्धि] में (स्याम) हम रहें, (अनुमते) हे अनुमति ! तू (हि) ही (नः) हमें (अनु) अनुग्रह से (मंससे) जानती रहे ॥६॥

卐 सूक्तम् २१ 卐

१ ब्रह्मा । आत्मा । शक्वरी विराड्गर्भा जगती ।

समेत विश्वे वचसा पतिं दिव एको विभूरतिथिर्जनानाम् ।

स पूर्व्यो नूतनमाविवासत् तं वर्तनिरनु वावृत एकमित् पुरु ॥१॥

पदार्थ—(विश्वे) हे सब लोगो ! (वचसा) वचन [सत्य वचन] से (दिवः) सूर्य के (पतिम्) स्वामी से (समेत) आकर मिलो, (एकः) वह एक (विभुः) सर्वव्यापक प्रभु (जनानाम्) सब मनुष्यों का (अतिथिः) अतिथि [नित्य मिलने योग्य] है। (सः) वह (पूर्व्यः) सब का हितकारी ईश्वर (नूतनम्) इस नवीन [जगत्] को (आविवासत्) विविध प्रकार निवास कराता है, (वर्तनिः) प्रत्येक वर्तने योग्य मार्ग (तम् एकम् अनु) उस एक [परमात्मा] की ओर (इत्) ही (पुरु) अनेक प्रकार से (वावृते) घूमा है ॥१॥

卐 सूक्तम् २२ 卐

१—२ ब्रह्मा । ब्रध्नः । १ द्विपदा एकावसाना विराड् गायत्री, २ त्रिपदा अनुष्टुप् ।

अयं सहस्रमा नो दृशे कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्मणि ॥१॥

पदार्थ—(अयम्) यह [परमेश्वर] (नः कवीनाम् सहस्रम्) हम सहस्र बुद्धिमानों में (आ) व्यापकर (दृशे) दर्शन के लिये (विधर्मणि) विरुद्धधर्मी [पञ्चभूत रचित स्थूल जगत्] में (मतिः) ज्ञानस्वरूप और (ज्योतिः) ज्योतिःस्वरूप है ॥१॥

ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयन् ।

अरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमत्तमाश्चिते गोः ॥२॥

पदार्थ—(ब्रध्न) नियम में बांधने वाले [सूर्यरूप] परमेश्वर ने (सध्रीचीः) परस्पर मिली हुई, (अरेपसः) निर्मल, (सचेतसः) समान चेताने वाली, (अत्यु-ग्रतमाः) अत्यन्त चमकने वाली (उषसः) उषाओं को (स्वसरे) दिन में (गोः) पृथिवी के (चित्ते) ज्ञान के लिये (सम्) यथावत् (ऐरयत्) भेजा है ॥२॥

卐 इति द्वितीयोऽनुवाकः 卐

卐

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् २३ 卐

यमः । दुःस्वप्ननाशनम् । अनुष्टुप् ।

दौःष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः ।

दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ॥१॥

पदार्थ—(दौःष्वप्न्यम्) नींद में बेचैनी, (दौर्जीवित्यम्) जीवन का कष्ट, (अभ्वम्) बड़े (रक्षः) राक्षस, (अराय्यः) अनेक अलक्ष्मियों और (दुर्णाम्नीः) दुष्ट नाम वाली (दुर्वाचः) कुवाणियों, (ताः सर्वाः) इन सब को (अस्मत्) अपने से (नाशयामसि) हम नाश करें ॥१॥

卐 सूक्तम् २४ 卐

१ ब्रह्मा । इन्द्र, अग्नि, विश्वेदेवाः, मरुत, सविता, प्रजापतिः, अनुमतिः । त्रिष्टुप् ।

यन्न इन्द्रो अखनद् यदग्निर्विश्वे देवा मरुतो यत् स्वर्काः ।

तदस्मभ्यं सविता सत्यधर्मा प्रजापतिरनुमतिर्नि यच्छात् ॥१॥

पदार्थ—(यत्) जो [ऐश्वर्य] (नः) हमारे लिये (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष ने और (यत्) जो (अग्निः) अग्नि समान तेजस्वी पुरुष ने (अखनत्) खोदा है, और (यत्) जो (विश्वे) सब (देवाः) व्यवहारकुशल, (स्वर्काः) बड़े वज्रवाले (मरुतः) शूर लोगों ने [खोदा है] । (तत्) वह [वैसा ही ऐश्वर्य] (अस्मभ्यम्) हमें (सत्यधर्मा) सत्य धर्मी, (प्रजापतिः) प्रजापालक (अनुमतिः) अनुकूल बुद्धिवाला (सविता) सृष्टिकर्ता परमेश्वर (नि) नियम-पूर्वक (यच्छात्) देता रहे ॥१॥

卐 सूक्तम् २५ 卐

१—२ मेधातिथि । विष्णुः, वरुण । त्रिष्टुप् ।

ययोरोजसा स्कभिता रजांसि यौ वीर्यैर्वीरतमा शविष्ठा ।

यौ पत्येते अप्रतीतौ सहोभिर्विष्णुमगन्वरुणं पूर्वहूतिः ॥१॥

पदार्थ—(ययोः) जिन दोनों के (ओजसा) बल से (रजांसि) लोक-लोकान्तर (स्कभिता) थमे हुए हैं, (यौ) जो दोनों (वीर्यैः) अपने पराक्रमों से (वीरतमा) अत्यन्त वीर और (शविष्ठा) महाबली हैं, (यौ) जो दोनों (सहोभिः) अपने बलों से (अप्रतीतौ) न रुकने वाले होकर (पत्येते) ऐश्वर्यवान् हैं, [उन दोनों (विष्णुम्) व्यापनशील [वा सूर्यसमान प्रतापी] राजा और (वरुणम्) श्रेष्ठ [वा जलसमान उपकारी] मन्त्री को (पूर्वहूतिः) सब लोगों का आवाहन (अगन्) पहुँचा है ॥१॥

यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते प्र चानति वि च चष्टे शचीभिः ।

पुरा देवस्य धर्मणा सहोभिर्विष्णुमगन् वरुणं पूर्वहूतिः ॥२॥

पदार्थ—(यस्य) जिन (देवस्य) व्यवहारकुशल [राजा और मन्त्री] के (प्रदिशि) अच्छे शासन में (धर्मणा) उनके धर्म अर्थात् नीति और (सहोभिः) पराक्रम से (इदम्) यह [राज्य] है, (यत्) जो कुछ (पुरा) हमारे सन्मुख (शचीभिः) अपने कर्मों से (विरोचते) जगमगाता है, (च) और (प्र अनति) श्वास लेता है (च) और (वि चष्टे) निहारता है, [उन दोनों] (विष्णुम्) व्यापनशील राजा और (वरुणम्) श्रेष्ठ मन्त्री को (पूर्वहूतिः) सब का आवाहन (अगन्) पहुँचा है ॥२॥

卐 सूक्तम् २६ 卐

१—८ मेधातिथिः । विष्णु । त्रिष्टुप्, २ त्रिपदा विराड् गायत्री, ३ त्र्यवसाना षट्पदा विराट्शक्वरी, ४—७ गायत्री, ८ त्रिष्टुप् ।

विष्णोर्नु कं प्रा वोचं वीर्याणि यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।

यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥१॥

पदार्थ—(विष्णोः) विष्णु व्यापक परमेश्वर के (वीर्याणि) पराक्रमों को (नु) शीघ्र (कम्) सुख से (प्र) अच्छे प्रकार (वोचम्) मैं कहूँ, (यः) जिसने (पार्थिवानि) भूमिस्थ और अन्तरिक्षस्थ (रजांसि) लोकों को (विममे) अनेक प्रकार रचा है, (यः) जिस (उरुगायः) बड़े उपदेशक प्रभु ने (उत्तरम्) सब अवयवों के अन्त (सधस्थम्) साथ में रहने वाले कारण को (विचक्रमाणः) चलाते हुए (त्रेधा) तीन प्रकार से [उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय रूप से] [उन लोकों को] (अस्कभायत्) थांभा है ॥१॥

प्र तद् विष्णु स्तवते वीर्याणि मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।

परावत आ जगम्यात् परस्याः ॥२॥

पदार्थ—(भीमः) डरावने, (कुचरः) टेढ़े-टेढ़े चलने वाले [ऊंचे नीचे दायें बायें जाने वाले] (गिरिष्ठाः) पहाड़ों पर रहने वाले (मृगः न) आखेट ढूंढने वाले सिंह आदि के समान, (तत्) वह (विष्णुः) सर्वव्यापी विष्णु (वीर्याणि) अपने पराक्रमों को (प्र) अच्छे प्रकार (स्तवते) स्तुतियोग्य बनाता है । वह (परावतः) समीप दिशा से और (परस्याः) दूर दिशा से (आ जगम्यात्) आता रहे ॥२॥

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ।

उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि ।

घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर ॥३॥

पदार्थ—(यस्य) जिसके (उरुषु) विस्तीर्ण [उत्पत्ति स्थिति प्रलय रूप] (त्रिषु) तीन (विक्रमणेषु) त्रिविध कर्मों [नियमों] में (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक लोकान्तर (अधिक्षियन्ति) भले प्रकार रहते हैं । [वही] (विष्णो) हे सर्वव्यापक विष्णु तू (उरु) विस्तार से (वि क्रमस्व) विक्रमी हो, और (नः) हमें (क्षयाय) ज्ञान वा ऐश्वर्य के लिये (उरु) विस्तार के साथ (कृधि) कर । (घृतयोने) हे प्रकाश के घर ! (घृतम्) घृत के समान तत्त्वरस (पिब = पायय) [हमें] पान करा और (यज्ञपतिम्) पूजनीय कर्म के रक्षक मनुष्य को (प्र प्र) अच्छे प्रकार (तिर) पार लगा ॥३॥

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदा । समूढमस्य पांसुरे ॥४॥

पदार्थ—(विष्णुः) विष्णु सर्वव्यापी भगवान् ने (समूढम्) आपस में एकत्र किये हुए वा यथावत् विचारने योग्य (इदम्) इस जगत् को (विचक्रमे) पराक्रमयुक्त [शरीरवाला] किया है, उसने (अस्य) इस जगत् के (पदा) स्थिति और गति के क्रमों को (त्रेधा) तीन प्रकार (पांसुरे) परमाणु वाले अन्तरिक्ष में (नि दधे) स्थिर किया है ॥४॥

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।

इतो धर्माणि धारयन् ॥५॥

पदार्थ—(गोपाः) सर्वरक्षक (अदाभ्यः) न दबने योग्य (विष्णुः) विष्णु अन्तर्यामी भगवान् ने (त्रीणि) तीनों (पदा) जानने योग्य वा पाने योग्य पदार्थों [कारण, सूक्ष्म और स्थूल जगत् अथवा भूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोक] को (वि चक्रमे) समर्थ [शरीरधारी) किया है । (इतः) इसी से वह (धर्माणि) धर्मों वा धारण करनेवाले [पृथिवी आदि] को (धारयन्) धारण करता हुआ है ॥५॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।

इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥६॥

पदार्थ—(विष्णोः) सर्वव्यापक विष्णु के (कर्माणि) कर्मों [जगत् का बनाना, पालन, प्रलय आदि] को (पश्यत) देखो, (यतः) जिससे उसने (व्रतानि) व्रतों [सब के कर्त्तव्य कर्मों] को (पस्पशे) बांधा है । (युज्यः) वह योग्य [अथवा सब से संयोग रखनेवाले दिशा, काल, आकाश आदि में रहने वाला] परमेश्वर (इन्द्रस्य) जीव का (सखा) सखा है ॥६॥

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।

दिवीव चक्षुराततम् ॥७॥

पदार्थ—(सूरयः) बुद्धिमान् पण्डित लोग (विष्णोः) सर्वव्यापक विष्णु के (तत्) उस (परमम्) अति उत्तम (पदम्) पाने योग्य स्वरूप को (सदा) सदा (पश्यन्ति) देखते हैं (इव) जैसे (दिवि) प्रकाश में (आततम्) फैला हुआ (चक्षुः) नेत्र [दृश्य पदार्थों को देखता है] ॥७॥

दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।

हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैराप्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ॥८॥

पदार्थ—(विष्णो) हे सर्वव्यापक विष्णु ! (दिवः) सूर्य लोक से (उत) और (पृथिव्याः) पृथिवी लोक से, (वा) अथवा, (विष्णो) हे विष्णु ! (महः) बड़े (उरोः) चौड़े (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष लोक से (बहुभिः) बहुत से (वसव्यैः) धन समूहों से (हस्तौ) दोनों हाथों को (पृणस्व) भर, (उत) और (दक्षिणात्)

दाहिने (उत) और (सव्यात्) बायें हाथ से (आप्रयच्छ) [अच्छे प्रकार से दान कर ॥८॥

卐 सूक्तम् २७ 卐

१ मेधातिथिः । इडा । त्रिष्टुप् ।

इडैवास्माँ अनु वस्तां व्रतेन यस्याः पदे पुनते देवयन्तः ।
घृतपदी शक्वरी सोमपृष्ठोप यज्ञमस्थित वैश्वदेवी ॥१॥

पदार्थ—(इडा एव) वही प्रशसनीय विद्या (अस्मान्) हमे (व्रतेन) उत्तम कर्म से (अनु) अनुग्रह करके (वस्ताम्) ढके [शोभायमान करे], (यस्याः) जिसके (पदे) अधिकार मे (देवयन्तः) उत्तम गुण चाहने वाले पुरुष (पुनते) शुद्ध होते हैं । [और जो] (घृतपदी) प्रकाश का अधिकार रखने वाली, (शक्वरी) समर्थ, (सोमपृष्ठा) ऐश्वर्य सींचने वाली, (वैश्वदेवी) सब उत्तम पदार्थों से सम्बन्ध वाली होकर (यज्ञम्) पूजनीय व्यवहार मे (उप अस्थित) उपस्थित हुई है ॥१॥

卐 सूक्तम् २८ 卐

१ मेधातिथिः । वेदः । त्रिष्टुप् ।

वेदः स्वस्तिर्द्रुघणः स्वस्तिः परशुर्वेदिः परशुर्नः स्वस्ति ॥
हविष्कृतो यज्ञिया यज्ञकामास्ते देवासो यज्ञमिमं जुषन्ताम् ॥१॥

पदार्थ—(वेद) वेद [ईश्वरीय ज्ञान] (स्वस्तिः) मङ्गलकारी हो, (द्रुघण) मुद्गर [मोगरी] (स्वस्तिः) मङ्गलकारी हो, (वेदिः) वेदी [यज्ञ भूमि, हवनकुण्ड आदि], (परशुः) फरसा [वा गडासा] और (परशुः) कुल्हाडी (नः) हमे (स्वस्ति) मङ्गलकारी हो । (हविष्कृतः) देने लेने योग्य व्यवहार करने वाले, (यज्ञियाः) पूजनीय, (यज्ञकामाः) मिलाप चाहने वाले (ते) वे (देवासः) विद्वान् लोग (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ [पूजनीय कर्म को] (जुषन्ताम्) स्वीकार करें ॥१॥

卐 सूक्तम् २९ 卐

१—२ मेधातिथिः । अग्नाविष्णू । त्रिष्टुप् ।

अग्नाविष्णू महि तद् वां महित्वं पाथो घृतस्य गुह्यस्य नाम ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमा चरण्यात् ॥१॥

पदार्थ—(अग्नाविष्णू) हे बिजुली और सूर्य ! (वाम्) तुम दोनों का (तत्) वह (महि) बडा (महित्वम्) महत्त्व है, (गुह्यस्य) रक्षणीय, वा गुप्त (घृतस्य) सार रस के (नाम) झुकाव की (पाथः) तुम दोनो रक्षा करते हो । (दमेदमे) घर घर मे [प्रत्येक शरीर वा लोक मे] (सप्त) सात (रत्ना) रत्नो [धातुओं अर्थात् रस, रुधिर, मास, मेद, अस्थि, मज्जा और वीर्य] को (दधानौ) धारण करने वाले हो, (वाम्) तुम दोनों की (जिह्वा) जय शक्ति (घृतम्) सार रस को (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से (आ) भले प्रकार (चरण्यात्) बनावे ॥१॥

अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां वीथो घृतस्य गुह्या जुषाणौ ।
दमेदमे सुष्टुत्या वावृधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमुच्चरण्यात् ॥२॥

पदार्थ—(अग्नाविष्णू) हे बिजुली और सूर्य (वाम्) तुम दोनो का (महि) बडा (प्रियम्) प्रीति करने वाला (धाम) धर्म वा नियम है, तुम दोनो (घृतस्य) सार रस के (गुह्या) सूक्ष्म तत्त्वो को (जुषाणौ) सेवन करते हुए (वीथः) प्राप्त होते हो । (दमेदमे) घर घर मे (सुष्टुत्या) बडी स्तुति के साथ (वावृधानौ) वृद्धि करते हुए [रहते हो], (वाम्) तुम दोनों की (जिह्वा) जयशक्ति (घृतम्) सार रस को (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से (उत्) उत्तमता के साथ (चरण्यात्) प्राप्त हो ॥२॥

卐 सूक्तम् ३० 卐

१ भृग्वङ्गिरा । द्यावापृथिवी, मित्रः ब्रह्मणस्पतिः, सविता च । बृहती ।

स्वाक्तं मे द्यावापृथिवी स्वाक्तं मित्रो अकरयम् ।
स्वाक्तं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वाक्तं सविता करत् ॥१॥

पदार्थ—(द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी ने (मे) मेरा (स्वाक्तम्) स्वागत [किया है], (अयम्) इस (मित्र) मित्र [माता पिता आदि] ने (स्वाक्तम्) स्वागत (अकः) किया है । (ब्रह्मणः) वेद विद्या का (पतिः) रक्षक [आचार्य] (मे) मेरा (स्वाक्तम्) स्वागत, और (सविता) प्रजाप्रेरक शूर पुरुष (स्वाक्तम्) स्वागत (करत्) करे ॥१॥

卐 सूक्तम् ३१ 卐

१ भृग्वङ्गिराः । इन्द्रः । भुरिक् त्रिष्टुप् ।

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य यावच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्टयधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥१॥

पदार्थ—(मघवन्) हे बडे धनी ! (शूर) हे शूर ! (इन्द्र) हे सम्पूर्ण ऐश्वर्यवाले राजन् (नः) हमे (अद्य) आज (बहुलाभिः) अनेक (यावच्छ्रेष्ठाभिः) यथासम्भव श्रेष्ठ (ऊतिभिः) रक्षाक्रियाओं से (जिन्व) प्रसन्न कर । (यः) जो (नः) हमसे (द्वेष्टि) वैर करता है, (सः) वह (अधरः) नीचा हो कर (पदीष्ट) चला जावे, (उ) और (यम्) जिससे (द्विष्मः) हम वैर करते हैं, (तम्) उसको (उ) भी (प्राणः) उसका प्राण (जहातु) छोड देवे ॥१॥

卐 सूक्तम् ३२ 卐

१ ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम् ।
अगन्म बिभ्रतो नमो दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥१॥

पदार्थ—(नमः) वज्र को (बिभ्रतः) धारण करते हुए [पुरुषार्थ करते हुए] हम लोग (प्रियम्) प्रीति करने वाले, (पनिप्नतम्) अत्यन्त व्यवहारकुशल, (युवानम्) पदार्थों के सयोग वियोग करने वाले वा बलवान् (आहुतीवृधम्) यथावत् देने लेने योग्य क्रिया के बढाने वाले राजा को (उप अगन्म) प्राप्त हुए हैं, वह (मे) मेरी (आयुः) आयु को (दीर्घम्) दीर्घ (कृणोतु) करे ॥१॥

卐 सूक्तम् ३३ 卐

१ ब्रह्मा । मरुतः । पूषा, बृहस्पतिः, अग्निः । पथ्या पङ्क्तिः ।

सं मा सिञ्चन्तु मरुतः सं पूषा सं बृहस्पतिः । सं मायमग्निः
सिञ्चतु प्रजया च धनेन च दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥१॥

पदार्थ—(मरुतः) वायु के झोंके (मा) मुझे (सम्) भले प्रकार (सिञ्चन्तु) सींचें, (पूषा) पृथिवी (सम्) भले प्रकार और (बृहस्पतिः) बडे बडों का रक्षक सूर्य [वा मेघ] (सम्) भले प्रकार [सींचे] । (अयम्) यह (अग्निः) अग्नि [शारीरिक अग्नि वा बल] (मा) मुझको (प्रजया) सन्तान, भृत्य आदि (च) और (धनेन) धन से (सम्) भले प्रकार (सिञ्चतु) सींचे (च) और (मे) मेरी (आयुः) आयु को (दीर्घम्) दीर्घ (कृणोतु) करे ॥१॥

卐 सूक्तम् ३४ 卐

१ अथर्वा । जातवेदाः । जगती ।

अग्ने जातान् प्र णुदा मे सपत्नान् प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व ।
अधस्पदं कृणुष्व ये पृतन्यवोऽनागसस्ते वयमदितये स्याम ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे बलवान् राजन् वा सेनापति ! (मे) मेरे (जातान्) प्रसिद्ध (सपत्नान्) वैरियो को (प्रणुद) निकाल दे, (जातवेदः) हे बडे बुद्धिवाले राजन् ! (अजातान्) अप्रसिद्ध [शत्रुओं] को (प्रति) उलटा (नुदस्व) हटा दे । (ये) जो (पृतन्यवः) सग्राम चाहने वाले [विरोधी] हैं, (उन्हें) (अधस्पदम्) अपने पांव तल (कृणुष्व) करले (ते) वे (वयम्) हम लोग (अदितये) अदीन भूमि के लिये (अनागसः) निर्विघ्न होकर (स्याम) रहें ॥१॥

卐 सूक्तम् ३५ 卐

१—३ अथर्वा । जातवेदाः । अनुष्टुप्; १—३ त्रिष्टुप् ।

प्रान्यान्त्सपत्नान्त्सहसा सहस्व प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व ।
इदं राष्ट्रं पिपृहि सौभगाय विश्व एनमनु मदन्तु देवाः ॥१॥

पदार्थ—(जातवेद) हे बडे धनवाले राजन् ! (सहसा) अपने बल से (अन्यान्) दूसरे लोगों [विरोधियों] को (प्र सहस्व) हरा दे और (अजातान्) अप्रकट (सपत्नान्) वैरियो को (प्रति) उलटा (नुदस्व) हटा दे । (इदम्) इस (राष्ट्रम्) राज्य को (सौभगाय) बडे ऐश्वर्य के लिये (पिपृहि) पूर्ण कर, (विश्वे) सब (देवाः) व्यवहारकुशल लोग (एनम् अनु) इस आप के साथ-साथ (मदन्तु) प्रसन्न हों ॥१॥

इमा यास्ते शतं हिराः सहस्रं धमनीरुत ।
तासां ते सर्वासामहमश्मना बिलमप्यधाम् ॥२॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (ते) तेरी (इमाः) ये (याः) जो (शतम्)

सौ [बहुत] (हिरा) सूक्ष्म नाड़ियां (उत) और (सहस्रम्) सहस्र [अनेक] (धमनी) स्थूल नाड़ियां हैं। (ते) तेरी (तासाम्) उन (सर्वासाम्) सब [नाड़ियों] के (बिलम्) छिद्र को (अहम्) मैं [प्रजागण] ने (अश्मना) व्यापक [अथवा पाषाण समान दृढ़] उपाय से (अपि) निश्चय करके (अधाम्) पुष्ट किया है ॥२॥

परं योनेरवरं ते कृणोमि मा त्वा प्रजाभि भून्मोत सूनुः।

अस्वं त्वाप्रजसं कृणोम्यश्मानं ते अपिधानं कृणोमि ॥३॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (ते) तेरे (योनेः) घर के (परम्) शत्रु को (अवरम्) नीच (कृणोमि) बनाता हूँ, (त्वा) तुझको (मा) न तो (प्रजा) प्रजा, भृत्य आदि (उत) और (मा) न (सूनुः) पुत्र (अभि भूत्) तिरस्कार करे। (त्वा) तुझको (अस्वम्) बुद्धिमान् और (अप्रजसम्) अताडनीय पुरुष (कृणोमि) मैं करता हूँ और (ते) तेरे (अपिधानम्) आढ़न [कवच] को (अश्मानम्) पत्थर समान दृढ (कृणोमि) मैं बनाता हूँ ॥३॥

卐 सूक्तम् ३६ 卐

१ अथर्वा। अक्षि, मन। अनुष्टुप्।

अक्ष्यौ नौ मधुसंकाशे अनीकं नौ समञ्जनम्।

अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इन्नौ सहासति ॥१॥

पदार्थ—(नौ) हम दोनों की (अक्ष्यौ) दोनों आंखें (मधुसंकाशे) ज्ञान का प्रकाश करने वाली और (नौ) हम दोनों का (अनीकम्) मुख (समञ्जनम्) यथावत् विकाश वाला [होवे]। (माम्) मुझको (हृदि अन्तः) अपने हृदय के भीतर (कृणुष्व) कर ले, (नौ) हम दोनों का (मनः) मन (इत्) भी (सह) एकमेल (असति) होवे ॥१॥

卐 सूक्तम् ३७ 卐

१ अथर्वा। वास। अनुष्टुप्।

अभि त्वा मनुजातेन दधामि मम वाससा।

यथासो मम केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ॥१॥

पदार्थ—[हे स्वामिन् !] (मनुजातेन) मननशील मनुष्यों मे प्रसिद्ध (मम वाससा) अपने वस्त्र से (त्वा) तुझे (अभि दधामि) मैं बांधती हूँ। (यथा) जिससे तू (केवलः) केवल (मम) मेरा (असः) होवे, (च न) और (अन्यासाम्) अन्य स्त्रियों का (न कीर्तयाः) तू ध्यान न करे ॥१॥

卐 सूक्तम् ३८ 卐

१—५ अथर्वा। वनस्पति। अनुष्टुप्, ३ चतुष्पदा उष्णिक्।

इदं खनामि भेषजं मांपश्यमभिरोरुदम्।

परायतो निवर्तनमायतः प्रतिनन्दनम् ॥१॥

पदार्थ—[हे स्वामिन् ! मैं वधू] (मांपश्यम्) लक्ष्मी के देखने वाले [खोजने वाले], (अभिरोरुदम्) परस्पर संगति देने वाले, (परायतः) दूर जाने वाले के, (निवर्तनम्) लौटाने वाले (आयतः) आने वाले के (प्रतिनन्दनम्) स्वागत करने वाले (इदम्) इस [प्रतिज्ञा रूप] (भेषजम्) भयनिवारक औषध को (खनामि) खोदती हूँ [प्रकट करती हूँ] ॥१॥

येना निचक्र आसुरीन्द्रं देवेभ्यस्परि।

तेना नि कुर्वे त्वामहं यथा तेऽसानि सुप्रिया ॥२॥

पदार्थ—(येन) जिस [उपाय] से (आसुरी) बुद्धिमानों वा बलवानों का हित करने वाली बुद्धि ने (इन्द्रम्) बड़े ऐश्वर्य वाले मनुष्य को (देवेभ्यः) उत्तम गुणों के लिये (परि) सब ओर से (निचक्रे) नियत किया था। (तेन) उसी [उपाय] से (अहम्) मैं (त्वाम्) तुझको (नि कुर्वे) नियत करती हूँ, (यथा) जिससे मैं (ते) तेरी (सुप्रिया) बड़ी प्रीति करने वाली (असानि) रहूँ ॥२॥

प्रतीची सोममसि प्रतीच्युत सूर्यम्।

प्रतीची विश्वान् देवान् तां त्वाच्छावदामसि ॥३॥

पदार्थ—[हे वधू !] (प्रतीची) निश्चित ज्ञानवाली तू (सोमम्) चन्द्रमा को, (उत) और (प्रतीची) प्रतिज्ञापूर्वक मार्गवाली तू (सूर्यम्) सूर्य को, और (प्रतीची) प्रतिष्ठापूर्वक उपायवाली तू (विश्वान्) सब (देवान्) उत्तम गुणों को (असि—असति) प्राप्त होती है, (ताम् त्वा) उस तुझको (अच्छावदामसि) हम स्वागत करके बुलाते हैं ॥३॥

अहं वदामि नेत् त्वं सभायामह त्वं वद।

ममेदसस्त्वं केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ॥४॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (न इत्) अभी (वदामि) बोल रही हूँ, (त्वम् त्वम्) तू तू (अह) भी (सभायाम्) सभा में (वद) बोल। (त्वम्) तू (केवलः) केवल (मम इत्) मेरा ही (असः) होवे, (च न) और (अन्यासाम्) दूसरी स्त्रियों का (न कीर्तयाः) तू न ध्यान करे ॥४॥

यदि वासि तिरोजनं यदि वा नद्यस्तिरः।

इयं ह मह्यं त्वामोषधिर्बद्ध्वेव न्यानयत् ॥५॥

पदार्थ—[हे पति !] तू (यदि वा) चाहे (तिरोजनम्) मनुष्यों से अदृष्ट स्थान में (असि) है, (यदि वा) चाहे (नद्यः) नदियों (तिरः) बीच में है। (इयम्) यह [प्रतिज्ञारूप] (ओषधिः) ओषधि (मह्यम्) मेरे लिये (ह) ही (त्वाम्) तुझको (बद्ध्वा इव) बाँध कर जैसे (न्यानयत्) ले आवे ॥५॥

卐 इति तृतीयोऽनुवाकः 卐

卐

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ३९ 卐

१ प्रस्कण्व। आप., सुपर्ण, वृषभ। त्रिष्टुप्।

दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तमपां गर्भं वृषभमोषधीनाम्।

अभीपतो वृष्ट्या तर्पयन्तमा नो गोष्ठे रयिष्ठां स्थापयाति ॥१॥

पदार्थ—(दिव्यम्) दिव्य गुण वाले, (पयसम्) गतिवाले, (बृहन्तम्) विशाल, (अपाम्) अन्तरिक्ष के (गर्भम्) गर्भसमान बीच में रहने वाले, (ओषधीनाम्) अन्न आदि ओषधियों के (वृषभम्) बरसाने वाले, (अभीपतः) सब ओर जल वाले मेघ से (वृष्ट्या) वृष्टि द्वारा (तर्पयन्तम्) तृप्त करने वाले, (रयिष्ठाम्) धन के बीच ठहरने वाले, (सुपर्णम्) सुन्दर किरणों वाले सूर्य के समान विद्वान् पुरुष को (नः) हमारे (गोष्ठे) गोठ वा वार्तालाप स्थान में (आ) लाकर (स्थापयाति) [यह पुरुष] स्थान देवे ॥१॥

卐 सूक्तम् ४० 卐

१—२ प्रस्कण्वः। सरस्वान्। त्रिष्टुप्, १ भुरिक्।

यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे यस्य व्रत उपतिष्ठन्त आपः।

यस्य व्रते पुष्टपतिर्निविष्टस्तं सरस्वन्तमवसे हवामहे ॥१॥

पदार्थ—(यस्य) जिसके (व्रतम्) सुन्दर नियम पर (सर्वे) सब (पशवः) पशु अर्थात् प्राणी (यन्ति) चलते हैं, (यस्य) जिसके (व्रते) नियम में (आपः) जल (उपतिष्ठन्ते) उपस्थित रहते हैं। (यस्य) जिसके (व्रते) नियम में (पुष्टपतिः) पोषण का स्वामी, पूषा सूर्य (निविष्टः) प्रवेश किये हुए है, (तम्) उस (सरस्वन्तम्) बड़े विज्ञान वाले परमेश्वर को (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (हवामहे) हम बुलाते हैं ॥१॥

आ प्रत्यञ्चं दाशुषे दाश्वंसं सरस्वन्तं पुष्टपतिं रयिष्ठाम्।

रायस्पोषं श्रवस्युं वसाना इह हुवेम सदनं रयीणाम् ॥२॥

पदार्थ—(प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष व्यापक, (दाशुषे) आत्मदान करने वाले [भक्त] को (दाश्वंसम्) सुख देने वाले (पुष्टपतिम्) पोषण के स्वामी, (रयिष्ठाम्) धन में स्थिति वाले, (रायः) धन के (पोषम्) बढ़ाने वाले, (श्रवस्युम्) सुनने वाले, (रयीणाम्) अनेक धनों के (सदनम्) भण्डार (सरस्वन्तम्) बड़े ज्ञानवान् परमेश्वर को (वसानाः) स्वीकार करते हुए हम लोग (इह) यहाँ पर (आ) सब प्रकार (हुवेम) बुलावें ॥२॥

卐 सूक्तम् ४१ 卐

१—२ प्रस्कण्वः। श्येन। १ जगती, २ त्रिष्टुप्।

अति धन्वान्यत्यपस्ततर्द श्येनो नृचक्षा अवसानदर्शः।

तरन् विश्वान्यवरा रजांसीन्द्रेण सख्या शिव आ जगम्यात् ॥१॥

पदार्थ—(नृचक्षाः) मनुष्यों को देखने वाले, (अवसानदर्शः) अन्त के देखने वाले, (श्येनः) ज्ञानवान् परमात्मा ने (धन्वानि) निर्जल देशों को (अति) अत्यन्त करके और (अपः) जलों को (अति) अत्यन्त करके (ततर्द) पीड़ित

[वशीकृत] किया है। (शिवः) मङ्गलकारी परमेश्वर (अवरा) अत्यन्त श्रेष्ठ (विश्वानि) सब (रजांसि) लोकों को (तरद्) तराता हुआ (सदमा) मित्ररूप (इन्द्रेण) ऐश्वर्य के साथ (आ अगम्यात्) आवे ॥१॥

श्येनो नृचक्षा दिव्यः सुपर्णः सहस्रपाच्छतयोनिर्वयोधाः ।

स नो नि यच्छाद् वसु यत् पराभृतमस्माकमस्तु पितृषु स्वधावत् ॥२॥

पदार्थ—(नृचक्षा) मनुष्यों को देखने वाला, (दिव्यः) दिव्य स्वरूप, (सुपर्णः) बड़ी पालन शक्ति वाला, (सहस्रपात्) सहस्रों, असीम पाद अर्थात् गति शक्ति वाला, (शतयोनिः) सैकड़ों [असंख्य] लोकों का घर, (वयोधाः) अन्नदाता (श्येनः) ज्ञानवान् परमात्मा है। (सः) वह (नः) हमें (वसु) वह धन (नि) निरन्तर (यच्छात्) देवे, (यत्) जो (पराभृतम्) पराक्रम से धारण किया गया (अस्माकम्) हमारे (पितृषु) पितरों [बड़े बूढ़ों] के बीच (स्वधावत्) आत्मधारण शक्ति वाला (अस्तु) होवे ॥२॥

सूक्तम् ४२

१—२ प्रस्कण्वः । सोमारुद्रौ । त्रिष्टुप् ।

सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश ।

बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत् ॥१॥

पदार्थ—(सोमारुद्रा) हे सूर्य और मेघ [के समान सुखदायक राजा और वैद्य !] तुम दोनो (विषूचीम्) विसूचिका, [हुलकी आदि] को (विवृहतम्) छिन्न-भिन्न कर दो, (या अमीवा) जो रोग (नः गयम्) हमारे घर वा सन्तान में (आविवेश) प्रवेश कर गया है। (निर्ऋतिम्) दुःखदायिनी कुनीति को (पराचैः) औंधे मुह करके (दूरम्) दूर (बाधेथाम्) हटाओ, और (कृतम्) उसके किये हुए (एनः) दुःख को (चित) भी (अस्मत्) हम से (प्र मुमुक्तम्) छुड़ा दो ॥१॥

सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मद् विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् ।

अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो असत् तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥२॥

पदार्थ—(सोमारुद्रा) हे सूर्य और मेघ [के समान उपकारी राजा और वैद्य !] (युवम्) तुम दोनो (एतानि विश्वा भेषजानि) इन सब औषधों को (अस्मत्) हमारे (तनूषु) शरीर में (धत्तम्) रक्खो। (यत्) जो (नः) हमारे (तनूषु) शरीरों में (बद्धम्) लगा हुआ और (कृतम्) किया हुआ (एनः) दोष (असत्) होवे, [उसे] (अस्मत्) हमसे (अव स्यतम्) नष्ट करो और (मुञ्चतम्) छुड़ाओ ॥२॥

सूक्तम् ४३

प्रस्कण्वः । वाक् । त्रिष्टुप् ।

शिवास्त एका अशिवास्त एकाः सर्वा बिभर्षि सुमनस्यमानः ।

तिस्रो वाचो निहिता अन्तरस्मिन् तासामेका वि पपातानु घोषम् ॥१॥

पदार्थ—[हे पुरुष !] (ते) तेरी (एकाः) कोई [वाचायें] (शिवाः) कल्याणी हैं और (ते) तेरी (एकाः) कोई (अशिवाः) अकल्याणी हैं [और कोई माध्यमिका हैं], (सर्वाः) इन सब को (सुमनस्यमानः) अच्छे प्रकार मनन करता हुआ तू (बिभर्षि) धारण करता है। (तिस्रः) तीनो (वाचः) वाचायें (अस्मिन् अन्तः) इस [आत्मा] के भीतर (निहिताः) रक्खी रहती है, (तासाम्) उनमें से (एका) एक [कल्याणी वाणी] (घोषम् अनु) उच्चारण के साथ-साथ (वि) विशेष करके (पपात) ऐश्वर्यवती हुई है ॥१॥

सूक्तम् ४४

१ प्रस्कण्वः । इन्द्रः, विष्णु । भुरिक् त्रिष्टुप् ।

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनयोः ।

इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥१॥

पदार्थ—(विष्णो) हे बिजुली [के समान व्याप्त होने वाले सभापति !] (च) और (इन्द्रः) हे वायु [के समान ऐश्वर्यवान् सेनापति !] (उभा) तुम दोनों ने [शत्रुओं को] (जिग्यथुः) जीता है, और तुम दोनो (न) कभी नहीं (परा जयेथे) हारते हो, (एनयोः) इन [तुम] दोनों में से (कतरः चन) कोई भी (न) नहीं (परा जिग्ये) हारा है। (यत्) जब (अपस्पृधेथाम्) तुम दोनों ललकारे हो, (तत्) तब (सहस्रम्) असंख्य [शत्रु सेनादल] को (त्रेधा) तीन विधि पर [ऊँचे, नीचे और मध्य स्थान में] (वि) विविध प्रकार से (ऐरयेथाम्) तुम दोनों ने निकाल दिया है ॥१॥

सूक्तम् ४५

१—२ प्रस्कण्वः । २ अथर्वा । ईर्ष्यापनयनं, भेषजम् । अनुष्टुप् ।

जनाद् विश्वजनीनात् सिन्धुतस्पर्याभृतम् ।

दूरात् त्वा मन्य उद्भृतमीर्ष्याया नाम भेषजम् ॥१॥

पदार्थ—[हे भयनिवारक ज्ञान !] (सिन्धुतः) समुद्र [के समान गम्भीर स्वभाव वाले (विश्वजनीनात्) सब जनों के हितकारी (जनात्) उनके पास से (दूरात्) दूर देश से (परि) सब प्रकार (आभृतम्) लाये हुए और (उद्भृतम्) उत्तमता से पुष्ट किये हुए (त्वा) तुझको (ईर्ष्यायाः) दाह का (नाम) प्रसिद्ध (भेषजम्) भयनिवारक औषध (मन्ये) मैं मानता हूँ ॥१॥

अग्नेरिवास्य दहतो दावस्य दहतः पृथक् ।

एतामेतस्येर्ष्यामुद्नाग्निमिव शमय ॥२॥

पदार्थ—(अस्य) इस (दहत) जलती हुई (अग्नेः इव) अग्नि के समान (पृथक) अथवा (दहतः) जलती हुई (दावस्य) वन अग्नि के [समान] (एतस्य) इस पुरुष की (एताम्) इस (ईर्ष्याम्) ईर्ष्या को (शमय) शान्त कर दे, (इव) जैसे (उद्ना) जल से (अग्निम्) आग को ॥२॥

सूक्तम् ४६

१—३ अथर्वा । सिनीवाली । अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप् ।

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।

जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥१॥

पदार्थ—(पृथुष्टुके) हे बहुत स्तुतिवाली ! (सिनीवालि) अन्नवाली [वा प्रेमयुक्त बल करने वाली] गृहपत्नी ! (या) जो तू (देवानाम्) दिव्यगुणों की (स्वसा) अच्छे प्रकार प्रकाश करने वाली वा ग्रहण करने वाली (असि) है। सो तू (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य (आहुतम्) सब प्रकार स्वीकार किये व्यवहार का (जुषस्व) सेवन कर और (देवि) हे कामनायोग्य देवी ! (नः) हमारे लिये (प्रजाम्) सन्तान (दिदिड्ढि) दे ॥१॥

या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी ।

तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥२॥

पदार्थ—(या) जो (सुबाहुः) शुभकर्मों में भुजा रखने वाली (स्वङ्गुरिः) सुन्दर व्यवहारों में अङ्गुरी रखने वाली (सुषूमा) भली भाँति आगे चलने वाली, और (बहुसूवरी) बहुत प्रकार से वीरों को उत्पन्न करने वाली [माता है]। (तस्यै) उस (विश्पत्न्यै) प्रजाओं की पालने वाली, (सिनीवाल्यै) बहुत अन्न वाली [गृहपत्नी] को (हविः) देने योग्य पदार्थ का (जुहोतन) दान करो ॥२॥

या विश्पत्नीन्द्रमसि प्रतीची सहस्रस्तुकाभियन्ती देवी ।

विष्णोः पत्नि तुभ्यं राता हवींषि पतिं देवि राधसे चोदयस्व ॥३॥

पदार्थ—(या) जो (विश्पत्नी) सन्तानों को पालने वाली, (प्रतीची) निश्चित ज्ञान वाली, (सहस्रस्तुका) सहस्रों स्तुतिवाली, (अभियन्ती) चारों ओर चलती हुई (देवी) देवी तू (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (असि = अससि) ग्रहण करती है। (विष्णोः पत्नि) हे कामों में व्यापक वीर पुरुष की पत्नी ! (तुभ्यम्) तेरे लिये (हवींषि) देने योग्य पदार्थ (राता) दिये गए हैं, (देवि) हे देवी ! (पतिम्) अपने पति को (राधसे) सम्पत्ति के लिये (चोदयस्व) आगे बढ़ा ॥३॥

सूक्तम् ४७

१—२ अथर्वा । कुहूः । १ जगती, २ त्रिष्टुप् ।

कुहूं देवीं सुकृतं विद्मनापसमस्मिन् यज्ञे सुहवा जोहवीमि ।

सा नो रयिं विश्ववारं नि यच्छाद् ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥१॥

पदार्थ—(सुकृतम्) सुन्दर काम करने वाली, (विद्मनापसम्) कर्तव्यों को जानने वाली, (देवीम्) दिव्यगुणवाली (कुहूम्) कुहू अर्थात् अद्भुत स्वभाव वाली, स्त्री को (अस्मिन्) इस (यज्ञे) यज्ञ में (सुहवा) विनीत बुलावे के साथ (जोहवीमि) मैं बुलाता हूँ। (सा) वह (नः) हमें (विश्ववारम्) सब उत्तम व्यवहार वाले (रयिम्) धन को (नि) नित्य (यच्छात्) देती रहे और (शतदायम्) असंख्य धनवाला, (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय (वीरम्) वीर सन्तान (ददातु) देवे ॥१॥

कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी हव्या नो अस्य हविषो जुषेत ।

शृणोतु यज्ञमुशती नो अद्य रायस्पोषं चिकितुषी दधातु ॥२॥

पदार्थ—(देवानाम्) विद्वानों के बीच (अमृतस्य) अमर [पुरुषार्थी] पुरुष की (पत्नी) पत्नी (हव्या) बुलाने योग्य वा स्वीकार करने योग्य, (कुहूः)

कुहू अर्थात् विचित्र स्वभाववाली स्त्री (नः) हमारे (अस्य) इस (हविषः) ग्रहण योग्य कर्म का (जुषेत) सेवन करे। (यज्ञम्) सत्सग की (उशती) इच्छा करती हुई (चिकितुषी) विज्ञानवती वह (अद्य) आज (नः) हमे (शृणोतु) सुने और (रायः) धन की (पोषम्) वृद्धि को (दधातु) पुष्ट करे ॥२॥

卐 सूक्तम् ४८ 卐

१—२ *अथर्वा । राका । जगती ।*

राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना ।

सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥१॥

पदार्थ—(**राकाम्**) राका, अर्थात् सुख देने वाली वा पूर्णमासी के समान शोभायमान पत्नी को (**सुहवा**) सुन्दर बुलावे मे और (**सुष्टुती**) बडी स्तुति से (**अहम्**) मैं (**हुवे**) बुलाता हूँ, (**सुभगा**) वह सौभाग्यवती [बडे ऐश्वर्यवाली] (**नः**) हमे (**शृणोतु**) सुने और (**त्मना**) अपने आत्मा से (**बोधतु**) समझे और (**अच्छिद्यमानया**) न टूटती हुई (**सूच्या**) सुई से (**अपः**) कर्म [गृहस्थ कर्तव्य] को (**सीव्यतु**) सीए और (**शतदायम्**) सैकडो धनवाला, (**उक्थ्यम्**) प्रशसनीय (**वीरम्**) वीर सन्तान (**ददातु**) देवे ॥१॥

यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।

ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रापोषं सुभगे रराणा ॥२॥

पदार्थ—(**राके**) हे सुखदायिनी ! वा पूर्णमासी के समान शोभायमान पत्नी ! (**याः**) जो (**ते**) तेरी (**सुमतयः**) सुमतियां (**सुपेशसः**) बहुत सुवर्ण वाली हैं, (**याभिः**) जिनसे तू (**दाशुषे**) धन देने वाले [मुझ पति] को (**वसूनि**) अनेक धन (**ददासि**) देती है। (**सुभगे**) हे सौभाग्यवती ! (**ताभिः**) उन [सुमतियों] से (**नः**) हमे (**सहस्रपोषम्**) सहस्र प्रकार से पुष्टि का (**रराणा**) देती हुई, (**सुमनाः**) प्रसन्न मन होकर (**अद्य**) आज (**उपागहि**) समीप आ ॥२॥

卐 सूक्तम् ४९ 卐

१—२ *अथर्वा । देवपत्नी । १ आर्षी जगती, २ चतुष्पात्पङ्क्तिः ।*

देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये । याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छन्तु ॥१॥

पदार्थ—(**याः**) जो (**उशतीः**) [उपकार की] इच्छा करती हुई (**देवानाम्**) विद्वानो वा राजाओ की (**पत्नीः**) पत्नियाँ (**नः**) हमे (**अवन्तु**) तृप्त करें और (**तुजये**) बल वा स्थान के लिये और (**वाजसातये**) अन्न देने वाले सग्राम [जीतने] के लिये (**नः**) हमारी (**प्र**) अच्छे प्रकार (**अवन्तु**) रक्षा करें और (**अपि**) भी (**याः**) जो (**पार्थिवासः**) पृथिवी की रानियाँ (**अपाम्**) जलो के (**व्रते**) स्वभाव मे [उपकारवाली] है, (**ताः**) वे सब (**सुहवाः**) सुन्दर बुलावे योग्य (**देवीः**) देवियाँ (**नः**) हमे (**शर्म**) घर वा सुख (**यच्छन्तु**) देवें ॥१॥

उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्य१ग्नाय्यश्विनी राट् ।

आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥२॥

पदार्थ—(**उत**) और भी (**देवपत्नीः**) विद्वानो वा राजाओ की पत्नियां, [अर्थात्] (**राट्**) ऐश्वर्यवाली, (**इन्द्राणी**) बडे ऐश्वर्य वाले पुरुष की पत्नी, (**अग्नायी**) अग्नि-सदृश तेजस्वी पुरुष की स्त्री, (**अश्विनी**) शीघ्रगामी पुरुष की स्त्री [प्रजा की] (**ग्नाः**) वाणियो को (**व्यन्तु**) व्याप्त हो। (**आ**) और (**रोदसी**) रुद्र, ज्ञानवान् पुरुष की स्त्री अथवा (**वरुणानी**) श्रेष्ठजन की पत्नी [वाणियो को] (**शृणोतु**) सुने और (**यः**) जो (**जनीनाम्**) स्त्रियो का [न्याय का] (**ऋतुः**) काल है, (**देवीः**) ये सब देवियां [उसको] (**व्यन्तु**) चाहना करें ॥२॥

卐 सूक्तम् ५० 卐

१—९ *आङ्गिरा (कितवबधकाम) । इन्द्र, अनुष्टुप्, ३—७ त्रिष्टुप्, ४ जगती, ६, भुरिक् त्रिष्टुप् ।*

यथा वृक्षमशनिर्विश्वाहा हन्त्यप्रति ।

एवाहमद्य कितवानक्षैर्बध्यासमप्रति ॥१॥

पदार्थ—(**यथा**) जैसे (**अशनिः**) बिजुली (**विश्वाहा**) सब दिनो (**अप्रति**) बे रोक होकर (**वृक्षम्**) पेड़ को (**हन्ति**) गिरा देती है। (**एव**) वैसे ही (**अहम्**) मैं (**अद्य**) आज (**अप्रति**) बे रोक होकर (**अक्षैः**) पाशो से (**कितवान्**) ज्ञान नाश करने वाले, जुआ खेलने वालो को (**बध्यासम्**) नाश करू ॥१॥

तुराणामतुराणां विशामवर्जुषीणाम् ।

समैतु विश्वतो भगो अन्तर्हस्तं कृतं मम ॥२॥

पदार्थ—(**तुराणाम्**) शीघ्रकारी, (**अतुराणाम्**) अशीघ्रकारी (**अवर्जुषीणाम्**) [शत्रुओ को] न रोक सकने वाली (**विशाम्**) प्रजाओ का (**भगः**) धन (**विश्वतः**) सब प्रकार (**मम**) मेरे (**अन्तर्हस्तम्**) हाथ मे आये हुए (**कृतम्**) कर्म को (**समैतु**) यथावत् प्राप्त हो ॥२॥

ईडे अग्निं स्वावसुं नमोभिरिह प्रसक्तो वि चयत् कृतं नः ।

रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणं मरुतां स्तोममृध्याम् ॥३॥

पदार्थ—(**स्वावसुम्**) बन्धुओ को धन देने वाले (**अग्निम्**) विद्वान् राजा को (**नमोभिः**) सत्कारो के साथ (**ईडे**) मैं ढूढता हूँ, (**प्रसक्तः**) सन्तुष्ट वह (**इह**) यहा पर (**नः**) हमारे (**कृतम्**) कर्म का (**वि चयत्**) विवेचन करे। (**प्रदक्षिणम्**) उसकी प्रदक्षिणा [आदर से पूज्य को दाहिनी ओर रखकर घूमना] (**प्र**) अच्छे प्रकार (**भरे**) मै धारण करता हूँ (**इव**) जैसे (**वाजयद्भिः**) शीघ्र चलने वाले (**रथैः**) रथो से, [जिससे] (**मरुताम्**) शूरवीरो मे (**स्तोमम्**) स्तुति को (**ऋध्याम्**) मै बढ़ाऊ ॥३॥

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।

अस्मभ्यमिन्द्र वरीयः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ॥४॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त इन्द्र राजन् ! (**त्वया**) तुझ (**युजा**) सहायक वा ध्यानी के साथ (**वयम्**) हम लोग (**वृतम्**) घेरने वाले शत्रु को (**जयेम**) जीत लेवे। (**अस्माकम्**) हमारे (**अंशम्**) भाग को (**भरे भरे**) प्रत्येक सग्राम मे (**उत्**) उत्तमता से (**अव**) रख। (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिये (**वरीयः**) विस्तीर्ण देश को (**सुगम्**) सुगम (**कृधि**) कर दे, (**मघवन्**) हे बडे धनी ! (**शत्रूणाम्**) शत्रुओ के (**वृष्ण्या**) साहसो को (**प्र रुज**) तोड दे ॥४॥

अजैषं त्वा संलिखितमजैषमुत संरुधम् ।

अविं वृको यथा मथदेवा मथ्नामि ते कृतम् ॥५॥

पदार्थ—[हे शत्रु !] (**संलिखितम्**) यथावत् लिखे हुए (**त्वा**) तुझको (**अजैषम्**) मैंने जीत लिया है, (**उत**) और (**संरुधम्**) रोक डालने वाले को (**अजैषम्**) मैंने जीत लिया है। (**यथा**) जैसे (**वृकः**) भेड़िया (**अविम्**) बकरी को (**मथत्**) मथ डालता है, (**एव**) वैसे ही (**ते**) तेरे (**कृतम्**) कर्म को (**मथ्नामि**) मै मथ डालू ॥५॥

उत प्रहामतिदीवा जयति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले ।

यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित् तं रायः सृजति स्वधाभिः ॥६॥

पदार्थ—(**उत**) और (**अतिदीवा**) बडा व्यवहारकुशल पुरुष (**प्रहाम्**) उपद्रवी शत्रु को (**जयति**) जीत लेता है, (**श्वघ्नी**) धन नाश करने वाला जुआरी (**काले**) [हार के] समय पर (**इव**) ही (**कृतम्**) अपने काम का (**वि चिनोति**) विवेक करता है। (**यः**) जो (**देवकामः**) शुभ गुणो का चाहने वाला (**धनम्**) धन को [शुभ काम मे] (**न**) नहीं (**रुणद्धि**) रोकता है, (**रायः**) अनेक धन (**तम्**) उसको (**इत्**) ही (**स्वधाभिः**) आत्मधारण शक्तियो के साथ (**सम् सृजति**) मिलते हैं ॥६॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे ।

वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम ॥७॥

पदार्थ—(**पुरुहूत**) हे बहुत बुलाये गए राजन् ! (**विश्वे**) हम सब लोग (**गोभिः**) विद्याओ से (**दुरेवाम्**) दुर्गतिवाली (**अमतिम्**) कुमति को (**तरेम**) हटावें, (**वा**) जैसे (**यवेन**) यव आदि अन्न से (**क्षुधम्**) भूख को। (**वयम्**) हम लोग (**राजसु**) राजाओ के बीच (**प्रथमाः**) पहिले और (**अरिष्टासः**) अजेय होकर (**वृजनीभिः**) अनेक वर्जनशक्तियो से (**धनानि**) अनेक धनो को (**जयेम**) जीतें ॥७॥

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः ।

गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित् ॥८॥

पदार्थ—(**कृतम्**) कर्म (**मे**) मेरे (**दक्षिणे**) दाहिने (**हस्ते**) हाथ में और (**जयः**) जीत (**मे**) मेरे (**सव्ये**) बायें हाथ मे (**आहितः**) स्थित है। मैं (**गोजित्**) भूमि जीतने वाला, (**अश्वजित्**) घोड़े जीतने वाला, (**धनंजयः**) धन जीतने वाला और (**हिरण्यजित्**) सुवर्ण जीतने वाला (**भूयासम्**) रहूँ ॥८॥

अक्षाः फलवतीं द्युवं दत्त गां क्षीरिणीमिव ।

सं मा कृतस्य धारया धनुः स्नाव्नेव नह्यत ॥९॥

पदार्थ—(**अक्षाः**) हे व्यवहारकुशल पुरुषो ! (**क्षीरिणीम्**) बड़ी दुधैल (**गाम् इव**) गौ के समान (**फलवतीम्**) उत्तम फलवाली (**द्युवम्**) व्यवहार-

शक्ति (दत्त) दान करो । (कृतस्य) कर्म की (धारया) धारा [प्रवाह] से (मा) मुझको (सम् नह्यत) यथावत् बांधो (इव) जैसे (स्नाम्ना) डोरी से (गाम्) गऊ को [बांधते हैं] ॥६॥

सूक्तम् ५१

१ अङ्गिराः । इन्द्राबृहस्पती । त्रिष्टुप् ।

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ॥१॥

पदार्थ—(बृहस्पतिः) बड़े शूरों का रक्षक सेनापति (नः) हमें (पश्चात्) पीछे, (उत्तरस्मात्) ऊपर (उत) और (अधरात्) नीचे से (अघायो) बुरा चीतनेवाले शत्रु से (परि पातु) सब प्रकार बचावे । (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला राजा (पुरस्तात्) आगे से (उत) और (मध्यत) मध्य से (न) हमारे लिये (वरीय) विस्तीर्ण स्थान (कृणोतु) करे, (सखा) जैसे मित्र (सखिभ्य.) मित्रों के लिये [करता है] ॥१॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः

卐

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ५२

१—२ अथर्वा । सांमनस्य, अश्विनौ । १ ककुम्मत्यनुष्टुप्, २ जगती ।

संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः ।
संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नि यच्छतम् ॥१॥

पदार्थ—(स्वेभि) अपनों के साथ (नः) हमारा (संज्ञानम्) एकमत और (अरणेभिः) बाहिर वालों के साथ (संज्ञानम्) एकमत हो । (अश्विना) हे माता पिता ! (युवम्) तुम दोनो (इह) यहां पर (अस्मासु) हम लोगों में (संज्ञानम्) एकमत (नि) निरन्तर (यच्छतम्) दान करो ॥१॥

सं जानामहै मनसा सं चिकित्वा मा युष्महि मनसा दैव्येन ।
मा घोषा उत् स्थुर्बहुले विनिर्हते मेषुः पप्तदिन्द्रस्याहन्यागते ॥२॥

पदार्थ—(मनसा) आत्मबल के साथ (सम् जानामहै) हम मिले रहें, (चिकित्वा) ज्ञान के साथ (सम्) मिले रहें, (दैव्येन) विद्वानों के हितकारी (मनसा) विज्ञान से (मा युष्महि) हम अलग न होवें । (बहुले) बहुत (विनिर्हते) विविध वध के कारण युद्ध होने पर (घोषा) कोलाहल (मा उत् स्थु) न उठें, (इन्द्रस्य) बड़े ऐश्वर्यवान् राजा का (इषुः) बाण (अहनि) दिन [न्याय दिन] (आगते) आने पर [हम पर] (मा पप्तत्) न गिरे ॥२॥

सूक्तम् ५३

१—७ ब्रह्मा । आयुः, बृहस्पति अश्विनौ च । त्रिष्टुप्, ३ भुरिक्, ४ उष्णिग्गर्भार्षी पङ्क्ति , ५—७ अनुष्टुप् ।

अमुत्रभूयादधि यद् यमस्य बृहस्पतेरभिशस्तेरमुञ्चः ।
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मद् देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! (यत्) जिस कारण से (अमुत्रभूयात्) परलोक में होने वाले भय से और (बृहस्पते.) बड़ों के रक्षक (यमस्य) नियम कर्ता राजा के [सम्बन्धी] (अभिशस्तेः) अपराध से (अधि) अधिकारपूर्वक (अमुञ्चः) तू ने छुड़ाया है । (देवानाम्) विद्वानों में (भिषजा) वैद्यरूप (अश्विना) माता पिता [वा अध्यापक, उपदेशक] ने (मृत्युम्) मृत्यु [मरण के कारण दुःख] को (अस्मत्) हम से (शचीभि) कर्मों द्वारा (प्रति) प्रतिकूल (औहताम्) हटाया है ॥१॥

सं क्रामतं मा जहीतं शरीरं प्राणापानौ ते सयुजाविह स्ताम् ।
शतं जीव शरदो वर्धमानोऽग्निष्टे गोपा अधिपा वसिष्ठः ॥२॥

पदार्थ—(प्राणापानौ) हे प्राण और अपान ! तुम दोनों (सं क्रामतम्) मिलकर चलो, (शरीरम्) इसके शरीर को (मा जहीतम्) मत छोड़ो । [हे मनुष्य!] वे दोनों (ते) तेरे लिये (सयुजौ) मिले हुए (इह) यहां पर (स्ताम्) रहें, (शतम् शरदः) सौ बरस तक (वर्धमानः) बढ़ता हुआ (जीव) तू जीता रहे, (अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर [वा जाठराग्नि] (ते) तेरा (गोपाः) रक्षक, (अधिपाः) अधिक पालन करने वाला और (वसिष्ठः) अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥२॥

आयुर्यत् ते अतिहितं पराचैरपानः प्राणः पुनरा ताविताम् ।
अग्निष्टदाहार्निर्ऋतेरुपस्थात् तदात्मनि पुनरा वेशयामि ते ॥३॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (यत्) जो (ते) तेरा (आयुः) जीवन सामर्थ्य (पराचैः) पराङ्मुख होकर (अतिहितम्) घट गया है, (तौ) वे दोनों (प्राणः) प्राण और (अपानः) अपान (पुनः) फिर (आ इताम्) आवें । (अग्नि.) वैद्य वा शरीराग्नि (तत्) उस [आयु] को (निर्ऋते.) महा विपत्ति के (उपस्थात्) पास से (आ अहाः) लाया है, (तत्) उसको (ते) तेरे (आत्मनि) शरीर में (पुनः) फिर (आ वेशयामि) प्रविष्ट करता हूँ ॥३॥

मेमं प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात् ।
सप्तर्षिभ्य एनं परि ददामि त एनं स्वस्ति जरसे वहन्तु ॥४॥

पदार्थ—(प्राण) प्राण (इमम्) इस [प्राणी] को (मा हासीत्) न छोड़े, (मो) और न (अपान) अपान वायु (अवहाय) छोड़ कर (परागात्) चला जावे । (एनम्) इस पुरुष को (सप्तर्षिभ्यः) सात व्यापनशीलों व दर्शनशीलों [अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन, और बुद्धि] को (परि ददामि) मैं समर्पण करता हूँ, (ते) वे (एनम्) इसको (स्वस्ति) आनन्द के साथ (जरसे) स्तुति के लिये (वहन्तु) ले चलें ॥४॥

प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् ।
अयं जरिम्णः शेवधिररिष्ट इह वर्धताम् ॥५॥

पदार्थ—(प्राणापानौ) हे प्राण और अपान ! तुम दोनो (प्र विशतम्) प्रवेश करते रहो, (इव) जैसे (अनड्वाहौ) रथ ले चलने वाले दो बैल (व्रजम्) गोशाला में । (अयम्) यह जीव (जरिम्ण) स्तुति का (शेवधिः) निधि, (अरिष्टः) दुःखरहित होकर (इह) यहां पर (वर्धताम्) बढ़ती करे ॥५॥

आ ते प्राणं सुवामसि परा यक्ष्मं सुवामि ते ।
आयुर्नो विश्वतो दधदयमग्निर्वरेण्यः ॥६॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे (प्राणम्) प्राण को (आ सुवामसि) हम अच्छे प्रकार आगे बढ़ाते हैं, और (ते) तेरे (यक्ष्मम्) राजरोग को (परा सुवामि) मैं दूर निकालता हूँ । (अयम्) यह (वरेण्य) स्वीकरणीय (अग्निः) जाठराग्नि (नः) हमारे (आयु) आयु को (विश्वत.) सब प्रकार (दधत्) पुष्ट करे ॥६॥

उद् वयं तमसस्परि रोहन्तो नाकमुत्तमम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥७॥

पदार्थ—(तमस.) अन्धकार से (परि) पृथक् होकर (उत्तमम्) उत्तम (नाकम्) सुख में (उद् रोहन्त) ऊपर चढ़ते हुए (वयम्) हमने (देवत्रा) प्रकाशमानों में (देवम्) प्रकाशमान, (उत्तमम्) उत्तम (ज्योति.) ज्योति स्वरूप, (सूर्यम्) सबके प्रेरक सूर्य जगदीश्वर को (अगन्म) पाया है ॥७॥

सूक्तम् ५४

१ ब्रह्मा, २ भृगुः । १ ऋक्साम, २ इन्द्र । अनुष्टुप् ।

ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कुर्वते ।
एते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु यच्छतः ॥१॥

पदार्थ—(ऋचम्) स्तुति विद्या [ईश्वर से लेकर समस्त पदार्थों के ज्ञान], (साम) दुःख नाशक मोक्ष विद्या का (यजामहे) हम सत्कार करते हैं, (याभ्याम्) जिन दोनों के द्वारा (कर्माणि) कर्मों को (कुर्वते) वे [सब प्राणी] करते हैं । (एते) ये दोनों (सदसि) [संसार रूपी] बैठक में (राजत) विराजते हैं और (देवेषु) विद्वानों के बीच (यज्ञम्) सङ्गति (यच्छत.) दान करते हैं ॥१॥

ऋचं साम यदप्राक्षं हविरोजो यजुर्बलम् ।
एष मा तस्मान्मा हिंसीद् वेदः पृष्टः शचीपते ॥२॥

पदार्थ—(यत्) जिस लिये (ऋचम्) पदार्थों की स्तुतिविद्या, (साम) दुःखनाशक मोक्षविद्या और (यजुः) विद्वानों के सत्कार, विद्यादान और पदार्थों के सङ्गतिकरण द्वारा (हविः) ग्राह्यकर्म, (ओज.) मानसिक बल और (बलम्) शारीरिक बल को (अप्राक्षम्) मैंने पूछा है [विचारा है] । (तस्मात्) इसलिये, (शचीपते) हे वाणी वा कर्म वा बुद्धि के रक्षक आचार्य ! (एषः) यह (पृष्ठ.) पूछा हुआ (वेद) वेद (मा) मुझको (मा हिंसीत्) न दुःख देवे ॥२॥

सूक्तम् ५५

१ भृगुः । इन्द्रः । विराट् परोष्णिक् ।

ये ते पन्थानोऽव दिवो येभिर्विश्वमैरयः ।
तेभिः सुम्नया धेहि नो वसो ॥१॥

पदार्थ—(वसो) हे श्रेष्ठ परमात्मन् ! (ये) जो (ते) तेरे (दिवः) प्रकाश के (पन्थानः) मार्ग (अव) निश्चय करके हैं, (येभिः) जिनके द्वारा (विश्वम्) संसार को (ऐरयः) तूने चलाया है । (तेभिः) उनसे ही (सुम्नया) सुख के साथ (नः) हमें (आ धेहि) सब प्रकार से पुष्ट कर ॥१॥

卐 सूक्तम् ५६ 卐

१—८ अथर्वा । वृश्चिकादयः, २ वनस्पतिः, ४ ब्रह्मणस्पतिः । अनुष्टुप्, २ विराट्प्रस्तारपङ्क्तिः ।

तिरश्चिराजेरसितात् पृदाकोः परि संभृतम् ।
तत् कङ्कपर्वणो विषमियं वीरुदनीनशत् ॥१॥

पदार्थ—(इयम्) इस (वीरुत्) जड़ी बूटी ने (तिरश्चिराजेः) तिरछी रेखाओं वाले, (असितात्) कृष्णवर्ण वाले, (कङ्कपर्वणः) काक वा चील पक्षी के समान जोड़ वाले (पृदाकोः) फुंकारते हुए साँप से (संभृतम्) लाये हुए (तत्) उस (विषम्) विष को (परि) सब प्रकार (अनीनशत्) नाश कर दिया है ॥१॥

इयं वीरुन्मधुजाता मधुश्चुन्मधुला मधूः ।
सा विह्रुतस्य भेषज्यथो मशकजम्भनी ॥२॥

पदार्थ—(इयम्) यह [ब्रह्मविद्या] (वीरुत्) जड़ी-बूटी (मधुजाता) मधुरपन से उत्पन्न हुई, (मधुश्चुत्) मधुरपन टपकाने वाली है । (मधुला) मधुरपन देने वाली और (मधूः) मधुर स्वभाव वाली है । (सा) वही (विह्रुतस्य) बड़े कुटिल विष की (भेषजी) ओषधि (अथो) और (मशकजम्भनी) मच्छरों [मच्छर के समान गुणों] का नाश करनेवाली है ॥२॥

यतो दष्टं यतो धीतं ततस्ते निर्ह्वयामसि ।
अर्भस्य तृप्रदंशिनो मशकस्यारसं विषम् ॥३॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (यतः) जहाँ पर (दष्टम्) काटा गया है और (यतः) जहाँ पर (धीतम्) [रुधिर] पिया गया है, (ते) तेरे (ततः) उसी [अङ्ग] से (अर्भस्य) छोटे (तृप्रदंशिनः) तीव्र काटनेवाले (मशकस्य) मच्छर के (अरसम्) निर्बल [किये हुए] (विषम्) विष को (निः) निकालकर (ह्वयामसि) हम वचन देते हैं ॥३॥

अयं यो वक्रो विपरुर्व्यङ्गो मुखानि वक्रा वृजिना कृणोषि ।
तानि त्वं ब्रह्मणस्पत इषीकामिव सं नमः ॥४॥

पदार्थ—(अयम् यः) यह जो [विषरोगी] (वक्रः) टेढ़े शरीरवाला, (विपरुः) विकृत जोड़ो वाला (व्यङ्गः) ढीले अङ्गो [हाथ पैरो] वाला (मुखानि) अपने मुख के अवयवो [दाँत नाक नेत्र आदि] को (वक्रा) टेढ़ा और (वृजिना) ऐंठे मरोड़े (कृणोषि = कृणोति) करता है । (ब्रह्मणः पते) हे बड़े ज्ञान के स्वामी [वैद्य राज !] (त्वम्) तू (तानि) उन [अङ्गो] को (सम् नम) मिलाकर ठीक कर दे (इव) जैसे (इषीकाम्) कास वा मूँजको [रसरी के लिये] ॥४॥

अरसस्य शर्कोटस्य नीचीनस्योपसर्पतः ।
विषं ह्यस्यादिष्यथो एनमजीजभम् ॥५॥

पदार्थ—(अस्य) इस (अरसस्य) निर्बल [तुच्छ वा काटने वाले], (नीचीनस्य) नीचे पड़े हुए, (उपसर्पतः) रेंगते हुए, (शर्कोटस्य) काटकर टेढ़ा कर देनेवाले [बिच्छू आदि] के (विषम्) विष को (हि) निश्चय करके (आ-अदिषि) मैंने खण्डित कर दिया है (अथो) और (एनम्) इस [जन्तु] को (अजीजभम्) मैंने कुचल डाला है ॥५॥

न ते बाह्वोर्बलमस्ति न शीर्षे नोत मध्यतः ।
अथ किं पापयामुया पुच्छे बिभर्ष्यर्भकम् ॥६॥

पदार्थ—[हे बिच्छू !] (न) न तो (ते) तेरे (बाह्वोः) दोनों भुजाओं में (बलम्) बल (अस्ति) है, (न) न (शीर्षे) शिर में (उत) और (न) न (मध्यतः) बीच में है । (अथ) फिर (किम्) क्यों (अमुया पापया) उस पाप बुद्धि से (पुच्छे) पूँछ में (अर्भकम्) थोड़ा सा [विष] (बिभर्षि) तू रखता है ? ॥६॥

अदन्ति त्वा पिपीलिका वि वृश्चन्ति मयूर्यः ।
सर्वे भल ब्रवाथ शार्कोटमरसं विषम् ॥७॥

पदार्थ—[हे बिच्छू वा सर्प !] (त्वा) तुझको (पिपीलिकाः) चिऊँटियें (अदन्ति) खा जाती हैं और (मयूर्यः) मोरनियें (वि वृश्चन्ति) काट डालती हैं । [हे मनुष्यो !] (सर्वे) तुम सब (शार्कोटम्) बिच्छू वा सर्प के (विषम्) विष को (अरसम्) निर्बल (भल) भली भाँति (ब्रवाथ) बतलाओ ॥७॥

य उभाभ्यां प्रहरसि पुच्छेन चास्येन च ।
आस्ये न ते विषं किमु ते पुच्छधावसत् ॥८॥

पदार्थ—[हे बिच्छू !] (यः) जो तू (उभाभ्याम्) दोनों (पुच्छेन) पूँछ से (च च) और (आस्येन) मुख से (प्रहरसि) चोट मारता है । (ते) तेरे (आस्ये) मुख में (विषम्) विष (न) नहीं है, (उ) तो, (ते) तेरे (पुच्छधौ) पूँछ की थैली में (किम्) क्या (असत्) होवे ? ॥८॥

卐 सूक्तम् ५७ 卐

१—२ वामदेवः । सरस्वती । जगती ।

यदाशसा वदतो मे विचुक्षुभे यद् याचमानस्य चरतो जनाँ अनु ।
यदात्मनि तन्वो मे विरिष्टं सरस्वती तदा पृणद् घृतेन ॥१॥

पदार्थ—(वदतः मे) मुझ बोलने वाले का (यत्) जो [मन] (आशसा) किसी हिंसा से (विचुक्षुभे) व्याकुल हो गया है, [अथवा] (जनान् अनु) मनुष्यों के पास (चरतः) चलकर (याचमानस्य) मुझ माँगने वाले का (यत्) जो [मन व्याकुल हो गया है] । [अथवा] (मे तन्वः) मेरे शरीर के (आत्मनि) आत्मा में (यत् विरिष्टम्) जो कष्ट है, (सरस्वती) विज्ञानयुक्त विद्या (तत्) उसको (घृतेन) प्रकाश वा सारतत्त्व से (आ) भली भाँति (पृणत्) भर देवे ॥१॥

सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवृतन्नृतानि ।
उभे इदस्योभे अस्य राजत उभे यतेते उभे अस्य पुष्यतः ॥२॥

पदार्थ—(सप्त) सात [इन्द्रियाँ अर्थात् दो कान, दो नथुने, दो आँख, एक मुख] (मरुत्वते) सुवर्ण वाले (शिशवे) दुःखनाशक बालक [वा प्रशंसनीय वा उदार विद्वान्] के लिये [सुख से] (क्षरन्ति) बरसती हैं, (अपि) और (पुत्रासः) पुत्रों [पुत्र समान हितकारी पुरुषों] ने (पित्रे) उस पिता [पिता तुल्य माननीय] के लिये (ऋतानि) सत्य धर्मों को (अवीवृतन्) प्रवृत्त किया है । (उभे) दोनों [वर्तमान और भविष्यत् जन्म वा अवस्था] (इत्) ही (अस्य) इस [विद्वान्] के होते हैं, (अस्य) इसके (उभे) दोनों (राजतः) ऐश्वर्यवान् होते हैं, (उभे) दोनों (यतेते) प्रयत्नशाली होते हैं, (उभे) दोनों (अस्य) इसका (पुष्यतः) पोषण करते हैं ॥२॥

卐 सूक्तम् ५८ 卐

१—२ कौरुपथिः । इन्द्रावरुणौ । जगती, २ त्रिष्टुप् ।

इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रतौ ।
युवो रथो अध्वरो देववीतये प्रति स्वसरमुप यातु पीतये ॥१॥

पदार्थ—(सुतपौ) हे पुत्रों के रक्षा करने वाले ! (धृतव्रतौ) उत्तम कर्मों के धारण करने वाले ! (इन्द्रावरुणा) बिजुली और वायु के समान वर्त्तमान राजा और प्रजाजन (इमम् सुतम्) इस पुत्र को (मद्यम्) आनन्ददायक (सोमम्) ऐश्वर्य [वा बड़ी बड़ी ओषधियों का रस] (पिबतम् = पाययतम्) पान कराओ । (युवोः) तुम दोनों का (अध्वरः) मार्ग बताने वाला (रथः) विमान आदि यान (देववीतये) दिव्य पदार्थों की प्राप्ति के लिये और (पीतये) वृद्धि के लिये (प्रति स्वसरम्) प्रतिदिन वा प्रतिघर (उप यातु) आया करे ॥१॥

इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ।
इदं वामन्धः परिषिक्तमासद्यास्मिन् बर्हिषि मादयेथाम् ॥२॥

पदार्थ—(वृषणा) हे बलिष्ठ ! (इन्द्रावरुणा) बिजुली और वायु के समान राजा और प्रजाजनो ! तुम (मधुमत्तमस्य) अत्यन्त ज्ञानयुक्त, (वृष्णः) बल करने वाले (सोमस्य) ऐश्वर्य की (वृषेथाम्) वर्षा करो । (वाम्) तुम दोनों का (इदम्) यह (परिषिक्तम्) सब प्रकार सींचा हुआ (अन्धः) अन्न है, (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) वृद्धि कर्म में (आसद्य) बैठकर (मादयेथाम्) आनन्दित करो ॥२॥

卐 सूक्तम् ५९ 卐

१ बादरायणिः । अरिनाशनम् । अनुष्टुप् ।

यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात् ।
वृक्ष इव विद्युता हत आ मूलादनु शुष्यतु ॥१॥

पदार्थ—(यः) जो (अशपतः) न शाप देने वाले (नः) हम लोगों को (शपात्) शाप देवे, (च) और (यः) जो (शपतः) शाप देने वाले (नः) हम लोगों को (शपात्) शाप देवे । (विद्युता) बिजुली से (हतः) मारे गये

(वृक्षः इव) वृक्ष के समान वह (आ मूलात्) जड़ से लेकर (अनु) निरन्तर (शुष्यतु) सूख जावे ॥१॥

卐 इति पंचमोऽनुवाकः 卐

卐

अथ षष्ठोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ६० 卐

१—७ ब्रह्मा । गृहा., वास्तोष्पतिः । अनुष्टुप्, १ परानुष्टुप् त्रिष्टुप् ।

ऊर्जं बिभ्रद् वसुवनिः सुमेधा अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।
गृहानैमि सुमना वन्दमानो रमध्वं मा बिभीत मत् ॥१॥

पदार्थ—(ऊर्जम्) पराक्रम (बिभ्रत्) धारण करता हुआ, (वसुवनि) धन उपार्जन करने वाला, (सुमेधाः) उत्तम बुद्धि वाला, (अघोरेण) अभयानक, (मित्रियेण) मित्र के (चक्षुषा) नेत्र से [देखता हुआ] (सुमना) सुन्दर मन वाला, (वन्दमानः) [तुम्हारे] गुण बखानता हुआ मैं (गृहान्) घर के लोगों में (आ एमि) आता हूँ । (रमध्वम्) तुम प्रसन्न होओ, (मत्) मुझ से (मा बिभीत) भय मत करो ॥१॥

इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः ।
पूर्णा वामेन तिष्ठन्तस्ते नो जानन्त्वायतः ॥२॥

पदार्थ—(इमे) ये (गृहाः) घर के लोग (मयोभुव) आनन्द देने वाले, (ऊर्जस्वन्तः) बड़े पराक्रमी, (पयस्वन्त) उत्तम जल, दुग्ध आदि वाले, (वामेन) उत्तम धन से (पूर्णाः) भरपूर (तिष्ठन्त) खड़े हुए हैं । (ते) वे लोग (आयतः) आते हुए (नः) हमको (जानन्तु) जानें ॥२॥

येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः ।
गृहानुप ह्वयामहे ते नो जानन्त्वायतः ॥३॥

पदार्थ—(प्रवसन्) परदेश बसता हुआ मनुष्य (येषाम्) जिन [गृहस्थों] का (अध्येति) स्मरण करता है, और (येषु) जिनमें (बहुः) अधिक (सौमनस) प्रीतिभाव है, (गृहान्) उन घरवालों को (उप ह्वयामहे) हम प्रीति से बुलाते हैं, (ते) वे लोग (आयतः) आते हुए (नः) हम को (जानन्तु) जानें ॥३॥

उपहूता भूरिधनाः सखायः स्वादुसंमुदः ।
अक्षुध्या अतृष्या स्त गृहा मास्मद् बिभीतन ॥४॥

पदार्थ—(भूरिधनाः) बड़े धनी, (स्वादुसमुदः) स्वादिष्ट पदार्थों से आनन्द करने वाले (सखायः) मित्र लोग (उपहूताः) स्वागत किये गये हैं । (गृहाः) हे घर के लोगो ! (अक्षुध्याः, अतृष्याः, स्त) तुम भूखे-प्यासे मत रहो, (अस्मत्) हम से (मा बिभीतन) मत भय करो ॥४॥

उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः ।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः ॥५॥

पदार्थ—(इह) यहाँ पर (नः) हमारे (गृहेषु) घर में (गावः) गौएं (उपहूताः) आदर से बुलायी गयीं, और (अजावयः) भेड़-बकरी (उपहूताः) पास में बुलायी गयीं होवें । (अथो) और भी (अन्नस्य) अन्न का (कीलालः) रसीला पदार्थ (उपहूतः) पास लाया गया हो ॥५॥

सूनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः ।
अतृष्या अक्षुध्या स्त गृहा मास्मद् बिभीतन ॥६॥

पदार्थ—(सूनृतावन्तः) प्रिय सत्य वचन वाले, (सुभगाः) बड़े ऐश्वर्य वाले, (इरावन्तः) उत्तम भोजन वाले, (हसामुदाः) हंस-हंस कर प्रसन्न करने वाले, (गृहाः) हे घर के लोगो ! तुम (अतृष्याः, अक्षुध्याः स्त) प्यासे, भूखे मत रहो, (अस्मत्) हमसे (मा बिभीतन) मत भय करो ॥६॥

इहैव स्त मानु गात विश्वा रूपाणि पुष्यत ।
ऐष्यामि भद्रेणा सह भूयांसो भवता मया ॥७॥

पदार्थ—(इह एव) यहाँ ही (स्त) रहो, (अनु) पीछे-पीछे (मा गात) मत चलो, (विश्वा) सब (रूपाणि) रूप वाली वस्तुओं को (पुष्यत) पुष्ट करो । (भद्रेण सह) कुशल के साथ (आ एष्यामि) मैं आऊंगा, [फिर] (मया) मेरे साथ (भूयांसः) अधिक अधिक होकर (भवत) रहो ॥७॥

卐 सूक्तम् ६१ 卐

१—२ अथर्वा । अग्नि । अनुष्टुप् ।

यदग्ने तपसा तप उपतप्यामहे तपः ।
प्रियाः श्रुतस्य भूयास्मायुष्मन्तः सुमेधसः ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे विद्वन् आचार्य ! (यत्) जिस कारण से (तपसा) तप [शीत-उष्ण, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों के सहन] से (तप) ऐश्वर्य के हेतु (तप) तप [ब्रह्मचर्य आदि सत्यव्रत] को (उपतप्यामहे) हम ठीक-ठीक काम में लाते हैं । [उसीसे] हम (श्रुतस्य) वेद शास्त्र के (प्रियाः) प्रीति करने वाले (आयुष्मन्त) प्रशंसनीय आयु वाले और (सुमेधस.) तीव्रबुद्धि (भूयास्म) हो जावें ॥१॥

अग्ने तपस्तप्यामह उप तप्यामहे तपः ।
श्रुतानि शृण्वन्तो वयमायुष्मन्तः सुमेधसः ॥२॥

पदार्थ—(अग्ने) हे विद्वन् आचार्य ! हम (तप) तप [द्वन्द्व सहन] (तप्यामहे) करते हैं, और (तपः) ब्रह्मचर्यादि व्रत (उप तप्यामहे) यथावत् साधते हैं । (श्रुतानि) वेदशास्त्रों का (शृण्वन्त) सुनते हुए (वयम्) हम (आयुष्मन्तः) उत्तम जीवन वाले और (सुमेधस) तीव्र बुद्धि वाले [हो जावें] ॥२॥

卐 सूक्तम् ६२ 卐

१ मरीचिः काश्यप । अग्नि । जगती ।

अयमग्निः सत्पतिर्वृद्धवृष्णो रथीव पत्तीनजयत् पुरोहितः ।
नाभा पृथिव्यां निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥१॥

पदार्थ—(अयम्) इस (सत्पतिः) श्रेष्ठों के रक्षक, (वृद्धवृष्णः) बड़े बल वाले, (पुरोहित) सब के अगुआ (अग्नि) अग्नि-समान तेजस्वी सेनापति ने (रथी इव) रथ वाले योधा के समान (पत्तीन्) [शत्रु की] सेनाओं को (अजयत्) जीत लिया है । (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (नाभा) नाभि में (निहितः) स्थापित किया हुआ (दविद्युतत्) अत्यन्त प्रकाशमान वह [उनको] (अधस्पदम्) पाँव के तले (कृणुताम्) कर लेवे, (ये) जो (पृतन्यवः) सेना चढ़ाने वाले हैं ॥१॥

卐 सूक्तम् ६३ 卐

१ मरीचि काश्यपः । जातवेदाः । जगती ।

पृतनाजितं सहमानमग्निमुक्थैर्हवामहे परमात् सधस्थात् ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा क्षामद् देवोऽति दुरितान्यग्निः ॥१॥

पदार्थ—(पृतनाजितम्) संग्राम जीतने वाले, (सहमानम्) विजयी, (अग्निम्) अग्नि-समान तेजस्वी सेनापति को (उक्थैः) स्तुतियों के साथ [उसके] (परमात्) बहुत ऊँचे (सधस्थात्) निवास स्थान से (हवामहे) हम बुलाते हैं । (सः) वह (देवः) व्यवहार कुशल (अग्निः) तेजस्वी सेनापति (विश्वा) सब (दुर्गाणि) दुर्गों को (अति) उलाँघ कर और (दुरितानि) विघ्नों को (अति) हटाकर (नः) हमें (पर्षत्) पार लगावे, और (क्षामत्) समर्थ करे ॥१॥

卐 सूक्तम् ६४ 卐

१—२ यमः । आपः अग्निः निर्ऋतिः । १ भुरिगनुष्टुप्, २ न्यङ्कुसारिणी बृहती ।

इदं यत् कृष्णः शकुनिरभिनिष्पतन्नपीपतत् ।
आपो मा तस्मात् सर्वस्माद् दुरितात् पान्त्वंहसः ॥१॥

पदार्थ—(कृष्णः) कौवे वा (शकुनिः) चील के समान निन्दित उपद्रव ने (अभिनिष्पतन्) सम्मुख आते हुए (इदम् यत्) यह जो कष्ट (अपीपतत्) गिराया है । (आपः) उत्तम कर्म (मा) मुझको (तस्मात्) उस (सर्वस्मात्) सब (दुरितात्) कठिन (अंहसः) कष्ट से (पान्तु) बचावें ॥१॥

इदं यत् कृष्णः शकुनिरवामृक्षन्निर्ऋते ते मुखेन ।
अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्र मुञ्चतु ॥२॥

पदार्थ—(निर्ऋते) हे कठिन आपत्ति ! (ते) तेरे (मुखेन) मुख के सहित (कृष्णः) कौवे अथवा (शकुनिः) चील के समान निन्दित उपद्रव ने (इदम्) यह (यत्) जो कुछ कष्ट (अवामृक्षत्) एकत्र किया है । (गार्हपत्यः) गृहपति [आत्मा] से संयुक्त (अग्निः) पराक्रम (तस्मात्) उस (एनसः) कष्ट से (मा) मुझ को (प्र मुञ्चतु) छुड़ा देवे ॥२॥

सूक्तम् ६५

१—३ शुक्रः । अपामार्गवीरुत् । अनुष्टुप् ।

प्रतीचीनफलो हि त्वमपामार्ग रुरोहिथ ।
सर्वान् मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया इतः ॥१॥

पदार्थ—(अपामार्ग) हे सर्व संशोधक वैद्य ! [वा अपामार्ग औषध !] (त्वम्) तू (हि) निश्चय करके (प्रतीचीनफल) प्रतिकूलगति वाले रोगों का नाश करने वाला (रुरोहिथ) उत्पन्न हुआ है। (इतः मत्) इस मुझसे (सर्वान्) सब (शपथान्) शापों [दोषों] को (अधि) अधिकार पूर्वक (वरीयः) अति दूर (यवयाः) तू हटा देवे ॥१॥

यद् दुष्कृतं यच्छमलं यद् वा चेरिम पापया ।
त्वया तद् विश्वतोमुखापामार्गाप मृज्महे ॥२॥

पदार्थ—(यत्) जो कुछ (दुष्कृतम्) दुष्कर्म (यद् वा) अथवा (यत्) जो कुछ (शमलम्) मलिन कर्म (पापया) पाप बुद्धि से (चेरिम) हमने किया है। (विश्वतोमुख) हे सब ओर मुख रखने वाले ! [अतिदूरदर्शी] (अपामार्ग) हे सर्वथा संशोधक ! (त्वया) तेरे साथ (तत्) उसको (अप मृज्महे) हम शोधते हैं ॥२॥

श्यावदता कुनखिना बण्डेन यत् सहासिम ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥३॥

पदार्थ—(श्यावदता) काले दांत वाले, (कुनखिना) दूषित नख वाले (बण्डेन) बण्डे [टेढ़े मेढ़े अङ्ग वाले रोगी] के (सह) साथ (यत्) जो (आसिम) रहे हैं। (अपामार्ग) हे सर्वथा संशोधक ! [वैद्य वा अपामार्ग औषध !] (त्वया) तेरे साथ (वयम्) हम (तत् सर्वम्) उन सब को (अप मृज्महे) शोधते हैं ॥३॥

सूक्तम् ६६

१ ब्रह्मा । ब्रह्म । त्रिष्टुप् ।

यद्यन्तरिक्षे यदि वात आस यदि वृक्षेषु यदि वोलपेषु ।
यदश्रवन् पशव उद्यमानं तद् ब्राह्मणं पुनरस्मानुपैतु ॥१॥

पदार्थ—(यदि=यत्) जो [ब्रह्मज्ञान] (अन्तरिक्षे) आकाश में (यदि) जो (वाते) वायु में (यदि) जो (वृक्षेषु) वृक्षों में, (वा) और (यदि) जो (उलपेषु) कोमल तृणों [अन्न आदि] में (आस) व्याप्त था। (यत्) जिस (उद्यमानम्) उच्चारण किये हुए को (पशवः) सब प्राणियों ने (अश्रवन्) सुना है, (तत्) वह (ब्राह्मणम्) वेद विज्ञान (पुनः) वारवार [अथवा परजन्म में] (अस्मान्) हमें (उपैतु) प्राप्त होवे ॥१॥

सूक्तम् ६७

ब्रह्मा । आत्मा । पुर. परोष्णिग्बृहती ।

पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा द्रविणं ब्राह्मणं च ।
पुनरग्नयो धिष्ण्या यथास्थाम कल्पयन्तामिहैव ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रियम्) इन्द्रत्व [परम ऐश्वर्य] (मा) मुझको (पुनः) अवश्य [वा फिर जन्म में], (आत्मा) आत्मबल, (द्रविणम्) धन (च) और (ब्राह्मणम्) वेदविज्ञान (पुनः) अवश्य [वा परजन्म में] (आ एतु) प्राप्त होवे (धिष्ण्याः) बोलने में चतुर (अग्नयः) विद्वान् लोग (यथास्थाम) यथास्थान [कर्मानुसार मुझको] (इह) यहाँ (एव) ही (पुनः) अवश्य [वा परजन्म में] (कल्पयन्ताम्) समर्थ करें ॥१॥

सूक्तम् ६८

१—३ शन्तातिः । सरस्वती । १ अनुष्टुप्, २ त्रिष्टुप्, ३ गायत्री ।

सरस्वति व्रतेषु ते दिव्येषु देवि धामसु ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ॥१॥

पदार्थ—(देवि) हे देवी (सरस्वति) सरस्वती ! [विज्ञानवती वेद विद्या] (ते) अपने (दिव्येषु) दिव्य (व्रतेषु) व्रतों [नियमों] में और (धामसु) धर्मों [धारण शक्तियों] में [हमारे] (आहुतम्) दिये हुए (हव्यम्) ग्राह्य कर्म को (जुषस्व) स्वीकार कर, (देवि) हे देवी ! (नः) हमें (प्रजाम्) [उत्तम] प्रजा (ररास्व) दे ॥१॥

इदं ते हव्यं घृतवत् सरस्वतीदं पितॄणां हविरास्यं यत् ।
इमानि त उदिता शंतमानि तेभिर्वयं मधुमन्तः स्याम ॥२॥

पदार्थ—(सरस्वति) हे सरस्वती ! (इदम्) यह (यत्) जो (ते) तेरा (घृतवत्) प्रकाशयुक्त (हव्यम्) ग्राह्य कर्म है, और (इदम्) यह [जो] (पितॄणाम्) पिता समान माननीय विद्वानों के (आस्यम्) मुख पर रहनेवाला (हविः) ग्राह्य पदार्थ है। और [जो] (ते) तेरे (इमानि) ये सब (शंतमानि) अत्यन्त शान्ति देनेवाले (उदिता) वचन हैं, (तेभिः) उनसे (वयम्) हम (मधुमन्तः) उत्तम ज्ञानवाले (स्याम) होवें ॥२॥

शिवा नः शंतमा भव सुमृडीका सरस्वति ।
मा ते युयोम संदृशः ॥३॥

पदार्थ—(सरस्वति) हे सरस्वती ! तू (नः) हमारे लिये (शिवा) कल्याणी, (शंतमा) अत्यन्त शान्ति देने वाली और (सुमृडीका) अत्यन्त सुख देने वाली (भव) हो। हम लोग (ते) तेरे (संदृशः) यथावत् दर्शन [यथार्थ स्वरूप के ज्ञान] से (मा युयोम) कभी अलग न होवें ॥३॥

सूक्तम् ६९

१ शन्तातिः । सुखम् । पथ्यापङ्क्तिः ।

शं नो वातो वातु शं नस्तपतु सूर्यः । अहानि शं
भवन्तु नः शं रात्री प्रति धीयतां शमुषा नो व्युच्छतु ॥१॥

पदार्थ—(शम्) सुखकारी (वातः) वायु (नः) हमारे लिए (वातु) चले, (शम्) सुखकारी (सूर्यः) सूर्य (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (तपतु) तपे। (अहानि) दिन (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (भवन्तु) होवें, (रात्री) रात्रि (शम् प्रति) सुख के लिये (धीयताम्) धारण की जावे (शम्) सुखकारी (उषा) उषा [प्रभात वेला] (नः) हमारे लिये (वि) विविध प्रकार (उच्छतु) चमके ॥१॥

सूक्तम् ७०

१—५ अथर्वा । श्येनः, देवाः, त्रिष्टुप्, २ अति जागतगर्भा जगती, ३—५ अनुष्टुप् (३ पुर ककुम्मती) ।

यत् किं चासौ मनसा यच्च वाचा यज्ञैर्जुहोति हविषा यजुषा ।
तन्मृत्युना निर्ऋतिः संविदाना पुरा सत्यादाहुतिं हन्त्वस्य ॥१॥

पदार्थ—(असौ) वह [शत्रु] (यत् किम्) जो कुछ (मनसा) मन से, (च च) और (यत्) जो कुछ (वाचा) वाणी से, (यज्ञैः) सङ्गति कर्मों से, (हविषा) भोजन से और (यजुषा) दान से (जुहोति) आहुति करता है। (मृत्युना) मृत्यु के साथ (संविदाना) मिली हुई (निर्ऋतिः) निर्ऋति, दरिद्रता आदि अलक्ष्मी (सत्यात् पुरा) सफलता से पहिले (अस्य) इसकी (तत्) उस (आहुतिम्) आहुति को (हन्तु) नाश करे ॥१॥

यातुधाना निर्ऋतिरादु रक्षस्ते अस्य घ्नन्त्वनृतेन सत्यम् । इन्द्रेषिता
देवा आज्यमस्य मथ्नन्तु मा तत् सं पादि यदसौ जुहोति ॥२॥

पदार्थ—(निर्ऋतिः) अलक्ष्मी (आत् उ) और भी (ते) वे सब (यातुधानाः) दुःखदायी (रक्षः) राक्षस (अस्य) इस [शत्रु] की (सत्यम्) सफलता को (अनृतेन) मिथ्या आचरण के कारण (घ्नन्तु) नाश करें। (इन्द्रेषिताः) इन्द्र, परम ऐश्वर्य वाले सेनापति के भेजे हुए (देवाः) विजयी शूर (अस्य) इसके (आज्यम्) घृत [तत्त्वपदार्थ] को (मथ्नन्तु) विध्वंस करें, (असौ) वह [शत्रु] (यत्) जो कुछ (जुहोति) आहुति दे, (तत्) वह (मा सम् पादि) सम्पन्न [सफल] न होवे ॥२॥

अजिराधिराजौ श्येनौ संपातिनाविव ।
आज्यं पृतन्यतो हतां यो नः कश्चाभ्यघायति ॥३॥

पदार्थ—(अजिराधिराजौ) शीघ्रगामी दोनों बड़े राजा [दरिद्रता] और [मृत्यु] (सम्पातिनौ) झपट मारने वाले (श्येनौ इव) दो श्येन वा बाज पक्षी के समान (पृतन्यतः) उस चढ़ाई करने वाले शत्रु के (आज्यम्) घृत [तत्त्वपदार्थ] को (हताम्) नाश करें (यः कः च) जो कोई (नः) हम से (अभ्यघायति) दुष्ट आचरण करे ॥३॥

अपाञ्चौ त उभौ बाहू अपि नह्याम्यास्यम् ।
अग्नेर्देवस्य मन्युना तेन तेऽवधिषं हविः ॥४॥

पदार्थ—[हे शत्रु !] (ते) तेरे (अपाञ्चौ) पीछे को चढ़ाये गये (उभौ) दोनों (बाहू) भुजाओं को (अपि) और (आस्यम्) मुख को (नह्यामि) मैं बाधता हूँ। (देवस्य) विजयी (अग्नेः) तेजस्वी सेनापति के (तेन मन्युना) उस क्रोध से (ते) तेरे (हविः) भोजन आदि ग्राह्यपदार्थ को (अवधिषम्) मैंने नष्ट कर दिया ॥४॥

अपि नह्यामि ते बाहू अपि नह्याम्यास्यम् ।
अग्नेर्घोरस्य मन्युना तेन तेऽवधिषं हविः ॥५॥

पदार्थ—[हे शत्रु !] (ते) तेरी (बाहू) दोनो भुजाओं को (अपि नह्यामि) बांधे देता हूँ और (आस्यम्) मुख को (अपि) भी (नह्यामि) बन्द करता हूँ। (घोरस्य) भयकर (अग्नेः) तेजस्वी सेनापति के (तेन मन्युना) उस क्रोध से (ते) तेरे (हविः) भोजनादि ग्राह्य पदार्थ को (अवधिषम्) मैं ने नष्ट कर दिया है ॥५॥

卐 सूक्तम् ७१ 卐

१—अथर्वा । अग्निः । अनुष्टुप् ।

परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।
धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावतः ॥१॥

पदार्थ—(सहस्य) हे बल के हितकारी ! (अग्ने) तेजस्वी सेनापति ! (पुरम्) दुर्गरूप, (विप्रम्) बुद्धिमान्, (धृषद्वर्णम्) अभयस्वभाव, (भङ्गुरावत) नाश करने वाले कर्म से युक्त [कपटी] के (हन्तारम्) नाश करने वाले (त्वा) तुझको (दिवे दिवे) प्रति दिन (वयम्) हम (परि धीमहि) परिधि बनाते हैं ॥१॥

卐 सूक्तम् ७२ 卐

१—३ अथर्वा । इन्द्रः । अनुष्टुप्, २—३ त्रिष्टुप् ।

उत् तिष्ठताव पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम् ।
यदि श्रातं जुहोतन यद्यश्रातं ममत्तन ॥१॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (उत् तिष्ठत) खड़े हो जाओ, (इन्द्रस्य) बड़े ऐश्वर्य वाले मनुष्य के (ऋत्वियम्) सब काल में मिलने वाले (भागम्) ऐश्वर्य समूह को (अव पश्यत) खोजो। (यदि) जो (श्रातम्) वह परिपक्व [निश्चित] है, (जुहोतन) ग्रहण करो, (यदि) जो (अश्रातम्) अपरिपक्व [अनिश्चित] है, [उसे पक्का, निश्चित करके] (ममत्तन) तृप्त [भरपूर] करो ॥१॥

श्रातं हविरो ष्विन्द्र प्र याहि जगाम सूरो अध्वनो वि मध्यम् ।
परि त्वासते निधिभिः सखायः कुलपा न व्राजपतिं चरन्तम् ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परम ऐश्वर्यवान् मनुष्य ! (श्रातम्) परिपक्व [निश्चित] (हविः) ग्राह्यकर्म को (ओ) अवश्य (सु) भले प्रकार से (प्र याहि) प्राप्त हो, [जैसे] (सूरः) सूर्य (अध्वनः) अपने मार्ग के (मध्यम्) मध्य भाग को (वि) विशेष करके (जगाम) प्राप्त हुआ है। (सखायः) सब मित्र (निधिभिः) अनेक निधियों के साथ (त्वा) तेरे (परि आसते) चारों ओर बैठते हैं, (न) जैसे (कुलपाः) कुलरक्षक लोग (चरन्तम्) चलते-फिरते (व्राजपतिम्) घर के स्वामी को ॥२॥

श्रातं मन्य ऊधनि श्रातमग्नौ सुशृतं मन्ये तदृतं नवीयः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य दध्नः पिबेन्द्र वज्रिन् पुरुकृज्जुषाणः ॥३॥

पदार्थ—(ऊधनि) [दूसरों को] चलाने वा सींचने में (श्रातम्) परिपक्वता [निश्चय पन] (अग्नौ) अग्नि अर्थात् पराक्रम में (श्रातम्) परिपक्वता (मन्ये) मैं मानता हूँ, [जो] (ऋतम्) सत्य धर्म है, (तत्) उसको (नवीयः) अधिक स्तुतियोग्य, (सुशृतम्) सुपरिपक्व [सुनिश्चित कर्म] (मन्ये) मैं मानता हूँ। (वज्रिन्) हे वज्रधारी ! (पुरुकृत्) हे अनेक कर्म करने वाले (इन्द्र) बड़े ऐश्वर्यवाले मनुष्य ! (जुषाणः) प्रसन्न होकर (माध्यन्दिनस्य) मध्य दिन के (सवनस्य) काल वा स्थान की (दध्नः) धारण शक्ति का (पिब) पान कर ॥३॥

卐 सूक्तम् ७३ 卐

१—११ अथर्वा । घर्मः, अश्विनौ । त्रिष्टुप्, १, ४, ६ जगती, २ पथ्या-बृहती ।

समिद्धो अग्निर्वृषणा रथी दिवस्तप्तो घर्मो दुह्यते वामिषे मधु ।
वयं हि वां पुरुदमासो अश्विना हवामहे सधमादेषु कारवः ॥१॥

पदार्थ—(वृषणा) हे दोनों पराक्रमियो ! (समिद्धः) प्रदीप्त (अग्निः) अग्नि [के समान तेजस्वी], (दिवः) आकाश के [मध्य] (रथी) रथवाला (तप्तः) ऐश्वर्ययुक्त (घर्मः) प्रकाशमान [आचार्य वर्तमान है] (वाम्) तुम दोनों की (इषे) इच्छापूर्ति के लिये (मधु) ज्ञान (दुह्यते) परिपूर्ण किया जाता है। (पुरुदमासः) बड़े दमनशील, (कारवः) काम करने वाले (वयम्) हम लोग (वाम्) तुम दोनों को (हि) ही, (अश्विना) हे चतुर स्त्री पुरुष ! (सधमादेषु) अपने उत्सवों पर (हवामहे) बुलाते हैं ॥१॥

समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो वां घर्म आ गतम् ।
दुह्यन्ते नूनं वृषणेह धेनवो दस्रा मदन्ति वेधसः ॥२॥

पदार्थ—(अश्विना) हे चतुर स्त्री पुरुषो ! (वाम्) तुम दोनों के लिये (समिद्धः) प्रदीप्त (अग्निः) अग्नि समान तेजस्वी (तप्तः) ऐश्वर्ययुक्त, (घर्मः) प्रकाशमान [आचार्य वर्तमान है], (आ गतम्) तुम दोनों आओ। (वृषणा) हे दोनों पराक्रमियो ! और (दस्रा) हे दर्शनीयो वा रोगनाशको ! (धेनवः) वेद-वाणियां (नूनम्) अवश्य (इह) यहां पर (दुह्यन्ते) दुही जाती हैं, और (वेधसः) बुद्धिमान् लोग (मदन्ति) आनन्द पाते हैं ॥२॥

स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु यज्ञो यो अश्विनोश्चमसो देवपानः ।
तमु विश्वे अमृतासो जुषाणा गन्धर्वस्य प्रत्यास्ना रिहन्ति ॥३॥

पदार्थ—(देवेषु) उत्तम गुणों में वर्तमान, (अश्विनोः) दोनों चतुर स्त्री पुरुषों का (यः) जो (स्वाहाकृतः) सुन्दरवाणी से सिद्ध किया गया (शुचिः) पवित्र (देवपानः) विद्वानों से रक्षायोग्य (यज्ञः) पूजनीय व्यवहार (चमसः) मेघ [के समान उपकारी] है। (तम् उ) उसी [उत्तम व्यवहार को] (जुषाणाः) सेवन करते हुए (विश्वे) सब (अमृतासः) अमर [निरालसी] लोग (गन्धर्वस्य) पृथिवीरक्षक सूर्य के (आस्ना) मुख से [महातेजस्वी होकर] (प्रति) प्रत्यक्ष (रिहन्ति) पूजते हैं ॥३॥

यदुस्रियास्वाहुतं घृतं पयोऽयं स वामश्विना भाग आ गतम् ।
माध्वी धर्तारा विदथस्य सत्पती तप्तं घर्मं पिबतं रोचने दिवः ॥४॥

पदार्थ—(यत्) जैसे (उस्रियासु) गौओं में (घृतम्) घृत और (पयः) दूध (आहुतम्) दिया गया है, (अश्विना) हे चतुर स्त्री पुरुषो ! (आ गतम्) आओ, (अयम् सः) वही (वाम्) तुम दोनों का (भागः) भाग [सेवनीय व्यवहार] है। (माध्वी) हे मधुविद्या [वेद विद्या] के जानने वाले, (विदथस्य) जाननेयोग्य कर्म के (धर्तारा) धारण करने वाले, (सत्पती) सत्पुरुषों की रक्षा करने वाले ! तुम दोनों (दिवः) सूर्य के (रोचने) प्रकाश में (तप्तम्) ऐश्वर्य-युक्त (घर्मम्) प्रकाशमान [धर्म] का (पिबतम्) पान करो ॥४॥

तप्तो वां घर्मो नक्षतु स्वहोता प्र वामध्वर्युश्चरतु पयस्वान् ।
मधोर्दुग्धस्याश्विना तनाया वीतं पातं पयस उस्रियायाः ॥५॥

पदार्थ—(अश्विना) हे चतुर स्त्री पुरुषो ! (वाम्) तुम दोनों को (स्वहोता) धन देने वाला, (तप्तः) ऐश्वर्ययुक्त (घर्मः) प्रकाशमान धर्म (नक्षतु) व्याप्त होवे, (पयस्वान्) ज्ञानवान् (अध्वर्युः) अहिंसा कर्म चाहने वाला [वह धर्म] (वाम्) तुम दोनों के लिये (प्र चरतु) प्रचरित होवे। तुम दोनों (तनायाः) उपकारी विद्या के (दुग्धस्य) परिपूर्ण (मधोः) मधुविद्या [ईश्वर ज्ञान] की (वीतम्) प्राप्ति करो और (पातम्) रक्षा करो, [जैसे] (उस्रियायाः) गौ के (पयसः) दूध की [प्राप्ति और रक्षा करते हैं] ॥५॥

उप द्रव पयसा गोधुगोषमा घर्मे सिञ्च पय उस्रियायाः ।
वि नाकमख्यत् सविता वरेण्योऽनुप्रयाणमुषसो वि राजति ॥६॥

पदार्थ—(गोधुक्) हे विद्या के दोहने वाले विद्वान् ! (पयसा) विज्ञान से (ओषम्) अन्धकारदाहक व्यवहार को (घर्मे) प्रकाशमान यज्ञ के बीच (उप) आदर से (द्रव) प्राप्त हो, और (आ) सब ओर से (सिञ्च) सींच [जैसे] (उस्रियायाः) गौ के (पयः) दूध को। (वरेण्यः) श्रेष्ठ (सविता) सब के चलाने वाले परमेश्वर ने (नाकम्) मोक्ष सुख का (वि अख्यत्) व्याख्यान किया है, वही (उषसः) अन्धकारनाशक उषा के (अनुप्रयाणम्) निरन्तर गमन का (वि) विशेष करके (राजति) राजा होता है ॥६॥

उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचत् ॥७॥

पदार्थ—(सुदुघाम्) अच्छे प्रकार कामनायें पूरी करनेवाली (एताम्) इस (धेनुम्) विद्या को (उप ह्वये) मैं स्वीकार करता हूँ। (उत) वैसे ही (सुहस्तः) हस्तक्रिया में चतुर (गोधुक्) विद्या को दोहने वाला [विद्वान्] (एनाम्) इस [विद्या] को (दोहत्) दुहे। (सविता) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (श्रेष्ठम्) श्रेष्ठ (सवम्) ऐश्वर्य को (नः) हमारे लिये (साविषत्) उत्पन्न करे। (अभीद्धः) सब ओर प्रकाशमान (घर्मः) प्रतापी परमेश्वर ने (तत् उ) उस सब को (सु) अच्छे प्रकार (प्र वोचत्) उपदेश किया है ॥७॥

हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसा न्यागन् ।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥८॥

पदार्थ—(हिङ्कृण्वती) गति वा वृद्धि करने वाली, (वसुपत्नी) धन की रक्षा करने वाली, (वसूनाम्) श्रेष्ठों के बीच (वत्सम्) उपदेशक पुरुष को (इच्छन्ती) चाहने वाली [वेदवाणी] (मनसा) विज्ञान के साथ (न्यागन्) निश्चय करके प्राप्त हुई है। (इयम्) यह (अघ्न्या) हिंसा न करने वाली विद्या (अश्विभ्याम्) दोनों चतुर स्त्री पुरुषों के लिये (पयः) विज्ञान को (दुहाम्) परिपूर्ण करे, (सा) वही [विद्या] (महते) अत्यन्त (सौभगाय) सुन्दर ऐश्वर्य के लिये (वर्धताम्) बढ़े ॥८॥

जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्य शत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥९॥

पदार्थ—(अग्ने) हे बिजुली सदृश उत्तम गुण वाले राजन् ! (जुष्ट) सेवा किया गया वा प्रसन्न किया गया, (दमूना.) शम दम आदि से युक्त, (अतिथि.) सदा गतिशील [महापुरुषार्थी], (विद्वान्) विद्वान् तू (न) हमारे (दुरोणे) घर में वर्तमान (इमम्) इस (यज्ञम्) उत्तम दान को (उप याहि) सादर प्राप्त हो। और (शत्रूयताम्) शत्रु समान आचरण करने वालों की (विश्वा.) सब (अभियुज) चढ़ाई करती हुई सेनाओं को (विहत्य) अनेक प्रकार से मार कर (भोजनानि) पालन-साधनों को (आ) सब ओर से (भर) धारण कर ॥९॥

अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ॥१०॥

पदार्थ—(शर्ध) हे बलवान् (अग्ने) विद्वान् राजन् ! (महते) हमारे बड़े (सौभगाय) सुन्दर ऐश्वर्य के लिये (तव) तेरे (द्युम्नानि) यश वा धन (उत्तमानि) अति ऊँचे (सन्तु) होवें। (जास्पत्यम्) [हमारे] पत्नीपतिधर्म [गृहस्थ आश्रम] को (सुयमम्) सुन्दर नियमयुक्त (सम् आ) बहुत ही भले प्रकार (कृणुष्व) कर, (शत्रूयताम्) शत्रु समान आचरण करने वालों के (महांसि) बलों को (अभि तिष्ठ) परास्त कर दे ॥१०॥

सूयवसाद् भगवती हि भूया अधा वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥११॥

पदार्थ—[हे प्रजा सब स्त्री-पुरुषो !] (सूयवसात्) सुन्दर अन्न आदि भोगने वाली और (भगवती) बहुत ऐश्वर्य वाली (हि) ही (भूया) हो, (अध) फिर (वयम) हम लोग (भगवन्त) बड़े ऐश्वर्य वाले (स्याम) होवें। (अघ्न्ये) हे हिंसा न करने वाली प्रजा ! (विश्वदानीम्) समस्त दानों की क्रिया का (आचरन्ती) आचरण करती हुई तू [हिंसा न करने वाली गौ के समान] (तृणम्) घास [अल्प मूल्य पदार्थ] को (अद्धि) खा और (शुद्धम्) शुद्ध (उदकम्) जल को (पिब) पी ॥११॥

卐 इति षष्ठोऽनुवाकः 卐

卐

अथ सप्तमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ७४ 卐

१—४ अथर्वाङ्गिरा। मन्त्रोक्ता, ४ जातवेदा। अनुष्टुप्।

अपचितां लोहिनीनां कृष्णा मातेति शुश्रुम ।
मुनेर्देवस्य मूलेन सर्वा विध्यामि ता अहम् ॥१॥

पदार्थ—(लोहिनीनाम्) रक्तवर्ण (अपचिताम्) गण्डमाला आदि रोगों की (माता) माता (कृष्णा) काले रंग वाली है, (इति) यह (शुश्रुम) हमने सुना है। (अहम्) मैं (मुने·) मननशील (देवस्य) विद्वान् वैद्य के (मूलेन) मूल ग्रन्थ से (ता· सर्वा) उन सब को (विध्यामि) छेदता हूँ ॥१॥

विध्याम्यासां प्रथमां विध्याम्युत मध्यमाम् ।
इदं जघन्यामासामा च्छिनद्मि स्तुकामिव ॥२॥

पदार्थ—(आसाम्) इन [गण्डमालाओं] में से (प्रथमाम्) पहिली को (विध्यामि) छेदता हूँ (उत) और (मध्यमाम्) बीचवाली को (विध्यामि) तोड़ता हूँ। (आसाम्) इनमें से (जघन्याम्) नीचे वाली को (इदम्) अभी (आ) सब ओर (छिनद्मि) मैं छिन्न-भिन्न करता हूँ (इव) जैसे (स्तुकाम्) ऊनके बाल को।

त्वाष्ट्रेणाहं वचसा वि त ईर्ष्याममीमदम् ।
अथो यो मन्युष्टे पते तमु ते शमयामसि ॥३॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (त्वाष्ट्रेण) सब के बनाने वाले परमेश्वर के (वचसा) वचन से (अहम्) मैंने (ते) तेरी (ईर्ष्याम्) ईर्ष्या को (वि अमीमदम्) मदरहित कर दिया है (अथो) और (पते) हे स्वामिन् ! [परमेश्वर !] (यः) जो (ते) तेरा (मन्यु) क्रोध है, (ते) तेरे (तम्) उसको (उ) अवश्य (शमयामसि) हम शान्त करते हैं ॥३॥

व्रतेन त्वं व्रतपते समक्तो विश्वाहा सुमना दीदिहीह ।
तं त्वा वयं जातवेदः समिद्धं प्रजावन्त उप सदेम सर्वे ॥४॥

पदार्थ—(व्रतपते) हे उत्तम नियमों के रक्षक परमेश्वर ! [वा विद्वान् !] (त्वम्) तू (व्रतेन) उत्तम नियम से (समक्त·) संगति करता हुआ (सुमनाः) प्रसन्नचित्त होकर (विश्वाहा) सब दिन (इह) यहां पर (दीदिहि) प्रकाशमान हो। (जातवेद.) हे प्रसिद्ध बुद्धि वा धन वाले ! (प्रजावन्तः) उत्तम प्रजाओं वाले (सर्वे वयम्) हम सब लोग (समिद्धम्) अच्छी भांति प्रकाशमान (तम् त्वा) उस तुझको (उप सदेम) पूजा करते हैं ॥४॥

卐 सूक्तम् ७५ 卐

१—२ उपरिबभ्रवः। अघ्न्याः। त्रिष्टुप्, २ त्र्यवसाना भुरिक् पथ्यापंक्तिः।

प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा व स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु ॥१॥

पदार्थ—[हे मनुष्य प्रजाओ !] (प्रजावतीः) उत्तम सन्तान वाली, (सूयवसे) सुन्दर यव आदि अन्न वाले [घर] में [अन्न] (रुशन्तीः) खाती हुई, और (सुप्रपाणे) सुन्दर जलस्थान में (शुद्धाः) शुद्ध (अपः) जलों को (पिबन्तीः) पीती हुई, (व) तुमको (स्तेन) चोर (मा ईशत) वश में न करे, और (मा) न ही (अघशंस.) बुरा चीतनेवाला, डाकू उचक्का आदि [वश में करे], (रुद्रस्य) पीड़ानाशक परमेश्वर की (हेतिः) हनन शक्ति (व.) तुमको (परि) सब ओर से (वृणक्तु) त्यागे रहे ॥१॥

पदज्ञा स्थ रमतयः संहिता विश्वनाम्नीः । उप मा देवीर्देवेभिरेत ।
इमं गोष्ठमिदं सदो घृतेनास्मान्त्समुक्षत ॥२॥

पदार्थ—[हे प्रजाओ ! तुम] (पदज्ञा) पगडंडी [वा अपने पद] को जानने वाली, (रमतय) क्रीडा करनेवाली (संहिता) यथावत् हित करने वाली वा परस्पर मिली हुई और (विश्वनाम्नी) व्याप्त नाम वाली (स्थ) हो। (देवी) हे दिव्य गुण वाली देवियो ! (देवेभि) उत्तम गुणों के साथ (मा) मुझ को (उप) समीप से (आ इत) प्राप्त होओ। (इमम्) इस (गोष्ठम्) वाचनालय को, (इदम्) इस (सद) बैठक को और (अस्मान्) हमको (घृतेन) प्रकाश से (सम्) यथावत् (उक्षत) बढ़ाओ ॥२॥

卐 सूक्तम् ७६ 卐

१—६ अथर्वा। १, २ अपचिद्भैषज्य, ३—६ जायान्यः, इन्द्रः। अनुष्टुप्, १ विराट्, २ परोष्णिक्, ४ त्रिष्टुप्, ५ भुरिगनुष्टुप्।

आ सुस्रसः सुस्रसो असतीभ्यो असत्तराः ।
सेहोररसतरा लवणाद् विक्लेदीयसीः ॥१॥

पदार्थ—(आ) सब ओर से (सुस्रस.) बहुत बहनेवाले पदार्थ से (सुस्रस) बहुत बहने वाली और (असतीभ्य.) बहुत बुरी [पीड़ाओं] से (असत्तरा) अधिक बुरी, (सेहोः) सेहु [नीरस वस्तुविशेष] से, (अरसतराः) नीरस [शुष्कस्वभाव] और (लवणात्) लवण से (विक्लेदीयसी.) अधिक गल जाने वाली [गण्डमालाओं] को [नष्ट कर दिया है—मं० ३] ॥१॥

या ग्रैव्या अपचितोऽथो या उपपक्ष्याः ।
विजाम्नि या अपचितः स्वयंस्रसः ॥२॥

पदार्थ—(याः) जो (ग्रैव्या) गले पर (अथो) और (याः) जो (उपपक्ष्या) पखों [कन्धों] के जोड़ों पर (अपचित:) गण्डमालायें हैं। और (या) जो (स्वयंस्रस·) अपने आप बहने वाली (अपचितः) फुंसिया (विजाम्नि) गुह्य स्थान पर हैं [उनको नष्ट कर दिया है—मं० ३] ॥२॥

यः कीकसाः प्रशृणाति तलीद्यमवतिष्ठति ।
निर्हास्तं सर्वं जायान्यं यः कश्च ककुदि श्रितः ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो [क्षय रोग] (कीकसा.) हंसली की हड्डियों को (प्रशृणाति) तोड़ देता है और (तलीद्यम्) हथेली और तलवे के चर्म पर (अवतिष्ठति) जम जाता है। (च) और (यः) जो (कः) कोई (ककुदि) शिर में (श्रित.) ठहरा हुआ है, (तम्) उस (सर्वम्) सब (जायान्यम्) क्षय रोग को [उस वैद्य ने] (नि.) निरन्तर (हा) नष्ट कर दिया है ॥३॥

पक्षी जायान्यः पतति स आ विशति पूरुषम् ।
तदक्षितस्य भेषजमुभयोः सुक्षतस्य च ॥४॥

पदार्थ—(पक्षी) पख वाला [उड़ाऊ] (जायान्यः) क्षयरोग (पतति) उड़ता है, (सः) वह (पूरुषम्) पुरुष में (आ विशति) प्रवेश कर जाता है। (तत्) यह (अक्षितस्य) भीतर व्यापे हुए (च) और (सुक्षतस्य) बहुत फोड़ों वाले, (उभयोः) दोनों प्रकार के [क्षयरोग] की (भेषजम्) औषधि है ॥४॥

विद्म वै ते जायान्य जानं यतो जायान्य जायसे ।
कथं ह तत्र त्वं हनो यस्य कृण्मो हविर्गृहे ॥५॥

पदार्थ—(जायान्य) हे क्षयरोग ! (वै) निश्चय करके (ते) तेरा (जानम्) जन्मस्थान (विद्म) हम जानते हैं, (यत) जहां से, (जायान्य) हे क्षयरोग ! (जायसे) तू उत्पन्न होता है । (त्वम्) तू (तत्र) वहां पर (कथम् ह) किस प्रकार से ही [मनुष्य को] (हनः) मार सकता है, (यस्य) जिसके (गृहे) घर में (हविः) ग्राह्य कर्म को (कृण्मः) हम करते हैं ॥५॥

धृषत् पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम् ।
माध्यंदिने सवन आ वृषस्व रयिष्ठानो रयिमस्मासु धेहि ॥६॥

पदार्थ—(धृषत्) हे निर्भय ! (शूर) हे शूर ! (इन्द्र) हे परम ऐश्वर्यवान् मनुष्य ! (वसूनाम्) धनों के निमित्त (समरे) युद्ध मे (वृत्रहा) शत्रुनाशक हो कर (कलशे) [ससाररूप] कलश मे [वर्तमान] (सोमम्) अमृत रस को (पिब) पी । (माध्यन्दिने) मध्य दिन के (सवने) काल वा स्थान में (आ वृषस्व) सब प्रकार बली हो, (रयिस्थान) धनो का स्थान तू (रयिम्) धन को (अस्मासु) हम लोगो मे (धेहि) धारण कर ॥६॥

卐 सूक्तम् ७७ 卐

१—३ अङ्गिरा । मरुतः । १ त्रिपदा गायत्री, २ त्रिष्टुप्, ३ जगती ।

सांतपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन । अस्माकोती रिशादसः ॥१॥

पदार्थ—(सांतपना) हे बडे ऐश्वर्य मे रहने वाले ! (रिशादसः) हे हिंसकों के मारने वाले (मरुतः) शूर विद्वान् मनुष्यो ! (अस्माकम्) हमारी (ऊती) रक्षा के लिये (इदम्) इस और (तत्) उस (हविः) ग्रहणयोग्य कर्म का (जुजुष्टन) स्वीकार करो ॥१॥

यो नो मर्तो मरुतो दुर्हृणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति ।
द्रुहः पाशान् प्रति मुञ्चतां सस्तपिष्ठेन तपसा हन्तना तम् ॥२॥

पदार्थ—(वसव) हे बसाने वाले (मरुत) शूरो ! (य) जो (दुर्हृणायु) अत्यन्त क्रोध को प्राप्त हुआ (मर्त) मनुष्य (चित्तानि) हमारे चित्तो के (तिरः) आड़े होकर (न) हमें (जिघांसति) मारना चाहता है । (स) वह [हमारे लिये] (द्रुह) द्रोह [अनिष्ट] के (पाशान्) फन्दो का (प्रति) प्रत्यक्ष (मुञ्चताम्) छोड़ देवे, (तम्) उसे (तपिष्ठेन) अत्यन्त तपाने वाले (तपसा) ऐश्वर्य वा तुपक आदि हथियार से (हन्तन) मार डालो ॥२॥

संवत्सरीणा मरुतः स्वर्का उरुक्षयाः सगणा मानुषासः । ते अस्मत् पाशान् प्र मुञ्चन्त्वेनसः सांतपना मत्सरा मादयिष्णवः ॥३॥

पदार्थ—(संवत्सरीणा.) पूरे निवास काल तक [जीवन भर] प्रार्थना किये गये, (स्वर्काः) बड़े वज्रो वाले (उरुक्षया.) बड़े घरो वाले, (सगणा) सेनाओं वाले, (मानुषासः) मनन शील (मरुतः) शूर पुरुष हैं । (ते) वे (सांतपनाः) बड़े ऐश्वर्य वाले, (मत्सराः) प्रसन्न रहने वाले, (मादयिष्णवः) प्रसन्न रखने वाले पुरुष (अस्मत्) हम से (एनस) पाप के (पाशान्) फन्दो का (प्र मुञ्चन्तु) छुड़ा देवें ॥३॥

卐 सूक्तम् ७८ 卐

१—२ अथर्वा । अग्निः । १ परोष्णिक्, २ त्रिष्टुप् ।

वि ते मुञ्चामि रशनां वि योक्त्रं वि नियोजनम् ।
इहैव त्वमजस्र एध्यग्ने ॥१॥

पदार्थ—[हे आत्मा !] (ते) तेरी (रशनाम्) रसरी को, (योक्त्रम्) जोते वा डोरी को और (नियोजनम्) बन्धन गांठ को (वि) विशेष करके (वि) विविध प्रकार (वि मुञ्चामि) मैं खोलता हूँ । (अग्ने) हे अग्नि [के समान बलवान् आत्मा !] (इह) यहां पर (एव) ही (त्वम्) तू (अजस्र) दु खरहित होकर (एधि) रह ॥१॥

अस्मै क्षत्राणि धारयन्तमग्ने युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन ।
दीदिह्य१स्मभ्यं द्रविणेह भद्रं प्रेमं वोचो हविर्दां देवतासु ॥२॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि [के तुल्य पराक्रमी आत्मा !] (अस्मै) इस [प्राणी] के लिये (क्षत्राणि) अनेक बलो को (धारयन्तम्) धारण करने वाले (त्वा) तुझको (दैव्येन) परमेश्वर से पाये हुए (ब्रह्मणा) वेदज्ञान से (युनज्मि) मैं नियुक्त करता हूँ । (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (इह) यहां पर (द्रविणा) अनेक धन (भद्रम्) आनन्द से (दीदिहि) प्रकाशित कर, (इमम्) इस [मनुष्य] को (देवतासु) विद्वानों के बीच (हविर्दाम्) देने योग्य पदार्थ का देने वाला (प्र वोचः) तू ने सूचित किया है ॥२॥

卐 सूक्तम् ७९ 卐

१—४ अथर्वा । अमावास्या । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

यत् ते देवा अकृण्वन् भागधेयममावास्ये संवसन्तो महित्वा ।
तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥१॥

पदार्थ—(अमावास्ये) हे अमावास्या ! [सब के साथ बसी हुई शक्ति परमेश्वर !] (यत्) जिस कारण से (ते) तेरी (महित्वा) महिमा से (संवसन्तः) यथावत् बसते हुए (देवाः) विद्वानो ने (भागधेयम्) अपना सेवनीय काम (अकृण्वन्) किया है । (तेन) उसी से, (विश्ववारे) हे सब से स्वीकार करने योग्य शक्ति! (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] को (पिपृहि) पूरा कर, (सुभगे) हे बड़े ऐश्वर्यवाली ! (नः) हमे (सुवीरम्) बड़े वीरों वाला (रयिम्) धन (धेहि) दान कर ॥१॥

अहमेवास्म्यमावास्या३ मामा वसन्ति सुकृतो मयीमे ।
मयि देवा उभये साध्याश्चेन्द्रज्येष्ठाः समगच्छन्त सर्वे ॥२॥

पदार्थ—(अहम) मैं (एव) ही (अमावास्या) अमावास्या [सब के साथ बसी हुई शक्ति] (अस्मि) हूँ, (मयि) मुझ मे [वर्तमान होकर] (इमे) ये सब (सुकृतः) सुकर्मी लोग (माम्) लक्ष्मी मे (आ वसन्ति) यथावत् वास करते हैं । (मयि) मुझ मे (उभये) दोनो प्रकार के (सर्वे) सब (देवाः) दिव्य पदार्थ अर्थात् (साध्याः) साधने योग्य [स्थावर] (च) और (इन्द्रज्येष्ठाः) जीव को प्रधान रखने वाले [जगम] पदार्थ (सम्—समेत्य) मिलकर (अगच्छन्त) प्राप्त हुए हैं ॥२॥

आगन् रात्री संगमनी वसूनामूर्जं पुष्टं वस्वावेशयन्ती ।
अमावास्यायै हविषा विधेमोर्जं दुहाना पयसा न आगन् ॥३॥

पदार्थ—(वसूनाम्) निवास स्थानो [लोको] का (संगमनी) संयोग करने वाली (ऊर्जम्) पराक्रम और (पुष्टम्) पोषण और (वसु) धन (आवेशयन्ती) दान करती हुई (रात्री) सुख देने वाली शक्ति (आ अगन्) आई है । (अमावास्यायै) उस अमावास्या [सब के साथ वास करने वाली शक्ति, परमेश्वर] को (हविषा) आत्मदान [पूर्ण भक्ति] से (विधेम) हम पूजे, (ऊर्जम्) पराक्रम को (पयसा) ज्ञान के साथ (दुहाना) पूर्ण करती हुई वह (न) हमे (आ अगन्) प्राप्त हुई है ॥३॥

अमावास्ये न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥४॥

पदार्थ—(अमावास्ये) हे अमावास्या ! [सब के साथ निवास करने वाली शक्ति, परमेश्वर !] (त्वत्) तुझ से (अन्यः) दूसरे किसी ने (परिभूः) व्यापक होकर (एतानि) इन (विश्वा) सब (रूपाणि) रूपवाले [आकार वाले] पदार्थों को (न) नही (जजान) उत्पन्न किया है । (यत्कामाः) जिस वस्तु की कामना वाले हम (ते) तेरा (जुहुमः) स्वीकार करते हैं, (तत्) वह (नः) हमारे लिये (अस्तु) होवे, (वयम्) हम (रयीणाम्) अनेक धनो के (पतयः) स्वामी (स्याम) बने रहें ॥४॥

卐 सूक्तम् ८० 卐

१—४ अथर्वा । पौर्णमासी, ३ प्रजापति । त्रिष्टुप्, २ अनुष्टुप् ।

पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय ।
तस्यां देवैः संवसन्तो महित्वा नाकस्य पृष्ठे समिषा मदेम ॥१॥

पदार्थ—(पश्चात्) पीछे (पूर्णा) पूर्ण, (पुरस्तात्) पहिले (उत) और (मध्यत.) मध्य मे (पूर्णा) पूर्ण (पौर्णमासी) पौर्णमासी [सम्पूर्ण परिमेय वा आकारवान् पदार्थों की आधारशक्ति, परमेश्वर] (उत् जिगाय) सब से उत्कृष्ट हुई है । (तस्याम्) उस [शक्ति] में (देवैः) उत्तम गुणो और (महित्वा) महिमा के साथ (संवसन्त.) निवास करते हुए हम (नाकस्य) सुख की (पृष्ठे) ऊंचाई पर (इषा) पुरुषार्थ से (सम्) यथावत् (मदेम) आनन्द भोगें ॥१॥

वृषभं वाजिनं वयं पौर्णमासं यजामहे ।
स नो ददात्वक्षितां रयिमनुपदस्वतीम् ॥२॥

पदार्थ—(वयम्) हम लोग (वृषभम्) सर्वश्रेष्ठ, (वाजिनम्) महाबलवान् (पौर्णमासम्) पौर्णमास [सम्पूर्ण परिमेय पदार्थों के आधार परमेश्वर] को (यजामहे) पूजते हैं । (सः) वह (नः) हमे (अक्षिताम्) बिना घटी हुई और (अनुपदस्वतीम्) बिना घटने वाली (रयिम्) सम्पत्ति (ददातु) देवे ॥२॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥३॥

पदार्थ—(प्रजापते) हे प्रजापालक परमेश्वर ! (त्वत्) तुझ से (अन्यः) दूसरे किसी ने (परिभूः) व्यापक हो कर (एतानि) इन (विश्वा) सब (रूपाणि) रूपवाले [आकार वाले] पदार्थों को (न) नहीं (जजान) उत्पन्न किया है। (यत्कामाः) जिस वस्तु की कामना वाले हम (ते) तेरा (जुहुमः) स्वीकार करते हैं, (तत्) वह (नः) हमारे लिये (अस्तु) होवे, (वयम्) हम (रयीणाम्) अनेक धनों के (पतयः) स्वामी (स्याम) बने रहें ॥३॥

पौर्णमासी प्रथमा यज्ञियासीदह्नां रात्रीणामतिशर्वरेषु ।
ये त्वां यज्ञैर्यज्ञिये अर्धयन्त्यमी ते नाके सुकृतः प्रविष्टाः ॥४॥

पदार्थ—(पौर्णमासी) पौर्णमासी [सम्पूर्ण परिमेय पदार्थों की आधार शक्ति] (अह्नाम्) दिनों के बीच (रात्रीणाम्) रात्रियों के (अतिशर्वरेषु) अत्यन्त अन्धकारों में (प्रथमा) पहिली (यज्ञिया) पूजायोग्य (आसीत्) हुई है। (यज्ञिये) हे पूजायोग्य शक्ति ! (ये) जो (त्वाम्) तुझे (यज्ञैः) पूजनीय व्यवहारों से (अर्धयन्ति) पूजते हैं, (अमी) ये सब [वर्तमान] और (ते) वे [आगे और पीछे होने वाले] (सुकृतः) सुकर्मी लोग (नाके) आनन्द में (प्रविष्टाः) प्रविष्ट होते हैं ॥४॥

卐 सूक्तम् ८१ 卐

१—६ अथर्वा । सावित्री, सूर्यः, चन्द्रः । त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप्, ४ आस्तारपङ्क्तिः, ५ स्वराडास्तारपङ्क्तिः ।

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः ॥१॥

पदार्थ—(एतौ) ये दोनों [सूर्य, चन्द्रमा] (पूर्वापरम्) आगे-पीछे (मायया) बुद्धि से [ईश्वरनियम से] (चरतः) विचरते हैं, (क्रीडन्तौ) खेलते हुए (शिशू) [माता-पिता के दुःख हटाने वाले] दो बालक [जैसे] (अर्णवम्) अन्तरिक्ष में (परि) चारों ओर (यातः) चलते हैं। (अन्यः) एक [सूर्य] (विश्वा) सब (भुवना) भुवनों को (विचष्टे) देखता है, (अन्यः) दूसरा तू [चन्द्रमा] (ऋतून्) ऋतुओं को [अपनी गति से] (विदधत्) बनाता हुआ [शुक्ल पक्ष में] (नवः) नवीन (जायसे) प्रकट होता है ॥१॥

नवोनवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः ॥२॥

पदार्थ—(चन्द्रमः) हे चन्द्रमा ! तू [शुक्ल पक्ष में] (नवोनवः) नया नया (जायमानः) प्रकट होता हुआ (भवसि) रहता है, और (अह्नाम्) दिनों का (केतुः) जताने वाला तू (उषसाम्) उषाओं [प्रभातवेलाओं] के (अग्रम्) आगे (एषि) चलता है। और (आयन्) आता हुआ तू (देवेभ्यः) उत्तम पदार्थों को (भागम्) सेवनीय उत्तम गुण (वि दधासि) विविध प्रकार देता है, और (दीर्घम्) लम्बे (आयुः) जीवन-काल को (प्र) अच्छे प्रकार (तिरसे) पार लगाता है ॥२॥

सोमस्यांशो युधां पतेऽनूनो नाम वा असि ।
अनूनं दर्श मा कृधि प्रजया च धनेन च ॥३॥

पदार्थ—(सोमस्य) हे अमृत के (अंशो) बांटने वाले ! (युधाम्) हे युद्धों के (पते) स्वामी ! (वै) निश्चय करके तू (अनूनः) न्यूनतारहित [सम्पूर्ण] (नाम) प्रसिद्ध (असि) है। (दर्श) हे दर्शनीय ! (मा) मुझको (प्रजया) प्रजा से (च च) और (धनेन) धन से (अनूनम्) सम्पूर्ण (कृधि) कर ॥३॥

दर्शोऽसि दर्शतोऽसि समग्रोऽसि समन्तः ।
समग्रः समन्तो भूयासं गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ॥४॥

पदार्थ—[चन्द्र !] तू (दर्शः) दर्शनीय (असि) है, (दर्शतः) देखने का साधन (असि) है, (समग्रः) सम्पूर्ण गुण वाला, और (समन्तः) सम्पूर्ण कला वाला (असि) है। (गोभिः) गौओं से (अश्वैः) घोड़ों से, (पशुभिः) अन्य पशुओं से (प्रजया) सन्तान, भृत्य आदि प्रजा से, (गृहैः) घरों से (धनेन) और धन से (समग्रः) सम्पूर्ण और (समन्तः) परिपूर्ण (भूयासम्) मैं रहूँ ॥४॥

योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तस्य त्वं प्राणेना प्यायस्व ।
आ वयं प्यासिषीमहि गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ॥५॥

पदार्थ—(यः) जो मनुष्य (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करता है, और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) विरोध करते हैं, (त्वम्) तू [हे चन्द्र !] (तस्य) उसको (प्राणेन) प्राण से (आप्यायस्व) वियुक्त कर। (वयम्) हम लोग (गोभिः) गौओं से (अश्वैः) घोड़ों से, (पशुभिः) [हाथी, भैंस, भेड़ आदि] अन्य पशुओं से, (प्रजया) सन्तान, भृत्य आदि से, (गृहैः) घरों से, और (धनेन) धन से (आ) सब प्रकार (प्यासिषीमहि) बढ़ें ॥५॥

यं देवा अंशुमाप्याययन्ति यमक्षितमक्षिता भक्षयन्ति ।
तेनास्मानिन्द्रो वरुणो बृहस्पतिराप्याययन्तु भुवनस्य गोपाः ॥६॥

पदार्थ—(यम्) जिस (अंशुम्) अमृत [चन्द्रमा के रस] को (देवाः) प्रकाशमान सूर्य की किरणें [शुक्ल पक्ष में] (आप्याययन्ति) बढ़ा देती हैं, और (यम्) जिस (अक्षितम्) बिना घटे हुए को (अक्षिताः) वे व्यापक [किरणें] (भक्षयन्ति) [कृष्ण पक्ष में] खा लेती हैं। (तेन) उसी [नियम] से (अस्मान्) हमको (भुवनस्य) संसार की (गोपाः) रक्षा करने वाला (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवाला राजा, (वरुणः) श्रेष्ठ वैद्य और (बृहस्पतिः) बड़ी विद्याओं का स्वामी, आचार्य (आ) सब प्रकार (आप्याययन्तु) बढ़ावें ॥६॥

卐 इति सप्तमोऽनुवाकः 卐

卐

अथाष्टमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ८२ 卐

१—६ शौनकः (सम्पत्कामः) अग्निः । त्रिष्टुप्, २ ककुम्मती बृहती, ३ जगती ।

अभ्यर्चत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत् पवन्ताम् ॥१॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] (सुष्टुतिम्) बड़ी स्तुति वाले, (गव्यम्) पृथिवी वा स्वर्ग के लिये हितकारक, (आजिम्) प्राप्तियोग्य परमेश्वर को (अभि) भले प्रकार (अर्चत) पूजो, और (अस्मासु) हम लोगों में (भद्रा) सुखों और (द्रविणानि) बलों और धनों को (धत्त) धारण करो। (देवता) प्रकाशमान तुम सब (इमम्) इस (यज्ञम्) पूजनीय परमात्मा को (नः) हम में (नयत) पहुँचाओ, (घृतस्य) प्रकाशित ज्ञान की (धाराः) धारायें [धारणशक्तियां वा प्रवाह] (मधुमत्) श्रेष्ठ विज्ञानयुक्त कर्म को (पवन्ताम्) शुद्ध करें ॥१॥

मय्यग्रे अग्निं गृह्णामि सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन ।
मयि प्रजां मय्यायुर्दधामि स्वाहा मय्यग्निम् ॥२॥

पदार्थ—मैं (अग्रे) सब से पहिले वर्तमान (अग्निम्) सर्वज्ञ परमेश्वर को (मयि) अपने में (क्षत्रेण) [दुःख से बचाने वाले] राज्य, (वर्चसा) प्रताप और (बलेन सह) बल के साथ (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ। मैं (मयि) अपने में (प्रजाम्) प्रजा [सन्तान, भृत्य आदि] को, (मयि) अपने में (आयुः) जीवन को, (मयि) अपने में (अग्निम्) अग्नि [शारीरिक और आत्मिक बल] को (स्वाहा) सुन्दर वाणी [वेदवाणी] के द्वारा (दधामि) धारण करता हूँ ॥२॥

इहैवाग्ने अधि धारया रयिं मा त्वा नि क्रन् पूर्वचित्ता निकारिणः ।
क्षत्रेणाग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टृतः ॥३॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! (इह एव) यहाँ पर ही (रयिम्) धन को (अधि) अधिकारपूर्वक (धारय) पुष्ट कर, (पूर्वचित्ताः) पहिले से सोचने वाले [घाती], (निकारिणः) अपकारी [दुष्ट] लोग (त्वा) तुझ को (मा नि क्रन्) नीचा न करें। (अग्ने) हे सर्वव्यापक परमेश्वर (तुभ्यम्) तेरे (क्षत्रेण) [विघ्न से बचाने वाले] राज्य के साथ [हमारा] (सुयमम्) सुन्दर नियम वाला कर्म (अस्तु) होवे, (ते) तेरा (उपसत्ता) उपासक [आश्रित जन] (अनिष्टृतः) अजेय होकर (वर्धताम्) बढ़ता रहे ॥३॥

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आ विवेश ॥४॥

पदार्थ—(अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर ने (उषसाम्) उषाओं के (अग्रम्) विकाश को (अनु) निरन्तर, [उसी] (प्रथमः) सब से पहिले वर्तमान (जातवेदाः) उत्पन्न वस्तुओं के ज्ञान करानेवाले परमेश्वर ने (अहानि) दिनों को (अनु) निरन्तर (अख्यत्) प्रसिद्ध किया है। (सूर्यः) [उसी] सूर्य [सब में व्यापक वा सबको चलाने वाले परमेश्वर] ने (उषसः) उषाओं में (अनु) लगातार, (रश्मीन्) व्यापक किरणों में (अनु) लगातार, (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी में (अनु) लगातार (आ विवेश) प्रवेश किया है ॥४॥

प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः ।
प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान ॥५॥

पदार्थ—(अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर ने (उषसाम्) उषाओं के (अग्रम्)

विकास को (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से, [उसी] (प्रथमः) सबसे पहिले वर्त्तमान (जातवेदा) उत्पन्न वस्तुओं के ज्ञान कराने वाले परमेश्वर ने (अहानि) दिनों को (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से (अख्यत्) प्रसिद्ध किया है। (च) और (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मीन्) व्यापक किरणों को (पुरुत्रा) अनेक प्रकार (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से और (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी लोकों को (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से (आ) सब ओर (ततान) फैलाया है ॥५॥

घृतं ते अग्ने दिव्ये सधस्थे घृतेन त्वां मनुरद्या समिन्धे ।

घृतं ते देवीर्नप्त्य आ वहन्तु घृतं तुभ्यं दुह्रतां गावो अग्ने ॥६॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! (ते) तेरा (घृतम्) प्रकाश (दिव्ये) दिव्य [सूक्ष्म] कारण में और (सधस्थे) मिलकर ठहरने वाले कार्य रूप जगत् में है, (घृतेन) प्रकाश के साथ वर्त्तमान (त्वा) तुझ को (मनुः) मननशील पुरुष (अद्य) अब (सम्) यथावत् (इन्धे) प्रकाशित करता है। (ते) तेरे (घृतम्) प्रकाश को (देवीः) उत्तम गुणवाली, (नप्त्यः) न गिरने वाली प्रजाएं [हमें] (आ वहन्तु) प्राप्त करावें, (अग्ने) हे सर्वव्यापक जगदीश्वर ! (गावः) वेद वाणियाँ (तुभ्यम्) तेरे (घृतम्) प्रकाश को (दुह्रताम्) परिपूर्ण करें ॥६॥

卐 सूक्तम् ८३ 卐

१—४ शुनःशेपः । वरुणः । अनुष्टुप्, पथ्यापंक्तिः, ३ त्रिष्टुप्, ४ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप् ।

अप्सु ते राजन् वरुण गृहो हिरण्ययो मिथः ।

ततो धृतव्रतो राजा सर्वा धामानि मुञ्चतु ॥१॥

पदार्थ—(राजन्) हे राजन् ! (वरुण) हे सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर ! (ते) तेरा (हिरण्ययः) तेजोमय (गृहः) ग्रहण सामर्थ्य (अप्सु) सब प्राणों में (मिथः) एक दूसरे के साथ [वर्तमान है]। (ततः) उसी से (धृतव्रतः) नियमों के धारण करने वाले (राजा) राजा आप (सर्वा) सब (धामानि) बन्धनों को (मुञ्चतु) खोल देवें ॥१॥

धाम्नोधाम्नो राजन्नितो वरुण मुञ्च नः ।

यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम ततो वरुण मुञ्च नः ॥२॥

पदार्थ—(राजन्) हे राजन् ! (वरुण) हे सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर ! (इतः) इस (धाम्नोधाम्नः) प्रत्येक बन्धन से (नः) हमें (मुञ्च) छुड़ा। (यत्) जिस कारण से (आपः) ये प्राण (अघ्न्याः) न मारने योग्य गौ [के तुल्य] हैं, (इति) इस प्रकार से, (वरुण) हे सर्वोत्कृष्ट परमेश्वर ! (इति) इस प्रकार से, (यत्) जो कुछ (ऊचिम) हमने कहा है, [इसी कारण से] (वरुण) हे दुःखनिवारक ! (नः) हमें (ततः) उस [बन्धन] से (मुञ्च) छुड़ा ॥२॥

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।

अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥३॥

पदार्थ—(वरुण) हे स्वीकार करनेयोग्य ईश्वर ! (अस्मत्) हम से (उत्तमम्) ऊंचे वाले (पाशम्) पाश को (उत्) ऊपर से, (अधमम्) नीचे वाले को (अव) नीचे से, और (मध्यमम्) बीचवाले को (वि) विविध प्रकार से (श्रथाय) खोल दे। (आदित्य) हे सर्वत्र प्रकाशमान वा अखण्डनीय जगदीश्वर ! (अध) फिर (वयम्) हम लोग (ते) तेरे (व्रते) वरणीय नियम में (अदितये) अदीना पृथिवी के [राज्य के] लिये (अनागसः) निरपराधी (स्याम) होवें ॥३॥

प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् य उत्तमा अधमा वारुणा ये ।

दुष्वप्न्यं दुरितं नि ष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥४॥

पदार्थ—(वरुण) हे दुःखनिवारक परमेश्वर ! (अस्मत्) हम से (सर्वान्) सब (पाशान्) फन्दों को (प्र मुञ्च) खोल दे, (ये) जो (उत्तमाः) ऊंचे और (ये) जो (अधमाः) नीचे [फन्दे] (वारुणाः) दोष निवारक वरुण परमेश्वर से आये हैं। (दुष्वप्न्यम्) नींद में उठे कुविचार और (दुरितम्) विघ्न को (अस्मत्) हम से (नि स्व) निकाल दे, (अथ) फिर (सुकृतस्य) धर्म के (लोकम्) समाज में (गच्छेम) हम जावें ॥४॥

卐 सूक्तम् ८४ 卐

१—३ भृगुः । १ जातवेदा अग्निः, २—३ इन्द्रः । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

अनाधृष्यो जातवेदा अमर्त्यो विराडग्ने क्षत्रभृद् दीदिहीह । विश्वा अमीवाः प्रमुञ्चन् मानुषीभिः शिवाभिरद्य परि पाहि नो गयम् ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे प्रतापी राजन् ! (अनाधृष्यः) सब प्रकार अजेय, (जातवेदाः) बड़ा ज्ञानवान् वा धनवान्, (अमर्त्यः) अमर [यशस्वी], (विराट्) बड़ा ऐश्वर्यवान्, (क्षत्रभृत्) राज्यपोषक होकर तू (इह) यहां पर (दीदिहि) प्रकाशमान हो। (विश्वाः) सब (अमीवाः) पीड़ाओं को (प्रमुञ्चन्) छुड़ाता हुआ तू (मानुषीभिः) मनुष्य की हितकारक (शिवाभिः) मुक्तियों के साथ (अद्य) अब (नः) हमारे (गयम्) घर की (परि) सब ओर से (पाहि) रक्षा कर ॥१॥

इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजोऽजायथा वृषभ चर्षणीनाम् ।

अपानुदो जनममित्रायन्तमुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम् ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परम ऐश्वर्यवाले राजन् ! (चर्षणीनाम् वृषभ) हे मनुष्यों में श्रेष्ठ ! (वामम्) उत्तम (क्षत्रम्) राज्य और (ओजः अभि) पराक्रम के लिये (अजायथाः) तू उत्पन्न हुआ है। तू ने (अमित्रायन्तम्) अमित्र-समान आचरण वाले (जनम्) लोगों को (अप अनुदः) हटा दिया है (उ) और (देवेभ्यः) विजय चाहने वालों के लिये (उरुम्) विस्तीर्ण (लोकम्) स्थान (अकृणोः) किया है ॥२॥

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगम्यात् परस्याः ।

सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे राजन् ! (भीमः) भयानक (कुचरः) टेढ़े चलने वाले [ऊंचे नीचे, दायें बायें जाने वाले] (गिरिष्ठाः) पहाड़ों पर रहने वाले (मृगः न) [आखेट ढूंढने वाले] सिंह आदि के समान आप (परावतः) समीप देश और (परस्याः) दूर दिशा से (आ जगम्यात्) आते रहें। (तिग्मम्) उत्साह वाले (सृकम्) बाण और (पविम्) वज्र को, (संशाय) तीक्ष्ण करके (शत्रून्) शत्रुओं को (वि) विशेष करें (ताढि) ताड़ना करें और (मृधः) हिंसकों को (वि नुदस्व) निकाल दें ॥३॥

卐 सूक्तम् ८५ 卐

१ अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः) । तार्क्ष्यः । त्रिष्टुप् ।

त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहोवानं तरुतारं रथानाम् ।

अरिष्टनेमिं पृतनाजिमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥१॥

पदार्थ—(त्यम् उ) उस ही (वाजिनम्) अन्नवाले (देवजूतम्) विद्वानों से प्रेरणा किये गए, (सहोवानम्) महाबली, (रथानाम्) रथों के [जल थल और आकाश में] (तरुतारम्) तिराने [चलाने] वाले, (अरिष्टनेमिम्) अटूट वज्रवाले, (पृतनाजिम्) सेनाओं को जीतने वाले (आशुम्) व्यापने वाले, (तार्क्ष्यम्) महावेगवान् राजा को (इह) यहां पर (स्वस्तये) अपने कल्याण के लिये (सु) आदर से (आ) भले प्रकार (हुवेम) हम बुलावें ॥१॥

卐 सूक्तम् ८६ 卐

१ अथर्वा । (स्वस्त्ययनकामः) । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।

हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति न इन्द्रो मघवान् कृणोतु ॥१॥

पदार्थ—(त्रातारम्) पालन करनेवाले (इन्द्रम्) बड़े ऐश्वर्यवाले राजा को, (अवितारम्) तृप्त करनेवाले (इन्द्रम्) सभाध्यक्ष [राजा] को, (हवेहवे) संग्राम-संग्राम में (सुहवम्) यथावत् संग्राम वाले, (शूरम्) शूर (इन्द्रम्) सेनापति [राजा] को, (शक्रम्) शक्तिमान्, (पुरुहूतम्) बहुत [लोगों] से पुकारे गए (इन्द्रम्) प्रतापी राजा को (नु) शीघ्र (हुवे) मैं बुलाता हूं, (मघवान्) बड़ा धन वाला (इन्द्रः) राजा (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) मङ्गल (कृणोतु) करे ॥१॥

卐 सूक्तम् ८७ 卐

१ अथर्वा । रुद्रः । जगती ।

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश ।

य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ॥१॥

पदार्थ—(यः) जो (रुद्रः) रुद्र, ज्ञानवान् परमेश्वर (अग्नौ) अग्नि में, (यः) जो (अप्सु अन्तः) जल के भीतर है, (यः) जिसने (ओषधीः) उष्णता रखने वाली अन्न आदि ओषधियों में और (वीरुधः) विविध प्रकार उगने वाली बेलों वा बूटियों में (आविवेश) प्रवेश किया है। (यः) जिसने (इमा) इन (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों [उपस्थित पदार्थों] को (चाक्लृपे) रचा है, (तस्मै) उस (अग्नये) सर्वव्यापक (रुद्राय) रुद्र, [दुःखनाशक परमेश्वर] को (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥१॥

卐 सूक्तम् ८८ 卐

१ गरुत्मान् । तक्षकः । त्र्यवसाना बृहती ।

अपेह्यरिरस्यरिर्वा असि । विषे विषमपृक्था विषमिद्

वा अपृक्थाः । अहिमेवाभ्यपेहि तं जहि ॥१॥

पदार्थ—[हे विष !] (अप इहि) चला जा, (अरिः असि) तू शत्रु है, (अरिः) शत्रु तू (वै) ही (असि) है। (विषे) विष में (विषम्) विष को (अपृक्थाः) तू ने मिला दिया है, (विषम्) विष को (इत्) ही (वै) ही (अपृक्थाः) तू ने मिला दिया है (अहिम्) साँप के पास (एव) ही (अभ्यपेहि) तू चला जा, (तम्) उसको (जहि) मार डाल ॥१॥

卐 सूक्तम् ८९ 卐

१—४ सिन्धुद्वीपः । अग्निः । अनुष्टुप्, ४ त्रिपदा निचृत् परोष्णिक् ।

अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि ।

पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥१॥

पदार्थ—(दिव्याः) दिव्य गुण स्वभाव वाले (अपः) जलों [के समान शुद्ध करने वाले विद्वानों] को (अचायिषम्) मैं ने पूजा है (रसेन) पराक्रम से (सम् अपृक्ष्महि) हम संयुक्त हुए हैं। (अग्ने) हे विद्वान् ! (पयस्वान्) गति वाला मैं (आ अगमम्) आया हूँ, (तम्) उस (मा) मुझको (वर्चसा) [वेदाध्ययन आदि के] तेज से (सम् सृज) संयुक्त कर ॥१॥

सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।

विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥२॥

पदार्थ—(अग्ने) हे विद्वन् ! (मा) मुझको (वर्चसा) [ब्रह्म विद्या के] तेज से (सम्) अच्छे प्रकार (प्रजया) प्रजा से (सम्) अच्छे प्रकार और (आयुषा) जीवन से (सम् सृज) अच्छी प्रकार संयुक्त कर। (देवाः) विद्वान् लोग (अस्य) इस (मे) मुझको (विद्युः) जानें, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् आचार्य (ऋषिभिः सह) ऋषियों के साथ [मुझे] (विद्यात्) जाने ॥२॥

इदमापः प्र वहतावद्यं च मलं च यत् ।

यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम् ॥३॥

पदार्थ—(आपः) हे जल [के समान शुद्धि करने वाले विद्वानो !] (इदम्) इस [सब] को (प्र वहत) बहा दो, (यत्) जो कुछ [मुझ में] (अवद्यम्) अकथनीय [निन्दनीय] (च च) और (मलम्) मलिन कर्म है। (च) और (यत्) जो कुछ (अनृतम्) झूठमूठ (अभिदुद्रोह) बुरा चीता है, (च) और (यत्) जो कुछ (अभीरुणम्) निर्भय [निरपराधी] पुरुष को (शेपे) मैंने दुर्वचन कहा है ॥३॥

एधोऽस्येधिषीय समिदसि समेधिषीय ।

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥४॥

पदार्थ—[हे विद्वन् !] तू (एधः) बढ़ा हुआ (असि) है, (एधिषीय) मैं बढ़ूँ, (समित्) तू प्रकाशमान (असि) है, मैं (सम्) ठीक ठीक (एधिषीय) प्रकाशमान होऊँ। (तेजः असि) तू तेज है, (तेजः) तेज को (मयि) मुझ में (धेहि) धारण कर ॥४॥

卐 सूक्तम् ९० 卐

१—३ अङ्गिराः । मन्त्रोक्ता । १ गायत्री, २ विराट् पुरस्ताद्बृहती, ३ त्र्यवसाना षट्पदा भुरिग्जगती ।

अपि वृश्च पुराणवद् व्रततेरिव गुष्पितम् ।

ओजो दासस्य दम्भय ॥१॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (पुराणवत्) पुराण [पुराने नियम] के अनुसार (दासस्य) दुःखदायी डाकू के (ओजः) बल को (व्रततेः) बेल के (गुष्पितम् इव) गांठ के समान (अपि) निश्चय करके (वृश्च) काट दे और (दम्भय) हटा दे ॥१॥

वयं तदस्य संभृतं वस्विन्द्रेण वि भजामहै ।

म्लापयामि भ्रजः शिभ्रं वरुणस्य व्रतेन ते ॥२॥

पदार्थ—(वयम्) हम लोग (इन्द्रेण) बड़े ऐश्वर्यवाले राजा के साथ (अस्य) इस [शत्रु] के (संभृतम्) एकत्र किये हुए (तत्) उस (वसु) धन को (वि भजामहै) बांट लेवें। [हे शत्रु !] (वरुणस्य) शत्रु निवारक राजा की (व्रतेन) व्यवस्था से (ते) तेरी (भ्रजः) चमक और (शिभ्रम्) ढिठाई को (म्लापयामि) मैं मेटता हूँ ॥२॥

यथा शेपो अपायातै स्त्रीषु चासदनावयाः ।

अवस्थस्य क्नदीवतः शाङ्कुरस्य नितोदिनः ।

यदाततमव तत् तनु यदुत्ततं नि तत् तनु ॥३॥

पदार्थ—(अवस्थस्य) हिंसा में रहने वाले, (क्नदीवतः) गाली बकने वाले, (शाङ्कुरस्य) शङ्का उत्पन्न करने वाले, (नितोदिनः) नित्य सताने वाले पुरुष का (शेपः) पराक्रम (यथा) जिस प्रकार (अपायातै) मिट जावे (च) और (स्त्रीषु) स्तुति योग्य स्त्रियों [वा उनके समान सज्जन प्रजाओं] में (अनावयाः) न पहुँचने वाला (असत्) होवे, [उसी प्रकार हे राजन् !] (यत्) जो कुछ [उसका बल] (आततम्) फैला हुआ है, (तत्) उसे (अव तनु) संकुचित कर दे और (यत्) जो कुछ [सामर्थ्य] (उत्ततम्) ऊँचा फैला है, (तत्) उसे (नि तनु) नीचा कर दे ॥३॥

卐 इति अष्टमोऽनुवाकः 卐

卐

अथ नवमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ९१ 卐

१ अथर्वा । चन्द्रमा (इन्द्रः ?) । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।

बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥१॥

पदार्थ—(सुत्रामा) बड़ा रक्षक, (स्ववान्) बहुत से ज्ञाति पुरुषों वाला, (विश्ववेदाः) बहुत धन या ज्ञान वाला (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला राजा (अवोभिः) अनेक रक्षाओं से (सुमृडीकः) अत्यन्त सुख देनेवाला (भवतु) होवे। वह (द्वेषः) वैरियों को (बाधताम्) हटावे, (नः) हमारे लिये (अभयम्) निर्भयता (कृणोतु) करे और हम (सुवीर्यस्य) बड़े पराक्रम के (पतयः) पालन करने वाले (स्याम) होवें ॥१॥

卐 सूक्तम् ९२ 卐

१ अथर्वा । चन्द्रमा (इन्द्र ?) । त्रिष्टुप् ।

स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ।

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥१॥

पदार्थ—(सः) वह (सुत्रामा) बड़ा रक्षक, (स्ववान्) बड़ा धनी, (इन्द्रः) महा प्रतापी राजा (अस्मत्) हम से (आरात् चित्) बहुत ही दूर (द्वेषः) शत्रुओं को (सनुतः) निर्णयपूर्वक (युयोतु) हटावे। (वयम्) हम लोग (तस्य) उस (यज्ञियस्य) पूजायोग्य राजा की (अपि) ही (सुमतौ) सुमति में और (भद्रे) कल्याण करने वाली (सौमनसे) प्रसन्नता में (स्याम) रहें ॥१॥

卐 सूक्तम् ९३ 卐

१ भृग्वङ्गिराः । इन्द्रः । गायत्री ।

इन्द्रेण मन्युना वयमभि ष्याम पृतन्यतः । घ्नन्तो वृत्राण्यप्रति ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रेण) प्रतापी सेनापति के साथ और (मन्युना) क्रोध के साथ (वृत्राणि) [घेरने वाले] सेनादलों को (अप्रति) बेरोक (घ्नन्तः) मारते हुए (वयम्) हम लोग (पृतन्यतः) सेना चढ़ाने वालों को (अभि स्याम) हरा देवें ॥१॥

卐 सूक्तम् ९४ 卐

१ अथर्वा । सोमः । अनुष्टुप् ।

ध्रुवं ध्रुवेण हविषाव सोमं नयामसि ।

यथा न इन्द्रः केवलीर्विशः संमनसस्करत् ॥१॥

पदार्थ—(ध्रुवम्) दृढ़ स्वभाव (सोमम्) ऐश्वर्यवान् राजा को (ध्रुवेण) दृढ़ (हविषा) आत्मदान वा भक्ति के साथ (अव नयामसि) हम स्वीकार करते हैं। (यथा) जिससे [वह] (इन्द्रः) प्रतापी राजा (नः) हमारे लिये (केवलीः) सेवास्वभाव वाली (विशः) प्रजाओं को (संमनसः) एक मन (करत्) कर देवे ॥१॥

卐 सूक्तम् ९५ 卐

१—३ कपिञ्जलः । गृध्रौ । अनुष्टुप्, २—३ भुरिक् ।

उदस्य श्यावौ विथुरौ गृध्रौ द्यामिव पेततुः ।
उच्छोचनप्रशोचनावस्योच्छोचनौ हृदः ॥१॥

पदार्थ—(अस्य) इस [जीव] के (श्यावौ) दोनो गतिशील (विथुरौ) व्यथा देने वाले, (गृध्रौ) बड़े लोभी [काम क्रोध] (द्याम् इव) आकाश को जैसे (उत् पेततुः) उड़ गये हैं। (उच्छोचनप्रशोचनौ) अत्यन्त दु:खाने वाले और सब ओर से दु:खाने वाले दोनों (अस्य) इसके (हृदः) हृदय के (उच्छोचनौ) अत्यन्त दु:खाने वाले हैं ॥१॥

अहमेनावुदतिष्ठिपं गावौ श्रान्तसदाविव ।
कुर्कुराविव कूजन्तावुदवन्तौ वृकाविव ॥२॥

पदार्थ—(अहम्) मैंने (एनौ) इन दोनो को (उत् अतिष्ठिपम्) उठा दिया है, (इव) जैसे (श्रान्तसदौ) थक कर बैठे हुए (गावौ) दो बैलों को, (इव) जैसे (कूजन्तौ) घुरघुराते हुए (कुर्कुरौ) [कुर कुर करने वाले] कुत्तों को, और (इव) जैसे (उदवन्तौ) दो घुस आने वाले (वृकौ) भेड़ियो को ॥२॥

आतोदिनौ नितोदिनावथो संतोदिनावुत ।
अपि नह्याम्यस्य मेढ्रं य इतः स्त्री पुमान् जभार ॥३॥

पदार्थ—(अथो) और भी (आतोदिनौ) दोनो सब ओर से सताने वालो, (नितोदिनौ) नित्य सताने वालो, (उत) और (संतोदिनौ) मिलकर सताने वालों को (इतः) यहा पर [हमारे बीच] (यः) जिस किसी (स्त्री) स्त्री [वा] (पुमान्) पुरुष ने (जभार) स्वीकार किया है, (अस्य) उसके (मेढ्रम्) सेचनसामर्थ्य [वृद्धि शक्ति] को (अपि) सर्वथा (नह्यामि) मैं बांधता हूँ ॥३॥

卐 सूक्तम् ९६ 卐

१ कपिञ्जल । वय । अनुष्टुप् ।

असदन् गावः सदनेऽपप्तद् वसतिं वयः ।
आस्थाने पर्वता अस्थुः स्थाम्नि वृक्कावतिष्ठिपम् ॥१॥

पदार्थ—(गावः) गौएं (सदने) बैठक मे (असदन्) बैठ गयी हैं, (वयः) पक्षी ने (वसतिम्) घोसले मे (अपप्तत्) बसेरा लिया है। (पर्वताः) पहाड (आस्थाने) विश्राम-स्थान पर (अस्थुः) ठहर गये हैं, (वृक्कौ) दोनो रोक डालने वाले वा रोकने योग्य [काम क्रोध] को (स्थाम्नि) स्थान पर (अतिष्ठिपम्) मैंने ठहरा दिया है ॥१॥

卐 सूक्तम् ९७ 卐

१—८ अथर्वा । इन्द्राग्नी । १—४ त्रिष्टुप् । ५ त्रिपदार्षी भुरिग् गायत्री । ६ त्रिपदा प्राजापत्या बृहती, ७ त्रिपदा साम्नी भुरिक् जगती, ८ उपरिष्टाद् बृहती ।

यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन् होतश्चिकित्वन्नवृणीमहीह ।
ध्रुवमयो ध्रुवमुता शविष्ठ प्रविद्वान् यज्ञमुप याहि सोमम् ॥१॥

पदार्थ—(यत्) जिस लिये (अद्य) आज (त्वा) तुझको (अस्मिन्) इस (प्रयति) प्रयत्नसाध्य (यज्ञे) संगतियोग्य व्यवहार मे, (चिकित्वन्) हे ज्ञानवान् ! (होतः) हे दानी पुरुष ! (इह) यहां पर (अवृणीमहि) हमने चुना है [वर्णी किया है]। (शविष्ठ) हे महाबली ! तू (ध्रुवम्) दृढ़ता से (उत) और भी (ध्रुवम्) दृढ़ता से (अयः) आ, (यज्ञम्) पूजनीय व्यवहार को (प्रविद्वान्) पहिले से जानने वाला तू (सोमम्) ऐश्वर्य को (उप) समीप से (याहि) प्राप्त कर ॥१॥

समिन्द्र नो मनसा नेष गोभिः सं सूरिभिर्हरिवन्त्सं स्वस्त्या ।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमतौ यज्ञियानाम् ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले राजन् ! (नः) हमें (मनसा) विज्ञान के साथ और (गोभिः) इन्द्रियों वा वाणियो के साथ (सम्) ठीक ठीक, (हरिवन्) हे श्रेष्ठ मनुष्यों वाले ! (सूरिभिः) विद्वानो के साथ (सम्) ठीक ठीक, (स्वस्त्या) अच्छी सत्ता [क्षेम कुशल] के साथ (सम्) ठीक ठीक, (यत्) जो [ब्रह्म] (देवहितम्) विद्वानों का हितकारक (अस्ति) है, [उस] (ब्रह्मणा) ब्रह्म, वेद, धन वा अन्न के साथ (सम्) ठीक ठीक, (यज्ञियानाम्) पूजा योग्य (देवानाम्) विद्वानों की (सुमतौ) सुमति मे (सम्) ठीक ठीक (नेष) तू ले चल ॥२॥

यानावह उशतो देव देवांस्तान् प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे ।
जक्षिवांसः पपिवांसो मधून्यस्मै धत्त वसवो वसूनि ॥३॥

पदार्थ—(देव) हे प्रकाशमान अध्यापक ! (यान्) जिन (उशतः) लालसा वाले (देवान्) विद्वानो को (आ अवहः) तू लाया है, (अग्ने) हे विद्वन् ! (तान्) उन्हें (स्वे) अपनी (सधस्थे) बैठक में (प्र ईरय) ले चल। (वसवः) हे श्रेष्ठ जनो ! तुम (मधूनि) मधुर वस्तुओ को (जक्षिवांसः) खा चुक कर और (पपिवांसः) पी चुक कर (अस्मै) इस पुरुष के लिये (वसूनि) उत्तम धनो को (धत्त) दान करो ॥३॥

सुगा वो देवाः सदना अकर्म य आजग्म सवने मा जुषाणाः ।
वहमाना भरमाणाः स्वा वसूनि वसुं घर्मं दिवमा रोहतानु ॥४॥

पदार्थ—(देवाः) हे विद्वानो ! (वः) तुम्हारे लिये (सुगा) सुख से पहुँचने योग्य (सदना) आसनों को (अकर्म) हमने बनाया है, (ये) जो तुम [अपने] (सवने) ऐश्वर्य मे (मा) मुझे (जुषाणाः) प्रसन्न करते हुए (आजग्म) आये हो (स्वा) अपनी (वसूनि) श्रेष्ठ वस्तुओ को (वहमानाः) पहुँचाते हुए और (भरमाणाः) पुष्ट करते हुए तुम (वसुम्) श्रेष्ठ (घर्मम्) दिन और (दिवम् अनु) व्यवहार के बीच (आ रोहत) चढ़ते जाओ ॥४॥

यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ । स्वां योनिं गच्छ स्वाहा ॥५॥

पदार्थ—(यज्ञ) हे पूजनीय पुरुष ! (यज्ञम्) पूजनीय व्यवहार को (गच्छ) प्राप्त हो, (यज्ञपतिम्) पूजनीय व्यवहार के पालने वाले को (गच्छ) प्राप्त हो। और (स्वाहा) सुन्दर वाणी [वेदवाणी] के साथ (स्वाम्) अपने (योनिम्) स्वभाव को (गच्छ) प्राप्त हो ॥५॥

एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः । सुवीर्यः स्वाहा ॥६॥

पदार्थ—(यज्ञपते) हे पूजनीय व्यवहार के पालने वाले पुरुष ! (एषः) यह (ते) तेरा (यज्ञः) पूजनीय व्यवहार (स्वाहा) सुन्दर वाणी [वेदवाणी] द्वारा (सहसूक्तवाकः) सुन्दर वचनो के उपदेशो के सहित (सुवीर्यः) बड़े वीरत्व वाला [होवे] ॥६॥

वषड्ढुतेभ्यो वषडहुतेभ्यः ।
देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित ॥७॥

पदार्थ—(हुतेभ्यः) दिये हुए [माता पिता आदि से पाये हुए] पदार्थों के लिये (वषट्) भक्ति [हो], (अहुतेभ्यः) न दिये हुए [स्वय प्राप्त किये हुए] पदार्थों के लिये (वषट्) भक्ति [हो], (गातुविदः) हे पृथिवी के जानने वालो ! (देवाः) हे विजय चाहने वाले वीरो ! (गातुम्) मार्ग को (वित्त्वा) पाकर (गातुम्) पृथिवी को (इत) प्राप्त हो ॥७॥

मनसस्पत इमं नो दिवि देवेषु यज्ञम् । स्वाहा दिवि स्वाहा
पृथिव्यां स्वाहान्तरिक्षे स्वाहा वाते धां स्वाहा ॥८॥

पदार्थ—(मनसस्पते) हे मन के स्वामी [मनुष्य !] (इमम्) इस (नः) अपने [हमारे] (यज्ञम्) संगतिकरण व्यवहार को (दिवि) आकाश में [वर्तमान] (देवेषु) दिव्य पदार्थों मे (स्वाहा) सुन्दर वाणी के साथ, [अर्थात्] (दिवि) सूर्य मे (स्वाहा) सुन्दर वाणी के साथ, (पृथिव्याम्) पृथिवी मे (स्वाहा) सुन्दर वाणी के साथ, (अन्तरिक्षे) मध्यलोक में (स्वाहा) सुन्दर वाणी के साथ, (वाते) वायु मे (स्वाहा) सुन्दर वाणी के साथ, (धाम्) मैं धारण करूं ॥८॥

卐 सूक्तम् ९८ 卐

१ अथर्वा । इन्द्रः, विश्वेदेवाः । विराट् ।

सं बर्हिरक्तं हविषा घृतेन समिन्द्रेण वसुना सं मरुद्भिः ।
सं देवैर्विश्वदेवेभिरक्तमिन्द्रं गच्छतु हविः स्वाहा ॥१॥

पदार्थ—(हविषा) ग्रहण से और (घृतेन) सेचन से (सम्) ठीक ठीक, (इन्द्रेण) ऐश्वर्य से और (वसुना) धन से (सम्) ठीक ठीक, (मरुद्भिः) विद्वानो से (सम्) ठीक ठीक, (अक्तम्) सुधारा गया (बर्हिः) वृद्धि कर्म, और (देवैः) प्रकाशमान (विश्वदेवेभिः) सब उत्तम गुणो से (सम्) ठीक ठीक, (अक्तम्) संभाला गया (हविः) ग्राह्य पदार्थ (स्वाहा) सुन्दर वाणी [वेदवाणी] के साथ (इन्द्रम्) प्रतापी पुरुष को (गच्छतु) पहुँचे ॥१॥

卐 सूक्तम् ९९ 卐

१ अथर्वा । वेदी । भुरिक्, त्रिष्टुप् ।

परि स्तृणीहि परि धेहि वेदिं मा जामिं मोषीरमुया शयानाम् ।
होतृषदनं हरितं हिरण्ययं निष्का एते यजमानस्य लोके ॥१॥

पदार्थ—[हे विद्वान् !] (वेदिम्) विद्या [वा यज्ञभूमि] (परि) सब ओर (स्तृणीहि) फैला और (परि) सब ओर (धेहि) पुष्ट कर (अमुया) उस [विद्या] के साथ (शयानाम्) वर्तमान (जामिम्) गति को (मा मोषीः)

मत लूट। (होतृषदनम्) दाता का घर (हरितम्) हरा भरा [स्वीकार योग्य] और (हिरण्ययम्) सोने से भरा [होता है], (एते) ये सब (निष्का) सुनहरे अलङ्कार (यजमानस्य) यजमान [विद्वानों के सत्कार करने वाले] के (लोके) घर में [रहते हैं] ॥१॥

卐 सूक्तम् १०० 卐

१ यमः। दुःस्वप्ननाशनम्। अनुष्टुप्।

पर्यावर्ते दुःष्वप्न्यात् पापात् स्वप्न्यादभूत्याः।

ब्रह्माहमन्तरं कृण्वे परा स्वप्नमुखाः शुचः ॥१॥

पदार्थ—(दुःष्वप्न्यात्) बुरी निद्रा में उठे हुए और (स्वप्न्यात्) स्वप्न में उठे हुए (पापात्) पाप से [प्राप्त] (अभूत्याः) अनैश्वर्यता [निर्धनता] से (पर्यावर्ते) मैं अलग हटता हूँ। (अहम्) मैं (ब्रह्म) ब्रह्म [ईश्वर] को [अपने] (अन्तरम्) भीतर, और (स्वप्नमुखाः) स्वप्न के कारण से होने वाले (शुचः) शोकों को (परा) दूर (कृण्वे) करता हूँ ॥१॥

卐 सूक्तम् १०१ 卐

१ यम। स्वप्ननाशनम्। अनुष्टुप्।

यत् स्वप्ने अन्नमश्नामि न प्रातरधिगम्यते।

सर्वं तदस्तु मे शिवं नहि तद् दृश्यते दिवा ॥१॥

पदार्थ—(यत्) जो कुछ (अन्नम्) अन्न (स्वप्ने) स्वप्न में (अश्नामि) मैं खाता हूँ [वह] (प्रातः) प्रातःकाल (न) नहीं (अधिगम्यते) मिलता है। (तत्) वह (सर्वम्) सब (मे) मेरे लिये (शिवम्) कल्याणकारी (अस्तु) होवे, (तत्) वह (दिवा) दिन में (नहि) नहीं (दृश्यते) दीखता है ॥१॥

卐 सूक्तम् १०२ 卐

१ प्रजापतिः। द्यावापृथिवी, अन्तरिक्षम्, मृत्युः। विराट् पुरस्ताद्बृहती।

नमस्कृत्य द्यावापृथिवीभ्यामन्तरिक्षाय मृत्यवे।

मेक्षाम्यूर्ध्वस्तिष्ठन् मा मां हिंसिषुरीश्वराः ॥१॥

पदार्थ—(द्यावापृथिवीभ्याम्) सूर्यलोक और पृथिवी लोक को और (अन्तरिक्षाय) अन्तरिक्ष लोक को (नमस्कृत्य) नमस्कार करके (मृत्यवे) मृत्यु नाश करने के लिये (ऊर्ध्वः) ऊपर (तिष्ठन्) ठहरता हुआ (मेक्षामि) मैं चलता हूँ, (ईश्वराः) [कोई] बलवान् (मा) मुझको (मा हिंसिषुः) न हानि करें ॥१॥

卐 इति नवमोऽनुवाकः 卐

卐

अथ दशमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् १०३ 卐

१ ब्रह्मा। आत्मा। त्रिष्टुप्।

को अस्या नो द्रुहोऽवद्यवत्या उन्नेष्यति क्षत्रियो वस्य इच्छन्।

को यज्ञकामः क उ पूर्तिकामः को देवेषु वनुते दीर्घमायुः ॥१॥

पदार्थ—(वस्यः) उत्तम फल (इच्छन्) चाहता हुआ (कः) प्रजापति [प्रजापालक प्रकाशमान वा सुखदाता] (क्षत्रियः) क्षत्रिय (नः) हमको (अस्याः) इस (अवद्यवत्याः) धिक्कार योग्य (द्रुहः) डाह क्रिया से (उत् नेष्यति) (उठावेगा। (कः) प्रजापति [मनुष्य] (यज्ञकामः) पूजनीय व्यवहार चाहने वाला और (कः) प्रजापति (उ) ही (पूर्तिकामः) पूर्ति [सिद्धि] चाहने वाला [होता है], (कः) प्रजापति [मनुष्य] (देवेषु) उत्तम गुणों के बीच (दीर्घम्) दीर्घ (आयुः) आयु (वनुते) मांगता है ॥१॥

卐 सूक्तम् १०४ 卐

१ ब्रह्मा। आत्मा। त्रिष्टुप्।

कः पृश्निं धेनुं वरुणेन दत्तामथर्वणे सुदुघां नित्यवत्साम्।

बृहस्पतिना सख्यं जुषाणो यथावशं तन्वः कल्पयाति ॥१॥

पदार्थ—(कः) प्रकाशमान [प्रजापति मनुष्य] (बृहस्पतिना) बड़े बड़े लोकों के स्वामी [परमेश्वर] के साथ (यथावशम्) इच्छानुसार [अपने] (तन्वः) शरीर की (सख्यम्) मित्रता का (जुषाणः) सेवन करता हुआ, (अथर्वणे) निश्चल स्वभाव वाले पुरुष को (वरुणेन) श्रेष्ठ परमात्मा द्वारा (दत्ताम्) दी हुई, (सुदुघाम्) अत्यन्त पूर्ण करने वाली, (नित्यवत्साम्) नित्य उपदेश करने वाली, (पृश्निम्) प्रश्न करने योग्य (धेनुम्) वाणी [वेदवाणी] को (कल्पयाति) समर्थ करे ॥१॥

卐 सूक्तम् १०५ 卐

१ अथर्वा। मन्त्रोक्ता। अनुष्टुप्।

अपक्रामन् पौरुषेयाद् वृणानो दैव्यं वचः।

प्रणीतीरभ्यावर्तस्व विश्वेभिः सखिभिः सह ॥१॥

पदार्थ—[हे विद्वन्!] (पौरुषेयात्) पुरुषवध से (अपक्रामन्) हटता हुआ (दैव्यम्) दिव्य [परमेश्वरीय] (वचः) वचन (वृणानः) मानता हुआ तू (विश्वेभिः) सब (सखिभिः सह) सखाओं [साथियों] सहित (प्रणीतीः) उत्तम नीतियों [ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय आदि मर्य्यादाओं] का (अभ्यावर्तस्व) सब ओर से बर्ताव कर ॥१॥

卐 सूक्तम् १०६ 卐

१ अथर्वा। जातवेदा वरुणश्च, बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्।

यदस्मृति चकृम किं चिदग्न उपारिम चरणे जातवेदः।

ततः पाहि त्वं नः प्रचेतः शुभे सखिभ्यो अमृतत्वमस्तु नः ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सर्वव्यापक परमेश्वर! (यत् किंचित्) जो कुछ भी [दुष्कर्म] (अस्मृति) विस्मरण [भूल, आगे पीछे के बिना विचार] से (चकृम) हमने किया है, (जातवेदः) हे उत्पन्न पदार्थों के जानने वाले! [अपने] (चरणे) आचरण में (उपारिम) हमने अपराध किया है। (प्रचेतः) हे महाविद्वान्! (ततः) उससे (त्वम्) तू (नः) हमें (पाहि) बचा, (नः) हम [तेरे] (सखिभ्यः) सखाओं को (शुभे) कल्याण के लिये (अमृतत्वम्) अमरपन (अस्तु) होवे ॥१॥

卐 सूक्तम् १०७ 卐

१ भृगु। सूर्य आपश्च। अनुष्टुप्।

अव दिवस्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः।

आपः समुद्रिया धारास्तास्ते शल्यमसिस्रसन् ॥१॥

पदार्थ—(सूर्यस्य) सूर्य की (सप्त) सात [नित्य मिली हुई] (रश्मयः) किरणें (दिवः) आकाश से (समुद्रियाः) अन्तरिक्ष में रहने वाले (धाराः) धारारूप (आपः) जलों को (अव तारयन्ति) उतारती हैं, (ताः) उन्होंने (ते) तेरी (शल्यम्) कील [क्लेश] को (असिस्रसन्) बहा दिया है ॥१॥

卐 सूक्तम् १०८ 卐

१—२ भृगु। अग्निः। १ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्, २ त्रिष्टुप्।

यो नस्तायद् दिप्सति यो न आविः स्वो विद्वानरणो वा नो अग्ने।

प्रतीच्येत्वरणी दत्वती तान् मैषामग्ने वास्तु भून्मो अपत्यम् ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् राजन्! (यः) जो कोई (नः) हमें (तायत्) छिपे छिपे, (यः) जो कोई (नः) हमें (आविः) खुले खुले, (दिप्सति) सताना चाहता है, (नः) हमें (विद्वान्) जानता हुआ (स्वः) अपना पुरुष (वा) अथवा (अरणः) बाहरी पुरुष। (प्रतीची) चढ़ाई करती हुई, (दत्वती) दमनशीला, (अरणी) शीघ्रगामिनी वा मारने वाली [सेना] (तान्) उन पर (एतु) पहुँचे, (अग्ने) हे तेजस्वी राजन्! (एषाम्) इनका (मा) न तो (वास्तु) घर (मो) और न (अपत्यम्) बालक (भूत्) रहे ॥१॥

यो नः सुप्तान् जाग्रतो वाभिदासात् तिष्ठतो वा चरतो जातवेदः।

वैश्वानरेण सयुजा सजोषास्तान् प्रतीचो निर्दह जातवेदः ॥२॥

पदार्थ—(जातवेदः) हे प्रसिद्ध ज्ञानवाले राजन्! (यः) जो कोई पुरुष (सुप्तान्) सोते हुए, (वा) वा (जाग्रतः) जागते हुए, (तिष्ठतः) ठहरे हुए, (वा) वा (चरतः) चलते हुए (नः) हम को (अभिदासात्) सतावे। (जातवेदः) हे प्रसिद्ध धन वाले राजन्! (वैश्वानरेण) सब नरों के हितकारी (सयुजा) समान मित्र [परमेश्वर] के साथ (सजोषाः) प्रीति वाला तू (प्रतीचः) चढ़ाई करने वाले (तान्) उनको (निः) निरन्तर (दह) भस्म कर दे ॥२॥

卐 सूक्तम् १०९ 卐

१—७ बादरायणिः। अग्निः। अनुष्टुप्, २ विराट् पुरस्ताद्बृहती, ३, ४, ५—६ त्रिष्टुप्।

इदमुग्राय बभ्रवे नमो यो अक्षेषु तनूवशी ।

घृतेन कलिं शिक्षामि स नो मृडातीदृशे ॥१॥

पदार्थ—(इदम्) यह (नमः) नमस्कार (उग्राय) तेजस्वी (बभ्रवे) पोषक [परमेश्वर] को है, (यः) जो (अक्षेषु) व्यवहारों मे (तनूवशी) शरीरो का वश में रखने वाला है। (घृतेन) प्रकाश के साथ (कलिम्) गिनने वाले [परमेश्वर] को (शिक्षामि) मैं सीखता हूँ, (सः) वह (नः) हमें (ईदृशे) ऐसे [कर्म] मे (मृडाति) सुखी करे ॥१॥

घृतमप्सराभ्यो वह त्वमग्ने पांसूनक्षेभ्यः सिकता अपश्च ।

यथाभागं हव्यदातिं जुषाणा मदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥२॥

पदार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् पुरुष ! (त्वम्) तू (अप्सराभ्यः) अप्सराओं [प्राणियों मे व्यापक शक्तियों] के लिये और (अक्षेभ्यः) व्यवहारों [की सिद्धि] के लिये (पांसून्) धूलि [भूमिस्थलो] से (च) और (सिकताः) सींचने वाले (अपः) जलो से (घृतम्) घृत [सार पदार्थ] (वह) पहुँचा। (देवाः) विद्वान् लोग (यथाभागम्) भाग के अनुसार (हव्यदातिम्) ग्राह्य पदार्थों के दान का (जुषाणाः) सेवन करते हुए (उभयानि) पूर्ण (हव्या) ग्राह्य पदार्थों को (मदन्ति) भोगते हैं ॥२॥

अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।

ता मे हस्तौ सं सृजन्तु घृतेन सपत्नं मे कितवं रन्धयन्तु ॥३॥

पदार्थ—(अप्सरसः) आकाश मे व्यापक शक्तियां [वायु, जल, बिजुली आदि] (हविर्धानम्) ग्राह्य पदार्थों के आधार [भूलोक] (च) और (सूर्यम् अन्तरा) सूर्य के बीच (सधमादम्) परस्पर आनन्द (मदन्ति) भोगती हैं (ताः) वे (मे) मेरे (हस्तौ) दोनों हाथ (घृतेन) घृत [सार पदार्थ] से (सं सृजन्तु) संयुक्त करें, और (मे) मेरे (कितवम्) ज्ञान नाशक [ठग, जुआरी] (सपत्नम्) वैरी को (रन्धयन्तु) नाश करें ॥३॥

आदिनवं प्रतिदीव्ने घृतेनास्माँ अभि क्षर ।

वृक्षमिवाशन्या जहि यो अस्मान् प्रतिदीव्यति ॥४॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] (प्रतिदीव्ने) प्रतिकूल व्यवहार करने वाले के नाश करने को (घृतेन) प्रकाश के साथ (अस्मान् अभि) हमारे ऊपर (आदिनवम्) प्रथम नवीन वा स्तुति वाले [बोध] को (क्षर) छिड़क। (यः) जो (अस्मान्) हम से (प्रतिदीव्यति) प्रतिकूल व्यवहार करता है, [उसे] (जहि) मार डाल, (वृक्षम् इव) जैसे वृक्ष को (अशन्या) बिजुली से ॥४॥

यो नो द्युवे धनमिदं चकार यो अक्षाणां ग्लहनं शेषणं च ।

स नो देवो हविरिदं जुषाणो गन्धर्वेभिः सधमादं मदेम ॥५॥

पदार्थ—(यः) जिस [परमेश्वर] ने (नः) हमारे (द्युवे) आनन्द के लिये (इदम् धनम्) यह धन, और (यः) जिसने (अक्षाणाम्) व्यवहारो का (ग्लहनम्) ग्रहण (च) और (शेषणम्) विशेषपन [ब्राह्मणपन, क्षत्रियपन, वैश्यपन और शूद्रपन] (चकार) बनाया है। (सः) वह (देवः) व्यवहारकुशल [परमेश्वर] (नः) हमारे (इदम्) इस (हविः) दान [भक्तिदान] को (जुषाणः) स्वीकार करने वाला [हो, कि] (गन्धर्वेभिः) विद्या वा पृथिवी के धारण करने वाले [मनुष्यो] के साथ (सधमादम्) परस्पर आनन्द (मदेम) हम भोगें ॥५॥

संवसव इति वो नामधेयमुग्रंपश्या राष्ट्रभृतो ह्यक्षाः ।

तेभ्यो व इन्दवो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] (संवसवः) "सम्यक् धन वाले, वा मिल के रहने वाले" (इति) यह (वः) तुम्हारा (नामधेयम्) नाम है, (हि) क्योंकि [तुम] (उग्रंपश्याः) उग्रदर्शी [बड़े तेजस्वी] (राष्ट्रभृतः) राज्यपोषक और (अक्षाः) व्यवहार कुशल [हो]। (इन्दवः) हे बड़े ऐश्वर्यवालो ! (तेभ्यः वः) उन तुमको (हविषा) आत्मदान से (विधेम) हम पूजें, (वयम्) हम (रयीणाम्) अनेक धनों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥६॥

देवान् यन्नाथितो हुवे ब्रह्मचर्यं यदूषिम ।

अक्षान् यद् बभ्रूनालभे ते नो मृडन्त्वीदृशे ॥७॥

पदार्थ—(यत्) जिस से (नाथितः) प्रार्थी मैं (देवान्) विद्वानों को (हुवे) बुलाता हूँ, (यत्) जिस से (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य [आत्मनिग्रह, वेदाध्ययन आदि तप] में (ऊषिम) हमने निवास किया है। (यत्) जिससे (बभ्रून्) पालन करने वाले (अक्षान्) व्यवहारों को (आलभे) मैं यथावत् ग्रहण करता हूँ, (ते) वे सब [विद्वान्] (नः) हमें (ईदृशे) ऐसे [कर्म] मे (मृडन्तु) सुखी करें ॥७॥

卐 सूक्तम् ११० 卐

१—३ भृगु । इन्द्राग्नी । १ गायत्री, २ त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप् ।

अग्न इन्द्रश्च दाशुषे हतो वृत्राण्यप्रति । उभा हि वृत्रहन्तमा ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परम ऐश्वर्यवाले राजन् ! (च) और (अग्ने) हे तेजस्वी मन्त्री ! [आप दोनों] (दाशुषे) दानशील [प्रजागण] के लिये (वृत्राणि) रुकावटों को (अप्रति) बे रोक टोक (हतः) नाश करते हैं। (हि) क्योंकि (उभा) दोनों (वृत्रहन्तमा) रुकावटों के अत्यन्त नाश करने वाले हैं ॥१॥

याभ्यामजयन्त्स्वरग्र एव यावातस्थतुर्भुवनानि विश्वा ।

प्रचर्षणी वृषणा वज्रबाहू अग्निमिन्द्रं वृत्रहणा हुवेऽहम् ॥२॥

पदार्थ—(याभ्याम्) जिन दोनों द्वारा (एव) ही उन्होंने [महात्माओं ने] (स्वः) स्वर्ग [सुख] को (अग्रे) पहिले (अजयन्) जीता वा [पाया था], (यौ) जो दोनों (विश्वा) सब (भुवनानि) प्राणियों मे (आतस्थतुः) ठहर गए हैं। [उन दोनों] (प्रचर्षणी) शीघ्रगामी वा अच्छे मनुष्यों वाले, (वृषणा) शूर, (वज्रबाहू) वज्र [लोह समान दृढ़] भुजाओं वाले, (वृत्रहणा) रुकावटों का नाश करने वाले (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्यवाले राजा और (अग्निम्) तेजस्वी मन्त्री को (अहम्) मैं (हुवे) बुलाता हूँ ॥२॥

उप त्वा देवो अग्रभीच्चमसेन बृहस्पतिः ।

इन्द्र गीर्भिर्न आ विश यजमानाय सुन्वते ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे राजन् ! (त्वा) तुझे (देवः) प्रकाशमान, (बृहस्पतिः) बड़े बड़े लोकों के रक्षक परमेश्वर ने (चमसेन) अन्न के साथ (उप अग्रभीत्) सहारा दिया है। तू (गीर्भिः) वाणियों [स्तुतियों] के साथ (यजमानाय) संयोग-वियोग करने वाले (सुन्वते) तत्त्वमथन करने वाले पुरुष के लिये (नः) हम में (आ विश) प्रवेश कर ॥३॥

卐 सूक्तम् १११ 卐

१ ब्रह्मा । वृषभ । पराबृहती त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य कुक्षिरसि सोमधान आत्मा देवानामुत मानुषाणाम् ।

इह प्रजा जनय यास्त आसु या अन्यत्रेह तास्ते रमन्ताम् ॥१॥

पदार्थ—[हे ईश्वर !] तू (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य का (कुक्षिः) कोख रूप, (सोमधानः) अमृत का आधार, (देवानाम्) दिव्य लोको [सूर्य, पृथिवी आदि] का (उत) और (मानुषाणाम्) मनुष्यों का (आत्मा) आत्मा [अन्तर्यामी] (असि) है। (इह) यहां पर (प्रजाः) प्रजाओं को (जनय) उत्पन्न कर, (याः) जो (ते) तेरे लिये [तेरी आज्ञाकारी] (आसु) इन [प्रजाओं] मे, और (याः) जो (अन्यत्र) दूसरे स्थान मे [हों] (इह) यहां पर (ताः) वे सब (ते) तेरे लिये (रमन्ताम्) विहार करें ॥१॥

卐 सूक्तम् ११२ 卐

१—२ वरुणः । आपः वरुणश्च । अनुष्टुप्, १ भुरिक् ।

शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते ।

आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१॥

पदार्थ—(शुम्भनी) शोभायमान (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी लोक (अन्तिसुम्ने) [अपनी] गतियों से सुख देने वाले और (महिव्रते) बड़े व्रत [नियम] वाले हैं। (देवीः) उत्तम गुणवाली (सप्त) सात (आपः) व्यापनशील इन्द्रियां [दो कान, दो नथने, दो आंखें और एक मुख] (सुस्रुवुः) [हमें] प्राप्त हुई हैं, (ताः) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥१॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्या३दथो वरुण्यादुत ।

अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात् ॥२॥

पदार्थ—वे [व्यापनशील इन्द्रियां-म० १] (मा) मुझको (शपथ्यात्) शपथ सम्बन्धी (अथो) और (वरुण्यात्) श्रेष्ठों में हुए [अपराध] से (अथो) और (यमस्य) न्यायकारी राजा के (पड्वीशात्) बेड़ी डालने से (उत) और (विश्वस्मात्) सब (देवकिल्बिषात्) परमेश्वर के प्रति अपराध से (मुञ्चन्तु) मुक्त करें ॥२॥

卐 सूक्तम् ११३ 卐

१—२ भार्गवः तृष्टिका । १ विराडनुष्टुप्, २ शकुमती चतुष्पदा भुरिगुष्णिक् ।

तृष्टिके तृष्टवन्दन उदुमूं छिन्धि तृष्टिके ।

यथा कृतद्विष्टासोऽमुष्मैं शेप्यावते ॥१॥

पदार्थ—(तृष्टिके) हे कुत्सित तृष्णा ! (तृष्टवन्दने) हे लालुपता की लता रूपा ! तू (अमूम्) पीड़ा को (उत् छिन्धि) काट डाल, (तृष्टिके) हे लोभ मे टिकने वाली ! तू (यथा) जिससे (अमुष्मै) उस (शेप्यावते) शक्तिमान् पुरुष के लिये (कृतद्विष्टा) द्वेषनाशिनी (असः) होवे [वैसा किया जावे] ॥१॥

तृष्टासि तृष्टिका विषा विषातक्यसि ।

परिवृक्ता यथासस्यृषभस्य वशेव ॥२॥

पदार्थ—(तृष्टा) तू तृष्णा (तृष्टिका) लाभ मे टिकने वाली (असि) है, (विषा) विषैली (विषातकी) विष से जीवन दु खित करने वाली (असि) है । (यथा) जिससे तू (परिवृक्ता) परित्यक्ता (असति) हो जावे (इव) जैसे (ऋषभस्य) श्रेष्ठ पुरुष की (वशा) वशीभूत [प्रजा त्याज्य होती है, वैसा किया जावे] ॥२॥

卐 सूक्तम् ११४ 卐

१—२ भार्गव । अग्नीषोमौ । अनुष्टुप् ।

आ ते ददे वक्षणाभ्य आ तेऽहं हृदयाद् ददे ।

आ ते मुखस्य संकाशात् सर्वं ते वर्च आ ददे ॥१॥

पदार्थ—[हे शत्रु !] (अहम्) मैंने (ते) तेरा (वक्षणाभ्य) छाती के अवयवो मे [बल को] (आ ददे) ले लिया है, (ते) तेरे (हृदयात्) हृदय से (आ ददे) ले लिया है । (आ) और (ते) तेरे (मुखस्य) मुख के (सकाशात्) आकार से (ते) तेरे (सर्वम्) सब (वर्चः) ज्योति वा बल को (आ ददे) ले लिया है ॥१॥

प्रेतो यन्तु व्याध्यः प्रानुध्याः प्रो अशस्तयः ।

अग्नी रक्षस्विनीर्हन्तु सोमो हन्तु दुरस्यतीः ॥२॥

पदार्थ—(इतः) यहाँ से (व्याध्यः) सब रोग (प्र) बाहिर, (अनुध्याः) सब अनुताप (प्र) बाहिर और (अशस्तयः) सब अपकीर्तियाँ (प्रो) बाहिर ही (यन्तु) चली जावें । (अग्निः) तेजस्वी राजा (रक्षस्विनीः) राक्षसों से युक्त [सेनाओं] को (हन्तु) मारे और (सोमः) ऐश्वर्यवान् राजा (दुरस्यतीः) अनिष्ट चीतनेवाली [प्रजाओं] को (हन्तु) नाश करे ॥२॥

卐 सूक्तम् ११५ 卐

१—४ अथर्वाङ्गिरा । सविता, जातवेदा । अनुष्टुप्, २—३ त्रिष्टुप् ।

प्र पतेतः पापि लक्ष्मि नश्येतः प्रामुतः पत ।

अयस्मयेनाङ्केन द्विषते त्वा सजामसि ॥१॥

पदार्थ—(पापि) हे पापी ! (लक्ष्मि) लक्षण [लक्ष्मी] ! (इतः) यहाँ से (प्र पत) चला जा, (इतः) यहाँ से (नश्य) छिप जा, (अमुतः) वहाँ से (प्र पत) चला जा । (अयस्मयेन) लोहे के (अङ्केन) काँटे से (त्वा) तुझको (द्विषते) वैरी मे (आ सजामसि) हम चिपकाते है ॥१॥

या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टाभिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम् ।

अन्यत्रास्मत् सवितस्तामितो धा हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः ॥२॥

पदार्थ—(या) जो (पतयालूः) गिराने वाला (अजुष्टा) अप्रिय (लक्ष्मीः) लक्षण (मा) मुझ पर (अभिचस्कन्द) आ चढा है, (इव) जैसे (वन्दना) बेल (वृक्षम्) वृक्ष पर । (सवितः) हे ऐश्वर्यवान [परमेश्वर !] (हिरण्यहस्तः) तेज वा सुवर्ण हाथ मे रखनेवाला, (नः) हमे (वसु) धन (रराणः) देता हुआ तू (इतः) यहाँ से (अस्मत्) हम से (अन्यत्र) दूसरे [दुष्टों मे] (ताम्) उसको (धाः) धर ॥२॥

एकशतं लक्ष्म्यो मर्त्यस्य साकं तन्वा जनुषोऽधि जाताः । तासां पापिष्ठा निरितः प्र हिण्मः शिवा अस्मभ्यं जातवेदो नि यच्छ ॥३॥

पदार्थ—(एकशतम्) एक सौ एक [अपरिमित, पापिष्ठ और माङ्गलिक] (लक्ष्म्यः) लक्षण (मर्त्यस्य) मनुष्य के (तन्वा साकम्) शरीर के साथ (जनुषः) जन्म से (अधि) अधिकार पूर्वक (जाताः) उत्पन्न हुए हैं । (तासाम्) उनमे से (पापिष्ठाः) पापिष्ठ [लक्षणो] को (इतः) यहाँ से (निः) निश्चय करके (प्र हिण्मः) हम निकाल देते हैं, (जातवेदः) हे उत्पन्न पदार्थों के जानने वाले परमेश्वर ! (अस्मभ्यम्) हमे (शिवाः) माङ्गलिक [लक्षण] (नि) नियम से (यच्छ) दे ॥३॥

एता एना व्याकरं खिले गा विष्ठिता इव ।

रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम् ॥४॥

पदार्थ—(एताः) इन [पुण्य लक्षणो] को और (एनाः) इन [पाप लक्षणो] को (व्याकरम्) मैंने स्पष्ट कर दिया है (इव) जैसे (खिले) बिना जुते स्थान [जगल] मे (विष्ठिताः) खड़ी हुई (गाः) गौओं को (पुण्याः) पुण्य (लक्ष्मीः) लक्षण (रमन्ताम्) ठहरे रहें और (याः) जो (पापीः) पापी [लक्षण] है, (ताः) उन्हें (अनीनशम्) मैंने नष्ट कर दिया है ॥४॥

卐 सूक्तम् ११६ 卐

१—२ अथर्वाङ्गिरा । चन्द्रमा । १ पुरोष्णिक्, २ एकावसाना द्विपदा आर्च्यनुष्टुप् ।

नमो रूराय च्यवनाय नोदनाय धृष्णवे ।

नमः शीताय पूर्वकामकृत्वने ॥१॥

पदार्थ—(रूराय) घातक (च्यवनाय) पतित (नोदनाय) ढकेलने वाले, (धृष्णवे) ढीठ [शत्रु] का (नमः) वज्र । (शीताय) शीत [समान] (पूर्वकामकृत्वने) पहिली कामनायें काटने वाले [वैरी] का (नमः) वज्र [होवे] ॥१॥

यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येतीमं मण्डूकमभ्येत्वव्रतः ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (अन्येद्युः) एकान्तरा और (उभयद्युः) दो अन्तरा [ज्वर समान] (अभ्येति) चढता है, (अव्रतः) नियमहीन वह [रोग] (इमम्) इस (मण्डूकम्) मेंढक [समान टर्राने वाले आत्मश्लाघी पुरुष] को (अभि एतु) चढ़े [ऐसे ज्वर समान शत्रु पर वज्र होवे—म० १] ॥२॥

卐 सूक्तम् ११७ 卐

१ अथर्वाङ्गिरा । इन्द्र । पथ्याबृहती ।

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः । मा त्वा के

चिद् वि यमन् विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे प्रतापी राजन् ! (मन्द्रैः) गम्भीर ध्वनियो से वर्तमान (मयूररोमभिः) मोरो के रोम [समान चिकने, विचित्र रंग, दृढ़, बिजुली से युक्त रोमवस्त्र] वाले (हरिभिः) मनुष्यों और घोडो के साथ (आ याहि) तू आ । (त्वा) तुझको (के चित्) कोई भी (मा वि यमन्) कभी न रोकें (न) जैसे (पाशिनः) जालवाले [चिड़ीमार] (विम्) पक्षी को, तू (तान् अति) उनके ऊपर होकर (इहि) चल (धन्व इव) जैसे निर्जल देश [के ऊपर से] ॥१॥

卐 सूक्तम् ११८ 卐

१ अथर्वाङ्गिरा । चन्द्रमा, वरुण, देव. । त्रिष्टुप् ।

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।

उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥१॥

पदार्थ—[हे शूरवीर !] (ते) तेरे (मर्माणि) मर्मों को (वर्मणा) कवच से (छादयामि) मैं [सेनापति] ढाँकता हूँ, (सोमः) ऐश्वर्यवान् (राजा) राजा [कोषाध्यक्ष] (त्वा) तुझको (अमृतेन) अमृत [मृत्यु निवारक, शस्त्र, अस्त्र, वस्त्र, अन्न, औषध आदि] से (अनु) निरन्तर (वस्ताम्) ढके । (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष [चतुर मार्गदर्शक] (ते) तेरे लिये (उरोः) चौड़े से (वरीयः) अधिक चौड़ा [स्थान] (कृणोतु) करे, (जयन्तम्) विजयी (त्वा अनु) तेरे पीछे (देवाः) विजय चाहने वाले पुरुष (मदन्तु) आनन्द पावें ॥१॥

卐 इति दशमोऽनुवाकः 卐

॥ सप्तम काण्डं समाप्तम् ॥

卐

अष्टमं काण्डम्

प्रथमोऽनुवाकः

卐 सूक्तम् १ 卐

१—२१ ब्रह्मा । आयुः । त्रिष्टुप्, १ पुरोबृहती त्रिष्टुप्, २, ३, १७—२१ अनुष्टुप्, ४—९, १५—१६ प्रस्तारपंक्तिः, ७ त्रिपदा विराड्गायत्री, ८ विराट् पथ्याबृहती, १२ त्र्यवसाना पञ्चपदा जगती, १३ त्रिपाद्भुरिङ् महाबृहती, १४ एकावसाना द्विपदा साम्नी भुरिग्बृहती ।

अन्तकाय मृत्यवे नमः प्राणा अपाना इह ते रमन्ताम् ।
इहायमस्तु पुरुषः सहासुना सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके ॥१॥

पदार्थ—(अन्तकाय) मनोहर करने वाले [परमेश्वर] को (मृत्यवे) मृत्यु का नाश करने के लिये (नमः) नमस्कार है, [हे मनुष्य !] (ते) तेरे (प्राणाः) प्राण और (अपानाः) अपान (इह) इस [परमेश्वर] मे (रमन्ताम्) रमे रहें । (इह) इस [जगत्] मे (अयम्) यह (पुरुष) पुरुष (असुना सह) बुद्धि के साथ (सूर्यस्य) सब के चलाने वाले सूर्य [अर्थात् परमेश्वर] के (भागे) ऐश्वर्यसमूह के बीच (अमृतस्य लोके) अमर लोक [मोक्षपद] मे (अस्तु) रहे ॥१॥

उदेनं भगो अग्रभीदुदेनं सोमो अंशुमान् ।
उदेनं मरुतो देवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तये ॥२॥

पदार्थ—(भगः) सेवनीय सूर्य ने (एनम्) इसे (उत्) ऊपर को, (अंशुमान्) अच्छी किरणो वाले (सोमः) चन्द्रमा ने (एनम्) इसे (उत्) ऊपर को (अग्रभीत्) ग्रहण किया है । (देवाः) दिव्य (मरुतः) वायुगणो ने (एनम्) इसे (उत्) ऊपर को, (इन्द्राग्नी) बिजुली और [भौतिक] अग्नि ने (स्वस्तये) अच्छी सत्ता के लिये (उत्) ऊपर को [ग्रहण किया है] ॥२॥

इह तेऽसुरिह प्राण इहायुरिह ते मनः ।
उत् त्वा निर्ऋत्याः पाशेभ्यो दैव्या वाचा भरामसि ॥३॥

पदार्थ—(इह) इस [परमेश्वर] मे (ते) तेरी (असुः) बुद्धि, (इह) इस मे (प्राण) प्राण, (इह) इसमे (आयुः) जीवन, (इह) इसमें (ते) तेरा (मनः) मन [हो] । (त्वा) तुझको (निर्ऋत्याः) महा विपत्ति [अविद्या] के (पाशेभ्यः) जालो से (दैव्या) दैवी (वाचा) वाणी [वेद विद्या] के साथ (उत्) ऊपर (भरामसि) हम धरते हैं ॥३॥

उत् क्रामातः पुरुष माव पत्था मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः ।
मा च्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः ॥४॥

पदार्थ—(पुरुष) हे पुरुष ! (अतः) इस [वर्तमान दशा] से (उत् क्राम) आगे डग बढ़ा, (मृत्योः) मृत्यु [अज्ञान, निर्धनता आदि] की (पड्वीशम्) बेडी को (अवमुञ्चमानः) छोडता हुआ (मा अव पत्थाः) मत नीचे गिर । (अस्मात् लोकात्) इस लोक [वर्तमान अवस्था] से (अग्नेः) अग्नि [शरीर और आत्म-बल] से, और (सूर्यस्य) सूर्य के (संदृशः) दर्शन [नियम] से (मा च्छित्थाः) मत अलग हो ॥४॥

तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः ।
सूर्यस्ते तन्वे शं तपाति त्वां मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठाः ॥५॥

पदार्थ—(तुभ्यम्) तेरे लिये (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष मे चलने वाला (वातः) वायु (पवताम्) शुद्ध हो, (तुभ्यम्) तेरे लिये (आपः) जलधारायें (अमृतानि) अमृत वस्तुएं (वर्षन्तु) बरसावें । (सूर्यः) सूर्य (ते) तेरे (तन्वे) शरीर के लिये (शम्) शान्ति से (तपाति) तपे, (मृत्युः) मृत्यु (त्वाम्) तुझ पर (दयताम्) दया करे (मा प्र मेष्ठाः) तू मत दुःखी होवे ॥५॥

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि ।
आ हि रोहेममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥६॥

पदार्थ—(पुरुष) हे पुरुष ! (ते) तेरा (उद्यानम्) चढाव [होवे], (न) न (अवयानम्) गिराव, (ते) तेरे लिये (जीवातुम्) जीविका और (दक्षतातिम्) बल [योग्यता] (कृणोमि) मैं करता हूं । (हि) अवश्य (इमम्) इस (अमृतम्) अमर [सनातन], (सुखम्) सुखदायक (रथम्) रथ पर (आ रोह) चढ आ [उपदेश मान], (अथ) फिर (जिर्विः) स्तुति योग्य [होकर] तू (विदथम्) विचार समाज में (आ वदासि) भाषण कर ॥६॥

मा ते मनस्तत्र गान्मा तिरो भून्मा जीवेभ्यः प्र मदो मानु गाः पितॄन् ।
विश्वे देवा अभि रक्षन्तु त्वेह ॥७॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरा (मनः) मन (तत्र) वहां [अधर्म मे] (मा गात्) न जावे, और (मा तिरो भूत्) लुप्त न होवे, (जीवेभ्यः) जीवो के लिये (मा प्र मदः) भूल मत कर, (पितॄन् अनु) पितरो [माननीय माता-पिता आदि विद्वानो] से न्यून होकर (मा गाः) मत चल । (विश्वे) सब (देवाः) इन्द्रियां (इह) इस [शरीर] मे (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षन्तु) रक्षा करें ॥७॥

मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावतम् ।
आ रोह तमसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे ॥८॥

पदार्थ—(गतानाम्) [उन] गये हुए [कुमार्गियो] का (आ) कुछ भी (मा दीधीथाः) मत प्रकाश कर, (ये) जो [मनुष्य को धर्म से] (परावतम्) दूर (नयन्ति) ले जाते हैं । (तमसः) अन्धकार मे से (आ रोह) ऊपर चढ़, (ज्योतिः) प्रकाश मे (आ इहि) आ, (ते) तेरे (हस्तौ) दोनो हाथो को (आ रभामहे) हम पकडते है ॥८॥

श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ ।
अर्वाङेहि मा वि दीध्यो मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः ॥९॥

पदार्थ—(श्यामः) चलने वाला [प्राणवायु] (च च) और (शबलः) आने वाला [अपान वायु] (त्वा) तुझको (मा) न [छोडें], (यौ) जो दोनो [प्राण और अपान] (यमस्य) नियन्ता मनुष्य के (प्रेषितौ) भेजे हुए, (पथिरक्षी) मार्ग रक्षक (श्वानौ) दो कुत्तो [के समान हैं] । (अर्वाङ्) समीप (आ इहि) आ, (मा वि दीध्यः) विरुद्ध मत क्रीडा कर, (इह) यहां पर (पराङ्मनाः) उदास मन होकर (मा तिष्ठ) मत ठहर ॥९॥

मैतं पन्थामनु गा भीम एष येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि ।
तम एतत् पुरुष मा प्र पत्था भयं परस्तादभयं ते अर्वाक् ॥१०॥

पदार्थ—(एतम्) इस (पन्थाम्) पथ [अधर्मपथ] पर (मा अनु गाः) मत कभी चल, (एषः) यह (भीमः) भयानक है, (येन) जिस [मार्ग] से (पूर्वम्) पहिले (न इयथ) तू नहीं गया है, (तम्) उसी [मार्ग] को (ब्रवीमि) मैं कहता हूं । (पुरुष) हे पुरुष ! (एतत्) इस (तमः) अन्धकार मे (प्र) आगे (मा पत्थाः) मत पद रख (परस्तात्) दूर स्थान [कुपथ] मे (भयम्) भय है, (अर्वाक्) इस ओर [धर्मपथ मे] (ते) तेरे लिये (अभयम्) अभय है ॥१०॥

रक्षन्तु त्वाग्नयो ये अप्स्वन्ता रक्षतु त्वा मनुष्या यमिन्धते ।
वैश्वानरो रक्षतु जातवेदा दिव्यस्त्वा मा प्र धाग् विद्युता सह ॥११॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (अप्सु अन्तः) जलो के भीतर (ये) जो (अग्नयः) अग्नियां हैं, वे (त्वा) तेरी (रक्षन्तु) रक्षा करें, (यम्) जिसको (मनुष्याः) मनुष्य [यज्ञ आदि मे] (इन्धते) जलाते हैं, वह [अग्नि] (त्वा) तेरी (रक्षतु) रक्षा करे । (वैश्वानरः) सब नरो मे वर्तमान (जातवेदाः) धन वा ज्ञान उत्पन्न करने वाला [जाठराग्नि तेरी] (रक्षतु) रक्षा करे, (दिव्यः) आकाश मे रहने वाला [सूर्य] (विद्युता सह) बिजुली के साथ (त्वा) तुझ को (मा प्र धाक्) न जला डाले ॥११॥

मा त्वा क्रव्यादभि मंस्तारात् संकसुकाच्चर । रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च । अन्तरिक्षं रक्षतु देवहेत्याः ॥१२॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (त्वा) तुझ को (क्रव्यात्) मांसभक्षक [पशु, रोग, आदि] (मा अभि मंस्त) न किसी प्रकार मारे (संकसुकात्) नाश करने वाले [विघ्न] से (आरात्) दूर दूर (चर) चल । (द्यौः) प्रकाशमान ईश्वर (त्वा) तेरी (रक्षतु) रक्षा करे, (पृथिवी) पृथिवी (रक्षतु) रक्षा करे, (सूर्यः) सूर्य (च च) और (चन्द्रमाः) चन्द्रमा दोनो (त्वा) तेरी (रक्षताम्) रक्षा करें । (अन्तरिक्षम्) मध्य लोक [तुझको] (देवहेत्याः) इन्द्रियों की चोट से (रक्षतु) बचावे ॥१२॥

बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च त्वानवद्राणश्च रक्षताम् ।
गोपायंश्च त्वा जागृविश्च रक्षताम् ॥१३॥

पदार्थ—(बोधः) बोध [विवेक] (च) और (प्रतीबोधः) प्रतिबोध [चेतनता] (च) निश्चय करके (त्वा) तेरी (रक्षताम्) रक्षा करें, (अस्वप्नः) न सोने वाले (च) और (अनवद्राणः) न भागने वाले [दोनो] (त्वा) तेरी (च) निश्चय करके (रक्षताम्) रक्षा करें । (गोपायन्) चौकसी करने वाले

(च) और (जागृविः) जागने वाले [दासों] (च) अवश्य (त्वा) तुझको (रक्षताम्) बचावें ॥१३॥

ते त्वा रक्षन्तु ते त्वा गोपायन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहा ॥१४॥

पदार्थ—(ते) वे सब (त्वा) तेरी (रक्षन्तु) रक्षा करें, (ते) वे सब (त्वा) तेरी (गोपायन्तु) चौकसी करें, (तेभ्यः) उनके लिये (नमः) नमस्कार है, (तेभ्यः) उनके लिये (स्वाहा) सुन्दर वाणी है ॥१४॥

जीवेभ्यस्त्वा समुदे वायुरिन्द्रो धाता दधातु सविता त्रायमाणः ।

मा त्वा प्राणो बलं हासीदसुं तेऽनु ह्वयामसि ॥१५॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (त्वा) तुझको (जीवेभ्यः) जीवों के लिये (समुदे) पूरा उत्तमपन [करने] के लिये (वायुः) वायु, (इन्द्रः) मेघ और (धाता) पोषण करने वाला, (त्रायमाणः) पालन करने वाला (सविता) चलाने वाला सूर्य (दधातु) पुष्ट करे। (त्वा) तुझको (प्राणः) प्राण और (बलम्) बल (मा हासीत्) न छोड़े, (ते) तेरे लिये (असुम्) बुद्धि को (अनु) सदा (ह्वयामसि) हम बुलाते हैं ॥१५॥

मा त्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विदन्मा जिह्वा बर्हिः प्रमयुः कथा स्याः ।

उत् त्वादित्या वसवो भरन्तूदिन्द्राग्नी स्वस्तये ॥१६॥

पदार्थ—(मा) न तो (जम्भः) नाश करने वाला (संहनुः) विघ्न, (मा) न (तमः) अन्धकार, (मा) और (मा) न (बर्हिः) सताने वाली (जिह्वा) जीभ (त्वा) तुझको (विदत्) पावे, (कथा) किस प्रकार से (प्रमयुः) भू गिर जाने वाला (स्याः) होवे। (त्वा) तुझको (आदित्याः) प्रकाशमान विद्वान् लोग और (वसवः) श्रेष्ठ पदार्थ (उत्) ऊपर (भरन्तु) ले चलें और (इन्द्राग्नी) मेघ और अग्नि (स्वस्तये) सुन्दर सत्ता के लिये (उत्) ऊपर [ले चलें] ॥१६॥

उत् त्वा द्यौरुत् पृथिव्युत् प्रजापतिरग्रभीत् ।

उत् त्वा मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन् ॥१७॥

पदार्थ—(त्वा) तुझको (द्यौः) सूर्य ने (उत्) ऊपर का, (पृथिवी) पृथिवी ने (उत्) ऊपर का और (प्रजापतिः) प्रजापालक परमेश्वर ने (उत्) ऊपर को (अग्रभीत्) ग्रहण किया है। (त्वा) तुझको (सोमराज्ञीः) सोम [अमृत वा चन्द्रमा] को राजा रखने वाली (ओषधयः) ओषधियों ने (मृत्योः) मृत्यु से [अलग कर] (उत्) भली भाँति (अपीपरन्) पाला है ॥१७॥

अयं देवा इहैवास्त्वयं मामुत्र गादितः ।

इमं सहस्रवीर्येण मृत्योरुत् पारयामसि ॥१८॥

पदार्थ—(देवाः) हे विजय चाहने वाले पुरुषो ! (अयम्) यह [शूर पुरुष] (इह) यहां [धर्मात्माओं में] (एव) ही (अस्तु) रहे (अयम्) यह (अमुत्र) वहां [दुष्टों में] (इतः) यहां से [सत्समाज से] (मागात्) न जावे। (इमम्) इस [पुरुष] को (सहस्रवीर्येण) सहस्रों प्रकार के सामर्थ्य के साथ (मृत्योः) मृत्यु से (उत्) भले प्रकार (पारयामसि) हम पार लगाते हैं ॥१८॥

उत् त्वा मृत्योरपीपरं सं धमन्तु वयोधसः ।

मा त्वा व्यस्तकेश्यो मा त्वाघरुदो रुदन् ॥१९॥

पदार्थ—[हे पुरुष !] (त्वा) तुझे (मृत्योः) मृत्यु से (उत्) भले प्रकार (अपीपरम्) मैंने बचाया है। (वयोधसः) धारण करने वाले पदार्थ (सम्) ठीक-ठीक (धमन्तु) मिलें। (त्वा) तुझको (मा) न तो (व्यस्तकेश्यः) प्रकाश गिरा देने वाली [विपत्तियां], और (मा) न (त्वा) तुझे (अघरुदः) पाप की पीड़ायें (रुदन्) रुलावें ॥१९॥

आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः ।

सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥२०॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (त्वा) तुझको (आ अहार्षम्) मैंने ग्रहण किया है और (अविदम्) पाया है, तू (पुनर्णवः) नवीन होकर (पुनः) फिर (आ अगाः) आया है। (सर्वाङ्ग) हे सम्पूर्ण [विद्या के] अङ्ग वाले ! (ते) तेरे लिये (सर्वम्) सम्पूर्ण (चक्षुः) दर्शन सामर्थ्य (च) और (ते) तेरे लिये (सर्वम्) सम्पूर्ण (आयुः) आयु (अविदम्) मैंने पायी है ॥२०॥

व्यवात् ते ज्योतिरभूदप त्वत् तमो अक्रमीत् ।

अप त्वन्मृत्युं निर्ऋतिमप यक्ष्मं नि दध्मसि ॥२१॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (ज्योतिः) ज्योति (वि) विविध प्रकार (अवात्) आई है और (अभूत्) उपस्थित हुई है, (त्वत्) तुझ से (तमः) अन्धकार (अप अक्रमीत्) चल दिया है। तुझसे (मृत्युम्) मृत्यु को और (निर्ऋतिम्) अलक्ष्मी को (अप) अलग और (यक्ष्मम्) राजरोग को (अप) अलग (नि दध्मसि) हम धरते हैं ॥२१॥

卐 सूक्तम् २ 卐

१—२८ ब्रह्मा । आयुः । त्रिष्टुप्, १—२, ७ भुरिक्, ३, २६ आस्तारपङ्क्ति, ४ प्रस्तार पङ्क्ति, ६ पथ्यापङ्क्ति, ८ पुरस्ताज्ज्योतिष्मती जगती; ९ पञ्चपदा जगती, ११ विष्टारपङ्क्ति, १२, २२, २८ पुरस्ताद् बृहती; १४ त्र्यवसाना षट्पदा जगती; १९ उपरिष्टाद् बृहती, २१ सतः पङ्क्ति, ५, १०, १६-१८, २०, २३-२५, २७ अनुष्टुप् (१७ त्रिपाद्) ।

आ रभस्वेमाममृतस्य श्नुष्टिमच्छिद्यमाना जरदष्टिरस्तु ते ।

असुं त आयुः पुनरा भरामि रजस्तमो मोप गा मा प्र मेष्ठाः ॥१॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (अमृतस्य) अमृत की (इमाम्) इस (श्नुष्टिम्) प्राप्ति को (आ) भली भाँति (रभस्व) ग्रहण कर, (अच्छिद्यमाना) बिना कटती हुई (जरदष्टिः) स्तुति की व्याप्ति [फैलाव] (ते) तेरे लिये (अस्तु) होवे। (ते) तेरे (असुम्) बुद्धि और (आयुः) जीवन को (पुनः) बार बार (आ) अच्छे प्रकार (भरामि) मैं पुष्ट करता हूँ, (रजः) रजोगुण और (तमः) तमोगुण को (मा उप गाः) मत प्राप्त हो और (मा प्र मेष्ठाः) मत पीड़ित हो ॥१॥

जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङा त्वा हरामि शतशारदाय ।

अवमुञ्चन् मृत्युपाशानशस्तिं द्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि ॥२॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (जीवताम्) जीते हुए मनुष्यों की (ज्योतिः) ज्योति (अर्वाङ्) सन्मुख होकर (अभ्येहि) सब ओर से प्राप्त कर, (त्वा) तुझ को (शतशारदाय) सौ शरद् ऋतुओं वाले [जीवन] के लिये (आ) सब प्रकार (हरामि) स्वीकार करता हूँ। (मृत्युपाशान्) मृत्यु के फन्दों और (अशस्तिम्) अपकीर्ति को (अवमुञ्चन्) छोड़ता हुआ मैं (द्राघीयः) अधिक दीर्घ और (प्रतरम्) अधिक उत्तम (आयुः) जीवन को (ते) तेरे लिये (दधामि) पुष्ट करता हूँ ॥२॥

वातात् ते प्राणमविदं सूर्याच्चक्षुरहं तव ।

यत् ते मनस्त्वयि तद् धारयामि सं वित्स्वाङ्गैर्वद जिह्वयालपन् ॥३॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (वातात्) वायु से (ते) तेरे (प्राणम्) प्राण को और (सूर्यात्) सूर्य से (तव) तेरी (चक्षुः) दृष्टि को (अहम्) मैंने (अविदम्) पाया है। (यत्) जो (ते) तेरा (मनः) मन है, (तत्) उस को (त्वयि) तुझ में (धारयामि) स्थापित करता हूँ, (अङ्गैः) [शास्त्र के] सब अङ्गों से (सम् वित्स्व) यथावत् जान, (जिह्वया) जीभ से (अलपन्) बकवाद न करता हुआ (वद) बोल ॥३॥

प्राणेन त्वा द्विपदां चतुष्पदामग्निमिव जातमभि सं धमामि ।

नमस्ते मृत्यो चक्षुषे नमः प्राणाय तेऽकरम् ॥४॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (त्वा) तुझको (द्विपदाम्) दोपायों और (चतुष्पदाम्) चौपायों के (प्राणेन) प्राण से (अभि) सब ओर से (सम् धमामि) मैं फूंकता हूँ, (इव) जैसे (जातम्) उत्पन्न हुए (अग्निम्) अग्नि को। (मृत्यो) हे मृत्यु ! (ते) तेरी (चक्षुषे) दृष्टि को (नमः) नमस्कार और (ते) तेरे (प्राणाय) प्राण [प्रबलता] को (नमः) नमस्कार (अकरम्) मैंने किया है ॥४॥

अयं जीवतु मा मृतेमं समीरयामसि ।

कृणोम्यस्मै भेषजं मृत्यो मा पुरुषं वधीः ॥५॥

पदार्थ—(अयम्) यह [जीव] (जीवतु) जीता रहे (मा मृत) न मरे, (इमम्) इस [जीव] को (सम् ईरयामसि) हम वायु समान [शीघ्र] चलाते हैं। (अस्मै) इस के लिये मैं (भेषजम्) औषध (कृणोमि) करता हूँ। (मृत्यो) हे मृत्यु ! (पुरुषम्) [इस] पुरुष को (मा वधीः) मत मार ॥५॥

जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् ।

त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये ॥६॥

पदार्थ—(जीवलाम्) जीवन देने वाली, (नघारिषाम्) कभी हानि न करने वाली, (जीवन्तीम्) जीव रखने वाली, (त्रायमाणाम्) रक्षा करने वाली, (सहमानाम्) [रोग] दबा लेने वाली, (सहस्वतीम्) बल वाली (ओषधीम्) ओषधि [के समान वेद विद्या] को (इह) यहां [आत्मा में] (अस्मै) इस [पुरुष] को (अरिष्टतातये) शुभकर्म करने के लिये (अहम्) मैं (हुवे) बुलाता हूँ ॥६॥

अधि ब्रूहि मा रभथाः सृजेमं तवैव सन्त्सर्वहाया इहास्तु ।

भवाशर्वौ मृडतं शर्म यच्छतमपसिध्य दुरितं धत्तमायुः ॥७॥

पदार्थ—[हे मृत्यु—मं० ८] (अधि ब्रूहि) ढाढ़स दे, (मा आ रभथाः) मत पकड़, (इमम्) इस [पुरुष] को (सृज) छोड़, यह (तव एव सन्) तेरा ही होकर (सर्वहायाः) सब गति वाला (इह) यहाँ (अस्तु) रहे। (भवाशर्वौ) भव, [सुख देने वाले प्राण] और शर्व [क्लेश वा मल नाश करने वाले अपान वायु] तुम दोनों (मृडतम्) प्रसन्न हो, (शर्म) सुख (यच्छतम्) दान करो और (दुरितम्) दुर्गति (अपसिध्य) हटा कर (आयुः) जीवन (धत्तम्) पुष्ट करो ॥७॥

अस्मै मृत्यो अधि ब्रूहीमं दयस्वोदितो॒ऽयमेतु।

अरिष्टः सर्वाङ्गः सुश्रुज्जरसा शतहायन आत्मना भुजमश्नुताम् ॥८॥

पदार्थ—(मृत्यो) हे मृत्यु (अस्मै) इस [मनुष्य] को (अधि ब्रूहि) ढाढ़स दे, (इमम्) इस पर (दयस्व) दया कर, (अयम्) यह [मनुष्य] (उत् इतः =उदितः) उदय होता हुआ (एतु) चले। (अरिष्टः) निर्हानि, (सर्वाङ्गः) पूरे अङ्गों वाला, (सुश्रुत्) भली भाँति सुनने वाला, (जरसा) स्तुति के साथ (शतहायनः) सौ वर्षों वाला होकर (आत्मना) आत्मबल से (भुजम्) पालन-सामर्थ्य (अश्नुताम्) प्राप्त करे ॥८॥

देवानां हेतिः परि त्वा वृणक्तु पारयामि त्वा रजस उत् त्वा मृत्योरपीपरम्। आरादग्निं क्रव्यादं निरूहं जीवातवे ते परिधिं दधामि ॥९॥

पदार्थ—(देवानाम्) इन्द्रियों की (हेतिः) चोट (त्वा) तुझे (परि) सर्वथा (वृणक्तु) त्यागे, मैं (त्वा) तुझे (रजसः) राग से (पारयामि) पार करता हूँ, (त्वा) तुझे (मृत्योः) मृत्यु से (उत्) भले प्रकार (अपीपरम्) मैं ने बचाया है। (क्रव्यादम्) मांसभक्षक [रोगोत्पादक] (अग्निम्) अग्नि को (आरात्) दूर (निरूहन्) हटाता हुआ मैं (ते) तेरे (जीवातवे) जीवन के लिये (परिधिम्) परिकोटा (दधामि) स्थापित करता हूँ ॥९॥

यत् ते नियानं रजसं मृत्यो अनवधर्ष्यम्।

पथ इमं तस्माद् रक्षन्तो ब्रह्मास्मै वर्म कृण्मसि ॥१०॥

पदार्थ—(मृत्यो) हे मृत्यु ! (यत्) जो (ते) तेरा (रजसम्) संसार सम्बन्धी (नियानम्) मार्ग (अनवधर्ष्यम्) अजेय है। (तस्मात्) उस (पथः) मार्ग से (इमम्) इस [पुरुष] को (रक्षन्तः) बचाते हुए हम (अस्मै) इस [पुरुष] के लिये (ब्रह्म) ब्रह्म [वेद विद्या वा परमेश्वर] को (वर्म) कवच (कृण्मसि) बनाते हैं ॥१०॥

कृणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति।

वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतांश्चरतोऽप सेधामि सर्वान् ॥११॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (प्राणापानौ) प्राण और अपान, (जराम् =जरया) स्तुति के साथ (मृत्युम्) मृत्यु [प्राणत्याग], (दीर्घम्) दीर्घ (आयुः) जीवन और (स्वस्ति) कल्याण [अच्छी सत्ता] को (कृणोमि) मैं करता हूँ। (वैवस्वतेन) मनुष्य सम्बन्धी [कर्म] द्वारा (प्रहितान्) भेजे हुए, (चरतः) घूमते हुए (सर्वान्) सब (यमदूतान्) मृत्यु के दूतों को (अप सेधामि) मैं हटाता हूँ ॥११॥

आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान्।

रक्षो यत् सर्वं दुर्भूतं तत् तम इवाप हन्मसि ॥१२॥

पदार्थ—(अरातिम्) निर्धनता, (निर्ऋतिम्) महामारी [दरिद्रता आदि महाविपत्ति] को (आरात्) दूर, (ग्राहिम्) जकड़ने वाली पीड़ा, (क्रव्यादः) मांस खाने वाले [रोगों] और (पिशाचान्) मांस खाने वाले [जीवों] को (परः) परे; और (यत्) जो कुछ (दुर्भूतम्) कुशील (रक्षः) राक्षस [दुष्ट प्राणी है], (तत्) उस (सर्वम्) सब को (तमः इव) अन्धकार के समान (अप हन्मसि) हम मार हटाते हैं ॥१२॥

अग्नेष्टे प्राणममृतादायुष्मतो वन्वे जातवेदसः। यथा न रिष्या अमृतः सजूरसस्तत् ते कृणोमि तदु ते समृध्यताम् ॥१३॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे (प्राणम्) प्राण को (अमृतात्) अमर, (आयुष्मतः) बड़ी आयु वाले, (जातवेदसः) उत्पन्न पदार्थों के जानने वाले (अग्नेः) अग्नि [सर्वव्यापक परमेश्वर] से (वन्वे) मैं माँगता हूँ। (यथा) जिससे (न रिष्याः) तू न मरे, (सजूः) [उसके साथ] प्रीतिवाला तू (अमृतः) अमर (असः) रहे, मैं (तत्) वह [कर्म] (ते) तेरे लिये (कृणोमि) करता हूँ, (तत् उ) वही (ते) तेरे लिये (सम्) यथावत् (ऋध्यताम्) सिद्ध होवे ॥१३॥

शिवे ते स्तां द्यावापृथिवी असंतापे अभिश्रियौ।

शं ते सूर्य आ तपतु शं वातो वातु ते हृदे।

शिवा अभि क्षरन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ॥१४॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी (शिवे) मङ्गलकारी, (असंतापे) सन्तापरहित और (अभिश्रियौ) सब ओर से ऐश्वर्यप्रद (स्ताम्) होवें। (सूर्यः) सूर्य (ते) तेरे लिये (शम्) शान्ति से (आ तपतु) तपता रहे, और (वातः) पवन (ते) तेरे (हृदे) हृदय के लिये (शम्) शान्ति से (वातु) चले। (शिवाः) मङ्गलकारी, (दिव्याः) दिव्य गुणवाले, (पयस्वतीः) दूध [उत्तम रस] वाले (आपः) जल (त्वा अभि) तेरे लिये (क्षरन्तु) बहें ॥१४॥

शिवास्ते सन्त्वोषधय उत् त्वाहार्षमधरस्या उत्तरां पृथिवीमभि।

तत्र त्वादित्यौ रक्षतां सूर्याचन्द्रमसावुभा ॥१५॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (ओषधयः) ओषधें [अन्न आदि] (शिवाः) मङ्गलकारी (सन्तु) होवें, मैंने (त्वा) तुझको (अधरस्याः) नीची [पृथिवी] से (उत्तराम्) ऊँची (पृथिवीम् अभि) पृथिवी पर (उत् अहार्षम्) उठाया है। (तत्र) वहाँ [ऊँचे स्थान पर] (त्वा) तुझको (उभा) दोनों (आदित्यौ) प्रकाशमान (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य और चन्द्रमा [के समान नियम] (रक्षताम्) बचावें ॥१५॥

यत् ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वम्।

शिवं ते तन्वे तत् कृण्मः संस्पर्शेऽद्रूक्ष्णमस्तु ते ॥१६॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (यत्) जिस (वासः) वस्त्र को (परिधानम्) ओढ़ना और (याम्) जिस (नीविम्) पटी [फेंटा] को (ते) अपने लिये (त्वम्) तू (कृणुषे) बनाता है। (तत्) उसे (ते) तेरे (तन्वे) शरीर के लिये (शिवम्) सुख देने वाला (कृण्मः) हम बनाते हैं, वह (ते) तेरे लिये (संस्पर्शे) छूने में (अद्रूक्ष्णम्) अनखुरखुरा (अस्तु) होवे ॥१६॥

यत् क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु।

शुभं मुखं मा न आयुः प्र मोषीः ॥१७॥

पदार्थ—(वप्ता) नापित तू (मर्चयता) [केशों को] पकड़ने वाले (सुतेजसा) बड़े तेज (यत्) जिस (क्षुरेण) छुरे से (केशश्मश्रु) केश और दाढ़ी मूछ को (वपसि) बनाता है। [उससे] (नः) हमारे (शुभम्) सुन्दर (मुखम्) मुख और (आयुः) जीवन को (मा प्र मोषीः) मत घटा ॥१७॥

शिवौ ते स्तां व्रीहियवावबलासावदोमधौ।

एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुञ्चतो अंहसः ॥१८॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (व्रीहियवौ) चावल और जौ (शिवौ) मङ्गल करनेवाले, (अबलासौ) बल के न गिराने वाले और (अदोमधौ) भोजन में हर्ष करनेवाले (स्ताम्) हों। (एतौ) ये दोनों (यक्ष्मम्) राजरोग को (वि) विशेष करके (बाधेते) हटाते हैं, (एतौ) ये दोनों (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतः) छुड़ाते हैं ॥१८॥

यदश्नासि यत् पिबसि धान्यं कृष्याः पयः।

यदाद्यं यदनाद्यं सर्वं ते अन्नमविषं कृणोमि ॥१९॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (यत्) जो तू (कृष्याः) खेती का [उपजा] (धान्यम्) धान्य (अश्नासि) खाता है, और (यत्) जो तू (पयः) दूध वा जल (पिबसि) पीता है। (यत्) चाहे (आद्यम्) पुराना [धरा हुआ], (यत्) चाहे (अनाद्यम्) नवीन हो, (सर्वम्) वह सब (अन्नम्) अन्न (ते) तेरे लिये (अविषम्) निर्विष (कृणोमि) करता हूँ ॥१९॥

अह्ने च त्वा रात्रये चोभाभ्यां परि दद्मसि।

अरायेभ्यो जिघत्सुभ्य इमं मे परि रक्षत ॥२०॥

पदार्थ—(त्वा) तुझे (उभाभ्याम्) दोनों (अह्ने) दिन (च च) और (रात्रये) रात्रि को (परि दद्मसि) हम सौंपते हैं। (अरायेभ्यः) निर्धनी और (जिघत्सुभ्यः) खाना चाहने वाले लोगों से (इमम्) इस [पुरुष] को (मे) मेरे लिये (परि) सब प्रकार (रक्षत) तुम बचाओ ॥२०॥

शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।

इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ॥२१॥

पदार्थ—[हे मनुष्य ! (ते) तेरे लिये (शतम्) सौ और (अयुतम्) दश सहस्र (हायनान्) वर्षों को [क्रम से] (द्वे युगे) दो युग, (त्रीणि) तीन [युग] और (चत्वारि) चार [युग] (कृण्मः) हम करते हैं। (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि और (ते) वे [प्रसिद्ध] (विश्वे देवाः) सब दिव्य पदार्थ [सूर्य पृथिवी आदि] (अहृणीयमानाः) संकोच न करते हुए (अनुमन्यन्ताम्) अनुकूल रहें ॥२१॥

शरदे त्वा हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय परि दद्मसि ।
वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि येषु वर्धन्त ओषधीः ॥२२॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (**त्वा**) तुझे (**शरदे**) शरद्, (**हेमन्ताय**) हेमन्त [और शिशिर], (**वसन्ताय**) वसन्त और (**ग्रीष्माय**) ग्रीष्म [ऋतु] को (**परि दद्मसि**) हम सौंपते हैं। (**वर्षाणि**) वर्षाएं (**तुभ्यम्**) तेरे लिये (**स्योनानि**) मनुभावनी [होवें], (**येषु**) जिनमें (**ओषधीः**) ओषधें [अन्न आदि वस्तुएँ] (**वर्धन्ते**) बढ़ती हैं ॥२२॥

मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम् ।
तस्मात् त्वां मृत्योर्गोपतेरुद्भरामि स मा बिभेः ॥२३॥

पदार्थ—(**मृत्युः**) मृत्यु (**द्विपदाम्**) दोपायों का (**ईशे**) शासक है। (**मृत्युः**) मृत्यु (**चतुष्पदाम्**) चौपायों का (**ईशे**) शासक है। (**तस्मात्**) उस (**गोपतेः**) पृथिवी के स्वामी (**मृत्योः**) मृत्यु से (**त्वाम्**) तुझे (**उत् भरामि**) ऊपर उठाता हूँ (**सः**) सो तू (**मा बिभेः**) मत भय कर ॥२३॥

सोऽरिष्ट न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा बिभेः ।
न वै तत्र म्रियन्ते नो यन्त्यधमं तमः ॥२४॥

पदार्थ—(**अरिष्ट**) हे निर्हानि ! (**सः**) सो तू (**न**) नहीं (**मरिष्यसि**) मरेगा, तू (**न**) नहीं (**मरिष्यसि**) मरेगा, (**मा बिभेः**) मत भय कर। (**तत्र**) वहाँ पर [कोई] (**वै**) भी (**न**) नहीं (**म्रियन्ते**) मरते हैं, (**नो**) और नहीं (**अधमम्**) नीचे (**तमः**) अन्धकार में (**यन्ति**) जाते हैं ॥२४॥

सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः ।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम् ॥२५॥

पदार्थ—(**सर्वः**) सब (**वै**) ही (**तत्र**) वहाँ (**जीवति**) जीता रहता है, (**गौः**) गौ, (**अश्वः**) घोड़ा, (**पुरुषः**) पुरुष और (**पशुः**) पशु [हाथी, ऊँट आदि]। (**यत्र**) जहाँ पर (**इदम्**) यह [प्रसिद्ध] (**ब्रह्म**) ब्रह्म [परमेश्वर] (**जीवनाय**) जीवन के लिये (**कम्**) सुख से (**परिधिः**) कोट [के समान रक्षा साधन] (**क्रियते**) बनाया जाता है ॥२५॥

परि त्वा पातु समानेभ्योऽभिचारात् सबन्धुभ्यः ।
अमम्रिर्भवामृतोऽतिजीवो मा ते हासिषुरसवः शरीरम् ॥२६॥

पदार्थ—यह [ब्रह्म—म० २५] (**त्वा**) तुझ को (**अभिचारात्**) दुष्कर्म से (**सबन्धुभ्यः**) बन्धुओं सहित (**समानेभ्यः**) साथियों के [हित के] लिये (**परि**) सब प्रकार (**पातु**) बचावे। (**अमम्रिः**) बिना मृत्यु वाला, (**अमृतः**) अमर, (**अतिजीवः**) उत्तर जीवी (**भव**) हो, (**ते**) तेरे (**असवः**) प्राण [तेरे] (**शरीरम्**) शरीर को (**मा हासिषुः**) न छोड़ें ॥२६॥

ये मृत्यव एकशतं या नाष्ट्रा अतितार्याः ।
मुञ्चन्तु तस्मात् त्वां देवा अग्नेर्वैश्वानरादधि ॥२७॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (**ये**) जो (**एकशतम्**) एक सौ एक (**मृत्यवः**) मृत्युएँ और (**याः**) जो (**नाष्ट्राः**) नाश करने वाली [पीड़ाएँ] (**अतितार्याः**) पार करने योग्य हैं। (**तस्मात्**) उस [क्लेश] से (**त्वाम्**) तुझ को (**देवाः**) [तेरे] उत्तम गुण (**वैश्वानरात्**) सब नरों के हितकारक (**अग्नेः**) अग्नि [सर्वव्यापक परमेश्वर] का आश्रय लेकर (**अधि**) अधिकारपूर्वक (**मुञ्चन्तु**) छुड़ावें ॥२७॥

अग्नेः शरीरमसि पारयिष्णु रक्षोहासि सपत्नहा ।
अथो अमीवचातनः पूतुद्रुर्नाम भेषजम् ॥२८॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] तू (**अग्नेः**) अग्नि [तेज] का (**शरीरम्**) शरीर, (**पारयिष्णु**) पार लगाने वाला (**असि**) है, और (**रक्षोहा**) राक्षसों का नाश करने वाला, और (**सपत्नहा**) प्रतियोगियों को मार डालने वाला (**असि**) है। (**अथो**) और भी (**अमीवचातनः**) पीड़ा मिटाने वाला (**पूतुद्रुः**) शुद्धि पहुँचानेवाला (**नाम**) नाम का (**भेषजम्**) औषध है ॥२८॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ३ 卐

१—२६ चातनः । अग्निः । त्रिष्टुप् ७, १२—१५, १७, २१ भुरिक्, २२-२३, अनुष्टुप्, २५ पंचपदा बृहतीगर्भा जगती, २६ गायत्री ।

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म । शिशानो
अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥१॥

पदार्थ—(**रक्षोहणम्**) राक्षसों को मारने वाले, (**वाजिनम्**) महाबली पुरुष को (**आ**) भली भाँति (**जिघर्मि**) प्रकाशित [प्रख्यात] करता हूँ, (**प्रथिष्ठम्**) अति प्रसिद्ध (**मित्रम्**) मित्र के पास (**शर्म**) शरण के लिये (**उप यामि**) मैं पहुँचता हूँ। (**अग्निः**) अग्नि [के समान तेजस्वी राजा अपने] (**क्रतुभिः**) कर्मों से (**शिशानः**) तीक्ष्ण किया हुआ और (**समिद्धः**) प्रकाशमान है, (**सः**) वह (**नः**) हम (**दिवा**) दिन में, (**सः**) वह (**नक्तम्**) रात्रि में (**रिषः**) कष्ट से (**पातु**) बचावे ॥१॥

अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप स्पृश जातवेदः समिद्धः ।
आ जिह्वया मूरदेवान् रभस्व क्रव्यादो वृष्ट्वापि धत्स्वासन् ॥२॥

पदार्थ—(**जातवेदः**) प्रसिद्ध ज्ञानवाले [राजन्] (**अयोदंष्ट्रः**) लोहसमान दांतवाला [पुष्टाङ्ग], (**समिद्धः**) प्रकाशमान तू (**अर्चिषा**) [अपने] तेज से (**यातुधानान्**) दुःखदायी जीवों को (**उप स्पृश**) पावों से कुचल। (**जिह्वया**) [अपनी] जयशक्ति से (**मूरदेवान्**) मूढ़ [बुद्धिहीन] व्यवहार वालों को (**आ रभस्व**) पकड़ले, और (**वृष्ट्वा**) पराक्रमी होकर तू (**क्रव्यादः**) मांस खानेवालों को (**आसन्**) [फेंकने के स्थान] कारागार में (**अपि धत्स्व**) बन्द करदे ॥२॥

उभोभयाविन्नुप धेहि दंष्ट्रौ हिंस्रः शिशानोऽवरं परं च ।
उतान्तरिक्षे परि याह्यग्ने जम्भैः सं धेह्यभि यातुधानान् ॥३॥

पदार्थ—(**उभयाविन्**) हे पूर्ति की रक्षा करने वाले ! तू [शत्रुओं का] (**हिंस्रः**) नाश करने वाला और (**शिशानः**) तीक्ष्ण होकर (**अवरम्**) नीचे के (**च**) और (**परम्**) ऊपर के (**उभा**) दोनों (**दंष्ट्रौ**) दांतों को (**उप धेहि**) काम में ला। (**उत**) और (**अग्ने**) हे अग्नि [के समान प्रतापी राजन् !] (**अन्तरिक्षे**) आकाश में [विमान से हमारे] (**परि**) आस पास (**याहि**) विचर, (**यातुधानान् अभि**) दुःखदायी दुर्जनों पर (**जम्भैः**) दांतों [दंतीले तेज हथियारों] से (**सम् धेहि**) लक्ष्य कर [बेंध ले] ॥३॥

अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम् ।
प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात् क्रविष्णुर्वि चिनोत्वेनम् ॥४॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे अग्नि के समान तेजस्वी राजन् ! (**यातुधानस्य**) दुःखदायी दुष्ट की (**त्वचम्**) खाल (**भिन्धि**) उधेड़ दे, [तेरी] (**हिंस्रा**) वध करनेवाली (**अशनिः**) बिजुली [बिजुली का वज्र] (**हरसा**) अपने तेज से (**एनम्**) इस [अत्याचारी को] (**हन्तु**) मारे। (**जातवेदः**) हे महाधनी राजन् ! [उसके] (**पर्वाणि**) जोड़ों को (**प्र शृणीहि**) कुचल डाल, (**क्रव्यात्**) मांस खानेवाला, (**क्रविष्णुः**) भयंकर [सिंह, गीदड़, गिद्ध आदि जीव] (**एनम्**) इसको (**वि चिनोतु**) चींथ डाले ॥४॥

यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम् ।
उतान्तरिक्षे पतन्तं यातुधानं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥५॥

पदार्थ—(**जातवेदः**) हे प्रसिद्ध ज्ञानवाले ! (**अग्ने**) हे अग्नि [समान प्रतापी राजन् !] (**यत्र**) जहाँ कहीं (**इदानीम्**) अब (**तिष्ठन्तम्**) खड़े हुए, (**उत**) और (**वा**) अथवा (**चरन्तम्**) घूमते हुए (**उत**) और (**अन्तरिक्षे**) आकाश में [विमान आदि से] (**पतन्तम्**) उड़ते हुए (**यातुधानम्**) दुःखदायी जन को (**पश्यसि**) तू देखता है, (**शिशानः**) तीक्ष्ण स्वभाव, (**अस्ता**) बाण चलाने वाला तू (**शर्वा**) बाण वा वज्र से (**तम्**) उसे (**विध्य**) बेध ले ॥५॥

यज्ञैरिषूः संनममानो अग्ने वाचा शल्याँ अशनिभिर्दिहानः ।
ताभिर्विध्य हृदये यातुधानान् प्रतीचो बाहून् प्रति भङ्ग्ध्येषाम् ॥६॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे अग्नि [के समान तेजस्वी राजन् !] (**वाचा**) वाणी [विद्या] द्वारा (**यज्ञैः**) संयोग-वियोग व्यवहारों से (**इषूः**) बाणों को (**संनममानः**) सीधा करता हुआ, और (**अशनिभिः**) बिजलियों से (**शल्यान्**) [उनके] सिरों को (**दिहानः**) पोतता हुआ [तीक्ष्ण करता हुआ] तू (**ताभिः**) उन बाणों से (**यातुधानान्**) दुःखदायी जनों को (**हृदये**) हृदय में (**विध्य**) बेधले और (**एषाम्**) उनकी (**बाहून्**) भुजाओं को (**प्रतीचः**) उलटा करके (**प्रति भङ्ग्धि**) तोड़ दे ॥६॥

उतारब्धान्त्स्पृणुहि जातवेद उतारेभाणाँ ऋष्टिभिर्यातुधानान् ।
अग्ने पूर्वो नि जहि शोशुचान आमादः क्ष्विङ्कास्तमदन्त्वेनीः ॥७॥

पदार्थ—(**उत**) और (**जातवेदः**) हे प्रसिद्ध धन वाले राजन् ! (**आरब्धान्**) [शत्रुओं द्वारा] पकड़े हुओं को (**स्पृणुहि**) पाल (**उत**) और (**अग्ने**) हे अग्नि [के समान तेजस्वी राजन् !] (**पूर्वः**) सब से पहले और (**शोशुचानः**) अति प्रकाश-

मान तू (आरभमाणान्) [हमें] पकड़ने वाले (यातुधानान्) दु:खदायियों को (ऋष्टिभिः) दोधारा तलवारों से (नि जहि) मार डाल, (आमादः) मांस खानेवाले (एनीः) चितकबरे, (क्विक्वाः) अव्यक्त शब्द बोलने वाले [चील आदि पक्षी] (तम्) हिंसक चोर को (अदन्तु) खा जावें ।७।

इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने यातुधानो य इदं कृणोति ।
तमा रभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश्चक्षुषे रन्धयैनम् ॥८॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि [के समान तेजस्वी राजन् !] (इह) यहां पर (प्र ब्रूहि) बतला दे, (यतमः) जो कोई (सः) वह (यातुधानः) दु:खदायी, [है] (यः) जो (इदम्) यह [दुष्कर्म] (कृणोति) करता है । (यविष्ठ) हे बलिष्ठ ! (तम्) उसे (समिधा) [अपने] तेज से (आ रभस्व) पकड़ ले, और (नृचक्षसः) मनुष्यों पर दृष्टि रखने वाले की [अर्थात् अपनी] (चक्षुषे) दृष्टि के लिये (एनम्) उसे (रन्धय) आधीन कर ॥८॥

तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय प्रचेतः ।
हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन् यातुधाना नृचक्षः ॥९॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि [के समान प्रतापी राजन् !] (तीक्ष्णेन चक्षुषा) तीक्ष्ण दृष्टि से (प्राञ्चम्) श्रेष्ठ (यज्ञम्) पूजनीय व्यवहार की (रक्ष) रक्षा कर, (प्रचेतः) हे दूरदर्शी [राजन् !] (वसुभ्यः) धनों के लिये [हमें] (प्र णय) आगे बढ़ा । (नृचक्षः) हे मनुष्यों पर दृष्टि रखने वाले ! (रक्षांसि अभि) राक्षसों पर (हिंस्रम्) हिंसा करने वाले और (शोशुचानम्) अति प्रकाशमान (त्वा) तुझ को (यातुधानाः) दु:खदायी लोग (मा दभन्) न सतावें ॥९॥

नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा ।
तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च ॥१०॥

पदार्थ—(नृचक्षाः) मनुष्यों पर दृष्टि रखने वाला तू (रक्षः) राक्षस को (विक्षु) मनुष्यों के बीच (परि पश्य) जांच कर देख, (तस्य) उसके (त्रीणि) तीन (अग्राः) अग्रभाग [मस्तक और दो कंधे] (प्रति शृणीहि) तोड़ दे । (अग्ने) हे अग्नि [के समान तेजस्वी राजन् !] (तस्य) उसकी (पृष्टीः) पसलियां (हरसा) बल से (शृणीहि) कुचल डाल, (यातुधानस्य) दु:खदायी की (मूलम्) जड़ को (त्रेधा) तीन प्रकार से [दोनों जंघा और कटिभाग से] (वृश्च) काट दे ॥१०॥

त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एत्वृतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति ।
तमर्चिषा स्फूर्जयन् जातवेदः समक्षमेनं गृणते नि युङ्ग्धि ॥११॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि [समान प्रतापी राजन् !] (यातुधानः) वह दु:खदायी पुरुष (त्रिः) तीन बार (ते) तेरी (प्रसितिम्) बेड़ी को (एतु) प्राप्त हो, (यः) जो (ऋतम्) सत्य को (अनृतेन) असत्य से (हन्ति) ताड़ता है । (जातवेदः) हे प्रसिद्ध ज्ञानवाले [राजन् !] (अर्चिषा) अपने तेज से [तम्] (स्फूर्जयन्) उस पर गरजता हुआ तू (समक्षम्) सब के सन्मुख (एनम्) इस [शत्रु] को (गृणते) स्तुति करने वाले के [हित के] लिये (नि युङ्ग्धि) बांध ले ॥११॥

यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद् वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः ।
मन्योर्मनसः शरव्या जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान् ॥१२॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि [के समान तेजस्वी राजन् !] (यत्) जो (अद्य) आज (मिथुना) दो हिंसक मनुष्य [सत्पुरुषों से] (शपातः) कुवचन बोलते हैं, और (यत्) जो (रेभाः) शब्द करनेवाले [शत्रु लोग] (वाचः) वाणी की (तृष्टम्) कठोरता (जनयन्त) उत्पन्न करते हैं (मन्योः) क्रोध से (मनसः) मन की (या) जो (शरव्या) बाणों की झड़ी (जायते) उत्पन्न होती है, (तया) उससे (यातुधानान्) दु:खदायियों को (हृदये) हृदय में (विध्य) बेध ले ॥१२॥

परा शृणीहि तपसा यातुधानान् पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
परार्चिषा मूरदेवाञ्छृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि ॥१३॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि [के समान तेजस्वी राजन् !] (तपसा) अपने तप [ऐश्वर्य वा प्रताप] से (यातुधानान्) दु:खदायियों को (परा शृणीहि) कुचल डाल, (रक्षः) राक्षसों [दुराचारियों वा रोगों] को (हरसा) अपने बल से (परा शृणीहि) मिटा दे । (अर्चिषा) अपने तेज से (मूरदेवान्) मूढ़ [निर्बुद्धि] व्यवहार वालों को (परा शृणीहि) नाश करदे, (शोशुचतः) अत्यन्त दमकते हुए, (असुतृपः) [दूसरों के] प्राणों से तृप्त होने वालों को (परा शृणीहि) चूर-चूर कर दे ॥१३॥

पराद्य देवा वृजिनं शृणन्तु प्रत्यगेनं शपथा यन्तु सृष्टाः ।
वाचास्तेनं शरव ऋच्छन्तु मर्मन् विश्वस्यैतु प्रसितिं यातुधानः ॥१४॥

पदार्थ—(देवाः) विजय चाहने वाले शूर (अद्य) आज (वृजिनम्) पापी को (परा शृणन्तु) कुचल डालें, (सृष्टाः) [उसके] छोड़े हुए [कहे हुए] (शपथाः) कुवचन (एनम्) उसको (प्रत्यक्) प्रतिकूल गति से (यन्तु) पहुँचें । (शरवः) [हमारे] तीर (वाचास्तेनम्) वचनचोर [छली] पुरुष को (मर्मन्) मर्मस्थान में (ऋच्छन्तु) प्राप्त होवें, (विश्वस्य) सब में प्रवेश करने वाले राजा की (प्रसितिम्) बेड़ी को (यातुधानः) दु:खदायी (एतु) पावें ॥१४॥

यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥१५॥

पदार्थ—(यः) जो (यातुधानः) दु:खदायी जीव (पौरुषेयेण) पुरुष वध से [प्राप्त] (क्रविषा) मांस से, (यः) जो (अश्व्येन) घोड़े के [मांस से] और (पशुना) [दूसरे] पशु से (समङ्क्ते) [अपने को] पुष्ट करता है । और (यः) जो (अघ्न्यायाः) [नहीं मारने योग्य] गौ के (क्षीरम्) दूध को (भरति=हरति) नष्ट करता है, (अग्ने) हे अग्नि [के समान तेजस्वी राजन् !] (तेषाम्) उनके (शीर्षाणि) शिरों को (हरसा) अपने बल से (अपि वृश्च) काट डाल ॥१५॥

विषं गवां यातुधाना भरन्तामा वृश्च्यन्तामदितये दुरेवाः ।
परैणान् देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम् ॥१६॥

पदार्थ—(यातुधानाः) दु:खदायी जन [जो] (गवाम्) गौओं का (विषम्) जल (भरन्ताम्=हरन्ताम्) बिगाड़ें, [तो] वे (दुरेवाः) दुराचारी लोग (अदितये) अखण्ड नीति के लिये (आ) सर्वथा (वृश्च्यन्ताम्) काट दिये जावें । (देवः) व्यवहार जानने वाला (सविता) सबप्रेरक राजा (एनान्) उनको (परा ददातु) दूर हटावे, और वे [राजपुरुष] उनके (ओषधीनाम्) ओषधियों [अन्न आदि वस्तुओं] के (भागम्) भाग को (परा जयन्ताम्) जीत लेवें ॥१६॥

संवत्सरीणं पय उस्रियायास्तस्य माशीद् यातुधानो नृचक्षः ।
पीयूषमग्ने यतमस्तितृप्सात् तं प्रत्यञ्चमर्चिषा विध्य मर्मणि ॥१७॥

पदार्थ—(उस्रियायाः) गौ का [हमारे] (संवत्सरीणम्) निवास स्थान में उपस्थित [जो] (पयः) दूध है, (नृचक्षः) हे मनुष्यों पर दृष्टि रखने वाले राजन् ! (यातुधानः) दु:खदायी जन (तस्य) उसका (मा आशीत्) न भोजन करे । (अग्ने) हे अग्नि [के समान तेजस्वी राजन्] (यतमः) जो कोई [उनमें से हमारे] (पीयूषम्) अमृत [अन्न दुग्ध आदि से] (तितृप्सात्) पेट भरना चाहे (तम् प्रत्यञ्चम्) उस प्रतिकूलवर्ती को (अर्चिषा) अपने तेज से (मर्मणि) मर्मस्थान में (विध्य) छेद ले ॥१७॥

सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
सहमूराननु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥१८॥

पदार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् राजन् ! तू (यातुधानान्) पीड़ा देने वाले [प्राणियों वा रोगों] को (सनात्) नित्य (मृणसि) नष्ट करता है, (रक्षांसि) राक्षसों ने (त्वा) तुझे (पृतनासु) संग्रामों में (न) नहीं (जिग्युः) जीता है । (क्रव्यादः) मांस भक्षकों को (सहमूरान्) [उनके] मूल [अथवा मूढ़ मनुष्यों] सहित (अनु दह) भस्म कर दे, (ते) तेरे (दैव्यायाः) दिव्य गुण वाले (हेत्याः) वज्र से (मा मुक्षत) वे न छूटें ॥१८॥

त्वं नो अग्ने अधरादुदक्तस्त्वं पश्चादुत रक्षा पुरस्तात् ।
प्रति त्ये ते अजरासस्तपिष्ठा अघशंसं शोशुचतो दहन्तु ॥१९॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि [के समान तेजस्वी राजन् !] (त्वम्) तू (नः) हमें (अधरात्) नीचे से, (उदक्तः) ऊपर से, (त्वम्) तू (पश्चात्) पीछे से (उत) और (पुरस्तात्) आगे से (रक्ष) बचा । (ते) तेरे (त्ये) वे (अजरासः) अजर (तपिष्ठाः) अत्यन्त तपाने वाले, (शोशुचतः) अत्यन्त चमकते हुए [वज्र] (अघशंसम्) बुरा चीतने वाले को (प्रति दहन्तु) जला डालें ॥१९॥

पश्चात् पुरस्तादधरादुतोत्तरात् कविः काव्येन परि पाह्यग्ने ।
सखा सखायमजरो जरिम्णे अग्ने मर्ताँ अमर्त्यस्त्वं नः ॥२०॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि [के समान प्रतापी राजन् !] (कविः) बुद्धिमान् तू (काव्येन) अपनी बुद्धिमत्ता के साथ (पश्चात्) पीछे से (पुरस्तात्) आगे से, (अधरात्) नीचे से (उत) और (उत्तरात्) ऊपर से, (अग्ने) हे राजन् ! (अजरः) अजर (सखा) मित्र [के समान] (सखायम्) मित्र को (जरिम्णे) स्तुति के लिये, (अमर्त्यः) अमर (त्वम्) तू (नः) हम (मर्तान्) मनुष्यों को (परि) सब ओर से (पाहि) बचा ॥२०॥

तदग्ने चक्षुः प्रति धेहि रेभे शफारुजो येन पश्यसि यातुधानान् ।
अथर्ववज्ज्योतिषा दैव्येन सत्यं धूर्वन्तमचितं न्योष ॥२१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि [के समान तेजस्वी राजन् !] (तत्) वह [क्रोधभरी] (चक्षुः) आंख (रेभे) कोलाहल मचाने वाले [शत्रु] पर (प्रति धेहि) डाल, (येन) जिससे (शफारुजः) शान्ति तोड़ने वाले (यातुधानान्) दु:खदायियों

को (पश्यसि) तू देखता है। (अथर्ववत्) निश्चल स्वभाव वाले ऋषि के समान तू (दैव्येन) देवताओं [विद्वानों] से पाये हुए (ज्योतिषा) तेज से (सत्यम्) सत्य (धूर्वन्तम्) नाश करने वाले (अचितम्) अचेत को (नि ओष) जला दे ॥२१॥

परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि।

धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावतः ॥२२॥

पदार्थ—(सहस्य) हे बल के हितकारी ! (अग्ने) तेजस्वी सेनापति ! (पुरम्) दुर्गरूप, (विप्रम्) बुद्धिमान् (धृषद्वर्णम्) अभयस्वभाव, (भङ्गुरावतः) नाश कर्म वाले [कपटी] के (हन्तारम्) नाश करने वाले (त्वा) तुझ को (दिवेदिवे) प्रतिदिन (वयम्) हम (परि धीमहि) परिधि बनाते हैं ॥२२॥

विषेण भङ्गुरावतः प्रति स्म रक्षसो जहि।

अग्ने तिग्मेन शोचिषा तपुरग्राभिरर्चिभिः ॥२३॥

पदार्थ— (अग्ने) हे अग्नि [के समान तेजस्वी राजन् !] (विषेण) विष से [वा अपनी व्याप्ति से] (भङ्गुरावतः) नाश कर्म वाले (रक्षसः) राक्षसों का (स्म) अवश्य (तिग्मेन) तीव्र (शोचिषा) तेज से और (तपुरग्राभिः) तापयुक्त शिखाओं वाली (अर्चिभिः) ज्वालाओं से (प्रति जहि) नाश कर दे ॥२३॥

वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा।

प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षोभ्यो विनिक्ष्वे ॥२४॥

पदार्थ—(अग्निः) अग्नि [के समान तेजस्वी राजा] (बृहता) बड़ी (ज्योतिषा) तेज के साथ (वि भाति) चमकता है, और (विश्वानि) सब वस्तुओं को (महित्वा) अपनी महिमा से (आविः कृणुते) प्रकट करता है। (अदेवीः) अशुद्ध, (दुरेवाः) दुर्गति वाली (मायाः) बुद्धियों को (प्रसहते) जीत लेता है, और (शृङ्गे) दो प्रधान सामर्थ्य [प्रजापालन और शत्रुनाशन] को (रक्षोभ्यः) दुष्टों के (विनिक्ष्वे) विनाश के लिये (शिशीते) तेज करता है ॥२४॥

ये ते शृङ्गे अजरे जातवेदस्तिग्महेती ब्रह्मसंशिते। ताभ्यां दुर्हार्दमभिदासन्तं किमीदिनं प्रत्यञ्चमर्चिषा जातवेदो वि निक्ष्व ॥२५॥

पदार्थ—(जातवेदः) हे बड़े ज्ञान वाले राजन् ! (ये) जो (ते) तेरे (अजरे) अजर [अनश्वर] (शृङ्गे) दो प्रधान सामर्थ्य [प्रजापालन और शत्रुनाशक] (तिग्महेती) तेज हथियारों वाले, (ब्रह्मसंशिते) वेद से तीक्ष्ण किये गये हैं। (ताभ्याम्) उन दोनों से (दुर्हार्दम्) दुष्ट हृदय वाले, (अभिदासन्तम्) अति दुःख देने वाले, (प्रत्यञ्चम्) प्रतिकूल चलने वाले, (किमीदिनम्) [अब क्या हो रहा है, यह क्या हो रहा है, ऐसे] खोजी शत्रु को (अर्चिषा) अपने तेज से, (जातवेदः) हे बड़े धन वाले ! (वि निक्ष्व) तू नाश कर दे ॥२५॥

अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः।

शुचिः पावक ईड्यः ॥२६॥

पदार्थ—(शुक्रशोचिः) शुद्धतेज वाला (अमर्त्यः) अमर, (शुचिः) पवित्र, (पावकः) शुद्ध करने वाला, (ईड्यः) स्तुति योग्य वा खोजने योग्य (अग्निः) अग्नि [के समान तेजस्वी सेनापति] (रक्षांसि) दुष्टों को (सेधति) शासन में रखता है ॥२६॥

卐 सूक्तम् ४ 卐

१-२५ चातन । इन्द्रासोमौ । जगती, ८-१४, १६-१७, १९, २२, २४ त्रिष्टुप्, २०, २३ भुरिक्, २५ अनुष्टुप्।

इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतं न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः।

परा शृणीतमचितो न्योषतं हतं नुदेथां नि शिशीतमत्त्रिणः ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रासोमा) हे सूर्य और चन्द्र [के समान राजा और मन्त्री !] तुम दोनों (रक्षः) राक्षसों को (तपतम्) तपाओ, (उब्जतम्) दबाओ, (वृषणा) हे बलिष्ठ ! तुम दोनों (तमोवृधः) अन्धकार बढ़ाने वालों को (नि अर्पयतम्) नीचे डालो। (अचितः) अचेत [मूर्खों] को (परा शृणीतम्) कुचल डालो, (नि ओषतम्) जला दो, (अत्त्रिणः) खाऊ जनों को (हतम्) मारो, (नुदेथाम्) ढकेलो, (नि शिशीतम्) छील डालो [दुर्बल कर दो] ॥१॥

इन्द्रासोमा समघशंसमभ्यघं तपुर्ययस्तु चरुरग्निमाँ इव।

ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्रासोमा) हे सूर्य और चन्द्र [के समान राजा और मन्त्री !] (अघशंसम् अभि) बुरा चीतने वाले को (तपुः) तपन करने वाला (अघम्) दुःख (सम् ययस्तु) क्लेश देता रहे, (इव) जैसे (अग्निमान्) अग्नि वाला (चरुः) चरु [पात्र] क्लेश देता है। (ब्रह्मद्विषे) वेद के द्वेषी, (क्रव्यादे) मांस खाने वाले, (किमीदिने) लुतरे के लिये (अनवायम्) निरन्तर (द्वेषः) द्वेष (धत्तम्) तुम दोनों धारण करो ॥२॥

इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्तरनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम्।

यतो नैषां पुनरेकश्चनोदयत् तद् वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रासोमा) हे सूर्य और चन्द्र [के समान राजा और मन्त्री !] तुम दोनों (दुष्कृतः) दुष्कर्मियों को (वव्रे अन्तः) [ढकने वाले] गढ़े के बीच (अनारम्भणे) अथाह (तमसि) अन्धकार में (प्र विध्यतम्) छेद डालो। (यतः) जिस [गढ़े] से (एषाम्) उनमें से (पुनः) फिर (एकः चन) कोई भी (न) न (उदयत्) ऊपर आवे, (तत्) सो (वाम्) तुम दोनों का (मन्युमत्) क्रोधभरा (शवः) बल [उनके] (सहसे) हराने के लिये (अस्तु) होवे ॥३॥

इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवो वधं सं पृथिव्या अघशंसाय तर्हणम्।

उत् तक्षतं स्वर्यं पर्वतेभ्यो येन रक्षो वावृधानं निजूर्वथः ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्रासोमा) हे सूर्य और चन्द्र [के समान राजा और मन्त्री !] तुम दोनों (दिवः) आकाश से और (पृथिव्याः) पृथिवी से (वधम्) मारू हथियार (सम् वर्तयतम्) लुढ़कवाओ, [जिससे] (अघशंसाय) बुरा चीतने वाले के लिये (तर्हणम्) मरण [होवे]। (स्वर्यम्) धड़ाके वाला वा तपा देने वाला [हथियार] (पर्वतेभ्यः) पहाड़ों से (उत् तक्षतम्) ढलवाओ, (येन) जिस से (वावृधानम्) बढ़ते हुए (रक्षः) राक्षस को (निजूर्वथः) तुम दोनों मार गिराओ ॥४॥

इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्यग्नितप्तेभिर्युवमश्महन्मभिः।

तपुर्वधेभिरजरेभिरत्त्रिणो नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निस्वरम् ॥५॥

पदार्थ— (इन्द्रासोमा) हे सूर्य और चन्द्र [के समान राजा और मन्त्री !] (युवम्) तुम दोनों (दिवः) आकाश से (अग्नितप्तेभिः) अग्नि से तपाये हुए, (अश्महन्मभिः) मेघ के समान चलने वाले [अथवा फैलने वाले पदार्थों पत्थर, लोहे आदि से मार करने वाले] (अजरेभिः) अजर [अटूट] (तपुर्वधेभिः) तपा देने वाले हथियारों से (अत्त्रिणः) खाऊ लोगों को (परि वर्तयतम्) लुढ़कवा दो, (पर्शाने) गढ़े के बीच (नि विध्यतम्) छेद डालो, वे लोग (निस्वरम्) चुप्पी (यन्तु) प्राप्त करें ॥५॥

इन्द्रासोमा परि वां भूतु विश्वत इयं मतिः कक्ष्याश्वेव वाजिना।

यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपती इव जिन्वतम् ॥६॥

पदार्थ— (इन्द्रासोमा) हे सूर्य और चन्द्र [के समान राजा और मन्त्री !] (इयम्) यह (मतिः) मति [बुद्धि] (वाम्) तुम दोनों को (विश्वतः) सब ओर से (परि भूतु) सर्वथा व्यापे, (इव) जैसे (कक्ष्याः) पेटी (वाजिना) बलवान् (अश्वा) घोड़े को। (याम्) जिस (होत्राम्) वाणी को (वाम्) तुम दोनों के लिये (मेधया) बुद्धि के साथ (परि हिनोमि) मैं सन्मुख करता हूँ, (नृपती इव) दो नरपतियों के समान तुम दोनों (इमा) इन (ब्रह्माणि) ब्रह्मज्ञानों में (जिन्वतम्) तृप्त हो ॥६॥

प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवैर्हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः।

इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद् यो मा कदा चिदभिदासति द्रुहुः ॥७॥

पदार्थ—(तुजयद्भिः) बलवान् (एवैः) शीघ्रगामी [पुरुषों] के साथ (प्रति स्मरेथाम्) तुम दोनों स्मरण करते रहो, (द्रुहः) द्रोही, (भङ्गुरावतः) नाश कर्म वाले (रक्षसः) राक्षसों को (हतम्) मारो। (इन्द्रासोमा) हे सूर्य और चन्द्र [के समान राजा और मन्त्री !] [उस] (दुष्कृते) दुष्कर्मी के लिये (सुगम्) सुगति (मा भूत्) न होवे, (यः) जो (द्रुहुः) द्रोही मनुष्य (मा) मुझे (कदा चित्) कभी भी (अभिदासति) सतावे ॥७॥

यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः।

आप इव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥८॥

पदार्थ—(यः) जो [दुराचारी] (पाकेन) परिपक्व [दृढ़] (मनसा) मन से (चरन्तम्) विचरते हुए (मा) मुझको (अनृतेभिः) असत्य (वचोभिः) वचनों से (अभिचष्टे) झिड़कता है। (इन्द्र) हे परम ऐश्वर्यवाले राजन् ! (काशिना) मुट्ठी में (संगृभीताः) लिये हुए (आपः इव) जल के समान, [वह] (असतः) असत्य का (वक्ता) बोलने वाला (असन्) अविद्यमान (अस्तु) हो जावे ॥८॥

ये पाकशंसं विहरन्त एवैर्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः।

अहये वा तान् प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ॥९॥

पदार्थ—(ये) जो [दुष्ट] (एवैः) शीघ्रगामी [पुरुषार्थी] पुरुषों के साथ [वर्तमान] (पाकशंसम्) दृढ़ स्तुतिवाले पुरुष को (विहरन्ते) विशेष करके नष्ट करते हैं, (वा) अथवा (स्वधाभिः) आत्मधारणाओं के साथ [रहने वाले] (भद्रम्) कल्याण को (दूषयन्ति) दूषित करते हैं। (सोम) ऐश्वर्यवान् राजा (वा) अवश्य (तान्) उन्हें (अहये) सर्प [के समान क्रूर पुरुष] को (प्र ददातु) दे देवे, (वा) अथवा (निर्ऋतेः) अलक्ष्मी की (उपस्थे) गोद में (आ दधातु) रख देवे ॥९॥

यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने अश्वानां गवां यस्तनूनाम् ।

रिपुः स्तेन स्तेयकृद् दभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा३ तना च ।१०॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि [के समान तेजस्वी राजन्!] (यः) जो [दुष्ट] (नः) हमारे (पित्वः) रक्षासाधन अन्न आदि के और (यः) जो (अश्वानाम्) घोड़ों के और (गवाम्) गौओं के (तनूनाम्) शरीरों के (रसम्) रस [तत्त्व] को (दिप्सति) मिटाना चाहे। (स्तेनः) वह तस्कर, (स्तेयकृत्) चोरी करने वाला (रिपुः) शत्रु (दभ्रम्) कष्ट को (एतु) प्राप्त हो और (सः) वह (तन्वा) अपने शरीर से (च) और (तना) धन से (नि) सर्वथा (हीयताम्) हीन हो जावे ॥१०॥

परः सो अस्तु तन्वा३ तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः ।

प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो मा दिवा दिप्सति यश्च नक्तम् ॥११॥

पदार्थ—(सः) वह [दुष्ट] (तन्वा) अपने शरीर से (च) और (तना) धन से (परः) परे (अस्तु) हो जावे और (विश्वाः) सब (तिस्रः) तीनों (पृथिवीः अधः) भूमियों [शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक व्यवस्थाओं] से नीचे-नीचे (अस्तु) हो जावे। (देवाः) हे विद्वानो! (अस्य) उसका (यशः) यश (प्रति शुष्यतु) सूख जावे, (यः) जो (मा) मुझे (दिवा) दिन में (च) और (यः) जो (नक्तम्) रात्रि में (दिप्सति) सताना चाहे ॥११॥

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।

तयोर्यत् सत्यं यतरदृजीयस्तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत् ।१२॥

पदार्थ—(चिकितुषे) ज्ञानी (जनाय) पुरुष के लिये (सुविज्ञानम्) सुगम विज्ञान है, [कि] (सत्) सत्य (च च) और (असत्) असत्य (वचसी) वचन (पस्पृधाते) दोनों परस्पर विरोधी होते हैं। (तयोः) उन दोनों में से (यत्) जो (सत्यम्) सत्य और (यतरत्) जो कुछ (ऋजीयः) अधिक सीधा है, (तत्) उसको (इत्) ही (सोमः) सर्वप्रेरक राजा (अवति) मानता है और (असत्) असत्य को (हन्ति) नष्ट करता है ॥१२॥

न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् ।

हन्ति रक्षो हन्त्यासद् वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ॥१३॥

पदार्थ—(सोमः) ऐश्वर्यवान् राजा (वृजिनम्) पापी को (न वै उ) न कभी भी (हिनोति) बढ़ाता है, और (न) न (मिथुया) [प्रजा की] हिंसा (धारयन्तम्) धारण करने वाले (क्षत्रियम्) क्षत्रिय [बलवान्] को। वह (रक्षः) राक्षस को (हन्ति) मारता है, और (असत्) झूठ (वदन्तम्) बोलने वाले को (हन्ति) मारता है, (उभौ) वे दोनों (इन्द्रस्य) राजा की (प्रसितौ) बेड़ी में (शयाते) सोते हैं ॥ १३ ॥

यदि वाहमनृतदेवो अस्मि मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने ।

किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम् ॥१४॥

पदार्थ—(यदि वा) क्या (अहम्) मैं (अनृतदेवः) झूठे व्यवहार वाला (अस्मि) हूँ, (वा) अथवा, (अग्ने) हे विज्ञानी राजन्! (देवान्) स्तुतियोग्य पुरुषों को (मोघम्) व्यर्थ (अप्यूहे) निश्चित जानता हूँ। (जातवेदः) हे बड़े ज्ञानवाले राजन्! तू (किम्) किस लिये (अस्मभ्यम्) हम पर (हृणीषे) क्रोध करता है, (द्रोघवाचः) अनिष्ट बोलने वाले पुरुष (ते) तेरे (निर्ऋथम्) क्लेश को (सचन्ताम्) भोगें ॥ १४ ॥

अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य ।

अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥१५॥

पदार्थ—(अद्य) आज (मुरीय) मैं मर जाऊँ, (यदि) जो मैं (यातुधानः) पीड़ा देने वाला (अस्मि) हूँ, (यदि वा) अथवा (पूरुषस्य) किसी पुरुष के (आयुः) जीवन को (ततप) मैंने सताया है। (अधा) सो (सः) वह तू (दशभिः) दश (वीरैः) वीरों से (वि यूयाः) अलग हो जा (यः) जो आप (मा) मुझ से (मोघम्) व्यर्थ (इति) यह (आह) कहें कि (यातुधान) "तू दुःखदायी है" ॥ १५ ॥

यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह ।

इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट ॥१६॥

पदार्थ—(यः) जो (मा अयातुम्) मुझ अनदुःखदायी को (इति) यह (आह) कहे कि (यातुधान) "तू दुःखदायी है," (वा) अथवा (यः) जो (रक्षाः) राक्षस होकर (इति) यह (आह) कहे कि (शुचिः अस्मि) "मैं पवित्र हूँ"। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (तम्) उस को (महता) विशाल (वधेन) मारू हथियार से (हन्तु) मारे और वह (विश्वस्य) प्रत्येक (जन्तोः) जीव के (अधमः) नीचे होकर (पदीष्ट) चले ॥ १६ ॥

प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहुस्तन्व१ गूहमाना ।

वव्राँ अनन्ताँ अव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः ।१७॥

पदार्थ—(या) जो (द्रुहुः) द्रोह चीतने वाली स्त्री (तन्वम्) शरीर [स्वरूप] को (अप गूहमाना) छिपाती हुई (खर्गला इव) खड्ग लिये हुए जैसे [अथवा व्यथा देने वाली उलूकी आदि के समान] (नक्तम्) रात्रि में (प्र जिगाति) निकलती है। (सा) वह (अनन्तान्) अथाह (वव्रान्) गढ़ों को (अव) अधोमुख होकर (पदीष्ट) प्राप्त हो, (ग्रावाणः) सूक्ष्मदर्शी लोग (उपब्दैः) शब्दों के साथ (रक्षसः) राक्षसों को (घ्नन्तु) मारें ॥ १७ ॥

वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्वी१च्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।

वयो ये भूत्वा पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे ॥१८॥

पदार्थ—(मरुतः) हे शत्रुमारक वीरो! (विक्षु) मनुष्यों के बीच (वि तिष्ठध्वम्) फैल जाओ, (रक्षसः) उन राक्षसों को (इच्छत) ढूँढो, (गृभायत) पकड़ो, (सम् पिनष्टन) पीस डालो (ये) जो (वयः) पक्षी [के समान] (भूत्वा) होकर (नक्तभिः) रातों में [विमान आदि से] (पतयन्ति) उड़ते हैं, (वा) अथवा (ये) जिन्होंने (देवे) दिव्य गुणयुक्त (अध्वरे) हिंसारहित व्यवहार [यज्ञ] में (रिपः) हिंसायें (दधिरे) धरी हैं ॥ १८ ॥

प्र वर्तय दिवोऽश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि ।

प्राक्तो अपाक्तो अधरादुदक्तो३ऽभि जहि रक्षसः पर्वतेन ॥१९॥

पदार्थ—(मघवन्) हे महाधनी! (इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्! (सोमशितम्) ऐश्वर्यवान् शिल्पी द्वारा तेज किये गए (अश्मानम्) व्यापने वाले पदार्थ पत्थर लोह आदि [अथवा पत्थर के समान दृढ़ हथियार] को (सम्) सर्वथा (शिशाधि) तीक्ष्ण कर और (दिवः) आकाश से (प्र वर्तय) लुढ़का दे। (प्राक्तः) सामने से (अपाक्तः) दूर से, (अधरात्) नीचे से, (उदक्तः) ऊपर से (रक्षसः) राक्षसों को (पर्वतेन) पहाड़ [बड़े हथियार] से (अभि) सब ओर से (जहि) मार ॥ १९ ॥

एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम् ।

शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः ॥२०॥

पदार्थ—(एते) ये [स्वदेशीय] (उ) और (त्ये) वे [विदेशीय] (श्वयातवः) कुत्ते के समान पीड़ा देनेवाले (पतयन्ति) उड़ते हैं और (दिप्सवः) दुःख देने वाले लोग (अदाभ्यम्) न दबने वाले (इन्द्रम्) प्रतापी राजा को (दिप्सन्ति) हानि करना चाहते हैं। (शक्रः) शक्तिमान् राजा (पिशुनेभ्यः) छली लोगों के लिये (वधम्) मारू हथियार (शिशीते) तेज करता है, वह (नूनम्) निश्चय करके (अशनिम्) वज्र को (यातुमद्भ्यः) पीड़ा देने वालों पर (सृजत्) छोड़ देवे ॥ २० ॥

इन्द्रो यातूनामभवत् पराशरो हविर्मथीनामभ्या३विवासताम् ।

अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एतु रक्षसः ॥२१॥

पदार्थ—(इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला राजा (हविर्मथीनाम्) ग्राह्य अन्न आदि पदार्थों के मथने वाले [हलचल करने वाले], (आविवासताम्) समीप निवासी (यातूनाम्) पीड़ा देने वालों को (पराशरः) कुचलने वाला (अभि) सब ओर से (अभवत्) हुआ है। (शक्रः) शक्तिमान् राजा (इत् उ) अवश्य ही, (परशुः) कुल्हाड़ा (यथा) जैसे (वनम्) वन को, (पात्रा इव) पात्रों के समान (भिन्दन्) तोड़ता हुआ, (सतः) विद्यमान (रक्षसः) राक्षसों पर (अभि एतु) चढ़ाई करे ॥ २१ ॥

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।

सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥२२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे प्रतापी राजन्! (उलूकयातुम्) उल्लू के समान झपटने वाले, (शुशुलूकयातुम्) बड़े अचेत के समान दुःखदायी, (श्वयातुम्) कुत्ते के समान पीड़ा देने वाले (उत) और (कोकयातुम्) भेड़ियों के समान हिंसा करने वाले, (सुपर्णयातुम्) श्येन पक्षी के समान शीघ्र चलने वाले (उत) और (गृध्र-

यातुम्) गिद्ध के समान दूर पहुँचने वाले [उपद्रवी] को (जहि) मार और (दृषदा इव) जैसे शिला से (रक्षः) राक्षस को (प्र मृण) नाश कर दे ॥ २२ ॥

मा नो रक्षो अभि नड् यातुमावदपोच्छन्तु मिथुना ये किमीदिनः ।

पृथिवी नः पार्थिवात् पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात् पात्वस्मान् ॥२३॥

पदार्थ—(यातुमावत्) पीडा रूप सम्पत्ति वाला (रक्षः) राक्षस (नः) हम तक (मा अभि नट्) कभी न पहुँचे, (मिथुना) हिंसक लोग, (ये) जो (किमीदिनः) लुतरे हैं, (अप उच्छन्तु) दूर जावें । (पृथिवी) पृथिवी (नः) हम को (पार्थिवात्) पार्थिव (अंहसः) कष्ट से (पातु) बचावे, (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (दिव्यात्) आकाशीय [कष्ट] से (अस्मान्) हमें (पातु) बचावे ॥ २३ ॥

इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम् ।

विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम् ॥२४॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परम ऐश्वर्यवाले राजा ! (यातुधानम्) दुःखदायी (पुमांसम्) पुरुष को (उत) और (मायया) कपट से (शाशदानाम्) अति तीक्ष्ण स्वभाव वाली (स्त्रियम्) स्त्री को (जहि) नष्ट कर दे । (मूरदेवाः) मूढ़ [निर्बुद्धि] व्यवहार वाले (विग्रीवासः) ग्रीवारहित होकर (ऋदन्तु) नष्ट हो जावें, (ते) वे (उच्चरन्तम्) उदय होते हुए (सूर्यम्) सूर्य को (मा दृशन्) न देखें ॥२४॥

प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वेन्द्रश्च सोम जागृतम् ।

रक्षोभ्यो वधमस्यतमशनिं यातुमद्भ्यः ॥२५॥

पदार्थ—(प्रति चक्ष्व) प्रत्येक को देख, (वि चक्ष्व) विविध प्रकार देख, (इन्द्र) हे सूर्य [के समान राजन् !] (च) और (सोम) हे चन्द्र [के समान मन्त्री !] (जागृतम्) तुम दोनों जागो । (रक्षोभ्यः) राक्षसों पर (वधम्) मारू हथियार और (यातुमद्भ्यः) पीडास्वभाव वालों पर (अशनिम्) वज्र (अस्यतम्) चलाओ ॥२५॥

卐 इति द्वितीयोऽनुवाकः 卐

卐

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ५ 卐

१-२२ शुक्रः । कृत्यादूषण, मन्त्रोक्तदेवता । अनुष्टुप्, १, ६ उपरिष्टाद्बृहती, २ त्रिपदा विराड् गायत्री ३ चतुष्पदा भुरिग्जगती, ५ भुरिक्संस्तारपङ्क्तिः, ७-८ ककुम्मती; ९ चतुष्पदा पुरस्कृतिर्जगती, १० त्रिष्टुप्, ११ पथ्यापङ्क्तिः, १४ त्र्यवसाना षट्पदा जगती, १५ पुरस्ताद् बृहती, १९ जगती गर्भा त्रिष्टुप्, २० विराड्गर्भा प्रस्तारपङ्क्ति, २१ विराट् त्रिष्टुप्, २२ त्र्यवसाना सप्तपदा विराड्गर्भा भुरिक्शक्वरी ।

अयं प्रतिसरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते ।

वीर्यवान्त्सपत्नहा शूरवीरः परिपाणः सुमङ्गलः ॥१॥

पदार्थ—(अयम्) यह [प्रसिद्ध वेदरूप] (वीरः) पराक्रमी, (वीर्यवान्) सामर्थ्य वाला, (सपत्नहा) प्रतियोगियों का नाश करने वाला, (शूरवीरः) शूर वीर, (परिपाणः) सब ओर से रक्षा करने वाला, (सुमङ्गलः) बड़ा मङ्गलकारी, (प्रतिसरः) अग्रगामी, (मणिः) मणि [उत्तम नियम] (वीराय) वीर पुरुष में (बध्यते) बाधा जाता है ॥१॥

अयं मणिः सपत्नहा सुवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।

प्रत्यक् कृत्या दूषयन्नेति वीरः ॥२॥

पदार्थ—(अयम्) यह [प्रसिद्ध वेदरूप] (मणिः) मणि [उत्तम नियम], (सपत्नहा) प्रतियोगियों का नाश करनेवाला, (सुवीरः) बड़े वीरोंवाला, (सहस्वान्) महाबली (वाजी) पराक्रमी, (सहमानः) [शत्रुओं को] हराने वाला, (उग्रः) तेजस्वी (वीरः) वीर होकर (कृत्याः) हिंसाओं को (दूषयन्) नाश करता हुआ (प्रत्यक्) सन्मुख (एति) चलता है ॥२॥

अनेनेन्द्रो मणिना वृत्रमहन्ननेनासुरान् पराभावयन्मनीषी ।

अनेनाजयद् द्यावापृथिवी उभे इमे अनेनाजयत् प्रदिशश्चतस्रः ॥३॥

पदार्थ—(मनीषी) महा बुद्धिमान् (इन्द्रः) बड़े प्रतापी पुरुष ने (अनेन) इस [प्रसिद्ध वेदरूप] (मणिना) मणि [उत्तम नियम] के द्वारा (वृत्रम्) अन्धकार (अहन्) मिटाया और (अनेन) इसी के द्वारा (असुरान्) असुरों को (परा अभावयत्) हराया (अनेन) इसी के द्वारा (उभे) दोनों (इमे) इन (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी लोक को (अजयत्) जीता और (अनेन) इसी के द्वारा (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) दिशाओं को (अजयत्) जीता ॥३॥

अयं स्राक्त्यो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिसरः ।

ओजस्वान् विमृधो वशी सो अस्मान् पातु सर्वतः ॥४॥

पदार्थ—(अयम्) यह [प्रसिद्ध वेदरूप] (मणिः) मणि [श्रेष्ठ नियम] (स्राक्त्यः) उद्यमशील, (प्रतीवर्तः) सब ओर घूमने वाला और (प्रतिसरः) अग्रगामी है । (सः) वह (ओजस्वान्) महाबली, (विमृधः) बड़े हिंसकों को (वशी) वश में करने वाला (अस्मान्) हमको (सर्वतः) सब ओर से (पातु) बचावे ॥४॥

तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ।

ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ॥५॥

पदार्थ—(तत्) यह [पूर्वोक्त] (अग्निः) अग्नि [के समान तेजस्वी पुरुष] (आह) कहता है, (तत् उ) वही (सोमः) चन्द्र [के समान पोषक] (आह) कहता है, (तत्) वही (बृहस्पतिः) बड़ी विद्याओं का स्वामी, (सविता) सब का प्रेरक (इन्द्रः) प्रतापी पुरुष । (ते) वे (देवाः) व्यवहारकुशल (पुरोहिताः) पुरोहित [अग्रगामी पुरुष] (प्रतिसरैः) अग्रगामी पुरुषों सहित (मे) मेरे लिये (कृत्याः) हिंसाओं को (प्रतीचीः) प्रतिकूल गतिवाली करके (अजन्तु) हटावें ॥५॥

अन्तर्दधे द्यावापृथिवी उताहरुत सूर्यम् ।

ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ॥६॥

पदार्थ—(द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी को (उत) और (अहः) दिन (उत) और (सूर्यम्) सूर्य को (अन्तः) मध्य में [हृदय में] (दधे) मैं धारण करता हूँ । (ते) वे (देवाः) व्यवहारकुशल (पुरोहिताः) पुरोहित [अग्रगामी पुरुष] (प्रतिसरैः) अग्रगामी पुरुषों सहित (मे) मेरे लिये (कृत्याः) हिंसाओं को (प्रतीचीः) प्रतिकूल गतिवाली करके (अजन्तु) हटावें ॥६॥

ये स्राक्त्यं मणिं जना वर्माणि कृण्वते ।

सूर्य इव दिवमारुह्य वि कृत्या बाधते वशी ॥७॥

पदार्थ—(ये) जो (जनाः) जन (स्राक्त्यम्) उद्योगशील (मणिम्) मणि [श्रेष्ठ नियम] को (वर्माणि) कवच (कृण्वते) बनाते हैं । [उनके समान] (वशी) वश में करने वाला पुरुष, (सूर्यः इव) सूर्य के समान (दिवम्) आकाश में (आरुह्य) चढ़कर, (कृत्याः) हिंसाओं को (वि बाधते) हटा देता है ॥७॥

स्राक्त्येन मणिन ऋषिणेव मनीषिणा ।

अजैषं सर्वाः पृतना वि मृधो हन्मि रक्षसः ॥८॥

पदार्थ—(स्राक्त्येन) उद्योगशील (मणिना) मणि [श्रेष्ठ नियम] द्वारा (मनीषिणा) महाबुद्धिमान् (ऋषिणा इव) ऋषि के साथ होकर जैसे मैंने (सर्वाः) सब (पृतनाः) सेनाओं को (अजैषम्) जीत लिया है, मैं (मृधः) हिंसक (रक्षसः) राक्षसों को (वि हन्मि) नाश करता हूँ ॥८॥

याः कृत्या आङ्गिरसीर्याः कृत्या आसुरीर्याः कृत्याः स्वयंकृता या उ चान्येभिराभृताः । उभयीस्ताः परा यन्तु परावतो नवतिं नाव्या अति ॥९॥

पदार्थ—(याः) जो (कृत्याः) हिंसाएं (आङ्गिरसीः) ऋषियों द्वारा कही गई हैं, (याः) जो (कृत्याः) हिंसाएं (आसुरीः) असुरों द्वारा की गई हैं, (याः) जो (कृत्याः) हिंसायें (स्वयंकृताः) अपने से की गई हैं, (च उ) और भी (याः) जो (अन्येभिः) दूसरे पुरुषों द्वारा (आभृताः) पहुँचाई गई हैं । (उभयीः) सम्पूर्ण (ताः) वे (नवतिम्) नब्बे (नाव्याः) नाव से उतरने योग्य नदियों को (अति) पार करके (परावतः) बहुत दूर देशों को (परा यन्तु) चली जावें ॥९॥

अस्मै मणिं वर्म बध्नन्तु देवा इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः ।

प्रजापतिः परमेष्ठी विराड् वैश्वानर ऋषयश्च सर्वे ॥१०॥

पदार्थ—(देवाः) स्तुतियोग्य पुरुष, [अर्थात्] (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्यवाला (विष्णुः) कामों में व्याप्ति वाला [मन्त्री] (सविता) प्रेरणा करने वाला [सेनापति], (रुद्रः) ज्ञानदाता (अग्निः) अग्नि [के समान तेजस्वी आचार्य] (प्रजापतिः) प्रजापालक, (परमेष्ठी) अति श्रेष्ठ [मोक्ष] पद में रहने वाला, (विराट्) अति

प्रकाशमान, (वैश्वानरः) सब नरों का हितकारी परमेश्वर (च) और (सर्वे) सब (ऋषयः) ऋषि लोग (अस्मै) इस [शूर पुरुष] के (मणिम्) मणि [श्रेष्ठ नियमरूप] (वर्म) कवच (बध्नन्तु) बांधें ॥१०॥

उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव ।

यमैच्छामाविदाम तं प्रतिस्पाशनमन्तितम् ॥११॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] तू (ओषधीनाम्) तापनाशकों में (उत्तमः) उत्तम (असि) है, (इव) जैसे (जगताम्) गतिशीलों [गौ आदि पशुओं] में (अनड्वान्) [रथ के चलने वाला] बैल और (इव) जैसे (श्वपदाम्) हिंसक पशुओं में (व्याघ्रः) बाघ [है] । (यम) जिसको (ऐच्छाम) हमने चाहा था, (तम्) उस (प्रतिस्पाशनम्) प्रत्येक को छूने वाले, (अन्तितम्) प्रबन्ध करने वाले [मणिरूप] श्रेष्ठ नियम को (अविदाम) हमने पाया है ॥११॥

स इद् व्याघ्रो भवत्यथो सिंहो अथो वृषा ।

अथो सपत्नकर्शनो यो बिभर्तीमं मणिम् ॥१२॥

पदार्थ—(सः) वह पुरुष (इत्) ही (व्याघ्रः) बाघ, (अथो) और भी (सिंहः) सिंह (अथो) और भी (वृषा) बलीवर्द [के समान बलवान्] (अथो) और भी (सपत्नकर्शनः) शत्रुओं को दुर्बल करने वाला (भवति) होता है, (यः) जो (इमम्) इस [वेदरूप] (मणिम्) मणि [श्रेष्ठ नियम] को (बिभर्ति) रखता है ॥१२॥

नैनं घ्नन्त्यप्सरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः ।

सर्वा दिशो वि राजति यो बिभर्तीमं मणिम् ॥१३॥

पदार्थ—(एनम्) उस पुरुष को (न) न तो (अप्सरसः) अप्सरायें [आकाश में चलने वाली बिजुलियां], (न) न (गन्धर्वाः) गन्धर्व [पृथिवी धारण करने वाले मेघ] और (न) न (मर्त्याः) मनुष्य (घ्नन्ति) मारते हैं । वह (सर्वाः) सब (दिशः) दिशाओं पर (वि राजति) शासन करता है, (यः) जो (इमम्) इस [वेदरूप] (मणिम्) मणि [श्रेष्ठ नियम] को (बिभर्ति) रखता है ॥१३॥

कश्यपस्त्वामसृजत कश्यपस्त्वा समैरयत् ।

अबिभस्त्वेन्द्रो मानुषे बिभ्रत् संश्रेषिणेऽजयत् ।

मणिं सहस्रवीर्यं वर्म देवा अकृण्वत ॥१४॥

पदार्थ—[हे मणि, नियम !] (कश्यपः) सब देखने वाले परमेश्वर ने (त्वाम्) तुझे (असृजत) उत्पन्न किया है, (कश्यपः) सर्वदर्शी ईश्वर ने (त्वा) तुझे (सम्) यथावत् (ऐरयत्) भेजा है । (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्यवान् मनुष्य ने (त्वा) तुझको (मानुषे) मनुष्य [लोक] में (अबिभः) धारण किया है और उसने [तुझे] (बिभ्रत्) धारण करते हुए (संश्रेषिणे) संग्राम में (अजयत्) जय पाई है । [इसी से] (देवाः) विजय चाहने वाले वीरों ने (सहस्रवीर्यम्) सहस्रों सामर्थ्य वाले (मणिम्) मणि [श्रेष्ठ नियम] को (वर्म) कवच (अकृण्वत) बनाया है ॥१४॥

यस्त्वा कृत्याभिर्यस्त्वा दीक्षाभिर्यज्ञैर्यस्त्वा जिघांसति ।

प्रत्यक् त्वमिन्द्र तं जहि वज्रेण शतपर्वणा ॥१५॥

पदार्थ—(यः) जो (त्वा) तुझे (कृत्याभिः) हिंसा क्रियाओं से, (यः) जो (त्वा) तुझे (दीक्षाभिः) आत्मनिग्रह व्यवहारों से, (यः) जो (त्वा) तुझे (यज्ञैः) प्रयोगों से (जिघांसति) मारना चाहता है । (त्वम्) तू (इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष ! (तम्) उस को (शतपर्वणा) सैकड़ों पालन सामर्थ्यवाले (वज्रेण) वज्र से (प्रत्यक्) प्रत्यक्ष (जहि) नाश कर ॥१५॥

अयमिद् वै प्रतीवर्त ओजस्वान्त्संजयो मणिः ।

प्रजां धनं च रक्षतु परिपाणः सुमङ्गलः ॥१६॥

पदार्थ—(अयम्) यह (इत् वै) अवश्य ही (प्रतीवर्तः) प्रत्यक्ष घूमने वाला, (ओजस्वान्) बलवान् (संजयः) विजयी, (परिपाणः) परिरक्षक, (सुमङ्गलः) बड़ा मङ्गलकारी (मणिः) मणि [श्रेष्ठ नियम] (प्रजाम्) प्रजा (च) और (धनम्) धन की (रक्षतु) रक्षा करे ॥१६॥

असपत्नं नो अधरादसपत्नं न उत्तरात् ।

इन्द्रासपत्नं नः पश्चाज्ज्योतिः शूर पुरस्कृधि ॥१७॥

पदार्थ—(शूर) हे शूर (इन्द्र) हे परमैश्वर्यवान् राजन् ! (ज्योतिः) ज्योति को (नः) हमारे लिये (अधरात्) नीचे से (असपत्नम्) शत्रुरहित, (नः) हमारे लिये (उत्तरात्) ऊपर से (असपत्नम्) शत्रुरहित, (नः) हमारे लिये (पश्चात्) पीछे से (असपत्नम्) शत्रुरहित, (पुरः) सन्मुख (कृधि) कर ॥१७॥

वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः ।

वर्म म इन्द्रश्चाग्निश्च वर्म धाता दधातु मे ॥१८॥

पदार्थ—(मे) मेरे लिये (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि (वर्म) कवच, (अहः) दिन (वर्म) कवच, (सूर्यः) सूर्य (वर्म) कवच, (मे) मेरे लिये (इन्द्रः) वायु (च) और (अग्निः) अग्नि [जाठर अग्नि] (च) भी (वर्म) कवच [होवें] (धाता) पोषण करनेवाला परमेश्वर (मे) मेरे लिये (वर्म) कवच (दधातु) धारण करे ॥१८॥

ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यदुग्रं विश्वे देवा नातिविध्यन्ति सर्वे ।

तन्मे तन्वं त्रायतां सर्वतो बृहदायुष्मां जरदष्टिर्यथासानि ॥१९॥

पदार्थ—(ऐन्द्राग्नम्) वायु और अग्नि का (वर्म) कवच (बहुलम्) बहुत अधिक और (उग्रम्) प्रचण्ड है, (यत्) जिसको (विश्वे सर्वे) सब की सब (देवाः) इन्द्रियां (न) नहीं (अतिविध्यन्ति) आरपार छेद सकती हैं । (तत्) वह (बृहत्) बड़ा [कवच] (मे) मेरे (तन्वम्) शरीर को (सर्वतः) सब ओर से (त्रायताम्) पाले, (यथा) जिससे (आयुष्मान्) बड़ी आयु वाला (जरदष्टिः) स्तुति के साथ प्रवृत्ति वा भोजन वाला (असानि) मैं रहूँ ॥१९॥

आ मारुक्षद् देवमणिर्मह्या अरिष्टतातये ।

इमं मेथिमभिसंविशध्वं तनूपानं त्रिवरूथमोजसे ॥२०॥

पदार्थ—(देवमणिः) दिव्य मणि [श्रेष्ठ नियम] (मह्यै) बड़ी (अरिष्टतातये) कुशलता के लिये (मा) मुझ पर (आ अरुक्षत्) आरूढ़ [अधिकारवान्] हुआ है । [हे विद्वानो !] (इमम्) इस (तनूपानम्) शरीरपालक (त्रिवरूथम्) तीन [आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक] रक्षा वाले (मेथिम्) ज्ञान में (ओजसे) बल के लिये (अभिसंविशध्वम्) सब ओर से मिलकर प्रवेश करो ॥२०॥

अस्मिन्निन्द्रो नि दधातु नृम्णमिमं देवासो अभिसंविशध्वम् ।

दीर्घायुत्वाय शतशारदायायुष्मान् जरदष्टिर्यथासत् ॥२१॥

पदार्थ—(इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्यवाला जगदीश्वर (अस्मिन्) इस [पुरुष] में (नृम्णम्) बल वा धन (शतशारदाय) सौ शरद् ऋतु वाले (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ आयु के लिये (नि दधातु) नियम से स्थापित करे, (देवासः) हे विद्वानो ! (इमम्) इस [ज्ञान—म० २०] में (अभिसंविशध्वम्) सब ओर से मिलकर प्रवेश करो, (यथा) जिससे वह (आयुष्मान्) बड़े जीवनवाला और (जरदष्टिः) स्तुति के साथ प्रवृत्ति वा भोजनवाला (असत्) होवे ॥२१॥

स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी । इन्द्रो बध्नातु ते मणिं जिगीवाँ अपराजितः सोमपा अभयंकरो वृषा । स त्वा रक्षतु सर्वतो दिवा नक्तं च विश्वतः ॥२२॥

पदार्थ—(स्वस्तिदाः) मङ्गल का देने हारा, (विशाम्) प्रजाओं का (पतिः) पालने हारा, (वृत्रहा) अन्धकार मिटाने हारा, (विमृधः) शत्रुओं को (वशी) वश में करने हारा, (जिगीवान्) विजयी (अपराजितः) कभी न हराया गया, (सोमपाः) ऐश्वर्य की रक्षा करने हारा, (अभयंकरः) अभय करने हारा, (वृषा) महाबली (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्यवाला जगदीश्वर (ते) तुझको [हे मनुष्य !] (मणिम्) मणि [श्रेष्ठ नियम] (बध्नातु) बांधे । (सः) वह (सर्वतः) सब प्रकार (दिवा नक्तं च) दिन और रात (विश्वतः) सब ओर से (त्वा) तेरी (रक्षतु) रक्षा करे ॥२२॥

卐 सूक्तम् ६ 卐

१-२६ मातृनामा । मन्त्रोक्ता, मातृनामा, १५ ब्रह्मणस्पति । अनुष्टुप्; २ पुरस्ताद्बृहती, १० त्र्यवसाना षट्पदा जगती, ११, १२, १४, १६ पथ्या पंक्ति; १५ त्र्यवसाना सप्तपदा शक्वरी, १७ त्र्यवसाना सप्तपदा जगती ।

यौ ते मातोन्ममार्ज जातायाः पतिवेदनौ ।

दुर्णामा तत्र मा गृधदलिंश उत वत्सपः ॥१॥

पलालानुपलालौ शर्कुं कोकं मलिम्लुचं पलीजकम् ।

आश्रेषं वव्रिवाससमृक्षग्रीवं प्रमीलिनम् ॥२॥

पदार्थ—[हे स्त्री !] (ते जातायाः) तुझ उत्पन्न हुई की (माता) माता ने [तेरे] (यौ) जिन दोनों (पतिवेदनौ) ऐश्वर्य प्राप्त करने वालों [अर्थात् स्तनों] को (उन्ममार्ज) यथावत् धोया था । (तत्र) उन दोनों में [हो जाने वाला]

(अलिंश) शक्ति घटाने वाला (उत) और (वत्सपः) बच्चे नाश करने वाला (दुर्णामा) दुर्नामा [दुष्ट नाम वाला धनेला आदि रोग का कीड़ा], (पलालानुपलाली) मास [का बढ़ाव] रोकने वाले और लगातार पुष्टि रोकने वाले, (शर्कुम्) क्लेश करने वाले, (कोकम्) भेड़िया [के समान बल छीनने वाले], (मलिम्लुचम्) मलिन चाल वाले, (पलीजकम्) चेष्टा मे दोष लगाने वाले, (आश्रेषम्) अत्यन्त दाह वा कफ करने वाले, (वव्रिवाससम्) रूप हर लेने वाले, (ऋक्षग्रीवम्) गला सुखाने वाले, (प्रमीलिनम्) आँखें मूद देने वाले, [क्लेश] को (मा गृधत्) न चाहे ॥१, २॥

मा सं वृतो मोप सृप ऊरू माव सृपोऽन्तरा।
कृणोम्यस्यै भेषजं बजं दुर्णामचातनम् ॥३॥

पदार्थ—[हे रोग !] (मा सम् वृत) तू मत घूमता रह, (मा उप सृप) मत रींगता आ, (ऊरू अन्तरा) दानो जाघो के बीच (मा अव सृप) मत सरकता जा। (अस्यै) इस [स्त्री] के लिये (दुर्णामचातनम्) दुर्नामनाशक [दुष्ट नाम रोग मिटाने वाले] (बजम्) बलवान् (भेषजम्) औषध को (कृणोमि) बनाता हूँ ॥३॥

दुर्णामा च सुनामा चोभा संवृतमिच्छतः।
अरायानप हन्मः सुनामा स्त्रैणमिच्छताम् ॥४॥

पदार्थ—(दुर्णामा) दुर्नाम [कठिन रोग] (च) और (सुनामा) सुनाम [स्वस्थपन] (च) भी (उभा) दोनो (संवृतम्) समीप रहना (इच्छतः) चाहते हैं। (अरायान्) अलक्ष्मी वाले [रोगो] को (अप हन्मः) हम मिटाते हैं, (सुनामा) सुनाम [स्वस्थपन] (स्त्रैणम्) स्त्री सम्बन्धी [शरीर] को (इच्छताम्) चाहे ॥४॥

यः कृष्णः केश्यसुर स्तम्बज उत तुण्डिकः।
अरायानस्या मुष्काभ्यां भंससोऽप हन्मसि ॥५॥

पदार्थ—(यः) जो [रोग] (कृष्णः) काला, (केशी) बहुत क्लेश वा बहुत केश वाला (असुर) गिरानेवाला, (स्तम्बजः) बैठने के स्थान में उत्पन्न होने वाला (उत) और (तुण्डिक) कुरूप थूथन वा कुरूप नाभि वाला [है]। (अरायान्) अलक्ष्मीवाले [उन रोगो] को (अस्याः) इस [स्त्री] के (मुष्काभ्याम्) दोनो अण्डकोशो से और (भंससः) गुप्त स्थान से (अप हन्मसि) हम मिटाते हैं ॥५॥

अनुजिघ्रं प्रमृशन्तं क्रव्यादमुत रेरिहम्।
अरायाञ्छ्वकिष्किणो बजः पिङ्गो अनीनशत् ॥६॥

पदार्थ—(अनुजिघ्रम्) लगातार सुङकनेवाले, (प्रमृशन्तम्) छू जाने वाले (क्रव्यादम्) मांस खानेवाले (उत) और (रेरिहम्) अति चोट करने वाले [ऐसे] (अरायान्) अलक्ष्मी वाले और (श्वकिष्किणः) कुत्ते के समान सताने वाले [रोगों को (बजः) बली और (पिङ्गः) पराक्रमी [पुरुष] ने (अनीनशत्) नाश कर दिया है ॥६॥

यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च।
बजस्तान्त्सहतामितः क्लीबरूपांस्तिरीटिनः ॥७॥

पदार्थ—[हे स्त्री !] (यः) जो कोई (त्वा) तेरे पास (स्वप्ने) सोते मे (भ्राता) भाई [के समान] (च) और (पिता इव) पिता के समान (भूत्वा) होकर (निपद्यते) आ जावे। (बजः) बली [पुरुष] (तान्) उन सब (क्लीबरूपान्) हिजड़े [के समान] रूपवाले (तिरीटिनः) घातको को (इतः) यहा से (सहताम्) हरा देवे ॥७॥

यस्त्वा स्वपन्तीं त्सरति यस्त्वा दिप्सति जाग्रतीम्।
छायामिव प्र तान्त्सूर्यः परिक्रामन्ननीनशत् ॥८॥

पदार्थ—(यः) जो कोई (त्वा) तुझ (स्वपन्तीम्) सोती हुई को (त्सरति) छलना है, (यः) जो (त्वा) तुझ (जाग्रतीम्) जागती हुई को (दिप्सति) मारना चाहता है। (परिक्रामन्) घूमते हुए (सूर्यः) सूर्य [के समान पुरुष] ने (तान्) उन सब को (छायाम् इव) छाया के समान (प्र अनीनशत्) नाश कर दिया है ॥८॥

यः कृणोति मृतवत्सामवतोकामिमां स्त्रियम्।
तमोषधे त्वं नाशयास्याः कमलमञ्जिवम् ॥९॥

पदार्थ—(यः) जो [रोग] (इमाम्) इस (स्त्रियम्) स्त्री को (मृतवत्साम्) मरे बच्चे वाली और (अवतोकाम्) पतितगर्भ वाली (कृणोति) करता है। (ओषधे) हे ओषधि ! [अन्न आदि पदार्थ] (त्वम्) तू (अस्याः) इस [स्त्री] के (तम्) उस (कमलम्) कामना रोकने वाले और (अञ्जिवम्) कान्ति [शोभा] हरने वाले [रोग] को (नाशय) नाश कर ॥ ९ ॥

ये शालाः परिनृत्यन्ति सायं गर्दभनादिनः।
कुसूला ये च कुक्षिलाः ककुभाः करुमाः स्रिमाः।
तानोषधे त्वं गन्धेन विषूचीनान् वि नाशय ॥१०॥

पदार्थ—(ये) जो (गर्दभनादिनः) गधे के समान नाद करने वाले [कीड़े] (सायम्) सायंकाल मे (शालाः) घरो के (परिनृत्यन्ति) आस-पास नाचते हैं। (च) और (ये) जो (कुसूलाः) चिपट जाने वाले [अथवा अन्न के कोठे के समान आकार वाले], (कुक्षिलाः) बड़े पेट वाले, (ककुभाः) शरीर में टेढ़े दिखाई देने वाले, (करुमाः) मन को पीड़ा देने वाले, (स्रिमाः) चलने फिरने वाले [वा सुखाने वाले] हैं। (ओषधे) हे ओषधि ! [वैद्य] (त्वम्) तू (गन्धेन) गन्ध से (तान्) उन (विषूचीनान्) फैले हुए [कीड़ो] को (वि नाशय) विनष्ट कर दे ॥ १० ॥

ये कुकुन्धाः कुकूरभाः कृत्तीर्दूर्शानि बिभ्रति।
क्लीबा इव प्रनृत्यन्तो वने ये कुर्वते घोषं तानितो नाशयामसि ॥११॥

पदार्थ—(ये) जो (कुकुन्धाः) कुत्सित ध्वनि रखने वाले [भिनभिनाने वाले, (कुकूरभाः) भुसे के अग्नि समान चमकने वाले [कीड़े] (कृत्तीः) कतरनियों [छेदनशक्तियों] और (दूर्शानि) दुष्ट हिंसाकर्मों को (बिभ्रति) रखते हैं। (ये) जो (क्लीबाः इव) हिजड़ों के समान (प्रनृत्यन्तः) नाचते हुए [कीड़े] (वने) घर मे (घोषम्) कूक (कुर्वते) करते हैं, (तान्) उन को (इतः) यहाँ से (नाशयामसि) हम नाश करते हैं ॥ ११ ॥

ये सूर्यं न तितिक्षन्त आतपन्तममुं दिवः। अरायान् बस्तवासिनो
दुर्गन्धींल्लोहितास्यान् मककान् नाशयामसि ॥१२॥

पदार्थ—(ये) जो [उल्लू आदि] (दिवः) आकाश से (आतपन्तम्) चमकते हुए (अमुम्) उस (सूर्यम्) सूर्य को (न) नहीं (तितिक्षन्ते) सहते हैं। (अरायान्) [उन] अलक्ष्मी वालो, (बस्तवासिन) बकरे के समान वस्त्र वालो, (दुर्गन्धीन्) दुर्गन्ध वालो, (लोहितास्यान्) रुधिर मुख वालो, (मककान्) टेढ़ी गति वालो को (नाशयामसि) हम नष्ट करते हैं ॥ १२ ॥

य आत्मानमतिमात्रमंस आधाय बिभ्रति।
स्त्रीणां श्रोणिप्रतोदिन इन्द्र रक्षांसि नाशय ॥१३॥

पदार्थ—(ये) जो [कीड़े अपने] (आत्मानम्) आत्मा को (अंसे) पीड़ा देने मे (अतिमात्रम्) अत्यन्त (आधाय) लगाकर (बिभ्रति) रखते हैं। और (स्त्रीणाम्) स्त्रियो के (श्रोणिप्रतोदिनः) कटिभाग में व्यथा करने वाले हैं, (इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष ! [उन] [रक्षांसि] राक्षसो को (नाशय) नष्ट कर दे ॥ १३ ॥

ये पूर्वे वध्वो यन्ति हस्ते शृङ्गाणि बिभ्रतः। आपाकेष्ठाः।
प्रहासिनं स्तम्बे ये कुर्वते ज्योतिस्तानितो नाशयामसि ॥१४॥

पदार्थ—(ये) जो [कीड़े] (हस्ते) हाथ मे (शृङ्गाणि) हिंसाकर्मों को (बिभ्रतः) धारण करते हुए (वध्वः) वधू के (पूर्वे) सम्मुख (यन्ति) चलते हैं। (ये) जो [कीड़े] (आपाकेष्ठाः) पाकशाला वा कुम्हार के आवो में बैठने वाले, (प्रहासिनः) ठट्ठा मारते हुए [जैसे] (स्तम्बे) बैठने के स्थान में (ज्योति) ज्वाला [जलन, चमक वा पीड़ा] (कुर्वते) करते हैं, (तान्) उन [कीड़ों] को (इतः) यहाँ से (नाशयामसि) हम नष्ट करते हैं ॥ १४ ॥

येषां पश्चात् प्रपदानि पुरः पार्ष्णीः पुरो मुखा। खलजाः शकधूमजा
उरुण्डा ये च मट्मटाः कुम्भमुष्का अयाशवः। तानस्या ब्रह्मणस्पते
प्रतीबोधेन नाशय ॥१५॥

पदार्थ—(येषाम्) जिन [कीड़ो] के (पश्चात्) पीछे को (प्रपदानि) पांव के अगले भाग, (पुरः) आगे को (पार्ष्णीः) एड़ियां और (पुरः) आगे (मुखा) मुख हैं। (च) और (ये) जो [कीड़े] (खलजाः) खलिहान में उत्पन्न होने वाले, (शकधूमजाः) गोबर वा लीद के धुए से उत्पन्न होने वाले, (उरुण्डाः) बहुत इकट्ठे किये गये, (मट्मटाः) अत्यन्त पीड़ा देने वाले, (कुम्भमुष्काः) घड़े के समान अण्डकोश वाले और (अयाशवः) रेंगकर खाने वाले हैं। (ब्रह्मणस्पते) हे वेदरक्षक ! [वैद्य] (प्रतीबोधेन) अपने प्रत्यक्ष बोध से (तान्) उन [कीड़ों] को (अस्याः) इस [स्त्री के पास] से (नाशय) नाश करदे ॥१५॥

पर्यस्ताक्षा अप्रचङ्कशा अस्त्रैणाः सन्तु पण्डगाः।
अव भेषज पादय य इमां संविवृत्सत्यपतिः स्वपतिं स्त्रियम् ॥१६॥

पदार्थ—(पण्डगाः) पण्डाओं [तत्त्वविवेकियो] के निन्दक, (पर्यस्ताक्षाः) व्यवहार मे गिरे हुए पुरुष (अप्रचङ्कशाः) न कदापि शासनकर्ता और (अस्त्रैणाः)

न [हमारी] स्त्रियों में मिलनेवाले (सन्तु) होवें। (भेषज) हे भयनिवारक पुरुष ! [उसको] (अव पादय) गिरा दे, (यः) जो (अपतिः) पति न होकर (इमाम्) इस (स्वपतिम्) अपने पतिवाली (स्त्रियम्) स्त्री के पास (सचिवृत्सति) आना चाहता है ॥१६॥

उद्वृषिणं मुनिकेशं जम्भयन्तं मरीमृशम्।

उपेषन्तमुदुम्बलं तुण्डेलमुत शालुडम्।

पदा प्र विध्य पार्ष्ण्या स्थालीं गौरिव स्पन्दना ॥१७॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (उद्वृषिणम्) अति झूठ बोलनेवाले, (मुनिकेशम्) मुनियों के क्लेश देनेवाले, (जम्भयन्तम्) नाश करनेवाले, (मरीमृशम्) बरबस हाथ डालने वाले, (उपेषन्तम्) अधिक आने-जाने वाले, (उदुम्बलम्) मारपीट का सेवन करनेवाले, (तुण्डेलम्) तोड़-फोड़ के करने वाले, (उत) और (शालुडम्) घमंडी को (प्र विध्य) छेद डाल, (इव) जैसे (स्पन्दना) कूदने वाली (गौः) गाय (पदा) लात से और (पार्ष्ण्या) एड़ी से (स्थालीम्) हांडी को ॥१७॥

यस्ते गर्भं प्रतिमृशाज्जातं वा मारयाति ते।

पिङ्गस्तमुग्रधन्वा कृणोतु हृदयाविधम् ॥१८॥

पदार्थ—[हे स्त्री !] (यः) जो (ते) तेरे (गर्भम्) गर्भ को (प्रति मृशात्) दबा देवे, (वा) अथवा (ते) तेरे (जातम्) उत्पन्न [बालक] को (मारयाति) मार डाले। (उग्रधन्वा) प्रचण्ड धनुष् वाला (पिङ्गः) पराक्रमी पुरुष (तम्) उसको (हृदयाविधम्) हृदय में बरमे [से छेद] वाला (कृणोतु) करे ॥१८॥

ये अम्नो जातान् मारयन्ति सूतिका अनुशेरते।

स्त्रीभागान् पिङ्गो गन्धर्वान् वातो अभ्रमिवाजतु ॥१९॥

पदार्थ—(ये) जो (अम्नः) पीड़ा देनेवाले (जातान्) उत्पन्न बालकों को (मारयन्ति) मार डालते हैं और (सूतिकाः) सोहर वाली स्त्रियों को (अनुशेरते) अप्रिय करते हैं। (पिङ्गः) पराक्रमी पुरुष (स्त्रीभागान्) स्त्रियों के सेवन करनेवाले, (गन्धर्वान्) [उन] दुःखदायी पीड़ा देनेवालों को (अजतु) हटा देवे, (इव) जैसे (वातः) वायु (अभ्रम्) [मेघ] को ॥१९॥

परिसृष्टं धारयतु यद्धितं माव पादि तत्।

गर्भं त उग्रौ रक्षतां भेषजौ नीविभार्यौ ॥२०॥

पदार्थ—[हे स्त्री !] (परिसृष्टम्) सब प्रकार युक्त [कर्म] [तुझे] (धारयतु) धारण करे, (यत्) जो (हितम्) हित है, (तत्) वह (मा अव पादि) न गिर जावे। (उग्रौ) दोनो नित्य सम्बन्ध वाले, (नीविभार्यौ) नीति [नियम] से धारण करने योग्य, (भेषजौ) भय जीतने वाले [बल और पराक्रम, अर्थात् शारीरिक और आत्मिक सामर्थ्य] (ते) तेरे (गर्भम्) गर्भ की (रक्षताम्) रक्षा करें ॥२०॥

पवीनसात् तङ्गल्वा३च्छायकादुत नग्नकात्।

प्रजायै पत्ये त्वा पिङ्गः परि पातु किमीदिनः ॥२१॥

पदार्थ—(पवीनसात्) वज्र के समान टेढ़े से, (तङ्गल्वात्) गति रोकने वाले से, (छायकात्) काटने वाले से (उत) और (नग्नकात्) नंगे करने वाले (किमीदिनः) लुतरे पुरुष से (प्रजायै) प्रजा के लिये और (पत्ये) पति के लिये (त्वा) तुझको (पिङ्गः) पराक्रमी पुरुष (परि पातु) सब ओर से बचावे ॥२१॥

द्व्यास्याच्चतुरक्षात् पञ्चपादादनङ्गुरेः।

वृन्तादभि प्रसर्पतः परि पाहि वरीवृतात् ॥२२॥

पदार्थ—(द्व्यास्यात्) दुमुहे से, (चतुरक्षात्) चार आंखों वाले से, (पञ्चपदात्) पांच पैर वाले से, (अनङ्गुरेः) बिना चेष्टा वाले से। (वृन्तात्) फल पत्र आदि के डंठल से (अभि) चारों ओर को (प्रसर्पतः) रेंगने वाले (वरीवृतात्) टेढ़े-टेढ़े घूमनेवाले [कीड़ों] से (परि) सब ओर से (पाहि) बचा ॥२२॥

य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः।

गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि ॥२३॥

पदार्थ—(ये) जो [कीड़े] (आमम्) कच्चे (मांसम्) मांस का (च) और (ये) जो (पौरुषेयम्) पुरुष के (क्रविः) मांस को (अदन्ति) खाते हैं। (केशवाः) और क्लेश पहुँचानेवाले [रोग वा कीड़े] (गर्भान्) गर्भों को (खादन्ति) खाते हैं। (तान्) उन सब को (इतः) यहां से (नाशयामसि) हम नाश करते हैं ॥२३॥

ये सूर्यात् परिसर्पन्ति स्नुषेव श्वशुरादधि।

बजश्च तेषां पिङ्गश्च हृदयेऽधि नि विध्यताम् ॥२४॥

पदार्थ—(ये) जो [उल्लू चोर आदि] (सूर्यात्) सूर्य से (अधि) अधिकारपूर्वक (परिसर्पन्ति) खिसक जाते हैं, (इव) जैसे (स्नुषा) पतोहू (श्वशुरात्) ससुर से। (बजः) बली (च) और (पिङ्गः) पराक्रमी [पुरुष] (च) भी (तेषाम्) उनके (हृदये) हृदय में (अधि) अधिकारपूर्वक (नि) निरन्तर (विध्यताम्) छेद डालें ॥२४॥

पिङ्ग रक्ष जायमानं मा पुमांसं स्त्रियं क्रन्।

आण्डादो गर्भान्मा दभन् बाधस्वेतः किमीदिनः ॥२५॥

पदार्थ—(पिङ्ग) हे पराक्रमी पुरुष ! (जायमानम्) उत्पन्न होते हुए [सन्तान] को (रक्ष) बचा, (आण्डादः) अण्डे [गर्भ] खाने वाले [रोग वा कीड़े] (पुमांसम्) पुरुष [वा] (स्त्रियम्) स्त्री [बालक] को (मा क्रन्) न मारें और (गर्भान्) गर्भों को (मा दभन्) नष्ट न करें, (इतः) यहां से (किमीदिनः) लुतरों को (बाधस्व) हटा दे ॥२५॥

अप्रजास्त्वं मार्तवत्समाद् रोदमघमावयम्।

वृक्षादिव स्रजं कृत्वाप्रिये प्रति मुञ्च तत् ॥२६॥

पदार्थ—(अप्रजास्त्वम्) बिना सन्तान होना, (मार्तवत्सम्) बच्चों का मर जाना (आत्) और (रोदम्) रोदन करना (अघम्) पाप और (आवयम्) सब ओर से दुःख के योग को। (तत्) उसे (अप्रिये) अप्रिय पर (प्रतिमुञ्च) छोड़ दे (इव) जैसे (वृक्षात्) वृक्ष से (स्रजम्) फूलों की माला को (कृत्वा) बनाकर [ओढ़ते हैं] ॥२६॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

卐

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ७ 卐

१-२८ अथर्वा। भैषज्य, आयुष्य, ओषधयः। अनुष्टुप्, २ उपरिष्टाद् भुरिग्बृहती; ३ पुरउष्णिक्, ४ पञ्चपदा परानुष्टुबति जगती; ५-६, १०, २५ पथ्यापंक्तिः (६ विराड्गर्भा भुरिक्), ७ द्विपदार्ची भुरिगनुष्टुप्, १२ पंचपदा विराडतिशक्वरी, १४ उपरिष्टान्निचृद् बृहती, २६ निचृत्; २८ भुरिक्।

या बभ्रवो याश्च शुक्रा रोहिणीरुत पृश्नयः।

असिक्नीः कृष्णा ओषधीः सर्वा अच्छावदामसि ॥१॥

पदार्थ—(याः) जो (बभ्रवः) पुष्ट करने वाली [वा भूरे रङ्ग वाली] (च) और (याः) जो (शुक्राः) वीर्यवाली [वा चमकीली] (रोहिणीः) स्वास्थ्य उत्पन्न करने वाली [वा रक्तवर्ण] (उत) और (पृश्नयः) स्पर्श करने वाली [वा अति सूक्ष्म] (असिक्नीः) निर्बन्ध [वा श्याम वर्ण], (कृष्णाः) आकर्षण करने वाली [वा काले रंग वाली] (ओषधीः) ओषधियां हैं, (सर्वाः) उन सब को (अच्छावदामसि) हम अच्छे प्रकार चाहते हैं ॥१॥

त्रायन्तामिमं पुरुषं यक्ष्माद् देवेषितादधि।

यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव ॥२॥

पदार्थ—वे [ओषधियां] (इमम् पुरुषम्) इस पुरुष को (देवेषितात्) उन्माद से प्राप्त हुए (यक्ष्मात्) राज रोग से (अधि) अधिकार पूर्वक (त्रायन्ताम्) रक्षा करें। (यासाम् वीरुधाम्) जिन उगने वाली [अन्न आदि ओषधियों] का (द्यौः) सूर्य (पिता) पालनेवाला, (पृथिवी) पृथिवी (माता) उत्पन्न करने वाली और (समुद्रः) समुद्र [जल] (मूलम्) जड़ (बभूव) हुआ था ॥२॥

आपो अग्रं दिव्या ओषधयः।

तास्ते यक्ष्ममेनस्य१मङ्गादङ्गादनीनशन् ॥३॥

पदार्थ—(अग्रम्) पहिले (दिव्याः) दिव्य गुणवाले (आपः) जल और (ओषधयः) ओषधियां [अन्न आदि पदार्थ] [थीं] (ताः) उन्होंने (एनस्यम्) पाप से उत्पन्न हुए (यक्ष्मम्) राजरोग को (ते) तेरे (अङ्गादङ्गात्) अङ्ग-अङ्ग से (अनीनशन्) नष्ट कर दिया है ॥३॥

प्रस्तृणती स्तम्बिनीरेकशुङ्गाः प्रतन्वतीरोषधीरा वदामि। अंशुमतीः काण्डिनीर्या विशाखा ह्वयामि ते वीरुधो वैश्वदेवीरुग्राः पुरुषजीवनीः ॥४॥

पदार्थ—(प्रस्तृणती) बहुत ढकने वाली [पत्तों वाली], (स्तम्बिनी) बहुत गुच्छों वाली, (एकशुङ्गाः) एक कोंपल वाली, (प्रतन्वती) बहुत फैली हुई (ओषधी) ओषधियों को (आ वदामि) मैं भले प्रकार बुलाता हूँ। (अंशुमती) बहुत कोंपल वाली, (काण्डिनी) बड़े गुद्दों वाली, (विशाखा) बहुत टहनियों वाली, (वैश्वदेवी) सब दिव्य गुणवाली, (उग्रा) बल वाली (पुरुषजीवनीः) मनुष्यों का जीवन करने वालियों को (ते) तेरे लिये (हुवामि) मैं बुलाता हूँ, (याः) जो (वीरुधः) विविध प्रकार उगने वाली बेल-बूटी हैं ॥४॥

यद् वः सहः सहमाना वीर्यं यच्च वो बलम्।

तेनेमम्स्माद् यक्ष्मात् पुरुषं मुञ्चतौषधीरथो कृणोमि भेषजम् ॥५॥

पदार्थ—(सहमानाः) हे बलवालियो ! (यत्) जो (वः) तुम्हारा (सहः) पराक्रम और (वीर्यम्) वीरत्व (च) और (यत्) जो (वः) तुम्हारा (बलम्) बल है। (ओषधीः) हे तापनाशक ओषधियो ! (तेन) उस से (इमम्) इस (पुरुषम्) पुरुष को (अस्मात्) इस (यक्ष्मात्) राजरोग से (मुञ्चत) छुड़ाओ, (अथो) अब, मैं (भेषजम्) औषध (कृणोमि) करता हूँ ॥५॥

जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम्।

अरुन्धतीमुन्नयन्तीं पुष्पां मधुमतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये ॥६॥

पदार्थ—(जीवलाम्) जीवन देने वाली, (नघारिषाम्) कभी हानि न करने वाली, (जीवन्तीम्) जीव रखने वाली, (अरुन्धतीम्) रोक न डालने वाली, (उन्नयन्तीम्) उन्नति करने वाली, (पुष्पाम्) बहुत पुष्पवाली, (मधुमतीम्) मधुर रस वाली (ओषधीम्) तापनाशक [अन्न आदि ओषधि] को (इह) यहां (अस्मै) इस [पुरुष] को (अरिष्टतातये) शुभ करने के लिये (अहम्) मैं (हुवे) बुलाता हूँ ॥६॥

इहा यन्तु प्रचेतसो मेदिनीर्वचसो मम।

यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ॥७॥

पदार्थ—(प्रचेतसः मम) मुझ बड़े ज्ञानी के (वचसः) वचन की (मेदिनीः) प्राप्ति करने वाली [ओषधियां] (इह) यहां (आ यन्तु) आवें। (यथा) जिससे (इमम् पुरुषम्) इस पुरुष को (दुरितात्) कष्ट से (अधि) यथावत् (पारयामसि) हम पार लगावें ॥७॥

अग्नेर्घासो अपां गर्भो या रोहन्ति पुनर्णवाः।

ध्रुवाः सहस्रनाम्नीर्भेषजीः सन्त्वाभृताः ॥८॥

पदार्थ—(अग्नेः) अग्नि का (घासः) भोजन [अग्नि बढ़ाने वाली] और (अपाम्) जलों का (गर्भः) गर्भ [जल से युक्त] (याः) जो (पुनर्णवाः) वारंवार नवीन [ओषधियां] (रोहन्ति) उत्पन्न होती हैं। [वे] (ध्रुवाः) दृढ़ गुण वाली, (सहस्रनाम्नीः) सहस्रों नाम वाली (आभृताः) यथावत् भरी हुई (भेषजीः) भय जीतने वाली [ओषधियां] (सन्तु) होवें ॥८॥

अवकोल्बा उदकात्मान ओषधयः।

व्यृषन्तु दुरितं तीक्ष्णशृङ्ग्यः ॥९॥

पदार्थ—(अवकोल्बाः) पीड़ा को जलाने वाली, (उदकात्मानः) जल को जीवन रखने वाली, (तीक्ष्णशृङ्ग्यः) [रोग को] तीक्ष्ण काट करने वाली (ओषधयः) ओषधियां (दुरितम्) कष्ट को (वि) बाहिर (ऋषन्तु) निकालें ॥९॥

उन्मुञ्चन्तीर्विवरुणा उग्रा या विषदूषणीः। अथो बलास-

नाशनीः कृत्यादूषणीश्च यास्ता इहा यन्त्वोषधीः ॥१०॥

पदार्थ—(याः) जो (उन्मुञ्चन्तीः) [रोग से] मुक्त करने वाली, (विवरुणाः) विशेष करके स्वीकार करने योग्य, (उग्राः) बड़े बल वाली, (विषदूषणीः) विष हरने वाली। (अथो) और भी (याः) जो (बलासनाशनीः) बल गिराने वाले [सन्निपात, कफादि] का नाश करने वाली (च) और (कृत्यादूषणीः) पीड़ा मिटाने वाली हैं, (ताः) वे सब ओषधियां (इह) यहां (आ यन्तु) आवें ॥१०॥

अपक्रीताः सहीयसीर्वीरुधो या अभिष्टुताः।

त्रायन्तामस्मिन् ग्रामे गामश्वं पुरुषं पशुम् ॥११॥

पदार्थ—(याः) जो (अपक्रीताः) यथावत् मोल ली गई, (सहीयसीः) अधिक बल वाली, (अभिष्टुताः) उत्तम गुण वाली (वीरुधः) ओषधियां हैं। वे (अस्मिन् ग्रामे) इस ग्राम में (गाम्) गौ (अश्वम्) घोड़े, (पुरुषम्) पुरुष और (पशुम्) पशु [भैंस बकरी आदि] को (त्रायन्ताम्) पालें ॥११॥

मधुमन्मूलं मधुमदग्रमासां मधुमन्मध्यं वीरुधां बभूव। मधुमत् पर्णं मधुमत् पुष्पमासां मधोः संभक्ता अमृतस्य भक्षो घृतमन्नं दुह्रतां गोपुरोगवम् ॥१२॥

पदार्थ—(आसाम् वीरुधाम्) इन ओषधियों का (मूलम्) मूल (मधुमत्) मधुर, (अग्रम्) सिरा (मधुमत्) मधुर (मध्यम्) मध्य (मधुमत्) मधुर (पर्णम्) पत्र (मधुमत्) मधुर, (पुष्पम्) फूल (मधुमत्) मधुर (बभूव) हुआ था, (आसाम्) इनका (अमृतस्य) अमृत का (भक्षः) भोजन [है], (मधोः) मधुरता में (संभक्ताः) पूरी तत्पर वे [ओषधें], (गोपुरोगवम्) गौ को अग्रगामी [प्रधान] रखने वाले (घृतम्) घी और (अन्नम्) अन्न को (दुह्रताम्) भरपूर करें ॥१२॥

यावतीः कियतीश्चेमाः पृथिव्यामध्योषधीः।

ता मा सहस्रपर्ण्यो मृत्योर्मुञ्चन्त्वंहसः ॥१३॥

पदार्थ—(यावतीः) जितनी (च) और (कियतीः) कितनी [विविध परिमाण और गुणवाली] (इमाः) ये (ओषधीः) ओषधियां (पृथिव्याम् अधि) पृथिवी के ऊपर [हैं]। (सहस्रपर्ण्यः) सहस्रों पोषण वाली (ताः) वे सब (मा) मुझको (मृत्योः) मरण [आलस्य] से और (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥१३॥

वैयाघ्रो मणिर्वीरुधां त्रायमाणोऽभिशस्तिपाः।

अमीवाः सर्वा रक्षांस्यप हन्त्वधि दूरमस्मत् ॥१४॥

पदार्थ—(वीरुधाम्) ओषधियों का (वैयाघ्रः) व्याघ्र सम्बन्धी [महाबली] (त्रायमाणः) रक्षा करता हुआ, (अभिशस्तिपाः) पीड़ा से रक्षा करने वाला (मणिः) मणि [उत्तम गुण] (अमीवाः) रोगों को और (सर्वा) सब (रक्षांसि) राक्षसों [विघ्नों] को (अस्मत्) हम से (दूरम्) दूर (अधि) अधिकार पूर्वक (अप हन्तु) हटा देवे ॥१४॥

सिंहस्येव स्तनथोः सं विजन्तेऽग्नेरिव विजन्त आभृताभ्यः।

गवां यक्ष्मः पुरुषाणां वीरुद्भिरतिनुत्तो नाव्या एतु स्रोत्याः ॥१५॥

पदार्थ—वे [रोग] (आभृताभ्यः) सब प्रकार पुष्ट की हुई [ओषधियों] से (विजन्ते) डरते हैं, (इव) जैसे (सिंहस्य) सिंह की (स्तनथोः) गर्जन से और (इव) जैसे (अग्नेः) अग्नि से (सम् विजन्ते) [प्राणी] डरकर भागते हैं। (गवाम्) गौओं का और (पुरुषाणाम्) पुरुषों का (यक्ष्मः) राज रोग (वीरुद्भिः) ओषधियों करके (नाव्याः) नौका से उतरने योग्य (स्रोत्याः) नदियों के (अतिनुत्तः) पार प्रेरणा किया गया (एतु) चला जावे ॥१५॥

मुमुचाना ओषधयोऽग्नेर्वैश्वानरादधि।

भूमिं संतन्वतीरित यासां राजा वनस्पतिः ॥१६॥

पदार्थ—(मुमुचानाः) [रोग से] छुड़ाने वाली (ओषधयः) ओषधियां (वैश्वानरात्) सब नरों के हितकारक (अग्नेः) अग्नि [सर्वव्यापक परमेश्वर] का आश्रय लेकर (अधि) अधिकारपूर्वक (भूमिम्) भूमि को (संतन्वतीः) ढाकती हुई तुम (इत) चलो, (यासाम्) जिनका (राजा) राजा (वनस्पतिः) सेवनीय पदार्थों का स्वामी [सोम रस है] ॥१६॥

या रोहन्त्याङ्गिरसीः पर्वतेषु समेषु च।

ता नः पयस्वतीः शिवा ओषधीः सन्तु शं हृदे ॥१७॥

पदार्थ—(याः) जो (आङ्गिरसीः) ऋषियों द्वारा बतलाई गई (पर्वतेषु) पर्वतों पर (च) और (समेषु) चौरस स्थानों में (रोहन्ति) उगती हैं। (ताः) वे (पयस्वतीः) दूधवाली, (शिवाः) कल्याणी (ओषधीः) ओषधियां (नः) हमारे (हृदे) हृदय के लिये (शम्) शान्तिदायक (सन्तु) होवें ॥१७॥

याश्चाहं वेद वीरुधो याश्च पश्यामि चक्षुषा।

अज्ञाता जानीमश्च या यासु विद्म च संभृतम् ॥१८॥

सर्वाः समग्रा ओषधीर्बोधन्तु वचसो मम।

यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ॥१९॥

पदार्थ—(च) और (याः) जिन (वीरुधः) ओषधियों को (अहम्) मैं (वेद) जानता हूँ, (च) और (याः) जिनको (चक्षुषा) नेत्र से (पश्यामि) देखता हूँ। (च) और (याः) जिन (अज्ञाताः) अनजानी हुई [ओषधियों को] (जानीमः) हम जानें (च) और (यासु) जिनमें (संभृतम्) पोषण सामर्थ्य (विद्म) हम जानें [वे] (सर्वाः समग्राः) सब की सब (ओषधीः) ओषधियां (मम वचसः) मेरे वचन का (बोधन्तु) बोध करें। (यथा) जिससे (इमम् पुरुषम्) इस पुरुष को (दुरितात्) कष्ट से (अधि) यथावत् (पारयामसि) हम पार लगावें ॥१८, १९॥

अश्वत्थो दर्भो वीरुधां सोमो राजामृतं हविः।

व्रीहिर्यवश्च भेषजौ दिवस्पुत्रावमर्त्यौ ॥२०॥

पदार्थ—([अश्वत्थ.] वीरों के ठहरने का स्थान, पीपल का वृक्ष, (दर्भः) दु:ख विदारक, कुश वा कास का बिरवा, (ओषधीनाम्) ओषधियों का (राजा) राजा (सोमः) सोम लता (अमृतम्) अमृत [बलकर] (हविः) ग्राह्य द्रव्य है। (भेषजौ) भयनिवारक (व्रीहिः) चावल (च) और (यवः) जौ दोनों (दिवः) उन्माद वा पीड़ा के (पुत्रौ) सोखने वाले (अमर्त्यौ) अमर [पुष्टिकारक] हैं ॥२०॥

उज्जिहीध्वे स्तनयत्यभिक्रन्दत्योषधीः ।

यदा वः पृश्निमातरः पर्जन्यो रेतसावति ॥२१॥

पदार्थ—(ओषधीः) हे ओषधियो ! (पृश्निमातरः) हे पृथिवी को माता रखने वालियो ! (उत् जिहीध्वे) तुम खड़ी हो जाती हो, (यदा) जब (पर्जन्यः) मेघ (स्तनयति) गरजता है और (अभिक्रन्दति) कड़कड़ाता है और (वः) तुमको (रेतसा) जल से (अवति) तृप्त करता है ॥२१॥

तस्यामृतस्येमं बलं पुरुषं पाययामसि ।

अथो कृणोमि भेषजं यथासच्छतहायनः ॥२२॥

पदार्थ—(तस्य) उस (अमृतस्य) अमर [पुष्टिकारक मेघ] का (बलम्) बल [सार] (इमम् पुरुषम्) इस पुरुष को (पाययामसि) हम पिलाते हैं। (अथो) और (भेषजम्) चिकित्सा (कृणोमि) करता हूँ (यथा) जिससे वह (शतहायनः) सौ वर्ष वाला (असत्) होवे ॥२२॥

वराहो वेद वीरुधं नकुलो वेद भेषजीम् ।

सर्पा गन्धर्वा या विदुस्ता अस्मा अवसे हुवे ॥२३॥

पदार्थ—(वराहः) सूअर (वीरुधम्) ओषधि (वेद) जानता है, (नकुलः) नेवला (भेषजीम्) रोग जीतने वाली वस्तु (वेद) जानता है। (सर्पाः) सर्प और (गन्धर्वाः) गन्धर्व [दु:खदायी पीड़ा देने वाले जीव] (याः) जिनको (विदुः) जानते हैं (ताः) उनको (अस्मै) इस [पुरुष] के लिये (अवसे) रक्षा के हित (हुवे) मैं बुलाता हूँ ॥२३॥

याः सुपर्णा आङ्गिरसीर्दिव्या या रघटो विदुः ।

वयांसि हंसा या विदुर्याश्च सर्वे पतत्रिणः ।

मृगा या विदुरोषधीस्ता अस्मा अवसे हुवे ॥२४॥

पदार्थ—(याः) जिन (आङ्गिरसीः) ऋषियों द्वारा बनाई हुई [ओषधियों] को (सुपर्णाः) गरुड़, गिद्ध आदि, (याः) जिन (दिव्याः) दिव्य [ओषधियों] को (रघटः) आकाश में फिरने वाले [जीव] (विदुः) जानते हैं। (याः) जिनको (वयांसि) पक्षी (हंसाः) हंस, (च) और (याः) जिन को (सर्वे) सब (पतत्रिणः) पंखवाले जीव (विदुः) जानते हैं। (याः ओषधीः) जिन ओषधियों को (मृगाः) बनैले पशु (विदुः) जानते हैं। (ताः) उन सब को (अस्मै) इस [पुरुष] के लिये (अवसे) रक्षा के हित (हुवे) मैं बुलाता हूँ ॥२४॥

यावतीनामोषधीनां गावः प्राश्नन्त्यघ्न्या यावतीनामजावयः ।

तावतीस्तुभ्यमोषधीः शर्म यच्छन्त्वाभृताः ॥२५॥

पदार्थ—(यावतीनाम्) जितनी (ओषधीनाम्) ओषधियों का (अघ्न्याः) न मारने योग्य (गावः) गौएँ और (यावतीनाम्) जितनी [ओषधियों] का (अजावयः) भेड़-बकरी (प्राश्नन्ति) चारा करती हैं। (तावतीः) उतनी सब (आभृताः) यथावत् पुष्ट की हुई (ओषधीः) ओषधियाँ (तुभ्यम्) तुझ को (शर्म) सुख (यच्छन्तु) देवें ॥२५॥

यावतीषु मनुष्या भेषजं भिषजो विदुः ।

तावतीर्विश्वभेषजीरा भरामि त्वामभि ॥२६॥

पदार्थ—(भिषजः) वैद्य (मनुष्याः) लोग (यावतीषु) जितनी [ओषधियों] में (भेषजम्) चिकित्सा (विदुः) जानते हैं। (तावतीः) उतनी (विश्वभेषजीः) सब रोगों की जीतनेवाली [ओषधियों] को (त्वाम् अभि) तेरे लिये (आ भरामि) मैं लाता हूँ ॥२६॥

पुष्पवतीः प्रसूमतीः फलिनीरफला उत ।

संमातर इव दुह्रामस्मा अरिष्टतातये ॥२७॥

पदार्थ—(पुष्पवतीः) पुष्प रखने वाली, (प्रसूमतीः) सुन्दर कोंपल वाली, (फलिनीः) फलवाली (उत) और (अफलाः) फलरहित [ओषधियाँ] (संमातरः इव) सम्मिलित माताओं के समान (अस्मै) इस [पुरुष] को (अरिष्टतातये) कुशल करने के लिये (दुह्राम्) दूध देवें ॥२७॥

उत् त्वाहार्षं पञ्चशलादथो दशशलादुत ।

अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात् ॥२८॥

पदार्थ—(अथो) अब (त्वा) तुझको (पञ्चशलात्) पञ्चभूतों में व्यापक (उत) और (दशशलात्) दस दिशाओं में व्यापक परमेश्वर का आश्रय लेकर (अथो) और (यमस्य) न्यायकारी राजा के (पड्वीशात्) बेड़ी डालने से (उत) और (विश्वस्मात्) सब (देवकिल्बिषात्) परमेश्वर के प्रति अपराध से [पृथक् करके] (उत् अहार्षम्) मैंने ऊंचा पहुँचाया है ॥२८॥

ॐ सूक्तम् ८ ॐ

१—२४ भृग्वङ्गिरा। इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च। अनुष्टुप्, २, ८—१०, २३ उपरिष्टाद्बृहती, ३ विराड् बृहती, ४ बृहती पुरस्तात्प्रस्तारपंक्तिः, ६ आस्तारपंक्तिः, ७ विपरीतपादलक्ष्मा चतुष्पदातिजगती, ११ पथ्याबृहती, १२ भुरिक्, १९ पुरस्ताद्विराड् बृहती, २० पुरस्तान्निचृद् बृहती, २१ त्रिष्टुप्, २२ चतुष्पदा शक्वरी, २४ त्र्यवसाना त्रिष्टुबुष्णिग्गर्भा पराशक्वरी पञ्चपदा जगती।

इन्द्रो मन्थतु मन्थिता शक्रः शूरः पुरंदरः ।

यथा हनाम सेना अमित्राणां सहस्रशः ॥१॥

पदार्थ—(मन्थिता) मथन करने वाला, (शक्रः) शक्तिमान् (शूरः) शूर, (पुरंदरः) गढ़ तोड़ने वाला, (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी राजा] (मन्थतु) मथन करे। (यथा) जिससे (अमित्राणाम्) वैरियों की (सेनाः) सेनायें (सहस्रशः) सहस्र सहस्र करके (हनाम) हम मारें ॥ १ ॥

पूतिरज्जुरुपध्मानी पूतिं सेनां कृणोत्वमूम् ।

धूममग्निं परादृश्यामित्रा हृत्स्वा दधतां भयम् ॥२॥

पदार्थ—(उपध्मानी) सुलगती हुई (पूतिरज्जुः) दुर्गन्ध उत्पन्न करने वाली [शस्त्रों की ज्वाला] (अमूम् सेनाम्) उस सेना को (पूतिम्) दुर्गन्धित (कृणोतु) करे। (अमित्राः) शत्रु लोग (धूमम्) धुआँ और (अग्निम्) अग्नि को (परादृश्य) अत्यन्त देखकर (हृत्सु) हृदय में (भयम्) भय (आ दधताम्) धारण कर लेवें ॥ २ ॥

अमूनश्वत्थ निः शृणीहि खादामून् खदिराजिरम् ।

ताजद्भङ्ग इव भज्यन्तां हन्त्वेनान् वधको वधैः ॥३॥

पदार्थ—(अश्वत्थ) हे बलवानों में ठहरने वाले ! [अश्वत्थामा] (अमून्) उन को (निः शृणीहि) कुचल डाल, (खदिर) हे दृढ़ स्वभाव वाले [सेनापति !] (अमून्) उनको (अजिरम्) शीघ्र (खाद) खा ले। वे लोग (ताजद्भङ्गः इव) झटपट टूटे हुए सन के समान (भज्यन्ताम्) टूट जावें, (वधकः) मारू सेनापति (वधैः) मारू हथियारों से (एनान्) इनको (हन्तु) मारे ॥ ३ ॥

परुषानमून् परुषाह्वः कृणोतु हन्त्वेनान् वधको वधैः ।

क्षिप्रं शर इव भज्यन्तां बृहज्जालेन संदिताः ॥४॥

पदार्थ—(परुषाह्वः) कठोरों को ललकारने वाला [सेनापति] (अमून्) उन [अपने सैनिकों] को (परुषान्) कठोर स्वभाव वाला (कृणोतु) बनावे, (वधकः) मारू [सेनापति] (वधैः) मारू शस्त्रों से (एनान्) इन [शत्रुओं] को (हन्तु) मारे। (बृहज्जालेन) बड़े जाल से (संदिताः) बंधे हुए वे लोग (शरः इव) सरकण्डे के समान (क्षिप्रम्) शीघ्र (भज्यन्ताम्) टूट जावें ॥ ४ ॥

अन्तरिक्षं जालमासीज्जालदण्डा दिशो महीः ।

तेनाभिधाय दस्यूनां शक्रः सेनामपावपत् ॥५॥

पदार्थ—(अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (जालम्) जाल (आसीत्) था, (जालदण्डाः) जाल के दण्डे (महीः) बड़ी (दिशः) दिशायें [थीं]। (तेन) उस [जाल] से (अभिधाय) घेरकर (शक्रः) शक्तिमान् [सेनापति] ने (दस्यूनाम्) डाकुओं की (सेनाम्) सेना को (अप अवपत्) तितर-बितर कर दिया ॥५॥

बृहद्धि जालं बृहतः शक्रस्य वाजिनीवतः ।

तेन शत्रूनभि सर्वान् न्युब्ज यथा न मुच्यातै कतमश्चनैषाम् ॥६॥

पदार्थ—(हि) क्योंकि (बृहतः) बड़े (वाजिनीवतः) बलवती क्रियाओं वाले (शक्रस्य) शक्तिमान् [सेनापति] का (जालम्) जाल [फैलाव] (बृहत्) बड़ा [है]। (तेन) उस [जाल] से (सर्वान्) सब (शत्रून् अभि) शत्रुओं पर (नि उब्ज) झुक पड़, (यथा) जिससे (एषाम्) इनमें से (कतमः चन) कोई भी (न मुच्यातै) न छूटे ॥ ६ ॥

बृहत् ते जालं बृहत इन्द्र शूर सहस्रार्घस्य शतवीर्यस्य । तेन शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदं जघान शक्रो दस्यूनामभिधाय सेनया ॥७॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी !] (शूर) हे शूर ! (बृहत्) बड़े, (सहस्रार्घस्य) सहस्रो से पूजा योग्य, (शतवीर्यस्य) सैकड़ो वीरत्व वाले (ते) तेरे का (बृहत्) बड़ा (जालम्) जाल [फैलाव] है । (तेन) उस [जाल] से (शक्र) शक्तिमान् [सेनापति] ने (सेनया) [अपनी] सेना से (शतम्) सौ, (सहस्रम्) सहस्र, (अयुतम्) दश सहस्र, (न्यर्बुदम्) अनेक दश कोटि (दस्यूनाम्) डाकुओ को (अभिधाय) घेरकर (जघान) मार डाला ॥ ७ ॥

अयं लोको जालमासीच्छक्रस्य महतो महान् ।
तेनाहमिन्द्रजालेनामूंस्तमसाभि दधामि सर्वान् ॥८॥

पदार्थ—(अयम्) यह (महान्) बड़ा (लोक) लोक (महतः) बड़े (शक्रस्य) शक्तिमान् [सेनापति] का (जालम्) जाल (आसीत्) था । (तेन) उस (इन्द्रजालेन) इन्द्रजाल [बड़े शस्त्र] से (अहम्) मैं (अमून्) उन (सर्वान्) सबको (तमसा) अन्धकार से (अभि दधामि) घेरे लेता हूँ ॥ ८ ॥

सेदिरुग्रा व्यृद्धिरार्तिश्चानपवाचना ।
श्रमस्तन्द्रीश्च मोहश्च तैरमूनभि दधामि सर्वान् ॥९॥

पदार्थ—(सेदि) महामारी आदि क्लेश, (उग्रा) भारी (व्यृद्धि) निर्धनता (च) और (अनपवाचना) अकथनीय (आर्ति) पीड़ा । (श्रम) परिश्रम, (च) और (तन्द्री) आलस्य (च) और (मोह) मोह [घबराहट] [जो हैं], (तैः) उन सबसे (अमून्) उन (सर्वान्) सबो को (अभि दधामि) मैं घेरे लेता हूँ ॥ ९ ॥

मृत्यवेऽमून् प्र यच्छामि मृत्युपाशैरमी सिताः ।
मृत्योर्ये अघला दूतास्तेभ्य एनान् प्रति नयामि बद्ध्वा ॥१०॥

पदार्थ—(अमून्) उन्हे (मृत्यवे) मृत्यु को (प्र यच्छामि) मै सौपता हूँ, (मृत्युपाशैः) मृत्यु के पाशो से (अमी) वे लोग (सिताः) बधे हुए हैं । (मृत्योः) मृत्यु के (ये) जो (अघला) दुःखदायी (दूताः) दूत है, (तेभ्य) उनके पास (एनान्) इन्हे (बद्ध्वा) बाध कर (प्रति नयामि) मै लिये जाता हूँ ॥ १० ॥

नयतामून् मृत्युदूता यमदूता अपोम्भत ।
परःसहस्रा हन्यन्तां तृणेढ्वेनान् मत्यं भवस्य ॥११॥

पदार्थ—(मृत्युदूताः) हे मृत्यु के दूतो ! [घातको !] (अमून्) उनको (नयत) ले जाओ, (यमदूताः) हे यम के दूतो ! [वधक पुरुषो !] (अप उम्भत) कस कर बाँध लो । (परःसहस्राः) सहस्रो से अधिक [वे लोग] (हन्यन्ताम्) मारे जावें, (भवस्य) सुखदायक [राजा] की (मत्यम्) मुट्ठी [मूसा] (एनान्) इनको (तृणेढु) चूर-चूर कर डाले ॥ ११ ॥

साध्या एकं जालदण्डमुद्यत्य यन्त्योजसा ।
रुद्रा एकं वसव एकमादित्यैरेक उद्यतः ॥१२॥

पदार्थ—(साध्याः) साध्य लोग [परोपकार साधक जन] (एकम्) एक (जालदण्डम्) जाल के दण्डे को, (रुद्राः) रुद्र [शत्रुनाशक लोग] (एकम्) एक को (वसवः) वसु लोग [उत्तम पुरुष] (एकम्) एक को (ओजसा) बल से (उद्यत्य) उठाकर (यन्ति) चलते है, (एक) एक (आदित्यैः) पूर्ण विद्या वालो द्वारा (उद्यतः) उठाया गया है ॥ १२ ॥

विश्वे देवा उपरिष्टादुब्जन्तो यन्त्वोजसा ।
मध्येन घ्नन्तो यन्तु सेनामङ्गिरसो महीम् ॥१३॥

पदार्थ—(विश्वे) सब (देवाः) विजय चाहने वाले पुरुष (उपरिष्टात्) ऊपर से (ओजसा) बल के साथ (उब्जन्तः) सीधे होकर (यन्तु) चलें । (अङ्गिरसः) बड़े ज्ञानी लोग (मध्येन) मध्य मे (महीम्) बड़ी (सेनाम्) सेना को (घ्नन्तः) मारते हुए (यन्तु) चलें ॥ १३ ॥

वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः ।
द्विपाच्चतुष्पादिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् ॥१४॥

पदार्थ—(वनस्पतीन्) सेवनीय शास्त्रो के पालन करनेवाले पुरुषो, (वानस्पत्यान्) सेवनीय शास्त्रो के पालन करने वालो के सम्बन्धी पदार्थों, (ओषधीः) अन्न आदि ओषधियो, (उत) और (वीरुधः) जड़ी बूटियो, (द्विपात्) दोपाये और (चतुष्पात्) चौपाये को (इष्णामि) मैं प्राप्त करता हूँ (यथा) जिससे वे सब (अमूम् सेनाम्) उस सेना को (हनन्) मारें ॥ १४ ॥

गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
दृष्टानदृष्टानिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् ॥१५॥

पदार्थ—(गन्धर्वाप्सरसः) गन्धर्वों [पृथिवी के धारण करने वालो] और अप्सराओ [आकाश मे चलने वालो], (सर्पान्) सर्पों [के समान तीव्र दृष्टि वालो] (देवान्) विजय चाहने वालो, (पुण्यजनान्) पुण्यात्मा (पितॄन्) पितरो [महाविद्वानो] (दृष्टान्) देखे हुए और (अदृष्टान्) अनदेखे पदार्थों को (इष्णामि) मैं प्राप्त करता हूँ, (यथा) जिससे वे सब (अमूम् सेनाम्) उस सेना को (हनन्) मारें ॥ १५ ॥

इम उप्ता मृत्युपाशा यानाक्रम्य न मुच्यसे ।
अमुष्या हन्तु सेनाया इदं कूटं सहस्रशः ॥१६॥

पदार्थ—(इमे) ये (मृत्युपाशाः) मृत्यु के जाल (उप्ताः) फैले हैं, (यान्) जिनमे (आक्रम्य) पाँव धरकर [हे शत्रु !] (न मुच्यसे) तू नहीं छूटता है । (इदम्) यह (कूटम्) फन्दा (अमुष्याः सेनायाः) उस सेना का (सहस्रशः) सहस्रो प्रकार से (हन्तु) हनन करे ॥ १६ ॥

घर्मः समिद्धो अग्निनायं होमः सहस्रहः ।
भवश्च पृश्निबाहुश्च शर्व सेनाममूं हतम् ॥१७॥

पदार्थ—(अग्निना) अग्नि द्वारा (समिद्धः) प्रज्वलित (घर्मः) ताप [के समान] (अयम्) यह (होमः) आत्मसमर्पण (सहस्रहः) सहस्र [क्लेश] नाश करने वाला है । (पृश्निबाहुः) भूमि को बाहु पर रखने वाले (भव) हे सुख उत्पन्न करने वाले [प्राण वायु] (च) और (शर्व) क्लेशनाशक [अपान वायु] ! तुम दोनो (अमूम् सेनाम्) उस सेना को (च) निश्चय करके (हतम्) मारो ॥ १७ ॥

मृत्योराषमा पद्यन्तां क्षुधं सेदिं वधं भयम् ।
इन्द्रश्चाक्षुजालाभ्यां शर्व सेनाममूं हतम् ॥१८॥

पदार्थ—[वे लोग] (मृत्योः) मृत्यु के (आषम्) बन्धन, (क्षुधम्) भूख, (सेदिम्) महामारी, (वधम्) वध और (भयम्) भय (आ पद्यन्ताम्) प्राप्त करें । (इन्द्र) हे प्राण वायु ! (च) और (शर्व) हे अपान वायु ! तुम दोनो (अक्षुजालाभ्याम्) बन्धन और जालो से (अमूम् सेनाम्) उस सेना को (हतम्) मारो ॥ १८ ॥

पराजिताः प्र त्रसतामित्रा नुत्ता धावत ब्रह्मणा ।
बृहस्पतिप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ॥१९॥

पदार्थ—(अमित्राः) हे पीड़ा देने वालो ! (पराजिताः) हार मानकर (प्र त्रसत) डर जाओ, (ब्रह्मणा) विद्वान् द्वारा (नुत्ताः) ढकेले हुए तुम (धावत) दौड़ जाओ । (बृहस्पतिप्रणुत्तानाम्) बृहस्पति [वेदो के रक्षक] द्वारा ढकेले हुए (अमीषाम्) उन लोगो मे से (कश्चन) कोई भी (मा मोचि) न छूटे ॥ १९ ॥

अव पद्यन्तामेषामायुधानि मा शकन् प्रतिधामिषुम् ।
अथैषां बहु बिभ्यतामिषवो घ्नन्तु मर्मणि ॥२०॥

पदार्थ—(एषाम्) इन के (आयुधानि) हथियार (अव पद्यन्ताम्) गिर पड़ें, वे लोग (इषुम्) बाण (प्रतिधाम्) रोपने को (मा शकन्) न समर्थ हो । (अथ) और (बहु) बहुत (बिभ्यताम्) डरे हुए (एषाम्) इन लोगो के (इषवः) बाण (मर्मणि) [उनके ही] मर्म स्थान मे (घ्नन्तु) घाव करें ॥ २० ॥

सं क्रोशतामेनान् द्यावापृथिवी समन्तरिक्षं सह देवताभिः । मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् ॥२१॥

पदार्थ—(द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी (एनान्) इनको (सम्) बल से (क्रोशताम्) पुकारें, (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष लोक (देवताभिः सह) सब लोको के साथ (सम्) बल से [पुकारे] । वे लोग (मा) न तो (ज्ञातारम्) जानकार पुरुष को और (मा) न (प्रतिष्ठाम्) प्रतिष्ठा [आश्रय वा आदर] (विदन्त) पावें, और (मिथः) आपस मे (विघ्नानाः) मारते हुए (मृत्युम्) मृत्यु (उप यन्तु) पावें ॥ २१ ॥

दिशश्चतस्रोऽश्वतर्यो देवरथस्य पुरोडाशाः शफा अन्तरिक्षमुद्धिः । द्यावापृथिवी पक्षसी ऋतवोऽभीशवोऽन्तर्देशाः किंकरा वाक् परिरथ्यम् ॥२२॥

पदार्थ—(देवरथस्य) विजय चाहने वालो के रथ की (चतस्रः) चारों (दिशः) दिशायें (अश्वतर्यः) खच्चरी [हैं], (पुरोडाशाः) पूरी पूए (शफाः) खुर, (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (उद्धिः) शरीर [बैठक] । (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी (पक्षसी) दोनो पक्खे, (ऋतवः) ऋतुएँ (अभीशवः) बागडोरें, (अन्तर्देशाः) अन्तर्दिशाएँ (किंकराः) सेवक लोग, (वाक्) वाणी (परिरथ्यम्) चक्र की पुट्ठी [वा हाल] है ॥ २२ ॥

संवत्सरो रथः परिवत्सरो रथोपस्थो विराडीषाग्नी रथमुखम् ।
इन्द्रः सव्यष्ठाश्चन्द्रमाः सारथिः ॥२३॥

पदार्थ—(संवत्सर) यथाविधि निवास करने वाला काल, (रथ) रथ, (परिवत्सर.) सब ओर से निवास करने वाला अवकाश (रथोपस्थः) रथ की बैठक, (विराट्) विराट् [विविध प्रकाशमान सृष्टि] (ईषा) जुए का दण्डा, (अग्निः) अग्नि (रथमुखम्) रथ का मुख [अग्रभाग]। (इन्द्र) सूर्य (सव्यष्ठाः) बाईं ओर बैठने वाला [सारथी], (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (सारथिः) [दूसरा] सारथी [है] ॥ २३ ॥

इतो जयेतो वि जय सं जय जय स्वाहा ।
इमे जयन्तु परामी जयन्तां स्वाहैभ्यो दुराहामीभ्यः ।
नीललोहितेनामूनभ्यवतनोमि ॥२४॥

पदार्थ—(इत.) यहाँ (जय) जीत, (इत) यहाँ (विजय) विजय कर, (सम् जय) पूरा पूरा जीत, (जय) जीत, (स्वाहा) यह सुवाणी है। (इमे) ये लोग (जयन्तु) जीतें, (अमी) वे लोग (परा जयन्ताम्) हार जावें, (एभ्यः) इन लोगों के लिये (स्वाहा) सुवाणी, (अमीभ्यः) उन लोगों के लिये (दुराहा) दुर्वाणी [हो]। (नीललोहितेन) नीलो अर्थात् निधियों की उत्पत्ति से (अमून्) उन लोगों को (अभ्यवतनोमि) गिरा कर फैलाता हूँ ॥ २४ ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

卐

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ९ 卐

१—२६ अथर्वा । कश्यप, सर्वे ऋषय, छन्दांसि च, विराट् । त्रिष्टुप्, २ पंक्ति, ३ आस्तारपंक्ति, ४-५, २३, २५, २६ अनुष्टुप्, ८, ११-१२, २२ जगती, ९ भुरिक्, १४ चतुष्पदातिजगती ।

कुतस्तौ जातौ कतमः सो अर्धः कस्माल्लोकात् कतमस्याः पृथिव्याः ।
वत्सौ विराजः सलिलादुदैतां तौ त्वा पृच्छामि कतरेण दुग्धा ॥१॥

पदार्थ—(कुत) कहाँ से (तौ) वे दोनों [ईश्वर और जीव] (जातौ) प्रकट हुए हैं, (कतम.) [बहुतों में से] कौन सा (स) वह (अर्धः) ऋद्धि वाला है। (कस्मात् लोकात्) कौन से लोक से और (कतमस्याः) [बहुतसियों में से] कौन सी (पृथिव्याः) पृथिवी से (विराजः) विविध ऐश्वर्य वाली [ईश्वर शक्ति, सूक्ष्म प्रकृति] के (वत्सौ) बताने वाले (सलिलात्) व्याप्ति वाले [समुद्र रूप अगम्य दशा] से (उत् ऐताम्) वे दोनों उदय हुए हैं, (तौ) उन दोनों को (त्वा) तुझ से (पृच्छामि) मैं पूछता हूँ, वह [विराट्] (कतरेण) [दो के बीच] किस द्वारा (दुग्धा) पूर्ण की गई है ॥ १ ॥

यो अक्रन्दयत् सलिलं महित्वा योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः ।
वत्सः कामदुघो विराजः स गुहा चक्रे तन्वः पराचैः ॥२॥

पदार्थ—(त्रिभुजम्) तीन भुजा वाला, [ऊँचे नीचे और मध्यलोकरूप] (योनिम्) घर (कृत्वा) बनाकर (यः शयान.) जिस सोते हुए ने (महित्वा) अपनी महिमा से (सलिलम्) व्याप्ति वाले [अगम्य देश] को (अक्रन्दयत्) पुकारा। (सः) उस (कामदुघः) कामनापूरक, (वत्सः) व्यापक [परमेश्वर] ने (विराजः) विविध ईश्वरी [प्रकृति] की (गुहा) गुहा में [अपने] (तन्वः) विस्तारों को (पराचैः) दूर दूर तक (चक्रे) किया ॥ २ ॥

यानि त्रीणि बृहन्ति येषां चतुर्थं वियुनक्ति वाचम् । ब्रह्मैनद् विद्यात्
तपसा विपश्चिद् यस्मिन्नेकं युज्यते यस्मिन्नेकम् ॥३॥

पदार्थ—(यानि) जो (त्रीणि) तीन [सत्त्व, रज और तम] (बृहन्ति) बड़े-बड़े हैं, (येषाम्) जिन में (चतुर्थम्) चौथा [ब्रह्म] (वाचम्) वाणी (वियुनक्ति) बिलगाता है। (विपश्चित्) बुद्धिमान् (ब्रह्मा) ब्रह्मा [वेदवेत्ता ब्राह्मण] (एनत्) इस [ब्रह्म] को (तपसा) तप से (विद्यात्) जाने, (यस्मिन्) जिस [तप] में (एकम्) एक [ब्रह्म] (यस्मिन्) जिस [तप] में (एकम्) एक [ब्रह्म] (युज्यते) ध्यान किया जाता है ॥ ३ ॥

बृहतः परि सामानि षष्ठात् पञ्चाधि निर्मिता ।
बृहद् बृहत्या निर्मितं कुतोऽधि बृहती मिता ॥४॥

पदार्थ—(षष्ठात्) छठे (बृहतः) बड़े [ब्रह्म] से (पञ्च) पाँच (सामानि) कर्म समाप्त करने वाले [पाँच पृथिवी आदि भूत] (परि) सब ओर (अधि) अधिकारपूर्वक (निर्मिता) बने हैं। (बृहत्) बड़ा [जगत्] (बृहत्याः) बड़ी [विराट्, प्रकृति] से (निर्मितम्) बना है, (कुत) कहाँ से (अधि) फिर (बृहती) बड़ी [प्रकृति] (मिता) बनी है ॥ ४ ॥

बृहती परि मात्राया मातुर्मात्राधि निर्मिता ।
माया ह जज्ञे मायाया मायाया मातली परि ॥५॥

पदार्थ—(बृहती) स्थूल सृष्टि (मात्रायाः) तन्मात्रा से (परि) सब प्रकार और (मातु) निर्माता [परमेश्वर] से (अधि) ही (मात्रा) तन्मात्रा (निर्मिता) बनी है। (माया) बुद्धि (ह) निश्चय करके (मायायाः) बुद्धिरूप परमेश्वर से और (मायायाः) प्रज्ञारूप परमेश्वर से (मातली) इन्द्र [जीव] का रथवान् [अहंकार वा मन] (परि) सब प्रकार (जज्ञे) उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥

वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौर्यावद् रोदसी विबबाधे अग्निः ।
ततः षष्ठादामुतो यन्ति स्तोमा उदितो यन्त्यभि षष्ठमह्नः ॥६॥

पदार्थ—(उपरि) ऊपर विराजमान (वैश्वानरस्य) सब नरों के हितकारी [परमेश्वर] की (प्रतिमा) प्रतिमा [आकृति समान] (द्यौः) आकाश है, (यावत्) जितना कि (अग्नि.) अग्नि [सर्वव्यापक परमेश्वर] ने (रोदसी) सूर्य और पृथिवी लोक को (विबबाधे) अलग-अलग रोका है। (तत.) उसी के कारण (अमुत·) उस (षष्ठात्) छठे [परमेश्वर म० ४] से (अह्न) दिन [प्रकाश] के (स्तोमा) स्तुति योग्य गुण [सृष्टि काल में] (आ यन्ति) आते हैं, और (इत) यहाँ से (षष्ठम् अभि) छठे [परमेश्वर] की ओर [प्रलय समय] (उत् यन्ति) ऊपर जाते हैं ॥ ६ ॥

षट् त्वा पृच्छाम ऋषयः कश्यपेमे त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यं च ।
विराजमाहुर्ब्रह्मणः पितरं तां नो वि धेहि यतिधा सखिभ्यः ॥७॥

पदार्थ—(कश्यप) हे दृष्टिमान् विद्वन् ! (त्वम्) तू ने (हि) ही (युक्तम्) ध्यान किये हुए (च) और (योग्यम्) ध्यान योग्य [पदार्थ] को (युयुक्षे) ध्यान किया है, (त्वा) तुझ से (पृच्छाम) हम पूछें, (इमे) ये (षट्) छह (ऋषय.) ऋषि अर्थात् इन्द्रियाँ [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक और मन] (ब्रह्मण.) ब्रह्म की (विराजम्) विविधेश्वरी शक्ति को (पितरम् अधिसरम्) निश्चय करके (आहु.) बताते हैं, (ताम्) उसे (सखिभ्य· न.) हम मित्रों को, (यतिधा) जितने प्रकार हो, (वि धेहि) विधान कर ॥ ७ ॥

यां प्रच्युतामनु यज्ञाः प्रच्यवन्त उपतिष्ठन्त उपतिष्ठमानाम् ।
यस्या व्रते प्रसवे यक्षमेजति सा विराडृषयः परमे व्योमन् ॥८॥

पदार्थ—(याम् प्रच्युताम् अनु) जिस आगे बढ़ी हुई के पीछे (यज्ञा.) यज्ञ [संयोग वियोग व्यवहार, सृष्टि समय में] (प्रच्यवन्ते) आगे बढ़ते हैं, (उपतिष्ठमानाम्) ठहरती हुई के [पीछे, प्रलय में] (उपतिष्ठन्ते) ठहर जाते हैं। (यस्याः) जिस [शक्ति] के (व्रते) नियम और (प्रसवे) बड़े ऐश्वर्य में (यक्षम्) संगतियोग्य जगत् (एजति) चेष्टा करता है, (ऋषय) हे ऋषि लोगो ! (सा) वह (विराट्) विविधेश्वरी (परमे) सर्वोत्कृष्ट (व्योमन्) विविध रक्षक परमेश्वर में है ॥८॥

अप्राणैति प्राणेन प्राणतीनां विराट् स्वराजमभ्येति पश्चात् ।
विश्वं मृशन्तीमभिरूपां विराजं पश्यन्ति त्वे न त्वे पश्यन्त्येनाम् ॥९॥

पदार्थ—(अप्राणा) न श्वास लेने वाली (विराट्) विराट् [विविधेश्वरी] (प्राणतीनाम्) श्वास लेने वाली [प्रजाओं] के (प्राणेन) श्वास के साथ (एति) चलती है और (पश्चात्) फिर (स्वराजम् अभि) स्वराट् [स्वयं राजा, परमेश्वर] की ओर (एति) जाती है। (विश्वम्) जगत् को (मृशन्तीम्) छूती हुई (अभिरूपाम्) मनोहर (विराजम्) विराट् [महेश्वरी] को (त्वे) कोई-कोई (पश्यन्ति) देखते हैं और (त्वे) कोई-कोई (एनाम्) इस [महेश्वरी को] (न) नहीं (पश्यन्ति) देखते हैं ॥९॥

को विराजो मिथुनत्वं प्र वेद क ऋतून् क उ कल्पमस्याः । क्रमान्
को अस्याः कतिधा विदुग्धान् को अस्या धाम कतिधा व्युष्टीः ॥१०॥

पदार्थ—(कः) कौन पुरुष (विराजः) विराट् की [विविधेश्वरी ईश्वर शक्ति की] (मिथुनत्वम्) बुद्धिमत्ता (प्र) भले प्रकार (वेद) जानता है, (कः) कौन (अस्याः) इस [विराट्] के (ऋतून्) ऋतुओं [नियत कालों] को, और (कः) कौन (उ) ही (कल्पम्) सामर्थ्य को। (कः) कौन (अस्याः) इसके (कतिधा) कितने ही प्रकार से (विदुग्धान्) पूर्ण किये हुए (क्रमान्) क्रमों [विधानों] को, (कः) कौन (अस्याः) इसके (धाम) घर को और (कतिधा) कितने ही प्रकार की (व्युष्टीः) समृद्धियों को [जानता है] ॥१०॥

इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा ।
महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ॥११॥

पदार्थ—(इयम् एव) यही (सा) वह ईश्वरी, [विराट्, ईश्वर शक्ति] है, (या) जो (प्रथमा) प्रथम (व्यौच्छत्) प्रकाशमान हुई है, और (आसु) इन सब और (इतरासु) दूसरी [सृष्टियों] में (प्रविष्टा) प्रविष्ट होकर (चरति) विचरती है। (अस्याम् अन्तः) इसके भीतर (महान्तः) बड़ी-बड़ी (महिमानः) महिमायें हैं, उस (नवगत्) नवीन-नवीन गति वाली (वधू) प्राप्तियोग्य (जनित्री) जननी ने [अनर्थों को] (जिगाय) जीत लिया है ॥११॥

छन्दःपक्षे उषसा पेपिशाने समानं योनिमनु सं चरेते ।

सूर्यपत्नी सं चरतः प्रजानती केतुमती अजरे भूरिरेतसा ॥१२॥

पदार्थ—(उषसा) उषा [प्रभात बेला] के साथ (पेपिशाने) अत्यन्त सुवर्ण का रूप करती हुई, (छन्दःपक्षे) स्वतन्त्रता का ग्रहण करती हुई दोनों (समानम्) एक (योनिम् अनु) घर [परमेश्वर] के पीछे-पीछे (सम् चरेते) मिलकर चलती हैं। (प्रजानती) [मार्ग] जानती हुई, (केतुमती) झण्डा रखती हुई [जैसे], (अजरे) शीघ्र चलने वाली, (भूरिरेतसा) बड़ी सामर्थ्य वाली, (सूर्यपत्नी) सूर्य की दोनों पत्नियाँ [रात्रि और प्रभात बेलायें] (सम् चरतः) मिलकर विचरती हैं ॥१२॥

ऋतस्य पन्थामनु तिस्र आगुस्त्रयो घर्मा अनु रेत आगुः ।

प्रजामेका जिन्वत्यूर्जमेका राष्ट्रमेका रक्षति देवयूनाम् ॥१३॥

पदार्थ—(तिस्रः) तीन [देवियाँ अर्थात् १—इडा—स्तुतियोग्य भूमि वा नीति, २—सरस्वती—प्रशस्त विज्ञानवाली विद्या वा बुद्धि, ३—और भारती—पोषण करने वाली शक्ति वा विद्या] (ऋतस्य)सत्य शास्त्र के (पन्थाम् अनु) पथ पर (आ अगुः) चलती आई हैं और (त्रयः) तीन (घर्माः) सींचने वाले यज्ञ [अर्थात् देवपूजा, सगतिकरण और दान] (रेतः अनु) वीरता के साथ-साथ (आ अगुः) चलते आये हैं। (एका) एक [इडा] (प्रजाम्) प्रजा को (एका) एक [सरस्वती] (ऊर्जम्) पुरुषार्थ वा अन्न को (जिन्वति) भरपूर करती है, (एका) एक [भारती] (देवयूनाम्) दिव्यगुण प्राप्त करनेवाले [धर्मात्माओं] के (राष्ट्रम्) राज्य की (रक्षति) रक्षा करती है ॥१३॥

अग्नीषोमावदधुर्या तुरीयासीद् यज्ञस्य पक्षावृषयः कल्पयन्तः । गायत्रीं त्रिष्टुभं जगतीमनुष्टुभं बृहदर्कीं यजमानाय स्वराभरन्तीम् ॥१४॥

पदार्थ—(यज्ञस्य) यज्ञ [रसों के संयोग-वियोग] के (पक्षौ) ग्रहण करने वाले (अग्नीषोमौ) सूर्य और चन्द्रमा [के समान] (ऋषयः) ऋषि लोगों ने, (या) जो [वेद वाणी] (तुरीया) वेगवती वा ब्रह्म की [जो सत्त्व, रज और तम तीन गुणों से परे चौथा है] (आसीत्) थी, (यजमानाय) यजमान के लिये (स्वः) मोक्ष सुख (आभरन्तीम्) भर देने वाली [उस] (गायत्रीम्) गाने योग्य, (त्रिष्टुभम्) [कर्म, उपासना और ज्ञान इन] तीन से पूजी गयी, (जगतीम्) प्राप्ति योग्य, (बृहदर्कीम्) बड़े सत्कार वाली (अनुष्टुभम्) निरन्तर स्तुतियोग्य [विराट् वा वेदवाणी] को (कल्पयन्तः) समर्थन करते हुए (अदधुः) धारण किया है ॥१४॥

पञ्च व्युष्टीरनु पञ्च दोहा गां पञ्चनाम्नीमृतवोऽनु पञ्च ।

पञ्च दिशः पञ्चदशेन क्लृप्तास्ता एकमूर्ध्नीरभि लोकमेकम् ॥१५॥

पदार्थ—(पञ्च) पाँच (व्युष्टीः) विविध प्रकार वास करने वाली [तन्मात्राओं] के (अनु) साथ साथ (पञ्च) पाँच [पृथिवी आदि पाँच भूत सम्बन्धी] (दोहाः) पूर्तिवाले पदार्थ हैं, (पञ्चनाम्नीम्) पूर्व आदि पाँच नाम वाली, यद्वा पाँच ओर झुकने वाली (गाम् अनु) दिशा के साथ-साथ (पञ्च) पाँच (ऋतवः) ऋतुएँ हैं [अर्थात् शरद्, हेमन्त शिशिर सहित वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा]। (पञ्च) पाँच [पूर्वादि चार और एक ऊपर वाली (दिशः) दिशायें (पञ्चदशेन) [पाँच प्राण अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान + पाँच इन्द्रिय अर्थात् श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना, और घ्राण + पाँच भूत अर्थात भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन] पन्द्रह पदार्थ वाले जीवात्मा के साथ (क्लृप्ताः) समर्थ की गई हैं (ताः) वे (एकमूर्ध्नीः) एक [परमेश्वर रूप] मस्तक वाली [दिशायें] (एकम्) एक (लोकम् अभि) देश की ओर [वर्तमान हैं] ॥१५॥

षड् जाता भूता प्रथमजर्तस्य षडु सामानि षडहं वहन्ति ।

षड्योगं सीरमनु सामसाम षडाहुर्द्यावापृथिवीः षडुर्वीः ॥१६॥

पदार्थ— (ऋतस्य) सत्यस्वरूप परमेश्वर के [सामर्थ्य से] (प्रथमजा) विस्तार के साथ [वा पहिले] उत्पन्न (षट् भूता) छह इन्द्रियाँ [स्थूल त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक और मन] (जाताः) प्रकट, हुई, (षट् उ) छह ही (सामानि) कर्म समाप्त करने वाली [इन्द्रियाँ] (षडहम्) छह [इन्द्रियों] से व्यापित वाले [देह] को (वहन्ति) ले चलती हैं। (षड्योगम्) छह [स्पर्श, दृष्टि, श्रुति, रसना, घ्राण और मनन सूक्ष्म शक्तियाँ] से संयोग वाले (सीरम् अनु) बन्धन के साथ-साथ (साम साम) प्रत्येक कर्म समाप्त करने वाली [स्थूल इन्द्रिय हैं], [लोग] (षट् षट्) छह छह [स्थूल इन्द्रियों और उनकी सूक्ष्म शक्तियों से सम्बन्ध वाले] (उर्वीः) विस्तृत (द्यावापृथिवीः) प्रकाशमान और अप्रकाशमान लोकों को (आहुः) बताते हैं ॥१६॥

षडाहुः शीतान् षडु मास उष्णानृतुं नो ब्रूत यतमोऽतिरिक्तः ।

सप्त सुपर्णाः कवयो नि षेदुः सप्त छन्दांस्यनु सप्त दीक्षाः ॥१७॥

पदार्थ—वे [ईश्वर नियम] (षट्) छह (शीतान्) शीत और (षट् उ) छह ही (उष्णान्) उष्ण (मासः) महीने (आहुः) बताते हैं, (ऋतुम्) [वह] ऋतु (नः) हमें (ब्रूत) बताओ (यतमः) जो कोई (अतिरिक्तः) भिन्न है। (सप्त) सात [वा सात वर्ण वाली] (सुपर्णाः) बड़ी पालने वाली (कवयः) गतिशील इन्द्रियाँ [वा सूर्य की किरणें] (सप्त) सात (छन्दांसि अनु) ढकनों [मस्तक के छिद्रों] के साथ (सप्त) सात (दीक्षाः) संस्कारों में (नि षेदुः) बैठी हैं ॥१७॥

सप्त होमाः समिधो ह सप्त मधूनि सप्तर्तवो ह सप्त ।

सप्ताज्यानि परि भूतमायन् ताः सप्तगृध्रा इति शुश्रुमा वयम् ॥१८॥

पदार्थ—(सप्त) सात (होमाः) [विषयों का] ग्रहण करने वाली [इन्द्रियाँ, त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि], (सप्त) सात (ह) ही (समिधः) विषयप्रकाश करने वाली [इन्द्रियों की सूक्ष्म शक्तियाँ], (सप्त) सात (मधूनि) ज्ञान [विषय] और (सप्त) सात (ह) ही (ऋतवः) गति [प्रवृत्ति] हैं। [वे ही] (सप्त) सात (आज्यानि) विषयों के प्रकाशसाधन (भूतम् परि) प्रत्येक प्राणी के साथ (ताः) उन [प्रसिद्ध] (सप्तगृध्राः) सात इन्द्रियों से उत्पन्न हुई वासनाओं को (आयन्) प्राप्त हुए हैं, (इति) यह (वयम्) हम ने (शुश्रुम) सुना है ॥१८॥

सप्त छन्दांसि चतुरुत्तराण्यन्यो अन्यस्मिन्नध्यार्पितानि ।

कथं स्तोमाः प्रति तिष्ठन्ति तेषु तानि स्तोमेषु कथमार्पितानि ॥१९॥

पदार्थ—(चतुरुत्तराणि) [धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष] चतुर्वर्ग से अधिक उत्तम किये गये (सप्त) सात (छन्दांसि) ढकने [मस्तक के सात छिद्र] (अन्यः अन्यस्मिन्) एक-दूसरे में (अधि) यथावत् (आर्पितानि) यथावत् जड़े हुए हैं। (कथम्) कैसे (स्तोमाः) स्तुतियोग्य गुण (तेषु) उन [मस्तक के गोलकों] में (प्रति तिष्ठन्ति) दृढ़ता से स्थित हैं (तानि) वे [मस्तक के छिद्र] (स्तोमेषु) स्तुतियोग्य गुणों में (कथम्) कैसे (आर्पितानि) ठीक ठीक जमे हुए हैं ॥१९॥

कथं गायत्री त्रिवृतं व्याप कथं त्रिष्टुप् पञ्चदशेन कल्पते ।

त्रयस्त्रिंशेन जगती कथमनुष्टुप् कथमेकविंशः ॥२०॥

पदार्थ— (गायत्री) गानेयोग्य [वह विराट्] (त्रिवृतम्) [सत्त्व, रज और तमोगुण—इन] तीनों के साथ वर्तमान [जीवात्मा] को (कथम्) कैसे (विआप) व्यापी है, (त्रिष्टुप्) [कर्म, उपासना और ज्ञान इन] तीनों द्वारा पूजी गयी [मुक्ति] (पञ्चदशेन) [म० १४। पाँच प्राण, पाँच इन्द्रिय, और पञ्च भूत—इन] पन्द्रह पदार्थ वाले [जीवात्मा] के साथ (कथम्) कैसे (कल्पते) समर्थ होती है। (त्रयस्त्रिंशेन) [८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, १ इन्द्र और १ प्रजापति--इन] तैंतीस [देवताओं] को अपने में रखनेवाले [परमात्मा] के साथ (कथम्) कैसे (जगती) प्राप्तियोग्य [प्रकृति, सृष्टि] और (कथम्) कैसे (अनुष्टुप्) निरन्तर स्तुतियोग्य [वेदवाणी] और (एकविंशः) [५ महाभूत, ५ प्राण, ५ ज्ञान इन्द्रिय, ५ कर्म इन्द्रिय और १ अन्तःकरण इन] इक्कीस पदार्थ वाला [जीवात्मा] [समर्थ होता है] ॥२०॥

अष्ट जाता भूता प्रथमजर्तस्याष्टेन्द्रर्त्विजो दैव्या ये ।

अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्राष्टमीं रात्रिमभि हव्यमेति ॥२१॥

पदार्थ—(अष्ट) आठ [महत्तत्त्व, अहंकार, पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश और मन से सम्बन्ध वाले] (जाताः) उत्पन्न (भूता) जीव (प्रथमजाः) आदि-कारण [प्रकृति] से प्रकट हैं, (ये) जो (अष्ट) आठ [चार दिशा और चार विदिशा में स्थित] (इन्द्र) हे जीव ! (ऋतस्य) सत्य नियम के (ऋत्विजः) सब ऋतुओं में देने वाले (दैव्याः) दिव्य गुणवाले [पदार्थ हैं]। (अष्टयोनिः) [यम, नियम आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, इन] आठ से संयोग वाली, (अष्टपुत्रा) [अणिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, महिमा, ईशित्व, वशित्व और कामावसायिता, इन आठ ऐश्वर्य रूप] आठ पुत्रवाली (अदितिः) अखण्ड [विराट ईश्वरशक्ति] (अष्टमीम्) व्याप्त [जगत् को मापने वाली (रात्रिम् अभि) रात्रि [विश्राम देनेवाली मुक्ति] में (हव्यम्) स्वीकारयोग्य [सुख] [मनुष्य को] (एति) पहुँचाती है ॥२१॥

इत्थं श्रेयो मन्यमानेदमागमं युष्माकं सख्ये अहमस्मि शेवा ।

समानजन्मा क्रतुरस्ति वः शिवः स वः सर्वाः सं चरति प्रजानन् ॥२२॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (इत्थम्) इस प्रकार (श्रेयः) आनन्द (मन्यमाना) मानती हुई (अहम्) मैं [विराट्] (इदम्) इस [चराचर जगत्] में (आ अगमम्) आयी हूँ, और (युष्माकम्) तुम्हारी (सख्ये) मित्रता में (शेवा) सुख देने वाली (अस्मि) हूँ। (समानजन्मा) [कर्म फल के साथ] एक जन्मवाला (वः क्रतुः) तुम्हारा बोध (शिवः) मंगलकारी (अस्ति) है, (सः) वह [बोध] (वः) तुम्हारी (सर्वाः) सब [आशाएँ] (प्रजानन्) समझता हुआ (संचरति) संचार करता है ॥२२॥

अष्टेन्द्रस्य षड् यमस्य ऋषीणां सप्त सप्तधा ।
अपो मनुष्या३नोषधीस्ताँ उ पञ्चानु सेचिरे ॥२३॥

पदार्थ—(यमस्य) नियमवान् (इन्द्रस्य) जीव की (अष्ट) आठ [चार दिशा और चार विदिशाएँ], (षड्) छह [वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, शीत और शिशिर ऋतुएँ] और (ऋषीणाम्) इन्द्रियों के (सप्त) सात [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] (सप्तधा) [उनकी शक्तियों सहित] सात प्रकार से [हितकारक हैं] । (अपः) कर्म और (ओषधीः) ओषधियों [अन्न आदि वस्तुओं] ने (तान्) उन [विद्वान्] (मनुष्यान्) मनुष्यों को (उ) ही (पञ्च अनु) [पृथिवी आदि] पाँच भूतों के पीछे-पीछे (सेचिरे) सींचा है ॥२३॥

केवलीन्द्राय दुदुहे हि गृष्टिर्वशं पीयूषं प्रथमं दुहाना ।
अथातर्पयच्चतुरश्चतुर्धा देवान् मनुष्या३ँ असुरानुत ऋषीन् ॥२४॥

पदार्थ—(प्रथमम्) पहिले से (दुहाना) पूर्ति करती हुई (केवली) अकेली (गृष्टिः) ग्रहण योग्य [विराट्] ने (हि) ही (इन्द्राय) जीव के लिये (वशम्) प्रभुता और (पीयूषम्) अमृत [अन्न, दुग्ध आदि] (दुदुहे) पूर्ण कर दिया है । (अथ) तब उस [विराट्] ने (चतुर्धा) चार प्रकार से [धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष द्वारा] (चतुरः) चारों (देवान्) विजय चाहने वालों, (मनुष्यान्) मननशीलों, (असुरान्) बुद्धिमानों (उत) और (ऋषीन्) ऋषियों [धर्म के साक्षात् करने वालों] को (अतर्पयत्) तृप्त किया है ॥२४॥

को नु गौः क एकऋषिः किमु धाम का आशिषः ।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुः कतमो नु सः ॥२५॥

पदार्थ—(कः नु) कौन-सा (गौः) [लोगों का] चलाने वाला, (कः) कौन (एकऋषिः) अकेला ऋषि [सम्मानदर्शक], (उ) और (किम्) कौन (धाम) ज्योति स्वरूप है, और (काः) कौनसी (आशिषः) हित प्रार्थनाएँ हैं । (पृथिव्याम्) पृथिवी पर [जो] (एकवृत्) अकेला वर्तमान (यक्षम्) पूजनीय [ब्रह्म] है, (सः) वह (एकर्तुः) एक ऋतु वाला [एकरस वर्तमान] (कतमः नु) कौन सा [पुरुष है] ॥२५॥

एको गौरेक एकऋषिरेकं धामैकधाशिषः ।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुर्नाति रिच्यते ॥२६॥

पदार्थ—(एकः) एक [सर्वव्यापक परमेश्वर] (गौः) [लोकों का] चलाने वाला, (एकः) एक (एकऋषिः) अकेला ऋषि [सन्मार्गदर्शक] (एकम्) एक [ब्रह्म] (धाम) ज्योति स्वरूप है, (एकधा) एक प्रकार से (आशिषः) हित प्रार्थनाएँ हैं । (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (एकवृत्) अकेला वर्तमान (यक्षम्) पूजनीय [ब्रह्म], (एकर्तुः) एक ऋतुवाला [एकरस वर्तमान परमात्मा] [किसी से] (न अतिरिच्यते) नहीं जीता जाता है ॥२६॥

卐 सूक्तम् १० 卐 (१)

१-१३ अथर्वाचार्य । विराट् । (षट्पर्याया) । १-१३, १ त्रिपदार्ची पङ्क्ति, २-७ याजुषी जगती, ३-६ साम्न्यनुष्टुप्, ५ आर्च्यनुष्टुप्, ७,१३ विराड् गायत्री, ११ साम्नी बृहती ।

विराड् वा इदमग्र आसीत् तस्या जातायाः सर्वमबिभेदियमेवेदं भविष्यतीति ॥१॥

पदार्थ—(विराट्) विराट् [विविध ईश्वरी, ईश्वरशक्ति] (वै) ही (अग्रे) पहिले ही पहिले (इदम्) यह [जगत्] (आसीत्) थी, (तस्याः जातायाः) उस प्रकट हुई से (सर्वम्) सब का सब (अबिभेत्) डरने लगा, "(इति) बस, (इयम् एव) यही (इदम्) यह [जगत्] (भविष्यति) हो जायगी" ॥१॥

सोदक्रामत् सा गार्हपत्ये न्यक्रामत् ॥२॥

पदार्थ—(सा) वह [विराट्] (उत् अक्रामत्) ऊपर चढ़ी, (सा) वह (गार्हपत्ये) गृहपतियों से संयुक्त कर्म में (नि अक्रामत्) नीचे उतरी ॥२॥

गृहमेधी गृहपतिर्भवति य एवं वेद ॥३॥

पदार्थ—वह [पुरुष] (गृहमेधी) घर के काम समझने वाला (गृहपतिः) गृहपति (भवति) होता है, (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है ॥३॥

सोदक्रामत् साहवनीये न्यक्रामत् ॥४॥

पदार्थ—(सा) वह [विराट्] (उत् अक्रामत्) ऊपर चढ़ी, (सा) वह (आहवनीये) यथायोग्य व्यवहार में (नि अक्रामत्) नीचे उतरी ॥४॥

यन्त्यस्य देवा देवहूतिं प्रियो देवानां भवति य एवं वेद ॥५॥

पदार्थ—(अस्य) उस [पुरुष] के (देवहूतिम्) विद्वानों के लिये बुलावे में (देवाः) विद्वान् लोग (यन्ति) जाते हैं, वह (देवानाम्) विद्वानों का (प्रियः) प्रिय (भवति) होता है, (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है ॥५॥

सोदक्रामत् सा दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत् ॥६॥

पदार्थ—(सा) वह [विराट्] (उत् अक्रामत्) ऊपर चढ़ी, (सा) वह [सूर्य वा यज्ञ की] (दक्षिणाग्नौ) बढ़ी हुई अग्नि में (नि अक्रामत्) नीचे उतरी ॥६॥

यज्ञर्तो दक्षिणीयो वासतेयो भवति य एवं वेद ॥७॥

पदार्थ—वह [पुरुष] (यज्ञर्तः) यज्ञ में पूजा गया, (दक्षिणीयः) दक्षिणा योग्य और (वासतेयः) बसती योग्य (भवति) होता है, (यः एवं वेद) जो ऐसा जानता है ॥७॥

सोदक्रामत् सा सभायां न्यक्रामत् ॥८॥

पदार्थ—(सा) वह [विराट्] (उत् अक्रामत्) ऊपर चढ़ी, (सा) वह (सभायाम्) सभा [विद्वानों के समाज] में (नि अक्रामत्) नीचे उतरी ॥८॥

यन्त्यस्य सभां सभ्यो भवति य एवं वेद ॥९॥

पदार्थ—(अस्य) उसकी (सभाम्) सभा में (यन्ति) जाते हैं, वह (सभ्यः) सभ्य [सभा में चतुर] (भवति) होता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥९॥

सोदक्रामत् सा समितौ न्यक्रामत् ॥१०॥

पदार्थ—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (समितौ) संग्राम में (नि अक्रामत्) नीचे उतरी ॥१०॥

यन्त्यस्य समितिं सामित्यो भवति य एवं वेद ॥११॥

पदार्थ—[लोग] (अस्य) उसके (समितिम्) संग्राम में (यन्ति) जाते हैं, वह (सामित्यः) संग्राम योग्य [शूर] (भवति) होता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥११॥

सोदक्रामत् सामन्त्रणे न्यक्रामत् ॥१२॥

पदार्थ—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (आमन्त्रणे) अभिनन्दन स्थान में (नि अक्रामत्) नीचे उतरी ॥१२॥

यन्त्यस्यामन्त्रणमामन्त्रणीयो भवति य एवं वेद ॥१३॥

पदार्थ—[लोग] (अस्य) उसके (आमन्त्रणम्) अभिनन्दन में (यन्ति) जाते हैं, वह (आमन्त्रणीयः) अभिनन्दनयोग्य (भवति) होता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥१३॥

卐 सूक्तम् १० 卐 (२)

(१-१०) १ त्रिपदा साम्नी अनुष्टुप्, २ उष्णिग्गर्भा चतुष्पदोपरिष्टाद् विराड् बृहती, ३ एकपदा याजुषी गायत्री, ४ एकपदा साम्नी पङ्क्ति, ५ विराड् गायत्री, ६ आर्च्यनुष्टुप्, ७ साम्नी पङ्क्ति, ८ आसुरी गायत्री, ९ साम्नी अनुष्टुप्, १० साम्नी बृहती ।

सोदक्रामत् सान्तरिक्षे चतुर्धा विक्रान्तातिष्ठत् ॥१॥

पदार्थ—(सा) वह [विराट्] (उत् अक्रामत्) ऊपर चढ़ी, (सा) वह (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष के बीच (चतुर्धा) चार प्रकार [चारों दिशाओं में] (विक्रान्ता) विक्रम [पराक्रम] करती हुई (अतिष्ठत्) ठहरी ॥१॥

तां देवमनुष्या अब्रुवन्नियमेव तद् वेद यदुभय उपजीवेमेमामुप ह्वयामहा इति ॥२॥

पदार्थ—(ताम्) उस से (देवमनुष्याः) सब दिव्य लोक और मनुष्य (अब्रुवन्) बोले, "(इयम्) यह [विराट्] (एव) ही (तत्) वह [कर्म] (वेद) जानती है, (उभये) हम दोनों दल (यत् उपजीवेम) जिसके सहारे जीवें, (इति) बस (इमाम्) इसे (उपह्वयामहै) हम पास से पुकारें" ॥२॥

तामुपाह्वयन्त ॥३॥

पदार्थ—(ताम्) उसे (उप) पास से (आ अह्वयन्त) उन्होंने बुलाया ॥३॥

ऊर्ज एहि स्वध एहि सूनृत एहीरावत्येहीति ॥४॥

पदार्थ—"(ऊर्जे) हे बलवती ! (आ इहि) तू आ (स्वधे) हे अन्न रखनेवाली ! (आ इहि) तू आ, (सूनृते) हे प्रिय सत्य वाणी वाली ! (आ इहि) तू आ, (इरावति) हे अन्नवाली ! (आ इहि) तू आ, (इति) बस" ॥४॥

तस्या इन्द्रो वत्स आसीद् गायत्र्यभिधान्यभ्रमूधः ॥५॥

पदार्थ—(तस्याः) उस [विराट्] का (इन्द्र) जीव (वत्स) उपदेष्टा, (गायत्री) गानयोग्य वेदविद्या (अभिधानी) कथन शक्ति (अभ्रम्) मेघ (ऊधः) सेचन सामर्थ्य (आसीत्) हुआ ॥५॥

बृहच्च रथंतरं च द्वौ स्तनावास्तां यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च द्वौ ॥६॥

पदार्थ—(बृहत्) बड़ा [आकाश] (च च) और (रथन्तरम्) रथन्तर [रमणीय पदार्थों से पार लगाने वाला, जगत्] (द्वौ) दो, (च) और (यज्ञायज्ञियम्) सब यज्ञों का हितकारी [वेदज्ञान] (च) और (वामदेव्यम्) वामदेव [मनोहर परमात्मा] से जताया गया [भूतपञ्चक] (द्वौ) दो (स्तनौ) स्तन [थन के समान] (आस्ताम्) हुए ॥६॥

ओषधीरेव रथंतरेण देवा अदुहन् व्यचो बृहता ।७॥

अपो वामदेव्येन यज्ञं यज्ञायज्ञियेन ॥८॥

पदार्थ—(देवाः) गतिमान् लोकों ने (एव) अवश्य (ओषधिः) अन्न आदि ओषधियों को (रथन्तरेण) रथन्तर [रमणीय पदार्थों से पार लगाने वाले जगत्] द्वारा, (व्यचः) विस्तार को (बृहता) बृहत् [बड़े आकाश] द्वारा, (अपः) प्रजाओं को (वामदेव्येन) वामदेव [मनोहर परमात्मा] से जताये गये [भूतपञ्चक] द्वारा और (यज्ञम्) यज्ञ [संयोग वियोग आदि] को (यज्ञायज्ञियेन) सब यज्ञों के हितकारी [वेदज्ञान] द्वारा (अदुहन्) दुहा है ॥ ७, ८ ॥

ओषधीरेवास्मै रथंतरं दुहे व्यचो बृहत् ॥९॥

अपो वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं य एवं वेद ॥१०॥

पदार्थ—(रथन्तरम्) रथन्तर [रमणीय पदार्थों से पार लगाने वाला, जगत्] (एव) ही (व्यचः) विस्तृत (बृहत्) बृहत् [बड़े आकाश] से (ओषधीः) अन्न आदि ओषधियों को, और (अपः) सब प्रजाओं और (वामदेव्यम्) वामदेव [मनोहर परमात्मा] से जताये गये [पञ्चभूत] से (यज्ञम्) पूजनीय व्यवहार और (यज्ञायज्ञियम्) सब यज्ञों के हितकारी [वेदज्ञान] को (अस्मै) उस [पुरुष] के लिये (दुहे) दोहता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥९,१०॥

卐 सूक्तम् ॥१०॥ (३) 卐

(१-८) १ चतुष्पदा विराडनुष्टुप्, २ आर्ची त्रिष्टुप्, ३, ५, ७ चतुष्पदा प्राजापत्या पङ्क्ति, ४, ६, ८ आर्ची बृहती ।

सोदक्रामत् सा वनस्पतीनागच्छत् तां वनस्पतयोऽघ्नत

सा संवत्सरे समभवत् ॥१॥

पदार्थ—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (वनस्पतीन्) वनस्पतियों [वृक्ष आदि पदार्थों] में (आ अगच्छत्) आई, (ताम्) उसको (वनस्पतयः) वनस्पतियाँ (अघ्नत) प्राप्त हुईं, (सा) वह (संवत्सरे) संवत्सर [वर्ष काल] में (सम् अभवत्) संयुक्त हुई ॥१॥

तस्माद् वनस्पतीनां संवत्सरे वृक्णमपि रोहति

वृश्चतेऽस्याप्रियो भ्रातृव्यो य एवं वेद ॥२॥

पदार्थ—(तस्मात्) इसी लिये (संवत्सरे) वर्ष भर में (वनस्पतीनाम्) वनस्पतियों का (वृक्णम्) खण्डित अङ्ग (अपि रोहति) भर जाता है, (अस्य) उसका (अप्रियः) अप्रिय (भ्रातृव्यः) भ्रातृभाव से रहित [शत्रु, मनोदोष] (वृश्चते) कट जाता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥२॥

सोदक्रामत् सा पितॄनागच्छत् तां पितरोऽघ्नत सा मासि

समभवत् ॥३॥

पदार्थ—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (पितॄन्) ऋतुओं में (आ अगच्छत्) आई, (ताम्) उसको (पितरः) ऋतुएँ (अघ्नत) प्राप्त हुईं, (सा) वह (मासि) महीने में [वा चन्द्रमा में] (सम् अभवत्) संयुक्त हुई ॥३॥

तस्मात् पितृभ्यो मास्युपमास्यं ददति प्र पितृयाणं पन्थां

जानाति य एवं वेद ॥४॥

पदार्थ—(तस्मात्) इसी कारण (पितृभ्यः) ऋतुओं को [वा ऋतुओं से] (मासि) महीने महीने (उपमास्यम्) चन्द्रमा में रहने वाले अमृत को वे [ईश्वर नियम] (ददति) देते हैं, वह (पितृयाणम्) ऋतुओं के चलने योग्य (पन्थाम्) मार्ग को (प्र जानाति) जान लेता है (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥४॥

सोदक्रामत् सा देवानागच्छत् तां देवा अघ्नत

सार्धमासे समभवत् ॥५॥

पदार्थ—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (देवान्) सूर्य की किरणों में (आ अगच्छत्) आई, (ताम्) उसको (देवाः) किरणें (अघ्नत) प्राप्त हुईं, (सा) वह (अर्धमासे) आधे महीने [पखवाड़े] में (सम् अभवत्) संयुक्त हुई ॥५॥

तस्माद् देवेभ्योऽर्धमासे वषट् कुर्वन्ति प्र देवयानं

पन्थां जानाति य एवं वेद ॥६॥

पदार्थ—(तस्मात्) इसलिये (देवेभ्यः) किरणों को [वा किरणों से] (अर्धमासे) आधे महीने में (वषट्) रस पहुँचाना वे [ईश्वर नियम] (कुर्वन्ति) करते हैं, वह (देवयानम्) किरणों के जाने योग्य (पन्थाम्) मार्ग को (प्र जानाति) जान लेता है (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥६॥

सोदक्रामत् सा मनुष्याःनागच्छत् तां मनुष्या

अघ्नत सा सद्यः समभवत् ॥७॥

पदार्थ—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (मनुष्यान्) मननशील मनुष्यों में (आ अगच्छत्) आई, (ताम्) उसको (मनुष्याः) मनुष्य (अघ्नत) प्राप्त हुए, (सा) वह (सद्यः) तुरन्त ही (सम् अभवत्) [उनमें] संयुक्त हुई ॥७॥

तस्मान्मनुष्येभ्य उभयद्युरुप हरन्त्युपास्य गृहे हरन्ति य एवं वेद ॥८॥

पदार्थ—(तस्मात्) इसीलिये (मनुष्येभ्यः) मनुष्यों को (उभयद्युः) दोनों दिन [प्रतिदिन] वे [ईश्वर नियम] (उप हरन्ति) उपहार देते हैं, (अस्य) उसके (गृहे) घर में वे [ईश्वर नियम] (उप हरन्ति) उपहार देते हैं, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥८॥

卐 सूक्तम् ॥१०॥ (४-५) 卐

(१-१६ , १-१६) २२, २३, २६ २६ (प्र०) साम्नी जगती, २१-२८, २८ २६ (द्वि०) साम्नी बृहती, २२, २६ (तृ०) साम्नी उष्णिक्, २२, २३, २६, २६ (च०) आर्च्यनुष्टुप्, २३ (तृ०) आर्ची गायत्री, २४, २५, २८ (प्र०) चतुष्पदा उष्णिक्, २४ (तृ०) प्राजापत्यानुष्टुप्, २४, २५, २७ आर्ची त्रिष्टुप्; २५-२६ (द्वि०) साम्नी उष्णिक्, २५, २७-२८ (तृ०) विराड् गायत्री, २७ (प्र०) चतुष्पदा प्राजापत्या जगती, २७ (द्वि०) साम्नी त्रिष्टुप्, २८ (च०) त्रिपदा ब्राह्मी भुरिग्गायत्री; २६ (तृ०) साम्नी अनुष्टुप् ।

सोदक्रामत् सासुरानागच्छत् तामसुरा उपाह्वयन्त माय एहीति ॥१॥

पदार्थ—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (असुरान्) असुरों [बुद्धिमानों] में (आ अगच्छत्) आई (ताम्) उसको (असुराः) असुरों [बुद्धिमानों] ने (उप आह्वयन्त) पास बुलाया, "(माये) हे बुद्धि ! (आ इहि) तू आ (इति) बस" ॥१॥

तस्या विरोचनः प्राह्रादिर्वत्स आसीदयस्पात्रं पात्रम् ॥२॥

पदार्थ—(प्राह्रादिः) प्रह्लाद [बड़े आनन्द वाले परमेश्वर] द्वारा बनाया गया (विरोचनः) विरोचन [विविध चमकने वाला संसार] (तस्याः) उस [विराट्] का (वत्सः) निवास और (अयस्पात्रम्) सुवर्ण का पात्र [तेजवाले लोकों का आधार हिरण्यगर्भ, परब्रह्म] (पात्रम्) रक्षा साधन (आसीत्) था ॥२॥

तां द्विमूर्धार्त्व्योऽधोक् तां मायामेवाधोक् ॥३॥

पदार्थ—(ताम्) उस [विराट्] को (आर्त्व्यः) गति में चतुर (द्विमूर्धा) दो बन्धन वाले [संचित और क्रियमाण कर्म वाले जीव] ने (अधोक्) दुहा है, (ताम्) उस (मायाम्) माया [बुद्धि] को (एव) ही (अधोक्) दुहा है ॥३॥

तां मायामसुरा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥४॥

पदार्थ—(असुराः) असुर [बुद्धिमान्] (ताम्) उस (मायाम्) माया [बुद्धि] का (उप जीवन्ति) आश्रय लेकर जीते हैं, (उपजीवनीयः) वह [दूसरों का] आश्रय (भवति) होता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥४॥

सोदक्रामत् सा पितॄनागच्छत् तां पितर उपाह्वयन्त स्वध एहीति ॥५॥

पदार्थ—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी (सा) वह (पितॄन्) पालन करने वाले [सूर्य आदि लोकों] में (आ अगच्छत्) आई, (ताम्) उसको (पितरः) पालन वाले [लोकों] ने (उप आह्वयन्त) पास बुलाया, "(स्वधे) हे आत्म-धारण शक्ति ! (आ इहि) तू आ, (इति) बस" ॥ ५ ॥

तस्या यमो राजा वत्स आसीद् रजतपात्रं पात्रम् ॥६॥

पदार्थ—(यमः) नियमवान् (राजा) राजा [यह प्राणी] (तस्याः) उस [विराट्] का (वत्सः) उपदेष्टा, और (रजतपात्रम्) प्रीति का ज्ञान वा पूजा का आधार [ब्रह्म] (पात्रम्) रक्षासाधन (आसीत्) था ॥ ६ ॥

तामन्तको मार्त्यवोऽधोक् तां स्वधामेवाधोक् ॥७॥

पदार्थ—(ताम्) उस [विराट्] को (अन्तकः) मनोहर करने वाले (मार्त्यवः) मृत्यु के स्वभाव जानने वाले [जीव] ने (अधोक्) दुहा है, (ताम्) उससे (स्वधाम्) आत्मधारण शक्ति को (एव) भी (अधोक्) दुहा है ॥ ७ ॥

तां स्वधां पितर उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥८॥

पदार्थ—(पितरः) पालने वाले [सूर्य आदि लोक] (ताम्) उस (स्वधाम्) आत्मधारणशक्ति [विराट्] का (उप जीवन्ति) आश्रय लेकर जीते हैं (उपजीवनीयः) वह [दूसरो का] आश्रय (भवति) होता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥ ८ ॥

सोदक्रामत् सा मनुष्यानागच्छत् तां मनुष्या उपाह्वयन्तेरावत्येहीति ॥९॥

पदार्थ—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (मनुष्यान्) मनुष्यों मे (आ अगच्छत्) आई, (ताम्) उसको (मनुष्याः) मनुष्यो ने (उप आह्वयन्त) पास बुलाया, " (इरावति) हे अन्नवती ! (आ इहि) तू आ, (इति) बस" ॥ ९ ॥

तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत् पृथिवी पात्रम् ॥१०॥

पदार्थ—(वैवस्वतः) मनुष्यो का [स्वभाव] जानने वाला (मनुः) मननशील मनुष्य (तस्याः) उसका (वत्सः) उपदेष्टा और (पृथिवी) विस्तार करने वाला [परमेश्वर] (पात्रम्) रक्षा-साधन (आसीत्) था ॥ १० ॥

तां पृथी वैन्योऽधोक् तां कृषिं च सस्यं चाधोक् ॥११॥

पदार्थ—(ताम्) उसको (वैन्यः) बुद्धिमानों के पास रहने वाले (पृथी) विस्तारवान् पुरुष ने (अधोक्) दुहा है और (ताम्) उससे (कृषिम्) खेती (च च) और (सस्यम्) धान्य को (अधोक्) दुहा है ॥ ११ ॥

ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या उप जीवन्ति ।
कृष्टराधिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥१२॥

पदार्थ—(मनुष्याः) मनुष्य (ते) उन दोनों (कृषिम्) खेती (च च) और (सस्यम्) धान्य का (उप जीवन्ति) सहारा लेकर जीते हैं, (कृष्टराधिः) वह खेती में सिद्धि वाला (उपजीवनीयः) [दूसरो का] आश्रय (भवति) होता है (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥ १२ ॥

सोदक्रामत् सा सप्तऋषीनागच्छत् तां सप्तऋषय उपाह्वयन्त ब्रह्मण्वत्येहीति ॥१३॥

पदार्थ—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (सप्तऋषीन्) सात ऋषियों में [व्यापनशील वा दर्शनशील अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि मे (आ अगच्छत्) आई, (ताम्) उस को (सप्तऋषयः) सात ऋषियो [त्वचा आदि] ने (उप आह्वयन्त) पास बुलाया, "(ब्रह्मण्वति) हे वेदवती ! (आ इहि) तू आ, (इति) बस" ॥ १३ ॥

तस्याः सोमो राजा वत्स आसीच्छन्दः पात्रम् ॥१४॥

पदार्थ—(राजा) राजा (सोमः) सुख उत्पन्न करने हारा [जीवात्मा] (तस्याः) उस [विराट्] का (वत्सः) उपदेष्टा और (छन्दः) स्वतन्त्रता [रूप ब्रह्म] (पात्रम्) रक्षा साधन (आसीत्) था ॥ १४ ॥

तां बृहस्पतिराङ्गिरसोऽधोक् तां ब्रह्म च तपश्चाधोक् ॥१५॥

पदार्थ—(आङ्गिरसः) महाज्ञानी परमेश्वर के जानने वाले (बृहस्पतिः) बड़े-बड़े गुणो के रक्षक पुरुष ने (ताम्) उस [विराट्] को (अधोक्) दुहा है, (ताम्) उसी से (ब्रह्म) वेद (च च) और (तपः) तप [ब्रह्मचर्य आदि व्रत वा ऐश्वर्य] को (अधोक्) दुहा है ॥ १५ ॥

तद् ब्रह्म च तपश्च सप्तऋषय उप जीवन्ति ब्रह्मवर्चस्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥१६॥

पदार्थ—(सप्तऋषयः) सात ऋषि [त्वचा आदि] (तत्) उस (ब्रह्म) वेद (च च) और (तपः) तप [ब्रह्मचर्य आदि व्रत वा ऐश्वर्य] का (उपजीवन्ति) सहारा लेकर जीते हैं, (ब्रह्मवर्चसी) वेद विद्या से प्रकाशवाला (उपजीवनीयः) [दूसरो का] आश्रय (भवति) होता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥ १६ ॥

卐 सूक्तम् १० 卐 (५)

सोदक्रामत् सा देवानागच्छत् तां देवा उपाह्वयन्तोर्ज एहीति ॥१॥

पदार्थ—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (देवान्) विजय चाहने वाले पुरुषो मे (आ अगच्छत्) आई, (ताम्) उसको (देवाः) विजय चाहने वालों ने (उप आह्वयन्त) पास बुलाया, "(ऊर्जे) हे बलवती ! (आ इहि) तू आ, (इति) बस" ॥ १ ॥

तस्या इन्द्रो वत्स आसीच्चमसः पात्रम् ॥ २ ॥

पदार्थ—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् जीव (तस्याः) उस [विराट्] का (वत्सः) उपदेष्टा, और (चमसः) अन्न का आधार [ब्रह्म] (पात्रम्) रक्षा-साधन (आसीत्) था ॥ २ ॥

तां देवः सविताधोक् तामूर्जामेवाधोक् ॥ ३ ॥

पदार्थ—(ताम) उस [विराट्] को (देवः) ज्ञानी (सविता) सर्व-प्रेरक पुरुष ने (अधोक्) दुहा है, (ताम् ऊर्जाम्) उस बलवती को (एव) अवश्य (अधोक्) दुहा है ॥ ३ ॥

तामूर्जां देवा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ४ ॥

पदार्थ—(देवाः) विजय चाहने वाले पुरुष (ताम् ऊर्जाम्) उस बलवती का (उप जीवन्ति) सहारा लेकर जीते हैं, (उपजीवनीयः) वह [दूसरों का] आश्रय (भवति) होता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥ ४ ॥

सोदक्रामत् सा गन्धर्वाप्सरस आगच्छत् तां गन्धर्वाप्सरस उपाह्वयन्त पुण्यगन्ध एहीति ॥ ५ ॥

पदार्थ—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (गन्धर्वाप्सरसः) गन्धर्व और अप्सरो मे [इन्द्रिय रखने वालो और प्राणों द्वारा चलने वाले जीवो मे (आ अगच्छत्) आई, (ताम्) उसको (गन्धर्वाप्सरसः) इन्द्रिय रखने वालो और प्राणो द्वारा चलने वाले जीवों ने (उप आह्वयन्त) पास बुलाया, " (पुण्यगन्धे) हे पवित्र ज्ञानवाली (आ इहि) तू आ, (इति) बस" ॥५॥

तस्याश्चित्ररथः सौर्यवर्चसो वत्स आसीत् पुष्करपर्णं पात्रम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—(सौर्यवर्चसः) सूर्य का प्रकाश जानने वाला (चित्ररथः) विचित्र रमणीय गुणो वाला [जीव] (तस्याः) उसका (वत्सः) उपदेष्टा और (पुष्करपर्णम्) पुष्टि का पूर्ण करने वाला ब्रह्म (पात्रम्) रक्षासाधन (आसीत्) था ॥ ६ ॥

तां वसुरुचिः सौर्यवर्चसोऽधोक् तां पुण्यमेव गन्धमधोक् ॥७॥

पदार्थ—(ताम्) उस [विराट्] को (सौर्यवर्चसः) सूर्य के प्रकाश जानने वाला (वसुरुचिः) वसु [सब के निवास परमेश्वर] मे रुचि वाले [जीव] ने (अधोक्) दुहा है, (ताम् एव) उससे ही (पुण्यम्) पवित्र (गन्धम्) ज्ञान को (अधोक्) दुहा है ॥ ७ ॥

तं पुण्यं गन्धं गन्धर्वाप्सरस उप जीवन्ति पुण्यगन्धिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ८ ॥

पदार्थ—(गन्धर्वाप्सरसः) गन्धर्व और अप्सर लोग [इन्द्रिय रखने वाले और प्राण द्वारा चलने वाले जीव] (तम्) उस (पुण्यम्) पवित्र (गन्धम्) ज्ञान का (उप जीवन्ति) सहारा लेकर जीते है, वह (पुण्यगन्धिः) पवित्र ज्ञान वाला [पुरुष, दूसरो का] (उप जीवनीयः) आश्रय (भवति) होता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥ ८ ॥

सोदक्रामत् सेतरजनानागच्छत् तामितरजना उपाह्वयन्त तिरोध एहीति ॥ ९ ॥

पदार्थ—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (इतरजनान्) दूसरे [पामर] जनो मे (आ अगच्छत्) आई, [ताम्) उसको (इतरजनाः) दूसरे जनो ने (उप आ आह्वयन्त) पास बुलाया, "(तिरोधे) हे अन्तर्धान [गुप्त रूप] शक्ति ! (आ इहि) तू आ, (इति) बस" ॥ ९ ॥

तस्याः कुबेरो वैश्रवणो वत्स आसीदामपात्रं पात्रम् ॥ १० ॥

पदार्थ—(वैश्रवणः) विशेष श्रवण [ज्ञान] वाला (कुबेरः) कुबेर [विद्वान् पुरुष (तस्याः) उस [विराट्] का (वत्सः) उपदेष्टा और (आमपात्रम्) सब गतियो का आधार [ब्रह्म] (पात्रम्) रक्षासाधन (आसीत्) था ॥ १० ॥

तां रजतनाभिः काबेरकोऽधोक् तां तिरोधामेवाधोक् ॥ ११ ॥

पदार्थ—(ताम्) उस [विराट्] को (काबेरकः) प्रशंसनीय गुणो के निवास (रजतनाभिः) ज्ञान के प्रबन्धक [वा क्षत्रिय] ने (अधोक्) दुहा है, (ताम्) उस (तिरोधाम्) अन्तर्धान शक्ति को (एव) ही (अधोक्) दुहा है ॥११॥

तां तिरोधामितरजना उप जीवन्ति तिरो धत्ते सर्वं पाप्मानमुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ १२ ॥

पदार्थ—(इतरजना:) दूसरे लोग (ताम्) उस (तिरोधाम्) अन्तर्धान शक्ति का (उप जीवन्ति) आश्रय लेकर जीते हैं, वह पुरुष (सर्वम्) सब (पाप्मानम्) पाप को (तिरो धत्ते) तिरस्कार करता है, और [दूसरों का] (उपजीवनीय) आश्रय (भवति) होता है, (य एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥ १२ ॥

सोदक्रामत् सा सर्पानागच्छत् तां सर्पा उपाह्वयन्त विषवत्येहीति ॥ १३ ॥

पदार्थ—(सा उत् अक्रामत्) वह [विराट्] ऊपर चढ़ी, (सा) वह (सर्पान्) सर्पों में (आ अगच्छत्) आई, (ताम्) उसको (सर्पा) सांपों ने (उप आह्वयन्त) पास बुलाया, "(विषवति) हे विषैली ! (आ इहि) तू आ (इति) बस" ॥ १३ ॥

तस्यास्तक्षको वैशालेयो वत्स आसीदलाबुपात्रं पात्रम् ॥ १४ ॥

पदार्थ—(वैशालेय.) विशाल [प्रवेश शक्ति ब्रह्मविद्या] का जानने वाला (तक्षक.) सूक्ष्मदर्शी [वा विश्वकर्मा पुरुष] (तस्या·) उस [विराट्] का (वत्सः) उपदेष्टा और (अलाबुपात्रम्) न डूबने वाला रक्षक [ब्रह्म] (पात्रम्) रक्षा-साधन (आसीत्) था ॥१४॥

तां धृतराष्ट्र ऐरावतोऽधोक् तां विषमेवाधोक् ॥ १५ ॥

पदार्थ—(ताम्) उसको (ऐरावत) भूमिवालों के स्वभाव जानने वाले (धृतराष्ट्र) राज्य रखने वाले पुरुष ने (अधोक्) दुहा है, (ताम्) उस से (एव) ही (विषम्) विष को (अधोक्) दुहा है ॥१५॥

तद् विषं सर्पा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥१६॥

पदार्थ—(सर्पा) सर्प (तद् विषम्) उस विष का (उप जीवन्ति) आश्रय लेकर जीते हैं, वह पुरुष (उपजीवनीयः) [दूसरों का] आश्रय (भवति) होता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥१६॥

卐 सूक्तम् ॥१०॥ (६) 卐

(१—४) अथर्वाचार्य १ द्विपदा विराट् गायत्री, २ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप्; ३ द्विपदा प्राजापत्यानुष्टुप्, ४ द्विपदार्च्यनुष्टुप् ।

तद् यस्मा एवं विदुषेऽलाबुनाभिषिञ्चेत् प्रत्याहन्यात् ॥ १ ॥

पदार्थ—(तत्) विस्तार करने वाला [ब्रह्म] (एवम्) इस प्रकार (यस्मै विदुषे) जैसे विद्वान् को (अलाबुना) न डूबने वाले कर्म से (अभिषिञ्चेत्) सब प्रकार सींचे, वह [विद्वान्] [विष को] (प्रत्याहन्यात्) हटा देवे ॥१॥

न च प्रत्याहन्यान्मनसा त्वा प्रत्याहन्मीति प्रत्याहन्यात् ॥२॥

पदार्थ—(च) और (न) अब वह [विद्वान्] [विष को] (प्रत्याहन्यात्) हटा देवे, "[हे विष] ! (मनसा) मनन के साथ (त्वा) तुझ को (प्रत्याहन्मि) मैं निकाले देता हूँ," (इति) इस प्रकार वह [उसे] (प्रत्याहन्यात्) हटा देवे ॥२॥

यत् प्रत्याहन्ति विषमेव तत् प्रत्याहन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थ—[जब] (यत्) नियन्ता [ब्रह्म] (विषम्) विष को (एव) इस प्रकार (प्रत्याहन्ति) हटा देता है, (तत्) विस्तार करने वाला [ब्रह्म] (प्रत्याहन्ति) हटा देता है ॥३॥

विषमेवास्याप्रियं भ्रातृव्यमनुविषिच्यते य एवं वेद ॥ ४ ॥

पदार्थ—(विषम्) विष [दोष] (एव) इस प्रकार (अस्य) उस [पुरुष] के (अप्रियम्) अप्रिय (भ्रातृव्यम्) भ्रातृभावरहित [ब्रह्म-निन्दक] को (अनुविषिच्यते) व्याप कर नष्ट कर देता है, (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है ॥४॥

卐 इति पञ्चमोऽनुवाकः 卐

॥ इत्यष्टमं काण्डं समाप्तम् ॥

卐

नवमं काण्डम्

प्रथमोऽनुवाकः

卐 सूक्तम् ॥१॥ (मधु विद्या) 卐

१-२४ अथर्वा । मधु, अश्विनौ । त्रिष्टुप्, २ त्रिष्टुब्गर्भा पङ्क्ति , ३ परानुष्टुप् ६ अतिशक्वरीगर्भा महाबृहती , ७ अति जागतगर्भा महाबृहती , ८ बृहतीगर्भा सस्तारपङ्क्ति , ९ पराबृहती प्रस्तारपङ्क्ति , १० परोष्णिक्पङ्क्तिः, ११-१३, १५-१६, १८-१९ अनुष्टुप् , १४ पुरोष्णिक् , १७ उपरिष्टाद् विराड् बृहती, २० भुरिग्विष्टारपङ्क्ति., २१ एकावसाना द्विपदार्च्यनुष्टुप्, २२ त्रिपदा ब्राह्मी पुरोष्णिक् , २३ द्विपदा आर्ची पङ्क्ति , २४ त्र्यवसाना षट्पदाष्टि ॥

दिवस्पृथिव्या अन्तरिक्षात् समुद्रादग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे ।
तां चायित्वामृतं वसानां हृद्भिः प्रजाः प्रति नन्दन्ति सर्वाः ॥ १ ॥

पदार्थ—(दिव) सूर्य से (पृथिव्या.) पृथिवी से, (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष [मध्यलोक] से, (समुद्रात्) समुद्र [जल समूह] से, (अग्ने) अग्नि से और (वातात्) वायु से (मधुकशा) मधुकशा [मधुविद्या अर्थात् वेदवाणी] (हि) निश्चय करके [जज्ञे] प्रकट हुई है । (अमृतम्) अमरण [पुरुषार्थ] को (वसानाम्) पहरने वाली (ताम्) उसको (चायित्वा) पूजकर (सर्वा.) सब (प्रजा) प्रजाएँ [जीव जन्तु] (हृद्भि) [अपने हृदयों से] (प्रति) प्रत्यक्ष (नन्दन्ति) आनन्द करते हैं ॥१॥

महत् पयो विश्वरूपमस्याः समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः ।
यत ऐति मधुकशा रराणा तत् प्राणस्तदमृतं निविष्टम् ॥ २ ॥

पदार्थ—[हे मधुकशा !] (त्वा) तुझ को (अस्याः) इस [पृथिवी] का (विश्वरूपम्) सब प्रकार रूप वाला (महत्) बड़ा (पय) बल [वा अन्न] (उत) और (समुद्रस्य) सूर्य का (रेत) बीज (आहुः) वे [विद्वान्] बताते हैं । (यतः) जिस [ब्रह्म] से (रराणा) दानशील (मधुकशा) मधुकशा [वेदवाणी] (ऐति) आती है, (तत्) उस [ब्रह्म] में (प्राण.) प्राण [जीवन (तत्) उस में (अमृतम्) अमृत [मोक्षसुख] (निविष्टम्) निरन्तर भरा है ॥ २ ॥

पश्यन्त्यस्याश्चरितं पृथिव्यां पृथङ् नरो बहुधा मीमांसमानाः ।
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ॥ ३ ॥

पदार्थ—(बहुधा) अनेक प्रकार (मीमांसमाना) मीमांसा [विचारपूर्वक तत्त्वनिर्णय] करते हुए (नर) नेता लोग (अस्या) इस [मधुकशा] के (चरितम्) चरित्र को (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (पृथक्) अलग-अलग (पश्यन्ति) देखते हैं । (मरुताम्) शूर पुरुषों की (उग्रा) प्रबल, (नप्तिः) न गिरने वाली शक्ति, (मधुकशा) मधुकशा [ब्रह्मविद्या] (हि) ही (अग्नेः) अग्नि से और (वातात्) वायु से (जज्ञे) प्रकट हुई है ॥ ३ ॥

माता आदित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः ।
हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महान् भर्गश्चरति मर्त्येषु ॥ ४ ॥

पदार्थ—(आदित्यानाम्) सूर्यलोकों की (माता) माता [बनाने वाली] (वसूनाम्) वनों की (दुहिता) पूर्ण करने हारी, (प्रजानाम्) प्रजाओं [जीव-जन्तुओं] की (प्राण) प्राण [जीवन] और (अमृतस्य) अमरपन [महापुरुषार्थ] की (नाभि) नाभि [मध्य], (हिरण्यवर्णा) तेज रूप वाली, (घृताची) सेचन सामर्थ्य पहुँचाने वाली (मधुकशा) मधुकशा [वेदवाणी] (महान्) बड़े (भर्गः) प्रकाश [रूप होकर] (मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच (चरति) विचरती है ॥ ४ ॥

मधोः कशामजनयन्त देवास्तस्या गर्भो अभवद् विश्वरूपः ।
तं जातं तरुणं पिपर्ति माता स जातो विश्वा भुवना वि चष्टे ॥५॥

पदार्थ—(देवाः) पुरुषार्थियों ने (मधोः) ज्ञान की (कशाम्) वाणी को (अजनयन्त) प्रकट किया है । "(तस्या) उस [वाणी] का (गर्भः) गर्भ [आधार] (विश्वरूपः) सब रूपों का करने वाला [परमेश्वर] (अभवत्) हुआ है । (माता) बनाने वाली [वेदवाणी] (तम्) उस (जातम्) प्रसिद्ध (तरुणम्) तारने वाले [बलिष्ठ परमेश्वर] में (पिपर्ति) भरपूर है, (सः) (जातः) प्रसिद्ध [परमेश्वर] (विश्वा भुवना) सब भुवनों को (वि चष्टे) देखता रहता है" ॥ ५ ॥

कस्तं प्र वेद क उ तं चिकेत यो अस्या हृदः कलशः सोमधानो अक्षितः । ब्रह्मा सुमेधाः सो अस्मिन् मदेत ॥ ६ ॥

पदार्थ—(कः) कौन पुरुष (तम्) उस [परमेश्वर] को (प्र वेद) अच्छे प्रकार जानता है, (क. उ) किस ने ही (तम्) उसको (चिकेत) समझा है, (यः) जो [परमेश्वर] (अस्याः) इस [वेदवाणी] के (हृदः) हृदय का (कलशः) कलश (अक्षितः) अक्षय (सोमधानः) अमृत का पात्र है। (सः) वह (सुमेधाः) सुबुद्धि (ब्रह्मा) ब्रह्मा [ब्रह्मज्ञानी, वेदवेत्ता] (अस्मिन्) इस [परमेश्वर] में (मदेत) आनन्द पावे ॥ ६ ॥

स तौ प्र वेद स उ तौ चिकेत यावस्याः स्तनौ सहस्रधारावक्षितौ । ऊर्जं दुहाते अनपस्फुरन्तौ ॥ ७ ॥

पदार्थ—(सः) वह [विद्वान्] (तौ) उन दोनों को (प्र वेद) अच्छे प्रकार जानता है, (सः उ) उसने ही (तौ) उन दोनों को (चिकेत) समझा है, (यौ) जो दोनों (अस्याः) इस [मधुकशा] के (स्तनौ) स्तनरूप [धारण आकर्षण गुण] (सहस्रधारौ) सहस्रों धारणशक्ति वाले, (अक्षितौ) अक्षय और (अनपस्फुरन्तौ) निश्चल होकर (ऊर्जम्) बल को (दुहाते) परिपूर्ण करते हैं ॥ ७ ॥

हिङ्करिक्रती बृहती वयोधा उच्चैर्घोषाभ्येति या व्रतम् ।

त्रीन् घर्मानभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥ ८ ॥

पदार्थ—(हिङ्करिक्रती) अत्यन्त वृद्धि करती हुई, (वयोधाः) बल वा अन्न देने वाली, (उच्चैर्घोषा) ऊंचा शब्द रखनेवाली (या) जो (बृहती) बहुत बड़ी [ब्रह्म विद्या] (व्रतम्) अपने नियम पर (अभ्येति) चली चलती है। वह (त्रीन्) तीन [शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक] (घर्मान्) यज्ञों की (अभि) सब ओर से (वावशाना) अति कामना करती हुई (मायुम्) शब्द (मिमाति) करती है और (पयोभिः) बलों के साथ (पयते) चलती है ॥ ८ ॥

यामापीनामुपसीदन्त्यापः शाक्वरा वृषभा ये स्वराजः ।

ते वर्षन्ति ते वर्षयन्ति तद्विदे काममूर्जमापः ॥ ९ ॥

पदार्थ—(ये) जो (शाक्वराः) शक्तिमती [वेद वाणी] जानने वाले, (वृषभाः) पराक्रमी, (स्वराजः) स्वराजा, (आपः) सर्वविद्याव्यापक विद्वान् लोग (याम्) जिस (आपीनाम्) सब प्रकार बढ़ी हुई [ब्रह्मविद्या] को (उपसीदन्ति) आदर से प्राप्त होते हैं। (ते) वे (वर्षन्ति) समर्थ होते हैं, (ते) वे (आपः) महाविद्वान् (तद्विदे) उस [ब्रह्मविद्या] के जानने वाले के लिये (कामम्) अभीष्ट विषय और (ऊर्जम्) पराक्रम को (वर्षयन्ति) बरसाते हैं ॥ ९ ॥

स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यामधि ।

अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ॥ १० ॥

पदार्थ—(प्रजापते) हे प्रजापालक ! [परमेश्वर !] (ते) तेरी (वाक्) वाणी (स्तनयित्नुः) मेघ के गर्जन [के समान] है, (वृषा) तू ऐश्वर्यवान् होकर (शुष्मम्) बल को (भूम्याम्) भूमि पर (अधि) अधिकारपूर्वक (क्षिपसि) फैलाता है। (मरुताम्) शूर पुरुषों की (उग्रा) प्रबल (नप्तिः) न गिरनेवाली शक्ति, (मधुकशा) मधुकशा [ब्रह्मविद्या] (हि) ही (अग्नेः) अग्नि से और (वातात्) वायु से (जज्ञे) प्रकट हुई है ॥ १० ॥

यथा सोमः प्रातःसवने अश्विनोर्भवति प्रियः ।

एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ ११ ॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (सोमः) ऐश्वर्यवान् आत्मा [बालक] (प्रातःसवने) प्रातःकाल के यज्ञ [बालकपन] में (अश्विनोः) [कार्यकुशल] माता-पिता का (प्रियः) प्रिय (भवति) होता है। (एव) वैसे ही, (अश्विना) हे [कार्यकुशल] माता-पिता ! (मे) मेरे (आत्मनि) आत्मा में [विद्या का] (वर्चः) प्रकाश (ध्रियताम्) धरा जावे ॥ ११ ॥

यथा सोमो द्वितीये सवन इन्द्राग्न्योर्भवति प्रियः ।

एवा म इन्द्राग्नी वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ १२ ॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (सोमः) ऐश्वर्यवान् [युवा मनुष्य] (द्वितीये सवने) दूसरे यज्ञ [युवा अवस्था] में (इन्द्राग्न्योः) सूर्य और बिजुली [के समान माता-पिता] का (प्रियः) प्रिय (भवति) होता है। (एव) वैसे ही (इन्द्राग्नी) हे सूर्य और बिजुली [के समान माता-पिता !] (मे आत्मनि) मेरे आत्मा में (वर्चः) प्रकाश (ध्रियताम्) धरा जावे ॥ १२ ॥

यथा सोमस्तृतीये सवन ऋभूणां भवति प्रियः ।

एवा म ऋभवो वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ १३ ॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (सोमः) ऐश्वर्यवान् [वृद्ध पुरुष !] (तृतीये सवने) तीसरे यज्ञ [वृद्ध अवस्था] में (ऋभूणाम्) बुद्धिमानों का (प्रियः) प्रिय (भवति) होता है। (एव) वैसे ही, (ऋभवः) हे बुद्धिमानो ! (मे आत्मनि) मेरे आत्मा में (वर्चः) प्रकाश (ध्रियताम्) धरा जावे ॥ १३ ॥

मधु जनिषीय मधु वंशिषीय ।

पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥ १४ ॥

पदार्थ—(मधु) ज्ञान को (जनिषीय) मैं उत्पन्न करूं, (मधु) ज्ञान की (वंशिषीय) याचना करूं। (अग्ने) हे विद्वान् ! (पयस्वान्) गति वाला मैं (आ अगमम्) आया हूं, (तम्) उस (मा) मुझको (वर्चसा) [वेदाध्ययन आदि के] प्रकाश से (सम् सृज) संयुक्त कर ॥ १४ ॥

सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।

विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥ १५ ॥

पदार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् ! (मा) मुझ को (वर्चसा) [ब्रह्मविद्या के] प्रकाश से (सम्) अच्छे प्रकार (प्रजया) प्रजा से (सम्) अच्छे प्रकार और (आयुषा) जीवन से (सं सृज) अच्छे प्रकार संयुक्त कर। (देवाः) विद्वान् लोग (अस्य) इस (मे) मुझ को (विद्युः) जानें, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् आचार्य (ऋषिभिः सह) ऋषियों के साथ [मुझे] (विद्यात्) जाने ॥ १५ ॥

यथा मधु मधुकृतः संभरन्ति मधावधि ।

एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ १६ ॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (मधुकृतः) ज्ञान करने वाले [आचार्य लोग] (मधु) [एक] ज्ञान को (मधौ) [दूसरे] ज्ञान पर (अधि) अधिकारवत् (संभरन्ति) भरते जाते हैं। (एव) वैसे ही, (अश्विना) हे [कार्यकुशल] माता-पिता ! (मे आत्मनि) मेरे आत्मा में [विद्या का] (वर्चः) प्रकाश (ध्रियताम्) धरा जावे ॥ १६ ॥

यथा मक्षा इदं मधु न्यञ्जन्ति मधावधि ।

एवा मे अश्विना वर्चस्तेजो बलमोजश्च ध्रियताम् ॥ १७ ॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (मक्षाः) संग्रह करने वाले पुरुष [अथवा भ्रमर आदि जन्तु] (इदम्) ऐश्वर्य देने वाले (मधु) ज्ञान [रस] को (मधौ) ज्ञान [वा मधु] के ऊपर (अधि) ठीक-ठीक (न्यञ्जन्ति) मिलाते जाते हैं। (एव) वैसे ही, (अश्विना) हे चतुर माता-पिता ! (मे) मेरे लिये (वर्चः) प्रकाश, (तेजः) तीक्ष्णता, (बलम्) बल (च) और (ओजः) पराक्रम (ध्रियताम्) धरा जावे ॥ १७ ॥

यद् गिरिषु पर्वतेषु गोष्वश्वेषु यन्मधु ।

सुरायां सिच्यमानायां यत् तत्र मधु तन्मयि ॥ १८ ॥

पदार्थ—(यत्) जो [ज्ञान] (गिरिषु) स्तुतियोग्य सन्यासियों में, (पर्वतेषु) मेघों में, (गोषु) गौओं में और (अश्वेषु) घोड़ों में (यत्) जो (मधु) ज्ञान है। (तत्र) उस (सिच्यमानायाम् सुरायाम्) बहते हुए जल [अथवा बढ़ते हुए ऐश्वर्य] में (यत् मधु) जो ज्ञान है, (तत्) वह (मयि) मुझ में [होवे] ॥ १८ ॥

अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती ।

यथा वर्चस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु ॥ १९ ॥

पदार्थ—(शुभ.) शुभ कर्म के (पती) पालन करने वाले (अश्विना) हे चतुर माता-पिता ! (सारघेण) सार अर्थात् बल वा धन के पहुंचाने वाले (मधुना) ज्ञान से (मा) मुझ को (अङ्क्तम्) प्रकाशित करो। (यथा) जिससे (जनान् अनु) मनुष्यों के बीच (वर्चस्वतीम्) तेजोमयी (वाचम्) वाणी को (आवदानि) मैं बोला करूं ॥ १९ ॥

स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यां दिवि ।

तां पशव उप जीवन्ति सर्वे तेनो सेषमूर्जं पिपर्ति ॥ २० ॥

पदार्थ—(प्रजापते) हे प्रजापालक ! [परमेश्वर !] (ते) तेरी (वाक्) वाणी (स्तनयित्नुः) मेघ के गर्जन [के समान] है, (वृषा) तू ऐश्वर्यवान् होकर (शुष्मम्) बल को (भूम्याम्) भूमि पर और (दिवि) आकाश में (क्षिपसि) फैलाता है। (सर्वे) सब (पशवः) देखने वाले [जीव] (ताम्) उस [वाणी] का (उप) सहारा लेकर (जीवन्ति) जीते हैं (तेनो) उसी ही [कारण] से (सा) वह (इषम्) अन्न और (ऊर्जम्) पराक्रम (पिपर्ति) भरती है ॥ २० ॥

पृथिवी दण्डोऽन्तरिक्षं गर्भो द्यौः कशा विद्युत्

प्रकशो हिरण्ययो बिन्दुः ॥ २१ ॥

पदार्थ—(पृथिवी) पृथिवी [उस परमेश्वर का] (दण्ड) दण्ड [दमन स्थान, न्यायालय समान], (अन्तरिक्षम्) मध्यलोक (गर्भ) गर्भ [आधार समान], (द्यौः) आकाश (कशा) वाणी [समान], (विद्युत्) बिजुली (प्रकशः) प्रकृष्ट गति [समान] और (हिरण्ययः) तेजोमय [सूर्य] (बिन्दुः) बिन्दु [छोटे चिह्न समान] है ॥२१॥

यो वै कशायाः सप्त मधूनि वेद मधुमान् भवति । ब्राह्मणश्च राजा च धेनुश्चानड्वांश्च व्रीहिश्च यवश्च मधु सप्तमम् ॥२२॥

पदार्थ—(यः) जो पुरुष (वै) निश्चय करके (कशायाः) वेद वाणी के (सप्त) सात (मधूनि) ज्ञानों को (वेद) जानता है, वह (मधुमान्) ज्ञानवान् (भवति) होता है। [जो] (ब्राह्मणः) वेदवेत्ता (च) और (राजा) राजा (च) और (धेनुः) तृप्त करनेवाली गौ (च) और (अनड्वान्) अन्न पहुँचाने वाला बैल (च) और (व्रीहिः) चावल (च) और (यवः) जौ (च) और (सप्तमम्) सातवां (मधु) ज्ञान है ॥२२॥

मधुमान् भवति मधुमदस्याहार्यं भवति ।
मधुमतो लोकान् जयति य एवं वेद ॥२३॥

पदार्थ—[वह पुरुष] (मधुमान्) ज्ञानवान (भवति) होता है, (अस्य) उसका (आहार्यम्) ग्राह्य कर्म (मधुमत्) ज्ञानयुक्त (भवति) होता है, [वह] (मधुमतः) ज्ञानवाले (लोकान्) लोकों [स्थानों] को (जयति) जीत लेता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥२३॥

यद् वीध्रे स्तनयति प्रजापतिरेव तत् प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति । तस्मात् प्राचीनोपवीतस्तिष्ठे प्रजापतेऽनु मा बुध्यस्वेति । अन्वेनं प्रजा अनु प्रजापतिर्बुध्यते य एवं वेद ॥२४॥

पदार्थ—(यत्) जैसे (वीध्रे) [चमकीले लोकों वाले] आकाश [वा वायु] में (स्तनयति) गर्जना होती है, (तत्) वैसे ही (प्रजापतिः) प्रजापति [सृष्टिपालक परमेश्वर] (एव) ही (प्रजाभ्यः) जीवों को (प्रादुर्भवति) प्रकट होता है। (तस्मात्) इसी [कारण] से (प्राचीनोपवीतः) प्राचीन [सब से पुराने परमेश्वर] में बड़ी प्रीतिवाला मैं (तिष्ठे) विनति करता हूँ, "(प्रजापते) हे प्रजापति [परमेश्वर !] (मा) मुझ पर (अनु बुध्यस्व) अनुग्रह कर, (इति) बस।" (एनम्) उस [पुरुष] पर (प्रजाः) सब प्रजागण (अनु) अनुग्रह [करते हैं] और (प्रजापतिः) प्रजापति [जगदीश्वर] (अनु बुध्यते) अनुग्रह करता है, (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है ॥२४॥

卐 सूक्तम् ॥२॥ (कामः) 卐

१-२५ अथर्वा । काम । त्रिष्टुप्, ५ अतिजगती, ७, १४, १५, १७, १८, २१, २२, जगती, ८ द्विपदा आर्ची पङ्क्तिः, ११, २०, २३, भुरिक्, १२, अनुष्टुप्, १३ द्विपदार्ची अनुष्टुप्, १६ चतुष्पदा शक्वरीगर्भा परा जगती ।

सपत्नहनमृषभं घृतेन कामं शिक्षामि हविषाज्येन ।
नीचैः सपत्नान् मम पादय त्वमभिष्टुतो महता वीर्येण ॥१॥

पदार्थ—(सपत्नहनम्) शत्रुनाशक, (ऋषभम्) बलवान् (कामम्) कामनायोग्य [परमेश्वर] को (घृतेन) प्रकाश, (हविषा) भक्ति और (आज्येन) पूर्ण गति के साथ (शिक्षामि) मैं सीखता हूँ। (अभिष्टुतः) सब ओर से स्तुति किया गया (त्वम्) तू (महता) बड़ी (वीर्येण) वीरता से (मम) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (नीचैः) नीचे (पादय) पहुँचा ॥१॥

यन्मे मनसो न प्रियं न चक्षुषो यन्मे बभस्ति नाभिनन्दति ।
तद् दुःष्वप्न्यं प्रति मुञ्चामि सपत्ने कामं स्तुत्वोदहं भिदेयम् ॥२॥

पदार्थ—(यत्) जो [दुष्टकर्म] (मे) मेरे (मनसः) मन का (न प्रियम्) प्रिय नहीं है और (न चक्षुषः) न नेत्र का, और (यत्) जो (मे) मेरा (बभस्ति) तिरस्कार करता है और (न) न (अभिनन्दति) कुछ आनन्द देता है। (तत्) उस (दुःष्वप्न्यम्) दुष्ट स्वप्न को (सपत्ने) शत्रुनाश के लिये (प्रति मुञ्चामि) मैं छोड़ता हूँ, (कामम्) कमनीय परमेश्वर की (स्तुत्वा) स्तुति करके (अहम्) मैं (उत् भिदेयम्) ऊपर निकल जाऊं ॥२॥

दुःष्वप्न्यं काम दुरितं च कामाप्रजस्तामस्वगतामवर्तिम् ।
उग्र ईशानः प्रति मुञ्च तस्मिन् यो अस्मभ्यमंहूरणा चिकित्सात् ॥३॥

पदार्थ—(काम) हे कामना योग्य [परमेश्वर !] (दुःष्वप्न्यम्) दुष्ट स्वप्न को, (च) और (काम) हे कामनायोग्य [परमात्मन् !] (दुरितम्) विघ्न, (अस्वगताम्) निर्धनता से प्राप्त (अप्रजस्ताम्) प्रजा के अभाव और (अवर्तिम्) निर्जीविका को, (उग्रः) प्रबल और (ईशानः) ईश्वर होकर तू (तस्मिन्) उस पुरुष पर (प्रति मुञ्च) छोड़ दे, (यः) जो (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (अंहूरणा) पाप कर्मों को (चिकित्सात्) चाहे ॥३॥

नुदस्व काम प्र णुदस्व कामावर्तिं यन्तु मम ये सपत्नाः ।
तेषां नुत्तानामधमा तमांस्यग्ने वास्तूनि निर्दह त्वम् ॥४॥

पदार्थ—(काम) हे कामनायोग्य [परमेश्वर !] [हमें] (नुदस्व) बढ़ा, (काम) हे कमनीय ! (प्र णुदस्व) आगे बढ़ा, वे लोग (अवर्तिम्) निर्जीविका को (यन्तु) प्राप्त हों, (ये) जो (मम) मेरे (सपत्नाः) वैरी हैं। (अग्ने) हे तेजस्वी परमेश्वर ! (त्वम्) तू (अधमा) अति नीचे (तमांसि) अन्धकारों में (नुत्तानाम्) पड़े हुए (तेषाम्) उन [शत्रुओं] के (वास्तूनि) घरों को (निर्दह) भस्म कर दे ॥४॥

सा ते काम दुहिता धेनुरुच्यते यामाहुर्वाचं कवयो विराजम् । तया सपत्नान् परि वृङ्ग्धि ये मम पर्येनान् प्राणः पशवो जीवनं वृणक्तु ॥५॥

पदार्थ—(काम) हे कमनीय परमात्मन् (सा) वह [हमारी कामनाएं] (दुहिता) पूरण करने वाली (ते) तेरी (धेनुः) वाणी (उच्यते) कही जाती है, (याम्) जिस (वाचम्) वाणी को (कवयः) बुद्धिमान लोग (विराजम्) विविध ऐश्वर्यवाली (आहुः) कहते हैं। (तया) उस [वाणी] से (सपत्नान्) उन वैरियों को (परि वृङ्ग्धि) हटा दे, (ये) जो (मम) मेरे [शत्रु हैं] (एनान्) उन [शत्रुओं] को (प्राणः) प्राण, (पशवः) सब जीव और (जीवनम्) जीवनवृत्ति (परि वृणक्तु) त्याग देवे ॥५॥

कामस्येन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञो विष्णोर्बलेन सवितुः सवेन ।
अग्नेर्होत्रेण प्र णुदे सपत्नाञ्छम्बीव नावमुदकेषु धीरः ॥६॥

पदार्थ—(इन्द्रस्य) बड़े ऐश्वर्य वाले, (वरुणस्य) श्रेष्ठ, (राज्ञः) राजा, (विष्णोः) सर्वव्यापक, (सवितुः) सर्वप्रेरक, (अग्नेः) सर्वज्ञ, (कामस्य) कामनायोग्य [परमेश्वर] के (बलेन) बल से, (सवेन) ऐश्वर्य से और (होत्रेण) दान से (सपत्नान्) वैरियों को (प्र णुदे) मैं भगाता हूँ, (इव) जैसे (धीरः) धीर (शम्बी) कर्णधार [नाव चलानेवाला] (नावम्) नाव को (उदकेषु) जलों के भीतर [चलाता है] ॥६॥

अध्यक्षो वाजी मम काम उग्रः कृणोतु मह्यमसपत्नमेव ।
विश्वे देवा मम नाथं भवन्तु सर्वे देवा हवमा यन्तु म इमम् ॥७॥

पदार्थ—"(मम) मेरा (अध्यक्षः) अध्यक्ष, (वाजी) पराक्रमी, (उग्रः) तेजस्वी, (कामः) कामनायोग्य [परमेश्वर] (मह्यम्) मुझको (एव) अवश्य (असपत्नम्) बिना शत्रु (कृणोतु) करे। (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य गुण (मम) मेरे (नाथम्) ऐश्वर्य (भवन्तु) होवें," (सर्वे) सब (देवाः) दिव्य गुणवाले लोग (मम) मेरी (इमम्) इस (हवम्) पुकार को (आ यन्तु) आकर प्राप्त हों ॥७॥

इदमाज्यं घृतवज्जुषाणाः कामज्येष्ठा इह मादयध्वम् ।
कृण्वन्तो मह्यमसपत्नमेव ॥८॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] (इदम्) इस (घृतवत्) प्रकाशयुक्त (आज्यम्) पूर्ण गति को (जुषाणाः) सेवन करते हुए, (कामज्येष्ठाः) कामनायोग्य परमेश्वर को सब से बड़ा मानते हुए, (मह्यम्) मुझको (एव) अवश्य (असपत्नम्) बिना शत्रु (कृण्वन्तः) करते हुए तुम (इह) यहाँ [हमें] (मादयध्वम्) तृप्त करो ॥८॥

इन्द्राग्नी काम सरथं हि भूत्वा नीचैः सपत्नान् मम पादयाथः ।
तेषां पन्नानामधमा तमांस्यग्ने वास्तून्यनुनिर्दह त्वम् ॥९॥

पदार्थ—(काम) हे कमनीय [परमेश्वर !] [मेरे] (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि [प्राण वायु और शारीरिक बल] के साथ (सरथम्) एक रथ पर (हि) ही (भूत्वा) होकर (मम) मेरे (सपत्नान्) शत्रुओं को (नीचैः) नीचे (पादयाथः) पहुँचा। (अग्ने) हे तेजस्वी परमेश्वर ! (त्वम्) तू (अधमा) अति नीच (तमांसि) अन्धकारों में (पन्नानाम्) पहुँचे हुए (तेषाम्) उन [शत्रुओं] के (वास्तूनि) घरों को (अनुनिर्दह) निरन्तर जला दे ॥९॥

जहि त्वं काम मम ये सपत्ना अन्धा तमांस्यव पादयैनान् ।
निरिन्द्रिया अरसाः सन्तु सर्वे मा ते जीविषुः कतमच्चनाहः ॥१०॥

पदार्थ—(काम) हे कमनीय [परमेश्वर !] (त्वम्) तू (मम) मेरे (ये) जो (सपत्नाः) शत्रु हैं, (एनान्) उनको (जहि) नाश करदे और (अन्धा) बड़े भारी (तमांसि) अन्धकारों में (अव पादय) गिरा दे। (सर्वे ते) वे सब (निरिन्द्रियाः) निर्धन और (अरसाः) निर्वीर्य (सन्तु) हो जावें, और (कतमत् चन) कुछ भी (अहः) दिन (मा जीविषुः) न जीवें ॥१०॥

अवंधीत् कामो मम ये सपत्ना उरुं लोकमंकरन्मह्यमेधतुम् ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशुश्चतंस्रो मह्यं षडुर्वीर्घृतमा वंहन्तु ॥११॥

पदार्थ—(कामः) कामनायोग्य [परमेश्वर] ने [उनको] (अवधीत्) नष्ट कर दिया है (ये) जो (मम) मेरे (सपत्नाः) शत्रु हैं, और (मह्यम्) मेरे लिये (उरुम्) चौड़ा, (एधतुम्) वृद्धि करनेवाला (लोकम्) स्थान (अकरत्) किया है। (मह्यम्) मेरे लिये (चतस्रः) चारों [पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर] (प्रदिशः) प्रधान दिशाएँ (नमन्ताम्) झुकें, (मह्यम्) मेरे लिये (षट्) छह [आग्नेयी, नैऋति, वायवी, ऐशानी—चारों मध्य दिशा और ऊपर-नीचे की दोनों] (उर्वीः) फैली हुई [दिशाएँ] (घृतम्) घृत [प्रकाश वा सार पदार्थ] (आ वहन्तु) लावें ॥११॥

तेऽधराञ्चः प्र प्लंवन्तां छिन्ना नौरिंव बन्धंनात् ।
न सायकप्रणुत्तानां पुनंरस्ति निवर्तंनम् ॥१२॥

पदार्थ—(ते) वे (अधराञ्चः) अधोगति वाले लोग (बन्धनात्) बन्धन से (छिन्ना) छूटी हुई (नौः इव) नाव के समान (प्र प्लवन्ताम्) बहते चले जावें। (सायकप्रणुत्तानाम्) तीर से ढकेले गये पदार्थों का (निवर्तनम्) लौटना (पुनः) फिर (न) नहीं (अस्ति) होता है ॥१२॥

अग्निर्यव इन्द्रो यवः सोमो यवः ।
यवयावानो देवा यावयन्त्वेनम् ॥१३॥

पदार्थ—(अग्निः) ज्ञानवान् परमेश्वर (यवः) [अधम को] हटाने वाला, (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवाला जगदीश्वर (यवः) [दुष्कर्म] मिटानेवाला, (सोमः) सुख उत्पन्न करनेवाला ईश्वर (यवः) [सुख का] मिलानेवाला है। (यवयावानः) यवनों [धर्मनिन्दकों] के निन्दा करनेवाले (देवाः) विद्वान् लोग (एनम्) इस [परमात्मा] को (यावयन्तु) मिलें ॥१३॥

असंर्ववीरश्चरतु प्रणुत्तो द्वेष्यो मित्राणां परिवर्ग्यः स्वानाम् । उत पृंथिव्यामवं स्यन्ति विद्युतं उग्रो वो देवः प्र मृंणत् सपत्नान् ॥१४॥

पदार्थ—(असर्ववीरः) सब वीरों से रहित (प्रणुत्तः) बाहर निकाला गया (मित्राणाम्) मित्रों और (स्वानाम्) जातियों का (परिवर्ग्यः) त्यागा हुआ (द्वेष्यः) शत्रु (चरतु) फिरता रहे। (उत) और [जैसे] (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (विद्युतः) बिजुलियां (अव स्यन्ति) गिरती हैं [वैसे ही] (उग्रः) प्रबल (देवः) विजयी परमेश्वर (वः) तुम (सपत्नान्) शत्रुओं को (प्र मृणत्) नाश कर डाले ॥१४॥

च्युता चेयं बृंहत्यच्युंता च विद्युद् बिभर्ति स्तनयित्नूंश्च सर्वान् । उद्यन्नांदित्यो द्रविणेन तेजंसा नीचैः सपत्नांन् नुदतां मे सहंस्वान् ॥१५॥

पदार्थ—(इयम्) यह (बृहती) बड़ी (विद्युत्) प्रकाशमान शक्ति [परमेश्वर] (च्युता) गिरे हुए [निर्बल] (च च) और (अच्युता) न गिरे हुए [प्रबल द्रव्यों] का (च) और (सर्वान्) सब (स्तनयित्नून्) शब्द करने वालों को (बिभर्ति) धारण करती है। (उद्यन्) उदय होता हुआ (सहस्वान्) बलवान् (आदित्यः) प्रकाशमान जगदीश्वर (द्रविणेन) बल से और (तेजसा) तेज से (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (नीचैः) नीचे (नुदताम्) ढकेल देवे ॥१५॥

यत् ते काम शर्म त्रिवरूंथमुद्भु ब्रह्म वर्म विततमनतिव्याध्यं कृतम् । तेन सपत्नान् परि वृङ्ग्धि ये मम पर्येनान् प्राणः पशवो जीवंनं वृणक्तु ॥१६॥

पदार्थ—(काम) हे कामनायोग्य [जगदीश्वर!] (यत्) जो (ते) तेरा (शर्म) सुखप्रद (त्रिवरूथम्) तीन [शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक] रक्षा वाला (उद्भु) बलवान् (ब्रह्म) वेद (विततम्) फैला हुआ (अनतिव्याध्यम्) न कभी छेदने योग्य (वर्म) कवच (कृतम्) बना है। (तेन) उस [वेद] से (सपत्नान्) उन वैरियों को (परि वृङ्ग्धि) हटा दे। (ये) जो (मम) मेरे [शत्रु हैं] (एनान्) उन [शत्रुओं] को (प्राणः) प्राण (पशवः) सब जीव और (जीवनम्) जीवनवृत्ति (परि वृणक्तु) छोड़ देवे ॥१६॥

येन देवा असुरान् प्राणुंदन्त येनेन्द्रो दस्यूंनधमं तमो निनाय । तेन त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात् प्र णुंदस्व दूरम् ॥१७॥

पदार्थ—(येन) जिस [उपाय] से (देवाः) विजयी लोगों ने (असुरान्) असुरों [विद्वानों के विरोधियों] को (प्राणुदन्त) निकाल दिया है। (येन) जिस [यत्न] से (इन्द्रः) महाप्रतापी पुरुष ने (दस्यून्) डाकुओं को (अधमम् तमः) नीचे अन्धकार में (निनाय) पहुँचाया था। (काम) हे कामनायोग्य [परमेश्वर!] (त्वम्) तू (मम) मेरे (ये) जो (सपत्नाः) शत्रु हैं (तेन) उसी [उपाय] से (तान्) उनको (अस्मात् लोकात्) इस स्थान से (दूरम्) दूर (प्र णुदस्व) निकाल दे ॥१७॥

यथा देवा असुरान् प्राणुदन्त यथेन्द्रो दस्यूंनधमं तमो बबाधे । तथा त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात् प्र णुंदस्व दूरम् ॥१८॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (देवाः) व्यवहारकुशल लोगों ने (असुरान्) असुरों [विद्वानों के विरोधियों] को (प्राणुदन्त) निकाल दिया था, (यथा) जैसे (इन्द्रः) महाप्रतापी पुरुष ने (दस्यून्) डाकुओं को (अधमम् तमः) नीचे अन्धकार में (बबाधे) रोका था। (काम) हे कामनायोग्य [परमेश्वर!] (त्वम्) तू (मम ये सपत्नाः) मेरे जो शत्रु हैं (तथा) वैसे ही (तान्) उनको (अस्मात् लोकात्) इस स्थान से (दूरम्) दूर (प्र णुदस्व) निकाल दे ॥१८॥

कामो जज्ञे प्रथमो नैनं देवा आंपुः पितरो न मर्त्याः । ततस्त्वमंसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥१९॥

पदार्थ—(काम) कामनायोग्य [परमेश्वर] (प्रथमः) पहिले ही पहिले [साकार] (जज्ञे) प्रकट हुआ (एनम्) इसको (न) न तो (पितरः) पालनशील (देवाः) चलने वाले लोकों [पृथिवी सूर्य आदि] और (न) न (मर्त्याः) मनुष्यों ने (आपुः) पाया। (ततः) उससे (त्वम्) तू (ज्यायान्) अधिक बड़ा (विश्वहा) सब प्रकार (महान्) महान् [पूजनीय] (असि) है, (तस्मै ते) उस तुझको (इत्) ही (काम) हे कामनायोग्य [परमेश्वर!] (नमः) नमस्कार (कृणोमि) करता हूँ ॥१९॥

यावंती द्यावापृथिवी वंरिम्णा यावदापः सिष्यदुर्यावंदग्निः । ततस्त्वमंसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥२०॥

पदार्थ—(यावती) जितने कुछ (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूलोक (वरिम्णा) अपने फैलाव से हैं (यावत्) जहाँ तक (आपः) जलधारायें (सिष्यदुः) बही हैं और (यावत्) जितना कुछ (अग्निः) अग्नि वा बिजुली है। (ततः) उससे (त्वम्) तू (ज्यायान्) अधिक बड़ा (विश्वहा) सब प्रकार (महान्) महान् [पूजनीय] (असि) है, (तस्मै ते) उस तुझको (इत्) ही, (काम) हे कामनायोग्य [परमेश्वर!] (नमः) नमस्कार (कृणोमि) करता हूँ ॥२०॥

यावंतीर्दिशंः प्रदिशो विषूंचीर्यावंतीराशां अभिचक्षंणा दिवः । ततस्त्वमंसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥२१॥

पदार्थ—(यावतीः) जितनी बड़ी (विषूचीः) फैली हुई (दिशः) दिशाएँ और (प्रदिशः) मध्य दिशाएँ और (यावतीः) जितनी बड़ी (आशाः) सब भूमि और (दिवः) आकाश के (अभिचक्षणाः) दृश्य हैं। (ततः) उस से (त्वम्) तू (ज्यायान्) अधिक बड़ा (विश्वहा) सब प्रकार (महान्) महान् [पूजनीय] (असि) है, (तस्मै ते) उस तुझको (इत्) ही (काम) हे कामनायोग्य [परमेश्वर!] (नमः) नमस्कार (कृणोमि) करता हूँ ॥२१॥

यावंतीर्भृङ्गा जत्वंः कुरूरंवो यावंतीर्वघा वृक्षसर्प्यो बभूवुः । ततस्त्वमंसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥२२॥

पदार्थ—(यावतीः) जितनी (कुरूरवः) कुत्सित ध्वनि वाली (भृङ्गाः) भ्रमरी आदि और (जत्वः) चिमगादड़ आदि और (यावतीः) जितनी (वघाः) टिड्डी आदि और (वृक्षसर्प्यः) वृक्षों पर रेंगने वाली [कीटादि पङ्क्तियां] (बभूवुः) हुई हैं (ततः) उनसे (त्वम्) तू (ज्यायान्) अधिक बड़ा (विश्वहा) सब प्रकार (महान्) महान् [पूजनीय] (असि) है, (तस्मै ते) उस तुझको (इत्) ही (काम) हे कामना योग्य [परमेश्वर!] (नमः) नमस्कार (कृणोमि) करता हूँ ॥२२॥

ज्यायान् निमिषतोऽसि तिष्ठंतो ज्यायान्त्समुद्रादंसि काम मन्यो । ततस्त्वमंसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥२३॥

पदार्थ—(काम) हे कामनायोग्य! (मन्यो) हे पूजनीय [परमेश्वर!] तू (निमिषतः) पलक मारनेवाले [मनुष्य, पशु, पक्षी आदि] से और (तिष्ठतः) खड़े रहने वाले [वृक्ष, पर्वत आदि] से (ज्यायान्) अधिक बड़ा (असि) है और (समुद्रात्) समुद्र [आकाश वा जलनिधि] से (ज्यायान्) अधिक बड़ा (असि) है (ततः) उससे (त्वम्) तू (ज्यायान्) अधिक बड़ा (विश्वहा) सब प्रकार (महान्) महान् [पूजनीय] (असि) है, (तस्मै ते) उस तुझको (इत्) ही (काम) हे कामनायोग्य [परमेश्वर!] (नमः) नमस्कार (कृणोमि) करता हूँ ॥२३॥

न वै वातंश्चन काममाप्नोति नाग्निः सूर्यो नोत चन्द्रमाः । ततस्त्वमंसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥२४॥

पदार्थ—(न वै वात) न तो कोई (वात) पवन (कामम्) कामना योग्य [परमेश्वर] को (आप्नोति) पाता है (न) न (अग्निः) अग्नि और (सूर्य) सूर्य (उत) और (न) (चन्द्रमा) चन्द्रमा। (तत) उससे (त्वम्) तू (ज्यायान) अधिक बड़ा (विश्वहा) सब प्रकार (महान्) महान् [पूजनीय] (असि) है (तस्मै ते) उस तुझको (इत्) ही (काम) हे कामनायोग्य [परमेश्वर !] (नम) नमस्कार (कृणोमि) करता हूँ ॥ २४ ॥

यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्रा याभिः सत्यं भवति यद् वृणीषे ।

ताभिष्ट्वमस्माँ अभिसंविशस्वान्यत्र पापीरप वेशया धियः ॥२५॥

पदार्थ—(काम) हे कामनायोग्य [परमेश्वर !] (ते) तेरी (याः) जो (शिवा) मङ्गलवती और (भद्रा) कल्याणी (तन्व) उपकारशक्तियाँ है, (याभि) जिनसे (सत्यम) वह सत्य (भवति) होता है (यत) जो कुछ (वृणीषे) तू चाहता है। (ताभि) उन [उपकारशक्तियो] से (त्वम्) तू (अस्मान्) हम लोगो मे। (अभिसंविशस्व) प्रवेश करता रह, (अन्यत्र) दूसरे [पापियो] मे (पापी धिय) पापबुद्धियो को (अप वेशय) प्रवेश कर दे ॥२५॥

卐 इति प्रथमोऽनुवाक 卐

卐

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ॥३॥ 卐

१-३१ भृग्वङ्गिरा । शाला । अनुष्टुप्, ६ पथ्यापङ्क्ति, ७ परोष्णिक्, १५ -पञ्चपदाति शक्वरी १७ प्रस्तारपङ्क्ति, २१ आस्तार पङ्क्ति, २५, ३१ त्रिपदा प्राजापत्या बृहती, २६ साम्नी त्रिष्टुप्, २७ ३० प्रतिष्ठानाम गायत्री, २२-२४ एकावसाना त्रिपदा ।

उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत ।

शालाया विश्ववाराया नद्धानि वि चृतामसि ॥१॥

पदार्थ—(विश्ववाराया) सब ओर द्वारो वाली वा सब श्रेष्ठ पदार्थों वाली (शालाया) शाला की (उपमिताम्) उपमायुक्त [देखने मे सराहने योग्य], (प्रतिमिताम्) प्रतिमान युक्त [जिसके आमने-सामने की भीतें, द्वार, खिड़की आदि एक माप मे हो] (अथो) और भी (परिमिताम्) परिमाणयुक्त [चारो ओर से माप कर सम चौरस की हुई] [बनावट] का (उत) और (नद्धानि) बन्धनो [चिनाई, काष्ठ आदि के मेला] को (वि चृतामसि) हम अच्छे प्रकार ग्रन्थित [बन्धन युक्त] करते है ॥ १ ॥

यत् ते नद्धं विश्ववारे पाशो ग्रन्थिश्च यः कृतः ।

बृहस्पतिरिवाहं बलं वाचा वि स्रंसयामि तत् ॥२॥

पदार्थ—(विश्ववारे) हे सब उत्तम पदार्थों वाली ! (यत्) जिस कारण से (ते) तेरा (नद्धम्) बन्धन, (पाश) जाल (च) और (ग्रन्थि) गांठ (य) जो (कृत) बनाई गई है। (तत) उसी कारण से (बृहस्पति इव) बड़े विद्वान् के समान (अहम) मै (बलम) अन्नराशि को (वाचा) वाणी [विद्या] के साथ (वि) विशेष करके (स्रंसयामि) पहुँचाता हूँ ॥ २ ॥

आ ययाम सं बबर्ह ग्रन्थींश्चकार ते दृढान् ।

परूंषि विद्वाञ्छस्तेवेन्द्रेण वि चृतामसि ॥३॥

पदार्थ—उस [शिल्पी]ने (ते) तेरी (ग्रन्थीन्) गांठो को (आ ययाम) फैलाया है, (सम् बबर्ह) मिलाया है, और (दृढान्) दृढ (चकार) किया है। (परूंषि) जोड़ो को (विद्वान्) विद्वान् (शस्ता इव) चीरफाड करने वाले [वैद्य] के समान हम लोग (इन्द्रेण) ऐश्वर्य के साथ (वि) विशेष करके (चृतामसि) बाधते हैं ॥ ३ ॥

वंशानां ते नहनानां प्राणाहस्य तृणस्य च ।

पक्षाणां विश्ववारे ते नद्धानि वि चृतामसि ॥४॥

पदार्थ—(विश्ववारे) हे सब उत्तम पदार्थों वाली ! (ते) तेरे (वंशानाम्) बांसो, (नहनानाम्) गांठो (च) और (प्राणाहस्य) बन्धन की (तृणस्य) घास के और (ते) तेरे (पक्षाणाम्) पक्खो [भीति आदि] के (नद्धानि) बन्धनो को (वि) अच्छे प्रकार (चृतामसि) हम गूथते हैं ॥ ४ ॥

संदंशानां पलदानां परिष्वञ्जल्यस्य च ।

इदं मानस्य पत्न्या नद्धानि वि चृतामसि ॥५॥

पदार्थ—(इदम्) अब (मानस्य) मान [सन्मान] की (पत्न्या) रक्षा करनेवाली [शाला] के (संदंशानाम्) सडासियो [वा आंकड़ों] को (च) और (पलदानाम्) पल [अर्थात् सुवर्ण आदि का तोल और विघटिका मुहूर्त आदि देने वाले [यन्त्रो] के (परिष्वञ्जल्यस्य) जोड़ के (नद्धानि) बन्धनो को (वि चृतामसि) हम भलीभाति बाधते है ॥ ५ ॥

यानि तेऽन्तः शिक्यान्याबेधू रण्याय कम् । प्र ते तानि

चृतामसि शिवा मानस्य पत्नी न उद्धिता तन्वे भव ॥६॥

पदार्थ—(ते अन्त) तेरे भीतर (यानि) जिन (शिक्यानि) छीको को (कम्) सुख से (रण्याय) रमणीय वा साग्रामिक कर्म के लिये (आबेधु) उन [शिल्पियो] ने भलीभाति बाधा है। (ते) तेरे लिये (तानि) उन सबको (प्र चृतामसि) हम भलीभाति दृढ करते है, (मानस्य) सम्मान की (पत्नी) रक्षा करने वाली तू (न) हमारे (तन्वे) उपकार के लिये (शिवा) कल्याणी और (उद्धिता) ऊंची उठी हुई (भव) हो ॥ ६ ॥

हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः ।

सदो देवानामसि देवि शाले ॥७॥

पदार्थ—(देवि) हे दिव्य कमनीय (शाले) शाला ! तू (हविर्धानम्) देने लेने योग्य पदार्थों [वा अन्न और हवन सामग्री] का घर, (अग्निशालम्) अग्नि [वा बिजुली आदि] का स्थान, (पत्नीनाम्) रक्षा करने वाली स्त्रियो का (सदनम्) घर और (सद) सभास्थान और (देवानाम्) विद्वान् पुरुषो का (सद) सभास्थान (असि) है ॥ ७ ॥

अक्षुमोपशं विततं सहस्राक्षं विषूवति ।

अवनद्धमभिहितं ब्रह्मणा वि चृतामसि ॥८॥

पदार्थ—(विषूवति) व्याप्ति वाले [ऊँचे] स्थान पर (विततम्) फैले हुए, (सहस्राक्षम्) सहस्रो व्यवहार वा झरोखे वाले (ओपशम्) उपयोगी, (ब्रह्मणा) वेदज्ञ विद्वान् द्वारा (अवनद्धम्) अच्छे प्रकार छाये गये और (अभिहितम्) बताये गये (अक्षुम्) व्याप्ति वाले [सर्वदर्शक स्तम्भगृह] को (विचृतामसि) हम अच्छे प्रकार ग्रन्थित करते है ॥८॥

यस्त्वा शाले प्रतिगृह्णाति येन चासि मिता त्वम् ।

उभौ मानस्य पत्नि तौ जीवतां जरदष्टी ॥९॥

पदार्थ—(शाले) हे शाला ! (य) जो (त्वा) तुझको (प्रतिगृह्णाति) अङ्गीकार करता है (च) और (येन) जिस करके (त्वम्) तू (मिता असि) बनाई गई है। (मानस्य पत्नि) हे सम्मान की रक्षा करने वाली ! (तौ उभौ) वे दोनो (जरदष्टी) स्तुति के साथ प्रवृत्ति वा भोजन वाले [होकर] (जीवताम्) जीते रहे ॥९॥

अमुत्रैनमा गच्छताद् दृढा नद्धा परिष्कृता ।

यस्यास्ते विचृतामस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः ॥१०॥

पदार्थ—(दृढा) दृढ बनी हुई, (नद्धा) छायी हुई और (परिष्कृता) सजी हुई तू (अमुत्र) वहा पर (एनम्) इस [पुरुष] को (आ गच्छतात्) प्राप्त हो। (यस्या ते) जिस तेरे (अङ्गमङ्गम्) अङ्ग-अङ्ग और (परुष्परु) पोरुए पोरुए को (विचृतामसि) हम अच्छी प्रकार ग्रन्थित करते हैं ॥१०॥

यस्त्वा शाले निमिमाय संजभार वनस्पतीन् ।

प्रजायै चक्रे त्वा शाले परमेष्ठी प्रजापतिः ॥११॥

पदार्थ—(शाले) हे शाला ! (य) जिस [गृहस्थ] ने (त्वा) तुझे (निमिमाय) जमाया है और (वनस्पतीन्) सेवन करने वालो के रक्षक पदार्थों को (संजभार) एकत्र किया है। (शाले) हे शाला ! (परमेष्ठी) सब से उच्च पद पर रहने वाले (प्रजापति) उस प्रजापालक [गृहस्थ] ने (प्रजायै) प्रजा के सुख के लिये (त्वा) तुझे (चक्रे) बनाया है ॥११॥

नमस्तस्मै नमो दात्रे शालापतये च कृण्मः ।

नमोऽग्नये प्रचरते पुरुषाय च ते नमः ॥१२॥

पदार्थ—(तस्मै) उस (नमो दात्रे) अन्न देने वाले (च) और (शालापतये) शाला के स्वामी को (नमः) सत्कार (कृण्मः) हम करते हैं। (अग्नये) अग्नि [की सिद्धि] को (नम.) अन्न (च) और (प्रचरते) सेवा करने वाले (पुरुषाय) पुरुष के लिये (ते) तेरे हित के लिये (नम.) अन्न होवे ॥१२॥

गोभ्यो अश्वेभ्यो नमो यच्छालायां विजायते ।

विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि ॥१३॥

पदार्थ—(गोभ्यः) गौओं के लिये, (अश्वेभ्यः) घोड़ों के लिये और (यत्) जो कुछ (शालायाम्) शाला में (विजायते) उत्पन्न होवे, [उसके लिये (नमः) अन्न [होवे] । (विजावति) हे विविध उत्पन्न पदार्थोंवाली ! और (प्रजावति) हे उत्तम प्रजाओं वाली ! (ते) तेरे (पाशान्) बन्धनों को (विचृतामसि) हम अच्छे प्रकार ग्रन्थित करते हैं ॥१३॥

अग्निमन्तश्छादयसि पुरुषान् पशुभिः सह ।

विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि ॥१४॥

पदार्थ—[हे शाला !] (अग्निम्) अग्नि को और (पुरुषान्) पुरुषों को (पशुभिः सह) पशुओं सहित (अन्तः) अपने भीतर (छादयसि) तू ढक लेती है । (विजावति) हे विविध उत्पन्न पदार्थों वाली ! और (प्रजावति) हे उत्तम प्रजाओं वाली ! (ते) तेरे (पाशान्) बन्धनों को (वि चृतामसि) हम अच्छे प्रकार ग्रन्थित करते हैं ॥१४॥

अन्तरा द्यां च पृथिवीं च यद् व्यचस्तेन शालां प्रति गृह्णामि त इमाम् । यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत् कृण्वेऽहमुदरं शेवधिभ्यः । तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै ॥१५॥

पदार्थ—(द्याम्) सूर्य [के प्रकाश] (च च) और (पृथिवीम् अन्तरा) पृथिवी के बीच (यत्) जो (व्यचः) खुला स्थान है, (तेन) उस [विस्तार] से (इमाम् शालाम्) इस शाला को [हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (प्रति गृह्णामि) मैं ग्रहण करता हूँ । (यत्) जो (रजसः) घर का (अन्तरिक्षम्) अवकाश (विमानम्) विशेष मान-परिमाण युक्त है, (तत्) उस [अवकाश] को (अहम्) मैं (शेवधिभ्यः) अनेक निधियों के लिये (उदरम्) पेट (कृण्वे) बनाता हूँ । (तेन) उसी [कारण] से (तस्मै) उस [प्रयोजन] के लिये (प्रति गृह्णामि) मैं ग्रहण करता हूँ ॥१५॥

ऊर्जस्वती पयस्वती पृथिव्यां निमिता मिता ।

विश्वान्नं बिभ्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः ॥१६॥

पदार्थ—(शाले) हे शाला ! (पृथिव्याम्) उचित भूमि पर (मिता) परिमाण युक्त (निमिता) जमाई गई (ऊर्जस्वती) अन्न पराक्रम बढ़ाने वाली, (पयस्वती) जल और दुग्ध आदि से पूर्ण, (विश्वान्नम्) सम्पूर्ण अन्न को (बिभ्रती) धारण करती हुई तू (प्रतिगृह्णतः) ग्रहण करने हारों को (मा हिंसीः) मत पीड़ा दे ॥१६॥

तृणैरावृता पलदान् वसाना रात्रीव शाला जगतो निवेशनी ।

मिता पृथिव्यां तिष्ठसि हस्तिनीव पद्वती ॥१७॥

पदार्थ—(तृणैः) तृण आदि से (आवृता) छाई हुई, (पलदान्) पल [अर्थात सुवर्ण आदि की तोल और विघटिका मुहूर्त आदि] देने वाले [यन्त्रों] को (वसाना) पहिने हुए (शाला) शाला तू (जगतः) संसार की (निवेशनी) सुख प्रवेश करने वाली (रात्री इव) रात्री के समान [होकर] (पद्वती) पैरों वाली [चारों पैरों पर दृढ़ खड़ी हुई] (हस्तिनी इव) हथिनी के समान (पृथिव्याम्) उचित भूमि पर (मिता) बनाई हुई (तिष्ठसि) स्थित है ॥१७॥

इटस्य ते वि चृताम्यपिनद्धमपोर्णुवन् ।

वरुणेन समुब्जितां मित्रः प्रातर्व्युब्जतु ॥१८॥

पदार्थ—[हे शाला !] (ते) तेरे (इटस्य) द्वार के (अपिनद्धम्) बन्धन को (अपोर्णुवन्) खोलता हुआ मैं (वि चृतामि) अच्छे प्रकार ग्रन्थित करता हूँ । (वरुणेन) ढकने वाले अन्धकार से (समुब्जिताम्) दबाई हुई [तुझ] को (मित्रः) सर्वप्रेरक सूर्य (प्रातः) प्रातःकाल (वि उब्जतु) खोल देवे ॥१८॥

ब्रह्मणा शालां निमितां कविभिर्निमितां मिताम् ।

इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सोम्यं सदः ॥१९॥

पदार्थ—(अमृतौ) मरणरहित [सुखप्रद] (इन्द्राग्नी) पवन और अग्नि (ब्रह्मणा) चारों वेद जानने हारे विद्वान् द्वारा (निमिताम्) जमाई गई [नाव डाली गई] (शालाम्) शाला की, (कविभिः) विद्वानों [शिल्पियों] द्वारा (मिताम्) मापी गई और (निमिताम्) दृढ़ बनाई गई (शालाम्) शाला, (सोम्यम्) ऐश्वर्ययुक्त (सदः) घर की (रक्षताम्) रक्षा करें ॥१९॥

कुलायेऽधि कुलायं कोशे कोशः समुब्जितः ।

तत्र मर्तो वि जायते यस्माद् विश्वं प्रजायते ॥२०॥

पदार्थ—[जैसे] (कुलाये अधि) घोंसले पर (कुलायम्) घोंसला और (कोशे) कोश [निधि] पर (कोशः) कोश [धन सञ्चय] (समुब्जितः) यथावत् दबा होता है । [वैसे ही] (तत्र) वहां [शाला में] (मर्तः) मनुष्य (वि जायते) विविध प्रकार प्रकट होता है, (यस्मात्) जिस [कारण] से (विश्वम्) सब [सन्तानसमूह] (प्रजायते) उत्तमता से उत्पन्न होता है ॥२०॥

या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमीयते ।

अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भ इवा शये ॥२१॥

पदार्थ—(या) जो (द्विपक्षा) दो पक्ष वाली [अर्थात् जिसके मध्य में एक, और पूर्व-पश्चिम में एक-एक शाला हो], (चतुष्पक्षा) चार पक्ष वाली [जिसके मध्य में एक और पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर में एक-एक शाला हो], (या) जो (षट्पक्षा) छह पक्ष वाली [जिसके बीच में बड़ी शाला और दो दो पूर्व-पश्चिम और एक-एक उत्तर-दक्षिण में शाला हो] (निमीयते) बनाई जाती है [उसको और] (अष्टापक्षाम्) आठ पक्ष वाली [जिसके बीच में एक और चारों ओर दो-दो शाला हों] और (दशपक्षाम्) दश पक्ष वाली [जिसके मध्य में दो शाला और चारों दिशाओं में दो-दो शाला हों], [उस] (मानस्य) सम्मान की (पत्नीम्) रक्षा करने हारी (शालाम्) शाला में (अग्निः) जाठराग्नि और (गर्भः इव) गर्भस्थ बालक के समान (आ शये) मैं ठहरता हूँ ॥२१॥

प्रतीचीं त्वा प्रतीचीनः शाले प्रैम्यहिंसतीम् ।

अग्निर्ह्यन्तरापश्च ऋतस्य प्रथमा द्वाः ॥२२॥

पदार्थ—(शाले) हे शाला ! (प्रतीचीनः) [तेरे] सन्मुख चलता हुआ मैं (प्रतीचीम्) [मेरे] सन्मुख होती हुई, (अहिंसतीम्) न पीड़ा देती हुई (त्वा) तुझको (प्र एमि) अच्छे प्रकार प्राप्त होता हूँ । (हि) निश्चय करके (अन्तः) [तेरे] भीतर (अग्निः) अग्नि [का घर] और (आपः) जल [का स्थान] (च) और (ऋतस्य) सत्य [के ध्यान] का (प्रथमा) पहिला (द्वाः) द्वार है ॥२२॥

इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः ।

गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥२३॥

पदार्थ—(इमाः) इन (अयक्ष्माः) रोगरहित (यक्ष्मनाशनीः) रोगनाशक (आपः) जल को (प्र) अच्छे प्रकार (आ भरामि) मैं लाता हूँ । (अमृतेन) मृत्यु से बचाने वाले अन्न घृत, दुग्धादि सामग्री और (अग्निना सह) अग्नि के सहित (गृहान्) घरों में (उप - उपेत्य) आकर (प्र) अच्छे प्रकार (सीदामि) मैं बैठता हूँ ॥२३॥

मा नः पाशं प्रति मुचो गुरुर्भारो लघुर्भव ।

वधूमिव त्वा शाले यत्रकामं भरामसि ॥२४॥

पदार्थ—(शाले) हे शाला ! तू (नः) हमारे लिये [अपने] (पाशम्) बन्धन को (मा प्रति मुचः) कभी मत छोड़, (गुरुः) भारी (भारः) बोझ तू (लघुः) हलका (भव) हो जा (वधूम् इव) वधू के समान (त्वा) तुझको (यत्रकामम्) जहां कामना हो वहां (भरामसि) हम पुष्ट करते हैं ॥ २४ ॥

प्राच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥२५॥

पदार्थ—(प्राच्याः दिशः) पूर्व दिशा से (शालायाः) शाला की (महिम्ने) महिमा के लिये (नमः) अन्न हो, (स्वाह्येभ्यः) सुवाणी के योग्य (देवेभ्यः) कमनीय विद्वानों के लिये (स्वाहा) सुवाणी [वेदवाणी] हो ॥ २५ ॥

दक्षिणाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥२६॥

पदार्थ—(दक्षिणायाः दिशः) दक्षिण दिशा से (शालायाः) शाला की (महिम्ने) महिमा के लिये (नमः) अन्न हो, (स्वाह्येभ्यः) सुवाणी के योग्य (देवेभ्यः) कमनीय विद्वान् के लिये (स्वाहा) सुवाणी [वेदवाणी] हो ॥२६॥

प्रतीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥२७॥

पदार्थ—(प्रतीच्याः दिशः) पश्चिम दिशा से (शालायाः) शाला की (महिम्ने) महिमा के लिये (नमः) अन्न हो, (स्वाह्येभ्यः) सुवाणी के योग्य (देवेभ्यः) कमनीय विद्वानों के लिये (स्वाहा) सुवाणी [वेदवाणी] हो ॥२७॥

उदीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥२८॥

पदार्थ—(उदीच्याः दिशः) उत्तर दिशा से (शालायाः) शाला की (महिम्ने) महिमा के लिये (नमः) अन्न हो, (स्वाह्येभ्यः) सुवाणी के योग्य (देवेभ्यः) कमनीय विद्वानों के लिये (स्वाहा) सुवाणी [वेदवाणी] हो ॥२८॥

ध्रुवाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥२९॥

पदार्थ—(ध्रुवायाः दिशः) नीचे वाली दिशा से (शालायाः) शाला की (महिम्ने) महिमा के लिये (नमः) अन्न हो, (स्वाह्येभ्यः) सुवाणी के योग्य (देवेभ्यः) कमनीय विद्वानों के लिये (स्वाहा) सुवाणी [वेदवाणी] हो ॥ २९ ॥

ऊर्ध्वायां दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥२०॥

पदार्थ—(ऊर्ध्वायाः दिशः) ऊपर वाली दिशा से (शालायाः) शाला की (महिम्ने) महिमा के लिये (नमः) अन्न हो, (स्वाह्येभ्यः) सुवाणी के योग्य (देवेभ्यः) कमनीय विद्वानों के लिये (स्वाहा) सुवाणी [वेदवाणी] हो ॥ २० ॥

दिशोदिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥२१॥

पदार्थ—(दिशोदिशः) प्रत्येक विदिशा से (शालायाः) शाला की (महिम्ने) महिमा के लिये (नमः) अन्न हो, (स्वाह्येभ्यः) सुवाणी के योग्य (देवेभ्यः) कमनीय विद्वानों के लिये (स्वाहा) सुवाणी [वेदवाणी] हो ॥२१॥

卐 सूक्तम् ४ 卐

१-२४ ब्रह्मा । ऋषभः । त्रिष्टुप्, ८ भुरिक्, ६, १०, २४ जगती, ११-१७, १९-२०, २३ अनुष्टुप्, १८ उपरिष्टाद् बृहती, २१ आस्तारपङ्क्तिः ।

साहस्रस्त्वेष ऋषभः पयस्वान् विश्वा रूपाणि वक्षणासु बिभ्रत् ।
भद्रं दात्रे यजमानाय शिक्षन् बार्हस्पत्य उस्रियस्तन्तुमातान् ॥१॥

पदार्थ—(साहस्रः) सहस्रों पराक्रमवाला, (त्वेषः) प्रकाशमान, (पयस्वान्) अन्नवान् (विश्वा) सब (रूपाणि) रूपवान् द्रव्यों को (वक्षणासु) अपनी छाती के अवयवों में (बिभ्रत्) धारण करते हुए, (दात्रे) दानशील (यजमानाय) यजमान [देव पूजा, संयोग, वियोग व्यवहार में चतुर] के लिये (भद्रम्) कल्याण करने की (शिक्षन्) इच्छा करते हुए (बार्हस्पत्यः) बृहस्पतियों [वेदरक्षक विद्वानों] से व्याख्या किये गये । (उस्रियः) सब के निवास, (ऋषभः) सर्वव्यापक वा सर्वदर्शक [परमेश्वर] ने (तन्तुम्) विस्तृत [जगत्‌रूप तन्तु] को (आ अतान) सब ओर फैलाया है ॥ १ ॥

अपां यो अग्रे प्रतिमा बभूव प्रभूः सर्वस्मै पृथिवीव देवी ।
पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानां साहस्रे पोषे अपि नः कृणोतु ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो [ईश्वर] (अग्रे) पहिले ही पहिले (अपाम्) व्याप्त प्रजाओं की (प्रतिमा) प्रत्यक्ष मान करने वाली [सब जानने वाली] शक्ति और (सर्वस्मै) सब [जगत्] के लिये (देवी) दिव्य गुणवाली (पृथिवी इव) पृथिवी के समान (प्रभूः) समर्थ (बभूव) हुआ है, वह (वत्सानाम्) निवास करने वालों का (पिता) पालनकर्त्ता और (अघ्न्यानाम्) अहिंसकों [प्रजापतियों] का (पतिः) स्वामी [परमेश्वर] (साहस्रे) सहस्रों पराक्रमयुक्त (पोषे) पोषण में (नः) हमें (अपि) अवश्य (कृणोतु) करे ॥ २ ॥

पुमानन्तर्वान्त्स्थविरः पयस्वान् वसोः कबन्धमृषभो बिभर्ति ।
तमिन्द्राय पथिभिर्देवयानैर्हुतमग्निर्वहतु जातवेदाः ॥३॥

पदार्थ—(पुमान्) रक्षा करने वाला, (अन्तर्वान्) [सब को अपने] भीतर रखने वाला, (स्थविरः) स्थिर स्वभाव [ब्रह्म] (पयस्वान्) अन्नवान् (ऋषभः) सर्वव्यापक परमेश्वर (वसोः) निवास करने वाले [संसार] के (कबन्धम्) उदर को (बिभर्ति) भरता है । (तम् हुतम्) उस दाता को (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य के लिये (देवयानैः) विद्वानों के जाने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (जातवेदाः) बड़े ज्ञानवाला (अग्निः) अग्नि [के समान तेजस्वी पुरुष] (वहतु) प्राप्त करे ॥ ३ ॥

पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानामथो पिता महतां गर्गराणाम् ।
वत्सो जरायु प्रतिधुक् पीयूष आमिक्षा घृतं तद्वस्य रेतः ॥४॥

पदार्थ—(वत्सानाम्) निवास करने वालों का (पिता) पालनकर्त्ता और (अघ्न्यानाम्) अहिंसकों [प्रजापतियों] का (पतिः) स्वामी (अथो) और भी (महताम्) बड़े (गर्गराणाम्) उपदेश देनेवाले पुरुषों का (पिता) पिता [पालक परमेश्वर] है । (वत्सः) निवास, (जरायु) जेर [गर्भ की झिल्ली], (प्रतिधुक्) तुरन्त दुहा हुआ (पीयूषः) रुचिर दूध, (आमिक्षा) आमिक्षा [पकाये उष्ण दूध में दही मिलाने से उत्पन्न वस्तु], (घृतम्) घी (तत्) वह [पदार्थ समूह] (अस्य) इस [परमेश्वर] का (उ) ही (रेतः) वीर्य [सामर्थ्य] है ॥ ४ ॥

देवानां भाग उपनाह एषो३ऽपां रस ओषधीनां घृतस्य ।
सोमस्य भक्षमवृणीत शक्रो बृहन्नद्रिरभवद् यच्छरीरम् ॥५॥

पदार्थ—(एषः) यह [परमेश्वर] (देवानाम्) दिव्य गुणों का (भागः) ऐश्वर्यवान् (उपनाहः) नित्य सम्बन्धी, और (अपाम्) जलों का (ओषधीनाम्) ओषधियों [अन्न आदि पदार्थों] का और (घृतस्य) घृत का (रसः) रसरूप है । (शक्रः) उसी शक्तिमान् ने (सोमस्य) अमृत के (भक्षम्) भोग को [हमारे लिये] (अवृणीत) स्वीकार किया है और (यत्) जो [उसका] (शरीरम्) शरीर [अस्तित्व] है, वह (बृहन्) बड़ा (अद्रिः) कोठार (अभवत्) हुआ है ॥ ५ ॥

सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्षि त्वष्टा रूपाणां जनिता पशूनाम् । शिवास्ते सन्तु प्रजन्व इह या इमा न्य१स्मभ्यं स्वधिते यच्छ या अमूः ॥६॥

पदार्थ—(रूपाणाम्) सब रूपों का (त्वष्टा) बनाने वाला और (पशूनाम्) सब जीवों का (जनिता) उत्पन्न करने वाला तू (सोमेन) अमृत से (पूर्णम्) पूर्ण (कलशम्) कलश (बिभर्षि) धारण करता है । (स्वधिते) हे स्वयं धारण करने वाले ! (ते) तेरी (प्रजन्वः) प्रजनन शक्तियाँ (इह) यहाँ पर (शिवाः) कल्याणी (सन्तु) होवें, (याः) जो प्रजनन शक्तियाँ (इमाः) ये हैं और (याः) जो (अमूः) वे हैं [उन सब को] (अस्मभ्यम्) हमें (नि) नियमपूर्वक (यच्छ) दान कर ॥ ६ ॥

आज्यं बिभर्ति घृतमस्य रेतः साहस्रः पोषस्तमु यज्ञमाहुः ।
इन्द्रस्य रूपमृषभो वसानः सो अस्मान् देवाः शिव ऐतु दत्तः ॥७॥

पदार्थ—(अस्य) इस [परमेश्वर] का (घृतम्) प्रकाशयुक्त (रेतः) सामर्थ्य (आज्यम्) सब उपाय (बिभर्ति) धारण करता है (साहस्रः) वह सहस्रों पराक्रमयुक्त (पोषः) पोषक है, (तम् उ) उसको ही (यज्ञम्) यज्ञ [संयोजक-वियोजक] (आहुः) कहते हैं । (देवाः) हे विद्वान् लोगो ! (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य का (रूपम्) रूप (वसानः) धारण करता हुआ (शिवः) मङ्गलकारी, (दत्तः) दिया हुआ [हृदय में रखा गया] (सः) वह (ऋषभः) सर्वदर्शक परमेश्वर (अस्मान्) हम लोगों को (आ एतु) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ ७ ॥

इन्द्रस्यौजो वरुणस्य बाहू अश्विनोरंसौ मरुतामियं ककुत् ।
बृहस्पतिं संभृतमेतमाहुर्ये धीरासः कवयो ये मनीषिणः ॥८॥

पदार्थ—(इन्द्रस्य) सूर्य का (ओजः) बल, (वरुणस्य) जल की (बाहू) दो भुजा [के समान], (अश्विनोः) दिन और रात का (अंसौ) दो कन्धों [के समान] और (मरुताम्) प्राण अपान आदि पवनों की (इयम्) यह (ककुत्) मुख्य वा शब्द करने वाली शक्ति [यह परमेश्वर है] । (एतम्) इसी को (बृहस्पतिम्) बड़े-बड़े लोकों का स्वामी (संभृतम्) यथावत् पालनकर्ता (आहुः) वे बताते हैं, (ये) जो (धीरासः) धीर (कवयः) बुद्धिमान और (ये) जो (मनीषिणः) मन की गति वाले हैं ॥ ८ ॥

दैवीर्विशः पयस्वाना तनोषि त्वामिन्द्रं त्वां सरस्वन्तमाहुः ।
सहस्रं स एकमुखा ददाति यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥९॥

पदार्थ—(पयस्वान्) अन्नवान् तू (दैवीः) दिव्यगुण वाली (विशः) प्रजाओं को (आ) सब ओर (तनोषि) फैलाता है, (त्वाम्) तुझको (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्यवान् (त्वाम्) तुझको (सरस्वन्तम्) महाज्ञानवान् (आहुः) वे कहते हैं । (सः) वह [ब्राह्मण] (सहस्रम्) सहस्र (एकमुखाः) एक [परमेश्वर] में मुख [मुख्यता] रखने वाली [विद्याओं] को (ददाति) देता है, (यः) जो (ब्राह्मणः) वेदज्ञानी (ऋषभम्) सर्वदर्शक परमेश्वर को (आजुहोति) सब ओर से ग्रहण करता है ॥ ९ ॥

बृहस्पतिः सविता ते वयो दधौ त्वष्टुर्वायोः पर्यात्मा त आभृतः ।
अन्तरिक्षे मनसा त्वा जुहोमि बर्हिष्टे द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥१०॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (बृहस्पतिः) सब लोकों के स्वामी (सविता) सर्वप्रेरक परमेश्वर ने (ते) तेरे लिये (वयः) अन्न [वा बल] (दधौ) दिया है, (त्वष्टुः) उसी विश्वकर्मा ने (वायोः) सर्वव्यापक परमेश्वर से (ते) तेरा (आत्मा) आत्मा (परि) सब ओर (आभृतः) पुष्ट किया गया है । (अन्तरिक्षे) सब में दीखते हुए परमेश्वर के बीच (त्वा) तुझ को (मनसा) विज्ञान से (जुहोमि) मैं ग्रहण करता हूँ (उभे) दोनों (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (ते) तेरे लिये (बर्हिः) वृद्धि (स्ताम्) होवें ॥ १० ॥

य इन्द्र इव देवेषु गोष्वेति विवावदत् ।
तस्य ऋषभस्याङ्गानि ब्रह्मा सं स्तौतु भद्रया ॥११॥

पदार्थ—(इन्द्रः इव) बड़े ऐश्वर्यवान् पुरुष के समान (देवेषु) विद्वानों के बीच, (यः) जो [परमेश्वर] (विवावदत्) अनेक प्रकार बोलता हुआ (गोषु) भूमि आदि लोकों में (एति) चलता है । (तस्य) उस (ऋषभस्य) सर्वव्यापक के (अङ्गानि) अङ्गों को (ब्रह्मा) ब्रह्मा [चारों वेद जानने वाला विद्वान्] (भद्रया) कल्याणी रीति से (सम्) भले प्रकार (स्तौतु) सत्कार से वर्णन करे ॥ ११ ॥

पार्श्वे आस्तामनुमत्या भगस्यास्तामनूवृजौ ।
अष्ठीवन्तावब्रवीन्मित्रो ममैतौ केवलाविति ॥१२॥

पदार्थ—[परमेश्वर की] (पार्श्वे) दोनों कांखें [कक्षायें] (अनुमत्या) अनुकूल बुद्धि की (आस्ताम्) थीं। (अनूवृकौ) [उसकी] दोनों कोखें (भगस्य) ऐश्वर्य की (आस्ताम्) थीं। (अष्ठीवन्तौ) [उसके] दोनों घुटनों को (मित्र) प्राण ने (अब्रवीत्) बतलाया, "(एतौ) ये दोनों (केवलौ) केवल (मम) मेरे हैं, (इति) बस" ॥ १२ ॥

भसदासीदादित्यानां श्रोणी आस्तां बृहस्पतेः।
पुच्छं वातस्य देवस्य तेन धूनोत्योषधीः ॥१३॥

पदार्थ—(भसत्) [परमेश्वर की] पड़ (आदित्यानाम्) अनेक सूर्य लोकों की (आसीत्) थी, [उनके] (श्रोणी) दोनों कूल्हे (बृहस्पतेः) बृहस्पति लोक के (आस्ताम्) थे। [उसकी] (पुच्छम्) पूंछ (देवस्य) गतिमान् (वातस्य) वायु की [थी], (तेन) उससे (ओषधीः) ओषधियों को (धूनोति) वह हिलाता है ॥ १३ ॥

गुदा आसन्त्सिनीवाल्याः सूर्यायास्त्वचमब्रुवन्।
उत्थातुरब्रुवन् पद ऋषभं यदकल्पयन् ॥१४॥

पदार्थ—[परमेश्वर की] (गुदाः) गुदा की नाड़ियां (सिनीवाल्याः) चौदस के साथ मिली हुई अमावस की (आसन्) थीं, [उसकी] (त्वचम्) त्वचा को (सूर्यायाः) सूर्य की धूप का (अब्रुवन्) उन्होंने बतलाया। (पदः) [उसके] पैरों को (उत्थातुः) उठने वाले [उत्साही पुरुष] का (अब्रुवन्) उन्होंने बतलाया, (यत्) जब (ऋषभम्) सर्वव्यापक परमेश्वर को (अकल्पयन्) उन्होंने कल्पना से माना ॥ १४ ॥

क्रोड आसीज्जामिशंसस्य सोमस्य कलशो धृतः।
देवाः संगत्य यत् सर्व ऋषभं व्यकल्पयन् ॥१५॥

पदार्थ—[परमेश्वर की] (क्रोडः) गोद (जामिशंसस्य) ज्ञानियों में प्रशंसा वाले पुरुष की (आसीत्) थी, [उसका] (कलशः) कलस [जलपात्र] (सोमस्य) अमृत का (धृतः) धरा हुआ [था]। (यत्) जब (सर्वे) सब (देवाः) विद्वानों ने (संगत्य) मिलकर (ऋषभम्) सर्वदर्शक परमेश्वर को (व्यकल्पयन्) विविध प्रकार कल्पना से माना ॥ १५ ॥

ते कुष्ठिकाः सरमायै कूर्मेभ्यो अदधुः शफान्।
ऊबध्यमस्य कीटेभ्यः श्ववर्तेभ्यो अधारयन् ॥१६॥

पदार्थ—(ते) उन्होंने [ऋषियों ने] (कुष्ठिकाः) [पदार्थों का] बाहिर निकालने [चुराने] की प्रणालियां (सरमायै) सरक सरक कर चलने वाली कुतिया को और (शफान्) हिंसक स्वभाव (कूर्मेभ्यः) हिंसा करने वाले वा जल में धस जाने वाले [कछुओं] को (अदधुः) दिया। (अस्य) इसका (ऊबध्यम्) कुपचा अन्न (श्ववर्तेभ्यः) कुत्ता [वा मनुष्य देह में] रहने वाले (कीटेभ्यः) कीड़ों को (अधारयन्) उन्होंने रक्खा ॥१६॥

भृङ्गाभ्यां रक्ष ऋषत्यवर्तिं हन्ति चक्षुषा।
शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवां यः पतिरघ्न्यः ॥१७॥

पदार्थ—[वह परमेश्वर] (भृङ्गाभ्याम्) दो प्रधानताओं [प्रजापालन और शत्रुनाशन] से (रक्षः) राक्षस [विघ्न] को (ऋषति) हटाता है, (चक्षुषा) नेत्र से (अवर्तिम्) निर्धनता (हन्ति) नाश करता है। (कर्णाभ्याम्) दोनों कानों से (भद्रम्) कल्याण (शृणोति) सुनता है, (यः) जो (अघ्न्यः) अहिंसक प्रजापति (गवाम्) सब लोकों का (पतिः) स्वामी है ॥१७॥

शतयाजं स यजते नैनं दुन्वन्त्यग्नयः। जिन्वन्ति विश्वे
तं देवा यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥१८॥

पदार्थ—(यः) जो (ब्राह्मणः) ब्राह्मण [परमेश्वर और वेद जानने वाला] (ऋषभम्) श्रेष्ठ परमात्मा को (आजुहोति) अच्छे प्रकार प्रसन्न करता है, (सः) वह (शतयाजम्) शीघ्र सैकड़ों प्रकार से यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] करके (यजते) मिलता है, (एनम्) उसको (अग्नयः) तापें [आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक] (न) नहीं (दुन्वन्ति) तपाते हैं, (तम्) उसको (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य गुण (जिन्वन्ति) तृप्त करते हैं ॥१८॥

ब्राह्मणेभ्य ऋषभं दत्वा वरीयः कृणुते मनः।
पुष्टिं सो अघ्न्यानां स्वे गोष्ठेऽव पश्यते ॥१९॥

पदार्थ—[जो आचार्य] (ब्राह्मणेभ्यः) ब्राह्मणों [ब्रह्म जिज्ञासुओं] को (ऋषभम्) श्रेष्ठ परमेश्वर [के बोध] को (दत्वा) देकर (मनः) मन (वरीयः) अधिक विस्तृत (कृणुते) करता है। (सः) वह पुरुष (स्वे) अपने (गोष्ठे) वाचनालय में (अघ्न्यानाम्) हिंसा न करने वालों की (पुष्टिम्) पुष्टि (अवपश्यते) देखता है ॥

गावः सन्तु प्रजाः सन्त्वथो अस्तु तनूबलम्।
तत् सर्वमनु मन्यन्तां देवा ऋषभदायिने ॥२०॥

पदार्थ—(गावः) विद्याएं (सन्तु) होवें, (प्रजाः) प्रजाएं (सन्तु) होवें, (अथो) और भी (तनूबलम्) शरीर बल (अस्तु) होवे। (देवाः) विद्वान् लोग (ऋषभदायिने) सर्वदर्शक परमेश्वर के [ज्ञान] देने वाले के लिए (तत् सर्वम्) वह सब (अनु मन्यन्ताम्) स्वीकार करें ॥२०॥

अयं पिपान इन्द्र इद् रयिं दधातु चेतनीम्। अयं धेनुं
सुदुघां नित्यवत्सां वशं दुहां विपश्चितं परो दिवः ॥२१॥

पदार्थ—(अयम्) यह (पिपानः) प्रवृद्ध, बली (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला जगदीश्वर (इत्) ही (चेतनीम्) चेताने वाली (रयिम्) लक्ष्मी (दधातु) देवे। (अयम्) यही [परमेश्वर] (सुदुघाम्) अच्छे प्रकार पूर्ण करने हारी, (नित्यवत्साम्) नित्य निवास देने वाली (धेनुम्) वाणी और (वशम्) प्रभुत्व को (दिवः) हिंसा वा मद से (परः) परे [रहने वाले] (विपश्चितम्) बुद्धिमान् पुरुष के लिये (दुहाम्) परिपूर्ण करे ॥२१॥

पिशङ्गरूपो नभसो वयोधा ऐन्द्रः शुष्मो विश्वरूपो न आगन्।
आयुरस्मभ्यं दधत् प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचताम् ॥२२॥

पदार्थ—(पिशङ्गरूपः) अवयवों का रूप करने वाला, (नभसः) सूर्य वा मेघ वा आकाश का (वयोधाः) जीवन धारण करने वाला, (ऐन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वालों का स्वामी, (शुष्मः) बलवान् और (विश्वरूपः) सब जगत् का रूप करने वाला [परमेश्वर] (नः) हम को (आ अगन्) प्राप्त हुआ है। (च) और (अस्मभ्यम्) हम को (आयुः) आयु (च) और (प्रजाम्) प्रजा [सन्तान आदि] (दधत्) देता हुआ वह (रायः) धन की (पोषैः) वृद्धियों से (नः) हमें (अभि) सब ओर से (सचताम्) सींचे ॥ २२ ॥

उपेहोपपर्चनास्मिन् गोष्ठ उप पृञ्च नः।
उप ऋषभस्य यद् रेत उपेन्द्र तव वीर्यम् ॥२३॥

पदार्थ—(उपपर्चन) हे समीप सम्बन्ध वाले [परमेश्वर!] (इह) यहां पर (अस्मिन्) इस (गोष्ठे) वाणियों के स्थान में (नः) हमें (उप उप) अत्यन्त समीप से (पृञ्च) मिल। (इन्द्र) हे परमैश्वर्य वाले परमात्मा! (ऋषभस्य तव) तुझ श्रेष्ठ का (यत्) जो (रेतः) पराक्रम और (वीर्यम्) वीरत्व है [उसके साथ] (उप उप) अति समीप से [मिल] ॥ २३ ॥

एतं वो युवानं प्रति दध्मो अत्र तेन क्रीडन्तीश्चरत वशाँ अनु। मा
नो हासिष्ट जनुषा सुभागा रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥२४॥

पदार्थ—[हे विद्वानो!] (वः) तुम को (एतम्) इस (युवानम् प्रति) बलवान् [परमेश्वर] के प्रति (दध्मः) हम रखते हैं, (अत्र) यहां पर (तेन) उस [परमेश्वर] के साथ (क्रीडन्तीः) मन बहलाती हुई [तुम प्रजाओ!] (वशान् अनु) अनेक प्रभुताओं के साथ साथ (चरत) विचरो। (सुभागाः) हे बड़े ऐश्वर्य वाले! (नः) हमें (जनुषा) जनता [मनुष्यों] से (मा हासिष्ट) मत पृथक् करो, (च) और (रायः) धन की (पोषैः) वृद्धियों से (नः) हमें (अभि) सब ओर से (सचध्वम्) सींचो ॥ २४ ॥

卐 इति द्वितीयोऽनुवाकः 卐

卐

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ५ 卐

१—३८ भृगु। पञ्चौदनोऽज, मन्त्रोक्ता। त्रिष्टुप्, ३ चतुष्पदा पुरोतिशक्वरी जगती, ४, १० जगती, १४-१७, २७-३० अनुष्टुप् (३० ककुम्मती), १६ त्रिपदानुष्टुप्, १८, ३७ त्रिपदाविराड् गायत्री, २३ पुर उष्णिक्, २४ पञ्चपदानुष्टुबुष्णिग्गर्भोपरिष्टाद्विराड् जगती, २०—२२, २६ पञ्चपदानुष्टुबुष्णिग्गर्भोपरिष्टाद्बार्हता भुरिक्, ३१ सप्तपदार्षी, ३२-३५ दशपदा प्रकृति, ३६ दशपदाकृति, ३८ एकावसाना द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप्।

आ नयैतमा रभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन्। तीर्त्वा
तमांसि बहुधा महान्त्यजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥१॥

पदार्थ—[हे मनुष्य!] (एतम्) इस [जीवात्मा] को (आ नय) ला और (आ) भले प्रकार (रभस्व) उत्सुक [उत्साही] बन, (प्रजानन्)

भले प्रकार जानता हुआ वह (**सुकृताम्**) सुकर्मियों के (**लोकम्**) दर्शनीय लोक को (**अपि**) ही (**गच्छतु**) प्राप्त हो। (**बहुधा**) अनेक प्रकार से (**महान्ति**) बड़े बड़े (**तमांसि**) अन्धकारों [अज्ञानों] को (**तीर्त्वा**) तरके (**अज**) अजन्मा वा गतिशील अज अर्थात् जीवात्मा (**तृतीयम्**) तीसरे [जीव और प्रकृति से भिन्न] (**नाकम्**) सुखस्वरूप परमात्मा को (**आ क्रमताम्**) यथावत् प्राप्त करे ॥ १ ॥

इन्द्राय भागं परि त्वा नयाम्यस्मिन् यज्ञे यजमानाय सूरिम् ।
ये नो द्विषन्त्यनु तान् रभस्वानागसो यजमानस्य वीराः ॥२॥

पदार्थ—[हे अज, आत्मा !] (**अस्मिन्**) इस (**यज्ञे**) संगतिकरण व्यवहार में (**यजमानाय**) यजमान [संगतिकर्ता] को (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य के लिये (**त्वा**) तुझे (**सूरिम्**) विद्वान् (**भागम् परि**) सेवनीय [परमात्मा] की ओर (**नयामि**) मैं लाता हूँ। (**ये**) जो [दोष] (**नः**) हमें (**द्विषन्ति**) सताते हैं (**तान्**) उनको (**अनु रभस्व**) निरन्तर पकड़ [वश में कर], (**यजमानस्य**) श्रेष्ठ व्यवहार वाले के (**वीराः**) वीर पुरुष (**अनागसः**) निर्दोष [होवें] ॥ २ ॥

प्र पदोऽव नेनिग्धि दुश्चरितं यच्चचार शुद्धैः शफैरा क्रमतां प्रजानन् ।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा विपश्यन्नजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥३॥

पदार्थ—[हे ईश्वर !] [इसके] (**पदः**) पद [अधिकार] से (**दुश्चरितम्**) उस दुष्ट कर्म को (**प्र**) अच्छे प्रकार (**अव नेनिग्धि**) शुद्ध करदे, (**यत्**) जो कुछ (**चचार**) उस [जीव] ने किया है, (**प्रजानन्**) बड़ा ज्ञानवान् वह (**शुद्धैः**) शुद्ध (**शफैः**) सूक्ष्म विचारों से (**आ क्रमताम्**) ऊपर चढ़ जावे। (**तमांसि**) अन्धकारों को (**तीर्त्वा**) पार करके, (**बहुधा**) अनेक प्रकार से (**विपश्यन्**) दूर-दूर देखता हुआ (**अजः**) अजन्मा वा गतिशील जीवात्मा (**तृतीयम्**) तीसरे [जीव और प्रकृति से अलग] (**नाकम्**) सुखस्वरूप परमात्मा को (**आ क्रमताम्**) यथावत् प्राप्त करे ॥ ३ ॥

अनु च्छ्य श्यामेन त्वचमेतां विशस्तर्यथापर्वसिना माभि मंस्थाः ।
माभि द्रुहः परुशः कल्पयैनं तृतीये नाके अधि वि श्रयैनम् ॥४॥

पदार्थ—(**विशस्तः**) हे अविद्यानाशक ! तू (**एताम्**) इस [हृदयस्थ] (**त्वचम्**) ढकने वाली [अविद्या] को (**यथापर्व**) पूर्णता के साथ (**श्यामेन**) ज्ञान से और (**असिना**) गति अर्थात् उपाय से (**अनु छ्य**) काट डाल, और (**मा अभि मंस्थाः**) मत अभिमान कर। (**परुशः**) पालन का विचार करने वाला तू (**मा अभि द्रुहः**) मत द्रोह कर, (**एनम्**) इस [जीव] को (**कल्पय**) समर्थ कर और (**तृतीये**) तीसरे [जीव और प्रकृति से अलग] (**नाके**) सुखस्वरूप परमेश्वर में (**एनम्**) इसको (**अधि**) अधिकारपूर्वक (**वि श्रय**) फैलकर आश्रय दे ॥ ४ ॥

ऋचा कुम्भीमध्यग्नौ श्रयाम्या सिञ्चोदकमव धेह्येनम् ।
पर्याधत्ताग्निना शमितारः शृतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः ॥५॥

पदार्थ—[हे जीवात्मा !] (**ऋचा**) वेदवाणी से (**कुम्भीम्**) बटलोही को (**अग्नौ अधि**) अग्नि पर (**श्रयामि**) मैं रखता हूँ, तू (**उदकम्**) जल (**आ सिञ्च**) सींच दे, (**एनम्**) इस [अन्न जैसे जीवात्मा] को (**अव धेहि**) तू धर दे। (**शमितारः**) हे विचारवानो ! (**अग्निना**) अग्नि से [अन्न जैसे उसको] (**पर्याधत्त**) तुम ढक दो (**शृतः**) परिपक्व [दृढ़ बुद्धि वाला] वह [वहाँ] (**गच्छतु**) जावे (**यत्र**) जहाँ (**सुकृताम्**) सुकर्मियों का (**लोकः**) दर्शनीय स्थान है ॥ ५ ॥

उत्क्रामातः परि चेदतप्तस्तप्ताच्चरोरधि नाकं तृतीयम् । अग्नेरग्निरधि सं बभूविथ ज्योतिष्मन्तमभि लोकं जयैतम् ॥६॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (**च**) और (**इत्**) भी (**अतप्तः**) असन्तप्त [बिना थका हुआ] तू (**परि**) सब ओर से (**तप्तात्**) तपाये हुए (**अतः**) इस (**चरोः**) चरु [बटलोही] से (**तृतीयम्**) तीसरे [जीव और प्रकृति से भिन्न] (**नाकम् अधि**) सुखस्वरूप जगदीश्वर की ओर (**उत् क्राम**) ऊपर चढ़। (**अग्निः**) ज्ञानवान् (**अग्नेः**) ज्ञानवान् परमेश्वर से (**अधि**) अधिकारपूर्वक (**सम् बभूविथ**) पराक्रमी हुआ है, (**एतम्**) इस (**ज्योतिष्मन्तम्**) प्रकाशयुक्त (**लोकम् अभि**) लोक की ओर (**जय**) जय कर ॥ ६ ॥

अजो अग्निरजमु ज्योतिराहुरजं जीवता ब्रह्मणे देयमाहुः ।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिंल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः ॥७॥

पदार्थ—(**अजः**) अजन्मा वा गतिशील जीवात्मा (**अग्निः**) अग्नि [के समान शरीर में] है, (**अजम्**) जीवात्मा को (**उ**) ही [शरीर के भीतर] (**ज्योतिः**) ज्योति (**आहुः**) वे [विद्वान] बताते हैं, और (**अजम्**) जीवात्मा को (**जीवता**) जीते हुए पुरुष करके (**ब्रह्मणे**) ब्रह्म [परमेश्वर] के लिये (**देयम्**) देने योग्य (**आहुः**) कहते हैं। (**श्रद्दधानेन**) श्रद्धा रखने वाले पुरुष करके (**दत्तः**) दिया हुआ (**अजः**) जीवात्मा (**अस्मिन् लोके**) इस लोक में (**तमांसि**) अन्धकारों को (**दूरम्**) दूर (**अप हन्ति**) फेंक देता है ॥ ७ ॥

पञ्चौदनः पञ्चधा वि क्रमतामाक्रंस्यमानस्त्रीणि ज्योतींषि ।
ईजानानां सुकृतां प्रेहि मध्यं तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व ॥८॥

पदार्थ—(**पञ्चौदनः**) पाँच भूतों [पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश] से सींचा हुआ [जीवात्मा] (**पञ्चधा**) पाँच प्रकार [गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द से] (**त्रीणि**) तीन [शरीर, इन्द्रिय और विषय] (**ज्योतींषि**) ज्योतियों [दर्शन साधनों] को (**आक्रंस्यमानः**) पाने की इच्छा करता हुआ (**वि क्रमताम्**) विक्रम [पराक्रम] करे। (**ईजानानाम्**) यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण, दान] कर चुकने वाले (**सुकृताम्**) सुकर्मियों के (**मध्यम्**) मध्य में (**प्र**) आगे बढ़कर (**इहि**) पहुँच, और (**तृतीये**) तीसरे [जीव और प्रकृति से भिन्न] (**नाके**) सुखस्वरूप परमात्मा में (**अधि**) अधिकारपूर्वक (**वि श्रयस्व**) फैलकर विश्राम ले ॥ ८ ॥

अजा रोह सुकृतां यत्र लोकः शरभो न चत्तोऽति दुर्गाण्येषः ।
पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानः स दातारं तृप्त्या तर्पयाति ॥९॥

पदार्थ—(**अज**) हे अजन्मा वा गतिशील जीवात्मा ! [वहाँ] (**आ रोह**) चढ़कर जा (**यत्र**) जहाँ (**सुकृताम्**) सुकर्मियों का (**लोकः**) लोक [स्थान] है, और (**शरभः न**) शत्रुनाशक [शूर] के समान (**चत्तः**) प्रार्थना किया गया तू (**दुर्गाणि**) संकटों को (**अति**) पार करके (**एषः**) चल। (**सः**) वह (**ब्रह्मणे**) ब्रह्म [परमेश्वर] को (**दीयमानः**) दिया जाता हुआ (**पञ्चौदनः**) पाँच भूतों [पृथिव्यादि] से सींचा हुआ [जीवात्मा] (**दातारम्**) दाता [अपने आप] को (**तृप्त्या**) तृप्ति [सुख की परिपूर्णता] से (**तर्पयाति**) तृप्त करे ॥९॥

अजस्त्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे नाकस्य पृष्ठे ददिवांसं दधाति ।
पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघास्येका ॥१०॥

पदार्थ—"(**ब्रह्मणे**) ब्रह्म [परमेश्वर] को (**दीयमानः**) दिया जाता हुआ, (**पञ्चौदनः**) पाँच भूतों [पृथिव्यादि] से सींचा हुआ (**अजः**) अजन्मा वा गतिशील जीवात्मा (**त्रिनाके**) तीन [शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक] सुखों वाली, (**त्रिदिवे**) तीन [आय, व्यय और वृद्धि] व्यवहारों वाली, (**त्रिपृष्ठे**) तीन [धर्म, अर्थ और काम] से सींची हुई (**नाकस्य पृष्ठे**) सुख की सिंचाई [वृद्धि] में (**ददिवांसम्**) दे चुकने वाले [अपने आत्मा] को (**दधाति**) धरता है" यह (**एका**) एक (**विश्वरूपा**) संसार को रूप देने वाली (**कामदुघा**) कामनायें पूरी करने वाली (**धेनुः**) तृप्त करने वाली वेदवाणी (**असि = अस्ति**) है ॥ १० ॥

एतद्वो ज्योतिः पितरस्तृतीयं पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिंल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः ॥११॥

पदार्थ—(**पितरः**) हे पालन करने वाले विद्वानो ! (**वः**) तुम्हारे लिये (**एतत्**) यह (**तृतीयम्**) तीसरी (**ज्योतिः**) ज्योति [परमेश्वर] (**ब्रह्मणे**) वेद ज्ञान के लिये (**पञ्चौदनम्**) पाँच भूतों [पृथिवी आदि] से सींचे हुए (**अजम्**) अजन्मे वा गतिशील जीवात्मा का (**ददाति**) दान करती है। (**श्रद्दधानेन**) श्रद्धा रखने वाले पुरुष करके (**दत्तः**) दिया हुआ (**अजः**) जीवात्मा (**अस्मिन् लोके**) इस लोक में (**तमांसि**) अंधकारों को (**दूरम्**) दूर (**अप हन्ति**) फेंक देता है ॥ ११ ॥

ईजानानां सुकृतां लोकमीप्सन् पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति । स व्याप्तिमभि लोकं जयैतं शिवोऽस्मभ्यं प्रतिगृहीतो अस्तु ॥१२॥

पदार्थ—(**ईजानानाम्**) यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण, दान] कर चुकने वाले (**सुकृताम्**) सुकर्मियों के (**लोकम्**) लोक को (**ईप्सन्**) चाहता हुआ पुरुष (**ब्रह्मणे**) ब्रह्म [परमेश्वर] के लिये (**पञ्चौदनम्**) पाँच भूतों [पृथिवी आदि] से सींचे हुए (**अजम्**) अजन्मे वा गतिशील जीवात्मा का (**ददाति**) दान करता है। [इसलिये] (**सः**) वह तू (**व्याप्तिम् अभि**) [सुख की] पूर्ण प्राप्ति के लिये (**एतम् लोकम्**) इस लोक को (**जय**) जीत [जिस से, परमेश्वर द्वारा] (**प्रतिगृहीतः**) स्वीकार किया हुआ [जीवात्मा] (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिये (**शिवः**) मङ्गलकारी (**अस्तु**) होवे ॥ १२ ॥

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकाद्विप्रो विप्रस्य सहसो विपश्चित् ।
इष्टं पूर्तमभिपूर्तं वषट्कृतं तद्देवा ऋतुशः कल्पयन्तु ॥१३॥

पदार्थ—(**अजः**) अजन्मा वा गतिशील जीवात्मा (**शोकात्**) दीप्यमान (**अग्नेः**) सर्वव्यापक परमेश्वर से (**हि**) ही (**अजनिष्ट**) प्रकट हुआ है, [वह]

(विप्र) बुद्धिमान् [जीव] (विप्रस्य) बुद्धिमान् [परमेश्वर] के (सहस) बल का (विपश्चित्) भले प्रकार विचारने वाला है। (तत) इस लिये (देवा) विद्वान् लोग (अभिपूर्तम्) सम्पूर्ण (अवरुद्धम्) भक्ति से सिद्ध किये हुए (इष्टम्) यज्ञ, वेदाध्ययन आदि और (पूर्तम्) अन्नदानादि पुण्यकर्म को (ऋतुशः) प्रत्येक ऋतु मे(कल्पयन्तु) समर्थ करें ॥ १३ ॥

अमोतं वासो दद्याद्धिरण्यमपि दक्षिणाम् ।
तथा लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः ॥१४॥

पदार्थ—वह (अमोतम्) ज्ञान के साथ बुना हुआ (वास) वस्त्र और (हिरण्यम्) सुवर्ण (अपि) भी (दक्षिणाम्) दक्षिणा (दद्यात्) देवे। (तथा) उससे वह [उन] (लोकान्) लोकों को (सम्) पूरा-पूरा (आप्नोति) पाता है (ये) जो (दिव्याः) अन्तरिक्ष के (च) और (ये) जो (पार्थिवा) पृथिवी के हैं ॥ १४ ॥

एतास्त्वाजोप यन्तु धाराः सोम्या देवीर्घृतपृष्ठा मधुश्चुतः ।
स्तभान पृथिवीमुत द्यां नाकस्य पृष्ठेऽधि सप्तरश्मौ ॥१५॥

पदार्थ—(अज) हे जीवात्मा ! (त्वा) तुझको (एता) ये सब (सोम्या) अमृतमय, (देवी) उत्तम गुण वाली, (घृतपृष्ठा) प्रकाश [वा सार तत्त्व] से सींचने वाली, (मधुश्चुत) मधुरपन बरसाने वाली (धारा) धारण शक्तियाँ (उप) आदर से (यन्तु) प्राप्त हों। (सप्तरश्मौ) व्याप्त किरणों वाले, यद्वा, सात प्रकार की [शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश, और चित्र] किरणों वाले सूर्य [पूर्ण प्रकाश] मे (नाकस्य) सुख के (पृष्ठे) पीठ [आश्रय] मे (अधि) अधिकारपूर्वक (पृथिवीम्) पृथिवी (उत) और (द्याम्) अन्तरिक्ष लोक को (स्तभान) सहारा दे ॥ १५ ॥

अजोऽस्यज स्वर्गोऽसि त्वया लोकमङ्गिरसः प्राजानन् ।
तं लोकं पुण्यं प्र ज्ञेषम् ॥१६॥

पदार्थ—(अज) हे अजन्मे जीवात्मा ! (अज असि) तू गतिशील है, (स्वर्ग असि) तू सुख प्राप्त करने वाला है, (त्वया) तेरे साथ (अङ्गिरस) बुद्धिमानों ने (लोकम्) देखने योग्य परमात्मा को (प्र) अच्छे प्रकार (अजानन्) जाना है। (तम्) उस (पुण्यम्) पवित्र (लोकम्) देखने योग्य परमात्मा को (प्र ज्ञेषम्) मैं अच्छे प्रकार जानूं ॥ १६ ॥

येना सहस्रं वहसि येनाग्ने सर्ववेदसम् ।
तेनेमं यज्ञं नो वह स्वर्देवेषु गन्तवे ॥१७॥

पदार्थ—(अग्ने) हे विद्वन् ! (येन) जिस (येन) नियम से (सहस्रम्) बलवान् पुरुषों को (सर्ववेदसम्) सब प्रकार के ज्ञानों वा धनों से युक्त [यज्ञ] मे (वहसि) तू ले जाता है। (तेन) उसी [नियम] मे (न) हमे (इमम्) इस (यज्ञम्) प्राप्त होनेयोग्य यज्ञ मे (देवेषु) विद्वानों के बीच (स्व) सुख (गन्तवे) पाने के लिये (वह) ले चल ॥ १७ ॥

अजः पक्वः स्वर्गे लोके दधाति पञ्चौदनो निर्ऋतिं बाधमानः ।
तेन लोकान्त्सूर्यवतो जयेम ॥१८॥

पदार्थ—(पक्व) पक्का [दृढ स्वभाव], (पञ्चौदन) पाँच भूतों [पृथिवी आदि] से सींचा हुआ (निर्ऋतिम्) महाविपत्ति को (बाधमान) हटाता हुआ (अज) अजन्मा वा गतिशील जीवात्मा (स्वर्गे) सुख प्राप्त कराने वाले (लोके) लोक मे [आत्मा को] (दधाति) रखता है। (तेन) उसी [उपाय] से (सूर्यवत) सूर्य [प्रकाश] वाले (लोकान्) लोकों को (जयेम) हम जीतें ॥ १८ ॥

यं ब्राह्मणे निदधे यं च विक्षु या विप्रुष ओदनानामजस्य ।
सर्वं तदग्ने सुकृतस्य लोके जानीतान्नः संगमने पथीनाम् ॥१९॥

पदार्थ—(यम्) जिस (यम्) नियम को (ब्राह्मणे) ब्रह्मज्ञानी मे (च) और (अजस्य) [प्रत्येक] जीवात्मा के (ओदनानाम्) सेचन धर्मों की (या) जिन (विप्रुष) विविध पूर्तियों को (विक्षु) प्रजाओं के बीच (निदधे) उस [परमेश्वर] ने रखा है। (अग्ने) हे विद्वान् पुरुष ! (न) हमारे (तत् सर्वम्) उस सब को (सुकृतस्य लोके) सुकर्मी के लोक मे (पथीनाम्) मार्गों के (संगमने) संगम पर (जानीतात्) तू जान ॥ १९ ॥

अजो वा इदमग्रे व्यक्रमत तस्योर इयमभवद् द्यौः पृष्ठम् ।
अन्तरिक्षं मध्यं दिशः पार्श्वे समुद्रौ कुक्षी ॥२०॥

पदार्थ—(अजः) अजन्मा वा गतिशील परमात्मा (वै) ही (अग्रे) पहिले ही पहिले (इदम्) इस [जगत्] मे (वि अक्रमत) विचरता था, (तस्य) उसकी (उर) छाती (इयम्) यह [भूमि] और (पृष्ठम्) पीठ (द्यौ) आकाश (अभवत्) हुआ। (मध्यम्) कटिभाग (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष, (दिश) दिशायें (पार्श्वे) दोनों कांखें [बगलें] और (समुद्रौ) दोनों [अन्तरिक्ष और भूमि के] समुद्र (कुक्षी) दोनों कोखें [हुए] ॥ २० ॥

सत्यं चर्तं च चक्षुषी विश्वं सत्यं श्रद्धा प्राणो विराट् शिरः ।
एष वा अपरिमितो यज्ञो यदजः पञ्चौदनः ॥२१॥

पदार्थ—(सत्यम्) सत्य [यथार्थस्वरूप वा अविनाश] (च च) और (ऋतम्) ऋत [वेद आदि यथार्थ शास्त्र] (चक्षुषी) [उसकी] दोनों आँखें, (विश्वम्) सब (सत्यम्) सत्य और (श्रद्धा) श्रद्धा (प्राण) उसका प्राण, और (विराट्) विविध प्रकाशमान प्रकृति (शिर) [उसका] शिर [हुआ]। (यत्) क्योंकि (एष वै) यही (अपरिमित) परिमाणरहित, (यज्ञ) पूजनीय (अज) अजन्मा वा गतिशील परमात्मा (पञ्चौदन) पाँच भूतों [पृथिवी आदि] का सींचन वाला है ॥२१॥

अपरिमितमेव यज्ञमाप्नोत्यपरिमितं लोकमव रुन्धे ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥२२॥

पदार्थ—वह [पुरुष] (अपरिमितम्) परिमाणरहित (यज्ञम्) पूजनीय परमेश्वर को (एव) ही (आप्नोति) पाता है, और (अपरिमितम्) तोल-मापरहित (लोकम्) दर्शनीय परमात्मा को (अव रुन्धे) ध्यान मे रखता है, (य) जो पुरुष (पञ्चौदनम्) पाँच भूतों [पृथिवी आदि] के सींचने वाले, (दक्षिणाज्योतिषम्) दानक्रिया की ज्योति रखने वाले (अजम्) अजन्मे वा गतिशील परमात्मा को [अपने आत्मा मे] (ददाति) समर्पित करता है ॥२२॥

नास्यास्थीनि भिन्द्यान्न मज्ज्ञो निर्धयेत् ।
सर्वमेनं समादायेदमिदं प्र वेशयेत् ॥२३॥

पदार्थ—वह [राग] (अस्य) इस [प्राणी] की (अस्थीनि) हड्डियों को (न भिन्द्यात्) नहीं तोड सकता और (न) न (मज्ज्ञ) मज्जाओं [हाड के भीतरी रसों] को (निर्धयेत्) निरन्तर पी सकता है। [जो] (एनम्) इस [ईश्वर] को (समादाय) ठीक-ठीक ग्रहण करके (सर्वम्) सब प्रकार से (इदमिदम्) इस इस [प्रत्येक वस्तु] मे (प्रवेशयेत्) प्रवेश करे ॥२३॥

इदमिदमेवास्य रूपं भवति तेनैनं सं गमयति । इषं मह ऊर्जमस्मै दुहे योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥२४॥

पदार्थ—(अस्य) इस [परमेश्वर] का (रूपम्) रूप [सौन्दर्य] (इदमिदम्) इस-इस [प्रत्येक वस्तु] मे (एव) ही (भवति) पहुँचता है, [तभी वह सर्वव्यापक रूप] (तेन) उस [परमात्मा] के साथ (एनम्) इस जीवात्मा को (सम् गमयति) मिला देता है। वह [पुरुष] (इषम्) अन्न, (मह) बडाई (ऊर्जम्) और पराक्रम (अस्मै) इस के लिये [अपने लिये] (दुहे) दोहता है (य) जो पुरुष (पञ्चौदनम्) पाँच भूतों [पृथिवी आदि] के सींचने वाले, (दक्षिणाज्योतिषम्) दानक्रिया की ज्योति रखने वाले (अजम्) अजन्मे वा गतिशील परमात्मा को [अपने आत्मा में] (ददाति) समर्पित करता है ॥२४॥

पञ्च रुक्मा पञ्च नवानि वस्त्रा पञ्चास्मै धेनवः कामदुघा भवन्ति ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥२५॥

पदार्थ—(पञ्च) विस्तृत (रुक्मा) रोचक वस्तुएं [सुवर्ण आदि], (पञ्च) विस्तृत (नवानि) नवीन (वस्त्रा) वस्त्र, और (पञ्च) विस्तृत (धेनव) तृप्त करने वाली वेद वाचायें [विद्यायें] (अस्मै) उस [पुरुष] के लिये (कामदुघा) कामनायें पूरी करने वाली (भवन्ति) होती है। (य) जो पुरुष (पञ्चौदनम्) पाँच भूतों [पृथिवी आदि] के सींचने वाले, (दक्षिणाज्योतिषम्) दानक्रिया की ज्योति रखने वाले (अजम्) अजन्मे वा गतिशील परमात्मा को [अपने आत्मा मे] (ददाति) समर्पित करता है ॥२५॥

पञ्च रुक्मा ज्योतिरस्मै भवन्ति वर्म वासांसि तन्वे भवन्ति । स्वर्गं लोकमश्नुते योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥२६॥

पदार्थ—(पञ्च) विस्तृत (रुक्मा) रोचक वा चमकीली वस्तु [सुवर्ण आदि] (अस्मै) उस पुरुष के लिये (ज्योति) ज्योति (भवन्ति) होती हैं, (वासांसि) वस्त्र [उसके] (तन्वे) शरीर के लिये (वर्म) कवच (भवन्ति) होते हैं। वह (स्वर्गम्) स्वर्ग [सुख देने वाला] (लोकम्) लोक (अश्नुते) पाता है, (य) जो पुरुष (पञ्चौदनम्) पाँच भूतों [पृथिवी आदि] के सींचने वाले, (दक्षिणाज्योतिषम्) दानक्रिया की ज्योति रखने वाले (अजम्) अजन्मे वा गतिशील परमात्मा को [अपने आत्मा में] (ददाति) समर्पित करता है ॥२६॥

या पूर्वं पतिं वित्त्वाथान्यं विन्दतेऽपरम्।

पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः ॥२७।

पदार्थ—(**या**) जो स्त्री (**पूर्वम्**) पहिले (**पतिम्**) पति को (**वित्त्वा**) पाकर (**अथ**) उसके पीछे [मृत्यु आदि विपत्ति काल में] (**अन्यम्**) दूसरे (**अपरम्**) पिछले [पति] को (**विन्दते**) पाती है [उसी प्रकार जो पति मृत्यु आदि विपत्ति में दूसरी स्त्री को पाता है] । (**तौ**) वे दोनों (**च**) निश्चय करके (**पञ्चौदनम्**) पांच भूतों [पृथिवी आदि] के सींचने वाले (**अजम्**) अजन्मे वा गतिशील परमेश्वर को [अपने आत्मा में] (**ददात**) समर्पित करें, (**न वि योषतः**) वे दोनों अलग न होवें ॥२७॥

समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः।

योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥२८॥

पदार्थ—(**अपरः**) दूसरा (**पतिः**) पति (**पुनर्भुवा**) दूसरी बार विवाहित [वा नियोजित] स्त्री के साथ (**समानलोक**) एक स्थान वाला (**भवति**) होता है । (**यः**) जो पुरुष (**पञ्चौदनम्**) पांच भूतों [पृथिवी आदि] के सींचने वाले, (**दक्षिणाज्योतिषम्**) दानक्रिया की ज्योति रखने वाले (**अजम्**) अजन्मे वा गतिशील परमात्मा को [अपने आत्मा में] (**ददाति**) समर्पित करता है ॥२८॥

अनुपूर्ववत्सां धेनुमनड्वाहमुपबर्हणम् ।

वासो हिरण्यं दत्त्वा ते यन्ति दिवमुत्तमाम् ।२९॥

पदार्थ—(**अनुपूर्ववत्साम्**) यथाक्रम [एक के पीछे एक] बच्चे वाली (**धेनुम्**) गौ, (**अनड्वाहम्**) अन्न पहुँचाने वाला बैल, (**उपबर्हणम्**) बिछौना (**वासः**) वस्त्र, (**हिरण्यम्**) सुवर्ण (**दत्त्वा**) दान करके (**ते**) [धर्मात्मा लोग] (**उत्तमाम्**) उत्तम (**दिवम्**) गति (**यन्ति**) पाते हैं ॥२९॥

आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम् ।

जायां जनित्रीं मातरं ये प्रियास्तानुप ह्वये ॥३०।

पदार्थ—(**आत्मानम्**) आत्मबल, (**पितरम्**) पिता, (**पुत्रम्**) पुत्र, (**पौत्रम्**) पौत्र, (**पितामहम्**) दादा, (**जायाम्**) पत्नी, (**जनित्रीम्**) उत्पन्न करने वाली (**मातरम्**) माता को और (**ये**) जो (**प्रियाः**) प्रिय हैं, (**तान्**) उन सब को (**उप ह्वये**) मैं आदर से बुलाता हूँ ॥३०॥

यो वै नैदाघं नामर्तुं वेद ।

एष वै नैदाघो नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः।

निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना

योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ।३१॥

पदार्थ—(**यः**) जो [परमेश्वर] (**वै**) निश्चय करके (**नैदाघम्**) अतिताप वाले (**नाम**) प्रसिद्ध (**ऋतुम्**) ऋतु को (**वेद**) जानता है । (**एष वै**) वही (**नैदाघः**) अतिताप वाले (**नाम**) प्रसिद्ध (**ऋतुः**) ऋतु [के समान] (**यत्**) पूजनीय ब्रह्म (**अजः**) अजन्मा (**पञ्चौदनः**) पांच भूतों [पृथिवी आदि] का सींचने वाला [परमेश्वर] है । वह [मनुष्य अपने] (**एव**) निश्चय करके (**अप्रियस्य**) अप्रिय (**भ्रातृव्यस्य**) शत्रु की (**श्रियम्**) श्री को (**निर्दहति**) जला देता है, और (**आत्मना**) अपने आत्मबल के साथ (**भवति**) रहता है । (**यः**) जो [पुरुष] (**पञ्चौदनम्**) पांच भूतों [पृथिवी आदि] के सींचने वाले (**दक्षिणाज्योतिषम्**) दानक्रिया की ज्योति रखने वाले (**अजम्**) अजन्मे वा गतिशील परमात्मा को [अपने आत्मा में] (**ददाति**) समर्पित करता है ॥३१॥

यो वै कुर्वन्तं नामर्तुं वेद ।

कुर्वतींकुर्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।

एष वै कुर्वन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः । निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥३२॥

पदार्थ—(**यः**) जो [परमेश्वर] (**वै**) निश्चय करके (**कुर्वन्तम्**) बनाने वाले (**नाम**) प्रसिद्ध (**ऋतुम्**) ऋतु को (**वेद**) जानता है । और [जो] (**अप्रियस्य**) अप्रिय (**भ्रातृव्यस्य**) शत्रु की (**कुर्वतीं कुर्वतीम्**) अच्छे प्रकार बनाने वाली (**श्रियम्**) श्री को (**एव**) निश्चय करके (**आ दत्ते**) ले लेता है । (**एषः वै**) वही (**कुर्वन्**) बनाने वाला (**नाम**) प्रसिद्ध (**ऋतुः**) ऋतु [के समान] (**यत्**) पूजनीय ब्रह्म (**अजः**) अजन्मा (**पञ्चौदनः**) पांच भूतों [पृथिवी आदि] का सींचने वाला [परमेश्वर] है । वह [मनुष्य अपने] (**एव**) निश्चय करके (**अप्रियस्य**) अप्रिय (**भ्रातृव्यस्य**) शत्रु की (**श्रियम्**) श्री को (**निर्दहति**) जला देता है, और (**आत्मना**) अपने आत्मबल के साथ (**भवति**) रहता है । (**यः**) जो [पुरुष] (**पञ्चौदनम्**) पांच भूतों [पृथिवी आदि] के सींचने वाले (**दक्षिणाज्योतिषम्**) दानक्रिया की ज्योति रखने वाले (**अजम्**) अजन्मे वा गतिशील परमात्मा को [अपने आत्मा में] (**ददाति**) समर्पित करता है ॥३२॥

यो वै संयन्तं नामर्तुं वेद ।

संयतींसंयतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।

एष वै संयन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः । निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥३३॥

पदार्थ—(**यः**) जो [परमेश्वर] (**वै**) निश्चय करके (**संयन्तम्**) [अन्न आदि] मिलाने वाले (**नाम**) प्रसिद्ध (**ऋतुम्**) ऋतु को (**वेद**) जानता है और [जो] (**अप्रियस्य**) अप्रिय (**भ्रातृव्यस्य**) शत्रु की (**संयतीं संयतीम्**) अत्यन्त एकत्र करने वाली (**श्रियम्**) लक्ष्मी को (**एव**) निश्चय करके (**आ दत्ते**) ले लेता है । (**एष वै**) वही परमेश्वर (**संयन्**) एकत्र करने वाला (**नाम**) प्रसिद्ध (**ऋतुः**) ऋतु [के समान] (**यत्**) पूजनीय ब्रह्म (**अजः**) अजन्मा (**पञ्चौदनः**) पांच भूतों [पृथिवी आदि] का सींचने वाला [परमेश्वर] है । वह [मनुष्य अपने] (**एव**) निश्चय करके (**अप्रियस्य**) अप्रिय (**भ्रातृव्यस्य**) शत्रु की (**श्रियम्**) श्री को (**निर्दहति**) जला देता है, और (**आत्मना**) अपने आत्मबल के साथ (**भवति**) रहता है । (**यः**) जो [पुरुष] (**पञ्चौदनम्**) पांच भूतों [पृथिवी आदि] के सींचने वाले (**दक्षिणाज्योतिषम्**) दानक्रिया की ज्योति रखने वाले (**अजम्**) अजन्मे वा गतिशील परमात्मा को [अपने आत्मा में] (**ददाति**) समर्पित करता है ॥३३॥

यो वै पिन्वन्तं नामर्तुं वेद । पिन्वतींपिन्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते । एष वै पिन्वन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः । निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥३४॥

पदार्थ—(**यः**) जो [परमेश्वर] (**वै**) निश्चय करके (**पिन्वन्तम्**) सींचने वाले (**नाम**) प्रसिद्ध (**ऋतुम्**) ऋतु को (**वेद**) जानता है और [जो] (**अप्रियस्य**) अप्रिय (**भ्रातृव्यस्य**) शत्रु की (**पिन्वतीं पिन्वतीम्**) अत्यन्त सींचने वाली (**श्रियम्**) श्री को (**एव**) अवश्य (**आ दत्ते**) ले लेता है । (**एष वै**) वही [परमेश्वर] (**पिन्वन्**) सींचने वाला (**नाम**) प्रसिद्ध (**ऋतुः**) ऋतु [के समान] (**यत्**) पूजनीय ब्रह्म (**अजः**) अजन्मा (**पञ्चौदनः**) पांच भूतों [पृथिवी आदि] का सींचने वाला [परमेश्वर] है । वह [मनुष्य अपने] (**एव**) निश्चय करके (**अप्रियस्य**) अप्रिय (**भ्रातृव्यस्य**) शत्रु की (**श्रियम्**) श्री को (**निर्दहति**) जला देता है, और (**आत्मना**) अपने आत्मबल के साथ (**भवति**) रहता है । (**यः**) जो [पुरुष] (**पञ्चौदनम्**) पांच भूतों [पृथिवी आदि] के सींचने वाले (**दक्षिणाज्योतिषम्**) दानक्रिया की ज्योति रखने वाले (**अजम्**) अजन्मे वा गतिशील परमात्मा को [अपने आत्मा में] (**ददाति**) समर्पित करता है ॥३४॥

यो वा उद्यन्तं नामर्तुं वेद । उद्यतीमुद्यतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते । एष वा उद्यन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः । निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥३५॥

पदार्थ—(**यः**) जो [परमेश्वर] (**वै**) निश्चय करके (**उद्यन्तम्**) उदय होते हुए (**नाम**) प्रसिद्ध (**ऋतुम्**) ऋतु [वसन्त] को (**वेद**) जानता है । और [जो] (**अप्रियस्य**) अप्रिय (**भ्रातृव्यस्य**) शत्रु की (**उद्यतीमुद्यतीम्**) अत्यन्त उदय होती हुई (**श्रियम्**) श्री को (**एव**) अवश्य (**आ दत्ते**) ले लेता है । (**एष वै**) वही परमेश्वर (**उद्यन्**) उदय होता हुआ (**नाम**) प्रसिद्ध (**ऋतुः**) ऋतु [के समान] (**यत्**) पूजनीय ब्रह्म (**अजः**) अजन्मा (**पञ्चौदनः**) पांच भूतों [पृथिवी आदि] का सींचने वाला [परमेश्वर] है । वह [मनुष्य अपने] (**एव**) निश्चय करके (**अप्रियस्य**) अप्रिय (**भ्रातृव्यस्य**) शत्रु की (**श्रियम्**) श्री को (**निर्दहति**) जला देता है, और (**आत्मना**) अपने आत्मबल के साथ (**भवति**) रहता है । (**यः**) जो [पुरुष] (**पञ्चौदनम्**) पांच भूतों [पृथिवी आदि] के सींचने वाले (**दक्षिणाज्योतिषम्**) दानक्रिया की ज्योति रखने वाले (**अजम्**) अजन्मे वा गतिशील परमात्मा को [अपने आत्मा में] (**ददाति**) समर्पित करता है ॥३५॥

यो वा अभिभुवं नामर्तुं वेद । अभिभवन्तीमभिभवन्तीमे-

वाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते । एष वा अभिभूर्नामर्तुर्यदजः

पञ्चौदनः । निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।

योऽज पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥३६॥

पदार्थ—(यः) जो [परमेश्वर] (वै) निश्चय करके (अभिभुवम्) [दुःखों के] हराने वाले (नाम) प्रसिद्ध (ऋतुम्) ऋतु को (वेद) जानता है और [जो] (अप्रियस्य) अप्रिय (भ्रातृव्यस्य) शत्रु की (अभिभवन्तीम-भिभवन्तीम्) अत्यन्त हरा देने वाली (श्रियम्) श्री को (एव) निश्चय करके (आ दत्ते) ले लेता है । (एषः वै) वही (अभि भूः) [शत्रुओं का] हरा देने वाला (नाम) प्रसिद्ध (ऋतुः) ऋतु [के समान] (यत्) पूजनीय ब्रह्म (अजः) अजन्मा (पञ्चौदनः) पञ्चभूतों [पृथिवी आदि] का सींचने वाला [परमेश्वर] है । वह [मनुष्य अपने] (एव) निश्चय करके (अप्रियस्य) अप्रिय (भ्रातृव्यस्य) शत्रु की (श्रियम्) श्री को (निर्दहति) जला देता है और (आत्मना) अपने आत्मबल के साथ (भवति) रहता है । (यः) जो [पुरुष] (पञ्चौदनम्) पांच भूतों [पृथिवी आदि] के सींचने वाले, (दक्षिणाज्योतिषम्) दानक्रिया की ज्योति रखने वाले (अजम्) अजन्मे वा गतिशील परमात्मा को [अपने आत्मा में] (ददाति) समर्पित करता है ॥ ३६ ॥

अजं च पचत पञ्च चौदनान् । सर्वा दिशः संमनसः

सध्रीचीः सान्तर्देशाः प्रति गृह्णन्तु त एतम् ॥३७॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] (च) निश्चय करके (अजम्) अजन्मे वा गतिशील जीवात्मा को (च) और (पञ्च) पांच [भूतों से युक्त] (ओदनान्) सेचक पदार्थों को (पचत) पक्का [दृढ़] करो । (सान्तर्देशाः) अन्तर्देशों के सहित (सध्रीचीः) साथ-साथ रहने वाली, (सर्वाः) सब (दिशः) दिशायें (संमनसः) एक मन होके (ते) तेरे लिये, (एतम्) इस [जीवात्मा] को (प्रति गृह्णन्तु) स्वीकार करें ॥ ३७ ॥

तास्ते रक्षन्तु तव तुभ्यमेतं ताभ्य आज्यं हविरिदं जुहोमि ॥३८॥

पदार्थ—(ताः) वे सब [दिशायें] (ते) तेरे लिये, (तुभ्यम्) तेरे लिये (तव) तेरे (एतम्) इस [जीवात्मा] की (रक्षन्तु) रक्षा करें, (ताभ्यः) उन सब से (इदम्) इस (आज्यम्) प्रकाश करने योग्य (हविः) ग्राह्यकर्म को (जुहोमि) मैं ग्रहण करता हूँ ॥ ३८ ॥

卐 सूक्तम् ॥६॥ 卐

१—६२ (षट्पर्याया) ब्रह्मा । अतिथि , विद्या । (१) १-१७ , १ त्रिपदा गायत्री , २ त्रिपदार्षी गायत्री , ३, ७ साम्नी त्रिष्टुप , ४, ६ आर्च्यनुष्टुप् , ५ आसुरी गायत्री , ६ त्रिपदा साम्नी जगती , ८ याजुषी त्रिष्टुप् , १० साम्नी भुरिग्बृहती , ११ १४-१६ साम्न्यनुष्टुप् , १२ विराड् गायत्री, १३ साम्नी निचृत्पङ्क्ति , १७ त्रिपदा विराड् भुरिग्गायत्री।

यो विद्याद् ब्रह्म प्रत्यक्षं परूंषि यस्य संभारा ऋचो यस्यानूक्यम् ॥१॥

पदार्थ—(यः) जो संयमी पुरुष [अथवा जो कोई विद्वान् हो वह] (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष करके (ब्रह्म) ब्रह्म [परमात्मा] को (विद्यात्) जान (यस्य) जिस [ब्रह्म] के (परूंषि) पालन-सामर्थ्य (संभाराः) विविध संग्रह और (यस्य) जिसका (अनूक्यम्) अनुकूल वाक्य (ऋचः) ऋचायें [स्तुति योग्य वेद मन्त्र] हैं ॥ १ ॥

सामानि यस्य लोमानि यजुर्हृदयमुच्यते परिस्तरणमिद्धविः ॥२॥

पदार्थ—(सामानि) दुःखनाशक [मोक्ष विज्ञान] (यस्य) जिस [ब्रह्म] के (लोमानि) रोम [सदृश हैं], (यजुः) विद्वानों का सत्कार, विद्यादान और पदार्थों का संगतिकरण [जिसके] (हृदयम्) हृदय [के समान] और (परि-स्तरणम्) सब ओर फैलाव (इत्) ही (हविः) ग्राह्यकर्म (उच्यते) कहा जाता है ॥ २ ॥

यद् वा अतिथिपतिरतिथीन् प्रतिपश्यति देवयजनं प्रेक्षते ॥३॥

पदार्थ—(यत् वै) जब ही (अतिथिपतिः) अतिथियों का पालन करने हारा (अतिथीन्) अतिथियों [नित्य मिलने योग्य विद्वानों] को (प्रति पश्यति) प्रतीक्षा से देखता है, वह (देवयजनम्) उत्तम गुणों का संगतिकरण (प्र ईक्षते) अच्छे प्रकार देखता है ॥ ३ ॥

यदभिवदति दीक्षामुपैति यदुदकं याचत्यपः प्र णयति ॥४॥

पदार्थ—(यत्) जब वह [गृहस्थ] (अभिवदति) अभिवादन करता है, वह (दीक्षाम्) दीक्षा [व्रत का उपदेश] (उप एति) आदरपूर्वक पाता है, (यत्) जब (उदकम्) जल को [वह गृहस्थ] (याचति) विनय करके देता है, [वह गृहस्थ] (अपः) जल (प्र णयति) [प्रणीता पात्र में] सन्मुख लाता है ॥ ४ ॥

या एव यज्ञ आपः प्रणीयन्ते ता एव ताः ॥५॥

पदार्थ—(याः) जो (एव) ही (आपः) जल (यज्ञे) यज्ञ में (प्रणीयन्ते) आदर से लाये जाते हैं (ताः) वे (एव) ही (ताः) वे [अतिथि के लिये उपकारी होते हैं] ॥ ५ ॥

यत् तर्पणमाहरन्ति य एवाग्नीषोमीयः पशुर्बध्यते स एव सः ॥६॥

पदार्थ—(यत्) जब वे [घर के लोग] (तर्पणम्) तृप्तिकारक द्रव्य (आहरन्ति) लाते हैं, [तब] (यः) जो (एव) ही (अग्नीषोमीयः) ज्ञान और ऐश्वर्य के लिये हितकारी (पशुः) समदर्शी [अतिथि] (बध्यते) [प्रेम की डोरी से] बांधा जाता है (सः एव सः) वही वह [अतिथि होता है] ॥ ६ ॥

यदावसथान् कल्पयन्ति सदोहविर्धानान्येव तत् कल्पयन्ति ॥७॥

पदार्थ—(यत्) जब वे [गृहस्थ लोग] (आवसथान्) निवास स्थानों को (कल्पयन्ति) बनाते हैं, (तत्) तब वे [अतिथि लोग] (सदोहविर्धानानि) यज्ञशाला और हवि [लेन-देने योग्य कर्मों] के स्थानों को (एव) ही (कल्पयन्ति) विचारते हैं ॥ ७ ॥

यदुपस्तृणन्ति बर्हिरेव तत् ॥८॥

पदार्थ—(यत्) जो कुछ वे [गृहस्थ] (उपस्तृणन्ति) बिछौना करते हैं, (तत्) वह [संन्यासी के लिये] (बर्हिः) कुशासन (एव) ही होता है ॥ ८ ॥

यदुपरिशयनमाहरन्ति स्वर्गमेव तेन लोकमव रुन्द्धे ॥९॥

पदार्थ—(यत्) जैसे [वे गृहस्थ लोग] (उपरिशयनम्) ऊंचे शयन स्थान को (आहरन्ति) यथावत् प्राप्त होते हैं, (तेन) वैसे ही वह [संन्यासी] (स्वर्गम्) सुख देने वाले (लोकम्) दर्शनीय परमेश्वर को (एव) निश्चय करके (अव रुन्द्धे) प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

यत् कशिपूपबर्हणमाहरन्ति परिधय एव ते ॥१०॥

पदार्थ—(यत्) जब (कशिपूपबर्हणम्) बिछौना और तकिया को [वे गृहस्थ लोग] (आहरन्ति) प्राप्त होते हैं [संन्यासी के लिये] (ते) वे [प्रसिद्ध ईश्वर की] (एव) ही (परिधयः) सब ओर से धारणशक्तियां हैं ॥ १० ॥

यदाञ्जनाभ्यञ्जनमाहरन्त्याज्यमेव तत् ॥११॥

पदार्थ—(यत्) जब (आञ्जनाभ्यञ्जनम्) चन्दन और तेल आदि के मर्दन को (आहरन्ति) वे [गृहस्थ लोग] प्राप्त होते हैं (तत्) वह [संन्यासी के लिये] (आज्यम्) [संसार का] प्रकाश करने वाला ब्रह्म (एव) ही है ॥११॥

यत् पुरा परिवेषात् खादमाहरन्ति पुरोडाशावेव तौ ॥१२॥

पदार्थ—(यत्) जब [वे गृहस्थ लोग] (पुरा) पहिले (परिवेषात्) परोसने से (खादम्) भोजन को (आहरन्ति) खाते हैं । [तब संन्यासी के लिये] (तौ) वे (पुरोडाशौ) दो पुरोडाश [मुनि-अन्न की दो रोटियां] (एव) ही हैं ॥१२॥

यदशनकृतं ह्वयन्ति हविष्कृतमेव तद्ध्वयन्ति ॥१३॥

पदार्थ—(यत्) जब [वे गृहस्थ लोग] (अशनकृतम्) भोजन बनाने वाले को (ह्वयन्ति) बुलाते हैं (तत्) तब वे [संन्यासी लोग] (हविष्कृतम्) देने और लेने योग्य व्यवहार करने हारे [परमेश्वर] को (एव) ही (ह्वयन्ति) बुलाते हैं ॥१३॥

ये व्रीहयो यवा निरुप्यन्तेंऽशव एव ते ॥१४॥

पदार्थ—(ये) जो (व्रीहयः) चावल और (यवाः) जौ [गृहस्थों द्वारा] (निरुप्यन्ते) फैलाये [परोसे] जाते हैं, (ते) वे (एव) ही [संन्यासी को] (अंशवः) सूक्ष्म विचार [होते हैं]॥१४॥

यान्युलूखलमुसलानि ग्रावाण एव ते ॥१५॥

पदार्थ—(यानि) जो [गृहस्थों के] (उलूखलमुसलानि) ओखली-मूसल हैं, (ते) वे [वैसे] (एव) ही [संन्यासियों के] (ग्रावाणः) शास्त्र-उपदेश हैं ॥१५॥

शूर्पं पवित्रं तुषा ऋजीषाभिषवणीरापः ॥१६॥

स्रुग् दर्विर्नेक्षणमायवनं द्रोणकलशाः कुम्भ्यो वायव्यानि

पात्राणीयमेव कृष्णाजिनम् ॥१७॥

पदार्थ—(शूर्पम्) सूप [छाज], (पवित्रम्) चालनी, (तुषाः) भूसी (ऋजीषाः) सोम का फोक [नीरस वस्तु], (अभिषवणीः) मार्जन वा स्नान के पात्र, (आपः) [यज्ञ का] जल (स्रुक्) स्रुवा [घी चढ़ाने का पात्र],(दर्विः) चमचा, (नेक्षणम्) शूल, शलाका आदि, (आयवनम्) कड़ाही, (द्रोणकलशाः)

द्रोणकलश [यज्ञ के कलश], (कुम्भ्यः) कुम्भी [गगरी], (वायव्यानि) पवन करने के (पात्राणि) पात्र [गृहस्थों के हैं], (इयम्) यह [पृथिवी] (एव) ही [सन्यासियों को] (कृष्णाजिनम्) कृष्णसार हरिण की मृगछाला [के समान] है ॥१६, १७॥

卐 सूक्तम् ६ 卐

१८-३०

[२] (१-१३) · १ विराट् पुरस्ताद् बृहती, २, १२ साम्नी त्रिष्टुप्, ३ आसुरी अनुष्टुप्, ४ साम्नी उष्णिक्, ५, ११ साम्नी बृहती (११ भुरिक्), ६ आर्च्यनुष्टुप्, ७ त्रिपदा स्वराडनुष्टुप्, ८ आसुरी गायत्री, ९ साम्नी अनुष्टुप्; १० त्रिपदार्ची त्रिष्टुप्, १३ त्रिपदार्ची पङ्क्तिः (७ पंचपदा विराट् पुरस्ताद्बृहती, ८ साम्न्यनुष्टुप् इति वा) ।

यजमानब्राह्मणं वा एतदतिथिपतिः कुरुते यदाहार्याणि प्रेक्षत इदं भूया३ इदा३मिति ॥१॥

पदार्थ—(अतिथिपतिः) अतिथियों का पालन करनेहारा [गृहपति] (यजमानब्राह्मणम्) यजमान के लिये [अपने लिये] ब्राह्मण (वेदवेत्ता संन्यासी] को (वै) निश्चय करके (एतत्) इस प्रकार (कुरुते) अपने लिये बनाता है, (यत्) जब वह [गृहस्थ] (आहार्याणि) स्वीकार करनेयोग्य कर्मों को (प्रेक्षते) निहारता है. "(इदम्) यह [ब्रह्म] (भूयाः ३) और अधिक है [वा] (इदा३म) यही, (इति) बस" ॥१॥

यदाह भूय उद्धरेति प्राणमेव तेन वर्षीयांसं कुरुते ॥२॥

पदार्थ—(यत्) जब वह [अतिथि] (आह) कहे—"[इस ब्रह्म को] (भूयः) और अधिक (उत् हर इति) उत्तमता से ग्रहण कर"—(तेन) उस से वह [गृहस्थ] (प्राणम्) अपने प्राण [जीवन] को (एव) निश्चय करके (वर्षीयांसम्) अधिक बड़ा (कुरुते) बनाता है ॥२॥

उप हरति हवींष्या सादयति ॥३॥

पदार्थ—वह [गृहस्थ] (हवींषि) हवन द्रव्यों को (उप हरति) भेंट करता है और (आ सादयति) समीप लाता है ॥३॥

तेषामासन्नानामतिथिरात्मन् जुहोति ॥४॥

स्रुचा हस्तेन प्राणे यूपे स्रुक्कारेण वषट्कारेण ॥५॥

पदार्थ—(अतिथि) अतिथि [संन्यासी] (स्रुचा) स्रुवा [चमचा रूप] (हस्तेन) हाथ से (यूपे) जयस्तम्भरूप (प्राणे) प्राण पर (स्रुक्कारेण) स्रुवा की क्रिया से और (वषट्कारेण) आहुति की क्रिया से [जैसे हो वैसे] (आत्मन्) परमात्मा में (तेषाम्) उन (आसन्नानाम्) समीप रखी हुई [हवन द्रव्यों] की (जुहोति) [मानो] आहुतियां देता है ॥४, ५॥

एते वै प्रियाश्चाप्रियाश्चर्त्विजः स्वर्गं लोकं गमयन्ति यदतिथयः ॥६॥

पदार्थ—(यत्) क्योंकि (एते) ये (एव) ही (प्रियाः) प्रिय माने गए (च) और (अप्रियाः) अप्रिय माने गए (च) भी (ऋत्विजः) सब ऋतुओं में यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण और दान] करने वाले (अतिथयः) अतिथि [संन्यासी] जन (स्वर्गम्) सुख देनेवाले (लोकम्) दर्शनीय लोक में [मनुष्य को] (गमयन्ति) पहुँचाते हैं ॥६॥

स य एवं विद्वान् न द्विषन्नश्नीयान्न द्विषतोऽन्नमश्नीयान्न मीमांसितस्य न मीमांसमानस्य ॥७॥

पदार्थ—(यः) जो (एवम्) इस प्रकार [पूर्वोक्त विधि से] (विद्वान्) ज्ञानवान् है, (सः) वह (द्विषन्) आप द्वेष करता हुआ (न) न (अश्नीयात्) खावे [नाश करे] और (न) न (द्विषतः) द्वेष करते हुए पुरुष का, और (न) न (मीमांसितस्य) संशय वाले का और (न) न (मीमांसमानस्य) विचार से तत्त्व निर्णय करते हुए का (अन्नम्) अन्न (अश्नीयात्) खावे [बिगाड़े] ॥७॥

सर्वो वा एष जग्धपाप्मा यस्यान्नमश्नन्ति ॥८॥

पदार्थ—(सर्वः) प्रत्येक (एष वै) वही गृहस्थ (जग्धपाप्मा) भक्षण [नाश] किये हुए पापवाला [होता है] (यस्य अन्नम्) जिसका अन्न (अश्नन्ति) वे [महात्मा] खाते हैं ॥८॥

सर्वो वा एषोऽजग्धपाप्मा यस्यान्नं नाश्नन्ति ॥९॥

पदार्थ—(सर्वः) प्रत्येक (एषः वै) वही [गृहस्थ] (अजग्धपाप्मा) बिना भक्षण [नाश] किये हुए पापवाला [होता है], (यस्य अन्नम्) जिसका अन्न (न अश्नन्ति) वे [अतिथि] नहीं खाते हैं ॥९॥

सर्वदा वा एष युक्तग्रावार्द्रपवित्रो वितताध्वर आहृतयज्ञक्रतुर्य उपहरति ॥१०॥

पदार्थ—(एष वै) वही मनुष्य (सर्वदा) सर्वदा (युक्तग्रावा) सिल-बट्टे ठीक किये हुए, (आर्द्रपवित्रः) [दूध-घी छानने से] भीगे छन्नेवाला, (वितताध्वरः) विस्तृत यज्ञवाला और (आहृतयज्ञक्रतुः) स्वीकार किये हुए यज्ञ-कर्म वाला [होता है], (यः) जो [अन्न] (उपहरति) भेंट करता है ॥१०॥

प्राजापत्यो वा एतस्य यज्ञो विततो य उपहरति ॥११॥

पदार्थ—(एतस्य) उस [गृहस्थ] का (एव) ही (प्राजापत्यः) प्रजापति परमात्मा की प्राप्ति कराने वाला [और प्रजापालक गृहस्थ का हितकारी] (यज्ञः) यज्ञ (विततः) विस्तृत [होता है], (यः) जो [अन्न] (उपहरति) दान करता है ॥११॥

प्रजापतेर्वा एष विक्रमाननुविक्रमते य उपहरति ॥१२॥

पदार्थ—(एषः वै) वह [गृहस्थ] (प्रजापतेः) प्रजापति [प्रजापालक परमेश्वर वा मनुष्य] के (विक्रमान्) विक्रमों [पराक्रमो] का (अनुविक्रमते) अनुकरण करके विक्रम करता है, (यः) जो [अन्न] (उपहरति) भेंट करता है ॥१२॥

योऽतिथीनां स आहवनीयो यो वेश्मनि स गार्हपत्यो यस्मिन् पचन्ति स दक्षिणाग्निः ॥१३॥

पदार्थ—(यः) जो) (अतिथीनाम्) अतिथियों, [उत्तम संन्यासियों] का [संग है], (सः) वह [संन्यासियों के लिये] (आहवनीयः) आहवनीय [ग्राह्य अग्नि है, जिसमें ब्रह्मचर्य आश्रम में ब्रह्मचारी होम करते हैं], और (यः) जो (वेश्मनि) घर में [अर्थात् अपने आश्रम में निवास है], (सः) वह [उसके लिये] (गार्हपत्यः) गार्हपत्य [गृहसम्बन्धी अग्नि है] और (यस्मिन्) जिसमें [अर्थात् जिस जाठराग्नि में अन्न आदि] (पचन्ति) पचाते हैं, (सः) वह [सन्यासियों के लिये] (दक्षिणाग्निः) दक्षिणाग्नि [अनुकूल अग्नि वानप्रस्थ सम्बन्धी] है ॥१३॥

卐 सूक्तम् ६ 卐

३१-३९

[३] (१—९) = १—६, ९ त्रिपदा पिपीलिकमध्या गायत्री, ७ साम्नी बृहती, ८ पिपीलिकमध्योष्णिक् ।

इष्टं च वा एष पूर्तं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥१॥

पदार्थ—(एषः) वह [गृहस्थ] (वै) निश्चय करके (इष्टम्) इष्ट सुख [यज्ञ, वेदाध्ययन आदि] (च च) और (पूर्तम्) अन्न दान आदि को (गृहाणाम्) घरों के बीच (अश्नाति) भक्षण [अर्थात् नाश] करता है, (यः) जो (अतिथेः पूर्वः) अतिथि से पहले (अश्नाति) खाता है ॥१॥

पयश्च वा एष रसं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥२॥

(पदार्थ—(एषः) वह [गृहस्थ] (एव) निश्चय कर (पयः) दूध [वा अन्न] (च च) और (रसम्) रस [स्वादिष्ट पदार्थ] को (गृहाणाम्) घरों के बीच (अश्नाति) भक्षण [अर्थात् नाश] करता है, (यः) जो (अतिथेः पूर्वः] अतिथि से पहिले (अश्नाति) खाता है ॥२॥

ऊर्जां च वा एष स्फातिं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥३॥

पदार्थ— (एषः) वह [गृहस्थ] (वै) निश्चय करके (ऊर्जाम्) पराक्रम (च च) और (स्फातिम्) वृद्धि को (गृहाणाम्) घरों के बीच (अश्नाति) भक्षण [अर्थात् नाश] करता है, (यः) जो (अतिथेः पूर्वः) अतिथि से पहिले (अश्नाति) खाता है ॥३॥

प्रजां च वा एष पशूंश्च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥४॥

पदार्थ—(एषः) वह [गृहस्थ] (वै) निश्चय करके (प्रजाम्) प्रजा (च च) और (पशून्) पशुओं को (गृहाणाम्) घरों के बीच (अश्नाति) भक्षण [अर्थात् नाश] करता है, (यः) जो (अतिथेः पूर्वः) अतिथि से पहिले (अश्नाति) खाता है ॥४॥

कीर्तिं च वा एष यशश्च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥५॥

पदार्थ—(एषः) वह [गृहस्थ] (वै) निश्चय करके (कीर्तिम्) कीर्ति (च च) और (यशः) यश [अर्थात् प्रताप] को (गृहाणाम्) घरों के बीच (अश्नाति) भक्षण [अर्थात् नाश] करता है, (यः) जो (अतिथेः पूर्वः) अतिथि से पहिले (अश्नाति) खाता है ॥५॥

श्रियं च वा एष संविदं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥६॥

पदार्थ—(एषः) वह पुरुष (वै) निश्चय करके (श्रियम्) सेवनीय ऐश्वर्य (च च) और (संविदम्) यथावत् बुद्धि को (गृहाणाम्) घरों के

पीता (अश्नाति) भक्षण [अपरि नाश] करता है, (य) जो (अतिथेः पूर्व) अतिथि से पहिले (अश्नाति) खाता है ॥६॥

एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस्तस्मात् पूर्वो नाश्नीयात् ॥७॥

पदार्थ—(यत्) क्योंकि (एषः वै) वही (अतिथिः) अतिथि (श्रोत्रियः) श्रोत्रिय [वेद जाननेवाला पुरुष है], (तस्मात्) उस [अतिथि] से (पूर्वः) पहिले [गृहस्थ] (न) न (अश्नीयात्) जीमे ॥७॥

अशितावत्यतिथावश्नीयाद् यज्ञस्य सात्मत्वाय यज्ञस्याविच्छेदाय तद् व्रतम् ॥८॥

पदार्थ—(अतिथौ अशितवति) अतिथि के भोजन कर लेने पर (अश्नीयात्) वह [गृहस्थ] खावे, (यज्ञस्य) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] की (सात्मत्वाय) चैतन्यता के लिये और (यज्ञस्य) यज्ञ की (अविच्छेदाय) निरन्तर प्रवृत्ति के लिये (तत्) वह (व्रतम्) नियम है ॥८॥

एतद् वा उ स्वादीयो यदधिगवं क्षीरं वा मांसं वा तदेव नाश्नीयात् ॥९॥

पदार्थ—(एतद् वै) यही (उ) निश्चय करके (स्वादीयः) अधिक स्वादु है, (यत्) कि (तत् एव) उसी ही (अधिगवम्) अधिकृत जल, (वा) और (क्षीरम्) दूध (वा) और (मांसम्) मनन साधक [बुद्धिवर्धक] वस्तु को (न) अब [अतिथि के जीमने] पर (अश्नीयात्) वह [गृहस्थ] खावे ॥९॥

卐 सूक्तम् ६ 卐

४६-५०

[४] (१—१०) = १—४ प्राजापत्यानुष्टुप्, ६ भुरिक्, २—५ त्रिपदा गायत्री, १० चतुष्पदा प्रस्तारपंक्तिः ।

स य एवं विद्वान् क्षीरमुपसिच्योपहरति ॥१॥

यावदग्निष्टोमेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्धे तावदेनेनावरुन्धे ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो [गृहस्थ] (एवम्) ऐसा (विद्वान्) विद्वान् है, (सः) वह (क्षीरम्) दूध को (उपसिच्य) सिद्ध करके (उपहरति) भेंट करता है । (यावत्) जितना [फल] (सुसमृद्धेन) बड़ी सम्पत्ति वाले (अग्निष्टोमेन) अग्निष्टोम से [जो वसन्तकाल में सामयाग किया जाता है] (इष्ट्वा) यज्ञ करके (अवरुन्धे) [मनुष्य] पाता है, (तावत्) उतना [फल] (एनेन) इस [कर्म] से (अवरुन्धे) वह [विद्वान्] पाता है ॥१, २॥

स य एवं विद्वान्त्सर्पिरुपसिच्योपहरति ॥३॥

यावदतिरात्रेणेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्धे तावदेनेनावरुन्धे ॥४॥

पदार्थ—(यः) जो [गृहस्थ] (एवम्) ऐसा (विद्वान्) विद्वान् है, (सः) वह (सर्पिः) घृत (उपसिच्य) सिद्ध करके (उपहरति) भेंट करता है । (यावत्) जितना [फल] (सुसमृद्धेन) बड़ी सम्पत्ति वाले (अतिरात्रेण) अतिरात्र से (इष्ट्वा) यज्ञ करके (अवरुन्धे) [मनुष्य] पाता है, (तावत्) उतना [फल] (एनेन) इस [कर्म] से (अवरुन्धे) वह [विद्वान्] पाता है ॥३, ४॥

स य एवं विद्वान् मधूपसिच्योपहरति ॥५॥

यावत् सत्त्रसद्येनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्धे तावदेनेनावरुन्धे ॥६॥

पदार्थ—(यः) जो [गृहस्थ] (एवम्) ऐसा (विद्वान्) विद्वान् है, (सः) वह (मधु) मधु [मक्षिका रस] (उपसिच्य) सिद्ध करके (उपहरति) भेंट करता है । (यावत्) जितना [फल] (सुसमृद्धेन) बड़ी सम्पत्ति वाले (सत्त्रसद्येन) सत्र सद्य से (सोमयाग विशेष से) (इष्ट्वा) यज्ञ करके (अवरुन्धे) [मनुष्य] पाता है, (तावत्) उतना [फल] (एनेन) इस [कर्म] से (अवरुन्धे) वह [विद्वान्] पाता है ॥५, ६॥

स य एवं विद्वान् मांसमुपसिच्योपहरति ॥७॥

यावद् द्वादशाहेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्धे तावदेनेनावरुन्धे ॥८॥

पदार्थ—(यः) जो [गृहस्थ] (एवम्) ऐसा (विद्वान्) विद्वान् है, (सः) वह (मांसम्) मनन साधक [बुद्धिवर्धक वस्तु] को (उपसिच्य) सिद्ध करके (उपहरति) भेंट करता है । (यावत्) जितना [फल] (सुसमृद्धेन) बड़ी सम्पत्ति वाले (द्वादशाहेन) बारह दिन वाले [सोमयाग] से (इष्ट्वा) यज्ञ करके (अवरुन्धे) मनुष्य पाता है, (तावत्) उतना [फल] (एनेन) इस [कर्म] से (अवरुन्धे) वह [विद्वान्] पाता है ॥७, ८॥

स य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति ॥९॥

प्रजानां प्रजननाय गच्छति प्रतिष्ठां प्रियः प्रजानां भवति य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति ॥१०॥

पदार्थ—(यः) जो [गृहस्थ] (एवम् विद्वान्) ऐसा विद्वान है, (सः) वह (उदकम्) जल को (उपसिच्य) सिद्ध करके (उपहरति) भेंट करता है । वह (प्रजानाम्) सन्तानों के (प्रजननाय) उत्पन्न करने के लिये (प्रतिष्ठाम्) दृढ़ स्थिति (गच्छति) पाता है और (प्रजानाम्) सन्तानों का (प्रियः) प्रिय (भवति) होता है, (यः) जो (एवम्) ऐसा (विद्वान्) विद्वान् [गृहस्थ] (उदकम्) जल को (उपसिच्य) सिद्ध करके (उपहरति) भेंट करता है ॥९, १०॥

卐 सूक्तम् ६ 卐

४५-४८

[५] (१—१०) = १ साम्नी उष्णिक्, २ पुरोष्णिक्, ३, ५, ७, १० साम्नी भुरिग्बृहती, ४, ६, ९, साम्नी अनुष्टुप्, ५ त्रिपदा निचृद्विषमा नाम गायत्री; ७ त्रिपदा विराड्विषमा नाम गायत्री, ८ त्रिपदा विराडनुष्टुप् ।

तस्मा उषा हिङ् कृणोति सविता प्र स्तौति ॥१॥

बृहस्पतिरूर्जयोद्गायति त्वष्टा पुष्ट्या प्रति हरति विश्वे देवा निधनम् ॥२॥

निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥३॥

पदार्थ—(तस्मै) उस [गृहस्थ] के लिये (उषा) उषा [प्रभात वेला] (हिङ्) तृप्ति कर्म (कृणोति) करती है, (सविता) प्रेरणा करने वाला सूर्य (प्र) अच्छी भांति (स्तौति) स्तुति करता है । [उसके लिये] (बृहस्पतिः) बड़े साम [अमृत रस] का रक्षक, वायु (ऊर्जया) प्राण शक्ति के साथ (उद् गायति) उद्गीथ [वेद गान] करता है (त्वष्टा) [अन्न आदि] उत्पन्न करने वाला, मेघ (पुष्ट्या) पुष्टि के साथ (निधनम्) निधि (प्रति) प्रत्यक्ष (हरति) प्राप्त कराता है और (विश्वे) सब (देवाः) उत्तम गुण वाले पदार्थ [निधि प्रत्यक्ष प्राप्त कराते हैं] । [उस गृहस्थ के लिये] (भूत्याः) वैभव का, (प्रजायाः) प्रजा [सन्तान भृत्य आदि] का और (पशूनाम्) पशुओं [गौ, घोड़े, हाथी आदि] का (निधनम्) निधि (भवति) होता है, (यः) जो गृहस्थ (एवम्) इस प्रकार (वेद) जानता है ॥१, २, ३॥

तस्मा उद्यन्त्सूर्यो हिङ् कृणोति संगवः प्र स्तौति ॥४॥

मध्यन्दिन उद्गायत्यपराह्णः प्रति हरत्यस्तंयन्निधनम् ।

निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥५॥

पदार्थ—(तस्मै) उस [गृहस्थ] के लिये (उद्यन्) उदय होता हुआ (सूर्यः) सूर्य (हिङ्) तृप्ति कर्म (कृणोति) करता है (संगवः) किरणों से संगति वाला [दोपहर से पहिले सूर्य] (प्र) अच्छी भांति (स्तौति) स्तुति करता है । (मध्यन्दिनः) मध्याह्न काल (उत् गायति) उद्गीथ [वेद गान] करता है, (अपराह्णः) तीसरा पहर (निधनम्) निधि (प्रति) प्रत्यक्ष (हरति) प्राप्त कराता है और (अस्तंयन्) डूबता हुआ [सूर्य, निधि प्रत्यक्ष प्राप्त कराता है] । [उसके लिये] (भूत्याः) वैभव का, (प्रजायाः) प्रजा [सन्तान भृत्य आदि] का और (पशूनाम्) पशुओं [गौ, घोड़े, हाथी आदि] का (निधनम्) निधि (भवति) होता है (यः) जो गृहस्थ (एवम्) इस प्रकार (वेद) जानता है ॥४, ५॥

तस्मा अभ्रो भवन् हिङ् कृणोति स्तनयन् प्र स्तौति ॥६॥

विद्योतमानः प्रति हरति वर्षन्नुद्गायत्युद्गृह्णन् निधनम् ।

निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥७॥

पदार्थ—(तस्मै) उस [गृहस्थ] के लिये (भवन्) घिरा हुआ (अभ्रः) मेघ (हिङ्) तृप्ति कर्म (कृणोति) करता है, (स्तनयन्) गरजता हुआ (प्र) अच्छी भांति (स्तौति) स्तुति करता है । और (विद्योतमानः) [बिजुली से] चमचमाता हुआ (निधनम्) निधि (प्रति) प्रत्यक्ष (हरति) प्राप्त कराता है, और (वर्षन्) बरसता हुआ [मेघ, निधि को] (उद्गृह्णन्) थांभता हुआ (उत् गायति) उद्गीथ [वेदगान] करता है । [उसके लिये] (भूत्याः) वैभव का, (प्रजायाः) प्रजा [सन्तान भृत्य आदि] का और (पशूनाम्) पशुओं [गौ, घोड़े, हाथी आदि] का (निधनम्) निधि (भवति) होता है, (यः) जो गृहस्थ (एवम्) इस प्रकार (वेद) जानता है ॥६, ७॥

अतिथीन् प्रति पश्यति हिङ् कृणोत्यभि वदति प्र स्तौत्युदकं याचत्युद्गायति ।८।

उप हरति प्रति हरत्युच्छिष्टं निधनम् ॥९॥

निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥१०॥

पदार्थ—[जब] वह [गृहस्थ] (अतिथीन् प्रति) अतिथियों की ओर

(**पश्यति**) देखता है, वह [अतिथि] (**हिङ्**) तृप्ति कर्म (**कृणोति**) करता है, [जब] वह [गृहस्थ] (**अभि वदति**) अभिवादन करता है, वह [अपने भाग्य की] (**प्र स्तौति**) अच्छी भांति स्तुति करता है, [जब] वह [गृहस्थ] (**उदकम्**) जल (**यावति**) विनय करके देता है, (**उत् गायति**) वह उद्गीथ [वेद गान] करता है। [जब] वह [गृहस्थ, भाजन] (**उप हरति**) भेंट करता है, (**उच्छिष्टम्**) अतिशिष्ट [उत्तम] (**निधनम्**) निधि (**प्रति हरति**) [अतिथि] प्रत्यक्ष प्राप्त कराता है। [उस गृहस्थ के लिये] (**भूत्या**) वैभव का, (**प्रजायाः**) प्रजा [सन्तान भृत्य आदि] का और (**पशूनाम्**) पशुओ [गौ, घोडे, हाथी आदि] का (**निधनम्**) निधि (**भवति**) होता है, (**य**) जो [गृहस्थ] (**एवम्**) इस प्रकार (**वेद**) जानता है ॥ ८, ९, १० ॥

卐 सूक्तम् ६ 卐

५६-२२

[६] (१—१४), १ आसुरी गायत्री, २ साम्नी अनुष्टुप्, ३-५ त्रिपदार्ची पङ्क्ति, ४ एकपदा प्राजापत्या गायत्री, ६-११ आर्ची बृहती, १२ एकपदा आसुरी जगती, १२ याजुषी त्रिष्टुप्, १४ एकपदासुरी उष्णिक्।

यत् क्षत्तारं ह्वयत्या श्रावयत्येव तत् ॥१॥

पदार्थ—(**यत्**) जब वह [अतिथि] (**क्षत्तारम्**) कष्ट से तारने वाले [धर्मात्मा गृहस्थ] को (**ह्वयति**) बुलाता है, (**तत्**) तब वह [अतिथि] (**एव**) निश्चय करके (**आ श्रावयति**) आदेश सुनाता है ॥१॥

यत् प्रतिशृणोति प्रत्याश्रावयत्येव तत् ॥२॥

पदार्थ—(**यत्**) जब वह [गृहस्थ] (**प्रतिशृणोति**) ध्यान से सुनता है, (**तत्**) तब (**एव**) ही वह [अतिथि] (**प्रत्याश्रावयति**) ध्यान से [उपदेश] सुनाता है ॥ २ ॥

यत् परिवेष्टारः पात्रहस्ताः पूर्वे चापरे च प्रपद्यन्ते चमसाध्वर्यव एव ते ॥३॥

तेषां न कश्चनाहोता ॥४॥

पदार्थ—(**यत्**) जब (**पात्रहस्ता**) पात्र हाथ मे लिये हुए (**पूर्वे**) अगले (**च**) और (**अपरे**) पिछले (**च**) भी (**परिवेष्टार**) परोसने वाले पुरुष (**प्रपद्यन्ते**) आगे बढ़ते हैं, (**ते**) वे (**एव**) निश्चय करके (**चमसाध्वर्यव**) अन्न के लिये हिंसारहित व्यवहार चाहने वाले [होते हैं] [क्योंकि] (**तेषाम्**) उनमें से (**कश्चन**) कोई भी (**अहोता**) अदानी (**न**) नहीं [होता है] ॥३,४॥

यद् वा अतिथिपतिरतिथीन् परिविष्य गृहानुपोदैत्यवभृथमेव तदुपावैति ॥५॥

पदार्थ—(**यत्**) जब (**वै**) ही (**अतिथिपति**) अतिथियो की रक्षा करनेवाला (**अतिथीन्**) अतिथियो को (**परिविष्य**) भोजन परोसकर (**गृहान्**) घरों [घर वालो] मे (**उपोदैति**) पहुँचता है, (**तत्**) तब वह (**अवभृथम्**) यज्ञसमाप्ति का स्नान (**एव**) ही (**उपावैति**) प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

यत् सभागयति दक्षिणाः सभागयति यदनुतिष्ठत उदवस्यत्येव तत् ॥६॥

पदार्थ—(**यत**) जब वह [गृहस्थ अन्न आदि] (**सभागयति**) बांटता है, वह [अतिथि] (**दक्षिणा**) वृद्धि क्रियाओ को (**सभागयति**) बाटता है [इस लिये] वह [गृहस्थ] (**यत**) जब (**अनुतिष्ठते**) [शास्त्रोक्त कर्म] करता है, (**तत**) तब वह [उसको] (**एव**) निश्चय करके (**उदवस्यति**) पूरा कर डालता है ॥ ६ ॥

स उपहूतः पृथिव्यां भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यत् पृथिव्यां विश्वरूपम् ॥७॥

पदार्थ—(**स**) वह [अतिथि जब] (**उपहूत**) बुलाया गया (**पृथिव्याम्**) पृथिवी पर [वर्तमान अन्न आदि] (**भक्षयति**) भोगता है, (**तस्मिन्**) उस [अतिथि] के [भोग करने के] उपरान्त (**उपहूत**) बुलाया गया वह [गृहस्थ] (**पृथिव्याम्**) पृथिवी पर (**यत्**) जो कुछ (**विश्वरूपम्**) विविध रूप [वस्तु है, उसे भोगता है] ॥ ७ ॥

स उपहूतोऽन्तरिक्षे भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यदन्तरिक्षे विश्वरूपम् ॥८॥

पदार्थ—(**स.**) वह [अतिथि जब] (**उपहूत**) बुलाया गया (**अन्तरिक्षे**) अन्तरिक्ष में [वर्तमान वायु आदि] (**भक्षयति**) भोगता है, (**तस्मिन्**) उसके [भोग करने के] उपरान्त (**उपहूत**) बुलाया गया वह [गृहस्थ] (**अन्तरिक्षे**) अन्तरिक्ष में (**यत्**) जो कुछ (**विश्वरूपम्**) विविध रूप [वस्तु है, उसे भोगता है] ॥ ८ ॥

स उपहूतो दिवि भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यद् दिवि विश्वरूपम् ॥९॥

पदार्थ—(**सः**) वह [अतिथि जब] (**उपहूत.**) बुलाया गया (**दिवि**) सूर्य मे [वर्तमान प्रकाश, धारण, आकर्षण आदि गुण] (**भक्षयति**) भोगता है, (**तस्मिन्**) उसके [भोग करने के] उपरान्त (**उपहूत.**) बुलाया गया वह [गृहस्थ] (**दिवि**) सूर्यलोक मे (**यत्**) जो कुछ (**विश्वरूपम्**) विविध रूप [वस्तु है, उसे भोगता है] ॥ ९ ॥

स उपहूतो देवेषु भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यद् देवेषु विश्वरूपम् ॥१०॥

पदार्थ—(**स**) वह [अतिथि जब] (**उपहूत**) बुलाया गया (**देवेषु**) विद्वानो मे [वर्तमान ब्रह्मचर्य, वेदाध्ययन, ईश्वरप्रणिधान आदि शुभ गुण] (**भक्षयति**) भोगता है, (**तस्मिन्**) उसके [भोग करने के] उपरान्त (**उपहूत**) बुलाया गया वह [गृहस्थ] (**देवेषु**) विद्वानो मे (**यत्**) जो कुछ (**विश्वरूपम्**) विविध रूप [वस्तु है, उसे भोगता है] ॥१०॥

स उपहूतो लोकेषु भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यल्लोकेषु विश्वरूपम् ॥११॥

पदार्थ—(**स**) वह [अतिथि जब] (**उपहूत**) बुलाया गया (**लोकेषु**) [दीखते हुए] लोको मे [वर्त्तमान परस्पर सम्बन्ध को] (**भक्षयति**) भोगता है, (**तस्मिन्**) उसके [भोग करने के] उपरान्त (**उपहूत**) बुलाया गया वह [गृहस्थ] (**लोकेषु**) लोकों मे (**यत्**) जो कुछ (**विश्वरूपम्**) विविध रूप [वस्तु है, उसे भोगता है] ॥११॥

स उपहूत उपहूतः ॥१२॥

आप्नोतीमं लोकमाप्नोत्यमुम् ॥१३॥

पदार्थ—(**स.**) वह [अतिथि जब] (**उपहूत**) बुलाया गया है, [तब वह गृहस्थ] (**उपहूत**) बुलाया गया, (**इमम्**) इस (**लोकम्**) लोक को (**आप्नोति**) पाता है और (**अमुम्**) उस [लोक] को (**आप्नोति**) पाता है ॥१२, १३॥

ज्योतिष्मतो लोकाञ्जयति य एवं वेद ॥१४॥

पदार्थ—वह [गृहस्थ] (**ज्योतिष्मत**) प्रकाशमय (**लोकान्**) लोको को (**जयति**) जीतता है, (**य**) जो (**एवम्**) ऐसा (**वेद**) जानता है ॥१४॥

卐 इति तृतीयोऽनुवाकः ॥ 卐

卐

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ॥ ७ ॥ 卐

१—२६ (एक पर्याय) ब्रह्मा । गौ । १ आर्ची बृहती, २ आर्च्युष्णिक्, ३, ५ आर्च्यनुष्टुप्, ४, १४, १५, १६ साम्नी बृहती, ६—८ आसुरी गायत्री, ७ त्रिपदा पिपीलिकमध्या निचृद् गायत्री, ९, १३ साम्नी गायत्री, १०— पुरोष्णिक, ११, १२, १७, २५ साम्न्युष्णिक, १८, २२ एकपदासुरी जगती, १९ एकपदासुरी पङ्क्ति, २० याजुषी जगती, २१ आसुर्यनुष्टुप्, २३ एकपदासुरी बृहती, २४ साम्नी भुरिग्बृहती, २६ साम्नी त्रिष्टुप्, ७, १८, १९, २२, २३ द्विपदा।

प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृङ्गे इन्द्रः शिरो अग्निर्ललाटं यमः कृकाटम् ॥१॥

पदार्थ—(**प्रजापतिः**) प्रजापति [प्रजापालक] (**च**) और (**परमेष्ठी**) परमेष्ठी [सब से उच्च पद वाला परमेश्वर] (**च** निश्चय करके (**शृङ्गे**) दो प्रधान सामर्थ्य [स्वरूप हैं], [इसी कारण से सृष्टि में] (**इन्द्र**) सूर्य (**शिरः**) शिर, (**अग्नि**) [पार्थिव] अग्नि (**ललाटम्**) माथा, (**यम**) वायु (**कृकाटम्**) कण्ठ की सन्धि [के समान है] ॥१॥

सोमो राजा मस्तिष्को द्यौरुत्तरहनुः पृथिव्यधरहनुः ॥२॥

पदार्थ—[सृष्टि मे] (**राजा**) शासक (**सोमः**) ऐश्वर्य [अथवा अमृत जल वा चन्द्रमा] (**मस्तिष्क**) भेजा [कपाल की चिकनाई], (**द्यौ**) आकाश (**उत्तरहनु**) ऊपर का जबाडा, (**पृथिवी**) भूमि (**अधरहनु**) नीचे का जबाड़ा [के तुल्य है] ॥२॥

विद्युज्जिह्वा मरुतो दन्ता रेवतीर्ग्रीवाः कृत्तिका स्कन्धा घर्मो वहः ॥३॥

पदार्थ—[सृष्टि मे] (**विद्युत्**) [लपक लेने वाली] बिजुली (**जिह्वा**) जीभ (**मरुत**) [दोषो के मारने वाले] पवन (**दन्ताः**) [दमनशील] दांत, (**रेवतीः**) रेवती आदि [चलने वाले नक्षत्र] (**ग्रीवा**) गला, (**कृत्तिकाः**) कृत्तिका आदि [छेदन शील नक्षत्र] (**स्कन्धा**) कन्धे, (**घर्म**) ताप [प्रकाश] (**वह.**) ले चलनेवाले सामर्थ्य [के समान है] ॥३॥

विश्वं वायुः स्वर्गो लोकः कृष्णद्रं विधरणी निवेष्यः ॥४॥

पदार्थ—[सृष्टि में] (विश्वम्) व्यापनसामर्थ्य (वायुः) वायु (कृष्णद्रम्) आकर्षण का वेग (स्वर्गः) सुखदायक (लोकः) घर, (विधरणी) विविध धारणशक्ति (निवेष्यः) सेना ठहरने के स्थान [के समान है] ॥४॥

श्येनः क्रोडोऽन्तरिक्षं पाजस्यं बृहस्पतिः

ककुद् बृहतीः कीकसाः ॥५॥

पदार्थ—[सृष्टि में] (श्येनः) [चलने वाला] सूर्य (क्रोडः) गोद (अन्तरिक्षम्) मध्य अवकाश (पाजस्यम्) [बल के लिये हितकारी] पेट (बृहस्पतिः) बृहस्पति [लोकविशेष] (ककुत्) शिखा, (बृहतीः) बड़ी दिशायें (कीकसाः) हंसली [गले की हड्डियों के समान] है ॥५॥

देवानां पत्नीः पृष्टय उपसदः पर्शवः ॥६॥

पदार्थ—[सृष्टि में] (देवानाम्) दिव्यगुण वाले [अग्नि, वायु आदि] पदार्थों की (पत्नीः) पालनशक्तियां (पृष्टयः) पसलियों की हड्डियो, (उपसदः) सङ्ग रहनेवाली [अग्नि वायु आदि की तन्मात्रायें] (पर्शवः) पसलियों [के समान] हैं ॥६॥

मित्रश्च वरुणश्चांसौ त्वष्टा चार्यमा च दोषणी महादेवो बाहू ॥७॥

पदार्थ—[सृष्टि में] (मित्रः) प्राण वायु (च) और (वरुणः) अपान वायु (च) ही (अंसौ) दोनों कन्धे, (त्वष्टा) [अन्न जल आदि उत्पन्न करने वाला] मेघ (च) और (अर्यमा) सूर्य (च) ही (दोषणी) दो भुजदण्ड और (महादेवः = महादेवौ) अधिक जीतने की इच्छा और स्तुति गुण (बाहू) दो भुजाओं [के तुल्य] हैं ॥७॥

इन्द्राणी भसद् वायुः पुच्छं पवमानो बालाः ॥८॥

पदार्थ—[सृष्टि में] (इन्द्राणी) इन्द्राणी [इन्द्र की पत्नी, सूर्य की धूप] (भसत्) कटिभाग, (वायुः) वायु (पुच्छम्) प्रसन्नता का साधन [वा पीछे का भाग], (पवमानः) शोधक पदार्थ [अग्नि जल आदि] (बालाः) [बालों अर्थात् केशों के समान आकार वाली] भाड़ुओं [कूँचियों के समान हैं] ॥८॥

ब्रह्म च क्षत्रं च श्रोणी बलमूरू ॥९॥

पदार्थ—[सृष्टि में] (ब्रह्म) ब्राह्मणत्व (च) और (क्षत्रम्) क्षत्रियत्व (च) ही (श्रोणी) दोनो कूल्हो और (बलम्) बल (ऊरू) दोनो जंघाओं [के समान है] ॥९॥

धाता च सविता चाष्ठीवन्तौ जङ्घा गन्धर्वा

अप्सरसः कुष्ठिका अदितिः शफाः ॥१०॥

पदार्थ— [सृष्टि में] (धाता) धारण करनेवाला गुण (च) और (सविता) ऐश्वर्य करनेवाला गुण (च) ही (अष्ठीवन्तौ) दोनो घुटने, (गन्धर्वाः) पृथिवी धारण करनेवाले गुण (जङ्घाः) जङ्घायें (अप्सरसः) प्राणियो में व्यापक गुण (कुष्ठिकाः) [नख, अङ्गुली आदि] बाहिरी अङ्गो [के समान] और (अदितिः) [अदीन वा अखण्डित] वेदवाणी (शफाः) शान्ति व्यवहार [हैं] ॥१०॥

चेतो हृदयं यकृन्मेधा व्रतं पुरीतत् ॥११॥

पदार्थ—[सृष्टि में] (चेतः) विचार (हृदयम्) हृदय (मेधा) बुद्धि (यकृत्) [सङ्कुचित करने वाला] कलेजा (व्रतम्) व्रत [नियम] (पुरीतत्) पुरीतत् [शरीर को फैलाने वाली सूक्ष्म आंत के समान] है ॥११॥

क्षुत् कुक्षिरिरा वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः ॥१२॥

पदार्थ—[सृष्टि में] (क्षुत्) भूख (कुक्षिः) कोख, (इरा) अन्न (वनिष्ठुः) वनिष्ठु [अन्न रस आदि बांटने वाली आंत], (पर्वताः) मेघ (प्लाशयः) प्लाशियों [अन्न के आधार आंतो के समान] हैं ॥१२॥

क्रोधो वृक्कौ मन्युराण्डौ प्रजा शेपः ॥१३॥

पदार्थ—[सृष्टि में] (क्रोधः) क्रोध (वृक्कौ) दोनो वृक्क [दो कुक्षि गोलक] (मन्युः) तेज (आण्डौ) दोनों अण्डकोष, और (प्रजा) प्रजा [वंशावली] (शेपः) प्रजनन सामर्थ्य [के समान] है ॥१३॥

नदी सूत्री वर्षस्य पतय स्तना स्तनयित्नुरूधः ॥१४॥

पदार्थ—[सृष्टि में (नदी) नदी (सूत्री) जन्मदात्री [नाड़ी], (वर्षस्य पतयः) वर्षा के रक्षक [मेघ] (स्तनाः) स्तन [दूध के आधार], (स्तनयित्नुः) गर्जन (ऊधः) मेह [दूध के छिद्र स्थान के समान] है ॥१४॥

विश्वव्यचाश्चर्मौषधयो लोमानि नक्षत्राणि रूपम् ॥१५॥

पदार्थ—[सृष्टि में] (विश्वव्यचाः) सर्वव्याप्त (चर्म) चर्म, (ओषधयः) ओषधें [अन्न आदि] (लोमानि) रोम, (नक्षत्राणि) नक्षत्र (रूपम्) रूप [के समान हैं] ॥१५॥

देवजना गुदा मनुष्या आन्त्राण्यत्रा उदरम् ॥१६॥

पदार्थ— [सृष्टि में] (देवजनाः) उन्मत्त लोग (गुदाः) गुदा [मलत्याग नाड़ियां], (मनुष्याः) मननशील मनुष्य (आन्त्राणि) आंतें, (अत्राः) [अतनशील] विश्रामी पुरुष (उदरम्) पेट [के समान] हैं ॥१६॥

रक्षांसि लोहितमितरजना ऊबध्यम् ॥१७॥

पदार्थ—(रक्षांसि) राक्षस [दुष्ट जीव] (लोहितम्) रुधिर रोग, (इतरजनाः) पामर लोग (ऊबध्यम्) कुपचे अन्न [के समान] हैं ॥१७॥

अभ्रं पीबो मज्जा निधनम् ॥१८॥

पदार्थ—[सृष्टि में] (अभ्रम्) मेघ (पीबः) मेद (शरीर के भीतर चिकनाई], (निधनम्) राशीकरण (मज्जा) मज्जा [हड्डियो की चिकनाई के समान] है ॥१८॥

अग्निरासीन उत्थितोऽश्विना ॥१९॥

पदार्थ—[सृष्टि में वह प्रजापति] (आसीनः) बैठा हुआ (अग्निः) [पार्थिव वा जाठर] अग्नि, (उत्थितः) उठा हुआ वह (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा [के समान] है ॥१९॥

इन्द्रः प्राङ् तिष्ठन् दक्षिणा तिष्ठन् यमः ॥२०॥

प्रत्यङ् तिष्ठन् धातोदङ् तिष्ठन्त्सविता ॥२१॥

पदार्थ— [वह परमेश्वर] (प्राङ्) पूर्व वा सन्मुख (तिष्ठन्) ठहरा हुआ (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान्, (दक्षिणा) दक्षिण वा दाहिनी ओर (तिष्ठन्) ठहरा हुआ (यमः) न्यायकारी (प्रत्यङ्) पश्चिम वा पीछे की ओर (तिष्ठन्) ठहरा हुआ (धाता) धारण करने वाला और (उदङ्) उत्तर वा बाईं ओर (तिष्ठन्) ठहरा हुआ (सविता) सबका चलाने वाला [है] ॥२०,२१॥

तृणानि प्राप्तः सोमो राजा ॥२२॥

पदार्थ—[वह] (तृणानि) तृणों [सृष्टि के पदार्थों] में (प्राप्तः) प्राप्त होकर (राजा) सर्वशासक (सोमः) जन्मदाता है ॥२२॥

मित्र ईक्षमाण आवृत्त आनन्दः ॥२३॥

पदार्थ—[वह] (ईक्षमाणः) देखता हुआ (मित्रः) मित्र [हितकारी], (आवृत्तः) सन्मुख वर्तमान (आनन्दः) आनन्द [स्वरूप है] ॥२३॥

युज्यमानो वैश्वदेवो युक्तः प्रजापतिर्विमुक्तः सर्वम् ॥२४॥

पदार्थ—[वह] (युज्यमानः) ध्यान किया जाता हुआ (वैश्वदेवः) सब विद्वानो का हितकारी, (युक्तः) समाधि किया गया वह (विमुक्तः) विविध मुक्तस्वभाव (प्रजापतिः) प्रजापालक परमेश्वर (सर्वम्) व्यापक ब्रह्म [है] ॥२४॥

एतद् वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम् ॥२५॥

पदार्थ—(एतत्) व्यापक ब्रह्म (वै) ही (विश्वरूपम्) जगत् का रूप देने वाला, (सर्वरूपम्) सब का रूप देने वाला और (गोरूपम्) [प्राप्ति योग्य] स्वर्ग [सुख विशेष] का रूप देने वाला [है] ॥२५॥

उपैनं विश्वरूपाः सर्वरूपाः पशवस्तिष्ठन्ति य एवं वेद ॥२६॥

पदार्थ—(एनम्) उस [पुरुष] का (विश्वरूपाः) सब रूप [वर्ण] वाले और (सर्वरूपाः) सब आकार वाले (पशवः) [व्यक्त वाणी और अव्यक्त वाणी वाले] जीव (उप तिष्ठन्ति) पूजते हैं, (यः) जो (एवम्) इस प्रकार (वेद) जानता है ॥२६॥

卐 सूक्तम् ८ 卐

१—२२ भृग्वङ्गिरा । सर्वशीर्षामयाद्यपाकरणम् । अनुष्टुप्, १२ अनुष्टुब्गर्भा ककुम्मती चतुष्पदोष्णिक्; १५ विराडनुष्टुप्; २१ विराट्पथ्याबृहती, २२ पथ्यापङ्क्तिः ।

शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम् ।

सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥१॥

पदार्थ—(शीर्षक्तिम्) शिर की पीड़ा, (शीर्षामयम्) शिर की व्यथा (कर्णशूलम्) कर्णशूल [कान की सूजन वा टीस] और (विलोहितम्) बिगड़े लोहू [सूजन आदि] को । (सर्वम्) सब (ते) तेरे (शीर्षण्यम्) शिर के (रोगम्) रोग को (बहिः) बाहिर (निः मन्त्रयामहे) हम विचार पूर्वक निकालते हैं ॥१॥

कर्णाभ्यां ते कङ्कूषेभ्यः कर्णशूलं विसल्पकम् ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥२॥

पदार्थ—(ते) तेरे (कर्णाभ्याम्) दोनो कानो से और (कङ्कूषेभ्यः) कङ्कूषों [फैली हुई कान की भीतरी नाड़ियो] से (कर्णशूलम्) कर्णशूल [कान की सूजन वा टीस] और (विसल्पकम्) विसल्प [विसप रोग, हड्फूटन] को । (सर्वम्) सब (ते) तेरे (शीर्षण्यम्) शिर के (रोगम्) रोग को (बहिः) बाहिर (निः मन्त्रयामहे) हम विचार पूर्वक निकालते हैं ॥२॥

यस्य हेतोः प्रच्यवते यक्ष्मः कर्णत आस्यतः ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥३॥

पदार्थ—(यस्य) जिस [रोग] के (हेतो) कारण से (यक्ष्म) राजरोग [क्षयी आदि] (कर्णत) कान से और (आस्यतः) मुख से (प्रच्यवते) फैलता है । (सर्वम्) सब (ते) तेरे (शीर्षण्यम्) शिर के (रोगम्) रोग को (बहि) बाहिर (नि मन्त्रयामहे) हम विचार पूर्वक निकालते हैं ॥३॥

यः कृणोति प्रमोतमन्धं कृणोति पूरुषम् ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥४॥

पदार्थ—(य) जो [रोग] (पूरुषम्) पुरुष को (प्रमोतम्) गूगा [वा बहिरा] (कृणोति) करता है, [वा] (अन्धम्) अन्धा (कृणोति) करता है । (सर्वम्) सब (ते) तेरे (शीर्षण्यम्) शिर के (रोगम्) रोग को (बहिः) बाहिर (नि मन्त्रयामहे) हम विचार पूर्वक निकालते हैं ॥४॥

अङ्गभेदमङ्गज्वरं विश्वाङ्ग्यं विसल्पकम् ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥५॥

पदार्थ—(अङ्गभेदम्) अङ्ग-अङ्ग की फूटन, (अङ्गज्वरम्) अङ्ग-अङ्ग के ज्वर और (विश्वाङ्ग्यम्) विसर्परोग को (सर्वम्) सब (ते) तेरे (शीर्षण्यम्) शिर के (रोगम्) रोग को (बहि) बाहिर (नि मन्त्रयामहे) हम विचार पूर्वक निकालते हैं ॥५॥

यस्य भीमः प्रतीकाश उद्वेपयति पूरुषम् ।
तक्मानं विश्वशारदं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥६॥

पदार्थ—(यस्य) जिस [ज्वर] का (भीमः) भयानक (प्रतीकाश.) स्वरूप (पूरुषम्) पुरुष को (उद्वेपयति) कपा देता है । [उस] (विश्वशारदम्) सब शरीर मे चकत्ते करने वाले (तक्मानम्) ज्वर को (बहि.) बाहिर (निः मन्त्रयामहे) हम विचारपूर्वक निकालते हैं ॥६॥

य ऊरू अनुसर्पत्यथो एति गवीनिके ।
यक्ष्मं ते अन्तरङ्गेभ्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥७॥

पदार्थ—(य) जो [राजरोग] (ऊरू) दोनो जघाओ मे (अनुसर्पति) रेंगता जाता है, (अथो) और भी (गवीनिके) पार्श्वस्थ दोनो नाड़िये मे (एति) पहुँचता है । [उस] (यक्ष्मम्) राजरोग को (ते) तेरे (अन्तः) भीतरी (अङ्गेभ्य) अङ्गो से (बहि.) बाहिर (नि मन्त्रयामहे) हम विचार पूर्वक निकालते हैं ॥७॥

यदि कामादपकामाद्धृदयाज्जायते परि ।
हृदो बलासमङ्गेभ्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥८॥

पदार्थ—(यदि) यदि वह [बलास रोग] (कामात्) इच्छा से [अथवा] (अपकामात्) द्वेष के कारण (हृदयात्) हृदय । (परि) सब ओर (जायते) उत्पन्न होता है । (हृद) हृदय के (बलासम्) बलास [बल के गिराने वाले, संनिपात, कफादि रोग] को (अङ्गेभ्य) अङ्गो से (बहि.) बाहिर (नि मन्त्रयामहे) हम विचार पूर्वक निकालते हैं ॥८॥

हरिमाणं ते अङ्गेभ्योऽप्वामन्तरोदरात् ।
यक्ष्मोधामन्तरात्मनो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥९॥

पदार्थ—(हरिमाणम्) पीलिया [वा कामला रोग] को (ते) तेरे (अङ्गेभ्य) अङ्गो से और (अप्वाम्) वायु गोला को (अन्तरा) भीतर (उदरात्) पेट से (यक्ष्मोधाम्) राजरोग करने वाली [व्यथा] को (अन्त) भीतर (आत्मन.) देह से (बहि.) बाहिर (नि मन्त्रयामहे) हम विचारपूर्वक निकालते हैं ॥ ९ ॥

आसो बलासो भवतु मूत्रं भवत्वामयत् ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥१०॥

पदार्थ—[यदि] (बलासः) बलास [बल का गिराने वाला संनिपात, कफादि] (आस) धनुष [अङ्ग को धनुष समान टेढ़ा करने वाला] (भवतु) हो जावे, [और उससे] (मूत्रम्) मूत्र (आमयत्) पीड़ा देने वाला (भवतु) हो जावे । (सर्वेषाम्) सब (यक्ष्माणाम्) क्षय रोगो के (विषम्) विष को (त्वत्) तुझ से (अहम्) मैंने (नि) निकालकर (अवोचम्) बता दिया है ॥ १० ॥

बहिर्बिलं निर्द्रवतु काहाबाहं तवोदरात् ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥११॥

पदार्थ—(काहाबाहम्) खांसी लाने वाला (बिलम्) बिल [फूटन रोग] (तव उदरात्) तेरे पेट से (बहि) बाहिर (नि द्रवतु) निकल जावे । (सर्वेषाम् यक्ष्माणाम्) सब क्षय रोगो के (विषम्) विष को (त्वत्) तुझ से (अहम्) मैंने (नि.) निकालकर (अवोचम्) बता दिया है ॥ ११ ॥

उदरात् ते क्लोम्नो नाभ्या हृदयादधि ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥१२॥

पदार्थ—(ते) तेरे (उदरात्) उदर से, (क्लोम्नः) फेफड़े से, (नाभ्या) नाभि से और (हृदयात् अधि) हृदय से भी (सर्वेषाम्) सब (यक्ष्माणाम्) क्षय रोगो के (विषम्) विष को (त्वत्) तुझ से (अहम्) मैंने (नि) निकाल कर (अवोचम्) बता दिया है ॥ १२ ॥

याः सीमानं विरुजन्ति मूर्धानं प्रत्यर्षणीः ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१३॥

पदार्थ—(याः) जो (अर्षणी) दौड़ने वाली [महापीड़ायें] (मूर्धानम् प्रति) मस्तक की ओर [चलकर] (सीमानम्) चांद [खोपड़ी]को (विरुजन्ति) फोड़ डालती हैं । वे (अहिंसन्ती) न सताती हुई, (अनामया) रोगरहित होकर (बहि) बाहिर (नि द्रवन्तु) निकल जावें, और (बिलम्) बिल [फूटन रोग भी निकल जावे] ॥ १३ ॥

या हृदयमुपर्षन्त्यनुतन्वन्ति कीकसाः ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१४॥

पदार्थ—(या) जो [महापीड़ायें] (हृदयम्) हृदय मे (उपर्षन्ति) घुस जाती हैं और (कीकसा) हंसली की हड्डियो मे (अनुतन्वन्ति) फैलती जाती हैं । वे (अहिंसन्ती) न सताती हुई (अनामया) रोगरहित होकर (बहिः) बाहिर (नि द्रवन्तु) निकल जावें, और (बिलम्) बिल [फूटन रोग भी निकल जावे] ॥ १४ ॥

याः पार्श्वे उपर्षन्त्यनुनिक्षन्ति पृष्टीः ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१५॥

पदार्थ—(या) जो [महापीड़ायें] (पार्श्वे) दोनों कांखो मे (उपर्षन्ति) घुस जाती हैं और (पृष्टी) पसलियों का (अनुनिक्षन्ति) चूमा डालती हैं । वे (अहिंसन्ती) न सताती हुई (अनामया) रोगरहित होकर (बहि) बाहिर (नि द्रवन्तु) निकल जावें, और (बिलम्) बिल [फूटन रोग भी निकल जावे] ॥ १५ ॥

यास्तिरश्चीरुपर्षन्त्यर्षणीर्वक्षणासु ते ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१६॥

पदार्थ—(या) जो (अर्षणी) महापीड़ायें (तिरश्ची) तिरछी होकर (ते) तेरी (वक्षणासु) छाती के अवयवो म (उपर्षन्ति) घुस जाती हैं । वे (अहिंसन्ती.) न सताती हुई (अनामया) रोगरहित होकर (बहि) बाहिर (नि द्रवन्तु) निकल जावें, और (बिलम्) बिल [फूटन रोग भी निकल जावे] ॥ १६ ॥

या गुदा अनुसर्पन्त्यान्त्राणि मोहयन्ति च ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१७॥

पदार्थ—(या) जो [महापीड़ायें] (गुदा) गुदा की नाड़ियों में (अनुसर्पन्ति) रेंगती जाती हैं (च) और (आन्त्राणि) आंतो को (मोहयन्ति) गड़बड़ कर देती हैं । वे (अहिंसन्ती) न सताती हुई (अनामया:) रोगरहित होकर (बहि) बाहिर (नि. द्रवन्तु) निकल जावें, और (बिलम्) बिल [फूटन रोग भी निकल जावे] ॥ १७ ॥

या मज्ज्ञो निर्धयन्ति परूंषि विरुजन्ति च ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१८॥

पदार्थ—(याः) जो [महापीड़ाएँ] (मज्ज्ञः) मज्जाओं [हड्डी की मींगों] को (निर्धयन्ति) चूस लेती हैं (च) और (पर्वाणि) जोड़ों को (विरुजन्ति) फोड़ डालती हैं। वे (अहिंसन्तीः) न सताती हुईं, (अनामयाः) रोगरहित होकर (बहिः) बाहिर (निः द्रवन्तु) निकल जावें, और (विलम्) बिल [फूटन रोग भी निकल जावें] ॥ १८ ॥

ये अङ्गानि मदयन्ति यक्ष्मासो रोपणास्तव ।

यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥१९॥

पदार्थ—(ये) जो (रोपणाः) व्याकुल करने वाले (यक्ष्मासः) क्षयरोग (तव) तेरे (अङ्गानि) अङ्गों को (मदयन्ति) उन्मत्त कर देते हैं। (सर्वेषाम्) [उन] सब (यक्ष्माणाम्) क्षय रोगों के (विषम्) विष को (त्वत्) तुझ से (अहम्) मैंने (निः) निकालकर (अवोचम्) बता दिया है ॥ १९ ॥

विसल्पस्य विद्रधस्य वातीकारस्य वालजेः ।

यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥२०॥

पदार्थ—(विसल्पस्य) [विसर्प रोग, हड़फूटन] के, (विद्रधस्य) हृदय के फोड़े के, (वातीकारस्य) गठिया रोग के, (वा) और (अलजेः) अलजि [नेत्र रोग] के। (सर्वेषाम्) [इन] सब (यक्ष्माणाम्) क्षय रोगों के (विषम्) विष को (त्वत्) तुझ से (अहम्) मैंने (निः) निकालकर (अवोचम्) बता दिया है ॥ २० ॥

पादाभ्यां ते जानुभ्यां श्रोणिभ्यां परि भंससः ।

अनूकादर्षणीरुष्णिहाभ्यः शीर्ष्णो रोगमनीनशम् ॥२१॥

पदार्थ—(ते) तेरे (पादाभ्याम्) दोनों पैरों से, (जानुभ्याम्) दोनों जानुओं से, (श्रोणिभ्याम्) दोनों कूल्हों से और (भंससः परि) गुह्य स्थान के चारों ओर से, (अनूकात्) रीढ़ से और (उष्णिहाभ्यः) गुद्दी की नाड़ियों से (अर्षणीः) महापीड़ाओं को और (शीर्ष्णः) शिर के (रोगम्) रोग को (अनीनशम्) मैंने नाश कर दिया है ॥ २१ ॥

सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः । उद्यन्नादित्य

रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशोऽङ्गभेदमशीशमः ॥२२॥

पदार्थ—[हे रोगी !] (ते) तेरे (शीर्ष्णः) शिर के (कपालानि) कपाल की हड्डियाँ (सम्) स्वस्थ [होवें], (च) और (हृदयस्य) हृदय की (यः) जो (विधुः) धड़क [है वह भी ठीक होवे] (आदित्य) हे सूर्य [के समान तेजस्वी वैद्य !] (उद्यन्) उदय होते हुए तू ने (रश्मिभिः) [जैसे सूर्य ने अपनी] किरणों से (शीर्ष्णः) शिर के (रोगम्) रोग को (अनीनशः) नाश कर दिया है, और (अङ्गभेदम्) अङ्गों की फूटन को (अशीशमः) तू ने शान्त कर दिया है ॥ २२ ॥

卐 इति चतुर्थोऽनुवाकः 卐

卐

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ॥९॥ 卐

१—२२ ब्रह्मा । वामः, अध्यात्मं, आदित्य. । त्रिष्टुप्, १२, १४, १६, १८ जगती ।

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।

तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥१॥

पदार्थ—(अस्य) इस [जगत्] के (वामस्य) प्रशंसनीय, (पलितस्य) पालनकर्ता, (होतुः) तृप्ति करने वाले (तस्य) उस [सूर्य] का (मध्यमः) मध्यवर्ती (भ्राता) भ्राता [भाई के समान हितकारी] (अश्नः) [व्यापक] बिजुली (अस्ति) है। (अस्य) इस [सूर्य] का (तृतीयः) तीसरा (भ्राता) भ्राता (घृतपृष्ठः) घृतों [प्रकाश करने वाले घी, काष्ठ आदि] से स्पर्श किया हुआ [पार्थिव अग्नि है], (अत्र) इस [सूर्य] में (सप्तपुत्रम्) सात [इन्द्रियों-त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन, और बुद्धि] को शुद्ध करने वाले (विश्पतिम्) प्रजाओं के पालनकर्ता [जगदीश्वर] को (अपश्यम्) मैं ने देखा है ॥ १ ॥

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।

त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥२॥

पदार्थ—(सप्त) सात [इन्द्रियां त्वचा आदि] (एकचक्रम्) एक चक्रवाले [अकेले पहिये के समान काम करने वाले जीवात्मा से युक्त] (रथम्) रथ [वेगशील वा रथ के समान शरीर] को (युञ्जन्ति) जोड़ते हैं, (एकः) अकेला (सप्तनामा) सात [त्वचा आदि इन्द्रियों] से झुकने वाला [प्रवृत्ति करने वाला] (अश्वः) अश्व [अश्वरूप व्यापक जीवात्मा] (त्रिनाभि) [सत्त्व, रज और तमोगुण रूप] तीन बन्धन वाले (अजरम्) चलने वाले [वा जीर्णता-रहित] (अनर्वम्) न टूटे हुए (चक्रम्) चक्र [चक्र के समान काम करने वाले अपने जीवात्मा] को [उस परमात्मा में] (वहति) ले जाता है (यत्र) जिस [परमात्मा] में (इमा) यह (विश्वा) सब (भुवना) लोक (अधि) यथावत् (तस्थुः) ठहरे हैं ॥ २ ॥

इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।

सप्त स्वसारो अभि सं नवन्त यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥३॥

पदार्थ—(ये) जो (सप्त) सात [इन्द्रियां त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] (इमम्) इस (रथम्) रथ [वेगशील वा रथसमान शरीर] में (अधि तस्थुः) ठहरे हैं, [वेही] (सप्त) सात (अश्वाः) अश्व [व्यापनशील वा घोड़ों के समान त्वचा, नेत्र आदि] [उस] (सप्तचक्रम्) सात चक्र वाले [चक्रसमान काम करने वाले त्वचा, नेत्र आदि से युक्त रथ अर्थात् शरीर] को (वहन्ति) ले चलते हैं। [वही] (सप्त) सात (स्वसारः) अच्छे प्रकार चलने वाली, [वा शरीर को चलाने वाली वा बहिनों के समान हितकारी त्वचा, नेत्र आदि] (अभि) सब ओर से [वहां] (सम् नवन्त = नवन्ते) मिलती हैं (यत्र) जहां [हृदयाकाश में] (गवाम्) इन्द्रियों के (सप्त) सात (नाम - नामानि) झुकाव [स्पर्श, रूप, शब्द, रस, गन्ध, मनन और ज्ञान, सात आकर्षण] (निहिता) धरे गये हैं ॥ ३ ॥

को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ।

भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित्को विद्वांसमुप गात्प्रष्टुमेतत् ॥४॥

पदार्थ—(कः) किस ने (प्रथमम्) पहिले ही पहिले (जायमानम्) उत्पन्न होते हुए (अस्थन्वन्तम्) हड्डियों वाले [देह] को (ददर्श) देखा था, (यत्) जिस [देह] को (अनस्था) बिना हड्डियों वाला [बिना शरीर वाला जीवात्मा अथवा बिना शरीर वाली प्रकृति] (बिभर्ति) धारण करती है। (क्वस्वित्) कहां पर ही (भूम्याः) भूमि [संसार] का (असुः) प्राण, (असृक्) रक्त और (आत्मा) जीवात्मा [था], (कः) कौन सा पुरुष (एतत्) यह (प्रष्टुम्) पूछने को (विद्वांसम्) विद्वान् के (उप गात्) समीप जावे ॥४॥

इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः ।

शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥५॥

पदार्थ—(अङ्ग) हे प्यारे ! (इह) इस [ब्रह्म विषय] में (ब्रवीतु) वह बोले, (यः) जो [पुरुष] (अस्य) इस (वामस्य) मनोहर (वेः) चलने वाले [वा पक्षी रूप सूर्य] के (निहितम्) ठहराये हुए (पदम्) मार्ग को (ईम्) सब प्रकार (वेद) जानता है। (गावः) किरणें (अस्य) इस [सूर्य] के (शीर्ष्णः) मस्तक से (क्षीरम्) जल को (दुह्रते) दुहती [देती] हैं, [जिन] (उदकम्) जल को (वव्रिम्) रूप [सूर्य के प्रकाश] को (वसानाः) ओढ़ती हुई [उन किरणों] ने (पदा) [अपने] पैर [नीचे भाग] से (अपुः) पिया था ॥५॥

पाकः पृच्छामि मनसाविजानन्देवानामेना निहिता पदानि ।

वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून्वि तत्निरे कवय ओतवा उ ॥६॥

पदार्थ—(अविजानन्) अविज्ञानी (पाकः) रक्षा के योग्य [बालक] मैं (देवानाम्) विद्वानों के (मनसा) मनन के साथ (निहिता) रक्खे हुए (एना) इन (पदानि) पदों [पद चिह्नों] को (पृच्छामि) पूछता हूँ। (कवयः) बुद्धिमानों ने (बष्कये) चलने योग्य (वत्से) निवास स्थान [संसार] के बीच (सप्त) [अपने] सात (तन्तून्) तन्तुओं [फैले हुए तन्तु रूप इन्द्रियों, त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] को (अधि) अधिक-अधिक (ओतवै) बुनने के लिये (उ) ही (वि) विविध प्रकार (तत्निरे) फैलाया था ॥६॥

अचिकित्वांश्चिकितुषश्चिदत्र कवीन्पृच्छामि विद्मनो न विद्वान् ।

वि यस्तस्तम्भ षडिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥७॥

पदार्थ—(अचिकित्वान्) अज्ञानी मैं (चिकितुषः) ज्ञानवान् (कवीन्) बुद्धिमानों को (चित्) ही (अत्र) इस [ब्रह्म विषय] में (पृच्छामि) पूछता हूँ, (विद्वान्) विद्वान् (विद्मनः) विद्वानों को (न) जैसे [पूछता है] "(यः) जिस [परमेश्वर] ने (इमा) इन (षट्) छह [पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और ऊपर, नीचे] (रजांसि) लोकों को (वि) अनेक प्रकार (तस्तम्भ) थांभा था, (अजस्य) [उस] जन्मरहित [परमेश्वर] के (रूपे) स्वरूप में (किम् स्वित्) कौन सा (अपि) निश्चय करके (एकम्) एक [सर्वव्यापक] ब्रह्म था"।

अथवा "जिस सूर्य ने इन छह लोकों को थांभा था, (अजस्य) [उस] चलने वाले [सूर्य] के (रूपे) रूप [मण्डल] के भीतर कौन सा निश्चय करके एक [सर्वव्यापक ब्रह्म था]" ॥७॥

माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे ।

सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥८॥

पदार्थ—(माता) निर्मात्री [पृथिवी] ने (ऋते) जल में [वर्तमान] (पितरम्) रक्षक [सूर्य] को (आ) मर्यादापूर्वक (बभाज) पृथक् किया, (हि) क्योंकि वह [पृथिवी] (अग्रे) पहिले [ईश्वरीय] (धीती) आधार और (मनसा) विज्ञान के साथ [सूर्य से] (सम् जग्मे) मिली हुई थी । [फिर] (सा) वह [पृथिवी, सूर्य] (बीभत्सुः) बन्धन की इच्छा करने वाली (गर्भरसा) रस [जलादि, उत्पादन सामर्थ्य] को गर्भ में रखने वाली और (निविद्धा) नियम अनुसार ताड़ी गई [दूर हटाई गई थी] [इसी प्रकार] (नमस्वन्तः) झुकाव रखने वाले [सूर्य का आकर्षण रखने वाले दूसरे लोक] (इत्) भी (उपवाकम्) वाक्य अवस्था [पिण्ड बनने से नाम, स्थान आदि] को (ईयुः) प्राप्त हुए ॥८॥

युक्ता मातासीद् धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद् गर्भो वृजनीष्वन्तः ।

अमीमेद् वत्सो अनु गामपश्यद् विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥९॥

पदार्थ—(माता) निर्माण करने वाली [पृथिवी] (दक्षिणायाः) [अपनी] शीघ्र गति के (धुरि) कष्ट में (युक्ता) युक्त (आसीत्) हुई, (गर्भः) गर्भ [के समान सूर्य] (वृजनीषु अन्तः) रोकने की शक्तियों [आकर्षणों] के भीतर (अतिष्ठत्) स्थिर हुआ । (वत्सः) निवासदाता [सूर्य] ने (विश्वरूप्यम्) सब रूपों [श्वेत, नील, पीत आदि सात वर्णों] में रहने वाली (गाम्) किरण को (त्रिषु) तीनों [ऊंचे, नीचे और मध्य] (योजनेषु) लोकों में (अनु) अनुकूलता से (अमीमेत्) फैलाया और [उन लोकों को] (अपश्यत्) बांधा [आकर्षित किया] ॥९॥

तिस्रो मातॄस्त्रीन् पितॄन् बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्त ।

मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदो वाचमविश्वविन्नाम् ॥१०॥

पदार्थ—(एक) एक [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तिस्रः) तीन [सत्त्व, रज और तमोगुण रूप] (मातॄः) निर्माणशक्तियों और (त्रीन्) तीन [ऊंचे, नीचे और मध्य, अथवा भूत, भविष्यत् और वर्तमान] (पितॄन्) पालन करने वाले [लोकों वा कालों] को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (ऊर्ध्वः) ऊपर (तस्थौ) स्थित हुआ, (ईम्) इस [परमेश्वर] को वे [ऊपर कहे हुए] (न अव ग्लापयन्त = ग्लापयन्ति) कभी नहीं ग्लानि पहुँचाते हैं । (विश्वविदः) जगत् के जानने वाले लोग (अमुष्य) उस (दिवः) प्रकाशमान [सूर्य] के (पृष्ठे) पीठ [पीठ-समान सहारा देने वाले ब्रह्म] के विषय में (अविश्वविन्नाम्) सब को न मिलने वाली (वाचम्) वाणी को (मन्त्रयन्ते) मनन करते हैं ॥१०॥

पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने यस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा ।

तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न छिद्यते सनाभिः ॥११॥

पदार्थ—(पञ्चारे) [पृथिवी आदि पांच तत्त्व रूप] पांच अरा वाले (परिवर्तमाने) सब ओर घूमते हुए (यस्मिन्) जिस (चक्रे) पहिये पर [पहिये समान जगत् में] (विश्वा भुवनानि) सब लोक (आतस्थुः) ठहरे हुए हैं । (तस्य) उस [चक्ररूप जगत्] का (भूरिभारः) बड़े बोझ वाला (सनाभिः) नाभि में लगा हुआ (अक्षः) धुरा [धुरारूप परमेश्वर] (सनात् एव) सदा से ही (न तप्यते) न तो तपता है और (न छिद्यते) न टूटता है ॥११॥

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।

अथेमे अन्य उपरे विचक्षणे सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितम् ॥१२॥

पदार्थ—(पञ्चपादम्) पांच [पृथिवी आदि पांच तत्त्वों] में गति वाले, (पितरम्) पालन करने वाले, (द्वादशाकृतिम्) बारह [पांच ज्ञानेन्द्रिय कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका और पांच कर्मेन्द्रिय वाक, हाथ, पांव, पायु और उपस्थ और दो मन और बुद्धि] का आकार देने वाले (पुरीषिणम्) पूर्तिवाले [परमेश्वर] को (दिवः) प्रत्येक व्यवहार की (परे) परम (अर्धे) ऋद्धि [वृद्धि] के बीच (आहुः) वे [ऋषि लोग] बताते हैं । (अथ) और (इमे) यह (अन्ये) दूसरे [विवेकी] (उपरे) उपरति [निवृत्ति, विषयों से वैराग्य] वाले, (सप्तचक्रे) सात [दो कान, दो नथने, दो आंखें और एक मुख] के द्वारा तृप्त होने वाले, (षडरे) छह [पूर्वादि चार ऊपर और नीचे की दिशाओं] में गति वाले (विचक्षणे) विविध देखने वाले [पंडित योगी] के भीतर [परमात्मा को] (अर्पितम्) जड़ा हुआ (आहुः) बताते हैं ॥१२॥

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य ।

आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥१३॥

पदार्थ—(ऋतस्य) सत्य [सत्यस्वरूप ब्रह्म] की (जराय) जरा [पुरानापन] करने के लिये (द्याम् परि) आकाश के सब ओर वर्तमान (द्वादशारम्) बारह [महीने रूप] अरे वाला (तत्) वह (चक्रम्) चक्र [संवत्सर अर्थात् काल] (नहि) नहीं (वर्वर्ति) कतरा-कतरा कर घूमता है । (अग्ने) हे विद्वान् ! (अत्र) इस [संवत्सर] में (सप्त शतानि) सात सौ (च) और (विंशतिः) बीस (मिथुनासः) जोड़े-जोड़े (पुत्राः) पुत्र [संवत्सर के पुत्र रूप दिन और रात के जोड़] (आ तस्थुः) भले प्रकार खड़े हुए हैं ॥१३॥

सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।

सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं यस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥१४॥

पदार्थ—[उस ब्रह्म में] (सनेमि) एक-सी पुट्ठी वाला [पहिये का बाहिरी भाग वा चलाने का बल एक सा रखनेवाला], (अजरम्) शीघ्रगामी (चक्रम्) चक्र [चक्र समान संवत्सर वा काल] (वि) खुला हुआ (ववृते = वर्तते) घूमता है [उसी ब्रह्म में] (उत्तानायाम्) उत्तमता से फैली हुई [सृष्टि] के भीतर (दश) दस (युक्ताः) जुड़ी हुई [दिशायें] (वहन्ति) बहती हैं । [और उसी ब्रह्म में] (सूर्यस्य) सूर्य का (चक्षुः) नेत्र (रजसा) अन्तरिक्ष के साथ (आवृतम्) फैला हुआ (एति) चलता है, (यस्मिन्) जिस [ब्रह्म] के भीतर (विश्वा भुवनानि) सब लोक (आतस्थुः) यथावत् ठहरे हैं ॥१४॥

स्त्रियः सतीस्तां उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः ।

कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् स पितुष्पितासत् ॥१५॥

पदार्थ—(तान् उ) उन ही [जीवात्माओं] को (पुंसः) पुरुष और (स्त्रियः सतीः) स्त्रियां होते हुए (मे) मुझसे (आहुः) वे [तत्त्वदर्शी] कहते हैं (अक्षण्वान्) आंखों वाला [यह बात] (पश्यत् - पश्यति) देखता है, (अन्धः) अन्धा (न) नहीं (वि चेतत्—चेतति) जानता है । (यः) जो (पुत्रः) पुत्र (कविः) बुद्धिमान् है, (सः) उस ने (ईम्) इस [अर्थ वा जीवात्मा को] (आ) भले प्रकार (चिकेत) जान लिया है, (यः) जो [पुरुष] (ता तानि) उन तत्त्वों] को (विजानात्) जान लेता है, (सः) वह (पितुः) पिता का (पिता) पिता [उपदेशक] (असत्) होता है ॥ १५ ॥

साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षडिद्यमा ऋषयो देवजा इति ।

तेषामिष्टानि विहितानि धामश स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥१६॥

पदार्थ—(साकंजानाम्) एक साथ उत्पन्न हुओं में से (सप्तथम्) सातवें [जीवात्मा] को (एकजम्) अकेला उत्पन्न हुआ (आहुः) वे [तत्त्वदर्शी] बताते हैं, [और कि] (षट्) छह [कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका पांच ज्ञानेन्द्रिय और मन] (इत्) ही (यमाः) नियम में चलाने वाले (ऋषयः) [अपने विषयों को देखने वाली] इन्द्रिय (देवजाः) देव [गतिशील जीवात्मा] के साथ उत्पन्न होने वाले हैं, (इति) यह [वे बताते हैं] । (तेषाम्) उन [इन्द्रियों] के (विहितानि) विहित [ईश्वर के ठहराये] (विकृतानि) विविध प्रकार वाले (इष्टानि) इष्ट कर्म (स्थात्रे) अधिष्ठाता [जीवात्मा] के लिये (धामशः) स्थान स्थान में और (रूपशः) प्रत्येक रूप में (रेजन्ते) चमकते हैं ॥ १६ ॥

अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् । सा

कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन् ॥१७॥

पदार्थ—(वत्सम्) [निवास स्थान] देह को (बिभ्रती) धारण करती हुई (गौः) गौ [गतिशील जीवरूप शक्ति] (परेण) ऊंचे (पदा) पद [अधिकार वा मार्ग] से (अवः) नीचे को और (एना) इस (अवरेण) नीचे [पद] से (परः) ऊपर को (उत् अस्थात्) उठा है । (सा) वह (जीवरूप शक्ति] (कद्रीची) किस प्रकार चलनी हुई, (कं स्वित्) कौन से (अर्धम्) ऋद्धि वाले [अर्थात् परमेश्वर] को (परा) पराक्रम से (अगात्) पहुँची है, (क्व स्वित्) कहां पर (सूते) उत्पन्न होता है, (अस्मिन्) इस [देहधारी] (यूथे) समूह में तो (नहि) नहीं [उत्पन्न होती] ॥ १७ ॥

अवः परेण पितरं यो अस्य वेदावः परेण पर एनावरेण ।

कवीयमानः क इह प्र वोचद् देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥१८॥

पदार्थ—(यः) जो [पुरुष] (एना) इस (अवरेण) नीचे [मार्ग] से (परः) ऊपर [वर्तमान] (अस्य) इस [देह] के (पितरम्) पालक [आत्मा] को (परेण) ऊंचे [मार्ग] से (अवः) नीचे, (परेण) ऊंचे [मार्ग] से (अवः) नीचे (वेद) जानता है । (कवीयमानः) बुद्धिमान् का सा आचरण करने वाला (कः) कौन [पुरुष] (इह) इस [विषय] में (प्र वोचत्) बोले ? और (कुतः) कहां से [उस का] (देवम्) दिव्य गुण वाला (मनः) मन [मनन सामर्थ्य] (अधि) अधिकारपूर्वक (प्रजातम्) अच्छे प्रकार उत्पन्न [होवे ?] ॥ १८ ॥

ये अर्वाञ्चस्तां उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्तां उ अर्वाच आहुः ।

इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥१९॥

पदार्थ—[इस चक्ररूप संसार में] (ये) जो [लोक] (अर्वाञ्चः) नीचे जाने वाले हैं, (तान् उ) उन्हीं को (पराचः) ऊपर जाने वाले (आहुः) कहते हैं, और (ये) जो (पराञ्चः) ऊपर जाने वाले हैं (तान् उ) उन्हीं को

(**स्वर्विदः**) नीचे जाने वाले (**आहुः**) कहते हैं। (**इन्द्र**) हे परमेश्वर ! (**च**) और (**सोम**) हे जीवात्मा ! (**या**) जिन [व्रतों] को (**चक्रथुः**) तुम दोनों ने बनाया था, (**तानि**) वे [व्रत] (**रजसः**) संसार को (**वहन्ति**) ले चलते हैं (**न**) जैसे (**धुरा**) धुर [जूए] से (**युक्ता**) जुते हुए [घोड़े आदि, रथ को ले चलते हैं] ॥ १९ ॥

द्वा सु॒प॒र्णा स॒युजा॒ सखा॑या समा॒नं वृ॒क्षं परि॑ षस्वजाते ।

तयो॑र॒न्यः पिप्प॑लं स्वा॒द्वत्त्यन॑श्नन्न॒न्यो अ॒भि चा॑कशीति ॥२०॥

पदार्थ—(**द्वा**) दोनों [ब्रह्म और जीव] (**सुपर्णा**) सुन्दर पालन वा पूर्ति वाले [अथवा सुन्दर पक्षों वाले पक्षी रूप], (**सयुजा**) एक साथ मिले हुए और (**सखाया**) [समान ख्याति वाले] मित्र होकर (**समानम्**) एक ही (**वृक्षम्**) स्वीकरणीय [कार्य कारण रूप वा पेड़ रूप संसार] में (**परि**) सब प्रकार (**सस्वजाते**) चिपटे रहते हैं। (**तयोः**) उन दोनों में से (**अन्यः**) एक [जीव] (**स्वादु**) चखने योग्य (**पिप्पलम्**) [पालन वा पूर्ति करने वाले] फल को (**अत्ति**) खाता है, (**अनश्नन्**) न खाता हुआ (**अन्यः**) दूसरा [परमात्मा] (**अभि**) सब ओर [सृष्टि और प्रलय में] (**चाकशीति**) चमकता रहता है ॥ २० ॥

यस्मि॑न् वृ॒क्षे म॒ध्वदः॑ सुप॒र्णा नि॑वि॒शन्ते॒ सुव॑ते॒ चाधि॒ विश्वे॑ ।

तस्य॒ यदा॒हुः पिप्प॑लं स्वा॒द्वग्रे॒ तन्नोन्न॑श॒द्यः पि॒तरं॒ न वेद॑ ॥२१॥

पदार्थ—(**यस्मिन्**) जिस (**वृक्षे**) स्वीकरणीय [परमात्मा] में (**मध्वदः**) मधु [वेद ज्ञान] चखने वाले (**विश्वे**) सब (**सुपर्णाः**) सुन्दर पालने वाले [प्राण वा इन्द्रियाँ] (**निविशन्ते**) भीतर पैठ जाते हैं (**च**) और (**अधि**) ऐश्वर्य के साथ (**सुवते**) उत्पन्न [उदय] होते हैं। (**तस्य**) उस [परमात्मा] के (**यत्**) जिस (**पिप्पलम्**) पालन करने वाले [मोक्षपद] को (**अग्रे**) सब से आगे [बढ़िया] (**स्वादु**) स्वादु [चखने योग्य] (**आहुः**) वे [तत्वज्ञानी] बताते हैं, (**तत्**) उस [मोक्षपद] को वह मनुष्य (**न उत्**) कभी नहीं (**नशत्**) पाता, (**यः**) जो (**पितरम्**) पिता [पालनकर्ता परमेश्वर] को (**न**) नहीं (**वेद**) जानता है ॥ २१ ॥

यत्रा॑ सुप॒र्णा अ॒मृत॑स्य भ॒क्षमनि॑मेषं वि॒दथा॑भि॒स्वर॑न्ति ।

ए॒ना विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य गो॒पाः स मा॒ धीरः॒ पाक॒मत्रा वि॑वेश ॥२२॥

पदार्थ—(**यत्र**) जिस (**विदथा**) ज्ञान के भीतर (**सुपर्णाः**) सुन्दर पालन करने वाले [वा सुन्दर गति वाले, प्राणी] (**अमृतस्य**) अमृतपन [मोक्ष सुख] के (**भक्षम्**) भोग को (**अनिमेषम्**) लगातार (**अभिस्वरन्ति**) सब ओर से पाते हैं। (**एना**) इसी विज्ञान के साथ (**विश्वस्य**) सब (**भुवनस्य**) संसार का (**गोपाः**) रक्षक (**सः**) वह (**धीरः**) धीर [बुद्धिमान् परमेश्वर] (**पाकम्**) पक्के मन वाले (**मा**) मुझ में (**अत्र**) इस [देह] के भीतर (**आ**) यथावत् (**विवेश**) पैठा है ॥ २२ ॥

卐 सूक्तम् १० 卐

१—२८ *ब्रह्मा । गौः, विराट्, अध्यात्मम्, २३ मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप्*, १, ७, १४, १७, १८ *जगती* ; २१ *पञ्चपदातिशक्वरी* , २४ *चतुष्पदा पुरस्कृति-भुरिगतिजगती* , २, २६, २७ *भुरिक्* ।

यद् गा॑य॒त्रे अधि॑ गाय॒त्रमाहि॑तं॒ त्रैष्टु॑भं वा॒ त्रैष्टु॑भान्नि॒रत॑क्षत ।

यद्वा॒ जग॒ज्जग॒त्याहि॑तं प॒दं य इत् तद् वि॒दुस्ते अ॑मृत॒त्वमा॑नशुः ॥१॥

पदार्थ—(**यत्**) क्योंकि (**गायत्रम्**) स्तुति करनेवालों का रक्षक [ब्रह्म] (**गायत्रे**) स्तुतियोग्य गुण में (**अधि**) ऐश्वर्य के साथ (**आहितम्**) स्थापित है, (**वा**) और (**त्रैष्टुभम्**) तीन [सत्त्व रज और तम] के बन्धनवाले [जगत्] को (**त्रैष्टुभात्**) तीन [कर्म, उपासना और ज्ञान] में पूजित [ब्रह्म] से (**निरतक्षत**) उन्होंने [ऋषियों ने] पृथक् किया है। (**वा**) और (**यत्**) क्योंकि (**जगत्**) जानने योग्य (**पदम्**) प्रापणीय [मोक्षपद] (**जगति**) संसार के भीतर (**आहितम्**) स्थापित है, (**ये इत्**) जो ही [पुरुष] (**तत्**) उस [ब्रह्म] को (**विदुः**) जानते हैं (**ते**) उन्होंने (**अमृतत्वम्**) अमरपन (**आनशुः**) पाया है ॥ १ ॥

गा॒य॒त्रेण॒ प्रति॑ मिमीते अ॒र्कम॒र्केण॒ साम॒ त्रैष्टु॑भेन वा॒कम् ।

वा॒केन॑ वा॒कं द्वि॒पदा॒ चतु॑ष्पदा॒क्षरे॑ण मिमते स॒प्त वाणीः॑ ॥२॥

पदार्थ—(**गायत्रेण**) स्तुतियोग्य गुण से वह [योगी] (**अर्कम्**) पूजनीय [परमेश्वर] को (**प्रति**) प्रतीति के साथ (**मिमीते**) बोलता है, (**अर्केण**) पूजनीय ब्रह्म के साथ (**साम**) मोक्षविद्या को, (**त्रैष्टुभेन**) तीन [कर्म उपासना, ज्ञान] से स्तुति किये गये [ब्रह्म] के साथ (**वाकम्**) वेदवाक्य को [बोलता है]। (**सप्त**) सात [दो कान, दो नथने, दो नेत्र और एक मुख] से सम्बन्धवाली [उसी की] (**वाणीः**) वाणियाँ (**द्विपदा**) दोपाये [मनुष्य आदि] और (**चतुष्पदा**) चौपाये [गौ आदि प्राणी] के साथ [वर्तमान] (**वाकम्**) वेद वाणी के स्वामी [परमेश्वर] को (**अक्षरेण**) सर्वव्यापक (**वाकेन**) वेदवाक्य के साथ (**मिमते**) उच्चारती हैं ॥ २ ॥

जग॑ता॒ सिन्धुं॑ दि॒व्य॑स्तभायद् रथंत॒रे सूर्यं॒ पर्य॑पश्यत् ।

गा॒य॒त्रस्य॑ स॒मिध॑स्ति॒स्र आ॑हु॒स्ततो॑ म॒ह्ना प्र रि॑रिचे महि॒त्वा ॥३॥

पदार्थ—उस [प्रजापति] ने (**जगता**) संसार के साथ (**रथन्तरे**) रमणीय पदार्थों के तराने वाले (**दिवि**) आकाश में (**सिन्धुम्**) नदी [जल] और (**सूर्यम्**) सूर्य को (**अस्तभायत्**) थाभा और (परि) सब ओर से (**अपश्यत्**) देखा। (**गायत्रस्य**) स्तुतियोग्य ब्रह्म की (**तिस्रः**) तीनों [भूत, भविष्यत् और वर्तमान सम्बन्धी] (**समिधः**) प्रकाशशक्तियों को (**आहुः**) वे [ब्रह्मज्ञानी] बताते हैं, (**ततः**) उसी से उस [ब्रह्म] ने (**मह्ना**) अपनी महिमा और (**महित्वा**) सामर्थ्य से [सब लोकों को] (**प्र**) अच्छे प्रकार (**रिरिचे**) संयुक्त किया ॥ ३ ॥

उप॑ ह्वये सु॒दुघां॑ धे॒नुमे॒तां सु॒हस्तो॑ गो॒धुगु॒त दो॑हदेनाम् ।

श्रेष्ठं॑ स॒वं स॑वि॒ता सा॑विषन्नो॒ऽभी॑द्धो घ॒र्मस्तदु॒ षु प्र वो॑चत् ॥४॥

पदार्थ—(**सुदुघाम्**) अच्छे प्रकार कामनायें पूरी करनेवाली (**एताम्**) इस (**धेनुम्**) विद्या को (**उप ह्वये**) मैं स्वीकार करता हूँ, (**उत**) वैसे ही (**सुहस्तः**) हस्तक्रिया में चतुर (**गोधुक्**) विद्या को दोहने वाला [विद्वान्] (**एनाम्**) इस [विद्या] का (**दोहत्**) दुहे। (**सविता**) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (**श्रेष्ठम्**) श्रेष्ठ (**सवम्**) ऐश्वर्य को (**नः**) हमारे लिये (**साविषत्**) उत्पन्न करे। (**अभीद्धः**) सब ओर प्रकाशमान (**घर्मः**) प्रतापी परमेश्वर ने (**तत् उ**) उस सब को (**सु**) अच्छे प्रकार (**प्रवोचत्**) उपदेश किया है ॥ ४ ॥

हि॒ङ्कृ॒ण्व॒ती व॑सु॒पत्नी॒ वसू॑नां व॒त्सम्इ॒च्छन्ती॒ मन॑सा॒भ्यागा॑त् ।

दु॒हाम॒श्विभ्यां॒ पयो॑ अ॒घ्न्येयं सा व॑र्धतां मह॒ते सौभ॑गाय ॥५॥

पदार्थ—(**हिङ्कृण्वती**) गति वा वृद्धि करनेवाली (**वसुपत्नी**) धन की रक्षा करनेवाली, (**वसूनाम्**) श्रेष्ठों के बीच (**वत्सम्**) उपदेशक पुरुष का (**इच्छन्ती**) चाहनेवाली [वेदवाणी] (**मनसा**) विज्ञान के साथ (**अभ्यागात्**) सब ओर से प्राप्त हुई है। (**इयम्**) यह (**अघ्न्या**) हिंसा न करनेवाली विद्या (**अश्विभ्याम्**) दोनों चतुर स्त्री-पुरुषों के लिये (**पयः**) विज्ञान को (**दुहाम्**) परिपूर्ण करे, (**सा**) वही [विद्या] (**महते**) अत्यन्त (**सौभगाय**) सुन्दर ऐश्वर्य के लिये (**वर्धताम्**) बढ़े ॥ ५ ॥

गौर॑मीमेद॒भि व॒त्सं मि॒षन्तं॑ मू॒र्धानं॒ हिङ्ङ॑कृणो॒न्मात॒वा उ॑ ।

सृक्वा॑णं घ॒र्मम॒भि वा॑वशा॒ना मिमा॑ति मा॒युं पय॑ते॒ पयो॑भिः ॥६॥

पदार्थ—(**गौः**) ब्रह्मवाणी ने (**मिषन्तम्**) आँखें मींचे हुए (**वत्सम्**) निवासस्थान [संसार] को (**अभि**) सब ओर (**अमीमेत्**) फैलाया और (**मूर्धानम्**) [लोकों से] बन्धन रखनेवाले [मस्तक रूप सूर्य] को (**मातवै**) बनाने के लिये (**उ**) निश्चय करके (**हिङ्**) तृप्ति कर्म (**अकृणोत्**) बनाया। वह [ब्रह्म-वाणी] (**सृक्वाणम्**) सृष्टिकर्ता (**घर्मम्**) प्रकाशमान [परमात्मा] की (**अभि**) सब ओर से (**वावशाना**) अति कामना करती हुई (**मायुम्**) शब्द (**मिमाति**) करती है और (**पयोभिः**) अनेक बलों के साथ (**पयते**) चलती है ॥६॥

अ॒यं स शि॑ङ्क्ते॒ येन॒ गौर॒भीवृ॑ता॒ मिमा॑ति मा॒युं ध्व॒सना॒वधि॑ श्रि॒ता ।

सा चि॒त्तिभि॒र्नि हि च॒कार॒ मर्त्या॑न् वि॒द्युद्भव॑न्ती॒ प्रति॑ व॒व्रिमौ॑हत ॥७॥

पदार्थ—(**अयम्**) यह [समीपस्थ] (**सः**) वही [दूरस्थ परमेश्वर] (**शिङ्क्ते**) गरजता-सा है, (**येन**) जिस [परमेश्वर] द्वारा (**अभिवृता**) सब ओर से घेरी हुई, (**ध्वसनौ**) अपनी परिधि में (**अधि**) ठीक-ठीक (**श्रिता**) ठहरी हुई (**गौः**) भूमि (**मायुम्**) मार्ग को (**मिमाति**) बनाती है। और (**सा**) उस (**भवन्ती**) व्यापक (**विद्युत्**) बिजुली ने (**मर्त्यान्**) मनुष्यों को (**हि**) निश्चय करके (**चित्तिभिः**) चेतनाओं के साथ (**नि**) निरन्तर (**चकार**) किया है और (**वव्रिम्**) प्रत्येक रूप को (**प्रति**) प्रत्यक्ष (**औहत**) विचारयोग्य बनाया है ॥७॥

अ॒न॒च्छ॑ये तु॒रगा॑तु जी॒वमेज॑द् ध्रु॒वं मध्य॒ आ प॒स्त्या॑नाम् ।

जी॒वो मृ॒तस्य॑ चरति स्व॒धाभि॒रम॑र्त्यो॒ मर्त्ये॑ना॒ सयो॑निः ॥८॥

पदार्थ—(**जीवम्**) जीव को (**अनत्**) प्राण देता हुआ और (**एजत्**) चेष्टा कराता हुआ, (**तुरगातु**) शीघ्रगामी, (**ध्रुवम्**) निश्चल [ब्रह्म] (**पस्त्यानाम्**) घरों के (**मध्ये**) मध्य में (**आ**) सब ओर से (**शये**) सोता है [वर्तमान है]। (**मृतस्य**) मरण स्वभाववाले [शरीर] का (**अमर्त्यः**) अमरण स्वभाव-वाला (**जीवः**) जीव [आत्मा] (**मर्त्येन**) मरण धर्मवाले [जगत्] के साथ (**सयोनिः**) एकस्थानी होकर (**स्वधाभिः**) अपनी धारण शक्तियों से (**चरति**) चलता रहता है ॥८॥

वि॒धुं द॑द्रा॒णं सलि॑लस्य पृ॒ष्ठे युवा॑नं॒ सन्तं॑ पलि॒तो ज॑गार ।

दे॒वस्य॑ पश्य॒ काव्यं॑ महि॒त्वाद्या म॒मार॒ स ह्यः सम॑आन ॥९॥

पदार्थ—(सलिलस्य) समुद्र की (पृष्ठे) पीठ पर (सन्तम्) वर्तमान, (विधुम्) काम करने वाले, (दद्राणम्) टेढ़े चलने वाले (युवानम्) बलवान् पुरुष को (पलित) पालनकर्त्ता [परमेश्वर] (जगार) निगल गया। (देवस्य) दिव्य गुण वाले [परमेश्वर] की (काव्यम्) चतुराई को (महित्वा) महत्त्व के साथ (पश्य) देख, (स) वह [प्राणी] (अद्य) आज (ममार) मर गया [जो] (ह्य) कल (समान) जी रहा था ॥९॥

य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।

स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिरा विवेश ॥१०॥

पदार्थ—(य) जिस [परमेश्वर] ने (ईम) इस [प्राणी] को (चकार) बनाया है, (स) वह [प्राणी] (अस्य) इस [परमेश्वर] को [यथावत्] (न) नहीं (वेद) जानता है, (य) जिस [प्राणी] ने (ईम) इस [परमेश्वर] को (ददर्श) देखा है वह [परमेश्वर] (तस्मात्) उस [प्राणी] से (हिरुक्) गुप्त (इत् नु) अवश्य ही है। (मातु) माता के (योना अन्त) गर्भाशय के भीतर (परिवीत) लपेटा हुआ [बालक जैसे] (स) उस (बहुप्रजा) अनेक प्रजाओं वाले [परमेश्वर] ने (निर्ऋति = निर्ऋतिम) भूमि में (आ) सब प्रकार (विवेश) प्रवेश किया है ॥१०॥

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।

स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥११॥

पदार्थ—(गोपाम्) भूमि या वाणी के रक्षक, (अनिपद्यमानम्) न गिरने वाले [अचल], (पथिभि) ज्ञानमार्गों से (आ चरन्तम) समीप प्राप्त होते हुए (च) और (परा) दूर प्राप्त होते हुए (च) भी [परमेश्वर] को (अपश्यम्) मैंने देखा है (स) वह [परमेश्वर] (सध्रीची) साथ मिली हुई [दिशाओं] को और (स) वही (विषूची) नाना प्रकार से वर्तमान [प्रजाओं] को (वसान) ढकता हुआ (भुवनेषु अन्त) लोकों के भीतर (आ) अच्छे प्रकार (वरीवर्ति) निरन्तर वर्तमान है ॥११॥

द्यौर्नः पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्नो माता पृथिवी महीयम् ।

उत्तानयोश्चम्वो३र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥१२॥

पदार्थ—(द्यौ) प्रकाशमान सूर्य (न) हमारा (पिता) पालनेवाला और (जनिता) उत्पन्न करनेवाला है, (अत्र) इस [सूर्य] में (न) हमारी (नाभि) नाभि [प्रकाश या जलरूप उत्पत्ति का मूल] है, (इयम्) यह (मही) बड़ी (पृथिवी) पृथिवी (माता) माता और (बन्धु) बन्धु [के तुल्य] है। (उत्तानयो) उत्तमता से फैले हुए (चम्वो) [दो सेनाओं के समान स्थित] सूर्य और पृथिवी के (अन्त) बीच (योनि.) [जो] घर [अवकाश] है, (अत्र) इस [अवकाश] में (पिता) पालन वाले [सूर्य वा मेघ] ने (दुहितु) [रसों को खींचने वाली] पृथिवी के (गर्भम्) उत्पत्तिसामर्थ्य [जल] को (आ) यथाविधि (अधात्) धारण किया है ॥१२॥

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि वृष्णो अश्वस्य रेतः ।

पृच्छामि विश्वस्य भुवनस्य नाभिं पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥१३॥

पदार्थ—[हे विद्वान !] (त्वा) तुझसे (पृथिव्या) पृथिवी के (परम्) परले (अन्तम्) अन्त को (पृच्छामि) पूछता हूँ, (वृष्ण) पराक्रमी (अश्वस्य) बलवान् पुरुष के (रेत) पराक्रम को (पृच्छामि) पूछता हूँ, (विश्वस्य) सब (भुवनस्य) संसार के (नाभिम्) नाभि [बन्धन कर्ता को] (पृच्छामि) पूछता हूँ, (वाच) वाणी [विद्या] के (परमम्) परम (व्योम) [विविध रक्षा स्थान] अवकाश को (पृच्छामि) पूछता हूँ ॥१३॥

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतः ।

अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिर्ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥१४॥

पदार्थ—(इयम्) यह [प्रत्यक्ष] (वेदि) वेदि [विद्यमानता का बिन्दु वा यज्ञभूमि] (पृथिव्या) पृथिवी का (पर) परला (अन्त) अन्त है, (अयम्) यह [प्रत्यक्ष] (सोम) ऐश्वर्यवान् रस [सोम ओषध वा अन्न आदि का अमृत रस] (वृष्ण) पराक्रमी (अश्वस्य) बलवान् पुरुष का (रेत) वीर्य [पराक्रम] है। (अयम्) यह [प्रत्यक्ष] (यज्ञ) यज्ञ [परमाणुओं का संयोग-वियोग व्यवहार] (विश्वस्य) सब (भुवनस्य) संसार की (नाभि) नाभि [नियम में बाँधने वाली शक्ति] है, (अयम्) यह [प्रत्यक्ष] (ब्रह्मा) ब्रह्मा [चारों वेदों का प्रकाशक परमेश्वर] (वाच·) वाणी [विद्या] का (परमम्) उत्तम (व्योम) [विविध रक्षा स्थान] अवकाश है ॥१४॥

न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि ।

यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्यादिद् वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥१५॥

पदार्थ—(यत्-इव) जो कुछ ही (इदम) यह [कार्यरूप शरीर है, वही] (अस्मि) मैं हूँ, (न वि जानामि) मैं कुछ नहीं जानता, (निण्य) गुप्त और (मनसा) मन से (सन्नद्ध) जकड़ा हुआ मैं (चरामि) विचरता हूँ। (यदा) जब (ऋतस्य) सत्य [स्वरूप परमात्मा] का (प्रथमजा·) प्रथम उत्पन्न [बोध] (मा) मुझको (आगमन्) आया है, (आत इत्) तभी (अस्या.) इस (वाचः) वाणी के (भागम्) सेवनीय परब्रह्म को (अश्नुवे) मैं पाता हूँ ॥१५॥

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः । ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥१६॥

पदार्थ—(स्वधया) अपनी धारणा शक्ति से (गृभीतः) ग्रहण किया हुआ (अमर्त्य) अमरण स्वभाववाला [जीव] (मर्त्येन) मरण स्वभाववाले [शरीर] के साथ (सयोनि) एकस्थानी होकर (अपाङ्) नीचे को जाता हुआ [वा] (प्राङ्) ऊपर को जाता हुआ (एति) चलता है। (ता) वे दोनों (शश्वन्ता) नित्य चलनेवाले, (विषूचीना) सब ओर चलनेवाले और (वियन्ता) दूर-दूर चलने वाले हैं, [उन दोनों में से] (अन्यम् अन्यम्) एक-एक को (नि चिक्यु) [विवेकियों ने] निश्चय करके जाना है [और मूर्खों ने] (न) नहीं (नि चिक्यु) निश्चय किया है ॥१६॥

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।

ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ॥१७॥

पदार्थ—(सप्त) सात (अर्धगर्भा) समृद्ध गर्भ वाले [पूरे उत्पादन सामर्थ्य वाले, महत्तत्व अहङ्कार, पृथिवी जल, तेज, वायु, आकाश के परमाणु] (भुवनस्य) संसार के (रेत) बीज होकर (विष्णो) व्यापक परमात्मा की (प्रदिशा) आज्ञा से (विधर्मणि) विविध धारण सामर्थ्य में (तिष्ठन्ति) ठहरते हैं। (ते ते) वे ही [सातों] (विपश्चित) बुद्धिमान [परमेश्वर] की (धीतिभि) धारण शक्तियों और (मनसा) विचार के साथ (परिभुव) घेरने वाले [शरीरों और लोकों] को (विश्वत) सब ओर से (परि भवन्ति) घेरते हैं ॥१७॥

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः ।

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्ते अमी समासते ॥१८॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिस (अक्षरे) व्यापक [वा अविनाशी] (परमे) सर्वोत्तम (व्योमन्) विविध रक्षक वा आकाशवत व्यापक] ब्रह्म में (ऋच) वेदविद्यायें और (विश्वे) सब (देवा) दिव्य पदार्थ [पृथिवी सूर्य आदि लोक] (अधि) ठीक-ठीक (निषेदु) ठहरे थे। (य) जो [मनुष्य] (तत्) उस [ब्रह्म] को (न वेद) नहीं जानता, वह (ऋचा) वेदविद्या से (किम्) क्या [लाभ] (करिष्यति) करेगा, (ये) जो [पुरुष] (इत्) ही (तत्) उस [ब्रह्म] को (विदु) जानते हैं (ते अमी) वे यही [पुरुष] (सम्) शोभा के साथ (आसते) रहते हैं ॥१८॥

ऋचः पदं मात्रया कल्पयन्तोऽर्धर्चेन चाक्लृपुर्विश्वमेजत् ।

त्रिपाद् ब्रह्म पुरुरूपं वि तष्ठे तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥१९॥

पदार्थ—(ऋच) वेदवाणी से (पदम्) प्रापणीय ब्रह्म को (मात्रया) सूक्ष्मता के साथ (कल्पयन्त) विचारते हुए [ऋषियों] ने (अर्धर्चेन) समृद्ध वेदज्ञान से (विश्वम्) संसार को (एजत्) चेष्टा कराते हुए [ब्रह्म] को (चाक्लृपु.) विचारा। (त्रिपात्) तीन [भूत, भविष्यत् वर्तमान काल वा ऊँच-नीच और मध्यलोक] में गतिवाला, (पुरुरूपम्) बहुत सौन्दर्य वाला (ब्रह्म) ब्रह्म (वि) विविध प्रकार से (तष्ठे) ठहरा था (तेन) उस [ब्रह्म] के साथ (चतस्र) चारों (प्रदिश) बड़ी दिशायें (जीवन्ति) जीवन करती हैं ॥१९॥

सूयवसाद् भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम ।

अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥२०॥

पदार्थ—[हे प्रजा, सब स्त्री-पुरुषो !] (सूयवसात्) सुन्दर अन्न आदि भोगनेवाली और (भगवती) बहुत ऐश्वर्यवाली (हि) ही (भूया·) हो, (अथ) फिर (वयम्) हम लोग (भगवन्त) बड़े ऐश्वर्यवाले (स्याम) होवें। (अघ्न्ये) हे हिंसा न करनेवाली प्रजा ! (विश्वदानीम्) समस्त दानों की क्रिया का (आचरन्ती) आचरण करती हुई तू [हिंसा न करनेवाली गौ के समान] (तृणम्) घास [अल्प मूल्य पदार्थ] को (अद्धि) खा और (शुद्धम्) शुद्ध (उदकम्) जल को (पिब) पी ॥२०॥

गौरिन्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।

अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ॥२१॥

पदार्थ—(सलिलानि) बहुत ज्ञानों [अथवा समुद्र समान अथाह कर्मों] को (तक्षती) करती हुई (गौः) ब्रह्मवाणी ने (इत) ही (मिमाय) शब्द किया है, (सा) वह (एकपदी) एक [ब्रह्म] के साथ व्याप्ति वाली, (द्विपदी) दो [भूत, भविष्यत् में] गति वाली, (चतुष्पदी) चार [धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष] में अधिकार वाली, (अष्टापदी) [छोटाई, हलकाई, प्राप्ति, स्वतन्त्रता, बड़ाई, ईश्वर-

यम, जितेन्द्रियता, और सत्य सङ्कल्प, आठ ऐश्वर्य] आठ पद प्राप्त कराने वाली (नवपदी) नौ [मन बुद्धि सहित दो कान, दो नथने, दो आंखें और एक मुख] से प्राप्तियोग्य, (सहस्राक्षरा) सहस्रों [असंख्यात] पदार्थों में व्याप्ति वाली (बभूवुषी) होकर के (भुवनस्य) संसार की (पंक्तिः) फैलाव शक्ति है। (तस्याः) उस [ब्रह्मवाणी] से (समुद्राः) समुद्र [समुद्ररूप सब लोक] (अधि) अधिक-अधिक (वि) विविध प्रकार से (क्षरन्ति) बहते हैं ॥२१॥

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवीं व्यूदुः ॥२२॥

पदार्थ—(हरयः) रस खींचनेवाली, (सुपर्णाः) अच्छा उड़नेवाली किरणें (अपः) जल को (वसानाः) ओढ़कर (कृष्णम्) खींचनेवाले, (नियानम्) नित्य गमनस्थान अन्तरिक्ष में होकर (दिवम्) प्रकाशमय सूर्यमण्डल को (उत् पतन्ति) चढ़ जाती हैं। (ते) वे (इत्) ही (आत्) फिर (ऋतस्य) जल के (सदनात्) घर [सूर्य] से (आ अववृत्रन्) लौट आती हैं, और उन्होंने (घृतेन) जल से (पृथिवीम्) पृथिवी को (वि) विविध प्रकार से (ऊदुः) सींच दिया है ॥२२॥

अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद् वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्या ऋतं पिपर्त्यनृतं नि पाति ॥२३॥

पदार्थ—(पद्वतीनाम्) प्रशंसित विभागोंवाली क्रियाओं में (प्रथमा) पहिली (अपात्) बिना विभागवाली [सबके लिये एकरस, वेदविद्या] (एति) चली आती है, (मित्रावरुणा) दोनों मित्रवरो ! [अध्यापक और शिष्य] (वाम्) तुम दोनों में (कः) किसने (तत्) उस [ज्ञान] को (आ) भले प्रकार (चिकेत) जाना है। (गर्भः) ग्रहण करने वाला पुरुष (चित्) ही (अस्याः) इस [वेदविद्या] के (भारम्) पोषण गुण को (आ) अच्छे प्रकार (भरति) धारण करता है, (ऋतम्) सत्य व्यवहार को (पिपर्ति) पूर्ण करता है और (अनृतम्) मिथ्या कर्म को (नि) नीचे (पाति) रखता है ॥२३॥

विराड् वाग् विराट् पृथिवी विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः ।
विराण्मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव तस्य भूतं भव्यं वशे
स मे भूतं भव्यं वशे कृणोतु ॥२४॥

पदार्थ—(विराट्) विराट् [विविध ऐश्वर्यवाला परमात्मा] (वाक्) वाक् [विद्यास्वरूप], (विराट्) विराट् (पृथिवी) पृथिवी [पृथिवीसमान फैला हुआ], (विराट्) विराट् (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष [आकाशतुल्य व्यापक], (विराट्) विराट् (प्रजापतिः) प्रजापालक [सूर्यसमान है], (विराट्) विराट [परमेश्वर], (मृत्युः) दुष्टों का मृत्यु और (साध्यानाम्) परोपकार साधने वाले [साधु पुरुषों] का (अधिराजः) राजाधिराज (बभूव) हुआ है, (तस्य) उस [परमेश्वर] के (वशे) वश में (भूतम्) अतीतकाल और (भव्यम्) भविष्यत् काल है (सः) वह (भूतम्) अतीतकाल और (भव्यम्) भविष्यत् काल को (मे) मेरे (वशे) वश में (कृणोतु) करे ॥२४॥

शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण ।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥२५॥

पदार्थ—(शकमयम्) शक्तिवाले (धूमम्) कंपाने वाले [परमेश्वर] को (आरात्) समीप से (एना) इस (विषूवता) व्याप्तिवाले (अवरेण) नीच [जीव] से (परः) परे [उत्तम] (अपश्यम्) मैंने देखा है। (वीराः) वीर लोगों ने [इसी कारण से] (उक्षाणम्) वृद्धि करनेवाले (पृश्निम्) स्पर्श करनेवाले [आत्मा] को (अपचन्त) परिपक्व [दृढ़] किया है, (तानि) वे (धर्माणि) धारणयोग्य [ब्रह्मचर्य आदि धर्म] (प्रथमानि) मुख्य [प्रथम कर्तव्य] (आसन्) थे ॥२५॥

त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम् ।
विश्वमन्यो अभिचष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥२६॥

पदार्थ—(त्रयः) तीन (केशिनः) प्रकाश वाले [अपने गुण जताने वाले, अग्नि, सूर्य और वायु] (ऋतुथा) ऋतु के अनुसार (संवत्सरे) संवत्सर [वर्ष] में (वि) विविध प्रकार (चक्षते) दीखते हैं, (एषाम्) इन में से (एक) एक [अग्नि, ओषधियों को] (वपते) उपजाता है। (अन्यः) दूसरा [सूर्य] (शचीभिः) अपने कर्मों [प्रकाश, वृष्टि आदि] से (विश्वम्) संसार को (अभिचष्टे) देखता रहता है, (एकस्य) एक [वायु] की (ध्राजिः) गति (ददृशे) देखी गई है और (रूपम्) रूप (न) नहीं ॥२६॥

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥२७॥

पदार्थ—(वाक्=वाचः) वाणी के (चत्वारि) चार [परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी रूप] (परिमिता) परिमाण युक्त (पदानि) जानने योग्य पद हैं, (तानि) उनको (ब्राह्मणाः) वे ब्राह्मण [ब्रह्मज्ञानी] (विदुः) जानते हैं (ये) जो (मनीषिणः) मननशील हैं। (गुहा) गुहा [गुप्त स्थान] में (निहिता) रक्खे हुए (त्रीणि) तीन [परा, पश्यन्ती और मध्यमा रूप पद] (न) नहीं (इङ्गयन्ति) चलते [निकलते] हैं, (मनुष्याः) मनुष्य [साधारण लोग] (वाचः) वाणी के (तुरीयम्) चौथे [वैखरी रूप पद] को (वदन्ति) बोलते हैं ॥२७॥

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥२८॥

पदार्थ—(अग्निम्) अग्नि [सर्वव्यापक परमेश्वर] को (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला] (मित्रम्) मित्र, (वरुणम्) वरुण [श्रेष्ठ] (आहुः) वे [तत्त्वज्ञानी] कहते हैं, (अथो) और (सः) वह (दिव्यः) प्रकाशमय (सुपर्णः) सुन्दर पालन सामर्थ्यवाला (गरुत्मान्) स्तुति वाला [गुरु आत्मा, महान् आत्मा] है (विप्राः) बुद्धिमान् लोग (एकम्) एक (सत्) सत्ता वाले [ब्रह्म] को (बहुधा) बहुत प्रकारों से (वदन्ति) कहते हैं, (अग्निम्) उसी अग्नि [सर्वव्यापक परमात्मा] को (यमम्) नियन्ता और (मातरिश्वानम्) आकाश में श्वास लेता हुआ [अर्थात् आकाश में व्यापक] (आहुः) वे बताते हैं ॥२८॥

卐 इति पञ्चमोऽनुवाकः 卐

॥ नवमं काण्ड समाप्तम् ॥

卐

अथ दशमं काण्डम्

प्रथमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् १ 卐

१—३२ प्रत्यङ्गिरस । कृत्यादूषणम् । अनुष्टुप्, १ महाबृहती, २ विराड्नाम गायत्री, ९ पथ्यापङ्क्ति, १२ पङ्क्तिः, १३ उरोबृहती, १५ चतुष्पदा विराड् जगती, १७, २०, २४ प्रस्तारपङ्क्तिः, (२० विराड्), १६, १८ त्रिष्टुप्, १९ चतुष्पदाजगती, २२ एकावसाना द्विपदार्ची उष्णिक्, २३ त्रिपदा भुरिग्विषमा गायत्री, २८ त्रिपदा गायत्री, २९ मध्येज्योतिष्मती जगती, ३२ द्व्यनुष्टुब्गर्भा पञ्चपदातिजगती ।

यां कल्पयन्ति वहतौ वधूमिव विश्वरूपां हस्तकृतां
चिकित्सवः । आराद्धेत्वप नुदाम एनाम् ॥१॥

पदार्थ—(याम्) जिस (विश्वरूपाम्) अनेक रूप वाली, (हस्तकृताम्) हाथों से की हुई [हिंसा क्रिया] को (चिकित्सवः) संशय करनेवाले लोग (कल्पयन्ति) बनाते हैं, (इव) जैसे (वधूम्) वधू को (वहतौ) विवाह में। (सा) वह (आरात्) दूर (एतु) चली जावे (एनाम्) इसको (अपनुदामः) हम हटाते हैं ॥ १ ॥

शीर्षण्वती नस्वती कर्णिनी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा ।
साराद्धेत्वप नुदाम एनाम् ॥२॥

पदार्थ—(शीर्षण्वती) सिर सम्बन्धी, (नस्वती) नाक सम्बन्धी (कर्णिनी) कान सम्बन्धी [जो हिंसाक्रिया] (कृत्याकृता) हिंसा करनेवाले पुरुष द्वारा (संभृता) साधी गई (विश्वरूपा) अनेक रूपवाली है। (सा) वह (आरात्) दूर (एतु) चली जावे, (एनाम्) इसको (अप नुदामः) हम हटाते हैं ॥ २ ॥

शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता ।
जाया पत्या नुत्तेव कर्तारं बन्ध्वृच्छतु ॥३॥

पदार्थ—(शूद्रकृता) शूद्रो के लिये की हुई, (राजकृता) राजाओ के लिये की हुई, (स्त्रीकृता) स्त्रियो के लिये की हुई, (ब्रह्मभिः=ब्रह्मभ्यः) ब्राह्मणो के लिये (कृता) की हुई [हिंसाक्रिया] (कर्तारम्) हिंसक पुरुष को (बन्धु) बन्धन समान (ऋच्छतु) चली जावे, (इव) जैसे (पत्या) पति करके (नुत्ता) दूर की गई (जाया) पत्नी ॥ ३ ॥

अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम् ।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥४॥

पदार्थ—(अहम्) मैंने (अनया ओषध्या) इस ओषधि रूप [तापनाशक तुझ राजा] के साथ (सर्वाः कृत्याः) सब हिंसाओ को (अदूदुषम्) खण्डित कर दिया है, (याम्) जिस [हिंसा] को (क्षेत्रे) खेत मे अथवा (याम्) जिसको (गोषु) गौओ मे (वा) अथवा (याम्) जिसको (ते) तेरे (पुरुषेषु) पुरुषो मे (चक्रुः) उन लोगो ने किया था ॥ ४ ॥

अघमस्त्वघकृते शपथः शपथीयते ।
प्रत्यक् प्रतिप्रहिण्मो यथा कृत्याकृतं हनत् ॥५॥

पदार्थ—(अघम्) बुराई (अघकृते) बुराई करने वाले को और (शपथः) शाप (शपथीयते) शाप करने वाले को (अस्तु) होवे । [उस दुष्ट कर्म को] (प्रत्यक्) पीछे की ओर (प्रतिप्रहिण्मः) हम हटा देते हैं (यथा) जिससे [वह दुष्ट कर्म] (कृत्याकृतम्) हिंसा करने वाले को (हनत्) मारे ॥ ५ ॥

प्रतीचीन आङ्गिरसोऽध्यक्षो नः पुरोहितः ।
प्रतीचीः कृत्या आकृत्यामून् कृत्याकृतो जहि ॥६॥

पदार्थ—(प्रतीचीनः) प्रत्यक्ष चलने वाला, (आङ्गिरसः) वेदो का जानने वाला (नः) हमारा (अध्यक्षः) अध्यक्ष और (पुरोहितः) पुरोहित [अग्रगामी] तू (कृत्याः) हिंसाओ को (प्रतीचीः) प्रतिकूलगामि (आकृत्य) सवथा करक (अमून्) उन (कृत्याकृतः) हिंसाकारियो को (जहि) मार डाल ॥ ६ ॥

यस्त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलमुदाय्यम् ।
तं कृत्येऽभिनिवर्तस्व मास्मानिच्छो अनागसः ॥७॥

पदार्थ—(यः) जिस [दुष्ट] ने (त्वा) तुझ से (उवाच) कहा—"(उदाय्यम्) उदय को प्राप्त हुए (प्रतिकूलम्) विरुद्ध पक्षवाले शत्रु को (परा इहि इति) जाकर प्राप्त हो" । (कृत्ये) हे हिंसा क्रिया ! (तम्) उसकी ओर (अभिनिवर्तस्व) लौटकर जा, (अस्मान्) हम (अनागसः) निर्दोषियो को (मा इच्छः) मत चाह ॥ ७ ॥

यस्ते परूंषि संदधौ रथस्येवर्भुर्धिया ।
तं गच्छ तत्र तेऽयनमज्ञातस्तेऽयं जनः ॥८॥

पदार्थ—[हे हिंसा क्रिया !] (यः) जिस [शत्रु] ने (ते) तेरे (परूंषि) जोडो को (सन्दधौ) जोडा था, (इव) जैसे (ऋभुः) बुद्धिमान् [शिल्पी] (रथस्य) रथ के [जोडो को] (धिया) अपनी बुद्धि से । (तम्) उसको (गच्छ) पहुँच, (तत्र) वहा पर (ते) तेरा (अयनम्) घर है, (अयम्) यह (जनः) पुरुष (ते) तेरा (अज्ञातः) अनजान [होवे] ॥ ८ ॥

ये त्वा कृत्वालेभिरे विद्वला अभिचारिणः ।
शंभ्वीदं कृत्यादूषणं प्रतिवर्त्म पुनःसरं तेन त्वा स्नपयामसि ॥९॥

पदार्थ—[हे हिंसा !] (ये) जिन (विद्वलाः) दु खदायी, (अभिचारिणः) विरुद्ध आचरणवालो ने (त्वा) तुझे (कृत्वा) बनाकर (आलेभिरे) ग्रहण किया था । (इदम्) यह (शंभु) सुखदायी (कृत्यादूषणम्) हिंसा का खण्डन [उन के लिये] (पुनःसरम्) अवश्य ज्ञान कराने वाला (प्रतिवर्त्म) प्रत्यक्ष मार्ग है । (तेन) उसी [कारण] से (त्वा) तुझे (स्नपयामसि) हम शुद्ध करते हैं ॥ ९ ॥

यद् दुर्भगां प्रस्नपितां मृतवत्सामुपेयिम ।
अपैतु सर्वं मत् पापं द्रविणं मोप तिष्ठतु ॥१०॥

पदार्थ—(यत्) यदि (दुर्भगाम्) दुर्भाग्य वाली, [अथवा] (प्रस्नपिताम्) शुद्ध आचरण वाली, [अथवा] (मृतवत्साम्) मरे बच्चे वाली [शोकातुर स्त्री] के (उपेयिम) हम पास गये हैं । (सर्वम्) सब (पापम्) पाप (मत्) मुझ से (अप एतु) हट जावे, (द्रविणम्) बल (मा) मुझको (उप तिष्ठतु) प्राप्त हो ॥ १० ॥

यत् ते पितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगृहुः ।
संदेश्यात् सर्वस्मात् पापादिमा मुञ्चन्तु त्वौषधीः ॥११॥

पदार्थ—(यत्) यदि (यज्ञे) यज्ञ [श्रेष्ठ कर्म करने] में (पितृभ्यः) पितरों [माता पिता आचार्य आदि] को (ददतः) दान करते हुए (ते) तेरा (नाम वा) नाम (जगृहुः) उन्होंने लिया है । (सर्वस्मात्) [उनके] प्रत्येक (संदेश्यात्) अभीष्ट (पापात्) पाप से (इमाः) ये (ओषधीः) ओषधियां [ओषधि रूप दु खनाशक विद्वान् पुरुष] (त्वा) तुझको (मुञ्चन्तु) मुक्त करें ॥ ११ ॥

देवैनसात् पित्र्यान्नामग्राहात् संदेश्यादभिनिष्कृतात् ।
मुञ्चन्तु त्वा वीरुधो वीर्येण ब्रह्मणा ऋग्भिः पयसा ऋषीणाम् ॥१२॥

पदार्थ—(देवैनसात्) विजयी पुरुषों के लिये पाप से, (पित्र्यात्) पितरों [माता पिता गुरु आदि] के लिये पाप से (संदेश्यात्) अभीष्ट और (अभिनिष्कृतात्) प्रतिफल सिद्ध किये हुए (नामग्राहात्) नामग्रहण से (वीरुधः) ओषधें [ओषधिसमान उपकारी लोग] (त्वा) तुझ को (वीर्येण) अपने सामर्थ्य द्वारा (ब्रह्मणा) तप द्वारा (ऋग्भिः) वेदवाणियों द्वारा और (ऋषीणाम्) ऋषियों के (पयसा) ज्ञान द्वारा (मुञ्चन्तु) मुक्त करें ॥ १२ ॥

यथा वातश्च्यावयति भूम्या रेणुमन्तरिक्षाच्चाभ्रम् ।
एवा मत् सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तमपायति ॥१३॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (वातः) वायु (भूम्याः) भूमि से (रेणुम्) रेणु [धूलि] को (च) और (अन्तरिक्षात्) आकाश से (अभ्रम्) मेघ को (च्यावयति) सरका देता है । (एव) वैसे ही (मत्) मुझ से (सर्वम्) सब (ब्रह्मनुत्तम्) ब्राह्मणो द्वारा हटाया गया (दुर्भूतम्) पाप (अप अयति) दूर चला जावे ॥ १३ ॥

अप क्राम नानदती विनद्धा गर्दभीव ।
कर्तॄन् नक्षस्वेतो नुत्ता ब्रह्मणा वीर्यावता ॥१४॥

पदार्थ—(विनद्धा) खुली हुई, (गर्दभी इव) गदही के समान (नानदती) अति रेंकती हुई तू (अप क्राम) भाग जा (वीर्यवता) पराक्रमी (ब्रह्मणा) ब्रह्मज्ञानी करके (इतः) यहां से (नुत्ता) निकाली हुई तू (कर्तॄन्) हिंसकों में (नक्षस्व) पहुँचा ॥ १४ ॥

अयं पन्थाः कृत्येति त्वा नयामोऽभिप्रहितां प्रति त्वा प्र हिण्मः ।
तेनाभि याहि भञ्जत्यनस्वतीव वाहिनी विश्वरूपा कुरूटिनी ॥१५॥

पदार्थ—"(कृत्ये) हे हिंसा ! [अर्थात् हिंसक] (अयम् पन्थाः इति) यह मार्ग है"—(त्वा) तुझे (नयामः) हम ले चलते हैं, (अभिप्रहिताम्) [हमारे] प्रतिकूल भेजी हुई (त्वा) तुझ को (प्रति) उलटा (प्र हिण्मः) हम हटाते हैं । (तेन) उसी [मार्ग] से (भञ्जती) टूटती हुई तू [उन पर] (अभि याहि) चढ़ाई कर, (इव) जैसे (अनस्वती) बहुत रथों वाली, (विश्वरूपा) सब अङ्गो [हाथी, घोडे आदि] वाली (कुरूटिनी) बाँकेपन से रोकनेवाली (वाहिनी) सेना [चढ़ाई करती है] ॥ १५ ॥

पराक् ते ज्योतिरपथं ते अर्वागन्यत्रास्मदयना कृणुष्व ।
परेणेहि नवतिं नाव्या अति दुर्गाः स्रोत्या मा क्षणिष्ठाः परेहि ॥१६॥

पदार्थ—(पराक्) आगे की ओर (ते) तेरे लिये (ज्योतिः) ज्योति [अग्नि आदि प्रकाश] है (अर्वाक्) इस ओर (ते) तेरे लिये (अपथम्) मार्ग नहीं है, (अस्मत्) हम से (अन्यत्र) दूसरे स्थान मे [अपने] (अयना) मार्गों का (कृणुष्व) कर । (परेण) दूसरे [मार्ग] से (नवतिम्) नब्बे [अर्थात् अनेक] (दुर्गाः) बड़ी कठिन, (नाव्याः) नावो से उतरने योग्य (स्रोत्याः) नदियो को (अति) पार करके (इहि) जा, [हमको] (मा क्षणिष्ठाः) मत घायल कर, (परा इहि) हट जा ॥ १६ ॥

वात इव वृक्षान् नि मृणीहि पादय मा गामश्वं पुरुषमुच्छिष एषाम् ।
कर्तॄन् निवृत्येतः कृत्येऽप्रजास्त्वाय बोधय ॥१७॥

पदार्थ—(कर्तॄन्) हिंसकों को (नि मृणीहि) मार डाल और (पादय=पातय) गिरा दे, (वातः इव) जैसे वायु (वृक्षान्) वृक्षों को, (एषाम्) इनकी (गाम्), गौ (अश्वम्) घोडा और (पुरुषम्) पुरुष को (मा उत् शिषः) मत छोड । (कृत्ये) हे हिंसाशील ! (इतः) यहां से (निवृत्य) लौट कर (अप्रजास्त्वाय) [उनकी] प्रजा [पुत्र, पौत्र, सेवक आदि] की हानि के लिये [उन्हें] (बोधय) जगा दे ॥ १७ ॥

यां ते बर्हिषि यां श्मशाने क्षेत्रे कृत्यां वलगं वा निचख्नुः ।
अग्नौ वा त्वा गार्हपत्येऽभिचेरुः पाकं सन्तं धीरतरा अनागसम् ॥१८॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (याम् याम्) जिस जिस (कृत्याम्) हिंसा क्रिया को (वा) अथवा (वलगम्) गुप्त कर्म को (ते) तेरे (बर्हिषि) जल में, (श्मशाने) मरघट में [अथवा] (क्षेत्रे) खेत में (धीरतराः) धीरों के दबाने

वालों ने (निचख्नुः) दबा दिया है। (वा) अथवा (गार्हपत्ये) गृहपतियों करके संयुक्त (अग्नौ) अग्नि में (पाकम्) परिपक्व स्वभाववाले, (सन्तम्) सन्त [सदाचारी] और (अनागसम्) निर्दोष (त्वा) तेरे (अभिचेरुः) उन्होंने विरुद्ध आचरण किया है ॥ १८ ॥

उपाहृतमनुबुद्धं निखातं वैरं त्सार्यन्वविदाम कर्त्रम् । तदेतु यत आभृतं तत्राश्व इव वि वर्ततां हन्तु कृत्याकृतः प्रजाम् ॥१९॥

पदार्थ—[उत] (अनुबुद्धम्) ताक लगाये गये, (उपाहृतम्) प्रयोग किये गये, (निखातम्) दबाये गये [सुरंग, गढ़े आदि में छिपाये गये] (वैरम्) वैर रूप (त्सारि) टेढ़े (कर्त्रम्) कटार को (अनु अविदाम) हमने ढूंढ़ लिया है। (तत्) वह (एतु) चला जावे, (यतः) जहां से (आभृतम्) लाया गया है, (तत्र) वहां पर (अश्वः इव) घोड़े के समान (वि वर्तताम्) लौट जावे, (कृत्याकृतः) हिंसा करने वाले की (प्रजाम्) प्रजा [पुत्र, पौत्र, भृत्य आदि] को (हन्तु) मारे ॥ १९ ॥

स्वायसा असयः सन्ति नो गृहे विद्मा ते कृत्ये यतिधा परूंषि ।
उत्तिष्ठैव परेहीतोऽज्ञाते किमिहेच्छसि ॥२०॥

पदार्थ—(स्वायसाः) सुन्दर रीति से लोहे की बनी (असयः) तलवारें (नः गृहे) हमारे घर में (सन्ति) हैं, (कृत्ये) हे हिंसा क्रिया ! (ते) तेरे (परूंषि) जोड़ों को, (यतिधा) जितने प्रकार के हैं, (विद्म) हम जानते हैं। (एव) बस (उत् तिष्ठ) खड़ी हो जा, (इतः) यहां से (परा इहि) चली जा, (अज्ञाते) हे अपरिचित ! तू (इह) यहां (किम्) क्या (इच्छसि) चाहती है ॥ २० ॥

ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ चापि कर्त्स्यामि निर्द्रव ।
इन्द्राग्नी अस्मान् रक्षतां यौ प्रजानां प्रजावती ॥२१॥

पदार्थ—(कृत्ये) हे हिंसा क्रिया ! (ते) तेरी (ग्रीवाः) ग्रीवा की नाड़ियों (च) और (पादौ) दोनों पैरों को (अपि) भी (कर्त्स्यामि) मैं काटूंगा, (निः द्रव) निकल जा। (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि [के समान राजा और मन्त्री] (अस्मान्) हमारी (रक्षताम्) रक्षा करें, (यौ) जो दोनों (प्रजानाम्) प्रजाओं के बीच (प्रजावती) श्रेष्ठ प्रजा वाली [माता के तुल्य हैं] ॥ २१ ॥

सोमो राजाधिपा मृडिता च भूतस्य नः पतयो मृडयन्तु ॥२२॥

पदार्थ—(सोमः) ऐश्वर्यवान् (राजा) राजा (अधिपा) अधिक पालन करनेवाला (च) और (मृडिता) सुख देनेवाला है, (भूतस्य) संसार के (पतयः) पालन करने वाले [राजपुरुष] (नः) हमें (मृडयन्तु) सुख देते रहें ॥ २२ ॥

भवाशर्वावस्यतां पापकृते कृत्याकृते ।
दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम् ॥२३॥

पदार्थ—(भवाशर्वौ) सुख देनेवाले और दुःख नाश करनेवाले [राजा और मन्त्री दोनों] (पापकृते) पाप करनेवाले (कृत्याकृते) हिंसा करने वाले और (दुष्कृते) दुष्कर्मी पुरुष के लिये (देवहेतिम्) विद्वानों के वज्र (विद्युतम्) बिजुली [के शस्त्र] को (अस्यताम्) गिरावें ॥ २३ ॥

यद्येयथ द्विपदी चतुष्पदी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा ।
सेतो३ष्टापदी भूत्वा पुनः परेहि दुच्छुने ॥२४॥

पदार्थ—(यदि) जो (कृत्याकृता) हिंसा करने वाले पुरुष द्वारा (संभृता) लायी गयी (विश्वरूपा) अनेक रूपवाली [हिंसा] (द्विपदी) दोनों [स्त्री पुरुष समूह] में गतिवाली, (चतुष्पदी) चारों [ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासाश्रम] में पदवाली और (अष्टापदी) आठों [चार पूर्व आदि और चार आग्नेय आदि मध्य दिशाओं] में व्याप्तिवाली (भूत्वा) होकर (एयथ) तू आई है। (सा) सो (दुच्छुने) हे दुष्टगति वाली ! तू (इतः) यहां से (पुनः) लौट कर (परा इहि) चली जा ॥ २४ ॥

अभ्यक्ताक्ता स्वरंकृता सर्वं भरन्ती दुरितं परेहि ।
जानीहि कृत्ये कर्तारं दुहितेव पितरं स्वम् ॥२५॥

पदार्थ—(अभ्यक्ता) मली गई, (आक्ता) चिकनी की गई, (स्वरंकृता) भले प्रकार सजाई गई, (सर्वम्) प्रत्येक (दुरितम्) संकट को (भरन्ती) धारण करती हुई तू (परा इहि) चली जा। (कृत्ये) हे हिंसा ! तू (कर्तारम्) अपने बनाने वाले को (जानीहि) जान, (इव) जैसे (दुहिता) पुत्री (स्वम् पितरम्) अपने पिता को [जानती है] ॥ २५ ॥

परेहि कृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येव पदं नय ।
मृगः स मृगयुस्त्वं न त्वा निकर्तुमर्हति ॥२६॥

पदार्थ—(कृत्ये) हे हिंसा ! (परा इहि) चली जा, (मा तिष्ठः) मत खड़ी हो, (विद्धस्य) घायल के [पद से] (इव) जैसे (पदम्) ठिकाने को (नय) पा ले। [हे शूर !] (सः) वह [शत्रु] (मृगः) मृग [के समान है], और (त्वम्) तू (मृगयुः) व्याध [के समान है], वह (त्वा) तुझ को (न) नहीं (निकर्तुम् अर्हति) गिरा सकता है ॥ २६ ॥

उत हन्ति पूर्वासिनं प्रत्यादायापर इष्वा ।
उत पूर्वस्य निघ्नतो नि हन्त्यपरः प्रति ॥२७॥

पदार्थ—(अपरः) अति श्रेष्ठ [बड़ा सावधान पुरुष] (उत) ही (पूर्वासिनम्) पहिले [चोट] चलाने वाले को (प्रत्यादाय) उलटा पकड़कर (इष्वा) तीर से (हन्ति) मारता है। (अपरः) अति श्रेष्ठ (उत) ही (पूर्वस्य निघ्नतः) पहिले चोट मारने वाले का (प्रति) बदले में (नि) निरन्तर (हन्ति) हनन करता है ॥ २७ ॥

एतद्धि शृणु मे वचोऽथेहि यत एयथ ।
यस्त्वा चकार तं प्रति ॥२८॥

पदार्थ—(मे) मेरे (एतत्) इस [निर्णयपूर्वक] (वचः) वचन को (हि) अवश्य (शृणु) सुन, (अथ) फिर (इहि) जा (यतः) जहां से (एयथ) तू आई है। (यः) जिसने (त्वा) तुझे (चकार) बनाया है, (तम् प्रति) उसके पास [जा] ॥ २८ ॥

अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः ।
यत्रयत्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि पर्णाल्लघीयसी भव ॥२९॥

पदार्थ—(कृत्ये) हे हिंसाक्रिया ! (अनागोहत्या) निर्दोष की हत्या (वै) अवश्य (भीमा) भयानक है, (नः) हमारी, (गाम्) गौ, (अश्वम्) घोड़े और (पुरुषम्) पुरुष को (मा वधीः) मत मार। (यत्र यत्र) जहां-जहां पर तू (निहिता) गुप्त रक्खी गई (असि) है, (ततः) वहां से (त्वा) तुझ को (उत् स्थापयामसि) हम उठाये देते हैं, तू (पर्णात्) पत्ते से (लघीयसी) अधिक हलकी (भव) हो जा ॥ २९ ॥

यदि स्थ तमसावृता जालेनाभिहिता इव ।
सर्वाः संलुप्येतः कृत्याः पुनः कर्त्रे प्र हिण्मसि ॥३०॥

पदार्थ—(यदि) जो तुम (तमसा) अन्धकार से (आवृताः) ढक लेनेवाले (जालेन) जाल से (अभिहिताः इव) बन्धी हुई के समान (स्थ) हो। (इतः) यहां से (सर्वाः) सब (कृत्याः) हिंसाक्रियाओं को (संलुप्य) काट डालकर (पुनः) फिर (कर्त्रे) बनाने वाले के पास (प्र हिण्मसि) हम भेजे देते हैं ॥ ३० ॥

कृत्याकृतो वलगिनोऽभिनिष्कारिणः प्रजाम् ।
मृणीहि कृत्ये मोच्छिषोऽमून् कृत्याकृतो जहि ॥३१॥

पदार्थ—(कृत्ये) हे कर्तव्यकुशल [सेना !] (कृत्याकृतः) हिंसा करने वाले (वलगिनः) गुप्त कर्म करने वाले और (अभिनिष्कारिणः) विरुद्ध यत्न करने वाले की (प्रजाम्) प्रजा [सेवक आदि] को (मृणीहि) मार डाल, (मा उत् शिषः) मत छोड़, (अमून्) उन (कृत्याकृतः) हिंसा करनेवालों को (जहि) नाश कर ॥ ३१ ॥

यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून् ।
एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि ॥३२॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (सूर्यः) सूर्य (तमसः परि) अन्धकार में से (मुच्यते) छूटता है और (रात्रिम्) रात्रि (च) और (उषसः) उषा [प्रभात समय] के (केतून्) चिह्नों को (जहाति) त्यागता है। (एव) वैसे ही (अहम्) मैं (कृत्याकृता) हिंसा करनेवाले द्वारा (कृतम्) किये हुए (सर्वम्) सब (दुर्भूतम्) दुष्ट (कर्त्रम्) कर्म को (जहामि) त्यागता हूँ, (इव) जैसे (हस्ती) हाथी (दुरितम्) कठिन (रजः) देश को [पार कर जाता है] ॥ ३२ ॥

卐 सूक्तम् ॥२॥ 卐

१—३३ नारायणः । पार्ष्णिसूक्तम्, पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम् । अनुष्टुप्, १–४, ७, ८ त्रिष्टुप्, ९, ११ जगती, २८ भुरिग्बृहती ।

केन पार्ष्णी आभृते पूरुषस्य केन मांसं संभृतं केन गुल्फौ । केनाङ्गुलीः पेशनीः केन खानि केनोच्छ्लङ्खौ मध्यतः कः प्रतिष्ठाम् ॥१॥

पदार्थ—(केन) किस द्वारा (पूरुषस्य) मनुष्य की (पार्ष्णी) दोनों एड़ियां (आभृते) पुष्ट की गईं, (केन) किस द्वारा (मांसम्) मांस (संभृतम्) जोड़ा गया, (केन) किस द्वारा (गुल्फौ) दोनों टखने। (केन) किस द्वारा (पेशनीः) सुन्दर अवयवों वाली (अङ्गुलीः) अङ्गुलियां, (केन) किस द्वारा (खानि) इन्द्रियां, (केन) किस द्वारा (उच्छ्लङ्खौ) दोनों उच्छ्लङ्ख [पांव के

तलवे, जोड़े गये], (क) किस ने [भूगोल के] (मध्यत) बीचो बीच (प्रतिष्ठाम्) ठिकाना [पाव रखने को, बनाया] ॥ १ ॥

कस्मान्नु गुल्फावधरावकृण्वन्नष्ठीवन्तावुत्तरौ पूरुषस्य । जङ्घे निर्ऋत्य न्यदधुः क्व स्विज्जानुनोः सन्धी क उ तच्चिकेत ॥२॥

पदार्थ—(कस्मात्) किस [पदार्थ] से (नु) अब (पुरुषस्य) मनुष्य के (अधरौ) नीचे के (गुल्फौ) दोनो टखने और (उत्तरौ) ऊपर के (अष्ठीवन्तौ) दोनो घुटने (अकृण्वन्) उन [ईश्वर गुणों] ने बनाये हैं। (जङ्घे) दोनो टांगो को (निर्ऋत्य) अलग-अलग करके (क्व स्वित्) किसके भीतर (जानुनो) दोनो घुटनो के (सन्धी) दोनो जोड़ो को (नि अदधुः) उन्होने जमाया, (क उ) किस ने ही (तत्) उसे (चिकेत) जाना है ॥ २ ॥

चतुष्टयं युज्यते संहितान्तं जानुभ्यामूर्ध्वं शिथिरं कबन्धम् । श्रोणी यदूरू क उ तज्जजान याभ्यां कुसिन्धं सुदृढं बभूव ॥३॥

पदार्थ—(चतुष्टयम्) चार प्रकार से (संहितान्तम्) सटे हुए सिरो वाला, (जानुभ्याम् ऊर्ध्वम्) दोनो घुटनो से ऊपर, (शिथिरम्) शिथिर [ढीला] (कबन्धम्) धड़ (युज्यते) जुड़ता है। (यत्) जो (श्रोणी) दोनो कूल्हे और (ऊरू) दोनो जांघे है, (क उ) किसने ही (तत्) उनको (जजान) उत्पन्न किया, (याभ्याम्) जिन दोनो के साथ (कुसिन्धम्) [चिपचिपा] धड़ (सुदृढम्) बड़ा दृढ़ (बभूव) हुआ है ॥ ३ ॥

कति देवाः कतमे त आसन् य उरो ग्रीवाश्चिक्युः पूरुषस्य । कति स्तनौ व्यदधुः कः कफोडौ कति स्कन्धान् कति पृष्टीरचिन्वन् ॥४॥

पदार्थ—(ते) वे (कति) कितने और (कतमे) कौन से (देवा) दिव्य गुण (आसन्) थे, (ये) जिन्होने (पुरुषस्य) मनुष्य के (उरः) छाती और (ग्रीवाः) गले को (चिक्युः) एकत्र किया। (कति) कितनो ने (स्तनौ) दोनो स्तनो को (वि अदधुः) बनाया, (कः) किसने (कफोडौ) दोनो कपोलो [गालो] को [बनाया], (कति) कितनो ने (स्कन्धान्) कन्धो को और (कति) कितनो ने (पृष्टीः) पसलियो को (अचिन्वन्) एकत्र किया ॥ ४ ॥

को अस्य बाहू समभरद् वीर्यं करवादिति । अंसौ को अस्य तद् देवः कुसिन्धे अध्या दधौ ॥५॥

पदार्थ—(कः) कर्त्ता [परमेश्वर] ने (अस्य) इस [मनुष्य] के (बाहू) दोनो भुजाओ को [इस लिये] (सम् अभरत्) यथावत् पुष्ट किया है—कि वह (वीर्यम्) वीर कर्म (करवात् इति) करता रहे। (तत्) इसीलिए (देवः) प्रकाशमान (कः) प्रजापति ने (अस्य) इस [मनुष्य] के (अंसौ) दोनो कन्धो को (कुसिन्धे) धड़ मे (अधि) ऐश्वर्य से (आ) यथावत् (दधौ) धारण कर दिया है ॥ ५ ॥

कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम् । येषां पुरुत्रा विजयस्य मह्मनि चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम् ॥६॥

पदार्थ—(कः) कर्त्ता [परमेश्वर] ने [मनुष्य के] (शीर्षणि) मस्तक में (सप्त) सात (खानि) गोलक (वि ततर्द) खोदे, (इमौ कर्णौ) ये दोनो कान, (नासिके) दोनों नथने, (चक्षणी) दोनो आँखें और (मुखम्) एक मुख। (येषाम्) जिनके (विजयस्य) विजय की (मह्मनि) महिमा मे (चतुष्पादः) चौपाये और (द्विपदः) दोपाये जीव (पुरुत्रा) अनेक प्रकार से (यामम्) मार्ग (यन्ति) चलते हैं ॥ ६ ॥

हन्वोर्हि जिह्वामदधात् पुरूचीमधा महीमधि शिश्राय वाचम् । स आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तरपो वसानः क उ तच्चिकेत ॥७॥

पदार्थ—उसने (हि) ही [मनुष्य के] (हन्वोः) दोनों जबड़ो मे (पुरूचीम्) बहुत चलने वाली (जिह्वाम्) जीभ को (अदधात्) धारण किया है, (अध) और [जीभ मे] (महीम्) बड़ी [प्रभावशाली] (वाचम्) वाणी को (अधि शिश्राय) उपयुक्त किया है। (सः) वह (भुवनेषु अन्तः) लोको के भीतर (आ) सब ओर (वरीवर्ति) घूमता रहता है और (अपः) आकाश को (वसानः) ढकते हुए (कः उ) कर्त्ता परमेश्वर ने ही (तत्) उसे (चिकेत) जाना है ॥ ७ ॥

मस्तिष्कमस्य यतमो ललाटं ककाटिकां प्रथमो यः कपालम् । चित्वा चित्यं हन्वोः पूरुषस्य दिवं रुरोह कतमः स देवः ॥८॥

पदार्थ—(यतमः) जो (प्रथमः) सब से पहिला (यः) नियन्ता (अस्य) इस (पुरुषस्य) मनुष्य के (मस्तिष्कम्) भेजे को, (ललाटम्) ललाट [माथे] को, (ककाटिकाम्) ककाटिका [शिर के पिछले भाग] को, (कपालम्) कपाल [खोपड़ी] को और (हन्वोः) दोनो जाबड़ो के (चित्यम्) संचय को (चित्वा) संचय करके [वर्तमान है], (सः) वह (कतमः) कौन सा (देवः) देव [स्तुति योग्य] (दिवम्) प्रकाश को (रुरोह) चढ़ा है ॥ ८ ॥

प्रियाप्रियाणि बहुला स्वप्नं संबाधतन्द्र्यः । आनन्दानुग्रो नन्दांश्च कस्माद् वहति पूरुषः ॥९॥

पदार्थ—(बहुला) बहुत से (प्रियाप्रियाणि) प्रिय और अप्रिय कर्मों, (स्वप्नम्) सोने (संबाधतन्द्र्यः) बाधाओ और थकावटो, (आनन्दान्) आनन्दो, (च) और (नन्दान्) हर्षों को (उग्रः) प्रचण्ड (पूरुषः) मनुष्य (कस्मात्) किस [कारण] से (वहति) पाता है ॥ ९ ॥

आर्तिरवर्तिर्निर्ऋतिः कुतो नु पुरुषेऽमतिः । राद्धिः समृद्धिरव्यृद्धिर्मतिरुदितयः कुतः ॥१०॥

पदार्थ—(पुरुषे) मनुष्य मे (नु) अब (आर्तिः) पीड़ा, (अवर्तिः) दरिद्रता, (निर्ऋतिः) महामारी और (अमतिः) कुमति (कुतः) कहां से [हैं]। (राद्धिः) पूर्णता, (समृद्धिः) सम्पत्ति, (अव्यृद्धिः) अन्यूनता, (मतिः) बुद्धि और (उदितयः) उदय क्रियायें (कुतः) कहां से [हैं] ॥ १० ॥

को अस्मिन्नापो व्यदधाद् विषूवृतः पुरूवृतः सिन्धुसृत्याय जाताः । तीव्रा अरुणा लोहिनीस्ताम्रधूम्रा ऊर्ध्वा अवाचीः पुरुषे तिरश्चीः ॥११॥

पदार्थ—(कः) प्रजापति [परमेश्वर] ने (अस्मिन् पुरुषे) इस मनुष्य मे (विषूवृतः) नाना प्रकार घूमनेवाले, (पुरूवृतः) बहुत घूमनेवाले (सिन्धुसृत्याय) समुद्र समान बहने के लिये (जाताः) उत्पन्न हुए, (तीव्राः) तीव्र [शीघ्रगामी], (अरुणाः) बैंगनी, (लोहिनीः) लाल वर्ण वाले (ताम्रधूम्राः) तांबे के समान धूएँ के वर्ण वाले, (ऊर्ध्वाः) ऊपर जानेवाले, (अवाचीः) नीचे की ओर चलने वाले और (तिरश्चीः) तिरछे बहने वाले (आपः = अपः) जलो [रुधिर धाराओ] को (वि अदधात्) बनाया है ॥ ११ ॥

को अस्मिन् रूपमदधात् को मह्मानं च नाम च । गातुं को अस्मिन् कः केतुं कश्चरित्राणि पूरुषे ॥१२॥

पदार्थ—(कः) कर्त्ता [परमेश्वर] ने (अस्मिन्) इस [मनुष्य] मे (रूपम्) रूप, (कः) कर्त्ता ने (मह्मानम्) महत्त्व (च) और (नाम) नाम (च) भी (अदधात्) रक्खा है, (कः) कर्त्ता ने (अस्मिन्) इस (पूरुषे) मनुष्य मे (गातुम्) गति [प्रवृत्ति], (कः) कर्त्ता ने (केतुम्) विज्ञान (च) और (चरित्राणि) अनेक आचरणो को [रक्खा है] ॥ १२ ॥

को अस्मिन् प्राणमवयत् को अपानं व्यानमु । समानमस्मिन् को देवोऽधि शिश्राय पूरुषे ॥१३॥

पदार्थ—(कः) कर्त्ता [प्रजापति] ने (अस्मिन्) इस [मनुष्य] मे (प्राणम्) प्राण [भीतर जाने वाले श्वास] को, (कः) प्रजापति ने (अपानम्) अपान [बाहिर आने वाले श्वास] को (उ) और (व्यानम्) व्यान [सब शरीर मे घूमने वाले वायु] को (अवयत्) बुना है। (देवः) देव [स्तुति योग्य] (कः) प्रजापति ने (अस्मिन्) इस (पूरुषे) मनुष्य में (समानम्) समान [हृदयस्थ वायु] को (अधि शिश्राय) ठहराया है ॥ १३ ॥

को अस्मिन् यज्ञमदधादेको देवोऽधि पूरुषे । को अस्मिन्त्सत्यं कोऽनृतं कुतो मृत्युः कुतोऽमृतम् ॥१४॥

पदार्थ—(कः) किस (एकः) एक (देवः) देव [स्तुतियोग्य] ने (अस्मिन् पूरुषे) इस मनुष्य मे (यज्ञम्) यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण और दान सामर्थ्य] को, (कः) किस ने (अस्मिन्) इस [मनुष्य] मे (सत्यम्) सत्य [विधि] को, (कः) किस ने (अनृतम्) असत्य [निषेध] को (अधि अदधात्) रख दिया है। (कुतः) कहां से (मृत्युः) मृत्यु और (कुतः) कहां से (अमृतम्) अमरपन [आता] है ॥ १४ ॥

को अस्मै वासः पर्यदधात् को अस्यायुरकल्पयत् । बलं को अस्मै प्रायच्छत् को अस्याकल्पयज्जवम् ॥१५॥

पदार्थ—(कः) विधाता [परमेश्वर] ने (अस्मै) इस [मनुष्य] को (वासः) निवास स्थान (परि) सब ओर से (अदधात्) दिया है, (कः) विधाता ने (अस्य) इस [मनुष्य] का (आयुः) आयु [जीवन काल] (अकल्पयत्) बनाया है। (कः) विधाता ने (अस्मै) इस [मनुष्य] को (बलम्) बल (प्र अयच्छत्) दिया है, (कः) विधाता ने (अस्य) इस [मनुष्य] के (जवम्) वेग को (अकल्पयत्) रचा है ॥ १५ ॥

केनापो अन्वतनुत केनाहरकरोद् रुचे । उषसं केनान्वैन्द्ध केन सायंभवं ददे ॥१६॥

पदार्थ—(केन) किस [सामर्थ्य] से उस [परमेश्वर] ने (आपः) जल को (अनु) लगातार (अतनुत) फैलाया है, (केन) किस [सामर्थ्य] से

(अहः) दिन (रुचे) चमकने के लिये (अकरोत्) बनाया है। (केन) किस [सामर्थ्य] से उसने (उषसम्) प्रभात को (अनु) लगातार (ऐन्द्ध) चमकाया है, (केन) किस [सामर्थ्य] से उसने (सायंभवम्) सायंकाल की सत्ता को (दधे) दिया है ॥ १६ ॥

को अस्मिन् रेतो न्यदधात् तन्तुरा तायतामिति ।

मेधां को अस्मिन्नध्यौहत् को बाणं को नृतो दधौ ॥१७॥

पदार्थ—(कः) प्रजापति [परमेश्वर] ने (अस्मिन्) इस [मनुष्य] में (रेतः) पराक्रम [इसलिये] (नि) निरन्तर (अदधात्) रख दिया है [कि उस का] (तन्तु) तन्तु [ताता] (आ) चारो ओर (तायताम् इति) फैले। (कः) प्रजापति ने (मेधाम्) बुद्धि (अस्मिन्) इस [मनुष्य] मे (अधि औहत्) लाकर दी है, (कः) प्रजापति ने (बाणम्) बोलना और (कः) प्रजापति ने (नृतः) नृत [शरीर चलाना] (दधौ) दिया है ॥ १७ ॥

केनेमां भूमिमौर्णोत् केन पर्यभवद् दिवम् ।

केनाभि मह्ना पर्वतान् केन कर्माणि पूरुषः ॥१८॥

पदार्थ—(पूरुषः) मनुष्य ने (केन) प्रजापति [परमेश्वर] द्वारा (इमाम् भूमिम्) इस भूमि को (और्णोत्) ढका है, (केन) प्रजापति द्वारा (दिवम्) आकाश को (परि अभवत्) घेरा है। (केन) प्रजापति द्वारा (मह्ना) [अपनी] महिमा मे (पर्वतान्) पर्वतो और (केन) प्रजापति द्वारा (कर्माणि) रचे हुए वस्तुओं को (अभि = अभि अभवत्) वश मे किया है ॥ १८ ॥

केन पर्जन्यमन्वेति केन सोमं विचक्षणम् ।

केन यज्ञं च श्रद्धां च केनास्मिन् निहितं मनः ॥१९॥

पदार्थ—वह [मनुष्य] (केन) प्रजापति [परमेश्वर] द्वारा (पर्जन्यम्) सींचने वाले [मेघ] को, (केन) प्रजापति द्वारा (विचक्षणम्) दर्शनीय (सोमम्) अमृत रस को, (केन) प्रजापति द्वारा (यज्ञम्) यज्ञ [देवपूजा सगतिकरण और दान] (च) और (श्रद्धाम्) श्रद्धा [सत्यधारण सामर्थ्य] को (च) भी, और (केन) प्रजापति द्वारा (अस्मिन्) इस [शरीर] मे (निहितम्) रक्खे हुए (मनः) मन को (अनु) लगातार (एति) पाता है ॥ १९ ॥

केन श्रोत्रियमाप्नोति केनेमं परमेष्ठिनम् ।

केनेममग्निं पूरुषः केन संवत्सरं ममे ॥२०॥

पदार्थ—(पूरुषः) मनुष्य (केन) किसके द्वारा (श्रोत्रियम्) वेदज्ञानी [आचार्य को, (केन) किसके द्वारा (इमम्) इस (परमेष्ठिनम्) सब से ऊंचे ठहरने वाले [परमेश्वर] को (आप्नोति) पाता है। उसने (केन) किसके द्वारा (इमम्) इस (अग्निम्) अग्नि [सूर्य, बिजुली और पार्थिव अग्नि] को, (केन) किसके द्वारा (संवत्सरम्) [अर्थात काल] को (ममे) मापा है ॥ २० ॥

ब्रह्म श्रोत्रियमाप्नोति ब्रह्मेमं परमेष्ठिनम् ।

ब्रह्मेममग्निं पूरुषो ब्रह्म संवत्सरं ममे ॥२१॥

पदार्थ—(पूरुषः) मनुष्य (ब्रह्म = ब्रह्मणा) ब्रह्म [वेद] द्वारा (श्रोत्रियम्) वेदज्ञानी [आचार्य] को और (ब्रह्म) वेद द्वारा (इमम्) इस (परमेष्ठिनम्) सबसे ऊपर ठहरने वाले [परमात्मा] को (आप्नोति) पाता है। उस [मनुष्य] ने (ब्रह्म) वेद द्वारा (इमम्) इस (अग्निम्) अग्नि [सूर्य, बिजुली और पार्थिव अग्नि] को, (ब्रह्म) वेद द्वारा (संवत्सरम्) संवत्सर [अर्थात् काल] को (ममे) मापा है ॥ २१ ॥

केन देवाँ अनु क्षियति केन दैवजनीर्विशः ।

केनेदमन्यन्नक्षत्रं केन सत् क्षत्रमुच्यते ॥२२॥

पदार्थ—वह [मनुष्य] (केन) किस के द्वारा (देवान्) स्तुतियोग्य गुणो, और (केन) किस के द्वारा (दैवजनीः) दैव [पूर्वजन्मके अर्जित कर्म] से उत्पन्न (विशः अनु) मनुष्यो मे (क्षियति) रहता है। (केन) किस के द्वारा (इदम्) यह (सत्) सत्य (क्षत्रम्) राज्य, और (केन) किसके द्वारा (अन्यत्) दूसरा [भिन्न] (अक्षत्रम्) अराज्य (उच्यते) बताया जाता है ॥ २२ ॥

ब्रह्म देवाँ अनु क्षियति ब्रह्म दैवजनीर्विशः ।

ब्रह्मेदमन्यन्नक्षत्रं ब्रह्म सत् क्षत्रमुच्यते ॥२३॥

पदार्थ—वह [मनुष्य] (ब्रह्म = ब्रह्मणा) ब्रह्म [परमेश्वर] द्वारा (देवान्) स्तुतियोग्य गुणों, और (ब्रह्म) ब्रह्म द्वारा (दैवजनीः) दैव [पूर्व जन्म के अर्जित कर्म] से उत्पन्न (विशः अनु) मनुष्यों में (क्षियति) रहता है। (ब्रह्म) ब्रह्म द्वारा (इदम्) यह (सत्) सत्य (क्षत्रम्) राज्य और (ब्रह्म) ब्रह्म द्वारा (अन्यत्) दूसरा [भिन्न] (अक्षत्रम्) अराज्य (उच्यते) बताया जाता है ॥ २३ ॥

केनेयं भूमिर्विहिता केन द्यौरुत्तरा हिता ।

केनेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥२४॥

पदार्थ—(केन) किस करके (इयम् भूमिः) यह भूमि (विहिता) सुधारी गई है, (केन) किस करके (द्यौः) सूर्य (उत्तरा) ऊंचा (हिता) धरा गया है। (च) और (इदम्) यह (ऊर्ध्वम्) ऊंचा, (तिर्यक्) तिरछा चलने वाला (व्यचः) फैला हुआ (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष [आकाश] (हितम्) धरा गया है ॥ २४ ॥

ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता ।

ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥२५॥

पदार्थ—(ब्रह्मणा) ब्रह्म [परमेश्वर] करके (भूमिः) भूमि (विहिता) सुधारी गई है, (ब्रह्म) ब्रह्म करके (द्यौः) सूर्य (उत्तरा) ऊंचा (हिता) धरा गया है। (च) और (ब्रह्म) ब्रह्म करके (इदम्) यह (ऊर्ध्वम्) ऊंचा, (तिर्यक्) तिरछा चलने वाला, (व्यचः) फैला हुआ (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष [आकाश] (हितम्) धरा गया है ॥ २५ ॥

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत् ।

मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोऽधि शीर्षतः ॥२६॥

पदार्थ—(पवमानः) शुद्ध स्वभाव (अथर्वा) निश्चल परमात्मा (अस्य) इस [मनुष्य] के (मूर्धानम्) शिर (च) और (यत्) जो कुछ (हृदयम्) हृदय है [उसको भी] (संसीव्य) आपस मे सीकर, (मस्तिष्कात्) भेजे [मस्तक बल] से (ऊर्ध्वः) ऊपर होकर (शीर्षतः अधि) शिर से ऊपर (प्र ऐरयत्) बाहिर निकल गया ॥ २६ ॥

तद् वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः ।

तत् प्राणो अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः ॥२७॥

पदार्थ—(तत् वै) वही (शिरः) शिर (अथर्वणः) निश्चल परमात्मा के (देवकोशः) उत्तम गुणों का भण्डार [भाण्डागार] (समुब्जितः) ठीक-ठीक बना है। (तत्) उस (शिरः) शिर की (प्राणः) प्राण [जीवन वायु] (अभि) सब ओर से (रक्षति) रक्षा करता है, (अन्नम्) अन्न (अथो) और (मनः) मन [रक्षा करता है] ॥ २७ ॥

ऊर्ध्वो नु सृष्टा३स्तिर्यङ् नु सृष्टा३ः सर्वा दिशः पुरुष आ बभूवाँ३ ।

पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥२८॥

पदार्थ—(नु) क्या (ऊर्ध्वः) ऊंचा (सृष्टा३ः) उत्पन्न होता हुआ और (नु) क्या (तिर्यङ्) तिरछा (सृष्टा३ः) उत्पन्न होता हुआ (पुरुषः) वह मनुष्य (सर्वाः दिशः) सब दिशाओं मे (आ) यथावत् (बभूवाँ३) व्यापा है? (यः) जो [मनुष्य] (ब्रह्मणः) ब्रह्म [परमात्मा] की (पुरम्) [उस] पूर्ति को (वेद) जानता है, (यस्याः) जिस [पूर्ति] से [वह परमेश्वर] (पुरुषः) पुरुष [परिपूर्ण] (उच्यते) कहा जाता है ॥ २८ ॥

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम् ।

तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥२९॥

पदार्थ—(यः) जो [मनुष्य] (वै) निश्चय करके (ब्रह्मणः) ब्रह्म [परमात्मा] की (अमृतेन) अमरपन [मोक्षसुख] से (आवृताम्) छायी हुई (ताम्) उस (पुरम्) पूर्णता को (वेद) जानता है, (तस्मै) उस [मनुष्य] को (ब्रह्म) ब्रह्म [परमात्मा] (च च) और (ब्राह्माः) ब्रह्म सम्बन्धी योधों ने (चक्षुः) दृष्टि, (प्राणम्) प्राण [जीवन-सामर्थ्य] और (प्रजाम्) प्रजा [मनुष्य आदि] (ददुः) दिये हैं ॥ २९ ॥

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा ।

पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥३०॥

पदार्थ—(तम्) उस [मनुष्य] को (न वै) न कभी (चक्षुः) दृष्टि और (न) न (प्राणः) प्राण [जीवनसामर्थ्य] (जरसः पुरा) [पुरुषार्थ के] घटाव से पहिले (जहाति) तजता है। (यः) जो मनुष्य (ब्रह्मणः) ब्रह्म [परमात्मा] की (पुरम्) [उस] पूर्ति को (वेद) जानता है, (यस्याः) जिस [पूर्ति] से वह [परमेश्वर] (पुरुषः) पुरुष [परिपूर्ण] (उच्यते) कहा जाता है ॥ ३० ॥

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।

तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥३१॥

पदार्थ—(अष्टाचक्रा) [योग के अङ्ग अर्थात् यम, नियम, आसन,

प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, इन] आठो का कर्म [वा चक्र] रखनेवाली, (नवद्वारा) [सात मस्तक के छिद्र और मन और बुद्धिरूप] नवद्वार वाली (पूः) पूर्ति [पुरी देह] (देवानाम्) उन्मत्तो के लिये (अयोध्या) अजेय है। (तस्याम्) उस [पूर्ति] मे (हिरण्ययः) अनेक बलो से युक्त (कोशः) कोश [भण्डार अर्थात् चेतन जीवात्मा] (स्वर्गः) सुख [सुखस्वरूप परमात्मा] की ओर चलने वाला (ज्योतिषा) ज्योति [प्रकाश स्वरूप ब्रह्म] से (आवृतः) छाया हुआ है ॥ ३१ ॥

तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते ।

तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ॥३२॥

पदार्थ—(तस्मिन् तस्मिन्) उसी ही (हिरण्यये) अनेक बलों से युक्त, (त्र्यरे) [स्थान, नाम जन्म इन] तीनो मे गति वाले, (त्रिप्रतिष्ठिते) [कर्म, उपासना, ज्ञान इन] तीनो मे प्रतिष्ठा वाले (कोशे) कोश [भण्डार रूप जीवात्मा] मे (यत्) जो (यक्षम्) पूजनीय (आत्मन्वत्) आत्मा वाला [महापराक्रमी परब्रह्म] है, (तत् वै) उसको ही (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी लोग (विदुः) जानते हैं ॥ ३२ ॥

प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम् ।

पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम् ॥३३॥

पदार्थ—(ब्रह्मा) ब्रह्मा [परमात्मा] ने (प्रभ्राजमानाम्) बड़ी प्रकाशमान (हरिणीम्) दुःख हरने वाली (यशसा) यश से (संपरिवृताम्) सर्वथा छायी हुई, (हिरण्ययीम्) अनेक बलो वाली (अपराजिताम्) कभी न जीती गई (पुरम्) पूर्ति मे (आ) सब ओर से (विवेश) प्रवेश किया है ॥ ३३ ॥

卐 इति प्रथमोऽनुवाकः 卐

卐

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ३ 卐

१—२५ अथर्वा । वरणमणि, वनस्पति, चन्द्रमा । अनुष्टुप्, २, ३, ६ भुरिक् त्रिष्टुप्, ८, १३, १४ पथ्यापंक्तिः, ११, १६ भुरिक्, १५, १७-२५ षट्पदाजगती ।

अयं मे वरणो मणिः सपत्नक्षयणो वृषा ।

तेना रंभस्व त्वं शत्रून् प्र मृणीहि दुरस्यतः ॥१॥

पदार्थ—(अयम्) यह (मणिः) प्रशंसनीय (वरणः) वरण [स्वीकार करने योग्य वैदिक बोध, अथवा वरना वा वरुण औषध] (मे) मेरे (सपत्नक्षयणः) वैरियो का नाश करने वाला (वृषा) वीर्यवान् है। [हे प्राणी !] (तेन) उस से (त्वम्) तू (शत्रून्) शत्रुओं को (आ रभस्व) पकड ले, और (दुरस्यतः) दुराचारियो को (प्र मृणीहि) मार डाल ॥ १ ॥

प्रैणाञ्छृणीहि प्र मृणा रभस्व मणिस्ते अस्तु पुरएता पुरस्तात् ।

अवारयन्त वरणेन देवा अभ्याचारमसुराणां श्वःश्वः ॥२॥

पदार्थ—(एनान्) इनको (प्र शृणीहि) कुचल डाल, (प्र मृण) मार डाल, (आ रभस्व) पकड ले, (मणिः) प्रशंसनीय [वैदिक बोध] (ते) तेरा (पुरःएता) अगुआ (पुरस्तात्) सामने (अस्तु) होवे। (देवाः) देवताओ [विजयी लोगो] ने (वरणेन) वरण [श्रेष्ठ वैदिक बोध वा वरना औषध] से (असुराणाम्) सुर विरोधी [दुष्टो] के (अभ्याचारम्) विरुद्ध आचरण को (श्वः श्वः) एक आगामी कल से दूसरी कल को [अर्थात् पहिले से ही] (अवारयन्त) रोका था ॥ २ ॥

अयं मणिर्वरणो विश्वभेषजः सहस्राक्षो हरितो हिरण्ययः ।

स ते शत्रूनधरान् पादयाति पूर्वस्तान् दभ्नुहि ये त्वा द्विषन्ति ॥३॥

पदार्थ—(अयम्) यह (मणिः) प्रशंसनीय (वरणः) वरण [वरणीय, मानने योग्य, वैदिक बोध वा वरना औषध] (विश्वभेषजः) समस्त भय जीतने वाला, (सहस्राक्षः) सहस्रो व्यवहार वाला, (हरितः) सिंह के [समान] (हिरण्ययः) तेजोमय है। (सः) वह (ते) तेरे (शत्रून्) शत्रुओ को (अधरान्) नीचे (पादयाति) गिरावे (पूर्वः) पहिले होकर तू (तान्) उन्हें (दभ्नुहि) दबा ले, (ये) जो (त्वा) तुझसे (द्विषन्ति) वैर करते हैं ॥ ३ ॥

अयं ते कृत्यां विततां पौरुषेयादयं भयात् ।

अयं त्वा सर्वस्मात् पापाद् वरणो वारयिष्यते ॥४॥

पदार्थ—(अयम् अयम्) यही [वरण] (ते) तेरे लिये (विततम्) फैली हुई (कृत्याम्) हिंसा को (पौरुषेयात्) मनुष्य से किये हुए (भयात्) भय से, और (अयम्) यह (वरणः) वरण [वैदिक बोध वा वरना औषध ही] (त्वा) तुझ को (सर्वस्मात्) सब (पापात्) पाप से (वारयिष्यते) रोकेगा ॥ ४ ॥

वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः ।

यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन् ॥५॥

पदार्थ—(अयम्) यह (देवः) दिव्य गुणवाला (वनस्पतिः) सेवनीय गुणो का रक्षक (वरणः) वरण [वैदिक बोध वा वरना औषध] [उस राजरोग को] (वारयातै) हटावे (यः) जो (यक्ष्मः) राजरोग (अस्मिन्) इस [पुरुष] मे (आविष्टः) प्रवेश कर गया है, (तम्) उस को (उ) निश्चय करके (देवाः) व्यवहार जानने वाले विद्वानों ने (अवीवरन्) हटाया है ॥ ५ ॥

स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यासि पापं मृगः सृतिं यति धावादजुष्टाम् ।

परिक्षवाच्छकुनेः पापवादादयं मणिर्वरणो वारयिष्यते ॥६॥

पदार्थ—(यदि) जो तू (सुप्त्वा) सोकर (पापम्) बुरे (स्वप्नम्) स्वप्न को (पश्यासि) देखे, (यति=यदि) जो (मृगः) बनैला पशु (अजुष्टाम्) अप्रिय (सृतिम्) मार्ग मे (धावात्) दौड़े। (शकुनेः) पक्षी [गिद्ध वा चील] के (परिक्षवात्) नाक की फुरफुराहट से और (पापवादात्) [मुख के] कठोर शब्द से (अयम्) यह (मणिः) प्रशंसनीय (वरणः) वरण [स्वीकार करने-योग्य वैदिक बोध वा वरना औषध] (वारयिष्यते) रोकेगा ॥ ६ ॥

अरात्यास्त्वा निर्ऋत्या अभिचारादथो भयात् ।

मृत्योरोजीयसो वधाद् वरणो वारयिष्यते ॥७॥

पदार्थ—(वरणः) वरण [स्वीकार करने योग्य वैदिक बोध वा वरना औषध] (त्वा) तुझ को (अरात्याः) कंजूसी से (निर्ऋत्याः) महामारी से, (अभिचारात्) विरुद्ध आचरण से, (भयात्) भय से, (मृत्योः) मृत्यु [आलस्य आदि] से (अथो) और (ओजीयसः) अधिक बलवान् के (वधात्) वज्र से (वारयिष्यते) रोकेगा ॥ ७ ॥

यन्मे माता यन्मे पिता भ्रातरो यच्च मे स्वा यदेनश्चकृमा वयम् ।

ततो नो वारयिष्यतेऽयं देवो वनस्पतिः ॥८॥

पदार्थ—(यत्) जो कुछ (एनः) पाप (मे माता) मेरी माता ने (यत्) जो कुछ (मे पिता) मेरे पिता ने, (यत्) जो कुछ (मे भ्रातरः) मेरे भाइयो ने (च) और (स्वाः) ज्ञाति वालो ने और (यत्) जो कुछ (वयम्) हमने (चकृम) किया है (ततः) उस से (नः) हमको (अयम्) यह (देवः) दिव्य गुण वाला (वनस्पतिः) सेवनीय गुणो का रक्षक [पदार्थ] (वारयिष्यते) बचावेगा ॥ ८ ॥

वरणेन प्रव्यथिता भ्रातृव्या मे सबन्धवः ।

असूर्तं रजो अप्यगुस्ते यन्त्वधमं तमः ॥९॥

पदार्थ—(वरणेन) वरण [स्वीकार करने योग्य वैदिक बोध वा वरना औषध] द्वारा (प्रव्यथिताः) पीड़ित किये गये (मे) मेरे (भ्रातृव्याः) वैरी लोग (सबन्धवः) अपने बन्धुओं सहित (असूर्तम्) न आने योग्य (रजः) लोक [देश] मे (अपि) ही (अगुः) गये हैं। (ते) वे लोग (अधमम्) अति नीचे (तमः) अन्धकार मे (यन्तु) जावें ॥ ९ ॥

अरिष्टोऽहमरिष्टगुरायुष्मान्त्सर्वपूरुषः ।

तं मायं वरणो मणिः परि पातु दिशोदिशः ॥१०॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (अरिष्टः) न हारा हुआ, (अरिष्टगुः) न हारी हुई विद्या वाला, (आयुष्मान्) उत्तम जीवनवाला और (सर्वपूरुषः) सब पुरुषों वाला हूँ। (तम्) उस (मा) मुझ को (अयम्) यह (मणिः) प्रशंसनीय (वरणः) वरण [स्वीकार करने योग्य वैदिक बोध वा वरना औषध] (दिशोदिशः) दिशा दिशा से (परि पातु) सब प्रकार बचावे ॥ १० ॥

अयं मे वरण उरसि राजा देवो वनस्पतिः ।

स मे शत्रून् वि बाधतामिन्द्रो दस्यूनिवासुरान् ॥११॥

पदार्थ—(अयम्) यह (राजा) राजा, (देवः) दिव्य गुणवाला (वनस्पतिः) सेवनीय गुणो का रक्षक (वरणः) वरण [स्वीकार करने योग्य वैदिक बोध वा वरना औषध] (मे) मेरे (उरसि) हृदय में है। (सः) वह (मे) मेरे (शत्रून्) शत्रुओ को (वि बाधताम्) हटा देवे, (इव) जैसे (इन्द्रः) इन्द्र [बड़ा ऐश्वर्यवान् पुरुष] (असुरान्) सज्जनो के विरोधी (दस्यून्) डाकुओं को [हटाता है] ॥ ११ ॥

इमं बिभर्मि वरणमायुष्माञ्छतशारदः ।
स मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशूनोजश्च मे दधत् ॥१२॥

पदार्थ—(आयुष्मान्) उत्तम जीवनवाला, (शतशारदः) सौ वर्ष जीवन वाला (इमम्) इस (वरणम्) वरण [स्वीकार करनेयोग्य वैदिक बोध वा वरना औषध] को (बिभर्मि) धारण करता हूँ। (सः) वह (मे) मेरे (राष्ट्रम्) राज्य (च) और (क्षत्रम्) क्षत्रिय धर्म को (च) और (पशून्) पशुओं (च) और (मे) मेरे (ओजः) बल को (दधत्) पुष्ट करे ॥ १२ ॥

यथा वातो वनस्पतीन् वृक्षान् भनक्त्योजसा । एवा सपत्नान् मे भङ्ग्धि पूर्वान् जाताँ उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥१३॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (वातः) वायु (वनस्पतीन्) वनस्पतियों [बिना फूल-फल देनेवाले पीपल आदि] और (वृक्षान्) वृक्षों को (ओजसा) बल से (भनक्ति) तोड़ता है। (एव) वैसे ही (मे) मेरे (सपत्नान्) शत्रुओं को (भङ्ग्धि) तोड़ डाल, (पूर्वान्) पहिले (जातान्) उत्पन्नों (उत) और (अपरान्) पिछलों को। (वरणः) वरण [स्वीकार करनेयोग्य वैदिक बोध वा वरना औषध] (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे ॥१३॥

यथा वातश्चाग्निश्च वृक्षान् प्सातो वनस्पतीन् । एवा सपत्नान् मे प्साहि पूर्वान् जाताँ उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥१४॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (वातः) वायु (च च) और (अग्निः) अग्नि (वृक्षान्) वृक्षों और (वनस्पतीन्) वनस्पतियों को (प्सातः) खाते हैं। (एव) वैसे ही (मे) मेरे (सपत्नान्) शत्रुओं को (प्साहि) खा ले, (पूर्वान्) पहिले (जातान्) उत्पन्नों (उत) और (अपरान्) पिछलों को (वरणः) वरण [स्वीकार करनेयोग्य वैदिक बोध वा वरना औषध] (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे ॥ १४ ॥

यथा वातेन प्रक्षीणा वृक्षाः शेरे न्यर्पिताः । एवा सपत्नांस्त्वं मम प्र क्षिणीहि न्यर्पय पूर्वान् जाताँ उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥१५॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (वातेन) वायु से (प्रक्षीणाः) नष्ट कर दिये गये और (न्यर्पिताः) झुकाये हुए (वृक्षाः) वृक्ष (शेरे=शेरते) सो जाते हैं। (एव) वैसे ही (मम) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (त्वम्) तू (प्र क्षिणीहि) नाश कर दे और (नि अर्पय) झुका दे, (पूर्वान्) पहिले (जातान्) उत्पन्नों (उत) और (अपरान्) पिछलों को। (वरणः) वरण [स्वीकार करनेयोग्य वैदिक बोध वा वरना औषध] (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे ॥ १५ ॥

तांस्त्वं प्र छिन्द्धि वरण पुरा दिष्टात् पुरायुषः ।
य एनं पशुषु दिप्सन्ति ये चास्य राष्ट्रदिप्सवः ॥१६॥

पदार्थ—(वरण) हे वरण ! [स्वीकार करनेयोग्य वैदिक बोध वा वरना औषध] (त्वम्) तू (तान्) उन [शत्रुओं] को (दिष्टात्) नियुक्त [प्राण] से (पुरा) पहिले और (आयुषः) आयु [के अस्त] से (पुरा) पहिले (प्र छिन्द्धि) काट डाल। (ये) जो (एनम्) इस [पुरुष] को (पशुषु) पशुओं के निमित्त (दिप्सन्ति) मार डालना चाहते हैं (च) और (ये) जो (अस्य) इसके (राष्ट्रदिप्सवः) राज्य के हानिकारक हैं ॥ १६ ॥

यथा सूर्यो अतिभाति यथास्मिन् तेज आहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१७॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (सूर्यः) सूर्य (अतिभाति) बड़े प्रताप से चमकता है और (यथा) जैसे (अस्मिन्) इस [सूर्य] में (तेजः) तेज (आहितम्) स्थापित है। (एव) वैसे ही (मे) मेरे लिये (मणिः) श्रेष्ठ (वरणः) वरण [स्वीकार करनेयोग्य वैदिक बोध वा वरना औषध] (कीर्तिम्) कीर्ति और (भूतिम्) विभूति [ऐश्वर्य, सम्पत्ति] को (नि यच्छतु) दृढ़ करे, (तेजसा) तेज के साथ (मा) मुझे (सम्) यथावत् (उक्षतु) बढ़ावे और (यशसा) यश के साथ (मा) मुझे (सम्) यथावत् (अनक्तु) प्रकाशित करे ॥ १७ ॥

यथा यशश्चन्द्रमस्यादित्ये च नृचक्षसि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१८॥

पदार्थ—(यथा) जैसा (यशः) यश (चन्द्रमसि) चन्द्रमा में (च) और (नृचक्षसि) मनुष्यों को देखने वाले (आदित्ये) सूर्य में है। (एव) वैसे ही (मे) मेरे लिये (मणिः) श्रेष्ठ (वरणः) वरण [स्वीकार करनेयोग्य वैदिक बोध वा वरना औषध] (कीर्तिम्) कीर्ति और (भूतिम्) विभूति [ऐश्वर्य, सम्पत्ति] को (नि यच्छतु) दृढ़ करे, (तेजसा) तेज के साथ (मा) मुझे (सम्) यथावत् (उक्षतु) बढ़ावे और (यशसा) यश के साथ (मा) मुझे (सम्) यथावत् (अनक्तु) प्रकाशित करे ॥ १८ ॥

यथा यशः पृथिव्यां यथास्मिन् जातवेदसि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१९॥

पदार्थ—(यथा) जैसा (यशः) यश (पृथिव्याम्) पृथिवी में और (यथा) जैसा (अस्मिन्) इस (जातवेदसि) उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान [अग्नि] में है। (एव) वैसे ही (मे) मेरे लिये (मणिः) श्रेष्ठ (वरणः) वरण [स्वीकार करनेयोग्य वैदिक बोध वा वरना औषध] (कीर्तिम्) कीर्ति और (भूतिम्) विभूति [ऐश्वर्य, सम्पत्ति] को (नि यच्छतु) दृढ़ करे, (तेजसा) तेज के साथ (मा) मुझे (सम्) यथावत् (उक्षतु) बढ़ावे और (यशसा) यश के साथ (मा) मुझे (सम्) यथावत् (अनक्तु) प्रकाशित करे ॥ १९ ॥

यथा यशः कन्यायां यथास्मिन्त्संभृते रथे ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२०॥

पदार्थ—(यथा) जैसा (यशः) यश (कन्यायाम्) कामनायोग्य [कन्या] में और (यथा) जैसा (अस्मिन्) इस (संभृते) सुन्दर बने (रथे) रथ में है। (एव) वैसे ही (मे) मेरे लिये (मणिः) श्रेष्ठ (वरणः) वरण [स्वीकार करनेयोग्य, वैदिक बोध वा वरना औषध] (कीर्तिम्) कीर्ति और (भूतिम्) विभूति [ऐश्वर्य, सम्पत्ति] को (नि यच्छतु) दृढ़ करे, (तेजसा) तेज के साथ (मा) मुझे (सम्) यथावत् (उक्षतु) बढ़ावे और (यशसा) यश के साथ (मा) मुझे (सम्) यथावत् (अनक्तु) प्रकाशित करे ॥ २० ॥

यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२१॥

पदार्थ—(यथा) जैसा (यशः) यश (सोमपीथे) सोमरस पीने में और (यथा) जैसा (यशः) यश (मधुपर्के) मधुपर्क [मधु, दही, घी, जल और शर्करा के पञ्चमेल वा पञ्चामृत] में है। (एव) वैसे ही (मे) मेरे लिये (मणिः) श्रेष्ठ (वरणः) वरण [स्वीकार करनेयोग्य, वैदिक बोध वा वरना औषध] (कीर्तिम्) कीर्ति और (भूतिम्) विभूति [ऐश्वर्य, सम्पत्ति] को (नि यच्छतु) दृढ़ करे, (तेजसा) तेज के साथ (मा) मुझे (सम्) यथावत् (उक्षतु) बढ़ावे और (यशसा) यश के साथ (मा) मुझे (सम्) यथावत् (अनक्तु) प्रकाशित करे ॥ २१ ॥

यथा यशोऽग्निहोत्रे वषट्कारे यथा यशः ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२२॥

पदार्थ—(यथा) जैसा (यशः) यश (अग्निहोत्रे) अग्निहोत्र [अग्नि में सुगन्धित द्रव्य चढ़ाने वा अग्नि का शिल्प विद्या में प्रयोग करने] में और (यथा) जैसा (यशः) यश (वषट्कारे) दान कर्म में है। (एव) वैसे ही (मे) मेरे लिये (मणिः) श्रेष्ठ (वरणः) वरण [स्वीकार करनेयोग्य वैदिक बोध वा वरना औषध] (कीर्तिम्) कीर्ति और (भूतिम्) विभूति [ऐश्वर्य, सम्पत्ति] को (नि यच्छतु) दृढ़ करे, (तेजसा) तेज के साथ (मा) मुझे (सम्) यथावत् (उक्षतु) बढ़ावे और (यशसा) यश के साथ (मा) मुझे (सम्) यथावत् (अनक्तु) प्रकाशित करे ॥ २२ ॥

यथा यशो यजमाने यथास्मिन् यज्ञ आहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२३॥

पदार्थ—(यथा) जैसा (यशः) यश (यजमाने) यजमान [देवपूजक, सङ्गतिकारक और दानी] में और (यथा) जैसा [यश] (अस्मिन्) इस (यज्ञे) यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण और दान] में (आहितम्) स्थापित है। (एव) वैसे ही (मे) मेरे लिये (मणिः) श्रेष्ठ (वरणः) वरण [स्वीकार करनेयोग्य, वैदिक बोध वा वरना औषध] (कीर्तिम्) कीर्ति और (भूतिम्) विभूति [ऐश्वर्य, सम्पत्ति] को (नि यच्छतु) दृढ़ करे, (तेजसा) तेज के साथ (मा) मुझे (सम्) यथावत् (उक्षतु) बढ़ावे और (यशसा) यश के साथ (मा) मुझे (सम्) यथावत् (अनक्तु) प्रकाशित करे ॥ २३ ॥

यथा यशः प्रजापतौ यथास्मिन् परमेष्ठिनि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२४॥

पदार्थ—(यथा) जैसा (यशः) यश (प्रजापतौ) प्रजापालक [राजा] में और (यथा) जैसा [यश] (अस्मिन्) इस (परमेष्ठिनि) सब से ऊंची स्थिति वाले [परमात्मा] मे है । (एव) वैसे ही (मे) मेरे लिये (मणिः) श्रेष्ठ (वरणः) वरण [स्वीकार करनेयोग्य, वैदिक बोध वा वरना औषध] (कीर्तिम्) कीर्ति और (भूतिम्) विभूति [ऐश्वर्य, सम्पत्ति] को (नि यच्छतु) दृढ़ करे, (तेजसा) तेज के साथ (मा) मुझे (सम्) यथावत् (उक्षतु) बढ़ावे और (यशसा) यश के साथ (मा) मुझे (सम्) यथावत् (अनक्तु) प्रकाशित करे ॥ २४ ॥

यथा देवेष्वमृतं यथैषु सत्यमाहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२५॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (देवेषु) विजय चाहनेवालो मे (अमृतम्) अमरपन [पुरुषार्थ] और (यथा) जैसा (एषु) इनमें (सत्यम्) सत्य (आहितम्) स्थापित है । (एव) वैसे ही (मे) मेरे लिये (मणिः) श्रेष्ठ (वरणः) वरण [स्वीकार करनेयोग्य वैदिक बोध वा वरना औषध] (कीर्तिम्) कीर्ति और (भूतिम्) विभूति [ऐश्वर्य, सम्पत्ति] को (नि यच्छतु) दृढ़ करे, (तेजसा) तेज के साथ (मा) मुझे (सम्) यथावत् (उक्षतु) बढ़ावे और (यशसा) यश के साथ (मा) मुझे (सम्) यथावत् (अनक्तु) प्रकाशित करे ॥ २५ ॥

卐 सूक्तम् ॥४॥ 卐

१—२६ गरुत्मान् । तक्षक । अनुष्टुप्, १ पथ्यापङ्क्ति, २ त्रिपदा यवमध्या गायत्री, ३—४ पथ्याबृहती, ८ उष्णिग्गर्भा परा त्रिष्टुप्, १२ भुरिग्गायत्री, १६ त्रिपदा प्रतिष्ठा गायत्री, २१ककुम्मति, २३ त्रिष्टुप्, २६ त्र्यवसाना षट्पदा बृहतीगर्भा ककुम्मती भुरिक् त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य प्रथमो रथो देवानामपरो रथो वरुणस्य तृतीय इत् ।
अहीनामपमा रथः स्थाणुमारदथार्षत् ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रस्य) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले राजा] का (प्रथम) पहिला (रथ) रथ है, (देवानाम्) विजयी [शूर मन्त्रियो] का (अपर) दूसरा (रथ) रथ, और (वरुणस्य) वरुण [श्रेष्ठ वैद्य] का (तृतीयः) तीसरा (इत्) ही है (अहीनाम्) महाहिंसक [सांपो] का (अपमा) खोटा (रथ) रथ (स्थाणुम्) ठूठ [सूखे पेड़] पर (आरत्) पहुँचा है, (अथ) अब (अर्षत्) वह चला जावे ॥ १ ॥

दर्भः शोचिस्तरूणकमश्वस्य वारः परुषस्य वारः ।
रथस्य बन्धुरम् ॥२॥

पदार्थ—(दर्भ) दाभ घास [सर्पों का] (शोचि) प्रकाश, (तरूणकम्) छोटी नवीन [दाभ] [उनके] (अश्वस्य) घोड़े की (वार) पूंछ (परुषस्य) कड़े [दाभ] की (वार) पूंछ [सिरा] [उनके] (रथस्य) रथ की (बन्धुरम्) बैठक है ॥ २ ॥

अव श्वेत पदा जहि पूर्वेण चापरेण च ।
उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम् ॥३॥

पदार्थ—(श्वेत) हे प्रबुद्ध [मनुष्य !] तू (पूर्वेण) अगले (च च) और (अपरेण) पिछले (पदा) पाद [पैर की चोट] से (अव जहि) मार डाल । (उदप्लुतम्) जल में बही हुई (दारु इव) लकड़ी के समान (अहीनाम्) सर्पों का (उग्रम्) क्रूर (वा) जल [अर्थात्] (विषम्) विष (अरसम्) नीरस होवे ॥ ३ ॥

अरंघुषो निमज्योन्मज्य पुनरब्रवीत् ।
उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम् ॥४॥

पदार्थ—(अरंघुष) पूरी घोषणा करने वाले [पुरुष] ने (निमज्य) डुबकी लगाकर और (उन्मज्य) उछल कर (पुन) फिर (अब्रवीत्) कहा । "(उदप्लुतम्) जल मे बही हुई (दारु इव) लकड़ी के समान (अहीनाम्) सर्पों का (उग्रम) क्रूर (वा.) जल [अर्थात्] (विषम्) विष (अरसम्) नीरस [होवे]" ॥ ४ ॥

पैद्वो हन्ति कसर्णीलं पैद्वः श्वित्रमुतासितम् ।
पैद्वो रथर्व्याः शिरः सं बिभेद पृदाक्वाः ॥५॥

पदार्थ—(पैद्व.) शीघ्रगामी [पुरुष] (कसर्णीलम्) बुरे मार्ग मे छिपे हुए और (पैद्व·) शीघ्रगामी ही (श्वित्रम्) श्वेत (उत) और (असितम्) काले [सांप] को (हन्ति) मारता है । (पैद्व) शीघ्रगामी ने (रथर्व्या.) दौड़ती हुई (पृदाक्वाः) फुसकारती हुई [सांपिनी] का (शिर) शिर (सम् बिभेद) तोड़ डाला था ॥ ५ ॥

पैद्व प्रेहि प्रथमोऽनु त्वा वयमेमसि ।
अहीन् व्यस्यतात् पथो येन स्मा वयमेमसि ॥६॥

पदार्थ—(पैद्व) हे शीघ्रगामी [पुरुष] (प्रथमः) आगे होकर (प्र इहि) बढ़ा चल, (त्वा अनु) तेरे पीछे-पीछे (वयम्) हम (आ ईमसि) आते हैं । (अहीन्) महाहिंसक [सांपो] को (पथ) उस मार्ग से (वि अस्यतात्) मार गिरा (येन) जिस से (वयम्) हम (स्म) ही (आ—ईमसि) आते हैं ॥ ६ ॥

इदं पैद्वो अजायतेदमस्य परायणम् ।
इमान्यर्वतः पदाहिघ्न्यो वाजिनीवतः ॥७॥

पदार्थ—(इदम्) अब (पैद्व) शीघ्रगामी पुरुष (अजायत) प्रकट हुआ है, (इदम्) यह (अस्य) इसका (परायणम्) पराक्रम का मार्ग है । (अर्वत) शीघ्रगामी (अहिघ्न्य) महाहिंसक [सांपो] के मारनेवाले (वाजिनीवतः) अन्नयुक्त क्रियावाले [पुरुष] के (इमानि) ये (पदा) पदचिह्न हैं ॥ ७ ॥

संयतं न वि ष्परद् व्यात्तं न सं यमत् ।
अस्मिन् क्षेत्रे द्वावही स्त्री च पुमांश्च तावुभावरसा ॥८॥

पदार्थ—वह [साप] (संयतम्) मुंदे हुए मुख को (न) न (वि स्परत्) खोले और (व्यात्तम्) खुले मुख को (न) न (सम् यमत्) मूंदे । (अस्मिन्) इस (क्षेत्रे) खेत [संसार] मे (द्वौ) दो (अही) महाहिंसक [साप] (स्त्री) स्त्री (च च) और (पुमान्) नर हैं, (तौ) वे (उभौ) दोनों (अरसा) नीरस [हो जावें] ॥ ८ ॥

अरसास इहाहयो ये अन्ति ये च दूरके ।
घनेन हन्मि वृश्चिकमहिं दण्डेनागतम् ॥९॥

पदार्थ—(इह) यहा पर (अहय) महाहिंसक [सांप] (अरसासः) नीरस हो, (ये) जो (अन्ति) पास (च) और (ये) जो (दूरके) दूर हैं । (आगतम्) आये हुये (वृश्चिकम्) डंक मारने वाले बिच्छू और (अहिम्) महाहिंसक [सांप] को (घनेन) मोटे वा मोगरे से और (दण्डेन) दण्डे से (हन्मि) मैं मारता हूँ ॥ ९ ॥

अघाश्वस्येदं भेषजमुभयोः स्वजस्य च ।
इन्द्रो मेऽहिमघायन्तमहिं पैद्वो अरन्धयत् ॥१०॥

पदार्थ—(उभयो) दोनो, (अघाश्वस्य) अघाश्व [कष्ट फैलाने वाले सर्प विशेष] का (च) और (स्वजस्य) स्वज [लिपट जाने वाले सर्पविशेष] का (इदम्) यह (भेषजम्) औषध है । (इन्द्र.) बड़े ऐश्वर्यवाले (पैद्व.) शीघ्रगामी [पुरुष] ने (मे) मेरे लिये (अघायन्तम्) बुरा चीतनेवाले (अहिम्) महाहिंसक (अहिम्) सांप को (अरन्धयत्) मारा है ॥ १० ॥

पैद्वस्य मन्महे वयं स्थिरस्य स्थिरधाम्नः ।
इमे पश्चा पृदाकवः प्रदीध्यत आसते ॥११॥

पदार्थ—(स्थिरस्य) स्थिर स्वभाववाले (स्थिरधाम्न) स्थिर तेजवाले (पैद्वस्य) शीघ्रगामी [पुरुष] का (वयम्) हम (मन्महे) चिन्तन करते हैं । (इमे) ये (प्रदीध्यतः) क्रीड़ा करते हुए (पृदाकवः) फुसकारने वाले [सांप] (पश्चा) पीछे (आसते) बैठते हैं ॥ ११ ॥

नष्टासवो नष्टविषा हता इन्द्रेण वज्रिणा ।
जघानेन्द्रो जघ्निमा वयम् ॥१२॥

पदार्थ—(वज्रिणा) वज्रधारी (इन्द्रेण) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले मनुष्य] द्वारा (हता) मारे गये [सांप] (नष्टासव) प्राणों से नष्ट और (नष्टविषाः) विष से नष्ट [होवें] । (इन्द्र) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] ने [सांपों को] (जघान) मारा था, और (वयम्) हम ने (जघ्निम) मारा था ॥ १२ ॥

हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ।
दर्विं करिक्रतं श्वित्रं दर्भेष्वसितं जहि ॥१३॥

पदार्थ—(तिरश्चिराजयः) तिरछी धारीवाले (पृदाकव) फुंसकारने

वाले [सांप] (हताः) मार डाले गये और (निपिष्टासः) कुचल डाले गये [हों] । (वर्षेषु) दाभों में (करिक्रतम्) बड़ा करने वाले, (श्वित्रम्) श्वेत और (असितम्) काले [सांप] को (अहिं) मार डाल ॥१३॥

कैरातिका कुमारिका सका खनति भेषजम् ।

हिरण्ययीभिरभ्रिभिर्गिरीणामुप सानुषु ॥१४॥

पदार्थ—(सका) वह [प्रसिद्ध] (कैरातिका) चिरायता और (कुमारिका) कुवारपाठा, (भेषजम्) औषधि (हिरण्ययीभिः) तेजोमयी [चमकीली, उजली] (अभ्रिभिः) खुरपियों से (गिरीणाम्) पहाड़ों की (सानुषु उप) समभूमियों के ऊपर (खनति=खन्यते) खोदी जाती है ॥ १४ ॥

आयमगन् युवा भिषक् पृश्निहापराजितः ।

स वै स्वजस्य जम्भन उभयोर्वृश्चिकस्य च ॥१५॥

पदार्थ—(अयम्) यह (युवा) युवा (पृश्निहा) स्पर्श करनेवाले [सर्प] का नाश करनेवाला, (अपराजितः) न हारा हुआ (भिषक्) वैद्य (आ अगन्) आया है । (सः) वह (वै) निश्चय करके (उभयोः) दोनों (स्वजस्य) स्वज [लिपट जाने वाले सर्प विशेष] (च) और (वृश्चिकस्य) डंक मारने वाले बिच्छू का (जम्भनः) नाश करनेवाला है ॥ १५ ॥

इन्द्रो मेऽहिमरन्धयन्मित्रश्च वरुणश्च । वातापर्जन्योभा ॥१६॥

पदार्थ—(मित्रः) सूर्य [के समान] (च च) और (वरुणः) जल [के समान] और (उभा) दोनों (वातापर्जन्या) वायु और मेघ [के समान गुण वाले] (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्यवान पुरुष ने (मे) मेरे लिये (अहिम्) महाहिंसक [सर्प] को (अरन्धयत्) मारा है ॥ १६ ॥

इन्द्रो मेऽहिमरन्धयत् पृदाकुं च पृदाक्वम् ।

स्वजं तिरश्चिराजिं कसर्णीलं दशोनसिम् ॥१७॥

पदार्थ—(इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्यवान पुरुष ने (मे) मेरे लिये (पृदाकुम्) फुसकारने वाले (अहिम्) सांप (च) और (पृदाक्वम्) फुसकारती हुई सांपिन को, (स्वजम्) स्वज [लिपट जानेवाले] (तिरश्चिराजिम्) तिरछी धारावाले, (कसर्णीलम्) बुरे मार्ग में छिपे हुए और (दशोनसिम्) काटकर हानि पहुँचाने वाले [सांप] को (अरन्धयत्) नाश किया है ॥ १७ ॥

इन्द्रो जघान प्रथमं जनितारमहे तव ।

तेषामु तृह्यमाणानां कः स्वित् तेषामसद् रसः ॥१८॥

पदार्थ—(अहे) हे महाहिंसक [सांप !] (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्यवान् पुरुष ने (तव) तेरे (जनितारम्) जन्मदाता को (प्रथमम्) पहिले (जघान) मारा था । (तेषाम् तेषाम्) उन्हीं (तृह्यमाणानाम्) छिदे हुओं का (उ) ही (कः स्वित्) कौनसा (रसः) रस [पराक्रम] (असत्) होवे ॥ १८ ॥

सं हि शीर्षाण्यग्रभं पौञ्जिष्ठ इव कर्वरम् ।

सिन्धोर्मध्यं परेत्य व्यनिजमहेर्विषम् ॥१९॥

पदार्थ—(हि) क्योंकि [सांपों के] (शीर्षाणि) शिरों को (सम् अग्रभम्) मैंने पकड़ लिया है, (पौञ्जिष्ठः इव) जैसे महा ओजस्वी पुरुष (कर्वरम्) व्याघ्र को [पकड़ लेता है] । (सिन्धोः) नदी के (मध्यम्) मध्य में (परेत्य) दूर जाकर (अहेः) महाहिंसक [सांप] के (विषम्) विष को (वि अनिजम्) मैंने धो डाला है ॥ १९ ॥

अहीनां सर्वेषां विषं परा वहन्तु सिन्धवः ।

हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ॥२०॥

पदार्थ—(सिन्धवः) नदियां (सर्वेषाम्) सब (अहीनाम्) महाहिंसक [सांपों] के (विषम्) विष को (परा वहन्तु) दूर बहा ले जावें (तिरश्चिराजयः) तिरछी धारीवाले, (पृदाकवः) फुंसकारने वाले सांप (हताः) मार डाले गये और (निपिष्टासः) कुचल डाले गये [हों] ॥ २० ॥

ओषधीनामहं वृण उर्वरीरिव साधुया ।

नयाम्यर्वतीरिवाहे निरैतु ते विषम् ॥२१॥

पदार्थ—(ओषधीनाम्) ओषधियों में से (उर्वरीः इव) बड़ों को मिलने योग्य [ओषधियों] को (साधुया) योग्यता से (अहम्) मैं (वृणे) अङ्गीकार करता हूं । और (अर्वतीः इव) बड़ी बुद्धिमती [स्त्रियों] के समान (नयामि) मैं लाता हूं, (अहे) हे महाहिंसक [सांप !] (ते विषम्) तेरा विष (निः एतु) निकल जावे ॥ २१ ॥

यदग्नौ सूर्ये विषं पृथिव्यामोषधीषु यत् ।

कान्दाविषं कनक्नकं निरैत्वैतु ते विषम् ॥२२॥

पदार्थ—[हे सर्प !] (यत् विषम्) जो विष (अग्नौ) अग्नि में (सूर्ये) सूर्य में, (पृथिव्याम्) पृथिवी में, और (यत्) जो (ओषधीषु) ओषधियों [अन्न आदि पदार्थों] में है । (कान्दाविषम्) मेघ में उत्पन्न [ओषधियों] में व्यापक, (कनक्नकम्) गति [उद्योग] नाशक (ते विषम्) तेरा विष (निः एतु) निकल आवे (आ एतु) [निकल] आवे ॥ २२ ॥

ये अग्निजा ओषधिजा अहीनां ये अप्सुजा विद्युत आबभूवुः ।

येषां जातानि बहुधा महान्ति तेभ्यः सर्पेभ्यो नमसा विधेम ॥२३॥

पदार्थ—(अहीनाम्) सर्पों में से (ये) जो (अग्निजाः) अग्नि में उत्पन्न, (ओषधिजाः) ओषधियों [अन्न आदि] में उत्पन्न, (ये) जो (अप्सुजाः) जल में उत्पन्न होकर (विद्युतः) बिजुलियों [के समान] (आबभूवुः) सब ओर हुए हैं । (येषाम्) जिनके (जातानि) समूह (बहुधा) बहुधा [नाना प्रकार से] (महान्ति) बड़े-बड़े हैं, (तेभ्यः सर्पेभ्यः) उन सर्पों के [नाश के] लिये (नमसा) वज्र से (विधेम) हम शासन करें ॥ २३ ॥

तौदी नामासि कन्या घृताची नाम वा असि ।

अधस्पदेन ते पदमा ददे विषदूषणम् ॥२४॥

पदार्थ—(तौदी) वृद्धि [धनवृद्धि] वाली (कन्या) कामनायोग्य [कन्या अर्थात् कुमारपाठा] (नाम) नाम वाली (असि) तू है, (घृताची) घृत [के समान रस] पहुँचाने वाली (नाम) नाम वाली (वै) ही (असि) तू है । (अधस्पदेन) [मनु के] नीचे पद के कारण (ते) तेरे (विषदूषणम्) विषखण्डक (पदम्) पद को (आ ददे) मैं ग्रहण करता हूं ॥ २४ ॥

अङ्गादङ्गात् प्र च्यावय हृदयं परि वर्जय ।

अधा विषस्य यत् तेजोऽवाचीनं तदेतु ते ॥२५॥

पदार्थ – [हे ओषधि !] (अङ्गादङ्गात्) अङ्ग-अङ्ग से [विष को] (प्र च्यावय) सरका दे और (हृदयम्) हृदय को [उस से] (परि वर्जय) त्याग करा दे । (अध) फिर (विषस्य) विष का (यत् तेजः) जो तेज [प्रचण्डता] है, (तत्) वह (ते) तेरे लिये (अवाचीनम्) नीचे (एतु) जावे ॥ २५ ॥

आरे अभूद् विषमरौद् विषे विषमप्रागपि ।

अग्निर्विषमहेर्निरधात् सोमो निरणयीत् ।

दंष्टारमन्वगाद् विषमहिरमृत ॥२६॥

पदार्थ—वह [विष] (आरे) दूर (अभूत्) हुआ है, [क्योंकि] उस [वैद्य] ने (विषम्) विष को (अरौत्) रोक दिया है, और (विषे) विष में (विषम्) विष को (अपि) भी (अप्राक्) मिला दिया है । (सोमः) ऐश्वर्यवान् (अग्निः) ज्ञानी [पुरुष] ने (अहेः) महाहिंसक [सांप के] (विषम्) विष को (निः अधात्) निकाल लिया है और (निः अनयीत्) बाहिर पहुँचा दिया है । (विषम्) विष (दंष्टारम् अनु) काटने वाले के साथ (अगात्) गया है और (अहिः) सांप (अमृत) मर गया है ॥ २६ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

卐

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ५ 卐

[१] १—२४ सिन्धुद्वीप । आप, चन्द्रमा । अनुष्टुप्, १—५ त्रिपदा पुरोऽभिकृतिककुम्मतीगर्भा पङ्क्तिः, ६ चतुष्पदा जगतीगर्भा जगती, ७—१४ त्र्यवसाना पञ्चपदा विपरीतपादलक्ष्मा बृहती (११, १४ पथ्यापंक्तिः), १५—२१ चतुरवसाना दशपदा त्रैष्टुभगर्भातिधृति (१९, २० कृति, २४ त्रिपदा विराड् गायत्री) ।

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थ

स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ । जिष्णवे योगाय ब्रह्मयोगैर्वो युनज्मि ॥१॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] तुम (इन्द्रस्य) आत्मा के (ओजः) पराक्रम (स्थ) हो, (इन्द्रस्य) आत्मा के (सहः) पुरुषार्थ (स्थ) हो, (इन्द्रस्य) आत्मा के (बलम्) बल (स्थ) हो, (इन्द्रस्य) आत्मा की (वीर्यम्) वीरता (स्थ) हो । (इन्द्रस्य) आत्मा की (नृम्णम्) शूरता (स्थ) हो । (जिष्णवे)

विजयी (योगाय) संयोग के लिये (ब्रह्मयोगैः) ब्रह्मयोगों [परमात्मा के ध्यानों] से (वः) तुम को (युनज्मि) मैं जोड़ता हूँ ॥ १ ॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं१

स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ । जिष्णवे योगाय क्षत्रयोगैर्वो युनज्मि ॥२॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] तुम (इन्द्रस्य) आत्मा के (ओजः) पराक्रम (स्थ) हो, (इन्द्रस्य) आत्मा के (सहः) पुरुषार्थ (स्थ) हो, (इन्द्रस्य) आत्मा के (बलम्) बल (स्थ) हो, (इन्द्रस्य) आत्मा की (वीर्यम्) वीरता (स्थ) हो। (इन्द्रस्य) आत्मा की (नृम्णम्) शूरता (स्थ) हो। (जिष्णवे) विजयी (योगाय) संयोग के लिये (क्षत्रयोगैः) राज्य के ध्यानों से (वः) तुमको (युनज्मि) मैं जोड़ता हूँ ॥ २ ॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं१

स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ । जिष्णवे योगायेन्द्रयोगैर्वो युनज्मि ॥३॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] तुम (इन्द्रस्य) आत्मा के (ओजः) पराक्रम (स्थ) हो, (इन्द्रस्य) आत्मा के (सहः) पुरुषार्थ (स्थ) हो, (इन्द्रस्य) आत्मा के (बलम्) बल (स्थ) हो (इन्द्रस्य) आत्मा की (वीर्यम्) वीरता (स्थ) हो। (इन्द्रस्य) आत्मा की (नृम्णम्) शूरता (स्थ) हो। (जिष्णवे) विजयी (योगाय) संयोग के लिये (इन्द्रयोगैः) आत्मा के ध्यानों से (वः) तुम को (युनज्मि) मैं जोड़ता हूँ ॥ ३ ॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं१

स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ । जिष्णवे योगाय सोमयोगैर्वो युनज्मि ॥४॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] तुम (इन्द्रस्य) आत्मा के (ओजः) पराक्रम (स्थ) हो, (इन्द्रस्य) आत्मा के (सहः) पुरुषार्थ (स्थ) हो (इन्द्रस्य) आत्मा के (बलम्) बल (स्थ) हो (इन्द्रस्य) आत्मा की (वीर्यम्) वीरता (स्थ) हो, (इन्द्रस्य) आत्मा की (नृम्णम्) शूरता (स्थ) हो। (जिष्णवे) विजयी (योगाय) संयोग के लिये (सोमयोगैः) ऐश्वर्य के ध्यानों से (वः) तुमको (युनज्मि) मैं जोड़ता हूँ ॥४॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं१

स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ । जिष्णवे योगायाप्सुयोगैर्वो युनज्मि ॥५॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] तुम (इन्द्रस्य) आत्मा के (ओजः) पराक्रम (स्थ) हो (इन्द्रस्य) आत्मा के (सहः) पुरुषार्थ (स्थ) हो, (इन्द्रस्य) आत्मा के (बलम्) बल (स्थ) हो, (इन्द्रस्य) आत्मा की (वीर्यम्) वीरता (स्थ) हो। (इन्द्रस्य) आत्मा की (नृम्णम्) शूरता (स्थ) हो। (जिष्णवे) विजयी (योगाय) संयोग के लिये (अप्सुयोगैः) प्राणों में ध्यान के साथ (वः) तुमको (युनज्मि) मैं जोड़ता हूँ ॥५॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं१स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ । जिष्णवे योगाय विश्वानि मा भूतान्युप तिष्ठन्तु युक्ता म आप स्थ ॥६॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] तुम (इन्द्रस्य) आत्मा के (ओजः) पराक्रम (स्थ) हो (इन्द्रस्य) आत्मा के (सहः) पुरुषार्थ (स्थ) हो, (इन्द्रस्य) आत्मा के (बलम्) बल (स्थ) हो, (इन्द्रस्य) आत्मा की (वीर्यम्) वीरता (स्थ) हो, (इन्द्रस्य) आत्मा की (नृम्णम्) शूरता (स्थ) हो। (जिष्णवे) विजयी (योगाय) संयोग के लिये (विश्वानि) सब (भूतानि) उत्पन्न प्राणी (मा) मुझे (उप तिष्ठन्तु) सेवें (आपः) हे सब विद्याओं में व्यापक विद्वानो ! तुम (मे) मेरे लिये (युक्ताः) योगाभ्यासी [पुरुष] (स्थ) हो ॥६॥

अग्नेर्भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।

प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥७॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] तुम (अग्नेः) अग्नि के (भाग) अंश (स्थ) हो [अर्थात् तेजस्वी हो]। (देवीः) हे उत्तम गुण वाली (आपः) विदुषी प्रजाओ ! (अपाम्) विद्वानों के बीच (अस्मासु) हम में (शुक्रम्) वीरता और (वर्चः) तेज (धत्त) धारण करो। (वः) तुमको (प्रजापतेः) प्रजापति [परमेश्वर] के (धाम्ना) धर्म [नियम] से (अस्मै) इस (लोकाय) लोक [के हित] के लिये (सादये) मैं बैठाता हूँ ॥७॥

इन्द्रस्य भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।

प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥८॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] तुम (इन्द्रस्य) सूर्य के (भाग) अंश (स्थ) हो [अर्थात् प्रतापी हो] (देवीः) हे उत्तम गुण वाली (आपः) विदुषी प्रजाओ ! (अपाम्) विद्वानों के बीच (अस्मासु) हम में (शुक्रम्) वीरता और (वर्चः) तेज (धत्त) धारण करो। (वः) तुमको (प्रजापतेः) प्रजापति [परमेश्वर] के (धाम्ना) धर्म [नियम] से (अस्मै) इस (लोकाय) लोक [के हित] के लिये (सादये) मैं बैठाता हूँ ॥८॥

सोमस्य भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।

प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥९॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] तुम (सोमस्य) चन्द्रमा के (भाग) अंश (स्थ) हो [अर्थात् शान्त स्वभाव हो] (देवीः) हे उत्तम गुण वाली (आपः) विदुषी प्रजाओ ! (अपाम्) विद्वानों के बीच (अस्मासु) हम में (शुक्रम्) वीरता और (वर्चः) तेज (धत्त) धारण करो। (वः) तुमको (प्रजापतेः) प्रजापति [परमेश्वर] के (धाम्ना) धर्म [नियम] से (अस्मै) इस (लोकाय) लोक [के हित] के लिये (सादये) मैं बैठाता हूँ ॥९॥

वरुणस्य भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।

प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥१०॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] तुम (वरुणस्य) जल के (भाग) अंश (स्थ) हो [अर्थात् गम्भीर स्वभाव हो] (देवीः) हे उत्तम गुणवाली (आपः) विदुषी प्रजाओ ! (अपाम्) विद्वानों के बीच (अस्मासु) हम में (शुक्रम्) वीरता और (वर्चः) तेज (धत्त) धारण करो। (वः) तुमको (प्रजापतेः) प्रजापति [परमेश्वर] के (धाम्ना) धर्म [नियम] से (अस्मै) इस (लोकाय) लोक [के हित] के लिये (सादये) मैं बैठाता हूँ ॥१०॥

मित्रावरुणयोर्भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।

प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥११॥

पदार्थ—[हे विद्वानो] तुम (मित्रावरुणयोः) प्राण और अपान के (भाग) अंश (स्थ) हो [अर्थात् महाबली हो] (देवीः) हे उत्तम गुण वाली (आपः) विदुषी प्रजाओ ! (अपाम्) विद्वानों के बीच (अस्मासु) हम में (शुक्रम्) वीरता और (वर्चः) तेज (धत्त) धारण करो। (वः) तुमको (प्रजापतेः) प्रजापति [परमेश्वर] के (धाम्ना) धर्म [नियम] से (अस्मै) इस (लोकाय) लोक [के हित] के लिये (सादये) मैं बैठाता हूँ ॥११॥

यमस्य भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।

प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥१२॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] तुम (यमस्य) न्याय के (भाग) अंश (स्थ) हो [अर्थात् महान्यायकारी हो] (देवीः) हे उत्तम गुणवाली (आपः) विदुषी प्रजाओ ! (अपाम्) विद्वानों के बीच (अस्मासु) हम में (शुक्रम्) वीरता और (वर्चः) तेज (धत्त) धारण करो। (वः) तुमको (प्रजापतेः) प्रजापति [परमेश्वर] के (धाम्ना) धर्म [नियम] से (अस्मै) इस (लोकाय) लोक [के हित] के लिये (सादये) मैं बैठाता हूँ ॥१२॥

पितृणां भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।

प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥१३॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] तुम (पितृणाम्) पालन करने वाले गुणों के (भाग) अंश (स्थ) हो [अर्थात् महापालक हो] (देवीः) हे उत्तम गुण वाली (आपः) विदुषी प्रजाओ ! (अपाम्) विद्वानों के बीच (अस्मासु) हम में (शुक्रम्) वीरता और (वर्चः) तेज (धत्त) धारण करो। (वः) तुमको (प्रजापतेः) प्रजापति [परमेश्वर] के (धाम्ना) धर्म [नियम] से (अस्मै) इस (लोकाय) लोक [के हित] के लिये (सादये) मैं बैठाता हूँ ॥१३॥

देवस्य सवितुर्भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।

प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥१४॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] तुम (देवस्य) प्रकाशमान (सवितुः) परमेश्वर के (भाग) अंश (स्थ) हो [अर्थात् परमेश्वर में व्याप्त हो]। (देवीः) हे उत्तम गुण वाली (आपः) विदुषी प्रजाओ ! (अपाम्) विद्वानों के बीच (अस्मासु) हम में (शुक्रम्) वीरता और (वर्चः) तेज (धत्त) धारण करो। (वः) तुमको (प्रजापतेः) प्रजापति [परमेश्वर] के (धाम्ना) धर्म [नियम] से (अस्मै) इस (लोकाय) लोक [के हित] के लिये (सादये) मैं बैठाता हूँ ॥१४॥

यो व आपोऽपां भागो३ऽप्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः ।

इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि । तेन तमभ्यतिसृजामो यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१५॥

पदार्थ—(आपः) हे विद्वानो ! (यः) जो (वः अपाम्) तुम विद्वानों का (भागः) अंश (अप्सु अन्तः) विद्वानों के बीच (यजुष्यः) पूजायोग्य और (देवयजनः) विद्वानों द्वारा संगतियोग्य है । (इदम्) अब (तम्) उस [तुम्हारे पूजनीय अंश] को (अति) आदरपूर्वक (सृजामि) मैं सिद्ध करता हूँ, (तम्) उस [अंश] को (मा अभ्यवनिक्षि) मैं न धो डालूं [न नष्ट करूं] । (तेन) उस [पूजनीय अंश] से (तम्) उस [शत्रु] को (अभ्यतिसृजामः) हम हराकर छोड़ते हैं, (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) कुप्रीति करता है और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) कुप्रीति करते हैं । (अनेन ब्रह्मणा) इस वेदज्ञान से, (अनेन कर्मणा) इस कर्म से और (अनया मेन्या) इस वज्र से (तम्) उस [दुष्ट] को (वधेयम्) मैं मारूं और (तम्) उसको (स्तृणीय) मैं ढक लूं ॥ १५ ॥

यो व आपोऽपामूर्मिरप्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि । तेन तमभ्यति-
सृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । तं वधेयं तं
स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१६॥

पदार्थ—(आपः) हे विद्वानो ! (यः) जो (वः अपाम्) तुम विद्वानों का (ऊर्मिः) वेग (अप्सु अन्तः) विद्वानों के बीच (यजुष्यः) पूजायोग्य और (देवयजनः) विद्वानों द्वारा संगतियोग्य है । (इदम्) अब (तम्) उस [तुम्हारे पूजनीय अंश] को (अति) आदरपूर्वक (सृजामि) मैं सिद्ध करता हूँ, (तम्) उस [अंश] को (मा अभ्यवनिक्षि) मैं न धो डालूं [न नष्ट करूं] । (तेन) उस [पूजनीय अंश] से (तम्) उस [शत्रु] को (अभ्यतिसृजामः) हम हराकर छोड़ते हैं (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) कुप्रीति करता है और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) कुप्रीति करते हैं । (अनेन ब्रह्मणा) इस वेदज्ञान से, (अनेन कर्मणा) इस कर्म से और (अनया मेन्या) इस वज्र से (तम्) उस [दुष्ट] को (वधेयम्) मैं मारूं और (तम्) उसको (स्तृणीय) मैं ढक लूं ॥ १६ ॥

यो व आपोऽपां वत्सोऽप्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि । तेन तमभ्यति-
सृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । तं वधेयं तं
स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१७॥

पदार्थ—(आपः) हे विद्वानो ! (यः) जो (वः अपाम्) तुम विद्वानों का (वत्सः) निवास (अप्सु अन्तः) विद्वानों के बीच (यजुष्यः) पूजायोग्य और (देवयजनः) विद्वानों द्वारा संगतियोग्य है । (इदम्) अब (तम्) उस [तुम्हारे पूजनीय अंश] को (अति) आदरपूर्वक (सृजामि) मैं सिद्ध करता हूँ, (तम्) उस [अंश] को (मा अभ्यवनिक्षि) मैं न धो डालूं [न नष्ट करूं] । (तेन) उस [पूजनीय अंश] से (तम्) उस [शत्रु] को (अभ्यतिसृजामः) हम हराकर छोड़ते हैं, (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) कुप्रीति करता है और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) कुप्रीति करते हैं । (अनेन ब्रह्मणा) इस वेदज्ञान से, (अनेन कर्मणा) इस कर्म से और (अनया मेन्या) इस वज्र से (तम्) उस [दुष्ट] को (वधेयम्) मैं मारूं और (तम्) उसको (स्तृणीय) मैं ढक लूं ॥ १७ ॥

यो व आपोऽपां वृषभोऽप्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि । तेन तमभ्यति-
सृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । तं वधेयं तं
स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१८॥

पदार्थ—(आपः) हे विद्वानो ! (यः) जो (वः अपाम्) तुम विद्वानों का (वृषभः) महापराक्रमी स्वभाव (अप्सु अन्तः) विद्वानों के बीच (यजुष्यः) पूजायोग्य और (देवयजनः) विद्वानों द्वारा संगतियोग्य है । (इदम्) अब (तम्) उस [तुम्हारे पूजनीय अंश] को (अति) आदरपूर्वक (सृजामि) मैं सिद्ध करता हूँ, (तम्) उस [अंश] को (मा अभ्यवनिक्षि) मैं न धो डालूं [न नष्ट करूं] । (तेन) उस [पूजनीय अंश] से (तम्) उस [शत्रु] को (अभ्यतिसृजामः) हम हराकर छोड़ते हैं, (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) कुप्रीति करता है और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) कुप्रीति करते हैं । (अनेन ब्रह्मणा) इस वेदज्ञान से, (अनेन कर्मणा) इस कर्म से और (अनया मेन्या) इस वज्र से (तम्) उस [दुष्ट] को (वधेयम्) मैं मारूं और (तम्) उसको (स्तृणीय) मैं ढक लूं ॥ १८ ॥

यो व आपोऽपां हिरण्यगर्भोऽप्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि । तेन तमभ्यति-
सृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । तं वधेयं तं
स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१९॥

पदार्थ—(आपः) हे विद्वानो ! (यः) जो (वः अपाम्) तुम विद्वानों का (हिरण्यगर्भः) कामनायोग्य [तेजों] का आधार (अप्सु अन्तः) विद्वानों के बीच (यजुष्यः) पूजायोग्य और (देवयजनः) विद्वानों द्वारा संगतियोग्य है । (इदम्) अब (तम्) उस [तुम्हारे पूजनीय अंश] को (अति) आदरपूर्वक (सृजामि) मैं सिद्ध करता हूँ, (तम्) उस [अंश] को (मा अभ्यवनिक्षि) मैं न धो डालूं [न नष्ट करूं] । (तेन) उस [पूजनीय अंश] से (तम्) उस [शत्रु] को (अभ्यतिसृजामः) हम हराकर छोड़ते हैं, (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) कुप्रीति करता है और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) कुप्रीति करते हैं । (अनेन ब्रह्मणा) इस वेदज्ञान से, (अनेन कर्मणा) इस कर्म से और (अनया मेन्या) इस वज्र से (तम्) उस [दुष्ट] को (वधेयम्) मैं मारूं और (तम्) उसको (स्तृणीय) मैं ढक लूं ॥ १९ ॥

यो व आपोऽपामश्मा पृश्निर्दिव्योऽप्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि । तेन तमभ्यति-
सृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । तं वधेयं तं
स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥२०॥

पदार्थ—(आपः) हे विद्वानो ! (यः) जो (वः अपाम्) तुम विद्वानों का (दिव्यः) दिव्य (अश्मा) व्यापक गुण (पृश्निः) सूर्य [के समान] (अप्सु अन्तः) विद्वानों के बीच (यजुष्यः) पूजायोग्य और (देवयजनः) विद्वानों द्वारा संगतियोग्य है । (इदम्) अब (तम्) उस [तुम्हारे पूजनीय अंश] को (मा अभ्यवनिक्षि) मैं न धो डालूं [न नष्ट करूं] । (तेन) उस [पूजनीय अंश] से (तम्) उस [शत्रु] को (अभ्यतिसृजामः) हम हराकर छोड़ते हैं, (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) कुप्रीति करता है और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) कुप्रीति करते हैं । (अनेन ब्रह्मणा) इस वेदज्ञान से, (अनेन कर्मणा) इस कर्म से और (अनया मेन्या) इस वज्र से (तम्) उस [दुष्ट] को (वधेयम्) मैं मारूं और (तम्) उसको (स्तृणीय) मैं ढक लूं ॥ २० ॥

ये व आपोऽपामग्नयोऽप्स्व१न्तर्यजुष्या देवयजनाः ।
इदं तानति सृजामि तान् माभ्यवनिक्षि ।
तैस्तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥२१॥

पदार्थ—(आपः) हे विद्वानो ! (ये) जो (वः अपाम्) तुम विद्वानों के (अग्नयः) ज्ञानप्रकाश (अप्सु अन्तः) विद्वानों के बीच (यजुष्याः) पूजायोग्य और (देवयजनाः) विद्वानों द्वारा सङ्गतियोग्य हैं । (इदम्) अब (तान्) उन [तुम्हारे ज्ञानप्रकाशों] को (अति) आदरपूर्वक (सृजामि) मैं सिद्ध करता हूँ, (तान्) उन [ज्ञानप्रकाशों] को (मा अभ्यवनिक्षि) मैं न धो डालूं [न नष्ट करूं] । (तैः) उन [ज्ञानप्रकाशों] से (तम्) उस [शत्रु] को (अभ्यतिसृजामः) हम हराकर छोड़ते हैं । (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) कुप्रीति करता है और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) कुप्रीति करते हैं । (अनेन ब्रह्मणा) इस वेदज्ञान से, (अनेन कर्मणा) इस कर्म से और (अनया मेन्या) इस वज्र से (तम्) उस [दुष्ट] को (वधेयम्) मैं मारूं और (तम्) उसको (स्तृणीय) मैं ढक लूं ॥ २१ ॥

यदर्वाचीनं त्रैहायणादनृतं किं चोदिम ।
आपो मा तस्मात् सर्वस्माद् दुरितात् पान्त्वंहसः ॥२२॥

पदार्थ—(त्रैहायणात्) तीन उद्योगों [परमेश्वर के कर्म, उपासना और ज्ञान] से [अलग होकर] (यत् किम् च) जो कुछ भी (अर्वाचीनम्) नीच कर्म में होने वाले (अनृतम्) झूठ को (ऊदिम) हम बोले हैं । (आपः) विद्वान् लोग (मा) मुझ को (तस्मात् सर्वस्मात्) उस सब (दुरितात्) कठिन (अंहसः) अपराध से (पान्तु) बचावें ॥ २२ ॥

समुद्रं वः प्र हिणोमि स्वां योनिमपीतन ।
अरिष्टाः सर्वहायसो मा च नः किं चनाममत् ॥२३॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] (वः) तुम्हें (समुद्रम्) प्राणियों के यथावत् उदय करने हारे [परमात्मा] की ओर (प्र हिणोमि) मैं आगे बढ़ाता हूँ, (अरिष्टाः) बिना हारे हुए (सर्वहायसः) सब ओर गतिवाले तुम (स्वाम्) अपने (योनिम्) कारण को (अपि) ही (इतन) प्राप्त हो, (च) और (नः) हमें (किम् चन) कोई भी [दुःख] (मा आममत्) न पीड़ा देवे ॥ २३ ॥

अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ।
प्रास्मदेनो दुरितं सुप्रतीकाः प्र दुःष्वप्न्यं प्र मलं वहन्तु ॥२४॥

पदार्थ—(अरिप्राः) निर्दोष (आपः) विद्वान् लोग (रिप्रम्) पाप को

(अस्मत्) हम से (अप) दूर [पहुँचावें] (सुप्रतीका:) बड़ी प्रतीति वाले वा सुन्दर रूप वाले लोग (अस्मत्) हम से (दुरितम्) कठिन (एनः) पाप को (प्र) दूर (दुःस्वप्न्यम्) दुष्ट स्वप्न को (प्र) दूर और (मलम्) मलिनता को (प्र) दूर (वहन्तु) पहुँचावें ॥ २४ ॥

卐 सूक्तम् ५ 卐

[२] २५—३५ (१—११) कौशिक । विष्णुक्रम, मन्त्रोक्ता । २५—३५ त्र्यवसाना षट्पदा यथाक्षरं शक्वर्यतिशक्वरी, ३६ पञ्चपदाति शाक्वरातिजागतगर्भाष्टि ।

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा पृथिवीसंशितोऽग्नितेजाः । पृथिवीमनु वि क्रमेऽहं पृथिव्यास्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२५॥

पदार्थ—तू (विष्णो) विष्णु [सर्वव्यापक परमेश्वर] से (क्रम) पराक्रमयुक्त, (सपत्नहा) वैरियों का नाश करनेहारा (पृथिवीसंशित) पृथिवी से तीक्ष्ण किया गया, (अग्नितेजा) अग्नि से तेज पाया हुआ (असि) है । (पृथिवीम् अनु) पृथिवी के पीछे (अहम्) मैं (वि क्रमे) पराक्रम करता हूँ (पृथिव्याः) पृथिवी से (तम्) उस [शत्रु] को (निः भजामः) हम भागरहित करते हैं (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करता है और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेष करते हैं । (सः) वह (मा जीवीत्) न जीता रहे, (तम्) उसको (प्राणः) प्राण (जहातु) छोड़ देवे ॥ २५ ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहान्तरिक्षसंशितो वायुतेजाः । अन्तरिक्षमनु वि क्रमेऽहमन्तरिक्षात् तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२६॥

पदार्थ—तू (विष्णो) विष्णु [सर्वव्यापक परमेश्वर] से (क्रम) पराक्रमयुक्त, (सपत्नहा) वैरियों का नाश करनेहारा, (अन्तरिक्षसंशित) अन्तरिक्ष [मध्य लोक] से तीक्ष्ण किया गया, (वायुतेजा) प्राण आदि वायु से तेज पाया हुआ (असि) है । (अन्तरिक्षम् अनु) अन्तरिक्ष के पीछे (अहम्) मैं (वि क्रमे) पराक्रम करता हूँ, (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से (तम्) उस [शत्रु] को (निः भजामः) हम भागरहित करते हैं, (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करता है और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेष करते हैं । (सः) वह (मा जीवीत्) न जीता रहे, (तम्) उसको (प्राणः) प्राण (जहातु) छोड़ देवे ॥ २६ ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा द्यौसंशितः सूर्यतेजाः । दिवमनु वि क्रमेऽहं दिवस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२७॥

पदार्थ—तू (विष्णो) विष्णु [सर्वव्यापक परमेश्वर] से (क्रम) पराक्रमयुक्त, (सपत्नहा) वैरियों का नाश करनेहारा (द्यौसंशित) आकाश से तीक्ष्ण किया गया, (सूर्यतेजा) सूर्य से तेज पाया हुआ (असि) है । (दिवम् अनु) आकाश के पीछे (अहम्) मैं (वि क्रमे) पराक्रम करता हूँ, (दिवः) आकाश से (तम्) उस [शत्रु] को (निः भजामः) हम भागरहित करते हैं, (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करता है और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेष करते हैं । (सः) वह (मा जीवीत्) न जीता रहे, (तम्) उस को (प्राणः) प्राण (जहातु) छोड़ देवे ॥ २७ ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा दिक्संशितो मनस्तेजाः । दिशोऽनु वि क्रमेऽहं दिग्भ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२८॥

पदार्थ—तू (विष्णो) विष्णु [सर्वव्यापक परमेश्वर] से, (क्रम) पराक्रमयुक्त, (सपत्नहा) वैरियों का नाश करने हारा (दिक्संशित) दिशाओं से तीक्ष्ण किया गया, (मनस्तेजा) मन से तेज पाया हुआ (असि) है । (दिशः अनु) दिशाओं के पीछे (अहम्) मैं (वि क्रमे) पराक्रम करता हूँ, (दिग्भ्यः) दिशाओं से (तम्) उस [शत्रु] को (निः भजामः) हम भागरहित करते हैं, (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करता है और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेष करते हैं । (सः) वह (मा जीवीत्) न जीता रहे, (तम्) उसको (प्राणः) प्राण (जहातु) छोड़ देवे ॥ २८ ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाशासंशितो वाततेजाः । आशा अनु वि क्रमेऽहमाशाभ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२९॥

पदार्थ—तू (विष्णो) विष्णु [सर्वव्यापक परमेश्वर] से (क्रम) पराक्रमयुक्त, (सपत्नहा) वैरियों का नाश करनेहारा, (आशासंशितः) मध्य दिशाओं से तीक्ष्ण किया गया, (वाततेजाः) पवन से तेज पाया हुआ (असि) है । (आशाः अनु) मध्यदिशाओं के पीछे (अहम्) मैं (वि क्रमे) पराक्रम करता हूँ, (आशाभ्यः) मध्यदिशाओं से (तम्) उस शत्रु को (निः भजामः) हम भागरहित करते हैं । (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करता है और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेष करते हैं । (सः) वह (मा जीवीत्) न जीता रहे, (तम्) उसको (प्राणः) प्राण (जहातु) छोड़ देवे ॥ २९ ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा ऋक्संशितः सामतेजाः । ऋचोऽनु वि क्रमेऽहमृग्भ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३०॥

पदार्थ—तू (विष्णो) विष्णु [सर्वव्यापक परमेश्वर] से (क्रम) पराक्रमयुक्त (सपत्नहा) वैरियों का नाश करनेहारा, (ऋक्संशित) वेदवाणियों से तीक्ष्ण किया गया, (सामतेजा) दुःखनाशक मोक्षज्ञान से तेज पाया हुआ (असि) है । (ऋचः अनु) वेद वाणियों के पीछे (अहम्) मैं (वि क्रमे) पराक्रम करता हूँ (ऋग्भ्यः) वेद वाणियों से (तम्) उस शत्रु को (निः भजामः) हम भागरहित करते हैं । (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करता है और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेष करते हैं । (सः) वह (मा जीवीत्) न जीता रहे, (तम्) उसको (प्राणः) प्राण (जहातु) छोड़ देवे ॥ ३० ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजाः । यज्ञमनु वि क्रमेऽहं यज्ञात् तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३१॥

पदार्थ—तू (विष्णो) विष्णु [सर्वव्यापक परमेश्वर] से (क्रमः) पराक्रमयुक्त, (सपत्नहा) वैरियों का नाश करनेहारा, (यज्ञसंशितः) शुभ कर्म से तीक्ष्ण किया गया और (ब्रह्मतेजा) ब्रह्म [परमेश्वर] से तेज पाया हुआ (असि) है । (यज्ञम् अनु) शुभ कर्म के पीछे (अहम्) मैं (वि क्रमे) पराक्रम करता हूँ, (यज्ञात्) शुभकर्म से (तम्) उस [शत्रु] को (निः भजामः) हम भागरहित करते हैं । (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करता है और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेष करते हैं । (सः) वह (मा जीवीत्) न जीता रहे, (तम्) उसको (प्राणः) प्राण (जहातु) छोड़ देवे ॥ ३१ ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहौषधीसंशितः सोमतेजाः । ओषधीरनु वि क्रमेऽहमोषधीभ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३२॥

पदार्थ—तू (विष्णोः) विष्णु [सर्वव्यापक परमेश्वर] से (क्रमः) पराक्रमयुक्त, (सपत्नहा) वैरियों का नाश करनेहारा (ओषधिसंशितः) ओषधियों से तीक्ष्ण किया गया, (सोमतेजा) सोम [अमृत रस] से तेज पाया हुआ (असि) है । (ओषधीः अनु) ओषधियों के पीछे (अहम्) मैं (वि क्रमे) पराक्रम करता हूँ, (ओषधीभ्यः) ओषधियों से (तम्) उस [शत्रु] को (निः भजामः) हम भागरहित करते हैं । (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करता है और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेष करते हैं । (सः) वह (मा जीवीत्) न जीता रहे, (तम्) उसको (प्राणः) प्राण (जहातु) छोड़ देवे ॥ ३२ ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाप्सुसंशितो वरुणतेजाः । अपोऽनु वि क्रमेऽहमद्भ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३३॥

पदार्थ—तू (विष्णो) विष्णु [सर्वव्यापक परमेश्वर] से (क्रमः) पराक्रमयुक्त, (सपत्नहा) वैरियों का नाश करनेहारा, (अप्सुसंशित) जलों से तीक्ष्ण किया गया (वरुणतेजा) मेघ से तेज पाया हुआ (असि) है । (अपः अनु) जलों के पीछे (अहम्) मैं (वि क्रमे) पराक्रम करता हूँ, (अद्भ्यः) जलों से (तम्) उस [शत्रु] को (निः भजामः) हम भागरहित करते हैं । (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करता है और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेष करते हैं । (सः) वह (मा जीवीत्) न जीता रहे, (तम्) उस को (प्राणः) प्राण (जहातु) छोड़ देवे ॥ ३३ ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा कृषिसंशितोऽन्नतेजाः । कृषिमनु वि क्रमेऽहं कृष्यास्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३४॥

पदार्थ—तू (विष्णो) विष्णु [सर्वव्यापक परमेश्वर] से (क्रम) परा-

क्रमयुक्त, (सपत्नहा) वैरियों का नाश करनेहारा, (कृषिसंशित॰) खेती से तीक्ष्ण किया गया और (अन्नतेजाः) अन्न से तेज पाया हुआ (असि) है। (कृषिम् अनु) खेती के पीछे (अहम्) मैं (वि क्रमे) पराक्रम करता हूँ, (कृष्याः) खेती से (तम्) उस [शत्रु] को (निः भजामः) हम भागरहित करते हैं। (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करता है और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेष करते हैं। (सः) वह (मा जीवीत्) न जीता रहे, (तम्) उसको (प्राणः) प्राण (जहातु) छोड़ देवे ॥ ३४ ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा प्राणसंशितः पुरुषतेजाः। प्राणमनु वि क्रमेऽहं प्राणात् तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३५॥

पदार्थ—तू (विष्णोः) विष्णु [सर्वव्यापक परमेश्वर] से (क्रमः) पराक्रमयुक्त, (सपत्नहा) शत्रुओं का नाश करनेहारा, (प्राणसंशित॰) प्राण से तीक्ष्ण किया गया और (पुरुषतेजाः) पुरुष [आत्मा] से तेज पाया हुआ (असि) है। (प्राणम् अनु) प्राण के पीछे (अहम्) मैं (वि क्रमे) पराक्रम करता हूँ, (प्राणात्) प्राण से (तम्) उस [शत्रु] को (निः भजामः) हम भागरहित करते हैं (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करता है और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेष करते हैं। (सः) वह (मा जीवीत्) न जीता रहे, (तम्) उसको (प्राणः) प्राण (जहातु) छोड़ देवे ॥ ३५ ॥

卐 सूक्तम् ॥ ५ ॥ 卐

[३] ३६—४१ (१—६) ब्रह्मा। मन्त्रोक्ता। ३७ विराट् पुरस्ताद्बृहती, ३८ पुरोष्णिक्, ३९, ४१ आर्षी गायत्री, ४० विराड् विषमा गायत्री।

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः। इदमहमामुष्यायणस्यामुष्याः पुत्रस्य वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥३६॥

पदार्थ—(जितम्) जय किया गया (अस्माकम्) हमारा [हो], (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ (अस्माकम्) हमारा [हो], (विश्वाः) सब (पृतनाः) [शत्रुओं की] सेनाओं और (अरातीः) कंजूसियों को (अभि अस्थाम्) मैं ने रोक दिया है। (इदम्) अब (अहम्) मैं (आमुष्यायणस्य) अमुक पुरुष के और (अमुष्याः) अमुक स्त्री के (पुत्रस्य) पुत्र का (वर्चः) प्रताप, (तेजः) तेज (प्राणम्) प्राण और (आयुः) जीवन को (नि वेष्टयामि) लपेटे लेता हूँ, (इदम्) अब (एनम्) इसको (अधराञ्चम्) नीचे (पादयामि) गिराता हूँ ॥ ३६ ॥

सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते दक्षिणामन्वावृतम्।
सा मे द्रविणं यच्छतु सा मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥३७॥

पदार्थ—(सूर्यस्य) सूर्य की (आवृतम्) परिपाटी [रीति] पर (अन्वावर्ते) मैं चला चलता हूँ [उसकी] (दक्षिणाम्) वृद्धियुक्त (आवृतम् अनु) परिपाटी पर। (सा) वह [परिपाटी] (मे) मुझे (द्रविणम्) बल और (सा) वह (मे) मुझे (ब्राह्मणवर्चसम्) ब्राह्मण [ब्रह्मज्ञानी] का प्रताप (यच्छतु) देवे ॥ ३७ ॥

दिशो ज्योतिष्मतीरभ्यावर्ते।
ता मे द्रविणं यच्छन्तु ता मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥३८॥

पदार्थ—(ज्योतिष्मतीः) प्रकाशमयी (दिशः) दिशाओं की ओर (अभ्यावर्ते) मैं घूमता हूँ। (ताः) वे [दिशाएँ] (मे) मुझे (द्रविणम्) बल और (ताः) वे (मे) मुझे (ब्राह्मणवर्चसम्) ब्राह्मण [ब्रह्मज्ञानी] का प्रताप (यच्छन्तु) देवें ॥ ३८ ॥

सप्तऋषीनभ्यावर्ते। ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥३९॥

पदार्थ—(सप्तऋषीन्) सात व्यापनशीलों वा दर्शनशीलों [अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि, अथवा दो कान, दो नथने, दो आंख और मुख इन सात छिद्रों] की ओर (अभ्यावर्ते) मैं घूमता हूँ। (ते) वे (मे) मुझे (द्रविणम्) बल और (ते) वे (मे) मुझे (ब्राह्मणवर्चसम्) ब्राह्मण [ब्रह्मज्ञानी] का प्रताप (यच्छन्तु) देवें ॥ ३९ ॥

ब्रह्माभ्यावर्ते। तन्मे द्रविणं यच्छतु तन्मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥४०॥

पदार्थ—(ब्रह्म) ब्रह्म [परमेश्वर] की ओर (अभ्यावर्ते) मैं घूमता हूँ। (तत्) वह [ब्रह्म] (मे) मुझे (द्रविणम्) बल और (तत्) वह (मे) मुझे (ब्राह्मणवर्चसम्) ब्राह्मण [ब्रह्मज्ञानी] का प्रताप (यच्छतु) देवे ॥४०॥

ब्राह्मणाँ अभ्यावर्ते। ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥४१॥

पदार्थ—(ब्राह्मणान्) ब्राह्मणों [ब्रह्मज्ञानियों] की ओर (अभ्यावर्ते) मैं घूमता हूँ। (ते) वे (मे) मुझे (द्रविणम्) बल और (ते) वे (मे) मुझे (ब्राह्मणवर्चसम्) ब्राह्मण [ब्रह्मज्ञानी] का प्रताप (यच्छन्तु) देवें ॥ ४१ ॥

卐 सूक्तम् ॥ ५ ॥ 卐

[४] ४२—५० (१—९) विहव्य। प्राजापत्या अनुष्टुप्, ४४ त्रिपदा गायत्री गर्भानुष्टुप्, ५० त्रिष्टुप्।

यं वयं मृगयामहे तं वधै स्तृणवामहै।
व्यात्ते परमेष्ठिनो ब्रह्मणापीपदाम तम् ॥४२॥

पदार्थ—(यम्) जिस [शत्रु] को (वयम्) हम (मृगयामहे) ढूंढते हैं, (तम्) उसको (वधैः) वधों से (स्तृणवामहै) हम विनाशें। (परमेष्ठिनः) सब से ऊँचे पद वाले [राजा] के (व्यात्ते) खुले मुख [वश] में (ब्रह्मणा) ब्रह्मज्ञान से (तम्) उसको (आ—अपीपदाम) लाकर (अपीपदाम) हमने गिरा दिया है ॥ ४२ ॥

वैश्वानरस्य दंष्ट्राभ्यां हेतिस्तं समधादभि।
इयं तं प्सात्वाहुतिः समिद् देवी सहीयसी ॥४३॥

पदार्थ—(वैश्वानरस्य) सब नरों का हित करने हारे [राजा] के (दंष्ट्राभ्याम्) [प्रजा रक्षण और शत्रुनाशन रूप] दोनों डाढ़ों से (हेतिः) वज्र ने (तम्) उस [शत्रु] को (सम् अभि अधात्) दबोच लिया है। (इयम्) यह (आहुतिः) आहुति [होम का चढ़ावा], (देवी) उत्तम गुणवाली (सहीयसी) अधिक बल वाली (समित्) समिधा [काष्ठ घृत आदि] (तम्) उसको (प्सातु) खा जावे ॥ ४३ ॥

राज्ञो वरुणस्य बन्धोऽसि।
सोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमन्ने प्राणे बधान ॥४४॥

पदार्थ—[हे सेनापति !] तू (वरुणस्य) श्रेष्ठ (राज्ञः) राजा का [शत्रुओं के लिये] (बन्धः) बन्धन (असि) है। (सः) सो तू (अमुम्) अमुक पुरुष, (आमुष्यायणम्) अमुक पिता के पुत्र और (अमुष्याः) अमुक माता के (पुत्रम्) पुत्र को (अन्ने) अन्न में और (प्राणे) श्वास में (बधान) बांध ले ॥ ४४ ॥

यत् ते अन्नं भुवस्पत आक्षियति पृथिवीमनु।
तस्य नस्त्वं भुवस्पते संप्रयच्छ प्रजापते ॥४५॥

पदार्थ—(भुवः पते) हे भूपति [राजन् !] (यत्) जो (ते) तेरा (अन्नम्) अन्न (पृथिवीम् अनु) पृथिवी पर (आक्षियति) रहा करता है। (भुवः पते) हे भूपति ! (प्रजापते) हे प्रजापति [राजन् !] (त्वम्) तू (नः) हमें (तस्य) उस [अन्न] का (संप्रयच्छ) दान करता रहे ॥४५॥

अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि।
पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥४६॥

पदार्थ—(दिव्याः) दिव्य गुण स्वभाव वाले (अपः) जलों [के समान शुद्ध करने वाले विद्वानों] को (अचायिषम्) मैंने पूजा है (रसेन) पराक्रम से (सम् अपृक्ष्महि) हम संयुक्त हुए हैं। (अग्ने) हे विद्वान् ! (पयस्वान्) गतिवाला मैं (आ अगमम्) आया हूँ (तम्) उस (मा) मुझ को (वर्चसा) [वेदाध्ययन आदि के] तेज से (सम् सृज) संयुक्त कर ॥ ४६ ॥

सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥४७॥

पदार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् ! (मा) मुझ को (वर्चसा) [ब्रह्म विद्या के] तेज से (सम्) अच्छे प्रकार (प्रजया) प्रजा से (सम्) अच्छे प्रकार, और (आयुषा) जीवन से (सम् सृज) अच्छे प्रकार संयुक्त कर। (देवाः) विद्वान् लोग (अस्य) इस (मे) मुझ को (विद्युः) जानें, (इन्द्रः) बड़ा ऐश्वर्यवान् आचार्य (ऋषिभिः सह) ऋषियों के साथ [मुझे] (विद्यात्) जाने ॥४७॥

यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद् वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः।
मन्योर्मनसः शरव्या जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान् ॥४८॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि [के समान तेजस्वी राजन् !] (यत्) जो (अद्य) आज (मिथुना) दो हिंसक मनुष्य [सत्पुरुषों से] (शपातः) कुवचन बोलते हैं, और (यत्) जो (रेभाः) शब्द करने वाले [शत्रु लोग] (वाचः) वाणी की (तृष्टम्) कठोरता (जनयन्त) उत्पन्न करते हैं, (मन्योः) क्रोध से (मनसः) मन की (या) जो (शरव्याः) बाणों की झड़ी (जायते) उत्पन्न

होती है, (तया) उस से (यातुधानान्) दुःखदायियों को (हृदये) हृदय में (विध्य) तू वेध ले ॥ ४८ ॥

परा शृणीहि तपसा यातुधानान् पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।

परार्चिषा मूरदेवाञ्छृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि ॥४९॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि [के समान तेजस्वी राजन् !] (तपसा) अपने तप [ऐश्वर्य वा प्रताप] से (यातुधानान्) दुःखदायियों को (परा शृणीहि) कुचल डाल (रक्षः) राक्षसों [दुराचारियों वा रोगों] को (हरसा) अपने बल से (परा शृणीहि) मिटा दे । (अर्चिषा) अपने तेज से (मूरदेवान्) मूढ़ [निर्बुद्धि] व्यवहार वालों को (परा शृणीहि) नाश कर दे, (शोशुचतः) अत्यन्त दमकते हुए, (असुतृपः) [दूसरों के] प्राणों से तृप्त होने वालों को (परा शृणीहि) चूर-चूर कर दे ॥४९॥

अपामस्मै वज्रं प्र हरामि चतुर्भृष्टिं शीर्षभिद्याय विद्वान् ।

सो अस्याङ्गानि प्र शृणातु सर्वा तन्मे देवा अनु जानन्तु विश्वे ॥५०॥

पदार्थ—(विद्वान्) विद्वान् मैं (अस्मै) इस [शत्रु पर] (शीर्षभिद्याय) शिर तोड़ने के लिये (अपाम्) जलों का (चतुर्भृष्टिम्) चौफाले (वज्रम्) वज्र [वस्त्र] को (प्र हरामि) चलाता हूँ । (सः) वह [वज्र] (अस्य) उसके (सर्वा) सब (अङ्गानि) अङ्गों को (प्र शृणातु) चूर-चूर कर डाले, (मे) मेरे (तत्) उस [कर्म] को (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (अनु जानन्तु) मान लेवें ॥५०॥

卐 सूक्तम् ६ 卐

१—३५ बृहस्पति । फालमणि, वनस्पति, ३ आप । अनुष्टुप्, १,४, २१ गायत्री, ५ षट्पदा जगती, ६ सप्तपदा विराट् शक्वरी, ७—१० त्र्यवसाना अष्टपदाष्टि (१० नवपदा धृति) ११,२० २३-२७ पथ्यापङ्क्ति, १२-१७ त्र्यवसाना सप्तपदा शक्वरी, ३१ त्र्यवसाना षट्पदा जगती, ३५ पञ्चपदा त्र्यनुष्टुब्गर्भा जगती ।

अरातीयोर्भ्रातृव्यस्य दुर्हार्दो द्विषतः शिरः ।

अपि वृश्चाम्योजसा ॥१॥

पदार्थ—(अरातीयोः) कंजूसी करने वाले, (भ्रातृव्यस्य) भ्रातृभाव से रहित, (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वाले (द्विषतः) द्वेषी के (शिरः) शिर को (ओजसा) बल के साथ (अपि वृश्चामि) मैं काटे देता हूँ ॥१॥

वर्म मह्यमयं मणिः फालाज्जातः करिष्यति ।

पूर्णो मन्थेन मागमद् रसेन सह वर्चसा ॥२॥

पदार्थ—(फालात्) फल के [देने में] ईश्वर [परमात्मा] से (जातः) उत्पन्न हुआ (अयम्) यह (मणिः) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] (मह्यम्) मेरे लिये (वर्म) कवच (करिष्यति) बनावेगा । (मन्थेन) मथन [सूक्ष्म विचार] से (पूर्णः) पूर्ण [वह वैदिक नियम] (मा) मुझ को (रसेन) बल और (वर्चसा सह) प्रताप के साथ (आ अगमत्) प्राप्त हुआ है ॥२॥

यत् त्वा शिक्वः परावधीत् तक्षा हस्तेन वास्या ।

आपस्त्वा तस्माज्जीवलाः पुनन्तु शुचयः शुचिम् ॥३॥

पदार्थ—(यत्) यदि (शिक्वः) छीलने वाले (तक्षा) दुबला करने वाले [शत्रु] ने (हस्तेन) अपने हाथ से (वास्या) कुल्हाड़ी द्वारा (त्वा) तुझ को (परा अवधीत्) मार गिराया है । (जीवलाः) जीवन दाता, (शुचयः) शुद्ध स्वभाव वाले (आपः) विद्वान् लोग (शुचिम् त्वा) तुझ पवित्र को (तस्मात्) उस [कष्ट] से (पुनन्तु) शुद्ध करें ॥३॥

हिरण्यस्रगयं मणिः श्रद्धां यज्ञं महो दधत् ।

गृहे वसतु नोऽतिथिः ॥४॥

पदार्थ—(हिरण्यस्रक्) कामनायोग्य [तेजों] का उत्पन्न करनेवाला (अतिथिः) सदा मिलनेयोग्य (अयम्) यह (मणिः) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] (श्रद्धाम्) श्रद्धा [सत्य धारण,] (यज्ञम्) श्रेष्ठ कर्म, (महः) बड़प्पन (दधत्) देता हुआ (नः) हमारे (गृहे) घर में (वसतु) बसे ॥४॥

तस्मै घृतं सुरां मध्वन्नमन्नं क्षदामहे । स नः पितेव पुत्रेभ्यः

श्रेयःश्रेयश्चिकित्सतु भूयोभूयः श्वःश्वो देवेभ्यो मणिरेत्य ॥५॥

पदार्थ—(तस्मै) उस [वैदिक नियम की प्राप्ति] के लिये (मधु) मधुविद्या [यथार्थ ज्ञान], (सुराम्) ऐश्वर्य, (घृतम्) तेज और (अन्नमन्नम्) अन्न पर अन्न को (क्षदामहे) हम बांटते हैं । (सः) वह (मणिः) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] (देवेभ्यः) विद्वानों से (एत्य) आकर (नः) हमें, (पिता इव) पिता के समान (पुत्रेभ्यः) पुत्रों के लिये (श्रेयः श्रेयः) कल्याण के पीछे कल्याण को (भूयोभूयः) बहुत बहुत, (श्वः श्वः) कल के पीछे कल [नित्य आगामी काल में] (चिकित्सतु) वैद्य रूप से बतावे ॥५॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे । तमग्निः प्रत्यमुञ्चत सो अस्मै दुह आज्यं भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥६॥

पदार्थ—(बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमात्मा] ने (यम्) जिस (फालम्) फल के ईश्वर, (घृतश्चुतम्) प्रकाश की वर्षा करने वाले, (उग्रम्) बलवान्, (खदिरम्) स्थिर गुणवाले (मणिम्) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] को (ओजसे) बल के लिये (अबध्नात्) बांधा है [बनाया है] (तम्) उस [नियम] को (अग्निः) अग्नि [अग्निसमान तेजस्वी पुरुष] ने (प्रति अमुञ्चत) स्वीकार किया है, (सः) वह [नियम] (अस्मै) इस [तेजस्वी] के लिये (आज्यम्) पाने योग्य पदार्थ को (भूयोभूयः) बहुत-बहुत (श्वःश्वः) कल के पीछे कल [नित्य आगामी काल में] (दुहे) पूरा करता है, (तेन) उस [वैदिक नियम] से (त्वम्) तू (द्विषतः) वैरियों को (जहि) मार ॥६॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे । तमिन्द्रः प्रत्यमुञ्चतौजसे वीर्याय कम् । सो अस्मै बलमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥७॥

पदार्थ—(बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमेश्वर] ने (यम्) जिस (फालम्) फल के ईश्वर, (घृतश्चुतम्) प्रकाश की वर्षा करने वाले, (उग्रम्) बलवान् (खदिरम्) स्थिर गुणवाले (मणिम्) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] को (ओजसे) बल के लिये (अबध्नात्) बांधा है [बनाया है] । (तम्) उस [वैदिक नियम] को (इन्द्रः) इन्द्र [मेघ समान उपकारी पुरुष] ने (ओजसे) बल के लिये और (वीर्याय) पराक्रम के लिये (कम्) सुख से (प्रति अमुञ्चत) स्वीकार किया है । (सः) वह [वैदिक नियम] (अस्मै) इस [उपकारी] के लिये (इत्) ही (बलम्) बल को (भूयोभूयः) बहुत-बहुत (श्वः श्वः) कल के पीछे कल [नित्य आगामी काल में] (दुहे) पूरा करता है, (तेन) उस [वैदिक नियम] से (त्वम्) तू (द्विषतः) वैरियों को (जहि) मार ॥७॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे । तं सोमः प्रत्यमुञ्चत महे श्रोत्राय चक्षसे । सो अस्मै वर्च इद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥८॥

पदार्थ—(बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमेश्वर] ने (यम्) जिस (फालम्) फल के ईश्वर, (घृतश्चुतम्) प्रकाश की वर्षा करने वाले, (उग्रम्) बलवान्, (खदिरम्) स्थिर गुणवाले (मणिम्) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] को (ओजसे) बल के लिये (अबध्नात्) बांधा है [बनाया है] । (तम्) उस [वैदिक नियम] को (सोमः) सोम [सोमरस, अन्न आदि अमृतसमान सुख उत्पन्न करने वाले पुरुष] ने (महे) महत्त्व के लिये, (श्रोत्राय) श्रवण सामर्थ्य के लिये और (चक्षसे) दर्शन सामर्थ्य के लिये (प्रति अमुञ्चत) स्वीकार किया है । (सः) वह [वैदिक नियम] (अस्मै) इस [पुरुष] के लिये (इत्) ही (वर्चः) तेज (भूयोभूयः) बहुत-बहुत (श्वः श्वः) कल के पीछे कल [नित्य आगामी काल में] (दुहे) पूरा करता है, (तेन) उस [वैदिक नियम से] (त्वम्) तू (द्विषतः) वैरियों को (जहि) मार ॥८॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे । तं सूर्यः प्रत्यमुञ्चत तेनेमा अजयद् दिशः । सो अस्मै भूतिमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥९॥

पदार्थ—(बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमेश्वर] ने (यम्) जिस (फालम्) फल के ईश्वर, (घृतश्चुतम्) प्रकाश की वर्षा करने वाले, (उग्रम्) बलवान्, (खदिरम्) स्थिर गुणवाले (मणिम्) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] को (ओजसे) बल के लिये (अबध्नात्) बांधा है [बनाया है] । (तम्) उस [वैदिक नियम] को (सूर्यः) सूर्य [सूर्य के समान राज्य चलाने वाले वीर] ने (प्रति अमुञ्चत) स्वीकार किया है, (तेन) उस [वैदिक नियम] से (इमाः दिशः) इन दिशाओं को (अजयत्) जीता है । (सः) वह [वैदिक नियम] (अस्मै) इस [वीर पुरुष] के लिये (इत्) ही (भूतिम्) विभूति [सम्पत्ति] (भूयोभूयः) बहुत-बहुत (श्वः श्वः) कल के पीछे कल [नित्य आगामी काल में] (दुहे) पूरा करता है, (तेन) उस [वैदिक नियम] से (त्वम्) तू (द्विषतः) वैरियों को (जहि) मार ॥९॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे । तं बिभ्रच्चन्द्रमा मणिमसुराणां पुरोऽजयद् दानवानां हिरण्ययीः । सो अस्मै श्रियमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१०॥

पदार्थ—(तम्) उस [वैदिक नियम] को (धाता) धारण कर्त्ता [राजा] ने (प्रति अमुञ्चत) स्वीकार किया है, और (सः) उसने (भूतम्) जगत् को (वि अकल्पयत)सम्भाला है। (तेन) उस [वैदिक नियम] से (त्वम्) तू (द्विषतः) बैरियों को (जहि) मार ॥ २१ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।

स मायं मणिरागमद् रसेन सह वर्चसा ॥२२॥

पदार्थ—(यम्) जिस (असुरक्षितिम्) असुरनाशक [वैदिक नियम] को (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमेश्वर] ने (देवेभ्यः) विजयी लोगों के लिये (अबध्नात्) बांधा है। (सः अयम्) वही (मणिः) मणि [प्रशसनीय वैदिक नियम] (मा) मुझे (रसेन) पराक्रम और (वर्चसा सह) प्रताप के साथ (आ अगमत्) प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् । स मायं

मणिरागमत् सह गोभिरजाविभिरन्नेन प्रजया सह ॥२३॥

पदार्थ—(यम्) जिस (असुरक्षितिम्) असुरनाशक [वैदिक नियम] को (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमेश्वर] ने (देवेभ्यः) विजयी लोगों के लिये (अबध्नात्) बांधा है। (सः अयम्) वही (मणिः) मणि [प्रशसनीय वैदिक नियम] (मा) मुझे (गोभिः) गौओं और (अजाविभिः सह) बकरी और भेड़ों के साथ, (अन्नेन) अन्न और (प्रजया सह) प्रजा [सन्तान] के साथ (आ अगमत्) प्राप्त हुआ है ॥ २३ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् । स मायं

मणिरागमत् सह व्रीहियवाभ्यां महसा भूत्या सह ॥२४॥

पदार्थ—(यम्) जिस (असुरक्षितिम्) असुरनाशक [वैदिक नियम] को (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमेश्वर] ने (देवेभ्यः) विजयी लोगों के लिये (अबध्नात्) बांधा है। (सः अयम्) वही (मणिः) मणि [प्रशसनीय वैदिक नियम] (मा) मुझे (व्रीहियवाभ्याम् सह) चावल और यव के साथ और (महसा) बड़ाई और (भूत्या सह) विभूति [सम्पत्ति] के साथ (आ अगमत्) प्राप्त हुआ है ॥ २४ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् । स मायं

मणिरागमन्मधोर्घृतस्य धारया कीलालेन मणिः सह ॥२५॥

पदार्थ—(यम्) जिस (असुरक्षितिम्) असुरनाशक [वैदिक नियम] को (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमेश्वर] ने (देवेभ्यः) विजयी लोगों के लिये (अबध्नात्) बांधा है। (सः अयम्) वही (मणिः) मणि [वैदिक नियम] (मा) मुझे (मधोः) मधुर रस की और (घृतस्य) घृत की (धारया) धारा से (कीलालेन सह) अच्छे पके अन्न के सहित (आ अगमत्) प्राप्त हुआ है ॥ २५ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् । स मायं

मणिरागमदूर्जया पयसा सह द्रविणेन श्रिया सह ॥२६॥

पदार्थ—(यम्) जिस (असुरक्षितिम्) असुरनाशक [वैदिक नियम] को (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमेश्वर] ने (देवेभ्यः) विजयी लोगों के लिये (अबध्नात्) बांधा है। (सः अयम्) वही (मणिः) मणि [प्रशसनीय वैदिक नियम] (मा) मुझे (ऊर्जया) पराक्रम और (पयसा सह) ज्ञान के साथ [तथा] (द्रविणेन) धन और (श्रिया सह) श्री [सेवनीय सम्पत्ति] के सहित (आ अगमत्) प्राप्त हुआ है ॥ २६ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् । स मायं

मणिरागमत् तेजसा त्विष्या सह यशसा कीर्त्या सह ॥२७॥

पदार्थ—(यम्) जिस (असुरक्षितिम्) असुरनाशक [वैदिक नियम] को (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमेश्वर] ने (देवेभ्यः) विजयी लोगों के लिये (अबध्नात्) बांधा है। (सः अयम्) वही (मणिः) मणि [प्रशसनीय वैदिक नियम] (मा) मुझे (तेजसा) तेज और (त्विष्या सह) शोभा के साथ [तथा] (यशसा) यश और (कीर्त्या सह) कीर्त्ति के साथ (आ अगमत) प्राप्त हुआ है ॥ २७ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।

स मायं मणिरागमत् सर्वाभिर्भूतिभिः सह ॥२८॥

पदार्थ—(यम्) जिस (असुरक्षितिम्) असुरनाशक [वैदिक नियम] को (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमेश्वर] ने (देवेभ्यः) विजयी लोगों के लिये (अबध्नात्) बांधा है। (सः अयम्) वही (मणिः) मणि [प्रशंसनीय वैदिक नियम] (मा) मुझे (सर्वाभिः) सब प्रकार की (भूतिभिः सह) सम्पत्तियों सहित (आ अगमत्) प्राप्त हुआ है ॥ २८ ॥

तमिमं देवता मणिं मह्यं ददतु पुष्टये ।

अभिभुं क्षत्रवर्धनं सपत्नदम्भनं मणिम् ॥२९॥

पदार्थ—(देवताः) देवता [विद्वान् जन] (मह्यम्) मुझे (पुष्टये) पुष्टि [वृद्धि] के लिये (तम् इमम्) उस ही (मणिम्) मणि [प्रशसनीय वैदिक नियम], (अभिभुम्) [शत्रुओं को] हराने वाले, (क्षत्रवर्धनम्) राज्य बढ़ाने वाले, (सपत्नदम्भनम्) वैरियों के दबाने वाले (मणिम्) मणि [प्रशसनीय वैदिक नियम] को (ददतु) दान करें ॥ २९ ॥

ब्रह्मणा तेजसा सह प्रति मुञ्चामि मे शिवम् ।

असपत्नः सपत्नहा सपत्नान् मेऽधराँ अकः ॥३०॥

पदार्थ—(ब्रह्मणा) वेद द्वारा (तेजसा सह) प्रकाश के साथ (मे) अपने लिये (शिवम्) शिव [मङ्गलकारी परमात्मा] को (प्रति मुञ्चामि) मैं स्वीकार करता हूँ। (असपत्नः) शत्रुरहित, (सपत्नहा) शत्रुनाशक [परमेश्वर] ने (मे) मेरे (सपत्नान्) शत्रुओं को (अधरान्) नीचे (अकः) कर दिया है ॥ ३० ॥

उत्तरं द्विषतो माम् अयं मणिः कृणोतु देवजाः ।

यस्य लोका इमे त्रयः पयो दुग्धमुपासते ।

स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ॥ ३१॥

पदार्थ—(अयम्) यह (देवजाः) देव [परमेश्वर] से उत्पन्न (मणिः) मणि [प्रशसनीय वैदिक नियम] (माम्) मुझ को (द्विषतः) वैरी से (उत्तरम्) अधिक ऊंचा (कृणोतु) करे। (इमे) ये (त्रयः) तीनों [सृष्टि, स्थिति और प्रलय] (लोकाः) लोक (यस्य) जिस [वैदिक नियम] के (दुग्धम्) पूर्ण (पयः) ज्ञान को (उपासते) भजते हैं। (सः अयम्) वही (मणिः) मणि [प्रशसनीय वैदिक नियम] (माम्) मुझ को (मूर्धतः) शिर पर से (श्रैष्ठ्याय) प्रधान पद के लिये (अधि) ऊपर (रोहतु) चढ़ावे ॥ ३१ ॥

यं देवाः पितरो मनुष्या उपजीवन्ति सर्वदा ।

स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ॥३२॥

पदार्थ—(देवाः) व्यवहार जानने वाले, (पितरः) पालन करने वाले और (मनुष्याः) मनन करने वाले लोग (यम्) जिस [वैदिक नियम] के (सर्वदा) सर्वदा (उपजीवन्ति) आश्रय में रहते हैं। (सः अयम्) वही (मणिः) मणि [प्रशसनीय वैदिक नियम] (माम्) मुझ को (मूर्धतः) शिर पर से (श्रैष्ठ्याय) प्रधान पद के लिये (अधि) ऊपर (रोहतु) चढ़ावे ॥ ३२ ॥

यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति ।

एवा मयि प्रजा पशवोऽन्नमन्नं वि रोहतु ॥३३॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (बीजम्) बीज (उर्वरायाम्) उपजाऊ धरती में (फालेन) फाल [हल की कील] से (कृष्टे) जोते हुए [खेत] में (रोहति) उपजता है। (एव) वैसे ही (मयि) मुझ में (प्रजा) प्रजा [सन्तान आदि], (पशवः) पशु [गौ, घोड़ा आदि] और (अन्नमन्नम्) अन्न के ऊपर अन्न (वि) विविध प्रकार (रोहतु) उत्पन्न होवे ॥३३॥

यस्मै त्वा यज्ञवर्धन मणे प्रत्यमुचं शिवम् ।

तं त्वं शतदक्षिण मणे श्रैष्ठ्याय जिन्वतात् ॥३४॥

पदार्थ—(यज्ञवर्धन) हे श्रेष्ठ व्यवहार बढ़ाने वाले (मणे) मणि! [प्रशंसनीय वैदिक नियम] (यस्मै) जिस [पुरुष] के लिये (शिवम् त्वा) तुझ मङ्गलकारी को (प्रत्यमुचम्) मैंने स्वीकार किया है। (शतदक्षिण) हे सैकड़ों वृद्धि वाले (मणे) मणि ! [प्रशसनीय वैदिक नियम] (त्वम्) तू (तम्) उस [पुरुष] को (श्रैष्ठ्याय) श्रेष्ठ पद के लिये (जिन्वतात्) तृप्त कर ॥३४॥

एतमिध्मं समाहितं जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमैः । तस्मिन् विदेम

सुमतिं स्वस्ति प्रजां चक्षुः पशून्त्समिद्धे जातवेदसि ब्रह्मणा ॥३५॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि ! [अग्नि-समान तेजस्वी मनुष्य] (एतम्) इस (समाहितम्) ध्यान किये गए (इध्मम्) प्रकाशस्वरूप [परमेश्वर] को, (जुषाणः) प्रसन्न होकर तू (होमैः) दानों [आत्मसमर्पणों] से (प्रतिहर्य) प्रत्यक्ष प्रीति कर। (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान से (समिद्धे) प्रकाशित (तस्मिन्) उस (जातवेदसि) उत्पन्न पदार्थों के जानने वाले [परमात्मा] में (सुमतिम्) सुमति, (स्वस्ति) कुशलता [कुशल], (प्रजाम्) प्रजा [सन्तान आदि] (चक्षुः) दृष्टि और (पशून्) पशुओं को (विदेम) हम पावें ॥३५॥

卐 इति तृतीयोऽनुवाकः 卐

卐

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

॥ सूक्तम् ७ ॥

१—४४ अथर्वा, स्कम्भ आत्मा वा। त्रिष्टुप्, १ विराड् जगती, २, ८ भुरिज्; ७, १३ परोष्णिक्; १०, १४, १६, १८, १९ उपरिष्टाद् बृहती, ११, १२, १५, २०, २२, ३९ उपरिष्टाद् ज्योतिर्जगती; १७ त्र्यवसाना षट्पदा जगती, २१ बृहतीगर्भा उष्णिक्, २३-३०, ३७, ४०, अनुष्टुप्, ३१ मध्येज्योतिर्जगती, ३२, ३४, ३६ उपरिष्टाद् विराड् बृहती, ३३ पराविराडनुष्टुप्; ३५ चतुष्पदा जगती, ३८, ४२, ४३ त्रिष्टुप्; ४१ आर्षी त्रिपदा गायत्री; ४४ एका० आर्च्यनुष्टुप्।

कस्मिन्नङ्गे तपो अस्याधि तिष्ठति कस्मिन्नङ्ग ऋतमस्याध्याहितम्।
क्व व्रतं क्व श्रद्धास्य तिष्ठति कस्मिन्नङ्गे सत्यमस्य प्रतिष्ठितम् ॥१॥

पदार्थ—(अस्य) इस [सर्वव्यापक ब्रह्म] के (कस्मिन् अङ्गे) कौन से अङ्ग में (तपः) तप [ब्रह्मचर्य आदि तपश्चरण वा ऐश्वर्य] (अधि तिष्ठति) जमकर ठहरता है, (अस्य) इसके (कस्मिन् अङ्गे) किस अङ्ग में (ऋतम्) सत्य शास्त्र [वेद] (अधि) दृढ़ (आहितम्) स्थापित है। (अस्य) इसके (क्व) कहां पर (व्रतम्) व्रत [नियम], (क्व) कहां पर (श्रद्धा) श्रद्धा [सत्य में दृढ़ विश्वास] (तिष्ठति) स्थित है, (अस्य) इसके (कस्मिन् अङ्गे) कौन से अङ्ग में (सत्यम्) सत्य [यथार्थ कर्म] (प्रतिष्ठितम्) ठहरा हुआ है ॥१॥

कस्मादङ्गाद् दीप्यते अग्निरस्य कस्मादङ्गात् पवते मातरिश्वा। कस्मादङ्गाद् वि मिमीतेऽधि चन्द्रमा मह स्कम्भस्य मिमानो अङ्गम् ॥२॥

पदार्थ—(अस्य) इस [सर्वव्यापक ब्रह्म] के (कस्मात् अङ्गात्) कौन से अङ्ग से (अग्निः) अग्नि (दीप्यते) चमकता है, (कस्मात् अङ्गात्) कौन से अङ्ग से (मातरिश्वा) आकाश में चलने वाला [वायु] (पवते) झोंके लेता है। (कस्मात् अङ्गात्) कौन से अङ्ग से (महः) विशाल (स्कम्भस्य) स्कम्भ [धारण करने वाले परमात्मा] के (अङ्गम्) अङ्ग [स्वरूप]को (मिमानः) मापता हुआ (चन्द्रमा) चन्द्रमा (वि) विविध प्रकार (अधि मिमीते) [अपना मार्ग] मापता रहता है ॥२॥

कस्मिन्नङ्गे तिष्ठति भूमिरस्य कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्यन्तरिक्षम्।
कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्याहिता द्यौः कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्युत्तरं दिवः ॥३॥

पदार्थ—(अस्य) इस [सर्वव्यापक ब्रह्म] के (कस्मिन् अङ्गे) कौन से अङ्ग में (भूमिः) भूमि (तिष्ठति) ठहरती है, (कस्मिन् अङ्गे) कौन से अङ्ग में (अन्तरिक्षम) अन्तरिक्ष (तिष्ठति) ठहरता है। (कस्मिन् अङ्गे) कौन से अङ्ग में (आहिता) ठहराया हुआ (द्यौः) सूर्य (तिष्ठति) ठहरता है, (कस्मिन् अङ्गे) किस अङ्ग में (दिवः) सूर्य से (उत्तरम्) ऊंचा स्थान (तिष्ठति) ठहरता है ॥ ३ ॥

क्व प्रेप्सन् दीप्यत ऊर्ध्वो अग्निः क्व प्रेप्सन् पवते मातरिश्वा।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यावृतः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥४॥

पदार्थ—(क्व) कहां को (प्रेप्सन्) पाने की इच्छा करता हुआ, (ऊर्ध्वः) ऊंचा होता हुआ (अग्निः) अग्नि (दीप्यते) चमकता है, (क्व) कहां को (प्रेप्सन्) पाने की इच्छा करता हुआ (मातरिश्वा) आकाश में गतिवाला [वायु] (पवते) झोंके लेता है। (यत्र) जहां (प्रेप्सन्तीः) पाने की इच्छा करती हुई (आवृतः) अनेक घूमें (अभियन्ति) सब ओर से मिलती हैं, (सः) वह (कतमः स्वित्) कौन सा (एव) निश्चय करके है ? [इसका उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करने वाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥४॥

क्वार्धमासाः क्व यन्ति मासाः संवत्सरेण सह संविदानाः।
यत्र यन्त्यृतवो यत्रार्तवाः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥५॥

पदार्थ—(क्व) कहां (अर्धमासाः) आधे महीने [पखवाड़े] और (क्व) कहां (मासाः) महीने (संवत्सरेण सह) वर्ष के साथ (संविदानाः) मिलते हुए (यन्ति) जाते हैं ? (यत्र) जहां (ऋतवः) ऋतुएँ और (आर्तवाः) ऋतुओं के अवयव (यन्ति) जाते हैं, (सः) वह (कतमः स्वित्) कौन-सा (एव) निश्चय करके है ? [उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करनेवाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥५॥

क्व प्रेप्सन्ती युवती विरूपे अहोरात्रे द्रवतः संविदाने।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यापः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥६॥

पदार्थ—(क्व) कहां (प्रेप्सन्ती) पाने की इच्छा करती हुई (युवती) दो मिलने वाली और अलग हो जाने वाली शक्तियां, (विरूपे) विरुद्ध रूप वाले, (संविदाने) आपस में मिले हुए (अहोरात्रे) दिन और रात (द्रवतः) दौड़ते हैं ? (यत्र) जहां (प्रेप्सन्तीः) मिलने की इच्छा करती हुई (आपः) सब प्रजाएँ (अभियन्ति) चारों ओर से जाती हैं, (सः) वह (कतमः स्वित्) कौन-सा (एव) निश्चय करके है ? [उत्तर] उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करनेवाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥६॥

यस्मिन्त्स्तब्ध्वा प्रजापतिर्लोकान्त्सर्वाँ अधारयत्।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥७॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिस में (प्रजापतिः) प्रजापति [सूर्य वा आकाश] ने (सर्वान् लोकान्) सब लोकों को (स्तब्ध्वा) रोककर (अधारयत) धारण किया है। (सः) वह (कतमः स्वित्) कौन सा (एव) निश्चय करके है ? [उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करनेवाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥७॥

यत् परममवमं यच्च मध्यमं प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम्।
कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र यन्न प्राविशत् कियत् तद् बभूव ॥८॥

पदार्थ—(यत्) जो कुछ (परमम्) अति ऊँचा, (अवमम्) अति नीचा (च) और (यत्) जो कुछ (मध्यमम्) अति मध्यम (विश्वरूपम्) नानारूप [जगत्] (प्रजापतिः) प्रजापति [परमेश्वर] ने (ससृजे) रचा था। (कियता) कहां तक (स्कम्भः) स्कम्भ [धारण करनेवाले परमेश्वर] ने (तत्र) उस [जगत्] में (प्रविवेश) प्रवेश किया था, (यत्) जितने में उस [परमेश्वर] ने (न) नहीं (प्राविशत्) प्रवेश किया है, (तत्) वह (कियत्) कितना (बभूव) था ॥ ८ ॥

कियता स्कम्भः प्र विवेश भूतं कियद् भविष्यदन्वाशयेऽस्य।
एकं यदङ्गमकृणोत् सहस्रधा कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र ॥९॥

पदार्थ—(कियता) कहां तक (भूतम्) भूत काल में (स्कम्भः) स्कम्भ [धारण करने वाले परमेश्वर] ने (प्रविवेश) प्रवेश किया था, (कियत्) कितना (भविष्यत्) भविष्यत् काल (अस्य) इस [परमेश्वर] के (अन्वाशये) निरन्तर आशय [आधार] में है (यत्) जो कुछ (एकम्) एक (अङ्गम्) अङ्ग [अर्थात् थोड़ा सा जगत्] (सहस्रधा) सहस्रों प्रकार से (अकृणोत्) उस [परमेश्वर] ने रचा है, (कियता) कहां तक (तत्र) उसमें (स्कम्भः) स्कम्भ [धारण करनेवाले परमेश्वर] ने (प्रविवेश) प्रवेश किया था ॥९॥

यत्र लोकांश्च कोशांश्चापो ब्रह्म जना विदुः।
असच्च यत्र सच्चान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१०॥

पदार्थ—(यत्र ब्रह्म) जिस ब्रह्म में (आपः) विद्वान् (जनाः) जन (लोकान्) सब लोकों को (च च) और (कोशान्) सब कोशों [निधियों वा आधारों] को (विदुः) जानते हैं। (यत्र अन्तः) जिसके भीतर (असत्) असत् [अनित्य कार्यरूप जगत्] (च च) और (सत्) सत् [नित्य अर्थात् जगत् का कारण] है, (सः) वह (कतमः स्वित्) कौन सा (एव) निश्चय करके है ? [उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करनेवाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥१०॥

यत्र तपः पराक्रम्य व्रतं धारयत्युत्तरम्। ऋतं च यत्र श्रद्धा
चापो ब्रह्म समाहिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥११॥

पदार्थ—(यत्र) जिस [ब्रह्म] में (तपः) तप [ऐश्वर्य वा सामर्थ्य] (पराक्रम्य) पराक्रम करके (उत्तरम्) उत्तम (व्रतम्) व्रत [वरणीय कर्म] को (धारयति) धारण करता है। (यत्र ब्रह्म) जिस ब्रह्म में (ऋतम्) सत्य शास्त्र, (च) और (श्रद्धा) श्रद्धा [सत्य धारण विश्वास] (च) और (आपः) सब प्रजाएँ (समाहिताः) मिलकर स्थापित हैं, (सः) वह (कतमः स्वित्) कौन-सा (एव) निश्चय करके है ? [उत्तर] (तम्) उस को (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करनेवाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥११॥

यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता। यत्राग्निश्चन्द्रमाः
सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१२॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिस में (भूमिः) भूमि, (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष और (यस्मिन्) जिस में (द्यौः) आकाश (अधि आहिता) दृढ़ स्थापित है। (यत्र) जिस में (अग्निः) अग्नि (चन्द्रमाः) चन्द्रमा, (सूर्यः) सूर्य और (वातः) वायु (आर्पिताः) भली भांति जमे हुए (तिष्ठन्ति) ठहरते हैं, (सः) वह (कतमः स्वित्) कौन-सा (एव) निश्चय करके है ! [उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करने वाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥१२॥

यस्य॒ त्रय॑स्त्रिंशद् दे॒वा अङ्गे॒ सर्वे॑ स॒माहि॑ताः ।
स्क॒म्भं तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑दे॒व सः ॥१३॥

पदार्थ—(यस्य) जिसके (अङ्गे) अङ्ग मे (सर्वे) सब (त्रयस्त्रिंशत्) तेतीस (देवा) देवता [दिव्य पदार्थ] (समाहिता) मिलकर स्थापित हैं। (स.) वह, (कतम स्वित्) कौन सा (एव) निश्चय करके है? [उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करने वाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥१३॥

यत्र॒ ऋष॑यः प्रथम॒जा ऋचः॒ साम॒ यजु॑र्म॒ही । ए॒क॒र्षिर्यस्मि॒न्नार्पि॑तः स्क॒म्भं तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑दे॒व सः ॥१४॥

पदार्थ—(यत्र) जिस [परमेश्वर] में (प्रथमजा) प्रथम उत्पन्न (ऋषय.) ऋषि [मन्त्रो के अर्थ जाननेवाले महात्मा], (ऋचः) स्तुति-विद्याएँ [ऋग्वेद] (साम) मोक्ष-विद्या [सामवेद], (यजु) सत्सङ्ग-विद्या [यजुर्वेद] और (मही) पूजनीय वाणी [ब्रह्मविद्या अर्थात् अथर्ववेद] वर्तमान हैं। (यस्मिन्) जिसमे (एकर्षिः) एकदर्शी [समदर्शी स्वभाव] (आर्पित) भली भांति जमा हुआ है, (स) वह (कतम स्वित्) कौन सा (एव) निश्चय करके है? [उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करनेवाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥१४॥

यत्रा॒मृतं॑ च मृ॒त्युश्च॒ पुरु॑षे॒ऽधि स॒माहि॑ते । स॒मु॒द्रो यस्य॑ ना॒ड्यः॒ पुरु॑षे॒ऽधि स॒माहि॑ताः स्क॒म्भं तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑दे॒व सः ॥१५॥

पदार्थ—(यत्र) जिस [परमेश्वर] मे (पुरुषे अधि) मनुष्य के निमित्त (मृत्यु) मृत्यु [आलस्य आदि] (च च) और (अमृतम्) अमरपन आदि [पुरुषार्थ] (समाहिते) दोनो यथावत् स्थापित हैं। (समुद्र.) समुद्र [अन्तरिक्ष, अवकाश] (यस्य) जिसकी (समाहिता) यथावत् स्थापित (नाड्य) नाड़ियाँ [के समान] (पुरुषे अधि) मनुष्य के लिये है, (स) वह (कतम स्वित्) कौन-सा (एव) निश्चय करके है? [उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करनेवाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥१५॥

यस्य॒ चत॑स्रः प्र॒दिशो॑ ना॒ड्य१॒स्तिष्ठ॑न्ति प्रथ॒माः ।
य॒ज्ञो यत्र॒ परा॑क्रान्तः स्क॒म्भं तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑दे॒व सः ॥१६॥

पदार्थ—(चतस्र) चारो (प्रदिश) दिशाएँ (यस्य) जिस [परमेश्वर] की (प्रथमा) मुख्य (नाड्य.) नाड़ियो [के समान] (तिष्ठन्ति) है। (यत्र) जिस में (यज्ञ) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] (पराक्रान्त) पराक्रमयुक्त है (स) वह (कतम स्वित्) कौन सा (एव) निश्चय करके है? [उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करनेवाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥१६॥

ये पुरु॑षे॒ ब्रह्म॑ वि॒दुस्ते वि॑दुः परमे॒ष्ठिन॑म् ।
यो वेद॑ परमे॒ष्ठिनं॒ यश्च॒ वेद॑ प्र॒जाप॑तिम् ।
ज्ये॒ष्ठं ये ब्राह्म॑णं वि॒दुस्ते स्क॒म्भम॑नु॒संवि॑दुः ॥१७॥

पदार्थ—(ये) जो लोग (पुरुषे) मनुष्य मे (ब्रह्म) [परमात्मा] को (विदु) जानते हैं। (ते) वे (परमेष्ठिनम्) परमेष्ठी [सब से ऊपर स्थित परमात्मा] को (विदु) जानते हैं। (य) जो [उस को] (परमेष्ठिनम्) परमेष्ठी (वेद) जानता है, (च) और (य) जो [उस को] (प्रजापतिम्) प्रजापति [प्राणियो का रक्षक] (वेद) जानता है। और (ये) जो लोग [उसको] (ज्येष्ठम्) ज्येष्ठ [सब से बड़ा वा सबसे श्रेष्ठ] (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] (विदु) जानते हैं, (ते) वे सब (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करनेवाले परमात्मा] को (अनुसंविदु) पूर्ण रूप से पहिचानते हैं ॥१७॥

यस्य॒ शिरो॑ वैश्वान॒रश्चक्षु॒रङ्गि॑र॒सोऽभ॑वन् । अङ्गा॑नि॒ यस्य॑ या॒तवः॑ स्क॒म्भं तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑दे॒व सः ॥१८॥

पदार्थ—(यस्य) जिस [परमेश्वर] के (शिर·) शिर [के तुल्य] (वैश्वानर) सब नरों का हितकारी गुण [है], (चक्षु.) नेत्र [के तुल्य] (अङ्गिरस) अनेक ज्ञान (अभवन्) हुए हैं। (यस्य) जिसके (अङ्गानि) अङ्गो [के समान] (यातव.) प्रयत्न हैं, (स.) वह (कतम स्वित्) कौन सा (एव) निश्चय करके है? [उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करनेवाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥१८॥

यस्य॒ ब्रह्म॒ मुख॑मा॒हुर्जि॒ह्वां म॑धुक॒शामु॒त । वि॒राज॒मूधो॒ यस्या॒हुः स्क॒म्भं तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑दे॒व सः ॥१९॥

पदार्थ—(ब्रह्म) ब्रह्माण्ड को (यस्य) जिस [परमेश्वर] का (मुखम्) मुख [के समान] (उत) और (मधुकशाम्) मधुविद्या [वेदवाणी] को (जिह्वाम्) जिह्वा [के समान] (आहुः) वे [ऋषि लोग] कहते हैं। (विराजम्) विराट् [विविध शक्ति वाली प्रकृति] को (यस्य:) जिसका (ऊधः) सेचनसाधन [वा दूध का आधार] (आहुः) बताते हैं, (सः) वह (कतम स्वित्) कौन-सा (एव) निश्चय करके है? [उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करनेवाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥१९॥

यस्मा॒दृचो॑ अ॒पात॑क्षन् यजु॒र्यस्मा॑द॒पाक॑षन् । सामा॑नि॒ यस्य॒ लोमा॑न्यथर्वाङ्गि॒रसो॒ मुखं॑ स्क॒म्भं तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑दे॒व सः ॥२०॥

पदार्थ—(यस्मात्) जिस से [प्राप्त करके] (ऋचः) ऋग् मन्त्रों [स्तुति विद्याओ] को (अप अतक्षन्) उन्होंने [ऋषियों ने] सूक्ष्म किया [भले प्रकार विचारा], (यस्मात्) जिससे [प्राप्त करके] (यजु.) यजुर्ज्ञान [सत्कर्मों के बोध] को (अप-अकषन्) उन्होने कस अर्थात् कसौटी पर रक्खा। (सामानि) मोक्ष विद्याएँ (यस्य) जिस के (लोमानि) रोम [के समान व्यापक] हैं और (अथर्व-अङ्गिरसः) अथर्व मन्त्र [निश्चल ब्रह्म के ज्ञान] (मुखम्) मुख [के तुल्य] हैं, (सः) वह (कतमःस्वित्) कौन सा (एव) निश्चय करके है? [उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करनेवाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥२०॥

अ॒स॒च्छा॒खां प्र॒तिष्ठ॑न्तीं पर॒ममि॑व॒ जना॑ विदुः ।
उ॒तो सन्म॑न्य॒न्तेऽव॑रे॒ ये ते॒ शाखा॑मु॒पास॑ते ॥२१॥

पदार्थ—(जना:) पामर जन (प्रतिष्ठन्तीम्) फैलती हुई (असच्छाखाम्) असत् [अनित्य कार्यरूप जगत्] की व्याप्ति को (परमम् इव) परम उत्कृष्ट पदार्थ के समान (विदुः) जानते हैं। (उतो) और (ये) जो (अवरे) पीछे होने वाले, कार्यरूप [जगत्] में (सत्) सत् [नित्य कारण] को (मन्यन्ते) मानते हैं, वे [लोग] (ते) तेरी (शाखाम्) व्याप्ति को (उपासते) भजते हैं ॥२१॥

यत्रा॑दि॒त्याश्च॑ रु॒द्राश्च॒ वस॑वश्च स॒माहि॑ताः । भू॒तं च॒ यत्र॒ भव्यं॑ च॒ सर्वे॑ लो॒काः प्रति॑ष्ठिताः स्क॒म्भं तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑दे॒व सः ॥२२॥

पदार्थ—(यत्र) जिस [परमेश्वर] में (आदित्या.) प्रकाशमान [सूर्य आदि लोक] (च च) और (रुद्रा.) गति देनेवाले पवन (च) और (वसवः) निवास करनेवाले [प्राणी] (समाहिताः) परस्पर ठहराए गए हैं। (यत्र) जिसमे (भूतम्) भूतकाल (च) और (भव्यम्) भविष्यत् काल (च) और (सर्वे) सब (लोकाः) लोक (प्रतिष्ठिता.) ठहरे हैं (सः) वह (कतम स्वित्) कौन-सा (एव) निश्चय करके है? [उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करनेवाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥२२॥

यस्य॒ त्रय॑स्त्रिंशद् दे॒वा नि॒धिं रक्ष॑न्ति स॒र्वदा॑ ।
नि॒धिं तम॒द्य को वे॑द॒ यं दे॑वा अभि॒रक्ष॑थ ॥२३॥

पदार्थ—(यस्य) जिस [परमेश्वर] के (निधिम्) कोष [संसार] को (त्रयस्त्रिंशत्) तैंतीस (देवा.) देव [दिव्य पदार्थ] (सर्वदा) सर्वदा (रक्षन्ति) रखाते हैं। (तम्) उस (निधिम्) कोष को (अद्य) आज (क.) कौन (वेद) जानता है, (यम्) जिस को, (देवा) हे देवो! [दिव्य पदार्थो] (अभिरक्षथ) तुम सर्वदा रखवाली करते हो ॥२३॥

यत्र॑ दे॒वा ब्र॑ह्म॒विदो॒ ब्रह्म॑ ज्ये॒ष्ठमु॒पास॑ते ।
यो वै तान् वि॒द्यात् प्र॒त्यक्षं॒ स ब्र॒ह्मा वेदि॑ता स्यात् ॥२४॥

पदार्थ—(यत्र) जहाँ पर (देवा) विजयी (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी पुरुष (ज्येष्ठम्) ज्येष्ठ [सब से बड़े वा सबसे श्रेष्ठ] (ब्रह्म) ब्रह्म को (उपासते) भजते हैं। [वहाँ] (य) जो (वै) ही (तान्) उन [ब्रह्मज्ञानियो] को (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष करके (विद्यात्) जान लेवे, (सः) वह (ब्रह्मा) ब्रह्मा [महापण्डित] (वेदिता) ज्ञाता [जानकर] (स्यात्) होवे ॥२४॥

बृ॒हन्तो॒ नाम॒ ते दे॒वा येऽस॑तः॒ परि॑ जज्ञि॒रे ।
एकं॒ तदङ्गं॑ स्क॒म्भस्यास॑दाहुः प॒रो जनाः॑ ॥२५॥

पदार्थ—(ते) वे [कारणरूप] (देवाः) दिव्य पदार्थ (नाम) अवश्य (बृहन्त.) बड़े हैं, (ये) जो (असत) असत् [अनित्य कार्यरूप जगत्] से (परिजज्ञिरे) सब ओर प्रकट हुए हैं। (जना) लोग (परः) परे [कारण से परे] (तत्) उस (असत्) असत् [अनित्य कार्यरूप जगत्] को (स्कम्भस्य) स्कम्भ [धारण करने वाले परमात्मा] का (एकम्) एक (अङ्गम्) अङ्ग (आहुः) वे [विद्वान्] बताते हैं ॥२५॥

यत्र॑ स्क॒म्भः प्र॑ज॒नय॑न् पुरा॒णं व्यव॑र्तयत् ।
एकं॒ तदङ्गं॑ स्क॒म्भस्य॑ पुरा॒णम॑नु॒संवि॑दुः ॥२६॥

पदार्थ—(यत्र) जहाँ [जिस काल में] [कार्यरूप जगत् को] (प्रजनयन्) उत्पन्न करते हुए (स्कम्भः) स्कम्भ [धारण करनेवाले परमात्मा] ने (पुराणम्)

पुराने [कारण] को (अवर्तयत्) चक्राकार घुमाया, (तत्) उस (पुराणम्) पुराने [कारण] को (स्कम्भस्य) स्कम्भ [धारण करनेवाले परमेश्वर] का (एकम् अङ्गम्) एक अङ्ग [वे तत्त्ववेत्ता] (अनुसंविदुः) पूर्ण रीति से जानते हैं ॥२६॥

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अङ्गे गात्रा विभेजिरे ।

तान् वै त्रयस्त्रिंशद् देवानेके ब्रह्मविदो विदुः ॥२७॥

पदार्थ—(यस्य) जिस [पूजनीय परमेश्वर] के (अङ्गे) अङ्ग में [वर्तमान] (त्रयस्त्रिंशत्) तैंतीस (देवाः) देवों [दिव्य पदार्थों] ने (गात्रा) अपने गात्रों को (विभेजिरे) अलग-अलग बांटा था । (तान् वै) उन्हीं (त्रयस्त्रिंशत्) तेतीस (देवान्) देवों को (एके) कोई-कोई (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी (विदुः) जानते हैं ॥२७॥

हिरण्यगर्भं परममनत्युद्यं जना विदुः ।

स्कम्भस्तदग्रे प्रासिञ्चद्धिरण्यं लोके अन्तरा ॥२८॥

पदार्थ—(जनाः) लोग (हिरण्यगर्भम्) तेज के गर्भ [आधार परमेश्वर] को (परमम्) सर्वोत्कृष्ट [प्रणव वा ओ३म्] और (अनत्युद्यम्) सर्वथा अकथनीय [ईश्वर] (विदुः) जानते हैं । (स्कम्भः) उस स्कम्भ [धारण करनेवाले परमात्मा] ने (अग्रे) पहिले ही पहिले (तत्) उस (हिरण्यम्) तेज को (लोके अन्तरा) संसार के भीतर (प्र असिञ्चत्) सींच दिया है ॥२८॥

स्कम्भे लोकाः स्कम्भे तपः स्कम्भेऽध्यृतमाहितम् ।

स्कम्भ त्वा वेद प्रत्यक्षमिन्द्रे सर्वं समाहितम् ॥२९॥

पदार्थ—(स्कम्भे) स्कम्भ [धारण करनेवाले परमेश्वर] में (लोकाः) सब लोक (स्कम्भे) स्कम्भ में (तपः) तप [ऐश्वर्य वा सामर्थ्य], (स्कम्भे अधि) स्कम्भ में ही (ऋतम्) सत्यशास्त्र (आहितम्) यथावत् स्थापित है । (स्कम्भ) हे स्कम्भ ! [धारण करनेवाले परमात्मन् !] (त्वा) तुझ को (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष (वेद) मैं जानता हूँ, (इन्द्रे) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् तुझ] में (सर्वम्) सब [जगत्] (समाहितम्) परस्पर धरा हुआ है ॥२९॥

इन्द्रे लोका इन्द्रे तप इन्द्रेऽध्यृतमाहितम् ।

इन्द्रं त्वा वेद प्रत्यक्षं स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥३०॥

पदार्थ—(इन्द्रे) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा] में (लोकाः) सब लोक, (इन्द्रे) इन्द्र में (तपः) तप [ऐश्वर्य वा सामर्थ्य] (इन्द्रे अधि) इन्द्र में ही (ऋतम्) सत्य शास्त्र (आहितम्) सब प्रकार ठहरा है । (त्वा) तुझ को (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान्] (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष (वेद) जानता हूँ, (स्कम्भे) स्कम्भ [धारण करनेवाले, तुझ] में (सर्वम्) सब [जगत्] (प्रतिष्ठितम्) परस्पर ठहरा है ॥३०॥

नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः । यदजः प्रथमं संबभूव स ह तत् स्वराज्यमियाय यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम् ॥३१॥

पदार्थ—वह [मनुष्य] (सूर्यात्) सूर्य से (पुरा) पहिले और (उषसः) उषा [प्रभात] से (पुरा) पहिले [वर्तमान] (नाम) एक नाम [परमेश्वर] को (नाम्ना) दूसरे नाम [इन्द्र, स्कम्भ, अज आदि] से (जोहवीति) पुकारता रहता है । (यत्) क्योंकि (अजः) अजन्मा [परमेश्वर] (प्रथमम्) पहिले ही पहिले (संबभूव) शक्तिमान् हुआ, (सः) उसने (ह) ही (तत्) वह (स्वराज्यम्) स्वराज्य [स्वतन्त्र राज्य] (इयाय) पाया, (यस्मात्) जिस [स्वराज्य] से (परम्) बढ़कर (अन्यत्) दूसरा (भूतम्) द्रव्य (न अस्ति) नहीं है ॥३१॥

यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम् ।

दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥३२॥

पदार्थ—(भूमिः) भूमि (यस्य) जिस [परमेश्वर] के (प्रमा) पादमूल [के समान] (उत) और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष [पृथिवी और सूर्य के बीच का आकाश] (उदरम्) उदर [के समान] है । (दिवम्) सूर्य को (यः) जिसने (मूर्धानम्) मस्तक [के समान] (चक्रे) रचा (तस्मै) उस (ज्येष्ठाय) ज्येष्ठ [सब से बड़े वा सब से श्रेष्ठ] (ब्रह्मणे) ब्रह्म [परमात्मा] को (नमः) नमस्कार है ॥३२॥

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।

अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥३३॥

पदार्थ—(पुनर्णवः) [सृष्टि के आदि में] बारम्बार नवीन होनेवाला (सूर्यः) सूर्य (च) और (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (यस्य) जिसके (चक्षुः) नेत्र [के समान] हैं । (यः) जिसने (अग्निम्) अग्नि को (आस्यम्) मुख [के समान] (चक्रे) रचा है, (तस्मै) उस (ज्येष्ठाय) ज्येष्ठ [सब से बड़े वा सबसे श्रेष्ठ] (ब्रह्मणे) ब्रह्म [परमात्मा] को (नमः) नमस्कार है ॥३३॥

यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।

दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥३४॥

पदार्थ—(वातः) वायु (यस्य) जिसके (प्राणापानौ) प्राण और अपान [के समान] और (अङ्गिरसः) प्रकाश करनेवाली किरणें (चक्षुः) नेत्र [के समान] (अभवन्) हुए । (दिशः) दिशाओं को (यः) जिस ने (प्रज्ञानीः) व्यवहार जतानेवाली (चक्रे) बनाया, (तस्मै) उस (ज्येष्ठाय) [सब से बड़े वा सब से श्रेष्ठ] (ब्रह्मणे) ब्रह्म [परमात्मा] को (नमः) नमस्कार है ॥३४॥

स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी उभे इमे स्कम्भो दाधारोर्वन्तरिक्षम् ।

स्कम्भो दाधार प्रदिशः षडुर्वीः स्कम्भ इदं विश्वं भुवनमा विवेश ॥३५॥

पदार्थ—(स्कम्भः) स्कम्भ [धारण करनेवाले परमेश्वर] ने (इमे उभे) इन दोनों (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी को (दाधार) धारण किया था, (स्कम्भः) स्कम्भ ने (उरु) विस्तृत (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (दाधार) धारण किया । (स्कम्भः) स्कम्भ ने (षट्) छह [पूर्वादि चार और एक ऊपर और नीचे की] (उर्वीः) विस्तृत (प्रदिशः) दिशाओं को (दाधार) धारण किया, (स्कम्भे) स्कम्भ में (इदम्) यह (विश्वम्) सब (भुवनम्) सत्तावाला [जगत्] (आ) सब ओर से (विवेश) प्रविष्ट हुआ है ॥३५॥

यः श्रमात् तपसो जातो लोकान्त्सर्वान्त्समानशे ।

सोमं यश्चक्रे केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥३६॥

पदार्थ—(यः) जो [परमेश्वर] (श्रमात्) [अपने] श्रम [प्रयत्न] से और (तपसः) तप [सामर्थ्य से] (जातः) प्रसिद्ध होकर (सर्वान् लोकान्) सब लोकों में (समानशे) पूरा-पूरा व्यापा (यः) जिस ने (सोमम्) ऐश्वर्य को (केवलम्) केवल [अपना ही] (चक्रे) बनाया, (तस्मै) उस (ज्येष्ठाय) ज्येष्ठ [सब से बड़े वा सबसे श्रेष्ठ] (ब्रह्मणे) ब्रह्म [परमात्मा] को (नमः) नमस्कार है ॥३६॥

कथं वातो नेलयति कथं न रमते मनः ।

किमापः सत्यं प्रेप्सन्तीर्नेलयन्ति कदा चन ॥३७॥

पदार्थ—(कथम्) कैसे (वातः) वायु (न) नहीं (इलयति) सोता है, (कथम्) कैसे (मनः) मन (न) नहीं (रमते) ठहरता है । (किम्) क्यों (आपः) प्रजाएँ वा जल (सत्यम्) सत्य [ईश्वर-नियम] को (प्रेप्सन्तीः) पाने की इच्छा करते हुए (कदा चन) कभी भी (न) नहीं (इलयन्ति) सोते हैं ॥३७॥

महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे । तस्मिञ्छ्रयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखाः ॥३८॥

पदार्थ—(महत्) बड़ा (यक्षम्) यक्ष [पूजनीय ब्रह्म] (भुवनस्य मध्ये) जगत् के बीच (तपसि) [अपने] सामर्थ्य में (क्रान्तम्) पराक्रमयुक्त होकर (सलिलस्य) अन्तरिक्ष की (पृष्ठे) पीठ पर [वर्तमान है] । (तस्मिन्) उस [ब्रह्म] में, (ये उ के च देवाः) जो कोई भी दिव्य लोक हैं, वे (श्रयन्ते) ठहरते हैं (इव) जैसे (वृक्षस्य शाखाः) वृक्ष की शाखाएँ (स्कन्धः परितः) [धड़ वा पीठ] के चारों ओर ॥ ३८ ॥

यस्मै हस्ताभ्यां पादाभ्यां वाचा श्रोत्रेण चक्षुषा । यस्मै देवाः सदा बलिं प्रयच्छन्ति विमितेऽमितं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥३९॥

पदार्थ—(यस्मै) जिस [परमेश्वर] को, (यस्मै) जिस [परमेश्वर] को (हस्ताभ्याम्) दोनों हाथों से, (पादाभ्याम्) दोनों पैरों से, (वाचा) वाणी से, (श्रोत्रेण) श्रोत्र से और (चक्षुषा) दृष्टि से (देवाः) विद्वान् लोग (विमिते) विविध प्रकार मापे गये [जगत्] में (अमितम्) अपरिमित (बलिम्) सम्मान (सदा) (प्रयच्छन्ति) देते हैं, (सः) वह (कतम स्वित्) कौन-सा (एव) निश्चय करके है ? [उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) स्कम्भ [धारण करनेवाला परमात्मा] (ब्रूहि) तू कह ॥ ३९ ॥

अप तस्य हतं तमो व्यावृत्तः स पाप्मना ।

सर्वाणि तस्मिन् ज्योतींषि यानि त्रीणि प्रजापतौ ॥४०॥

पदार्थ—(तस्य) उस [परमेश्वर] से (तमः) अन्धकार (अपहतम्) सर्वथा नष्ट है, (सः) वह (पाप्मना) पाप से (व्यावृत्तः) विमुक्त है । (तस्मिन् प्रजापतौ) उस प्रजापालक [परमेश्वर] में (सर्वाणि) सब (ज्योतींषि) ज्योति हैं, (यानि) जो (त्रीणि) तीन [संयोग, वियोग और स्थिति रूप, वा सत्त्व, रज और तम रूप हैं] ॥ ४० ॥

यो वेतसं हिरण्ययं तिष्ठन्तं सलिले वेद ।

स वै गुह्यः प्रजापतिः ॥४१॥

पदार्थ—(यः) जो [परमेश्वर] (सलिले) अन्तरिक्ष में (तिष्ठन्तम्) ठहरे हुए (हिरण्ययम्) तेजोमय (वेतसम्) परस्पर बुने हुए [संसार] को (वेद) जानता है । (सः वै) वह ही (गुह्यः) गुप्त (प्रजापतिः) प्रजापालक है ॥ ४१ ॥

तन्त्रमेके युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयतः षण्मयूखम् ।

प्रान्या तन्तूंस्तिरते धत्ते अन्या नाप वृञ्जाते न गमातो अन्तम् ॥४२॥

पदार्थ—(एके) अकेली अकेली दो (युवती) युवा स्त्रियां [वा संयोग वियोग स्वभाव वाली] (विरूपे) विरुद्ध स्वरूप वाली [दिन और रात्रि की वेलायें] (अभ्याक्रामम्) परस्पर चढ़ाई करके (षण्मयूखम्) छह [पूर्वादि चार और ऊपर नीचे की दो दिशाओं] में परिमाण वा गति वाले (तन्त्रम्) तन्त्र [जाल अर्थात् काल] को (वयतः) बुनती हैं । (अन्या) कोई एक (तन्तून्) तन्तुओं [तागों अर्थात् प्रकाश वा अन्धकार] को (प्र तिरते) फैलाती है, (अन्या) दूसरी [उन्हें] (धत्ते) समेट धरती है । वे दोनों [उन्हें] (न अप वृञ्जाते) न छोड़ बैठती हैं (न) न (अन्तम्) अन्त तक (गमातः) पहुँचती हैं ॥ ४२ ॥

तयोरहं परिनृत्यन्त्योरिव न वि जानामि यतरा परस्तात् ।

पुमानेनद्वयत्युद्गृणत्ति पुमानेनद्वि जभाराधि नाके ॥४३॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (न वि जानामि) कुछ नहीं जानता हूँ—(परिनृत्यन्त्यो इव) इधर-उधर नाचती हुई जैसे, (तयो) उन दोनों [स्त्रियों] में से (यतरा) कौन-सी (परस्तात्) [दूसरी से] परे है । (पुमान्) पुरुष [रक्षक परमेश्वर] (एनत्) इस [तन्त्र] को (वयति) बुनता है और (उत् गृणत्ति) निगल लेता है, (पुमान्) पुरुष ने (एनत्) इसको (नाके अधि) आकाश के भीतर (वि जभार) फैलाया था ॥ ४३ ॥

इमे मयूखा उप तस्तभुर्दिवं सामानि चक्रुस्तसराणि वातवे ॥४४॥

पदार्थ—(इमे) इन (मयूखाः) ज्ञानप्रकाशों ने (दिवम्) आकाश [ब्रह्माण्ड] का (उप तस्तभुः) धारण किया था और (तसराणि) विस्तारों को (वातवे) पाने के लिये (सामानि) मोक्ष ज्ञानों को (चक्रुः) बनाया था ॥४४॥

卐 सूक्तम् ॥८॥ 卐

१—४४ कुत्स । आत्मा । त्रिष्टुप्, १ उपरिष्टाद् विराड्बृहती, २ बृहतीगर्भानुष्टुप्, ५ भुरिगनुष्टुप्, ६, १४, १९-२१, २३, २५, २९, ३१-३४, ३७-३८, ४१, ४३, अनुष्टुप्, ७ पराबृहती, १० अनुष्टुब्गर्भा, ११ जगती, १२ पुरोबृहती त्रिष्टुब्गर्भार्षी पङ्क्तिः, १५, २७ भुरिग्बृहती, २२ पुर-उष्णिक्, २६ द्व्यनुष्टुब्गर्भानुष्टुप्, ३० भुरिक्, ३९ बृहतीगर्भा, ४२ विराड् गायत्री ।

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।

स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥१॥

पदार्थ—(यः) जो [परमेश्वर] (भूतम्) भूतकाल (च च) और (भव्यम्) भविष्यत् काल का (च) और (यः) जो (सर्वम्) सब [जगत्] का (अधितिष्ठति) अधिष्ठाता है । (च) और (स्वः) सुख (यस्य) जिसका (केवलम्) केवल स्वरूप है, (तस्मै) उस (ज्येष्ठाय) ज्येष्ठ [सबसे बड़े वा सब से श्रेष्ठ] (ब्रह्मणे) ब्रह्म [महान् परमेश्वर] को (नमः) नमस्कार है ॥ १ ॥

स्कम्भेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः ।

स्कम्भ इदं सर्वमात्मन्वद्यत् प्राणन्निमिषच्च यत् ॥२॥

पदार्थ—(स्कम्भेन) स्कम्भ [धारण करनेवाले परमात्मा] द्वारा (विष्टभिते) विविध प्रकार थांभे गये (इमे) ये दोनों (द्यौः) सूर्य (च च) और (भूमिः) भूमि (तिष्ठतः) स्थित हैं । (स्कम्भे) स्कम्भ [परमेश्वर] में (इदम्) यह (सर्वम्) सब (आत्मन्वत्) आत्मावाला [जगत्] वर्तमान है, (यत्) जो कुछ (प्राणत्) श्वास लेता हुआ [चैतन्य] (च) और (यत्) जो (निमिषत्) आँखें मूंदे हुए [जड] है ॥ २ ॥

तिस्रो ह प्रजा अत्यायमायन्न्यन्या अर्कमभितोऽविशन्त ।

बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानो हरितो हरिणीरा विवेश ॥३॥

पदार्थ—(तिस्रः) तीनों [ऊंची, नीची और मध्यम] (ह) ही (प्रजाः) प्रजा [कार्यरूप उत्पन्न पदार्थ] (अत्यायम) नित्य गमन-आगमन को (आयन्) प्राप्त हुए, (अन्याः) दूसरे [कारणरूप पदार्थ] (अर्कम् अभि) पूजनीय [परमात्मा] के आस-पास (नि अविशन्त) ठहरे । (रजसः) संसार का (बृहन् ह) बड़ा ही (विमानः) विविध प्रकार मापने वाला [वा विमान रूप आधार, परमेश्वर] (तस्थौ) खड़ा हुआ और (हरितः) दुःख हरने वाले [हरि, परमात्मा] ने (हरिणीः) दिशाओं में (आ विवेश) सब ओर प्रवेश किया ॥ ३ ॥

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।

तत्राहतास्त्रीणि शतानि शङ्कवः षष्टिश्च खीला अविचाचला ये ॥४॥

पदार्थ—(द्वादश) बारह (प्रधयः) प्रधि [पुट्ठी अर्थात् महीने], (एकम् चक्रम्) एक पहिया [वर्ष], (त्रीणि) तीन (नभ्यानि) नाभि के अङ्ग [ग्रीष्म, वर्षा और शीत] हैं, (क उ) किसने ही (तत्) इस [मर्म] को (चिकेत) जाना है । (तत्र) उस [पहिये, वर्ष] में (त्रीणि) तीन (शतानि) सौ (च) और (षष्टिः) साठ (शङ्कवः) शङ्कु [काँटे] और (खीलाः) कीले [बड़े छोटे दिन] (आहताः) लगे हुए हैं, (ये) जो (अविचाचलाः) टेढ़े होकर विचल नहीं होते ॥ ४ ॥

इदं सवितर्वि जानीहि षड् यमा एक एकजः ।

तस्मिन् हापित्वमिच्छन्ते य एषामेक एकजः ॥५॥

पदार्थ—(सवितः) हे ऐश्वर्यवान् [विद्वान् !] (इदम्) इस [बात] को (वि जानीहि) विज्ञानपूर्वक जान [कि] (षट्) छह (यमाः) यम [नियम से चलने-चलाने वाले पांच ज्ञानेन्द्रिय और एक मन] और (एकः) एक [जीवात्मा] (एकजः) [अपने कर्मानुसार] अकेला उत्पन्न होने वाला है । (तस्मिन्) उस [जीवात्मा] में (ह) ही (अपित्वम्) बन्धुपन को (इच्छन्ते) वे [छह इन्द्रिय] प्राप्त करते हैं, (यः) जो [जीवात्मा] (एषाम्) इन [छह] के बीच (एकः) एक (एकजः) अकेला उत्पन्न होने वाला है ॥ ५ ॥

आविः सन्निहितं गुहा जरन्नाम महत् पदम् ।

तत्रेदं सर्वमार्पितमेजत् प्राणत् प्रतिष्ठितम् ॥६॥

पदार्थ—(आविः) प्रकट, (जरत्) स्तुतियोग्य, (नाम) प्रसिद्ध (महत्) पूजनीय, (पदम्) पाने योग्य (सत्) अविनाशी ब्रह्म (गुहा) हृदय में (निहितम्) दृढ़ स्थापित है । (तत्र) उसी [ब्रह्म] में (आर्पितम्) जमा हुआ (इदम् सर्वम्) यह सब (एजत्) चेष्टा करता हुआ और (प्राणत्) श्वास लेता हुआ (प्रतिष्ठितम्) प्रत्यक्ष स्थित है ॥ ६ ॥

एकचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।

अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं क्व तद् बभूव ॥७॥

पदार्थ—(एकचक्रम्) एक चक्रवाला और (एकनेमि) एक नेमी [नियम] वाला (सहस्राक्षरम्) सहस्रों प्रकार से व्याप्तिवाला [ब्रह्म] (प्र) भली भाँति (पुरः) आगे और (नि) निश्चय करके (पश्चा) पीछे (वर्तते) वर्तमान है । उसने (अर्धेन) आधे [खण्ड] से (विश्वम्) सब (भुवनम्) अस्तित्व [जगत्] को (जजान) उत्पन्न किया और (यत्) जो (अस्य) इस [ब्रह्म] का (अर्धम्) [दूसरा कारण रूप] आधा है, (तत्) वह (क्व) कहां (बभूव) रहा ॥ ७ ॥

पञ्चवाही वहत्यग्रमेषां प्रष्टयो युक्ता अनुसंवहन्ति ।

अयातमस्य ददृशे न यातं परं नेदीयोऽवरं दवीयः ॥८॥

पदार्थ—(पञ्चवाही) पांच [पृथिवी आदि तत्त्व] को ले चलनेवाला [परमेश्वर] (एषाम्) इन [सब लोकों] के (अग्रम्) आगे-आगे (वहति) चलता है (प्रष्टयः) प्रश्न करनेयोग्य पदार्थ (युक्ताः) संयुक्त होकर (अनुसंवहन्ति) [उसके] पीछे चले चलते हैं । (अस्य) इस परमेश्वर का (अयातम्) न जाना [निकट रहना, विद्वानों द्वारा] (ददृशे) देखा गया है और (यातम्) जाना [दूर होना] (न) नहीं, (अवरम्) सर्वोत्तम (परम्) पर ब्रह्म [विद्वानों से] (नेदीयः) अधिक निकट और [अविद्वानों से] (दवीयः) अधिक दूर है ॥ ८ ॥

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम् ।

तदासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः ॥९॥

पदार्थ—(तिर्यग्बिलः) तिरछे बिल [छिद्र] वाला (ऊर्ध्वबुध्नः) ऊपर को बन्धन वाला (चमसः) पात्र [अर्थात् मस्तक] है, (तस्मिन्) उस [पात्र] में (विश्वरूपम्) सम्पूर्ण (यशः) यश [व्याप्तिवाला ज्ञान-सामर्थ्य] (निहितम्) स्थापित है (तत्) उस [पात्र] में (सप्त) सात (ऋषयः) ऋषि [ज्ञानकारक वा मार्गदर्शक इन्द्रियां] (साकम्) मिलकर (आसते) बैठते हैं, (ये) जो (अस्य) इस (महतः) बड़े [शरीर] के (गोपाः) रक्षक (बभूवुः) हुए हैं ॥ ९ ॥

या पुरस्ताद् युज्यते या च पश्चाद् या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः ।

यया यज्ञः प्राङ् तायते तां त्वा पृच्छामि कतमा सर्चाम् ॥१०॥

पदार्थ—(या) जो [वाणी] (पुरस्तात्) पहिले से (च) और (या) जो (पश्चात्) पीछे से (युज्यते) संयुक्त है, (या) जो (विश्वतः) सब ओर से (च) और (या) जो (सर्वतः) सब काल से (युज्यते) संयुक्त है। (यया) जिस [वाणी] से (यज्ञः) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] (प्राङ्) आगे (तायते) फैलता है (ताम्) उस [वाणी] को (त्वा) तुझ से (पृच्छामि) पूछता हूँ—"(ऋचाम्) वाणियों में से (सा) वह (कतमा) कौन सी [वाणी] है" ॥१०॥

यदेज॑ति॒ पत॑ति॒ यच्च॒ तिष्ठ॑ति प्रा॒णदप्रा॑णन्निमि॒षच्च॒ यद्भुव॑त् ।
तद् दा॑धार पृथि॒वीं वि॒श्वरू॑पं॒ तत् सं॒भूय॑ भवत्येक॒मेव॑ ॥११॥

पदार्थ—(यत्) जो कुछ [जगत्] (एजति) चेष्टा करता है, (पतति) उड़ता है, (च) और (यत्) जो कुछ (तिष्ठति) ठहरता है, (प्राणत्) श्वास लेता हुआ, (अप्राणत्) न श्वास लेता हुआ, (च) और (यत्) जो कुछ (निमिषत्) आंख मूंदे हुए (भुवत्) विद्यमान है। (विश्वरूपम्) सब को रूप देने वाले (तत्) विस्तृत [ब्रह्म] ने [उस सबको और] (पृथिवीम्) पृथिवी को (दाधार) धारण किया था, (तत्) वह [ब्रह्म] (संभूय) शक्तिमान् हो-कर (एकम् एव) एक ही (भवति) रहता है ॥११॥

अ॒न॒न्तं वित॑तं पुरु॒त्रान॒न्तमन्त॑वच्चा॒ सम॑न्ते ।
ते ना॑कपा॒लश्च॑रति वि॒चिन्व॒न् वि॒द्वान् भू॒तमु॒त भव्य॑मस्य ॥१२॥

पदार्थ—(अनन्तम्) अन्त रहित (पुरुत्रा) बहुत प्रकार (विततम्) फैला हुआ [ब्रह्म, अर्थात्] (नाकपालः) मोक्ष-सुख का स्वामी [परमात्मा] (समन्ते) परस्पर सीमायुक्त (ते) उन [दोनों, अर्थात्] (अनन्तम्) अन्तरहित [कारण] (च) और (अन्तवत्) अन्त वाले [कार्य जगत्] को (विचिन्वन्) अलग-अलग करता हुआ और (अस्य) इस [ब्रह्माण्ड] का (भूतम्) भूतकाल (उत) और (भव्यम्) भविष्यत् काल को (विद्वान्) जानता हुआ (चरति) विचरता है ॥१२॥

प्र॒जाप॑तिश्चरति॒ गर्भे॑ अ॒न्तरदृ॑श्यमानो बहु॒धा वि जा॑यते ।
अ॒र्धेन॒ विश्वं॒ भुव॑नं ज॒जान॒ यद॑स्या॒र्धं क॑त॒मः स के॒तुः ॥१३॥

पदार्थ—(प्रजापतिः) प्रजा [सब जगत्] का पालने वाला (गर्भे) गर्भ [गर्भरूप आत्मा] के (अन्तः) भीतर (चरति) विचरता है और (अदृश्यमानः) न दीखता हुआ वह (बहुधा) बहुत प्रकार (वि जायते) विशेष कर के प्रकट होता है। उसने (अर्धेन) आधे खण्ड से (विश्वम्) सब (भुवनम्) अस्तित्व [जगत्] को (जजान) उत्पन्न किया, और (यत्) जो (अस्य) इस [ब्रह्म] का (अर्धम्) [दूसरा कारणरूप] आधा है, (सः) वह (कतमः) कौन सा (केतुः) चिह्न है ॥१३॥

ऊ॒र्ध्वं भर॑न्तमुद॒कं कु॒म्भेने॑वोदहा॒र्य॑म् ।
पश्य॑न्ति॒ सर्वे॒ चक्षु॑षा॒ न सर्वे॒ मन॑सा विदुः ॥१४॥

पदार्थ—(कुम्भेन) घड़े से (उदकम्) जल को (ऊर्ध्वम्) ऊपर (भरन्तम्) भरते हुए (उदहार्यम्) जल लानेवाले को (इव) जैसे, [उस पर-मेश्वर को] (सर्वे) सब लोग (चक्षुषा) आंख से (पश्यन्ति) देखते हैं, (सर्वे) [वैसे] सब (मनसा) मन से (न) नहीं (विदुः) जानते हैं ॥१४॥

दू॒रे पू॒र्णेन॑ वसति दू॒र ऊ॒नेन॑ हीयते ।
म॒हद् य॒क्षं भुव॑नस्य॒ मध्ये॒ तस्मै॑ ब॒लिं रा॑ष्ट्र॒भृतो॑ भरन्ति ॥१५॥

पदार्थ—(महत्) बड़ा (यक्षम्) पूजनीय [ब्रह्म] (भुवनस्य मध्ये) संसार के बीच (दूरे) दूर में [वर्तमान होकर] (पूर्णेन) पूर्ण [पूरे विद्वान्] के साथ (वसति) बसता है, और (ऊनेन) हीन [अधूरे पुरुष] के साथ (दूरे) दूर देश में (हीयते) त्यागा जाता है, (तस्मै) उस [ब्रह्म] को (राष्ट्रभृतः) राज्य धारण करने वाले लोग (बलिम्) सम्मान (भरन्ति) धारण करते हैं ॥१५॥

यतः॒ सूर्य॑ उ॒देत्यस्तं॒ यत्र॑ च॒ गच्छ॑ति ।
तदे॒व म॑न्ये॒ऽहं ज्ये॒ष्ठं तदु॒ नात्ये॑ति॒ किं च॒न ॥१६॥

पदार्थ—(यतः) जिस से (सूर्यः) सूर्य (उदेति) उदय होता है, (च) और (यत्र) जिसमें (अस्तम्) अस्त को (गच्छति) प्राप्त होता है। (तत् एव) उसे ही (ज्येष्ठम्) ज्येष्ठ [सब से बड़ा] (अहम्) मैं (मन्ये) मानता हूँ, (तत् उ) उससे (किं चन) कोई भी (न अति एति) बढ़कर नहीं है ॥१६॥

ये अ॒र्वाङ् मध्य॑ उ॒त वा॑ पु॒रा॒णं वेदं॑ वि॒द्वांस॑म॒भितो॒ वद॑न्ति ।
आ॒दि॒त्यमे॒व ते परि॑ वदन्ति॒ सर्वे॑ अ॒ग्निं द्वि॒तीयं॑ त्रि॒वृतं॑ च हं॒सम् ॥१७॥

पदार्थ—(ये) जो [विद्वान्] (अर्वाङ्) अवर [इस काल वा लोक] में, (मध्ये) मध्य में (उत वा) अथवा (पुराणम्) पुराने काल में [वर्तमान] (वेदम्) वेद के (विद्वांसम्) जानने वाले [परमात्मा] को (अभितः) सब ओर से (वदन्ति) बखानते हैं। (ते सर्वे) वे सब [विद्वान् उस] (आदित्यम्) अखण्डनरहित [परमात्मा] को (एव) ही (अग्निम्) अग्नि [प्रकाशस्वरूप] (च) और (द्वितीयम्) दूसरा [दूसरे नाम वाला] (त्रिवृतम्) तीनों [कर्म, उपासना और ज्ञान] को स्वीकार करने वाला (हंसम्) हंस [सर्वव्यापक वा सर्व-ज्ञानी] (परि) निरन्तर (वदन्ति) बताते हैं ॥

स॒ह॒स्रा॒ह्ण्यं विय॑तावस्य प॒क्षौ हरे॑र्हं॒सस्य॒ पत॑तः स्व॒र्गम् ।
स दे॒वान्त्सर्वा॒नुर॑स्युप॒दद्य॑ सं॒पश्य॑न् याति॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ॥१८॥

पदार्थ—(स्वर्गम्) मोक्षसुख को (पततः) प्राप्त हुए (अस्य) इस [सर्वत्र वर्तमान] (हरेः) हरि [दुःख हरनेवाले] (हंसस्य) हंस [सर्वव्यापक परमेश्वर] के (पक्षौ) दोनों पक्ष [ग्रहण करने योग्य कार्य-कारण रूप व्यवहार] (सहस्राह्ण्यम्) सहस्रों दिनोंवाले [अनन्त देश काल] में (वियतौ) फैले हुए हैं। (सः) वह [परमेश्वर] (सर्वान्) सब (देवान्) दिव्यगुणों को [अपने] (उरसि) हृदय में (उपदद्य) लेकर (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (संपश्यन्) निरन्तर देखता हुआ (याति) चलता रहा है ॥१८॥

स॒त्येनो॒र्ध्वस्त॑पति॒ ब्रह्म॑णा॒र्वाङ् वि प॑श्यति ।
प्रा॒णेन॑ ति॒र्यङ् प्रा॑णति॒ यस्मि॑न् ज्ये॒ष्ठमधि॑ श्रि॒तम् ॥१९॥

पदार्थ—वह [पुरुष] (सत्येन) सत्य [मन की सचाई] से (ऊर्ध्वः) ऊंचा होकर (तपति) प्रतापी होता है, (ब्रह्मणा) वेदज्ञान से (अर्वाङ्) अवर [इस ओर] होकर (वि) विविध प्रकार (पश्यति) देखता है। (प्राणेन) प्राण [आत्म-बल] के साथ (तिर्यङ्) आड़ा-तिरछा होकर (प्र) अच्छी रीति से (अनिति) जीता है, (यस्मिन्) जिस [पुरुष] के भीतर (ज्येष्ठम्) ज्येष्ठ [सब से बड़ा ब्रह्म] (अधि श्रितम्) निरन्तर ठहरा हुआ है ॥१९॥

यो वै ते वि॒द्याद॒रणी॒ याभ्यां॑ निर्म॒थ्यते॒ वसु॑ ।
स वि॒द्वान् ज्ये॒ष्ठं म॑न्येत॒ स वि॑द्या॒द् ब्राह्म॑णं म॒हत् ॥२०॥

पदार्थ—(यः) जो [पुरुष] (वै) निश्चय करके (ते) उन दोनों (अरणी) अरणियों [रगड़ कर अग्नि निकालने की दो लकड़ियों] को (विद्यात्) जान लेवे, (याभ्याम्) जिन दोनों से (वसु) अग्नि (निर्मथ्यते) मथकर निकाला जाता है। (सः) वह (विद्वान्) विद्वान् (ज्येष्ठम्) ज्येष्ठ [सब से बड़े ब्रह्म] को (मन्येत) समझ लेगा, और (सः) वह (महत्) बड़े (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [ब्रह्मज्ञान] को (विद्यात्) जानेगा ॥२०॥

अ॒पाद॑ग्रे॒ सम॑भव॒त् सो अग्रे॒ स्व॑राभ॑रत् ।
चतु॑ष्पाद् भू॒त्वा भोग्यः॒ सर्व॒माद॑त्त॒ भोज॑नम् ॥२१॥

पदार्थ—(अपात्) विभागरहित [परमात्मा] (अग्रे) पहिले (सम् अभवत्) समर्थ हुआ, (सः) उस ने (अग्रे) पहिले (स्वः) मोक्ष सुख (आ) सब ओर से (अभरत्) धारण किया। (चतुष्पात्) चारों दिशाओं में स्थिति वा गति वाले [उस परमेश्वर] ने (भोग्यः) [सुखों से] भोगने [अनुभव करने] योग्य (भूत्वा) होकर (सर्वम्) सब (भोजनम्) सुख वा ऐश्वर्य को (आ अदत्त) ग्रहण किया ॥ २१ ॥

भो॒ग्यो भ॑व॒दथो॒ अन्न॑मद॒द् ब॒हु ।
यो दे॒वमु॑त्त॒राव॑न्तमु॒पासा॑तै सना॒तन॑म् ॥२२॥

पदार्थ—वह (भोग्यः) [सुखों से] अनुभव योग्य (भवत्) होगा (अथो) और भी (बहु) बहुत (अन्नम्) अन्न [जीवन साधन] (अदत्) भोगेगा। (यः) जो [मनुष्य] (उत्तरावन्तम्) अति उत्तम गुणवाले (सनातनम्) सना-तन [नित्य स्थायी] (देवम्) देव [स्तुतियोग्य परमेश्वर] को (उपासातै) पूजेगा ॥२२॥

स॒ना॒तन॑मेनमाहुरु॒ताद्य स्या॑त् पुन॒र्णवः॑ ।
अ॒हो॒रा॒त्रे प्र जा॑येते अ॒न्यो अ॒न्यस्य॑ रू॒पयोः॑ ॥२३॥

पदार्थ—(एनम्) इस [सर्वव्यापक] को (सनातनम्) सनातन [नित्य स्थायी परमात्मा] (आहुः) वे [विद्वान्] कहते हैं, (उत) और वह (अद्य) आज [प्रतिदिन] (पुनर्णवः) नित्य नया (स्यात्) होता जावे। (अहोरात्रे) दिन और रात्रि दोनों (अन्यः अन्यस्य) एक-दूसरे के (रूपयोः) दो रूपों में से (प्र जायेते) उत्पन्न होते हैं ॥२३॥

श॒तं स॒हस्र॑म॒युतं॒ न्य॑र्बुदमसंख्ये॒यं स्वम॒स्मिन् निवि॑ष्टम् ।
तद॑स्य घ्नन्त्यभि॒पश्य॑त ए॒व तस्मा॑द् दे॒वो रो॑चत ए॒ष ए॒तत् ॥२४॥

पदार्थ—(शतम्) सौ, (सहस्रम्) सहस्र, (अयुतम्) दस सहस्र, (न्यर्बुदम्) दस करोड़, (असंख्येयम्) बे-गिनती (स्वम्) धन (अस्मिन्) इस

[परमात्मा] मे (निविष्टम) रक्खा हुआ है। (अस्य) इस (अभिपश्यत:) सब ओर देखते हुए [परमात्मा] के (तत्) उस [धन] को (एव) निश्चय करके वे [सब प्राणी] (यन्ति) पाते है, (तस्मात्) उस [कारण] से (एष) यह (देवः) देव [स्तुतियोग्य परमात्मा] (एतत्) अब (रोचते) रुचता है [प्रिय लगता है] ॥२४॥

बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते।

ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया ॥२५॥

पदार्थ—(एकम्) एक वस्तु (बालात्) बाल [केश] से (अणीयस्कम्) अधिक सूक्ष्म है, (उत) और (एकम्) एक वस्तु (नेव) नहीं भी (दृश्यते) दीखती है। (ततः) उस [बड़ी सूक्ष्म वस्तु] से (परिष्वजीयसी) अधिक चिपटने वाला (सा) वह (देवता) देवता [परमेश्वर] (मम प्रिया) मेरा प्रिय है ॥२५॥

इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे।

यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः ॥२६॥

पदार्थ—(इयम्) यह (कल्याणी) कल्याणी [आनन्दकारिणी, प्रकृति जगत् की सामग्री] (अजरा) अजर, (अमृता) अमर होकर (मर्त्यस्य) मरण-धर्मी [मनुष्य] के (गृहे) घर मे है। (यस्मै) जिसके लिये [जिस ईश्वर की आज्ञा मानने के लिये] (कृता) वह सिद्ध की गई है, (स) वह [परमेश्वर, उस प्रकृति में] (शये) सोता है, (य:) जिस ने [उस प्रकृति को] (चकार) सिद्ध किया था, (स:) वह [परमेश्वर] (जजार) स्तुति योग्य हुआ ॥२६॥

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।

त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥२७॥

पदार्थ—[हे जीवात्मा !] (त्वम्) तू (स्त्री) स्त्री, (त्वम्) तू (पुमान्) पुरुष, (त्वम्) तू (कुमार) कुमार [लड़का], (उत वा) अथवा (कुमारी) कुमारी [लड़की] (असि) है। (त्वम्) तू (जीर्णः) स्तुति किया गया [होकर] (दण्डेन) दण्ड [दमन-सामर्थ्य] से (वञ्चसि) चलता है, (त्वम्) तू (विश्वतो मुख) सब ओर मुख वाला [बड़ा चतुर होकर] (जात.) प्रसिद्ध (भवसि) होता है ॥२७॥

उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः।

एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः ॥२८॥

पदार्थ—यह [जीवात्मा] (एषाम्) इन [प्राणियों] का (उत) अथवा (पिता) पिता, (उत वा) अथवा (एषाम्) इनका (पुत्र) पुत्र है, (उत) अथवा (एषाम्) इनका (ज्येष्ठः) ज्येष्ठ भ्राता [सबसे बड़ा भाई] (उत वा) अथवा (कनिष्ठ) कनिष्ठ भ्राता [सबसे छोटा भाई है]। (एकः ह) एक ही (देवः) देव [सर्वव्यापक परमात्मा], (मनसि) ज्ञान मे (प्रविष्ट) प्रविष्ट होकर (प्रथम.) सब से पहिले (जात) प्रसिद्ध हुआ, (स उ) वही (गर्भे अन्त.) गर्भ के भीतर [प्राणियो के अन्त:करण मे] है ॥२८॥

पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते।

उतो तदद्य विद्याम यतस्तत् परिषिच्यते ॥२९॥

पदार्थ—(पूर्णात्) पूर्ण [ब्रह्म] से (पूर्णम्) सम्पूर्ण [जगत] (उत् अचति) उदय होता है। (पूर्णेन) पूर्ण [ब्रह्म] द्वारा (पूर्णम्) सपूर्ण [जगत] (सिच्यते) सींचा जाता है। (उतो) और भी (तत) उस [कारण] को (अद्य) आज (विद्याम) हम जानें, (यत) जिस कारण से (तत्) वह [सपूर्ण जगत्] (परिषिच्यते) सब प्रकार सींचा जाता है ॥२९॥

एषा सनत्नी सनमेव जातैषा पुराणी परि सर्वं बभूव।

मही देव्युषसो विभाती सैकेनैकेन मिषता वि चष्टे ॥३०॥

पदार्थ—(एषा) यह [शक्ति अर्थात् परमेश्वर] (सनम् एव) सदा से ही (सनत्नी) भक्तो की नेत्री [आगे बढ़ाने वाली] (जाता) प्रसिद्ध है, (एषा) इस (पुराणी) पुरानी ने (सर्वम्) सब [जगत्] को (परिबभूव) घेर लिया है। (उषसः) प्रभात वेलाओं को (विभाती) प्रकाशित करने वाली (सा) वह (मही) बड़ी (देवी) देवी [दिव्य शक्ति] (एकेनैकेन) एक-एक (मिषता) पलक मारने से [सब को] (वि चष्टे) देखती रहती है।

अविर्वै नाम देवतर्तेनास्ते परीवृता।

तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः ॥३१॥

पदार्थ—(अविः) रक्षक (वै) ही (नाम) नाम (देवता) देवता [दिव्य शक्ति, परमात्मा] (ऋतेन) सत्यज्ञान से (परिवृता) घिरा हुआ (आस्ते) स्थित है। (तस्या) उस [देवता] के (रूपेण) रूप [स्वभाव] से (इमे) ये (हरिता) हरे (वृक्षाः) वृक्ष (हरितस्रजः) दाख [के समान फलों] की माला वाले हैं ॥३१॥

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति।

देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥३२॥

पदार्थ—[जो विद्वान्] (अन्ति) समीप में (सन्तम्) वर्तमान [देव] [परमात्मा] को (न) नहीं (जहाति) छोड़ता है और (अन्ति) समीप में (सन्तम्) वर्तमान (न) जैसे [उसको] (पश्यति) देखता है। (देवस्य) देव [दिव्यगुण वाले परमात्मा] की (काव्यम्) बुद्धिमत्ता (पश्य) देख—वह [विद्वान्] (न ममार) न तो मरा और (न जीर्यति) न जीर्ण [निर्बल] होता है ॥३२॥

अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम्।

वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति तदाहुर्ब्राह्मणं महत् ॥३३॥

पदार्थ—(अपूर्वेण) अपूर्व [कारणरहित परमात्मा द्वारा] (इषिताः) भेजी हुई (ताः) वे (वाच) वाचायें (यथायथम्) जैसे का तैसा (वदन्ति) बोलती हैं। (वदन्तीः) बोलती हुई वे [वाचायें] (यत्र) जहाँ (गच्छन्ति) पहुँचती हैं। (तत) उसको (महत्) बड़ा (ब्राह्मणम्) ब्रह्मज्ञान (आहुः) वे [विद्वान्] बताते हैं ॥३३॥

यत्र देवाश्च मनुष्याश्चारा नाभाविव श्रिताः।

अपां त्वा पुष्पं पृच्छामि यत्र तन्मायया हितम् ॥३४॥

पदार्थ—(यत्र) जिस [तन्मात्राओं के विकाश] में (देवा.) दिव्य लोक वा पदार्थ (च) और (मनुष्याः) मनुष्य (च) भी (श्रिताः) आश्रित हैं, (इव) जैसे (नाभौ) [पहिये की] नाभि मे (अरा) अरे [लगे होते हैं]। [हे विद्वान् !] (त्वा) तुझ से (अपाम्) व्यापक तन्मात्राओं के (पुष्पम्) पुष्प [फूल, विकाश] को (पृच्छामि) पूछता हूँ, (यत्र) जिस [विकाश] में (तत्) वह ब्रह्म (मायया) बुद्धि के साथ (हितम्) स्थित है ॥३४॥

येभिर्वात इषितः प्रवाति ये ददन्ते पञ्च दिशः सध्रीचीः।

य आहुतिमत्यमन्यन्त देवा अपां नेतारः कतमे त आसन् ॥३५॥

पदार्थ—(येभि.) जिन [संयोग वियोग आदि दिव्य गुणों] द्वारा (इषित.) प्रेरा गया (वातः) वायु (प्रवाति) चलता रहता है, (ये) जो दिव्य गुण (सध्रीची) आपस मे मिली हुई, (पञ्च) पांच [पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश तत्त्वों से सम्बन्ध वाली] (दिश) दिशाओं का (ददन्ते) दान करते हैं। (ये) जिन (देवा.) देवों [संयोग, वियोग आदि दिव्य गुणों] ने (आहुतिम्) आहुति [दानक्रिया, उपकार] को (अत्यमन्यन्त) अतिशय करके माना [स्वीकार किया] था, (ते) वे (अपाम्) प्रजाओं के (नेतारः) नेता [सञ्चालक दिव्य गुण] (कतमे) कौन से (आसन्) थे ॥३५॥

इमामेषां पृथिवीं वस्त एकोऽन्तरिक्षं पर्येको बभूव।

दिवमेषां ददते यो विधर्ता विश्वा आशाः प्रति रक्षन्त्येके ॥३६॥

पदार्थ—(एषाम्) इन [दिव्य पदार्थों] मे से (एक) एक [जैसे अग्नि] (इमाम्) इस (पृथिवीम्) पृथिवी को (वस्ते) ढकता है, (एकः) एक [जैसे वायु] ने (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष [मध्य लोक] को (परि बभूव) घेर लिया है। (एषाम्) इन मे (य.) जो (विधर्ता) विविध प्रकार धारण करने वाला है [जैसे वायु], वह (दिवम्) प्रकाश को (ददते) देता है, (एके) कोई एक [दिव्य पदार्थ] (विश्वाः) सब (आशाः प्रति) दिशाओं मे (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं ॥३६॥

यो विद्यात् सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः।

सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥३७॥

पदार्थ—(य:) जो [विवेकी] (विततम्) फैले हुए (सूत्रम्) सूत्र [तागे के समान कारण] को (विद्यात्) जान लेवे (यस्मिन्) जिस सूत्र वा कारण मे (इमा.) ये (प्रजाः) प्रजाएँ [कार्य रूप] (ओता:) ओतप्रोत हैं। (य.) जो [विवेकी] (सूत्रस्य) सूत्र [कारण] के (सूत्रम्) सूत्र [कारण] को (विद्यात्) जान लेवे, (स) वह (महत्) बड़े (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [ब्रह्मज्ञान] को (विद्यात्) जान लेवे ॥३७॥

वेदाहं सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः।

सूत्रं सूत्रस्याहं वेदाथो यद् ब्राह्मणं महत् ॥३८॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (विततम्) फैले हुए (सूत्रम्) सूत्र [तागे के समान कारण] को (वेद) जानता हूँ, (यस्मिन्) जिस [सूत्र वा कारण] में (इमाः)

ये (प्रजा) प्रजाएँ (ओता) ओतप्रोत है। (अथो) और भी (अहम्) मैं (सूत्रस्य) सूत्र [कारण] के (सूत्रम्) सूत्र [कारण] को (वेद) जानता हूँ (यत्) जो (महत्) बड़ा (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [ब्रह्मज्ञान] है ॥३८॥

यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरैत् प्रदहन् विश्वदाव्यः ।

यत्रातिष्ठन्नेकपत्नीः परस्तात् क्वेवासीन्मातरिश्वा तदानीम् ॥३९॥

पदार्थ—(यत्) जब (द्यावापृथिवी अन्तरा) सूर्य और पृथिवी के बीच (प्रदहन्) दहकता हुआ (विश्वदाव्य.) सब का जलाने वाला (अग्नि) अग्नि (ऐत्) प्राप्त हुआ। (यत्र) जहां [सूर्य और पृथिवी के बीच] (एकपत्नी·) एक [सूर्य] को पति [रक्षक वा स्वामी] रखने वाली [दिशाएँ] (परस्तात्) दूर तक (अतिष्ठन्) ठहरी थी, (तदानीम्) तब (मातरिश्वा) आकाश मे चलने वाला [वायु वा सूत्रात्मा] (क्व) कहां (इव) निश्चय करके (आसीत्) था ॥३९॥

अप्स्वासीन्मातरिश्वा प्रविष्टः प्रविष्टा देवाः सलिलान्यासन् ।

बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानः पवमानो हरित आ विवेश ॥४०॥

पदार्थ—(मातरिश्वा) आकाश मे चलने वाला [वायु वा सूत्रात्मा] (अप्सु) अन्तरिक्ष [वा तन्मात्राओं] मे (प्रविष्ट.) प्रवेश किये हुए (आसीत्) था, (देवा) [अन्य] दिव्य पदार्थ (सलिलानि) समुद्रो मे [अगम्य कारणो मे] (प्रविष्टा.) प्रवेश किये हुए (आसन्) थे। (रजस) ससार का (बृहन् ह) बड़ा ही (विमान) विविध प्रकार मापने वाला [वा विमान रूप आधार परमेश्वर] (तस्थौ) खड़ा था और (पवमान) शुद्धि करने वाले [परमेश्वर] ने (हरित·) सब दिशाओं में (आ विवेश) प्रवेश किया था ॥४०॥

उत्तरेणेव गायत्रीममृतेऽधि वि चक्रमे ।

साम्ना ये साम संविदुरजस्तद् ददृशे क्व ॥४१॥

पदार्थ—(उत्तरेण) उत्तम गुण से (इव = एव) ही (अमृते) अमृत [मोक्ष सुख] मे (अधि) अधिकार करके वह परमेश्वर (गायत्रीम्) गायत्री [स्तुति] की ओर (वि) विविध प्रकार (चक्रमे) आगे बढ़ा। (ये) जो [विद्वान्] (साम्ना) मोक्षज्ञान [के अभ्यास] से (साम) मोक्षज्ञान को (संविदु) यथावत् जानते हैं [वे मानते है कि] (अज) अजन्मा [परमेश्वर] (तत्) तब [मोक्षसुख पाता हुआ] (क्व) कहाँ (ददृशे) देखा गया ॥४१॥

निवेशनः सङ्गमनो वसूनां देव इव सविता सत्यधर्मा ।

इन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ॥४२॥

पदार्थ—(वसूनाम्) निवासो [पृथिवी आदि लोको] का (निवेशन) ठहराने वाला और (संगमन) चलाने वाला, (सत्यधर्मा) सत्य धर्म वाला [परमेश्वर] (धनानाम्) धनो के लिये [हमारे] (समरे) सग्राम मे (देव) प्रकाशमान (सविता इव) चलानेवाले सूर्य के समान और (इन्द्र न) वायु के समान (तस्थौ) स्थित हुआ ॥४२॥

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम् ।

तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ॥४३॥

पदार्थ—(नवद्वारम्) [सात शिर के और दो नीचे के छिद्र] नव द्वार वाला (पुण्डरीकम्) पुण्य का साधन [यह शरीर] (त्रिभि) तीन [रज, तम और सत्त्व] (गुणेभि) गुणो से (आवृतम) ढका हुआ है। (तस्मिन्) उस [शरीर] मे (आत्मन्वत्) जीवात्मा का स्वामी (यत्) जो (यक्षम्) पूजनीय [ब्रह्म] है, (तत्) उसको (वै) ही (ब्रह्मविद) ब्रह्मज्ञानी (विदु.) जानते हैं ॥४३॥

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः ।

तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥४४॥

पदार्थ—(अकाम) निष्काम, (धीर) धीर [धैर्यवान्] (अमृत) अमर, (स्वयंभू) अपने आप वर्तमान वा उत्पन्न, (रसेन) रस [वीर्य वा पराक्रम] से (तृप्त) तृप्त अर्थात् परिपूर्ण [परमात्मा] (कुत चन) कहीं से भी (ऊन) न्यून (न) नही है। (तम् एव) उस ही (धीरम्) धीर [बुद्धिमान्], (अजरम्) अजर [अक्षय], (युवानम्) युवा [महाबली] (आत्मानम्) आत्मा [परमात्मा] को (विद्वान्) जानता हुआ पुरुष (मृत्यो) मृत्यु [मरण वा दुःख] से (न) नही (बिभाय) डरा है ॥४४॥

卐 इति चतुर्थोऽनुवाक. 卐

卐

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ९ 卐

१-२७ अथर्वा। शतौदना। अनुष्टुप्, १ त्रिष्टुप्, १२ पथ्यापङ्क्ति, २५ द्व्यनुष्टुब्गर्भानुष्टुप्, २६ पञ्चपदा बृहत्यनुष्टुबुष्णिग्गर्भा जगती, २७ पञ्चपदाति-जागतानुष्टुब्गर्भा शक्वरी।

अघायतामपि नह्या मुखानि सपत्नेषु वज्रमर्पयैतम् ।

इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना भ्रातृव्यघ्नी यजमानस्य गातुः ॥१॥

पदार्थ—[हे वेदवाणी !] (अघायताम्) बुरा चीतने वालो के (मुखानि) मुखो को (अपि नह्य) बाध दे, (सपत्नेषु) वैरियो पर (एतम् वज्रम्) इस वज्र को (अर्पय) छोड़। [तू] (इन्द्रेण) परमेश्वर द्वारा (दत्ता) दी हुई, (प्रथमा) पहिली (शतौदना) सैकड़ो प्रकार सींचने वाली [वेदवाणी] (भ्रातृव्यघ्नी) शत्रु को नाश करने वाली (यजमानस्य) यजमान [श्रेष्ठकर्म करनेवाले] का (गातु·) मार्ग [है] ॥१॥

वेदिष्टे चर्म भवतु बर्हिर्लोमानि यानि ते ।

एषा त्वा रशनाग्रभीद् ग्रावा त्वैषोऽधि नृत्यतु ॥२॥

पदार्थ—[हे वेदवाणी !] (चर्म) [मेरा] चर्म (ते) तेरे लिये (वेदि:) वेदि [यज्ञभूमि] (भवतु) होवे, [मेरे] (यानि लोमानि) जो लोम हैं [वे] (ते) तेरे लिये (बर्हि) यज्ञासन [होवें]। (एषा) [मेरी] इस (रशना) जीभ ने (त्वा) तुझे (अग्रभीत्) ग्रहण किया है (एष) यह (ग्रावा) शास्त्रो का उपदेशक [विद्वान्] (त्वा) तुझ को (अधि) अधिकारी करके (नृत्यतु) अङ्गो को हिलावे ॥२॥

बालास्ते प्रोक्षणीः सन्तु जिह्वा सं मार्ष्ट्वघ्न्ये ।

शुद्धा त्वं यज्ञिया भूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने ॥३॥

पदार्थ—(अघ्न्ये) हे न मारनेवाली शक्ति ! [वेदवाणी] (ते) तेरी (प्रोक्षणी) शोधन शक्तिया [मेरे लिये] (बाला) बाल [कूची समान] (सन्तु) होवें, [मेरी] (जिह्वा) जीभ (सम्) यथावत् (मार्ष्टु) शुद्ध होवे। (शतौदने) हे सैकडो प्रकार सींचने वाली ! [वेदवाणी] (त्वम) तू (शुद्धा) शुद्ध और (यज्ञिया) यज्ञ योग्य (भूत्वा) होकर (दिवम) प्रकाश को (प्र) अच्छे प्रकार (इहि) प्राप्त हो ॥३॥

यः शतौदनां पचति कामप्रेण स कल्पते ।

प्रीता ह्यस्यर्त्विजः सर्वे यन्ति यथायथम् ॥४॥

पदार्थ—(य) जो [मनुष्य] (शतौदनाम्) सैकडो प्रकार सींचने वाली [वेदवाणी] को (पचति) पक्का [दृढ] करता है, (स) वह (कामप्रेण) कामनायें पूर्ण करनेहारे व्यवहार से (कल्पते) समर्थ होता है। (हि) क्योंकि (यस्य) इस [मनुष्य] के (सर्वे) सब (ऋत्विज) ऋत्विक् लोग [ऋतु ऋतु मे यज्ञ करने वाले] (प्रीता) सन्तुष्ट होकर (यथायथम्) जैसे का तैसा (यन्ति) पाते हैं ॥४॥

स स्वर्गमा रोहति यत्रादस्त्रिदिवं दिवः ।

अपूपनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥५॥

पदार्थ—(स) वह [पुरुष] (स्वर्गम्) स्वर्ग [सुख विशेष] को (आ रोहति) ऊँचा होकर पाता है, (यत्र) जहाँ पर (दिव , विजय के (अद.) उस (त्रिदिवम्) तीन [आय, व्यय, वृद्धि] के व्यवहार का स्थान है। (य:) जो (शतौदनाम्) सैकड़ों प्रकार सींचने वाली [वेदवाणी] को (अपूपनाभिम्) अक्षीणबन्धु (कृत्वा) बनाकर (ददाति) दान करता है ॥५॥

स तांल्लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः ।

हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥६॥

पदार्थ—(स) वह [मनुष्य] (तान्) उन (लोकान्) दर्शनीय लोगो [जनो] को (सम्) यथावत् (आप्नोति) पाता है, (ये) जो [लोग] (दिव्या) व्यवहार जानने वाले (च) और (ये) जो (पार्थिवा) चक्रवर्ती राजा हैं। (य) जो (शतौदनाम्) सैकड़ो प्रकार सींचनेवाली [वेदवाणी] को (हिरण्यज्योतिषम्) सुवर्ण [वा वीर्य अर्थात् पराक्रम] को प्रकाश करनेवाली (कृत्वा) करके (ददाति) दान करता है ॥६॥

ये ते देवि शमितारः पक्तारो ये च ते जनाः ।

ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्यो भैषीः शतौदने ॥७॥

पदार्थ—(**देवि**) हे देवी ! [विजयिनी वेदवाणी] (**ये**) जो (**ते**) तेरे (**शमितार**) विचारनेवाले (**च**) और (**ये जना**) जो जन (**ते**) तेरे (**पक्तार**) पक्के [निश्चय] करनेवाले हैं (**ते सर्वे**) वे सब (**त्वा**) तेरी (**गोप्स्यन्ति**) रक्षा करेंगे, (**शतौदने**) हे सैकड़ो प्रकार सींचनेवाली वेदवाणी (**एभ्य**) इन [शत्रुओं] से (**मा भैषी**) मत भय कर ॥७॥

वसवस्त्वा दक्षिणत उत्तरान्मरुतस्त्वा ।

आदित्याः पश्चाद् गोप्स्यन्ति साग्निष्टोममति द्रव ॥८॥

पदार्थ—(**वसव**) श्रेष्ठ पुरुष (**त्वा**) तुझ को (**दक्षिणत.**) दाहिनी ओर से, (**मरुत**) शूर पुरुष (**त्वा**) तुझ को (**उत्तरात्**) ऊंचे वा बायें स्थान से, (**आदित्या**) आदित्य [अखण्ड ब्रह्मचारी लोग] (**पश्चात्**) पीछे से (**गोप्स्यन्ति**) बचावेंगे, (**सा**) सो तू (**अग्निष्टोमम्**) सर्वव्यापक परमात्मा की स्तुति को (**अति**) अत्यन्त करके (**द्रव**) शीघ्र प्राप्त हो [ग्रहण कर] ॥८॥

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।

ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति सातिरात्रमति द्रव ॥९॥

पदार्थ—(**देवा**) विजय चाहनेवाले, (**पितर**·) पालन करनेवाले (**मनुष्या**) मनन करनेवाले, (**च**) और (**ये**) जो (**गन्धर्वाप्सरस**) गन्धर्व [पृथिवी धारण करनेवाले] और अप्सर लोग [आकाश मे विमान आदि से चलने वाले, विवेकी लोग] हैं। (**ते सर्वे**) वे सब (**त्वा**) तेरी (**गोप्स्यन्ति**) रक्षा करेंगे, (**सा**) सो तू (**अतिरात्रम्**) उत्कृष्ट दानक्रिया को (**अति**) उत्तमरीति से (**द्रव**) शीघ्र प्राप्त हो [ग्रहण कर] ॥९॥

अन्तरिक्षं दिवं भूमिमादित्यान् मरुतो दिशः ।

लोकान्त्स सर्वानाप्नोति यो ददाति शतौदनाम् ॥१०॥

पदार्थ—(**स**) वह [मनुष्य] (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष, (**दिवम्**) सूर्य लोक, (**भूमिम**) भूमि, (**आदित्यान**) अखण्ड ब्रह्मचारियो, (**मरुत**) शूरो, (**दिश**) आदेष्टाओ [शासको], [अर्थात्] (**सर्वान्**) सब (**लोकान्**) दर्शनीय जनो को (**आप्नोति**) पाता है, (**य**) जो (**शतौदनाम्**) सैकड़ों प्रकार सींचने वाली [वेद-वाणी] का (**ददाति**) दान करता है ॥१०॥

घृतं प्रोक्षन्ती सुभगा देवी देवान् गमिष्यति ।

पक्तारमघ्न्ये मा हिंसीर्दिवं प्रेहि शतौदने ॥११॥

पदार्थ—(**घृतम्**) घृत [तरल पदार्थ] (**प्रोक्षन्ती**) सींचती हुई, (**सुभगा**) बड़े ऐश्वर्यवाली (**देवी**) देवी [विजयिनी वेदवाणी] (**देवान्**) विद्वानो को (**गमिष्यति**) पहुँचेगी । (**अघ्न्ये**) हे न मारने वाली ! [वेदवाणी] (**पक्तारम्**) [अपने] पक्के [दृढ] करनेवाले को (**मा हिंसी**) मत मार, (**शतौदने**) हे सैकड़ो प्रकार सींचने वाली ! (**दिवम्**) प्रकाश को (**प्र**) अच्छे प्रकार (**इहि**) प्राप्त हो ॥११॥

ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये ये चेमे भूम्यामधि ।

तेभ्यस्त्वं धुक्ष्व सर्वदा क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१२॥

पदार्थ—(**ये**) जो (**देवा**) दिव्य गुण (**दिविषद**) सूर्य मे वर्तमान (**च**) और (**ये**) जो (**अन्तरिक्षसद**) अन्तरिक्ष मे व्याप्तिवाले (**च**) और (**ये**) जो (**इमे**) ये (**भूम्याम् अधि**) भूमि पर हैं। (**त्वम्**) तू (**तेभ्य**) उन सब से (**सर्वदा**) सर्वदा (**क्षीरम्**) दूध (**सर्पि**) घी (**अथो**) और भी (**मधु**) मधु-विद्या [ब्रह्मज्ञान] (**धुक्ष्व**) भरपूर कर ॥१२॥

यत् ते शिरो यत् ते मुखं यौ कर्णौ ये च ते हनू ।

आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१३॥

पदार्थ—(**यत्**) जो (**ते**) तेरा (**शिर**) शिर, (**यत्**) जो (**ते**) तेरा (**मुखम्**) मुख, (**यौ**) जो (**कर्णौ**) दो कान, (**च**) और (**ये**) जो (**ते**) तेरे (**हनू**) दो जाबड़े हैं। [वे सब] (**आमिक्षाम्**) आमिक्षा [पकाये उष्ण दूध मे दही मिलाने से उत्पन्न वस्तु], (**क्षीरम्**) दूध, (**सर्पि.**) घी (**अथो**) और भी (**मधु**) मधुज्ञान [ब्रह्मविद्या] (**दात्रे**) दाता को (**दुहताम्**) भरपूर करें ॥१३॥

यौ त ओष्ठौ ये नासिके ये शृङ्गे ये च तेऽक्षिणी ।

आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१४॥

पदार्थ—(**यौ**) जो (**ते**) तेरे (**ओष्ठौ**) दो ओठ, (**ये**) जो (**नासिके**) दो नथने, (**ये**) जो (**शृङ्गे**) दो सींग (**च**) और (**ये**) जो (**ते**) तेरी (**अक्षिणी**) दो आंखें है। वे सब (**आमिक्षाम्**) आमिक्षा [पकाये उष्ण दूध मे दही मिलाने से उत्पन्न वस्तु], (**क्षीरम्**) दूध (**सर्पि**) घी (**अथो**) और भी (**मधु**) मधुज्ञान [ब्रह्मविद्या] (**दात्रे**) दाता को (**दुहताम्**) भरपूर करें ॥१४॥

यस्ते क्लोमा यद्धृदयं पुरीतत् सहकण्ठिका ।

आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१५॥

पदार्थ—(**यत्**) जो (**ते**) तेरा (**क्लोमा**) फेफड़ा, (**यत्**) जो (**हृदयम्**) हृदय और (**सहकण्ठिका**) कण्ठ के सहित (**पुरीतत्**) पुरीतत् [शरीर को फैलाने वाली सूक्ष्म आंत] है। वे सब (**आमिक्षाम्**) आमिक्षा [पकाये उष्ण दूध मे दही मिलाने से उत्पन्न वस्तु], (**क्षीरम्**) दूध (**सर्पि**·) घी (**अथो**) और भी (**मधु**) मधुज्ञान [ब्रह्मज्ञान] (**दात्रे**) दाता को (**दुहताम्**) भरपूर करें ॥१५॥

यत् ते यकृद् ये मतस्ने यदान्त्रं याश्च ते गुदाः ।

आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१६॥

पदार्थ—(**यत्**) जो (**ते**) तेरा (**यकृत्**) कलेजा, (**ये**) जो (**मतस्ने**) दो मतस्ने [गुर्दे], (**यत्**) जो (**आन्त्रम्**) आंत (**च**) और (**या**·) जो (**ते**) तेरी (**गुदा**) गुदा [मलत्याग-नाड़िया] हैं। वे सब (**आमिक्षाम्**) आमिक्षा [पकाये उष्ण दूध मे दही मिलाने से उत्पन्न वस्तु], (**क्षीरम्**) दूध (**सर्पि**) घी (**अथो**) और भी (**मधु**) मधुज्ञान [ब्रह्मज्ञान] (**दात्रे**) दाता को (**दुहताम्**) भरपूर करें ॥१६॥

यस्ते प्लाशिर्यो वनिष्ठुर्यौ कुक्षी यच्च चर्म ते ।

आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१७॥

पदार्थ—(**य**) जो (**ते**) तेरी (**प्लाशि**) [अन्न की आधार आंत], (**य**) जो (**वनिष्ठु**) वनिष्ठु [अग्नि, रक्त आदि बांटने वाली आंत], (**यौ**) जो (**कुक्षी**) दो कोखे (**च**) और (**यत्**) जो (**ते**) तेरा (**चर्म**) चर्म है। वे सब (**आमिक्षाम्**) आमिक्षा [पकाये उष्ण दूध मे दही मिलाने से उत्पन्न वस्तु], (**क्षीरम्**) दूध (**सर्पि**) घी (**अथो**) और भी (**मधु**) मधुज्ञान [ब्रह्मज्ञान] (**दात्रे**) दाता को (**दुहताम्**) भरपूर करें ॥१७॥

यत् ते मज्जा यदस्थि यन्मांसं यच्च लोहितम् ।

आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१८॥

पदार्थ—(**यत्**) जो (**ते**) तेरी (**मज्जा**) मज्जा [हड्डी की मींग] (**यत्**) जो (**अस्थि**) हड्डी, (**यत्**) जो (**मांसम्**) मास (**च**) और (**यत्**) जो (**लोहितम्**) रक्त है। वे सब (**आमिक्षाम्**) आमिक्षा [पकाये उष्ण दूध मे दही मिलाने से उत्पन्न वस्तु], (**क्षीरम्**) दूध (**सर्पि.**) घी (**अथो**) और भी (**मधु**) मधुज्ञान [ब्रह्मज्ञान] (**दात्रे**) दाता को (**दुहताम्**) भरपूर करें ॥१८॥

यौ ते बाहू ये दोषणी यावंसौ या च ते ककुत् ।

आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१९॥

पदार्थ—(**यौ**) जो (**ते**) तेरी (**बाहू**) दो भुजाय (**ये**) जो (**दोषणी**) दो भुजदण्ड, (**यौ**) जो (**अंसौ**) दो कन्धे (**च**) और (**या**) जो (**ते**) तेरा (**ककुत्**) कूबर [कुब्ज] है। वे सब (**आमिक्षाम्**) आमिक्षा [पकाये उष्ण दूध मे दही मिलाने से उत्पन्न वस्तु], (**क्षीरम**) दूध (**सर्पि**) घी (**अथो**) और भी (**मधु**) मधुज्ञान [ब्रह्मज्ञान] (**दात्रे**) दाता को (**दुहताम्**) भरपूर करें ॥१९॥

यास्ते ग्रीवा ये स्कन्धा याः पृष्टीर्याश्च पर्शवः ।

आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥२०॥

पदार्थ—(**या**) जो (**ते**) तेरी (**ग्रीवा**) गले की नाड़ियां, (**ये**) जो (**स्कन्धा**) कन्धे की हड्डियां, (**या**) जो (**पृष्टी**) छोटी पसलियां (**च**) और (**या**·) जो (**पर्शव**) बड़ी पसलिया हैं वे सब (**आमिक्षाम्**) आमिक्षा [पकाये उष्ण दूध मे दही मिलाने से उत्पन्न वस्तु], (**क्षीरम्**) दूध (**सर्पिः**) घी (**अथो**) और भी (**मधु**) मधुज्ञान [ब्रह्मज्ञान] (**दात्रे**) दाता को (**दुहताम्**) भरपूर करें ॥२०॥

यौ त ऊरू अष्ठीवन्तौ ये श्रोणी या च ते भसत् ।

आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥२१॥

पदार्थ—(**यौ**) जो (**ते**) तेरे (**ऊरू**) दो घुटने और (**अष्ठीवन्तौ**) घुटने के दो जोड़, (**ये**) जो (**श्रोणी**) दो कूल्हे (**च**) और (**या**) जो (**ते**) तेरा (**भसत्**) पेड़ू है। वे सब (**आमिक्षाम्**) आमिक्षा [पकाये उष्ण दूध में दही मिलाने से उत्पन्न वस्तु], (**क्षीरम्**) दूध (**सर्पिः**) घी (**अथो**) और भी (**मधु**) मधुज्ञान [ब्रह्मज्ञान] (**दात्रे**) दाता को (**दुहताम्**) भरपूर करें ॥२१॥

यत् ते पुच्छं ये ते बाला यदूधो ये च ते स्तनाः ।

आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥२२॥

पदार्थ—(यत्) जो (ते) तेरी (पुच्छम्) पूछ, (ये) जो (ते) तेरे (बाला.) बाल, (यत्) जो (ऊधः) मेड [दूध का छिद्रस्थान] (च) और (ये) जो (ते) तेरे (स्तना) स्तन [दूध के आधार] है। वे सब (आमिक्षाम्) आमिक्षा [पकाये उष्ण दूध में दही मिलाने से उत्पन्न वस्तु], (क्षीरम्) दूध (सर्पिः) घी (अथो) और भी (मधु) मधुज्ञान [ब्रह्मज्ञान] (दात्रे) दाता को (दुहताम्) भरपूर करें ॥२२॥

यास्ते जङ्घा याः कुष्ठिका ऋच्छरा ये च ते शफाः ।

आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥२३॥

पदार्थ—(याः) जो (ते) तेरी (जङ्घाः) जङ्घायें, (याः) जो(कुष्ठिकाः) कुष्ठिकायें [नख अङ्गुली आदि बाहिरी अङ्ग] और (ऋच्छराः) ऋच्छरायें [खुरो के ऊपर के भाग] (च) और (ये) जो (ते) तेरे (शफाः) खुर हैं। वे सब (आमिक्षाम्) आमिक्षा [पकाये उष्ण दूध मे दही मिलाने स उत्पन्न वस्तु], (क्षीरम्) दूध (सर्पिः) घी (अथो) और भी (मधु) मधुज्ञान [ब्रह्मज्ञान] (दात्रे) दाता को (दुहताम्) भरपूर करें ॥२३॥

यत् ते चर्म शतौदने यानि लोमान्यघ्न्ये ।

आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥२४॥

पदार्थ—(शतौदने) हे सैकड़ो प्रकार सींचने वाली ! और (अघ्न्ये) हे न मारने वाली ! [वेदवाणी] (यत्) जो (ते) तेरा (चर्म) चम और (यानि) जो (लोमानि) लोम हैं। वे सब (आमिक्षाम्) आमिक्षा [पकाये उष्ण दूध मे दही मिलाने से उत्पन्न वस्तु], (क्षीरम्) दूध, (सर्पिः) घी (अथो) और भी (मधु) मधुज्ञान [ब्रह्मविद्या] (दात्रे) दाता को (दुहताम्) भरपूर करें ॥२४॥

क्रोडौ ते स्तां पुरोडाशावाज्येनाभिघारितौ ।

तौ पक्षौ देवि कृत्वा सा पक्तारं दिवं वह ॥२५॥

पदार्थ—(ते) तेरी (क्रोडौ) दो गोदें (आज्येन) घी से (अभिघारितौ) चुपड़ी हुई। (पुरोडाशौ) दो रोटियां [मुनि-अन्न की पवित्र रोटियाँ] (स्ताम्) होवें। (देवि) हे देवी ! [विजयिनी वेदविद्या] (सा) सो तू (तौ) उन दोनो [गोदो] को (पक्षौ) दो पक्ष (कृत्वा) बनाकर (पक्तारम्) अपने पक्के [दृढ] करने वाले को (दिवम्) प्रकाश मे (वह) पहुँचा दे ॥२५॥

उलूखले मुसले यश्च चर्मणि यो वा शूर्पे तण्डुलः कणः ।

यं वा वातो मातरिश्वा पवमानो ममाथाग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥२६॥

पदार्थ—(यः) जो (तण्डुलः) चावल [वा] (कणः) कनी [चावल का टुकड़ा] (उलूखले) ओखली मे (मुसले) मूसल मे (च) और (चर्मणि) चर्म [मृग छाला वा बाघम्बर] मे (वा) अथवा (यः) जो (शूर्पे) सूप मे है। (वा) अथवा (यम्) जिसको (मातरिश्वा) आकाश मे चलने वाले (पवमानः) शोधने वाले (वातः) वायु ने (ममाथ) मथा था, (होता) दाता (अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर (तत्) उस को (सुहुतम्) धार्मिक रीति से स्वीकार किया हुआ (कृणोतु) करे ॥२६॥

अपो देवीर्मधुमतीर्घृतश्चुतो ब्रह्मणां हस्तेषु प्र पृथक् सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहं तन्मे सर्वं सं पद्यतां वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥२७॥

पदार्थ—(देवी) देवी [विजयिनी] (मधुमती) श्रेष्ठ मधुविद्या [ब्रह्मज्ञान] वाली, (घृतश्चुतः) घृत [सारतत्त्व] बरसाने वाली (अपः) व्यापनशील [वेदवाणियों] का (ब्रह्मणाम्) ब्रह्माओ [वेदवेत्ताओ] के (हस्तेषु) हाथो मे (पृथक्) नाना प्रकार से (सादयामि) मैं रखता हूँ। [हे विद्वानो !] (यत्कामः) जिस उत्तम कामनावाला (अहम्) मैं (इदम्) इस समय (वः) तुम्हारा (अभिषिञ्चामि) अभिषेक करता हूँ, (तत् सर्वम्) वह सब (मे) मेरे लिये (सम् पद्यताम्) सम्पन्न हो, (वयम्) हम (रयीणाम्) अनेक धनों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥२७॥

卐 सूक्तम् १० 卐

१-३४ कश्यप । वशा । अनुष्टुप्, १ ककुम्मती। ५ पंचपदा० स्कन्धोग्रीवी बृहती, ६, ८, १० विराट्, २३ बृहती, २४ उपरिष्टाद् बृहती, २६ आस्तारपङ्क्ति, २७ शंकुमती, २९ त्रिपदा विराड् गायत्री, ३१ उष्णिग्गर्भा, ३२ विराट्पथ्याबृहती ।

नमस्ते जायमानायै जाताया उत ते नमः ।

वालेभ्यः शफेभ्यो रूपायाघ्न्ये ते नमः ॥१॥

पदार्थ—(ते जायमानायै) तुझ प्रकट होती हुई को (नमः) नमस्कार (उत) और (ते जातायै) तुझ प्रकट हो चुकी को (नमः) नमस्कार है। (अघ्न्ये) हे न मारने वाली [परमेश्वर शक्ति !] (वालेभ्यः) बलो के लिये और (शफेभ्यः) शान्तिव्यवहार के लिये (ते) तेरे (रूपाय) स्वरूप [फैलाव] को (नमः) नमस्कार है ॥१॥

यो विद्यात् सप्त प्रवतः सप्त विद्यात् परावतः ।

शिरो यज्ञस्य यो विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात् ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो [विद्वान्] (सप्त) सात [२ हाथ, २ पाँव, १ पायु, १ उपस्थ और १ उदर] (प्रवतः) उत्तम गतिवाले [लोको] को (विद्यात्) जाने, और (सप्त) सात [२ कान, २ नथने, २ आँखें और १ मुख] (परावतः) दूर गति वाले [लोको] को (विद्यात्) जान जावे। (यः) जो (यज्ञस्य) यज्ञ [श्रेष्ठ कर्म] के (शिरः) शिर [प्रधान अपने आत्मा] को (विद्यात्) जान लेवे, (सः) वह [पुरुष] (वशाम्) वशा [कामनायोग्य परमेश्वर शक्ति] को (प्रति) प्रतीति से (गृह्णीयात्) ग्रहण करे ॥२॥

वेदाहं सप्त प्रवतः सप्त वेद परावतः ।

शिरो यज्ञस्याहं वेद सोमं चास्यां विचक्षणम् ॥३॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (सप्त) सात [मन्त्र २] (प्रवतः) उत्तम गतिवाले [लोको] को (वेद) जानता हूँ, (सप्त) सात [मन्त्र २] (परावतः) दूर गति वाले [लोको] को (वेद) जानता हूँ। (अहम्) मैं (यज्ञस्य) यज्ञ [श्रेष्ठ कर्म] के (शिरः) शिर [प्रधान अपने आत्मा] को (च) और (अस्याम्) इस [कमनीय शक्ति] मे वर्तमान (विचक्षणम्) विविध द्रष्टा [महापण्डित] (सोमम्) सर्वप्रेरक [परमात्मा] को (वेद) जानता हूँ ॥३॥

यया द्यौर्यया पृथिवी ययापो गुपिता इमाः ।

वशां सहस्रधारां ब्रह्मणाच्छावदामसि ॥४॥

पदार्थ—(यया) जिस [शक्ति] द्वारा (द्यौः) सूर्य, (यया) जिस द्वारा (पृथिवी) पृथिवी और (यया) जिस द्वारा (इमाः) ये (आपः) प्रजाएँ (गुपिताः) रक्षित हैं। (सहस्रधाराम्) सहस्रो पदार्थो को धारण करने वाली (वशाम्) [उस] वशा [कामनायोग्य परमेश्वर-शक्ति] को (ब्रह्मणा) वेद द्वारा (अच्छावदामसि) हम आदर से बुलाते हैं ॥४॥

शतं कंसाः शतं दोग्धारः शतं गोप्तारो अधि पृष्ठे अस्याः ।

ये देवास्तस्यां प्राणन्ति ते वशां विदुरेकधा ॥५॥

पदार्थ—(शतम्) सौ [बहुत से] (कंसाः) कामना करने वाले (शतम्) सौ (दोग्धारः) दोहने वाले, (शतम्) सौ (गोप्तारः) रक्षा करने वाले [पुरुष] (अस्याः) इस [शक्ति] की (पृष्ठे) पीठ पर [सहारे मे] (अधि) अधिकारपूर्वक हैं। और (ये) जो (देवाः) विद्वान् लोग (तस्याम्) उस [शक्ति] मे (प्राणन्ति) जीवन करते है, (ते) वे लोग (वशाम्) वशा [कामनायोग्य परमेश्वर शक्ति] को (एकधा) एक प्रकार से [सत्य रीति से] (विदुः) जानते हैं ॥५॥

यज्ञपदीराक्षीरा स्वधाप्राणा महीलुका ।

वशा पर्जन्यपत्नी देवाँ अप्येति ब्रह्मणा ॥६॥

पदार्थ—(यज्ञपदी) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] मे स्थितिवाली, (इराक्षीरा) अन्न और जलवाली, (स्वधाप्राणा) अपनी धारणा शक्ति से जीने वाली, (महीलुका) बड़ी दीप्ति वाली, (पर्जन्यपत्नी) मेघ को पालनवाली (वशा) वशा [कामनायोग्य परमेश्वर शक्ति] (देवान्) विद्वानो को (ब्रह्मणा) वेद द्वारा (अपि एति) पहुँच जाती है ॥६॥

अनु त्वाग्निः प्राविशदनु सोमो वशे त्वा ।

ऊधस्ते भद्रे पर्जन्यो विद्युतस्ते स्तना वशे ॥७॥

पदार्थ—(वशे) हे वशा ! [कामनायोग्य परमेश्वर-शक्ति] (त्वा अनु) तेरे पीछे पीछे (अग्निः) अग्नि ने [पदार्थों मे], (त्वा अनु) तेरे पीछे-पीछे (सोमः) प्रेरणा करनेवाले [जीवात्मा] ने [शरीर मे], (प्र अविशत्) प्रवेश किया है। (भद्रे) हे कल्याणी ! (वशे) वशा ! (पर्जन्यः) मेघ (ते) तेरा (ऊधः) मेड [दुग्ध के छिद्र स्थान के समान] और (विद्युतः) बिजुलियां (ते) तेरे (स्तनाः) स्तन [दुग्ध के आधारो के समान] हैं ॥७॥

अपस्त्वं धुक्षे प्रथमा उर्वरा अपरा वशे ।

तृतीयं राष्ट्रं धुक्षेऽन्नं क्षीरं वशे त्वम् ॥८॥

पदार्थ—(वशे) हे वशा ! [कामनायोग्य परमेश्वर-शक्ति] (त्वम्) तू (प्रथमाः) प्रधान और (अपराः) अप्रधान (अपः) प्रजाओ को (उर्वराः) उपजाऊ भूमियों से (धुक्षे) भरपूर करती है। (वशे) हे वशा ! [कामनायोग्य

कवित (त्वम्) तू (अन्नम्) अन्न, (क्षीरम्) जल और (तृतीयम्) तीसरे (राष्ट्रम्) राज्य [संसार] को (धुक्षे) भरपूर करती है ॥८॥

यदादित्यैर्हूयमानोपातिष्ठ ऋतावरि ।

इन्द्रः सहस्रं पात्रान्त्सोमं त्वापाययद् वशे ॥९॥

पदार्थ—(ऋतावरि) हे सत्यशीला ! (यत्) जब (आदित्यैः) आदित्यों [अखण्ड ब्रह्मचारियों] द्वारा (हूयमाना) पुकारी गई तू (उपातिष्ठ) पास पहुँची । (वशे) हे वशा ! [कामनायोग्य परमेश्वर-शक्ति] (इन्द्रः) इन्द्र [परमेश्वर] ने (सहस्रम्) सहस्र [अनेक] (पात्रान्) रक्षणीय दानयोग्य पुरुषों को (सोमम्) मोक्षरूपी अमृत (त्वा त्वया) तुझ से (अपाययत्) पान कराया है ॥९॥

यदनूचीन्द्रमैरात् त्वं ऋषभोऽह्वयत् ।

तस्मात् ते वृत्रहा पयः क्षीरं क्रुद्धोऽहरद् वशे ॥१०॥

पदार्थ—(यत्) जब (इन्द्रम् अनूची) जीवात्मा के पीछे चलती हुई तू (ऐः) गयी है, (आत्) तब (ऋषभः) सूक्ष्मदर्शी परमेश्वर ने (त्वा) तुझे (अह्वयत्) बुलाया । (वशे) हे वशा ! [कामनायोग्य परमेश्वर शक्ति] (तस्मात्) उस [पुरुष] से (ते) तेरे लिये (क्रुद्धः) क्रुद्ध (वृत्रहा) अन्धकारनाशक [परमेश्वर] ने (पयः) अन्न और (क्षीरम्) जल को (अहरत्) ले लिया ॥१०॥

यत् ते क्रुद्धो धनपतिरा क्षीरमहरद् वशे ।

इदं तदद्य नाकस्त्रिषु पात्रेषु रक्षति ॥११॥

पदार्थ—(वशे) हे वशा ! [कामनायोग्य परमेश्वर शक्ति] (यत्) जब (क्रुद्धः) क्रुद्ध (धनपतिः) धनों के स्वामी [परमेश्वर] ने (ते) तेरे लिये (क्षीरम्) जल [उत्पत्ति साधन] को (आ अहरत्) [दुष्ट जन से] ले लिया । (तत्) तब (इदम्) जल को (अद्य) आज (नाकः) क्लेश शून्य [आनन्दस्वरूप परमात्मा] (त्रिषु) तीन [ऊँच, नीच और मध्य] (पात्रेषु) रक्षा के आधार [लोकों] में (रक्षति) रक्षित रखता है ॥११॥

त्रिषु पात्रेषु तं सोममा देव्यहरद् वशा ।

अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥१२॥

पदार्थ—(त्रिषु) तीन [ऊँच नीचे और मध्य] (पात्रेषु) रक्षा के आधार [लोकों] में वर्तमान (तम्) उस (सोमम्) सर्वप्रेरक [परमेश्वर] को (देवी) विजयिनी (वशा) [कामनायोग्य परमेश्वर-शक्ति] ने (आ) सब प्रकार (अहरत्) स्वीकार किया । (यत्र) जहां [तीनों लोकों] में (दीक्षितः) नियमवान् (अथर्वा) निश्चल परमात्मा (हिरण्यये) तेजोमय (बर्हिषि) वृद्धि के बीच (आस्त) बैठा है ॥१२॥

सं हि सोमेनागत समु सर्वेण पद्वता ।

वशा समुद्रमध्यष्ठाद् गन्धर्वैः कलिभिः सह ॥१३॥

पदार्थ—(वशा) वशा [कामनायोग्य परमेश्वर शक्ति] (हि) ही (सोमेन) ऐश्वर्य के साथ (उ) और (सर्वेण) प्रत्येक (पद्वता) पाँव वाले [चलने-फिरने पुरुषार्थी] के साथ (सम् सम् अगत) निरन्तर संयुक्त हुई है, और (गन्धर्वैः) पृथिवी धारण करनेवाले और (कलिभिः सह) गणना करनेवाले [गुणों] के साथ (समुद्रम्) अन्तरिक्ष को (अधि अस्थात्) अधिष्ठात्री हुई है ॥१३॥

सं हि वातेनागत समु सर्वैः पतत्रिभिः ।

वशा समुद्रे प्रानृत्यदृचः सामानि बिभ्रती ॥१४॥

पदार्थ—(ऋचः) स्तुतियोग्य [वेदवाणियों] और (सामानि) मोक्ष-ज्ञानों को (बिभ्रती) रखती हुई (वशा) [कामनायोग्य परमेश्वर-शक्ति] (हि) ही (वातेन) वायु से (उ) और (सर्वैः) सब (पतत्रिभिः) पक्षियों से (सम् सम् अगत) निरन्तर मिली है, और उसने (समुद्रे) अन्तरिक्ष में (प्र) अच्छे प्रकार (अनृत्यत्) अङ्ग फड़काये हैं ॥१४॥

सं हि सूर्येणागत समु सर्वेण चक्षुषा ।

वशा समुद्रमत्यख्यद् भद्रा ज्योतींषि बिभ्रती ॥१५॥

पदार्थ—(भद्रा) उत्तम (ज्योतींषि) ज्योतियों को (बिभ्रती) रखती हुई (वशा) वशा [कामनायोग्य परमेश्वर-शक्ति] (हि) ही (सूर्येण) सूर्य के साथ (उ) और (सर्वेण) प्रत्येक (चक्षुषा) दृष्टि के साथ (सम् सम् अगत) निरन्तर मिली है और उसने (समुद्रम्) अन्तरिक्ष को (अति) अत्यन्त (अख्यत्) प्रकाशित किया है ॥१५॥

अभीवृता हिरण्येन यदतिष्ठ ऋतावरि ।

अश्वः समुद्रो भूत्वाध्यस्कन्दद् वशे त्वा ॥१६॥

पदार्थ—(ऋतावरि) हे सत्यशील ! (यत्) जब (हिरण्येन) तेज वा पराक्रम से (अभिवृता) घिरी हुई तू (अतिष्ठः) खड़ी हुई । (वशे) हे वशा ! [कामनायोग्य परमेश्वर-शक्ति] (समुद्रः) [प्राणियों के अच्छे प्रकार चलने का आधार] परमेश्वर (अश्वः) व्यापक (भूत्वा) होकर (त्वा) तुझको (अधि) अधिकारपूर्वक (अस्कन्दत्) प्राप्त हुआ ॥१६॥

तद् भद्राः समगच्छन्त वशा देष्ट्र्यथो स्वधा ।

अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥१७॥

पदार्थ—(तत्) वहाँ (भद्राः) श्रेष्ठ गुण (सम् अगच्छन्त) मिले हैं, और (देष्ट्री) शासन करनेवाली (वशा) वशा [कामनायोग्य परमेश्वर-शक्ति] (अथो) और (स्वधा) अन्न [मिले हैं] । (यत्र) जहाँ (दीक्षितः) नियमवान् (अथर्वा) निश्चल परमात्मा (हिरण्यये) तेजोमय (बर्हिषि) वृद्धि के बीच (आस्त) बैठा है ॥१७॥

वशा माता राजन्यस्य वशा माता स्वधे तव ।

वशाया यज्ञ आयुधं ततश्चित्तमजायत ॥१८॥

पदार्थ—(वशा) वशा [कामनायोग्य परमेश्वर-शक्ति] (राजन्यस्य) शासन कर्ता की (माता) माता [निर्मात्री], और (स्वधे) हे अन्न ! (वशा) वशा (तव) तेरी (माता) माता [जननी] है । (यज्ञः) यज्ञ [श्रेष्ठ कर्म] में (वशायाः) वशा [कामनायोग्य परमेश्वर शक्ति] का (आयुधम्) जीवनधारक कर्म है । (ततः) उससे (चित्तम्) चित्त [विचार-सामर्थ्य] (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥१८॥

ऊर्ध्वो बिन्दुरुदचरद् ब्रह्मणः ककुदादधि ।

ततस्त्वं जज्ञिषे वशे ततो होताजायत ॥१९॥

पदार्थ—(ऊर्ध्वः) ऊँचा (बिन्दुः) बिन्दु [थोड़ा अंश] (ब्रह्मणः) ब्रह्म [परमेश्वर] की (ककुदात्) प्रधानता से (अधि) अधिकारपूर्वक (उत् अचरत्) ऊँचा गया । (ततः) उससे (वशे) हे वशा ! [कामनायोग्य परमेश्वर-शक्ति] (त्वम्) तू (जज्ञिषे) उत्पन्न हुई थी, (ततः) और उसी से (होता) पुकारने वाला [यह जीवात्मा] (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥१९॥

आस्नस्ते गाथा अभवन्नुष्णिहाभ्यो बलं वशे ।

पाजस्याज्जज्ञे यज्ञ स्तनेभ्यो रश्मयस्तव ॥२०॥

पदार्थ—(वशे) हे वशा [कामनायोग्य परमेश्वर-शक्ति] (ते) तेरे (आस्नः) मुख से (गाथाः) गाथायें [गानेयोग्य वेदवाणियां] (अभवन्) हुई हैं और (उष्णिहाभ्यः) उष्णिकाओं [गले की हड्डियों] से (बलम्) बल [हुआ है] । (तव) तेरे (पाजस्यात्) उदर से (यज्ञः) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] (जज्ञे) उत्पन्न हुआ था, (स्तनेभ्यः) स्तनों [दूध के आधारों] से (रश्मयः) किरण ॥२०॥

ईर्माभ्यामयनं जातं सक्थिभ्यां च वशे तव ।

आन्त्रेभ्यो जज्ञिरे अत्रा उदरादधि वीरुधः ॥२१॥

पदार्थ—(वशे) हे वशा ! [कामनायोग्य परमेश्वर शक्ति] (तव) तेरी (ईर्माभ्याम्) दोनों टांगों [वा गोड़ों] से (च) और (सक्थिभ्याम्) दोनों जंघाओं से (अयनम्) सूर्य का दक्षिण और उत्तर मार्ग (जातम्) उत्पन्न हुआ है । (आन्त्रेभ्यः) आँतों से (अत्राः) भोजन पदार्थ और (उदरात्) पेट से (वीरुधः) विविध उगनेवाली ओषधियां (अधि जज्ञिरे) उत्पन्न हुई थीं ॥२१॥

यदुदरं वरुणस्यानुप्राविशथा वशे ।

ततस्त्वा ब्रह्मोदह्वयत् स हि नेत्रमवेत् तव ॥२२॥

पदार्थ—(वशे) हे वशा ! [कामनायोग्य परमेश्वर-शक्ति] (यत्) जब [प्रलय में] (वरुणस्य) वरुण [सब के ढांकने वाले परमेश्वर] के (उदरम्) पेट में (अनुप्राविशथाः) तूने प्रवेश किया । (ततः) फिर [सृष्टिकाल में] (त्वा) तुझे (ब्रह्मा) ब्रह्मा [महाविद्वान् परमेश्वर] ने (उत् अह्वयत्) ऊपर बुलाया, (हि) क्योंकि (सः) उसने (ते) तेरा (नेत्रम्) नायकपन (अवेत्) जाना था ॥२२॥

सर्वे गर्भादवेपन्त जायमानादसूस्वः ।

ससूव हि तामाहुर्वशेति ब्रह्मभिः क्लृप्तः स ह्यस्या बन्धुः ॥२३॥

पदार्थ—(सर्वे) सब [ऋषि] (असूस्वः) सत्ता को उत्पन्न करने वाली [परमेश्वर शक्ति] के (जायमानात्) उत्पन्न होते हुए (गर्भात्) गर्भ [संसार] से (अवेपन्त) थरथराये । (हि) क्योंकि (ताम्) उस [शक्ति] को (आहुः) वे [ब्रह्मज्ञानी] बतलाते हैं कि—"(वशा) वशा [कामनायोग्य परमेश्वर शक्ति] ने (ससूव इति) उत्पन्न किया था" (हि) क्योंकि (ब्रह्मभिः) वेदज्ञानों से (क्लृप्तः)

समर्थ (सः) वह [परमेश्वर] (अस्याः) इस [शक्ति] का (बन्धुः) बन्धु [सम्बन्ध वाला] है ॥२३॥

युध एकः सं सृजति यो अस्या एक इद् वशी ।

तरांसि यज्ञा अभवन् तरसां चक्षुरभवद् वशा ॥२४॥

पदार्थ—(एकः) एक [परमेश्वर] (युधः) लड़ाकों [परस्पर विरोधी, सुख दुःख, अग्नि जल, सिंह बकरा, आदि] को (सम्) यथावत् (सृजति) उत्पन्न करता है, (यः) जो [परमेश्वर] (एकः इत्) एक ही (अस्याः) इस [शक्ति] का (वशी) वश करनेवाला है। [परमेश्वर के] (तरांसि) पराक्रम (यज्ञाः) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] (अभवन्) हुए हैं, और (वशा) वशा [कामनायोग्य परमेश्वर-शक्ति] (तरसाम्) [उन] पराक्रमों की (चक्षुः) नेत्र (अभवत्) हुई है ॥२४॥

वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णाद् वशा सूर्यमधारयत् ।

वशायामन्तरविशदोदनो ब्रह्मणा सह ॥२५॥

पदार्थ—(वशा) वशा [कामनायोग्य परमेश्वर-शक्ति] ने (यज्ञम्) यज्ञ [संगतियोग्य संसार] को (प्रति अगृह्णात्) ग्रहण कर लिया है, (वशा) वशा ने (सूर्यम्) सूर्य को (अधारयत्) धारण किया है। (वशायाम् अन्तः) वशा के भीतर (ओदनः) सींचनेवाले [मेघ] ने (ब्रह्मणा सह) अन्न के साथ (अविशत्) प्रवेश किया है ॥२५॥

वशामेवामृतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते ।

वशेदं सर्वमभवद् देवा मनुष्या३ असुराः पितर ऋषयः ॥२६॥

पदार्थ—(वशाम्) वशा [कामनायोग्य परमेश्वर शक्ति] को (एव) ही (अमृतम्) अमृत [अमरपन] (आहुः) वे [ऋषि] बताते हैं, (वशाम्) वशा को (मृत्युम्) मृत्यु [के समान] (उप आसते) वे मानते हैं। (वशा) वशा (इदम् सर्वम्) इस सब में (अभवत्) व्यापक हुई है, और (देवाः) देव [विजयी] (मनुष्याः) मनुष्य [मननशील], (असुराः) असुर [बुद्धिमान्], (पितरः) पितर [पालन करने वाले] और (ऋषयः) ऋषि [सूक्ष्मदर्शी लोग] जो हैं [उन सब में वह व्यापक हुई है] ॥२६॥

य एवं विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात् ।

तथा हि यज्ञः सर्वपाद् दुहे दात्रेऽनपस्फुरन् ॥२७॥

पदार्थ—(यः) जो [मनुष्य] (एवम्) ऐसा (विद्यात्) जाने, (सः) वह (वशाम्) वशा [कामनायोग्य परमेश्वर-शक्ति] को (प्रति) प्रतीति से (गृह्णीयात्) ग्रहण करे। (हि) क्योंकि (तथा) उसी प्रकार से (सर्वपात्) पूर्ण स्थितियोंवाला (अनपस्फुरन्) निश्चल रहता हुआ (यज्ञः) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] (दात्रे) दाता को (दुहे) भरपूर रहता है ॥२७॥

तिस्रो जिह्वा वरुणस्यान्तर्दीद्यत्यासनि ।

तासां या मध्ये राजति सा वशा दुष्प्रतिग्रहा ॥२८॥

पदार्थ—(वरुणस्य) वरुण [श्रेष्ठ परमेश्वर] के (आसनि अन्तः) मुख के भीतर (तिस्रः) तीन [सत्त्व, रज और तम रूप] (जिह्वाः) जीभें (दीद्यति) चमकती हैं। (तासाम्) उन [जीभों] के (मध्ये) बीच में (या) जो (राजति) राज करती है, (सा) वह (दुष्प्रतिग्रहा) पाने में कठिन (वशा) वशा [कामनायोग्य परमेश्वर-शक्ति] है ॥२८॥

चतुर्धा रेतो अभवद् वशायाः ।

आपस्तुरीयममृतं तुरीयं यज्ञस्तुरीयं पशवस्तुरीयम् ॥२९॥

पदार्थ—(वशायाः) वशा [कामनायोग्य परमेश्वर-शक्ति] का (रेतः) वीर्य [वा सामर्थ्य] (चतुर्धा) चार प्रकार पर (अभवत्) हुआ है। (आपः) व्यापक तन्मात्राएँ (तुरीयम्) एक चौथाई (अमृतम्) अमृत [अमरपन] (तुरीयम्) एक चौथाई, (यज्ञः) यज्ञ [संगति किया हुआ संसार] (तुरीयम्) एक चौथाई और (पशवः) दृष्टि वाले [सब प्राणी] (तुरीयम्) एक चौथाई खण्ड है ॥२९॥

वशा द्यौर्वशा पृथिवी वशा विष्णुः प्रजापतिः ।

वशाया दुग्धमपिबन्त्साध्या वसवश्च ये ॥३०॥

पदार्थ—(वशा) वशा [कामनायोग्य परमेश्वर शक्ति] (द्यौः) आकाश में, (वशा) वशा (पृथिवी) पृथिवी में, (वशा) वशा (प्रजापतिः) प्रजापालक (विष्णुः) व्यापक सूर्य में है। (वशायाः) वशा [कामनायोग्य परमेश्वर-शक्ति] की (दुग्धम्) पूर्णता को (अपिबन्) उन्होंने पान किया है, (ये) जो (साध्याः) परोपकार साधने वाले [साधु] (च) और (वसवः) श्रेष्ठ स्वभाव वाले हैं ॥ ३० ॥

वशाया दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये ।

ते वै ब्रध्नस्य विष्टपि पयो अस्या उपासते ॥३१॥

पदार्थ—(ये) जो लोग (साध्याः) परोपकार साधने वाले [साधु] (च) और (वसवः) श्रेष्ठ स्वभाव वाले हैं। (ते वै) वे ही (वशायाः) वशा [कामनायोग्य परमेश्वर शक्ति] की (दुग्धम्) पूर्णता को (पीत्वा) पान करके (ब्रध्नस्य) नियन्ता [महान् परमेश्वर] के (विष्टपि) सहारे में (अस्याः) इस [परमेश्वर शक्ति] के (पयः) ज्ञान का (उप आसते) सेवन करते हैं ॥३१॥

सोममेनामेके दुह्रे घृतमेक उपासते ।

य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः ॥३२॥

पदार्थ—(एके) कोई-कोई [महात्मा] (एनाम्) इससे (सोमम्) ऐश्वर्य को (दुह्रे) दुहते हैं (एके) कोई-कोई [इस के] (घृतम्) तत्त्व का (उप आसते) सेवन करते हैं। (ये) जिन्हों ने (एवम्) ऐसे (विदुषे) विद्वान् को (वशाम्) वशा [कामनायोग्य परमेश्वर-शक्ति] का (ददुः) दान किया है, (ते) वे (दिवः) विजय के (त्रिदिवम्) तीन [आय, व्यय, वृद्धि] के व्यवहार स्थान में (गताः) पहुँचे हैं ॥ ३२ ॥

ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वांल्लोकान्त्समश्नुते ।

ऋतं ह्यस्यामार्पितमपि ब्रह्माथो तपः ॥३३॥

पदार्थ—(ब्राह्मणेभ्यः) ब्राह्मणों [ब्रह्मज्ञानियों] को (वशाम्) वशा [कामनायोग्य परमेश्वर-शक्ति] का (दत्त्वा) दान करके (सर्वान् लोकान्) सब लोकों [दर्शनीय पदों] को [यह प्राणी] (सम्) ठीक-ठीक (अश्नुते) पाता है। (हि) क्योंकि (अस्याम्) इस [परमेश्वर-शक्ति] में (ऋतम्) सत्य व्यवहार (अपि) और (ब्रह्म) वेदज्ञान (अथो) और (तपः) तप [ऐश्वर्य] (आर्पितम्) स्थापित है ॥३३॥

वशां देवा उप जीवन्ति वशां मनुष्या उत ।

वशेदं सर्वमभवद् यावत् सूर्यो विपश्यति ॥३४॥

पदार्थ—(देवाः) देव [विजयी जन] (वशाम्) वशा [कामनायोग्य परमेश्वर-शक्ति] के, (उत) और (मनुष्याः) मनुष्य [मननशील लोग] (वशाम्) वशा के (उप जीवन्ति) आश्रय से जीते हैं। (वशा) वशा (इदम् सर्वम्) इस सब में (अभवत्) व्यापक हुई है, (यावत्) जितना कुछ (सूर्यः) सूर्य [सर्वप्रेरक परमात्मा] (विपश्यति) विविध प्रकार देखता है ॥३४॥

卐 इति पञ्चमोऽनुवाकः 卐

॥ दशमं काण्डं समाप्तम् ॥

卐

एकादशं काण्डम्

प्रथमोऽनुवाकः

卐 सूक्तम् १ 卐

१—३७ ब्रह्मा । ओदन । त्रिष्टुप्, १ अनुष्टुब्गर्भा भुरिक्पंक्ति, २ बृहतीगर्भा विराट्, ३ चतुष्पदा शाक्वरगर्भा जगती, ४, १५-१६ भुरिक्, ५ बृहतीगर्भा विराट्, ६ उष्णिक्, ८ विराड्गायत्री, ९ शाक्वरातिजागतगर्भा जगती, १० विराट् पुरोतिजगती विराड् जगती, ११ जगती, १७ विराड् जगती, १८ अतिजागत गर्भा परातिजागता विराडतिजगती, २० अति जागत गर्भा शाक्वरा चतुष्पदा भुरिग्जगती, २१, २४-२६, २९ विराड् जगती (२९ भुरिक्), २७ अतिजागत गर्भा जगती, ३१ भुरिक्, ३५ चतुष्पदा ककुम्मत्युष्णिक्, ३६ पुरोविराड् (व्याघ्रदिव्यनुष्टुब्) ३७ विराड् जगती ।

अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे तेजस्वी विद्वान् पुरुष ! (जायस्व) प्रसिद्ध हो, [जैसे] (इयम्) यह (नाथिता) पतिवाली, (पुत्रकामा) पुत्रों की कामनावाली (अदितिः) अदिति [अखण्ड व्रतवाली वा अदीन स्त्री] (ब्रह्मौदनम्) ब्रह्मओदन [वेदज्ञान, अन्न वा धन के बरसाने वाले परमात्मा] का (पचति) पक्का [मन में दृढ] करती है [, वैसे ही] (ते) वे (भूतकृतः) उचित काम करने वाले (सप्तऋषयः) सात ऋषि [व्यापनशील वा दर्शनशील अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] (इह) यहां पर (प्रजया सह) प्रजा के साथ [मनुष्यों के सहित] (त्वा) तुझ [विद्वान्] को (मन्थन्तु) मथें [प्रवृत्त करें] ॥१॥

कृणुत धूमं वृषणः सखायोऽद्रोघाविता वाचमच्छ ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवा असहन्त दस्यून् ॥२॥

पदार्थ—(वृषणः) हे ऐश्वर्यवाले (सखायः) सखाओ ! (धूमम्) कम्पन [चेष्टा] (कृणुत) करो, (वाचम् अच्छ) [अपने] वचन का लक्ष्य करके (अद्रोघाविता) निर्द्रोहियों [शुभाचारियों] का रक्षक (पृतनाषाट्) संग्रामों का जीतने वाला, (सुवीरः) उत्तम वीरों वाला (अयम्) यह (अग्निः) तेजस्वी वीर है, (येन) जिस [वीर] के साथ (देवाः) देवों [विजयी जनों] ने (दस्यून्) डाकुओं को (असहन्त) जीता है ॥२॥

अग्नेऽजनिष्ठा महते वीर्याय ब्रह्मौदनाय पक्तवे जातवेदः ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वाजीजनन्नस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥३॥

पदार्थ—(जातवेदः) हे प्रसिद्ध ज्ञानवाले (अग्ने) तेजस्वी वीर ! (महते) बड़े (वीर्याय) वीरत्व [पाने] के लिये (ब्रह्मौदनाय पक्तवे) ब्रह्मओदन [वेदज्ञान, अन्न वा धन बरसाने वाले परमात्मा] के पक्का [मन में दृढ] करने को (अजनिष्ठाः) तू उत्पन्न हुआ है । (ते) उन (भूतकृतः) उचित कर्म करनेवाले (सप्तऋषयः) सात ऋषियों [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] ने (त्वा) तुझ [शूर] को (अजीजनन्) प्रसिद्ध किया है, (अस्यै) इस का (सर्ववीरम्) सब वीरों से युक्त (रयिम्) धन (नि) नियम से (यच्छ) दे ॥३॥

समिद्धो अग्ने समिधा समिध्यस्व विद्वान् देवान् यज्ञियाँ एह वक्षः ।
तेभ्यो हविः श्रपयं जातवेद उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥४॥

पदार्थ—(अग्ने) हे तेजस्वी पुरुष ! (समिधा) काष्ठ आदि से (समिद्धः) प्रकाशित [अग्नि के समान] (सम् इध्यस्व) प्रकाश कर, (यज्ञियान्) पूजा योग्य (देवान्) देवों [विजयी जनों] को (विद्वान्) जानता हुआ तू (इह) यहां [उत्तम पद पर] (आ वक्षः) लाता रहे । (जातवेद) हे प्रसिद्ध धन वाले (तेभ्यः) उनके लिये (हविः) दातव्य वस्तु को (श्रपयन्) पक्का [दृढ] करता हुआ तू (इमम्) इस [प्राणी वा प्रजागण] को (उत्तमम्) श्रेष्ठ (नाकम्) आनन्द में (अधि) ऊपर (रोहय) चढ़ा ॥४॥

त्रेधा भागो निहितो यः पुरा वो देवानां पितॄणां मर्त्यानाम् । अंशान् जानीध्वं वि भजामि तान् वो यो देवानां स इमां पारयाति ॥५॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (त्रेधा) तीन प्रकार से, (देवानाम्) देवताओं [विजयी जनों] का, (पितॄणाम्) पितरों [पालक पुरुषों] का और (मर्त्यानाम्) मर्त्यों [मरणधर्मियों] का, (यः) जो (वः) तुम्हारे लिये (भागः) भाग (पुरा) पहिले से (निहितः) ठहराया हुआ है । (जानीध्वम्) तुम जानो कि (तान् अंशान्) उन भागों को (वः) तुम्हारे लिये (वि भजामि) मैं [परमेश्वर] बांटता हूं, (यः) जो [भाग] (देवानाम्) देवताओं का है, (सः) वह (इमाम्) इस [प्रजा] को (पारयाति) पार लगावे ॥५॥

अग्ने सहस्वानभिभूरभीदसि नीचो न्युब्ज द्विषतः सपत्नान् ।
इयं मात्रा मीयमाना मिता च सजातांस्ते बलिहृतः कृणोतु ॥६॥

पदार्थ—(अग्ने) हे तेजस्वी शूर ! (सहस्वान्) बलवान् और (अभिभूः) [वैरियों का] हरानेवाला तू (इत्) ही (अभि असि) [शत्रुओं को] हराता है, (नीचः) नीच (द्विषतः) द्वेष करनेवाले (सपत्नान्) शत्रुओं को (नि उब्ज) नीचे गिरा दे । (इयम्) यह (मीयमाना) मापी जाती हुई (च) और (मिता) मापी गई (मात्रा) मात्रा [परिमाण] (ते) तेरे (सजातान्) सजातियों [साथियों] को (बलिहृतः) [शत्रुओं से] बलि [उपहार वा कर] लानेवाला (कृणोतु) करे ॥६॥

साकं सजातैः पयसा सहैध्युदुब्जैनां महते वीर्याय । ऊर्ध्वो नाकस्याधि रोह विष्टपं स्वर्गो लोक इति यं वदन्ति ॥७॥

पदार्थ—[हे शूर !] (सजातैः साकम्) सजातियों [साथियों] के साथ (पयसा सह) अन्न के सहित (एधि) वर्तमान हो, (एनाम्) इस [प्रजा] को (महते) बड़े (वीर्याय) वीर कर्म के लिये (उत् उब्ज) ऊंचा उठा । (ऊर्ध्वः) ऊंचा होकर तू (नाकस्य) [उस] आनन्द के (विष्टपम्) स्थान पर (अधि रोह) ऊंचा चढ़, (यम्) जिस [आनन्द] को (वदन्ति) [वे विद्वान्] बताते हैं— "(स्वर्गः लोकः इति) यह स्वर्ग लोक है" ॥७॥

इयं मही प्रति गृह्णातु चर्म पृथिवी देवी सुमनस्यमाना ।
अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥८॥

पदार्थ—(इयम्) यह (मही) बड़ी (देवी) श्रेष्ठगुण वाली (सुमनस्यमाना) प्रसन्न मनवाली [प्रजा] (पृथिवी) पृथिवी पर (चर्म) विज्ञान (प्रति गृह्णातु) ग्रहण करे । (अथ) फिर (सुकृतस्य) धर्म के (लोकम्) समाज में (गच्छेम) हम जावें ॥८॥

एतौ ग्रावाणौ सयुजा युङ्ग्धि चर्मणि निर्भिन्ध्यंशून् यजमानाय साधु । अवघ्नती नि जहि य इमां पृतन्यव ऊर्ध्वं प्रजामुद्भरन्त्युदूह ॥९॥

पदार्थ—[हे सेना !] (एतौ) इन दोनों (सयुजा) आपस में मिले हुए (ग्रावाणौ) सिलबट्टों को (चर्मणि) विज्ञान में [होकर] (युङ्ग्धि) मिला और (यजमानाय) यजमान [श्रेष्ठ कर्म करनेवाले] के लिये (अंशून्) कणों को (साधु) सावधानी से (निः भिन्धि) कूट डाल । (अवघ्नती) मारती हुई तू [उन लोगों को] (नि जहि) मार डाल, (ये) जो (इमाम् प्रजाम्) इस प्रजा पर (पृतन्यवः) सेना चढ़ाने वाले हैं और [प्रजा को] (ऊर्ध्वम्) ऊंची ओर (उद्भरन्ती) उठाती हुई तू (उत् ऊह) ऊंचा विचार कर ॥९॥

गृहाण ग्रावाणौ सकृतौ वीर हस्त आ ते देवा यज्ञिया यज्ञमगुः ।
त्रयो वरा यतमांस्त्वं वृणीषे तास्ते समृद्धीरिह राधयामि ॥१०॥

पदार्थ—(वीर) हे वीर ! (सकृतौ) मिलकर काम करने वाले दोनों (ग्रावाणौ) सिलबट्टों को (हस्ते) हाथ में (गृहाण) ले, (यज्ञियाः) पूजा योग्य (देवाः) देवता [विजयी लोग] (ते) तेरे (यज्ञम्) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] में (आ अगुः) आये हैं । (त्रयः) तीन [स्थान, नाम और जन्म] (वराः) वरदान हैं, (यतमान्) जिन-जिन को (त्वम्) तू (वृणीषे) मांगता है, (ते) तेरे लिये (ताः) उन (समृद्धीः) समृद्धियों को (इह) यहां [संसार में] (राधयामि) मैं सिद्ध करता हूं ॥१०॥

इयं ते धीतिरिदमु ते जनित्रं गृह्णातु त्वामदितिः शूरपुत्रा ।
परा पुनीहि य इमां पृतन्यवोऽस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥११॥

पदार्थ—[हे वीर !] (इयम्) यह (ते) तेरी (धीतिः) धारणशक्ति [वा कर्म] (उ) और (इदम्) यह (ते) तेरा (जनित्रम्) जन्म [मनुष्यजन्म] (त्वाम्) तुझे (गृह्णातु) सहारा देवे, [जैसे] (शूरपुत्रा) शूर पुत्रों वाली (अदितिः) अदिति [अखण्ड व्रतवाली माता सन्तान का हित करती है] । (परा पुनीहि) [उन्हें] धो डाल [उन पर पानी फेर दे] (ये) जो [शत्रु]

(इमाम्) इस [प्रजा] पर (घृतश्चुतः) चढ़ाई करनेवाले हैं, (अस्यै) इस [प्रजा] को (सर्ववीरम्) सब वीरों से युक्त (रयिम्) धन (नि) नित्य (यच्छत) दे ॥११॥

उपश्वसे द्रुवये सीदता यूयं वि विच्यध्वं यज्ञियासुस्तुषैः ।

श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥१२॥

पदार्थ—(यज्ञियासः) हे पूजनीय पुरुषो ! (उपश्वसे) उत्तम जीवनवाले (द्रुवये) उद्योग के लिये (यूयम्) तुम (सीदत) बैठो और (तुषैः) तुष [तुस] से (वि विच्यध्वम्) अलग हो जाओ । (सर्वान्) सब (समानान्) समानों [तुल्य गुण वालों] (श्रिया) लक्ष्मी द्वारा (अति स्याम) हम बढ़ जावें, (द्विषतः) शत्रुओं को (अधस्पदम्) पैरों के तले (पादयामि) मैं गिरा दूं ॥१२॥

परेहि नारि पुनरेहि क्षिप्रमपां त्वा गोष्ठोऽध्यरुक्षद् भराय । तासां गृह्णीताद् यतमा यज्ञिया असन् विभाज्य धीरीतरा जहीतात् ॥१३॥

पदार्थ—(नारि) हे नरों की शक्तिवाली स्त्री ! तू (परा) पराक्रम के साथ (इहि) चल, (पुनः) अवश्य (क्षिप्रम्) शीघ्र (आ इहि) आ (अपाम्) विद्या में व्याप्त स्त्रियों के (गोष्ठः) समाज ने (भराय) पोषण के लिये (त्वा) तुझे (अधि अरुक्षत्) ऊपर चढ़ाया है । (तासाम्) उन [स्त्रियों] में (यतमाः) जो-जो (यज्ञिया) पूजा योग्य [स्त्रियां] (असन्) होवें, [उन्हें] (गृह्णीतात्) ग्रहण कर और (धीरी) बुद्धिमती तू (इतरा.) दूसरी [स्त्रियों] को (विभाज्य) अलग करके (जहीतात्) छोड़ दे ॥१३॥

एमा अगुर्योषितः शुम्भमाना उत्तिष्ठ नारि तवसं रभस्व ।

सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजावत्या त्वागन् यज्ञः प्रति कुम्भं गृभाय ॥१४॥

पदार्थ—(इमा) ये सब (शुम्भमानाः) शुभगुणों वाली (योषित) सेवायोग्य स्त्रियां (आ अगु·) आई हैं, (नारि) हे शक्तिमती स्त्री ! (उत् तिष्ठ) खड़ी हो, (तवसम्) बलयुक्त व्यवहार का (रभस्व) आरम्भ कर । (पत्या) [श्रेष्ठ] पति के साथ (सुपत्नी) श्रेष्ठ पत्नी, (प्रजया) [उत्तम] सन्तान के साथ (प्रजावती) उत्तम सन्तानवाली [तू है], (यज्ञ) श्रेष्ठ व्यवहार (त्वा) तुझ को (आ अगन्) प्राप्त हुआ है, तू (कुम्भम्) भूमि को पूरण करने वाले [शुभ व्यवहार] को (प्रति गृभाय) स्वीकार कर ॥१४॥

ऊर्जो भागो निहितो यः पुरा व ऋषिप्रशिष्टाप आ भरैताः । अयं यज्ञो गातुविन्नाथवित् प्रजाविदुग्रः पशुविद् वीरविद् वो अस्तु ॥१५॥

पदार्थ—[हे विदुषी स्त्रियो ! यही] (ऊर्ज·) पराक्रम का (भाग.) सेवनीय व्यवहार है, (य) जो (पुरा) पहिले (व) तुम्हारे लिये (निहित) ठहराया गया है, [हे प्रधान !] (ऋषि प्रशिष्टा) ऋषियों [माता, पिता और आचार्यों] से शिक्षित तू (एताः) इन (अपः) विद्या में व्याप्त स्त्रियों को (आ) सब ओर से (भर) पुष्ट कर । [हे स्त्रियो !] (अयम्) यह (उग्र) तेजस्वी (यज्ञ) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] (गातुवित्) मार्ग देनेवाला, (नाथवित्) ऐश्वर्य पहुँचानेवाला, (प्रजावित्) प्रजाएँ देनेवाला, (पशुवित्) [गौ घोड़ा आदि] पशुओं का पहुँचाने वाला, (वीरवित्) वीरों का लाने वाला (व·) तुम्हारे लिये (अस्तु) होवे ॥१५॥

अग्ने चरुर्यज्ञियस्त्वाध्यरुक्षच्छुचिस्तपिष्ठस्तपसा तपैनम् ।

आर्षेया दैवा अभिसंगत्य भागमिमं तपिष्ठा ऋतुभिस्तपन्तु ॥१६॥

पदार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् ! (यज्ञिय) पूजायोग्य (चरु) ज्ञान ने (त्वा) तुझे (अधि अरुक्षत्) ऊँचा चढ़ाया है, (शुचि.) शुद्ध आचरण वाला (तपिष्ठः) अतिशय तपवाला तू (तपसा) [ब्रह्मचर्य आदि] तप से (एनम्) इस [ज्ञान] को (तप) तपा [उपकार में ला] । (आर्षेया) ऋषियों में विख्यात, (दैवा) उत्तम गुणवाले (तपिष्ठाः) बड़े तपस्वी लोग (अभिसंगत्य) सर्वथा मिलकर (इमम्) इस (भागम्) सेवनीय [ज्ञान] को (ऋतुभिः) ऋतुओं के साथ (तपन्तु) तपावें [उपकार में लावें] ॥१६॥

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा आपश्चरुमव सर्पन्तु शुभ्राः ।

अदुः प्रजां बहुलान् पशून् नः पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम् ॥१७॥

पदार्थ—(शुद्धा) शुद्धस्वभाव वाली, (पूता.) पवित्र आचरण वाली, (यज्ञिया) पूजनीय (योषित) सेवायोग्य, (शुभ्राः) शुभ चरित्रवाली (इमा) ये (आपः) विद्या में व्याप्त स्त्रियां (चरुम्) ज्ञान को (अव) निश्चय करके (सर्पन्तु) प्राप्त हों । इन [शिक्षित स्त्रियों] ने (नः) हमें (प्रजाम्) सन्तान और (बहुलान्) बहुविध (पशून्) [गौ, भैंस आदि] पशु (अदुः) दिये हैं, (ओदनस्य) सुख बरसाने वाले [वा मेघ रूप परमेश्वर] का (पक्ता) पक्का [मन में दृढ़] करनेवाला मनुष्य (सुकृताम्) सुकर्मियों के (लोकम्) समाज को (एतु) पहुँचे ॥१७॥

ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता घृतेन सोमस्यांशवस्तण्डुला यज्ञिया इमे ।

अपः प्र विशत प्रति गृह्णातु वश्चरुरिमं पक्त्वा सुकृतामेत लोकम् ॥१८॥

पदार्थ—(ब्रह्मणा) वेद द्वारा (शुद्धाः) शुद्ध किये गये (उत) और (घृतेन) ज्ञानप्रकाश से (पूताः) पवित्र किये हुए, (सोमस्य) ऐश्वर्य के (अंशव) बांटने वाले (यज्ञियाः) पूजनीय, (तण्डुला.) दुःखभञ्जक (इमे) ये तुम (अप) प्रजाओं में (प्र विशत) प्रवेश करो, (चरुः) ज्ञान (वः) तुमको (प्रतिगृह्णातु) ग्रहण करे, (इमम्) इस [ज्ञान] को (पक्त्वा) पक्का करके (सुकृताम्) सुकर्मियों के (लोकम्) समाज को (एत) जाओ ॥१८॥

उरुः प्रथस्व महता महिम्ना सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके ।

पितामहाः पितरः प्रजोपजाहं पक्ता पञ्चदशस्ते अस्मि ॥१९॥

पदार्थ—[हे परमात्मन्] (महता) बड़ी (महिम्ना) महिमा से (उरुः) विस्तृत और (सहस्रपृष्ठ) सहस्रों स्तोत्रवाला तू (सुकृतस्य) सुकर्म के (लोके) समाज में (प्रथस्व) प्रसिद्ध हो । (पितामहाः) पितामह [पिता के पिता] आदि (पितरः) पिता आदि [सब गुरुजन], (प्रजा) सन्तान और (उपजा) सन्तान के सन्तान [ये हैं] (पञ्चदशः) [पाँच प्राण, अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान + पाँच इन्द्रिय अर्थात् श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण + पाँच भूत अर्थात् भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन] पन्द्रह पदार्थ वाला जीवात्मा (अहम्) मैं (ते) तेरा (पक्ता) पक्का [अपने हृदय में दृढ़] करनेवाला (अस्मि) हूँ ॥१९॥

सहस्रपृष्ठः शतधारो अक्षितो ब्रह्मौदनो देवयानः स्वर्गः ।

अमूंस्त आ दधामि प्रजया रेषयैनान् बलिहाराय मृडतान्मह्यमेव ॥२०॥

पदार्थ—(सहस्रपृष्ठ·) सहस्रों स्तोत्र वाला (शतधारः) बहुविध जगत् का धारण करनेवाला, (अक्षित) क्षयरहित, (देवयान) विद्वानों से पानेयोग्य, (स्वर्ग) आनन्द पहुँचानेवाला, (ब्रह्मौदन·) ब्रह्म-ओदन [वेदज्ञान, अन्न वा धन का बरसाने वाला, तू परमात्मा है] । (अमून्) उन [वैरियों] को (ते) तुझे (आ दधामि) सौंपता हूँ, (एनान्) इन [शत्रुओं] को (प्रजया) [उनकी] प्रजासहित (रेषय) नाश कर । (मह्यम्) मुझे (बलिहाराय) सेवाविधि स्वीकार करने के लिये (एव) ही (मृडतात्) सुख दे ॥२०॥

उदेहि वेदिं प्रजया वर्धयैनां नुदस्व रक्षः प्रतरं धेह्येनाम् ।

श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥२१॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] (वेदिम्) वेदी पर [यज्ञभूमिरूप हृदय में] (उदेहि) उदय हो (प्रजया) सन्तान के साथ (एनाम्) इस [प्रजा अर्थात् मुझ] को (वर्धय) बढ़ा, (रक्ष) राक्षस [विघ्न] को (नुदस्व) हटा, (एनाम्) इस [प्रजा अर्थात् मुझ] को (प्रतरम्) अधिक उत्तमता से (धेहि) पुष्ट कर । (सर्वान्) सब (समानान्) समानों [तुल्य गुणवालों] से (श्रिया) लक्ष्मी द्वारा (अति स्याम) हम बढ़ जावें, (द्विषत) शत्रुओं को (अधस्पदम्) पैरों के तले (पादयामि) मैं गिरा दूं ॥२१॥

अभ्यावर्तस्व पशुभिः सहैनां प्रत्यङेनां देवताभिः सहैधि ।

मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचारः स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि राज ॥२२॥

पदार्थ—[हे जीव !] (पशुभि सह) सब दृष्टिवाले प्राणियों के साथ [मिलकर] (एनाम्) इस [प्रजा अर्थात् आत्मा] की ओर (अभ्यावर्तस्व) आकर घूम, (देवताभि सह) जय की इच्छाओं के साथ (एनाम्) इस [प्रजा अपने आत्मा] की ओर (प्रत्यङ्) आगे बढ़ता हुआ तू (एधि) वर्तमान हो । [हे प्रजा !] (त्वा) तुझको (मा) न तो (शपथ) शाप (प्र आपत्) प्राप्त होवे और (मा) न (अभिचार) विरुद्ध आचरण, (स्वे) अपने (क्षेत्रे) खेत [अधिकार] में (अनमीवा) नीरोग होकर (वि) विविध प्रकार (राज) राज्य कर ॥२२॥

ऋतेन तष्टा मनसा हितैषा ब्रह्मौदनस्य विहिता वेदिरग्रे ।

अंसध्रीं शुद्धामुप धेहि नारि तत्रौदनं सादय दैवानाम् ॥२३॥

पदार्थ—(ऋतेन) सत्य ज्ञान द्वारा (तष्टा) बनाई गई (मनसा) विज्ञान द्वारा (हिता) धरी गई (ब्रह्मौदनस्य) ब्रह्म-ओदन [वेदज्ञान, अन्न वा धन के बरसाने वाले परमात्मा] की (एषा) यह (वेदि·) वेदी [यज्ञ-भूमि अर्थात् हृदय] (अग्रे) पहिले से (विहिता) बताई गयी है । (नारि) हे शक्तिमती [प्रजा !] (शुद्धाम्) शुद्ध (अंसध्रीम्) असंधी [कन्धों वा कानों वाली कढ़ाही अर्थात् बुद्धि] को (उप धेहि) चढ़ा दे, (तत्र) उस में (दैवानाम्) उत्तम गुण-वाले पुरुषों के (ओदनम्) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्न रूप परमेश्वर] को (सादय) बैठा दे ॥२३॥

अदि॑तेर्हस्तां॒ स्रुच॑मे॒तां द्वि॒तीयां॑ सप्तऋ॒षयो॑ भूत॒कृतो॒ याम॑कृण्वन् ।
सा गात्रा॑णि वि॒दुष्यो॑द॒नस्य॒ दर्वि॒र्वेद्या॒मध्ये॑नं चिनोतु ॥२४॥

पदार्थ—(**भूतकृत**) उचित कर्म करनेवाले (**सप्तऋषय**) सात ऋषियो [व्यापनशील वा दर्शनशील, अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] ने (**अदिते**) अदिति [अखण्ड व्रतवाली प्रजा] के (**याम्**) जिस (**हस्ताम्**) खिली हुई [मनोहर], (**एताम्**) इस (**द्वितीयाम्**) दूसरी [शारीरिक से भिन्न मानसिक] (**स्रुचम्**) स्रुचा [डोई अर्थात् चित्तवृत्ति] को (**अकृण्वन्**) बनाया है। (**ओदनस्य**) ओदन [सुख की वर्षा करने वाले अन्नरूप परमात्मा] के (**गात्राणि**) अङ्गो [गुणो के तत्त्वो] को (**विदुषी**) जानती हुई (**सा**) वह (**दर्वि**) करछी [चित्तवृत्ति] (**वेद्याम्**) वेदी पर [हृदय मे] (**एनम्**) इस [अन्न रूप परमात्मा] को (**अधि**) अधिक-अधिक (**चिनोतु**) एकत्र करे ॥२४॥

शृ॒तं त्वा॑ ह॒व्यमुप॑ सीदन्तु दै॒वा निः सृ॒प्याग्नेः पुन॑रेना॒न् प्र सी॑द ।
सोमे॑न पू॒तो ज॒ठरे॑ सीद ब्र॒ह्मणा॑मार्षे॒यास्ते॒ मा रि॑षन् प्राशि॒तारः॑ ॥२५॥

पदार्थ—[हे ओदन] (**देवा**) उत्तम गुण वाले पुरुष (**शृतम्**) परिपक्व (**हव्यम्**) ग्रहण करने योग्य (**त्वा उप**) तेरे समीप (**सीदन्तु**) बैठें, (**अग्ने**) अग्नि से (**नि सृप्य**) निकलकर (**पुन**) अवश्य (**एनान्**) इन [पुरुषो] को (**प्रसीद**) प्रसन्न कर। (**सोमेन**) अमृत-रस से (**पूत**) शोधा हुआ तू (**ब्रह्मणाम्**) ब्राह्मणो [ब्रह्मज्ञानियो] के (**जठरे**) पेट मे (**सीद**) बैठ, (**ते**) तेरे (**प्राशितार**) भोग करने वाले (**आर्षेया**) ऋषियो मे विख्यात पुरुष (**मा रिषन्**) न दुःखी होवें ॥२५॥

सोम॑ राजन्त्सं॒ज्ञान॒मा व॑पैभ्यः सुब्रा॑ह्मणा यत॒मे त्वो॑प॒सीदा॑न् ।
ऋषी॑नार्षे॒यांस्तप॒सोऽधि॑ जा॒तान् ब्र॑ह्मौद॒ने सु॒हवा॑ जोहवीमि ॥२६॥

पदार्थ—(**सोम**) हे सर्वप्रेरक (**राजन्**) राजन्! [परमात्मन्] (**संज्ञानम्**) चैतन्य (**एभ्य**) उनके लिये (**आ वप**) फैला दे, (**यतमे**) जो-जो (**सुब्राह्मणा**) अच्छे-अच्छे ब्राह्मण [बड़े ब्रह्मज्ञानी] (**त्वा**) तुझ को (**उपसीदान्**) प्राप्त होवें। (**तपस**) तप से (**अधि**) अधिकारपूर्वक (**जातान्**) प्रसिद्ध (**ऋषीन्**) ऋषियो और (**आर्षेयान्**) ऋषियो मे विख्यात पुरुषो को (**ब्रह्मौदने**) ब्रह्म-ओदन [वेदज्ञान, अन्न वा धन के बरसाने वाले परमेश्वर] के विषय मे (**सुहवा**) सुन्दर बुलावे से (**जोहवीमि**) मैं पुकार पुकार कर बुलाता हूँ ॥२६॥

शु॒द्धाः पू॒ता यो॒षितो॑ य॒ज्ञिया॑ इ॒मा ब्र॒ह्मणां॒ हस्ते॑षु प्रपृ॒थक् सा॑दयामि ।
यत्का॑म इ॒दम॑भिषि॒ञ्चामि॑ वो॒ऽहमिन्द्रो॑ म॒रुत्वा॒न्त्स द॑दादि॒दं मे॑ ॥२७॥

पदार्थ—(**शुद्धा**) शुद्ध स्वभाववाली, (**पूता**) पवित्र आचरणवाली, (**यज्ञिया**) पूजनीय (**इमा**) इन (**योषित**) सेवायोग्य [प्रजाओ] को (**ब्रह्मणाम्**) ब्रह्मज्ञानियों के (**हस्तेषु**) हाथो मे [विज्ञान के बलो मे] (**प्रपृथक्**) नाना प्रकार से (**सादयामि**) मै बिठलाता हूँ। [हे प्रजाओ !] (**यत्काम**) जिस उत्तम कामना वाला (**अहम्**) मैं (**इदम्**) इस समय (**व**) तुम्हारा (**अभिषिञ्चामि**) अभिषेक करता हूँ, (**स**) वह (**मरुत्वान्**) दोषनाशक गुणोवाला (**इन्द्र**) सम्पूर्ण ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर (**इदम्**) वह वस्तु (**मे**) मुझे (**ददात्**) देवे ॥२७॥

इ॒दं मे॒ ज्योति॑र॒मृतं॒ हिर॑ण्यं प॒क्वं क्षेत्रा॑त् काम॒दुघा॑ म ए॒षा ।
इ॒दं धनं॒ नि द॑धे ब्राह्म॒णेषु॑ कृ॒ण्वे पन्थां॑ पि॒तृषु॒ यः स्व॒र्गः ॥२८॥

पदार्थ—(**इदम्**) यह (**मे**) मेरा (**ज्योति**) चमकता हुआ (**अमृतम्**) मृत्यु से बचाने वाला (**हिरण्यम्**) सुवर्ण, (**क्षेत्रात्**) खेत से [लाया गया] (**पक्वम्**) पका हुआ [अन्न], और (**एषा**) यह (**मे**) मेरी (**कामदुघा**) कामना पूरी करने वाली [कामधेनु गौ] है। (**इदम्**) इस (**धनम्**) धन को (**ब्राह्मणेषु**) ब्रह्मज्ञानो मे [वेद प्रचार-व्यवहारो मे] (**नि दधे**) मैं धरता हूँ, और (**पन्थाम्**) मार्ग को (**कृण्वे**) मैं बनाता हूँ, (**य**) जो (**पितृषु**) पालन करनेवाले [विज्ञानियो] के बीच (**स्वर्ग**) सुख पहुँचाने वाला है ॥२८॥

अ॒ग्नौ तुषा॒ना व॑प जा॒तवे॑दसि प॒रः क॒म्बूकाँ॒ अप॑ मृड्ढि दू॒रम् ।
ए॒तं शु॑श्रुम गृहरा॒जस्य॑ भा॒गमथो॑ वि॒द्म निर्ऋ॑तेर्भाग॒धेय॑म् ॥२९॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (**तुषान्**) तुष [भुस] को (**जातवेदसि**) उत्पन्न पदार्थों मे विद्यमान (**अग्नौ**) अग्नि के बीच (**आ वप**) फैला दे, (**कम्बूकान्**) कम्बूको [छिलको] को (**पर**) बहुत (**दूरम्**) दूर (**अप मृड्ढि**) धोकर फेंक दें। (**एतम्**) इसको (**गृहराजस्य**) घर के राजा [गार्हपत्य अग्नि] का (**भागम्**) भाग (**शुश्रुम**) हमने सुना है, (**अथो**) और भी (**निर्ऋते**) पृथिवी का (**भागधेयम्**) भाग (**विद्म**) हम जानते है ॥२९॥

श्रा॒म्य॒तः प॑च॒तो वि॑द्धि सुन्व॒तः पन्थां॑ स्व॒र्गम॑धि॒ रोह॑यैनम् ।
येन॒ रोहा॒त् पर॑मा॒पद्य॒ यद् वय॑ उत्त॒मं नाकं॑ पर॒मं व्यो॑म ॥३०॥

पदार्थ—[हे ईश्वर !] (**श्राम्यत**) श्रमी [ब्रह्मचारी आदि तपस्वी] का, (**पचत**) पक्का करनेवाले [दृढ निश्चय करनेवाले], (**सुन्वत**) तत्त्व निचोड़ने वाले [विज्ञानी पुरुष] का (**विद्धि**) तू ज्ञान कर और (**स्वर्गम्**) सुख पहुँचानेवाले (**पन्थाम्**) मार्ग में (**एनम्**) इस [जीव] को (**अधि**) ऊपर (**रोहय**) चढा। (**येन**) जिस [मार्ग] से वह [जीव] (**यत्**) जो (**परम्**) बड़ा उत्तम (**वय**) जीवन है, [उसको] (**आपद्य**) पाकर (**उत्तमम्**) उत्तम (**नाकम्**) सुखस्वरूप (**परमम्**) सर्वोत्कृष्ट (**व्योम**) विविध रक्षक [परब्रह्म ओ३म्] को (**रोहत्**) ऊँचा होकर पावे ॥३०॥

ब॒भ्रेर॑ध्वर्यो॒ मुख॑मे॒तद् वि मृ॑ड्ढ्याज्या॑य लो॒कं कृ॑णुहि प्रवि॒द्वान् ।
घृ॒तेन॒ गात्रा॒नु सर्वा॒ वि मृ॑ड्ढि कृ॒ण्वे पन्थां॑ पि॒तृषु॒ यः स्व॒र्गः ॥३१॥

पदार्थ—(**अध्वर्यो**) हे हिंसा के करनेवाले पुरुष ! (**बभ्रे**) पोषण करनेवाले [अन्नरूप परमेश्वर] के (**एतत्**) इस (**मुखम्**) मुख [भोजन के ऊपरी भाग] को (**वि मृड्ढि**) सवार ले, (**प्रविद्वान्**) बड़ा ज्ञानवान् तू (**आज्याय**) घी के लिये (**लोकम्**) स्थान (**कृणुहि**) बना। (**घृतेन**) घी से (**सर्वा**) सब (**गात्रा**) अङ्गो को (**अनु**) निरन्तर [देखभाल करके] (**वि मृड्ढि**) शोध ले, (**पन्थाम्**) मार्ग (**कृण्वे**) मैं बनाता हूँ (**य**) जो [मार्ग] (**पितृषु**) पालन करनेवाले [विज्ञानियो] के बीच (**स्वर्ग**) सुख पहुँचानेवाला है ॥३१॥

ब॒भ्रे रक्षः॑ स॒मद॒मा व॑पै॒भ्योऽब्रा॑ह्मणा यत॒मे त्वो॑प॒सीदा॑न् ।
पु॒री॒षिणः॒ प्रथ॑मानाः पु॒रस्ता॑दार्षे॒यास्ते॒ मा रि॑षन् प्राशि॒तारः॑ ॥३२॥

पदार्थ—(**बभ्रे**) हे पोषक ! [अन्नरूप परमात्मन्] (**रक्ष**) विघ्न और (**समदम्**) लड़ाई (**एभ्य**) उनके लिये (**आ वप**) फैला दे, (**यतमे**) जो (**अब्राह्मणा**) अब्राह्मण [अब्रह्मज्ञानी] (**त्वा**) तुझको (**उपसीदान्**) प्राप्त होवें। (**पुरीषिण**) पूर्ति रखने वाले, (**पुरस्तात्**) आगे-आगे (**प्रथमाना**) फैलते हुए, (**आर्षेया**) ऋषियो मे विख्यात (**ते**) तेरे (**प्राशितार**) भोग करनेवाले पुरुष (**मा रिषन्**) न दुःखी होवें ॥३२॥

आ॒र्षे॒येषु॒ नि द॑ध ओदन त्वा॒ नाना॑र्षेयाणा॒मप्य॑स्त्यत्र॑ ।
अ॒ग्निर्मे॑ गो॒प्ता म॒रुत॑श्च॒ सर्वे॒ विश्वे॑ दे॒वा अ॒भि र॑क्षन्तु प॒क्वम् ॥३३॥

पदार्थ—(**ओदन**) हे ओदन ! [सुख की वर्षा करनेवाले, अन्नरूप परमेश्वर] (**आर्षेयेषु**) ऋषियो मे विख्यातो के बीच (**त्वा**) तुझको (**निदधे**) मैं धरता हूँ, (**अनार्षेयाणाम्**) ऋषियो मे विख्यातो से भिन्न लोगो का [भाग] (**अत्र**) इसमें (**अपि**) कभी (**न**) नहीं (**अस्ति**) है। (**मे**) मेरा (**गोप्ता**) रक्षक (**अग्नि**) अग्नि [शारीरिक अग्नि] (**च**) और (**सर्वे**) सब (**मरुत**) प्राण वायु [प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान] और (**विश्वे**) सब (**देवा**) इन्द्रियां (**पक्वम्**) पक्के [दृढ स्वभाव परमात्मा] को (**अभि**) सब ओर से (**रक्षन्तु**) रक्खें ॥३३॥

य॒ज्ञं दु॒हानं॒ सद॒मित् प्रपी॑नं पु॒मांसं॑ धे॒नुं सद॑नं रयी॒णाम् ।
प्र॒जा॒मृ॒त॒त्वमु॒त दी॒र्घमायू॑ रा॒यश्च॒ पोषै॒रुप॑ त्वा सदेम ॥३४॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] (**यज्ञम्**) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] को, (**प्रपीनम्**) बढ़े हुए [समृद्ध] (**पुमांसम्**) रक्षक [पुरुषार्थी] का, (**धेनुम्**) तृप्त करने वाली [वाणी अर्थात् विद्या वा गौ] को (**रयीणाम्**) धनो के (**सदनम्**) घर को, (**प्रजामृतत्वम्**) प्रजा [जनता वा सन्तान] के अमरपन का, (**उत**) और (**दीर्घम्**) दीर्घ (**आयु**) जीवन को (**च**) निश्चय करके (**राय**) धन की (**पोषै**) पुष्टियो से (**सदम् इत्**) सदा ही (**दुहानम्**) पूर्ण करते हुए (**त्वा**) तुझ को (**उप**) आदर से (**सदेम**) हम प्राप्त होवें ॥३४॥

वृ॒ष॒भो॑ऽसि स्व॒र्ग ऋषी॑नार्षे॒यान् ग॑च्छ ।
सु॒कृतां॑ लो॒के सी॑द॒ तत्र॑ नौ संस्कृ॒तम् ॥३५॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] तू (**वृषभ**) महाबली और (**स्वर्ग**) सुख पहुँचाने वाला (**असि**) है, (**ऋषीन्**) ऋषियो [सूक्ष्मदर्शियो] को और (**आर्षेयान्**) ऋषियो मे विख्यात पुरुषो को (**गच्छ**) प्राप्त हो। (**सुकृताम्**) सुकर्मियो के (**लोके**) समाज मे (**सीद**) बैठ, (**तत्र**) वहां (**नौ**) हम दोनो का (**संस्कृतम्**) संस्कार होवे [अर्थात मैं तेरी उपासना करूं और तू मुझे बल देवे] ॥३५॥

स॒मा॒चि॒नु॒ष्वा॒नु॒सं॒प्रया॒ह्यग्ने॑ प॒थः क॑ल्पय देव॒याना॑न् ।
ए॒तैः सु॑कृ॒तैरनु॑ गच्छेम य॒ज्ञं नाके॒ तिष्ठ॑न्त॒मधि॑ स॒प्तर॑श्मौ ॥३६॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे विद्वान् पुरुष ! (**देवयानान्**) देवताओ [विजय चाहने वालो] के चलने योग्य (**पथ**) मार्गो को (**समाचिनुष्व**) चौरस करके ठीक-ठीक

सुधार, [उन पर] (अनु संप्रयाहि) निरन्तर यथाविधि आगे बढ़, [और उन्हें दूसरों के लिये] (कल्पय) बना। (एतैः) इन (सुकृतैः) सुन्दर [विचारों से] बनाये हुए [मार्गों] द्वारा (सप्तरश्मौ) सात किरणों वाले (नाके) [लोकों वा प्रकाश आदि के चलाने वाले] सूर्य पर (अधि) राजा होकर (तिष्ठन्तम्) ठहरे हुए (यज्ञम्) पूजनीय [परमात्मा] को (अनु) निरन्तर (गच्छेम) पावें ॥३६॥

येन देवा ज्योतिषा द्यामुदायन् ब्रह्मौदनं पक्त्वा सुकृतस्य लोकम् ।

तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥३७॥

पदार्थ—(येन ज्योतिषा) जिस ज्योति द्वारा (देवाः) देवता [विजय चाहने वाले लोग] (ब्रह्मौदनम्) ब्रह्म ओदन [वेदज्ञान, अन्न वा धन के बरसाने वाले परमेश्वर] को (पक्त्वा) पक्का [मन में दृढ़] करके (सुकृतस्य) पुण्य कर्म के (द्याम्) प्रकाशमान (लोकम्) लोक [समाज] को (उदायन्) ऊपर पहुँचे हैं। (तेन) उसी [ज्योति] से (उत्तमम्) उत्तम (नाकम्) दुःखरहित (स्वः) सुखस्वरूप परब्रह्म को (अभि = अभिलक्ष्य) लखकर (आरोहन्तः) चढ़ते हुए हम (सुकृतस्य) पुण्य कर्म के (लोकम्) समाज को (गेष्म) खोजें ॥३८॥

卐 सूक्तम् २ 卐

१-३१ अथर्वा । भव-शर्वौ रुद्रः । त्रिष्टुप्, १ परातिजागता विराड्जगती, २ अनुष्टुप् गर्भा पञ्चपदा पथ्या जगती, ३- चतुष्पदा स्वराडुष्णिक्, ४, ५, ७, १३, १५, १६, २१, अनुष्टुप्, ६ आर्षी गायत्री, ८ महाबृहती, ९ आर्षी, १० पुरोकृति त्रिपदा विराट्, ११ पञ्चपदा विराड् जगतीगर्भा शक्वरी, १२ भुरिक्, १४, १७-१९, २३, २६, २७ विराड्गायत्री, २० भुरिग्गायत्री, २२ विषमपाद लक्ष्मा त्रिपदा महाबृहती, २४, २९ जगती, २५ पञ्चपदाति शक्वरी, ३० चतुष्पदा उष्णिक्, ३१ त्र्यवसाना विपरीतपादलक्ष्मा षट्पदा (जगती ?)

भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं भूतपती पशुपती नमो वाम् ।

प्रतिहितामायतां मा वि स्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥१॥

पदार्थ—(भवाशर्वौ) हे भव और शर्व ! [भव-सुख उत्पन्न करने वाले और शर्व-शत्रुनाशक परमेश्वर के तुम दोनों गुणो] (मृडतम्) प्रसन्न हो, (मा अभियातम्) [हमारे] विरुद्ध मत चलो, (भूतपती) हे सत्ता के पालको ! (पशुपती) हे सब दृष्टि वालो के रक्षको ! (वाम्) तुम दोनों को (नमः) नमस्कार है। (प्रतिहिताम्) लक्ष्य पर लगाई हुई और (आयताम्) तानी हुई [इषु] तीर को (मा वि स्राष्टम्) तुम दोनों मत छोड़ो, (मा) न (नः) हमारे (द्विपदः) दोपायों और (मा) न (चतुष्पदः) चौपायों को (हिंसिष्टम्) मारो ॥१॥

शुने क्रोष्ट्रे मा शरीराणि कर्तमलिक्लवेभ्यो गृध्रेभ्यो ये च कृष्णा अविष्यवः । मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि ते विघसे मा विदन्त ॥२॥

पदार्थ—(शुने) कुत्ते के लिये, (क्रोष्ट्रे) गीदड़ के लिये, (अलिक्लवेभ्यः) अपने बल से भय देने वाले [श्येन, चील आदियों] के लिये, (गृध्रेभ्यः) खाऊ [गिद्ध आदिकों] के लिये (च) और (ये) जो (अविष्यवः) हिंसाकारी (कृष्णाः) कौवे हैं [उनके लिये] (शरीराणि) [हमारे] शरीरों को (मा कर्तम्) तुम दोनों मत करो। (पशुपते) हे दृष्टिवाले [जीवों] के रक्षक ! (ते) तेरी [उत्पन्न] (मक्षिकाः) मक्खियाँ और (ते) तेरे [उत्पन्न] (वयांसि) पक्षी (विघसे) भोजन पर (मा विदन्त) [हम] न प्राप्त होवें ॥२॥

क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः ।

नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य ॥३॥

पदार्थ—(भव) हे भव ! [सुख उत्पन्न करने वाले] (रुद्र) हे रुद्र ! [दुःखनाशक] (अमर्त्य) हे अमर ! [जगदीश्वर] (सहस्राक्षाय) सहस्रों कर्मों में दृष्टिवाले (ते) तुझको (क्रन्दाय) [अपना] रोदन मिटाने के लिये (ते) तुझे (प्राणाय) [अपना] जीवन बढ़ाने के लिये (च) और (ते) तुझे (याः) जो (रोपयः) [हमारी] पीड़ायें हैं [उन्हें हटाने के लिये] (नमः कृण्मः) हम नमस्कार करते हैं ॥३॥

पुरस्तात् ते नमः कृण्म उत्तरादधरादुत ।

अभीवर्गाद् दिवस्पर्यन्तरिक्षाय ते नमः ॥४॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] (ते) तुझे (पुरस्तात्) आगे से, (उत्तरात्) ऊपर से (उत) और (अधरात्) नीचे से (नमः) नमस्कार, (ते) तुझे (दिवः) आकाश के (अभीवर्गात् परि) अवकाश से (अन्तरिक्षाय) अन्तरिक्ष लोक को जानने के लिये (नमः कृण्मः) हम नमस्कार करते हैं ॥४॥

मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव ।

त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः ॥५॥

पदार्थ—(पशुपते) हे दृष्टिवालों के रक्षक ! (ते) तुझे (मुखाय) [हमारे] मुख के हितके लिये, (भव) हे सुख उत्पादक ! (ते) तुझे (यानि) जो (चक्षूंषि) [हमारे] दर्शन साधन हैं [उनके लिये]। (त्वचे) [हमारी] त्वचा के लिये (रूपाय) सुन्दरता के लिये (संदृशे) आकार के लिये (प्रतीचीनाय) प्रत्यक्ष व्यापक (ते) तुझे (नमः) नमस्कार है ॥५॥

अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वाया आस्याय ते ।

दद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥६॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] (ते) तुझे (अङ्गेभ्यः) [हमारे] अङ्गों के हित के लिये, (उदराय) उदर के हित के लिये, (ते) तुझे (जिह्वायै) [हमारी] जिह्वा के हित के लिये और (आस्याय) मुख के हित के लिये (ते) तुझे (दद्भ्यः) [हमारे] दाँतों के हित के लिये और (गन्धाय) गन्ध ग्रहण करने के लिये (नमः) नमस्कार है ॥६॥

अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना ।

रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥७॥

पदार्थ—(अस्त्रा) प्रकाश करनेवाले, (नीलशिखण्डेन) नीलों [निधियों] के पहुँचाने वाले, (सहस्राक्षेण) सहस्रों कर्मों में दृष्टिवाले (वाजिना) बलवान् (अर्धकघातिना) हिंसकों के मारने वाले (तेन) उस (रुद्रेण) रुद्र [दुःखनाशक परमात्मा] के साथ (मा सम् अरामहि) हम समर [युद्ध] न करें ॥७॥

स नो भवः परि वृणक्तु विश्वत आप इवाग्निः परि वृणक्तु नो भवः । मा नोऽभि मांस्त नमो अस्त्वस्मै ॥८॥

पदार्थ—(सः) वह (भवः) भव [सुख उत्पन्न करनेवाला परमेश्वर] (नः) हमें [दुष्ट कर्मों से] (विश्वतः) सब ओर (परि वृणक्तु) बरजता [रोकता] रहे (इव) जैसे (आपः) जल और (अग्निः) अग्नि [एक-दूसरे को] रोकते हैं, वैसे ही (भवः), भव [सुख उत्पन्न करनेवाला परमेश्वर] (नः) हमें (परि वृणक्तु) बरजता रहे। (नः) हमें (मा अभि मांस्त) वह न सतावे, (अस्मै) इस [परमेश्वर] को (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥८॥

चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दश कृत्वः पशुपते नमस्ते ।

तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ॥९॥

पदार्थ—(भवाय) भव [सुखोत्पादक परमेश्वर] को (चतुः) चार वार, (अष्टकृत्वः) आठ वार (नमः) नमस्कार है, (पशुपते) हे दृष्टि वाले [जीवों] के रक्षक ! (ते) तुझे (दश कृत्वः) दस वार (नमः) नमस्कार है। (तव) तेरे ही (विभक्ताः) बाँटे हुए (इमे) ये (पञ्च) पाँच (पशवः) दृष्टिवाले [जीव] (गावः) गौएँ, (अश्वाः) घोड़े, (पुरुषाः) पुरुष और (अजावयः) बकरी और भेड़ें हैं ॥९॥

तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्वन्तरिक्षम् ।

तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणत् पृथिवीमनु ॥१०॥

पदार्थ—(उग्र) हे तेजस्वी ! [परमेश्वर] (तव) तेरी (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) बड़ी दिशायें हैं, (तव) तेरा (द्यौः) प्रकाशमान सूर्य, (तव) तेरी (पृथिवी) फैली हुई भूमि, (तव) तेरा (इदम्) यह (उरु) चौड़ा (अन्तरिक्षम्) आकाश लोक है। (तव) तेरा ही (इदम्) यह (सर्वम्) सब है, (यत्) जो (आत्मन्वत्) आत्मा वाला और (प्राणत्) प्राण वाला [जगत्] (पृथिवीम् अनु) पृथिवी पर है ॥१०॥

उरुः कोशो वसुधानस्तवायं यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः । स नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो अभिभाः श्वानः परो यन्त्वघरुदो विकेश्यः ॥११॥

पदार्थ—[परमेश्वर !] (तव) तेरा (अयम्) यह (उरुः) चौड़ा (कोशः) कोश [निधि] (वसुधानः) श्रेष्ठ पदार्थों का आधार है, (यस्मिन् अन्तः) जिसके भीतर (इमा विश्वा) ये सब (भुवनानि) भुवन [सत्तायें] हैं। (पशुपते) हे दृष्टि वाले [जीवों] के रक्षक ! (सः) सो तू (नः) हमें (मृड) सुखी रख, (ते) तेरे लिये (नमः) नमस्कार हो, (क्रोष्टारः) चिल्लानेवाले गीदड़, (अभिभाः) सन्मुख चमकती हुई विपत्तियाँ, (श्वानः) घूमने वाले कुत्ते (परः) दूर और (विकेश्यः) केश फैलाये हुए [भयानक] (अघरुदः) पाप की पीड़ायें (परः) दूर (यन्तु) चली जावें ॥११॥

धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिन् ।

रुद्रस्येषुश्चरति देवहेतिस्तस्यै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥१२॥

पदार्थ—(शिखण्डिन्) हे परम उद्योगी ! [रुद्र परमेश्वर] (हरितम्) शत्रुनाशक, (हिरण्ययम्) बलयुक्त, (सहस्रघ्नि) सहस्रों [शत्रुओं] के मारनेवाले, (शतवधम्) सैकड़ों हथियारों वाले, (धनु) धनुष को तू (बिभर्षि) धारण करता है। (रुद्रस्य) रुद्र [दुःखनाशक परमेश्वर] का (इषुः) बाण (देवहेति) दिव्य [अद्भुत] वज्र (चरति) चलता रहता है, (अस्यै) उस [बाण] के रोकने के लिये (इत) यहां से (यतमस्याम् दिशि) चाहे कौन-सी दिशा हो उसमें (नम) नमस्कार है ॥१२॥

योऽभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति ।

पश्चादनुप्रयुङ्क्षे तं विद्धस्य पदनीरिव ॥१३॥

पदार्थ—(य) जो [दुष्कर्मी] (अभियात) हारा हुआ (निलयते) छिप जाता है, और (रुद्र) हे रुद्र ! [दुःखनाशक] (त्वा) तुझे (निचिकीर्षति) हराना चाहता है। (पश्चात्) पीछे-पीछे (तम्) उसको (अनुप्रयुङ्क्षे) तू अनुप्रयोग करता है। [यथा अपराध दण्ड देता है], (इव) जैसे (विद्धस्य) घायल का (पदनी) पदखोजिया ॥१३॥

भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्याय ।

ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशीतः ॥१४॥

पदार्थ—(सयुजा) समान संयोगवाले, (संविदानौ) समान ज्ञानवाले, (उग्रौ) तेजस्वी (उभौ) दोनों (भवारुद्रौ) भव और रुद्र [सुखोत्पादक और दुःखनाशक गुण] (वीर्याय) वीरता देने को (चरत) विचरते हैं। (इत) यहां से (यतमस्याम् दिशि) चाहे कौन-सी दिशा हो, उसमें (ताभ्याम्) उन दोनों को (नम) नमस्कार है ॥१४॥

नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।

नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥१५॥

पदार्थ—(आयते) आते हुए [पुरुष] के हित के लिये (ते) तुझे (नम.) नमस्कार (अस्तु) होवे, (परायते) दूर जाते हुए के हित के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, (रुद्र) हे रुद्र ! [दुःखनाशक] (तिष्ठते) खड़े होते हुए के हित के लिये (ते) तुझे (नम) नमस्कार, (उत) और (आसीनाय) बैठे हुए के हित के लिये (ते) तुझे (नम) नमस्कार है ॥१५॥

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा ।

भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥१६॥

पदार्थ—(सायम्) सायंकाल में (नम) नमस्कार (प्रात) प्रातःकाल में (नम.) नमस्कार (रात्र्या) रात्रि में (नम) नमस्कार, (दिवा) दिन में (नम) नमस्कार। (भवाय) भव [सुख उत्पन्न करनेवाले] (च च) और (शर्वाय) शर्व [दुःखनाश करनेवाले] (उभाभ्याम्) दोनों [गुणों] को (नम अकरम्) मैं ने नमस्कार किया है ॥१६॥

सहस्राक्षमतिपश्यं पुरस्ताद् रुद्रमस्यन्तं बहुधा विपश्चितम् ।

मोपाराम जिह्वयेयमानम् ॥१७॥

पदार्थ—(सहस्राक्षम्) सहस्रों कामों में दृष्टि वाले, (पुरस्तात्) सन्मुख से (अतिपश्यम्) आगे देखनेवाले, (बहुधा) अनेक प्रकार से [पापों को] (अस्यन्तम्) गिरानेवाले, (विपश्चितम्) महाबुद्धिमान्, (जिह्वया) जयशक्ति के साथ (ईयमानम्) चलते हुए (रुद्रम्) रुद्र [दुःखनाशक परमेश्वर] से (मा उप अराम) हम विरोध न करें ॥१७॥

श्यावाश्वं कृष्णमसितं मृणन्तं भीमं रथं केशिनः पादयन्तम् ।

पूर्वे प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै ॥१८॥

पदार्थ—(श्यावाश्वम्) ज्ञान में व्याप्तिवाले, (कृष्णम्) आकर्षण करनेवाले (असितम्) बन्धनरहित (मृणन्तम्) मारते हुए (भीमम्) डरावने (केशिन) क्लेशकारी के (रथम्) रथ को (पादयन्तम्) गिराते हुए [अथवा], (केशिन) किरणों वाले सूर्य के (रथम्) रथ को (पादयन्तम्) चलाते हुए [रुद्र परमेश्वर] को (पूर्वे) हम पहिले होकर (प्रति) प्रत्यक्ष (इम) मिलते हैं, (अस्मै) उसे (नम अस्तु) नमस्कार होवे ॥१८॥

मा नोऽभि स्रा मत्यं देवहेतिं मा नः क्रुधः पशुपते नमस्ते ।

अन्यत्रास्मद् दिव्यां शाखां वि धूनु ॥१९॥

पदार्थ—(पशुपते) हे दृष्टिवाले [जीवों] के रक्षक ! (न.) हमारे लिये (देवहेतिम्) दिव्य [अद्भुत] वज्र, (मत्यम्) अपनी मुट्ठी [घूंसा] को (मा अभि स्रा) ताक कर मत छोड़, (न) हम पर (मा क्रुध.) मत क्रोध कर, (ते) तुझे (नम) नमस्कार है। (अस्मत्) हमसे (अन्यत्र) दूसरों [दुष्टों] पर (दिव्याम्) दिव्य (शाखाम्) भुजा को (वि धूनु) हिला ॥१९॥

मा नो हिंसीरधि नो ब्रूहि परि णो वृङ्ग्धि मा क्रुधः ।

मा त्वया समरामहि ॥२०॥

पदार्थ—[हे रुद्र परमेश्वर !] (न.) हमें (मा हिंसी) मत कष्ट दे, (न) हमें (अधि) ईश्वर होकर (ब्रूहि) उपदेश कर, (न) हमें [पाप से] (परि वृङ्ग्धि) सर्वथा अलग रख, (मा क्रुध) क्रोध मत कर। (त्वया) तेरे साथ (मा सम् अरामहि) हम समर [युद्ध] न करें ॥२०॥

मा नो गोषु पुरुषेषु मा गृधो नो अजाविषु ।

अन्यत्रोग्र वि वर्तय पियारूणां प्रजां जहि ॥२१॥

पदार्थ—[हे रुद्र परमात्मन् !] (मा) न तो (न) हमारी (गोषु) गौओं में और (पुरुषेषु) पुरुषों में, (मा) न (न) हमारी (अजाविषु) बकरी और भेड़ों में [मारने की] (मा गृध) मत अभिलाषा कर। (उग्र) हे बलवान् ! (अन्यत्र) दूसरे [वैरियों] में (वि वर्तय) घूम जा, और (पियारूणाम्) हिंसकों की (प्रजाम्) प्रजा [जनता] को (जहि) मार ॥२१॥

यस्य तक्मा कासिका हेतिरेकमश्वस्येव वृषणः क्रन्द एति ।

अभिपूर्वं निर्णयते नमो अस्त्वस्मै ॥२२॥

पदार्थ—(यस्य) जिस [रुद्र] का (हेति) वज्र (तक्मा) तुच्छ जीवन करनेवाला [ज्वर] और (कासिका) खांसी (एकम्) एक [उपद्रवी] को (एति) प्राप्त होती है, (इव) जैसे (वृषण) बलवान् (अश्वस्य) घोड़े के (क्रन्द) हिनहिनाने का शब्द। (अभिपूर्वम्) एक-एक का यथाक्रम (निर्णयते) निर्णय करनेवाले (अस्मै) इस [रुद्र] का (नम) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥२२॥

योऽन्तरिक्षे तिष्ठति विष्टभितोऽयज्वनः प्रमृणन् देवपीयून् ।

तस्मै नमो दशभिः शक्वरीभिः ॥२३॥

पदार्थ—(य) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (विष्टभित) दृढ़ जमा हुआ [परमेश्वर] (अयज्वनः) यज्ञ न करनेवाले [दुर्जन] (देवपीयून्) विद्वानों के हिंसकों को (प्रमृणन्) मारता हुआ (तिष्ठति) ठहरता है। (दशभि) दस (शक्वरीभि) शक्तिवाली [दिशाओं] के साथ [वर्तमान] (तस्मै) उस [परमेश्वर] का (नम) नमस्कार है ॥२३॥

तुभ्यमारण्याः पशवो मृगा वने हिता हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।

तव यक्षं पशुपते अप्स्वन्तस्तुभ्यं क्षरन्ति दिव्या आपो वृधे ॥२४॥

पदार्थ—(तुभ्यम) तेरे [शासन मानने] के लिये (आरण्या) जङ्गली (पशव) पशु [जीव] (मृगा) हरिण आदि (हंसा) हंस, (सुपर्णा) बड़े उड़ने वाले [गरुड़ आदि], (शकुना) शक्तिवाले [गिद्ध चील आदि] (वयांसि) पक्षी (वने) वन में (हिता) स्थापित हैं। (पशुपते) हे दृष्टिवाले [जीवों] के रक्षक [परमेश्वर] (तव) तेरा (यक्षम्) पूजनीय स्वरूप (अप्सु अन्त) तन्मात्राओं के भीतर है, (तुभ्यम) तेरे [शासन मानने] के लिये (दिव्याः) दिव्य [अद्भुत] (आप) तन्मात्रायें (वृधे) वृद्धि करने को (क्षरन्ति) चलती हैं ॥२४॥

शिंशुमारा अजगराः पुरीकया जषा मत्स्या रजसा येभ्यो अस्यसि ।

न ते दूरं न परिष्ठास्ति ते भव सद्यः सर्वान् परि पश्यसि भूमिं पूर्वस्माद्धंस्युत्तरस्मिन् समुद्रे ॥२५॥

पदार्थ—(अजगरा) अजगर [सर्पविशेष], (शिंशुमारा) शिशुमार [सूसमार, जलजन्तु], (पुरीकया) पुरीकय [जलचरविशेष], (जषा) जष [झष, मछलीविशेष] और (रजसा) जल में रहनेवाले (मत्स्या) मच्छ हैं, (येभ्य) जिन से (अस्यसि असलि) तू प्रकाशमान है। (भव) हे भव [सुखोत्पादक परमेश्वर] (ते) तेरे लिये (दूरम्) कुछ दूर (न) नहीं है और (न) न (ते) तेरे लिये (परिष्ठा) रोक टोक (अस्ति) है, और (सर्वान्) सबों को (सद्य) तुरन्त ही (परि पश्यसि) तू देखभाल लेता है, और (पूर्वस्मात्) पूर्वी [समुद्र] से (उत्तरस्मिन् समुद्रे) उत्तरी समुद्र में (भूमिम्) भूमि को (हंसि) तू पहुँचाता है ॥२५॥

मा नो रुद्र तक्मना मा विषेण मा नः सं स्रा दिव्येनाग्निना ।

अन्यत्रास्मद् विद्युतं पातयैताम् ॥२६॥

पदार्थ—(रुद्र) हे रुद्र ! [दुःखनाशक परमेश्वर] (मा) न तो (न.) हमें (तक्मना) दुःखी जीवन करने वाले [ज्वर आदि] से, (मा) न (विषेण) विष से और (मा) न (नः) हमें (दिव्येन) सूर्य के (अग्निना) अग्नि से (सं स्रा) संयुक्त कर। (अस्मत्) हम से (अन्यत्र) दूसरों [अर्थात् दुराचारियों] पर (एताम्) इस (विद्युतम्) लपलपाती [बिजुली] को (पातय) गिरा ॥२६॥

भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आ पप्र उर्वन्तरिक्षम् ।
तस्मै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥२७॥

पदार्थ—(भव) भव [सुख उत्पन्न करनेवाला परमेश्वर] (दिवः) सूर्य का, (भवः) भव (पृथिव्याः) पृथिवी का (ईशे) राजा है, (भव) भव ने (उरु) विस्तृत (अन्तरिक्षम्) आकाश को (आ पप्रे) सब ओर से पूरण किया है। (इतः) यहां से (यतमस्याम् दिशि) चाहे जौनसी दिशा हो उसमें (तस्मै) उस [भव] को (नमः) नमस्कार है ॥२७॥

भव राजन् यजमानाय मृड पशूनां हि पशुपतिर्बभूथ ।
यः श्रद्दधाति सन्ति देवा इति चतुष्पदे द्विपदेऽस्य मृड ॥२८॥

पदार्थ—(भव) हे भव ! [सुखोत्पादक] (राजन्) राजन् [परमेश्वर] (यजमानाय) यजमान [श्रेष्ठ कर्म करनेवाले] को (मृड) सुख दे, (हि) क्योंकि (पशूनाम्) दृष्टि वाले जीवों की [रक्षा के लिये] (पशुपतिः) दृष्टि वाले [जीवों] का रक्षक (बभूथ) तू हुआ है। (यः) जो [पुरुष] (श्रद्दधाति) श्रद्धा रखता है कि "(देवाः सन्ति इति) [परमेश्वर के] उत्तम गुण हैं," (अस्य) उसके (द्विपदे) दोपाये और (चतुष्पदे) चौपाये को (मृड) तू सुख दे ॥२८॥

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा नो वहन्तमुत मा नो वक्ष्यतः ।
मा नो हिंसीः पितरं मातरं च स्वां तन्वं रुद्र मा रीरिषो नः ॥२९॥

पदार्थ—(रुद्र) हे रुद्र ! [ज्ञानदाता परमेश्वर] (मा) न तो (नः) हमारे (महान्तम्) पूजनीय [वयोवृद्ध वा विद्यावृद्ध] को (उत) और (मा) न (नः) हमारे (अर्भकम्) बालक को, (मा) न (नः) हमारे (वहन्तम्) ले चलते हुए [युवा] को (उत) और (मा) न (नः) हमारे (वक्ष्यतः) भावी से चलने वालों [होनहार सन्तानों] को (मा) न (नः) हमारे (पितरम्) पालने वाले पिता को (च) और (मातरम्) मान करने वाली माता को (हिंसीः) मार, और (मा) न (नः) हमारे (स्वाम्) अपने ही (तन्वम्) शरीर को (रीरिषः) नाश कर ॥२९॥

रुद्रस्यैलबकारेभ्योऽसंसूक्तगिलेभ्यः ।
इदं महास्येभ्यः श्वभ्यो अकरं नमः ॥३०॥

पदार्थ—(ऐलबकारेभ्यः) लगातार भों भों ध्वनि करने वाले (असंसूक्तगिलेभ्यः) अमङ्गल शब्द बोलने वाले, (महास्येभ्यः) बड़े-बड़े मुँह वाले (श्वभ्यः) कुत्तों के रोकने के लिये (रुद्रस्य) रुद्र [दुःखनाशक परमेश्वर] को (इदम्) यह (नमः) नमस्कार (अकरम्) मैंने किया है ॥३०॥

नमस्ते घोषिणीभ्यो नमस्ते केशिनीभ्यः ।
नमो नमस्कृताभ्यो नमः संभुञ्जतीभ्यः ।
नमस्ते देव सेनाभ्यः स्वस्ति नो अभयं च नः ॥३१॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (घोषिणीभ्यः) बड़े कोलाहल करने वाली [सेनाओं] के पाने को (ते) तुझे (नमः) नमस्कार, (केशिनीभ्यः) प्रकाश करने वाली [सेनाओं] के पाने को (ते) तुझे (नमः) नमस्कार है। (नमस्कृताभ्यः) नमस्कार की हुई [सेनाओं] के पाने को (नमः) नमस्कार, (संभुञ्जतीभ्यः) मिल कर भोग [आनन्द] करनेवाली (सेनाभ्यः) सेनाओं के पाने को (नमः) नमस्कार है। (देव) हे विजयी ! [परमेश्वर] (ते) तुझे (नमः) नमस्कार है, (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) स्वस्ति [कल्याण] (च) और (नः) हमारे लिये (अभयम्) अभय हो ॥३१॥

卐 इति प्रथमोऽनुवाकः 卐

卐

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ३ 卐

[१] १-५६ अथर्वा । ओदन । (त्रयः पर्यायाः) (१) १-३१ अथर्वा । बार्हस्पत्यौदन । १, १४ आसुरी गायत्री, २ त्रिपदा समविषमा गायत्री, ३,६,१०, आसुरी पङ्क्ति, ४-८ साम्न्यनुष्टुप्, ५,१३,१५,२५ साम्न्युष्णिक्, ७,१९-२२ प्राजापत्यानुष्टुप्, ९,१७-१८ आसुर्यनुष्टुप्, ११ भुरिगार्च्यनुष्टुप्, १२ याजुषी जगती, १६, २३ आसुरी बृहती, २४ त्रिपदा प्राजापत्या बृहती, २६ आर्च्युष्णिक, २७, २८, २९, साम्नी बृहती, (२९ भुरिक्), ३० याजुषी त्रिष्टुप्, ३१ अल्पाच पङ्क्तिश्च याजुषी ।

तस्यौदनस्य बृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुखम् ॥१॥

पदार्थ—(तस्य) उस [प्रसिद्ध] (ओदनस्य) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्नरूप परमेश्वर] का (शिरः) शिर (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े जगत् का रक्षक वायु वा मेघ] और (मुखम्) मुख (ब्रह्म) अन्न है ॥१॥

द्यावापृथिवी श्रोत्रे सूर्याचन्द्रमसावक्षिणी सप्तऋषयः प्राणापानाः ॥२॥

पदार्थ—(द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी (श्रोत्रे) [परमेश्वर के] दो कान, (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य और चन्द्रमा (अक्षिणी) [उसकी] दो आंखें, और (प्राणापानाः) प्राण और अपान [वायुसचार, उसके] (सप्तऋषयः) सात ऋषि [पांच ज्ञानेन्द्रिय त्वचा, नेत्र, श्रवण, जिह्वा, नासिका, मन और बुद्धि] हैं ॥ २ ॥

चक्षुर्मुसलं काम उलूखलम् ॥३॥

पदार्थ—(चक्षुः) [उसकी] दर्शन शक्ति (मुसलम्) मूसल [के समान], [उसकी] (कामः) कामना (उलूखलम्) ओखली [के समान] है ॥३॥

दितिः शूर्पमदितिः शूर्पग्राही वातोऽपाविनक् ॥४॥

पदार्थ—(दितिः) परमेश्वर की खण्डनशक्ति (शूर्पम्) सूप [के समान] है, (अदितिः) [उसकी] अखण्डन शक्ति ने (शूर्पग्राही) सूप पकड़ने वाले [के समान] (वातः वातेन) पवन से (अप अविनक्) [शुद्ध और अशुद्ध पदार्थ को] अलग-अलग किया है ॥४॥

अश्वाः कणा गावस्तण्डुला मशकास्तुषाः ॥५॥

पदार्थ—(अश्वाः) घोड़े (कणाः) कण [के समान], (गावः) गौवें (तण्डुलाः) चावल [के समान] और (मशकाः) मच्छर (तुषाः) भुसी [के समान] हैं ॥ ५ ॥

कब्रु फलीकरणाः शरोऽभ्रम् ॥६॥

पदार्थ—(कब्रु) विचित्र रङ्गवाला [जगत्] (फलीकरणाः) [उसका] फटकन [भूसी आदि] और (अभ्रम्) बादल (शरः) [उसका] घास-फूस [के समान] है ॥६॥

श्याममयोऽस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम् ॥७॥

पदार्थ—(श्यामम्) श्यामवर्ण (अयः) लोहा (अस्य) इसके (मांसानि) मांस के अवयव [के तुल्य] हैं और (लोहितम्) रक्त वर्णवाला [लोहा अर्थात् तांबा] (अस्य) इसके (लोहितम्) रुधिर [के समान] है ॥७॥

त्रपु भस्म हरितं वर्णः पुष्करमस्य गन्धः ॥८॥

पदार्थ—(त्रपु) सीसा वा रांग (भस्म) भस्म [उसकी राख के समान], (हरितम्) सुवर्ण (वर्णः) [उसके] रङ्ग [के समान] और (पुष्करम्) कमल का फूल (अस्य) इसका (गन्धः) गन्ध [के समान] है ॥८॥

खलः पात्रं स्फ्यावंसावीषे अनूक्ये ॥९॥

पदार्थ—(खलः) खलियान [धान्यमर्दन स्थान] (पात्रम्) [उसका] पात्र [बासन समान,] (स्फ्यौ) दो फाने [लकड़ी की खपच] (अंसौ) [उसके] दो कन्धे (ईषे) दोनों मूठ और हरस [हलके अवयव] (अनूक्ये) [उसकी] रीढ़ की दो हड्डियां हैं ॥९॥

आन्त्राणि जत्रवो गुदा वरत्राः ॥१०॥

पदार्थ—(जत्रवः) जोत [बैलों की ग्रीवा के रस्से] (आन्त्राणि) [उसकी] आतें और (वरत्राः) वरत्र [बरत हल व बैलों के बड़े रस्से] (गुदाः) [उसकी] गुदायें [उदर की नाड़ी विशेष] हैं ॥१०॥

इयमेव पृथिवी कुम्भी भवति राध्यमानस्यौदनस्य द्यौरपिधानम् ॥११॥

पदार्थ—(इयम् एव) यही (पृथिवी) फैली हुई भूमि (राध्यमानस्य) पकते हुए (ओदनस्य) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्नरूप परमेश्वर] की (कुम्भी) बटलोही और (द्यौः) प्रकाशमान सूर्य (अपिधानम्) ढकनी [के समान] (भवति) है ॥११॥

सीताः पर्शवः सिकता ऊबध्यम् ॥१२॥

पदार्थ—(सीताः) जोतने की रेखायें (पर्शवः) [उसकी] पसलियां और (सिकताः) बालू (ऊबध्यम्) [उसके] कुपचे अन्न [के समान] है ॥१२॥

ऋतं हस्तावनेजनं कुल्योपसेचनम् ॥१३॥

पदार्थ—(ऋतम्) सत्यज्ञान (हस्तावनेजनम्) [उसके] हाथ धोने का जल, और (कुल्या) सब कुलों के लिये हितकारी [नीति] (उपसेचनम्) [उसका] उपसेचन [छिड़काव] है ॥१३॥

ऋचा कुम्भ्यधिहितार्त्विज्येन प्रेषिता ॥१४॥

पदार्थ—(कुम्भी) कुम्भी [छोटा पात्र] (ऋचा) वेदवाणी के साथ (अधिहिता) ऊपर चढ़ाई गई और (आर्त्विज्येन) ऋत्विजों [सब ऋतुओं में यज्ञ करने वालों] के कर्म से (प्रेषिता) भेजी गई है ॥१४॥

ब्रह्मणा परिगृहीता साम्ना पर्यूढा ॥१५॥

पदार्थ—(ब्रह्मणा) ब्रह्मा [वेदज्ञाता] करके (परिगृहीता) ग्रहण की गई वह [कुम्भी] (साम्ना) दुःखनाशक [मोक्ष ज्ञान] द्वारा (पर्यूढा) सब ओर ले जायी गयी है ॥१५॥

बृहदायवनं रथन्तरं दर्विः ॥१६॥

पदार्थ—(बृहत्) बृहत् [बड़ा आकाश] (आयवनम्) [उस परमेश्वर का] सब ओर से मिलाने का चमचा, और (रथन्तरम्) रथन्तर [रमणीय पदार्थों द्वारा पार लगाने वाला जगत्] (दर्विः) [उसकी] डोयी [परोसने की करछी] है ॥१६॥

ऋतवः पक्तार आर्तवाः समिन्धते ॥१७॥

पदार्थ—(ऋतवः) ऋतुयें और (आर्तवाः) ऋतुओं के अवयव [महीने दिन रात आदि] (पक्तारः) पाक कर्ता होकर [अग्नि को] (सम्) यथानियम (इन्धते) जलाते हैं ॥१७॥

चरुं पञ्चबिलमुखं घर्मो३ऽभीन्धे ॥१८॥

पदार्थ—(घर्मः) तपने वाला सूर्य (पञ्चबिलम्) पांच [पृथिवी, जल, तेज, वायु आकाश रूप] बिल [छिद्र] वाले (चरुम्) पकाने के बरतन, (उखम् अभि) हाँडी के आस पास (इन्धे) जलता है ॥१८॥

ओदनेन यज्ञवचः सर्वे लोकाः समाप्याः ॥१९॥

पदार्थ—(ओदनेन) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्नरूप परमेश्वर] द्वारा (यज्ञवचः) यज्ञों [श्रेष्ठकर्मों] में बताये गये (सर्वे) सब (लोकाः) स्थान (समाप्याः) यथावत् पाने योग्य हैं ॥१९॥

यस्मिन्त्समुद्रो द्यौर्भूमिस्त्रयोऽवरपरं श्रिताः ॥२०॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिस [ओदन, परमेश्वर] में (द्यौः) सूर्य, (समुद्रः) अन्तरिक्ष और (भूमिः) भूमि (त्रयः) तीनों [लोक] (अवरपरम्) नीचे ऊपर (श्रिताः) ठहरे हैं ॥२०॥

यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे षडशीतयः ॥२१॥

पदार्थ—(यस्य) जिस [परमेश्वर] के (उच्छिष्टे) सब से बड़े श्रेष्ठ [या प्रलय में भी बचे] सामर्थ्य में (देवाः) [सूर्य आदि] दिव्यलोक और (षट्) छह [पूर्व आदि चार और ऊपर नीचे की] (अशीतयः) व्यापक दिशायें (अकल्पन्त) रची हैं ॥२१॥

तं त्वौदनस्य पृच्छामि यो अस्य महिमा महान् ॥२२॥

पदार्थ—[हे आचार्य !] (त्वा) तुझ से (ओदनस्य) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्नरूप परमेश्वर] की (तम्) उस [महिमा] को (पृच्छामि) मैं पूछता हूँ, (यः) जो (अस्य) उस की (महान्) बड़ी (महिमा) महिमा है ॥२२॥

स य ओदनस्य महिमानं विद्यात् ॥२३॥

नाल्प इति ब्रूयान्नानुपसेचन इति नेदं च किं चेति ॥२४॥

पदार्थ—(यः) जो [योगी जन] (ओदनस्य) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्नरूप परमेश्वर] की (महिमानम्) महिमा को (विद्यात्) जानता हो (सः) वह (ब्रूयात्) कहे "(न अल्पः इति) वह [परमेश्वर] थोड़ा नहीं है [अर्थात् बड़ा है], (न अनुपसेचनः इति) वह उपसेचन रहित नहीं है [अर्थात् सेचन वा वृद्धि करने वाला है] (च) और (न इदम् किम् च इति) न वह यह कुछ वस्तु है [अर्थात् ब्रह्म में अङ्गुली का निर्देश नहीं हो सकता]" ॥२३,२४॥

यावद् दाताभिमनस्येत तन्नाति वदेत् ॥२५॥

पदार्थ—(यावत्) जितना [ब्रह्मज्ञान] (दाता) दाता [ज्ञानदाता] (अभिमनस्येत) मन से विचारे, (तत्) उसको (अति) अधिक करके वह [ज्ञानदाता] (न वदेत) न बोले ॥२५॥

ब्रह्मवादिनो वदन्ति पराञ्चमोदनं प्राशी३ः प्रत्यञ्चा३मिति ॥२६॥

पदार्थ—(ब्रह्मवादिनः) ब्रह्मवादी [ईश्वर वा वेद को विचारनेवाले] (वदन्ति) कहते हैं—"[हे मनुष्य !] क्या [(पराञ्चम्) दूरवर्ती (ओदनम्) ओदन [सुख बरसानेवाले अन्नरूप परमेश्वर] को (प्र आशी३) तूने खाया है, [अथवा] (प्रत्यञ्चा३म् इति) प्रत्यक्षवर्ती को ?" ॥२६॥

त्वमोदनं प्राशी३स्त्वामोदना३ इति ॥२७॥

पदार्थ—क्या (त्वम्) तू ने (ओदनम्) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्नरूप परमेश्वर] को (प्र आशी ३) खाया है, [अथवा] (त्वाम्) तुझ को (ओदनाः३ इति) ओदन [सुखपूर्वक अन्नरूप परमेश्वर] ने ? ॥२७॥

पराञ्चं चैनं प्राशीः प्राणास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ॥२८॥

पदार्थ—"(च) यदि (पराञ्चम्) दूरवर्ती (एनम्) इस [ओदन] को (प्राशीः) तू ने खाया है, (प्राणाः) श्वास के बल (त्वा) तुझे (हास्यन्ति) त्यागेंगे" (इति) ऐसा वह [आचार्य] (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) कहता है ॥२८॥

प्रत्यञ्चं चैनं प्राशीरपानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ॥२९॥

पदार्थ—"(च) यदि (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्षवर्ती (एनम्) इस [ओदन] को (प्राशीः) तूने खाया है। (अपानाः) प्रश्वासबल (त्वा) तुझे (हास्यन्ति) त्यागेंगे" (इति) ऐसा वह [आचार्य] (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) कहता है ॥२९॥

नैवाहमोदनं न मामोदनः ॥३०॥

पदार्थ—(न एव) न तो (अहम्) मैंने (ओदनम्) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्नरूप परमेश्वर] को [खाया है] और (न) न (माम्) मुझको (ओदनः) ओदन [सुख बरसानेवाले परमेश्वर] ने [खाया] है ॥३०॥

ओदन एवौदनं प्राशीत् ॥३१॥

पदार्थ—(ओदनः) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्नरूप परमेश्वर] ने (एव) ही (ओदनम्) ओदन [सुखवर्धक स्थूल जगत्] को (प्र आशीत्) खाया है ॥३१॥

卐 सूक्तम् ॥ ३ ॥ 卐

(३) १ ७२ मन्त्रोक्ता । ३२, ३८, ४१ (प्र०), ३२-४९ (सप्तम) साम्नी त्रिष्टुप्, ३२,३५,४२ (द्वि०), ३२-४९ (तृ०) ३३,३४,४४-४८ (पञ्च०) आसुरी गायत्री, ३२, ४१, ४३, ४७ दैवी जगती, ३८-४४,४६(द्वि०३२, ३४-४३, ४६ (पञ्च०) एकपदासुर्यनुष्टुप्, ३२-४९ (षष्ठ०) साम्न्यनुष्टुप्, ३३-४९ (प्र०) आर्च्यनुष्टुप्, ३७ (प्र०) साम्नी पङ्क्ति, ३३, ३६, ४०, ४७ ४८ (द्वि०) आसुरी जगती, ३४, ३७, ४१, ४३, ४५ (द्वि०) आसुरी पङ्क्ति, ३४ (च०) आसुरी त्रिष्टुप्, ३५, ४६, ४८ (च०) याजुषी गायत्री, ३६, ३७, ४० (च०) दैवी पंक्ति, ३८-३९ (च०) प्राजापत्या गायत्री ३९ (द्वि०) आसुर्युष्णिक्, ४२,४५,४६ (च०) दैवी त्रिष्टुप्, ४९ (द्वि०) एकपदा भुरिक्साम्नी बृहती।

ततश्चैनमन्येन शीर्ष्णा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। ज्येष्ठतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। बृहस्पतिना शीर्ष्णा। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥३२॥

पदार्थ—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन, अन्नरूप परमेश्वर] को (ततः) उससे (अन्येन) भिन्न (शीर्ष्णा) शिर से (प्राशीः) तूने खाया [अनुभव किया] है, (येन) जिस [शिर] से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जाननेवालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था। (ज्येष्ठतः) अति बड़े से लेकर (ते) तेरे (प्रजा) [राज्य की] प्रजा (मरिष्यति) मरेगी (इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैंने (वै) निश्चय करके (न) न अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) न अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) न अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया है] (तेन) उसी [ऋषियों के समान] (बृहस्पतिना) बड़े ज्ञानों के रक्षक (शीर्ष्णा) शिर से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (तेन) उसी से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैं ने पाया है ॥

(एषः) यह (वै) ही (ओदनः) ओदन [सुखवर्धक अन्नसमान परमेश्वर] (सर्वाङ्गः) सब उपायों वाला, (सर्वपरुः) सब पालनों वाला और (सर्वतनूः) सब उपकारों वाला है। वह [मनुष्य] (एव) ही (सर्वाङ्गः) सब उपायों वाला (सर्वपरुः) सब पालनों वाला और (सर्वतनूः) सब उपकारों वाला (सम् भवति) हो जाता है, (यः) जो [मनुष्य] (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है ॥३२॥

ततश्चैनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। बधिरो भविष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजी-

गमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥३३॥

पदार्थ— [हे जिज्ञासु !] (**च**) यदि (**एतम्**) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (**ततः**) उन [कानों] से (**अन्याभ्याम्**) भिन्न (**श्रोत्राभ्याम्**) दो कानों से (**प्राशीः**) तू ने खाया [अनुभव किया] है, (**याभ्याम्**) जिन दोनों से (**च**) ही (**एतम्**) इस [परमेश्वर] को (**पूर्वे**) पहिले (**ऋषयः**) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों ने (**प्राश्नन्**) खाया [अनुभव किया] था । तू (**बधिरः**) बहिरा (**भविष्यसि**) हो जावेगा—(**इति**) ऐसा (**एनम्**) इस [जिज्ञासु] से (**आह**) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]— (**अहम्**) मैं ने (**वै**) निश्चय करके (**न**) अब (**तम्**) उस (**अर्वाञ्चम्**) पीछे वर्तमान रहने वाले, (**न**) अब (**पराञ्चम्**) दूर वर्तमान और (**न**) अब (**प्रत्यञ्चम्**) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है] । (**ताभ्याम्**) उन (**द्यावापृथिवीभ्याम्**) आकाश और पृथिवी रूप (**श्रोत्राभ्याम्**) दोनों कानों से [अर्थात् पदार्थज्ञान के श्रवण मनन से] (**एनम्**) इस [परमेश्वर] को (**प्र आशिषम्**) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (**ताभ्याम्**) उन दोनों से (**एनम्**) इसको (**अजीगमम्**) मैंने पाया है ॥

(**एष वै**) यह ही (**ओदन**) ओदन [सुखवर्धक अन्नसमान परमेश्वर] (**सर्वाङ्ग**) सब उपायोंवाला, (**सर्वपरु**) सब पालनों वाला और (**सर्वतनूः**) सब उपकारों वाला है । वह [मनुष्य] (**एव**) ही (**सर्वाङ्ग**) सब उपायों वाला (**सर्वपरु**) सब पालनों वाला और (**सर्वतनूः**) सब उपकारों वाला (**सम् भवति**) हो जाता है, (**यः**) जो [मनुष्य] (**एवम्**) ऐसा (**वेद**) जानता है ॥३३॥

ततश्चैनमन्याभ्यामक्षीभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । अन्धो भविष्यसीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । सूर्याचन्द्रमसाभ्यामक्षीभ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥३४॥

पदार्थ—[हे जिज्ञासु !] (**च**) यदि (**एतम्**) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (**ततः**) उन [नेत्रों] से (**अन्याभ्याम्**) भिन्न (**अक्षीभ्याम्**) दो नेत्रों से (**प्राशीः**) तूने खाया [अनुभव किया] है, (**याभ्याम्**) जिन दोनों से (**च**) ही (**एतम्**) इस [परमेश्वर] को (**पूर्वे**) पहिले (**ऋषयः**) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (**प्राश्नन्**) खाया [अनुभव किया] था । तू (**अन्धः**) अन्धा (**भविष्यसि**) हो जावेगा (**इति**) ऐसा (**एनम्**) इस [जिज्ञासु] से (**आह**) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(**अहम्**) मैं ने (**वै**) निश्चय करके (**न**) अब (**तम्**) उस (**अर्वाञ्चम्**) पीछे वर्तमान रहने वाले, (**न**) अब (**पराञ्चम्**) दूर वर्तमान और (**न**) अब (**प्रत्यञ्चम्**) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है] । (**ताभ्याम्**) उन दोनों (**सूर्याचन्द्रमसाभ्याम्**) सूर्य और चन्द्रमा रूप [उन के समान नियम में चलकर] (**अक्षीभ्याम्**) दो नेत्रों से (**एनम्**) इस [परमेश्वर] को (**प्र आशिषम्**) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (**ताभ्याम्**) उन दोनों से (**एनम्**) इसको (**अजीगमम्**) मैं ने पाया है ॥

(**एष**) यह (**वै**) ही (**ओदन**) ओदन [सुखवर्धक अन्नसमान परमेश्वर] (**सर्वाङ्ग**) सब उपायों वाला, (**सर्वपरु**) सब पालनों वाला और (**सर्वतनूः**) सब उपकारों वाला है । वह [मनुष्य] (**एव**) ही (**सर्वाङ्ग**) सब उपायों वाला, (**सर्वपरु**) सब पालनों वाला और (**सर्वतनूः**) सब उपकारों वाला (**सम् भवति**) हो जाता है (**यः**) जो [मनुष्य] (**एवम्**) ऐसा (**वेद**) जानता है ॥३४॥

ततश्चैनमन्येन मुखेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । मुखतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । ब्रह्मणा मुखेन । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥३५॥

पदार्थ—[हे जिज्ञासु !] (**च**) यदि (**एतम्**) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (**ततः**) उस [मुख] से (**अन्येन**) भिन्न (**मुखेन**) मुख से (**प्राशीः**) तूने खाया [अनुभव किया] है, (**येन**) जिस [मुख] से (**च**) ही (**एतम्**) इस [परमेश्वर] को (**पूर्वे**) पहिले (**ऋषयः**) ऋषियों [वेदार्थ जाननेवालों] ने (**प्राश्नन्**) खाया [अनुभव किया] था । (**मुखतः**) मुख के बल (**ते**) तेरे (**प्रजा**) [राज्य की प्रजा] (**मरिष्यति**) मरेगी—(**इति**) ऐसा (**एनम्**) इस [जिज्ञासु] से (**आह**) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(**अहम्**) मैंने (**वै**) निश्चय करके (**न**) अब (**तम्**) उस (**अर्वाञ्चम्**) पीछे वर्तमान रहने वाले, (**न**) अब (**पराञ्चम्**) दूर वर्तमान और (**न**) अब (**प्रत्यञ्चम्**) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है,] (**तेन**) उस (**ब्रह्मणा**) वेद रूप (**मुखेन**) मुख से (**एनम्**) इस [परमेश्वर] को (**प्र आशिषम्**) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (**तेन**) उस [मुख] से (**एनम्**) इसको (**अजीगमम्**) मैं ने पाया है ॥

(**एष**) यह (**वै**) ही (**ओदन**) ओदन [सुखवर्धक अन्नसमान परमेश्वर] (**सर्वाङ्ग**) सब उपायों वाला, (**सर्वपरु**) सब पालनों वाला और (**सर्वतनूः**) सब उपकारों वाला है । वह [मनुष्य] (**एव**) ही (**सर्वाङ्ग**) सब उपायों वाला, (**सर्वपरु**) सब पालनों वाला और (**सर्वतनूः**) सब उपकारों वाला (**सम् भवति**) हो जाता है, (**यः**) जो [मनुष्य] (**एवम्**) ऐसा (**वेद**) जानता है ॥३५॥

ततश्चैनमन्यया जिह्वया प्राशीर्यया चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । जिह्वा ते मरिष्यतीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । अग्नेर्जिह्वया । तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥३६॥

पदार्थ—[हे जिज्ञासु !] (**च**) यदि (**एतम्**) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (**ततः**) उस [जीभ] से (**अन्यया**) भिन्न (**जिह्वया**) जीभ से (**प्राशीः**) तूने खाया [अनुभव किया] है, (**यया**) जिस [जीभ] से (**च**) ही (**एतम्**) इस [परमेश्वर] को (**पूर्वे**) पहिले (**ऋषयः**) ऋषियों [वेदार्थ जाननेवालों] ने (**प्राश्नन्**) खाया [अनुभव किया] था । (**ते**) तेरी (**जिह्वा**) जीभ (**मरिष्यति**) मर जावेगी [असमर्थ हो जावेगी]—(**इति**) ऐसा (**एनम्**) इस [जिज्ञासु] से (**आह**) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर] (**अहम्**) मैंने (**वै**) निश्चय करके (**न**) अब (**तम्**) उस (**अर्वाञ्चम्**) पीछे वर्तमान रहनेवाले, (**न**) अब (**पराञ्चम्**) दूर वर्तमान और (**न**) अब (**प्रत्यञ्चम्**) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है] । (**अग्नेः**) अग्नि की [अग्नि समान लहराती हुई] (**तया**) उस (**जिह्वया**) जीभ से (**एनम्**) इस [परमेश्वर] को (**प्र आशिषम्**) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (**तया**) उस [जीभ] से (**एनम्**) इसको (**अजीगमम्**) मैंने पाया है ॥

(**एष वै**) यही (**ओदन**) ओदन [सुखवर्धक अन्नसमान परमेश्वर] (**सर्वाङ्ग**) सब उपायों वाला, (**सर्वपरु**) सब पालनों वाला और (**सर्वतनूः**) सब उपकारों वाला है । वह [मनुष्य] (**एव**) ही (**सर्वाङ्ग**) सब उपायों वाला (**सर्वपरु**) सब पालनों वाला और (**सर्वतनूः**) सब उपकारों वाला (**सम् भवति**) हो जाता है, (**यः**) जो [मनुष्य] (**एवम्**) ऐसा (**वेद**) जानता है ॥३६॥

ततश्चैनमन्यैर्दन्तैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । दन्तास्ते शत्स्यन्तीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । ऋतुभिर्दन्तैः । तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥३७॥

पदार्थ—[हे जिज्ञासु !] (**च**) यदि (**एतम्**) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (**ततः**) उन [दांतों] से (**अन्यैः**) भिन्न (**दन्तैः**) दांतों से (**प्राशीः**) तूने खाया [अनुभव किया] है, (**यैः**) जिन [दांतों] से (**च**) ही (**एतम्**) इस [परमेश्वर] को (**पूर्वे**) पहिले (**ऋषयः**) ऋषियों [वेदार्थ जाननेवालों] ने (**प्राश्नन्**) खाया [अनुभव किया] था । (**ते**) तेरे (**दन्ताः**) दांत (**शत्स्यन्ति**) गिर पड़ेंगे—(**इति**) ऐसा (**एनम्**) इस [जिज्ञासु] से (**आह**) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(**अहम्**) मैं ने (**वै**) निश्चय करके (**न**) अब (**तम्**) उस (**अर्वाञ्चम्**) पीछे वर्तमान रहनेवाले, (**न**) अब (**पराञ्चम्**) दूर वर्तमान और (**न**) अब (**प्रत्यञ्चम्**) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है] । (**ऋतुभिः**) ऋतुओं के तुल्य [आपस में मिले हुए] (**तैः**) उन (**दन्तैः**) दांतों से (**एनम्**) इस [परमेश्वर] को (**प्र आशिषम्**) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (**तैः**) उन से (**एनम्**) इसको (**अजीगमम्**) मैंने पाया है ॥

(**एष वै**) यही (**ओदन**) ओदन [सुखवर्धक अन्नसमान परमेश्वर] (**सर्वाङ्ग**) सब उपायों वाला, (**सर्वपरु**) सब पालनोंवाला और (**सर्वतनूः**) सब उपकारों वाला है । वह [मनुष्य] (**एव**) ही (**सर्वाङ्ग**) सब उपायों वाला, (**सर्वपरु**) सब पालनों वाला और (**सर्वतनूः**) सब उपकारों वाला (**सम् भवति**) हो जाता है, (**यः**) जो [मनुष्य] (**एवम्**) ऐसा (**वेद**) जानता है ॥ ३७ ॥

ततश्चैनमन्यैः प्राणापानैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । प्राणापानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं

न प्रत्यञ्चम् । सप्तर्षिभिः प्राणापानैः । तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥३८॥

पदार्थ—[हे जिज्ञासु !] (**च**) यदि (**एनम्**) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (**तत.**) उन [प्राण और अपानों] से (**अन्यैः**) भिन्न (**प्राणापानैः**) प्राण और अपानों से (**प्राशीः**) तूने खाया [अनुभव किया] है, (**यैः**) जिनसे (**च**) ही (**एतम्**) इस [परमेश्वर] को (**पूर्वे**) पहिले (**ऋषयः**) ऋषियों [वेदार्थ जाननेवालों] ने (**प्राश्नन्**) खाया [अनुभव किया] था (**प्राणापानाः**) प्राण और अपान (**त्वा**) तुझको (**हास्यन्ति**) छोड देंगे (**इति**) ऐसा (**एनम्**) इस [जिज्ञासु] से (**आह**) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(**अहम्**) मैं ने (**वै**) निश्चय करके (**न**) न अब (**तम्**) उस (**अर्वाञ्चम्**) पीछे वर्तमान रहने वाले, (**न**) न अब (**पराञ्चम्**) दूर वर्तमान और (**न**) न अब (**प्रत्यञ्चम्**) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है] । (**सप्तऋषिभिः**) सात ऋषियों [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] रूप (**तैः**) उन (**प्राणापानैः**) प्राण और अपानों से (**एनम्**) इस [परमेश्वर] को (**प्र आशिषम्**) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (**तैः**) उन से (**एनम्**) इसको (**अजीगमम्**) मैंने पाया है ॥

(**एष. वै**) यही (**ओदन**) ओदन [सुखवर्धक अन्नसमान परमेश्वर] (**सर्वाङ्ग**) सब उपायों वाला, (**सर्वपरु**) सब पालनों वाला और (**सर्वतनूः**) सब उपकारों वाला है । वह [मनुष्य] (**एव**) ही (**सर्वाङ्ग**) सब उपायों वाला, (**सर्वपरु**) सब पालनों वाला और (**सर्वतनूः**) सब उपकारों वाला (**सम् भवति**) हो जाता है, (**यः**) जो [मनुष्य] (**एवम्**) ऐसा (**वेद**) जानता है ॥३८॥

ततश्चैनमन्येन व्यचसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । राजयक्ष्मस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । अन्तरिक्षेण व्यचसा । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥३९॥

पदार्थ—[हे जिज्ञासु !] (**च**) यदि (**एनम्**) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (**ततः**) उस [व्यापकपन] से (**अन्येन**) भिन्न (**व्यचसा**) व्यापकपन से (**प्राशीः**) तू ने खाया [अनुभव किया] है, (**येन**) जिससे (**च**) ही (**एतम्**) इस [परमेश्वर] को (**पूर्वे**) पहिले (**ऋषयः**) ऋषियों [वेदार्थ जाननेवालों] ने (**प्राश्नन्**) खाया [अनुभव किया] था । [तब] (**राजयक्ष्मः**) राजरोग [व्यापक क्षयरोग] (**त्वा**) तुझे (**हनिष्यति**) मारेगा (**इति**) ऐसा (**एनम्**) इस [जिज्ञासु] से (**आह**) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(**अहम्**) मैंने (**वै**) निश्चय करके (**न**) न अब (**तम्**) उस (**अर्वाञ्चम्**) पीछे वर्तमान रहने वाले, (**न**) न अब (**पराञ्चम्**) दूर वर्तमान और (**न**) न अब (**प्रत्यञ्चम्**) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है] । (**अन्तरिक्षेण**) आकाश रूप (**तेन**) उस (**व्यचसा**) व्यापकपन से (**एनम्**) इस [परमेश्वर] को (**प्र आशिषम्**) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (**तेन**) उससे (**एनम्**) इसको (**अजीगमम्**) मैंने पाया है ॥

(**एष वै**) यही (**ओदन**) ओदन [सुखवर्धक अन्नसमान परमेश्वर] (**सर्वाङ्ग**) सब उपायों वाला, (**सर्वपरु**) सब पालनों वाला और (**सर्वतनूः**) सब उपकारों वाला है । वह [मनुष्य] (**एव**) ही (**सर्वाङ्ग**) सब उपायों वाला (**सर्वपरु.**) सब पालनों वाला और (**सर्वतनूः**) सब उपकारों वाला (**सम्भवति**) हो जाता है, (**यः**) जो [मनुष्य] (**एवम्**) ऐसा (**वेद**) जानता है ॥ ३९ ॥

ततश्चैनमन्येन पृष्ठेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । विद्युत् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । दिवा पृष्ठेन । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥४०॥

पदार्थ—[हे जिज्ञासु !] (**च**) यदि (**एनम्**) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (**ततः**) उस [पीठ से] (**अन्येन**) भिन्न (**पृष्ठेन**) पीठ से (**प्राशीः**) तूने खाया [अनुभव किया] है, (**येन**) जिस [पीठ] से (**च**) ही (**एनम्**) इस [परमेश्वर] को (**पूर्वे**) पहिले (**ऋषयः**) ऋषियों [वेदार्थ जाननेवालों] ने (**प्राश्नन्**) खाया [अनुभव किया] था । [तब] (**विद्युत्**) बिजुली (**त्वा**) तुझे (**हनिष्यति**) मारेगी—(**इति**) ऐसा (**एनम्**) इस [जिज्ञासु] से (**आह**) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(**अहम्**) मैंने (**वै**) निश्चय करके (**न**) न अब (**तम्**) उस (**अर्वाञ्चम्**) पीछे वर्तमान रहने वाले, (**न**) न अब (**पराञ्चम्**) दूर वर्तमान और (**न**) न अब (**प्रत्यञ्चम्**) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है] । (**दिवा**) आकाशरूप (**तेन**) उस (**पृष्ठेन**) पीठ से (**एनम्**) इस [परमेश्वर] को (**प्र आशिषम्**) मैंने खाया [अनुभव किया] है (**तेन**) उस से (**एनम्**) इसको (**अजीगमम्**) मैंने पाया है ॥

(**एष: वै**) यही (**ओदन**) ओदन [सुखवर्धक अन्नसमान परमेश्वर] (**सर्वाङ्ग**) सब उपायों वाला, (**सर्वपरु**) सब पालनों वाला और, (**सर्वतनूः**) सब उपकारों वाला है । वह [मनुष्य] (**एव**) ही (**सर्वाङ्ग**) सब उपायों वाला, (**सर्वपरु**) सब पालनों वाला और (**सर्वतनू.**) सब उपकारों वाला (**सम् भवति**) हो जाता है, (**यः**) जो [मनुष्य] (**एवम्**) ऐसा (**वेद**) जानता है ॥४०॥

ततश्चैनमन्येनोरसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । कृष्या न रात्स्यसीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । पृथिव्योरसा । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥४१॥

पदार्थ—[हे जिज्ञासु !] (**च**) यदि (**एनम्**) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (**ततः**) उस [छाती] से (**अन्येन**) भिन्न (**उरसा**) छाती से (**प्राशीः**) तूने खाया [अनुभव किया] है, (**येन**) जिस [छाती] से (**च**) ही (**एनम्**) इस [परमेश्वर] को (**पूर्वे**) पहिले (**ऋषयः**) ऋषियों [वेदार्थ जाननेवालों] ने (**प्राश्नन्**) खाया [अनुभव किया] था । [तब] (**कृष्या**) खेती से (**न रात्स्यसि**) तू न बढ़ेगा—(**इति**) ऐसा (**एनम्**) इस [जिज्ञासु] से (**आह**) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(**अहम्**) मैंने (**वै**) निश्चय करके (**न**) न अब (**तम्**) उस (**अर्वाञ्चम्**) पीछे वर्तमान रहने वाले, (**न**) न अब (**पराञ्चम्**) दूर वर्तमान और (**न**) न अब (**प्रत्यञ्चम्**) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है] । (**पृथिव्या**) पृथिवी रूप [पृथिवी के समान सहनशील] (**तेन**) उस (**उरसा**) छाती से (**एनम्**) इस [परमेश्वर] को (**प्र आशिषम्**) मैंने खाया [अनुभव किया] है (**तेन**) उससे (**एनम्**) इसको (**अजीगमम्**) मैंने पाया है ॥

(**एष वै**) यही (**ओदन**) ओदन [सुखवर्धक अन्नसमान परमेश्वर] (**सर्वाङ्ग**) सब उपायों वाला, (**सर्वपरु**) सब पालनों वाला और (**सर्वतनू**) सब उपकारों वाला है । वह [मनुष्य] (**एव**) ही (**सर्वाङ्ग**) सब उपायों वाला, (**सर्वपरु**) सब पालनों वाला और (**सर्वतनू.**) सब उपकारों वाला (**सम् भवति**) हो जाता है, (**यः**) जो [मनुष्य] (**एवम्**) ऐसा (**वेद**) जानता है ॥ ४१ ॥

ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । उदरदारस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । सत्येनोदरेण । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥४२॥

पदार्थ—[हे जिज्ञासु !] (**च**) यदि (**एनम्**) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (**ततः**) उस [पेट] से (**अन्येन**) भिन्न (**उदरेण**) पेट से (**प्राशीः**) तूने खाया [अनुभव किया] है, (**येन**) जिस [पेट] से (**च**) ही (**एनम्**) इस [परमेश्वर] को (**पूर्वे**) पहिले (**ऋषयः**) ऋषियों [वेदार्थ जाननेवालों] ने (**प्राश्नन्**) खाया [अनुभव किया] था । [तब] (**उदरदार.**) उदर रोग [अतिसार आदि] (**त्वा**) तुझे (**हनिष्यति**) मारेगा—(**इति**) ऐसा (**एनम्**) इस [जिज्ञासु] से (**आह**) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(**अहम्**) मैंने (**वै**) निश्चय करके (**न**) न अब (**तम्**) उस (**अर्वाञ्चम्**) पीछे वर्तमान रहने वाले, (**न**) न अब (**पराञ्चम्**) दूर वर्तमान और (**न**) न अब (**प्रत्यञ्चम्**) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है] । (**सत्येन**) सत्य [यथार्थ वचनरूप] (**तेन**) उस (**उदरेण**) पेट से (**एनम्**) इस [परमेश्वर] को (**प्र आशिषम्**) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (**तेन**) उससे (**एनम्**) इसको (**अजीगमम्**) मैंने पाया है ॥

(**एष वै**) यही (**ओदन**) ओदन [सुखवर्धक अन्नसमान परमेश्वर] (**सर्वाङ्ग**) सब उपायों वाला, (**सर्वपरु**) सब पालनों वाला और (**सर्वतनूः**) सब उपकारों वाला है । वह [मनुष्य] (**एव**) ही (**सर्वाङ्ग**) सब उपायों वाला, (**सर्वपरु**) सब पालनों वाला और (**सर्वतनू**) सब उपकारों वाला (**सम् भवति**) हो जाता है, (**यः**) जो [मनुष्य] (**एवम्**) ऐसा (**वेद**) जानता है ॥४२॥

ततश्चैनमन्येन बस्तिना प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। अप्सु मरिष्यसीत्येनमाह तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। समुद्रेण बस्तिना। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥४३॥

पदार्थ—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उस [बस्ति] से (अन्येन) भिन्न (बस्तिना) बस्ति [पेडू, नाभि से नीचे का भाग] से (प्राशीः) तूने खाया [अनुभव किया] है, (येन) जिस [बस्ति] से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियो [वेदार्थ जानने वालो] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था। (अप्सु) जल के भीतर (मरिष्यसि) तू मरेगा—(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैं ने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है]। (समुद्रेण) समुद्ररूप (तेन) उस (बस्तिना) बस्ति [पेडू] से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैं ने खाया [अनुभव किया] है। (तेन) उससे (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैं ने पाया है ॥

(एषः वै) यही (ओदनः) ओदन [सुखवर्धक अन्नसमान परमेश्वर] (सर्वाङ्गः) सब उपायो वाला, (सर्वपरुः) सब पालनो वाला और (सर्वतनूः) सब उपकारो वाला है। वह [मनुष्य] (एव) ही (सर्वाङ्गः) सब उपायो वाला, (सर्वपरुः) सब पालनो वाला और (सर्वतनूः) सब उपकारो वाला (सम् भवति) हो जाता है, (यः) जो [मनुष्य] (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है ॥४३॥

ततश्चैनमन्याभ्यामूरुभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। ऊरू ते मरिष्यत इत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। मित्रावरुणयोरूरुभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥४४॥

पदार्थ—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उन [दो जाघो] से (अन्याभ्याम्) भिन्न (ऊरुभ्याम्) दो जघाओ से (प्राशीः) तू ने खाया [अनुभव किया] है, (याभ्याम्) जिन दोनो से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियो [वेदार्थ जानने वालो] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] है। [तब] (ते) तेरे (ऊरू) दोनो जघायें (मरिष्यतः) मरेंगी (इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैं ने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहनेवाले (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है]। (मित्रावरुणयोः) दोनो प्रेरणा करनेवाले, और श्रेष्ठ गुणवाले [आचार्य और शिष्य] के (ताभ्याम्) उन (ऊरुभ्याम्) दोनो जघाओ से (एनम्) इस [परमेश्वर] का (प्र आशिषम्) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (ताभ्याम्) उन दोनो से (एनम्) इस को (अजीगमम्) मैंने पाया है ॥

(एषः वै) यही (ओदनः) ओदन [सुखवर्धक अन्नसमान परमेश्वर] (सर्वाङ्गः) सब उपायो वाला, (सर्वपरुः) सब पालनोवाला और (सर्वतनूः) सब उपकारो वाला है। वह [मनुष्य] (एव) ही (सर्वाङ्गः) सब उपायों वाला, (सर्वपरुः) सब पालनो वाला और (सर्वतनूः) सब उपकारो वाला (सम् भवति) हो जाता है, (यः) जो [मनुष्य] (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है ॥४४॥

ततश्चैनमन्याभ्यामष्ठीवद्भ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। स्रामो भविष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। त्वष्टुरष्ठीवद्भ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥४५॥

पदार्थ—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उन [दोनों घुटनों] से (अन्याभ्याम्) भिन्न (अष्ठीवद्भ्याम्) दोनो घुटनो से (प्राशीः) तूने खाया [अनुभव किया] है, (याभ्याम्) जिन दोनो [घुटनो] से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियो [वेदार्थ जाननेवालो] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था। [तब] (स्रामः) फोड़े का रोगी (भविष्यसि) तू होगा (इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैंने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है]। (त्वष्टुः) विश्वकर्मा [सब कामो मे चतुर मनुष्य] के (ताभ्याम्) उन दोनों (अष्ठीवद्भ्याम्) घुटनो से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैने खाया [अनुभव किया] है, (तेन) उस से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैं ने पाया है ॥

(एष वै) यही (ओदनः) ओदन [सुखवर्धक अन्नसमान परमेश्वर] (सर्वाङ्गः) सब उपायो वाला, (सर्वपरुः) सब पालनो वाला और (सर्वतनूः) सब उपकारो वाला है। वह [मनुष्य] (एव) ही (सर्वाङ्गः) सब उपायो वाला, (सर्वपरुः) सब पालनो वाला और (सर्वतनूः) सब उपकारो वाला (सम् भवति) हो जाता है, (यः) जो [मनुष्य] (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है ॥४५॥

ततश्चैनमन्याभ्यां पादाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। बहुचारी भविष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। अश्विनोः पादाभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥४६॥

पदार्थ—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उन [दो पैरो] से (अन्याभ्याम्) भिन्न (पादाभ्याम्) दोनो पैरो से (प्राशीः) तूने खाया [अनुभव किया] है, (याभ्याम्) जिन दोनो से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियो [वेदार्थ जानने वालो] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] है। [तब] (बहुचारी) बहुत घूमने वाला (भविष्यसि) तू होगा—(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैंने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है]। (अश्विनोः) दोनो चतुर माता-पिता के (ताभ्याम्) उन (पादाभ्याम्) दोनो पैरो से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (ताभ्याम्) उन दोनो से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैंने पाया है ॥

(एष वै) यही (ओदनः) ओदन [सुखवर्धक अन्नसमान परमेश्वर] (सर्वाङ्गः) सब उपायों वाला, (सर्वपरुः) सब पालनो वाला और (सर्वतनूः) सब उपकारो वाला है। वह [मनुष्य] (एव) ही (सर्वाङ्गः) सब उपायो वाला, (सर्वपरुः) सब पालनो वाला और (सर्वतनूः) सब उपकारो वाला (सम् भवति) हो जाता है, (यः) जो [मनुष्य] (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है ॥४६॥

ततश्चैनमन्याभ्यां प्रपदाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। सर्पस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। सवितुः प्रपदाभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥४७॥

पदार्थ—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उन [दोनो पैरो के पञ्जो] से (अन्याभ्याम्) भिन्न (प्रपदाभ्याम्) दोनो पैरो के पञ्जो से (प्राशीः) तू ने खाया [अनुभव किया] है, (याभ्याम्) जिन दोनो से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियो [वेदार्थ जानने वालो] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] है। [तब] (सर्पः) सर्प (त्वा) तुझको (हनिष्यति) मारेगा—(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैं ने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहनेवाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात अनुभव किया है]। (सवितुः) ऐश्वर्यवान् पुरुष के (ताभ्याम्) उन (प्रपदाभ्याम्) दोनो पैरो के पञ्जो से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (ताभ्याम्) उन दोनो से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैंने पाया है ॥

(एष वै) यही (ओदन) ओदन [सुखवर्धक अन्नसमान परमेश्वर] (सर्वाङ्ग) सब उपायों वाला, (सर्वपरु) सब पालनों वाला और (सर्वतनू) सब उपकारों वाला है। वह [मनुष्य] (एव) ही (सर्वाङ्ग) सब उपायों वाला, (सर्वपरु) सब पालनों वाला और (सर्वतनू) सब उपकारों वाला (सम् भवति) हो जाता है, (य) जो [मनुष्य] (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है ॥४७॥

ततश्चैनमन्याभ्यां हस्ताभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । ब्राह्मणं हनिष्यसीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । ऋतस्य हस्ताभ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥४८॥

पदार्थ—[हे जिज्ञासु] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उन [दोनों हाथों] से (अन्याभ्याम्) भिन्न (हस्ताभ्याम्) दोनों हाथों से (प्राशी) तू ने खाया [अनुभव किया] है, (याभ्याम्) जिन दोनों से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषय) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] है। [तब] (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता पुरुष] को (हनिष्यसि) तू मारेगा—(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैंने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहनेवाले (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है] । (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (ताभ्याम्) उन (हस्ताभ्याम्) दोनों हाथों से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैं ने खाया [अनुभव किया] है (ताभ्याम्) उन दोनों से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैंने पाया है ॥

(एष वै) यही (ओदन) ओदन [सुखवर्धक अन्नसमान परमेश्वर] (सर्वाङ्ग) सब उपायों वाला (सर्वपरु) सब पालनों वाला और (सर्वतनू) सब उपकारों वाला है। वह [मनुष्य] (एव) ही (सर्वाङ्ग) सब उपायों वाला (सर्वपरु) सब पालनों वाला और (सर्वतनू) सब उपकारों वाला (सम् भवति) हो जाता है, (य) जो [मनुष्य] (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है ॥४८॥

ततश्चैनमन्यया प्रतिष्ठया प्राशीर्ययां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । अप्रतिष्ठानोऽनायतनो मरिष्यसीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । सत्ये प्रतिष्ठाय । तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥४९॥

पदार्थ—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उस [प्रतिष्ठा] से (अन्यया) भिन्न (प्रतिष्ठया) प्रतिष्ठा [कीर्ति] से (प्राशी) तू ने खाया [अनुभव किया] है, (यया) जिस [प्रतिष्ठा] से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषय) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] है। [तब] (अप्रतिष्ठान) कीर्तिरहित और (अनायतन) और बिना घर होकर (मरिष्यसि) तू मरेगा—(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैंने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहनेवाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है] । (सत्ये) सत्य [सत्यस्वरूप परमात्मा] में (प्रतिष्ठाय) प्रतिष्ठा [आदर] पाकर (तया) उसी [ऋषियों के समान प्रतिष्ठा] से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैं ने खाया [अनुभव किया] है, (तया) उसी [प्रतिष्ठा] से (एनम्) इस परमेश्वर को (अजीगमम्) मैंने पाया है ॥

(एष) यह (वै) ही (ओदन) ओदन [सुखवर्धक अन्नसमान परमेश्वर] (सर्वाङ्ग) सब उपायों वाला, (सर्वपरु) सब पालनों वाला और (सर्वतनू) सब उपकारों वाला है। वह [मनुष्य] (एव) ही (सर्वाङ्ग) सब उपायों वाला, (सर्वपरु) सब पालनों वाला और (सर्वतनू) सब उपकारों वाला (सम् भवति) हो जाता है, (य) जो [मनुष्य] (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है ॥४९॥

卐 सूक्तम् ॥३॥ 卐

[३] १—७ मन्त्रोक्ता । ५० आसुर्यनुष्टुप्, ५२ त्रिपदा भुरिक्साम्नी त्रिष्टुप्; ५३ आसुरी बृहती, ५४ द्विपदा भुरिक्साम्नी बृहती, ५५ साम्न्युष्णिक्; ५६ प्राजापत्या बृहती ।

एतद् वै ब्रध्नस्य विष्टपं यदोदनः ॥५०॥

पदार्थ—(एतत्) यह (वै) ही (ब्रध्नस्य) महान् (पृथिवी आदि के आकर्षक सूर्य] का (विष्टपम्) आश्रय (यत्) यजनीय [पूजनीय ब्रह्म], (ओदन) ओदन [सुख बरसाने वाला अन्नरूप परमेश्वर] है ॥५०॥

ब्रध्नलोको भवति ब्रध्नस्य विष्टपि श्रयते य एवं वेद ॥५१॥

पदार्थ—वह [मनुष्य] (ब्रध्नलोक) महान् [सब के नियामक परमेश्वर] में निवास वाला (भवति) होता है और [उसी] (ब्रध्नस्य) महान् [सर्व नियामक परमेश्वर] के (विष्टपि) सहारे में (श्रयते) आश्रय लेता है, (य) जो [मनुष्य] (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है ॥५१॥

एतस्माद् वा ओदनात् त्रयस्त्रिंशतं लोकान् निरमिमीत प्रजापतिः ॥५२॥

पदार्थ—(एतस्मात्) इस (वै) ही (ओदनात्) [अपने] ओदन [सुख बरसानेवाले अन्नरूप सामर्थ्य] से (त्रयस्त्रिंशतम्) तेतीस (लोकान्) लोकों [दर्शनीय देवताओं] को (प्रजापति) प्रजापति [सृष्टिपालक परमेश्वर] ने (निः अमिमीत) निर्माण किया है ॥५२॥

तेषां प्रज्ञानाय यज्ञमसृजत ॥५३॥

पदार्थ—उस [परमेश्वर] ने (तेषाम्) उन [तेतीस देवताओं के सामर्थ्य] के (प्रज्ञानाय) प्रकृष्ट ज्ञान के लिये (यज्ञम्) यज्ञ [परस्पर संगत संसार] को (असृजत) सृजा ॥५३॥

स य एवं विदुष उपद्रष्टा भवति प्राणं रुणद्धि ॥५४॥

पदार्थ—(य) जो [मनुष्य] (एवम्) ऐसे [बड़े] (विदुष) विद्वान् [सर्वज्ञ परमेश्वर] का (उपद्रष्टा) उपद्रष्टा [सूक्ष्मदर्शी वा साक्षात् कर्ता] (भवति) होता है (स) वह (प्राणम्) [अपने] प्राण [जीवन] को (रुणद्धि) रोकता है ॥५४॥

न च प्राणं रुणद्धि सर्वज्यानिं जीयते ॥५५॥

पदार्थ—(च) यदि वह (प्राणम्) [अपने] प्राण को (न) नहीं (रुणद्धि) रोकता है, वह (सर्वज्यानिम्) सब हानि से (जीयते) निर्बल हो जाता है ॥५५॥

न च सर्वज्यानिं जीयते पुरैनं जरसः प्राणो जहाति ॥५६॥

पदार्थ—वह (सर्वज्यानिम्) सब हानि से (च) ही (न) नहीं (जीयते) हीन होता है, [किन्तु] (एनम्) इस [मनुष्य] को (जरसः) जरा [स्तुति वा बुढ़ापा पाने] से (पुरा) पहिले (प्राण) [जीवन व्यापार] (जहाति) छोड़ देता है ॥५६॥

卐 सूक्तम् ४ 卐

१—२६ भार्गवो वैदर्भि । प्राण । अनुष्टुप्, ९ शङ्कुमती, ८ पथ्यापङ्क्ति, १४ निचृत, १५ भुरिक्, २० अनुष्टुब्गर्भा त्रिष्टुप्, २१ मध्येज्योतिर्जगती, २२ त्रिष्टुप्, २६ बृहतीगर्भा ।

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे । यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१॥

पदार्थ—(प्राणाय) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] को (नमः) नमस्कार है, (यस्य) जिसके (वशे) वश में (सर्वम्) सब (इदम्) यह [जगत्] है। (भूत) सदा वर्तमान (य) जो (सर्वस्य) सब का (ईश्वरः) ईश्वर है और (यस्मिन्) जिसके भीतर (सर्वम्) सब (प्रतिष्ठितम्) अटल ठहरा है ॥१॥

नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे । नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ॥२॥

पदार्थ—(प्राण) हे प्राण ! [जीवनदाता परमेश्वर] (क्रन्दाय) दहाड़ने के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार, (स्तनयित्नवे) बादल की गर्जन के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार है। (प्राण) हे प्राण ! [परमेश्वर] (विद्युते) बिजुली के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार, (प्राण) हे प्राण ! [परमेश्वर] (वर्षते) वर्षा के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार है ॥२॥

यत् प्राण स्तनयित्नुनाभिक्रन्दत्योषधीः ।
प्र वीयन्ते गर्भान् दधतेऽथो बह्वीर्वि जायन्ते ॥३॥

पदार्थ—(यत्) जब (प्राण,) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] (स्तनयित्नुना) बादल की गर्जन द्वारा (ओषधीः) ओषधियों [अन्न आदि] को (अभिक्रन्दति) बल से पुकारता है । [तब] वे (प्र) अच्छे प्रकार (वीयन्ते) गर्भवती होती हैं और (गर्भान्) गर्भों को (दधते) पुष्ट करती हैं, (अथो) फिर भी (बह्वीः) बहुत सी होकर (वि जायन्ते) उत्पन्न हो जाती हैं ॥३॥

यत् प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः ।
सर्वं तदा प्र मोदते यत् किं च भूम्यामधि ॥४॥

पदार्थ—(यत्) जब (प्राण,) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] (ऋतौ आगते) ऋतुकाल आने पर (ओषधीः) ओषधियों [अन्न आदि] को (अभिक्रन्दति) बल से पुकारता है । (तदा) तब (सर्वम्) सब [जगत्] (प्र मोदते) बड़ा आनन्द मानता है, (यत् किम् च) जो कुछ भी (भूम्याम् अधि) भूमि पर है ॥४॥

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
पशवस्तत् प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति ॥५॥

पदार्थ—(यदा) जब (प्राणः) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] ने (वर्षेण) वर्षा द्वारा (महीम्) विशाल (पृथिवीम्) पृथिवी को (अभ्यवर्षीत्) सींच दिया । (तत्) तब (पशवः) जीव जन्तु (प्र मोदन्ते) बड़ा हर्ष मनाते हैं—"(नः) हमारी (महः) बढ़ती (वै) अवश्य (भविष्यति) होगी" ॥५॥

अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन् ।
आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः ॥६॥

पदार्थ—(अभिवृष्टाः) सींची हुई (ओषधयः) ओषधें [अन्न आदि] (प्राणेन) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] से (सम्) मिलकर (अवादिरन्) बोलीं—"(नः) हमारी (आयुः) आयु को (वै) निश्चय करके (प्र अतीतरः) तू ने बढ़ाया है, (नः सर्वाः) हम सबको (सुरभीः) सुगन्धित (अकः) तू ने बनाया है" ॥६॥

नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥७॥

पदार्थ—(आयते) आते हुए [पुरुष] के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो, (परायते) जाते हुए के हित के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो । (प्राण) हे प्राण ! [जीवनदाता परमेश्वर] (तिष्ठते) खड़े होते हुए के हित के लिये (नमः) नमस्कार, (उत) और (आसीनाय) बैठे हुए के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो ॥७॥

नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते । पराचीनाय ते नमः
प्रतीचीनाय ते नमः सर्वस्मै त इदं नमः ॥८॥

पदार्थ—(प्राण) हे प्राण ! [जीवनदाता परमेश्वर] (प्राणते) श्वास लेते हुए [पुरुष] के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार, (अपानते) प्रश्वास लेते हुए के हित के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे । (पराचीनाय) बाहिर जाते हुए [पुरुष] के हित के लिए (ते) तुझे (नमः) नमस्कार, (प्रतीचीनाय) सन्मुख आते हुए के हित के लिए (ते) तुझे (नमः) नमस्कार, (सर्वस्मै) सब के हित के लिये (ते) तुझे (इदम्) यह (नमः) नमस्कार हो ॥८॥

या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी ।
अथो यद् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥९॥

पदार्थ—(प्राण) हे प्राण ! [जीवनदाता परमेश्वर] (ते) तेरी (या) जो (प्रिया) प्रीति करनेवाली (यो) और जो, (प्राण) हे प्राण ! (ते) तेरी (प्रेयसी) अधिक प्रीति करनेवाली (तनूः) उपकार-क्रिया है । (अथो) और भी (यत्) जो (तव) तेरा (भेषजम्) भय-निवारक कर्म है, (तस्य) उसका (नः) हमारे (जीवसे) जीवन के लिये (धेहि) दान कर ॥९॥

प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ॥१०॥

पदार्थ—(प्राणः) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] (प्रजाः) सब उत्पन्न प्राणियों को (अनु) निरन्तर (वस्ते) ढक लेता है, (इव) जैसे (पिता) पिता (प्रियम्) प्रिय (पुत्रम्) पुत्र को [वस्त्र आदि से] (प्राणः) प्राण [परमेश्वर] (ह) ही (सर्वस्य) सब का (ईश्वरः) ईश्वर है, (यत् च) जो कुछ भी (प्राणति) श्वास लेता है, (यत् च) और जो (न) नहीं श्वास लेता है ॥१०॥

प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते ।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥११॥

पदार्थ—(प्राणः) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] (मृत्युः) मृत्यु और (प्राणः) प्राण (तक्मा) जीवन को कष्ट देनेवाला [ज्वर आदि रोग] है, (प्राणम्) प्राण की (देवाः) विद्वान् लोग (उप आसते) उपासना करते हैं । (प्राणः) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] (ह) ही (सत्यवादिनम्) सत्यवादी को (उत्तमे लोके) उत्तम लोक पर (आ दधत्) स्थापित कर सकता है ॥११॥

प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते ।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥१२॥

पदार्थ—(प्राणः) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] (विराट्) विराट् [विविध प्रकार ईश्वर] और (प्राणः) प्राण [परमेश्वर] (देष्ट्री) मार्गदर्शिका शक्ति है, (प्राणम्) प्राण [परमेश्वर] की (सर्वे) सब (उप आसते) उपासना करते हैं (प्राणः) प्राण [परमेश्वर] (ह) ही (सूर्यः) प्रेरणा करने वाला और (चन्द्रमाः) आनन्ददाता है, (प्राणम्) प्राण [परमेश्वर] को (प्रजापतिम्) प्रजापति [सृष्टिपालक] (आहुः) वे [विद्वान्] कहते हैं ॥१२॥

प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते ।
यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते ॥१३॥

पदार्थ—(प्राणापानौ) प्राण और अपान [श्वास और प्रश्वास] (व्रीहियवौ) चावल और जौ [के समान पुष्टिकारक] हैं, (प्राणः) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] (अनड्वान्) जीवन का चलानेवाला (उच्यते) कहा जाता है । (यवे) जौ में (ह) भी (प्राणः) प्राण [श्वासवायु] (आहितः) रक्खा हुआ है, (अपानः) अपान [प्रश्वास वायु] (व्रीहिः) चावल (उच्यते) कहा जाता है ॥१३॥

अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा ।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥१४॥

पदार्थ—(पुरुषः) पुरुष (गर्भे अन्तरा) गर्भ के भीतर (प्र अनति) श्वास लेता है और (अप अनति) प्रश्वास [बाहिर को श्वास] लेता है । (यदा) जब (त्वम्) तू, (प्राण) हे प्राण ! [जीवनदाता परमेश्वर] (जिन्वसि) तृप्त करता है, (अथ) तब (सः) वह [पुरुष] (पुनः) फिर (जायते) उत्पन्न होता है ॥१४॥

प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते ।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१५॥

पदार्थ—(प्राणम्) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] को (मातरिश्वानम्) आकाश में व्यापक [सूत्रात्मा वायु के समान] (आहुः) वे बताते हैं, (वातः) वायु (ह) भी (प्राणः) [जीवनदाता परमेश्वर] (उच्यते) कहा जाता है । (प्राणे) प्राण [परमेश्वर] में (ह) ही (भूतम्) बीता हुआ (च) और (भव्यम्) होनहार [वस्तु] और (प्राणे) प्राण [परमेश्वर] में (सर्वम्) सब [जगत्] (प्रतिष्ठितम्) टिका हुआ है ॥१५॥

आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत ।
ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ॥१६॥

पदार्थ—(आथर्वणीः) निश्चल स्वभाववाले महर्षियों की प्रकाशित की हुई और (आङ्गिरसीः) विज्ञानियों की बताई हुई (दैवीः) देव [मेघ] से उत्पन्न (उत) और (मनुष्यजाः) मनुष्यों से उत्पन्न (ओषधयः) ओषधें (प्र जायन्ते) उत्पन्न हो जाती हैं, (यदा) जब (त्वम्) तू (प्राण) हे प्राण ! [जीवनदाता परमेश्वर [उन को] (जिन्वसि) तृप्त करता है ॥१६॥

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
ओषधयः प्र जायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः ॥१७॥

पदार्थ—(यदा) जब (प्राणः) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] ने (वर्षेण) वर्षा द्वारा (महीम्) विशाल (पृथिवीम्) पृथिवी को (अभ्यवर्षीत्) सींच दिया । (अथो) तब ही (ओषधयः) अन्न आदि पदार्थ (च) और (याः काः) जो कोई (वीरुधः) जड़ी बूटी हैं, वे भी (प्र जायन्ते) बहुत उत्पन्न होती हैं ॥१७॥

यस्ते॑ प्राणे॒दं वे॑द॒ यस्मि॑श्चासि॒ प्रति॑ष्ठितः ।
सर्वे॒ तस्मै॑ ब॒लिं ह॑रानमु॒ष्मिंल्लो॒क उ॑त्त॒मे ॥१८॥

पदार्थ—(प्राण) हे प्राण ! [जीवनदाता परमेश्वर] (यः) जो [पुरुष] (ते) तेरे (इदम्) इस [महत्त्व] को (वेद) जानता है, (च) और (यस्मिन्) जिस [पुरुष] में तू (प्रतिष्ठितः) दृढ़ ठहरा हुआ (असि) है। (सर्वे) सब [प्राणी] (अमुष्मिन्) उस (उत्तमे) उत्तम (लोके) लोक [स्थान] पर [वर्तमान] (तस्मै) उस [पुरुष] के लिये (बलिम्) बलि [उपहार] (हरान्) लावें ॥१८॥

यथा॑ प्राण बलि॒हृत॒स्तुभ्यं॒ सर्वाः॑ प्र॒जा इ॒माः ।
ए॒वा तस्मै॑ ब॒लिं ह॑रा॒न् यस्त्वा॑ शृ॒णव॑त् सुश्रवः ॥१९॥

पदार्थ—(प्राण) हे प्राण ! [परमेश्वर] (यथा) जैसे (तुभ्यम्) तेरे लिये (इमाः) ये (सर्वाः) सब (प्रजाः) प्रजायें (बलिहृतः) भक्तिरूप उपहार देनेवाली हैं। (एव) वैसे ही (तस्मै) उन [पुरुष] के लिये (बलिम्) बलि [उपहार] (हरान्) वे लावें, (यः) जो पुरुष, (सुश्रवः) हे बड़ी कीर्तिवाले [परमेश्वर] (त्वा) तुझ को (शृणवत्) सुने ॥१९॥

अ॒न्तर्गर्भ॑श्चरति दे॒वता॒स्वाभू॑तो भू॒तः स उ॑ जायते॒ पुनः॑ ।
स भू॒तो भव्यं॑ भवि॒ष्यत् पि॒ता पु॒त्रं प्र वि॑वेशा॒ शची॑भिः ॥२०॥

पदार्थ—(सः उ) वही [परमेश्वर] (आभूतः) सब ओर से व्याप्त और (भूतः) वर्तमान होकर (देवतासु अन्तः) सब दिव्य पदार्थों के भीतर (गर्भः) गर्भ [के समान] (चरति) विचरता है और (पुनः) फिर (जायते) प्रकट होता है। (सः) उस (भूतः) वर्तमान [परमेश्वर] ने (भव्यम्) होनहार (भविष्यत्) आगामी जगत में (शचीभिः) अपने कर्मों से (प्र विवेश) प्रवेश किया है, [जैसे] (पिता) पिता (पुत्रम्) पुत्र में [उत्तम शिक्षा दान से प्रवेश करता है] ॥२०॥

एकं॒ पादं॒ नोत्खि॑दति सलि॒लाद्धं॒स उ॒च्चर॑न् । यद॒ङ्ग स तमु॑त्खि॒देन्नैवाद्य न श्वः स्या॒न्न रात्री॒ नाहः॑ स्या॒न्न व्यु॑च्छेत् क॒दा च॒न ॥२१॥

पदार्थ—(हंसः) हंस [सर्वव्यापक वा सर्वज्ञानी परमात्मा] (सलिलात्) समुद्र [समुद्र के समान अपने अगम्य सामर्थ्य] से (उच्चरन्) उदय होता हुआ (एकम्) एक [सत्य वा मुख्य] (पादम्) पाद [स्थिति, नियम] को (न) नहीं (उत् खिदति) उखाड़ता है। (अङ्ग) हे विद्वान् ! (यत्) जो (सः) वह [परमात्मा] (तम्) उस [नियम] को (उत्खिदेत्) उखाड़ देवे, (न एव) न तो (अद्य) आज, (न) न (श्वः) कल (स्यात्) होवे, (न) न (रात्री) रात्री, (न) न (अहः) दिन (स्यात्) होवे, (न) न (कदा चन) कभी भी (वि उच्छेत्) प्रभात होवे ॥२१॥

अ॒ष्टाच॑क्रं वर्तत॒ एक॑नेमि स॒हस्रा॑क्षरं॒ प्र पु॒रो नि प॒श्चा ।
अ॒र्धेन॒ विश्वं॒ भुव॑नं ज॒जान॒ यद॑स्या॒र्धं क॑त॒मः स के॒तुः ॥२२॥

पदार्थ—(अष्टाचक्रम्) आठ [दिशाओं] में चक्रवाला, (एकनेमि) एक नेमि [नियम वाला] और (सहस्राक्षरम्) सहस्र प्रकार से व्याप्ति वाला [ब्रह्म] (प्र) भली भाँति (पुरः) आगे और (नि) निश्चय करके (पश्चा) पीछे (वर्तते) वर्तमान है, उसने (अर्धेन) आधे खण्ड से (विश्वम्) सब (भुवनम्) अस्तित्व [जगत्] को (जजान) उत्पन्न किया, और (यत्) जो (अस्य) इस [ब्रह्म] का (अर्धम्) [दूसरा कारणरूप] आधा है, (सः) वह (कतमः) कौन-सा (केतुः) चिह्न है ॥२२॥

यो अ॒स्य वि॒श्वज॑न्मन॒ ईशे॒ विश्व॑स्य॒ चेष्ट॑तः ।
अन्ये॑षु क्षि॒प्रध॑न्वने॒ तस्मै॑ प्राण॒ नमो॑ऽस्तु ते ॥२३॥

पदार्थ—(यः) जो [परमेश्वर] (अस्य) इस (विश्वजन्मनः) विविध जन्मवाले और (विश्वस्य) सब (चेष्टतः) चेष्टा करने वाले [कार्यरूप] जगत् का (ईशे) ईश्वर है। [इनसे] (अन्येषु) भिन्न [परमाणु रूप पदार्थों] पर (क्षिप्रधन्वने) शीघ्र व्यापक होने वाले (तस्मै) उस (ते) तुझ को, (प्राण) हे प्राण ! [जीवनदाता परमेश्वर] (नमः अस्तु) नमस्कार हो ॥२३॥

यो अ॒स्य स॒र्वज॑न्मन॒ ईशे॒ सर्व॑स्य॒ चेष्ट॑तः ।
अत॑न्द्रो॒ ब्रह्म॑णा॒ धीरः॑ प्रा॒णो मानु॑ तिष्ठतु ॥२४॥

पदार्थ—(यः) जो [परमेश्वर] (अस्य) इस (सर्वजन्मनः) विविध जन्मवाले और (सर्वस्य) सब (चेष्टतः) चेष्टा करनेवाले [कार्यरूप जगत्] का (ईशे) ईश्वर है। [वह] (अतन्द्रः) आलस्यरहित, (धीरः) धीर [बुद्धिमान्] (प्राणः) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] (ब्रह्मणा) वेदज्ञान द्वारा (मा अनु) मेरे साथ-साथ (तिष्ठतु) ठहरा रहे ॥ २४ ॥

ऊ॒र्ध्वः सु॒प्तेषु॑ जागार न॒नु ति॒र्यङ् नि प॑द्यते ।
न सु॒प्तम॑स्य सु॒प्तेष्वनु॑ शुश्राव॒ कश्च॒न ॥२५॥

पदार्थ—(सुप्तेषु) सोते हुए [प्राणियों] पर वह [प्राण, परमात्मा] (ऊर्ध्वः) ऊपर रहकर (जागार) जागता है, और (ननु) कभी नहीं (तिर्यङ्) तिरछा [होकर] (नि पद्यते) गिरता है। (कः चन) किसी ने भी (सुप्तेषु) सोते हुओं में (अस्य) इस [प्राण परमात्मा] का (सुप्तम्) सोना (न अनु शुश्राव) कभी [परम्परा से] नहीं सुना ॥ २५ ॥

प्राण॒ मा मत् प॒र्यावृ॑तो॒ न म॒दन्यो भ॑विष्यसि ।
अ॒पां गर्भ॑मिव जी॒वसे॒ प्राण॑ ब॒ध्नामि॑ त्वा॒ मयि॑ ॥२६॥

पदार्थ—(प्राण) हे प्राण ! [जीवनदाता परमेश्वर] (मत्) मुझ से (पर्यावृतः) पृथक् वर्तमान (मा) मत [हो] तू, (मत्) मुझ से (अन्यः) अन्य (न भविष्यसि) न होगा। (प्राण) हे प्राण ! [जीवनदाता परमेश्वर] (अपाम्) प्राणियों [वा जल] के (गर्भम् इव) गर्भ के समान (त्वा) तुझ को (जीवसे) [अपने] जीवन के लिये (मयि) अपने में (बध्नामि) बाँधता हूँ ॥ २६ ॥

卐 इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥ 卐

卐

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ॥ ५ ॥ 卐

१—२६ ब्रह्मा । ब्रह्मचारी । त्रिष्टुप्, १ पुरोतिजागता विराड्गर्भा; २ पञ्चपदा बृहतीगर्भा शक्वरी, ३ उरोबृहती, ६ शाक्वरगर्भा चतुष्पदा जगती, ७ विराड् गर्भा, ८ पुरोतिजगता विराड् जगती; ९ बृहती गर्भा, १० भुरिक्, ११ जगती, १२ शाक्वरगर्भा चतुष्पदा विराडति जगती, १३ जगती, १५ पुरस्ताद् ज्योति, १४, १६ २२ अनुष्टुप्, २३ पुरो बार्हतातिजागतगर्भा, २५ एकावसानाच्युष्णिक्, २६ मध्ये ज्योतिरुष्णिग्गर्भा ।

ब्र॒ह्म॒चा॒रीष्णंश्च॑रति॒ रोद॑सी उ॒भे तस्मि॑न् दे॒वाः संम॑नसो भवन्ति ।
स दा॑धार पृथि॒वीं दिवं॑ च॒ स आ॑चा॒र्यं॑ तप॑सा पिपर्ति ॥१॥

पदार्थ—(ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी [वेदपाठी और वीर्यनिग्राहक पुरुष] (उभे) दोनों (रोदसी) सूर्य और पृथिवी को (इष्णन्) लगातार खोजता हुआ (चरति) विचरता है, (तस्मिन्) उस [ब्रह्मचारी] में (देवाः) विजय चाहने वाले पुरुष (संमनसः) एक मन (भवन्ति) होते हैं। (सः) उस ने (पृथिवीम्) पृथिवी (च) और (दिवम्) सूर्य लोक को (दाधार) धारण किया है [उपयोगी बनाया है], (सः) वह (आचार्यम्) आचार्य [साङ्गोपाङ्ग वेदों के पढ़ाने वाले पुरुष] को (तपसा) अपने तप से (पिपर्ति) परिपूर्ण करता है ॥ १ ॥

ब्र॒ह्म॒चा॒रिणं॑ पि॒तरो॑ देवज॒नाः पृथ॑ग् दे॒वा अ॑नु॒संय॑न्ति॒ सर्वे॑ । ग॒न्ध॒र्वा ए॑नम॒न्वा॑यन् त्रय॑स्त्रिंशत् त्रिश॒ताः ष॑ट्सह॒स्राः सर्वा॒न्त्स दे॒वांस्तप॑सा पिपर्ति ॥२॥

पदार्थ—(सर्वे) सब (देवाः) व्यवहार कुशल, (पितरः) पालन करनेवाले, (देवजनाः) विजय चाहनेवाले पुरुष (पृथक्) नाना प्रकार से (ब्रह्मचारिणम्) ब्रह्मचारी [मन्त्र १] के (अनुसंयन्ति) पीछे-पीछे चलते हैं। (त्रयस्त्रिंशत्) तेंतीस, (त्रिशताः) तीन सौ और (षट्सहस्राः) छह सहस्र [६, ३३३ अर्थात् बहुत से] (गन्धर्वाः) पृथिवी के धारण करनेवाले [पुरुषार्थी पुरुष] (एनम् अनु) इस [ब्रह्मचारी] के साथ-साथ (आयन्) चले हैं, (सः) वह (सर्वान्) सब (देवान्) विजय चाहने वालों को (तपसा) [अपने] तप से (पिपर्ति) भर पूर करता है ॥ २ ॥

आ॒चा॒र्य॑ उप॒नय॑मानो ब्रह्मचा॒रिणं॑ कृणुते॒ गर्भ॑म॒न्तः । तं रात्री॑स्ति॒स्र उ॒दरे॑ बिभर्ति॒ तं जा॒तं द्रष्टु॑मभि॒संय॑न्ति दे॒वाः ॥३॥

पदार्थ—(ब्रह्मचारिणम्) ब्रह्मचारी [वेदपाठी और जितेन्द्रिय पुरुष] को (उपनयमानः) समीप लाता हुआ [उपनयनपूर्वक वेद पढ़ाता हुआ] (आचार्यः) आचार्य (अन्तः) भीतर [अपने आश्रम में उसको] (गर्भम्) गर्भ [के समान] (कृणुते) बनाता है। (तम्) उस [ब्रह्मचारी] को (तिस्रः रात्रीः) तीन रात्रि (उदरे) उदर में [अपने शरण में] (बिभर्ति) रखता है, (जातम्) प्रसिद्ध हुए (तम्) उस [ब्रह्मचारी] को (द्रष्टुम्) देखने के लिये (देवाः) विद्वान् लोग (अभिसंयन्ति) मिल कर आते हैं ॥ ३ ॥

इयं समित् पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति ।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति ॥४॥

पदार्थ—(इयम्) यह [पहिली] (समित्) समिधा (पृथिवी) पृथिवी (द्वितीया) दूसरी [समिधा] (द्यौः) सूर्य [के समान है,] (उत) और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को [तीसरी] (समिधा) समिधा से (पृणाति) वह पूर्ण करता है । (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (समिधा) समिधा से [यज्ञानुष्ठान से], (मेखलया) मेखला से [कटिबद्ध होने के चिह्न से] (श्रमेण) परिश्रम से और (तपसा) तप से [ब्रह्मचर्यानुष्ठान से] (लोकान्) सब लोकों को (पिपर्ति) पालता है ॥ ४ ॥

पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी घर्मं वसानस्तपसोदतिष्ठत् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥५॥

पदार्थ—(ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी [मन्त्र १] (ब्रह्मणः) वेदाभ्यास [के कारण] से (पूर्वः) प्रथम [गणना में पहिला] (जातः) प्रसिद्ध होकर (घर्मम्) प्रताप (वसानः) धारण करता हुआ (तपसा) [अपने ब्रह्मचर्य रूप] तपस्या से (उत् अतिष्ठत्) ऊंचा ठहरा है । (तस्मात) उस [ब्रह्मचारी] से (ज्येष्ठम्) सर्वोत्कृष्ट (ब्राह्मणम्) ब्रह्मज्ञान और (ब्रह्म) वृद्धिकारक धन (जातम्) प्रकट [होता है], (च) और (सर्वे देवाः) सब विद्वान् लोग (अमृतेन साकम्) अमरपन [मोक्ष सुख] के साथ [होते हैं] ॥ ५ ॥

ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः ।
स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत् ॥६॥

पदार्थ—(ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (समिधा) [विद्या के] प्रकाश से (समिद्धः) प्रकाशित, (कार्ष्णम्) कृष्ण मृग का चर्म (वसानः) धारण किये हुए (दीक्षितः) दीक्षित होकर (व्रत धारण करके] (दीर्घश्मश्रुः) बड़े-बड़े दाढ़ी-मूछ रखाये हुए (एति) चलता है । (सः) वह (सद्यः) अभी (पूर्वस्मात्) पहिले [समुद्र] से [अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम से] (उत्तरम् समुद्रम्) पिछले समुद्र [गृहाश्रम] को (एति) प्राप्त होता है और (लोकान्) लोगो को (संगृभ्य) संग्रह करके (मुहुः) बारम्बार (आचरिक्रत्) अतिशय करके पुकारता रहे ॥६॥

ब्रह्मचारी जनयन् ब्रह्मापो लोकं प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम् ।
गर्भो भूत्वामृतस्य योनाविन्द्रो ह भूत्वासुरांस्ततर्ह ॥७॥

पदार्थ—(ब्रह्म) वेद विद्या (अपः) प्राणों, (लोकम्) ससार और (प्रजापतिम्) प्रजापालक (परमेष्ठिनम्) सबसे ऊंचे मोक्ष पद मे स्थिति वाले (विराजम्) विविध जगत् के प्रकाशक [परमात्मा] को (जनयन्) प्रकट करते हुए (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी ने (अमृतस्य) अमरपन [अर्थात् मोक्ष] की (योनौ) योनि [उत्पत्ति स्थान अर्थात् ब्रह्मविद्या] में (गर्भः) गर्भ (भूत्वा) होकर [गर्भ के समान नियम से रहकर] और (ह) निस्सन्देह (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला [अथवा सूर्यसमान प्रतापी] (भूत्वा) होकर (असुरान्) असुरो [दुष्ट पाखण्डियो] को (ततर्ह) नष्ट किया है ॥७॥

आचार्यस्ततक्ष नभसी उभे इमे उर्वी गम्भीरे पृथिवीं दिवं च ।
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ॥८॥

पदार्थ—(आचार्यः) आचार्य [साङ्गोपाङ्ग वेद पढ़ाने वाले] ने (उभे) दोनो (इमे) इन (नभसी) परस्पर बंधी हुई, (उर्वी) चौड़ी, (गम्भीरे) गहरी (पृथिवीम्) पृथिवी (च) और (दिवम्) सूर्य को (ततक्ष) सूक्ष्म बनाया है [उपयोगी किया है] । (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (तपसा) तप से (ते) उन दोनो की (रक्षति) रक्षा करता है, (तस्मिन्) उस [ब्रह्मचारी] मे (देवाः) विजय चाहने वाले पुरुष (संमनसः) एकमत (भवन्ति) होते हैं ॥८॥

इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामा जभार प्रथमो दिवं च ।
ते कृत्वा समिधावुपास्ते तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा ॥९॥

पदार्थ—(इमाम्) इस (पृथिवीम्) चौड़ी (भूमिम्) भूमि (च) और (दिवम्) सूर्य को (प्रथमः) पहिले [प्रधान] (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी ने (भिक्षाम्) भिक्षा (आ जभार) लिया था । (ते) उन दोनों को (समिधौ) दो समिधा [के समान] (कृत्वा) बनाकर (उप आस्ते) [ईश्वर की] उपासना करता है, (तयोः) उन दोनों मे (विश्वा) सब (भुवनानि) भुवन (आर्पिताः) स्थापित हैं ॥९॥

अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस्पृष्ठाद् गुहा निधी निहितौ ब्राह्मणस्य ।
तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तत् केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान् ॥१०॥

पदार्थ—(ब्राह्मणस्य) ब्रह्मज्ञान के (निधी) दो निधि [कोश] (गुहा) गुहा [गुप्त दशा] में (निहितौ) गड़े हैं, (अन्यः) एक (अर्वाक्) समीपवर्ती और (अन्यः) दूसरा (दिवः) सूर्य की (पृष्ठात्) पीठ [उपरिभाग] से (परः) परे [दूर] है । (तौ) उन दोनो [निधियों] का (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (तपसा) अपने तप से (रक्षति) रखता है, (ब्रह्म) ब्रह्म [परमात्मा] को (विद्वान्) जानता हुआ वह (तत्) उस [ब्रह्म] को (केवलम्) केवल [सेवनीय, निश्चित]* (कृणुते) कर लेता है ॥१०॥

अर्वागन्य इतो अन्यः पृथिव्या अग्नी समेतो नभसी अन्तरेमे ।
तयोः श्रयन्ते रश्मयोऽधि दृढास्तानातिष्ठति तपसा ब्रह्मचारी ॥११॥

पदार्थ—(अग्नी) दो अग्नि (इमे) इन दोनो (नभसी अन्तरा) परस्पर बंधे हुए सूर्य और पृथिवी के बीच (समेतः) मिलती हैं, (अन्यः) एक [अग्नि] (अर्वाक्) समीपवर्ती और (अन्यः) दूसरी (इतः पृथिव्याः) इस पृथिवी से [दूर] है । (तयोः) उन दोनो की (रश्मयः) किरणें (दृढाः) दृढ़ होकर (अधि) अधिकारपूर्वक [पदार्थों मे] (श्रयन्ते) ठहरती हैं, (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (तपसा) तप से (तान्) उन [किरणो] मे (आतिष्ठति) ऊपर बैठता है ॥११॥

अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणः शितिङ्गो बृहच्छेपोऽनु भूमौ जभार ।
ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥१२॥

पदार्थ—(अभिक्रन्दन्) सब ओर शब्द करता हुआ, (स्तनयन्) गरजता हुआ, (शितिङ्गः) प्रकाश और अन्धकार मे चलने वाला, (अरुणः) गतिमान् [वा सूर्य के समान प्रतापी पुरुष] (भूमौ) भूमि पर (बृहत्) बड़ा (शेपः) उत्पादन सामर्थ्य (अनु) निरन्तर (जभार) लाया है । (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (पृथिव्याम्) पृथिवी के ऊपर (सानौ) पहाड़ के सम स्थान पर (रेतः) बीज (सिञ्चति) सींचता है, (तेन) उस से (चतस्रः) चारो (प्रदिशः) बड़ी दिशायें (जीवन्ति) जीवन करती हैं ॥१२॥

अग्नौ सूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन् ब्रह्मचार्य१प्सु समिधमा दधाति ।
तासामर्चींषि पृथगभ्रे चरन्ति तासामाज्यं पुरुषो वर्षमापः ॥१३॥

पदार्थ—(ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (अग्नौ) अग्नि मे, (सूर्ये) सूर्य मे, (चन्द्रमसि) चन्द्रमा में, (मातरिश्वन्) आकाश मे चलने वाले पवन मे और (अप्सु) जल धाराओ मे (समिधम्) समिधा [प्रकाशसाधन] को (आ दधाति) सब प्रकार से धरता है । (तासाम्) उन [जलधाराओ] की (अर्चींषि) ज्वालायें (पृथक्) नाना प्रकार से (अभ्रे) मेघ मे (चरन्ति) चलती हैं, (तासाम्) उन [जलधाराओं] का (आज्यम्) घृत [सार पदार्थ] (पुरुषः) पुरुष, (वर्षम्) वृष्टि और (आपः) सब प्रजायें हैं ॥१३॥

आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः ।
जीमूता आसन्त्सत्वानस्तैरिदं स्व१राभृतम् ॥१४॥

पदार्थ—(आचार्यः) आचार्य (मृत्युः) मृत्यु [रूप] (वरुणः) जल [रूप], (सोमः) चन्द्र [रूप], (ओषधयः) ओषधें [अन्न आदिरूप] और (पयः) दूध [रूप] हुआ है । (जीमूताः) अनावृष्टि जीतनेवाले, मेघ [उसके लिये] (सत्वानः) गतिशील वीर [रूप] (आसन्) हुए हैं, (तैः) उनके द्वारा (इदम्) यह (स्वः) मोक्षसुख (आभृतम्) लाया गया है ॥१४॥

अमा घृतं कृणुते केवलमाचार्यो भूत्वा वरुणो यद्यदैच्छत् प्रजापतौ ।
तद् ब्रह्मचारी प्रायच्छत् स्वान् मित्रो अध्यात्मनः ॥१५॥

पदार्थ—(वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष (आचार्यः) आचार्य (भूत्वा) होकर [उस वस्तु को] (अमा) घर में (घृतम्) प्रकाशित और (केवलम्) केवल [सेवनीय] (कृणुते) करता है, (यद्यत्) जो (प्रजापतौ) प्रजापति [प्रजापालक परमेश्वर] के विषय मे (ऐच्छत्) उस ने चाहा है । और (तत्) उसको (मित्रः) स्नेही (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी ने (आत्मनः) अपने से (अधि) अधिकारपूर्वक (स्वान्) ज्ञाति के लोगों को (प्र अयच्छत्) दिया है ॥१५॥

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः ।
प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद् वशी ॥१६॥

पदार्थ—(ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (आचार्यः) आचार्य और (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी [ही] (प्रजापतिः) प्रजापति [प्रजापालक मनुष्य होता है] । और (प्रजापतिः) प्रजापति [प्रजापालक होकर] (वि) विविध प्रकार (राजति) राज्य करता है, (विराट्) विराट् [बड़ा राजा] (वशी) वश में करनेवाला, [शासक] (इन्द्रः) इन्द्र, [बड़े ऐश्वर्यवाला] (अभवत्) हुआ है ॥१६॥

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥१७॥

पदार्थ—(ब्रह्मचर्येण) वेद-विचार और जितेन्द्रियता रूपी (तपसा) तप से (राजा) राजा (राष्ट्रम्) राज्य को (वि) विशेष करके (रक्षति) पालता है। (आचार्य.) आचार्य [अङ्गों, उपाङ्गों और रहस्य सहित वेदों का अध्यापक] (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य [वेद विद्या और इन्द्रिय दमन] से (ब्रह्मचारिणम्) ब्रह्मचारी [वेद विचारने वाले जितेन्द्रिय पुरुष] को (इच्छते) चाहता है ॥१७॥

ब्रह्मचर्येण कन्या॒ युवानं विन्दते पतिम् ।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥१८॥

पदार्थ—(ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य [वेदाध्ययन और इन्द्रियनिग्रह] से (कन्या) कन्या [कामना योग्य पुत्री] (युवानम्) युवा [ब्रह्मचर्य से बलवान्] (पतिम्) पति [पालनकर्ता वा ऐश्वर्यवान् भर्ता] को (विन्दते) पाती है। (अनड्वान्) [रथ ले चलने वाला] बैल और (अश्व) घोड़ा (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य के साथ [नियम से ऊर्ध्वरेता होकर]। (घासम्=घासेन) घास से (जिगीर्षति) सींचना [गर्भाधान करना] चाहता है ॥१८॥

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्व१राभरत् ॥१९॥

पदार्थ—(ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य [वेदाध्ययन और इन्द्रियदमन], (तपसा) तप से (देवा) विद्वानों ने (मृत्युम्) मृत्यु [मृत्यु के कारण निरुत्साह, दरिद्रता आदि] को (अप) हटाकर (अघ्नत) नष्ट किया है। (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य [नियम-पालन] से (ह) ही (इन्द्र') सूर्य ने (देवेभ्य) उत्तम पदार्थों के लिये (स्व) सुख अर्थात् प्रकाश को (आ अभरत्) धारण किया है ॥१९॥

ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः ।
संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥२०॥

पदार्थ—(ओषधय) औषधें [अन्न आदि पदार्थ] और (वनस्पति) वनस्पति [पीपल आदि वृक्ष] (भूतभव्यम्) भूत और भविष्यत जगत्, (अहोरात्रे) दिन और रात्रि। (ऋतुभि सह) ऋतुओं के सहित (संवत्सर) वर्ष [जो हैं] (ते) वे सब (ब्रह्मचारिण) ब्रह्मचारी [वेदपाठी और इन्द्रिय निग्राहक पुरुष] से (जाता) प्रसिद्ध [होते हैं] ॥२०॥

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये ।
अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥२१॥

पदार्थ—(पार्थिवा) पृथिवी के और (दिव्या) आकाश के पदार्थ और (ये) जो (आरण्या) वन के (च) और (ग्राम्या) गाँव के (पशव) पशु हैं। (अपक्षाः) बिना पंख वाले (च) और (ये) जो (पक्षिण) पंख वाले जीव हैं, (ते) वे (ब्रह्मचारिण) ब्रह्मचारी से (जाता) प्रसिद्ध [होते हैं] ॥२१॥

पृथक् सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति ।
तान्त्सर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम् ॥२२॥

पदार्थ—(सर्वे) सब (प्राजापत्या) प्रजापति [परमात्मा] के उत्पन्न किये प्राणी (प्राणान्) प्राणों को (आत्मसु) अपने में (पृथक्) अलग-अलग (बिभ्रति) धारण करते हैं। (तान् सर्वान्) उन सब [प्राणियों] को (ब्रह्मचारिणि) ब्रह्मचारी में (आभृतम्) भर दिया गया (ब्रह्म) वेदज्ञान (रक्षति) पालता है॥ २२॥

देवानामेतत् परिषूतमनभ्यारूढं चरति रोचमानम् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं[ज्येष्ठं] ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥२३॥

पदार्थ—(देवानाम्) प्रकाशमान लोकों का (परिषूतम्) सर्वथा चलाने वाला, (अनभ्यारूढम्) कभी न हराया गया, (रोचमानम्) प्रकाशमान (एतत्) यह [व्यापक ब्रह्म] (चरति) विचारता है, (तस्मात्) उस [ब्रह्मचारी] से (ज्येष्ठम्) सर्वोत्कृष्ट (ब्राह्मणम्) ब्रह्मज्ञान और (ब्रह्म) वृद्धिकारक धन (जातम्) प्रकट [होता है], (च) और (सर्वे देवा) सब विद्वान् (अमृतेन साकम्) अमरपन [मोक्षसुख] के साथ [होते हैं] ॥२३॥

ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः ।
प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् ॥२४॥

पदार्थ—(भ्राजत्) प्रकाशमान (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी [वेदपाठक और वीर्य-निग्राहक पुरुष] (ब्रह्म) वेदज्ञान को (बिभर्ति) धारण करता है, (तस्मिन्) उस [ब्रह्मचारी] में (विश्वे देवा) सब उत्तम गुण (अधि) यथावत् (समोताः) ओत-प्रोत होते हैं। वह [ब्रह्मचारी] (प्राणापानौ) प्राण और अपान [श्वास प्रश्वास विद्या] को, (आत्) और (व्यानम्] व्यान [सर्वशरीरव्यापक वायु विद्या] को, (वाचम्) वाणी [भाषण विद्या] को, (मन) मन [मनन विद्या] को, (हृदयम्) हृदय [के ज्ञान] का, (ब्रह्म) ब्रह्म [परमेश्वर ज्ञान] को और (मेधाम्) धारणावती बुद्धि को (जनयन्) प्रकट करता हुआ [वर्तमान होता है] ॥२४॥

चक्षुः श्रोत्रं यशो अस्मासु धेह्यन्नं रेतो लोहितमुदरम् ॥२५॥

पदार्थ—[हे ब्रह्मचारी !] (अस्मासु) हम लोगों में (चक्षु) नेत्र, (श्रोत्रम्) कान, (यश) यश (अन्नम्) अन्न, (रेत.) वीर्य, (लोहितम्) रुधिर और (उदरम्) उदर [की स्वस्थता] (धेहि) धारण कर ॥२५॥

तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे ।
स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते ॥२६॥

पदार्थ—(ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (तानि) उन [कर्मों] को, (कल्पत्) करता हुआ (समुद्रे) समुद्र [के समान गम्भीर ब्रह्मचर्य] में (तप. तप्यमान) तप तपता हुआ [वीर्यनिग्रह आदि तप करता हुआ] (सलिलस्य पृष्ठे) जल के ऊपर [विद्यारूप जल में स्नान करने के लिये] (अतिष्ठत्) स्थित हुआ है। (स.) वह (स्नात) स्नान किये हुए [स्नातक ब्रह्मचारी] (बभ्रु.) पोषण करनेवाला और (पिङ्गल) बलवान् होकर (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (बहु) बहुत (रोचते) प्रकाशमान होता है ॥२६॥

卐 सूक्तम् ६ 卐

१-२३ शन्तातिः । चन्द्रमा, मन्त्रोक्ता । अनुष्टुप्, २३ बृहती गर्भा ।

अग्निं ब्रूमो वनस्पतीनोषधीरुत वीरुधः ।
इन्द्रं बृहस्पतिं सूर्यं ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१॥

पदार्थ—(अग्निम्) अग्नि, (वनस्पतीन्) वनस्पतियों [बड़े वृक्षों] (ओषधी.) ओषधियों [अन्न आदिकों], (उत) और (वीरुध·) [विविध प्रकार उगनेवाली] जड़ी बूटियों, (इन्द्रम्) इन्द्र [मेघ] और (बृहस्पतिम्) बड़े बड़े लोकों के पालन करनेवाले (सूर्यम्) सूर्य का (ब्रूम) हम कथन करते हैं, (ते) वे (न.) हमें (अंहस) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥१॥

ब्रूमो राजानं वरुणं मित्रं विष्णुमथो भगम् ।
अंशं विवस्वन्तं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥२॥

पदार्थ—(वरुणम्) श्रेष्ठ (राजानम्) राजा, (मित्रम्) मित्र (विष्णुम्) कर्मों में व्यापक विद्वान् (अथो) और (भगम्) ऐश्वर्यवान् पुरुष का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। (अंशम्) विभाग करने वाले और (विवस्वन्तम्) विविध स्थान में निवास करनेवाले पुरुष का (ब्रूम·) हम कथन करते हैं, (ते) वे (न.) हमें(अंहस.) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥२॥

ब्रूमो देवं सवितारं धातारमुत पूषणम् ।
त्वष्टारमग्रियं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥३॥

पदार्थ—(देवम्) विजयी, (सवितारम्) प्रेरक, (धातारम्) धारण करने वाले (उत) और (पूषणम्) पोषण करनेवाले पुरुष को (ब्रूम·) हम पुकारते हैं, (अग्रियम्) अग्रगामी (त्वष्टारम्) सूक्ष्मदर्शी पुरुष को (ब्रूम.) हम पुकारते हैं, (ते) वे (न) हमें (अंहस) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥३॥

गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम् ।
अर्यमा नाम यो देवस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥४॥

पदार्थ—(गन्धर्वाप्सरस) गन्धर्वों [पृथिवी के धारण करनेवालों] और अप्सरों [आकाश में चलनेवाले पुरुषों] को और (अश्विना) कामों में व्यापक रहने वाले दोनों [माता-पिता के समान हितकारी] (ब्रह्मण· पतिम्) वेद के रक्षक [आचार्य आदि] को (ब्रूम) हम पुकारते हैं। (य.) जो (अर्यमा) न्यायकारी (नाम) प्रसिद्ध (देव.) विजयी पुरुष है। [उसको भी], (ते) वे (न) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥४॥

अहोरात्रे इदं ब्रूमः सूर्याचन्द्रमसावुभा ।
विश्वानादित्यान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥५॥

पदार्थ—(इदम्) अब (अहोरात्रे) दिन और रात्रि का और (उभा) दोनों (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य और चन्द्रमा का (ब्रूम) हम कथन करते हैं, (विश्वान्)

सब (आदित्यान्) प्रकाशमान विद्वानों का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं, (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥५॥

वातं ब्रूमः पर्जन्यमन्तरिक्षमथो दिशः ।
आशाश्च सर्वा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥६॥

पदार्थ—(वातम्) वायु, (पर्जन्यम्) मेघ, (अन्तरिक्षम्) आकाश (अथो) और (दिशः) दिशाओं का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। (च) और (सर्वाः) सब (आशाः) विदिशाओं का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं, (ते) वे [पदार्थ] (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥६॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्यादहोरात्रे अथो उषाः ।
सोमो मा देवो मुञ्चतु यमाहुश्चन्द्रमा इति ॥७॥

पदार्थ—(अहोरात्रे) दिन और रात्रि (अथो) और (उषाः) उषा [प्रभात वेला] (मा) मुझे (शपथ्यात्) शपथ में होने वाले दोष से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें। (देवः) उत्तम गुण वाला (सोमः) ऐश्वर्यवान्, (यम्) जिसको, ("चन्द्रमा इति) यह चन्द्रमा है"—(आहुः) कहते हैं, (मा) मुझे (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥७॥

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या उत ये मृगाः ।
शकुन्तान् पक्षिणो ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥८॥

पदार्थ—(ये) जो (पार्थिवाः) पृथिवी के, (दिव्याः) आकाश के (पशवः) प्राणी (उत) और (आरण्याः) जंगल के (मृगाः) जंतु हैं [उनको] और (शकुन्तान्) शक्तिवाले (पक्षिणः) पक्षियों को (ब्रूमः) हम पुकारते हैं, (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥८॥

भवाशर्वाविदं ब्रूमो रुद्रं पशुपतिश्च यः ।
इषूर्या एषां संविद्म ता नः सन्तु सदा शिवाः ॥९॥

पदार्थ—(इदम्) अब (भवाशर्वौ) भव [सुखोत्पादक] और शर्व [दुःखनाशक दोनों पुरुषों] को (च) और (रुद्रम्) रुद्र [ज्ञानदाता पुरुष] को, (यः) जो (पशुपतिः) प्राणियों का रक्षक है, (ब्रूमः) हम पुकारते हैं। [इसलिए कि] (एषाम्) इन सब के (याः इषूः) जिन तीरों को (संविद्म) हम पहिचानते हैं, (ताः) वे (नः) हमारे लिये (सदा) सदा (शिवाः) कल्याणकारी (सन्तु) होवें ॥९॥

दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिं यक्षाणि पर्वतान् ।
समुद्रा नद्यो वेशन्तास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१०॥

पदार्थ—(दिवम्) आकाश, (नक्षत्राणि) नक्षत्रों, (भूमिम्) भूमि, (यक्षाणि) पूज्य स्थानों, और (पर्वतान्) पर्वतों का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। (समुद्राः) सब समुद्र, (नद्यः) नदियाँ और (वेशन्ताः) सरोवर [जो हैं, उनका भी], (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥१०॥

सप्तर्षीन् वा इदं ब्रूमोऽपो देवीः प्रजापतिम् ।
पितॄन् यमश्रेष्ठान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥११॥

पदार्थ—(इदम्) अब (वै) निश्चय करके (सप्तर्षीन्) सात ऋषियों [व्यापनशील वा दर्शनशील अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] का (देवीः) [उनकी] दिव्यगुणवाली (अपः) व्याप्तियों का और (प्रजापतिम्) प्रजापति [प्रजापालक आत्मा] का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। (यमश्रेष्ठान्) यम-नियमों को श्रेष्ठ [प्रधान] रखनेवाले (पितॄन्) पालन करने वाले गुणों का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥११॥

ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये ।
पृथिव्यां शक्रा ये श्रितास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१२॥

पदार्थ—(ये) जो (देवाः) दिव्य गुण (दिविषदः) सूर्य में वर्तमान (च) और (ये) जो (अन्तरिक्षसदः) अन्तरिक्ष में व्याप्त हैं। और (ये) जो (शक्राः) शक्ति वाले गुण (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (श्रिताः) स्थित हैं, (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥१२॥

आदित्या रुद्रा वसवो दिवि देवा अथर्वाणः ।
अङ्गिरसो मनीषिणस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१३॥

पदार्थ—(दिवि) विजय की इच्छा में [वर्तमान] (आदित्याः) प्रकाशमान, (रुद्राः) दुःखनाशक, (वसवः) निवास करानेवाले, (देवाः) व्यवहारकुशल (अथर्वाणः) निश्चल स्वभाव, (अङ्गिरसः) ज्ञानी और (मनीषिणः) बुद्धिमान् लोग [जो हैं] (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥१३॥

यज्ञं ब्रूमो यजमानमृचः सामानि भेषजा ।
यजूंषि होत्रा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१४॥

पदार्थ—(यज्ञम्) यज्ञ [संगतिकरण आदि व्यवहार], (यजमानम्) यजमान [संगतिकरण आदि व्यवहार करने वाले], (ऋचः) ऋचाओं [स्तुति विद्याओं] और (भेषजा) भय निवारक (सामानि) मोक्ष ज्ञानों का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। (यजूंषि) सत्कर्मों के ज्ञानों और (होत्राः) [दान करने और ग्रहण करने योग्य] वेदविद्याओं का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं, (ते) वे [पदार्थ] (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥१४॥

पञ्च राज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः ।
दर्भो भङ्गो यवः सहस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१५॥

पदार्थ—(वीरुधाम्) जड़ी-बूटियों के (सोमश्रेष्ठानि) सोम [ओषधि विशेष] को प्रधान रखनेवाले (पञ्च) पाँच [पत्ता, डंडी, फूल, फल और जड़ रूप] (राज्यानि) राज्यों का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। [रोगों का] (दर्भः) चीर फाड़ना, (भङ्गः) नाश करना, (यवः) मिलाना [भर देना] और (सहः) बल [यह उनके गुण हैं], (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥१५॥

अरायान् ब्रूमो रक्षांसि सर्पान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
मृत्यूनेकशतं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१६॥

पदार्थ—(अरायान्) अदाताओं, (रक्षांसि) राक्षसों, (सर्पान्) सर्पों [सर्प समान क्रूर स्वभावों], (पुण्यजनान्) पुण्य आत्माओं और (पितॄन्) पालनकर्त्ताओं का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। (एकशतम्) एक सौ एक [अपरिमित] (मृत्यून्) मृत्युओं [मृत्यु के कारणों] का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं, (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥१६॥

ऋतून् ब्रूम ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् ।
समाः संवत्सरान् मासांस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१७॥

पदार्थ—(ऋतून्) ऋतुओं (ऋतुपतीन्) ऋतुओं के स्वामियों [सूर्य, वायु आदिकों], (आर्तवान्) ऋतुओं से उत्पन्न होनेवाले (हायनान्) पाने योग्य चावल आदि पदार्थों, (संवत्सरान्) बरसों, (मासान्) महीनों (उत) और (समाः) सब अनुकूल क्रियाओं का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं, (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥१७॥

एत देवा दक्षिणतः पश्चात् प्राञ्च उदेत । पुरस्तादुत्तराच्छक्रा विश्वे देवाः समेत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१८॥

पदार्थ—(देवाः) हे देवताओ! [वीर पुरुषो] (दक्षिणतः) दक्षिण से (आ इत) आओ, (पश्चात्) पश्चिम से, (पुरस्तात्) पूर्व से, (उत्तरात्) उत्तर से, (शक्राः) शक्तिमान् (विश्वे) सब (देवाः) महात्माओ! तुम (समेत्य) मिलकर (प्राञ्चः) आगे बढ़ते हुए (उदेत) ऊपर आओ, (ते) वे [आप] (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) बचावें ॥१८॥

विश्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः ।
विश्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१९॥

पदार्थ—(इदम्) अब (विश्वान्) सब (देवान्) विजय चाहनेवालों, (सत्यसंधान्) सत्य प्रतिज्ञा वालों और (ऋतावृधः) सत्यज्ञान के बढ़ाने वालों का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। [अपनी] (विश्वाभिः) सब (पत्नीभिः सह) पत्नियों [वा पालन-शक्तियों] के साथ (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥१९॥

सर्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः ।
सर्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥२०॥

पदार्थ—(इदम्) अब (सर्वान्) सब (देवान्) व्यवहार जानने वालों, (सत्यसंधान्) सत्य के जोड़ने वालों, और (ऋतावृधः) सत्यज्ञान से बढ़ने वालों का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। [अपनी] (सर्वाभिः) सब (पत्नीभिः सह) पत्नियों [वा पालन-शक्तियों] के साथ, (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) बचावें ॥२०॥

भूतं ब्रूमो भूतपतिं भूतानामुत यो वशी ।
भूतानि सर्वा संगत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥२१॥

पदार्थ—(भूतम्) ऐश्वर्यवान्, विचारशील [योगीन्द्र] का, (भूतपतिम्) प्राणियों के पालनकर्ता का, (उत) और (भूतानाम्) तत्त्वों [पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश द्रव्यों] का (यः) जो (वशी) वश में करनेवाला पुरुष है [उसका] (ब्रूमः) हम कथन करते हैं । (सर्वा) सब (भूतानि) प्राणियों से (संगत्य) मिलकर (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥२१॥

या देवीः पञ्च प्रदिशो ये देवा द्वादशर्तवः ।
संवत्सरस्य ये दंष्ट्रास्ते नः सन्तु सदा शिवाः ॥२२॥

पदार्थ—(याः) जो (देवीः) उत्तम गुण वाली (पञ्च) पांच [पूर्वादि चार और एक ऊपर-नीचे की] (प्रदिशः) बड़ी दिशायें और (ये) जो (देवाः) उत्तम गुण वाले (द्वादश) बारह [मन, बुद्धि सहित पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय रूप] (ऋतवः) ऋतुएं [चलने वाले पदार्थ] हैं । और (संवत्सरस्य) वर्ष काल के (ये) जो (दंष्ट्राः) डसने वाले गुण हैं, (ते) वे (नः) हमारे लिये (सदा) सदा (शिवाः) कल्याणकारी (सन्तु) होवें ॥२२॥

यन्मातली रथक्रीतममृतं वेद भेषजम् ।
तदिन्द्रो अप्सु प्रावेशयत् तदापो दत्त भेषजम् ॥२३॥

पदार्थ—(मातली) इन्द्र [जीव] का रथवान् [मन] (रथक्रीतम्) रथ [शरीर] द्वारा पाये हुए (यत्) जिस (भेषजम्) भयनिवारक (अमृतम्) अमृत [अमरपन, मोक्षसुख] को (वेद) जानता है । (तत्) उस [अमृत] को (इन्द्रः) इन्द्र [परमेश्वर] ने (अप्सु) सब प्रजाओं में (प्र अवेशयत्) प्रवेश किया है, (आपः) हे प्रजाओ ! (तत्) उस (भेषजम्) भय निवारक वस्तु [मोक्षसुख] का (दत्त) दान करो ॥२३॥

卐 इति तृतीयोऽनुवाकः 卐

卐

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ॥७॥ 卐

१—२७ अथर्वा । अध्यात्म, उच्छिष्ट । अनुष्टुप्, ६ पुरोष्णिग्बार्हतपरा, २१ स्वराट्; २२ विराट् पथ्याबृहती ।

उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः ।
उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम् ॥१॥

पदार्थ—(उच्छिष्टे) शेष [उत्पत्ति और प्रलय से बचे हुए अनन्त परमेश्वर] में [संसार के] (नाम) नाम (च) और (रूपम्) रूप हैं, (उच्छिष्टे) शेष [परमात्मा] में (लोकः) दृश्यमान संसार (आहितः) रक्खा हुआ है । (उच्छिष्टे अन्तः) शेष [जगदीश्वर] के भीतर (इन्द्रः) मेघ (च) और (अग्निः) अग्नि [सूर्य आदि] (च) भी और (विश्वम्) प्रत्येक पदार्थ (समाहितम्) बटोरा हुआ है ॥१॥

उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम् ।
आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः ॥२॥

पदार्थ—(उच्छिष्टे) शेष [अनन्त परमेश्वर] में (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी और (विश्वम्) प्रत्येक (भूतम्) सत्ता वाला (समाहितम्) एकत्र किया गया है । (उच्छिष्टे) शेष [जगदीश्वर] में (आपः) जलधारायें (समुद्रः) समुद्र (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (वातः) पवन (आहितः) रक्खा गया है ॥२॥

सन्नुच्छिष्टे असंश्चोभौ मृत्युर्वाजः प्रजापतिः ।
लौक्या उच्छिष्ट आयत्ता व्रश्च द्रश्चापि श्रीर्मयि ॥३॥

पदार्थ—(उच्छिष्टे) शेष [मन्त्र १ परमात्मा] में (उभौ) दोनों (सत्) सत्तावाला [दृश्यमान, स्थूल] और (च) (असत्) असत्तावाला [अदृश्यमान परमाणु रूप संसार], (मृत्युः) मृत्यु (वाजः) पराक्रम और (प्रजापतिः) प्रजापालक गुण [हैं] । (उच्छिष्टे) शेष [परमेश्वर] में (लौक्याः) लौकिक पदार्थ (आयत्ताः) वशीभूत हैं, (च) और (व्रः) समूह [समष्टिरूप संसार] (च) और (द्रः) व्यक्ति [पृथक्-पृथक् विशेष पदार्थ] (अपि) भी (मयि) मुझ [प्राणी] में [वर्तमान] (श्रीः) सम्पत्ति [परमात्मा में है] ॥३॥

दृढो दृंहस्थिरो न्यो ब्रह्म विश्वसृजो दश ।
नाभिमिव सर्वतश्चक्रमुच्छिष्टे देवताः श्रिताः ॥४॥

पदार्थ—(दृढः) दृढ़, (दृंहस्थिरः) वृद्धि के साथ स्थिर और (न्यः) नायक [गुण] (ब्रह्म) वेदज्ञान और (दश) दस [आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी ये पांच भूत, और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पांच तन्मात्रायें] (विश्वसृजः) संसार बनाने वाले (देवताः) दिव्य पदार्थ (उच्छिष्टे) शेष [मन्त्र १ परमात्मा] में (श्रिताः) आश्रित हैं, (इव) जैसे (नाभिम् सर्वतः) नाभि के सब ओर (चक्रम्) पहिया [पहिये का प्रत्येक अरा लगा होता है] ॥४॥

ऋक् साम यजुरुच्छिष्ट उद्गीथः प्रस्तुतं स्तुतम् ।
हिङ्कार उच्छिष्टे स्वरः साम्नो मेडिश्च तन्मयि ॥५॥

पदार्थ—(उच्छिष्टे) शेष [मन्त्र १ परमात्मा] में [वर्तमान] (ऋक्) वेदवाणी, (साम) मोक्ष विज्ञान, (यजुः) विद्वानों की पूजा, (उद्गीथः) उत्तम गान [वेदध्वनि आदि], (प्रस्तुतम्) प्रकरण अनुकूल (स्तुतम्) स्तोत्र [गुणों का व्याख्यान] । (उच्छिष्टे) शेष [जगदीश्वर] में [वर्तमान] (हिङ्कारः) वृद्धिकारक व्यवहार (स्वरः) स्वर [उदात्त, अनुदात्त और स्वरित भेद] (च) और (साम्नः) सामवेद [मोक्षज्ञान] की (मेडिः) वाणी, [illegible] वह [सब] (मयि) मुझ [उपासक] में [होवे] ॥५॥

ऐन्द्राग्नं पावमानं महानाम्नीर्महाव्रतम् ।
उच्छिष्टे यज्ञस्याङ्गान्यन्तर्गर्भ इव मातरि ॥६॥

पदार्थ—(ऐन्द्राग्नम्) इन्द्र [मेघ] और अग्नि [सूर्य, बिजुली आदि] का ज्ञान, (पावमानम्) शुद्धिकारक वायु का ज्ञान (महानाम्नीः) बड़े नामों वाली [वेद विद्यायें] और (महाव्रतम्) महाव्रत और (यज्ञस्य) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान व्यवहार] के (अङ्गानि) सब अङ्ग (उच्छिष्टे) शेष [म० १ परमात्मा] में हैं, (इव) जैसे (मातरि अन्तः) माता के [उदर के] भीतर (गर्भः) गर्भ [रहता है] ॥६॥

राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमस्तदध्वरः ।
अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे जीवबर्हिर्मदिन्तमः ॥७॥

पदार्थ—(राजसूयम्) राजसूय [राजतिलक यज्ञ], (वाजपेयम्) वाजपेय [विज्ञान और बल का रक्षक यज्ञ] (अग्निष्टोमः) अग्निष्टोम [आग वा परमेश्वर वा विद्वान् के गुणों की स्तुति], (तत्) तथा (अध्वरः) सन्मार्ग देने वाला वा हिंसारहित व्यवहार, (अर्काश्वमेधौ) पूजनीय विचार और अश्वमेध [चक्रवर्ती राज्यपालन की मेधा अर्थात् बुद्धिवाला व्यवहार] और [अन्य] (मदिन्तमः) अत्यन्त हर्षदायक (जीवबर्हिः) जीवों की बढ़ती वाला व्यवहार (उच्छिष्टे) शेष [म० १ परमेश्वर] में है ॥७॥

अग्न्याधेयमथो दीक्षा कामप्रश्छन्दसा सह ।
उत्सन्ना यज्ञाः सत्राण्युच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥८॥

पदार्थ—(अग्न्याधेयम्) अग्न्याधान [अग्नि की स्थापना] (अथो) और (दीक्षा) दीक्षा [नियम पालन व्रत] (छन्दसा सह) वेद के साथ (कामप्रः) कामनापूरक व्यवहार, (उत्सन्नाः) ऊंचे चढ़े हुए (यज्ञाः) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] और (सत्राणि) बैठकें (उच्छिष्टे) शेष [म० १ परमात्मा] में (अधि) अधिकारपूर्वक (समाहिताः) एकत्र किये गये हैं ॥८॥

अग्निहोत्रं च श्रद्धा च वषट्कारो व्रतं तपः ।
दक्षिणेष्टं पूर्तं चोच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥९॥

पदार्थ—(अग्निहोत्रम्) अग्निहोत्र [अग्नि में हवन] (च) और (श्रद्धा) श्रद्धा [भक्ति], (च) और (वषट्कारः) दानकर्म, (व्रतम्) व्रत [नियम] (तपः) तप [चित्त की एकाग्रता], (दक्षिणा) दक्षिणा [प्रतिष्ठा] (इष्टम्) वेदाध्ययन, आतिथ्य आदि (च) और (पूर्तम्) अन्नदानादि पुण्य कर्म (उच्छिष्टे) शेष [म० १ परमात्मा] में (अधि) अधिकारपूर्वक (समाहिताः) एकत्र किये गये हैं ॥९॥

एकरात्रो द्विरात्रः सद्यःक्रीः प्रक्रीरुक्थ्यः ।
ओतं निहितमुच्छिष्टे यज्ञस्याणूनि विद्यया ॥१०॥

पदार्थ—(एकरात्रः) एक रात्रिवाला, (द्विरात्रः) दो रात्रिवाला, (सद्यःक्रीः) तुरन्त ही मोल लिया गया, (प्रक्रीः) मोल लेने योग्य (उक्थ्यः) प्रशंसनीय

[व्यवहार वा यज्ञ] [यह सब] (उच्छिष्टे) शेष [म० १ परमात्मा] मे (ओतम्) ओत प्रोत [भली भाँति बुना हुआ] (निहितम्) रक्खा हुआ है, और (विद्यया) विद्या के साथ (यजस्य) [ईश्वर-पूजा आदि] के (अणूनि) सूक्ष्म रूप [रक्खे हैं] ॥१०॥

चतूरात्रः पञ्चरात्रः षड्रात्रश्चोभयः सह । षोडशी सप्तरात्र-

श्चोच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे ये यज्ञा अमृते हिताः ॥११॥

पदार्थ—(चतूरात्रः) चार रात्रि [तक रहने] वाला, (पञ्चरात्र) पांच रात्रि वाला, (षड्रात्र) छह रात्रिवाला, (च) और (सह) मिलकर (उभयः) दूने समय [८+१०+१२=३० रात्रि] वाला । (षोडशी) सोलह [रात्रि] वाला (च) और (सप्तरात्र.) सात रात्रि वाला [यज्ञ वा व्यवहार] (उच्छिष्टात्) शेष [म० १ परमेश्वर] से (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए हैं, [और वे भी (ये) जो (सर्वे) सब (यज्ञा.) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] (अमृते) अमरपन [पौरुष वा मोक्ष पद] में (हिता) स्थापित हैं ॥११॥

प्रतीहारो निधनं विश्वजिच्चाभिजिच्च यः ।

साह्नातिरात्रावुच्छिष्टे द्वादशाहोऽपि तन्मयि ॥१२॥

पदार्थ—(प्रतीहारः) प्रत्युपकार, (निधनम्) कुल [कुलवृद्धि] (च) और (विश्वजित्) ससार का जीतने वाला (च) और (यः) जो (अभिजित्) सब ओर से जीतनेवाला [यज्ञ वा व्यवहार है, वह] (साह्नातिरात्रौ) उसी दिन पूरा होने वाला और रात्रि बिता कर पूरा होने वाला और (द्वादशाह) बारह दिन में पूरा होने वाला [यज्ञ वा व्यवहार] (अपि) भी (उच्छिष्टे) शेष [म० १ परमात्मा] मे हैं, (तत्) वह (मयि) मुझ [उपासक] म [होवे] ॥१२॥

सूनृता संनतिः क्षेमः स्वधोर्जामृतं सहः ।

उच्छिष्टे सर्वे प्रत्यञ्चः कामाः कामेन तातृपुः ॥१३॥

पदार्थ—(सूनृता) प्रिय सत्य वाणी, (संनति.) यथावत् नम्रता, (क्षेमः) रक्षा, (स्वधा) अन्न, (ऊर्जा) पराक्रम (सह) बल और (अमृतम्) अमृत [मृत्यु वा दु ख से बचना अर्थात् पुरुषार्थ] । (सर्वे) [इन] सब (कामाः) कामना योग्य विषयों ने (उच्छिष्टे) शेष [म० १ परमात्मा] मे (प्रत्यञ्चः) व्याप कर (कामेन) इष्ट फल के साथ [मनुष्य को] (तातृपुः) तृप्त किया है ॥१३॥

नव भूमीः समुद्रा उच्छिष्टेऽधि श्रिता दिवः ।

आ सूर्यो भात्युच्छिष्टेऽहोरात्रे अपि तन्मयि ॥१४॥

पदार्थ—(नव) नौ [हमारे दो कान, दो आंख, दो नथने, मुख, पायु और उपस्थ इन नौ अर्थात् सब इन्द्रियो से जाने गये] (भूमी) भूमि के देश, (समुद्रा) अन्तरिक्ष के लोक और (दिव) प्रकाशमान लोक (उच्छिष्टे) शेष [म० १ परमात्मा] मे (अधि) अधिकार पूर्वक (श्रिता) ठहरे हैं । (सूर्यः) सूर्य (उच्छिष्टे) शेष [परमेश्वर] मे (आ) सब ओर (भाति) चमकता है, और (अहोरात्रे) दिन रात्रि (अपि) भी, (तत्) वह [उनका सुख] (मयि) मुझ [उपासक] मे [होवे] ॥१४॥

उपहव्यं विषूवन्तं ये च यज्ञा गुहा हिताः ।

बिभर्ति भर्ता विश्वस्योच्छिष्टो जनितुः पिता ॥१५॥

पदार्थ—(उपहव्यम्) प्राप्तियोग्य (विषूवन्तम्) व्याप्ति वाले [बाहरी उत्तम गुण] को (च) और (ये) जो (यज्ञा) श्रेष्ठ गुण (गुहा) बुद्धि के भीतर (हिता) रक्खे हैं, [उनको भी] (विश्वस्य) सब का (भर्ता) पोषक (जनितु) जनक [हमारे उत्पन्न करनेवाले] का (पिता) पिता [पालक] (उच्छिष्ट) शेष [म० १ परमात्मा] (बिभर्ति) धारण करता है ॥१५॥

पिता जनितुरुच्छिष्टोऽसोः पौत्रः पितामहः ।

स क्षियति विश्वस्येशानो वृषा भूम्यामतिघ्न्यः ॥१६॥

पदार्थ—(उच्छिष्टः) शेष [म० १ परमात्मा] (जनितुः) जनक [हमारे उत्पादक] का (पिता) पिता और (असो) प्राण [हमारे जीवन] का (पौत्रः) पोता [पुत्र के पुत्र के] समान पीछे वर्तमान] और (पितामह) दादा [पिता के पिता के समान पहिले वर्तमान] है । (स) वह (विश्वस्य) सबका (ईशान.) ईश्वर, (वृषाः) महापराक्रमी [परमात्मा] (भूम्याम्) भूमि पर (अतिघ्न्य.) बिना हराया हुआ (क्षियति) बसता है ॥१६॥

ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च ।

भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले ॥१७॥

पदार्थ—(ऋतम्) सत्य शास्त्र, (सत्यम्) सत्यवचन, (तपः) तप [इन्द्रियदमन], (राष्ट्रम्) राज्य, (श्रमः) परिश्रम (च) और (धर्मः) धर्म [पक्षपातरहित न्याय और सत्य आचरण] (च) और (कर्म) कर्म । (भूतम्) उत्पन्न हुआ और (भविष्यत्) उत्पन्न होने वाला जगत्, (वीर्यम्) वीरता, (लक्ष्मीः) लक्ष्मी [सर्वसम्पत्ति] और (बले) बल के भीतर [वर्तमान] (बलम्) बल (उच्छिष्टे) शेष [म० १ परमात्मा] में हैं ॥१७॥

समृद्धिरोज आकूतिः क्षत्रं राष्ट्रं षडुर्व्यः ।

संवत्सरोऽध्युच्छिष्ट इडा प्रैषा ग्रहा हविः ॥१८॥

पदार्थ—(समृद्धिः) समृद्धि [सर्वथा वृद्धि] (ओजः) पराक्रम (आकूति) सकल्प [मन में विचार] (क्षत्रम्) हानि से रक्षक [क्षत्रियपन] (राष्ट्रम्) राज्य और (षट्) छह (उर्व्यः) फैली [दिशायें] । (संवत्सर) वर्ष (इडा) वाणी, (प्रैषा) प्रेरणायें, (ग्रहाः) अनेक प्रयत्न और (हविः) ग्राह्य वस्तु (उच्छिष्टे) शेष [म० १ परमात्मा] मे (अधि) अधिकार पूर्वक हैं ॥१८॥

चतुर्होतार आप्रियश्चातुर्मास्यानि नीविदः ।

उच्छिष्टे यज्ञा होत्राः पशुबन्धास्तदिष्टयः ॥१९॥

पदार्थ—(चतुर्होतार) चार [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चार वर्णों] से ग्राह्य व्यवहार, (चातुर्मास्यानि) चार महीनो मे सिद्ध होने वाले कर्म (आप्रिय.) सर्वथा प्रीति उत्पन्न करनेवाली क्रियायें और (नीविद) निश्चित विचारें (यज्ञा) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार], (होत्राः) देने-लेने योग्य [वेद वाचायें] (पशुबन्धाः) प्राणियो के प्रबन्ध (तत्) तथा (इष्टय.) इष्ट क्रियायें (उच्छिष्टे) शेष [म० १५ परमात्मा] मे हैं ॥१९॥

अर्धमासाश्च मासाश्चार्तवा ऋतुभिः सह ।

उच्छिष्टे घोषिणीरापः स्तनयित्नुः श्रुतिर्मही ॥२०॥

पदार्थ—(अर्धमासाः) आधे महीने (च) और (मासा) महीने (च) और (ऋतुभि सह) ऋतुओ के साथ (आर्तवा) ऋतुओं के पदार्थ, (घोषिणीः) शब्द करने वाली (आप) जल धारायें, (स्तनयित्नु) मेघ की गर्जन, (श्रुति.) सुनने योग्य [वेद वाणी] और (मही) भूमि (उच्छिष्टे) शेष [म० १ परमात्मा] मे है ॥२०॥

शर्कराः सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस्तृणा ।

अभ्राणि विद्युतो वर्षमुच्छिष्टे संश्रिता श्रिता ॥२१॥

पदार्थ—(शर्करा) कंकड आदि (अश्मान) पत्थर, (सिकता) बालू, (ओषधय) ओषधें [अन्नादि] (वीरुध) जड़ी बूटियाँ, (तृणा) घासें, (अभ्राणि) बादल, (विद्युत) बिजुलियां, (वर्षम्) बरसात, (संश्रिता) [वे सब] परस्पर आश्रित द्रव्य (उच्छिष्टे) शेष [म० १ परमात्मा] मे (श्रिता) ठहरे हैं ॥२१॥

राद्धिः प्राप्तिः समाप्तिर्व्याप्तिर्मह एधतुः ।

अत्याप्तिरुच्छिष्टे भूतिश्चाहिता निहिता हिता ॥२२॥

पदार्थ—(राद्धिः) अर्थसिद्धि, (प्राप्ति) प्राप्ति [लाभ], (समाप्ति.) समाप्ति [पूर्ति], (व्याप्ति) व्याप्ति [फैलाव], (मह) बड़ाई, (एधतु.) बढती, (अत्याप्ति) अत्यन्त प्राप्ति (च) और (आहिता) सब ओर से रक्खी हुई और (निहिता) गहरी रक्खी हुई (भूति) विभूति [सम्पत्ति] (उच्छिष्टे) शेष [म० १ परमात्मा] मे (हिता) रक्खी हैं ॥२२॥

यच्च प्राणति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा ।

उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥२३॥

पदार्थ—(च) और (यत्) जो कुछ (प्राणेन) प्राण [श्वास प्रश्वास] के साथ (प्राणति) जीता है, (च) और (यत्) जो कुछ (चक्षुषा) नेत्र से (पश्यति) देखता है । [वह सब और] (दिवि) आकाश मे [वर्तमान] (दिविश्रित) सूर्य [के आकर्षण] मे ठहरे हुए (सर्वे) सब (देवा) गतिमान् लोक (उच्छिष्टात्) शेष [म० १ परमात्मा] से (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए हैं ॥२३॥

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।

उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥२४॥

पदार्थ—(ऋच) स्तुति विद्यायें [वा ऋग्वेद मन्त्र] (सामानि) मोक्ष ज्ञान [वा सामवेद मन्त्र] और (यजुषा सह) विद्वानों के सत्कार सहित [वा यजुर्वेद सहित] (छन्दांसि) आनन्दप्रद कर्म [वा अथर्ववेद मन्त्र] और (पुराणम्) पुराण [पुरातन वृत्तान्त] । [यह सब, और] (दिवि) आकाश मे [वर्तमान] (दिविश्रितः) सूर्य [के आकर्षण] मे ठहरे हुए (सर्वे) सब (देवाः) गतिमान् लोक (उच्छिष्टात्) शेष [म० १ परमात्मा] से (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए हैं ॥२४॥

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।

उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥२५॥

पदार्थ—(प्राणापानौ) प्राण और अपान [भीतर और बाहिर जाने वाले श्वास], (चक्षुः) नेत्र, (श्रोत्रम्) कान (च) और (या) जो (अक्षितिः) [तत्त्वों की] निर्हानि [बढ़ती] (च) और (क्षितिः) [तत्त्वों की हानि] । [यह सब और] (दिवि) आकाश में [वर्तमान] (दिविश्रितः) सूर्य [के आकर्षण] में ठहरे हुए (सर्वे) सब (देवाः) गतिमान् लोक (उच्छिष्टात्) शेष [म० १ परमात्मा] से (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए हैं ॥२५॥

आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये ।

उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥२६॥

पदार्थ—(आनन्दाः) आनन्द, (मोदाः) हर्ष, (प्रमुदः) बड़े आनन्द (च) और (ये) जो (अभिमोदमुदः) बड़े उत्सवों से हर्ष देने वाले पदार्थ हैं । [यह सब, और] (दिवि) आकाश में [वर्तमान] (दिविश्रितः) सूर्य [के आकर्षण] में ठहरे हुए (सर्वे) सब (देवाः) गतिमान् लोक (उच्छिष्टात्) शेष [म० १ परमात्मा] से (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए हैं ॥२६॥

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।

उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥२७॥

पदार्थ—(देवाः) विद्वान् लोग, (पितरः) ज्ञानी लोग, (मनुष्याः) मननशील लोग (च) और (ये) जो (गन्धर्वाप्सरसः) गन्धर्व [पृथिवी के धारण करने वाले] और अप्सर [आकाश में चलने वाले पुरुष] हैं । [यह सब, और] (दिवि) आकाश में [वर्तमान] (दिविश्रितः) सूर्य [के आकर्षण] में ठहरे हुए (सर्वे) सब (देवाः) गतिमान् लोक (उच्छिष्टात्) शेष [म० १ परमात्मा] से (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए हैं ॥२७॥

卐 सूक्तम् ८ 卐

१—३४ कौरुपथिः । *अध्यात्मम्, मन्युः । अनुष्टुप्, ३३ पथ्यापंक्तिः ।*

यन्मन्युर्जायामावहत् संकल्पस्य गृहादधि ।

क आसं जन्याः के वराः क उ ज्येष्ठवरोऽभवत् ॥१॥

पदार्थ—(यत्) जब (मन्युः) सर्वज्ञ [परमेश्वर] (जायाम्) सृष्टि की क्रिया को (संकल्पस्य) संकल्प [मनोविचार] के (गृहात्) ग्रहण [स्वीकार करने] से (अधि) अधिकारपूर्वक (आवहत्) सब ओर लाया [प्रकट किया] । (के) कौन (जन्याः) उत्पत्ति में साधक [योग्य] पदार्थ और (के) कौन (वराः) वर [वरणीय, इष्टफल] (आसन्) थे, (क उ) कौन ही (ज्येष्ठवरः) सर्वोत्तम वरों [इष्टफलों] का देने वाला (अभवत्) हुआ ॥ १ ॥

तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे ।

त आसं जन्यास्ते वरा ब्रह्म ज्येष्ठवरोऽभवत् ॥२॥

पदार्थ—(तपः) तप [ईश्वर का सामर्थ्य] (च च) और (कर्म) कर्म [प्राणियों के कर्म का फल] (एव) ही (महति अर्णवे अन्तः) बड़े समुद्र [परमेश्वर के गम्भीर सामर्थ्य] के भीतर (आस्ताम्) दोनों थे । [तप और कर्म ही] (ते) वे [प्रसिद्ध] (जन्याः) उत्पत्ति में साधन [योग्य] पदार्थ और (ते) वे ही (वराः) वर [वरणीय इष्टफल] (आसन्) थे, (ब्रह्म) ब्रह्म [सब से बड़ा परमात्मा] (ज्येष्ठवरः) सर्वोत्तम वरों [इष्ट फलों] का दाता (अभवत्) हुआ ॥ २ ॥

दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा ।

यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स वा अद्य महद् वदेत् ॥३॥

पदार्थ—(दश देवाः) दस दिव्य पदार्थ [पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय] (पुरा) पूर्वकाल में [वर्तमान] (देवेभ्यः) दिव्य पदार्थों [कर्म फलों] से (साकम्) परस्पर मिले हुए (अजायन्त) उत्पन्न हुए । (यः) जो पुरुष (वै) निश्चय करके (तान्) उनको (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष (विद्यात्) जान लेवे, (सः) वह (वै) ही (अद्य) आज (महत्) महान् [ब्रह्म] को (वदेत्) बतलावे ॥३॥

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।

व्यानोदानौ वाङ् मनस्ते वा आकूतिमावहन् ॥४॥

पदार्थ—(प्राणापानौ) प्राण और अपान [भीतर और बाहिर जाने वाला श्वास], (चक्षुः) नेत्र, (श्रोत्रम्) कान, (च) और (या) जो (अक्षितिः) [सुख की] निर्हानि (च) और (क्षितिः) [दुःख की] हानि । (व्यानोदानौ) व्यान [सब नाड़ियों में रस पहुँचाने वाला वायु] और उदान [ऊपर को चढ़ने वाला वायु] और (वाक्) वाणी और (मनः) मन, (ते) इन सब ने (वै) निश्चय करके (आकूतिम्) संकल्प [प्राणी के मनोविचार] को (आ) सब ओर से (अवहन्) प्राप्त कराया ॥४॥

अजाता आसन्नृतवोऽथो धाता बृहस्पतिः ।

इन्द्राग्नी अश्विना तर्हि कं ते ज्येष्ठमुपासत ॥५॥

पदार्थ—(ऋतवः) ऋतुएं (अजाताः) अनुत्पन्न (आसन्) थीं । (अथो) और भी (धाता) धाता [धारण करनेवाला आकाश], (बृहस्पतिः) [बड़े पदार्थों का रक्षक वायु], (इन्द्राग्नी) इन्द्र [मेघ] और अग्नि [सूर्य आदि] और (अश्विना) दिन और रात्रि [अनुत्पन्न थे], (तर्हि) तब (ते) उन्होंने [ऋतु आदिकों ने] (कम् ज्येष्ठम्) कौन से सर्वश्रेष्ठ को (उप आसत) पूजा था ॥५॥

तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे ।

तपो ह जज्ञे कर्मणस्तत् ते ज्येष्ठमुपासत ॥६॥

पदार्थ—(तपः) तप [ईश्वर का सामर्थ्य] (च च) और (कर्म) कर्म [प्राणियों के कर्म का फल] (एव) ही (महति अर्णवे अन्तः) बड़े समुद्र [परमेश्वर के गम्भीर सामर्थ्य] के भीतर (आस्ताम्) दोनों थे । (तपः) तप [ईश्वर का सामर्थ्य] (ह) निश्चय करके (कर्मणः) कर्म [कर्म के फल अनुसार शरीर, स्वभाव आदि रचना] से (जज्ञे) प्रकट हुआ है, (तत्) सो (ते) उन्होंने [ऋतु आदिकों ने—म० ५] (ज्येष्ठम्) सर्वश्रेष्ठ परमात्मा को (उप आसत) पूजा था ॥६॥

येत आसीद् भूमिः पूर्वा यामद्धातय इद् विदुः ।

यो वै तां विद्यान्नामथा स मन्येत पुराणवित् ॥७॥

पदार्थ—(इतः) इस [दीखती हुई भूमि] से (पूर्वा) पहिली [पहले कल्प वाली] (या भूमिः) जो भूमि (आसीत्) थी और (याम्) जिस [भूमि] को (अद्धातयः) सत्यज्ञानी पुरुष (इत्) ही (विदुः) जानते हैं । (यः) जो (वै) निश्चय करके (ताम्) उस [पहिले कल्प वाली भूमि] को (नामथा) नाम द्वारा [तत्त्वतः] (विद्यात्) जान लेवे, (सः) वह (पुराणवित्) पुराणवेत्ता [पिछले वृत्तान्त जाननेवाला] (मन्येत) माना जावे ॥७॥

कुत इन्द्रः कुतः सोमः कुतो अग्निरजायत ।

कुतस्त्वष्टा समभवत् कुतो धाताजायत ॥८॥

पदार्थ—(कुतः) कहां से [किस कारण से] (इन्द्रः) इन्द्र [मेघ], (कुतः) कहां से (सोमः) सोम [प्रेरक वायु], (कुतः) कहां से (अग्निः) अग्नि [सूर्य आदि तेज] (अजायत) उत्पन्न हुआ है । (कुतः) कहां से (त्वष्टा) त्वष्टा [शरीर आदि का कारण पृथिवी तत्त्व] (सम् अभवत्) उत्पन्न हुआ है । (कुतः) कहां से (धाता) धाता [धारण करनेवाला आकाश] (अजायत) प्रकट हुआ है ॥८॥

इन्द्रादिन्द्रः सोमात् सोमो अग्नेरग्निरजायत ।

त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टुर्धातुर्धाताजायत ॥९॥

पदार्थ—(इन्द्रात्) इन्द्र [पूर्वकल्पवर्ती मेघ] से (इन्द्रः) इन्द्र [मेघ], (सोमात्) सोम [प्रेरक वायु] से (सोमः) सोम [प्रेरक वायु], (अग्नेः) अग्नि [सूर्य आदि तेज] से (अग्निः) अग्नि [सूर्य आदि तेज] (अजायत) उत्पन्न हुआ है । (त्वष्टा) त्वष्टा [शरीर आदि का कारण पृथिवी तत्त्व] (ह) निश्चय करके (त्वष्टुः) त्वष्टा [शरीर आदि के कारण पृथिवी तत्त्व] से (जज्ञे) प्रकट हुआ है और (धातुः) धाता [धारण करने वाले आकाश] से (धाता) धाता [धारण करने वाला आकाश] (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥९॥

ये त आसन् दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा ।

पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा कस्मिंस्ते लोक आसते ॥१०॥

पदार्थ—(ये ते) जो वे (दश देवाः) दस दिव्य गुण [दस इन्द्रियों के विषयग्राहक गुण] (पुरा) पूर्वकाल में [वर्तमान] (देवेभ्यः) दिव्य पदार्थों [कर्म फलों] से (जाताः) उत्पन्न हुए (आसन्) थे । (ते) वे (पुत्रेभ्यः) पुत्रों [पुत्र रूप इन्द्रियों के गोलकों] को (लोकम्) स्थान [दर्शन वा विषय ग्राहक सामर्थ्य] (दत्त्वा) देकर (कस्मिन् लोके) कौन से स्थान में (आसते) बैठते हैं ॥१०॥

यदा केशानस्थि स्नाव मांसं मज्जानमाभरत् ।

शरीरं कृत्वा पादवत् कं लोकमनु प्राविशत् ॥११॥

पदार्थ—(यदा) जब [प्राणी के] (केशान्) केशों, (अस्थि) हड्डी, (स्नाव) सूक्ष्म नाड़ी [वायु से चलनेवाली नस], (मांसम्) मांस (मज्जानम्)

[हड्डियों के भीतर के रस] को (आभरत्) उस [कर्त्ता परमेश्वर] ने लाकर धरा। और (पादवत्) पैरों वाला [हाथ पाँव आदि अङ्गो वाला] (शरीरम्) शरीर (कृत्वा) बनाकर (कम् लोकम्) कौन से स्थान में उस [परमेश्वर] ने (अनु) पीछे (प्र अविशत्) प्रवेश किया ॥११॥

कुतः केशान्कुतः स्नाव कुतो अस्थीन्याभरत् ।
अङ्गा पर्वाणि मज्जानं को मांसं कुत आभरत् ॥१२॥

पदार्थ—(कुत) किससे [किस उपादेय कारण से [प्राणियो के] (केशान्) केशों को, (कुत) कहा से (स्नाव) सुक्ष्मनाडी [वायु ले चलने वाली नस], (कुत) कहा से (अस्थीनि) हड्डियों को (आ अभरत्) उस [कर्त्ता परमेश्वर] ने लाकर धरा। (अङ्गा) अङ्गो, (पर्वाणि) जोड़ो, (मज्जानम्) मज्जा [हड्डी के भीतर के रस], और (मांसम्) मांस को (क) कर्त्ता [प्रजापति परमेश्वर] ने (कुत) कहाँ से (आ अभरत्) लाकर धरा ॥१२॥

संसिचो नाम ते देवा ये संभारान्त्समभरन् ।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥१३॥

पदार्थ—(संसिच.) परस्पर सींचने वाले (नाम) प्रसिद्ध (ते) वे (देवा) दिव्य पदार्थ [पृथिवी आदि पञ्चभूत] हैं (ये) जिन्होंने (सभारान्) [उन] संग्रहों [उपकरण द्रव्यों] को (समभरन्) मिलाकर भरा है। (देवा) [उन] दिव्य पदार्थों ने (सर्वम्) सब (मर्त्यम्) मरण धर्मी [शरीर] को (ससिच्य) परस्पर सींचकर (पुरुषम्) पुरुष में [आत्मा सहित शरीर मे] (आ अविशन्) प्रवेश किया है ॥१३॥

ऊरू पादावष्ठीवन्तौ शिरो हस्तावथो मुखम् ।
पृष्ठीर्बर्जह्ये पार्श्वे कस्तत्समदधादृषिः ॥१४॥

पदार्थ—(ऊरू)दोनो जंघाओ, (अष्ठीवन्तौ) दोनो घुटनो, (पादौ) दोनो पैरो, (हस्तौ) दोनो हाथों, (अथो) और भी (शिर) शिर, (मुखम्) मुख, (पृष्ठी.) पसलियो, (बर्जह्ये) दोनो कुच की टीपनी, (पार्श्वे) दोनो कोखो को (तत्) तब (क) किस (ऋषि) ऋषि [ज्ञानवान्] ने (सम् अदधात्) मिला दिया ॥१४॥

शिरो हस्तावथो मुखं जिह्वां ग्रीवाश्च कीकसाः ।
त्वचा प्रावृत्य सर्वं तत् संधा समदधान्मही ॥१५॥

पदार्थ—(हस्तौ) दोनों हाथो, (शिरः) शिर, (अथो) और भी (मुखम्) मुख, (जिह्वाम्) जीभ, (ग्रीवा) गले की नाडियो, (च) और (कीकसा) हंसली की हड्डियो (तत् सर्वम्) इस सबको (त्वचा) खाल से (प्रावृत्य) ढककर (मही) बड़ी (संधा) जोड़ने वाली [शक्ति, परमेश्वर] ने (सम् अदधात) मिला दिया ॥१५॥

यत्तच्छरीरमशयत् संधया संहितं महत् ।
येनेदमद्य रोचते को अस्मिन् वर्णमाभरत् ॥१६॥

पदार्थ—(यत्) जब (संधया) जोड़ने वाली [शक्ति, परमेश्वर] द्वारा (संहितम्) जोड़ा हुआ (तत्) वह (महत्) महान् [समर्थ] (शरीरम्) शरीर (अशयत्) पड़ा हुआ था। [तब] (येन) जिस [रंग] से (इदम्) यह [शरीर] (अद्य) आज (रोचते) रुचता है, (क) किसने (अस्मिन्) इस [शरीर] मे (वर्णम्) वर्ण [रंग] (आ अभरत्) सब ओर से भर दिया ॥१६॥

सर्वे देवा उपाशिक्षन् तदजानाद् वधूः सती ।
ईशा वशस्य या जाया सास्मिन् वर्णमाभरत् ॥१७॥

पदार्थ—(सर्वे) सब (देवा) दिव्य पदार्थों [तत्त्वों के गुणों] ने (उप) उपकारीपन से (अशिक्षन्) समर्थ [सहायक] होना चाहा (तत्) उस [कर्म] को (सती) सत्यव्रता (वधूः) चलाने वाली [परमेश्वर शक्ति] (अजानात्) जानती थी। (वशस्य) वश करने वाले [परमेश्वर] की (या) जो (ईशा) ईश्वरी (जाया) उत्पन्न करने वाली शक्ति है, (सा) उसने (अस्मिन्) इस [शरीर] मे (वर्णम्) रङ्ग (आ) सब ओर से (अभरत्) भर दिया ॥१७॥

यदा त्वष्टा व्यतृणत् पिता त्वष्टुर्य उत्तरः ।
गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥१८॥

पदार्थ—(यः) जो (त्वष्टुः) कर्मकर्त्ता [जीव] का (उत्तरः) अधिक उत्तम (पिता) पिता [पालक] है, (यदा) जब (त्वष्टा) विश्वकर्त्ता [उस सृष्टि कर्त्ता परमेश्वर] ने [जीव के शरीर में] (व्यतृणत्) विविध छेद किये। [तब] (देवाः) दिव्य पदार्थों [इन्द्रिय की शक्तियों] ने (मर्त्यम्) मरणधर्मी [नश्वर शरीर] को (गृहम्) घर (कृत्वा) बनाकर (पुरुषम्) पुरुष [पुरुष-शरीर] में (आ अविशन्) प्रवेश किया ॥१८॥

स्वप्नो वै तन्द्रीर्निर्ऋतिः पाप्मानो नाम देवताः ।
जरा खालत्यं पालित्यं शरीरमनु प्राविशन् ॥१९॥

पदार्थ—(स्वप्न) नींद (वै) और भी (तन्द्री) थकावटें, (निर्ऋति) अलक्ष्मी [महामारी, दरिद्रता आदि], (नाम) अर्थात (पाप्मान) पाप व्यवहार, (देवता) दुःखदायी इच्छायें, (जरा) बुढ़ापा (खालत्यम) गञ्जापन (पालित्यम) केशो के भूरेपन ने (शरीरम्) शरीर मे (अनु) धीरे-धीरे (प्र अविशन्) प्रवेश किया ॥१९॥

स्तेयं दुष्कृतं वृजिनं सत्यं यज्ञो यशो बृहत् ।
बलं च क्षत्रमोजश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥२०॥

पदार्थ—(स्तेयम्) चोरी, (दुष्कृतम्) दुष्टकर्म, (वृजिनम्) पाप, (सत्यम्) सत्य [यथार्थ कथन कर्म आदि], (यज्ञ) यज्ञ [देवपूजा आदि] और (बृहत्) वृद्धिकारक (यश) यश, (बलम्) बल (च) और (ओज) पराक्रम (च) और (क्षत्रम्) हानि से रक्षक गुण [क्षत्रियपन] ने (शरीरम) शरीर मे (अनु) धीरे-धीरे (प्र अविशन्) प्रवेश किया ॥२०॥

भूतिश्च वा अभूतिश्च रातयोऽरातयश्च याः ।
क्षुधश्च सर्वास्तृष्णाश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥२१॥

पदार्थ—(भूति) सम्पत्ति, (च वै) और भी (अभूति·) निर्धनता (च) और (रातय) दान शक्तियां, (च) और (याः) जो (अरातयः) कञ्जूसी की बातें [है, उन्होंने] (च) और (क्षुध) भूख (च) और (सर्वा) सब (तृष्णा) तृष्णाओं ने (शरीरम्) शरीर मे (अनु) धीरे-धीरे (प्र अविशन्) प्रवेश किया ॥२१॥

निन्दाश्च वा अनिन्दाश्च यच्च हन्तेति नेति च ।
शरीरं श्रद्धा दक्षिणाश्रद्धा चानु प्राविशन् ॥२२॥

पदार्थ—(निन्दा) निन्दाएं [गुणों मे दोष लगाना] (च वै) और भी (अनिन्दा) अनिन्दाएँ [स्तुति गुणो के कथन] (च) और (यत्) जो कुछ (हन्त) 'हां'—(इति) ऐसा, (च) और (न) "न"—(इति) ऐसा है और (दक्षिणा) दक्षिणा [प्रतिष्ठा], (श्रद्धा) श्रद्धा [सत्य, ईश्वर और वेद में विश्वास] (च) और (अश्रद्धा) अश्रद्धा [ईश्वर और वेद मे भक्ति न होना] [इन सब ने] (शरीरम्) शरीर मे (अनु) धीरे-धीरे (प्र अविशन्) प्रवेश किया ॥२२॥

विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्यम् ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशदृचः सामाथो यजुः ॥२३॥

पदार्थ—(विद्या) विद्याएँ [तत्त्वज्ञान] (च वै) और भी (अविद्याः) अविद्याएँ [मिथ्या कल्पनाएँ] (च) और (यत्) जो कुछ (अन्यत्) दूसरा (उपदेश्यम्) उपदेश योग्य कर्म [विद्या और अविद्या मे सम्बन्ध वाला विषय है, वह] और (ब्रह्म) ब्रह्म [ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय संयम आदि तप] (ऋच·) ऋचाएँ [पदार्थों की गुणप्रकाशक विद्यायें] (साम· सामानि) मोक्षज्ञान [मोक्ष विद्यायें] (अथो) और भी (यजु यजूंषि) यजुर्ज्ञान [ब्रह्म निरूपक विद्याएँ], [इन सब ने](शरीरम्) शरीर मे (प्र अविशत्) प्रवेश किया ॥२३॥

आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये ।
हसो नरिष्टा नृत्तानि शरीरमनु प्राविशन् ॥२४॥

पदार्थ—(आनन्दा) आनन्द, (मोदाः) हर्ष (प्रमुद·) बड़े आनन्द (च) और (ये) (अभिमोदमुद) बड़े उत्सवो से हर्ष देने वाले पदार्थ हैं [वे सब और]। (हस·) हंसी, (नृत्तानि) नाचो और (नरिष्टा) मङ्गल कामो [खेल कूद आदि] [इन सब] ने (शरीरम्) शरीर मे (अनु) धीरे-धीरे (प्र अविशन्) प्रवेश किया ॥२४॥

आलापाश्च प्रलापाश्चाभीलापलपश्च ये ।
शरीरं सर्वे प्राविशन्नायुजः प्रयुजो युजः ॥२५॥

पदार्थ—(आलापाः) आलाप [सार्थक बातें] (च) और (प्रलापाः) प्रलाप [अनर्थक बातें, बकवाद] (च च) और (ये) जो (अभिलापलप) व्याख्यानों के कथन व्यवहार हैं, [उन सब ने और] (आयुजः) उद्योगों, (प्रयुज) प्रयोजनों और (युज) योगो [समाधि क्रियाओं], (सर्वे) इन सब ने (शरीरम्) शरीर में (प्र अविशन्) प्रवेश किया ॥२५॥

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ्मनः शरीरेण त ईयन्ते ॥२६॥

पदार्थ—(प्राणापानौ) प्राण और अपान [भीतर और बाहिर जाने वाला श्वास], (चक्षुः) नेत्र, (श्रोत्रम्) कान, (च) और (या) जो (अक्षिति) [सुख की] निर्हानि (च) और (क्षिति) [दुःख की] हानि । (व्यानोदानौ) व्यान [सब नाड़ियों में रस पहुँचानेवाला वायु] और उदान [ऊपर को चढ़ने वाला वायु], (वाक्) वाणी और (मनः) मन, (ते) ये सब (शरीरेण) शरीर के साथ (ईयन्ते) चलते हैं ॥२६॥

आशिषश्च प्रशिषश्च संशिषो विशिषश्च याः ।

चित्तानि सर्वे संकल्पाः शरीरमनु प्राविशन् ॥२७॥

पदार्थ—(आशिषः) आशीर्वादों [हित-प्रार्थनाओं], (च) और (प्रशिषः) उत्तम शासनों (च) और (संशिषः) यथावत् प्रबन्धों (च) और (याः) जो (विशिषः) विशेष परामर्श हैं [जिन्होंने], (चित्तानि) अनेक विचारों और (सर्वे) सब (संकल्पाः) संकल्पों [मनोरथों] ने (शरीरम्) शरीर में (अनु) धीरे धीरे (प्र अविशन्) प्रवेश किया ॥२७॥

आस्तेयीश्च वास्तेयीश्च त्वरणाः कृपणाश्च याः ।

गुह्याः शुक्रा स्थूला अपस्ता बीभत्सावसादयन् ॥२८॥

पदार्थ—(आस्तेयीः) अस्ति [रुधिर] में रहने वाले (च) और (वास्तेयीः) वस्ति [पेडू वा मूत्राशय] में रहने वाले (च) और (त्वरणाः) शीघ्र चलने वाले (च) और (कृपणाः) दुर्बल [पतले], (स्थूलाः) गाढ़े (गुह्याः) गुहा [शरीर के गुप्त स्थान] में रहने वाले और (शुक्राः) वीर्य [वा रज] में रहने वाले (याः) जो [जल हैं], (ताः अपः) उन जलों को (बीभत्सौ) परस्पर बंधे हुए [शरीर] में (असादयन्) उन [ईश्वर-नियमों] ने पहुँचाया ॥२८॥

अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो असादयन् ।

रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥२९॥

पदार्थ—(आपः) व्यापक (देवाः) दिव्यगुणों [ईश्वर नियमों] ने (तत्) फिर (अस्थि) हड्डी को (समिधम्) समिधा [इन्धन-समान पाक-साधन] (कृत्वा) बनाकर और (रेतः) वीर्य [वा स्त्री रज] को (आज्यम्) घृत [घृतसमान पुष्टि-कारक] (कृत्वा) बनाकर (अष्ट) आठ प्रकार से [रस अर्थात् खाये अन्न का सार, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, वीर्य, वा स्त्री रज इन सात धातुओं और मन के द्वारा] (पुरुषम्) पुरुष [प्राणी के शरीर] को (असादयन्) चलाया, और [उस में] (आ अविशन्) उन्होंने प्रवेश किया ॥२९॥

या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह ।

शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेऽधि प्रजापतिः ॥३०॥

पदार्थ—(याः) जो (आपः) व्यापक [इन्द्रियों की शक्तियां] (च) और (याः) जो (देवताः) दिव्यगुण वाले [इन्द्रियों के गोलक] हैं, और (या) जो (विराट्) विराट् [विविध प्रकार शोभायमान प्रकृति] (ब्रह्मणा सह) ब्रह्म [परमात्मा] के साथ है । [इस सब ने और] (ब्रह्म) अन्न ने (शरीरम्) शरीर में (प्र अविशत्) प्रवेश किया, और (प्रजापतिः) प्रजापति [इन्द्रिय आदि प्रजाओं का स्वामी, जीवात्मा] (शरीरे) शरीर में (अधि) अधिकारपूर्वक [ठहरा] ॥३०॥

सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे ।

अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये ॥३१॥

पदार्थ—(सूर्यः) सूर्य ने (पुरुषस्य) [जीवात्मा] के (चक्षुः) नेत्र को, (वातः) वायु ने (प्राणम्) प्राण [उसके श्वास प्रश्वास] को (वि) विशेष करके (भेजिरे = भेजे) स्वीकार किया । (अथ) फिर (देवाः) दिव्य पदार्थों [दूसरे इन्द्रिय आदि] ने (अस्य) इस [जीवात्मा] का (इतरम्) दूसरा (आत्मानम्) शरीर का अवयव समूह (अग्नये) अग्नि को (प्र अयच्छन्) दान किया ॥३१॥

तस्माद् वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।

सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥३२॥

पदार्थ—(तस्मात्) उस से [ब्रह्म से उत्पन्न] (वै) निश्चय करके (पुरुषम्) पुरुष [पुरुष शरीर] को (विद्वान्) जानने वाला [मनुष्य] "(ब्रह्म) ब्रह्म [परमात्मा] (इदम्) परम ऐश्वर्य वाला है" (इति) ऐसा (मन्यते) मानता है । (हि) क्योंकि (अस्मिन्) इस [परमात्मा] में (सर्वाः) सब (देवताः) दिव्य पदार्थ [पृथिवी, सूर्य आदि लोक] (आसते) ठहरते हैं, (इव) जैसे (गावः) गौएं (गोष्ठे) गोशाला में [सुख से रहती हैं] ॥३२॥

प्रथमेन प्रमारेण त्रेधा विष्वङ् वि गच्छति ।

अद एकेन गच्छत्यद एकेन गच्छतीहैकेन नि षेवते ॥३३॥

पदार्थ—(प्रथमेन) पहिले [मरण समय के पहिले] से और (प्रमारेण) मरण के साथ (त्रेधा) तीन प्रकार पर (विष्वङ्) नाना गति से वह [प्राणी] (वि गच्छति) चला चलता है । वह [प्राणी] (एकेन) एक [शुभ कर्म] से (अदः) उस [मोक्ष सुख] को (गच्छति) पाता है, (एकेन) एक [पापकर्म] से (अदः) उस [नरक स्थान] को (गच्छति) पाता है, (एकेन) एक [पुण्य पाप के साथ मिले कर्म से (इह) यहां पर [मध्य अवस्था में] (नि सेवते) नियम से रहता है ॥३३॥

अप्सु स्तीमासु वृद्धासु शरीरमन्तरा हितम् ।

तस्मिञ्छवोऽध्यन्तरा तस्माच्छवोऽध्युच्यते ॥३४॥

पदार्थ—(स्तीमासु) बाफ वाले, (वृद्धासु) बढ़े हुए (अप्सु अन्तरा) अन्तरिक्ष के भीतर (शरीरम्) शरीर (हितम्) रक्खा हुआ है । (तस्मिन् अन्तरा) उस [शरीर] के भीतर (शवः) बल [गतिकारक वा वृद्धिकारक जीवात्मा] (अधि) अधिकारपूर्वक है, (तस्मात्) उस [जीवात्मा] से (अधि) ऊपर (शवः) बल [गतिकारक वा वृद्धिकारक परमात्मा] (उच्यते) कहा जाता है ॥३४॥

卐 इति चतुर्थोऽनुवाकः 卐

卐

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ९ 卐

१—२६ काङ्कायनः । अर्बुदिः । अनुष्टुप्, १ सप्तपदा विराट् शक्वरी त्र्यवसाना, ३ पुरोष्णिक्, ४ त्र्यवसाना उष्णिग्बृहतीगर्भपरा त्रिष्टुप् षट्पदातिजगती, ९, ११, १४, २३, २६ पथ्यापङ्क्तिः, १५, २२, २४, २५ त्र्यवसाना सप्तपदा शक्वरी, १६ त्र्यवसाना पञ्चपदा विराडुपरिष्टाज्ज्योतिस्त्रिष्टुप्; १७ त्रिपदा गायत्री ।

ये बाहवो या इषवो धन्वनां वीर्याणि च ।

असीन् परशूनायुधं चित्ताकूतं च यद्धृदि ।

सर्वं तदर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥१॥

पदार्थ—(ये) जो (बाहवः) भुजाएं, (याः) जो (इषवः) बाण, (च) और (धन्वनाम्) धनुषों के (वीर्याणि) वीर कर्म हैं [उनको] । (असीन्) तलवारों, (परशून्) फरसाओं [कुल्हाड़ों] (आयुधम्) अस्त्र-शस्त्र को, (च) और (यत्) जो कुछ (हृदि) हृदय में (चित्ताकूतम्) विचार और संकल्प है । (तत् सर्वम्) उस सब [कर्म] को (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (त्वम्) तू (अमित्रेभ्यः दृशे) अमित्रों के लिये देखने को (कुरु) कर, (च) और (उदारान्) [हमें अपने] बड़े उपायों को (प्र दर्शय) दिखादे ॥१॥

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।

संदृष्टा गुप्ता वः सन्तु या नो मित्राण्यर्बुदे ॥२॥

पदार्थ—(मित्राः) हे प्रेरक (देवजनाः) विजयी जनो ! (यूयम्) तुम (उत् तिष्ठत) उठो और (सम् नह्यध्वम्) कवचों को पहिनो । (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति] (या) जो (नः) हमारे (मित्राणि) मित्र हैं, [वे सब] (वः) तुम लोगों के (संदृष्टा) देखे हुए और (गुप्ता) रक्षित (सन्तु) होवें ॥२॥

उत्तिष्ठतमा रभेथामादानसंदानाभ्याम् ।

अमित्राणां सेना अभि धत्तमर्बुदे ॥३॥

पदार्थ—(अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [हे शूर सेनापति राजन् और प्रजागण] तुम दोनों (उत् तिष्ठतम्) खड़े हो जाओ, (आदानसंदानाभ्याम्) दोनों पकड़ने और बांधने के यन्त्रों से [युद्ध] (आ रभेथाम्) प्रारम्भ करो, और (अमित्राणाम्) वैरियों की (सेनाः) सेनाओं को (अभि धत्तम्) तुम दोनों बांध लो ॥३॥

अर्बुदिर्नाम यो देव ईशानश्च न्यर्बुदिः ।

याभ्यामन्तरिक्षमावृतमियं च पृथिवी मही ।

ताभ्यामिन्द्रमेदिभ्यामहं जितमन्वेमि सेनया ॥४॥

पदार्थ—(अर्बुदि) अर्बुदि [शूर सेनापति राजा], (यः) जो (नाम) प्रसिद्ध (देवः) विजयी पुरुष है (च) और [जो] (ईशानः) ऐश्वर्यवान् (न्यर्बुदिः) न्यर्बुदि [निरन्तर पुरुषार्थी प्रजागण] है। (याभ्याम्) जिन दोनों से (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (आवृतम्) घिरा हुआ है (च) और (इयम्) यह (मही) बड़ी (पृथिवी) पृथिवी [घिरी है]। (ताभ्याम्) उन दोनों (इन्द्रमेदिभ्याम्) वीरों के स्नेहियों के द्वारा (सेनया) [अपनी] सेना से (जितम्) जीते हुए [प्रयोजन] को (अहम्) मैं [प्रजागण] (अनु) निरन्तर (एमि) पाऊं ॥४॥

उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह।

भञ्जन्नमित्राणां सेनां भोगेभिः परि वारय ॥५॥

पदार्थ—(देवजन) हे विजयी जन ! (अर्बुदे) अर्बुदि [शूर सेनापति राजन्] (त्वम्) तू (सेनया सह) [अपनी] सेना के साथ (उत् तिष्ठ) खड़ा हो। (अमित्राणाम्) अमित्रों की (सेनाम्) सेना को (भञ्जन्) पीसता हुआ तू (भोगेभिः) भोग व्यूहों [सांप की कुण्डली के समान सेना की रचनाओं] से (परि वारय) घेर ले ॥५॥

सप्त जातान् न्यर्बुद उदाराणां समीक्षयन्।

तेभिष्ट्वमाज्ये हुते सर्वैरुत्तिष्ठ सेनया ॥६॥

पदार्थ—(न्यर्बुदे) हे न्यर्बुदि [निरन्तर पुरुषार्थी प्रजागण] (उदाराणाम्) बड़े उपायों में से (सप्त) सात (जातान्) उत्तम [उपायों अर्थात् राज्य के अङ्गों] को (समीक्षयन्) दिखाता हुआ तू (तेभिः सर्वैः) उन सब [शत्रुओं] के साथ [जैसे अग्नि में] (आज्ये हुते) घी चढ़ने पर, (त्वम्) तू (सेनया) [अपनी] सेना सहित (उत् तिष्ठ) खड़ा हो ॥६॥

प्रतिघ्नानाश्रुमुखी कृधुकर्णी च क्रोशतु।

विकेशी पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥७॥

पदार्थ—(प्रतिघ्नाना) [सिर आदि] धुनती हुई, (अश्रुमुखी) मुख पर आंसू बहाती हुई, (कृधुकर्णी) मन्द कानों वाली (च) और (विकेशी) केश बिखरे हुए [शत्रु की माता, पत्नी, बहिन आदि] (पुरुषे हते) [अपने] पुरुष के मारे जाने पर (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (तव) तेरे (रदिते) तोड़ने-फोड़ने पर (क्रोशतु) रोवे ॥७॥

संकर्षन्ती करूकरं मनसा पुत्रमिच्छन्ती।

पतिं भ्रातरमात्स्वान् रदिते अर्बुदे तव ॥८॥

पदार्थ—(करूकरम्) कार्यकर्त्ता (पुत्रम्) पुत्र (पतिम्) पति, (भ्रातरम्) भाई (आत्) और (स्वान्) बन्धुओं को (संकर्षन्ती) समेटती हुई और (मनसा) मन से (इच्छन्ती) चाहती हुई [माता, पत्नी, भगिनी आदि स्त्री] (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति] (ते) तेरे (रदिते) तोड़ने-फोड़ने पर [रोवे] ॥८॥

अलिक्लवा जाष्कमदा गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः। ध्वाङ्क्षाः

शकुनयस्तृप्यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥९॥

पदार्थ—(अलिक्लवाः) अपने बल से भय देने वाले [चील आदि] (जाष्कमदाः) हिंसा में सुख मनाने वाले [सारस आदि], (गृध्राः) खाऊ [गिद्ध], (श्येनाः) श्येन [बाज], (ध्वाङ्क्षाः) कौवे, (शकुनयः) चीलें, (पतत्रिणः) पक्षीगण (तृप्यन्तु) तृप्त होवें, [जिन पक्षियों को] (अमित्रेषु) अमित्रों पर (समीक्षयन्) दिखाता हुआ, तू (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (तव) अपने (रदिते) तोड़-फोड़ कर्म में [वर्तमान हो] ॥९॥

अथो सर्वं श्वापदं मक्षिका तृप्यतु क्रिमिः।

पौरुषेयेऽधि कुणपे रदिते अर्बुदे तव ॥१०॥

पदार्थ—(अथो) और भी (सर्वम्) सब (श्वापदम्) कुत्ते के से पैर वाले [सियार आदि हिंसकों का समूह], (मक्षिका) मक्खी और (क्रिमिः) कीड़ा (पौरुषेये) पुरुषों की (कुणपे अधि) लोथों के ऊपर (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (तव) तेरे (रदिते) तोड़ने-फोड़ने पर (तृप्यतु) तृप्त होवें ॥१०॥

आ गृह्णीतं सं बृहतं प्राणापानान् न्यर्बुदे। निवाशा घोषाः

सं यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥११॥

पदार्थ—(न्यर्बुदे) हे न्यर्बुदि ! [निरन्तर पुरुषार्थी प्रजागण और शूर सेनापति राजन् !] [शत्रुओं को] (आ गृह्णीतम्) तुम दोनों घेर लो, और [उनके] (प्राणापानान्) श्वास प्रश्वासों को (सम् बृहतम्) उखाड़ दो। (निवाशाः) लगातार बोलते हुए (घोषाः) घोषणा शब्द (सम् यन्तु) गूंज उठें, [जिन घोषणाओं को] (अमित्रेषु) अमित्रों पर (समीक्षयन्) दिखाता हुआ तू (अर्बुदे) ! हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] ! (तव) अपने (रदिते) तोड़-फोड़ कर्म में [वर्तमान हो] ॥११॥

उद् वेपय सं विजन्तां भियामित्रान्त्सं सृज।

उरुग्राहैर्बाह्वङ्कैर्विध्यामित्रान् न्यर्बुदे ॥१२॥

पदार्थ—[उन्हें] (उद् वेपय) कंपा दे, (संविजन्ताम्) वे घबड़ाकर चले जावें, (अमित्रान्) अमित्रों को (भिया) भय के साथ (सं सृज) संयुक्त कर। (न्यर्बुदे) हे न्यर्बुदि ! [निरन्तर पुरुषार्थी प्रजागण] (उरुग्राहैः) चौड़ी पकड़ वाले (बाह्वङ्कैः) भुजबन्धनों से (अमित्रान्) अमित्रों को (विध्य) बेध ले ॥१२॥

मुह्यन्त्वेषां बाहवश्चित्ताकूतं च यद्धृदि।

मैषामुच्छेषि किं चन रदिते अर्बुदे तव ॥१३॥

पदार्थ—(एषाम्) इन [शत्रुओं] की (बाहवः) भुजाएं (मुह्यन्तु) निकम्मी हो जावें, (च) और (यत्) जो कुछ (हृदि) हृदय में (चित्ताकूतम्) विचार और संकल्प हैं, (एषाम्) इनका (किं चन) वह कुछ भी, (अर्बुदे) हे अर्बुदि [शूर सेनापति राजन्] (तव) तेरे (रदिते) तोड़ने-फोड़ने पर (मा उत् शेषि) न बचा रहे ॥१३॥

प्रतिघ्नानाः सं धावन्तूरः पटूरावाघ्नानाः। अघारिणी-

र्विकेश्यो रुदत्यः पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥१४॥

पदार्थ—(उरः) छाती और (पटूरौ) दोनों पटूरों [छाती के दोनों ओर के भागों] को (प्रतिघ्नानाः) धुनती हुई और (आघ्नानाः) पीटती हुई, (अघारिणीः) बिना तेल लगाये, (विकेश्यः) केश बिखरे हुए, (रुदत्यः) रोती हुई [स्त्रियां] (पुरुषे हते) [अपने] पुरुष के मारे जाने में, (अर्बुदे) हे अर्बुदि, [शूर सेनापति राजन्] ! (तव) तेरे (रदिते) तोड़ने-फोड़ने पर (सं धावन्तु) दौड़ती फिरें ॥१४॥

श्वन्वतीरप्सरसो रूपका उतार्बुदे।

अन्तःपात्रे रेरिहतीं रिशां दुर्णिहितैषिणीम्

सर्वास्ता अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥१५॥

पदार्थ—(अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (श्वन्वतीः) वृद्धि वाली (उत) और (अप्सरसः) प्रजाओं में व्यापनवाली (रूपकाः) सुन्दरताये जताने वाली क्रियाओं को [मित्रों के लिये] (अन्तःपात्रे) भीतरले पात्र [अन्तःकरण] में (रेरिहतीम्) अत्यन्त युद्ध करनेवाली (दुर्णिहितैषिणीम्) दुष्ट प्रयोजन का खोजने वाली (रिशाम्) पीड़ा को, (ताः सर्वाः) उन सब [पीड़ाओं] को, (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (त्वम्) तू (अमित्रेभ्यः दृशे) अमित्रों के लिये देखने को (कुरु) कर, (च) और [हमें अपने] (उदारान्) बड़े उपायों को (प्रदर्शय) दिखादे ॥१५॥

खडूरेऽधिचङ्क्रमां खर्विकां खर्ववासिनीम्।

य उदारा अन्तर्हिता गन्धर्वाप्सरसश्च ये।

सर्पा इतरजना रक्षांसि ॥१६॥

पदार्थ—(खडूरे) खड्ग [तलवार] पर (अधिचङ्क्रमाम्) निधड़क चढ़ जाने वाली, (खर्विकाम्) अभिमानिनी, (खर्ववासिनीम्) खर्वों [बहुत गिनती मनुष्यों] में रहने वाली [सेना] को और (ये) जो (उदाराः) उदार [दानशील] (च) और (ये) जो (अन्तर्हिताः) अन्तःकरण से हितकारी (गन्धर्वाप्सरसः) गन्धर्व [पृथिवी के धारण करने वाले] और अप्सर [प्रजाओं वा आकाश में चलने वाले विवेकी लोग हैं, उनको, दिखा] और [जो] (सर्पाः) सर्प [के समान हिंसक], और (इतरजनाः) पामरजन (रक्षांसि) राक्षस हैं [उनको, कंपा दे ॥१६॥

चतुर्दंष्ट्राञ्छ्यावदतः कुम्भमुष्काँ असृङ्मुखान्।

स्वभ्यसा ये चोद्भ्यसाः ॥१७॥

पदार्थ—(चतुर्दंष्ट्रान्) चार डाढ़ों वाले [बड़े हाथियों] और (श्यावदतः) काले दांतों वाले, (कुम्भमुष्कान्) कुम्भसमान [घड़ा-समान [illegible]] अंडकोश वाले (असृङ्मुखान्) रुधिर मुखों [सिंह आदि जीवों] को (च) और (ये) जो (स्वभ्यसाः) स्वभाव से भयानक [और जो] (उद्भ्यसाः) ऊपरी [आकार से] भयानक हैं [उनको, कंपा दे] ॥१७॥

उद् वेपय त्वमर्बुदेऽमित्राणाममूः सिचः।

जयांश्च जिष्णुश्चामित्राञ् जयतामिन्द्रमेदिनौ ॥१८॥

पदार्थ—(अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (त्वम्) तू (अमित्राणाम्) शत्रुओं की (अमू) उन (सिचः) सेचनशील [उमड़ती हुई सेनाओं] को (उप वेपय) कंपा दे । (जयन्) जीतता हुआ [प्रजागण] (च च) और (जिष्णुः) विजयी [राजा], (इन्द्रमेदिनौ) जीवों के स्नेही आप दोनों (अमित्रान्) वैरियों का (जयताम्) जीतें ॥१८॥

प्रब्लीनो मृदितः शयां हुतोऽमित्रो न्यर्बुदे ।

अग्निजिह्वा धूमशिखा जयन्तीर्यन्तु सेनया ॥१९॥

पदार्थ—(न्यर्बुदे) हे न्यर्बुदि ! [निरन्तर पुरुषार्थी प्रजागण] (प्रब्लीनः) घिरा हुआ, (मृदितः) कुचला हुआ (हतः) मारा गया (अमित्रः) वैरी (शयाम्) सो जावे । (अग्निजिह्वाः) अग्नि की जीभें [लपटें] और (धूमशिखाः) धुएँ की चोटियां [आग्नेय शस्त्रों से] (सेनया) सेना द्वारा (जयन्तीः) जीतती हुई (यन्तु) चलें ॥१९॥

तयार्बुदे प्रणुत्तानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ।

अमित्राणां शचीपतिर्मामीषां मोचि कश्चन ॥२०॥

पदार्थ—(अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (शचीपतिः) वाणियों, कर्मों और बुद्धियों के पालन वाले, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले आप] (तया) उस [सेना के द्वारा] (प्रणुत्तानाम्) बाहिर हटाये गये (अमित्राणाम्) वैरियों में से (वरंवरम्) अच्छे-अच्छे को (हन्तु) मारे । (अमीषाम्) इनमें से (कः चन) कोई भी (मा मोचि) न छूटे ॥२०॥

उत्कसन्तु हृदयान्यूर्ध्वः प्राण उदीषतु ।

शौष्कास्यमनु वर्ततामित्रान् मोत मित्रिणः ॥२१॥

पदार्थ—[शत्रुओं के] (हृदयानि) हृदय (उत् कसन्तु) उखस जावें [हिल जावें] (प्राणः) प्राण [श्वास प्रश्वास] (ऊर्ध्वः) ऊंचा होकर (उत् ईषतु) चढ़ जावे । (शौष्कास्यम्) मुख का सूखा (अमित्रान् अनु) शत्रुओं को (वर्तताम्) व्यापे, (उत) और (मित्रिणः) [हमारे] मित्र रखनेवाले जनों को (मा) न [व्यापे] ॥२१॥

ये च धीरा ये चाधीराः पराञ्चो बधिराश्च ये ।

तमसा ये च तूपरा अथो बस्ताभिवासिनः ।

सर्वांस्ताँ अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥२२॥

पदार्थ—(ये) जो (धीराः) धीर [धैर्यवान्] (च च) और (ये) जो (अधीराः) अधीर [चंचल], (पराञ्चः) हट जाने वाले (च) और (ये) जो (बधिराः) बहिरे [शिक्षा न सुनने वाले] हैं । (च) और (ये) जो (तमसा) अन्धकारयुक्त (तूपराः) हिंसक (अथो) और (बस्ताभिवासिनः) उद्योगों में रहने वाले हैं । (तान् सर्वान्) इन सब [लोगों] को (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (त्वम्) तू (अमित्रेभ्यः दृशे) अमित्रों के देखने के लिये (कुरु) कर (च) और [हमें अपने] (उदारान्) बड़े उपायों को (प्र दर्शय) दिखादे ॥२२॥

अर्बुदिश्च त्रिषन्धिश्चामित्रान् नो वि विध्यताम् ।

यथैषामिन्द्र वृत्रहन् हनाम शचीपतेऽमित्राणां सहस्रशः ॥२३॥

पदार्थ—(अर्बुदिः) अर्बुदि [शूर सेनापति राजा] (च च) और (त्रिषन्धिः) त्रिसन्धि [तीनों कर्म, उपासना और ज्ञान में मेल अर्थात् प्रीति रखने वाला विद्वान् पुरुष, आप दोनों] (नः) हमारे (अमित्रान्) शत्रुओं को (वि विध्यताम्) छेद डालें । (यथा) जिससे (वृत्रहन्) हे अन्धकारनाशक ! (शचीपते) वाणियों, कर्मों और बुद्धियों के पालनवाले (इन्द्र) [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (एषाम्) इन (अमित्राणाम्) शत्रुओं को (सहस्रशः) सहस्र-सहस्र करके (हनाम) हम मारें ॥२३॥

वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः ।

गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन् ।

सर्वांस्ताँ अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥२४॥

पदार्थ—(वनस्पतीन्) सेवनीय शास्त्रों के पालन करने वाले पुरुषों (वानस्पत्यान्) सेवनीय शास्त्रों के पालन करने वालों के सम्बन्धी पदार्थों (ओषधीः) अन्न आदि ओषधियों, (उत) और (वीरुधः) जड़ी-बूटियों का, (गन्धर्वाप्सरसः) गन्धर्वों [पृथिवी के धारण करने वालों] और अप्सरों [आकाश में चलने वालों] (सर्पान्) सर्पों [सर्पों के समान तीव्र दृष्टिवालों] (देवान्) विजय चाहने वालों, (पुण्यजनान्) पुण्यात्मा (पितॄन्) पितरों [महाविद्वानों] (तान् सर्वान्) इन सब लोगों को (अर्बुदे) हे अर्बुदि [शूर सेनापति राजन्] ! (त्वम्) तू (अमित्रेभ्यः दृशे) अमित्रों के देखने को (कुरु) कर (च) और [हमें] (उदारान्) बड़े उपायों को (प्र दर्शय) दिखादे ॥२४॥

ईशां वो मरुतो देव आदित्यो ब्रह्मणस्पतिः ।

ईशां व इन्द्रश्चाग्निश्च धाता मित्रः प्रजापतिः ।

ईशां व ऋषयश्चक्रुरमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥२५॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (मरुतः) शूर लोग, (देवः) विजयी, (आदित्यः) आदित्य [अखण्ड ब्रह्मचारी] और (ब्रह्मणः पतिः) वेद का रक्षक पुरुष (वः) तुम्हारे (ईशाम्) शासक [हुए हैं ।] (इन्द्रः) बड़ा ऐश्वर्यवान्, (अग्निः) तेजस्वी, (धाता) धारणकर्ता (च) और (मित्रः) प्रेरक (च) और (प्रजापतिः) प्रजापालक मनुष्य (वः) तुम्हारे (ईशाम्) शासक [हुए हैं] । (ऋषयः) ऋषि लोग [महाज्ञानी पुरुष] (वः) तुम्हारे (ईशां चक्रुः) शासक हुए हैं, [जिन विद्वानों को] (अमित्रेषु) वैरियों पर (समीक्षयन्) दिखाता हुआ, (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (तव) अपने (रदिते) तोड़-फोड़ कर्म में [तू वर्तमान हुआ है] ॥२५॥

तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।

इमं संग्रामं संजित्य यथालोकं वि तिष्ठध्वम् ॥२६॥

पदार्थ—(तेषां सर्वेषाम्) उन सब के (ईशानाः) शासक होकर, (मित्राः) हे प्रेरक (देवजनाः) विजयी जनो ! (यूयम्) तुम (उत् तिष्ठत) उठो और (सं नह्यध्वम्) कवचों को पहिनो । (इमम् सङ्ग्रामम्) इस संग्राम को (संजित्य) जीतकर (यथालोकम्) अपने-अपने लोकों [स्थानों] पर (वि तिष्ठध्वम्) फैलकर ठहरो ॥२६॥

卐 सूक्तम् १० 卐

१—२७ भृग्वङ्गिराः । त्रिषन्धिः । अनुष्टुप्, १ विराट्पथ्या बृहती, ३ त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुब्गर्भातिजगती, २ विराडास्तारपङ्क्तिः, ४ विराट्, ८ विराट् त्रिष्टुप्, ६ पुरोविराट् पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुप्, १२ त्रिपदा पथ्यापङ्क्तिः, १३ षट्पदा जगती, १६ त्र्यवसाना षट्पदा ककुम्मत्यनुष्टुप् त्रिष्टुग्गर्भा शक्वरी, १७ पथ्यापङ्क्तिः, २१ त्रिपदा गायत्री, २२ विराट् पुरस्ताद् बृहती, २५ ककुप्, २६ प्रस्तारपङ्क्तिः ॥

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह ।

सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत ॥१॥

पदार्थ—(उदाराः) हे उदार पुरुषो ! [बड़े अनुभवी लोगो] (उत् तिष्ठत) उठो और (केतुभिः सह) झंडों के साथ (सं नह्यध्वम्) कवचों को पहिनो [जो] (सर्पाः) सर्प [सर्पों के समान] हिंसक (इतरजनाः) पामर जन (रक्षांसि) राक्षस हैं, (अमित्रान् अनु) [उन] शत्रुओं पर (धावत) धावा करो ॥१॥

ईशां वो वेद राज्यं त्रिषन्धे अरुणैः केतुभिः सह ।

ये अन्तरिक्षे ये दिवि पृथिव्यां ये च मानवाः ।

त्रिषन्धेस्ते चेतसि दुर्णामान उपासताम् ॥२॥

पदार्थ—(त्रिषन्धे) हे त्रिसन्धि ! [तीनों कर्म उपासना और ज्ञान में मेल रखने वाले, सेनापति] (वः) तुम्हारी (ईशाम्) शासनशक्ति और (राज्यम्) राज्य [राज के विस्तार] को [तुम्हारे] (अरुणैः) रक्त वर्ण [डरावने रूप] वाले (केतुभिः सह) झंडों के साथ (वेद) मैं [प्रजाजन] जानता हूँ । (ये) जो (मानवाः) ज्ञानियों के बनाये हुए (दुर्णामानः) दुर्नामा [दुष्ट नाम वाले दोष] (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (ये) जो (दिवि) सूर्य में (च) और (ये) जो (पृथिव्याम्) पृथिवी पर हैं (ते) वे [सब दोष] (त्रिषन्धेः) [त्रिसन्धि] [त्रयीकुशल विद्वान्] के (चेतसि) चित्त में (उप) हीन होकर (आसताम्) रहें ॥२॥

अयोमुखाः सूचीमुखा अथो विकङ्कतीमुखाः । क्रव्यादो

वातरंहस आ सजन्त्वमित्रान् वज्रेण त्रिषन्धिना ॥३॥

पदार्थ—(अयोमुखाः) लोहे के समान [कठोर] मुख वाले, (सूचीमुखाः) सुई के तुल्य [पैने] मुख वाले, (विकङ्कतीमुखाः) शमी वृक्षों के-से [कटीले] मुख वाले, (क्रव्यादः) मांस खानेवाले (अथो) और (वातरंहसः) पवन के-से वेग वाले [पशु-पक्षी] (त्रिषन्धिना) त्रिसन्धि [विद्वान्] करके (वज्रेण) वज्र से [मारे गये] (अमित्रान्) वैरियों को (आ सजन्तु) चिपट जावें ॥३॥

अन्तर्धेहि जातवेद आदित्य कुणपं बहु ।

त्रिषन्धेरियं सेना सुहितास्तु मे वशे ॥४॥

पदार्थ—(जातवेदः) हे उत्तम ज्ञानवाले ! (आदित्य) हे आदित्य ! [अखण्ड ब्रह्मचारी] (बहु) बहुत (कुणपम्) लोथों को (अन्तः) [रणक्षेत्र के] बीच में (धेहि) रख । (मे) मेरी (इयम्) यह (सुहिता) अच्छे ढङ्ग से स्थापित (सेना) सेना (त्रिषन्धे) त्रिसन्धि [विद्वान् सेनापति] के (वशे) वश में (अस्तु) होवे ॥४॥

उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह ।

अयं बलिर्व आहुतस्त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया ॥५॥

पदार्थ—(देवजन) हे विजयी जन ! (अर्बुदे) हे अर्बुदि [शूर सेनापति राजन्] (त्वम्) तू (सेनया सह) [अपनी] सेना के साथ (उत् तिष्ठ) खड़ा हो । (अयम्) यह (बलिः) बलि [धर्मयुद्ध भेंट] (वः) तुम्हारे लिये (आहुतः) यथावत् दी गयी है । (त्रिषन्धेः) त्रिसन्धि [विद्वान् सेनापति] की यही (प्रिया) प्यारी (आहुतिः) आहुति [बलि वा भेंट] है ॥५॥

शितिपदी सं द्यतु शरव्येयं चतुष्पदी ।

कृत्येऽमित्रेभ्यो भव त्रिषन्धेः सह सेनया ॥६॥

पदार्थ—(शितिपदी) उजाले और अंधेरे में गतिवाली (चतुष्पदी) चारों [धर्म अर्थ काम मोक्ष] में अधिकार वाली (इयम्) यह (शरव्या) बाण विद्या में चतुर [सेना] (सं द्यतु) [शत्रुओं को] काट डाले । (कृत्ये) हे छेदनशील [सेना] ! (त्रिषन्धेः) त्रिसन्धि [त्रयीकुशल सेनापति] की (सेनया सह) सेना के साथ (अमित्रेभ्यः) शत्रुओं के मारने को (भव) वर्तमान हो ॥६॥

धूमाक्षी सं पततु कृधुकर्णी च क्रोशतु ।

त्रिषन्धेः सेनया जिते अरुणाः सन्तु केतवः ॥७॥

पदार्थ—(धूमाक्षी) धुएं भरी आँखों वाली, (कृधुकर्णी) मन्द कानों वाली [शत्रु सेना] (सं पततु) गिर जावे (च) और (क्रोशतु) रोवे । (त्रिषन्धेः) त्रिसन्धि [त्रयीकुशल सेनापति] की (सेनया) सेना द्वारा (जिते) जीतने पर (अरुणाः) रक्तवर्ण [डरावने रूप] वाले (केतवः) झंडे (सन्तु) होवें ॥७॥

अवायन्तां पक्षिणो ये वयांस्यन्तरिक्षे दिवि ये चरन्ति ।

श्वापदो मक्षिकाः सं रभन्तामामादो गृध्राः कुणपे रदन्ताम् ॥८॥

पदार्थ—(वयांसि) वे गतिवाले [प्राणी] (अव अयन्ताम्) उतरें, (ये) जो (पक्षिणः) पक्षवाले हैं और (ये) जो (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष के भीतर (दिवि) प्रकाश में (चरन्ति) चलते हैं । (श्वापदः) कुत्ते के-से पैर वाले [सियार आदि], (मक्षिकाः) मक्खियाँ (सं रभन्ताम्) चढ़ें, (आमादः) मांसाहारी (गृध्राः) गिद्ध (कुणपे) लोथ पर (रदन्ताम्) नोचें खरोचें ॥८॥

यामिन्द्रेण संधां समधत्था ब्रह्मणा च बृहस्पते ।

तयाहमिन्द्रसंधया सर्वान् देवानिह हुव इतो जयत मामुतः ॥९॥

पदार्थ—(बृहस्पते) हे बृहस्पति ! [बड़े-बड़ों के रक्षक राजन्] (याम् सन्धाम्) जिस प्रतिज्ञा को (इन्द्रेण) प्रत्येक जीव के साथ (च) और (ब्रह्मणा) ब्रह्म [परमात्मा] के साथ (समधत्थाः) तू ने ठहराया है । (अहम्) मैं [प्रजाजन] (तया) उस (इन्द्रसंधया) प्राणियों के साथ प्रतिज्ञा से (सर्वान्) सब (देवान्) विजय चाहने वाले लोगों को (इह) यहाँ (हुवे) बुलाता हूँ— "(इतः) इस ओर से (जयत) जीतो, (अमुतः) उस ओर से (मा) मत [जीतो]" ॥९॥

बृहस्पतिराङ्गिरस ऋषयो ब्रह्मसंशिताः ।

असुरक्षयणं वधं त्रिषन्धिं दिव्याश्रयन् ॥१०॥

पदार्थ—(आङ्गिरसः) विद्वानों के शिष्य (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े-बड़ों के रक्षक राजा] ने और (ब्रह्मसंशिताः) वेदज्ञान से तीक्ष्ण किये गये (ऋषयः) ऋषियों [धर्मदर्शकों] ने (दिवि) विजय की इच्छा में (असुरक्षयणम्) असुरनाशक (वधम्) शस्त्ररूप (त्रिषन्धिम्) त्रिसन्धि [त्रयीकुशल सेनापति] का (आ अश्रयन्) आश्रय लिया है ॥१०॥

येनासौ गुप्त आदित्य उभाविन्द्रश्च तिष्ठतः ।

त्रिषन्धिं देवा अभजन्तौजसे च बलाय च ॥११॥

पदार्थ—(येन) जिस [सेनापति] द्वारा (गुप्तः) रक्षित (असौ) वह (आदित्यः) आदित्य [अखण्ड ब्रह्मचारी] (च) और (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला पुरुष], (उभौ) दोनों (तिष्ठतः) ठहरते हैं । [उस] (त्रिषन्धिम्) त्रिसन्धि [त्रयीकुशल सेनापति] को (देवाः) विजय चाहने वालों ने (ओजसे) पराक्रम (च च) और (बलाय) बल के लिये (अभजन्त) सेवा है ॥११॥

सर्वांल्लोकान्त्समजयन् देवा आहुत्यानया ।

बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ॥१२॥

पदार्थ—(सर्वान् लोकान्) सब लोकों [दृश्यमान पदार्थों] को (देवाः) विजय चाहनेवालों ने (अनया) इस (आहुत्या) आहुति [बलि वा भेंट] से (सम्) सर्वथा (अजयन्) जीता है । (आङ्गिरसः) विद्वानों के शिष्य (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े-बड़ों के रक्षक राजा] ने (यम्) जिस (असुरक्षयणम्) असुरनाशक (वधम्) शस्त्र (वज्रम्) वज्ररूप [सेनापति] को (असिञ्चत) सींचा है [बढ़ाया है] ॥१२॥

बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ।

तेनाहममूं सेनां नि लिम्पामि बृहस्पतेऽमित्रान् हन्म्योजसा ॥१३॥

पदार्थ—(आङ्गिरसः) विद्वानों के शिष्य (बृहस्पतिः) [बड़े-बड़ों के रक्षक राजा] ने (यम्) जिस (असुरक्षयणम्) असुर नाशक (वधम्) शस्त्र (वज्रम्) वज्ररूप [सेनापति] को (असिञ्चत) सींचा है [बढ़ाया है] । (तेन) उसी [सेनापति] के साथ, (बृहस्पते) हे बृहस्पति ! [बड़े बड़ों के रक्षक राजन्] (अहम्) मैं [वीर पुरुष] (ओजसा) पराक्रम से (अमूम् सेनाम्) उस सेना पर (नि लिम्पामि) पोचा फेरता हूँ और (अमित्रान्) वैरियों को (हन्मि) मारता हूँ ॥१३॥

सर्वे देवा अत्यायन्ति ये अश्नन्ति वषट्कृतम् ।

इमां जुषध्वमाहुतिमितो जयत मामुतः ॥१४॥

पदार्थ—(सर्वे) वे सब (देवाः) विजयी जन (अत्यायन्ति) यहाँ चले आते हैं, (ये) जो (वषट्कृतम्) भक्ति से सिद्ध किये हुए [अन्न आदि] को (अश्नन्ति) खाते हैं । [वे तुम] ! (इमाम्) इस (आहुतिम्) आहुति [बलि वा भेंट] को (जुषध्वम्) सेवन करो—" (इतः) इस ओर से (जयत) जीतो, (अमुतः) उस ओर से (मा) मत [जीतो]" ॥१४॥

सर्वे देवा अत्यायन्तु त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया ।

संधां महतीं रक्षत ययाग्रे असुरा जिताः ॥१५॥

पदार्थ—(सर्वे) सब (देवाः) व्यवहारकुशल लोग (अत्यायन्तु) यहाँ चले आवें, (त्रिषन्धेः) त्रिसन्धि [त्रयीकुशल सेनापति] की (प्रिया) यह प्यारी (आहुतिः) आहुति [बलि वा भेंट] है । "[हे वीरो !] (महतीम्) उस बड़ी (सन्धाम्) प्रतिज्ञा को (रक्षत) रक्खो, (यया) जिस [प्रतिज्ञा] से (अग्रे) पहिले (असुराः) असुर लोग (जिताः) जीते गये हैं" ॥१५॥

वायुरमित्राणामिष्वग्राण्याञ्चतु ।

इन्द्र एषां बाहून् प्रति भनक्तु मा शकन् प्रतिधामिषुम् ।

आदित्य एषामस्त्रं वि नाशयतु चन्द्रमा युतामगतस्य पन्थाम् ॥१६॥

पदार्थ—(वायुः) वायु [बलवान् वा वायुसमान शीघ्रगामी राजा] (अमित्राणाम्) वैरियों के (इष्वग्राणि) बाणों के सिरों को (आ अञ्चतु) झुका देवे । (इन्द्रः) इन्द्र [बड़ा प्रतापी सेनानी] (एषाम्) इन [शत्रुओं] के (बाहून्) भुजाओं को (प्रति भनक्तु) तोड़ डाले, वे [शत्रु] (इषुम्) बाण (प्रतिधाम्) लगाने को (मा शकन्) न समर्थ होवें । (आदित्यः) आदित्य [अखण्ड ब्रह्मचारी, वा सूर्यसमान तेजस्वी सेनाध्यक्ष] (एषाम्) इनके (अस्त्रम्) अस्त्रों [भाले, बाण, तलवार आदि] को (वि नाशयतु) नष्ट कर देवे, (चन्द्रमाः) चन्द्रमा [आनन्ददाता व चन्द्र समान शान्तिप्रद सेनापति] (पन्थाम् अगतस्य) मार्ग पर न चलने वाले [शत्रु] का (युताम्) बन्धन करे ॥१६॥

यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे ।

तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि ॥१७॥

पदार्थ—(यदि) जो [शत्रुओं ने] (देवपुराः) राजा के नगरों पर (प्रेयुः) चढ़ाई की है, और (ब्रह्म) हमारे धन को (वर्माणि) अपने रक्षा-साधन (चक्रिरे) बनाया है । (तनूपानम्) हमारे शरीर रक्षा-साधन को (परिपाणम्) अपना रक्षा-साधन (कृण्वानाः) बनाये हुए उन लोगों ने (यत्) जो कुछ (उपोचिरे) डींग मारी है, (तत् सर्वम्) उस सब को (अरसम्) नीरस वा फीका (कृधि) कर दे ॥१७॥

क्रव्यादानुवर्तयन् मृत्युना च पुरोहितम् ।

त्रिषन्धे प्रेहि सेनया जयामित्रान् प्र पद्यस्व ॥१८॥

पदार्थ—(त्रिषन्धे) हे त्रिसन्धि ! [त्रयीकुशल राजन्] [शत्रुओं के लिये] (क्रव्यादा) मांसभक्षक [कष्ट] (च) और (मृत्युना) मृत्यु के साथ

(पुरोहितम) अग्रगामी पुरुष का (अनुवर्तयम्) अनुवर्ती होकर तू (सेनया) अपनी सेना के साथ (प्र इहि) चढ़ाई कर, (अमित्रान्) वैरियों को (जय) जीत और (प्र पद्यस्व) आगे बढ़ ॥१८॥

त्रिषन्धे तमसा त्वममित्रान् परि वारय ।

पृषदाज्यप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ॥१९॥

पदार्थ—(त्रिषन्धे) हे त्रिसन्धि ! [त्रयीकुशल राजन्] (त्वम्) तू (तमसा) अन्धकार से (अमित्रान्) वैरियों को (परि वारय) घेर ले । (पृषदाज्यप्रणुत्तानाम्) दही घृत [आदि खाद्य वस्तुओं] से हटाये गये (अमीषाम्) इन [शत्रुओं] में से (कश्चन) कोई भी (मा मोचि) न छूटे ॥१९॥

शितिपदी सं पतत्वमित्राणाममूः सिचः ।

मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां न्यर्बुदे ॥२०॥

पदार्थ—(शितिपदी) उजाले और अन्धकार में गति वाली [सेना] (अमित्राणाम्) वैरियों की (अमूः) उन (सिचः) सींचने वाली [सहायक सेनाओं] पर (सं पततु) टूट पड़े । (न्यर्बुदे) हे न्यर्बुदि ! [नित्य पुरुषार्थी राजन्] (अद्य) आज (अमित्राणाम्) वैरियों की (अमूः) वे (सेनाः) सेनायें (मुह्यन्तु) अचेत हो जावें ॥२०॥

मूढा अमित्रा न्यर्बुदे जह्येषां वरंवरम् ।

अनया जहि सेनया ॥२१॥

पदार्थ—(न्यर्बुदे) हे न्यर्बुदि ! [नित्य पुरुषार्थी राजन्] (अमित्राः) वैरी (मूढाः) घबड़ाये हुए हैं, (एषाम्) इनमें से (वरंवरम्) अच्छे-अच्छे को (जहि) मार । (अनया सेनया) इस सेना से [उन्हें] (जहि) मार ॥२१॥

यश्च कवची यश्चाकवचोऽमित्रो यश्चाज्मनि ।

ज्यापाशैः कवचपाशैरज्मनाभिहतः शयाम् ॥२२॥

पदार्थ—(यः च) जो कोई (कवची) कवच वाला है, (च) और (यः) जो कोई (अकवचः) बिना कवच वाला है, (च) और (यः) जो (अमित्रः) वैरी (अज्मनि) दौड़-झपट में है । (ज्यापाशैः) धनुषों की डोरी के फन्दों से और (कवचपाशैः) कवचों के फन्दों से (अज्मना) दौड़-झपट के साथ (अभिहतः) मार डाला गया वह [शत्रु] (शयाम्) सोवे ॥२२॥

ये वर्मिणो येऽवर्माणो अमित्रा ये च वर्मिणः ।

सर्वांस्ताँ अर्बुदे हतांछ्वानोऽदन्तु भूम्याम् ॥२३॥

पदार्थ—(ये) जो (अमित्राः) शत्रु लोग (वर्मिणः) वर्म [कवच विशेष] वाले हैं, (ये) जो (अवर्माणः) बिना वर्म वाले हैं, (च) और (ये) जो (वर्मिणः) झिलम वाले हैं । (अर्बुदे) हे अर्बुदि [शूर सेनापति] (तान् सर्वान्) उन सब (हतान्) मारे गयों को (श्वानः) कुत्ते (भूम्याम्) रणभूमि पर (अदन्तु) खावें ॥२३॥

ये रथिनो ये अरथा असादा ये च सादिनः ।

सर्वानदन्तु तान् हतान् गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ॥२४॥

पदार्थ—(ये) जो [शत्रु] (रथिनः) रथ वाले हैं, (ये) जो (अरथाः) बिना रथ वाले हैं, (ये) जो (असादाः) बिना वाहन वाले [पैदल] हैं, (च) और जो (सादिनः) वाहन वाले [घुड़चढ़े, हाथी आदि पर चढ़े हुए] हैं । (तान् सर्वान्) उन सब (हतान्) मारे गयों को (गृध्राः) गिद्ध (श्येनाः) श्येन [बाज आदि] (पतत्रिणः) पक्षीगण (अदन्तु) खावें ॥२४॥

सहस्रकुणपा शेतामामित्री सेना समरे वधानाम् ।

विविद्धा ककजाकृता ॥२५॥

पदार्थ—(वधानाम्) हथियारों की (समरे) मारामार में (विविद्धा) छेद डाली गयी, (ककजाकृता) प्यास की उत्पत्ति से सतायी गयी, (सहस्रकुणपा) सहस्रों लोथों वाली (आमित्री) वैरियों की (सेना) सेना (शेताम्) सो जावे ॥२५॥

मर्माविधं रोरुवतं सुपर्णैरदन्तु दुश्चितं मृदितं शयानम् ।

य इमां प्रतीचीमाहुतिममित्रो नो युयुत्सति ॥२६॥

पदार्थ—(सुपर्णैः = सुपर्णाः) शीघ्रगामी पक्षी [गिद्ध आदि] (मर्माविधम्) मर्मस्थानों में छिदे हुए, (रोरुवतम्) चिल्लाते हुए (मृदितम्) कुचले हुए, (शयानम्) पड़े हुए, (दुश्चितम्) उस दुष्ट विचार वाले को (अदन्तु) खावें । (यः) जो (अमित्रः) शत्रु (नः) हमारी (इमाम्) इस (प्रतीचीम्) प्रत्यक्ष प्राप्त हुई (आहुतिम्) [बलि वा भेंट] को (युयुत्सति) झगड़ना चाहता है ॥ २६॥

यां देवा अनुतिष्ठन्ति यस्या नास्ति विराधनम् ।

तयेन्द्रो हन्तु वृत्रहा वज्रेण त्रिषन्धिना ॥२७॥

पदार्थ—(याम्) जिस [आहुति] को (देवाः) विजय चाहने वाले पुरुष (अनुतिष्ठन्ति) अनुष्ठान करते हैं, (यस्याः) जिस [आहुति] की (विराधनम्) निष्फलता (न अस्ति) नहीं है । (तया) उस [आहुति] से (वृत्रहा) अन्धकारनाशक (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला पुरुष] (त्रिषन्धिना) त्रिसन्धि [त्रयीकुशल सेनापति] के साथ (वज्रेण) वज्रद्वारा [शत्रुओं को] (हन्तु) मारे ॥२७॥

卐 इति पञ्चमोऽनुवाकः 卐

॥ इत्येकादशं काण्डं समाप्तम् ॥

द्वादशं काण्डम्

प्रथमोऽनुवाकः

卐 सूक्तम् ॥१॥ 卐

१—६३ अथर्वा । भूमि । त्रिष्टुप, २ भुरिक्, ४-६, १०, ३८ त्र्यवसाना षट्पदा जगती, ७ प्रस्तार पङ्क्ति, ८, ११ त्र्यव० षट्० विराडष्टि, ९ अनुष्टुप्, १२—१३, १५ पञ्चपदा शक्वरी (१२—१३ त्र्यव०), १४ महा बृहती, १६,२१ एकाव० साम्नी त्रिष्टुप् १८ त्र्यव० षट्० त्रिष्टुबनुष्टुब्गर्भातिशक्वरी, १९-२० उरोबृहती (२० विराट्), २२त्र्यव० षट्० विराडतिजगती, २३ पञ्चपदा विराडतिजगती, २४ पंच० अनुष्टुब्गर्भा जगती; २५ त्र्यव० सप्त० उष्णिगनुष्टुब्गर्भा शक्वरी, २६-२८, ३३,३५ ३९-४१, ५०,५३,५४,५६,५९, ६३ अनुष्टुप (५३ पुरोबार्हता), ३० विराड्गायत्री, ३२ पुरस्ताज्ज्योतिः, ३४ त्र्यव० षट्० त्रिष्टुब्बृहती गर्भातिजगती, ३६ विपरीतपादलक्ष्मा पङ्क्तिः, ३७ त्र्यव० पञ्च० शक्वरी, ४१ त्र्यव० षट्० ककुम्मती शक्वरी, ४२ स्वराडनुष्टुप्, ४३ विराडास्तारपंक्ति, ४४-४५ ४९ जगती, ४६ षट्प० अनुष्टुब्गर्भा परा शक्वरी, ४७ षट्प० उष्णिगनुष्टुब्गर्भा परातिशक्वरी, ४८ पुरोऽनुष्टुप्, ५१ त्र्यव० षट्० अनुष्टुब्गर्भा ककुम्मती शक्वरी; ५२ पञ्च० अनुष्टुब्गर्भा परातिजगती, ५७ पुरोऽतिजागता जगती, ५८ पुरस्ताद्बृहती, ६१ पुरोबार्हता, ६२ पराविराट् ।

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।

सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥१॥

पदार्थ—(बृहत्) बड़ा हुआ (सत्यम्) सत्यकर्म, (उग्रम्) उग्र (ऋतम्) सत्यज्ञान, (दीक्षा) दीक्षा [आत्मनिग्रह], (ब्रह्म) ब्रह्मचर्य [वेदाध्ययन, वीर्यनिग्रह रूप] (तपः) तप [व्रत धारण] और (यज्ञः) यज्ञ [देवपूजा, सत्संग और दान] (पृथिवीम्) पृथिवी को (धारयन्ति) धारण करते हैं । (नः) हमारे (भूतस्य) बीते हुए और (भव्यस्य) होनेवाले [पदार्थ] की (पत्नी) पालन करनेवाली (सा पृथिवी) वह पृथिवी (उरुम्) चौड़ा (लोकम्) स्थान (नः) हमारे लिये (कृणोतु) करे ॥१॥

असंबाधं बध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ।

नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥२॥

पदार्थ—(मानवानाम्) मान वालों वा मननशीलों के (असंबाधम्) गति रोकनेवाले व्यवहार को (बध्यतः) मिटाती हुई (यस्याः) जिस [पृथिवी] के

[मध्य] (उद्वतः) ऊंचे और (प्रवतः) नीचे देश और (बहु) बहुत से (समम्) सम स्थान हैं। (या) जो (नानावीर्याः) अनेक वीर्य [बल] वाली (ओषधीः) ओषधियों [अन्न, सोम लता आदि] को (बिभर्ति) रखती है, (पृथिवी) वह पृथिवी (नः) हमारे लिये (प्रथताम्) चौड़ी होवे और (नः) हमारे लिये (राध्यताम्) सिद्धि करे ॥२॥

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।

यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥३॥

पदार्थ—(यस्याम्) जिस [भूमि] पर (समुद्रः) समुद्र (उत) और (सिन्धुः) नदी और (आपः) जलधारायें [झरने, कूप आदि] हैं, (यस्याम्) जिस पर (अन्नम्) अन्न और (कृष्टयः) खेतियां (संबभूवुः) उत्पन्न हुई हैं। (यस्याम्) जिस पर (इदम्) यह (प्राणत्) श्वास लेता हुआ और (एजत्) चेष्टा करता हुआ [जगत्] (जिन्वति) चलता है, (सा भूमिः) वह भूमि (नः) हमें (पूर्वपेये) श्रेष्ठों से रक्षा-योग्य पद पर (दधातु) ठहरावे ॥३॥

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।

या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥४॥

पदार्थ—(यस्याः पृथिव्याः) जिस पृथिवी की (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) बड़ी दिशायें हैं, (यस्याम्) जिस में (अन्नम्) अन्न और (कृष्टयः) खेतियां (संबभूवुः) उत्पन्न हुई हैं। (या) जो (बहुधा) अनेक प्रकार से (प्राणत्) श्वास लेते हुए और (एजत्) चेष्टा करते हुए [जगत] को (बिभर्ति) पोषती है, (सा भूमिः) वह भूमि (नः) हमें (गोषु) गौओं में (अपि) और भी (अन्ने) अन्न में (दधातु) रक्खे ॥४॥

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।

गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥५॥

पदार्थ—(यस्याम्) जिस [पृथिवी] पर (पूर्वे) पूर्वकाल में (पूर्वजनाः) पूर्वजों ने (विचक्रिरे) बढ़कर कर्तव्य किये हैं, (यस्याम्) जिस पर (देवाः) देवताओं [विजयी जनों] ने (असुरान्) असुरों [दुष्टों] को (अभ्यवर्तयन्) हराया है। (गवाम्) गौओं, (अश्वानाम्) अश्वों (च) और (वयसः) अन्न की (विष्ठा) चौकी [ठिकाना], (पृथिवी) वह पृथिवी (नः) हम को (भगम्) ऐश्वर्य और (वर्चः) तेज (दधातु) देवे ॥५॥

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।

वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥६॥

पदार्थ—(विश्वम्भरा) सब को सहारा देने वाली, (वसुधानी) धनों की रखने वाली (प्रतिष्ठा) दृढ़ आधार (हिरण्यवक्षाः) सुवर्ण छाती में रखने वाली, (जगतः) चलने वाले [उद्योगी] की (निवेशनी) सुख देने वाली, (वैश्वानरम्) सब नरों के हितकारी (अग्निम्) अग्नि [के समान प्रतापी मनुष्य] को (बिभ्रती) पोषण करनेवाली (इन्द्रऋषभा) इन्द्र [परमात्मा वा मनुष्य वा सूर्य] को प्रधान मानने वाली (भूमिः) भूमि (द्रविणे) बल [वा धन] के बीच (नः) हम को (दधातु) रक्खे ॥६॥

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम् ।

सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥७॥

पदार्थ—(याम्) जिस (विश्वदानीम्) सब कुछ देने वाली (भूमिम्) भूमि [आश्रय-स्थान], (पृथिवीम्) पृथिवी [फैले हुए धरातल] को (अस्वप्नाः) बिना सोते हुए (देवाः) देवता [विजयी पुरुष] (अप्रमादम्) बिना चूक (रक्षन्ति) बचाते हैं। (सा) वह (नः) हमको (प्रियम्) प्रिय (मधु) मधु [मधुविद्या, पूर्णविज्ञान] (दुहाम्) दुहा करे, (अथो) और भी (वर्चसा) तेज [बल पराक्रम] के साथ (उक्षतु) बढ़ावे ॥७॥

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद् यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः ।

यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः ।

सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥८॥

पदार्थ—(या) जो [भूमि] (अर्णवे अधि) जल से भरे समुद्र के ऊपर (सलिलम्) जल [भाप] (अग्रे) पहिले (आसीत्) थी, (मनीषिणः) मनन-शील लोग (मायाभिः) अपनी बुद्धियों से (याम् अन्वचरन्) जिस [भूमि] के पीछे-पीछे चले हैं [सेवा करते रहे हैं]। (यस्याः पृथिव्याः) जिस पृथिवी का (हृदयम्) हृदय [भीतरी बल] (परमे) बहुत बड़े (व्योमन्) विविध रक्षक [आकाश] में (सत्येन) सत्य [अविनाशी परमात्मा] से (आवृतम्) ढका हुआ (अमृतम्) बिना मरा [सदा उपजाऊ] है। (सा भूमिः) वह भूमि (नः) हम को (त्विषिम्) तेज और (बलम्) बल का सेना (उत्तमे) सब से श्रेष्ठ (राष्ट्रे) राज्य के बीच (दधातु) दान करे ॥८॥

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।

सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥९॥

पदार्थ—(यस्याम्) जिस भूमि पर (परिचराः) सेवाशील वाले (समानीः) एक से स्वभाववाली (आपः) आप्त प्रजाएं [सत्यवक्ता लोग] (अहोरात्रे) दिन रात्रि (अप्रमादम्) बिना चूक (क्षरन्ति) बहते हैं। (भूरिधारा) अनेक धारण शक्तियोंवाली (सा भूमिः) वह भूमि (नः) हमको (पयः) अन्न (दुहाम्) दुहा करे, (अथो) और भी (वर्चसा) तेज के साथ (उक्षतु) बढ़ावे ॥९॥

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे । इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः । सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥१०॥

पदार्थ—(याम्) जिस [भूमि] को (अश्विनौ) दिन और रात्रि ने (अमिमाताम्) मापा है, (यस्याम्) जिस [भूमि] पर (विष्णुः) व्यापक सूर्य ने (विचक्रमे) पांव रक्खा है। (याम्) जिस [भूमि] को (शचीपतिः) वाणियों, कर्मों और बुद्धियों में चतुर (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] ने (आत्मने) अपने लिये (अनमित्राम्) शत्रुरहित (चक्रे) किया है। (सा भूमिः) वह भूमि (नः) हमारे [हम सब के] हित के लिये (मे) मुझ को (पयः) अन्न [वा दूध] (वि) विविध प्रकार (सृजताम्) देवे, [जैसे] (माता) माता (पुत्राय) पुत्र को [अन्न वा दूध देती है] ॥१०॥

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु । बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् । अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥११॥

पदार्थ—(पृथिवि) हे पृथिवी ! [हमारे लिये] (ते) तेरी (गिरयः) पहाड़ियां और (हिमवन्तः) हिम वाले (पर्वताः) पहाड़, और (ते) तेरा (अरण्यम्) बन भी (स्योनम्) मनभावना (अस्तु) होवे। (बभ्रुम्) पोषण करने वाली, (कृष्णाम्) जोतने योग्य, (रोहिणीम्) उपजाऊ, (विश्वरूपाम्) अनेक [सुनहले, रुपहले आदि] रूपवाली, (ध्रुवाम्) दृढ़ स्वभाववाली, (भूमिम्) आश्रयस्थान, (पृथिवीम्) फैली हुई (इन्द्रगुप्ताम्) इन्द्रों [ऐश्वर्यवाले वीर पुरुषों] से रक्षा की गई (पृथिवीम्) पृथिवी का (अजीतः) बिना जीते हुए, (अहतः) बिना मारे गये और (अक्षतः) बिना घायल हुए (अहम्) मैं (अधि अस्थाम्) अधिष्ठाता बना हूं ॥११॥

यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः । तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः । पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥१२॥

पदार्थ—(पृथिवि) हे पृथिवी ! (यत्) जो (ते) तेरा (मध्यम्) न्याययुक्त कर्म है, (च) और (यत्) जो (नभ्यम्) क्षत्रियों का हितकारी कर्म है, और (याः) जो (ऊर्जः) बलदायक [अन्न आदि] पदार्थ (ते) तेरे (तन्वः) शरीर से (संबभूवुः) उत्पन्न हुए हैं। (तासु) उन सब [क्रियाओं] के भीतर (नः) हम को (धेहि) तू रख, और (नः) हमें (अभि) सब ओर से (पवस्व) शुद्ध कर, (भूमिः) भूमि (माता) [मेरी] माता [तुल्य है], (अहम्) मैं (पृथिव्याः) पृथिवी का (पुत्रः) पुत्र [नरक, महाकष्ट से बचाने वाला] हूं। (पर्जन्यः) सींचने वाला मेघ (पिता) [मेरे] पिता [तुल्य पालक] है, (सः) वह (उ) भी (नः) हमें (पिपर्तु) पूर्ण करे ॥१२॥

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः । यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात् । सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना ॥१३॥

पदार्थ—(यस्याम् भूम्याम्) जिस भूमि पर (विश्वकर्माणः) विश्वकर्मा [सब कामों में चतुर] लोग (वेदिम्) वेदी [यज्ञस्थान] को (परिगृह्णन्ति) घेर लेते हैं, (यस्याम्) जिस [भूमि] पर (यज्ञम्) यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण और दान व्यवहार] को (तन्वते) फैलाते हैं। (यस्याम् पृथिव्याम्) जिस पृथिवी पर (ऊर्ध्वाः) ऊंचे और (शुक्राः) उजले (स्वरवः) विजय स्तम्भ (आहुत्याः) आहुति [पूर्णाहुति, यज्ञपूर्ति] से (पुरस्तात्) पहिले (मीयन्ते) गाड़े जाते हैं। (सा) वह (वर्धमाना) बढ़ती हुई (भूमिः) भूमि (नः) हमें (वर्धयत्) बढ़ाती रहे ॥१३॥

यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद् योऽभिदासान्मनसा यो वधेन । तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥१४॥

पदार्थ—(पृथिवि) हे पृथिवी ! (यः) जो [दुष्ट] (नः) हम से (द्वेषत्) वैर करे, (यः) जो (पृतन्यात्) सेना चढ़ावे, (यः) जो (मनसा)

मन से, (यः) जो (वधेन) मारू हथियार से (अभिदासात्) सतावे । (पूर्वकृत्वरि) हे श्रेष्ठों के लिये काम करने वाली (भूमे) भूमि ! (तम्) उसको (नः) हमारे लिये (रन्धय) नाश कर ॥१४॥

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदुस्त्वं चतुष्पदः । तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥१५॥

पदार्थ—(त्वत्) तुझ से (जाताः) उत्पन्न हुए (मर्त्याः) मनुष्य (त्वयि) तुझ पर (चरन्ति) चलते हैं, (त्वम्) तू (द्विपदः) दो पायों को और (त्वम्) तू (चतुष्पदः) चौपायों को (बिभर्षि) आश्रय देती है । (पृथिवि) हे पृथिवी ! (इमे) ये सब (पञ्च) पांच [पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश, इन पांच तत्त्वों से] सबन्ध वाले (मानवाः) मनुष्य (तव) तेरे हैं, (येभ्यः मर्त्येभ्यः) जिन मनुष्यों के लिये (उद्यन्) उदय होता हुआ (सूर्यः) सूर्य (अमृतम्) बिना मरी हुई (ज्योतिः) ज्योति (रश्मिभिः) अपनी किरणों से (आतनोति) सब ओर फैलाता है ॥१५॥

ता नः प्रजाः सं दुहृतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ॥१६॥

पदार्थ—(समग्राः) सब (ताः) वे (प्रजाः) प्रजायें (नः) हमें (सम् दुहृताम्) मिलकर भरपूर करें, (पृथिवि) हे पृथिवी ! (वाचः) वाणी की (मधु) मधुरता (मह्यम्) मुझ को (धेहि) दे ॥१६॥

विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम् । शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ॥१७॥

पदार्थ—(विश्वस्वम्) सब उत्पन्न करने वाली, (ओषधीनाम्) ओषधियों [अन्न, सोमलता आदि] की (मातरम्) माता, (ध्रुवाम्) दृढ, (भूमिम्) आश्रय स्थान, (धर्मणा) धर्म [धरनेयोग्य स्वभाव वा कर्म] से (धृताम्) धारण की गयी, (शिवाम्) कल्याणी, (स्योनाम्) मनभावनी (पृथिवीम् अनु) पृथिवी के पीछे (विश्वहा) अनेक प्रकार (चरेम) हम चलें ॥१७॥

महत् सधस्थं महती बभूविथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे । महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् । सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन ॥१८॥

पदार्थ—(महती) बड़ी होकर तू (महत्) बड़ा (सधस्थम्) सहवास (बभूविथ) हुई है, (ते) तेरा (वेगः) वेग, (एजथुः) चलना और (वेपथुः) हिलना (महान्) बड़ा है । (महान्) बड़ा (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला मनुष्य] (अप्रमादम्) बिना चूक (त्वा रक्षति) तेरी रक्षा करता है । (सा) सो तू, (भूमे) हे भूमि ! (नः) हमें (हिरण्यस्य इव) सुवर्ण के जैसे (संदृशि) रूप में (प्ररोचय) प्रकाशमान करदे, (कश्चन) कोई भी (नः) हम से (मा द्विक्षत) न द्वेष करे ॥१८॥

अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु । अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ॥१९॥

पदार्थ—(भूम्याम्) भूमि में [वर्तमान] (अग्निः) अग्नि [ताप] (ओषधीषु) ओषधियों [अन्न, सोमलता आदि] में है, (अग्निम्) अग्नि को (आपः) जल (बिभ्रति) धारण करते हैं, (अग्निः) अग्नि (अश्मसु) पत्थरों [वा मेघों] में है । (अग्निः) अग्नि (पुरुषेषु अन्तः) पुरुषों के भीतर है (अग्नयः) अग्नि [के ताप] (गोषु) गौओं में और (अश्वेषु) घोड़ों में हैं ॥१९॥

अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्वन्तरिक्षम् । अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् ॥२०॥

पदार्थ—(अग्निः) अग्नि [ताप] (दिवः) सूर्य से (आ तपति) आकर तपता है, (देवस्य) कामना योग्य (अग्नेः) अग्नि का (उरु) चौड़ा (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष [अवकाश] है । (हव्यवाहम्) हव्य [आहुति के द्रव्य अथवा नाड़ियों में अन्न के रस] को ले चलने वाले, (घृतप्रियम्) घृत के चाहने वाले (अग्निम्) अग्नि को (मर्तासः) मनुष्य लोग (इन्धते) प्रकाशमान करते हैं ॥२०॥

अग्निवासाः पृथिव्यसितज्ञूस्त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु ॥२१॥

पदार्थ—(अग्निवासाः) अग्नि के साथ निवास करने वाली [अथवा अग्नि के वस्त्रवाली], (असितज्ञूः) बन्धनरहित कर्म को जतानेवाली (पृथिवी) पृथिवी (मा) मुझ को (त्विषीमन्तम्) तेजस्वी और (संशितम्) तीक्ष्ण [फुरतीला] (कृणोतु) करे ॥२१॥

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम् । भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः । सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥२२॥

पदार्थ—(भूम्याम्) भूमि पर (देवेभ्यः) उत्तम गुणों के लिये (मनुष्याः) मनुष्य (हव्यम्) लेने देने योग्य, (अरंकृतम्) शोभित करने वाले वा शक्तिमान् करने वाले (यज्ञम्) संगतिकरण व्यवहार को (ददति) दान करते हैं । (भूम्याम्) भूमि पर (मर्त्याः) मनुष्य (स्वधया) अपनी धारण शक्ति से (अन्नेन) अन्न द्वारा (जीवन्ति) जीवते हैं । (सा भूमिः) वह भूमि (नः) हम को (प्राणम्) प्राण [आत्मबल] और (आयुः) आयु [जीवन] (दधातु) देवे, और [वही] (पृथिवी) पृथिवी (मा) मुझ को (जरदष्टिम्) स्तुति के साथ प्रवृत्ति वा भोजन वाला (कृणोतु) करे ॥२२॥

यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः । यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२३॥

पदार्थ—(पृथिवि) हे पृथिवी ! (यः) जो (ते) तेरा (गन्धः) गन्ध [अंश] (संबभूव) उत्पन्न हुआ है (यम्) जिस [अंश] को (ओषधयः) ओषधें [अन्न सोमलता आदि] और (यम्) जिसको (आपः) जल (बिभ्रति) धारण करते हैं । (यम्) जिसको (गन्धर्वाः) पृथिवी [के अंश] का धारण करने वाले [प्राणियों] ने (च) और (अप्सरसः) आकाश में चलने वाले [जीवों और लोकों] ने (भेजिरे) भोगा है, (तेन) उस [गन्ध वा अंश] से (मा) मुझे (सुरभिम्) ऐश्वर्यवान् (कृणु) तू कर, (कश्चन) कोई भी [प्राणी] (नः) हम से (मा द्विक्षत) न वैर करे ॥२३॥

यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे । अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२४॥

पदार्थ—(पृथिवि) हे पृथिवी ! (यः) जो (ते) तेरा (गन्धः) [अंश] (पुष्करम्) पोषक पदार्थ [वा कमल] में (आविवेश) प्रविष्ट हुआ है, (यं गन्धम्) जिस गन्ध को (सूर्यायाः) सूर्य की चमक के (विवाहे) ले चलने में (अमर्त्याः) अमर [पुरुषार्थी] लोगों ने (अग्रे) पहिले (संजभ्रुः) समेटा है, (तेन) उसी [अंश] से (मा) मुझको (सुरभिम्) ऐश्वर्यवान् (कृणु) तू कर (कश्चन) कोई भी [प्राणी] (नः) हम से (मा द्विक्षत) न वैर करे ॥२४॥

यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः । यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु । कन्यायां वर्चो यद् भूमे तेनास्माँ अपि सं सृज मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२५॥

पदार्थ—(यः) जो (ते) तेरा (गन्धः) गन्ध [अंश] (पुरुषेषु) अग्रगामी (पुंसु) रक्षक मनुष्यों में और (स्त्रीषु) स्त्रियों में (भगः) सेवनीय ऐश्वर्य और (रुचिः) कान्ति है । (यः) जो [गन्ध] (वीरेषु) वेगवान् (अश्वेषु) घोड़ों में (उत) और (यः) जो (मृगेषु) हरिणों में और (हस्तिषु) हाथियों में है और (यत्) जो (वर्चः) तेज (कन्यायाम्) चमकती हुई कन्या [कन्या आदि राशि ज्योतिश्चक्र] में है, (भूमे) हे भूमि ! (तेन) उस [तेज] के साथ (अस्मान् अपि) हमें भी (सं सृज) मिला, (कश्चन) कोई भी [प्राणी] (नः) मुझ से (मा द्विक्षत) वैर न करे ॥२५॥

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता । तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥२६॥

पदार्थ—(भूमिः) भूमि (शिला) शिला, (अश्मा) पत्थर और (पांसुः) धूलि है (सा) वह (संधृता) यथावत् धारण की गई (भूमिः) भूमि (धृता) धरी हुई है । (तस्यै) उस (हिरण्यवक्षसे) सुवर्ण आदि धन छाती में रखने वाली (पृथिव्यै) पृथिवी के लिये (नमः अकरम्) मैंने अन्न किया [पाया] है ॥२६॥

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा । पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि ॥२७॥

पदार्थ—(यस्याम्) जिस [पृथिवी] पर (वानस्पत्याः) वनस्पतियों [बड़े बड़े पेड़ों] से उत्पन्न हुए (वृक्षाः) वृक्ष (ध्रुवाः) दृढ होकर (विश्वहा) अनेक प्रकार (तिष्ठन्ति) ठहरते हैं (विश्वधायसम्) [उस] सब को धारण करने वाली, (धृताम्) [वीरों से] धारण की गयी (पृथिवीम्) पृथिवी का (अच्छावदामसि) स्वागत करके हम आवाहन करते हैं ॥२७॥

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः । पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ॥२८॥

पदार्थ—(उदीराणाः) उठते हुए (उत) और (आसीनाः) बैठे हुए (तिष्ठन्तः) खड़े होते हुए और (प्रक्रामन्तः) चलते-फिरते हुए हम (दक्षिणसव्याभ्याम्) दोनों सीधे और बायें (पद्भ्याम्) पांवों से (भूम्याम्) भूमि पर (मा व्यथिष्महि) न डगमगायें ॥२८॥

विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे ॥२९॥

पदार्थ—(विमृग्वरीम्) विविध खोजने योग्य, (पृथिवीम्) चौड़ी (क्षमाम्) सहनशील, (ब्रह्मणा) ब्रह्म [वेदज्ञान, अन्न वा धन] द्वारा (वावृधानाम्) बढ़ी हुई (भूमिम्) भूमि को (आ वदामि) मैं आवाहन करता हूँ । "(भूमे) हे भूमि ! (ऊर्जम्) बलकारक पदार्थ, (पुष्टम्) पोषण, (अन्नभागम्) अन्न के विभाग और (घृतम्) घी को (बिभ्रतीम्) धारण करती हुई (त्वा अभि) तुझ पर (नि षीदेम) हम बैठें" ॥२९॥

शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः ।
पवित्रेण पृथिवि मोत् पुनामि ॥३०॥

पदार्थ—(शुद्धाः) शुद्ध (आपः) जल (नः) हमारे (तन्वे) शरीर के लिये (क्षरन्तु) बहें, (यः) जो (नः) हमारा (सेदुः) नाश करने का व्यवहार है, (तम्) उस [व्यवहार] को (अप्रिये) [अपने] अप्रिय [शत्रु] पर (नि दध्मः) हम डालते हैं । (पृथिवि) हे पृथिवी ! (पवित्रेण) शुद्ध व्यवहार से (मा) अपने को (उत् पुनामि) सर्वथा शुद्ध करता हूँ ॥३०॥

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद् याश्च पश्चात् ।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः ॥३१॥

पदार्थ—(भूमे) हे भूमि ! (याः) जो (ते) तेरी (प्राचीः) सन्मुख वाली (प्रदिशः) बड़ी दिशायें, (याः) जो (उदीचीः) ऊपर वाली, (याः) जो (ते) तेरी (अधरात्) नीचे की ओर (च) और (याः) जो (पश्चात्) पीछे की ओर हैं । (ताः) वे सब (मह्यम् चरते) मुझ विचरते हुए के लिये (स्योनाः) सुख देने वाली (भवन्तु) होवें, (भुवने) संसार में (शिश्रियाणः) ठहरा हुआ मैं (मा नि पप्तम्) न गिर जाऊं ॥३१॥

मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत ।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम् ॥३२॥

पदार्थ—(भूमे) हे भूमि ! (नः) हम को (मा) न तो (पश्चात्) पीछे से, (मा) न (पुरस्तात्) आगे से, (मा) न (उत्तरात्) ऊपर से (उत) और (अधरात्) नीचे से (नुदिष्ठाः) ढकेल, (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याणी (भव) हो, (परिपन्थिनः) बटमार लोग [हम को] (मा विदन्) न पावें, (वधम्) मारू हथियार को (वरीयः) बहुत दूर (यावय) हटा दे ॥३२॥

यावत् तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥३३॥

पदार्थ—(भूमे) हे भूमि ! (यावत्) जब तक (मेदिना) स्नेही (सूर्येण) सूर्य के साथ (अभि) सब ओर (ते विपश्यामि) तेरा विविध प्रकार दर्शन करूं । (तावत्) तब तक (मे) मेरी (चक्षुः) दृष्टि (उत्तरामुत्तराम्) उत्तम-उत्तम (समाम्) अनुकूल क्रिया को (मा मेष्ट) नहीं नाश करे ॥३३॥

यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम् ।
उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत् पृष्टीभिरधिशेमहे ।
मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ॥३४॥

पदार्थ—(भूमे) हे भूमि ! (यत्) जब (शयानः) सोता हुआ मैं (दक्षिणम्) दाहिने [वा] (सव्यम्) बायें (पार्श्वम् अभि) करवट से (पर्यावर्ते) लेटता हूँ ! (यत्) जब (उत्तानाः) चित होकर हम (प्रतीचीम्) प्रत्यक्ष मिलती हुई (त्वा) तुझ पर (पृष्टीभिः) [अपनी] पसलियों से (अधिशेमहे) सोते हैं । (सर्वस्य प्रतिशीवरि) हे सब को शयन देने वाली (भूमे) भूमि ! (तत्र) उस [काल] में (नः) हमको (मा हिंसीः) मत कष्ट दे ॥३४॥

यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥३५॥

पदार्थ—(भूमे) हे भूमि ! (यत्) जो कुछ (ते) तेरा (विखनामि) मैं खोद डालूं, (तत्) वह (क्षिप्रम् अपि) शीघ्र ही (रोहतु) उगे । (विमृग्वरि) हे खोजने योग्य ! (मा) न तो (ते) तेरे (मर्म) मर्मस्थल को और (मा) न (ते) तेरे (हृदयम) हृदय को (अर्पिपम्) मैं हानि करूं ॥३५॥

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ॥३६॥

पदार्थ—(भूमे) हे भूमि ! (ते) तेरे (ग्रीष्मः) घाम ऋतु [ज्येष्ठ-आषाढ़] (वर्षाणि) वर्षा [श्रावण-भाद्र], (शरत्) शरद् ऋतु [आश्विन-कार्तिक], (हेमन्त) शीतकाल [अग्रहायण-पौष], (शिशिर) उतरता हुआ शीतकाल [माघ-फाल्गुन] और (वसन्तः) वसन्त काल [चैत्र-वैशाख] (ऋतवः) ऋतु हैं, [उनको] (पृथिवि) हे पृथिवी ! (विहिताः) विहित [स्थापित] (हायनीः) वर्षों तक (ते) तेरे (अहोरात्रे) दिन रात्रि [दोनों] (नः) हमारे लिये (दुहाताम्) पूर्ण करें ॥३६॥

याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्नयो ये अप्स्वन्तः ।
परा दस्यून् ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम् । शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ॥३७॥

पदार्थ—(या) जो (विमृग्वरी) विविध प्रकार खोजनेयोग्य [पृथिवी] (अप सर्पम्) सरक कर (विजमाना) चलने वाली है, (यस्याम्) जिस [पृथिवी] पर (अग्नयः) वे अग्नि ताप (आसन्) हैं (ये) जो (अप्सु अन्तः) प्राणियों के भीतर हैं । (देवपीयून्) विद्वानों के सतानेवाले (दस्यून्) दुष्टों को (परा ददती) दूर छोड़ती हुई [इस प्रकार] (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (वृणाना) [चाहती हुई] और (वृत्रम्) शत्रु को (न) न [चाहती हुई] (पृथिवी) पृथिवी (शक्राय) शक्तिमान् (वृषभाय) बलवान्, (वृष्णे) वीर्यवान् पुरुष के लिये (दध्रे) धारण की गयी है ॥३७॥

यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते । ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः । युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ॥३८॥

पदार्थ—(यस्याम्) जिस [भूमि] पर (सदोहविर्धाने) सभा और अन्न-स्थान हैं, (यस्याम्) जिसपर (यूपः) जयस्तम्भ (निमीयते) गाड़ा जाता है । (यस्याम्) जिसपर (ब्रह्माणः) ब्रह्मा [वेदवेत्ता] लोग (ऋग्भिः) ऋचाओं [वेदवाणियों] से और (यजुर्विदः) यजुर्वेदी [परमात्मा-देव की पूजा जानने वाले] लोग (साम्ना) मोक्ष ज्ञान के साथ [परमात्मा को] (अर्चन्ति) पूजते हैं । (यस्याम्) जिस पर (ऋत्विजः) सब ऋतुओं में यज्ञ [परमात्मा का पूजन] करने वाले [योगी जन] (इन्द्राय) इन्द्र [ऐश्वर्ययुक्त जीव] के लिये (सोमम्) सोम [अमृत, मोक्षसुख] (पातवे) पान करने को (युज्यन्ते) समाधि लगाते हैं ॥३८॥

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः ।
सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥३९॥

पदार्थ—(यस्याम्) जिस [भूमि] पर (पूर्वे) निवासस्थान [शरीर में] [वर्तमान] (भूतकृत) यथार्थ कर्म करनेवाले, (वेधस) ज्ञानवान् (सप्त) सात (ऋषय) विषय प्राप्त करनेवाले ऋषियों [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] ने (सत्रेण) सत्पुरुषों के रक्षक (यज्ञेन) यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण और दान] और (तपसा सह) [ब्रह्मचर्य आदि] तप के साथ (गाः) वेदवाणियों को (उत्) उत्तमता से (आनृचुः) पूजा है ॥३९॥

सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे ।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ॥४०॥

पदार्थ—(सा भूमिः) वह भूमि (नः) हमको (धनम्) वह धन (आ) यथावत् (दिशतु) देवे, (यत्) जिसे (कामयामहे) हम चाहते हैं । (भगः) ऐश्वर्य [हमें] (अनुप्रयुङ्क्ताम्) निरन्तर मिले, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (पुरोगवः) अग्रगामी होकर (एतु) चले ॥४०॥

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः । युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः । सा नो भूमिः प्र णुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु ॥४१॥

पदार्थ—(यस्यां भूम्याम्) जिस भूमि पर (व्यैलबाः) विविध प्रकार वाणियों के बोलने वाले (मर्त्याः) मनुष्य (गायन्ति) गाते हैं और (नृत्यन्ति) नाचते हैं । (यस्यां भूम्याम्) जिस भूमि पर (आक्रन्दः) कोलाहल करने वाले [योद्धा] (युध्यन्ते) लड़ते हैं, (यस्याम्) जिस पर (दुन्दुभिः) ढोल (वदति) बजता है । (सा भूमिः) वह भूमि (नः) हमारे (सपत्नान्) वैरियों को (प्र णुदताम्) हटा देवे, (पृथिवी) पृथिवी (मा) मुझ को (असपत्नम्) बिना शत्रु (कृणोतु) करे ॥४१॥

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः ।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥४२॥

पदार्थ—(यस्याम्) जिस [भूमि] पर (अन्नम्) अन्न, (व्रीहियवौ) चावल और जौ हैं, (यस्याः) जिसके [ऊपर] (पञ्च) पाँच [पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश] से सम्बन्ध वाले (इमाः) ये (कृष्टयः) मनुष्य हैं । (वर्षमेदसे) वर्षा से स्नेह रखने वाली, (पर्जन्यपत्न्यै) मेघ से पालन की गयी (भूम्यै) उस भूमि के लिये (नमः अस्तु) [हमारा] अन्न होवे ॥४२॥

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते ।
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु ॥४३॥

पदार्थ—(यस्याः) जिसके (पुरः) नगर [राजभवन, गढ़ आदि] (देवकृताः) विद्वानों के बनाये हैं, (यस्याः) जिसके (क्षेत्रे) खेत में [मनुष्य] (विकुर्वते) विविध कर्म करते हैं । (प्रजापतिः) प्रजापति [परमेश्वर] (विश्वगर्भाम्) सब के गर्भ (पृथिवीम्) पृथिवी को (आशामाशाम्) दिशा-दिशा में (नः) हमारे लिये (रण्याम्) रमणीय (कृणोतु) करे ॥४३॥

निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥४४॥

पदार्थ—(गुहा) अपनी गुहा [गढ़े] में (निधिम्) निधि [धन का कोश] (बहुधा) अनेक प्रकार (बिभ्रती) रखती हुई (पृथिवी) पृथिवी (मे) मुझे (वसु) धन (मणिम्) मणि और (हिरण्यम्) सुवर्ण (ददातु) देवे । (वसुदा) धन देने वाली, (वसूनि) धनों को (रासमाना) देती हुई (देवी) वह देवी [उत्तम गुण वाली पृथिवी] (सुमनस्यमाना) प्रसन्नमन होकर (नः दधातु) हमारा पोषण करे ॥४४॥

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥४५॥

पदार्थ—(विवाचसम्) विशेष वचन सामर्थ्यवाले, (नानाधर्माणम्) अनेक गुण वाले (जनम्) जन [मनुष्य समूह] को (यथौकसम्) स्थान के अनुसार (बहुधा) बहुत प्रकार से (बिभ्रती) धारण करती हुई (पृथिवी) पृथिवि, (ध्रुवा) दृढ़ स्वभाव वाली, (अनपस्फुरन्ती) निश्चल (धेनुः इव) गौ के समान, (मे) मेरे लिये (द्रविणस्य) धन की (सहस्रम्) सहस्र (धाराः) धारायें (दुहाम्) दुहे ॥४५॥

यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये ।
क्रिमिर्जिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः सर्पन्मोप सृपद् यच्छिवं तेन नो मृड ॥४६॥

पदार्थ—(यः) जो (तृष्टदंश्मा) डंक मारने से प्यास उत्पन्न करने वाला (सर्पः) साँप [वा] (वृश्चिकः) बिच्छू (हेमन्तजब्धः) ठंड से ठिठुरा हुआ, (भृमलः) भ्रमल [घबड़ाता हुआ] (ते) तेरे (गुहा) गढ़े में (शये) सोता है । (क्रिमिः) [जो] कीड़ा और (यद्यत्) जो-जो (प्रावृषि) वर्षा ऋतु में (जिन्वत्) प्रसन्न होता हुआ (एजति) रेंगता है, (पृथिवि) हे पृथिवि ! (तत्) वह (सर्पत्) रेंगता हुआ [जन्तु] (नः) हम पर (मा उप सृपत्) आकर न रेंगे, (यत्) जो कुछ (शिवम्) मङ्गल है, (तेन) उस से (नः) हमें (मृड) सुखी कर ॥४६॥

ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे । यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवं तेन नो मृड ॥४७॥

पदार्थ—(ये) जो (ते) तेरे (बहवः) बहुत से (पन्थानः) मार्ग (जनायनाः) मनुष्यों के चलने योग्य हैं, [और जो] (रथस्य) रथ के (च) और (अनसः) छकड़े [वा अन्न] के (यातवे) चलने के लिये (वर्त्म) मार्ग हैं । (यैः) जिनसे (उभये) दोनों (भद्रपापाः) भले और बुरे [प्राणी] (संचरन्ति) चले चलते हैं, (तम्) उस (अनमित्रम्) शत्रुरहित और (अतस्करम्) तस्करशून्य (पन्थानम्) मार्ग को (जयेम) हम जीतें (यत्) जो कुछ (शिवम्) मङ्गल है, (तेन) उससे (नः) हमें (मृड) सुखी कर ॥४७॥

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः ।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय ॥४८॥

पदार्थ—(मल्वम्) धारण-सामर्थ्य को और (गुरुभृत्) गुरुत्व [भारीपन] रखने वाले सामर्थ्य को (बिभ्रती) धारण करने वाली (भद्रपापस्य) भले और बुरे के (निधनम्) कुल [समूह] को (तितिक्षुः) सहनेवाली, (वराहेण) मेघ के साथ (संविदाना) मिली हुई (पृथिवी) पृथिवी (सूकराय) सुन्दर [सुखद] किरणों वाले, (मृगाय) गमनशील सूर्य के लिये (वि) विविध प्रकार (जिहीते) प्राप्त होती है ॥४८॥

ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति । उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत् ॥४९॥

पदार्थ—(ये ते) जो वे (आरण्याः) वन में उत्पन्न हुए (पशवः) पशु (हिताः) हितकारी (मृगाः) हरिण आदि और (पुरुषादः) मनुष्यों के खाने वाले (सिंहाः) [हिंसक] सिंह और (व्याघ्राः) [सूंघ कर मारने वाले] बाघ आदि (वने) वन के बीच (चरन्ति) चलते-फिरते हैं । [उनमें से] (पृथिवि) हे पृथिवी ! (उलम्) [उष्ण स्वभाव वाले] बनबिलाव, (वृकम्) भेड़िये को और (दुच्छुनाम्) दुष्ट गति वाली (ऋक्षीकाम्) [हिंसक] रीछनी आदि, (रक्षः) राक्षस [दुष्ट जीवों] को (इतः) यहाँ पर (अस्मत्) हम से (अप बाधय) हटा दे ॥४९॥

ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः ।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय ॥५०॥

पदार्थ—(ये) जो (गन्धर्वाः) दुःखदायी हिंसक (अप्सरसः) विरुद्ध चलने वाले हैं, (च) और (ये) जो (अरायाः) कञ्जूस (किमीदिनः) लुतरे पुरुष हैं । (भूमे) हे भूमि ! (तान्) उन (पिशाचान्) पिशाचों [मांसभक्षकों, पीड़ाप्रदों] और (सर्वा) सब (रक्षांसि) राक्षसों को (अस्मत्) हम से (यावय) अलग रख ॥५०॥

यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि । यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान् । वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः ॥५१॥

पदार्थ—(याम्) जिस पर (द्विपादः) दो पाँववाले (पक्षिणः) पक्षी [अर्थात्] (हंसाः) हंस, (सुपर्णाः) बड़े उड़ने वाले, [गरुड़ आदि], (शकुनाः) शक्ति वाले [गिद्ध चील आदि] (वयांसि) पक्षीगण (संपतन्ति) उड़ते रहते हैं । (यस्याम्) जिस पर (मातरिश्वा) आकाश में चलने वाला (वातः) वायु (रजांसि) जल वाले बादलों को (कृण्वन्) बनाता हुआ (च) और (वृक्षान्) वृक्षों को (च्यावयन्) हिलाता हुआ (ईयते) चलता है । और (अर्चिः) प्रकाश (वातस्य) वायु के (प्रवाम्) फैलाव और (उपवाम् अनु) सकोच के साथ-साथ (वाति) चलता है ॥५१॥

यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि । वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनिधामनि ॥५२॥

पदार्थ— (यस्यां भूम्याम् अधि) जिस भूमि के ऊपर (अरुणम्) सूर्य वाले (च) और (कृष्णम्) काले वर्ण वाले (संहिते) आपस में मिले हुए (अहोरात्रे) दिन और रात्रि (विहिते) विधानपूर्वक ठहराये गये हैं (वर्षेण) मेह से (वृता) लपेटी हुई और (आवृता) ढकी हुई (सा) वह (पृथिवी) चौड़ी (भूमिः) भूमि [आश्रयस्थान] (नः) हमको (भद्रया) कल्याणी मति के साथ (प्रिये धामनिधामनि) प्रत्येक रमणीय स्थान में (दधातु) रक्खे ॥५२॥

द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः ।
अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः ॥५३॥

पदार्थ—(मे) मुझ को (द्यौः) प्रकाश (च) और (पृथिवी) पृथिवी (च च) और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष ने (इदम्) यह (व्यचः) विस्तार [दिया है], (मे) मुझको (अग्निः) अग्नि, (सूर्यः) सूर्य, (आपः) जल (च) और (विश्वे) सब (देवाः) उत्तम पदार्थों ने (मेधाम्) धारणावती बुद्धि (सम्) ठीक-ठीक (ददुः) दी है ॥५३॥

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ॥५४॥

पदार्थ—(अहम्) मैं [मनुष्य] (सहमानः) जीतने वाला और (भूम्याम्) भूमि पर (नाम) नाम के साथ (उत्तरः) अधिक ऊँचा (अस्मि) हूँ । मैं (अभीषाट्) विजयी, (विश्वाषाट्) सर्व विजयी और (आशामाशाम्) प्रत्येक दिशा में (विषासहिः) हरा देने वाला (अस्मि) हूँ ॥५४॥

अदो यद् देवि प्रथमाना पुरस्ताद् देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम् ।
आ त्वा सुभूतमविशत् तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः ॥५५॥

पदार्थ—(देवि) हे देवी ! [उत्तम गुणवाली पृथिवी] (यत्) जब (पुरस्तात्) आगे को (प्रथमाना) फैलती हुई और (देवैः) व्यवहार-कुशलों करके (उक्ता) कही गयी तू ने (अदः) उस (महित्वम्) महिमा को (व्यसर्पः) फैलाया । (तदानीम्) तब (सुभूतम्) सुभूति [सुन्दर ऐश्वर्य] ने (त्वा) तुझ मे (आ) सब ओर से (अविशत्) प्रवेश किया, और (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) बड़ी दिशाओं को (अकल्पयथाः) तू ने समर्थ बनाया ॥५५॥

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम् ।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥५६॥

पदार्थ—(ये ग्रामाः) जो गांव, (यत् अरण्यम्) जो वन, (याः सभा) जो सभायें (भूम्याम् अधि) भूमि पर हैं । (ये संग्रामाः) जो संग्राम और (समितयः) समितियें [सम्मेलन] हैं, (तेषु) उन सब मे (ते) तेरा (चारु) सुन्दर यश (वदेम) हम कहें ॥५६॥

अश्व इव रजो दुधुवे वि तान् जनान् य आक्षियन् पृथिवीं यादजायत । मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ॥५७॥

पदार्थ—(यात्) जब से (अजायत) वह उत्पन्न हुई है [तब से], (अश्व इव) जैसे घोड़ा (रजः) धूलि को, [वैसे ही] (मन्द्रा) हर्षदायिनी, (अग्रेत्वरी) अग्रगामिनी, (भुवनस्य) संसार की (गोपा) रक्षाकारिणी (वनस्पतीनाम्) वनस्पतियों [पीपल आदि] और (ओषधीनाम्) ओषधियों [सोमलता अन्न आदि] की (गृभिः) ग्रहणस्थान उस [पृथिवी] ने (तान् जनान्) उन मनुष्यों को (वि दुधुवे) हिला दिया है, (ये) जिन्होंने (पृथिवीम्) पृथिवी को (आक्षियन्) सताया है ॥५७॥

यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा ।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः ॥५८॥

पदार्थ—(यत्) जो कुछ (वदामि) मैं बोलता हूँ, (तत्) वह (मधुमत्) उत्तम ज्ञानयुक्त (वदामि) बोलता हूँ, (यत्) जो कुछ (ईक्षे) मैं देखता हूँ, (तत्) उसको (मा) मुझे (वनन्ति) वे [ईश्वर नियम] सेवते हैं । मैं (त्विषिमान्) तेजस्वी (जूतिमान्) वेगवान् (अस्मि) हूँ, (दोधतः) क्रोधी (अन्यान्) दूसरे [शत्रुओं] को (अव हन्मि) मार गिराता हूँ ॥५८॥

शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती ।
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ॥५९॥

पदार्थ—(शन्तिवा) शान्तिवाली, (सुरभिः) ऐश्वर्यवाली, (स्योना) सुखदा, (कीलालोध्नी) अमृतमय स्तनवाली, (पयस्वती) दुधैल, (भूमिः) सर्वाधार (पृथिवी) पृथिवी (पयसा सह) अन्न के साथ (मे) मेरे लिये (अधि ब्रवीतु) अधिकारपूर्वक बोले ॥५९॥

यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम् ।
भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन्मातृमद्भ्यः ॥६०॥

पदार्थ—(विश्वकर्मा) विश्वकर्मा [सब कर्मों मे चतुर मनुष्य] ने (हविषा) देने-लेनेयोग्य गुण के साथ [वर्तमान], (अर्णवे) जलवाले (रजसि अन्तः) अन्तरिक्ष के भीतर (प्रविष्टाम्) प्रवेश की हुई (याम्) जिस [पृथिवी] को (अन्वैच्छत्) खोजा । (भुजिष्यम्) भोजनयोग्य (पात्रम्) पात्र [रक्षा-साधन] (गुहा) [पृथिवी के] गढ़ मे (यत्) जो (निहितम्) रक्खा था [वह] (मातृमद्भ्यः) माताओं वाले [प्राणियों] के लिये (भोगे) आहार [वा पालन] मे (आविः अभवत्) प्रकट हुआ है ॥६०॥

त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना ।
यत् त ऊनं तत् त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य ॥६१॥

पदार्थ—[हे पृथिवी !] (त्वम्) तू (आवपनी) बड़ी उपजाऊ होकर (जनानाम्) मनुष्यों की (अदितिः) अखण्डता, (कामदुघा) कामना पूरी करने वाली (पप्रथाना) प्रख्यात (असि) है । (यत्) जो (ते) तेरा (ऊनम्) न्यून है, (ऋतस्य) यथावत् नियम का (प्रथमजाः) पहिले उत्पन्न करने वाला (प्रजापतिः) प्रजापति [जगत्पालक परमेश्वर] (ते) तेरे (तत्) उस [न्यून भाग] को (आ) सब प्रकार (पूरयाति) पूरा करे ॥६१॥

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः ।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥६२॥

पदार्थ—(पृथिवि) हे पृथिवी ! (ते) तेरी (उपस्थाः) गोदें (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (अनमीवाः) नीरोग और (अयक्ष्माः) राजरोगरहित (प्रसूताः) उत्पन्न (सन्तु) होवें । (नः) अपने (आयुः) आयु [जीवन] को (दीर्घम्) दीर्घकालतक (प्रतिबुध्यमानाः) जगाते हुए (वयम्) हम (तुभ्यम्) तेरे लिये (बलिहृतः) बलि [सेवा धर्म] देने वाले (स्याम) रहें ॥६२॥

भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ॥६३॥

पदार्थ—(भूमे मातः) हे धरती माता ! (मा) मुझ को (भद्रया) कल्याणी मति के साथ (सुप्रतिष्ठितम्) बड़ी प्रतिष्ठा वाला (नि धेहि) बनाये रख । (कवे) हे गतिशीले ! [जो चलती है या जिस पर हम चलते हैं] (दिवा) प्रकाश के साथ (संविदाना) मिली हुई तू (मा) मुझ को (श्रियाम्) श्री [सम्पत्ति] में और (भूत्याम्) विभूति [ऐश्वर्य] में (धेहि) धारण कर ॥६३॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

卐

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् २ 卐

१—५५ भृगुः । अग्निः, मन्त्रोक्ता, २१-३३ मृत्युः । त्रिष्टुप्, २, ५, १२-२०, ३४-३६, ३८-४१, ४३, ५१, ५४ अनुष्टुप् (१६ ककुम्मती परावृहती, १८ निचृत, ४० पुरस्तात्ककुम्मती), ३ आस्तारपंक्तिः; ६ भुरिगार्षी पङ्क्ति, ७, ४५ जगती, ८, ४८-४९ भुरिक्; ६ अनुष्टुब्गर्भा विपरीतपादलक्ष्मा पङ्क्ति., ३७ पुरस्ताद्बृहती, ४२ त्रिप० एकाव० भुरिगार्षी गायत्री, ४४ एकाव० द्विप० आर्चीबृहती; ४६ एका० द्विप० साम्नी त्रिष्टुप्, ४७ पञ्चपदा बार्हत वैराजगर्भा जगती, ५० उपरिष्टाद् विराड् बृहती; ५२ पुरस्ताद्विराड् बृहती, ५५ बृहतीगर्भा ।

नडमा रोह न ते अत्र लोक इदं सीसं भागधेयं त एहि ।
यो गोषु यक्ष्मः पुरुषेषु यक्ष्मस्तेन त्वं साकमधराङ् परेहि ॥१॥

पदार्थ—[हे दुष्ट !] (नडम्) बन्धन [वा नरकट-समान तीक्ष्ण शस्त्र] पर (आ रोह) चढ़ जा, (ते) तेरे लिये (अत्र) यहां (लोकः) स्थान (न) नहीं है, (इदम्) यह (सीसम्) [हमारा] बन्धननाशक विधान (ते) तेरा (भागधेयम्) सेवनीय कर्म है, (आ इहि) तू आ । (यः) जो (गोषु) गौओं मे (यक्ष्मः) राजरोग और (पुरुषेषु) पुरुषों मे (यक्ष्मः) राजरोग है, (तेन साकम्) उसके साथ (त्वम्) तू (अधराङ्) नीचे की ओर (परा इहि) चला जा ॥१॥

अघशंसदुःशंसाभ्यां करेणानुकरेण च ।
यक्ष्मं च सर्वं तेनेतो मृत्युं च निरजामसि ॥२॥

पदार्थ—(अघशंसदुःशंसाभ्याम्) दोनों बुरा चीतने वाले और खोटी करनी वाले पुरुषों के नाश के लिये (तेन) उस (करेण) कर [लेने] से (च) और (अनुकरेण) अनुकूल कर्म से (इतः) यहां से (सर्वम्) सब (यक्ष्मम्) राजरोग (च च) और (मृत्युम्) मृत्यु को (निः अजामसि) हम बाहिर निकालते हैं ॥२॥

निरितो मृत्युं निरृतिं निररातिमजामसि । यो नो द्वेष्टि तमद्ध्यग्ने अक्रव्याद् यमु द्विष्मस्तमु ते प्र सुवामसि ॥३॥

पदार्थ—(इतः) यहां से (मृत्युम्) मृत्यु और (निरृतिम्) महामारी को (निः) बाहिर और (अरातिम्) अदान को (निः) बाहिर (अजामसि) हम [प्रजागण] निकालते हैं । (यः) जो [दुष्ट] (नः) हम से (द्वेष्टि) वैर करता है, (तम्) उस को, (अक्रव्यात्) हे मांस न खाने वाले ! [प्रजारक्षक] (अग्ने) अग्नि [के समान तेजस्वी राजन् !] (अद्धि) खा [नाशकर], (उ) और (यम्) जिस से (द्विष्मः) हम वैर करते हैं (तम् उ) उसको भी (ते) तेरे [सम्मुख] (प्र सुवामसि) हम भेज देते हैं ॥३॥

यद्यग्निः क्रव्याद् यदि वा व्याघ्र इमं गोष्ठं प्रविवेशान्योकाः ।
तं माषाज्यं कृत्वा प्र हिणोमि दूरं स गच्छत्वप्सुषदोऽप्यग्नीन् ॥४॥

पदार्थ—(यदि) यदि (क्रव्यात्) मांसभक्षक (अग्निः) अग्नि [के समान सन्तापक], (यदि वा) अथवा यदि (अन्योकाः) अपनी मांद से निकले हुए (व्याघ्रः) बाघ [के समान दुष्ट पुरुष] ने (इमम्) इस (गोष्ठम्) गोष्ठ [वार्तालाप स्थान] में (प्रविवेश) प्रवेश किया है । (तम्) उस [दुष्ट जन]

को (आवाच्यम्) वध के साथ संयुक्त (कृत्वा) कर के (दूरम्) दूर (प्र हिणोमि) भेजता हूँ, (सः) वह [दुष्ट] (अप्सुषद) प्राणों में कष्ट देने वाले (अग्नीन्) अग्नियों [अग्नि के सन्तापों] को (अपि) ही (गच्छतु) पावे ॥४॥

यत् त्वा क्रुद्धाः प्रचक्रुर्मन्युना पुरुषे मृते ।

सुकल्पमग्ने तत् त्वया पुनस्त्वोद्दीपयामसि ॥५॥

पदार्थ—[हे अपराधी !] (यत्) यदि (त्वा) तुझ का (क्रुद्धाः) कोधित पुरुषों ने (पुरुषे मृते) पुरुष के मरने पर (मन्युना) कोप से (प्रचक्रुः) निकाल दिया था। (अग्ने) हे अग्नि ! [के समान सन्तापकारी पुरुष] (तत्) वह (त्वया) तेरे साथ (सुकल्पम्) सुन्दर विचारयुक्त विधान है, (पुनः) फिर (त्वा) तुझ को [सुकर्म के लिये] (उत् दीपयामसि) हम उत्तेजित करते हैं ॥५॥

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्ने ।

पुनस्त्वा ब्रह्मणस्पतिराधाद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥६॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि [के समान तेजस्वी राजन् !] (पुनः) निश्चय करके [विद्वत्ता, शूरता आदि गुण देखकर] (त्वा) तुझ को (आदित्याः) अखण्ड-व्रती ब्रह्मचारियों, (रुद्राः) ज्ञान वालों और (वसवः) श्रेष्ठ पुरुषों ने, [तथा] (पुनः) निश्चय करके (वसुनीतिः) श्रेष्ठ गुण प्राप्त करानेवाले (ब्रह्मा) ब्रह्मा [वेदों के ज्ञाता] ने, और (पुनः) निश्चय करके (त्वा) तुझ को (ब्रह्मणस्पतिः) धन के रक्षक पुरुष ने (शतशारदाय) सौ वर्षों वाले (दीर्घायुत्वाय) चिरकाल जीवन के लिये (आ) भले प्रकार (अधात्) धारण किया है ॥६॥

यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश नो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।

तं हरामि पितृयज्ञाय दूरं स घर्ममिन्धां परमे सधस्थे ॥७॥

पदार्थ—(यः) जिस (क्रव्यात्) मांसभक्षक (अग्निः) अग्नि [के समान सन्तापक पुरुष] ने (नः) हमारे (गृहम्) घर में (प्रविवेश) प्रवेश किया है, [सो] (इमम्) इस (इतरम्) दूसरे [उससे भिन्न शुभगुणी] (जातवेदसम्) ज्ञानवान् राजा को (पश्यन्) देखता हुआ (पितृयज्ञाय) पितरों [रक्षक विद्वानों] के सत्कार के लिये (तम्) उस [दुष्ट] को (दूरम्) दूर (हरामि) भेजता हूँ और (सः) वह [राजा] (परमे) बड़े उत्कृष्ट (सधस्थे) समाज में (घर्मम्) यज्ञ को (इन्धाम्) प्रकाशित करे ॥७॥

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।

इहायमितरो जातवेदा देवो देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥८॥

पदार्थ—(क्रव्यादम्) मांसभक्षक [क्रूर] (अग्निम्) अग्नि [के समान सन्तापक मनुष्य] को (दूरम्) दूर (प्र हिणोमि) बाहिर पहुँचाता हूँ, (रिप्रवाहः) वह पाप का ले चलनेवाला पुरुष (यमराज्ञः) न्यायाधीश राजा के पुरुषों में (गच्छतु) जावे। (इह) यहां पर (अयम्) यह (इतरः) दूसरा [पापी से भिन्न धर्मात्मा], (जातवेदाः) वेदों का ज्ञाता, (देवः) विजय चाहनेवाला राजा (हव्यम्) देनेलेने योग्य पदार्थ को (प्रजानन्) भले प्रकार जानता हुआ (देवेभ्यः) विजय चाहनेवाले पुरुषों के लिये (वहतु) पहुँचावे ॥८॥

क्रव्यादमग्निमिषितो हरामि जनान् दृंहन्तं वज्रेण मृत्युम् ।

नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान् पितॄणां लोकेऽपि भागो अस्तु ॥९॥

पदार्थ—(इषितः) [प्रजाओं का] भेजा हुआ मैं [राजा] (जनान्) मनुष्यों में (मृत्युम्) मृत्यु को (दृंहन्तम्) बढ़ाते हुए (क्रव्यादम्) मांसभक्षक (अग्निम्) अग्नि [के समान सन्तापक मनुष्य] को (वज्रेण) [अपने] वज्र से (हरामि) नाश करता हूँ। (विद्वान्) विद्वान् मैं (तम्) उस [सत्कर्मी पुरुष] को (गार्हपत्येन) घर के स्वामियों से सम्बन्धी कर्मद्वारा (नि) निरन्तर (शास्मि) शिक्षा देता हूँ, [जिस पुरुष का] (भागः) भाग (पितॄणाम्) पितरों [रक्षकविद्वानों] के (लोके) समाज में (अपि) ही (अस्तु) होवे ॥९॥

क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं प्र हिणोमि पथिभिः पितृयाणैः ।

मा देवयानैः पुनरा गा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम् ॥१०॥

पदार्थ—(पितृयाणैः) पितरों [रक्षकविद्वानों] के चलने योग्य (पथिभिः) मार्गों से [चलता हुआ] मैं (क्रव्यादम्) मांसभक्षक (अग्निम्) अग्नि [के समान सन्तापकारी मनुष्य] को (शशमानम्) उछलकर चलते हुए [उद्योगी] (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय पुरुष से (प्र हिणोमि) बाहिर भेजता हूँ। [हे दुष्कर्मी !] तू (देवयानैः) विद्वानों के मार्गों से [रोकने को] (पुनः) फिर (मा आ गाः) मत आ, [हे सत्कर्मी !] (त्वम्) तू (अत्र एव) यहां ही (एधि) रह, और (पितृषु) पितरों [रक्षक विद्वानों] के बीच (जागृहि) जागता रहे ॥१०॥

समिन्धते संकसुकं स्वस्तये शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।

जहाति रिप्रमत्येन एति समिद्धो अग्निः सुपुना पुनाति ॥११॥

पदार्थ—(शुद्धाः) [अन्तःकरण से] शुद्ध, (शुचयः) [बाहिरी आचरण से] पवित्र और (पावकाः) [दूसरों के] पवित्र करनेवाले (भवन्तः) होते हुए मनुष्य (संकसुकम्) यथावत् शासक पुरुष को (स्वस्तये) अच्छी सत्ता [कल्याण] के लिये (सम्) यथाविधि (इन्धते) प्रकाशमान करते हैं। (समिद्धः) ठीक-ठीक प्रकाशित (अग्निः) अग्नि [के समान तेजस्वी पुरुष] (रिप्रम्) पाप को (जहाति) छोड़ता है, (एनः) दोष को (अति) उल्लंघन कर के (एति) चलता है और (सुपुना) सुन्दर शुद्धि करनेवाले कर्म से [दूसरों को] (पुनाति) शुद्ध करता है ॥११॥

देवो अग्निः संकसुको दिवस्पृष्ठान्यारुहत् ।

मुच्यमानो निरेणसोऽमोगस्माँ अशस्त्याः ॥१२॥

पदार्थ—(देवः) विजय चाहने वाला, (संकसुकः) ठीक-ठीक शासन कर्ता (अग्निः) अग्नि [के समान प्रतापी मनुष्य] (दिवः) आनन्द के (पृष्ठानि) पीठों पर (आ अरुहत्) चढ़ा है। (एनसः) कष्ट से (निः मुच्यमानः) निरन्तर छूटते हुए उसने (अस्मान्) हम को (अशस्त्याः) अपकीर्ति से (अमोक्) छुड़ाया है ॥१२॥

अस्मिन् वयं संकसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे ।

अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥१३॥

पदार्थ—(अस्मिन्) इस (संकसुके) यथावत् शासक (अग्नौ) अग्नि [के समान प्रतापी राजा] में [अर्थात् उसके आश्रय से] (रिप्राणि) पापों को (वयम्) हम (मृज्महे) धोते हैं। हम (यज्ञियाः) संगति के योग्य (शुद्धाः) शुद्ध आचरण वाले (अभूम) हो गए हैं, वह (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनों को (प्र तारिषत्) बढ़ा देवे ॥१३॥

संकसुको विकसुको निर्ऋथो यश्च निस्वरः ।

ते ते यक्ष्मं सवेदसो दूराद् दूरमनीनशन् ॥१४॥

पदार्थ—(यः) जो पुरुष (संकसुकः) यथावत् शासक, [जो] (विकसुकः) विशेष करके शासक, [जो] (निर्ऋथः) निरन्तर ज्ञानवान् (च) और [जो] (निस्वरः) सदा उपदेश करने वाला है। (ते) उन सब (सवेदसः) समान लाभ पहुँचानेवाले पुरुषों ने (ते) तेरे (यक्ष्मम्) राजरोग को (दूरात् दूरम्) दूर से दूर (अनीनशन्) नष्ट कर दिया है ॥१४॥

यो नो अश्वेषु वीरेषु यो नो गोष्वजाविषु ।

क्रव्यादं निर्णुदामसि यो अग्निर्जनयोपनः ॥१५॥

पदार्थ—(यः) जो [दुष्ट] (नः) हमारे (अश्वेषु) घोड़ों में और (वीरेषु) वीरों में, (यः) जो (नः) हमारी (गोषु) गौओं में और (अजाविषु) भेड़ बकरियों में और (यः) जो (अग्निः) अग्नि [के समान सन्तापकारी दुष्ट] (जनयोपनः) मनुष्यों का व्याकुल करने वाला है, [उस] (क्रव्यादम्) मांसभक्षक [पिशाच] को (निः नुदामसि) हम निकाले देते हैं ॥१५॥

अन्येभ्यस्त्वा पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यस्त्वा ।

निः क्रव्यादं नुदामसि यो अग्निर्जीवितयोपनः ॥१६॥

पदार्थ—(यः) जो (अग्निः) अग्नि [के समान सन्तापकारी] (जीवितयोपनः) जीवन को व्याकुल करनेवाला पुरुष है, [उस] (क्रव्यादम्) मांसभक्षक (त्वा) तुझ को (अन्येभ्यः) जीते हुए (पुरुषेभ्यः) पुरुषों से और (त्वा) तुझ को (गोभ्यः) गौओं से और (अश्वेभ्यः) घोड़ों से (निः नुदामसि) हम निकाले देते हैं ॥१६॥

यस्मिन् देवा अमृजत यस्मिन् मनुष्या उत ।

तस्मिन् घृतस्तावो मृष्ट्वा त्वमग्ने दिवं रुह ॥१७॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिस [ज्ञान] में (देवाः) विजय चाहनेवाले (उत) और (यस्मिन्) जिस [ज्ञान] में (मनुष्याः) मननशील पुरुष (अमृजत) शुद्ध हुए हैं। (तस्मिन्) उस [ज्ञान] में (मृष्ट्वा) शुद्ध होकर, (अग्ने) हे अग्नि [के समान तेजस्वी राजन् !] (घृतस्तावः) ज्ञान-प्रकाश की स्तुति करने वाला (त्वम्) तू (दिवम्) आनन्द में (आ रुह) ऊंचा हो ॥१७॥

समिद्धो अग्न आहुत स नो माभ्यपक्रमीः ।

अत्रैव दीदिहि द्यवि ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥१८॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि [के समान तेजस्वी पुरुष !] (सः) सो तू (समिद्धः) यथावत् प्रकाशित और (आहुत) आहुति दिया गया [भक्ति किया

गया] होकर (नः) हमें (मा अभ्यपक्रमीः) छोड़कर मत जा, (अत्र एव) यहां ही [इस जन्म में] (सचि) प्रत्येक व्यवहार में [वर्तमान] (सूर्यम्) सूर्य [सब के चलाने वाले परमेश्वर] के (दृशे) देखने के लिये (ज्योक्) बहुत काल तक (च) निश्चय करके (जीविहि) प्रकाशमान हो ॥१८॥

सीसे मृड्ढ्वं नडे मृड्ढ्वमग्नौ संकसुके च यत् ।

अथो अव्यां रामायां शीर्षक्तिमुपबर्हणे ॥१९॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (सीसे) बन्धननाशक विधान में (नडे) बन्धन [वा नरकट-समान तीक्ष्ण शस्त्र] मे (च) और (संकसुके) सम्यक् शासक (अग्नौ) अग्नि [के समान तेजस्वी पुरुष] मे, (यत्) जो कुछ [शिर पीड़ा है उसे] (मृड्ढ्वम्) तुम शुद्ध करो। (अथो) और भी (रामायाम्) रमण कराने वाली [सुख देने वाली] (अव्याम्) रक्षा करने वाली प्रकृति [सृष्टि] के भीतर [वर्तमान] (उपबर्हणे) सुन्दर वृद्धि में [आने वाली] (शीर्षक्तिम्) शिर पीड़ा [रोक] को (मृड्ढ्वम्) शुद्ध करो ॥१९॥

सीसे मलं सादयित्वा शीर्षक्तिमुपबर्हणे ।

अव्यामसिक्न्यां मृष्ट्वा शुद्धा भवत यज्ञियाः ॥२०॥

पदार्थ—(सीसे) बन्धननाशक विधान मे [आने वाले] (मलम्) दोष को (सादयित्वा) मिटाकर और (असिक्न्याम्) बन्धनरहित (अव्याम्) रक्षा करनेवाली प्रकृति [सृष्टि] मे [वर्तमान] (उपबर्हणे) सुन्दर वृद्धि के भीतर [आनेवाली] (शीर्षक्तिम्) शिर की पीड़ा [रोक] को (मृष्ट्वा) शोधकर, तुम लोग (शुद्धाः) शुद्ध आचरण वाले, (यज्ञियाः) संगतियोग्य (भवत) हो जाओ ॥२०॥

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्त एष इतरो देवयानात् ।

चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमीहेमे वीरा बहवो भवन्तु ॥२१॥

पदार्थ—(मृत्यो) हे मृत्यु ! [मृत्युरूप दुर्बलेन्द्रिय पुरुष] (यः) जो (ते) तेरा (एषः) यह (देवयानात्) विद्वानो के मार्ग से (इतरः) भिन्न [बुरा मार्ग है उस बुरे मार्ग से] (परम्) उत्तम (पन्थाम् अनु) मार्ग पर (परा इहि) पराक्रम से चल। (चक्षुष्मते) उत्तम नेत्रवाले (शृण्वते) सुनते हुए (ते) तेरे लिये (ब्रवीमि) मैं उपदेश करता हूँ, (इह) यहां (इमे) ये सब (वीराः) वीर लोग (बहवः) बहुत से (भवन्तु) होवें ॥२१॥

इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद् भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।

प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय सुवीरासो विदथमा वदेम ॥२२॥

पदार्थ—(इमे) ये सब (जीवाः) जीवते हुए [पुरुषार्थी जन] (मृतैः) मृतकों [दुर्बलेन्द्रियों] से (वि) पृथक् होकर (आ अववृत्रन्), लौट आये हैं (देवहूतिः) विद्वानो की वाणी (नः) हमारे लिये (अद्य) आज (भद्रा) कल्याणी (अभूत्) हुई है। (नृतये) नृत्य [हाथ-पैर चलाने] के लिये और (हसाय) हसने [आनन्द भोगने] के लिये (प्राञ्चः) आगे बढ़ते हुए हम (अगाम) पहुँचे हैं, (सुवीरासः) अच्छे वीरों वाले हम (विदथम्) विज्ञान का (आ वदेम) उपदेश करें ॥२२॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।

शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥२३॥

पदार्थ—(एषाम्) इन [प्राणियो] के बीच (जीवेभ्यः) जीवते हुए [पुरुषार्थी] लोगों के लिये (इमम्) यह (परिधिम्) मर्यादा (दधामि) मैं [परमेश्वर] ठहराता हूँ, (अपरः) [मरा हुआ, दुर्बलेन्द्रिय] (एतम्) इस (अर्थम्) पाने योग्य पदार्थ [सुख] को (नु मा गात्) कभी न पावे। (शतम्) सौ और (पुरूचीः) बहुत-सी (शरदः) बरसो तक (जीवन्तः) जीवते हुए लोग (मृत्युम्) मृत्यु [मरण वा दुःख] को (पर्वतेन) [विज्ञान की] पूर्णता से (तिरः दधताम्) तिरोहित करें [ढक देवें] ॥२३॥

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यति स्थ ।

तान् वस्त्वष्टा सुजनिमा सजोषाः सर्वमायुर्नयतु जीवनाय ॥२४॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (यति स्थ) जितने तुम हो, [वे तुम] (अनुपूर्वम्) लगातार (यतमानाः) यत्न करते हुए (जरसम्) स्तुतियुक्त (आयुः) जीवन (वृणानाः) चाहते हुए (आ रोहत) ऊंचे चढ़ो। (सुजनिमा) सुन्दर जन्म देनेवाला (सजोषाः) समान प्रीतिवाला (त्वष्टा) कर्ता [परमेश्वर] (तान् वः) उन तुम को (सर्वम् आयुः) पूर्ण आयु (जीवनाय) उत्तम जीवन के लिये (नयतु) प्राप्त करावे ॥२४॥

यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति साकम् ।

यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ॥२५॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (अहानि) दिन (अनुपूर्वम्) एक के पीछे एक (भवन्ति) होते रहते हैं, (यथा) जैसे (ऋतवः) ऋतुएं (ऋतुभिः साकम्) ऋतुओं के साथ (यन्ति) चलते हैं। [वैसे ही] (यथा) जिस कारण से (अपरः) पिछला [पुत्र आदि] (पूर्वम्) पहिले [पिता आदि] (न) न (जहाति) छोड़े, (एव) उसी कारण से, (धातः) हे विधाता ! [परमेश्वर] (एषाम्) इन के (आयूंषि) जीवनो को (कल्पय) समर्थ कर ॥२५॥

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वं वीरयध्वं प्र तरता सखायः ।

अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान् ॥२६॥

पदार्थ—(सखायः) हे मित्रो ! (अश्मन्वती) बहुत पत्थरो वाली [नदी] (रीयते) चलती है, (सं रभध्वम्) मिलकर उत्साह करो, (वीरयध्वम्) वीर बनो और (प्र तरत) पार हो जाओ, (ये) जो (अत्र) यहां [इस जगह वा समय] (दुरेवाः) दुर्गम मार्ग [वा विघ्न] (असन्) होवें, [उन्हें] (जहीत) छोड़ो, [पार करो], (अनमीवान्) रोगरहित (वाजान् अभि) अन्न आदि भोगो की ओर (उत् तरेम) हम उतरें ॥२६॥

उत्तिष्ठता प्र तरता सखायोऽश्मन्वती नदी स्यन्दत इयम् ।

अत्रा जहीत ये असन्नशिवाः शिवान्त्स्योनानुत्तरेमाभि वाजान् ॥२७॥

पदार्थ—(सखायः) हे मित्रों ! (उत् तिष्ठत) उठो, और (प्र तरत) उतर चलो, (इयम्) यह (अश्मन्वती) [बहुत पत्थरोवाली] [दुस्तर] (नदी) नदी (स्यन्दते) बहती है। (ये) जो [पदार्थ] (अत्र) यहां [इस जगह वा समय] (अशिवाः) अमङ्गलकारी (असन्) होवें, [उन्हे] (जहीत) छोड़ो, (शिवान्) मङ्गलकारी और (स्योनान्) आनन्दकारी (वाजान् अभि) अन्न आदि भोगो की ओर (उत्तरेम) हम उतरें ॥२७॥

वैश्वदेवीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।

अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम ॥२८॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (वैश्वदेवीम्) सब विद्वानों के हित करने वाली [वेदवाणी] को (वर्चसे) तेज पाने के लिये तुम (शुद्धाः) शुद्ध, (शुचयः) पवित्र (पावकाः) शुद्ध करनेवाले (भवन्तः) होते हुए (आ रभध्वम्) आरम्भ करो। (दुरिता) कठिन [कष्ट दायक] (पदानि) पगडण्डियों को (अतिक्रामन्तः) लांघते हुए, (सर्ववीराः) सब को वीर रखते हुए हम (शतम्) सौ (हिमाः) शीतऋतुओं वाली [स्थितियो] तक (मदेम) सुख भोगें ॥२८॥

उदीचीनैः पथिभिर्वायुमद्भिरतिक्रामन्तोऽवरान् परेभिः ।

त्रिः सप्त कृत्व ऋषयः परेता मृत्युं प्रत्यौहन् पदयोपनेन ॥२९॥

पदार्थ—(उदीचीनैः) ऊंचे चलते हुए, (वायुमद्भिः) शुद्ध वायु वाले, (परेभिः) उत्तम (पथिभिः) मार्गों से (अवरान्) निकृष्ट [मार्गों] को (अतिक्रामन्तः) लांघते हुए, (परेताः) पराक्रम पाये हुए (ऋषयः) ऋषियों ने (त्रिः) तीन बार [मनसा वाचा कर्मणा] (सप्त कृत्वः) सात बार [दो कान, दो नथने, दो आंख और एक मुख द्वारा] (मृत्युम्) मृत्यु को (पदयोपनेन) पद [चाल] रोक देने से (प्रति औहन्) उलटा मारा है ॥२९॥

मृत्योः पदं योपयन्त एत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।

आसीना मृत्युं नुदता सधस्थेऽथ जीवासो विदथमा वदेम ॥३०॥

पदार्थ—[हे वीरो !] (मृत्योः) मृत्यु के (पदम्) पद [चाल] को (योपयन्तः) रोकते हुए, (द्राघीयः) अधिक दीर्घ और (प्रतरम्) अधिक प्रकृष्ट (आयुः) जीवन को (दधानाः) धारण करते हुए तुम (आ इत) आओ। (सधस्थे) सहस्थान [समाज] मे (आसीनाः) बैठे हुए तुम (मृत्युम्) मृत्यु को (नुदत) ढकेलो, (अथ) फिर (जीवासः) जीवते हुए हम (विदथम्) विज्ञान का (आ वदेम) उपदेश करें ॥३०॥

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् ।

अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥३१॥

पदार्थ—(इमाः) यह [विदुषी] (नारीः) नारियां (अविधवाः) सधवा [मनुष्यो वाली] और (सुपत्नीः) धार्मिक पतियो वाली होकर (आञ्जनेन) यथावत् मेल से और (सर्पिषा) घी आदि [सार पदार्थ] से (सं स्पृशन्ताम्) संयुक्त रहे। (अनश्रवः) बिना आंसुओ वाली, (अनमीवाः) बिना रोगों वाली, (सुरत्नाः) सुन्दर-सुन्दर रत्नो वाली (जनयः) मातायें (अग्रे) आगे-आगे (योनिम्) मिलने के स्थान [घर, सभा आदि] मे (आ रोहन्तु) चढ़ें ॥३१॥

व्याकरोमि हविषाहमेतौ तौ ब्रह्मणा व्यहं कल्पयामि ।

स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥३२॥

पदार्थ—(अहम्) मैं [परमेश्वर] (हविषा) देने-लेने योग्य कर्म के साथ (एतौ) इन दोनों [स्त्री-पुरुष समूह] को (व्याकरोमि) व्याख्यात करता हूँ, (तौ) उन दोनों को (ब्रह्मणा) वेदज्ञान के साथ (अहम्) मैं (वि) विविध प्रकार (कल्पयामि) समर्थ करता हूँ। (पितृभ्यः) पितरों [रक्षक विद्वानों] के लिये (अजराम्) अक्षय (स्वधाम्) आत्मधारण शक्ति को (करोमि) करता हूँ [देता हूँ], (दीर्घेण) दीर्घ (आयुषा) जीवन के साथ (इमान्) इन सब को (सं सृजामि) संयुक्त करता हूँ ॥३२॥

यो नो अग्निः पितरो हृत्स्व१न्तराविवेशामृतो मर्त्येषु ।
मय्यहं तं परि गृह्णामि देवं मा सो अस्मान् द्विक्षत मा वयं तम् ॥३३॥

पदार्थ—(पितरः) हे पितरो ! [रक्षक ज्ञानियो] (यः) जो (अग्निः) प्रकाशस्वरूप [परमेश्वर] (मर्त्येषु) मरणधर्मियों में [मनुष्य आदि विकारवान् पदार्थों] में (अमृतः) अमर [होकर] (नः) हमारे (हृत्सु) हृदयों में (अन्तः) भीतर (आविवेश) प्रविष्ट हुआ है। (अहम्) मैं [मनुष्य] (तम्) उस (देवम्) प्रकाशमान [परमात्मा] को (मयि) अपने में (परि) सब ओर (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ, (सः) वह (अस्मान्) हम से (मा द्विक्षत) द्वेष न करे, और (वयम्) हम (तम्) उससे (मा) न [द्वेष करें] ॥३३॥

अपावृत्य गार्हपत्यात् क्रव्यादा प्रेत दक्षिणा ।
प्रियं पितृभ्य आत्मने ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियम् ॥३४॥

पदार्थ—(गार्हपत्यात्) गृहपति से संयुक्त ज्ञान से [विरुद्ध वर्तमान] (क्रव्यादः) मांसभक्षक [अज्ञान] के साथ [ठहरने से] (अपावृत्य) हटकर (दक्षिणा) सरल [सीधे वा वृद्धिकारक] मार्ग में (प्र इत) चले चलो और (आत्मने) अपने लिये और (पितृभ्यः) पितर [रक्षक] (ब्रह्मभ्यः) ब्रह्माओं [वेदज्ञानियों] के लिये (प्रियम्) प्रिय और (प्रियम्) प्रीतिकारक कर्म (कृणुत) करो ॥३४॥

द्विभागधनमादाय प्र क्षिणात्यवर्त्या ।
अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः ॥३५॥

पदार्थ—(यः) जो (क्रव्यात्) मांसभक्षक (अग्निः) अग्नि [के समान सन्तापकारी दोष] (अनिराहितः) नहीं निकाला गया है, वह [दोष] (ज्येष्ठस्य) श्रेष्ठ (पुत्रस्य) सशोधक पुरुष के (द्विभागधनम्) दोनों [संचित और क्रियमाण] भाग वाले धन को (आदाय) छीनकर (अवर्त्या) वृत्ति [जीविका] के बिना [उसको] (प्र क्षिणाति) नाश कर डालता है ॥३५॥

यत् कृषते यद् वनुते यच्च वस्नेन विन्दते ।
सर्वं मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याच्चेदनिराहितः ॥३६॥

पदार्थ—(यत्) जो कुछ [मनुष्य] (कृषते) खेती करता है, (यत्) जो कुछ (वनुते) मांगता है, (च) और (यत्) जो कुछ (वस्नेन) मूल्य से (विन्दते) पाता है। (तत् सर्वम्) वह सब (मर्त्यस्य) मनुष्य का (न अस्ति) नहीं है, (च इत् - चेत्) यदि (क्रव्यात्) मांसभक्षक [दोष] (अनिराहितः) नहीं निकाला गया है ॥३६॥

अयज्ञियो हतवर्चा भवति नैनेन हविरत्तवे ।
छिनत्ति कृष्या गोर्धनाद् यं क्रव्यादनुवर्तते ॥३७॥

पदार्थ—वह पुरुष (अयज्ञियः) संगति के अयोग्य, (हतवर्चाः) नष्ट तेज वाला (भवति) हो जाता है, (एनेन) इस कारण से [उसे] (हविः) ग्राह्य अन्न (अत्तवे) खाना (न) नहीं [होता]। [उस को] (क्रव्यात्) मांसभक्षक [दोष वा रोग] (कृष्याः) खेती से, (गोः) गौ से और (धनात्) धन से (छिनत्ति) काट देता है, वह [मांसभक्षक] (यम् अनुवर्तते) जिस पुरुष के पीछे पड़ जाता है ॥३७॥

मुहुर्गृध्यैः प्र वदत्यार्तिं मर्त्यो नीत्य ।
क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ॥३८॥

पदार्थ—(मर्त्यः) [वह] मनुष्य (आर्तिम्) विपत्ति में (नीत्य) नीचे आकर (गृध्यैः) लोभियों से (मुहुः) बार-बार (वदति) बातचीत करता है, (यान् = यम्) जिस [मनुष्य] को (क्रव्यात्) मांसभक्षक (अग्निः) अग्नि [के समान सन्तापकारी दोष आदि] (अन्तिकात्) निकट से (अनुविद्वान्) निरन्तर जानता हुआ (वितावति) सता डालता है ॥३८॥

ग्राह्या गृहाः सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन्म्रियते पतिः ।
ब्रह्मैव विद्वानेष्यो यः क्रव्यादं निराददत् ॥३९॥

पदार्थ—(गृहाः) घर (ग्राह्या) ग्राही [जकड़ने वाली शृङ्खला आदि बन्धन] से (संसृज्यन्ते) संयुक्त हो जाते हैं, (यत्) जब (स्त्रियाः) स्त्री का (पतिः) पति (म्रियते) प्राण छोड़ देता है [निरुद्यमी हो जाता है] [इस लिये] (ब्रह्मा) ब्रह्मा [चारों वेदों का वेत्ता पुरुष] (एव) ही (विद्वान्) विद्वान् [पति] (एष्यः) खोजना चाहिये, (यः) जो (क्रव्यादम्) मांसभक्षक [दोष] को (निराददत्) हटा देवे ॥३९॥

यद् रिप्रं शमलं चकृम यच्च दुष्कृतम् ।
आपो मा तस्माच्छुम्भन्त्वग्नेः संकसुकाच्च यत् ॥४०॥

पदार्थ—(संकसुकात्) यथावत् शासक (अग्नेः) अग्नि [के समान तेजस्वी पुरुष] से पृथक् होकर (यत्) जो कुछ (रिप्रम्) पाप (च) और (यत्) जो कुछ (शमलम्) भ्रष्ट व्यवहार (च) और (यत्) जो कुछ (दुष्कृतम्) दुष्ट कर्म (चकृम) हमने किया है, (आपः) आप्त प्रजायें [यथार्थवक्ता लोग] (मा) मुझको (तस्मात्) उस [पापादि] से पृथक् करके (शुम्भन्तु) शोभायमान करें ॥४०॥

ता अधरादुदीचीराववृत्रन् प्रजानतीः पथिभिर्देवयानैः ।
पर्वतस्य वृषभस्याधि पृष्ठे नवाश्चरन्ति सरितः पुराणीः ॥४१॥

पदार्थ—(अधरात्) नीचे से (उदीचीः) ऊंची चलती हुई, (प्रजानतीः) बहुत जानने वाली (ताः) वे [आप्त प्रजायें] (देवयानैः) विद्वानों के चलने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (आ अववृत्रन्) घूम कर आई हैं। (वृषभस्य) बरसते हुए (पर्वतस्य) पहाड़ की (पृष्ठे अधि) पीठ के ऊपर (नवाः) नवीन (सरितः) नदियां (पुराणीः) पुरानी [नदियों] को (चरन्ति) चली जाती हैं ॥४१॥

अग्ने अक्रव्यान्निः क्रव्यादं नुदा देवयजनं वह ॥४२॥

पदार्थ—(अक्रव्यात्) हे अमांसभक्षक ! [शान्तस्वभाव] (अग्ने) अग्नि [के समान तेजस्वी पुरुष !] (क्रव्यादम्) मांसभक्षक [दोष] को (निः नुद) बाहिर ढकेल दे, और (देवयजनम्) विद्वानों के सत्कारयोग्य व्यवहार को (आ वह) यहां ला ॥४२॥

इमं क्रव्यादा विवेशायं क्रव्यादमन्वगात् ।
व्याघ्रौ कृत्वा नानानं तं हरामि शिवापरम् ॥४३॥

पदार्थ—(क्रव्यात्) मांसभक्षक [दोष] ने (इमम्) इस [पुरुष] में (आ विवेश) आकर प्रवेश किया है, [अथवा] (अयम्) यह [पुरुष] (क्रव्यादम् अनु) मांसभक्षक [दोष] के पीछे-पीछे (अगात्) चला है। (व्याघ्रौ) इन दोनों व्याघ्रों [दोषों] को (नानानम्) पृथक् पृथक् (कृत्वा) करके (तम्) उस (शिवापरम्) मङ्गल से भिन्न [अमङ्गलकारी दोष] को (हरामि) नाश करता हूँ ॥४३॥

अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणामग्नि-
र्गार्हपत्य उभयानन्तरा श्रितः ॥४४॥

पदार्थ—[जो] (देवानाम्) उत्तम गुणों का और (मनुष्याणाम्) [मननशील] मनुष्यों का (अन्तर्धिः) भीतर से धारण करनेवाला और (परिधिः) सब ओर से धारण करने वाला है [वह] (गार्हपत्यः) गृहपतियों से संयुक्त (अग्निः) ज्ञानस्वरूप [परमेश्वर] (उभयान् अन्तरा) दोनों पक्षों [उत्तम गुणों और मनुष्यों] के भीतर (श्रितः) ठहरा है ॥४४॥

जीवानामायुः प्र तिर त्वमग्ने पितॄणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः ।
सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिमुषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै ॥४५॥

पदार्थ—(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप ! [परमेश्वर] (त्वम्) तू (जीवानाम्) जीवितों [पुरुषार्थियों] का (आयुः) जीवन (प्र तिर) बढ़ा (ये) जो (मृताः) प्राण छोड़े हुए [पुरुषार्थहीन] हैं, वे (अपि) भी (पितॄणाम्) पितरों [रक्षक ज्ञानियों] के (लोकम्) समाज में (गच्छन्तु) पहुँचें। (सुगार्हपत्यः) सुन्दर गृहपतियों से युक्त तू [परमेश्वर] (अरातिम्) वैरी को (वितपन्) तपाता हुआ (श्रेयसीम्) अधिक कल्याणकारी (उषाम् उषाम्) प्रत्येक उषा [प्रभातवेला] (अस्मै) इस [उपासक] को (धेहि) धारण कर ॥४५॥

सर्वानग्ने सहमानः सपत्नानैषामूर्जं रयिमस्मासु धेहि ॥४६॥

पदार्थ—(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप ! [परमेश्वर] (सर्वान्) सब (सपत्नान्) वैरियों का (सहमानः) हराता हुआ तू (एषाम्) इनके (ऊर्जम्) अन्न और (रयिम्) धन को (अस्मासु) हम [धर्मात्माओं] में (आ धेहि) सब प्रकार धारण कर ॥४६॥

इममिन्द्रं वह्निं पप्रिमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।
तेनाप हत शरुमापतन्तं तेन रुद्रस्य परि पातास्ताम् ॥४७॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो] (वह्निम्) सब को चलानेवाले, (वव्रिम्) पूर्ण करने वाले (इमम्) इस (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर] का (अन्वारभध्वम्) निरन्तर सहारा लो, (सः) वह (वः) तुम को (अवद्यात्) निन्दा से और (दुरितात्) कष्ट से (निः वक्षत्) निकालेगा । (तेन) उस [परमेश्वर] के साथ ही, (आपतन्तम्) आ पड़ते हुए (शरुम्) वज्र को (अप हत) नष्ट कर दो, (तेन) उसी के साथ, (रुद्रस्य) ज्ञाननाशक [शत्रु] के (अस्ताम्) चलाये हुए [तीर] को (परि पात) पृथक् रक्खो ॥४७॥

अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।

आ रोहत सवितुर्नावमेतां षड्भिरुर्वीभिरमतिं तरेम ॥४८॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (अनड्वाहम्) जीवन के ले चलनेवाले (प्लवम्) डोंगी रूप [परमेश्वर] का (अन्वारभध्वम्) निरन्तर सहारा लो, (सः) वह (वः) तुमको (अवद्यात्) निन्दा से और (दुरितात्) कष्ट से (निः वक्षत्) निकालेगा । (सवितुः) चलानेवाले [चतुर नाविक वा मांझी] की (एताम् नावम्) इस नाव पर (आ रोहत) चढ़ो, (षड्भिः) छह (उर्वीभिः) चौड़ी [दिशाओं] से (अमतिम्) विपत्ति को (तरेम) हम पार करें ॥४८॥

अहोरात्रे अन्वेषि बिभ्रत् क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः ।

अनातुरान्त्सुमनसस्तल्प बिभ्रज्ज्योगेव नः पुरुषगन्धिरेधि ॥४९॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] तू (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (क्षेम्यः तिष्ठन्) सकुशल ठहरता हुआ, (प्रतरणः) बढ़ाता हुआ और (सुवीरः) महावीर होकर (अहोरात्रे) दिन रात (अनु) निरन्तर (एषि) चलता है । (तल्प) हे सहारा देने वाले [ईश्वर !] (नः) हमको (ज्योक्) बहुत काल तक (एव) निश्चय करके (अनातुरान्) नीरोग और (सुमनसः) प्रसन्नचित्त (बिभ्रत्) रखता हुआ तू (पुरुषगन्धिः) पुरुषों को शोभा देनेवाला (एधि) हो ॥४९॥

ते देवेभ्य आ वृश्चन्ते पापं जीवन्ति सर्वदा ।

क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादश्व इवानुवपते नडम् ॥५०॥

पदार्थ—(ते) वे लोग (देवेभ्यः) विद्वानों के पास से (आ वृश्चन्ते) कट जाते हैं [अलग हो जाते हैं], और (पापम्) पाप के साथ (सर्वदा) सदा (जीवन्ति) जीवते हैं । (यान्) जिन को (क्रव्यात्) मांसभक्षक (अग्निः) अग्नि [के समान सन्तापकारी पाप] (अन्तिकात्) निकट से (अनुवपते) काट गिराता है, (अश्वः इव) जैसे घोड़ा (नडम्) नरकट घास को [कुचल डालता है] ॥५०॥

येऽश्रद्धा धनकाम्या क्रव्यादा समासते ।

ते वा अन्येषां कुम्भीं पर्यादधति सर्वदा ॥५१॥

पदार्थ—(ये) जो (अश्रद्धाः) श्रद्धाहीन (धनकाम्या) धन की कामना से (क्रव्यादा) मांसभक्षक [पाप] के साथ (समासते) मिलकर बैठते हैं । (ते) वे लोग (वै) निश्चय करके (अन्येषाम्) दूसरों की (कुम्भीम्) हाण्डी को (सर्वदा) सदा (पर्यादधति) चढ़ाते हैं ॥५१॥

प्रेव पिपतिषति मनसा मुहुरा वर्तते पुनः ।

क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ॥५२॥

पदार्थ—वह [मनुष्य] (मनसा) अपने मन से (प्र इव) आगे बढ़ता हुआ-सा (पिपतिषति) ऐश्वर्यवान् होना चाहता है और (मुहुः) बारबार (पुनः) पीछे को (आ वर्तते) लौट आता है । (यान्—यम्) जिस [मनुष्य] को (क्रव्यात्) मांसभक्षक (अग्निः) अग्नि [के समान सन्तापकारी दोष आदि] (अन्तिकात्) निकट से (अनुविद्वान्) निरन्तर जानता हुआ (वितावति) सता डालता है ॥५२॥

अविः कृष्णा भागधेयं पशूनां सीसं क्रव्यादपि चन्द्रं त आहुः ।

माषाः पिष्टा भागधेयं ते हव्यमरण्यान्या गह्वरं सचस्व ॥५३॥

पदार्थ—(कृष्णा) आकर्षण करनेवाली (अविः) रक्षिका प्रकृति [सृष्टि] (पशूनाम्) सब जीवों का (भागधेयम्) सेवनीय पदार्थ है । (क्रव्यात्) हे मांसभक्षक ! [पाप] (ते) तेरे (चन्द्रम्) सुवर्ण को (अपि) भी (सीसम्) सीसा [जस्ता आदि निकृष्ट धातु के समान] (आहुः) वे [विद्वान् लोग] बताते हैं । [हे पाप !] (पिष्टाः) चूर्ण किये हुए (माषाः) वध व्यवहार [संग्राम आदि] (ते) तेरा (हव्यम्) ग्राह्य (भागधेयम्) भाग होता है, (अरण्यान्याः) बड़े वन की (गह्वरम्) गुहा का (सचस्व) सेवन कर ॥५३॥

इषीकां जरतीमिष्ट्वा तिल्पिञ्जं दण्डनं नडम् ।

तमिन्द्र इध्मं कृत्वा यमस्याग्निं निरादधौ ॥५४॥

पदार्थ—(इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर] ने (जरतीम्) स्तुति योग्य (इषीकाम्) प्राप्तियोग्य [वेदवाणी] (इष्ट्वा) देकर और (तिल्पिञ्जम्) गति अर्थात् प्रयत्न के निवास वाले (दण्डनम्) दण्ड व्यवहार और (नडम्) प्रबन्ध व्यवहार को (इध्मम्) प्रकाशमान (कृत्वा) करके (यमस्य) न्यायाधीश के (तम्) उस (अग्निम्) प्रताप को (निरादधौ) निश्चय करके ठहराया है ॥५४॥

प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा प्रविद्वान् पन्थां वि ह्याविवेश ।

परामीषामसून् दिदेश दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥५५॥

पदार्थ—(प्रत्यञ्चम्) सन्मुख चलते हुए (अर्कम्) सूर्य को (प्रत्यर्पयित्वा) प्रत्यक्ष स्थापित करके (प्रविद्वान्) बड़े विद्वान् मैं [परमेश्वर] ने (हि) ही (पन्थाम्) मार्ग में (वि) विविध प्रकार (आविवेश) प्रवेश किया है । (अमीषाम्) इन सब [प्राणियों और लोकों] के (असून्) प्राणों को (परा) पराक्रम से (दिदेश) मैंने आज्ञा में रक्खा है, (दीर्घेण आयुषा) दीर्घ आयु के साथ (इमान्) इन सब [प्राणियों और लोकों] को (सं सृजामि) संयुक्त करता हूँ ॥५५॥

卐 इति द्वितीयोऽनुवाकः 卐

卐

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ३ 卐

१—६० यम । स्वर्गः, ओदन , अग्नि । त्रिष्टुप्, १, ४२-४३, ४७ भुरिक्; ८, १२, २१-२२, २४ जगती, १३, १७ स्वराडार्षी पङ्क्ति , ३४ विराड्-गर्भा, ३९ अनुष्टुब्गर्भा ४४ पराबृहती, ५५ ६० त्र्यव० सप्तप० शंकुमत्य-तिजागत शाक्वराति शाक्वर धार्त्यष्टिगर्भातिधृतिः (५५, ५७-६० कृतिः, ५६ विराट्कृतिः) ।

पुमान् पुंसोऽधि तिष्ठ चर्मेहि तत्र ह्वयस्व यतमा प्रिया ते ।

यावन्तावग्रे प्रथमं समेयथुस्तद् वां वयो यमराज्ये समानम् ॥१॥

पदार्थ—[हे प्राणी !] तू (पुमान्) रक्षक [पुरुष होकर] (पुंसः) रक्षक [पुरुषों] पर (अधि तिष्ठ) अधिष्ठाता हो, (चर्म) ज्ञान (इहि) प्राप्त कर, (तत्र) वहाँ [ज्ञान के भीतर] [उस शक्ति को] (ह्वयस्व) बुला, (यतमा) जौन-सी [शक्ति अर्थात् परमेश्वर] (ते) तेरे लिये (प्रिया) प्रिय करने वाली है । (यावन्तौ) जितने [पराक्रमी] तुम दोनों ने (अग्रे) पहिली अवस्था में (प्रथमम्) प्रधान कर्म (समेयथुः) मिलकर पाया है, (तत्) उतना ही (वाम्) तुम दोनों का (वयः) जीवन (यमराज्ये) न्यायाधीश [परमेश्वर] के राज्य में (समानम्) समान है ॥१॥

तावद् वां चक्षुस्तति वीर्याणि तावत् तेजस्ततिधा वाजिनानि ।

अग्निः शरीरं सचते यदैधोऽधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः ॥२॥

पदार्थ—(वाम्) तुम दोनों की (तावत्) उतनी [पूर्व कर्म के अनुसार] (चक्षुः) दृष्टि है, (तति) उतने (वीर्याणि) वीर कर्म हैं, (तावत्) उतना (तेजः) तेज और (ततिधा) उतने प्रकार से (वाजिनानि) पराक्रम हैं, (यदा) जिस समय में वह [जीव] (शरीरम्) शरीर को (सचते) मिलता है, [जैसे] (अग्निः) अग्नि (एधः) इन्धन को [मिलता है], (अध) सो, (मिथुना) हे तुम दोनों बुद्धिमानो ! (पक्वात्) परिपक्व [ज्ञान] से (सम् भवाथः) शक्तिमान् हो जाओ ॥२॥

समस्मिंल्लोके समु देवयाने सं स्मा समेतं यमराज्येषु ।

पूतौ पवित्रैरुप तद्ध्वयेथां यद्यद्रेतो अधि वां संबभूव ॥३॥

पदार्थ—(अस्मिन् लोके) इस लोक [संसार वा जन्म] में (सम्) मिलकर, (देवयाने) विद्वानों के मार्ग में (उ) ही (सम्) मिलकर और (यमराज्येषु) न्यायाधीश [परमात्मा] के राज्यों [राज्य नियमों] में (सम् स्म) अवश्य मिलकर (समेतम्) तुम दोनों साथ-साथ चलो । (पवित्रैः) पवित्र कर्मों से (पूतौ) पवित्र तुम दोनों (तत्) उस [बल] को (उप ह्वयेथाम्) आदर से बुलाओ, (यद्यत्) जो जो (रेतः) वीर्य [बल] (वाम् अधि) तुम दोनों में अधिकारपूर्वक (संबभूव) उत्पन्न हुआ है ॥३॥

आपस्पुत्रासो अभि सं विशध्वमिमं जीवं जीवधन्याः समेत्य ।

तासां भजध्वममृतं यमाहुर्यमोदनं पचति वां जनित्री ॥४॥

पदार्थ—(पुत्रासः) हे पुत्रो ! [नरक से बचाने वालो !] (जीवधन्याः) जीवों में धन्य [बड़ाई योग्य] तुम सब ! (इमम् जीवम्) इस जीवते [जीवात्मा]

वि (समेत्य) समागम करके, (आप =अप) प्राप्त प्रजाओं मे (अभि) सब ओर (सम्) मिलते हुए (विशध्वम्) प्रवेश करो। (तासाम्) उन [प्रजाओं] के बीच (अमृतम्) उस अमर [परमात्मा] को (भजध्वम्) तुम सब सेवो, (यम्) जिसको (ओदनम्) ओदन [सुख बरसाने वाला या मेघरूप परमेश्वर] (आहुः) वे [विद्वान्] कहते हैं, (यम्) जिसको (वाम्) तुम दोनों की (जनित्री) उत्पन्न करनेवाली [जन्म व्यवस्था] (पचति) परिपक्व [दृढ] करती है ॥४॥

यं वां पिता पचति यं च माता रिप्रान्निर्मुक्त्यै शमलाच्च वाचः ।

स ओदनः शतधारः स्वर्ग उभे व्याप नभसी महित्वा ॥५॥

पदार्थ—(यम्) जिस [परमेश्वर] को (वाम्) तुम दोनो का (पिता) पिता (च) और (यम्) जिस को (माता) तुम्हारी माता (रिप्रात्) पाप से (च) और (शमलात्) भ्रष्ट व्यवहार से (निर्मुक्त्यै) छूटने के लिये (वाचः) अपनी वाणियों द्वारा (पचति) पक्का [दृढ] करती है। (सः) वह (शतधारः) सैकड़ो धारण शक्तियों वाला, (स्वर्गः) सुख पहुँचानेवाला (ओदनः) ओदन [सुख बरसाने वाला परमेश्वर] (महित्वा) अपने महत्त्व से (उभे) दोनों (नभसी) सूर्य और पृथिवी [प्रकाशमान और अप्रकाशमान] लोकों मे (वि आप) व्यापक हुआ है ॥५॥

उभे नभसी उभयांश्च लोकान् ये यज्वनामभिजिताः स्वर्गाः । तेषां ज्योतिष्मान् मधुमान् यो अग्रे तस्मिन् पुत्रैर्जरसि सं श्रयेथाम् ॥६॥

पदार्थ—(ये) जो [लोक] (यज्वनाम्) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] करने वालों के (अभिजिताः) सब ओर से जीते हुए और (स्वर्गाः) सुख पहुँचाने वाले हैं, (तेषाम्) उन [लोको] के मध्य (यः) जो [परमेश्वर] (अग्रे) पहिले से (ज्योतिष्मान्) प्रकाशमय और (मधुमान्) ज्ञानमय है, (तस्मिन्) उस [परमेश्वर] में [वर्तमान] (उभे) दोनों (नभसी) सूर्य और पृथिवी [प्रकाशमान और अप्रकाशमान] लोको को (च) और (उभयान्) दोनों [स्त्री पुरुष] समूह वाले (लोकान्) लोको [समाजों वा घरो] को (पुत्रैः) अपने पुत्रो [दुःख से बचाने वालो] के साथ (जरसि) स्तुति मे रहकर (सं श्रयेथाम्) तुम दोनो [स्त्री-पुरुष] मिलकर सेवो ॥६॥

प्राचींप्राचीं प्रदिशमा रभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ।

यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दंपती सं श्रयेथाम् ॥७॥

पदार्थ—(प्राचींप्राचीम्) प्रत्येक आगे वाली (प्रदिशम्) बड़ी दिशा को (आ रभेथाम्) तुम दोनो आरम्भ करो, (एतम्) इस [आगे बढ़ाने वाले] (लोकम्) दर्शनीय पद को (श्रद्दधानाः) श्रद्धा रखने वाले लोग (सचन्ते) सेवते हैं। (यत्) जो कुछ (वाम्) तुम दोनो का (पक्वम्) परिपक्व [दृढ ज्ञान] (अग्नौ) प्रकाशस्वरूप [परमात्मा] मे (परिविष्टम्) प्रविष्ट है, (तस्य) उस [ज्ञान] की (गुप्तये) रक्षा के लिये (दम्पती) हे पति-पत्नी ! (सं श्रयेथाम्) तुम दोनो मिलकर आश्रय लो ॥७॥

दक्षिणां दिशमभि नक्षमाणौ पर्यावर्तेथामभि पात्रमेतत् । तस्मिन् वां यमः पितृभिः संविदानः पक्वाय शर्म बहुलं नि यच्छात् ॥८॥

पदार्थ—(दक्षिणाम्) दाहिनी (दिशम् अभि) दिशा की ओर (नक्षमाणौ) चलते हुए तुम दोनो (एतत्) इस (पात्रम् अभि) रक्षा साधन [ब्रह्म] की ओर (पर्यावर्तेथाम्) घूमते हुए वर्तमान हो। (तस्मिन्) उस [ब्रह्म] मे (वाम्) तुम दोनो का (यमः) नियम (पितृभिः) रक्षक [विद्वानो] के साथ (संविदानः) मिला हुआ (पक्वाय) परिपक्व [दृढ ज्ञान] के लिये (बहुलम्) बहुत (शर्म) आनन्द (नि) निरन्तर (यच्छात्) देवे ॥८॥

प्रतीची दिशामियमिद् वरं यस्यां सोमो अधिपा मृडिता च ।

तस्यां श्रयेथां सुकृतः सचेथामधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः ॥९॥

पदार्थ—(दिशाम्) दिशाओं के मध्य (इयम्) यह (प्रतीची) पीछेवाली [दिशा] (इत्) भी (वरम्) श्रेष्ठ है, (यस्याम्) जिस [दिशा] मे (सोमः) जगत् का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (अधिपाः) अधिष्ठाता (च) और (मृडिता) सुखदाता है। (तस्याम्) उस [दिशा] मे (सुकृतः) सुकर्मी लोगो का (श्रयेथाम्) तुम दोनो आश्रय लो और (सचेथाम्) संसर्ग करो, (अध) सो, (मिथुना) हे तुम दोनो विद्वानो ! (पक्वात्) परिपक्व [ज्ञान] से (सं भवाथः) शक्तिमान् हो जाओ ॥९॥

उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावद् दिशामुदीची कृणवन्नो अग्रम् ।

पाङ्क्तं छन्दः पुरुषो बभूव विश्वैर्विश्वाङ्गैः सह सं भवेम ॥१०॥

पदार्थ—(दिशाम्) दिशाओं के बीच (उदीची) बायीं [दिशा] (नः) हमारे (उत्तरम्) अधिक उत्तम (राष्ट्रम्) राज्य को (प्रजया) प्रजा के साथ (उत्तरावत्) अधिक उत्तम व्यवहार वाला और (अग्रम्) अगुआ (कृणवत्) करे। (पुरुषः) पुरुष ने (पाङ्क्तम्) विस्तार वा गौरव से युक्त (छन्दः) स्वतन्त्रता को (बभूव) पाया है, (विश्वाङ्गैः) सब उपायो वाले (विश्वैः सह) सब [विद्वानों] के साथ (सं भवेम) हम शक्तिमान् होवें ॥१०॥

ध्रुवेयं विराण्नमो अस्त्वस्यै शिवा पुत्रेभ्य उत मह्यमस्तु ।

सा नो देव्यदिते विश्ववार इर्य इव गोपा अभि रक्ष पक्वम् ॥११॥

पदार्थ—(ध्रुवा=ध्रुवायाम्) नीचे वाली [दिशा] में (इयम्) यह (विराट्) विराट् [विविध ऐश्वर्य वाली शक्ति परमेश्वर] है (अस्यै) उस [शक्ति परमेश्वर] को (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, वह (पुत्रेभ्यः) पुत्रों [नरक से बचाने वालो] को (उत) और (मह्यम्) मुझको (शिवा) मङ्गलकारी (अस्तु) होवे। (सा) सो तू, (देवि) हे देवी ! [उत्तम गुण वाली], (अदिते) हे अखण्ड व्रत वाली ! (विश्ववारे) हे सब श्रेष्ठ गुणो वाली ! [शक्ति परमेश्वर] (इर्यः) फुरतीले (गोपाः इव) गोप [ग्वाला] के समान (पक्वम् अभि) परिपक्व [दृढ ज्ञान] मे (नः) हमारी (रक्ष) रक्षा कर ॥११॥

पितेव पुत्रानभि सं स्वजस्व नः शिवा नो वाता इह वान्तु भूमौ ।

यमोदनं पचतो देवते इह तं नस्तप उत सत्यं च वेत्तु ॥१२॥

पदार्थ—[हे विराट् परमेश्वर] (नः) हमें (अभि सं स्वजस्व) भले प्रकार गले लगा, (पिता इव) जैसे पिता (पुत्रान्) पुत्रो [नरक से बचाने वालों] को, (नः) हमारे लिये (शिवाः) मङ्गलकारी (वाताः) पवनें (इह) यहां (भूमौ) भूमि पर (वान्तु) चलें। (यम्) जिस (ओदनम्) ओदन [सुख बरसाने वाले परमेश्वर] को (देवते) दो देवता [स्त्री-पुरुष] (इह) यहां [हम सब मे] (पचतः) परिपक्व [दृढ] करते हैं, (तम्) उस [परमेश्वर] को (नः) हमारा (तपः) तप [ब्रह्मचर्य आदि व्रत] (उत) और (सत्यम्) सत्य [निष्कपट व्यवहार] (च) निश्चय करके (वेत्तु) जाने ॥१२॥

यद्यत् कृष्णः शकुन एह गत्वा त्सरन् विषक्तं बिल आससाद ।

यद् वा दास्यार्द्रहस्ता समङ्क्त उलूखलं मुसलं शुम्भतापः ॥१३॥

पदार्थ—(यद्यत्) जब कभी (कृष्णः) कुरेदनेवाला (शकुनः) चिल्ल आदि पक्षी [के समान दुष्ट पुरुष] (इह) यहां (आ गत्वा) आकर (विषक्तम्) विरुद्ध मेल से (त्सरन्) टेढ़ा चलता हुआ (बिले) बिल [हमारे घर आदि] में (आससाद) आया है। (वा) अथवा (यत्) यदि (आर्द्रहस्ता) भीगे हाथ वाली (दासी) हिंसक स्त्री (उलूखलम्) ओखली और (मुसलम्) मूसल को (समङ्क्ते) लिथेड़ देती है, (आपः) हे आप्त प्रजाओ ! [उस दोष को] (शुम्भत) नाश करो ॥१३॥

अयं ग्रावा पृथुबुध्नो वयोधाः पूतः पवित्रैरप हन्तु रक्षः ।

आ रोह चर्म महि शर्म यच्छ मा दंपती पौत्रमघं नि गाताम् ॥१४॥

पदार्थ—(अयम्) यह (ग्रावा) शास्त्रों का उपदेशक (पृथुबुध्नः) विस्तृत ज्ञान वाला, (वयोधाः) जीवन धारण करने वाला, (पवित्रैः) शुद्ध व्यवहारों से (पूतः) पवित्र किया हुआ [पुरुष] (रक्षः) राक्षस [विघ्न] को (अप हन्तु) नाश कर दे। [हे विद्वान् !] (चर्म) ज्ञान मे (आ रोह) ऊंचा हो, (महि) बड़ा (शर्म) सुख (यच्छ) दे, (दम्पती) पति-पत्नी (पौत्रम्) पुत्रसम्बन्धी (अघम्) दुःख को (मा नि गाताम्) कभी न पावें ॥१४॥

वनस्पतिः सह देवैर्न आगन् रक्षः पिशाचाँ अपबाधमानः ।

स उच्छ्रयातै प्र वदाति वाचं तेन लोकाँ अभि सर्वाञ् जयेम ॥१५॥

पदार्थ—(वनस्पतिः) सेवनीय शास्त्र का रक्षक [विद्वान् पुरुष] (रक्षः) राक्षस [विघ्न] और (पिशाचान्) मांसभक्षक [मनुष्य रोग आदिको] को (अपबाधमानः) हटाता हुआ (देवैः सह) अपने उत्तम गुणों के साथ (नः) हम मे (आ अगन) आया है। (सः) वह (उत् श्रयातै) ऊंचा चढ़े और (वाचम्) वेद वाणी का (प्र वदाति) उपदेश कर, (तेन) उस [विद्वान्] के साथ (सर्वान् लोकान्) सब लोको को (अभि) सब ओर से (जयेम) हम जीतें ॥१५॥

सप्त मेधान् पशवः पर्यगृह्णन् य एषां ज्योतिष्माँ उत यश्चकर्श ।

त्रयस्त्रिंशद् देवतास्तान्त्सचन्ते स नः स्वर्गमभि नेष लोकम् ॥१६॥

पदार्थ—(पशवः) सब जीवों ने (सप्त) सात [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] (मेधान्) परस्पर मिले हुए [पदार्थों] को (परि अगृह्णन्) ग्रहण किया है, (त्रयस्त्रिंशत्) तेतीस [वसु आदि] (देवताः) देवता (तान्) उन [जीवों] को (सचन्ते) सेवते हैं, (यः) जो [पुरुष] (एषाम्) इन [जीवों] में से (ज्योतिष्मान्) तेजस्वी है, (उत) और (यः) जिसने [विज्ञान को] (चकर्श) सूक्ष्म किया है, (सः) वह तू (नः) हमको (स्वर्गम्) सुख पहुँचाने वाले (लोकम् अभि) समाज में (नेषः) पहुँचा ॥१६॥

स्वर्गं लोकमभि नो नयासि सं जायया सह पुत्रैः स्याम ।

गृह्णामि हस्तमनु मैत्वत्र मा नस्तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः ॥१७॥

उत्थापय सीदतो बुध्न एनानद्भिरात्मानमभि सं स्पृशन्ताम्।
अमासि पात्रैरुदकं यदेतन्मितास्तण्डुलाः प्रदिशो यदीमाः ॥३०॥

पदार्थ—[हे वीर !] (बुध्ने) तले पर (सीदतः) बैठे हुए (एनान्) इन [चावलों] को (उत् स्थापय) ऊंचा उठा, वे [चावल] (अद्भिः) जल के साथ (आत्मानम्) अपने को (अभि) सब प्रकार (सं स्पृशन्ताम्) मिला देवें। (पात्रैः) पात्रों [चमचे आदि] से, (यत्) जो कुछ (एतत्) यह (उदकम्) जल है, [उसे] (अमासि) मैं ने माप लिया है, (यदि) यदि (तण्डुलाः) चावल (इमाः प्रदिशः) इन दिशाओं में [बटलोही के भीतर] (मिताः) मापे गये हैं ॥३०॥

प्र यच्छ पर्शुं त्वरया हरौषमहिंसन्त ओषधीर्दान्तु पर्वन्।
यासां सोमः परि राज्यं बभूवामन्युता नो वीरुधो भवन्तु ॥३१॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (पर्शुम्) हंसिया [दरांती] को (प्र यच्छ) ले, (त्वरय=०—या) वेग से (आ हर) ले आ, (ओषधीः) ओषधियों [अन्न आदि] को (अहिंसन्तः) हानि न करते हुए वे [लावा लोग] (पर्वन्) गांठ पर (ओषम्) झट पट (दान्तु) काटें। (यासाम्) जिन [अन्न आदि] के (राज्यम्) राज्य को (सोमः) चन्द्रमा [वा जल] ने (परि बभूव) घेर लिया था, (अमन्युताः) क्रोध को न फैलाती हुई (वीरुधः) वे ओषधें [अन्न आदि] (नः) हमें (भवन्तु) प्राप्त होवें ॥३१॥

नवं बर्हिरोदनाय स्तृणीत प्रियं हृदश्चक्षुषो वल्ग्वस्तु।
तस्मिन् देवाः सह दैवीर्विशन्त्विमं प्राश्नन्त्वृतुभिर्निषद्य ॥३२॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (नवम्) नवीन (बर्हिः) आसन (ओदनाय) भात [रधे चावल जीमने] के लिये (स्तृणीत) बिछाओ, वह [आसन] (हृदः) हृदय का (प्रियम्) प्रिय और (चक्षुषः) नेत्र का (वल्गु) रमणीय (अस्तु) होवे। (तस्मिन्) उस [आसन] पर (देवाः) देवता [विद्वान् लोग] और (दैवीः) देवियां [विदुषी स्त्रियां] (सह) साथ साथ (विशन्तु) बैठें और (ऋतुभिः) सब ऋतुओं के साथ (निषद्य) बैठकर (इमम्) इस [भात] को (प्र अश्नन्तु) स्वाद से जीमें ॥३२॥

वनस्पते स्तीर्णमा सीद बर्हिरग्निष्टोमैः संमितो देवताभिः।
त्वष्ट्रेव रूपं सुकृतं स्वधित्यैना एहाः परि पात्रे ददृश्राम् ॥३३॥

पदार्थ—(वनस्पते) हे सेवनीय शास्त्र के रक्षक विद्वन् ! तू (स्तीर्णम्) फैले हुए (बर्हिः) आसन पर (आ सीद) बैठ जा, तू (अग्निष्टोमैः) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर की स्तुतियों से और (देवताभिः) व्यवहारकुशल पुरुषों से (संमितः) सम्मान किया गया है। (एना) इस [पुरुष] करके (एहाः) चेष्टायें (पात्रे) पात्र में [चित्त में] (परि) सब ओर से (ददृश्राम्) देखी जावें, (त्वष्ट्रा इव) जैसे शिल्पी करके (स्वधित्या) बसूले आदि से (सुकृतम्) सुन्दर बनाया गया (रूपम्) वस्तु [देखा जाता है] ॥३३॥

षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् स्वः पक्वेनाभ्यश्नवातै।
उपैनं जीवान् पितरश्च पुत्रा एतं स्वर्गं गमयान्तमग्नेः ॥३४॥

पदार्थ—(षष्ट्याम्) साठ [बहुत] (शरत्सु) बरसों में (निधिपाः) निधियों का रक्षक [मनुष्य] (स्वः) सुख को (पक्वेन) परिपक्व [ज्ञान] के साथ (अभि इच्छात्) सब ओर खोजे और (अभि) सब प्रकार (अश्नवातै) प्राप्त करे। (पितरः) पितर [रक्षक ज्ञानी] (च) और (पुत्राः) पुत्र [कष्ट से बचाने वाले लोग] (एनम्) इस [वीर] के (उप जीवान्) आश्रय से जीवते रहें, [हे परमेश्वर !] (एतम्) इस [वीर को] (अग्नेः) ज्ञान के (अन्तम्) अन्त [सीमा] (स्वर्गम्) सुख समाज में (गमय) पहुँचा ॥३४॥

धर्ता ध्रियस्व धरुणे पृथिव्या अच्युतं त्वा देवताश्च्यावयन्तु।
तं त्वा दम्पती जीवन्तौ जीवपुत्रावुद्वासयातः पर्यग्निधानात् ॥३५॥

पदार्थ—[हे वीर] तू (धर्ता) धर्ता [धारण करने वाला] होकर (पृथिव्याः) पृथिवी के (धरुणे) धारण में (ध्रियस्व) दृढ़ रह, (अच्युतम् त्वा) तुझ निश्चल को (देवताः) देवता [विद्वान् लोग] (च्यावयन्तु) सहन करें। (तम् त्वा) उस तुझको (जीवन्तौ) जीवते हुए [पुरुषार्थी] (जीवपुत्रौ) जीवते [पुरुषार्थी] पुत्रोंवाले (दम्पती) दोनों पति-पत्नी (परि) सब प्रकार से (अग्निधानात्) ज्ञान के आधार [होने के कारण] से (उत्) उत्कर्षता से (वासयातः) निवास करावें ॥३५॥

सर्वान्त्समागा अभिजित्य लोकान् यावन्तः कामाः समतीतृपस्तान्।
वि गाहेथामायवनं च दर्विरेकस्मिन् पात्रे अध्युद्धरैनम् ॥३६॥

पदार्थ—[हे वीर !] (सर्वान् लोकान्) सब लोकों को (अभिजित्य) भले प्रकार जीतकर (समागाः) तू आकर मिला है, (यावन्तः) जितनी (कामाः) कामनायें हैं, (तान्) उन सब को (सम्) यथावत् (अतीतृपः) तू ने तृप्त किया है। (आयवनम्) मन्थन दण्डी (च) और (दर्विः) चमचा [दोनों] (एकस्मिन् पात्रे) एक पात्र में (वि गाहेथाम्) डूबें। [हे वीर !] (एनम्) इस [आत्मा] को (अधि) अधिकार पूर्वक (उत् हर) ऊंचा ले चल ॥३६॥

उप स्तृणीहि प्रथय पुरस्ताद् घृतेन पात्रमभि घारयैतत्।
वाश्रेवोस्रा तरुणं स्तनस्युमिमं देवासो अभिहिङ्कृणोत ॥३७॥

पदार्थ—[हे विद्वन् !] (एतम्) इस (पात्रम्) पात्र [योग्य पुरुष] को (उप स्तृणीहि) फैला, (पुरस्तात्) आगे को (प्रथय) प्रसिद्ध कर, और (घृतेन) सार पदार्थ [तत्त्वज्ञान] से (अभि) भले प्रकार (घारय) प्रकाशमान कर। (देवासः) हे विद्वानो ! (इमम्) इस [आत्मा] को (अभिहिङ्कृणोत) बहुत वृद्धिवाला करो, (इव) जैसे (वाश्रा) रंभाती हुई (उस्रा) गाय (तरुणम्) नवीन (स्तनस्युम्) थन चाहनेवाले [बछड़े] को ॥३७॥

उपास्तरीरकरो लोकमेतमुरुः प्रथतामसमः स्वर्गः।
तस्मिञ्छ्रयातै महिषः सुपर्णो देवा एनं देवताभ्यः प्र यच्छान् ॥३८॥

पदार्थ—[हे विद्वन् !] तू ने (एतम्) इस [पुरुष] को (उप अस्तरीः) बढ़ाया और (लोकम्) दर्शनीय (अकरः) बनाया है, (उरुः) विस्तृत (असमः) व्याकुलता रहित (स्वर्गः) सुख पहुँचाने वाला व्यवहार (प्रथताम्) बढ़े। (तस्मिन्) उस [सुख व्यवहार] में (महिषः) महान् (सुपर्णः) बड़ी पूर्ति वाला [वह पुरुष] (श्रयातै) आश्रय लेवे, (देवाः) विद्वान लोग (एनम्) इस [सुख व्यवहार] को (देवताभ्यः) आनन्दों के लिये (प्र यच्छान्) देवें ॥३८॥

यद्यज्जाया पचति त्वत् परःपरः पतिर्वा जाये त्वत् तिरः।
सं तत् सृजेथां सह वां तदस्तु संपादयन्तौ सह लोकमेकम् ॥३९॥

पदार्थ—[हे पति !] (यद्यत्) जो कुछ [वस्तु] (जाया) पत्नी (त्वत्) तुझ से (परः परः) अलग-अलग (पचति) पकाती है, (वा) अथवा, (जाये) हे पत्नी ! (पतिः) पति (त्वत्) तुझ से (तिरः) गुप्त-गुप्त [कुछ पकाता है।] (एकम्) एक (लोकम्) घर का (सह) मिलकर (सम्पादयन्तौ) बनाते हुए तुम दोनों (तत्) उस [गृह कर्म] को (सम् सृजेथाम्) मिलाओ, (तत्) वह [गृह कर्म] (वाम्) तुम दोनों का (सह) मिलकर (अस्तु) होवे ॥३९॥

यावन्तो अस्याः पृथिवीं सचन्ते अस्मत् पुत्राः परि ये संबभूवुः।
सर्वांस्ताँ उप पात्रे ह्वयेथां नाभिं जानानाः शिशवः समायान् ॥४०॥

पदार्थ—(अस्याः) इस [पत्नी] के (यावन्तः) जितने (पुत्राः) पुत्र (पृथिवीम्) पृथिवी को (सचन्ते) सेवते हैं, और (ये) जो [पुत्र] (अस्मत् परि) हम से पृथक् (संबभूवुः) उत्पन्न हुए हैं। (तान् सर्वान्) उन सब को (पात्रे) रक्षणीय व्यवहार में (उप ह्वयेथाम्) तुम दोनों निकट बुलाओ, (नाभिम्) बन्धुधर्म (जानानाः) जानते हुए (शिशवः) वे बालक (समायान्) मिलकर चलें ॥४०॥

वसोर्या धारा मधुना प्रपीना घृतेन मिश्रा अमृतस्य नाभयः।
सर्वास्ता अव रुन्द्धे स्वर्गः षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् ॥४१॥

पदार्थ—(वसोः) श्रेष्ठ गुणों की (याः धाराः) जो धारायें (मधुना) विज्ञान [मधुविद्या] से (प्रपीनाः) बढ़ी हुई और (घृतेन) सार [तत्त्वज्ञान] से (मिश्राः) मिली हुई (अमृतस्य) अमृत [मोक्ष सुख] की (नाभयः) नाभियें [मध्यभाग] हैं। (ताः सर्वाः) उन सब [धाराओं] को (स्वर्गः) सुख पहुँचाने वाला [पुरुष] (अव रुन्द्धे) चौकसी से रख लेता है, और [उन को] (षष्ट्याम्) साठ [अनेक] (शरत्सु) बरसों में (निधिपाः) निधियों का रक्षक [मनुष्य] (अभि इच्छात्) खोजे ॥४१॥

निधिं निधिपा अभ्येनमिच्छादनीश्वरा अभितः सन्तु येऽन्ये।
अस्माभिर्दत्तो निहितः स्वर्गस्त्रिभिः काण्डैस्त्रीन्त्स्वर्गानरुक्षत् ॥४२॥

पदार्थ—(निधिपाः) निधियों का रक्षक [पुरुष] (एनम्) इस (निधिम्) निधि [अर्थात् मोक्ष] को (अभि इच्छात्) खोजे, (ये) जो (अन्ये) दूसरे [वेदविरोधी] हैं, वे (अभितः) सब ओर से (अनीश्वराः) बिना ऐश्वर्य (सन्तु) होवें। (अस्माभिः) हम [धर्मात्माओं] से (दत्तः) रक्षित, (निहितः) स्थापित (स्वर्गः) सुख पहुँचानेवाला [मनुष्य] (त्रिभिः) तीन [मानसिक, वाचिक और शारीरिक] (काण्डैः) कामना योग्य कर्मों से (त्रीन्) तीन [आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक] (स्वर्गान्) स्वर्गों [सुख पहुँचानेवाले व्यवहारों] को (अरुक्षत्) ऊंचा चढ़ा है ॥४२॥

अग्नी रक्षस्तपतु यद् विदेवं क्रव्यात् पिशाच इह मा प्र पास्त।
नुदाम एनमप रुध्मो अस्मदादित्या एनमङ्गिरसः सचन्ताम् ॥४३॥

पदार्थ—(अग्निः) अग्नि [के समान तेजस्वी पुरुष] (तम्) उस राक्षस को (दहतु) जलावे (यत्) जो (विदेवम्) विरुद्ध व्यवहारी (क्रव्यात्) मांस खाने वाला है, (पिशाचः) पिशाच [मांस खानेवाला पुरुष] (इह) यहां पर (मा प्र पास्त) [जलादि] पान न करे। (एनम्) इस [पिशाच को (अस्मत्) अपने से (नुदाम.) हम हटाते हैं और (अप दध्मः) निकाले देते हैं, (आदित्याः) आदित्य [अखण्ड ब्रह्मचारी] (अङ्गिरसः) ऋषि लोग (एनम्) इस [तेजस्वी पुरुष] को (सचन्ताम्) मिलते रहें ॥४३॥

आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्यो मध्विदं घृतेन मिश्रं प्रति वेदयामि ।
शुद्धहस्तौ ब्राह्मणस्यानिहत्यैतं स्वर्गं सुकृतावपीतम् ॥४४॥

पदार्थ—(आदित्येभ्यः) अखण्ड ब्रह्मचारी (अङ्गिरोभ्यः) ऋषियों के लिये (घृतेन) सार [तत्त्वज्ञान] से (मिश्रम्) मिले हुए (इदम्) इस (मधु) विज्ञान [मधुविद्या] को (प्रति वेदयामि) मैं [ईश्वर] बताये देता हूं [हे पति-पत्नी !] तुम दोनों (शुद्धहस्तौ) शुद्ध हाथों वाले और (सुकृतौ) सुकर्मी होकर (ब्राह्मणस्य) वेद या ब्रह्माण्ड के स्वामी [परमेश्वर] के (एतम्) इस (स्वर्गम्) सुख पहुँचानेवाले व्यवहार को (अनिहत्य) नष्ट न करके [सदा मानकर] (अपि इतम्) चलते चलो ॥४४॥

इदं प्रापमुत्तमं काण्डमस्य यस्माल्लोकात् परमेष्ठी समाप ।
आ सिञ्च सर्पिर्घृतवत् समङ्ग्ध्येष भागो अङ्गिरसो न अत्र ॥४५॥

पदार्थ—(इदम्) यह (उत्तमम्) उत्तम (काण्डम्) कामनायोग्य पद (अस्य) उस [समाज] का (प्र आपम्) मैं [ब्रह्मचारी] ने पाया है, (यस्मात्) जिस (लोकात्) समाज से (परमेष्ठी) बड़े ऊंचे पदवाले [ब्रह्मचारी] ने [उत्तम पद को] (समाप) पूरा-पूरा पाया था। [हे आचार्य !] तू (घृतवत्) प्रकाश युक्त (सर्पिः) ज्ञान को (आ सिञ्च) सब ओर सींच और (सम्) ठीक-ठीक (अङ्ग्धि) प्रकट कर, (अङ्गिरसः) विद्वान् [आचार्य] का (एषः) यह (भागः) सेवनीय व्यवहार (नः) हमारे लिये (इह) यहां [संसार में होवे] ॥४५॥

सत्याय च तपसे देवताभ्यो निधिं शेवधिं परि दद्म एतम् ।
मा नो द्यूतेऽव गान्मा समित्यां मा स्मान्यस्मा उत्सृजता पुरा मत् ॥४६॥

पदार्थ—(सत्याय) सत्य [यथार्थ कर्म करने] के लिये (च) और (तपसे) तप [ऐश्वर्य बढ़ाने] के लिये (देवताभ्यः) विजय चाहने वाले [ब्रह्मचारियों] को (एतम्) यह (शेवधिम्) सुखदायक (निधिम्) निधि [विद्याकोश] (परिदद्मः) हम [आचार्य लोग] सौंपते हैं। (नः) हमारा वह [निधि] (द्यूते) जुए में (मा अव गात्) न चला जावे और (मा) न (समित्याम्) संग्राम में [जावे और] (मा स्म) न कभी वह [निधि] (अन्यस्मै) अन्य [अधर्मी] पुरुष को (मत्) मुझ [धर्मात्मा] से (पुरा) आगे होकर (उत्सृजत) छूट जावे ॥४६॥

अहं पचाम्यहं ददामि ममेदु कर्मन् करुणेऽधि जाया ।
कौमारो लोको अजनिष्ट पुत्रोऽन्वारभेथां वय उत्तरावत् ॥४७॥

पदार्थ—(अहम्) मैं [आचार्य] [विद्याकोश को] (पचामि) पक्का [दृढ़] करता हूं, और (अहम्) मैं (ददामि) देता हूं, (मम) मेरी (जाया) पत्नी (इत्) भी (उ) निश्चय करके (करुणे) करुणायुक्त (कर्मन्) कर्म में (अधि) अधिकृत है। (कौमारः) उत्तम कुमारियों वाला और (पुत्रः) उत्तम पुत्रों वाला (लोकः) यह लोक (अजनिष्ट) हुआ है, [हे कुमारी-कुमारो !] तुम दोनों (उत्तरावत्) अधिक उत्तम गुण वाला (वयः) जीवन (अन्वारभेथाम्) निरन्तर आरम्भ करो ॥४७॥

न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः समममान एति ।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति ॥४८॥

पदार्थ—(अत्र) इस [हमारे समाज] में (न) न तो (किल्बिषम्) कोई दोष, (न) (आधारः) गिर पड़ने का व्यवहार (अस्ति) है और (न) न [वह कर्म है] (यत्) जिससे (मित्रैः) मित्रों के साथ (समममानः) बहुत पीड़ा देने वाला व्यवहार (एति) चलता है। (एतत्) यह (नः) हमारा (पात्रम्) पात्र [हृदय] (अनूनम्) बिना रीता [परिपूर्ण] (निहितम्) रक्खा हुआ है, (पक्वः) परिपक्व [दृढ़ बोध] (पक्तारम्) दृढ़ करनेवाले पुरुष में (पुनः) निश्चय करके (आ विशाति) प्रवेश करेगा ॥४८॥

प्रियं प्रियाणां कृणवाम तमस्ते यन्तु यतमे द्विषन्ति ।
धेनुरनड्वान् वयोवय आयदेव पौरुषेयमप मृत्युं नुदन्तु ॥४९॥

पदार्थ—(प्रियाणाम्) अपने प्यारों का हम (प्रियम्) प्रिय [कर्म] (कृणवाम) करें। (ते) वे [दुष्ट] (तमः) अन्धकार [कारागार] में (यन्तु) जावें (यतमे) जो कोई (द्विषन्ति) [हम से] वैर करते हैं। (धेनुः) दुधेल गाय, (अनड्वान्) छकड़ा ले चलनेवाला बैल और (आयत्) आता हुआ (वयोवयः) प्रत्येक अन्न (एव) निश्चय करके (पौरुषेयम्) पुरुष की (मृत्युम्) मृत्यु को (अप नुदन्तु) ढकेल देवें ॥४९॥

समग्नयो विदुरन्यो अन्यं य ओषधीः सचते यश्च सिन्धून् ।
यावन्तो देवा दिव्यातपन्ति हिरण्यं ज्योतिः पचतो बभूव ॥५०॥

पदार्थ—(अग्नयः) सब आग [के ताप] (अन्यः अन्यम्) परस्पर (सम् विदुः) मिलते हैं, (यः) जो [ताप] (ओषधीः) ओषधियों [अन्न, सोमलता आदि] को (च) और (यः) जो (सिन्धून्) [पृथिवी और अन्तरिक्ष के] समुद्रों को (सचते) सेवता है। (यावन्तः) जितने (देवाः) चमकते हुए लोक (दिवि) आकाश में (आतपन्ति) सब ओर तपते हैं, [वैसे ही] (पचतः) सब के परिपक्व करने वाले या विस्तारक [परमेश्वर] के (हिरण्यम्) कमनीय प्रकाश ने (ज्योतिः) [प्रत्येक] ज्योति में (बभूव) मेल किया है ॥५०॥

एषा त्वचां पुरुषे सं बभूवानग्नाः सर्वे पशवो ये अन्ये ।
क्षत्रेणात्मानं परि धापयाथोऽमोतं वासो मुखमोदनस्य ॥५१॥

पदार्थ—(त्वचाम्) त्वचाओं [शरीर की खालों] में से (एषा) यह (पुरुषे) पुरुष [शरीर] पर (सम् बभूव) मिली है, और (ये) जो (अन्ये) दूसरे (पशवः) जीव हैं, (सर्वे) वे सब [भी] (अनग्नाः) बिना नगे [खाल वाले] हैं। [हे स्त्री-पुरुषो !] तुम दोनों (क्षत्रेण) हानि से बचाने वाले बल से (आत्मानम्) अपने को (परि धापयाथः) ढंपवाओ, [जैसे] (अमोतम्) ज्ञान से बुना हुआ (वासः) कपड़ा (ओदनस्य) अन्न आदि का (मुखम्) मुख्य [रक्षासाधन] है ॥५१॥

यदक्षेषु वदा यत् समित्यां यद्वा वदा अनृतं वित्तकाम्या ।
समानं तन्तुमभि संवसानौ तस्मिन्त्सर्वं शमलं सादयाथः ॥५२॥

पदार्थ—[हे स्त्री वा पुरुष !] (यत्) जो कुछ [झूठ] (अक्षेषु) अभियोगों [राजगृह के विवादों] में, [अथवा (यत्) जो कुछ [झूठ] (समित्याम्) संग्राम में (वदाः) तू बोले, (वा) अथवा (यत्) जो कुछ (अनृतम्) झूठ (वित्तकाम्या) धन की कामना से (वदाः) तू बोले। (समानम्) एक ही (तन्तुम् अभि) तन्तु [वस्त्र] में (संवसानौ) ढके हुए तुम दोनों [स्त्री पुरुषो] (तस्मिन्) उस [झूठ] में (सर्वम्) सब (शमलम्) भ्रष्ट कर्म को (सादयाथः) स्थापित करोगे ॥५२॥

वर्षं वनुष्वापि गच्छ देवांस्त्वचो धूमं पर्युत्पातयासि ।
विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ॥५३॥

पदार्थ—[हे पुरुष !] तू (वर्षम्) वरणीय [श्रेष्ठ] कर्म का (वनुष्व) सेवन कर, (देवान्) कामनायोग्य गुणों को (अपि) अवश्य (गच्छ) प्राप्त हो, (त्वचः) अपनी खाल [देह] से (धूमम्) धुएँ [मैल] को (परि) सब ओर (उत् पातयासि) उड़ा दे। (विश्वव्यचाः) सब व्यवहारों में फैला हुआ, (घृतपृष्ठः) प्रकाश से सींचता हुआ और (सयोनिः) समान घर वाला (भविष्यन्) भविष्यत् में होता हुआ तू (एतम्) इस (लोकम्) लोक [व्यवहारमण्डल] में (उप याहि) पहुँच ॥५३॥

तन्वं स्वर्गो बहुधा वि चक्रे यथा विद आत्मन्नन्यवर्णाम् । अपाजैत्
कृष्णां रुशतीं पुनानो या लोहिनी तां ते अग्नौ जुहोमि ॥५४॥

पदार्थ—(स्वर्गः) सुख पहुँचाने वाले [परमेश्वर] ने (तन्वम्) इस फैलावट [सृष्टि] को (बहुधा) बहुत प्रकार से (वि) विशेष करके (चक्रे) बनाया है, (यथा) जैसा (आत्मन्) परमात्मा के भीतर (अन्यवर्णाम्) भिन्नवर्ण [रूप] वाली [सृष्टि] को (विदे) मैं पाता हूं। (कृष्णाम्) [काली अन्धकार युक्त] (रुशतीम्) कष्ट देने वाली [फैलावट] को (पुनानः) शुद्ध करने वाले [परमेश्वर] ने (अप अजैत्) जीत लिया है, (या) जो (लोहिनी) लोहमयी [कठोर फैलावट] है, (ताम्) उस [फैलावट] को (ते) तेरे (अग्नौ) आग पर (जुहोमि) मैं छोड़ता हूं ॥५४॥

प्राच्यै त्वा दिशेऽग्नयेऽधिपतयेऽसिताय रक्षित्र आदित्यायेषुमते। एतं
परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः । दिष्टं नो अत्र जरसे नि
नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥५५॥

पदार्थ—(प्राच्यै दिशे) पूर्व वा सन्मुख वाली दिशा में जाने के निमित्त (अग्नये) ज्ञानस्वरूप, (अधिपतये) अधिष्ठाता, (असिताय) बन्धन रहित, (रक्षित्रे) रक्षक परमेश्वर को (इषुमते) बाण वाले [वा हिंसा वाले] (आदित्याय) सूर्य के [ताप] रोकने के लिये (एतम्) इस (त्वा) तुझे [जीवात्मा को] (परिदद्मः) हम सौंपते हैं। (तम्) उस [जीवात्मा] को (नः) हमारे अर्थ, (अस्माकम्) हमारी (ऐतोः) सब ओर गति के लिये (आ) सब ओर से (गोपायत) तुम [विद्वानो] बचाओ। वह [परमेश्वर] (नः) हमें (अत्र) यहां [संसार में] (दिष्टम्) नियत कर्म की ओर (जरसे) स्तुति के लिये (नि नेषत्) ले ही चले। और (जरा) स्तुति [ही] (नः) हमें (मृत्यवे) मृत्यु को (परि ददातु) सौंपे [अर्थात् हम स्तुति के साथ मरें]। (अथ) और (पक्वेन सह) परिपक्व [दृढ़] स्वभाव वाले परमात्मा के साथ (सं भवेम) हम समर्थ होवें ॥५५॥

दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायाधिपतये तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेषुमते । एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः । दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥५६॥

पदार्थ—(दक्षिणायै दिशे) दक्षिण वा दाहिनी दिशाओं में जाने के निमित्त (इन्द्राय) पूर्ण ऐश्वर्यवाले, (अधिपतये) अधिष्ठाता, (तिरश्चिराजये) तिरछे चलने वाले [कीट पतङ्ग बिच्छू आदि] की पंक्ति हटाने के अर्थ (रक्षित्रे) रक्षक परमेश्वर को (इषुमते) बाण वाले [वा हिंसा वाले] (यमाय) मृत्यु के रोकने के लिये (एतम्) इस (त्वा) तुझे [जीवात्मा को] (परिदद्मः) हम सौंपते हैं । (तम्) उस [जीवात्मा] को (नः) हमारे अर्थ, (अस्माकम्) हमारी (ऐतोः) सब ओर से गति के लिये (आ) सब ओर से (गोपायत) तुम [विद्वानो] बचाओ । वह [परमेश्वर] (नः) हमें (अत्र) यहां [संसार में] (दिष्टम्) नियत कर्म की ओर (जरसे) स्तुति के लिये (नि नेषत्) ले ही चले । और (जरा) स्तुति [ही] (नः) हमें (मृत्यवे) मृत्यु को (परि ददातु) सौंपे [अर्थात् हम स्तुति के साथ मरें] । (अथ) सो (पक्वेन सह) परिपक्व [दृढ] स्वभाव वाले परमात्मा के साथ (सं भवेम) हम समर्थ होवें ॥५६॥

प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणायाधिपतये पृदाकवे रक्षित्रेऽन्नायेषुमते । एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः । दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥५७॥

पदार्थ—(प्रतीच्यै दिशे) पश्चिम वा पीछे वाली दिशा में जाने के निमित्त (वरुणाय) सब में उत्तम, (अधिपतये) अधिष्ठाता, (पृदाकवे) बड़े बड़े अजगर सर्प आदि [विषधारी प्राणियों] के समूह हटाने के अर्थ (रक्षित्रे) रक्षा करने वाले परमेश्वर को (इषुमते) बाण वाले [वा हिंसा वाले] (अन्नाय) अन्न रोकने के लिये (एतम्) इस (त्वा) तुझे [जीवात्मा को] (परिदद्मः) हम सौंपते हैं । (तम्) उस [जीवात्मा] को (नः) हमारे अर्थ, (अस्माकम्) हमारी (ऐतोः) सब ओर गति के लिये (आ) सब ओर से (गोपायत) तुम [विद्वानो] बचाओ । वह [परमेश्वर] (नः) हमें (अत्र) यहां [संसार में] (दिष्टम्) नियत कर्म की ओर (जरसे) स्तुति के लिये (नि नेषत्) ले ही चले । और (जरा) स्तुति [ही] (नः) हमें (मृत्यवे) मृत्यु को (परि ददातु) सौंपे [अर्थात् हम स्तुति के साथ मरें] ।(अथ) सो (पक्वेन सह) परिपक्व [दृढ] स्वभाव वाले परमात्मा के साथ (सं भवेम) हम समर्थ होवें ॥५७॥

उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपतये स्वजाय रक्षित्रेऽशन्या इषुमत्यै । एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः । दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥५८॥

पदार्थ—(उदीच्यै दिशे) उत्तर वा बाईं दिशा में जाने के निमित्त (सोमाय) सब जगत के उत्पन्न करने वाले, (अधिपतये) अधिष्ठाता, (स्वजाय) अच्छे प्रकार अजन्मे [अथवा सब में चिपटे हुए] (रक्षित्रे) रक्षक परमेश्वर को (इषुमत्यै) तीर वाली [वा हिंसावाली] (अशन्यै) बिजुली हटाने के लिये (एतम्) इस (त्वा) तुझे [जीवात्मा को] (परिदद्मः)हम सौंपते हैं । (तम्) उस [जीवात्मा] को (नः) हमारे अर्थ, (अस्माकम्) हमारी (ऐतोः) सब ओर के लिये (आ) सब ओर से (गोपायत) तुम [विद्वानो] बचाओ । वह [परमेश्वर] (नः) हमें (अत्र) यहां [संसार में] (दिष्टम्) नियत कर्म की ओर (जरसे) स्तुति के लिये (नि नेषत्) ले ही चले । और (जरा) स्तुति [ही] (नः) हमें (मृत्यवे) मृत्यु को (परि ददातु) सौंपे [अर्थात् हम स्तुति के साथ मरें] । (अथ) सो (पक्वेन सह) परिपक्व [दृढ] स्वभाव वाले परमात्मा के साथ (सं भवेम) हम समर्थ होवें ॥५८॥

ध्रुवायै त्वा दिशे विष्णवेऽधिपतये कल्माषग्रीवाय रक्षित्र ओषधीभ्य इषुमतीभ्यः । एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः । दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥५९॥

पदार्थ—(ध्रुवायै दिशे) नीचे वाली दिशा में जाने के निमित्त (विष्णवे) सर्वव्यापक, (अधिपतये) अधिष्ठाता, (कल्माषग्रीवाय) हरित रंग वाले [वृक्ष आदि] की ग्रीवा वाले, [रक्षित्रे] रक्षक परमेश्वर को (इषुमतीभ्यः) बाण वाली [विषैली] (ओषधीभ्यः) ओषधियों के हटाने के लिये (एतम्) इस (त्वा) तुझे [जीवात्मा को] (परिदद्मः) हम सौंपते हैं । (तम्) उस [जीवात्मा] को (नः) हमारे अर्थ, (अस्माकम्) हमारी (ऐतोः) सब ओर गति के लिये (आ) सब ओर से (गोपायत) तुम [विद्वानो] बचाओ । वह [परमेश्वर] (नः) हमें (अत्र) यहां [संसार में] (दिष्टम्) नियत कर्म की ओर (जरसे) स्तुति के लिये (नि नेषत्) ले ही चले । और (जरा:) स्तुति [ही] (नः) हमें (मृत्यवे) मृत्यु को (परि ददातु) सौंपे [अर्थात् हम स्तुति के साथ मरें] । (अथ) सो (पक्वेन सह) परिपक्व [दृढ] स्वभाव वाले परमात्मा के साथ (सं भवेम) हम समर्थ होवें ॥५९॥

ऊर्ध्वायै त्वा दिशे बृहस्पतयेऽधिपतये श्वित्राय रक्षित्रे वर्षायेषुमते । एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः । दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥६०॥

पदार्थ—(ऊर्ध्वायै दिशे) ऊपर वाली दिशा में जाने के निमित्त (बृहस्पतये) बड़ी वाणी अर्थात् वेदशास्त्र और बड़े आकाश आदि के स्वामी, (अधिपतये) अधिष्ठाता, (श्वित्राय) ज्ञानमय (रक्षित्रे) रक्षा करने वाले परमेश्वर को (इषु-मते) बाण वाली [वा हिंसा वाली] (वर्षाय) वर्षा रोकने के लिये (एतम्) इस (त्वा) तुझे [जीवात्मा को] (परि दद्मः) हम सौंपते हैं । (तम्) उस [जीवात्मा] को (नः) हमारे अर्थ, (अस्माकम्) हमारी (ऐतोः) सब ओर गति के लिये (आ) सब ओर से (गोपायत) तुम [विद्वानो] बचाओ । वह [परमेश्वर] (नः) हमें (अत्र) यहां [संसार में] (दिष्टम्) नियत कर्म की ओर (जरसे) स्तुति के लिये (नि नेषत्) ले ही चले । और (जरा) स्तुति [ही] (नः) हमें (मृत्यवे) मृत्यु को (परि ददातु) सौंपे [अर्थात् हम स्तुति के साथ मरें] । (अथ) सो (पक्वेन सह) परिपक्व [दृढ] स्वभाव वाले परमात्मा के साथ (सं भवेम) हम समर्थ होवें ॥६०॥

इति तृतीयोऽनुवाकः

卐

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ४ 卐

१ ५३ कश्यप । वशा । अनुष्टुप्, ७ भुरिक्, २० विराट्, ३२ उष्णिग्बृहती गर्भा, ४२ बृहतीगर्भा ।

ददामीत्येव ब्रूयादनु चैनामभुत्सत ।
वशां ब्रह्मभ्यो याचद्भ्यस्तत् प्रजावदपत्यवत् ॥१॥

पदार्थ—"(वशाम) वशा [कामना योग्य वेदवाणी] (याचद्भ्यः) मांगने वाले (ब्रह्मभ्य:) ब्रह्माओं [वेद जिज्ञासुओं] को (ददामि) मैं देता हूँ, (च) निश्चय करके (एनाम) इस [वेदवाणी] को (अनु) ध्यान देकर (अभुत्सत) उन [पूर्व ऋषियों] ने जाना है, (तत) यह [विद्यादान] (प्रजावत) श्रेष्ठ प्रजाओं वाला [और] (अपत्यवत) उत्तम सन्तानों वाला है"—(इति) बस (एव) ऐसा (ब्रूयात्) वह [आचार्य] कहे ॥१॥

प्रजया स वि क्रीणीते पशुभिश्चोप दस्यति ।
य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह पुरुष (प्रजया) अपने सन्तान [पुत्र-पुत्री आदि] के साथ (वि क्रीणीते) बिक जाता है (च) और (पशुभिः) अपने पशुओं [गाय घोड़े आदि] के साथ (उप दस्यति) नष्ट हो जाता है । (यः) जो पुरुष (याचद्भ्यः) मांगते हुए (आर्षेयेभ्य) ऋषि सन्तानों को (देवानाम्) विजय चाहने वालों के बीच (गाम्) वेद वाणी (न) नहीं (दित्सति) देना चाहता है ॥२॥

कूटयास्य सं शीर्यन्ते श्लोणया काटमर्दति ।
बण्डया दह्यन्ते गृहाः काणया दीयते स्वम् ॥३॥

पदार्थ—(कूटया) [वेदवाणी के] नहीं देने से (अस्य) उस पुरुष के (गृहाः) घर (सं शीर्यन्ते) सर्वथा नष्ट किये जाते हैं, और (बण्डया) रोक देने से (दह्यन्ते) जलाये जाते हैं, (श्लोणया) बटोर रखने से (काटम्) अपनी प्रसिद्धता को (अर्दति) वह नष्ट करता है, और (काणया) मूंद रखने से (स्वम्) [उसका] सर्वस्व (दीयते) घट जाता है ॥३॥

विलोहितो अधिष्ठानाच्छक्नो विन्दति गोपतिम् ।
तथा वशायाः संविद्यं दुरदभ्ना ह्युच्यसे ॥४॥

पदार्थ—(अधिष्ठानात्) [ब्रह्मचर्य के] प्रभाव से (विलोहितः) विविध उगा हुआ, (शक्नः) शक्तिमान् पुरुष (गोपतिम्) पृथिवी की पालने वाली [वेद-वाणी] को (विन्दति) पाता है । (तथा) वैसा ही (वशायाः) वशा [वश में करने वाली वा कामनायोग्य वेदवाणी] का (संविद्यम्) जानने योग्य नाम है—"(हि) क्योंकि (दुरदभ्ना) कभी भी न दबने वाली (उच्यसे) तू कही जाती है" ॥४॥

पदोरस्या अधिष्ठानाद् विक्लिन्दुर्नाम विन्दति ।
अनामनात् सं शीर्यन्ते या मुखेनोपजिघ्रति ॥५॥

पदार्थ—(अस्याः) इस [वेदवाणी] के (पदोः) स्थिर वा पानेयोग्य (अधिष्ठानात्) प्रभाव से (विक्लिन्दुः) विगतशोक मनुष्य (नाम) नाम [बड़ाई] (विन्दति) पाता है। [वेदवाणी के] (अनामनात्) यथावत् न विचारने से वे [प्रजायें, मनुष्य] (सं शीर्यन्ते) सर्वथा नष्ट किये जाते हैं, (याः) जो [प्रजाजन] (मुखेन) मुख से [उसको] (उपजिघ्रति) तुच्छपन के साथ ग्रहण करते हैं ॥५॥

यो अस्याः कर्णावास्कुनोत्या स देवेषु वृश्चते ।

लक्ष्म कुर्व इति मन्यते कनीयः कृणुते स्वम् ॥६॥

पदार्थ—(यः) जो मनुष्य (अस्याः) इस [वेदवाणी] के (कर्णौ) दो विज्ञानों [अभ्युदय और निःश्रेयस अर्थात् तत्त्वज्ञान और मोक्षज्ञान] को (आस्कुनोति) ढक लेता है, (सः) वह (देवेषु) स्तुतियोग्य गुणों में (आ) सब ओर से (वृश्चते) कतर जाता है। "(लक्ष्म) प्रधान कर्म (कुर्वे) मैं करता हूँ",—(इति) ऐसा [जो] (मन्यते) मानता है, वह [पुरुष] (स्वम्) अपना सर्वस्व (कनीयः) अधिक थोड़ा (कृणुते) करता है ॥६॥

यदस्याः कस्मैचिद् भोगाय बालान् कश्चित् प्रकृन्तति ।

ततः किशोरा म्रियन्ते वत्सांश्च घातुको वृकः ॥७॥

पदार्थ—(यत्) यदि (कस्मैचित्) किसी भी (भोगाय) कुटिलता के लिये (अस्याः) इस [वेदवाणी] के (बालान्) बलों को (कश्चित्) कोई पुरुष (प्रकृन्तति) कतर लेता है। (ततः) उस [कुटिलता] से (किशोराः) किशोर [तरुण अवस्था वाले] (म्रियन्ते) मर जाते हैं, (च) और (वृकः) वह भेड़िया [के समान हिंसक] (वत्सान् घातुकः) [बोलते हुए] बच्चों का हत्यारा [होता है] ॥७॥

यदस्या गोपतौ सत्या लोम ध्वाङ्क्षो अजीहिडत् ।

ततः कुमारा म्रियन्ते यक्ष्मो विन्दत्यनामनात् ॥८॥

पदार्थ—(यत्) यदि (गोपतौ) वेदवाणी के रक्षक [ब्रह्मचारी] में (सत्याः) वर्तमान (अस्याः) इस [वेदवाणी] के (लोम) गमन को (ध्वाङ्क्षः) काँव काँव करने वाले [कौवे के समान दुष्ट मनुष्य] ने (अजीहिडत्) तुच्छ माना है। (ततः) उस कारण से (कुमाराः) कुमार [शत्रुमारक बालक] (म्रियन्ते) मर जाते हैं, और (अनामनात्) यथावत् न विचारने से [उस कुमार्गी को] (यक्ष्मः) राजरोग (विन्दति) पकड़ लेता है ॥८॥

यदस्याः पल्पूलनं शकृद् दासी समस्यति ।

ततोऽपरूपं जायते तस्मादव्येष्यदेनसः ॥९॥

पदार्थ—(यत्) यदि (अस्याः) इस [वेदवाणी] के (शकृत्) शक्तिवाले (पल्पूलनम्) ज्ञानसमूह को (दासी) हिंसक प्रजा [स्त्री वा पुरुष] (समस्यति) फेंक देती है। (ततः) तो (तस्मात् एनसः) उस पाप से [उस पापी को] (अव्येष्यत्) न दूर होने वाला (अपरूपम्) कुरूप [कलक का टीका] (जायते) हो जाता है ॥९॥

जायमानाभि जायते देवान्त्सब्राह्मणान् वशा ।

तस्माद् ब्रह्मभ्यो देयैषा तदाहुः स्वस्य गोपनम् ॥१०॥

पदार्थ—(जायमाना) प्रकट होती हुई (वशा) वशा [कामनायोग्य वेदवाणी] (सब्राह्मणान्) ब्राह्मणों [वेद जिज्ञासुओं] सहित (देवान् अभि) विजय चाहने वालों को (जायते) प्रकट होती है। (तस्मात्) इसलिये (एषा) यह [वेदवाणी] (ब्रह्मभ्यः) वेद-जिज्ञासुओं को (देया) देनी चाहिये, (तत्) उस [कर्म] को (स्वस्य) सर्वस्व का (गोपनम्) रक्षण (आहुः) वे [विद्वान्] कहते हैं ॥१०॥

य एनां वनिमायन्ति तेषां देवकृता वशा ।

ब्रह्मज्येयं तदब्रुवन् य एनां निप्रियायते ॥११॥

पदार्थ—(ये) जो पुरुष (वनिम्) सेवनीय (एनाम्) इस [वेदवाणी] को (आयन्ति) प्राप्त करते हैं, (वशा) वशा [कामना योग्य वेदवाणी] (तेषाम्) उनकी (देवकृता) विजय इच्छा सिद्ध करने वाली है। (तत्) यह [वचन] (ब्रह्मज्येयम्) ब्रह्मचारियों [वेदवेत्ताओं] के हानि करने योग्य [पुरुष] से (अब्रुवन्) उन [विद्वानों] ने कहा है, (यः) जो (एनाम्) इस [वेदवाणी] को (निप्रियायते) तुच्छपन से प्रिय-सा मानता है ॥११॥

य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ।

आ स देवेषु वृश्चते ब्राह्मणानां च मन्यवे ॥१२॥

पदार्थ—(यः) जो पुरुष (याचद्भ्यः) मांगते हुए (आर्षेयेभ्यः) ऋषि-सन्तानों को (देवानाम्) विजय चाहने वालों के बीच (गाम्) वेदवाणी (न) नहीं (दित्सति) देना चाहता है, (सः) वह (देवेषु) स्तुतियोग्य गुणों में (आ) सब ओर से (वृश्चते) कट जाता है, (च) और (ब्राह्मणानाम्) ब्राह्मणों [वेदज्ञानियों] के (मन्यवे) क्रोध के लिये [होता है] ॥१२॥

यो अस्य स्याद् वशाभोगो अन्यामिच्छेत तर्हि सः ।

हिंस्ते अदत्ता पुरुषं याचितां च न दित्सति ॥१३॥

पदार्थ—(यः) जो मनुष्य (अस्य) अपनी (वशाभोगः) वेदवाणी का सुख पाने वाला (स्यात्) होना चाहे, (तर्हि) तब (सः) वह (अन्याम्) जीवन देनेवाली [वेदवाणी] को (इच्छेत) चाहे। (अदत्ता) न दी हुई [वेदवाणी] (पुरुषम्) [उस] पुरुष को (च) अवश्य (हिंस्ते) मार डालती है, [जो] (याचिताम्) मांगी हुई [वेदवाणी] को (न) नहीं (दित्सति) देना चाहता है ॥१३॥

यथा शेवधिर्निहितो ब्राह्मणानां तथा वशा ।

तामेतदच्छायन्ति यस्मिन् कस्मिंश्च जायते ॥१४॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (निहितः) नियम से रक्खा हुआ (शेवधिः) निधि [सुखदायक पदार्थ] होता है, (तथा) वैसे ही (वशा) वशा [कामनायोग्य वेदवाणी] (ब्राह्मणानाम्) ब्राह्मणों [वेदज्ञानियों] की है। (एतत्) इसीलिये (ताम्) उस [वेदवाणी] को (अच्छ आयन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त करते हैं, (यस्मिन् कस्मिन् च) चाहे जिस किसी में (जायते) वह होवे ॥१४॥

स्वमेतदच्छायन्ति यद् वशां ब्राह्मणा अभि ।

यथैनानन्यस्मिन् जिनीयादेवास्या निरोधनम् ॥१५॥

पदार्थ—(ब्राह्मणाः) ब्राह्मण [ब्रह्मचारी लोग] (वशाम्) वशा [कामनायोग्य वेदवाणी] को (अभि) सब ओर से (अच्छ—आयन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त करते हैं, (यत्) क्योंकि (एतत्) यह (स्वम्) [उनका] सर्वस्व है, [और] (यथा) क्योंकि (एनान्) इन [ब्रह्मचारियों] को (अन्यस्मिन्) भिन्नकर्म [अधर्म] में (जिनीयात्) मनुष्य हानि करे, [वह] (अस्याः) इस [वेदवाणी] का (निरोधनम्) रोक देना (एव) ही है ॥१५॥

चरेदेवा त्रैहायणादविज्ञातगदा सती ।

वशां च विद्यान्नारद ब्राह्मणास्तर्ह्येष्याः ॥१६॥

पदार्थ—(अविज्ञातगदा) नहीं जाना गया है दोष जिसमें ऐसी [निर्दोष], (सती) सद्गुणों वाली [वेदवाणी] (आ त्रैहायणात्) तीन उद्योगों [परमेश्वर के कर्म, उपासना, ज्ञान] तक (एव) अवश्य (चरेत्) विचरती रहे। (नारद) हे नारद ! [नीति, यथार्थ ज्ञान, देनेवाले विद्वान्] (वशाम्) वशा [कामनायोग्य वेदवाणी] को (च) निश्चय करके (विद्यात्) [मनुष्य] जाने, (तर्हि) तब (ब्राह्मणाः) ब्राह्मण [पूरे वेदज्ञाता लोग] (एष्याः) ढूंढने योग्य हैं ॥१६॥

य एनामवशामाह देवानां निहितं निधिम् ।

उभौ तस्मै भवाशर्वौ परिक्रम्येषुमस्यतः ॥१७॥

पदार्थ—(यः) जो [मूर्ख] (देवानाम्) विजय चाहने वालों के (निहितम्) नियम से रक्खे हुए (निधिम्) निधि, (एनाम्) इस [वेदवाणी] को (अवशाम्) नहीं कामनायोग्य [वा असमर्थ] (आह) बताता है। (तस्मै) उस [पुरुष] के लिये (उभौ) दोनों (भवाशर्वौ) भव [सुख देनेवाला प्राण] और शर्व [दोष मिटाने वाला अपान वायु] (परिक्रम्य) घूम-घूमकर (इषुम्) तीर [अर्थात् पीड़ा] (अस्यतः) फेंकते हैं ॥१७॥

यो अस्या ऊधो न वेदाथो अस्या स्तनानुत ।

उभयेनैवास्मै दुहे दातुं चेदशकद् वशाम् ॥१८॥

पदार्थ—(यः) जो [विद्वान्] (अस्याः) इस [वेदवाणी] के (ऊधः) सींचने को, (अथो उत) और भी (अस्याः) इसके (स्तनान्) गर्जनशब्दों [बड़े उपदेशों] को (न) अब [विद्या प्राप्त करके] (वेद) जानता है। वह [वेदवाणी] (उभयेन) दोनों [इस लोक और परलोक के सुख] से (एव) ही (अस्मै) इस [ब्रह्मज्ञानी] को (दुहे) भर देती है, (च, इत् = चेत्) जो (वशाम्) वशा [कामनायोग्य वेदवाणी] (दातुम् अशकत्) दे सका है ॥१८॥

दुरदभ्नैनमा शये याचितां च न दित्सति ।

नास्मै कामाः समृध्यन्ते यामदत्त्वा चिकीर्षति ॥१९॥

पदार्थ—(दुरदभ्ना) कभी न दबने वाली [वह वेदवाणी] (एनम्) इस [मनुष्य] पर (आ शये) आ पड़ती है, (च) यदि वह (याचिताम्) मांगी हुई [वेदवाणी] को (न) नहीं (दित्सति) देना चाहता है। (अस्मै) इस [मनुष्य] के लिये (कामाः) वे कामनायें (न) नहीं (सम् ऋध्यन्ते) सिद्ध

होती है, [जिन कामनाओं को] (याम् अदत्त्वा) जिस [वेदवाणी] के न देने पर (चिकीर्षति) पूरा करना चाहता है ॥१९॥

देवा वशामयाचन् मुखं कृत्वा ब्राह्मणम्।
तेषां सर्वेषामददद्धेडं न्येति मानुषः ॥२०॥

पदार्थ—(देवाः) विजय चाहने वालो ने (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञानी] को (मुखम्) मुख [मुखिया] (कृत्वा) बनाकर (वशाम्) वशा [कामनायोग्य वेदवाणी] को (अयाचन्) मांगा है। (अददत्) [वेदवाणी] न देता हुआ (मानुषः) मनुष्य (तेषां सर्वेषाम्) उन सब [विद्वानों] के (हेडम्) क्रोध को (नि) निश्चय करके (एति) पाता है ॥२०॥

हेडं पशूनां न्येति ब्राह्मणेभ्योऽददद् वशाम्।
देवानां निहितं भागं मर्त्यश्चेन्निप्रियायते ॥२१॥

पदार्थ—(ब्राह्मणेभ्यः) ब्राह्मणो [ब्रह्मचारियों] को (वशाम्) वशा [कामनायोग्य वेदवाणी] (अददत्) न देता हुआ पुरुष (पशूनाम्) सब प्राणियों का (हेडम्) क्रोध (नि) निश्चय करके (एति) पाता है। (च इत् = चेत्) यदि (मर्त्यः) मनुष्य (देवानाम्) विजय चाहने वालो के (निहितम्) नियम से रक्खे हुए (भागम्) ऐश्वर्यों के समूह [वेदवाणी] को (निप्रियायते) ओछेपन से प्रिय-सा मानता है ॥२१॥

यदन्ये शतं याचेयुर्ब्राह्मणा गोपतिं वशाम्।
अथैनां देवा अब्रुवन्नेवं ह विदुषो वशा ॥२२॥

पदार्थ—(यत्) यदि (ब्राह्मणा = ब्राह्मणेभ्यः) ब्राह्मणो [ब्रह्मचारियो] से (अन्ये) दूसरे [निर्बलेन्द्रिय] (शतम्) सौ [पुरुष] (गोपतिम्) पृथिवी की पालने वाली (वशाम्) वशा [कामनायोग्य वेदवाणी] को (याचेयुः) मांगें, (अथ) तो (देवाः) देवताओ [विद्वानो] ने (एनाम्) इस [वेदवाणी] को (अब्रुवन्) बताया है—“(एवम्) इस प्रकार [पूरे-पूरे] (विदुषः) विद्वान् की (ह) ही (वशा) वशा [कामनायोग्य वेदवाणी] है” ॥२२॥

य एवं विदुषेऽदत्त्वाथान्येभ्यो ददद् वशाम्।
दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता ॥२३॥

पदार्थ—(यः) जो पुरुष (एवम्) इस प्रकार (विदुषे) विद्वान् को (अदत्त्वा) न देकर (अथ) फिर (अन्येभ्यः) दूसरों [दुर्बलेन्द्रियों] को (वशाम्) [कामनायोग्य वेदवाणी] (ददत्) देता हुआ है। (तस्मै) उस पुरुष के लिये (अधिष्ठाने) प्रभाव के बीच (सहदेवता) देवताओं-विद्वानों सहित (पृथिवी) पृथिवी (दुर्गा) दुर्गम [कठिन] होती है ॥२३॥

देवा वशामयाचन् यस्मिन्नग्रे अजायत।
तामेतां विद्यान्नारदः सह देवैरुदाजत ॥२४॥

पदार्थ—(देवाः) विजय चाहनेवालो ने (वशाम्) वशा [कामनायोग्य वेदवाणी] को [उस परमेश्वर से] (अयाचन्) मांगा है, (यस्मिन्) जिस [परमेश्वर] में (अग्रे) पहिले ही पहिले (अजायत) वह उत्पन्न हुई। (ताम्) उस [दूर वर्तमान] और (एताम्) इस [समीप वर्तमान वेदवाणी] को (नारदः) नारद [नीति, यथार्थ ज्ञान देनेवाला विद्वान्] (विद्यात्) जान लेवे, वह [वेदवाणी] (देवैः सह) दिव्य गुणो के सहित (उत् आजत) उदय हुई है ॥२४॥

अनपत्यमल्पपशुं वशा कृणोति पूरुषम्।
ब्राह्मणैश्च याचितामथैनां निप्रियायते ॥२५॥

पदार्थ—(वशा) वशा [कामनायोग्य वेदवाणी] (पूरुषम्) पुरुष को (अनपत्यम्) बिन-सन्तान और (अल्पपशुम्) थोड़े पशुओं [गौ आदि] वाला (कृणोति) कर देती है। (अथ च) यदि वह [पुरुष] (ब्राह्मणैः) ब्राह्मण [ब्रह्मचारियों] द्वारा (याचिताम्) मांगी हुई (एनाम्) इस [वेदवाणी] को (निप्रियायते) ओछेपन से प्रिय-सा मानता है ॥२५॥

अग्नीषोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च।
तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेष्वा वृश्चतेऽददत् ॥२६॥

पदार्थ—(कामाय) इष्ट पदार्थ पाने के लिये (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और जल, (मित्राय) प्राण (च) और (वरुणाय) अपान वायु, (तेभ्यः) इन सब की सिद्धि के लिये (ब्राह्मणाः) ब्राह्मण [ब्रह्मचारी लोग] (याचन्ति) [वेदवाणी को] मांगते हैं, (अददत्) न देता हुआ पुरुष (तेषु) उन [विद्वानो] में (आ) सब ओर से (वृश्चते) छिन्न हो जाता है ॥२६॥

यावदस्या गोपतिर्नोपशृणुयादृचः स्वयम्।
चरेदस्य तावद् गोषु नास्य श्रुत्वा गृहे वसेत् ॥२७॥

पदार्थ—(गोपतिः) वेदवाणी का रक्षक [ब्रह्मचारी] (यावत्) जब तक (स्वयम्) सुन्दर रीति से (अस्याः) इस (ऋचः) स्तुति योग्य [वेदवाणी] का (न) न (उपशृणुयात्) यथाविधि श्रवण कर लेवे, (तावत्) तब तक (अस्य) इस [परमेश्वर] की (गोषु) वाणियो मे (चरेत्) चलता रहे और (श्रुत्वा) श्रवण करके (अस्य) अपने (गृहे) घर मे (न) अब (वसेत्) बसे ॥२७॥

यो अस्या ऋच उपश्रुत्याथ गोष्वचीचरत्।
आयुश्च तस्य भूतिं च देवा वृश्चन्ति हीडिताः ॥२८॥

पदार्थ—(अथ) यदि (यः) जिस [मनुष्य] ने (अस्याः) इस (ऋचः) स्तुतियोग्य वेदवाणी का (उपश्रुत्य) यथाविधि श्रवण करके (गोषु) इन्द्रियों में [इन्द्रियो के कुविषयो मे अपने को] (अचीचरत्) चलाया है। (देवाः) देवता [विद्वान् लोग] (हीडिताः) क्रुद्ध होकर (तस्य) उस [पुरुष] का (आयुः) जीवन (च) और (भूतिम्) ऐश्वर्य (च) भी (वृश्चन्ति) काट देते हैं ॥२८॥

वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः।
आविष्कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति ॥२९॥

पदार्थ—(देवानाम्) विद्वानो का (निहितः) नियम से रक्खा हुआ (निधिः) निधि, [अर्थात्] (बहुधा) नाना प्रकार से (चरन्ती) विचरती हुई (वशा) वशा [कामनायोग्य वेदवाणी] तू (रूपाणि) रूपो [तत्त्वज्ञानों] को (आविः कृणुष्व) प्रकट कर (यदा) जब वह [ब्रह्मचारी] (स्थाम) ठिकाने पर (जिघांसति) जाना चाहता है ॥२९॥

आविरात्मानं कृणुते यदा स्थाम जिघांसति।
अथो ह ब्रह्मभ्यो वशा याच्ञाय कृणुते मनः ॥३०॥

पदार्थ—वह [वेदवाणी] (आत्मानम्) अपने स्वरूप [तत्त्वज्ञान] को (आविः कृणुते) प्रकट करती है, (यदा) जब वह [ब्रह्मचारी] (स्थाम) ठिकाने पर (जिघांसति) जाना चाहता है। (अथो ह) तब ही (वशा) वशा [कामना योग्य वेदवाणी] (ब्रह्मभ्यः) ब्रह्मचारियो के पाने को (याच्ञाय) मांगने के लिये (मनः) मनन (कृणुते) करती है ॥३०॥

मनसा सं कल्पयति तद् देवाँ अपि गच्छति।
ततो ह ब्रह्माणो वशामुपप्रयन्ति याचितुम् ॥३१॥

पदार्थ—वह [वेदवाणी] (मनसा) मनन के साथ (देवान्) विजय चाहने वाले [ब्रह्मचारियों] को (सम्) यथावत् (कल्पयति) समर्थ करती है, (तत्) तब [उनको] (अपि गच्छति) अवश्य मिलती है। (ततः ह) इसी कारण से (ब्रह्माणः) ब्रह्मचारी लोग (वशाम्) वशा [कामना योग्य वेदवाणी] के (याचितुम्) मांगने के लिये (उपप्रयन्ति) पहुंचने जाते है ॥३१॥

स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्यः।
दानेन राजन्यो वशाया मातुर्हेडं न गच्छति ॥३२॥

पदार्थ—(राजन्यः) ऐश्वर्यवान् [राजा] (पितृभ्यः) पालन करनेवाले [विज्ञानियो] और (देवताभ्यः) विजय चाहने वाले [शूरवीरो] को (स्वधाकारेण) स्वधारण सामर्थ्य देने से (यज्ञेन) सत्कार से और (दानेन) दान से (वशायाः) वशा [कामनायोग्य वेदवाणी] (मातुः) माता के (हेडम्) क्रोध को (न) नहीं (गच्छति) पाता है ॥३२॥

वशा माता राजन्यस्य तथा संभूतमग्रशः।
तस्या आहुरनर्पणं यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ॥३३॥

पदार्थ—(वशा) वशा [कामनायोग्य वेदवाणी] (राजन्यस्य) ऐश्वर्यवान् [राजा] की (माता) माता [मान करनेवाली] है, (तथा) वैसा ही (अग्रशः) पहिले से (संभूतम्) ठहरा हुआ [कर्म] है। (तस्याः) उस [वेदवाणी] का (अनर्पणम्) अत्याग (आहुः) वे [विद्वान्] कहते हैं, (यत्) जब कि (ब्रह्मभ्यः) ब्रह्मचारियों को (प्रदीयते) वह दे दी जाती है ॥३३॥

यथाज्यं प्रगृहीतमालुम्पेत् स्रुचो अग्नये।
एवा ह ब्रह्मभ्यो वशामग्नय आ वृश्चतेऽददत् ॥३४॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (प्रगृहीतम्) फैलाकर लिया गया (आज्यम्) घी (स्रुचः) स्रुचा [चमचा] से (अग्नये) अग्नि को (आलुम्पेत्) छोड़ दिया

जावे। (एव ह) वैसे ही (ब्रह्मभ्य) ब्रह्मचारियों को (वशाम्) वशा [कामना-योग्य वेदवाणी] (अददत्) न देता हुआ पुरुष (अग्नये) अग्नि [सन्ताप] पाने के लिये (आ वृश्चते) छिन्न-भिन्न हो जाता है ॥३४॥

पुरोडाशवत्सा सुदुघा लोकेऽस्मा उप तिष्ठति ।

सास्मै सर्वान् कामान् वशा प्रददुषे दुहे ॥३५॥

पदार्थ—(पुरोडाशवत्सा) बढ़कर दान करने [वा उत्तम अन्न पाने] के लिये उपदेश करने वाली, (सुदुघा) सुन्दर रीति से पूर्ण करने वाली (वशा) वशा [कामनायोग्य वेदवाणी] (लोके) संसार में (अस्मै) उस पुरुष के लिये (उप तिष्ठति) उपस्थित होती है। (सा) वह (अस्मै) इस (प्रददुषे) बड़े दानी के लिये (सर्वान्) सब (कामान्) श्रेष्ठ कामनायें (दुहे) पूरी करती है ॥३५॥

सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रददुषे दुहे ।

अथाहुर्नारकं लोकं निरुन्धानस्य याचिताम् ॥३६॥

पदार्थ—(वशा) वशा [कामनायोग्य वेदवाणी] (यमराज्ये) न्यायकारी [परमेश्वर] के राज्य में (प्रददुषे) अपने बड़े दानी के लिये (सर्वान्) सब (कामान्) श्रेष्ठ कामनाओं को (दुहे) पूरी करती है। (अथ) और (याचिताम्) उस मांगी हुई को (निरुन्धानस्य) रोकने वाले का (लोकम्) लोक [घर] (नारकम्) नरक [महाकष्टस्थान] (आहुः) वे [विद्वान्] बताते हैं ॥३६॥

प्रवीयमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वशा ।

वेहतं मा मन्यमानो मृत्योः पाशेषु बध्यताम् ॥३७॥

पदार्थ—(प्रवीयमाना) फेंकी जाती हुई (वशा) वशा [कामनायोग्य वेदवाणी] (गोपतये) पृथिवी पालक [राजा] के लिये (क्रुद्धा) क्रुद्ध होकर (चरति) विचरती है। "(मा) मुझ को (वेहतम्) गर्भघातिनी स्त्री [के समान रोगिणी] (मन्यमानः) मानता हुआ [वह राजा] (मृत्योः) मृत्यु के (पाशेषु) फन्दों में (बध्यताम्) बांधा जावे" ॥३७॥

यो वेहतं मन्यमानोऽमा च पचते वशाम् ।

अप्यस्य पुत्रान् पौत्रांश्च याचयते बृहस्पतिः ॥३८॥

पदार्थ—(च) और (वशाम्) वशा [कामनायोग्य वेदवाणी] को (वेहतम्) गर्भघातिनी स्त्री [के समान रोगिणी] (मन्यमानः) मानता हुआ (यः) जो पुरुष (अमा) अपने घर में [उसकी निन्दा] (पचते) विख्यात करता है। (बृहस्पतिः) बड़े-बड़े लोकों का स्वामी [परमेश्वर] (अस्य) उस पुरुष के (पुत्रान्) पुत्रों (च) और (पौत्रान्) पौत्रों को (अपि) भी (याचयते) भिखारी बना देता है ॥३८॥

महदेषाव तपति चरन्ती गोषु गौरपि ।

अथो ह गोपतये वशाददुषे विषं दुहे ॥३९॥

पदार्थ—(एषा) यह (गौः) प्राप्तियोग्य [वेदवाणी] (गोषु) सब भूमिप्रदेशों में (अपि) ही (चरन्ती) विचरती हुई (महत्) बहुत (अव) निश्चय करके (तपति) प्रताप [ऐश्वर्य] वाली होती है। (अथो ह) और कि (वशा) वशा [वह कामनायोग्य वेदवाणी] (अददुषे) [उसके] न देने वाले (गोपतये) भूपति [राजा] के लिये (विषम्) विष [महाकष्ट] (दुहे) पूर्ण करती है ॥३९॥

प्रियं पशूनां भवति यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ।

अथो वशायास्तत् प्रियं यद् देवत्रा हविः स्यात् ॥४०॥

पदार्थ—(पशूनाम्) सब प्राणियों का (प्रियम्) प्रिय [हित] (भवति) होता है, (यत्) जब (ब्रह्मभ्यः) ब्रह्मचारियों को (प्रदीयते) वह दी जाती है। (अथो) और (तत्) वह (वशायाः) वशा [कामनायोग्य वेदवाणी] का (प्रियम्) प्रिय [हित] है, (यत्) कि वह [वेदवाणी] (देवत्रा) विद्वानों में (हविः) ग्राह्य वस्तु (स्यात्) होवे ॥४०॥

या वशा उदकल्पयन् देवा यज्ञादुदेत्य ।

तासां विलिप्त्यं भीमामुदाकुरुत नारदः ॥४१॥

पदार्थ—(याः) जिन (वशाः) कामनायोग्य [शक्तियों] को (देवाः) विजय चाहनेवाले [जिज्ञासुओं] ने (यज्ञात्) यज्ञ [परमेश्वर की पूजा, संगति-करण और दानव्यवहार] से (उदेत्य) ऊंचे होकर (उदकल्पयन्) उत्तम माना है। (तासाम्) उन [शक्तियों] के बीच (विलिप्त्यम्) विशेष वृद्धि वाली (भीमाम्) भयानक [वेदवाणी] को (नारदः) नीति देनेवाले [आचार्य] ने (उदाकुरुत) स्वीकार किया है ॥४१॥

तां देवा अमीमांसन्त वशेया३मवशेति ।

तामब्रवीन्नारद एषा वशानां वशतमेति ॥४२॥

पदार्थ—(देवाः) विजय चाहने वाले [जिज्ञासुओं] ने (ताम्) उस [वेदवाणी] को (अमीमांसन्त) विचारा—"(इयम्) यह [वेदवाणी] (वशा) कामनायोग्य है, [अथवा] (अवशा इति) कामना योग्य नहीं है" (ताम्) उसके विषय में (नारद) नीति बतानेवाले [आचार्य] ने (अब्रवीत्) कहा—"(एषा) यह [वेदवाणी] (वशानाम्) सब कामनायोग्य [शक्तियों] में (वशतमा इति) अत्यन्त कामना योग्य है" ॥४२॥

कति नु वशा नारद यास्त्वं वेत्थ मनुष्यजाः ।

तास्त्वा पृच्छामि विद्वांसं कस्या नाश्नीयादब्राह्मणः ॥४३॥

पदार्थ—"(नारद) हे नीति बतानेवाले [आचार्य] ! (कति नु) कितनी ही (वशा) कामना योग्य [शक्तियां] हैं, (याः) जिनको (मनुष्यजाः) मननशीलों में उत्पन्न हुआ (त्वम्) तू (वेत्थ) जानता है, (ताः) उन को (विद्वांसम्) जानने वाले (त्वा) तुझसे (पृच्छामि) मैं पूछता हूँ, (अब्राह्मणः) अब्रह्मचारी [ब्रह्मचर्य न रखता हुआ पुरुष] (कस्याः) कौन सी [शक्ति] का (न) नहीं (अश्नीयात्) भोग [अनुभव] कर सकता" ॥४३॥

विलिप्त्या बृहस्पते या च सूतवशा वशा ।

तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥४४॥

पदार्थ—"(बृहस्पते) हे बड़ी वेदवाणियों के रक्षक [जिज्ञासु] ! (या) जो (च) निश्चय करके (सूतवशा) उत्पन्न जगत् को वश में करने वाली (वशा) कामनायोग्य [वेदवाणी] है, (तस्याः) उस (विलिप्त्याः) विशेष वृद्धि वाली का (न अश्नीयात्) वह भोग [अनुभव] नहीं कर सकता, (यः) जो (अब्राह्मणः) अब्रह्मचारी [ब्रह्मचर्य न रखने वाला पुरुष] (भूत्याम्) ऐश्वर्य में (आशंसेत) इच्छा करे" ॥४४॥

नमस्ते अस्तु नारदानुष्ठु विदुषे वशा ।

कतमासां भीमतमा यामदत्त्वा पराभवेत् ॥४५॥

पदार्थ—"(नारद) हे नीति बतानेवाले [ऋषि] ! (अनुष्ठु) अनुष्ठान [कर्मारम्भ] (विदुषे) जानते हुए (ते) तुझ को (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे। (आसाम्) इन [संसार की शक्तियों] में से (कतमा) कौनसी (वशा) कामनायोग्य शक्ति (भीमतमा) अत्यन्त भयानक है, (याम्) जिस को (अदत्त्वा) न देकर (पराभवेत्) [मनुष्य] हार पावे" ॥४५॥

विलिप्ती या बृहस्पतेऽथो सूतवशा वशा ।

तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥४६॥

पदार्थ—"(बृहस्पते) हे बड़ी वेदवाणियों के रक्षक ! (या) जो (विलिप्ती) विशेष वृद्धि वाली (अथो) और भी (सूतवशा) उत्पन्न जगत् को वश में करने वाली (वशा) कामनायोग्य [वेदवाणी] है। (तस्याः) उस [वेदवाणी] का (न अश्नीयात्) वह भोग [अनुभव] नहीं कर सकता, (यः) जो (अब्राह्मणः) अब्रह्मचारी [ब्रह्मचर्य न रखने वाला पुरुष] (भूत्याम्) ऐश्वर्य में (आशंसेत) इच्छा करे ॥४६॥

त्रीणि वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा ।

ताः प्र यच्छेद् ब्रह्मभ्यः सोऽनाव्रस्कः प्रजापतौ ॥४७॥

पदार्थ—(त्रीणि) तीन [कर्म, उपासना, ज्ञान] (वै) ही (वशा-जातानि) कामनायोग्य [वेदवाणी] के प्रसिद्ध कर्म हैं, (विलिप्ती) वह विशेष वृद्धि वाली (सूतवशा) उत्पन्न जगत् को वश में करने वाली (वशा) कामनायोग्य [वेदवाणी] है। (सः) वह [विद्वान्] (प्रजापतौ) प्रजापालक [परमेश्वर] में (अनाव्रस्कः) अच्छेद्य [अति दृढ़] होकर (ताः = ताम्) उसे (ब्रह्मभ्यः) ब्रह्मचारियों को (प्र यच्छेत्) दान करे ॥४७॥

एतद् वो ब्राह्मणा हविरिति मन्वीत याचितः ।

वशां चेदेनं याचेयुर्या भीमाददुषो गृहे ॥४८॥

पदार्थ—"(ब्राह्मणाः) हे ब्रह्मचारियो ! (एतत्) यह (वः) तुम्हारा (हविः) ग्राह्य द्रव्य है"—(इति) ऐसा (याचितः) जिससे [वेदवाणी] मांगी जावे वह [विद्वान्] (मन्वीत) माने। (वशाम्) कामना योग्य [वेद-वाणी] को (च इत्) ही (एनम्) इस [विद्वान्] से (याचेयुः) वे [ब्रह्मचारी] मांगें, (या) जो [वेदवाणी] (अददुषः) दान न करने वाले के (गृहे) घर में (भीमा) डरावनी है ॥४८॥

देवा वशां पर्यवदन् न नोऽदादिति हीडिताः ।
एताभिर्ऋग्भिर्भेदं तस्माद् वै स पराभवत् ॥४९॥

पदार्थ—(हीडिताः) क्रोधित (देवाः) विद्वान् लोग (एताभिः) इन (ऋग्भिः) स्तुतियोग्य वेदवाणियों द्वारा (भेदम्) फूट डालने वाले से (परि) घिर कर (अवदन्) बोले—"(वशाम्) कामनायोग्य [वेदवाणी] (नः) हमको (न अदात्) उसने नहीं दी है, (इति) सो (तस्मात् वै) इससे ही (सः) वह (परा अभवत्) हारा है" ॥४९॥

उतैनां भेदो नाददाद् वशामिन्द्रेण याचितः ।
तस्मात् तं देवा आगसोऽवृश्चन्नहमुत्तरे ॥५०॥

पदार्थ—(उत) और (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् [ब्रह्मचारी] से (याचितः) याचना किये हुए (भेदः) फूट डालनेवाले ने (एनाम्) इस (वशाम्) [कामना योग्य वेदवाणी] को (न अददात्) नहीं दिया । (देवाः) विद्वानों ने (तस्मात् आगसः) उस पाप से (अहमुत्तरे) संग्राम में [जहाँ अपनी-अपनी बड़ाई के लिये झगड़ते हैं] (तम्) उस [वेद शत्रु] को (अवृश्चन्) छिन्न-भिन्न किया है ॥५०॥

ये वशाया अदानाय वदन्ति परिरापिणः ।
इन्द्रस्य मन्यवे जाल्मा आ वृश्चन्ते अचित्त्या ॥५१॥

पदार्थ—(ये) जो (परिरापिणः) बतबने लोग (वशायाः) कामना-योग्य [वेदवाणी] के (अदानाय) न दान करने के लिये (वदन्ति) कहते हैं । (जाल्माः) वे क्रूर (अचित्त्या) अज्ञान से (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान पुरुष के (मन्यवे) क्रोध के कारण (आ) सब ओर से (वृश्चन्ते) छिन्न-भिन्न होते हैं ॥५१॥

ये गोपतिं पराणीयाथाहुर्मा ददा इति ।
रुद्रस्यास्तां ते हेतिं परि यन्त्यचित्त्या ॥५२॥

पदार्थ—(अथ) और (ये) जो (गोपतिम्) भूपति [राजा] को (पराणीय) बहका कर (आहुः) कहते हैं —"(मा ददाः इति) मत दे ।" (ते) वे लोग (अचित्त्या) अज्ञान से (रुद्रस्य) दुःखनाशक शूर पुरुष के (अस्ताम्) चलाये हुए (हेतिम्) वज्र को (परि) सब ओर से (यन्ति) पाते हैं ॥५२॥

यदि हुतां यद्यहुतामभा च पचते वशाम् ।
देवान्त्सब्राह्मणानृत्वा जिह्मो लोकान्निर्ऋच्छति ॥५३॥

पदार्थ—(यदि) यदि (हुताम्) दान की हुई [आचार्य से सीखी हुई], (यदि) यदि (अहुताम्) न दान की हुई [बल से ली हुई] (वशाम्) कामना योग्य [वेदवाणी] को (अमा) अपने घर में (च) ही (पचते) मनुष्य विख्यात करता है । (सब्राह्मणान्) ब्रह्मचारियों सहित (देवान्) विद्वानों को (ऋत्वा) दुखाकर (जिह्मः) वह कुटिल (लोकात्) समाज से (निःऋच्छति) निकल जाता है ॥५३॥

卐 इति चतुर्थोऽनुवाकः 卐

卐

अथ पंचमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ५ [१] 卐

[१] १—७२ (कश्यप ?) अथर्वाचार्य । ब्रह्मगवी । (सप्त पर्यायः) (१—६) १ प्राजापत्यानुष्टुप्, २ भुरिक्साम्न्यनुष्टुप्, ३ चतुष्पदा स्वराडुष्णिक्, ४ आसुर्यनुष्टुप्, ६ साम्नीपङ्क्तिः ।

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तर्ते श्रिता ॥१॥
सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता ॥२॥
स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता
यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ॥३॥
ब्रह्म पदवायं ब्राह्मणोऽधिपतिः ॥४॥
तामाददानस्य ब्रह्मगवीं जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥५॥
अप क्रामति सूनृता वीर्यं१ पुण्या लक्ष्मीः ॥६॥

पदार्थ—[जो वेदवाणी] (श्रमेण) प्रयत्न के साथ और (तपसा) तप [ब्रह्मचर्य आदि धर्मानुष्ठान] के साथ (सृष्टा) उत्पन्न की गयी, (ब्रह्मणा) ब्रह्मचारी द्वारा (वित्ता) पायी गयी, (ऋते) सत्यज्ञान में (श्रिता) ठहरी हुई है ॥१॥

[जो वेदवाणी] (सत्येन) सत्य [यथार्थ नियम] से (आवृता) सब प्रकार स्वीकार की गई, (श्रिया) श्री [चक्रवर्ती राज्य आदि लक्ष्मी] से (प्रावृता) भले प्रकार अङ्गीकार की गई और (यशसा) यश [कीर्ति] के साथ (परीवृता) सब ओर से मान की गई है ॥२॥

[जो वेदवाणी] (स्वधया) अपनी धारण शक्ति से (परिहिता) सब ओर धारण की गई, (श्रद्धया) श्रद्धा [ईश्वर-विश्वास] से (पर्यूढा) अति दृढ़ की गयी, (दीक्षया) दीक्षा [नियम, व्रत, संस्कार] से (गुप्ता) रक्षा की गई, (यज्ञे) यज्ञ [विद्वानों के सत्कार, शिल्प विद्या और शुभ गुणों के दान] में (प्रतिष्ठिता) प्रतिष्ठा [सन्मान] की गई है, और [जिस वेदवाणी का] (लोकः) यह संसार (निधनम्) स्थिति-स्थान है ॥३॥

(ब्रह्म) वेद [ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद] [जिस वेदवाणी का] (पदवायम्) प्राप्तियोग्य ज्ञान और (ब्राह्मणः) ब्रह्म [ब्रह्माण्ड का जानने वाला] परमेश्वर [जिसका] (अधिपतिः) अधिपति [परम स्वामी] है ॥४॥

(ताम्) उस (ब्रह्मगवीम्) वेदवाणी को (आददानस्य) छीनने वाले, (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [ब्रह्मचारी] को (जिनतः) सताने वाले (क्षत्रियस्य) क्षत्रिय की ॥५॥

(सूनृता) प्रिय सत्य वाणी [वा सुकीर्ति] (अप क्रामति) चली जाती है, (वीर्यम्) वीरता और (पुण्या) मङ्गलमयी (लक्ष्मीः) लक्ष्मी [चक्रवर्ती राज्य आदि सामग्री] [भी चली जाती है] ॥६॥

卐 सूक्तम् ॥५॥ (२) 卐

[२] (७-११) ७ साम्नी त्रिष्टुप्, ८-९ आर्च्यनुष्टुप् (८ भुरिक्), १० उष्णिक्, (७ १० एकपदा), ११ आर्ची निचृत्पङ्क्तिः ।

ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक् चेन्द्रियं
च श्रीश्च धर्मश्च ॥७॥
ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च
यशश्च वर्चश्च द्रविणं च ॥८॥
आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चा-
पानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च ॥९॥
पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं चर्तं च सत्यं चेष्टं
च पूर्तं च प्रजा च पशवश्च ॥१०॥
तानि सर्वाण्यप क्रामन्ति ब्रह्मगवीमाददानस्य
जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥११॥

पदार्थ—(च) और (ओजः) पराक्रम, (च) और (तेजः) तेज [प्रगल्भता, निर्भयता], (च) और (सहः) सहन सामर्थ्य, (च) और (बलम्) बल [शरीर की दृढ़ता] (च) और (वाक्) विद्या, (च) और (इन्द्रियम्) इन्द्रिय [मन सहित पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय], (च) और (श्रीः) श्री [लक्ष्मी सम्पत्ति, अर्थात् चक्रवर्ती राज्य की सामग्री], (च) और (धर्मः) धर्म [वेदोक्त पक्षपातरहित न्याय का आचरण] ॥७॥

(च) और (ब्रह्म) ब्राह्मण [सब में उत्तम विद्वान् और सद्गुण प्रचारक जन], (च क्षत्रम्) क्षत्रिय [विद्वान् चतुर शूरवीर पुरुष] (च राष्ट्रम्) राज्य [न्याय से प्रजापालन], (च) और (विशः) प्रजाजन, (च) और (त्विषिः) कान्ति [शरीर का आरोग्य और आत्मबल], (च) और (यशः) यश [शूरता आदि की प्रख्याति], (च) और (वर्चः) ब्रह्मवर्चस [वेद का विचार और प्रचार], (च) और (द्रविणम्) धन [सम्पत्ति की रक्षा और वृद्धि] ॥८॥

(च) और (आयुः) जीवन [ब्रह्मचर्य-सेवन और वीर्यरक्षण से जीवन का बढ़ाना], (च) और (रूपम्) रूप [शरीरपुष्टि से सुन्दरता], (च) और (नाम) नाम [सत्कर्मों से प्रसिद्धि], (च) और (कीर्तिः) कीर्ति [श्रेष्ठ गुणों के ग्रहण के लिये ईश्वर के गुणों का कीर्तन और विद्या दान आदि सत्य आचरणों से प्रशंसा को स्थिर रखना], (च) और (प्राणः) प्राण वायु (च) और (अपानः) अपान वायु (च) और (चक्षुः) दृष्टि [प्रत्यक्ष, अनुमान और उपमान प्रमाण], (च) और (श्रोत्रम्) श्रवण [शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, संभव और अभाव प्रमाण] ॥९॥

(च) और (पयः) दूध, जलादि (च) और (रसः) रस [घृत, मधु, सोमरस आदि], (च) और (अन्नम्) अन्न [गेहूँ, जौ, चावल आदि], (च) और (अन्नाद्यम्) खानेयोग्य पदार्थ [दाल, शाक, फल आदि], (च) और (ऋतम्) वेदज्ञान, (च) और (सत्यम्) सत्य [हृदय, वाणी और शरीर से यथार्थ कर्म] (च) और (इष्टम्) यज्ञ [अग्निहोत्र, वेदाध्ययन, अतिथिसत्कार आदि], (च) और (पूर्तम्) पूर्णता [सर्वोपकारी कर्म, कूप, तड़ाग, आराम, वाटिका, आदि], (च) और (प्रजाः) प्रजायें [सन्तान आदि और राज्य जन] (च) और (पशवः) सब पशु [हाथी, घोड़े, गायें आदि जीव] ॥१०॥

(तानि सर्वाणि) ये सब (ब्रह्मगवीम्) वेदवाणी को (आददानस्य) छीनने वाले, (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [ब्रह्मचारी] को (जिनतः) सताने वाले (क्षत्रियस्य) क्षत्रिय के (अप क्रामन्ति) चले जाते हैं ॥११॥

सूक्तम् ५ (३)

[३] (१२-२७) १२ विराड् विषमा गायत्री; १३ आसुर्यनुष्टुप्, १४, २६ साम्नी उष्णिक्; १५ गायत्री, १६—१७, १९—२० प्राजापत्यानुष्टुप्, १८ याजुषी गायत्री २१—२५ साम्न्यनुष्टुप्, २२ साम्नी बृहती; २३ याजुषी त्रिष्टुप्; २४ आसुरी गायत्री; २७ साम्न्युष्णिक्।

सैषा भीमा ब्रह्मगव्यघविषा साक्षात् कृत्या कूल्बजमावृता ॥१२॥

पदार्थ—(सा एषा) वह यही (ब्रह्मगवी) वेदवाणी [वेदनिन्दक को] (भीमा) डरावनी (अघविषा) महाघोर विषैली, (साक्षात्) साक्षात् [प्रत्यक्ष] (कृत्या) हिंसा रूप और (कूल्बजम्) भूमि पर दाह उपजाने वाली वस्तु रूप [हो जाती है, जब वह] (आवृता) रोक दी गयी हो ॥१२॥

सर्वाण्यस्यां घोराणि सर्वे च मृत्यवः ॥१३॥

पदार्थ—(अस्याम्) इस [वेदवाणी] मे [रोके जाने पर वेद निरोधक को] (सर्वाणि) सब (घोराणि) घोर [महाभयानक] कर्म (च) और (सर्वे) सब प्रकार के (मृत्यवः) मृत्यु होते हैं ॥१३॥

सर्वाण्यस्यां क्रूराणि सर्वे पुरुषवधाः ॥१४॥

पदार्थ—(अस्याम्) इस [वेदवाणी] में [रोकने वाले को] (सर्वाणि) सब (क्रूराणि) क्रूर [निठुर] कर्म और (सर्वे) सब प्रकार के (पुरुषवधाः) मनुष्य-वध होते हैं ॥१४॥

सा ब्रह्मज्यं देवपीयुं ब्रह्मगव्यादीयमाना ।

मृत्योः पड्वीश आ द्यति ॥१५॥

पदार्थ—(सा) वह (आदीयमाना) छीनी जाती हुई (ब्रह्मगवी) वेदवाणी (ब्रह्मज्यम्) ब्रह्मचारियो के हानिकारक, (देवपीयुम्) विद्वानो के सताने वाले पुरुष को (मृत्योः) मृत्यु की (पड्वीशे) बेडी मे (आ द्यति) बांध देती है ॥ १५ ॥

मेनिः शतवधा हि सा ब्रह्मज्यस्य क्षितिर्हि सा ॥१६॥

पदार्थ—(सा) वह [वेदवाणी] (हि) निश्चय करके (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारियो के हानिकारक को (शतवधा) शतघ्नी [सैकड़ो को मारने वाली] (मेनिः) वज्र, (सा हि) वह ही [उसकी] (क्षितिः) नाश शक्ति है ॥१६॥

तस्माद् वै ब्राह्मणानां गौर्दुराधर्षा विजानता ॥१७॥

पदार्थ—(तस्मात्) इस लिये (वै) ही (ब्राह्मणानाम्) ब्रह्मचारियों की [हितकारिणी] (गौः) वेदवाणी (विजानता) विवेक जानने वाले द्वारा (दुराधर्षा) कभी न छीनने योग्य है ॥१७॥

वज्रो धावन्ती वैश्वानर उद्वीता ॥१८॥

पदार्थ—(धावन्ती) दौड़ती हुई वह [वेदवाणी दुष्ट के लिए] (वज्रः) वज्र रूप और (उद्वीता) ऊंची हुई वह [सज्जन के लिये] (वैश्वानरः) सर्वनायक पुरुष [के समान हितकारी] है ॥१८॥

हेतिः शफानुत्खिदन्ती महादेवो ऽपेक्षमाणा ॥१९॥

पदार्थ—वह [वेदवाणी पापी के] (शफान्) शान्ति-व्यवहारों को (उत्खिदन्ती) नाश करती हुई (हेतिः) वज्ररूप है, और (अपेक्षमाणा) सब ओर दृष्टि फैलाती हुई वह (महादेवः) बड़े विजय चाहने वाले [शूर पुरुष के समान] है ॥१९॥

क्षुरपविरीक्षमाणा वाश्यमानाभि स्फूर्जति ॥२०॥

पदार्थ—(ईक्षमाणा) देखती हुई वह [वेदवाणी रोकने वाले को] (क्षुरपविः) छुरा [कटार आदि] की धार [के समान] होती है, (वाश्यमाना) शब्द करती हुई वह (अभि) सब ओर (स्फूर्जति) गरजती है ॥२०॥

मृत्युर्हिङ्कृण्वत्युग्रो देवः पुच्छं पर्यस्यन्ती ॥२१॥

पदार्थ—वह [वेदवाणी] (हिङ्कृण्वती) [ब्रह्मचारी की] वृद्धि करती हुई (मृत्युः) [रोकनेवाले को] मृत्यु होती है, [उसकी] (पुच्छम्) मूल को (पर्यस्यन्ती) फेंक देती हुई वह (उग्रः) तेजस्वी (देवः) विजय चाहनेवाले [शूर के समान] होती है ॥२१॥

सर्वज्यानिः कर्णौ वरीवर्जयन्ती राजयक्ष्मो मेहन्ती ॥२२॥

पदार्थ—(मेहन्ती) [विद्वानो को] सींचती हुई और [वेद निरोधक के] (कर्णौ) दो विज्ञानो [अभ्युदय और निःश्रेयस अर्थात् तत्त्वज्ञान और मोक्षज्ञान] को (वरीवर्जयन्ती) सर्वथा रोकती हुई [वेदवाणी] [उसके लिए] (सर्वज्यानिः) सब हानि करने वाले (राजयक्ष्मः) राजरोग [के समान] होती है ॥२२॥

मेनिर्दुह्यमाना शीर्षक्तिर्दुग्धा ॥२३॥

पदार्थ—वह [वेदवाणी] (दुह्यमाना) [विद्वानो द्वारा] दुही जाती हुई [वेदनिरोधक को] (मेनिः) वज्ररूप और (दुग्धा) दुही गयी वह (शीर्षक्तिः) [उस को] मस्तकपीड़ा होती है ॥२३॥

सेदिरुपतिष्ठन्ती मिथोयोधः परामृष्टा ॥२४॥

पदार्थ—वह [वेदवाणी] (उपतिष्ठन्ती) [विद्वानो के] समीप ठहरती हुई [वेद निरोधक को] (सेदिः) महामारी आदि क्लेश, और (परामृष्टा) [विद्वानों से] परामर्श की गयी [विचारी गयी] वह (मिथोयोधः) [दुष्टो मे] परस्पर संग्राम-रूप होती है ॥२४॥

शरव्या मुखेऽपिनह्यमान ऋतिर्हन्यमाना ॥२५॥

पदार्थ—(मुखे अपिनह्यमाने) मुख बांधे जाने पर वह [वेदवाणी] [वेदनिरोधक के लिए] (शरव्या) बाणविद्या मे चतुर सेना [के समान] और (हन्यमाना) ताड़ी जाती हुई वह (ऋतिः) आपत्ति रूप होती है ॥२५॥

अघविषा निपतन्ती तमो निपतिता ॥२६॥

पदार्थ—(निपतन्ती) नीचे गिरती हुई वह [वेदवाणी] (अघविषा) [वेद-निरोधक को] महाघोर विषैली और (निपतिता) नीचे गिरी हुई वह (तमः) [उस को] अन्धकार होती है ॥२६॥

अनुगच्छन्ती प्राणानुप दासयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य ॥२७॥

पदार्थ—(अनुगच्छन्ती) निरन्तर चलती हुई (ब्रह्मगवी) वेदवाणी (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारियो के हानिकारक के (प्राणान्) प्राणों को (उप दासयति) दबोच डालती है ॥२७॥

सूक्तम् ५ [४]

[४] (२८—३८) २८ आसुरी गायत्री, २९, ३७ आसुर्यनुष्टुप्; ३० साम्न्यनुष्टुप्, ३१ याजुषी त्रिष्टुप्, ३२ साम्नी गायत्री, ३३-३४ साम्नी बृहती, ३५ भुरिक् साम्न्यनुष्टुप्, ३६ साम्न्युष्णिक्, ३८ प्रतिष्ठा गायत्री।

वैरं विकृत्यमाना पौत्राद्यं विभाज्यमाना ॥२८॥

पदार्थ—वह [वेदवाणी] (विकृत्यमाना) कतरी जाती हुई [वेद निन्दक के लिये] (वैरम्) वैर [शत्रुतारूप], और (विभाज्यमाना) टुकड़े-टुकड़े की जाती हुई [उसके] (पौत्राद्यम्) पुत्र आदि सन्तानो का भक्षण [नाश रूप] होती है ॥२८॥

देवहेतिर्ह्रियमाणा व्यृद्धिर्हृता ॥२९॥

पदार्थ—वह [वेदवाणी] (ह्रियमाणा) पकड़ी जाती हुई [वेदनिन्दक के लिये] (देवहेतिः) इन्द्रियों का हनन, और (हृता) पकड़ी गयी (व्यृद्धिः) [उस को] अवृद्धि [हानिरूप] होती है ॥२९॥

पाप्माधिधीयमाना पारुष्यमवधीयमाना ॥३०॥

पदार्थ—वह [वेदवाणी] (अधिधीयमाना) उठायी जाती हुई [वेद विरोधी के लिये] (पाप्मा) अनर्थ, और (अवधीयमाना) गिराई जाती हुई (पारुष्यम्) [उसको] निठुराई [क्रूरता रूप] होती है ॥३०॥

विषं प्रयस्यन्ती तक्मा प्रयस्ता ॥३१॥

पदार्थ—वह [वेदवाणी] (प्रयस्यन्ती) क्लेश में पड़ती हुई [वेदविरोधी को] (विषम्) विष, और (प्रयस्ता) क्लेश मे डाली गयी (तक्मा) जीवन के कष्ट-दायक [ज्वररूप] होती है ॥३१॥

अघं पच्यमाना दुःष्वप्न्यं पक्वा ॥३२॥

पदार्थ—वह [वेदवाणी] (पच्यमाना) पचाई जाती हुई [वेदनिरोधक को] (अघम्) महा दुःख और (पक्वा) पचाई गयी (दुःष्वप्न्यम्) दुष्ट स्वप्न होती है ॥३२॥

मूलबर्हणी पर्याक्रियमाणा क्षितिः पर्याकृता ॥३३॥

पदार्थ—वह [वेदवाणी] (पर्याक्रियमाणा) अनादर से रूपान्तर की जाती हुई [वेदनिरोधक के लिये] (मूलबर्हणी) जड़ उखाड़ देने वाली शक्ति, और (पर्याकृता) अनादर से रूपान्तर की गयी (क्षिति) नाश शक्ति है ॥३३॥

असंज्ञा गन्धेन शुगुद्ध्रियमाणाशीविष उद्धृता ॥३४॥

पदार्थ—(गन्धेन) [वेदवाणी के] नाश से (असंज्ञा) असंगति [संसार में फूट] होती है, वह (उद्ध्रियमाणा) उखाड़ी जाती हुई (शुक्) शोक और (उद्धृता) उखाड़ी गयी (आशीविषः) फण में विष वाले [साँप के समान] है ॥३४॥

अभूतिरुपह्रियमाणा पराभूतिरुपहृता ॥३५॥

पदार्थ—वह [वेदवाणी] (उपह्रियमाणा) छीनी जाती हुई [वेदनिरोधक के लिये] (अभूतिः) अनैश्वर्य [असमर्थता], और (उपहृता) छीन ली गयी (पराभूतिः) पराजय [हार] होती है ॥३५॥

शर्वः क्रुद्धः पिश्यमाना शिमिदा पिशिता ॥३६॥

पदार्थ—वह [वेदवाणी] (पिश्यमाना) खण्ड खण्ड की जाती हुई [वेदनिन्दक के लिये] (क्रुद्धः) क्रोध करते हुए (शर्वः) हिंसक [पुरुष के समान], और (पिशिता) खण्ड-खण्ड की गयी (शिमिदा) विहित कर्म नाश करने वाली होती है ॥३६॥

अवर्तिरश्यमाना निर्ऋतिरशिता ॥३७॥

पदार्थ—वह [वेदवाणी] (अश्यमाना) खायी जाती हुई [वेदनिन्दक के लिये] (अवर्तिः) निर्धनता, और (अशिता) खायी गई (निर्ऋतिः) महामारी होती है ॥३७॥

अशिता लोकाच्छिनत्ति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यमस्माच्चामुष्माच्च ॥३८॥

पदार्थ—(अशिता) खायी गई (ब्रह्मगवी) वेदवाणी (ब्रह्मज्यम्) ब्रह्मचारियों के हानिकारक को (अस्मात् लोकात्) इस लोक से (च) और (अमुष्मात्) उस [लोक] से (च) भी (छिनत्ति) काट डालती है ॥३८॥

卐 सूक्तम् ॥५॥ 卐 [५]

[५] ३९—४६ ॥ ३९ साम्नी पङ्क्तिः ४० याजुष्यनुष्टुप्, ४१, ४६ भुरिक्, साम्न्यनुष्टुप्, ४२ आसुरी बृहती, ४३ साम्नी बृहती ४४ पिपीलिकामध्यानुष्टुप्, ४५ आर्षी बृहती।

तस्या आहननं कृत्या मेनिराशसनं वलग ऊबध्यम् ॥३९॥

पदार्थ—(तस्याः) उस [वेदवाणी] का (आहननम्) ताडना [वेदनिन्दक के लिये] (कृत्या) हिंसा क्रिया, (आशसनम्) [उसका] पीड़ा देना (मेनिः) [उसके लिये] वज्र, और (ऊबध्यम्) [उसका] दुष्ट बन्धन (वलगः) [उसके लिये] दुःख है ॥३९॥

अस्वगता परिहृता ॥४०॥

पदार्थ—(परिहृता) चुरा ली गई [वेदवाणी] (अस्वगता) [वेद निरोधक के लिये] निर्धनता रूप है ॥४०॥

अग्निः क्रव्याद् भूत्वा ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यं प्रविश्यात्ति ॥४१॥

पदार्थ—(ब्रह्मगवी) वेदवाणी (क्रव्यात्) मांसभक्षक [मृतकदाहक] (अग्निः) अग्नि [के समान] (भूत्वा) होकर (ब्रह्मज्यम्) ब्रह्मचारियों के हानिकारक में (प्रविश्य) प्रवेश करके (अत्ति) खा लेती है ॥४१॥

सर्वास्याङ्गा पर्वा मूलानि वृश्चति ॥४२॥

पदार्थ—वह [चुरा ली गई वेदवाणी] (अस्य) इस [वेद निन्दक के] (सर्वा) सब (अङ्गा) अङ्गों को, (पर्वा) जोड़ों को और (मूलानि) जड़ों को (वृश्चति) काट देती है ॥४२॥

छिनत्त्यस्य पितृबन्धु परा भावयति मातृबन्धु ॥४३॥

पदार्थ—वह (अस्य) इसके (पितृबन्धु) पैतृक सम्बन्ध को (छिनत्ति) काट देती है और [इसके] (मातृबन्धु) मातृक सम्बन्ध को (पराभावयति) विध्वंस कर देती है ॥४३॥

विवाहां ज्ञातीन्त्सर्वानपि क्षापयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य क्षत्रियेणापुनर्दीयमाना ॥४४॥

पदार्थ—(क्षत्रियेण) क्षत्रिय करके (अपुनर्दीयमाना) फिर नहीं दी गयी (ब्रह्मगवी) वेदवाणी (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारियों के हानिकारक के (सर्वान्) सब (विवाहान्) विवाहों और (ज्ञातीन्) भाई-बन्धुओं को (अपि) भी (क्षापयति) नाश करती है ॥४४॥

अवास्तुमेनमस्वगमप्रजसं करोत्यपरापरणो भवति क्षीयते ॥४५॥

पदार्थ—वह [वेदवाणी] (एनम्) उस [क्षत्रिय] को (अवास्तुम्) बिना घर का, (अस्वगम्) निर्धनी और (अप्रजसम्) निर्वंशी (करोति) करती है, वह [मनुष्य] (अपरापरणः) प्राचीन और अर्वाचीन बिना [पुराने और नये पुरुष बिना] (भवति) हो जाता है, और (क्षीयते) नाश को प्राप्त होता है ॥४५॥

य एवं विदुषो ब्राह्मणस्य क्षत्रियो गामादत्ते ॥४६॥

पदार्थ—(यः क्षत्रियः) जो क्षत्रिय (एवम्) ऐसे (विदुषः) जानकार (ब्राह्मणस्य) ब्रह्मचारी की [हितकारिणी] (गाम्) वेदवाणी को (आदत्ते) छीन लेता है ॥४६॥

卐 सूक्तम् ॥ ५ ॥ 卐 [६]

[६] ४७—६१ ॥ ४७, ४९, ५१—५३, ५७—५९, ६१ प्राजापत्यानुष्टुप्, ४८ आर्च्यनुष्टुप्, ५० साम्नी बृहती, ५४, ५५ प्राजापत्योष्णिक्; ५६ आसुरी गायत्री, ६० गायत्री, ॥

क्षिप्रं वै तस्याहनने गृध्राः कुर्वत ऐलबम् ॥४७॥

पदार्थ—(क्षिप्रम्) शीघ्र (वै) निश्चय करके (तस्य) उस [वेदनिन्दक] के (आहनने) मार डालने पर (गृध्राः) गिद्ध आदि (ऐलबम्) कलकल शब्द (कुर्वते) करते हैं ॥४७॥

क्षिप्रं वै तस्यादहनं परि नृत्यन्ति केशिनीराघ्नानाः पाणिनोरसि कुर्वाणाः पापमैलबम् ॥४८॥

पदार्थ—(क्षिप्रम्) शीघ्र (वै) निश्चय करके (तस्य) उस [वेदनिन्दक] के (आदहनं परि) दाह स्थान के आस पास (केशिनीः) लम्बे केशों वाली स्त्रियाँ (पाणिना) हाथ से (उरसि) छाती (आघ्नानाः) पीटती हुई और (पापम्) अशुभ (ऐलबम्) विलाप ध्वनि (कुर्वाणाः) करती हुई (नृत्यन्ति) डोलती हैं ॥४८॥

क्षिप्रं वै तस्य वास्तुषु वृकाः कुर्वत ऐलबम् ॥४९॥

पदार्थ—(क्षिप्रम्) शीघ्र (वै) निश्चय करके (तस्य) उस [वेदनिन्दक] के (वास्तुषु) घरों में (वृकाः) भेड़िये आदि (ऐलबम्) कलकल शब्द (कुर्वते) करते हैं ॥४९॥

क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति यत् तदासी३दिदं नु ता३दिति ॥५०॥

पदार्थ—(क्षिप्रम्) शीघ्र (वै) निश्चय करके (तस्य) उस [वेदनिन्दक] के विषय में (पृच्छन्ति) लोग पूछते हैं—"(नु) क्या (इदम्) यह [स्थान] (तात् इति) वही है, (यत्) जो (तत्) वह (आसी३त्) [पहिले] था" ॥५०॥

छिन्ध्या च्छिन्धि प्र च्छिन्ध्यपि क्षापय क्षापय ॥५१॥

पदार्थ—(छिन्धि) तू काट, (आ च्छिन्धि) काटे जा, (प्र च्छिन्धि) काट डाल, (क्षापय) नाश कर, (अपि क्षापय) विनाश कर ॥५१॥

आददानमाङ्गिरसि ब्रह्मज्यमुप दासय ॥५२॥

पदार्थ—(आङ्गिरसि) हे अङ्गिरा [ज्ञानी परमेश्वर] से उपदेश की गयी [वेदवाणी !] (आददानम्) [तुझे] छीनने वाले (ब्रह्मज्यम्) ब्रह्मचारियों के हानिकारक पर (उप दासय) चढ़ाई कर ॥५२॥

वैश्वदेवी ह्युच्यसे कृत्या कूल्बजमावृता ॥५३॥

पदार्थ—(हि) क्योंकि (वैश्वदेवी) सब विद्वानों का हित करने वाली तू [वेदनिन्दक के लिये] (कृत्या) हिंसा रूप और (कूल्बजम्) भूमि पर दाह उपजाने वाली वस्तु रूप (उच्यसे) कही जाती है [जब कि तू] (आवृता) रोक दी गयी हो ॥५३॥

ओषन्ती समोषन्ती ब्रह्मणो वज्रः ॥५४॥

पदार्थ—(ओषन्ती) जलाती हुई, (समोषन्ती) भस्म कर देती हुई, तू [वेदनिन्दक के लिये] (ब्रह्मणः) ब्रह्म [परमेश्वर] का (वज्रः) वज्र रूप है ॥५४॥

क्षुरपविर्मृत्युर्भूत्वा वि धाव त्वम् ॥५५॥

पदार्थ—[हे वेदवाणी !] (त्वम्) तू [वेदनिन्दक के लिये] (क्षुरपविः) छुरा [कटार आदि] की धार [के समान], (मृत्युः) मृत्युरूप (भूत्वा) होकर (वि) इधर-उधर (धाव) दौड़ ॥५५॥

आ दत्से जिनतां वर्च इष्टं पूर्तं चाशिषः ॥५६॥

पदार्थ—[हे वेदवाणी !] (जिनताम्) हानिकारकों का (वर्चः) तेज, (इष्टम्) यज्ञ [अग्निहोत्र, वेदाध्ययन, अतिथिसत्कार आदि], (पूर्तम्) पूर्णता

[सर्वोपकारी कर्म कूप, तड़ाग, आराम, वाटिका आदि], (च) और (आशिषः) इच्छाओं को (आ दत्से) तू हर लेती है ॥५६॥

आदाय जीतं जीताय लोके३ऽमुष्मिन् प्र यच्छसि ॥५७॥

पदार्थ—[हे वेदवाणी !] (जीतम्) हानिकारक पुरुष को (आदाय) लेकर (जीताय) हानि किये गये पुरुष के वश में (अमुष्मिन् लोके) उस लोक में [आगामी समय वा जन्म में](प्र यच्छसि) तू देती है ॥५७॥

अघ्न्ये पदवीर्भव ब्राह्मणस्याभिशस्त्या ॥५८॥

पदार्थ—(अघ्न्ये) हे अवध्य ! [न मारनेयोग्य, प्रबल वेदवाणी] (अभिशस्त्या) सब ओर स्तुति के साथ (ब्राह्मणस्य) ब्रह्मचारी की (पदवीः) प्रतिष्ठा (भव) हो ॥५८॥

मेनिः शरव्या भवाघादघविषा भव ॥५९॥

पदार्थ—[हे वेदवाणी !] तू [वेदनिन्दक के लिए] (मेनिः) वज्र, (शरव्या) बाणविद्या में चतुर सेना (भव) हो, और (अघात्) [उसके] पाप के कारण से (अघविषा) महाघोर विषैली (भव) हो ॥५९॥

अघ्न्ये प्र शिरो जहि ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ॥६०॥

पदार्थ—(अघ्न्ये) हे अवध्य ! [न मारनेयोग्य, प्रबल वेदवाणी] (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारियों के हानिकारक, (कृतागसः) अपराध करने वाले, (देवपीयोः) विद्वानों के सताने वाले, (अराधसः) अदानशील पुरुष के (शिरः) शिर को (प्र जहि) तोड़ डाल ॥६०॥

त्वया प्रमूर्णं मृदितमग्निर्दहतु दुश्चितम् ॥६१॥

पदार्थ—[हे वेदवाणी !] (त्वया) तेरे द्वारा (प्रमूर्णम्) बांध लिये गये, (मृदितम्) कुचले गये (दुश्चितम्) अनिष्टचिन्तन को (अग्निः) आग (दहतु) जला डाले ॥६१॥

सूक्तम् ॥५॥ [७]

[७](६२—७३)६२—६४,६६,६८—७० प्राजापत्यानुष्टुप्; ६५ गायत्री, ६७ प्राजापत्यागायत्री, ७२ आसुरी पङ्क्तिः, ७२ प्राजापत्यात्रिष्टुप्, ७३ आसुर्युष्णिक् ॥

वृश्च प्र वृश्च सं वृश्च दह प्र दह सं दह ॥६२॥

पदार्थ—[वेदवाणी !] तू [वेदनिन्दक को] (वृश्च) काट डाल, (प्र वृश्च) चीर डाल, (सं वृश्च) फाड़ डाल, (दह) जला दे, (प्र दह) फूंक दे, (सं दह) भस्म कर दे ॥६२॥

ब्रह्मज्यं देव्यघ्न्य आ मूलादनुसंदह ॥६३॥

पदार्थ—(देवि) हे देवी ! [उत्तम गुणवाली] (अघ्न्ये) हे अवध्य ! [न मारनेयोग्य, प्रबल वेदवाणी] (ब्रह्मज्यम्) ब्रह्मचारियों के हानिकारक को (आ मूलात्) जड़ से (अनुसंदह) जलाये जा ॥६३॥

यथायाद् यमसादनात् पापलोकान् परावतः ॥६४॥

पदार्थ—(यथा) जिस से वह (यमसादनात्) न्यायगृह से (परावतः) दूर देश वाले (पापलोकान्) पापियों के लोकों [कारागार आदि स्थानों] को (अयात्) चला जावे ॥६४॥

एवा त्वं देव्यघ्न्ये ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ॥६५॥

पदार्थ—(देवि) हे देवी ! [उत्तम गुणवाली], (अघ्न्ये) हे अवध्य ! [न मारने योग्य, प्रबल वेदवाणी (त्वम्) तू (एव) इसी प्रकार (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारियों के हानिकारक, (कृतागसः) अपराध करने वाले, (देवपीयोः) विद्वानों के सताने वाले, (अराधसः) अदानशील पुरुष के ॥६५॥

वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना ॥६६॥

पदार्थ—(शतपर्वणा) सैकड़ों जोड़ वाले, (तीक्ष्णेन) तीक्ष्ण, (क्षुरभृष्टिना) छुरे की-सी धारवाले (वज्रेण) वज्र से ॥६६॥,

प्र स्कन्धान् प्र शिरो जहि ॥६७॥

पदार्थ—(स्कन्धान्) कन्धों और (शिरः) शिर को (प्र प्र जहि) तोड़-तोड़ दे ॥६७॥

लोमान्यस्य सं छिन्धि त्वचमस्य वि वेष्टय ॥६८॥

पदार्थ—(अस्य) उस [वेदविरोधी] के (लोमानि) लोमों को (सं छिन्धि) काट डाल, (अस्य) उसकी (त्वचम्) खाल (वि वेष्टय) उतार ले ॥६८॥

मांसान्यस्य शातय स्नावान्यस्य सं वृह ॥६९॥

पदार्थ—(अस्य) उसके (मांसानि) मांस के टुकड़ों को (शातय) बोटी-बोटी कर दे, (अस्य) उसके (स्नावानि) नसों को (सं वृह) ऐंठ दे ॥६९॥

अस्थीन्यस्य पीडय मज्जानमस्य निर्जहि ॥७०॥

पदार्थ—(अस्य) उसकी (अस्थीनि) हड्डियों (पीडय) मसल डाल, (अस्य) उसकी (मज्जानम्) मींग (निर्जहि) निकाल दे ॥७०॥

सर्वास्याङ्गा पर्वाणि वि श्रथय ॥७१॥

पदार्थ—(अस्य) उसके (सर्वा) सब (अङ्गा) अङ्गों और (पर्वाणि) जोड़ों को (वि श्रथय) ढीला करदे ॥७१॥

अग्निरेनं क्रव्यात् पृथिव्या नुदतामुदोषतु वायुरन्तरिक्षान्महतो वरिम्णः ॥७२॥

पदार्थ—(क्रव्यात्) मांसभक्षक [शवदाहक] (अग्निः) अग्नि (एनम्) इस [वेदनिन्दक] को (पृथिव्याः) पृथिवी से (नुदताम्) निकाल देवे, और (उत् ओषतु) जला डाले, (वायुः) वायु (महतः) बड़े (वरिम्णः) विस्तार (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से [वैसा ही करे] ॥७२॥

सूर्य एनं दिवः प्र णुदतां न्योषतु ॥७३॥

पदार्थ—(सूर्यः) सूर्य (एनम्) इसको (दिवः) प्रकाश से (प्र णुदताम्) ढकेल देवे और (नि ओषतु) गिराकर जला देवे ॥७३॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

इति द्वादशं काण्डम् समाप्तम् ॥

त्रयोदशं काण्डम्

प्रथमोऽनुवाकः

卐 सूक्तम् ॥१॥ 卐

१—६० ब्रह्मा । अध्यात्मं रोहितादित्य देवते (३ मरुत्, २८-३१ अग्नि, ३१ बहुदेवत्या) । त्रिष्टुप्; ३-५ ६, १२, १५ जगती (१५ अतिजागतगर्भा), ८ भुरिक्, १७ पञ्चपदा ककुम्मती जगती, १३ अतिशाक्वरगर्भातिजगती (१८ परशाक्वरा भुरिक्, १९ परातिजागता), २१ आर्षी निचृद्गायत्री, २२, २३, २७ प्राकृताः, २६ विराट्पुरोष्णिक्, २८-३० (२८ भुरिक्), ३२, ३६, ४० ४५-४८ अनुष्टुप्; (४२-५५ पथ्यापंक्तिः; ५५ ककुम्मती बृहतीगर्भा, ५७ ककुम्मती), ३१ पञ्चपदा ककुम्मती शाक्वरगर्भा जगती; ३५ उपरिष्टाद् बृहती, ३६ निचन्महा बृहती; ३७ परशाक्वरा विराडति जगती, ४२ विराड् जगती, ४३ विराण्महाबृहती; ४४ पुरोष्णिक्, ५९, ६० गायत्री ।

उदेहि वाजिन् यो अप्स्व१न्तरिदं राष्ट्रं प्र विश सूनृतावत् ।
यो रोहितो विश्वमिदं जजान स त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु ॥१॥

पदार्थ—(वाजिन्) हे बलवान् ! [सेनापति] (उदेहि) ऊंचा हो, (सूनृतावत्) सुनीति से युक्त (इदम्) इस (राष्ट्रम्) राज्य में (प्र विश) प्रवेश कर। (यः) जो (रोहितः) सब का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (अप्सु अन्तः) प्रजाओं के भीतर है, और (यः) जिस [परमेश्वर] ने (इदम्) यह (विश्वम्) विश्व [जगत्] (जजान) उत्पन्न किया है, (सः) वह [परमेश्वर] (सुभृतम्) बड़े पोषण करनेवाले (त्वा) तुझको (राष्ट्राय) राज्य करने के लिये (बिभर्तु) धारण करे ॥१॥

उद्वाज आ गन् यो अप्स्व१न्तर्विश आ रोह त्वद्योनयो याः ।
सोमं दधानोऽप ओषधीर्गाश्चतुष्पदो द्विपद आ वेशयेह ॥२॥

पदार्थ—(वाजः) वह बलवान् [परमेश्वर] (उत्) उत्तमता से (आ गन्) प्राप्त हुआ है, (यः) जो (अप्सु अन्तः) प्रजाओं के भीतर है, [हे राजन् !] (विशः) उन प्रजाओं पर (आ रोह) ऊंचा हो, (याः) जो [प्रजायें] (त्वद्योनयः) तुझ से मेल रखनेवाली हैं। (सोमम्) ऐश्वर्य, (अपः) कर्म, (ओषधीः)

ओषधियों [अन्न, सोमलता आदि] और (गा.) गौ आदि को (दधान) धारण करता हुआ तू (चतुष्पदः) चौपायों और (द्विपद) दोपायो को (इह) यहाँ [प्रजाओ मे] (आ वेशय) प्रवेश करा ॥२॥

यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून् ।

आ वो रोहितः शृणवत् सुदानवस्त्रिषप्तासो मरुतः स्वादुसंमुदः ॥३॥

पदार्थ—(पृश्निमातर) हे पूछनेयोग्य वेदवाणी का माता-समान मान करनेवाले, (उग्रा) प्रचण्ड (मरुत) शूर लोगो ! (यूयम्) तुम (इन्द्रेण) बड़े ऐश्वर्य वाले सेनापति (युजा) मित्र के साथ (शत्रून्) शत्रुओ को (प्र मृणीत) मार डालो। (सुदानव·) हे बडे दानियो ! (त्रिषप्तास.) हे तीन [कर्म, उपासना और ज्ञान] के साथ सात [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नासिका, मन और बुद्धि] को रखनेवाले (स्वादुसमुद.) हे भोजनयोग्य अन्न में मिलकर आनन्द पाने वाले ! (मरुत.) हे शूर पुरुषो ! (रोहित) सब का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (व) तुम्हारी [प्रार्थना] (आ) सब प्रकार (शृणवत्) सुने ॥३॥

रुहो रुरोह रोहित आ रुरोह गर्भो जनीनां जनुषामुपस्थम् ।

ताभिः संरब्धमन्वविन्दन् षडुर्वीर्गातुं प्रपश्यन्निह राष्ट्रमाहाः ॥४॥

पदार्थ—(रोहित) सब के उत्पन्न करनेवाले [परमेश्वर] ने (रुह.) सृष्टि की सामग्रियो को (रुरोह) उत्पन्न किया, और (जनीनाम्) उत्पन्न करने की शक्तियो का (गर्भ) [आधार वह परमेश्वर] (जनुषाम्) उत्पन्न होनेवाले पदार्थों की (उपस्थम्) गोद म (आ रुरोह) चढ गया । (ताभि.) उन [उत्पन्न करने वाली शक्तियो] से (संरब्धम) मिले हुए [उस परमेश्वर] को (षट्) छह [ऊपर, नीचे, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर] (उर्वी) चौडी [दिशाओ] ने (अनु) निरन्तर (अविन्दन) पाया है, (गातुम्) मार्ग (प्रपश्यन्) आगे देखते हुए उस [परमेश्वर ने] (इह) यहा पर (राष्ट्रम्) अपना राज्य (आ) सब ओर से (अहा.) अङ्गीकार किया है ॥४॥

आ ते राष्ट्रमिह रोहितोऽहार्षीद् व्यास्थन्मृधो अभयं ते अभूत् ।

तस्मै ते द्यावापृथिवी रेवतीभिः कामं दुहाथामिह शक्वरीभिः ॥५॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (रोहित) सबका उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (ते) तेरे (राष्ट्रम्) राज्य को (इह) यहां [ससार मे] (आ अहार्षीत्) लाया है और उसने (मृध) हिंसक [शत्रुओ] को (वि आस्थत्) गिरा दिया है, (ते) तेरे लिये (अभयम्) अभय (अभूत्) हो गया है । (तस्मै ते) उस तेरे लिये (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी दोनों (रेवतीभि) धन वाली (शक्वरीभि) शक्तियों के साथ (कामम्) कामना को (इह) यहाँ [इस राज्य में] (दुहाथाम्=०=ताम्) पूरी करें ॥५॥

रोहितो द्यावापृथिवी जजान तत्र तन्तुं परमेष्ठी ततान ।

तत्र शिश्रियेऽज एकपादोऽदृंहद् द्यावापृथिवी बलेन ॥६॥

पदार्थ—(रोहितः) सब के उत्पन्न करनेवाले [परमेश्वर] ने (द्यावा-पृथिवी) सूर्य और पृथिवी को (जजान) उत्पन्न किया, (तत्र) उस मे (परमेष्ठी) सब से ऊचे पदवाले [उस परमेश्वर] ने (तन्तुम्) तन्तु [सूत्रात्मा वायु] को (ततान) फैलाया । (तत्र) उसमे (अज) वह अजन्मा (एकपादः) एक डग वाला [सब जगत् मे एकरस व्यापक] (शिश्रिये) ठहरा, उसने (द्यावा-पृथिवी) सूर्य और पृथिवी को (बलेन) अपने बल से (अदृंहत्) दृढ किया ॥६॥

रोहितो द्यावापृथिवी अदृंहत् तेन स्वः स्तभितं तेन नाकः ।

तेनान्तरिक्षं विमिता रजांसि तेन देवा अमृतमन्वविन्दन् ॥७॥

पदार्थ—(रोहित) सब के उत्पन्न करनेवाले [परमेश्वर] ने (द्यावा-पृथिवी) सूर्य और भूमि का (अदृंहत्) दृढ किया, (तेन) उसी द्वारा (स्व) सामान्य सुख [अभ्युदय] (स्तभितम्) थांभा गया है, (तेन) उसी द्वारा (नाक) विशेष सुख [नि श्रेयस मोक्ष सुख, थांभा गया है] । (तेन) उसी के द्वारा (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष और (रजांसि) सब लोक (विमिता) माप डाले गये हैं, (तेन) उस से ही (देवा·) विद्वानों ने (अमृतम्) अमरपन [उत्साह-वर्धक मोक्ष सुख] (अनु) निरन्तर (अविन्दन्) पाया है ॥७॥

वि रोहितो अमृशद् विश्वरूपं समाकुर्वाणः प्ररुहो रुहश्च ।

दिवं रूढ्वा महता महिम्ना सं ते राष्ट्रमनक्तु पयसा घृतेन ॥८॥

पदार्थ—(रुह) सृष्टि की सामग्रियों (च) और (प्ररुहः) सृष्टि की वस्तुओं को (समाकुर्वाणः) एकत्र करते हुए (रोहितः) सब उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] ने (विश्वरूपम्) जगत् के रूप को (वि अमृशत्) विचारा, वह (परमेश्वर) (महता) अपनी विशाल (महिम्ना) महिमा से (दिवम्) विजय की इच्छा मे (रूढ्वा) ऊंचा होकर (ते) तेरे (राष्ट्रम्) राज्य को (पयसा) अन्न से और (घृतेन) जल से (सम् अनक्तु) सयुक्त करे ॥८॥

यास्ते रुहः प्ररुहो यास्त आरुहो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम् ।

तासां ब्रह्मणा पयसा वावृधानो विशि राष्ट्रे जागृहि रोहितस्य ॥९॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (या) जो (रुहः) सृष्टि की सामग्री और (प्ररुह.) सृष्टि की वस्तुएँ हैं और (याः) जो (ते) तेरे लिये (आरुहः) सृष्टि की स्थितियाँ हैं, (याभि.) जिनसे (दिवम्) आकाश और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (आपृणासि=०—ति) सब ओर से वह [ईश्वर] भरता है । (तासाम्) उनके (ब्रह्मणा) अन्न और (पयसा) जल से (वावृधानः) बढ़ता हुआ तू (रोहितस्य) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] के (राष्ट्रे) राज्य में (विशि) प्रजा पर (जागृहि) जागता रह ॥९॥

यास्ते विशस्तपसः संबभूवुर्वत्सं गायत्रीमनु ता इहागुः ।

तास्त्वा विशन्तु मनसा शिवेन संमाता वत्सो अभ्येतु रोहितः ॥१०॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (याः) जो (विशः) प्रजायें (ते) तेरे लिये (तपस) ऐश्वर्यरूप [परमेश्वर] से (सबभूवु) उत्पन्न हुई हैं, (ता.) वे सब (वत्सम्) बड़े उपदेशक [परमेश्वर] और (गायत्रीम् अनु) पूजायोग्य वेदवाणी के पीछे पीछे (इह) यहाँ (आ अगु) आई हैं । (ताः) वे सब (शिवेन) तेरे आनन्दकारी (मनसा) मनन से (त्वा) तुझ मे (आ विशन्तु) प्रवेश करें, (समाता) समान माता [जननी] (वत्स.) बड़ा उपदेशक (रोहित.) सब का उत्पन्न करनेवाला [परमेश्वर] (अभि) सब ओर से (एतु) प्राप्त हो ॥१०॥

ऊर्ध्वो रोहितो अधि नाके अस्थाद् विश्वा रूपाणि जनयन् युवा कविः । तिग्मेनाग्निर्ज्योतिषा वि भाति तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥११॥

पदार्थ—(युवा.) बली, (कवि) ज्ञानी (रोहित) सब का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (विश्वा) सब (रूपाणि) रूपों [सृष्टि के पदार्थों] को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (नाके) मोक्ष सुख मे (अधि) अधिकारपूर्वक (ऊर्ध्व) ऊंचा होकर (अस्थात्) ठहरा है । (अग्नि) प्रकाशस्वरूप [परमेश्वर] (तिग्मेन) तीक्ष्ण (ज्योतिषा) ज्योति के साथ (वि) विविध प्रकार (भाति) चमकता है, उसने (तृतीये) तीसरे [रजोगुण और तमोगुण से भिन्न, सत्त्व] (रजसि) लोक मे [वर्तमान हो कर] (प्रियाणि) प्रिय वस्तुओं को (चक्रे) बनाया है ॥११॥

सहस्रशृङ्गो वृषभो जातवेदा घृताहुतः सोमपृष्ठः सुवीरः । मा मा हासीन्नाथितो नेत् त्वा जहानि गोपोषं च मे वीरपोषं च धेहि ॥१२॥

पदार्थ—(सहस्रशृङ्गः) बडे तेजवाला, (वृषभ) महाशक्तिमान्, (जात-वेदा.) वेदो का उत्पन्न करनेवाला, (घृताहुत) प्रकाश का देनेवाला, (सोमपृष्ठ) ऐश्वर्य का सींचने वाला, (सुवीर) बडा वीर (नाथित.) प्रार्थना किया गया [परमेश्वर] (मा) मुझको (मा हासीत्) न छोडे । (त्वा) तुझको (न इत्) कभी नही (जहानि) मैं छोडूं, (मे) मुझको (गोपोषम्) विद्याओं की वृद्धि (च च) और (वीरपोषम्) वीरो की पुष्टि (धेहि) दान कर ॥१२॥

रोहितो यज्ञस्य जनिता मुखं च रोहिताय वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि । रोहितं देवा यन्ति सुमनस्यमानाः स मा रोहैः सामित्यै रोहयतु ॥१३॥

पदार्थ—(रोहितः) सब का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (यज्ञस्य) यज्ञ [देवपूजा, सगतिकरण और दान व्यवहार] का (जनिता) उत्पन्न करनेवाला (च) और (मुखम्) मुख [मुखिया] है, (वाचा) वाणी से, (श्रोत्रेण) श्रवण से और (मनसा) मन से (रोहिताय) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर की सेवा] के लिये (जुहोमि) मैं भोजन करता हूँ । (सुमनस्यमाना.) शुभचिन्तक (देवा·) विजय चाहनेवाले लोग (रोहितम्) सब के उत्पन्न करनेवाले [परमेश्वर] को (यन्ति) प्राप्त होते हैं, (स) वह [परमेश्वर] (मा) मुझको (रोहैः) ऊंचाइयों के साथ (सामित्यै) समिति [सङ्गति] के लिये (रोहयतु) ऊंचा करे ॥१३॥

रोहितो यज्ञं व्यदधाद् विश्वकर्मणे तस्मात् तेजांस्युप मेमान्यागुः । वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥१४॥

पदार्थ—(रोहितः) सब के उत्पन्न करनेवाले [परमेश्वर] ने (यज्ञम्) यज्ञ [संगतियोग्य व्यवहार] को [विश्वकर्मणे] सब कर्मों में चतुर [मनुष्य] के लिये (वि अदधात्) उत्पन्न किया है, (तस्मात्) उस [परमेश्वर] से (इमानि) ये सब (तेजांसि) तेज (मा) मुझको (उप) समीप से (आ अगुः) प्राप्त हुए हैं । [हे परमेश्वर !] (ते) तेरे (नाभिम्) सम्बन्ध को (भुवनस्य)

संसार के (मज्मनि) बल के भीतर (अधि) अधिकारपूर्वक (योधयम्) मैं बसाऊँ ॥१४॥

आ त्वा॑ रुरोह बृह॒त्यु॒त प॒ङ्क्तिरा क॒कुब् वर्च॑सा जातवेदः । आ त्वा॑ रुरोहोष्णिहाक्ष॒रो व॑षट्का॒र आ त्वा॑ रुरोह॒ रोहि॑तो॒ रेत॑सा स॒ह ॥१५॥

पदार्थ—(जातवेदः) हे प्रसिद्ध ज्ञानवाले पुरुष ! (त्वा) तुझको (बृहती) विशाल विद्या ने (उत) और (पङ्क्तिः) कीर्ति ने (आ) सब ओर से और (ककुप्) सुख फैलाने वाली शोभा ने (वर्चसा) प्रताप के साथ (आ) सब ओर से (अरोह) ऊँचा किया है। (त्वा) तुझको (उष्णिहाक्षरः) बड़ी प्रीति के फैलने वाले, (वषट्कारः) दानव्यवहार ने (आ) सब ओर से (अरोह) ऊँचा किया है। और (त्वा) तुझको (रोहितः) सब के उत्पन्न करनेवाले [परमेश्वर] ने (रेतसा सह) पराक्रम के साथ (आ) सब प्रकार से (अरोह) ऊँचा किया है ॥१५॥

अ॒यं व॑स्ते॒ गर्भं॑ पृथि॒व्या दिवं॑ वस्ते॒ऽयम॒न्तरि॑क्षम् ।

अ॒यं ब्र॒ध्नस्य॑ वि॒ष्टपि॒ स्व॑र्लो॒कान् व्या॑नशे ॥१६॥

पदार्थ—(अयम्) यह [परमेश्वर] (पृथिव्याः) पृथिवी के (गर्भम्) गर्भ [उदर] को (वस्ते) ढकता है, (अयम्) यह (दिवम्) आकाश और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (वस्ते) ढकता है। (अयम्) यह (ब्रध्नस्य) नियम के (विष्टपि) आश्रय पर (स्वः) सुख से (लोकान्) लोकों में (वि आनशे) व्यापा है ॥१६॥

वाच॑स्पते पृथि॒वी नः॑ स्यो॒ना स्यो॒ना योनि॑स्त॒ल्पा नः॑ सु॒शेवा॑ । इ॒हैव प्रा॒णः स॒ख्ये नो॑ अस्तु॒ तं त्वा॑ परमेष्ठि॒न् पर्य॒ग्निरायु॑षा॒ वर्च॑सा दधातु ॥१७॥

पदार्थ—(वाचः पते) हे वेदवाणी के स्वामी [परमेश्वर !] (नः) हमारे लिये (पृथिवी) पृथिवी (स्योना) सुखदायक, (योनिः) घर (स्योना) सुखदायक और (तल्पा) खाट (नः) हमारे लिये (सुशेवा) बड़ी सुखदायक [होवे]। (इह एव) यहां ही [इसी मनुष्य-जन्म में] (प्राणः) प्राण [जीवन वायु] (नः) हमारी (सख्ये) मित्रता में (अस्तु) होवे, (परमेष्ठिन्) हे बड़े ऊँचे पद वाले [परमेश्वर !] (तम् त्वा) उस तुझको (अग्निः) ज्ञानवान् [यह पुरुष] (आयुषा) आयु के साथ और (वर्चसा) प्रताप के साथ (परि) सब ओर से (दधातु) धारण करे ॥१७॥

वाच॑स्पत ऋ॒तवः॒ पञ्च॒ ये नौ॑ वैश्वकर्म॒णाः परि॒ ये सं॑बभू॒वुः । इ॒हैव प्रा॒णः स॒ख्ये नो॑ अस्तु॒ तं त्वा॑ परमेष्ठि॒न् परि॒ रोहि॑त॒ आयु॑षा॒ वर्च॑सा दधातु ॥१८॥

पदार्थ—(वाचः पते) हे वेदवाणी के स्वामी [परमेश्वर !] (ये ये) जो ही (पञ्च) पांच [पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश पाँच तत्त्वों से संबन्ध वाले वसंत आदि छह] (ऋतवः) ऋतुएं (नौ) हम दोनों [स्त्री-पुरुष] के लिये (वैश्वकर्मणाः) सब कर्मों के हितकारी (परि) सब ओर से (संबभूवुः) प्राप्त हुए हैं। (इह एव) यहां ही [इसी मनुष्य जन्म में] (प्राणः) प्राण [जीवन वायु] (नः) हमारी (सख्ये) मित्रता में (अस्तु) होवे, (परमेष्ठिन्) हे बड़े ऊँचे पदवाले [परमेश्वर !] (तम् त्वा) उस तुझको (रोहितः) उत्पन्न हुआ [यह मनुष्य] (आयुषा) आयु के साथ और (वर्चसा) प्रताप के साथ (परि) सब ओर से (दधातु) धारण करे ॥१८॥

वाच॑स्पते सौमन॒सं मन॑श्च गो॒ष्ठे नो॒ गा ज॒नय॒ योनि॑षु प्र॒जाः । इ॒हैव प्रा॒णः स॒ख्ये नो॑ अस्तु॒ तं त्वा॑ परमेष्ठि॒न् पर्य॒हमायु॑षा॒ वर्च॑सा दधामि ॥१९॥

पदार्थ—(वाचः पते) हे वेदवाणी के स्वामी [परमेश्वर !] (सौमनसम्) सुखचिन्तकता, (मनः) मनन, (गाः) वाणियों (च) और (प्रजाः) प्रजाओं [पुत्र, पौत्र, राज्य जनों] को (नः) हमारी (गोष्ठे) गोष्ठ [बातों के स्थान] में और (योनिषु) घरों में (जनय) उत्पन्न कर। (इह एव) यहां ही [इसी मनुष्यजन्म में] (प्राणः) प्राण [जीवन, वायु] (नः) हमारी (सख्ये) मित्रता में (अस्तु) होवे, (परमेष्ठिन्) हे बड़े ऊँचे पद वाले [परमेश्वर !] (तम् त्वा) उस तुझको (अहम्) मैं [मनुष्य] (आयुषा) आयु के साथ और (वर्चसा) प्रताप के साथ (परि) सब ओर से (दधामि) धारण करता हूँ ॥१९॥

परि॑ त्वा धात् सवि॒ता दे॒वो अ॒ग्निर्वर्च॑सा मि॒त्रावरु॑णाव॒भि त्वा॑ ।

सर्वा॒ अरा॑तीरव॒क्राम॒न्नेही॒दं रा॒ष्ट्रम॑करः सू॒नृता॑वत् ॥२०॥

पदार्थ— [हे परमेश्वर !] (सविता) प्रेरक, (देव) प्रकाशमान (अग्निः) अग्नि [सूर्य्य आदि] ने (वर्चसा) तेज के साथ [वर्तमान] (त्वा) तुझको (परि) सब ओर से (धात्) धारण किया है और (मित्रावरुणौ) प्राण और अपान वायु ने (त्वा) तुझको (अभि) सब ओर से [धारण किया है]। [हे सेनापते राजन् !] (सर्वाः) सब (अरातीः) वैरी दलों को (अवक्रामन्) लतियाता हुआ तू (आ इहि) आ, (इदम् राष्ट्रम्) इस राज्य को तू ने (सूनृतावत्) सुन्दर नीतियुक्त (अकरः) बनाया है ॥२०॥

यं त्वा॒ पृष॑ती॒ रथे॒ प्रष्टि॒र्वह॑ति रोहित । शु॒भा या॑सि रि॒णन्न॒पः ॥२१॥

पदार्थ—(रोहित) हे सबके उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर !] (यम् त्वा) जिस तुझको (प्रष्टिः) प्रश्न योग्य (पृषती) सींचनेवाली [प्रकृति] (रथे) रमण योग्य [संसार] में (वहति) प्राप्त होती है। वह तू (अपः) प्रजाओं को (शुभा) शोभा के साथ (रिणन्) चलाता हुआ (यासि) चलता है ॥२१॥

अनु॑व्रता॒ रोहि॑णी॒ रोहि॑तस्य सू॒रिः सु॒वर्णा॑ बृह॒ती सु॒वर्चाः॑ । तया॒ वाजा॑न् वि॒श्वरू॑पां जयेम॒ तया॒ विश्वाः॒ पृत॑ना अ॒भि ष्या॑म ॥२२॥

पदार्थ—(रोहितस्य) सब के उत्पन्न करनेवाले [परमेश्वर] की (अनुव्रता) आज्ञा में चलनेवाली (रोहिणी) उत्पत्ति शक्ति [प्रकृति] (सूरिः) प्रेरणा करने वाली, (सुवर्णा) अच्छे प्रकार स्वीकार योग्य, (बृहती) विशाल और (सुवर्चाः) बहुत अन्नवाली [वा बहुत चमकीली] है। (तया) उस [प्रकृति] के द्वारा (विश्वरूपाम्) सब प्रकार के (वाजान्) बलों को (जयेम) हम जीतें, (तया) उस [प्रकृति] के द्वारा (विश्वाः) सब (पृतनाः) संग्रामों को (अभि स्याम) हम परास्त करें ॥२२॥

इ॒दं सदो॒ रोहि॑णी॒ रोहि॑तस्या॒सौ पन्थाः॒ पृष॑ती॒ येन॒ याति॑ ।

तां ग॑न्ध॒र्वाः क॒श्यपा॒ उन्न॑यन्ति॒ तां र॑क्षन्ति क॒वयोऽप्र॑मादम् ॥२३॥

पदार्थ—(रोहिणी) उत्पत्ति शक्ति [प्रकृति] (इदम्) यहाँ (रोहितस्य) उत्पन्न करनेवाले [परमेश्वर] का (सदः) प्राप्तियोग्य पद है, (असौ) वही (पन्थाः) मार्ग है, (येन) जिस से (पृषती) सींचनेवाली [प्रकृति] (याति) चलती है। (ताम्) उस [प्रकृति] को (गन्धर्वाः) पृथिवी वा जल धारण करनेवाले [मेघ] और (कश्यपाः) रस पीने वाले [किरण] (उत् नयन्ति) ऊँचा करते हैं, (ताम्) उस [प्रकृति] को (कवयः) बुद्धिमान् लोग (अप्रमादम्) बिना चूके (रक्षन्ति) पालते हैं ॥२३॥

सूर्य॑स्या॒श्वा हर॑यः केतु॒मन्तः॒ सदा॑ वहन्त्य॒मृताः॑ सु॒खं रथ॑म् ।

घृ॒त॒पावा॒ रोहि॑तो॒ भ्राज॑मानो॒ दिवं॑ दे॒वः पृष॑ती॒मा वि॑वेश ॥२४॥

पदार्थ—(सूर्यस्य) सब के चलाने वाले [परमेश्वर] के (अश्वाः) व्यापक (केतुमन्तः) विज्ञानमय (अमृताः) अमर [अविनाशी वा पुरुषार्थी] (हरयः) स्वीकार योग्य गुण (रथम्) रमणयोग्य संसार को (सुखम्) सुख से (सदा) सदा (वहन्ति) ले चलते हैं। (घृतपावा) सेचन सामर्थ्य [वृद्धि] की रक्षा करने वाले (भ्राजमानः) प्रकाशमान (देवः) ज्ञानवान् (रोहितः) सब को उत्पन्न करनेवाले [परमेश्वर] ने (दिवम्) व्यवहार कुशल (पृषतीम्) सींचने वाली [प्रकृति] में (आ विवेश) प्रवेश किया है ॥२४॥

यो रोहि॑तो वृष॒भस्ति॒ग्मशृ॑ङ्गः॒ पर्य॒ग्निं परि॒ सूर्यं॑ ब॒भूव॑ । यो वि॑ष्ट॒भ्नाति॑ पृथि॒वीं दिवं॑ च॒ तस्मा॑द् दे॒वा अधि॒ सृष्टीः॑ सृजन्ते ॥२५॥

पदार्थ—(यः) जो (वृषभः) महाशक्तिमान (तिग्मशृङ्गः) तीव्र तेजवाले (रोहितः) सब के उत्पन्न करनेवाले [परमेश्वर] ने (अग्निम्) अग्नि को (परि) सब ओर से और (सूर्यम्) सूर्य को (परि) सब ओर से (बभूव) प्राप्त किया है। (यः) जो [परमेश्वर] (पृथिवीम्) पृथिवी (च) और (दिवम्) आकाश को (विष्टभ्नाति) विविध प्रकार थांभता है, (तस्मात्) उसी [परमेश्वर] से (देवाः) दिव्य नियम (सृष्टीः) सृष्टियों को (अधि) अधिकार पूर्वक (सृजन्ते) उत्पन्न करते हैं ॥२५॥

रोहि॑तो॒ दिव॒मारु॑हन्मह॒तः पर्य॑र्ण॒वात् । सर्वा॑ रुरोह॒ रोहि॑तो॒ रुहः॑ ॥२६॥

पदार्थ—(रोहितः) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] ने (महतः) विशाल (अर्णवात्) समुद्र [अगम्य सामर्थ्य] में से (दिवम्) व्यवहार को (परि) सब ओर से (आ अरुहत्) प्रकट किया है। (रोहितः) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] ने (सर्वाः) सब (रुहः) उत्पन्न करने की सामग्रियों को (अरोह) उत्पन्न किया है।

वि मि॑मीष्व॒ पय॑स्वतीं घृ॒ताचीं॑ दे॒वानां॑ धे॒नुरन॑पस्पृगे॒षा ।

इन्द्रः॒ सोमं॑ पिबतु॒ क्षेमो॑ अस्त्व॒ग्निः प्र स्तौ॑तु॒ वि मृधो॑ नुदस्व ॥२७॥

पदार्थ—[हे विद्वन् !] (पयस्वतीम्) उत्तम अन्नवाली और (घृताचीम्) जल पहुँचानेवाली [प्रकृति] को (वि) विविध प्रकार (मिमीष्व) माप, (एषा)

यह (देवानाम्) विद्वानों की (अनपस्फुरन्) न रोकने वाली (धेनुः) तृप्ति करने वाली [गौ के समान] है। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् [यह मनुष्य] (सोमम्) अमृत (पिबतु) पान करे, (क्षेमः) सकुशल (अस्तु) होवे, और (अग्निः) ज्ञानवान् [यह पुरुष] (प्र स्तौतु) स्तुति करे, तू (मृधः) वैरियों को (वि नुदस्व) निकाल दे ॥२७॥

समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धो घृताहुतः ।

अभीषाड् विश्वाषाडग्निः सपत्नान् हन्तु ये मम ॥२८॥

पदार्थ—[जैसे] (समिद्धः) प्रकाशमान किया गया और (समिधानः) प्रकाशमान होता हुआ (घृताहुतः) घी चढ़ाया गया और (घृतवृद्धः) घी से बढ़ा हुआ (अग्निः) अग्नि हो। [वैसे ही] (अभीषाट्) सब ओर से जीतने वाला, (विश्वाषाट्) सब को हराने वाला (अग्निः) तेजस्वी [शूर पुरुष] (सपत्नान्) वैरियों को (हन्तु) मारे, (ये) जो (मम) मेरे हैं ॥२८॥

हन्त्वेनान् प्र दहत्वरिर्यो नः पृतन्यति ।

क्रव्यादाग्निना वयं सपत्नान् प्र दहामसि ॥२९॥

पदार्थ—वह [शूर पुरुष] (एनान् = एनम्) उसको (हन्तु) मारे, (प्र दहतु) जला देवे, (यः अरिः) जो वैरी (नः) हम पर (पृतन्यति) सेना चढ़ाता है। (क्रव्यादा) मांसभक्षक [मृतक दाहक] (अग्निना) अग्नि से [जैसे, वैसे] (वयम्) हम (सपत्नान्) वैरियों को (प्र दहामसि) जलाये देते हैं ॥२९॥

अवाचीनानव जहीन्द्र वज्रेण बाहुमान् ।

अधा सपत्नान् मामकानग्नेस्तेजोभिरादिषि ॥३०॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष ! (बाहुमान्) बलवान् भुजाओं वाला तू (वज्रेण) वज्र से (अवाचीनान्) नीचा [अधर्मियों] को (अव जहि) मार गिरा। (अध) फिर (मामकान्) अपने (सपत्नान्) वैरियों को (अग्नेः) अग्नि के (तेजोभिः) तेजों से (आ अदिषि) मैंने पकड़ लिया है ॥३०॥

अग्ने सपत्नानधरान् पादयास्मद् व्यथया सजातमुत्पिपानं बृहस्पते ।

इन्द्राग्नी मित्रावरुणावधरे पद्यन्तामप्रतिमन्यूयमानाः ॥३१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे प्रतापी राजन् ! (सपत्नान्) वैरियों को (अस्मत्) हमसे (अधरान्) नीचे (पादय) गिरा दे, (बृहस्पते) हे बड़ी विद्याओं के स्वामी ! [राजन्] (उत्पिपानम्) टेढ़े चढ़ते हुए (सजातम्) समान जन्मवाले [भाई-बन्धु] को (व्यथय) पीड़ा दे। (इन्द्राग्नी) हे सूर्य और बिजुली [के समान प्रताप और स्फूर्ति वाले] (मित्रावरुणौ) हे प्राण और अपान ! [के समान सुखदायक और दुःखनाशक पुरुष] (अप्रतिमन्यूयमानाः) [हमारे] प्रतिकूल क्रोध न कर सकने योग्य [शत्रु लोग] (अधरे) नीचे होकर (पद्यन्ताम्) गिर जावें ॥३१॥

उद्यंस्त्वं देव सूर्य सपत्नानव मे जहि ।

अवैनानश्मना जहि ते यन्त्वधमं तमः ॥३२॥

पदार्थ—(देव) हे विजय चाहने वाले ! (सूर्य) हे सर्वप्रेरक राजन् ! (उद्यन् त्वम्) ऊँचा चढ़ता हुआ तू (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (अव जहि) मार गिरा। (एनान्) इन [शत्रुओं] को (अश्मना) पत्थर [आदि गिराने] से (अव जहि) मार गिरा, (ते) वे लोग (अधमम्) बड़े नीचे (तमः) अन्धकार में (यन्तु) जावें ॥३२॥

वत्सो विराजो वृषभो मतीनामा रुरोह शुक्रपृष्ठोऽन्तरिक्षम् ।

घृतेनार्कमभ्यर्चन्ति वत्सं ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति ॥३३॥

पदार्थ—(वत्सः) उपदेश करनेवाला, (विराजः) बड़े ऐश्वर्य वाला, (शुक्रपृष्ठः) वीरता बढ़ानेवाला (वृषभः) बड़ी शक्तिवाला [पुरुष] (मतीनाम्) बुद्धिमानों के (अन्तरिक्षम्) मध्यवर्ती हृदय पर (आ रुरोह) ऊँचा हुआ है। वे [बुद्धिमान् लोग] (घृतेन) प्रकाश के साथ [वर्तमान] (अर्कम्) पूजनीय, (वत्सम्) उपदेश करनेवाले [परमेश्वर] को (अभि) सब ओर से (अर्चन्ति) पूजते हैं और (सन्तम्) सेवनीय (ब्रह्म) ब्रह्म [सबसे बड़े परमेश्वर] को (ब्रह्मणा) वेद द्वारा (वर्धयन्ति) बढ़ाते हैं [सराहते हैं] ॥३३॥

दिवं च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह ।

प्रजां च रोहामृतं च रोह रोहितेन तन्वं सं स्पृशस्व ॥३४॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (दिवम्) व्यवहार को (च) निश्चय करके (रोह) प्रकट कर, (च) और (पृथिवीम्) पृथिवी [की विद्या] को (रोह) प्रकट कर, (च) और (राष्ट्रम्) राज्य को (रोह) प्रकट कर, (च) और (द्रविणम्) धन को (रोह) प्रकट कर। (च) और (प्रजाम्) प्रजा [पुत्र पौत्र राज्य जन] को (रोह) प्रकट कर, (च) और (अमृतम्) अमरपन [पुरुषार्थ] को (रोह) प्रकट कर, (रोहितेन) सब के उत्पन्न करनेवाले [परमेश्वर] के साथ (तन्वम्) अपने विस्तार को (सं स्पृशस्व) संयुक्त कर ॥३४॥

ये देवा राष्ट्रभृतोऽभितो यन्ति सूर्यम् ।

तैष्टे रोहितः संविदानो राष्ट्रं दधातु सुमनस्यमानः ॥३५॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (ये) जो (राष्ट्रभृतः) राज्यपोषक (देवाः) विजय चाहनेवाले पुरुष (सूर्यम्) सब के चलानेवाले [परमेश्वर] को (अभितः) सब ओर से (यन्ति) प्राप्त होते हैं। (तैः) उनसे (संविदानः) मिलता हुआ, (सुमनस्यमानः) प्रसन्न चित्त (रोहितः) सब का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (ते) तेरे (राष्ट्रम्) राज्य को (दधातु) पुष्ट करे ॥३५॥

उत् त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ।

तिरः समुद्रमति रोचसेऽर्णवम् ॥३६॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (त्वा) तुझ को (ब्रह्मपूताः) ब्रह्माओं [वेद वेत्ताओं] द्वारा शुद्ध किये गये (यज्ञाः) यज्ञ [संगतियोग्य व्यवहार] (उत्) उत्तमता] से (वहन्ति) प्राप्त होते हैं, (अध्वगतः) [वेद विहित] मार्ग पर चलने वाले (हरयः) मनुष्य (त्वा) तुझ को (वहन्ति) पाते हैं। (अर्णवम्) जल से भरे (समुद्रम्) समुद्र को (तिरः) तिरस्कार करके तू (अति) अत्यन्त करके (रोचसे) प्रकाशमान होता है ॥३६॥

रोहिते द्यावापृथिवी अधि श्रिते वसुजिति गोजिति संधनाजिति ।

सहस्रं यस्य जनिमानि सप्त च वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥३७॥

पदार्थ—(वसुजिति) निवास स्थानों के जीतने वाले, (गोजिति) विद्याओं के जीतने वाले, (संधनजिति) संपूर्ण धन के जीतने वाले (रोहिते) सबके उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] में (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी (अधि) अधिकार पूर्वक (श्रिते) ठहरे हुए हैं। (यस्य) जिस [परमेश्वर] के (सहस्रम्) सहस्र [असंख्य] (जनिमानि) उत्पन्न करने के कर्म (च) निश्चय करके (सप्त) सात [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] के साथ हैं, [हे परमेश्वर !] (ते) तेरे (नाभिम्) सम्बन्ध को (भुवनस्य) संसार के (मज्मनि) बल के भीतर (अधि) अधिकारपूर्वक (वोचेयम्) मैं बतलाऊं ॥३७॥

यशा यासि प्रदिशो दिशश्च यशाः पशूनामुत चर्षणीनाम् ।

यशाः पृथिव्या अदित्या उपस्थेऽहं भूयासं सवितेव चारुः ॥३८॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (यशाः) यशस्वी तू (प्रदिशः) बड़ी दिशाओं (च) और (दिशः) मध्य दिशाओं में (यासि) चलता है, और तू (पशूनाम्) पशुओं [गौ सिंह आदिकों] (उत) और (चर्षणीनाम्) मनुष्यों में (यशाः) यशस्वी है। (अहम्) मैं (पृथिव्याः) पृथिवी की और (अदित्याः) अखण्ड वेदवाणी की (उपस्थे) गोद में (यशाः) यशस्वी होकर (सविता इव) सब के चलाने वाले शूर [अथवा सूर्य] के समान (चारुः) शोभायमान (भूयासम्) होऊं ॥३८॥

अमुत्र सन्निह वेत्थेतः संस्तानि पश्यसि ।

इतः पश्यन्ति रोचनं दिवि सूर्यं विपश्चितम् ॥३९॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (अमुत्र) वहाँ पर (सन्) रहता हुआ तू (इह) यहाँ (वेत्थ) जानता है, (इतः) इधर (सन्) रहता हुआ (तानि) उन [वस्तुओं] को (पश्यसि) देखता है। (इतः) यहाँ से (दिवि) प्रत्येक व्यवहार में (रोचनम्) चमकने वाले (विपश्चितम्) बुद्धिमान् (सूर्यम्) सब के चलाने वाले [परमेश्वर] को (पश्यन्ति) वे [विद्वान्] देखते हैं ॥३९॥

देवो देवान् मर्चयस्यन्तश्चरस्यर्णवे ।

समानमग्निमिन्धते तं विदुः कवयः परे ॥४०॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (देवः) विद्वान् तू (देवान्) उत्तम गुणों को (मर्चयसि) बतलाता है, (अर्णवे अन्तः) समुद्र [संसार] के बीच (चरसि) तू विचरता है। (समानम्) समान [एकरस] (तम्) उस (अग्निम्) ज्ञानवान् [परमेश्वर] को (परे) बड़े (कवयः) बुद्धिमान् लोग (विदुः) जानते हैं और (इन्धते) प्रकाशित होते हैं ॥४०॥

अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् । सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन् ॥४१॥

पदार्थ—(परेण) दूर स्थान से (अवः) इधर और (एना) इस (अवरेण) अवर [समीप स्थान] से (परः) परे [दूर वर्तमान] (वत्सम्) सब के निवास देनेवाले वा उपदेश करनेवाले [परमेश्वर] को (पदा) पद [अधिकार] के साथ (बिभ्रती) धारण करती हुई (गौः) वेद वाणी (उत् अस्थात्) ऊँची उठी है। (सा) वह [वेदवाणी] (कद्रीची) किस ओर चलती हुई, (कं स्वित्) कौन से (अर्धम्) ऋद्धिवाले परमेश्वर को (परा) पराक्रम से (अगात्) पहुँची है,

(जब स्थित्) जहाँ पर (भूते) उत्पन्न होती है, (अस्मिन्) इस [देहधारी] (भूमे) समूह में (नहि) नहीं [उत्पन्न होती है] ॥४१॥

एकपदी द्विपदी सा चतुष्पद्यष्टापदी नवपदी बभूवुषी ।

सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ॥४२॥

पदार्थ—(सा) वह [वेदवाणी] (एकपदी) एक [ब्रह्म] के साथ व्याप्ति वाली, (द्विपदी) दो [भूत भविष्यत्] में गतिवाली, (चतुष्पदी) चार [धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष] में अधिकार वाली, (अष्टापदी) आठ पद [छोटाई, हलकाई, प्राप्ति, स्वतन्त्रता, बड़ाई, ईश्वरपन, जितेन्द्रियता और सत्यसंकल्प, आठ ऐश्वर्य] प्राप्त कराने वाली, (नवपदी) नौ [मन बुद्धि सहित दो कान, दो नथने, दो आँखें और एक मुख] से प्राप्तियोग्य, (सहस्राक्षरा) सहस्रों [असंख्यात] पदार्थों में व्याप्ति वाली (बभूवुषी) होकर के (भुवनस्य) संसार की (पङ्क्तिः) फैलाव शक्ति है, (तस्याः) उस [वेद वाणी] से (समुद्राः) समुद्र [समुद्ररूप सब लोक] (अधि) अधिक-अधिक (वि) विविध प्रकार से (क्षरन्ति) बहते हैं ॥४२॥

आरोहन् द्याममृतः प्राव मे वचः । उत् त्वा यज्ञा

ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ॥४३॥

पदार्थ—(द्याम्) प्रकाश के ऊपर (आरोहन्) चढ़ता हुआ (अमृत) अमर तू (मे वचः) मेरे वचन को (प्र) भले प्रकार (अव) सुन । [हे परमेश्वर !] (त्वा) तुझ को (ब्रह्मपूताः) ब्रह्मायों [वेदवेत्ताओं] द्वारा शुद्ध किये गये (यज्ञाः) यज्ञ [संगतियोग्य व्यवहार] (उत्) उत्तमता से (वहन्ति) प्राप्त होते हैं, (अध्वगतः) [वेदविहित] मार्ग पर चलनेवाले (हरयः) मनुष्य (त्वा) तुझ को (वहन्ति) पाते है ॥४३॥

वेद तत् ते अमर्त्य यत् त आक्रमणं दिवि ।

यत् ते सधस्थं परमे व्योमन् ॥४४॥

पदार्थ—(अमर्त्य) हे अमर ! [अविनाशी परमेश्वर] (ते) तेरे (तत्) उस को (वेद) मैं जानता हूँ, (यत्) जो (ते) तेरा (आक्रमणम्) चढ़ाव [व्याप्ति] (दिवि) प्रत्येक व्यवहार में है और (यत्) जो (ते) तेरा (सधस्थम्) सह स्थान (परमे) सब से बड़े (व्योमन्) विविध रक्षा-साधन [मोक्ष पद] में है ॥४४॥

सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवीं सूर्य आपोऽति पश्यति ।

सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुरा रुरोह दिवं महीम् ॥४५॥

पदार्थ—(सूर्य) सब का चलाने वाला [परमेश्वर] (द्याम्) प्रकाशमान सूर्य को (सूर्यः) वह सर्वप्रेरक (पृथिवीम्) पृथिवी को, (सूर्यः) वह सर्वनियामक (आपः) प्रत्येक काम को (अति पश्यति) निहारता है । (सूर्य) वह सर्वनियन्ता (भूतस्य) संसार का (एकम्) एक (चक्षुः) नेत्र [नेत्ररूप जगदीश्वर] (दिवम्) आकाश पर और (महीम्) पृथिवी पर (आ रुरोह) ऊँचा हुआ है ॥४५॥

उर्वीरासन् परिधयो वेदिर्भूमिरकल्पत ।

तत्रैतावग्नी आधत्त हिमं घ्रंसं च रोहितः ॥४६॥

पदार्थ—[संसार में] (उर्वीः) चौड़ी [दिशायें] (परिधयः) परकोटा रूप (आसन्) हुई, (भूमिः) भूमि (वेदिः) वेदि [यज्ञकुण्ड] रूप (अकल्पत) बनायी गई । (तत्र) उस में (रोहितः) सब के उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर ने (एतौ) इन (अग्नी) दो अग्नियों [सूर्य और चन्द्रमा] को (घ्रंसम्) ताप (च) और (हिमम्) शीत रूप (आ अधत्त) स्थापित किया ॥४६॥

हिमं घ्रंसं चाधाय यूपान् कृत्वा पर्वतान् ।

वर्षाज्यावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥४७॥

पदार्थ—(हिमम्) शीत (च) और (घ्रंसम्) ताप को (आधाय) स्थापित करके, (पर्वतान्) पर्वतों को (यूपान्) जयस्तम्भ रूप (कृत्वा) बनाकर, (वर्षाज्यौ) वृष्टि को घी रूप रखनेवाले (अग्नी) दोनों अग्नियों [सूर्य और चन्द्रमा] ने (स्वर्विदः) सुख पहुँचानेवाले (रोहितस्य) सब के उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर के लिये (ईजाते) यज्ञ [संयोग-वियोग व्यवहार] को किया है ॥४७॥

स्वर्विदो रोहितस्य ब्रह्मणाग्निः समिध्यते ।

तस्माद् घ्रंसस्तस्माद्धिमस्तस्माद् यज्ञोऽजायत ॥४८॥

पदार्थ—(स्वर्विदः) सुख पहुँचाने वाले (रोहितस्य) सब के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर के (ब्रह्मणा) वेदज्ञान द्वारा (अग्निः) अग्नि [सूर्य आदि] (सम् इध्यते) यथावत् प्रकाशित होता है । (तस्मात्) उसी [परमेश्वर] से (घ्रंसः) ताप (तस्मात्) उसी से (हिमः) शीत और (तस्मात्) उसी से (यज्ञ) यज्ञ [संयोग-वियोग व्यवहार] (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥४८॥

ब्रह्मणाग्नी वावृधानौ ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ ।

ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥४९॥

पदार्थ—(अग्नी) दोनों अग्नि [सूर्य और चन्द्रमा] (ब्रह्मणा) वेदज्ञान द्वारा (वावृधानौ) बढ़ते हुए, (ब्रह्मवृद्धौ) अन्न से बढ़े हुए, (ब्रह्माहुतौ) जल की आहुति [ग्रहण और दान] वाले हैं । (ब्रह्मेद्धौ) धन के साथ प्रकाशित किये गये (अग्नी) उन दोनों अग्नियों ने (स्वर्विदः) सुख पहुँचानेवाले (रोहितस्य) सब के उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर के लिये (ईजाते) यज्ञ [संयोग-वियोग व्यवहार] को किया है ॥४९॥

सत्ये अन्यः समाहितोऽप्स्वन्यः समिध्यते ।

ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥५०॥

पदार्थ—(अन्यः) एक [परमाणुरूप पदार्थ] (सत्ये) सत्य [नित्यपन] में (समाहितः) सर्वथा ठहरा हुआ है, (अन्यः) दूसरा [कार्यरूप पदार्थ] (अप्सु) प्रजाओं [जीवधारियों] के बीच (सम् इध्यते) यथावत् प्रकाशित होता है । (ब्रह्मेद्धौ) धन के साथ प्रकाशित किये गये (अग्नी) उन दोनों अग्नियों ने (स्वर्विदः) सुख पहुँचानेवाले (रोहितस्य) सब के उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर के लिये (ईजाते) यज्ञ [संयोग-वियोग व्यवहार] को किया है ॥५०॥

यं वातः परिशुम्भति यं वेन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।

ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥५१॥

पदार्थ—(यम्) जिस [परमेश्वर] को (वातः) पवन, और (यम्) जिसको (वा) निश्चय करके (ब्रह्मणः) अन्न का (पतिः) रक्षक (इन्द्रः) मेघ (परि शुम्भति) सब ओर से प्रकाशित करता है । (ब्रह्मेद्धौ) धन के साथ प्रकाशित किये गये (अग्नी) उन दोनों अग्नियों ने (स्वर्विदः) सुख पहुँचानेवाले (रोहितस्य) सब के उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर के लिये (ईजाते) यज्ञ [संयोग-वियोग व्यवहार] को किया है ॥५१॥

वेदिं भूमिं कल्पयित्वा दिवं कृत्वा दक्षिणाम् । घ्रंसं तदग्निं

कृत्वा चकार विश्वमात्मन्वद् वर्षेणाज्येन रोहितः ॥५२॥

पदार्थ—(भूमिम्) भूमि को (वेदिम्) वेदि [यज्ञकुण्ड] रूप (कल्पयित्वा) रचकर, (दिवम्) आकाश को (दक्षिणाम्) दक्षिणा [प्रतिष्ठा का दान] रूप (कृत्वा) बनाकर, (तत्) फिर (अग्निम्) अग्नि को (घ्रंसम्) तापरूप (कृत्वा) बनाकर, (रोहितः) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] ने (वर्षेण) वृष्टि रूप (आज्येन) घी से (आत्मन्वत्) आत्मावाला (विश्वम्) सब जगत् (चकार) बनाया ॥५२॥

वर्षमाज्यं घ्रंसो अग्निर्वेदिर्भूमिरकल्पत ।

तत्रैतान् पर्वतानग्निर्गीर्भिरूर्ध्वाँ अकल्पयत् ॥५३॥

पदार्थ—(वर्षम्) वृष्टि (आज्यम्) घीरूप, (घ्रंसः) ताप (अग्निः) अग्निरूप, (भूमिः) भूमि (वेदिः) वेदिरूप (अकल्पत) बनाई गयी । (तत्र) उस [भूमि] पर (एतान् पर्वतान्) इन पर्वतों को (अग्निः) तेज स्वरूप [परमेश्वर या पार्थिव ताप] ने (गीर्भिः) वेदवाणियों द्वारा (ऊर्ध्वान्) ऊँचा (अकल्पयत्) बनाया ॥५३॥

गीर्भिरूर्ध्वान् कल्पयित्वा रोहितो भूमिमब्रवीत् ।

त्वयीदं सर्वं जायतां यद् भूतं यच्च भाव्यम् ॥५४॥

पदार्थ—(गीर्भिः) वेदवाणियों द्वारा (ऊर्ध्वान्) ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों को (कल्पयित्वा) रचकर (रोहितः) सब का उत्पन्न करने वाला परमेश्वर (भूमिम्) भूमि से (अब्रवीत्) बोला—"(त्वयि) तुझ पर (इदम् सर्वम्) यह सब (जायताम्) उत्पन्न होवे, (यत्) जो कुछ (भूतम्) उत्पन्न है, (च) और (यत्) जो कुछ (भाव्यम्) उत्पन्न होने वाला है" ॥५४॥

स यज्ञः प्रथमो भूतो भव्यो अजायत । तस्माद्ध जज्ञ इदं

सर्वं यत् किं चेदं विरोचते रोहितेन ऋषिणाभृतम् ॥५५॥

पदार्थ—(सः) वह (प्रथमः) सबसे पहिला (भूतः) वर्तमान हुआ और (भव्यः) आगे वर्तमान रहने वाला (यज्ञः) पूजनीय [परमेश्वर] (अजायत)

प्रकट हुआ। (तस्मात् ह) उस से ही (इदं सर्वम्) यह सब (जज्ञे) उत्पन्न हुआ (यत् किं च) जो कुछ भी (इदम्) यह [जगत्] (ऋषिणा) ऋषि [बड़े ज्ञानी] (रोहितेन) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] द्वारा (आभृतम्) सब ओर से पाला गया (विरोचते) झलकता है ॥५५॥

यश्च गां पदा स्फुरति प्रत्यङ् सूर्यं च मेहति ।

तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥५६॥

पदार्थ—(यः) जो कोई (प्रत्यङ्) प्रतिकूलगामी पुरुष (गाम्) वेदवाणी को (पदा) पग से [तिरस्कार के साथ] (स्फुरति) ठोकर मारता है, (च च) और (सूर्यम्) सूर्य [के समान प्रतापी विद्वान् मनुष्य] को (मेहति=मेधति) सताता है। (तस्य ते) उस तेरी (मूलम्) जड़ को (वृश्चामि) मैं काटता हूँ, तू (छायाम्) छाया [अन्धकार वा अविद्या] को (अपरम्) फिर (न) न (करवः) फैलावे ॥५६॥

यो माभिच्छायमत्येषि मां चाग्निं चान्तरा ।

तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥५७॥

पदार्थ—(यः) जो तू (माम्) मेरे (च च) और (अग्निम् अन्तरा) अग्नि [अग्नि के समान ज्ञानप्रकाश] के बीच [होकर] (अभिच्छायम् मा) मुझ तेज पाये हुए को (अत्येषि) उलाँघता है। (तस्य ते) उस तेरी (मूलम्) जड़ को (वृश्चामि) मैं काटता हूँ, तू (छायाम्) छाया [अन्धकार वा अविद्या] को (अपरम्) फिर (न) न (करवः) फैलावे ॥५७॥

यो अद्य देव सूर्य त्वां च मां चान्तरायति ।

दुःष्वप्न्यं तस्मिञ्छमलं दुरितानि च मृज्महे ॥५८॥

पदार्थ—(देव) हे प्रकाशमान ! (सूर्य) सूर्य [सूर्य के समान तेजस्वी विद्वन् !] (यः) जो कोई [शत्रु] (अद्य) आज (त्वाम्) तेरे (च च) और (माम् अन्तरा) मेरे बीच (अयति) चले। (तस्मिन्) उस विषय में [आये हुए] (दुःष्वप्न्यम्) बुरे स्वप्न, (शमलम्) मलिन व्यवहार (च) और (दुरितानि) दुर्गतियों को (मृज्महे) हम शुद्ध करते हैं ॥५८॥

मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।

मान्त स्थुर्नो अरातयः ॥५९॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर ! (पथः) वैदिक मार्ग से (वयम्) हम (मा प्र गाम) कभी दूर न जावें, और (मा) न (सोमिनः) ऐश्वर्ययुक्त (यज्ञात्) यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण और दान व्यवहार] से [दूर जावें]। (अरातयः) अदानी लोग (नः अन्तः) हमारे बीच (मा स्थुः) न ठहरें ॥५९॥

यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः । तमाहुतमशीमहि ॥६०॥

पदार्थ—(यः) जो [परमात्मा] (यज्ञस्य) यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण दानव्यवहार] का (प्रसाधनः) बड़ा साधक (तन्तुः) तन्तु [सूत्रात्मा रूप] होकर (देवेषु) देवों [इन्द्रियों, लोकों और विद्वानों] में (आततः) निरन्तर फैला है। (तम् आहुतम्) उस सब ओर से ग्रहण किये गये [परमेश्वर] को (अशीमहि) हम प्राप्त होवें ॥६०॥

卐 इति प्रथमोऽनुवाकः 卐

卐

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् २ 卐

१—४६ ब्रह्मा। अध्यात्मम्, रोहितादित्यदेवत्यम्। त्रिष्टुप्, १, १२-१५, ३९-४१ अनुष्टुप्, २, ३, ८, ४३—जगती, १० आस्तारपङ्क्तिः, ११ बृहतीगर्भा, १६-२४ आर्षी गायत्री, २५ ककुम्मत्यास्तारपङ्क्तिः, २६ पुरोद्व्यतिजागता भुरिग्जगती, २७ विराड् जगती; २९ बार्हतगर्भानुष्टुप्, ३० पञ्चपदोष्णिग्बृहती गर्भातिजगती, ३४ आर्षी पंक्तिः, ३७ पंचपदा विराड्गर्भा जगती, ४४, ४५ जगती (४४ चतुष्पदा पुरः शाक्वरी भुरिक्, ४५ अतिजागतगर्भा)।

उदस्य केतवो दिवि शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।

आदित्यस्य नृचक्षसो महिव्रतस्य मीढुषः ॥१॥

पदार्थ—(अस्य) इस (नृचक्षसः) मनुष्यों के देखने वाले (महिव्रतस्य) बड़े नियम वाले, (मीढुषः) सुख बरसाने वाले (आदित्यस्य) अविनाशी परमात्मा के (शुक्राः) पवित्र (भ्राजन्तः) चमकते हुए (केतवः) विज्ञान (दिवि) प्रत्येक व्यवहार में (उत् ईरते) उदय होते हैं ॥१॥

दिशां प्रज्ञानां स्वरयन्तमर्चिषा सुपक्षमाशुं पतयन्तमर्णवे ।

स्तवाम सूर्यं भुवनस्य गोपां यो रश्मिभिर्दिश आभाति सर्वाः ॥२॥

पदार्थ—(प्रज्ञानाम्) बड़े ज्ञान करानेवाली (दिशाम्) दिशाओं का (अर्चिषा) अपने पूजनीय कर्म से (स्वरयन्तम्) उपदेश करने वाले (सुपक्षम्) सुन्दर रीति से ग्रहण करनेवाले, (आशुम्) सर्वव्यापक, (अर्णवे) समुद्ररूप संसार में (पतयन्तम्) ऐश्वर्य करने वाले (भुवनस्य) संसार के (गोपाम्) रक्षक (सूर्यम्) सब के नायक परमेश्वर की (स्तवाम) हम स्तुति करें। (यः) जो [परमेश्वर] (सर्वाः) सब (दिशः) दिशाओं में (रश्मिभिः) अपनी व्याप्तियों से (आभाति) निरन्तर चमकता है ॥२॥

यत् प्राङ् प्रत्यङ् स्वधया यासि शीभं नानारूपे अहनी कर्षि मायया ।

तदादित्य महि तत् ते महि श्रवो यदेको विश्वं परि भूम जायसे ॥३॥

पदार्थ—(यत्) जिस कारण से कि तू (प्राङ्) सन्मुख [वा पूर्व में] जाता हुआ और (प्रत्यङ्) पीछे [वा पश्चिम में] जाता हुआ (स्वधया) अपनी धारण शक्ति से (शीभम्) शीघ्र (यासि) चलता है, और (मायया) अपनी बुद्धिमत्ता से (नानारूपे) विरुद्ध रूपवाले (अहनी) दोनों दिन-रात्रि को (कर्षि) तू बनाता है। (तत्) उसी कारण से, (आदित्य) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (तत्) वह (ते) तेरी (महि-महि) बड़ी बड़ी (श्रवः) कीर्ति है, (यत्) कि (एकः) एक ही तू (विश्वम्) सब (भूम परि) बहुतायत [संसार] में सब ओर से (जायसे) प्रकट होता है ॥३॥

विपश्चितं तरणिं भ्राजमानं वहन्ति यं हरितः सप्त बह्वीः ।

स्रुताद् यमत्त्रिर्दिवमुन्निनाय तं त्वा पश्यन्ति परियान्तमाजिम् ॥४॥

पदार्थ—(यम्) जिस (विपश्चितम्) विविध प्रकार [पार्थिव रस] एकत्र करने वाले, (भ्राजमानम्) प्रकाशमान (तरणिम्) [अन्धकार से] पार करने वाले सूर्य को (सप्त) सात [शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश, चित्रवर्ण वाली] (बह्वीः) बहुत [भिन्न-भिन्न प्रकार वाली] (हरितः) आकर्षक किरणें (वहन्ति) ले चलती हैं। (यम्) जिस [सूर्य] को (अत्त्रिः) नित्य ज्ञानी [परमात्मा] ने (स्रुतात्) बहते हुए [प्रकृतिरूप समुद्र] से (दिवम्) आकाश में (उन्निनाय) ऊँचा किया है, (तम् त्वा) उस तुझ [सूर्य] को (आजिम्) मर्यादा पर (परियान्तम्) सर्वथा चलता हुआ (पश्यन्ति) वे [विद्वान्] देखते हैं ॥४॥

मा त्वा दभन् परियान्तमाजिं स्वस्ति दुर्गाँ अति याहि शीभम् ।

दिवं च सूर्य पृथिवीं च देवीमहोरात्रे विमिमानो यदेषि ॥५॥

पदार्थ—[हे सूर्य !] (आजिम्) मर्यादा पर (परियान्तम्) सब ओर से चलते हुए (त्वा) तुझ को वे [विघ्न] (मा दभन्) न दबावें, (दुर्गान्) विघ्नों को (अति) उलाँघ कर (स्वस्ति) आनन्द के साथ (शीभम्) शीघ्र (याहि) चल। (यत्) क्योंकि (सूर्य) हे सूर्य ! [लोकों के चलानेवाले पिण्डविशेष] (दिवम्) आकाश (च च) और (देवीम्) चलने वाली (पृथिवीम्) पृथिवी को (अहोरात्रे) दिन-रात्रि (विमिमानः) विविध प्रकार मापता हुआ (एषि) तू चलता है ॥५॥

स्वस्ति ते सूर्य चरसे रथाय येनोभावन्तौ परियासि सद्यः ।

यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥६॥

पदार्थ—(सूर्य) हे सूर्य ! [लोकों के चलाने वाले पिण्डविशेष] (ते) तेरे (रथाय) रथ [गति विधान] के लिये (चरसे) चलने को (स्वस्ति) कल्याण है, (येन) जिसके कारण से तू (उभौ) दोनों (अन्तौ) अन्तों [आगे-पीछे दोनों ओर, अथवा उत्तरायण और दक्षिणायन मार्ग] को (सद्यः) तुरन्त (परियासि) घूमता चलता है। (यम्) जिस [रथ] को (ते) तेरी (सप्त) सात [शुक्ल, नील, पीत आदि वर्ण वाली] (बह्वीः) बहुतसी [भिन्न-भिन्न वर्णोंवाली] (वहिष्ठाः) अत्यन्त बहने वाली [शीघ्रगामी] (हरितः) आकर्षक किरणें (यदि वा) अथवा (शतम्) सौ [असंख्य] (अश्वाः) व्यापक गुण [घोड़े के समान] (वहन्ति) ले चलते हैं ॥६॥

सुखं सूर्य रथमंशुमन्तं स्योनं सुवह्निमधि तिष्ठ वाजिनम् ।

यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥७॥

पदार्थ—(सूर्य) हे सूर्य ! [लोकों के चलानेवाले पिण्डविशेष] (सुखम्) सुख से चलनेवाले, (अंशुमन्तम्) तेजोमय, (स्योनम्) आनन्ददायक (सुवह्निम्) भले प्रकार से चलनेवाले, (वाजिनम्) बलवाले (रथम्) रथ [गति विधान] पर (अधि तिष्ठ) अधिष्ठाता हो। (यम्) जिस [रथ] को (ते) तेरी (सप्त)

सात [शुक्ल, नील, पीत, आदि वर्णवाली] (बह्वी) बहुत सी [भिन्न-भिन्न वर्णों वाली], (वहिष्ठा) अत्यन्त बहने वाली [शीघ्रगामी] (हरितः) आकर्षक किरणें, (यदि वा) अथवा (शतम्) सौ [असंख्य] (अश्वा) व्यापक गुण [घोड़े के समान] (वहन्ति) ले चलते हैं ॥७॥

सप्त सूर्यो हरितो यातवे रथे हिरण्यत्वचसो बृहतीरयुक्त ।

अमोचि शुक्रो रजसः परस्ताद् विधूय देवस्तमो दिवमारुहत् ॥८॥

पदार्थ—(सूर्य) सूर्य [लोकों के चलाने वाले पिण्ड विशेष] ने (सप्त) सात [शुक्ल, नील, पीत आदि वर्ण वाली] (हिरण्यत्वचस) तेज की त्वचा [ढक्कन] रखने वाली, (बृहती) बड़ी [दूर-दूर जानेवाली] (हरित) आकर्षक किरणों को (रथे) अपने रथ [गति विधान] में (यातवे) चलने के के लिये (अयुक्त) जोड़ा है। (शुक्र) तेजस्वी वह (रजस) धुन्धलेपन से (परस्तात्) दूर (अमोचि) छोड़ा गया है और (देव) प्रकाशमान [सूर्य] (तम) अन्धकार को (विधूय) हिला डालकर (दिवम्) आकाश में (आ अरुहत्) ऊँचा हुआ है ॥८॥

उत् केतुना बृहता देव आगन्नपावृक् तमोऽभि ज्योतिरश्रैत् ।

दिव्यः सुपर्णः स वीरो व्यख्यददितेः पुत्रो भुवनानि विश्वा ॥९॥

पदार्थ—(देव) प्रकाशमान सूर्य (बृहता केतुना) बड़ी सजधज से (उत् आ अगन्) ऊँचा होकर आया है, उसने (तम) अन्धकार को (अप अवृक) हटा दिया है। और (ज्योति अभि) ज्योति को प्राप्त करके (अश्रैत्) ठहरा है। (दिव्यः) आकाशनिवासी, (सुपर्ण) सुन्दर रीति से पालन करनेवाला, (अदिते) अखण्ड प्रकृति के (पुत्र) पुत्र [के समान], (स) उस (वीर) वीर [विविध गतिवाले सूर्य] ने (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (वि अख्यत्) प्रसिद्ध किया है ॥९॥

उद्यन् रश्मीना तनुषे विश्वा रूपाणि पुष्यसि । उभा समुद्रौ क्रतुना वि भासि सर्वांल्लोकान् परिभूर्भ्राजमानः ॥१०॥

पदार्थ—[हे सूर्य !] (उद्यन्) ऊँचा होता हुआ तू (रश्मीन्) किरणों को (आ) सब ओर से (तनुषे) फैलाता है, और (विश्वा) सब (रूपाणि) रूपों [वस्तुओं] को (पुष्यसि) पुष्ट करता है। (उभौ) दोनों (समुद्रौ) समुद्रों [जड़-चेतन रूप संसार] को, (सर्वान् लोकान) सब लोकों के (परिभू) चारों ओर घूमता हुआ और (भ्राजमान) चमकता हुआ तू (क्रतुना) अपने कर्म से (वि भासि) प्रकाशित कर देता है ॥१०॥

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।

विश्वान्यो भुवना विचष्टे हैरण्यैरन्य हरितो वहन्ति ॥११॥

पदार्थ—(एतौ) ये दोनों [सूर्य-चन्द्रमा] (पूर्वापरम्) आगे पीछे (मायया) बुद्धि से [ईश्वर-नियम से] (चरत) विचरते हैं। (क्रीडन्तौ) खेलते हुए (शिशू) दो बालक [जैसे] (अर्णवम्) अन्तरिक्ष में (परि) सब ओर (यात) चलते हैं। (अन्य) एक [सूर्य] (विश्वा) सब (भुवना) भुवनों को (विचष्ट) देखता है, (अन्यम्) दूसरे [चन्द्रमा] को (हरित) [सूर्य की] आकर्षक किरणे (हैरण्यै) तेजोमय [सुनहले] कामों के द्वारा (वहन्ति) ले चलती हैं ॥११॥

दिवि त्वात्रिरधारयत् सूर्या मासाय कर्तवे ।

स एषि सुधृतस्तपन् विश्वा भूतावचाकशत् ॥१२॥

पदार्थ—(सूर्य) हे सूर्य ! [लोकों के चलानेवाले रविमण्डल] (अत्रिः) सदा ज्ञानवान् [परमात्मा] ने (मासाय) महीना [काल विभाग] (कर्तवे) करने के लिये (त्वा) तुझको (दिवि) आकाश में (अधारयत्) धारण किया है। (स) वह तू (सुधृतः) अच्छी प्रकार धारण किया गया, (तपन्) तपता हुआ और (विश्वा भूता) सब प्राणियों को (अवचाकशत्) निहारता हुआ (एषि) चलता है ॥१२॥

उभावन्तौ समर्षसि वत्सः संमातराविव ।

नन्वेतदितः पुरा ब्रह्म देवा अमी विदुः ॥१३॥

पदार्थ—[हे सूर्य !] तू (उभौ) दोनों (अन्तौ) अन्तों [पूर्व-पश्चिम अथवा आगे-पीछे दोनों ओर] को (सम्) ठीक-ठीक (अर्षसि) पहुँचता है, (इव) जैसे (वत्स) बालक (संमातरौ) दो सामान्य [मिली हुई] माताओं को। (ननु) निश्चय करके (एतत्) इस (ब्रह्म) ईश्वरज्ञान को (इतः पुरा) इस [समय] के पहिले से (अमी) ये (देवाः) विद्वान् लोग (विदुः) जानते हैं ॥१३॥

यत् समुद्रमनु श्रितं तत् सिषासति सूर्यः ।

अध्वास्य विततो महान् पूर्वश्चापरश्च यः ॥१४॥

पदार्थ—(यत्) जो कुछ (समुद्रम् अनु) समुद्र [संसार] में (श्रितम्) ठहरा हुआ है, (तत्) उस को (सूर्य) सूर्य [लोकों का चलानेवाला रवि] (सिषासति) सेवा करना चाहता है। (अस्य) उस [सूर्य] का (अध्वा) मार्ग (वितत) फैला हुआ और (महान) बड़ा है, (य.) जो [मार्ग] (पूर्वः) आगे (च च) और (अपर) पीछे [अथवा पूर्व और पश्चिम] है ॥१४॥

तं समाप्नोति जूतिभिस्ततो नापं चिकित्सति ।

तेनामृतस्य भक्षं देवानां नाव रुन्धते ॥१५॥

पदार्थ—(तम्) उस [मार्ग] को (जूतिभि) अपने वेगों से (सम आप्नोति) वह [सूर्य] समाप्त करता रहता है, (तत) उस मार्ग से (न अप चिकित्सति) वह भूल नहीं करता। (तेन) उसी कारण से (देवानाम) विजय चाहनेवालों के (अमृतस्य) अमरपन [जीवन साधन] के (भक्षम्) सेवन को (न अव रुन्धते) वे [विघ्न] नहीं रोकते हैं ॥१५॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।

दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥१६॥

पदार्थ—(केतव) किरणें (त्यम्) उस (जातवेदसम्) उत्पन्न पदार्थों को प्राप्त करनेवाले, (देवम्) चलते हुए (सूर्यम्) रविमण्डल को (विश्वाय दृशे) सब के देखने के लिये (उ) अवश्य (उत् वहन्ति) ऊपर ले चलती हैं ॥१६॥

अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः ।

सूराय विश्वचक्षसे ॥१७॥

पदार्थ—(विश्वचक्षसे) सब के दिखानेवाले (सूराय) सूर्य के लिये (अक्तुभि) रात्रियों के साथ (नक्षत्रा) चलनेवाले तारागण (अप यन्ति) भाग जाते हैं, (यथा) जैसे (त्ये) वे (तायव) चोर [भाग जाते हैं] ॥१७॥

अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु ।

भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥१८॥

पदार्थ—(अस्य) इस [सूर्य] की (केतव) जताने वाली (रश्मयः) किरणें (जनान् अनु) प्राणियों में (वि) विविध प्रकार से (अदृश्रन्) देखी गयी है। (यथा) जैसे (भ्राजन्त.) दहकते हुए (अग्नय) अंगारे ॥१८॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य ।

विश्वमा भासि रोचन ॥१९॥

पदार्थ—(सूर्य) हे सूर्य ! तू (तरणि) अन्धकार से पार करनेवाला (विश्वदर्शत) सब का दिखानेवाला और (ज्योतिष्कृत्) [चन्द्र आदि में] प्रकाश करने वाला (असि) है। (रोचन) हे चमकने वाले तू (विश्वम्) सब को (आ) भले प्रकार (भासि) चमकाता है ॥१९॥

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः ।

प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥२०॥

पदार्थ—[हे सूर्य !] (देवानाम्) गतिशील [चन्द्र आदि लोकों] की (विश) प्रजाओं को (प्रत्यङ्) सन्मुख होकर, (मानुषी) मनुष्य संबंधी [पार्थिव प्रजाओं] को (प्रत्यङ) सन्मुख होकर, और (विश्वम्) सब जगत् को (प्रत्यङ्) सन्मुख होकर (स्व) सुख से (दृशे) देखने के लिये (उत्) ऊँचा होकर (एषि) तू प्राप्त होता है ॥२०॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु ।

त्वं वरुण पश्यसि ॥२१॥

पदार्थ—(पावक) हे पवित्र करनेवाले ! (वरुण) हे उत्तम गुण वाले ! [सूर्य, रविमण्डल] (येन) जिस (चक्षसा) प्रकाश से (भुरण्यन्तम्) धारण और पोषण करते हुए [पराक्रम] को (जनान् अनु) उत्पन्न प्राणियों में (त्वम्) तू (पश्यसि) दिखाता है ॥२१॥

वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभिः ।

पश्यन् जन्मानि सूर्य ॥२२॥

पदार्थ—[उस प्रकाश से] (सूर्य) हे सूर्य ! [रविमण्डल] (अहः) दिन को (अक्तुभि) रात्रियों के साथ (मिमानः) बनाता हुआ और (जन्मानि) उत्पन्न वस्तुओं को (पश्यन्) दिखाता हुआ तू (द्याम्) आकाश में (पृथु) फैले हुए (रज.) लोक को (वि) विविध प्रकार (एषि) प्राप्त होता है ॥२२॥

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।

शोचिष्केशं विचक्षणम् ॥२३॥

पदार्थ—(देव) हे चलनेवाले (सूर्य) सूर्य ! [रविमण्डल] (सप्त) सात [शुक्ल, नील, पीत आदि] (हरित) आकर्षक किरणें (शोचिष्केशम्) पवित्र प्रकाश वाले (विचक्षणम्) विविध प्रकार दिखाने वाले (त्वाम्) तुझ को (रथे) रथ [गमन विधान] मे (वहन्ति) ले चलती हैं ॥२३॥

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः ।

ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥२४॥

पदार्थ—(सूर) सूर्य [लोकप्रेरक रविमण्डल] ने (रथस्य) रथ [अपने चलने के विधान] की (नप्त्य) न गिराने वाली (सप्त) सात [शुक्ल, नील, पीत आदि] (शुन्ध्युव) शुद्ध करने वाली किरणो को (अयुक्त) जोडा है । (ताभि) उन (स्वयुक्तिभि) धन से सयोग वाली [किरणो के साथ] (याति) वह चलता है ॥२४॥

रोहितो दिवमारुहत् तपसा तपस्वी । स योनिमैति

स उ जायते पुनः स देवानामधिपतिर्बभूव ॥२५॥

पदार्थ—(तपस्वी) ऐश्वर्यवान (रोहित) सब का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (तपसा) अपने सामर्थ्य से (दिवम्) प्रत्येक व्यवहार मे (आ) सब ओर से (अरुहत) प्रकट हुआ है । (स) वह (योनिम्) प्रत्येक कारण [कारण के कारण] को (आ एति) प्राप्त होता है, (स उ) वह ही (पुन) फिर (जायते) बाहिर दीखता है, (स) वही (देवानाम) चलने वाले लोको का (अधिपति) बडा स्वामी (बभूव) हुआ है ॥२५॥

यो विश्वचर्षणिरुत विश्वतोमुखो यो विश्वतस्पाणिरुत विश्वतस्पृथः ।

सं बाहुभ्यां भरति सं पतत्रैर्द्यावापृथिवी जनयन् देव एकः ॥२६॥

पदार्थ—(य) जो [परमेश्वर] (विश्वचर्षणि) सब का देखने वाला, (उत) और (विश्वतोमुख) सब ओर से मुख [मुख्य व्यवहार वा उपाय] वाला, (य) जो (विश्वतस्पाणिः) सब ओर से हाथ के व्यवहार वाला, (उत) और (विश्वतस्पृथ) सब ओर से पूर्तिवाला है । (एक) वह अकेला (देव) प्रकाशस्वरूप [परमात्मा] (बाहुभ्याम्) दोनो [धारण-आकर्षण रूप] भुजाओ से (पतत्रै सम्) गमनशील परमाणुओ के साथ (द्यावापृथिवी) सूर्य पृथिवी को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (सम्) यथावत् (भरति) पुष्ट करता है ॥२६॥

एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।

द्विपाद्ध षट्पदो भूयो वि चक्रमे त एकपदस्तन्वं समासते ॥२७॥

पदार्थ—(एकपात्) एकरस व्यापक परमेश्वर (द्विपद) दो प्रकार की स्थितिवाले [जङ्गम-स्थावर जगत] से (भूय) अधिक आगे (वि) फैलकर (चक्रमे) चला गया, (द्विपाद्) दो [भूत भविष्यत्] मे गतिवाला परमात्मा (पश्चात्) फिर (त्रिपादम्) तीन [प्रकाशमान और अप्रकाशमान और मध्य लोको] मे व्याप्ति वाले ससार म (अभि) सब ओर से (एति) प्राप्त होता है, (द्विपात्) दो [जङ्गम और स्थावर जगत्] मे व्यापक ईश्वर (ह) निश्चय करके (षट्पद) छह [पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तम ऊंची और नीची दिशाओ] मे स्थिति वाले ब्रह्माण्ड से (भूय) अधिक आगे (विचक्रमे) निकल गया, (ते) वे [योगीजन] (एकपद) एकरस व्यापक परमेश्वर की (तन्वम्) उपकार-क्रिया को (सम्) निरन्तर (आसते) सेवते हैं ॥२७॥

अतन्द्रो यास्यन् हरितो यदास्थाद् द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।

केतुमानुद्यन्त्सहमानो रजांसि विश्वा आदित्य प्रवतो वि भासि ॥२८॥

पदार्थ—(यत्) जब (अतन्द्र) निरालसी वह [परमेश्वर] (यास्यन्) चलने की इच्छा करनेवाला [होता है], वह (हरित) आकर्षक दिशाओ मे (आस्थात) आकर ठहरता है, (रोचमान) प्रकाशमान वह [जगदीश्वर] (द्वे) दो (रूपे) रूप [जड और चेतन जगत] को (कृणुते) बनाता है । (आदित्य) हे अखण्ड ! [परमेश्वर] (केतुमान्) ज्ञानवान् (उद्यन्) चढता हुआ, और (रजांसि) लोकों को (सहमान) जीतता हुआ तू (विश्वा) सब (प्रवत) आगे बढ़ने की क्रियाओ को (वि भासि) चमका देता है ॥२८॥

बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।

महांस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि ॥२९॥

पदार्थ—(सूर्य) हे चराचर प्रेरक [परमेश्वर !] तू (बट्) सत्य सत्य (महान्) महान् बड़ा (असि) है, (आदित्य) हे अविनाशी ! तू (बट्) ठीक-ठीक (महान्) महान् [पूजनीय] (असि) है । (महत ते) तुझ बड़े की (महिमा) महिमा (महान्) बड़ी है, (आदित्य) हे प्रकाशस्वरूप ! (त्वम्) तू (महान्) बड़ा (असि) है ॥२९॥

रोचसे दिवि रोचसे अन्तरिक्षे पतङ्ग पृथिव्यां रोचसे रोचसे अप्स्वन्तः । उभा समुद्रौ रुच्या व्यापिथ देवो देवासि महिषः स्वर्जित् ॥३०॥

पदार्थ—(पतङ्ग) हे ऐश्वर्यवान् [जगदीश्वर !] तू (दिवि) प्रकाशमान [सूर्य आदि] लोक मे (रोचसे) चमकता है, तू (अन्तरिक्षे) मध्य लोक मे (रोचसे) चमकता है, तू (पृथिव्याम्) पृथिवी [अप्रकाशमान] लोक मे (रोचसे) चमकता है, तू (अप्सु अन्त) प्रजाओ [प्राणियो] के भीतर (रोचसे) चमकता है । (उभा) दोनो (समुद्रौ) समुद्रो [जड-चेतन समूहो] मे (रुच्या) अपनी रुचि [प्रीति] से (वि आपिथ) तू व्यापा है, (देव) हे प्रकाशस्वरूप ! (देवः) तू व्यवहार जानने वाला (महिष) महान् और (स्वर्जित्) सुख का जिताने वाला (असि) है ॥३०॥

अर्वाङ् परस्तात् प्रयतो व्यध्व आशुर्विपश्चित् पतयन् पतङ्गः ।

विष्णुर्विचित्तः शवसाधितिष्ठन् प्र केतुना सहते विश्वमेजत् ॥३१॥

पदार्थ—(परस्तात्) दूर से लकर (अर्वाङ्) समीप मे वर्तमान, (व्यध्वे) विविध मार्ग मे (प्रयत) फैला हुआ, (आशु) शीघ्रगामी, (विपश्चित्) बुद्धिमान, (पतयन्) पराक्रम करता हुआ, (पतङ्ग) ऐश्वर्यवान् (विष्णु.) सर्वव्यापक (विचित्त) विविध प्रकार अनुभव किया गया, (शवसा) बल से (अधितिष्ठन्) अधिष्ठाता होता हुआ [परमेश्वर] (केतुना) अपनी बुद्धिमत्ता से (एजत) चेष्टा करते हुए (विश्वम्) सब [जगत] को (प्र सहते) जीत लेता है ॥३१॥

चित्रश्चिकित्वान् महिषः सुपर्ण आरोचयन् रोदसी अन्तरिक्षम् ।

अहोरात्रे परि सूर्यं वसाने प्रास्य विश्वा तिरतो वीर्याणि ॥३२॥

पदार्थ—(चित्रः) अदभुत, (चिकित्वान्) समझवाला, (महिष) महान् (सुपर्ण) बड़ा पालन करनेवाला [परमेश्वर] (रोदसी) दोनो सूर्य और पृथिवी [प्रकाशमान-अप्रकाशमान लोको] और (अन्तरिक्षम्) [उनके] मध्य लोक को (आरोचयन्) चमका देता हुआ [वर्तमान है] । (सूर्यम्) सूर्य लोक को (परि) सब ओर से (वसाने) ओढे हुए (अहोरात्रे) दोनो दिन और रात्रि (अस्य) इस [परमात्मा] के (विश्वा) व्यापक (वीर्याणि) वीर कर्मों को (प्रतिरत) बढाते हैं [प्रसिद्ध करते हैं] ॥३२॥

तिग्मो विभ्राजन् तन्व१ं शिशानोऽरंगमासः प्रवतो रराणः । ज्योतिष्मान् पक्षी महिषो वयोधा विश्वा आस्थात् प्रदिशः कल्पमानः ॥३३॥

पदार्थ—(तिग्म) तीव्र स्वभाव (विभ्राजन) बडा चमकता हुआ,(तन्वम्) उपकार शक्ति को (शिशान) सूक्ष्म करता हुआ, (अरंगमास) पूरी प्राप्तियोग्य (प्रवत) आगे बढने की क्रियाओ को (रराण) देता हुआ (ज्योतिष्मान्) प्रकाशमय, (पक्षी) पक्ष [सहारे] वाला (महिष) महान् (वयोधा) जीवन धारण करने वाला (कल्पमान) समर्थ होता हुआ [जगदीश्वर] (विश्वा) सब (प्रदिश) बड़ी दिशाओ मे (आ) आकर (अस्थात्) ठहरा है ॥३३॥

चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन् ।

दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि शुक्रः ॥३४॥

पदार्थ—(चित्रम्) अद्भुत (अनीकम्) जीवनदाता [ब्रह्म], (देवानाम्) गतिमान् लोको के (केतु) जताने वाले, (ज्योतिष्मान्) तेजोमय (सूर्य) सर्वप्रेरक [परमात्मा] (प्रदिश) सब दिशाओ मे (उद्यन्) ऊंचे होते हुए, (दिवाकरः) दिन को रचने वाले [सूर्य रूप], (शुक्र) वीर्यवान् [परमेश्वर] ने (द्युम्नै.) अपने प्रकाशो से (तमांसि) अन्धकारो को (अति) लांघकर (विश्वा) सब (दुरितानि) कठिनाइयो को (अतारीत्) पार किया है ॥३४॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।

आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥३५॥

पदार्थ—(देवानाम्) गतिमान् लोकों का (चित्रम्) अद्भुत (अनीकम्) जीवनदाता, (मित्रस्य) सूर्य [वा प्राण] का, (वरुणस्य) चन्द्रमा [अथवा जल वा अपान] का और (अग्ने.) बिजुली का (चक्षु) दिखानेवाला [ब्रह्म] (उत्) सर्वोपरि (अगात्) व्यापा है । (सूर्य) सर्वप्रेरक, (जगतः) जङ्गम (च) और (तस्थुष) स्थावर ससार के (आत्मा) आत्मा [निरन्तर व्यापक परमात्मा] ने (द्यावापृथिवी) सूर्य भूमि [प्रकाशमान-अप्रकाशमान लोकों] और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (आ) सब प्रकार से (अप्रात्) पूर्ण किया है ॥३५॥

उच्चा पतन्तमरुणं सुपर्णं मध्ये दिवस्तरणिं भ्राजमानम् ।

पश्याम त्वा सवितारं यमाहुरजस्रं ज्योतिर्यदविन्ददत्रिः ॥३६॥

पदार्थ—(उच्चा) ऊँचे (पतन्तम्) ऐश्वर्यवान् होते हुए, (अरुणम्) सर्वव्यापक, (सुपर्णम्) बड़े पालनेवाले, (दिवः) व्यवहार के (मध्ये) मध्य (तरणिम्) पार करनेवाले (भ्राजमानम्) प्रकाशमान, (सवितारम्) सर्वप्रेरक (त्वा) तुझ [परमेश्वर] का (पश्याम) हम देखें, (यम्) जिसको (अजस्रम्) निरन्तर (ज्योतिः) ज्योति (आहुः) वे [विद्वान् लोग] बताते हैं, (यत्) जिस [ज्योति] को (अत्रिः) निरन्तर ज्ञानी [योगी पुरुष] ने (अविन्दत्) पाया है ॥३६॥

दि॒वस्पृ॒ष्ठे धाव॑मानं सुप॒र्णमदि॑त्याः पु॒त्रं ना॒थका॑म॒ उप॑ यामि भी॒तः ।

स नः॑ सूर्य॒ प्र ति॑र दी॒र्घमायु॒र्मा रि॑षाम सुम॒तौ ते॑ स्याम ॥३७॥

पदार्थ—(नाथकामः) नाथ [ईश्वर] को चाहने वाला, (भीतः) डरा हुआ मैं (दिवः) आकाश की (पृष्ठे) पीठ पर (धावमानम्) दौड़ते हुए, (सुपर्णम्) बड़े पालने वाले, (अदित्याः) अखण्ड वेदवाणी के (पुत्रम्) शोधनेवाले [परमेश्वर] को (उप) आदर से (यामि) पहुँचता हूँ। (सः) सो तू, (सूर्य) हे सर्वप्रेरक [जगदीश्वर] (नः) हमारे लिये (दीर्घम्) दीर्घ (आयुः) जीवन समय को (प्र तिर) बढ़ादे, (मा रिषाम) हम दुःखी न होवें, (ते) तेरी (सुमतौ) सुमति में (स्याम) हम रहें ॥३७॥

स॒ह॒स्रा॒ह्ण्यं विय॑तावस्य प॒क्षौ हरे॑र्ह॒ंसस्य॒ पत॑तः स्व॒र्गम् ।

स दे॒वान्त्सर्वा॒नुर॑स्युप॒दद्य॑ सं॒पश्य॑न् याति॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ॥३८॥

पदार्थ—(स्वर्गम्) मोक्ष सुख को (पततः) प्राप्त हुए (अस्य) इस [सर्वत्र वर्तमान] (हरेः) हरि [दुःख हरन वाले] (हंसस्य) हंस [ज्ञानी वा व्यापक परमेश्वर] के (पक्षौ) दोनों पक्ष [ग्रहण करनेयोग्य कार्य और कारण रूप व्यवहार] (सहस्राह्ण्यम्) सहस्रों दिनों वाले [अनन्त देश काल] में (वियतौ) फैले हुए हैं। (सः) वह [परमेश्वर] (सर्वान्) सब (देवान्) दिव्य गुणों को [अपने] (उरसि) हृदय में (उपदद्य) लेकर (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (संपश्यन्) निहारता हुआ (याति) चलता रहता है ॥३८॥

रोहि॑तः का॒लो अ॑भव॒द् रोहि॑तो॒ऽग्रे प्र॒जाप॑तिः ।

रोहि॑तो य॒ज्ञानां॒ मुखं॒ रोहि॑तः॒ स्व१रा॑भरत् ॥३९॥

पदार्थ—(रोहितः) सब का उत्पन्न करने वाला [परमेश्वर] (अग्रे) पहिले से [वर्तमान होकर] (कालः) काल वाला [तीनों कालों का स्वामी], और (रोहितः) सब का उत्पन्न करने वाला [परमात्मा] (प्रजापतिः) प्रजाओं [उत्पन्न पदार्थों] का पालने वाला (अभवत्) हुआ। (रोहितः) सर्वोत्पादक [ईश्वर] (यज्ञानाम्) संयोग-वियोग व्यवहारों का (मुखम्) मुखिया [प्रधान] है, (रोहितः) सर्वजनक [परमात्मा] ने (स्वः) आनन्द को (आ) सब प्रकार (अभरत्) धारण किया है ॥३९॥

रोहि॑तो लो॒को अ॑भव॒द् रोहि॑तो॒ऽत्य॑तप॒द् दिव॑म् ।

रोहि॑तो र॒श्मिभि॒र्भूमिं॑ समु॒द्रमनु॒ सं च॑रत् ॥४०॥

पदार्थ—(रोहितः) सर्वजनक [परमेश्वर] (लोकः) लोकों वाला [सब लोकों का स्वामी] (अभवत्) हुआ, (रोहितः) सर्वोत्पादक [ईश्वर] ने (दिवम्) सूर्य को (अति) अत्यन्त करके (अतपत्) ताप वाला किया। (रोहितः) सर्वस्रष्टा [ईश्वर] ने (रश्मिभिः) [सूर्य की] किरणों से (भूमिम्) भूमि और (समुद्रम्) अन्तरिक्ष [आकाशस्थ चन्द्र तारागण आदि लोकसमूह] को (अनु) अनुकूलता से (सं चरत्) संचार वाला किया ॥४०॥

सर्वा॒ दिशः॒ सम॑चर॒द् रोहि॑तो॒ऽधिप॑तिर्दि॒वः ।

दिवं॑ समु॒द्रमा॒द् भूमिं॒ सर्वं॑ भू॒तं वि र॑क्षति ॥४१॥

पदार्थ—(दिवः) प्रकाश के (अधिपतिः) अधिपति [बड़े स्वामी], (रोहितः) सर्वजनक [परमेश्वर] ने (सर्वाः) सब (दिशः) दिशाओं में (सम् अचरत्) संचार किया है। (दिवम्) सूर्य, (समुद्रम्) अन्तरिक्ष (आत्) और (भूमिम्) भूमि और (सर्वम्) सब (भूतम्) सत्ता वाले [जगत्] की (वि) विविध प्रकार (रक्षति) रक्षा करता है ॥४१॥

आ॒रोह॑ञ्छु॒क्रो बृ॑ह॒तीरत॑न्द्रो॒ द्वे रू॒पे कृ॑णुते॒ रोच॑मानः । चि॒त्रश्चि॑कि॒त्वान् म॑हि॒षो वात॑माया॒ याव॑तो लो॒काँ॑भि॒ यद् वि॒भाति॑ ॥४२॥

पदार्थ—(शुक्रः) वीर्यवान्, (अतन्द्रः) निरालसी, (रोचमानः) प्रकाशमान [परमेश्वर] (बृहतीः) बड़ी [दिशाओं] में (आरोहन्) ऊँचा होता हुआ (द्वे) दो (रूपे) रूपों [जङ्गम और स्थावर जगत्] को (कृणुते) बनाता है, (यत्) जब (चित्रः) अद्भुत (चिकित्वान्) समझने वाला, (महिषः) महान् (वातमायाः) वायु में व्याप्ति वाला [परमेश्वर उन] (लोकान् अभि) लोकों पर [व्यापक है] (यावतः) जितनों को (विभाति) वह चमकाता है ॥४२॥

अ॒भ्य१॒॑न्यदे॑ति॒ पर्य॒न्यद॑स्यतेऽहोरा॒त्राभ्यां॑ महि॒षः कल्प॑मानः ।

सूर्यं॑ व॒यं रज॑सि क्षि॒यन्तं॑ गातु॒विदं॑ हवामहे॒ नाध॑मानाः ॥४३॥

पदार्थ—(अन्यत्) एक कोई [उजाला] (अभि) सन्मुख (एति) चलता है, (अन्यत्) दूसरा [अन्धेरा] (परि) सब ओर (अस्यते) फेंका जाता है, [इस प्रकार] (महिषः) महान् [सूर्य लोक] (अहोरात्राभ्याम्) दिन और रात्रि [बनाने] के लिये (कल्पमानः) समर्थ होता हुआ [वर्तमान है]। (रजसि) सब लोक में (क्षियन्तम्) रहते हुए, (गातुविदम्) मार्ग जानने वाले (सूर्यम्) सर्वप्रेरक [परमेश्वर] को (नाधमानाः) प्रार्थना करते हुए (वयम्) हम लोग (हवामहे) बुलाते हैं ॥४३॥

पृ॒थि॒वी॒प्रो म॑हि॒षो नाध॑मानस्य गा॒तुरद॑ब्धचक्षुः॒ परि॒ विश्वं॑ ब॒भूव॑ ।

विश्वं॑ सं॒पश्य॑न्त्सुवि॒दत्रो॒ यज॑त्र इ॒दं शृ॑णोतु॒ यद॒हं ब्रवी॑मि ॥४४॥

पदार्थ—(पृथिवीप्रः) पृथिवी का भरपूर करने वाला, (महिषः) महान्, (नाधमानस्य) प्रार्थना करते हुए पुरुष के (गातुः) मार्ग, (अदब्धचक्षुः) बेचूक दृष्टि वाले [परमेश्वर] ने (विश्वम्) सब को (परि बभूव) घेर लिया है। (विश्वम्) सब को (संपश्यन्) निहारता हुआ, (सुविदत्रः) बड़ा लाभ पहुँचाने वाला (यजत्रः) सर्वपूजनीय [परमेश्वर] (इदम्) इस [वचन] को (शृणोतु) सुने, (यत्) जो (अहम्) मैं (ब्रवीमि) कहता हूँ ॥४४॥

पर्य॑स्य महि॒मा पृ॑थि॒वीं स॑मु॒द्रं ज्योति॑षा वि॒भ्राज॒न् परि॒ द्याम॒न्तरि॑क्षम् ।

सर्वं॑ सं॒पश्य॑न्त्सुवि॒दत्रो॒ यज॑त्र इ॒दं शृ॑णोतु॒ यद॒हं ब्रवी॑मि ॥४५॥

पदार्थ—(अस्य) इस [परमेश्वर] की (महिमा) महिमा (पृथिवीम्) पृथिवी और (समुद्रम्) [पृथिवी के] समुद्र से (परि) आगे है, (ज्योतिषा) ज्योति से (विभ्राजन्) विविध प्रकार चमकती हुई [वह महिमा] (द्याम्) सूर्य और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष से (परि) आगे है। (सर्वम्) सब को (संपश्यन्) निहारता हुआ, (सुविदत्रः) बड़ा लाभ पहुँचानेवाला, (यजत्रः) सर्व पूजनीय [परमेश्वर] (इदम्) इस [वचन] को (शृणोतु) सुने, (यत्) जो (अहम्) मैं (ब्रवीमि) कहता हूँ ॥४५॥

अबो॑ध्य॒ग्निः स॒मिधा॒ जना॑नां॒ प्रति॑ धे॒नुमि॑वाय॒तीमु॒षास॑म् । य॒ह्वा इ॑व॒ प्र व॒यामु॒ज्जिहा॑नाः॒ प्र भा॒नवः॑ सिस्रते॒ नाक॒मच्छ॑ ॥४६॥

पदार्थ—(अग्निः) अग्नि [जैसे] (जनानाम्) प्राणियों में (समिधा) प्रज्वलित करने के साधन [काष्ठ, घृत, अन्न आदि] से (अबोधि) जगाया गया है, [अथवा] (इव) जैसे (उषसं प्रति) उषा समय [प्रातः साय सन्धि वेला] में (आयतीम्) आती हुई (धेनुम्) दुधैल गौ को [लोग प्राप्त होते हैं]। [अथवा] (इव) जैसे (उज्जिहानाः) ऊँचे चलते हुए (यह्वाः) बड़े पुरुष (वयाम्) उत्तम नीति को (प्र) अच्छे प्रकार [प्राप्त होते हैं], [वैसे ही] (भानवः) प्रकाशमान लोग (नाकम्) सुखस्वरूप [परमात्मा] को (अच्छ) अच्छे प्रकार (प्र सिस्रते) प्राप्त होते रहते हैं ॥४६॥

卐 इति द्वितीयोऽनुवाकः 卐

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ॥३॥ 卐

१—२६ ब्रह्मा । अध्यात्म, रोहितादित्यदेवतम् । त्रिष्टुप्, १ चतुरवसानाष्टपदा ऽऽकृतिः । २-४ त्र्यव० षट्पदा (२-३ अतिः, २ भुरिग्, ४ अति शाक्वर गर्भा धृति), ५-७ चतुर० सप्तपदा (५-६ अनुष्टुप्गर्भा शाक्वरगर्भा प्रकृति, ७ अनुष्टुब्गर्भातिधृति.) ८ त्र्यव० षट्प० अत्यष्टि, ९—१९ चतुर० (९-१२, १५, १७ सप्तपदा भुरिगतिधृति, १५ निचृत्, १७ कृति, १३, १४, १६, १८, १९ अष्टपदा, (१३-१४ [illegible]ति १६, १८, १९ आकृति, १९ भुरिक्), २०, २२ त्र्यव० षट्प० अत्यष्टि, २१ २३-२५ चतुरव० अष्टपदा (२४ सप्तपदाकृति., २१ आकृति, २३, २५ विकृति) ।

य इ॒मे द्यावा॑पृथि॒वी ज॒जान॒ यो द्रा॒पिं कृ॒त्वा भुव॑नानि॒ वस्ते॑ । यस्मि॑न् क्षि॒यन्ति॑ प्र॒दिशः॒ षडु॒र्वीर्याः प॑त॒ङ्गो अनु॑ वि॒चाक॑शीति । तस्य॑ दे॒वस्य॑ क्रु॒द्धस्यै॒तदागो॒ य ए॒वं वि॒द्वांसं॑ ब्राह्म॒णं जि॒नाति॑ । उद् वे॑पय रोहित॒ प्र क्षि॑णीहि ब्रह्म॒ज्यस्य॒ प्रति॑ मुञ्च॒ पाशा॑न् ॥१॥

पदार्थ—(यः) जिस [परमेश्वर] ने (इमे) इन दोनों (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी को (जजान) उत्पन्न किया है, (यः) जो (भुवनानि) सत्ता वाले [लोकों] को (द्रापिम्) वस्त्र [के समान] (कृत्वा) बनाकर (वस्ते) ओढ़ता है। (यस्मिन्) जिस [परमेश्वर] में (षट्) छह [पूर्वादि चार और ऊपर नीचे वाली दो] (उर्वीः) चौड़ी (प्रदिशः) दिशायें (क्षियन्ति) रहती हैं, (या अनु)

जिनकी ओर (पतङ्गः) ऐश्वर्यवान् [परमेश्वर] (विचाकशीति) चमकता चला जाता है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये (एतत्) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है। (रोहित) हे सर्वोत्पादक [परमेश्वर ! उस शत्रु को] (उद् वेपय) कपा दे, (प्रक्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सतानेवाले के (पाशान्) फन्दो को (प्रति मुञ्च) बाध दे ॥१॥

यस्माद् वाता ऋतुथा पवन्ते यस्मात् समुद्रा अधि विक्षरन्ति । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२॥

पदार्थ—(यस्मात्) जिस [परमेश्वर] से (वाताः) पवन (ऋतुथा) ऋतुओ के अनुसार (पवन्ते) शुद्ध करते हैं, (यस्मात्) जिससे (समुद्राः) समुद्र (अधि) मर्यादा से (विक्षरन्ति) बहते रहते है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [परमेश्वर] के लिये (एतत) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है। (रोहित) हे सर्वोत्पादक [परमेश्वर ! उस शत्रु को] (उद् वेपय) कपा दे, (प्रक्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सतानेवाले के (पाशान्) फन्दो को (प्रति मुञ्च) बाध दे ॥२॥

यो मारयति प्राणयति यस्मात् प्राणन्ति भुवनानि विश्वा । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो [परमेश्वर] (मारयति) मारता है, और (प्राणयति) जिलाता है, (यस्मात्) जिससे (विश्वा) सब (भुवनानि) सत्तावाले (प्राणन्ति) जीवते है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [परमेश्वर] के लिये (एतत्) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है। (रोहित) हे सर्वोत्पादक [परमेश्वर ! उस शत्रु को] (उद् वेपय) कपा दे, (प्रक्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सतानेवाले के (पाशान्) फन्दो को (प्रति मुञ्च) बाध दे ॥३॥

यः प्राणेन द्यावापृथिवी तर्पयत्यपानेन समुद्रस्य जठरं यः पिपर्ति । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥४॥

पदार्थ—(यः) जो (प्राणेन) प्राण से (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि को (तर्पयति) तृप्त करता है और (यः) जो (अपानेन) अपान वायु से (समुद्रस्य) समुद्र के (जठरम्) पेट को (पिपर्ति) भरता है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [परमेश्वर] के लिये (एतत्) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है। (रोहित) हे सर्वोत्पादक [परमेश्वर ! उस शत्रु को] (उद् वेपय) कपा दे, (प्रक्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सतानेवाले के (पाशान्) फन्दो को (प्रति मुञ्च) बाध दे ॥४॥

यस्मिन् विराट् परमेष्ठी प्रजापतिरग्निर्वैश्वानरः सह पङ्क्त्या श्रितः । यः परस्य प्राणं परमस्य तेज आददे । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥५॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिस [परमेश्वर] मे (विराट्) विविध प्रकाशमान (परमेष्ठी) बडी स्थितिवाला [आकाश], (प्रजापतिः) प्रजापालक [सूर्य] और (वैश्वानरः) सब नायको [रस से चलनेवाली नाडी आदि को] का हितकारी (अग्निः) अग्नि [जाठर अग्नि] (पङ्क्त्या सह) अपनी पङ्क्ति [श्रेणि] के सहित (श्रितः) ठहरा है, (यः) जिस [परमेश्वर] ने (परस्य) दूर पदार्थ के (प्राणम्) प्राण को और (परमस्य) सब से ऊचे पदार्थ के (तेजः) तेज को (आददे) अपने मे ग्रहण किया है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये (एतत्) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है। (रोहित) हे सर्वोत्पादक [परमेश्वर ! उस शत्रु को] (उद् वेपय) कपा दे, (प्रक्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सतानेवाले के (पाशान्) फन्दो को (प्रति मुञ्च) बाध दे ॥५॥

यस्मिन् षडुर्वीः पञ्च दिशो अधि श्रिताश्चतस्र आपो यज्ञस्य त्रयोऽक्षराः । यो अन्तरा रोदसी क्रुद्धश्चक्षुषैक्षत । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥६॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिस [परमेश्वर] से (षट्) छह [पूर्वादि चार और नीचे ऊपर वाली दो] (उर्वीः) चौडी (दिशः) दिशायें (पञ्च) पाच [पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश पाच तत्त्वो] के सहित, (चतस्रः) चार प्रकार की [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्ररूप] (आपः) प्रजायें और (यज्ञस्य) [सयोग वियोग वाले ससार] के (त्रयः) तीनो [सत्त्व, रज, तम] (अक्षराः) व्यापक गुण (अधि) यथावत् (श्रिताः) ठहरे हैं। (यः) जिसने (क्रुद्धः) क्रुद्ध होकर (रोदसी अंतरा) दोनो सूर्य और भूमि [प्रकाशमान और अप्रकाशमान लोको] के बीच (चक्षुषा) अपने नेत्र से (ऐक्षत) देखा है [वश मे किया है]। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये (एतत्) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है। (रोहित) हे सर्वोत्पादक [परमेश्वर ! उस शत्रु को] (उद् वेपय) कपा दे, (प्रक्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सतानेवाले के (पाशान्) फन्दो को (प्रति मुञ्च) बाध दे ॥६॥

यो अन्नादो अन्नपतिर्बभूव ब्रह्मणस्पतिरुत यः । भूतो भविष्यद् भुवनस्य यस्पतिः । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥७॥

पदार्थ—(यः) जो [परमेश्वर] (अन्नादः) अन्न का खिलाने वाला, (अन्नपतिः) अन्न का स्वामी, (उत) और (ब्रह्मणः) वेद ज्ञान का (पतिः) रक्षक (बभूव) हुआ है (यः) जो (भुवनस्य) ससार का (भूतः) अतीत काल मे रहने वाला और (भविष्यत्) आगे रहने वाला (पतिः) स्वामी है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये (एतत) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है। (रोहित) हे सर्वोत्पादक [परमेश्वर ! उस शत्रु को] (उद् वेपय) कपा दे, (प्रक्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सतानेवाले के (पाशान्) फन्दो को (प्रति मुञ्च) बाध दे ॥७॥

अहोरात्रैर्विमितं त्रिंशदङ्गं त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥८॥

पदार्थ—(यः) जो [परमेश्वर] (अहोरात्रैः) दिन और रातो के साथ (विमितम्) मापे गये, (त्रिंशदङ्गम्) तीस अङ्गो वाले [अर्थात् ऋग्वेद आदि चारो वेद + ब्राह्मण आदि चारो वर्ण + ब्रह्मचर्य आदि चार आश्रम + अणिमा-आदि आठ ऐश्वर्य + पृथिवी आदि पाच भूत + उछालना, गिराना, सकोडना, फैलाना और चलना पाच कर्म जिसमे हैं] और (त्रयोदशम्) तेरह पदार्थ वाले [अर्थात् कान, त्वचा, नेत्र, जीभ नासिका—पाच ज्ञानेन्द्रिय, गुदा, उपस्थ वा मूत्रमार्ग, हाथ, पाव, वाणी—पञ्च कर्मेन्द्रिय, मन बुद्धि और जीव के स्थान] (मासम्) मापने योग्य [ससार] को (निर्मिमीते) बनाता है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये (एतत्) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है। (रोहित) हे सर्वोत्पादक [परमेश्वर ! उस शत्रु को] (उद् वेपय) कपा दे, (प्रक्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सताने वाले के (पाशान्) फन्दो को (प्रतिमुञ्च) बाध दे ॥८॥

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति । त आववृत्रन्त्सदनादृतस्य । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥९॥

पदार्थ—(हरयः) जल खींचने वाली (सुपर्णाः) अच्छे प्रकार उड़ने वाली किरणें, (अपः) जल को (वसानाः) ओढ़कर, (कृष्णम्) खीचने वाले (नियानम्) नित्य गमन स्थान अन्तरिक्ष मे [होकर] (दिवम्) प्रकाशमय सूर्यमण्डल को (उत् पतन्ति) चढ जाती हैं। (ते) वे [किरणें] (ऋतस्य) जल के (सदनात्) स्थान [सूर्य] से (आ अववृत्रन्) [ईश्वरनियम के अनुसार] लौट आती हैं। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिए (एतत्) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है। (रोहित) हे सर्वोत्पादक [परमेश्वर ! उस शत्रु को] (उद् वेपय) कपा दे, (प्रक्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सतानेवाले के (पाशान्) फन्दों को (प्रति मुञ्च) बाध दे ॥९॥

यत् ते चन्द्रं कश्यप रोचनावद् यत् संहितं पुष्कलं चित्रभानु। यस्मिन्त्सूर्या आर्पिताः सप्त साकम्। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥१०॥

पदार्थ—(कश्यप) हे सर्वदर्शक ! [परमेश्वर] (यत्) जो (ते) तेरा (चन्द्रम्) आनन्द कर्म (रोचनवत्) बड़ी रुचि वाला है, और (यत्) जो (संहितम्) एकत्र किया हुआ, (चित्रभानु) विचित्र प्रकाशवाला (पुष्कलम्) पोषण कर्म है। (यस्मिन्) जिस [परमेश्वर के नियम] मे (सप्त) सात [शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश, चित्ररूप वाली] (सूर्याः) सूर्य की किरणे (साकम्) साथ-साथ (आर्पिताः) जड़ी हैं। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये (एतत्) यह (आगः) अपराध है, (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है। (रोहित) हे सर्वोत्पादक [परमेश्वर ! उस शत्रु को] (उद् वेपय) कंपा दे, (प्र क्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सतानेवाले के (पाशान्) फन्दो को (प्रति मुञ्च) बांध दे॥१०॥

बृहदेनमनु वस्ते पुरस्ताद् रथन्तरं प्रति गृह्णाति पश्चात् ज्योतिर्वसाने सदमप्रमादम्। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥११॥

पदार्थ—(बृहत्) बृहत् [बड़ा आकाश] (पुरस्तात्) आगे से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (अनु) निरन्तर (वस्ते) ओढ़ता है, (रथन्तरम्) रथन्तर [रमणीय पदार्थों द्वारा पार लगानेवाला जगत्] (पश्चात्) पीछे से [परमेश्वर को] (प्रति) प्रत्यक्ष (गृह्णाति) ग्रहण करता है। [दोनो, आकाश और जगत्] (अप्रमादम्) बिना चूक (ज्योतिः) ज्योति स्वरूप [परमात्मा] को (सदम्) सदा (वसाने) ओढ़े हुए [रहते हैं]। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये (एतत्) यह (आगः) अपराध है। (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है। (रोहित) हे सर्वोत्पादक [परमेश्वर ! उस शत्रु को] (उद् वेपय) कंपा दे, (प्र क्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सतानेवाले के (पाशान्) फन्दो को (प्रति मुञ्च) बांध दे॥११॥

बृहदन्यतः पक्ष आसीद् रथन्तरमन्यतः सबले सध्रीची। यद् रोहितमजनयन्त देवाः। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥१२॥

पदार्थ—(बृहत्) बृहत् [बड़ा आकाश] (अन्यतः) एक ओर से (पक्षः) [उस परमेश्वर का] ग्रहण सामर्थ्य (आसीत्) था, और (रथन्तरम्) रथन्तर [रमणीय पदार्थों द्वारा पार लगाने वाला जगत्] (अन्यतः) दूसरी ओर से—[दोनो] (सबले) तुल्य बलवाले और (सध्रीची) साथ-साथ गतिवाले [थे], (यत्) जब (रोहितम्) सब के उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] को (देवाः) [उसके] उत्तम गुणो ने (अजनयन्त) प्रकट किया। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये (एतत्) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है। (रोहित) हे सर्वोत्पादक [परमेश्वर ! उस शत्रु को] (उद् वेपय) कंपा दे, (प्र क्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सतानेवाले के (पाशान्) फन्दो को (प्रति मुञ्च) बांध दे॥१२॥

स वरुणः सायमग्निर्भवति स मित्रो भवति प्रातरुद्यन्। स सविता भूत्वान्तरिक्षेण याति स इन्द्रो भूत्वा तपति मध्यतो दिवम्। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥१३॥

पदार्थ—(सः) वह (वरुणः) श्रेष्ठ परमात्मा (सायम्) सायकाल मे (अग्निः) अग्नि [अग्नि के समान तेजस्वी] (भवति) होता है, (सः) वह [परमेश्वर] (प्रातः) प्रातःकाल (उद्यन्) उदय होते हुए (मित्रः) स्नेहवान् सूर्य [के समान] (भवति) होता है। (सः) वह [परमेश्वर] (सविता) प्रेरणा करनेवाला सूर्य के समान (भूत्वा) होकर (अन्तरिक्षेण) अन्तरिक्ष के साथ (याति) चलता है, (सः) वह (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् (भूत्वा) होकर (मध्यतः) बीच से (दिवम्) सूर्य लोक को (तपति) तपाता है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये (एतत्) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है। (रोहित) हे सर्वोत्पादक परमेश्वर [उस शत्रु को] (उद्वेपय) कंपा दे, (प्र क्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सताने वाले के (पाशान्) फन्दो को (प्रति मुञ्च) बांध दे॥१३॥

सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम्। स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥१४॥

पदार्थ—(स्वर्गम्) मोक्ष-सुख को (पततः) प्राप्त होते हुए (अस्य) इस [सर्वत्र वर्तमान] (हरेः) हरि [दुःख हरनवाले] (हंसस्य) हंस [सर्वव्यापक परमेश्वर] के (पक्षौ) दोनो पक्ष [ग्रहण करने योग्य कार्य और कारण रूप व्यवहार] (सहस्राह्ण्यम्) सहस्रो दिनो वाले [अनन्त देशकाल] मे (वियतौ) फैले हुए हैं। (सः) वह [परमेश्वर] (सर्वान्) सब (देवान्) दिव्यगुणो को [अपने] (उरसि) हृदय मे (उपदद्य) लेकर (विश्वा) सब (भुवनानि) लोको को (संपश्यन्) निरन्तर देखता हुआ (याति) चलता रहता है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिए (एतत्) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है। (रोहित) हे सर्वोत्पादक परमेश्वर [उस शत्रु को] (उद्वेपय) कंपा दे, (प्र क्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सताने वाले के (पाशान्) फन्दो को (प्रति मुञ्च) बांध दे॥१४॥

अयं स देवो अप्स्वन्तः सहस्रमूलः पुरुशाको अत्त्रिः। य इदं विश्वं भुवनं जजान। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥१५॥

पदार्थ—(अयम्) यह (सः) वही (देवः) प्रकाशमान, (सहस्रमूलः) सहस्रो [अनगिनत] कारणो मे रहनेवाला, (पुरुशाकः) बहुत शक्तियो वाला (अत्त्रिः) नित्यज्ञानी [परमेश्वर] (अप्सु) प्रजाओ मे (अन्तः) भीतर है। (यः) जिस ने (इदम्) इस (विश्वम्) सब (भुवनम्) सत्ता को (जजान) उत्पन्न किया है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये (एतत्) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है। (रोहित) हे सर्वोत्पादक परमेश्वर [उस शत्रु को] (उद्वेपय) कंपा दे, (प्र क्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सताने वाले के (पाशान्) फन्दो को (प्रति मुञ्च) बांध दे॥१५॥

शुक्रं वहन्ति हरयो रघुष्यदो देवं दिवि वर्चसा भ्राजमानम्। यस्योर्ध्वा दिवं तन्वस्तपन्त्यर्वाङ् सुवर्णैः पटरैर्वि भाति। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥१६॥

पदार्थ—(रघुष्यदः) शीघ्रगामी (हरयः) अज्ञाननाशक मनुष्य (शुक्रम्) वीर्यवान्, (देवम्) ज्ञानवान्, (दिवि) प्रत्यक्ष व्यवहार मे (वर्चसा) तेज से (भ्राजमानम्) प्रकाशमान [परमेश्वर] को (वहन्ति) पाते हैं। (यस्य) जिस [परमेश्वर] के (ऊर्ध्वाः) ऊंचे (तन्वः) उपकार (दिवम्) सूर्य को (तपन्ति) तपाते हैं, (अर्वाङ्) समीपवर्ती वह (सुवर्णैः) बड़े श्रेष्ठ (पटरैः) प्रकाशो के साथ (वि भाति) चमकता जाता है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये (एतत्) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है। (रोहित) हे सर्वोत्पादक परमेश्वर [उस शत्रु को] (उद्वेपय) कंपा दे, (प्र क्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सताने वाले के (पाशान्) फन्दो को (प्रति मुञ्च) बांध दे॥१६॥

येनादित्यान् हरितः संवहन्ति येन यज्ञेन बहवो यन्ति प्रजानन्तः। यदेकं ज्योतिर्बहुधा विभाति। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥१७॥

पदार्थ—(येन) जिस [परमेश्वर] के साथ (हरितः) दिशायें (आदित्यान्) आदित्य [अखण्ड] ब्रह्मचारियो को (संवहन्ति) मिलकर ले चलती हैं, (येन) जिस [परमेश्वर] के साथ (यज्ञेन) पूजनीय कर्म से (बहवः) बहुत से

(प्रज्ञानन्तः) अविद्यज्ञानी लोग (यन्ति) चलते हैं । (यत्र) जो (एकम्) एक (ज्योतिः) ज्योति स्वरूप परमात्मा (बहुधा) बहु प्रकार से [प्रत्येक वस्तु में] (विभाति) चमकता रहता है । (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये (एतत्) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है । (रोहित) हे सर्वोत्पादक परमेश्वर [उस शत्रु को] (उद्वेपय) कपा दे, (प्र क्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सताने वाले के (पाशान्) फन्दो को (प्रति मुञ्च) बाँध दे ॥१७॥

स॒प्त यु॑ञ्जन्ति॒ रथ॒मेक॑चक्र॒मेको॒ अश्वो॑ वहति स॒प्तना॑मा । त्रि॒नाभि॑ च॒क्रम॒जर॑मन॒र्वं यत्रे॒मा विश्वा॒ भुव॒नाधि॑ त॒स्थुः । तस्य॑ दे॒वस्य॑ क्रु॒द्धस्यै॒तदागो॒ य ए॒वं वि॒द्वांसं॑ ब्राह्म॒णं जि॒नाति॑ । उद् वे॑पय रोहित॒ प्र क्षि॑णीहि ब्रह्म॒ज्यस्य॒ प्रति॑ मुञ्च॒ पाशा॑न् ॥१८॥

पदार्थ—(सप्त) सात [इन्द्रिया—त्वचा, नेत्र, कान, जीभ, नाक, मन और बुद्धि] (एकचक्रम्) एक चक्र वाले [अकेले पहिये के समान काम करने वाले जीवात्मा से युक्त] (रथम्) रथ [वेगशील वा रथ समान शरीर] को (युञ्जन्ति) जोडते हैं, (एकः) अकेला (सप्तनामा) सात [त्वचा आदि इन्द्रियो] से झुकने वाला [प्रवृत्ति करने वाला] (अश्वः) अश्व [अश्वरूप व्यापक जीवात्मा] (त्रिनाभि) [सत्त्व रज और तमोगुण रूप] तीन बन्धन वाले (अजरम्) चलने वाले [वा जीर्णतारहित,] (अनर्वम्) न टूटे हुए (चक्रम्) चक्र [चक्र के समान काम करनेवाले अपने जीवात्मा] को [उस परमात्मा] मे (वहति) ले जाता है, (यत्र) जिस [परमात्मा] मे (इमा) ये (विश्वा) सब (भुवना) सत्तायें (अधि) यथावत् (तस्थुः) ठहरी हैं । (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये (एतत्) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है । (रोहित) हे सर्वोत्पादक परमेश्वर [उस शत्रु को] (उद्वेपय) कपा दे, (प्र क्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सताने वाले के (पाशान्) फन्दो को (प्रति मुञ्च) बाँध दे ॥१८॥

अ॒ष्टधा॑ यु॒क्तो व॑हति॒ वह्नि॑रु॒ग्रः पि॒ता दे॒वानां॑ जनि॒ता म॑ती॒नाम् । ऋ॒तस्य॒ तन्तुं॒ मन॑सा मि॒मानः॒ सर्वा॒ दिशः॑ पवते मात॒रिश्वा॑ । तस्य॑ दे॒वस्य॑ क्रु॒द्धस्यै॒तदागो॒ य ए॒वं वि॒द्वांसं॑ ब्राह्म॒णं जि॒नाति॑ । उद् वे॑पय रोहित॒ प्र क्षि॑णीहि ब्रह्म॒ज्यस्य॒ प्रति॑ मुञ्च॒ पाशा॑न् ॥१९॥

पदार्थ—(अष्टधा) आठ प्रकार से [यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि—योग के आठ अङ्गों द्वारा] (युक्तः) ध्यान किया गया, (उग्रः) प्रचण्ड (वह्निः) ले चलने वाला, (देवानाम्) गतिमान् [पृथिवी आदि] लोको का (पिता) पिता [रक्षक] और (मतीनाम्) बुद्धिमानों का (जनिता) उत्पन्न करनेवाला [परमेश्वर, संसार को] (वहति) ले चलता है । (ऋतस्य) सत्यज्ञान के (तन्तुम्) ताते [श्रेणी] को (मनसा) अपने विज्ञान से (मिमानः) मापता हुआ, (मातरिश्वा) आकाश मे गतिवाला [परमेश्वर] (सर्वाः) सब (दिशः) दिशाओं मे (पवते) चलता है [व्यापता है] । (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये (एतत्) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है । (रोहित) हे सर्वोत्पादक परमेश्वर [उस शत्रु को] (उद्वेपय) कपा दे, (प्र क्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सताने वाले के (पाशान्) फन्दो को (प्रति मुञ्च) बाँध दे ॥१९॥

स॒म्यञ्चं॒ तन्तुं॑ प्र॒दिशोऽनु॒ सर्वा॑ अ॒न्तर्गा॑य॒त्र्याम॒मृत॑स्य॒ गर्भे॑ । तस्य॑ दे॒वस्य॑ क्रु॒द्धस्यै॒तदागो॒ य ए॒वं वि॒द्वांसं॑ ब्राह्म॒णं जि॒नाति॑ । उद् वे॑पय रोहित॒ प्र क्षि॑णीहि ब्रह्म॒ज्यस्य॒ प्रति॑ मुञ्च॒ पाशा॑न् ॥२०॥

पदार्थ—(सम्यञ्चम्) आपस मे मिले हुए (तन्तुम् अनु) ताते के साथ (सर्वाः) सब (प्रदिशः) दिशायें (अमृतस्य) अमर [परमात्मा] के (गर्भे) गर्भ में [वर्तमान] (गायत्र्याम् अन्तः) गाने योग्य वेदवाणी के भीतर [हैं] । (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये (एतत्) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है । (रोहित) हे सर्वोत्पादक परमेश्वर [उस शत्रु को] (उद्वेपय) कम्पा दे, (प्र क्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सताने वाले के (पाशान्) फन्दों को (प्रति मुञ्च) बाँध दे ॥२०॥

नि॒म्रुच॑स्ति॒स्रो व्यु॒षो॑ ह ति॒स्रस्त्रीणि॒ रजां॑सि दि॒वो अ॒ङ्ग ति॒स्रः । वि॒द्मा ते॑ अग्ने त्रे॒धा ज॒नित्रं॑ त्रे॒धा दे॒वानां॒ जनि॑मानि वि॒द्म । तस्य॑ दे॒वस्य॑ क्रु॒द्धस्यै॒तदागो॒ य ए॒वं वि॒द्वांसं॑ ब्राह्म॒णं जि॒नाति॑ । उद् वे॑पय रोहित॒ प्र क्षि॑णीहि ब्रह्म॒ज्यस्य॒ प्रति॑ मुञ्च॒ पाशा॑न् ॥२१॥

पदार्थ—(निम्रुचः) नीच गतियाँ [मानसिक, वाचिक और कायिक भेद से] (तिस्रः) तीन और (व्युषः) उच्च गतियाँ (ह) भी [मानसिक, वाचिक और कायिक भेद से] (तिस्रः) तीन है, (रजांसि) लोक [भूत, भविष्यत् और वर्तमान भेद से] (त्रीणि) तीन और (दिवः) व्यवहार क्रियायें (अङ्ग) भी [धर्म, अर्थ और काम इन पुरुषार्थ भेदों से] (तिस्रः) तीन है । (अग्ने) हे प्रकाशमान परमेश्वर ! [कर्म, उपासना और ज्ञान द्वारा] (त्रेधा) तीन प्रकार से (ते) तेरे (जनित्रम्) प्रत्यक्षपन को (विद्म) हम जानते हैं, [सत्त्व, रज और तमोगुण के भेद से] (त्रेधा) तीन प्रकार पर (देवानाम्) गति वाले लोकों के (जनिमानि) प्रादुर्भावों को (विद्म) हम जानते है । (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये (एतत्) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है । (रोहित) हे सर्वोत्पादक परमेश्वर [उस शत्रु को] (उद्वेपय) कम्पा दे, (प्र क्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सताने वाले के (पाशान्) फन्दो को (प्रति मुञ्च) बाँध दे ॥२१॥

वि य औ॑र्णोत् पृथि॒वीं जाय॑मान॒ आ स॑मु॒द्रमद॑धाद॒न्तरि॑क्षे । तस्य॑ दे॒वस्य॑ क्रु॒द्धस्यै॒तदागो॒ य ए॒वं वि॒द्वांसं॑ ब्राह्म॒णं जि॒नाति॑ । उद् वे॑पय रोहित॒ प्र क्षि॑णीहि ब्रह्म॒ज्यस्य॒ प्रति॑ मुञ्च॒ पाशा॑न् ॥२२॥

पदार्थ—(यः) जिस (जायमानः) प्रत्यक्ष होते हुए [परमेश्वर] ने (पृथिवीम्) पृथिवी को (वि और्णोत्) फैलाया, और (समुद्रम्) समुद्र को (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष मे (आ) सब ओर से (अदधात्) ठहराया । (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये (एतत्) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है । (रोहित) हे सर्वोत्पादक परमेश्वर [उस शत्रु को] (उद्वेपय) कपा दे, (प्र क्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सताने वाले के (पाशान्) फन्दो को (प्रति मुञ्च) बाँध दे ॥२२॥

त्वम॑ग्ने॒ क्रतु॑भिः के॒तुभि॑र्हि॒तो॒३र्कः समि॑द्ध॒ उद॑रोचथा दि॒वि । किम॒भ्या॑र्चन् म॒रुतः॒ पृश्नि॑मातरो॒ यद् रोहि॑त॒मज॑नयन्त दे॒वाः । तस्य॑ दे॒वस्य॑ क्रु॒द्धस्यै॒तदागो॒ य ए॒वं वि॒द्वांसं॑ ब्राह्म॒णं जि॒नाति॑ । उद् वे॑पय रोहित॒ प्र क्षि॑णीहि ब्रह्म॒ज्यस्य॒ प्रति॑ मुञ्च॒ पाशा॑न् ॥२३॥

पदार्थ—(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (त्वम्) तू (क्रतुभिः) अपने कर्मों से और (केतुभिः) बुद्धियो से (हितः) हितकारी (समिद्धः) प्रकाशित (अर्कः) सूर्य के समान (दिवि) प्रत्येक व्यवहार मे (उत्) ऊपर (अरोचथाः) चमका है । (पृश्निमातरः) पूछने योग्य वेदवाणी को माता के समान मान करने वाले (मरुतः) शूर पुरुषो ने (किम्) किसको [अर्थात् ब्रह्म को ही] (अभि) सब ओर से (आर्चन्) पूजा है, (यत्) जब (रोहितम्) सब के उत्पन्न करनेवाले [परमेश्वर] को (देवाः) [उसके] उत्तम गुणों ने (अजनयन्त) प्रकट किया है । (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये (एतत्) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है । (रोहित) हे सर्वोत्पादक परमेश्वर [उस शत्रु को] (उद्वेपय) कम्पा दे, (प्र क्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सताने वाले के (पाशान्) फन्दो को (प्रति मुञ्च) बाँध दे ॥२३॥

य आ॑त्म॒दा ब॑ल॒दा यस्य॒ विश्व॑ उ॒पास॑ते प्र॒शिषं॒ यस्य॑ दे॒वाः । यो॒३स्येशे॑ द्वि॒पदो॒ यश्चतु॑ष्पदः । तस्य॑ दे॒वस्य॑ क्रु॒द्धस्यै॒तदागो॒ य ए॒वं वि॒द्वांसं॑ ब्राह्म॒णं जि॒नाति॑ । उद् वे॑पय रोहित॒ प्र क्षि॑णीहि ब्रह्म॒ज्यस्य॒ प्रति॑ मुञ्च॒ पाशा॑न् ॥२४॥

पदार्थ—(यः) जो [परमेश्वर] (आत्मदाः) प्राणदाता और (बलदाः) बलदाता है, (यस्य यस्य) जिसके ही (प्रशिषम्) उत्तम शासन को (विश्वे) सब (देवाः) गतिमान् सूर्य चन्द्र आदि लोक (उपासते) मानते हैं । (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) दोपाये [समूह] का और (यः) जो (चतुष्पदः) चौपाये [समूह] का] (ईशे=ईष्टे) ईश्वर है । (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये (एतत्) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है । (रोहित) हे सर्वोत्पादक परमेश्वर [उस शत्रु को] (उद्वेपय) कम्पा दे, (प्र क्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सताने वाले के (पाशान्) फन्दों को (प्रति मुञ्च) बाँध दे ॥२४॥

एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात्।
चतुष्पाच्चक्रे द्विपदामभिस्वरे संपश्यन् पङ्क्तिमुपतिष्ठमानः। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२५॥

पदार्थ—(एकपात्) एकरस व्यापक परमेश्वर (द्विपदः) दो प्रकार की स्थिति वाले [जङ्गम-स्थावर जगत] से (भूयः) अधिक आगे (वि) फैलकर (चक्रमे) चला गया, (द्विपात्) दो [भूत भविष्यत्] में गतिवाला परमात्मा (पश्चात्) फिर (त्रिपादम्) तीन लोक में [सूर्य, भूमि अर्थात् प्रकाशमान और अप्रकाशमान और मध्यलोक में] (अभि) सब ओर से (एति) प्राप्त होता है। (चतुष्पात्) चारों [पूर्व आदि चारो दिशाओं] में व्यापक परमेश्वर ने (द्विपदाम्) दो प्रकार की स्थिति वाले [जङ्गम और स्थावरों] के (अभिस्वरे) सब ओर से पुकारने पर (उपतिष्ठमानः) समीप ठहरते हुए और (पङ्क्तिम्) पाति [सृष्टि की श्रेणी] को (संपश्यन्) निहारते हुए (चक्रे) [कर्त्तव्य को] किया है। (तस्य) उस (क्रुद्धस्य) क्रुद्ध (देवस्य) प्रकाशमान [ईश्वर] के लिये (एतत्) यह (आगः) अपराध है, [कि] (यः) जो मनुष्य (एवम्) ऐसे (विद्वांसम्) विद्वान् (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेदज्ञाता] को (जिनाति) सताता है। (रोहित) हे सर्वोत्पादक परमेश्वर [उस शत्रु को] (उद् वेपय) कपा दे, (प्र क्षिणीहि) नाश कर दे, (ब्रह्मज्यस्य) ब्रह्मचारी के सताने वाले के (पाशान्) फन्दों को (प्रति मुञ्च) बांध दे ॥२५॥

कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो राज्या वत्सोऽजायत।
स ह द्यामधि रोहति रुहो रुरोह रोहितः ॥२६॥

पदार्थ—(कृष्णायाः) कृष्ण वर्णवाली (राज्याः) रात्रि से [प्रलय की रात्रि के पीछे] (पुत्रः) शुद्ध करनेवाला (अर्जुनः) रस प्राप्त करने वाला, (वत्सः) निवास देनेवाला सूर्य [जिस परमेश्वर के नियम से] (अजायत) प्रकट हुआ है। (सः ह) वही (रोहितः) सब का उत्पन्न करनेवाला [परमेश्वर] (द्याम् अधि) उस सूर्य मे (रोहति) प्रकट होता है, उसने (रुहः) सृष्टि की सामग्रियों को (रुरोह) उत्पन्न किया है ॥२६॥

卐 इति तृतीयोऽनुवाकः 卐

卐

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ॥४॥ [१] 卐

[१] १-५६ ब्रह्मा। अध्यात्मम्, रोहितादित्यदैवतम्। त्रिष्टुप्, षट् पर्यायाः। (१—१३) ब्रह्मा। अध्यात्मम्। १—१३ प्राजापत्यानुष्टुप्, (१२ विराड् गायत्री, १३ आसुरी उष्णिक्।

स एति सविता स्वर्दिवस्पृष्ठेऽवचाकशत् ॥१॥

पदार्थ—(सः) वह (सविता) सब का प्रेरक [परमेश्वर] (दिवः) आकाश [वा व्यवहार] की (पृष्ठे) पीठ पर [वर्तमान होकर] (अवचाकशत्) देखता हुआ (स्वः) आनन्द को (एति) प्राप्त होता है ॥१॥

रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥२॥

पदार्थ—(महेन्द्रः) बड़ा ऐश्वर्यवान् (आवृतः) सब ओर से ढका हुआ [अन्तर्यामी परमेश्वर] (रश्मिभिः) किरणों द्वारा (आभृतम्) सब प्रकार पुष्ट किये हुए (नभः) मेघमण्डल मे (एति) व्यापक है ॥२॥

स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम्।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह [परमेश्वर] (धाता) पोषण करनेवाला और (सः) वह (विधर्ता) विविध प्रकार धारण करने वाला है, (सः) वह (वायुः) व्यापक [वा महाबली परमात्मा] और (उच्छ्रितम्) ऊंचा वर्तमान (नभः) प्रबन्धकर्ता [वा नायक ब्रह्म] है ॥३॥

सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥४॥

पदार्थ—(सः) वह [परमेश्वर] (अर्यमा) श्रेष्ठों का मान करने वाला, (सः) वह (वरुणः) श्रेष्ठ, (सः) वह (रुद्रः) ज्ञानवान् और (सः) वह (महादेवः) महादानी है ॥४॥

सो अग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥५॥

पदार्थ—(सः) वह [परमेश्वर] (अग्निः) व्यापक (स उ) वही (सूर्यः) प्रेरक, (स उ) वही (एव) निश्चय करके (महायमः) बड़ा न्यायकारी है ॥५॥

तं वत्सा उप तिष्ठन्त्येकशीर्षाणो युता दश।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥६॥

पदार्थ—(तम्) उस [परमात्मा] को (एकशीर्षाणः) एक [परमात्मा] को शिर [प्रधान] मानने वाले (दश) दस [चार दिशाओं, चार मध्य दिशाओं और ऊपर नीचे की दिशाओं से सम्बन्ध वाले] (युताः) मिले हुए (वत्साः) निवास स्थान [सब लोक] (उप तिष्ठन्ति) सेवते हैं ॥६॥

पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति वि भासति।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥७॥

पदार्थ—वे [सब लोक] [परमात्मा के] (पश्चात्) पीछे (प्राञ्चः) आगे बढ़ते हुए (आ) सब ओर से (तन्वन्ति) फैलते हैं, (यत्) जब वह (उदेति) उदय होता है और (वि भासति) विविध प्रकार चमकता है ॥७॥

तस्यैष मारुतो गणः स एति शिक्याकृतः ॥८॥

पदार्थ—(तस्य) उस का [परमेश्वर का बनाया हुआ] (एषः) यह (मारुतः) मनुष्यों का (गणः) समूह है, [क्योंकि] (सः) वह [परमेश्वर] (शिक्याकृतः) छीके में किये हुए सा (एति) व्यापक है ॥८॥

रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥९॥

पदार्थ—(महेन्द्रः) बड़ा ऐश्वर्यवान् (आवृतः) सब ओर से ढका हुआ [अन्तर्यामी परमेश्वर] (रश्मिभिः) किरणों द्वारा (आभृतम्) सब प्रकार पुष्ट किये हुए (नभः) मेघमण्डल मे (एति) व्यापक है ॥९॥

तस्येमे नव कोशा विष्टम्भा नवधा हिताः ॥१०॥

पदार्थ—(तस्य) उस [परमेश्वर] के (हिताः) धरे हुए [शरीर के] (इमे) ये (नव) नौ [दो कान, दो आंख, दो नथने, एक मुख, एक गुदा और एक उपस्थ] (कोशाः) आधार, (विष्टम्भाः) विशेष स्तम्भ [आलम्ब, सहारे] अपनी शक्तियों सहित] (नवधा) नव प्रकार से हैं ॥१०॥

स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ॥११॥

पदार्थ—(सः) वह [परमेश्वर] (प्रजाभ्यः) उत्पन्न जीवों के हित के लिये [उन सब को] (वि) विविध प्रकार (पश्यति) देखता है, (यत्) जो (प्राणति) श्वास लेता है (च च) और (यत्) जो (न) नहीं [श्वास लेता है] ॥११॥

तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ॥१२॥

पदार्थ—(इदम्) यह (सहः) सामर्थ्य (तम्) उस [परमात्मा] को (निगतम्) निश्चय करके प्राप्त है, (स एषः) वह आप (एकः) एक, (एकवृत्) अकेला वर्तमान, (एक एव) एक ही है ॥१२॥

एते अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति ॥१३॥

पदार्थ—(अस्मिन्) इस [परमात्मा] मे (एते) ये सब (देवाः) चलने वाले [पृथिवी आदि लोक] (एकवृतः) एक [परमात्मा] मे वर्तमान (भवन्ति) रहते हैं ॥१३॥

卐 सूक्तम् ४ [२] 卐

[२] १-८ (१४—२१) ब्रह्मा। अध्यात्मम्। १४ भुरिक्साम्नी त्रिष्टुप्, १५ आसुरी पङ्क्ति, १६, १९ प्राजापत्यानुष्टुप्; १७, १८ आसुरी गायत्री।

कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं
चान्नं चान्नाद्यं च ॥१४॥

पदार्थ—(कीर्तिः) कीर्ति [ईश्वर-गुणों के कीर्तन और विद्या आदि गुणों से बड़ाई] (च) और (यशः) यश [शूरता आदि से नाम] (च) और (अम्भः) पराक्रम (च) और (नभः) प्रबन्ध सामर्थ्य (च) और (ब्राह्मणवर्चसम्) ब्रह्मज्ञान का तेज (च) और (अन्नम्) अन्न (च च) और (अन्नाद्यम्) अन्न के समान खाने योग्य द्रव्य [उस पुरुष के लिये होते हैं] ॥१४॥

य एतं देवमेकवृतं वेद ॥१५॥

पदार्थ—(य) जो (एतम्) इस (देवम्) प्रकाशमय (एकवृतम्) अकेले वर्तमान [परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥१५॥

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ।

य एतं देवमेकवृतं वेद ॥१६॥

पदार्थ—वह [अकेला वर्तमान] (न) न (द्वितीय) दूसरा, (न) न (तृतीय) तीसरा, (न) न (चतुर्थ) चौथा (अपि) ही (उच्यते) कहा जाता है ॥१६॥

न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ।

य एतं देवमेकवृतं वेद ॥१७॥

पदार्थ—वह (न) न (पञ्चम) पांचवा, (न) न (षष्ठ) छठा, (न) न (सप्तम) सातवां (अपि) ही (उच्यते) कहा जाता है ॥१७॥

नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ।

य एतं देवमेकवृतं वेद ॥१८॥

पदार्थ—वह (न) न (अष्टम) आठवां, (न) न (नवम) नवां, (न) न (दशम) दसवां (अपि) ही (उच्यते) कहा जाता है ॥१८॥

स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ।

य एतं देवमेकवृतं वेद ॥१९॥

पदार्थ—(स) वह [परमेश्वर] (सर्वस्मै) सब [जगत] के हित के लिये [उस सब को] (वि) विविध प्रकार (पश्यति) देखता है, (यत्) जो (प्राणति) श्वास लेता है, (च च) और (यत्) जो (न) नहीं [श्वास लेता है] ॥१९॥

तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ।

य एतं देवमेकवृतं वेदं ॥२०॥

पदार्थ—(इदम्) यह (सहः) सामर्थ्य (तम्) उस [परमात्मा] को (निगतम्) निश्चय करके प्राप्त है, (सः एष) वह आप (एकः) एक, (एकवृत्) अकेला वर्तमान, (एक एव) एक ही है ॥२०॥

सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति । य एतं देवमेकवृतं वेद ॥२१॥

पदार्थ—(अस्मिन्) इस [परमात्मा] में (सर्वे) सब (देवाः) चलने वाले [पृथिवी आदि लोक] (एकवृत) एक [परमात्मा] में वर्तमान (भवन्ति) रहते हैं ॥२१॥

卐 सूक्तम् ४ [२] 卐

[२] १—७ (२२-२८) ब्रह्मा । अध्यात्मम् । २२ भुरिक्प्राजापत्या त्रिष्टुप्, २३ आर्ची गायत्री, २५ एकपदासुरी गायत्री, २६ आर्ची अनुष्टुप्, २७-२८ प्राजापत्यानुष्टुप् ।

ब्रह्म च तपश्च कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च । य एतं देवमेकवृतं वेद ॥२२॥

पदार्थ—(ब्रह्म) वेद (च) और (तपः) ऐश्वर्य (च) और (कीर्ति) [ईश्वरगुणों के कीर्तन और विद्या आदि गुणों से बड़ाई] (च) और (यश) यश [शूरता आदि से नाम] (च) और (अम्भ) पराक्रम (च) और (नभ) प्रबन्ध सामर्थ्य (च) और (ब्राह्मणवर्चसम्) ब्रह्मज्ञान का तेज (च) और (अन्नम्) अन्न (च च) और (अन्नाद्यम्) अन्न के समान खानेयोग्य द्रव्य ॥२२॥

भूतं च भव्यं च श्रद्धा च रुचिश्च स्वर्गश्च स्वधा च ॥२३॥

पदार्थ—(भूतम्) अतीत वस्तु (च) और (भव्यम्) होनहार वस्तु (च) और (श्रद्धा) श्रद्धा [विश्वास] (च) और (रुचिः) रुचि [प्रीति] (च) और (स्वर्गः) स्वर्ग [आनन्द] (च च) और (स्वधा) आत्मधारण शक्ति [उस पुरुष के लिये होते हैं] ॥२३॥

य एतं देवमेकवृतं वेद ॥२४॥

पदार्थ—(यः) जो (एतम्) इस (देवम्) प्रकाशमय (एकवृतम्) अकेले वर्तमान [परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥२४॥

स एव मृत्युः सोऽमृतं सोऽभ्वं स रक्षः ॥२५॥

पदार्थ—(स एव) वही [परमेश्वर] (मृत्यु) मरण करने वाला (सः) वही (अमृतम्) अमरपन का कारण, (सः) वही (अभ्वम्) महान् (सः) वही (रक्षः) रक्षा करने वाला [परब्रह्म] है ॥२५॥

स रुद्रो वसुवनिर्वसुदेये नमोवाके वषट्कारोऽनु संहितः ॥२६॥

पदार्थ—(स) वह (रुद्र) ज्ञानदाता, (वसुवनि) श्रेष्ठों का उपकारी [परमेश्वर] (वसुदेये) श्रेष्ठों द्वारा देने योग्य (नमोवाके) नमस्कार वचन में (वषट्कार) दान करने वाला (अनु) निरन्तर (संहितः) स्थापित है ॥२६॥

तस्येमे सर्वे यातव उप प्रशिषमासते ॥२७॥

पदार्थ—(इमे सर्वे) यह सब (यातव) चलने वाले [पृथिवी आदि लोक और प्राणी] (तस्य) उस [परमेश्वर] के (प्रशिषम्) उत्तम शासन को (उप आसते) मानते है ॥२७॥

तस्यामू सर्वा नक्षत्रा वशे चन्द्रमसा सह ॥२८॥

पदार्थ—(तस्य) उस [परमात्मा] के (वशे) वश में (अमू) वे (सर्वा) सब (नक्षत्रा) नक्षत्र [चलनेवाले तारागण] (चन्द्रमसा सह) चन्द्रमा के साथ [वर्तमान हैं] ॥२८॥

卐 सूक्तम् ४ [३] 卐

[३] १—१७ (२९—४५) २९, ३३, ब्रह्मा अध्यात्मम् ३९, ४०, ४५, आसुरी गायत्री, ३०, ३२, ३५, ३६, ४२ प्राजापत्यनुष्टुप्, ३१ विराड् गायत्री, ३४, ३७, ३८ साम्न्युष्णिक् ४१ साम्नी बृहती, ४३ आर्षी गायत्री, ४४ साम्न्यनुष्टुप् ॥

स वा अह्नोऽजायत तस्मादहरजायत ॥२९॥

पदार्थ—(स) वह [कारणरूप परमात्मा] (वै) अवश्य (अह्नः) [कार्यरूप] दिन से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [कारणरूप] से (अहः) [कार्यरूप] दिन (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥२९॥

स वै रात्र्या अजायत तस्माद् रात्रिरजायत ॥३०॥

पदार्थ—(स) वह [कारणरूप ईश्वर] (वै) अवश्य (रात्र्या) [कार्यरूप] रात्रि से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [कारणरूप] से (रात्रि) रात्रि (अजायत) उत्पन्न हुई है ॥३०॥

स वा अन्तरिक्षादजायत तस्मादन्तरिक्षमजायत ॥३१॥

पदार्थ—(स) वह [कारणरूप ईश्वर] (वै) अवश्य (अन्तरिक्षात्) [कार्यरूप] अन्तरिक्ष से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [कारणरूप] से (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥३१॥

स वै वायोरजायत तस्माद् वायुरजायत ॥३२॥

पदार्थ—(स) वह [कारणरूप ईश्वर] (वै) अवश्य (वायो) कार्यरूप पवन से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [कारणरूप] से (वायुः) पवन (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥३२॥

स वै दिवोऽजायत तस्माद् द्यौरध्यजायत ॥३३॥

पदार्थ—(स) वह [कारणरूप ईश्वर] (वै) अवश्य (दिव) [कार्यरूप] सूर्य से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [कारणरूप] से (द्यौ) सूर्य (अधि) यथाविधि (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥३३॥

स वै दिग्भ्योऽजायत तस्माद् दिशोऽजायन्त ॥३४॥

पदार्थ—(स) वह [कारणरूप ईश्वर] (वै) अवश्य (दिग्भ्य) [कार्यरूप] दिशाओं से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [कारणरूप] से (दिश) दिशायें (अजायन्त) उत्पन्न हुई है ॥३४॥

स वै भूमेरजायत तस्माद् भूमिरजायत ॥३५॥

पदार्थ—(स) वह [कारणरूप ईश्वर] (वै) अवश्य (भूमेः) [कार्यरूप] भूमि से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [कारणरूप] से (भूमि) भूमि (अजायत) उत्पन्न हुई है ॥३५॥

स वा अग्नेरजायत तस्मादग्निरजायत ॥३६॥

पदार्थ—(स) वह [कारणरूप ईश्वर] (वै) अवश्य (अग्ने) [कार्यरूप] अग्नि से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [कारणरूप] से (अग्निः) अग्नि [सूर्य, बिजुली आदि तेज] (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥३६॥

स वा अद्भ्योऽजायत तस्मादापोऽजायन्त ॥३७॥

पदार्थ—(सः) वह [कारणरूप ईश्वर] (वै) अवश्य (अद्भ्यः) [कार्यरूप] जल से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [कारणरूप] से (आपः) [वृष्टि, नदी, कूप आदि के] जल (अजायन्त) उत्पन्न हुए हैं ॥३७॥

स वा ऋग्भ्योऽजायत तस्मादृचोऽजायन्त ॥३८॥

पदार्थ—(सः) वह [परमात्मा] (वै) अवश्य (ऋग्भ्यः) ऋचाओं [स्तुति योग्य वेदवाणियों] से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [परमात्मा] से (ऋचः) ऋचायें (अजायन्त) उत्पन्न हुई हैं ॥३८॥

स वै यज्ञादजायत तस्माद् यज्ञोऽजायत ॥३९॥

पदार्थ—(सः) [परमात्मा] (वै) अवश्य (यज्ञात्) यज्ञ [संयोग-वियोग व्यवहार] से (अजायत) प्रकट हुआ है, (तस्मात्) उस [परमात्मा] से (यज्ञः) यज्ञ [संयोग-वियोग व्यवहार] (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥३९॥

स यज्ञस्तस्य यज्ञः स यज्ञस्य शिरस्कृतम् ॥४०॥

पदार्थ—(सः) वह [परमात्मा] (यज्ञः) संयोग-वियोग करने वाला है, (तस्य) उस [परमात्मा] का (यज्ञः) संयोग-वियोग व्यवहार है (सः) वह [परमात्मा] (यज्ञस्य) संयोग-वियोग व्यवहार का (शिरः) शिर [प्रधान] (कृतम्) किया गया है ॥४०॥

स स्तनयति स वि द्योतते स उ अश्मानमस्यति ॥४१॥

पापाय वा भद्राय वा पुरुषायासुराय वा ॥४२॥

पदार्थ—(सः) वह [परमात्मा] (भद्राय) श्रेष्ठ (पुरुषाय) पुरुष के लिये (वा) अवश्य (वि) विविध प्रकार (द्योतते) प्रकाशमान होता है, (सः) वह (पापाय) पापी के लिये (वा) अवश्य (स्तनयति) मेघ के समान [भयानक] गरजता है, (सः उ) वही (असुराय) असुर [विद्वानों के विरोधी] के लिये (वा) अवश्य (अश्मानम्) पत्थर (अस्यति) गिराता है ॥४१,४२॥

यद्वा कृणोष्योषधीर्यद्वा वर्षसि भद्रया यद्वा जन्यमवीवृधः ॥४३॥

पदार्थ—(यत्) क्योंकि [हे परमेश्वर !] तू (वा) अवश्य (ओषधीः) ओषधियों [सोमलता अन्नादिकों] को (कृणोषि) बनाता है, (यत्) क्योंकि तू (वा) अवश्य (भद्रया) उत्तमता से (वर्षसि) मेह बरसाता है, और (यत्) क्योंकि तू ने (वा) अवश्य (जन्यम्) उत्पन्न होते हुए [जगत्] को (अवीवृधः) बढ़ाया है ॥४३॥

तावांस्ते मघवन् महिमोपो ते तन्वः शतम् ॥४४॥

पदार्थ—[उसी से,] (मघवन्) हे महाधनी ! [परमेश्वर] (तावान्) उतनी [बड़ी] (ते) तेरी (महिमा) महिमा है, (उपो) और भी (ते) तेरी (तन्वः) उपकार-शक्तियां (शतम्) सौ [असंख्य] हैं ॥४४॥

उपो ते बद्धे बद्धानि यदि वासि न्यर्बुदम् ॥४५॥

पदार्थ—(उपो) और भी (ते) तेरे (बद्धे) नियम में [सब सत्ता वाले] (बद्धानि) बंधे हुए हैं (यदि) क्योंकि तू (वा) अवश्य (न्यर्बुदम्) निरन्तर व्यापक [ब्रह्म] (असि) है ॥४५॥

卐 सूक्तम् ॥ ४ ॥ [५] 卐

[५] १-१६ (४६—५१) ब्रह्मा । अध्यात्मम् । ४६ आसुरी गायत्री, ४७, यवमध्या गायत्री, ४८ साम्न्युष्णिक्, ४९ निचृत् साम्नी बृहती, ५० प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ५१ विराड् गायत्री ।

भूयानिन्द्रो नमुराद् भूयानिन्द्रासि मृत्युभ्यः ॥४६॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् तू (नमुरात्) न मरने वाले [नित्य परमाणुरूप जगत्] से (भूयान्) अधिक बलवान् है, (इन्द्र) हे परम ऐश्वर्यवाले ! तू (मृत्युभ्यः) मरण वालों से [अनित्य कार्यरूप जगत्] से (भूयान्) अधिक बलवान् (असि) है ॥४६॥

भूयानरात्याः शच्याः पतिस्त्वमिन्द्रासि विभूः

प्रभूरिति त्वोपास्महे वयम् ॥४७॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परम ऐश्वर्यवाले [परमात्मन् !] (त्वम्) तू (अरात्याः) शत्रु से (भूयान्) अधिक बलवान्, (शच्याः) वाणी, कर्म वा बुद्धि का (पतिः) पति, (विभूः) व्यापक और (प्रभूः) समर्थ (असि) है, (इति) इस प्रकार से (वयम्) हम (त्वा उप आस्महे) तेरी उपासना करते हैं ॥४७॥

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥४८॥

अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥४९॥

पदार्थ—(पश्यत) हे देखनेवाले [जगदीश्वर !] (ते) तेरे लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, (पश्यत) हे देखने वाले ! (मा) मुझको (अन्नाद्येन) भोजनयोग्य अन्न आदि के साथ, (यशसा) यश [शूरता आदि से पाये हुए नाम] के साथ, (तेजसा) तेज [निर्भयता, प्रताप] के साथ और (ब्राह्मणवर्चसेन) वेदज्ञान के बल के साथ (पश्य) देख ॥४८,४९॥

अम्भो अमो महः सह इति त्वोपास्महे वयम् ॥

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।

अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥५०॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] [तू (अम्भः) व्यापक, (अमः) ज्ञानस्वरूप, (महः) पूज्य और (सहः) सहनस्वभाव [ब्रह्म] है (इति) इस प्रकार से (वयम्) हम (त्वा उप आस्महे) तेरी उपासना करते हैं (पश्यत) हे देखनेवाले [जगदीश्वर !] (ते) तेरे लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, (पश्यत) हे देखनेवाले ! (मा) मुझको (अन्नाद्येन) भोजनयोग्य अन्न आदि के साथ, (यशसा) यश [शूरता आदि से पाये हुए नाम] के साथ, (तेजसा) तेज [निर्भयता, प्रताप] के साथ और (ब्राह्मणवर्चसेन) वेदज्ञान के बल के साथ (पश्य) देख ॥५०॥

अम्भो अरुणं रजतं रजः सह इति त्वोपास्महे वयम् ।

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।

अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥५१॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] तू (अम्भः) व्यापक (अरुणम्) ज्ञानस्वरूप, (रजतम्) प्रीति का हेतु आनन्दस्वरूप, (रजः) ज्योति स्वरूप और (सहः) सहनशील [ब्रह्म] है, (इति) इस प्रकार से (वयम्) हम (त्वा उप आस्महे) तेरी उपासना करते हैं । (पश्यत) हे देखनेवाले [जगदीश्वर !] (ते) तेरे लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, (पश्यत) हे देखनेवाले ! (मा) मुझको (अन्नाद्येन) भोजनयोग्य अन्न आदि के साथ, (यशसा) यश [शूरता आदि से पाये हुए नाम] के साथ, (तेजसा) तेज [निर्भयता, प्रताप] के साथ और (ब्राह्मणवर्चसेन) वेदज्ञान के बल के साथ (पश्य) देख ॥५१॥

卐 सूक्तम् ॥ ४ ॥ [६] 卐

१—५२-५६ ब्रह्मा अध्यात्मम् । ५२, ५३ प्राजापत्याऽनुष्टुप्, ५४ द्विपदार्षी गायत्री ।

उरुः पृथुः सुभूर्भुव इति त्वोपास्महे वयम् ।

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।

अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥५२॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] तू (उरुः) विशाल, (पृथुः) विस्तृत (सुभूः) अच्छे प्रकार वर्तमान [ईश्वर] और (भुवः) व्यापक वा शुद्ध ब्रह्म है, (इति) इस प्रकार से (वयम्) हम (त्वा उप आस्महे) तेरी उपासना करते हैं । (पश्यत) हे देखनेवाले [जगदीश्वर !] (ते) तेरे लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, (पश्यत) हे देखनेवाले ! (मा) मुझको (अन्नाद्येन) भोजनयोग्य अन्न आदि के साथ, (यशसा) यश [शूरता आदि से पाये हुए नाम] के साथ, (तेजसा) तेज [निर्भयता, प्रताप] के साथ और (ब्राह्मणवर्चसेन) वेदज्ञान के बल के साथ (पश्य) देख ॥५२॥

प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महे वयम् ।

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।

अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥५३॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] तू (प्रथः) प्रसिद्ध (वरः) श्रेष्ठ, (व्यचः) यथावत् मिला हुआ [ब्रह्म] और (लोकः) देखने योग्य [ईश्वर] है (इति) इस प्रकार से (वयम्) हम (त्वा उप आस्महे) तेरी उपासना करते हैं । (पश्यत) हे देखनेवाले [जगदीश्वर !] (ते) तेरे लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, (पश्यत) हे देखनेवाले ! (मा) मुझको (अन्नाद्येन) भोजनयोग्य अन्न आदि के साथ, (यशसा) यश [शूरता आदि से पाये हुए नाम] के साथ, (तेजसा) तेज [निर्भयता, प्रताप] के साथ और (ब्राह्मणवर्चसेन) वेदज्ञान के बल के साथ (पश्य) देख ॥५३॥

भवद्वसुरिदद्वसुः संयद्वसुरायद्वसुरिति त्वोपास्महे वयम् ॥५४॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] तू (भवद्वसुः) धन प्राप्त कराने वाला, (इदद्वसुः) श्रेष्ठ पुरुषों को ऐश्वर्यवान् करने वाला, (संयद्वसुः) पृथिवी आदि लोकों को नियम में रखने वाला (आयद्वसुः) निवास साधनों का फैलाने वाला है (इति) इस प्रकार से (वयम्) हम (त्वा उप आस्महे) तेरी उपासना करते हैं ॥५४॥

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥५५॥
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥५६॥

पदार्थ—(पश्यत) हे देखने वाले [जगदीश्वर] (ते) तेरे लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, (पश्यत) हे देखने वाले (मा) मुझ को (अन्नाद्येन) भोजन योग्य अन्न आदि के साथ, (यशसा) यश [शूरता आदि से पाये हुए नाम] के साथ, (तेजसा) तेज [निर्भयता, प्रताप] के साथ (ब्राह्मणवर्चसेन) वेदज्ञान के साथ (पश्य) देख ॥५५, ५६॥

॥ त्रयोदशं काण्डं समाप्तम् ॥

卐

अथ चतुर्दशं काण्डम्

प्रथमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् १ 卐

१—६४ सूर्या सावित्री । आत्मा, १—५ सोम, स्वविवाह, २३ सोमार्कौ, २४ चन्द्रमा २५ नृणां विवाहमन्त्राशिष, २५, २७ वधूवास संस्पर्शमोचनम् । अनुष्टुप्, १० विराट् प्रस्तार पंक्ति, १५ आस्तारपंक्तिः, १९, २०, २३, २४, ३१—३३, ३७, ३९-४०, ४५, ४७, ४९ ५०, ५३, ५६, ५७, ५८, ५९, ६१, त्रिष्टुप् (२३, ४१, ४२ बृहतीगर्भा), २१, ४६, ५४, ६४ जगती (५१, ५४ भुरिक् त्रिष्टुप्), २९, ५५ पुरस्ताद् बृहती, ३४ प्रस्तार पंक्ति, ३८ पुरोबृहती त्रिपदा परोष्णिक्, (४८ पथ्यापंक्तिः) ६० परानुष्टुप् ।

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥१॥

पदार्थ—(सत्येन) सत्यस्वरूप परमेश्वर द्वारा (भूमिः) भूमि (उत्तभिता) [आकाश में] उत्तमता से थामी गयी है, और (सूर्येण) सूर्यलोक द्वारा (द्यौः) प्रकाश (उत्तभिता) उत्तम रीति से थामा गया है । (ऋतेन) सत्य नियम द्वारा (आदित्याः) प्रकाशमान किरणें [वा अखण्ड सूक्ष्म परमाणु] (तिष्ठन्ति) ठहरते हैं, और (दिवि) [सूर्य के] प्रकाश में (सोमः) चन्द्रमा (अधि) यथावत् (श्रितः) ठहरा हुआ है ॥१॥

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥२॥

पदार्थ—(सोमेन) चन्द्रमा के साथ (आदित्याः) सूर्य की किरणें (बलिनः) बलवान [होती हैं] और (सोमेन) चन्द्रमा [के प्रकाश] के साथ (पृथिवी) पृथिवी (मही) बलवती अर्थात् पुष्ट [होती है] । (अथो) और भी (एषाम्) इन (नक्षत्राणाम्) चलने वाले तारागणों के (उपस्थे) समीप में (सोमः) चन्द्रमा (आहितः) ठहराया गया है ॥२॥

सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिंषन्त्योषधिम् ।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति पार्थिवः ॥३॥

पदार्थ—(सोमम्) चन्द्रमा [के अमृत] को (पपिवान्) मैंने पी लिया, [यह बात मनुष्य] (मन्यते) मानता है, (यत्) जब (ओषधिम्) ओषधि [अन्न, सोमलता आदि] को (संपिंषन्ति) वे [मनुष्य] पीते हैं । (यम्) जिस (सोमम्) जगत्स्रष्टा परमात्मा को (ब्रह्माणः) ब्रह्मज्ञानी लोग (विदुः) जानते हैं, (तस्य) उसका [अनुभव] (पार्थिवः) पृथिवी [के विषय] में आसक्त पुरुष (न) नहीं (अश्नाति) भोगता है ॥३॥

यत् त्वा सोम प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥४॥

पदार्थ—(सोम) हे चन्द्रमा ! (यत्) जब (त्वा) तुझ को (प्रपिबन्ति) वे [किरणें] पी जाती हैं, (ततः) तब (पुनः) फिर (आ प्यायसे) तू परिपूर्ण हो जाता है । (वायुः) पवन (सोमस्य) चन्द्रमा का (रक्षिता) रक्षक है और (मासः) सब का परिमाण करने वाला [परमेश्वर] (समानाम्) अनुकूल क्रियाओं का (आकृतिः) बनाने वाला है ।

आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥५॥

पदार्थ—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमेश्वर (आच्छद्विधानैः) ढक लेने वाले विधानों से (गुपितः) गुप्त [अन्तर्धान] किया गया और (बार्हतैः) वेदवाणियों द्वारा कहे गये नियमों से (रक्षितः) रक्षा किया गया, (ग्राव्णाम्) विद्वानों की [प्रार्थना] (इत्) अवश्य (शृण्वन्) सुनता हुआ तू (तिष्ठसि) ठहरता है, (पार्थिवः) पृथिवी [के विषयों] में आसक्त पुरुष (ते) तेरे [अनुभव को] (न) नहीं (अश्नाति) भोगता है ॥५॥

चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् ।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम् ॥६॥

पदार्थ—(चित्तिः) चेतना [कन्या की] (उपबर्हणम्) छोटी ओढ़नी [के समान] (आः) होवे (चक्षुः) दर्शन-सामर्थ्य (अभ्यञ्जनम्) उबटन [शरीर पर मलने के द्रव्य के तुल्य] (आः) होवे (द्यौः) आकाश और (भूमिः) भूमि (कोशः) निधिमञ्जूषा [पटी पिटारी के समान] (आसीत्) होवे, (यत्) जब (सूर्या) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] कन्या (पतिम्) पति को (अयात्) प्राप्त होवे ॥६॥

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी ।
सूर्याया भद्रमिद् वासो गाथयैति परिष्कृता ॥७॥

पदार्थ—(रैभी) वेदवाणी (सूर्यायाः) प्रेरणा करनेवाली [वा सूर्य की चमक के समान तेजवाली] कन्या की (अनुदेयी) साथिन [के समान] और (नाराशंसी) मनुष्यों के गुणों की स्तुति (न्योचनी) नीची [छोटी सहेली के समान] (आसीत्) हो । और (भद्रम्) शुभ कर्म (इत्) ही (वासः) वस्त्र [के समान] हो [क्योंकि वह] (गाथया) गानेयोग्य वेदविद्या से (परिष्कृता) सजी हुई (एति) चलती है ॥७॥

स्तोमा आसन् प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगवः ॥८॥

पदार्थ—(स्तोमाः) स्तुतियोग्य गुण (सूर्यायाः) प्रेरणा करनेवाली [वा सूर्य की चमक के समान तेजवाली] कन्या के (प्रतिधयः) वस्त्रों के अञ्चल [के समान] (आसन्) हों, (कुरीरम्) कर्तव्य कर्म और (छन्दः) आनन्दप्रद वेद (ओपशः) मुकुट [के समान हो] और (अग्निः) अग्नि [शारीरिक और बाहिरी अग्नि द्वारा स्वास्थ्य, शिल्प, यज्ञ आदि विधान] (पुरोगवः) अगुआ [पुरोहित समान] (आसीत्) हो, [जब कि] (अश्विना) विद्या को प्राप्त दोनों [वधू-वर] (वरा) परस्पर चाहने वाले [वा श्रेष्ठ गुणवाले] हों ॥८॥

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा ।
सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात् ॥९॥

पदार्थ—(सोमः) शुभगुणयुक्त ब्रह्मचारी (वधूयुः) वधू की कामना करने हारा (अभवत्) हो, (उभा) दोनों (अश्विना) विद्या को प्राप्त [वधू वर] (वरा) परस्पर चाहनेवाले [वा श्रेष्ठ गुणवाले] (आस्ताम्) हों, (यत्) जब (पत्ये) पति के लिये (मनसा) मन से (शंसन्तीम्) गुणकीर्तन करती हुई (सूर्याम्) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेजवाली] कन्या को (सविता) जगत् का उत्पादक परमात्मा (अददात्) देवे ॥९॥

मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत च्छदिः ।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात् सूर्या पतिम् ॥१०॥

पदार्थ—(मनः) मन (अस्याः) इस [ब्रह्मचारिणी] का (अनः) रथ [के समान] (आसीत्) होवे, (उत) और (द्यौः) सूर्य का प्रकाश (छदिः) छत [के समान] (आसीत्) होवे । (शुक्रौ) दोनों वीर्यवान् [वधूवर] (अनड्वाहौ) रथ चलाने वाले दो बैल [के समान] (आस्ताम्) होवें, (यत्) जब (सूर्या)

प्रेरणा करने वाली वा सूर्य की चमक के समान तेजवाली] कन्या (पतिम्) पति को (अयात्) प्राप्त होवे ॥१०॥

ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावैताम् ।

श्रोत्रे ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥११॥

पदार्थ—(ऋक्सामाभ्याम) पदार्थों की स्तुति और मोक्षज्ञान द्वारा (अभिहितौ) कहे गये [दो प्रकार के बोध] (गावौ) दो बैल [रथ के दो बैलो के समान] (ते) तेरे (सामनौ = समानौ) अनुकूल (ऐताम्) चलें । (ते) तेरे (श्रोत्रे) दोनो कान (चक्रे) दो पहियों [के समान] (आस्ताम्) होवें, (दिवि) प्रत्येक व्यवहार मे (पन्था) मार्ग (चराचरः) चलाचल [रहे] ॥११॥

शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।

अनो मनस्मयं सूर्यारोहत् प्रयती पतिम् ॥१२॥

पदार्थ—(यात्या ते) तुझ चलती हुई के (शुची) दो शुद्ध [कान] (चक्रे) दो पहियो [के समान हों] और (व्यानः) व्यान [सवशरीर व्यापक वायु] (अक्षः) धुरा [के समान] (आहतः) [पहियो मे] लगा हो । (पतिम्) पति के पास को (प्रयती) चलती हुई (सूर्या) प्रेरणा करनेवाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] कन्या (मनस्मयम्) मनोमय [विचाररूप] (अनः) रथ पर (आ अरोहत्) चढ़े ॥१२॥

सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत् ।

मघासु हन्यन्ते गावः फल्गुनीषु व्युह्यते ॥१३॥

पदार्थ—(सूर्यायाः) प्रेरणा करने वाली [या सूर्य की चमक के समान तेज वाली] कन्या का (वहतुः) दाय [यौतुक, कन्या को दिया पदार्थ] (प्र अगात्) सन्मुख चले, (यम्) जिस [पदार्थ] को (सविता) जन्मदाता पिता (अव असृजत) दान करे । (मघासु) सत्कार-क्रियाओं मे (गावः) वाचायें (हन्यन्ते) चलें, और वह [वधू] (फल्गुनीषु) सफल क्रियाओं के बीच (वि उह्यते) ले जाई जावे ॥१३॥

यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः ।

क्वैकं चक्रं वामासीत् क्व देष्ट्राय तस्थथुः ॥१४॥

पदार्थ—(अश्विना) हे विद्या को प्राप्त [दोनो स्त्री-पुरुष समूह !] (यत्) जब (सूर्यायाः) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेजवाली] कन्या के (वहतुम्) विवाह का (पृच्छमानौ) पूछते हुए [तुम दोनो] (त्रिचक्रेण) अपने तीन पहिये वाले [कर्म, उपासना, और ज्ञान वाले रथ] से (अयातम्) पहुचो । (क्व) कहा पर (वाम्) तुम दोनो का (एकम्) एक [आत्मबोधरूप] (चक्रम्) पहिया (आसीत्) रहे, (क्व) कहा पर (देष्ट्राय) उपदेश के लिए (तस्थथुः) आप दोनो ठहरें ॥१४॥

यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप ।

विश्वे देवा अनु तद् वामजानन् पुत्रः पितरमवृणीत पूषा ॥१५॥

पदार्थ—(शुभः पती) हे शुभ क्रिया के पालन करनेवाले [स्त्री पुरुष समूह !] तुम दोनो (यत्) जब (सूर्याम् = सूर्यायाः) प्रेरणा करनेवाली [वा सूर्य की चमक के समान तेजवाली] कन्या के (वरेयम्) श्रेष्ठ कर्म मे (उप) आदर से (अयातम्) पहुँचो । (विश्वे देवाः) सब विद्वान् लोग (वाम्) तुम दोनो के (तत्) उस [कर्म] मे (अनु अजानन्) सम्मति दें [कि] (पूषा) पोषण करनेवाला (पुत्रः) पुत्र (पितरम्) पिता को (अवृणीत) स्वीकार करे ॥१५॥

द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः ।

अथैकं चक्रं यद् गुहा तदद्धातय इद् विदुः ॥१६॥

पदार्थ—(सूर्ये) हे प्रेरणा करनेवाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] कन्या ! (ते) तेरे (द्वे) दो [कर्म और उपासना रूप] (चक्रे) पहियो को (ब्रह्माण) ब्रह्मज्ञानी लोग (ऋतुथा) सब ऋतुओ में (विदुः) जानते हैं । (अथ) और (एकम्) एक [ज्ञानरूप] (चक्रम्) पहिया (यत्) जो (गुहा) हृदय मे है, (तत्) उस को (अद्धातयः) सत्य ज्ञान वाले पुरुष (इत्) हि (विदुः) जानते हैं ॥१६॥

अर्यमणं यजामहे सुबन्धुं पतिवेदनम् ।

उर्वारुकमिव बन्धनात् प्रेतो मुञ्चामि नामुतः ॥१७॥

पदार्थ—(सुबन्धुम्) सुन्दर बन्धु, (पतिवेदनम्) रक्षक पति के ज्ञान कराने हारे वा देने हारे (अर्यमणम्) श्रेष्ठो के मान करने हारे परमात्मा को (यजामहे) हम पूजते हैं । (उर्वारुकम् इव) ककड़ी को जैसे (बन्धनात्) लता बन्धन से, [वैसे दोनो वधू-वर को] (इतः) इस [वियोग पाश] से (प्र मुञ्चामि) मैं [विद्वान्] छुड़ाता हूँ, (अमुतः) उस [प्रेम पाश] से (न) नहीं [छुड़ाता] ॥१७॥

प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम् ।

यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥१८॥

पदार्थ—(इतः) इस [वियोग पाश] से [इस वधू को] (प्र मुञ्चामि) मैं [वर] अच्छे प्रकार छुड़ाता हूँ, (अमुतः) [उस प्रेम पाश] से (न) नहीं [छुड़ाता], (अमुतः) उस [प्रेम पाश] मे [इस वधू] को (सुबद्धाम्) अच्छे बन्धनयुक्त (करम्) मैं करता हूँ । (यथा) जिस से (मीढ्वः) हे सुख की वर्षा करने वाले (इन्द्र) परम ऐश्वर्यवाले परमात्मन् ! (इयम्) यह [वधू] (सुपुत्रा) सुन्दर पुत्रो वाली और (सुभगा) बड़े ऐश्वर्य वाली (असति) होवे ॥१८॥

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः ।

ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके स्योनं ते अस्तु सहसंभलायै ॥१९॥

पदार्थ—[हे वधू !] (त्वा) तुझे (वरुणस्य) रुकावट के (पाशात्) बन्धन से (प्र मुञ्चामि) मैं [वर] अच्छे प्रकार छुड़ाता हूँ, (येन) जिसके साथ (त्वा) तुझे (सुशेवाः) अत्यन्त सेवायोग्य (सविता) जन्मदाता पिता ने (अबध्नात्) बांधा है । (ऋतस्य) सत्य नियम के (योनौ) घर मे और (सुकृतस्य) सुकृत [पुण्य कर्म] के (लोके) समाज मे (सहसंभलायै) सहेलियो सहित वर्तमान (ते) तेरे लिये (स्योनम्) आनन्द (अस्तु) होवे ॥१९॥

भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।

गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥२०॥

पदार्थ—[हे वधू !] (भगः) ऐश्वर्यवान् वर (त्वा) तुझे (इतः) यहां से (हस्तगृह्य) हाथ पकड़ कर (नयतु) ले चले, (अश्विना) विद्या को प्राप्त दोनों [स्त्री पुरुष समूह] (त्वा) तुझे (रथेन) रथ द्वारा (प्र वहताम्) अच्छे प्रकार ले चलें । (गृहान्) घरो मे (गच्छ) पहुँच, (यथा) जिससे (गृहपत्नी) गृहपत्नी [घर की स्वामिनी] (असः) तू होवे और (वशिनी) वश मे करने वाली (त्वम्) तू (विदथम्) सभागृह मे (आ वदासि) बातचीत करे ॥२०॥

इह प्रियं प्रजायै ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।

एना पत्या तन्वं सं स्पृशस्वाथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥२१॥

पदार्थ—[हे वधू !] (इह) इस [पति कुल मे (ते) तेरा (प्रियम्) हित (प्रजायै) प्रजा [सन्तान, सेवक आदि] के लिये (सम्) अच्छे प्रकार (ऋध्यताम्) बढ़े (अस्मिन् गृहे) इस घर मे (गार्हपत्याय) गृहपत्नी के कार्य के लिये (जागृहि) तू जागती रह [सावधान रह] । (एना पत्या) इस पति के साथ (तन्वम्) श्रद्धा को (सं स्पृशस्व) संयुक्त कर, (अथ) और (जिर्विः) स्तुतियोग्य तू (विदथम्) सभागृह मे (आ वदासि) बातचीत कर ॥२१॥

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।

क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥२२॥

पदार्थ—[हे वधूवर !] (इह एव) यहां [गृहाश्रम के नियम मे] ही (स्तम्) तुम दोनों रहो, (मा वि यौष्टम्) कभी अलग मत होओ, और (पुत्रैः) पुत्रो के साथ तथा (नप्तृभिः) नातियों के साथ (क्रीडन्तौ) क्रीडा करते हुए, (मोदमानौ) हर्ष मनाते हुए और (स्वस्तकौ) उत्तम घर वाले तुम दोनो (विश्वम् आयुः) संपूर्ण आयु को (वि अश्नुतम्) प्राप्त होओ ॥२२॥

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।

विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः ॥२३॥

पदार्थ—(एतौ) ये दोनो [सूर्य, चन्द्रमा] (पूर्वापरम्) आगे-पीछे (मायया) बुद्धि से [ईश्वर नियम से] (चरतः) विचरते हैं, (क्रीडन्तौ) खेलते हुए (शिशू) दो बालक [जैसे] (अर्णवम्) अन्तरिक्ष मे (परि) सब ओर (यातः) चलते हैं । (अन्यः) एक [सूर्य] (विश्वा) सब (भुवना) भुवनों को (विचष्टे) देखता है, (अन्यः) दूसरा तू [चन्द्रमा] (ऋतून्) ऋतुओं को [अपनी गति से] (विदधत्) बनाता हुआ [शुक्ल पक्ष मे] (नवः) नवीन (जायसे) प्रकट होता है ॥२३॥

नवोनवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम् ।

भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः ॥२४॥

पदार्थ—(चन्द्रमः) हे चन्द्रमा ! तू [शुक्ल पक्ष मे] (नवोनवः) नया नया (जायमानः) प्रकट होता हुआ (भवसि) रहता है, और (अह्नाम्) दिनो का (केतुः) जतानेवाला तू (उषसाम्) उषाओ [प्रभात वेलाओं] के (अग्रम्) आगे (एषि) चलता है और (आयन्) आता हुआ तू (देवेभ्यः) उत्तम पदार्थों को (भागम्) सेवनीय उत्तम गुण (वि दधासि) विविध प्रकार देता है और (दीर्घम्) लम्बे (आयुः) जीवन काल को (प्र) अच्छे प्रकार (तिरसे) पार लगाता है ॥२४॥

परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।

कृत्यैषा पद्वती भूत्वा जाया विशते पतिम् ॥२५॥

पदार्थ—[हे वर !] (शामुल्यम्) [हृदय की] मलीनता (परा देहि) दूर कर दे, (ब्रह्मभ्य) विद्वानो को (वसु) सुन्दर वस्तु (विभज) बांट । (एषा) यह (कृत्या) कर्तव्य कुशल (जाया) पत्नी (पद्वती) ऐश्वर्यवती (भूत्वा) होकर (पतिम्) पति मे (आविशते) आकर प्रवेश करती है ॥२५॥

नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते ।

एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥२६॥

पदार्थ—(नीललोहितम्) निधियो का प्रकाश (भवति) होता है, [जब कि] (कृत्या = कृत्यायाः) कर्तव्यकुशल [पत्नी] की (आसक्तिः) प्रीति (वि अज्यते) प्रसिद्ध होती है । (अस्याः) इस [वधू] के (ज्ञातयः) कुटुम्बी लोग (एधन्ते) बढ़ते हैं, और (पतिः) पति (बन्धेषु) [वधू के साथ प्रेम के] बन्धनों मे (बध्यते) बंध जाता है ॥२६॥

अश्लीला तनूर्भवति रुशती पापयामुया ।

पतिर्यद् वध्वो३ वाससः स्वमङ्गमभ्यूर्णुते ॥२७॥

पदार्थ—(रुशती) चमकता हुआ (तनूः) रूप (अमुया) उस (पापया) पाप क्रिया से (अश्लीला) अश्लील [हतश्री] (भवति) हो जाता है, (यत्) जब कि (पतिः) पति (वध्वः) वधू के (वाससः) वस्त्र से (स्वम् अङ्गम्) अपने अङ्ग को (अभ्यूर्णुते) ढक लेता है ॥२७॥

आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् ।

सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मोत शुम्भति ॥२८॥

पदार्थ—(सूर्यायाः) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] कन्या की (आशसनम्) प्रशंसा [अप्राप्त के पाने की इच्छा], (विशसनम्) विशंसा [प्राप्त का शुभ कर्मों मे व्यय] (अथो) और भी (अधिविकर्तनम्) अधिकार-पूर्वक विघ्नों का छेदन, (रूपाणि) इन रूपो [सुन्दर लक्षणो] को (पश्य) तू देख, (तानि) उन [सुन्दर लक्षणो] को (ब्रह्मा) ब्रह्मा [वेदवेत्ता पति] (उत) ही (शुम्भति) शोभायमान करता है ॥२८॥

तृष्टमेतत् कटुकमपाष्ठवद् विषवन्नैतदत्तवे ।

सूर्यां यो ब्रह्मा वेद स इद् वाधूयमर्हति ॥२९॥

पदार्थ—(एतत्) यह [पूर्वोक्त शुभ लक्षण वधू वर के विरोध मे] (तृष्टम्) दाहजनक, (कटुकम्) कड़ुवा [अप्रिय], (अपाष्ठवत्) अपस्थान [अपमान] युक्त और (विषवत्) विष समान [होता है] (एतत्) यह [निरुद्धपन] (अत्तवे) प्रबन्ध करने के लिये (न) नहीं [होता] । (यः) जो (ब्रह्मा) ब्रह्मा [वेदवेत्ता पति] (सूर्याम्) प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेजवाली] कन्या को (वेद) जानता है, (सः इत्) वही (वाधूयम्) विवाह कर्म के (अर्हति) योग्य होता है ॥२९॥

स इत् तत् स्योनं हरति ब्रह्मा वासः सुमङ्गलम् ।

प्रायश्चित्तिं यो अध्येति येन जाया न रिष्यति ॥३०॥

पदार्थ—(सः इत्) वही (ब्रह्मा) ब्रह्मा [वेदवेत्ता पति] (तत्) तब (स्योनम्) सुखदायक और (सुमङ्गलम्) बड़े मङ्गलमय (वासः) वस्त्र आदि [घर मे] (हरति) लाता है, ((यः) जो [पति] (प्रायश्चित्तिम्) प्रायश्चित्त क्रिया का (अध्येति) जानता है, (येन) जिस के कारण (जाया) पत्नी (न रिष्यति) कष्ट नहीं पाती ॥३०॥

युवं भगं सं भरतं समृद्धमृतं वदन्तावृतोद्येषु ।

ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचय चारु संभलो वदतु वाचमेताम् ॥३१॥

पदार्थ—[हे वधू वर !] (ऋतोद्येषु) सत्य वचनो के बीच (ऋतम्) सत्य (वदन्तौ) बोलते हुए (युवम्) तुम दोनो (समृद्धम्) अधिक सम्पत्ति वाले (भगम्) ऐश्वर्य को (सम्) मिलकर (भरतम्) धारण करो । (ब्रह्मणः पते) हे वेद के रक्षक [परमेश्वर !] (अस्यै) इस [वधू] के लिये (पतिम्) पति को (रोचय) आनन्दित कर— (एताम् वाचम्) इस वचन को (संभलः) यथार्थवक्ता पुरुष (चारु) मनोहर रीति से (वदतु) बोले ॥३१॥

इहेदसाथ न परो गमाथेमं गावः प्रजया वर्धयाथ ।

शुभं यतीरुस्रियाः सोमवर्चसो विश्वे देवाः क्रन्निह वो मनांसि ॥३२॥

पदार्थ—(गावः) हे गतिशील [पुरुषार्थी कुटुम्बी लोगो !] (इह इत्) यहां पर ही [हम मे] (असाथ) तुम रहो, (परः) दूर (न गमाथ) मत जाओ, और (इमम्) इस [पुरुष] को (प्रजया) प्रजा [पुत्र, पौत्र, सेवक आदि] से (वर्धयाथ) बढ़ाओ । (शुभम्) शुभ रीति से (यतीः) चलती हुई (उस्रियाः) निवास करनेवाली स्त्रियां और (सोमवर्चसः) ऐश्वर्य के साथ प्रताप वाले (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग [अर्थात् घर के विद्वान् स्त्री-पुरुष] (वः) तुम्हारे (मनांसि) मनो को (इह) यहां [गृह कार्य मे] (क्रन्) करें ॥३२॥

इमं गावः प्रजया सं विशाथायं देवानां न मिनाति भागम् ।

अस्मै वः पूषा मरुतश्च सर्वे अस्मै वो धाता सविता सुवाति ॥३३॥

पदार्थ—(गावः) हे गतिशील [पुरुषार्थी कुटुम्बियो !] (इमम्) इस [पुरुष] मे (प्रजया) प्रजा [सन्तान, सेवक आदि] के साथ (सम्) मिलकर (विशाथ) तुम प्रवेश करो, (अयम्) यह [पुरुष] (देवानाम्) विद्वानो के (भागम्) भाग को (न) नहीं (मिनाति) नाश करता है । (अस्मै) इस [पुरुष] के लिये (वः) तुम को (पूषा) पोषक वैद्य (च) और (सर्वे) सब (मरुतः) शूर पुरुष, और (अस्मै) इस [पुरुष] के लिये (वः) तुमको (धाता) धारण करनेवाला (सविता) प्रेरक आचार्य (सुवाति) आगे बढ़ावे ॥३३॥

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थानो येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।

सं भगेन समर्यम्णा सं धाता सृजतु वर्चसा ॥३४॥

पदार्थ—(अनृक्षराः) बिना कांटों वाले (ऋजवः) सीधे (पन्थानः) मार्ग (सन्तु) होवें, (येभिः) जिन से (नः) हमारे (सखायः) मित्र लोग (वरेयम् = वरेण्यम्) सुन्दर विधान से (यन्ति) चलते हैं । (धाता) धारण करनेवाला [परमेश्वर] (भगेन सम्) ऐश्वर्य के साथ, (अर्यम्णा सम्) श्रेष्ठो के मान करने वाले व्यवहार के साथ और (वर्चसा सम्) प्रताप के साथ [हम को] (सृजतु) संयुक्त करे ॥३४॥

यच्च वर्चो अक्षेषु सुरायां च यदाहितम् ।

यद् गोष्वश्विना वर्चस्तेनेमां वर्चसावतम् ॥३५॥

पदार्थ—(यत्) जो (वर्चः) तेज (अक्षेषु) व्यवहार कुशलो में (च च) और (यत्) जो [तेज] (सुरायाम्) ऐश्वर्य [वा लक्ष्मी] मे (आहितम्) रक्खा गया है । (यत्) जो (वर्चः) तेज (गोषु) गतिशील [पुरुषार्थी] लोगो मे है, (अश्विना) हे विद्या को प्राप्त दोनो [स्त्री-पुरुष समूहो !] (तेन वर्चसा) उस तेज से (इमाम्) इस [वधू] को (अवतम्) शोभायमान करो ॥३५॥

येन महानघ्न्या जघनमश्विना येन वा सुरा ।

येनाक्षा अभ्यषिच्यन्त तेनेमां वर्चसावतम् ॥३६॥

पदार्थ—(येन) जिस [तेज] के कारण (महानघ्न्याः) अत्यन्त निर्दोष स्त्री के (जघनम्) पौरुष, (येन) जिस के कारण (सुरा) ऐश्वर्य [लक्ष्मी], (वा) और (येन) जिस द्वारा (अक्षाः) सब व्यवहार (अभ्यषिच्यन्त) सींचे जाते हैं [बढ़ाये जाते हैं], (अश्विना) हे विद्या को प्राप्त दोनो [स्त्री पुरुष समूहो !] (तेन वर्चसा) उस तेज से (इमाम्) इस [वधू] को (अवतम्) शोभायमान करो ॥३६॥

यो अनिध्मो दीदयदप्स्व१न्तर्यं विप्रास ईडते अध्वरेषु ।

अपां नपान्मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्यावान् ॥३७॥

पदार्थ—(यः) जो [परमेश्वर] (अनिध्मः) बिना चमकता हुआ [अन्तर्यामी] रहकर (अप्सु अन्तः) प्रजाओ के भीतर (दीदयत्) चमकता है, (यम्) जिस [परमेश्वर] की, (विप्रासः) बुद्धिमान् लोग (अध्वरेषु) सन्मार्ग बताने वाले व्यवहारो मे (ईडते) बड़ाई करते है, [सो तू] (अपाम्) प्रजाओ के मध्य (नपात्) नाशरहित [परमेश्वर !] (मधुमतीः) मधु विद्या से युक्त [पूर्ण विज्ञानवती] (अपः) प्रजायें (दाः) दे (याभिः) जिन [प्रजाओ] से (इन्द्रः) बड़ा ऐश्वर्यवान् मनुष्य (वीर्यावान्) वीर्यवान् [धीर, वीर, शरीर, इन्द्रिय और मन की अतिशय शक्तिवाला] होकर (वावृधे) बढ़ता है ॥३७॥

इदमहं रुशन्तं ग्राभं तनूदूषिमपोहामि ।

यो भद्रो रोचनस्तमुदचामि ॥३८॥

पदार्थ—(इदम्) अब [गृहस्थ होने पर] (अहम्) मैं [स्त्री वा पुरुष] (रुशन्तम्) सताने वाले, (तनूदूषिम्) शरीर को दोष लगाने वाले (ग्राभम्) ग्राही [मलबन्धक रोग वा दुष्ट व्यवहार] को (अप ऊहामि) हटा देता हूँ । (यः) जो (भद्रः) मङ्गलमय, (रोचनः) रोचक व्यवहार है, (तम्) उसको (उत्) उत्तमता से (अचामि) प्राप्त होता हूँ ॥३८॥

आस्यै ब्राह्मणाः स्नपनीर्हरन्त्ववीरघ्नीरुदजन्त्वापः ।

अर्यम्णो अग्निं पर्येतु पूषन् प्रतीक्षन्ते श्वशुरो देवरश्च ॥३९॥

पदार्थ—(अस्यै) इस [वधू] के लिये (ब्राह्मणाः) ब्राह्मण [विद्वान् लोग] (स्नपनी) शुद्धिकारक सामग्रियों को (आ हरन्तु) लावें, (अवीरघ्नीः) वीरों की हितकारी (आपः) प्रजायें (उत्) उत्तमता से (अजन्तु) प्राप्त होवें। (पूषन्) हे पुष्टिकारक [विद्वन् !] (अर्यम्णः) श्रेष्ठों के मान करने वाले [पति] की (अग्निम्) अग्नि की [प्रत्येक पति-पत्नी] (परि एतु) परिक्रमा करे, (श्वशुरः) ससुर [पति का पिता] (च) और (देवर) देवर लोग [पति के छोटे बड़े भ्राता (प्रति ईक्षन्ते) बाट देखते हैं ॥३९॥

शं ते हिरण्यं शमु सन्त्वापः शं मेथिर्भवतु शं युगस्य तर्द्म।

शं त आपः शतपवित्रा भवन्तु शमु पत्या तन्वं१ सं स्पृशस्व ॥४०॥

पदार्थ—[हे वधू !] (ते) तेरे लिये (हिरण्यम्) सोना [द्रव्य, आभूषण आदि] (शम्) सुखदायक [हो], (उ) और (आपः) प्रजायें [सन्तान, सेवक आदि] (शम्) शान्तिदायक (सन्तु) होवें, (मेथिः) पशु बांधने का काष्ठदण्ड (शम्) आनन्दप्रद और (युगस्य) जूए का (तर्द्म) छिद्र (शम्) शान्तिदायक (भवतु) होवे। (ते) तेरे लिये (शतपवित्राः) सैकड़ों प्रकार शुद्ध करने वाले (आपः) जल (शम्) शान्तिदायक (भवन्तु) होवें, (शम्) शान्ति के लिये (उ) ही (पत्या) पति के साथ (तन्वम्) अपनी काया को (सं स्पृशस्व) संयुक्त कर ॥४०॥

खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो।

अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्वाकृणोः सूर्यत्वचम् ॥४१॥

पदार्थ—(शतक्रतो) हे सैकड़ों प्रकार की बुद्धियों वा कर्मों वाले (इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले [पति !] (रथस्य) रथ [रथरूप शरीर] के (खे) गमन [चेष्टा] में, (अनसः) जीवन के (खे) गमन [उपाय] में और (युगस्य) योग [ध्यान] के (खे) गमन [चलने] में (अपालाम् = अपाराम्) अपार गुणवाली [ब्रह्मवादिनी पत्नी] को (त्रिः) तीन बार [कर्म, उपासना और ज्ञान से] (पूत्वा) शोधकर (सूर्यत्वचम्) सूर्य के समान तेजवाली (अकृणोः) तू कर ॥४१॥

आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम्।

पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम् ॥४२॥

पदार्थ—[हे वधू !] (सौमनसम्) मन की प्रसन्नता, (प्रजाम्) प्रजा [सन्तान, सेवक आदि], (सौभाग्यम्) बड़ी भाग्यवाली और (रयिम्) धन को (आशासाना) चाहती हुई तू (पत्युः) पति के (अनुव्रता) अनुकूल कर्म वाली (भूत्वा) होकर (अमृताय) अमरपन [पुरुषार्थ और कीर्ति] के लिये (कम्) सुख से (सं नह्यस्व) सन्नद्ध होजा [युद्ध के लिये कवच धारण कर] ॥४२॥

यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा।

एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य ॥४३॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (वृषा) बलवान् (सिन्धुः) समुद्र ने (नदीनाम्) नदियों का (साम्राज्यम्) साम्राज्य [चक्रवर्ती राज्य, अपने लिये] (सुषुवे) उत्पन्न किया है। [हे वधू !] (एव) वैसे ही (त्वम्) तू (पत्युः) पति के (अस्तम्) घर (परेत्य) पहुँचकर (सम्राज्ञी) राजराजेश्वरी [चक्रवर्ती रानी] (एधि) हो ॥४३॥

सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु।

ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युत श्वश्र्वाः ॥४४॥

पदार्थ—[हे वधू !] तू (श्वशुरेषु) अपने ससुर आदि [मेरे पिता आदि गुरु जनों] के बीच (सम्राज्ञी) राजराजेश्वरी (उत) और (देवृषु) अपने देवरों [मेरे बड़े व छोटे भाइयों] के बीच (सम्राज्ञी) राजराजेश्वरी (एधि) हो। (ननान्दुः) अपनी ननद [मेरी बहिन] की (सम्राज्ञी) राजराजेश्वरी, (उत) और (श्वश्र्वाः) अपनी सासु [मेरी माता] की (सम्राज्ञी) राजराजेश्वरी (एधि) हो ॥४४॥

या अकृन्तन्नवयन् याश्च तत्निरे या देवीरन्ताँ अभितोऽददन्त।

तास्त्वा जरसे सं व्ययन्त्वायुष्मतीदं परि धत्स्व वासः ॥४५॥

पदार्थ—(याः) जिन [स्त्रियों] ने (अकृन्तन्) काता है, (च) और (याः) जिन्होंने (तत्निरे) तन्तुओं को फैलाया है, और (अवयन्) बुना है, और (याः देवीः) जिन देवियों ने (अन्तान्) [वस्त्र के] आँचल (अभितः) सब प्रकार से (अददन्त) दिये हैं। [हे वधू !] (ताः) वे सब स्त्रियां (त्वा) तुझे (जरसे) बड़ाई के लिये (सं व्ययन्तु) वस्त्र पहनावें, (आयुष्मती) बड़ी आयु वाली तू (इदं वासः) इस वस्त्र को (परि धत्स्व) धारण कर ॥४५॥

जीवं रुदन्ति वि नयन्त्यध्वरं दीर्घामनु प्रसितिं दीध्युर्नरः।

वामं पितृभ्यो य इदं समीरिरे मयः पतिभ्यो जनये परिष्वजे ॥४६॥

पदार्थ—(नरः) नर [नेता लोग] (जीवम्) [संसार के] जीवन के लिये [प्रेम से] (रुदन्ति) आंसू बहाते हैं, (अध्वरम्) हिंसा रहित व्यवहार को (वि) विविध प्रकार (नयन्ति) ले चलते हैं, और (दीर्घाम्) लम्बी (प्रसितिम् अनु) प्रबन्ध क्रिया के साथ (दीध्युः) प्रकाशमान होते हैं। (ये) जिन [पुरुषार्थियों] ने (पितृभ्यः) पिता आदि मान्य लोगों के लिये (इदम्) यह (वामम्) श्रेष्ठ पदार्थ (समीरिरे) पहुँचाया है, (पतिभ्यः) उन रक्षक पुरुषों के लिये [पति से] (जनये परिष्वजे) पत्नी का मिलना (मयः) सुखदायक है ॥४६॥

स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि तेऽश्मानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे।

तमा तिष्ठानुमाद्या सुवर्चा दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥४७॥

पदार्थ—(स्योनम्) सुखदायक, (ध्रुवम्) दृढ़ (अश्मानम्) पत्थर को (देव्याः) दिव्य गुण वाली (पृथिव्याः) पृथिवी की (उपस्थे) गोद में (प्रजायै) प्रजा [सन्तान, सेवक आदि] के निमित्त (ते) तेरे लिये (धारयामि) मैं [पति] रखता हूँ। (अनुमाद्या) निरन्तर हर्ष मनाती हुई और (सुवर्चाः) बड़ी प्रताप वाली तू (तम्) उस [पत्थर] पर (आ तिष्ठ) खड़ी हो, (सविता) सबका उत्पन्न करने वाला परमेश्वर (ते) तेरी (आयुः) आयु को (दीर्घम्) लम्बी (कृणोतु) करे ॥४७॥

येनाग्निरस्या भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम्। तेन गृह्णामि ते हस्तं मा व्यथिष्ठा मया सह प्रजया च धनेन च ॥४८॥

पदार्थ—(येन) जिस [सामर्थ्य] से (अग्निः) तेजस्वी पुरुष ने (अस्याः भूम्याः) इस भूमि [प्रत्यक्ष भूमि के समान धैर्यवती अपनी पत्नी] का (दक्षिणम्) बड़े बल वाले वा गति वाले [अथवा दाहिने] (हस्तम्) हाथ को (जग्राह) पकड़ा है। (तेन) उसी [सामर्थ्य] से (ते हस्तम्) तेरे हाथ को (गृह्णामि) मैं [पति] पकड़ता हूँ, (मया सह) मेरे साथ रहकर (प्रजया) प्रजा [सन्तान, सेवक आदि] के साथ (च च) और (धनेन) धन के साथ (मा व्यथिष्ठाः) व्यथा को मत प्राप्त हो ॥४८॥

देवस्ते सविता हस्तं गृह्णातु सोमो राजा सुप्रजसं कृणोतु।

अग्निः सुभगां जातवेदाः पत्ये पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु ॥४९॥

पदार्थ—(देवः) व्यवहार में चतुर, (सविता) सर्वप्रेरक [परमेश्वर] (ते हस्तम्) तेरे हाथ को (गृह्णातु) पकड़े [सहाय करे], (राजा) ऐश्वर्यवान् (सोमः) सर्वोत्पादक [परमात्मा] (सुप्रजसम्) सुन्दर सन्तानवाली (कृणोतु) करे। (जातवेदाः) धनों का प्राप्त कराने वाला (अग्निः) सर्वव्यापक [जगदीश्वर] (पत्ये) पति के लिये (पत्नीम्) पत्नी को (सुभगाम्) बड़े ऐश्वर्यवाली और (जरदष्टिम्) स्तुति के साथ प्रवृत्तिवाली वा भोजनवाली (कृणोतु) करे ॥४९॥

गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।

भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥५०॥

पदार्थ—[हे वधू !] (सौभगत्वाय) सौभाग्य [अर्थात् गृहाश्रम में सुख] के लिये (ते हस्तम्) तेरे हाथ को (गृह्णामि) मैं [पति] पकड़ता हूँ, (यथा) जिससे (मया पत्या) मुझ पति के साथ (जरदष्टिः) स्तुति के साथ प्रवृत्ति वाली वा भोजन वाली (असः) तू रह। (भगः) सकल ऐश्वर्य वाले, (अर्यमा) श्रेष्ठों का मान करने वाले, (सविता) सब को प्रेरणा करने वाले, (पुरन्धिः) सब जगत् का धारण करने वाले [परमेश्वर] और (देवाः) सब विद्वानों ने (मह्यम्) मुझ को (त्वा) तुझे (गार्हपत्याय) गृहकार्य के लिये (अदुः) दिया है ॥५०॥

भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत्।

पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव ॥५१॥

पदार्थ—(भगः) ऐश्वर्यवान [परमात्मा] ने (ते) तेरा (हस्तम्) हाथ (अग्रहीत्) पकड़ा है [सहाय किया है], (सविता) सर्वोत्पादक जगदीश्वर ने (हस्तम्) हाथ (अग्रहीत्) पकड़ा है। (धर्मणा) धर्म से, (त्वम्) तू (पत्नी) [मेरी] पत्नी [पालन करने वाली] (असि) है, (अहम्) मैं (तव) तेरा (गृहपतिः) गृहपति [घर का पालन करने वाला] हूँ ॥५१॥

ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः।

मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम् ॥५२॥

पदार्थ—(इयम्) यह [पत्नी] (मम) मेरे (पोष्या) पोषणयोग्य (अस्तु) होवे, (मह्यम्) मुझ को (त्वा) तुझे (बृहस्पतिः) बड़े लोकों के स्वामी [परमात्मा] ने (अदात्) दिया है। (प्रजावति) हे श्रेष्ठ प्रजावाली ! तू (मया पत्या) मुझ पति के साथ (सम्) मिलकर (शतम्) सौ (शरदः) वर्षों तक (जीव) जीती रह ॥५२॥

त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् ।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया ॥५३॥

पदार्थ—(त्वष्टा) सूक्ष्मदर्शी [आचार्य] ने (बृहस्पतेः) बडी वेदवाणियो की रक्षिका [बृहस्पति पदवी वाली स्त्री] के (शुभे) शुभ [आनन्द] के लिये (कवीनाम्) बुद्धिमानों की (प्रशिषा) अनुमति से (कम्) आनन्द के साथ (वास.) वस्त्र [वेष] (वि) विशेष करके (अदधात्) दिया है । (तेन) इस कारण से (सूर्याम् इव) सूर्य की चमक के समान [शोभायमान] (इमाम् नारीम्) इस नारी [नर की पत्नी] को (सविता) प्रेरक विद्वानो का समूह (च) और (भग) ऐश्वर्यवान् पति, दोनो (प्रजया) प्रजा [सन्तान, सेवक आदि] के साथ (परि) सब ओर से (धत्ताम्) धारण करें ॥५३॥

इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा ।
बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ॥५४॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) बिजुली और भौतिक अग्नि, (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि, (मित्रावरुणा) प्राण और अपान, (उभा) दोनो (अश्विना) दिन और रात्रि, (मातरिश्वा) आकाश मे चलनेवाला [सूत्रात्मा वायु], (बृहस्पति) बड़े लोको का रक्षक [आकाश], (सोम) चन्द्रमा, (भग.) सेवनीय यश, (ब्रह्म) अन्न, और (मरुत) विद्वान लोग (इमाम् नारीम्) इस नारी को (प्रजया) प्रजा [सन्तान सेवक आदि] से (वर्धयन्तु) बढावें ॥५४॥

बृहस्पतिः प्रथमः सूर्यायाः शीर्षे केशाँ अकल्पयत् ।
तेनेमामश्विना नारीं पत्ये सं शोभयामसि ॥५५॥

पदार्थ—(प्रथम) पहिले से ही वर्तमान (बृहस्पति) बडे बडे लोको के स्वामी [परमेश्वर] ने (सूर्याया) प्रेरणा करनेवाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] कन्या के (शीर्षे) मस्तक पर (केशान्) केशो को (अकल्पयत्) बनाया है । (तेन) इस [कारण] से (अश्विना) हे विद्या को प्राप्त दोनो [स्त्री-पुरुषो के समाज !] (इमाम् नारीम्) इस नारी को (पत्ये) पति के लिये (सम्) ठीक-ठीक (शोभयामसि) हम शोभायमान करते हैं ॥५५॥

इदं तद्रूपं यदवस्त योषा जायां जिज्ञासे मनसा चरन्तीम् ।
तामन्वर्तिष्ये सखिभिर्नवग्वैः क इमान् विद्वान् वि चचर्त पाशान् ॥५६॥

पदार्थ—(इदम्) यह (तत्) वह (रूपम्) रूप [सुन्दरता व स्वभाव] है, (यत्) जिसको (योषा) सेवनीय (वधू) ने (अवस्त) धारण किया है, (मनसा) विज्ञान के साथ (चरन्तीम्) चलती हुई (जायाम्) पत्नी को (जिज्ञासे) मे जानना चाहता हूं । (नवग्वै) स्तुतियोग्य चरित्र वाले अथवा नवीन-नवीन विद्या को प्राप्त करने और कराने हारे (सखिभि) मित्रों के सहित (ताम् अनु) उस [पत्नी] के साथ-साथ (अर्तिष्ये) मैं चलूंगा (विद्वान्) विद्वान् (कः) प्रजापति [परमेश्वर] ने (इमान् पाशान्) इन [अविद्या के] फंदो को (वि चचर्त) खोल दिया है ॥५६॥

अहं वि ष्यामि मयि रूपमस्या वेददित् पश्यन् मनसः कुलायम् ।
न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान् ॥५७॥

पदार्थ—(अस्या) इस [पत्नी] के (रूपम्) रूप [स्वभाव वा सौन्दर्य] को (मनस) अपने मन का (कुलायम्) आधार (वेदत्) जानता हुआ और (पश्यन्) देखता हुआ (इत्) ही (अहम्) मैं [वर] (मयि) अपने मे (वि स्यामि) निश्चय करके धारण करता हूं । (स्तेयम्) चोरी के पदार्थ को (न) नही (अद्मि) खाता हूं, (मनसा) विज्ञान के साथ (वरुणस्य) रुकावट [अर्थात् विघ्न] के (पाशान्) फन्दों को (स्वयम्) अपने आप [अर्थात् पुरुषार्थ से] (श्रथ्नान) ढीला करता हुआ (उत् अमुच्ये) मैं छूट गया हूं ॥५७॥

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः ।
उरुं लोकं सुगमत्र पन्थां कृणोमि तुभ्यं सहपत्न्यै वधु ॥५८॥

पदार्थ—[हे वधू !] (त्वा) तुझे (वरुणस्य) रुकावट [विघ्न] के (पाशात्) बन्धन से (प्र मुञ्चामि) मैं [वर] अच्छे प्रकार छुडाता हूं, (येन) जिसके साथ (त्वा) तुझे (सुशेवा) अत्यन्त सेवायोग्य (सविता) जन्मदाता पिता ने (अबध्नात्) बांधा है । (वधु) हे वधू ! (सहपत्न्यै) पति के साथ वर्तमान (तुभ्यम्) तेरे लिये (अत्र) यहां [गृहाश्रम मे] (उरुम्) चौडा (लोकम्) घर और (सुगम्) सुगम (पन्थाम्) मार्ग (कृणोमि) मैं [पति] बनाता हूं ॥५८॥

उद्यच्छध्वमप रक्षो हनाथेमां नारीं सुकृते दधात ।
धाता विपश्चित् पतिमस्यै विवेद भगो राजा पुर एतु प्रजानन् ॥५९॥

पदार्थ—[हे वीरो ! शस्त्रों को] (उत् यच्छध्वम्) उठाओ, (रक्षः) राक्षस को (अप हनाथ) मार हटाओ, (इमां नारीम्) इस नारी [नर की पत्नी] को (सुकृते) सुकृत [पुण्य कर्म] मे (दधात्) धारण करो । (विपश्चित्) बुद्धिमान् (धाता) धारण करने वाले [परमेश्वर] ने (अस्यै) इस [वधू] के लिये (पतिम्) पति (विवेद) प्राप्त कराया है, (प्रजानन्) पहिले से जानने वाला (राजा) प्रकाशमान (भग.) ऐश्वर्यवान् [परमात्मा] (पुरः) आगे (एतु) प्राप्त होवे ॥५९॥

भगस्ततक्ष चतुरः पादान् भगस्ततक्ष चत्वार्युष्पलानि ।
त्वष्टा पिपेश मध्यतोऽनु वर्ध्रान्त्सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥६०॥

पदार्थ—(भग) भगवान् [ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर] ने (चतुर.) चार [धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप] (पादान्) प्राप्तियोग्य पदार्थ (ततक्ष) रचे हैं, (भगः) भगवान् ने (चत्वारि) चार [ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम रूप] (उष्पलानि) हिंसा से बचाने वाले कर्म (ततक्ष) बनाये है । (त्वष्टा) विश्व-कर्मा [परमेश्वर] ने (मध्यत) बीच मे [स्त्री-पुरुषो के भीतर] (वर्ध्रान्) वृद्धिव्यवहारो की (अनु) अनुकूल (पिपेश) व्यवस्था की है, (सा) वह [वधू] (न) हमारे लिये (सुमङ्गली) सुमङ्गली [बडा आनन्द देने वाली] (अस्तु) होवे। ॥६०॥

सुकिंशुकं वहतुं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् ।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पतिभ्यो वहतुं कृणु त्वम् ॥६१॥

पदार्थ—(सूर्ये) हे प्रेरणा करने वाली [वा सूर्य की चमक के समान तेज वाली] वधू ! (सुकिंशुकम्) अच्छे चमकने वाले [अग्नि वा बिजुली वाले] वा बहुत प्रशंसनीय चाल वाले, (विश्वरूपम) नाना रूपों वाले [शुक्ल, नील, पीत, रक्त, आदि वर्ण वाले, अथवा ऊंचे नीचे मध्यम स्थान वाले], (हिरण्यवर्णम्) सुवर्ण के लिये चाहने योग्य, (सुवृतम्) अच्छे घूमने वाले [सब ओर मुड जाने वाले], (सुचक्रम्) सुन्दर [दृढ, शीघ्रगामी] पहियो वाले (वहतुम्) रथ पर [गृहाश्रम रूप गाडी पर] (त्वम्) तू (आ रोह) चढ, और (पतिभ्य) पतिकुल वालों के लिये (वहतुम्) [अपने] पहुँचने को (अमृतस्य) अमरपन [पुरुषार्थ] का (स्योनम्) सुखदायक (लोकम्) लोक [ससार वा स्थान] (कृणु) बना ॥६१॥

अभ्रातृघ्नीं वरुणापशुघ्नीं बृहस्पते ।
इन्द्रापतिघ्नीं पुत्रिणीमास्मभ्यं सवितर्वह ॥६२॥

पदार्थ—(वरुण) हे श्रेष्ठ ! (बृहस्पते) वेदवाणी के रक्षक ! (इन्द्र) हे बडे ऐश्वर्यवाले ! (सवित) हे प्रेरणा करनेवाले [वर !] (अभ्रातृघ्नीम्) भाइयो को न सताने वाली, (अपशुघ्नीम्) पशुओ को न मारने वाली, (अपतिघ्नीम्) पति का न दुःख देने वाली, (पुत्रिणीम्) श्रेष्ठ पुत्रो को उत्पन्न करने वाली [वधू] को (अस्मभ्यम्) हमारे हित के लिये (आ वह) तू ले चल ॥६२॥

मा हिंसिष्ट कुमार्यं स्थूणे देवकृते पथि ।
शालाया देव्या द्वारं स्योनं कृण्मो वधूपथम् ॥६३॥

पदार्थ—(स्थूणे) हे दोनो स्थिर स्वभाव वाली [स्त्री पुरुषो की पङ्क्ति !] (कुमार्यम्) कुमारी [कन्या अर्थात् वधू] को (देवकृते) विद्वानो के बनाये (पथि) मार्ग मे (मा हिंसिष्टम्) मत कष्ट पाने दो । (देव्या) व्यवहारयोग्य (शालाया) शाला के (स्योनम्) सुखदायक (द्वारम्) द्वार को (वधूपथम्) वधू का मार्ग (कृण्म) हम बनाते है ॥६३॥

ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः ।
अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके वि राज ॥६४॥

पदार्थ—(ब्रह्म) ब्रह्म [परब्रह्म परमात्मा] (पूर्वम्) पहिले, (ब्रह्म) ब्रह्म (अपरम्) पीछे, (ब्रह्म) ब्रह्म (अन्तत) अन्त मे और (मध्यत) मध्य मे, और (ब्रह्म) ब्रह्म (सर्वत.) सर्वत्र (युज्यताम्) ध्यान किया जावे । [हे वधू !] (अनाव्याधाम्) छेदन-रहित [अटूट, दृढ] (देवपुराम्) देवताओं [विद्वानों] के गढ़ मे (प्रपद्य) पहुँचकर (शिवा) कल्याणकारिणी और (स्योना) सुख-दायिनी तू (पतिलोके) पतिलोक [पति के समाज] मे (विराज) विराजमान हो ॥६४॥

卐 इति प्रथमोऽनुवाकः ॥ 卐

卐

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ॥ २ ॥ 卐

१—७५ सूर्या सावित्री । आत्मा, १० यक्ष्मनाशनी, ११ दम्पत्योः परिपन्थिनाशनी, २६ देवाः। अनुष्टुप्, ५,६, १२,३१,३७, ३६,४० जगती (२७,३६ भुरिक् त्रिष्टुप्), ९ व्यव० षट्पदा विराडत्यष्टिः; १३,१४,१७—१९,३४, ३६,३८, ४१, ४२, ४९, ६१, ७०, ७४,७५ त्रिष्टुप्; १५, ५१ भुरिक्; २० पुरस्ताद्बृहती, १३, २४—२५, ३२,३३, पुरोबृहती (२६ त्रिपदा विराण्नाम गायत्री); ३३ विराडास्तारपंक्तिः; ३५ पुरोबृहती त्रिष्टुप्; ४३ त्रिष्टुब्गर्भा पंक्तिः; ४४ प्रस्तारपंक्तिः; ४७ पथ्याबृहती, ४८ सतः पंक्तिः, ५० उपरिष्टाद्बृहती निचृत्; ५२ विराट् पुरोष्णिक्, ५९,६०,६२ पथ्यापंक्ति; ६८ पुरोष्णिक्; ६९ त्र्यवसाना षट्पदातिशक्वरी, ७१ बृहती ।

तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह ।

स नः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! (अग्रे) पहिले से वर्तमान (तुभ्यम्) तेरे लिये [तेरी आज्ञा पालन के लिये] (सूर्याम्) प्रेरणा करनेवाली [वा सूर्य की चमक के समान तेजवाली] कन्या को (वहतुना सह) दाय [यौतुक, अर्थात् विवाह में दिये हुए पदार्थ] के साथ (परि) सब प्रकार से (अवहन्) वे [विद्वान् लोग] लाये हैं, (सः) सो तू [हे परमेश्वर !] (नः पतिभ्यः) हम पतिकुल वालों के हित के लिये (जायाम्) इस पत्नी को (प्रजया सह) प्रजा [सन्तान, सेवक आदि] के साथ (दाः) दे ॥१॥

पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा ।

दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥२॥

पदार्थ—(अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर ने (आयुषा) आयु और (वर्चसा सह) तेज के साथ (पत्नीम्) पत्नी को (पुनः) निश्चय करके (अदात्) दिया है । (अस्याः) इस [पत्नी] का (यः) जो (पतिः) पति है, [वह] (दीर्घायुः) दीर्घ आयु वाला होकर (शतम् शरदः) सौ वर्षों तक (जीवाति) जीता रहे ॥२॥

सोमस्य जाया प्रथमं गन्धर्वस्तेऽपरः पतिः ।

तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥३॥

१ सामान्य अर्थ—[हे वधू !] (सोमस्य) सोम [शान्ति आदि शुभ गुण] की (जाया) उत्पत्ति स्थान (प्रथमम्) पहिले [पहली अवस्था में] [तू है], (गन्धर्वः) गन्धर्व [वेदवाणी का धारण करने वाला गुण] (ते) तेरा (अपरः) दूसरा (पतिः) पति [रक्षक] है । (अग्निः) अग्नि [अर्थात् विद्या और शरीर का तेज] (ते) तेरा (तृतीयः) तीसरा (पतिः) पति [रक्षक] है, और (मनुष्यजाः) मनुष्य [अर्थात् मननशीलों में उत्पन्न विद्वान् युवा पुरुष] (ते) तेरा (तुरीयः) चौथा [पति] है ॥३॥

२—नियोग विषयक अर्थ—[हे स्त्री ! तू] (सोमस्य) सोम [अर्थात् ऐश्वर्यवान् विवाहित पुरुष] की (जाया) पत्नी (प्रथमम्) पहिली बार [होती है], (गन्धर्वः) गन्धर्व [अर्थात् वेदवाणी का धारण करने वाला नियुक्त पुरुष] (ते) तेरा (अपरः) दूसरा (पतिः) पति अर्थात् रक्षक [होता है], (अग्निः) अग्नि [अर्थात् ज्ञानी नियुक्त पुरुष] (ते) तेरा (तृतीयः) तीसरा (पतिः) पति [होता है] और (मनुष्यजाः) मनुष्य [मननशीलों में उत्पन्न नियुक्त पुरुष] (ते) तेरा (तुरीयः) चौथा [पति होता है] ॥३॥

सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो ददद्ग्नये ।

रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥४॥

१—सामान्य अर्थ—(सोमः) सोम [शान्ति आदि शुभ गुण] (गन्धर्वाय) गन्धर्व [वेदवाणी के धारण करनेवाले गुण] के लिये [कन्या को] (ददत्) देता है, (गन्धर्वः) गन्धर्व [वेदवाणी के धारण करनेवाला गुण] (अग्नये) अग्नि [विद्या और शरीर के तेज] के लिये (ददत्) देता है । (अथो) फिर (अग्निः) अग्नि [विद्या और शरीर का तेज] (इमाम्) इस [स्त्री] को (च) और (रयिम्) धन को, (च) और (पुत्रान्) पुत्रों को (मह्यम्) मुझ [युवा ब्रह्मचारी] को (अदात्) देता है ॥४॥

२—नियोगविषयक अर्थ—(सोमः) सोम [ऐश्वर्यवान् विवाहित पति] (गन्धर्वाय) गन्धर्व [वेदवाणी के धारण करनेवाले दूसरे नियुक्त पुरुष] के लिये [स्त्री को] (ददत्) छोड़ता है । (गन्धर्वः) गंधर्व [वेदवाणी का धारण करनेवाला दूसरा नियुक्त पुरुष] (अग्नये) अग्नि [ज्ञानी तीसरे नियुक्त पुरुष] के लिये (ददत्) छोड़ता है । (अथो) फिर (अग्निः) अग्नि [ज्ञानी तीसरा नियुक्त पुरुष] (इमाम्) इस [स्त्री] को, (च) और (रयिम्) धन को (च) और (पुत्रान्) पुत्रों को (मह्यम्) मेरे लिये [अर्थात् चौथे नियुक्त पुरुष के लिये] (अदात्) छोड़ता है ॥४॥

आ वामगन्त्सुमतिर्वाजिनीवसू न्यश्विना हृत्सु कामा अरंसत ।

अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्यम्णो दुर्यां अशीमहि ॥५॥

पदार्थ—(वाजिनीवसू) हे बहुत वेगवाली वा अन्नवाली क्रियाओं में निवास करनेवाले दोनों [स्त्री-पुरुषो !] (वाम्) तुम दोनों को (सुमतिः) सुमति (आ) सब ओर से (अगन्) प्राप्त होवे, (अश्विना) हे विद्या को प्राप्त दोनों (हृत्सु) [तुम्हारे] हृदयों में (कामाः) शुभ कामनायें (नि) निरन्तर (अरंसत) रमण करें [रहें] । (शुभः पती) हे शुभ क्रिया के रक्षको ! (मिथुना) तुम दोनों (गोपा) रक्षक (अभूतम्) होओ, (प्रियाः) हम लोग प्रिय होकर (अर्यम्णः) श्रेष्ठों के मान करने वाले पुरुष के (दुर्यान्) घरों को (अशीमहि) प्राप्त करें ॥५॥

सा मन्दसाना मनसा शिवेन रयिं धेहि सर्ववीरं वचस्यम् ।

सुगं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथिष्ठामप दुर्मतिं हतम् ॥६॥

पदार्थ—[हे वधू !] (सा) सो तू (मन्दसाना) आनन्द करती हुई (शिवेन) कल्याणयुक्त (मनसा) मन के साथ (सर्ववीरम्) सब वीरों वाले (वचस्यम्) स्तुतियोग्य (रयिम्) धन को (धेहि) धारण कर (शुभः पती) हे शुभ क्रिया के रक्षक तुम दोनों ! (सुगम्) सुख से जाने योग्य, (सुप्रपाणम्) सुन्दर पानी वाले (तीर्थम्) तीर्थ [उतरने के घाट] को [धारण करो], और (पथिष्ठाम्) मार्ग में खड़े हुए (स्थाणुम्) ठूठ [झाड़, झंकड़ आदि के समान] (दुर्मतिम्) दुर्मति को (अप हतम्) नाश करो ॥६॥

या ओषधयो या नद्योऽयानि क्षेत्राणि या वना ।

तास्त्वा वधु प्रजावतीं पत्ये रक्षन्तु रक्षसः ॥७॥

पदार्थ—(याः) जो (ओषधयः) ओषधियां [अन्न, सोमलता आदि] (याः) जो (नद्यः) नदियां, (यानि) जो (क्षेत्राणि) खेत और (याः) जो (वना) वन [वृक्ष वाटिका आदि] हैं । (ताः) वे सब [ओषधि आदि], (वधु) हे वधू ! (त्वा प्रजावतीम्) तुझ श्रेष्ठ सन्तान वाली को (पत्ये) पति के लिये (रक्षसः) राक्षस [विघ्न] से (रक्षन्तु) बचावें ॥७॥

एमं पन्थामरुक्षाम सुगं स्वस्तिवाहनम् ।

यस्मिन् वीरो न रिष्यत्यन्येषां विन्दते वसु ॥८॥

पदार्थ—(इमम्) इस [वैदिक] (सुगम्) सुख से चलनेयोग्य, (स्वस्तिवाहनम्) आनन्द पहुँचाने वाले (पन्थाम्) मार्ग पर (आ अरुक्षाम) हम चढ़ें । (यस्मिन्) जिस [मार्ग] में (वीरः) वीर पुरुष (न रिष्यति) कष्ट नहीं पाता है, और (अन्येषाम्) दूसरे [अधर्मियों] का (वसु) धन [दण्ड द्वारा] (विन्दते) लेता है ॥८॥

इदं सु मे नरः शृणुत ययाशिषा दम्पती वाममश्नुतः ।

ये गन्धर्वा अप्सरसश्च देवीरेषु वानस्पत्येषु येऽधि तस्थुः ।

स्योनास्ते अस्यै वध्वै भवन्तु मा हिंसिषुर्वहतुमुह्यमानम् ॥९॥

पदार्थ—(नरः) हे नरो ! (इदम्) अब (मे) मेरी [बात] (सु) अच्छे प्रकार (शृणुत) सुनो (यया आशिषा) जिस आशीर्वाद से (दम्पती) पति-पत्नी दोनों (वामम्) श्रेष्ठ पदार्थ (अश्नुतः) पाते हैं । (ये) जो (गन्धर्वाः) गन्धर्व [वेदवाणी के धारण करने वाले पुरुष] (च) और (अप्सरसः) कामों में व्यापक रहने वाली (देवीः) देवियां [बड़ी गुणवती स्त्रियां] हैं, और (ये) जो पुरुष (एषु) इन (वानस्पत्येषु) सेवनीय शास्त्र के रक्षक जन से सबन्ध वाले पुरुषों में (अधि) ऊंचे (तस्थुः) ठहरते हैं । वे सब [हे वधू !] (ते अस्यै वध्वै) तुझ इस वधू के लिये (स्योनाः) सुखदायक (भवन्तु) होवें, वे (उह्यमानम्) चलते हुए (वहतुम्) रथ [रथ-समान गृह कार्य] को (मा हिंसिषुः) न हानि पहुँचावें ॥९॥

ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनाँ अनु ।

पुनस्तान् यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ॥१०॥

पदार्थ—(ये) जो (यक्ष्माः) क्षय रोग (जनान् अनु) मनुष्यों में वर्तमान (वध्वः) वधू के (चन्द्रम्) आनन्द देने वाले [वा सुनहले] (वहतुम्) रथ को (यन्ति) प्राप्त होवें । (तान्) उन [रोगों] को (यज्ञियाः) पूजा-योग्य (देवाः) विद्वान् लोग (पुनः) अवश्य [वहां] (नयन्तु) पहुँचावें, (यतः) जहां से [जिस कारण से] (आगताः) वे [रोग] आये हैं ॥१०॥

मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती ।

सुगेन दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥११॥

पदार्थ—(ये) जो (परिपन्थिनः) बटमार लोग (दम्पती) पति पत्नी के (आसीदन्ति) घात में आकर बैठते हैं, (मा विदन्) वे न मिलें । (सुगेन) सुगम

[मार्ग] से (दुर्गम) कठिन स्थान को (अति) पार करके (इताम्) दोनो चले जावें और (अरातयः) शत्रु लोग (अप द्रान्तु) भाग जावें ॥११॥

सं काशयामि वहतुं ब्रह्मणा गृहैरघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।

पर्याणद्धं विश्वरूपं यदस्ति स्योनं पतिभ्यः सविता तत् कृणोतु ॥१२॥

पदार्थ—(ब्रह्मणा) वेदज्ञान द्वारा (गृहैः) घरो के [पदार्थों] सहित [विराजमान] (वहतुम्) वधू को (अघोरेण) अक्रूर [कोमल], (मित्रियेण) मित्रता युक्त (चक्षुषा) नेत्र से (सम् काशयामि) मैं यथावत् दिखाता हूँ, (यत्) जो कुछ पदार्थ (विश्वरूपम्) सब प्रकार का (पर्याणद्धम्) सब ओर बंधा हुआ (अस्ति) है, (सविता) सब का प्रेरक [परमात्मा] (तत्) उस को (पतिभ्यः) पतिकुल वालो के लिये (स्योनम्) सुखदायक (कृणोतु) करे ॥१२॥

शिवा नारीयमस्तमागन्निमं धाता लोकमस्यै दिदेश ।

तामर्यमा भगो अश्विनोभा प्रजापतिः प्रजया वर्धयन्तु ॥१३॥

पदार्थ—(इयम्) यह (शिवा) मङ्गलदायिनी (नारी) नारी [नर की पत्नी] (अस्तम्) घर मे (आ अगन्) प्राप्त होवे, (धाता) सबपोषक [परमात्मा] ने (अस्यै) इस [वधू] का (इमम्) यह (लोकम्) लोक [समाज] (दिदेश) दिया है । (ताम्) उस [वधू] का (अर्यमा) श्रेष्ठो का मान करनेवाला [राजा] (भगः) ऐश्वर्यवान् [आचार्य], (उभा) दोनों (अश्विना) विद्या को प्राप्त [स्त्री पुरुषों के समाज], और (प्रजापतिः) प्रजापालक [परमेश्वर] (प्रजया) उत्तम सन्तान से (वर्धयन्तु) बढ़ावें ॥१३॥

आत्मन्वत्युर्वरा नारीयमागन् तस्यां नरो वपत बीजमस्याम् ।

सा वः प्रजां जनयद् वक्षणाभ्यो बिभ्रती दुग्धमृषभस्य रेतः ॥१४॥

पदार्थ—(आत्मन्वती) आत्मा [भीतरी बल] वाली (उर्वरा) उपजाऊ धरती [के समान], (इयम्) यह (नारी) नारी [नर की पत्नी] (आ अगन्) आयी है, (नर) हे नर ! [वर] (तस्याम्) उस (अस्याम्) ऐसी [गुणवती वधू] मे (बीजम्) बीज (वपत) बो । (सा) वह [नारी] (ऋषभस्य) वीर्यवान् पुरुष के (दुग्धम्) दूध के समान (रेतः) वीर्य को (बिभ्रती) धारण करती हुई (वक्षणाभ्यः) अपने पेट की नाडियो से (वः) तेरे लिये (प्रजाम्) सन्तान (जनयत्) उत्पन्न करे ॥१४॥

प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुरिवेह सरस्वति ।

सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥१५॥

पदार्थ—(सरस्वति) हे सरस्वती ! [श्रेष्ठ विज्ञानवाली] (प्रति तिष्ठ) दृढ़ रह, (विष्णुः इव) व्यापक सूर्य के समान तू (इह) यहां पर [गृहाश्रम में] (विराट्) विविध प्रकार ऐश्वर्यवाली (असि) है । (सिनीवालि) हे अन्नवाली पत्नी ! [तुझसे] (प्र जायताम्) उत्तम सन्तान उत्पन्न होवे और वह [सन्तान] (भगस्य) भगवान् [ऐश्वर्यवान् परमात्मा] की (सुमतौ) सुमति मे (असत्) रहे ॥१५॥

उद् व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।

मादुष्कृतौ व्येनसावघ्न्यावशुनमारताम् ॥१६॥

पदार्थ—[हे स्त्री-पुरुषो !] (वः) तुम्हारी (ऊर्मिः) उत्साह रूपी लहर (उत् हन्तु) ऊंची चले, (आपः) हे आप्त प्रजाओ ! (शम्याः) कर्म कुशल होकर तुम (योक्त्राणि) निन्दित कर्मों को (मुञ्चत) छोडो । (अदुष्कृतौ) दुष्ट आचरण न करने वाले, (व्येनसौ) पापरहित, (अघ्न्यौ) नही मारने योग्य [दोनो स्त्री-पुरुष] (अशुनम्) दुःख (मा आ अरताम्) कभी न पावें ॥१६॥

अघोरचक्षुरपतिघ्नी स्योना शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः ।

वीरसूर्देवृकामा सं त्वयैधिषीमहि सुमनस्यमाना ॥१७॥

पदार्थ—[हे वधू !] तू (गृहेभ्यः) घर वालो के लिये (अघोरचक्षुः) प्रिय दृष्टिवाली, (अपतिघ्नी) पति को न सतानेवाली, (स्योना) सुखदायिनी (शग्मा) कार्यकुशला, (सुशेवा) सुन्दर सेवायोग्य, (सुयमा) अच्छे नियमोवाली, (वीरसूः) वीरो को उत्पन्न करनेवाली, (देवृकामा) देवरो [पति के छोटे भाइयो] से प्रीति रखनेवाली और (सुमनस्यमाना) प्रसन्न चित्तवाली [रह], (त्वया) तेरे साथ (सम् एधिषीमहि) हम मिल कर बढ़ते रहें ॥१७॥

अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः ।

प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य ॥१८॥

पदार्थ—[हे वधू !] (इह) यहां [गृहाश्रम मे] (अपतिघ्नी) पति को न सतानेवाली, (अदेवृघ्नी) देवरो को न कष्ट देनेवाली, (शिवा) मङ्गल करनेवाली, (पशुभ्यः) पशुओ के लिये (सुयमा) सुन्दर नियमोंवाली (सुवर्चाः) बड़े तेजवाली (एधि) हो । (प्रजावती) श्रेष्ठ प्रजा [सेवक आदि] रखने वाली, (वीरसूः) वीरो को उत्पन्न करनेवाली, (देवृकामा) देवरो से प्रीति करनेवाली, (स्योना) सुखयुक्त तू (गार्हपत्यम्) गृहस्थ सम्बन्धी (इमम्) इस (अग्निम्) अग्नि को (सपर्य) सेवन कर ॥१८॥

उत्तिष्ठेतः किमिच्छन्तीदमागा अहं त्वेडे अभिभूः स्वाद् गृहात् ।

शून्यैषी निर्ऋते याजगन्थोत्तिष्ठाराते प्र पत मेह रंस्थाः ॥१९॥

पदार्थ—(निर्ऋते) हे अलक्ष्मी ! [दरिद्रता आदि] (इतः) यहां से [सुप्रबन्धयुक्त घर से] (उत् तिष्ठ) उठ, (किम्) क्या [बुरा] (इच्छन्ती) चाहती हुई (इदम्) इस [घर] में (आ अगाः) तू आयी है, (अभिभूः) विजयी (अहम्) मैं (त्वा) तुझे (स्वात् गृहात्) अपने घर से (ईडे = ईरे) निकालता हूँ । (शून्यैषी) शून्य [निर्जनपन] चाहने वाली (या) जो तू (आजगन्थ) आयी है, (अराते) हे कञ्जूसिन (उत् तिष्ठ) उठ, (प्र पत) चलती हो, (इह) यहां (मा रंस्थाः) मत ठहर ॥१९॥

यदा गार्हपत्यमसपर्यैत् पूर्वमग्निं वधूरियम् ।

अधा सरस्वत्यै नारि पितृभ्यश्च नमस्कुरु ॥२०॥

पदार्थ—(यदा) जब (इयम् वधूः) इस वधू ने (गार्हपत्यम्) गृहस्थ सम्बन्धी (अग्निम्) अग्नि को (पूर्वम्) पहिले से (असपर्यैत्) सेवन किया है । (अध) इसलिये (नारि) हे नारी ! (सरस्वत्यै) सरस्वती [विज्ञान के भण्डार परमेश्वर] को (च) और (पितृभ्यः) पितरो [पिता-समान मान्य पुरुषो] को (नमः) नमस्कार (कुरु) कर ॥२०॥

शर्म वर्मैतदा हरास्यै नार्या उपस्तरे ।

सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥२१॥

पदार्थ—[हे विद्वान् !] (एतत्) यह [गृहकार्यरूप] (शर्म) सुखदायक (वर्म) कवच (अस्यै नार्यै) इस नारी को (उपस्तरे) ओढने के लिये (आ हर) ला । (सिनीवालि) हे अन्नवाली पत्नी ! [तुझ से] (प्र जायताम्) उत्तम सन्तान उत्पन्न होवे, और वह [सन्तान] (भगस्य) [भगवान् ऐश्वर्यवान् परमात्मा] की (सुमतौ) सुमति मे (असत्) रहे ॥२१॥

यं बल्बजं न्यस्यथ चर्म चोपस्तृणीथन ।

तदा रोहतु सुप्रजा या कन्या विन्दते पतिम् ॥२२॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] (यम्) जिस (बल्बजम्) बल्बज [तृणविशेष के आसन] को (न्यस्यथ) तुम बिछाते हो (च) और (चर्म) [मृग, सिंह आदि का चर्म, उस पर] (उपस्तृणीथन) तुम फैलाते हो । (सुप्रजाः) सुन्दर जन्म वाली (कन्या) वह कन्या [कमनीया वधू] (तत्) उस पर (आ रोहतु) ऊंची बैठे, (या) जो (पतिम्) पति को (विन्दते) पाती है ॥२२॥

उप स्तृणीहि बल्बजमधि चर्मणि रोहिते ।

तत्रोपविश्य सुप्रजा इममग्निं सपर्यतु ॥२३॥

पदार्थ—(रोहिते) रोहित [हरिण विशेष] के (चर्मणि अधि) चर्म पर (बल्बजम्) बल्बज [तृण विशेष का आसन] (उप स्तृणीहि) तू फैला । (तत्र) उस पर (सुप्रजाः) सुन्दर जन्म वाली वधू (उपविश्य) बैठकर (इमम्) इस (अग्निम्) अग्नि [व्यापक परमेश्वर वा भौतिक अग्नि] की (सपर्यतु) सेवा करे ॥२३॥

आ रोह चर्मोप सीदाग्निमेष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा ।

इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै सुज्यैष्ठ्यो भवत् पुत्रस्त एषः ॥२४॥

पदार्थ—[हे वधू !] (चर्म) चर्म [मृग, सिंह आदि के चर्म] पर (आ रोह) ऊंची बैठ, (अग्निम्) अग्नि [व्यापक परमात्मा वा भौतिक अग्नि] की (उप सीद) सेवा कर, (एषः देवः) यह देवता (सर्वा) सब (रक्षांसि) राक्षसों [विघ्नों] को (हन्ति) नाश करता है । (इह) यहां [गृहाश्रम मे] (अस्मै पत्ये) इस पति के लिये (प्रजाम्) सन्तान (जनय) उत्पन्न कर (एषः) यह (ते पुत्रः) तेरा पुत्र (सुज्यैष्ठ्यः) बड़े ज्येष्ठपन वाला [आयु मे वृद्ध और पद मे श्रेष्ठ] (भवत्) होवे ॥२४॥

वि तिष्ठन्तां मातुरस्या उपस्थान्नानारूपाः पशवो जायमानाः ।

सुमङ्गल्युप सीदेममग्निं संपत्नी प्रति भूषेह देवान् ॥२५॥

पदार्थ—(अस्याः मातुः) इस माता की (उपस्थात्) गोद से (नानारूपाः) नाना स्वभाव वाले, (जायमानाः) प्रसिद्ध होते हुए (पशवः) दृष्टिवाले विद्वान् लोग (वि) विविध प्रकार (तिष्ठन्ताम्) उपस्थित हों । (सुमङ्गली) बड़े मङ्गल वाली तू (इमम्) इस (अग्निम्) अग्नि [व्यापक परमेश्वर वा भौतिक अग्नि] की (उप सीद) सेवा कर और (संपत्नी) पतिसहित तू (इह) यहां [गृहाश्रम मे] (देवान् प्रति) विद्वानो के लिये (भूष) शोभायमान हो ॥२५॥

सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः ।

स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान् ॥२६॥

पदार्थ—[हे वधू !] (सुमङ्गली) बड़ी मङ्गलवाली, (गृहाणाम्) घरों [घर वालों] की (प्रतरणी) बढ़ानेवाली, (पत्ये) पति के लिये (सुशेवा) बड़ी सुख देनेवाली, (श्वशुराय) ससुर के लिये (शंभूः) शान्ति देनेवाली और (श्वश्र्वै) सासु के लिये (स्योना) आनन्द देनेवाली तू (इमान् गृहान्) इन घरों [अर्थात् गृहकार्यों] में (प्र विश) प्रवेश कर ॥२६॥

स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः ।

स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव ॥२७॥

पदार्थ—[हे वधू !] तू (श्वशुरेभ्यः) ससुर आदि के लिये (स्योना) सुख देनेवाली, (पत्ये) पति के लिये और (गृहेभ्यः) घर वालों के लिये (स्योना) सुख देनेवाली (भव) हो । (अस्यै) इस (सर्वस्यै विशे) सब प्रजा के लिये (स्योना) सुख देनेवाली और (एषाम्) इनके (पुष्टाय) पोषण के लिये (स्योना) सुख देने वाली (भव) हो ॥२७॥

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।

सौभाग्यमस्यै दत्त्वा दौर्भाग्यैर्विपरेतन ॥२८॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] (इयम् वधूः) यह वधू (सुमङ्गलीः) बड़े मङ्गल वाली है, (समेत) मिलकर आओ और (इमाम्) इसे (पश्यत) देखो । (अस्यै) इस [वधू] को (सौभाग्यम्) सुभागपन [पति की प्रीति] (दत्त्वा) देकर (दौर्भाग्यैः) दुर्भागपनों से [इस को] (विपरेतन) पृथक् रक्खो ॥२८॥

या दुर्हार्दो युवतयो याश्चेह जरतीरपि ।

वर्चो न्वस्यै सं दत्ताथास्तं विपरेतन ॥२९॥

पदार्थ—(याः) जो तुम (युवतयः) हे युवा स्त्रियो ! (च) और (याः) जो तुम (जरतीः) हे वृद्ध स्त्रियो ! (अपि) भी (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदयवाली (इह) यहाँ पर हो । वे तुम (अस्यै) इस [वधू] को (वर्चः) अपना तेज (नु) शीघ्र (सम् दत्त) दे डालो, (अथ) फिर (अस्तम्) अपने-अपने घर (विपरेतन) चली जाओ ॥२९॥

रुक्मप्रस्तरणं वह्यं विश्वा रूपाणि बिभ्रतम् ।

आरोहत् सूर्या सावित्री बृहते सौभगाय कम् ॥३०॥

पदार्थ—(रुक्मप्रस्तरणम्) सुवर्ण के बिछौने वाले, (विश्वा) सब (रूपाणि) रूपों [उत्तम मध्यम नीच आकार वा बैठकों] को (बिभ्रतम्) धारण करने वाले (वह्यम्) [गृहाश्रम रूप] गाडी पर (सावित्री) सविता [सर्वजनक परमात्मा] को अपना देवता माननेवाली (सूर्या) प्रेरणा करनेवाली [वा सूर्य की चमक के समान तेजवाली] वधू (बृहते) बड़े (सौभगाय) सौभाग्य [पति की प्रीति, बहुत ऐश्वर्य आदि सुख] पाने के लिये (कम्) सुख से (आ अरुहत्) चढ़ी है ॥३०॥

आ रोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै ।

इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि ॥३१॥

पदार्थ—[हे वधू !] तू (सुमनस्यमाना) प्रसन्नचित्त होकर (तल्पम्) पर्यङ्क पर (आ रोह) चढ़, और (इह) यहाँ [गृहाश्रम में] (अस्मै पत्ये) इस पति के लिये (प्रजाम्) सन्तान (जनय) उत्पन्न कर । (इन्द्राणी इव) इन्द्राणी [बड़े ऐश्वर्यवान् मनुष्य की पत्नी वा सूर्य की कान्ति] के समान, (सुबुधा) सुन्दर ज्ञान वाली (बुध्यमाना) सावधान तू (ज्योतिरग्रा) ज्योति को आगे रखने वाली (उषसः प्रति) प्रभात वेलाओं में (जागरासि) जागती रहे ॥३१॥

देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्वस्तनूभिः ।

सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या सं भवेह ॥३२॥

पदार्थ—(देवाः) विद्वान् लोग (अग्रे) पहिले (पत्नीः) अपनी पत्नियों को (नि) निश्चय करके (अपद्यन्त) प्राप्त हुए हैं, और उन्होंने (तन्वः) शरीरों को (तनूभिः) शरीरों से (सम्) यथाविधि (अस्पृशन्त) स्पर्श किया है । [वैसे ही] (नारि) हे नारी ! तू (सूर्या इव) सूर्य की कान्ति के समान (महित्वा) अपने महत्त्व से (विश्वरूपा) समस्त सुन्दरता वाली, (प्रजावती) उत्तम सन्तान को प्राप्त होने हारी (पत्या) अपने पति से (इह) यहाँ [गृहाश्रम में] (सं भव) मिल ॥३२॥

उत्तिष्ठेतो विश्वावसो नमसेडामहे त्वा । जामिमिच्छ

पितृषदं न्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥३३॥

पदार्थ—(विश्वावसो) हे समस्त धनवाले वर ! (इतः) [अपने] इस स्थान से (उत् तिष्ठ) उठ, (नमसा) आदर के साथ (त्वा) तुझ से (ईडामहे) हम यह चाहते हैं । (पितृषदम्) पितृकुल में रहती हुई (न्यक्ताम्) नियम से तेल आदि लगाये हुए [विवाह संस्कार किये हुए] (जामिम्) कुलवधू से (इच्छ) प्रीति कर, (जनुषा) जन्म [मनुष्य जन्म] के कारण (सः) यह (ते) तेरा (भागः) सेवनीय पदार्थ है, (तस्य) इसका (विद्धि) तू ज्ञान कर ॥३३॥

अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।

तास्ते जनित्रमभि ताः परेहि नमस्ते गन्धर्वर्तुना कृणोमि ॥३४॥

पदार्थ—(अप्सरसः) अप्सरायें [कामों में व्यापक स्त्रियाँ] (हविर्धानम्) ग्राह्य पदार्थों के आधार [वधू] (च) और (सूर्यम् अन्तरा) प्रेरणा करने वाले [वर] के पास (सधमादम्) परस्पर आनन्द (मदन्ति) मनाती हैं । [हे वधू वा वर !] (ताः) वे [स्त्रियाँ] (ते) तेरे (जनित्रम्) जन्म का कारण हैं, (ताः अभि) उनके सामने होकर (परा) निकट (इहि) आ (गन्धर्वर्तुना) विद्या धारण करने वाले मनुष्य के ऋतु से [यथार्थ समय के विचार से] (ते) तेरे लिये (नमः) आदर (कृणोमि) मैं करता हूँ ॥३४॥

नमो गन्धर्वस्य नमसे नमो भामाय चक्षुषे च कृण्मः ।

विश्वावसो ब्रह्मणा ते नमोऽभि जाया अप्सरसः परेहि ॥३५॥

पदार्थ—(गन्धर्वस्य) विद्या धारण करनेवाले पुरुष के (नमसे) अन्न [भोजन] के लिये (नमः) [यह] अन्न है, (च) और (भामाय) प्रकाशयुक्त (चक्षुषे) नेत्र [अर्थात् इन्द्रियों के हित] के लिये (नमः) अन्न (कृण्मः) हम बनाते हैं । (विश्वावसो) हे समस्त धनवाले वर ! (ते) तेरे लिये (ब्रह्मणा) जलसहित (नमः) अन्न है, (जायाः) जन्म के कारणी, (अप्सरसः अभि) अप्सराओं [कामों में व्यापक स्त्रियों] के समान (परा इहि) निकट आ ॥३५॥

राया वयं सुमनसः स्यामोदितो गन्धर्वमावीवृताम ।

अगन्त्स देवः परमं सधस्थमगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥३६॥

पदार्थ—(राया) धन के साथ (वयम्) हम (सुमनसः) प्रसन्नचित्त (स्याम) होवें, (इतः) यहाँ से [अपने बीच से] (गन्धर्वम्) विद्या धारण करने वाले पुरुष को (उत् आ अवीवृताम) हम सब प्रकार ऊँचा वर्तमान करें । (सः देवः) वह विद्वान् (परमम्) सब से ऊँचे (सधस्थम्) सभा स्थान को (अगन्) प्राप्त हो, (अगन्म) हम [उस पद पर] पहुँचें (यत्र) जहाँ [लोग] (आयुः) जीवन को (प्रतिरन्ते) अच्छे प्रकार पार करते हैं ॥३६॥

सं पितरावृत्विये सृजेथां माता पिता च रेतसो भवाथः ।

मर्य इव योषामधिरोहयैनां प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यतं रयिम् ॥३७॥

पदार्थ—(पितरौ) हे [होने वाले] माता-पिता ! (ऋत्विये) ऋतुकाल [गर्भाधान योग्य समय] को प्राप्त दो वस्तु [के समान] (संसृजेथाम्) तुम दोनों मिलो, (च) और (रेतसः) वीर्य से [वीर्य और रज के मेल से] तुम दोनों (माता पिता) माता-पिता (भवाथः) होओ । (मर्यः इव) नर के समान [हे पति !] (एनाम्) इस (योषाम्) अपनी पत्नी के (अधि रोहय) ऊपर हो, और (प्रजाम्) सन्तान को (कृण्वाथाम्) तुम दोनों उत्पन्न करो, और (इह) यहाँ [गृहाश्रम में] (रयिम्) धन को (पुष्यतम्) बढ़ाओ ॥३७॥

तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति ।

या न ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः ॥३८॥

पदार्थ—(पूषन्) हे पोषक पति ! (ताम्) उस (शिवतमाम्) अतिशय कल्याण करने हारी पत्नी को (आ ईरयस्व) प्रेरणा कर (यस्याम्) जिस [पत्नी] में (मनुष्याः) मनुष्य लोग [मैं पति] (बीजम्) वीर्य (वपन्ति) बोवें । (या) जो (नः) हमारी (उशती) कामना करती हुई (ऊरू) दोनों जंघाओं को (विश्रयाति) फैलावे, और (यस्याम्) जिस में (उशन्तः) [उसकी] कामना करते हुए हम लोग (शेपः) उपस्थेन्द्रिय का (प्रहरेम) प्रहरण करें ॥३८॥

आ रोहोरुमुप धत्स्व हस्तं परि ष्वजस्व जायां सुमनस्यमानः ।

प्रजां कृण्वाथामिह मोदमानौ दीर्घं वामायुः सविता कृणोतु ॥३९॥

पदार्थ—[हे पति !] तू (ऊरुम्) जंघा के (आ रोह) ऊपर आ, (हस्तम्) हाथ का (उप धत्स्व) सहारा दे, और (सुमनस्यमानः) प्रसन्न चित्त होकर तू (जायाम्) पत्नी का (परि ष्वजस्व) आलिङ्गन कर । [हे स्त्री-पुरुषो !] (इह) यहाँ [गर्भाधान क्रिया में] (मोदमानौ) हर्ष मनाते हुए तुम दोनों (प्रजाम्) सन्तान को (कृण्वाथाम्) उत्पन्न करो, (सविता) सब का उत्पन्न करनेवाला [परमेश्वर] (वाम्) तुम दोनों का (आयुः) आयु (दीर्घम्) दीर्घ (कृणोतु) करे ॥३९॥

आ वां प्रजां जनयतु प्रजापतिरहोरात्राभ्यां समनक्त्वर्यमा ।
अदुर्मङ्गली पतिलोकमा विशेमं शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४०॥

पदार्थ—[हे वधू-वर !] (प्रजापति) प्रजापालक, (अर्यमा) श्रेष्ठों का मान करने वाला, [परमात्मा] (वाम्) तुम दोनों को (प्रजाम्) सन्तान (आ जनयतु) उत्पन्न करे और (अहोरात्राभ्याम) दिन और रात्रि के साथ [सब को] (सम् अनक्तु) संयुक्त करे। [हे वधू !] (अदुर्मङ्गली) दुष्ट लक्षण रहित तू (इमम्) इस (पतिलोकम्) पतिलोक [पतिकुल] में (आ विश) प्रवेश कर, और (नः) हमारे (द्विपदे) दोपायों के लिये (शम्) सुखदायक और (चतुष्पदे) चौपायों के लिये (शम्) सुखदायक (भव) हो ॥४०॥

देवैर्दत्तं मनुना साकमेतद् वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
यो ब्रह्मणे चिकितुषे ददाति स इद् रक्षांसि तल्पानि हन्ति ॥४१॥

पदार्थ—(य) जो [विद्वान् पिता आदि] (मनुना साकम्) मननशील राजा के साथ (देवैः) विद्वानों द्वारा (दत्तम्) दिया हुआ (एतत्) यह (वाधूयम्) विवाह का (वासः) पहिरने योग्य (वस्त्रम्) वस्त्र [योग्यता का चिह्न] (चिकितुषे) ज्ञानवान् (ब्रह्मणे) ब्रह्मा [वेदवेत्ता वर] को (च) और (वध्व - वध्वै) वधू को (ददाति) देता है, (स इत्) वही (तल्पानि) प्रतिष्ठा [सम्मान, गौरव] में होने वाले (रक्षांसि) दोषों को (हन्ति) नष्ट करता है ॥४१॥

यं मे दत्तो ब्रह्मभागं वधूयोर्वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
युवं ब्रह्मणेऽनुमन्यमानौ बृहस्पते साकमिन्द्रश्च दत्तम् ॥४२॥

पदार्थ—(यम्) जो (ब्रह्मभागम्) ब्रह्मा [वेदवेत्ता] का भाग [अर्थात्] (वाधूयम्) विवाह का (वास) पहिरने योग्य (वस्त्रम्) वस्त्र [योग्यता का चिह्न] (वधूयो = वधूयवे) वधू की कामना करने वाले (मे) मुझे (ब्रह्मणे) ब्रह्म [वेदवेत्ता वर] को (च) और (वध्वः = वध्वै) वधू को (दत्तः) वे दोनों [वर और वधू के पक्ष वाले] देते हैं। (बृहस्पते) हे बृहस्पति ! [बड़ी विद्या के रक्षक आचार्य] (च) और (इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्यवाले राजन् ! (साकम्) साथ-साथ (अनुमन्यमानौ) अनुमति देते हुए (युवम्) तुम दोनों [वह वस्त्र] (दत्तम्) देओ ॥४२॥

स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ ।
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ॥४३॥

पदार्थ—[हे स्त्री पुरुषो !] (स्योनात्) सुखदायक (योनेः) घर से (अधि) अच्छे प्रकार (बुध्यमानौ) जागते हुए, (हसामुदौ) हंसी और आनन्द करते हुए (महसा) बड़े प्रेम से (मोदमानौ) हर्ष मनाते हुए, (सुगू) सुन्दर चालचलनवाले, [वा उत्तम गौओं वाले] (सुपुत्रौ) श्रेष्ठ पुत्रोंवाले, (सुगृहौ) श्रेष्ठ गृह सामग्री वाले (जीवौ) प्राणों को धारण करते हुए तुम दोनों (विभातीः) सुन्दर प्रकाशयुक्त (उषसः) बहुत प्रभात वेलाओं को (तराथः) पार करो ॥४३॥

नवं वसानः सुरभिः सुवासा उदागां जीव उषसो विभातीः ।
आण्डात् पतत्रीवामुक्षि विश्वस्मादेनसस्परि ॥४४॥

पदार्थ—(नवम्) स्तुति को (वसानः) धारण करता हुआ, (सुरभिः) ऐश्वर्यवान्, (सुवासाः) सुन्दर निवास वाला, (जीवः) जीव [जीवता हुआ] मैं (विभातीः) सुन्दर प्रकाशयुक्त (उषसः) प्रभात वेलाओं में (उदागाम्) उदय होता रहूं। (आण्डात्) अण्डे से (पतत्री इव) पक्षी के समान (विश्वस्मात्) सब (एनसः) कष्ट से (परि) सर्वथा (अमुक्षि) छूट जाऊं ॥४४॥

शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते ।
आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥४५॥

पदार्थ—(शुम्भनी) शोभायमान (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी लोक (अन्तिसुम्ने) [अपनी] गतियों से सुख देने वाले और (महिव्रते) बड़े व्रत [नियम] वाले हैं। (देवीः) उत्तम गुण वाली (सप्त) सात (आपः) व्यापनशील इन्द्रियां [दो कान, दो नथने, दो आंखें और एक मुख] (सुस्रुवुः) [हमें] प्राप्त हुई हैं, (ताः) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥४५॥

सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च ।
ये भूतस्य प्रचेतसस्तेभ्य इदमकरं नमः ॥४६॥

पदार्थ—(सूर्यायै) बुद्धिमानों का हित करने वाली विद्या के लिये, (देवेभ्यः) उत्तम गुणों के पाने के लिये (च) और (वरुणाय) श्रेष्ठ (मित्राय) मित्र की प्राप्ति के लिये (ये) जो पुरुष (भूतस्य) उचित कर्म के (प्रचेतसः) जानने वाले हैं (तेभ्यः) उनके लिये (इदम्) यह (नमः) नमस्कार (अकरम्) करता हूँ ॥४६॥

य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
संधाता संधिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विहुतं पुनः ॥४७॥

पदार्थ—(यः) जो [परमेश्वर] (पुरा) पहिले से [वर्तमान] (ऋते) सत्य नियम में (चित्) ही (अभिश्रिषः) चिपकाने के साधन [वीर्य के बिन्दु] से (जत्रुभ्यः) ग्रीवा आदि जोड़ों के [बनाने के] लिये (आतृदः) [रुधिर के] सब ओर टकराने [घूमने] से (सन्धिम्) हड्डी के जोड़ को (संधाता) जोड़ देने वाला है, (मघवा) वह पूज्य (पुरूवसुः) बहुत श्रेष्ठ गुणों वाला [परमात्मा] (विहुतम्) टेढ़े हुए अंग को (पुनः) फिर (निष्कर्ता) ठीक करने वाला है ॥४७॥

अपास्मत् तम उच्छतु नीलं पिशङ्गमुत लोहितं यत् ।
निर्दहनी या पृषातक्यस्मिन् तां स्थाणावध्या सजामि ॥४८॥

पदार्थ—(अस्मत्) हमसे (तमः) अन्धकार (अप उच्छतु) बाहिर जावे, (उत) और [वह भी], (यत्) जो कुछ (नीलम्) नीला, (पिशङ्गम्) पीला और (लोहितम्) रक्त वर्ण [अशुद्ध वस्तु] है। (निर्दहनी) जला देने वाली (या) जो (पृषातकी) वृद्धि बाधने वाली [पीड़ा] (अस्मिन्) इस (स्थाणौ) स्थिर चित्त वाले मनुष्य में है, (ताम्) उस [पीड़ा] को (अधि) अधिकार पूर्वक (आ सजामि) मैं बांधता [रोकता] हूँ ॥४८॥

यावतीः कृत्या उपवासने यावन्तो राज्ञो वरुणस्य पाशाः ।
व्यृद्धयो या असमृद्धयो या अस्मिन् ता स्थाणावधि सादयामि ॥४९॥

पदार्थ—(उपवासने) निवास स्थान [ग्राम आदि] में (राज्ञः) ऐश्वर्यवान् पुरुष की (वरुणस्य) राजा की (यावतीः) जितनी (कृत्याः) पीड़ाएं और (यावन्तः) जितने (पाशाः) फन्दे हैं। और (याः) जो (व्यृद्धयः) निर्धनताएँ और (याः) जो (असमृद्धयः) असिद्धियां (अस्मिन्) इस (स्थाणौ) स्थिर चित्त वाले मनुष्य में हैं, (ताः) उन [सब बाधाओं] को (अधि) अधिकारपूर्वक (सादयामि) मैं मिटाता हूँ ॥४९॥

या मे प्रियतमा तनूः सा मे बिभाय वाससः ।
तस्याग्रे त्वं वनस्पते नीविं कृणुष्व मा वयं रिषाम ॥५०॥

पदार्थ—[हे वीर !] (या) जो (मे) मेरा (प्रियतमा) अत्यन्त प्रिय (तनूः) शरीर है, (सा) वह (मे) मेरा शरीर (वाससः) हिंसा कर्म से (बिभाय) डरता है। (वनस्पते) हे सेवनीय व्यवहार के रक्षक ! (त्वम्) तू (अग्रे) पहिले से (तस्य) उस [हिंसा कर्म] का (नीविम्) बन्धन (कृणुष्व) कर, (वयम्) हम लोग (मा रिषाम) कभी न कष्ट पावें ॥५०॥

ये अन्ता यावतीः सिचो य ओतवो ये च तन्तवः ।
वासो यत् पत्नीभिरुतं तन्नः स्योनमुप स्पृशात् ॥५१॥

पदार्थ—(ये) जो (अन्ताः) वस्त्र के आंचल, (यावतीः) जितनी (सिचः) कोरें, (ये) जो (ओतवः) बुनावटें, (च) और (ये) जो (तन्तवः) तन्तु [तागे] हैं। (यत्) जो (वासः) वस्त्र (पत्नीभिः) पत्नियों द्वारा (उतम्) बुना गया है, (तत्) वह (नः) हम से (स्योनम्) सुख के साथ (उप स्पृशात्) चिपटा रहे ॥५१॥

उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यतीः ।
अव दीक्षामसृक्षत स्वाहा ॥५२॥

पदार्थ—(इमाः) ये (उशतीः) कामना करती हुई (कन्यलाः) शोभावती कन्यायें (पितृलोकात्) पितृलोक [पितृकुल] से (पतिम्) अपने अपने पतिकुल को (यतीः) जाती हुई (स्वाहा) सुन्दरवाणी के साथ (दीक्षाम्) दीक्षा [नियम व्रत की शिक्षा] को (अव सृजत) दान करें ॥५२॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
वर्चो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥५३॥

पदार्थ—(बृहस्पतिना) बृहस्पति [बड़ी वेदवाणी के रक्षक आचार्य] द्वारा (अवसृष्टाम्) दी हुई [दीक्षा, नियम व्रत की शिक्षा] को (विश्वे देवाः) सब विद्वानों ने (अधारयन्) धारण किया है। (यत्) जो (वर्चः) प्रताप (गोषु) विद्वानों में (प्रविष्टम्) प्रविष्ट है, (तेन) उससे (इमाम्) इस [प्रजा, स्त्री, सन्तान आदि] को (सं सृजामसि) हम संयुक्त करते हैं ॥५३॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
तेजो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥५४॥

पदार्थ—(बृहस्पतिना) बृहस्पति [बड़ी वेदवाणी के रक्षक आचार्य] द्वारा (अवसृष्टाम्) दी हुई [दीक्षा, नियम व्रत की शिक्षा] को (विश्वे देवाः) सब विद्वानों ने (अधारयन्) धारण किया है। (यत्) जो (तेजः) तेज (गोषु) विद्वानों में (प्रविष्टम्) प्रविष्ट है, (तेन) उससे (इमाम्) इस [प्रजा, स्त्री, सन्तान आदि] को (सं सृजामसि) हम संयुक्त करते हैं ॥५४॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।

भगो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥५५॥

पदार्थ—(बृहस्पतिना) बृहस्पति [बड़ी वेदवाणी के रक्षक आचार्य] करके (अवसृष्टाम्) दी हुई [दीक्षा, नियम व्रत की शिक्षा] को (विश्वे देवाः) सब विद्वानों ने (अधारयन्) धारण किया है। (यः) जो (भगः) सेवनीय प्रभाव [ऐश्वर्य] (गोषु) विद्वानों में (प्रविष्टः) प्रविष्ट है, (तेन) उस से (इमाम्) इस [प्रजा, स्त्री, सन्तान आदि] को (सं सृजामसि) हम संयुक्त करते हैं ॥५५॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।

यशो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥५६॥

पदार्थ—(बृहस्पतिना) बृहस्पति [बड़ी वेदवाणी के रक्षक आचार्य] करके (अवसृष्टाम्) दी हुई [दीक्षा, नियम व्रत की शिक्षा] को (विश्वे देवाः) सब विद्वानों ने (अधारयन्) धारण किया है। (यत्) जो (यशः) यश [दान, शूरता आदि से बड़ा नाम] (गोषु) विद्वानों में (प्रविष्टम्) प्रविष्ट है, (तेन) उस से (इमाम्) इस [प्रजा, स्त्री, सन्तान आदि] को (सं सृजामसि) हम संयुक्त करते हैं ॥५६॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।

पयो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥५७॥

पदार्थ—(बृहस्पतिना) बृहस्पति [बड़ी वेदवाणी के रक्षक आचार्य] करके (अवसृष्टाम्) दी हुई [दीक्षा, नियम व्रत की शिक्षा] को (विश्वे देवाः) सब विद्वानों ने (अधारयन्) धारण किया है। (यत्) जो (पयः) विज्ञान (गोषु) विद्वानों में (प्रविष्टम्) प्रविष्ट है, (तेन) उससे (इमाम्) इस [प्रजा स्त्री, सन्तान आदि] को (सं सृजामसि) हम संयुक्त करते हैं ॥५७॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।

रसो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥५८॥

पदार्थ—(बृहस्पतिना) बृहस्पति [बड़ी वेदवाणी के रक्षक आचार्य] करके (अवसृष्टाम्) दी हुई [दीक्षा, नियम व्रत की शिक्षा] को (विश्वे देवाः) सब विद्वानों ने (अधारयन्) धारण किया है। (यः) जो (रसः) रस [वीर्य वा वीर रस] (गोषु) विद्वानों में (प्रविष्टः) प्रविष्ट है, (तेन) उस से (इमाम्) इस [प्रजा, स्त्री, सन्तान आदि] को (सं सृजामसि) हम संयुक्त करते हैं ॥५८॥

यदीमे केशिनो जना गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वन्तोऽघम् ।

अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥५९॥

पदार्थ—(यदि) यदि (इमे) ये (केशिनः) क्लेशयुक्त (जनाः) मनुष्य (ते गृहे) तेरे घर में (रोदेन) विलाप के साथ (अघम्) दुःख (कृण्वन्तः) करते हुए (समनर्तिषुः) मिलकर इधर-उधर फिरें। (अग्निः) तेजस्वी (च) और (सविता) प्रेरक मनुष्य (त्वा) तुझे (तस्मात् एनसः) उस कष्ट से (प्र) सर्वथा (मुञ्चताम्) छुड़ावे ॥५९॥

यदीयं दुहिता तव विकेश्यरुदद् गृहे रोदेन कृण्वत्यघम् ।

अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥६०॥

पदार्थ—[हे गृहस्थ !] (यदि) यदि (इयम्) यह (तव) तेरी (दुहिता) पुत्री (विकेशी) बाल बिखेरे हुए, (रोदेन) विलाप के साथ (अघम्) दुःख (कृण्वती) करती हुई (गृहे) घर में (अरुदत्) रोवे। (अग्निः) तेजस्वी (च) और (सविता) प्रेरक मनुष्य (त्वा) तुझे (तस्मात् एनसः) उस कष्ट से (प्र) सर्वथा (मुञ्चताम्) छुड़ावे ॥६०॥

यज्जामयो यद्युवतयो गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वतीरघम् ।

अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥६१॥

पदार्थ—(यत्) जो (जामयः) कुलस्त्रियाँ और (यत्) जो (युवतयः) युवा स्त्रियाँ (ते गृहे) तेरे घर में (रोदेन) विलाप के साथ (अघम्) कष्ट (कृण्वतीः) करती हुई (समनर्तिषुः) मिलकर इधर-उधर फिरें। (अग्निः) तेजस्वी (च) और (सविता) प्रेरक मनुष्य (त्वा) तुझे (तस्मात् एनसः) उस कष्ट से (प्र) सर्वथा (मुञ्चताम्) छुड़ावे ॥६१॥

यत् ते प्रजायां पशुषु यद्वा गृहेषु निष्ठितमघकृद्भिरघं कृतम् ।

अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥६२॥

पदार्थ—[हे गृहस्थ !] (यत्) यदि (ते) तेरी (प्रजायाम्) प्रजा [जनपद के लोगों] में, (पशुषु) पशुओं में, (वा) अथवा (यत्) यदि (गृहेषु) घरों में (अघकृद्भिः) दुःख करने वाले [रोगों वा मनुष्यों] द्वारा (कृतम्) किया गया (अघम्) दुःख (निष्ठितम्) स्थिर कर दिया गया है। (अग्निः) तेजस्वी (च) और (सविता) प्रेरक पुरुष (त्वा) तुझे (तस्मात् एनसः) उस कष्ट से (प्र) सर्वथा (मुञ्चताम्) छुड़ावे ॥६२॥

इयं नार्युप ब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका ।

दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥६३॥

पदार्थ—(इयम्) यह (नारी) नारी [नर की पत्नी] (पूल्यानि) सत्कृति के कर्मों को [बीज समान] (आवपन्तिका) बो देती हुई (उप ब्रूते) बोलती है—"(मे) मेरा (पतिः) पति (दीर्घायुः) लम्बी आयु वाला (अस्तु) होवे, और (शतं शरदः) सौ वर्षों तक (जीवाति) जीता रहे" ॥६३॥

इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती ।

प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम् ॥६४॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमैश्वर्ययुक्त राजन् ! (इह) यहाँ [संसार में] (इमौ) इन दोनों (चक्रवाका इव) चकवा-चकवी के समान (दम्पती) पति-पत्नी को (सं नुद) यथावत् प्रेरणा कर। (प्रजया) प्रजा के साथ (एनौ) इन दोनों (स्वस्तकौ) उत्तम घर वालों को (विश्वम्) सम्पूर्ण (आयुः) आयु (वि अश्नुताम्) प्राप्त होवे ॥६४॥

यदासन्द्यामुपधाने यद् वोपवासने कृतम् ।

विवाहे कृत्यां यां चक्रुरास्नाने तां नि दध्मसि ॥६५॥

पदार्थ—(यत्) जिस (कृतम्) हिंसित कर्म को (आसन्द्याम्) सिंहासन में, (उपधाने) गद्दी में, (वा) अथवा (यत्) जिस [हिंसित कर्म] को (उपवासने) छत्र में, और (याम्) जिस (कृत्याम्) दुष्ट क्रिया को (आस्नाने) स्नानगृह में (विवाहे) विवाह के बीच (चक्रुः) [वे दुष्ट लोग] करें, (ताम्) उस [दुष्टक्रिया] को (नि दध्मसि) हम नीचे धरें ॥६५॥

यद् दुष्कृतं यच्छमलं विवाहे वहतौ च यत् ।

तत् संभलस्य कम्बले मृज्महे दुरितं वयम् ॥६६॥

पदार्थ—(यत्) जो (दुष्कृतम्) दुष्ट कर्म (च) और (यत्) जो (शमलम्) मलिनता (विवाहे) विवाह में [अथवा] (यत्) जो (वहतौ) विवाह में दिये पदार्थ में [होवे]। (तत्) उस (दुरितम्) खोटे को (संभलस्य) आपस में समझा देने वाले पुरुष के (कम्बले) कामनायोग्य कर्म पर (वयम्) हम (मृज्महे) शोध लेवें ॥६६॥

संभले मलं सादयित्वा कम्बले दुरितं वयम् ।

अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥६७॥

पदार्थ—(संभले = संभलस्य) आपस में समझा देने वाले पुरुष के (कम्बले) कामनायोग्य कर्म पर (मलम्) मलिनता और (दुरितम्) खोट को (सादयित्वा) मिटा कर (वयम्) हम (यज्ञियाः) पूजायोग्य और (शुद्धाः) शुद्ध (अभूम) होवें, [और यह कर्म] (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनों को (प्रतारिषत्) बढ़ावें ॥६७॥

कृत्रिमः कण्टकः शतदन् य एषः ।

अपास्याः केश्यं मलमप शीर्षण्यं लिखात् ॥६८॥

पदार्थ—(कृत्रिमः) शिल्पी का बनाया हुआ, (शतदन्) सौ [बहुत] दाँतों वाला (यः एषः) जो यह (कण्टकः) काँटों वाला [कंघा आदि] है। वह (अस्याः) इस [प्रजा अर्थात् स्त्री-पुरुषों] के (केश्यम्) केश के और (शीर्षण्यम्) शिर के (मलम्) मल का (अप अप लिखात्) सर्वथा खरोच डाले ॥६८॥

अङ्गादङ्गाद् वयमस्या अप यक्ष्मं नि दध्मसि । तन्मा प्रापत् पृथिवीं मोत देवान् दिवं मा प्रापदुर्वन्तरिक्षम् । अपो मा प्रापन्मलमेतदग्ने यमं मा प्रापत् पितॄंश्च सर्वान् ॥६९॥

पदार्थ—(अस्याः) इस [प्रजा अर्थात् स्त्री-पुरुषों] के (अङ्गादङ्गात्) अङ्ग-अङ्ग से (वयम्) हम (यक्ष्मम्) क्षय रोग को (नि) निश्चय करके (अप

वपन्ति) बाहिर डालते हैं। (तत्) वह (वेवात्) नेत्र आदि इन्द्रियों में (मा प्र आपत्) न पहुँचे, (उत) और (मा) न (पृथिवीम्) भूमि में, (मा) न (दिवम्) धूप में और (उरु) चौड़े (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष में (प्र आपत्) पहुँचे। (अग्ने) हे विद्वान्! (एतत्) यह (मलम्) मैल (अप) जलों में (मा प्र आपत्) न पहुँचे, और (यमम्) वायु में (च) और (सर्वान्) सब (पितॄन्) ऋतुओं में (मा प्र आपत्) न पहुँचे ॥६९॥

सं त्वा नह्यामि पयसा पृथिव्याः सं त्वा नह्यामि पयसौषधीनाम् ।

सं त्वा नह्यामि प्रजया धनेन सा संनद्धा सनुहि वाजमेमम् ॥७०॥

पदार्थ—[हे प्रजा!] (त्वा) तुझे (पृथिव्याः) पृथिवी के (पयसा) ज्ञान से (सं नह्यामि) मैं कवचधारी करता हूँ, (त्वा) तुझे (ओषधीनाम्) ओषधियों [अन्न सोमलता आदि] के (पयसा) ज्ञान से (सं नह्यामि) कवचधारी करता हूँ। (त्वा) तुझे (प्रजया) प्रजा [सन्तान सेवक आदि] से और (धनेन) धन से (सं नह्यामि) मैं कटिबद्ध करता हूँ, (सा) [हे प्रजा!] सो तू (संनद्धा) सन्नद्ध [कटिबद्ध] होकर (इमम्) यह (वाजम्) बल (आ) सब ओर से (सनुहि) दे ॥७०॥

अमोऽहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक् त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम् ।

ताविह सं भवाव प्रजामा जनयावहै ॥७१॥

पदार्थ—[हे वधू!] (अहम्) मैं [वर (अमः) ज्ञानवान् (अस्मि) हूँ, (सा) सो (त्वम्) तू [ज्ञानवती है], (अहम्) मैं (साम) सामवेद [मोक्ष ज्ञान के समान सुखदायक] (अस्मि) हूँ, (त्वम्) तू (ऋक्) ऋग्वेद की ऋचा [पदार्थों के गुणों की बड़ाई बताने वाली विद्या के तुल्य आनन्द देनेवाली] है, (अहम्) मैं (द्यौः) सूर्य [वृष्टि आदि करने वाले रवि के समान उपकारी] हूँ, और (त्वम्) तू (पृथिवी) पृथिवी [अन्न आदि उत्पन्न करने वाली भूमि के समान उत्तम सन्तान उत्पन्न करने वाली] है। (तौ) वे हम दोनों (इह) यहाँ [गृहाश्रम में] (सं भवाव) पराक्रमी होवें, और (प्रजाम्) प्रजा [उत्तम सन्तान] को (आ जनयावहै) उत्पन्न करें ॥७१॥

जनियन्ति नावग्रवः पुत्रियन्ति सुदानवः ।

अरिष्टासू सचेवहि बृहते वाजसातये ॥७२॥

पदार्थ—(अग्रवः) उद्योगी, (सुदानवः) बड़े दानी लोग (नौ) हम दोनों के लिये (जनियन्ति) जनों [भक्तजनों] को चाहते हैं और (पुत्रियन्ति) पुत्रों को चाहते हैं। (अरिष्टासू) बिना नाश किये हुए प्राणों वाले [सदा पुरुषार्थी] हम दोनों (बृहते) बड़े (वाजसातये) विज्ञान, बल और अन्न के दान के लिये (सचेवहि) सदा मिले रहें ॥७२॥

ये पितरो वधूदर्शा इमं वहतुमागमन् ।

ते अस्यै वध्वै संपत्न्यै प्रजावच्छर्म यच्छन्तु ॥७३॥

पदार्थ—(ये) जो (वधूदर्शाः) वधू के देखने वाले (पितरः) पिता आदि लोग (इमम्) इस (वहतुम्) विवाह उत्सव में (आ अगमन्) आये हैं। (ते) वे सब (संपत्न्यै) पतिसहित वर्तमान (अस्यै वध्वै) इस वधू को (प्रजावत्) प्रजा [सन्तान, सेवक आदि जनता] वाला (शर्म) सुख (यच्छन्तु) देवें ॥७३॥

येदं पूर्वागन् रशनायमाना प्रजामस्यै द्रविणं चेह दत्त्वा ।

तां वहन्त्वगतस्यानु पन्थां विराडियं सुप्रजा अत्यजैषीत् ॥७४॥

पदार्थ—(या) जो [वधू] (पूर्वा) पहिली [सब से ऊपर] होकर (रशनायमाना) कटि बाँधे हुए (इदम्) इस [स्थान] में (आगन्) आवे, (अस्यै) इस [वधू] के हित के लिये (इह) यहाँ (प्रजाम्) प्रजा [सन्तान, सेवक आदि जनता] (च) और (द्रविणम्) धन (दत्त्वा) देकर (ताम्) उस को (अगतस्य) बिना प्राप्त हुए [आगे आनेवाले काल] के (पन्थाम् अनु) मार्ग के पीछे-पीछे (वहन्तु) वे [पिता आदि] ले चलें, (विराट्) बड़े ऐश्वर्यवाली (इयम्) यह (सुप्रजाः) उत्तम जन्म वाली [वधू] (अति) अत्यन्त (अजैषीत्) जय पावे ॥७४॥

प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।

गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥७५॥

पदार्थ—[हे पत्नी!] तू (शतशारदाय) सौ वर्ष तक (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन पाने के लिये (सुबुधा) उत्तम बुद्धि वाली और (बुध्यमाना) सावधान रहकर (प्र बुध्यस्व) जागती रहे। (गृहान्) घरों [घर के पदार्थों] को (गच्छ) प्राप्त हो, (यथा) जिस से तू (गृहपत्नी) गृहपत्नी (असः) होवे, (सविता) सब ऐश्वर्यवाला परमात्मा (ते) तेरे (आयुः) जीवन को (दीर्घम्) दीर्घ (कृणोतु) करे ॥७५॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

चतुर्दशं काण्डम् समाप्तम् ॥

पञ्चदशं काण्डम्

प्रथमोऽनुवाकः

सूक्तम् ॥१॥

[१] १—८ अथर्वा । अध्यात्मम्, व्रात्यः । (१) साम्नी पङ्क्तिः; २ द्विप० साम्नी बृहती, ३ एकप० यजुर्ब्राह्म्यनुष्टुप्, ४ एकप० विराड् गायत्री, ५ साम्नी अनुष्टुप्, ६ त्रिप० प्राजापत्या बृहती, ७ आसुरीपङ्क्तिः; ८ त्रि० अनुष्टुप् ।

व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत् ॥१॥

पदार्थ—(व्रात्यः) व्रात्य [अर्थात् सब समूहों का हितकारी परमात्मा] (ईयमानः) चलता हुआ (एव) ही (आसीत्) वर्तमान था, (सः) उसने (प्रजापतिम्) [अपने] प्रजापालक गुण को (सम्) यथावत् (ऐरयत्) उकसाया ॥१॥

स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यत् तत् प्राजनयत् ॥२॥

पदार्थ—(सः) उस (प्रजापतिः) प्रजापालक [परमात्मा] ने (सुवर्णम्) सुन्दर वरणीय [स्वीकरणीय] सामर्थ्य [वा सुवर्ण-समान प्रकाशस्वरूप] को (आत्मन्) अपने में (अपश्यत्) देखा और (तत्) उसको (प्र अजनयत्) प्रकट किया ॥२॥

तदेकमभवत् तल्ललाममभवत् तन्महदभवत् तज्ज्येष्ठमभवत् ।

तद् ब्रह्माभवत् तत् तपोऽभवत् तत् सत्यमभवत् तेन प्राजायत ॥३॥

पदार्थ—(तत्) वह [वरणीय सामर्थ्य] (एकम्) एक [अद्वितीय] (अभवत्) हुआ, (तत्) वह (ललामम्) प्रधानस्वरूप (अभवत्) हुआ, (तत्) वह (महत्) गुणों में बड़ा (अभवत्) हुआ, (तत्) वह (ज्येष्ठम्) अत्यन्त वयोवृद्ध (अभवत्) हुआ, (तत्) वह (ब्रह्म) ब्रह्म [बड़ा फैला हुआ व्यापक] (अभवत्) हुआ, (तत्) वह (तपः) तप [प्रताप वा ऐश्वर्यस्वरूप] (अभवत्) हुआ, (तत्) वह (सत्यम्) सत्य [विद्यमान जगत् का हितकारी अविनाशी कारणरूप] (अभवत्) हुआ, (तेन) उस [स्वरूप] के साथ (प्र अजायत) वह परमात्मा प्रकट हुआ ॥३॥

सोऽवर्धत स महानभवत् स महादेवोऽभवत् ॥४॥

पदार्थ—(सः) वह [परमात्मा] (अवर्धत) बढ़ा [उसने अपना सामर्थ्य प्रकट किया], (सः) वह (महान्) महान् [बड़ा पूजनीय] (अभवत्) हुआ, (सः) वह (महादेवः) महादेव [बड़ा तेजस्वी वा व्यवहारकुशल] (अभवत्) हुआ ॥४॥

स देवानामीशां पर्यैत् स ईशानोऽभवत् ॥५॥

पदार्थ—(सः) उसने (देवानाम्) सब व्यवहारकुशलों की (ईशाम्) ईश्वरता [प्रभुता] को (परि ऐत्) सब ओर से पाया और (सः) वह (ईशानः) परमेश्वर (अभवत्) हुआ ॥५॥

स एकव्रात्योऽभवत् स धनुरादत्त तदेवेन्द्रधनुः ॥६॥

पदार्थ—(सः) वह [परमात्मा] (एकव्रात्यः) अकेला व्रात्य [सब समूहों का हितकारी] (अभवत्) हुआ, (सः) उसने (धनुः) उत्पन्न करने के सामर्थ्य को (आ अदत्त) ग्रहण किया, (तत् एव) वही (इन्द्रधनुः) जीवों को उत्पन्न करने में समर्थ है ॥६॥

नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम् ॥७॥

पदार्थ—(नीलम्) निश्चित ज्ञान (अस्य) उस [परमात्मा] का (उदरम्) उदर [के समान है] और (लोहितम्) उत्पन्न करने का सामर्थ्य (पृष्ठम्) पीठ [के समान है] ॥७॥

नीलेनैवाप्रियं भ्रातृव्यं प्रोर्णोति लोहितेन द्विषन्तं
विध्यतीति ब्रह्मवादिनो वदन्ति ॥८॥

पदार्थ—वह [परमात्मा अपने] (नीलेन) निश्चित ज्ञान से (एव) ही (अप्रियम्) अप्रिय (भ्रातृव्यम्) वैरी [विघ्न] को (प्र ऊर्णोति) ढक देता है और (लोहितेन) उत्पादन सामर्थ्य से (द्विषन्तम्) द्रोह करते हुए [विघ्न] को (विध्यति) बींधता [छेद डालता] है (इति) ऐसा (ब्रह्मवादिनः) ब्रह्मवादी लोग (वदन्ति) कहते हैं ॥८॥

卐 सूक्तम् २ 卐

[१] १-२८ अथर्वा । अध्यात्म, व्रात्य प्र० १-४, १५; ४प, साम्नी अनुष्टुप्; द्वि०१, ३,४ साम्नी त्रिष्टुप्; तृ० १द्विप० आर्षी पंक्तिः; च० १,३,४ द्वि० प्रा० जगती; पं० १—४ द्विप० आर्षी जगती, ष०२ साम्नी पंक्ति, ष० ३ आसुरी गायत्री; स० १—४ पदपंक्ति अ०१—४ त्रिप० प्राजा० त्रिष्टुप्, द्वि० २ एकप० उष्णिक्, तृ० २ द्विप० आर्षी भुरिक् त्रिष्टुप्; च० २ आर्षी परानुष्टुप्; तृ० ३ विराडार्षी पंक्तिः, तृ० ४ निचृदार्षी पंक्तिः ।

स उदतिष्ठत् स प्राचीं दिशमनु व्यचलत् ॥१॥

पदार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (उत् अतिष्ठत्) खड़ा हुआ (सः) वह (प्राचीम्) सामने वाली [अथवा पूर्व] (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥१॥

तं बृहच्च रथन्तरं चादित्याश्च विश्वे च देवा अनुव्यचलन् । २॥

पदार्थ—(बृहत्) बृहत् [बड़ा आकाश] (च च) और (रथन्तरम्) रथन्तर [रमणीय गुणों द्वारा पार होने योग्य जगत्] (च) और (आदित्याः) सब चमकने वाले सूर्य आदि (च) और (विश्वे) सब (देवाः) गतिवाले लोक (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे-पीछे विचरे ॥२॥

बृहते च वै स रथन्तराय चादित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च देवेभ्य
आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह [मूर्ख] (वै) निश्चय करके (बृहते) बृहत् [बड़े आकाश] के लिये (च च) और (रथन्तराय) रथन्तर [रमणीय गुणों द्वारा पार होने योग्य जगत्] के लिये (च) और (आदित्येभ्यः) चमकने वाले सूर्य आदि के लिये (च) और (विश्वेभ्यः) सब (देवेभ्य.) गति वाले लोकों के लिये (आ) सब प्रकार (वृश्चते) दोषी होता है, (य) जो [मूर्ख] (एवम्) ऐसे वा व्यापक (विद्वांसम्) ज्ञानवान् (व्रात्यम्) व्रात्य [सब समूहों के हितकारी परमात्मा] को (उपवदति) बुरा कहता है ॥३॥

बृहतश्च वै स रथन्तरस्य चादित्यानां च विश्वेषां च
देवानां प्रियं धाम भवति तस्य प्राच्यां दिशि ॥४॥

पदार्थ—(स) वह [विद्वान] (वै) निश्चय करके (बृहतः) बृहत् [बड़े आकाश] का (च च) और भी (रथन्तरस्य) रथन्तर [रमणीय गुणों द्वारा पार होने योग्य जगत्] का (च) और (आदित्यानाम्) चमकने वाले सूर्यों का (च) और (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) गतिवाले लोकों [अर्थात् उनके ज्ञान] का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है और (तस्य) उस [विद्वान्] के लिये (प्राच्यां दिशि) सामने वाली [वा पूर्व] दिशा में ॥४॥

श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ।५॥

पदार्थ—(श्रद्धा) इच्छा (पुंश्चली) पुंश्चली [पर पुरुषों में जाने वाली व्यभिचारिणी स्त्री, तथा परस्त्रीगामी व्यभिचारी पुरुष के समान घृणित] (मित्र) स्नेह (मागधः) भाट [स्तुतिपाठक के समान], (विज्ञानम्) विज्ञान [विवेक] (वासः) वस्त्र [के समान], (अहः) दिन (उष्णीषम्) [धूप रोकने वाली] पगड़ी [के समान], (रात्री) रात्रि (केशाः) केश [के समान] (हरितौ) दोनों धारण आकर्षण गुण (प्रवर्तौ) दो गोलकुण्डल [कर्णभूषण के समान] और (कल्मलिः) [गति देनेवाली] तारागणों की झलक (मणिः) मणि [मणियों के हार के समान] ॥५॥

भूतं च भविष्यच्च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ॥६॥

पदार्थ—(भूतम्) भूत [बीता हुआ] (च च) और भी (भविष्यत्) भविष्यत् [आने वाला] (परिष्कन्दौ) [सब ओर चलने वाले] दो सेवक [के समान], (मनः) मन (विपथम्) विविध मार्गगामी रथ [यान आदि के समान] ॥६॥

मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः
सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥७॥

पदार्थ—(मातरिश्वा) आकाश में घूमने वाला सूत्रात्मा [वायु-विशेष] (च च) और भी (पवमान) सशोधक वायु (विपथवाहौ) दो रथ ले चलने वाले [बैल घोड़े आदि के समान], (वातः) वात [सामान्य वायु] (सारथिः) सारथी [रथ हांकने वाले के समान] (रेष्मा) आंधी (प्रतोद) अंकुश [कोड़ा, पैना समान] ॥७॥

कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो
गच्छति य एवं वेद ॥८॥

पदार्थ—(कीर्ति.) कीर्ति [दान आदि से बड़ाई] (च च) और (यश) [शूरता आदि से बड़ाई] (पुरःसरौ) दो अग्रधावक [पायक-समान] हैं, (एनम्) उस [विद्वान्] को (कीर्ति) कीर्ति [दान आदि से बड़ाई] (आ) आकर (गच्छति) मिलती है, (यश) यश [शूरता आदि से बड़ा नाम] (आ) आकर, (गच्छति) मिलता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥८॥

स उदतिष्ठत् स दक्षिणां दिशमनु व्यचलत् ॥९॥

पदार्थ—(स) वह [व्रात्य परमात्मा] (उत् अतिष्ठत्) खड़ा हुआ, (स) वह (दक्षिणाम्) दाहिनी [वा दक्षिण] (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा । ९॥

तं यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च यज्ञश्च यजमानश्च
पशवश्चानुव्यचलन् । १०॥

पदार्थ—(यज्ञायज्ञियम्) सब यज्ञों का हितकारी [वेदज्ञान] (च च) और (वामदेव्यम्) वामदेव [श्रेष्ठ परमात्मा] से जताया गया [भूतपञ्चक] (च) और (यज्ञः) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] (च) और (यजमान) यजमान [पूजनीय व्यवहार करने वाला पुरुष] (च) और (पशव) सब जीव जन्तु (तम्) उस [परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे-पीछे विचरे ॥१०॥

यज्ञायज्ञियाय च वै स वामदेव्याय च यज्ञाय च यजमानाय
च पशुभ्यश्चा वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥११॥

पदार्थ—(स) वह [मूर्ख] (वै) निश्चय करके (यज्ञायज्ञियाय) सब यज्ञों के हितकारी [वेदज्ञान] के लिये (च च) और भी (वामदेव्याय) वामदेव [श्रेष्ठ परमात्मा] से जताये गये [भूतपञ्चक] के लिये (च) और (यज्ञाय) पूजनीय व्यवहार के लिये (च) और (यजमानाय) यजमान [पूजनीय व्यवहार करने वाले] के लिये (च) और (पशुभ्य) सब जीव-जन्तुओं के लिये (आ) सब प्रकार (वृश्चते) दोषी होता है, (य) जो [मूर्ख] (एवम्) ऐसे वा व्यापक (विद्वांसम्) ज्ञानवान् (व्रात्यम्) व्रात्य [सब समूहों के हितकारी परमात्मा] का (उपवदति) बुरा कहता है ॥११॥

यज्ञायज्ञियस्य च वै स वामदेव्यस्य च यज्ञस्य च यजमानस्य
च पशूनां च प्रियं धाम भवति तस्य दक्षिणायां दिशि ॥१२॥

पदार्थ—(सः) वह [विद्वान्] (वै) निश्चय करके (यज्ञायज्ञियस्य) सब यज्ञों के हितकारी [वेदज्ञान] का (च च) और भी (वामदेव्यस्य) वामदेव [श्रेष्ठ परमात्मा] से जताये गये [भूतपञ्चक] का(च) और (यज्ञस्य) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] का (च) और (यजमानस्य) यजमान [पूजनीय व्यवहार करने वाले पुरुष] का (च) और (पशूनाम्) सब जीव-जन्तुओं का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है । और (तस्य) उस [विद्वान्] के लिये (दक्षिणायाम्) दाहिनी [वा दक्षिण] (दिशि) दिशा में ॥१२॥

उषाः पुंश्चली मन्त्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री
केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः । १३॥

पदार्थ—(उषा) हिंसा (पुंश्चली) पुंश्चली [पर पुरुषों में जाने वाली व्यभिचारिणी स्त्री, तथा परस्त्रीगामी व्यभिचारी पुरुष के समान घृणित], (मन्त्रः) मननगुण (मागधः) भाट [स्तुतिपाठक के समान], (विज्ञानम्) विज्ञान [विवेक] (वासः) वस्त्र [के समान], (अहः) दिन (उष्णीषम्) [धूप रोकने वाली] पगड़ी [के समान], (रात्री) रात्री (केशाः) केश [के समान] (हरितौ) दोनों धारण-आकर्षक गुण (प्रवर्तौ) दो गोलकुण्डले [कर्णभूषण के समान] और (कल्मलिः) [गति देने वाली] तारों की झलक (मणिः) मणि [मणियों के हार के समान] ॥१३॥

अमावास्या च पौर्णमासी च परिष्कन्दौ मनो विपथम् । मातरिश्वा
च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः । कीर्तिश्च

यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छति यशो गच्छति य एवं वेद ॥१४॥

पदार्थ—(अमावास्या) अमावस [कृष्णपक्ष की अन्तिम तिथि अर्थात् अंधकार वा अविद्या] (च च) और भी (पूर्णमासी) पूर्णमासी [शुक्लपक्ष की अंतिम तिथि, अर्थात् प्रकाश वा विद्या] (परिष्कन्दौ) [सब ओर चलने वाले] दो सेवक [के समान] (मनः) मन (विपथम्) विविध मार्गगामी रथ [यान आदि के समान] (मातरिश्वा) आकाश मे घूमने वाला सूत्रात्मा [वायु-विशेष] (च च) और भी (पवमानः) सशोधक वायु (विपथवाहौ) दो रथ लेचलने वाले [बैल घोड़े आदि के समान], (वातः) वात [सामान्य वायु] (सारथिः) सारथी [रथ हाँकने वाले के समान] (रेष्मा) आंधी (प्रतोदः) अकुश [कोड़ा, पैना समान] (कीर्ति) कीर्ति [दान आदि से बड़ाई] (च च) और (यश) यश [शूरता आदि से बड़ाई] (पुरःसरौ) दो अग्रधावक [पावक-समान] हैं, (एनम्) उस [विद्वान्] को (कीर्ति.) कीर्ति [दान आदि से बड़ाई] (आ) आकर (गच्छति) मिलती है, (यश) यश [शूरता आदि से बड़ा नाम] (आ) आकर, (गच्छति) मिलता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥१४॥

स उदतिष्ठत् स प्रतीचीं दिशमनु व्यचलत् ॥१५॥

पदार्थ—(स) वह [व्रात्य परमात्मा] (उत् अतिष्ठत्) खड़ा हुआ, (सः) वह (प्रतीचीम्) पीछे वाली[वा पश्चिम] (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥६॥

तं वैरूपं च वैराजं चापश्च वरुणश्च राजानुव्यचलन् ॥१६॥

पदार्थ—(वैरूपम्) वैरूप [विविध पदार्थों का जताने वाला वेद ज्ञान] (च च) और (वैराजम्) वैराज [विराट् रूप, अर्थात् बड़े ऐश्वर्यवान् वा प्रकाशमान परमात्मा के स्वरूप का प्राप्त कराने वाला मोक्षज्ञान] (च) और (आपः) प्रजाएँ [सृष्टि की वस्तुएँ] (च) और (राजा) राजा [ऐश्वर्यवान्] (वरुण) श्रेष्ठ जीव [मनुष्य] (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे पीछे विचरे ॥१६॥

वैरूपाय च वै स वैराजाय चाद्भ्यश्च वरुणाय च

राज्ञ आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥१७॥

पदार्थ—(स.) वह [मूर्ख] (वै) निश्चय करके (वैरूपाय) वैरूप [विविध पदार्थों के जताने वाले वेदज्ञान] के लिये (च च) और भी (वैराजाय) वैराज [विराट् रूप, बड़े ऐश्वर्यवान् वा प्रकाशमान परमात्मा के स्वरूप के प्राप्त कराने वाले मोक्षज्ञान] के लिये (च) और (अद्भ्य) प्रजाओ के लिये (च) और (राज्ञे) राजा [ऐश्वर्यवान्] (वरुणाय) श्रेष्ठ जीव [मनुष्य] के लिये (आ) सब प्रकार (वृश्चते) दोषी होता है, (य) जो मूर्ख (एवम्) व्यापक (विद्वांसम्) ज्ञानवान् (व्रात्यम्) व्रात्य [सब समूहो के हितकारी परमात्मा] को (उपवदति) बुरा कहता है ॥१७॥

वैरूपस्य च वै स वैराजस्य चापां च वरुणस्य च राज्ञः

प्रियं धाम भवति तस्य प्रतीच्यां दिशि ॥१८॥

पदार्थ—(स) वह [विद्वान्] (वै) निश्चय करके (वैरूपस्य) वैरूप [विविध पदार्थों के जताने वाले वेदज्ञान] का (च च) और भी (वैराजस्य) वैराज [विराट्रूप ऐश्वर्यवान् वा प्रकाशमान परमात्मा के स्वरूप के प्राप्त कराने वाले मोक्षज्ञान] का (च) और (अपाम्) प्रजाओ का (च) और (राज्ञ) ऐश्वर्यवान् (वरुणस्य) श्रेष्ठ जीव [मनुष्य] का (प्रियम) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है। और (तस्य) उस [विद्वान्] के लिये (प्रतीच्याम्) पीछे वाली [वा पश्चिम] (दिशि) दिशा मे ॥१८॥

इरा पुंश्चली हसो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं

रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥१९॥

पदार्थ—(इरा) मदिरा [मद्यवस्तु] (पुंश्चली) पुंश्चली [पर पुरुषो मे जाने वाली व्यभिचारिणी स्त्री तथा परस्त्रीगामी व्यभिचारी पुरुष के समान घृणित] (हसः) हास्यरस (मागध) भाट [स्तुतिपाठक के समान], (विज्ञानम्) विज्ञान [विवेक] (वास.) वस्त्र [के समान], (अहः) दिन (उष्णीषम्) [धूप रोकने वाली] पगड़ी [के समान], (रात्री) रात्रि (केशाः) केश [के समान],(हरितौ) दोनों धारण आकर्षण गुण (प्रवर्तौ) दो गोलकुण्डल [कर्णभूषण समान] और (कल्मलिः) [गति देने वाली] तारो की झलक (मणि) मणि [मणियो के हार समान] ॥१९॥

अहश्च रात्री च परिष्कन्दौ मनो विपथम् । मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः । कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥२०॥

पदार्थ—(अहः) दिन (च च) और भी (रात्री) रात्रि (परिष्कन्दौ) [सब ओर चलने वाले] दो सेवक [समान], (मन)मन (विपथम) विविध मार्गगामी रथ [यान आदि के समान] (मातरिश्वा) आकाश में घूमने वाला सूत्रात्मा [वायु विशेष] (च च) और भी (पवमान.) सशोधक वायु (विपथवाहौ) दो रथ लेचलने वाले [बैल घोड़े आदि के समान], (वात) वात [सामान्य वायु] (सारथिः) सारथी [रथ हाँकने वाले के समान] (रेष्मा) आंधी (प्रतोद) अंकुश [कोड़ा, पैना समान] (कीर्तिः) कीर्ति [दान आदि से बड़ाई] (च च) और (यश.) यश [शूरता आदि से बड़ाई] (पुरःसरौ) दो अग्रधावक [पावक-समान] हैं, (एनम्) उस [विद्वान्] को (कीर्तिः) कीर्ति [दान आदि से बड़ाई] (आ) आकर (गच्छति) मिलती है, (यशः) यश [शूरता आदि से बड़ा नाम] (आ) आकर, (गच्छति) मिलता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥२०॥

स उदतिष्ठत् स उदीचीं दिशमनु व्यचलत् ॥२१॥

पदार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (उत् अतिष्ठत्) खड़ा हुआ, (स) वह (उदीचीम्) बाई [अथवा उत्तर] (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥२१॥

तं श्यैतं च नौधसं च सप्तर्षयश्च सोमश्च राजानुव्यचलन् ॥२२॥

पदार्थ—(श्यैतम्) श्यैत [सद्गति बतानेवाला वेदज्ञान] (च च) और (नौधसम्) नौधस [ऋषियो का हितकारी मोक्षज्ञान] (च) और (सप्तर्षय) सात ऋषि [छह इन्द्रिया और सातवी बुद्धि अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] (च) और (राजा) राजा [ऐश्वर्यवान्] (सोम) प्रेरक मनुष्य (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे-पीछे चले ॥२२॥

श्यैताय च वै स नौधसाय च सप्तर्षिभ्यश्च सोमाय च राज्ञ

आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥२३॥

पदार्थ—(स) वह [मूर्ख] (वै) निश्चय करके (श्यैताय) श्यैत [सद्गति बतानेवाले वेदज्ञान] के लिये (च च) और भी (नौधसाय) नौधस [ऋषियो के हितकारी मोक्षज्ञान] के लिये (च) और (सप्तर्षिभ्यः) सात ऋषियों [छह इन्द्रियों और सातवी बुद्धि के लिये (च) और (राज्ञे) ऐश्वर्यवान् (सोमाय) प्रेरक जीव [मनुष्य] के लिये (आ) सब प्रकार (वृश्चते) दोषी होता है, (यः) जो [मूर्ख] (एवम्) व्यापक (विद्वांसम्) ज्ञानवान् (व्रात्यम) व्रात्य [सब समूहो के हितकारी परमात्मा] को (उपवदति) बुरा कहता है ॥२३॥

श्यैतस्य च वै स नौधसस्य च सप्तर्षीणां च सोमस्य च

राज्ञः प्रियं धाम भवति तस्योदीच्यां दिशि ॥२४॥

पदार्थ—(स) वह [विद्वान्] (वै) निश्चय करके (श्यैतस्य) श्यैत [सद्गति बताने वाले वेदज्ञान] का (च च) और भी (नौधसस्य) नौधस [ऋषियों के हितकारी मोक्षज्ञान] का (च) और (सप्तर्षीणाम्) सात ऋषियो [छह इन्द्रियों और सातवी बुद्धि का (च) और (राज्ञ) ऐश्वर्यवान (सोमस्य) प्रेरक पुरुष का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है। और (तस्य) उस [विद्वान्] के लिये (उदीच्याम) बायी [वा उत्तर] (दिशि) दिशा मे ॥२४॥

विद्युत् पुंश्चली स्तनयित्नुर्मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं

रात्री केशा हरितौ कल्मलिर्मणिः ॥२५॥

पदार्थ—(विद्युत) बिजली [बिजुली के समान चचलता] (पुंश्चली) पुंश्चली [परपुरुषो मे जानेवाली व्यभिचारिणी स्त्री तथा परस्त्रीगामी व्यभिचारी पुरुष के समान घृणित], (स्तनयित्नु) मेघ की गर्जन (मागधः) भाट [स्तुतिपाठक के समान], (विज्ञानम्) विज्ञान [विवेक] (वासः) वस्त्र [के समान], (अह.) दिन (उष्णीषम्)[धूप रोकनेवाली] पगड़ी [के समान], (रात्री) रात्रि (केशा) केश [के समान], (हरितौ) दोनो धारण आकर्षण गुण (प्रवर्तौ) दो गोलकुण्डल [कर्णभूषण के समान] और (कल्मलि) [गति देनेवाली] तारा गणो की झलक (मणि.) [मणियो के हार के समान] ॥२५॥

श्रुतं च विश्रुतं च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ॥२६॥

पदार्थ—(श्रुतम) ख्याति [प्रशसा] (च च) और (विश्रुतम्) विख्याति [प्रसिद्धि] (परिष्कन्दौ) [सब ओर चलने वाले] दो सेवक [के समान] (मनः) मन (विपथम्) विविध मार्गगामी रथ [यान आदि के समान] ॥२६॥

मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः

सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥२७॥

पदार्थ—(मातरिश्वा) आकाश में घूमनेवाला सूत्रात्मा [वायु-विशेष] (च च) और भी (पवमान) सशोधक वायु (विपथवाहौ) दो रथ को चलाने वाले [बैल घोड़े आदि के समान], (वात) वात [सामान्य वायु] (सारथिः) सारथी [रथ हाँकने वाले के समान] (रेष्मा) आंधी (प्रतोदः) अकुश [कोड़ा, पैना समान] ॥२७॥

कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥२८॥

पदार्थ—(कीर्तिः) कीर्ति [दान आदि से बड़ाई] (च च) और भी (यशः) यश [शूरता आदि से बड़ाई] (पुरःसरौ) दो अग्रगामी [पावक समान] हैं, (एनम्) उस [विद्वान्] को (कीर्तिः) कीर्ति [दान आदि से बड़ाई] (आ) आकर (गच्छति) मिलती है, (यशः) यश [शूरता आदि से बड़ा नाम] (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥२८॥

卐 सूक्तम् ३ 卐

(३) १—११ अथर्वा । अध्यात्मम्, व्रात्य, १ पिपीलिका मध्या गायत्री; २ साम्नी उष्णिक्, ३ याजुषी जगती, ४ द्विप० आर्ची उष्णिक्, ५ आर्ची बृहती ६ आसुरी अनुष्टुप्, ७ साम्नी गायत्री, ८ आसुरी पंक्ति; ९ आसुरी जगती, १० प्राजापत्या त्रिष्टुप्, ११ विराड् गायत्री ।

स संवत्सरमूर्ध्वोऽतिष्ठत् तं देवा अब्रुवन् व्रात्य किं नु तिष्ठसीति ॥१॥

पदार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (संवत्सरम्) वर्ष भर तक [कुछ काल तक] (ऊर्ध्वः) ऊंचा (अतिष्ठत्) खड़ा रहा, (तम्) उस से (देवाः) देवता [विद्वान् लोग] (अब्रुवन्) बोले—(व्रात्य) हे व्रात्य ! [सब समूहों के हितकारी परमात्मन्] (किम्) क्यों (नु) अब (तिष्ठसि इति) तू खड़ा है ॥१॥

सोऽब्रवीदासन्दीं मे सं भरन्त्विति ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (अब्रवीत्) बोला—(आसन्दीम्) सिंहासन (मे) मेरे लिये (सम्) मिलकर (भरन्तु इति) आप धरें ॥२॥

तस्मै व्रात्यायासन्दीं समभरन् ॥३॥

पदार्थ—(तस्मै) उस (व्रात्याय) व्रात्य [सब समूहों के हितकारी परमात्मा] के लिये (आसन्दीम्) सिंहासन (सम् अभरन्) उन्होंने मिलकर रक्खा ॥३॥

तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च द्वौ पादावास्तां शरच्च वर्षाश्च द्वौ ॥४॥

पदार्थ—(वसन्तः) वसन्त ऋतु (च च) और (ग्रीष्मः) घाम ऋतु (तस्याः) उस [सिंहासन] के (द्वौ) दो (च) और (वर्षाः) वर्षा ऋतु (च) और (शरत्) शरद् ऋतु (द्वौ) दो (पादौ) पाये (आस्ताम्) थे ॥४॥

बृहच्च रथंतरं चानूच्ये आस्तां यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च तिरश्च्ये ॥५॥

पदार्थ—(बृहत्) बृहत् [बड़ा आकाश] (च च) और (रथन्तरम्) रथंतर [रमणीय गुणों से पार होने योग्य जगत्] (अनूच्ये) दो पाटियां [पट्टियां, लम्बे काष्ठ आदि जोड़] (च) और (यज्ञायज्ञियम्) सब यज्ञों का हितकारी [वेदज्ञान] (च) और (वामदेव्यम्) वामदेव [श्रेष्ठ परमात्मा] से जताया गया [भूत पञ्चक] (तिरश्च्ये) दो सेरुवे [तिरछे काष्ठ आदि जोड़] (आस्ताम्) थे ॥५॥

ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः ॥६॥

पदार्थ—(ऋचः) ऋचायें [पदार्थों की गुण प्रकाशक विद्यायें] [उस सिंहासन के] (प्राञ्चः) लम्बे फैले हुए (तन्तवः) तन्तु [सूत] और (यजूंषि) यजुर्मन्त्र (तिर्यञ्चः) तिरछे फैले हुए [तन्तु] थे ॥६॥

वेद आस्तरणं ब्रह्मोपबर्हणम् ॥७॥

पदार्थ—(वेदः) धन [उस सिंहासन का] (आस्तरणम्) बिछौना और (ब्रह्म) अन्न (उपबर्हणम्) बालिश [सिर रखने का सहारा] था ॥७॥

सामासाद उद्गीथोऽपश्रयः ॥८॥

पदार्थ—(साम) सामवेद [मोक्षज्ञान] (आसादः) [उस सिंहासन का] बैठने का स्थान और (उद्गीथः) उद्गीथ [अच्छे प्रकार गाने योग्य ओ३म् शब्द] (अपश्रयः) सहारा था ॥८॥

तामासन्दीं व्रात्य आरोहत् ॥९॥

पदार्थ—(ताम्) उस (आसन्दीम्) सिंहासन पर (व्रात्यः) व्रात्य [सब समूहों का हितकारी परमात्मा] (आ अरोहत्) चढ़ गया ॥९॥

तस्य देवजनाः परिष्कन्दा आसन्त्संकल्पाः प्रहाय्याः विश्वानि भूतान्युपसदः ॥१०॥

पदार्थ—(देवजनाः) विद्वान् लोग (तस्य) उस [व्रात्य परमात्मा] के (परिष्कन्दाः) सेवक, (संकल्पाः) सङ्कल्प [दृढ़ विचार] (प्रहाय्याः) [उसके] दूत, और (विश्वानि) सब (भूतानि) सत्तायें [उसके] (उपसदः) निकटवर्ती (आसन्) थे ॥१०॥

विश्वान्येवास्य भूतान्युपसदो भवन्ति य एवं वेद ॥११॥

पदार्थ—(विश्वानि) सब (एव) ही (भूतानि) सत्ता वाले पदार्थ (अस्य) उस [विद्वान् पुरुष] के (उपसदः) समीपवर्ती (भवन्ति) होते हैं, (यः) जो (एवम्) व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥११॥

卐 सूक्तम् ४ 卐

१—१८ अथर्वा । अध्यात्म व्रात्यः । प्र० १,४,६ दैवी जगती, प्र० २, ३,४ प्राजापत्या गायत्री; द्वि०१ द्वि०३ आर्ची अनुष्टुप्, तृ० १ तृ०४ द्विप० प्राजापत्या जगती, द्वि०२ प्राजापत्यापङ्क्तिः । तृ० २आर्ची गायत्री, तृ० ३ भौमार्ची त्रिष्टुप्, द्वि०४ साम्नी त्रिष्टुप, द्वि०५ प्राजापत्या बृहती; तृ०५ द्वि०६ द्विप० आर्ची पंक्ति ; द्वि० ६ आर्ची उष्णिक् ।

तस्मै प्राच्या दिशः ॥१॥

पदार्थ—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (प्राच्याः) पूर्व (दिशः) दिशा से ॥१॥

वासन्तौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् बृहच्च रथंतरं चानुष्ठातारौ ॥२॥

पदार्थ—(वासन्तौ) वसन्त ऋतु वाले [चैत्र—वैशाख] (मासौ) दो महीनों को (गोप्तारौ) दो रक्षक (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया, (बृहत्) बृहत् [बड़े आकाश] (च च) और (रथन्तरम्) रथन्तर [रमणीय गुणों द्वारा पार होने योग्य जगत्] को (अनुष्ठातारौ) दो अनुष्ठाता [साथ रहने वाला वा विहित कार्यसाधक बनाया] ॥२॥

वासन्तावेनं मासौ प्राच्या दिशो गोपायतो बृहच्च रथंतरं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥३॥

पदार्थ—(वासन्तौ) वसन्त ऋतु वाले (मासौ) दो महीने (प्राच्याः दिशः) पूर्व दिशा से (एनम्) उस [विद्वान्] की (गोपायतः) रक्षा करते हैं, [और दोनों] (बृहत्) बृहत् [बड़ा आकाश] (च च) और (रथन्तरम्) रथन्तर [रमणीय गुणों द्वारा पार होने योग्य जगत् उस के लिये] (अनु तिष्ठतः) विहित कार्य करते हैं, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥३॥

तस्मै दक्षिणाया दिशः ॥४॥

पदार्थ—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (दक्षिणायाः दिशः) दक्षिण दिशा से ॥४॥

ग्रैष्मौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानुष्ठातारौ ॥५॥

पदार्थ—(ग्रैष्मौ) घाम वाले [ज्येष्ठ-आषाढ] (मासौ) दो महीनों को (गोप्तारौ) दो रक्षक (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया, (यज्ञायज्ञियम्) सब यज्ञों के हितकारी [वेद ज्ञान] को (च च) और (वामदेव्यम्) वामदेव [श्रेष्ठ परमात्मा] से जताये गये [भूतपञ्चक] को (अनुष्ठातारौ) दो अनुष्ठाता [साथ रहने वाले वा कार्य साधक बनाया] ॥५॥

ग्रैष्मावेनं मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानु तिष्ठतो य ए वे ॥६॥

पदार्थ—(ग्रैष्मौ) घाम वाले (मासौ) दो महीने (दक्षिणायाः दिशः) दक्षिण दिशा से (एनम्) उस [विद्वान्] की (गोपायतः) रक्षा करते हैं, (च) और [दोनों] (यज्ञायज्ञियम्) सब यज्ञों का हितकारी [वेद ज्ञान] (च) और (वामदेव्यम्) वामदेव [श्रेष्ठ परमात्मा] करके जताया गया [भूतपञ्चक उसके लिये] (अनुतिष्ठतः) विहित कर्म करते हैं, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥६॥

तस्मै प्रतीच्या दिशः ॥७॥

पदार्थ—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (प्रतीच्याः दिशः) पश्चिमी दिशा से ॥७॥

वार्षिकौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् वैरूपं च वैराजं चानुष्ठातारौ ॥८॥

पदार्थ—(वार्षिकौ) वर्षा वाले [श्रावण—भाद्र] (मासौ) दो महीनों को (गोप्तारौ) दो रक्षक (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया, (च) और (वैरूपम्) वैरूप [विविध पदार्थों के जताने वाले वेद को (च) और (वैराजम्) वैराज विराट् रूप अर्थात् बड़े ऐश्वर्यवान् वा प्रकाशमान परमात्मा के स्वरूप के प्राप्त कराने वाले मोक्षज्ञान] को (अनुष्ठातारौ) दो अनुष्ठाता [साथ रहने वाले वा विहित कर्म साधक बनाया] ॥८॥

वार्षिकावेनं मासौ प्रतीच्या दिशो गोपायतो

वैरूपं च वैराजं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥९॥

पदार्थ—(वार्षिकौ) वर्षा वाले (मासौ) दोनों महीने (प्रतीच्याः दिशः) पश्चिमी दिशा से (एनम्) उस [विद्वान्] की (गोपायतः) रक्षा करते हैं, (च) और [दोनों] (वैरूपम्) वैरूप [विविध पदार्थों का जताने वाला वेदज्ञान] (च) और (वैराजम्) वैराज [विराट् रूप अर्थात् बड़े ऐश्वर्यवान् वा प्रकाशमान परमात्मा का स्वरूप प्राप्त कराने वाला मोक्षज्ञान, उसके लिये] (अनु तिष्ठतः) विहित कर्म करते हैं, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥९॥

तस्मा उदीच्या दिशः ॥१०॥

पदार्थ—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (उदीच्याः दिशः) उत्तर वाली दिशा से ॥१०॥

शारदौ मासौ गोप्तारावकुर्वंछ्यैतं च नौधसं चानुष्ठातारौ ॥११॥

पदार्थ—(शारदौ) शरद् ऋतु वाली [आश्विन—कार्तिक] (मासौ) दो महीनों को (गोप्तारौ) दो रक्षक (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया, (च) और (श्यैतम्) श्यैत [सद्गति बताने वाले वेदज्ञान] को (च) और (नौधसम्) नौधस [ऋषियों के हितकारी मोक्षज्ञान] को (अनुष्ठातारौ) दो अनुष्ठाता [साथ रहने वाले वा कार्यसाधक [बनाया] ॥११॥

शारदावेनं मासावुदीच्या दिशो गोपायतः श्यैतं

च नौधसं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥१२॥

पदार्थ—(शारदौ) शरद् ऋतु वाले (मासौ) दो महीने (उदीच्याः दिशः) उत्तरवाली दिशा से (एनम्) उस [विद्वान्] की (गोपायतः) रक्षा करते हैं, (च) और [दोनों] (श्यैतम्) श्यैत् [सद्गति बताने वाला, वेदज्ञान] (च) और (नौधसम्) नौधस [ऋषियों का हितकारी मोक्ष ज्ञान उसके लिये] (अनु तिष्ठतः) विहित कर्म करते हैं, (यः) जो]विद्वान्] (एवम्) व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥१२॥

तस्मै ध्रुवाया दिशः ॥१३॥

पदार्थ—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (ध्रुवायाः दिशः) नीची दिशा से ॥१३॥

हैमनौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् भूमिं चाग्निं चानुष्ठातारौ ॥१४॥

पदार्थ—(हैमनौ) शीत वाले [अग्रहायण—पौष (मासौ) दो महीनों को (गोप्तारौ) दो रक्षक (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया, (भूमिम्) भूमि (च च) और (अग्निम्) अग्नि[भौतिक अग्नि] को (अनुष्ठातारौ) दो अनुष्ठाता [साथ रहने वाले वा कार्य साधक] [बनाया] ॥१४॥

हैमनावेनं मासौ ध्रुवाया दिशो गोपायतो भूमिश्चाग्निश्चानु

तिष्ठतो य एवं वेद ॥१५॥

पदार्थ—(हैमनौ) शीतवाले (मासौ) दो महीने (ध्रुवायाः दिशः) नीची दिशा से (एनम्) उस [विद्वान्] की (गोपायतः) रक्षा करते हैं, (च) और [दोनों] (भूमिः) भूमि (च) और (अग्निः) अग्नि [उसके लिये] (अनु तिष्ठतः) विहित कर्म करते हैं, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥१५॥

तस्मा ऊर्ध्वाया दिशः ॥१६॥

पदार्थ—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (ऊर्ध्वायाः दिशः) ऊंची दिशा से ॥१६॥

शैशिरौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् दिवं चादित्यं चानुष्ठातारौ ॥१७॥

पदार्थ—(शैशिरौ) शिशिर वाले [पतझड़ वाले, माघ—फाल्गुन] (मासौ) [illegible] रक्षक (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया, (दिवम्) [illegible]—(अह:) दिन (च च) सूर्य को (अनुष्ठातारौ) दो अनुष्ठाता [साथ और चलने वाले] दो सेवक [बनाया] ॥१७॥

शैशिरावेनं मासावूर्ध्वाया दिशो गोपायतो

द्यौश्चादित्यश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥१८॥

पदार्थ—(शैशिरौ) शिशिर वाले (मासौ) दोनों महीने (ऊर्ध्वायाः दिशः) ऊंची दिशा से (एनम्) उस [विद्वान्] को (गोपायतः) रक्षा करते हैं, (च) और [दोनों] (द्यौः) आकाश (च) और (आदित्यः) सूर्य [उसके लिये] (अनु तिष्ठतः) विहित कर्म करते हैं, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥१८॥

卐 सूक्तम् ॥ ५ ॥ 卐

(५) ५—१६ अथर्वा । रुद्र । प्र० १ त्रिप० समविषमा गायत्री; द्वि० १ त्रिप० भुरिगार्षी त्रिष्टुप, तृ० १-७ द्विप० प्राजापत्यानुष्टुप्; प्र० २ त्रिप० स्वराट् प्राजापत्या पंक्ति , द्वि० २-४, ६ त्रिप०ब्राह्मी गायत्री; प्र० ३, ४, ६ त्रिपदाककुभ्, प्र० ५,७ भुरिग् विषमा गायत्री, द्वि० ५ निचृद्ब्राह्मी; द्वि० ७ विराट् ।

तस्मै प्राच्या दिशो अन्तर्देशाद् भवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥१॥

पदार्थ—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (प्राच्याः दिशः) पूर्वदिशा के (अन्तर्देशात्) मध्यदेश से (भवम्) सर्वत्र वर्तमान परमेश्वर को (इष्वासम्) हिंसानाशक, (अनुष्ठातारम्) अनुष्ठाता [साथ रहने वाला] (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया ॥१॥

भव एनमिष्वासः प्राच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु

तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥२॥

पदार्थ—(भवः) सर्वत्र वर्तमान, (इष्वासः) हिंसा-निवारक, (अनुष्ठाता) साथ रहने वाला परमात्मा (प्राच्याः दिशः) पूर्व दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (एनम् अनु) उस [विद्वान्] के साथ (तिष्ठति) रहता है, और (एनम्) उस [विद्वान्] को (न) न (शर्वः) दु:खनाशक, (न) न (भवः) सर्वत्र वर्तमान और (न) न (ईशानः) सर्वस्वामी परमेश्वर ॥२॥

नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥३॥

पदार्थ—(हिनस्ति) कष्ट देता है, (न) न (अस्य) उस [विद्वान्] के (पशून्) प्राणियों को और (न) न (समानान्) [उसके] तुल्य गुणवालों को [कष्ट देता है], (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥३॥

तस्मै दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशाच्छर्वमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥४॥

पदार्थ—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (दक्षिणायाः दिशः) दक्षिण दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (शर्वम्) दु:खनाशक परमात्मा को (इष्वासम्) हिंसा-निवारक, (अनुष्ठातारम्) साथ रहने वाला (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया ॥४॥

शर्व एनमिष्वासो दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु-

तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ।

नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥५॥

पदार्थ—(शर्वः) दु:खनाशक, (इष्वासः) हिंसानिवारक (अनुष्ठाता) साथ रहने वाला जगदीश्वर (दक्षिणायाः दिशः) दक्षिण दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (एनम् अनु) इस [विद्वान्] के साथ (तिष्ठति) रहता है. (एनम्) उस [विद्वान्] को (न) न (शर्वः) दु:खनाशक, (न) न (भवः) सर्वत्र वर्तमान और (न) न (ईशानः) सर्वस्वामी परमेश्वर (हिनस्ति) कष्ट देता है, (न) न (अस्य) उस [विद्वान्] के (पशून्) प्राणियों को और (न) न (समानान्) [उसके] तुल्य गुणवालो को [कष्ट देता है], (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥५॥

तस्मै प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशात् पशुपतिमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥६॥

पदार्थ—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (प्रतीच्याः दिशः) पश्चिम दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (पशुपतिम्) प्राणियों के रक्षक परमात्मा को (इष्वासम्) हिंसा हटाने वाला (अनुष्ठातारम्) साथ रहने वाला (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया ॥६॥

पशुपतिरेनमिष्वासः प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु

तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ।

नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥७॥

पदार्थ—(पशुपतिः) प्राणियों का रक्षक, (इष्वासः) हिंसा हटाने वाला (अनुष्ठाता) साथ रहने वाला परमात्मा (प्रतीच्या दिशः) पश्चिम दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (एनम् अनु) उस [विद्वान्] के साथ (तिष्ठति) रहता है और (एनम्) उस [विद्वान्] को (न) न (शर्वः) दुःखनाशक, (न) न (भवः) सर्वत्र वर्तमान और (न) न (ईशानः) सर्वस्वामी परमेश्वर (हिनस्ति) कष्ट देता है, (न) न (अस्य) उस [विद्वान्] के (पशून्) प्राणियों को और (न) न (समानान्) [उसके] तुल्य गुणवालों को [कष्ट देता है], (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥७॥

तस्मा उदीच्या दिशो अन्तर्देशादुग्रं देवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥८॥

पदार्थ—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (उदीच्याः दिशः) उत्तर दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्यदेश से (उग्रम्) प्रचण्ड स्वभाव वाले (देवम्) प्रकाशमय परमात्मा को (इष्वासम्) हिंसा हटाने वाला, (अनुष्ठातारम्) साथ रहने वाला (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया ॥८॥

उग्र एनं देव इष्वास उदीच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु
तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ।
नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥९॥

पदार्थ—(उग्रः) प्रचण्ड स्वभाव वाला, (देवः) प्रकाशमय, (इष्वासः) हिंसा हटाने वाला, (अनुष्ठाता) साथ रहने वाला परमात्मा (उदीच्याः दिशः) उत्तर दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (एनम् अनु) उस [विद्वान्] के साथ (तिष्ठति) रहता है, (एनम्) उस [विद्वान्] को (न) न (शर्वः) दुःखनाशक, (न) न (भवः) सर्वत्र वर्तमान और (न) न (ईशानः) सर्वस्वामी परमेश्वर (हिनस्ति) कष्ट देता है (न) न (अस्य) उस [विद्वान्] के (पशून्) प्राणियों को और (न) न (समानान्) [उसके] तुल्य गुणवालों को [कष्ट देता है], (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥९॥

तस्मै ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशाद् रुद्रमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥१०॥

पदार्थ—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (ध्रुवायाः दिशः) नीची दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (रुद्रम्) शत्रुनाशक परमेश्वर को (इष्वासम्) हिंसा हटाने वाला, (अनुष्ठातारम्) साथ रहने वाला, (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया ॥१०॥

रुद्र एनमिष्वासो ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु
तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ।
नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥११॥

पदार्थ—(रुद्रः) शत्रुनाशक, (इष्वासः) हिंसा हटाने वाला (अनुष्ठाता) साथ रहने वाला परमात्मा (ध्रुवायाः दिशः) नीची दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (एनम् अनु) उस [विद्वान्] के साथ (तिष्ठति) रहता है, और (एनम्) उस [विद्वान्] को (न) न (शर्वः) दुःखनाशक (न) न (भवः) सर्वत्र वर्तमान और (न) न (ईशानः) सर्वस्वामी परमेश्वर (हिनस्ति) कष्ट देता है, (न) न (अस्य) उस [विद्वान्] के (पशून्) प्राणियों को और (न) न (समानान्) [उसके] तुल्य गुणवालों को [कष्ट देता है], (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥११॥

तस्मा ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशान्महादेवमिष्वासमनुष्ठा-
तारमकुर्वन् ॥१२॥

पदार्थ—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (ऊर्ध्वायाः दिशः) ऊँची दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (महादेवम्) महादेव [बड़े प्रकाशमय] परमेश्वर को (इष्वासम्) हिंसा हटाने वाला (अनुष्ठातारम्) साथ रहने वाला (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया ॥१२॥

महादेव एनमिष्वास ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु
तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ।
नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥१३॥

पदार्थ—(महादेवः) महादेव [बड़ा प्रकाशमय] (इष्वासः) हिंसा हटाने वाला (अनुष्ठाता) साथ रहने वाला परमात्मा (ऊर्ध्वायाः दिशः) ऊँची दिशा के (अन्तर्देशात्) मध्य देश से (एनम् अनु) उस [विद्वान्] के साथ (तिष्ठति) रहता है, और (एनम्) उस [विद्वान्] को (न) न (शर्वः) दुःखनाशक, (न) न (भवः) सर्वत्र वर्तमान और (न) न (ईशानः) सर्वस्वामी परमेश्वर (हिनस्ति) कष्ट देता है, (न) न (अस्य) उस [विद्वान्] के (पशून्) प्राणियों को और (न) न (समानान्) [उसके] तुल्य गुणवालों को [कष्ट देता है], (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥१३॥

तस्मै सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्य ईशानमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥१४॥

पदार्थ—(तस्मै) उस [विद्वान्] के लिये (सर्वेभ्यः) सब (अन्तर्देशेभ्यः) मध्यदेशों से (ईशानम्) सब के स्वामी परमात्मा को (इष्वासम्) हिंसा हटाने वाला (अनुष्ठातारम्) साथ रहने वाला (अकुर्वन्) उन [विद्वानों] ने बनाया ॥१४॥

ईशान एनमिष्वासः सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्योऽनुष्ठातानु
तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥१५॥

पदार्थ—(ईशानः) सब का स्वामी, (इष्वासः) हिंसा हटाने वाला (अनुष्ठाता) साथ रहने वाला परमात्मा (सर्वेभ्यः अन्तर्देशेभ्यः) सब मध्यदेशों से (एनम् अनु) उस [विद्वान्] के साथ (तिष्ठति) रहता है, और (एनम्) उस [विद्वान्] को (न) न (शर्वः) दुःखनाशक, (न) न (भवः) सर्वत्र वर्तमान (न) न (ईशानः) सर्वस्वामी परमेश्वर ॥१५॥

नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥१६॥

पदार्थ—(हिनस्ति) कष्ट देता है, (न) न (अस्य) उस [विद्वान्] के (पशून्) प्राणियों को और (न) न [उसके] (समानान्) तुल्य गुणवालों को [कष्ट देता है], (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥१६॥

卐 सूक्तम् ॥६॥ 卐

[६) २६ अथर्वा । अध्यात्मम्, व्रात्यः । प्र० १, २ आसुरी पङ्क्तिः, प्र० ३-६, ६ आसुरी बृहती, प्र० ८ परोष्णिक, द्वि० १, द्वि० ६ आर्ची पङ्क्ति, प्र० ७ आर्ची उष्णिक, द्वि० २, ४ साम्नी त्रिष्टुप्, द्वि० ३ साम्नी पङ्क्ति, द्वि० ५, ८ आर्ची त्रिष्टुप्, द्वि० ७ साम्नी अनुष्टुप्, द्वि० ९ आर्ची अनुष्टुप्, तृ० १ आर्ची पङ्क्ति, तृ० २, ४ निचद् बृहती, तृ० ३ प्राजापत्या त्रिष्टुप्, तृ० ५, ६ विराट् जगती, तृ० ७ आर्ची बृहती तृ० ९ विराड् बृहती ।

स ध्रुवां दिशमनु व्यचलत् ॥१॥

पदार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (ध्रुवाम्) नीची (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥१॥

तं भूमिश्चाग्निश्चौषधयश्च वनस्पतयश्च वानस्पत्याश्च
वीरुधश्चानुव्यचलन् ॥२॥

पदार्थ—(भूमिः) भूमि (च च) और (अग्निः) अग्नि [भौतिक अग्नि] (च) और (ओषधयः) ओषधें [जौ, गेहूँ, चावल आदि अन्न] (च) और (वनस्पतयः) वनस्पतियाँ [पीपल आदि वृक्ष] (च) और (वानस्पत्याः) वनस्पतियों से उत्पन्न पदार्थ [काष्ठ, फूल, फल, मूल, रस आदि] (च) और (वीरुधः) लतायें [मालती आदि] (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे विचरे ॥२॥

भूमेश्च वै सोऽग्नेश्चौषधीनां च वनस्पतीनां च वानस्पत्यानां च
वीरुधां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह [विद्वान्] (वै) निश्चय करके (भूमेः) भूमि का (च च) और (अग्नेः) अग्नि का (च) और (ओषधीनाम्) ओषधियों का (च) और (वनस्पतीनाम्) वनस्पतियों का (च) और (वानस्पत्यानाम्) वनस्पतियों से उत्पन्न पदार्थों का (च) और (वीरुधाम्) लताओं का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥३॥

स ऊर्ध्वां दिशमनु व्यचलत् ॥४॥

पदार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (ऊर्ध्वाम्) ऊँची (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥४॥

तमृतं च सत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च नक्षत्राणि चानुव्यचलन् ॥५॥

पदार्थ—(ऋतम्) यथार्थ विज्ञान (च च) और (सत्यम्) [विद्यमान जगत् का हितकारी] अविनाशी कारण (च) और (सूर्यः) सूर्य (च) और (चन्द्रः) चन्द्रमा (च) और (नक्षत्राणि) चलने वाले तारे (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा के (अनुव्यचलन्) पीछे विचरे ॥५॥

ऋतस्य च वै स सत्यस्य च सूर्यस्य च चन्द्रस्य च नक्षत्राणां
च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥६॥

पदार्थ—(स.) वह [विद्वान् पुरुष] (वै) निश्चय करके (ऋतस्य) सत्य विज्ञान का (च च) और (सत्यस्य) [विद्यमान जगत् के हितकारी] अविनाशी कारण का (च) और (सूर्यस्य) सूर्य का (च) और (चन्द्रस्य) चन्द्रमा का (च) और (नक्षत्राणाम्) चलने वाले तारागणों का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (य.) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥६॥

स उत्तमां दिशमनु व्यचलत् ।.७।

पदार्थ—(स) वह [व्रात्य परमात्मा] (उत्तमाम्) अत्यन्त ऊँची (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥७॥

तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानुव्यचलन् ॥८॥

पदार्थ—(ऋच.) ऋग्वेद की ऋचायें [अर्थात् पदार्थों के गुण बतानेवाले मन्त्र] (च च) और (सामानि) सामवेद के मन्त्र [अर्थात् मोक्ष-प्रतिपादक मन्त्र] (च) और (यजूंषि) यजुर्वेद के मन्त्र [अर्थात् सत्कर्म प्रकाशक ज्ञान] (च) और (ब्रह्म) अथर्ववेद [अर्थात् ब्रह्मज्ञान] (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे चले ॥८॥

ऋचां च वै स साम्नां च यजुषां च ब्रह्मणश्च प्रियं

धाम भवति य एवं वेद ॥९॥

पदार्थ—(सः) वह [विद्वान्] (वै) निश्चय करके (ऋचाम्) ऋग्वेद की ऋचाओं का (च च) और (साम्नाम्) सामवेद के मन्त्रों का (च) और (यजुषाम्) यजुर्वेद के मन्त्रों का (च) और (ब्रह्मण) अथर्ववेद का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (य) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥९॥

स बृहतीं दिशमनुव्यचलत् ॥१०॥

पदार्थ—(स) वह [व्रात्य परमात्मा] (बृहतीम्) बड़ी (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥१०॥

तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् ॥११॥

पदार्थ—(इतिहास) इतिहास [बड़े लोगों का वृत्तान्त] (च च) और (पुराणम्) पुराण [पुराने लोगों का वृत्तान्त] (च) और (गाथा) गाथायें (गाने योग्य वेदमन्त्र, शिक्षाप्रद श्लोक आदि] (च) और (नाराशंसीः) नाराशंसी [वीर नरों की गुण कथायें] (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के(अनुव्यचलन्) पीछे चलीं ॥११॥

इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां

च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१२॥

पदार्थ—(स·) वह [विद्वान्] पुरुष (वै) निश्चय करके (इतिहासस्य) इतिहास का (च च) और (पुराणस्य) पुराण का (च) और (गाथानाम्) गाथाओं का (च) और (नाराशंसीनाम्) नाराशंसियों का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (य) जो [विद्वान] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥१२॥

स परमां दिशमनु व्यचलत् ॥१३।

पदार्थ—(स) वह [व्रात्य परमात्मा] (परमाम्) सब से दूर (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥१३॥

तमाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च दक्षिणाग्निश्च यज्ञश्च

यजमानश्च पशवश्चानुव्यचलन् । १४॥

पदार्थ—(आहवनीय) आहवनीय [यज्ञ की अग्नि विशेष] (च च) और (गार्हपत्य) गार्हपत्य [गृहपति की सिद्ध की हुई यज्ञाग्नि विशेष] (च) और (दक्षिणाग्नि) दक्षिण अग्नि [यज्ञाग्निविशेष] (च) और (यज्ञ) यज्ञ (च) और (यजमान) यजमान [यज्ञकर्त्ता] (च) और (पशव·) सब प्राणी (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे विचरे ॥१४॥

आहवनीयस्य च वै स गार्हपत्यस्य च दक्षिणाग्नेश्च यज्ञस्य

च यजमानस्य च पशूनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद । १५॥

पदार्थ—(स) वह [विद्वान् पुरुष] (वै) निश्चय करके (आहवनीयस्य) आहवनीय [अग्नि] का (च च) और (गार्हपत्यस्य) गार्हपत्य [अग्नि] का (च) और (दक्षिणाग्ने·) दक्षिण अग्नि का (च) और (यज्ञस्य) यज्ञ का (च) और (यजमानस्य) यजमान का (च) और (पशूनाम्) सब प्राणियों का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (य) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] का (वेद) जानता है ॥१५॥

सोऽनादिष्टां दिशमनु व्यचलत् ॥१६।

पदार्थ – (स) वह [व्रात्य परमात्मा] (अनादिष्टाम्) बिना बताई हुई (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥१६॥

तमृतवश्चार्तवाश्च लोकाश्च लौक्याश्च मासाश्चार्ध-

मासाश्चाहोरात्रे चानुव्यचलन् ॥१७॥

पदार्थ—(लोका) सब लोक (च च) और (लौक्याः) लोकों में रहने वाले (च) और (ऋतव.) ऋतुएँ (च) और (आर्तवाः) ऋतुओं में उत्पन्न हुए पदार्थ (च) और (मासा·) महीने (च) और (अर्धमासा) आधे महीने (च) और (अहोरात्रे) दिन रात्रि (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे विचरे ॥१७॥

ऋतूनां च वै स आर्तवानां च लोकानां च लौक्यानां च मासानां

चार्धमासानां चाहोरात्रयोश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१८॥

पदार्थ—(सः) वह [विद्वान्] पुरुष (वै) निश्चय करके (लोकानाम्) सब लोकों का (च च) और (लौक्यानाम्) लोकों में रहनेवालों का (च) और (ऋतूनाम) ऋतुओं का (च) और (आर्तवानाम्) ऋतुओं में उत्पन्न हुए पदार्थों का (च) और (मासानाम्) महीनों का (च) और (अर्धमासानाम्) आधे महीनों का (च) और (अहोरात्रयो) दोनों दिन-रात्रि का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (य) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥१८॥

सोऽनावृत्तां दिशमनु व्यचलत् ततो नावर्त्स्यन्नमन्यत ॥१९॥

पदार्थ—(स) वह [व्रात्य परमात्मा] (अनावृत्ताम्) अनावृत्त [बिना अभ्यास की हुई, मनुष्य की बिना जानी] (दिशम् अनु) दिशा की ओर (वि अचलत्) विचरा, (तत) उस [दिशा] से वह (न) नहीं (आवर्त्स्यन्) लौटेगा—(अमन्यत) उस [विद्वान्] ने माना ॥१९॥

तं दितिश्चादितिश्चेडा चेन्द्राणी चानुव्यचलन् ॥२०॥

पदार्थ—(दिति) दिति [खण्डित विकृति अर्थात् कार्यरूप नाशवान् सृष्टि] (च च) और (अदिति) अदिति [अखण्डित प्रकृति अर्थात् जगत् की अविनाशी परमाणुरूप सामग्री] (च) और (इडा) इडा [प्राप्तियोग्य वेदवाणी] (च) और (इन्द्राणी) इन्द्राणी [इन्द्र अर्थात् जीव की शक्ति] (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे विचारे ॥२०॥

दितेश्च वै सोऽदितेश्चेडायाश्चेन्द्राण्याश्च प्रियं धाम

भवति य एवं वेद ॥२१॥

पदार्थ—(स) वह [विद्वान] पुरुष (वै) निश्चय करके (दिते·) दिति [नाशवान् सृष्टि] का (च च) और (अदिते) [अदिति अविनाशी परमाणु रूप सामग्री] का (च) और (इडाया·) इडा [वेदवाणी] का (च) और (इन्द्राण्याः) इन्द्राणी [जीव की शक्ति] का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) हाता है, (य.) जा [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥२१॥

स दिशोऽनु व्यचलत् तं विराडनु व्यचलत् सर्वे च

देवाः सर्वाश्च देवताः ॥२२॥

पदार्थ—(स) वह [व्रात्य परमात्मा] (दिश अनु) सब दिशाओं की ओर (वि अचलत्) विचरा, (विराट्) विराट् [विविध पदार्थों से प्रकाशमान ब्रह्माण्डरूप संसार] (तम् अनु) उस [व्रात्य परमात्मा] के पीछे (वि अचलत्) विचरा, (च) और (सर्वे) सब (देवा) दिव्य पदार्थ (च) और (सर्वा·) सब (देवता·) दिव्य शक्तियां [उसके पीछे विचरीं] ॥२२॥

विराजश्च वै स सर्वेषां च देवानां सर्वासां च देवतानां

प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥२३॥

पदार्थ—(स) वह [विद्वान्] पुरुष (वै) निश्चय करके (विराजः) विराट् [विविध पदार्थों से प्रकाशमान संसार] का (च च) और (सर्वेषाम्) सब (देवानाम्) उत्तम पदार्थों का (च) और (सर्वासाम्) सब (देवतानाम्) उत्तम शक्तियों का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (य) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥२३॥

सः सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत् ॥२४॥

पदार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (सर्वान्) सब (अन्तर्देशान् अनु) भीतरी देशों की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥२४॥

तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चानुव्यचलन् ॥२५॥

पदार्थ—(प्रजापतिः) प्रजापालक [राजा] (च च) और (परमेष्ठी) परमेष्ठी [बड़े पदवाला आचार्य वा संन्यासी] (च) और (पिता) पिता (च) और (पितामहः) दादा (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे विचरे ॥२५॥

प्रजापतेश्च वै स परमेष्ठिनश्च पितुश्च पितामहस्य

च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥२६॥

पदार्थ—(सः) वह [विद्वान्] पुरुष (वै) निश्चय करके (प्रजापतेः) प्रजापालक [राजा] का (च च) और (परमेष्ठिनः) परमेष्ठी [बड़ी स्थिति वाले आचार्य वा सन्यासी का (च) और (पितुः) पिता का (च) और (पितामहस्य) दादा का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥२६॥

卐 सूक्तम् ॥७॥ 卐

[७] १—५ *अथर्वा । अध्यात्म, व्रात्य । १ त्रिपदा निचृद् गायत्री , २ एकपदा विराड् बृहती; ३ विराडुष्णिक्; ४ एकपदा गायत्री; ५ पंक्ति ।*

स महिमा सद्रुर्भूत्वान्तं पृथिव्या अगच्छत् स समुद्रोऽभवत् ॥१॥

पदार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (महिमा) महिमास्वरूप और (सद्रुः) वेगवान् (भूत्वा) होकर (पृथिव्याः) पृथिवी के (अन्तम्) अन्त को (अगच्छत्) पहुँचा है, (सः) वह [परमात्मा] (समुद्रः) अन्तरिक्षरूप [अनादि, अनन्त] (अभवत्) हुआ है ॥१॥

तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चापश्च

श्रद्धा च वर्षं भूत्वानुव्यवर्तयन्त ॥२॥

पदार्थ—(प्रजापतिः) प्रजापालक [राजा] (च च) और (परमेष्ठी) परमेष्ठी [सब से ऊंचे पदवाला आचार्य वा सन्यासी] (च) और (पिता) पिता (च) और (पितामहः) दादा (च) और (आपः) सत्कर्म (च) और (श्रद्धा) श्रद्धा [धर्म में प्रतीति] (वर्षम्) श्रेष्ठपन को (भूत्वा) पाकर (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यवर्तयन्त) पीछे विविध प्रकार वर्तमान हुए हैं ॥२॥

ऐनमापो गच्छन्त्यैनं श्रद्धा गच्छत्यैनं वर्षं गच्छति य एवं वेद ॥३॥

पदार्थ—(एनम्) उस [विद्वान् पुरुष] को (आपः) सत्कर्म (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, (एनम्) उस को (श्रद्धा) श्रद्धा [धर्म मे प्रतीति] (आ) आकर (गच्छति) मिलती है, (एनम्) उसको (वर्षम्) श्रेष्ठपन (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥३॥

तं श्रद्धा च यज्ञश्च लोकश्चान्नं चान्नाद्यं च भूत्वाभिपर्यावर्तन्त ॥४॥

पदार्थ—(श्रद्धा) श्रद्धा [धर्म मे प्रतीति] (च च) और (यज्ञः) यज्ञ [सद् व्यवहार] (च) और (लोकः) समाज (च) और (अन्नम्) अन्न [जौ चावल आदि] (च) और (अन्नाद्यम्) अनाज [रोटी, पूरी आदि बना भोजन] (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] में (भूत्वा) व्यापकर (अभिपर्यावर्तन्त) सामने सब ओर से आकर वर्तमान हुए हैं ॥४॥

ऐनं श्रद्धा गच्छत्यैनं यज्ञो गच्छत्यैनं लोको गच्छत्यैनमन्नं

गच्छत्यैनमन्नाद्यं गच्छति य एवं वेद ॥५॥

पदार्थ—(एनम्) उस [विद्वान्] पुरुष को (श्रद्धा) श्रद्धा [धर्म में प्रतीति (आ) आकर (गच्छति) मिलती है, (एनम्) उसको (यज्ञः) सद्व्यवहार (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, (एनम्) उसको (लोकः) समाज (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, (एनम्) उसको (अन्नम्) अन्न [जौ, चावल आदि] (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, (एनम्) उस को (अन्नाद्यम्) अनाज [रोटी पूरी आदि बना भोजन] (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥५॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

卐

अथ द्वितीयोऽनुवा

卐 सूक्तम् ८

[८] १—३ *अथर्वा । अध्यात्म, व्रात्य । १* [illegible] *३ आर्ची पङ्क्ति ॥*

सोऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत ॥१॥

पदार्थ—(सः) उस [व्रात्य परमात्मा] ने (अरज्यत) प्रेम किया, (ततः) उसी से वह (राजन्यः) सर्वस्वामी (अजायत) हुआ ॥१॥

स विशः सबन्धूनन्नमन्नाद्यमभ्युदतिष्ठत् ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (सबन्धून्) बन्धुओ सहित [कुटुम्बियो सहित] (विशः) मनुष्यो पर, (अन्नम्) अन्न [जौ चावल आदि] पर और (अन्नाद्यम्) अनाज [रोटी, पूरी आदि] पर (अभ्युदतिष्ठत्) सर्वथा अधिष्ठाता हुआ ॥२॥

विशां च वै स सबन्धूनां चान्नस्य चान्नाद्यस्य च प्रियं

धाम भवति य एवं वेद ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह [विद्वान् पुरुष] (वै) निश्चय करके (सबन्धूनाम्) बन्धुओ सहित (विशाम्) मनुष्यो का (च च) और (अन्नस्य) अन्न [जौ, चावल आदि] का (च च) और (अन्नाद्यस्य) अनाज [रोटी पूरी आदि बने हुए पदार्थ] का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥३॥

卐 सूक्तम् ९ 卐

[९] १—३ *अथर्वा अध्यात्मं, व्रात्यः । १ आसुरी जगती, २ आर्ची गायत्री, ३ आर्ची पङ्क्ति ॥*

स विशोऽनु व्यचलत् ॥१॥

पदार्थ—(सः) वह [व्रात्य परमात्मा] (विशः अनु) मनुष्यों की ओर (वि अचलत्) विचरा ॥१॥

तं सभा च समितिश्च सेना च सुरा चानुव्यचलन् ॥२॥

पदार्थ—(सभा) सभा (च च) और (समितिः) संग्राम व्यवस्था (च) और (सेना) सेना (च) और (सुरा) राज्यलक्ष्मी (तम्) उस [व्रात्य परमात्मा] के (अनुव्यचलन्) पीछे विचरे ॥२॥

सभायाश्च स वै समितेश्च सेनायाश्च सुरायाश्च

प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह [विद्वान्] पुरुष (वै) निश्चय करके (सभायाः) सभा का (च च) और (समितेः) संग्राम-व्यवस्था का (च) और (सेनायाः) सेना का (च) और (सुरायाः) राज्यलक्ष्मी का (प्रियम्) प्रिय (धाम) धाम [घर] (भवति) होता है, (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) ऐसे वा व्यापक [व्रात्य परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥३॥

卐 सूक्तम् ॥१०॥ 卐

[१०] १—११ *अथर्वा । अध्यात्म, व्रात्य । १ द्विपदा साम्नी बृहती; २ त्रिपदा आर्ची पंक्ति , ३ द्विपदा प्राजापत्या पंक्तिः, ४ त्रिपदा वर्धमाना गायत्री, ५ त्रिपदा साम्नी बृहती, ६, ८, १० द्विपदा आसुरी गायत्री, ७, ९ साम्नी उष्णिक्, ११ आसुरी बृहती ।*

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो राज्ञोऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥१॥

पदार्थ—(तत्) फिर (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विद्वान्) जानता हुआ (व्रात्यः) व्रात्य [सद्व्रतधारी, सदाचारी] (अतिथिः) अतिथि [नित्य मिलने योग्य सत्पुरुष] (यस्य राज्ञः) जिस राजा के (गृहान्) घरों में (आगच्छेत्) आवे ॥१॥

श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत् तथा क्षत्राय ना वृश्चते

तथा राष्ट्राय ना वृश्चते ॥२॥

पदार्थ—वह [राजा] (एनम्) उस [अतिथि] को (आत्मनः) अपने से (श्रेयांसम्) अधिक श्रेष्ठ (मानयेत्) सम्मान करे, (तथा) उस प्रकार [सत्कार] से वह [राजा] (क्षत्राय) क्षत्रिय कुल के लिये (न) नहीं (आ) कुछ (वृश्चते) दोषी होता है, और (तथा) उस प्रकार के (राष्ट्राय) राज्य के लिये भी (न) नहीं (आ) कुछ (वृश्चते) दोषी होता है ॥२॥

अतो वै ब्रह्म च क्षत्रं चोदतिष्ठतां ते अब्रूतां कं प्र विशावेति ॥३॥

पदार्थ—(अतः) इस [अतिथि सत्कार] से (वै) निश्चय करके (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञानी कुल (च च) और (क्षत्रम्) क्षत्रिय कुल (उत् अतिष्ठताम्) दोनो ऊंचे होवें, (ते) वे दोनो (अब्रूताम्) कहें—(कम्) किस [गुण] में (प्र विशाव इति) हम दोनो प्रवेश करें ॥३॥

अतो॒ वै बृह॒स्पति॑मे॒व ब्रह्म॒ प्र वि॑श॒त्विन्द्रं॑ क्ष॒त्रं तथा॒ वा इति॑ ॥४॥

पदार्थ—(अतः) इस [अतिथि-सत्कार] से (वै) निश्चय करके (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञानी कुल (बृहस्पतिम्) बड़े-बड़े प्राणियो के रक्षक गुण में (एव) ही (प्र विशतु) प्रवेश करे (तथा) उसी प्रकार [अतिथि-सत्कार] से (वै) निश्चय करके (क्षत्रम्) क्षत्रियकुल (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य में [प्रवेश करे], (इति) ऐसा [अतिथि कहे] ॥४॥

अतो॒ वै बृह॒स्पति॑मे॒व ब्रह्म॒ प्रावि॑श॒दिन्द्रं॑ क्ष॒त्रम् ॥५॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (अतः) इस [अतिथि सत्कार] से (वै) निश्चय करके (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञानी समूह ने (बृहस्पतिम्) बड़े-बड़े प्राणियो के रक्षक गुण [वेद ज्ञान आदि] में (एव) ही (प्र अविशत) प्रवेश किया है, और (क्षत्रम्) क्षत्रिय कुल ने (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य मे [प्रवेश किया है] ॥५॥

इ॒यं वा उ॑ पृथि॒वी बृह॒स्पति॒र्द्यौरे॒वेन्द्रः॑ ॥६॥

पदार्थ—(इयम्) यह (पृथिवी) पृथिवी [भूमि का राज्य] (वै) निश्चय करके (उ) ही (बृहस्पतिः) बड़े-बड़े प्राणियो का रक्षक गुण है, (द्यौः) प्रकाशमान राजनीति (एव) ही (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य है ॥६॥

अ॒यं वा उ॑ अ॒ग्निर्ब्रह्मा॒सावा॑दि॒त्यः क्ष॒त्रम् ॥७॥

पदार्थ—(अयम्) यह (अग्निः) अग्नि [अग्नि-समान तेजस्वी] (एव) निश्चय करके (उ) ही (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञानी समूह है और (असौ) वह (आदित्यः) सूर्य [सूर्य समान प्रतापी] (क्षत्रम्) क्षत्रिय समूह है ॥७॥

ऐनं॒ ब्रह्म॑ गच्छति ब्रह्मवर्च॒सी भ॑वति ॥८॥

पदार्थ—(एनम्) उस [पुरुष] को (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञानी समूह (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, और वह (ब्रह्मवर्चसी) ब्रह्मवर्चसी [वेदाभ्यास से तेजस्वी] (भवति) होता है ॥८॥

यः पृ॑थि॒वीं बृह॒स्पति॑म॒ग्निं ब्रह्म॒ वेद॑ ॥९॥

पदार्थ—(यः) जो [पुरुष] (पृथिवीम्) पृथिवी [पृथिवी के राज्य] को (बृहस्पतिम्) बड़े-बड़े प्राणियो का रक्षक गुण, और (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञानी समूह को (अग्निम्) अग्नि [अग्नि-समान तेजोमय] (वेद) जानता है ॥९॥

ऐन॑मिन्द्रि॒यं ग॑च्छतीन्द्रि॒यवा॑न् भवति ॥१०॥

पदार्थ—(एनम्) उस [पुरुषार्थी] को (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, वह (इन्द्रियवान्) ऐश्वर्यवान (भवति) होता है ॥१०॥

य आ॑दि॒त्यं क्ष॒त्रं दिव॒मिन्द्रं॒ वेद॑ ॥११॥

पदार्थ—(यः) जो [पुरुष] (क्षत्रम्) क्षत्रियसमूह को (आदित्यम्) सूर्य [सूर्य-समान तेजस्वी] और (दिवम्) प्रकाशमान राजनीति को (इन्द्रम्) ऐश्वर्य (वेद) जानता है ॥११॥

卐 सूक्तम् ११ 卐

१—११ अथर्वा । अध्यात्मम्, व्रात्यः । १ दैवी पंक्तिः । २ द्विपदा पूर्वा त्रिष्टुब्-अतिशक्वरी, ३, ६, ८, १० त्रिपदा आर्ची बृहती (१० भुरिक्), ७, ९ द्विपदा प्राजापत्या बृहती ११ द्विपदा आर्ची अनुष्टुप् ।

तद् यस्यै॒वं वि॒द्वान् व्रात्यो॑ऽतिथि॒र्गृहाना॒गच्छे॑त् ॥१॥

पदार्थ—(तत्) सो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विद्वान्) जानता हुआ (व्रात्यः) व्रात्य [सद् व्रतधारी] (अतिथिः) अतिथि [नित्य मिलने योग्य सत पुरुष] (यस्य) जिस [पुरुष] के (गृहान्) घरो में (आगच्छेत्) आवे ॥१॥

स्व॒यमे॑नम॒भ्यु॒देत्य॑ ब्रूया॒द् व्रात्य॒ क्वा॑ऽवात्सी॒र्व्रात्यो॑द॒कं व्रात्य॑ त॒र्पय॑न्तु व्रात्य॒ यथा॑ ते प्रि॒यं तथा॑स्तु व्रात्य॒ यथा॑ ते॒ वश॒स्तथा॑स्तु व्रात्य॒ यथा॑ ते निका॒मस्तथा॒स्त्विति॑ ॥२॥

पदार्थ—(स्वयम्) आप ही (अभ्युदेत्य) उठके जाकर (एनम्) उस [अतिथि] से (ब्रूयात्) कहे—(व्रात्य) हे व्रात्य ! (क्व) कहाँ (अवात्सीः) [रात्रि में] तू रहा था ? (व्रात्य) हे व्रात्य ! (उदकम्) यह जल है, (व्रात्य) हे व्रात्य ! (तर्पयन्तु) वे [यह पदार्थ तुझे, अथवा, आप हमें] तृप्त करें, (व्रात्य) हे व्रात्य ! (यथा) जैसे (ते) तेरा (प्रियम्) प्रिय [अभीष्ट] हो (तथा) वैसा ही (अस्तु) होवे, (व्रात्य) हे व्रात्य (यथा) जैसे (ते) तेरी (वशः) प्रधानता हो (तथा अस्तु) वैसा होवे, (व्रात्य) हे व्रात्य ! (यथा) जैसे (ते) तेरी (निकामः) इच्छापूर्ति हो (तथा अस्तु इति) वैसा ही होवे ॥२॥

यदे॑न॒माह॒ व्रात्य॒ क्वा॑ऽवात्सी॒रिति॑ प॒थ ए॒व तेन॑ देव॒याना॒नव॑ रुन्द्धे ॥३॥

पदार्थ—(यत्) जब (एनम्) इस [अतिथि] से (आह) वह [गृहस्थ] कहता है—(व्रात्य) हे व्रात्य ! [सद्व्रतधारी] (क्व) कहाँ (अवात्सीः इति) [रात्रि में] तू रहा था ? (तेन) उस [सत्कार] से (एव) निश्चय करके (देवयानान्) विद्वानो के चलनेयोग्य (पथः) मार्गों को (अव रुन्द्धे) वह [अपने लिये] सुरक्षित करता है ॥३॥

यदे॑न॒माह॒ व्रात्यो॑द॒कमित्य॒प ए॒व तेनाव॑ रुन्द्धे ॥४॥

पदार्थ—(यत्) जब (एनम्) इस [अतिथि] को (आह) वह [गृहस्थ] कहता है—(व्रात्य) हे व्रात्य ! [सतव्रतधारी] (उदकम् इति) यह जल है—(तेन) उस [सत्कार] से (एव) निश्चय करके (अपः) सत्कर्म को (अव रुन्द्धे) वह [अपने लिये] सुरक्षित करता है ॥४॥

यदे॑न॒माह॒ व्रात्य॑ त॒र्पय॒न्त्विति॑ प्रा॒णमे॒व तेन॒ वर्षी॑यांसं कुरुते ॥५॥

पदार्थ—(यत्) जब (एनम्) इस [अतिथि] को (आह) [वह गृहस्थ] कहता है—(व्रात्य) हे व्रात्य ! [सद्व्रतधारी] (तर्पयन्तु इति) वे [यह पदार्थ तुझे, अथवा आप हम] तृप्त करें—(तेन) उस [सत्कार] से (एव) निश्चय करके (प्राणम्) अपने प्राण [जीवन] को (वर्षीयांसम्) अधिक बड़ा (कुरुते) वह [गृहस्थ] करता है ॥५॥

यदे॑न॒माह॒ व्रात्य॒ यथा॑ ते प्रि॒यं तथा॒स्त्विति॑ प्रि॒यमे॒व तेनाव॑ रुन्द्धे ॥६॥

पदार्थ—(यत्) जब (एनम्) इस [अतिथि] से (आह) वह [गृहस्थ] कहता है—(व्रात्य) हे व्रात्य ! [उत्तम व्रतधारी] (यथा) जैसे (ते) तेरा (प्रियम्) प्रिय हो (तथा) वैसा हो (अस्तु इति) होवे—(तेन) उस [सत्कार] से (एव) निश्चय करके (प्रियम्) अपने प्रिय वस्तु को (अवरुन्द्धे) वह [गृहस्थ] सुरक्षित करता है ॥६॥

ऐनं॑ प्रि॒यं ग॑च्छति प्रि॒यः प्रि॒यस्य॑ भवति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥७॥

पदार्थ—(एनम्) उस [गृहस्थ] को (प्रियम्) प्रिय पदार्थ (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, वह (प्रियस्य) अपने इष्ट मित्र का (प्रियः) प्रिय (भवति) होता है, (यः) जो (एवम्) ऐसे [विद्वान्] को (वेद) जानता है ॥७॥

यदे॑न॒माह॒ व्रात्य॒ यथा॑ ते॒ वश॒स्तथा॒स्त्विति॒ वश॑मे॒व तेनाव॑ रुन्द्धे ॥८॥

पदार्थ—(यत्) जब (एनम्) इस [अतिथि] को (आह) वह [गृहस्थ] कहता है—(व्रात्य) हे व्रात्य ! [उत्तम व्रतधारी] (यथा) जैसे (ते) तेरा (वशः) प्रधानत्व हो, (तथा अस्तु इति) वैसा होवे—(तेन) उस [सत्कार] से (एव) निश्चय करके (वशम्) प्रधानत्व को (अवरुन्द्धे) वह [गृहस्थ] सुरक्षित करता है ॥८॥

ऐनं॒ वशो॑ गच्छति व॒शी व॒शिनां॑ भवति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥९॥

पदार्थ—(एनम्) उस [गृहस्थ] को (वशः) प्रधानत्व (आ) आकर (गच्छति) मिलता है, वह (वशिनाम्) वशकर्ताओं का (वशी) वशकर्ता [शासक] (भवति) होता है, (यः) जो [गृहस्थ] (एवम्) ऐसे [विद्वान्] को (वेद) जानता है ॥९॥

यदे॑न॒माह॒ व्रात्य॒ यथा॑ ते निका॒मस्तथा॒स्त्विति॑ निका॒ममे॒व तेनाव॑ रुन्द्धे ॥१०॥

पदार्थ—(यत्) जब (एनम्) इस [अतिथि] को (आह) वह [गृहस्थ] कहता है—(व्रात्य) हे व्रात्य ! [सत्यव्रतधारी] (यथा) जैसी (ते) तेरी (निकामः) लालसा [निश्चित कामना] हो, (तथा अस्तु इति) वैसा होवे—(तेन) उस [सत्कार] से (एव) निश्चय करके (निकामम्) अपनी लालसा को (अव रुन्द्धे) वह [गृहस्थ] सुरक्षित करता है ॥१०॥

ऐनं॑ निका॒मो ग॑च्छति निका॒मे निका॒मस्य॑ भवति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥११॥

पदार्थ—(एनम्) उस [गृहस्थ] को (निकामः) लालसा (आ) आकर (गच्छति) मिलती है, वह (निकामस्य) लालसा की (निकामे) निरन्तर पूर्ति में (भवति) होता है, (यः) जो [गृहस्थ] (एवम्) ऐसे [विद्वान्] को (वेद) जानता है ॥११॥

卐 सूक्तम् १२ 卐

१—११ अथर्वा । अध्यात्म व्रात्यः । १ त्रिपदा गायत्री, २ प्राजा० बृहती, ३-४ भुरिक्प्राजा० अनुष्टुप् (४ साम्नी), ५, ६, ९, १० आसुरी गायत्री; ८ विराड् गायत्री, ७, ११ त्रिपदा प्राजा० त्रिष्टुप् ।

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य उद्धृतेष्वग्निष्वधिश्रितेऽग्निहोत्रेऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥१॥

पदार्थ—(तत्) सो (एवम्) व्यापक [परमात्मा] को (विद्वान्) जानता हुआ (व्रात्यः) व्रात्य [सत्यव्रतधारी] (अतिथिः) अतिथि [नित्य मिलने योग्य सत्पुरुष] (उद् धृतेषु) ऊंची उठी हुई (अग्निषु) अग्नियों के बीच (अग्निहोत्रे) अग्नि होत्र [हवन सामग्री] (अधिश्रिते) रक्खे जाने पर (यस्य) जिस [मनुष्य]के (गृहान्) घरों में (आगच्छेत्) आजावे ॥१॥

स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्याति सृज होष्यामीति ॥२॥

पदार्थ—वह [मनुष्य] (स्वयम्) आप ही (अभ्युदेत्य) सामने से उठकर (एनम्) इस [अतिथि] से (ब्रूयात्) कहे—(व्रात्य) हे व्रात्य ! [सत्यव्रतधारी] (अति सृज) आज्ञा दे, (होष्यामि इति) मैं हवन करूंगा ॥२॥

स चातिसृजेज्जुहुयान्न चातिसृजेन्न जुहुयात् ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह [अतिथि] (च) यदि (अतिसृजेत्) आज्ञा देवे, (जुहुयात्) वह [गृहस्थ] हवन करे, (च) यदि वह (न अतिसृजेत्) न आज्ञा देवे, (न जुहुयात्) वह [गृहस्थ] न हवन करे ॥३॥

स य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥४॥

पदार्थ—(यः) जो [गृहस्थ] (एवम्) व्यापक परमात्मा का (विदुषा) जानते हुए (व्रात्येन) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] द्वारा (अतिसृष्टः) आज्ञा दिया हुआ (जुहोति) यज्ञ करता है, (सः) वह [गृहस्थ] ॥४॥

प्र पितृयाणं पन्थां जानाति प्र देवयानम् ॥५॥

पदार्थ—(पितृयाणम्) पितरों [पालनकर्ता बड़े लोगों] के चलनेयोग्य (पन्थाम्) मार्ग को (प्र) भले प्रकार (जानाति) जान लेता है, (देवयानम्) और देवताओं [विद्वानों] के चलनेयोग्य [मार्ग] को (प्र) भले प्रकार [जान लेता है] ॥५॥

न देवेष्वा वृश्चते हुतमस्य भवति ॥६॥

पदार्थ—वह (देवेषु) विद्वानों के बीच (आ) थोड़ा भी (न वृश्चते) दोषी नहीं होता है], [तब] (अस्य) उस [गृहस्थ] का (हुतम्) यज्ञ (भवति) होता है ॥६॥

पर्यस्यास्मिंल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥७॥

पदार्थ—(अस्मिन् लोके) इस संसार में (अस्य) उस [गृहस्थ] की (आयतनम्) मर्यादा (परि) सब प्रकार (शिष्यते) शेष रह जाती है, (यः) जो [गृहस्थ] (एवम्) व्यापक [परमात्मा] को (विदुषा) जानते हुए (व्रात्येन) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] के (अतिसृष्टः) आज्ञा दिया हुआ (जुहोति) यज्ञ करता है ॥७॥

अथ य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥८॥

पदार्थ—(अथ) और फिर (यः) जो [गृहस्थ] (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विदुषा) जानते हुए (व्रात्येन) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] द्वारा (अनतिसृष्टः) नहीं आज्ञा दिया हुआ (जुहोति) यज्ञ करता है ॥८॥

न पितृयाणं पन्थां जानाति न देवयानम् ॥९॥

पदार्थ—वह (न) न तो (पितृयाणम्) पितरों [पालनकर्ता बड़े लोगों] के चलनेयोग्य (पन्थाम्) मार्ग को (जानाति) जानता है, और (न) न (देवयानम्) देवताओं [विद्वानों] के चलनेयोग्य [मार्ग] को [जानता है] ॥९॥

आ देवेषु वृश्चते अहुतमस्य भवति ॥१०॥

पदार्थ—वह (देवेषु) विद्वानों के बीच (आ) सर्वथा (वृश्चते) दोषी होता है, और (अस्य) उस [गृहस्थ] का (अहुतम्) कुयज्ञ (भवति) हो जाता है ॥१०॥

नास्यास्मिंल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥११॥

पदार्थ—(अस्मिन् लोके) इस संसार में (अस्य) उस [गृहस्थ] की (आयतनम्) मर्यादा (न शिष्यते) शेष नहीं रहती है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विदुषा) जानते हुए (व्रात्येन) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] द्वारा (अनतिसृष्टः) नहीं आज्ञा दिया हुआ (जुहोति) यज्ञ करता है ॥११॥

卐 सूक्तम् १३ 卐

१—१४ अथर्वा । अध्यात्म, व्रात्य । प्र० १ साम्नी उष्णिक्, द्वि० १, ३ प्राजा० अनुष्टुप्, प्र० २-४ आसुरी गायत्री, द्वि० २, ४ साम्नी बृहती, प्र० ५ त्रिपदा निचृद् गायत्री, द्वि० ५ द्विपदा विराड् गायत्री, ६ प्राजा० पंक्ति, ७ आसुरी जगती, ८ सत पंक्ति, ९ अक्षरपंक्ति ।

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥१॥

पदार्थ—(तत्) सो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विद्वान्) जानता हुआ (व्रात्यः) व्रात्य [सत्यव्रतधारी] (अतिथिः) अतिथि (एकाम् रात्रीम्) एक रात्रि (यस्य) जिस [गृहस्थ] के (गृहे) घर में (वसति) बसता है ॥१॥

ये पृथिव्यां पुण्या लोकास्तानेव तेनावरुन्द्धे ॥२॥

पदार्थ—(पृथिव्याम्) पृथिवी पर (ये) जो (पुण्याः) पवित्र (लोकाः) लोक [दर्शनीय समाज] हैं, (तान्) उन समाजों को (एव) निश्चय करके (तेन) उस [अतिथि सत्कार] से वह [गृहस्थ] (अवरुन्द्धे) सुरक्षित करता है ॥२॥

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो द्वितीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥३॥

पदार्थ—(तत्) सो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विद्वान्) जानता हुआ (व्रात्यः) व्रात्य [सत्यव्रतधारी] (अतिथिः) अतिथि (द्वितीयां रात्रिम्) दूसरी रात्रि (यस्य) जिस [गृहस्थ] के (गृहे) घर में (वसति) बसता है ॥३॥

येऽन्तरिक्षे पुण्या लोकास्तानेव तेनावरुन्द्धे ॥४॥

पदार्थ—(अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (ये) जो (पुण्याः) पवित्र (लोकाः) लोक [दर्शनीय समाज] हैं (तान्) उनको (एव) निश्चय करके (तेन) उस [अतिथि-सत्कार] से वह [गृहस्थ] (अवरुन्द्धे) सुरक्षित करता है ॥४॥

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यस्तृतीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥५॥

पदार्थ—(तत्) सो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विद्वान्) जानता हुआ (व्रात्यः) व्रात्य [सत्यव्रतधारी] (अतिथिः) अतिथि (तृतीयाम्) तीसरी (रात्रिम्) रात्रि (यस्य) जिस [गृहस्थ] के (गृहे) घर में (वसति) बसता है ॥५॥

ये दिवि पुण्या लोकास्तानेव तेनावरुन्द्धे ॥६॥

पदार्थ—(दिवि) सूर्य लोक में (ये) जो (पुण्याः) पवित्र (लोकाः) लोक [दर्शनीय समाज] हैं, (तान्) उनको (एव) निश्चय करके (तेन) उस [अतिथि सत्कार] से वह [गृहस्थ] (अवरुन्द्धे) सुरक्षित करता है ॥६॥

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यश्चतुर्थीं रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥७॥

पदार्थ—(तत्) सो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विद्वान्) जानता हुआ (व्रात्यः) व्रात्य [सत्यव्रतधारी] (अतिथिः) अतिथि (चतुर्थीम्) चौथी (रात्रीम्) रात्रि (यस्य) जिस [गृहस्थ] के (गृहे) घर में (वसति) बसता है ॥७॥

ये पुण्यानां पुण्या लोकास्तानेव तेनावरुन्द्धे ॥८॥

पदार्थ—(पुण्यानाम्) पवित्र जनों के (ये) जो (पुण्याः) पवित्र (लोकाः) लोक [दर्शनीय समाज] हैं, (तान्) उनको (एव) निश्चय करके (तेन) उस [अतिथि सत्कार] से वह [गृहस्थ] (अवरुन्द्धे) सुरक्षित करता है ॥८॥

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽपरिमिता रात्रीरतिथिर्गृहे वसति ॥९॥

पदार्थ—(तत्) सो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (विद्वान्) जानता हुआ (व्रात्यः) व्रात्य [सत्यव्रतधारी] (अतिथिः) अतिथि (अपरिमिताः) असंख्य (रात्रीः) रात्रियों (यस्य) जिस के (गृहे) घर में (वसति) बसता है ॥९॥

य एवापरिमिताः पुण्या लोकास्तानेव तेनावरुन्द्धे ॥१०॥

पदार्थ—(ये) जो (एव) निश्चित करके (अपरिमिताः) असंख्य (पुण्याः) पवित्र (लोकाः) लोक [दर्शनीय समाज] हैं, (तान्) उनको (एव) निश्चय करके (तेन) उस [अतिथि सत्कार] से (अवरुन्द्धे) वह [गृहस्थ] सुरक्षित करता है ॥१०॥

अथ यस्याव्रात्यो व्रात्यब्रुवो नामबिभ्रत्यतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥११॥

पदार्थ—(अथ) और फिर (अव्रात्यः) अव्रात्य [कुव्रतधारी] (व्रात्यब्रुवः) अपने को व्रात्य [सत्यव्रतधारी] बताता हुआ, (नामबिभ्रती) केवल नाम धारण करता हुआ (अतिथिः) अतिथि (यस्य) जिस [गृहस्थ] के (गृहान्) घरों में (आगच्छेत्) आजावे ॥११॥

कर्षेदेनं न चैनं कर्षेत् ॥१२॥

पदार्थ—वह [गृहस्थ] (एनम्) उस [झूठे व्रात्य] को (कर्षेत्) तिरस्कार करे, (न) अब (च) निश्चय करके (एनम्) उस [मिथ्याचारी] को (कर्षेत्) तिरस्कार करे ॥१२॥

अस्यै देवताया उदकं याचामीमां देवतां वासय इमामिमां
देवतां परि वेवेष्मीत्येनं परि वेविष्यात् ॥१३॥

पदार्थ—(अस्यै) उस (देवतायै) देवता [विद्वान्] को (उदकम्) जल (याचामि) समर्पण करता हूँ, (इमाम्) उस (देवताम्) देवता [विद्वान्] को (वासये) ठहराता हूँ, (इमाम् इमाम्) उस ही (देवताम्) देवता [विद्वान्] को (परि वेवेष्मि) भोजन परोसता हूँ—(इति) इस प्रकार से (एनम्) उस [विद्वान्] की (परि वेविष्यात्) [भोजन आदि से] सेवा करे ॥१३॥

तस्यामेवास्य तद् देवतायां हुतं भवति य एवं वेद ॥१४॥

पदार्थ—(तस्याम् एव) उसी ही (देवतायाम्) देवता [विद्वान्] में (अस्य) उस [गृहस्थ] का (तत्) वह (हुतम्) दान (भवति) होता है (यः) जो [विद्वान्] (एवम्) व्यापक [परमात्मा] को (वेद) जानता है ॥१४॥

卐 सूक्तम् १४ 卐

१—२४ अथर्वा । अध्यात्मं, व्रात्य. । प्र० १ त्रिपदा अनुष्टुप्, द्वि० १-१२ द्विपदा आसुरी गायत्री (द्वि० ६-९ भुरिक् प्राजा० अनुष्टुप्), प्र० २,५ पुर उष्णिक्, प्र० ३ अनुष्टुप्, प्र० ४ प्रस्तारपंक्ति, प्र० ६ स्वराड्गायत्री, प्र० ७,८ आर्ची पंक्ति, प्र० १० भुरिक् नाम्नी गायत्री, प्र० ११ प्राजा० त्रिष्टुप् ।

स यत् प्राचीं दिशमनु व्यचलन्मारुतं शर्धो भूत्वानुव्यचल-
न्मनोऽन्नादं कृत्वा ॥१॥

पदार्थ—(स) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (प्राचीम्) पूर्व वा सामने वाली (दिशम् अनु) दिशा की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (मारुतम्) [शत्रुओं के मारने वाले] शूरों का (शर्धः) बल (भूत्वा) होकर और (मनः) मन को (अन्नादम्) जीवनरक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥१॥

मनसान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥२॥

पदार्थ—(अन्नादेन) जीवनरक्षक (मनसा) मन के साथ वह [अतिथि] (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥२॥

स यद् दक्षिणां दिशमनु व्यचलदिन्द्रो भूत्वानुव्यचलद्
बलमन्नादं कृत्वा ॥३॥

पदार्थ—(स) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (दक्षिणाम्) दक्षिण वा दाहिनी (दिशम् अनु) दिशा की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् (भूत्वा) होकर और (बलम्) बल [सामर्थ्य] को (अन्नादम्) जीवनरक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥३॥

बलेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥४॥

पदार्थ—(अन्नादेन) जीवन रक्षक (बलेन) बल से वह [अतिथि] (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥४॥

स यत् प्रतीचीं दिशमनु व्यचलद् वरुणो राजा भूत्वानु-
व्यचलदपोऽन्नादीः कृत्वा ॥५॥

पदार्थ—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (प्रतीचीम्) पश्चिम वा पीछे वाली (दिशम् अनु) दिशा की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (वरुणः) श्रेष्ठ (राजा) राजा [ऐश्वर्यवान्] (भूत्वा) होकर और (अपः) [कर्मों में व्यापक रहने वाली] इन्द्रियों को (अन्नादीः) जीवन रक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥५॥

अद्भिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥६॥

पदार्थ—(अन्नादीभिः) जीवन रक्षक (अद्भिः) इन्द्रियों के साथ वह [अतिथि] (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥६॥

स यदुदीचीं दिशमनु व्यचलत् सोमो राजा भूत्वानुव्यचलत्
सप्तर्षिभिर्हुत आहुतिमन्नादीं कृत्वा ॥७॥

पदार्थ—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (उदीचीम्) उत्तर वा बायीं (दिशम् अनु) दिशा की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (सोमः) पुरुषार्थी (राजा) राजा [ऐश्वर्यवान्] (भूत्वा) होकर (सप्तर्षिभिः) [दो कान, दो नथने, दो आँखें और एक मुख] सात गोलकों के साथ (हुते) हवन में (आहुतिम्) आहुति को [दानक्रिया अर्थात् परोपकार में इन्द्रियों को यज्ञ में आहुति सदृश] (अन्नादीम्) जीवन रक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥७॥

आहुत्यान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥८॥

पदार्थ—वह [अतिथि] (अन्नाद्या) जीवनरक्षक (आहुत्या) आहुति के साथ (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥८॥

स यद् ध्रुवां दिशमनु व्यचलद् विष्णुर्भूत्वानुव्यचलद्
विराजमन्नादीं कृत्वा ॥९॥

पदार्थ—(स) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (ध्रुवाम्) नीचे वाली (दिशम् अनु) दिशा की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (विष्णुः) विष्णु [कामों में व्यापक] (भूत्वा) होकर और (विराजम्) विराट् [विविध प्रकाशमान राज्य-श्री] को (अन्नादीम्) जीवनरक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥९॥

विराजान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥१०॥

पदार्थ—वह [अतिथि] (अन्नाद्या) जीवनरक्षक (विराजा) विराट् [विविध प्रकाशमान राज्यश्री] से (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥१०॥

स यत् पशूननु व्यचलद् रुद्रो भूत्वानुव्यचलदोषधी-
रन्नादीः कृत्वा ॥११॥

पदार्थ—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (पशून् अनु) जीव-जन्तुओं की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (रुद्रः) रुद्र [शत्रुनाशक] (भूत्वा) होकर और (ओषधीः) ओषधियों [जौ चावल आदि] को (अन्नादीः) जीवनरक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥११॥

ओषधीभिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥१२॥

पदार्थ—वह [अतिथि] (अन्नादीभिः) जीवनरक्षक (ओषधीभिः) ओष-धियों से (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥१२॥

स यत् पितॄननु व्यचलद् यमो राजा भूत्वानुव्यचलत्
स्वधाकारमन्नादं कृत्वा ॥१३॥

पदार्थ—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (पितॄन् अनु) पितरों [पालनकर्ता बड़े लोगों] की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (यमः) न्यायी (राजा) राजा (भूत्वा) होकर और (स्वधाकारम्) अपने धारण-सामर्थ्य को (अन्नादम्) जीवन रक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥१३॥

स्वधाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥१४॥

पदार्थ—वह [अतिथि] (अन्नादेन) जीवन-रक्षक (स्वधाकारेण) अपने धारण-सामर्थ्य से (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥१४॥

स यन्मनुष्याननु व्यचलदग्निर्भूत्वानुव्यचलत्
स्वाहाकारमन्नादं कृत्वा ॥१५॥

पदार्थ—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (मनुष्यान् अनु) मनुष्यों [मननशील पुरुषों] की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (अग्निः) अग्नि [के समान तेजस्वी] (भूत्वा) होकर और (स्वाहाकारम्) वेदविद्या-प्रचार को

(अन्नादम्) जीवनरक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥१५॥

स्वाहाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥१६॥

पदार्थ—वह [अतिथि] (अन्नादेन) जीवनरक्षक (स्वाहाकारेण) वेदविद्या-प्रचार से (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥१६॥

स यदूर्ध्वां दिशमनु व्यचलद् बृहस्पतिर्भूत्वानुव्यचलद् वषट्कारमन्नादं कृत्वा ॥१७॥

पदार्थ—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (ऊर्ध्वाम्) ऊंची (दिशम् अनु) दिशा की ओर (व्यचलत्) विचरा वह (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं का रक्षक] (भूत्वा) होकर (वषट्कारम्) दान व्यवहार को (अन्नादम्) जीवनरक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥१७॥

वषट्कारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥१८॥

पदार्थ—वह [अतिथि] (अन्नादेन) जीवनरक्षक (वषट्कारेण) दान-व्यवहार से (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥१८॥

स यद् देवाननु व्यचलदीशानो भूत्वानुव्यचलन्मन्युमन्नादं कृत्वा ॥१९॥

पदार्थ—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत) जब (देवान् अनु) विद्वानो की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (ईशानः) समर्थ (भूत्वा) होकर और (मन्युम्) ज्ञान को (अन्नादम्) जीवन रक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥१९॥

मन्युनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥२०॥

पदार्थ—वह [अतिथि] (अन्नादेन) जीवन-रक्षक (मन्युना) ज्ञान से (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥२०॥

स यत् प्रजा अनु व्यचलत्प्रजापतिर्भूत्वानुव्यचलत् प्राणमन्नादं कृत्वा ॥२१॥

पदार्थ—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (प्रजाः अनु) प्रजाओं [प्राणियों] की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (प्रजापतिः) प्रजापति [प्राणियो का रक्षक] (भूत्वा) होकर और (प्राणम्) प्राण [आत्मबल] को (अन्नादम्) जीवनरक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया। २१॥

प्राणेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥२२॥

पदार्थ—वह [अतिथि] (अन्नादेन) जीवनरक्षक (प्राणेन) प्राण से (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥२२॥

स यत् सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत् परमेष्ठी भूत्वानुव्यचलद् ब्रह्मान्नादं कृत्वा ॥२३॥

पदार्थ—(सः) वह [व्रात्य अतिथि] (यत्) जब (सर्वान्) सब (अन्तर्देशान् अनु) बीच वाले देशों की ओर (व्यचलत्) विचरा, वह (परमेष्ठी) परमेष्ठी [सबसे ऊंचे पद वाला] (भूत्वा) होकर और (ब्रह्म) परब्रह्म [जगदीश्वर] को (अन्नादम्) जीवनरक्षक (कृत्वा) करके (अनुव्यचलत्) लगातार चला गया ॥२३॥

ब्रह्मणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥२४॥

पदार्थ—वह [अतिथि] (अन्नादेन) जीवन रक्षक (ब्रह्मणा) परब्रह्म जगदीश्वर के साथ (अन्नम्) जीवन की (अत्ति) रक्षा करता है, (यः) जो (एवम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता है ॥२४॥

卐 सूक्तम् १५ 卐

१—९ अथर्वा । अध्यात्मं व्रात्यः । १ दैवी पंक्ति, २ आसुरी बृहती, ३, ४, ७, ८ प्राजा० अनुष्टुप् (४, ७, ८ भुरिक्) ५, ८ द्विपदा साम्नी बृहती; ९ विराड् गायत्री ।

तस्य व्रात्यस्य ॥१॥

पदार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] के ॥१॥

सप्त प्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः ॥२॥

पदार्थ—(सप्त) सात (प्राणाः) प्राण [शरीर मे भीतर जाने वाले जीवन-वर्धक श्वास], (सप्त) सात (अपानाः) अपान [शरीर से बाहिर निकलने वाले दोषनाशक प्रश्वास] और (सप्त) सात (व्यानाः) व्यान [सब शरीर मे फैले हुए वायु] हैं ॥२॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमः प्राण ऊर्ध्वो नामायं सो अग्निः ॥३॥

पदार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का (यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (प्रथमः) पहिला (प्राणः) प्राण [श्वास] (ऊर्ध्वः) ऊर्ध्व [ऊंचा] (नाम) नाम है, (सः) सो (अयम् अग्निः) यह अग्नि है [अर्थात् वह शारीरिक, पार्थिव, समुद्रीय, गुप्त, प्रकट बिजुली आदि अग्नि विद्याओं का प्रकाशक होता है] ॥३॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयः प्राणः प्रौढो नामासौ स आदित्यः ॥४॥

पदार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का (यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (द्वितीयः) दूसरा (प्राणः) प्राण (प्रौढः) प्रौढ [प्रवृद्ध] (नाम) नाम है, (सः) सो (असौ) यह (आदित्यः) चमकने वाला सूर्य है [अर्थात् वह सूर्यविद्या का प्रकाशक होता है— कि सूर्य का पृथिवी आदि लोकों और उनके पदार्थों से और उन सब का सूर्य लोक से क्या सम्बन्ध है यह विचारता है] ॥४॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयः प्राणोऽभ्यूढो नामासौ स चन्द्रमाः ॥५॥

पदार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का (यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (तृतीयः) तीसरा (प्राणः) प्राण [श्वास] (अभ्यूढः) अभ्यूढ [सामने से प्राप्त] (नाम) नाम है, (सः) सो (असौ चन्द्रमाः) यह चन्द्रमा है [अर्थात् यह बताता है कि उपग्रह चन्द्रमा, अपने ग्रह पृथिवी से किस सम्बन्ध से क्या प्रभाव करता है और इसी प्रकार अन्य चन्द्रमाओं का अन्य ग्रहों से क्या सम्बन्ध है] ॥५॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थः प्राणो विभूर्नामायं स पवमानः ॥६॥

पदार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का (यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (चतुर्थः) चौथा (प्राणः) प्राण [श्वास] (विभूः) विभू [व्यापक] (नाम) नाम है, (सः) सो (अयं पवमानः) यह पवमान [शोधक वायु] है [अर्थात् वह बताता है कि वायु क्या है और उसका प्रभाव सब जीवों, सब पृथिवी, सूर्य आदि लोकों पर क्या होता है] ॥६॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमः प्राणो योनिर्नाम ता इमा आपः ॥७॥

पदार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का (यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (पञ्चमः) पांचवा (प्राणः) प्राण [श्वास] (योनिः) योनि [कारण] (नाम) नाम है, (ताः) सो (इमाः आपः) ये जल है [अर्थात् वह सिखाता है कि जल क्या है और वह भूमण्डल, मेघमण्डल, सूर्यमण्डल आदि लोकों से क्या सम्बन्ध रखता] है ॥७॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठः प्राणः प्रियो नाम त इमे पशवः ॥८॥

पदार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का (यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (षष्ठः) छठा (प्राणः) प्राण [श्वास] (प्रियः) प्रिय [प्रीतिकारक] (नाम) नाम है, (ते) सो (इमे पशवः) ये पशु हैं [अर्थात् वह जताता है कि गौ, अश्व आदि जीव पृथिवी लोक और दूसरे लोकों में कैसे उपकारी होते हैं] ॥८॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमः प्राणोऽपरिमितो नाम ता इमाः प्रजाः ॥९॥

पदार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का (यः) जो (अस्य) उस [व्रात्य] का (सप्तमः) सातवाँ (प्राणः) प्राण [श्वास] (अपरिमितः) अपरिमित [असीम] (नाम) नाम है, (ताः) सो (इमाः प्रजाः) ये प्रजाएँ हैं [अर्थात् वह समझाता है कि परमात्मा की सृष्टि में भूलोक, चन्द्रलोक, सूर्यलोक आदि के मनुष्य, जीव-जन्तुओं का सम्बन्ध आपस मे और दूसरे लोकवालो से क्या रहता है] ॥९॥

卐 सूक्तम् १६ 卐

१—७ अथर्वा । अध्यात्मं, व्रात्यः । १, ३ साम्नी उष्णिक्, २,४,५ प्राजा० उष्णिक्, ६ याजुषी त्रिष्टुप्, ७ आसुरी गायत्री ।

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमोऽपानः सा पौर्णमासी ॥१॥

पदार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का (यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (प्रथम) पहिला (अपान) अपान [प्रश्वास अर्थात् बाहिर निकलने वाला दोषनाशक वायु] है, (सा) वह (पौर्णमासी) पौर्णमासी है [अर्थात् पूर्णमासेष्टि है जिसमे वह विचारता है कि उस दिन चन्द्रमा पूरा क्यो दीखता है, पृथिवी, समुद्र आदि पर उसका क्या प्रभाव होता है, इस प्रकार का यज्ञ वह ज्ञानी पुरुष अपने इन्द्रिय-दमन से सिद्ध करता है] ॥१॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य द्वि॒तीयो॑ऽपा॒नः साष्ट॑का ।२।

पदार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का (यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (द्वितीय) दूसरा (अपान) अपान [प्रश्वास] है, (सः) वह (अष्टका) अष्टका है [अर्थात् वह अष्टमी आदि तिथि का यज्ञ है जिसमे विद्वान् पितर लोग विचारते है कि ज्योतिष शास्त्र की मर्यादा से इन तिथियो मे सूर्य और चन्द्र आदि का क्या प्रभाव पडता है] ॥२॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य तृ॒तीयो॑ऽपा॒नः सा॑मा॒वा॒स्या॑ ॥३॥

पदार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का (यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (तृतीय) तीसरा (अपान) अपान [प्रश्वास] है, (सा) वह (अमावास्या) अमावस्या है [वह दर्शेष्टि है जिसमे विचारा जाता है कि अमावस के सूर्य और चन्द्रमा एक राशि मे आकर क्या प्रभाव उत्पन्न करते हैं] ॥३॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य च॒तुर्थो॑ऽपा॒नः सा श्र॒द्धा ॥४॥

पदार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का (यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (चतुर्थ) चौथा (अपान) अपान [प्रश्वास] है, (सा श्रद्धा) वह श्रद्धा है [वह ज्ञानी पुरुष जितेन्द्रियता से श्रद्धा प्राप्त करता है] ॥४॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य प॒ञ्च॒मो॑ऽपा॒नः सा दी॒क्षा ॥५॥

पदार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का (यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (पञ्चम) पाचवाँ (अपान) अपान [प्रश्वास] है, (सा दीक्षा) वह दीक्षा है [वह नियम और व्रतपालन की शिक्षा करता है] ॥५॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य ष॒ष्ठो॑ऽपा॒नः स य॒ज्ञः ॥६॥

पदार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का (यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (षष्ठ) छठा (अपान) अपान [प्रश्वास] है, (स यज्ञ) वह यज्ञ है [मानो वह परमेश्वर और विद्वानो का सत्कार, परस्पर सयोग और विद्या आदि दान है] ॥६॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य स॒प्त॒मो॑ऽपा॒नस्ता इ॒मा दक्षि॑णाः ॥७॥

पदार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का (यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (सप्तम) सातवा (अपान) अपान [प्रश्वास] है, (ता) वे (इमा) ये (दक्षिणा) दक्षिणाये है [मानो वह यज्ञ-समाप्ति पर विद्वानो के सत्कार द्रव्य है] ॥७॥

卐 सूक्तम् १७ 卐

१—१० अथर्वा । अध्यात्म व्रात्य । १—५ प्राजा० उष्णिक्, २, ७ आसुरी अनुष्टुप्, ३ याजुषी पंक्ति, ४ साम्नी उष्णिक्, ६ याजुषी त्रिष्टुप्, ८ त्रिपदा प्रतिष्ठार्ची पंक्ति, ९ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप्, १० साम्नी अनुष्टुप् ।

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य प्र॒थ॒मो व्या॒नः सेयं भूमिः ॥१॥

पदार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का (यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (प्रथम) पहिला (व्यान) व्यान [शरीर मे फैला हुआ वायु] है, (सा) सो (इयम् भूमि) यह भूमि है [अर्थात् वह भूगर्भविद्या, राज्यपालन आदि विद्या का उपदेश करता है] ॥१॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य द्वि॒तीयो॑ व्या॒नस्तद॒न्तरि॑क्षम् ॥२॥

पदार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का (यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (द्वितीयः) दूसरा (व्यान) व्यान [शरीर मे फैला हुआ वायु] है, (तत्) वह (अन्तरिक्षम्) मध्यलोक है [अर्थात् वह वायुमण्डल, मेघमण्डल आदि का ज्ञान देता है] ॥२॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य तृ॒तीयो॑ व्या॒नः सा द्यौः ॥३॥

पदार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का (यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (तृतीय) तीसरा (व्यान) व्यान [शरीर मे फैला हुआ वायु] है, (सा) वह (द्यौ) सूर्य या आकाश है [अर्थात् वह सूर्य के ताप, आकर्षण आदि और आकाश के फैलाव आदि की विद्या का जताता है] ॥३॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य च॒तु॒र्थो व्या॒नस्तानि॒ नक्ष॑त्राणि ॥४॥

पदार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का (यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (चतुर्थ) चौथा (व्यान) व्यान [सब शरीर मे फैला हुआ वायु] है, (तानि) वे (नक्षत्राणि) चलनेवाले तारागण हैं [अर्थात् वह तारागणो के परस्पर आकर्षण रखने, अपने-अपने मार्ग पर चलने और उछलने डूबने आदि का ज्ञान बताता है] ॥४॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य प॒ञ्च॒मो व्या॒नस्त ऋ॒तवः ॥५॥

पदार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का (यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (पञ्चम) पाचवाँ (व्यानः) व्यान [सब शरीर मे फैला हुआ वायु] है, (ते) वे (ऋतव) ऋतुएँ हैं [अर्थात् वह वसन्त आदि ऋतुओ के क्रम और कारण आदि का उपदेश करता है] ॥५॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य ष॒ष्ठो व्या॒नस्त आ॑र्त॒वाः ॥६॥

पदार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का (यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (षष्ठ) छठा (व्यानः) व्यान [सब शरीर मे फैला हुआ वायु] है, (ते) वे (आर्तवा) ऋतुओं मे उत्पन्न पदार्थ हैं [अर्थात वह फूल फल आदि की उत्पत्ति और उपकार का ज्ञान देता है] ॥६॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य स॒प्त॒मो व्या॒नः स सं॑वत्स॒रः ॥७॥

पदार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] का (यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (सप्तम) सातवा (व्यानः) व्यान [सब शरीर मे फैला हुआ वायु] है, (स) वह (संवत्सरः) संवत्सर है [अर्थात् वर्ष मे ऋतु महीने आदि कैसे बनते है और सब मनुष्य आदि प्राणी कैसे उनका उपभोग करते है, इस का वह ज्ञान कराता है] ॥७॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । स॒मा॒नमर्थं॒ परि॑ यन्ति दे॒वाः सं॑वत्स॒रं

वा ए॒तदृ॒तवो॑ऽनु प॒रिय॑न्ति॒ व्रात्यं॑ च ॥८॥

पदार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] के (समानम्) एक से अर्थात् धार्मिक (अर्थम्) अर्थ [विचार] को (देवाः) विद्वान् लोग (परि) सब ओर से (यन्ति) प्राप्त करते हैं, (च) और (व्रात्यम्) उस व्रात्य [सत्यव्रतधारी पुरुष] के (वै) निश्चय करके (एतत्) इस प्रकार से (अनुपरियन्ति) पीछे घिर कर चलते है, [जैसे] (ऋतव.) ऋतुएँ (संवत्सरम्) वर्षकाल के [पीछे चलती हैं] ॥८॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यदा॑दि॒त्यम॑भिसं॒विश॑न्त्यमावा॒स्यां॑

चै॒व तत्पौ॑र्णमा॒सीं च॑ ॥९॥

पदार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] के (आदित्यम्) प्रकाशमान गुण म (यत्) जब (अभिसंविशन्ति) वे [विद्वान्] सब ओर से यथावत् प्रवेश करते हैं (तत् एव) तब ही (अमावास्याम्) साथ-साथ बसने की क्रिया मे (च च) और (पौर्णमासीम्) पूरे नापने [निश्चय करने] की क्रिया मे [वे प्रवेश करते है] ॥९॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । ए॒कं तदे॑षाममृत॒त्वमित्याहु॑तिरे॒व ॥१०॥

पदार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] की (आहुति) आहुति [दानक्रिया] (एव) ही (एषाम्) इन [विद्वानों] का (एकम) केवल (तत्) वह [प्रसिद्ध] (अमृतत्वम्) अमरपन [जीवन अर्थात् पुरुषार्थ] है—(इति) यह निश्चित है ॥१०॥

卐 सूक्तम् ॥१८॥ 卐

१—५ अथर्वा । अध्यात्म, व्रात्य. । १ दैवी पंक्ति, २,३ आर्ची बृहती, ४ आर्ची अनुष्टुप्, ५ साम्नी उष्णिक् ।

तस्य॒ व्रात्य॑स्य ॥१॥

पदार्थ—(तस्य) उस (व्रात्यस्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] की ॥१॥

यद॑स्य दक्षि॑णम॒क्ष्य॒सौ स आ॑दि॒त्यो यद॑स्य स॒व्यम॒क्ष्य॒सौ

स च॒न्द्रमाः ॥२॥

पदार्थ—(यत्) जो (अस्य) इस [व्रात्य] की (दक्षिणम्) दाहिनी (अक्षि) आख है, (स) सो (असौ) वह (आदित्यः) चमकता हुआ सूर्य है, और (यत्) जो (अस्य) इस की (सव्यम्) बायी (अक्षि) आख है, (सः) सो (असौ) वह (चन्द्रमा) आनन्दप्रद चन्द्रमा है ॥

यो॑ऽस्य॒ दक्षि॑णः॒ कर्णो॒ऽयं सो अ॒ग्निर्यो॑ऽस्य स॒व्यः

कर्णो॒ऽयं स पव॑मानः ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो (अस्य) इस [व्रात्य] का (दक्षिणः) दाहिना (कर्णः) कान है, (स) सो (अयम्) यह (अग्निः) व्यापक अग्नि है, (यः)

जो (अस्य) इसका (सव्यः) बायां (कर्णः) कान है, (सः) सो (अयम्) यह (पवमानः) शोधक वायु है ॥३॥

अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिश्च शीर्षकपाले संवत्सरः शिरः ॥४॥

पदार्थ—[इस व्रात्य के] (नासिके) दो नथने (अहोरात्रे) दिन रात्रि, (च) और (शीर्षकपाले) मस्तक के दोनो खोपड़े (दितिः) दिति [खण्डित विकृति अर्थात् विनश्वर सृष्टि] (च) और (अदितिः) अदिति [अखण्डित प्रकृति अर्थात् नाशरहित जगत् सामग्री] है और [उसका] (शिरः) शिर (संवत्सरः) संवत्सर [कालज्ञान] है ॥४॥

अह्ना प्रत्यङ् व्रात्यो राज्या प्राङ् नमो व्रात्याय ॥५॥

पदार्थ—(व्रात्य) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] (अह्ना) दिन के साथ (प्रत्यङ्) सामने जाने वाला और (राज्या) रात्रि के साथ (प्राङ्) आगे को चलने वाला है, (व्रात्याय) व्रात्य [सत्यव्रतधारी अतिथि] के लिये (नमः) नमस्कार [अर्थात् सत्कार होवे] ॥५॥

卐 इति द्वितीयोऽनुवाकः 卐

पञ्चदशं काण्डम् समाप्तम् ॥

卐

षोडशं काण्डम् ॥

प्रथमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् १ 卐

१—१३ अथर्वा । प्रजापतिः । १—३ द्विपदा साम्नी बृहती, २, १० याजुषी त्रिष्टुप्, ४ आसुरी गायत्री, ५, ८ साम्नी पङ्क्तिः, (५ द्विपदा), ६ साम्नी अनुष्टुप्, ७ निचृत् विराड् गायत्री, ९ आसुरी पङ्क्तिः, ११ साम्नी उष्णिक्, १२, १३ आर्ची अनुष्टुप् ।

अतिसृष्टो अपां वृषभोऽतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः ॥१॥

पदार्थ—(अपाम्) प्रजाओं का (वृषभः) बड़ा ईश्वर [परमात्मा] (अतिसृष्टः) विमुक्त [छुटा हुआ] है, [जैसे] (दिव्याः) व्यवहारों में वर्तमान (अग्नयः) अग्नियां [सूर्य, बिजुली और प्रसिद्ध अग्नि] (अतिसृष्टाः) विमुक्त हैं ॥१॥

रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन् ॥२॥

पदार्थ—(रुजन्) तोड़ता हुआ, (परिरुजन्) सब ओर से तोड़ता हुआ, (मृणन्) मारता हुआ (प्रमृणन्) कुचलता हुआ ॥२॥

म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः ॥३॥

पदार्थ—(म्रोकः) सताने वाला, (मनोहा) मन का नाश करने वाला, (खनः) खोद डालने वाला, (निर्दाहः) जलन करने वाला, (आत्मदूषिः) आत्मा का दूषित करने वाला, और (तनूदूषिः) शरीर को दूषित करने वाला [जो रोग है] ॥३॥

इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ॥४॥

पदार्थ—(इदम्) अब (तम्) उस [रोग] का (अति सृजामि) मैं नाश करता हूँ, (तम्) उस [रोग] को (मा अभ्यवनिक्षि) मैं कभी पुष्ट नहीं करूं ॥४॥

तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५॥

पदार्थ—(तेन) उसी [पूर्वोक्त कारण] से (तम्) उस [अज्ञानी वैरी] को (अभ्यतिसृजामः) हम सर्वथा नाश करते हैं, (यः) जो [अज्ञानी] (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करता है और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेष करते हैं ॥५॥

अपामग्रमसि समुद्रं वोऽभ्यवसृजामि ॥६॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] वह [परमात्मा] (अपाम्) प्रजाओं का (अग्रम्) सहारा (असि = अस्ति) है—(वः) तुमको (समुद्रम्) प्राणियों के यथावत् उदय करने वाले परमात्मा की ओर (अभ्यवसृजामि) मैं छोड़ता हूँ ॥६॥

योऽप्स्वग्निरति तं सृजामि म्रोकं खनिं तनूदूषिम् ॥७॥

पदार्थ—(यः) जो [दोष] (अप्सु) प्राणियों के भीतर (अग्निः) अग्नि [के समान सन्तापक] है, (तम्) उस (म्रोकम्) हिंसक, (खनिम्) दुःखदायक और (तनूदूषिम्) शरीरदूषक [रोग] को (अति सृजामि) मैं नाश करता हूँ ॥७॥

यो व आपोऽग्निराविवेश स एष यद् वो घोरं तदेतत् ॥८॥

पदार्थ—(आपः) हे सब विद्याओं में व्यापक बुद्धिमानो ! (यः) जिस (अग्निः) व्यापक परमात्मा ने (वः) तुम में (आविवेश) प्रवेश किया है, (सः) वह (एषः) यह [परमात्मा] है, और (यत्) जो [शत्रुओं के लिये] (वः) तुम्हारा (घोरम्) भयानक रूप है, (तत्) वह (एतत्—एतस्मात्) इसी [परमात्मा] से है ॥८॥

इन्द्रस्य व इन्द्रियेणाभि षिञ्चेत् ॥९॥

पदार्थ—वह [परमात्मा] (वः) तुम को (इन्द्रस्य) बड़े ऐश्वर्यवान् पुरुष के [योग्य] (इन्द्रियेण) बड़े ऐश्वर्य से (अभि षिञ्चेत्) अभिषेकयुक्त [राज्य का अधिकारी] करे ॥९॥

अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ॥१०॥

पदार्थ—(अरिप्राः) निर्दोष (आपः) विद्वान् लोग (रिप्रम्) पाप को (अस्मत्) हम से (अप) दूर [पहुँचावें] ॥१०॥

प्रास्मदेनो वहन्तु प्र दुःष्वप्न्यं वहन्तु ॥११॥

पदार्थ—(अस्मत्) हम से (एनः) पाप को (प्र वहन्तु) बाहिर पहुँचावें और (दुःष्वप्न्यम्) दुष्ट स्वप्न में उत्पन्न कुविचार को (प्र वहन्तु) बाहिर पहुँचावें ॥११॥

शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ॥१२॥

पदार्थ—(आपः) हे विद्वानो ! (शिवेन) सुखप्रद (चक्षुषा) नेत्र से (मा) मुझे (पश्यत) तुम देखो, (शिवया) अपने सुखप्रद (तन्वा) शरीर से (मे) मेरे (त्वचम्) शरीर को (उप स्पृशत) तुम सुख से छूओ ॥१२॥

शिवानग्नीनप्सुषदो हवामहे मयि क्षत्रं वर्च आ धत्त देवीः ॥१३॥

पदार्थ—(अप्सुषदः) प्रजाओं में बैठने वाले (शिवान्) आनन्दप्रद (अग्नीन्) विद्वानों को (हवामहे) हम बुलाते हैं, (देवीः) हे दिव्य गुणवाली प्रजाओ ! (मयि) मुझ में (क्षत्रम्) राज्य और (वर्चः) तेज (आ) आकर (धत्त) धारण करो ॥१३॥

卐 सूक्तम् ॥२॥ 卐

१—६ अथर्वा । वाक् । १ आसुर्यनुष्टुप्, २ आसुर्युष्णिक्, ३ साम्नी उष्णिक्; ४ त्रिपदा साम्नी बृहती, ५ आर्च्यनुष्टुप्, ६ निचृद् विराड्गायत्री ।

निर्दुरर्मण्य ऊर्जा मधुमती वाक् ॥१॥

पदार्थ—(ऊर्जा) शक्ति के साथ (मधुमती) ज्ञानयुक्त (वाक्) वाणी (दुरर्मण्यः) दुर्गति से (निः) पृथक् [होवे] ॥१॥

मधुमती स्थ मधुमतीं वाचमुदेयम् ॥२॥

पदार्थ—[हे प्रजाओ !] तुम (मधुमतीः) ज्ञान वाली (स्थ) हो, (मधुमतीम्) ज्ञानयुक्त (वाचम्) वाणी (उदेयम्) मैं बोलूं ॥२॥

उपहूतो मे गोपा उपहूतो गोपीथः ॥३॥

पदार्थ—(**गोपा.**) वाणी का रक्षक [आचार्य] (**मे**) मेरा (**उपहूत**) आदर से बुलाया हुआ है और (**गोपीथ**) भूमि का रक्षक [राजा] (**उपहूत**) आदर से बुलाया हुआ है ॥३॥

सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासम् ॥४॥

पदार्थ—[मेरे] (**कर्णौ**) दोनो कान (**सुश्रुतौ**) शीघ्र सुनने वाले, (**कर्णौ**) दोनो कान (**भद्रश्रुतौ**) मङ्गल सुनने वाले [होवें], (**भद्रम्**) मङ्गलमय (**श्लोकम्**) यश (**श्रूयासम्**) मैं सुना करूं ॥४॥

सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा हासिष्टां सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः ॥५॥

पदार्थ—(**सुश्रुति**) शीघ्र सुनना (**च च**) और (**उपश्रुति**) अङ्गीकार करना (**मा**) मुझे (**मा हासिष्टाम्**) दोनो न छोड़ें, (**सौपर्णम्**) समस्त पूर्ति वाली (**चक्षु**) दृष्टि और (**अजस्रम्**) अचूक (**ज्योति**) ज्योति [बनी रहे] ॥५॥

ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोऽस्तु दैवाय प्रस्तराय ॥६॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] तू (**ऋषीणाम्**) इन्द्रियों का (**प्रस्तर**) फैलाने वाला (**असि**) है, (**दैवाय**) दिव्य गुणवाले (**प्रस्तराय**) फैलाने वाले [तुझ] को (**नम**) नमस्कार [सत्कार] (**अस्तु**) होवे ॥६॥

卐 **सूक्तम् ३** 卐

१—६ ब्रह्मा । आदित्य । १ आसुरी गायत्री, २, ३ आर्च्यनुष्टुप, ४ प्राजापत्या त्रिष्टुप् ५ साम्न्युष्णिक्, ६ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप ॥

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् ॥१॥

पदार्थ—(**अहम्**) मैं (**रयीणाम्**) धनों का (**मूर्धा**) सिर और (**समानानाम्**) समान [तुल्य गुणी] पुरुषों का (**मूर्धा**) सिर (**भूयासम्**) हो जाऊं ॥१॥

रुजश्च मा वेनश्च मा हासिष्टां मूर्धा च मा विधर्मा च मा हासिष्टाम् ॥२॥

पदार्थ—(**रुज**) अन्धकारनाशक गुण (**च च**) और (**वेन**) कमनीय [गुण] (**मा**) मुझे (**मा हासिष्टाम्**) दोनो न छोड़े (**मूर्धा**) मस्तक [मस्तक ज्ञान] और (**विधर्मा**) विविध प्रकार धारण करनेवाला आत्मा [आत्मबल] मुझे (**मा हासिष्टाम्**) दोनो कभी न छोड़े ॥२॥

उर्वश्च मा चमसश्च मा हासिष्टां धर्ता च मा धरुणश्च मा हासिष्टाम् ॥३॥

पदार्थ—(**उर्व**) शत्रुनाशक गुण [शूरपन] (**च च**) और (**चमस**) भोजनपात्र [शरीर] (**मा**) मुझे (**मा हासिष्टाम्**) दोनो न छोड़ें, (**धर्ता**) धारण करनेवाला गुण (**च च**) और (**धरुण**) अवस्थान [दृढ रहने का गुण] (**मा**) मुझे (**मा हासिष्टाम्**) दोनो न छोड़ें ॥३॥

विमोकश्च मार्द्रपविश्च मा हासिष्टामार्द्रदानुश्च मा मातरिश्वा च मा हासिष्टाम् ॥४॥

पदार्थ—(**विमोक**) विमुक्त करने वाला गुण (**च च**) और (**आर्द्रपवि**) गतिशोधक गुण (**मा**) मुझे (**मा हासिष्टाम्**) दोनो न छोड़ें, (**आर्द्रदानु**) याचकों का पालन वाला गुण (**च च**) और (**मातरिश्वा**) ऐश्वर्य में बढ़ने वाला गुण (**मा**) मुझे (**मा हासिष्टाम्**) दोनो न छोड़ें ॥४॥

बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः ॥५॥

पदार्थ—(**मे**) मेरा (**आत्मा**) आत्मा (**बृहस्पति.**) बड़े गुणों का स्वामी (**नृमणा**) नेताओं के तुल्य मन वाला और (**हृद्य**) हृदय का प्रिय (**नाम**) प्रसिद्ध [हो] ॥१५॥

असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः समुद्रो अस्मि विधर्मणा ॥६॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (**मे**) मेरा (**हृदयम्**) हृदय (**असन्तापम्**) सन्तापरहित और (**गव्यूति**) विद्या मिलने का मार्ग (**उर्वी**) चौड़ा [होवे], मैं (**विधर्मणा**) विविध धारण-सामर्थ्य से (**समुद्र**) समुद्र [समुद्र-समान गहरा] (**अस्मि**) हूँ ॥६॥

卐 **सूक्तम् ४** 卐

१—७ ब्रह्मा । आदित्य । १, ३ साम्नी अनुष्टुप्, २ साम्नी उष्णिक्, ४ त्रिपदा अनुष्टुप्, ५ आसुरी गायत्री, ६ मार्च्युष्णिक्, ७ त्रिपदा विराड्गर्भानुष्टुप् ।

नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् ॥१॥

पदार्थ—(**अहम्**) मैं (**रयीणाम्**) धनों की (**नाभि**) नाभि [मध्यस्थान] और (**समानानाम्**) समान [तुल्य गुणी] पुरुषों की (**नाभि.**) नाभि (**भूयासम्**) हो जाऊं ॥१॥

स्वासदसि सूषा अमृतो मर्त्येष्वा ॥२॥

पदार्थ—[हे आत्मा !] तू (**स्वासत्**) सुन्दर सत्ता वाला, (**सूषा.**) सुन्दर प्रभातों वाला [प्रभात के प्रकाश के समान बढ़ने वाला] (**आ**) और (**मर्त्येषु**) मनुष्यों के भीतर (**अमृत**) अमर (**असि**) है ॥२॥

मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात् ॥३॥

पदार्थ—[हे ईश्वर !] (**प्राण**) प्राण [श्वास] (**माम्**) मुझे (**मा हासीत्**) न छोड़े (**मो**) और न (**अपान**) अपान [प्रश्वास] (**अवहाय**) छोड़कर (**परा गात्**) दूर जावे ॥३॥

सूर्यो माह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद् यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ॥४॥

पदार्थ—(**सूर्य**) सब का चलाने वाला परमात्मा (**मा**) मुझे (**अह्न**) दिन [के भय] से (**पातु**) बचावे (**अग्नि**) ज्ञानस्वरूप जगदीश्वर (**पृथिव्या**) पृथिवी [के भय] से, (**वायु**) महाबलवान् परमेश्वर (**अन्तरिक्षात्**) अन्तरिक्ष [के भय] से (**यम**) न्यायकारी ईश्वर (**मनुष्येभ्य**) मनुष्यों [के भय] से और (**सरस्वती**) सर्वविज्ञानमय परमेश्वर (**पार्थिवेभ्य**) पृथिवी के प्राणी आदियों [के भय] से [बचावे] ॥४॥

प्राणापानौ मा मा हासिष्टं मा जने प्र मेषि ॥५॥

पदार्थ—(**प्राणापानौ**) हे प्राण और अपान ! तुम दोनो (**मा**) मुझे (**मा हासिष्टम्**) मत छोड़ो, (**जने**) मनुष्यों के बीच (**मा प्र मेषि**) कभी नष्ट न होऊं ॥५॥

स्वस्त्यद्योषसो दोषसश्च सर्व आपः सर्वगणो अशीय ॥६॥

पदार्थ—(**आप**) हे आप्त विद्वानो ! (**सर्वगण**) अपने सब गणों के सहित (**सर्व**) सम्पूर्ण मैं (**स्वस्ति**) कल्याण में (**अद्य**) अब (**उषस**) प्रभात वेलाओं का (**च**) और (**दोषस**) रात्रियों का (**अशीय**) पाता रहूँ ॥६॥

शक्वरी स्थ पशवो मोप स्थेषुर्मित्रावरुणौ मे प्राणापानावग्निर्मे दक्षं दधातु ॥७॥

पदार्थ—[हे प्रजाओ !] तुम (**शक्वरी**) बलवती (**स्थ**) हो (**पशव**) सब प्राणी (**मा उप**) मेरे समीप (**स्थेषु**) ठहरें, (**अग्नि**) ज्ञानस्वरूप जगदीश्वर (**मित्रावरुणौ**) दो श्रेष्ठ मित्र (**मे**) मेरे (**प्राणापानौ**) प्राण और अपान को और (**मे**) मेरी (**दक्षम्**) चतुराई को (**दधातु**) स्थिर रक्खे ॥७॥

इति प्रथमोऽनुवाक

卐

अथ द्वितीयोऽनुवाक. ॥

卐 **सूक्तम् ५** 卐

१—१० यम । दुःष्वप्ननाशनम् । १० ? —६ विराड् गायत्री (प्र० ५ भुरिक्, ६ प्र० स्वराट्), १ द्वि० ६ द्वि० प्राजा० गायत्री, १ तृ० ६ तृ० द्विपदा साम्नी बृहती ।

विद्म ते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥१॥

पदार्थ—(**स्वप्न**) हे स्वप्न ! [आलस्य] (**ते**) तेरे (**जनित्रम्**) जन्मस्थान को (**विद्म**) हम जानते हैं, तू (**ग्राह्या**) गठिया [रोगविशेष] का (**पुत्र**) पुत्र और (**यमस्य**) मृत्यु का (**करण**) करने वाला (**असि**) है ॥१॥

अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥२॥

पदार्थ—तू (**अन्तक:**) अन्त करने वाला (**असि**) है और तू (**मृत्यु:**) मृत्यु [के समान दुःखदायी] (**असि**) है ॥२॥

तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ॥३॥

पदार्थ—(**स्वप्न**) हे स्वप्न ! [आलस्य] (**तम्**) उस (**त्वा**) तुझ को (**तथा**) वैसा ही (**सम्**) अच्छे प्रकार (**विद्म**) हम जानते हैं, (**स**) सो तू (**स्वप्न**) हे स्वप्न ! [आलस्य] (**न.**) हमें (**दुःष्वप्न्यात्**) बुरी निद्रा में उठे कुविचार से (**पाहि**) बचा ॥३॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्ऋत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः । अन्तकोऽसि मृत्युरसि । तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ॥४॥

पदार्थ—(**स्वप्न**) हे स्वप्न ! [आलस्य] (**ते**) तेरे (**जनित्रम्**) जन्म-स्थान को (**विद्म**) हम जानते है, तू (**निर्ऋत्याः**) निर्ऋति [महामारी] का (**पुत्रः**) पुत्र और (**यमस्य**) मृत्यु का (**करणः**) करने वाला (**असि**) है, तू (**अन्तकः**) अन्त करने वाला (**असि**) है और तू (**मृत्युः**) मृत्यु [के समान दुःखदायी] (**असि**) है । (**स्वप्न**) हे स्वप्न ! [आलस्य] (**तम्**) उस (**त्वा**) तुझ को (**तथा**) वैसा ही (**सम्**) अच्छे प्रकार (**विद्म**) हम जानते है, (**सः**) सो तू (**स्वप्न**) हे स्वप्न ! [आलस्य !] (**नः**) हमे (**दुःष्वप्न्यात्**) बुरी निद्रा मे उठे कुविचार से (**पाहि**) बचा ॥४॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रमभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः । अन्तकोऽसि मृत्युरसि । तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ॥५॥

पदार्थ—(**स्वप्न**) हे स्वप्न ! [आलस्य] (**ते**) तेरे (**जनित्रम्**) जन्म स्थान को (**विद्म**) हम जानते है, तू (**अभूत्याः**) अभूति [असम्पत्ति] का (**पुत्रः**) पुत्र और (**यमस्य**) मृत्यु का (**करणः**) करने वाला (**असि**) है, तू (**अन्तकः**) अन्त करनेवाला (**असि**) है और तू (**मृत्युः**) मृत्यु [के समान दुःखदायी] (**असि**) है । (**स्वप्न**) हे स्वप्न [आलस्य] (**तम्**) उस (**त्वा**) तुझ को (**तथा**) वैसा ही (**सम्**) अच्छे प्रकार (**विद्म**) हम जानते हैं, (**सः**) तू (**स्वप्न**) हे स्वप्न ! (**नः**) हमे (**दुःष्वप्न्यात्**) बुरी निद्रा मे उठे कुविचार से (**पाहि**) बचा ॥५॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्भूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः । अन्तकोऽसि मृत्युरसि । तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ॥६॥

पदार्थ—(**स्वप्न**) हे स्वप्न ! [आलस्य] (**ते**) तेरे (**जनित्रम्**) जन्म-स्थान को (**विद्म**) हम जानते है, तू (**निर्भूत्याः**) निर्भूति [हानि, नाश वा अभाव] का (**पुत्रः**) पुत्र और (**यमस्य**) मृत्यु का (**करणः**) करने वाला (**असि**) है । तू (**अन्तकः**) अन्त करने वाला (**असि**) है और तू (**मृत्युः**) मृत्यु [के समान दुःखदायी] (**असि**) है । (**स्वप्न**) हे स्वप्न [आलस्य] (**तम्**) उस (**त्वा**) तुझ को (**तथा**) वैसा ही (**सम्**) अच्छे प्रकार (**विद्म**) हम जानते है, (**सः**) सो तू (**स्वप्न**) हे स्वप्न ! (**नः**) हमे (**दुःष्वप्न्यात्**) बुरी निद्रा मे उठे कुविचार से (**पाहि**) बचा ॥६॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं पराभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः । अन्तकोऽसि मृत्युरसि । तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ॥७॥

पदार्थ—(**स्वप्न**) हे स्वप्न ! [आलस्य] (**ते**) तेरे (**जनित्रम्**) जन्म-स्थान को (**विद्म**) हम जानते है, तू (**पराभूत्याः**) पराभूति [पराभव, हार] का (**पुत्रः**) पुत्र और (**यमस्य**) मृत्यु का (**करणः**) करने वाला (**असि**) है तू (**अन्तकः**) अन्त करने वाला (**असि**) है और तू (**मृत्युः**) मृत्यु [के समान दुःखदायी] (**असि**) है ॥२॥ (**स्वप्न**) हे स्वप्न [आलस्य] (**तम्**) उस (**त्वा**) तुझ का (**तथा**) वैसा ही (**सम्**) अच्छे प्रकार (**विद्म**) हम जानते हैं, (**सः**) सो तू (**स्वप्न**) हे स्वप्न ! (**नः**) हमे (**दुःष्वप्न्यात्**) बुरी निद्रा मे उठे कुविचार से (**पाहि**) बचा ॥७॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥८॥

पदार्थ—(**स्वप्न**) हे स्वप्न ! [आलस्य] (**ते**) तेरे (**जनित्रम्**) जन्म-स्थान को (**विद्म**) हम जानते है, तू (**देवजामीनाम्**) उन्मत्तो की गतियो का (**पुत्रः**) पुत्र और (**यमस्य**) मृत्यु का (**करणः**) करने वाला (**असि**) है ॥८॥

अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥९॥

पदार्थ—तू (**अन्तकः**) अन्त करने वाला (**असि**) है और तू (**मृत्युः**) मृत्यु [के समान दुःखदायी] (**असि**) है ॥९॥

तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ॥१०॥

पदार्थ—(**स्वप्न**) हे स्वप्न [आलस्य] (**तम्**) उस (**त्वा**) तुझ को (**तथा**) वैसा ही (**सम्**) अच्छे प्रकार (**विद्म**) हम जानते हैं, (**सः**) सो तू (**स्वप्न**) हे स्वप्न ! (**नः**) हमे (**दुःष्वप्न्यात्**) बुरी निद्रा मे उठे कुविचार से (**पाहि**) बचा ॥१०॥

卐 सूक्तम् ॥ ६ ॥ 卐

१—११ यम । दुःष्वप्न नाशन, उषा । १—४ प्राजापत्याऽनुष्टुप्, ५ साम्नी पङ्क्ति, ६ निचृदार्ची बृहती, ७ द्विपदा साम्नी बृहती ८ आसुरी जगती, ९ आसुरी बृहती, १० आर्च्युष्णिक्, ११ त्रिपदा यवम० गायत्री वा आर्ची अनुष्टुप् ।

अजैष्माद्यासनामाद्याभूमानागसो वयम् ॥१॥

पदार्थ—(**अद्य**) अब [अनिष्ट को] (**अजैष्म**) हम ने जीत लिया है, (**अद्य**) अब [इष्ट को] (**असनाम**) हम ने पा लिया है, (**वयम्**) हम (**अनागसः**) निर्दोष (**अभूम**) हो गये हैं ॥१॥

उषो यस्माद् दुःष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छतु ॥२॥

पदार्थ—(**उषः**) हे उषा ! [प्रभात वेला] (**यस्मात्**) जिस (**दुःष्वप्न्यात्**) दुष्ट स्वप्न मे उठे कुविचार से (**अभैष्म**) हम डरे है, (**तत्**) वह (**अप**) दूर (**उच्छतु**) चला जावे ॥२॥

द्विषते तत् परा वह शपते तत् परा वह ॥३॥

पदार्थ—[हे उषा !] तू (**तत्**) वह [कष्ट] (**द्विषते**) [वैद्यो से] वैर करने वाले के लिये (**परा वह**) पहुँचा दे, (**तत्**) वह (**शपते**) [उन्हे] कोसने वाले के लिये (**परा वह**) पहुँचा दे ॥३॥

यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तस्मा एनद् गमयामः ॥४॥

पदार्थ—(**यम्**) जिस [कुपथ्यकारी] से (**द्विष्मः**) हम [वैद्य लोग] वैर करते है, (**च**) और (**यः**) जो (**नः**) हम से (**द्वेष्टि**) वैर करता है, (**तस्मै**) उसको (**एनत्**) यह [कष्ट] (**गमयामः**) हम जताते हैं ॥४॥

उषा देवी वाचा संविदाना वाग् देव्युषसा संविदाना ॥५॥

पदार्थ—(**उषा देवी**) उषा देवी [उत्तम गुण वाली प्रभात वेला] (**वाचा**) वाणी से (**संविदाना**) मिली हुई और (**वाक् देवी**) वाक् देवी [श्रेष्ठ वाणी] (**उषसा**) प्रभात वेला से (**संविदाना**) मिली हुई [होवे] ॥५॥

उषस्पतिर्वाचस्पतिना संविदानो वाचस्पतिरुषस्पतिना संविदानः ॥६॥

पदार्थ—(**उषः = उषसः**) उषा का (**पतिः**) पति [प्रभात मे उठनेवाला मनुष्य] (**वाचः**) वाणी के (**पतिना**) पति [विद्याभ्यासी] के साथ (**संविदानः**) मिला हुआ और (**वाचः**) वाणी का (**पतिः**) पति [विद्याभ्यासी पुरुष] (**उषः = उषसः**) उषा के (**पतिना**) पति [प्रभात मे उठनेवाले] के साथ (**संविदानः**) मिला हुआ [होवे] ॥६॥

तेऽमुष्मै परा वहन्त्वरायान् दुर्णाम्नः सदान्वाः ॥७॥

पदार्थ—(**ते**) वे [ईश्वर नियम] (**अमुष्मै**) उस [कुपथ्यकारी] के लिये (**अरायान्**) क्लेशो, (**दुर्णाम्नः**) दुर्नामो [अर्श आदि रोगो], (**सदान्वाः**) सदा चिल्लाने वाली पीडाओ [रोग जिनमे रोगी चिल्लाता है] ॥७॥

कुम्भीकाः दूषीकाः पीयकान् ॥८॥

पदार्थ—(**कुम्भीकाः**) कुम्भीकाओ [रोग जिस मे पेट बटलोही-सा बजता है], (**दूषीकाः**) दूषीकाओ [जिन रोगो मे रोगी गिरता जाता है], (**पीयकान्**) अन्य दुःखदायी रोगो ॥८॥

जाग्रद्दुःष्वप्न्यं स्वप्ने दुःष्वप्न्यम् ॥९॥

पदार्थ—(**जाग्रद्दुःष्वप्न्यम्**) जागते मे बुरे स्वप्न और (**स्वप्ने दुःष्वप्न्यम्**) सोते मे बुरे स्वप्न को ॥९॥ (**परा वहन्तु—म०७**) दूर पहुँचावें ॥

अनागमिष्यतो वरानवित्तेः संकल्पानमुच्या द्रुहः पाशान् ॥१०॥

पदार्थ—(**अनागमिष्यतः**) न आनेवाले (**वरान्**) वरदानो [श्रेष्ठ कर्म-फलो] को, (**अवित्तेः**) निर्धनता के (**संकल्पान्**) विचारो को और (**अमुच्याः**) न छोडने वाले (**द्रुहः**) द्रोह [अनिष्ट चिन्ता] के (**पाशान्**) फन्दो को ॥१०॥

तदमुष्मा अग्ने देवाः परा वहन्तु वध्रिर्यथासद् विथुरो न साधुः ॥११॥

पदार्थ—(**तत्**) इस [सब दुःख] को (**अमुष्मै**) उस [कुपथ्यसेवी] के लिये, (**अग्ने**) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! (**देवाः**) [तेरे] दिव्य नियम (**परा वहन्तु**) पहुँचावें, (**यथा**) जिस से (**न साधुः**) वह असाधु पुरुष (**वध्रिः**) निर्वीर्य और (**विथुरः**) व्याकुल (**असत्**) हो जावे ॥११॥

卐 सूक्तम् ॥७॥ 卐

१–१३ यम । दुःष्वप्ननाशन, उषा । १ पङ्क्ति, २ साम्नी अनुष्टुप्, ३ आसुरी उष्णिक्, ४ प्राजा० गायत्री, ५ आर्ची उष्णिक्, ६,९,११, साम्नी बृहती, ७ याजुषी गायत्री, ८ प्राजा० बृहती, १० साम्नी गायत्री, १२ भुरिक्, प्राजा० अनुष्टुप्, १३ आसुरी त्रिष्टुप् ।

तेनैनं विध्याम्यभूत्यैनं विध्यामि निर्भूत्यैनं विध्यामि पराभूत्यैनं विध्यामि ग्राह्यैनं विध्यामि तमसैनं विध्यामि ॥१॥

पदार्थ—(**तेन**) उस [ईश्वर-नियम] से (**एनम्**) इस [कुमार्गी] को (**अभूत्या**) अभूति [असम्पत्ति] से (**विध्यामि**) मैं छेदता हूँ, (**एनम्**) इस को (**निर्भूत्या**) निर्भूति [हानि वा नाश] से (**विध्यामि**) छेदता हूँ, (**एनम्**) इसको (**पराभूत्या**) पराभूति [पराभव, हार] से (**विध्यामि**) छेदता हूँ, (**एनम्**) इस को (**ग्राह्या**) गठिया रोग से (**विध्यामि**) छेदता हूँ, (**एनम्**) इसको (**तमसा**) अन्धकार [महाक्लेश] से (**विध्यामि**) छेदता हूँ, (**एनम्**) इस [कुमार्गी] को [अन्य विपत्तियों से] (**विध्यामि**) मैं छेदता हूँ ॥१॥

देवानामेनं घोरैः क्रूरैः प्रैषैरभिप्रेष्यामि ॥२॥

पदार्थ—(**एनम्**) इस [कुमार्गी] को (**देवानाम्**) [परमात्मा के] उत्तम नियमों के (**घोरैः**) घोर [भयानक] और (**क्रूरैः**) क्रूर [निर्दय] (**प्रैषैः**) शासनों से (**अभिप्रेष्यामि**) मैं सामने से प्राप्त होता हूँ ॥२॥

वैश्वानरस्यैनं दंष्ट्रयोरपि दधामि ॥३॥

पदार्थ—(**एनम्**) इस [कुमार्गी] को (**वैश्वानरस्य**) सब नरों के हितकारी पुरुष के (**दंष्ट्रयोः**) दोनों डाढ़ों के बीच [जैसे अन्न को] (**अपि**) अवश्य (**दधामि**) धरता हूँ ॥३॥

एवानेवाव सा गरत् ॥४॥

पदार्थ—(**एव**) इस प्रकार से [अथवा] (**अनेव**) अन्य प्रकार से (**सा**) वह [न्याय व्यवस्था कुमार्गी को] (**अव गरत्**) निगल जावे ॥४॥

योऽस्मान् द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टु यं वयं द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु ॥५॥

पदार्थ—(**यः**) जो [कुमार्गी] (**अस्मान्**) हम से (**द्वेष्टि**) वैर करता है, (**तम्**) उस से [उसका] (**आत्मा**) आत्मा (**द्वेष्टु**) वैर करे, (**यम्**) जिस [कुमार्गी] से (**वयम्**) हम (**द्विष्मः**) वैर करते हैं, (**सः**) वह (**आत्मानम्**) [अपने] आत्मा से (**द्वेष्टु**) वैर करे ॥५॥

निर्द्विषन्तं दिवो निः पृथिव्या निरन्तरिक्षाद् भजाम ॥६॥

पदार्थ—(**द्विषन्तम्**) वैर करनेवाले [कुमार्गी] को (**दिवः**) आकाश से (**निः**) पृथक्, (**पृथिव्याः**) पृथिवी से (**निः**) पृथक् और (**अन्तरिक्षात्**) मध्य लोक से (**निः भजाम**) हम भागरहित करें ॥६॥

सुयामंश्चाक्षुष ॥७॥

पदार्थ—(**सुयामन्**) हे सुमार्गी ! (**चाक्षुष**) हे नेत्रवाले ! [विद्वान्] ॥७॥

इदमहमामुष्यायणेऽमुष्याः पुत्रे दुःष्वप्न्यं मृजे ॥८॥

पदार्थ—(**इदम्**) अब (**अहम्**) मैं (**आमुष्यायणे**) अमुक पुरुष के सन्तान, (**अमुष्याः**) अमुक स्त्री के (**पुत्रे**) [कुमार्गी] पुत्र पर (**दुःष्वप्न्यम्**) दुष्ट स्वप्न [आलस्य] में उठे कुविचार को (**मृजे**) शोधता हूँ ॥८॥

यददोअदो अभ्यगच्छन् यद् दोषा यत् पूर्वां रात्रिम् ॥९॥

पदार्थ—(**यत्**) जैसे (**अदोअदः**) उस उस समय पर (**यत्**) जो [कष्ट] (**दोषा**) रात्रि में, (**यत्**) जो [कष्ट] (**पूर्वां रात्रिम्**) रात्रि के पूर्व भाग में (**अभ्यगच्छन्**) उन [पूर्वज लोगों] ने सामने से पाया है ॥९॥

यज्जाग्रद् यत् सुप्तो यद् दिवा यन्नक्तम् ॥१०॥

पदार्थ—[वैसे ही] (**यत्**) जो [कष्ट] (**जाग्रत्**) जागता हुआ, (**यत्**) जो [कष्ट] (**सुप्तः**) सोता हुआ मैं (**यत्**) जो [कष्ट] (**दिवा**) दिन में, (**यत्**) जो (**नक्तम्**) रात्रि में, ॥१०॥

यदहरहरभिगच्छामि तस्मादेनमव दये ॥११॥

पदार्थ—(**यत्**) जो (**अहरहः**) दिन दिन (**अभिगच्छामि**) सामने से पाता हूँ (**तस्मात्**) उसी कारण से (**एनम्**) इस [कुमार्गी] को (**अव दये**) मार गिराता हूँ ॥११॥

तं जहि तेन मन्दस्व तस्य पृष्टीरपि शृणीहि ॥१२॥

पदार्थ—(**तम्**) उस [कुमार्गी] को (**जहि**) नाश करदे, (**तस्य**) उसकी (**पृष्टीः**) पसलियाँ (**अपि**) सर्वथा (**शृणीहि**) तोड़ डाल, (**तेन**) उस [शूर कर्म] से (**मन्दस्व**) तू चल ॥१२॥

स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥१३॥

पदार्थ—(**सः**) वह [कुमार्गी] (**मा जीवीत्**) न जीता रहे, (**तम्**) उसको (**प्राणः**) प्राण (**जहातु**) छोड़ देवे ॥१३॥

卐 सूक्तम् ८ 卐

१—२७ यम । दुःष्वप्ननाशनम् । प्र० १—२७ एक प० यजुर्ब्राह्मी अनुष्टुप्, द्वि० १—२७ त्रिप० निचृद् गायत्री, तृ० १ प्राजा० गायत्री, च० १-२७ त्रिप० प्राजा० त्रिष्टुप्, तृ० २—४,६,१७,१९, २४ आसुरी जगती, तृ० ५,७,८, १०,११,१३,१८ आसुरी त्रिष्टुप्, तृ० ६, १२, १४—१६, २०—२३, २७ आसुरी पङ्क्ति, तृ० २५—२६ आसुरी बृहती ।

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥

पदार्थ—(**जितम्**) जय किया हुआ वस्तु (**अस्माकम्**) हमारा, (**उद्भिन्नम्**) निकासी किया हुआ धन (**अस्माकम्**) हमारा (**ऋतम्**) वेदज्ञान (**अस्माकम्**) हमारा, (**तेजः**) तेज (**अस्माकम्**) हमारा (**ब्रह्म**) अन्न (**अस्माकम्**) हमारा, (**स्वः**) सुख (**अस्माकम्**) हमारा, (**यज्ञः**) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] (**अस्माकम्**) हमारा, (**पशवः**) सब पशु [गौ, घोड़ा आदि] (**अस्माकम्**) हमारे, (**प्रजाः**) प्रजागण (**अस्माकम्**) हमारे और (**वीराः**) वीर लोग (**अस्माकम्**) हमारे [होवें] ॥१॥

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥

पदार्थ—(**तस्मात्**) उस [पद] से (**अमुम्**) अमुक, (**अमुम्**) अमुक पुरुष, (**आमुष्यायणम्**) अमुक पुरुष के सन्तान, (**अमुष्याः**) अमुक स्त्री के (**पुत्रम्**) पुत्र को (**निर्भजामः**) हम भागरहित करते हैं, (**असौ यः**) वह जो [कुमार्गी] है ॥२॥

स ग्राह्याः पाशान्मा मोचि ॥३॥

पदार्थ—(**सः**) वह [कुमार्गी] (**ग्राह्याः**) गठिया रोग के (**पाशात्**) बन्धन से (**मा मोचि**) न छूटे ॥३॥

तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥

पदार्थ—(**तस्य**) उस [कुमार्गी] के (**इदम्**) अब (**वर्चः**) प्रताप, (**तेजः**) तेज (**प्राणम्**) प्राण और (**आयुः**) जीवन को (**नि वेष्टयामि**) मैं लपेट लेता हूँ, (**इदम्**) अब (**एनम्**) इस [कुमार्गी] को (**अधराञ्चम्**) नीचे (**पादयामि**) लतियाता हूँ, ॥४॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स निर्ऋत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥५॥

पदार्थ—(**जितम्**) जय किया हुआ वस्तु (**अस्माकम्**) हमारा, (**उद्भिन्नम्**) निकासी किया हुआ धन (**अस्माकम्**) हमारा, (**ऋतम्**) वेदज्ञान (**अस्माकम्**) हमारा, (**तेजः**) तेज (**अस्माकम्**) हमारा, (**ब्रह्म**) अन्न (**अस्माकम्**) हमारा, (**स्वः**) सुख (**अस्माकम्**) हमारा (**यज्ञः**) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] (**अस्माकम्**) हमारा, (**पशवः**) सब पशु [गौ, घोड़ा आदि] (**अस्माकम्**) हमारे, (**प्रजाः**) प्रजागण (**अस्माकम्**) हमारे और (**वीराः**) वीर लोग (**अस्माकम्**) हमारे [होवें] । (**तस्मात्**) उस [पद] से (**अमुम्**) अमुक, (**अमुम्**), अमुक पुरुष, (**आमुष्यायणम्**) अमुक पुरुष के सन्तान, (**अमुष्याः**) अमुक स्त्री के (**पुत्रम्**) पुत्र को (**निर्भजामः**) हम भागरहित करते हैं, (**असौ यः**) वह जो [कुमार्गी] है ॥२॥ (**सः**) वह [कुमार्गी] (**निर्ऋत्याः**) निर्ऋति [महामारी] के (**पाशात्**) बन्धन से (**मा मोचि**) न छूटे । (**तस्य**) उस [कुमार्गी] के (**इदम्**) अब (**वर्चः**) प्रताप, (**तेजः**) तेज, (**प्राणम्**) प्राण और (**आयुः**) जीवन को (**नि वेष्टयामि**) मैं लपेट लेता हूँ (**इदम्**) अब (**एनम्**) इस [कुमार्गी] को (**अधराञ्चम्**) नीचे (**पादयामि**) लतियाता हूँ, ॥४॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । सोऽभूत्याः

पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥६॥

पदार्थ—(**जितम्**) जय किया हुआ वस्तु (**अस्माकम्**) हमारा, (**उद्भिन्नम्**) निकासी किया हुआ धन (**अस्माकम्**) हमारा, (**ऋतम्**) वेदज्ञान (**अस्माकम्**) हमारा, (**तेजः**) तेज (**अस्माकम्**) हमारा, (**ब्रह्म**) अन्न (**अस्माकम्**) हमारा, (**स्वः**) सुख (**अस्माकम्**) हमारा, (**यज्ञः**) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] (**अस्माकम्**) हमारा, (**पशवः**) सब पशु [गौ, घोड़ा आदि] (**अस्माकम्**) हमारे, (**प्रजाः**) प्रजागण (**अस्माकम्**) हमारे और (**वीराः**) वीर लोग (**अस्माकम्**) हमारे [होवें] (**तस्मात्**) उस [पद] से (**अमुम्**) अमुक (**अमुम्**) अमुक पुरुष, (**आमुष्यायणम्**) अमुक पुरुष के सन्तान, (**अमुष्याः**) अमुक स्त्री के (**पुत्रम्**) पुत्र को (**निः भजामः**) हम भाग रहित करते हैं, (**असौ यः**) वह जो [कुमार्गी] है (**सः**) वह [कुमार्गी] (**अभूत्याः**) अभूति [असम्पत्ति] के (**पाशात्**) बन्धन से (**मा मोचि**) न छूटे (**तस्य**) उस [कुमार्गी] के (**इदम्**) अब (**वर्चः**) प्रताप, (**तेजः**) तेज, (**प्राणम्**) प्राण और (**आयुः**) जीवन को (**नि वेष्टयामि**) मैं लपेटे लेता हूँ, (**इदम्**) अब (**एनम्**) इस [कुमार्गी] को (**अधराञ्चम्**) नीचे (**पादयामि**) लतियाता हूँ ॥६॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स निर्भूत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥७॥

पदार्थ—(**जितम्**) जय किया हुआ वस्तु (**अस्माकम्**) हमारा (**उद्भिन्नम्**) निकासी किया हुआ धन (**अस्माकम्**) हमारा, (**ऋतम्**) वेदज्ञान (**अस्माकम्**) हमारा, (**तेजः**) तेज (**अस्माकम्**) हमारा, (**ब्रह्म**) अन्न (**अस्माकम्**) हमारा, (**स्वः**) सुख (**अस्माकम्**) हमारा, (**यज्ञः**) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] (**अस्माकम्**) हमारा, (**पशवः**) सब पशु [गौ, घोड़ा आदि] (**अस्माकम्**) हमारे, (**प्रजाः**) प्रजागण (**अस्माकम्**) हमारे और (**वीराः**) वीर लोग (**अस्माकम्**) हमारे [होवें] (**तस्मात्**) उस [पद] से (**अमुम्**) अमुक (**अमुम्**) अमुक पुरुष, (**आमुष्यायणम्**) अमुक पुरुष के सन्तान, (**अमुष्याः**) अमुक स्त्री के (**पुत्रम्**) पुत्र को (**निः भजामः**) हम भाग रहित करते हैं, (**असौ यः**) वह जो [कुमार्गी] है (**सः**) वह [कुमार्गी] (**निर्भूत्याः**) निर्भूति [हानि] के (**पाशात्**) बन्धन से (**मा मोचि**) न छूटे (**तस्य**) उस [कुमार्गी] के (**इदम्**) अब (**वर्चः**) प्रताप, (**तेजः**) तेज, (**प्राणम्**) प्राण और (**आयुः**) जीवन को (**नि वेष्टयामि**) मैं लपेटे लेता हूँ, (**इदम्**) अब (**एनम्**) इस [कुमार्गी] को (**अधराञ्चम्**) नीचे (**पादयामि**) लतियाता हूँ ॥७॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स पराभूत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥८॥

पदार्थ—(**जितम्**) जय किया हुआ वस्तु (**अस्माकम्**) हमारा, (**उद्भिन्नम्**) निकासी किया हुआ धन (**अस्माकम्**) हमारा, (**ऋतम्**) वेदज्ञान (**अस्माकम्**) हमारा (**तेजः**) तेज (**अस्माकम्**) हमारा, (**ब्रह्म**) अन्न (**अस्माकम्**) हमारा, (**स्वः**) सुख (**अस्माकम्**) हमारा (**यज्ञः**) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] (**अस्माकम्**) हमारा (**पशवः**) सब पशु [गौ, घोड़ा आदि] (**अस्माकम्**) हमारे, (**प्रजाः**) प्रजागण (**अस्माकम्**) हमारे और (**वीराः**) वीर लोग (**अस्माकम्**) हमारे [होवें]—(**तस्मात्**) उस [पद] से (**अमुम्**) अमुक (**अमुम्**) अमुक पुरुष, (**आमुष्यायणम्**) अमुक पुरुष के सन्तान, (**अमुष्याः**) अमुक स्त्री के (**पुत्रम्**) पुत्र को (**निः भजामः**) हम भाग रहित करते हैं, (**असौ यः**) वह जो [कुमार्गी] है (**सः**) वह [कुमार्गी] (**पराभूत्याः**) पराभूति [हार] के (**पाशात्**) बन्धन से (**मा मोचि**) न छूटे । (**तस्य**) उस [कुमार्गी] के (**इदम्**) अब (**वर्चः**) प्रताप, (**तेजः**) तेज (**प्राणम्**) प्राण और (**आयुः**) जीवन को (**निवेष्टयामि**) मैं लपेटे लेता हूँ, (**इदम्**) अब (**एनम्**) इस [कुमार्गी] को (**अधराञ्चम्**) नीचे (**पादयामि**) लतियाता हूँ ॥८॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स देवजामीनां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥९॥

पदार्थ—(**जितम्**) जय किया हुआ वस्तु (**अस्माकम्**) हमारा, (**उद्भिन्नम्**) निकासी किया हुआ धन (**अस्माकम्**) हमारा, (**ऋतम्**) वेदज्ञान (**अस्माकम्**) हमारा, (**तेजः**) तेज (**अस्माकम्**) हमारा, (**ब्रह्म**) अन्न (**अस्माकम्**) हमारा (**स्वः**) सुख (**अस्माकम्**) हमारा (**यज्ञः**) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] (**अस्माकम्**) हमारा (**पशवः**) सब पशु [गौ, घोड़ा आदि] (**अस्माकम्**) हमारे, (**प्रजाः**) प्रजागण (**अस्माकम्**) हमारे और (**वीराः**) वीर लोग (**अस्माकम्**) हमारे [होवें] (**तस्मात्**) उस [पद] से (**अमुम्**) अमुक (**अमुम्**) अमुक पुरुष, (**आमुष्यायणम्**) अमुक पुरुष के सन्तान, (**अमुष्याः**) अमुक स्त्री के (**पुत्रम्**) पुत्र को (**निः भजामः**) हम भागरहित करते हैं (**असौ यः**) वह जो [कुमार्गी] है । (**सः**) वह [कुमार्गी] (**देवजामीनाम्**) उन्मत्तों की मूर्तियों के (**पाशात्**) बन्धन से (**मा मोचि**) न छूटे । (**तस्य**) उस [कुमार्गी] के (**इदम्**) अब (**वर्चः**) प्रताप, (**तेजः**) तेज (**प्राणम्**) प्राण और (**आयुः**) जीवन को (**नि वेष्टयामि**) मैं लपेटे लेता हूँ, (**इदम्**) अब (**एनम्**) इस [कुमार्गी] को (**अधराञ्चम्**) नीचे (**पादयामि**) लतियाता हूँ ॥९॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स बृहस्पतेः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१०॥

पदार्थ—(**जितम्**) जय किया हुआ वस्तु (**अस्माकम्**) हमारा, (**उद्भिन्नम्**) निकासी किया हुआ धन (**अस्माकम्**) हमारा (**ऋतम्**) वेदज्ञान (**अस्माकम्**) हमारा, (**तेजः**) तेज (**अस्माकम्**) हमारा, (**ब्रह्म**) अन्न (**अस्माकम्**) हमारा, (**स्वः**) सुख (**अस्माकम्**) हमारा, (**यज्ञः**) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] (**अस्माकम्**) हमारा, (**पशवः**) सब पशु [गौ, घोड़ा आदि] (**अस्माकम्**) हमारे, (**प्रजाः**) प्रजागण (**अस्माकम्**) हमारे और (**वीराः**) लोग (**अस्माकम्**) हमारे [होवें] (**तस्मात्**) उस [पद] से (**अमुम्**) अमुक (**अमुम्**) अमुक पुरुष, (**आमुष्यायणम्**) अमुक पुरुष के सन्तान (**अमुष्याः**) अमुक स्त्री के (**पुत्रम्**) पुत्र को (**निः भजामः**) हम भाग रहित करते हैं, (**असौ यः**) वह जो [कुमार्गी] है । (**सः**) वह [कुमार्गी] (**बृहस्पतेः**) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं के रक्षक सेनाध्यक्ष] के (**पाशात्**) बन्धन से (**मा मोचि**) न छूटे । (**तस्य**) उस [कुमार्गी] के (**इदम्**) अब (**वर्चः**) प्रताप, (**तेजः**) तेज, (**प्राणम्**) प्राण और (**आयुः**) जीवन को (**नि वेष्टयामि**) मैं लपेटे लेता हूँ, (**इदम्**) अब (**एनम्**) इस [कुमार्गी] को (**अधराञ्चम्**) नीचे (**पादयामि**) लतियाता हूँ ॥१०॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स प्रजापतेः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥११॥

पदार्थ—(**जितम्**) जय किया हुआ वस्तु (**अस्माकम्**) हमारा (**उद्भिन्नम्**) निकासी किया हुआ धन (**अस्माकम्**) हमारा, (**ऋतम्**) वेदज्ञान (**अस्माकम्**) हमारा (**तेजः**) तेज (**अस्माकम्**) हमारा (**ब्रह्म**) अन्न (**अस्माकम्**) हमारा, (**स्वः**) सुख (**अस्माकम्**) हमारा, (**यज्ञः**) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] (**अस्माकम्**) हमारा, (**पशवः**) सब पशु [गौ, घोड़ा आदि] (**अस्माकम्**) हमारे, (**प्रजाः**) प्रजागण (**अस्माकम्**) हमारे और (**वीराः**) वीर लोग (**अस्माकम्**) हमारे [होवें] (**तस्मात्**) उस [पद] से (**अमुम्**) अमुक (**अमुम्**) अमुक पुरुष, (**आमुष्यायणम्**) अमुक पुरुष के सन्तान (**अमुष्याः**) अमुक स्त्री के (**पुत्रम्**) पुत्र को (**निः भजामः**) हम भागरहित करते हैं, (**असौ यः**) वह जो [कुमार्गी] (**सः**) वह [कुमार्गी] (**प्रजापतेः**) प्रजापति [प्रजापालक सेनापति] के (**पाशात्**) बन्धन से (**मा मोचि**) न छूटे । (**तस्य**) उस [कुमार्गी] के (**इदम्**) अब (**वर्चः**) प्रताप, (**तेजः**) तेज, (**प्राणम्**) प्राण और (**आयुः**) जीवन को (**नि वेष्टयामि**) मैं लपेटे लेता हूँ, (**इदम्**) अब (**एनम्**) इस [कुमार्गी] को (**अधराञ्चम्**) नीचे (**पादयामि**) लतियाता हूँ ॥११॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स ऋषीणां

पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१२॥

पदार्थ—(जितम्) जय किया हुआ वस्तु (अस्माकम्) हमारा, (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ धन (अस्माकम्) हमारा, (ऋतम्) वेदज्ञान (अस्माकम्) हमारा, (तेजः) तेज (अस्माकम्) हमारा, (ब्रह्म) अन्न (अस्माकम्) हमारा, (स्वः) सुख (अस्माकम्) हमारा (यज्ञः) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] (अस्माकम्) हमारा, (पशवः) सब पशु [गौ, घोड़ा आदि] (अस्माकम्) हमारे, (प्रजाः) प्रजागण (अस्माकम्) हमारे और (वीराः) वीर लोग (अस्माकम्) हमारे [होवें] (तस्मात्) उस [पद] से (अमुम्) अमुक (अमुम्) अमुक पुरुष, (आमुष्यायणम्) अमुक पुरुष के सन्तान, (अमुष्याः) अमुक स्त्री के (पुत्रम्) पुत्र को (निः भजामः) हम भागरहित करते हैं, (असौ यः) वह जो [कुमार्गी] है । (सः) वह [कुमार्गी] (ऋषीणाम्) ऋषियों [सन्मार्ग दर्शक महात्माओं] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे । (तस्य) उस [कुमार्गी] के (इदम्) अब (वर्चः) प्रताप, (तेजः) तेज, (प्राणम्) प्राण और (आयुः) जीवन को (नि वेष्टयामि) मैं लपेटे लेता हूँ, (इदम्) अब (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अधराञ्चम्) नीचे (पादयामि) लतियाता हूँ ॥१२॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स आर्षेयाणां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१३॥

पदार्थ—(जितम्) जय किया हुआ वस्तु (अस्माकम्) हमारा, (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ धन (अस्माकम्) हमारा (ऋतम्) वेदज्ञान (अस्माकम्) हमारा, (तेजः) तेज (अस्माकम्) हमारा (ब्रह्म) अन्न (अस्माकम्) हमारा, (स्वः) सुख (अस्माकम्) हमारा, (यज्ञः) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] (अस्माकम्) हमारा, (पशवः) सब पशु [गौ, घोड़ा आदि] (अस्माकम्) हमारे, (प्रजाः) प्रजागण (अस्माकम्) हमारे और (वीराः) वीर लोग (अस्माकम्) हमारे [होवें] (तस्मात्) उस [पद] से (अमुम्) अमुक (अमुम्) अमुक पुरुष (आमुष्यायणम्) अमुक पुरुष के सन्तान, (अमुष्याः) अमुक स्त्री के (पुत्रम्) पुत्र को (निः भजामः) हम भाग रहित करते हैं, (असौ यः) वह जो [कुमार्गी] है । (सः) वह [कुमार्गी] (आर्षेयाणाम्) आर्षेय शास्त्रों [ऋषिप्रणीत धर्मशास्त्रों] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे । (तस्य) उस [कुमार्गी] के (इदम्) अब (वर्चः) प्रताप, (तेजः) तेज, (प्राणम्) प्राण और (आयुः) जीवन को (नि वेष्टयामि) मैं लपेटे लेता हूँ (इदम्) अब (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अधराञ्चम्) नीचे (पादयामि) लतियाता हूँ ॥१३॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । सोऽङ्गिरसां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१४॥

पदार्थ—(जितम्) जय किया हुआ वस्तु (अस्माकम्) हमारा (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ धन (अस्माकम्) हमारा (ऋतम्) वेदज्ञान (अस्माकम्) हमारा (तेजः) तेज (अस्माकम्) हमारा, (ब्रह्म) अन्न (अस्माकम्) हमारा, (स्वः) सुख (अस्माकम्) हमारा, (यज्ञः) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] (अस्माकम्) हमारा, (पशवः) सब पशु [गौ, घोड़ा आदि] (अस्माकम्) हमारे, (प्रजाः) प्रजागण (अस्माकम्) हमारे और (वीराः) वीर लोग (अस्माकम्) हमारे [होवें] (तस्मात्) उस [पद] से (अमुम्) अमुक (अमुम्) अमुक पुरुष, (आमुष्यायणम्) अमुक पुरुष के सन्तान, (अमुष्याः) अमुक स्त्री के (पुत्रम्) पुत्र को (निः भजामः) हम भागरहित करते हैं (असौ यः) वह जो [कुमार्गी] है । (सः) वह [कुमार्गी] (अङ्गिरसाम्) अङ्गिराओं [महाज्ञानी युद्धकुशलों] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे । (तस्य) उस [कुमार्गी] के (इदम्) अब (वर्चः) प्रताप, (तेजः) तेज, (प्राणम्) प्राण और (आयुः) जीवन को (नि वेष्टयामि) मैं लपेटे लेता हूँ, (इदम्) अब (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अधराञ्चम्) नीचे (पादयामि) लतियाता हूँ ॥१४॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स आङ्गिरसानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१५॥

पदार्थ—(जितम्) जय किया हुआ वस्तु (अस्माकम्) हमारा, (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ धन (अस्माकम्) हमारा, (ऋतम्) वेदज्ञान (अस्माकम्) हमारा, (तेजः) तेज (अस्माकम्) हमारा, (ब्रह्म) अन्न (अस्माकम्) हमारा, (स्वः) सुख (अस्माकम्) हमारा, (यज्ञः) यज्ञ [देवपूजा सङ्गतिकरण और दान] (अस्माकम्) हमारा (पशवः) सब पशु [गौ, घोड़ा, आदि] (अस्माकम्) हमारे, (प्रजाः) प्रजागण (अस्माकम्) हमारे और (वीराः) वीर लोग (अस्माकम्) हमारे [होवें] (तस्मात्) उस [पद] से (अमुम्) अमुक (अमुम्) अमुक पुरुष, (आमुष्यायणम्) अमुक पुरुष के सन्तान, (अमुष्याः) अमुक स्त्री के (पुत्रम्) पुत्र को (निः भजामः) हम भागरहित करते हैं (असौ यः) वह जो [कुमार्गी] है । (सः) वह [कुमार्गी] (आङ्गिरसानाम्) आङ्गिरसों [महाज्ञानियों] के शिक्षित योद्धाओं के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे । (तस्य) उस [कुमार्गी] के (इदम्) अब (वर्चः) प्रताप, (तेजः) तेज (प्राणम्) प्राण और (आयुः) जीवन को (नि वेष्टयामि) मैं लपेटे लेता हूँ (इदम्) अब (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अधराञ्चम्) नीचे (पादयामि) लतियाता हूँ ॥१५॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । सोऽथर्वणां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१६॥

पदार्थ—(जितम्) जय किया हुआ वस्तु (अस्माकम्) हमारा, (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ धन (अस्माकम्) हमारा (ऋतम्) वेदज्ञान (अस्माकम्) हमारा (तेजः) तेज (अस्माकम्) हमारा, (ब्रह्म) अन्न (अस्माकम्) हमारा (स्वः) सुख (अस्माकम्) हमारा, (यज्ञः) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] (अस्माकम्) हमारा (पशवः) सब पशु [गौ घोड़ा आदि] (अस्माकम्) हमारे, (प्रजाः) प्रजागण (अस्माकम्) हमारे और (वीराः) वीर लोग (अस्माकम्) हमारे [होवें] (तस्मात्) उस [पद] से (अमुम्) अमुक (अमुम्) अमुक पुरुष, (आमुष्यायणम्) अमुक पुरुष के सन्तान, (अमुष्याः) अमुक स्त्री के (पुत्रम्) पुत्र को (निः भजामः) हम भागरहित करते हैं (असौ यः) वह जो [कुमार्गी] है । (सः) वह [कुमार्गी] (अथर्वणाम्) अथर्वाओं [निश्चल स्वभाव वाले सेनानायकों] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे । (तस्य) उस [कुमार्गी] के (इदम्) अब (वर्चः) प्रताप (तेजः) तेज (प्राणम्) प्राण और (आयुः) जीवन को (नि वेष्टयामि) मैं लपेटे लेता हूँ, (इदम्) अब (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अधराञ्चम्) नीचे (पादयामि) लतियाता हूँ ॥१६॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स आथर्वणानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१७॥

पदार्थ—(जितम्) जय किया हुआ वस्तु (अस्माकम्) हमारा, (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ धन (अस्माकम्) हमारा (ऋतम्) वेदज्ञान (अस्माकम्) हमारा, (तेजः) तेज (अस्माकम्) हमारा, (ब्रह्म) अन्न (अस्माकम्) हमारा, (स्वः) सुख (अस्माकम्) हमारा, (यज्ञः) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] (अस्माकम्) हमारा, (पशवः) सब पशु [गौ, घोड़ा आदि] (अस्माकम्) हमारे, (प्रजाः) प्रजागण (अस्माकम्) हमारे और (वीराः) वीर लोग (अस्माकम्) हमारे [होवें] (तस्मात्) उस [पद] से (अमुम्) अमुक (अमुम्) अमुक पुरुष, (आमुष्यायणम्) अमुक पुरुष के सन्तान (अमुष्याः) अमुक स्त्री के (पुत्रम्) पुत्र को (निः भजामः) हम भागरहित करते हैं, (असौ यः) वह जो [कुमार्गी] है । (सः) वह [कुमार्गी] (आथर्वणानाम्) अथर्वाओं के सेनादलों के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे । (तस्य) उस [कुमार्गी] के (इदम्) अब (वर्चः) प्रताप, (तेजः) तेज, (प्राणम्) प्राण और (आयुः) जीवन को (नि वेष्टयामि) मैं लपेटे लेता हूँ, (इदम्) अब (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अधराञ्चम्) नीचे (पादयामि) लतियाता हूँ ॥१७॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स वनस्पतीनां पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१८॥

पदार्थ—(जितम्) जय किया हुआ वस्तु (अस्माकम्) हमारा, (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ धन (अस्माकम्) हमारा (ऋतम्) वेदज्ञान (अस्माकम्) हमारा, (तेज) तेज (अस्माकम्) हमारा, (ब्रह्म) अन्न (अस्माकम्) हमारा, (स्वः) सुख (अस्माकम्) हमारा, (यज्ञः) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] (अस्माकम्) हमारा, (पशवः) सब पशु [गौ, घोड़ा आदि] (अस्माकम्) हमारे, (प्रजा) प्रजागण (अस्माकम्) हमारे और (वीरा) वीर लोग (अस्माकम्) हमारे [होवें] (तस्मात्) उस [पद] से (अमुम्) अमुक (अमुम्) अमुक पुरुष, (आमुष्यायणम्) अमुक पुरुष के सन्तान (अमुष्याः) अमुक स्त्री के (पुत्रम्) पुत्र को (नि भजामः) हम भाग रहित करते हैं, (असौ यः) वह जो [कुमार्गी] है। (सः) वह [कुमार्गी] (वनस्पतीनाम्) वनस्पतियों [वृक्षों] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे। (तस्य) उस [कुमार्गी] के (इदम्) अब (वर्चः) प्रताप, (तेजः) तेज, (प्राणम्) प्राण और (आयुः) जीवन को (नि वेष्टयामि) मैं लपेटे लेता हूँ, (इदम्) अब (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अधराञ्चम्) नीचे (पादयामि) लतियाता हूँ ॥१८॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स वानस्पत्यानां पाशान्मा मोचि तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१९॥

पदार्थ—(जितम्) जय किया हुआ वस्तु (अस्माकम्) हमारा, (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ धन (अस्माकम्) हमारा (ऋतम्) वेदज्ञान (अस्माकम्) हमारा, (तेज) तेज (अस्माकम्) हमारा, (ब्रह्म) अन्न (अस्माकम्) हमारा, (स्वः) सुख (अस्माकम्) हमारा, (यज्ञः) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] (अस्माकम्) हमारा, (पशवः) सब पशु [गौ घोड़ा आदि] (अस्माकम्) हमारे, (प्रजा) प्रजागण (अस्माकम्) हमारे और (वीरा) वीर लोग (अस्माकम्) हमारे [होवें] (तस्मात्) उस [पद] से (अमुम्) अमुक (अमुम्) अमुक पुरुष, (आमुष्यायणम्) अमुक पुरुष के सन्तान, (अमुष्याः) अमुक स्त्री के (पुत्रम्) पुत्र को (नि भजामः) हम भागरहित करते हैं, (असौ यः) वह जो [कुमार्गी] है। (सः) वह [कुमार्गी] (वानस्पत्यानाम्) वनस्पतियों से उत्पन्न [काष्ठ, पुष्प, फल आदिकों] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे। (तस्य) उस [कुमार्गी] के (इदम्) अब (वर्चः) प्रताप, (तेजः) तेज, (प्राणम्) प्राण और (आयुः) जीवन को (नि वेष्टयामि) मैं लपेटे लेता हूँ, (इदम्) अब (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अधराञ्चम्) नीचे (पादयामि) लतियाता हूँ ॥१९॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स ऋतूनां पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२०॥

पदार्थ—(जितम्) जय किया हुआ वस्तु (अस्माकम्) हमारा, (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ धन (अस्माकम्) हमारा (ऋतम्) वेदज्ञान (अस्माकम्) हमारा, (तेजः) तेज (अस्माकम्) हमारा, (ब्रह्म) अन्न (अस्माकम्) हमारा, (स्वः) सुख (अस्माकम्) हमारा, (यज्ञः) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] (अस्माकम्) हमारा, (पशवः) सब पशु [गौ, घोड़ा आदि] (अस्माकम्) हमारे, (प्रजा) प्रजागण (अस्माकम्) हमारे और (वीराः) वीर लोग (अस्माकम्) हमारे [होवें] (तस्मात्) उस [पद] से (अमुम्) अमुक (अमुम्) अमुक पुरुष, (आमुष्यायणम्) अमुक पुरुष के सन्तान, (अमुष्याः) अमुक स्त्री के (पुत्रम्) पुत्र को (निर्भजामः) हम भागरहित करते हैं, (असौ यः) वह जो [कुमार्गी] है (सः) वह [कुमार्गी] (ऋतूनाम्) ऋतुओं [वसन्त आदिकों] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे। (तस्य) उस [कुमार्गी] के (इदम्) अब (वर्चः) प्रताप, (तेजः) तेज, (प्राणम्) प्राण और (आयुः) जीवन को (नि वेष्टयामि) मैं लपेटे लेता हूँ, (इदम्) अब (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अधराञ्चम्) नीचे (पादयामि) लतियाता हूँ ॥२०॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स आर्तवानां पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२१॥

पदार्थ—(जितम्) जय किया हुआ वस्तु (अस्माकम्) हमारा, (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ धन (अस्माकम्) हमारा (ऋतम्) वेदज्ञान (अस्माकम्) हमारा (तेज) तेज (अस्माकम्) हमारा, (ब्रह्म) अन्न (अस्माकम्) हमारा, (स्व) सुख (अस्माकम्) हमारा, (यज्ञ) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] (अस्माकम्) हमारा (पशव) सब पशु [गौ घोड़ा आदि] (अस्माकम्) हमारे, (प्रजा) प्रजागण (अस्माकम्) हमारे और (वीरा) वीर लोग (अस्माकम्) हमारे [होवें] (तस्मात्) उस [पद] से (अमुम्) अमुक (अमुम्) अमुक पुरुष, (आमुष्यायणम्) अमुक पुरुष के सन्तान (अमुष्या) अमुक स्त्री के (पुत्रम्) पुत्र को (नि भजाम) हम भागरहित करते हैं, (असौ य) वह जो [कुमार्गी] है (स) वह [कुमार्गी] (आर्तवानाम्) ऋतुओं में उत्पन्न [शीत, उष्णता, पुष्प, फल, आदिकों] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे। (तस्य) उस [कुमार्गी] के (इदम्) अब (वर्च) प्रताप (तेज) तेज (प्राणम्) प्राण और (आयु) जीवन को (नि वेष्टयामि) मैं लपेटे लेता हूँ (इदम्) अब (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अधराञ्चम्) नीचे (पादयामि) लतियाता हूँ ॥२१॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स मासानां पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२२॥

पदार्थ—(जितम्) जय किया हुआ वस्तु (अस्माकम्) हमारा, (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ धन (अस्माकम्) हमारा, (ऋतम्) वेदज्ञान (अस्माकम्) हमारा, (तेज) तेज (अस्माकम्) हमारा, (ब्रह्म) अन्न (अस्माकम्) हमारा, (स्व) सुख (अस्माकम्) हमारा, (यज्ञ) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] (अस्माकम्) हमारा, (पशव) सब पशु [गौ घोड़ा आदि] (अस्माकम्) हमारे, (प्रजा) प्रजागण (अस्माकम्) हमारे और (वीरा) वीर लोग (अस्माकम्) हमारे [होवें] (तस्मात्) उस [पद] से (अमुम्) अमुक (अमुम्) अमुक पुरुष, (आमुष्यायणम्) अमुक पुरुष के सन्तान, (अमुष्या) अमुक स्त्री के (पुत्रम्) पुत्र को (नि भजाम) हम भागरहित करते हैं, (असौ य) वह जो [कुमार्गी] है (स) वह [कुमार्गी] (मासानाम्) महीनों के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे। (तस्य) उस [कुमार्गी] के (इदम्) अब (वर्च) प्रताप (तेज) तेज, (प्राणम्) प्राण और (आयु) जीवन को (नि वेष्टयामि) मैं लपेटे लेता हूँ, (इदम्) अब (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अधराञ्चम्) नीचे (पादयामि) लतियाता हूँ ॥२२॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। सोऽर्धमासानां पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२३॥

पदार्थ—(जितम्) जय किया हुआ वस्तु (अस्माकम्) हमारा, (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ धन (अस्माकम्) हमारा (ऋतम्) वेदज्ञान (अस्माकम्) हमारा (तेज) तेज (अस्माकम्) हमारा, (ब्रह्म) अन्न (अस्माकम्) हमारा (स्व) सुख (अस्माकम्) हमारा (यज्ञ) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] (अस्माकम्) हमारा, (पशव) सब पशु [गौ, घोड़ा आदि] (अस्माकम्) हमारे, (प्रजा) प्रजागण (अस्माकम्) हमारे और (वीरा) वीर लोग (अस्माकम्) हमारे, [होवें] (तस्मात्) उस [पद] से (अमुम्) अमुक (अमुम्) अमुक पुरुष, (आमुष्यायणम्) अमुक पुरुष के सन्तान (अमुष्या) अमुक स्त्री के (पुत्रम्) पुत्र को (नि भजाम) हम भागरहित करते हैं, (असौ यः) वह जो [कुमार्गी] है (स) वह [कुमार्गी] (अर्धमासानाम्) आधे महीनों के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे। (तस्य) उस [कुमार्गी]

वे (इदम्) अब (वर्चः) प्रताप, (तेजः) तेज, (प्राणम्) प्राण और (आयुः) जीवन को (नि वेष्टयामि) मैं लपेट लेता हूँ, (इदम्) अब (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अधराञ्चम्) नीचे (पादयामि) लतियाता हूँ ॥२३॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२४॥

पदार्थ—(जितम्) जय किया हुआ वस्तु (अस्माकम्) हमारा, (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ धन (अस्माकम्) हमारा, (ऋतम्) वेदज्ञान (अस्माकम्) हमारा, (तेजः) तेज (अस्माकम्) हमारा, (ब्रह्म) अन्न (अस्माकम्) हमारा, (स्वः) सुख (अस्माकम्) हमारा (यज्ञः) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] (अस्माकम्) हमारा, (पशवः) सब पशु [गौ, घोड़ा आदि] (अस्माकम्) हमारे, (प्रजाः) प्रजागण (अस्माकम्) हमारे और (वीराः) वीर लोग (अस्माकम्) हमारे [होवें] (तस्मात्) उस [पद] से (अमुम्) अमुक (अमुम्) अमुक पुरुष, (आमुष्यायणम्) अमुक पुरुष के सन्तान (अमुष्याः) अमुक स्त्री के (पुत्रम्) पुत्र को (निः भजामः) हम भागरहित करते हैं, (असौ यः) वह जो [कुमार्गी] है (सः) वह [कुमार्गी] (अहोरात्रयोः) दिन और रात्रि के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे। (तस्य) उस [कुमार्गी] के (इदम्) अब (वर्चः) प्रताप, (तेजः) तेज, (प्राणम्) प्राण और (आयुः) जीवन को (नि वेष्टयामि) मैं लपेटे लेता हूँ, (इदम्) अब (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अधराञ्चम्) नीचे (पादयामि) लतियाता हूँ ॥२४॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। सोऽह्नोःसयतोः पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२५॥

पदार्थ—(जितम्) जय किया हुआ वस्तु (अस्माकम्) हमारा, (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ धन (अस्माकम्) हमारा (ऋतम्) वेदज्ञान (अस्माकम्) हमारा, (तेजः) तेज (अस्माकम्) हमारा, (ब्रह्म) अन्न (अस्माकम्) हमारा, (स्वः) सुख (अस्माकम्) हमारा, (यज्ञः) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] (अस्माकम्) हमारा, (पशवः) सब पशु [गौ, घोड़ा आदि] (अस्माकम्) हमारे, (प्रजाः) प्रजागण (अस्माकम्) हमारे और (वीराः) वीर लोग (अस्माकम्) हमारे [होवें] (तस्मात्) उस [पद] से (अमुम्) अमुक (अमुम्) अमुक पुरुष, (आमुष्यायणम्) अमुक पुरुष के सन्तान, (अमुष्याः) अमुक स्त्री के (पुत्रम्) पुत्र को (निः भजामः) हम भाग रहित करते हैं, (असौ यः) वह जो [कुमार्गी] है (सः) वह [कुमार्गी] (सयतोः) मिले हुए (अह्नोः) दो दिन [दो समय के संयोग] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे। (तस्य) उस [कुमार्गी] के (इदम्) अब (वर्चः) प्रताप, (तेजः) तेज, (प्राणम्) प्राण और (आयुः) जीवन को (नि वेष्टयामि) मैं लपेट लेता हूँ, (इदम्) अब (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अधराञ्चम्) नीचे (पादयामि) लतियाता हूँ ॥२५॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स द्यावापृथिव्योः पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२६॥

पदार्थ—(जितम्) जय किया हुआ वस्तु (अस्माकम्) हमारा, (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ धन (अस्माकम्) हमारा (ऋतम्) वेदज्ञान (अस्माकम्) हमारा, (तेजः) तेज (अस्माकम्) हमारा, (ब्रह्म) अन्न (अस्माकम्) हमारा, (स्वः) सुख (अस्माकम्) हमारा, (यज्ञः) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] (अस्माकम्) हमारा, (पशवः) सब पशु [गौ, घोड़ा आदि] (अस्माकम्) हमारे (प्रजाः) प्रजागण (अस्माकम्) हमारे और (वीराः) वीर लोग (अस्माकम्) हमारे [होवें] (तस्मात्) उस [पद] से (अमुम्) अमुक (अमुम्) अमुक पुरुष, (आमुष्यायणम्) अमुक पुरुष के सन्तान, (अमुष्याः) अमुक स्त्री के (पुत्रम्) पुत्र को (निः भजामः) हम भागरहित करते हैं, (असौ यः) वह जो [कुमार्गी] है (सः) वह [कुमार्गी] (द्यावापृथिव्योः) सूर्य और पृथिवी के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे। (तस्य) उस [कुमार्गी] के (इदम्) अब (वर्चः) प्रताप, (तेजः) तेज, (प्राणम्) प्राण और (आयुः) जीवन को (नि वेष्टयामि) मैं लपेट लेता हूँ, (इदम्) अब (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अधराञ्चम्) नीचे (पादयामि) लतियाता हूँ ॥२६॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स इन्द्राग्न्योः पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२७॥

पदार्थ—(जितम्) जय किया हुआ वस्तु (अस्माकम्) हमारा, (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ धन (अस्माकम्) हमारा, (ऋतम्) वेदज्ञान (अस्माकम्) हमारा, (तेजः) तेज (अस्माकम्) हमारा, (ब्रह्म) अन्न (अस्माकम्) हमारा, (स्वः) सुख (अस्माकम्) हमारा, (यज्ञः) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] (अस्माकम्) हमारा, (पशवः) सब पशु [गौ, घोड़ा आदि] (अस्माकम्) हमारे (प्रजाः) प्रजागण (अस्माकम्) हमारे और (वीराः) वीर लोग (अस्माकम्) हमारे [होवें] (तस्मात्) उस [पद] से (अमुम्) अमुक (अमुम्) अमुक पुरुष, (आमुष्यायणम्) अमुक पुरुषके सन्तान, (अमुष्याः) अमुक स्त्री के (पुत्रम्) पुत्र को (निः भजामः) हम भाग रहित करते हैं (असौ यः) वह जो [कुमार्गी] है (सः) वह [कुमार्गी] (इन्द्राग्न्योः) बिजुली और भौतिक अग्नि के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे। (तस्य) उस [कुमार्गी] के (इदम्) अब (वर्चः) प्रताप, (तेजः) तेज, (प्राणम्) प्राण और (आयुः) जीवन को (नि वेष्टयामि) मैं लपेटे लेता हूँ, (इदम्) अब (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अधराञ्चम्) नीचे (पादयामि) लतियाता हूँ ॥२७॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स मित्रावरुणयोः पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२८॥

पदार्थ—(जितम्) जय किया हुआ वस्तु (अस्माकम्) हमारा, (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ धन (अस्माकम्) हमारा (ऋतम्) वेदज्ञान (अस्माकम्) हमारा, (तेजः) तेज (अस्माकम्) हमारा, (ब्रह्म) अन्न (अस्माकम्) हमारा, (स्वः) सुख (अस्माकम्) हमारा (यज्ञः) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] (अस्माकम्) हमारा (पशवः) सब पशु [गौ घोड़ा आदि] (अस्माकम्) हमारे, (प्रजाः) प्रजागण (अस्माकम्) हमारे और (वीराः) वीर लोग (अस्माकम्) हमारे [होवें] (तस्मात्) उस [पद] से (अमुम्) अमुक (अमुम्) अमुक पुरुष, (आमुष्यायणम्) अमुक पुरुष के सन्तान, (अमुष्याः) अमुक स्त्री के (पुत्रम्) पुत्र को (निः भजामः) हम भाग रहित करते हैं, (असौ यः) वह जो [कुमार्गी] है (सः) वह [कुमार्गी] (मित्रावरुणयोः) प्राण और अपान [श्वास प्रश्वास के कष्ट] के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे। (तस्य) उस [कुमार्गी] के (इदम्) अब (वर्चः) प्रताप, (तेजः) तेज, (प्राणम्) प्राण और (आयुः) जीवन को (नि वेष्टयामि) मैं लपेटे लेता हूँ, (इदम्) अब (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अधराञ्चम्) नीचे (पादयामि) लतियाता हूँ ॥२८॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स राज्ञो वरुणस्य पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२९॥

पदार्थ—(जितम्) जय किया हुआ वस्तु (अस्माकम्) हमारा, (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ धन (अस्माकम्) हमारा, (ऋतम्) वेदज्ञान (अस्माकम्) हमारा, (तेजः) तेज (अस्माकम्) हमारा, (ब्रह्म) अन्न (अस्माकम्) हमारा, (स्वः) सुख (अस्माकम्) हमारा, (यज्ञः) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] (अस्माकम्) हमारा, (पशवः) सब पशु [गौ, घोड़ा आदि] (अस्माकम्) हमारे, (प्रजाः) प्रजागण (अस्माकम्) हमारे और (वीराः) वीर लोग (अस्माकम्) हमारे [होवें] (तस्मात्) उस [पद] से (अमुम्) अमुक (अमुम्) अमुक पुरुष, (आमुष्यायणम्) अमुक पुरुष के सन्तान

(अमुष्याः) अमुक स्त्री के (पुत्रम्) पुत्र को (निः भजामः) हम भाग रहित करते हैं, (असौ यः) वह जो [कुमार्गी] है। (सः) वह [कुमार्गी] (वरुणस्य) श्रेष्ठ (राज्ञः) राजा के (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे। (तस्य) उस [कुमार्गी] के (इदम्) अब (वर्चः) प्रताप, (तेजः) तेज, (प्राणम्) प्राण और (आयुः) जीवन को (नि वेष्टयामि) मैं लपेटे लेता हूँ, (इदम्) अब (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अधराञ्चम्) नीचे (पादयामि) गतियाता हूँ ॥२९॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरु-स्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥३०

पदार्थ—(जितम्) जय किया हुआ वस्तु (अस्माकम्) हमारा, (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ धन (अस्माकम्) हमारा, (ऋतम्) वेदज्ञान (अस्माकम्) हमारा, (तेजः) तेज (अस्माकम्) हमारा, (ब्रह्म) अन्न (अस्माकम्) हमारा (स्वः) सुख (अस्माकम्) हमारा, (यज्ञः) यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण और दान] (अस्माकम्) हमारा, (पशवः) सब पशु [गौ, घोड़ा आदि] (अस्माकम्) हमारे, (प्रजाः) प्रजागण (अस्माकम्) हमारे और (वीराः) वीर लोग (अस्माकम्) हमारे [होवें] ॥३०॥

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥३१॥

पदार्थ—(तस्मात्) उस [पद] से (अमुम्) अमुक (अमुम्) अमुक पुरुष, (आमुष्यायणम्) अमुक पुरुष के सन्तान, (अमुष्याः) अमुक स्त्री के (पुत्रम्) पुत्र को (निः भजामः) हम भागरहित करते हैं, (असौ यः) वह जो [कुमार्गी] है ॥३१॥

स मृत्योः पड्वीशात् पाशान्मा मोचि ॥३२॥

पदार्थ—(सः) वह [कुमार्गी] (मृत्योः) मृत्यु की (पड्वीशात्) बेड़ी के प्रवेश वाले (पाशात्) बन्धन से (मा मोचि) न छूटे ॥३२॥

तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥३३

पदार्थ—(तस्य) उस [कुमार्गी] के (इदम्) अब (वर्चः) प्रताप, (तेजः) तेज, (प्राणम्) प्राण और (आयुः) जीवन को (नि वेष्टयामि) मैं लपेटे लेता हूँ, (इदम्) अब (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अधराञ्चम्) नीचे (पादयामि) गतियाता हूँ ॥३३॥

卐 सूक्तम् ॥९॥ 卐

१—४ यम. । १ प्रजापति , २ मन्त्रोक्त० ३, ४ सूर्य । १ आर्ची अनुष्टुप्; २ आर्ची उष्णिक्, ३ साम्नी पंक्ति , ४ परोष्णिक् ।

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः ॥१॥

पदार्थ—(जितम्) जय किया हुआ वस्तु (अस्माकम्) हमारा और (उद्भिन्नम्) निकासी किया हुआ धन (अस्माकम्) हमारा [हो], (विश्वाः) [शत्रुओं की] सब (पृतनाः) सेनाओं और (अरातीः) कञ्जूसियों को (अभि अस्थाम्) मैंने रोक दिया है ॥१॥

तदग्निराह तदु सोम आह पूषा मा धात् सुकृतस्य लोके ॥२॥

पदार्थ—(तत्) यह (अग्निः) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (आह) कहता है, (तत् उ) यही (सोमः) सर्वोत्पादक परमात्मा (आह) कहता है, (पूषा) पोषण करने वाला जगदीश्वर (मा) मुझे (सुकृतस्य) पुण्य कर्म के (लोके) लोक [समाज] में (धात्) रक्खे ॥२॥

अगन्म स्वः स्वरगन्म सं सूर्यस्य ज्योतिषागन्म ॥३॥

पदार्थ—(स्वः) सुख [तत्त्वज्ञान का आनन्द] (अगन्म) हम पावें और (स्वः) सुख [मोक्ष आनन्द] (अगन्म) हम पावें और (सूर्यस्य) सर्व-प्रेरक परमात्मा की (ज्योतिषा) ज्योति से (सम् अगन्म) हम मिल जावें ॥३॥

वस्योभूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंसिषीय वसुमान् भूयासं वसु मयि धेहि ॥४।

पदार्थ—(वस्योभूयाय) अधिक श्रेष्ठ पद पाने के लिये [हमारा] (यज्ञः) यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण और दानव्यवहार] (वसुमान्) श्रेष्ठ गुणवाला [हो], (वसु) श्रेष्ठ पद (वंसिषीय) मैं मांगू , (वसुमान्) श्रेष्ठ पदवाला (भूयासम्) मैं हो जाऊं, [हे परमात्मन् !] (वसु) श्रेष्ठ पद (मयि) मुझ में (धेहि) धारण कर ॥४॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

षोडशं काण्डम् समाप्तम् ॥

卐

सप्तदशं काण्डम्

प्रथमोऽनुवाकः

卐 सूक्तम् १ 卐

१-३० ब्रह्मा । आदित्य । १ जगती; १ ८ त्र्यवसाना; २-४ अतिजगती, ६, ७, १९ अत्यष्टि , ८,११,१६ अतिधृति , ९ पञ्चपदा शक्वरी, १०—१३, १६, १८, १९, २४ त्र्यवसाना; १० अष्टपदा धृति.; १२ कृति.; १३ प्रकृतिः १४—१५ पञ्चपदा शक्वरी, पञ्चपदा विराडति शक्वरी, १८ भुरिगष्टि., २४ विराडत्यष्टि., १-५ षट्पदा, ११-१३, १६ १८, १९, २४ सप्तपदा, २० ककुप्, २१ चतुष्पदा उपरिष्टाद्बृहती, २२ अनुष्टुप्, २३ निचृद् बृहती, २५, २६ अनुष्टुप्, २७, ३० जगती, २८—२९ त्रिष्टुप् ।

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रमायुष्मान् भूयासम् ॥१॥

पदार्थ—(विषासहिम्) विशेष हराने वाले, (सहमानम्) दबा लेते हुए, (सासहानम्) दबा चुकने वाले, (सहीयांसम्) अत्यन्त शक्तिवाले (सहमानम्) वश में करते हुए, (सहोजितम्) बलवान् के जीतने वाले, (स्वर्जितम्) स्वर्ग जीतने वाले, (गोजितम्) भूमि जीतने वाले, (संधनाजितम्) पूरा धन जीतने वाले (ईड्यम्) बड़ाई योग्य (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] को (नाम) नाम से (ह्वे) मैं पुकारता हूँ, (आयुष्मान्) बड़े आयु वाला (भूयासम्) मैं हो जाऊं ॥१॥

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियो देवानां भूयासम् ॥२॥

पदार्थ—(विषासहिम्) विशेष हराने वाले (सहमानम्) दबा लेते हुए, (सासहानम्) दबा चुकने वाले, (सहीयांसम्) अत्यन्त शक्तिवाले (सहमानम्) वश में करते हुए, (सहोजितम्) बलवान् के जीतने वाले, (स्वर्जितम्) स्वर्ग जीतने वाले, (गोजितम्) भूमि जीतने वाले, (संधनाजितम्) पूरा धन जीतने वाले (ईड्यम्) बड़ाई योग्य (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] को (नाम) नाम से (ह्वे) मैं पुकारता हूँ, (देवानाम्) विद्वानों का (प्रियः) प्रिय (भूयासम्) मैं हो जाऊं ॥२॥

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः प्रजानां भूयासम् ॥३॥

पदार्थ—(विषासहिम्) विशेष हराने वाले (सहमानम्) दबा लेते हुए, (सासहानम्) दबा चुकने वाले, (सहीयांसम्) अत्यन्त शक्ति वाले (सहमानम्) वश में करते हुए, (सहोजितम्) बलवान् के जीतने वाले, (स्वर्जितम्) स्वर्ग जीतने वाले, (गोजितम्) भूमि जीतने वाले, (संधनाजितम्) पूरा धन जीतने वाले

(ईड्यम्) बड़ाई योग्य (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] को (नाम) नाम से (ह्वे) मैं पुकारता हूँ, (प्रजानाम्) प्रजागणों का (प्रियः) प्रिय (भूयासम्) मैं हो जाऊं ॥३॥

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः पशूनां भूयासम् ॥४॥

पदार्थ—(विषासहिम्) विशेष हराने वाले (सहमानम्) दबा लेते हुए, (सासहानम्) दबा चुकने वाले, (सहीयांसम्) अत्यन्त शक्ति वाले (सहमानम्) वश में करते हुए, (सहोजितम्) बलवान् के जीतने वाले, (स्वर्जितम्) स्वर्ग जीतने वाले, (गोजितम्) भूमि जीतने वाले, (संधनाजितम्) पूरा धन जीतने वाले,(ईड्यम्) बड़ाई योग्य (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] को (नाम) नाम से (ह्वे) मैं पुकारता हूँ, (पशूनाम्) प्राणियों का (प्रियः) प्रिय (भूयासम्) मैं हो जाऊं ॥४॥

विषासहिं सहमान सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः समानानां भूयासम् ॥५॥

पदार्थ—(विषासहिम्) विशेष हराने वाले, (सहमानम्) दबा लेते हुए, (सासहानम्) दबा चुकने वाले, (सहीयांसम्) अत्यन्त शक्ति वाले (सहमानम्) वश में करते हुए, (सहोजितम्) बलवान् के जीतने वाले, (स्वर्जितम्) स्वर्ग जीतने वाले, (गोजितम्) भूमि जीतने वाले, (संधनाजितम्) पूरा धन जीतने वाले (ईड्यम्) बड़ाई योग्य (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] को (नाम) नाम से (ह्वे) मैं पुकारता हूँ, (समानानाम्) तुल्य गुण वालों का (प्रियः) प्रिय (भूयासम्) मैं हो जाऊं ॥५॥

उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि । द्विषंश्च मह्यं रध्यतु मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥६॥

पदार्थ—(सूर्य) हे सूर्य ! [सब के चलाने वाले परमेश्वर] (उत् इहि) तू उदय हो, (उत् इहि) तू उदय हो, (वर्चसा) प्रताप के साथ (मा) मुझ पर (अभ्युदिहि) उदय हो । (द्विषन्) वैर करता हुआ [शत्रु] (च) अवश्य (मह्यम् रध्यतु) मेरे वश में हो जावे, (च) और (अहम्) मैं (द्विषते) वैर करते हुए के (मा रधम्) वश में न पड़ूं (विष्णो) हे विष्णो ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही (वीर्याणि) वीर कर्म [पराक्रम] (बहुधा) अनेक प्रकार के हैं । (त्वम्) तू (नः) हमें (विश्वरूपैः) सब रूप वाले (पशुभिः) प्राणियों से (पृणीहि) भरपूर कर, (मा) मुझे (परमे) सब से ऊंचे (व्योमन्) विशेष रक्षा पद में (सुधायाम्) पूरी पोषण-शक्ति के बीच (धेहि) रख ॥६॥

उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि । यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥७॥

पदार्थ—(सूर्य) हे सूर्य [सब के चलाने वाले परमेश्वर] (उत् इहि) तू उदय हो, (उत् इहि) तू उदय हो, (वर्चसा) प्रताप के साथ (मा) मुझ पर (अभ्युदिहि) उदय हो । (यान्) जिन [समीपस्थ प्राणियों] को (पश्यामि) मैं देखता हूँ (च च) और (यान्) जिन [दूर वालों] को (न) नहीं [देखता हूँ], (तेषु) उन पर (मा) मुझ को (सुमतिम्) सुमति वाला (कृधि) कर, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही (वीर्याणि) वीर कर्म [पराक्रम] (बहुधा) अनेक प्रकार के हैं । (त्वम्) तू (नः) हमें (विश्वरूपैः) सब रूप वाले (पशुभिः) प्राणियों से (पृणीहि) भरपूर कर, (मा) मुझे (परमे) सबसे ऊंचे (व्योमन्) विशेष रक्षा पद में (सुधायाम्) पूरी पोषण-शक्ति के बीच (धेहि) रख ॥७॥

मा त्वा दभन्त्सलिले अप्स्वन्तर्ये पाशिन उपतिष्ठन्त्यत्र । हित्वाशस्तिं दिवमारुक्ष एतां स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥८॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (त्वा) तुझे उन [विघ्नों] ने (मा दभन्) नहीं रोका है, (ये) जो (पाशिनः) बन्धन वाले [विघ्न] (सलिले) अन्तरिक्ष में (अप्सु अन्तः) तन्मात्राओं के भीतर (अत्र) यहां [संसार में] (उपतिष्ठन्ति) उपस्थित हैं । (एताम्) इस (अशस्तिम्) अपकीर्ति को (हित्वा) छोड़कर (दिवम्) व्यवहार में (आरुक्षः) तू ऊंचा हुआ है, (सः) सो तू (नः) हमें (मृड) सुखी रख, (ते) तेरी (सुमतौ) सुमति [सुन्दर आज्ञा] में (स्याम) हम होवें, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही (वीर्याणि) वीर कर्म [पराक्रम] (बहुधा) अनेक प्रकार के हैं । (त्वम्) तू (नः) हमें (विश्वरूपैः) सब रूप वाले (पशुभिः) प्राणियों से (पृणीहि) भरपूर कर, (मा) मुझे (परमे) सब से ऊंचे (व्योमन्) विशेष रक्षा पद में (सुधायाम्) पूरी पोषण-शक्ति के बीच (धेहि) रख ॥८॥

त्वं न इन्द्र महते सौभगायादब्धेभिः परि पाह्यक्तुभिस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥९॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर] (त्वम्) तू (नः) हमें (महते) बड़े (सौभगाय) सुन्दर ऐश्वर्य के लिये (अदब्धेभिः) [अपने] अखण्ड (अक्तुभिः) प्रकाशों के साथ (परि) सब ओर से (पाहि) बचा, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही (वीर्याणि) वीर कर्म [पराक्रम] (बहुधा) अनेक प्रकार के हैं । (त्वम्) तू (नः) हमें (विश्वरूपैः) सब रूप वाले (पशुभिः) प्राणियों से (पृणीहि) भरपूर कर, (मा) मुझे (परमे) सब से ऊंचे (व्योमन्) विशेष रक्षा पद में (सुधायाम्) पूरी पोषण-शक्ति के बीच (धेहि) रख ॥९॥

त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शंतमो भव । आरोहंस्त्रिदिवं दिवो गृणानः सोमपीतये प्रियधामा स्वस्तये तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१०॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर] (शिवाभिः) मङ्गलमय (ऊतिभिः) रक्षाओं के साथ (त्रिदिवम्) तीन [आय व्यय वृद्धि] व्यवहार में (आरोहन्) ऊंचा होता हुआ और (दिवः) व्यवहारों का (गृणानः) जताता हुआ (प्रियधामा) प्रिय पदवाला (त्वम्) तू (सोमपीतये) ऐश्वर्य की रक्षा के लिये [वा अमृत पीने के लिये] और (स्वस्तये) सुन्दर सत्ता [दशा] के लिये (नः) हम को (शंतमः) अत्यन्त सुख देने वाला (भव) हो, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही (वीर्याणि) वीर कर्म [पराक्रम] (बहुधा) अनेक प्रकार के हैं । (त्वम्) तू (नः) हमें (विश्वरूपैः) सब रूप वाले (पशुभिः) प्राणियों से (पृणीहि) भरपूर कर, (मा) मुझे (परमे) सब से ऊंचे (व्योमन्) विशेष रक्षा पद में (सुधायाम्) पूरी पोषण शक्ति के बीच (धेहि) रख ॥१०॥

त्वमिन्द्रासि विश्वजित् सर्ववित् पुरुहूतस्त्वमिन्द्र । त्वमिन्द्रेमं सुहवं स्तोममेरयस्व स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥११॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर] (त्वम्) तू (विश्वजित्) सब का जीतने वाला, (सर्ववित्), सब का जानने वाला, (इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर] (त्वम्) तू (पुरुहूतः) बहुत प्रकार पुकारा गया (असि) है । (इन्द्र) हे इन्द्र ! (त्वम) तू (इमम्) इस (सुहवम्) अच्छे प्रकार पुकारने वाली (स्तोमम्) स्तुति को (आ) यथावत् (ईरयस्व) प्राप्त कर, (सः) सो तू (नः) हमें (मृड) सुखी रख, (ते) तेरी (सुमतौ) सुमति [सुन्दर आज्ञा] में (स्याम) हम होवें, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही (वीर्याणि) वीर कर्म [पराक्रम] (बहुधा) अनेक प्रकार के हैं । (त्वम्) तू (नः) हमें (विश्वरूपैः) सब रूप वाले (पशुभिः) प्राणियों से (पृणीहि) भरपूर कर, (मा) मुझे (परमे) सब से ऊंचे (व्योमन्) विशेष रक्षा पद में (सुधायाम्) पूरी पोषण-शक्ति के बीच (धेहि) रख ॥११॥

अदब्धो दिवि पृथिव्यामुतासि न त आपुर्महिमानमन्तरिक्षे । अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं न इन्द्र दिवि षंछर्म यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१२॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] तू (दिवि) सूर्य [प्रकाशवाले लोक] पर (उत) और (पृथिव्याम्) पृथिवी [प्रकाशरहित लोक] पर (अदब्धः) अखण्ड (असि) है, (ते) तेरी (महिमानम्) महिमा को (अन्तरिक्षे) आकाश में उन [लोकों और लोकवासियों] ने (न आपुः) नहीं पाया । (अदब्धेन) अखण्ड (ब्रह्मणा) बढ़ते हुए वेदज्ञान से (वावृधानः) अत्यन्त बढ़ता हुआ और (दिवि) प्रत्येक व्यवहार में (सन्) वर्तमान, (सः त्वम्) सो तू (इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर] (नः) हमें (शर्म) सुख (यच्छ) दे, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्व-

व्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही (वीर्याणि) वीर कर्म [पराक्रम] (बहुधा) अनेक प्रकार के हैं। (त्वम्) तू (नः) हमें (विश्वरूपैः) सब रूप वाले (पशुभि.) प्राणियों से (पृणीहि) भरपूर कर, (मा) मुझे (परमे) सब से ऊँचे (व्योमन्) विशेष रक्षा पद में (सुधायाम्) पूरी पोषण-शक्ति के बीच (धेहि) रख ॥१२॥

या त इन्द्र तन्वप्सु या पृथिव्यां यान्तरग्नौ या त इन्द्र पवमाने स्वर्विदि। ययेन्द्र तन्वान्तरिक्षं व्यापिथ तया न इन्द्र तन्वा शर्म यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र! [परम ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर] (या) जो (ते) तेरी (तनूः) उपकार शक्ति (अप्सु) जल में और (या) जो (पृथिव्याम्) पृथिवी में है, (इन्द्र) हे इन्द्र! (या) जो (ते) तेरी [उपकार शक्ति] (अग्नौ अन्तः) अग्नि के भीतर और (या) जो (स्वर्विदि) सुख पहुँचानेवाले (पवमाने) शुद्ध करनेवाले पवन में है। (इन्द्र) हे इन्द्र! (यया) जिस (तन्वा) उपकार शक्ति से (अन्तरिक्षम्) आकाश में (व्यापिथ) तू व्यापा है, (इन्द्र) हे इन्द्र! (तया) उस (तन्वा) उपकारशक्ति से (नः) हम (शर्म) सुख (यच्छ) दे, (विष्णो) हे विष्णु! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही (वीर्याणि) वीर कर्म [पराक्रम] (बहुधा) अनेक प्रकार के हैं (त्वम्) तू (नः) हमें (विश्वरूपैः) सब रूप वाले (पशुभिः) प्राणियों से (पृणीहि) भरपूर कर, (मा) मुझे (परमे) सब से ऊँचे (व्योमन्) विशेष रक्षा पद में (सुधायाम्) पूरी पोषण-शक्ति के बीच (धेहि) रख ॥१३॥

त्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सत्त्रं नि षेदुर्ऋषयो नाधमानास्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१४॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र! [परम ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर] (ब्रह्मणा) बढ़े हुए वेदज्ञान से (त्वाम्) तुझे (वर्धयन्तः) बढ़ाते हुए, (नाधमानाः) [मोक्षसुख] मांगते हुए (ऋषयः) ऋषि [वेदज्ञाता] लोग (सत्त्रम्) बैठक [वा यज्ञ] में (नि षेदुः) बैठे हैं, (विष्णो) हे विष्णु! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही (वीर्याणि) वीर कर्म [पराक्रम] (बहुधा) अनेक प्रकार के हैं। (त्वम्) तू (नः) हमें (विश्वरूपैः) सब रूप वाले (पशुभिः) प्राणियों से (पृणीहि) भरपूर कर (मा) मुझे (परमे) सबसे ऊँचे (व्योमन्) विशेष रक्षा पद में (सुधायाम्) पूरी पोषण-शक्ति के बीच (धेहि) रख ॥१४॥

त्वं तृतं त्वं पर्येष्युत्सं सहस्रधारं विदथं स्वर्विदं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१५॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर!] (त्वम्) तू (तृतम्=त्रितम्) तीनों [कालों] के बीच फैले हुए [जगत्] में, (त्वम्) तू (सहस्रधारम्) सहस्रों धाराओंवाले (उत्सम्) स्रोत, [अर्थात्] (स्वर्विदम्) सुख पहुँचानेवाले (विदथम्) विज्ञान समाज में (परि) सब ओर से (एषि) व्यापक है, (विष्णो) हे विष्णु! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही (वीर्याणि) वीर कर्म [पराक्रम] (बहुधा) अनेक प्रकार के हैं। (त्वम्) तू (नः) हमें (विश्वरूपैः) सब रूप वाले (पशुभिः) प्राणियों से (पृणीहि) भरपूर कर, (मा) मुझे (परमे) सब से ऊँचे (व्योमन्) विशेष रक्षा पद में (सुधायाम्) पूरी पोषण शक्ति के बीच (धेहि) रख ॥१५॥

त्वं रक्षसे प्रदिशश्चतस्रस्त्वं शोचिषा नभसी वि भासि। त्वमिमा विश्वा भुवनानु तिष्ठस ऋतस्य पन्थामन्वेषि विद्वांस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१६॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर!] (त्वम्) तू (चतस्रः) चारो (प्रदिशः) बड़ी दिशाओं की (रक्षसे) रक्षा करता है, (त्वम्) तू (शोचिषा) प्रकाश से (नभसी) सूर्य और पृथिवी में (वि) विविध प्रकार (भासि) चमकता है। (त्वम्) तू (इमा) इन (विश्वा) सब (भुवना अनु) भुवनों [लोकों] में (तिष्ठसि) ठहरता है, और (विद्वान्) जानता हुआ तू (ऋतस्य) सत्यधर्म के (पन्थाम्) मार्ग पर (अनु) लगातार (एषि) चलता है, (विष्णो) हे विष्णु! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही (वीर्याणि) वीर कर्म [पराक्रम] (बहुधा) अनेक प्रकार के हैं। (त्वम्) तू (नः) हमें (विश्वरूपैः) सब रूप वाले (पशुभिः) प्राणियों से (पृणीहि) भरपूर कर, (मा) मुझे (परमे) सबसे ऊँचे (व्योमन्) विशेष रक्षा पद में (सुधायाम्) पूरी पोषण-शक्ति के बीच (धेहि) रख ॥१६॥

पञ्चभिः पराङ् तपस्येकयार्वाङशस्तिमेषि सुदिने बाधमानस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१७॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर!] (पञ्चभिः) पांच [दिशाओं] के साथ और (एकया) एक [दिशा] के साथ [अर्थात् छह दिशाओंके साथ] (पराङ्) दूरवर्ती और (अर्वाङ्) समीपवर्ती होकर (तपसि) तू प्रतापी [ऐश्वर्यवान्] होता है, और (अशस्तिम्) अपकीर्ति को (बाधमानः) हटाता हुआ (सुदिने) अच्छे दिन [निर्मल प्रकाश] में (एषि) चलता रहता है, (विष्णो) हे विष्णु! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही (वीर्याणि) वीर कर्म [पराक्रम] (बहुधा) अनेक प्रकार के हैं। (त्वम्) तू (नः) हमें (विश्वरूपैः) सब रूप वाले (पशुभिः) प्राणियों से (पृणीहि) भरपूर कर, (मा) मुझे (परमे) सब से ऊँचे (व्योमन्) विशेष रक्षा पद में (सुधायाम्) पूरी पोषण-शक्ति के बीच (धेहि) रख ॥१७॥

त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः। तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वति जुह्वतस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१८॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर!] (त्वम्) तू (इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवाला], (त्वम्) तू (महेन्द्रः) महेन्द्र [बड़ों में परम ऐश्वर्यवाला,] (त्वम्) तू (लोकः) लोकपति [संसार का स्वामी] और (त्वम्) तू (प्रजापतिः) प्रजापति [प्राणियों का रक्षक] है (तुभ्यम्) तेरे लिए [तेरी आज्ञा पालन के लिए] (यज्ञः) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] (वि तायते) विविध फैलाया जाता है, (तुभ्यम्) तेरे लिए (जुह्वतः) होम [हवन, दान आदि] करते हुए पुरुष (जुह्वति) होम [हवन, दान आदि] करते हैं, (विष्णो) हे विष्णु! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही (वीर्याणि) वीर कर्म [पराक्रम] (बहुधा) अनेक प्रकार के हैं। (त्वम्) तू (नः) हमें (विश्वरूपैः) सब रूप वाले (पशुभिः) प्राणियों से (पृणीहि) भरपूर कर, (मा) मुझे (परमे) सबसे ऊँचे (व्योमन्) विशेष रक्षा पद में (सुधायाम्) पूरी पोषण-शक्ति के बीच (धेहि) रख ॥१८॥

असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम्। भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१९॥

पदार्थ—(असति) अनित्य [कार्य] में (सत्) नित्य वर्तमान [आदि कारण ब्रह्म] (प्रतिष्ठितम्) ठहरा हुआ है, और (सति) नित्य [ब्रह्म] में (भूतम्) सत्ता वाला जगत् [अथवा पृथिवी आदि भूतपञ्चक] (प्रतिष्ठितम्) ठहरा हुआ है। (भूतम्) बीता हुआ (भव्ये) होने वाले में (ह) निश्चय करके (आहितम्) रक्खा हुआ है, और (भव्यम्) होने वाला (भूते) बीते हुए में (प्रतिष्ठितम्) ठहरा हुआ है, (विष्णो) हे विष्णु! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही (वीर्याणि) वीरकर्म [पराक्रम] (बहुधा) अनेक प्रकार के हैं। (त्वम्) तू (नः) हमें (विश्वरूपैः) सब रूप वाले (पशुभिः) प्राणियों से (पृणीहि) भरपूर कर, (मा) मुझे (परमे) सबसे ऊँचे (व्योमन्) विशेष रक्षापद में (सुधायाम्) पूरी पोषण-शक्ति के बीच (धेहि) रख ॥१९॥

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि। स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम् ॥२०॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर!] तू (शुक्रः) शुद्ध [स्वच्छ निर्मल] (असि) है, तू (भ्राजः) प्रकाशमान (असि) है। (सः त्वम्) सो तू (यथा) जैसे (भ्राजता) प्रकाशमान स्वरूप के साथ (भ्राजः) प्रकाशमान (असि) है, (एव) वैसे ही (अहम्) मैं (भ्राजता) प्रकाशमान स्वरूप के साथ (भ्राज्यासम्) प्रकाशमान रहूँ ॥२०॥

रुचिरसि रोचोऽसि। स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाहं पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन च रुचिषीय ॥२१॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर!] तू (रुचिः) प्रीतिरूप (असि) है, तू (रोचः) रुचि कराने वाला (असि) है। (सः त्वम्) सो तू (यथा) जैसे (रुच्या) प्रीति के साथ (रोचः) प्रीति कराने वाला (असि) है, (एव) वैसे ही (अहम्) मैं (पशुभिः) प्राणियों के साथ (च च) और (ब्राह्मणवर्चसेन) ब्राह्मणों [ब्रह्मज्ञानियों] के समान तेज के साथ (रुचिषीय) रुचि करूँ ॥२१॥

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥२२॥

पदार्थ—(उद्यते) उदय होते हुए [परमेश्वर] को (नमः) नमस्कार है (उदायते) ऊँचे आते हुए को (नमः) नमस्कार है, (उदिताय) उदय हो चुके हुए को (नमः) नमस्कार है, (विराजे) विविध राजा को (नमः) नमस्कार है,

(स्वराजे) अपने आप राजा को (नमः) नमस्कार है, (सम्राजे) सम्राट [राजराजेश्वर] को (नमः) नमस्कार है ॥२२॥

अस्तंयते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः ।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥२३॥

पदार्थ—(अस्तंयते) अस्त होते हुए [परमेश्वर] को (नमः) नमस्कार है, (अस्तमेष्यते) अस्त होना चाहने वाले को (नमः) नमस्कार है, (अस्तमिताय) अस्त हो चुके हुए को (नमः) नमस्कार है । (विराजे) विविध राजा को (नमः) नमस्कार है, (स्वराजे) अपने आप राजा को (नमः) नमस्कार है, (सम्राजे) सम्राट् [राजराजेश्वर] को (नमः) नमस्कार है ॥२३॥

उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह । सपत्नान् मह्यं रन्धयन् मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥२४॥

पदार्थ—(अयम्) यह (आदित्य) आदित्य [अखण्ड प्रभाव वाला परमात्मा] (सपत्नान्) वैरियों को (मह्यं रन्धयन्) मेरे वश में करता हुआ, (विश्वेन) समस्त (तपसा सह) ऐश्वर्य के साथ (उत् अगात्) उदय हुआ है, (च) और (अहम्) मैं (द्विषते) वैर करते हुए के (मा रधम्) वश में न पड़ूँ, (विष्णो) हे विष्णु ! [सर्वव्यापक परमेश्वर] (तव इत्) तेरे ही (वीर्याणि) वीरकर्म [पराक्रम] (बहुधा) अनेक प्रकार के हैं । (त्वम्) तू (नः) हमें (विश्वरूपैः) सब रूप वाले (पशुभिः) प्राणियों से (पृणीहि) भरपूर कर, (मा) मुझे (परमे) सब से ऊँचे (व्योमन्) विशेष रक्षापद में (सुधायाम्) पूरी पोषण शक्ति के बीच (धेहि) रख ॥२४॥

आदित्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये ।
अहर्मात्यपीपरो रात्रिं सत्राति पारय ॥२५॥

पदार्थ—(आदित्य) हे आदित्य ! [अखण्ड प्रभाववाले परमात्मा !] (स्वस्तये) [हमारे] आनन्द के लिये (शतारित्राम्) सैकड़ों डाँड वाली (नावम्) नाव पर (आ अरुक्षः) तू चढ़ा है । (मा) मुझ से (अहः) दिन (अति अपीपरः) तूने सर्वथा पार कराया है, (रात्रिम्) रात्रि (सत्रा) भी (अति पारय) तू सर्वथा पार करा ॥२५॥

सूर्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये ।
रात्रिं मात्यपीपरोऽहः सत्राति पारय ॥२६॥

पदार्थ—(सूर्य) हे सूर्य ! [सबके चलाने वाले जगदीश्वर] (स्वस्तये) [हमारे] आनन्द के लिये (शतारित्राम्) सैकड़ों डाँड़ों वाली (नावम्) नाव पर (आ अरुक्षः) तू चढ़ा है । (मा) मुझ से (रात्रिम्) रात्रि को (अति अपीपरः) तूने सर्वथा पार कराया है, (अहः) दिन (सत्रा) भी (अति पारय) सर्वथा तू पार करा ॥२६॥

प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् ॥२७॥

पदार्थ—(प्रजापतेः) प्रजापति [प्राणियों के रक्षक] और (कश्यपस्य) कश्यप [सर्वदर्शक परमेश्वर] के (ब्रह्मणा) वेदज्ञान से, (वर्मणा) आश्रय [वा रक्षा] से, (ज्योतिषा) ज्योति से (च) और (वर्चसा) प्रताप से (आवृतः) घेरा हुआ (अहम्) मैं, (जरदष्टिः) बड़ाई के साथ प्रवृत्ति [वा भोजन] वाला, (कृतवीर्यः) पूरे पराक्रम वाला, (विहायाः) विविध उपायों वाला, (सहस्रायुः) सहस्रों प्रकार से अन्न वाला और (सुकृतः) पुण्यकर्म वाला [होकर] (चरेयम्) चलता रहूँ ॥२७॥

परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय ॥२८॥

पदार्थ—(कश्यपस्य) कश्यप [सर्वदर्शक परमेश्वर] के (ब्रह्मणा) वेदज्ञान से, (वर्मणा) आश्रय से, (ज्योतिषा) ज्योति से (च) और (वर्चसा) प्रताप से मैं (परिवृतः) ढका हुआ हूँ । (याः) जो (दैव्याः) दैवी [आधिदैविक] (इषवः) बाण हैं, वे (मा) मुझ को (मा प्र आपन्) न पहुँचें, (च) और (मानुषीः) मानुषी [आधिभौतिक] (अवसृष्टाः) छोड़े हुए [बाण] (वधाय) मारने के लिये (मा) न [पहुँचें] ॥२८॥

ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम् ।
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः ॥२९॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (ऋतेन) सत्य धर्म से (च) और (सर्वैः ऋतुभिः) सब ऋतुओं से (गुप्तः) रक्षा किया हुआ और (भूतेन) बीते हुए से (च) और (भव्येन) होने वाले से (गुप्तः) रक्षा किया हुआ हूँ । (मा) मुझे (पाप्मा) पाप [बुराई] (मा प्र आपत्) न पावे, (उत) और (मा) न (मृत्युः) मृत्यु [पावे], (अहम्) मैं (वाचः) वेदवाणी के (सलिलेन) जल के साथ (अन्तः दधे) अन्तर्धान होता हूँ [डुबकी] लगाता हूँ] ॥२९॥

अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान् ।
व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता ध्रुवाः सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम् ॥३०॥

पदार्थ—(गोप्ता) रक्षा करने वाला (अग्निः) ज्ञानमय परमेश्वर (विश्वतः) सब ओर से (मा परि पातु) मेरी रक्षा करे, (उद्यन्) उदय होता हुआ (सूर्यः) सर्वप्रेरक परमात्मा (मृत्युपाशान्) मृत्यु के बन्धनों को (नुदताम्) हटावे । (व्युच्छन्तीः) विशेष चमकती हुई (उषसः) प्रभात वेलायें, (ध्रुवाः) दृढ़ (पर्वताः) पहाड़ और (प्राणाः) सब प्राण [शारीरिक और आत्मिक बल] (सहस्रम्) सहस्र प्रकार से (मयि) मुझ में (आ यतन्ताम्) सब ओर से यत्न करते रहें ॥३०॥

॥ सप्तदशं काण्डं समाप्तम् ॥

卐

अष्टादशं काण्डम्

प्रथमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् १ 卐

१—६१ अथर्वा । यमः, मन्त्रोक्ता, ४१, ४३ सरस्वती, ४० रुद्र, ४४, ४६, ५१, ५२ पितर. । त्रिष्टुप्, ८, १५ आर्षी पंक्ति, १४, ४९, ५० भुरिक्; १८—२०, २१—२३ जगती, ३७, ३८ परोष्णिक्; ५६, ५७, ६१ अनुष्टुप्, ५९ पुरोबृहती ।

ओ चित् सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान् ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥१॥

पदार्थ—(ओ) ओ ! [हे पुरुष !] (सखायम्) [तुझ] मित्र को (चित्) ही (सख्या) मित्रता के साथ (ववृत्याम्) मैं [स्त्री] प्रवृत्त करूँ—(पुरु चित्) बहुत ही प्रकार से (अर्णवम्) विज्ञानयुक्त शास्त्र को (तिरः जगन्वान्) पार जा चुकने वाले (प्रतरम्) बहुत अधिक (दीध्यानः) प्रकाशमान, (वेधाः) बुद्धिमान् आप (पितुः) [अपने] पिता के (नपातम्) नाती [पौत्र] को (क्षमि अधि) पृथिवी पर (आ दधीत) धारण करें ॥१॥

न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत् सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति ।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ॥२॥

पदार्थ—(सखा) [यह] प्रेमी (ते) तेरी (एतत्) इस (सख्यम्) प्रीति (न) नहीं (वष्टि) चाहता है (यत्) कि (सलक्ष्मा) समान [धार्मिक] लक्षण वाली [आप] (विषुरूपा) नाना स्वभाव वाली [चपल अधार्मिक] (भवाति) हो जावें । (महः) महान् (असुरस्य) बुद्धिमान् पुरुष के (दिवः) व्यवहार के (धर्तारः) धारण करने वाले, (वीराः) वीर (पुत्रासः) पुत्र (उर्विया) भूमि पर (परि ख्यन्) विख्यात हुए हैं ॥२॥

उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य ।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्वमा विविश्याः ॥३॥

पदार्थ—(ते) वे (अमृतासः) अमर [यशस्वी] लोग (घ) अवश्य (एतत्) इस प्रकार से (एकस्य) एक [अद्वितीय, अति श्रेष्ठ] (मर्त्यस्य) मनुष्य के (चित्) ही (त्यजसम्) सन्तान की (उशन्ति) कामना करते हैं । (ते मनः)

[तेरा] मन (अस्मे) हमारे (मनसि) मन में (नि धायि) जमाया जावे, और (जन्युः) उत्पन्न करने वाला (पतिः) पति [होकर] (तन्वम्) [मेरे] शरीर में (आ विविश्याः) प्रवेश कर ॥३॥

न यत् पुरा चकृमा कद्ध नूनमृतं वदन्तो अनृतं रपेम ।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नौ नाभिः परमं जामि तन्नौ ॥४॥

पदार्थ—(यत्) जो [कर्म] (पुरा) पहिले (न चकृम) हम ने नहीं किया, (कत्) कैसे (ह) निश्चय करके (नूनम्) अब (ऋतम्) सत्य (वदन्तः) बोलते हुए हम (अनृतम्) असत्य (रपेम) बोलें । [जैसे] (अप्सु) सत्कर्मों में (गन्धर्वः) दृष्टि रखनेवाला पुरुष (च) और (अप्या) सत्कर्मों में प्रसिद्ध (योषा) सेवा करनेवाली स्त्री [होवे], (सा) वही (नौ) हम दोनों की (नाभिः) बन्धुता, और (तत्) वह (नौ) हम दोनों का (परमम्) सबसे बड़ा (जामि) सम्बन्ध [होवे] ॥४॥

गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ॥५॥

पदार्थ—(जनिता) उत्पन्न करने वाले, (देवः) प्रकाशमान, (त्वष्टा) बनाने वाले, (सविता) प्रेरक, (विश्वरूपः) सब के रूप देने वाले परमेश्वर ने (गर्भे) गर्भ में (नु) ही (नौ) हम दोनों को (दम्पती) पति-पत्नी (कः) बनाया है । (अस्य) इस [परमेश्वर] के (व्रतानि) नियमों को (नकिः प्र मिनन्ति) कोई भी नहीं तोड सकते, (नौ) हम दोनों के लिये (अस्य) इस [बात] को (पृथिवी) पृथिवी (उत) और भी (द्यौः) सूर्य (वेद) जानता है ॥५॥

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ॥६॥

पदार्थ—(कः) कर्ता [प्रजापति] परमेश्वर (अद्य) आज (ऋतस्य) सत्य के (गाः) गाने वाले, (शिमीवतः) उत्तम कर्म वाले, (भामिनः) तेजस्वी (दुर्हृणायून्) [शत्रुओं पर] भारी क्रोध वाले, (आसन्निषून्) ठीक स्थान पर बाण पहुँचाने वाले, (हृत्स्वसः) [शत्रुओं के] हृदयों में शस्त्र मारने वाले और (मयोभून्) [धर्मात्माओं को] सुख देने वाले वीरों को (धुरि) धुरी [भारी बोझ] मे (युङ्क्ते) जोड़ता है, (यः) जो पुरुष (एषाम्) इन [वीरों] की (भृत्याम्) पोषण रीति को (ऋणधत्) बढ़ावेगा, (सः) वह (जीवात्) जीवेगा ॥६॥

को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत् ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ॥७॥

पदार्थ—(कः) कौन [पुरुष] (अस्य) इस [जगत्] के (प्रथमस्य) पहिले (अह्नः) दिन को (वेद) जानता है (कः) किस ने (ईम्) इस [दिन] को (ददर्श) देखा है, (कः) कौन (इह) इस [विषय] में (प्र वोचत्) बोले । (मित्रस्य) सर्वप्रेरक (वरुणस्य) श्रेष्ठ परमेश्वर का (बृहत्) बड़ा (धाम) धाम [धारण सामर्थ्य वा नियम] है, (आहनः) हे चोट लगाने वाली ! (कत् उ) कैसे (वीच्या) छल के साथ (नॄन्) नरों [नेताओं] से (ब्रवः) तू बोल सके ॥७॥

यमस्य मा यम्यं काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय ।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद् वृहेव रथ्येव चक्रा ॥८॥

पदार्थ—(यमस्य) यम [जोड़िया भाई] की (कामः) कामना (मा) मुझ (यम्यम्) यमी [जोड़िया बहिन] को, (समाने योनौ) एक घर में (सहशेय्याय) साथ साथ सोने के लिये, (आ अगन्) आकर प्राप्त हुई है । (जाया इव) पत्नी के समान (पत्ये) पति के लिये (तन्वम्) [अपना] शरीर (रिरिच्याम्) मैं फैलाऊं (चित्) और (रथ्या) रथ ले चलने वाले (चक्रा इव) दो पहियों के समान (वि विवृहेव) हम दोनों मिलें ॥८॥

न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति ।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ॥९॥

पदार्थ—(देवानाम्) विद्वानों के (एते) ये (स्पशः) नियम (न) न (तिष्ठन्ति) ठहरते हैं और (न) न (नि मिषन्ति) मुंदते हैं, (ये) जो (इह) यहां पर (चरन्ति) चलते हैं । (आहनः) हे चोट लगानेवाली ! तू (मत्) मुझ से (अन्येन) दूसरे के साथ (तूयम्) शीघ्र (याहि) जा और (तेन) उसके साथ (रथ्या) रथ ले चलने वाले (चक्रा इव) दो पहियों के समान (वि वृह) संयोग कर ॥९॥

रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य विवृहादजामि ॥१०॥

पदार्थ—(रात्रीभिः) रात्रियों के साथ और (अहभिः) दिनों के साथ (अस्मै) इस [भाई] को (सूर्यस्य) सूर्य की (चक्षुः) ज्योति (दशस्येत्) [सुमति] देवे और (मुहुः) बारम्बार (उत् मिमीयात्) फैली रहे । (दिवा) सूर्य के साथ और (पृथिव्या) पृथिवी के साथ (मिथुना) जोड़ा-जोड़ा (सबन्धू) भाई के साथ वाले हैं, [फिर] (यमी) जोड़िया बहिन (यमस्य) जोड़िया भाई के (अजामि) बिना सम्बन्ध से (विवृहात्) उद्यम करे ॥१०॥

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि ।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥११॥

पदार्थ—(ता) वे (उत्तरा) अगले (युगानि) युग [समय] (घ) निःसंदेह (आ गच्छान्) आवें, (यत्र) जिन में (जामयः) कुल स्त्रियां [वा बहिनें] (अजामि) कुल स्त्रियों [वा बहिनों] के अयोग्य काम को (कृणवन्) करने लगें । (वृषभाय) श्रेष्ठ वर के लिये (बाहुम्) [अपनी] भुजा (उप बर्बृहि) आगे बढ़ा, (सुभगे) हे सुभगे ! [बड़े ऐश्वर्यवाली] (मत्) मुझ से (अन्यम्) दूसरे (पतिम्) पति को (इच्छस्व) ढूंढ ॥११॥

किं भ्रातासद् यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् ।
काममूता बह्वेतद् रपामि तन्वा मे तन्वं सं पिपृग्धि ॥१२॥

पदार्थ—(भ्राता) भाई (किम्) क्या (असत्) होवे, (यत्) जब [बहिन को] (अनाथम्) बिन सहारा (भवाति) होवे, (उ) और (स्वसा) बहिन (किम्) क्या है (यत्) जब [भाई पर] (निर्ऋतिः) महाविपत्ति (निगच्छात्) आ पड़े । (काममूता) काम से बंधी हुई मैं (बहु) बहुत कुछ (एतत्) यह (रपामि) कहती हूं, (तन्वा) [अपने] शरीर से (मे) मेरे (तन्वम्) शरीर को (सं पिपृग्धि) मिलकर छू ॥१२॥

न ते नाथं यम्यत्राहमस्मि न ते तनूं तन्वा सं पपृच्याम् ।
अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥१३॥

पदार्थ—(यमि) हे यमी ! [जोड़िया बहिन] (अहम्) मैं (अत्र) इस [विषय] में (ते) तेरा (नाथम्) आश्रय (न) नहीं (अस्मि) हूं, (ते) तेरे (तनूम्) शरीर को (तन्वा) [अपने] शरीर से (न) नहीं (सम्) मिलकर (पपृच्याम्) छूऊंगा । (मत्) मुझ से (अन्येन) दूसरे [वर] के साथ (प्रमुदः) आनन्दों को (कल्पयस्व) मना, (सुभगे) हे सुभगे ! [बड़े ऐश्वर्यवाली] (ते भ्राता) तेरा भाई (एतत्) यह (न) नहीं (वष्टि) चाहता है ॥१३॥

न वा उ ते तनूं तन्वा सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।
असंयदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता स्वसुः शयने यच्छयीय ॥१४॥

पदार्थ—(वै उ) कभी भी (ते तनूम्) तेरे शरीर को (तन्वा) [अपने] शरीर से (न) नहीं (सम्) मिलकर (पपृच्याम्) छूऊंगा, [उस मनुष्य को] (पापम्) पापी (आहुः) वे [शिष्ट लोग] कहते हैं, (यः) जो (स्वसारम्) बहिन को (निगच्छात्) नीचपन से प्राप्त करे । (एतत्) यह [बात] (मे) मेरे (मनसः) मन [संकल्प] के और (हृदः) हृदय [निश्चय] के (असंयत्) असंगत है—(यत्) कि (भ्राता) मैं भाई (स्वसुः) बहिन की (शयने) सेज पर (शयीय) सोऊं ॥१४॥

बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम ।
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परि ष्वजातै लिबुजेव वृक्षम् ॥१५॥

पदार्थ—(बत) हा ! (यम) हे यम ! [जोड़िया भाई] तू (बतः) बड़ा निर्बल (असि) है, (ते) तेरे (मनः) मन [संकल्प] को (च) और (हृदयम्) हृदय [निश्चय] को (एव) निःसन्देह (न अविदाम) हम ने नहीं पाया । (अन्या) दूसरी स्त्री (किल) अवश्य (त्वाम्) तुझ से (परि ष्वजातै) आलिङ्गन करेगी, (कक्ष्या इव) जैसे घोड़े की पेटी (युक्तम्) कसे हुए [घोड़े] से और (लिबुजा इव) जैसे बेल [लता] (वृक्षम्) वृक्ष से [लिपट जाती है] ॥१५॥

अन्यमू षु यम्यन्य उ त्वां परि ष्वजातै लिबुजेव वृक्षम् ।
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम् ॥१६॥

पदार्थ—(यमि) हे यमी ! [जोड़िया बहिन] तू (अन्यम्) दूसरे पुरुष से (सु उ) अच्छे प्रकार [मिल], (उ) और (अन्यः) दूसरा पुरुष (त्वाम्) तुझ से (परि ष्वजातै) मिले, (लिबुजा इव) जैसे बेल [लता] (वृक्षम्) वृक्ष से । (वा) और (त्वम्) तू (तस्य) उसके (मनः) मन को (इच्छ) चाह, (वा) और (सः) वह (तव) तेरे [मन को चाहे], (अध) फिर तू (सुभद्राम्) बड़े मङ्गलयुक्त (संविदम्) संगति (कृणुष्व) कर ॥१६॥

त्रीणि छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम् ।
आपो वाता ओषधयस्तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि ॥१७॥

पदार्थ—(कवयः) बुद्धिमानो ने (पुरुरूपम्) अनेक प्रकार निरूपण करने योग्य, (दर्शतम्) अद्भुत गुणवाले (विश्वचक्षणम्) सब के देखनेयोग्य, (त्रीणि) तीन (धन्वानि) आनन्द देने वाले पदार्थों को (वि) विविध प्रकार (येतिरे) यत्न से किया है। वे (आपः) जल, (वाताः) पवनें और (ओषधयः) ओषधें [सोमलता, जौ, चावल आदि] हैं, (तानि) वे सब (एकस्मिन्) एक (भुवने) भुवन [सब के आधार परमात्मा] मे (आर्पितानि) ठहरे हैं ॥१७॥

वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः ।

विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजति यज्ञियाँ ऋतून् ॥१८॥

पदार्थ—(यह्वः) महान् (अदाभ्यः) न दबनेवाले (वृषा) बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा ने (वृष्णे) पराक्रमी मनुष्य के लिये (दिवः) आनन्द देनेवाली (अदितेः) अखण्ड वेदवाणी की (दोहसा) पूर्णता से (पयांसि) अनेक रसो को (दुदुहे) भरपूर किया है। (वरुणः यथा) श्रेष्ठ पुरुष के समान (सः) वह [मनुष्य] (विश्वम्) ससार को (धिया) [अपनी] बुद्धि से (वेद) जानता है और (सः) वह (यज्ञियः) पूजनीय होकर (यज्ञियान्) पूजनीय (ऋतून्) ऋतुओ [उचित कालो] को (यजति) पूजता है ॥१८॥

रपद् गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु नो मनः ।

इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति ॥१९॥

पदार्थ—(गन्धर्वीः) विद्वानो को धारण करने वाली, (अप्या) सत्कर्मों मे प्रसिद्ध (च) और (योषणा) सेवनेयोग्य [वेदवाणी] (रपत्) स्पष्ट कहती है—कि वह [वेदवाणी] (नदस्य) स्तोता [गुणज्ञ] पुरुष के (नादे) सत्कार मे (नः) हमारे (मनः) मन [वा विज्ञान] की (परि) सब ओर से (पातु) रक्षा करे। (अदितिः) अखण्ड वेदवाणी (इष्टस्य) अभीष्ट सुख के (मध्ये) बीच मे (नः) हम (नि) नित्य (धातु) रक्खे, (भ्राता) भाई [के समान हितकारी] (ज्येष्ठः) अतिश्रेष्ठ (प्रथमः) मुख्य पुरुष (नः) हम को (वि) अनेक प्रकार (वोचति) उपदेश करे ॥१९॥

सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती ।

यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन् ॥२०॥

पदार्थ—(सो) वही (चित्) निश्चय करके (नु) अब (भद्रा) कल्याणी (क्षुमती) अन्नवाली, (यशस्वती) यशवाली, (स्वर्वती) बड़ सुखवाली [वेदवाणी], (उषाः) उषा [प्रभात वेला के समान], (मनवे) मनुष्य के लिये (उवास) प्रकाशमान हुई है। (यत्) क्योंकि (ईम्) इस [वेदवाणी] को (उशन्तम्) चाहने वाले, (होतारम्) दानी (अग्निम्) विद्वान् पुरुष को (उशताम्) अभिलाषी पुरुषो की (क्रतुम् अनु) बुद्धि के साथ (विदथाय) ज्ञान समाज के लिये (जीजनन्) उन्होंने [विद्वानो ने] उत्पन्न किया है ॥२०॥

अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषिरः श्येनो अध्वरे ।

यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत ॥२१॥

पदार्थ—(अध) और (त्यम्) उस (द्रप्सम्) हर्ष देनेवाले, (विभ्वम्) बली (विचक्षणम्) चतुर [विद्वान्] पुरुष को (श्येनः) श्येन [बाज] (विः) पक्षी [के समान] (इषिरः) फुरतीला [आचार्य आदि] (अध्वरे) यज्ञ में (आ अभरत्) लाया है। (यदि) यदि (आर्याः) आर्य [श्रेष्ठ] (विशः) मनुष्य (दस्मम्) दर्शनीय, (होतारम्) दानी (अग्निम्) विद्वान् पुरुष को (वृणते) चुने, (अध) तब (धीः) वह कर्म (अजायत) हो जावे ॥२१॥

सदासि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः ।

विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यो वाजं ससवाँ उपयासि भूरिभिः ॥२२॥

पदार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् ! (स्वध्वरः) सुन्दर यज्ञवाला होकर (मनुषः) ज्ञान की (होत्राभिः) वाणियो से (पुष्यते) पुष्ट करने वाले [मनुष्य] के लिये (यवसा इव) जैसे घास [गौ आदि के लिये] (सदा) सदा तू (रण्वः) रमणीय [सुखदायक] (असि) होता है। (वा) और (यत्) क्योंकि (विप्रस्य) विद्वान् [आचार्य आदि] के (वाजम्) विज्ञान को (ससवान्) सेवन कर चुका हुआ, (शशमानः) फुरतीला, (भूरिभिः) बहुत [उत्तम पुरुषों] से (उक्थ्यः) स्तुतियोग्य तू (उपयासि) जाता है ॥२२॥

उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति ।

विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस्तविष्यते असुरो वेपते मती ॥२३॥

पदार्थ—[हे विद्वान् !] (जारः आ) स्तोता [गुणज्ञ पुरुष] के समान (पितरा) माता-पिता को (भगम्) ऐश्वर्य की ओर (उत् ईरय) ऊंचा पहुँचा, [क्योंकि] (हर्यतः) [शुभ गुणों का] चाहने वाला (हृत्तः) हृदय से (इयक्षति) [कर्म] पूजना चाहता है और (इष्यति) चलता है। (वह्निः) भार उठाने वाला (विवक्ति) बोलता है, (मखः) उद्योगी (स्वपस्यते) सत्कर्म करना चाहता है और (असुरः) प्राणवान् [बलवान्] (तविष्यते) महान् होना चाहता है, और (मती) बुद्धि के साथ (वेपते) चेष्टा करता है ॥२३॥

यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अख्यत् सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे ।

इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमाँ अमवान् भूषति द्यून् ॥२४॥

पदार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् ! (यः मर्तः) जो मनुष्य (ते) तेरी (सुमतिम्) सुमति को (अख्यत्) बखानता है, (सहसः सूनो) हे बलवान् पुरुष के पुत्र ! (सः) वह (अति) अति (प्र) बड़ाई से (शृण्वे) सुना जाता है [यशस्वी होता है]। और (सः) वह (इषम्) अन्न (दधानः) रखता हुआ, (अश्वैः) घोड़ों से (वहमानः) ले जाता हुआ, (द्युमान्) प्रकाश और (अमवान्) पराक्रमी होकर (द्यून्) दिनों को (आ) सब प्रकार (भूषति) सुधारता है ॥२४॥

श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।

आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ॥२५॥

पदार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् ! (सधस्थे) मिलकर बैठनेयोग्य (सदने) बैठक [समाज] मे (नः) हमारी [बात] (श्रुधि) सुन—(अमृतस्य) अमृत [अमरपन, पुरुषार्थ] के (द्रवित्नुम्) वेग वाले (रथम्) रथ को (युक्ष्व) जोड़। (नः) हमारे लिये (रोदसी) भूमि और सूर्य [के समान उपकारी] (देवपुत्रे) विद्वानों को पुत्र रखने वाले [दो प्रजायें अर्थात् माता-पिता] को (आ वह) ला, (देवानाम्) विद्वानो के बीच (माकिः) न कभी (अप भूः) तू दूर हो, (इह) यहां [हम में] (स्याः) रह ॥२५॥

यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र । रत्ना च

यद् विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् ॥२६॥

पदार्थ—(यजत्र) हे सगतियोग्य ! (अग्ने) हे विद्वान् ! (यत्) जब (एषा) यह (समितिः) समिति [सभा] (देवेषु) विद्वानों के बीच (देवी) विज्ञानवती और (यजता) सगतियोग्य (भवाति) होवे। (च) और (यत्) जब (स्वधावः) हे आत्मधारी ! तू (रत्ना) रत्नो को (विभजासि) बांटे, (नः) हमारे लिये (अत्र) यहां [ससार मे] (वसुमन्तम्) बहुत धनयुक्त (भागम्) भाग (वीतात्) भेज ॥२६॥

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः । अनु सूर्य

उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आ विवेश ॥२७॥

पदार्थ—(अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर ने (उषसाम्) उषाओं के (अग्रम्) विकाश को (अनु) निरन्तर, [उसी] (प्रथमः) सबसे पहिले वर्तमान (जातवेदाः) उत्पन्न वस्तुओ के ज्ञान करानेवाले परमेश्वर ने (अहानि) दिनो को (अनु) निरन्तर (अख्यत्) प्रसिद्ध किया है। (सूर्यः) [उसी] सूर्य [सब में व्यापक वा सबको चलाने वाले परमेश्वर] ने (उषसः) उषाओं मे (अनु) लगातार, (रश्मीन्) व्यापक किरणों मे (अनु) लगातार, (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी में (अनु) लगातार (आविवेश) प्रवेश किया है ॥२७॥

प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः ।

प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान ॥२८॥

पदार्थ—(अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर ने (उषसाम्) उषाओं के (अग्रम्) विकाश को (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से, [उसी] (प्रथमः) सबसे पहिले वर्तमान (जातवेदाः) उत्पन्न वस्तुओ के ज्ञान कराने वाले परमेश्वर ने (अहानि) दिनों को (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से (अख्यत्) प्रसिद्ध किया है (च) और (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मीन्) व्यापक किरणों को (पुरुधा) अनेक प्रकार (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से, और (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी लोको को (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से (आ) सब ओर (ततान) फैलाया है ॥२८॥

द्यावा ह क्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्रावे भवतः सत्यवाचा ।

देवो यन्मर्तान् यजथाय कृण्वन्त्सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन् ॥२९॥

पदार्थ—(द्यावा क्षामा) सूर्य और पृथिवी [के समान उपकारी], (प्रथमे) मुख्य, (सत्यवाचा) सत्यवाणी वाली [दो प्रजायें स्त्री और पुरुष] (ह) निश्चय करके (ऋतेन) सत्य धर्म से (अभिश्रावे) पूरी कीर्ति के बीच (भवतः) होती हैं। (यत्) क्योंकि (होता) दानी, (देवः) प्रकाशमान [परमेश्वर] (मर्तान्) मनुष्यों को (यजथाय) परस्पर मिलने के लिये (कृण्वन्) बनाता हुआ और (स्वम्) अपनी (असुम्) बुद्धि को (यन्) प्राप्त होता हुआ (प्रत्यङ्) सामने (सीदत्) बैठता है ॥२९॥

देवो देवान् परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान् ।

धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् ॥३०॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] (देवः) प्रकाशमान, (ऋतेन) सत्य धर्म से (देवान्) गतिमान् लोकों में (परिभूः) व्यापता हुआ, (प्रथमः) पहिले से वर्तमान (चिकित्वान्) [सब] जानता हुआ तू (नः) हमारे लिये (हव्यम्) ग्राह्य पदार्थ (वह) पहुँचा । (समिधा) समिधा [काष्ठ आदि] से (धूमकेतुः) धूएँ के झंडे वाले [अग्निरूप] तू (भाऋजीकः) बड़े प्रकाशवाला, (मन्द्रः) आनन्ददाता, (होता) दानकर्ता (नित्यः) सदा वर्तमान और (वाचा) वाणी द्वारा (यजीयान्) अति संयोग करने वाला है ॥२०॥

अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे ।

अहा यद् देवा असुनीतिमायन् मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् ॥२१॥

पदार्थ—(घृतस्नू) हे जल समान [व्यवहार को] शुद्ध करनेवाले ! [दोनों माता-पिता] (वर्धाय) [अपने] बढ़ने के लिये (वाम्) तुम दोनों के (अपः) कर्म की (अर्चामि) मैं पूजा करता हूँ, (रोदसी) हे व्यवहार की रक्षक ! [दो प्रजाओं] तुम (द्यावाभूमी) सूर्य और भूमि [के समान उपकारी होकर] (मे) मेरी (शृणुतम्) सुनो । (यत्) क्योंकि (अहा) दिन और (देवाः) गतिमान् लोक (असुनीतिम्) प्राणदाता [परमात्मा] को (आयन्) प्राप्त होते हैं, (अत्र) यहां [संसार में] (नः) हमें (पितरा) माता-पिता [आप दोनों] (मध्वा) ज्ञान से (शिशीताम्) तीक्ष्ण करें ॥२१॥

स्वावृग् देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी ।

विश्वे देवा अनु तत् ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः ॥२२॥

पदार्थ—(यदि) जब कि (देवस्य) प्रकाशमय परमेश्वर का (अमृतम्) अमृत [जीवन सामर्थ्य] (गोः) पृथिवी के लिये (स्वावृक्) सहज में पाने योग्य है, (अतः) इसी [जीवन सामर्थ्य] से (जातासः) उत्पन्न हुए प्राणी (उर्वी) पृथिवी पर (धारयन्ते) [अपने को] रखते हैं । हे परमात्मन् (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (ते) तेरे (तत्) उस (यजुः अनु) पूजनीय कर्म के पीछे (गुः) चलते हैं, (यत्) क्योंकि (एनी) चलने वाली भूमि (दिव्यम्) श्रेष्ठ (घृतम्) सारयुक्त (वाः) वरणीय उत्तम पदार्थ (दुहे) भरपूर करती है ॥२२॥

किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याति व्रतं चकृमा को वि वेद ।

मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ्छ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति ॥२३॥

पदार्थ—(किं स्वित्) क्यों [किस कर्मफल से] (नः) हमें (राजा) राजा [परमेश्वर] ने (जगृहे) ग्रहण किया है [दुःख दिया है], (कत्) कब (अस्य) इस [परमात्मा] के (व्रतम्) नियम को (अति चकृम) हम ने उल्लङ्घन किया है [जिस से क्लेश पाया है], (कः) प्रजापति परमेश्वर [इस को] (वि) विविध प्रकार (वेद) जानता है । (हि) क्योंकि (मित्रः) सब का मित्र [परमात्मा] (चित्) ही (स्म) अवश्य (देवान्) उन्मत्तों को (जुहुराणः) मरोड़ देने वाला और (याताम्) गतिशीलों [पुरुषार्थियों] का (अपि) ही (श्लोकः न) स्तुति के समान (वाजः) बल (अस्ति) है ॥२३॥

दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति ।

यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ॥२४॥

पदार्थ—(अत्र) यहां [संसार में] (अमृतस्य) अमर [अविनाशी परमात्मा] का (नाम) नाम (दुर्मन्तु) दुर्माननीय [सर्वथा अपूजनीय] [होवे], (यत्) यदि (सलक्ष्मा) एक से लक्षणवाली [धर्मव्यवस्था] (विषुरूपा) नाना स्वभाववाली [चपल, अधार्मिक] (भवाति) हो जावे । (यः) जो कोई [मनुष्य] (यमस्य) [शुभ] न्यायकारी परमेश्वर के [नाम को] (सुमन्तु) बड़ा माननीय (मनवते) मानता है, (अग्ने) हे ज्ञानमय ! (ऋष्व) हे महान् परमेश्वर ! (तम्) उसको (अप्रयुच्छन्) बिना चूके हुए (पाहि) पाल ॥२४॥

यस्मिन् देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते ।

सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्य१क्तून् परि द्योतनिं चरतो अजस्रा ॥२५॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिस [परमात्मा] में (देवाः) दिव्य नियम (विदथे) विज्ञान के बीच (मादयन्ते) तृप्त रहते हैं और (विवस्वतः) प्रकाशमय [परमेश्वर] के (सदने) घर [ब्रह्माण्ड] में (धारयन्ते) [अपने को] ठहराते हैं । (सूर्ये) सूर्य में (ज्योतिः) ज्योति और (मासि) चन्द्रमा में (अक्तून्) [सूर्य की] किरणों को (अदधुः) उन [नियमों] ने रक्खा है, (अजस्रा) निरन्तर वे दोनों (द्योतनिम्) उस प्रकाशमान [परमात्मा] की (परि चरतः) सेवा करते हैं ॥२५॥

यस्मिन् देवा मन्मनि संचरन्त्यपीच्ये३ न वयमस्य विद्म ।

मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ॥२६॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिस [परमात्मा] में (देवाः) दिव्य नियम (अपीच्ये) गुप्त (मन्मनि) ज्ञान के बीच (संचरन्ति) चलते रहते हैं, (वयम्) हम लोग (अस्य) इसे (न) नहीं (विद्म) जानते हैं । (मित्रः) सब का मित्र, (अदितिः) अखण्ड, (सविता) सब का उत्पन्न करनेहारा, (देवः) प्रकाशमान परमात्मा (अनागान् नः) हम निरपराधियों [धार्मिक पुरुषार्थियों] का (अत्र) इस [विषय] में (वरुणाय) श्रेष्ठ गुण के लिये (वोचत्) उपदेश करे ॥२६॥

सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।

स्तुष ऊ षु नृतमाय धृष्णवे ॥३७॥

पदार्थ—(सखायः) हे मित्रो ! (वज्रिणे) वज्र [अस्त्र शस्त्र] रखनेवाले, (नृतमाय) बहुत बड़े नेता, (धृष्णवे) साहसी (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] को (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञान (स्तुषे) स्तुति करने के लिये (उ) अवश्य (सु) भले प्रकार (आ शिषामहे) हम निवेदन करें ॥३७॥

शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा ।

मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ॥३८॥

पदार्थ—(हि) क्योंकि, (शूर) हे शूर ! तू (शवसा) बल से (श्रुतः) विख्यात और (वृत्रहत्येन) दुष्टों के मारने से (वृत्रहा) दुष्टनाशक (असि) है, और (मघैः) धनों के कारण (मघोनः अति) धनवालों से बढ़कर (दाशसि) तू दान करता है ॥३८॥

स्तेगो न क्षामत्येषि पृथिवीं मही नो वाता इह वान्तु भूमौ ।

मित्रो नो अत्र वरुणो युज्यमानो अग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम् ॥३९॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (स्तेगः न) संग्रहकर्ता पुरुष के समान (क्षाम्) निवास देनेवाली (पृथिवीम् अति) पृथिवी पर (एषि) तू चलता है, (वाताः) वायुओं [के समान वेगवाले पुरुष] (इह) यहां पर [राज्य में] (नः) हमारे लिये (मही) बड़ी (भूमौ) भूमि पर (वान्तु) चलें । (अत्र) यहां पर (नः) हमारे (युज्यमानः) मिलते हुए (वरुणः) श्रेष्ठ (मित्रः) मित्र [आप] ने (शोकम्) प्रताप को (वि) दूर दूर (असृष्ट) फैलाया है, (अग्निः न) जैसे आग (वने) वन में [ताप फैलाता है] ॥३९॥

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं जनानां राजानं भीममुपहत्नुमुग्रम् ।

मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो अन्यमस्मत् ते नि वपन्तु सेन्यम् ॥४०॥

पदार्थ—(रुद्र) हे रुद्र ! [शत्रुनाशक राजन्] (श्रुतम्) विख्यात, (गर्तसदम्) रथ पर बैठने वाले, (जनानाम्) मनुष्यों के बीच (राजानम्) शोभायमान, (भीमम्) भयकर, (उपहत्नुम्) बड़े मारनेवाले, (उग्रम्) प्रचण्ड [सेनापति] को (स्तुहि) बड़ाई कर । और (स्तवानः) बड़ाई किया गया तू (जरित्रे) बड़ाई करने वाले के लिये (मृड) सुखी हो, (अस्मत्) हम से (अन्यम्) दूसरे पुरुष [अर्थात् शत्रु] को (ते) तेरे (सेन्यम्) सेनादल (नि वपन्तु) काट डालें ॥४०॥

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।

सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥४१॥

पदार्थ—(सरस्वतीम्) सरस्वती [विज्ञानवती वेदविद्या], को (सरस्वतीम्) उसी सरस्वती को (देवयन्तः) दिव्य गुणों को चाहने वाले पुरुष (तायमाने) विस्तृत होते हुए (अध्वरे) हिंसारहित व्यवहार में (हवन्ते) बुलाते हैं । (सरस्वतीम्) सरस्वती को (सुकृतः) सुकृती लोग (हवन्ते) बुलाते हैं, (सरस्वती) सरस्वती (दाशुषे) अपने भक्त को (वार्यम्) श्रेष्ठ पदार्थ (दात्) देती है ॥४१॥

सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।

आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥४२॥

पदार्थ—(सरस्वतीम्) सरस्वती [विज्ञानवती वेदविद्या] को (दक्षिणा) सरल मार्ग में (यज्ञम्) यज्ञ [संयोगव्यवहार] को (अभिनक्षमाणाः) प्राप्त करते हुए (पितरः) पितर [पालन करनेवाले विज्ञानी] लोग (हवन्ते) बुलाते हैं । [हे विद्वानो !] (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) वृद्धि कर्म में (आसद्य) बैठकर (मादयध्वम्) [सब को] तृप्त करो, [हे सरस्वती !] (अस्मे) हम में (अनमीवाः) पीड़ारहित (इषः) इच्छायें (आ धेहि) स्थापित कर ॥४२॥

सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।

सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥४३॥

पदार्थ—(सरस्वति) हे सरस्वती ! [विज्ञानवती वेदविद्या] (देवि) हे देवी ! [उत्तम गुणवाली] (या) जो तू (उक्थैः) वेदोक्त स्तोत्रों से (सरथम्) रमणीय गुणोंवाली होकर और (स्वधाभिः) आत्मधारण-शक्तियों के सहित [विराजमान] (पितृभिः) पितरों [विज्ञानियों] के साथ (मदन्ती) तृप्त होती हुई (ययाथ) प्राप्त हुई है । सो तू (अत्र) यहां (इडः) विद्या के (सहस्रार्घम्) सहस्रों प्रकार पूजनीय (भागम्) भाग को और (रायः) धन की (पोषम्) वृद्धि को (यजमानाय) यजमान [विद्वानों के सत्कारी] के लिये (धेहि) दान कर ॥४३॥

उदीरतामवर उत् परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥४४॥

पदार्थ—(अवरे) छोटे पदवाले (सोम्यासः) ऐश्वर्य के हितकारी, (पितरः) पितर [पालन करनेवाले विद्वान्] (उत्) उत्तमता से, (परासः) ऊंचे पदवाले (उत्) उत्तमता से और (मध्यमाः) मध्यपदवाले (उत्) उत्तमता से (ईरताम्) चलें । (ये) जिन (अवृकाः) भेड़िये वा चोर का स्वभाव न रखनेवाले, (ऋतज्ञाः) सत्य धर्म जाननेवाले विद्वानों] ने (असुम्) प्राण वा [बल वा जीवन] (ईयुः) पाया है (ते) वे (पितरः) पितर [पालन करनेवाले] लोग (नः) हमें (हवेषु) संग्रामों में (अवन्तु) बचावें ॥४४॥

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अविवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥४५॥

पदार्थ—(अहम्) मैंने (विष्णोः) विष्णु [सर्वव्यापक परमात्मा] से (सुविदत्रान्) बड़े ज्ञानी वा बड़े धनी (पितॄन्) पितरों [पालनेवाले विद्वानों] को (च च) और भी (नपातम्) न गिरनेवाली (विक्रमणम्) विविध प्रवृत्ति को (आ अविवित्सि) पाया है । (ये) जिन आप (बर्हिषदः) उत्तम पद पर बैठने वालों ने (स्वधया) अपनी धारणशक्ति से (सुतस्य) ऐश्वर्ययुक्त (पित्वः) रक्षा-साधन अन्न का (भजन्त) सेवन किया है, (ते) वे तुम सब (इह) यहां (आगमिष्ठाः) आये हो ॥४५॥

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो ये अपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु दिक्षु ॥४६॥

पदार्थ—(इदम्) यह (नमः) अन्न (पितृभ्यः) उन पितरों [पालन करने वाले वीरों] के लिये (अद्य) आज (अस्तु) होवे, (ये) जो (पूर्वासः) पहिले [विद्वान्] होकर और (ये) जो (अपरासः) अर्वाचीन [नवीन विद्वान्] होकर (ईयुः) चलते हैं । (ये) जो (पार्थिवे) भूमि विद्या [राजनीति आदि] सम्बन्धी (रजसि) समाज में (आ) आकर (निषत्ताः) बैठे हैं, (वा) और (ये) जो (नूनम्) निश्चय करके (सुवृजनासु) बड़े बल [गढ़, सेना आदि] वाली (दिक्षु) दिशाओं में हैं ॥४६॥

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।
यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवांस्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥४७॥

पदार्थ—(मातली) ऐश्वर्य सिद्ध करने वाला, (यमः) संयमी और (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं का रक्षक पुरुष] (कव्यैः) बुद्धिमानों के हितकारी (अङ्गिरोभिः) विज्ञानी महर्षियों द्वारा (ऋक्वभिः) बड़ाई वाले कामों से (वावृधानः) बढ़ने वाला होता है । (च) और (यान्) जिन [पितरों] को (देवाः) विद्वानों ने (वावृधुः) बढ़ाया है, (च) और (ये) जिन [पितरों] को (देवान्) विद्वानों को [बढ़ाया है], (ते) वे (पितरः) पितर [पालन करनेवाले] लोग (नः) हमें (हवेषु) संग्रामों में (अवन्तु) बचावें ॥४७॥

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतो न्वस्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥४८॥

पदार्थ—(अयम्) यह [सोम अर्थात् विद्यारस वा सोमलता आदि रस] (किल) निश्चय करके (स्वादुः) बड़ा स्वादु, (अयम्) यह (मधुमान्) विज्ञानयुक्त [वा मधुर गुणयुक्त], (उत) और (अयम्) यह (किल) निश्चय करके (तीव्रः) तेजस्वी, (उत) और (अयम्) यह (रसवान्) उत्तम रसवाला [बड़ा वीर्यवान्] है । (उतो) और भी (नु) अब (अस्य) इस [रस] के (पपिवांसम्) पी चुकने वाले (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले शूरपुरुष] को (कः चन) कोई भी (आहवेषु) संग्रामों में (न) नहीं (सहते) हराता है ॥४८॥

परेयिवांसं प्रवतो महीरिति बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥४९॥

पदार्थ—(प्रवतः) उत्तम गति वाली (महीः) बड़ी भूमियों को (परेयिवांसम्) पराक्रम से पहुँच चुके हुए, (इति) इसी से, (बहुभ्यः) बहुत से [लोकों और जीवों] के लिये (पन्थाम्) मार्ग (अनुपस्पशानम्) गांठनेवाले (वैवस्वतम्) सूर्य लोकों में विदित, (जनानाम्) मनुष्यों के (संगमनम्) मेल कराने वाले (यमम्) यम [न्यायकारी परमात्मा] (राजानम्) राजा [शासक] को (हविषा) भक्ति के साथ (सपर्यत) तुम पूजो ॥४९॥

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ । यत्रा नः पूर्वे पितरः परेता एना जज्ञानाः पथ्या अनु स्वाः ॥५०॥

पदार्थ—(प्रथमः) सब से पहिले वर्तमान (यमः) यम [न्यायकारी परमात्मा] ने (नः) हमारे लिये (गातुम्) मार्ग (विवेद) जाना, (एषा) यह (गव्यूतिः) मार्ग (उ) कभी (अपभर्तवै) हटा धरने योग्य (न) नहीं है । (यत्र) जिस [मार्ग] में (नः) हमारे (पूर्वे) पहिले (पितरः) पितर [पालन करनेवाले बड़े लोग] (परेताः) पराक्रम से चले हैं, (एना) उसी से (जज्ञानाः) उत्पन्न हुए [प्राणी] (स्वाः) अपनी-अपनी (पथ्याः अनु) सड़कों पर [चलें] ॥५०॥

बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शंतमेनाधा नः शं योररपो दधात ॥५१॥

पदार्थ—(बर्हिषदः) हे उत्तम पद पर बैठने हारे (पितरः) पितरो ! [पालने वाले वीरो] (ऊती) रक्षा के साथ (अर्वाक्) सामने [होकर] (इमा) इन (हव्या) ग्राह्य भोजन आदि को (जुषध्वम्) सेवन करो [जिन को] (वः) तुम्हारे लिये (चकृम) हमने बनाया है । (ते) वे तुम (शंतमेन) अत्यन्त सुखदायक (अवसा) रक्षा के साथ (आ गत) आओ, (अध) फिर (नः) हमारे लिये (शम्) सुख, (योः) अभय और (अरपः) निर्दोष आचरण (दधात) धारण करते रहो ॥५१॥

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येदं नो हविरभि गृणन्तु विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥५२॥

पदार्थ—(पितरः) हे पितरो ! [रक्षक विद्वानो] (विश्वे) आप सब (जानु) घुटना (आच्य) टेक कर और (दक्षिणतः) दाहिनी ओर (निषद्य) बैठकर (नः) हमारे (इदम्) इस (हविः) ग्राह्य अन्न को (अभि गृणन्तु) बड़ाई योग्य करें । (वः) तुम्हारा (यत्) जो कुछ (आगः) अपराध (कराम) हम करें, (केन चित्) उस किसी [अपराध] के कारण (नः) हमें (पुरुषता) अपने पुरुषपन से (मा हिंसिष्ट) मत दुःख दो ॥५२॥

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति तेनेदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ॥५३॥

पदार्थ—(त्वष्टा) त्वष्टा [प्रकाशमान सूर्य] (दुहित्रे) दुहिता [पूर्ति करने वाली उषा] का (वहतुम्) चलाना (कृणोति) करता है, (तेन) उस [चलने] के साथ (इदम्) यह (विश्वम्) सब (भुवनम्) जगत् (सम्) ठीक ठीक (इति) चलता है । (यमस्य) यम [दिन] की (माता) माता [बनाने वाली], (महः) बड़े (विवस्वतः) प्रकाशमान सूर्य की (जाया) पत्नीरूप [रात्रि] (पर्युह्यमाना) सब ओर हटाई गई (ननाश) छिप जाती है ॥५३॥

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्याणैर्येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।
उभा राजानौ स्वधया मदन्तौ यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥५४॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] तू (प्र इहि) आगे बढ़, (पूर्याणैः) नगरों को जाने वाले (पथिभिः) मार्गों से (प्र इहि) आगे बढ़, (येन) जिस [कर्म] से (ते) तेरे (पूर्वे) पहिले (पितरः) पितर [रक्षक, पिता आदि महापुरुष] (परेताः) पराक्रम से गए हैं । और (स्वधया) अपनी धारण शक्ति से (मदन्तौ) तृप्त होते हुए (उभा) दोनों (राजानौ) शोभायमान, [अर्थात्] (देवम्) प्रकाशमान (यमम्) यम [न्यायकारी परमात्मा] को (च) और (वरुणम्) वरुण [श्रेष्ठ जीवात्मा] को (पश्यासि) तू देखता रह ॥५४॥

अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् ।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ॥५५॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] (अतः) यहां से [इस घर वा विद्यालय आदि से] (अप इत) बाहिर चलो, (वि इत) विविध प्रकार चलो, (च) और (वि सर्पत) फैल जाओ, (अस्मै) इस [जीव के हित] के लिये (एतम्) यह (लोकम्) लोक [समाज] (पितरः) पितरों [रक्षक महात्माओं] ने (अक्रन्) बनाया है । (यमः) यम [न्यायकारी परमात्मा] (अस्मै) इस जीव के हित के लिए (एतम्) यह (लोकम्) लोक [समाज] को (अहोभिः) दिनों से, (अक्तुभिः) रातों से और (अद्भिः) जल [अन्न, जल आदि] से (व्यक्तम्) स्पष्ट (अवसानम्) विराम [स्थिर पद] (ददाति) देता है ॥५५॥

उशन्तस्त्वेधीमह्युशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥५६॥

पदार्थ—[हे ब्रह्मचारी !] (उशन्तः) कामना करते हुए हम (त्वा) तुझे (इधीमहि) प्रकाशित करें, (उशन्तः) अभिलाषा करते हुए हम (सम्) मिलकर (इधीमहि) तेजस्वी करें । (उशन्) कामना करता हुआ तू (उशतः)

कामना करते हुए (पितॄन्) पितरों [रक्षक जनों] को (हविषे) ग्रहण करनेयोग्य भोजन (अत्तवे) खाने के लिये (आ वह) ले आ ॥५६॥

द्युमन्तस्त्वेधीमहि द्युमन्तः समिधीमहि ।
द्युमान् द्युमत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥५७॥

पदार्थ—[हे पुरुष] (द्युमन्तः) बड़े गति वाले हम (त्वा) तुझे (इधीमहि) प्रकाशित करें, (द्युमन्तः) व्यवहारकुशल हम (सम्) एक होकर (इधीमहि) तेजस्वी करें । (द्युमान्) व्यवहार कुशल तू (द्युमतः) व्यवहार कुशल (पितॄन्) पितरों [रक्षक विद्वानों] को (हविषे) ग्रहण करनेयोग्य भोजन (अत्तवे) खाने के लिये (आ वह) ले आ ॥५७॥

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥५८॥

पदार्थ—(नः) हमारे (अंगिरसः) महाविज्ञानी (पितरः) पितर [रक्षक पिता आदि बुद्धिमान् लोग] (नवग्वाः) स्तुतियोग्य चरित्रवाले [वा नवीन-नवीन विद्याएँ प्राप्त करने और कराने हारे], (अथर्वाणः) निश्चल स्वभाव वाले, (भृगवः) परिपक्व ज्ञानयुक्त और (सोम्यासः) ऐश्वर्य पानेयोग्य [होवें] । (तेषाम्) उन (यज्ञियानाम्) पूजनीय महापुरुषों की (अपि) ही (सुमतौ) सुमति में और (भद्रे) कल्याण करनेहारी (सौमनसे) मन की प्रसन्नता में (वयम्) हम (स्याम) होवें ॥५८॥

अङ्गिरोभिर्यज्ञियैरा गहीह यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन् बर्हिष्या निषद्य ॥५९॥

पदार्थ—(यम) हे संयमी जन ! (अंगिरोभिः) महाविज्ञानी, (यज्ञियैः) पूजायोग्य पुरुषों के साथ (इह) यहाँ [समाज में] (आ गहि) तू आ, और (वैरूपैः) विविध पदार्थों के निरूपण करनेवाले वेदज्ञानों से (इह) यहाँ (मादयस्व) [हमें] तृप्त कर । (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) उत्तम पद पर (आ) भले प्रकार (निषद्य) बैठकर (विवस्वन्तम्) प्रकाशमय परमात्मा को (हुवे) मैं बुलाता हूँ, (यः) जो (ते) तेरा (पिता) पालक है ॥५९॥

इमं यम प्रस्तरमा हि रोहाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषो मादयस्व ॥६०॥

पदार्थ—(यम) हे संयमी पुरुष ! (अंगिरोभिः) महाविज्ञानी (पितृभिः) पितरों [रक्षक लोगों] से (हि) ही (संविदानः) मिला हुआ तू (इमम्) इस (प्रस्तरम्) विस्तीर्ण आसन पर (आ रोह) ऊँचा हो । (त्वा) तुझे (मन्त्राः) मन्त्रकुशल [बड़े विचारशील] (कविशस्ताः) विद्वानों में श्रेष्ठ पुरुष (आ वहन्तु) बुलावें । (राजन्) हे ऐश्वर्यवान् पुरुष ! (एना) इस (हविषः = हविषा) भक्तिदान से (मादयस्व) [हमें] प्रसन्न कर ॥६०॥

इत एत उदारुहन् दिवस्पृष्ठान्यारुहन् ।
प्र भूर्जयो यथा पथा द्यामङ्गिरसो ययुः ॥६१॥

पदार्थ—(एते) ये [पितर लोग] (इतः) इस [सामान्य दशा] से (उत्) उत्तमता के साथ (आ अरुहन्) ऊँचे चढ़े हैं, और (दिवः) व्यवहार के (पृष्ठानि) पूछने योग्य स्थानों पर (आ अरुहन्) ऊँचे चढ़े हैं । (भूर्जयः यथा) भूमि जीतने वालों के समान (पथा) सन्मार्ग से (अंगिरसः) विज्ञानी महर्षि लोग (द्याम्) प्रकाश को (प्र) अच्छे प्रकार (ययुः) प्राप्त हुए हैं ॥६१॥

卐 इति प्रथमोऽनुवाकः 卐

卐

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् २ 卐

१—६० अथर्वा । यम, मन्त्रोक्ताः; ४, ३४ अग्निः; ५ जातवेदाः, २९ पितरः । त्रिष्टुप्; १-३, ६, १४-१८, २०, २२, २३, २५, ३०, ३४, ३६, ४६, ४८, ५०—५२, ५६ अनुष्टुप्; ४, ७, ९, १३, जगती; ५, २६, ३९, ५७ भुरिक्, १९ त्रिपदा गायत्री, २४ त्रिपदा समविषमार्षी गायत्री; ३७ विराड् जगती; ३८-४४ आर्षी गायत्री, (४०, ४२-४४ भुरिक्) ४५ ककुम्मती अनुष्टुप् ।

यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥१॥

पदार्थ—(यमाय) यम [सर्वनियन्ता परमात्मा] के लिये (सोमः) ऐश्वर्यवान् [जीवात्मा] (पवते) अपने को शुद्ध करता है, (यमाय) यम [न्यायकारी ईश्वर] के लिये (हविः) भक्तिदान (क्रियते) किया जाता है । (यमम्) यम [परमेश्वर] को (ह) ही (यज्ञः) सङ्गतिवाला संसार (गच्छति) चलता है, [जैसे] (अरंकृतः) पर्याप्त किया हुआ (अग्निदूतः) अग्नि से तपाया हुआ [जल आदि रस ऊपर जाता है] ॥१॥

यमाय मधुमत्तमं जुहोता प्र च तिष्ठत ।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥२॥

पदार्थ—(यमाय) यम [सर्वनियन्ता परमात्मा] के लिये (मधुमत्तमम्) अत्यन्त विज्ञानयुक्त कर्म (जुहोत) तुम दान करो, (च) और (प्र तिष्ठत) प्रतिष्ठा पाओ (इदम्) यह (नमः) नमस्कार (पूर्वेभ्यः) पहिले [पूर्ण विद्वान्] (पथिकृद्भ्यः) मार्ग बनाने वाले (पूर्वजेभ्यः) पूर्वज (ऋषिभ्यः) ऋषियों [महाज्ञानियों] को है ॥२॥

यमाय घृतवत् पयो राज्ञे हविर्जुहोतन ।
स नो जीवेष्वा यमेद् दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥३॥

पदार्थ—(यमाय राज्ञे) यम राजा [न्यायकारी शासक परमेश्वर] के लिये (घृतवत्) प्रकाशयुक्त (पयः) विज्ञान और (हविः) भक्तिदान का (जुहोतन) तुम दान करो । (सः) वह [परमात्मा] (नः) हमें (जीवेषु) जीवों के बीच (दीर्घम्) दीर्घ (आयुः) आयु (प्र) उत्तम (जीवसे) जीवन के लिये (आ यमेत्) देवे ॥३॥

मैनमग्ने वि दहो माभि शूशुचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् ।
शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं प्र हिणुतात् पितॄँरुप ॥४॥

पदार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् ! [आचार्य] (एनम्) इस [ब्रह्मचारी] को (वि) विपरीत भाव से (मा दहः) मत जला [मत कष्ट दे] और (मा अभि शूशुचः) मत शोक में डाल, (मा) न (अस्य) इसकी (त्वचम्) त्वचा को और (मा) न (शरीरम्) शरीर को (चिक्षिपः) गिरने दे । (जातवेदः) हे प्रसिद्ध ज्ञान वाले [आचार्य !] (यदा) जब [इसे] (शृतम्) परिपक्व [बड़ा ज्ञानी] (करसि) तू कर लेवे, (अथ) तब (ईम्) ही (एनम्) इस [शिष्य] को (पितॄन् उप) पितरों [रक्षक विद्वानों] के पास (प्र) अच्छे प्रकार (हिणुतात्) तू भेज ॥४॥

यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेममेनं परि दत्तात् पितृभ्यः ।
यदो गच्छात्यसुनीतिमेतामथ देवानां वशनीर्भवाति ॥५॥

पदार्थ—(जातवेदः) हे प्रसिद्ध ज्ञानवाले ! [आचार्य] (यदा) जब (इमम्) इस [ब्रह्मचारी] को (शृतम्) दृढ़ ज्ञानी (कृणवः) तू कर लेवे, (अथ) तब (एनम्) इस [परिश्रमी] को (पितृभ्यः) पितरों [रक्षक विद्वानों] को (परि दत्तात्) तू दे दे । (यदो) जब ही वह (एताम्) इस (असुनीतिम्) बुद्धि के साथ नीति [उन्नति मार्ग] को (गच्छाति) पावे, (अथ) तब वह (देवानाम्) दिव्य पदार्थों का (वशनीः) वश में लाने वाला (भवाति) होवे ॥५॥

त्रिकद्रुकेभिः पवते षडुर्वीरेकमिद् बृहत् ।
त्रिष्टुब् गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आर्पिता ॥६॥

पदार्थ—(एकम् इत्) एक ही (बृहत्) बड़ा [ब्रह्म] (त्रिकद्रुकेभिः) तीन [संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय] के विधानों से (षट्) छह (उर्वीः) चौड़ी दिशाओं को (पवते) शोधता है । (त्रिष्टुप्) त्रिष्टुप्, (गायत्री) गायत्री और (ता) वे [दूसरे] (सर्वा) सब (छन्दांसि) छन्द [वेद मन्त्र] (यमे) यम [न्यायकारी परमात्मा] में (आर्पिता) ठहरे हुए हैं ॥६॥

सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥७॥

पदार्थ—[हे जीव !] तू (सूर्यम्) सूर्य [तत्त्व] को (चक्षुषा) नेत्र से (वातम्) वायु को (आत्मना) प्राण से (गच्छ) प्राप्त हो, (च) और (धर्मभिः) धर्मों [उनके धारण गुणों] से (दिवम्) आकाश को (च) और (पृथिवीम्) पृथिवी को (गच्छ) प्राप्त हो (वा) और (अपः) जल को (गच्छ) प्राप्त हो, और (ओषधीषु) ओषधियों [अन्न आदिकों] में (शरीरैः) [उनके] अङ्गों सहित (प्रति तिष्ठ) प्रतिष्ठा पा, (यदि) क्योंकि (तत्र) वहाँ [उन सब में] (ते) तेरा (हितम्) हित है ॥७॥

अजो भागस्तपसस्तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ॥८॥

पदार्थ—[हे जीव !] (अजः) अजन्मा [वा गतिमान् जीवात्मा] (तपसः=तपसा) तप [ब्रह्मचर्य सेवन और वेदाध्ययन] से (भागः) सेवनीय है, (तम्) उसे (तपस्व) प्रतापी कर, (तम्) उसे (ते) तेरा (शोचिः) पवित्र कर्म और (तम्) उसे (ते) तेरा (अर्चिः) पूजनीय व्यवहार (तपतु) ऐश्वर्ययुक्त करे । (जातवेदः) हे बड़े विद्वान् ! (याः) जो (ते) तेरी (शिवाः) कल्याणकारी (तन्वः) उपकारशक्तियां हैं, (ताभिः) उनसे (एनम्) इस [जीवात्मा] को (सुकृताम्) पुण्यात्माओं के (लोकम्) लोक [समाज] में (उ) अवश्य (वह) ले जा ॥८॥

यास्ते शोचयो रंहयो जातवेदो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम् ।

अजं यन्तमनु ताः समृण्वतामथेतराभिः शिवतमाभिः शृतं कृधि ॥९॥

पदार्थ—(जातवेदः) हे बड़े विद्वान् ! [मनुष्य] (याः) जो (ते) तेरी (शोचयः) पवित्र क्रियायें और (रंहयः) वेग क्रियायें हैं और (याभिः) जिन [क्रियाओं] से (दिवम्) व्यवहार कुशल [वा गतिमान्] (अन्तरिक्षम्) मध्यवर्ती हृदय को (आपृणासि) तू सब ओर से पूर्ण करता है । (ताः) वे [सब क्रियायें] (यन्तम्) चलते हुए (अजम् अनु) अजन्मे [वा गतिशील जीवात्मा] के अनुकूल होकर (सम्) ठीक-ठीक (ऋण्वताम्) चलें, (अथ) फिर तू (इतराभिः) दूसरी [ईश्वर की प्राप्ति वाली] (शिवतमाभिः) अत्यन्त कल्याणकारी [क्रियाओं] से [जीवात्मा] को (शृतम्) परिपक्व (कृधि) कर ॥९॥

अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधावान् ।

आयुर्वसान उप यातु शेषः सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥१०॥

पदार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् पुरुष ! (पुनः) वारम्वार (पितृभ्यः) पितरों [रक्षक महापुरुषों] को [अपने आत्मा का] (अव सृज) दान कर, (यः) जो [आत्मा] (ते) तुझ को (आहुतः) यथावत् दिया हुआ (स्वधावान्) अपनी धारण शक्तिवाला (चरति) विचरता है । (शेषः) विशेष गुणी [वह आत्मा] (आयुः) जीवन (वसानः) धारण करता हुआ (उप यातु) आवे और (सुवर्चाः) बड़ा तेजस्वी होकर (तन्वा) उपकार शक्ति के साथ (सं गच्छताम्) मिलता रहे ॥१०॥

अति द्रव श्वानौ सारमेयौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।

अधा पितॄन्त्सुविदत्राँ अपीहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥११॥

पदार्थ—[हे जीव !] तू (सारमेयौ) सार कर्मों से प्रमाण करने योग्य, (चतुरक्षौ) चार दिशाओं में व्यापक, (शबलौ) चितकबरे (श्वानौ) दो चलने वाले [रात्रि-दिन] को (साधुना) धर्म के साधने वाले (पथा) मार्ग से (अति) पार करके (द्रव) चल । (अध) तब (सुविदत्रान्) बड़े ज्ञानी (पितॄन्) पितरो [रक्षक महापुरुषों] को (अपि) निश्चय करके (इहि) प्राप्त हो, (ये) जो [पितर] (यमेन) न्यायकारी परमात्मा के साथ (सधमादम्) मिले हुए हर्ष को (मदन्ति) भोगते हैं ॥११॥

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिषदी नृचक्षसा ।

ताभ्यां राजन् परि धेह्येनं स्वस्त्यस्मा अनमीवं च धेहि ॥१२॥

पदार्थ—(यम) हे संयमी मनुष्य ! (यौ) जो (चतुरक्षौ) चारों दिशाओं में व्यापक, (पथिषदी) मार्ग में बैठने वाले (नृचक्षसा) नेता पुरुषों से देखनेयोग्य (श्वानौ) दो चलने वाले [रात्रि-दिन] (ते) तेरे (रक्षितारौ) दो रक्षक हैं । (राजन्) हे ऐश्वर्यवान् जीव ! (ताभ्याम्) उन दोनों [रात्रि-दिन] को (एनम्) यह [अपना आत्मा] (परि धेहि) सौंप दे, और (अस्मै) इस [अपने आत्मा] को (स्वस्ति) सुन्दर सत्ता [बड़ा कल्याण] (च) और (अनमीवम्) नीरोगता (धेहि) दे ॥१२॥

उरूणसावसुतृपावुदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु ।

तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥१३॥

पदार्थ—(यमस्य) संयमी पुरुष के (दूतौ) उत्तेजक (उरूणसौ) बड़ी गति वाले (असुतृपौ) बुद्धि को तृप्त करने वाले, (उदुम्बलौ) दृढ़ बल वाले दोनों [रात्रि-दिन] (जनान् अनु) मनुष्यों में (चरतः) विचरते हैं । (तौ) वे दोनों (अस्मभ्यम्) हम लोगों को (सूर्याय दृशये) सर्वप्रेरक परमात्मा के देखने के लिये (अद्य) अब (इह) यहां पर (असुम्) बुद्धि और (भद्रम्) आनन्द (पुनः) वारम्वार (दाताम्) देते रहें ॥१३॥

सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते ।

येभ्यो मधु प्रधावति तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥१४॥

पदार्थ—(सोमः) ऐश्वर्य (एकेभ्यः) किन्हीं-किन्हीं [विद्वानों] को (पवते) मिलता है, (घृतम्) सार पदार्थ को (एके) कोई-कोई [विद्वान्] (उप आसते) सेवते हैं । (येभ्यः) जिन [विद्वानों] को (मधु) विज्ञान (प्रधावति) शीघ्र प्राप्त होता है, (तान्) उन [सब महात्माओं] को (चित्) सत्कार से (एव) ही (अपि) अवश्य (गच्छतात्) तू प्राप्त हो ॥१४॥

ये चित् पूर्व ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः ।

ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥१५॥

पदार्थ—(ये) जो (चित्) ही (पूर्वे) पहिले [पूर्ण विद्वान्] (ऋतसाताः) सत्य धर्म से सेवन किये गये, (ऋतजाताः) सत्य धर्म से प्रसिद्ध हुए और (ऋतावृधः) सत्य धर्म से बढ़ने और बढ़ाने वाले हैं । (यम) हे यम ! [संयमी पुरुष] (तपस्वतः) उन तपस्वी, (तपोजान्) तप से प्रकट हुए (ऋषीन्) ऋषियों को (अपि) अवश्य (गच्छतात्) तू प्राप्त हो ॥१५॥

तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः ।

तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥१६॥

पदार्थ—(ये) जो [विद्वान्] (तपसा) तप [ब्रह्मचर्य सेवन और वेदाध्ययन] से (अनाधृष्याः) नहीं दबने वाले हैं और (ये) जिन्होंने (तपसा) तप से (स्वः) स्वर्ग [आनन्द पद] (ययुः) पाया है । और (ये) जिन्होंने (तपः) [ब्रह्मचर्य सेवन और वेदाध्ययन] को (महः) अपना महत्त्व (चक्रिरे) बनाया है, (तान्) उन [महात्माओं] को (चित्) सत्कार से (एव) ही (अपि) अवश्य (गच्छतात्) तू प्राप्त हो ॥१६॥

ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः ।

ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥१७॥

पदार्थ—(ये) जो [वीर] (प्रधनेषु) संग्रामों में (युध्यन्ते) युद्ध करते हैं, और (ये) जो (शूरासः) शूर (तनूत्यजः) शरीर का बलिदान करने वाले [वा उपकार का दान करने वाले] हैं । (वा) और (ये) जो (सहस्रदक्षिणाः) सहस्रों प्रकार की दक्षिणा देने वाले हैं, (तान्) उन [महात्माओं] को (चित्) सत्कार से (एव) ही (अपि) अवश्य (गच्छतात्) तू प्राप्त हो ॥१७॥

सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम् ।

ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥१८॥

पदार्थ—(ये) जो (सहस्रणीथाः) सहस्रों [योद्धाओं] के नेता (कवयः) बुद्धिमान् लोग (सूर्यम्) सर्वप्रेरक मनुष्य को (गोपायन्ति) रक्षा करते हैं । (यम) हे यम ! [संयमी पुरुष] (तपस्वतः) उन तपस्वी (तपोजान्) तप से उत्पन्न हुए (ऋषीन्) ऋषियों को (अपि) अवश्य (गच्छतात्) तू प्राप्त हो ॥१८॥

स्योनास्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी ।

यच्छास्मै शर्म सप्रथाः ॥१९॥

पदार्थ—(पृथिवि) हे पृथिवी ! (अस्मै) इस [पुरुष] के लिये (स्योना) सुख देने हारी, (अनृक्षरा) बिना कांटे वाली और (निवेशनी) प्रवेश करने योग्य (भव) हो । और (सप्रथाः) विस्तार वाली तू (अस्मै) इस [पुरुष] के लिये (शर्म) शरण (यच्छ) दे ॥१९॥

असंबाधे पृथिव्या उरौ लोके नि धीयस्व ।

स्वधा याश्चकृषे जीवन् तास्ते सन्तु मधुश्चुतः ॥२०॥

पदार्थ—[हे पुरुष !] (पृथिव्याः) पृथिवी के (असंबाधे) बाधारहित, (उरौ) विस्तीर्ण (लोके) स्थान में (नि) दृढ़ता से (धीयस्व) तू ठहराया गया हो । (याः) जिन (स्वधाः) आत्मधारण शक्तियों को (जीवन्) जीवते हुए (चकृषे) तू ने किया है, (ताः) वे [सब शक्तियां] (ते) तेरे लिये (मधुश्चुतः) ज्ञान की बरसाने वाली (सन्तु) होवें ॥२०॥

ह्वयामि ते मनसा मन इहेमान् गृहाँ उप जुजुषाण एहि । सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेन स्योनास्त्वा वाता उप वान्तु शग्माः ॥२१॥

पदार्थ—[हे विद्वान् !] (ते) तेरे (मनः) मन को (मनसा) [अपने] मन के साथ (इह) यहां (ह्वयामि) मैं बुलाता हूं, (इमान्) इन (गृहान्) घरों [घर वालों] को (उप) आदर से (जुजुषाणः) प्रसन्न करता हुआ तू (आ इहि) आ । (पितृभिः) पितरो [रक्षक महात्माओं] से और (यमेन) यम [न्यायकारी परमात्मा] से (सं सं गच्छस्व) तू भले प्रकार मिल, (स्योनाः) सुखदायक और (शग्माः) शक्तिवाले (वाताः) सेवनीय पदार्थ (त्वा) तुझ को (उप) यथावत् (वान्तु) प्राप्त होवें ॥२१॥

उत् त्वा वहन्तु मरुत उदवाहा उदप्रुतः ।

अजेन कृण्वन्तः शीतं वर्षेणोक्षन्तु बालिति ॥२२॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (उदवाहाः) जल पहुँचाने वाले, (उदप्रुतः) जल में चलने वाले (वातः) पवनरूप विद्वान् लोग (त्वा) तुझे (उत् वहन्तु) ऊंचा पहुँचावें और (अजेन) अजन्मे परमात्मा के साथ (वर्षेण) वृष्टि से (शीतम्) शीतलता (कृण्वन्तः) करते हुए वे [तुझ को] (उक्षन्तु) बढ़ावें (बाल् इति) यही बल है ॥२२॥

उदह्वमायुरायुषे क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
स्वान् गच्छतु ते मनो अधा पितॄँरुप द्रव ॥२३॥

पदार्थ—[हे विद्वान् !] (आयुः) [तेरे] जीवन को (आयुषे) [अपने] जीवन के लिये, (क्रत्वे) बुद्धि कर्म के लिये, (दक्षाय) बल के लिये और (जीवसे) प्राण धारण [पराक्रम] के लिये (उत्) उत्तमता से (अह्वम्) मैं ने बुलाया है। (ते) तेरा (मनः) मन (स्वान्) अपने लोगों में (गच्छतु) जावे, (अध) और तू (पितॄन्) पितरों [रक्षक महात्माओं] में (उप) आदर से (द्रव) दौड़ जा ॥२३॥

मा ते मनो मासोर्माङ्गानां मा रसस्य ते ।
मा ते हास्त तन्वः किं चनेह ॥२४॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (मा) न तो (ते) तेरा (मनः) मन (मा) न (ते) तेरे (असोः) प्राण का (मा) न (अङ्गानाम्) अङ्गों का, (मा) न (रसस्य) रस [वीर्य] का, (मा) न (ते) तेरे (तन्वः) शरीर का (किं चन) कुछ भी (इह) यहां पर से (हास्त) चला जावे ॥२४॥

मा त्वा वृक्षः सं बाधिष्ट मा देवी पृथिवी मही ।
लोकं पितृषु वित्त्वैधस्व यमराजसु ॥२५॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (त्वा) तुझे (मा) न तो (वृक्षः) सेवनीय संसार और (मा) न (देवी) चलने वाली (मही) बड़ी (पृथिवी) पृथिवी (सं बाधिष्ट) कुछ बाधा देवे। (यमराजसु) यम [न्यायकारी परमात्मा] को राजा मानने वाले (पितृषु) पितरों [रक्षक महात्माओं] में (लोकम्) स्थान (वित्त्वा) पाकर (एधस्व) तू बढ़ ॥२५॥

यत् ते अङ्गमतिहितं पराचैरपानः प्राणो य उ वा ते परेतः ।
तत् ते संगत्य पितरः सनीडा घासाद् घासं पुनरा वेशयन्तु ॥२६॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (यत्) जो (ते) तेरा (अङ्गम्) [शारीरिक वा आत्मिक] अङ्ग (पराचैः) उलटा होकर (अतिहितम्) हट गया है, (च) और (ते) तेरा (यः) जो (अपानः) अपान [प्रश्वास] (वा) अथवा (प्राणः) प्राण [श्वास] (परेतः) निकल गया है। (सनीडाः) समान घरवाले (पितरः) पितर लोग [रक्षक महात्मा] (संगत्य) मिलकर (ते) तेरी (तत्) उस [हानि] को (पुनः) फिर (आ वेशयन्तु) भर देवें, [जैसे] (घासात्) घास से (घासम्) घास को [बांध देते हैं] ॥२६॥

अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तं निर्वहत परि ग्रामादितः ।
मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयां चकार ॥२७॥

पदार्थ—(इमम्) इस [ब्रह्मचारी] को (जीवाः) प्राणधारी [आचार्य आदि] लोगों ने (गृहेभ्यः) घरों के हित के लिये (अप) आनन्द से (अरुधन्) रोका था, (तम्) उस [ब्रह्मचारी] को (इतः) इस (ग्रामात्) ग्राम [विद्यालय] से (परि) सब ओर को (निः) निश्चय करके (वहत) तुम ले जाओ। (मृत्युः) मृत्यु [आत्मत्याग] (यमस्य) संयमी पुरुष का (दूतः) उत्तेजक, (प्रचेताः) ज्ञान करानेवाला (आसीत्) हुआ है, (पितृभ्यः) पितरों [रक्षक महात्माओं] को (असून्) प्राण (गमयाञ्चकार) भेजे हैं ॥२७॥

ये दस्यवः पितृषु प्रविष्टा ज्ञातिमुखा अहुतादश्चरन्ति ।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टानस्मात् प्र धमाति यज्ञात् ॥२८॥

पदार्थ—(ये) जो (ज्ञातिमुखाः) बन्धुओं के समान मुख वाले [ऊपर से हित बोलने वाले], (अहुतादः) बिना दिया हुआ खाने वाले (दस्यवः) डाकू लोग (पितृषु) पितरों [रक्षक महात्माओं] में (प्रविष्टाः) प्रविष्ट होकर (चरन्ति) विचरते हैं। और (ये) जो [दुराचारी] (परापुरः) उलटेपन से पालन स्वभावों को और (निपुरः) नीचपन से मनुष्य होने की क्रियाओं को (भरन्ति) धारण करते हैं, (अग्निः) ज्ञानवान् पुरुष (तान्) उन [दुष्टों] को (अस्मात्) इस (यज्ञात्) पूज्य स्थान से (प्र धमाति) दूर देवे ॥२८॥

सं विशन्त्विह पितरः स्वा नः स्योनं कृण्वन्तः प्रतिरन्त आयुः ।
तेभ्यः शकेम हविषा नक्षमाणा ज्योग् जीवन्तः शरदः पुरूचीः ॥२९॥

पदार्थ—(नः) हमारे लिये (स्योनम्) सुख (कृण्वन्तः) करते हुए और (आयुः) जीवन (प्रतिरन्तः) बढ़ाते हुए (पितरः) रक्षा करनेवाले (स्वाः) बान्धव लोग (इह) यहां (सम्) मिलकर (विशन्तु) प्रवेश करें। (हविषा) भक्ति के साथ (नक्षमाणाः) चलते हुए और (ज्योक्) बहुत काल तक (पुरूचीः) अनेक (शरदः) वर्षों तक (जीवन्तः) जीते हुए हम लोग (तेभ्यः) उन [बान्धवों] के लिये (शकेम) समर्थ होवें ॥२९॥

यां ते धेनुं निपृणामि यमु ते क्षीर ओदनम् ।
तेना जनस्यासो भर्ता योऽत्रासदजीवनः ॥३०॥

पदार्थ—[हे महात्मन्] (ते) तेरे लिये (याम्) जिस (धेनुम्) दुधैल गौ को (च) और (ते) तेरे लिये (यम् ओदनम्) जिस भात को (क्षीरे) दूध में (निपृणामि) मैं रखता हूं। (तेन) उसी [कारण] से तू (जनस्य) उस मनुष्य का (भर्ता) पोषक (असः) होवे, (यः) जो [मनुष्य] (अत्र) यहां (अजीवनः) निर्जीव [बिना जीविका, निर्बल] (असत्) होवे ॥३०॥

अश्वावतीं प्र तर या सुशेवार्क्षाकं वा प्रतरं नवीयः । यस्त्वा जघान
वध्यः सो अस्तु मा सो अन्यद् विदत भागधेयम् ॥३१॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] तू (अश्वावतीम्) घोड़ों वाली [शक्ति] को (प्र तर) बढ़ा, (या) जो (सुशेवा) बड़े सुख देने वाली है, (वा) निश्चय करके [आगे] (ऋक्षाकम्) हिंसा मिटाने वाला (प्रतरम्) अधिक उत्तम (नवीयः) अधिक नवीन [स्थान] है। और (यः) जिस [अत्याचारी] ने (त्वा) तुझ [सदाचारी] को (जघान) मारा है [दुखाया है], (सः) वह (वध्यः) वध [मार डालने योग्य] (अस्तु) होवे, (सः) वह (अन्यत्) दूसरा (भागधेयम्) भाग (मा विदत) न पावे ॥३१॥

यमः परोऽवरो विवस्वान् ततः परं नाति पश्यामि किं चन ।
यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वानन्वाततान ॥३२॥

पदार्थ—(विवस्वान्) प्रकाशमय (यमः) न्यायकारी परमात्मा (परः) दूर और (अवरः) समीप है, (ततः) उस से (परम्) बड़ा (किं चन) किसी वस्तु को भी (अति) उल्लंघन करके (न पश्यामि) नहीं देखता हूं। (यमे) न्यायकारी परमात्मा में (अध्वरः) हिंसारहित व्यवहार (मे) मेरे लिये (अधि) सर्वथा (निविष्टः) स्थापित है, (विवस्वान्) प्रकाशमय परमात्मा ने (भुवः) सत्ताओं को (अन्वाततान) निरन्तर सब ओर फैलाया है ॥३२॥

अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद् यत् तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥३३॥

पदार्थ—(अमृताम्) अमर [नित्य प्रकृति, जगत् सामग्री] को (अप) सुख से (अगूहन्) उन [ईश्वर नियमों] ने गुप्त रक्खा और (मर्त्येभ्यः) मरण धर्मी [मनुष्य आदि प्राणियों] के हित के लिये [उसे] (सवर्णाम्) समान अङ्गीकार करने योग्य (कृत्वा) करके (विवस्वते) प्रकाशमय परमात्मा [की आज्ञा मानने] के लिये (अदधुः) उन्होंने पुष्ट किया। (उत) और (यत्) जो कुछ [जगत्] (आसीत्) था, (तत्) उस [जगत्] ने (अश्विनौ) व्यापक प्राण और अपान को (अभरत्) धारण किया, (उ) और (सरण्यूः) व्यापक [प्रकृति, जगत् सामग्री] ने (द्वा) दो (मिथुना) जोड़ियाओं [स्त्री-पुरुष] को (अजहात्) त्यागा [उत्पन्न किया] ॥३३॥

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः ।
सर्वांस्तानग्न आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥३४॥

पदार्थ—(ये) जो पुरुष [ब्रह्मचर्य आदि सदाचार में] (निखाताः) दृढ़ गड़े हुए, (ये) जो (परोप्ताः) उत्तमता से बीज बोये गये, (ये) जो (दग्धाः) तपाये गये [वा चमकते हुए] (च) और (ये) जो (उद्धिताः) ऊंचे उठाये गये हैं। (अग्ने) हे विद्वान्! (तान् सर्वान्) उन सब (पितॄन्) पितरों [पिता आदि ज्ञानियों] को (हविषे) ग्रहणयोग्य भोजन (अत्तवे) खाने के लिये (आ वह) तू ले आ ॥३४॥

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
त्वं तान् वेत्थ यदि ते जातवेदः स्वधया यज्ञं स्वधितिं जुषन्ताम् ॥३५॥

पदार्थ—(ये) जो (अग्निदग्धाः) अग्नि जलानेवाले [हवन आदि करने वाले गृहस्थ आदि] और (ये) जो (अनग्निदग्धाः) अग्नि को नहीं जलाने वाले पुरुष [आहवनीय आदि भौतिक यज्ञ अग्नि छोड़ देने वाले संन्यासी] (दिवः) ज्ञान के (मध्ये) बीच (स्वधया) आत्मधारण शक्ति से (मादयन्ते) आनन्द पाते हैं। (जातवेदः) हे पूर्ण ज्ञानी पुरुष! (त्वम्) तू (तान्) उन को (यदि) जो (वेत्थ) जानता है, (ते) वे (स्वधया) अन्न के साथ (स्वधितिम्) स्वधारण-शक्ति वाले (यज्ञम्) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] का (जुषन्ताम्) सेवन करें ॥३५॥

शं तप माति तपो अग्ने मा तन्वं तपः।
वनेषु शुष्मो अस्तु ते पृथिव्यामस्तु यद्धरः ॥३६॥

पदार्थ—(अग्ने) हे विद्वान्! तू (शम्) शान्ति के लिये (तप) तप कर, [किसी को] (अति) अत्याचार से (मा तपः) मत तपा और [किसी के] (तन्वम्) शरीर को [अत्याचार से] (मा तपः) मत तपा [मत सता]। (वनेषु) सेवनीय व्यवहारों में (ते) तेरा (शुष्मः) बल (अस्तु) होवे और (यत्) जो (हरः) [तेरा] तेज है, वह (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (अस्तु) होवे ॥३६॥

ददाम्यस्मा अवसानमेतद् य एष आगन् मम चेदभूदिह।
यमश्चिकित्वान् प्रत्येतदाह ममैष राय उप तिष्ठतामिह ॥३७॥

पदार्थ—(एतत्) यह (अवसानम्) विश्राम (अस्मै) उस पुरुष को (ददामि) मैं देता हूँ, (यः एषः) जो यह (आ-अगन्) आया है, (च) और (मम इत्) मेरा ही (इह) यहाँ (अभूत्) हुआ है, (मम) मेरा (एषः) यह पुरुष (राये) धन के लिये (इह) यहाँ पर (उप तिष्ठताम्) सेवा करे, (चिकित्वान्) ज्ञानवान् (यमः) न्यायकारी परमात्मा (एतत्) यह (प्रति) प्रत्यक्ष (आह) कहता है ॥३७॥

इमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै।
शते शरत्सु नो पुरा ॥३८॥

पदार्थ—(इमाम्) इस [वेदोक्त] (मात्राम्) मात्रा [मर्यादा] को (मिमीमहे) हम मापते हैं, (यथा) क्योंकि (अपरम्) अन्य प्रकार से [उस मर्यादा को, कोई भी] (न) नहीं (मासातै) माप सकता। (शते शरत्सु) सौ वर्षों में भी (पुरा) लगातार (नो) कभी नहीं ॥३८॥

प्रेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै।
शते शरत्सु नो पुरा ॥३९॥

पदार्थ—(इमाम्) इस [वेदोक्त] (मात्राम्) मात्रा [मर्यादा] को (प्र) आगे बढ़कर (मिमीमहे) हम मापते हैं, (यथा) क्योंकि (अपरम्) अन्य प्रकार से [उस मर्यादा को, कोई भी] (न) नहीं (मासातै) माप सकता। (शते शरत्सु) सौ वर्षों मे भी (पुरा) लगातार (नो) कभी नहीं ॥३९॥

अपेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै।
शते शरत्सु नो पुरा ॥४०॥

पदार्थ—(इमाम्) इस [वेदोक्त] (मात्राम्) मात्रा [मर्यादा] को (अप) आनन्द से (मिमीमहे) हम मापते हैं, (यथा) क्योंकि (अपरम्) अन्य प्रकार से [उस मर्यादा को, कोई भी] (न) नहीं (मासातै) माप सकता। (शते शरत्सु) सौ वर्षों मे भी (पुरा) लगातार (नो) कभी नहीं ॥४०॥

वीमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै।
शते शरत्सु नो पुरा ॥४१॥

पदार्थ—(इमाम्) इस [वेदोक्त] (मात्राम्) मात्रा [मर्यादा] को (वि) विशेष करके (मिमीमहे) हम मापते हैं। (यथा) क्योंकि (अपरम्) अन्य प्रकार से [उस मर्यादा को, कोई भी] (न) नहीं (मासातै) माप सकता। (शते शरत्सु) सौ वर्षों मे भी (पुरा) लगातार (नो) कभी नहीं ॥४१॥

निरिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै।
शते शरत्सु नो पुरा ॥४२॥

पदार्थ—(इमाम्) इस [वेदोक्त] (मात्राम्) मात्रा [मर्यादा] को (निः) निश्चय करके (मिमीमहे) हम मापते हैं। (यथा) क्योंकि (अपरम्) अन्य प्रकार से [उस मर्यादा को, कोई भी] (न) नहीं (मासातै) माप सकता। (शते शरत्सु) सौ वर्षों में भी (पुरा) लगातार (नो) कभी नहीं ॥४२॥

उदिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै।
शते शरत्सु नो पुरा ॥४३॥

पदार्थ—(इमाम्) इस [वेदोक्त] (मात्राम्) मात्रा [मर्यादा] को (उत्) उत्तमता से (मिमीमहे) हम मापते हैं। (यथा) क्योंकि (अपरम्) अन्य प्रकार से [उस मर्यादा को, कोई भी] (न) नहीं (मासातै) माप सकता। (शते शरत्सु) सौ वर्षों में भी (पुरा) लगातार (नो) कभी नहीं ॥४३॥

समिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै।
शते शरत्सु नो पुरा ॥४४॥

पदार्थ—(इमाम्) इस [वेदोक्त] (मात्राम्) मात्रा [मर्यादा] को (सम्) सब प्रकार (मिमीमहे) हम मापते हैं, (यथा) क्योंकि (अपरम्) अन्य प्रकार से [उस मर्यादा को, कोई भी] (न) नहीं (मासातै) माप सकता। (शते शरत्सु) सौ वर्षों में भी (पुरा) लगातार (नो) कभी नहीं ॥४४॥

अमासि मात्रां स्वरगामायुष्मान् भूयासम्।
यथापरं न मासातै शते शरत्सु नो पुरा ॥४५॥

पदार्थ—(मात्राम्) मात्रा [इस वेदोक्त मर्यादा] को (अमासि) मैं मापूं, (स्वः) सुख (अगाम्) पाऊं, और (आयुष्मान्) उत्तम जीवनवाला (भूयासम्) मैं हो जाऊं, (यथा) क्योंकि (अपरम्) अन्य प्रकार से [उस मर्यादा को, कोई भी] (न) नहीं (मासातै) माप सकता, (शते शरत्सु) सौ वर्षों में भी (पुरा) लगातार (नो) कभी नहीं ॥४५॥

प्राणो अपानो व्यान आयुश्चक्षुर्दृशये सूर्याय।
अपरिपरेण पथा यमराज्ञः पितॄन् गच्छ ॥४६॥

पदार्थ—[हे मनुष्य! तेरे] (प्राणः) प्राण [श्वास], (अपानः) अपान [प्रश्वास], (व्यानः) व्यान [सर्वशरीरव्यापक वायु], (आयुः) जीवन और (चक्षुः) नेत्र (सूर्याय दृशये) सर्वप्रेरक परमात्मा के देखने को [होवें]। (अपरिपरेण) इधर उधर न घूमनेवाले [सर्वथा सीधे] (पथा) मार्ग से (यमराज्ञः) यम [न्यायकारी परमात्मा] को राजा रखनेवाले (पितॄन्) पितरों [रक्षक महात्माओं] को (गच्छ) प्राप्त हो ॥४६॥

ये अग्रवः शशमानाः परेयुर्हित्वा द्वेषांस्यनपत्यवन्तः।
ते द्यामुदित्याविदन्त लोकं नाकस्य पृष्ठे अधि दीध्यानाः ॥४७॥

पदार्थ—(ये) जो (अग्रवः) आगे चलनेवाले, (शशमानाः) उद्योगी (अनपत्यवन्तः) अनैश्वर्य [दरिद्रता] न रखने वाले पुरुष (द्वेषांसि) द्वेषों को (हित्वा) छोड़कर (परेयुः) ऊंचे गये हैं। (ते) उन (दीध्यानाः) प्रकाशमान लोगों ने (द्याम्) प्रकाशमान विद्या को (उदित्य) उत्तमता से प्राप्त करके (नाकस्य) महासुख के (पृष्ठे) उपरि भाग में (लोकम्) स्थान (अधि) अधिकारपूर्वक (अविदन्त) पाया है ॥४७॥

उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ॥४८॥

पदार्थ—(उदन्वती) थोड़े जलवाली [नदी के समान] (अवमा) थोड़ी (द्यौः) प्रकाशमान विद्या है, (पीलुमती) फूलों वाली [लता के समान] (मध्यमा इति) मध्यम विद्या है। (तृतीया) तीसरी (ह) निश्चय करके (प्रद्यौः इति) बड़े प्रकाशवाली [विद्या] है, (यस्याम्) जिस [बड़ी विद्या] में (पितरः) पितर [रक्षक महात्मा लोग] (आसते) ठहरते हैं ॥४८॥

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम्।
य आक्षियन्ति पृथिवीमुत द्यां तेभ्यः पितृभ्यो नमसा विधेम ॥४९॥

पदार्थ—(ये) जो पुरुष (नः) हमारे (पितुः) पिता के (पितरः) पिता के समान हैं, और (ये) जो [उसके] (पितामहाः) दादे के तुल्य हैं, और (ये) जो (उरु) चौड़े (अन्तरिक्षम्) आकाश में [विद्याबल से विमान आदि द्वारा] (आविविशुः) प्रविष्ट हुए हैं और (ये) जो (पृथिवीम्) पृथिवी (उत) और (द्याम्) आकाश में (आक्षियन्ति) सब प्रकार शासन करते हैं, (तेभ्यः) उन (पितृभ्यः) पितरों [रक्षक महात्माओं] की (नमसा) अन्न से (विधेम) हम सेवा करें ॥४९॥

इदमिद् वा उ नापरं दिवि पश्यसि सूर्यम्।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥५०॥

पदार्थ—[हे जीव!] (इदम् इत्) यही [सर्वव्यापक ब्रह्म] (वै) निश्चय करके है, (उ) और (अपरम्) दूसरा (न) नहीं है, तू (दिवि) ज्ञान प्रकाश में (सूर्यम्) सर्वप्रेरक परमात्मा को (पश्यसि) देखता है। (यथा) जैसे (माता) माता (पुत्रम्) पुत्र को (सिचा) अपने आँचल से [ढँके], (भूमे) हे सर्वाधार परमेश्वर! (एनम्) इस [जीव] को (अभि) सब ओर से (ऊर्णुहि) ढकले ॥५०॥

इदमिद् वा उ नापरं जरस्यन्यदितोऽपरम् ।
जाया पतिमिव वाससाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥५१॥

पदार्थ—(इदम् इत्) यही [सर्वव्यापक ब्रह्म] (वै) निश्चय करके है, (उ) और (जरसि) स्तुति में (इतः) इस [ब्रह्म] से (अन्यत्) भिन्न (अपरम् अपरम्) दूसरा कुछ भी (न) नहीं है। (इव) जैसे (जाया) सुख उत्पन्न करने वाली पत्नी (पतिम्) पति को (वाससा) वस्त्र से, [वैसे] (भूमे) हे सर्वाधार परमेश्वर ! (एनम्) इस [जीव] को (अभि) सब ओर से (ऊर्णुहि) ढकले ॥५१॥

अभि त्वोर्णोमि पृथिव्या मातुर्वस्त्रेण भद्रया ।
जीवेषु भद्रं तन्मयि स्वधा पितृषु सा त्वयि ॥५२॥

पदार्थ—[हे जीव !] (त्वा) तुझे (पृथिव्याः) जगत् के विस्तार करने वाले परमेश्वर के [दिये] (भद्रया) कल्याण से (अभि) सब ओर से (ऊर्णोमि) मैं ढकता हूँ, [जैसे] (मातुः) माता के (वस्त्रेण) वस्त्र से [बालक को]। (जीवेषु) जीवों में (भद्रम्) [जो] कल्याण हो, (तत्) वह (मयि) मुझ में [हो]। (पितृषु) पितरों [रक्षक महात्माओं] में (स्वधा) जो आत्मधारण शक्ति हो (सा) वह (त्वयि) तुझ में होवे ॥५२॥

अग्नीषोमा पथिकृता स्योनं देवेभ्यो रत्नं दधथुर्वि लोकम् ।
उप प्रेष्यन्तं पूषणं यो वहात्यञ्जोयानैः पथिभिस्तत्र गच्छतम् ॥५३॥

पदार्थ—(अग्नीषोमा) हे ज्ञानवान् और ऐश्वर्यवान् ! [स्त्री-पुरुषो] (पथिकृता) मार्ग बनानेवाले तुम दोनो (देवेभ्यः) विद्वानों को (स्योनम्) सुख, (रत्नम्) रत्न और (लोकम्) स्थान (वि) विविध प्रकार (दधथुः) दो। (यः) जो [परमेश्वर] (अञ्जोयानैः) सीधे चलने वाले (पथिभिः) मार्गों से [हम सब को] (वहाति) ले चलता है, (प्र ईष्यन्तम्) उस अच्छे प्रकार देखते हुए (पूषणम्) पोषक परमात्मा को (उप) प्राप्त होकर (तत्र) वहां [मार्गों में] (गच्छतम्) तुम दोनों चलो ॥५३॥

पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ॥५४॥

पदार्थ—(विद्वान्) सब जानने वाला, (अनष्टपशुः) जीवों का नाश नहीं करनेवाला, (भुवनस्य) संसार का (गोपाः) रक्षक, (पूषा) पोषक परमात्मा (त्वा) तुझे (इतः) यहां से [इस दशा से] (प्र च्यावयतु) आगे को बढ़ावे। (सः) वह (अग्निः) ज्ञानवान् परमेश्वर (त्वा) तुझे (एतेभ्यः) इन (देवेभ्यः) विद्वान् (सुविदत्रियेभ्यः) बड़े धनवाले (पितृभ्यः) पितरों [रक्षक महात्माओं] को (परि) सब प्रकार (ददत्) देवे ॥५४॥

आयुर्विश्वायुः परि पातु त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
यत्रासते सुकृतो यत्र त ईयुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥५५॥

पदार्थ—(विश्वायुः) सब को अन्न देनेवाला (आयुः) सर्वव्यापक परमात्मा (त्वा) तेरी (परि) सब ओर से (पातु) रक्षा करे, (पूषा) पोषक परमेश्वर (प्रपथे) उत्तम मार्ग में (पुरस्तात्) सामने से (त्वा) तेरी (पातु) रक्षा करे। (यत्र) जहां [उत्तम स्थान में] (ते) वे (ईयुः) चले हैं, (तत्र) वहां [उत्तम स्थान और मार्ग में] (त्वा) तुझको (देवः) प्रकाशमय (सविता) सर्वप्रेरक परमात्मा (दधातु) रक्खे ॥५५॥

इमौ युनज्मि ते वह्नी असुनीताय वोढवे ।
ताभ्यां यमस्य सादनं समितीश्चाव गच्छतात् ॥५६॥

पदार्थ—(इमौ) इन (वह्नी) ले चलनेवाले दोनों [प्राण और अपान] को (असुनीताय) बुद्धि से ले जाये गये (ते) तुझे (वोढवे) ले चलने के लिये (युनज्मि) मैं [परमेश्वर] युक्त करता हूँ। (ताभ्याम्) उन दोनों [प्राण और अपान] के द्वारा (यमस्य) नियम के (सादनम्) प्राप्तियोग्य पद को (च) और (समितीः) समितियों [सभाओं] को (अव गच्छतात्) निश्चय से तू प्राप्त हो ॥५६॥

एतत् त्वा वासः प्रथमं न्वागन्नपैतदूह यदिहाबिभः पुरा ।
इष्टापूर्तमनुसंक्राम विद्वान् यत्र ते दत्तं बहुधा विबन्धुषु ॥५७॥

पदार्थ—(एतत्) यह (प्रथमम्) मुख्य (वासः) वस्त्र (त्वा) तुझे (नु) अब (आ अगन्) प्राप्त हुआ है, (एतत्) इस [वस्त्र] को (अप ऊह) छोड़ (यत्) जो (इह) यहाँ पर (पुरा) पहिले (अबिभः) तू ने धारण किया है। (विद्वान्) विद्वान् तू (इष्टापूर्तम्) यज्ञ, वेदाध्ययन, अन्नदान और पुण्य कर्मों के (अनुसंक्राम) पीछे पीछे चल, (यत्र) जिस [पुण्य कर्म] में (ते) तेरा (दत्तम्) दान (बहुधा) बहुत प्रकार से (विबन्धुषु) बिना बन्धुवालों [दीन, अनाथों] में है ॥५७॥

अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व मेदसा पीवसा च ।
नेत् त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग् विधक्षन् परीङ्खयातै ॥५८॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (अग्नेः) ज्ञानमय परमेश्वर के (वर्म) कवच [के समान आश्रय] को (गोभिः) वेदवाणियों द्वारा (परि) सब ओर से (व्ययस्व) तू पहिन और (मेदसा) ज्ञान से (च) और (पीवसा) वृद्धि से [अपने को] (सम्) सब प्रकार (प्र ऊर्णुष्व) ढके रख। (न इत्) नहीं तो (धृष्णुः) साहसी, (जर्हृषाणः) अत्यन्त हर्ष माननेवाला, (दधृक्) निर्भय परमात्मा (त्वा) तुझ को (हरसा) [अपने] तेज से (विधक्षन्) विविध प्रकार सन्ताप देता हुआ (परीङ्खयातै) इधर उधर चला देवे ॥५८॥

दण्डं हस्तादाददानो गतासोः सह श्रोत्रेण वर्चसा बलेन ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वा मृधो अभिमातीर्जयेम ॥५९॥

पदार्थ—(गतासोः) प्राण छोड़े हुए [मृतक-समान निरुत्साही] पुरुष के (हस्तात्) हाथ से (श्रोत्रेण) [अपने] श्रवण-सामर्थ्य [विद्याबल], (वर्चसा) तेज और (बलेन सह) बल के साथ (दण्डम्) दण्ड [शासन पद] को (आददानः) लेता हुआ (त्वम्) तू (अत्र एव) यहां पर और (वयम्) हम (इह) यहां पर (सुवीराः) बड़े वीरों वाले होकर (विश्वाः) सब (मृधः) संग्रामों और (अभिमातीः) अभिमानी शत्रुओं को (जयेम) जीतें ॥५९॥

धनुर्हस्तादाददानो मृतस्य सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन ।
समागृभाय वसु भूरि पुष्टमर्वाङ् त्वमेह्युप जीवलोकम् ॥६०॥

पदार्थ—(मृतस्य) मरे हुए [के समान दुर्बलेन्द्रिय पुरुष] के (हस्तात्) हाथ से (धनुः) धनुष [शासनशक्ति] को (क्षत्रेण) [अपने] क्षत्रियपन, (वर्चसा) तेज और (बलेन सह) बल के साथ (आददानः) लेता हुआ तू (भूरि) बहुत (पुष्टम्) पुष्ट [पुष्टिकारक] (वसु) धन (समागृभाय) यथावत् संग्रह कर और (अर्वाङ्) सामने होता हुआ (त्वम्) तू (जीवलोकम्) जीवते हुए [पुरुषार्थी] मनुष्यों के समाज में (उप) आदर से (आ इहि) आ ॥६०॥

卐 इति द्वितीयोऽनुवाकः 卐

卐

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् १ 卐

१—७३ अथर्वा। यमः; ४४,४६ मन्त्रोक्ता ५,६ अग्निः, ५० भूमिः; ५४ इन्दुः, ५६ आपः। त्रिष्टुप्, ४, ८, ११, २३ सत. पंक्तिः; ५ त्रिपदा निचृद् गायत्री, ६,५६,६८,७०,७२ अनुष्टुप्; १८, २५-२९, ४४,४६ जगती; (१८ भुरिक्, २९ विराट्) ३० पञ्चपदा अतिजगती; ३१ विराट् शक्वरी; ३२-३५,४७,४९, ५२ भुरिक्, ३६ एकावसाना आसुरी अनुष्टुप्, ३७ एकावसाना आसुरी गायत्री, ३९ परात्रिष्टुप् पंक्तिः, ५० प्रस्तारपंक्तिः; ५४ पुरोऽनुष्टुप्; ५८ विराट्, ६० त्र्यवसाना षट्पदा जगती, ६४ भुरिक् पथ्या पंक्त्यार्षी; ६७ पथ्या बृहती; ६९,७१ उपरिष्टाद् बृहती।

इयं नारी पतिलोकं वृणाना नि पद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम् ।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि ॥१॥

पदार्थ—(मर्त्य) हे मनुष्य ! (इयम्) यह (नारी) नारी (पतिलोकम्) पति के लोक [गृहाश्रम के सुख] को (वृणाना) चाहती हुई और (पुराणम्) पुराने [सनातन] (धर्मम्) धर्म को (अनुपालयन्ती) निरन्तर पालती हुई (प्रेतम्) मरे हुए [पति] को (उप) स्तुति करती हुई (त्वा) तुझको (नि पद्यते) प्राप्त होती है, (तस्यै) उस [स्त्री] को (प्रजाम्) सन्तान (च) और (द्रविणम्) धन (इह) यहां पर (धेहि) धारण कर ॥१॥

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥२॥

पदार्थ—(नारि) हे नारी ! (जीवलोकम् अभि) जीवते पुरुषों के समाज की ओर (उत्) उठकर (ईर्ष्व) चल, (एतम्) इस (गतासुम्) गये प्राण वाले [मरे वा रोगी पति] को (उप) सराहती हुई (शेषे) तू पड़ी है, (आ इहि) आ, (दिधिषोः) वीर्यवाला [निपुण पति] से (ते) अपने (हस्तग्राभस्य) [विवाह] में हाथ पकड़ने वाले (पत्युः) पति के (जनित्वम्) सन्तान को (इदम्) अब (अभि) सब प्रकार (सम्) यथावत् [शास्त्रानुसार] (बभूथ) तू प्राप्त हो ॥२॥

अपश्यं युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम् ।

अन्धेन यत् तमसा प्रावृतासीत् प्राक्तो अपाचीमनयं तदेनाम् ॥३॥

पदार्थ—(जीवाम्) जीवती हुई [पुरुषार्थ युक्त] (युवतिम्) युवा स्त्री (नीयमानाम्) ले जायी गयी और (मृतेभ्यः) मरे हुओं से [मृतक वा महारोगियों से] (परिणीयमानाम्) पृथक् ले जायी गयी (अपश्यम्) मैंने देखी है। (यत्) क्योंकि वह (अन्धेन तमसा) गहरे अन्धकार से [सन्तान न होने के शोक से] (प्रावृता) ढकी हुई (आसीत्) थी, (तत्) इसी से (एनाम्) उस (अपाचीम्) अलग पड़ी हुई स्त्री को (प्राक्तः) सामने (अनयम्) मैं लाया हूँ ॥३॥

प्रजानत्यघ्न्ये जीवलोकं देवानां पन्थामनुसंचरन्ती ।

अयं ते गोपतिस्तं जुषस्व स्वर्गं लोकमधि रोहयैनम् ॥४॥

पदार्थ—(अघ्न्ये) हे निष्पाप स्त्री ! तू (जीवलोकम्) जीवित मनुष्यों के समाज को (प्रजानती) अच्छे प्रकार जानती हुई और (देवानाम्) विद्वानों के (पन्थाम्) मार्ग पर (अनुसंचरन्ती) निरन्तर चलती हुई है। (अयम्) यह [नियुक्त पति] (ते) तेरी (गोपतिः) वाणी का रक्षक [वंश चलाने की बात निबाहने वाला] है, (तम्) उसको (जुषस्व) सेवन कर (एनम्) इसको (स्वर्गम् लोकम्) स्वर्ग लोक [सुख के समाज] में (अधि) अधिकार पूर्वक (रोहय) प्रकट कर ॥४॥

उप द्यामुप वेतसमवत्तरो नदीनाम् । अग्ने पित्तमपामसि ॥५॥

पदार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् पुरुष ! (द्याम्) विद्या प्रकाश को (उप) पाकर और (नदीनाम्) स्तुतियों के (वेतसम्) विस्तार को (उप) आदर से (अवत्तरः) अधिक रक्षा करता हुआ तू (अपाम्) प्राणों का (पित्तम्) तेज (असि) है ॥५॥

यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः ।

क्याम्बूरत्र रोहतु शाण्डदूर्वा व्यल्कशा ॥६॥

पदार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् पुरुष ! (त्वम्) तू ने (यम्) जिस [ब्रह्मचारी] को (समदहः) यथाविधि तपाया है [ब्रह्मचर्य तप कराया है] (तम् उ) उस को (पुनः) अवश्य (निः) निश्चय करके (वापय) बीज के समान फैला। (अत्र) यहां [संसार में] (क्याम्बूः) ज्ञान-उपदेश करनेवाली, (शाण्डदूर्वा) दुःख नाश करनेवाली और (व्यल्कशा) विविध प्रकार शोभावाली [शक्ति] (रोहतु) प्रकट होवे ॥६॥

इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।

संवेशने तन्वा चारुरेधि प्रियो देवानां परमे सधस्थे ॥७॥

पदार्थ—[हे विद्वान् पुरुष !] (ते) तेरे लिये (इदम्) यह [कार्यरूप जगत्] (एकम्) एक [ज्योति तुल्य] है, (उ) और (परः) परे [आगे बढ़कर] (ते) तेरे लिये (एकम्) एक [कारणरूप जगत् ज्योति के समान] है (तृतीयेन) तीसरी (ज्योतिषा) ज्योति [प्रकाशस्वरूप परब्रह्म] के साथ (सम्) मिलकर (विशस्व) प्रवेश कर। (संवेशने) यथावत् प्रवेशविधि में (तन्वा) [अपनी] उपकार क्रिया से (चारुः) शोभायमान और (परमे) बड़े ऊंचे (सधस्थे) समाज में (देवानाम्) विद्वानों का (प्रियः) प्रिय (एधि) हो ॥७॥

उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रवौकः कृणुष्व सलिले सधस्थे ।

तत्र त्वं पितृभिः संविदानः सं सोमेन मदस्व सं स्वधाभिः ॥८॥

पदार्थ—[हे विद्वान् !] (उत् तिष्ठ) उठ, (प्र इहि) आगे बढ़ (प्र द्रव) आगे को दौड़ और (सलिले) चलते हुए जगत् में (सधस्थे) समाज के बीच (ओकः) घर (कृणुष्व) बना। (तत्र) वहां (त्वम्) तू (पितृभिः) पितरों [पिता आदि रक्षक महात्माओं] के साथ (संविदानः) मिलता हुआ (सोमेन) ऐश्वर्य से (सम्) मिलकर और (स्वधाभिः) आत्मधारण शक्तियों से (सम्) मिलकर (मदस्व) आनन्द पा ॥८॥

प्र च्यवस्व तन्वं सं भरस्व मा ते गात्रा वि हायि मो शरीरम् ।

मनो निविष्टमनुसंविशस्व यत्र भूमेर्जुषसे तत्र गच्छ ॥९॥

पदार्थ—[हे विद्वान् !] (तन्वम्) [अपने] शरीर को (प्र) आगे (च्यवस्व) चला और (सम्) मिलकर (भरस्व) पोषण कर, [जिस से] (मा) न तो (ते) तेरे (गात्रा) अङ्ग (मो) और न (शरीरम्) तेरा शरीर (वि) विकल होकर (हायि) छूटे। (निविष्टम्) जमे हुए (मनः) मन के (अनुसंविशस्व) पीछे-पीछे प्रवेश कर, और (यत्र) जहां (भूमेः) भूमि की (जुषसे) तू प्रीति करता है, (तत्र) वहां (गच्छ) जा ॥९॥

वर्चसा मां पितरः सोम्यासो अञ्जन्तु देवा मधुना घृतेन ।

चक्षुषे मा प्रतरं तारयन्तो जरसे मा जरदष्टिं वर्धन्तु ॥१०॥

पदार्थ—(सोम्यासः) ऐश्वर्यवाले, (देवाः) विद्वान्, (पितरः) पितर [रक्षक महात्मा] (माम्) मुझको (वर्चसा) तेज से, (मधुना) विज्ञान और (घृतेन) प्रकाश से (अञ्जन्तु) प्रसिद्ध करें। (चक्षुषे) सूक्ष्म दृष्टि के लिये (मा) मुझे (प्रतरम्) आगे को (तारयन्तः) पार करते हुए [वे लोग] (जरदष्टिम्) स्तुति के साथ प्रवृत्तिवाले (मा) मुझ को (जरसे) स्तुति के लिये (वर्धन्तु) बढ़ावें ॥१०॥

वर्चसा मां समनक्त्वग्निर्मेधां मे विष्णुर्न्यनक्त्वासन् ।

रयिं मे विश्वे नि यच्छन्तु देवाः स्योना मापः पवनैः पुनन्तु ॥११॥

पदार्थ—(अग्निः) ज्ञानमय परमेश्वर (वर्चसा) तेज के साथ (मा) मुझे (सम्) यथावत् (अनक्तु) विख्यात करे, (विष्णुः) विष्णु [सर्वव्यापक जगदीश्वर] (मे) मेरे (आसन्) मुख में (मेधाम्) बुद्धि को (नि) नियम से (अनक्तु) प्रसिद्ध करे। (विश्वे) सब (देवाः) उत्तमगुणी (रयिम्) धन (मे) मुझ को (नि) निरन्तर (यच्छन्तु) देवें, (स्योनाः) सुख देने वाले (आपः) आप्त विद्वान् (मा) मुझे (पवनैः) शुद्ध व्यवहारों से (पुनन्तु) शुद्ध करें ॥११॥

मित्रावरुणा परि मामधातामादित्या मा स्वरवो वर्धयन्तु ।

वर्चो म इन्द्रो न्यनक्तु हस्तयोर्जरदष्टिं मा सविता कृणोतु ॥१२॥

पदार्थ—(मित्रावरुणा) स्नेही और श्रेष्ठ दोनों [माता-पिता] ने (माम्) मुझे (परि) सब ओर से (अधाताम्) पुष्ट किया है, (आदित्याः) पृथिवी के (स्वरवः) जयस्तम्भ (मा) मुझे (वर्धयन्तु) बढ़ावें। (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्यवाला जगदीश्वर (मे) मेरे (हस्तयोः) दोनों हाथों के (वर्चः) बल को (नि) नियम से (अनक्तु) प्रसिद्ध करे, (सविता) सर्वप्रेरक परमात्मा (मा) मुझे (जरदष्टिम्) स्तुति के साथ प्रवृत्तिवाला (कृणोतु) करे ॥१२॥

यो ममार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम् ।

वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥१३॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (यः) जो [मनुष्य] (मर्त्यानाम्) मनुष्यों के बीच (प्रथमः) मुख्य होकर (ममार) मर गया, और (यः) जो (प्रथमः) मुख्य होकर (एतम् लोकम्) इस लोक में (प्रेयाय) आगे बढ़ा। (वैवस्वतम्) उन मनुष्यों के हितकारी, (जनानाम्) मनुष्यों के (संगमनम्) मेल कराने वाले (यमम्) न्यायकारी (राजानम्) राजा को (हविषा) भक्ति के साथ (सपर्यत) तुम पूजो ॥१३॥

परा यात पितर आ च यातायं वो यज्ञो मधुना समक्तः ।

दत्तो अस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिं च नः सर्ववीरं दधात ॥१४॥

पदार्थ—(पितरः) हे पितरो ! [पिता आदि रक्षक महात्माओ] (परा) प्रधानता से (यात) चलो, (च) और (आ यात) आओ, (वः) तुम्हारा (अयम्) यह (यज्ञः) पूजनीय व्यवहार (मधुना) विज्ञान के साथ (समक्तः) सर्वथा प्रख्यात है। (अस्मभ्यम्) हमको (इह) यहां पर (द्रविणा) अनेक धन और (भद्रम्) कल्याण (दत्तो) अवश्य दो, (च) और (नः) हम (सर्ववीरम्) सब वीरों को रखने वाला (रयिम्) धन (दधात) धारण करो ॥१४॥

कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः श्यावाश्वः सोभर्यर्चनानाः ।

विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरत्रिरवन्तु नः कश्यपो वामदेवः ॥१५॥

पदार्थ—(अयम्) यह (कण्वः) बुद्धिमान्, (कक्षीवान्) शासन करने वाला, (पुरुमीढः) बड़ा धनी, (अगस्त्यः) पापनाशक, (श्यावाश्वः) ज्ञान में व्याप्तिवाला (सोभरी) ऐश्वर्य धारण करनेवाला, (अर्चनानाः) पूजनीय जीवनवाला, (विश्वामित्रः) सब का मित्र, (जमदग्निः) [शिल्प और यज्ञ आदि में] अग्नि-प्रकाश करने वाला, (अत्रिः) सदा प्राप्तियोग्य, (कश्यपः) सूक्ष्मदर्शी, (वामदेवः) उत्तम व्यवहार वाला, [ये सब गुणी पुरुष] (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें ॥१५॥

विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव ।

शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः सुसंशासः पितरो मृडता नः ॥१६॥

पदार्थ—(विश्वामित्र) हे सब के मित्र ! (जमदग्ने) हे अग्नि के प्रकाश करने वाले ! [शिल्प और यज्ञ में] (वसिष्ठ) हे अत्यन्त श्रेष्ठ ! (भरद्वाज) हे विज्ञान बल के धारण करने वाले ! (गोतम) हे अतिशय स्तुति करने वाले वा विद्या की कामना करने वाले ! (वामदेव) हे श्रेष्ठ व्यवहार वाले [ये तुम सब] (सुसंशासः) उत्तम रीति से सर्वथा शासन करने वाले (पितरः) पितरो ! [रक्षक महात्माओ] (नः) हमें (मृडत) सुखी करो, (शर्दिः) विजयी (अत्रिः) प्राप्तियोग्य ज्ञानी पुरुष ने (नमोभिः) अन्नों के साथ (नः) हमें (अग्रभीत्) ग्रहण किया है ॥१६॥

पदार्थ—(धर्ता) पोषण करनेवाला (धरुणः) स्थिर स्वभाववाला परमात्मा (ह) निश्चय करके (त्वा) तुझे (ऊर्ध्वम्) ऊंचा (धारयाति) रक्खे, (इव) जैसे (सविता) सर्वप्रेरक परमेश्वर (भानुम्) सूर्य को (द्याम् उपरि) आकाश पर रखता है] । (लोककृतः) समाजों के करनेवाले, (पथिकृतः) मार्गों के बनानेवाले [तुम लोगो] को (यजामहे) हम पूजते हैं, (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागाः) भाग लेनेवाले (इह) यहां पर (स्थ) हो ॥२९॥

प्राच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥३०॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (प्राच्याम्) पूर्व वा सामने वाली (दिशि) दिशा में (त्वा) तुझे (स्वधायाम्) आत्मधारण शक्ति के बीच (पुरा) पूर्ति के साथ (संवृत) घिरा हुआ (आ) सब ओर से (दधामि) मैं [मनुष्य अपने में] धारण करता हूं, (बाहुच्युता) भुजाओं से उत्साह दी गई (पृथिवी) पृथिवी (इव) जैसे (द्याम् उपरि) सूर्य पर [सूर्य के आकर्षण, प्रकाश आदि के सहारे पर] [अपने में तुझे धारण करती है] । (लोककृतः) समाजों के करने वाले, (पथिकृत) मार्गों के बनाने वाले [तुम लोगों] को (यजामहे) हम पूजते हैं, (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागाः) भाग लेने वाले (इह) यहां पर (स्थ) हो ॥३०॥

दक्षिणायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥३१॥

पदार्थ—(दक्षिणायाम्) दक्षिण वा दाहिनी (दिशि) दिशा में (त्वा) तुझे (स्वधायाम्) आत्मधारण शक्ति के बीच (पुरा) पूर्ति के साथ (संवृतः) घिरा हुआ (आ) सब ओर से (दधामि) मैं [मनुष्य अपने में] धारण करता हूं, (बाहुच्युता) भुजाओं से उत्साह दी गई (पृथिवी) पृथिवी (इव) जैसे (द्याम् उपरि) सूर्य पर [सूर्य के आकर्षण, प्रकाश आदि के सहारे पर], [अपने में तुझे धारण करती] । (लोककृत) समाजों के करने वाले, (पथिकृतः) मार्गों के बनाने वाले, [तुम लोगों] को (यजामहे) हम पूजते हैं, (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागा.) भाग लेने वाले (इह) यहां पर (स्थ) हो ॥३१॥

प्रतीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥३२॥

पदार्थ—(प्रतीच्याम्) पश्चिम वा पीछे वाली (दिशि) दिशा में (त्वा) तुझे (स्वधायाम्) आत्मधारण शक्ति के बीच (पुरा) पूर्ति के साथ (संवृत) घिरा हुआ (आ) सब ओर से (दधामि) मैं [मनुष्य अपने में] धारण करता हूं, (बाहुच्युता) भुजाओं से उत्साह दी गई (पृथिवी) पृथिवी (इव) जैसे (द्याम् उपरि) सूर्य पर [सूर्य के आकर्षण, प्रकाश आदि के सहारे पर] [अपने में तुझे धारण करती है] । (लोककृतः) समाजों के करने वाले, (पथिकृतः) मार्गों के बनाने वाले, [तुम लोगों] को (यजामहे) हम पूजते हैं, (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागाः) भाग लेने वाले (इह) यहां पर (स्थ) हो ॥३२॥

उदीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥३३॥

पदार्थ—(उदीच्याम्) उत्तर वा बाईं (दिशि) दिशा में (त्वा) तुझे (स्वधायाम्) आत्मधारण शक्ति के बीच (पुरा) पूर्ति के साथ (संवृतः) घिरा हुआ (आ) सब ओर से (दधामि) मैं [मनुष्य अपने में] धारण करता हूं, (बाहुच्युता) भुजाओं से उत्साह दी गई (पृथिवी) पृथिवी (इव) जैसे (द्याम् उपरि) सूर्य पर [सूर्य के आकर्षण, प्रकाश आदि के सहारे पर] [अपने में तुझे धारण करती है] । (लोककृत) समाजों के करने वाले, (पथिकृत.) मार्गों के बनाने वाले [तुम लोगों] को (यजामहे) हम पूजते हैं (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागाः) भाग लेने वाले (इह) यहां पर (स्थ) हो ॥३३॥

ध्रुवायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥३४॥

पदार्थ—(ध्रुवायाम्) स्थिर वा नीचे वाली (दिशि) दिशा में (त्वा) तुझे (स्वधायाम्) आत्मधारण शक्ति के बीच (पुरा) पूर्ति के साथ (संवृतः) घिरा हुआ (आ) सब ओर से (दधामि) मैं [मनुष्य अपने में] धारण करता हूं, (बाहुच्युता) भुजाओं से उत्साह दी गई (पृथिवी) पृथिवी (इव) जैसे (द्याम् उपरि) सूर्य पर [सूर्य के आकर्षण, प्रकाश आदि के सहारे पर] [अपने में तुझे धारण करती है] । (लोककृतः) समाजों के करने वाले, (पथिकृतः) मार्गों के बनाने वाले [तुम लोगों] को (यजामहे) हम पूजते हैं, (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागा) भाग लेने वाले (इह) यहां पर (स्थ) हो ॥३४॥

ऊर्ध्वायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥३५॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (ऊर्ध्वायाम्) ऊपर वाली (दिशि) दिशा में (त्वा) तुझे (स्वधायाम्) आत्मधारण शक्ति के बीच (पुरा) पूर्ति के साथ (संवृतः) घिरा हुआ मैं [मनुष्य] (आ) सब ओर से (दधामि) धारण करता हूं, (बाहुच्युता) भुजाओं से उत्साह दी गई (पृथिवी) पृथिवी (इव) जैसे (द्याम् उपरि) सूर्य पर [सूर्य के आकर्षण, प्रकाश आदि के सहारे पर [अपने में तुझे धारण करती है] । (लोककृतः) समाजों के करने वाले, (पथिकृतः) मार्गों के बनाने वाले, [तुम लोगो] को (यजामहे) हम पूजते हैं, (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागाः) भाग लेने वाले (इह) यहां पर (स्थ) हो ॥३५॥

धर्तासि धरुणोऽसि वंसगोऽसि ॥३६॥

पदार्थ—[हे ईश्वर !] (धर्ता) तू धारण करनेवाला (असि) है, (धरुणः) तू स्थिर स्वभाववाला (असि) है और (वंसगः) तू सेवनीय व्यवहारों का प्राप्त करानेवाला (असि) है ॥३६॥

उदपूरसि मधुपूरसि वातपूरसि ॥३७॥

पदार्थ—(उदपूः) तू जल से शोधनेवाला [वा जल से अग्रगामी] (असि) है, (वातपूः) तू वायु से पालनेवाला [वा वायु से अग्रगामी] (असि) है, (मधुपूः) तू मधुर [स्वास्थ्य वर्धक] रस से पूर्ण करनेवाला [वा ज्ञान से अग्रगामी] (असि) है ॥३७॥

इतश्च मामुतश्चावतां यमे इव यतमाने यदैतम् ।
प्र वां भरन् मानुषा देवयन्तो आ सीदतं स्वमु लोकं विदाने ॥३८॥

पदार्थ—[हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों] (इतः) यहां से [समीप में वा इस जन्म में] (च च) और (अमुतः) वहां से [दूर में वा परजन्म में] (मा) मुझे (अवताम्) बचावें, (यत) क्योंकि (यमे इव) दो नियम वालों के समान (यतमाने) यत्न करते हुए तुम दोनों (ऐतम्) चले हो । (देवयन्तः) उत्तम गुण चाहनेवाले (मानुषा) मननशील मनुष्यों ने (वाम्) तुम दोनों को (प्र) अच्छे प्रकार (भरन्) पाला है, (स्वम्) अपने (लोकम्) स्थान को (उ) अवश्य (विदाने) जानते हुए [आप दोनों] (आ) आकर (सीदताम्) बैठें ॥३८॥

स्वासस्थे भवतमिन्दवे नो युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः ।
वि श्लोक एति पथ्येव सूरिः शृण्वन्तु विश्वे अमृतास एतत् ॥३९॥

पदार्थ—(नः) हमारे (इन्दवे) ऐश्वर्य के लिये (स्वासस्थे) अच्छे आसन पर बैठनेवाले (भवतम्) तुम दोनों होओ, (वाम्) तुम दोनों के लिये (पूर्व्यम्) पहिले [योगियों] द्वारा प्रत्यक्ष किये (ब्रह्म) बड़े परमेश्वर का (नमोभिः) सत्कारों के साथ (युजे) मैं ध्यान करता हूं, (श्लोकः) वेदवाणी में कुशल (सूरिः) विद्वान् (पथ्या इव) सुन्दर मार्ग के समान (वि) विविध प्रकार से (एति) चलता है, (विश्वे) सब (अमृतासः) अमर [पुरुषार्थी] लोग (एतत्) यह (शृण्वन्तु) सुनें ॥३९॥

त्रीणि पदानि रुपो अन्वरोहच्चतुष्पदीमन्वैतद् व्रतेन ।
अक्षरेण प्रति मिमीते अर्कमृतस्य नाभावभि सं पुनाति ॥४०॥

पदार्थ—(रुपः) गतिमान् पुरुष (त्रीणि) तीनों [भूत, भविष्यत् और वर्तमान] (पदानि) पदों [अधिकारों] के (अनु) पीछे-पीछे (अरोहत्) प्रसिद्ध हुआ है, और (व्रतेन) व्रत [ब्रह्मचर्य आदि नियम] के साथ (चतुष्पदीम्) चारों [धर्म, अर्थ काम और मोक्ष] में अधिकारवाली वेदवाणी के (अनु) पीछे-पीछे (ऐतत्) चला है । वह (अक्षरेण) व्यापक वा अविनाशी [ओ३म् परमात्मा] के साथ (अर्कम्) पूजनीय विचार को (प्रति) प्रत्यक्ष (मिमीते) करता है और (ऋतस्य) सत्य धर्म की (नाभौ) नाभि में [सब को] (अभि) सब ओर से (सम्) यथावत् (पुनाति) शुद्ध करता है ॥४०॥

देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै किममृतं नावृणीत ।
बृहस्पतिर्यज्ञमतनुत ऋषिः प्रियां यमस्तन्वमा रिरेच ॥४१॥

पदार्थ—[जिस ने] (देवेभ्यः) उत्तम गुणों के लिये (कम्) सुख से (मृत्युम्) मृत्यु [अहंकार त्याग] को (अवृणीत) अङ्गीकार किया है, उसने (प्रजायै) प्रजा के लिये (किम्) क्या (अमृतम्) अमृत [अमरपन मोक्षपद] को (न) नहीं (अवृणीत) अङ्गीकार किया ? (बृहस्पतिः) उस बड़े-बड़े व्यवहारों के रक्षक (ऋषिः) सन्मार्गदर्शक, (यमः) नियम वाले पुरुष ने (यज्ञम्) पूजनीय व्यवहार को (अतनुत) फैलाया है और (प्रियाम्) हित करने वाली (तन्वम्) उपकार-क्रिया को (आ) सब ओर से (रिरेच) संयुक्त किया है ॥४१॥

त्वमग्न ईडितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वा ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥४२॥

पदार्थ—(जातवेदः) हे बड़े धनी (अग्ने) विद्वान् ! (ईडितः) प्रशंसित (त्वम्) तू ने (हव्यानि) ग्रहण करनेयोग्य पदार्थों को (सुरभीणि) ऐश्वर्ययुक्त (कृत्वा) करके (अवाट्) पहुँचाया है । (पितृभ्यः) पितरों [पिता आदि रक्षक महात्माओं] को (स्वधया) अपनी धारण शक्ति से (प्रयता) शुद्ध [वा प्रयत्न से सिद्ध किये] (हवींषि) ग्रहण करने योग्य भोजन (प्र) अच्छे प्रकार (अदाः) तू ने दिये हैं, (ते) उन्होंने (अक्षन्) खाये हैं, (देव) हे विद्वान् ! (त्वम्) तू [भी] (अद्धि) खा ॥४२॥

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ॥४३॥

पदार्थ—(पितरः) हे पितरो ! (अरुणीनाम्) पानेयोग्य क्रियाओं [वा विद्याओं] की (उपस्थे) गोद में (आसीनासः) बैठे हुए तुम (दाशुषे) दाता (मर्त्याय) मनुष्य के लिये (रयिम्) धन (धत्त) धरो (ते) वे तुम (इह) यहां पर (पुत्रेभ्यः) पुत्रों को (तस्य) उस (वस्वः) धन का (प्र यच्छत) दान करो और (ऊर्जम्) पराक्रम (दधात) धारण करो ॥४३॥

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्तो हवींषि प्रयतानि बर्हिषि रयिं च नः सर्ववीरं दधात ॥४४॥

पदार्थ—(अग्निष्वात्ताः) हे अग्निविद्या [वा शारीरिक और आत्मिक तेज] के ग्रहण करने वाले (पितरः) पालन करनेवाले पितरो ! (इह) यहाँ (आ गच्छत) आओ और (सुप्रणीतयः) अत्युत्तम नीतियों वाले तुम (सदःसदः) सभा-सभा में (सदत) बैठो । और (बर्हिषि) वृद्धिकारक व्यवहार के बीच (प्रयतानि) शुद्ध [वा प्रयत्न से शुद्ध किये] (हवींषि) खानेयोग्य अन्नों को (अत्त) अवश्य खाओ, (च) और (नः) हमारे लिये (सर्ववीरम्) सब वीर पुरुषों के प्राप्त कराने हारे (रयिम्) धन को (धत्त) धारण करो ॥४४॥

उपहूता नः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥४५॥

पदार्थ—(सोम्यासः) ऐश्वर्य के योग्य [वा प्रियदर्शन] (पितरः) पितर लोग (नः) हमारे (बर्हिष्येषु) वृद्धियोग्य, (प्रियेषु) प्रिय (निधिषु) [रत्न-सुवर्ण आदि के] कोशों के निमित्त (उपहूताः) बुलाये गये हैं । (ते) वे (आ गमन्तु) आवें, (ते) वे (इह) यहां (श्रुवन्तु) सुनें, (ते) वे (अधि) अधिकारपूर्वक (ब्रुवन्तु) उपदेश करें और (अस्मान्) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें ॥४५॥

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा अनूजहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥४६॥

पदार्थ—(ये) जिन (नः) हमारे (पितुः) पिता के (पितरः) पालन करनेहारे पिता आदि ने और (ये) जिन (पितामहाः) दादा आदि वयोवृद्धों ने (वसिष्ठाः) अत्यन्त श्रेष्ठ होकर (सोमपीथम्) ऐश्वर्य की रक्षा को (अनूजहिरे) निरन्तर स्वीकार किया है । (संरराणः) अच्छे प्रकार दान करनेहारा (उशन्) कामना करनेहारा (यमः) संयमी सन्तान (तेभिः) उन (उशद्भिः) कामना करने हारों के साथ (हवींषि) लेने-देने योग्य भोजनों को (प्रतिकामम्) प्रत्येक कामना में (अत्तु) खावे ॥४६॥

ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः ।
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः सत्यैः कविभिर्ऋषिभिर्घर्मसद्भिः ॥४७॥

पदार्थ—(ये) जिन (जेहमानाः) प्रयत्न करते हुए, (होत्राविदः) वेदवाणी जानने वाले, (स्तोमतष्टासः) स्तुतियोग्य कर्मों में ढाले हुए पुरुषों ने (अर्कैः) पूजनीय व्यवहारों से (देवत्रा) उत्तम गुणों की (ततृषुः) तृष्णा की है । (अग्ने) हे विद्वान् ! (सहस्रम्) सहस्र प्रकार से (देववन्दैः) विद्वानों से वन्दना किये गये, (सत्यैः) सत्य शीलवाले, (कविभिः) बुद्धिमान, (घर्मसद्भिः) यज्ञ में बैठने वाले (ऋषिभिः) उन ऋषियों के साथ (आ याहि) तू आ ॥४७॥

ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेण ।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् परैः पूर्वैर्ऋषिभिर्घर्मसद्भिः ॥४८॥

पदार्थ—(ये) जो (सत्यासः) सत्यशील, (हविरदः) ग्राह्य अन्न खाने वाले, (हविष्पाः) देने-लेने योग्य पदार्थों के रक्षक पुरुष (देवैः) विजयी पुरुषों के सहित (तुरेण) वेगवान् (इन्द्रेण) बड़े ऐश्वर्यवाले जन के साथ (सरथम्) एक-रथ में [चलते हैं] । (अग्ने) हे विद्वान् ! (सुविदत्रेभिः) बड़े धनी, (परैः) श्रेष्ठ (पूर्वैः) पूर्वज, (घर्मसद्भिः) यज्ञ में बैठने वाले, (ऋषिभिः) उन ऋषियों के साथ (अर्वाङ्) सन्मुख होकर (आ याहि) तू आ ॥४८॥

उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।
ऊर्णम्रदाः पृथिवी दक्षिणावत एषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ॥४९॥

पदार्थ—(मातरम्) माता [के समान] (भूमिम्) आधार वाली (एताम्) इस (उरुव्यचसम्) बड़े फैलाव वाली, (सुशेवाम्) बड़ी सुख देनेवाली (पृथिवीम्) पृथिवी को (उप) आदर से (सर्प) तू प्राप्त कर । (पृथिवी) पृथिवी (दक्षिणावते) दक्षिणा वाले [प्रतिष्ठा] पुरुष के लिये (ऊर्णम्रदाः) ऊन के समान मृदुल है, (एषा) यह [पृथिवी] (प्रपथे) बड़े मार्ग में (पुरस्तात्) सामने से (त्वा) तेरी (पातु) रक्षा करे ॥४९॥

उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपसर्पणा ।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥५०॥

पदार्थ—(पृथिवि) हे पृथिवी तू (उत् श्वञ्चस्व) फूल जा [फूल के समान खिल जा], (मा नि बाधथाः) मत दबी जा, (अस्मै) इस [पुरुष] के लिये (सूपायना) अच्छे प्रकार पानेयोग्य और (सूपसर्पणा) भले प्रकार चलनेयोग्य (भव) हो । (यथा) जैसे (माता) माता (पुत्रम्) पुत्र को (सिचा) अपने आंचल से, [वैसे] (भूमे) हे भूमि ! (एनम्) इस [पुरुष] को [अपने रत्नों से] (अभि) सब ओर से (ऊर्णुहि) ढक ले ॥५०॥

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम् ।
ते गृहासो घृतश्चुतः स्योना विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥५१॥

पदार्थ—(उच्छ्वञ्चमाना) फूलती हुई (पृथिवी) पृथिवी (सु) अच्छे प्रकार (तिष्ठतु) ठहरी रहे, (सहस्रम्) सहस्र प्रकार से (मितः) फैले हुए स्थान [दुर्ग आदि] (हि) अवश्य (उप श्रयन्ताम्) आश्रय लेवें । (ते) वे (गृहासः) घर (घृतश्चुतः) घी से सींचने वाले, (स्योनाः) सुख करने हारे और (शरणाः) शरण देने वाले (विश्वाहा) सब दिन (अत्र) यहां पर (अस्मै) इस पुरुष के लिये (सन्तु) होवें ॥५१॥

उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत् परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम् ।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्ति ते तत्र यमः सादना ते कृणोतु ॥५२॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (पृथिवीम्) पृथिवी को (उत्) उत्तमता से (स्तभ्नामि) मैं [गृहस्थ] थांभता हूँ, (त्वत् परि) तेरे सब ओर (इमम्) इस (लोगम्) निवास स्थान को (निदधत्) दृढ़ जमाता हुआ (अहम्) मैं (मो रिषम्) कभी न दुःख पाऊँ । (एताम्) इस (स्थूणाम्) नीव [घर की मूल] को (पितरः) पितर [रक्षक महात्मा लोग] (ते) तेरे (धारयन्ति) धरते हैं, (तत्र) उस [नीव] पर (यमः) संयमी [शिल्पी जन] (ते) तेरे लिये (सादना) घरों को (कृणोतु) बनावें ॥५२॥

इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम् ।
अयं यश्चमसो देवपानस्तस्मिन् देवा अमृता मादयन्ताम् ॥५३॥

पदार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् ! (इमम्) इस (चमसम्) खानेयोग्य अन्न को (वि) बिगाड़ कर (मा जिह्वरः) मत नष्ट कर, वह [अन्न] (देवानाम्) विद्वानों का (उत) और (सोम्यानाम्) ऐश्वर्यवालों का (प्रियः) प्रिय है । (अयम्) यह (यः) जो (चमसः) अन्न (देवपानः) इन्द्रियों का रक्षक है, (तस्मिन्) उस में (अमृताः) अमर [न मरे हुए पुरुषार्थी] (देवाः) व्यवहार-कुशल लोग (मादयन्ताम्) [सबको] तृप्त करें ॥५३॥

अथर्वा पूर्णं चमसं यमिन्द्रायाबिभर्वाजिनीवते । तस्मिन्
कृणोति सुकृतस्य भक्षं तस्मिन्निन्दुः पवते विश्वदानीम् ॥५४॥

पदार्थ—(अथर्वा) निश्चल परमात्मा ने (यम्) जिस (पूर्णम्) पूरे (चमसम्) अन्न को (वाजिनीवते) विज्ञानयुक्त क्रियावाले (इन्द्राय) बड़े ऐश्वर्य-

वान् पुरुष के लिये (**भरितः**) भरा है । (**तस्मिन्**) उस [अन्न] में (**इन्द्र**) ऐश्वर्यवान् ! पुरुष (**सुकृतस्य**) सुकर्म का (**भक्षम्**) सेवन [वा भोग] (**कृणोतु**) करता है, और (**तस्मिन्**) उसी [अन्न] में वह (**विश्ववारामीम्**) समस्त दानों की क्रिया को (**पवते**) शुद्ध करता है ॥५४॥

यत् ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः ।

अग्निष्टद् विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥५५॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (**यत**) जो कुछ (**ते**) तेरा [अङ्ग] (**कृष्णः**) काले (**शकुनः**) पक्षी [काक आदि] (**पिपीलः**) चीउँटा, (**सर्पः**) सर्प, (**उत वा**) अथवा (**श्वापदः**) कुत्ते के समान पाँव वाले जङ्गली पशु [व्याघ्र, शृगाल आदि] ने (**आतुतोद**) घायल कर दिया है, (**तत्**) उस [घायल अङ्ग] को (**विश्वात**) सर्वरोगभक्षक (**अग्निः**) आग (**अगदम्**) नीरोग (**कृणोतु**) करे, (**च**) और (**यः**) जिस (**सोमः**) ऐश्वर्य [प्रभाव] ने (**ब्राह्मणान्**) बड़े विद्वानों में (**आविवेश**) प्रवेश किया है, [वह भी उसे नीरोग करे] ॥५५॥

पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं पयः ।

अपां पयसो यत् पयस्तेन मा सह शुम्भतु ॥५६॥

पदार्थ—(**ओषधयः**) ओषधियाँ [अन्न, सोमलता आदि] (**पयस्वतीः**) सार वाली [होवें], (**मामकम्**) मेरा (**पयः**) ज्ञान (**पयस्वत्**) सार वाला [होवे] । और (**अपाम्**) जलों के (**पयसः**) सार का (**यत्**) जो (**पयः**) सार है, (**तेन सह**) उस के साथ (**मा**) मुझे (**शुम्भतु**) वह [विद्वान्] शोभायमान करे ॥५६॥

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् ।

अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥५७॥

पदार्थ—(**इमाः**) ये [विदुषी] (**नारीः**) नारियाँ (**अविधवाः**) सधवा [मनुष्यों वाली] और (**सुपत्नीः**) धार्मिक पतियों वाली होकर (**आञ्जनेन**) यथावत मेल से और (**सर्पिषा**) घी आदि [सारपदार्थ] से (**सं स्पृशन्ताम्**) संयुक्त रहें । (**अनश्रवः**) बिना आँसुओं वाली, (**अनमीवाः**) बिना रोगों वाली, (**सुरत्नाः**) सुन्दर-सुन्दर रत्नों वाली (**जनयः**) मातायें (**अग्रे**) आगे-आगे (**योनिम्**) मिलने के स्थान [घर, सभा आदि] में (**आ रोहन्तु**) चढ़ें ॥५७॥

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।

हित्वावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥५८॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (**यमेन सम्**) नियम [ब्रह्मचर्य आदि व्रत] के साथ (**इष्टापूर्तेन**) यज्ञ, वेदाध्ययन तथा अन्नदान आदि पुण्य कर्म में (**परमे**) सब से ऊँचे (**व्योमन्**) विशेष रक्षा पद में [वर्तमान] (**पितृभिः**) पितरों [पालक महात्माओं] से (**सं गच्छस्व**) तू मिल । (**अवद्यम्**) निन्दित कर्म [अज्ञान] को (**हित्वा**) छोड़कर (**पुनः**) फिर (**अस्तम्**) घर (**आ इहि**) तू आ और (**सुवर्चाः**) बड़ा तेजस्वी होकर (**तन्वा**) उपकार शक्ति के साथ (**सं गच्छताम्**) आप मिलें ॥५८॥

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम् ।

तेभ्यः स्वराडसुनीतिर्नो अद्य यथावशं तन्वः कल्पयाति ॥५९॥

पदार्थ—(**ये**) जो पुरुष (**नः**) हमारे (**पितुः**) पिता के (**पितरः**) पिता के समान हैं, और (**ये**) जो [उस के] (**पितामहाः**) दादे के तुल्य हैं, और (**ये**) जो (**उरु**) चौड़े (**अन्तरिक्षम्**) आकाश में [विद्याबल से विमान आदि द्वारा] (**आविविशुः**) प्रविष्ट हुए हैं, (**तेभ्यः**) उन [पितरों] के लिये (**स्वराट्**) स्वयं राजा (**असुनीतिः**) प्राणदाता परमेश्वर (**नः**) हमारे (**तन्वः**) शरीरों को (**अद्य**) अब (**यथावशम्**) [हमारी] कामना के अनुकूल (**कल्पयाति**) समर्थ करे ॥५९॥

शं ते नीहारो भवतु शं ते प्रुष्वाव शीयताम् ।

शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति ।

मण्डूक्यप्सु शं भुव इमं स्वग्निं शमय ॥६०॥

पदार्थ—(**ते**) तेरे लिये (**नीहारः**) कुहरा (**शम्**) शान्तिदायक (**भवतु**) होवे, (**ते**) तेरे लिये (**प्रुष्वा**) वृष्टि (**शम्**) शान्ति से (**अवशीयताम्**) नीचे गिरे । (**शीतिके**) हे शीतल स्वभाववाली (**शीतिकावति**) हे शीतल क्रियाओंवाली ! (**ह्लादिके**) हे आनन्द देनेवाली (**ह्लादिकावति**) हे आनन्दयुक्त क्रियाओंवाली ! [प्रजा अर्थात् प्रत्येक स्त्री पुरुष] (**अप्सु**) जल में (**मण्डूकी**) मेढुकी [के समान] तू (**शम्**) शान्त (**भुवः**) हो, और (**इमम्**) इस (**अग्निम्**) आग [महासन्ताप] को (**सु**) अच्छे प्रकार (**शमय**) शान्त कर ॥६०॥

विवस्वान् नो अभयं कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः ।

इहेमे वीरा बहवो भवन्तु गोमदश्ववन्मय्यस्तु पुष्टम् ॥६१॥

पदार्थ—(**विवस्वान्**) प्रकाशमय परमेश्वर (**नः**) हमारे लिये (**अभयम्**) अभय (**कृणोतु**) करे, (**यः**) जो [परमात्मा] (**सुत्रामा**) बड़ा रक्षक (**जीरदानुः**) वेग का देनेवाला, (**सुदानुः**) बड़ा उदार है (**इह**) यहाँ पर (**इमे**) यह सब (**वीराः**) वीर लोग (**बहवः**) बहुत (**भवन्तु**) होवें, (**गोमत्**) उत्तम गौओं से युक्त और (**अश्ववत्**) उत्तम घोड़ों से युक्त (**पुष्टम्**) पोषण (**मयि**) मुझ में (**अस्तु**) होवे ॥६१॥

विवस्वान् नो अमृतत्वे दधातु परैतु मृत्युरमृतं न ऐतु ।

इमान् रक्षतु पुरुषाना जरिम्णो मो ष्वेषामसवो यमं गुः ॥६२॥

पदार्थ—(**विवस्वान्**) प्रकाशमय परमेश्वर (**नः**) हमें (**अमृतत्वे**) अमरपन [यश] के बीच (**दधातु**) रक्खे, (**मृत्युः**) [निर्धनता आदि दुःख] (**परा**) दूर (**एतु**) जावे, (**अमृतम्**) अमरण [धनाढ्यता] (**नः**) हम में (**आ एतु**) आवे । वह [परमेश्वर] (**इमान्**) इन (**पुरुषान्**) पुरुषों को (**जरिम्णः**) जीवन की हानि से (**आ**) सब प्रकार (**रक्षतु**) बचावे, (**एषाम्**) इन के (**असवः**) प्राण (**यमम्**) मृत्यु को (**सु**) कष्ट के साथ (**मो गुः**) कभी न जावें ॥६२॥

यो दध्रे अन्तरिक्षे न मह्ना पितॄणां कविः प्रमतिर्मतीनाम् ।

तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ॥६३॥

पदार्थ—(**यः**) जिस [परमात्मा] ने (**पितॄणाम्**) पितरों [पालक महात्माओं] में (**कविः**) बुद्धिमान् और (**मतीनाम्**) बुद्धिमानों में (**प्रमतिः**) बड़ा बुद्धिमान होकर (**अन्तरिक्षे**) आकाश के बीच (**न**) प्रबन्ध के साथ (**मह्ना**) अपनी महिमा से [सब लोकों को] (**दध्रे**) धारण किया है । (**तम्**) उस [परमात्मा] का (**विश्वमित्राः**) सब के मित्र होकर तुम (**हविर्भिः**) आत्मसमर्पणों से (**अर्चत**) पूजो (**सः**) वह (**यमः**) न्यायकारी परमेश्वर (**नः**) हमें (**प्रतरम्**) अधिक उत्तमता से (**जीवसे**) जीने के लिये (**धात्**) धारण करे ॥६३॥

आ रोहत दिवमुत्तमामृषयो मा बिभीतन । सोमपाः सोमपायिन

इदं वः क्रियते हविरगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥६४॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (**उत्तमाम्**) उत्तम (**दिवम्**) विद्या में (**आ रोहत**) तुम ऊँचे होओ, (**ऋषयः**) हे ऋषियो ! [सन्मार्गदर्शकों] (**मा बिभीतन**) मत भय करो । तुम (**सोमपाः**) शान्ति रस पीने वाले और (**सोमपायिनः**) शान्ति रस पिलानेवाले हो, (**वः**) तुम्हारे लिये (**इदम्**) यह (**हविः**) देने-लेने योग्य कर्म (**क्रियते**) किया जाता है, (**उत्तमम्**) सब से उत्तम (**ज्योतिः**) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर को (**अगन्म**) हम सब प्राप्त होवें ॥६४॥

प्र केतुना बृहता भात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।

दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥६५॥

पदार्थ—(**अग्निः**) अग्निसमान तेजस्वी राजा (**बृहता**) बड़ी (**केतुना**) बुद्धि के साथ (**प्र भाति**) चमकता जाता है, [जैसे] (**वृषभः**) वृष्टि करानेवाला [सूर्य का ताप] (**रोदसी**) आकाश और पृथिवी में (**आ**) व्यापकर (**रोरवीति**) [बिजुली, मेघ, वायु आदि द्वारा] सब ओर से गरजता है । और (**दिवः**) सूर्य लोक के (**चित्**) ही (**अन्तात्**) अन्त से (**उपमाम्**) [हमारी] निकटता को (**उत्**) उत्तमता से (**आनट्**) वह [सूर्य का ताप] व्यापता है, [वैसे ही] (**महिषः**) वह पूजनीय राजा (**अपाम्**) प्रजाओं की (**उपस्थे**) गोद में (**ववर्ध**) बढ़ता है ॥६५॥

नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।

हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥६६॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (**यत्**) जैसे (**नाके**) आकाश में (**उप पतन्तम्**) उड़ते हुए (**सुपर्णम्**) सुन्दर पंखवाले [गरुड आदि] पक्षी को, [वैसे ही] (**हिरण्यपक्षम्**) तेज ग्रहण करने वाले, (**वरुणस्य**) श्रेष्ठ गुण के (**दूतम्**) पहुँचाने वाले, (**यमस्य**) न्याय के (**योनौ**) घर में (**शकुनम्**) शक्तिमान् और (**भुरण्युम्**) पालन करनेवाले (**त्वा**) तुझ को (**हृदा**) हृदय से (**वेनन्तः**) चाहने वाले पुरुष (**अभ्यचक्षत**) सब ओर से देखते हैं ॥६६॥

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।

शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥६७॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे परम ऐश्वर्यवाले राजन् ! तू (**नः**) हमारे लिये (**क्रतुम्**) बुद्धि (**आ भर**) भर दे, (**यथा**) जैसे (**पिता**) पिता (**पुत्रेभ्यः**) पुत्रों [सन्तानों] के लिये । (**पुरुहूत**) हे बहुत प्रकार बुलाये गये [राजन् !]

(अस्मिन्) इस (वासरे) समय वा मार्ग मे (नः) हमें (शिक्ष) शिक्षा दे, [जिस से] (जीवाः) हम जीव लोग (ज्योतिः) प्रकाश को (अशीमहि) पावें ॥६७॥

अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ।

ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥६८॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (यान्) जिन (अपूपापिहितान्) अपूपों [शुद्ध पके हुए भोजनों मालपूए, पूड़ी आदि] को ढककर रखने वाले (कुम्भान्) पात्रों को (ते) तेरे लिये (देवाः) विद्वानों ने (अधारयन्) रक्खा है । (ते) वे [भोजन पदार्थ] (ते) तेरे लिये (स्वधावन्तः) आत्मधारण शक्तिवाले, (मधुमन्तः) मधुर गुणवाले और (घृतश्चुतः) घी [सार रस] के सींचने वाले (सन्तु) होवें ॥६८॥

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।

तास्ते सन्तु विभ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥६९॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (याः) जिन (तिलमिश्राः) उद्योग से मिली हुई, (स्वधावतीः) आत्मधारण शक्तिवाली (धानाः) पोषण क्रियाओं को (अनुकिरामि) मैं अनुकूल रीति से फैलाता हूँ । (ताः) वे [पोषण क्रियायें] (ते) तेरे लिये (विभ्वीः) सर्वव्यापिनी और (प्रभ्वीः) प्रभुता वाली (सन्तु) होवें, और (ताः) उन [पोषणक्रियाओं] को (ते) तेरे लिये (यमः) संयमी (राजा) राजा [शासक पुरुष] (अनु) अनुकूल (मन्यताम्) जाने ॥६९॥

पुनर्देहि वनस्पते य एष निहितस्त्वयि ।

यथा यमस्य सादन आसातै विदथा वदन् ॥७०॥

पदार्थ—(वनस्पते) हे सेवकों के रक्षक [परमात्मन् !] [वह श्रेष्ठ गुण] (पुनः) निश्चय करके (देहि) दे, (यः एषः) जो यह [श्रेष्ठ गुण] (त्वयि) तुझ मे (निहितः) दृढ़ रक्खा है । (यथा) जिस से यह [जीव] (यमस्य) न्याय के (सदने) घर में (विदथा) ज्ञानों को (वदन्) बताता हुआ (आसातै) बैठे ॥७०॥

आ रभस्व जातवेदस्तेजस्वद्धरो अस्तु ते ।

शरीरमस्य सं दहाथैनं धेहि सुकृतामु लोके ॥७१॥

पदार्थ—(जातवेदः) हे बड़े ज्ञानोंवाले जीव ! [श्रम को] (आ रभस्व) आरम्भ कर, (ते) तेरा (हरः) ग्रहण सामर्थ्य (तेजस्वत्) तेज वाला (अस्तु) होवे । (अस्य) इस [प्राणी] के (शरीरम्) शरीर को [ब्रह्मचर्य आदि तप में] (सम्) यथावत् (दह) तपा, (अथ) फिर (एनम्) इस [प्राणी] को (सुकृताम्) सुकर्मियों के (लोके) समाज में (उ) अवश्य (धेहि) रख ॥७१॥

ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरश्च ये ।

तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु शतधारा व्युन्दती ॥७२॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (ये) जो (ते) तेरे (पूर्वे) प्राचीन (च) और (ये) जो (अपरे) अर्वाचीन (पितरः) पितर [पालक महात्मा] (परागताः) प्रधानता से चले हैं । (तेभ्यः) उन के लिये (घृतस्य) जल की (कुल्या) कुल्या [कृत्रिम नाली] (शतधारा) सैकड़ों धाराओं वाली, (व्युन्दती) उमड़ती हुई (एतु) चले ॥७२॥

एतदा रोह वय उन्मृजानः स्वा इह बृहदु दीदयन्ते ।

अभि प्रेहि मध्यतो माप हास्थाः पितॄणां लोकं प्रथमो यो अत्र ॥७३॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (एतत्) इस (वयः) जीवन को (उन्मृजानः) शुद्ध करता हुआ तू (आ रोह) ऊँचा चढ़, (ते) तेरे (स्वाः) बान्धव लोग (इह) यहाँ पर (बृहत्) बहुत (हि) ही (दीदयन्ते) प्रकाशमान हैं । तू (अभि) सब ओर (प्र) आगे को (इहि) चल, (मध्यतः) बीच से (पितॄणाम्) पितरों के (लोकम्) उस समाज को (अप) बिलगा कर (मा हास्थाः) मत जा, (यः) जो [समाज] (अत्र) यहाँ पर (प्रथमः) मुख्य है ॥७३॥

卐 इति तृतीयोऽनुवाकः 卐

卐

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ॥४॥ 卐

१—८९ अथर्वा । यम, मन्त्रोक्ता, ८१ पितरः, ८८ अग्निः, ८९ चन्द्रमाः । त्रिष्टुप्, १,४,७,१४,३६,६० भुरिक्, २,५,११,२९,५०, ५१, ५८ जगती; ३ पञ्चपदा भुरिगतिजगती, ६,९,१३, पञ्चपदा शक्वरी (९ भुरिक्; १३ त्र्यवसाना), ८ पञ्चपदातिशक्वरी; १२ महाबृहती, १६-२४ त्रिपदा भुरिक् महाबृहती, २६ ३३,४३ उपरिष्टाद् बृहती (२६ विराट्); २७ याजुषी गायत्री, २५,३१,३२,३८,४१,४२,५५-५७ ५९,६१ अनुष्टुप्; (५६ ककुम्मती), ३९,६२ ६३ आस्तारपंक्ति, (३९ पुरोविराट्, ६२ भुरिक् ६३ स्वराट्), ४९ अनुष्टुब्गर्भा त्रिष्टुप्, ५३ पुरोविराट् सत पंक्तिः; ६६ त्रिपदा स्वराड् गायत्री, ६७ द्विपदार्ची अनुष्टुप्, ६८,७१ आसुरी अनुष्टुप्, ७२, ७४ ७९ आसुरी पंक्ति, ७५ आसुरी गायत्री ७६ आसुरी उष्णिक्, ७७ दैवी जगती, ७८ आसुरी त्रिष्टुप्, ८० आसुरी जगती, ८१ प्राजापत्यानुष्टुप्, ८२ साम्नी बृहती ८३, ८४ साम्नी त्रिष्टुप्, ८५ आसुरी बृहती, (६७,६८,७१-८६ एकावसाना), ८६,८७ चतुष्पदा उष्णिक्; (८६ ककुम्मती, ८७ शंकुमती), ८८ त्र्यवसाना पथ्यापंक्ति, ८९ पंचपदा पथ्यापंक्ति ।

आ रोहत जनित्रीं जातवेदसः पितृयाणैः सं व आ रोहयामि ।

अवाड्ढव्येषितो हव्यवाह ईजानं युक्ताः सुकृतां धत्त लोके ॥१॥

पदार्थ—(जातवेदसः) बड़े ज्ञान वाले तुम (जनित्रीम्) जगत् की जननी [परमात्मा] को (आ) व्याप कर (रोहत) प्रकट होओ, (पितृयाणैः) पितरों [पालक महात्माओं] के मार्गों मे (सम्) मिलकर (वः) तुम्हें (आ रोहयामि) मैं [विद्वान्] ऊँचा करता हूँ । (इषितः) प्रिय (हव्यवाह्) देने लेने योग्य पदार्थों के पहुँचाने वाले परमेश्वर ने (हव्या) देने लेने योग्य पदार्थ (अवाट्) पहुँचाये हैं, (ईजानम्) यज्ञ कर चुकने वाले पुरुष को (युक्ताः) मिले हुए तुम (सुकृताम्) सुकर्मियों के (लोके) समाज मे (धत्त) रक्खो ॥१॥

देवा यज्ञमृतवः कल्पयन्ति हविः पुरोडाशं स्रुचो यज्ञायुधानि ।

तेभिर्याहि पथिभिर्देवयानैर्यैरीजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम् ॥२॥

पदार्थ—(देवाः) विद्वान् लोग और (ऋतवः) सब ऋतुएँ (यज्ञम्) यज्ञ [हवन आदि श्रेष्ठ व्यवहार] (हविः) [होमीय वस्तु], (पुरोडाशम्) पुरोडाश [मोहनभोग आदि], (स्रुचः) स्रुचाओं [हवन के चमचों] और (यज्ञायुधानि) यज्ञ के अस्त्र शस्त्रों [उलूखल, मूसल, सूप आदि] को (कल्पयन्ति) रचते हैं । [हे मनुष्य !] (तेभिः) उन (देवयानैः) विद्वानों के चलने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (याहि) तू चल, (यैः) जिन [मार्गों] से (ईजानाः) यज्ञ कर चुकने वाले लोग (स्वर्गम्) सुख पहुँचाने वाले (लोकम्) समाज मे (यन्ति) पहुँचते हैं ॥२॥

ऋतस्य पन्थामनु पश्य साध्वङ्गिरसः सुकृतो येन यन्ति । तेभिर्याहि पथिभिः स्वर्गं यत्रादित्या मधु भक्षयन्ति तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व ॥३॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (ऋतस्य) सत्य धर्म के (पन्थाम्) मार्ग को (साधु) साधुपन से [कुशलता से] (अनु) लगातार (पश्य) देख, (येन) जिस [मार्ग] से (अङ्गिरसः) महाविद्वान् (सुकृतः) सुकर्मी लोग (यन्ति) चलते हैं । (तेभिः) उन (पथिभिः) मार्गों से (स्वर्गम्) सुख पहुँचाने वाले पद को (याहि) प्राप्त हो, (यत्र) जिन [मार्गों] मे (आदित्याः) अखण्ड व्रतधारी विद्वान् लोग (मधु) ज्ञान रस को (भक्षयन्ति) भोगते हैं, और (तृतीये) तीसरे [दोनों जीव और प्रकृति से भिन्न] (नाके) सुखस्वरूप [वा सब के नायक] परमात्मा मे (अधि) अधिकारपूर्वक (वि श्रयस्व) फैलकर विश्राम कर ॥३॥

त्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपि श्रिताः ।

स्वर्गा लोका अमृतेन विष्ठा इषमूर्जं यजमानाय दुह्राम् ॥४॥

पदार्थ—(त्रयः) तीन [ब्रह्म, जीव और प्रकृति] (सुपर्णाः) सुन्दर पालन व पूर्ति वाले पदार्थ [अथवा सुन्दर पंख वाले पक्षियों के समान] (उपरस्य) जल के देने वाले मेघ के (मायू) गर्जन में, (नाकस्य) लोकों के चलाने वाले सूर्य के (पृष्ठे) ऊँचे भाग पर और (विष्टपि) विविध प्रकार थामने वाले आकाश मे (अधि) अधिकारपूर्वक (श्रिताः) आश्रित हैं । (अमृतेन) अमर परमात्मा के साथ (विष्ठाः) विशेष करके ठहरे हुए (स्वर्गाः) सुख पहुँचाने वाले (लोकाः) समाज (इषम्) ज्ञान को और (ऊर्जम्) बल को (यजमानाय) यजमान [श्रेष्ठ कर्म करने वाले] के लिये (दुह्राम्) भरपूर करें ॥४॥

जुहूर्दाधार द्यामुपभृदन्तरिक्षं ध्रुवा दाधार पृथिवीं प्रतिष्ठाम् ।
प्रतीमां लोका घृतपृष्ठाः स्वर्गाः कामकामं यजमानाय दुह्राम् ॥५॥

पदार्थ—(जुहूः) ग्रहण [आकर्षण] करने वाली शक्ति [परमात्मा] ने (द्याम्) प्रकाशमान सूर्य को, (उपभृत्) समीप के धारण करने वाली [उसी] शक्ति ने (अन्तरिक्षम्) भीतर दिखाई देने वाले आकाश को (दाधार) धारण किया है, और (ध्रुवा) [उसी] निश्चल शक्ति ने (प्रतिष्ठाम्) आश्रय स्थान, (पृथिवीम्) पृथिवी को (दाधार) धारण किया है । (इमाम्) इसी [शक्ति परमात्मा] मे (प्रति) व्याप कर (घृतपृष्ठाः) प्रकाश को ऊपर रखने वाले [सुन्दर ज्योतिवाले] (स्वर्गाः) सुख पहुँचाने वाले (लोकाः) लोक [समाज वा अधिकार] (कामकामम्) प्रत्येक कामना को (यजमानाय) यजमान [श्रेष्ठ व्यवहार करने वाले] के लिए (दुह्राम्) भरपूर करें ॥५॥

ध्रुव आ रोह पृथिवीं विश्वभोजसमन्तरिक्षमुपभृदा क्रमस्व । जुहु द्यां गच्छ यजमानेन साकं स्रुवेण वत्सेन दिशः प्रपीनाः सर्वा धुक्ष्वाहृणीयमानः ॥६॥

पदार्थ—(ध्रुवे) हे निश्चल शक्ति ! [परमात्मा] (विश्वभोजसम्) सब को पालने वाली (पृथिवीम्) पृथिवी में (आ) व्याप कर (रोह) प्रकट हो, (उपभृत्) हे समीप से धारण करनेवाली शक्ति ! (अन्तरिक्षम्) भीतर दिखाई देने वाले आकाश मे (आ) व्यापकर (क्रमस्व) प्राप्त हो । (जुहु) हे ग्रहण [आकर्षण] करने वाली शक्ति ! (यजमानेन साकम्) यजमान [श्रेष्ठ व्यवहार करने वाले] के साथ (द्याम) प्रकाशमान सूर्य को (गच्छ) प्राप्त हो, [हे यजमान !] (अहृणीयमान) सकोच न करता हुआ तू (वत्सेन) बछड़े रूप (स्रुवेण) ज्ञान के साथ (सर्वाः) सब (प्रपीनाः) बढ़ती हुई (दिशः) दिशाओं को (धुक्ष्व) दुह ॥६॥

तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति ।
अत्रादधुर्यजमानाय लोकं दिशो भूतानि यदकल्पयन्त ॥७॥

पदार्थ—(तीर्थैः) तरने के साधनो [शास्त्रो वा घाटो आदि] द्वारा [मनुष्य] (प्रवतः) बहुत गतियो वाली (महीः) बड़ी [विपत्तियो व नदियो] को [उस प्रकार से] (तरन्ति) पार करते है, (येन) जिससे (यज्ञकृतः) यज्ञ करनेवाले, (सुकृतः) सुकर्मी लोग (यन्ति) चलते हैं (इति) ऐसा [निश्चय है] । (अत्र) यहाँ [ससार मे] (यजमानाय) यजमान के लिये (लोकम्) स्थान (अदधुः) उन [पुण्यात्माओ] ने दिया है, (यत्) जब कि (दिशः) दिशाओ को (भूतानि) सत्ता वाले प्राणियो ने (अकल्पयन्त) समर्थ बनाया है ॥७॥

अङ्गिरसामयनं पूर्वो अग्निरादित्यानामयनं गार्हपत्यो दक्षिणानामयनं दक्षिणाग्निः । महिमानमग्नेर्विहितस्य ब्रह्मणा समङ्गः सर्व उप याहि शग्मः ॥८॥

पदार्थ—(अङ्गिरसाम्) महर्षियो का (अयनम्) मार्ग (पूर्वः) पूर्वीय (अग्निः) अग्नि है, (आदित्यानाम्) [उन्ही] अखण्ड व्रतवाले ब्रह्मचारियो का (अयनम्) मार्ग (गार्हपत्य) गृहपति की अग्नि है, (दक्षिणानाम्) [उन्हीं] कार्यकुशलो का (अयनम्) मार्ग (दक्षिणाग्नि) दक्षिणवाली अग्नि है । (ब्रह्मणा) ब्रह्मा [चारो वेद जानने वाले] द्वारा (विहितस्य) स्थापित (अग्नेः) अग्नि की (महिमानम्) महिमा को (समङ्गः) दृढाङ्ग, (सर्वः) सम्पूर्ण [चित्तवाला] और (शग्मः) शक्तिमान् होकर तू (उप याहि) सर्वथा प्राप्त कर ॥८॥

पूर्वो अग्निष्ट्वा तपतु शं पुरस्ताच्छं पश्चात् तपतु गार्हपत्यः ।
दक्षिणाग्निष्टे तपतु शर्म वर्मोत्तरतो मध्यतो अन्तरिक्षाद् दिशोदिशो अग्ने परि पाहि घोरात् ॥९॥

पदार्थ—[हे विद्वान् !] (पूर्वः) पूर्ववासी (अग्निः) अग्नि (त्वा) तुझे (शम्) आनन्द के साथ (पुरस्तात्) आगे से (तपतु) प्रतापी [ऐश्वर्यवान्] करे, (गार्हपत्यः) गृहपति की अग्नि [तुझे] (शम्) सुख के साथ (पश्चात्) पीछे से (तपतु) प्रतापी करे । (दक्षिणाग्नि) दक्षिणीय अग्नि (ते) तेरे लिये (शर्म) शरण और (वर्म) कवच होकर (तपतु) प्रतापी करे । (अग्ने) हे सर्वव्यापक परमात्मन् ! (उत्तरतः) ऊपर से (मध्यतः) मध्य से, (अन्तरिक्षात्) आकाश से और (दिशोदिशः) प्रत्येक दिशा से [उस उपासक को] (घोरात्) घोर [भयानक कष्ट] से (परि) सर्वथा (पाहि) बचा ॥९॥

यूयमग्ने शंतमाभिस्तनूभिरीजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
अश्वा भूत्वा पृष्टिवाहो वहाथ यत्र देवैः सधमादं मदन्ति ॥१०॥

पदार्थ—(अग्ने = अग्नय) हे अग्नियो ! (यूयम्) तुम (पृष्टिवाहः) पीठ पर ले चलने वाले (अश्वाः) घोडो के समान (भूत्वा) होकर (शंतमाभिः) अत्यन्त शान्ति युक्त (तनूभिः) उपकार क्रियाओ से (ईजानम्) यज्ञ कर चुकने वाले पुरुष को (स्वर्गम्) सुख पहुचाने वाले (लोकम् अभि) समाज मे (वहाथ) ले जाओ, (यत्र) जहाँ पर (देवैः) विद्वानो के साथ (सधमादम्) संगति सुख को (मदन्ति) वे [विद्वान्] भोगते हैं ॥१०॥

शमग्ने पश्चात् तप शं पुरस्ताच्छमुत्तराच्छमधरात् तपैनम् ।
एकस्त्रेधा विहितो जातवेदः सम्यगेनं धेहि सुकृतामु लोके ॥११॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि ! (एनम्) इस [विद्वान्] को (शम्) शान्ति के साथ (पश्चात्) पीछे से (शम्) शान्ति के साथ (पुरस्तात्) सामने से (तप) प्रतापी कर, (शम्) शान्ति के साथ (उत्तरात्) ऊपर से और (शम्) शान्ति के साथ (अधरात्) नीचे से (तप) प्रतापी कर । (जातवेदः) हे उत्पन्न पदार्थों मे विद्यमान [अग्नि] (एकः) अकेला होकर (त्रेधा) तीन प्रकार से] पूर्वाग्नि, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि रूप से] (विहित) स्थापित किया हुआ तू (एनम्) इस [पुरुष] को (सुकृताम्) सुकर्मियो के (उ) ही (लोके) समाज मे (सम्यक्) ठीक रीति से (धेहि) रख ॥११॥

शमग्नयः समिद्धा आ रभन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥१२॥

पदार्थ—(समिद्धाः) यथाविधि प्रकाशित की हुई और (जातवेदसः) उत्पन्न पदार्थों मे विद्यमान (अग्नयः) अग्नियाँ (प्राजापत्यम्) प्रजापति परमात्मा को देवता मानने वाले (मेध्यम्) पवित्र पुरुष का (शम्) शान्ति के साथ (आ) सब ओर से (रभन्ताम्) उत्साही करें । और [उस को] (इह) यहाँ (शृतम्) परिपक्व [दृढ स्वभाव] (कृण्वन्तः) करती हुई [अग्नियाँ] (मा अव चिक्षिपन्) कभी न गिरने देवें ॥१२॥

यज्ञ एति विततः कल्पमान ईजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
तमग्नयः सर्वहुतं जुषन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥१३॥

पदार्थ—(विततः) फैला हुआ (यज्ञः) यज्ञ (कल्पमानः) समर्थ होकर (ईजानम्) यज्ञ कर चुकनेवाले पुरुष को (स्वर्गम्) सुख पहुँचाने वाले (लोकम् अभि) समाज मे (एति) पहुँचाता है । (जातवेदसः) उत्पन्न पदार्थों मे विद्यमान (अग्नयः) अग्नियाँ (तम्) उस (सर्वहुतम्) पूर्ण आहुति दे चुकने वाले (प्राजापत्यम्) प्रजापति परमात्मा को देवता मानने वाले, (मेध्यम्) पवित्र पुरुष को (जुषन्ताम्) सन्तुष्ट करें । और [उस को] (इह) यहाँ (शृतम्) परिपक्व [दृढ स्वभाव] (कृण्वन्तः) करती हुई [अग्नियाँ] (मा अव चिक्षिपन्) कभी न गिरने दें ॥१३॥

ईजानश्चितमारुक्षदग्निं नाकस्य पृष्ठाद् दिवमुत्पतिष्यन् ।
तस्मै प्र भाति नभसो ज्योतिषीमान्त्स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानः ॥१४॥

पदार्थ—(ईजानः) यज्ञ कर चुकनेवाले पुरुष ने (नाकस्य) अत्यन्त सुख के (पृष्ठात्) ऊपरी स्थान से (दिवम्) प्रकाशस्वरूप परमात्मा की ओर (उत्पतिष्यन्) चढ़ने की इच्छा करके, (चितम्) चुनी हुई (अग्निम्) अग्नि को (आ) सब ओर (अरुक्षत्) प्रकट किया है । (तस्मै) उस (सुकृते) सुकृती पुरुष के लिये (नभसः) आकाश से [खुले स्थान से] (ज्योतिषीमान्) ज्योतिष्मती बुद्धिवाला (स्वर्गः) सुख पहुँचानेवाला, (देवयानः) विद्वानो के चलनेयोग्य (पन्थाः) मार्ग (प्र भाति) चमकता जाता है ॥१४॥

अग्निर्होताध्वर्युष्टे बृहस्पतिरिन्द्रो ब्रह्मा दक्षिणतस्ते अस्तु ।
हुतोऽयं संस्थितो यज्ञ एति यत्र पूर्वमयनं हुतानाम् ॥१५॥

पदार्थ—[हे यजमान !] (ते) तेरे लिये (अग्निः) [एक] पुरुष विद्वान् (होता) होता [मन्त्रो से आहुति देनेवाला], (बृहस्पतिः) [एक] बृहस्पति [विद्वानो का पालनकर्ता] (अध्वर्युः) अध्वर्यु [यज्ञ कराने वाला] (इन्द्रः) [एक] परम ऐश्वर्यवान् महाविद्वान् (ब्रह्मा) ब्रह्मा [चारों वेद जाननेवाला यज्ञनिरीक्षक पुरुष] (ते) तेरी (दक्षिणतः) दाहिनी ओर (अस्तु) होवे । (अयम्) यह (हुतः) आहुति दिया गया और (संस्थितः) पूरा किया गया (यज्ञः) यज्ञ (एति) [वहाँ] जाता है, (यत्र) जहाँ (हुतानाम्) आहुति दिये हुए [यज्ञों] का (पूर्वम्) मुख्य (अयनम्) जाना होता है ॥१५॥

अपूपवान् क्षीरवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥१६॥

पदार्थ—(अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुए भोजनों-मालपूए पूड़ी आदि] वाला, (क्षीरवान्) दूध वाला (चरुः) चरु [स्थालीपाक] (इह) यहां [वेदी पर] (आ सीदतु) आवे । (लोककृतः) समाजों के करने वाले, (पथिकृतः) मार्गों के बनाने वाले [तुम लोगों] को (यजामहे) हम पूजते हैं, (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागाः) भाग लेने वाले (इह) यहां पर (स्थ) हो ॥१६॥

अपूपवान् दधिवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो

यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥१७॥

पदार्थ—(अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुए भोजनों-मालपूए, पूड़ी आदि] वाला, (दधिवान्) पुष्टिकारक पदार्थों वाला (चरु) चरु [स्थालीपाक] (इह) यहां [वेदी पर] (आ सीदतु) आवे । (लोककृत) समाजों के करने वाले, (पथिकृत) मार्गों के बनाने वाले [तुम लोगों] को (यजामहे) हम पूजते हैं, (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागाः) भाग लेने वाले (इह) यहां पर (स्थ) हो ॥१७॥

अपूपवान् द्रप्सवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो

यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥१८॥

पदार्थ—(अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुए भोजनों-मालपूए, पूड़ी आदि] वाला, (द्रप्सवान्) हर्षकारक द्रव्यों वाला (चरु) चरु [स्थालीपाक] (इह) यहां [वेदी पर] (आ सीदतु) आवे । (लोककृत) समाजों के करने वाले, (पथिकृत) मार्गों के बनाने वाले [तुम लोगों] को (यजामहे) हम पूजते हैं, (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागाः) भाग लेने वाले (इह) यहां पर (स्थ) हो ॥१८॥

अपूपवान् घृतवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो

यजामहे ये देवानं भागा इह स्थ ॥१९॥

पदार्थ—(अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुए भोजनों मालपूए पूड़ी आदि] वाला, (घृतवान्) घृत वाला (चरुः) चरु [स्थालीपाक] (इह) यहां [वेदी पर] (आ सीदतु) आवे । (लोककृत) समाजों के करने वाले, (पथिकृत.) मार्गों के बनाने वाले [तुम लोगों] को (यजामहे) हम पूजते हैं, (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागा) भाग लेने वाले (इह) यहां पर (स्थ) हो ॥१९॥

अपूपवान् मांसवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो

यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२०॥

पदार्थ—(अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुए भोजनों-मालपूए, पूड़ी आदि] वाला, (मांसवान्) मननसाधक पदार्थों वाला [अर्थात् बुद्धिवर्धक जैसे मीठे फल, बादाम, अखरोट आदि वस्तुओं वाला] (चरुः) चरु [स्थालीपाक] (इह) यहां [वेदी पर] (आ सीदतु) आवे । (लोककृत) समाजों के करने वाले, (पथिकृत) मार्गों के बनाने वाले [तुम लोगों] को (यजामहे) हम पूजते हैं, (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागाः) भाग लेने वाले (इह) यहां पर (स्थ) हो ॥२०॥

अपूपवानन्नवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो

यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२१॥

पदार्थ—(अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुए भोजनों-मालपूए, पूड़ी आदि] वाला, (अन्नवान्) अन्न [जौ, चावल, गेहूं, उरद आदि] वाला (चरु.) चरु [स्थालीपाक] (इह) यहां [वेदी पर] (आ सीदतु) आवे । (लोककृतः) समाजों के करने वाले, (पथिकृत.) मार्गों के बनाने वाले [तुम लोगों] को (यजामहे) हम पूजते हैं, (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागाः) भाग लेने वाले (इह) यहां पर (स्थ) हो ॥२१॥

अपूपवान् मधुमांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो

यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२२॥

पदार्थ—(अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुए भोजनों-मालपूए, पूड़ी आदि] वाला, (मधुमान्) मधु [मक्खियों का रस] वाला, (चरु.) चरु [स्थालीपाक] (इह) यहां [वेदी पर] (आ सीदतु) आवे । (लोककृत.) समाजों के करने वाले, (पथिकृत) मार्गों के बनाने वाले [तुम लोगों] को (यजामहे) हम पूजते हैं, (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागाः) भाग लेने वाले (इह) यहां पर (स्थ) हो ॥२२॥

अपूपवान् रसवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो

यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२३॥

पदार्थ—(अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुए भोजनों-मालपूए, पूड़ी आदि] वाला, (रसवान्) रसवाले [वीर्यवर्धक शर्करा आदि] पदार्थोंवाला (चरुः) चरु [स्थालीपाक] (इह) यहां [वेदी पर] (आ सीदतु) आवे । (लोककृत.) समाजों के करने वाले, (पथिकृत) मार्गों के बनाने वाले [तुम लोगों] को (यजामहे) हम पूजते हैं, (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागाः) भाग लेने वाले (इह) यहां पर (स्थ) हो ॥२३॥

अपूपवानपवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो

यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२४॥

पदार्थ— (अपूपवान्) अपूपों [शुद्ध पके हुए भोजनों-मालपूए, पूड़ी आदि] वाला, (अपवान्) शुद्ध जल वाला (चरु) चरु [स्थालीपाक] (इह) यहां [वेदी पर] (आ सीदतु) आवे । (लोककृतः) समाजों के करने वाले, (पथिकृतः) मार्गों के बनाने वाले [तुम लोगों] को (यजामहे) हम पूजते हैं (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागा.) भाग लेने वाले (इह) यहां पर (स्थ) हो ॥२४॥

अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ।

ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥२५॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (यान्) जिन (अपूपापिहितान्) अपूपों [शुद्ध पके हुए भोजनों मालपूए पूड़ी आदि] को ढककर रखने वाले (कुम्भान्) पात्रों को (ते) तेरे लिये (देवा) विद्वानों ने (अधारयन्) रक्खा है । (ते) वे [भोजन पदार्थ] (ते) तेरे लिये (स्वधावन्त) आत्मधारण शक्ति वाले, (मधुमन्तः) मधुर गुण वाले और (घृतश्चुत.) घी [सार रस] के सींचने वाले (सन्तु) होवें ॥२५॥

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।

तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥२६॥

पदार्थ—[हे यजमान !] (ते) तेरे लिये (या.) जिन (तिलमिश्राः) तिलों से मिली हुई, (स्वधावतीः) उत्तम अन्न वाली (धानाः) धानाओं [सुसंस्कृत पौष्टिक पदार्थों] का (अनुकिरामि) [अन्न में] मैं [ऋत्विज्] अनुकूल रीति से फैलाता हूं । (ता·) वे [सब सामग्री] (ते) तेरे लिये (उद्भ्वीः) उदय कराने वाली और (प्रभ्वी.) प्रभुता वाली (सन्तु) होवें, और (ताः) उन [सामग्रियों] को (ते) तेरे लिये (यमः) संयमी (राजा) राजा [शासक अर्थात् याजक पुरुष] (अनु) अनुकूल (मन्यताम्) जाने ॥२६॥

अक्षितिं भूयसीम् ॥२७॥

पदार्थ—[और वह उनको] (भूयसीम्) अधिकतर (अक्षितिम्) क्षय-रहित क्रिया [निरन्तर जाने] ॥२७॥

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।

समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥२८॥

पदार्थ—(द्रप्स) हर्षकारक परमात्मा (पृथिवीम्) पृथिवी और (द्याम् अनु) प्रकाश मे (च) और (इमम्) इस (योनिम् अनु) घर [शरीर] में (च) और [उस शरीर में भी] (चस्कन्द) व्यापक है (य) जो [शरीर] (पूर्व.) पहिला है । (समानम्) समान [सर्वसाधारण] (योनिम् अनु) कारण मे (संचरन्तम्) विचरते हुए (द्रप्सम्) हर्षकारक परमात्मा को (सप्त) सात [मस्तक के सात गोलक] (होत्रा. अनु) विषय ग्रहण करने वाली शक्तियों के साथ (जुहोमि) मैं ग्रहण करता हूं ॥२८॥

शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं नृचक्षसस्ते अभि चक्षते रयिम् ।

ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति सर्वदा ते दुह्रते दक्षिणां सप्तमातरम् ॥२९॥

पदार्थ—(ते) वे (नृचक्षसः) मनुष्यों के देखने वाले पुरुष (रयिम् अभि) धन को सब ओर से पाकर (शतधारम्) सैकड़ों प्रकार से धारण करने वाले (वायुम्) सर्वव्यापक, (अर्कम्) पूजनीय (स्वर्विदम्) सुख पहुँचाने वाले परमेश्वर को (चक्षते)देखते हैं । (ये) जो पुरुष (सर्वदा) सर्वदा (पृणन्ति) [धन को] भरते हैं (च) और (प्र यच्छन्ति) [सुपात्रों को] देते हैं, (ते) वे लोग (सप्तमातरम्) सात [मन्त्र २८, मस्तक के सात गोलकों] द्वारा बनी हुई (दक्षिणाम्) प्रतिष्ठा को (दुह्रते) दुहते हैं [पाते हैं] ॥२९॥

कोशं दुहन्ति कलशं चतुर्बिलमिडां धेनुं मधुमतीं स्वस्तये ।

ऊर्जं मदन्तीमदितिं जनेष्वग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् ॥३०॥

पदार्थ—(कोशम्) भण्डार तुल्य, (चतुर्बिलम्) चार छेद [स्तन] वाले (कलशम्) कलश [गौ के लेवा] को (इडाम्) स्तुति योग्य, (मधुमतीम्)

मधुर रस [मीठे दूध] वाली (धेनुम्) दुधैल गौ से (स्वस्तये) आनन्द के लिये (दुहन्ति) [मनुष्य] दुहते हैं । (अग्ने) हे ज्ञानी राजन् ! (परमे) सर्वोत्कृष्ट (व्योमन्) सर्वत्र व्यापक परमात्मा में [वर्तमान तू] (जनेषु) मनुष्यों के बीच (ऊर्जम्) बलदायक रस (मदन्तीम्) बढ़ाती हुई (अविलिम्) अदीन [और अखण्डनीय] गौ को (मा हिंसी:) मत मार ॥३०॥

एतत् ते देवः सविता वासो ददाति भर्तवे ।

तत् त्वं यमस्य राज्ये वसानस्तार्प्यं चर ॥३१॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (देव) व्यवहारकुशल (सविता) प्रेरक [काम चलानेवाला, कपड़ा बनानेवाला पुरुष] (एतत्) यह (वास) कपड़ा (भर्तवे) पहिरने को (ददाति) देता है । (त्वम्) तू (यमस्य) न्यायकारी राजा के (राज्ये) में (तार्प्यम्) तृप्तिकारक (तत्) उस [वस्त्र] को (वसान) पहिरे हुए (चर) विचर ॥३१॥

धाना धेनुरभवद् वत्सो अस्यास्तिलोऽभवत् ।

तां वै यमस्य राज्ये अक्षितामुप जीवति ॥३२॥

पदार्थ—(अस्या) इस [गौ] से (धाना,) धानियें [सुसंस्कृत पौष्टिक पदार्थ] और (धेनु) गौ और (वत्स) बछड़ा (अभवत्) होता है और (तिल:) तिल [तिल, सरसों आदि] (अभवत्) होता है । (यमस्य) न्यायकारी राजा के (राज्ये) राज्य में [मनुष्य] (वै) निश्चय करके (ताम्) उस (अक्षिताम्) बिना सताई हुई [गौ] के (उप जीवति) सहारे से जीवता है ॥३२॥

एतास्ते असौ धेनवः कामदुघा भवन्तु । एनीः श्येनीः

सरूपा विरूपास्तिलवत्सा उप तिष्ठन्तु त्वात्र ॥३३॥

पदार्थ—(असौ) हे अमुक पुरुष ! (ते) तेरी (एता) ये (धेनव) दुधैल गायें (कामदुघा.) कामधेनु [कामना पूरी करनेवाली] (भवन्तु) होवें । (एनी:) चितकबरी, (श्येनी) धौली, (सरूपा) एक से रूपवाली (विरूपा) अलग अलग रूप वाली, (तिलवत्सा) बड़े-बड़े बछड़ों वाली [गाय] (अत्र) यहां (त्वा) तेरी (उप तिष्ठन्तु) सेवा करें ॥३३॥

एनीर्धाना हरिणीः श्येनीरस्य कृष्णा धाना रोहिणीर्धेनवस्ते ।

तिलवत्सा ऊर्जमस्मै दुहाना विश्वाहा सन्त्वनपस्फुरन्तीः ॥३४॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (अस्य) इस (ते) तेरी (एनी) चितकबरी (हरिणी.) पीली, (श्येनी) धौली, (कृष्णा) काली, (रोहिणी) लाल (तिलवत्सा.) बड़े-बड़े बछड़ो वाली, (अनपस्फुरन्ती:) कभी न चलायमान होने वाली (धेनव:) दुधैल गायें (धाना) पुष्टिकारक (धाना) धानियों [सुसंस्कृत अन्नों] का और (ऊर्जम्) बलदायक रस [दूध घी, आदि] को (अस्मै) उस तेरे लिये (विश्वाहा) सब दिना (दुहाना) देती हुई (सन्तु) होवें ॥३४॥

वैश्वानरे हविरिदं जुहोमि साहस्रं शतधारमुत्सम् ।

स बिभर्ति पितरं पितामहान् प्रपितामहान् बिभर्ति पिन्वमानः ॥३५॥

पदार्थ—(वैश्वानरे) सब नरों के हितकारी पुरुष के निमित्त (इदम्) इस (हवि) ग्रहण करनेयोग्य वस्तु, (साहस्रम्) सहस्रों उपकार वाले, (शतधारम्) सैकड़ों दूध की धाराओं वाले (उत्सम) स्रोत [अर्थात् गौ रूप पदार्थ] को (जुहोमि) मैं देता हूँ । (स:) वह (पिन्वमान) सेवा किया हुआ [गौ रूप पदार्थ] (पितरम्) [पिता आदि बड़ों] को (पितामहान्) दादे आदि मान्य जनों को (बिभर्ति) पुष्ट करता है, और (प्रपितामहान्) परदादे आदि महामान्य पुरुषों को (बिभर्ति) पुष्ट करता है ॥३५॥

सहस्रधारं शतधारमुत्समक्षितं व्यच्यमानं सलिलस्य पृष्ठे ।

ऊर्जं दुहानमनपस्फुरन्तमुपासते पितरः स्वधाभिः ॥३६॥

पदार्थ—(सहस्रधारम्) सहस्रों प्रकार से पोषण करनेवाले, (शतधारम्) दूध की सैकड़ों धाराओं वाले, (अक्षितम्) न घटनेवाले, (सलिलस्य) समुद्र की (पृष्ठे) पीठ पर (व्यच्यमानम्) फैले हुए [अर्थात् जल-समान बहुत होनेवाले] (ऊर्जम्) बलकारक रस [दूध घी, आदि] (दुहानम्) देने वाले (अनपस्फुरन्तम्) कभी न चलायमान होने वाले (उत्सम) स्रोते [अर्थात् गौ रूप पदार्थ] को (पितर) पितर [पिता आदि मान्य] लोग (स्वधाभि) आत्मधारण शक्तियों के साथ (उप आसते) सेवते हैं ॥३६॥

इदं कसाम्बु चयनेन चितं तत् सजाता अव पश्यतेत ।

मर्त्योऽयममृतत्वमेति तस्मै गृहान् कृणुत यावत्सबन्धु ॥३७॥

पदार्थ—(इदम्) यह (कसाम्बु) शासन का कीर्तन (चयनेन) इकट्ठा करने से (चितम्) इकट्ठा किया गया है, (सजाता:) हे सजातियो ! (तत्) उस को (अव पश्यत) ध्यान से देखो और (आ) सब ओर से (इत) प्राप्त करो (अयम्) यह (मर्त्य.) मनुष्य (अमृतत्वम्) अमरपन (एति) पाता है । (यावत्सबन्धु) जितने तुम समान गोत्र वाले [अर्थात् सपिण्डी] हो सब मिल कर (तस्मै) उस [पुरुष] के लिये (गृहान्) घरों को (कृणुत) बनाओ ॥३७॥

इहैवैधि धनसनिरिहचित्त इहक्रतुः ।

इहैधि वीर्यवत्तरो वयोधा अपराहतः ॥३८॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (धनसनि) धन कमाता हुआ, (इहचित्त:) यहां पर चित्त देता हुआ, (इहक्रतु) यहां पर कर्म करता हुआ तू (इह) यहां पर (एव) ही (एधि) रह । और (वीर्यवत्तर) अधिक वीर्यवान् होता हुआ, (वयोधा.) बल देता हुआ और (अपराहत) न मार डाला गया तू (इह) यहां पर (एधि) रह ॥३८॥

पुत्रं पौत्रमभितर्पयन्तीरापो मधुमतीरिमाः । स्वधां

पितृभ्यो अमृतं दुहाना आपो देवीरुभयांस्तर्पयन्तु ॥३९॥

पदार्थ—(इमा) ये (मधुमती.) मधुर रस [मीठे दूध की] वाली (आप) प्राप्ति योग्य [गौयें] (पुत्रम्) पुत्र और (पौत्रम्) पौत्र को (अभितर्पयन्ती) सब ओर से तृप्त करती हुई होवें और (पितृभ्य:) पितरों को (स्वधाम्) स्वधारण शक्ति और (अमृतम्) अमरण [जीवन] (दुहाना.) देती हुई, (देवी:) उत्तम गुणवाली (आप) प्राप्तियोग्य [गौएं] (उभयान्) दोनों पक्षों [स्त्री-पुरुष] को (तर्पयन्तु) तृप्त करें ॥३९॥

आपो अग्निं प्र हिणुत पितॄँरुपेमं यज्ञं पितरो मे जुषन्ताम् ।

आसीनामूर्जमुप ये सचन्ते ते नो रयिं सर्ववीरं नि यच्छान् ॥४०॥

पदार्थ—(आप.) हे प्राप्तियोग्य [गौओ !] (अग्निम्) अग्नि [प्रताप या बल] को (पितॄन उप) पितरों में (प्र हिणुत) बढ़ाये जाओ, (मे) मेरे (इमम्) इस (यज्ञम) सत्कार को (पितर) पितर लोग (जुषन्ताम्) सेवन करें । (ये) जो [पितर लोग] (आसीनाम) उपस्थित (ऊर्जम्) बलकारक रस [दूध घी आदि] को (उप) आदर से (सचन्ते) सेवें, (ते) वे [विद्वान् पितर] (न:) हमें (सर्ववीरम्) पूरे वीर पुरुष वाला (रयिम्) धन (नि) नियम से (यच्छान्) देवें ॥४०॥

समिन्धते अमर्त्यं हव्यवाहं घृतप्रियम् ।

स वेद निहितान् निधीन् पितॄन् परावतो गतान् ॥४१॥

पदार्थ—वे [पितर लोग] (अमर्त्यम्) अमर [न मरने हुए पुरुषार्थी], (हव्यवाहम) ग्रहण करने योग्य पदार्थों के पहुँचाने वाले, (घृतप्रियम्) घी आदि को प्रिय जानने वाले [जिस] पुरुष को (सम) यथाविधि [ज्ञान से] (इन्धते) प्रकाशमान करते हैं । (स) वह [पुरुष] (परावत) पराक्रम से चलने वाले (पितॄन्) पितरों को (गतान) प्राप्त हुए और (निहितान्) संग्रह किये हुए (निधीन) [रत्न सुवर्ण आदि के] कोशों को (वेद) जानता है ॥४१॥

यं ते मन्थं यमोदनं यन्मांसं निपृणामि ते ।

ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥४२॥

पदार्थ—[हे पितृगण !] (यम्) जिस (मन्थम्) मथने से प्राप्त हुए पदार्थ [नवनीत आदि] और (यम) जिस (ओदनम्) भात आदि [सुसंस्कृत भोजन] को (ते) तेरे लिये और (यत्) जिस (मांसम) मनन साधक वस्तु [बुद्धिवर्धक मीठे फल, बादाम, अखरोट आदि के गूदे, मींग] को (ते) तेरे लिये (निपृणामि) मैं भेंट करता हूँ । (ते) वे [भोजन पदार्थ] (ते) तेरे लिये (स्वधावन्त) आत्मधारण शक्ति वाले, (मधुमन्त:) मधुर गुण वाले और (घृतश्चुत) घी [सार रस] सींचने वाले (सन्तु) होवें ॥४२॥

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।

तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥४३॥

पदार्थ—[हे पितृगण !] (ते) तेरे लिये (या.) जिन (तिलमिश्रा:) तिलों से मिली हुई, (स्वधावती:) उत्तम अन्न वाली (धाना:) धानाओं [सुसंस्कृत पौष्टिक पदार्थों] को (अनुकिरामि) मैं [गृहस्थ] अनुकूल रीति से फैलाता हूँ । (ता) वे [सब सामग्री] (ते) तेरे लिये (उद्भ्वी.) उदय कराने वाली और (प्रभ्वी) प्रभुता वाली (सन्तु) होवें, और (ता) उन [सामग्रियों] को (ते) तेरे लिये (यम:) संयमी (राजा) राजा [शासक वैद्य] (अनु) अनुकूल (मन्यताम्) जाने ॥४३॥

इदं पूर्वमपरं नियानं येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।

पुरोगवा ये अभिशाचो अस्य ते त्वा वहन्ति सुकृतामु लोकम् ॥४४॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (इदम्) यह (पूर्वम्) पहिला और (अपरम्) पिछला (नियानम्) निश्चित मार्ग है, (येन) जिस से (ते) तेरे (पूर्वे) पहिले [प्रधान] (पितरः) पितर लोग (परेताः) बल के साथ गये हैं । (ये) जो [पितर] (अस्य) इस [मार्ग] के (पुरोगवाः) आगे चलनेवाले और (अभिशाचः) सब प्रकार उपदेश करने वाले हैं, (ते) वे [पितर] (त्वा) तुझ को (सुकृताम्) सुकर्मियों के (उ) ही (लोकम्) समाज में (वहन्ति) पहुँचाते हैं ॥४४॥

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।

सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥४५॥

पदार्थ—(सरस्वतीम्) सरस्वती [विज्ञानवती वेदविद्या] को (सरस्वतीम्) उसी सरस्वती को (देवयन्तः) दिव्य गुणों को चाहनेवाले पुरुष (तायमाने) विस्तृत होते हुए (अध्वरे) हिंसारहित व्यवहार में (हवन्ते) बुलाते हैं । (सरस्वतीम्) सरस्वती को (सुकृतः) सुकृती लोग (हवन्ते) बुलाते हैं । (सरस्वती) सरस्वती (दाशुषे) अपने भक्त को (वार्यम्) श्रेष्ठ पदार्थ (दात्) देती है ॥४५॥

सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।

आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥४६॥

पदार्थ—(सरस्वतीम्) सरस्वती [विज्ञानवती वेदविद्या] को (दक्षिणा) सरल मार्ग में (यज्ञम्) यज्ञ [संयोग व्यवहार] को (अभिनक्षमाणाः) प्राप्त करते हुए (पितरः) पितर [पालन करनेवाले विज्ञानी] लोग (हवन्ते) बुलाते हैं । [हे विद्वानो !] (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) वृद्धि कर्म में (आसद्य) आकर (मादयध्वम्) [सब को] तृप्त करो, [हे सरस्वती !] (अस्मे) हम में (अनमीवाः) पीडारहित (इषः) इच्छायें (आ धेहि) स्थापित कर ॥४६॥

सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।

सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥४७॥

पदार्थ—(सरस्वति) हे सरस्वती ! [विज्ञानवती वेदविद्या] (देवि) हे देवी ! [उत्तम गुणवाली] (या) जो तू (उक्थैः) वेदोक्त स्तोत्रों से (सरथम्) रमणीय गुणों वाली होकर और (स्वधाभिः) आत्मधारण शक्तियों के सहित [विराजमान] (पितृभिः) पितरों [विज्ञानियों] के साथ (मदन्ती) तृप्त होती हुई (ययाथ) प्राप्त हुई है । सो तू (अत्र) यहाँ (इडः) विद्या के (सहस्रार्घम्) सहस्रों प्रकार पूजनीय (भागम्) भाग को और (रायः) धन की (पोषम्) वृद्धि को (यजमानाय) यजमान [विद्वानों के सत्कारी] के लिये (धेहि) दान कर ॥४७॥

पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि देवो नो धाता प्र तिरात्यायुः ।

परापरैता वसुविद् वो अस्त्वधा मृताः पितृषु सं भवन्तु ॥४८॥

पदार्थ—[हे प्रजा ! स्त्री वा पुरुष] (पृथिवीम् त्वा) तुझ प्रख्यात को (पृथिव्याम्) प्रख्यात [विद्या] के भीतर (आ वेशयामि) मैं [माता पिता आचार्य आदि] प्रवेश कराता हूँ, (देवः) प्रकाशस्वरूप (धाता) धाता [पोषक परमात्मा] (नः) हमारी (आयुः) आयु को (प्र तिराति) बढ़ावे । (परापरैता) अत्यन्त पराक्रम से चलनेवाला पुरुष (वः) तुम्हारे लिये (वसुवित्) श्रेष्ठ पदार्थों का पाने वाला (अस्तु) होवे, (अध) तब (मृताः) मरे हुए [निरुत्साही पुरुष] (पितृषु) पितरों [पालक विद्वानों] के बीच (सं भवन्तु) समर्थ होवें ॥४८॥

आ प्र च्यवेथामप तन्मृजेथां यद् वामभिभा अत्रोचुः ।

अस्मादेतमघ्न्यौ तद् वशीयो दातुः पितृष्विहभोजनौ मम ॥४९॥

पदार्थ—[हे स्त्री-पुरुषो !] तुम दोनों (आ) सब ओर (प्र च्यवेथाम्) आगे बढ़ो, और (तत्) उस [पाप] को (अप मृजेथाम्) शोध डालो, (यत्) जिस को (वाम्) तुम दोनों के (अभिभाः) सामने चमकती हुई आपत्तियों ने (अत्र) यहाँ पर (ऊचुः) बताया है । (पितृषु) पितरों के बीच (दातुः मम) मुझ दानी के (इह भोजनौ) यहाँ पालन करनेवाले (अघ्न्यौ) हिंसा न करनेवाले तुम दोनों (अस्मात्) इस [पाप] से पृथक् होकर (तत्) उस [सुकर्म] को (आ) सब प्रकार (इतम्) प्राप्त हो [जो सुकर्म] (वशीयः) अधिक वश करनेवाला है ॥४९॥

एयमगन् दक्षिणा भद्रतो नो अनेन दत्ता सुदुघा वयोधाः ।

यौवने जीवानुपपृञ्चती जरा पितृभ्य उपसंपराणयादिमान् ॥५०॥

पदार्थ—(अनेन) इस [सुकर्म] करके (दत्ता) दी हुई, (सुदुघा) बड़ी दुधैल [गौ के समान] (वयोधाः) बल देनेवाली (इयम्) यह (दक्षिणा) दक्षिणा [प्रतिष्ठा] (भद्रतः) उत्तमता से (नः) हम को (आ अगन्) प्राप्त हुई है । (यौवने) यौवन [बल की पूरी अवस्था] में (इमान्) इन (जीवान्) जीवते हुए पुरुषों को (उपपृञ्चती) मिलती हुई (जरा) बड़ाई (पितृभ्यः) पितरों के पास (उपसंपराणयात्) प्रधानता से ठीक-ठीक ले चले ॥५०॥

इदं पितृभ्यः प्र भरामि बर्हिर्जीवं देवेभ्य उत्तरं स्तृणामि ।

तदा रोह पुरुष मेध्यो भवन् प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ॥५१॥

पदार्थ—(इदम्) यह (बर्हिः) उत्तम आसन (पितृभ्यः) पितरों के लिये (प्र भरामि) आगे धरता हूँ, और (देवेभ्यः) श्रेष्ठ गुणों के लिये (जीवम्) इस जीव [अपने आत्मा] को (उत्तरम्) अधिक ऊँचा (स्तृणामि) फैलाता हूँ । (पुरुष) हे पुरुष ! (मेध्यः) पवित्र (भवन्) होता हुआ तू (तत्) उस [आसन] पर (आ रोह) ऊँचा हो, [अब] (पितरः) पितर लोग (त्वा) तुझे (परेतम्) प्रधानता को पहुँचा हुआ (प्रति) प्रत्यक्ष (जानन्तु) जानें ॥५१॥

एदं बर्हिरसदो मेध्योऽभूः प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ।

यथापरु तन्वं सं भरस्व गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि ॥५२॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (इदम्) इस (बर्हिः) उत्तम आसन पर (आ असदः) तू बैठा है और (मेध्यः) पवित्र (अभूः) हुआ है, (पितरः) पितर लोग (त्वा) तुझे (परेतम्) प्रधानता को पहुँचा हुआ (प्रति) प्रत्यक्ष (जानन्तु) जानें । (यथापरु) गाँठ-गाँठ में (तन्वम्) उपकार शक्ति को (सम् भरस्व) भर दे, (ते) तेरे (गात्राणि) गातों को (ब्रह्मणा) वेद द्वारा (कल्पयामि) समर्थ करता हूँ ॥५२॥

पर्णो राजापिधानं चरूणामूर्जो बलं सह ओजो न आगन् ।

आयुर्जीवेभ्यो विदधद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥५३॥

पदार्थ—(पर्णः) पालन करनेवाला (राजा) राजा [सर्वशासक परमात्मा] (चरूणाम्) पात्र [के समान लोकों] का (अपिधानम्) ढक्कन है, [उस से] (ऊर्जः) पराक्रम, (बलम्) बल, (सहः) उत्साह और (ओजः) प्रभाव [ये चार] (नः) हम को (आ अगन्) प्राप्त हुए हैं । वह (जीवेभ्यः) जीवते हुए पुरुषों को (शतशारदाय) सौ वर्ष वाले (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ आयु के लिए (आयुः) जीवन (विदधत्) विशेष कर के देवे ॥५३॥

ऊर्जो भागो य इमं जजानाश्मान्नानामाधिपत्यं जगाम ।

तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ॥५४॥

पदार्थ—(ऊर्जः) पराक्रम के (यः) जिस (भागः) भाग करनेवाले [परमेश्वर] ने (इमम्) इस [संसार] को (जजान) उत्पन्न किया है और (अश्मा) व्यापक होकर (अन्नानाम्) अन्नों का (आधिपत्यम्) स्वामिपन (जगाम) पाया है । (तम्) उस [परमात्मा] को (विश्वमित्राः) सब के मित्र तुम (हविर्भिः) आत्मदानों से (अर्चत) पूजो, (सः) वह (यमः) न्यायकारी परमेश्वर (नः) हमें (प्रतरम्) अधिक उत्तमता से (जीवसे) जीने के लिये (धात्) धारण करे ॥५४॥

यथा यमाय हर्म्यमवपन् पञ्च मानवाः ।

एवा वपामि हर्म्यं यथा मे भूरयोऽसत ॥५५॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (यमाय) न्यायकारी राजा के लिये (पञ्च) पाँच [पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश, इन पाँच तत्त्वों] से सम्बन्ध वाले (मानवाः) मनुष्यों ने (हर्म्यम्) स्वीकार करनेयोग्य राजमहल (अवपन्) फैलाकर बनाया है । (एव) वैसे ही मैं (हर्म्यम्) सुन्दर राजमहल (वपामि) फैलाकर बनाता हूँ, (यथा) जिस से (मे) मेरे लिये (भूरयः) बहुत से (असत) तुम होओ ॥५५॥

इदं हिरण्यं बिभृहि यत् ते पिताबिभः पुरा ।

स्वर्गं यतः पितुर्हस्तं निर्मृड्ढि दक्षिणम् ॥५६॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (इदम्) इस (हिरण्यम्) सुवर्ण को (बिभृहि) तू धारण कर, (यत्) जैसे (ते) तेरे (पिता) पिता ने (पुरा) पहिले (अबिभः) धारण किया है । और (स्वर्गम्) सुख देने वाले पद को (यतः) प्राप्त होते हुए (पितुः) पिता के (दक्षिणम्) दाहिने [वा उदार और कार्यकुशल] (हस्तम्) हाथ को (निः) निश्चय करके (मृड्ढि) शोभायमान कर ॥५६॥

ये च जीवा ये च मृता ये जाता ये च यज्ञियाः ।

तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु मधुधारा व्युन्दती ॥५७॥

पदार्थ—(ये) जो (जीवा) जीवते हुए [उत्साही] (च) और (ये) जो (मृता) मरे हुए [निरुत्साही] (च) और (ये) जो (जाताः) उत्पन्न हुए [बालक] (च) और (ये) जो (यज्ञिया) पूजायोग्य [वृद्ध] पुरुष हैं। (तेभ्यः) उनके लिये (घृतस्य) जल की (कुल्या) कुल्या [कृत्रिम नाली] (मधुधारा) मधुर धाराओं वाली, (व्युन्दती) उमडती हुई (एतु) चले ॥५७॥

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सूरो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः। प्राणः सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन्मनीषया ॥५८॥

पदार्थ—(वृषा) परम ऐश्वर्यवान्, (विचक्षणः) विशेष दृष्टि वाला परमेश्वर (मतीनाम्) बुद्धियों का (पवते) पवित्रकारी है, [जैसे] (सूर) सूर्य (दिवः) [अपने] प्रकाश से (अह्नाम्) दिनों का और (उषसाम्) प्रभात वेलाओं का (प्रतरीता) फैलाने वाला है। (सिन्धूनाम्) नदियों के (प्राणः) प्राण [चेष्टा देने वाले उस परमेश्वर] ने (मनीषया) बुद्धिमत्ता से (इन्द्रस्य) सूर्य के (हार्दिम्) हार्दिक शक्ति मे (आविशन्) प्रवेश करके (कलशान्) कलसो [घड़ों के समान मेघो] को (अचिक्रदत्) गु जाया है ॥५८॥

त्वेषस्ते धूम ऊर्णोतु दिवि षंछुक्र आततः।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥५९॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] (ते) तेरा (सन्) श्रेष्ठ, (शुक्रः) निर्मल (आततः) सब ओर फैला हुआ (त्वेषः) प्रकाश [हम को] (दिवि) आकाश में (धूमः) भाप [जैसे, वैसे] (ऊर्णोतु) ढक लेवे। (पावक) हे शोधक ! [परमेश्वर] (सूरः न) जैसे सूर्य (द्युता) अपने प्रकाश से [वैसे] (त्वम्) तू (हि) ही (कृपा) अपनी कृपा से (रोचसे) चमकता है ॥५९॥

प्र वा एतीन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतिं सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरः।
मर्य इव योषाः समर्षसे सोमः कलशे शतयामना पथा ॥६०॥

पदार्थ—(इन्दु) ऐश्वर्यवान् जीवात्मा (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर की (निष्कृतिम्) निस्तार शक्ति को (वै) निश्चय करके (प्र) आगे को (एति) पाता जाता है, (सखा) सखा [परमात्मा का मित्र जीव] (सख्युः) सखा [अपने मित्र जगदीश्वर] की (संगिरः) उचित वाणियों को (न) नहीं (प्र मिनाति) तोड़ देता है। (मर्यः इव) जैसे मनुष्य (योषाः) अपनी स्त्री को [प्रीति से वैसे] (सोम) प्रेरक आत्मा तू (कलशे) कलस [घटरूप हृदय] के भीतर (शतयामना) सैकड़ो गतिवाले (पथा) मार्ग से [परमात्मा को] (सम्) यथाविधि (अर्षसे) प्राप्त होता है ॥६०॥

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाँ अधूषत।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा यविष्ठा ईमहे ॥६१॥

पदार्थ—(स्वभानवः) अपना ही प्रकाश रखने वाले, (विप्रा) बुद्धिमान्, (यविष्ठाः) महाबली [पितरो] ने (अक्षन्) भोजन खाया है और (अमीमदन्त) आनन्द पाया है, उन्होने (हि) ही (प्रियान्) अपने प्रिय [बान्धवों] को (अव) निश्चय करके (अधूषत) शोभायमान किया है और (अस्तोषत) बड़ाई योग्य बनाया है, (ईमहे) [उन से] हम विनय करते हैं ॥६१॥

आ यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पितृयाणैः।
आयुरस्मभ्यं दधतः प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥६२॥

पदार्थ—(पितर) हे पितरो ! [पिता आदि मान्यो] (सोम्यास) प्रियदर्शन तुम (गम्भीरैः) गम्भीर [शान्त], (पितृयाणैः) पितरों के चलने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (आ यात) आओ। (च) और (अस्मभ्यम्) हम को (आयु) जीवन (च) और (प्रजाम्) प्रजा [पुत्र, पौत्र, सेवक आदि] (दधतः) देते हुए तुम (रायः) धन की (पोषैः) वृद्धियों से (नः) हमे (अभि) सब ओर (सचध्वम्) सींचो ॥६२॥

परा यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पूर्याणैः।
अधा मासि पुनरा यात नो गृहान् हविरत्तुं सुप्रजसः सुवीराः ॥६३॥

पदार्थ—(पितर) हे पितरो ! [पिता आदि मान्यो] (सोम्यासः) प्रियदर्शन तुम (गम्भीरैः) गम्भीर [शान्त], (पूर्याणैः) नगरो को जाने वाले (पथिभिः) मार्गों से (परा) प्रधानता के साथ (यात) चलो। (अध) और (पुनः) अवश्य (मासि) महीने-महीने (सुप्रजसः) उत्तम प्रजाओं वाले और (सुवीराः) उत्तम वीरोवाले तुम (नः) हमारे (गृहान्) घरों में (हविः) भोजन (अत्तुम्) खाने के लिये (आ यात) आओ ॥६३॥

यद् वो अग्निरजहादेकमङ्गं पितृलोकं गमयं जातवेदाः। तद् व एतत् पुनरा प्यायायामि साङ्गाः स्वर्गे पितरो मादयध्वम् ॥६४॥

पदार्थ—[हे पितरो !] (वः) तुम्हारे (यत्) जिस (एकम्) एक (अङ्गम्) अङ्ग को (पितृलोकम्) पितृसमाज में [मनुष्यों को] (गमयन्) ले चलते हुए, (जातवेदा) धनों के उत्पन्न करने वाले (अग्निः) अग्नि [शारीरिक पराक्रम] ने (अजहात्) त्याग दिया है। (वः) तुम्हारे (तत्) उस [अङ्ग] को (एतत्) अब (पुनः) निश्चय करके (आ) सब प्रकार (प्याययामि) मैं पूरा करता हूँ, (साङ्गाः) पूरे अग वाले (पितरः) पालक ज्ञानी होकर तुम (स्वर्गे) सुख पहुँचाने वाले पद पर (मादयध्वम्) आनन्द पाओ ॥६४॥

अभूद् दूतः प्रहितो जातवेदाः सायं न्यह्न उपवन्द्यो नृभिः।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥६५॥

पदार्थ—(दूत) चलने वाला [उद्योगी] (प्रहितः) बड़ा हितकारी (जातवेदा) महाज्ञानी [वा महाधनी] पुरुष (सायम्) सायकाल में और (न्यह्नः) प्रात काल मे और (नृभिः) नेताओं द्वारा (उपवन्द्यः) बहुत प्रशंसनीय (अभूत्) हुआ है। [इस लिये] (पितृभ्यः) पितरों [रक्षक महात्माओं] को (स्वधया) अपनी धारण शक्ति से (प्रयता) शुद्ध [वा प्रयत्न से सिद्ध किये] (हवींषि) ग्रहण करनेयोग्य भोजन (प्र) अच्छे प्रकार (अदाः) तू ने दिये हैं, (ते) उन्होने (अक्षन्) खाये हैं, (देव) हे विद्वान् ! (त्वम्) तू (अद्धि) खा ॥६५॥

असौ हा इह ते मनः ककुत्सलमिव जामयः।
अभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥६६॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (असौ) वह [पिता आदि] (हा) निश्चय करके (इह) यहाँ पर [हम में] (ते) तेरे (मनः) मन को [ढकता है], (इव) जैसे (जामयः) कुल-स्त्रियां (ककुत्सलम्) सुख का शब्द सुनाने वाले को [अर्थात् लड़ैते बालक को वस्त्र से ढकती हैं]। (भूमे) हे भूमितुल्य [सर्वाधार विद्वान् !] (एनम्) इस [पिता आदि जन] को (अभि) सब ओर से (ऊर्णुहि) तू ढक [सुख दे] ॥६६॥

शुम्भन्तां लोकाः पितृषदनाः पितृषदने त्वा
लोक आ सादयामि ॥६७॥

पदार्थ—(पितृषदनाः) पितरो [ज्ञानियो] की बैठक वाले (लोकाः) समाज (शुम्भन्ताम्) शोभायमान होवें, (पितृषदने) पितरो की बैठक वाले (लोके) समाज मे (त्वा) तुझे (आ सादयामि) मैं बैठाता हूँ ॥६७॥

येऽस्माकं पितरस्तेषां बर्हिरसि ॥६८॥

पदार्थ—(ये) जो पुरुष (अस्माकम्) हमारे बीच (पितर) पितर [ज्ञानी पुरुष] हैं, (तेषाम्) उनका [यहाँ] (बर्हिः) उत्तम आसन (असि) है ॥६८॥

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥६९॥

पदार्थ—(वरुण) हे स्वीकार करनेयोग्य ईश्वर ! (अस्मत्) हम से (उत्तमम्) ऊँचे वाले (पाशम्) पाश को (उत्) ऊपर से, (अधमम्) नीचे वाले को (अव) नीचे से, और (मध्यमम्) बीच वाले को (वि) विविध प्रकार से (श्रथाय) खोल दे। (आदित्य) हे सर्वत्र प्रकाशमान वा अखण्डनीय जगदीश्वर ! (अध) फिर (वयम) हम लोग (ते) तेरे (व्रते) वरणीय नियम में (अदितये) अदीना पृथिवी के [राज्य के] लिये (अनागस) निरपराधी (स्याम) होवें ॥६९॥

प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् यैः समामे बध्यते यैर्व्यामे।
अधा जीवेम शरदं शतानि त्वया राजन् गुपिता रक्षमाणाः ॥७०॥

पदार्थ—(वरुण) हे दुःखनिवारक परमेश्वर ! (अस्मत्) हम से (सर्वान्) सब (पाशान्) फन्दो का (प्र मुञ्च) खोल दे, (यैः) जिन [फन्दों] से (समामे) छून रोग में, और (यैः) जिन से (व्यामे) विशेष रोग में (बध्यते) [प्राणी] बांधा जाता है। (अध) तब (राजन्) हे राजन् ! [परमेश्वर] (त्वया) तुझ द्वारा (गुपिता) रक्षा किये गये और (रक्षमाणाः) [दूसरो की] रक्षा करते हुए हम (शतानि) सैकड़ों (शरदम्) बरसों तक (जीवेम) जीवें ॥७०

अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः ॥७१॥

पदार्थ—(कव्यवाहनाय) बुद्धिमानों को हितकारी पदार्थों के पहुँचाने वाले (अग्नये) विद्वान् पुरुष को (स्वधा) अन्न और (नमः) नमस्कार होवे ॥७१॥

सोमाय पितृमते स्वधा नमः ॥७२॥

पदार्थ—(पितृमते) श्रेष्ठ मातापिता वाले (सोमाय) प्रेरक पुरुष को (स्वधा) अन्न और (नमः) नमस्कार हो ॥७२॥

पितृभ्यः सोमवद्भ्यः स्वधा नमः ॥७३॥

पदार्थ—(सोमवद्भ्यः) बड़े ऐश्वर्य वाले (पितृभ्यः) पितरों [माता पिता आदि पालक ज्ञानियों] को (स्वधा) अन्न और (नमः) नमस्कार हो ॥७३॥

यमाय पितृमते स्वधा नमः ॥७४॥

पदार्थ—(पितृमते) श्रेष्ठ माता-पिता वाले (यमाय) न्यायाधीश राजा को (स्वधा) अन्न और (नमः) नमस्कार हो ॥७४॥

एतत् ते प्रततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥७५॥

पदार्थ—(प्रततामह) हे परदादे ! (एतत्) यह (ते) तेरे लिये (स्वधा) अन्न हो, (च) और [उन के लिये भी अन्न हो] (ये) जो (त्वाम् अनु) तेरे साथ हैं ॥७५॥

एतत् ते ततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥७६॥

पदार्थ—(ततामह) हे दादे ! (एतत्) यह (ते) तेरे लिये (स्वधा) अन्न हो, (च) और [उन के लिये अन्न हो] (ये) जो (त्वाम् अनु) तेरे साथ हैं ॥७६॥

एतत् ते तत स्वधा ॥७७॥

पदार्थ—(तत) हे पिता ! (एतत्) यह (ते) तेरे लिये (स्वधा) अन्न हो ॥७७॥

स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः ॥७८॥

पदार्थ—(पृथिविषद्भ्यः) पृथिवी की विद्या में गतिवाले (पितृभ्यः) पितरों [पालक ज्ञानियों] को (स्वधा) अन्न हो ॥७८॥

स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्यः ॥७९॥

पदार्थ—(अन्तरिक्षसद्भ्यः) आकाश की विद्या में गतिवाले (पितृभ्यः) पितरों [पालक ज्ञानियों] को (स्वधा) अन्न हो ॥७९॥

स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः ॥८०॥

पदार्थ—(दिविषद्भ्यः) प्रकाश की विद्या में गतिवाले (पितृभ्यः) पितरों [पालक ज्ञानियों] को (स्वधा) अन्न हो ॥८०॥

नमो वः पितर ऊर्जे नमो वः पितरो रसाय ॥८१॥

पदार्थ—(पितरः) हे पितरो ! [पालक ज्ञानियों] (ऊर्जे) पराक्रम पाने के लिये (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो, (पितरः) हे पितरो ! [पालक ज्ञानियों] (रसाय) रस [ज्ञानरस, ओषधिरस, और दूध, जल, विद्या आदि रस] पाने के लिये (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो ॥८१॥

नमो वः पितरो भामाय नमो वः पितरो मन्यवे ॥८२॥

पदार्थ—(पितरः) हे पितरो ! [पालक ज्ञानियो] (मन्यवे) प्रताप की प्राप्ति के लिये (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो, (पितरः) हे पितरो ! [पालक ज्ञानियो] (भामाय) क्रोध की निवृत्ति के लिये (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो ॥८२॥

नमो वः पितरो यद् घोरं तस्मै नमो वः पितरो यत् क्रूरं तस्मै ॥८३॥

पदार्थ—(पितरः) हे पितरो ! [पालक ज्ञानियो] (यत्) जो कुछ (घोरम्) घोर [दारुण दुःख] है, (तस्मै) उसे हटाने के लिये (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो, (पितरः) हे पितरो ! [पालक ज्ञानियो] (यत्) जो कुछ (क्रूरम्) क्रूर [निर्दयता] है, (तस्मै) उसे दूर करने के लिये (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो ॥८३॥

नमो वः पितरो यच्छिवं तस्मै नमो वः पितरो यत् स्योनं तस्मै ॥८४॥

पदार्थ—(पितरः) हे पितरो ! [पालक ज्ञानियो] (यत्) जो कुछ (शिवम्) मङ्गलकारी है, (तस्मै) उसे पाने के लिये (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो, (पितरः) हे पितरो ! [पालक ज्ञानियो] (यत्) जो कुछ (स्योनम्) सुखदायक है, (तस्मै) उसके लाभ के लिये (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो ॥८४॥

नमो वः पितरः स्वधा वः पितरः ॥८५॥

पदार्थ—(पितरः) हे पितरो ! [पालक ज्ञानियो] (वः) तुम को (नमः) नमस्कार हो, (पितरः) हे पितरो ! [पालक ज्ञानियो] (वः) तुम्हारे लिये (स्वधा) अन्न हो ॥८५॥

येऽत्र पितरः पितरो येऽत्र यूयं स्थ युष्मांस्तेऽनु
यूयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्थ ॥८६॥

पदार्थ—(ये) जो (अत्र) यहां (पितरः) पितर [पालक ज्ञानी] हैं, (ये) जो (यूयम्) तुम (अत्र) यहां पर (पितरः) पितर (स्थ) हो (ते) वे लोग (युष्मान् अनु) [उन] तुम्हारे अनुकूल होवें, और (यूयम्) तुम (तेषाम्) उन के बीच (श्रेष्ठाः) श्रेष्ठ (भूयास्थ) होओ ॥८६॥

य इह पितरो जीवा इह वयं स्मः। अस्मांस्तेऽनु
वयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्म ॥८७॥

पदार्थ—(ये) जो (इह) यहां पर (पितरः) पितर [पालक ज्ञानी] हैं, [उन के अनुग्रह से] (वयम्) हम (इह) यहां पर (जीवाः) जीवते हुए [सचेत] (स्मः) हैं, (ते) वे लोग (अस्मान् अनु) हमारे अनुकूल होवें और (तेषाम्) उनके बीच (वयम्) हम (श्रेष्ठाः) श्रेष्ठ (भूयास्म) होवें ॥८७॥

आ त्वाग्न इन्धीमहि द्युमन्तं देवाजरम्। यद् घ सा ते
पनीयसी समिद् दीदयति द्यवि। इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥८८॥

पदार्थ—(देव) हे आनन्दप्रद ! (अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (द्युमन्तम्) प्रकाशयुक्त (अजरम्) अजर [जरारहित, सदा बलवान्] (त्वा) तुझ को (आ) सब ओर से [हृदय में] (इन्धीमहि) हम प्रकाशित करें। (यत्) जो (सा) वह (घ) निश्चय करके (ते) तेरी (पनीयसी) अति प्रशंसनीय (समित्) चमक (द्यवि) चमकते हुए [सूर्य आदि में] (दीदयति) चमकती है। [उस से] (इषम्) इष्ट पदार्थ को (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वालों के लिये (आ) सब ओर से (भर) भर दे ॥८८॥

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि। न वो हिरण्यनेमयः
पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥८९॥

पदार्थ—(सुपर्णः) सुन्दर पूर्ति करने वाला (चन्द्रमा) चन्द्र लोक (अप्सु अन्तः) [अपने] कर्मों के भीतर (दिवि) सूर्य के प्रकाश में (आ धावते) दौड़ता रहता है। (हिरण्यनेमयः) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मा में सीमा रखने वाले (विद्युतः) विविध प्रकाशमान [सब लोको !] (वः) तुम्हारे (पदम्) ठहराव को (न विन्दन्ति) वे [जिज्ञासु लोग] नहीं पाते हैं, (रोदसी) हे पृथिवी और सूर्य के समान स्त्री-पुरुषो ! (मे) मेरे (अस्य) इस [वचन] का (वित्तम्) तुम दोनों ज्ञान करो ॥८९॥

卐 इति चतुर्थोऽनुवाकः 卐

॥ अष्टादशं काण्डं समाप्तम् ॥

卐

एकोनविंशं काण्डम्

प्रथमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ॥१॥ 卐

१—३ ब्रह्मा । यज्ञ, चन्द्रमाश्च, १, २ पथ्यापंक्ति, ३ पङ्क्ति ॥

सं सं स्रवन्तु नद्यः१ सं वाताः सं पतत्रिणः ।

यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥१॥

पदार्थ—(नद्य) नदियाँ (सम् सम्) बहुत अनुकूल (स्रवन्तु) बहें, (वाता) विविध प्रकार के पवन और (पतत्रिण) पक्षी (सम् सम्) बहुत अनुकूल [बहे] । (गिर) हे स्तुतियोग्य विद्वानो ! (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ [देवपूजा, सगतिकरण और दान] को (वर्धयत) बढ़ाओ । (संस्राव्येण) बहुत अनुकूलता से भरी हुई (हविषा) भक्ति के साथ [तुम को] (जुहोमि) मैं स्वीकार करता हूँ ॥१॥

इमं होमा यज्ञमवतेमं संस्रावणा उत ।

यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥२॥

पदार्थ—(होमा) दाता लोगो ! तुम (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ [देवपूजा सगतिकरण और दान] को, (उत) और (संस्रावणा) हे बड़े कोमल स्वभाववालो ! (इमम्) इस [यज्ञ] की (अवत) रक्षा करो । (गिर) हे स्तुतियोग्य विद्वानो ! (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ [देवपूजा आदि] को (वर्धयत) बढ़ाओ, (संस्राव्येण) बहुत कोमलता से भरी हुई (हविषा) भक्ति के साथ [तुम को] (जुहोमि) मैं स्वीकार करता हूँ ॥२॥

रूपंरूपं वयोवयः संरभ्यैनं परि ष्वजे ।

यज्ञमिमं चतस्रः प्रदिशो वर्धयन्तु संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥३॥

पदार्थ—(रूपरूपम्) सब प्रकार की सुन्दरता और (वयोवय) सब प्रकार के बल को (संरभ्य) ग्रहण कर के (एनम्) इस (विद्वान्) को (परिष्वजे) मैं गले लगाता हूँ । (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ [देवपूजा, सगतिकरण और दान] को (चतस्र) चारों (प्रदिश) बड़ी दिशायें (वर्धयन्तु) बढ़ावें, (संस्राव्येण) बहुत कोमलता से भरी हुई (हविषा) भक्ति के साथ [इस विद्वान् को] (जुहोमि) मैं स्वीकार करता हूँ ॥३॥

卐 सूक्तम् २ 卐

१—५ सिन्धुद्वीप । आप । अनुष्टुप् ।

शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः ।

शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः ॥१॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (हैमवती) हिम वाले पहाड़ों से उत्पन्न (आप) जल (शम्) शान्तिदायक, (उ) और (ते) तेरे लिये (उत्स्या) कूपों से निकले हुए [जल] (शम्) शान्तिदायक (सन्तु) होवें । (ते) तेरे लिये (सनिष्यदा) शीघ्र बहनेवाले (आप.) जल (शम्) शान्तिदायक (उ) और (ते) तेरे लिये (वर्ष्या) वर्षा से उत्पन्न [जल] (शम्) शान्तिदायक (सन्तु) होवें ॥१॥

शं त आपो धन्वन्याः३ शं ते सन्त्वनूप्याः ।

शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृताः ॥२॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (धन्वन्याः) निर्जल देश के (आपः) जल (शम्) सुखदायक, और (ते) तेरे लिये (अनूप्याः) सजल स्थान के [जल] (शम्) सुखदायक, (सन्तु) होवें । (ते) तेरे लिये (खनित्रिमा) खनती वा फावड़े से निकाले गये (आपः) जल (शम्) सुखदायक [होवें] और (याः) जो [जल] (कुम्भेभिः) घड़ों से (आभृता) लाये गये हैं, वे भी (शम्) सुखदायक [होवें] ॥२॥

अनभ्रयः खनमाना विप्रा गम्भीरे अपसः ।

भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि ॥३॥

पदार्थ—(अनभ्रय) हिंसा न करनेवाले, (खनमानाः) खोदते हुए, (विप्राः) बुद्धिमान् (गम्भीरे) गहरे [कठिन] स्थान में (अपसः) व्यापने वाले (आपः) सब विद्याओं में व्यापक विद्वान् लोग (भिषग्भ्यः) वैद्यों से (भिषक्तरा) अधिक वैद्य हैं, [उनसे, यह जल का विषय] (अच्छ) अच्छे प्रकार (वदामसि) हम कहते हैं ॥३॥

अपामह दिव्यानामपां स्रोतस्यानाम् ।

अपामह प्रणेजनेऽश्वा भवथ वाजिनः ॥४॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो] (अह) निश्चय करके (दिव्यानाम्) आकाश से बरसने वाले (अपाम्) जलों के और (स्रोतस्यानाम्) स्रोतों से निकलने वाले (अपाम्) फैलते हुए (अपाम्) जलों के (प्रणेजने) पोषण सामर्थ्य में, (अह) निश्चय करके तुम (वाजिन) वेग वाले (अश्वा.) बलवान् पुरुष [वा घोड़ों के समान] (भवथ) हो जाओ ॥४॥

ता अपः शिवा अपोऽयक्ष्मंकरणीरपः ।

यथैव तृप्यते मयस्तास्त आ दत्त भेषजीः ॥५॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (ता) उन (शिवा) मङ्गलकारी (अप) जलों को, (अयक्ष्मंकरणी) नीरोगता करने वाले (अप) जलों को और (ता) उन (भेषजी) भय जीतनेवाले (अप) जलों को (आ) सब ओर से (दत्त) उस [परमेश्वर] ने दिया है, (यथा) जिससे (एव) निश्चय करके (ते) तेरे लिये (मय) सुख (तृप्यते) बढ़े ॥५॥

卐 सूक्तम् ३ 卐

१—४ अथर्वाङ्गिरा । अग्नि । त्रिष्टुप्, २ भुरिक् ॥

दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाद् वनस्पतिभ्यो अध्योषधीभ्यः ।

यत्रयत्र विभृतो जातवेदास्तत स्तुतो जुषमाणो न एहि ॥१॥

पदार्थ—(दिव) सूर्य से, (पृथिव्या) पृथिवी से, (अन्तरिक्षात् परि) अन्तरिक्ष [मध्यलोक] में से, (वनस्पतिभ्य) वनस्पतियों [पीपल आदि वृक्षों] से और (ओषधीभ्य अधि) ओषधियों [अन्न सोमलता आदिकों] में से, और (यत्रयत्र) जहाँ-जहाँ (जातवेदा) उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान तू [अग्नि] (विभृत) विशेष करके धारण किया गया है, (तत) वहाँ से (स्तुतः) स्तुति किया गया [काम में लाया गया] और (जुषमाण) प्रसन्न करता हुआ तू (न.) हमको (आ) आकर (इहि) प्राप्त हो ॥१॥

यस्ते अप्सु महिमा यो वनेषु य ओषधीषु पशुष्वप्स्व१न्तः ।

अग्ने सर्वास्तन्वः१ सं रभस्व ताभिर्न एहि द्रविणोदा अजस्रः ॥२॥

पदार्थ—(य) जो (ते) तेरा (महिमा) महत्त्व (अप्सु) जलों में, (य) जो (वनेषु) वनों में, (य) जो (ओषधीषु) ओषधियों [अन्न, सोमलता आदि] में, (पशुषु) जीवों में और (अप्सु अन्त) अन्तरिक्ष के बीच है । (अग्ने) हे अग्नि ! (सर्वाः) सब (तन्व) उपकारशक्तियों को (सं रभस्व) एकत्र ग्रहण कर और (ताभि) उन [उपकारशक्तियों] के साथ (द्रविणोदाः) सम्पत्तिदाता (अजस्र) लगातार वर्तमान तू (न) हम को (आ) आकर (इहि) प्राप्त हो ॥२॥

यस्ते देवेषु महिमा स्वर्गो या ते तनूः पितृष्वाविवेश ।

पुष्टिर्या ते मनुष्येषु पप्रथेऽग्ने तया रयिमस्मासु धेहि ॥३॥

पदार्थ—(य) जो (ते) तेरी (स्वर्ग) सुख पहुँचानेवाली (महिमा) महिमा (देवेषु) व्यवहारकुशल विद्वानों में, (या) जो (ते) तेरी (तनू.) उपकारशक्ति (पितृषु) पालक ज्ञानियों में, (आविवेश) प्रविष्ट हुई है । और (या) जो (ते) तेरी (पुष्टि) पुष्टि [वृद्धिक्रिया] (मनुष्येषु) मननशील पुरुषों में (पप्रथे) फैली है, (अग्ने) हे अग्नि ! [बिजुली आदि] (तया) उस [पुष्टि आदि] से (रयिम्) धन (अस्मासु) हम लोगों में (धेहि) धारण कर ॥३॥

श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय वचोभिर्वाकैरुप यामि रातिम् ।

यतो भयमभयं तन्नो अस्त्वव देवानां यज हेडो अग्ने ॥४॥

पदार्थ—(श्रुत्कर्णाय) सुनते हुए कानों वाले, (कवये) बुद्धिमान् (वेद्याय) वेदों में निपुण पुरुष के लिये (वचोभि) वचनों और (वाकैः) वेदवाक्यों द्वारा (रातिम्) धन [अर्थात् अग्निविद्या] को (उप) आदर कर के (यामि) मैं

प्राप्त होता हूँ। (यतः) जिस से (भयम्) भय [हो], (ततः) उस से (नः) हमें (अभयम्) अभय (अस्तु) होवे। (अग्ने) हे विद्वान् पुरुष (देवानाम्) विद्वानों के (हेडः) क्रोध को (अव यज) दूर कर ॥४॥

॥ सूक्तम् ४ ॥

१—४ अथर्वाङ्गिरा । अग्निः । त्रिष्टुप्; १ पंचपदा विराडतिजगती, २ जगती ॥

यामाहुतिं प्रथमामथर्वा या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदाः । तां त एतां प्रथमो जोहवीमि ताभिष्टुप्तो वहतु हव्यमग्निरग्नये स्वाहा ॥१॥

पदार्थ—(याम्) जिस (आहुतिम्) यथावत् देने-लेने योग्य क्रिया [संकल्प शक्ति—मं० २] को (अथर्वा) निश्चल परमात्मा ने (प्रथमाम्) सब से पहली, और (या) जिस (या) प्राप्ति योग्य [संकल्प शक्ति] को (जाता) उत्पन्न [प्रजाओं] के लिये (जातवेदाः) उत्पन्न पदार्थों के जानने वाले परमेश्वर ने (हव्यम्) देने लेने योग्य वस्तु (अकृणोत्) बनाया (ताम्) वैसी (एताम्) इस [संकल्प शक्ति] को (ते) तेरे लिये [हे मनुष्य !] (प्रथमः) सब में पहिला [अर्थात् मुख्य विद्वान्] मैं (जोहवीमि) बारंबार देता हूँ, (ताभिः) उन [प्रजाओं] से (स्तुप्तः) एकत्र किया गया [हृदय में लाया गया] (अग्निः) ज्ञानमय परमात्मा (अग्नये) ज्ञानवान् पुरुष के लिये (स्वाहा) सुन्दर वाणी से (हव्यम्) देने-लेनेयोग्य पदार्थ (वहतु) प्राप्त करे ॥१॥

आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु । यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् ॥२॥

पदार्थ—(देवीम्) दिव्य गुणवाली, (सुभगाम्) बड़े ऐश्वर्यवाली, (आकूतिम्) संकल्पशक्ति को (पुरः) आगे (दधे) धरता हूँ, (चित्तस्य) चित्त [ज्ञान] की (माता) माता [जननी उत्पन्न करनेवाली] वह (नः) हमारे लिये (सुहवा) सहज में बुलानेयोग्य (अस्तु) होवे। (याम्) जिस (आशाम्) आशा [कामना] को (एमि) मैं प्राप्त करूं, (सा) वह [आशा] (मे) मेरे लिये (केवली) सेवनीय (अस्तु) होवे, (मनसि) मन में (प्रविष्टाम्) प्रवेश की हुई (एनाम्) इस [आशा] को (विदेयम्) मैं पाऊँ ॥२॥

आकूत्या नो बृहस्पत आकूत्या न उपा गहि । अथो भगस्य नो धेह्यथो नः सुहवो भव ॥३॥

पदार्थ—(बृहस्पते) हे बृहस्पति ! [बड़ी विद्याओं के स्वामी पुरुष] (आकूत्या) संकल्पशक्ति के साथ (नः) हमको, (आकूत्या) संकल्पशक्ति के साथ (नः) हम को (उप) समीप से (आ) आकर (गहि) प्राप्त हो। (अथो) और (नः) हमें (भगस्य) ऐश्वर्य का (धेहि) दान कर, (अथो) और भी (नः) हमारे लिये (सुहवः) सहज में पुकारनेयोग्य (भव) हो ॥३॥

बृहस्पतिर्म आकूतिमाङ्गिरसः प्रति जानातु वाचमेताम् । यस्य देवा देवताः संबभूवुः स सुप्रणीताः कामो अन्वेत्वस्मान् ॥४॥

पदार्थ—(आङ्गिरसः) ज्ञानवान् परमेश्वर का सेवक, (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं का स्वामी पुरुष] (मे) मेरी (आकूतिम्) संकल्प शक्ति, (एताम्) इस (वाचम्) वाणी को (प्रति) प्रतीति के साथ (जानातु) जाने "(सुप्रणीताः) यथाविधि चलाये गए (देवाः) विद्वानों ने (यस्य) जिस [शुभ कामना] के (देवताः) दिव्य भावों [सूक्ष्मगुणों] को (संबभूवुः) सब प्रकार पाया है, (सः) वह (कामः) शुभ कामना (अस्मान्) हम को (अनु) अनुकूलता से (एतु) प्राप्त होवे" ॥४॥

॥ सूक्तम् ५ ॥

१—अथर्वाङ्गिरा । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति । ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् पुरुष (जगतः) जगत् के बीच (चर्षणीनाम्) मनुष्यों का, और (यत्) जो कुछ (अधि क्षमि) पृथिवी पर (विषुरूपम्) नाना रूप [धन आदि] (अस्ति) है, [उस का भी], (राजा) राजा है। (ततः) इसी कारण से वह (दाशुषे) दाता [आत्मदानी राजभक्त] के लिये (वसूनि) धनों को (ददाति) देता है, [तभी] (उपस्तुतः) समीप से प्रशंसित होकर (चित्) अवश्य (राधः) धन को (अर्वाक्) सन्मुख (चोदत्) प्रवृत्त करे [बढ़ावे] ॥१॥

॥ सूक्तम् ॥६॥ [पुरुषसूक्तम्] ॥

१—१६ नारायणः । पुरुषः । अनुष्टुप् ।

सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥

पदार्थ—(पुरुषः) पुरुष [अग्रगामी वा परिपूर्ण परमात्मा] (सहस्रबाहुः) सहस्रों भुजाओं वाला, (सहस्राक्षः) सहस्रों नेत्रों वाला और (सहस्रपात्) सहस्रों पैरों वाला है। (सः) वह (भूमिम्) भूमि को (विश्वतः) सब ओर से (वृत्वा) ढक कर (दशाङ्गुलम्) दश दिशाओं में व्याप्ति वाले [वा पांच स्थूल भूत और पांच सूक्ष्म भूत में होने वाले] जगत् को (अति) लांघ कर (अतिष्ठत्) ठहरा है ॥१॥

त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत् पादस्येहाभवत् पुनः । तथा व्यक्रामद् विष्वङ्ङशनानशने अनु ॥२॥

पदार्थ—[वह पुरुष परमात्मा] (त्रिभिः) तीन (पद्भिः) पादों [अंशों] से (द्याम्) [अपने] प्रकाशस्वरूप में (अरोहत्) प्रकट हुआ, (अस्य) इस [पुरुष] का (पात्) एक पाद [अंश] (इह) यहां [जगत् में] (पुनः) बार बार [सृष्टि और प्रलय के चक्र से] (अभवत्) वर्तमान हुआ। (तथा) फिर (विष्वङ्) सर्वव्यापक वह (अशनानशने अनु) खानेवाले चेतन और न खानेवाले जड़ जगत् में (वि) विविध प्रकार से (अक्रामत्) व्याप्त हुआ ॥२॥

तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायांश्च पूरुषः । पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥

पदार्थ—(अस्य) इस [पुरुष] की (तावन्तः) उतनी [पूर्वोक्त] (महिमानः) महिमायें हैं, (च) और (पूरुषः) वह पुरुष [परिपूर्ण परमात्मा] (ततः) उन [महिमाओं] से (ज्यायान्) अधिक बड़ा है। (अस्य) इस [ईश्वर] का (पादः) पाद [चौथाई अंश] (विश्वा) सब (भूतानि) चराचर पदार्थ हैं, और (अस्य) इस [परमेश्वर] का (अमृतम्) अविनाशी महत्त्व (दिवि) [उसके] प्रकाशस्वरूप में (त्रिपात्) तीन पाद [तीन चौथाई] वाला है ॥३॥

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् । उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत् सह ॥४॥

पदार्थ—(यत्) जो कुछ (इदम्) यह (सर्वम्) सब है, (च) और (यत्) जो कुछ (भूतम्) उत्पन्न हुआ और (भाव्यम्) उत्पन्न होने वाला है [उसका] (उत) और (अमृतत्वस्य) अमरपन [अर्थात् दुःखरहित मोक्ष सुख] का, और (यत्) जो कुछ (अन्येन सह) दूसरे [अर्थात् मोक्ष से भिन्न दुःख] के साथ (अभवत्) हुआ है, [उसका भी] (ईश्वरः) शासक (पुरुषः) पुरुष [परिपूर्ण परमात्मा] (एव) ही है ॥४॥

यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् । मुखं किमस्य किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥५॥

पदार्थ—(यत्) जब (पुरुषम्) पुरुष [परिपूर्ण परमात्मा] का (वि) विविध प्रकार से (अदधुः) उन [विद्वानों] ने धारण किया, (कतिधा) कितने प्रकार से [उसको] (वि) विशेष करके (अकल्पयन्) उन्होंने माना। (अस्य) इस [पुरुष] का (मुखम्) मुख (किम्) क्या [कहा जाता है], (बाहू) दोनों भुजायें (किम्) क्या, (ऊरू) दोनों घुटने और (पादौ) दोनों पांव (किम्) क्या (उच्येते) कहे जाते हैं ॥५॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत् । मध्यं तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥६॥

पदार्थ—(ब्राह्मणः) ब्राह्मण [वेद और ईश्वर का जाननेवाला मनुष्य] (अस्य) इस [पुरुष] का (मुखम्) मुख (आसीत्) था, (राजन्यः) क्षत्रिय [शासक मनुष्य] (बाहू) [उसकी] दोनों भुजायें (अभवत्) हुआ। (अस्य) इसका (यत्) जो (मध्यम्) मध्य [घुटनों का भाग] है, (तत्) वह (वैश्यः) वैश्य [मनुष्यों का हितकारी] और (पद्भ्याम्) [उसके] दोनों पैरों से (शूद्रः) शूद्र [शोचनीय मूर्ख] (अजायत) उत्पन्न हुआ ॥६॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत । मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ॥७॥

पदार्थ—[इस पुरुष के—मन्त्र ६] (मनसः) मन [मनन सामर्थ्य] से (चन्द्रमाः) चन्द्र लोक (जातः) उत्पन्न हुआ, (चक्षोः) नेत्र से (सूर्यः) सूर्यमण्डल (अजायत) उत्पन्न हुआ। (मुखात्) मुख से (इन्द्रः) बिजुली (च) और (अग्निः) आग (च) और (प्राणात्) प्राण से (वायुः) पवन (अजायत) उत्पन्न हुआ ॥७॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।

पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥८॥

पदार्थ—[इस पुरुष की] (नाभ्याः) नाभि से (अन्तरिक्षम्) लोकों के बीच का आकाश (आसीत्) हुआ, (शीर्ष्णः) शिर से (द्यौः) प्रकाशयुक्त लोक और (पद्भ्याम्) दोनों पैरों से (भूमिः) भूमि (सम्) सम्यक् (अवर्तत) वर्तमान हुई, (श्रोत्रात्) कान से (दिशः) दिशाओं को (तथा) इसी प्रकार (लोकान्) लोकों को (अकल्पयन्) उन [विद्वानों] ने कल्पना की ॥८॥

विराडग्रे समभवद् विराजो अधि पूरुषः ।

स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥९॥

पदार्थ—(अग्रे) पहिले [सृष्टि के आदि में] (विराट्) विराट् [विविध पदार्थों से विराजमान ब्रह्माण्ड] (सम्) यथाविधि (अभवत्) हुआ, (विराजः) विराट् [उस ब्रह्माण्ड] से (अधि) ऊपर [अधिष्ठाता होकर] (पूरुषः) पुरुष [पूर्ण परमात्मा] [प्रकट हुआ]। (सः) वह [पुरुष] (जातः) प्रकट होकर (भूमिम्) भूमि [अर्थात् सब सृष्टि से] (पश्चात्) पीछे का (अथो) और भी (पुरः) आगे को (अति) लांघ कर (अरिच्यत) बढ़ गया ॥९॥

यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।

वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥१०॥

पदार्थ—(यत्) जब (हविषा) ग्रहण करनेयोग्य (पुरुषेण) पुरुष [पूर्ण परमात्मा] के साथ [अर्थात् परमात्मा को यजमान मानकर] (देवाः) विद्वान् लोगों ने (यज्ञम्) यज्ञ [ब्रह्माण्डरूप हवनव्यवहार] को (अतन्वत) फैलाया। (वसन्तः) वसन्त ऋतु (अस्य) इस [यज्ञ] का (आज्यम्) घी, (ग्रीष्मः) ग्रीष्म ऋतु (इध्मः) इन्धन और (शरत्) शरद् ऋतु (हविः) हवनद्रव्य (आसीत्) हुआ ॥१०॥

तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रशः ।

तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये ॥११॥

पदार्थ—(ये) जो (देवाः) विद्वान् लोग (साध्याः) साधन करनेवाले [योगाभ्यासी] (च) और (वसवः) श्रेष्ठ गुणवाले हैं, उन्होंने (प्रावृषा) बड़े ऐश्वर्य के साथ [वर्तमान] (तम्) उस (यज्ञम्) पूजनीय, (अग्रशः) पहिले से [सृष्टि के पूर्व से] (जातम्) प्रसिद्ध (पुरुषम्) पुरुष [पूर्ण परमात्मा] को (तेन) उस [पुण्य कर्म] से (प्र) भले प्रकार (औक्षन्) सींचा [स्वच्छ किया, खोजा] और (अयजन्त) पूजा ॥११॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये च के चोभयादतः ।

गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ॥१२॥

पदार्थ—(तस्मात्) उस [पुरुष परमात्मा] से (अश्वाः) घोड़े (अजायन्त) उत्पन्न हुए, (च च) और [अन्य गदहा, खच्चर आदि भी] (ये) जो (के) कोई (उभयादतः) दोनों ओर [नीचे-ऊपर] दाँतों वाले हैं। (तस्मात्) उससे (ह) ही (गावः) गौयें बैल [एक ओर दाँत वाले पशु] (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए, (तस्मात्) उससे (अजावयः) बकरी भेड़ (जाताः) उत्पन्न हुए ॥१२॥

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।

छन्दो ह जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥१३॥

पदार्थ—(तस्मात्) उस (यज्ञात्) पूजनीय (सर्वहुतः) सब के दाता [अन्न आदि देने हारे] [पुरुष परमात्मा] से (ऋचः) ऋग्वेद [पदार्थों की गुण प्रकाशक विद्या] के मन्त्र और (सामानि) सामवेद [मोक्षविद्या] के मन्त्र (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए। (तस्मात्) उससे (ह) ही (छन्दः) अथर्ववेद [आनन्ददायक विद्या] के मन्त्र (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए, और (तस्मात्) उस से (यजुः) यजुर्वेद [सत्कर्मों का ज्ञान] (अजायत) उत्पन्न हुआ ॥१३॥

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् ।

पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥१४॥

पदार्थ—(तस्मात्) उस (यज्ञात्) पूजनीय (सर्वहुतः) सब के दानी [अन्न आदि के देनेहारे] [पुरुष परमात्मा] से (पृषदाज्यम्) दही, घी [आदि भोग्य पदार्थ] (संभृतम्) सिद्ध किया गया है। उसने (तान्) उन (पशून्) जीवों [दोपाये चौपायों] और (वायव्यान्) पवन में रहने वाले [पक्षी आदियों] को (चक्रे) बनाया, (ये) जो (आरण्याः) वनैले (च) और (ग्राम्याः) ग्राम के रहने वाले हैं ॥१४॥

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।

देवा यद् यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥१५॥

पदार्थ—(यत्) जब कि (यज्ञम्) [संसार रूप] यज्ञ को (तन्वानाः) फैलाते हुए (देवाः) विद्वानों ने (पशुम्) दर्शनीय (पुरुषम्) पुरुष [पूर्ण परमात्मा] को (अबध्नन्) [हृदय में] बांधा, [तब] (सप्त) सात [तीन काल, तीन लोक अर्थात् सृष्टि, स्थिति और प्रलय और एक जीवात्मा] (अस्य) इस [संसार रूप यज्ञ] के (परिधयः) घेरे समान (आसन्) थे, और (त्रिःसप्त) तीन बार सात [इक्कीस अर्थात् पांच सूक्ष्म भूत, पांच स्थूल भूत, पांच ज्ञानेन्द्रिय पांच कर्मेन्द्रिय और एक अन्तःकरण] (समिधः) समिधायें [काष्ठ, घृत आदि के समान] (कृताः) किये गये ॥१५॥

मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अंशवः सप्त सप्ततीः ।

राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि ॥१६॥

पदार्थ—(पुरुषात्) पुरुष [पूर्ण परमात्मा] से (अधि) अधिकारपूर्वक (जातस्य) उत्पन्न हुए (बृहतः) बड़े (देवस्य) प्रकाशमान सूर्य के (मूर्ध्नः) मस्तक की (सप्त) सात [वर्ण वाली] (सप्ततीः) नित्य सम्बन्ध वाली [अथवा सात गुणित सत्तर, चार सौ नब्बे अर्थात् असंख्य] (अंशवः) किरणें (राज्ञः) प्रकाशमान (सोमस्य) चन्द्रमा की [किरणें] (अजायन्त) प्रकट हुई हैं ॥१६॥

卐 सूक्तम् ॥ ७ ॥ 卐

१—५ गार्ग्यः । नक्षत्राणि । त्रिष्टुप्, ४ भुरिक् ॥

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि ।

तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम् ॥१॥

पदार्थ—(दिवि) आकाश के बीच (भुवने) संसार में (चित्राणि) विचित्र (साकम्) परस्पर (सरीसृपाणि) टेढ़े टेढ़े चलने वाले, (जवानि) वेग गतिवाले (रोचनानि) चमकते हुए नक्षत्र हैं। (तुर्मिशम्) वेग की ध्वनि [वा समाधि की ओर (सुमतिम्) सुमति को (इच्छमानः) चाहता हुआ मैं (अहानि) सब दिन (गीर्भिः) वेदवाणियों से (नाकम्) सुखस्वरूप परमात्मा को (सपर्यामि) पूजता हूँ ॥१॥

सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा ।

पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥२॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्ने ! [सर्वव्यापक परमात्मन्] (कृत्तिकाः) कृत्तिकायें (च) और (रोहिणी) रोहिणी (सुहवम्) सुख से बुलाने योग्य [नक्षत्र] (अस्तु) होवे, (मृगशिरः) मृगशिर (भद्रम्) मङ्गलप्रद [नक्षत्र] और (आर्द्रा) आर्द्रा [जलयुक्त] (शम्) शान्तिदायक [होवे]। (पुनर्वसू) दो पुनर्वसु और (भानुः) प्रकाशमान (पुष्यः) पुष्य (सूनृता) सुन्दर चेष्टा के साथ (चारु) अनुकूल और (आश्लेषाः) आश्लेषाएँ और (मघाः) मघायें (मे) मेरे लिये (अयनम्) सुन्दर मार्गवाला [नक्षत्र होवे] ॥२॥

पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु ।

राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ॥३॥

पदार्थ—(अत्र) यहाँ (पूर्वा) पूर्वा [पहिली] (च) और [उत्तरा वा पिछली] (फल्गुन्यौ) दोनों फाल्गुनी (पुण्यम्) पवित्र [नक्षत्र], (हस्तः) हस्त (सुखः) सुख देनेवाला और (चित्रा) चित्रा तथा (स्वाति) स्वाति (शिवा) मङ्गलकारक (मे) मेरे लिए (अस्तु) होवे। (राधे) हे सिद्धि करने वाली ! (विशाखे) विशाखा तू (सुहवा) सुखपूर्वक बुलानेयोग्य [हो], (अनुराधा) अनुराधा और (ज्येष्ठा) ज्येष्ठ [सुख से बुलानेयोग्य होवे] और (सुनक्षत्रम्) सुन्दर नक्षत्र (मूलम्) मूल (अरिष्ट) हानिरहित [होवे] ॥३॥

अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु ।

अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥४॥

पदार्थ—(पूर्वाः) पूर्वा [पहिली] (अषाढाः) अषाढायें (मे) मेरे लिये (अन्नम्) अन्न (रासताम्) देवें, और (देवी) चमकीली (उत्तराः) उत्तरायें [पिछली अर्थात् उत्तरा-अषाढायें] (ऊर्जम्) पराक्रम (आ वहन्तु)

शं नो॑ मि॒त्रः शं वरु॑णः शं विष्णु॒ः शं प्र॒जाप॑तिः ।

शं न॒ इन्द्रो॒ बृह॒स्पति॒ः शं नो॑ भव॒त्वर्य॒मा ॥६॥

पदार्थ—(नः) हमारे लिये (मित्रः) सबका मित्र [परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष] (शम्) शान्तिदायक, (वरुणः) सब में श्रेष्ठ (शम्) शान्तिदायक, (विष्णुः) सब गुणो मे व्यापक (शम्) शान्तिदायक, (प्रजापतिः) प्रजापति [प्रजाओं का रक्षक] (शम्) शान्तिदायक [होवे] । (नः) हमारे लिये (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान्, (बृहस्पतिः) बड़ी वेदविद्या का रक्षक (शम्) शान्तिदायक, (नः) हमारे लिये (अर्यमा) श्रेष्ठो का मान करनेवाला [न्यायकारी परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष] (शम्) शान्तिदायक (भवतु) होवे ॥६॥

शं नो॑ मि॒त्रः शं वरु॑णः शं वि॒वस्वा॒ञ्छम॑न्त॒कः ।

उ॒त्पा॒ताः पार्थि॑वान्तरि॒क्षाः शं नो॑ दि॒विच॑रा ग्र॒हाः ॥७॥

पदार्थ—(नः) हमारे लिये (मित्रः) प्राण वायु (शम्) शान्तिदायक, (वरुणः) जल [वा अपान वायु] (शम्) शान्तिदायक (विवस्वान्) विविध चमकने वाला सूर्य (शम्) शान्तिदायक (अन्तकः) अन्त करने वाला [मृत्यु] (शम्) शान्तिदायक [होवे] । (पार्थिवाः) पृथिवी पर होने वाले और (आन्तरिक्षाः) अन्तरिक्ष [आकाश] मे होने वाले (उत्पाताः) उत्पात [उपद्रव] और (दिविचराः) सूर्य के प्रभाव में घूमने वाले (ग्रहाः) ग्रह [चन्द्र, मङ्गल, बुध आदि] (नः) हमारे लिये (शम्) शान्तिदायक [होवें] ॥७॥

शं नो॒ भूमि॑र्वेप्यमा॒ना शमु॒ल्का निर्ह॑तं च॒ यत् ।

शं गावो॒ लोहि॑तक्षीरा॒ः शं भूमि॒रव॑ तीर्य॒तीः ॥८॥

पदार्थ—(नः) हमारे लिये (वेप्यमाना) कांपती हुई (भूमिः) भूमि (शम्) शान्तिदायक, (च) और (यत्) जो कुछ (उल्का) उलकाओ से [रेखाकार आकाश से गिरते हुए तेज पुञ्जो, टूटते हुए तारो से] (निर्हतम्) नष्ट किया गया है, [वह] (शम्) शान्तिदायक [होवे] । (लोहितक्षीराः) रुधिरयुक्त दूध देनेवाली (गावः) गौएँ (शम्) शान्तिदायक [होवें] और (अव तीर्यती) धसकती हुई (भूमिः) भूमि (शम्) शान्तिदायक [होवे] ॥८॥

नक्ष॑त्रमु॒ल्काभिह॑तं॒ शम॑स्तु नः॒ शं नो॑ऽभिचा॒राः शमु॑ सन्तु कृ॒त्याः ।

शं नो॒ निखा॑ता व॒ल्गाः शमु॒ल्का दे॑शोपस॒र्गाः शमु॑ नो भवन्तु ॥९॥

पदार्थ—(उल्का) उल्काओ [टूटते तारो] से (अभिहतम्) नष्ट किया हुआ (नक्षत्रम्) नक्षत्र (नः) हमे (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) होवे, (नः) हमारे लिये (अभिचाराः) विरुद्ध आचरण (शम्) शान्तिदायक (उ) और (कृत्याः) हिंसाक्रियायें (शम्) शान्तिदायक, (सन्तु) होवें । (निखाताः) खोदे हुए (वल्गाः) गढ़े [सुरग आदि] (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक, (उल्काः) उल्कायें [टूटते तारे] (शम्) शान्तिदायक, (उ) और (देशोपसर्गाः) देश के उपद्रव (नः) हमे (शम्) शान्तिदायक (भवन्तु) होवें ॥९॥

शं नो॑ ग्र॒हाश्चा॑न्द्रम॒साः शमा॑दि॒त्यश्च॑ राहु॒णा ।

शं नो॑ मृ॒त्युर्धू॒मके॑तुः॒ शं रु॒द्रास्ति॒ग्मते॑जसः ॥१०॥

पदार्थ—(चान्द्रमसाः) चन्द्रमा के (ग्रहाः) ग्रह [कृत्तिका आदि नक्षत्र] (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक [होवें], (च) और (आदित्यः) सूर्य (राहुणा) राहु [ग्रह विशेष] के साथ (शम्) शान्तिदायक [होवे] । (मृत्युः) मृत्युरूप (धूमकेतुः) धूमकेतु [पुच्छल तारा] (नः) हमे (शम्) शान्तिदायक [हो], (तिग्मतेजसः) तीक्ष्ण तेज वाले (रुद्राः) गतिमान् [बृहस्पति आदि ग्रह] (शम्) शान्तिदायक [होवें] ॥१०॥

शं रु॒द्राः शं वस॑वः॒ शमा॑दि॒त्याः शम॒ग्नयः॑ ।

शं नो॑ म॒हर्ष॑यो दे॒वाः शं दे॒वाः शं बृह॒स्पतिः॑ ॥११॥

पदार्थ—(रुद्राः) रुद्र [ग्यारह रुद्र अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा] (शम्) शान्तिदायक (वसवः) वसु [आठ अर्थात् अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, सूर्य, प्रकाश, चन्द्रमा और तारागण] (शम्) शान्तिदायक (आदित्याः) महीने [चैत्र आदि बारह महीने] (शम्) शान्तिदायक और (अग्नयः) अग्नियां [शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक बल] (शम्) शान्तिदायक [होवें] । (महर्षयः) महर्षि [बड़े-बड़े वेदज्ञाता] (देवाः) विद्वान् लोग (नः) हमे (शम्) शान्तिदायक, (देवाः) उत्तम व्यवहार (शम्) शान्तिदायक [होवें] (बृहस्पतिः) बड़े ब्रह्माण्डो का स्वामी [परमात्मा] (शम्) शान्तिदायक [होवे] ॥११॥

ब्रह्म॑ प्र॒जाप॑तिर्धा॒ता लो॒का वेदाः॑ सप्तऋ॒षयो॒ऽग्नयः॑ ।

तैर्मे॑ कृ॒तं स्व॑स्त्यय॒नमिन्द्रो॑ मे॒ शर्म॑ यच्छतु ब्र॒ह्मा मे॒ शर्म॑ यच्छतु ।

विश्वे॑ मे दे॒वाः शर्म॑ यच्छन्तु॒ सर्वे॑ मे दे॒वाः शर्म॑ यच्छन्तु ॥१२॥

पदार्थ—(ब्रह्म) अन्न, (प्रजापतिः) प्रजापालक [इन्द्रियादि का रक्षक] और (धाता) पोषक [जीवात्मा], (लोकाः) सब लोक [पृथिवी आदि] (वेदाः) ऋग्वेद आदि चारो वेद, (सप्त ऋषयः) सात ऋषि [कान, आंख, नाक, जिह्वा, त्वचा, पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि], और (अग्नयः) अग्नि [शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक पराक्रम] [जो हैं] । (तैः) उन द्वारा (मे) मेरे लिये (स्वस्त्ययनम्) कल्याण का मार्ग (कृतम्) बनाया गया, (इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर] (मे) मेरे लिये (शर्म) सुख (यच्छतु) देवे, (ब्रह्मा) ब्रह्मा [सब से बड़ा परमात्मा] (मे) मेरे लिये (शर्म) सुख (यच्छतु) देवे (विश्वे) सब (देवाः) देव (मे) मेरे लिए (शर्म) सुख (यच्छन्तु) देवें । (सर्वे) सब (देवाः) देव (मे) मेरे लिए (शर्म) सुख (यच्छन्तु) देवें ॥१२॥

यानि॒ कानि॑ चिच्छा॒न्तानि॑ लो॒के स॑प्तऋ॒षयो॑ वि॒दुः ।

सर्वा॑णि॒ शं भ॑वन्तु मे॒ शं मे॑ अ॒स्त्वभ॑यं मे अस्तु ॥१३॥

पदार्थ—(यानि) जिन (कानि) किन्ही (चित्) भी (शान्तानि) शान्तकर्मों को (लोके) संसार मे (सप्तऋषयः) सात ऋषि [कान, आंख, नाक, जिह्वा, त्वचा, पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि] (विदुः) जानते हैं । (सर्वाणि) वे सब (मे) मेरे लिये (शम्) शान्तिदायक (भवन्तु) होवें, (मे) मेरे लिये (शम्) शान्ति [आरोग्यता, धैर्य आदि] (अस्तु) होवे, (मे) मेरे लिये (अभयम्) अभय (अस्तु) होवे ॥१३॥

पृ॒थि॒वी शा॒न्तिर॒न्तरि॑क्षं॒ शान्ति॒र्द्यौः शान्ति॒रापः॒ शान्ति॒रोष॑धयः॒ शान्ति॒र्वन॒स्पत॑यः॒ शान्ति॒र्विश्वे॑ मे दे॒वाः शान्तिः॒ सर्वे॑ मे दे॒वाः शान्तिः॒ शान्तिः॒ शान्तिः॒ शान्ति॑भिः । ताभि॒ः शान्ति॑भिः॒ सर्व॑शान्तिभिः॒ शम॑यामो॒ऽहं यदि॒ह घो॒रं यदि॒ह क्रू॒रं यदि॒ह पा॒पं तच्छा॒न्तं तच्छि॒वं सर्व॑मे॒व शम॑स्तु नः ॥१४॥

पदार्थ—(पृथिवी) भूमि (शान्तिः) शान्तिदायक [हो], (अन्तरिक्षम्) मध्यलोक [वायुमण्डल, मेघमण्डल, तारागण आदि] (शान्तिः) शान्तिदायक हो, (द्यौः) प्रकाशमान [सूर्य आदि] (शान्तिः) शान्तिदायक हो, (आपः) जल (शान्तिः) शान्तिदायक हो, (ओषधयः) ओषधें [अन्न, सोमलता आदि] (शान्तिः) शान्तिदायक हो, (वनस्पतयः) वनस्पतियां [वट आदि वृक्ष] (शान्तिः) शान्तिदायक हों, (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (मे) मेरे लिये (शान्तिः) शान्तिदायक हो, (सर्वे) सब (देवाः) उत्तम पदार्थ (मे) मेरे लिये (शान्तिः) शान्तिदायक हो (शान्तिभिः) शान्तियो [सुखदायक क्रियाओ] के साथ (शान्तिः) शान्ति (शान्तिः) शान्ति [धैर्य आदि] हो । (ताभिः) उन (शान्तिभिः) शान्तियों [आनन्द क्रियाओ] से, (सर्व = सर्वाभिः) सब (शान्तिभिः) शान्तियो [धैर्य क्रियाओ] से (अहम् = वयम्) हम (शम्) शान्ति (अयाम) पावें, (यत्) जो कुछ (इह) यहां पर (घोरम्) घोर [भयकर] हो, (यत्) जो कुछ (इह) यहां पर (क्रूरम्) क्रूर [निर्दय] हो, और (यत्) जो कुछ (इह) यहां पर (पापम्) पाप [अनिष्ट] हो, (तत्) वह (शान्तम्) शान्तिदायक हो, (तत्) वह (शिवम्) कल्याणकारक हो, (सर्वम्) सब (एव) ही (नः) हमारे लिये (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो ॥१४॥

इति प्रथमोऽनुवाकः

卐

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् १० 卐

१—१० वसिष्ठ । बहुदैवत्यम् । त्रिष्टुप् ।

शं न॑ इन्द्रा॒ग्नी भ॑वता॒मवो॑भि॒ः शं न॒ इन्द्रा॒वरु॑णा रा॒तह॑व्या ।

शमिन्द्रा॒सोमा॑ सुवि॒ताय॒ शं योः शं न॒ इन्द्रा॑पू॒षणा॒ वाज॑सातौ ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) बिजुली और साधारण अग्नि दोनो (अवोभिः) रक्षा साधनो के साथ (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (भवताम्) हों, (रातहव्या) ग्राह्य पदार्थों के देने हारे (इन्द्रावरुणा) बिजुली और जल दोनों (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक [हो] । (शम्) शान्तिदायक (इन्द्रासोमा) बिजुली और चन्द्रमा (सुविताय) ऐश्वर्य के लिये (शम्) रोगनाशक और (योः) भयनिवारक हों, (इन्द्रापूषणा) बिजुली और पवन (वाजसातौ) पराक्रम के लाभ वा संग्राम में (नः) हमे (शम्) शान्तिदायक हो ॥१॥

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२॥

पदार्थ—(नः) हमारा (भगः) ऐश्वर्य (शम्) शान्तिदायक, (उ) और (नः) हमारी (शंसः) स्तुति (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो (नः) हमारी [पुरंधिः] नगरों की धारण करने हारी बुद्धि (शम्) शान्तिदायक हो, (उ) और (रायः) सब प्रकार के धन (शम्) शान्तिदायक (सन्तु) हों । (नः) हमारा (सत्यस्य) सच्चे (सुयमस्य) सुन्दर नियम का (शंसः) कथन (शम्) शान्तिदायक हो, (पुरुजातः) बहुत प्रसिद्ध (अर्यमा) श्रेष्ठों का मान करने हारा [न्यायकारी परमेश्वर] (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो ॥२॥

शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३॥

पदार्थ—(धाता) पोषण करनेवाला [पदार्थ] (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक हो, (उ) और (धर्ता) धारण करने वाला [पदार्थ] (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो, (उरूची) बहुत फैली हुई प्रकृति [जगत् सामग्री] (नः) हमें (स्वधाभिः) अपनी धारणशक्तियों से (शम्) शान्तिकारक (भवतु) हो । (बृहती) दोनों बड़े (रोदसी) सूर्य और भूमि, (शम्) शान्तिकारक हों (अद्रिः) मेघ (नः) हमें (शम्) शान्तिकारक हो, (देवानाम्) विद्वानों के (सुहवानि) सुन्दर बुलावे (नः) हमें (शम्) शान्तिकारक (सन्तु) होवें ॥३॥

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् ।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥४॥

पदार्थ—(ज्योतिरनीकः) ज्योति को सेना-समान रखने वाला (अग्निः) अग्नि (नः) हमें (शम्) शान्तिकारक (अस्तु) हो, (मित्रावरुणौ) दोनों दिन और रात्रि (नः) हमें (शम्) शान्तिकारक हों, (अश्विना) दोनों सूर्य और चन्द्रमा (शम्) शान्तिकारक हों । (सुकृताम्) सुकर्मियों के (सुकृतानि) पुण्य कर्म (नः) हमें (शम्) शान्तिकारक (सन्तु) हों (इषिरः) शीघ्रगामी (वातः) पवन (नः) हमारे लिये (शम्) शान्तिकारक (अभि) सब ओर से (वातु) चले ॥४॥

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥५॥

पदार्थ—(पूर्वहूतौ) पहिले बुलाये [अर्थात् कार्य के आरम्भ में] (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक हों, (अन्तरिक्षम्) मध्यलोक [मध्यवर्ती आकाश] (दृशये) देखने के लिये (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो । (ओषधीः) ओषधियां [अन्न सोमलता आदि] और (वनिनः) वन के पदार्थ (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (भवन्तु) हों, (रजसः) लोक का (पतिः) स्वामी (जिष्णुः) विजयी मनुष्य (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो ॥५॥

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥

पदार्थ—(देवः) प्रकाशमान (इन्द्रः) सूर्य (वसुभिः) अनेक वसुओं वा किरणों से (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो, (सुशंसः) उत्तम गुण वाला (वरुणः) जल (आदित्येभिः) सूर्य की किरणों के साथ (शम्) शान्तिदायक हो । (जलाषः) जीवों की अभिलाषा पूरी करनेहारा (रुद्रः) ज्ञानदाता परमेश्वर (रुद्रेभिः) ज्ञानदाता मुनियों द्वारा (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक हो, (शम्) शान्तिदायक (त्वष्टा) विश्वकर्मा जगदीश्वर (ग्नाभिः) [हमारी] वाणियों द्वारा (इह) यहां पर (नः) हमारी [प्रार्थना] (शृणोतु) सुने ॥६॥

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७॥

पदार्थ—(सोमः) परम ऐश्वर्यवाला परमात्मा (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (भवतु) हो, (ब्रह्म) वेद (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक हो, (ग्रावाणः) विज्ञानी लोग (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक हों, (उ) और (यज्ञाः) यज्ञ [अग्निहोत्र से शिल्पक्रिया तक] (शम्) शान्तिदायक (सन्तु) हों । (स्वरूणाम्) सूर्यों [प्रकाशमानों] के (मितयः) कीलाव (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (भवन्तु) हों, (प्रस्वः) ओषधियें [अन्न, सोम लता आदि] (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक हों, (उ) और (वेदिः) वेदी [यज्ञकुण्ड, चौतरा आदि] (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो ॥७॥

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नो भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८॥

पदार्थ—(उरुचक्षाः) दूर तक दिखाने वाला (सूर्यः) सूर्य (नः) हमें (शम्) सुखदायक (उत् एतु) उदय हो, (चतस्रः) चारो (प्रदिशः) बड़ी दिशायें (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) होवें (ध्रुवयः) दृढ़ (पर्वताः) पहाड़ (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों, (सिन्धवः) समुद्र वा नदियां (नः) हमें (शम्) सुखदायक हों, (उ) और (आपः) जल [वा प्राण] (शम्) सुखदायक (सन्तु) हों ॥८॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९॥

पदार्थ—(अदितिः) अखण्ड वेदवाणी (व्रतेभिः) नियमों के साथ (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवतु) हो, (मरुतः) शूर और (स्वर्काः) बड़े पवित्र लोग (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों । (विष्णुः) व्यापक यज्ञ (नः) हमें (शम्) सुखदायक हों, (उ) और (पूषा) पोषण करनेवाली पृथिवी (नः) हमें (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो, (भवित्रम्) रहने का घर (नः) हमें (शम्) सुखदायक हो, (उ) और (वायुः) वायु (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो ॥९॥

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः ॥१०॥

पदार्थ—(देवः) प्रकाशमान (सविता) लोकों का चलाने वाला सूर्य (त्रायमाणः) रक्षा करता हुआ (नः) हमें (शम्) सुखदायक हो, (विभातीः) जगमगाती हुई (उषसः) प्रभात वेलायें (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों । (पर्जन्यः) सींचनेवाला मेघ (नः) हमें और (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (शम्) सुखदायक (भवतु) हो, (शंभुः) मङ्गलदाता (क्षेत्रस्य) खेत का (पतिः) स्वामी (नः) हमें (शम्) सुखदाता (अस्तु) हो ॥१०॥

सूक्तम् ११

१—६ वसिष्ठः । बहुदैवत्यम् । त्रिष्टुप् ॥

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१॥

पदार्थ—(सत्यस्य) सत्य के (पतयः) पालन करनेवाले पुरुष (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों, (अर्वन्तः) घोड़े (नः) हमें (शम्) सुखदायक (उ) और (गावः) गौएँ और बैल (शम्) सुखदायक (सन्तु) हों । (ऋभवः) बुद्धिमान् (सुकृतः) बड़े काम करनेवाले (सुहस्ताः) हस्तक्रिया में चतुर लोग (नः) हमें (शम्) सुखदायक हो, (पितरः) पितर [पिता आदि रक्षक पुरुष] (नः) हमें (हवेषु) बुलावों पर [यज्ञों वा संग्रामों में] (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों ॥१॥

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु । शमभि-
षाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥२॥

पदार्थ—(विश्वदेवाः) सब विजय चाहने वाले, (देवाः) विद्वान् लोग (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों, (सरस्वती) विज्ञानवती वेद विद्या (धीभिः सह) अनेक क्रियाओं के साथ (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो । (अभिषाचः) सब ओर से मिलनसार लोग (शम्) सुखदायक हों, (उ) और (रातिषाचः) दोनों की वर्षा करनेहारे (शम्) सुखदायक हों, (दिव्याः) आकाश सम्बन्धी पदार्थ [वायु, मेघ, विमान आदि] और (पार्थिवाः) पृथिवी सम्बन्धी पदार्थ [राज्य, सुवर्ण, अग्नि, रथ आदि] (नः) हमें (शम्) सुखदायक हों, (अप्याः) जल सम्बन्धी पदार्थ [मोती, मूंगा, नौका आदि] (नः) हमें (शम्) सुखदायक हों ॥२॥

शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शमहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥३॥

पदार्थ—(अजः) अजन्मा, (एकपात्) एक रस वाला [एकरस व्यापक], (देवः) प्रकाशमय परमात्मा (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो, (अहिः) न मरने वाला, (बुध्न्यः) मूल तत्त्वों में रहने वाला [आदि कारण जगदीश्वर] (शम्) शान्तिदायक हो, (समुद्रः) यथावत् सींचनेवाला ईश्वर (शम्) शान्तिदायक हो । (अपाम्) प्रजाओं का (नपात्) न गिराने वाला, (पेरुः) पार लगाने वाला (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो,

(देवगोपा) प्रकाशमय परमात्मा से रक्षा की गयी (पृश्नि) पूछनेयोग्य प्रकृति [जगत् सामग्री] (न) हमें (शम्) शान्तिदायक (भवतु) हो ॥३॥

आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तामिदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।

शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥४॥

पदार्थ—(आदित्याः) अखण्ड ब्रह्मचारी, (रुद्रा) ज्ञानदाता और (वसवः) श्रेष्ठ विद्वान् लोग (इदम्) इस (क्रियमाणम्) सिद्ध होते हुए (नवीयः) अधिक नवीन (ब्रह्म) धन वा अन्न को (जुषन्ताम्) सेवें । (दिव्याः) दिव्य [कामना योग्य] गुण वाले, (पार्थिवासः) पृथिवी के स्वामी (उत) और (गोजाताः) वाणी में प्रसिद्ध [सत्यवक्ता] पुरुष, (ये) जो (यज्ञियासः) पूजा योग्य हैं, (नः) हमारी [प्रार्थना] (शृण्वन्तु) सुनें ॥४॥

ये देवानामृत्विजो यज्ञियासो मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।

ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थ—(ये) जो लोग (देवानाम्) विद्वानों के बीच (ऋत्विजः) ऋतु-ऋतु में यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] करनेहारे, (यज्ञियासः) पूजायोग्य, (मनोः) ज्ञान के (यजत्रा) देनेहारे, (अमृताः) अमर [कीर्ति वाले] और (ऋतज्ञाः) सत्य धर्म के जाननेवाले हैं । (ते) वे (नः) हमें (अद्य) आज (उरुगायम्) चौड़ा मार्ग [वा बहुत ज्ञान] (रासन्ताम्) देवें, (यूयम्) तुम [विद्वानो] (स्वस्तिभिः) अनेक सुखों से (सदा) सदा (नः) हमारी (पात) रक्षा करो ॥५॥

तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।

अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥६॥

पदार्थ—(मित्रावरुणा) हे स्नेही और श्रेष्ठ माता-पिता ! दोनों और (अग्ने) हे विद्वान् आचार्य ! (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (तत्) वही (शम्) शान्तिदायक [रोगनाशक], (तत्) वही (योः) भयनिवारक (अस्तु) होवे और (इदम्) यही (शस्तम्) बड़ाई योग्य (अस्तु) होवे [कि] (गाधम्) गम्भीरता, (प्रतिष्ठाम्) प्रतिष्ठा [गौरव] (उत) और (नमः) सत्कार को (दिवे) कामनायोग्य (बृहते) विशाल (सदनाय) स्थान के लिये (अशीमहि) हम पावें ॥६॥

卐 सूक्तम् १२ 卐

१ वसिष्ठः । उषा । त्रिष्टुप् ।

उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ।

अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१॥

पदार्थ—(उषा) प्रभात वेला (स्वसुः) [अपनी] बहिन [रात्रि] के (तमः) अन्धकार को (अप=अपवर्तयति) हटा देती है, और (सुजातता) [अपनी] भलमनसाहत से (वर्तनिम्) [उसके लिए] मार्ग (सम्) मिल कर (वर्तयति) बता देती है । (अया) इस [नीति] से (शतहिमाः) सौ वर्ष जीवते हुए और (सुवीराः) सुन्दर वीरों को रखते हुए हम (देवहितम्) विद्वानों के हितकारी (वाजम्) विज्ञान को (सनेम) बाँटें और (मदेम) आनन्द करें ॥ १ ॥

卐 सूक्तम् १३ 卐

१—११ अप्रतिरथः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् २—५, ११ भुरिक् ।

इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ वृषाणौ चित्रा इमा वृषभौ पारयिष्णू ।

तौ योक्षे प्रथमो योग आगते याभ्यां जितमसुराणां स्वर्यत् ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रस्य) इन्द्र [परमैश्वर्यवान् पुरुष सेनापति] के (इमौ) ये दोनों (बाहू) भुजायें (स्थविरौ) पुष्ट, (वृषाणौ) वीर्ययुक्त, (चित्रा) अद्भुत (वृषभौ) श्रेष्ठ और (पारयिष्णू) पार लगाने वाले होवें । (तौ) उन दोनों को (योगे) अवसर (आगते) आने पर (प्रथमः) मुखिया तू (योक्षे) काम में लाता है, (याभ्याम्) जिन दोनों से (असुराणाम्) असुरों [प्राण लेनेवाले शत्रुओं] का (यत्) जो (स्वः) सुख है, [वह] (जितम्) जीता जाता है ॥१॥

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।

संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः ॥२॥

पदार्थ—(चर्षणीनाम्) मनुष्यों में (आशुः) फुरतीले, (शिशानः) तीक्ष्ण, (वृषभः न) बैल के समान (भीमः) भयंकर, (घनाघनः) अत्यन्त चोट मारने वाले, (क्षोभणः) हलचल मचानेवाले, (संक्रन्दनः) ललकारनेवाले, (अनिमिषः) पलक न मूँदने वाले (एकवीरः) एकवीर [अद्वितीय पराक्रमी], (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी सेनापति] ने (शतम्) सौ (सेनाः) सेनाओं को (साकम्) एक साथ (अजयत्) जीता है ॥२॥

संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुनाऽयोध्येन दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।

तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥३॥

पदार्थ—(नरः) हे नरो ! [नेता लोगो] (संक्रन्दनेन) ललकारने वाले, (अनिमिषेण) पलक न मूँदने वाले, (जिष्णुना) विजयी, (अयोध्येन) अजेय, (दुश्च्यवनेन) न हटने वाले, (धृष्णुना) निडर [बड़े उत्साही] (इषुहस्तेन) तीर [अस्त्र-शस्त्र] हाथ में रखने वाले, (वृष्णा) वीर्यवान्, (इन्द्रेण) इन्द्र [महाप्रतापी सेनापति] के साथ (युधः) लड़ाकुओं को (तत्) इस प्रकार (जयत) तुम जीतो और (तत्) इस प्रकार (सहध्वम्) हराओ ॥३॥

स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।

संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥४॥

पदार्थ—(सः सः) वही (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी सेनापति] (इषुहस्तैः) तीर [अस्त्र-शस्त्र] हाथों में रखने वालों, और (निषङ्गिभिः) खड्ग वालों के साथ (वशी) वश में करने वाला, (सः) वही (गणेन) अपने गण [अधिकारी लोगों] सहित (युधः) [अपने] योद्धाओं को (संस्रष्टा) एकत्र करनेवाला, (संसृष्टजित्) एकत्र हुए [शत्रुओं] को जीतनेवाला, (सोमपाः) ऐश्वर्य की रक्षा करनेवाला, (बाहुशर्धी) भुजाओं में बल रखनेवाला, (उग्रधन्वा) प्रचण्ड धनुष वाला, (प्रतिहिताभिः) सन्मुख ठहराई हुई [सेनाओं] से (अस्ता) [वैरियों का] गिराने वाला है ॥४॥

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।

अभिवीरो अभिषत्वा सहोजिज्जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोविदम् ॥५॥

पदार्थ—(बलविज्ञायः) बल का जानने हारा, (स्थविरः) पुष्टाङ्ग [वा वृद्ध अर्थात् अनुभवी], (प्रवीरः) बड़ा वीर, (सहस्वान्) बड़ा बली, (वाजी) बड़ा ज्ञानी [वा अन्न वाला], (सहमानः) हराने वाला, (उग्रः) प्रचण्ड (अभिवीरः) सब ओर वीरों को रखने वाला, (अभिषत्वा) सब ओर युद्धकुशल विद्वानों को रखने वाला, (सहोजित्) बल से जीतने वाला, (गोविदम्) पृथिवी के देशों [वा वाणियों] को जानने वाला होकर, (इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी सेनापति] (जैत्रम्) विजयी (रथम्) रथ पर (आ तिष्ठ) बैठ ॥५॥

इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ।

ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ॥६॥

पदार्थ—(सखायः) हे मित्रो ! (इमम्) इस (वीरम् अनु) वीर [सेनापति] के साथ (हर्षध्वम्) हर्ष करो, (ग्रामजितम्) शत्रुओं के समूह को जीतने वाले, (गोजितम्) उनकी भूमि को जीतने वाले, (वज्रबाहुम्) भुजाओं में शस्त्र रखने वाले, (जयन्तम्) विजयी, (ओजसा) [अपने शरीर, बुद्धि और सेना के] बल से (अज्म) संग्राम को (प्रमृणन्तम्) मिटाने वाले (उग्रम्) तेजस्वी (इन्द्रम् अनु) इन्द्र [महाप्रतापी सेनाध्यक्ष] के साथ (सम्) अच्छे प्रकार (रभध्वम्) उद्योग करो ॥६॥

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदाय उग्रः शतमन्युरिन्द्रः ।

दुश्च्यवनः पृतनाषाडयोध्योऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥७॥

पदार्थ—(गोत्राणि) शत्रुकुलों को (सहसा) बल से (अभि) सब ओर से (गाहमानः) गाहता हुआ [मथता हुआ] (अदायः) अदयालु (उग्रः) प्रचण्ड, (शतमन्युः) सैकड़ों प्रकार क्रोध वाला, (दुश्च्यवनः) न हटने वाला, (पृतनाषाट्) सेनाओं का हराने वाला, (अयोध्यः) अजेय (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी सेनापति] (अस्माकम्) हमारी (सेनाः) सेनाओं को (युत्सु) युद्धों में (प्र) प्रयत्न से (अवतु) बचावे ॥७॥

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।

प्रभञ्जञ्छत्रून् प्रमृणन्नमित्रानस्माकमेध्यविता तनूनाम् ॥८॥

पदार्थ—(बृहस्पते) हे बृहस्पति ! [बड़े-बड़े पुरुषों के रक्षक] (रक्षोहा) राक्षसों [दुष्टों] को मारने वाला, (अमित्रान्) अमित्रों [वैरियों] को (अपबाधमानः) हटा देनेवाला होकर (रथेन) रथ समूह से (परि) सब ओर से (दीय) नाश कर । (शत्रून्) शत्रुओं को (प्रभञ्जन्) कुचलता हुआ और (अमित्रान्) अमित्रों को (प्रमृणन्) मार डालता हुआ तू (अस्माकम्) हमारे (तनूनाम्) शरीरों का (अविता) रक्षक (एधि) हो ॥८॥

इन्द्र एषां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्तु मध्ये ॥९॥

पदार्थ—(इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी मुख्य सेनापति] (एषाम्) इन वीरो का (नेता) नेता [होवे], (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े अधिकारो का स्वामी सेनानायक] (दक्षिणा) दाहिनी ओर और (यज्ञः) पूजनीय, (सोमः) सोम [प्रेरक, उत्साहक सेनाधिकारी] (पुरः) आगे (एतु) चले । (मरुतः) मरुद्गण [शूरवीर पुरुष] (अभिभञ्जतीनाम्) कुचल डालती हुई, (जयन्तीनाम्) विजयिनी (देवसेनानाम्) विजय चाहने वालो की सेनाओ के (मध्ये) बीच मे (यन्तु) चलें ॥९॥

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥१०॥

पदार्थ—(वृष्णः) वीर्यवान् (इन्द्रस्य) इन्द्र [महाप्रतापी मुख्य सेनापति] का, (वरुणस्य) वरुण [श्रेष्ठ गुणी मन्त्री] (राज्ञः) राजा [शासक] का, (आदित्यानाम्) अखण्डव्रती (मरुताम्) मरुद्गणो [शत्रुनाशक वीरो] का (शर्धः) बल (उग्रम्) उग्र [प्रचण्ड] होवे । (महामनसाम्) बड़े मन वाले, (भुवनच्यवानाम्) ससार को हिला देने वाले, (जयताम्) जीतते हुए (देवानाम्) विजय चाहनेवाले वीरो का (घोषः) जय जयकार (उत् अस्थात्) ऊँचा उठा है ॥१०॥

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मान् देवासोऽवता हवेषु ॥११॥

पदार्थ—(ध्वजेषु) ध्वजाओ के (समृतेषु) मिल जाने पर (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी सेनापति] (अस्माकम्) हमारा है, (अस्माकम्) हमारे (याः) जो (इषवः) बाण है (ताः) वे (जयन्तु) जातें । (अस्माकम्) हमारे (वीराः) वीर (उत्तरे) अधिक ऊँचे (भवन्तु) होवे, (देवासः) हे देवो ! [विजय चाहने वाले शूरो] (हवेषु) ललकार के स्थानो [सङ्ग्रामो मे] (अस्मान्) हम (अवत) बचाओ ॥११॥

सूक्तम् १४

१ अथर्वा । द्यावापृथिवी । त्रिष्टुप् ।

इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागां शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम् ।
असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु ॥१॥

पदार्थ—[हे इन्द्र ! महाप्रतापी राजन्] (इदम्) यह (उच्छ्रेयः) अत्युत्तम (अवसानम्) विश्राम (आ अगाम्) मैं ने पाया है, (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी (मे) मेरे लिये (शिवे) मङ्गलकारी (अभूताम्) हुई है । (मे) मेरी (प्रदिशः) दिशाएँ (असपत्नाः) शत्रु रहित (भवन्तु) होवें, (त्वा) तुझ से (वै) निश्चय करके (न द्विष्मः) हम विरोध नही करते, (नः) हमारे लिये (अभयम्) अभय (अस्तु) होवे ॥१॥

सूक्तम् १५

१—६ अथर्वा । १—४ इन्द्रः । मन्त्रोक्ता । त्रिष्टुप्, १ पथ्याबृहती, २, ५ जगती, ३ पथ्यापङ्क्तिः ।

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव त्वं न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (यतः) जिस से (भयामहे) हम डरते हैं, (ततः) उससे (नः) हमे (अभयम्) अभय (कृधि) कर दे । (मघवन्) हे महाधनी ! (त्वम्) तू (तव) अपनी (ऊतिभिः) रक्षाओ से (नः) हमे (शग्धि) शक्ति दे, (द्विषः) द्वेषियो को और (मृधः) संग्रामों को (वि) विशेष करके (वि जहि) विनाश कर दे ॥१॥

इन्द्रं वयमनूराधं हवामहेऽनु राध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा ।
मा नः सेना अररुषीरुप गुर्विषूचीरिन्द्र द्रुहो वि नाशय ॥२॥

पदार्थ—(अनूराधम्) अनुकूल सिद्धि करने वाले (इन्द्रम्) इन्द्र [महाप्रतापी राजा] को (वयम्) हम (हवामहे) बुलाते हैं, (द्विपदा) दोपाये के साथ और (चतुष्पदा) चौपाये के साथ (अनु) निरन्तर (राध्यास्म) हम सिद्धि पावें । (अररुषीः) सतावनी (सेनाः) सेनायें [चोर आदि] (नः) हम को (मा उप गुः) न पहुँचें (इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन्] (विषूचीः) फैली हुई (द्रुहः) द्रोह रीतों को (वि नाशय) मिटा दे ॥२॥

इन्द्रस्त्रातोत वृत्रहा परस्फानो वरेण्यः । स रक्षिता चरमतः
स मध्यतः स पश्चात् स पुरस्तान्नो अस्तु ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी राजा] (त्राता) रक्षक, (उत) और (वृत्रहा) शत्रुनाशक, (परस्फानः) श्रेष्ठो का बढ़ाने वाला और (वरेण्यः) स्वीकार करने योग्य है । (सः) वह (चरमतः) अन्त मे, (सः) वह (मध्यतः) मध्य मे, (सः) वह (पश्चात्) पीछे से (सः) वह (पुरस्तात्) आगे से (नः) हमारा (रक्षिता) रक्षक (अस्तु) होवे ॥३॥

उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्यज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
उग्रा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप क्षयेम शरणा बृहन्ता ॥४॥

पदार्थ—(विद्वान्) जानकार तू (नः) हमे (उरुम्) चौड़े (लोकम्) स्थान मे (अनुनेषि) निरन्तर ले चलता है, (यत्) जो (स्वः) सुखप्रद, (ज्योतिः) प्रकाशमान, (अभयम्) निर्भय और (स्वस्ति) मङ्गलदाता [अच्छी सत्ता वाला है] । (इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन्] (स्थविरस्य ते) तुझ दृढ़ स्वभाव वाले के, (उग्रा) प्रचण्ड, (शरणा) शरण देने वाले, (बृहन्ता) विशाल (बाहू) दोनो भुजाओ का (उप) आश्रय लेकर (क्षयेम) हम रहें ॥४॥

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥५॥

पदार्थ—(नः) हमे (अन्तरिक्षम्) मध्य लोक (अभयम्) अभय (करति) करे, (इमे) यह (उभे) दोनो (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी (अभयम्) अभय, [करें] । (पश्चात्) पश्चिम मे वा पीछे से (अभयम्) अभय हो, (पुरस्तात्) पूर्व मे वा आगे से (अभयम्) अभय हो, (उत्तरात्) उत्तर मे वा ऊपर से और (अधरात्) दक्षिण व नीचे से (अभयम्) अभय (नः) हमारे लिये (अस्तु) हो ॥५॥

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥६॥

पदार्थ—(मित्रात्) मित्र से (अभयम्) अभय और (अमित्रात्) अमित्र [पीड़ा देने हारे] से (अभयम्) अभय हो (ज्ञातात्) जानकार से (अभयम्) अभय और (यः) जो (पुरः) सामने है [उनसे भी] (अभयम्) अभय हो (नः) हमारे लिये (नक्तम्) रात्रि मे (अभयम्) अभय और (दिवा) दिन में (अभयम्) अभय हो, (मम) मेरी (सर्वाः) सब (आशाः) दिशाएँ (मित्रम्) मित्र (भवन्तु) होवें ॥६॥

सूक्तम् १६

१—२ अथर्वा । मन्त्रोक्ता । अनुष्टुप्, २ त्र्यवसाना सप्तपदा बृहती गर्भातिशक्वरी ।

असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम् ।
सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः ॥१॥

पदार्थ—(नः) हमारे लिये (मा) मुझ को (पुरस्तात्) सामने [वा पूर्व दिशा] से (पश्चात्) पीछे [वा पश्चिम] से, (दक्षिणतः) दाहिनी ओर [वा दक्षिण] से और (मा) मुझको (उत्तरात्) बाईं ओर [वा उत्तर] से (सविता) सर्वप्रेरक राजा और (शचीपतिः) वाणियो व कर्मों का पालने वाला [मन्त्री], तुम दोनो (असपत्नम्) शत्रुरहित और (अभयम्) निर्भय (कृतम्) करो ॥१॥

दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः ।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम् ।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ॥२॥

पदार्थ—(आदित्याः) अखण्डव्रती शूर (मा) मुझे (दिवः) आकाश से (रक्षन्तु) बचावें, (अग्नयः) ज्ञानी पुरुष (भूम्याः) भूमि से (रक्षन्तु) बचावें । (इन्द्राग्नी) बिजुली और अग्नि [के समान तेजस्वी और व्यापक राजा और मन्त्री दोनों] (मा) मुझे (पुरस्तात्) सामने से (रक्षताम्) बचावें, (अश्विनौ) सूर्य और चन्द्रमा [के समान ठीक मार्ग पर चलने वाले वे दोनो] (अभितः) सब ओर से (शर्म) सुख (यच्छताम्) देवें । (जातवेदाः) बहुत धन वाली (अघ्न्या) अदृष्ट [राजनीति] (तिरश्चीन्=तिरश्चीनम्) आड़े चलने वाले [वैरियों] से [मुझे] (रक्षतु) बचावे, (भूतकृतः) उचित कर्म

करने वाले पुरुष (मे) मेरे लिये (सर्वत) सब ओर से (वर्म) कवच (सन्तु) होवें ॥२॥

卐 सूक्तम् १७ 卐

१—१० अथर्वा मन्त्रोक्ता । १—४ जगती, ५, ७, १० अतिजगती, ६ भुरिक्, ९ पंचपदातिशक्वरी ।

अग्निर्मा पातु वसुभिः पुरस्तात् तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥१॥

पदार्थ—(अग्नि) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (वसुभि.) श्रेष्ठ गुणों के साथ (मा) मुझे (पुरस्तात्) पूर्व वा सामने से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उसमें [उस परमेश्वर के विश्वास मे] (क्रमे) मैं पद बढ़ाता हूँ, (तस्मिन्) उसमे (श्रये) आश्रय लेता हूँ, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति [वा दुर्गरूप परमेश्वर] को (प्र) अच्छे प्रकार (एमि) प्राप्त होता हूँ। (स) वह [ज्ञानस्वरूप परमेश्वर] (मा) मुझे (रक्षतु) बचावे, (स) वह (मा) मुझे (गोपायतु) पाले, (तस्मै) उस को (आत्मानम्) अपना आत्मा [मन-सहित देह और जीव] (स्वाहा) सुन्दर वाणी [दृढ प्रतिज्ञा] के साथ (परि ददे) मैं सौंपता हूँ ॥ १ ॥

वायुर्मान्तरिक्षेणैतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥२॥

पदार्थ—(वायु) सर्वव्यापक परमेश्वर (अन्तरिक्षेण) मध्यलोक के साथ [पवन, मेघ आदि के साथ] (मा) मुझे (एतस्या) इस [बीच वाली] (दिश) दिशा से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उस मे [उस परमेश्वर के विश्वास मे] (क्रमे) मैं पद बढ़ाता हूँ, (तस्मिन्) उसमे (श्रये) आश्रय लेता हूँ, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति [वा दुर्गरूप परमेश्वर] को (प्र) अच्छे प्रकार (एमि) प्राप्त होता हूँ । (स.) वह [ज्ञानस्वरूप परमेश्वर] (मा) मुझे (रक्षतु) बचावे, (स) वह (मा) मुझे (गोपायतु) पाले (तस्मै) उस को (आत्मानम्) अपना आत्मा [मन सहित देह और जीव] (स्वाहा) सुन्दर वाणी [दृढ प्रतिज्ञा] के साथ (परि ददे) मै सौंपता हूँ ॥ २ ॥

सोमो मा रुद्रैर्दक्षिणाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥३॥

पदार्थ—(सोमः) सब का उत्पन्न करने वाला परमेश्वर (रुद्रै) दुष्ट नाशक गुणों के साथ (मा) मुझे (दक्षिणाया.) दक्षिण वा दाहिनी (दिश) दिशा से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उस मे [उस परमेश्वर के विश्वास मे] (क्रमे) मैं पद बढ़ाता हूँ, (तस्मिन्) उसमे (श्रये) आश्रय लेता हूँ, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति [वा दुर्गरूप परमेश्वर] को (प्र) अच्छे प्रकार (एमि) प्राप्त होता हूँ । (स.) वह [ज्ञानस्वरूप परमेश्वर] (मा) मुझे (रक्षतु) बचावे, (स) वह (मा) मुझे (गोपायतु) पाले, (तस्मै) उसको (आत्मानम्) अपना आत्मा [मन सहित देह और जीव] (स्वाहा) सुन्दर वाणी [दृढ प्रतिज्ञा] के साथ (परि ददे) मैं सौंपता हूँ ॥ ३ ॥

वरुणो मादित्यैरेतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥४॥

पदार्थ—(वरुणः) सब मे उत्तम परमेश्वर (आदित्यैः) प्रकाशमान गुणों के साथ (मा) मुझे (एतस्या) इस [बीच वाली] (दिश.) दिशा से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उस मे [उस परमेश्वर के विश्वास में] (क्रमे) मैं पद बढ़ाता हूँ (तस्मिन्) उसमें (श्रये) आश्रय लेता हूँ (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति [वा दुर्गरूप परमेश्वर] को (प्र) अच्छे प्रकार (एमि) प्राप्त होता हूँ । (सः) वह [ज्ञानस्वरूप परमेश्वर] (मा) मुझे (रक्षतु) बचावे, (स) वह (मा) मुझे (गोपायतु) पाले, (तस्मै) उस को (आत्मानम्) अपना आत्मा [मन सहित देह और जीव] (स्वाहा) सुन्दर वाणी [दृढ प्रतिज्ञा] के साथ (परि ददे) मैं सौंपता हूँ ॥ ४ ॥

सूर्यो मा द्यावापृथिवीभ्यां प्रतीच्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥५॥

पदार्थ—(सूर्यः) सर्वप्रेरक परमात्मा (द्यावापृथिवीभ्याम्) दोनों सूर्य और पृथिवी के साथ (मा) मुझे (प्रतीच्या.) पश्चिम वा पीछे वाली (दिशः) दिशा से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उसमें [उस परमेश्वर के विश्वास मे] (क्रमे) मैं पद बढ़ाता हूँ, (तस्मिन्) उसमें (श्रये) आश्रय लेता हूँ। (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति [वा दुर्गस्वरूप परमेश्वर] को (प्र) अच्छे प्रकार (एमि) प्राप्त होता हूँ (स) वह [ज्ञानस्वरूप परमेश्वर] (मा) मुझे (रक्षतु) बचावे, (स) वह (मा) मुझे (गोपायतु) पाले, (तस्मै) उस को (आत्मानम्) अपना आत्मा [मन सहित देह और जीव] (स्वाहा) सुन्दर वाणी [दृढ प्रतिज्ञा) के साथ (परि ददे) सौंपता हूँ ॥ ५ ॥

आपो मौषधीमतीरेतस्या दिशः पान्तु तासु क्रमे तासु श्रये तां पुरं प्रैमि। ता मा रक्षन्तु ता मा गोपायन्तु ताभ्य आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥६॥

पदार्थ—(ओषधीमती.) ओषधियो [अन्न सोम रस आदि] वाली (आपः) श्रेष्ठ गुणो मे व्याप्त प्रजायें [उत्पन्न जीव] (मा) मुझे (एतस्या) इस बीच वाली] (दिश) दिशा से (पान्तु) बचावें, (तासु) उनमे [प्रजाओ के विश्वास मे] (क्रमे) मैं पद बढ़ाता हूँ, (तासु) उन मे (श्रये) आश्रय लेता हूँ, (ताम) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति [वा दुर्गरूप परमेश्वर] को (प्र) अच्छे प्रकार (एमि) मैं प्राप्त होता हूँ (ताः) वे [प्रजायें] (मा) मुझे (रक्षन्तु) बचावें, (ता.) वे (मा) मुझे (गोपायन्तु) पाले, (ताभ्य) उन को (आत्मानम्) अपना आत्मा [मन सहित देह और जीव] (स्वाहा) सुन्दर वाणी [दृढ प्रतिज्ञा] के साथ (परि ददे) मैं सौंपता हूँ ॥ ६ ॥

विश्वकर्मा मा सप्तऋषिभिरुदीच्या दिशः पातु तस्मिन् तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥७॥

पदार्थ—(विश्वकर्मा) विश्वकर्मा [सब कर्म करने वाला परमेश्वर] (सप्तऋषिभि) सात ऋषियो सहित [कान, आँख, नाक, जिह्वा, त्वचा पाँच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि सहित] (मा) मुझे (उदीच्या) उत्तर वा बायीं (दिश) दिशा से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उस मे [उस परमेश्वर के विश्वास मे] (क्रमे) मैं पद बढ़ाता हूँ, (तस्मिन्) उसमें (श्रये) आश्रय लेता हूँ, (ताम) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति [वा दुर्गस्वरूप परमेश्वर] को (प्र) अच्छे प्रकार (एमि) प्राप्त होता हूँ । (स.) वह [ज्ञानस्वरूप परमेश्वर] (मा) मुझे (रक्षतु) बचावे, (स) वह (मा) मुझे (गोपायतु) पाले, (तस्मै) उस को (आत्मानम्) अपना आत्मा [मन सहित देह और जीव] (स्वाहा) सुन्दर वाणी [दृढ प्रतिज्ञा] के साथ (परि ददे) मैं सौंपता हूँ ॥ ७ ॥

इन्द्रो मा मरुत्वानेतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥८॥

पदार्थ—(मरुत्वान्) शूरो का अधिष्ठाता (इन्द्रः) इन्द्र [परमऐश्वर्यवान् परमात्मा] (मा) मुझे (एतस्या) इस [बीच वाली] (दिशः) दिशा से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उस मे [उस परमेश्वर के विश्वास मे] (क्रमे) मैं पद बढ़ाता हूँ, (तस्मिन्) उसमे (श्रये) आश्रय लेता हूँ, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति दुर्गरूप परमेश्वर] को (प्र) अच्छे प्रकार (एमि) प्राप्त होता हूँ । (सः) वह [ज्ञानस्वरूप परमेश्वर] (मा) मुझे (रक्षतु) बचावे, (सः) वह (मा) मुझे (गोपायतु) पाले, (तस्मै) उस को (आत्मानम्) अपना आत्मा [मन सहित देह और जीव] (स्वाहा) सुन्दर वाणी [दृढ प्रतिज्ञा] के साथ (परि ददे) मैं सौंपता हूँ ॥८॥

प्रजापतिर्मा प्रजननवान्त्सह प्रतिष्ठाया ध्रुवाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥९॥

पदार्थ—(प्रजननवान्) सृजनसामर्थ्य वाला (प्रजापतिः) प्रजापति [प्रजाओं का पालक परमेश्वर] (मा) मुझे (प्रतिष्ठायाः=प्रतिष्ठाया) प्रतिष्ठा [गौरव] के (सह) साथ (ध्रुवाया.) स्थिर वा नीचे वाली (दिशः) दिशा से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उसमें [उस परमेश्वर के विश्वास में] (क्रमे) मैं पद बढ़ाता हूँ, (तस्मिन्) उसमें (श्रये) आश्रय लेता हूँ, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति [वा दुर्गरूप परमेश्वर] को (प्र) अच्छे प्रकार (एमि) प्राप्त होता हूँ। (स) वह ज्ञानस्वरूप परमेश्वर] (मा) मुझे (रक्षतु) बचावे, (सः) वह (मा) मुझे (गोपायतु) पाले, (तस्मै) उस को (आत्मानम्) अपना आत्मा [मन सहित देह और जीव] (स्वाहाः) सुन्दर वाणी [दृढ प्रतिज्ञा] के साथ (परिददे) मैं सौंपता हूँ ॥९॥

बृहस्पतिर्मा विश्वैर्देवैरूर्ध्वाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥१०॥

पदार्थ—(बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी वेदवाणी का रक्षक परमात्मा] (विश्वैः) सब (देवैः) उत्तम गुणों के साथ (मा) मुझे (ऊर्ध्वायाः) ऊपर वाली (दिशः) दिशा से (पातु) बचावे, (तस्मिन्) उसमें [उस परमेश्वर के विश्वास में] (क्रमे) मैं पद बढ़ाता हूँ, (तस्मिन्) उस में (श्रये) आश्रय लेता हूँ, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति [वा दुर्गरूप परमेश्वर] को (प्र) अच्छे प्रकार (एमि) प्राप्त होता हूँ । (सः) वह [ज्ञानस्वरूप परमेश्वर] (मा) मुझे (रक्षतु) बचावे, (सः) वह (मा) मुझे (गोपायतु) पाले, (तस्मै) उसको (आत्मानम्) अपना आत्मा [मन सहित देह और जीव] (स्वाहा) सुन्दर वाणी [दृढ़ प्रतिज्ञा] के साथ (परि ददे) मैं सौंपता हूँ ॥१०॥

卐 सूक्तम् १८ 卐

१—१० अथर्वा । मन्त्रोक्ताः । १,७ साम्नी त्रिष्टुप्, २,६ आर्च्यनुष्टुप्; (५ सम्राडार्च्यनुष्टुप्) ७, ९, १० प्राजापत्या त्रिष्टुप्; (द्विपदा) ॥

अग्निं ते वसुवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवः प्राच्या दिशोऽभिदासात् ॥१॥

पदार्थ—(ते) वे [दुष्ट] (वसुवन्तम्) श्रेष्ठ गुणों के स्वामी (अग्निम्) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर की (ऋच्छन्तु) सेवा करें । (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतने वाले (मा) मुझे (प्राच्याः) पूर्व वा सामनेवाली (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥१॥

वायुं तेऽन्तरिक्षवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥२॥

पदार्थ—(ते) वे [दुष्ट] (अन्तरिक्षवन्तम्) मध्यलोक के स्वामी (वायुम्) सर्वव्यापक परमेश्वर की (ऋच्छन्तु) सेवा करें । (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतने वाले (मा) मुझे (एतस्याः) इस [बीच वाली] (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥२॥

सोमं ते रुद्रवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवो दक्षिणाया दिशोऽभिदासात् ॥३॥

पदार्थ—(ते) वे [दुष्ट] (रुद्रवन्तम्) दुष्टनाशक गुणों के स्वामी (सोमम्) सब के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर की (ऋच्छन्तु) सेवा करें । (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतनेवाले (मा) मुझे (दक्षिणायाः) दक्षिण वा दाहिनी (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥३॥

वरुणं त आदित्यवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥४॥

पदार्थ—(ते) वे [दुष्ट] (आदित्यवन्तम्) प्रकाशमान गुणों के स्वामी (वरुणम्) सब में उत्तम परमेश्वर की (ऋच्छन्तु) सेवा करें । (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतनेवाले (मा) मुझे (एतस्याः) इस [बीच वाली] (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥४॥

सूर्यं ते द्यावापृथिवीवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवः प्रतीच्या दिशोऽभिदासात् ॥५॥

पदार्थ—(ते) वे [दुष्ट] (द्यावापृथिवीवन्तम्) सूर्य और पृथिवी के स्वामी (सूर्यम्) सर्वप्रेरक परमात्मा की (ऋच्छन्तु) सेवा करें । (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतने वाले (मा) मुझे (प्रतीच्याः) पश्चिम वा पीछे वाली (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥५॥

अपस्त ओषधीमतीर्ऋच्छन्तु ।
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥६॥

पदार्थ—(ते) वे [दुष्ट] (ओषधीमतीः) ओषधियों [अन्न सोमलता आदि] वाली (अपः) श्रेष्ठ गुणों में व्याप्त प्रजाओं की (ऋच्छन्तु) सेवा करें । (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतनेवाले (मा) मुझे (एतस्याः) इस [बीच वाली] (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥६॥

विश्वकर्माणं ते सप्तऋषिवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव उदीच्या दिशोऽभिदासात् ॥७॥

पदार्थ—(ते) वे [दुष्ट] (सप्तऋषिवन्तम्) सात ऋषियों [हमारे कान, आंख, नाक, जिह्वा त्वचा, पांच ज्ञानेन्द्रिय मन, बुद्धि] के स्वामी (विश्वकर्माणम्) विश्वकर्मा [सब के बनाने वाले परमेश्वर] की (ऋच्छन्तु) सेवा करें (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतनेवाले (मा) मुझे (उदीच्याः) उत्तर वा बायीं (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥७॥

इन्द्रं ते मरुत्वन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥८॥

पदार्थ—(ते) वे [दुष्ट] (मरुत्वन्तम्) शूरों के स्वामी (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा] की (ऋच्छन्तु) सेवा करें । (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतनेवाले (मा) मुझे (एतस्याः) इस [बीच वाली] (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥८॥

प्रजापतिं ते प्रजननवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवो ध्रुवाया दिशोऽभिदासात् ॥९॥

पदार्थ—(ते) वे [दुष्ट] (प्रजननवन्तम्) सृजन सामर्थ्य के स्वामी (प्रजापतिम्) प्रजापति [प्रजाओं के पालक परमेश्वर] की (ऋच्छन्तु) सेवा करें । (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतनेवाले (मा) मुझे (ध्रुवायाः) स्थिर वा नीचे वाली (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥९॥

बृहस्पतिं ते विश्वदेववन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासात् ॥१०॥

पदार्थ—(ते) वे [दुष्ट] (विश्वदेववन्तम्) सब उत्तम गुण रखने वाले (बृहस्पतिम्) बृहस्पति [वेदवाणी के रक्षक परमात्मा] की (ऋच्छन्तु) सेवा करें । (ये) जो (अघायवः) बुरा चीतनेवाले (मा) मुझे (ऊर्ध्वायाः) ऊपर वाली (दिशः) दिशा से (अभिदासात्) सताया करें ॥१०॥

सूक्तम् ॥१९॥

१—११ अथर्वा । चन्द्रमा, मन्त्रोक्ताश्च । पङ्क्तिः; १,३, ९ भुरिग्बृहती; १० स्वराट्; २,४—८, ११ अनुष्टुब्गर्भा ।

मित्रः पृथिव्योदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥१॥

पदार्थ—(मित्र) मित्र [हितकारी मनुष्य] (पृथिव्या) पृथिवी के साथ (उत् अक्रामत्) ऊंचा चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति [वा दुर्ग रूप परमेश्वर] की ओर (वः) तुम्हें (प्र) आगे (नयामि) लिये चलता हूँ । (ताम्) उस [शक्ति] मे (आ विशत) तुम घुस आओ, (ताम्) उस में (प्र विशत) तुम भीतर आओ, (सा) वह [शक्ति] (वः) तुम्हें (शर्म) सुख (च च) और (वर्म) कवच [रक्षा साधन] (यच्छतु) देवे ॥१॥

वायुरन्तरिक्षेणोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥२॥

पदार्थ—(वायु) वायु [पवन] (अन्तरिक्षेण) आकाश के साथ (उत् अक्रामत्) ऊपर चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति [वा दुर्ग रूप परमेश्वर] की ओर (वः) तुम्हे (प्र) आगे (नयामि) लिये चलता हूँ । (ताम्) उस [शक्ति] मे (आ विशत) तुम घुस आओ, (ताम्) उस में (प्र विशत) तुम भीतर आओ, (सा) वह [शक्ति] (वः) तुम्हें (शर्म) सुख (च च) और (वर्म) कवच [रक्षा साधन] (यच्छतु) देवे ॥२॥

सूर्यो दिवोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥३॥

पदार्थ—(सूर्यः) सूर्य (दिवा) आकाश के साथ (उत् अक्रामत्) ऊंचा चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति [वा दुर्ग रूप परमेश्वर] की ओर (वः) तुम्हें (प्र) आगे (नयामि) लिये चलता हूँ । (ताम्) उस [शक्ति] में (आ विशत) तुम घुस आओ, (ताम्) उस मे (प्र विशत) तुम भीतर आओ, (सा) वह [शक्ति] (वः) तुम्हें (शर्म) सुख (च च) और (वर्म) कवच [रक्षा साधन] (यच्छतु) देवे ॥३॥

चन्द्रमा नक्षत्रैरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥४॥

पदार्थ—(चन्द्रमाः) चन्द्रमा (नक्षत्रैः) नक्षत्रों के साथ (उत् अक्रामत्) ऊंचा चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति [वा दुर्गरूप परमेश्वर]

की ओर (वः) तुम्हे (प्र) आगे (नयामि) लिये चलता हूँ । (ताम्) उस [शक्ति] में (आविशत) तुम घुस जाओ, (ताम्) उसमें (प्र विशत) तुम भीतर जाओ, (सा) वह [शक्ति] (वः) तुम्हे (शर्म) सुख (च च) और (वर्म) कवच [रक्षा साधन] (यच्छतु) देवे ॥४॥

सोम ओषधीभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विंशत तां प्र विंशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥५॥

पदार्थ—(सोम) सोम रस (ओषधीभि) ओषधियो [अन्नादि] के साथ (उत अक्रामत) ऊँचा चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति [वा दुर्ग रूप परमेश्वर] की ओर (वः) तुम्हे (प्र) आगे (नयामि) लिये चलता हूँ । (ताम्) उस [शक्ति] मे (आ विशत) तुम घुस जाओ, (ताम्) उस मे (प्र विशत) तुम भीतर जाओ, (सा) वह [शक्ति] (वः) तुम्हे (शर्म) सुख (च च) और (वर्म) कवच [रक्षा साधन] (यच्छतु) देवे ॥५॥

यज्ञो दक्षिणाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विंशत तां प्र विंशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥६॥

पदार्थ—(यज्ञ) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] (दक्षिणाभि) दक्षिणाओ [योग्य दानो] के साथ (उत् अक्रामत) ऊँचा चढ़ा है, (ताम) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति [वा दुर्ग रूप परमेश्वर] की ओर (वः) तुम्हे (प्र) आगे (नयामि) लिये चलता हूँ । (ताम) उस [शक्ति] मे (आ विशत) तुम घुस जाओ, (ताम्) उस मे (प्र विशत) तुम भीतर जाओ, (सा) वह [शक्ति] (वः) तुम्हे (शर्म) सुख (च च) और (वर्म) कवच [रक्षा साधन] (यच्छतु) देवे ॥६॥

समुद्रो नदीभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विंशत तां प्र विंशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥७॥

पदार्थ—(समुद्र) समुद्र [जल समूह] (नदीभि) नदियो के साथ (उत् अक्रामत्) ऊँचा चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम) अग्रगामिनी शक्ति [वा दुर्ग रूप परमेश्वर] की ओर (वः) तुम्हे (प्र) आगे (नयामि) लिये चलता हूँ । (ताम) उस [शक्ति] मे (आ विशत) तुम घुस जाओ, (ताम) उस मे (प्र विशत) तुम भीतर जाओ, (सा) वह [शक्ति] (वः) तुम्हे (शर्म) सुख (च च) और (वर्म) कवच [रक्षा साधन] (यच्छतु) देवे ॥७॥

ब्रह्म ब्रह्मचारिभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विंशत तां प्र विंशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥८॥

पदार्थ—(ब्रह्म) वेदज्ञान (ब्रह्मचारिभि) ब्रह्मचारियो [वीर्यनिग्रह से ईश्वर और वेद को प्राप्त होने वालो] के साथ (उत् अक्रामत) ऊँचा चढ़ा है (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति [वा दुर्ग रूप परमेश्वर] की ओर (वः) तुम्हे (प्र) आगे (नयामि) लिये चलता हूँ (ताम्) उस [शक्ति] मे (आ विशत) तुम घुस जाओ, (ताम) उस मे (प्र विशत) तुम भीतर जाओ, (सा) वह [शक्ति] (वः) तुम्हे (शर्म) सुख (च च) और (वर्म) कवच [रक्षा साधन] (यच्छतु) देवे ॥८॥

इन्द्रो वीर्ये॑णोदक्रामत्तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विंशत तां प्र विंशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥९॥

पदार्थ—(इन्द्र) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् पुरुष] (वीर्येण) वीरता से (उत् अक्रामत्) ऊँचा चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति [वा दुर्ग रूप परमेश्वर] की ओर (वः) तुम्हे (प्र) आगे (नयामि) लिये चलता हूँ । (ताम्) उस [शक्ति] मे (आ विशत) तुम घुस जाओ, (ताम्) उस मे (प्र विशत) तुम भीतर जाओ, (सा) वह [शक्ति] (वः) तुम्हे (शर्म) सुख (च च) और (वर्म) कवच [रक्षा साधन] (यच्छतु) देवे ॥९॥

देवा अमृतेनोदक्रामंस्तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विंशत तां प्र विंशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥१०॥

पदार्थ—(देवा) विद्वान् लोग (अमृतेन) अमरपन [पुरुषार्थ वा मोक्ष-सुख] के साथ (उत् अक्रामन्) ऊँचे चढ़े हैं, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति [वा दुर्ग रूप परमेश्वर] की ओर (वः) तुम्हे (प्र) आगे (नयामि) लिये चलता हूँ । (ताम्) उस [शक्ति] मे (आ विशत) तुम घुस जाओ, (ताम्) उस मे (प्रविशत) तुम भीतर जाओ, (सा) वह [शक्ति] (वः) तुम्हें (शर्म) सुख (च च) और (वर्म) कवच [रक्षा साधन] (यच्छतु) देवे ॥१०॥

प्रजापतिः प्रजाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विंशत तां प्र विंशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥११॥

पदार्थ—(प्रजापति) प्रजापति [प्रजापालक मनुष्य] (प्रजाभि.) प्रजाओं के साथ (उत् अक्रामत्) ऊँचा चढ़ा है, (ताम्) उस (पुरम्) अग्रगामिनी शक्ति की ओर (वः) तुम्हें (प्र) आगे (नयामि) लिये चलता हूँ । (ताम्) उस [शक्ति] मे (आ विशत) तुम घुस जाओ, (ताम्) उस में (प्र विशत) तुम भीतर जाओ, (सा) वह [शक्ति] (वः) तुम्हे (शर्म) सुख (च च) और (वर्म) कवच [रक्षासाधन] (यच्छतु) देवे ॥११॥

卐 सूक्तम् २० 卐

१—४ अथर्वा । नाना देवता । १ त्रिष्टुप्, २ जगती, ३ पुरस्ताद्बृहती; ४ अनुष्टुब्गर्भा ।

अप न्यधुः पौरुषेयं वधं यमिन्द्राग्नी धाता सविता बृहस्पतिः ।
सोमो राजा वरुणो अश्विना यमः पूषास्मान् परि पातु मृत्योः ॥१॥

पदार्थ—(यम) जिस (पौरुषेयम्) पुरुषों में विकार करनेवाले (वधम्) हथियार को (अप) छिपा कर (न्यधु) उन [शत्रुओ] ने जमा रक्खा है, [उस] (मृत्यो) मृत्यु [मृत्यु के कारण] से (इन्द्राग्नी) बिजुली और अग्नि दोनो [के समान व्यापक और तेजस्वी], (धाता) धारण करनेवाला, (सविता) आगे चलने वाला, (बृहस्पति) बड़ी विद्याओं का रक्षक, (सोम) ऐश्वर्यवान्, (राजा) राजा [शासक] (वरुण) श्रेष्ठ (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा दोनो [के समान नियम पर चलनेवाला], (यम) न्यायकारी (पूषा) पोषण करनेवाला [शूर पुरुष] (अस्मान्) हमे (परि) सब ओर से (पातु) बचावे ॥१॥

यानि चकार भुवनस्य यस्पतिः प्रजापतिर्मातरिश्वा प्रजाभ्यः ।
प्रदिशो यानि वसते दिशश्च तानि मे वर्माणि बहुलानि सन्तु ॥२॥

पदार्थ—(भुवनस्य) ससार का (यः) जो (पति) पति [परमात्मा] है, [उस (प्रजापति) प्रजापति, (मातरिश्वा) आकाश मे व्यापक [परमात्मा] ने (प्रजाभ्य) प्रजाओ के लिये (यानि) जिन [रक्षा साधनो] को (चकार) बनाया है । और (यानि) जो (प्रदिश) दिशाओ (च) और (दिश) मध्य दिशाओ को (वसते) ढकते हैं [रक्षित करते हैं], (तानि) वे (वर्माणि) कवच [रक्षा-साधन] (मे) मेरे लिए (बहुलानि) बहुत से (सन्तु) होवें ॥२॥

यत् ते तनूष्वनह्यन्त देवा द्युराजयो देहिनः ।
इन्द्रो यच्चक्रे वर्म तदस्मान् पातु विश्वतः ॥३॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (यत्) जिस [कवच] को (तनूषु) शरीरो पर (ते) उन (द्युराजय) व्यवहारो मे ऐश्वर्यवान्, (देहिन) शरीरधारी (देवा) विद्वानो ने (अनह्यन्त) बाधा है । और (यत्) जिस (वर्म) कवच [रक्षासाधन] को (इन्द्र) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान जगदीश्वर] ने (चक्रे) बनाया है, (तत्) वह [कवच] (अस्मान्) हमे (विश्वत.) सब ओर से (पातु) बचावे ॥३॥

वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः ।
वर्म मे विश्वे देवाः क्रन् मा मा प्रापत् प्रतीचिका ॥४॥

पदार्थ—(मे) मेरे लिये (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि ने (वर्म) कवच, (अह) दिन ने (वर्म) कवच (सूर्य) सूर्य ने (वर्म) कवच (विश्वे) सब (देवा) उत्तम पदार्थों ने (वर्म) कवच (मे) मेरे लिये (क्रन्) किया है, (मा) मुझ को (प्रतीचिका) उलटी चलने वाली [विपत्ति] (मा प्र आपत्) कभी न प्राप्त हो ॥४॥

卐 इति द्वितीयोऽनुवाकः 卐

卐

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् २१ 卐

१ ब्रह्मा छन्दांसि । एकावसाना द्विपदा । साम्नी बृहती ।

गायत्र्युष्णिगनुष्टुब् बृहती पङ्क्तिस्त्रिष्टुब् जगत्यै ॥१॥

पदार्थ—(गायत्री) गायत्री [गानेयोग्य] (उष्णिक्) उष्णिक् [बड़े स्नेह वाली] (बृहती) बृहती [बढ़ती हुई], (पङ्क्ति) पङ्क्ति [विस्तार-वाली], (त्रिष्टुप्) त्रिष्टुप् [तीन कर्म, उपासना, ज्ञान से सत्कार की गयी], (अनुष्टुप्) अनुष्टुप् [निरन्तर पूजनेयोग्य वेदवाणी] (जगत्यै) जगती [चलते हुए जगत् के हित के लिये] है ॥१॥

卐 सूक्तम् २२ 卐

१—२१ अङ्गिराः । मन्त्रोक्तदेवता । १ साम्नी उष्णिक्, ३, १९ प्राजापत्या गायत्री, ४, ७, ११, १७ दैवी जगती, ५, १२, १३ दैवी त्रिष्टुप्, २ ६, १४ १६, २० दैवी पङ्क्ति, ८-१० आसुरी जगती, १८ आसुरी अनुष्टुप्; २१ चतुष्पदा त्रिष्टुप् (१-२० एकावसाना) ।

आङ्गिरसानामाद्यैः पञ्चानुवाकैः स्वाहा ॥१॥

पदार्थ—(आङ्गिरसानाम्) अङ्गिरा [सर्वज्ञ परमेश्वर] के बनाये [ज्ञानो] के (पञ्च) पांच [पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश पञ्चभूतो] से सम्बन्ध वाले (आद्यैः) आदि मे [इस सृष्टि के पहिले] वर्तमान (अनुवाकैः) अनुकूल वेदवाक्यो के साथ (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१॥

षष्ठाय स्वाहा ॥२॥

पदार्थ—(षष्ठाय) छठे [पृथिवी जल, तेज, वायु, आकाश, पञ्च भूतो की अपेक्षा छठे परमात्मा] के लिय (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२॥

सप्तमाष्टमाभ्यां स्वाहा ॥३॥

पदार्थ—(सप्तमाष्टमाभ्याम्) सातवें के लिये और आठवें के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥३॥

नीलनखेभ्यः स्वाहा ॥४॥

पदार्थ—(नीलनखेभ्यः) निधि का ज्ञान प्राप्त कराने वाले [परमेश्वर के गुणो] के लिय (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥४॥

हरितेभ्यः स्वाहा ॥५॥

पदार्थ—(हरितेभ्य) स्वीकार करनेयोग्य [परमेश्वर के गुणो] के लिय (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥५॥

क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ॥६॥

पदार्थ—(क्षुद्रेभ्य) सूक्ष्म गुणो के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥६॥

पर्यायिकेभ्यः स्वाहा ॥७॥

पदार्थ—(पर्यायिकेभ्य) पर्याय [अनुक्रम] वाले गुणो के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥७॥

प्रथमेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥८॥

पदार्थ—(प्रथमेभ्य) पहिले [सृष्टि से पहिले वर्तमान] (शङ्खेभ्य) विचारयोग्य गुणो के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥८॥

द्वितीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥९॥

पदार्थ—(द्वितीयेभ्य) दूसरे [सृष्टि के आदि की अपेक्षा अन्त मे विद्यमान] (शङ्खेभ्य) दर्शनीय गुणो के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दरवाणी] हो ॥९॥

तृतीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥१०॥

पदार्थ—(तृतीयेभ्य) तीसरे [आदि और अन्त की अपेक्षा मध्य मे वर्तमान] (शङ्खेभ्य) शान्तिदायक गुणो के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१०॥

उपोत्तमेभ्यः स्वाहा ॥११॥

पदार्थ—(उपोत्तमेभ्य) श्रेष्ठो के समीपवर्ती [ब्रह्मचारी आदि पुरुषो] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥११॥

उत्तमेभ्यः स्वाहा ॥१२॥

पदार्थ—(उत्तमेभ्यः) अत्यन्त श्रेष्ठो [पुरुषो] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१२॥

उत्तरेभ्यः स्वाहा ॥१३॥

पदार्थ—(उत्तरेभ्य) अधिकतर ऊँचे [पुरुषो] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१३॥

ऋषिभ्यः स्वाहा ॥१४॥

पदार्थ—(ऋषिभ्यः) ऋषियो [वेदव्याख्याता मुनियो] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१४॥

शिखिभ्यः स्वाहा ॥१५॥

पदार्थ—(शिखिभ्यः) शिखाधारियो [चोटी वालो, अथवा चोटी वाले पर्वतादि के समान ऊंचे ब्रह्मज्ञानियो] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१५॥

गणेभ्यः स्वाहा ॥१६॥

पदार्थ—(गणेभ्य) समूहो के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१६॥

महागणेभ्यः स्वाहा ॥१७॥

पदार्थ—(महागणेभ्य) बड़े समूहो के लिय (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी हो ॥१७॥

सर्वेभ्योऽङ्गिरोभ्यो विदगणेभ्यः स्वाहा ॥१८॥

पदार्थ—(सर्वेभ्य) सब (अङ्गिरोभ्यः) विज्ञानी (विदगणेभ्य) पण्डित समूहों के लिय (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१८॥

पृथक्सहस्राभ्यां स्वाहा ॥१९॥

पदार्थ—(पृथक्सहस्राभ्याम्) पृथक् पृथक् और सहस्रो वाले दोनो [समूहो] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१९॥

ब्रह्मणे स्वाहा ॥२०॥

पदार्थ—(ब्रह्मणे) वेदज्ञान के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२०॥

ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥२१॥

पदार्थ—(संभृता) यथावत् भरे हुए (वीर्याणि) वीर कर्म (ब्रह्मज्येष्ठा) ब्रह्म [परमात्मा] का ज्येष्ठ [महाप्रधान रखने वाले] हैं, (ज्येष्ठम्) ज्येष्ठ [सबप्रधान] (ब्रह्म) ब्रह्म [परमात्मा] ने (अग्रे) पहिले (दिवम्) ज्ञान को (आ) सब ओर (ततान) फैलाया है । (उत) और (ब्रह्मा) वह ब्रह्मा [सबस से बड़ा सर्वजनक परमात्मा] (भूतानाम्) प्राणियो मे (प्रथम) पहिला (जज्ञे) प्रकट हुआ है, (तेन) इस लिये (ब्रह्मणा) ब्रह्मा [महान् परमात्मा] के साथ (कः) कौन (स्पर्धितुम्) झगड़ने को (अर्हति) समर्थ है ? ॥२१॥

卐 सूक्तम् ॥२३॥ 卐

१—३० ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १ आसुरी बृहती, २—७, २० २३, २७ दैवी त्रिष्टुप्: ८ १०—१२, १४, १६ प्राजापत्या गायत्री, १७, १९, २४, २५, २९ दैवी पंक्ति, ९, १३ १८, २२, २६, २८ दैवी जगती ।

आथर्वणानां चतुर्ऋचेभ्यः स्वाहा ॥१॥

पदार्थ—(आथर्वणानाम्) अथर्वा [निश्चल ब्रह्म] के बताये ज्ञानो के (चतुर्ऋचेभ्य) चार [धर्म, अर्थ, काम मोक्ष] की स्तुतियोग्य विद्यावाले [वेदो] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१॥

पञ्चर्चेभ्यः स्वाहा ॥२॥

पदार्थ—(पञ्चर्चेभ्य) पाच [पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश पाच तत्त्वो] की स्तुतियोग्य विद्यावाले [वेदो] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२॥

षडृचेभ्यः स्वाहा ॥३॥

पदार्थ—(षडृचेभ्यः) छह [वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर, छह ऋतुओ] की स्तुतियोग्य विद्यावाले [वेदो] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥३॥

सप्तर्चेभ्यः स्वाहा ॥४॥

पदार्थ—(सप्तर्चेभ्यः) सात [दो कान, दो नथने, दो आंखें और एकमुख-अथर्व १० । २ । ६ इन की] स्तुतियोग्य विद्यावाले [वेदो] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥४॥

अष्टर्चेभ्यः स्वाहा ॥५॥

पदार्थ—(अष्टर्चेभ्य) आठ [यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, आठ योग के अङ्गो] की स्तुतियोग्य विद्या वाले [वेदो] के लिये (स्वाहा) [सुन्दर वाणी] हो ॥५॥

नवर्चेभ्यः स्वाहा ॥६॥

पदार्थ—(नवर्चेभ्यः) नव [दो कान, दो आँख, दो नथने, एक मुख, एक पायु, एक उपस्थ, नवद्वारपुर शरीर] की स्तुतियोग्य विद्यावाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥६॥

दशर्चेभ्यः स्वाहा ॥७॥

पदार्थ—(दशर्चेभ्यः) दश [दान, शील, क्षमा, वीरता, ध्यान, बुद्धि, सेना उपाय, दूत और ज्ञान इन दस बलों] की स्तुतियोग्य विद्यावाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥७॥

एकादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥८॥

पदार्थ—(एकादशर्चेभ्यः) ग्यारह [प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय, दस प्राण और ग्यारहवें जीवात्मा] स्तुतियोग्य विद्यावाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥८॥

द्वादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥९॥

पदार्थ—(द्वादशर्चेभ्यः) बारह [चैत्र आदि बारह महीनों] की स्तुति योग्य विद्यावाले [वेदो] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो॥९॥

त्रयोदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१०॥

पदार्थ—(त्रयोदशर्चेभ्यः) तेरह [उछालना, गिराना, सकोड़ना, फैलाना, और चलना पांच कर्म तथा छोटाई, हलकाई, प्राप्ति, स्वतन्त्रता, बड़ाई, ईश्वरपन, जितेन्द्रियता और सत्य सकल्प आठ ऐश्वर्य इन तेरह] की स्तुतियोग्य विद्यावाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१०॥

चतुर्दशर्चेभ्यः स्वाहा ॥११॥

पदार्थ—(चतुर्दशर्चेभ्यः) चौदह [कान, आंख नासिका, जिह्वा, त्वचा-पांच ज्ञानेन्द्रिय, और वाक्, हाथ, पांव, पायु, उपस्थ पांच कर्मेन्द्रिय, तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार] की स्तुतियोग्य विद्यावाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥११॥

पञ्चदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१२॥

पदार्थ—(पञ्चदशर्चेभ्यः) पन्द्रह [शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश चित्र ये सात रूप, तथा मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय, तिक्त ये छह रस और सुरभि, असुरभि दो प्रकार का गन्ध, इन पन्द्रह] की स्तुति योग्य विद्यावाले [वेदो] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१२॥

षोडशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१३॥

पदार्थ—(षोडशर्चेभ्यः) सोलह [प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, प्रकाश, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक और नाम-इन सोलह कलाओं] की स्तुतियोग्य विद्यावाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१३॥

सप्तदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१४॥

पदार्थ—(सप्तदशर्चेभ्यः) सतरह [चार दिशा, चार विदिशा, एक ऊपर की और एक नीचे की दस दिशायें-सत्त्व, रज और तम तीन गुण-ईश्वर, जीव, प्रकृति और संसार] की स्तुतियोग्य विद्यावाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१४॥

अष्टादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१५॥

पदार्थ—(अष्टादशर्चेभ्यः) अठारह [धैर्य, सहन, मन का रोकना, चोरी न करना, शुद्धता, जितेन्द्रियता, बुद्धि, विद्या, सत्य, क्रोध न करना, ये दस धर्म—मनु० ६ । ९२, तथा ब्राह्मण, गौ, अग्नि, सुवर्ण, घृत, सूर्य, जल, राजा ये आठ मङ्गल—शब्दकल्पद्रुमकोश, इन अठारह] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदो] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१५॥

एकोनविंशतिः स्वाहा ॥१६॥

पदार्थ—(एकोनविंशति) उन्नीस [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चार वर्ण—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास, चार आश्रम—सत्सङ्ग, सुनना, विचारना, ध्यान करना, चार कर्म—अप्राप्त की इच्छा, प्राप्त की रक्षा, रक्षित का बढ़ाना, बढ़े हुए का सन्मार्ग में व्यय करना, चार पुरुषार्थ—मन, बुद्धि और अहङ्कार इन उन्नीस स्तुतियोग्य विद्याओ के लिये] (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१६॥

विंशतिः स्वाहा ॥१७॥

पदार्थ—(विंशति) बीस [पांच सूक्ष्म भूत, पांच स्थूल भूत, पांच ज्ञानेन्द्रिय, और पांच कर्मेन्द्रिय इन बीस स्तुति योग्य विद्याओं के लिये] (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१७॥

महत्काण्डाय स्वाहा ॥१८॥

पदार्थ—(महत्काण्डाय) बड़े [धर्मात्माओं] के सरक्षक [वेद] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१८॥

तृचेभ्यः स्वाहा ॥१९॥

पदार्थ—(तृचेभ्य) तीन [भूत, भविष्यत्, वर्तमान] की स्तुति योग्य विद्या वाले [वेदो] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१९॥

एकर्चेभ्यः स्वाहा ॥२०॥

पदार्थ—(एकर्चेभ्य) एक [परमात्मा] की स्तुतियोग्य विद्यावाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२०॥

क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ॥२१॥

पदार्थ—(क्षुद्रेभ्य) सूक्ष्मज्ञान वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२१॥

एकानृचेभ्यः स्वाहा ॥२२॥

पदार्थ—(एकानृचेभ्य) एक [परमात्मा] की अत्यन्त ही स्तुतियोग्य विद्यावाले [वेदो] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२२॥

रोहितेभ्यः स्वाहा ॥२३॥

पदार्थ—(रोहितेभ्य) प्रकट होते हुए धार्मिक गुण युक्त [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२३॥

सूर्याभ्यां स्वाहा ॥२४॥

पदार्थ—(सूर्याभ्याम्) दो प्रेरको [परमात्मा और जीवात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२४॥

व्रात्याभ्यां स्वाहा ॥२५॥

पदार्थ—(व्रात्याभ्याम्) मनुष्यो के हितकारी दोनों [बल और पराक्रम] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२५॥

प्राजापत्याभ्यां स्वाहा ॥२६॥

पदार्थ—(प्राजापत्याभ्याम्) प्रजापति [परमात्मा] को पूजनीय मानने वाले दोनो [कार्य और कारण] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२६॥

विषासह्यै स्वाहा ॥२७॥

पदार्थ—(विषासह्यै) सदा विजयिनी [वेदविद्या] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२७॥

मङ्गलिकेभ्यः स्वाहा ॥२८॥

पदार्थ—(मङ्गलिकेभ्य) मङ्गल वाले [वेदों] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२८॥

ब्रह्मणे स्वाहा ॥२९॥

पदार्थ—(ब्रह्मणे) वेदज्ञान के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥२९॥

ब्रह्मज्येष्ठा सम्भृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान ।

भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥३०॥

पदार्थ—(संभृता) यथावत् भरे हुए (वीर्याणि) वीर कर्म (ब्रह्मज्येष्ठा) ब्रह्म [परमात्मा] को ज्येष्ठ [महाप्रधान रखने वाले] हैं, (ज्येष्ठम्) ज्येष्ठ [महाप्रधान] (ब्रह्म) ब्रह्म [परमात्मा] ने (अग्रे) पहिले (दिवम्) आकाश को (आ) सब ओर (ततान) फैलाया है । (उत) और (ब्रह्मा) वह ब्रह्मा [सब से बड़ा सर्वजनक परमात्मा] (भूतानाम्) प्राणियों में (प्रथमः) पहिला (जज्ञे) प्रकट हुआ है, (तेन) इस लिये (ब्रह्मणा) ब्रह्मा [महान् परमात्मा] के साथ (कः) कौन (स्पर्धितुम्) झगड़ने को (अर्हति) समर्थ है ॥३०॥

卐 सूक्तम् ॥२४॥ 卐

१—८ अथर्वा । ब्रह्मणस्पतिः, नाना देवताः । अनुष्टुप्, ४-६, ८ त्रिष्टुप्; ७ त्रिपदार्षी गायत्री ।

येन देवं सवितारं परि देवा अधारयन् ।

तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्तन ॥१॥

पदार्थ—(येन) जिस [नियम] से (देवम्) विजय चाहने वाले (सवितारम्) प्रेरक [पुरुष] को (देवाः) विद्वानों ने (परि) सब ओर से (अदधुः) धारण किया है [स्वीकार किया है]। (तेन) उस [नियम] से (इमम्) इस [पराक्रमी] को (राष्ट्राय) राज्य के लिये, (ब्रह्मणः पते) हे वेद के रक्षक! [और तुम सब] (परि) सब ओर से (धत्तन) धारण करो ॥१॥

परीममिन्द्रमायुषे महे क्षत्राय धत्तन ।

यथैनं जरसे नयां ज्योक् क्षत्रेऽधि जागरत् ॥२॥

पदार्थ—[हे विद्वानो!] (इमम्) इस (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् पुरुष] को (महे) बड़े (आयुषे) जीवन के लिये और (क्षत्राय) राज्य के लिये (परि) सब प्रकार (धत्तन) धारण करो। (यथा) जिससे (एनम्) इस [पुरुष] को (जरसे) स्तुति के लिये (नयाम्) मैं ले चलूं, और वह (ज्योक्) बहुत काल तक (क्षत्रे) राज्य के भीतर (अधि) अधिकारपूर्वक (जागरत्) जागता रहे ॥२॥

परीमं सोममायुषे महे श्रोत्राय धत्तन ।

यथैनं जरसे नयां ज्योक् श्रोत्रेऽधि जागरत् ॥३॥

पदार्थ—[हे प्रजागणो!] (इमम्) इस (सोमम्) चन्द्रमा [के समान शान्तिकारक पुरुष] को (महे) बड़े (आयुषे) जीवन के लिये और (श्रोत्राय) सुनवाई के लिये (परि) सब प्रकार (धत्तन) धारण करो। (यथा) जिससे (एनम्) इस [पुरुष] को (जरसे) स्तुति के लिये (नयाम्) मैं ले चलूं, और वह (ज्योक्) बहुत काल तक (श्रोत्रे) सुनवाई में (अधि) अधिकारपूर्वक (जागरत्) जागता रहे ॥३॥

परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः ।

बृहस्पतिः प्रायच्छद् वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ॥४॥

पदार्थ—[हे विद्वानो!] (नः) हमारे लिये (इमम्) इस [पराक्रमी] को (परि धत्त) [वस्त्र] पहिराओ और (वर्चसा) तेज के साथ (धत्त) पुष्ट करो और (जरामृत्युम्) बुढ़ापे [अर्थात् निर्बलता] को मृत्यु के समान त्याज्य मानने वाला [अथवा स्तुति के साथ मृत्यु वाला] (दीर्घम्) बड़ी (आयुः) आयु (कृणुत) करो। (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े-बड़े विद्वानों के रक्षक पुरोहित] ने (एतत्) यह (वासः) वस्त्र (सोमाय) सूर्य समान (राज्ञे) राजा को (उ) ही (परिधातवे) धारण करने के लिये (प्र अयच्छत्) दिया है ॥४॥

जरां सु गच्छ परि धत्स्व वासो भवा गृष्टीनामभिशस्तिपा उ ।

शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ॥५॥

पदार्थ—[हे राजन्!] (जराम्) स्तुति को (सु) अच्छे प्रकार (गच्छ) प्राप्त हो, (वासः) वस्त्र को (परि धत्स्व) पहिन, (उ) और (गृष्टीनाम्) ग्रहण करने योग्य गौओं की (अभिशस्तिपाः) हिंसा से रक्षा करने वाला (भव) हो। (च) और (पुरूचीः) बहुत पदार्थों से व्याप्त (शतम्) सौ (शरदः) शरद् ऋतुओं तक (जीव) तू जीवित रह, (च) और (रायः) धन की (पोषम्) पुष्टि [वृद्धि] को (उपसंव्ययस्व) अपने सब ओर धारण कर ॥५॥

परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्वापीनामभिशस्तिपा उ ।

शतं च जीव शरदः पुरूचीर्वसूनि चारुर्वि भजासि जीवन् ॥६॥

पदार्थ—[हे राजन्!] (इदम्) इस (वासः) वस्त्र को (स्वस्तये) आनन्द बढ़ाने के लिये (परि अधिथाः) तूने धारण किया है, (उ) और (वापीनाम्) बोने की भूमियों [खेती आदि अथवा बावड़ी, कूप आदि] का (अभिशस्तिपाः) खण्डन से बचाने वाला (अभूः) तू हुआ है। (च) और (पुरूचीः) बहुत पदार्थों से व्याप्त (शतम्) सौ (शरदः) शरद् ऋतुओं तक (जीव) तू जीवित रह और (चारुः) शोभायमान होकर (जीवन्) जीता हुआ तू (वसूनि) धनों को (वि भजासि) बाँटता रह ॥६॥

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥७॥

पदार्थ—(योगेयोगे) अवसर-अवसर पर और (वाजेवाजे) संग्राम-संग्राम के बीच (तवस्तरम्) अधिक बलवान् (इन्द्रम्) इन्द्र [परमैश्वर्यवान् पुरुष] को (ऊतये) रक्षा के लिये (सखायः) मित्र लोग हम (हवामहे) पुकारते हैं ॥७॥

हिरण्यवर्णो अजरः सुवीरो जरामृत्युः प्रजया सं विशस्व ।

तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ॥८॥

पदार्थ—[हे पुरुषार्थी!] (हिरण्यवर्णः) कमनीय वा तेजस्वी रूपवाला, (अजरः) फुरतीला [वा अनिर्बल] (सुवीरः) बड़े वीरों वाला, (जरामृत्युः) बुढ़ापे [निर्बलता] को मृत्यु के समान त्याज्य मानने वाला [महाबलवान्] तू (प्रजया) प्रजा के साथ (सम्) मिलाकर (विशस्व) प्रवेश कर। (तत्) इस बात को (अग्निः) [अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष] (आह) कहता है, (तत् उ) उस को ही (सोमः) सोम [चन्द्रमा के समान पोषक], (तत्) उसी को (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं का स्वामी], (सविता) सब का प्रेरक, (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी पुरुष] (आह) कहता है ॥८॥

卐 सूक्तम् २५ 卐

१ गोपथः । वाजी । अनुष्टुप् ।

अश्रान्तस्य त्वा मनसा युनज्मि प्रथमस्य च ।

उत्कूलमुद्वहो भवोदुह्य प्रति धावतात् ॥१॥

पदार्थ—[हे शूर!] (अश्रान्तस्य) अनथके (च) और (प्रथमस्य) पहिले पद वाले पुरुष के (मनसा) मन से (त्वा) तुझ को (युनज्मि) मैं संयुक्त करता हूँ। (उत्कूलम्) ऊँचे तट की ओर चलकर (उद्वहः) ऊँचा ले चलने वाला (भव) हो, और [मनुष्यों को] (उदुह्य) ऊँचे ले जाकर (प्रति) प्रतीति से (धावतात्) दौड़ ॥१॥

卐 सूक्तम् २६ 卐

१—४ अथर्वा । अग्निः, हिरण्यं च । त्रिष्टुप्; ३ अनुष्टुप्; ४ पथ्यापङ्क्तिः ।

अग्नेः प्रजातं परि यद्धिरण्यममृतं दध्रे अधि मर्त्येषु ।

य एनद् वेद स इदेनमर्हति जरामृत्युर्भवति यो बिभर्ति ॥१॥

पदार्थ—(यत्) जो (हिरण्यम्) कमनीय सुवर्ण (अग्नेः परि) अग्नि [पार्थिव अग्नि अथवा पराक्रम रूप तेज से] (प्रजातम्) उत्पन्न हुआ है, (अमृतम्) [उस] मृत्यु से बचने वाले [जीवन के साधन] को (मर्त्येषु) मनुष्यों में (अधि) अधिकार पूर्वक (दध्रे) मैंने धरा है। (यः) जो पुरुष (एनत्) इस [बात] को (वेद) जानता है, (सः) वह (इत्) ही (एनत्) इस [पदार्थ] के (अर्हति) योग्य होता है, और वह (जरामृत्युः) बुढ़ापे [निर्बलता] को मृत्यु समान [दुःखदायी] मानने वाला महाप्रबल (भवति) होता है, (यः) जो [सुवर्ण को] (बिभर्ति) धारण करता है ॥१॥

यद्धिरण्यं सूर्येण सुवर्णं प्रजावन्तो मनवः पूर्व ईषिरे ।

तत् त्वा चन्द्रं वर्चसा सं सृजत्यायुष्मान् भवति यो बिभर्ति ॥२॥

पदार्थ—(सूर्येण) सूर्य द्वारा (सुवर्णम्) सुन्दर रूपवाले (यत्) जिस (हिरण्यम्) कामना योग्य सोने को (प्रजावन्तः) श्रेष्ठ प्रजाओं वाले (पूर्वे) पहिले (मनवः) विचारशील मनुष्यों ने (ईषिरे) पाया था। (तत्) वह (चन्द्रम्) आनन्ददायक सोना (वर्चसा) तेज के साथ (त्वा) तुझ से (संसृजति) संयोग करता है, वह (आयुष्मान्) उत्तम जीवनवाला (भवति) होता है, (यः) जो पुरुष [सोना] (बिभर्ति) रखता है ॥२॥

आयुषे त्वा वर्चसे त्वौजसे च बलाय च ।

यथा हिरण्यतेजसा विभासासि जनाँ अनु ॥३॥

पदार्थ—[हे मनुष्य!] (त्वा) तुझ से (आयुषे) जीवन के लिये और (वर्चसे) प्रताप के लिये (च) और (त्वा) तुझ से (बलाय) बल के लिये (च) और (ओजसे) पराक्रम के लिये [वह सोना संयोग करता है—म० २]। (यथा) जिस से कि (हिरण्यतेजसा) सुवर्ण के तेज से (जनान् अनु) मनुष्यों में (विभासासि) तू चमकता रहे ॥३॥

यद् वेद राजा वरुणो वेद देवो बृहस्पतिः । इन्द्रो यद्

वृत्रहा वेद तत् त आयुष्यं भुवत् तत् ते वर्चस्यं भुवत् ॥४॥

पदार्थ—(यत्) जिस [सुवर्ण] को (राजा) ऐश्वर्यवान् (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष (वेद) जानता है, और [जिस को] (देवः) विद्वान् (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े ज्ञानों का रक्षक पुरुष] (वेद) जानता है। (यत्) जिस को (वृत्रहा) शत्रुनाशक (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी पुरुष] (वेद) जानता है, (तत्) वह (ते) तेरे लिये (आयुष्यम्) आयु बढ़ाने वाला (भुवत्) होवे (तत्) वह (ते) तेरे लिये (वर्चस्यम्) तेज बढ़ाने वाला (भुवत्) होवे ॥४॥

卐 इति तृतीयोऽनुवाकः 卐

卐

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ॥२७॥ 卐

१—१५ भृग्वङ्गिरा । त्रिवृत्, चन्द्रमाश्च । अनुष्टुप्,
३—६ त्रिष्टुप्, १० जगती, ११ आर्ची उष्णिक,
१२ आर्च्यनुष्टुप्, १३ साम्नीत्रिष्टुप् (११—१३ एकावसाना)।

गोभिष्ट्वा पात्वृषभो वृषा त्वा पातु वाजिभिः ।

वायुष्ट्वा ब्रह्मणा पात्विन्द्रस्त्वा पात्विन्द्रियैः ॥१॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (ऋषभ) सबदर्शक परमेश्वर (गोभि) गौओ के साथ (त्वा) तुझे (पातु) बचावे, (वृषा) वीर्यवान् [परमेश्वर] (वाजिभिः) फुर्तीले घोडो के साथ (त्वा) तुझे (पातु) बचावे । (वायु) सर्वत्रगामी [परमेश्वर] (ब्रह्मणा) बढ़ते हुए अन्न के साथ (त्वा) तुझे (पातु) बचावे (इन्द्र) परम ऐश्वर्यवान् [जगदीश्वर] (इन्द्रियैः) परम ऐश्वर्य के व्यवहारो के साथ (त्वा) तुझे (पातु) बचावे ॥१॥

सोमस्त्वा पात्वोषधीभिर्नक्षत्रैः पातु सूर्यः ।

माद्भ्यस्त्वा चन्द्रो वृत्रहा वातः प्राणेन रक्षतु ॥२॥

पदार्थ—(सोम) सोमरस (ओषधीभि) ओषधियो के साथ (त्वा) तुझे (पातु) बचावे, (सूर्य) सबका चलाने वाला सूर्य (नक्षत्रै) नक्षत्रो के साथ (पातु) बचावे । (वृत्रहा) अन्धकारनाशक (चन्द्र) आनन्दप्रद चन्द्रमा (माद्भ्य) महीनो के लिये और (वात) पवन (प्राणेन) प्राण [जीवन सामर्थ्य] के साथ (त्वा) तुझे (पातु) बचावे ॥२॥

तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीस्त्रीण्यन्तरिक्षाणि चतुरः समुद्रान् ।

त्रिवृतं स्तोमं त्रिवृत आप आहुस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ॥३॥

पदार्थ—[उत्कृष्ट, निकृष्ट, मध्यम होने से] (दिव) प्रकाशमान पदार्थों का (तिस्र) तीन, (पृथिवी) पृथिवी के देशो को (तिस्र) तीन, (अन्तरिक्षाणि) अन्तरिक्ष लोको का (त्रीणि) तीन, और (समुद्रान्) आत्माओ को [धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के लिये पुरुषार्थी होने मे] (चतुर) चार (स्तोमम्) स्तुतियोग्य वेद का (त्रिवृतम्) तीन [कर्म, उपासना, ज्ञान] मे वर्तमान, (त्रिवृत.) तीन [कर्म, उपासना, ज्ञान] मे वर्तमान रहने वाले (आप) आप्त प्रजा लोग (आहु) बताते हैं, (त्रिवृत) तीन [कर्म, उपासना, ज्ञान] मे वर्तमान (ता) वे [प्रजायें] (त्वा) तुझ को (त्रिवृद्भि) तीन [कर्म, उपासना और ज्ञानरूप] वृत्तियो के साथ (रक्षन्तु) बचावें ॥३॥

त्रीन्नाकांस्त्रीन् समुद्रांस्त्रीन् ब्रध्नांस्त्रीन् वैष्टपान् ।

त्रीन् मातरिश्वनस्त्रीन्त्सूर्यान् गोप्तॄन् कल्पयामि ते ॥४॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (त्रीन्) तीन [आत्मा, मन और शरीर सम्बन्धी] (नाकान्) सुखो का, (त्रीन्) तीन [ऊपर, नीचे और मध्य मे वर्तमान] समुद्रान्) अन्तरिक्षो का, (त्रीन्) तीन [कर्म, उपासना और ज्ञान] (ब्रध्नान्) बडे व्यवहारो को, (त्रीन्) तीन [स्थान, नाम और जन्म या जाति वाले] (वैष्टपान्) ससार निवासियो को, (त्रीन्) तीन [ऊपर, नीचे और तिरछे चलने वाले] (मातरिश्वन) आकाशगामी पवनो को, और (त्रीन्) तीन [वृष्टि, अन्नोत्पत्ति और पुष्टि करने वाले] (सूर्यान्) सूर्य [के तापो] को (ते) तेरे (गोप्तॄन्) रक्षक (कल्पयामि) मैं बनाता हूँ ॥४॥

घृतेन त्वा समुक्षाम्यग्न आज्येन वर्धयन् ।

अग्नेश्चन्द्रस्य सूर्यस्य मा प्राणं मायिनो दभन् ॥५॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि [के समान तेजस्वी विद्वान् !] जैसे अग्नि को] (आज्येन) घृत से (वर्धयन्) बढाता हुआ मैं (त्वा) तुझे (घृतेन) ज्ञान प्रकाश से (सम्) यथावत् (उक्षामि) बढाता हूँ । (अग्ने) अग्नि के, (चन्द्रस्य) चन्द्रमा के और (सूर्यस्य) सूर्य के (प्राणम्) प्राण [जीवन सामर्थ्य] को (मायिन) छली लोग (मा दभन्) नहीं नाश करें ॥५॥

मा वः प्राणं मा वोऽपानं मा हरो मायिनो दभन् ।

भ्राजन्तो विश्ववेदसो देवा दैव्येन धावत ॥६॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (मा) न तो (व) तुम्हारे (प्राणम्) श्वास को, (मा) न (वः) तुम्हारे (अपानम्) प्रश्वास को, और (मा) न (हरः) तेज को (मायिन) छली लोग (दभन्) नष्ट करें । (भ्राजन्त) चमकते हुए, (विश्ववेदस) सब प्रकार धन वाले, (देवा) विद्वानो तुम (दैव्येन) विद्वानों के योग्य कर्म के साथ (धावत) धावा करो ॥६॥

प्राणेनाग्निं सं सृजति वातः प्राणेन संहितः ।

प्राणेन विश्वतोमुखं सूर्यं देवा अजनयन् ॥७॥

पदार्थ—वह [परमात्मा] (प्राणेन) प्राण [जीवन-सामर्थ्य] के साथ (अग्निम्) अग्नि को (ससृजति) सयुक्त करता है, (वात) वायु (प्राणेन) प्राण [जीवन-सामर्थ्य] के साथ (संहित) मिला हुआ है । (प्राणेन) प्राण [जीवन-सामर्थ्य] के साथ (विश्वतोमुखम्) सब ओर मुख वाले (सूर्यम्) सूर्य को (देवा) दिव्य नियमो ने (अजनयन्) उत्पन्न किया है ॥७॥

आयुषायुःकृतां जीवायुष्मान् जीव मा मृथाः ।

प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम् ॥८॥

पदार्थ—(आयु कृताम) जीवन बनाने वाले [विद्वानो] के (आयुषा) जीवन के साथ (जीव) तू जीवित रह (आयुष्मान्) उत्तम जीवनवाला होकर (जीव) तू जीवित रह, (मा मृथा) तू मत मरे । (आत्मन्वताम्) आत्मा वालो के (प्राणेन) प्राण [जीवन सामर्थ्य] से (जीव) तू जीवित रह (मृत्योः) मृत्यु के (वशम्) वश मे (मा उत् अगा) मत आ ॥८॥

देवानां निहितं निधिं यमिन्द्रोऽन्वविन्दत् पथिभिर्देवयानैः ।

आपो हिरण्यं जुगुपुस्त्रिवृद्भिस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ॥९॥

पदार्थ—(देवानाम्) विद्वानो के (निहितम्) धरे हुए (यम्) जिस (निधिम) निधि [रत्नो के कोश] को (इन्द्र) इन्द्र [बडे ऐश्वर्यवान् पुरुष] ने (देवयानै) विद्वानो के चलने योग्य (पथिभि) मार्गों से (अन्वविन्दत) खोज कर पाया है । (आप) आप्त प्रजाओ ने (हिरण्यम्) उस तेज [वा सुवर्ण] को (त्रिवृद्भि) तीन [कर्म, उपासना, ज्ञानरूप] वृत्तियो के साथ (जुगुपु) रक्षित किया है, (त्रिवृता) तीन [कर्म, उपासना, ज्ञान] मे वर्तमान (ता.) वे [प्रजायें] (त्वा) तुझ को (त्रिवृद्भि) तीन [कर्म, उपासना, ज्ञानरूप] वृत्तियो के साथ (रक्षन्तु) बचावें ॥९॥

त्रयस्त्रिंशद् देवतास्त्रीणि च वीर्याणि प्रियायमाणा जुगुपुरप्स्वन्तः ।

अस्मिंश्चन्द्रे अधि यद्धिरण्यं तेनायं कृणवद् वीर्याणि ॥१०॥

पदार्थ—(प्रियायमाणा) प्रिय मानते हुए (त्रयस्त्रिंशत्) तेतीस [८ वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ वा प्रकाश, चन्द्रमा और नक्षत्र—११ रुद्र अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय यह दस प्राण और ग्यारहवा जीवात्मा—१२ महीने—१ इन्द्र अर्थात् बिजुली—एक प्रजापति वा यज्ञ] (देवता) देवताओ (च) और (त्रीणि) तीन [कायिक, वाचिक और मानसिक (वीर्याणि) वीर कर्मो ने (अप्सु अन्त.) आप्त प्रजाओ के बीच (अस्मिन्) इस (चन्द्रे) आनन्द देने वाले [जीवात्मा] मे (अधि) अधिकार पूर्वक (यत्) जिस (हिरण्यम्) कमनीय तेज को (जुगुपुः) रक्षित किया है, (तेन) उसी [तेज] मे (अयम) यह [जीवात्मा] (वीर्याणि) वीर कर्मो को (कृणवत्) करे ॥१०॥

ये देवा दिव्येकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥११॥

पदार्थ—(देवा.) हे विद्वानो ! (ये) जो तुम (दिवि) सूर्य लोक मे (एकादश) ग्यारह [प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय, दस प्राण और ग्यारहवें जीवात्मा के समान] (स्थ) हो (देवास) हे विद्वानो ! (ते) वे तुम (इदम्) इस (हविः) ग्रहण योग्य वस्तु [वचन] को (जुषध्वम्) सेवन करो ॥११॥

ये देवा अन्तरिक्ष एकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥१२॥

पदार्थ—(देवाः) हे विद्वानो ! (ये) जो तुम (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (एकादश) ग्यारह [श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, नासिका, वाणी, हाथ, पाँव, गुदा, लिङ्ग और मन—इन ग्यारह के समान] (स्थ) हो, (देवासः) हे विद्वानो ! (ते) वे तुम (इदम्) इस (हविः) ग्रहण योग्य वस्तु [वचन] को (जुषध्वम्) सेवन करो ॥१२॥

ये देवाः पृथिव्यामेकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥१३॥

पदार्थ—(देवाः) हे विद्वानो ! (ये) जो तुम (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (एकादश) ग्यारह [पृथिवी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, आदित्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, अहङ्कार, महत्तत्व और प्रकृति—इन ग्यारह के समान] (स्थ) हो, (देवास) हे विद्वानो ! (ते) वे तुम (इदम्) इस (हविः) ग्रहण योग्य वस्तु [वचन] को (जुषध्वम्) सेवन करो ॥१३॥

असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम् ।

सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः ॥१४॥

पदार्थ—(नः) हमारे लिये (मा) मुझको (पुरस्तात्) सामने से [वा पूर्व दिशा से] (पश्चात्) पीछे से [वा पश्चिम से] (दक्षिणतः) दाहिनी ओर [वा दक्षिण] से और (मा) मुझको (उत्तरात्) बाईं ओर से [वा उत्तर से] (सविता) सर्व प्रेरक राजा और (शचीपतिः) वाणियों वा कर्मों का पालने वाला [मन्त्री], तुम दोनों (असपत्नम्) शत्रु रहित और (अभयम्) निर्भय (कृतम्) करो ॥१४॥

दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः ।

इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम् ।

तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ॥१५॥

पदार्थ—(आदित्याः) प्रकाशवती सूर (मा) मुझे (दिवः) आकाश से (रक्षन्तु) बचावें, (अग्नयः) ज्ञानी पुरुष (भूम्याः) भूमि से (रक्षन्तु) बचावें । (इन्द्राग्नी) बिजुली और अग्नि [के समान तेजस्वी और व्यापक राजा और मन्त्री दोनों] (मा) मुझे (पुरस्तात्) सामने से (रक्षताम्) बचावें, (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा के समान ठीक मार्ग पर चलने वाले [दोनों] (अभितः) सब ओर से (शर्म) सुख (यच्छताम्) देवें । (जातवेदाः) बहुत धन वाली (अघ्न्या) अटूट [राजनीति] (तिरश्चीन्=तिरश्चीनान्) आड़े चलने वाले [वैरियों] से [मुझे] (रक्षतु) बचावे, (भूतकृत) उचित कर्म करने वाले पुरुष (मे) मेरे लिये (सर्वतः) सब ओर से (वर्म) कवच (सन्तु) होवें ॥१५॥

卐 सूक्तम् २८ 卐

१—१० ब्रह्मा (सपत्नक्षयकामः) । दर्भमणिः मन्त्रोक्ताश्च । अनुष्टुप् ।

इमं बध्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे ।

दर्भं सपत्नदम्भनं द्विषतस्तपनं हृदः ॥१॥

पदार्थ—[हे प्रजागण !] (ते) तेरे (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन और (तेजसे) तेज के लिये (इमम्) इस (मणिम्) मणिरूप [अति प्रशंसनीय], (सपत्नदम्भनम्) शत्रुओं के दबाने वाले, (द्विषतः) विरोधी के (हृदः) हृदय के (तपनम्) तपाने वाले (दर्भम्) दर्भ [शत्रुविदारक सेनापति] को (बध्नामि) मैं नियुक्त करता हूँ ॥१॥

द्विषतस्तापयन् हृदः शत्रूणां तापयन् मनः ।

दुर्हार्दः सर्वांस्त्वं दर्भ घर्म इवाभीन्त्संतापयन् ॥२॥

पदार्थ—(द्विषतः) विरोधी के (हृदः) हृदयों को (तापयन्) तपाता हुआ, और (शत्रूणाम्) शत्रुओं के (मनः) मन को (तापयन्) तपाता हुआ, (दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वाले (अभीन्) अमङ्गलकारियों को (घर्म इव) ग्रीष्म ऋतु के समान (सन्तापयन्) सर्वथा तपाता हुआ (त्वम्) तू [वर्तमान हो] ॥२॥

घर्म इवाभितपन् दर्भ द्विषतो नितपन् मणे ।

हृदः सपत्नानां भिन्द्धीन्द्र इव विरुजं बलम् ॥३॥

पदार्थ—(मणे) हे प्रशंसनीय (दर्भ) दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (घर्मः इव) ग्रीष्म के समान (अभितपन्) सर्वथा तपता हुआ (द्विषतः) विरोधियों को (नितपन्) सन्ताप देता हुआ तू, (बलम्) हिंसक को (विरुजन्) नाश करते हुए (इन्द्रः इव) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवान् पुरुष] के समान (सपत्नानाम्) वैरियों के (हृदः) हृदयों को (भिन्द्धि) तोड़ दे ॥३॥

भिन्द्धि दर्भ सपत्नानां हृदयं द्विषतां मणे ।

उद्यन् त्वचमिव भूम्याः शिर एषां वि पातय ॥४॥

पदार्थ—(मणे) हे प्रशंसनीय (दर्भ) दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (सपत्नानाम्) वैरियों और (द्विषताम्) विरोधियों के (हृदयम्) हृदय को (भिन्द्धि) तोड़ दे । (उद्यन्) उठता हुआ तू, (भूम्याः) भूमि की (त्वचम् इव) त्वचा [तृण आदि] के समान (एषाम्) इन शत्रुओं का (शिरः) सिर (वि पातय) गिरा दे ॥४॥

भिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे भिन्द्धि मे पृतनायतः ।

भिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो भिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥५॥

पदार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (भिन्द्धि) तोड़ दे, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ाने वालों को (भिन्द्धि) तोड़ दे, (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (भिन्द्धि) तोड़ दे, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (भिन्द्धि) तोड़ दे ॥५॥

छिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे छिन्द्धि मे पृतनायतः ।

छिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दान् छिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥६॥

पदार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (छिन्द्धि) छेद डाल, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (छिन्द्धि) छेद डाल (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दान्) दुष्ट हृदय वालों को (छिन्द्धि) छेद डाल, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (छिन्द्धि) छेद डाल ॥६॥

वृश्च दर्भ सपत्नान् मे वृश्च मे पृतनायतः ।

वृश्च मे सर्वान् दुर्हार्दो वृश्च मे द्विषतो मणे ॥७॥

पदार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (वृश्च) काट डाल (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (वृश्च) काट डाल । (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (वृश्च) काट डाल, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (वृश्च) काट डाल ॥७॥

कृन्त दर्भ सपत्नान् मे कृन्त मे पृतनायतः ।

कृन्त मे सर्वान् दुर्हार्दो कृन्त मे द्विषतो मणे ॥८॥

पदार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (कृन्त) कतर डाल, । (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (कृन्त) कतर डाल । (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दान्) दुष्ट हृदय वालों को (कृन्त) कतर डाल, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (कृन्त) कतर डाल ॥८॥

पिंश दर्भ सपत्नान् मे पिंश मे पृतनायतः ।

पिंश मे सर्वान् दुर्हार्दः पिंश मे द्विषतो मणे ॥९॥

पदार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (पिंश) बोटी बोटी कर, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (पिंश) बोटी-बोटी कर । (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (पिंश) बोटी-बोटी कर, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (पिंश) बोटी-बोटी कर ॥९॥

विध्य दर्भ सपत्नान् मे विध्य मे पृतनायतः ।

विध्य मे सर्वान् दुर्हार्दो विध्य मे द्विषतो मणे ॥१०॥

पदार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (विध्य) बेध डाल, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लानेवालों को (विध्य) बेध डाल । (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (विध्य) बेध डाल, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (विध्य) बेध डाल ॥१०॥

卐 सूक्तम् २९ 卐

१—९ ब्रह्मा । दर्भमणिः । अनुष्टुप् ।

निक्ष दर्भ सपत्नान् मे निक्ष मे पृतनायतः ।

निक्ष मे सर्वान् दुर्हार्दो निक्ष मे द्विषतो मणे ॥१॥

पदार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (निक्ष) कोंच डाल, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (निक्ष) कोंच डाल । (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदयवालों को (निक्ष) कोंच डाल, (मणे) हे प्रशंसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (निक्ष) कोंच डाल ॥१॥

तृन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे तृन्द्धि मे पृतनायतः ।

तृन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दस्तृन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥२॥

पदार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (तृन्द्धि) चीर डाल, (मे) मेरे लिये (पृतनायत) सेना चढ़ा लाने वालों को (तृन्द्धि) चीर डाल। (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्द) दुष्ट हृदय वालों को (तृन्द्धि) चीर डाल, (मणे) हे प्रशसनीय ! (मे) मेरे (द्विषत) वैरियों को (तृन्द्धि) चीर डाल ॥२॥

रुन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे रुन्द्धि मे पृतनायतः ।

रुन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो रुन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥३॥

पदार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (रुन्द्धि) रोक दे, (मे) मेरे लिये (पृतनायत) सेना चढ़ा लाने वालों को (रुन्द्धि) रोक दे। (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्द) दुष्ट हृदय वालों को (रुन्द्धि) रोक दे, (मणे) हे प्रशसनीय ! (मे) मेरे (द्विषत) वैरियों को (रुन्द्धि) रोक दे ॥३॥

मृण दर्भ सपत्नान् मे मृण मे पृतनायतः ।

मृण मे सर्वान् दुर्हार्दो मृण मे द्विषतो मणे ॥४॥

पदार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (मृण) मार डाल, (मे) मेरे लिये पृतनायत) सेना चढ़ा लाने वालों को (मृण) मार डाल। (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्द) दुष्ट हृदय वालों को (मृण) मार डाल, (मणे) हे प्रशसनीय ! (मे) मेरे (द्विषत.) वैरियों को (मृण) मार डाल ॥४॥

मन्थ दर्भ सपत्नान् मे मन्थ मे पृतनायतः ।

मन्थ मे सर्वान् दुर्हार्दो मन्थ मे द्विषतो मणे ॥५॥

पदार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (मन्थ) मथ डाल, (मे) मेरे लिये (पृतनायत) सेना चढ़ा लाने वालों को (मन्थ) मथ डाल। (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्द.) दुष्ट हृदय वालों को (मन्थ) मथ डाल, (मणे) हे प्रशसनीय ! (मे) मेरे (द्विषत) वैरियों को (मन्थ) मथ डाल ॥५॥

पिण्ड्ढि दर्भ सपत्नान् मे पिण्ड्ढि मे पृतनायतः ।

पिण्ड्ढि मे सर्वान् दुर्हार्दः पिण्ड्ढि मे द्विषतो मणे ॥६॥

पदार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (पिण्ड्ढि) पीस डाल, (मे) मेरे लिये (पृतनायत.) सेना चढ़ा लाने वालों को (पिण्ड्ढि) पीस डाल। (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्द.) दुष्ट हृदयवालों को (पिण्ड्ढि) पीस डाल (मणे) हे प्रशसनीय (मे) मेरे (द्विषत) वैरियों को (पिण्ड्ढि) पीस डाल ॥६॥

ओष दर्भ सपत्नान् मे ओष मे पृतनायतः ।

ओष मे सर्वान् दुर्हार्द ओष मे द्विषतो मणे ॥७॥

पदार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (ओष) जला दे, (मे) मेरे लिये (पृतनायत) सेना चढ़ा लानेवालों को (ओष) जला दे। (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्द) दुष्ट हृदयवालों को (ओष) जला दे, (मणे) हे प्रशसनीय ! (मे) मेरे (द्विषत.) वैरियों को (ओष) जला दे ॥७॥

दह दर्भ सपत्नान् मे दह मे पृतनायतः ।

दह मे सर्वान् दुर्हार्दो दह मे द्विषतो मणे ॥८॥

पदार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (दह) दाह कर दे, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (दह) दाह कर दे। (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्द) दुष्ट हृदय वालों को (दह) दाह कर दे, (मणे) हे प्रशसनीय ! (मे) मेरे (द्विषतः) वैरियों को (दह) दाह कर दे ॥८॥

जहि दर्भ सपत्नान् मे जहि मे पृतनायतः ।

जहि मे सर्वान् दुर्हार्दो जहि मे द्विषतो मणे ॥९॥

पदार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (जहि) नाश कर दे, (मे) मेरे लिये (पृतनायतः) सेना चढ़ा लाने वालों को (जहि) नाश कर दे, (मे) मेरे (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (जहि) नाश कर दे, (मणे) हे प्रशसनीय ! (मे) मेरे (द्विषत) वैरियों को (जहि) नाश कर दे ॥९॥

卐 सूक्तम् ३० 卐

१—५ ब्रह्मा । दर्भमणि. । अनुष्टुप् ।

यत् ते दर्भ जरामृत्युः शतं वर्मसु वर्म ते ।

तेनेमं वर्मिणं कृत्वा सपत्नाञ् जहि वीर्यैः ॥१॥

पदार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (यत्) जो (ते) तेरा (जरामृत्यु) जरा [निर्बलता] को मृत्यु [के समान दुःखदायी] समझता है और [जो] (वर्मसु) कवचों के बीच (ते) तेरा (वर्म) कवच (शतम्) सौ प्रकार का है। (तेन) उसी [कारण] से (इमम्) इस [शूर] को (वर्मिणम्) कवचधारी (कृत्वा) करके (सपत्नान्) वैरियों को (वीर्यैः) वीर कर्मों से (जहि) नाश कर ॥१॥

शतं ते दर्भ वर्माणि सहस्रं वीर्याणि ते ।

तमस्मै विश्वे त्वां देवा जरसे भर्तवा अदुः ॥२॥

पदार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] ते) तेरे (वर्माणि) कवच (शतम्) सौ और (ते) तेरे (वीर्याणि) वीर कर्म (सहस्रम्) सहस्र हैं। (तम्) उस (त्वाम्) तुझे (विश्वे) सब (देवा) विद्वानों ने (अस्मै) इस [पुरुष] को (जरसे) स्तुति के लिये और (भर्तवे) पालन करने के लिये (अदुः) दिया है ॥२॥

त्वामाहुर्देववर्म त्वां दर्भ ब्रह्मणस्पतिम् ।

त्वामिन्द्रस्याहुर्वर्म त्वं राष्ट्राणि रक्षसि ॥३॥

पदार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (त्वाम्) तुझे (देववर्म) विद्वानों का कवच, (त्वाम्) तुझे (ब्रह्मण.) वेद का (पतिम्) रक्षक (आहु) वे लोग कहते हैं। (त्वाम्) तुझे (इन्द्रस्य) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवान् पुरुष] का (वर्म) कवच (आहु) वे लोग कहते हैं, (त्वम्) तू (राष्ट्राणि) राज्यों की (रक्षसि) रक्षा करता है ॥३॥

सपत्नक्षयणं दर्भ द्विषतस्तपनं हृदः ।

मणिं क्षत्रस्य वर्धनं तनूपानं कृणोमि ते ॥४॥

पदार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक सेनापति] (ते = त्वाम्) तुझ को (सपत्नक्षयणम्) वैरियों का नाश करने वाला, (द्विषत) शत्रु के (हृद.) हृदय का (तपनम्) तपाने वाला, (क्षत्रस्य) राज्य का (मणिम्) श्रेष्ठ (वर्धनम्) बढ़ानेवाला और (तनूपानम्) शरीरों की रक्षा करनेवाला (कृणोमि) मैं बनाता हूँ ॥४॥

यत् समुद्रो अभ्यक्रन्दत् पर्जन्यो विद्युता सह ।

ततो हिरण्ययो बिन्दुस्ततो दर्भो अजायत ॥५॥

पदार्थ—(यत) जिस [ईश्वर-सामर्थ्य] से (समुद्रः) अन्तरिक्ष और (पर्जन्य) बादल (विद्युता सह) बिजुली के साथ (अभ्यक्रन्दत्) सब ओर गरजा है। (तत) उसी [सामर्थ्य] से (हिरण्यय) झलकता हुआ (बिन्दु) बूँद [शुद्ध मेह का जल] और (तत) उसी [सामर्थ्य] से (दर्भः) दर्भ [शत्रुविदारक सेनापति] (अजायत) प्रकट हुआ है ॥५॥

卐 सूक्तम् ॥३१॥ 卐

१—१४ सविता (पुष्टिकाम.) । औदुम्बरमणि । अनुष्टुप् ५-१२ त्रिष्टुप्, ६ विराट् प्रस्तार पंक्ति , ११, १३ पञ्चपदा शक्वरी, १४ विराडास्तारपंक्ति ।

औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा ।

पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत् ॥१॥

पदार्थ—(औदुम्बरेण) संघटन चाहने वाले (मणिना) श्रेष्ठ (वेधसा) जगत् स्रष्टा [परमेश्वर] के साथ (पुष्टिकामाय) वृद्धि की कामना वाले (मे) मेरे लिये (सविता) सर्वप्रेरक [गृहपति] (सर्वेषाम्) सब (पशूनाम्) पशुओं की (स्फातिम्) बढ़ती (गोष्ठे) गोशाला में (करत्) करे ॥१॥

यो नो अग्निर्गार्हपत्यः पशूनामधिपा असत् ।

औदुम्बरो वृषा मणिः सं मा सृजतु पुष्ट्या ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (गार्हपत्यः) गृहपति की स्थापित (अग्निः) अग्नि [के समान तेजस्वी परमेश्वर] (नः) हमारे (पशूनाम्) प्राणियो का (अधिपाः) बड़ा स्वामी (असत्) है। (सः) वही (औदुम्बरः) संघटन चाहने वाला, (मणिः) श्रेष्ठ, (वृषा) वीर्यवान् [परमेश्वर] (मा) मुझको (पुष्ट्या) वृद्धि के साथ (सृजतु) संयुक्त करे ॥२॥

करीषिणीं फलवतीं स्वधामिरां च नो गृहे ।

औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे ॥३॥

पदार्थ—(नः) हमारे (गृहे) घर में (औदुम्बरस्य) संघटन चाहने वाले [परमेश्वर] के (तेजसा) तेज से (करीषिणीम्) बहुत गोबरवाली, (फलवतीम्) बहुत फलवाली, (स्वधाम्) बहुत अन्नवाली (च) और (इराम्) बहुत भूमिवाली (पुष्टिम्) वृद्धि को (धाता) पोषक [गृहपति] (मे) मुझे (दधातु) देवे ॥३॥

यद् द्विपाच्च चतुष्पाच्च यान्यन्नानि ये रसाः ।

गृह्णेऽहं त्वेषां भूमानं बिभ्रदौदुम्बरं मणिम् ॥४॥

पदार्थ—(यत्) जो कुछ (द्विपात्) दोपाया (च) और (चतुष्पात्) चौपाया है, (च) और (यानि) जो-जो (अन्नानि) अन्न और (ये) जो-जो (रसाः) रस हैं। (औदुम्बरम्) संघटन चाहने वाले (मणिम्) श्रेष्ठ [परमेश्वर] को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (तु) ही (अहम्) मैं (एषाम्) इन की (भूमानम्) बहुतायत को (गृह्णे) ग्रहण करूं ॥४॥

पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम् ।

पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् ॥५॥

पदार्थ—(अहम्) मैं ने (चतुष्पदाम्) चौपाये और (द्विपदाम्) दोपाये (पशूनाम्) जीवो की, (च) और (यत्) जो (धान्यम्) धान्य है, [उसकी भी], (पुष्टिम्) बढ़ती को (परि) सब ओर से (जग्रभ) ग्रहण किया है। (पशूनाम्) पशुओं का (पयः) दूध और (ओषधीनाम्) ओषधियों [सोमलता अन्न आदि] का (रसम्) रस (बृहस्पतिः) बड़े ज्ञानो का रक्षक (सविता) सर्वप्रेरक [गृहपति वा परमेश्वर] (मे) मुझे (नि) नित्य (यच्छात्) देवे ॥५॥

अहं पशूनामधिपा असानि मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ।

मह्यमौदुम्बरो मणिर्द्रविणानि नि यच्छतु ॥६॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (पशूनाम्) प्राणियो का (अधिपाः) बड़ा राजा (असानि) हो जाऊं, (मयि) मुझ मे (पुष्टपतिः) पोषण का स्वामी (पुष्टम्) पोषण (दधातु) धारण करे। (मह्यम्) मुझ को (औदुम्बरः) संघटन चाहने वाला (मणिः) प्रशंसनीय [परमेश्वर] (द्रविणानि) अनेक धन (नि) नित्य (यच्छतु) देवे ॥६॥

उप मौदुम्बरो मणिः प्रजया च धनेन च ।

इन्द्रेण जिन्वितो मणिरा मागन्त्सह वर्चसा ॥७॥

पदार्थ—(औदुम्बरः) संघटन चाहने वाला (मणिः) प्रशंसनीय [परमेश्वर] (प्रजया) प्रजा के साथ (च च) और (धनेन) धन के साथ (मा उप) मुझ को, (इन्द्रेण) परम ऐश्वर्य द्वारा (जिन्वितः) प्रेरित किया गया (मणिः) प्रशंसनीय [परमात्मा] (वर्चसा सह) तेज के साथ (मा) मुझ को (आ अगन्) प्राप्त हुआ है ॥७॥

देवो मणिः सपत्नहा धनसा धनसातये ।

पशोरन्नस्य भूमानं गवां स्फातिं नि यच्छतु ॥८॥

पदार्थ—(देवः) प्रकाशमान (मणिः) प्रशंसनीय, (सपत्नहा) वैरियो का मारने वाला, (धनसाः) धनों का देने वाला [परमात्मा] (धनसातये) धनो के दान के लिये—(पशोः) प्राणियों की और (अन्नस्य) अन्न की (भूमानम्) बहुतायत और (गवाम्) गौओं की (स्फातिम्) बढ़ती (नि) नित्य (यच्छतु) देवे ॥८॥

यथाग्रे त्वं वनस्पते पुष्ट्या सह जज्ञिषे ।

एवा धनस्य मे स्फातिमा दधातु सरस्वती ॥९॥

पदार्थ—(वनस्पते) हे सेवकों के रक्षक ! [परमेश्वर] (यथा) जिस प्रकार से (त्वम्) तू (अग्रे) पहिले (पुष्ट्या सह) पोषण के साथ (जज्ञिषे) प्रकट हुआ है। (एव) वैसे ही (मे) मुझको (सरस्वती) सरस्वती [विज्ञानवती विद्या] (धनस्य) धन की (स्फातिम्) बढ़ती (आ) सब ओर से (दधातु) देवे ॥९॥

आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यम् ।

सिनीवाल्युपा वहादयं चौदुम्बरो मणिः ॥१०॥

पदार्थ—(सिनीवाली) अन्न देनेवाली (सरस्वती) सरस्वती [विज्ञानवती विद्या] (च) और (अयम्) यह (औदुम्बरः) संघटन चाहनेवाला (मणिः) प्रशंसनीय [परमात्मा] (मे) मेरे लिये (पयस्फातिम्) दूध की बढ़ती (च) और (धनम्) धन और (धान्यम्) धान्य [अन्न] (आ) सब ओर से (उप) समीप (वहात्) लावे ॥१०॥

त्वं मणीनामधिपा वृषासि त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर्जजान । त्वयीमे वाजा द्रविणानि सर्वौदुम्बरः स त्वमस्मत् सहस्वारादरातिममतिं क्षुधं च ॥११॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] (त्वम्) तू (मणीनाम्) मणियो [प्रशसनीय पदार्थों] का (अधिपाः) बड़ा राजा और (वृषा) बलवान् (असि) है, (त्वयि) तुझ मे ही (पुष्टम्) पोषण को (पुष्टपतिः) पोषण के स्वामी [धनी पुरुष] ने (जजान) प्रकट किया है। (त्वयि) तुझ मे ही (इमे) यह (वाजाः) अनेक बल और (सर्वा) सब (द्रविणानि) धन हैं, (सः) सो (औदुम्बरः) संघटन चाहने वाला (त्वम्) तू (अस्मत्) हम से (अरातिम्) अदानशीलता, (अमतिम्) कुमति (च) और (क्षुधम्) भूख को (आरात्) दूर (सहस्व) हटा ॥११॥

ग्रामणीरसि ग्रामणीरुत्थायाभिषिक्तोऽभि मा सिञ्च वर्चसा ।

तेजोऽसि तेजो मयि धारयाधि रयिरसि रयिं मे धेहि ॥१२॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] तू (ग्रामणीः) समूहो का नेता (असि) है, (उत्थाय) खड़ा होकर तू (ग्रामणीः) समूहो का नेता [है], (अभिषिक्तः) अभिषेक [राजतिलक] किया हुआ तू (मा) मुझे (वर्चसा) तेज के साथ (अभि सिञ्च) अभिषिक्त कर। (तेजः) तू तेज स्वरूप (असि) है, (मयि) मुझ मे (तेजः) तेज (धारय) धारण कर, (रयिः) तू धनरूप (असि) है (मे) मेरे लिये (रयिम्) धन (अधि) अधिकाई से (धेहि) स्थापित कर ॥१२॥

पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समङ्ग्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु । औदुम्बरः स त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ रायस्पोषाय प्रति मुञ्चे अहं त्वाम् ॥१३॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] तू (पुष्टिः) वृद्धिरूप (असि) है, (पुष्ट्या) वृद्धि के साथ (मा) मुझे (सम् अङ्ग्धि) संयुक्त कर, तू (गृहमेधी) घर के काम समझने वाला [है], (मा) मुझे (गृहपतिम्) घर का स्वामी (कृणु) कर। (सः) सो (औदुम्बरः) संघटन चाहनेवाला (त्वम्) तू (अस्मासु) हम लोगो के बीच (नः) हम को (सर्ववीरम्) सब को वीर रखनेवाला (रयिम्) धन (धेहि) दे, (च) और (नि यच्छ) दृढ़ कर, (अहम्) मै (त्वाम्) तुझ को (रायः) धन की (पोषाय) वृद्धि के लिये (प्रति मुञ्चे) स्वीकार करता हूं ॥१३॥

अयमौदुम्बरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते । स नः सनिं मधुमतीं कृणोतु रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छात् ॥१४॥

पदार्थ—(अयम्) यह (औदुम्बरः) संघटन चाहनेवाला, (मणिः) प्रशंसनीय (वीरः) वीर [परमात्मा] (वीराय) वीर पुरुष के लिये (बध्यते) धारण किया जाता है। (सः) वह (नः) हमारे लिये (मधुमतीम्) ज्ञानयुक्त (सनिम्) लाभ (कृणोतु) करे, (च) और (नः) हमारे लिये (सर्ववीरम्) सब को वीर बनाने वाला (रयिम्) धन (नि यच्छात्) नियत करे ॥१४॥

卐 सूक्तम् ॥३२॥ 卐

१—१० भृगु (आयुष्कामः)। दर्भ । अनुष्टुप्, ८ पुरस्ताद्बृहती ९ त्रिष्टुप्; १० जगती ।

शतकाण्डो दुश्च्यवनः सहस्रपर्ण उत्तिरः ।

दर्भो य उग्र ओषधिस्तं ते बध्नाम्यायुषे ॥१॥

पदार्थ—(शतकाण्डः) सैकड़ों सहारे देनेवाला, (दुश्च्यवनः) न हटने वाला, (सहस्रपर्णः) सैकड़ों पालनोंवाला, (उत्तिरः) उत्कृष्ट, (यः) जो (उग्रः) उग्र (ओषधिः) (दर्भः) दर्भ [शत्रुविदारक परमेश्वर वा औषध-विशेष]

ओषधिरूप है। (तम्) उसको (ते) तेरे लिये (आयुषे) [दीर्घ] जीवन के लिये (बध्नामि) मैं धारण करता हूँ ॥१॥

नास्य केशान् प्र वपन्ति नोरसि ताडमा घ्नते।

यस्मा अच्छिन्नपर्णेन दर्भेण शर्म यच्छति ॥२॥

पदार्थ—(न) न तो (अस्य) उस [पुरुष] के (केशान्) केशों को (प्र वपन्ति) वे [शत्रु लोग] बखेरते हैं, (न) न (उरसि) छाती पर (ताडम्) चोट (आ घ्नते) लगाते हैं, (यस्मै) जिस [पुरुष] को (अच्छिन्नपर्णेन) अखण्ड पालनवाले (दर्भेण) दर्भ [शत्रुविदारक परमेश्वर] के साथ (शर्म) सुख (यच्छति) वह [कोई मित्र] देता है ॥२॥

दिवि ते तूलमोषधे पृथिव्यामसि निष्ठितः।

त्वया सहस्रकाण्डेनायुः प्र वर्धयामहे ॥३॥

पदार्थ—(ओषधे) हे ओषधि [रूप परमात्मा !] (दिवि) सूर्य में (ते) तेरी (तूलम्) पूर्णता है, और तू (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (निष्ठितः) दृढ ठहरा हुआ (असि) है। (सहस्रकाण्डेन) सहस्रों सहारा देने वाले (त्वया) तेरे साथ (आयु) जीवनकाल को (प्र वर्धयामहे) हम बढ़ा ले जाते हैं ॥३॥

तिस्रो दिवो अत्यतृणत् तिस्र इमाः पृथिवीरुत।

त्वयाहं दुर्हार्दो जिह्वां नि तृणद्मि वचांसि ॥४॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (तिस्रः) तीनों [उत्कृष्ट, निकृष्ट, मध्यम] (दिवः) प्रकाशों को (उत) और (इमाः) इन (तिस्रः) तीनों (पृथिवीः) पृथिवियों को (अति अतृणत्) तू ने आर-पार छेदा है। (त्वया) तेरे साथ (अहम्) मैं (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वाले की (जिह्वाम्) जीभ को और (वचांसि) वचनों को (नि) दृढ़ता से (तृणद्मि) छेदता हूँ ॥४॥

त्वमसि सहमानोऽहमस्मि सहस्वान्।

उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा सपत्नान्त्सहिषीवहि ॥५॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (त्वम्) तू (सहमानः) वश में करनेवाला (असि) है, और (अहम्) मैं (सहस्वान्) बलवान् (अस्मि) हूँ। (उभौ) हम दोनों (सहस्वन्तौ) बलवान् (भूत्वा) होकर (सपत्नान्) विरोधियों को (सहिषीवहि) वश में करें ॥५॥

सहस्व नो अभिमातिं सहस्व पृतनायतः।

सहस्व सर्वान् दुर्हार्दः सुहार्दो मे बहून् कृधि ॥६॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (नः) हमारे (अभिमातिम्) अभिमानी शत्रु को (सहस्व) हरा और (पृतनायतः) सेनायें चढ़ा लाने वालों को (सहस्व) हरा। (सर्वान्) सब (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वालों को (सहस्व) हरा, (मे) मेरे लिये (बहून्) बहुत (सुहार्दः) शुभ हृदयवाले लोग (कृधि) कर ॥६॥

दर्भेण देवजातेन दिवि ष्टम्भेन शश्वदित्।

तेनाहं शश्वतो जनाँ असनं सनवानि च ॥७॥

पदार्थ—(देवजातेन) विद्वानों में प्रसिद्ध, (दिवि) आकाश में (स्तम्भेन) स्तम्भ रूप, (तेन) उस (दर्भेण) दर्भ [शत्रुविदारक परमेश्वर] के साथ (शश्वत) सदा (इत्) ही (अहम्) मैं ने (शश्वतः) नित्य वर्तमान (जनान्) पामर लोगों को (असनम्) जीता है, (च) और (सनवानि) जीतूं ॥७॥

प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च।

यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ॥८॥

पदार्थ—(दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक परमेश्वर] (मा) मुझ को (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिये (च) और (अर्याय) वैश्य के लिये (च) और (शूद्राय) शूद्र के (च) और (यस्मै) जिसके लिये (कामयामहे) हम चाह सकते हैं [उसके लिये], (च) और (सर्वस्मै) प्रत्येक (विपश्यते) विविध प्रकार देखनेवाले पुरुष के लिये (प्रियम्) प्रिय (कृणु) कर ॥८॥

यो जायमानः पृथिवीमदृंहद् यो अस्तभ्नादन्तरिक्षं दिवं च।

यं बिभ्रतं ननु पाप्मा विवेद स नोऽयं दर्भो वरुणो दिवा कः ॥९॥

पदार्थ—(यः) जिस (जायमानः) प्रकट होते हुए [परमेश्वर] ने (पृथिवीम्) पृथिवी को (अदृंहत्) दृढ़ किया है, (यः) जिसने (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (च) और (दिवम्) सूर्य को (अस्तभ्नात्) सहारा है। (यम्) जिस (बिभ्रतम्) पालन करते हुए [परमेश्वर] को (पाप्मा) पापी पुरुष ने (ननु) कभी नहीं (विवेद) जाना है, (सः अयम्) उस ही (वरुणः) श्रेष्ठ (दर्भः) दर्भ [शत्रुविदारक परमेश्वर] ने (नः) हमारे लिये (दिवा) प्रकाश को (कः) बनाया है ॥९॥

सपत्नहा शतकाण्डः सहस्वानोषधीनां प्रथमः सं बभूव।

स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतस्तेन साक्षीय पृतनाः पृतन्यतः ॥१०॥

पदार्थ—(सपत्नहा) विरोधियों का नाश करने वाला (शतकाण्डः) सैकड़ों सहारे देने वाला (सहस्वान्) महाबली [परमेश्वर] (ओषधीनाम्) ओषधियों [अन्न आदि] का (प्रथमः) पहिला (सम् बभूव) समर्थ हुआ है। (सः अयम्) वही (दर्भः) दर्भ [शत्रुविदारक परमेश्वर] (नः) हमें (विश्वतः) सब ओर से (परि पातु) पालता रहे, (तेन) उसी [परमेश्वर] के साथ (पृतनाः) सेनाओं को और (पृतन्यतः) सेना चढ़ा लानेवालों को (साक्षीय) मैं हरा दूं ॥१०॥

卐 सूक्तम् ॥३३॥ 卐

१—५ भृगु। दर्भः। १ जगती, २, ५ त्रिष्टुप्; ३ आर्षी पङ्क्तिः, ४ आस्तारपङ्क्ति।

सहस्रार्घः शतकाण्डः पयस्वानपामग्निर्वीरुधां राजसूयम्। स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतो देवो मणिरायुषा सं सृजाति नः ॥१॥

पदार्थ—(सहस्रार्घः) सहस्रों पूजावाला, (शतकाण्डः) सैकड़ों सहारे देने वाला, (पयस्वान्) अन्नवाला, (अपाम्) जलों की (अग्निः) अग्नि [के समान व्यापक] (वीरुधाम्) ओषधियों के (राजसूयम्) राजसूय [बड़े यज्ञ के समान उपकारी] है। (सः अयम्) वही (दर्भः) दर्भ [शत्रुविदारक परमेश्वर] (नः) हमें (विश्वतः) सब ओर से (परि पातु) पालता रहे, (देवः) प्रकाशमान (मणिः) प्रशंसनीय [वह परमेश्वर] (नः) हमें (आयुषा) [उत्तम] जीवन के साथ (सं सृजाति) संयुक्त करे ॥१॥

घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान् भूमिदृंहोऽच्युतश्च्यावयिष्णुः।

नुदन्त्सपत्नानधरांश्च कृण्वन् दर्भा रोह महतामिन्द्रियेण ॥२॥

पदार्थ—(घृतात्) प्रकाश से (उल्लुप्तः) ऊपर खींचा गया (मधुमान्) ज्ञानवान् (पयस्वान्) अन्नवान् (भूमिदृंहः) भूमि का दृढ़ करने वाला, (अच्युतः) अटल, (च्यावयिष्णुः) शत्रुओं को हटा देने वाला, (सपत्नान्) विरोधियों को (नुदन्) निकालता हुआ (च) और (अधरान्) नीचे (कृण्वन्) करता हुआ तू, (दर्भ) हे दर्भ ! [शत्रुविदारक परमेश्वर] (महताम्) बड़ों के (इन्द्रियेण) ऐश्वर्य के साथ (आ) सब ओर से (रोह) प्रकट हो ॥२॥

त्वं भूमिमत्येष्योजसा त्वं वेद्यां सीदसि चारुरध्वरे।

त्वां पवित्रमृषयोऽभरन्त त्वं पुनीहि दुरितान्यस्मत् ॥३॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] (त्वम्) तू (ओजसा) पराक्रम से (भूमिम्) भूमि को (अति एषि) पार कर जाता है, (त्वम्) तू (चारुः) शोभायमान होकर (अध्वरे) हिंसारहित यज्ञ में (वेद्याम्) वेदी पर (सीदसि) बैठता है। (त्वाम् पवित्रम्) तुझ पवित्र को (ऋषयः) ऋषियों [तत्त्वदर्शियों] ने (अभरन्त) धारण किया है, (त्वम्) तू (दुरितानि) संकटों को (अस्मत्) हम से (पुनीहि) शुद्ध कर ॥३॥

तीक्ष्णो राजा विषासही रक्षोहा विश्वचर्षणिः।

ओजो देवानां बलमुग्रमेतत् तं ते बध्नामि जरसे स्वस्तये ॥४॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (तीक्ष्णः) तीक्ष्ण (राजा) राजा, (विषासहिः) सदाविजयी, (रक्षोहा) राक्षसों का नाश करने हारा, (विश्वचर्षणिः) सर्वद्रष्टा और (देवानाम्) विद्वानों का (ओजः) पराक्रम और (एतत्) यह [दृश्यमान] (उग्रम्) उग्र (बलम्) बल है, (तम्) उस [परमात्मा] को (ते) तेरी (जरसे) स्तुति बढ़ाने [वा निर्बलता हटाने] के लिये और (स्वस्तये) मङ्गल के लिये (बध्नामि) मैं धारण करता हूँ ॥४॥

दर्भेण त्वं कृणवद् वीर्याणि दर्भं बिभ्रदात्मना मा व्यथिष्ठाः।

अतिष्ठाय वर्चसाधान्यान्त्सूर्य इवा भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥५॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (त्वम्) तू (दर्भेण) दर्भ [शत्रुविदारक परमेश्वर] के साथ (वीर्याणि) वीरता (कृणवत्) करता रहे, और (दर्भम्) दर्भ [शत्रुविदारक परमेश्वर] को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ तू (आत्मना)

अपने आत्मा से (मा व्यथिष्ठाः) मत व्याकुल हो। (अथ) और (वर्चसा) तेज के साथ (अन्यान्) दूसरों से (अतिक्राम) बढ़ जाकर, (सूर्यः इव) सूर्य के समान (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) बड़ी दिशाओं में (आ) सर्वथा (भाहि) प्रकाशमान हो ॥५॥

卐 इति चतुर्थोऽनुवाकः 卐

卐

अथ पंचमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ३४ 卐

१—१० अंगिराः । वनस्पति, लिंगोक्ताः । अनुष्टुप् ।

जङ्गिडोऽसि जङ्गिडो रक्षितासि जङ्गिडः ।

द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वं रक्षतु जङ्गिडः ॥१॥

पदार्थ—[हे औषध !] तू (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करनेवाला] (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करनेवाला औषध] (असि) है, तू (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करने वाला] (रक्षिता) रक्षक (असि) है। (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करनेवाला औषध] (अस्माकम्) हमारे (सर्वम्) सब (द्विपात्) दोपाये और (चतुष्पात्) चौपाये की (रक्षतु) रक्षा करे ॥१॥

या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशीः शतं कृत्याकृतश्च ये ।

सर्वान् विनक्तु तेजसोऽरसाञ्जङ्गिडस्करत् ॥२॥

पदार्थ—(याः) जो (त्रिपञ्चाशीः) तीन बार पचास [डेढ़ सौ अर्थात् असंख्य] (गृत्स्यः) ललचाने वाली [पीडायें] (च) और (ये) जो (शतम्) सौ [बहुत] (कृत्याकृतः) दुःख करनेवाले [रोग] हैं। (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करने वाला औषध] (सर्वान्) उन सब [रोगों] को (तेजसः) [उनके] प्रभाव से (विनक्तु) अलग करे और (अरसान्) नीरस [निष्प्रभाव] (करत्) कर देवे ॥२॥

अरसं कृत्रिमं नादमरसाः सप्त विस्रसः ।

अपेतो जङ्गिडामतिमिषुमस्तेव शातय ॥३॥

पदार्थ—(अरसम्) नीरस [निष्प्रभाव], (कृत्रिमम्) बनावटी (नादम्) ध्वनि को, और (अरसाः) नीरस [निष्प्रभाव] (सप्त) सात [दो कान, दो नथने, दो आँखें और एक मुख में की] (विस्रसः) विघ्न करनेवाली [निर्बलताओं] को और (अमतिम्) दुर्बुद्धि को (इतः) इस [रोगी] से, (जङ्गिड) हे जङ्गिड ! [संचार करनेवाले औषध] (अस्ता इव) धनुर्धारी के समान (इषुम्) बाण को (अप शातय) दूर गिरा दे ॥३॥

कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषणः ।

अथो सहस्वाञ्जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥४॥

पदार्थ—(अयम्) यह [पदार्थ] (एव) निश्चय करके (कृत्यादूषणः) पीडाओं का नाश करनेवाला (अथो) और भी (अरातिदूषणः) कंजूसी मिटाने वाला है। (अथो) और भी (सहस्वान्) वह महाबली (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करनेवाला औषध] (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनों को (प्र तारिषत्) बढ़ावे ॥४॥

स जङ्गिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः ।

विष्कन्धं येन सासह संस्कन्धमोज ओजसा ॥५॥

पदार्थ—(जङ्गिडस्य) जङ्गिड [संचार करने वाले औषध] की (सः) वह (महिमा) महिमा (नः) हमें (विश्वतः) सब ओर से (परि पातु) पालती रहे। (येन) जिस [महिमा] से (ओजः) पराक्रमरूप उस [जङ्गिड] ने (ओजसा) बलपूर्वक (विष्कन्धम्) विष्कन्ध [विशेष सुखानेवाले वात रोग] को और (संस्कन्धम्) संस्कन्ध [सब शरीर में व्यापने वाले महावात रोग] को (सासह) दबाया है ॥५॥

त्रिष्ट्वा देवा अजनयन् निष्ठितं भूम्यामधि ।

तमु त्वाङ्गिरा इति ब्राह्मणाः पूर्व्या विदुः ॥६॥

पदार्थ—[हे औषध !] (देवाः) विद्वानों ने (भूम्याम्) भूमि में (अधि) भले प्रकार (निष्ठितम्) जमे हुए (त्वा) तुझ को (त्रिः) तीन बार [जोतने, बोने और सींचने से] (अजनयन्) उत्पन्न किया है। (उ) और (पूर्व्याः) प्राचीन (ब्राह्मणाः) विद्वान् वैद्य लोग (तम् त्वा) उस तुझ को (विदुः) जानते हैं—(अंगिरा इति) कि यह अङ्गिरा [बड़ा व्यापनशील] है ॥६॥

न त्वा पूर्वा ओषधयो न त्वा तरन्ति या नवाः ।

विबाध उग्रो जङ्गिडः परिपाणः सुमङ्गलः ॥७॥

पदार्थ—(न) न तो (त्वा) तुझ से (पूर्वाः) पहिली और (न) न (त्वा) तुझ से (याः) जो (नवाः) नवीन (ओषधयः) ओषधें हैं, (तरन्ति) वे बढ़ कर हैं। (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचारक औषध] (विबाधः) [रोगों का] विशेष रोकने वाला, (उग्रः) उग्र (परिपाणः) सर्वथा रक्षक और (सुमङ्गलः) बड़ा मङ्गलकारी है ॥७॥

अथोपदान भगवो जङ्गिडामितवीर्य ।

पुरा त उग्रा ग्रसत उपेन्द्रो वीर्यं ददौ ॥८॥

पदार्थ—(अथ) और (उपदान) हे ग्रहण करने योग्य ! (भगवः) हे ऐश्वर्यवान् ! (अमितवीर्य) हे अपरिमित सामर्थ्य वाले ! (जङ्गिड) हे जङ्गिड ! [संचार करने वाले औषध] (उग्राः) तेजस्वी लोग (ते) तेरा (ग्रसते) ग्रास करते हैं, [इसलिये] (इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर] ने (पुरा) पहिले काल में [तुझे] (वीर्यम्) सामर्थ्य (उप ददौ) दिया है ॥८॥

उग्र इत् ते वनस्पत इन्द्र ओज्मानमा दधौ ।

अमीवाः सर्वाश्चातयं जहि रक्षांस्योषधे ॥९॥

पदार्थ—(वनस्पते) हे वनस्पति ! [सेवा करने वालों के रक्षक] (ते) तुझ को (उग्रः) उग्र (इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर] ने (इत्) ही (ओज्मानम्) बल (आ) सब ओर से (दधौ) दिया है। (ओषधे) हे औषधि ! (सर्वाः) सब (अमीवाः) पीड़ाओं को (चातयन्) नाश करता हुआ तू (रक्षांसि) राक्षसों [रोग जन्तुओं] को (जहि) मार ॥९॥

आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम् ।

तक्मानं विश्वशारदमरसाञ्जङ्गिडस्करत् ॥१०॥

पदार्थ—(आशरीकम्) आशरीक [शरीर कुचल डालने वाले रोग] को (विशरीकम्) विशरीक [शरीर तोड डालने वाले रोग] को (बलासम्) बलास [बल के गिराने वाले सन्निपात कफ आदि रोग] को (पृष्ट्यामयम्) पसली [या छाती] की पीड़ा को, (विश्वशारदम्) सब शरीर में चकत्ते करने वाले (तक्मानम्) जीवन को कष्ट देने वाले ज्वर को [इन सब रोगों को] (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करने वाला औषध] (अरसान्) नीरस [निष्प्रभाव] (करत्) करे ॥१०॥

卐 सूक्तम् ॥३५॥ 卐

१—५ अंगिरा । वनस्पतिः । अनुष्टुप्, ३ पथ्यापंक्तिः, ४ निचृत् त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषयो जङ्गिडं ददुः ।

देवा यं चक्रुर्भेषजमग्रे विष्कन्धदूषणम् ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रस्य) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा] का (नाम) नाम (गृह्णन्तः) लेते हुए। (ऋषयः) ऋषियो [तत्त्वदर्शियों] ने (जङ्गिडम्) जङ्गिड [संचार करने वाले औषध] को (ददुः) दिया है। (यम्) जिसको (देवाः) विद्वानों ने (अग्रे) पहिले से (विष्कन्धदूषणम्) विष्कन्ध [विशेष सुखाने वाले वात रोग] का मिटाने वाला (भेषजम्) औषध (चक्रुः) किया है ॥ १ ॥

स नो रक्षतु जङ्गिडो धनपालो धनेव ।

देवा यं चक्रुर्ब्राह्मणाः परिपाणमरातिहम् ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (जङ्गिडः) जङ्गिड [संचार करने वाला औषध] (नः) हमारी (रक्षतु) रक्षा करे, (इव) जैसे (धनपालः) धनरक्षक (धना) धनों की (यम्) जिस [औषध] को (देवाः) कामना योग्य (ब्राह्मणाः) वेदज्ञानियों ने (अरातिहम्) शत्रुनाशक (परिपाणम्) महारक्षक (चक्रुः) किया है ॥२॥

दुर्हार्दः संघोरं चक्षुः पापकृत्वानमागमम् । तांस्त्वं

सहस्रचक्षो प्रतीबोधेन नाशय परिपाणोऽसि जङ्गिडः ॥३॥

पदार्थ—(दुर्हार्द) कठोर हृदय वालों को, (संघोरम्) बड़े भयानक (चक्षु) नेत्र को, और (पापकृत्वानम्) पाप करने वाले पुरुष को (आ अगमम्) मैंने पाया है। (सहस्रचक्षो) हे सहस्र प्रकार से देखे गये! (त्वम्) तू (तान्) उनको (प्रतिबोधेन) सावधानी से (नाशय) नाश कर, तू (परिपाण) महारक्षक (जङ्गिड) जङ्गिड [संचार करने वाला औषध] (असि) है ॥३॥

परिं मा दिवः परिं मा पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् परिं मा वीरुद्भ्यः ।

परिं मा भूतात् परिं मोत भव्याद् दिशोदिशो जङ्गिडः

पात्वस्मान् ॥४॥

पदार्थ—(मा) मुझे (दिव) सूर्य से (परि) सर्वथा, (मा) मुझे (पृथिव्या) पृथिवी से (परि) सर्वथा (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से (परि) सर्वथा, (मा) मुझे (वीरुद्भ्य) ओषधियों से (परि) सर्वथा, (मा) मुझे (भूतात्) वर्तमान से (परि) सर्वथा, (उत) और (मा) मुझे (भव्यात्) भविष्यत् से (परि) सर्वथा और (दिशोदिश) प्रत्येक दिशा से (अस्मान्) हम सब को (जङ्गिड) जङ्गिड [संचार करने वाला औषध] (पातु) पाले ॥४॥

य ऋष्णवो देवकृता य उतो ववृतेऽन्यः ।

सर्वांस्तान् विश्वभेषजोऽरसां जङ्गिडस्करत् ॥५॥

पदार्थ—(ये) जो (देवकृता) उन्मत्तों के किए हुए (ऋष्णव) हिंसक व्यवहार हैं, (उतो) और (य) जो (अन्य) दूसरा [खोटा व्यवहार] (ववृते) वर्तमान हुआ है। (तान सर्वान) उन सब को (विश्वभेषज) सर्वौषध (जङ्गिड) जङ्गिड [संचार करने वाला औषध] (अरसान्) नीरस [निष्प्रभाव] (करत्) करे ॥५॥

卐 सूक्तम् ॥३६॥ 卐

१-६ ब्रह्मा । शतवार. । अनुष्टुप् ।

शतवारो अनीनशद् यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा ।

आरोहन् वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः ॥१॥

पदार्थ—(दुर्णामचातन) दुर्नामों [बुरे नाम वाले बवासीर आदि रोगों] को नाश करने वाले (मणि) प्रशंसनीय (शतवार) [सैकड़ों से स्वीकार करने योग्य औषध विशेष] ने (वर्चसा सह) प्रकाश के साथ (आरोहन्) ऊँचे होते हुए (तेजसा) अपनी तीक्ष्णता से (यक्ष्मान्) राजरोगों [क्षयी आदि] और (रक्षांसि) राक्षसों [रोगजन्तुओं] को (अनीनशत्) नष्ट कर दिया है ॥१॥

शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यः ।

मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं पाप्माति तत्रति ॥२॥

पदार्थ—वह [शतवार] (शृङ्गाभ्याम्) अपने दोनों सींगों [अगले भागों] से (रक्ष.) राक्षस और (मूलेन) जड़ से (यातुधान्य:) दुःखदायिनी पीड़ाओं को (नुदते) ढकेलता है (मध्येन) मध्य भाग से (यक्ष्मम्) राजरोग को (बाधते) हटाता है, (एनम्) इसको (पाप्मा) [कोई] अहित (न) नहीं (अति तत्रति) दबा सकता है ॥२॥

ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः ।

सर्वान् दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत् ॥३॥

पदार्थ—(ये) जो (यक्ष्मास:) राजरोग (अर्भका) छोटे और [जो] (महान्त:) बड़े हैं, (च) और (ये) जो (शब्दिन) महाशब्दकारी हैं। (सर्वान्) उन सब को (दुर्णामहा) दुर्नामों [बुरे नाम वाले बवासीर दाद आदि] के मिटाने हारे, (मणि:) प्रशंसनीय (शतवार:) शतवार [मन्त्र १] ने (अनीनशत्) नष्ट कर दिया है ॥३॥

शतं वीरानजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत् ।

दुर्णाम्नः सर्वान् हत्वाव रक्षांसि धूनुते ॥४॥

पदार्थ—उस [शतवार] ने (शतम्) सौ [अनेक] (वीरान्) वीर (अजनयत्) उत्पन्न किये हैं। (शतम्) सौ [अनेक] (यक्ष्मान्) राजरोग (अप अवपत्) तितर बितर किये हैं। वह (सर्वान्) सब (दुर्णाम्न:) दुर्नामों [बुरे नाम वाले बवासीर आदि] को (हत्वा) मारकर (रक्षांसि) राक्षसों [रोगजन्तुओं] को (अवधूनुते) हिला डालता है ॥४॥

हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शातवारो अयं मणिः ।

दुर्णाम्नः सर्वांस्तृड्ढ्वाव रक्षांस्यक्रमीत् ॥५॥

पदार्थ—(हिरण्यशृङ्ग) सोने के समान सींग [अगले भाग] वाला, (ऋषभ) ऋषभ [औषधविशेष के समान] (अयम्) इस (मणि) प्रशंसनीय (शतवार) शतवार ने (सर्वान्) सब (दुर्णाम्न) दुर्नामों [बुरे नाम वाले बवासीर आदि] को (तृड्ढ्वा) मार कर (रक्षांसि) राक्षसों [रोग जन्तुओं] को (अव अक्रमीत्) मूंद डाला है ॥५॥

शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम् ।

शतं शश्वन्वतीनां शतवारेण वारये ॥६॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (दुर्णाम्नीनां शतम्) सौ दुर्नाम्नी [बवासीर आदि पीड़ाओं] का और (गन्धर्वाप्सरसां शतम्) सौ गन्धर्वों [पृथिवी पर धरे हुए] और अप्सराओं [आकाश में चलने वाले रोगों] को और (शश्वन्वतीनां शतम्) सौ उछलती हुई [पीड़ाओं] का (शतवारेण) शतवार [औषध] से (वारये) हटाता हूँ ॥६॥

卐 सूक्तम् ॥३७॥ 卐

१-४ अथर्वा । अग्नि । त्रिष्टुप् । २ आस्तारपंक्ति, ३ त्रिपदा महाबृहती; ४ पुरोष्णिक ।

इदं वर्चो अग्निना दत्तमागन् भर्गो यशः सह ओजो वयो बलम् ।

त्रयस्त्रिंशद् यानि च वीर्याणि तान्यग्निः प्र ददातु मे ॥१॥

पदार्थ—(अग्निना) अग्नि [प्रकाशस्वरूप परमेश्वर] द्वारा (दत्तम्) दिया गया (इदम्) यह (वर्च) प्रताप, (भर्ग) प्रकाश, (यश) यश (सह) उत्साह (ओज) पराक्रम, (वय) पौरुष और (बलम्) बल (आ अगन्) आया है। (च) और (यानि) जो (त्रयस्त्रिंशत्) तेतीस (वीर्याणि) वीर कर्म हैं, (तानि) उनको (अग्नि) अग्नि [प्रकाशस्वरूप परमात्मा] (मे) मुझे (प्र ददातु) देता रहे ॥१॥

वर्च आ धेहि मे तन्वां सह ओजो वयो बलम् ।

इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रति गृह्णामि शतशारदाय ॥२॥

पदार्थ—[हे परमात्मन्!] (मे) मेरे (तन्वाम्) शरीर में (वर्च:) प्रताप, (सह) उत्साह, (ओज) पराक्रम, (वय) पौरुष और (बलम्) बल (आ धेहि) धारण कर दे। (इन्द्रियाय) इन्द्र [परम ऐश्वर्यमान् पुरुष] के योग्य (कर्मणे) कर्म के लिये, (वीर्याय) वीरता के लिये और (शतशारदाय) सौ शरद् ऋतुओं वाले [जीवन] के लिये (त्वा) तुझ को (प्रति गृह्णामि) मैं अंगीकार करता हूँ ॥२॥

ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा ।

अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय ॥३॥

पदार्थ—[हे परमात्मन्!] (त्वा) तुझे (ऊर्जे) अन्न के लिये, (बलाय) बल के लिए, (त्वा) तुझे (ओजसे) पराक्रम के लिये, (त्वा) तुझे (सहसे) उत्साह के लिए, (त्वा) तुझे (अभिभूयाय) विजय के लिए, और (राष्ट्रभृत्याय) राज्य के पोषण के लिए और (शतशारदाय) सौ वर्ष वाले [जीवन] के लिए (परि) अच्छे प्रकार [ऊहामि] तर्क से निश्चय करता हूँ ॥३॥

ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः ।

धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥४॥

पदार्थ—[परमात्मन्!] (ऋतुभ्य.) ऋतुओं के लिये, (आर्तवेभ्य:) ऋतुओं में उत्पन्न पदार्थों के लिये, (माद्भ्य) महीनों के लिए, (संवत्सरेभ्य:) वर्षों के लिए, (धात्रे) पोषक पुरुष के लिए, (विधात्रे) बुद्धिमान् जन के लिए, (समृधे) बढ़ती करने वाले के लिए और (भूतस्य) प्राणी मात्र के (पतये) रक्षक पुरुष के लिये (त्वा) तुझे (यजे) मैं पूजता हूँ ॥४॥

卐 सूक्तम् ॥३८॥ 卐

१-३ अथर्वा । गुल्गुलु । अनुष्टुप्, २ चतुष्पदा उष्णिक्, ३ एकावसाना प्राजापत्यानुष्टुप् ।

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते ।

यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते ॥१॥

पदार्थ—(न) न तो (तम्) उस [पुरुष] को (यक्ष्मा) राजरोग (अरुन्धते = आरुन्धते) रोकते हैं और (न) नहीं (एनम्) उसको (शपथः) शाप [क्रोध वचन] (अश्नुते) व्यापता है, (यम्) जिस [पुरुष] को (गुल्गुलोः) गुल्गुलु [गुग्गुल] (भेषजस्य) औषध का (सुरभिः) सुगन्धित (गन्धः) गन्ध (अश्नुते) व्यापता है ॥१॥

विष्वञ्चस्तस्माद् यक्ष्मा मृगा अश्वा इवेरते ।

यद् गुल्गुलु सैन्धवं यद् वाप्यासि समुद्रियम् ॥२॥

उभयोरग्रभं नामास्मा अरिष्टतातये ॥३॥

पदार्थ—(तस्मात्) उस [पुरुष] से (विष्वञ्चः) सब ओर फैले हुए (यक्ष्माः) राजरोग, (मृगाः) हरिण [वा] (अश्वाः इव) घोड़ों के समान (ईरते) दौड़ जाते हैं । (यत्) जहां पर तू (सैन्धवम्) नदी से उत्पन्न, (वा) अथवा (यत्) जहां पर (समुद्रियम्) समुद्र से उत्पन्न हुआ (अपि) ही (गुल्गुलु) गुल्गुलु [गुग्गुल] (असि) होता है ॥२॥ (उभयोः) दोनों के (नाम) नाम को (अस्मै) इस [पुरुष] के लिये (अरिष्टतातये) कुशल करने को (अग्रभम्) मैंने लिया है ॥३॥

卐 सूक्तम् ॥३९॥ 卐

१-१० भृग्वंगिरा । कुष्ठ । अनुष्टुप्, २,३ त्र्यवसाना पथ्यापङ्क्ति, ४ षट्पदा जगती, ५ सप्तपदा शक्वरी, ६-८ अष्टि (५-८ चतुरवसाना) ।

ऐतु देवस्त्रायमाणः कुष्ठो हिमवतस्परि ।

तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥१॥

पदार्थ—(देव) दिव्य गुणवाला, (त्रायमाण) रक्षा करता हुआ (कुष्ठः) कुष्ठ [रोग बाहर करने वाला औषध विशेष] (हिमवतः परि) हिमवाले देश से (आ एतु) आवे । तू (सर्वम्) सब (तक्मानम्) जीवन के कष्ट देने वाले ज्वर को (च) और (सर्वाः) सब (यातुधान्यः) दुःखदायिनी पीड़ाओं को (नाशय) नाश कर दे ॥१॥

त्रीणि ते कुष्ठ नामानि नद्यमारो नद्यारिषः । नद्यायं

पुरुषो रिषत् । यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥२॥

पदार्थ—(कुष्ठ) हे कुष्ठ ! [मन्त्र १] (ते) तेरे (त्रीणि) तीन (नामानि) नाम हैं । (नद्यमारः) नद्यमार [नदी में उत्पन्न रोगों का मारनेवाला] और (नद्यारिषः) नद्यारिष [नदी में उत्पन्न रोगों का हानि करने वाला] । (नद्य) हे नद्य ! [नदी में उत्पन्न कुष्ठ] (अयम्) वह (पुरुषः) पुरुष [रोगों को] (रिषत्) मिटावे । (यस्मै) जिसको (त्वा) तुझे (सायंप्रातः) सायंकाल और प्रातःकाल (अथो) और भी (दिवा) दिन में (परिब्रवीमि) मैं बतलाऊँ ॥२॥

जीवला नाम ते माता जीवन्तो नाम ते पिता । नद्यायं

पुरुषो रिषत् । यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥३॥

पदार्थ—[हे कुष्ठ !] (जीवला) जीवला [जीवन देने वाली] (नाम) नाम (ते) तेरी (माता) माता [बनाने वाली पृथिवी] है, (जीवन्तः) [जिलाने वाला] (नाम) नाम (ते) तेरा (पिता) पिता [पालनेवाला सूर्य वा मेघ] है । (नद्य) हे नद्य ! [नदी में उत्पन्न कुष्ठ] (अयम्) वह (पुरुषः) पुरुष [रोगों को] (रिषत्) मिटावे । (यस्मै) जिसको (त्वा) तुझे (सायंप्रातः) सायंकाल और प्रातःकाल (अथो) और भी (दिवा) दिन में (परिब्रवीमि) मैं बताऊँ ॥३॥

उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव ।

नद्यायं पुरुषो रिषत् । यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥४॥

पदार्थ—[हे कुष्ठ !] तू (ओषधीनाम्) औषधियों में (उत्तमः) उत्तम (असि) है, (इव) जैसे (जगताम्) गतिशीलों [गौ आदि पशुओं] में (अनड्वान्) रथ के चलानेवाला बैल और (इव) जैसे (श्वपदाम्) कुत्ते के समान पैरवाले हिंसक जन्तुओं में (व्याघ्रः) बाघ [है] । (नद्य) हे नद्य [नदी में उत्पन्न कुष्ठ] (अयम्) वह (पुरुषः) पुरुष [रोगों को] (रिषत्) मिटावे । (यस्मै) जिसको (त्वा) तुझे (सायंप्रातः) सायंकाल और प्रातःकाल (अथो) और भी (दिवा) दिन में (परिब्रवीमि) मैं बतलाऊँ ॥४॥

त्रिः शाम्बुभ्यो अङ्गिरेभ्यस्त्रिरादित्येभ्यस्परि । त्रिर्जातो विश्वदेवेभ्यः । स कुष्ठो विश्वभेषजः । साकं सोमेन तिष्ठति । तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥५॥

पदार्थ—(शाम्बुभ्यः) उपाय करनेवाले (अङ्गिरेभ्यः) ज्ञानियों के लिये (त्रिः) तीन बार [बालकपन, यौवन और बुढ़ापे में], (आदित्येभ्यः) अखण्ड ब्रह्मचारियों के लिये (त्रिः) तीन बार [बालकपन आदि में] और (विश्वदेवेभ्यः) सब विद्वानों के लिये (त्रिः) तीन बार [बालकपन आदि में] (परि) सब प्रकार (जातः) प्रकट हुआ (सः) वह (विश्वभेषजः) सर्वौषध (कुष्ठः) कुष्ठ [मन्त्र १] (सोमेन साकम्) सोमरस के साथ (तिष्ठति) ठहरता है [सोम के समान गुणकारी है] । तू (सर्वम्) सब (तक्मानम्) जीवन के कष्ट देनेवाले ज्वर को (च) और (सर्वाः) सब (यातुधान्यः) दुःखदायिनी पीड़ाओं को (नाशय) नाश करदे ॥५॥

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि ।

तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।

स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।

तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥६॥

पदार्थ—(देवसदनः) विद्वानों के बैठनेयोग्य (अश्वत्थः) वीरों के ठहरने का देश (तृतीयस्याम्) तीसरी [निकृष्ट और मध्य अवस्था से परे, श्रेष्ठ] (दिवि) अवस्था में (इतः) प्राप्त होता है । (तत्र) उसमें (अमृतस्य) अमृत [अमरपन] का (चक्षणम्) दर्शन है, (ततः) उससे (कुष्ठः) कुष्ठ [मन्त्र १] (अजायत) प्रकट हुआ है । (सः) वह (विश्वभेषजः) सर्वौषध (कुष्ठः) कुष्ठ [मन्त्र १] (सोमेन साकम्) सोमरस के साथ (तिष्ठति) ठहरता है [सोम के समान गुणकारी है] । तू (सर्वम्) सब (तक्मानम्) जीवन के कष्ट देनेवाले ज्वर को (च) और (सर्वाः) सब (यातुधान्यः) दुःखदायिनी पीड़ाओं को (नाशय) नाश करदे ॥६॥

हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि ।

तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।

स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।

तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥७॥

पदार्थ—(हिरण्ययी) तेजवाली [अग्नि वा बिजुली वा सूर्य से चलने वाली], (हिरण्यबन्धना) तेजोमय बन्धनों वाली (नौः) नाव (दिवि) व्यवहार में (अचरत्) चलती थी । (तत्र) उसमें (अमृतस्य) अमृत [अमरपन] का (चक्षणम्) दर्शन है, (ततः) उससे (कुष्ठः) कुष्ठ [मन्त्र १] (अजायत) प्रकट हुआ है । (सः) वह (विश्वभेषजः) सर्वौषध (कुष्ठः) कुष्ठ [मन्त्र १] (सोमेन साकम्) सोमरस के साथ (तिष्ठति) ठहरता है [सोम के समान गुणकारी है] । तू (सर्वम्) सब (तक्मानम्) जीवन के कष्ट देनेवाले ज्वर को (च) और (सर्वाः) सब (यातुधान्यः) दुःखदायिनी पीड़ाओं को (नाशय) नाश करदे ॥७॥

यत्र नावप्रभ्रंशनं यत्र हिमवतः शिरः ।

तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।

स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।

तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥८॥

पदार्थ—(यत्र) जहां (अवप्रभ्रंशनम्) नीचे गिर जाना (न) नहीं है, और (यत्र) जहां (हिमवतः) हिमवाले स्थान का (शिरः) शिर है । (तत्र) उसमें (अमृतस्य) अमृत [अमरपन] का (चक्षणम्) दर्शन है, (ततः) उससे (कुष्ठः) कुष्ठ [म० १] (अजायत) प्रकट हुआ है । (सः) वह (विश्वभेषजः) सर्वौषध (कुष्ठः) कुष्ठ [मन्त्र १] (सोमेन साकम्) सोमरस के साथ (तिष्ठति) ठहरता है [सोम के समान गुणकारी है] । तू (सर्वम्) सब (तक्मानम्) जीवन के कष्ट देनेवाले ज्वर को (च) और (सर्वाः) सब (यातुधान्यः) दुःखदायिनी पीड़ाओं को (नाशय) नाश करदे ॥८॥

यं त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको यं वा त्वा कुष्ठ काम्यः ।

यं वा वसो यमात्स्यस्तेनासि विश्वभेषजः ॥९॥

पदार्थ—(कुष्ठ) हे कुष्ठ ! [मन्त्र १] (यम् त्वा) जिस तुझ को (पूर्वः) पहिला [मुख्य] (इक्ष्वाकः) ज्ञान को प्राप्त होनेवाला, (वा) अथवा (यम् त्वा) जिस तुझको (काम्यः) कामनायुक्त, (वा) अथवा (यम्) जिसको (वसः) निवास देने वाला, [वा] (यम्) जिसको (आत्स्यः) सब ओर को सदा चलने वाला [पुरुष] (वेद) जानता है, (तेन) उस [कारण] से तू (विश्वभेषजः) सर्वौषध (असि) है ॥९॥

शीर्षलोकं तृतीयकं सदन्दिर्यश्च हायनः ।

तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परा सुव ॥१०॥

पदार्थ—(शीर्षलोकम्) शिर मे स्थानवाले [शिर में पीड़ा करनेवाले] (तृतीयकम्) तिजारी, और (यः) जो (सदन्दिः) सदा कूटन करनेवाला (च) और (हायनः) प्रतिवर्ष होनेवाला [ज्वर] है। (विश्वधावीर्य) हे सब प्रकार सामर्थ्य वाले [कुष्ठ !] (तक्मानम्) उस दु:खित जीवन करनेवाले ज्वर को (अधराञ्चम्) नीचे स्थान मे (परा सुव) दूर गिरा दे ॥१०॥

卐 सूक्तम् ४० 卐

१—४ ब्रह्मा । बृहस्पतिः, विश्वेदेवाश्च । १ परानुष्टुप्, त्रिष्टुप्, २ पुरः ककुम्मत्युपरिष्टाद् बृहती, ३ बृहतीगर्भा, ४ त्रिपदार्षी गायत्री ।

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम ।

विश्वैस्तद् देवैः सह संविदानः सं दधातु बृहस्पतिः ॥१॥

पदार्थ—(यत्) जो (मे) मेरे (मनसः) मन का (च) और (यत्) जो (वाचः) वाणी का (छिद्रम्) दोष है, [जिससे] (सरस्वती) सरस्वती उत्तम वेद विद्या] (मन्युमन्तम्) क्रोधयुक्त [व्यवहार] को (जगाम) प्राप्त हुई है। (तत्) उस [दोष] को (विश्वैः) सब (देवैः सह) उत्तम गणो के साथ (संविदान) मिलता हुआ (बृहस्पतिः) बड़े आकाश आदि का पालक परमेश्वर (सं दधातु) सन्धियुक्त करे ॥१॥

मा न आपो मेधां मा ब्रह्म प्र मथिष्टन ।

सुष्यदा यूयं स्यन्दध्वमुपहूतोऽहं सुमेधा वर्चस्वी ॥२॥

पदार्थ—(आपः) जल [के समान शान्तस्वरूप प्रजाओ] तुम (मा) न (नः) हमारी (मेधाम्) धारणावती बुद्धि को और (मा) न (ब्रह्म) वेद-ज्ञान को (प्र मथिष्टन) नष्ट करो। (सुष्यदा) सहज में बहने वाले (यूयम्) तुम (स्यन्दध्वम्) बहते जाओ। (उपहूत) आवाहन किया हुआ (अहम्) मैं (सुमेधा) सुन्दर बुद्धि वाला और (वर्चस्वी) बड़ा प्रतापी [हो जाऊँ] ॥२॥

मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत् तपः ।

शिवा नः शं सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः ॥३॥

पदार्थ— [हे माता पिता ! म० ४] तुम दोनों (नः) न तो (नः) हमारी (मेधाम्) धारणावती बुद्धि को, (मा) न (नः) हमारी (दीक्षाम्) दीक्षा [नियम और व्रत की शिक्षा] को और (मा) न (नः) हमारा (यत्) जो कुछ (तप) तप [ब्रह्मचर्यादि] है, [उसको] (हिंसिष्टम्) नष्ट करो। (नः) हमारे (आयुषे) जीवन के लिये [वे प्रजायें] (शिवा) कल्याणकारिणी और (शम्) शान्तिदायिनी (सन्तु) होवें, और (शिवा) कल्याणकारिणी और (मातर) माताओं [के समान] (भवन्तु) होवें ॥३॥

या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः ।

तामस्मे रासतामिषम् ॥४॥

पदार्थ—(या) जो (ज्योतिष्मती) उत्तम ज्योति वाली [अन्न सामग्री] (तमः) अन्धकार का (तिरः) तिरस्कार करके (नः) हमें (पीपरत्) पूर्ण करे (अश्विना) व्यवहारों मे व्यापक दोनों [माता पिता] (ताम्) उस (इषम्) अन्न सामग्री को (अस्मे) हमें (रासताम्) दिया करें ॥४॥

卐 सूक्तम् ४१ 卐

१ ब्रह्मा । तप । त्रिष्टुप् ।

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।

ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ॥१॥

पदार्थ—(भद्रम्) कल्याण [श्रेष्ठ वस्तु] (इच्छन्तः) चाहते हुए, (स्वर्विदः) सुख को प्राप्त होने वाले (ऋषय) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (तपः) तप [ब्रह्मचर्य अर्थात् वेदाध्ययन जितेन्द्रियतादि] और (दीक्षाम्) दीक्षा [नियम और व्रत की शिक्षा] का (अग्रे) पहिले (उपनिषेदुः) अनुष्ठान किया है (ततः) उस से (राष्ट्रम्) राज्य, (बलम्) बल [सामर्थ्य] (च) और (ओजः) पराक्रम (जातम्) सिद्ध हुआ है, (तत्) उस [कल्याण] को (अस्मै) इस पुरुष के लिये (देवाः) विद्वान् लोग (उपसंनमन्तु) झुका देवें ॥१॥

卐 सूक्तम् ४२ 卐

१—४ ब्रह्मा । ब्रह्म । अनुष्टुप्; २ त्र्यवसाना ककुम्मती पथ्या पङ्क्तिः; ३ त्रिष्टुप् । ४ जगती ॥

ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मिताः ।

अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः ॥१॥

पदार्थ—(ब्रह्म=ब्रह्मणा) वेद द्वारा (होता) [हवनकर्ता], (ब्रह्म) वेद द्वारा (यज्ञाः) अनेक यज्ञ होते हैं, (ब्रह्मणा) वेद द्वारा (स्वरवः) यज्ञस्तम्भ (मिताः) खड़े किये जाते हैं। (ब्रह्मणः) वेद से (अध्वर्युः) यज्ञ कर्ता (जातः) प्रसिद्ध होता है, (ब्रह्मणः) वेद के (अन्तर्हितम्) भीतर रक्खा हुआ (हविः) हवि [हवन विधान] है ॥१॥

ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता । ब्रह्म यज्ञस्य

तत्त्वं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः । शमिताय स्वाहा ॥२॥

पदार्थ—(ब्रह्म=ब्रह्मणा) वेद द्वारा (घृतवतीः) घी वाली (स्रुचः) स्रुचायें] [चमचे] (ब्रह्मणा) वेद द्वारा (वेदि) वेदी (उद्धिता) स्थिर की गई है। (ब्रह्म) वेद द्वारा (यज्ञस्य) यज्ञ का (तत्त्वम्) तत्त्व (च) और (ये) जो (हविष्कृतः) हवन करने वाले (ऋत्विजः) ऋत्विज् हैं [वे भी स्थिर किये हैं] (शमिताय) शान्तिकारक [वेद] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] है ॥२॥

अंहोमुचे प्र भरे मनीषामा सुत्राव्णे सुमतिमावृणानः ।

इदमिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥३॥

पदार्थ—(सुमतिम्) सुमति (आवृणानः) मांगता हुआ मैं (अंहोमुचे) कष्ट से छुड़ाने हारे, (सुत्राव्णे) बड़े रक्षक [परमात्मा] के लिए (मनीषाम्) अपनी मनन शक्ति को (आ) सब ओर से (प्र भरे) समर्पण करता हूँ। (इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्यवाले परमात्मन्] (इमम्) इस (हव्यम्) ग्राह्य स्तुति को (प्रति गृभाय) स्वीकार कर, (यजमानस्य) यजमान के (कामाः) मनोरथ (सत्याः) सत्य [पूर्ण] (सन्तु) होवें ॥३॥

अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम् ।

अपां नपातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण त इन्द्रियं दत्तमोजः ॥४॥

पदार्थ—(अंहोमुचम्) कष्ट से छुड़ाने हारे, (यज्ञियानाम्) पूजा योग्यों मे (वृषभम्) श्रेष्ठ, (अध्वराणाम्) हिंसारहित यज्ञों के (विराजन्तम्) विशेष शोभायमान (प्रथमम्) मुख्य, (अपाम्) प्रजाओं के (नपातम्) न गिराने वाले [बड़े रक्षक, परमात्मा] को (हुवे) मैं बुलाता हूँ। [हे उपासक !] (अश्विना) व्यवहारो मे व्यापक माता-पिता दोनों (इन्द्रियेण) परम ऐश्वर्यवान् पुरुष के पराक्रम से (ते) तुझ को (धिय) बुद्धियां, (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य और (ओज) पराक्रम (दत्तम्—दत्ताम्) देवें ॥४॥

卐 सूक्तम् ४३ 卐

१—८ ब्रह्मा । ब्रह्म, बहवो देवता । त्र्यवसाना ककुम्मती पथ्यापङ्क्तिः ।

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह । अग्निर्मा

तत्र नयत्वग्निर्मेधा दधातु मे । अग्नये स्वाहा ॥१॥

पदार्थ—(यत्र) जहां [सुख मे] (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी [ईश्वर वा वेद के जानने वाले लोग (दीक्षया) दीक्षा [नियम और व्रत की शिक्षा] और (तपसा सह) तप [वेदाध्ययन, जितेन्द्रियता] के साथ (यान्ति) पहुंचते हैं। (अग्निः) [अग्नि-समान सर्वव्यापक परमात्मा] (मा) मुझे (तत्र) वहां [सुख में] (नयतु) पहुँचावे, (अग्निः) अग्नि [व्यापक परमात्मा] (मेधाः) धारणावती बुद्धियां (मे) मुझ को (दधातु) देवे। (अग्नये) अग्नि [परमात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] होवे ॥१॥

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह । वायुर्मा

तत्र नयतु वायुः प्राणान् दधातु मे । वायवे स्वाहा ॥२॥

पदार्थ—(यत्र) जिस [सुख] में (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी। (दीक्षया) दीक्षा [नियम और व्रत की शिक्षा] और (तपसा सह) तप [वेदाध्ययन, जितेन्द्रियता] के साथ (यान्ति) पहुँचते हैं। (वायुः) वायु [पवन के समान शीघ्रगामी परमात्मा] (मा) मुझ को (तत्र) वहां (नयतु) पहुँचावे, (वायुः) वायु [परमात्मा] (मे) मुझे (प्राणान्) प्राणों को (दधातु) देवे, (वायवे) वायु [परमात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] होवे ॥ २ ॥

यत्र॑ ब्रह्म॒विदो॒ यान्ति॑ दी॒क्षया॒ तप॑सा स॒ह । सूर्यो॒

मा॒ तत्र॑ नयतु॒ चक्षुः॒ सूर्यो॑ दधातु मे । सूर्या॑य॒ स्वाहा॑ ॥३॥

पदार्थ—(यत्र) जिस [सुख] में (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी । (दीक्षया) दीक्षा [नियम और व्रत की शिक्षा] और (तपसा सह) तप [वेदाध्ययन, जितेन्द्रियता] के साथ (यान्ति) पहुँचते हैं । (सूर्यः) सूर्य [सूर्य के समान प्रकाशमान परमात्मा] (मा) मुझे (तत्र) वहाँ (नयतु) पहुँचावे, (सूर्यः) सूर्य [परमात्मा] (मे) मुझ को (चक्षुः) दर्शन-सामर्थ्य (दधातु) देवे, (सूर्याय) सूर्य [परमात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] होवे ॥३॥

यत्र॑ ब्रह्म॒विदो॒ यान्ति॑ दी॒क्षया॒ तप॑सा स॒ह । च॒न्द्रो

मा॒ तत्र॑ नयतु॒ मन॑श्च॒न्द्रो द॑धातु मे । च॒न्द्राय॒ स्वाहा॑ ॥४॥

पदार्थ—(यत्र) जिस [सुख] में (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी (दीक्षया) दीक्षा [नियम और व्रत की शिक्षा] और (तपसा सह) तप [वेदाध्ययन, जितेन्द्रियता] के साथ (यान्ति) पहुँचते हैं । (चन्द्रः) चन्द्र [चन्द्र-समान आनन्द देने वाला परमात्मा] (मा) मुझे (तत्र) वहाँ (नयतु) पहुँचावे, (चन्द्रः) चन्द्र [परमात्मा] (मे) मुझको (मनः) मननसामर्थ्य (दधातु) देवे । (चन्द्राय) चन्द्र [परमात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] होवे ॥४॥

यत्र॑ ब्रह्म॒विदो॒ यान्ति॑ दी॒क्षया॒ तप॑सा स॒ह । सोमो॒

मा॒ तत्र॑ नयतु॒ पयः॒ सोमो॑ दधातु मे । सोमा॑य॒ स्वाहा॑ ॥५॥

पदार्थ—(यत्र) जिस [सुख] में (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी, (दीक्षया) दीक्षा [नियम और व्रत की शिक्षा) और (तपसा सह) तप [वेदाध्ययन, जितेन्द्रियता] के साथ (यान्ति) पहुँचते हैं । (सोम) सोम [सर्वोत्पादक परमेश्वर] (मा) मुझे (तत्र) वहाँ (नयतु) पहुँचावे (सोम) सोम [परमात्मा] (मे) मुझ को (पयः) अन्न (दधातु) देवे । (सोमाय) सोम [परमात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] होवे ॥५॥

यत्र॑ ब्रह्म॒विदो॒ यान्ति॑ दी॒क्षया॒ तप॑सा स॒ह । इन्द्रो॒

मा॒ तत्र॑ नयतु॒ बल॒मिन्द्रो॑ दधातु मे । इन्द्रा॑य॒ स्वाहा॑ ॥६॥

पदार्थ—(यत्र) जिस [सुख] में (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी (दीक्षया) दीक्षा [नियम और व्रत की शिक्षा] और (तपसा सह) तप [वेदाध्ययन, जितेन्द्रियता] के साथ (यान्ति) पहुँचते हैं । (इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा] (मा) मुझे (तत्र) वहाँ (नयतु) पहुँचावे, (इन्द्रः) इन्द्र [परमात्मा] (मे) मुझको (बलम्) बल (दधातु) देवे । (इन्द्राय) इन्द्र [परमात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] होवे ॥ ६ ॥

यत्र॑ ब्रह्म॒विदो॒ यान्ति॑ दी॒क्षया॒ तप॑सा स॒ह । आपो॒

मा॒ तत्र॑ नयन्त्व॒मृतं॒ मोप॑ तिष्ठतु । अ॒द्भ्यः स्वाहा॑ ॥७॥

पदार्थ—(यत्र) जिस [सुख] में (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी । (दीक्षया) दीक्षा [नियम और व्रत की शिक्षा] और (तपसा सह) तप [वेदाध्ययन, जितेन्द्रियता] के साथ (यान्ति) पहुँचते हैं । (आपः) आप [जल के समान व्यापक परमात्मा] (मा) मुझे (तत्र) वहाँ (नयतु—नयन्तु) पहुँचावें, (अमृतम्) अमृत [अमरपन, दुःखरहित सुख) (मा) मुझ को (उप तिष्ठतु) प्राप्त होवे । (अद्भ्यः) आप [व्यापक परमात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] होवे ॥७॥

यत्र॑ ब्रह्म॒विदो॒ यान्ति॑ दी॒क्षया॒ तप॑सा स॒ह । ब्रह्मा

मा॒ तत्र॑ नयतु ब्र॒ह्मा ब्रह्म॑ दधातु मे । ब्र॒ह्मणे॒ स्वाहा॑ ॥८॥

पदार्थ—(यत्र) जिस [सुख] में (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी [ईश्वर वा वेद के जानने वाले लोग] (दीक्षया) दीक्षा [नियम और व्रत की शिक्षा] और (तपसा सह) तप [वेदाध्ययन, जितेन्द्रियता] के साथ (यान्ति) पहुँचते हैं । (ब्रह्मा) ब्रह्मा [सब से बड़ा जगत्स्रष्टा परमात्मा] (मा) मुझे (तत्र) वहाँ (नयतु) पहुँचावे, (ब्रह्मा) ब्रह्मा [परमात्मा] (मे) मुझ को (ब्रह्म) वेदज्ञान (दधातु) देवे । (ब्रह्मणे) ब्रह्मा [परमात्मा] के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी होवे ॥८॥

卐 सूक्तम् ४४ 卐

१—१० भृगु । आञ्जनम् ८-९ वरुण । अनुष्टुप्; ४ चतुष्पदा शङ्कुमती उष्णिक्, ५ त्रिपदा निचृद्विषमा गायत्री ।

आ॒युषो॑ऽसि प्र॒तर॑णं॒ विप्रं॑ भेष॒जमु॑च्यसे ।

तदा॑ञ्जन॒ त्वं शं॑ताते॒ शमापो॒ अभ॑यं कृ॒तम् ॥१॥

पदार्थ—[हे ब्रह्म !] तू (आयुषः) जीवन का (प्रतरणम्) बढ़ाने वाला (असि) है, तू (विप्रम्) परिपूर्ण (भेषजम्) औषध (उच्यसे) कहा जाता है । (तत्) सो, (शन्ताते) हे शान्तिकारक ! (आञ्जन) आञ्जन [संसार को प्रकट करने वाले ब्रह्म], (त्वम) तू (आपः) हे सुकर्म ! [तुम दोनों] (शम्) शान्ति और (अभयम्) अभय (कृतम्) करो ॥१॥

यो ह॑रि॒मा जा॒यान्यो॑ऽङ्गभे॒दो वि॒सल्प॑कः ।

सर्वं॑ ते॒ यक्ष्म॒मङ्गे॑भ्यो ब॒हिर्निर्ह॒न्त्वाञ्ज॑नम् ॥२॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (यः) जो (हरिमा) पीलिया रोग (जायान्यः) क्षय रोग, और (अङ्गभेदः) अङ्गों का तोड़ने वाला (विसल्पकः) विसल्पक [शरीर में फूटने-वाली हड़फूटन] है । (सर्वम्) सब (यक्ष्मम्) राजरोग को (ते) तेरे (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से (आञ्जनम्) आञ्जन [संसार का प्रकट करने वाला] (बहिः) बाहिर (निः हन्तु) निकाल मारे ॥ २ ॥

आ॒ञ्जनं॑ पृथि॒व्यां जा॒तं भ॒द्रं पु॑रुष॒जीव॑नम् ।

कृ॒णोत्वप्र॑मायुकं॒ रथ॑जूति॒मना॑गसम् ॥३॥

पदार्थ—(पृथिव्याम्) पृथिवी पर (जातम्) प्रसिद्ध, (भद्रम्) [illegible] कारक, (पुरुषजीवनम्) पुरुषों का जीवन (आञ्जनम्) आञ्जन [संसार का प्रकट करने वाला ब्रह्म] वा लेप विशेष [मुझको] (अप्रमायुकम्) मृत्यु रहित, (रथजूतिम्) रथ [शरीर] का वेग रखनेवाला, और (अनागसम्) निर्दोष (कृणोतु) करे ।

प्राण॑ प्रा॒णं त्रा॑यस्वा॒सो अस॑वे मृड ।

निर्ऋ॑ते॒ निर्ऋ॑त्या नः॒ पाशे॑भ्यो मुञ्च ॥४॥

पदार्थ—(प्राण) हे प्राण ! [जीवन दाता परमेश्वर] [मेरे] (प्राणम्) प्राण [जीवन] को (त्रायस्व) बचा, (असो) हे बुद्धिरूप ! (असवे) [मेरी] बुद्धि के लिए (मृड) प्रसन्न हो । (निर्ऋते) हे नित्य व्यापक ! (निर्ऋत्याः) महाविपत्ति के (पाशेभ्यः) फन्दों से (नः) हमें (मुञ्च) छुड़ा ॥ ४ ॥

सिन्धो॒र्गर्भो॑ऽसि वि॒द्युतां॒ पुष्प॑म् ।

वातः॑ प्रा॒णः सूर्य॒श्चक्षु॑र्दि॒वस्पयः॑ ॥५॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] तू (सिन्धोः) समुद्र का (गर्भः) गर्भ [उदर-समान आधार] और (विद्युताम्) प्रकाशवालों का ((पुष्पम्) विकास [फैलाव रूप] (असि) है । (वातः) पवन (प्राणः) [तेरा] प्राण [श्वास], (सूर्यः) सूर्य (चक्षुः) [तेरा] नेत्र है, और (दिवः) आकाश (पयः) [तेरा] अन्न है ॥५॥

देवा॑ञ्जन॒ त्रैक॑कुदं॒ परि॑ मा पाहि वि॒श्वतः॑ ।

न त्वा॑ तर॒न्त्योष॑धयो॒ बाह्याः॑ पर्व॒तीया॑ उ॒त ॥६॥

पदार्थ—(देवाञ्जन) हे देवाञ्जन ! [दिव्य स्वरूप, संसार के प्रकट करने वाले ब्रह्म] (त्रैककुदम्) तीन [आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक] सुखों का पहुँचाने वाला तू (मा) मुझे (विश्वतः) सब ओर (परि पाहि) बचाता रहे । (बाह्याः) बाहरी [पर्वतों से भिन्न स्थानों में उत्पन्न] (उत) और (पर्वतीयाः) पहाड़ी (ओषधयः) ओषधियाँ (त्वा) तुझ से (न) नहीं (तरन्ति) बढ़कर होती हैं ॥६॥

वी॒३॒दं मध्य॒मवा॑सृपद् रक्षो॒हामी॑व॒चात॑नः ।

अमी॑वाः॒ सर्वा॑श्चा॒तय॑न् ना॒शय॑द॒भिभा॑ इ॒तः ॥७॥

पदार्थ—(रक्षोहा) राक्षसों का मारने वाला, (अमीवचातनः) [illegible] [परमात्मा] (इदम्) इस (मध्यम्) मध्यस्थान में (वि अव असृपत्) [illegible] आया है । (इतः) यहाँ से (सर्वाः) सब (अमीवाः) पीड़ाओं को (चातयन्) हटाता हुआ, और (अभिभाः) विपत्तियों को (नाशयत्) नाश करता हुआ [वह वर्तमान है] ॥७॥

ब॒ह्वी॒३॒दं रा॑जन् वरुणानृ॒तमा॑ह॒ पूरु॑षः ।

तस्मा॑त् सहस्रवीर्य मु॒ञ्च नः॒ पर्यंह॑सः ॥८॥

पदार्थ—(राजन्) हे राजन् (वरुण) वरुण ! [सर्वश्रेष्ठ परमात्मन्] (पूरुषः) पुरुष (इदम्) अब (बहु) बहुत (अनृतम्) असत्य (आह) बोलता (सहस्रवीर्य) हे सहस्रप्रकार के पराक्रम वाले ! [ईश्वर] (तस्मात्) उस (अंहसः) पाप से (नः) हमें (परि) सर्वथा (मुञ्च) छुड़ा ॥८॥

यदापो॑ अ॒घ्न्या इति॒ वरु॒णेति॒ यदू॑चि॒म ।

तस्मा॑त् सहस्रवीर्य मुञ्च नः॒ पर्यंह॑सः ॥९॥

पदार्थ—(यत्) क्योंकि (आप:) प्राण और (अघ्न्याः) न मारने योग्य वीर्य हैं, (इति) इस लिये, (वरुण) हे वरुण ! [सर्वश्रेष्ठ [परमात्मन्] (इति) इस लिये, (यत्) जो कुछ [असत्य] (ऊचिम) हम ने बोला है। (सहस्रवीर्य) हे सहस्रप्रकार के पराक्रमवाले ! [ईश्वर] (तस्मात्) उस (अंहसः) पाप से (नः) हमें (परि) सर्वथा (मुञ्च) छुड़ा ॥९॥

मित्रश्च त्वा वरुणश्चानुप्रेयतुराञ्जन ।

तौ त्वानुगत्य दूरं भोगाय पुनरोहतुः ॥१०॥

पदार्थ—(आञ्जन) हे आञ्जन ! [संसार के प्रकट करने वाले ब्रह्म] [मेरे] (मित्र:) प्राण, (च च) और (वरुणः) अपान दोनों (त्वा अनुप्रेयतुः) तेरे पीछे आगे चले गये हैं। (तौ) वे दोनों (दूरम्) दूर तक (अनुगत्य) पीछे चलकर (त्वा) तुझ को (भोगाय) सुख भोगने के लिये (पुनः) फिर (आ ऊहतुः) ले आये हैं ॥१०॥

卐 सूक्तम् ४५ 卐

१—१० भृगुः । आञ्जनम्, मन्त्रोक्तदेवताः । १-२ अनुष्टुप्; ३-५ त्रिष्टुप्; ६-१० एकावसाना महाबृहती (६ विराट्, ७-१० निचृत्) ।

ऋणादृणमिव संनयन् कृत्यां कृत्याकृतो गृहम् ।

चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन ॥१॥

पदार्थ—(इव) जैसे (ऋणात्) ऋण में से (ऋणम्) ऋण को [अर्थात् जैसे ऋण का भाग ऋणदाता को मनुष्य शीघ्र भेजता है वैसे] (कृत्याम्) हिंसा को (कृत्याकृत:) हिंसा करनेवाले के (गृहम्) घर (संनयन्) भेज देता हुआ तू, (आञ्जन) हे आञ्जन ! [संसार के प्रकट करने वाले ब्रह्म] (चक्षुर्मन्त्रस्य) आँख से गुप्त बात करने वाले (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वाले की (पृष्टीः) पसलियों को (अपि) अवश्य (शृण) तोड़ डाल ॥१॥

यदस्मासु दुःष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ।

अनामगस्तं च दुर्हार्दः प्रियः प्रति मुञ्चताम् ॥२॥

पदार्थ—(यत्) जो (दुःष्वप्न्यम्) दुष्ट स्वप्न (अस्मासु) हम में, (यत्) जो (गोषु) गौओं में (च) और (यत्) जो (नः) हमारे (गृहे) घर में है। (च) और (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदयवाले का (अनामगः) अनामय [स्वास्थ्य] है, (तम्) उस को [भी] (प्रियः) [हमारा] प्रिय (प्रति) प्रतिकूल (मुञ्चताम्) छोड़े ॥२॥

अपामूर्ज ओजसो वावृधानमग्नेर्जातमधि जातवेदसः ।

चतुर्वीरं पर्वतीयं यदाञ्जनं दिशः प्रदिशः करदिच्छिवास्ते ॥३॥

पदार्थ—(अपाम्) प्रजाओं के (ऊर्जः) अन्न के और (ओजसः) पराक्रम के (वावृधानम्) बढ़ाने वाले और (जातवेदसः) उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान (अग्नेः) अग्नि [सूर्य] आदि से (अधि) अधिक (जातम्) प्रसिद्ध, (चतुर्वीरम्) चारों दिशाओं में वीर और (पर्वतीयम्) मेघों में वर्तमान (यत्) जो (आञ्जनम्) आञ्जन [संसार का प्रकट करनेवाला ब्रह्म] है, वह (दिशः) दिशाओं और (प्रदिशः) बड़ी दिशाओं [पूर्व आदि] को (ते) तेरे लिये, हे मनुष्य ! (इत्) अवश्य (शिवाः) कल्याणकारी (करत्) करे ॥३॥

चतुर्वीरं बध्यत आञ्जनं ते सर्वा दिशो अभयास्ते भवन्तु ।

ध्रुवस्तिष्ठासि सवितेव चार्य इमा विशो अभि हरन्तु ते बलिम् ॥४॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (चतुर्वीरम्) चारों दिशाओं में वीर, (आञ्जनम्), आञ्जन [संसार का प्रकट करने वाला ब्रह्म] (बध्यते) धारण किया जाता है, (ते) तेरे लिये (सर्वाः) सब (दिशः) दिशायें (अभयाः) निर्भय (भवन्तु) होवें। (च) और (आर्यः) श्रेष्ठ तू (सविता इव) सूर्य के समान (ध्रुवः) दृढ़ होकर (तिष्ठासि) ठहरा रह, (इमाः) यह (विशः) प्रजायें (ते) तेरे लिये (बलिम्) बलि [कर] (अभि) सब ओर से (हरन्तु) लावें ॥४॥

आक्ष्वैकं मणिमेकं कृणुष्व स्नाह्येकेना पिबैकमेषाम् ।

चतुर्वीरं नैर्ऋतेभ्यश्चतुर्भ्यो ग्राह्या बन्धेभ्यः परि पात्वस्मान् ॥५॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (एकम्) एक [ब्रह्म] को (आ) सब ओर से (अक्ष्व) प्राप्त हो, (एकम्) एक को (मणिम्) श्रेष्ठ (कृणुष्व) बना, (एकेन) एक के साथ (स्नाहि) शुद्ध हो, (एषाम्) इन [पदार्थों] में से (एकम्) एक को (आ) लेकर (पिब) पान कर। (चतुर्वीरम्) चारों दिशाओं में वीर [ब्रह्म] (ग्राह्याः) ग्राही [गठियारोग] के (नैर्ऋतेभ्यः) महाविपत्ति वाले (चतुर्भ्यः) चारों [दिशाओं में फैले] (बन्धेभ्यः) बन्धनों से (अस्मान्) हमें (परि पातु) बचाये रक्खे ॥५॥

अग्निर्माग्निनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस

ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥६॥

पदार्थ—(अग्निः) ज्ञानवान् [परमेश्वर] (मा) मुझे (अग्निना) ज्ञान के साथ (अवतु) बचावे, (प्राणाय) प्राण के लिये (अपानाय) अपान के लिये, (आयुषे) जीवन के लिये, (वर्चसे) प्रताप के लिये, (ओजसे) पराक्रम के लिये, (तेजसे) तेज के लिये, (स्वस्तये) स्वस्ति [सुन्दर सत्ता] के लिये और (सुभूतये) बड़े ऐश्वर्य के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥ ६ ॥

इन्द्रो मेन्द्रियेणावतु प्राणायापानायायुषे ।

वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥७॥

पदार्थ—(इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर] (मा) मुझे (इन्द्रियेण) इन्द्र के चिह्न [परम ऐश्वर्य] के साथ (अवतु) बचावे, (प्राणाय) प्राण के लिये (अपानाय) अपान के लिये, (आयुषे) जीवन के लिये, (वर्चसे) प्रताप के लिये, (ओजसे) पराक्रम के लिये, (तेजसे) तेज के लिये, (स्वस्तये) स्वस्ति [सुन्दर सत्ता] के लिये और (सुभूतये) बड़े ऐश्वर्य के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥७॥

सोमो मा सौम्येनावतु प्राणायापानायायुषे ।

वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥८॥

पदार्थ—(सोमः) शान्तस्वभाव परमेश्वर (मा) मुझे (सौम्येन) शान्त गुण के साथ (अवतु) बचावे, (प्राणाय) प्राण के लिये (अपानाय) अपान के लिये, (आयुषे) जीवन के लिये, (वर्चसे) प्रताप के लिये, (ओजसे) पराक्रम के लिये, (तेजसे) तेज के लिये, (स्वस्तये) स्वस्ति [सुन्दर सत्ता] के लिये और (सुभूतये) बड़े ऐश्वर्य के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥८॥

भगो मा भगेनावतु प्राणायापानायायुषे ।

वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥९॥

पदार्थ—(भगः) सेवनीय [परमेश्वर] (मा) मुझे (भगेन) सेवनीय ऐश्वर्य के साथ (अवतु) बचावे, (प्राणाय) प्राण के लिये (अपानाय) अपान के लिये, (आयुषे) जीवन के लिये, (वर्चसे) प्रताप के लिये, (ओजसे) पराक्रम के लिये, (तेजसे) तेज के लिये, (स्वस्तये) स्वस्ति [सुन्दर सत्ता] के लिये और (सुभूतये) बड़े ऐश्वर्य के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥९॥

मरुतो मा गणैरवन्तु प्राणायापानायायुषे ।

वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥१०॥

पदार्थ—(मरुतः) शूर पुरुष (मा) मुझे (गणैः) सेनादलों के साथ (अवन्तु) बचावें, (प्राणाय) प्राण के लिये (अपानाय) अपान के लिये, (आयुषे) जीवन के लिये, (वर्चसे) प्रताप के लिये, (ओजसे) पराक्रम के लिये, (तेजसे) तेज के लिये, (स्वस्तये) स्वस्ति [सुन्दर सत्ता] के लिये और (सुभूतये) बड़े ऐश्वर्य के लिये (स्वाहा) स्वाहा [सुन्दर वाणी] हो ॥१०॥

卐 इति पञ्चमोऽनुवाकः 卐

卐

अथ षष्ठोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ॥४६॥ 卐

१—७ प्रजापतिः । अस्तृतमणिः । त्रिष्टुप्, १ पञ्चपदा ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्; २ षट्पदा भुरिक्शक्वरी; ३, ७ पञ्चपदा पथ्यापंक्तिः; ४ चतुष्पदा, ५ पंचपदा अतिशक्वरी, ६ पञ्चपदोष्णिग्गर्भा । विराड् जगती ।

प्रजापतिष्ट्वा बध्नात् प्रथममस्तृतं वीर्याय कम् । तत् ते

बध्नाम्यायुषे वर्चस ओजसे च बलाय चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥१॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !](त्वा = तुभ्यम्) तेरे लिये (प्रजापतिः) प्रजापति [प्रजापालक परमेश्वर] ने (प्रथमम्) पहिले से (अस्तृतम्) अटूट [नियम] को (वीर्याय) वीरता के लिये और (कम्) सुख के लिये (बध्नात्) बाँधा है। (तत्) इस लिये [उस नियम को] (ते) तेरे (आयुषे) जीवन के लिये,

(अर्चसे) प्रताप के लिये (ओजसे) पराक्रम के लिये, (च च) और (बलाय) बल [सामर्थ्य] के लिये (बध्नामि) मैं [आचार्यादि] बांधता हूँ, (अस्तृत) अटूट [नियम] (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे ॥१॥

ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमादमस्तृतेमं मा त्वा दभन् पणयो यातुधानाः ।
इन्द्र इव दस्यूनव धूनुष्व पृतन्यतः सर्वाञ्छत्रून् वि षहस्वास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥२॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (अस्तृत) अटूट [नियम] (अप्रमादम्) बिना भूल (रक्षन्) रक्षा करता हुआ (ऊर्ध्वः) ऊँचा (तिष्ठतु) ठहरे, (इमम् त्वा) इस तुझ को (पणयः) कुव्यवहारी, (यातुधानाः) पीड़ा देनेवाले लोग (मा दभन्) न दबावें । (इन्द्र इव) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् पुरुष] के समान (दस्यून्) लुटेरों को (अव धूनुष्व) हिला दे, और (पृतन्यतः) सेना चढ़ानेवाले (सर्वान्) सब (शत्रून्) शत्रुओं को (वि सहस्व) हरा दे, (अस्तृतः) अटूट [नियम] (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे ॥२॥

शतं च न प्रहरन्तो निघ्नन्तो न तस्तिरे । तस्मिन्निन्द्रः
पर्यदत्त चक्षुः प्राणमथो बलमस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥३॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (न) न तो (शतम्) सौ (प्रहरन्तः) चोट चलाने वाले (च) और (न) न (निघ्नन्तः) मार गिराने वाले शत्रु [उस नियम को] (तस्तिरे) तोड़ सके हैं । (तस्मिन्) उस [नियम] में (इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा] ने (चक्षुः) दर्शनसामर्थ्य, (प्राणम्) जीवन सामर्थ्य (अथो) और (बलम्) बल (परि अदत्त) दे रक्खा है, (अस्तृत) अटूट [नियम] (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे ॥३॥

इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परि धापयामो यो देवानामधिराजो बभूव ।
पुनस्त्वा देवाः प्र णयन्तु सर्वेऽस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥४॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (त्वा) तुझ को (इन्द्रस्य) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर] के (वर्मणा) कवच से (परि धापयामः) हम ढकते हैं (यः) जो [परमेश्वर] (देवानाम्) विद्वानों का (अधिराजः) अधिराजा (बभूव) हुआ है । (पुनः) फिर (त्वा) तुझ को (सर्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (प्र नयन्तु) आगे ले चलें, (अस्तृत) अटूट [नियम] (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे ॥४॥

अस्मिन् मणावेकशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते । व्याघ्रः
शत्रूनभि तिष्ठ सर्वान् यस्त्वा पृतन्यादधरः सो अस्त्वस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥५॥

पदार्थ—(अस्मिन्) इस, (अस्मिन्) इस ही (मणौ) प्रशंसनीय (अस्तृते) अटूट [नियम] में (एकशतम्) एकसौ एक [असंख्य] (वीर्याणि) वीरतायें और (सहस्रम्) सहस्र [बहुत ही] (प्राणाः) जीवनसामर्थ्य हैं । (व्याघ्रः) बाघ तू (सर्वान्) सब (शत्रून्) शत्रुओं पर (अभि तिष्ठ) धावा कर, (यः) जो (त्वा) तुझ पर (पृतन्यात्) सेना चढ़ावे, (सः) वह (अधरः) नीचा (अस्तु) होवे, (अस्तृत) अटूट [नियम] (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे ॥५॥

घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान्त्सहस्रप्राणः शतयोनिर्वयोधाः ।
शंभूश्च मयोभूश्चोर्जस्वांश्च पयस्वांश्चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥६॥

पदार्थ—(घृतात्) प्रकाश से (उल्लुप्तः) ऊपर खींचा गया, (मधुमान्) ज्ञानवान् (पयस्वान्) अन्नवान्, (सहस्रप्राणः) सहस्रों जीवनसामर्थ्यवाला, (शतयोनिः) सैकड़ों कारणों में व्यापक (वयोधाः) पराक्रम देनेवाला, (शंभूः) शान्ति करनेवाला, (च) और (मयोभूः) सुख देनेवाला, (च) और (ऊर्जस्वान्) बल वाला (च च) और (पयस्वान्) दूध वाला, (अस्तृत) अटूट [नियम] (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे ॥६॥

यथा त्वमुत्तरोऽसो असपत्नः सपत्नहा । सजातानामसद्
वशी तथा त्वा सविता करदस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥७॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] [यथा) जिस से (त्वम्) तू (उत्तरः) अति ऊंचा, (असपत्नः) बिना शत्रु और (सपत्नहा) शत्रुओं का मारनेवाला (असः) होवे । और आप (सजातानाम्) सजातियों के (वशी) वश में करने वाला (असत्) होवे, (तथा) वैसा ही (त्वा) तुझ को (सविता) सब का प्रेरक [परमात्मा] (करत्) बनावे, (अस्तृतः) अटूट [नियम] (त्वा) तेरी (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे ॥७॥

卐 सूक्तम् ॥४७॥ 卐

१—६ गोपथः । रात्रिः । अनुष्टुप्; १ पथ्याबृहती, २ पञ्चपदानुष्टुब्गर्भा पराति जगती, ६ पुरस्ताद्बृहती, ७ त्र्यवसाना षट्पदा जगती ।

आ रात्रि पार्थिवं रजः पितुरप्रायि धामभिः ।
दिवः सदांसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः ॥१॥

पदार्थ—(रात्रि) हे रात्रि ! (पार्थिवम्) पृथिवी सम्बन्धी (रजः) लोक, (पितुः) पिता [मध्यलोक] के (धामभिः) स्थानों के साथ [अन्धकार से] (आ) सर्वथा (अप्रायि) भर गया है । (बृहती) बड़ी तू (दिवः) प्रकाश के (सदांसि) स्थानों को (वि तिष्ठसे) व्याप्त होती है, (त्वेषम्) चमकीला [ताराओं वाला] (तमः) अन्धकार (आ वर्तते) आकर घेरता है ॥१॥

न यस्याः पारं ददृशे न योयुवद् विश्वमस्यां नि विशते यदेजति ।
अरिष्टासस्त उर्वि तमस्वति रात्रि पारमशीमहि भद्रे पारमशीमहि ॥२॥

पदार्थ—(न) न तो (यस्याः) जिस [रात्रि] को (पारम्) पार और (न) न (योयुवत्) [प्रकाश से] अलग होने वाला [स्थान] (ददृशे) दिखाई पड़ता है, (यत्) जो कुछ (एजति) चेष्टा करता है, (सर्वम्) वह सब (अस्याम्) उस [रात्रि] में (नि विशते) ठहर जाता है । (उर्वि) हे फैली हुई, (तमस्वति) अंधेरी (रात्रि) रात्रि ! (अरिष्टासः) बिना कष्ट पाये हुए हम (ते) तेरे (पारम्) पार को (अशीमहि) पावें, (भद्रे) हे कल्याणी ! [तेरे] (पारम्) पार को (अशीमहि) पावें ॥२॥

ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव ।
अशीतिः सन्त्यष्टा उतो ते सप्त सप्ततिः ॥३॥

पदार्थ—(रात्रि) हे रात्रि ! (ये) जो (ते) तेरे (नृचक्षसः) मनुष्यों पर दृष्टि रखनेवाले (द्रष्टारः) दर्शक लोग (नवतिः नव) नब्बे और नौ [निन्नानवे], (अशीतिः अष्टौ) अस्सी और आठ [अठासी] (उतो) और (ते) तेरे (सप्ततिः सप्त) सत्तर और सात [सतहत्तर] (सन्ति) हैं ॥३॥

षष्टिश्च षट् च रेवति पञ्चाशत् पञ्च सुम्नयि ।
चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि ॥४॥

पदार्थ—(रेवति) हे धनवाली ! (षष्टिः च षट्) साठ और छह [छियासठ] (च) और (सुम्नयि) हे सुखप्रदे ! (पञ्चाशत् पञ्च) पचास और पांच [पचपन], (च) और (वाजिनि) हे बलवती ! [वा वेगवती] (चत्वारिंशत् चत्वारः) चालीस और चार [चवालीस], (च) और (त्रिंशत् त्रयः) तीस और तीन [तैंतीस] ॥४॥

द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः ।
तेभिर्नो अद्य पायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः ॥५॥

पदार्थ—(रात्रि) हे रात्रि ! (च) और (ते) तेरे (विंशतिः द्वौ) बीस और दो [बाईस], (च) और (ते) तेरे (एकादश) ग्यारह और (अवमाः) [जो इस संख्या से] नीचे हैं, (दिवः दुहितः) हे आकाश को भर देने वाली ! (तेभिः पायुभिः) उन रक्षकों द्वारा (नः) हमें (अद्य) आज (नु) शीघ्र (पाहि) बचा ॥५॥

रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत मा नो दुःशंस ईशत ।
मा नो अद्य गवां स्तेनो मावीनां वृक ईशत ॥६॥

पदार्थ—(रक्ष) तू रक्षा कर, (अघशंसः) बुराई चीतने वाला (माकिः) न कभी (नः) हमारा (ईशत) राजा होवे, और (मा) न (दुःशंसः) अनहित सोचने वाला (नः) हमारा (ईशत) राजा होवे । (मा) न (स्तेनः) चोर (अद्य) आज (नः) हमारी (गवाम्) गौओं का, और (मा) न (वृकः) भेड़िया (अवीनाम्) भेड़ों का (ईशत) राजा होवे ॥६॥

माश्वानां भद्रे तस्करो मा नृणां यातुधान्यः ।
परमेभिः पथिभिः स्तेनो धावतु तस्करः ।
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥७॥

पदार्थ—(भद्रे) हे कल्याणी ! (मा) न (तस्करः) लुटेरा (अश्वानाम्) घोड़ों का, और (मा) न (यातुधान्यः) पीड़ा देने वाली [सेनाएँ] (नृणाम्) मनुष्यों की [राजा होवे]

(स्तेन) चोर, (तस्करः) लुटेरा (परमेभिः पथिभिः) अति दूर मार्गों से (धावतु) दौड़ जावें । (परेण) दूर [मार्ग] से (दत्वती रज्जुः) दतीली रस्सी [सांप], और (परेण) दूर [मार्ग] से (अघायुः) द्रोही जन (अर्षतु) चला जावे ॥७॥

अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु ।

हनू वृकस्य जम्भयास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥८॥

पदार्थ—(अध) और (रात्रि) हे रात्रि ! (तृष्टधूमम्) क्रूर धुएँ वाले [विषैली श्वास वाले] (अहिम्) सांप को (अशीर्षाणम्) रुण्ड [बिना सिर का] (कृणु) कर दे, [सिर कुचल कर मार डाल] (वृकस्य) भेड़िये के (हनू) दोनों जावड़े (जम्भयाः) तोड़ डाल, (तेन) उससे (तम्) उसको (द्रुपदे) काठ के बन्धन में (जहि) मार डाल ॥८॥

त्वयि रात्रि वसामसि स्वपिष्यामसि जागृहि ।

गोभ्यो नः शर्म यच्छाश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः ॥९॥

पदार्थ—(रात्रि) हे रात्रि ! (त्वयि) तुझ में (वसामसि) हम निवास करते हैं, (स्वपिष्यामसि) हम सोवेंगे, (जागृहि) तू जागती रह । (नः) हमारी (गोभ्यः) गौओं को, (अश्वेभ्यः) घोड़ों को और (पुरुषेभ्यः) पुरुषों को (शर्म) सुख (यच्छ) दे ॥९॥

卐 सूक्तम् ॥४८॥ 卐

१—२ गोपथः । रात्रिः । अनुष्टुप्, १ त्रिपदार्षी गायत्री, २ त्रिपदा विराडनुष्टुप्, ३ बृहती गर्भानुष्टुप्, ५ पथ्यापङ्क्तिः ।

अथो यानि च यस्मा ह यानि चान्तः परीणहि ।

तानि ते परि दद्मसि ॥१॥

पदार्थ—(च) और (अथो) फिर (ह) निश्चय करके (यानि) जिन [वस्तुओं] का (यस्मै) हम प्रयत्न करें, (च) और (यानि) जो [वस्तुएं] (अन्तः) भीतर (परीणहि) बांधने के आकार [मंजूषा आदि] में हैं । (तानि) उन सब को (ते) तुझे (परिदद्मसि) हम सौंपते हैं ॥१॥

रात्रि मातरुषसे नः परि देहि ।

उषा नो अह्ने परि ददात्वहस्तुभ्यं विभावरि ॥२॥

पदार्थ—(रात्रि) रात्रि (मातः) माता ! तू (उषसे) उषा [प्रभात वेला] को (नः) हमें (परि देहि) सौंप । (उषाः) उषा (नः) हमें (अह्ने) दिन को, और (अहः) दिन (तुभ्यम्) तुझ को, (विभावरि) हे चमक वाली ! (परि ददातु) सौंपे ॥२॥

यत् किं चेदं पतयति यत् किं चेदं सरीसृपम् ।

यत् किं च पर्वतायासत्वं तस्मात् त्वं रात्रि पाहि नः ॥३॥

पदार्थ—(यत् किम् च) जो कुछ (इदम्) यह (पतयति) उड़ता है, (यत् किम् च) जो कुछ (इदम्) यह (सरीसृपम्) टेढ़ा-टेढ़ा रेंगने वाला [सर्प आदि] है । (यत् किम् च) और जो कुछ (पर्वताय) पहाड़ पर (असत्वम्) दुष्ट जन्तु [सिंह आदि] है, (तस्मात्) उससे, (त्वम्) तू (रात्रि) हे रात्रि ! (नः) हमें (पाहि) बचा ॥३॥

सा पश्चात् पाहि सा पुरः सोत्तरादधरादुत ।

गोपाय नो विभावरि स्तोतारस्त इह स्मसि ॥४॥

पदार्थ—[हे रात्रि !] (सा) सो तू (पश्चात्) पीछे से, (सा) सो तू (पुरः) सामने से, (सा) सो तू (उत्तरात्) ऊपर से (उत) और (अधरात्) नीचे से (पाहि) बचा । (विभावरि) हे चमक वाली ! (नः) हमारी (गोपाय) रक्षा कर, हम लोग (इह) यहां पर (ते) तेरी (स्तोतारः) स्तुति करने वाले (स्मसि) हैं ॥४॥

ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति ये च भूतेषु जाग्रति । पशून् ये सर्वान्

रक्षन्ति ते न आत्मसु जाग्रति ते नः पशुषु जाग्रति ॥५॥

पदार्थ—(ये) जो [पुरुष] (रात्रिम्) रात्रि के (अनुतिष्ठन्ति) साथ चलते हैं [रात्रि में सावधान रहते हैं] (च) और (ये) जो (भूतेषु) सत्ता वालों पर (जाग्रति) जागते हैं । (ये) जो (सर्वान्) सब (पशून्) पशुओं की (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं, (ते) वे (नः) हमारे (आत्मसु) आत्माओं [जीवों] पर (जाग्रति) जागते हैं, (ते) वे (नः) हमारे (पशुषु) पशुओं पर (जाग्रति) जागते हैं ॥५॥

वेद वै रात्रि ते नाम घृताची नाम वा असि ।

तां त्वा भरद्वाजो वेद सा नो वित्तेऽधि जाग्रति ॥६॥

पदार्थ—(रात्रि) हे रात्रि ! (ते) तेरा (नाम) नाम (वै) निश्चय करके (वेद) मैं जानता हूँ, तू (घृताची) घृताची [प्रकाश को प्राप्त होने वाली] (नाम) नाम वाली (वै) निश्चय करके (असि) है । (तां त्वा) उस तुझ को (भरद्वाजः) भरद्वाज [विज्ञानपोषक महात्मा] (वेद) जानता है, (सा) सो आप (नः) हमारी (वित्ते) सम्पत्ति पर (अधि) अधिकारपूर्वक (जाग्रति) जागती रहें ॥

卐 सूक्तम् ॥४९॥ 卐

१—१० गोपथ, भरद्वाजश्च । रात्रिः । अनुष्टुप्, १—५, ८ त्रिष्टुप्, ६ आस्तारपङ्क्तिः, ७ पथ्यापङ्क्तिः, १० त्र्यव० षट्पदा जगती ।

इषिरा योषा युवतिर्दमूना रात्री देवस्य सवितुर्भगस्य ।

अश्वक्षभा सुहवा संभृतश्रीरा पप्रौ द्यावापृथिवी महित्वा ॥१॥

पदार्थ—(इषिरा) फुरतीली, (योषा) सेवनीया (युवतिः) युवा [बलवती] (देवस्य) प्रकाशमान, (भगस्य) ऐश्वर्यवान् (सवितुः) प्रेरक सूर्य की (दमूना) वश में करने वाली, (अश्वक्षभा) शीघ्र फैलने वाली, (सुहवा) सहज में बुलाने योग्य, (संभृतश्रीः) सम्पूर्ण सम्पत्तिवाली (रात्री) रात्रि ने (महित्वा) महिमा से (द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी को (आ) सर्वथा (पप्रौ) भर दिया है ॥१॥

अति विश्वान्यरुहद् गम्भीरो वर्षिष्ठमरुहन्त श्रविष्ठाः ।

उशती रात्र्यनु सा भद्राभि तिष्ठते मित्र इव स्वधाभिः ॥२॥

पदार्थ—(गम्भीरः) गम्भीर पुरुष (विश्वानि) सब [विघ्नों] को (अति) लांघ कर (अरुहत्) ऊंचा हुआ है, और (श्रविष्ठाः) अति बलवान् पुरुष (वर्षिष्ठम्) अति चौड़े स्थान पर (अरुहन्त) चढ़े हैं । (उशती) प्रीति करती हुई (भद्रा) कल्याणी (सा) वह (रात्री) रात्रि (अनु) निरन्तर (मित्रः इव) मित्र के समान, (स्वधाभिः) अपनी धारण शक्तियों के साथ (अभितिष्ठते) सब ओर ठहरती है ॥२॥

वर्ये वन्दे सुभगे सुजात आजगन् रात्रि सुमना इह स्याम् ।

अस्मांस्त्रायस्व नर्याणि जाता अथो यानि गव्यानि पुष्ट्या ॥३॥

पदार्थ—(वर्ये) हे चाहने योग्य ! (वन्दे) हे वन्दनायोग्य ! (सुभगे) हे बड़े ऐश्वर्यवाली ! (सुजाते) हे सुन्दर जन्म वाली ! (रात्रि) रात्रि (आजगन्) तू आयी है, मैं (इह) यहां (सुमनाः) प्रसन्नचित्त (स्याम्) रहूं । (अस्मान्) हमारे लिये (नर्याणि) मनुष्यों की हितकारी (जाता) उत्पन्न वस्तुओं को (अथो) और भी [उनको], (यानि) जो (गव्यानि) गौ [आदि की हितकारी वस्तु हैं, (पुष्ट्या) वृद्धि के साथ (त्रायस्व) रक्षा कर ॥३॥

सिंहस्य रात्र्युशती पींषस्य व्याघ्रस्य द्वीपिनो वर्च आ ददे ।

अश्वस्य ब्रध्नं पुरुषस्य मायुं पुरु रूपाणि कृणुषे विभाती ॥४॥

पदार्थ—(उशती) प्रीति करती हुई (रात्री) रात्रि ने (सिंहस्य) सिंह की, (पींषस्य) चूरण करने वाले [हाथी की, (व्याघ्रस्य) बाघ की और (द्वीपिनः) चीते की (वर्चः) कान्ति को, (अश्वस्य) घोड़े के (ब्रध्नम्) मूल [वेग] को और (पुरुषस्य) पुरुष की (मायुम्) ललकार को (आ ददे) ग्रहण किया है, (विभाती) चमकती हुई तू (पुरु) बहुत से (रूपाणि) रूपों को (कृणुषे) बनाती है ॥४॥

शिवां रात्रिमनुसूर्यं च हिमस्य माता सुहवा नो अस्तु ।

अस्य स्तोमस्य सुभगे नि बोध येन त्वा वन्दे विश्वासु दिक्षु ॥५॥

पदार्थ—(च) और (हिमस्य) हिम [शीतलता] की (माता) माता [आप] (नः) हमारे लिये (सुहवा) सहज में बुलाने योग्य (अस्तु) होवे, (सुभगे) हे बड़े ऐश्वर्य वाली ! तू (अस्य) इस (स्तोमस्य) स्तोत्र का (नि बोध) ज्ञान कर, (येन) जिस [स्तोत्र] से (त्वा) तुझ (शिवाम्) कल्याणी (रात्रिम्) रात्रि को (अनुसूर्यम्) सूर्य के साथ-साथ (विश्वासु) सब (दिक्षु) दिशाओं में (वन्दे) मैं वन्दना करता हूँ ॥५॥

स्तोमस्य नो विभावरि रात्रि राजेव जोषसे ।

असाम सर्ववीरा भवाम सर्ववेदसो व्युच्छन्तीरनूषसः ॥६॥

पदार्थ—(विभावरि) हे चमकवाली (रात्रि) रात्रि ! (नः) हमारे (स्तोमस्य) स्तोत्र का (राजा इव) राजा के समान (जोषसे) तू सेवन करती रहे । (व्युच्छन्तीः) विविध प्रकार चमकती हुई (उषसः अनु) उषाओं के साथ-साथ हम (सर्ववीराः) सब वीरों वाले (असाम) होवें, और (सर्ववेदसः) सब सम्पत्ति वाले (भवाम) होवें ॥६॥

शम्या ह नाम दधिषे मम दिप्सन्ति ये धना ।

रात्रीहि तानसुतपा य स्तेनो न विद्यते यत् पुनर्न विद्यते ॥७॥

पदार्थ—(शम्या) शान्तिवाली, (नाम) वह नाम (ह) निश्चय करके (दधिषे) तू धारण करती है, (ये) जो [चोर] (मम) मेरे (धना) धनों को (दिप्सन्ति) हानि पहुँचाना चाहते हैं । (रात्रि) हे रात्रि ! (असुतपा) [उनके] प्राणों को तपानेवाली तू (तान्) उनको (इहि) पहुँच, (यत) जिस से (यः स्तेनः) जो चोर है, (न विद्यते) वह न रहे, (पुनः) फिर (न विद्यते) वह न रहे ॥७॥

भद्रासि रात्रि चमसो न विष्टो विष्वङ् गोरूपं युवतिर्बिभर्षि ।

चक्षुष्मती मे उशती वपूंषि प्रति त्वं दिव्या न क्षाममुक्थाः ॥८॥

पदार्थ—(रात्रि) हे रात्रि ! तू (विष्टः) परोसे हुए (चमसः न) अन्नपात्र के समान (भद्रा) कल्याणी (असि) है, (युवतिः) युवती [बलवती] तू (विष्वङ्) सम्पूर्ण (गोरूपम्) गौ के स्वभाव को (बिभर्षि) धारण करती है । (चक्षुष्मती) नेत्र वाली, (उशती) प्रीति करती हुई (त्वम्) तू ने (मे) मेरे लिये (दिव्या) आकाश वाले (वपूंषि न) शरीर के समान (क्षाम्) पृथिवी को (प्रति अमुक्थाः) ग्रहण किया है ॥८॥

यो अद्य स्तेन आयत्यघायुर्मर्त्यो रिपुः ।

रात्री तस्य प्रतीत्य प्र ग्रीवाः प्र शिरो हनत् ॥९॥

पदार्थ—(अद्य) आज (यः) जो (अघायुः) पाप चीतनेवाला (रिपुः) वैरी, (स्तेनः) चोर (मर्त्यः) मनुष्य (आ अयति) आवे । (रात्री) रात्रि (प्रतीत्य) प्रतीति करके (तस्य) उसके (ग्रीवाः) गले को (प्र) सर्वथा, और (शिरः) सिर को (प्र) सर्वथा (हनत्) तोड़ डाले ॥९॥

प्र पादौ न यथायति प्र हस्तौ न यथाशिषत् । यो मलिम्लुरुपायति स संपिष्टो अपायति । अपायति स्वपायति शुष्के स्थाणावपायति ॥१०॥

पदार्थ—(पादौ) [उसके] दोनों पैरों को (प्र) सर्वथा [तोड़ डाले-मन्त्र ९], (यथा) जिससे वह (न) न (अयति) चल सके, (हस्तौ) [उसके] दोनों हाथों को (प्र) सर्वथा [तोड़ डाले], (यथा) जिससे वह (न) न (अशिषत्) खा सके (यः) जो (मलिम्लुः) मलिन आचरण वाला लुटेरा (उप—अयति) पास आवे, (सः) वह (संपिष्टः) पीस डाला गया (अप अयति) निकल जावे । (अप अयति) वह निकल जावे, (सु—अप—अयति) वह सर्वथा निकल जावे, (शुष्के) सूखे (स्थाणौ) स्थान में (अप अयति) निकल जावे ॥१०॥

卐 सूक्तम् ५० 卐

१—७ गोपथः । रात्रिः । अनुष्टुप् ।

अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु ।

अक्षौ वृकस्य निर्जह्यास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥१॥

पदार्थ—(अध) और (रात्रि) हे रात्रि ! (तृष्टधूमम्) क्रूर धुएँ वाले [विषैली श्वास वाले] (अहिम्) साँप को (अशीर्षाणम्) रुण्ड [बिना सिर का] (कृणु) करदे [सिर कुचल कर मार डाल] । (वृकस्य) भेड़िये के (अक्षौ) दोनों आँखें (निः जह्याः) निकाल कर फेंक दे, (तेन) उस से (तम्) उसको (द्रुपदे) काठ के बन्धन में (जहि) मार डाल ॥१॥

ये ते रात्र्यनड्वाहस्तीक्ष्णशृङ्गाः स्वाशवः ।

तेभिर्नो अद्य पारयाति दुर्गाणि विश्वहा ॥२॥

पदार्थ—(रात्रि) हे रात्रि ! (ते) तेरे (ये) जो (तीक्ष्णशृङ्गाः) पैने सींग वाले और (स्वाशवः) बड़े फुरतीले (अनड्वाहः) रथ ले चलने वाले बैल [अर्थात् बैलों के समान रथ भार उठाने वाले पुरुष] हैं । (तेभिः) उन के द्वारा (नः) हमें (अद्य) आज और (विश्वहा) सब दिन (दुर्गाणि प्रति) विघ्नों को लाँघ कर (पारय) पार लगा ॥२॥

रात्रिंरात्रिमरिष्यन्तस्तरेम तन्वा वयम् ।

गम्भीरमप्लवा इव न तरेयुररातयः ॥३॥

पदार्थ—(अरिष्यन्तः) बिना कष्ट उठाये हुए (वयम्) हम लोग (तन्वा) अपने शरीर के साथ (रात्रिंरात्रिम्) रात्रि के पीछे रात्रि को (तरेम) पार करें । (अरातयः) वैरी लोग [उसको] (न तरेयुः) न पार करें । (इव) जैसे (अप्लवाः) बिना नाव वाले मनुष्य (गम्भीरम्) गहरे [समुद्र] को ॥३॥

यथा शाम्याकः प्रपतन्नपवान् नानुविद्यते ।

एवा रात्रि प्र पातय यो अस्माँ अभ्यघायति ॥४॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (शाम्याकः) सामा [छोटा अन्न विशेष] (प्रपतन्) गिरता हुआ और (अपवान्) दूर चला जाता हुआ (न) नहीं (अनुविद्यते) कुछ भी मिलता है । (एव) वैसे ही, (रात्रि) हे रात्रि ! [उस दुष्ट को] (प्र पातय) गिरा दे, (यः) जो (अस्मान्) हमारा (अभ्यघायति) बुरा चीतता है ॥४॥

अप स्तेनं वासो गोअजमुत तस्करम् ।

अथो यो अर्वतः शिरोऽभिधाय निनीषति ॥५॥

पदार्थ—तू (स्तेनम्) चोर को (उत) और (गोअजम्) गौ को हाँक ले आने वाले (तस्करम्) लुटेरे को (अप वासः) बाहिर बसा दे । (अथो) और भी [उसको], (यः) जो (अर्वतः) घोड़े के (शिरः) सिर को (अभिधाय) बाँधकर (निनीषति) [उसे] ले जाना चाहता है ॥५॥

यदद्या रात्रि सुभगे विभजन्त्ययो वसु ।

यदेतदस्मान् भोजय यथेदन्यानुपायसि ॥६॥

पदार्थ—(सुभगे) हे बड़े ऐश्वर्य वाली (रात्रि) रात्रि ! (अद्य) आज (यत्) जिस (अयः) सुवर्ण और (यत्) जिस (वसु) धन को (विभजन्ति) वे [चोर] बाँटते हैं । (एतत्) उस को (अस्मान्) हमें (भोजय) भोगने दे, (यथा) जिस से (इत्) निश्चय करके (अन्यान्) दूसरे [पदार्थों] को [हमें] (उप—अयसि) तू पहुँचाती रहे ॥६॥

उषसे नः परि देहि सर्वान् रात्र्यनागसः ।

उषा नो अह्ने आ भजादहस्तुभ्यं विभावरि ॥७॥

पदार्थ—(रात्रि) हे रात्रि ! (उषसे) उषा [प्रभात वेला] को (नः) हम (सर्वान्) सब (अनागसः) निर्दोषों को (परि देहि) सौंप । (उषाः) उषा (नः) हमें (अह्ने) दिन को, और (अहः) दिन (तुभ्यम्) तुझ को (आ-भजात्) देवे, (विभावरि) हे बड़ी चमक वाली ! ॥७॥

卐 सूक्तम् ५१ 卐

१–२ ब्रह्मा । १ आत्मा, २ सविता च । १ एकपदा ब्राह्मी अनुष्टुप्, २ त्रिपाद्यवमध्योष्णिक ।

अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रमयुतो

मे प्राणोऽयुतो मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः ॥१॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (अयुतः) अनिन्दित [प्रशंसायुक्त] [होऊँ] (मे) मेरा (आत्मा) आत्मा [जीवात्मा] (अयुतः) अनिन्दित, (मे) मेरी (चक्षुः) आँख (अयुतम्) अनिन्दित, (मे) मेरा (श्रोत्रम्) कान (अयुतम्) अनिन्दित, (मे) मेरा (प्राणः) प्राण [भीतर जाने वाला श्वास] (अयुतः) अनिन्दित, (मे) मेरा (अपानः) अपान [बाहर जाने वाला श्वास] (अयुतः) अनिन्दित, (मे) मेरा (व्यानः) व्यान [सब शरीर में घूमने वाला वायु] (अयुतः) अनिन्दित [होवे], (सर्वः) सब का सब (अहम्) मैं (अयुतः) अनिन्दित [होऊँ] ॥१॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां

पूष्णो हस्ताभ्यां प्रसूत आ रभे ॥२॥

पदार्थ—[हे शूर !] (देवस्य) प्रकाशमान, (सवितुः) सर्वोत्पादक [परमेश्वर] के (प्रसवे) बड़े ऐश्वर्य के बीच, (अश्विनोः) सब विद्याओं में व्याप्त दोनों [माता पिता] के (बाहुभ्याम्) दोनों भुजाओं से और (पूष्णः) पोषक [आचार्य] के (हस्ताभ्याम्) दोनों हाथों से (प्रसूतः) प्रेरणा किया हुआ मैं (त्वा) तुझ को (आरभे) ग्रहण करता हूँ ॥२॥

卐 सूक्तम् ५२ 卐

१—५ ब्रह्मा । काम । त्रिष्टुप्,, ३ चतुष्पादुष्णिक्, ५ उपरिष्टाद्बृहती ।

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।

स काम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥१॥

पदार्थ—(तत्) फिर [प्रलय के पीछे] (अग्रे) पहिले ही पहिले (कामः) काम [इच्छा] (सम्) ठीक ठीक (अवर्तत) वर्तमान हुआ, (यत्) जो (मनसः) मन का (प्रथमम्) पहिला (रेतः) बीज (आसीत्) था । (सः) सो तू, (काम) हे काम ! (बृहता) बड़े (कामेन) काम [कामना करने वाले परमेश्वर] के साथ (सयोनिः) एकस्थानी होकर (रायः) धन की (पोषम्) वृद्धि (यजमानाय) यजमान [विद्वानो के सत्कार करने वाले] को (धेहि) दान कर ॥१॥

त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सख आ सखीयते ।

त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि ॥२॥

पदार्थ—(काम) हे काम ! [आशा] (त्वम्) तू (सहसा) बल के साथ (प्रतिष्ठित) प्रतिष्ठायुक्त (असि) है, (आ) और, (सखे) हे मित्र ! (सखीयते) मित्र चाहने वाले के लिये तू (विभु) समर्थ और (विभावा) तेजस्वी है । (त्वम्) तू (पृतनासु) सङ्ग्रामो मे (उग्र) उग्र और (सासहि) विजयी है, (सह) बल और (ओज.) पराक्रम (यजमानाय) यजमान को (धेहि) दान कर ॥२॥

दूराच्चकमानाय प्रतिपाणायाक्षये ।

आस्मा अशृण्वन्नाशाः कामेनाजनयन्त्स्वः ॥३॥

पदार्थ—(अक्षये) निर्हानि [पूर्णता] के बीच (प्रतिपाणाय) सब प्रकार रक्षा के लिये (दूरात्) दूर से [जन्म से पूर्व कर्म के सस्कार के कारण से] (चकमानाय) कामना कर चुकनेवाले (अस्मै) इस [पुरुष को] (आशा) दिशाओ ने (कामेन) काम [आशा] के साथ (स्वः) सुख की (आ अशृण्वन्) अङ्गीकार किया है और (अजनयन्) उत्पन्न किया है ॥३॥

कामेन मा काम आगन् हृदयाद्धृदयं परि ।

यदमीषामदो मनस्तदैतूप मामिह ॥४॥

पदार्थ— (कामेन) काम [कर्म-फल-इच्छा] के साथ (काम) काम [आशा] (हृदयात्) [एक] हृदय से (हृदयं परि) [दूसरे] हृदय मे होकर (मा) मुझ को (आ अगन्) प्राप्त हुआ है । (अमीषाम्) इन [विद्वानो] का (यत्) जो (अदः) वह (मनः) मनन है, (तत्) वह (माम्) मुझको (इह) यहां (उप) आदर से (आ एतु) प्राप्त होवे ॥४॥

यत्काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः ।

तन्नः सर्वं समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा ॥५॥

पदार्थ—(काम) हे काम ! [आशा] (यत्) जिस [फल] को (कामयमाना) चाहते हुए हम (ते) तेरी (इदम्) यह (हवि) भक्ति (कृण्मसि) करते है । (तत) वह (सर्वम्) सब (नः) हमारे लिये (सम्) सर्वथा (ऋध्यताम्) सिद्ध होवे, (अथ) इसलिये (स्वाहा) सुन्दर वाणी के साथ [वर्तमान] (एतस्य) इस (हविष) भक्ति की (वीहि) प्राप्ति कर ॥५॥

卐 सूक्तम् ५३ 卐

१—१० भृगु । काल । अनुष्टुप्; १—४ त्रिष्टुप्, ५ निचृत् पुरस्ताद् बृहती ।

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः ।

तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥१॥

पदार्थ—(सप्तरश्मि) सात प्रकार की किरणोवाले सूर्य [के समान प्रकाशमान], (सहस्राक्ष.) सहस्रों नेत्रवाला, (अजरः) बूढ़ा न होने वाला, (भूरिरेता.) बड़े बल वाला (काल) काल [समयरूपी] (अश्वः) घोड़ा (वहति) चलता रहता है । (तम्) उस पर (कवय) ज्ञानवान् (विपश्चित.) बुद्धिमान् लोग (आ रोहन्ति) चढ़ते हैं, (तस्य) उस [काल] के (चक्रा) चक्र घूमने के स्थान] (विश्वा) सब (भुवनानि) सत्ता वाले है ॥१॥

सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः ।

स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः ॥२॥

पदार्थ—(एषः कालः) यह काल [समय] (सप्त) तीनकाल और चार दिशाओं रूपी] सात (चक्रान्) पहियों को (वहति) चलाता है, (अस्य) इस की (सप्त) [वे ही] सात (नाभीः) नाभि [पहिये के मध्य स्थान] हैं, और (अक्षः) [इसका] धुरा (नु) निश्चय करके (अमृतम्) अमरपन है । (सः) वह (इमा) इन (विश्वा) सब (भुवनानि) सत्तावालों को (अञ्जत्) प्रकट करता हुआ [है], (स कालः) वह काल (नु) निश्चय करके (प्रथमः) पहिला (देवः) देवता [दिव्य पदार्थ] (ईयते) जाना जाता है ॥२॥

पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः ।

स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ् कालं तमाहुः परमे व्योमन् ॥३॥

पदार्थ—(काले अधि) काल [समय] के ऊपर (पूर्णः) भरा हुआ (कुम्भ) घड़ा [सम्पत्तियो का कोश] (आहितः) रक्खा है, (तम्) उस [घड़े] को (वै) निश्चय करके (सन्तः) वर्तमान हम (नु) ही (बहुधा) अनेक प्रकार (पश्यामः) देखते हैं । (स.) वह [काल] (इमा) इन (विश्वा) सब (भुवनानि) सत्ता वालो के (प्रत्यङ्) सामने चलता हुआ है, (तम्) उस (कालम्) काल को (परमे) अति ऊँचे (व्योमन्) विविध रक्षा स्थान [ब्रह्म] मे [वर्तमान] (आहुः) वे [बुद्धिमान् लोग] बताते हैं ॥३॥

स एव सं भुवनान्याभरत् स एव सं भुवनानि पर्यैत् ।

पिता सन्नभवत् पुत्र एषां तस्माद् वै नान्यत् परमस्ति तेजः ॥४॥

पदार्थ—(स. एव) उस ने ही (भुवनानि) सत्ताओं को (सम्) अच्छे प्रकार (आ) सब ओर से (अभरत्) पुष्ट किया है, (सः एव) उसने ही (भुवनानि) सत्ताओ को (सम्) अच्छे प्रकार (परि ऐत्) घेर लिया है । वह (एषाम्) इन [सत्ताओ] का (पिता) पिता [पिता-समान] (सन्) पहिले होकर (पुत्र) [पुत्र-समान] (अभवत्) [पीछे] हुआ है, (तस्मात्) उस से (परम्) बड़ा (अन्यत्) दूसरा (तेज) तेज [सृष्टि के बीच] (वै) निश्चय करके (न) नहीं (अस्ति) है ॥४॥

कालोऽमू दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत ।

काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते ॥५॥

पदार्थ—(काल) काल [समय] ने (अमूम्) उस (दिवम्) आकाश को (उत) और (कालः) काल ने (इमा) इन (पृथिवीः) पृथिवियों को (अजनयत्) उत्पन्न किया है । (काले) काल मे (ह) ही (भूतम्) बीता हुआ (च) और (भव्यम्) होने वाला (इषितम्) प्रेरा हुआ (ह) ही (वि) विशेष करके (तिष्ठते) ठहरता है ॥५॥

कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः ।

काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति ॥६॥

पदार्थ—(काल) काल [समय] ने (भूतिम्) ऐश्वर्य को (असृजत्) उत्पन्न किया है, (काले) काल मे (सूर्यः) सूर्य (तपति) तपता है । (काले) काल में (ह) ही (विश्वा) सब (भूतानि) सत्तायें हैं, (काले) काल में (चक्षु) आंख (वि) विविध प्रकार (पश्यति) देखती है ॥६॥

काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम् ।

कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः ॥७॥

पदार्थ—(काले) काल मे (मनः) मन, (काले) काल में (प्राणः) प्राण, (काले) काल मे (नाम) नाम (समाहितम्) संग्रह किया गया है । (आगतेन) आये हुए (कालेन) काल के साथ (इमाः) यह (सर्वाः) सब (प्रजा.) प्रजाएँ (नन्दन्ति) आनन्द पाती हैं ॥७॥

काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् ।

कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः ॥८॥

पदार्थ—(काले) काल [समय] मे (तपः) तप [ब्रह्मचर्यादि], (काले) काल म (ज्येष्ठम्) श्रेष्ठ कर्म, (काले) काल मे (ब्रह्म) वेदज्ञान (समाहितम्) संग्रह किया गया है । (काल.) काल (ह) ही (सर्वस्य) सब का (ईश्वरः) स्वामी है, (य) जो [काल] (प्रजापते) प्रजापति [प्रजापालक मनुष्य] का (पिता) पिता [के समान पालक] (आसीत्) हुआ है ॥८॥

तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ।

कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् ॥९॥

पदार्थ—(तेन) उस [काल] द्वारा (इषितम्) प्रेरा गया (तेन) उस द्वारा (जातम्) उत्पन्न किया गया (तत्) यह [जगत्] (तस्मिन्) उस [काल] में (उ) ही (प्रतिष्ठितम्) दृढ़ ठहरा है। (कालः) काल (ह) ही (ब्रह्म) बढ़ता हुआ अन्न (भूत्वा) होकर (परमेष्ठिनम्) सबसे ऊँचे ठहरे हुए [मनुष्य] को (बिभर्ति) पालता है ॥९॥

कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम्।

स्वयंभूः कश्यपः कालात् तपः कालादजायत ॥१०॥

पदार्थ—(अग्रे) पहिले (कालः) काल ने (प्रजाः) प्रजाओं को, और (कालः) काल ने (प्रजापतिम्) प्रजापति [प्रजापालक मनुष्य] को (असृजत) उत्पन्न किया है। (कालात्) काल से (स्वयम्भूः) स्वयम्भू [अपने आप उत्पन्न होने वाला] (कश्यपः) कश्यप [द्रष्टा परमेश्वर] और (कालात्) काल से (तपः) तप [ब्रह्मचर्य आदि नियम] (अजायत) प्रकट हुआ है ॥१०॥

卐 सूक्तम् ५४ 卐

१—५ भृगुः। कालः। अनुष्टुप्; २ त्रिपदार्षी गायत्री; ५ त्र्यवसाना षट्पदा विराडष्टिः।

कालादापः समभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिशः।

कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः ॥१॥

पदार्थ—(कालात्) काल [गिनती करनेवाले समय] से (आपः) प्रजायें, (कालात्) काल से (ब्रह्म) वेदज्ञान, (तपः) तप [ब्रह्मचर्यादि नियम] और (दिशः) दिशाएँ (सम् अभवन्) उत्पन्न हुई हैं। (कालेन) काल के साथ (सूर्यः) सूर्य (उत् एति) निकलता है, (काले) काल में (पुनः) फिर (नि विशते) डूब जाता है ॥१॥

कालेन वातः पवते कालेन पृथिवी मही।

द्यौर्मही काल आहिता ॥२॥

पदार्थ—(कालेन) काल [समय] के साथ (वातः) पवन (पवते) शुद्ध करता है, (कालेन) काल के साथ (पृथिवी) पृथिवी (मही) बड़ी है। (काले) काल में (मही) बड़ा (द्यौः) आकाश (आहिता) रक्खा है ॥२॥

कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत् पुरा।

कालादृचः समभवन् यजुः कालादजायत ॥३॥

पदार्थ—(कालः) कालरूपी (पुत्रः) पुत्र ने (ह) ही (भूतम्) बीता हुआ (च) और (भव्यम्) होने वाला (पुरा) पहिले (अजनयत्) उत्पन्न किया है। (कालात्) काल से (ऋचः) ऋचायें [गुण प्रकाशक विद्यायें] (सम् अभवन्) उत्पन्न हुई हैं, (कालात्) काल से (यजुः) यजुर्वेद [सत्कर्मों का ज्ञान] (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥३॥

कालो यज्ञं समैरयद् देवेभ्यो भागमक्षितम्।

काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥४॥

पदार्थ—(कालः) काल ने (यज्ञम्) यज्ञ [सत्कर्म] को (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (अक्षितम्) अक्षय (भागम्) भाग (सम्) पूरा-पूरा (ऐरयत्) भेजा है। (काले) काल में (गन्धर्वाप्सरसः) गन्धर्व [पृथिवी पर धरे हुए पदार्थ] और अप्सराएं [आकाश में चलनेवाले पदार्थ], और (काले) काल में (लोकाः) सब लोक (प्रतिष्ठिताः) रक्खे हुए हैं ॥४॥

कालेऽयमङ्गिरा देवोऽथर्वा चाधि तिष्ठतः। इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान् विधृतीश्च पुण्याः। सर्वांल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः ॥५॥

पदार्थ—(काले) काल [समय] में (अयम्) यह (अङ्गिराः) अङ्गिरा [ज्ञानवान्] (देवः) व्यवहारकुशल मनुष्य (च) और (अथर्वा) अथर्वा [निश्चल-स्वभाव महर्षि] (अधि) अधिकारपूर्वक (तिष्ठतः) दोनों स्थित हैं। (इमम्) इस (लोकम्) लोक को (च च) और (परमम्) सबसे ऊँचे (लोकम्) लोक को (च) और (पुण्यान्) पुण्य (लोकान्) लोकों को (च) और (पुण्याः) पुण्य (विधृतीः) विविध धारणशक्तियों को, [अर्थात्] (सर्वान्) सब (लोकान्) लोकों को (अभिजित्य) सर्वथा जीतकर, (ब्रह्मणा) ब्रह्म [परमेश्वर] के साथ, (सः) वह (परमः) सब से बड़ा (देवः) दिव्य (कालः) काल (नु) शीघ्र (ईयते) चलता है ॥५॥

卐 इति षष्ठोऽनुवाकः 卐

卐

अथ सप्तमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ॥५५॥ 卐

१—६ भृगुः। अग्निः। २ त्रिष्टुप्, आस्तारपंक्तिः; ५ त्र्यवसाना पंचपदा पुरस्ताज्ज्योतिष्मती।

रात्रिंरात्रिमप्रयातं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै।

रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥१॥

पदार्थ—(रात्रिंरात्रिम्) रात्रि-रात्रि को (अस्मै) इस [गृहस्थ] के लिये (अप्रयातम्) पीड़ा न देनेवाले (घासम्) भोजनयोग्य पदार्थ को, (तिष्ठते) थान पर ठहरे हुए (अश्वाय) घोड़े के लिये (इव) जैसे [घास आदि को], (भरन्तः) धरते हुए, (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि से और (इषा) अन्न से (सम्) अच्छे प्रकार (मदन्तः) आनन्द करते हुए, (ते) तेरे (प्रतिवेशाः) सन्मुख रहनेवाले हम, (अग्ने) हे अग्नि ! [तेजस्वी विद्वान्] (मा रिषाम) न दुःखी होवें ॥१॥

या ते वसोर्वात इषुः सा त एषा तया नो मृड।

रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥२॥

पदार्थ—[हे विद्वन् !] (ते वातः) तुझ चलते फिरते की [हमारे लिये] (वसोः) उत्तम पदार्थ की (या) जो (इषुः) इच्छा है, (सा) सो (एषा) यह (ते) तेरी [ही] है, (तया) उस [इच्छा] से (नः) हमें (मृड) सुखी कर। (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि से और (इषा) अन्न से (सम्) अच्छे प्रकार (मदन्तः) आनन्द करते हुए, (ते) तेरे (प्रतिवेशाः) सन्मुख रहनेवाले हम, (अग्ने) हे अग्नि ! [तेजस्वी विद्वान्] (मा रिषाम) न दुःखी होवें ॥२॥

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातःप्रातः सौमनसस्य दाता।

वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ॥३॥

पदार्थ—(सायंसायम्) साय-सायकाल में (नः) हमारे (गृहपतिः) घरों का रक्षक, और (प्रातःप्रातः) प्रातः-प्रातःकाल में (सौमनसस्य) सुख का (दाता) देने वाला (अग्निः) अग्नि [ज्ञानवान् परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष वा भौतिक अग्नि] तू (वसोर्वसोः) उत्तम-उत्तम प्रकार के (वसुदानः) धन का देनेवाला (एधि) हो, (त्वा) तुझ को (इन्धानाः) प्रकाशित करते हुए (वयम्) हम लोग (तन्वम्) शरीर को (पुषेम) पुष्ट करें ॥३॥

प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य दाता।

वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतंहिमा ऋधेम ॥४॥

पदार्थ—(प्रातःप्रातः) प्रातः-प्रातःकाल में (नः) हमारे (गृहपतिः) घरों का रक्षक, और (सायंसायम्) साय सायकाल में (सौमनसस्य) सुख का (दाता) देनेवाला (अग्निः) अग्नि [ज्ञानवान् परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष वा भौतिक अग्नि] तू (वसोर्वसोः) उत्तम-उत्तम प्रकार के (वसुदानः) धन का देने वाला (एधि) हो, (त्वा) तुझको (इन्धानाः) प्रकाशित करते हुए (शतंहिमाः) सौ शीतल ऋतुओं वाले हम लोग (ऋधेम) बढ़ते रहें ॥४॥

अपश्चा दग्धान्नस्य भूयासम्। अन्नादायान्नपतये रुद्राय नमो अग्नये। सभ्यः सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ॥५॥

पदार्थ—मैं (दग्धान्नस्य) जले हुए अन्न के (अपश्चा) न पीछे [जाने वाला] (भूयासम्) होऊँ। (अन्नादाय) अन्न खिलाने वाले, (अन्नपतये) अन्न के स्वामी (रुद्राय) ज्ञानदाता, (अग्नये) ज्ञानी [पुरुष] के लिये (नमः) नमस्कार है। (सभ्यः) सभा के योग्य तू (मे) मेरी (सभाम्) सभा [सभा की व्यवस्था] की (पाहि) रक्षा कर, (च) और [वे भी रक्षा करें] (ये) जो (सभ्याः) सभा के योग्य (सभासदः) सभासद् हैं ॥५॥

त्वमिन्द्रा पुरुहूत विश्वमायुर्व्यश्नवत्।

अहरहर्बलिमित् ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने ॥६॥

पदार्थ—(पुरुहूत) हे बहुतों से बुलाये गये (इन्द्र) परम ऐश्वर्य वाले राजन् ! (त्वम्) तू (विश्वम्) पूर्ण (आयुः) जीवन को (वि) विविध प्रकार (अश्नवत्) प्राप्त हो। (अग्ने) हे ज्ञानी राजन् ! (ते) तेरे लिये (इत्) ही (अहरहः) दिन दिन (बलिम्) बलि [कर] (हरन्तः) लाते हुए [हम हैं], (इव) जैसे (तिष्ठते) थान पर ठहरे हुए (अश्वाय) घोड़े को (घासम्) घास [लाते हैं] ॥६॥

卐 सूक्तम् ५६ 卐

१—६ यम । दुःष्वप्ननाशनम् । त्रिष्टुप् ।

यमस्य लोकादध्या बभूविथ प्रमदा मर्त्यान् प्र युनक्षि धीरः ।

एकाकिना सरथं यासि विद्वान्त्स्वप्नं मिमानो असुरस्य योनौ ॥१॥

पदार्थ—[हे स्वप्न !] (यमस्य) यम [मृत्यु] के (लोकात्) लोक से (अधि) अधिकारपूर्वक (आ बभूविथ) तू आया है, (धीर) धीर [धैर्यवान्] तू (प्रमदा) आनन्द के साथ (मर्त्यान्) मनुष्यों को (प्र युनक्षि) काम मे लाता है। (असुरस्य) प्राण वाले [जीव] के (योनौ) घर में (स्वप्नम्) निद्रा (मिमानः) करता हुआ (विद्वान्) जानकार तू (एकाकिना) एकाकी [मृत्यु] के साथ (सरथम्) एक रथ मे होकर (यासि) चलता है ॥१॥

बन्धस्त्वाग्रे विश्वचया अपश्यत् पुरा रात्र्या जनितोरेके अह्नि ।

ततः स्वप्नेदमध्या बभूविथ भिषग्भ्यो रूपमपगूहमानः ॥२॥

पदार्थ—[हे स्वप्न !] (विश्वचयाः) ससार के सचय करने वाले (बन्धः) प्रबन्ध कर्ता [परमेश्वर] ने (त्वा) तुझे (अग्रे) पहिले ही [पूर्व जन्म में] (रात्र्याः) रात्रि [प्रलय] के (जनितोः) जन्म से (पुरा) पहिले (एके अह्नि) एक दिन [एक समय] मे (अपश्यत्) देखा है। (ततः) इसी से (स्वप्न) हे स्वप्न ! (भिषग्भ्यः) वैद्यो से (रूपम्) [अपना] रूप (अपगूहमानः) छिपाता हुआ तू (इदम्) इस [जगत्] मे (अधि) अधिकारपूर्वक (आ बभूविथ) व्यापा है ॥२॥

बृहद्गावासुरेभ्योऽधि देवानुपावर्तत महिमानमिच्छन् ।

तस्मै स्वप्नाय दधुराधिपत्यं त्रयस्त्रिंशासः स्वरानशानाः ॥३॥

पदार्थ—[जो स्वप्न] (बृहद्गावा) बडी गतिवाला, (महिमानम्) [अपनी] महिमा (इच्छन्) चाहता हुआ, (असुरेभ्य अधि) असुरो [अविद्वानो] के पास से (देवान्) विद्वानो के (उप अवर्तत) पास वर्तमान हुआ है। (तस्मै स्वप्नाय) उस स्वप्न को (स्वः) सुख (आनशानाः) पा सकने वाले (त्रयस्त्रिंशासः) तेतीस सख्या वाले [देवताओं] ने (आधिपत्यम्) अधिपतिपन (दधुः) दिया है ॥३॥

नैतां विदुः पितरो नोत देवा येषां जल्पिश्चरत्यन्तरेदम् ।

त्रिते स्वप्नमदधुराप्त्ये नर आदित्यासो वरुणेनानुशिष्टाः ॥४॥

पदार्थ—(एताम्) इस [आगे वर्णित वाणी] को (न) न तो (पितरः) पालन करने वाले, (उत) और (न) न (देवाः) विद्वान् लोग (विदुः) जानते हैं, (येषाम्) जिन [लोगो] की (जल्पिः) वाणी (इदम् अन्तरा) इस [जगत्] के बीच (चरति) विचरती है—"(वरुणेन) श्रेष्ठ [परमात्मा] द्वारा (अनुशिष्टाः) शिक्षा किये गये,(आदित्यासः) अखण्डव्रत वाले (नरः) नेता लोगो ने (आप्त्ये) आप्तो [सत्य वक्ताओ] के हितकारी (त्रिते) तीनो [लोको] के विस्तार करनेवाले [परमेश्वर] मे (स्वप्नम्) स्वप्न को (दधुः) धारण किया है" ॥४॥

यस्य क्रूरमभजन्त दुष्कृतोऽस्वप्नेन सुकृतः पुण्यमायुः ।

स्वर्मदसि परमेण बन्धुना तप्यमानस्य मनसोऽधि जज्ञिषे ॥५॥

पदार्थ—(दुष्कृत) दुष्कर्मियो ने (यस्य) जिस [स्वप्न] के (क्रूरम्) क्रूर [निर्दय] कर्म को (अभजन्त) भोगा है, और (अस्वप्नेन) स्वप्न त्याग से (सुकृत) सुकर्मियो ने (पुण्यम्) पवित्र (आयु) जीवन [भोगा] है। [हे स्वप्न !] (स्वः) सुख मे [वर्तमान] (परमेण) परम (बन्धुना) बन्धु [पुरुष] के साथ (मदसि) तू जड हो जाता है और (तप्यमानस्य) सन्ताप को प्राप्त हुए [थके पुरुष] के (मनस अधि) मन मे से (जज्ञिषे) तू प्रकट हुआ है ॥५॥

विद्म ते सर्वाः परिजाः पुरस्ताद् विद्म स्वप्न यो अधिपा इहा ते ।

यशस्विनो नो यशसेह पाह्याराद् द्विषेभिरप याहि दूरम् ॥६॥

पदार्थ—(स्वप्न) हे स्वप्न ! (पुरस्तात्) सामने [रहनेवाले] (ते) तेरे (सर्वाः) सब (परिजाः) परिवारो [काम क्रोध लोभ आदि] को (विद्म) हम जानते हैं, और [उस परमेश्वर को] (विद्म) हम जानते है (यः) जो (इह) यहा पर (ते) तेरा (अधिपाः) बडा राजा है। (यशस्विनः नः) हम यशस्वियो को (यशसा) धन [वा कीर्ति] के साथ (इह) यहाँ पर (पाहि) पाल (द्विषेभिः) वैर भावों के साथ (आरात्) दूर (दूरम्) दूर (अप याहि) तू चला जा ॥६॥

卐 सूक्तम् ५७ 卐

१—५ यम । दुःष्वप्ननाशनम् । १ अनुष्टुप्, २—३ त्रिष्टुप् (त्र्यवसाना); ४ उष्णिग्बृहती गर्भा विराट् शक्वरी, ५ त्र्यवसाना पञ्चपदा परशाक्वरातिजगती ।

यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति ।

एवा दुःष्वप्न्यं सर्वमप्रिये सं नयामसि ॥१॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (कलाम्) सोलहवें अंश को और (यथा) जैसे (शफम्) आठवें अश को और (यथा) जैसे (ऋणम्) [पूरे] ऋण को (संनयन्ति) लोग चुकाते हैं। (एव) वैसे ही (सर्वम्) सब (दुःष्वप्न्यम्) नींद में उठे बुरे विचार को (अप्रिये) अप्रिय पुरुष पर (सम् नयामसि) हम छोड़ते हैं ॥१॥

सं राजानो अगुः समृणान्यगुः सं कुष्ठा अगुः सं कला अगुः ।

समस्मासु यद्दुःष्वप्न्यं निर्द्विषते दुःष्वप्न्यं सुवाम ॥२॥

पदार्थ—(राजानः) राजा लोग (सम् अगु) एकत्र हुए हैं, (ऋणानि) अनेक ऋण (सम् अगु.) एकत्र हुए हैं, (कुष्ठाः) कुष्ठ [कूट आदि औषध विशेष] (सम् अगु) एकत्र हुए हैं, (कलाः) कलायें [समय के अश] (सम् अगु) एकत्र हुए हैं। (अस्मासु) हम मे (यत) जो (दुःष्वप्न्यम्) दुष्ट स्वप्न (सम्=सम् अगात्) एकत्र हुआ है, (दुःष्वप्न्यम्) उस दुष्ट स्वप्न को (द्विषते) वैर करने वाले के लिये (निः सुवाम) हम बाहर निकालें ॥२॥

देवानां पत्नीनां गर्भ यमस्य कर यो भद्रः स्वप्न ।

स मम यः पापस्तद् द्विषते प्र हिण्मः ।

मा तृष्टानामसि कृष्णशकुनेर्मुखम् ॥३॥

पदार्थ—(देवानाम्) हे विद्वानो की (पत्नीनाम्) पालन शक्तियों के (गर्भ) गर्भ ! [उदररूप पोषक] और (यमस्य) हे यम [मृत्यु] के (कर) हाथ ! (स्वप्न) हे स्वप्न ! (यः) जो तू (भद्रः) कल्याणकारी है, (सः) वह (मम) मेरा [होवे], (तत्) इस लिये (यः) जो तू (पाप) पापी [अनहित] है, [उसे] (द्विषते) वैरी के लिये (प्र हिण्मः) हम भेजते हैं। (तृष्टानाम्) क्रूरो के मध्य (कृष्णशकुनेः) काले पक्षी [कौवे आदि] का (मुखम्) मुख (मा असि) तू मत हो ॥३॥

तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स त्वं स्वप्नाश्व इव कायमश्व इव नीनाहम् । अनास्माकं देवपीयुं पियारुं वप यदस्मासु दुःष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ॥४॥

पदार्थ—(स्वप्न) हे स्वप्न ! (तं त्वा) उस तुझ को (तथा) वैसा ही (सम्) पूरा-पूरा (विद्म) हम जानते हैं, (स त्वम्) सो तू (स्वप्न) हे स्वप्न ! (अश्व इव) जैसे घोडा (कायम्) अपनी पेटी को, और (अश्व इव) जैसे घोड़ा (नीनाहम्) अपनी बागडोर को [तोड डालता है, वैसे] (अनास्माकम्) हमारे न होने वाले (देवपीयुम्) विद्वानो के सताने वाले (पियारुम्) दुःखदायी को (वप) तोड डाल और (दुःष्वप्न्यम्) उस दुष्ट स्वप्न को [तोड दे], (यत्) जो (अस्मासु) हम मे है, (यत) जो (नः) हमारी (गोषु) गौओ में है, (च) और (यत्) जो (गृहे) घर मे है ॥४॥

अनास्माकस्तद् देवपीयुः पियारुर्निष्कमिव प्रति मुञ्चताम् ।

नवारत्नीनपमया अस्माकं ततः परि ।

दुःष्वप्न्यं सर्वं द्विषते निर्दयामसि ॥५॥

पदार्थ—(अनास्माक) हमारा न होने वाला, (देवपीयु) विद्वानो को सताने वाला (पियारु) दुःखदायी [शत्रु] (तत्) उस [दुष्ट स्वप्न को] (निष्कम् इव) सुवर्ण के समान (प्रति मुञ्चताम) धारण करे। (अस्माकम्) हमारे (ततः) उस [स्थान] से [दुष्ट स्वप्न का] (नव) नौ (अरत्नीन्) हाथो भर (परि) अलग करके (अपमया) तू दूर मे जा। (सर्वम्) सब (दुःष्वप्न्यम्) दुष्ट स्वप्न को (द्विषते) वैरी के लिये (निः दयामसि) हम बाहर हाकते हैं ॥५॥

卐 सूक्तम् ५८ 卐

१—६ ब्रह्मा । यम , बहवो देवताश्च । त्रिष्टुप्, २ पुरोनुष्टुप्; ३ चतुष्पदातिशक्वरी, ५ भुरिक् ।

घृतस्य जूतिः समना सदेवा संवत्सरं हविषा वर्धयन्ती ।

श्रोत्रं चक्षुः प्राणोऽच्छिन्नो नो अस्त्वच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः ॥१॥

पदार्थ—(घृतस्य) प्रकाश की (समना) मनोहर, (सदेवा) इन्द्रियों के साथ रहने वाली (जूति) वेग गति (हविषा) दान से (संवत्सरम्) वर्ष [जीवन काल] को (वर्धयन्ती) बढ़ाती हुई [रहे]। (नः) हमारा (श्रोत्रम्) कान, (चक्षु) आंख और (प्राण) प्राण (अच्छिन्न) निर्हानि (अस्तु) होवे,

(वयम्) हम (आयुषा) जीवन से और (वर्चसा) तेज से (अविह्रुता) निर्हानि [होवें] ॥१॥

उपास्मान् प्राणो ह्वयतामुप वयं प्राणं हवामहे ।

वर्चो जग्राह पृथिव्यन्तरिक्षं वर्चः सोमो बृहस्पतिर्विधर्ता ॥२॥

पदार्थ—(प्राणः) प्राण (अस्मान्) हम को (उप ह्वयताम्) समीप बुलावे, (वयम्) हम (प्राणम्) प्राण को (उप हवामहे) समीप बुलाते है। (पृथिवी) पृथिवी और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष से (वर्चः) तेज (जग्राह) ग्रहण किया है, (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं के स्वामी], (विधर्ता) पोषण करने वाले (सोमः) ऐश्वर्यवान् पुरुष ने (वर्चः) तेज [ग्रहण किया] है ॥२॥

वर्चसो द्यावापृथिवी संग्रहणी बभूवथुर्वर्चो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम । यशसं गावो गोपतिमुप तिष्ठन्त्यायतीर्यशो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम ।३।

पदार्थ—(द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी तुम दोनो (वर्चसः) तेज के (संग्रहणी) संग्रह करने वाले (बभूवथुः) हुए हो, (वर्चः) तेज को (गृहीत्वा) ग्रहण करके (पृथिवीम् अनु) पृथिवी पर (सम् चरेम) हम विचरें। (आयतीः) आती हुई (गावः) गौएं (यशसम्) अन्न वाले (गोपतिम्) गोपति [गौओं के स्वामी] को (उपतिष्ठन्ति) सेवती हैं (यशः) अन्न (गृहीत्वा) ग्रहण करके (पृथिवीम् अनु) पृथिवी पर (सम् चरेम) हम विचरें ॥३॥

व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि ।

पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ।४।

पदार्थ—(व्रजम्) घर [गोस्थान] को (कृणुध्वम्) तुम बनाओ, (हि) क्योंकि (सः) वह [स्थान] (वः) तुम्हारे लिये (नृपाणः) नेताओं की रक्षा करने वाला है, (बहुला) बहुत से (पृथूनि) चौड़े चौड़े (वर्म) कवचों को (सीव्यध्वम्) सीओ। (पुरः) दुर्गों को (आयसीः) लोहे का (अधृष्टाः) अटूट (कृणुध्वम्) बनाओ, (वः) तुम्हारा (चमसः) चमचा [भोजन पात्र] (मा सुस्रोत्) न टपक जावे, (तम्) उसको (दृंहत) दृढ़ करो ॥४॥

यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।

इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥५॥

पदार्थ—[जो पुरुष] (यज्ञस्य) पूजनीय कर्म का (चक्षुः) नेत्र [के समान] प्रदर्शक, (प्रभृतिः) पुष्टि (च) और (मुखम्) मुख [के समान मुख्य] है, [उसको] (वाचा) वाणी से, (श्रोत्रेण) कान से और (मनसा) मन से (जुहोमि) मैं स्वीकार करता हूँ। (सुमनस्यमानाः) शुभचिन्तकों के समान आचरण वाले, (देवाः) व्यवहारकुशल महात्मा (विश्वकर्मणा) संसार के रचने वाले परमेश्वर द्वारा (विततम्) फैलाये हुए (इमम्) इस (यज्ञम्) पूजनीय धर्म को (आ यन्तु) प्राप्त करें ॥५॥

ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञिया येभ्यो हव्यं क्रियते भागधेयम् ।

इमं यज्ञं सह पत्नीभिरेत्य यावन्तो देवास्तविषा मादयन्ताम् ॥६॥

पदार्थ—(ये) जो (देवानाम्) विद्वानों मे (ऋत्विजः) सब ऋतुओं में यज्ञ करने वाले, (च) और (ये) जो (यज्ञियाः) पूजा योग्य हैं, और (येभ्यः) जिनके लिये (हव्यम्) देने योग्य (भागधेयम्) भाग (क्रियते) किया जाता है। (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ मे (पत्नीभिः सह) [अपनी] पत्नियों सहित (एत्य) आकर, (यावन्तः) जितने (तविषाः) बड़े (देवाः) विद्वान हैं, [हमें] (मादयन्ताम्) वे प्रसन्न करें ॥६॥

सूक्तम् ५९

१—३ ब्रह्मा । अग्निः । त्रिष्टुप्, १ गायत्री ।

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीड्यः ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे ज्ञानवान् परमेश्वर ! [वा विद्वान् पुरुष] (त्वम्) तू (मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच (व्रतपाः) नियम का पालन करने वाला (आ) और (देवः) व्यवहार कुशल, (त्वम्) तू (यज्ञेषु) यज्ञों [संयोग वियोग व्यवहारों] में (आ) सब प्रकार (ईड्यः) स्तुति के योग्य (असि) है ॥१॥

यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।

अग्निष्टद्विश्वादा पृणातु विद्वान्त्सोमस्य यो ब्राह्मणाँ आविवेश ।२॥

पदार्थ—(देवाः) हे विद्वानो ! (यत्) यदि (अविदुष्टरासः) निपट अज्ञान (वयम्) हम (वः विदुषाम्) तुम विद्वानो के (व्रतानि) नियमों को (प्रमिनाम) तोड़ डालें। (विश्वात्) सब का प्रबन्ध करने वाला (अग्निः) [वह] अग्नि [ज्ञानवान् परमेश्वर] (तत्) उसको (आ पृणातु) पूरा कर देवे, (यः) जिस (सोमस्य) ऐश्वर्य के (विद्वान्) जानकार [परमेश्वर] ने (ब्राह्मणान्) ब्राह्मणों [ब्रह्मज्ञानियों] मे (आविवेश) प्रवेश किया है ॥२॥

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनुप्रवोढुम् ।

अग्निर्विद्वान्त्स यजात् स इद्धोता सोऽध्वरान्त्स ऋतून् कल्पयाति॥३॥

पदार्थ—(देवानाम्) विद्वानो के (अपि) ही (पन्थाम्) मार्ग को (आ) सब ओर से (अगन्म) हम प्राप्त हुए हैं (तत्) उस [श्रेष्ठ कर्म] को (अनुप्रवोढुम्) लगातार ले चलने के लिये (यत्) जो कुछ (शक्नवाम) समर्थ होवें। (सः) वह (विद्वान्) विद्वान् (अग्निः) अग्नि [ज्ञानी परमात्मा] (यजात्) [बल] देवे, (सः इत्) वह ही (होता) दाता है, (सः) वह (अध्वरान्) हिंसारहित व्यवहारों को, (सः) वही (ऋतून्) ऋतुओं [अनुकूल समयों] को (कल्पयाति) समर्थ करे ॥३॥

सूक्तम् ॥६०॥

१—२ ब्रह्मा । वाक्, अङ्गानि च । १ पथ्याबृहती, २ ककुम्मती पुरउष्णिक् ।

वाङ्म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः ।

अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् ॥१॥

पदार्थ - [हे परमात्मन् !] (मे) मेरे (आसन्) मुख मे (वाक्) वाणी (नसोः) दोनों नथनों मे (प्राणः) प्राण, (अक्ष्णोः) दोनों आंखों में (चक्षुः) दृष्टि, (कर्णयोः) दोनों कानों मे (श्रोत्रम्) सुनने की शक्ति, (केशाः) केश (अपलिताः) अनभूरे, (दन्ताः) दांत (अशोणाः) अचलायमान [वा अरक्त वर्ण], और (बाह्वोः) दोनों भुजाओं मे (बहु) बहुत (बलम्) बल [होवे] ॥१॥

ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः ।

प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः । २॥

पदार्थ—(ऊर्वोः) दोनों जङ्घाओं मे (ओजः) सामर्थ्य (जङ्घयोः) दोनों घुटनों [पिण्डलियों वा नीचे की जांघों] मे (जवः) वेग, (पादयोः) दोनों पैरों मे (प्रतिष्ठा) जमाव [दृढ़ता] (मे) मेरे (सर्वा) सब [अङ्ग] (अरिष्टानि) निर्दोष और (आत्मा) आत्मा (अनिभृष्टः) बिना नीचे गिरा हुआ [होवे] ॥२॥

सूक्तम् ६१

१ ब्रह्मा । ब्रह्मणस्पतिः । विराट् पथ्याबृहती ।

तनूस्तन्वा मे सहे दतः सर्वमायुरशीय ।

स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे ॥१॥

पदार्थ—(मे) अपने (तन्वा) शरीर के साथ (तनूः) [दूसरों के] शरीरों को (सहे) मैं सराहता हूँ, (दतः) रक्षा किया हुआ मैं (सर्वम्) पूर्ण (आयुः) जीवन (अशीय) प्राप्त करूं (मे) मेरे लिये (स्योनम्) सुख से (सीद) तू बैठ, (पुरुः) पूर्ण होकर (स्वर्गे) स्वर्ग [सुख पहुँचानेवाले स्थान] में (पवमानः) चलता हुआ तू [हमें] (पृणस्व) पूर्ण कर ॥१॥

सूक्तम् ६२

१ ब्रह्मा । ब्रह्मणस्पतिः अनुष्टुप् ।

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।

प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥१॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] (मा) मुझे (देवेषु) ब्राह्मणों [ज्ञानियों] मे (प्रियम्) प्रिय (कृणु) कर। (मा) मुझे (राजसु) राजाओं में (प्रियम्) प्रिय (कृणु) कर। (उत) और (आर्ये) वैश्य में (उत) और (शूद्रे) शूद्र मे और (सर्वस्य) सब (पश्यतः) देखने वाले [जीव] का (प्रियम्) प्रिय [कर] ॥१॥

सूक्तम् ॥६३॥

१ ब्रह्मा । ब्रह्मणस्पतिः । विराडुपरिष्टाद् बृहती ।

उत् तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय ।

आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय ॥१॥

पदार्थ—(ब्रह्मणस्पते) हे वेद के रक्षक ! [विद्वान् पुरुष] तू (उत् तिष्ठ) उठ, और (देवान्) विद्वानों को (यज्ञेन) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] से (बोधय) जगा । (यजमानम्) यजमान [श्रेष्ठकर्म करनेवाले] को (च) और (आयुः) [उसके] जीवन, (प्राणम्) प्राण [आत्मबल], (प्रजाम्) प्रजा, [सन्तान आदि], (पशून्) पशुओं [गौयें, घोड़े आदि] और (कीर्तिम्) कीर्ति को (वर्धय) बढ़ा ॥१॥

卐 सूक्तम् ॥६४॥ 卐

१—४ ब्रह्मा । अग्नि । अनुष्टुप् ।

अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे ।

स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्र यच्छतु ॥१॥

पदार्थ—(बृहते) बढ़ते हुए, (जातवेदसे) पदार्थों में विद्यमान (अग्ने = अग्नये) अग्नि के लिये (समिधम्) समिधा [जलाने के वस्तु काष्ठ आदि] को (आ अहार्षम्) मैं लाया हूँ । (सः) वह (जातवेदाः) पदार्थों में विद्यमान [अग्नि] (मे) मुझे (श्रद्धाम्) श्रद्धा [आदर, विश्वास] (च च) और (मेधाम्) धारणावती बुद्धि (प्रयच्छतु) देवे ॥१॥

इध्मेन त्वा जातवेदः समिधा वर्धयामसि ।

तथा त्वमस्मान् वर्धय प्रजया च धनेन च ॥२॥

पदार्थ—(जातवेद) हे पदार्थों में विद्यमान ! [अग्नि] (इध्मेन) इन्धन [जलाने के पदार्थ] से और (समिधा) समिधा [काष्ठ आदि] से (त्वा) तुझे [जैसे] (वर्धयामसि) हम बढ़ाते हैं । (तथा) वैसे ही (त्वम्) तू (अस्मान्) हमें (प्रजया) प्रजा [सन्तान आदि] से (च च) और (धनेन) धन से (वर्धय) बढ़ा ॥२॥

यदग्ने यानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि ।

सर्वं तदस्तु मे शिवं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥३॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि ! (यानि कानिचित) जिन किन हीं (दारूणि) काष्ठों को (ते) तेरे लिये (यत्) जो कुछ (आ दध्मसि) हम लाकर धरते हैं । (तत् सर्वम्) यह सब (मे) मेरे लिये (शिवम्) कल्याणकारी (अस्तु) होवे, (यविष्ठ्य) हे अत्यन्त संयोजक-वियोजकों में साधु ! [योग्य] (तत्) उस [काष्ठ आदि] को (जुषस्व) तू सेवन कर ॥३॥

एतास्ते अग्ने समिधस्त्वमिद्धः समिद्भव ।

आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्याय ॥४॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि ! (एताः) ये (ते) तेरे लिये (समिधः) समिधायें [काष्ठ आदि सामग्री] हैं, (त्वम्) तू (इद्धः) प्रज्वलित होकर (समित्) मिलन वाला (भव) हो । (आयुः) जीवन और (अमृतत्वम्) अमरपन को (अस्मासु) हम में (आचार्याय) आचार्य [की सेवा] के लिये (धेहि) धारण कर ॥४॥

卐 सूक्तम् ॥६५॥ 卐

१ ब्रह्मा । जातवेदा सूर्यश्च । जगती ।

हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम् । अव तां जहि हरसा जातवेदोऽबिभ्यदुग्रोऽर्चिषा दिवमा रोह सूर्य ॥१॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (हरि) दुःख का हरनेवाला, (सुपर्णः) बड़ा पालनेवाला तू (अर्चिषा) पूजनीय कर्म से (दिवम्) व्यवहारयोग्य सुख-स्थान में (आ अरुहः) ऊंचा चढ़ा है, (ये) जो [विघ्न] (दिवम्) सुखस्थान को (उत्पतन्तम्) चढ़ते हुए (त्वाम्) तुझे (दिप्सन्ति) दबाना चाहते हैं, (जातवेद) हे बड़े धन वाले ! (तान्) उन को (हरसा) [अपने] बल से (अव जहि) मार डाल, (अबिभ्यत्) भय न करता हुआ, (उग्र) तेजस्वी तू (सूर्य) हे सूर्य ! [प्रेरक मनुष्य] (अर्चिषा) पूजनीय कर्म से (दिवम्) सुखस्थान को (आ रोह) चढ़ जा ॥१॥

卐 सूक्तम् ॥६६॥ 卐

१ ब्रह्मा । जातवेदा सूर्यो वज्रश्च । अति जगती ।

अयोजाला असुरा मायिनोऽयस्मयैः पाशैरङ्किनो ये चरन्ति । तांस्ते रन्धयामि हरसा जातवेदः सहस्रऋष्टिः सपत्नान् प्रमृणन् पाहि वज्रः ॥१॥

पदार्थ—(अयोजालाः) लोहे के जाल वाले, (असुराः) असुर [विद्वानों के विरोधी], (मायिनः) छली, (अयस्मयैः) लोहे के बने हुए (पाशैः) फन्दों से (अङ्किनः) आंकड़ा लगाने वाले (ये) जो [शत्रु] (चरन्ति) घूमते-फिरते हैं । (जातवेदः) हे बड़े धनवाले ! [शूर] (तान्) उन को (ते) तेरे (हरसा) बल से (रन्धयामि) मैं वश में करता हूँ, (सहस्रऋष्टिः) सहस्रों दोधारा तलवार वाला, (वज्रः) वज्रवान्, (सपत्नान्) विरोधियों को (प्रमृणन्) मार डालता हुआ तू [हमें] (पाहि) पाल ॥१॥

卐 सूक्तम् ६७ 卐

१—८ ब्रह्मा । सूर्य । प्राजापत्या गायत्री ।

पश्येम शरदः शतम् ॥१॥

जीवेम शरदः शतम् ॥२॥

बुध्येम शरदः शतम् ॥३॥

रोहेम शरदः शतम् ॥४॥

पूषेम शरदः शतम् ॥५॥

भवेम शरदः शतम् ॥६॥

भूयेम शरदः शतम् ॥७॥

भूयसीः शरदः शतात् ॥८॥

पदार्थ—(शतम्) सौ (शरदः) वर्षों तक (पश्येम) हम देखते रहें ॥१॥ (शतम्) सौ (शरदः) वर्षों तक (जीवेम) हम जीते रहें ॥२॥ (शतम्) सौ (शरदः) वर्षों तक (बुध्येम) हम समझते रहें ॥३॥ (शतम्) सौ (शरदः) वर्षों तक (रोहेम) हम बढ़ते रहें ॥४॥ (शतम्) सौ (शरदः) वर्षों तक (पूषेम) हम पुष्ट होते रहें ॥५॥ (शतम्) सौ (शरदः) वर्षों तक (भवेम) हम बने रहें ॥६॥ (शतम्) सौ (शरदः) वर्षों तक (भूयेम) हम शुद्ध रहें ॥७॥ (शतात्) सौ से (भूयसीः) अधिक (शरदः) वर्षों तक [हम देखते रहें जीते रहें, इत्यादि] ॥८॥

卐 सूक्तम् ६८ 卐

१—ब्रह्मा । कर्म । अनुष्टुप् ।

अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं वि ष्यामि मायया ।

ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥१॥

पदार्थ—(अव्यसः) अव्यापक [जीवात्मा] के (च च) और (व्यचसः) व्यापक [परमात्मा] के (बिलम्) बिल [भेद] को (मायया) बुद्धि से (वि ष्यामि) मैं खोलता हूँ । (अथ) फिर (ताभ्याम्) उन दोनों के जानने के लिये (वेदम्) वेद [ऋग्वेद आदि ज्ञान] को (उद्धृत्य) ऊँचा लाकर (कर्माणि) कर्मों को (कृण्महे) हम करते हैं ॥१॥

卐 सूक्तम् ६९ 卐

१—४ ब्रह्मा । आपः । १ आसुर्यनुष्टुप्, २ साम्न्यनुष्टुप्, ३ आसुरी गायत्री ४ साम्न्युष्णिक् ।

जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥१॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] तुम (जीवाः) जीने वाले (स्थ) हो, (जीव्यासम्) मैं जीता रहूँ, (सर्वम्) सम्पूर्ण (आयुः) आयु (जीव्यासम्) मैं जीता रहूँ ॥१॥

उपजीवा स्थोप जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥२॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] तुम (उपजीवाः) आश्रय से जीनेवाले (स्थ) हो, (उप जीव्यासम्) मैं सहारे से जीता रहूँ, (सर्वम्) सम्पूर्ण (आयु.) आयु (जीव्यासम्) मैं जीता रहूँ ॥२॥

सं जीवा स्थ सं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥३॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] तुम (संजीवा·) मिलकर जीनेवाले (स्थ) हो, (संजीव्यासम्) मैं मिलकर जीता रहूँ, (सर्वम्) सम्पूर्ण (आयुः) आयु (जीव्यासम्) मैं जीता रहूँ ॥३॥

जीवला स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥४॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] तुम (जीवला) जीवनदाता (स्थ) हो, (जीव्यासम्) मैं जीता रहूँ, (सर्वम्) सम्पूर्ण (आयुः) आयु (जीव्यासम्) मैं जीता रहूँ ॥४॥

卐 सूक्तम् ७० 卐

१ ब्रह्मा । इन्द्र सूर्यादयः । गायत्री ।

इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम् ।

सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्यवाले मनुष्य] (जीव) तू जीता रह, (सूर्य) हे सूर्य ! [सूर्य समान तेजस्वी] (जीव) तू जीता रह, (देवा) हे विद्वानो ! तुम (जीवा·) जीनेवाले [हो], (अहम्) मैं (जीव्यासम्) जीता रहूँ, (सर्वम्) सम्पूर्ण (आयु·) आयु (जीव्यासम्) मैं जीता रहूँ ॥१॥

卐 सूक्तम् ७१ 卐

१ ब्रह्मा । गायत्री, त्र्यवसाना पञ्चपदातिजगती ।

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् । मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥१॥

पदार्थ—(वरदा) वर [इष्ट फल] देने वाली (वेदमाता) ज्ञान की माता [वेदवाणी] (मया) मुझ से (स्तुता) स्तुति की गयी है, [आप विद्वान् लोग] (पावमानी) शुद्ध करनवाले [परमात्मा] को बताने वाली [वेदवाणी] को (द्विजानाम्) द्विजो [ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यो] मे (प्र चोदयन्ताम्) आगे बढ़ावें । [हे विद्वानो !] (आयुः) जीवन, (प्राणम्) प्राण [आत्मबल] (प्रजाम्) प्रजा [सन्तान आदि], (पशुम्) पशु [गौ आदि], (कीर्तिम्) कीर्ति, (द्रविणम्) धन और (ब्रह्मवर्चसम्) वेदाभ्यास का तेज (मह्यम्) मुझ को (दत्त्वा) देकर [हमे], (ब्रह्मलोकम्) ब्रह्मलोक [वेदज्ञानियो के समाज] में (व्रजत) पहुँचाओ ॥१॥

卐 सूक्तम् ७२ 卐

१—भृग्वङ्गिरा ब्रह्मा । परमात्मा देवाश्च । त्रिष्टुप् ।

यस्मात् कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम् ।

कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह ॥१॥

पदार्थ—(यस्मात्) जिस (कोशात्) कोश [निधिस्थान परमात्मा] से (वेदम्) वेद [ऋग्वेद आदि] को (उदभराम) हमने ऊंचा धरा है, (तस्मिन् अन्तः) उस परमात्मा के भीतर (एनम्) इस [जीवात्मा] को (अव) निश्चय करके (दध्मः) हम धरते हैं । (ब्रह्मणा) [जिस] ब्रह्म [परमात्मा के (वीर्येण) सामर्थ्य से (इष्टम्) इष्ट कर्म (कृतम्) किया जाता है, (तेन) उस [परमात्मा] के साथ (देवा) हे विद्वानो ! (तपसा) तप द्वारा (मा) मुझ को (इह) यहाँ पर (अवत) बचाओ ॥१॥

इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

卐 इत्येकोनविंशं काण्डम् 卐

卐

विंशं काण्डम्

प्रथमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ॥१॥ 卐

(१—३) १ विश्वामित्र, २ गोतम । ३ विरूप· । १ इन्द्र । २ मरुत ३ गायत्री अग्नि. ।

इन्द्रं त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे ।

स पाहि मध्वो अन्धसः ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [अत्यन्त ऐश्वर्य वाले राजन्] (वृषभम्) बलिष्ठ (त्वा) तुझ को (सुते) सिद्ध किये हुए (सोमे) ऐश्वर्य वा ओषधियों के समूह में (वयम्) हम (हवामहे) बुलाते हैं । (स.) सो तू (मध्व) मधुर गुण से युक्त (अन्धसः) अन्न की (पाहि) रक्षा कर ॥१॥

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः ।

स सुगोपातमो जनः ॥२॥

पदार्थ—(विमहसः) हे विविध पूजनीय (मरुतः) शूर विद्वानो ! (यस्य) जिस [राजा] के (क्षये) ऐश्वर्य मे (दिवः) उत्तम व्यवहारों की (पाथ) तुम रक्षा करते हो, (स हि) वही (सुगोपातमः) अच्छे प्रकार पृथिवी का अत्यन्त पालने वाला (जनः) पुरुष है ॥२॥

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे । स्तोमैर्विधेमाग्नये ॥३॥

पदार्थ—(उक्षान्नाय) प्रबलो के अन्नदाता (वशान्नाय) वशीभूत [निर्बल प्रजाओं] के अन्नदाता, (सोमपृष्ठाय) ऐश्वर्य के सींचने वाले (वेधसे) बुद्धिमान् (अग्नये) अग्नि [के समान तेजस्वी राजा] की (स्तोमैः) स्तुतियोग्य कर्मों से (विधेम) हम पूजा करें ॥३॥

卐 सूक्तम् ॥२॥ 卐

१—४ (गृत्समदो मेधातिथिर्वा ?) । १ मरुत, २ अग्नि, ३ इन्द्रः, ४ द्रविणोदा । १—२ विराड् गायत्री, ३ आर्च्युष्णिक्; ४ साम्नी त्रिष्टुप् ।

मरुतः पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥१॥

पदार्थ—(मरुत·) शूर विद्वान् लोग (सुष्टुभ) बड़े स्तुतियोग्य, (स्वर्कात्) बड़े पूजनीय (पोत्रात्) पवित्र व्यवहार से (ऋतुना) ऋतु के अनुसार (सोमम्) उत्तम ओषधियों के रस को (पिबतु) पीवें ॥१॥

अग्निराग्नीध्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥२॥

पदार्थ—(अग्नि) अग्नि [के समान तेजस्वी पुरुष] (सुष्टुभः) बड़े स्तुति योग्य, (स्वर्कात्) बड़े पूजनीय (आग्नीध्रात्) अग्नि की प्रकाश विद्या को आश्रय में रखनेवाले व्यवहार से (ऋतुना) ऋतु के साथ (सोमम्) उत्तम ओषधियों के रस को (पिबतु) पीवे ॥२॥

इन्द्रो ब्रह्मा ब्राह्मणात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवाला (ब्रह्मा) ब्रह्मा [वेदज्ञाता पुरुष] (सुष्टुभ) बड़े स्तुतियोग्य, (स्वर्कात्) बड़े पूजनीय (ब्राह्मणात्) ब्राह्मण [वेदोक्त ज्ञान] से (ऋतुना) ऋतु के अनुसार (सोमम्) उत्तम ओषधियों के रस को (पिबतु) पीवे ॥३॥

देवो द्रविणोदाः पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥४॥

पदार्थ—(देव) विद्वान् (द्रविणोदाः) धन वा बल का दाता पुरुष, (सुष्टुभ) बड़े स्तुतियोग्य, (स्वर्कात्) बड़े पूजनीय (पोत्रात्) पवित्र व्यवहार से (ऋतुना) ऋतु के अनुसार (सोमम्) उत्तम ओषधियों के रस को (पिबतु) पीवे ॥४॥

卐 सूक्तम् ॥३॥ 卐

१—३ इरिम्बिठि इन्द्र गायत्री।

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।

एदं बर्हिः सदो मम ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (आ याहि) तू आ, (हि) क्योंकि (ते) तेरे लिये (सोमम्) सोम [उत्तम ओषधियों का रस] (सुषुम) हम ने सिद्ध किया है, (इमम्) इस [रस] को (पिब) पी, (मम) मेरे (इदम्) इस (बर्हिः) उत्तम आसन पर (आ सदः) बैठ ॥१॥

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना ।

उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥२॥

पदार्थ— (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (ब्रह्मयुजा) धन के लिये जोड़े गये (केशिना) सुन्दर केश [कन्धे आदि के बालों] वाले (हरी) रथ ले चलने वाले दो घोड़े [के समान बल और पराक्रम] (त्वा) तुझ को (आ) सब ओर (वहताम्) ले चलें । (नः) हमारे (ब्रह्माणि) वेदज्ञानों को (उप) आदर से (शृणु) तू सुन ॥२॥

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (सोमपाम्) ऐश्वर्य के रक्षक (त्वा) तुझ को (युजा) मित्रता के साथ (ब्रह्माणः) वेद जाननेवाले (सोमिनः) ऐश्वर्य वाले, (सुतवन्तः) उत्तम पुत्रादि [सन्तानों] वाले (वयम्) हम (हवामहे) बुलाते हैं ॥३॥

卐 सूक्तम् ४ 卐

१—३ इरिम्बिठि । इन्द्र । गायत्री ।

आ नो याहि सुतावतोऽस्माकं सुष्टुतीरुप ।

पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः ॥१॥

पदार्थ—[हे इन्द्र राजन् !] (अस्माकम्) हमारी (सुष्टुतीः) सुन्दर स्तुतियों को (उप = उपेत्य) प्राप्त होकर (सुतवतः) उत्तम पुत्र आदि [सन्तानों] वाले (नः) हम लोगों को (आ याहि) आकर प्राप्त हो । (सुशिप्रिन्) हे दृढ़ जबड़े वाले ! (अन्धसः) इस अन्न रस का (सु) भले प्रकार (पिब) पान कर ॥१॥

आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु ।

गृभाय जिह्वया मधु ॥२॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (ते) तेरी (कुक्ष्योः) दोनों कोखों में (मधु) मधुर पान को (आ) भली भांति (सिञ्चामि) मैं सींचता हूँ, वह (गात्रा अनु) [तेरे] अङ्गों में (वि धावतु) दौड़ने लगे, [इसको] (जिह्वया) जीभ से (गृभाय) ग्रहण कर ॥२॥

स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान् तन्वे तव ।

सोमः शमस्तु ते हृदे ॥३॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (सोमः) सोम [उत्तम ओषधियों का रस] (ते) तेरे (संसुदे) स्वीकार करने के लिये (स्वादुः) स्वादु [रोचक] और (तव) तेरे (तन्वे) शरीर के लिये (मधुमान्) मधुर रसवाला (अस्तु) होवे और (ते) तेरे (हृदे) हृदय के लिये (शम्) शान्तिकारक (अस्तु) होवे ॥३॥

卐 सूक्तम् ५ 卐

१—७ इरिम्बिठिः । इन्द्र । गायत्री ।

अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः । प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥१॥

पदार्थ—(विचर्षणे) हे दूरदर्शी (इन्द्र) इन्द्र ! [परम ऐश्वर्यवाले पुरुष] (अयम् उ) यही (अभि) सब प्रकार (संवृतः) यथाविधि स्वीकार किया हुआ (सोम) सोम [महौषधियों का रस], (जनीः इव) कुलस्त्रियों के समान, (त्वा) तुझको (प्र) अच्छे प्रकार (सर्पतु) प्राप्त होवे ॥१॥

तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥२॥

पदार्थ—(तुविग्रीवः) दृढ़ गले वाला, (वपोदरः) चर्बी से युक्त पेटवाला, (सुबाहुः) बलवान् भुजाओंवाला (इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवाला पुरुष] (अन्धसः) अन्न रस के (मदे) आनन्द में (वृत्राणि) वैरियों को (जिघ्नते) मारे ॥२॥

इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा । वृत्राणि वृत्रहं जहि ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्यवाले राजन्] (ओजसा) अपने बल से (विश्वस्य) सब का (ईशानः) स्वामी (त्वम्) तू (पुरः) सामने से (प्र इहि) आगे बढ़ । (वृत्रहन्) हे वैरियों के नाश करनेवाले ! (वृत्राणि) वैरियों को (जहि) नाश कर ॥३॥

दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि । यजमानाय सुन्वते ॥४॥

पदार्थ—[हे शूर !] (ते) तेरा (अङ्कुशः) अंकुश [दण्डसाधन] (दीर्घः) लम्बा (अस्तु) होवे, (येन) जिस के कारण से (सुन्वते) तत्त्वरस निचोड़नेवाले (यजमानाय) यजमान [दाता पुरुष] को (वसु) धन (प्रयच्छसि) तू देता है ॥४॥

अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ॥५॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्यवाले राजन् !] (ते) तेरे लिये (अयम्) यह (निपूतः) छाना हुआ (सोमः) सोम [महौषधियों का रस] (बर्हिषि अधि) बढ़िया आसन के ऊपर [है] । (आ इहि) तू आ, (ईम्) अब (द्रव) दौड़ और (अस्य) इस का (पिब) पान कर ॥५॥

शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः । आखण्डल प्र हूयसे ॥६॥

पदार्थ—(शाचिगो) हे स्पष्ट वाणियोंवाले ! (शाचिपूजन) हे प्रसिद्ध सत्कार वाले ! (अयम्) यह [सोमरस] (ते) तेरे लिये (रणाय) रण जीतने को (सुतः) सिद्ध किया गया है । (आखण्डल) हे [शत्रुओं के] खण्ड-खण्ड करने वाले ! (प्र हूयसे) तू आवाहन किया जाता है ॥६॥

यस्ते शृङ्गवृषो नपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः ।

न्यस्मिन् दध्र आ मनः ॥७॥

पदार्थ—(शृङ्गवृष) हे तेज की वृष्टि करनेवाले [शूर पुरुष] के (नपात्) न गिराने वाले [राजन् !] (ते) तेरा (यः) जो (प्रणपात्) अतिशय करके न गिराने वाला (कुण्डपाय्यः) रक्षा करने वाले [सोमरस] पीने का व्यवहार है । (अस्मिन्) उस में (मनः) मन को (नि) निरन्तर (आ दध्रे) मैं धारण करता हूँ ॥७॥

卐 सूक्तम् ॥६॥ 卐

१—९ विश्वामित्र । इन्द्रः । गायत्री ।

इन्द्रं त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे ।

स पाहि मध्वो अन्धसः ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [अत्यन्त ऐश्वर्यवाले राजन्] (वृषभम्) बलिष्ठ (त्वा) तुझ को (सुते) सिद्ध किये हुए (सोमे) सोम [ऐश्वर्य वा ओषधियों के समूह] में (वयम्) हम (हवामहे) बुलाते हैं । (सः) सो तू (मध्वः) मधुरगुण से युक्त (अन्धसः) अन्न की (पाहि) रक्षा कर ॥१॥

इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत । पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥२॥

पदार्थ—(पुरुष्टुत) हे बहुतों से बड़ाई किये गये (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (क्रतुविदम्) बुद्धि के प्राप्त करानेवाले, (तातृपिम्) तृप्त करने वाले, (सुतम्) सिद्ध किये हुए (सोमम्) सोम [महौषधियों के रस] की (हर्य) इच्छा कर, (पिब) पी (आ) और (वृषस्व) बलवान् हो ॥२॥

इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः ।

तिर स्तवान विश्पते ॥३॥

पदार्थ—(स्तवान) हे बड़ाई किये गये ! (विश्पते) हे प्रजापालक ! (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (विश्वेभिः) सब (देवेभिः) विद्वानों के साथ

(नः) हमारे लिये (चित्राभानम्) सेवनीय धन धारण करानेवाले (यज्ञम्) यज्ञ [विद्वानों के सत्कार, सत्संग और दान] को (प्र तिर) बढ़ा ॥३॥

इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते ।

क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥४॥

पदार्थ—(सत्पते) हे सत्पुरुषों के पालन करनेवाले (इन्द्र) इन्द्र ! [सम्पूर्ण ऐश्वर्यवाले राजन्] (इमे) यह (चन्द्रासः) आनन्दकारक, (इन्दवः) गीले [रसीले], (सुताः) सिद्ध किये हुए (सोमाः) सोम [महौषधियों के रस] (तव) तेरे (क्षयम्) रहने के स्थान को (प्रयन्ति) पहुँचते हैं ॥४॥

दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् । तव द्युक्षास इन्दवः ॥५॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [सम्पूर्ण ऐश्वर्यवाले राजन्] (वरेण्यम्) अङ्गीकार करने योग्य (सुतम्) सिद्ध किये हुए (सोमम्) सोम [अन्न आदि महौषधियों के रस] को (जठरे) पेट मे (दधिष्व) धर, (द्युक्षासः) व्यवहार में रहने वाले (इन्दवः) रसीले पदार्थ (तव) तेरे [ही हैं] ॥५॥

गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे ।

इन्द्र त्वादातमिद् यशः ॥६॥

पदार्थ—(गिर्वणः) हे वाणियो से सेवनेयोग्य ! (नः) हमारे (सुतम्) ऐश्वर्य की (पाहि) रक्षा कर, (मधो) मधुर रस की (धाराभिः) धाराओं द्वारा (अज्यसे) तू प्राप्त किया जाता है । (इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्यवाले राजन् (त्वादातम्) तेरा दिया हुआ [वा शोधा हुआ] (इत्) ही (यशः) [हमारा] यश है ॥६॥

अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता ।

पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥७॥

पदार्थ—(वनिनः) सेवक लोग (अक्षिता) न घटनेवाले (द्युम्नानि) धनों [वा यशो] को (अभि=अभिलक्ष्य) देखकर (इन्द्रम्) [बड़े ऐश्वर्यवाले राजा] से (सचन्ते) मिलते हैं । वह (सोमस्य) सोम [अन्न आदि महौषधियों का रस] (पीत्वी) पीकर (वावृधे) बढ़ा है ॥७॥

अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः ॥८॥

पदार्थ—(वृत्रहन्) हे धन के पानेवाले ! (अर्वावतः) समीप देश से (च) और (परावतः) दूर देश से (नः) हम में (आ गहि) आ । और (नः) हमारी (इमाः) इन (गिरः) वाणियो का (जुषस्व) सेवन कर ॥८॥

यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तत आ गहि ॥९॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (यत्) जब कि (परावतम्) दूर देश (च) और (अर्वावतम्) समीप देश के (अन्तरा) बीच मे (हूयसे) तू पुकारा जाता है, (ततः) इस लिये (इह) यहां पर (आ गहि) तू आ ॥९॥

卐 सूक्तम् ७ 卐

१—३ सुकक्षः, ४ विश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री ।

उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ॥१॥

पदार्थ—(सूर्य) हे सूर्य ! [सर्वव्यापक वा सर्वप्रेरक परमेश्वर] (श्रुतामघम्) विख्यात धनवाले, (वृषभम्) बलवान् (नर्यापसम्) मनुष्यो के हितकारी कर्म वाले, (अस्तारम् अभि) शत्रुओं के गिराने वाले पुरुष को (इत्) ही (घ) निश्चय करके (उद् एषि) तू उदय होता है ॥१॥

नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा । अहिं च वृत्रहावधीत् ॥२॥

पदार्थ—(यः) जिस (वृत्रहा) शत्रुनाशक [सेनापति] ने (बाह्वोजसा) अपने बाहुबल से (नव नवतिम्) नौ नब्बे [९+९०=९९ अथवा ९×९०=८१०, अर्थात् असंख्य] (पुरः) दुर्गों को (बिभेद) तोड़ा है (च) और (अहिम्) सर्प [सर्प के समान हिंसक शत्रु] को (अवधीत्) मारा ॥२॥

स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद् गोमद् यवमत् । उरुधारेव दोहते ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह (शिवः) सुखदायक (सखा) मित्र (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला सेनापति] (उरुधारा इव) बहुत दूधवाली [गौ] के समान (नः) हमारे लिये (अश्वावत्) उत्तम घोड़ों वाला, (गोमत्) उत्तम गौओं वाला और (यवमत्) उत्तम अन्न वाला [धन] (दोहते) दुहे [पूर्ण करे] ॥३॥

इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत । पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥४॥

पदार्थ—(पुरुष्टुत) हे बहुतो से बड़ाई किये गये (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले सेनापति] (क्रतुविदम्) बुद्धि प्राप्त कराने वाले, (तातृपिम) तृप्त कराने वाले, (सुतम्) सिद्ध किये हुए (सोमम्) सोम [महौषधियो के रस] की (हर्य) इच्छा कर, (पिब) पी (आ) और (वृषस्व) बलवान् हो ॥४॥

卐 सूक्तम् ॥ ८ ॥ 卐

[१—३] १ भरद्वाजः, २ कुत्सः, ३ विश्वामित्रः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः ।

आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] (प्रत्नथा) पहिले के समान (एव) ही [हमारी] (पाहि) रक्षा कर, (ब्रह्म) ईश्वर वा वेद (त्वा) तुझे (मन्दतु) हर्षित करे, [उसे] (श्रुधि) सुन (उत) और (गीर्भिः) वेदवाणियों से (वावृधस्व) बढ़ । (सूर्यम) सूर्य [सूर्य के समान विद्या प्रकाश] को (आविः कृणु) प्रकट कर, (इषः) अन्नो को (पीपिहि) प्राप्त हो, (शत्रून्) शत्रुओं को (जहि) मार और [उसकी] (गाः) वाणियो को (अभि) सर्वथा (तृन्धि) मिटा दे ॥१॥

अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।

उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥२॥

पदार्थ—[हे सभाध्यक्ष !] (अर्वाङ्) सामने (आ इहि) आ, (त्वा) तुझ को (सोमकामम्) ऐश्वर्य चाहनेवाला (आहुः) वे कहते हैं, (अयम्) यह (सुतः) सिद्ध किया हुआ [सोमरस] है (मदाय) हर्ष के लिये (तस्य) उस का (पिब) पान कर । (उरुव्यचाः) बड़े सत्कारवाला तू (जठरे) अपने पेट में [उसे] (आ वृषस्व) सींच ले । (पिता इव) पिता के समान (हूयमानः) पुकारा गया तू (नः) हमारी [बात] (शृणुहि) सुन ॥२॥

आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै ।

समु प्रिया आववृत्रन् मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥३॥

पदार्थ—(अस्य) इस [महापुरुष] का (कलशः) कलस (आपूर्णः) मुहामुह भरा है, (स्वाहा) सुन्दर वाणी के साथ (सेक्ता इव) भरने वाले के समान मैंने (कोशम्) बर्तन को (पिबध्यै) पीने के लिये (सिसिचे) भरा है । (प्रियाः) प्यारे (प्र दक्षिणित्) दाहिनी ओर को प्राप्त होने वाले (सोमासः) सोम [महौषधियो के रस] (मदाय) हर्ष के लिये (इन्द्रम् अभि) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले प्रधान] को (उ) ही (सम्) यथाविधि (आ) सब ओर (अववृत्रन्) वर्तमान हुए हैं ॥३॥

卐 सूक्तम् ॥९॥ 卐

(१—४) १—२ नोधाः, ३—४ मेध्यातिथिः । इन्द्रः । १—२ त्रिष्टुप्; ३—४ प्रगाथः (बृहती-सतोबृहती) ।

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।

अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥१॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (वः) तुम्हारे लिये (तम्) उस (दस्मम्) दर्शनीय, (ऋतीषहम्) शत्रुओं के हराने वाले, (वसोः) धन से और (अन्धसः) अन्न से (मन्दानम्) आनन्द देनेवाले (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवाले परमात्मा] को (गीर्भिः) वाणियो से (अभि) सब प्रकार (नवामहे) हम सराहते हैं, (न) जैसे (धेनवः) गौएं (स्वसरेषु) घरो में [वर्तमान] (वत्सम्) बछड़े को [हिङ्कारती है] ॥१॥

द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।

क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥२॥

पदार्थ—(द्युक्षम्) व्यवहारो मे गतिवाले, (सुदानुम) बड़े दानी, (तविषीभिः) सेनाओं से (आवृतम्) भरपूर (गिरिम् न) मेघ के समान (पुरुभोजसम्) बहुत पालन करने वाले, (क्षुमन्तम्) अन्न वाले, (वाजम्) बल वाले (शतिनम्) सैकड़ों उत्तम पदार्थों वाले, (सहस्रिणम्) सहस्रों श्रेष्ठ गुण वाले, (गोमन्तम्) उत्तम गौओं वाले [शूर पुरुष] को (मक्षु) शीघ्र [इन्द्र परमात्मा से] (ईमहे) हम मांगते हैं ॥२॥

तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।

येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥३॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] (**त्वा**) तुझ से (**तत्**) वह (**सुवीर्यम्**) बड़ा वीरत्व और (**तत्**) वह (**ब्रह्म**) बढ़ता हुआ अन्न (**पूर्वचित्तये**) पहिले ज्ञान के लिये (**यामि**) मैं मांगता हूँ। (**येन**) जिस [वीरत्व और अन्न] से (**धने हिते**) धन के स्थापित होने पर (**यतिभ्यः**) यतियों [यत्नशीलों] के लिये (**भृगवे** = भृगुम्) परिपक्व ज्ञानी को और (**येन**) जिससे (**प्रस्कण्वम्**) बड़े बुद्धिमान् पुरुष को (**आविथ**) तू ने बचाया है ॥३॥

येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।

सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥४॥

पदार्थ—(**येन**) जिस [बल] से (**समुद्रम्**) समुद्र में (**महीः**) शक्तिशाली (**अपः**) जलों को (**असृजः**) तूने उत्पन्न किया है, (**इन्द्र**) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर] (**तत्**) वह (**ते**) तेरा (**वृष्णि**) पराक्रम युक्त (**शवः**) बल है। (**सद्यः**) अब भी (**अस्य**) उस [परमात्मा] की (**सः**) वह (**महिमा**) महिमा [हम से] (**न**) नहीं (**संनशे**) पानेयोग्य है, (**यम्**) जिस [परमात्मा] को (**क्षोणीः**) लोकों ने (**अनुचक्रदे**) निरन्तर पुकारा है ॥४॥

卐 सूक्तम् १० 卐

१—२ मेध्यातिथिः । इन्द्रः । प्रगाथ (बृहती—सतोबृहती) ।

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।

सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥१॥

पदार्थ—(**त्ये**) वे (**मधुमत्तमाः**) अतिमधुर (**स्तोमासः**) स्तोत्र (**उ**) और (**गिरः**) वाणियाँ (**उत् ईरते**) ऊंची जाती हैं। (**इव**) जैसे (**सत्राजितः**) सत्य से जीतने वाले, (**धनसाः**) धन देनेवाले, (**अक्षितोतयः**) अक्षय रक्षा करने वाले, (**वाजयन्तः**) बल प्रकट करते हुए (**रथाः**) रथ [आगे बढ़ते हैं] ॥१॥

कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशुः ।

इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥२॥

पदार्थ—(**कण्वाः इव**) बुद्धिमानों के समान और (**सूर्याः इव**) सूर्यों के समान [तेजस्वी], (**भृगवः**) परिपक्व ज्ञानवाले, (**महयन्तः**) पूजते हुए (**प्रियमेधासः**) यज्ञ को प्रिय जाननेवाले (**आयवः**) मनुष्यों ने (**विश्वम्**) व्यापक, (**धीतम्**) ध्यान किये गये (**इन्द्रम्**) इन्द्र [परमात्मा] को (**इत्**) ही (**स्तोमेभिः**) स्तोत्रों से (**आनशुः**) पाया है और (**अस्वरन्**) उच्चारा है ॥२॥

卐 सूक्तम् ११ 卐

१—११ विश्वामित्रः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् ।

ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद्रोदसी उभे ॥१॥

पदार्थ—(**विदद्वसुः**) ज्ञानी श्रेष्ठ पुरुषों से युक्त (**पूर्भित्**) [शत्रुओं के] गढ़ों को तोड़ने वाले, (**शत्रून्**) वैरियों का (**वि**) विविध प्रकार (**दयमानः**) मारते हुए (**इन्द्रः**) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] ने (**अर्कैः**) पूजनीय विचारों से (**दासम्**) दास [सेवक] को (**आ अतिरत्**) बढ़ाया है। (**ब्रह्मजूतः**) ब्रह्माओं [महाविद्वानों] से प्रेरणा किये गये, (**तन्वा**) उपकार शक्ति से (**वावृधानः**) बढ़ते हुए (**भूरिदात्रः**) बहुत से अस्त्र-शस्त्र वाले [शूर] ने (**उभे**) दोनों (**रोदसी**) आकाश और भूमि को (**आ**) भले प्रकार (**अपृणत्**) तृप्त किया है ॥१॥

मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन् ।

इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा ॥२॥

पदार्थ—(**अमृताय**) अविनाशी सुख के लिये (**वाचम्**) अपनी वाणी को (**भूषन्**) शोभित करता हुआ मैं (**ते**) तेरे (**तविषस्य**) बड़े (**मखस्य**) यज्ञ के (**जूतिम्**) वेग को (**प्र इयर्मि**) प्राप्त होता हूँ। (**इन्द्र**) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन्] तू (**क्षितीनाम्**) भूमियों का (**उत**) और (**मानुषीणाम्**) मनुष्य सम्बन्धी (**दैवीनाम्**) उत्तम गुण वाली (**विशाम्**) प्रजाओं का (**पूर्वयावा**) अग्रगामी (**असि**) है ॥२॥

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः ।

अहन्व्यंसमुशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम् ॥३॥

पदार्थ—(**शर्धनीतिः**) सेना के नायक (**इन्द्रः**) इन्द्र [प्रतापी राजा] ने (**वृत्रम्**) शत्रु को (**अवृणोत्**) घेर लिया, (**मायिनाम्**) कपटी लोगों का (**वर्पणीतिः**) कपटी नेता (**प्र अमिनात्**) अत्यन्त घबराया। (**उशधक्**) हिंसकों के जलाने वाले ने (**वनेषु**) वनों में [छिपे] (**व्यंसम्**) विविध पीड़ा देने वाले को (**अहन्**) मारा, और (**राम्याणाम्**) आनन्द देने वाले पुरुषों की (**धेनाः**) वाणियों को (**आविः अकृणोत्**) प्रकट किया ॥३॥

इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः ।

प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥४॥

पदार्थ—(**अहानि**) दिनों [दिनों के कर्मों] को (**जनयन्**) प्रकट करते हुए (**स्वर्षाः**) सुख दान हारे (**अभिष्टिः**) सब ओर मेल करने वाले, (**इन्द्रः**) इन्द्र [तेजस्वी सेनापति] ने (**उशिग्भिः**) प्रीतियुक्त बुद्धिमानों के साथ (**पृतनाः**) सङ्ग्रामों को (**जिगाय**) जीता है। उसने (**मनवे**) मनन करनेवाले मनुष्य के लिये (**अह्नाम्**) दिनों के (**केतुम्**) ज्ञान को (**प्र अरोचयत्**) प्रकाशित कर दिया है और (**बृहते**) बड़े (**रणाय**) रण के जीतने के लिये (**ज्योतिः**) तेज (**अविन्दत्**) पाया है ॥४॥

इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद्दधानो नर्या पुरूणि ।

अचेतयद्धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥५॥

पदार्थ—(**नृवत्**) नरों [नेताओं के समान] (**पुरूणि**) बहुत से (**नर्या**) नरों के योग्य कर्मों को (**दधानः**) धारण करते हुए (**इन्द्रः**) इन्द्र [महाप्रतापी राजा] ने (**बर्हणाः**) बढ़ती हुई (**तुजः**) सताने वाली सेनाओं में (**आ विवेश**) प्रवेश किया। (**इमाः**) इन (**धियः**) बुद्धियों को (**जरित्रे**) स्तुति करने वाले के लिये (**अचेतयत्**) चेताया, और (**आसाम्**) इन [प्रजाओं] के बीच (**इमम्**) इस (**शुक्रम्**) शुद्ध [**वर्णम्**) स्वीकार करनेयोग्य यश को (**प्र अतिरत्**) बढ़ाया ॥५॥

महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।

वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥६॥

पदार्थ—(**महः**) महान लोग (**अस्य**) इस (**इन्द्रस्य**) इन्द्र [महाप्रतापी राजा] के (**सुकृता**) धर्म से किये हुए (**पुरूणि**) बहुत से (**महानि**) महान् [पूजनीय] (**कर्म**) कर्मों को (**पनयन्ति**) सराहते हैं। (**अभिभूत्योजाः**) हरा देनेवाले बल से युक्त [शूर] ने (**वृजिनान्**) पापी (**दस्यून्**) साहसी चोरों को (**वृजनेन**) बल के साथ (**मायाभिः**) बुद्धियों से (**सं पिपेष**) पीस डाला ॥६॥

युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।

विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥७॥

पदार्थ—(**सत्पतिः**) सत्पुरुषों के पालनेवाले, (**चर्षणिप्राः**) मनुष्यों के मनोरथ पूर्ण करने वाले (**इन्द्रः**) इन्द्र [महाप्रतापी पुरुष] ने (**युधा**) युद्ध के साथ (**मह्ना**) अपनी महिमा से (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिये (**वरिवः**) सेवनीय धन (**चकार**) किया है। (**विवस्वतः**) विविध निवासोंवाले [धनी मनुष्य] के (**सदने**) घर में (**अस्य**) इस [पुरुष] के (**तानि**) उन [कर्मों] को (**विप्राः**) बुद्धिमान् (**कवयः**) ज्ञानी पुरुष (**उक्थेभिः**) वचन वचनों से (**गृणन्ति**) सराहते हैं ॥७॥

सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।

ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥८॥

पदार्थ—(**यः**) जिस [वीर] ने (**इमाम्**) इस (**पृथिवीम्**) पृथिवी (**उत**) और (**द्याम्**) आकाश को (**ससान**) सेवा है, [उस] (**सत्रासाहम्**) सत्यों के सहने वाले, (**वरेण्यम्**) स्वीकार करनेयोग्य, (**सहोदाम्**) बल के देनेवाले, (**स्वः**) सुख (**च**) और (**देवीः**) उत्तम (**अपः**) प्राणों के (**ससवांसम्**) दान करनेवाले, (**इन्द्रम्**) इन्द्र [महाप्रतापी वीर] के (**अनु**) पीछे (**धीरणासः**) उत्तम बुद्धियों के लिये युद्ध करनेवाले लोग (**मदन्ति**) सुख पाते हैं ॥८॥

ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।

हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून्प्रार्यं वर्णमावत् ॥९॥

पदार्थ—(**इन्द्रः**) इन्द्र [महाप्रतापी पुरुष] ने (**अत्यान्**) घोड़ों को (**ससान**) सेवा है (**उत**) और (**सूर्यम्**) सूर्य [के समान प्रतापी वीर] को (**ससान**) सेवा है, (**पुरुभोजसम्**) बहुत पालन करनेवाली (**गाम्**) पृथिवी [वा गौ] को (**ससान**) सेवा है। (**हिरण्ययम्**) सुवर्ण (**उत**) और (**भोगम्**) भोग [उत्तम पदार्थों के उपयोग] को (**ससान**) सेवा है, (**दस्यून्**) साहसी चोरों को (**हत्वी**) मारकर (**वर्णम्**) स्वीकार करनेयोग्य (**आर्यम्**) आर्य [श्रेष्ठ धर्मात्मा पुरुष] की (**प्र आवत्**) रक्षा की है ॥९॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि ! [तेजस्वी विद्वान] (एभिः) इन [घोड़ों] से (सरथम्) एक से रथों वाले (वा) और (नानारथम्) नाना प्रकार के रथों वाले [मार्ग] को (अर्वाङ्) सामने होकर (आ याहि) आ, (हि) क्योंकि [तेरे] (अश्वाः) घोड़े (विभवः) प्रबल हैं । और (पत्नीवतः) पालनशक्तियों [सूक्ष्म अवस्थाओं] से युक्त (त्रिंशतम्) तीस (च) और (त्रीन्) तीन [तेतीस अर्थात् आठ वसु आदि] (देवान्) दिव्य पदार्थों को (अनुष्वधम्) अन्न के लिए (आ) यथावत् (वह) प्राप्त हो, और [हमको] (मादयस्व) हर्षित कर ॥४॥

इति प्रथमोऽनुवाक.

卐

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् १४ 卐

१—४ सौभरि । इन्द्र । प्रगाथ (विषमाककुप् + समा सतःबृहती) ।

वयम् त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः ।

वाजे चित्रं हवामहे ॥१॥

पदार्थ—(अपूर्व्य) हे अनुपम ! [राजन] (कत् चित) कुछ भी (स्थूरम्) स्थिर (न) नहीं (भरन्तः) रखते हुए, (अवस्यवः) रक्षा चाहनेवाले (वयम्) हम (वाजे) संग्राम के बीच (चित्रम्) विचित्र स्वभाववाले (त्वाम्) तुझको (उ) ही (हवामहे) बुलाते हैं ॥१॥

उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।

त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥२॥

पदार्थ—(कर्मन्) कर्म के बीच (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (सः) उस (यः) जिस (युवा) स्वभाव से बलवान, (उग्रः) तेजस्वी और (धृषत्) निर्भय पुरुष ने (चक्राम) पैर बढ़ाया है, (इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन्] (अवितारम्) उस रक्षक और (सानसिम्) दानी (त्वा) तुझको, (त्वाम्) तुझको (हि) ही (इत्) अवश्य (सखायः) हम मित्र लोग (उप) आदर से (ववृमहे) चुनते हैं ॥२॥

यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे ।

सखाय इन्द्रमूतये ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो [पराक्रमी] (नः) हमारे लिये (इदमिदम्) इस-इस (वस्यः) उत्तम वस्तु को (पुरा) पहिले (प्र) अच्छे प्रकार (आनिनाय) लाया है, (तम् उ) उस ही (इन्द्रम्) इन्द्र [महाप्रतापी वीर] को, (सखायः) हे मित्रो ! (वः) तुम्हारी (ऊतये) रक्षा के लिये (स्तुषे) मैं सराहता हूँ ॥३॥

हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।

आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥४॥

पदार्थ—(सः) वह (हि) ही (स्म) अवश्य [मनुष्य है], (यः) जिस ने (हर्यश्वम्) ले चलने वाले घोड़ों से युक्त, (सत्पतिम्) सत्पुरुषों के रक्षक, (चर्षणीसहम्) मनुष्यों को नियम में रखने वाले [राजा] को (अमन्दत) प्रसन्न किया है । (सः) वह (मघवा) महाधनी (तु) तो (नः) हम (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वालों को (शतम्) सौ [बहुत] (गव्यम्) गौओं का समूह और (अश्व्यम्) घोड़ों का समूह (आ वयति) लाता है ॥४॥

卐 सूक्तम् ॥१५॥ 卐

१—६ गोतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।

अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥१॥

पदार्थ—(मंहिष्ठाय) अत्यन्त दानी, (बृहते) महागुणी, (बृहद्रये) महाधनी, (सत्यशुष्माय) सच्चे बलवान् [सभाध्यक्ष] के लिये (तवसे) बल पाने को (मतिम्) बुद्धि (प्र) उत्तम रीति से (भरे) मैं धारण करता हूँ । (प्रवणे) ढाल स्थान में (अपाम् इव) जलों के [प्रवाह के] समान, (यस्य) जिस [सभाध्यक्ष] का (दुर्धरम्) बेरोक, (विश्वायु) सब को जीवन देनेवाला (राधः) धन (शवसे) बल के लिये (अपावृतम्) फैला हुआ है ॥१॥

अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।

यत् पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥२॥

पदार्थ—(अध) फिर (विश्वम्) सब जगत् (हविष्मतः) दानयोग्य पदार्थों वाले (ते) तेरे (सवना अनु) ऐश्वर्यों के पीछे (इष्टये) अभीष्ट सिद्धि के लिये (ह) निश्चय करके (असत्) होवे, (आपः) जल (निम्ना इव) जैसे नीचे स्थानों के [पीछे बह चलते हैं] । (यत्) जब (इन्द्रस्य) इन्द्र [अत्यन्त ऐश्वर्य वाले सभाध्यक्ष] का (हर्यतः) कमनीय, (श्नथिता) चूर-चूर करनेवाला, (हिरण्ययः) तेजोमय (वज्रः) वज्र [हथियारों का झुण्ड] (पर्वते न) जैसे पहाड़ पर, (सम्—अशीत) वर्तमान हुआ है ॥२॥

अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।

यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥३॥

पदार्थ—(शुभ्रे) हे चमकीली (उषः) उषा ! [प्रभात वेला के समान सुखदायक पुरुष] (न) अब (अस्मै) इस (भीमाय) भीम [भयङ्कर] (पनीयसे) अत्यन्त व्यवहारकुशल [सभाध्यक्ष] के लिये (अध्वरे) हिंसारहित कर्म में (नमसा) सत्कार के साथ (सम्) अच्छे प्रकार (आ भर) भरपूर हो । (यस्य) जिस [सभाध्यक्ष] का (धाम) धाम [न्यायालय आदि स्थान], (नाम) नाम [यश] (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य और (ज्योतिः) प्रताप (श्रवसे) अन्न के लिये (अकारि) बनाया गया है, (हरितः न) जैसे दिशायें (अयसे) चलने के लिये [बनी] हैं ॥३॥

इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो । नहि

त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद् वचः ॥४॥

पदार्थ—(पुरुष्टुत) हे बहुत स्तुति किये गये ! (प्रभूवसो) हे अधिक धन वाले (इन्द्र) इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन] (इमे) ये लोग और (ते) वे लोग (वयम्) हम सब (ते) तेरे हैं, (ये) जो हम (त्वा आरभ्य) तेरा सहारा लेकर (चरामसि) विचरते हैं । (गिर्वणः) हे स्तुतियों से सेवनयोग्य ! (त्वत्) तुझ से (अन्यः) दूसरा पुरुष (गिरः) [हमारी] वाणियों को (नहि) नहीं (सघत्) सह सकता, (क्षोणीः इव) पृथिवियों के समान तू (नः) हमारे (तत्) उस (वचः) वचन में (प्रति) निश्चय करके (हर्य) प्रीति कर ॥४॥

भूरि त इन्द्र वीर्यं तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण ।

अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥५॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन] (ते) तेरा (वीर्यम्) पराक्रम (भूरि) बहुत है, हम (ते) तेरे [प्रजा] (स्मसि) हैं, (मघवन्) हे महाधनी ! (अस्य) इस (स्तोतुः) स्तुति करने वाले की (कामम्) कामना को (आ) सब ओर से (पृण) तृप्त कर । (ते) तेरे (वीर्यम् अनु) पराक्रम के पीछे (बृहती) बड़ा (द्यौः) आकाश (ममे) मापा गया है (च) और (ते) तेरे (ओजसे) बल के लिये (इयम्) यह (पृथिवी) पृथिवी (नेमे) झुकी है ॥५॥

त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन् पर्वशश्चकर्तिथ ।

अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ॥६॥

पदार्थ—(वज्रिन्) हे वज्रधारी (इन्द्र) इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन्] (त्वम्) तू ने (तम्) उस (महाम्) बड़े, (उरुम्) चौड़े, (पर्वतम्) पहाड़ को (वज्रेण) वज्र [हथियारों के झुण्ड] से (पर्वशः) टुकड़े-टुकड़े करके (चकर्तिथ) काट डाला है । और (निवृताः) रोके हुए (अपः) जलों को (सर्तवै) बहने के लिये (अव असृजः) छोड़ दिया है, (सत्रा) सत्य रूप से (विश्वम्) सम्पूर्ण, (केवलम्) असाधारण (सहः) बल को (दधिषे) तू ने धारण किया है ॥६॥

卐 सूक्तम् १६ 卐

१—१२ अयास्यः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् ।

उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः ।

गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्यर्का अनावन् ॥१॥

पदार्थ—(उदप्रुतः) जल को प्राप्त हुए, (रक्षमाणाः) अपनी रक्षा करते हुए (वयः न) पक्षियों के समान, (वावदतः) बार-बार गरजते हुए (अभ्रियस्य) बादल के (घोषाः इव) शब्दों के समान, (गिरिभ्रजः) पहाड़ों से गिरते हुए, (मदन्तः) तृप्त करते हुए (ऊर्मयः न) जल के प्रवाहों के समान, (अर्काः) पूजनीय पण्डितों ने (बृहस्पतिम्) बृहस्पति [बड़ी वेदवाणी के रक्षक महाविद्वान्] को (अभि) सब ओर से (अनावन्) सराहा है ॥१॥

सं गोभि॑राङ्गिर॒सो नक्ष॑माणो भग॑ इ॒वेद॑र्य॒मणं॑ निनाय ।

जने॑ मि॒त्रो न दम्प॑ती अनक्ति॒ बृह॑स्पते वा॒जया॒शूँरि॑वा॒जौ ॥२॥

पदार्थ—(**आङ्गिरसः**) विज्ञानवाला पुरुष, (**भग इव**) ऐश्वर्यवान् के समान (**अर्यमणम्**) श्रेष्ठों के मान करनेवाले जन को (**इत**) ही (**नक्षमाण**) पाता हुआ (**गोभिः**) वाणियों से (**सम्**) यथावत् (**निनाय**) लाया है। (**जने**) मनुष्यों में (**मित्र न**) मित्र के समान वह (**दम्पती**) दोनों स्त्री-पुरुष को (**अनक्ति**) शोभायमान करता है, (**बृहस्पते**) हे बृहस्पति ! [वेदवाणी के रक्षक] (**आजौ**) संग्राम में (**आशून् इव**) घोड़ों के समान (**वाजय**) [हमें] वेग वाला कर ॥२॥

सा॒ध्व॒र्या अ॑ति॒थिनी॑रिषि॒रा स्पा॒र्हाः सु॒वर्णा॑ अनव॒द्यरू॑पाः ।

बृह॒स्पतिः॒ पर्व॑तेभ्यो वि॒तूर्या॒ निर्गा ऊ॑पे॒ यव॑मिव स्थि॒विभ्यः॑ ॥३॥

पदार्थ—(**साध्वर्याः**) साधुओं से पानेयोग्य, (**अतिथिनी**) अतिथियों को प्राप्त करानेवाली, (**इषिरा**) वेग वाली, (**स्पार्हा**) चाहने योग्य (**सुवर्णा**) सुन्दर रीति से स्वीकारयोग्य, (**अनवद्यरूपा**) अनिन्दित स्वभाववाली (**गा**) वाणियों को (**बृहस्पति**) बृहस्पति [बड़ी वेदवाणी के रक्षक महाविद्वान] ने (**वितूर्य**) शीघ्रता करके (**पर्वतेभ्य**) पर्वतों [के समान दृढचित्तों] के लिये, (**स्थिविभ्य**) कोठियों [के भरने] के लिये (**यवम् इव**) जैसे अन्न को (**नि ऊपे**) फैलाया है ॥३॥

आ॒प्रु॒षा॒यन् मधु॑न ऋ॒तस्य॒ योनि॑मवक्षि॒पन्न॒र्क उ॒ल्कामि॑व॒ द्योः ।

बृह॒स्पति॑रु॒द्धर॒न्नश्म॑नो गा भूम्या॑ उ॒द्नेव॒ वि त्वचं॑ बिभेद ॥४॥

पदार्थ—(**मधुना**) ज्ञान के साथ (**ऋतस्य**) सत्य के (**योनिम्**) घर [वेद] को (**आप्रुषायन्**) सब प्रकार सींचते हुए और (**द्योः**) आकाश से (**उल्काम् इव**) उल्का [गिरते हुए चमकते तारे] के समान (**अवक्षिपन्**) फैलाते हुए और (**उद्धरन्**) ऊँचे धरते हुए, (**अर्क**) पूजनीय (**बृहस्पति**) बृहस्पति [बड़ी वेदविद्या के रक्षक महाविद्वान] ने (**अश्मन**) व्यापक [परमात्मा] की (**गा**) वाणियों को (**वि बिभेद**) फैलाया है, (**उद्ना इव**) जैसे जल में (**भूम्या**) भूमि की (**त्वचम्**) त्वचा को [फैलाते हैं] ॥४॥

अप॒ ज्योति॑षा॒ तमो॑ अ॒न्तरि॑क्षादु॒द्नः शीपा॑लमिव॒ वात॑ आजत् ।

बृह॒स्पति॑रनु॒मृश्या॑ व॒लस्या॒भ्रमि॑व॒ वात॒ आ च॑क्र॒ आ गाः ॥५॥

पदार्थ—[जैसे सूर्य] (**ज्योतिषा**) ज्योति के साथ (**अन्तरिक्षात**) आकाश से (**तम**) अन्धकार को, और (**इव**) जैसे (**वात**) पवन (**उद्नः**) जल पर से (**शीपालम**) सेवार घास को, और (**इव**) जैसे (**वात**) पवन (**अभ्रम्**) बादल को, [वैसे ही] (**बृहस्पति**) बृहस्पति [बड़ी वेदविद्या के रक्षक महाविद्वान्] ने (**अनुमृश्य**) बार-बार विचारकर (**वलस्य**) हिंसक असुर को (**अप आजत्**) निकाल दिया है, (**आ**) और (**गा**) वेदवाणियों को (**आ चक्र**) स्वीकार किया है ॥५॥

य॒दा व॒लस्य॒ पीय॑तो॒ जसुं॒ भेद् बृह॒स्पति॑रग्नि॒तपो॑भिर॒र्कैः ।

द॒द्भिर्न जि॒ह्वा परि॑विष्ट॒माद॑दा॒विर्नि॒धीँर॑कृणोदु॒स्रिया॑णाम् ॥६॥

पदार्थ—(**यदा**) जब (**बृहस्पति**) बृहस्पति [बड़ी वेदवाणी के रक्षक महाविद्वान] ने (**अग्नितपोभि**) अग्नि के समान तेजवाले (**अर्कै**) पूजनीय पण्डितों के साथ (**पीयत**) हिंसक (**वलस्य**) असुर के (**जसुम**) हथियार को (**भेत**) तोड़ डाला, (**न**) जैसे (**दद्भि**) दाँतों से (**परिविष्टम्**) घेरे हुए [भोजन] को (**जिह्वा**) जीभ ने (**आदत**) खाया हो, और (**उस्रियाणाम**) निवास करनेवाली [प्रजाओं] के (**निधीन्**) निधियों [सुवर्ण आदि के कोषों] को (**आवि अकृणोत्**) खोल दिया ॥६॥

बृह॒स्पति॒रम॑त॒ हि त्यदा॑सां॒ नाम॑ स्व॒रीणां॒ सद॑ने॒ गुहा॒ यत् ।

आ॒ण्डेव॑ भि॒त्त्वा श॑कु॒नस्य॒ गर्भ॒मुदु॒स्रियाः॒ पर्व॑तस्य॒ त्मना॑जत् ॥७॥

पदार्थ—(**बृहस्पति**) बृहस्पति [बड़ी वेदवाणी के रक्षक महाविद्वान्] ने (**हि**) ही (**आसाम्**) इन (**स्वरीणाम**) शब्द करती हुई [वेदवाणियों] के (**त्यत्**) उस (**नाम**) यश को (**अमत**) जाना है, (**यत्**) जो (**गुहा**) हृदय के भीतर (**सदने**) घर में है। (**इव**) जैसे (**आण्डा**) अण्डों को (**भित्त्वा**) तोड़कर (**शकुनस्य**) पक्षी के (**गर्भम्**) बच्चे को, [वैसे ही] उस [महाविद्वान्] ने (**उस्रिया**) निवास करने वाली [प्रजाओं] को (**पर्वतस्य**) पर्वत [के समान दृढ़ स्वभाव वाले मनुष्य] के (**त्मना**) आत्मा से (**उत् आजत्**) उदय किया है ॥७॥

अश्नापि॑नद्धं॒ मधु॒ पर्य॑पश्य॒न्मत्स्यं॒ न दी॒न उ॒दनि॑ क्षि॒यन्त॑म् ।

निष्टज्ज॑भार चम॒सं न वृ॒क्षाद् बृह॒स्पति॑र्विर॒वेणा॑ वि॒कृत्य॑ ॥८॥

पदार्थ—(**बृहस्पतिः**) बृहस्पति [बड़ी वेदवाणी के रक्षक महाविद्वान्] ने (**अश्ना**) फैले हुए [अज्ञान] से (**अपिनद्धम्**) ढके हुए (**मधु**) ज्ञान को, (**दीने**) थोड़े (**उदनि**) जल में (**क्षियन्तम्**) रहती हुई (**मत्स्यम् न**) मछली के समान, (**परि**) सब ओर से (**अपश्यत्**) देखा, और (**वृक्षात्**) वृक्ष से (**चमसम् न**) अन्न के समान, (**तत्**) उस [ज्ञान] को (**विरवेण**) विशेष ध्वनि के साथ (**विकृत्य**) हलचल करके (**नि जभार**) बाहिर लाया ॥८॥

सोषाम॑विन्द॒त् स स्वः॒ सो अ॒ग्निं सो अ॒र्केण॒ वि ब॑बाधे॒ तमां॑सि ।

बृह॒स्पति॒र्गोव॑पुषो व॒लस्य॒ निर्म॒ज्जानं॒ न पर्व॑णो जभार ॥९॥

पदार्थ—(**स**) उस (**बृहस्पति**) बृहस्पति [बड़ी वेदविद्या के रक्षक महाविद्वान] ने (**उषाम्**) उषा [प्रभात वेला के समान प्रकाशवती बुद्धि] को, (**स**) उस ने (**स्व**) सुख को, (**स**) उसने (**अग्निम्**) अग्नि [के समान तेज] को (**अविन्दत्**) पाया है, (**स**) उस ने (**अर्केण**) पूजनीय विचार से (**तमांसि**) अन्धकारों को (**वि बबाधे**) हटा दिया है। उस ने (**गोवपुष**) वज्र के समान दृढ़ शरीरवाले (**वलस्य**) हिंसक असुर के (**पर्वण**) जोड़ से (**मज्जानम्**) मींग को (**न**) अब (**नि जभर**) निकाल डाला है ॥९॥

हि॒मेव॑ प॒र्णा मु॑षि॒ता वना॑नि॒ बृह॒स्पति॑नाकृपयद् व॒लो गाः ।

अ॒ना॒नु॒कृ॒त्यम॑पु॒नश्च॑कार॒ यात् सू॒र्यामासा॑ मि॒थ उ॒च्चरा॑तः ॥१०॥

पदार्थ—(**हिमा इव**) जैसे हिम [महाशीत] से (**मुषिता**) उजाड़े गये (**पर्णा**) पत्तों को (**वनानि**) वृक्ष, [वैसे ही] (**बृहस्पतिना**) बृहस्पति [महाविद्वान्] के कारण से (**वल**) हिंसक दुष्ट ने (**गा**) वेदवाणियों को (**अकृपयत**) माना। (**अननुकृत्यम**) दूसरों से न करने योग्य, (**अपुन**) सब से बढ़कर कर्म (**चकार**) उस [महाविद्वान्] ने किया है, (**यात्**) जैसे (**सूर्यामासा**) सूर्य और चन्द्रमा (**मिथ**) आपस में (**उच्चरात**) उत्तमता से चलते हैं ॥१०॥

अ॒भि श्या॒वं न कृश॑नेभि॒रश्वं॒ नक्ष॑त्रेभिः पि॒तरो॒ द्याम॑पिंशन् ।

रात्र्यां॒ तमो॒ अद॑धु॒र्ज्योति॒रह॒न् बृह॒स्पति॑र्भि॒नदद्रिं॑ वि॒दद् गाः ॥११॥

पदार्थ—(**कृशनेभि**) सुवर्णों से (**न**) जैसे (**श्यावम्**) शीघ्रगामी (**अश्वम**) घोड़े को [वैसे ही] (**पितर**) पालने वाले [ईश्वर नियमों] ने (**नक्षत्रेभि**) तारों से (**द्याम्**) आकाश को (**अभि**) सब ओर से (**अपिंशन्**) सजाया है। और (**रात्र्याम्**) रात्रि में (**तम**) अन्धकार को और (**अहन्**) दिन में (**ज्योति**) प्रकाश को (**अदधु**) रक्खा है, [उसी प्रकार] (**बृहस्पति**) बृहस्पति [बड़ी वेदवाणी के रक्षक महाविद्वान्] ने (**अद्रिम**) पहाड़ [के समान भारी अज्ञान] को (**भिनत्**) तोड़ डाला और (**गा**) वेदवाणियों को (**विदत्**) प्राप्त कराया है ॥११॥

इ॒दम॑कर्म॒ नमो॑ अभ्रि॒याय॒ यः पू॒र्वीरन्वा॒नोन॑वीति । बृह॒स्पतिः॒

स हि गोभिः॒ सो अश्वैः॒ स वी॒रेभिः॒ स नृभि॑र्नो॒ वयो॑ धात् ॥१२॥

पदार्थ—(**इदम्**) यह (**नम**) नमस्कार (**अभ्रियाय**) गति में रहने वाले [पुरुषार्थी मनुष्य] को (**अकर्म**) हम ने किया है, (**य**) जो [विद्वान] (**पूर्वी**) पहली [वेदवाणियों] को (**अनु**) लगातार (**आनोनवीति**) सब ओर सराहता रहता है। (**स हि**) वही (**बृहस्पति**) बृहस्पति [बड़ी वेदविद्या का रक्षक महाविद्वान्] (**गोभि**) गौओं के साथ, (**स**) वही (**अश्वै**) घोड़ों के साथ, (**स**) वही (**वीरेभि**) वीरों के साथ, (**स**) वही (**नृभि**) नेता लोगों के साथ (**न**) हमें (**वय**) अन्न (**धात**) देवे ॥१२॥

卐 सूक्तम् ॥ १७ ॥ 卐

(१—१२) १—११ कृष्ण, १२ वसिष्ठ । इन्द्र । १—१० जगती, ११—१२ त्रिष्टुप् ।

अच्छा॑ म॒ इन्द्रं॑ म॒तयः॑ स्व॒र्विदः॑ स॒ध्रीची॒र्विश्वा॑ उश॒तीर॑नूषत ।

परि॑ ष्वजन्ते॒ जन॑यो॒ यथा॒ पतिं॒ मर्यं॒ न शु॒न्ध्युं॑ म॒घवा॑नमू॒तये॑ ॥१॥

पदार्थ—(**स्वर्विद**) सुख पहुँचाने वाली, (**सध्रीची**) आपस में मिली हुई, (**उशती**) कामना करती हुई, (**विश्वा**) सब (**मे**) मेरी (**मतयः**) बुद्धियों ने (**इन्द्रम्**) इन्द्र [महाप्रतापी राजा] को (**अच्छ**) अच्छे प्रकार से (**अनूषत**) सराहा है और (**ऊतये**) रक्षा के लिये [ऐसे, उसे] (**परि ष्वजन्ते**) सब ओर घेरती हैं, (**यथा**) जैसे (**जनय**) पत्नियाँ (**पतिम्**) [अपने-अपने] पति को, और (**न**) जैसे (**शुन्ध्युम्**) शुद्ध आचारवाले, (**मघवानम्**) महाधनी (**मर्यम्**) मनुष्य को [लोग घेरते हैं] ॥१॥

न घा त्वद्रिगप वेति मे मनस्त्वे इत् कामं पुरुहूत शिश्रय ।

राजेव दस्म नि षदोऽधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते ॥२॥

पदार्थ—(**पुरुहूत**) हे बहुत पुकारे से बुलाये गये ! (**त्वद्रिक्**) तेरी ओर गया हुआ (**मे**) मेरा (**मनः**) मन (**न घ**) न कभी (**अप वेति**) हटता है, (**त्वे**) तुझ में (**इत्**) ही (**कामम्**) [अपनी] आशा को (**शिश्रय**) मैं ठहराता हूँ । (**दस्म**) हे दर्शनीय ! (**राजा इव**) राजा के समान (**बर्हिषि**) उत्तम आसन पर (**अधि**) अधिकारपूर्वक (**नि षद**) तू बैठ, और (**अस्मिन्**) इस (**सोमे**) ऐश्वर्य में (**ते**) तेरा (**अवपानम्**) निश्चित रक्षा कर्म (**सु**) सुन्दर रीति से (**अस्तु**) होवे ॥२॥

विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद्रायो मघवा वस्व ईशते ।

तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः ॥३॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) इन्द्र [महाप्रतापी राजा] (**अमतेः**) कंगाल या (**उत**) और (**क्षुधः**) भूख का (**विषूवृत्**) सब प्रकार हटाने वाला है, (**सः इत्**) वही (**मघवा**) महाधनी (**रायः**) धन का और (**वस्वः**) वस्तु का (**ईशते**) स्वामी है । (**तस्य इत्**) उसी ही (**वृषभस्य**) श्रेष्ठ (**शुष्मिणः**) महाबली के (**प्रवणे**) सेवनीय राज्य में (**इमे**) यह (**सप्त सिन्धवः**) बहते हुए सात समुद्ररूप छिद्र [हमारे दो कान, दो नथने, दो आँख और एक मुख [अथर्व० १० । २ । ६] (**वयः**) अन्न को (**वर्धन्ति**) बढ़ाते हैं ॥३॥

वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः ।

प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद् विदत् स्वर्मनवे ज्योतिरार्यम् ॥४॥

पदार्थ—(**वयः न**) जैसे पक्षी गण (**सुपलाशम्**) सुन्दर पत्तों वाले (**वृक्षम्**) वृक्ष को, [वैसे ही] (**मन्दिनः**) आनन्द देने वाले, (**चमूषदः**) सेनाओं में ठहरने वाले (**सोमासः**) ऐश्वर्यवान् पुरुष (**इन्द्रम्**) इन्द्र [महाप्रतापी सेनापति] को (**आ असदन्**) आकर प्राप्त हुए हैं । (**शवसा**) बल के साथ (**एषाम्**) इन [ऐश्वर्यवानों] के (**दविद्युतत्**) अत्यन्त चमकते हुए (**अनीकम्**) सेनादल ने (**मनवे**) मनुष्य के लिए (**आर्यम्**) उत्तम (**स्वः**) सुख और (**ज्योतिः**) तेज को (**प्र**) अच्छे प्रकार (**विदत्**) पाया है ॥४॥

कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।

न तत् ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन् नोत नूतनः ॥५॥

पदार्थ—(**न**) जैसे (**श्वघ्नी**) धन नाश करनेवाला जुआरी (**कृतम्**) जीते धन को (**देवने**) जुए में (**वि चिनोति**) बटोर लेता है, [वैसे ही] (**यत्**) जब (**मघवा**) महाधनी [राजा] (**सूर्यम् सूर्यस्य**) प्रेरणा करने वाले [प्रधान] के (**संवर्गम्**) रोकनेवाले [शत्रु] को (**जयत्**) जीतता है, (**तत्**) तब (**मघवन्**) हे महाधनी ! [राजन्] (**अन्यः**) कोई दूसरा (**ते**) तेरे (**वीर्यम्**) वीरपन को (**न**) नहीं (**अनुशकत्**) पा सकता है, (**न**) न तो (**पुराणः**) कोई प्राचीन (**उत**) और (**न**) न (**नूतनः**) कोई नवीन जन ॥५॥

विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद् वृषा ।

यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ॥६॥

पदार्थ—(**मघवा**) महाधनी, (**वृषा**) बलवान [सेनापति] (**जनानाम्**) मनुष्यों की (**धेनाः**) वाणियों को (**अवचाकशत्**) ध्यान से देखता हुआ (**विशम्-विशम्**) मनुष्य मनुष्य को (**परि अशायत**) पहुँचा है । (**शक्रः**) शक्तिमान [सेनापति] (**यस्य अह**) जिसके ही (**सवनेषु**) यज्ञों के बीच (**रण्यति**) पहुँचता है, (**सः**) वह [मनुष्य] (**तीव्रैः**) पौष्टिक (**सोमैः**) सोमों [ऐश्वर्यों वा महौषधियों के रसों] से (**पृतन्यतः**) सेना चढ़ानेवाले [शत्रुओं] को (**सहते**) हराता है ॥६॥

आपो न सिन्धुमभि यत् समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम् ।

वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥७॥

पदार्थ—(**न**) जैसे (**आपः**) नदियाँ (**सिन्धुम् अभि**) समुद्र की ओर (**इव**) जैसे (**कुल्याः**) नाले (**ह्रदम्**) झील को [मिल कर बह जाते हैं], वैसे ही (**यत्**) जब (**सोमासः**) सोम [ऐश्वर्य] (**इन्द्रम्**) इन्द्र [महाप्रतापी पुरुष] को (**समक्षरन्**) मिल कर बह आये हैं, [तब] (**विप्राः**) बुद्धिमान् लोग (**अस्य**) इस [शूर] की (**महः**) बड़ाई को (**सदने**) समाज के बीच (**वर्धन्ति**) बढ़ाते हैं, (**न**) जैसे (**यवम्**) अन्न को (**वृष्टिः**) बरसा (**दिव्येन**) दिव्य आकाश से आये (**दानुना**) जल-दान से [बढ़ाती है] ॥७॥

वृषा न क्रुद्धः पतयद् रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः ।

स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥८॥

पदार्थ—(**क्रुद्धः**) क्रुद्ध (**वृषा न**) बैल के समान, (**यः**) जो [सेनापति] (**रजःसु**) देशों में (**आ पतयत्**) झपट पड़ता है, और [जिस ने] (**इमाः**) इन (**अपः**) प्रजाओं को (**अर्यपत्नीः**) स्वामी से रक्षित (**अकृणोत्**) किया है । (**सः**) उस (**मघवा**) महाधनी [सेनापति] ने (**सुन्वते**) तत्त्व निचोड़ने वाले, (**जीरदानवे**) शीघ्रदानी और (**हविष्मते**) ग्राह्य पदार्थोंवाले (**मनवे**) मननशील पुरुष के लिए (**ज्योतिः**) प्रकाश को (**अविन्दत्**) पाया है ॥८॥

उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।

वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ॥९॥

पदार्थ—(**परशुः**) फरसा [कुल्हाड़ा] (**ज्योतिषा सह**) प्रकाश के साथ (**उत् जायताम्**) ऊँचा होवे, (**ऋतस्य**) सत्य की (**सुदुघा**) अच्छे प्रकार पूर्ण करने हारी [वेदवाणी] (**पुराणवत्**) पहिले के समान (**भूयाः**) वर्तमान होवे । (**अरुषः**) गतिमान (**शुचिः**) शुद्धाचारी, (**सत्पतिः**) सत्पुरुषों का रक्षक पुरुष (**भानुना**) अपने प्रकाश से (**वि**) विविध प्रकार (**रोचताम्**) प्रिय होवे, और (**शुक्रम्**) निर्मल (**स्वः न**) सूर्य के समान (**शुशुचीत**) चमकता रहे ॥९॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।

वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१०॥

पदार्थ—(**पुरुहूत**) हे बहुतों से बुलाये गये ! [राजन्] (**गोभिः**) विद्याओं से (**दुरेवाम्**) दुर्गति वाली (**अमतिम्**) कुमति [वा कंगाली] को और (**यवेन**) अन्न से (**विश्वाम्**) सब (**क्षुधम्**) भूख को (**तरेम**) हम हटावें । (**वयम्**) हम (**राजभिः**) राजाओं के साथ (**प्रथमाः**) प्रथम श्रेणी वाले होकर (**धनानि**) अनेक धनों को (**अस्माकेन**) अपने (**वृजनेन**) बल से (**जयेम**) जीतें ॥१०॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।

इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११॥

पदार्थ—(**बृहस्पतिः**) बृहस्पति [बड़े शूरों का रक्षक सेनापति] (**नः**) हमें (**पश्चात्**) पीछे से (**उत्तरस्मात्**) ऊपर से (**उत**) और (**अधरात्**) नीचे से (**अघायोः**) बुरा चीतने वाले शत्रु से (**परि पातु**) सब प्रकार बचावे । (**इन्द्रः**) [बड़े ऐश्वर्य वाला राजा] (**पुरस्तात्**) आगे से (**उत**) और (**मध्यतः**) मध्य से (**नः**) हमारे लिये (**वरिवः**) सेवनीय धन (**कृणोतु**) करे (**सखा**) [जैसे] मित्र (**सखिभ्यः**) मित्रों के लिये [करता है] ॥११॥

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।

धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१२॥

पदार्थ—(**बृहस्पते**) हे बृहस्पति ! [बड़ी वेदवाणी के रक्षक विद्वान्] (**च**) और (**इन्द्र**) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन्] (**युवम्**) तुम दोनों (**दिव्यस्य**) आकाश के (**उत**) और (**पार्थिवस्य**) पृथिवी के (**वस्वः**) धन के (**ईशाथे**) स्वामी हो । (**स्तुवते**) स्तुति करते हुए (**कीरये**) विद्वान को (**रयिम्**) धन (**चित्**) अवश्य (**धत्तम्**) तुम दोनों दो, [हे वीरो !] (**यूयम्**) तुम सब (**स्वस्तिभिः**) सुखों के साथ (**सदा**) सदा (**नः**) हमें (**पात**) रक्षित रक्खो ॥१२॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

卐

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् १८ 卐

(१—६) १—३ मेधातिथि प्रियमेधश्च, ४—६ वसिष्ठ । इन्द्र । गायत्री ।

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः ।

कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥१॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्यवाले राजन्] (**तदिदर्थाः**) उस तुझ से प्रयोजन रखनेवाले [तेरे ही भक्त], (**त्वायन्तः**) तुझे चाहते हुए, (**सखायः**) मित्र, (**कण्वाः**) बुद्धिमान् लोग (**वयम्**) हम (**त्वा**) तुझको (**उ**) ही (**उक्थेभिः**) अपने वचनों से (**जरन्ते**—जरामहे) सराहते हैं ॥१॥

न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमं चिकेत ॥२॥

पदार्थ—(**वज्रिन्**) हे वज्रधारी राजन् ! (**नविष्ठो**) स्तुति की इच्छा में (**अपस**) [तेरे] कर्म से (**अन्यत**) दूसरे [कर्म] को (**न घ ईम्**) कभी भी नहीं (**आ पपन**) मैं ने सराहा है । (**तव इत् उ**) तेरे ही (**स्तोमम्**) स्तुतियोग्य व्यवहार को (**चिकेत**) मैंने जाना है ॥२॥

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।

यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥३॥

पदार्थ—(**देवा**) विद्वान लोग (**सुन्वन्तम**) तत्त्व को निचोड़ने वाले को (**इच्छन्ति**) चाहते हैं, (**स्वप्नाय**) निद्रा को (**न**) नहीं (**स्पृहयन्ति**) चाहते हैं, (**अतन्द्रा**) निरालसी होकर (**प्रमादम**) भूल वाले को (**यन्ति**) दण्ड देते हैं ॥३॥

वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन् ।

विद्धी त्वस्य नो वसो ॥४॥

पदार्थ—(**वृषन्**) हे महाबली ! (**इन्द्र**) इन्द्र [महाप्रतापी राजन्] (**त्वायव**) तुझे चाहते हुए (**वयम्**) हम (**अभि**) सब ओर को (**प्र**) अच्छे प्रकार (**नोनुम**) सराहते हैं । (**वसो**) हे बसाने वाले ! (**न**) हमारे (**अस्य**) इस [जप] का (**तु**) शीघ्र (**विद्धि**) ज्ञान कर ॥४॥

मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रन्धीरराव्णे । त्वे अपि क्रतुर्मम ॥५॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (**अर्य**) स्वामी तू (**न**) हमको (**निदे**) निन्दक के (**च**) और (**वक्तवे**) बकवादी (**अराव्णे**) अदानी पुरुष के (**मा रन्धी**) वश में मत कर । (**त्वे**) तुझ में (**अपि**) ही (**मम**) मेरी (**क्रतु**) बुद्धि है ॥५॥

त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् । त्वया प्रति ब्रुवे युजा ॥६॥

पदार्थ—(**वृत्रहन**) हे दुष्टनाशक ! (**त्वम्**) तू (**सप्रथ**) चौड़े (**वर्म**) कवच [के समान] (**च**) और (**पुरोयुध**) सामने से युद्ध करनेवाला (**असि**) है । (**त्वया युजा**) तुझ मिलनसार के साथ [वैरियों को] (**प्रतिब्रुवे**) मैं ललकारता हूँ ॥६॥

ॐ सूक्तम् १९ ॐ

१—७ *विश्वामित्र । इन्द्र । गायत्री ।*

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥१॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्यवाले सेनापति] (**वार्त्रहत्याय**) वैरियों के मारनेवाले (**च**) और (**पृतनाषाह्याय**) संग्राम में हरानेवाले (**शवसे**) बल के लिये (**त्वा**) तुझ को (**आ वर्तयामसि**) हम अपनी ओर घुमाते हैं ॥१॥

अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो । इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥२॥

पदार्थ—(**शतक्रतो**) हे सैकड़ों कर्मों वा बुद्धियों वाले (**इन्द्र**) इन्द्र ! [परम ऐश्वर्यवाले राजन्] (**वाघत**) निबाहने वाले बुद्धिमान लोग (**ते**) तेरे (**मन**) मन (**उत**) और (**चक्षु**) नेत्र को (**अर्वाचीनम्**) हमारी ओर आने वाला (**सु**) आदर के साथ (**कृण्वन्तु**) करें ॥२॥

नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥३॥

पदार्थ—(**शतक्रतो**) हे सैकड़ों कर्मों वा बुद्धियों वाले (**इन्द्र**) इन्द्र ! [परम ऐश्वर्यवाले राजन्] (**ते**) तेरे (**नामानि**) नामों को (**विश्वाभि**) सम्पूर्ण (**गीर्भि**) स्तुतियों के साथ (**अभिमातिषाह्ये**) अभिमानी शत्रुओं के हराने में (**ईमहे**) हम मांगते हैं ॥३॥

पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि । इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥४॥

पदार्थ—(**शतेन**) असंख्य (**धामभि**) प्रभावों से (**पुरुष्टुतस्य**) बहुतों द्वारा बड़ाई किये गये और (**चर्षणीधृत**) मनुष्यों के पोषण करनेवाले (**इन्द्रस्य**) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले राजा] का (**महयामसि**) हम सत्कार करते हैं ॥४॥

इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे । भरेषु वाजसातये ॥५॥

पदार्थ—(**पुरुहूतम्**) बहुतों से पुकारे गये (**इन्द्रम्**) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले राजा] का (**वृत्राय हन्तवे**) शत्रु के मारने के लिये (**भरेषु**) संग्रामों में (**वाजसातये**) धनों के पाने को (**उप**) समीप में (**ब्रुवे**) मैं कहता हूँ ॥५॥

वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो । इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥६॥

पदार्थ—(**शतक्रतो**) हे सैकड़ों कर्मों वा बुद्धियों वाले (**इन्द्र**) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] तू (**वाजेषु**) संग्रामों में (**सासहि**) विजयी (**भव**) हो, (**त्वा**) तुझ से (**वृत्राय हन्तवे**) शत्रु के मारने के लिये (**ईमहे**) हम याचना करते हैं ॥६॥

द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च । इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥७॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (**पृतनाज्ये**) सेनाओं के चलने के स्थान रणक्षेत्र में (**पृत्सुतूर्षु**) सेनाओं में मारनेवाले शूरों के बीच (**द्युम्नेषु**) चमकने वाले धनों के बीच (**च**) और (**श्रवःसु**) कीर्तियों के बीच (**अभिमातिषु**) अभिमानी वैरियों पर (**साक्ष्व**) जय पा ॥७॥

ॐ सूक्तम् २० ॐ

[१-७] १-४ *विश्वामित्र, ५-७ गृत्समद । इन्द्र । गायत्री ।*

शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् ।

इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥१॥

पदार्थ—(**शतक्रतो**) हे सैकड़ों कर्मों वा बुद्धियों वाले (**इन्द्र**) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (**न**) हमारी (**ऊतये**) रक्षा के लिये (**शुष्मिन्तमम्**) अत्यन्त बलवान्, (**द्युम्निनम्**) अत्यन्त धनी वा यशस्वी और (**जागृविम्**) जागने वाले [सोम] पुरुष की और (**सोमम्**) ऐश्वर्य की (**पाहि**) रक्षा कर ॥१॥

इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु ।

इन्द्र तानि त आ वृणे ॥२॥

पदार्थ—(**शतक्रतो**) हे सैकड़ों कर्मों वा बुद्धियों वाले (**इन्द्र**) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (**या**) जो (**ते**) तेरे (**इन्द्रियाणि**) इन्द्र [ऐश्वर्यवान्] के चिह्न धनादि (**पञ्चसु जनेषु**) पञ्च [मुख्य] लोगों में हैं । (**ते**) तेरे (**तानि**) उन [चिह्नों] को (**आ**) सब प्रकार (**वृणे**) मैं स्वीकार करता हूँ ॥२॥

अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् ।

उत् ते शुष्मं तिरामसि ॥३॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (**बृहत**) बड़ा (**श्रव**) अन्न [हमको] (**अगन**) प्राप्त हुआ है (**दुस्तरम**) दुस्तर [अजेय] (**द्युम्नम्**) चमकने वाले यश को (**दधिष्व**) तू धारण कर । (**ते**) तेरे (**शुष्मम**) बल को (**उत् तिरामसि**) हम बढ़ाते हैं ॥३॥

अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः ।

उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥४॥

पदार्थ—(**शक्र**) हे समर्थ ! (**अर्वावत**) समीप से (**अथो**) और (**परावत**) दूर से (**न**) हम (**आ गहि**) प्राप्त हो, (**अद्रिव**) हे वज्रधारी (**इन्द्र**) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (**उ**) और (**य**) जो (**ते**) तेरा (**लोक**) स्थान है, (**तत**) वहां से (**इह**) यहां पर (**आ गहि**) तू आ ॥४॥

इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभी षदप चुच्यवत् ।

स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥५॥

पदार्थ—(**अङ्ग**) हे मित्र ! (**इन्द्र**) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले राजा] ने (**महत्**) बड़े और (**अभि**) सब ओर से (**सत**) वर्तमान (**भयम**) भय को (**अप चुच्यवत**) हटा दिया है । (**स हि**) वही (**स्थिर**) दृढ़ और (**विचर्षणि**) विशेष देखने वाला है ॥५॥

इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत् ।

भद्रं भवाति नः पुरः ॥६॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला राजा] (**च**) निश्चय करके (**न**) हमें (**मृळयाति**) सुखी करे, (**अघम्**) पाप (**न**) हमको (**पश्चात्**) पीछे (**न**) न (**नशत्**) नाश करे । (**भद्रम्**) कल्याण (**न**) हमारे लिये (**पुरस्तात्**) आगे (**भवाति**) होवे ॥६॥

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।

जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥७॥

पदार्थ— (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला राजा] (सर्वाभ्यः) सब (आशाभ्यः) आशाओं [गहरी इच्छाओं] के लिये (अभयम्) अभय (परि) सब ओर से (करत्) करे। वह (शत्रून् जेता) शत्रुओं का जीतनेवाला और (विचर्षणिः) विशेष देखनेवाला है ॥७॥

ॐ सूक्तम् २१ ॐ

१—११ सव्य । इन्द्र । जगती, १०-११ त्रिष्टुप् ।

न्यू॒षु वाचं॒ प्र म॒हे भ॑रामहे॒ गिर॒ इन्द्रा॑य॒ सद॑ने वि॒वस्व॑तः ।

नू चि॒द्धि रत्नं॑ सस॒तामि॒वावि॑द॒न्न दु॑ष्टु॒तिर्द्र॑विणो॒देषु॑ शस्यते ॥१॥

पदार्थ—(महे) पूजनीय (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] के लिये (सु) सुन्दर लक्षणवाली (वाचम्) वाणी और (गिरः) स्तुतियों को (विवस्वतः) विविध निवासवाले [धनी पुरुष] के (सदने) घर पर (नि उ) धारणा निश्चय करके ही (प्र भरामहे) हम धारण करते हैं (हि) क्योंकि (ससताम्) सोते हुए मनुष्यों के (इव) ही (रत्नम्) रत्न [रमणीय धन] को (नु) शीघ्र (चित्) निश्चय करके (अविदत्) उस [चोर आदि] ने ले लिया है, (द्रविणोदेषु) धन देनेवाले पुरुषों में (दुष्टुतिः) दुष्ट स्तुति (न शस्यते) श्रेष्ठ नहीं होती है ॥१॥

दु॒रो अश्व॑स्य दु॒र इ॑न्द्र॒ गोर॑सि दु॒रो यव॑स्य॒ वसु॑न इ॒नस्पतिः॑ ।

शि॒क्षा॒न॒रः प्र॒दिवो॒ अका॑मकर्शनः॒ सखा॒ सखि॑भ्य॒स्तमि॒दं गृ॑णीमसि ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] तू (अश्वस्य) घोड़े का (दुरः) देने वाला, (गोः) गौ [वा भूमि] का (दुरः) देनेवाला, (यवस्य) अन्न का (दुरः) देनेवाला, (वसुनः) धन का (इनः) स्वामी और (पतिः) रक्षक, (प्रदिवः) उत्तम व्यवहार की (शिक्षानरः) शिक्षा पहुँचाने वाला, (अकामकर्शनः) अकामियों [आलसियों] को दुबला करनेवाला, और (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (सखा) मित्र (असि) है, (तम्) उस तुझ को (इदम्) यह [वचन] (गृणीमसि) हम बोलते हैं ॥२॥

शची॑व इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम॒ तवेदि॒दम॒भित॑श्चेकिते॒ वसु॑ ।

अतः॑ सं॒गृभ्या॑भिभूत॒ आ भ॑र॒ मा त्वा॑य॒तो ज॑रि॒तुः काम॑मूनयीः ॥३॥

पदार्थ—(शचीवः) हे उत्तम बुद्धिवाले, (पुरुकृत्) बहुत कर्मोंवाले, (द्युमत्तम) अत्यन्त प्रकाशवाले, (इन्द्र) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (तव इत्) तेरा ही (इदम्) यह (वसु) धन (अभितः) सब ओर से (चेकिते) जाना गया है। (अतः) इस कारण से, (अभिभूते) हे विजयी! (संगृभ्य) संग्रह करके (आ भर) तू लाकर भर (त्वायतः) तेरी चाह करते हुए (जरितुः) स्तुति करनेवाले की (कामम्) आशा को (मा ऊनयीः) मत घटा ॥३॥

ए॒भिर्द्युभिः॑ सु॒मना॑ ए॒भिरिन्दु॑भिर्निरुन्धा॒नो अम॑तिं॒ गोभि॑र॒श्विना॑ ।

इन्द्रे॑ण॒ दस्युं॑ द॒रय॑न्त॒ इन्दु॑भिर्यु॒तद्वे॑षसः॒ समि॒षा र॑भेमहि ॥४॥

पदार्थ—(एभिः) इन (द्युभिः) तेजों से और (एभिः) इन (इन्दुभिः) ऐश्वर्यों से (सुमनाः) प्रसन्न मनवाला, और (गोभिः) गौओं से और (अश्विना) घोड़ों से (अमतिम्) दरिद्रता को (निरुन्धानः) रोकने वाला, वह है। (इन्द्रेण) उस इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले राजा] के साथ (इन्दुभिः) ऐश्वर्यों के द्वारा (दस्युम्) डाकू को (दरयन्तः) दूर डालनेवाले और (युतद्वेषसः) द्वेष से अलग रहनेवाले हम (इषा) अन्न के साथ (सम् रभेमहि) संयुक्त होवें ॥४॥

समि॑न्द्र रा॒या समि॒षा र॑भेमहि॒ सं वाजे॑भिः पुरुश्च॒न्द्रैर॒भिद्यु॑भिः ।

सं दे॒व्या प्रम॑त्या वी॒रशु॑ष्मया॒ गोअ॑ग्र॒याश्वा॑वत्या रभेमहि ॥५॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजा वा परमात्मा] हम (राया) सम्पत्ति से (सम्) संयुक्त, (इषा) अन्न से (सम्) संयुक्त, और (पुरुश्चन्द्रैः) बहुत सुवर्ण आदि वाले तथा (अभिद्युभिः) सब ओर से व्यवहार वाले (वाजेभिः) विज्ञानों [वा बलों] से (सं रभेमहि) संयुक्त होवें। और (देव्या) दिव्य गुणवाली, (वीरशुष्मया) वीरों को बल देनेवाली, (गोअग्रया) श्रेष्ठ गौओं वा देशोंवाली और (अश्वावत्या) वेगयुक्त घोड़ोंवाली (प्रमत्या) उत्तम बुद्धि से (सं रभेमहि) हम संयुक्त होवें ॥५॥

ते त्वा॒ मदा॑ अमद॒न् तानि॒ वृष्ण्या॒ ते सोमा॑सो वृत्र॒हत्ये॑षु सत्पते ।

यत् का॒रवे॒ दश॑ वृ॒त्राण्य॑प्र॒ति ब॒र्हिष्म॑ते॒ नि स॒हस्रा॑णि ब॒र्हयः॑ ॥६॥

पदार्थ—(सत्पते) हे सत्पुरुषों के रक्षक! [सेनापति] (ते) उन (मदाः) आनन्द देनेवाले शूरों ने, (तानि) उन (वृष्ण्या) वीरों के योग्य कर्मों ने और (ते) उन (सोमासः) ऐश्वर्यों ने, (वृत्रहत्येषु) वैरियों के मारनेवाले संग्रामों में (त्वा) तुझ को (अमदन्) प्रसन्न किया है, (यत्) जब (बर्हिष्मते) विज्ञानी (कारवे) कर्मकर्ता के लिये (दश सहस्राणि) दस सहस्र [असंख्य] (वृत्राणि) शत्रुदलों को (अप्रति) बिना रोक (नि बर्हयः) तूने मार डाला है ॥६॥

यु॒धा युध॒मुप॒ घेदे॑षि धृष्णु॒या पु॒रा पुरं॒ समि॒दं हं॒स्योज॑सा ।

नम्या॒ यदि॑न्द्र॒ सख्या॑ परा॒वति॑ निब॒र्हयो॒ नमु॑चिं॒ नाम॑ मा॒यिन॑म् ॥७॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्यवाले सेनापति] (युधा) एक युद्ध से (युधम्) दूसरे युद्ध को (घ) निश्चय करके (इत्) अवश्य (धृष्णुया) निर्भयता से (उप एषि) तू चला चलता है, और (इदम्) अब (पुरा) एक गढ़ के साथ (पुरम्) दूसरे गढ़ को (ओजसा) बल से (सम् हंसि) तू नष्ट कर देता है। (यत्) क्योंकि (नम्या) नम्र [आज्ञाकारी] (सख्या) मित्र के साथ (परावति) दूर देश में (नमुचिम्) न छुटने योग्य [दण्डनीय] (नाम) प्रसिद्ध (मायिनम्) छली पुरुष को (निबर्हयः) तू ने मार डाला है ॥७॥

त्वं कर॑ञ्जमु॒त प॒र्णयं॑ वधी॒स्तेजि॑ष्ठयातिथि॒ग्वस्य॑ वर्त॒नी ।

त्वं श॒ता वङ्गृ॑दस्याभिन॒त् पुरो॑ऽनानु॒दः परि॑षूता ऋ॒जिश्व॑ना ॥८॥

पदार्थ—[हे राजन्!] (त्वम्) तू ने (करञ्जम्) हिंसक (उत) और (पर्णयम्) पालन वस्तुओं को लेने वाले [चोर] को (अतिथिग्वस्य) अतिथियों को प्राप्त होने वाले पुरुष के (तेजिष्ठया) अत्यन्त तेजस्वी (वर्तनी) मार्ग से (वधीः) मारा है। (त्वम्) तू ने (वङ्गृदस्य) मार्ग तोड़नेवाले (अनानुदः) अनुकूल न वर्तनेवाले दुष्ट के (ऋजिश्वना) सरलस्वभाव पुरुषों के बढ़ाने वाले [आप] द्वारा (परिषूता) घेरे हुए (शता) सैकड़ों (पुरः) दुर्गों को (अभिनत्) तोड़ा है ॥८॥

त्वमे॒ताञ्ज॑न॒राज्ञो॒ द्विर्दशा॑ब॒न्धुना॑ सु॒श्रव॑सोपज॒ग्मुषः॑ ।

ष॒ष्टिं स॒हस्रा॑ नव॒तिं नव॑ श्रु॒तो नि च॒क्रेण॒ रथ्या॑ दु॒ष्पदा॑वृणक् ॥९॥

पदार्थ—[हे राजन्!] (अबन्धुना) बन्धुहीन और (सुश्रवसा) बड़ी कीर्ति वाले पुरुष के साथ, (श्रुतः) विख्यात (त्वम्) तू ने (एतान्) इन (द्विः दश) दो बार दश [बीस] (जनराज्ञः) नीच लोगों के राजाओं को और (षष्टिम् सहस्रा) साठ सहस्र (नव नवतिम्) नौ नब्बे [९ + ९० = ९९ अथवा ९ × ९० = ८१० अर्थात् ६००, ९९ अथवा ६०, ८१०] (उपजग्मुषः) [उनके] साथियों को (दुष्पदा) न पकड़ने योग्य [अति शीघ्रगामी] (रथ्या) रथ के पहिये के समान (चक्रेण) चक्र [हथियार विशेष] से (नि अवृणक्) उलट पलट कर दिया है ॥९॥

त्वमा॑विथ सु॒श्रव॑सं॒ तवो॒तिभि॒स्तव॒ त्राम॑भिरिन्द्र॒ तूर्व॑याणम् ।

त्वम॑स्मै॒ कुत्स॑मतिथि॒ग्वमा॒युं म॒हे राज्ञे॒ यूने॑ अरन्धनायः ॥१०॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्यवान् सेनापति] (त्वम्) तूने (सुश्रवसम्) बड़ी कीर्ति वाले, (तूर्वयाणम्) शत्रुओं को मारनेवाले शूरों के चलानेवाले वीर को (तव) अपनी (ऊतिभिः) रक्षाओं के साथ और (तव) अपने (त्रामभिः) पालनसाधनों के साथ (आविथ) बचाया है। (त्वम्) तू (अस्मै) इस (महे) पूजनीय (यूने) स्वभाव से बलवान् (राज्ञे) राजा के लिये (कुत्सम्) मिलनसार ऋषि, (अतिथिग्वम्) अतिथियों को प्राप्त होने वाले (आयुम्) चलते हुए मनुष्य को (अरन्धनायः) पूरे धनी के समान आचरण करता रहे ॥१०॥

य उ॒दृचीन्द्र दे॒वगो॑पाः॒ सखा॑यस्ते शि॒वत॑मा॒ असा॑म ।

त्वां स्तो॑षाम॒ त्वया॑ सु॒वीरा॒ द्राघी॑य॒ आयुः॑ प्रत॒रं दधा॑नाः ॥११॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (उदृचि) उत्तम स्तुति के बीच (देवगोपाः) विद्वानों से रक्षा किये गये (ये) जो हम (ते) तेरे (सखायः) मित्र होकर (शिवतमाः) अत्यन्त आनन्दयुक्त (असाम) होवें। (त्वया) तेरे साथ (सुवीराः) बड़े वीरोंवाले और (द्राघीयः) अधिक लम्बे और (प्रतरम्) अधिक श्रेष्ठ (आयुः) जीवन को (दधानाः) रखते हुए वे हम (त्वाम्) तुझे (स्तोषाम) सराहते रहें ॥११॥

ॐ सूक्तम् ॥२२॥ ॐ

(१—६) १—३ त्रिशोक, ४-६ प्रियमेध । इन्द्र । गायत्री ।

अ॒भि त्वा॑ वृषभा सु॒ते सु॒तं सृ॑जामि पी॒तये॑ ।

तृ॒म्पा व्य॑श्नुही॒ मद॑म् ॥१॥

पदार्थ—(वृषभ) हे वीर! (सुते) निचोड़ने पर (सुतम्) निचोड़े हुए [सोम रस] को (पीतये) पीने के लिए (त्वा अभि) तुझे (सृजामि) मैं

देता हूँ। (तृम्प) तू तृप्त हो और (मदम्) आनन्द को (वि अश्नुहि) प्राप्त हो ॥१॥

मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन्।

माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥२॥

पदार्थ—(त्वा) तुझ को (मा) न तो (मूरा) मूढ़ (अविष्यव) हिंसा चाहनेवाले और (मा) न (उपहस्वानः) ठट्ठा करने वाले लोग (आ दभन्) कभी दबावें। तू (ब्रह्मद्विष) वेद के वैरियों को (माकीम्) मत (वनः) सेवन कर ॥२॥

इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे।

सरो गौरो यथा पिब ॥३॥

पदार्थ—(इह) यहाँ पर (त्वा) तुझ को (गोपरीणसा) भूमि की प्राप्ति से (महे) बड़े (राधसे) धन के लिये (मन्दन्तु) लोग प्रसन्न करें। तू [आनन्द रस को] (पिब) पी, (यथा) जैसे (गौर) गौर हरिण (सर.) जल [पीता है] ॥३॥

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे। सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥४॥

पदार्थ—[हे मनुष्य!] (गोपतिम्) पृथिवी के पालक, (सत्यस्य) सत्य के (सूनुम्) प्रेरक, (सत्पतिम) सत्पुरुषों के रक्षक (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले राजा] को, (यथा) जैसा (विदे) वह है, (गिरा) स्तुति के साथ (अभि) सब ओर से (प्र) अच्छे प्रकार (अर्च) तू पूज ॥४॥

आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि। यत्राभि संनवामहे ॥५॥

पदार्थ—(हरय:) दुःख हरनेवाले मनुष्य (अरुषी:) गतिशील [उद्योगी] प्रजाओं को (बर्हिषि) बढ़ती के स्थान में (अधि) अधिकारपूर्वक (आ ससृज्रिरे) लाये हैं, (यत्र) जहाँ पर [तुझ राजा को] (अभि) सब ओर से (संनवामहे) हम मिलकर सराहते हैं ॥५॥

इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु। यत् सीमुपह्वरे विदत् ॥६॥

पदार्थ—(वज्रिणे) वज्रधारी (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले राजा] के लिये (गाव) वेदवाणियों ने (आशिरम्) सेवने वा पकानेयोग्य पदार्थ [दूध, दही, घी आदि] को और (मधु) मधुविद्या [यथार्थ ज्ञान] को (दुदुह्रे) भर दिया है। (यत्) जब कि उसने [उन वेदवाणियों] को (उपह्वरे) अपने पास (सीम्) सब प्रकार (विदत्) पाया ॥ ६ ॥

卐 सूक्तम् ॥२३॥ 卐

१—६ *विश्वामित्र* । *इन्द्र* । *गायत्री* ।

आ तू न इन्द्र मद्र्यग्घुवानः सोमपीतये। हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥१॥

पदार्थ—(अद्रिव) हे वज्रधारी (इन्द्र) इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (सोमपीतये) पदार्थों की रक्षा के लिए (हुवान) बुलाया गया, (मद्र्यक्) मुझ को प्राप्त होता हुआ तू (हरिभ्याम) दो घोड़ों [के समान व्यापक बल और पराक्रम] से (न:) हमको (तु) शीघ्र (आ याहि) प्राप्त हो ॥१॥

सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक्।

अयुज्रन् प्रातरद्रयः ॥२॥

पदार्थ—(न) हमारा (होता) ग्रहण करनेवाला, (ऋत्विय:) सब ऋतुओं में प्राप्त होने वाला [राजा] (सत्त) बैठा है, (बर्हि.) उत्तम आसन (आनुषक्) निरन्तर [यथाविधि] (तिस्तिरे) बिछाया गया है, (अद्रय) मेघ [के समान उपकारी पुरुष] (प्रात) प्रात काल में (अयुज्रन्) जुड़ गये हैं ॥२॥

इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद।

वीहि शूर पुरोडाशम् ॥३॥

पदार्थ—(ब्रह्मवाह:) हे अन्न पहुँचानेवाले! (इमा) यह (ब्रह्म) वेद ज्ञान (क्रियन्ते) किये जाते हैं, (बर्हि) उत्तम आसन पर (आ सीद) बैठ (शूर) हे शूर! [दुष्टनाशक] (पुरोडाशम्) अच्छे बने हुए अन्न का (वीहि) भोजन कर ॥३॥

रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन्। उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥४॥

पदार्थ—(वृत्रहन्) हे धन रखने वाले! (गिर्वण) हे स्तुतियों से सेवनीय (इन्द्र) इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (एषु) इन (सवनेषु) ऐश्वर्यों में, (स्तोमेषु) बड़ाइयों में और (उक्थेषु) वचनों में (न) हमें (रारन्धि) रमा ॥४॥

मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम्। इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥५॥

पदार्थ—(मतय.) बुद्धिमान् लोग (सोमपाम्) ऐश्वर्य के रक्षक (उरुम्) महान् (शवस:) बल के (पतिम्) पालने वाले (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवान् राजा] को (रिहन्ति) प्यार करते हैं, (न) जैसे (मातर:) मातायें [गौयें] (वत्सम्) बछड़े को ॥५॥

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे। न स्तोतारं निदे करः ॥६॥

पदार्थ—[हे राजन्!] (स.) सो तू (हि) ही (तन्वा) अपने शरीर के साथ ((महे) बड़े (राधसे) धन के लिए (अन्धस) अन्न से (मन्दस्व) आनन्द कर, और (स्तोतारम्) स्तुति करनेवाले विद्वान् को (निदे) निन्दा के लिये (न) मत (कर) कर ॥६॥

वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे। उत त्वमस्मयुर्वसो ॥७॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] (त्वायव.) तुझे चाहने वाला (उत) और (हविष्मन्त.) देनेयोग्य वस्तुओं वाले (वयम्) हम [तुझ को] (जरामहे) सराहते हैं। (वसो) हे वसु! [श्रेष्ठ वा निवास कराने वाले] (त्वम्) तू (अस्मयु.) हमें चाहनेवाला है ॥७॥

मारे अस्मद् वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि।

इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥८॥

पदार्थ—(हरिप्रिय) हे मनुष्यों के प्रिय! [अपने को] (अस्मत्) हम से (आरे) दूर (मा वि मुमुच.) कभी न छोड़, (अर्वाङ्) इधर चलता हुआ (याहि) चल। (स्वधाव) हे बहुत अन्नवाले (इन्द्र) इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य-वाले राजन्] (इह) यहाँ (मत्स्व) आनन्द कर ॥८॥

अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना।

घृतस्नू बर्हिरासदे ॥९॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (सुखे) सुख देने वाले [सब ओर चलनेवाले] (रथे) रथ में (आसदे) बैठने के लिए (केशिना) प्रकाश [अग्नि] वाले और (घृतस्नू) जल को भाप से टपकाने वाले [दो पदार्थ] (अर्वाञ्चम्) नीचे चलते हुए (त्वा) तुझ को (बर्हि:) आकाश में (वहताम्) पहुँचावें ॥९॥

卐 सूक्तम् ॥२४॥ 卐

१—९ *विश्वामित्र* । *इन्द्र* । *गायत्री* ।

उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम्।

हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्यवाले विद्वान्] (न) हमारे (सुतम्) सिद्ध किये हुए, (गवाशिरम्) पृथिवी पर फैले हुए (सोमम्) ऐश्वर्य को (उप) समीप में (आ गहि) सब ओर से प्राप्त हो, (य) जो (ते) तेरा [ऐश्वर्य] (हरिभ्याम्) दो घोड़ों [के समान व्यापक बल और पराक्रम] से (अस्मयु) हमें चाहने वाला है ॥१॥

तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिष्ठां ग्रावभिः सुतम्।

कुविन्न्वस्य तृप्णवः ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्य वाले विद्वान्] तू (ग्रावभि) पण्डितों द्वारा (सुतम्) सिद्ध किये हुये, (बर्हिष्ठाम्) उत्तम आसन पर रक्खे हुए (तम्) उस (मदम्) कल्याणकारक पदार्थ को (नु) शीघ्र (आ) सब प्रकार (गहि) प्राप्त हो, वे [पण्डित लोग] (कुवित्) बहुत प्रकार से (अस्य) इस [कल्याणकारक पदार्थ] का (तृप्णव:) हर्ष पानेवाले हैं ॥२॥

इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः। आवृते सोमपीतये ॥३॥

पदार्थ—(इत्था) इस प्रकार से (मम) मेरी (इषिता:) प्रेरणा की गयी (गिर:) वाणियाँ (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] को (सोमपीतये) सोमरस [उत्तम ओषधि] पीने के लिए (आवृते) घूमने की (अच्छ) अच्छे प्रकार (इत:) यहाँ से (अगु) गयी हैं ॥३॥

इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे। उक्थेभिः कुविदागमत् ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] को (सोमस्य) सोमरस [महौषधि] के (पीतये) पीने के लिए (स्तोमैः) स्तुतियों के साथ (इह) यहाँ (हवामहे) हम बुलाते हैं। वह (उक्थेभिः) अपने उपदेशों के साथ (कुवित्) बहुत वार (आगमत्) आवे ॥४॥

इन्द्र सोमाः सुता इमे तान् दधिष्व शतक्रतो ।

जठरे वाजिनीवसो ॥५॥

पदार्थ—(शतक्रतो) हे सैकड़ों कर्मों वा बुद्धियोंवाले, (वाजिनीवसो) अन्नयुक्त क्रियाओं में बसानेवाले ! (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] (जठरे) प्रसिद्ध हुए जगत् में (इमे) ये (सोमाः) पदार्थ (सुताः) उत्पन्न हुए हैं, (तान्) उनको (दधिष्व) धारण कर ॥५॥

विद्मा हि त्वा धनंजयं वाजेषु दधृषं कवे । अधा ते सुम्नमीमहे ॥६॥

पदार्थ—(कवे) हे विद्वान् ! (त्वा) तुझ को (हि) ही (धनंजयम्) धन जीतनेवाला और (वाजेषु) सङ्ग्रामों में (दधृषम्) अत्यन्त निर्भय (विद्म) हम जानते हैं। (अध) इस लिये (ते) तेरे लिये (सुम्नम्) सुख को (ईमहे) हम प्रार्थना करते हैं।

इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब ।

आगत्या वृषभिः सुतम् ॥७॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] (नः) हमारे (इमम्) इस (वृषभिः) बलवानों द्वारा (सुतम्) सिद्ध किये गये (गवाशिरम्) पृथिवी पर फैले हुए (च) और (यवाशिरम्) अन्न के भोजनवाले पदार्थ को (आगत्य) आकर (पिब) पी ॥७॥

तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये सोमं चोदामि पीतये ।

एष रारन्तु ते हृदि ॥८॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले जन] (तुभ्य) तेरे लिये (इत्) ही (स्वे) अपने (ओक्ये) घर में (पीतये) पीने को (सोमम्) सोमरस [महौषधि] (चोदयामि) भेजता हूँ। (एषः) यह (ते) तेरे (हृदि) हृदय में (रारन्तु) अत्यन्त रमे ॥८॥

त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे । कुशिकासो अवस्यवः ॥९॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] (त्वा प्रत्नम्) तुझ पुराने को (सुतस्य) सिद्ध किये हुए रस के (पीतये) पीने के लिए (कुशिकासः) मिलने वाले, (अवस्यवः) रक्षा चाहनेवाले हम (हवामहे) बुलाते हैं ॥९॥

卐 सूक्तम् २५ 卐

(१—७) १—६ गोतम, ७ अष्टक । इन्द्र । जगती, ७ त्रिष्टुप् ।

अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः ।

तमित् पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले परमेश्वर वा राजन्] (मर्त्यः) मनुष्य (तव) तेरी (ऊतिभिः) रक्षाओं से (अश्वावति) उत्तम घोड़ों वाले [सेनादल] में (प्रथमः) पहिला [प्रधान] (प्रावीः) बड़ा रक्षक होकर (गोषु) भूमियों पर (गच्छति) चलता है (तम् इत्) उसको ही (भवीयसा) अति अधिक (वसुना) धन से (पृणक्षि) तू भर देता है, (यथा) जैसे (अभितः) सब ओर से (विचेतसः) विविध प्रकार जाने गये (आपः) जलसमूह (सिन्धुम्) समुद्र को [भरते हैं] ॥१॥

आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः ।

प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव ॥२॥

पदार्थ—(आपः न) व्यापक जलों के समान [उपकारी] (देवासः) विद्वान् लोग (देवीः) दिव्य गुणवाली [विद्याओं] को (उप) आदर से (यन्ति) पाते हैं, और (होत्रियम्) देने-लेनेयोग्य (अवः) रक्षा को (यथा रजः) रज [धूलि] के समान (विततम्) फैला हुआ (पश्यन्ति) देखते हैं। और (वराः इव) श्रेष्ठ पुरुषों के समान वे (प्राचैः) पुराने व्यवहारों के साथ (देवयुम्) उत्तम गुण चाहनेवाले, (ब्रह्मप्रियम्) ईश्वर और वेद में प्रीति करनेवाले पुरुष को (प्रणयन्ति) आगे बढ़ाते हैं और (जोषयन्ते) सेवा करते हैं ॥२॥

अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ।

असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥३॥

पदार्थ—[हे विद्वान् !] (द्वयोः अधि) उन दोनों के ऊपर (उक्थ्यम्) बड़ाई के योग्य (वचः) वचन को (अदधाः) तू ने धारण किया है, (या) जो (यतस्रुचा) जमचा [भोजनसाधन] लिये हुए (मिथुना) दोनों मिलनसार स्त्री पुरुष (सपर्यतः) सेवा करते हैं। वह [स्त्री वा पुरुष] (ते) तेरे (व्रते) नियम में (असंयत्तः) [स्वतन्त्र] होकर (क्षेति) रहता है और (पुष्यति) पुष्ट होता है, (भद्रा) कल्याण करनेहारी (शक्तिः) शक्ति (यजमानाय) यजमान [सत्कार सङ्गति और दान करनेहारे] (सुन्वते) ऐश्वर्यवान् पुरुष के लिये [होती है] ॥३॥

आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया ।

सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥४॥

पदार्थ—(ये) जिन (इद्धाग्नयः) अग्नि के प्रकाश करनेवाले (अङ्गिराः) ज्ञानी लोगों [ने] (प्रथमम्) श्रेष्ठ (वयः) जीवन को (सुकृत्यया) सुन्दर रीति से करने योग्य (शम्या) शान्तिदायक कर्म से (दधिरे) धारण किया था (आत्) फिर ही (नरः) उन नेताओं ने (पणेः) उत्तम से (सर्वम्) सब (भोजनम्) भोजन [पालन साधन धन अन्न आदि], (अश्वावन्तम्) उत्तम घोड़ों वाले (आ) और (गोमन्तम्) उत्तम गौओं वाले (पशुम्) पशुसमूह को (सम्) अच्छे प्रकार (अविन्दन्त) पाया है ॥४॥

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।

आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥५॥

पदार्थ—(प्रथमः) सबसे पहिले वर्तमान (अथर्वा) निश्चल परमात्मा ने (यज्ञैः) सङ्गति कर्मों [परमाणुओं के मेलों] से (पथः) मार्गों को (तते) फैलाया, (ततः) फिर (व्रतपाः) नियम पालनेवाला, (वेनः) प्यारा (सूर्यः) लोक (आ) सब ओर (अजनि) प्रकट हुआ। (उशनाः) प्यारे (काव्यः) बड़ाई-योग्य उस [सूर्य] ने (गाः) पार्थिवियों [चलते हुए लोकों] को (आ) सब ओर (आजत्) खींचा है (यमस्य) उस नियमकर्ता परमेश्वर के (सचा) मेल से (जातम्) उत्पन्न हुए (अमृतम्) अमरपन [मोक्ष-सुख वा जीवन-सामर्थ्य] को (यजामहे) हम पाते हैं ॥५॥

बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि । ग्रावा

यत्र वदति कारुरुक्थ्यस्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ॥६॥

पदार्थ—(यत्) जब (बर्हिः) उत्तम आसन (स्वपत्याय) सुन्दर सन्तान के लिये (वा) निश्चय करके (वृज्यते) छोड़ा जाता है, (वा) अथवा (अर्कः) पूजनीय विद्वान् (श्लोकम्) गाने वाली वाणी को (दिवि) व्यवहार के बीच (आघोषते) कह सुनाता है और (यत्र) जहाँ (ग्रावा) मेघ [के समान उपकारी] (उक्थ्यः) प्रशंसनीय (कारुः) शिल्पी विद्वान् (वदति) बोलता है, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला पुरुष] (तस्य) उस [सब] के (इत्) ही (अभिपित्वेषु) सङ्ग्रामों में (रण्यति) आनन्द पाता है ॥६॥

प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।

इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥७॥

पदार्थ—(हर्यश्व) हे वायु के समान फुरतीले घोड़ों वाले ! (वृष्णे तुभ्यम्) तुझ महाबली को (प्रयै) आगे चलने के लिये (सुतस्य) निचोड़े [सिद्धान्त] की (उग्राम्) तीव्र, (सत्याम्) सत्यगुण वाला (पीतिम्) पान (प्र इयर्मि) आगे रखता हूँ। (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले विद्वान्] (धेनाभिः) वेद-वाणियों द्वारा (इह) यहाँ पर (विश्वाभिः) समस्त (धीभिः) बुद्धियों से और (शच्या) कर्म से (गृणानः) उपदेश करता हुआ तू (मादयस्व) आनन्द दे ॥७॥

卐 सूक्तम् २६ 卐

(१—६) १—३ शुनःशेप, ४-६ मधुच्छन्दाः । इन्द्र । गायत्री ।

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥१॥

पदार्थ—(योगेयोगे) अवसर-अवसर पर और (वाजेवाजे) सङ्ग्राम-सङ्ग्राम के बीच (तवस्तरम्) अधिक बलवान् (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् पुरुष] को (ऊतये) रक्षा के लिये (सखायः) मित्र लोग हम (हवामहे) पुकारते हैं ॥१॥

आ घा गमद् यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः ।

वाजेभिरुप नो हवम् ॥२॥

पदार्थ—(यदि) जो वह (आ गमत) आवे, (घ) तो वह (सहस्रिणीभि) सहस्रों उत्तम पदार्थ पहुँचानेवाली (ऊतिभि) रक्षाओं से (वाजेभि) अन्नों के साथ (न) हमारी (हवम्) पुकार को (उप) आदर से (श्रवत्) सुने ॥२॥

अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् । यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥३॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (प्रत्नस्य) पुराने (ओकस.) घर के [उत्पन्न हुए] (तुविप्रतिम्) बहुत पदार्थों के प्रत्यक्ष पहुँचानेवाले (नरम्) पुरुष को (अनु हुवे) मैं पुकारता रहता हूँ, (यम्) जिस [पुरुष] को (पूर्वम्) पहिले काल में (ते) तेरा (पिता) पिता (हुवे) बुलाता था ॥३॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥४॥

पदार्थ—(तस्थुष) मनुष्यादि प्राणियों और लोकों मे (परि) सब ओर से (चरन्तम्) व्यापे हुए, (ब्रध्नम्) महान (अरुषम्) हिंसारहित [परमात्मा] को (रोचना) प्रकाशमान पदार्थ (दिवि) व्यवहार के बीच (युञ्जन्ति) ध्यान मे रखते और (रोचन्ते) प्रकाशित होते हैं ॥४॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥५॥

पदार्थ—(अस्य) इस [परमात्मा] के (काम्या) चाहनेयोग्य, (विपक्षसा) विविध प्रकार ग्रहण करनेवाले, (शोणा) व्यापक, (धृष्णू) निर्भय, (नृवाहसा) नेताओं [दूसरों के चलानेवाले सूर्य आदि लोकों] के चलाने वाले (हरी) दोनों धारण आकर्षण गुणों को (रथे) रमणीय जगत् के बीच (युञ्जन्ति) वे [प्रकाशमान पदार्थ] ध्यान में रखते हैं ॥५॥

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥६॥

पदार्थ—(मर्या) हे मनुष्यो ! (अकेतवे) अज्ञान हटाने के लिये (केतुम्) ज्ञान वा और (अपेशसे) निर्धनता मिटाने के लिये (पेश) सुवर्ण आदि धन को (कृण्वन्) उत्पन्न करता हुआ वह [परमात्मा] (उषद्भि) प्रकाशमान गुणों के साथ (सम्) अच्छे प्रकार (अजायथा) प्रकट हुआ है ॥६॥

卐 सूक्तम् ॥२७॥ 卐

१—६ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । इन्द्र । गायत्री ।

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।

स्तोता मे गोषखा स्यात् ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (यत) जब (यथा) जैसे-जैसे (एक) अद्वितीय (त्वम्) तू (इत) ही (मे) मेरा [स्वामी होवे], (अहम्) मैं (वस्व) धन का (ईशीय) स्वामी हो जाऊँ, और (स्तोता) गुणों का व्याख्यान करने वाला [प्रत्येक पुरुष] (गोसखा) पृथिवी [अर्थात तेरे राज्य] का मित्र (स्यात) हो जावे ॥१॥

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे । यदहं गोपतिः स्याम् ॥२॥

पदार्थ—(शचीपते) हे बुद्धि के स्वामी ! [राजन्] (अस्मै) इस (मनीषिणे) बुद्धिमान् [ब्रह्मचारी] को (शिक्षेयम) मैं शिक्षा करूँ और (दित्सेयम्) दान दूँ, (यत्) जो (अहम) मैं (गोपति) विद्या का स्वामी (स्याम्) हो जाऊँ ॥२॥

धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते । गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] (ते) तेरी (धेनु) वाणी (सूनृता) प्यारी और सच्ची और (पिप्युषी) बढ़ती करनेवाली होकर (सुन्वते) तत्त्व निचोड़नेवाले (यजमानाय) यजमान [विद्वानों का सत्कार, सत्सग और विद्या आदि दान करने वाले] के लिये (गाम्) भूमि, विद्या वा गौओं और (अश्वम्) घोड़ों को (दुहे) भरपूर करती है ॥३॥

न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः ।

यद् दित्ससि स्तुतो मघम् ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन] (ते) तेरे (राधस) ऐश्वर्य का (वर्ता) रोकने वाला, (न) न तो (देव) विद्वान् पुरुष और (न) न (मर्त्य.) सामान्य पुरुष (अस्ति) है, (यत्) जब कि (स्तुत) स्तुति किया गया तू (मघम्) धन (दित्ससि) देना चाहता है ॥४॥

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद् भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ॥५॥

पदार्थ—(यज्ञ) यज्ञ [विद्वानों के सत्कार, सत्सग और विद्या आदि दान] ने (इन्द्रम) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] को (अवर्धयत) बढ़ाया है (यत्) जब कि (दिवि) व्यवहार के बीच (ओपशम्) पूरा उद्योग (चक्राण) कर चुकने हुए उसने (भूमिम्) भूमि को (वि अवर्तयत्) व्याख्यात किया है ॥५॥

वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः ।

ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥६॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (वावृधानस्य) बढ़ते हुए और (विश्वा) सब (धनानि) धनो को (जिग्युष) जीत चुकनेवाले (ते) तेरी (ऊतिम्) रक्षा को (वयम्) हम (आ) सब ओर से (वृणीमहे) मागते हैं ॥६॥

卐 सूक्तम् २८ 卐

१—४ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । इन्द्र । १-२ गायत्री, ३-४ त्रिष्टुप ।

व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना ।

इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र:) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मा] ने (सोमस्य) ऐश्वर्य के (मदे) आनन्द में (रोचना) प्रीति के साथ (अन्तरिक्षम्) आकाश को (वि अतिरत्) पार किया है, (यत्) जब कि उसने (वलम्) हिंसक [विघ्न] को (अभिनत्) तोड़ डाला ॥१॥

उद् गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः ।

अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥२॥

पदार्थ—(गुहा) गुहा [गुप्त अवस्था] मे (सती) वर्तमान (गा) वाणियों को (आवि कृण्वन्) प्रकट करते हुए उस [परमेश्वर] ने (अङ्गिरोभ्य) विज्ञानी पुरुषों के लिये (उत् आजत्) ऊँचा पहुँचाया और (वलम्) हिंसक [विघ्न] को (अर्वाञ्चम्) नीचे (नुनुदे) हटाया है ॥२॥

इन्द्रेण रोचना दिवो दृढानि दृंहितानि च ।

स्थिराणि न पराणुदे ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रेण) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मा] द्वारा (दिव) व्यवहार के (स्थिराणि) ठहराऊ (रोचना) प्रकाश (न पराणुदे) न हटने के लिये (दृढानि) पक्के किये गये (च) और (दृंहितानि) बढ़ाये गये [फैलाये गये] हैं ॥३॥

अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते । वि ते मदा अराजिषुः ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मन्] (ते) तेरी (स्तोम) बड़ाई (अपाम) जलों की (मदन्) हर्ष बढ़ानेवाली (ऊर्मि इव) लहर के समान (अजिरायते) वेग में चलती है, और (मदा) आनन्द (वि अराजिषु) विराजते हैं [विविध प्रकार ऐश्वर्य बढ़ाते हैं] ॥४॥

卐 सूक्तम् २६ 卐

१—५ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । इन्द्र । गायत्री ।

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः । स्तोतृणामुत भद्रकृत् ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (त्वम्) तू (हि) ही (स्तोमवर्धन) स्तुतियों से बढ़ानेयोग्य और (उक्थवर्धन) यथार्थ वचनों से सराहने योग्य (उत) और (स्तोतृणाम्) गुण व्याख्यानाओं का (भद्रकृत्) कल्याण करनेवाला (असि) है ॥१॥

इन्द्रमित् केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः । उप यज्ञं सुराधसम् ॥२॥

पदार्थ—(केशिना) सुन्दर केशों [कन्धे आदि के बालों] वाले (हरी) रथ ले चलनेवाले दो घोड़ों [के समान बल और पराक्रम] (सुराधसम्) महाधनी (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] को (इत्) ही (सोमपेयाय) ऐश्वर्य की रक्षा के लिये (यज्ञम् उप) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] की ओर (वक्षत) लावें ॥२॥

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजयः स्पृधः ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले सेनापति] (अपाम्) जलों के (फेनेन) फेन [झाग के समान हलके तीक्ष्ण शस्त्रविशेष] से (नमुचे) न

घुटने योग्य [दण्डनीय पापी] के (शिर) शिर को (उत् अवर्तय) तू ने उछाल दिया है, (यत) जब कि (विश्वा) सब (स्पर्ध) झगड़ने वाली सनाओं को (अजय) तूने जीता है ॥३॥

मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः । अव दस्यूँरधूनुथाः ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले सेनापति] (उत्सिसृप्सत) उछलते हुए और (द्याम) आकाश को (आरुरुक्षतः) चढ़ते हुए (दस्यून्) डाकुओं को तू ने (मायाभि) अपनी बुद्धियों से (अव अधूनुथा) ओंधा गिरा दिया है ॥४॥

असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः । सोमपा उत्तरो भवन् ॥५॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले सेनापति] (सोमपा) ऐश्वर्य का रक्षक और (उत्तर) बड़ा विजयी (भवन्) हो कर तन (असुन्वाम) भेंट न देती हुई (विषूचीम्) इतर-वितर चलती हुई (ससदम्) भीड़ का (वि अनाशय) विनाश कर दिया है ॥५॥

卐 सूक्तम् ३० 卐

१—५ वरु सर्वहरिर्वा । हरि (इन्द्र) । जगती ।

प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम् ।
घृतं न यो हरिभिश्चारु सेचत आ त्वा विशन्तु हरिवर्पसं गिरः ॥१॥

पदार्थ—[हे शूर !] (महे) बड़े (विदथे) समाज के बीच (ते) तेरे (हरी) दुःख हरने वाले दोनो बल और पराक्रम की (प्र शंसिषम) मैं प्रशंसा करता हूँ, और (वनुष ते) तुझ शूर के (हर्यतम्) कामनायोग्य (मदम) आनन्द को (प्र वन्वे) मांगता हूँ । (य) जो आप (हरिभि) वीर पुरुषों के साथ (घृतम् न) जल के समान (चारु) रमणीय धन को (सेचते) बरसाते हैं, (हरिवर्पसम्) सिंहरूप (त्वा) उस तुझ में (गिर) स्तुतियाँ (आ) सब ओर से (विशन्तु) प्रवेश करें ॥१॥

हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन् हिन्वन्तो हरी दिव्यं यथा सदः ।
आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चत ॥२॥

पदार्थ—(हरी) दुःख हरनेवाले दोनो बल और पराक्रम को (हिन्वन्त.) बढ़ाते हुए (ये) जो लोग (दिव्यम्) दिव्य गुण वाले (सद यथा) समाज के समान (हरिम्) दुःख मिटाने वाले [सेनापति] को (हि) निश्चय करके (योनिम् अभि) न्याय घर में (समस्वरन्) अच्छे प्रकार सराहते हैं, और (यम्) जिस [सेनापति] को (हरिभि) शूर पुरुषोंसहित (धेनव न) गौओं के समान [जो] (आ) सब ओर से (पृणन्ति) तृप्त करते हैं, (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (शूषम्) सुख से (हरिवन्तम्) उस शूर पुरुषों वाले [सेनापति] को (अर्चत) तुम पूजो ॥२॥

सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः ।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ॥३॥

पदार्थ—(अस्य) इस [सेनापति] का (स) वह (हरित) शत्रुनाशक (आयस) लोहे का बना (वज्र) वज्र [शस्त्र] है, (य) जो (गभस्त्यो) दोनो भुजाओं पर (निकाम) बड़ा प्रिय, (हरि.) सिंह [के समान] (आ) और (हरि) सूर्य [के समान] (द्युम्नी) तेजस्वी (सुशिप्र) बहुत काटने वाला [बड़ा कटीला वा दन्तीला] और (हरिमन्युसायक) सर्प [के समान शत्रु] के क्रोध का नाश करने वाला है ।(इन्द्रे) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले सेनापति] में (हरिता) स्वीकार करनेयोग्य (रूपा) रूप [सुन्दरपन] (नि) दृढ़ करके (मिमिक्षिरे) सींचे गये हैं ॥३॥

दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद् वज्रो हरितो न रंह्या ।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिंभरः ॥४॥

पदार्थ—(न) जैसे (हर्यत) रमणीक (केतु) प्रकाश (दिवि) आकाश में (अधि) ऊपर (धायि) रक्खा गया है, (वज्र) वह वज्रधारी (रंह्या) वेग के साथ (हरित न) सिंह के समान (विव्यचत्) व्याप गया, और (आयसः) लोहे के बने हुए [अति दृढ़], (हरिशिप्र) सिंह के समान मुखवाले (य.) जिस ने (अहिम) सर्प [के समान शत्रु] को (तुदत्) छेदा है, वह (सहस्रशोका) सहस्रों प्रकाशवाला होकर (हरिंभर) मनुष्यों का पालनेवाला (अभवत्) हुआ है ॥४॥

त्वंत्वमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः ।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्य१मसामि राधो हरिजात हर्यतम् ॥५॥

पदार्थ—(हरिकेश) हे सूर्य के समान तेजवाले (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (पूर्वेभिः) समस्त (यज्वभि) यज्ञ करनेवालों करके (उपस्तुत·) आदर से स्तुति किया गया (त्व त्वम्) तू ही तू (अहर्यथा) प्रिय हुआ है । (हरिजात) हे मनुष्यों में प्रसिद्ध ! (त्वम्) तू (हर्यसि) प्रीति करता है, (विश्वम्) सब (उक्थ्यम्) बड़ाईयोग्य वस्तु और (असामि) न समाप्त होने वाला [अनन्त] (हर्यतम्) चाहने योग्य (राध·) धन (तव) तेरा है ॥५॥

卐 सूक्तम् ३१ 卐

१—५ वरु सर्वहरिर्वा । हरि (इन्द्र) । जगती ।

ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी ।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ॥१॥

पदार्थ—(ता) वे दोनो (हर्यता) प्यारे (हरी) दुःख हरनेवाले दोनों बल और पराक्रम (वज्रिणम) वज्रधारी, (मन्दिनम्) आनन्दकारी, (स्तोम्यम्) स्तुति योग्य (इन्द्रम) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] को (मदे) सुख के लिये (रथे) रमणसाधन जगत् में (वहत) ले चलते हैं । (सोमा) शान्त स्वभाव वाले (हरय) मनुष्यों ने (अस्मै) इस (हर्यते) प्यारे (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष] के लिये (पुरूणि) बहुत से (सवनानि) ऐश्वर्य (दधन्विरे) प्राप्त किये हैं ॥१॥

अरं कामाय हरयो दधन्विरे स्थिराय हिन्वन् हरयो हरी तुरा ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्जोषमीयते सो अस्य कामं हरिवन्तमानशे ॥२॥

पदार्थ—(हरय) सिंह [के समान बलवान्] (हरय) दुःख हरनेवाले मनुष्यों ने (कामाय) कामना पूरी करने के लिये (तुरा) शीघ्रकारी (हरी) दुःख हरनेवाले दोनो बल और पराक्रम को (स्थिराय) दृढ़ स्वभावाले [सेनापति] के निमित्त (अरम) पूरा पूरा (दधन्विरे) प्राप्त किया और (हिन्वन्) बढ़ाया है । (य) जो मनुष्य (अर्वद्भि) घोड़ो [के समान शीघ्रगामी] (हरिभि.) दुःख हरनेवाले मनुष्यों के साथ (जोषम्) प्रीति (ईयते) प्राप्त करता है, (स) उस ने ही (हरिवन्तम्) श्रेष्ठ मनुष्योंवाली (अस्य) अपनी (कामम्) कामना को (आनशे) फैलाया है ॥२॥

हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी ॥३॥

पदार्थ—(हरिश्मशारु) सिंह के शरीर को छेदनेवाला, (हरिकेश.) सूर्य के समान तेजवाला (आयस) लोहे का बना हुआ [अति दृढ़] (य) जो (हरिपा) मनुष्यों का रक्षक [सेनापति] (तुरस्पेये) शीघ्र रक्षा करने में (अवर्धत) बढ़ा है, और (य) जो (अर्वद्भि) घोड़ो [के समान शीघ्रगामी] (हरिभि) दुःख हरने वाले मनुष्यों के साथ (वाजिनीवसु) अन्नयुक्त क्रियाओं में बसने वाला है, वह (विश्वा) सब (दुरिता) विघ्नों को (अति) लांघकर (हरी) दुःख हरनेवाले दोनो बल और पराक्रम को (पारिषत्) भरपूर करे ॥३॥

स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय हरिणी दविध्वतः ।
प्र यत् कृते चमसे मर्मृजद्धरी पीत्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः ॥४॥

पदार्थ—(वाजाय) अन्न के लिये (यस्य) जिस [सेनापति] के (हरिणी) स्वीकार करनेयोग्य (शिप्रे) दोनो जबाड़े (स्रुवा इव) दो चमचाओं के समान (विपेततु) विविध प्रकार चलते हैं [उसके राज्य में] (हरिणी) सुख हरनेवाली [अविद्या और कुनीति] दोनो (दविध्वत) सर्वथा मिट जाती है । (यत्) क्योंकि वह (चमसे कृते) भोजन सिद्ध होने पर (मदस्य) आनन्ददायक, (हर्यतस्य) कामनायोग्य (अन्धस) अन्न का (पीत्वा) पान करके (हरी) बल और पराक्रम दोनो को (प्र) अच्छे प्रकार (मर्मृजत्) शुद्ध करता है ॥४॥

उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्यो३रत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत् ।
मही चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद् वयो दधिषे हर्यतश्चिदा ॥५॥

पदार्थ—(हर्यतस्य) कामनायोग्य [उस पूर्वोक्त पुरुष] का (सद्म) घर (उत स्म) अवश्य ही (पस्त्यो) आकाश और पृथिवी में [हुआ है] और (हरिवान्) उत्तम पुरुषोंवाले [उस पुरुष] ने (अत्य न) घोड़ों के समान (वाजम्) अन्न को (अचिक्रदत्) पुकारा है—(मही) पूजनीय (धिषणा) वेद वाणी ने (चित्) अवश्य (हि) ही (ओजसा) बल के साथ [यह] (अहर्यत्) कामना की है । [इसी से] (हर्यत) कामना योग्य तू ने (चित्) भी (बृहत्) बड़े (वयः) जीवन को (आ) सब ओर से (दधिषे) धारण किया है ॥५॥

卐 सूक्तम् ॥३२॥ 卐

१—३ वरु सर्वहरिर्वा । हरि. [इन्द्र] । १ जगती, २-३ त्रिष्टुप् ।

आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यंनव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम् ।
प्र पस्त्यमसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय ॥१॥

पदार्थ – [हे शूर !] (महित्वा) अपने महत्त्व से (रोदसी) आकाश और भूमि को (आ हर्यमाणः) प्राप्त कर लेता हुआ तू (नव्यंनव्यम्) नये नये (प्रियम्) प्रिय (मन्म) ज्ञान को (नु) शीघ्र (हर्यसि) चाहता है । (असुर) हे बुद्धिमान् ! (गोः) विद्या के (हर्यतम्) कामनायोग्य (पस्त्यम्) घर को (हरये) दुःख हरनेवाले (सूर्याय) सूर्य [के समान प्रेरक विद्वान्] के लिये (प्र) अच्छे प्रकार (आविष्कृधि) प्रकट कर ॥१॥

आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र ।
पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन् यज्ञं सधमादे दशोणिम् ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] (जनानाम्) मनुष्यों की (प्रयुजः) प्रार्थनायें (हरिशिप्रम्) सिंह के समान मुखवाले (हर्यन्तम्) कामनायोग्य (त्वा) तुझ को (रथे) रथ पर (आ वहन्तु) लावें । (यथा) जिससे (सधमादे) उत्सव के बीच (दशोणिम्) दस दिशाओं में क्लेश मिटाने वाले (यज्ञम्) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] को (हर्यन्) चाहता हुआ तू (प्रतिभृतस्य) प्रत्यक्ष रक्खे हुए (मध्वः) ज्ञान का (पिब) पान करे ॥२॥

अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते ।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषं जठर आ वृषस्व ॥३॥

पदार्थ—(हरिवः) हे उत्तम मनुष्यों वाले ! [राजन्] तू ने (पूर्वेषाम्) पहिले महात्माओं के (सुतानाम्) निचोड़ों [सिद्धान्तों] का (अपाः) पान किया है, (अथो) इसी लिये (इदम्) यह (सवनम्) ऐश्वर्य (केवलम्) केवल (ते) तेरा है । (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (मधुमन्तम्) ज्ञानयुक्त (सोमम्) ऐश्वर्य को (ममद्धि) तृप्त कर और (वृषन्) हे बलवान् ! (सत्रा) सत्य रीति से (जठरे) प्रसिद्ध हुए जगत् के बीच (आ) सब ओर से (वृषस्व) बरसा ॥३॥

卐 सूक्तम् ॥ ३३ ॥ 卐

१—३ अष्टकः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व ।
मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः ॥१॥

पदार्थ—(हरिवः) हे श्रेष्ठ मनुष्योंवाले ! (अप्सु) प्रजाओं के बीच (नृभिः) नरों [नेताओं] द्वारा (धूतस्य) शोधे हुए (सुतस्य) निचोड़ [सिद्धान्त] का (इह) यहाँ पर (पिब) पान कर और (जठरम्) प्रसिद्ध हुए जगत् को (पृणस्व) सन्तुष्ट कर । (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] (अद्रयः) मेघों [के समान उपकारी पुरुषों] ने (तुभ्यम्) तेरे लिये (यम्) जिस [आनन्द] को (मिमिक्षुः) सींचना चाहा है, (उक्थवाहः) हे वचनों पर चलने वाले ! [सत्यवादी] (तेभिः) उन [पुरुषों] के साथ (मदम्) उस आनन्द को (वर्धस्व) तू बढ़ा ॥१॥

प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥२॥

पदार्थ—(हर्यश्व) हे वायु के समान फुरतीले घोड़ों वाले ! (वृष्णे तुभ्यम्) तुझ महाबली को (प्रयै) आगे चलने के लिये (सुतस्य) निचोड़ [सिद्धान्त] का (उग्राम्) तीव्र, (सत्याम्) सत्यगुण वाला (पीतिम्) घूँट (प्र इयर्मि) आगे रखता हूँ । (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले विद्वान्] (धेनाभिः) वेदवाणियों द्वारा (इह) यहाँ पर (विश्वाभिः) समस्त (धीभिः) बुद्धियों से और (शच्या) कर्म से (गृणानः) उपदेश करता हुआ तू (मादयस्व) आनन्द दे ॥२॥

ऊती शचीवस्तव वीर्येण वयो दधाना उशिज ऋतज्ञाः ।
प्रजावदिन्द्र मनुषो दुरोणे तस्थुर्गृणन्तः सधमाद्यासः ॥३॥

पदार्थ—(शचीवः) हे बुद्धिमान् (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] (तव) तेरी (ऊती) रक्षा से और (वीर्येण) वीरता से (प्रजावत्) उत्तम प्रजावाले (वयः) जीवन को (दधानाः) धारण करते हुए, (उशिजः) प्रीतियुक्त बुद्धिमान् (ऋतज्ञाः) सत्य शास्त्र जानने वाले (मनुषः) मननशील मनुष्य (दुरोणे) घरके बीच (गृणन्तः) गुण बखानते हुए (सधमाद्यासः) मिलकर आनन्द मानते हुए (तस्थुः) ठहरते हैं ॥३॥

卐 इति तृतीयोऽनुवाकः 卐

卐

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ॥३४॥ 卐

१—१८ गृत्समदः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥१॥

पदार्थ—(जातः एव) प्रकट होते ही (यः) जिस (प्रथमः) पहिले (मनस्वान्) मननशील (देवः) प्रकाशमान [परमेश्वर] ने (क्रतुना) अपनी बुद्धि से (देवान्) चलते हुए [पृथिवी आदि लोकों] को (पर्यभूषत्) सब ओर सजाया है । (यस्य) जिसके (शुष्मात्) बल से (नृम्णस्य) मनुष्यों को झुकाने वाले सामर्थ्य की (मह्ना) महिमा के कारण (रोदसी) दोनों आकाश और भूमि (अभ्यसेताम्) भय को प्राप्त हुए हैं, (जनासः) हे मनुष्यो ! (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला परमेश्वर] है ॥१॥

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान् प्रकुपिताँ अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः ॥२॥

पदार्थ—(यः) जिस [परमेश्वर] ने (व्यथमानाम्) चलती हुई (पृथिवीम्) पृथिवी को (अदृंहत्) दृढ़ किया है, (यः) जिस ने (प्रकुपितान्) कोप करते हुए (पर्वतान्) मेघों को (अरम्णात्) ठहराया है । (यः) जिस ने (वरीयः) अधिक चौड़े (अन्तरिक्षम्) आकाश को (विममे) नाप डाला है, (यः) जिस ने (द्याम्) सूर्य को (अस्तभ्नात्) खम्भे के समान खड़ा किया है, (जनासः) हे मनुष्यो ! (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला परमेश्वर] है ॥२॥

यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः ॥३॥

पदार्थ—(यः) जिस [परमेश्वर] ने (अहिम्) सब ओर चलने वाले मेघ में (हत्वा) व्यापकर (सप्त) सात (सिन्धून्) बहते हुए समुद्रों [अर्थात् भूः भुवः आदि सात अवस्था वाले सब लोकों] को (अरिणात्) चलाया है, (वलस्य) बल [सामर्थ्य] के (अपधा) हर्ष से धारण करने वाले (यः) जिस ने (गाः) पृथिवियों को (उदाजत्) उत्तमता से चलाया है । (समत्सु) संग्रामों के बीच (संवृक्) शत्रुओं के रोकने वाले (यः) जिसने (अश्मनोः) दो व्यापक मेघों या पत्थरों के (अन्तः) बीच (अग्निम्) अग्नि [बिजुली] को (जजान) उत्पन्न किया है, (जनासः) हे मनुष्यो ! (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला परमेश्वर] है ॥३॥

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवाँ लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥४॥

पदार्थ—(येन) जिस [परमेश्वर] करके (इमा) यह (विश्वा) सब (च्यवना) चलते हुए लोक (कृतानि) बनाये गये हैं, (यः) जिसने (दासम्) देनेयोग्य (वर्णम्) रूप को (गुहा) गुहा [गुप्त अवस्था] में (अधरम्) नीचे (अकः) किया है । (यः) जो, (इव) जैसे (श्वघ्नी) वृद्धि पानेवाला (जिगीवान्) विजयी पुरुष (लक्षम्) लक्ष्य [जीते पदार्थ] को, (अर्यः) वैरी के (पुष्टानि) बढ़े हुए धनों को (आदत्) ले लेता है, (जनासः) हे मनुष्यो ! (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला परमेश्वर] है ॥४॥

यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥५॥

पदार्थ—(यम्) जिस (घोरम्) भयानक को [कोई-कोई] (सः) वह (स्म) निश्चय करके (कुह) कहाँ है, (इति) ऐसा (पृच्छन्ति) पूछते हैं, (उत) और [कोई-कोई] (एनम्) इसको, (एषः) वह (अस्ति ईम्) है ही (न) नहीं, (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं । (सः) वह (विजः) विवेकी (इव) ही (अर्यः) वैरी के (पुष्टीः) बढ़े हुए धनों को (आ) सब ओर से (मिनाति) नष्ट करता है, (अस्मै) उसके लिये तुम (श्रत्) सत्य [श्रद्धा] (धत्त) धारण करो, (जनासः) हे मनुष्यो ! (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला परमेश्वर] है ॥५॥

यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥६॥

पदार्थ—(य) जो [परमेश्वर] (रध्रस्य) धनी का, और (य:) जो (कृशस्य) दुर्बल का, (य:) जो (नाधमानस्य) ऐश्वर्यवाले, (कीरे) गुणों के व्याख्याता (ब्रह्मण:) ब्रह्मा [ब्रह्मज्ञानी] का (चोदिता) आगे बढ़ानेवाला है। (य) जो (युक्तग्राव्ण) योगाभ्यासी पण्डित का और (सुतसोमस्य) मोक्ष पा लेने वाले का (सुशिप्र) बड़ा सेवनीय (अविता) रक्षक है (जनास:) हे मनुष्यो ! (स) वह (इन्द्र) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला परमेश्वर] है ॥६॥

यस्याश्वा॑सः प्र॒दिशि॒ यस्य॒ गावो॒ यस्य॒ ग्रामा॒ यस्य॒ विश्वे॒ रथा॑सः ।

यः सूर्यं॒ य उ॒षसं॑ ज॒जान॒ यो अ॒पां ने॒ता स जना॑स॒ इन्द्रः॑ ॥७॥

पदार्थ—(यस्य) जिसकी (प्रदिशि) बड़ी आज्ञा मे (अश्वास) घोड़े, (यस्य) जिसकी [आज्ञा म] (गाव) गाय बैल आदि पशु, (यस्य) जिसकी [आज्ञा मे] (ग्रामा) ग्राम [मनुष्य समूह] और (यस्य) जिसकी [आज्ञा में] (विश्वे) सब (रथास) विहार करानेवाले पदार्थ हैं। (य) जिस ने (सूर्यम्) सूर्य को, (य) जिस ने (उषसम) प्रभात वेला को (जजान) उत्पन्न किया है, और (य) जो (अपाम्) जलो का (नेता) पहुँचाने वाला है, (जनास) हे मनुष्यो ! (स) वह (इन्द्र) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला परमेश्वर] है ॥७॥

यं क्रन्द॑सी संय॒ती वि॒ह्वये॑ते॒ परेऽव॑र उ॒भया॑ अ॒मित्राः॑ ।

स॒मा॒नं चि॒द्रथ॑मातस्थि॒वांसा॒ नाना॑ हवेते॒ स जना॑स॒ इन्द्रः॑ ॥८॥

पदार्थ—(यम्) जिसको (संयती) आपस मे जुटी हुई (क्रन्दसी) ललकारती हुई दो सेनाये (विह्वयेते) विविध प्रकार पुकारती हैं, (परे) ऊँचे [जीतने वाले] और (अवरे) नीचे [हारने वाले] (उभया) दोनो पक्ष (अमित्रा) शत्रुदल [पुकारते हैं]। और [जिसको] (समानम्) एक (चित्) ही (रथम्) रथ मे (आतस्थिवांसा) चढ़े हुए दोनो [योधा और सारथी] (नाना) बहुत प्रकार से (हवेते) बुलाते हैं, (जनास) हे मनुष्यो ! (स) वह (इन्द्र) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला परमेश्वर] है ॥८॥

यस्मा॒न्न ऋ॒ते वि॒जय॑न्ते॒ जना॑सो॒ यं युध्य॑माना॒ अव॑से॒ हव॑न्ते ।

यो विश्व॑स्य प्रति॒मानं॑ ब॒भूव॒ यो अ॑च्युत॒च्युत् स जना॑स॒ इन्द्रः॑ ॥९॥

पदार्थ—(यस्मात् ऋते) जिस के बिना (जनास) मनुष्य (न) नहीं (विजयन्ते) विजय पाते हैं, (यम) जिस को (युध्यमाना) लड़ते हुए लोग (अवसे) रक्षा के लिए (हवन्ते) पुकारते हैं। (य) जो (विश्वस्य) संसार का (प्रतिमानम) प्रत्यक्ष मापने का साधन और (य:) जो (अच्युतच्युत्) नहीं हिलने वालो का हिलाने वाला (बभूव) है, (जनास) हे मनुष्यो ! (स.) वह (इन्द्र.) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला परमेश्वर] है ॥९॥

यः शश्व॑तो॒ मह्येनो॒ दधा॑ना॒नम॑न्यमाना॒ञ्छर्वा॑ ज॒घान॑ ।

यः शर्ध॑ते॒ नानु॒ददा॑ति शृ॒ध्यां यो दस्यो॑र्ह॒न्ता स जना॑स॒ इन्द्रः॑ ॥१०॥

पदार्थ—(य) जिस ने (महि) बड़े (एन) पाप को (दधानान्) धारण करने वाले (शश्वत.) बहुत से (अमन्यमानान्) अज्ञानियो को (शर्वा) शासनरूपी वज्र से (जघान) मारा है। (य.) जो (शर्धते) अपमान करने वाले को (शृध्याम्) उत्साह (न) नहीं (अनुददाति) कभी देता है, और (य:) जो (दस्यो) डाकू का (हन्ता) मारने वाला है, (जनास.) हे मनुष्यो ! (स:) वह (इन्द्र) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला परमेश्वर] है ॥१०॥

यः शम्ब॑रं॒ पर्व॑तेषु क्षि॒यन्तं॑ चत्वारि॒ंश्यां श॒रद्य॒न्ववि॑न्दत् ।

ओ॒जा॒यमा॑नं॒ यो अहिं॑ ज॒घान॒ दानुं॒ शया॑नं॒ स जना॑स॒ इन्द्रः॑ ॥११॥

पदार्थ—(य) जिस ने (पर्वतेषु) बादलो मे (क्षियन्तम्) रहते हुए (शम्बरम्) चलनेवाले पानी को (चत्वारिंश्याम्) भिक्षा नाश करने वाले (शरदि) वर्ष मे (अन्वविन्दत्) निरन्तर पहुँचाया है। (य) जिसने (ओजायमानम) अत्यन्त बल करते हुए, (दानुम्) छेदन वाले, (शयानम्) पड़े हुए (अहिम्) सब ओर से नाश करने वाले [विघ्न] को (जघान) नष्ट किया है, (जनास) हे मनुष्यो ! (स.) वह (इन्द्र) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला परमेश्वर] है ॥११॥

यः शम्ब॑रं॒ पर्य॒तर॒त् कसी॑भि॒र्योऽचा॑रु॒कास्ना॑पिबत् सु॒तस्य॑ ।

अ॒न्तर्गि॒रौ यज॑मानं ब॒हुं जनं॒ यस्मि॒न्नामू॑र्छ॒त् स जना॑स॒ इन्द्रः॑ ॥१२॥

पदार्थ—(य) जिसने (शम्बरम्) मेघ [के समान उपकारी पुरुष] को (कसीभि.) ज्ञानों के साथ (परि) सब प्रकार (अतरत्) तराया है, (य) जिस (अचारु) अचालु [निश्चल] ने (कास्ना) प्रकाश के साथ (सुतस्य) तत्त्व का (अपिबत) पान कराया है। और [जिसने] (यस्मिन्) जिस (गिरौ-अन्त) तत्त्वज्ञान के भीतर (बहुम्) बहुत से (यजमानम्) यज्ञ करनेवाले (जनम्) लोगों को (आमूर्छत्) सब प्रकार बढ़ाया है, (जनास:) हे मनुष्यो ! (स:) वह (इन्द्र) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला परमेश्वर] है ॥१२॥

यः स॒प्तर॑श्मिर्वृष॒भस्तुवि॑ष्मान॒वासृ॑ज॒त् सर्त॑वे स॒प्त सिन्धू॑न् ।

यो रौ॑हि॒णमस्फु॑रद्॒ वज्र॑बाहु॒र्द्यामा॒रोह॑न्तं॒ स जना॑स॒ इन्द्रः॑ ॥१३॥

पदार्थ—(सप्तरश्मि:) सात प्रकार की [शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश और चित्र] किरणो वाले सूर्य के समान (य) जिस (वृषभ:) सुख की वर्षा करने वाले, (तुविष्मान्) बलवान् ने (सप्त) सात (सिन्धून्) बहते हुए समुद्रो [के समान भूर् आदि सात लोको] को (सर्तवे) चलने के लिये (अवासृजत्) विमुक्त किया है। और (य) जिस (वज्रबाहु.) वज्र समान भुजाओं वाले [दृढ शरीर वाले वीर सदृश] ने (द्याम्) आकाश को (आरोहन्तम्) चढ़ते हुए (रौहिणम्) उपजाने वाले बादल को (अस्फुरत्) घुमड़ाया है [घेरा करके चलाया है,] (जनास) हे मनुष्यो ! (स:) वह (इन्द्र.) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला परमेश्वर] है ॥१३॥

द्यावा॑ चिदस्मै पृथि॒वी न॑मेते॒ शुष्मा॑च्चिदस्य॒ पर्व॑ता भयन्ते ।

यः सो॑म॒पा नि॑चि॒तो वज्र॑बाहु॒र्यो वज्र॑हस्तः॒ स जना॑स॒ इन्द्रः॑ ॥१४॥

पदार्थ—(द्यावा पृथिवी) आकाश और भूमि (चित्) भी (अस्मै) इस [परमेश्वर] के लिये (नमेते) झुकते हैं, (अस्य) इस के (शुष्मात्) बल से (चित्) ही (पर्वता) मेघ (भयन्ते) डरते हैं। (य) जो (निचित:) भरपूर, (सोमपा) ऐश्वर्य का रक्षक, (वज्रबाहु) वज्रसमान भुजाओंवाला [दृढ शरीरवाले वीर सदृश] है, और (य) जो (वज्रहस्त) वज्र हाथ मे रखनेवाले [दृढ हथियारवाले शूर सदृश] है, (जनास) हे मनुष्यो ! (स:) वह (इन्द्र.) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला परमेश्वर] है ॥१४॥

यः सु॒न्वन्त॒मव॑ति॒ यः पच॑न्तं॒ यः शंस॑न्तं॒ यः श॑शमा॒नमू॒ती ।

यस्य॒ ब्रह्म॒ वर्ध॑नं॒ यस्य॒ सोमो॒ यस्ये॒दं राधः॒ स जना॑स॒ इन्द्रः॑ ॥१५॥

पदार्थ—(य) जो [परमेश्वर] (सुन्वन्तम्) तत्त्व निचोड़ते हुए को, (य.) जो (पचन्तम्) पक्के करते हुए को, (य:) जो (शंसन्तम्) गुण बखानते हुए को (य) जो (शशमानम्) उद्योग करते हुए को (ऊती) अपनी रक्षा से (अवति) पालता है। (यस्य) जिसका (ब्रह्म) वेद, (यस्य) जिसका (सोम:) मोक्ष और (यस्य) जिसका (इदम) यह (राध.) धन (वर्धनम्) वृद्धिरूप है, (जनास) हे मनुष्यो ! (स) वह (इन्द्र) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला परमेश्वर] है ॥१५॥

जा॒तो व्य॑ख्यत् पि॒त्रोरु॒पस्थे॒ भुवो॒ न वे॑द जनि॒तुः पर॑स्य ।

स्त॒वि॒ष्यमा॑णो॒ नो यो अ॒स्मद् व्र॒ता दे॒वानां॒ स जना॑स॒ इन्द्रः॑ ॥१६॥

पदार्थ—(य:) जो (जात.) प्रकट होकर (पित्रो) [हमारे] माता-पिता के (उपस्थे) समीप मे (वि अख्यत्) व्याख्यात हुआ है, और (परस्य) [अपने से] दूसरे (जनितु) जनक और (भुव:) जननी को (न) नहीं (वेद) जानता है, और (देवानाम्) विद्वानो का (स्तविष्यमाण) स्तुति किया गया [जो] (नो) अभी ही (अस्मत) हमारे (व्रता) कर्मों को [जानता है], (जनास) हे मनुष्यो ! (स) वह (इन्द्र) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला परमेश्वर] है ॥ १६ ॥

यः सोम॑कामो॒ हर्य॑श्वः सू॒रिर्यस्मा॒द् रेज॑न्ते॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ।

यो ज॒घान॒ शम्ब॑रं॒ यश्च॒ शुष्णं॒ य ए॑कवी॒रः स जना॑स॒ इन्द्रः॑ ॥१७॥

पदार्थ—(य) जो [परमेश्वर] (सोमकाम) ऐश्वर्य चाहनेवाला, (हर्यश्व.) मनुष्यो मे व्यापक, (सूरि:) प्रेरक विद्वान् है, (यस्मात्) जिससे (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक (रेजन्ते) थरथराते हैं। (य) जो (शम्बरम्) मेघ मे (च) और (य.) जो (शुष्णम्) सूर्य मे (जघान) व्यापा है, (य:) जो (एकवीर) एकवीर [अकेला शूर] है, (जनास) हे मनुष्यो ! (स.) वह (इन्द्र) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला परमेश्वर] है ॥१७॥

यः सु॒न्व॒ते पच॑ते दु॒ध्र आ चि॒द् वाजं॒ दर्द॑र्षि॒ स किला॑सि स॒त्यः ।

व॒यं त॑ इन्द्र वि॒श्वह॑ प्रि॒यासः॑ सु॒वीरा॑सो वि॒दथ॒मा व॑देम ॥१८॥

पदार्थ—(य) जो तू (दुध्र.) पूर्ण होकर (चित्) ही (सुन्वते) तत्त्व निचोड़ते हुए और (पचते) परिपक्व करते हुए के लिए (वाजम्) अन्न [वा बल] (आ दर्दर्षि) फाड़ कर देता है, (स:) सो तू (किल) निश्चय करके (सत्य) सच्चा (असि) है। (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले परमेश्वर] (वयम्) हम (ते) तेरे (प्रियास:) प्यारे होकर (सुवीरास.) सुन्दर वीरों वाले (विश्वह) सब दिनों (विदथम्) ज्ञान का (आ) सब ओर (वदेम) उपदेश करें। ॥१८॥

卐 सूक्तम् ॥ ६१ 卐

१—१६ नोधाः (गौतमः) । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय ।

ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥१॥

पदार्थ—(अस्मै) इस [संसार] के हित के लिये (इत्) ही (उ) विचारपूर्वक (तवसे) बल के निमित्त, (तुराय) फुरतीले, (माहिनाय) पूजनीय, (ऋचीषमाय) स्तुति के समान गुणवाले, (अध्रिगवे) बेरोक गतिवाले, (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले सभापति] के लिये (स्तोमम्) स्तुति को (ओहम्) पूरे विचार को और (राततमा) अत्यन्त देनेयोग्य (ब्रह्माणि) धनों को (प्रयः न) तृप्ति करने वाले अन्न के समान (प्र हर्मि) मैं आगे लाता हूँ ॥१॥

अस्मा इदु प्रय इव प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति ।

इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥२॥

पदार्थ—[हे विद्वान् !] (अस्मै) इस [संसार के हित के लिये] (इत्) ही (उ) विचारपूर्वक, (प्रयः इव) तृप्ति करने वाले अन्न के समान (आङ्गूषम्) प्राप्तियोग्य स्तुति को (प्रयंसि) तू देता है और (बाधे) बाधा रोकने के लिये (सुवृक्ति) सुन्दर ग्रहण करने योग्य कर्म को (भरामि) मैं पुष्ट करता हूँ । (प्रत्नाय) प्राचीन (पत्ये) स्वामी, (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले सभापति] के लिये (हृदा) हृदय से, (मनसा) मनन से और (मनीषा) बुद्धि से (धियः) कर्मों को (मर्जयन्त) मनुष्य शुद्ध करें ॥२॥

अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन ।

मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ॥३॥

पदार्थ—(अस्मै) इस [संसार] के हित के लिये (इत्) ही (उ) विचारपूर्वक (त्यम्) उस (उपमम्) उपमायोग्य, (स्वर्षाम्) सुख देनेवाली, (आङ्गूषम्) प्राप्ति योग्य स्तुति को (आस्येन) [अपने] मुख से (मतीनाम्) बुद्धिमानों के (अच्छोक्तिभिः) अच्छे वचनोंवाली (सुवृक्तिभिः) सुन्दर ग्रहणयोग्य क्रियाओं के साथ (मंहिष्ठम्) उस अत्यन्त उदार, (सूरिम्) प्रेरक विद्वान् के (वावृधध्यै) बढ़ाने के लिये (भरामि) मैं धारण करता हूँ ॥३॥

अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय ।

गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ॥४॥

पदार्थ—(अस्मै) इस [संसार] के हित के लिए (इत्) ही (उ) विचारपूर्वक (गिर्वाहसे) विद्याओं के पहुँचाने वाले, (मेधिराय) बुद्धिमान् (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले सभापति] के लिए (सुवृक्ति) सुन्दर ग्रहण करने योग्य क्रियाओं के साथ (विश्वमिन्वम्) सब में फलने वाले (स्तोमम्) स्तुतियोग्य व्यवहार (च) और (गिरः) वेदवाणियों को (सम्) यथावत् (हिनोमि) मैं बढ़ाता हूँ, (रथम्) रथ को (तष्टा इव) जैसे विश्वकर्मा [बड़ा बढ़ई] (न) अब (तत्सिनाय) उस [रथ] से अन्न के लिये बढ़ाता है ॥४॥

अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा समञ्जे ।

वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥५॥

पदार्थ—(अस्मै) इस [संसार] के हित के लिये (इत्) ही (उ) विचारपूर्वक (इन्द्राय) ऐश्वर्य के अर्थ (श्रवस्या) कीर्ति की इच्छा से (जुह्वा) देने-लेने वाली क्रिया के साथ (सप्तिम् इव) जैसे फुरतीले घोड़े को [वैसे] (अर्कम्) पूजनीय (वीरम्) वीर, (दानौकसम्) दान के घर [बड़े दानी], (गूर्तश्रवसम्) उद्यमयुक्त यश वाले, (पुराम्) शत्रुओं के गढ़ों के (दर्माणम्) ढाने वाले [सभापति] को (वन्दध्यै) सत्कार करने के लिये (सम्) अच्छे प्रकार (अञ्जे) मैं चाहता हूँ ॥५॥

अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद्वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं रणाय ।

वृत्रस्य चिद् विदद् येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥६॥

पदार्थ—(अस्मै) इस [संसार] के हित के लिये (इत्) ही (उ) विचारपूर्वक (त्वष्टा) सूक्ष्म करनेवाले [सूक्ष्मदर्शी विश्वकर्मा सभापति] ने (स्वपस्तमम्) अत्यन्त सुन्दर रीति से काम सिद्ध करनेवाला, (स्वर्यम्) सुख देने वाला (वज्रम्) वज्र [बिजुली आदि शस्त्र] (रणाय) रण जीतने को (तक्षत्) तीक्ष्ण किया है । (तुजता येन) जिस काटने वाले [वज्र] से (वृत्रस्य) वैरी के (मर्म) मर्म [जीवन स्थान] को (चित्) ही (तुजन्) छेद कर (ईशानः) ऐश्वर्यवान् (कियेधाः) कितने [अर्थात् बड़े बल] के धारण करने वाले [उस सभापति] ने (विदत्) पाया है ॥६॥

अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना ।

मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥७॥

पदार्थ—(अस्य) इस [जगत्] के (इत्) ही (उ) विचारपूर्वक (महः) बड़े (मातुः) निर्माता [बनाने वाले परमेश्वर] के (सवनेषु) ऐश्वर्यों में (सद्यः) तुरन्त (चारु) सुन्दर (पितुम्) पीने योग्य रस को और (अन्ना) अन्नों को (पपिवान्) खाने-पीने वाला, (पचतम्) परिपक्व [वैरी के अन्न वा धन] को (मुषायत्) लूटता हुआ, (विष्णुः) विद्याओं में व्यापक, (सहीयान्) विजयी, (अद्रिम्) वज्र का (अस्ता) चलाने वाला, [सेनापति] (वराहम्) वराह [सूअर के समान अच्छे पदार्थ नाश करने वाले शत्रु] को (तिरः) आर पार (विध्यत्) छेदता है ॥७॥

अस्मा इदु ग्नाश्चिद्देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।

परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥८॥

पदार्थ—(अस्मै) इस [संसार] के हित के लिए (इत्) ही (उ) विचारपूर्वक (देवपत्नीः) विद्वानों से पालने योग्य (ग्नाः) वेदवाणियों ने (चित्) भी (अहिहत्ये) सब ओर से नाश करने वाले [विघ्न] के मिटाने पर (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मा] के लिए (अर्कम्) पूजनीय व्यवहार को (ऊवुः) बुना है [फैलाया है] । [उस परमात्मा] ने (उर्वी) चौड़े (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी को (परि) सब ओर से (जभ्रे) ग्रहण किया है, (ते) वे दोनों (अस्य) इस [परमात्मा] की (महिमानम्) महिमा को (न) नहीं (परि स्तः) पहुँच सकते हैं ॥८॥

अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।

स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥९॥

पदार्थ—(अस्य) इस [परमेश्वर] का (इत्) ही (महित्वम्) महत्त्व (एव) निश्चय करके (दिवः) सूर्य से, (पृथिव्याः) पृथिवी और (अन्तरिक्षात्) आकाश से (परि) सब प्रकार (प्ररिरिचे) अधिक बढ़ा है (स्वराट्) स्वयं राजा, (विश्वगूर्तः) सब को उद्यम में लगाने वाला, (स्वरिः) बड़ा प्रेरक, (अमत्रः) ज्ञानवान् (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला परमात्मा] (दमे) शासन के बीच (रणाय) रण मिटाने के लिये (आ ववक्षे) कोपित हुआ है ॥९॥

अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद्वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।

गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ॥१०॥

पदार्थ—(इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले सेनापति] ने (अस्य) इस [परमेश्वर] के (इत् एव) ही (शवसा) बल से (शुषन्तम्) सुखाने वाले (वृत्रम्) वैरी को (वज्रेण) वज्र [बिजुली आदि शस्त्र] द्वारा (वि वृश्चत्) छेद डाला । और (श्रवः अभि) कीर्ति के निमित्त (दावने) सुख-दान के लिए (सचेताः) चित्त वाला होकर (व्राणाः) घिरी हुई (अवनीः) रक्षायोग्य भूमियों को (गाः न) गौओं के समान (अमुञ्चत्) छुड़ाया ॥१०॥

अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद्वज्रेण सीमयच्छत् ।

ईशानकृद्दाशुषे दशस्यन् तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥११॥

पदार्थ—(अस्य) इस [सभापति] के (इत्) ही (उ) निश्चय करके (त्वेषसा) तेज [पराक्रम] से (सिन्धवः) नदियां [नाले बरहा आदि] (रन्त) रमे हैं [बहे हैं], (यत्) क्योंकि उस ने (वज्रेण) वज्र [बिजुली फावड़ा आदि शस्त्रों] से (सीम्) बन्ध को (परि) सब ओर से (अयच्छत्) बांधा है । (दाशुषे) दानी मनुष्य को (ईशानकृत्) ऐश्वर्यवान् करने वाले (दशस्यन्) कवच [रक्षासाधन] के समान काम करते हुए, (तुर्वणिः) शीघ्रता सेवन करने वाले [सभाध्यक्ष] ने (तुर्वीतये) शीघ्रता करनेवालों के चलने के लिये (गाधम्) उथले स्थान [घाटी आदि] को (कः) बनाया है ॥११॥

अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।

गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥१२॥

पदार्थ—(अस्मै) इस [संसार के निमित्त (इत्) ही (उ) विचारपूर्वक (तूतुजानः) शीघ्रता करता हुआ, (ईशानः) ऐश्वर्यवान्, (कियेधाः) कितने [अर्थात् बड़े बल] का धारण करनेवाला तू (वृत्राय) वैरी के लिये (वज्रम्) वज्र [बिजुली आदि शस्त्र] को (प्र) अच्छे प्रकार (भर) धारण कर । और (तिरश्चा) तिरछी चाल के साथ (अर्णांसि) अपनी चालों को (इष्यन्) चलता हुआ तू (अपाम्) प्रजाओं के (चरध्यै) चलने के लिए (पर्व) [वैरी के] जोड़ों को (वि रद) चीर डाला, (गोः न) जैसे भूमि के [जोड़ों को किसान चीरते हैं ॥१२॥

अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥१३॥

पदार्थ—(अस्य) उस (इत्) ही (उ) विचारपूर्वक (तुरस्य) शीघ्रता करने वाले [सभापति] के (पूर्व्याणि) पहिले किये हुए (कर्माणि) कार्मों को (प्र) अच्छे प्रकार (ब्रूहि) तू कह, (उक्थैः) कहने योग्य वचनो से (नव्यः) स्तुति योग्य होकर, (युधे) युद्ध के लिए (आयुधानि) हथियारो को (इष्णानः) बार-बार चलाता हुआ और (ऋघायमाणः) बढ़ाता हुआ [बे रोक चलता हुआ] (यत्) जो [सभापति] (शत्रून्) वैरियो को (निरिणाति) मारता जाता है ॥ १३ ॥

अस्येदु भिया गिरयश्च दृळ्हा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद्वीर्याय नोधाः ॥१४॥

पदार्थ—(अस्य) इस (जनुषः) उत्पन्न करनेवाले [परमेश्वर] के (इत्) ही (उ) निश्चय करके (भिया) भय से (गिरयः) पहाड़ (च) भी (दृळ्हाः) दृढ़ हैं (च) और (द्यावा भूमा) सूर्य और भूमि (तुजेते) बलवान् हैं । (वेनस्य) प्यारे [वा बुद्धिमान् परमेश्वर] के (ओणिम्) दुःख मिटाने को (जोगुवानः) बार-बार कहता हुआ (नोधाः) नेताओ [वा स्तुतियों] का धारण करनेवाला [सभापति] (सद्यः) तुरन्त (वीर्याय) पराक्रम सिद्ध करने के लिये (उपो) समीप ही (भुवत्) होवे ॥१४॥

अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद्वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥१५॥

पदार्थ—(अस्मै) उस [मनुष्य] को (इत्) ही (उ) निश्चय कर के (त्यत्) वह [वस्तु] (अनु) निरन्तर (दायि) दी गयी है, (यत्) जो [वस्तु] (एषाम्) इन [मनुष्यों] के बीच (एकः) अकेले (भूरेः) बहुत [राज्य] के (ईशानः) स्वामी ने (वव्ने) मांगी है । (इन्द्रः) इन्द्र [बडे ऐश्वर्यवाले परमेश्वर] ने (सौवश्व्ये) फुरतीले घोड़ों वाले संग्राम के बीच (सूर्ये) सूर्य के प्रकाश में [जैसे स्पष्ट रीति से] (पस्पृधानम्) झगड़ते हुए (सुष्विम्) ऐश्वर्यवान् (एतशम्) ब्राह्मण [ब्रह्मज्ञानी सभापति] को (प्र) अच्छे प्रकार (आवत्) बचाया है ॥ १५ ॥

एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१६॥

पदार्थ—(हारियोजन) हे घोड़ो के जोतने वाले ! (इन्द्र) इन्द्र ! [बडे ऐश्वर्यवाले पुरुष] (ते) तेरे लिए (एव) ही (गोतमासः) अत्यन्त ज्ञानी [ऋषियो] ने (सुवृक्ति) अच्छे प्रकार ग्रहण करने योग्य (ब्रह्माणि) वेदज्ञानो को (अक्रन्) किया है [बताया है ।] (धियावसुः) बुद्धि और कर्म के साथ रहने वाला तू (एषु) इन [ज्ञानो] में (विश्वपेशसम्) सब रूपो वाली (धियम्) निश्चल बुद्धि को (आ) सब ओर से (धाः) धारण कर और (प्रातः) प्रातःकाल (मक्षु) शीघ्र (जगम्यात्) [उस बुद्धि को] प्राप्त हो ॥१६॥

卐 सूक्तम् ३६ 卐

१—११ भरद्वाज । इन्द्र । त्रिष्टुप् ।

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः ।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् ॥१॥

पदार्थ—(तम्) उस (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मा] को (आभिः) इन (गीर्भिः) वाणियों से (अभि) सब प्रकार (अर्चे) मैं पूजता हूँ । (यः) जो (एकः) अकेला (इत्) ही (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के बीच (हव्यः) ग्रहण करने योग्य है और (यः) जो (वृषभः) श्रेष्ठ, (वृष्ण्यावान्) पराक्रम वाला, (सत्यः) सच्चा, (सत्वा) वीर, (पुरुमायः) बहुत बुद्धिवाला और (सहस्वान्) महाबलवान् (पत्यते) स्वामी है ॥१॥

तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः ।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥२॥

पदार्थ—(नवग्वाः) स्तुति योग्य चरित्रवाले, (सप्त) सात (विप्रासः) [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] व्यापनशील इन्द्रियों के समान (नः) हमारे (पूर्वे) पहिले (पितरः) पितृजन (तम्) उस (उ) ही (नक्षद्दाभम्) व्याप्त दोषो के नाश करने वाले, (ततुरिम्) दुःखों से तारनेवाले, (पर्वतेष्ठाम्) मेघ मे वर्तमान [बिजुली के समान शुद्ध स्वरूप], (अद्रोघवाचम्) द्रोहरहित वाणी वाले, (मतिभिः) बुद्धियों के साथ (शविष्ठम्) अत्यन्त बली [परमात्मा] को (अभि) सब ओर से (वाजयन्तः) बताते हुए हैं ॥ २ ॥

तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान्तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥३॥

पदार्थ—(तम्) उस (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] से (अस्य) इस (पुरुवीरस्य) बहुत वीरों के प्राप्त कराने वाले, (नृवतः) श्रेष्ठ मनुष्यों वाले (पुरुक्षोः) बहुत ऐश्वर्य वा अन्नवाले (रायः) धन की (ईमहे) हम मांग करते हैं । और (यः) जो [परमात्मा] (अस्कृधोयुः) अपनी थोड़ाई न चाहनेवाला, (अजरः) निर्बल न होनेवाला, (स्वर्वान्) बहुत सुखवाला है, (हरिवः) हे उत्तम मनुष्यों वाले ! [विद्वान् पुरुष] तू (मादयध्यै) आनन्दित करने के लिए (तम्) उस [परमात्मा] को (आ) सब प्रकार (भर) धारण कर ॥३॥

तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] (तत्) वह बात (नः) हम को (वि) विशेष करके (वोचः) तू बता—(यदि) यदि (ते) तेरे (जरितारः) गुण बखाननेवालो ने (पुरा चित्) पहिले भी (सुम्नम्) सुख को (आनशुः) पाया है । (दुध्र) हे पूर्ण ! (खिद्वः) हे शत्रुओं के खेद देने वाले ! (पुरुहूत) हे बहुतों से बुलाये गए ! (पुरूवसो) हे बहुत धन वाले (ते) तेरा (कः) कौन सा (असुरघ्नः) असुरों [दुष्टों का] नाश करने वाला (भागः) भाग है और (किम्) कौन (वयः) जीवन है ॥४॥

तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः ।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥५॥

पदार्थ—(यस्य) जिस [पुरुष] की (गीः) वाणी (नु) निश्चय करके (वेपी) हिलने वाली [बे रोक चलने वाली] और (वक्वरी) बोलने की शक्ति वाली है, (तम्) उस (वज्रहस्तम्) वज्र [हथियार] हाथ में रखने वाले (रथेष्ठाम्) रथ मे बैठे हुए, (तुविग्राभम्) बहुतों को सहारा देने वाले, (तुविकूर्मिम्) बहुत से काम करनेवाले, (रभोदाम्) वेगयुक्त बल देनेवाले, (गातुम्) वेदो के गानेवाले, (तुम्रम्) विघ्नों को मिटानेवाले पुरुष] को (इन्द्रम्) इन्द्र [बडे ऐश्वर्य वाले पुरुष] को (इषे) अन्न आदि के लिये (पृच्छन्ती) पूछती हुई [स्त्री] (अच्छ) अच्छे प्रकार (नक्षते) प्राप्त होती है ॥५॥

अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।
अच्युता चिद्वीळिता स्वोजो रुजो वि दृळ्हा धृषता विरप्शिन् ॥६॥

पदार्थ—(स्वतवः) हे अपने बलवाले ! (स्वोजः) हे बड़े पराक्रम वाले ! (विरप्शिन्) हे महागुणी पुरुष ! (अया) इस (ह) ही (मायया) [अपनी] बुद्धि और (मनोजुवा) मन के समान वेग के साथ (पर्वतेन) पहाड़ [के तुल्य दृढ़ हथियार] से और (धृषता) ढीठपन से (त्यम्) उस (वावृधानम्) बढ़ते हुए [वैरी] को और (अच्युता) न हिलनेवाले, और (वीळिता) अहराक और (दृळ्हा) दृढ़ [पदार्थों] को (चित्) भी (वि रुजः) तू ने चूर चूर कर दिया है ॥ ६ ॥

तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत्परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥७॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (वः) तुम्हारे लिये (तम्) उस (शविष्ठम्) अत्यन्त बली और (प्रत्नम्) पुराने [अनुभवी पुरुष] को (नव्यस्या) अधिक नवीन (धिया) बुद्धि वा कर्म से (प्रत्नवत्) पुराने लोगों के समान (परितंसयध्यै) हम शोभायमान करें । (सः) वह (अनिमानः) बिना परिमाण वाला, (सुवह्मा) बड़ा नायक (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला पुरुष] (विश्वानि) सब (दुर्गहाणि) अत्यन्त कठिन स्थानों को (अति) पार करके (नः) हम को (वक्षत्) चलावे ॥७॥

आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।
तपा वृषन्विश्वतः शोचिषा तान्ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥८॥

पदार्थ—(वृषन्) हे बलिष्ठ ! [पुरुष] (दिव्यानि) श्रेष्ठ गुणवाले (पार्थिवानि) पृथिवी पर उत्पन्न हुए और (अन्तरिक्षा) आकाशवाले पदार्थों को (आ) सब ओर से (दीपयः) प्रकाशित कर, और (तान्) हिंसक चोरों को (शोचिषा) तेज से (विश्वतः) सब प्रकार (तप) तपा दे, और (ब्रह्मद्विषे) ईश्वर और वेद के द्वेषी, (द्रुह्वणे) अनिष्ट चाहनेवाले (जनाय) जन के लिये (क्षाम्) पृथिवी (च) और (अपः) जलों को (शोचय) शोकयुक्त कर ॥८॥

इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन् !] (वृत्रहत्ये) शत्रुओं के मारने वाले संग्राम में (तेषाम्) उन (नृणाम्) नरों का (शिव) मङ्गलकारी (सखा) मित्र (च) और (शूर) शूर (अविता) रक्षक (भूः) तू हो ॥१०॥

नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व ।

उप नो वाजान् मिमीह्युप स्तीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥११॥

पदार्थ—(शूर) हे शूर (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (नु) शीघ्र (स्तवमान) उत्साह देता हुआ और (ब्रह्मजूत) धन वा अन्न को प्राप्त होता हुआ तू (ऊती) रक्षा के साथ (तन्वा) शरीर से (वावृधस्व) अत्यन्त बढ़। (नः) हमारे (वाजान्) बलों को और (स्तीन्) घरों को (उप) आदर से (उप मिमीहि) उपमायोग्य [बड़ाई-योग्य] कर। [हे वीरो !] (यूयम्) तुम सब (स्वस्तिभिः) सुखों के साथ (सदा) सदा (नः) हमें (पात) रक्षित रक्खो ॥११॥

卐 इति चतुर्थोऽनुवाकः 卐

卐

अथ पंचमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ॥३८॥ 卐

(१—६) १—३ इरिम्बिठि, ४-६ मधुच्छन्दा । इन्द्र । गायत्री ।

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।

एदं बर्हिः सदो मम ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (आ याहि) तू आ, (हि) क्योंकि (ते) तेरे लिये (सोमम्) सोम [उत्तम ओषधियों का रस] (सुषुम) हमने सिद्ध किया है, (इमम्) इस [रस] को (पिब) पी, (मम) मेरे (इदम्) इस (बर्हिः) उत्तम आसन पर (आ सद) बैठ ॥१॥

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना ।

उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (ब्रह्मयुजा) धन के लिये जोड़े गये, (केशिना) सुन्दर केशों [कन्धे आदि के बालों] वाले (हरी) रथ ले चलनेवाले दो घोड़े [के समान बल और पराक्रम] (त्वा) तुझ को (आ) सब ओर (वहताम्) ले चलें। (नः) हमारे (ब्रह्माणि) वेदज्ञानों को (उप) आदर से (शृणु) तू सुन ॥२॥

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः ।

सुतावन्तो हवामहे ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (सोमपाम्) ऐश्वर्य के रक्षक (त्वा) तुझ को (युजा) मित्रता के साथ, (ब्रह्माणः) वेद जानने वाले, (सोमिनः) ऐश्वर्यवाले, (सुतावन्तः) उत्तम पुत्र आदि सन्तानों वाले (वयम्) हम (हवामहे) बुलाते हैं ॥३॥

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥४॥

पदार्थ—(गाथिनः) गाने वालों और (अर्किणः) विचार करने वालों ने (अर्केभिः) पूजनीय विचारों से (इन्द्रम्) सूर्य [के समान प्रतापी], (इन्द्रम्) वायु [के समान फुरतीले] (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले राजा] को और (वाणीः) वाणियों [वेदवचनों] को (इत्) निश्चय करके (बृहत्) बड़े ढङ्ग से (अनूषत) सराहा है ॥४॥

इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा ।

इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥५॥

पदार्थ—(वज्री) वज्रधारी, (हिरण्ययः) तेजोमय (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला राजा] (इत्) ही (इन्द्रः) वायु [के समान] (सचा) नित्य मिले हुए (हर्योः) दोनों संयोग-वियोग गुणों का (संमिश्लः) यथावत् मिलानेवाला (आ) और (वचोयुजा) वचन का योग्य बनाने वाला है ॥५॥

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि ।

वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥६॥

पदार्थ—(इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मा] ने (दीर्घाय) दूर तक (चक्षसे) देखने के लिये (दिवि) व्यवहार [वा आकाश] के बीच (गोभिः) वेदवाणियों द्वारा [वा किरणों और जलों द्वारा] (सूर्यम्) सूर्य [के समान प्रेरक] और (अद्रिम्) मेघ [के समान उपकारी पुरुष] को (आ रोहयत्) ऊंचा किया और (वि) विविध प्रकार (ऐरयत्) चलाया है ॥६॥

卐 सूक्तम् ३९ 卐

(१—५) १ मधुच्छन्दा, २-५ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । इन्द्रः । गायत्री ।

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥१॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवान् परमात्मा] को (वः) तुम्हारे लिये और (विश्वतः) सब (जनेभ्यः) प्राणियों के लिये (परि) सब प्रकार (हवामहे) हम बुलाते हैं। वह (अस्माकम्) हमारा (केवलः) सेवनीय (अस्तु) होवे ॥१॥

व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मा] ने (सोमस्य) ऐश्वर्य के (मदे) आनन्द में (रोचना) प्रीति के साथ (अन्तरिक्षम्) आकाश को (वि अतिरत्) पार किया है, (यत्) जब कि उसने (वलम्) हिंसक [विघ्न] को (अभिनत्) तोड़ डाला ॥२॥

उद् गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः ।

अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥३॥

पदार्थ—(गुहा) गुहा [गुप्त अवस्था] में (सतीः) वर्तमान (गाः) वाणियों को (आविः कृण्वन्) प्रकट करते हुए उस [परमेश्वर] ने (अङ्गिरोभ्यः) विज्ञानी पुरुषों के लिये (उत् आजत्) ऊंचा पहुँचाया और (वलम्) हिंसक [विघ्न] को (अर्वाञ्चम्) नीचे (नुनुदे) हटाया ॥३॥

इन्द्रेण रोचना दिवो दृढानि दृंहितानि च ।

स्थिराणि न पराणुदे ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्रेण) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मा] द्वारा (दिवः) व्यवहार के (स्थिराणि) ठहराऊ (रोचना) प्रकाश (न पराणुदे) न हटने के लिये (दृढानि) पक्के किये गए (च) और (दृंहितानि) बढ़ाये गये [फैलाये गये हैं] ॥४॥

अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते । वि ते मदा अराजिषुः ॥५॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मन्] (ते) तेरी (स्तोमः) बड़ाई (अपाम्) जलों की (मदन्) हर्ष बढ़ानेवाली (ऊर्मिः इव) लहर के समान (अजिरायते) वेग से चलती है, और (मदाः) आनन्द (वि अराजिषुः) विराजते हैं [विविध प्रकार ऐश्वर्य बढ़ाते हैं] ॥५॥

卐 सूक्तम् ४० 卐

१—३ मधुच्छन्दाः । इन्द्र मरुतश्च, २-३ मरुतः । गायत्री ।

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥१॥

पदार्थ—[हे प्रजागण !] (अबिभ्युषा) निडर (इन्द्रेण) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले राजा] के साथ (हि) ही (संजग्मानः) मिलता हुआ तू (सम्) अच्छे प्रकार (दृक्षसे) दिखाई देता है। (समानवर्चसा) एक से तेज के साथ (मन्दू) तुम दोनों [राजा और प्रजा] आनन्द देने वाले हो ॥१॥

अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥२॥

पदार्थ—(अनवद्यैः) निर्दोष, (अभिद्युभिः) सब ओर से प्रकाशमान और (काम्यैः) प्रीति के योग्य (गणैः) गणों [प्रजागणों] के साथ (इन्द्रस्य) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले राजा] का (मखः) यज्ञ [राज्य व्यवहार] (सहस्वत्) अति दृढ़ता से (अर्चति) सत्कार पाता है ॥२॥

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥३॥

पदार्थ—(आत्) फिर (अह) अवश्य (स्वधाम् अनु) अपनी धारण-शक्ति के पीछे (यज्ञियम्) सत्कारयोग्य (नाम) नाम [यश] को (दधानाः) धारण करते हुए लोगों ने (पुनः) निश्चय करके (गर्भत्वम्) गर्भपन [बालपन, बड़े पद] का (एरिरे) सब प्रकार से पाया है ॥३॥

सूक्तम् ४१

१—३ गोतम । इन्द्र. । गायत्री ।

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥१॥

पदार्थ—(अप्रतिष्कुतः) बेरोक गतिवाले (इन्द्र) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले सेनापति] ने (दधीचः) पोषण प्राप्त करानेवाले पुरुष की (अस्थभिः) गतियों से (नव नवती.) नौ नब्बे [९ × ९० = ८१० अर्थात् बहुत से] (वृत्राणि) रोकनेवाले शत्रुओं को (जघान) मारा है ॥१॥

इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद् विदच्छर्यणावति ॥२॥

पदार्थ—(अश्वस्य) काम मे व्यापने वाले बलवान् पुरुष का (यत्) जो (शिरः) शिर [मस्तक का विचारसामर्थ्य] (पर्वतेषु) मेघों [के समान उपकारी मनुष्यों] में (अपश्रितम्) आश्रित है, (तत्) उस [विचार-सामर्थ्य] को (इच्छन्) चाहते हुए पुरुष ने (शर्यणावति) तीर चलाने के स्थान सग्राम में (विदत्) पाया है ॥२॥

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥३॥

पदार्थ—(अत्र) यहां [राज्य-व्यवहार में] (अह) निश्चय करके (गोः) पृथिवी के, (इत्था) इसी प्रकार (चन्द्रमस.) चन्द्रमा के (गृहे) घर [लोक] मे (त्वष्टुः) छेदन करनेवाले सूर्य के (अपीच्यम्) भीतर रक्खे हुए (नाम) झुकाव [आकर्षण] को (अमन्वत) उन्होंने जाना है ॥३॥

सूक्तम् ४२

१-३ कुरुसुतिः । इन्द्रः । गायत्री ।

वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम् । इन्द्रात् परि तन्वं ममे ॥१॥

पदार्थ—(अष्टापदीम्) आठ पद [छोटाई, हलकाई, प्राप्ति, स्वतन्त्रता, बड़ा, ईश्वरपन, जितेन्द्रियता और सत्य सकल्प-आठ ऐश्वर्य] प्राप्त कराने वाली, (नवस्रक्तिम्) नौ [मन बुद्धि सहित दो कान, दो नथने, दो आँखें और एक मुख] से प्राप्तियोग्य, (ऋतस्पृशम्) सत्य नियम की प्राप्ति करानेवाली, (तन्वम्) विस्तीर्ण [वा सूक्ष्म] (वाचम्) वेदवाणी को (इन्द्रात्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मा] से (अहम्) मैंने (परि ममे) मापा है ॥१॥

अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम् ।

इन्द्र यद् दस्युहाभवः ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मन्] (क्रक्षमाणम्) आकर्षण करते हुए [वश में करते हुए] (त्वा अनु) तेरे पीछे (उभे) दोनो (रोदसी) आकाश और भूमि (अकृपेताम्) समर्थ हुए हैं, (यत्) जबकि तू (दस्युहा) शत्रुओं [विघ्नों] का नाश करनेवाला (अभवः) हुआ ॥२॥

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः ।

सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले मनुष्य] (ओजसा सह) पराक्रम के साथ (उत्तिष्ठन्) उठते हुए तू ने (चमू) चमचे मे (सुतम्) सिद्ध किया हुआ (सोमम्) सोम [अन्न आदि महौषधियों का रस] (पीत्वी) पीकर (शिप्रे) दोनों जावड़ों को (अवेपय.) हिलाया है ॥३॥

सूक्तम् ४३

१—३ त्रिशोक । इन्द्रः । गायत्री ।

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।

वसु स्पार्हं तदा भर ॥१॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (विश्वा.) सब (द्विषः) द्वेष करनेवाली सेनाओं में (अप भिन्धि) फूट डाल दे, और (बाध.) रोक डालने वाले (मृध.) संग्रामों को (परि) सब ओर से (जहि) मिटा दे (तत्) उस (स्पार्हम्) चाहने योग्य (वसु) धन को (आ भर) ले आ ॥१॥

यद् वीडाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम् ।

वसु स्पार्हं तदा भर ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (यत्) जो [धन] (वीडौ) बल [वा सेना] में (यत्) जो [धन] (स्थिरे) दृढ़ स्थान मे और (यत्) जो [धन] (पर्शाने) मेघ [वर्षा] में (पराभृतम्) भरा हुआ है, (तत्) उस (स्पार्हम्) चाहने योग्य (वसु) धन को (आ भर) ले आ ॥२॥

यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति । वसु स्पार्हं तदा भर ॥३॥

पदार्थ—(विश्वमानुषः) ससार का प्रत्येक मनुष्य (यस्य ते) जिस तेरे (भूरे) बड़े (दत्तस्य) दान का (वेदति) ज्ञान करे, (तत्) उस (स्पार्हम्) चाहनेयोग्य (वसु) धन को (आ भर) ले आ ॥३॥

सूक्तम् ॥४४॥

१—३ इरिम्बिठिः । इन्द्रः । गायत्री ।

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः ।

नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥१॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (सम्राजम्) सम्राट् [राजाधिराज], (नव्यम्) स्तुतियोग्य, (नरम्) नेता, (नृषाहम्) नेताओं को वश मे रखनेवाले, (मंहिष्ठम्) अत्यन्त दानी (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] को (गीर्भिः) वाणियों से (प्र) अच्छे प्रकार (स्तोत) सराहो ॥१॥

यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या ।

अपामवो न समुद्रे ॥२॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिस [पुरुष] में (विश्वानि) सब (उक्थानि) कहने योग्य वचन (च) और (श्रवस्या) धन के लिये हितकारी कर्म (रण्यन्ति) पहुँचते है, (न) जैसे (समुद्रे) समुद्र मे (अपाम्) जलों की (अवः) गति [पहुँचती है] ॥२॥

तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम् ।

महो वाजिनं सनिभ्यः ॥३॥

पदार्थ—(तम्) उस (ज्येष्ठराजम्) सब से बड़े राजा, (भरे) सग्राम मे (कृत्नुम्) काम करने वाले, (वाजिनम्) महाबलवान् [पुरुष] की, (महः) महत्व के (सनिभ्यः) दानों के लिये, (सुष्टुत्या) सुन्दर स्तुति के साथ (आ) सब प्रकार (विवासे) मैं सेवा करता हूँ ॥३॥

सूक्तम् ४५

१—३ शुनःशेपो देवरातापर नामा । इन्द्रः । गायत्री ।

अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥१॥

पदार्थ—[हे सेनापति !] (अयम्) यह [प्रजा जन] (ते उ) तेरा ही है, तू [उस प्रजा जन से] (सम् अतसि) सदा मिलता रहता है, (इव) जैसे (कपोतः) कबूतर (गर्भधिम्) गर्भ रखनेवाली कबूतरी से [पालने को मिलता है], (तत्) इस लिये तू (चित्) ही (न.) हमारे (वच.) वचन को (ओहसे) सब प्रकार विचारता है ॥१॥

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूतिरस्तु सूनृता ॥२॥

पदार्थ—(राधानां पते) हे धनों के स्वामी ! (गिर्वाहः) हे विद्याओं के पहुँचाने वाले ! (वीर) हे वीर ! (यस्य ते) जिस तेरी (स्तोत्रम्) स्तुति है, [उस तेरी] (विभूतिः) विभूति [ऐश्वर्य] (सूनृता) प्यारी और सच्ची वाणी (अस्तु) होवे ॥२॥

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै ॥३॥

पदार्थ—(शतक्रतो) हे सैकड़ों कर्मों वा बुद्धियों वाले (न.) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (अस्मिन्) इस (वाजे) सग्राम मे (ऊर्ध्वः) ऊपर (तिष्ठ) ठहर, (अन्येषु) दूसरे कामो पर (सम्) मिलकर (ब्रवावहै) हम दोनों बात करें ॥३॥

सूक्तम् ४६

१—३ इरिम्बिठि. । इन्द्र. । गायत्री ।

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु ।

भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥१५॥

पदार्थ—(अस्य) इस [सूर्य] की (केतवः) जताने वाली (रश्मयः) किरणें (जनान् अनु) प्राणियों में (वि) विविध प्रकार से (अदृश्रम्) देखी गयी हैं, (यथा) जैसे (भ्राजन्तः) दहकते हुए (अग्नयः) अंगारे ॥१५॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचन ॥१६॥

पदार्थ—(सूर्य) हे सूर्य ! तू (तरणिः) अन्धकार से पार करनेवाला, (विश्वदर्शतः) सब का दिखानेवाला, (ज्योतिष्कृत्) [चन्द्र आदि में] प्रकाश करने वाला (असि) है । (रोचन) हे चमकनेवाले ! तू (विश्वम्) सब को (आ) सब प्रकार (भासि) चमकाता है ॥१६॥

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः ।

प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥१७॥

पदार्थ—[हे सूर्य !] (देवानाम्) गतिशील [चन्द्र आदि लोकों] की (विशः) प्रजाओं को (प्रत्यङ्) सम्मुख होकर, (मानुषीः) मानुषी [मनुष्य सम्बन्धी पार्थिव प्रजाओं] को (प्रत्यङ्) सम्मुख होकर और (विश्वम्) सब जगत् को (प्रत्यङ्) सम्मुख होकर (स्वः) सुख से (दृशे) देखने के लिये (उत्) ऊँचा होकर (एषि) तू प्राप्त होता है ॥१७॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥१८॥

पदार्थ—(पावक) हे पवित्र करनेवाले ! (वरुण) हे उत्तम गुणवाले ! [रविमण्डल] (येन) जिस (चक्षसा) प्रकाश से (भुरण्यन्तम्) धारण और पोषण करते हुए [पराक्रम] को (जनान् अनु) उत्पन्न प्राणियों में (त्वम्) तू (पश्यसि) दिखाता है ॥१८॥

वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभिः । पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥१९॥

पदार्थ—[उस प्रकाश से] (सूर्य) हे सूर्य ! [रविमण्डल] (अहः) दिन को (अक्तुभिः) रात्रियों के साथ (मिमानः) बनाता हुआ और (जन्मानि) उत्पन्न वस्तुओं को (पश्यन्) दिखाता हुआ तू (द्याम्) आकाश में (पृथु) फैले हुए (रजः) लोक को (वि) विविध प्रकार (एषि) प्राप्त होता है ॥१९॥

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।

शोचिष्केशं विचक्षण ॥२०॥

पदार्थ—(देव) हे चलने वाले (सूर्य) सूर्य ! [रविमण्डल] (सप्त) सात [शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश, चित्र वर्णवाली] (हरितः) आकर्षक किरणें (शोचिष्केशम्) पवित्र प्रकाश वाले (विचक्षणम्) विविध प्रकार दिखाने वाले (त्वा) तुझ को (रथे) रथ [गमन विधान] में (वहन्ति) ले चलती हैं ॥२०॥

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः ।

ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥२१॥

पदार्थ—(सूरः) सूर्य [लोक प्रेरक रविमण्डल] ने (रथस्य) रथ [अपने चलने के विधान] की (नप्त्यः) न गिराने वाली (सप्त) सात [शुक्ल, नील, पीत आदि] (शुन्ध्युवः) शुद्ध किरणों को (अयुक्त) जोड़ा है । (ताभिः) उन (स्वयुक्तिभिः) धन से संयोगवाली [किरणों] के साथ (याति) वह चलता है ॥२१॥

सूक्तम् ४८

(१—६) खिलम्, ४—६ सर्पराज्ञी । सूर्यः गौः । गायत्री ।

अभि त्वा वर्चसा गिरः सिञ्चन्तीराचरण्यवः ।

अभि वत्सं न धेनवः ॥१॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (आचरण्यवः) सब ओर चलती हुई (गिरः) वाणियाँ (त्वा) तुझ को (वर्चसा) प्रकाश के साथ (अभि) सब प्रकार (सिञ्चन्तीः) सींचती हुई [हैं] । (न) जैसे (धेनवः) दुधैल गायें (वत्सम्) [अपने] बच्चे को (अभि) सब प्रकार [सींचती हैं] ॥१॥

ता अर्षन्ति शुभ्रियः पृञ्चन्तीर्वर्चसा प्रियः ।

जातं जात्रीर्यथा हृदा ॥२॥

पदार्थ—(शुभ्रियः) शुद्ध (प्रियः) प्रीति करती हुई (ताः) वे [वाणियाँ] (वर्चसा) प्रकाश के साथ (पृञ्चन्तीः) छूती हुई [तुझको] (अर्षन्ति) ग्रहण करती हैं । (यथा) जैसे (जात्रीः) माताएँ (जातम्) जने हुए बच्चों को (हृदा) हृदय से [ग्रहण करती हैं] ॥२॥

वज्रापवसाध्यः कीर्तिर्म्रियमाणमावहन् । मह्यमायुर्घृतं पयः ॥३॥

पदार्थ—(वज्रापवसाध्यः) शस्त्रों के सोधनेवालों [उजले शस्त्रवालों] की सिद्धि करनेवाला, (कीर्तिः) कीर्तिरूप [बड़े ही यशवाला, परमेश्वर] (मह्यम्) मेरे लिये (म्रियमाणम्) नष्ट होते हुए (आयुः) जीवन, (घृतम्) घी [वा जल] और (पयः) दूध [वा अन्न] को (आवहन्) यथावत् लाता हुआ है ॥३॥

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥४॥

पदार्थ—(अयम्) यह (गौः) चलने वा चलाने वाला, (पृश्निः) रसों वा प्रकाश का छूने वाला सूर्य (आ अक्रमीत्) घूमता हुआ है, (च) और (पितरम्) पालन करने वाले (स्वः) आकाश में (प्रयन्) चलता हुआ (पुरः) सम्मुख होकर (मातरम्) सब को बनाने वाली पृथिवी माता को (असदत्) व्यापा है ॥४॥

अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः । व्यख्यन्महिषः स्वः ॥५॥

पदार्थ—(प्राणात्) भीतर के श्वास के पीछे (अपानतः) बाहर को श्वास निकालते हुए (अस्य) इस [सूर्य] की (रोचना) रोचक ज्योति (अन्तः) [जगत् के] भीतर (चरति) चलती है, और वह (महिषः) बड़ा सूर्य (स्वः) आकाश को (वि) विविध प्रकार (अख्यत्) प्रकाशित करता है ॥५॥

त्रिंशद्धामा वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत् ।

प्रति वस्तोरहर्द्युभिः ॥६॥

पदार्थ—(पतङ्गः) चलनेवाला वा ऐश्वर्यवाला सूर्य (त्रिंशद् धामा) तीस धामों पर [दिन रात्रि के तीस मुहूर्तों पर] (वस्तोः अहः) दिन दिन (द्युभिः) अपनी किरणों और गतियों के साथ (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से (वि) विविध प्रकार (राजति) राज करता वा चमकता है, (वाक्) इस वचन ने [उस सूर्य में] (अशिश्रियत्) आश्रय लिया है ॥६॥

सूक्तम् ४९

१—३ खिलम् । ४—५ नोधा, ६—७ मेध्यातिथिः । गायत्री; ४—५ प्रगाथ (विषमा बृहती; समासतो बृहती) ।

यच्छक्रा वाचमारुहन्नन्तरिक्षं सिषासथः । सं देवा अमदन् वृषा ॥१॥

पदार्थ—(यत्) जब (वृषा) बलवान् परमेश्वर (सिषासथः) दान की इच्छा करनेवाला [हुआ], [तब] (शक्राः) समर्थ (देवाः) विद्वानों ने (वाचम्) वाणी [वेद वाणी] को (अन्तरिक्षम्) हृदय-आकाश में (आरुहन्) बोया और (सम्) ठीक रीति से (अमदन्) आनन्द पाया ॥१॥

शक्रो वाचमधृष्टायोरुवाचो अधृष्णुहि । मंहिष्ठ आ मदर्दिवि ॥२॥

पदार्थ—[हे विद्वान् !] (शक्रः) शक्तिमान् तू (उरुवाचः) बहुत बड़ी वाणी वाले [परमेश्वर] की (वाचम्) वाणी को (अधृष्टाय) डरे हुए पुरुष के लिये (अधृष्णुहि) मत शक्तिहीन कर । वह [परमेश्वर] (मदर्दिवि) जीतने में (आ) सब ओर से (मंहिष्ठः) अत्यन्त उदार है ॥२॥

शक्रो वाचमधृष्णुहि धामधर्मन् वि राजति ।

विमदन् बर्हिरासरन् ॥३॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (शक्रः) शक्तिमान् तू (वाचम्) वाणी [वेद-वाणी] को (अधृष्णुहि) मत शक्तिहीन कर, वह [परमात्मा] (विमदन्) विशेष रीति से आनन्द करता हुआ, (बर्हिः) उत्तम आसन (आसरन्) पाता हुआ (धाम) धाम-धाम [जगह-जगह] और (धर्मन्) धर्म-धर्म [प्रत्येक धारण करने योग्य कर्तव्य-व्यवहार] में (वि राजति) विराजता है ॥३॥

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।

अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥४॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (वः) तुम्हारे लिये (तम्) उस (दस्मम्) दर्शनीय, (ऋतीषहम्) शत्रुओं के हरानेवाले, (वसोः) धन से और (अन्धसः) अन्न से (मन्दानम्) आनन्द देनेवाले (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवाले परमात्मा] को (गीर्भिः) वाणियों से (अभि) सब प्रकार (नवामहे) हम सराहते हैं, (न)

जैसे (धेनव) गौयें (स्वसरेषु) घरों में [वर्तमान] (वत्सम्) बछड़े को [हिङ्कारती है] ॥४॥

पृक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।

क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥५॥

पदार्थ—(पृक्षम्) व्यवहारों में गतिवाले, (सुदानुम्) बड़े दानी, (तविषीभिः) सेनाओं से (आवृतम्) भरपूर, (गिरिम् न) मेघ के समान (पुरुभोजसम्) बहुत पालन करनेवाले, (क्षुमन्तम्) अन्नवाले, (वाजम्) बलवाले, (शतिनम्) सैकड़ों उत्तम पदार्थोंवाले, (सहस्रिणम्) सहस्रों श्रेष्ठ गुणवाले, (गोमन्तम्) उत्तम गौओंवाले [शूर पुरुष] को (मक्षू) शीघ्र [इन्द्र परमात्मा से] (ईमहे) हम मांगते हैं ॥५॥

तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।

येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥६॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] (त्वा) तुझ से (तत्) वह (सुवीर्यम्) बड़ा वीरत्व और (तत्) वह (ब्रह्म) बढ़ता हुआ अन्न (पूर्वचित्तये) पहिले ज्ञान के लिये (यामि) मैं मांगता हूँ । (येन) जिस [वीरत्व और अन्न] से (धने हिते) धन के स्थापित होने पर (यतिभ्यः) यतियों [यत्नशीलों] के लिये (भृगवे = भृगुम्) परिपक्व ज्ञानी को और (येन) जिस से (प्रस्कण्वम्) बड़े बुद्धिमान् पुरुष को (आविथ) तूने बचाया है ॥६॥

येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।

सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥७॥

पदार्थ—(येन) जिस [बल] से (समुद्रम्) समुद्र में (महीः) शक्तिवाले (अपः) जलों को (असृजः) तू ने उत्पन्न किया है, (इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर] (तत्) वह (ते) तेरा (वृष्णि) पराक्रम युक्त (शवः) बल है । (सद्यः) अभी (अस्य) उस [परमात्मा] की (सः) वह (महिमा) [हम से] (न) नहीं (संनशे) पानेयोग्य है, (यम्) जिस [परमात्मा] को (क्षोणी) लोकों ने (अनुचक्रदे) निरन्तर पुकारा है ॥७॥

卐 सूक्तम् ॥५०॥ 卐

१—२ मेध्यातिथि । इन्द्रः । प्रगाथ (बृहती + सतोबृहती) ।

कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।

नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः ॥१॥

पदार्थ—(अतसीनाम्) सदा चलती हुई [सृष्टियों] के (तुरः) वेग देनेवाले [परमात्मा] के (नव्यः) अधिक नवीन कर्म को (मर्त्यः) मनुष्य (कत्) कैसे (गृणीत) बता सके ? (नु) क्या (अस्य) उस की (महिमानम्) महिमा और (इन्द्रियम्) इन्द्रपन [परम ऐश्वर्य] को (गृणन्तः) वर्णन करते हुए पुरुषों ने (स्वः) आनन्द (नहि) नहीं (आनशुः) पाया है ॥१॥

कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते ।

कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः ॥२॥

पदार्थ—(कत् उ) कैसे ही (स्तुवन्तः) स्तुति करनेवाले लोगों ने (ऋतयन्त) सत्य धर्म को चाहा है ? (देवता) विद्वानों में (कः) कौन (ऋषिः) ऋषि [धर्म का साक्षात् करने वाला], (विप्रः) बुद्धिमान् पुरुष (ओहते) सब प्रकार से विचार करे ? (मघवन्) हे अति पूजनीय ! (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मन्] (सुन्वतः) तत्त्व निचोड़नेवाले, (स्तुवतः) स्तुति करने वाले की (हवम्) पुकार को (कदा) कब और (कत्) कैसे (उ) निश्चय कर के (आ) सब प्रकार से (गमः) तू पहुँचा है ॥२॥

卐 सूक्तम् ५१ 卐

(१—४) १—२ प्रस्कण्वः । ३—४ पुष्टिगु । इन्द्रः । प्रगाथः (विषमा बृहती + समा सतो बृहती) ।

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।

यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥१॥

पदार्थ—[हे विद्वान् !] (सुराधसम्) सुन्दर धनों के देनेवाले (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमेश्वर] को (अभि) सब ओर से (प्र) अच्छे प्रकार (वः) स्वीकार कर और (यथा) जैसा (विदे) वह है [वैसा उसे] (अर्च) पूज । (यः) जो (मघवा) पूजनीय, (पुरूवसुः) बड़ा धनी [परमेश्वर] (जरितृभ्यः) स्तुति करनेवालों को (सहस्रेण इव) सहस्र प्रकार से (शिक्षति) देता है ॥१॥

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।

गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥२॥

पदार्थ—(शतानीका इव) सैकड़ों सेनावाले [सेनापति] के समान (धृष्णुया) निर्भय [परमेश्वर] (प्र जिगाति) आगे बढ़ता है और (वृत्राणि) शत्रुओं को (दाशुषे) दाता [आत्मदानी उपासक] के लिए (हन्ति) मारता है । (गिरेः) पहाड़ से (रसाः इव) जलों के समान (अस्य) इस (पुरुभोजसः) बहुत भोजनवाले [परमेश्वर] के (दत्राणि) दानों को (प्र पिन्विरे) सींचते रहते हैं ॥२॥

प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये ।

यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ॥३॥

पदार्थ—(सु श्रुतम्) बड़े विख्यात, (सुराधसम्) सुन्दर धनों के देनेवाले, (शक्रम्) शक्तिमान् [परमेश्वर] को (अभिष्टये) अभीष्ट सिद्धि के लिए (प्र अर्च) अच्छे प्रकार पूज । (यः) जो [परमात्मा] (सुन्वते) तत्त्व निचोड़नेवाले, (स्तुवते) स्तुति करनेवाले को (काम्यम्) मन चाहा (वसु) धन (सहस्रेण इव) सहस्र प्रकार से (मंहते) देता है ॥३॥

शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः ।

गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः ॥४॥

पदार्थ—(अस्य) इस (इन्द्रस्य) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मा] की (महीः) पूजनीय (समिषः) यथावत् इच्छायें (शतानीकाः) सैकड़ों सेना दलों में वर्तमान (हेतयः) बाणों के समान (दुष्टराः) दुस्तर [अजेय] हैं । (गिरिः न) मेघ के समान, वह [परमात्मा] (भुज्मा) भोग्य पदार्थों को (मघवत्सु) गतिवालों पर (पिन्वते) सींचता है, (यत्) जबकि (सुताः) पुत्र [के समान उपासक] (ईम्) प्राप्ति योग्य [परमेश्वर] को (अमन्दिषुः) प्रसन्न कर चुकें ॥४॥

卐 सूक्तम् ॥५२॥ 卐

१—३ मेध्यातिथि । इन्द्रः । बृहती ।

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।

पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥१॥

पदार्थ—(वृत्रहन्) हे शत्रुनाशक ! [परमात्मन्] (सुतवन्तः) तत्त्व के धारण करनेवाले, (वृक्तबर्हिषः) हिंसा त्यागने वाले [अथवा वृद्धि पानेवाले विद्वान्], (स्तोतारः) स्तुति करनेवाले (वयम्) हम लोग (घ) निश्चय करके (त्वाम्) तुझको (परि आसते) सेवते हैं, (पवित्रस्य) शुद्ध स्थान के (प्रस्रवणेषु) झरनों में (आपः न) जैसे जल [ठहरते हैं] ॥१॥

स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः

कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥२॥

पदार्थ—(वसो) हे श्रेष्ठ ! [परमात्मन्] (उक्थिनः) कहनेयोग्य वचनोंवाले (नरः) नर [नेता लोग] (निरेके) निःशङ्क स्थान में (सुते) सार पदार्थ के निमित्त (त्वा) तुझको (स्वरन्ति) पुकारते हैं—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मन्] (कदा) कब (तृषाणः) प्यासे [के समान] तू (सुतम्) पुत्र को (ओकः) घर में (आ गमः) प्राप्त होगा, (स्वब्दी इव) जैसे सुन्दर जल देनेवाला मेघ (वंसगः) सेवनीय पदार्थों का प्राप्त कराने वाला [होता है] ॥२॥

कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।

पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥३॥

पदार्थ—(धृष्णो) हे निर्भय ! [परमात्मन्] (धृषत्) दृढ़ता से (कण्वेभिः) बुद्धिमानों द्वारा [किये हुए] (सहस्रिणम्) सहस्रों आनन्दवाले (वाजम्) वेग का (आ दर्षि) तू आदर करता है । (मघवन्) हे धनवान् ! (विचर्षणे) हे दूरदर्शी ! (पिशङ्गरूपम्) अवयवों को रूप देनेवाली, (गोमन्तम्) वेदवाणी वाले [तुझ] से (मक्षू) शीघ्र (ईमहे) हम प्रार्थना करते हैं ॥३॥

卐 सूक्तम् ॥५३॥ 卐

१—३ मेध्यातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥१॥

पदार्थ—(कः) कौन (सचा) नित्य मेल के साथ (सुते) तत्त्व रस (पिबन्तम्) पीते हुए (ईम्) प्राप्तियोग्य [सेनापति] को (वेद) जानता है ? (कत्) कितना (वयः) जीवन-सामर्थ्य [पराक्रम] (दधे) वह रखता है ? (अयम्) वह (यः) जो (शिप्री) दृढ़ जबड़ेवाला, (अन्धसः) अन्न का (मन्दानः) आनन्द देनेवाला [वीर] (ओजसा) बल से (पुरः) दुर्गों को (विभिनत्ति) तोड़ देता है ॥१॥

दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥२॥

पदार्थ—(न) जैसे (मृगः) जंगली (वारणः) हाथी (दाना) मद के कारण (पुरुत्रा) बहुत प्रकार से (चरथम्) झपट (दधे) लगाता है । [वैसे ही] (नकिः) कोई नहीं (त्वा) तुझे (नि यमत्) रोक सकता, (सुते) तत्त्व रस को (आ गमः) तू प्राप्त हो (महान्) महान् होकर तू (ओजसा) बल के साथ (चरसि) विचरता है ॥२॥

य उग्रः सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो [वीर] (उग्रः) प्रचण्ड (अनिष्टृतः) कभी न हराया गया, (स्थिरः) दृढ़ (सन्) होकर (रणाय) रण के लिये (संस्कृतः) संस्कार किये हुए है । (यदि) यदि (मघवा) वह महाधनी (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला सेनापति] (स्तोतुः) स्तुति करनेवाले की (हवम्) पुकार (शृणवत्) सुने, [तो] (न योषति) वह अलग न रहे, [किन्तु] (आ गमत्) आता रहे ॥३॥

卐 सूक्तम् ॥५४॥ 卐

१—३ रेभः । इन्द्रः । १ अतिजगती, २—३ उपरिष्टाद्बृहती ।

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम् ॥१॥

पदार्थ—(विश्वाः) सब (पृतनाः) सङ्ग्रामों के (अभिभूतरम्) अत्यन्त मिटाने वाले, (क्रत्वा) अपनी बुद्धि से (वरे) श्रेष्ठ व्यवहार में (वरिष्ठम्) अति श्रेष्ठ, (आमुरिम्) शत्रुओं के घेर लेने [वा मार डालने] वाले, (उग्रम्) प्रचण्ड (ओजिष्ठम्) अत्यन्त पराक्रमी, (तवसम्) महाबली (उत) और (तरस्विनम्) बड़े उत्साही (नरम्) नर को (राजसे) राज्य के लिये (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला राजा] को (सजूः) मिलकर (ततक्षुः) उन्होंने [प्रजागणों ने] बनाया (च) और (जजनुः) प्रसिद्ध किया है ॥१॥

समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।
स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥२॥

पदार्थ—(रेभासः) पुकारनेवाले [प्रजागण] (सोमस्य) तत्त्व रस के (पीतये) पीने के लिये (यत्) जब (ईम्-ईम्) अवश्य प्राप्ति के योग्य (स्वर्पतिम्) सुख के रक्षक (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] को (सम्) मिलकर (अस्वरन्) पुकारने लगे, [तब] (वृधे) बढ़ती के लिये (धृतव्रतः) नियम धारण करनेवाला, [वह पुरुष] (हि) निश्चय करके (ओजसा) बल से और (ऊतिभिः) रक्षाओं से (सम्) मिलकर [उन्हें पुकारने लगा] ॥२॥

नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा ।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥३॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (विप्राः) बुद्धिमान् (सुदीतयः) बहुत प्रकाशवाले, (अद्रुहः) द्रोह न करनेवाले, (तरस्विनः) बड़े उत्साहवाले पुरुष (वः) तुम्हारे लिए (कर्णे) काम में (अपि) ही (अभिस्वरा) सब प्रकार से वाणी के साथ (ऋक्वभिः) स्तुतिवाले कर्मों द्वारा (नेमिम्) नेता (मेषम्) सुख से सींचनेवाले [वीर] को (चक्षसा) दर्शन के साथ (सम्) मिलकर (नमन्ति) झुकते हैं ॥३॥

卐 सूक्तम् ५५ 卐

१—३ रेभः । इन्द्रः । बृहती ।

तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि ।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद् राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥१॥

पदार्थ—(मघवानम्) अत्यन्त धनी (उग्रम्) प्रचण्ड, (सत्रा) सच्चे (शवांसि) बलों के (दधानम्) धारण करनेवाले (अप्रतिष्कुतम्) बेरोक गतिवाले (तम्) उस (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले राजा] को (जोहवीमि) मैं बार-बार पुकारता हूँ । (मंहिष्ठः) वह अत्यन्त उदार (यज्ञियः) पूजायोग्य (च) और (वज्री) वज्रधारी [शस्त्र-अस्त्रवाला] (गीर्भिः) हमारी वाणियों से (नः) हम को (राये) धन के लिये (आ) सब प्रकार (ववर्तत्) वर्तमान करे, और (विश्वा) सब कर्मों को (सुपथा) सुन्दर मार्गवाला (कृणोतु) बनावे ॥१॥

या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः ।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (स्वर्वान्) आनन्द युक्त तू (याः) जिन (भुजः) भोग-सामग्रियों को (असुरेभ्यः) दुष्ट मनुष्यों से (आ अभरः) लाया है, (मघवन्) हे बड़े धनी ! (अस्य) उस अपने (स्तोतारम्) स्तुति करनेवाले को (इत्) अवश्य (वर्धय) बढ़ा (च) और [उन्हें भी], (ये) जो (त्वे) तुझ में (वृक्तबर्हिषः) वृद्धि पाने वाले हैं ॥२॥

यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम् ।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् तं धेहि मा पणौ ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (यम्) जिस (अश्वम्) घोड़े को (गाम्) गौ को और (अव्ययम्) अक्षय (भागम्) सेवनीय धन को (त्वम्) तू (दधिषे) धारण करता है, (तम्) उसको (तस्मिन्) उस (सुन्वति) तत्त्व निचोड़ने वाले, (दक्षिणावति) दक्षिणा [प्रतिष्ठा के दान] वाले (यजमाने) यजमान [यज्ञ—श्रेष्ठ कर्म करनेवाले] में (धेहि) धारण कर और (पणौ) कुव्यवहारी में (मा) नहीं ॥३॥

卐 सूक्तम् ५६ 卐

१—६ गोतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥१॥

पदार्थ—(वृत्रहा) रोकने वाले शत्रुओं का नाश करनेवाला (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला सभापति] (मदाय) आनन्द और (शवसे) बल के लिये (नृभिः) नरों [नेताओं] के साथ (वावृधे) बढ़ा है । (तम् ईम्) उस प्राप्ति योग्य को (इत्) ही (महत्सु) बड़े (आजिषु) संग्रामों में (उत) और (अर्भे) छोटे [संग्राम] में (हवामहे) हम बुलाते हैं, (सः) वह (वाजेषु) संग्रामों में (नः) हमें (प्र) अच्छे प्रकार (अविषत्) बचावे ॥१॥

असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः । असि दभ्रस्य
चिद् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥२॥

पदार्थ—(वीर) हे वीर तू (हि) ही (सेन्यः) सेनाओं का हितकारी (असि) है, (भूरि) बहुत प्रकार से (पराददिः) शत्रुओं का पकड़नेवाला (असि) है । तू (दभ्रस्य) छोटे पुरुष का (चित्) अवश्य (वृधः) बढ़ानेवाला (असि) है, तू (सुन्वते) तत्त्व निचोड़नेवाले (यजमानाय) यजमान को (ते) अपना (भूरि) बहुत (वसु) धन (शिक्षसि) देता है ॥२॥

यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना । युक्ष्वा
मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥३॥

पदार्थ—(यत्) जब (आजयः) संग्राम (उदीरते) उठते हैं, (धृष्णवे) निर्भय पुरुष के लिये (धना) धन (धीयते) धरा जाता है । (मदच्युता) आनन्द देने वाले (हरी) दो घोड़ों [के समान बल और पराक्रम] को (युक्ष्व) जोड़,

(कम्‌) किस [शत्रु] को (हनः) तू मारेगा ? (कम्‌) किस [मित्र] को (वसौ) धन के बीच (दधः) तू रक्खेगा ? (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले सेनापति] (अस्मान्‌) हमें तू (वसौ) धन में (दध) रख ॥३॥

मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः । सं गृभाय

पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥४॥

पदार्थ—(ऋजुक्रतुः) सच्ची बुद्धि वा कर्म वाला तू (मदेमदे) आनन्द-आनन्द पर (हि) निश्चय करके (नः) हम को (गवाम्‌) गौ आदि पशुओं के (यूथा) समूहों का (ददिः) देने वाला है, (उभयाहस्त्या) दोनों हाथों से (पुरु) बहुत (शता) सैकड़ों (वसु) धनों को (सम्‌ गृभाय) संग्रह कर, (शिशीहि) तीक्ष्ण हो और (रायः) धनों को (आ) सब ओर से (भर) भर ॥४॥

मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे । विद्मा हि

त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव ॥५॥

पदार्थ—(शूर) हे शूर ! (सुते) उत्पन्न जगत्‌ में (सचा) नित्य मेल के साथ (शवसे) बल के लिये और (राधसे) धन के लिये (मादयस्व) आनन्द दे । (त्वा) तुझ को (हि) निश्चय करके (पुरूवसुम्‌) बहुतों में श्रेष्ठ (विद्म) हम जानते हैं, और (कामान्‌) मनोरथों को (उप) समीप से (ससृज्महे) हम सिद्ध करते हैं, (अथ) इसलिये तू (नः) हमारा (अविता) रक्षक (भव) हो ॥५॥

एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम्‌ । अन्तर्हि

ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ॥६॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्‌] (ते) तेरे लिये (एते) यह (जन्तवः) लोग (विश्वम्‌) सब (वार्यम्‌) स्वीकार योग्य पदार्थ को (पुष्यन्ति) पुष्ट करते हैं । (अर्यः) स्वामी तू (तेषाम्‌) उन (जनानाम्‌) मनुष्यों के (अन्तः) बीच (हि) निश्चय करके (अदाशुषाम्‌) अदानी लोगों की (वेद) समझ को (ख्य) देख और (नः) हमारे लिये (वेदः) विज्ञान को (आ) सब प्रकार (भर) प्राप्त करा ॥६॥

卐 सूक्तम्‌ ॥५७॥ 卐

(१—१६) १—३ मधुच्छन्दा ; ४—७ विश्वामित्र, ८—१० गृत्समद, ११—१६ मेध्यातिथि । इन्द्र । गायत्री ।

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥१॥

पदार्थ—(सुरूपकृत्नुम्‌) सुन्दर स्वभावों के बनाने वाले [राजा] को (ऊतये) रक्षा के लिये (द्यविद्यवि) दिन-दिन (जुहूमसि) हम बुलाते हैं, (इव) जैसे (सुदुघाम्‌) बड़ी दुधेल गौ को (गोदुहे) गौ दोहने वाले के लिये ॥१॥

उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब ।

गोदा इद्रेवतो मदः ॥२॥

पदार्थ—(सोमपाः) हे ऐश्वर्य के रक्षक ! [राजन्‌] (नः) हमारे लिये (सवना) ऐश्वर्ययुक्त पदार्थों को (उप) समीप से (आ गहि) तू प्राप्त हो और (सोमस्य) सोम [तत्त्व रस] का (पिब) पानकर, (रेवतः) धनवान्‌ पुरुष का (मदः) हर्ष (इत्‌) ही (गोदाः) दृष्टि का देनेवाला है ॥२॥

अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्‌ ।

मा नो अति ख्य आ गहि ॥३॥

पदार्थ—[हे राजन्‌] (अथ) और (ते) तेरी । (अन्तमानाम्‌) अत्यन्त समीप रहनेवाली (सुमतीनाम्‌) सुन्दर बुद्धियों का (विद्याम) हम ज्ञान करें । तू (नः) हमें (अति) छोड़कर (मा ख्यः) मत बोल, (आ गहि) तू आ ॥३॥

शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम्‌ ।

इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥४॥

पदार्थ—(शतक्रतो) हे सैकड़ों कर्मों वा बुद्धियोंवाले (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्‌] (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (शुष्मिन्तमम्‌) अत्यन्त बलवान्‌, (द्युम्निनम्‌) अत्यन्त धनी वा यशस्वी और (जागृविम्‌) जागने वाले [चौकस] पुरुष की और (सोमम्‌) ऐश्वर्य की (पाहि) रक्षा कर ॥४॥

इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु ।

इन्द्र तानि त आ वृणे ॥५॥

पदार्थ—(शतक्रतो) हे सैकड़ों कर्मों वा बुद्धियोंवाले (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्‌] (या) जो (ते) तेरे (इन्द्रियाणि) इन्द्र [ऐश्वर्यवान्‌] के चिह्न धनादि (पञ्चसु जनेषु) पंच [मुख्य] लोगों में हैं । (ते) तेरे (तानि) उन [चिह्नों] को (आ) सब प्रकार (वृणे) मैं स्वीकार करता हूँ ॥५॥

अगन्निन्द्र श्रवो बृहद्द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम्‌ ।

उत्ते शुष्मं तिरामसि ॥६॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्‌] (बृहत्‌) बड़ा (श्रवः) अन्न [हमको] (अगन्‌) प्राप्त हुआ है, (दुष्टरम्‌) दुस्तर [अजेय] (द्युम्नम्‌) चमकनेवाले यश को (दधिष्व) तू धारण कर, (ते) तेरे (शुष्मम्‌) बल को (उत्‌ तिरामसि) हम बढ़ाते हैं ॥६॥

अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः ।

उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥७॥

पदार्थ—(शक्र) हे समर्थ ! (अर्वावतः) समीप से (अथो) और (परावतः) दूर से (नः) हमें (आ गहि) प्राप्त हो, (अद्रिवः) हे वज्रधारी (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्‌] (उ) और (यः) जो (ते) तेरा (लोकः) स्थान है, (ततः) वहाँ से (इह) यहाँ पर (आ गहि) तू आ ॥७॥

इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत्‌ ।

स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥८॥

पदार्थ—(अङ्ग) हे विद्वान्‌ ! (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले राजा] ने (महत्‌) बड़े और (अभि) सब ओर से (सत्‌) वर्तमान (भयम्‌) भय को (अप चुच्यवत्‌) हटा दिया है । (सः हि) वही (स्थिरः) दृढ़ और (विचर्षणिः) विशेष देखने वाला है ॥८॥

इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत्‌ ।

भद्रं भवाति नः पुरः ॥९॥

पदार्थ—(इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला राजा] (च) निश्चय करके (नः) हमें (मृळयाति) सुखी करे, (अघम्‌) पाप (नः) हम को (पश्चात्‌) पीछे (न) न (नशत्‌) नाश करे । (भद्रम्‌) कल्याण (नः) हमारे लिये (पुरस्तात्‌) आगे (भवाति) होवे ॥९॥

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत्‌ ।

जेता शत्रून्विचर्षणिः ॥१०॥

पदार्थ—(इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला राजा] (सर्वाभ्यः) सब (आशाभ्यः) आशाओं [गहरी इच्छाओं] के लिये (अभयम्‌) अभय (परि) सब ओर से (करत्‌) करे । वह (शत्रून्‌ जेता) शत्रुओं को जीतने वाला और (विचर्षणिः) विशेष देखनेवाला है ॥१०॥

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे ।

अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥११॥

पदार्थ—(कः) कौन (सचा) नित्य मेल के साथ (सुते) तत्त्वरस (पिबन्तम्‌) पीते हुए (ईम्‌) प्राप्ति योग्य [सेनापति] को (वेद) जानता है ? (कत्‌) कितना (वयः) जीवन-सामर्थ्य [पराक्रम] (दधे) वह रखता है ? (अयम्‌) यह (यः) जो (शिप्री) दृढ़ जबड़े वाला (अन्धसः) अन्न का (मन्दानः) आनन्द देनेवाला [वीर] (ओजसा) बल से (पुरः) दुर्गों को (विभिनत्ति) तोड़ देता है ॥११॥

दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।

नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥१२॥

पदार्थ—(न) जैसे (मृगः) जंगली (वारणः) हाथी (दाना) मद के कारण (पुरुत्रा) बहुत प्रकार से (चरथम्‌) झपट (दधे) लगाता है । [वैसे ही] (नकिः) कोई नहीं (त्वा) तुझे (नि यमत्‌) रोक सकता, (सुते) तत्त्व-रस को (आ गमः) तू प्राप्त हो, (महान्‌) महान्‌ होकर तू (ओजसा) बल के साथ (चरसि) विचरता है ॥१२॥

य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।

यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत्‌ ॥१३॥

किया गया है, (अथ) सो, (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] (मे) मेरे लिये (चित्) भी (सखा) नित्य मेल से [रह] ॥२॥

मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते । मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥३॥

पदार्थ—(वाजानां पते) हे धनों के रक्षक ! (ब्रह्मा इव) ब्रह्मा [वेदज्ञाता] के समान [होकर] तू (तन्द्रयुः) आलसी (मो षु भुवः) कभी भी मत हो, (गोमतः) वेदवाणी से युक्त (सुतस्य) तत्त्व रस का (मत्स्व) आनन्द भोग ॥३॥

एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही । पक्वा शाखा न दाशुषे ॥४॥

पदार्थ—(अस्य) उस [सभापति] की (सूनृता) अन्नवाली क्रिया (एव) निश्चय करके (हि) ही (विरप्शी) स्पष्ट वाणीवाली, (गोमती) श्रेष्ठ दृष्टिवाली, (मही) सत्कारयोग्य, (पक्वा) परिपक्व [फल-फूलवाली] (शाखा न) शाखा के समान (दाशुषे) आत्मदानी पुरुष के लिये [होवे] ॥४॥

एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥५॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (एव) निश्चय करके (हि) ही (ते) तेरे (विभूतयः) अनेक ऐश्वर्य (मावते) मेरे तुल्य (दाशुषे) आत्मदानी के लिये (सद्यः चित्) तुरन्त ही (ऊतयः) रक्षासाधन (सन्ति) होते हैं ॥५॥

एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये ॥६॥

पदार्थ—(एव) निश्चय करके (हि) ही (अस्य) उस [सभापति] के (काम्या) मनोहर और (शंस्या) प्रशसनीय (स्तोमः) उत्तम गुण (च) और (उक्थम्) कहनेयोग्य कर्म (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् पुरुष के लिये (सोमपीतये) तत्त्वरस पीने के निमित्त [हैं] ॥६॥

卐 सूक्तम् ॥६१॥ 卐

१—६ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । इन्द्रः । उष्णिक् ।

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम् ।
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥१॥

पदार्थ—(अद्रिवः) हे मेघों के धारण करनेवाले ! [परमेश्वर] (ते) तेरे (तम्) उस (वृषणम्) महाबलवाले, (पृत्सु) संग्रामों में (सासहिम्) विजय करनेवाले, (लोककृत्नुम्) लोकों के बनानेवाले (उ) और (हरिश्रियम्) मनुष्यों में श्री [सेवनीय सम्पत्ति वा शोभा] देनेवाले (मदम्) आनन्द को (गृणीमसि) हम स्तुति करते हैं ॥१॥

येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥२॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (येन) जिस [यज्ञ] के द्वारा (आयवे) गतिशील [उद्योगी] (च) और (मनवे) मननशील मनुष्य के लिये (ज्योतींषि) ज्योतियों को (विवेदिथ) तू ने प्राप्त कराया है, (मन्दानः) आनन्द करता हुआ तू (अस्य) उस (बर्हिषः) बढ़े हुए यज्ञ [संसार] का (वि) विशेष करके (राजसि) राजा है ॥२॥

तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ।
वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥३॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (ते) तेरे (तत्) उस [सामर्थ्य] को (उक्थिनः) कहनेयोग्य के कहनेहारे पुरुष (अद्य चित्) अब भी (पूर्वथा) पहिले के समान (अनु) लगातार (स्तुवन्ति) गाते हैं । [जिस सामर्थ्य से] (वृषपत्नी) बलवान् [तुझ परमात्मा] से रक्षा की हुई (अपः) प्रजाओं [को] (दिवेदिवे) दिन-दिन (जय) तू जीतता है ॥३॥

तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।
इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥४॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] (तम् उ) उस ही (पुरुहूतम्) बहुत पुकारे हुए, (पुरुष्टुतम्) बहुत बड़ाई किए हुए, (तविषम्) महान् (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] को (अभि) सब ओर से (प्र) भले प्रकार (गायत) गाओ, और (गीर्भिः) वाणियों से (आ) सब प्रकार (विवासत) सत्कार करो ॥४॥

यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी ।
गिरींरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥५॥

पदार्थ—(द्विबर्हसः) दोनों विद्या और पुरुषार्थ में बढ़े हुए (यस्य) जिस [परमात्मा] के (बृहत्) बड़े (सहः) सामर्थ्य ने (रोदसी) सूर्य और भूमि, (अज्रान्) शीघ्रगामी (गिरीन्) मेघों, (अपः) जलों [समुद्र आदि] और (स्वः) प्रकाश को (वृषत्वना) बल के साथ (दाधार) धारण किया है ॥५॥

स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे ।
इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥६॥

पदार्थ—(पुरुष्टुत) हे बहुत स्तुति किये हुए (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (सः) सो (एकः) अकेला तू (जैत्रा) जीतनेवालों के योग्य धनों (च) और (श्रवस्या) यश के लिये हितकारी कर्मों को (यन्तवे) नियम में रखने के लिये, (राजसि) राज्य करता है, और (वृत्राणि) रोकनेवाले विघ्नों को (जिघ्नसे) मिटाता है ॥६॥

卐 सूक्तम् ॥६२॥ 卐

(१—१०) १-४ सोभरि, ५-७ नृमेधः, ८-१० गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । इन्द्रः । *उष्णिक्; १-४ प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)* ।

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः ।
वाजे चित्रं हवामहे ॥१॥

पदार्थ—(अपूर्व्य) हे अनुपम ! [राजन्] (कत् चित्) कुछ भी (स्थूरम्) स्थिर (न) नहीं (भरन्तः) रखते हुए, (अवस्यवः) रक्षा चाहनेवाले (वयम्) हम (वाजे) संग्राम के बीच (चित्रम्) विचित्र स्वभाववाले (त्वाम्) तुझ को (उ) ही (हवामहे) बुलाते हैं ॥१॥

उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥२॥

पदार्थ—(कर्मन्) कर्म के बीच (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (सः) उस (यः) जिस (युवा) स्वभाव से बलवान्, (उग्रः) तेजस्वी और (धृषत्) निर्भय पुरुष ने (चक्राम) पैर बढ़ाया है, (इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन्] (अवितारम्) उस रक्षक और (सानसिम्) दानी (त्वा) तुझ को, (त्वाम्) तुझको (हि) ही (इत) अवश्य (सखायः) हम मित्र लोग (उप) आदर से (ववृमहे) चुनते हैं ॥२॥

यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो [पराक्रमी] (नः) हमारे लिये (इदमिदम्) इस-इस (वस्यः) उत्तम वस्तु को (प्र) अच्छे प्रकार (आनिनाय) लाया है, (तम् उ) उस ही (इन्द्रम्) इन्द्र [महाप्रतापी वीर] को, (सखायः) हे मित्रो ! (वः) तुम्हारी (ऊतये) रक्षा के लिये (स्तुषे) मैं सराहता हूँ ॥३॥

हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥४॥

पदार्थ—(सः) वह (हि) ही (स्म) अवश्य [मनुष्य है], (यः) जिस ने (हर्यश्वम्) ले चलनेवाले घोड़ों से युक्त, (सत्पतिम्) सत्पुरुषों के रक्षक, (चर्षणीसहम्) मनुष्यों को नियम में रखने वाले [राजा] को (अमन्दत) प्रसन्न किया है। (सः) वह (मघवा) महाधनी (तु) तो (नः) हम (स्तोतृभ्यः) स्तुतिकरने वालों को (शतम्) सौ [बहुत] (गव्यम्) गौओं का समूह और (अश्व्यम्) घोड़ों का समूह (आ वयति) लाता है ॥ ॥

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥५॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (विप्राय) बुद्धिमान्, (बृहते) महान्, (धर्मकृते) धर्म [धारणयोग्य नियम] के बनानेवाले, (विपश्चिते) विशेष महाज्ञानी, (पनस्यवे) सब के लिये व्यवहार चाहनेवाले, (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर] के लिये (बृहत्) बड़े (साम) साम [दुःखनाशक मोक्षज्ञान] का (गायत) तुम गान करो ॥५॥

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः ।

विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥६॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (त्वम्) तू (अभिभूः) विजयी (असि) है, (त्वम्) तू ने (सूर्यम्) सूर्य को (अरोचयः) चमक दी है । तू (विश्वकर्मा) विश्वकर्मा [सब का बनाने वाला], (विश्वदेवः) विश्वदेव [सब का पूजनीय] और (महान्) महान् [अति प्रबल] (असि) है ॥६॥

विभ्राजं ज्योतिषा स्व१रगच्छो रोचनं दिवः ।

देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥७॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (ज्योतिषा) अपनी ज्योति से (विभ्राजन्) चमकता हुआ तू (दिवः) सूर्य के (रोचनम्) चमकाने वाले (स्वः) अपने आनन्द स्वरूप को (अगच्छः) प्राप्त हुआ है, (देवाः) विद्वानों ने (ते) तेरी (सख्याय) मित्रता के लिये (येमिरे) उद्योग किया है ॥७॥

तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।

इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥८॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] (तम् उ) उस ही (पुरुहूतम्) बहुत पुकारे हुए, (पुरुष्टुतम्) बहुत बड़ाई किये हुए, (तविषम्) महान् (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मा] को (अभि) सब ओर से (प्र) भले प्रकार (गायत) गाओ, और (गीर्भिः) वाणियों से (आ) सब प्रकार (विवासत) सत्कार करो ॥८॥

यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी ।

गिरीँरज्राँ अपः स्व१र्वृषत्वना ॥९॥

पदार्थ—(द्विबर्हसः) दोनों विद्या और पुरुषार्थ में बढ़े हुए (यस्य) जिस [परमात्मा] के (बृहत्) बड़े (सहः) सामर्थ्य ने (रोदसी) सूर्य और भूमि, (अज्रान्) शीघ्रगामी (गिरीन्) मेघों, (अपः) जलों [समुद्र आदि] और (स्वः) प्रकाश को (वृषत्वना) बल के साथ (दाधार) धारण किया है ॥९॥

स राजसि पुरुष्टुतं एको वृत्राणि जिघ्नसे ।

इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥१०॥

पदार्थ—(पुरुष्टुत) हे बहुत स्तुति किये हुए (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (सः) सो (एकः) अकेला तू (जैत्रा) जीतने वालों के योग्य धनों (च) और (श्रवस्या) यश के लिये हितकारी कर्मों को (यन्तवे) नियम में रखने के लिए (राजसि) राज्य करता है, और (वृत्राणि) रोकने वाले विघ्नों को (जिघ्नसे) मिटाता है ॥१०॥

卐 सूक्तम् ६३ 卐

(१—९) १-३ भुवन साधनो वा, ३ [द्वि०] भरद्वाज, ४-६ गोतम ; ७-९ पर्वत । इन्द्रः । त्रिष्टुप्, उष्णिक् ।

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ।

यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥१॥

पदार्थ—(इमा) यह (भुवना) उत्पन्न पदार्थ, (च) और (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला सभापति] (च) और (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग हम (नु) शीघ्र (कम्) सुख को (सीषधाम) सिद्ध करें । (आदित्यैः सह) अखण्ड व्रतधारी विद्वानों के साथ (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला सभापति] (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ [मेल-मिलाप आदि] (च) और (तन्वम्) शरीर (च) और (प्रजाम्) प्रजा [सन्तान आदि] को (च) भी (चीक्लृपाति) समर्थ करे ॥१॥

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ।

हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥२॥

पदार्थ—(सगणः) गणों [सुभट वीरों] के साथ वर्तमान (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला सभापति] (आदित्यैः) अखण्ड व्रतधारी (मरुद्भिः) शूर मनुष्यों के साथ (अस्माकम्) हमारे (तनूनाम्) शरीरों का (अविता) रक्षक (भूतु) होवे । (यत्) क्योंकि (असुरान्) असुरों [दुराचारियों] को (हत्वाय) मारकर (देवाः) विजय चाहनेवाले, (अभिरक्षमाणाः) सब ओर से रक्षा करते हुए (देवाः) विद्वानों ने (देवत्वम्) देवतापन [उत्तमपद] (आयन्) पाया है ॥२॥

प्रत्यञ्चमर्कमनयं छचीभिरादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ।

अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥३॥

पदार्थ—(प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष पानेयोग्य (अर्कम्) पूजनीय व्यवहार को (शचीभिः) अपने कर्मों से (अनयन्) उन [विद्वानों] ने प्राप्त कराया है, और (आत् इत्) तभी (इषिराम्) चलानेवाली (स्वधाम्) आत्मधारण-शक्ति को (परि) सब ओर (अपश्यन्) देखा है । (अया) इसी [नीति] से (शतहिमाः) सौ वर्षों जीते हुए (सुवीराः) उत्तम वीरों वाले हम (देवहितम्) विद्वानों के हितकारी (वाजम्) विज्ञान को (सनेम) देवें और (मदेम) आनन्द करें ॥३॥

य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।

ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥४॥

पदार्थ—(यः) जो (एकः) अकेला (इत्) ही (दाशुषे) दाता (मर्ताय) मनुष्य के लिये (वसु) धन (विदयते) बहुत प्रकार देता है, (अङ्ग) हे मित्र ! वह (ईशानः) समर्थ, (अप्रतिष्कुतः) बे रोके गतिवाला (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला सभापति] होता है ॥४॥

कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।

कदा नः शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥५॥

पदार्थ—(अङ्ग) हे मित्र ! (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले सभापति आप] (कदा) कब (अराधसम्) आराधना न करनेवाले (मर्तम्) मनुष्य को (पदा) पांव से (क्षुम्पम् इव) खुम्भी [गली लकड़ी से उगे हुए छत्राकार छोटे पौधे] के समान (स्फुरत्) नष्ट करेंगे और (कदा) कब (नः) हमारी (गिरः) वाणियों को (शुश्रवत्) सुनेंगे ॥५॥

यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।

उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥६॥

पदार्थ—[हे प्रजागण !] (बहुभ्यः) बहुतों में से (यः चित् हि) जो कोई भी (सुतवान्) तत्त्वरस वाला [मनुष्य] (त्वा) तुझको (आ) निश्चय करके (आविवासति) भले प्रकार सेवा करता है, (तत्) उसी से (अङ्ग) हे मित्र ! (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला सभापति] (उग्रम्) भारी (शवः) बल (पत्यते) पाता है ॥६॥

य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।

येना हंसि न्य१त्रिणं तमीमहे ॥७॥

पदार्थ—(शविष्ठ) हे महाबली ! (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मन् तेरा] (यः) जो (सोमपातमः) ऐश्वर्य का अत्यन्त रक्षक (मदः) आनन्द (चेतति) चेताने वाला है, और (येन) जिस [आनन्द] से (अत्रिणम्) खाऊ [स्वार्थी दुर्जन] को (नि हंसि) तू मार गिराता है, (तम्) उस [आनन्द] को (ईमहे) हम मांगते हैं ॥७॥

येना दशग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम् ।

येना समुद्रमाविथा तमीमहे ॥८॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] (येन) जिस [नियम] से (दशग्वम्) दस दिशाओं में जाने वाले, (अध्रिगुम्) बेरोक गतिवाले, (वेपयन्तम्) [वैरियों को] कंपाते हुए, (स्वर्णरम्) सुख पहुँचानेवाले [वीर] को और (येन) जिस [नियम] से (समुद्रम्) समुद्र के समान [गम्भीर पुरुष] को (आविथ) तू ने बचाया है, (तम्) उस [नियम] को (ईमहे) हम मांगते हैं ॥८॥

येन सिन्धुं महीरपो रथाँ इव प्रचोदयः ।

पन्थामृतस्य यातवे तमीमहे ॥९॥

पदार्थ—[हे जगदीश्वर !] (येन) जिस [नियम] से (सिन्धुम्) समुद्र में (महीः) भारी (अपः) जलों को (रथान् इव) रथों के समान (प्रचोदयः) तू ने चलाया है, (ऋतस्य) सत्य के (पन्थाम्) मार्ग पर (यातवे) चलाने के लिये (तम्) उस [नियम] को (ईमहे) हम मांगते हैं ॥९॥

卐 सूक्तम् ६४ 卐

[१-६] १-३ नृमेधः, ४-६ विश्वमनाः । इन्द्रः । उष्णिक् ।

एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः ।

गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मन्] (प्रियः) प्यारा, (सत्राजित्) सत्य से जीतने वाला, (अगोह्यः) न छिपनेवाला तू (नः) हमको (आ) सब ओर से (गधि) प्राप्त हो, तू (गिरिः न) मेह के समान (विश्वतः) सब ओर से (पृथुः) फैला हुआ, (दिवः) प्राप्तियोग्य सुख का (पतिः) स्वामी है ॥१॥

अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।

इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥२॥

पदार्थ—(सत्य) हे सत्यस्वरूप ! (सोमपा) हे ऐश्वर्यरक्षक ! (हि) निश्चय कर के (उभे) दोनों (रोदसी) सूर्य और भूमि को (अभि बभूथ) तूने वश में किया है, (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवान् परमात्मन्] तू (सुन्वतः) तत्त्व रस निचोड़ने वाले पुरुष का (वृधः) बढ़ाने वाला, (दिवः) सुख का (पतिः) स्वामी (असि) है ॥२॥

त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि ।

हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मन्] (त्वम्) तू (हि) ही [शत्रुओं की] (शश्वतीनाम्) सब (पुराम्) नगरियों का (दर्ता) तोड़ने वाला, (दस्योः) डाकू का (हन्ता) मारने वाला और (मनोः) ज्ञानी का (वृधः) बढ़ाने वाला (दिवः) सुख का (पतिः) स्वामी (असि) है ॥३॥

एदु मध्वो मदिन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः ।

एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥४॥

पदार्थ—(अध्वर्यो) हे हिंसा न चाहनेवाले पुरुष ! (मध्वः) ज्ञान [मधु विद्या] के (वा) और (अन्धसः) अन्न के (मदिन्तरम्) अधिक आनन्द देने वाले रस को (इत् उ) अवश्य ही (आ) सब ओर (सिञ्च) सींच, (सदावृधः) सदा बढ़ाने वाला (वीरः) वीर (एव) इस प्रकार (हि) ही (स्तवते) स्तुति किया जाता है ॥ ४ ॥

इन्द्र स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम् ।

उदानंश शवसा न भन्दना ॥५॥

पदार्थ—(हरीणाम्) दुःख हरनेवाले मनुष्यों में (स्थातः) ठहरनेवाले (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मन्] (ते) तेरी (पूर्व्यस्तुतिम्) प्राचीन बड़ाई को (नकिः) न किसी ने (शवसा) अपने बल से और (न) न (भन्दना) शुभ कर्म से (उत् आनंश) पाया है ॥५॥

तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः ।

अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥६॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (वः) तुम्हारे लिये (तम्) उस (वाजानाम्) बलों के (पतिम्) स्वामी, (अप्रायुभिः) बिना भूल (यज्ञेभिः) पूजनीय व्यवहारों से (वावृधेन्यम्) बढ़ाने वाले [परमात्मा] को (श्रवस्यवः) कीर्ति चाहनेवाले हम लोगों ने (अहूमहि) पुकारा है ॥६॥

卐 सूक्तम् ६५ 卐

१—३ विश्वमनाः । इन्द्रः । उष्णिक् ।

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् ।

कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥१॥

पदार्थ—(सखायः) हे मित्रो ! (नु) शीघ्र (एतो) आओ भी, (स्तोम्यम्) स्तुतियोग्य (नरम्) नेता [प्रेरक] (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य-वाले परमात्मा] की (स्तवाम) हम स्तुति करें, (यः) जो (एकः) अकेला (इत्) ही (विश्वाः) सब (कृष्टीः) मनुष्यों को (अभि अस्ति) वश में रखता है ॥१॥

अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः ।

घृतात् स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥२॥

यस्यामितानि वीर्या न राधः पर्येतवे ।

ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥३॥

पदार्थ—(अगोरुधाय) दृष्टि को न रोकनेवाले, (गविषे) स्तोताओं [गुण-व्याख्याताओं] को चाहनेवाले, (द्युक्षाय) व्यवहारों में गतिवाले [उस परमेश्वर] के लिये (घृतात्) घृत से (च) और (मधुनः) मधु [रस विशेष] से (स्वादीयः) अधिक स्वादु और (दस्म्यम्) दर्शनीय [विचारणीय] (वचः) वचन (वोचत) तुम बोलो ॥२॥ (यस्य) जिस [परमात्मा] के (वीर्या) वीर कर्म (अमितानि) बे माप हैं, [जिसका] (राधः) धन (पर्येतवे) पार पाने योग्य (न) नहीं है और [जिसकी] (दक्षिणा) दक्षिणा [दानशक्ति], (ज्योतिः न) प्रकाश के समान (विश्वम् अभि) सब पर फैलकर (अस्ति) वर्तमान है ॥३॥

卐 सूक्तम् ६६ 卐

१—३ विश्वमनाः । इन्द्रः । उष्णिक् ।

स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम् ।

अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे ॥१॥

पदार्थ—[हे विद्वान् !] (व्यश्ववत्) विविध वेगवाले पुरुष के समान (अनूर्मिम्) बिना पीड़ावाले, (वाजिनम्) पराक्रमी, (यमम्) न्यायकारी (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवान् पुरुष] की (स्तुहि) स्तुति कर । (अर्यः) स्वामी (दाशुषे) आत्मदानी भक्त के लिए (वि) विविध प्रकार (मंहमानम्) बढ़ते हुए (गयम्) धन सदृश है ॥१॥

एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम् ।

सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् ॥२॥

पदार्थ—(वैयश्व) हे विविध वेगवाले पुरुष ! (दशमम्) प्रकाशमान [अथवा जीवन के दसवें काल तक] (नवम्) स्तुतियोग्य [वा नवीन अर्थात् बलवान्], (सुविद्वांसम्) बड़े विद्वान् और (चरणीनाम्) चलनेवाले मनुष्यों में (चर्कृत्यम्) अत्यन्त करनेयोग्य कर्मों में चतुर को (एव) निश्चय करके (नूनम्) अवश्य (उप) आदर से (स्तुहि) तू स्तुति कर ॥२॥

वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।

अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥३॥

पदार्थ—(वज्रहस्त) हे हाथ में वज्र रखने वाले ! (हि) निश्चय करके (परिपदाम्) विपत्तियों के (शुन्ध्युः इव) शोधनेवाले के समान (अहरहः) दिन-दिन (निर्ऋतीनाम्) महाविपत्तियों के (परिवृजम्) रोकने को (वेत्थ) तू जानता है ॥३॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

षष्ठोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ६७ 卐

[१—७] १-३ परुच्छेपः, ४-७ गृत्समदः । १ इन्द्रः । २ [मरुतः, ३ अग्निः । १-३ अत्यष्टिः ; ४-७ जगती ।

वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः । सुन्वान इत् सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः । सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥१॥

पदार्थ—(सुन्वन्) तत्त्व निकालता हुआ पुरुष (हि) ही (परीणसः) पानेयोग्य धन के (क्षयम्) घर को (वनोति) सेवता है [भोगता है], (सुन्वानः) तत्त्व निकालता हुआ पुरुष (हि) ही (स्म) अवश्य (द्विषः) वैरियों को (अव यजति) दूर करता है, (देवानाम्) विद्वानों के (द्विषः) वैरियों को (अव) दूर [करता है], (सुन्वानः) तत्त्व रस निकालता हुआ पुरुष (इत्) ही (वाजी) पराक्रमी और (अवृतः) बेरोक होकर (सहस्रा) सैकड़ों सुख (सिषासति) सेना चाहता है । (सुन्वानाय) तत्त्व निकालते हुए पुरुष को (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला परमात्मा] (आभुवम्) सब ओर से पाने योग्य (रयिम्) धन (ददाति) देता है, (आभुवम्) सब ओर से रहने योग्य [धन] (ददाति) देता है ॥१॥

मो षु णो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन् द्युम्नानि मोत जारिषु-रस्मत् पुरोत जारिषुः । यद् वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम् । अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥२॥

पदार्थ—(मरुतः) हे शत्रुओं के मारनेवाले वीरो ! (अस्मत्) हम पर से (वः) तुम्हारे (तानि) वे (सना) सनातन [वा सेवनीय] (पौंस्या) मनुष्य कर्म [वा बल] (मो षु अभि भूवन्) कभी भी न हट जावें, (उत) और [तुम्हारे] (द्युम्नानि) चमकते हुए यश वा धन (मा जारिषुः) कभी न घटें, (उत) और (अस्मत्) हम से (पुरा) आगे को (जारिषुः) बड़ाई-योग्य होवें । और (यत्) जो (वः) तुम्हारा (चित्रम्) विचित्र [अद्भुत] कर्म (युगे युगे) युग युग में [समय-समय पर] (घोषात्) घोषणा देने से (नव्यम्) स्तुति योग्य [वा नवीन] और (अमर्त्यम्) मनुष्यों में दुर्लभ है, (च) और (यत्) जो कुछ (दुष्टरम्) पाने में कठिन (च) और (यत्) जो कुछ (दुष्टरम्) पाने में कठिन है, (तत्) उस को (अस्मासु) हम में (दिधृत) धारण करो ॥२॥

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् । य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा । घृतस्य विभ्राष्टि-मनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः ॥३॥

पदार्थ—(होतारम्) ग्रहण करनेवाले, (दास्वन्तम्) दान करनेवाले, (वसुम्) श्रेष्ठ गुणवाले, (सहसः) बलवान् पुरुष के (सूनुम्) पुत्र, (जातवेदसम्) प्रसिद्ध विद्यावाले (विप्रम् न) बुद्धिमान् के समान (जातवेदसम्) प्रसिद्ध विद्या वाले विद्वान् को (अग्निम्) उस अग्नि के समान (मन्ये) मैं मानता हूँ । (यः) जो (देवः) प्रकाशमान, (स्वध्वरः) अच्छे प्रकार हिंसारहित यज्ञ का साधनेवाला अग्नि [(ऊर्ध्वया) ऊंची (देवाच्या) गतिशील [वायु आदि देवताओं] को पहुँचाने वाली (कृपा) शक्ति के साथ (आजुह्वानस्य) होमे हुए और (सर्पिषः) पिघले हुए (घृतस्य) घी की (शोचिषा) शुद्धि से (विभ्राष्टिम्) विविध प्रकाश को (अनु) लगातार (वष्टि) चाहता है ॥३॥

यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत । आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥४॥

पदार्थ—(भरतस्य सूनवः) हे धारण करनेवाले पुरुष के पुत्रो ! (दिवः) हे विजय चाहनेवाले (नरः) नरो ! [नेता लोगो] (यज्ञैः) पूजनीय व्यवहारों से, (पृषतीभिः) सेचन क्रियाओं से और (ऋष्टिभिः) दोधारा तलवारों से (संमिश्लाः) अच्छे प्रकार मिले हुए [सजे हुए] (उत) और (यामन्) प्राप्त हुए समय पर (अञ्जिषु) कामनायोग्य कर्मों से (शुभ्रासः) शोभायमान (प्रियः) प्यारे तुम (बर्हिः) उत्तम आसन (आसद्य) पा कर (पोत्रात्) पवित्र आचरण से (सोमम्) सोम [तत्त्व रस] को (आ) भले प्रकार (पिबत) पीओ ॥४॥

आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन् होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु । प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात् तव भागस्य तृप्णुहि ॥५॥

पदार्थ—(विप्र) हे बुद्धिमान् ! (होतः) हे दाता ! (इह) यहां पर (देवान्) दिव्य गुणों का (आ) अच्छे प्रकार (वक्षि) तू कहता है (च) और (यक्षि) तू देता है, सो (उशन्) कामना करता हुआ तू (त्रिषु) तीन [कर्म, उपासना, ज्ञान] (योनिषु) निमित्तों में (नि) निरन्तर (सद) स्थिर हो । (प्रस्थितम्) उपस्थित किये हुए (सोम्यम्) सोम [तत्त्व रस] से युक्त (मधु) निश्चित ज्ञान को (प्रति) प्रतिज्ञापूर्वक (वीहि) प्राप्त हो, और (पिब) पान कर, और (आग्नीध्रात्) अग्नि की प्रकाश विद्या को प्रकाश में रखने वाले व्यवहार से (तव) अपने (भागस्य) भाग की (तृप्णुहि) तृप्ति कर ॥५॥

एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः । तुभ्यं सुतो मघवन् तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत् पिब ॥६॥

पदार्थ—(एषः स्यः) यही (नृम्णवर्धनः) धन का बढ़ाने वाला [तत्त्व रस] (ते) तेरे (तन्वः) शरीर का (सहः) बल और (ओजः) पराक्रम होकर (प्रदिवि) उत्तम व्यवहार के बीच (बाह्वोः) तेरी दोनों भुजाओं पर (हितः) धरा गया है । (मघवन्) हे बड़े धनी ! (तुभ्यम्) तेरे लिये (सुतः) सिद्ध किया हुआ [तत्त्व रस] (तुभ्यम्) तुझ को (आभृतः) धारण किया गया है, (त्वम्) तू (ब्राह्मणात्) ब्रह्म [परमेश्वर] के ज्ञान से (आ) भले प्रकार (तृपत्) तृप्त होता हुआ (अस्य) इस [तत्त्व रस] का (पिब) पान कर ॥ ६ ॥

यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते । अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥७॥

पदार्थ—(यम्) जिस [पराक्रमी] को (उ) ही (पूर्वम्) पहिले (अहुवे) मैंने ग्रहण किया था, (तम्) उस [पुरुष] को (इदम्) अब (हुवे) मैं ग्रहण करता हूँ, (सः इत्) वही (उ) निश्चय करके (हव्यः) ग्रहणकरने योग्य है, (यः) जो (ददिः) दाता (नाम) नाम [होकर] (पत्यते) स्वामी होता है । (द्रविणोदः) हे धन देनेवाले (पोत्रात्) पवित्र व्यवहार से (अध्वर्युभिः) हिंसा न चाहनेवाले पुरुषों द्वारा (प्रस्थितम्) उपस्थित किये हुए (सोम्यम्) ऐश्वर्य के लिये हितकारी (मधु) निश्चित ज्ञान को और (सोमम्) सोम [तत्त्व रस] को (ऋतुभिः) ऋतुओं के साथ (पिब) तू पी ॥७॥

卐 सूक्तम् ६८ 卐

१—१२ मधुच्छन्दाः । इन्द्रः । गायत्री ।

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥१॥

पदार्थ—(सुरूपकृत्नुम्) सुन्दर स्वभावों के बनाने वाले [राजा] को (ऊतये) रक्षा के लिये (द्यविद्यवि) दिन-दिन (जुहूमसि) हम बुलाते हैं, (इव) जैसे (सुदुघाम्) बड़ी दुधैल गौ को (गोदुहे) गौ दोहनेवाले के लिये ॥ १ ॥

उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब ।
गोदा इद् रेवतो मदः ॥२॥

पदार्थ—(सोमपाः) हे ऐश्वर्य के रक्षक ! [राजन्] (नः) हमारे लिये (सवना) ऐश्वर्ययुक्त पदार्थों को (उप) समीप से (आ गहि) तू प्राप्त हो और (सोमस्य) सोम [तत्त्व रस] का (पिब) पान कर, (रेवतः) धनवान् पुरुष का (मदः) हर्ष (इत्) ही (गोदाः) दृष्टि का देने वाला है ॥ २ ॥

अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् ।
मा नो अति ख्य आ गहि ॥३॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (अथ) और (ते) तेरी (अन्तमानाम्) अत्यन्त समीप रहनेवाली (सुमतीनाम्) सुन्दर बुद्धियों का (विद्याम) हम ज्ञान करें । तू (नः) हमें (अति) छोड़कर (मा ख्यः) मत बोल, (आ गहि) तू आ ॥ ३ ॥

परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् ।
यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥४॥

पदार्थ—[हे जिज्ञासु !] तू (परा) समीप (इहि) आ, और (विग्रम्) बुद्धिमान्, (अस्तृतम्) अजेय, (विपश्चितम्) आप्त विद्वान्, (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले मनुष्य] से (पृच्छ) पूछ, (यः) जो [मनुष्य] (ते) तेरे (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (आ) सब प्रकार (वरम्) श्रेष्ठ [मित्र] है ॥ ४ ॥

उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत । दधाना इन्द्र इद् दुवः ॥५॥

पदार्थ—(इन्द्रे) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मा] में (इत्) ही (दुवः) सेवा को (दधानाः) धारण करते हुए पुरुष (उत) निश्चय कर के (नः) हमारे (निदः) निन्दकों से (ब्रुवन्तु) कहें—"(अन्यतः) दूसरे देश को (चित्) अवश्य (निः आरत) तुम निकल जाओ" ॥ ५ ॥

उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः । स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥६॥

पदार्थ—(दस्म) हे दर्शनीय ! [परमात्मन] (अरिः=अरयः) प्रेरणा करने वाले [वा वैरी] (कृष्टयः) मनुष्य (उत) भी (नः) हम को (सुभगान्) बड़े ऐश्वर्यवाला (वोचेयुः) कहें, [तो भी (इन्द्रस्य) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मा] की (इत्) ही (शर्मणि) शरण में (स्याम) हम रहें ॥६॥

एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् । पतयन्मन्दयत्सखम् ॥७॥

पदार्थ—[हे इन्द्र परमेश्वर !] (आशवे) वेगवाले, [रथ आदि] के लिये (यज्ञश्रियम्) यज्ञ [संगतिकरण] से लक्ष्मी बढ़ाने वाले, (नृमादनम्) मनुष्यों को आनन्द देनेवाले (आशुम्) वेग आदि गुणवाले, [अग्नि, वायु आदि] पदार्थ और (ईम) प्राप्तियोग्य जल को और (पतयत्) स्वामिपन देनेवाले, (मन्दयत्सखम्) मित्रों को आनन्द देनेवाले धन को (आ) सब प्रकार (भर) भर दे ॥७॥

अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः ।
प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥८॥

पदार्थ—(शतक्रतो) हे सैकड़ों कर्मोंवाले ! [वीर पुरुष] (अस्य) इस [तत्त्व रस] का (पीत्वा) पान कर के तू (वृत्राणाम्) रोकनेवाले शत्रुओं का

(वज्र) मारने वाला (अभव) हुआ है और (वाजेषु) संग्रामों में (वाजिनम्) पराक्रमी वीर को (प्र) अच्छे प्रकार (आवः) तूने बचाया है ॥८॥

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो। धनानामिन्द्र सातये ॥९॥

पदार्थ—(शतक्रतो) हे सैकड़ों [असंख्य] वस्तुओं में बुद्धिवाले (इन्द्र) इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर] (वाजेषु) संग्रामों के बीच (वाजिनम्) महाबलवान् (तम्) उस (त्वा) तुझ को (धनानाम्) धनों के (सातये) भोगने के लिए (वाजयामः) हम प्राप्त होते हैं ॥९॥

यो रायोऽवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा।

तस्मा इन्द्राय गायत ॥१०॥

पदार्थ—(यः) जो [परमेश्वर] (रायः) धन का (अवनिः) रक्षक वा स्वामी (महान्) [बड़ा गुणी वा बली], (सुपारः) भले प्रकार पार लगानेवाला, (सुन्वतः) तत्त्वरस निकालनेवाले पुरुष का (सखा) मित्र है, [हे मनुष्यो!] (तस्मै) उस (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमेश्वर] के लिए (गायत) तुम गान करो ॥१०॥

आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत। सखायः स्तोमवाहसः ॥११॥

पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम्। इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥१२॥

पदार्थ—(स्तोमवाहसः) हे बड़ाई के प्राप्त करानेवाले (सखायः) मित्रो! (तु) शीघ्र (आ इत) आओ, (आ) और (नि षीदत) बैठो, और (पुरूणाम्) पालन करनेवालों के (पुरूतमम्) अत्यन्त पालन करनेवाले, (वार्याणाम्) श्रेष्ठ पदार्थों वा धनों के (ईशानम्) स्वामी (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवान्], (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमेश्वर] को (सचा) सदा मेल के साथ (सोमे) सोम [तत्त्वरस] (सुते) सिद्ध होने पर (अभि) सब ओर से (प्र) अच्छे प्रकार (गायत) गाओ ॥ ११, १२ ॥

卐 सूक्तम् ६९ 卐

१—१२ मधुच्छन्दाः। इन्द्रः। गायत्री।

स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरंध्याम्।

गमद् वाजेभिरा स नः ॥१॥

पदार्थ—(सः घ) [वही परमात्मा वा पुरुषार्थी मनुष्य] (नः) हमारे (योगे) मेल में, (सः स) वही (राये) हमारे धन के लिये (पुरंध्याम्) नगरों के धारण करनेवाली बुद्धि में (आ) सब प्रकार (भुवत्) होवे। (सः) वही (वाजेभिः) अन्नों वा बलों के साथ (नः) हम को (आ गमत्) सब प्रकार प्राप्त होवे ॥१॥

यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः। तस्मा इन्द्राय गायत ॥२॥

पदार्थ—(संस्थे) [सत्था [,वक्यवस्था] में (यस्य) जिस [वीर] के (हरी) पदार्थों के पहुँचानेवाले बल और पराक्रम को (समत्सु) संग्रामों के बीच (शत्रवः) वैरी लोग (न) नहीं (वृण्वते) रोकते हैं, (तस्मै) उस (इन्द्राय) इन्द्र [महाप्रतापी मनुष्य] के लिए (गायत) तुम गान करो ॥२॥

सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये। सोमासो दध्याशिरः ॥३॥

पदार्थ—(सुतपाव्ने) ऐश्वर्य के रक्षक मनुष्य को (वीतये) भोग के लिये (इमे) यह (सुताः) निचोड़े हुए (शुचयः) शुद्ध (दध्याशिरः) पोषक पदार्थों के यथावत् सेवन [वा परिपक्व अर्थात् दृढ़] करनेवाले (सोमासः) सोम रस [तत्त्व वा अमृत रस] (यन्ति) पहुँचते हैं ॥३॥

त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः।

इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥४॥

पदार्थ—(सुक्रतो) हे श्रेष्ठ कर्म और बुद्धिवाले (इन्द्र) इन्द्र! [बड़े प्रतापी मनुष्य] (त्वम्) तू (सद्यः) शीघ्र (सुतस्य) तत्त्वरस के (पीतये) पीने के लिये और (ज्यैष्ठ्याय) प्रधानपन के लिये (वृद्धः) बुद्धियुक्त पण्डित (अजायथाः) हुआ है ॥४॥

आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः।

शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥५॥

पदार्थ—(गिर्वणः) हे स्तुतियों से सेवनीय (इन्द्र) इन्द्र! [महाप्रतापी मनुष्य] (आशवः) वेग गुणवाले (सोमासः) सोम रस (त्वा) तुझ में (आ) सब ओर से (विशन्तु) प्रवेश करें और (प्रचेतसे) तुझ दूरदर्शी के लिये (शम्) सुखदायक (सन्तु) होवें ॥५॥

त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो।

त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥६॥

पदार्थ—(शतक्रतो) हे सैकड़ों व्यवहारों में बुद्धिवाले मनुष्य (त्वाम्) तुझ को (स्तोमाः) बड़ाईयोग्य गुणों ने और (त्वाम्) तुझ को (उक्था) कहनेयोग्य कर्मों ने (अवीवृधन्) बढ़ाया है। (त्वाम्) तुझ को (नः) हमारी (गिरः) स्तुतियां (वर्धन्तु) बढ़ावें ॥६॥

अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम्।

यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ॥७॥

पदार्थ—(अक्षितोतिः) अक्षय रक्षा वा ज्ञानवाला (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी मनुष्य] (इमम्) इस (सहस्रिणम्) सहस्रों सुखवाले (वाजम्) ज्ञान का (सनेत्) सेवन करे, (यस्मिन्) जिस में (विश्वानि) सब (पौंस्या) मनुष्य कर्म [वा बल] हैं ॥ ७ ॥

मा नो मर्ता अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः।

ईशानो यवया वधम् ॥८॥

पदार्थ—(गिर्वणः) हे स्तुतियों से सेवनीय (इन्द्र) इन्द्र! [महाप्रतापी मनुष्य] (मर्ताः) मनुष्य (नः) हमारी (तनूनाम्) उपकार क्रियाओं का (मा अभि द्रुहन्) कभी द्रोह न करें। तू (ईशानः) स्वामी होकर (वधम्) उन के वध [हनन व्यवहार] को (यवय) हटा ॥८॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि ॥९॥

पदार्थ—(तस्थुषः) मनुष्य आदि प्राणियों और लोकों में (परि) सब ओर से (चरन्तम्) व्यापे हुए, (ब्रध्नम्) महान् (अरुषम्) हिंसारहित [परमात्मा] को (रोचना) प्रकाशमान पदार्थ (दिवि) व्यवहार के बीच (युञ्जन्ति) ध्यान में रखते और (रोचन्ते) प्रकाशित होते हैं ॥९॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे।

शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥१०॥

पदार्थ—(अस्य) इस [परमात्मा] के (काम्या) चाहनेयोग्य, (विपक्षसा) विविध प्रकार ग्रहण करनेवाले, (शोणा) व्यापक, (धृष्णू) निर्भय, (नृवाहसा) नेताओं [दूसरों के चलानेवाले सूर्य आदि लोकों] के चलानेवाले (हरी) दोनो धारण आकर्षण गुणों को (रथे) रमणीय जगत् के बीच (युञ्जन्ति) वे [प्रकाशमान पदार्थ] ध्यान में रखते हैं ॥१०॥

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः ॥११॥

पदार्थ—(मर्याः) हे मनुष्यो! (अकेतवे) अज्ञान हटाने के लिये (केतुम्) ज्ञान को और (अपेशसे) निर्धनता मिटाने के लिये (पेशः) सुवर्ण आदि धन को (कृण्वन्) उत्पन्न करता हुआ वह [परमात्मा] (उषद्भिः) प्रकाशमान गुणों के साथ (सम्) अच्छे प्रकार (अजायथाः) प्रकट हुआ है ॥११॥

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे। दधाना नाम यज्ञियम् ॥१२॥

पदार्थ—(आत्) फिर (अह) अवश्य (स्वधाम् अनु) अपनी धारण शक्ति के पीछे (यज्ञियम्) सत्कारयोग्य (नाम) नाम [यश] को (दधानाः) धारण करते हुए लोगों ने (पुनः) निश्चय कर के (गर्भत्वम्) गर्भपन [सारपन, बड़े पद] को (एरिरे) सब प्रकार से पाया है ॥१२॥

卐 सूक्तम् ॥७०॥ 卐

१—२० मधुच्छन्दाः। इन्द्रः। गायत्री।

वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः।

अविन्द उस्रिया अनु ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र! [महाप्रतापी मनुष्य] (गुहा) गुहा [गुप्त स्थान] में (चित्) भी [शत्रुओं के] (वीळु) दृढ़ गढ़ को, (आरुजत्नुभिः) तोड़ डालनेवाले (वह्निभिः) अग्नियों [आग्नेय अस्त्रों] से (चित्) निश्चय कर के (उस्रियाः अनु) निवास करनेवाली प्रजाओं के पीछे (अविन्दः) तू ने पाया है ॥१॥

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः । महामनूषत श्रुतम् ॥२॥

पदार्थ—(देवयन्तः) विजय चाहनेवाले (गिरः) विद्वान् लोगों ने (यथा) जैसे (विदद्वसुम्) धनों के प्रसिद्ध करनेवाले (मतिम्) बुद्धिमान् को, [वैसे ही] (महाम्) महान् और (श्रुतम्) विख्यात पुरुष को (अच्छ) अच्छे प्रकार (अनूषत) स्तुति की है ॥२॥

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥३॥

पदार्थ—[हे प्रजागण !] (अबिभ्युषा) निडर (इन्द्रेण) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले राजा] के साथ (हि) ही (संजग्मानः) मिलता हुआ तू (सम्) अच्छे प्रकार (दृक्षसे) दिखाई देता है । (समानवर्चसा) एक से तेज के साथ (मन्दू) तुम दोनों [राजा और प्रजा] आनन्द देने वाले हो ॥३॥

अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥४॥

पदार्थ—(अनवद्यैः) निर्दोष, (अभिद्युभिः) सब ओर से प्रकाशमान और (काम्यैः) प्रीति के योग्य (गणैः) गणों [प्रजागणों] के साथ (इन्द्रस्य) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले राजा] का (मखः) यज्ञ [राज्य व्यवहार] (सहस्वत्) बलिष्ठता से (अर्चति) सत्कार पाता है ॥४॥

अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि ।

समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥५॥

पदार्थ—(अतः) इस लिये, (परिज्मन्) हे सर्वत्र गतिवाले शूर ! (दिवः) विजय की इच्छा से (वा) और (रोचनात्) प्रीति भाव से (अधि) ऊपर (आ गहि) आ, (अस्मिन्) इस [वचन] में (गिरः) हमारी स्तुतियाँ (सम्) ठीक-ठीक (ऋञ्जते) सिद्ध होती हैं ॥५॥

इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि ।

इन्द्रं महो वा रजसः ॥६॥

पदार्थ—(इतः) इस लिये (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े प्रतापी मनुष्य] के द्वारा (दिवः) प्रकाश से (वा) और (पार्थिवात्) पृथिवी के संयोग से (वा) और (महः) बड़े (रजसः) जल [अथवा वायु मण्डल] से (वा) निश्चय करके (सातिम्) दान [उपकार] को (अधि) अधिकारपूर्वक (ईमहे) हम माँगते हैं ॥६॥

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥७॥

पदार्थ—(गाथिनः) गानेवालों और (अर्किणः) विचार करनेवालों ने (अर्केभिः) पूजनीय विचारों से (इन्द्रम्) सूर्य [के समान प्रतापी], (इन्द्रम्) वायु [के समान फुरतीले] (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले राजा] को और (वाणीः) वाणियों [वेदवचनों] को (इत्) निश्चय करके (बृहत्) बड़े ढङ्ग से (अनूषत) सराहा है ॥७॥

इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा ।

इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥८॥

पदार्थ—(वज्री) वज्रधारी, (हिरण्ययः) तेजोमय (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला राजा] (इत्) ही (इन्द्रः) वायु [के समान] (सचा) नित्य मिले हुए (हर्योः) दोनों संयोग-वियोग गुणों का (संमिश्लः) यथावत् मिलानेवाला (आ) और (वचोयुजा) वचन को योग्य बनानेवाला है ॥८॥

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि ।

वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥९॥

पदार्थ—(इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मा] ने (दीर्घाय) दूर तक (चक्षसे) देखने के लिये (दिवि) व्यवहार [वा आकाश] के बीच (गोभिः) वेदवाणियों द्वारा [वा किरणों वा जलों द्वारा] (सूर्यम्) सूर्य [के समान प्रेरक] और (अद्रिम्) मेघ [के समान उपकारी पुरुष] को (आ रोहयत्) ऊँचा किया और (वि) विविध प्रकार (ऐरयत्) चलाया है ॥९॥

इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥१०॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्यवाले परमात्मन्] (उग्रः) उग्र [प्रचण्ड] तू (वाजेषु) पराक्रमों के बीच (च) और (सहस्रप्रधनेषु) सहस्रों बड़े धनवाले व्यवहारों में (उग्राभिः) उग्र [दृढ़] (ऊतिभिः) रक्षा साधनों के साथ (नः) हमें (अव) बचा ॥१०॥

इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥११॥

पदार्थ—(वयम्) हम (अर्भे) चलते हुए (महाधने) बहुत धन प्राप्त करानेवाले संग्राम में [अथवा बहुत धन में] (युजम्) सहायकारी और (वृत्रेषु) रोकने वाले शत्रुओं पर (वज्रिणम्) वज्रधारी (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर] को, (इन्द्रम्) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर] को (हवामहे) बुलाते हैं ॥११॥

स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥१२॥

पदार्थ—(वृषन्) हे सुख बरसानेवाले ! (सत्रादावन्) हे सत्य ज्ञान देने वाले परमेश्वर ! (अप्रतिष्कुतः) बेरोक गतिवाला (सः) सो तू (नः) हमारे लिये, (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (अमुम्) उस (चरुम्) मेघ के समान ज्ञान को (अप वृधि) खोल दे ॥१२॥

तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः ।

न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥१३॥

पदार्थ—(वज्रिणः) अत्यन्त पराक्रमवाले (इन्द्रस्य) इन्द्र [परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर] के (तुञ्जेतुञ्जे) दान-दान में (ये) जो (उत्तरे) उत्तम-उत्तम (स्तोमाः) स्तोत्र हैं, [उन से] (अस्य) उसी की (सुष्टुतिम्) सुन्दर स्तुति (न विन्धे) मैं नहीं पाता हूँ ॥१३॥

वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥१४॥

पदार्थ—(वृषा) बलवान् बैल (यूथा इव) जैसे अपने झुण्डों को, [वैसे ही] (वंसगः) सेवनीय पदार्थों का पहुँचानेवाला, (अप्रतिष्कुतः) बेरोक गति वाला (ईशानः) परमेश्वर (ओजसा) अपने बल से (कृष्टीः) मनुष्यों को (इयर्ति) प्राप्त होता है ॥१४॥

य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति । इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥१५॥

पदार्थ—(यः) जो (एकः) अकेला (चर्षणीनाम्) चलाने वाले मनुष्यों और (वसूनाम्) श्रेष्ठ गुणों का (इरज्यति) स्वामी है, (इन्द्रः) वही इन्द्र [परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर] (पञ्च) पाँच [पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश] के सम्बन्ध वाले (क्षितीनाम्) चलते हुए लोकों का [स्वामी है] ॥१५॥

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥१६॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवान् परमात्मा] को (वः) तुम्हारे लिये और (विश्वतः) सब (जनेभ्यः) प्राणियों के लिये (परि) सब प्रकार (हवामहे) हम बुलाते हैं । वह (अस्माकम्) हमारा (केवलः) सेवनीय (अस्तु) होवे ॥१६॥

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर ॥१७॥

नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै । त्वोतासो न्यर्वता ॥१८॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर] (सानसिम्) सेवनीय, (सजित्वानम्) जीतनेवालों के साथ वर्तमान, (सदासहम्) सदा वैरियों के हरानेवाले, (वर्षिष्ठम्) अत्यन्त बढ़े हुए (रयिम्) उस धन को (ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (आ) सब ओर से (भर) भर ॥१७॥ (येन) जिस [धन] के द्वारा (मुष्टिहत्यया) मुट्ठियों की मार [बाहुयुद्ध] से और (अर्वता) घुड़-चढ़े दल से (वृत्रा) शत्रुओं को (त्वोतासः) तुझ से रक्षा किये गये हम (नि) निश्चय करके (नि) नित्य (नि रुणधामहै) रोकते रहें ॥१८॥

इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि ।

जयेम सं युधि स्पृधः ॥१९॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मन्] (त्वोतासः) तुझ से रक्षा किये गये (वयम्) हम (वज्रम्) वज्र [बिजुली और अग्नि के अस्त्रों] और (घना) घनों [मारने के तलवार आदि हथियारों] को (आ ददीमहि) ग्रहण करें और (युधि) युद्ध में (स्पृधः) ललकारते हुए शत्रुओं को (सम्) ठीक-ठीक (जयेम) जीतें ॥१९॥

वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम् । सासह्याम पृतन्यतः ॥२०॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर] (वयम्) हम (वयम्) हम (युजा त्वया) तुझ सहायक के साथ (अस्तृभिः) हथियार चलाने वाले (शूरेभिः) शूरों के द्वारा (पृतन्यतः) सेना चढ़ानेवाले वैरियों को (सासह्याम) हरा दें ॥२०॥

卐 सूक्तम् ७१ 卐

१—१६ मधुच्छन्दाः । इन्द्रः । गायत्री ।

महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥१॥

पदार्थ—(महान्) महान् (च) और (परः) श्रेष्ठ (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला परमेश्वर] (प्रथिना) फैलाव से (द्यौः न) सूर्य के प्रकाश के समान है, (नु) इसलिये (वज्रिणे) उस महापराक्रमी [परमेश्वर] के लिये (महित्वम्) महत्त्व और (शवः) बल (अस्तु) होवे ॥१॥

समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ ।

विप्रासो वा धियायवः ॥२॥

पदार्थ—(ये) जो (नरः) नर [नेता लोग] (समोहे) संग्राम में (वा) और (तोकस्य) सन्तान के (सनितौ) सेवन [पोषण, अध्यापन आदि] में (आशत) लगे हैं, वे (विप्रासः) विद्वान् (वा) और (धियायवः) बुद्धि की कामना वाले हैं ॥२॥

यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते । उर्वीरापो न काकुदः ॥३॥

एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही ।

पक्वा शाखा न दाशुषे ॥४॥

पदार्थ—(यः) जो (कुक्षिः) तत्त्व रस निकालनेवाला, (सोमपातमः) ऐश्वर्य का अत्यन्त रक्षक मनुष्य (समुद्रः इव) समुद्र के समान (उर्वीः) भूमियों को और (काकुदः न) वेदवाणी जाननेवाले के समान (आपः) शुभ कर्म को (पिन्वते) सींचता है ॥३॥ (अस्य) उस [मनुष्य] की (सूनृता) अन्नवाली क्रिया (एव) निश्चय कर के (हि) ही (विरप्शी) स्पष्ट वाणीवाली (गोमती) श्रेष्ठ दृष्टिवाली, (मही) सत्कारयोग्य, (पक्वा) परिपक्व [फल-फूल वाली] (शाखा न) शाखा के समान (दाशुषे) आत्मदानी पुरुष के लिये [होवे] ॥४॥

एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥५॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (एव) निश्चय कर के (हि) ही (ते) तेरे (विभूतयः) अनेक ऐश्वर्य (मावते) मेरे तुल्य (दाशुषे) आत्मदानी के लिये (सद्यः चित्) तुरन्त ही (ऊतयः) रक्षा-साधन (सन्ति) होते हैं ॥५॥

एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये ॥६॥

पदार्थ—(एव) निश्चय करके (हि) ही (अस्य) उस [सभापति] के (काम्या) मनोहर और (शंस्या) प्रशंसनीय (स्तोमः) उत्तम गुण (च) और (उक्थम्) कहनेयोग्य कर्म (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् पुरुष के लिये (सोमपीतये) सोमरस पीने के निमित्त [हैं] ॥६॥

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाँ अभिष्टिरोजसा ॥७॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्यवाले परमात्मन्] (आ इहि) तू प्राप्त हो, और (विश्वेभिः) सब (सोमपर्वभिः) ऐश्वर्य के उत्सवों के साथ (अन्धसः) अन्न से (मत्सि) तृप्त कर, तू (ओजसा) बल से (महान्) महान् और (अभिष्टिः) सब प्रकार पूजनीय है ॥७॥

एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने । चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥८॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] (सुते) उत्पन्न जगत् में (मन्दिम्) आनन्द बढ़ानेवाले, (चक्रिम्) कार्य सिद्ध करनेवाले (एनम्) इस (ईम्) प्राप्तियोग्य बोध को (मन्दिने) गतिशील, (विश्वानि) सब कर्मों के (चक्रये) कर चुकनेवाले (इन्द्राय) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवाले मनुष्य के लिये (आ) सब प्रकार (सृजत) उत्पन्न करो ॥८॥

मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे । सचैषु सवनेष्वा ॥९॥

पदार्थ—(सुशिप्र) हे बड़े ज्ञानी ! (विश्वचर्षणे) हे सब गतिशील मनुष्यों के स्वामी ! [वा सब के देखनेवाले परमेश्वर] (मन्दिभिः) हर्ष देनेवाले (स्तोमेभिः) स्तुतियोग्य व्यवहारों के साथ (सचा) सदा मेल से (एषु) इन (सवनेषु) ऐश्वर्यवाले पदार्थों में (आ) अच्छे प्रकार (मत्स्व) आनन्दित कर ॥९॥

असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत । अजोषा वृषभं पतिम् ॥१०॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मन्] (ते) तेरी (अजोषाः) अत्यन्त प्रीति करनेवाली [जिन से अधिक हितकारी दूसरा नहीं है] (गिरः) वेदवाणियाँ (असृग्रम्) गति देनेवाले (वृषभम्) सुखों के बरसानेवाले [वा बलवान्] (पतिं त्वाम्) तुझ स्वामी को (प्रति) प्रत्यक्ष करके (उत् अहासत) ऊँची गयी हैं ॥१०॥

सं चोदय चित्रमर्वाग् राध इन्द्र वरेण्यम् ।

असदित् ते विभु प्रभु ॥११॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर] (चित्रम्) अद्भुत, (वरेण्यम्) अतिश्रेष्ठ (राधः) सिद्ध करनेवाले धन को (अर्वाक्) सम्मुख (सम्) ठीक-ठीक (चोदय) भेज, (ते) तेरा (इत्) ही (विभु) व्यापक और (प्रभु) प्रबल सामर्थ्य (असत्) है ॥११॥

अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः । तुविद्युम्न यशस्वतः ॥१२॥

पदार्थ—(तुविद्युम्न) हे अत्यन्त धन वाले (इन्द्र) इन्द्र ! [परम ऐश्वर्य वाले परमात्मन्] (राये) धन के लिये (रभस्वतः) उपाय सोच कर आरम्भ करनेवाले, (यशस्वतः) यश रखनेवाले (अस्मान्) हम को (तत्र) वहाँ [श्रेष्ठ कर्म में] (सु) अच्छे प्रकार (चोदय) पहुँचा ॥१२॥

सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत् । विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥१३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले परमेश्वर] (अस्मे) हम को (गोमत्) बहुत भूमिवाला, (वाजवत्) बहुत अन्न वाला, (पृथु) फैला हुआ, (बृहत्) बढ़ता हुआ, (विश्वायुः) पूरे जीवन तक रहनेवाला, (अक्षितम्) अक्षय [न घटनेवाला] (श्रवः) सुननेयोग्य यश वा धन (सम्) अच्छे प्रकार (धेहि) दे ॥१३॥

अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम् ।

इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥१४॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर] (अस्मे) हम को (बृहत्) बढ़ता हुआ (श्रवः) सुननेयोग्य धन और (सहस्रसातमम्) सहस्रों सुखों का देनेवाला (द्युम्नम्) चमकता हुआ यश और (ताः) वे [प्रसिद्ध] (रथिनीः) रथों [यान-विमान आदि] वाली (इषः) चलती हुई सेनाएँ (धेहि) दे ॥१४॥

वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम् । होम गन्तारमूतये ॥१५॥

पदार्थ—(गीर्भिः) वेदवाणियों से (गृणन्तः) स्तुति करते हुए हम (वसुपतिम्) वसुओं [अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य वा सूर्यलोक, द्यौ वा आकाश, चन्द्रलोक और तारागणों] के स्वामी, (ऋग्मियम्) स्तुतियोग्य (गन्तारम्) ज्ञानवाले (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमेश्वर] को (वसोः) श्रेष्ठ गुण की (ऊतये) रक्षा के लिये (होम) बुलाते हैं ॥१५॥

सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः । इन्द्राय शूषमर्चति ॥१६॥

पदार्थ—(अरिः) शत्रु (इत्) भी (सुते सुते) उत्पन्न हुए पदार्थ में (न्योकसे) निश्चित स्थानवाले, (बृहते) महान् (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मा] के (बृहत्) बड़े हुए (शूषम्) बल को (आ) सब प्रकार (अर्चति) पूजता है ॥१६॥

इति षष्ठोऽनुवाकः

अथ सप्तमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ७२

१—३ परुच्छेपः । इन्द्रः । अत्यष्टिः ।

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् । तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि । इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥१॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (विश्वेषु) सब (हि) ही (सवनेषु) ऐश्वर्ययुक्त पदार्थों में (समानम्) एकरस व्यापक, (एकम्) एक, (स्वः) सुखस्वरूप (त्वा) तुझ को (वृषमण्यवः) बलवान् के समान तेजवाले, और (सनिष्यवः) देनेयोग्य धन को चाहनेवाले पुरुष (पृथक् पृथक्) अलग-अलग (तुञ्जते) ग्रहण करते हैं । (नावम् न) नाव के समान (पर्षणिम्) पार लगानेवाले (तम्) उस (त्वा) तुझ (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मा] को (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] को (शूषस्य) बल की (धुरि) धुरी [धारण शक्ति] में (यज्ञैः) यज्ञों [श्रेष्ठ व्यवहारों] से और (स्तोमेभिः) प्रशंसनीय गुणों से (चितयन्तः) चिन्तवन करते हुए (आयवः) पुरुषार्थी (आयवः न) मनुष्यों के समान (धीमहि) हम धारण करें ॥१॥

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः । यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि ।

आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्र !) हे इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर] (व्रजस्य) मार्ग के (साता) पाने में (अवस्यवः) रक्षा चाहनेवाले (सक्षन्तः) गतिशील, (गव्यस्य) भूमि के लिये हित के (निःसृजः) नित्य उत्पन्न करनेवाले और (निःसृजः) निरन्तर देने वाले (मिथुनाः) स्त्री-पुरुषों के समूहों ने (त्वा) तुझ को [तेरे गुणों को] (वि) विविध प्रकार (ततस्रे) फैलाया है। (यत्) क्योंकि, (इन्द्र) हे इन्द्र ! [परमात्मन्] (वृषणम्) बलवान्, (सचाभुवम्) नित्य मेल से रहने वाले, (सचाभुवम्) सेवन [वृद्धि] के साथ वर्तमान (वज्रम्) वज्र [दण्डरूप] को (आविः करिक्रत्) प्रकट करता हुआ तू (गव्यन्ता) वाणी [विद्या] को चाहने वाले, (स्वः) सुख को (यन्ता) प्राप्त होने वाले (द्वा) दोनों (जना) जनों [स्त्री-पुरुषों] को (समूहसि) यथावत् चेताता है ॥२॥

उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्यर्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः। यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि। आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥३॥

पदार्थ—(नः) हमारे बीच में (उतो) निश्चय करके ही वह [जिज्ञासु पुरुष] (अस्याः) इस (उषसः) उषा [प्रभात वेला] का (जुषेत) सेवन करे और (हवीमभिः) ग्रहण करनेयोग्य व्यवहारों और (हवीमभिः) देनेयोग्य पदार्थों से (हि) ही (स्वर्षाता) सुख के सेवन में (अर्कस्य) पूजनीय परमात्मा के (हविषः) ग्रहण का (बोधि) बोध करे। (यत्) क्योंकि (वज्रिन्) हे वज्रधारी (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मन्] (वृषा) सुखों का बरसानेवाला महा बलवान् तू (मृधः) हिंसक वैरियों के (हन्तवे) मारने को (चिकेतसि) जानता है, [इस लिये] (मे) मुझ (नवीयसः) अधिक नवीन [अभ्यासी ब्रह्मचारी] और (अस्य) इस (नवीयस) अधिक स्तुतियोग्य (वेधसः) बुद्धिमान् [आचार्य] के (मन्म) मनन योग्य कथन को (आ) अच्छे प्रकार (श्रुधि) सुन ॥३॥

卐 सूक्तम् ७३ 卐

(१—६) १—३ वसिष्ठः, ४-६ वसुक्रः। इन्द्रः। विराट्, ४—५ जगती, ६ अभिसारिणी।

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि।
त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥१॥

पदार्थ—(शूर) हे शूर ! [निर्भय मनुष्य] (तुभ्यं) तेरे लिये (इत्) ही (इमा) इन (विश्वा) सब (सवना) ऐश्वर्ययुक्त वस्तुओं को और (तुभ्यम्) तेरे लिये (वर्धना) उन्नति करनेवाले (ब्रह्माणि) धनों वा अन्नों को (कृणोमि) मैं करता हूँ। (त्वम्) तू (नृभिः) नेता मनुष्यों से (विश्वधा) सब प्रकार (हव्यः) ग्रहण करने योग्य (असि) है ॥१॥

नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र।
न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥२॥

पदार्थ—(दस्म) हे दर्शनीय ! (उग्र) हे तेजस्वी (इन्द्र) इन्द्र ! [राजन्] (मन्यमानस्य ते) तुझ महाज्ञानी की (न) न तो (महिमानम्) महिमा को और (न) न (ते) तेरे (वीर्यम्) पराक्रम और (राधः) धन को वे [अन्यपुरुष] (नु चित्) कभी भी (नु) किसी प्रकार (उत्) अधिकता से (अश्नुवन्ति) पहुँचते हैं ॥२॥

प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम्।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥३॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] (वः) अपने लिये (महे) महान् (महिवृधे) बड़ों के बढ़ानेवाले, (प्रचेतसे) उत्तम ज्ञानी [दूरदर्शी राजा] के लिये (सुमतिम्) सुन्दर मति को (प्र) अच्छे प्रकार (भरध्वम्) धारण करो और (प्र) सामने (कृणुध्वम्) करो। [हे सभापते !] (चर्षणिप्राः) मनुष्यों के मनोरथ पूरा करने वाला तू (पूर्वीः) प्राचीन (विशः) प्रजाओं को (प्र चर) फैला ॥३॥

यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ॥४॥

पदार्थ—(यदा) जब (अस्य) इस [सेनापति] के (यम्) जिस (हिरण्यम्) तेजोमय (वज्रम्) वज्र [दण्ड] (अथ) और (रथम्) रथ [राज्यव्यवहार] को (हरी) दो घोड़े [के समान बल और पराक्रम] (सूरिभिः) प्रेरक विद्वानों के साथ (इत्) ही (वि) विविध प्रकार (वहतः) ले चलते हैं। [तब उस पर] (मघवा) महाधनी, (सनश्रुतः) दान के लिये प्रसिद्ध, (दीर्घश्रवसः) बहुत यश वाले (वाजस्य) पराक्रम का (पतिः) स्वामी (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी सेनापति] (आ तिष्ठति) ऊँचा बैठता है ॥४॥

सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम् ॥५॥

पदार्थ—(सो) वही (इन्द्रः) इन्द्र [बड़ा ऐश्वर्यवान् पुरुष] (वृष्टिः) (चित्) वृष्टि के समान (नु) निश्चय करके (सचा) नित्य मेल के साथ (स्वा) अपने (हरिता) स्वीकार करनेयोग्य (यूथ्या) समुदायों को (श्मश्रूणि) अपने शरीर में आश्रित अङ्गों [के समान] (अभि) सब प्रकार (प्रुष्णुते) सींचता है। और वह (सुते) उत्पन्न जगत् में (सुक्षयम्) बड़े ऐश्वर्यवाले (मधु) निश्चित ज्ञान [मधु विद्या] को (इत्) अवश्य (अव वेति) पा लेता है और [पापों को] (उत् धूनोति) उखाड़ कर हिला देता है, (यथा) जैसे (वातः) पवन (वनम्) वन को ॥५॥

यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥६॥

पदार्थ—(यः) जिस [शूर] ने (वाचा) [अपनी सत्य] वाणी से (विवाचः) विरुद्ध बोलने वाले, (मृध्रवाचः) हिंसक वाणी वाले के (पुरु) बहुत (सहस्रा) सहस्रों (अशिवा) क्रूर कर्मों को (जघान) नष्ट किया है और (यः) जिस [शूर] ने (पिता इव) पिता के समान (तविषीम्) हमारी शक्ति और (शवः) पराक्रम को (वावृधे) बढ़ाया है, (अस्य) उस के (तत्तत्) उस उस (इत्) ही (पौंस्यम्) मनुष्यपन [वा बल] की (गृणीमसि) हम बड़ाई करते हैं ॥६॥

卐 सूक्तम् ॥७४॥ 卐

१—७ शुनःशेपः। इन्द्रः। पंक्तिः।

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥१॥

पदार्थ—(सत्य) हे सच्चे ! [सत्यवादी, सत्यगुणी] (सोमपाः) हे सोम [तत्त्व रस] पीने वाले ! [वा ऐश्वर्य के रक्षक राजन्] (यत् चित्) जो कभी (हि) भी (अनाशस्ताः इव) निन्दनीय कर्म वालों के समान (स्मसि) हम होवें। (तुविमघ) हे महाधनी (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े प्रतापी राजन्] (तु) निश्चय करके (नः) हम को (सहस्रेषु) सहस्रों (शुभ्रिषु) शुभ गुणवाले (गोषु) विद्वानों और (अश्वेषु) कामों में व्यापक बलवानों में (आ) सब ओर से (शंसय) बड़ाई वाला कर ॥१॥

शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस्तव दंसना।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥२॥

पदार्थ—(शिप्रिन्) हे बड़े ज्ञानी ! [वा दृढ़ जावड़े आदि अङ्गों वाले] (वाजानां पते) हे अन्नों के स्वामी ! (शचीवः) हे उत्तम कर्म वाले ! [राजन्] (तव) तेरी ही (दंसना) दर्शनीय क्रिया है। (तुविमघ) हे महाधनी (इन्द्र) इन्द्र [बड़े प्रतापी राजन्] (तु) निश्चय करके (नः) हम को (सहस्रेषु) सहस्रों (शुभ्रिषु) शुभ गुणवाले (गोषु) विद्वानों और (अश्वेषु) कामों में व्यापक बलवानों में (आ) सब ओर से (शंसय) बड़ाई वाला कर ॥२॥

नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥३॥

पदार्थ—[हे राजन्] (मिथूदृशा) दोनों हिंसा दिखाने वाले [शरीर और मन] को (नि स्वापय) सुला दे, (अबुध्यमाने) बिना जगे हुए वे दोनों (सस्ताम्) सो जावें। (तुविमघ) हे महाधनी (इन्द्र) ! [बड़े प्रतापी राजन्] (तु) निश्चय करके (नः) हम को (सहस्रेषु) सहस्रों (शुभ्रिषु) शुभ गुणवाले (गोषु) विद्वानों और (अश्वेषु) कामों में व्यापक बलवानों में (आ) सब ओर से (शंसय) बड़ाई वाला कर ॥३॥

ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥४॥

पदार्थ—(शूर) हे शूर ! [निर्भय] (त्याः) वे (अरातयः) दान न करनेवाली शत्रु प्रजाएँ (ससन्तु) सो जावें, और (रातयः) दानी लोग (बोधन्तु)

जागते रहें । (तुवीमघ) हे महाधनी (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े प्रतापी राजन्] (तु) निश्चय करके (नः) हम को (सहस्रेषु) सहस्रों (शुभ्रिषु) शुभ गुणवाले (गोषु) विद्वानों और (अश्वेषु) कामों मे व्यापक बलवानों में (आ) सब ओर से (शंसय) बड़ाई वाला कर ॥४॥

समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥५॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े प्रतापी राजन्] (अमुया) उस (पापया) पाप क्रिया के साथ (नुवन्तम्) स्तुति करते हुए (गर्दभम्) गदहे [के समान व्यर्थ रेंकने वाले निन्दक पुरुष] को (सम् मृण) मार डाल । (तुवीमघ) हे महाधनी (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े प्रतापी राजन्] (तु) निश्चय करके (नः) हम को (सहस्रेषु) सहस्रों (शुभ्रिषु) शुभ गुणवाले (गोषु) विद्वानो और (अश्वेषु) कामों में व्यापक बलवानों में (आ) सब ओर से (शंसय) बड़ाई वाला कर ॥५॥

पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥६॥

पदार्थ—(कुण्डृणाच्या) रक्षा पहुँचाने वाली क्रिया के साथ (दूरम्) दूर तक (वनात् अधि) वन [उपवन वाटिका आदि] के ऊपर होता हुआ (वातः) पवन (पताति) चला करे । (तुवीमघ) हे महाधनी (इन्द्र) इन्द्र [बड़े प्रतापी राजन्] (तु) निश्चय करके (सहस्रेषु) सहस्रों (शुभ्रिषु) शुभ गुणवाले (गोषु) विद्वानों और (अश्वेषु) कामों में व्यापक बलवानों में (आ) सब ओर से (शंसय) बड़ाई वाला कर ॥६॥

सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥७॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (सर्वम्) प्रत्येक (परिक्रोशम्) निन्दक, (कृकदाश्वम्) कष्ट देनेवाले को (जहि) पहुँच और (जम्भय) मार डाल । (तुवीमघ) हे महाधनी (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े प्रतापी राजन्] (तु) निश्चय करके (नः) हम को (सहस्रेषु) सहस्रों (शुभ्रिषु) शुभ गुणवाले (गोषु) विद्वानों और (अश्वेषु) कामों में व्यापक बलवानो में (आ) सब ओर से (शंसय) बड़ाई वाला कर ॥७॥

सूक्तम् ७५

१—३ परुच्छेप । इन्द्रः । अत्यष्टिः ।

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः । यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि । आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर] (व्रजस्य) मार्ग के (साता) पाने मे (अवस्यवः) रक्षा चाहनेवाले, (सक्षन्तः) गतिशील, (गव्यस्य) भूमि के लिये हित के (निःसृजः) नित्य उत्पन्न करनेवाले और (निःसृजः) निरन्तर देनेवाले (मिथुनाः) स्त्री पुरुषों के समूहों ने (त्वा) तुझ को [तेरे गुणों को] (वि) विविध प्रकार (ततस्रे) फैलाया है । (यत्) क्योंकि, (इन्द्र) हे इन्द्र ! [परमात्मन्] (वृषणम्) बलवान्, (सचाभुवम्) नित्य मेल से रहनेवाले, (सचाभुवम्) सेवन [वृद्धि] के साथ वर्तमान (वज्रम्) वज्र [दण्डगुण] को (आविः करिक्रत्) प्रकट करता हुआ तू (गव्यन्ता) वाणी [विद्या] को चाहनेवाले, (स्वः) सुख को (यन्ता) प्राप्त होने वाले (द्वा) दोनो (जना) जनो [स्त्री-पुरुषों] को (समूहसि) यथावत् चेतता है ॥१॥

विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः । शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते । महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले परमेश्वर] (पूरवः) मनुष्य (ते) तेरे (अस्य) उस (वीर्यस्य) सामर्थ्य का (विदुः) ज्ञान रखते हैं, (यत्) जिस [सामर्थ्य] से (सासहानः) जीतते हुए तू ने (शारदीः) वर्ष भर में उत्पन्न होनेवाली (पुरः) पालन-सामग्रियों को (अवातिरः) उतारा है, (अवातिरः) उतारा है, (शवसः पते) हे बल के स्वामी (इन्द्र) इन्द्र ! [परमेश्वर] (तम्) उस (अयज्युम्) यज्ञ के न करने वाले (मर्त्यम्) मनुष्य को (शासः) तू ने शासन में किया है, और (मन्दसानः) आनन्द करते हुए तू ने (महीम्) बड़ी (पृथिवीम्) पृथिवी से (इमाः) इन [यज्ञ न करनेवाली] (अपः) प्रजाओं को, (इमाः) इन (अपः) प्रजाओं को (अमुष्णाः) लूटा है ॥२॥

आदित् ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन् मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ । चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे । ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥३॥

पदार्थ—(वृषन्) हे महाबली ! [परमेश्वर] (आत्) इस लिये (इत्) ही (ते) तेरे (अस्य) उस (वीर्यस्य) सामर्थ्य को (चर्किरन्) उन्होंने [मनुष्यों ने] बार बार गाया है, (यत्) जिस [सामर्थ्य] से (मदेषु) आनन्दों के बीच (उशिजः) शुभ गुण चाहनेवाले बुद्धिमानों को (आविथ) तू ने बचाया है, (यत्) जिस [सामर्थ्य] से (सखीयतः) तुझे मित्र के समान समझते हुए लोगों को (आविथ) तू ने बचाया है । और (एभ्यः) इन [लोगो] के लिये (पृतनासु) मनुष्यों में (प्रवन्तवे) सेवन करने को (कारम्) यत्न (चकर्थ) तू ने किया है, (श्रवस्यन्तः) कीर्ति चाहने वाले (ते) वे (अन्यामन्याम्) अलग-अलग (नद्यम्) पूजनेयोग्य क्रिया को (सनिष्णत) सेवन करें, (सनिष्णत) सेवन करें ॥३॥

सूक्तम् ७६

१—८ वसुक्रः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

वने न वा यो न्यधायि चाकं छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः ।

यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ॥१॥

पदार्थ—(वने) वृक्ष पर (न) जैसे (चाकम्) प्रीति करने वाला (वा, वः=वायः) पक्षी का बच्चा (नि अधायि) रक्खा जाता है, [वैसे ही] (भुरणौ) हे दोनो पोषको ! [मात-पिताओ] (शुचिः) पवित्र (स्तोमः) बड़ाईयोग्य गुण ने (वाम्) तुम दोनो को (अजीगः) ग्रहण किया है । (यस्य) जिस [बड़ाई योग्य गुण] को (इत्) ही (होता) ग्रहण करनेवाला (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला पुरुष] (पुरुदिनेषु) बहुत दिनो के भीतर (नृणाम्) नेताओ का (नृतमः) सब से बड़ा नेता (नर्यः) मनुष्यो का हितकारी, (क्षपावान्) श्रेष्ठ रात्रियों वाला है ॥१॥

प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।

अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन् कुत्सेन रथो यो असत् ससवान् ॥२॥

पदार्थ—(अस्याः) इस और (अपरस्याः) दूसरी [आनेवाली] (उषसः) उषा [प्रभात बेला] के (नृतौ) नृत्य [चेष्टा] में (नृणाम्) नेताओ के (नृतमस्य ते) तुझ सब से बड़े नेता के [भक्त रह कर] (प्र प्र) बहुत उत्तम (स्याम) हम होवें । (यः) जो (त्रिशोकः) तीन प्रकार [बिजुली, सूर्य और अग्नि] के प्रकाश वाला (रथः) रथ (असत्) होवे, वह [रथ] ([illegible]) सेवन करता हुआ (शतम्) सौ (नॄन्) नेता पुरुषों को ([illegible]) [illegible] ऋषि [सेनापति] के साथ (अनु) अनुकूल रीति से (आ अवहत्) लावे ॥२॥

कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद् दुरो गिरो अभ्युग्रो वि धाव ।

कद्वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन्] (कः) कौन सा (ते) तेरा (मदः) हर्ष (रन्त्यः) [हमारे लिये] आनन्ददायक (भूत्) होवे, (उग्रः) तेजस्वी तू (गिरः) स्तुतियों को (अभि) प्राप्त होकर (दुरः) [हमारे] द्वारों पर (वि धाव) दौड़ता था । (कत्) कब (वाहः) वाहन [घोड़ा रथ आदि] (मनीषा) बुद्धि के साथ (मा उप) मेरे समीप (अर्वाक्) सामने [होवे], और (उपमम्) समीपस्थ (त्वा) तुझ को (आ) प्राप्त होकर (अन्नैः) अन्नों के सहित (राधः) धन (शक्याम्) पाने को समर्थ हो जाऊं ॥३॥

कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नॄन् कया धिया करसे कन्न आगन् ।

मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन्मनीषाः ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (त्वावतः) तुझ जैसे का (द्युम्नम्) यश (नॄन्) नेताओं में (कत् उ) किस को है, (कया धिया) किस बुद्धि के साथ (करसे) तू कर्तव्य करेगा, (उरुगाय) हे बहुत कीर्ति वाले ! (कत्) कैसे (नः) हम को (सत्यः) सच्चे (मित्रः न) मित्र के समान (भृत्यै) पालने के लिये (आ अगन्) तू प्राप्त हुआ है, (यत्) क्योंकि (अन्ने) अन्न में (समस्य) सब की (मनीषाः) बुद्धियां (असन्) रहती है ॥४॥

प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधा इव ग्मन् ।

गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥५॥

पदार्थ—(तुविजात) हे बहुत प्रकार से प्रसिद्ध (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (सूरः न) सूर्य के समान तू [उन को] (अर्थम्) [illegible]

पदार्थ—[हे विद्वानो !] (नः) अपने लिये (सुते) उत्पन्न संसार के बीच (सचा) नित्य मिलाप के साथ (पुरुहूताय) बहुतों से बुलाये गये, (शाकिने) शक्तिमान् (सत्वने) वीर राजा के लिये (तत्) उस कर्म को (गाय) तुम गाओ, (यत्) जो (न) अब (गवे) भूमि के लिये (शम्) सुखदायक [होवे] ॥१॥

न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः ।

यत् सीमुप श्रवद् गिरः ॥२॥

पदार्थ—(वसुः) बसानेवाला राजा (गोमतः) उत्तम विद्या से युक्त (वाजस्य) बल के (दानम्) दान को (न घ) कभी नहीं (नि यमते) रोके, (यत्) जब कि वह (गिरः) हमारी वाणियों को (सीम्) सब प्रकार (उप श्रवत्) सुन लेवे ॥२॥

कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् ।

शचीभिरप नो वरत् ॥३॥

पदार्थ—(दस्युहा) डाकुओं का मारनेवाला राजा (कुवित्सस्य) बहुत दानी पुरुष के (हि) ही (गोमन्तम्) उत्तम विद्याओं से युक्त (व्रजम्) मार्ग पर (प्र) अच्छे प्रकार (गमत्) चले और (शचीभिः) बुद्धियों वा कर्मों के साथ (नः) हम को (अप) आनन्द से (वरत्) स्वीकार करे ॥३॥

卐 सूक्तम् ॥७९॥ 卐

१-२ वसिष्ठः शक्तिर्वा । इन्द्रः । प्रगाथ (बृहती+सतोबृहती) ।

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।

शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परम ऐश्वर्यवाले राजन्] तू (नः) हमारे लिये (क्रतुम्) बुद्धि (आ भर) भर दे, (यथा) जैसे (पिता) पिता (पुत्रेभ्यः) पुत्रों [सन्तानों] के लिये । (पुरुहूत) हे बहुत प्रकार बुलाये गये [राजन् !] (अस्मिन्) इस (यामनि) समय वा मार्ग में (नः) हमें (शिक्ष) शिक्षा दे, [जिस से] (जीवाः) हम जीव लोग (ज्योतिः) प्रकाश को (अशीमहि) पावें ॥१॥

मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो माशिवासो अव क्रमुः ।

त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥२॥

पदार्थ—(नः) हम को (मा) न तो (अज्ञाताः) अनजाने हुए (वृजनाः) पापी, (दुराध्यः) दुष्ट बुद्धिवाले, और (मा) न (अशिवासः) अकल्याणकारी लोग (अव क्रमुः) उल्लंघन करें । (शूर) हे शूर (त्वया) तेरे साथ (वयम्) हम (प्रवतः) नीचे देशों [खाई, सुरङ्ग आदि] और (शश्वतीः) बहते हुए (अपः) जलों को (अति) लांघ कर (तरामसि) पार हो जावें ॥२॥

卐 सूक्तम् ॥८०॥ 卐

१-२ शंयुः । इन्द्रः । प्रगाथ. (बृहती+सतोबृहती) ।

इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।

येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (नः) हमारे लिये (ज्येष्ठम्) अति श्रेष्ठ, (ओजिष्ठम्) अत्यन्त बल देनेवाला, (पपुरि) पालन करने वाला (श्रवः) यश (आ) सब ओर से (भर) धारण कर (येन) जिस [यश] से, (चित्र) हे अद्भुत स्वभाव वाले, (वज्रहस्त) हे वज्र हाथ में रखने वाले ! (सुशिप्र) हे दृढ़ जबाड़ो वाले ! (इमे) इन (उभे) दोनो (रोदसी) अन्तरिक्ष और भूमि को (आ प्राः) तू ने भर दिया है ॥१॥

त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे ।

विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान् सुषहान् कृधि ॥२॥

पदार्थ—(राजन्) हे राजन् ! (देवेषु) विद्वानों में (अवसे) रक्षा के लिये (उग्रम्) तेजस्वी, (चर्षणीसहम्) मनुष्यों के वश में रखनेवाले (त्वाम्) तुझ को (हूमहे) हम पुकारते है । (वसो) हे बसाने वाले ! (नः) हमारे (विश्वा) सब (विथुरा) क्लेशों को (पिब्दना) चूर्ण करनेयोग्य और (अमित्रान्) वैरियों को (सुषहान्) सहज में हारनेयोग्य (सु) सर्वथा (कृधि) कर ॥२॥

卐 सूक्तम् ॥८१॥ 卐

१—२ पुरुहन्मा । इन्द्र. प्रगाथ. (बृहती+सतोबृहती) ।

यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।

न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मन्] (यत्) जो (शतम्) सौ (द्यावः) अन्तरिक्ष [वायुलोक], (उत) और (शतम्) सौ (भूमीः) भूमि लोक (ते) तेरे [सामने] (स्युः) होवें, [न तो वे सब] और (न) न (सहस्रम्) सहस्र (सूर्याः) सूर्यलोक और (रोदसी) दोनों अन्तरिक्ष और भूमिलोक [मिल कर] और (न) न (जातम्) उत्पन्न हुआ जगत्, (वज्रिन्) हे दण्डधारी ! [परमात्मन्] (त्वा) तुझ को (अनु) निरन्तर (अष्ट) पा सके हैं ॥१॥

आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा ।

अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥२॥

पदार्थ—(वृषन्) हे शूर ! (शविष्ठ) हे अत्यन्त बली ! [परमात्मन्] (महिना) अपने बड़े (शवसा) बल से (विश्वा) सब (वृष्ण्या) शूर के योग्य बलों को (आ) सब ओर से (पप्राथ) तू ने भर दिया है । (मघवन्) हे महाधनी ! (वज्रिन्) हे दण्डधारी ! [शासक परमेश्वर] (गोमति) उत्तम विद्यावाले (व्रजे) मार्ग में (चित्राभिः) विचित्र (ऊतिभिः) रक्षाओं से (अस्मान्) हमें (अव) बचा ॥२॥

卐 सूक्तम् ॥८२॥ 卐

१—२ वसिष्ठः । इन्द्र । प्रगाथ बृहती+सतोबृहती ।

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।

स्तोतारमिद् दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ॥१॥

पदार्थ—(रदावसो) हे धनो के खोदनेवाले ! (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (त्वम्) तू (यावतः) जितने धन का [स्वामी है, उस में से] (अहम्) मैं (एतावत्) इतने का (ईशीय) स्वामी हो जाऊँ, (यत्) जितने से (स्तोतारम्) गुण व्याख्याता [विद्वान्] को (इत्) अवश्य (दिधिषेय) पोषण करूं और (पापत्वाय) पाप होने के लिये [उसको] (न) न (रासीय) दूं ॥१॥

शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।

नहि त्वदन्यन्मघवन् न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन ॥२॥

पदार्थ—(मघवन्) हे महाधनी ! [राजन्] (महयते) सत्कार करने वाले (कुहचिद्विदे) कहीं भी विद्यमान पुरुष के लिये (इत्) अवश्य (रायः) धनों को (दिवेदिवे) दिन दिन (आ) सब प्रकार से (शिक्षेयम्) मैं दूं, (त्वत्) तुझ से (अन्यत्) दूसरा (नः) हमारा (आप्यम्) पानेयोग्य (वस्यः) श्रेष्ठ वस्तु और (पिता) पिता (चन) भी (नहि) नहीं (अस्ति) है ॥२॥

卐 सूक्तम् ॥८३॥ 卐

१—२ शंयुः । इन्द्रः । प्रगाथः (बृ०+स०बृ०) ।

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।

छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (त्रिधातु) तीन [सोना, चाँदी, लोहे] धातुओं वाला, (त्रिवरूथम्) तीन [शीत, ताप और वर्षा ऋतुओं] में उत्तम (शरणम्) शरण [आश्रय] के योग्य और (स्वस्तिमत्) बहुत सुखवाला (छर्दिः) घर (मघवद्भ्यः) धन वालों को (च) और (मह्यम्) मुझको [अर्थात् एक-एक को] (यच्छ) दे, (च) और (एभ्यः) इन सब के लिये (दिद्युम्) प्रकाश को (यवय) संयुक्त कर ॥१॥

ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।

अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (धृष्णुया) निर्भय मनुष्य (धन्वना) भूमि चाहनेवाले (मनसा) मन से (शत्रुम्) वैरी को (अभिमन्यते) घेर लेते हैं और (आवधुः) मार डालते हैं, (मघवन्) हे महाधनी ! (गिर्वणः) हे स्तुतियों से सेवनीय (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (अध स्म) अवश्य ही (नः) हमारे (तनूपा) शरीरों का रक्षक और (दस्मम) अत्यन्त समीपवाला (भव) हो ॥२॥

सूक्तम् ॥८४॥

१—३ मधुच्छन्दाः । इन्द्रः । गायत्री ।

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः ।
अण्वीभिस्तना पूतासः ॥१॥

पदार्थ—(चित्रभानो) हे विचित्र प्रकाशवाले (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले सभापति] (आ याहि) तू आ, (इमे) यह (त्वायवः) तुझ को मिलने वाले [वा तुझे चाहनेवाले], (अण्वीभिः) सूक्ष्म क्रियाओं से (पूतासः) शोधे हुए, (तना) विस्तृत धन वाले (सुताः) सिद्ध किये हुए तत्त्व रस हैं ॥१॥

इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले सभापति] (धिया) कर्म से (इषितः) बढ़ाया गया, और (विप्रजूतः) बुद्धिमानों से वेगवान् किया गया तू (सुतावतः) सिद्ध किये हुए तत्त्वरस वाले (वाघतः) बुद्धिमान् पुरुषों को और (ब्रह्माणि) धनों को (उप=उपेत्य) प्राप्त होकर (आ याहि) आ ॥२॥

इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥३॥

पदार्थ—(हरिवः) हे उत्तम मनुष्योंवाले (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन् (तूतुजान) शीघ्रता करता हुआ तू (ब्रह्माणि) अन्नों को (उप) प्राप्त होकर (आ याहि) आ । और (सुते) सिद्ध किये हुए तत्त्वरस में (नः) हमारे लिये (चनः) अन्न को (दधिष्व) धारण कर ॥३॥

सूक्तम् ॥८५॥

(१—४) १—२ प्रगाथः, ३—४ मेध्यातिथिः । इन्द्रः । प्रगाथः (बृ० + स०बृ०) ।

मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥१॥
अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननोऽभयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥२॥

पदार्थ—(सखायः) हे मित्रो ! (अन्यत् चित्) और कुछ भी (मा वि शंसत) मत बोलो, और (मा रिषण्यत) मत दु:खी हो (च) और (सुते) सिद्ध किये हुए तत्त्व रस के बीच (मुहु) बार बार (उक्था) कहनेयोग्य वचनों को (शंसत) कहो, [अर्थात्] (वृषणम्) महाबलवान् (वृषभं यथा) जल बरसाने वाले मेघ के समान (अवक्रक्षिणम्) कष्ट हटानेवाले, और (गाम् न) [रसों को चलानेवाले और आकाश में चलनेवाले] सूर्य के समान (अजुरम्) सब के चलाने वाले, (चर्षणीसहम्) मनुष्यों के वश में रखनेवाले, (विद्वेषणम्) निग्रह [ताडना] और (संवनना) अनुग्रह [पोषण], (उभयंकरम्) दोनों के करनेवाले, (उभयाविनम्) दोनों [स्थावर और जङ्गम] के रक्षक, (मंहिष्ठम्) अत्यन्त दानी (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मा] की (इत्) ही (सचा) मिला करके (स्तोत) स्तुति करो ॥१, २॥

यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्धनम् ॥३॥

पदार्थ—(यत्) क्योंकि (चित्) निश्चय करके (हि) ही (त्वा) तुझ को (इमे) यह (जनाः) मनुष्य (नाना) नाना प्रकार से (ऊतये) रक्षा के लिये (हवन्ते) पुकारते हैं—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर] (इदम्) यह (अस्माकम्) हमारे (ब्रह्म) धन (भूतु) होवे (ते) तेरी (विश्वा अहा) सब दिनों (च) ही (वर्धनम्) बढ़ती है ॥३॥

वि तर्तूर्यन्ते मघवन् विपश्चितोऽर्यो विपो जनानाम् ।
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥४॥

पदार्थ—(मघवन्) हे महाधनी ! [परमेश्वर] (विपश्चितः) बड़े ज्ञानी (विपः) प्रेरक बुद्धिमान् लोग (जनानाम्) मनुष्यों के बीच (अर्यः=अरीन्) वैरियों को (वि) विविध प्रकार (तर्तूर्यन्ते) बार-बार हराते हैं । (उप क्रमस्व) तू [हमें] पराक्रमी कर, और (ऊतये) तृप्ति के लिये (पुरुरूपम्) बहुत प्रकार वाले (वाजम्) बल को (नेदिष्ठम्) अति समीप (आ) सब प्रकार से (भर) भर ॥४॥

सूक्तम् ॥८६॥

१ विश्वामित्रः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू । स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन् प्रजानन् विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले मनुष्य] (ते) तेरे लिए (ब्रह्मणा) अन्न के साथ (ब्रह्मयुजा) धन के सग्रह करनेवाले, (आशू) शीघ्र चलनेवाले, (हरी) दोनों जल और अग्नि को (सखाया) दो मित्रों के तुल्य (सधमादे) चौरस स्थान में (युनज्मि) मैं संयुक्त करता हूँ, (स्थिरम्) दृढ़, (सुखम्) सुख देनेवाले [इन्द्रियों के लिये अच्छे हितकारी] (रथम्) रथ पर (अधितिष्ठन्) चढ़ता हुआ, (प्रजानन्) बड़ा चतुर (विद्वान्) विद्वान् तू (सोमम्) ऐश्वर्य को (उप याहि) प्राप्त हो ॥१॥

सूक्तम् ॥८७॥

१—७ वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।
गौराद् वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति सुतसोममिच्छन् ॥१॥

पदार्थ—(अध्वर्यवः) हे हिंसा न चाहनेवाले पुरुषो ! (अरुणम्) प्राप्तियोग्य, (दुग्धम्) पूरे किये हुए (अंशुम्) भाग को (क्षितीनाम्) मनुष्यों में (वृषभाय) बलवान् के लिये (जुहोतन) दान करो । (अवपानम्) रक्षा साधन को (गौरात्) गौर [हरिण विशेष] से (वेदीयान्) अधिक जानने वाला (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला पुरुष] (विश्वाहा) सब दिनों (इत्) ही (सुतसोमम्) तत्त्व रस सिद्ध करनेवाले पुरुष को (इच्छन्) चाहता हुआ (याति) चलता है ॥१॥

यद् दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान् पाहि सोमान् ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] (यत्) जिस (चारु) उत्तम (अन्नम्) अन्न को (प्रदिवि) पिछले समय में (दधिषे) तू ने धारण किया था, (अस्य) उस [अन्न] के (पीतिम्) पान वा भोग को (दिवेदिवे) प्रतिदिन (इत्) ही (वक्षि) तू उपदेश करता है, (उत) और (हृदा) हृदय से (उत) और (मनसा) मनन से (प्रस्थितान्) उपस्थित (सोमान्) ऐश्वर्ययुक्त पदार्थों को (जुषाणः) सेवन करता हुआ और (उशन्) चाहता हुआ तू (पाहि) रक्षित कर ॥२॥

जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच ।
एन्द्र पप्राथोर्व१न्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले मनुष्य] (जज्ञानः) उत्पन्न होते हुए तू ने (सोमम्) सोम [तत्त्व रस] को (सहसे) बल के लिये (पपाथ) पान किया है और (ते) तेरी (माता) माता ने [तेरे] (महिमानम्) महत्त्व को (प्र) अच्छे प्रकार (उवाच) कहा है । तू ने (उरु) विशाल (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (आ) सब ओर से (पप्राथ) भर दिया और (युधा) युद्ध से (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (वरिवः) सेवनीय धन (चकर्थ) उत्पन्न किया है ॥३॥

यद् योधया महतो मन्यमानान् साक्षाम तान् बाहुभिः शाशदानान् ।
यद् वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी शूर] (यत्) जो तू (महतः मन्यमानान्) अपने को बड़े मानने वालों से [हमको] (योधयाः) लड़ावे, (तान्) उन (शाशदानान्) तीक्ष्ण स्वभाव वालों को (बाहुभिः) अपनी भुजाओं से (साक्षाम) हम हरावें । (यत् वा) अथवा (नृभिः) नरों से (वृतः) स्वीकार किया हुआ (अभियुध्याः) तू युद्ध करे, (त्वया) तेरे साथ [होकर] (तम्) उस (सौश्रवसम्) बड़े यश वा अन्न देनेवाले (आजिम्) संग्राम को (जयेम) हम जीतें ॥४॥

प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार ।
यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत् केवलः सोमो अस्य ॥५॥

पदार्थ—(इन्द्रस्य) इन्द्र [महाप्रतापी वीर] के (प्रथमा) पहिले और (नूतना) नवीन (कृतानि) कर्म, (या) जो (मघवा) उस महाधनी ने (चकार) किये है, (प्र प्र) बहुत अच्छे प्रकार (वोचम्) मैं कहूँ । (यदा) जब (इत) ही (अदेवी) अदेवी [विद्वानो के विरुद्ध, आसुरी] (मायाः) मायाओ [छल कपट क्रियाओ] को (असहिष्ट) उस ने जीत लिया है, (अथ) तब ही (सोम) सोम [अमृत रस अर्थात् मोक्ष सुख] (अस्य) उस [पुरुषार्थी] का (केवलः) सेवनीय (अभवत्) हुआ है ॥५॥

तवेदं विश्वमभितः पशव्यं यत् पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य ।
गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ॥६॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी मनुष्य] (इदम्) यह (विश्वम्) सब (पशव्यम्) पशुओ [दोपाये और चौपाये जीवो] के लिये हित कर्म (तव) तेरा है, (यत्) जिस को (सूर्यस्य) सूर्य की (चक्षसा) दृष्टि से (अभितः) सब ओर को (पश्यसि) तू देखता है । (एकः) अकेला तू (गवाम्) विद्वानो की (गोपतिः) विद्याओ का रक्षक (असि) है, (ते) तेरे (प्रयतस्य) उत्तम नियम वाले (वस्वः) धन का (भक्षीमहि) हम सेवन करें ॥६॥

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थ—(बृहस्पते) हे बृहस्पति ! [बड़ी वेदवाणी के रक्षक विद्वान्] (च) और (इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन] (युवम्) तुम दोनों (दिव्यस्य) आकाश के (उत) और (पार्थिवस्य) पृथिवी के (वस्वः) धन के (ईशाथे) स्वामी हो । (स्तुवते) स्तुति करते हुए (कीरये) विद्वान् को (रयिम्) धन (चित्) अवश्य (धत्तम्) तुम दोनों दो, [हे वीरो !] (यूयम्) तुम सब (स्वस्तिभिः) सुखों के साथ (सदा) सदा (नः) हमें (पात) रक्षित रक्खो ॥७॥

卐 सूक्तम् ॥८८॥ 卐

१—६ वामदेव । बृहस्पति । त्रिष्टुप् ।

यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥१॥

पदार्थ—(यः) जिस (त्रिषधस्थः) तीन [कर्म उपासना, ज्ञान] के साथ स्थित (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी वेदविद्याओ के रक्षक पुरुष] ने (सहसा) अपने बल से और (रवेण) उपदेश से (ज्मः) पृथिवी के (अन्तान्) अन्तों [सीमाओ] को (वि) विविध प्रकार (तस्तम्भ) दृढ किया है । (तम्) उस (मन्द्रजिह्वम्) आनन्द देने वाली जिह्वावाले विद्वान को (प्रत्नासः) प्राचीन, (दीध्यानाः) प्रकाशमान [तेजस्वी], (विप्राः) बुद्धिमान् (ऋषयः) ऋषियों [वेदो के अर्थ जाननेवालो] ने (पुरः) आगे (दधिरे) धरा है ॥१॥

धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे ।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥२॥

पदार्थ—(बृहस्पते) हे बृहस्पति ! [बड़ी विद्याओ के रक्षक] (ये) जिन (धुनेतयः) शीघ्र गतिवाले, (सुप्रकेतम्) सुन्दर ज्ञान मे (मदन्तः) प्रसन्न होते हुए [विद्वानो ने] (नः) हम को (अभि) सब ओर (ततस्रे) फैलाया है [प्रसिद्ध किया है] । (बृहस्पते) हे बृहस्पते ! [बड़े गुणो के स्वामी] (पृषन्तम्) सींचनेवाले, (सृप्रम्) ज्ञानवाले, (अदब्धम्) नष्ट न किये हुए, (ऊर्वम्) दोषनाशक (अस्य) उन [विद्वानों] के (योनिम्) कारण [वेदशास्त्र] को (रक्षतात) तू रक्षित रख ॥२॥

बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः ।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥३॥

पदार्थ—(बृहस्पते) हे बृहस्पति ! [बड़ी विद्याओं के रक्षक] (या) जो (ते) तेरी (परमा) उत्तम नीति (परावत्) उत्तम विद्यावाले राज्य में है, [उस नीति मे] (ऋतस्पृशः) सत्य का स्पर्श करनेवाले लोग (आ) सब ओर से (नि षेदुः) बैठे हैं, (अतः) इसलिये (अद्रिदुग्धाः) मेघ से भरे गये, (खाताः) खोदे गये, (मध्वः) [मीठे-मीठे जल वाले] (अवताः) कूप (तुभ्यम्) तेरे लिये (विरप्शम्) महान् संसार को (अभितः) सब ओर से (श्चोतन्ति) सींचते हैं ॥३॥

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत् तमांसि ॥४॥

पदार्थ—(बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओ के रक्षक पुरुष] ने (महः) बड़े (ज्योतिषः) तेज के (परमे) उत्तम (व्योमन्) विविध प्रकार रक्षणीय स्थान में (प्रथमम्) पहले पदपर (जायमानः) प्रकट होते हुए (तुविजातः) बहुत प्रसिद्ध होकर (रवेण) अपने उपदेश से (सप्तास्यः) सात मुखवाले अग्नि और (सप्तरश्मिः) सात किरणोंवाले सूर्य के समान (तमांसि) अन्धकारों को (वि अधमत्) बाहिर हटाया है ॥४॥

स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण ।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद् वावशतीरुदाजत् ॥५॥

पदार्थ—(सः सः) उसी ही [वीर पुरुष] ने (सुष्टुभा) बड़ी स्तुतिवाले (ऋक्वता) पूजनीय वाणी वाले (गणेन) समुदाय के साथ (फलिगम्) फूट डालने वाले [वा मेघ के समान अन्धकार के फैलाने वाले] (वलम्) हिंसक वैरी को (रवेण) शब्द [धर्म घोषणा] (रुरोज) भङ्ग किया है । (हव्यसूदः) देने या लेने योग्य पदार्थों की प्रतिज्ञा करने वाले (कनिक्रदत्) बल से पुकारते हुए (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं के रक्षक मनुष्य] ने (वावशतीः) अत्यन्त कामना करती हुई (उस्रियाः) रहनेवाली प्रजाओ को (उत् आजत्) ऊँचा किया है ॥५॥

एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥

पदार्थ—(विश्वदेवाय) सबो से स्तुतियोग्य, (वृष्णे) बलवान् (पित्रे) पिता [के समान पालन करनेवाले पुरुष] का (एव) निश्चय करके (नमसा) अन्न के साथ (यज्ञैः) मेलमिलापो और (हविर्भिः) देनेयोग्य पदार्थों से (विधेम) हम सेवा करें । (बृहस्पते) हे बृहस्पति ! [बड़ी विद्याओ के रक्षक पुरुष] (सुप्रजाः) श्रेष्ठ प्रजाओवाले और (वीरवन्तः) वीर पुरुषोवाले होकर (वयम्) हम (रयीणाम्) अनेक धनो के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥६॥

卐 सूक्तम् ॥८९॥ 卐

१—११ कृष्ण । इन्द्र । त्रिष्टुप् ।

अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै ।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम् ॥१॥

पदार्थ—(जरितः) हे स्तोता विद्वान् (प्रतरम्) अधिक उत्तम (लायम्) हृदयवेधी तीर को (सु) अच्छे प्रकार (अस्यन्) छोड़ते हुए (अस्ता इव) धनुर्धारी के समान (अस्मै) इस [शूर] के लिये (स्तोमम्) स्तुति को (भूषन् इव) सजाता हुआ जैसे (प्र भर) आगे धर, और (इन्द्रम्) इन्द्र [महाप्रतापी मनुष्य] को (सोमे) तत्त्व रस मे (नि) निरन्तर (रमय) आनन्द दे, (विप्राः) हे बुद्धिमानो ! (वाचा) [अपनी सत्य] वाणी से (अर्यः) वैरी की (वाचम्) [असत्य] वाणी को (तरत) तुम दबाओ ॥ १ ॥

दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम् ।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् ॥२॥

पदार्थ—(जरितः) हे स्तुति करनेवाले विद्वान् ! (दोहेन) दूध दोहने के लिये (गाम्) गाय का [जैसे, वैसे] (जारम्) स्तुतियोग्य (सखायम्) मित्र (इन्द्रम्) इन्द्र बड़े प्रतापी पुरुष को (उप शिक्ष) तू ग्रहण कर और (प्र) अच्छे प्रकार (बोधय) जगा (वसुना) धन से (पूर्णम्) भरे हुए (कोशं न) कोश [धनागार] के समान (न्यृष्टम्) निश्चय को प्राप्त हुए (शूरम्) शूर को (मघदेयाय) पूजनीय पदार्थ के दान के लिये (आ च्यावय) आगे बढ़ा ॥२॥

किमङ्ग त्वा मघवन् भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि ।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ॥३॥

पदार्थ—(अङ्ग) हे (मघवन्) धन वाले [पुरुष !] (किम्) किस लिये (त्वा) तुझ को (भोजम्) पालन करनेवाला (आहुः) वे [विद्वान्] कहते हैं ? (मा) मुझ को (शिशीहि) सचेत कर, (त्वा) तुझ को (शिशयम्) उद्योगी (शृणोमि) मैं सुनता हूँ । (शक्र) हे शक्तिमान् ! (मम) मेरी (धीः) बुद्धि (अप्नस्वती) कर्मवाली (अस्तु) होवे, (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] (नः) हमारे लिये (वसुविदम्) धन पहुँचानेवाला (भगम्) ऐश्वर्य (आ) सब ओर से (भर) भर ॥३॥

त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके ।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] (ममसत्येषु) अपने-अपने उद्देश्य को सत्य मानने वाले संग्रामों के बीच (समीके) भिड़ के (संतस्थानाः) सजकर खड़े हुए (जनाः) लोग (त्वाम्) तुझ को (वि) विविध प्रकार (ह्वयन्ते) पुकारते हैं । (अत्र) यहां पर (शूरः) शूर पुरुष [उस मनुष्य को] (युजम्) साथी (कृणुते) बनाता है, (यः) जो (हविष्मान्) भक्तिवाला है, (असुन्वता) तत्त्व रस के न निकालनेवाले के साथ (सख्यम्) मित्रता (न) नहीं (वष्टि) चाहता है ॥४॥

धनं न स्यन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान् ।
तस्मै शत्रून्त्सुतुकान् प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान् युवति हन्ति वृत्रम् ॥५॥

पदार्थ—(यः) जो (प्रयस्वान्) अन्नवाला पुरुष (अस्मै) इस [वीर] को (बहुलम्) बहुत से (स्यन्द्रम्) शीघ्र प्राप्त होने वाले (धनम् न) धन के समान (तीव्रान्) तीव्र (सोमान्) सोम [तत्त्व रसों] को (आसुनोति) सिद्ध करता है । (तस्मै) उस [पुरुष] के लिए (सुतुकान्) बड़े हिंसक, (स्वष्ट्रान्) तीक्ष्ण शस्त्रों वाले (शत्रून्) वैरियों को (अह्नः) दिन के (प्रातः) प्रातःकाल में [अर्थात् प्रकाश रूप से] (नि युवति) वह [वीर] हटा देता है और (वृत्रम्) धन को (हन्ति) प्राप्त होता है ॥५॥

यस्मिन् वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे ।
आराच्चित् सन् भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ॥६॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिस (इन्द्रे) इन्द्र [बड़े प्रतापी वीर] में (शंसम्) अपनी इच्छा को (वयम्) हम ने (दधिम) रक्खा था और (यः) जिस (मघवा) धनवान् ने (अस्मे) हम में (कामम्) अपनी कामना को (शिश्राय) आश्रय दिया था । (आरात्) दूर (चित्) भी (सन्) रहता हुआ (शत्रुः) शत्रु (अस्य) उस का (भयताम्) भय माने, और (अस्मै) उस के लिये (जन्या) लोगों के हितकारी (द्युम्नानि) प्रकाशमान यश (नि) नित्य (नमन्ताम्) नमते रहें ॥६॥

आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।
अस्मे धेहि यवमद् गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् ॥७॥

पदार्थ—(पुरुहूत) हे बहुत प्रकार बुलाये गये ! [वीर] (यः) जो (शम्बः) तेरा वज्र (उग्रः) प्रचण्ड है, (तेन) उस से (शत्रुम्) शत्रु को (आरात्) दूर से (दूरम्) दूर (अप बाधस्व) हटा दे । (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े प्रतापी वीर] (अस्मे) हम को (यवमत्) अन्न वाला (गोमत्) विद्याओं और गौओं वाला धन (धेहि) दे और (जरित्रे) स्तोता [गुण प्रसिद्ध करनेवाले] के लिये (धियम्) बुद्धि को (वाजरत्नाम्) बलों और सुवर्ण आदि रत्नों वाली (कृधि) कर ॥७॥

प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन् तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम् ।
नाह दामानं मघवा नि यंसन् नि सुन्वते वहति भूरि वामम् ॥८॥

पदार्थ—(यम्) जिस (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े प्रतापी मनुष्य] को (वृषसवासः) बलवानों का ऐश्वर्य देनेवाले, (तीव्राः) तीक्ष्ण स्वभाववाले और (बहुलान्तासः) बहुत ज्ञान का अन्त [सिद्धान्त] में रखने वाले (सोमाः) सोम [तत्त्वरस] (अन्तः) भीतर [हृदय में] (प्र अग्मन्) प्राप्त हो गये हैं । (मघवा) वह धनवान् पुरुष (अह) निश्चय करके (दामानम्) दान को (न) नहीं (नि यंसत्) रोक सकता है वह (सुन्वते) तत्त्व रस निचोड़नेवाले को (भूरि) बहुत (वामम्) उत्तम धन (नि) नित्य (वहति) पहुँचाता है ॥८॥

उत प्रहामतिदीवा जयति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले ।
यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित् तं रायः सृजति स्वधाभिः ॥९॥

पदार्थ—(उत) और (अतिदीवा) बड़ा व्यवहारकुशल पुरुष (प्रहाम्) उपद्रवी पुरुष को (जयति) जीत लेता है, (श्वघ्नी) धन नाश करनेवाला जुआरी (काले) [हार के] समय पर (इव) ही (कृतम्) अपने काम का (वि चिनोति) विवेक करता है । (यः) जो (देवकामः) शुभ गुणों का चाहनेवाला (धनम्) धन को [शुभ काम में] (न) नहीं (रुणद्धि) रोकता है, (रायः) अनेक धन (तम्) उसको (इत्) ही (स्वधाभिः) आत्मधारण शक्तियों के साथ (सम् सृजति) मिलते हैं ॥ ९ ॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे ।
वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम ॥१०॥

पदार्थ—(पुरुहूत) हे बहुत बुलायेगये राजन् ! (विश्वे) हम सब लोग (गोभिः) विद्याओं से (दुरेवाम्) दुर्गतिवाली (अमतिम्) कुमति को (तरेम) हटावें, (वा) जैसे (यवेन) जौ आदि अन्न से (क्षुधम्) भूख को (वयम्) हम लोग (राजसु) राजाओं के बीच (प्रथमाः) पहिले और (अरिष्टासः) अजेय होकर (वृजनीभिः) अनेक वर्जन शक्तियों से (धनानि) अनेक धनों को (जयेम) जीतें ॥१०॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ॥११॥

पदार्थ—(बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े शूरों का रक्षक सेनापति] (नः) हमें (पश्चात्) पीछे से, (उत्तरस्मात्) ऊपर से (उत) और (अधरात्) नीचे से (अघायोः) बुरा चीतने वाले शत्रु से (परि पातु) सब प्रकार बचावे । (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला राजा] (पुरस्तात्) आगे से (उत) और (मध्यतः) मध्य से (नः) हमारे लिए (वरीयः) विस्तीर्ण स्थान (कृणोतु) करे, (सखा) जैसे मित्र (सखिभ्यः) मित्रों के लिये [करता है] ॥११॥

卐 सूक्तम् ९० 卐

१—३ भरद्वाज । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् ।

यो अद्रिभित् प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत् पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥१॥

पदार्थ—(यः) जो (अद्रिभित्) पहाड़ों को तोड़नेवाला, (प्रथमजाः) मुख्य पद पर प्रकट होनेवाला, (ऋतावा) सत्यवान्, (आङ्गिरसः) विद्वान् पुरुष का पुत्र (हविष्मान्) देने लेने योग्य पदार्थोंवाला (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं का रक्षक राजा] है, वह (द्विबर्हज्मा) दोनों [विद्या और पुरुषार्थ] से प्रधानता पानेवाला, (प्राघर्मसत्) अच्छे प्रकार सब ओर से प्रताप का सेवन करनेवाला (नः) हमारा (पिता) पालने वाला है, [जैसे] (वृषभः) जल बरसानेवाला मेघ (रोदसी) आकाश और पृथिवी में (आ) व्यापकर (रोरवीति) बल से गरजता है ॥१॥

जनाय चिद् य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
घ्नन् वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयं छत्रूँरमित्रान् पृत्सु साहन् ॥२॥

पदार्थ—(यः) जिस (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं के रक्षक राजा] ने (चित् उ) अवश्य ही (ईवते) गतिमान् (जनाय) मनुष्य के लिये (देवहूतौ) विद्वानों के बुलावे में (लोकम्) दर्शनीय स्थान (चकार) किया है । वह (वृत्राणि) धनों को (घ्नन्) पाता हुआ और (अमित्रान्) सताने वाले (शत्रून्) वैरियों को (पृत्सु) संग्रामों में (जयन्) जीतता हुआ और (सहन्) हराता हुआ (पुरः) [उनके] दुर्गों को (वि दर्दरीति) तोड़ डालता है ॥२॥

बृहस्पतिः समजयद् वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन्त्स्वरप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥३॥

पदार्थ—(देवः) विजय चाहनेवाले (एषः) इस (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं के रक्षक पुरुष] ने (वसूनि) धनों को और (महः) बड़े, (गोमतः) विद्याओं से युक्त (व्रजान्) मार्गों को (सम् अजयत्) जीत लिया है, (अपः) कर्म और (स्वः) सुख को (सिषासन्) पूरे करने की इच्छा करता हुआ, (अप्रतीतः) बेरोक (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं का रक्षक राजा] (अर्कैः) वज्रों [शस्त्रों] से (अमित्रम्) सताने वाले को (हन्ति) नाश करता है ॥३॥

इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

卐

अथ अष्टमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ९१ 卐

१—१२ अयास्यः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् ।

इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।
तुरीयं स्विज्जनयद् विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन् ॥१॥

पदार्थ—(नः) हमारे (पिता) पिता [मनुष्य] ने (ऋतप्रजाताम्) सत्य [अविनाशी परमात्मा] से उत्पन्न हुई (सप्तशीर्ष्णीम्) [दो कान, दो नथने, दो

वालों, और एक मुख—ऋग्० १०।२।६] सात गोलकों में शिर [आश्रय] रखने वाली, (इमाम्) इस (बृहतीम्) बड़ी (धियम्) बुद्धि को (अविन्दत्) पाया है। और (विश्वजन्य:) उन सब मनुष्यों के हितकारी, (अयास्य:) शुभ कर्मों में स्थित रखनेवाले मनुष्य ने (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर] की (स्वित्) ही (शंसन्) स्तुति करते हुए (तुरीयम्) बलयुक्त (उक्थम्) वचन को (जनयत्) प्रकट किया है ॥१॥

ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।

विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त ॥२॥

पदार्थ—(ऋतम्) सत्य ज्ञान की (शंसन्त) स्तुति करते हुए, (ऋजु) ठीक ठीक (दीध्याना) ध्यान करते हुए, (दिव:) विजय चाहनेवाले (असुरस्य) बुद्धिमान् पुरुष के (वीरा:) वीर (पुत्रास:) पुत्र (विप्रम्) विविध प्रकार पूर्ण (पदम्) पद [पानेयोग्य वस्तु] को (दधाना:) धारण करते हुए (अङ्गिरस:) ज्ञानी ऋषियों ने (यज्ञस्य) पूजनीय व्यवहार के (प्रथमम्) मुख्य (धाम) स्थान [परब्रह्म] को (मनन्त) पूजा है ॥२॥

हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् ।

बृहस्पतिरभिकनिक्रदद् गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् ॥३॥

पदार्थ—(हंसै: इव) हंसों के समान [विवेकी] (वावदद्भि:) स्पष्ट बोलते हुए (सखिभि:) मित्र पुरुषों द्वारा (अश्मन्मयानि) व्याप्तिवाले (नहना) बन्धनों [कठिन विघ्नों] को (व्यस्यन्) हटाते हुए, (अभिकनिक्रदत्) सब ओर उपदेश करते हुए, (विद्वान्) विद्वान् (बृहस्पति:) बृहस्पति [बड़े विद्वानों के स्वामी परमात्मा] ने (गा:) वेदवाणियों को (प्र अस्तौत्) प्रस्तुत किया है [सामने रक्खा है] (उत च) और भी (उत् अगायत्) ऊंचा गाया है ॥३॥

अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।

बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवः ॥४॥

पदार्थ—(तमसि) अन्धकार के बीच (ज्योति:) प्रकाश (इच्छन्) चाहता हुआ (बृहस्पति:) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों का स्वामी परमेश्वर] (द्वाभ्याम्) दोनों [प्रलय और सृष्टि की अवस्थाओं] से और (एकया) एक [स्थिति की अवस्था] से (अनृतस्य) असत्य [अज्ञान] के (सेतौ) बन्धन में (गुहा) गुहा [गुप्त वा अज्ञान दशा] के बीच (अव:) नीचे और (पर:) ऊपर (तिष्ठन्ती:) ठहरी हुई (गा:) वेदवाणियों को और (तिस्र:) तीनों (उस्रा:) [सूर्य, अग्नि और बिजुली रूप] प्रकाशों को (हि) निश्चय करके (उत्) उत्तम रीति से (आ अक:) आकार में लाया और (वि आव:) प्रकट किया ॥४॥

विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।

बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥५॥

पदार्थ—(बृहस्पति:) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमेश्वर] ने (शयथा) सोती हुई (अपाचीम्) औंधे मुखवाली (ईम्) प्राप्त हुई (पुरम्) पूर्ति [वा नगरी] को (विभिद्य) तोड़ डालकर (त्रीणि) तीनों [धामों अर्थात् स्थान, नाम, और जाति जैसे मनुष्य पशु आदि—निरु० ९ । २८] को (साकम्) एक साथ (उदधे:) जल वाले समुद्र से (नि: अकृन्तत्) छांट लिया, (द्यौ:) उस प्रकाशमान [परमात्मा] ने (स्तनयन् इव) गरजते हुए बादल के समान होकर (उषसम्) तपाने वाले (सूर्यम्) सूर्य को, (गाम्) भूमि को और (अर्कम्) उष्णता देनेवाले अन्न को (विवेद) जताया है ॥५॥

इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानां करेणेव वि चकर्ता रवेण ।

स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानोऽरोदयत् पणिमा गा अमुष्णात् ॥६॥

पदार्थ—(इन्द्र:) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमेश्वर] ने (दुघानाम्) पूर्तियों के (रक्षितारम्) रख लेनेवाले [रोकनेवाले] (वलम्) हिंसक [विघ्न] को (करेण इव) हाथ से जैसे [वैसे] (रवेण) अपने शब्द [वेद] से (वि चकर्त) काट डाला है। और (स्वेदाञ्जिभि:) मोक्ष के प्रकट करनेवाले व्यवहारों से (आशिरम्) परिपक्वता को (इच्छमान:) चाहते हुए उसने (पणिम्) कुव्यवहारी पुरुष को (अरोदयत्) रुलाया है और (गा:) प्रकाशों को [उस से] (आ) सर्वथा (अमुष्णात्) छीन लिया है ॥६॥

स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिर्गोधायसं वि धनसैरदर्दः ।

ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ॥७॥

पदार्थ—(स:) उस (ब्रह्मण:) ब्रह्माण्ड के (पति:) स्वामी [परमेश्वर] ने (सत्येभि:) सत्य (सखिभि:) मित्ररूप, (शुचद्भि:) प्रकाशमान, (धनसै:) धन देनेवाले, (वृषभि:) बलवान् (वराहै:) उत्तम आहार [भोजनादि] देनेवाले (घर्मस्वेदेभि:) ताप और भाप रखनेवाले गुणों से (ईम्) प्राप्त हुए (गोधायसम्) वध रखनेवाले [शत्रु] को (अदर्द:) फाड़ डाला और (द्रविणम्) धन को (वि आनट्) प्राप्त किया है ॥७॥

ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानास इषणयन्त धीभिः ।

बृहस्पतिर्मिथोअवद्यपेभिरुदुस्रिया असृजत स्वयुग्भिः ॥८॥

पदार्थ—(सत्येन) सच्चे (मनसा) मन से (धीभि:) कर्मों द्वारा (गा:) वेद वाणियों को (इयानास:) पा लेनेवाले (ते) उन [विद्वानों] ने (गोपतिम्) वेद वाणी के स्वामी [परमात्मा] को (इषणयन्त) खोजा है, [कि] (बृहस्पति:) उस बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमात्मा] ने (उस्रिया:) निवास करनेवाली प्रजाओं को (मिथो अवद्यपेभि:) आपस में पाप से बचानेवाले (स्वयुग्भि:) आत्मा के साथी कर्मों से (उत्) उत्तम रीति पर (असृजत) सृजा है ॥८॥

तं वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानदतं सधस्थे ।

बृहस्पतिं वृषणं शूरसातौ भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम् ॥९॥

पदार्थ—(शिवाभि:) कल्याणी (मतिभि:) बुद्धियों के साथ (नानदतम्) बल से दहाड़ते हुए (सिंहम् इव) सिंह के समान (वृषणम्) बलवान् (जिष्णुम्) विजयी (तम्) उस (बृहस्पतिम्) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमेश्वर] को (सधस्थे) सभा स्थान में (वर्धयन्त:) बढ़ाते हुए हम (शूरसातौ) शूरों द्वारा सेवने योग्य (भरे भरे) संग्राम-संग्राम में (अनु मदेम) आनन्द पाते रहें ॥९॥

यदा वाजमसनद् विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म ।

बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा ॥१०॥

पदार्थ—(यदा) जब उस [परमात्मा] ने (विश्वरूपम्) सब संसार में रूप करने वाले (वाजम्) बल को (असनत्) सेवन किया, और (द्याम्) चमकते हुए सूर्य को और (उत्तराणि) अधिक उत्तम (सद्म) लोकों को (आ अरुक्षत्) ऊँचा किया। [तब] (वृषणम्) उस बलवान् (बृहस्पतिम्) बृहस्पति [बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमात्मा] को (आसा) मुख से (नाना) नाना प्रकार (वर्धयन्त:) बढ़ाते हुए (सन्त:) सन्त लोग [सत्पुरुष] (ज्योति:) ज्योति को (बिभ्रत:) धारण करने वाले [हुए हैं] ॥१०॥

सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः ।

पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद्रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ॥११॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] (वयोधै) जीवन धारण करने के लिये (आशिषम्) मेरी प्रार्थना को (सत्याम्) सत्य (कृणुत) करो, (कीरिम्) स्तुति करनेवाले को (स्वेभि:) अपने (एवै:) उद्योगों से तुम (चित् हि) अवश्य ही (अवथ) बचाते हो। (विश्वा:) सब (मृध:) सतानेवाली सेनायें (पश्चा) पीछे (अपभवन्तु) हट जावें (तत्) इस को, (विश्वमिन्वे) हे सब में व्यापक (रोदसी) आकाश और भूमि (शृणुतम्) दोनों सुनो ॥११॥

इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य वि मूर्धानमभिनदर्बुदस्य ।

अहन्नहिमरिणात् सप्त सिन्धून् देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥१२॥

पदार्थ—(इन्द्र:) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मा] ने (मह्ना) अपनी महिमा से (महत:) विशाल (अर्णवस्य) गतिवाले [वा जलवाले] (अर्बुदस्य) हिंसक [अथवा मेघ के समान अन्धकार करनेवाले वैरी] के (मूर्धानम्) शिर को (वि अभिनत्) तोड़ दिया है, वह [परमात्मा] (अहिम्) सब ओर चलनेवाले मेघ में (अहन्) व्यापा है, और उसने (सप्त) सात (सिन्धून्) बहते हुए समुद्रों [के समान भूर आदि सात व्यवस्था वाले सब लोकों] को (अरिणात्) चलाया है, (द्यावापृथिवी) हे प्रकाश और भूमि ! (देवै:) उत्तम गुणों के साथ (न:) हम को (प्र अवतम्) दोनों बचाओ ॥१२॥

卐 सूक्तम् ॥९२॥ 卐

[१-१२] १-१२ प्रियमेध:; १६-२१ पुरुहन्मा । छन्द: । १-३ गायत्री, अनुष्टुप्; ८, १३, १७, १९, २१ पंक्ति:; १४-१६, १८, २० बृहती ।

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥१॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (गोपतिम्) पृथिवी के पालक, (सत्यस्य) सत्य के (सूनुम्) प्रेरक, (सत्पतिम्) सत्पुरुषों के रक्षक (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजा] को, (यथा) जैसा (विदे) वह है, (गिरा) स्तुति के साथ (अभि) सब ओर से (प्र) अच्छे प्रकार (अर्च) तू पूज ॥१॥

आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि संनवामहे ॥२॥

पदार्थ—(हरयः) दुःख हरने वाले मनुष्य (अरुषीः) गतिशील [प्रजाओं] को (बर्हिषि) बढ़ती के स्थान में (अधि) अधिकारपूर्वक (आ ससृज्रिरे) लाये हैं, (यत्र) जहां पर [उस राजा को] (अभि) सब ओर से (संनवामहे) हम मिलकर सराहते हैं ॥२॥

इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत् सीमुपह्वरे विदत् ॥३॥

पदार्थ—(वज्रिणे) वज्रधारी (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले राजा] के लिये (गावः) वेदवाणियों ने (आशिरम्) सेवने वा पकानेयोग्य पदार्थ [दूध, दही, घी आदि] को और (मधु) मधुविद्या [यथार्थ ज्ञान] को (दुदुह्रे) भर दिया है। (यत्) जब कि उसने [उन वेदवाणियों को] (उपह्वरे) अपने पास (सीम्) सब प्रकार (विदत्) पाया ॥३॥

उद् यद् ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि ।
मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥४॥

पदार्थ—(यत्) जब (ब्रध्नस्य) नियम करनेवाले [वा महान् परमेश्वर] के (विष्टपम्) सहारे [अर्थात्] (गृहम्) शरण को (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला आचार्य] (च) और [मैं ब्रह्मचारी] (उत्) ऊँचे होकर (गन्वहि) हम दोनों प्राप्त करें। (त्रिः) तीन बार [सत्त्व, रज, तम तीनों गुणों सहित] (सप्त) सात [भूर्, भुवः आदि सात अवस्थाओं वाले संसार] के (मध्वः) निश्चित ज्ञान का (पीत्वा) पान करके (सख्युः) सखा [मित्र, परमात्मा] के (पदे) पद [प्राप्तियोग्य मोक्ष सुख] में (सचेवहि) हम दोनों सींचे जावें ॥४॥

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥५॥

पदार्थ—(प्रियमेधासः) हे प्यारी [हितकारिणी] बुद्धिवाले पुरुषो ! (धृष्णु) निर्भय (पुरं न) गढ़ के समान [उस परमेश्वर] को (अर्चत) पूजो, (प्र) अच्छे प्रकार (अर्चत) पूजो, (अर्चत) पूजो, (अर्चत) पूजो, (उत) और (पुत्रकाः) गुणी सन्तानें [उस को] (अर्चन्तु) पूजें ॥५॥

अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत् ।
पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥६॥

पदार्थ—(इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मा] के लिये (उद्यतम्) ऊँचे किये हुए (ब्रह्म) वेदज्ञान का (गर्गरः) गर्गर [सारंगी आदि बाजा] (अव स्वराति) स्वर आलापे, (गोधा) गोधा [वीणा आदि बाजा] (परिसनिष्वणत्) बोल बोले, और (पिङ्गा) पिङ्गा [धनुष की हद डोरी] (परि चनिष्कदत्) टङ्कार करे ॥६॥

आ यत् पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः ।
अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ॥७॥

पदार्थ—(यत्) जब (एन्यः) गतिवाली, (सुदुघाः) अच्छे प्रकार कामनायें पूरी करनेवाली, (अनपस्फुरः) निश्चल बुद्धियां (आ पतन्ति) आ जावें, [तब] (अपस्फुरम्) अत्यन्त बढ़े हुए (सोमम्) उत्पन्न करनेवाले परमात्मा को (इन्द्राय) बड़े ऐश्वर्य की (पातवे) रक्षा के लिये (गृभायत) तुम ग्रहण करो ॥७॥

अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत ।
वरुण इदिह क्षयत् तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ॥८॥

पदार्थ—(इन्द्रः) इन्द्र [प्रतापी सूर्य] ने [पृथिवी आदि के जल को] (अपात्) पिया है, (अग्निः) अग्नि ने [काठ हव्य आदि के रस को] (अपात्) पिया है, [उस से] (विश्वे) सब (देवाः) व्यवहार करनेवाले प्राणी (अमत्सत) तृप्त हुए हैं। (इह) इस [सब कर्म] में (वरुणः) श्रेष्ठ परमात्मा (इत्) ही (क्षयत्) समर्थ हुआ है, (तम्) उस [परमात्मा] को (आपः) प्राप्त प्रजाओं ने (अभि) सब प्रकार (अनूषत) [प्रीति से] सराहा है, (इव) जैसे (संशिश्वरीः) मिलती हुई गौयें (वत्सम्) बछड़े को [प्रीति करती हैं] ॥८॥

सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः ।
अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥९॥

पदार्थ—(वरुण) हे श्रेष्ठ परमात्मन् ! तू (सुदेवः) बड़ा देव [अति प्रकाशमान वा दानी] (असि) है, (यस्य ते) जिस तेरे (काकुदम्) तालु को (सप्त) सात (सिन्धवः) बहते हुए समुद्र [अर्थात् भूर्, भुवः स्वः, महः, जनः, तपः, सत्य, इन सात अवस्थाओंवाले सब लोक] (अनुक्षरन्ति) निरन्तर सींचते हैं, (इव) जैसे (सूर्म्यम्) बड़े वेग वाले (सुषिराम्) झरने को [जल सींचते हैं] ॥९॥

यो व्यतीँरफाणयत् सुयुक्ताँ उप दाशुषे ।
तक्वो नेता तदिद् वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥१०॥

पदार्थ—(यः) जिस [परमात्मा] ने (व्यतीन्) विविध प्रकार चलते रहने वाले, (सुयुक्तान्) बड़े योग्य पदार्थों को (दाशुषे) आत्मदानी [भक्त] के लिये (उप) सुन्दर रीति से (अफाणयत्) सहज में उत्पन्न किया है और (यः) जिस [परमात्मा] ने (उपमा) पास रहने वाले को (अमुच्यत) [दुःखों से] मुक्त किया है, (तत् इत्) वही (वपुः) बीज बोनेवाला [ब्रह्म] (तक्वः) व्यापक (नेता) नेता [अगुआ परमात्मा] है ॥१०॥

अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः
भिनत् कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥११॥

पदार्थ—(शक्रः) शक्तिमान् (इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवाला परमात्मा] (इत्) ही (उ) अवश्य (अति) तिरस्कार करके (विश्वाः) सब (द्विषः) विरोध करनेवाली प्रजाओं को (अति) सर्वथा (ओहते) मारता है, [जैसे] (कनीनः) चमकता हुआ सूर्य (गिरा) वाणी [गर्जन] से (पच्यमानम्) पकाये गये [ताड़े गये] (ओदनम्) मेघ को (परः) दूर (भिनत्) छिन्न भिन्न करता है ॥११॥

अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथम् ।
स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥१२॥

पदार्थ—(न) जैसे (कुमारकः) खिलाड़ी (अर्भकः) बालक (नवम्) नये (रथम्) रथ पर (अधि तिष्ठत्) चढ़े। [वैसे ही] (सः) वह [जिज्ञासु] (मात्रे) माता के लिये और (पित्रे) पिता के लिये (महिषम्) महान्, (मृगम्) खोजनेयोग्य (विभुक्रतुम्) व्यापक कर्म वाले [परमात्मा] को (पक्षत्) ग्रहण करे ॥१२॥

आ तू सुशिप्र दंपते रथं तिष्ठा हिरण्ययम् ।
अध द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम् ॥१३॥

पदार्थ—(सुशिप्र) हे बड़े ज्ञानी ! (दम्पते) हे दमनरक्षक [जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी] (हिरण्ययम्) प्रकाशमय [ज्ञानरूपी] (रथम्) रथ पर (तु) शीघ्र (आ तिष्ठ) चढ़। (अध) फिर (द्युक्षम्) व्यवहारों में समर्थ, (सहस्रपादम्) सहस्रों [असीम] गति शक्तिवाले, (अरुषम्) व्यापक, (स्वस्तिगाम्) आनन्द पहुँचाने वाले, (अनेहसम्) निर्दोष परमात्मा को (सचेवहि) हम दोनों [आचार्य और ब्रह्मचारी] मिल जावें ॥१३॥

तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति दावने ॥१४॥

पदार्थ—(तम्) उस (घ) ही (ईम्) प्राप्तियोग्य (स्वराजम्) स्वराजा [अपने आप राजा परमेश्वर] को (इत्था) इस प्रकार (नमस्विनः) नमस्कार करने वाले लोग (उप आसते) पूजते हैं, (यत्) जब कि वे (अस्य) उस [परमात्मा] का (चित्) ही (सुधितम्) भले प्रकार रक्खा हुआ (अर्थम्) पानेयोग्य धन (एतवे) पाने के लिये और (दावने) दान के लिये [उस परमात्मा] को (आवर्तयन्ति) सामने वर्तमान करते हैं ॥१४॥

अनु प्रत्नस्यौकसः प्रियमेधास एषाम् ।
पूर्वामनु प्रयतिं वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत ॥१५॥

पदार्थ—(एषाम्) इन प्राणियों के बीच (प्रियमेधासः) प्यारी बुद्धिवाले, (वृक्तबर्हिषः) हिंसा त्यागनेवाले (हितप्रयसः) हितकारी अन्नवाले पुरुषों ने (प्रत्नस्य) सनातन (ओकसः) आश्रय [परमात्मा] के (अनु) पीछे होकर (पूर्वाम्) पहिली (प्रयतिम्) प्रयत्न रीति को (अनु) निरन्तर (आशत) पाया है ॥१५॥

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥१६॥

पदार्थ—(यः) जो [परमेश्वर] (चर्षणीनाम्) मनुष्यों का (राजा) राजा (रथेभिः) रथों [के समान रमणीय लोकों] के साथ (अध्रिगुः) बेरोक (याता) चलने वाला, और (यः) जो (विश्वासाम्) सब (पृतनानाम्) शत्रु सेनाओं का

(तवसा) हरानेवाला, (ज्येष्ठः) अतिश्रेष्ठ (वृत्रहा) अन्धकार नाशक है, [उस की] (गृणे) मैं स्तुति करता हूँ ॥१६॥

इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।

हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥१७॥

पदार्थ—(पुरुहन्मन्) हे बहुत ज्ञानी ऋषि ! (तम्) उस (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा] का (शुम्भ) भाषण कर, (यस्य) जिसके (द्विता) दोनों धर्म [अनुग्रह और निग्रह गुण] (विधर्तरि) बुद्धिमान् जन पर (अवसे) रक्षा के लिये और [जिस का] (दर्शतः) दर्शनीय (महः) महान् (वज्रः) वज्र [दण्ड सामर्थ्य] (हस्ताय) हाथ [अर्थात् हमारे बाहुबल] के लिये (प्रति) प्रत्यक्ष (धायि) धारण किया गया है, (न) जैसे (सूर्यः) सूर्य (दिवे) प्रकाश के लिये है ॥१७॥

नकिष्टं कर्मणा नशद् यश्चकार सदावृधम् ।

इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्ण्वोजसम् ॥१८॥

पदार्थ—(यः) जिस [परमात्मा] ने (सदावृधम्) सदा बढ़ानेवाले व्यवहार को (चकार) बनाया है, (तम्) उस (विश्वगूर्तम्) सबी को उद्यम मे लगाने वाले, (ऋभ्वसम्) बुद्धिमानो को ग्रहण करनेवाले, (अधृष्टम्) अजेय, (धृष्ण्वोजसम्) निर्भय बलवाले, (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मा] को (नकिः) न कोई (कर्मणा) कर्म से और (न) न (यज्ञैः) दानो से (नशत्) पा सकता है ॥१८॥

अषाल्हमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन् महीरुरुज्रयः ।

सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामो अनोनवुः ॥१९॥

पदार्थ—(यस्मिन् जायमाने) जिस [परमात्मा] के प्रकट होने पर (महीः) पृथिवियाँ (उरुज्रयः) बहुत चलनेवाली होती हैं, (अषाल्हम्) उस अजेय, (उग्रम्) तेजस्वी, और (पृतनासु) संग्रामो मे (सासहिम्) जिताने वाले [परमेश्वर] को (धेनवः) वाणियों ने (सम्) मिलकर (अनोनवुः) अत्यन्त सराहा है, (द्यावः) सूर्यों और (क्षामः) भूमियों ने (अनोनवुः) अत्यन्त सराहा है ॥१९॥

यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।

न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥२०॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मन्] (यत्) जो (शतम्) सौ (द्यावः) अन्तरिक्ष [वायु लोक], (उत) और (शतम्) सौ (भूमीः) भूमि लोक (ते) तेरे [सामने] (स्युः) होवें, [न वे सब] और (न) न (सहस्रम्) सहस्र (सूर्याः) सूर्यलोक और (रोदसी) दोनों अन्तरिक्ष और भूमिलोक [मिलकर] और (न) न (जातम्) उत्पन्न हुआ जगत्, (वज्रिन्) हे दण्डधारी ! [परमात्मन्] (त्वा) तुझ को (अनु) निरन्तर (अष्ट) पा सके हैं ॥२०॥

आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा ।

अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिन् चित्राभिरूतिभिः ॥२१॥

पदार्थ—(वृषन्) हे शूर ! (शविष्ठ) हे अत्यन्त बली ! [परमात्मन्] (महिना) अपने बड़े (शवसा) बल से (विश्वा) सब (वृष्ण्या) शूर के योग्य बलो को (आ) सब ओर से (पप्राथ) तू ने भर दिया है । (मघवन्) हे महाधनी (वज्रिन्) हे दण्डधारी ! [शासक परमेश्वर] (गोमति) उत्तम विद्यावाले (व्रजे) मार्ग मे (चित्राभिः) विचित्र (ऊतिभिः) रक्षाओ से (अस्मान्) हमें (अव) बचा ॥२१॥

卐 सूक्तम् ९३ 卐

(१-८) १-३ प्रगाथः, ४-८ देवजामय । इन्द्रः । गायत्री ।

उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः ।

अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥१॥

पदार्थ—(अद्रिवः) हे अन्नवाले ! [वा वज्र वाले परमेश्वर !] (त्वा) तुझ को (स्तोमाः) स्तुति करनेवाले लोग (उत्) अच्छे प्रकार (मन्दन्तु) प्रसन्न करें, तू [हमारे लिये] (राधः) धन (कृणुष्व) कर, (ब्रह्मद्विषः) वेदद्वेषियों को (अव जहि) नष्ट कर दे ॥१॥

पदा पणीँरराधसो नि बाधस्व महाँ असि ।

नहि त्वा कश्चन प्रति ॥२॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] तू (पदा) अपनी व्याप्ति से (अराधसः) आराधना न करनेवाले (पणीन्) कुव्यवहारी पुरुषों को (नि बाधस्व) रोकता रह, तू (महान्) महान् (असि) है । (कः चन) कोई भी (त्वा प्रति) तेरे समान (नहि) नहीं है ॥२॥

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परमेश्वर] (त्वम्) तू (सुतानाम्) उत्पन्न हुए पदार्थों का, और (त्वम्) तू (असुतानाम्) न उत्पन्न हुए [परमाणु रूप] पदार्थों का (ईशिषे) स्वामी है, (त्वम्) तू (जनानाम्) उत्पन्न होनेवालों का (राजा) राजा है ॥३॥

ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते । भेजानासः सुवीर्यम् ॥४॥

पदार्थ—(ईङ्खयन्तीः) चेष्टा करती हुई, (अपस्युवः) काम चाहनेवाली, (सुवीर्यम्) बड़े सामर्थ्य को (भेजानासः) सेवन करती हुई प्रजाएँ (जातम्) प्रकट हुए (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मा] की (उप आसते) उपासना करती हैं ॥४॥

त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः । त्वं वृषन् वृषेदसि ॥५॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मन्] (त्वम्) तू (बलात्) बल से, (ओजसः) पराक्रम [धैर्य] और (सहसः) जयशीलता से (अधि) अधिक करके (जातः) प्रसिद्ध है । (वृषन्) हे बलवान् ! (त्वम्) तू (वृषा इत्) बलवान् ही (असि) है ॥५॥

त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्यन्तरिक्षमतिरः ।

उद् द्यामस्तभ्ना ओजसा ॥६॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मन्] (त्वम्) तू (वृत्रहा) अन्धकार नाशक (असि) है, (अन्तरिक्षम्) आकाश को (वि अतिरः) तू ने फैलाया है, और (ओजसा) पराक्रम के साथ (द्याम्) चमकते हुए सूर्य को (उत्) उत्तम रीति से (अस्तभ्नाः) थांभा है ॥६॥

त्वमिन्द्र सजोषसमर्कं बिभर्षि बाह्वोः । वज्रं शिशान ओजसा ॥७॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले परमेश्वर] (ओजसा) पराक्रम से (वज्रम्) वज्र को (शिशानः) तीक्ष्ण करता हुआ (त्वम्) तू (सजोषसम्) प्रीतियुक्त [वा विचारवान्] (अर्कम्) पूजनीय विद्वान् को (बाह्वोः) दोनो भुजाओं पर [जैसे] (बिभर्षि) धारण करता है ॥७॥

त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा ।

स विश्वा भुव आभवः ॥८॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [परमेश्वर] (त्वम्) तू (ओजसा) पराक्रम से (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न वस्तुओं को (अभिभूः) वश में रखने वाला (असि) है, (सः) सो तू (विश्वाः) सब (भुवः) भूमियों को (आ) सब ओर से (अभवः) प्राप्त हुआ है ॥८॥

卐 सूक्तम् ९४ 卐

१—११ कृष्ण । इन्द्रः । १-३, १०, ११ त्रिष्टुप्, ४-९ जगती ।

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।

प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥१॥

पदार्थ—(स्वपतिः) धन का स्वामी वा स्वयं स्वामी (इन्द्रः) इन्द्रः [बड़े ऐश्वर्य वाला राजा] (मदाय) हमारे आनन्द के लिये (आ यातु) आवे, (यः) जो [राजा] (धर्मणा) धर्म के साथ (तूतुजानः) फुरतीला, (तुविष्मान्) वृद्धि वाला और (अपारेण) अपने अपार (महता) बड़े (वृष्ण्येन) साहस से [वैरियों के] (विश्वा) सब (सहांसि) जीतनेवाले बलों को (अति) सर्वथा (प्रत्वक्षाणः) रेतने वाला [छीलने वाला] है ॥१॥

सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ ।

शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥२॥

पदार्थ—(नृपते) हे नरपति ! [मनुष्यों के स्वामी] (ते) तेरा (रथः) रथ (सुष्ठामा) दृढ़ बैठकों वाला है, (हरी) दोनों घोड़े (सुयमा) अच्छे साधे हुए हैं (गभस्तौ) हाथ में (वज्रः) वज्र (मिम्यक्ष) प्राप्त हुआ है । (राजन्) हे राजन् ! (सुपथा) सुन्दर मार्ग से (शीभम्) शीघ्र (अर्वाङ्) सामने होकर (आ याहि) आ, (पपुषः ते) तुझ रक्षक के (वृष्ण्यानि) बलों को (वर्धाम) हम बढ़ावें ॥२॥

पदार्थ—(त्वम्) तू ने (अधराचः) नीचे को बहने वाले (सिन्धून्) नदी नालों को (अव असृजः) छोड दिया है, (अहिम्) मारने वाले विघ्न को (अहन्) तू ने मारा है। (इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन्] तू (अशत्रुः) निर्वैरी (जज्ञिषे) हो गया है, (विश्वम्) सब (वार्यम्) जल में होनेवाले [अन्न आदि] को (पुष्यसि) तू पुष्ट करता है, (तम्) उस (त्वाम्) तुझ से (परि ष्वजामहे) हम मिलते हैं। (अन्यकेषाम्) दूसरे छोटे लोगों की (ज्याका) निर्बल डोरियां (धन्वसु अधि) धनुषों पर चढ़ी हुई (नभन्ताम्) टूट जावें ॥३॥

वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः। अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥४॥

पदार्थ—(नः) हमारे (अर्यः) शत्रु की (विश्वा) सब (अरातयः) कंजूस प्रजायें और (धियः) बुद्धियां (सु) सर्वथा (वि नशन्त) नष्ट हो जावें। (इन्द्र) हे इन्द्र [महाप्रतापी राजन्] तू (शत्रवे) उस वैरी पर (वधम्) शस्त्र (अस्ता) चलाने वाला (असि) है, (यः) जो (नः) हमें (जिघांसति) मारना चाहता है, (या) जो (ते) तेरी (रातिः) दानशक्ति है, [वह] (वसु) धन को (ददिः) देनेवाली है। (अन्यकेषाम्) दूसरे छोटे लोगों की (ज्याका) निर्बल डोरियां (धन्वसु अधि) धनुषों पर चढ़ी हुई (नभन्ताम्) टूट जावें ॥४॥

卐 सूक्तम् ॥९६॥ १—२४ 卐

[१—२४] १-५ पूरण ; ६-१० *यक्ष्मनाशन* , ११-१६ *रक्षोहा*, १७-२३ *विवृहा*, २४ *प्रचेता*। १-५ इन्द्रः, ६-१० *यक्ष्मनाशनम्*, ११-१६ *गर्भसंस्राव* , १७-२३ *यक्ष्मनाशनम्*, २४ *दुःस्वप्नघ्नम्*। १-१० *त्रिष्टुप्*; ११-२४ *अनुष्टुप्*।

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च।
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन् तुभ्यमिमे सुतासः ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (अस्य) इस (तीव्रस्य) तीक्ष्ण [शीघ्र बलदायक] (अभिवयसः) प्राप्त अन्न की (पाहि) तू रक्षा कर और (सर्वरथा) सब रथों के योग्य (हरी) अपने दोनों घोड़ों को (इह) यहां पर (वि मुञ्च) छोड़ दे। (त्वा) तुझ को (यजमानासः) यजमानों के गिराने वाले [अथवा यजमानों से भिन्न] (अन्ये) दूसरे [विरोधी] लोग (मा नि रीरमन्) न रोक लेवें, (तुभ्यम्) तेरे लिये (इमे) यह (सुतासः) सिद्ध किये हुए [तत्त्व रस] हैं ॥१॥

तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति।
इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम् ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन्] (तुभ्यम्) तेरे लिये (सुताः) सिद्ध किए हुए, (उ) और (तुभ्यम्) तेरे लिये (सोत्वासः) सिद्ध होनेवाले [तत्त्व रस] हैं, (त्वाम्) तुझ को (श्वात्र्याः) गति वाली [प्रजा] की (गिरः) वाणियां (आ ह्वयन्ति) बुलाती हैं। (अद्य) अब (इदम्) इस (सवनम्) ऐश्वर्य कर्म का (जुषाणः) सेवन करता हुआ और (विश्वस्य) सब का (विद्वान्) जानने वाला तू (इह) यहां पर (सोमम्) उत्पन्न संसार की (पाहि) रक्षा कर ॥२॥

य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो (देवकामः) दिव्यगुण चाहनेवाला मनुष्य (उशता) कामना वाले (मनसा) मन से और (सर्वहृदा) पूरे हृदय से (अस्मै) इस [संसार] के लिये (सोमम्) सोम [तत्त्व रस] को (सुनोति) निचोड़ता है। (इन्द्रः) इन्द्र [महाप्रतापी राजा] (तस्य) उस [मनुष्य] की (गाः) वाणियों को (न) नहीं (परा ददाति) नष्ट करता है, (अस्मै) उसके लिये वह (प्रशस्तम्) प्रशंसनीय, (चारुम्) मनोहर व्यवहार (इत्) ही (कृणोति) करता है ॥३॥

अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान् न सुनोति सोमम्।
निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ॥४॥

पदार्थ—(एषः) वह [मनुष्य] (अस्य) इस [शूर पुरुष] का (अनुस्पष्टः) सर्वथा स्पष्ट [दृष्टि गोचर] (भवति) होता है, (यः) जो [मनुष्य] (रेवान् न) धनवान् के समान (अस्मै) उस [शूर] के लिये (सोमम्) सोम [तत्त्व रस] (सुनोति) निचोड़ता है। (मघवा) धनवान् [शूर] (तम्) उस [मनुष्य] को (अरत्नौ) अपनी गोद में (निः) निश्चय करके (दधाति) बैठालता है, और (अनानुदिष्टः) बिना कहा हुआ [वह शूर] (ब्रह्मद्विषः) वेद विरोधियों को (हन्ति) मारता है ॥४॥

अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ।
आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ॥५॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (अश्वायन्तः) घोड़े चाहते हुए, (गव्यन्तः) भूमि चाहते हुए, (वाजयन्तः) बल वा अन्न चाहते हुए हम (त्वा) तुझे (उपगन्तवै) पाने के लिये (उ) अवश्य (हवामहे) बुलाते हैं। (इन्द्र) हे इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन्] (ते) तेरी (नवायाम्) श्रेष्ठ (सुमतौ) सुमति में (आभूषन्तः) शोभा पाते हुए (वयम्) हम (त्वा) तुझ को (शुनम्) सुख से (हुवेम) बुलावें ॥५॥

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥६॥

पदार्थ—[हे प्राणी !] (त्वा) तुझ को (हविषा) भक्ति के साथ (कम्) सुख से (जीवनाय) जीवन के लिये (अज्ञातयक्ष्मात्) अप्रकट रोग से (उत) और (राजयक्ष्मात्) राजरोग से (मुञ्चामि) मैं छुड़ाता हूँ। (यदि) जो (ग्राहिः) जकड़ने वाली पीड़ा [गठिया रोग] ने (एतत्) इस समय (एनम्) इस प्राणी को (जग्राह) पकड़ लिया है, (तस्याः) उस [पीड़ा] से (इन्द्राग्नी) हे सूर्य और अग्नि (एनम्) इस [प्राणी] को (प्र मुमुक्तम्) तुम छुड़ाओ ॥६॥

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय ॥७॥

पदार्थ—(यदि) चाहे [यह] (क्षितायुः) टूटी आयुवाला, (यदि वा) अथवा (परेतः) अङ्ग-भङ्ग है, (यदि) चाहे (मृत्योः) मृत्यु के (अन्तिकम्) समीप (एव) ही (नीतः = नि—इतः) आ चुका है। (तम्) उसको (निर्ऋतेः) महामारी की (उपस्थात्) गोद से (आ हरामि) लिये आता हूँ, (एनम्) इस को (शतशारदाय + जीवनाय) सौ शरद् ऋतुओं वाले [जीवन] के लिये (अस्पार्शम्) मैं ने छुआ है ॥७॥

सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम्।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥८॥

पदार्थ—(सहस्राक्षेण) सहस्रों नेत्रवाले, (शतवीर्येण) सैकड़ों सामर्थ्य वाले, (शतायुषा) सैकड़ों जीवन शक्तिवाले (हविषा) आत्मदान वा भक्ति से (एनम्) इस [आत्मा] को (आ अहार्षम्) मैंने उभारा है। (यथा) जिस से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् मनुष्य (एनम्) इस [जीव] को (विश्वस्य) प्रत्येक (दुरितस्य) कष्ट के (पारम्) पार (अति = अतीत्य) निकालकर (शरदः) [सौ] शरद् ऋतुओं तक (नयाति) पहुँचावे ॥८॥

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान्।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥९॥

पदार्थ—(वर्धमानः + त्वम्) बढ़ती करता हुआ तू (शतं शरदः) सौ शरद् ऋतुओं तक, (शतं हेमन्तान्) सौ शीत ऋतुओं तक (उ) और (शतं वसन्तान्) सौ वसन्त ऋतुओं तक (जीव) जीता रह। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (अग्निः) तेजस्वी विद्वान्, (सविता) सब के चलानेवाले, (बृहस्पतिः + अहं जीवः) बड़े बड़ों के रक्षक मैंने (शतम्) अनेक प्रकार से (ते) तेरे लिये (शतायुषा) सैकड़ों जीवन शक्तिवाले (हविषा) आत्मदान वा भक्ति से (एनम्) इस [आत्मा] को (आ अहार्षम्) उभारा है ॥९॥

आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥१०॥

पदार्थ—[हे मनुष्य !] (त्वा) तुझ को (आ अहार्षम्) मैं ने ग्रहण किया है और (अविदम्) मैंने पाया है, तू (पुनर्णवः) नवीन होकर (पुनः) फिर (आ अगाः) आया है। (सर्वाङ्ग) हे सम्पूर्ण [विद्या] के अङ्ग वाले ! (ते) तेरे लिये (सर्वम्) सम्पूर्ण (चक्षुः) दर्शन-सामर्थ्य (च) और (ते) तेरे लिये (सर्वम्) सम्पूर्ण (आयुः) आयु (अविदम्) मैंने पाई है ॥१०॥

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥११॥

पदार्थ—[हे गर्भिणी !] (ब्रह्मणा) विद्वान् वैद्य से (संविदानः) मेल रखता हुआ, (रक्षोहा) राक्षसों [रोगों] का नाश करने वाला (अग्निः) अग्नि

[अग्नि के समान रोग भस्म करनेवाला औषध] (इतः) यहां से [उस रोग को] (नाशयामि) हटाऊँ, (यः) जो कोई (दुर्णामा) दुर्णामा [दुष्ट नामवाले बवासीर आदि रोग का कीड़ा] (अमीवा) पीड़ा होकर (ते) तेरे (गर्भम्) गर्भाशय [कोख] और (योनिम्) योनि [गुप्त उत्पत्ति मार्ग] को (आशये) घेर लेता है ॥११॥

यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।

अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥१२॥

पदार्थ—[हे गर्भिणी !] (यः) जो कोई (दुर्णामा) दुर्णामा [दुष्ट नाम वाला बवासीर आदि रोग का कीड़ा] (अमीवा) पीड़ा होकर (ते) तेरे (गर्भम्) गर्भाशय [कोख] और (योनिम्) योनि [गुप्त उत्पत्ति मार्ग] को (आशये) घेर लेता है, (ब्रह्मणा सह) विद्वान् वैद्य के साथ (अग्निः) अग्नि [अग्नि-समान रोग को भस्म करनेवाला औषध] (तम्) उस (क्रव्यादम्) मांस खानेवाले [रोग] को (निः) सर्वथा (अनीनशत्) नाश करे ॥१२॥

यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम् ।

जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥१३॥

पदार्थ—[हे गर्भिणी !] (यः) जो कोई [रोग] (ते) तेरे [गर्भाशय में] (पतयन्तम्) गिरते हुए [वीर्य रूप गर्भ] को और (निषत्स्नुम्) बसते हुए [अंकुर अर्थात् बालक] को और (यः) जो कोई [रोग] (सरीसृपम्) डोलते हुए गर्भ को (हन्ति) नाश करे, और (यः) जो कोई [रोग] (ते) तेरे (जातम्) उत्पन्न हुए बच्चे को (जिघांसति) मारना चाहे, (तम्) उस [रोग] को (इतः) यहां से (नाशयामसि) हम नाश करें ॥१३॥

यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये ।

योनिं यो अन्तरारेळ्हि तमितो नाशयामसि ॥१४॥

पदार्थ—(यः) जो कोई [रोग] (ते) तेरी (ऊरू) दोनों जंघाओं को (विहरति) फैला दे और (दम्पती अन्तरा) पति-पत्नी के बीच में (शये) पड़ जावे और (यः) जो कोई [रोग] (योनिम्) योनि को (अन्तः) भीतर से (आरेळ्हि) चाट लेवे, (तम्) उस [रोग] को (इतः) यहां से (नाशयामसि) हम नाश करें ॥१४॥

यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।

प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥१५॥

पदार्थ—[हे स्त्री !] (यः) जो कोई (जारः) व्यभिचारी (भ्राता) भाई (भूत्वा) होकर [अथवा] (पतिः) पति (भूत्वा) होकर (त्वा) तेरे पास (निपद्यते) आ जावे, [अथवा] (यः) जो कोई [दुष्ट] (ते) तेरे (प्रजाम्) सन्तान को (जिघांसति) मारना चाहे, (तम्) उस को (इतः) यहां से (नाशयामसि) हम नाश करें ॥१५॥

यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।

प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥१६॥

पदार्थ—[हे स्त्री !] (यः) जो कोई [दुष्ट] (स्वप्नेन) नींद से [अथवा] (तमसा) अंधेरे से (मोहयित्वा) घबरा देकर (त्वा) तेरे पास (निपद्यते) आ जावे, और (यः) जो कोई (ते) तेरे (प्रजाम्) सन्तान को (जिघांसति) मारना चाहे, (तम्) उस [दुष्ट] को (इतः) यहां से (नाशयामसि) हम नाश करें ॥१६॥

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।

यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥१७॥

पदार्थ—[हे प्राणी !] (ते) तेरी (अक्षीभ्याम्) दोनों आँखों से, (नासिकाभ्याम्) दोनों नथनों से, (कर्णाभ्याम्) दोनों कानों से, (छुबुकात् अधि—छुबुकात् अधि) ठोड़ी में से, (ते) तेरे (मस्तिष्कात्) भेजे से और (जिह्वायाः) जिह्वा से (शीर्षण्यम्) सिर में के (यक्ष्मम्) क्षयी [क्षयी रोग] को (वि वृहामि) मैं उखाड़े देता हूँ ॥१७॥

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।

यक्ष्मं दोषण्यमंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥१८॥

पदार्थ—(ते) तेरे (ग्रीवाभ्यः) गले की नाड़ियों से, (उष्णिहाभ्यः) गुद्दी की नाड़ियों से (कीकसाभ्यः) हंसली की हड्डियों से (अनूक्यात्) रीढ़ से और (ते) तेरे (अंसाभ्याम्) दोनों कन्धों से और (बाहुभ्याम्) दोनों भुजाओं से, (दोषण्यम्) भुजदंड वा बगले से (यक्ष्मम्) [illegible] (वि वृहामि) मैं उखाड़े देता हूँ ॥१८॥

हृदयात्ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात्पार्श्वाभ्याम् ।

यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि ॥१९॥

पदार्थ—(ते) तेरे (हृदयात्) हृदय से, (क्लोम्नः) फेफड़े से, (हलीक्ष्णात्) पित्ते से, (पार्श्वाभ्याम् परि) दोनों काँखों [कक्षाओं] से और (ते) तेरे (मतस्नाभ्याम्) दोनों मतस्नों [गुर्दों] से, (प्लीह्नः) प्लीहा वा पिलई [तिल्ली] से, (यक्नः) यकृत् [कालखण्ड वा कलेजा] से (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (वि वृहामसि) हम उखाड़े देते हैं ॥१९॥

आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।

यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते ॥२०॥

पदार्थ—(ते) तेरी (आन्त्रेभ्यः) आँतों से, (गुदाभ्यः) गुदा की नाड़ियों से, (वनिष्ठोः) वनिष्ठु [भीतरी मल-स्थान] से, (उदरात् अधि) उदर में से, और (ते) तेरी (कुक्षिभ्याम्) दोनों कोखों से, (प्लाशेः) प्लाशि [कोख में की थैली] से, और (नाभ्याः) नाभि में से (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (वि वृहामि) मैं उखाड़े देता हूँ ॥२०॥

ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।

यक्ष्मं भसद्यं१ श्रोणिभ्यां भासदं भंससो वि वृहामि ते ॥२१॥

पदार्थ—(ते) तेरी (ऊरुभ्याम्) दोनों जंघाओं से, (अष्ठीवद्भ्याम्) दोनों घुटनों से (पार्ष्णिभ्याम्) दोनों एड़ियों से, (प्रपदाभ्याम्) दोनों पैरों के पंजों से और (ते) तेरे (श्रोणिभ्याम्) दोनों कूल्हों से [वा नितम्बों से] और (भंससः) गुह्य स्थान से (भसद्यम्) कटि [कमर] के और (भासदम्) गुदा के (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (वि वृहामि) मैं जड़ से उखाड़ता हूँ ॥२१॥

अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।

यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते ॥२२॥

पदार्थ—(ते) तेरे (अस्थिभ्यः) हड्डियों से, (मज्जभ्यः) मज्जा धातु [हड्डी के भीतर के रस] से, (स्नावभ्यः) सूक्ष्म नाड़ियों [वा पुट्ठों] से, और (धमनिभ्यः) स्थूल नाड़ियों से, और (ते) तेरे (पाणिभ्याम्) दोनों हाथों से, (अङ्गुलिभ्यः) अङ्गुलियों से और (नखेभ्यः) नखों से (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (वि वृहामि) मैं जड़ से उखाड़ता हूँ ॥२२॥

अङ्गेअङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि । यक्ष्मं त्वचस्यं

ते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्चं वि वृहामसि ॥२३॥

पदार्थ—(यः) जो [क्षयी रोग] (ते) तेरे (अङ्गेअङ्गे) अङ्ग-अङ्ग में, (लोम्निलोम्नि) रोम-रोम में और (पर्वणिपर्वणि) गांठ-गांठ में है। (वयम्) हम (ते) तेरे (त्वचस्यम्) त्वचा के और (विष्वञ्चम्) सब अवयवों में व्यापक (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (कश्यपस्य) ज्ञानदृष्टि वाले विद्वान् के (वीबर्हेण) विविध उद्यम से (वि वृहामसि) जड़ से उखाड़ते हैं ॥२३॥

अपेहि मनसस्पतेऽप क्राम परश्चर ।

परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ॥२४॥

पदार्थ—(मनसः पते) हे मन के गिराने वाले ! [दुष्ट स्वप्न आदि रोग] (अप इहि) निकल जा, (अप क्राम) पैर उठा (परः) परे (चर) चला जा। (निर्ऋत्यै) अलक्ष्मी [महामारी, दरिद्रता आदि] को (परः) दूर [जाने के लिये] (आ चक्ष्व) कह दे, (जीवतः) जीवित मनुष्य का (मनः) मन (बहुधा) बहुत प्रकार से [बहुत विषयों में उत्सुक] होता है ॥२४॥

卐 इत्यष्टमोऽनुवाकः 卐

卐

अथ नवमोऽनुवाकः ॥

卐 सूक्तम् ९७ 卐

१—३ कलिः। छन्दः। बृहती।

वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम्।

तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते॥१॥

पदार्थ—(वयम्) हम ने (इदा) परम ऐश्वर्य के साथ [वर्तमान] (एनम्) इस (वज्रिणम्) वज्रधारी [वीर] को (ह्यः) कल (इह) यहां पर [तत्त्व रस] (अपीपेम) पान कराया है। [हे विद्वान्] (तस्मै) उस (समना) पूर्ण बलवाले [शूर] के लिये (उ) ही (अद्य) आज (सुतम्) सिद्ध किये हुए [तत्त्व रस] को (भर) भर दे, और (नूनम्) निश्चय करके (श्रुते) सुनने योग्य शास्त्र के बीच (आ) सब ओर से (भूषत) तुम शोभा बढ़ाओ॥१॥

वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति।

सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया॥२॥

पदार्थ—(वारणः) रोकने वाला (उरामथिः) भेड़ों का मथने वाला (वृकः) भेड़िया (चित्) भी (अस्य) इस [वीर] के (वयुनेषु) कर्मों में (आ) अनुकूल (भूषति) हो जाता है। (इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्यवाले शूर] (सः) सो तू (नः) हमारे (इमम्) इस (स्तोमम्) स्तोत्र को (जुजुषाणः) स्वीकार करता हुआ (चित्रया) विचित्र (धिया) बुद्धि वा कर्म के साथ (प्र) अच्छे प्रकार (आ गहि) आ॥२॥

कदू न्वस्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम्।

केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा॥३॥

पदार्थ—(अस्य) इस (इन्द्रस्य) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले वीर] का (नु) अब (कत् उ) कौन सा (पौंस्यम्) पौरुष (अकृतम्) बिना किया हुआ (अस्ति) है? (केनो) किस (श्रोमतेन) श्रुति [वेद] माननेवाले द्वारा (नु) अब (जनुषः परि) जन्म से लेकर (वृत्रहा) शत्रुनाशक [वीरपुरुष] (कम्) सुख से (न) नहीं (शुश्रुवे) सुना गया है॥३॥

卐 सूक्तम् ९८ 卐

१—२ शंयुः। इन्द्रः। प्रगाथः।

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः।

त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (कारवः) काम करने वाले, (नरः) नेता लोग हम (त्वाम्) तुझ को (इत् हि) ही (वाजस्य) विज्ञान के (साता) लाभ में, (सत्पतिम्) सत्पुरुषों के पालनेवाले (त्वाम्) तुझ को (वृत्रेषु) धनों में, और (त्वाम्) तुझ को (काष्ठासु) चढ़ाइयों के बीच (अर्वतः) घोड़ों को जैसे (हवामहे) पुकारते हैं॥१॥

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः।

गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे॥२॥

पदार्थ—(चित्र) हे अद्भुत स्वभाव वाले! (वज्रहस्त) हे हाथ में वज्र रखने वाले! (अद्रिवः) हे अन्न वाले! (इन्द्र) इन्द्र! [महाप्रतापी राजन्] (सः) सो (धृष्णुया) निर्भय (महः) बड़े लोगों की (स्तवानः) स्तुति करता हुआ (त्वम्) तू (नः) हमारे लिये (रथ्यम्) रथ के योग्य (गाम्) बैल और (अश्वम्) घोड़ों को (सं किर) संग्रह कर, (न) जैसे (सत्रा) सत्य के साथ (जिग्युषे) जीतने वाले वीर को (वाजम्) अन्न आदि पदार्थ [देते हैं]॥२॥

卐 सूक्तम् ॥९९॥ 卐

१—२ मेध्यातिथिः। इन्द्रः। प्रगाथः।

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः।

समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम्॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र! [परम ऐश्वर्यवाले परमात्मन्] (पूर्वपीतये) पहले [मुख्य] भोग के लिये, (समीचीनासः) साधु, (ऋभवः) बुद्धिमान्, (रुद्राः) स्तुति करनेवाले (आयवः) मनुष्यों ने (स्तोमेभिः) स्तोत्रों से (पूर्व्यम्) प्राचीन (त्वाम्) तुझ को (सम्) मिलकर (अभि) सब प्रकार (अस्वरन्) आलापा है और (गृणन्त) गाया है॥१॥

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि।

अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा॥२॥

पदार्थ—(इन्द्रः) इन्द्र [परम ऐश्वर्यवाले परमात्मा] ने (इत्) ही (सुतस्य) उत्पन्न हुए (अस्य) इस [जीव] के (वृष्ण्यम्) पराक्रम और (शवः) बल को (विष्णवि) व्यापक (मदे) आनन्द में (वावृधे) बढ़ाया है, (अस्य) इस [परमात्मा] की (तम्) उस (महिमानम्) बड़ाई को (आयवः) मनुष्य (अद्य) अब (पूर्वथा) पहिले के समान (अनु स्तुवन्ति) सराहते रहते हैं॥२॥

卐 सूक्तम् ॥१००॥ 卐

१—३ नृमेधः। इन्द्रः। उष्णिक्।

अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान् महः ससृज्महे।

उदेव यन्त उदभिः॥१॥

पदार्थ—(गिर्वणः) हे स्तुतियों से सेवनीय (इन्द्र)! इन्द्र [महाप्रतापी राजन्] (अध हि) अब ही (त्वा) तुझे (महः) अपनी बड़ी (कामान्) कामनाओं को, (उदा) जल [जल की बाढ़] के पीछे (उदभिः) दूसरी जलों की बाढ़ों के साथ (यन्तः इव) चलते हुए पुरुषों के समान हमने (उप) आदर से (ससृज्महे) समर्पण किया है॥१॥

वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि।

वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे॥२॥

पदार्थ—(अद्रिवः) हे वज्रधारी (शूर) शूर! [राजन्] (दिवेदिवे) दिन-दिन (वावृध्वांसम्) बढ़ते हुए (चित्) भी (त्वा) तुझको (ब्रह्माणि) वेदज्ञान (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं, (न) जैसे (वाः) जल को (यव्याभिः) जौ आदि अन्न की हित करनेवाली नालियों से [बढ़ाते हैं]॥२॥

युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे।

इन्द्रवाहा वचोयुजा॥३॥

पदार्थ—(गाथया) प्रशंसा के साथ (इषिरस्य) शीघ्रगामी [राजा] के (उरुयुगे) बड़े जुए वाले, (उरौ) बड़े (रथे) रथ में (इन्द्रवाहा) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले राजा] को ले चलनेवाले, (वचोयुजा) वचन से जुतनेवाले (हरी) दो घोड़ों को (युञ्जन्ति) वे [सारथी आदि] जोतते हैं॥३॥

卐 सूक्तम् ॥१०१॥ 卐

१—३ मेध्यातिथिः। अग्निः। गायत्री।

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्॥१॥

पदार्थ—(दूतम्) पदार्थों के पहुँचानेवाले वा तपानेवाले, (होतारम्) वेग आदि देनेवाले, (विश्ववेदसम्) सब धनों के प्राप्त करानेवाले, (अस्य) इस [प्रसिद्ध] (यज्ञस्य) यज्ञ [संयोग वियोग व्यवहार] के (सुक्रतुम्) सुधारने वाले (अग्निम्) अग्नि [आग, बिजुली, सूर्य] को (वृणीमहे) हम स्वीकार करते हैं॥१॥

अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम्।

हव्यवाहं पुरुप्रियम्॥२॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो!] (हवीमभिः) ग्रहण करनेयोग्य व्यवहारों से (विश्पतिम्) प्रजाओं के पालनेवाले, (हव्यवाहम्) देने-लेने-योग्य पदार्थों के पहुँचानेवाले, (पुरुप्रियम्) बहुत प्रिय करनेवाले (अग्निमग्निम्) अग्नि-अग्नि [अर्थात् पृथिवी की आग, बिजुली और सूर्य] को (सदा) सदा (हवन्त) तुम ग्रहण करो॥२॥

अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे। असि होता न ईड्यः॥३॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि! [आग, बिजुली और सूर्य] (जज्ञानः) प्रकट होता हुआ तू (देवान्) दिव्य पदार्थों को (इह) यहां (वृक्तबर्हिषे) हिंसा छोड़नेवाले विद्वान् के लिये (आ वह) ला। तू (नः) हमारे लिये (होता) धन देनेवाला और (ईड्यः) खोजने योग्य (असि) है॥३॥

卐 सूक्तम् १०२ 卐

१—३ विश्वामित्रः। अग्निः। गायत्री।

पदार्थ—(यः) जो [परमेश्वर] (चर्षणीनाम्) मनुष्यों का (राजा) राजा (रथेभिः) रथों [के समान रमणीय लोकों] के साथ (अध्रिगुः) बेरोक (याता) चलनेवाला, और (यः) जो (विश्वासाम्) सब (पृतनानाम्) शत्रु-सेनाओं का (तरुता) हरानेवाला, (ज्येष्ठः) अति श्रेष्ठ, (वृत्रहा) अन्धकार-नाशक है, [उस की] (गृणे) मैं स्तुति करता हूँ ॥४॥

इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।

हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥५॥

पदार्थ—(पुरुहन्मन्) हे बहुत ज्ञानी ऋषि ! (तम्) उस (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मा] का (शुम्भ) भावरण कर, (यस्य) जिस के (द्विता) दोनों धर्म [अनुग्रह और निग्रह] (विधर्तरि) बुद्धिमान् जन पर (अवसे) रक्षा के लिये और [जिसका] (दर्शतः) दर्शनीय (महः) महान् (वज्रः) वज्र [दण्डसामर्थ्य] (हस्ताय) हाथ [अर्थात् हमारे बाहु बल] के लिये (प्रति) प्रत्यक्ष (धायि) धारण किया गया है (न) जैसे (सूर्यः) सूर्य (दिवे) प्रकाश के लिये है ॥५॥

卐 सूक्तम् ॥१०६॥ 卐

१—३ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । इन्द्रः । उष्णिक् ।

तव त्यदिन्द्रियं बृहत् तव शुष्ममुत क्रतुम् ।

वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥१॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (तव) तेरे (त्यत्) उस [प्रसिद्ध] (बृहत्) बड़े (इन्द्रियम्) इन्द्रपन [ऐश्वर्य], (तव) तेरे (शुष्मम्) बल (उत) और (क्रतुम्) बुद्धि और (वरेण्यम्) उत्तम (वज्रम्) वज्र [दण्ड-सामर्थ्य] को (धिषणा) [तेरी] वाणी (शिशाति) पैना करती है ॥१॥

तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः ।

त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मन्] (तव) तेरे (पौंस्यम्) पुरुषार्थ और (श्रवः) यश को (द्यौः) आकाश और (पृथिवी) (वर्धति) बढ़ाती है । (त्वाम्) तुझ को (आपः) जलों ने (च) और (पर्वतासः) पहाड़ों ने (हिन्विरे) प्रसन्न किया है ॥२॥

त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।

त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥३॥

पदार्थ—[हे परमेश्वर !] (बृहन्) बड़ा (क्षयः) ऐश्वर्यवान् (विष्णुः) व्यापक सूर्य, (मित्रः) प्रेरक वायु और (वरुणः) स्वीकार करनेयोग्य जल (त्वाम्) तेरी (गृणाति) बड़ाई करता है । (त्वाम् अनु) तेरे पीछे (मारुतम्) शूर पुरुषों का (शर्धः) बल (मदति) तृप्त होता है ॥३॥

卐 सूक्तम् १०७ 卐

(१—१५) १—३ वत्स, ४—१३ बृहद्दिव, १४—१५ कुत्सः । इन्द्र, १४—१५ सूर्य । गायत्री; १४—१५ त्रिष्टुप् ।

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायेव सिन्धवः ॥१॥

पदार्थ—(विश्वाः) सब (विशः) प्रजायें और (कृष्टयः) मनुष्य (अस्य) इस [परमेश्वर] के (मन्यवे) तेज वा क्रोध के आगे (सम्) ठीक ठीक (नमन्त) नमे हैं, (समुद्राय इव) जैसे समुद्र के लिये (सिन्धवः) नदियाँ [नमती हैं] ॥१॥

ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥२॥

पदार्थ—(अस्य) इस [परमेश्वर] का (ओजः) बल (तत्) तब (तित्विषे) प्रकाशित हुआ, (यत्) जब (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मा] ने (उभे) दोनों (रोदसी) आकाश और भूमि को (चर्म इव) चमड़े के समान (समवर्तयत्) यथाविधि वर्तमान किया ॥२॥

वि चिद् वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा ।

शिरो बिभेद वृष्णिना ॥३॥

पदार्थ—(दोधतः) क्रोध करते हुए (वृत्रस्य) रोकनेवाले शत्रु के (शिरः) सिर को (शतपर्वणा) सैकड़ों जोड़ों वाले, (वृष्णिना) दृढ़ (वज्रेण) वज्र से (चित्) निश्चय करके (वि) अनेक प्रकार (बिभेद) उस [परमेश्वर] ने तोड़ा है ॥३॥

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।

सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥४॥

पदार्थ—(तत्) विस्तीर्ण ब्रह्म (इत्) ही (भुवनेषु) लोकों के भीतर (ज्येष्ठम्) सब में उत्तम और सब में बड़ा (आस) प्रकाशमान हुआ । (यतः) जिस [ब्रह्म] से (उग्रः) तेजस्वी (त्वेषनृम्णः) तेजोमय बल वा धनवाला पुरुष (जज्ञे) प्रकट हुआ । (सद्यः) शीघ्र (जज्ञानः) प्रकट होकर (शत्रून्) गिरानेवाले विघ्नों को (नि रिणाति) नाश कर देता है, (यम्) जिस से (यम् अनु) इस [परमात्मा] के पीछे पीछे (विश्वे) सब (ऊमाः) परस्पर रक्षक लोग (मदन्ति) हर्षित होते हैं ॥४॥

वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।

अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥५॥

पदार्थ—(शवसा) बल से (वावृधानः) बढ़ता हुआ, (भूर्योजाः) महाबली, (शत्रुः) हमारा शत्रु (दासाय) दान पात्र दास को (भियसम्) भय (दधाति) देता है । (अव्यनत्) श्वासशून्य स्थावर (च) और (व्यनत्) श्वासवाला जङ्गम जगत् (च) निश्चय करके [परमात्मा में] (सस्नि) लपेटा हुआ है, (प्रभृता) अच्छे प्रकार [illegible] किये हुए प्राणी (मदेषु) आनन्दों में (ते) तेरी (सम् नवन्त) यथावत् [illegible] करते हैं ॥५॥

त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति [illegible]रि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः । स्वादोः

स्वादीयः स्वादुना सृ[illegible] समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥६॥

पदार्थ—[हे परम[illegible]] (त्वे अपि) तुझ में ही (क्रतुम्) अपनी बुद्धि को (भूरि) बहुत प्रक[illegible] [सब प्राणी] (पृञ्चन्ति) जोड़ते हैं, (एते) यह सब (ऊमाः) रक्षक प्रा[illegible]) दो बार [स्त्री-पुरुष रूप से] (त्रिः) तीन बार [स्थान, नाम और [illegible] से] (भवन्ति) रहते हैं । (यत्) क्योंकि (स्वादोः) स्वादु से (स्वादी[illegible])धिक स्वादु मोक्ष सुख को (स्वादुना) स्वादु [सांसारिक सुख] के साथ ([illegible]) संयुक्त कर, (अदः) उस (मधु) मधुर [मोक्ष सुख] को (मधुना) [illegible]धुर [सांसारिक] ज्ञान के साथ (सु) अच्छे प्रकार (अभि) सब ओर से ([illegible]धीः) तू ने पहुँचाया है ॥६॥

यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः । ओजीयः

शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन् दुरेवासः कशोकाः ॥७॥

पदार्थ—(यदि) जो (चित्) निश्चय करके (विप्राः) पंडित जन (रणेरणे) प्रत्येक रण में (नु) शीघ्र (धना) धनों को (जयन्तम्) जीतनेवाले (त्वा) तेरे (अनुमदन्ति) पीछे-पीछे आनन्द पाते हैं । (शुष्मिन्) हे बलवन् परमात्मन् ! (ओजीयः) अधिक बलवान् (स्थिरम्) स्थिर मोक्ष सुख (आ) सब ओर से (तनुष्व) फैला, (दुरेवासः) दुष्ट गतिवाले (कशोकाः) परसुख में शोक करनेवाले जन (त्वा) तुझ को (मा दभन्) न सतावें ॥७॥

त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।

चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥८॥

पदार्थ—(भूरि) बहुत से (युधेन्यानि) युद्धों को (प्रपश्यन्तः) देखते हुए (वयम्) हम लोग (त्वया) तेरे साथ (रणेषु) रण-क्षेत्रों में [शत्रुओं को] (शाशद्महे) मार गिराते हैं । (ते) तेरे (वचोभिः) वचनों से (आयुधा) अपने शस्त्रों को (चोदयामि) मैं आगे चलाता हूँ और (ते) तेरे (ब्रह्मणा) ब्रह्मज्ञान से (वयांसि) अपने जीवनों को (सम्) यथावत् (शिशामि) तीक्ष्ण करता हूँ ॥८॥

नि तद् दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।

आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि ॥९॥

पदार्थ—[हे परमात्मन् !] (अवरे) छोटे (च) और (परे) बड़े मनुष्य में (तत्) उस [घर] को (नि) निश्चय करके (दधिषे) तू ने पोषण किया है, (यस्मिन्) जिस (दुरोणे) कष्ट से भरनेयोग्य घर में (अवसा) अन्न से (आविथ) तू ने रक्षा की है । [हे मनुष्यो !] (जिगत्नुम्) सर्वव्यापक (मातरम्) माता [परमैश्वर्य] को (आ) अच्छी भाँति (स्थापयत) [हृदय में] ठहराओ और (अतः) इसी से (भूरि) बहुत से (कर्वराणि) कर्मों को (इन्वत) सिद्ध करो ॥९॥

स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्तमाप्त्यानाम् ।

आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ॥१०॥

बांधने वाले (प्रशर्ध) प्रबल ! [परमात्मन्] (मानवे) मनुष्यों के (तुर्वशे) हिंसकों के वश करने वाले पुरुष में (पुरु) बहुत प्रकार (नृषूत.) तू मनुष्यों से प्रेरणा [प्रार्थना] किया गया (असि) है, (असि) है ॥१॥

यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।

कण्वासस्त्वा ब्रह्मभिः स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मन्] (यत्) जब (रुमे) ज्ञानी पुरुष में, (रुशमे) हिंसकों के फेंकने वाले में, (श्यावके) उद्योगी में (वा) और (कृपे) समर्थ में (सचा) नित्य मेल से (मादयसे) तू हर्ष पाता है, [तभी] (इन्द्र) हे इन्द्र [परमात्मन्] (स्तोमवाहसः) बड़ाई के प्राप्त कराने वाले (कण्वासः) बुद्धिमान् लोग (त्वा) तुझ को (ब्रह्मभिः) वेदवचनों से (आ यच्छन्ति) अपनी ओर खींचते हैं (आ गहि) तू आ ॥२॥

卐 सूक्तम् १२१ 卐

१—२ वसिष्ठः । इन्द्रः । प्रगाथः ।

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।

ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥१॥

पदार्थ—(शूर) हे शूर (इन्द्र) इन्द्र ! [परमेश्वर] (अदुग्धाः) बिना दुही (धेनवः इव) दुधेल गौओं के समान [झुककर] हम (अस्य) इस (जगतः) जंगम के (ईशानम्) स्वामी और (तस्थुषः) स्थावर के (ईशानम्) स्वामी, और (स्वर्दृशम्) सुख के दिखानेवाले (त्वा) तुझ को (अभि) सब ओर से(नोनुमः) अत्यन्त सराहते हैं ॥१॥

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।

अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥२॥

पदार्थ—(मघवन्) हे महाधनी (इन्द्र) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मन्] (त्वावान्) तेरे समान (अन्यः) दूसरा कोई (न) न तो (दिव्यः) आकाश में रहनेवाला और (न) न (पार्थिवः) पृथिवी पर रहनेवाला है, और (न) न (जातः) उत्पन्न हुआ है, और (न) न (जनिष्यते) उत्पन्न होगा। (अश्वायन्तः) घोड़े चाहते हुए, (गव्यन्तः) भूमि चाहते हुए, (वाजिनः) वेग वाले हम (त्वा) तुझ को (हवामहे) पुकारते हैं ॥२॥

卐 सूक्तम् ॥१२२॥ 卐

१—३ शुनःशेपः इन्द्रः । गायत्री ।

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रे) इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले सभापति] में (नः) हमारे (सधमादे) हर्षयुक्त उत्सव के बीच (रेवतीः) बहुत धनवाली और (तुविवाजाः) बहुत बलवाली [प्रजायें] (सन्तु) होवें । (याभिः) जिन [प्रजाओं] के साथ (क्षुमन्तः) बहुत अन्न वाले होकर (मदेम) हम आनन्द पावें ॥१॥

आ घ त्वावान्त्मनाप्त स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः ।

ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥२॥

आ यद्दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् ।

ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥३॥

पदार्थ—(धृष्णो) हे निर्भय ! [सभापति] (त्मना) अपने आप (त्वावान्) अपने सदृश (आप्तः) आप्त [सच्चा उपदेशक] (इयानः) ज्ञानवान् तू (स्तोतृभ्यः) स्तुति करनेवालों के लिये (घ) अवश्य (आ) सब प्रकार से (ऋणोः) प्राप्त हो (न) जैसे (चक्र्योः) दो पहियों में (अक्षम्) धुरा [होता] है ॥२॥ (यत्) क्योंकि (शतक्रतो) हे सैकड़ों बुद्धियों वा कर्मों वाले ! [सभापति] (जरितॄणाम्) स्तुति करनेवालों की (दुवः) सेवा को (कामम्) अपनी इच्छा के अनुसार (आ) सब ओर से (आ) पूरी रीति पर (ऋणोः) तू पाता है, (न) जैसे (अक्षम्) धुरा (शचीभिः) अपने कर्मों से [रथ को प्राप्त होता है] ॥३॥

卐 सूक्तम् ॥१२३॥ 卐

१—२ कुत्सः । सूर्यः । त्रिष्टुप् ।

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।

यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥१॥

पदार्थ—(तत्) उस [ब्रह्म] ने (सूर्यस्य) सूर्य के (मध्या) बीच में (तत्) उस (विततम्) फैले हुए (देवत्वम्)प्रकाशपन को, (महित्वम्) बड़प्पन को और (कर्तोः) [आकर्षण आदि] कर्म को (सम् जभार) बटोर कर रख दिया है-कि (यदा इत्) जब ही वह [सूर्य] (हरितः) रस पहुँचानेवाली किरणों को (सधस्थात्) एक से स्थान से (अयुक्त) जोड़ता है, [आगे बढ़ाता है], (आत्) तभी (रात्री) रात्री (सिमस्मै) सब के लिये (वासः) वस्त्र [अन्धकार] (तनुते) फैलाती है ॥१॥

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।

अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥२॥

पदार्थ—(तत्) उस (अनन्तम्) अनन्त [ब्रह्म] के द्वारा (द्योः) प्रकाश के (उपस्थे) गोद में (मित्रस्य) प्राण वायु और (वरुणस्य) उदान वायु के (अभिचक्षे) सब ओर देखने के लिये (सूर्यः) प्रेरणा करने वाला सूर्य लोक (रूपम्) रूप को (कृणुते) बनाता है, (अस्य) इस [सूर्य] के (अन्यत्) एक (रुशत्) प्रकाश और (अन्यत्) दूसरे (कृष्णम्) आकर्षण (पाजः) बल को (हरितः) दिशायें (सम्) मिलकर (भरन्ति) धारण करती हैं ॥२॥

卐 सूक्तम् १२४ 卐

[१—६] १—३ वामदेव.; ४-६ भुवनः । इन्द्रः । गायत्री; ३ पादनिचृत्; ४—६ त्रिष्टुप् ।

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥१॥

पदार्थ—(चित्र) विचित्र वा पूज्य और (सदावृधः) सदा बढ़ानेवाला [राजा] (नः) हमारी (कया) कमनीय वा क्रमशील [आगे बढ़ती हुई] अथवा सुख दनेवाली [वा कौन-सी] (ऊती) रक्षा से और (कया) कमनीय आदि [वा कौन-सी] (शचिष्ठया) अति उत्तमवाणी वा कर्म वा बुद्धिवाले (वृता) वर्ताव से (सखा) [हमारा] सखा (आ) ठीक-ठीक (भुवत्) होवे ॥१॥

कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः ।

दृढा चिदारुजे वसु ॥२॥

पदार्थ—(कः) कमनीय वा आगे बढ़ता हुआ, वा सुख देनेवाला (सत्यः) सत्यशील वाला, (मदानाम्) आनन्दों और (अन्धसः) अन्न का (मंहिष्ठः) महादानी राजा (दृढा) दृढ़ (वसु) धनों को (चित्) अवश्य (आरुजे) खोल देने के लिए (त्वा) तुझ [प्रजा जन] को (मत्सत्) तृप्त करे ॥२॥

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतिभिः ॥३॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (सखीनाम्) [अपने] सखाओं और (जरितॄणाम्) स्तुति करनेवाले (नः) हम लोगों का (सु) उत्तम (अविता) रक्षक होकर तू (शतम्) सौ प्रकार से (ऊतिभिः) रक्षाओं के साथ (अभि) सामने (भवासि) होवे ॥३॥

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ।

यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥४॥

पदार्थ—(इमा) यह (भुवना) उत्पन्न पदार्थ, (च) और (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला सभापति] (च) और (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग हम (नु) शीघ्र (कम्) सुख को (सीषधाम) सिद्ध करें। (आदित्यैः सह) अखण्ड व्रतधारी विद्वानों के साथ (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला सभापति] (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ [मेल-मिलाप आदि] को (च) और (तन्वम्) शरीर (च) और (प्रजाम्) प्रजा [सन्तान आदि] को (च) भी (चीक्लृपाति) समर्थ करे ॥४॥

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्ववितातनूनाम् ।

हत्वाय देवा असुरान्यदायन्देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥५॥

पदार्थ—(सगणः) गणों [सुभट वीरों] के साथ वर्तमान (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला सभापति] (आदित्यैः) अखण्ड व्रतधारी (मरुद्भिः) शूर मनुष्यों के साथ (अस्माकम्) हमारे (तनूनाम्) शरीरों का (अविता) रक्षक (भूतु) होवे । (यत्) क्योंकि (असुरान्) असुरों [दुराचारियों] को (हत्वाय) मार कर (देवाः) विजय चाहनेवाले, (अभिरक्षमाणाः) सब ओर से रक्षा करते हुए (देवाः) विद्वानों ने (देवत्वम्) देवतापन [उत्तम पद](आयन्) पाया है ॥५॥

प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुषत् । शिरो न्वस्य
राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥५॥

पदार्थ—(कपिः) कपि [चपल जीवात्मा] ने (मे) मेरे (व्यक्तानि) स्वच्छ किये हुए (प्रिया) प्यारे (तष्टानि) कर्मों को (वि) विरुद्धपन से (अदूदुषत्) दूषित कर दिया है (अस्य) इस [पाप कर्म] के (शिरः) शिर को (नु) अब (राविषम्) मैं काट डालूँ, और (दुष्कृते) दुष्ट कर्म में (सुगम्) सुगम (न) नहीं (भुवम्) हो जाऊँ, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥५॥

न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत् । न मत्
प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥६॥

पदार्थ—(स्त्री)—कोई स्त्री (मत्) मुझ से (न) न (सुभसत्तरा) अधिक बड़ी शोभावाली, (न) न (सुयाशुतरा) अधिक सुन्दर यत्नवाली, (न) न (मत्) मुझ से (प्रतिच्यवीयसी) अधिक सहनेवाली और (न) न (सक्थि) जंघा [आदि शरीर के अंगों] को (उद्यमीयसी) उद्योग में अधिक लगानेवाली (भुवत्) होवे, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥६॥

उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति । भसन्मे
अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥७॥

पदार्थ—(उवे) हे (अम्ब) अम्मा ! (अङ्ग) हे (सुलाभिके) सुन्दर लाभ करानेवाली ! (यथा इव) जैसा कुछ (भविष्यति) आगे होगा [वैसा किया जावे], (अम्बा) हे अम्मा ! (मे) मेरा (भसत्) चमकता हुआ कर्म, (मे) मेरी (सक्थि) जंघा, (मे) मेरा (शिरः) शिर (वि) विविध प्रकार से (इव) ही (हृष्यति) आनन्द देवे, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥७॥

किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुं जाघने । किं शूरपत्नि
नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपिं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥८॥

पदार्थ—(सुबाहो) हे बलवान् भुजाओं वाली ! (स्वङ्गुरे) हे दृढ़ अंगुलियोंवाली ! (पृथुजघने) हे मोटी जंघाओंवाली ! (पृथुष्टो) हे बड़ी स्तुति वाली ! [कुलवधू] (किम्) क्यों (शूरपत्नि) हे शूर की पत्नी ! (किम्) क्यों, (त्वम्) तू (नः) हमारे (वृषाकपिम्) वृषाकपि [बलवान् चेष्टा कराने वाले जीवात्मा] को (अभि) सर्वथा (अमीषि) पीड़ा देगी, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥८॥

अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते । उताहमस्मि
वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥९॥

पदार्थ—(अयम्) यह (शरारुः) उपकारी मनुष्य (माम्) मुझ [स्त्री] को (अवीराम् इव) अवीर स्त्री के समान (अभि मन्यते) मानता है, (उत) और (अहम्) मैं (वीरिणी) वीरिणी [वीर सन्तानोंवाली], (इन्द्रपत्नी) इन्द्रपत्नी [बड़े ऐश्वर्यवाले मनुष्य की पत्नी], और (मरुत्सखा) विद्वान् वीरों को साथ रखने वाली (अस्मि) हूँ, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥९॥

संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति । वेधा
ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१०॥

पदार्थ—(नारी) नारी [नरों का हित करनेहारी स्त्री] (पुरा) पहिले काल से (स्म) ही (संहोत्रम्) मिलकर अग्निहोत्र आदि यज्ञ करने (वा) और (समनम्) मिलकर जीवन करने को (अव गच्छति) जानती है । (ऋतस्य) सत्य ज्ञान का (वेधाः) विधान करनेवाली (वीरिणी) वीरिणी [वीर सन्तानों वाली], (इन्द्रपत्नी) इन्द्रपत्नी [बड़े ऐश्वर्यवाले मनुष्य की स्त्री] (महीयते) पूजी जाती है, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥१०॥

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम् । नह्यस्या अपरं
चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥११॥

पदार्थ—(आसु) इन (नारिषु) चलाई गयी प्रजाओं के बीच (इन्द्राणीम्) इन्द्राणी [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष की विभूति वा शक्ति] को (सुभगाम्) बड़ी भगवती [ऐश्वर्यवाली] (अहम्) मैं ने (अश्रवम्) सुना है, (अस्याः) इस [विभूति] का (पतिः) पति [पालन करनेवाला इन्द्र, यह मनुष्य] (अपरम् चन) दूसरे प्राणियों के समान (जरसा) बयोहानि से (नहि) नहीं (मरते) मरता है, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥११॥

नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेरृते । यस्येदमप्यं हविः
प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१२॥

पदार्थ—(इन्द्राणि) हे इन्द्राणी ! [इन्द्र, बड़े ऐश्वर्यवान् मनुष्य की विभूति] (सख्युः) सखा (वृषाकपेः) वृषाकपि [बलवान् चेष्टा करानेवाले जीवात्मा] के (ऋते) बिना (अहम्) मैं [शरीरधारी] (न) नहीं (रारण) चल सकता, (यस्य) जिस [वृषाकपि जीवात्मा] का (इदम्) यह (अप्यम्) प्रजाओं का हितकारी (प्रियम्) प्यारा (हविः) हवि [देने लेने योग्य, घृत, अन्न आदि पदार्थ] (देवेषु) विद्वानों में (गच्छति) पहुँचता है, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥१२॥

वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे । घसत् त
इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१३॥

पदार्थ—(वृषाकपायि) हे वृषाकपायी ! [वृषाकपि बलवान् चेष्टा कराने वाले जीवात्मा की विभूति] (रेवति) हे धनवाली ! (सुपुत्रे) हे वीर पुत्रों की उत्पन्न करनेवाली ! (सुस्नुषे) हे बहुत बरसानेवाली ! (आत् उ) लगातार ही (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला मनुष्य] (ते) तेरे (उक्षणः) बढ़ती करनेवाले पदार्थों को (घसत्) खावे, वह (प्रियम्) प्यारा (काचित्करम्) सुख का सब ओर से एकत्र करनेवाला (हविः) हवि [म० १२ । घृत, अन्न आदि पदार्थ] है, [क्योंकि] (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥१३॥

उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् । उताहमद्मि
पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१४॥

पदार्थ—(पञ्चदश, विंशतिम्) पन्द्रह, बीस [अर्थात् बहुत से] (उक्ष्णः) बढ़ती करनेवाले पदार्थों को (मे) मेरे लिये (हि) ही (साकम्) एक साथ (पचन्ति) वे [ईश्वर नियम] परिपक्व करते हैं, (उत) और (अहम्) मैं (पीवः) उनके पुष्टिकारक रस को (इत्) ही (अद्मि) खाता हूँ, और (मे) मेरी (उभा) दोनों (कुक्षी) कोखों को (पृणन्ति) वे [पदार्थ] भरते हैं, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥१४॥

वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत् । मन्थस्त इन्द्र
शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१५॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले मनुष्य] (यूथेषु अन्तः) यूथों के बीच (रोरुवत्) दहाड़ते हुए, (तिग्मशृङ्गः) तीक्ष्ण सींगोंवाले (वृषभः न) बैल के समान, (मन्थः) वह तत्त्व रस (ते) तेरे (हृदे) हृदय के लिये (शम्) शान्तिदायक हो, (यम्) जिस [तत्त्व रस] को (ते) तेरे लिये (भावयुः) सत्ता चाहनेवाला [परमात्मा] (सुनोति) मथता है, [क्योंकि] (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥१५॥

न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या कपृत् । सेदीशे
यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१६॥

पदार्थ—(सः) वह पुरुष (न ईशे) ऐश्वर्यवान् नहीं होता है, (यस्य) जिस का (कपृत्) शिर पालनेवाला कपाल (सक्थ्या अन्तरा) दोनों जंघाओं के बीच (रम्बते) नीचे लटकता है, (सः इत्) वही पुरुष (ईशे) ऐश्वर्यवान् होता है, (यस्य निषेदुषः) जिस बैठे हुए [विचारते हुए] पुरुष का (रोमशम्) रोमवाला मस्तक] (विजृम्भते) फैलता है, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥१६॥

न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते । सेदीशे यस्य
रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या कपृद् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१७॥

पदार्थ—(सः) वह पुरुष (न ईशे) ऐश्वर्यवान् नहीं होता है, (यस्य निषेदुषः) जिस बैठे हुए [आलसी] का (रोमशम्) रोमवाला मस्तक (विजृम्भते) जंभाई लेता है, (सः इत्) वही पुरुष (ईशे) ऐश्वर्यवान् होता है, (यस्य) जिसका

(ककुत्) सिर पालनेवाला कपाल (सक्थ्या आ अन्तरा) दोनों जंघाओं के बीच [ध्यान में] (रम्बते) नीचे लटकता है, (इन्द्रः) [बड़े ऐश्वर्यवाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥१७॥

अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत्। असिं सूनां
नवं चरुमादेधस्यान आचितं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१८॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले मनुष्य] (अयम्) इस (वृषाकपिः) वृषाकपि [बलवान् चेष्टा करानेवाले जीवात्मा] ने (परस्वन्तम्) पालनेवाले व्यवहार को (हतम्) नाश किया हुआ (विदत्) पाया है, (असिम्) तभी (नवम्) नवीन (सूनाम्) स्थान [अर्थात् खेत-खिलहान], [अथवा] (असिम्) तलवार, (सूनाम्) वध स्थान, और (एधस्य) ईंधन का (आचितम्) भरा हुआ (चरुः) छकड़ा [पाया है], (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥१८॥

अयमेमि विचाकशद् विचिन्वन् दासमार्यम्। पिबामि
पाकसुत्वनोऽभि धीरमचाकशं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१९॥

पदार्थ—(विचाकशत्) विविध प्रकार सुशोभित हुआ, और (दासम्) शत्रु और (आर्यम्) आर्य [श्रेष्ठ पुरुष] को (विचिन्वन्) पहिचानता हुआ (अयम्) यह मैं [इन्द्र] (एमि) चलता हूँ, (पाकसुत्वनः) पक्के विज्ञान के तत्त्वरस का (पिबामि) पान करता हूँ और (धीरम्) धीर [बुद्धिमान्] को (अभि) सब प्रकार (अचाकशम्) सुशोभित करता हूँ, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणीमात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥१९॥

धन्व च यत् कृन्तत्रं च कति स्वित् ता वि योजना। नेदीयसो
वृषाकपेऽस्तमेहि गृहाँ उप विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२०॥

पदार्थ—(यत्) जो (कृन्तत्रम्) काटनेयोग्य वन (च च) और (धन्व) निर्जल देश हैं, (ता) वे (कति स्वित्) कितने ही (योजना) योजन (वि) दूर-दूर हैं। (वृषाकपे) हे वृषाकपि ! [बलवान् चेष्टा करानेवाले जीवात्मा] तू (नेदीयसः) अधिक समीप वाले (गृहान्) घरों को और (अस्तम्) अपने घर को (उप) आदर से (आ इहि) आ, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥२०॥

पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै। य एष स्वप्न-
नंशनोऽस्तमेषि पथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२१॥

पदार्थ—(वृषाकपे) हे वृषाकपि ! [बलवान् चेष्टा करानेवाले जीवात्मा] तू (पुनः) फिर (आ इहि) आ, (सुविता) ऐश्वर्य कर्मों को (कल्पयावहै) हम दोनो [तू और मैं] विचार कर करें, (यः) जो (एषः) यह तू (स्वप्ननंशनः) स्वप्ननाश करनेवाला [आलस्य छुड़ाने वाला] है, सो तू (पथा) मार्ग से [सन्मार्ग से] (पुनः) फिर (अस्तम्) घर (एषि) पहुँचता है, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणी मात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥२१॥

यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन। क्व स्य पुल्वघो
मृगः कमगं जनयोपनो विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२२॥

पदार्थ—(वृषाकपे) हे वृषाकपि ! [बलवान् चेष्टा करानेवाले जीवात्मा] (इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले मनुष्य] [और हे इन्द्राणी ! मनुष्य की विभूति] (यत्) जब (उदञ्चः) ऊँचे चढ़ते हुए तुम सब (गृहम्) घर (अजगन्तन) पहुँच गये, (स्यः) वह (पुल्वघः) महापापी, (जनयोपनः) मनुष्य को घबरा देनेवाला, (मृगः) पशु [पशु-समान गिरा हुआ जीवात्मा] (क्व) कहाँ (कम्) किस मनुष्य को (अगमत्) पहुँचा, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणीमात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥२२॥

पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम्। भद्रं भल
त्यस्या अभूद् यस्या उदरमामयद् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२३॥

पदार्थ—(पर्शुः) शत्रुओं का नाश करने वाली (मानवी) मनुष्य की विभूति ने (ह) निश्चय करके (नाम) प्रसिद्ध (विंशतिम्) बीस [पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों और इनके दस विषयों] को (साकम्) एक साथ (ससूव) उत्पन्न किया है। (भल) हे विचारवान् ! [आत्मा] (त्यस्यै) उस [माता] के लिये (भद्रम्) कल्याण (अभूत्) हुआ है, (यस्याः) जिस [माता] के (उदरम्) पेट को (आमयत्) उस [गर्भ] ने पीड़ा दी थी, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला मनुष्य] (विश्वस्मात्) सब [प्राणीमात्र] से (उत्तरः) उत्तम है ॥२३॥

अथ कुन्तापसूक्तानि [१२७—१३६॥]

(कुन्तापसूक्तानि) का अर्थ पाप वा दुःख के भस्म करनेवाले सूक्त अर्थात् वेद मन्त्रों के समुदाय है ॥

卐 सूक्तम् १२७ 卐

इदं जना उप श्रुत नराशंस स्तविष्यते।
षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम आ रुशमेषु दद्महे ॥१॥

पदार्थ—(जनाः) हे मनुष्यो ! (इदम्) यह (उप) आदर से, (श्रुत) सुनो, [कि] (नराशंसः) मनुष्यों में प्रशंसावाला पुरुष (स्तविष्यते) बड़ाई किया जावेगा। (कौरम) हे पृथिवी पर रमण करनेवाले राजन् ! (षष्टिम् सहस्रा) साठ सहस्र (च) और (नवतिम्) नब्बे [अर्थात् अनेक दानों] को (रुशमेषु) हिंसकों के फेंकने वाले वीरों के बीच (आ दद्महे) हम पाते हैं ॥१॥

उष्ट्रा यस्य प्रवाहणो वधूमन्तो द्विर्दश।
वर्ष्मा रथस्य नि जिहीडते दिव ईषमाणा उपस्पृशः ॥२॥
एष इषाय मामहे शतं निष्कान् दश स्रजः।
त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम् ॥३॥

पदार्थ—(यस्य) जिस [राजा] के (रथस्य) रथ के (प्रवाहणः) ले चलने वाले, (ईषमाणाः) शीघ्रगामी, (उपस्पृशः) जुते हुए, (वधूमन्तः) ऊँटनियों सहित, (द्विर्दश) दो बार दस (उष्ट्राः) ऊँट (दिवः) उन्मत्त मनुष्य के (वर्ष्मा=वर्ष्माणम्) ऊँचे पद का (नि जिहीडते) अपमान करते रहते हैं ॥२॥ (एषः) उसी [राजा] ने (इषाय) उद्योगी पुरुष को (शतम्) सौ (निष्कान्) दीनारें [सुवर्ण मुद्रा], (दश) दस (स्रजः) मालायें, (अर्वताम् त्रीणि शतानि) तीन सौ घोड़े और (गोनाम् दश सहस्रा) दस सहस्र गौयें (मामहे) दान दी हैं ॥३॥

वच्यस्व रेभ वच्यस्व वृक्षे न पक्वे शकुनः।
नष्टे जिह्वा चर्चरीति क्षुरो न भुरिजोरिव ॥४॥

पदार्थ—(रेभ) हे विद्वान् ! (वच्यस्व) उपदेश कर, (वच्यस्व) उपदेश कर, (न) जैसे (शकुनः) पक्षी (पक्वे) फलवाले (वृक्षे) वृक्षपर [चहचहाता है]। (नष्टे) दुःख व्यापने पर (भुरिजोः) दोनों धारण-पोषण करनेवाले [स्त्री पुरुष] की (इव) ही (जिह्वा) जीभ (चर्चरीति) चलती रहती है, (न) जैसे (क्षुरः) छुरा [केशों पर चलता है] ॥४॥

प्र रेभासो मनीषा वृषा गाव इवेरते।
अमोतपुत्रका एषाममोत गा इवासते ॥५॥

पदार्थ—(वृषाः) बलवान् (गावः इव) बैलों के समान (रेभासः) विद्वान् लोग (मनीषाः) बुद्धियों को (प्र ईरते) आगे बढ़ाते हैं। (अमोत) हे बन्धन रहित ! (अमोत) हे मुक्त मनुष्य ! (एषाम्) इन [विद्वानों] के (पुत्रकाः) पुत्र (गाः) विद्याओं और भूमियों को (इव) अवश्य (आसते) सेवते हैं ॥५॥

प्र रेभ धीं भरस्व गोविदं वसुविदम्।
देवत्रेमां वाचं श्रीणीहीषुर्नावीरस्तारम् ॥६॥

पदार्थ—(रेभ) हे विद्वान् ! (गोविदम्) भूमि प्राप्त करानेवाली और (वसुविदम्) धन प्राप्त करानेवाली (धीम्) बुद्धि को (प्र) अच्छे प्रकार से (भरस्व) धारण कर। (देवत्रा) विद्वानों के बीच (इमाम्) इस [पूर्वोक्त] (वाचम्) वाणी को (श्रीणीहि) पक्की कर, (इषुः न) जैसे तीर (आवीः) प्रवेशयोग्य लक्ष्यों को (अस्तारम्) तीर चलानेवाले के लिये [पक्का करता है] ॥६॥

राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवोऽमर्त्यां अति।
वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षितः ॥७॥

पदार्थ—(यः) जो (देवः) देव [विजय चाहनेवाला पुरुष] (मर्त्यान् अति) मनुष्यों में बढ़कर [गुणी है], (विश्वजनीनस्य) सब लोगों के हितकारी, (वैश्वानरस्य) सब के नेता, (परिक्षितः) सब प्रकार ऐश्वर्यवाले (राज्ञः) उस राजा की (सुष्टुतिम्) उत्तम स्तुति को (आ) भले प्रकार (सुनोत) सुनो ॥७॥

परिच्छिन्नः क्षेममकरोत् तम आसनमाचरन् ।
कुलायन् कृण्वन् कौरव्यः पतिर्वदति जायया ॥८॥

पदार्थ—(तमः) अन्धकार (परिच्छिन्नः) काट डालनेवाले [राजा] ने (आसनम्) आसन (आचरन्) ग्रहण करते हुए (क्षेमम्) आनन्द (अकरोत्) कर दिया है—[यह बात] (कुलायम्) घरों को (कृण्वन्) बनाता हुआ (कौरव्यः) कार्यकर्ताओं का राजा (पतिः) पति [गृहस्थ] (जायया) अपनी पत्नी से (वदति) कहता है ॥८॥

कतरत् त आ हराणि दधि मन्थां परि श्रुतम् ।
जायाः पतिं वि पृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥९॥

पदार्थ—(कतरत्) कौन वस्तु (ते) तेरे लिये (परि) सुधारकर (आहराणि) मैं लाऊँ, (दधि) दही, (मन्थाम्) निर्जल मठा, [वा] (श्रुतम्) नोनी माखन आदि—[यह बात] (जाया) पत्नी (पतिम्) पति से (परिक्षितः) सब प्रकार ऐश्वर्यवाले (राज्ञः) राजा के (राष्ट्रे) राज्य में (वि) विविध प्रकार (पृच्छति) पूछती है ॥९॥

अभीवस्वः प्र जिहीते यवः पक्वः पथो बिलम् ।
जनः स भद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥१०॥

पदार्थ—(अभीवस्वः) सब ओर से बसाने वाला, (पक्वः) पका हुआ (यवः) जौ आदि अन्न (पथः) मार्ग से (बिलम्) गढ़े [खत्ती आदि] को (प्र) भले प्रकार (जिहीते) पहुँचता है । (सः जनः) वह मनुष्य (परिक्षितः) सब प्रकार ऐश्वर्यवाले (राज्ञः) राजा के (राष्ट्रे) राज्य में (भद्रम्) आनन्द (एधति) बढ़ाता है ॥१०॥

इन्द्रः कारुमबूबुधदुत्तिष्ठ वि चरा जनम् ।
ममेदुग्रस्य चर्कृधि सर्व इत् ते पृणादरिः ॥११॥

पदार्थ—(इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] ने (कारुम्) काम करने वाले को (अबूबुधत्) जगाया है—(उत्तिष्ठ) उठ और (जनम्) लोगों में (वि चर) विचर, (मम इत् उग्रस्य) मुझ ही तेजस्वी की [भक्ति] (चर्कृधि) तू करता रहे, (सर्वः) प्रत्येक (अरिः) वैरी (इत्) भी (ते) तेरी (पृणात्) तृप्ति करे ॥११॥

इह गावः प्र जायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः ।
इहो सहस्रदक्षिणोऽपि पूषा नि षीदति ॥१२॥

पदार्थ—(गावः) हे गौओ ! तुम (इह) यहाँ पर [इस घर में], (अश्वाः) हे घोड़ो ! तुम (इह) यहाँ पर (पूरुषाः) हे पुरुषो ! तुम (इह) यहाँ पर (प्रजायध्वम्) बढ़ो, (इहो) यहाँ पर (सहस्रदक्षिणः) सहस्रों की दक्षिणा देनेवाला (पूषा) पोषक [गृहपति] (अपि) भी (नि षीदति) बैठता है ॥१२॥

नेमा इन्द्र गावो रिषन् मो आसां गोप रीरिषत् ।
मासाममित्रयुर्जन इन्द्र मा स्तेन ईशत ॥१३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (इमाः) यह (गावः) भूमियें (न रिषन्) न कष्ट होवें और (आसाम्) इन का (गोप) रक्षक (मो रीरिषत्) नहीं नष्ट होवे । (इन्द्र) हे इन्द्र ! [राजन्], (मा) न तो (अमित्रयुः) वैरियों को चाहने वाला (जनः) नीच मनुष्य, और (मा) न (स्तेनः) चोर (आसाम्) इन [भूमियों] का (ईशत) राजा होवे ॥१३॥

उप नो न रमसि सूक्तेन वचसा वयं भद्रेण वचसा वयम् ।
वनादधिध्वनो गिरो न रिष्येम कदा चन ॥१४॥

पदार्थ—[हे राजन् !] (नः) हम को (न) अब (उप) आदर से (रमसि) तू आनन्द देता है, (सूक्तेन) वेदोक्त (वचसा) वचन के साथ (वयम्) हम, (भद्रेण) कल्याणकारी (वचसा) वचन के साथ (वयम्) हम (वनात्) सेवा से प्रसन्न होकर (अधिध्वनः) ऊँची ध्वनिवाली (गिरः) वाणियों को (कदा चन) कभी भी (न) न (रिष्येम) नष्ट करें ॥१४॥

卐 सूक्तम् १२८ 卐

यः सभेयो विदथ्यः सुत्वा यज्वाथ पूरुषः ।
सूर्यं चामू रिशादसस्तद् देवाः प्रागकल्पयन् ॥१॥

पदार्थ—(यः) जो (सभेयः) सभ्य [सभाओं में चतुर], (विदथ्यः) विद्वानों में प्रशंसनीय, (सुत्वा) तत्त्वरस निकालनेवाला (अथ) और (यज्वा) मिलनसार (पूरुषः) पुरुष है । (अमू) उस (सूर्यम्) सूर्य [के समान प्रतापी] को (च) निश्चय करके (तत्) तब (रिशादसः) हिंसकों के नाश करने वाले (देवाः) विद्वानों ने (प्राक्) पहिले [ऊँचे स्थान पर] (अकल्पयन्) माना है ॥१॥

यो जाम्या अप्रथयस्तद् यत् सखायं दुधूर्षति ।
ज्येष्ठो यदप्रचेतास्तदाहुरधरागिति ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो मनुष्य, (जाम्याः) कुल-स्त्री को (अप्रथयः) गिराता है, (तत्) वह पुरुष, और (यत्) जो (सखायम्) मित्र को (दुधूर्षति) मारना चाहता है, और (यत्) जो (ज्येष्ठः) पति वृद्ध होकर (अप्रचेताः) अज्ञानी है, (तत्) वह (अधराक्) अधोगामी है—(इति) ऐसा (आहुः) वे लोग कहते हैं ॥२॥

यद् भद्रस्य पुरुषस्य पुत्रो भवति दाधृषिः ।
तद् विप्रो अब्रवीदु तद् गन्धर्वः काम्यं वचः ॥३॥

यश्च पणि रभुजिष्ठ्यो यश्च देवाँ अदाशुरिः ।
धीराणां शश्वतामहं तदपागिति शुश्रुम ॥४॥

पदार्थ—(यत्) जब (भद्रस्य) श्रेष्ठ (पुरुषस्य) पुरुष का (पुत्रः) पुत्र (दाधृषिः) ढीठ (भवति) हो जावे, (तत्) तब (विप्रः) बुद्धिमान् (गन्धर्वः) विद्या के धारण करनेवाले पुरुष ने (उ) निश्चय करके (तत्) यह (काम्यम्) मनोहर (वचः) वचन (अब्रवीत्) कहा है [कि] ॥३॥—(यः) जो मनुष्य (पणिः) कुव्यवहारी (रभुजिष्ठ्यः) अत्यन्त हल्का है, (च च) और (यः) जो (देवान्) विद्वानों को (अदाशुरिः) नहीं दान देनेवाला है, (तत्) वह (शश्वताम्) सब (धीराणाम्) धीर पुरुषों में (अपाक्) दूर रहनेयोग्य है—(इति) ऐसा (अहम्) हम ने (शुश्रुम) सुना है ॥४॥

ये च देवा अयजन्ताथो ये च पराददिः ।
सूर्यो दिवमिव गत्वाय मघवा नो वि रप्शते ॥५॥

पदार्थ—(ये) जिन (देवाः) विद्वानों ने (अयजन्त) मेल किया है, (अथो च च) और (ये) जो (पराददिः) मनुष्यों के पकड़नेवाले हैं । (सूर्यः) सूर्य (दिवम् इव) जैसे आकाश को (गत्वाय) प्राप्त होकर, [वैसे ही] (मघवा) महाधनी [सभापति] (नः) उन हम को [प्राप्त होकर] (वि) विविध प्रकार (रप्शते) शोभित होता है ॥५॥

योऽनाक्ताक्षो अनभ्यक्तो अमणिवो अहिरण्यवः ।
अब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥६॥

पदार्थ—(यः) जो (ब्रह्मणः) ब्रह्मा [वेदज्ञानी] का (पुत्रः) पुत्र (अब्रह्मा) अब्रह्मा [वेद न जानने वाला, कुमार्गी] (अनाक्ताक्षः) अशुद्ध व्यवहार वाला और (अनभ्यक्तः) अविख्यात है । वह (अमणिवः) मणियों [रत्नों] का न रखनेवाला और (अहिरण्यवः) तेजहीन होवे, (तोता) वह यह कर्म (कल्पेषु) शास्त्र-विधानों में (संमिता) प्रमाणित है ॥६॥

य आक्ताक्षः सुभ्यक्तः सुमणिः सुहिरण्यवः ।
सुब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥७॥

पदार्थ—(यः) जो (ब्रह्मणः) ब्रह्मा [वेदज्ञानी] का (पुत्रः) पुत्र (सुब्रह्मा) सुब्रह्मा [बड़ा वेदज्ञानी, सुमार्गी], (आक्ताक्षः) शुद्ध व्यवहार वाला और (सुभ्यक्तः) बड़ा विख्यात हो, वह (सुमणिः) बहुत मणियों [रत्नों] वाला और (सुहिरण्यवः) बड़ा तेजस्वी होवे, (तोता) वह यह कर्म (कल्पेषु) शास्त्र विधानों में (संमिता) प्रमाणित है ॥७॥

अप्रपाणा च वेशन्ता रेवाँ अप्रतिदिश्ययः ।
अयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता ॥८॥

पदार्थ—(च) जैसे (अप्रपाणा) बिना पनघटवाला (वेशन्ता) सरोवर है, [वैसे ही] (अप्रतिदिश्ययः) प्रतिदान का न करनेवाला (रेवान्) धनवान् और (अयभ्या) मैथुन के अयोग्य [रोग आदि से पीड़ित, सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ] (कल्याणी) सुन्दर (कन्या) कन्या है, (तोता) वह यह कर्म (कल्पेषु) शास्त्र विधानों में (संमिता) प्रमाणित है ॥८॥

सुप्रपाणा च वेशन्ता रेवान्त्सुप्रतिदिश्ययः ।
सुयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता ॥९॥

पदार्थ—(च) जैसे (सुप्रपाणा) अच्छे पनघटवाला (वेशन्ता) सरोवर है, [वैसे ही] (सुप्रतिदिश्ययः) सुन्दर प्रतिदान करनेवाला (रेवान्) धनवान्

卐 सूक्तम् १३० 卐

को अर्य बहुलिमा इषूनि ॥१॥

को असिद्याः पयः ॥२॥

को अर्जुन्याः पयः ॥३॥

कः कार्ष्ण्याः पयः ॥४॥

एतं पृच्छ कुहं पृच्छ ॥५॥

कुहाकं पक्वकं पृच्छ ॥६॥

पदार्थ—(कः) कौन मनुष्य (बहुलिमा) बहुत से (इषूनि) इष्ट वस्तुओं को (अर्य) पावे ॥१॥ (कः) कौन (असिद्याः) बिना बन्धन वाली क्रिया के (पयः) अन्न को ॥२॥ (कः) कौन (अर्जुन्याः) उद्यम वाली क्रिया के (पयः) अन्न को ॥३॥ (कः) कौन (कार्ष्ण्याः) आकर्षण वाली क्रिया के (पयः) अन्न को [पावे] ॥४॥ (एतम्) इस [प्रश्न] को (कुहम्) अद्भुत स्वभाव वाले मनुष्य से (पृच्छ) पूछ (पृच्छ) पूछ ॥५॥ (कुहाकम्) अद्भुत स्वभाव वाले, (पक्वकम्) पक्के, [दृढ़-चित्त वाले] से (पृच्छ) पूछ ॥६॥

यवानो यतिस्वभिः कुभिः ॥७॥

अकुप्यन्तः कुपायकुः ॥८॥

आमणको मणत्सकः ॥९॥

देव त्वप्रतिसूर्य ॥१०॥

पदार्थ—(यवानः) युवा [बलवान्] (यतिस्वभिः) यतियों [यत्न करने वालों] में प्रकाशमान, (कुभिः) ढकनेवाला [प्रताप वाला] ॥७॥ (अकुप्यन्तः) कोप नहीं करनेवाला, (कुपायकुः) पृथिवी की रक्षा करने वाला ॥८॥ (आमणकः) उपदेश करनेवाला और (मणत्सकः) विद्वानों में शक्तिमान् होकर ॥९॥ (देव) हे विद्वान् ! (त्वप्रतिसूर्य) तू सूर्य समान [प्रतापी] है ॥१०॥

एनश्चिपङ्क्तिका हविः ॥११॥

प्रदुद्रुदो मघाप्रति ॥१२॥

पदार्थ—(एनश्चिपङ्क्तिका) पाप के नाश का फैलाने वाला (हविः) देन-लेन [होवे] ॥११॥ (प्रदुद्रुदः) अच्छे प्रकार गति देनेवाला व्यवहार (मघाप्रति) धनों के लिये [होवे] ॥१२॥

शृङ्ग उत्पन्न ॥१३॥

मा त्वाभि सखा नो विदन् ॥१४॥

पदार्थ—[हे मनु !] तू (शृङ्ग) हिंसक (उत्पन्न) उत्पन्न है ॥१३॥ (त्वा) तुझ से (नः) हमारा (सखा) सखा [साथी] (मा अभि विदन्) कभी न मिले ॥१४॥

वशायाः पुत्रमा यन्ति ॥१५॥

इरावेदुमयं दत ॥१६॥

अथो इयन्नियन्निति ॥१७॥

अथो इयन्निति ॥१८॥

अथो श्वा अस्थिरो भवन् ॥१९॥

उयं यकांशलोकका ॥२०॥

पदार्थ—(वशायाः) कामनायोग्य स्त्री के (पुत्रम्) पुत्र को (आ यन्ति) वे [मनुष्य] आकर पहुँचते हैं ॥१५॥ (इरावेदुमयम्) भूमि के ज्ञानवाला व्यवहार [उस को] (दत) तुम दो ॥१६॥ (अथो) फिर वह [पुत्र] (इयन्—इयन्) चलता हुआ, चलता हुआ [होवे], (इति) ऐसा है ॥१७॥ (अथो) फिर वह (इयन्)चलता हुआ [होवे], (इति) ऐसा है ॥१८॥ (अथो) अथवा (श्वा) कुत्ते [के समान] (अस्थिरः) चंचल स्वभाववाला (भवन्) होता हुआ ॥१९॥ वह (उयम्) निश्चय करके (यकांशलोकका) यातना [घोर पीड़ा] वाले भाग का दिखानेवाला [होवे] ॥२०॥

卐 सूक्तम् ॥१३१॥ 卐

आमिनोनिति भद्यते ॥१॥

तस्य अनु निभञ्जनम् ॥२॥

वरुणो याति वस्वभिः ॥३॥

शतं वा भारती शवः ॥४॥

शतमाश्वा हिरण्ययाः । शतं रथ्या हिरण्ययाः ।

शतं कुथा हिरण्ययाः । शतं निष्का हिरण्ययाः ॥५॥

पदार्थ—(आ—अमिनोन्) उन [विद्वानों] ने [विघ्न को] सब ओर से हटाया है, (इति) यह (भद्यते) कल्याणकारी है ॥१॥ (तस्य) हिंसक विघ्न का (अनु) लगातार (निभञ्जनम्) विनाश होवे ॥२॥ (वरुणः) श्रेष्ठ [धनी पुरुष] (वस्वभिः) श्रेष्ठ वस्तुओं के साथ (याति) चलता है ॥३॥ (शतम्) सौ (भारती) पोषण करनेवाली विद्यायें (वा) और (शवः) बल है ॥४॥ (शतम्) सौ (हिरण्ययाः) सुनहरे (आश्वाः) घोड़े हैं । (शतम्) सौ (हिरण्ययाः) सुनहरे (रथ्याः) रथ हैं । (शतम्) सौ (हिरण्ययाः) सुनहरे (कुथाः) हाथी की झूलें हैं । (शतम्) सौ (हिरण्ययाः) सुनहरे (निष्काः) हार हैं ॥५॥

अहुल कुश वर्त्तक ॥६॥

शफेन इव ओहते ॥७॥

आय वनेनती जनी ॥८॥

वनिष्ठा नाव गृह्णन्ति ॥९॥

इदं मह्यं मदूरिति ॥१०॥

ते वृक्षाः सह तिष्ठति ॥११॥

पदार्थ—(अहुल) हे प्रकाशमान ! (कुश) हे पापनाशक ! (वर्त्तक) हे प्रवृत्ति करनेवाले ! [मनुष्य] ॥६॥ (शफेन इव) खुर से जैसे, (ओहते) वह [शत्रु] मारा जाता है ॥७॥ (वनेनती) उपकार में झुकने वाली (जनी) माता होकर (आय) तू आ ॥८॥ (वनिष्ठाः) अत्यन्त उपकारी लोग (न) नहीं (अव गृह्णन्ति) रुकते हैं ॥९॥ (इदम्) यह [वचन] (मह्यम्) मेरे लिये (मदूः) आनन्द देनेवाली नीति है—(इति) यह निश्चय है ॥१०॥ (ते) वे (वृक्षाः) स्वीकार करनेयोग्य पुरुष (सह) मिलकर (तिष्ठति) रहते हैं ॥११॥

पाक बलिः ॥१२॥

शक बलिः ॥१३॥

अश्वत्थ खदिरो धवः ॥१४॥

अरदुपरम ॥१५॥

शयो हत इव ॥१६॥

पदार्थ—(पाक) हे रक्षक श्रेष्ठ पुरुष ! (बलिः) बलि [भोजन आदि की भेंट होवे] ॥१२॥ (शक) हे समर्थ ! (बलिः) बलि [राजा का ग्राह्य कर आदि का लेना होवे] ॥१३॥ (अश्वत्थ) हे अश्वत्थामा ! [बलवानों में ठहरने वाले वीर] (खदिरः) दृढ़ चित्तवाला (धवः) मनुष्य [होवे] ॥१४॥ (अरदुपरम) हे हिंसा से निवृत्ति वाले ! ॥१५॥ (शयः) सोते [के समान शत्रु] (हतः) मारा हुआ (इव) जैसे है ॥१६॥

व्याप पूरुषः ॥१७॥

अदूहमित्यां पूषकम् ॥१८॥

अत्यर्धर्च परस्वतः ॥१९॥

दौव हस्तिनो दृती ॥२०॥

पदार्थ—(अत्यर्धर्च) हे अत्यन्त बढ़ी हुई स्तुतिवाले ! (पूरुषः) इस पुरुष ने (अदूहमित्याम्) अत्यन्त ज्ञान के बीच (परस्वतः) पालन-सामर्थ्यवाले [मनुष्य] के (पूषकम्) बढ़ाती करनेवाले व्यवहार को (व्याप) फैलाया है ॥१७—॥१९॥ [जैसे] (हस्तिनः) धौंकनीवाले की (दौव) दोनों (दृती) खालें [धौंकनी फैलती हैं] ॥२०॥

卐 सूक्तम् ॥ १३२ ॥ 卐

आदलाबुकमेककम् ॥१॥

अलाबुकं निखातकम् ॥२॥

कर्करिको निखातकः ॥३॥

पदार्थ—(भुक्) पालनेवाला [परमात्मा] (अभिगत) समाने पाया गया है—(इति) ऐसा है, (शल्) शीघ्रगामी वह (अपक्रान्तः) सुख से आगे चलता हुआ है—(इति) ऐसा है, (फल्) सिद्ध करनेवाला वह (अभिष्ठितः) सब ओर ठहरा हुआ है—(इति) ऐसा है। (जरित.) हे स्तुति करनेवाले (देव) परमात्मा को देवता माननेवाले विद्वान् ! (दुन्दुभिम्) ढोल को (आहननाभ्याम्) दो डण्डों से (आ) सब ओर (उथाम) हम उठावें [बल से बजावें] ॥१॥

कोशबिले रजनि ग्रन्थेर्धानमुपानहि पादम् ।

उत्तमां जनिमां जन्यानुत्तमां जनीन् वर्त्मन्यात् ॥२॥

पदार्थ—(रजनि) रात्रि में [जैसे] (कोशबिले) कोश [सोना चांदी रखने] के कुण्ड के भीतर (ग्रन्थेः) गांठ के (धानम्) रखने को, [अथवा जैसे] (उपानहि) जूते में (पादम्) पैर को, [वैसे ही] (जन्या) मनुष्यों के बीच (उत्तमाम्) उत्तम (जनिमाम्) जन्म लक्ष्मी [शोभा वा ऐश्वर्य], (अनुत्तमाम्) अति उत्तम गति और (जनीन्) उत्पन्न पदार्थों को (वर्त्मन्) मार्ग में (यात्) [मनुष्य] प्राप्त होवे ॥२॥

अलाबूनि पृषातकान्यश्वत्थपलाशम् । पिपीलिका-

वटश्वसो विद्युत्स्वापर्णशफो गोशफो जरितरोथामो दैव ॥३॥

पदार्थ—(अलाबूनि) तूबी आदि बेलें, (पृषातकानि) पृषातक [वृक्ष विशेष], (अश्वत्थपलाशम्) पीपल और पलाश वा ढाक [वृक्ष विशेष], (पिपीलिका) पिपीलिका [वृक्ष विशेष], (वटश्वसः) वटश्वस [वृक्ष विशेष] (विद्युत्) बिजुली [वृक्ष विशेष], (स्वापर्णशफः) स्वापर्णशफ [वृक्ष विशेष] और (गोशफ.) गोशफ [वृक्ष विशेष] हैं, [उन सब में] (जरितः) हे स्तुति करनेवाले (दैव) परमात्मा को देवता माननेवाले विद्वान् ! (आ) सब ओर से (उथाम) हम उठते हैं ॥३॥

वीमे देवा अक्रंसताध्वर्यो क्षिप्रं प्रचर ।

सुसत्यमिद् गवामस्यसि प्रखुदसि ॥४॥

पदार्थ—(इमे देवाः) इन विद्वानों ने (वि) विविध प्रकार (अक्रंसत) पैर बढ़ाया है, (अध्वर्यो) हे हिंसा न करनेवाले विद्वान् (क्षिप्रम्) शीघ्र (प्रचर) आगे बढ़, और (प्रखुदसि) बड़े आनन्द में (असि) तू हो, (असि) तू हो, [यह वचन [(गवाम्) स्तोताओं [गुण-व्याख्याताओं] का (सुसत्यम् इत्) बड़ा ही सत्य है ॥४॥

पत्नी यदृश्यते पत्नी यक्ष्यमाणा जरितरोथामो दैव ।

होता विष्टीमेन जरितरोथामो दैव ॥५॥

पदार्थ—(पत्नी) पत्नी (यत्) यहां पर (यक्ष्यमाणा) पूजी जाती हुई (पत्नी) पत्नी (दृश्यते) दीखती है, [वहां] (जरितः) हे स्तुति करनेवाले (दैव) परमात्मा को देवता मानने वाले विद्वान् ! (आ) सब ओर से (उथाम.) हम उठते हैं। (विष्टीमेन) विशेष कोमलपन के साथ (होता) तू दाता हो (जरित) हे स्तुति करनेवाले (दैव) परमात्मा को देवता माननेवाले विद्वान् ! (आ) सब ओर से (उथामः) हम उठते हैं ॥५॥

आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन् ।

तां ह जरितः प्रत्यायंस्तामु ह जरितः प्रत्यायन् ॥६॥

पदार्थ—(आदित्याः) अखण्ड ब्रह्मचारियों ने (ह) ही (जरितः) हे स्तुति करने वाले ! (अङ्गिरोभ्यः) विज्ञानी पुरुषों के लिये (दक्षिणाम्) दक्षिणा [दान वा प्रतिष्ठा] को (अनयन्) प्राप्त कराया है। (ताम्) उस [दक्षिणा] को (ह) ही, (जरित) हे स्तुति करनेवाले ! (प्रति आयन्) उन्होंने प्रत्यक्ष पाया है, (ताम्) उस [दक्षिणा] को (उ) निश्चय करके ((ह) ही, (जरितः) हे स्तुति करनेवाले ! (प्रति आयन्) उन्होंने प्रत्यक्ष पाया है ॥६॥

तां ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णंस्तामु ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णः ।

अहानेतरसं न वि चेतनानि यज्ञानेतरसं न पुरोगवामः ॥७॥

पदार्थ—(ताम्) उस [दक्षिणा] को (ह) ही, (जरितः) हे स्तुति करनेवाले ! (नः) हमारे लिये (प्रति अगृभ्णन्) उन्होंने [विज्ञानियों ने] प्रत्यक्ष पाया है, (ताम्) उस को (उ) निश्चय करके (ह) ही, (जरितः) स्तुति करनेवाले ! (नः) हमारे लिये (प्रति अगृभ्णः) तू ने प्रत्यक्ष पाया है। (न) अभी (अहानेतरसम्) व्याप्ति में बल रखनेवाले व्यवहार को, (वि) विविध (चेतनानि) चेतनाओं को, और (न) अभी (यज्ञानेतरसम्) यज्ञ [देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान] में बल रखनेवाले व्यवहार को (पुरोगवामः) हम आगे होकर पावें ॥७॥

उत श्वेत आशुपत्वा उतो पद्याभिर्यविष्ठः ।

उतेमाशु मानं पिपर्ति ॥८॥

पदार्थ—(आशुपत्वाः) हे शीघ्रगामी पुरुषो ! (श्वेतः) श्वेत वर्णोंवाला [सूर्य] (उत) भी (यविष्ठः) अत्यन्त बलवान् होकर (पद्याभिः) चलनेयोग्य गतियों से (उतो) निश्चय करके (उत) अवश्य (ईम्) प्राप्तियोग्य (मानम्) परिमाण को (आशु) शीघ्र (पिपर्ति) पूरा करता है ॥८॥

आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेऽनु त इदं राधः प्रति गृभ्णीह्यङ्गिरः ।

इदं राधो विभु प्रभु इदं राधो बृहत् पृथु ॥९॥

पदार्थ—[हे शूर सभापति !] (ते) वे (आदित्या.) अखण्ड ब्रह्मचारी (रुद्रा.) ज्ञानदाता और (वसवः) श्रेष्ठ विद्वान् लोग (त्वे अनु) तेरे पीछे-पीछे हैं, (अङ्गिर.) हे विज्ञानी पुरुष ! (इदम्) इस (राधः) धन को (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से (गृभ्णीहि) तू ग्रहण कर। (इदम्) यह (राधः) धन (विभु) व्यापक और (प्रभु) बलयुक्त है, (इदम्) यह (राधः) धन (बृहत्) बहुत और (पृथु) विस्तीर्ण है ॥९॥

देवा ददत्वासुरं तद् वो अस्तु सुचेतनम् ।

युष्माँ अस्तु दिवेदिवे प्रत्येव गृभायत ॥१०॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (देवाः) विद्वान् लोग (आसुरम्) बुद्धिमत्ता (ददतु) देवें, (तत्) वह (वः) तुम्हारे लिये (सुचेतनम्) सुन्दर ज्ञान (अस्तु) होवे। (युष्मान्) तुम को वह (दिवेदिवे) दिन-दिन (अस्तु) होवे, [उसको] (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से (एव) ही (गृभायत) तुम ग्रहण करो ॥१०॥

त्वमिन्द्र शर्मरिणा हव्यं पारावतेभ्यः ।

विप्राय स्तुवते वसुवनिं दुरश्रवसे वह ॥११॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (त्वम्) तू ने (शर्म) शरण और (हव्यम्) हव्य [विद्वानों के योग्य अन्न] (पारावतेभ्यः) पार और अवार देशवाले लोगों के लिये (रिणाः) पहुँचाया है। (स्तुवते) स्तुति करनेवाले (विप्राय) बुद्धिमान् के लिये (वसुवनिम्) धनों का सेवन (दुरश्रवसे) दुष्ट अपयश मिटाने को (वह) प्राप्त करा ॥११॥

त्वमिन्द्र कपोताय च्छिन्नपक्षाय वञ्चते ।

श्यामाकं पक्वं पीलु च वारस्मा अकृणोर्बहुः ॥१२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! [बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्] (त्वम्) तू ने (अस्मै) इस (छिन्नपक्षाय) कटे पंखवाले, (वञ्चते) चलते हुए (कपोताय) कबूतर को (पक्वम्) पका हुआ (श्यामाकम्) श्यामा (सामा अन्न], (पीलु) पीलु [फल विशेष] (च) और (वाः) जल (बहु) बहुत बार (अकृणोः) किया है ॥१२॥

अरंगरो वावदीति त्रेधा बद्धो वरत्रया ।

इरामह प्रशंसत्यनिरामप सेधति ॥१३॥

पदार्थ—(अरङ्गरः) पूरा विज्ञानी पुरुष (त्रेधा) तीन प्रकार से [स्थान नाम और मनुष्य आदि जन्म से] (वरत्रया) रस्सी से (बद्धः) बंधा हुआ (वावदीति) बार बार कहता है। (इराम्) लेने योग्य अन्न को (अह) ही (प्रशंसति) वह सराहता है और (अनिराम्) निन्दित अन्न को (अप सेधति) हटाता है ॥१३॥

卐 सूक्तम् १३६ 卐

यदस्या अंहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत् ।

मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव ॥१॥

पदार्थ—(यत्) जब (अस्याः) इस (अंहुभेद्याः) पाप से नाश होनेवाली [प्रजा] के (कृधु) छोटे और (स्थूलम्) बड़े [पाप] को (उपातसत्) वह [राजा] नाश करता है। (अस्याः) इस [प्रजा [के (मुष्कौ इत्) दोनों ही चोर] स्त्री और पुरुष चोर अथवा रात्रि और दिन के] चोर (गोशफे) गौ के खुर के गढ़े में (शकुलौ इव) दो मछलियों के समान, (एजतः) कांपते हैं [डरते हैं] ॥१॥

यदा स्थूलेन पससाणौ मुष्का उपावधीत् ।

विष्वञ्चा वस्या वर्धतः सिकतास्वेव गर्दभौ ॥२॥

पदार्थ—(यदा) जब (स्थूलेन) बड़े (पससा) राज्य प्रबन्ध के साथ (अणौ) सूक्ष्म न्याय के बीच (मुष्कौ) दोनों चोरों [स्त्री और पुरुष चोरों वा रात्रि और दिन के चोरों] को (उप अवधीत्) वह [राजा] मार डालता है ? (विष्वञ्चा) सब ओर पूजनीय (वस्या) अति श्रेष्ठ दोनों [स्त्री और पुरुष], (सिकतासु) रेत वाले खेतों में (गर्दभौ इव) दो श्वेत कमलों के समान, (वर्धतः) बढ़ते हैं ॥२॥

यदल्पिकास्वल्पिका कर्कन्धूकेवपद्यते ।
वासन्तिकमिव तेजनं यन्त्यवाताय वित्पति ॥३॥

पदार्थ—(यत्) जब (अल्पिकासु) छोटी प्रजाओं में (अल्पिका) छोटी प्रजा (कर्कन्धूके) अग्नि के झोंके में (अवपद्यते) कष्ट पाती है । [तब] (वित्पति) विद्वानों के पालन में (अवाताय) दु:ख मिटाने के लिये (वासन्तिकम् इव) वसन्त ऋतु मे होनेवाली [उत्तेजना] के समान (तेजनम्) उत्तेजना को (यन्ति) वे [शूर लोग] पाते हैं ॥३॥

यद् देवासो ललामगुं प्रविष्टीमिनमाविषुः ।
सकुला देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥४॥

पदार्थ—(यत्) जैसे (देवास) विद्वान् लोग (ललामगुम्) प्रधानता पहुँचानेवाले (विष्टीमिनम्) कोमलता से युक्त न्याय में (प्र आविषु) प्रविष्ट हुए हैं । और (यथा) जैसे (सकुला) बाल-बच्चों वाली (नारी) नारी [स्त्री] (अक्षिभुव) आँखो से हुए [प्रत्यक्ष] (सत्यस्य) सत्य का (देदिश्यते) बार बार उपदेश करती है [वैसे ही राजा न्याय और उपदेश करे] ॥४॥

महानग्न्यतृप्नद्वि मोक्रदस्थानासरन् ।
शक्तिकानना स्वचमशकं सक्तु पद्यम ॥५॥

पदार्थ—(महान्) महान् पुरुष (अग्नि) दोनो अग्नियों [शारीरिक और आत्मिक बलो] को (वि) विशेष करके (अतृप्नत्) तृप्त करे, और (अस्थाना) अयोग्य स्थान में (आसरन्) आता हुआ (मोक्रदत्) न घबरावे । (शक्तिकानना.) सामर्थ्य का प्रकाश करनेवाले तुम (स्वचमशकम्) ज्ञातियो के लिये भोजन [लड्डू आदि] और (सक्तु) सत्तू (पद्यम) प्राप्त करें ॥५॥

महानग्न्युलूखलमतिक्रामन्त्यब्रवीत् ।
यथा तव वनस्पते निरघ्नन्ति तथैवेति ॥६॥

पदार्थ—(महान्) महान् पुरुष (अग्नी) दोनो अग्नियों [आत्मिक और सामाजिक बलो] से (उलूखलम्) ओखली को (अतिक्रामन्ति) लाघता है और (अब्रवीत्) कहता है—(वनस्पते) हे वनस्पति ! [काठ के पात्र] (यथा) जैसे (तव) तुझ मे (निरघ्नन्ति) [लोग] कूटते है, (तथाएव) वैसे ही (इति) ज्ञान के विषय मे [होवे] ॥६॥

महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः ।
यथैव ते वनस्पते पिप्पति तथैवेति ॥७॥

पदार्थ—(महान्) महान् (भ्रष्ट) परिपक्व, (अथ अपि) और भी (अभूभुव) अशुद्धि का शोधनेवाला पुरुष (अग्नी) दोनो अग्नियो [आत्मिक और सामाजिक बलो] को (उप) पाकर (ब्रूते) कहता है—(वनस्पते) हे वनस्पति ! [काठ के पात्र ओखली] (यथा) जैसे (ते) तुझ मे (पिप्पति) [मनुष्य] भरता है, (तथा एव) वैसे ही (इति) ज्ञान के विषय मे [होवे] ॥७॥

महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः ।
यथा वयो विदाह्य स्वर्गे नमवदह्यते ॥८॥

पदार्थ—(महान्) महान्, (भ्रष्ट) परिपक्व, (अथ अपि) और भी (अभूभुव) अशुद्धि का शोधनेवाला पुरुष (अग्नी) दोनो अग्नियो [आत्मिक और सामाजिक बलों] को (उप) पाकर (ब्रूते) कहता है—(यथा) जैसे (वय) जीवन को (विदाह्य) विविध प्रकार तपाकर (स्वर्गे) स्वर्ग मे [सुख विशेष मे] (नम्) बन्धन को (अवदह्यते) [विद्वान्] भस्म कर देता है, [वैसे ही मनुष्य करे] ॥८॥

महानग्न्युप ब्रूते स्वसावेशितं पसः ।
इत्थं फलस्य वृक्षस्य शूर्पे शूर्पं भजेमहि ॥९॥

पदार्थ—(महान्) महान् पुरुष (अग्नी) दोनों अग्नियो [आत्मिक और सामाजिक बलो] [illegible] (उप) पाकर (स्वसा) सुन्दर गति [उपाय] से (आवेशितम्) प्राप्त हुए (पसः) राज्य-प्रबन्ध के विषय में (ब्रूते) कहता है—[कि] (इत्थम्) इसी प्रकार से (वृक्षस्य) स्वीकार करनेयोग्य (फलस्य) फलके (शूर्पे) [illegible] में (शूर्पम्) दूसरे सूप को (भजेमहि) हम सेवें ॥९॥

महानग्नी कृकवाकं शम्यया परि धावति ।
अयं न विद्म यो मृगः शीर्ष्णा हरति धाणिकाम् ॥१०॥

पदार्थ—(महान्) महान् पुरुष (अग्नी) दोनों अग्नियों [आत्मिक और सामाजिक बलों] से और (शम्यया) जूए की कील [के समान शस्त्र] से (कृकवाकम् परि) बनावटी बोलीवाले पर (धावति) दौड़ता है । [उसको] (न) अब (विद्म) हम जानते हैं, (अयम् यः) यह जो (मृगः) पशु [के तुल्य मूर्ख] (शीर्ष्णा) शिर से [कल्पित विचार से] (धाणिकाम्) बस्ती [राजधानी आदि] को (हरति) लूटता है ॥१०॥

महानग्नी महानग्नं धावन्तमनु धावति ।
इमास्तदस्य गा रक्ष यभ मामद्ध्यौदनम् ॥११॥

पदार्थ—(महान्) महान् पुरुष (अग्नी) दोनो अग्नियो [आत्मिक और सामाजिक बलो] के, और (महान्) महान् पुरुष (अग्नम्) ज्ञानवान (धावन्तम् अनु) दौडते हुए के पीछे (धावति) दौडता है । (तत्) सो (अस्य) इस [पुरुष] को (इमा) इन (गा) भूमियो की (रक्ष) रक्षा कर, (यभ) हे न्यायकारी ! (माम्) मुझको (ओदनम्) भोजन (अद्धि) खिला ॥११॥

सुदेवस्त्वा महानग्नीर्बबाधते महतः साधु खोदनम् ।
कुसं पीवरो नवत् ॥१२॥

पदार्थ—[हे प्रजाजन !] (सुदेव:) बड़ा विजय चाहनेवाला, (महान्) महान् पुरुष (त्वा) तुझ से (महत) बड़े (अग्नी) अग्नियों [आत्मिक और सामाजिक बलो] के द्वारा (खोदनम्) खोदने के कर्म [सेंध सुरङ्ग आदि] को (साधु) भले प्रकार (बबाधते) रोकता है । (पीवर) पुष्टाङ्ग पुरुष (कुसम्) आपस में मिलाप को (नवत्) प्राप्त करे ॥१२॥

वशा दग्धामिमाङ्गुरिं प्रसृजतोग्रतं परे ।
महान् वै भद्रो यभ मामद्ध्यौदनम् ॥१३॥

पदार्थ—[हे विद्वानो !] (वशा) वन्ध्या [निष्फल] (उग्रतम्) उग्रता [प्रचण्ड नीति] को (दग्धाम्) जली हुई (अङ्गुरिम् इम) अंगुरी के समान (परे) दूर (प्रसृजत) सर्वथा छोडो । (महान्) महान् पुरुष (वै) ही (भद्र:) मङ्गलदाता है, (यभ) हे न्यायकारी ! (माम्) मुझ को (ओदनम्) भोजन (अद्धि) खिला ॥१३॥

विदेवस्त्वा महानग्नीर्विबाधते महतः साधु खोदनम् ।
कुमारिका पिङ्गलिका कार्द भस्मा कु धावति ॥१४॥

पदार्थ—[हे प्रजाजन !] (विदेव) मदरहित [निरहंकारी], (महान्) महान् पुरुष (त्वा) तुझ से (महत) बड़े (अग्नी) अग्नियो [आत्मिक और सामाजिक बलो] के द्वारा (खोदनम्) खोदने के कर्म [सेंध सुरङ्ग आदि] को (साधु) भले प्रकार (विबाधते) हटा देता है । (पिङ्गलिका) शोभायमान (कुमारिका) कामनायोग्य कुमारी [कन्या] (कार्द) कीचड और (भस्मा) भस्म [राख आदि] को (कु) भूमि पर (धावति) शुद्ध कर देती है ॥१४॥

महान् वै भद्रो बिल्वो महान् भद्र उदुम्बरः ।
महाँ अभिक्त बाधते महतः साधु खोदनम् ॥१५॥

पदार्थ—(भद्र) मङ्गलदाता (महान्) महान पुरुष (वै) ही (बिल्व:) बेल [वृक्ष के समान उपकारी] है, (भद्र) मङ्गलदाता (महान्) महान् पुरुष (उदुम्बर) गूलर [वृक्ष के समान उपकारी] है । (अभिक्त) हे विख्यात ! (महान्) महान् पुरुष (महत) बड़े [आत्मिक और सामाजिक बलो] से (खोदनम्) खोदने के कर्म [सेंध सुरङ्ग आदि] को (साधु) भले प्रकार (बाधते) हटाता है ॥१५॥

यः कुमारी पिङ्गलिका वसन्तं पीवरी लभेत् ।
तैलकुण्डमिमाङ्गुष्ठं रोदन्तं शुदमुद्धरेत् ॥१६॥

पदार्थ—(पीवरी) पुष्टाङ्गी, (पिङ्गलिका) शोभायमान, (कुमारी) कामनायोग्य कुमारी [कन्या] (य) प्रयत्न से (वसन्तम्) वसन्त राग को (लभेत्) प्राप्त होवे । [वैसे ही राजा] (तैलकुण्डम्) [तपते हुए] तेलकुण्ड मे डाले हुए (अङ्गुष्ठम् इम) अंगूठे [अंगुली] को जैसे [वैसे] (रोदन्तम्) रोते हुए (शुदम्) ज्ञानदाता का (उद्धरेत्) उद्धार करे [ऊँचा उठावे] ॥१६॥

卐 सूक्तम् ॥१३७॥ 卐

(१—१४) १ शिरिम्बिठि ; २ बुध , ३ वामदेव.; ४-६ ययाति; ७-११ तिरश्चीराङ्गिरसो- द्युतानो वा, १२-१४ सुकक्ष । १ अलक्ष्मीनाशनम्' २ इन्द्र , ३ दधिक्रा', ४-६ सोम' पवमान., ७-१४ इन्द्रश्च । १, ३, ४-६ अनुष्टुप् २ जगती, ७-११ त्रिष्टुप्; १२-१४ गायत्री ।

यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः ।
हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः ॥१॥

पदार्थ— (मण्डूरधाणिकीः) हे विभग धारण करनेवाली (उरः) माक सेनाओ ! (प्राची) आगे बढ़ती हुई (यत् ह) अभी (अजगन्त) तुम चली हो ।

[तभी] (इन्द्रस्य) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले राजा] के (सर्वे) सब (शत्रवः) वैरी लोग (बुद्बुदयाशवः) बुद्बुदो के समान चलनेवाले और फैलनेवाले होकर (हताः) मारे गये ॥१॥

कपृन्नरः कपृथमुद् दधातन चोदयत खुदत वाजसातये ।

निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये ॥२॥

पदार्थ—(कपृत्) हे सुख से भरनेवाले, (नरः) नरो ! [नेताओ] (सबाधः) नाश के रोकनेवाले होकर तुम (कपृथम्) सुख से भरनेवाले, (निष्टिग्र्यः) निश्चित इष्ट क्रिया को बतानेवाली [माता] के (पुत्रम्) पुत्र (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले शूर] को (वाजसातये) धनो के पाने के लिये (सोमपीतये) सोम [तत्त्व रस] पीने के लिये और (ऊतये) रक्षा के लिये (इह) यहां पर (उत्) अच्छे प्रकार (दधातन) धारण करो, (चोदयत) आगे बढ़ाओ, (खुदत) सुखी करो और (आ) सब ओर से (च्यावय) उत्साही करो ॥२॥

दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।

सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥३॥

पदार्थ—(दधिक्राव्णः) चढ़ाकर चलनेवाले वा हींसने वाले (जिष्णोः) जीतने वाले, (वाजिनः) वेगवान् (अश्वस्य) घोड़े के (अकारिषम्) कर्म को मैंने किया है। वह [कर्म] (नः) हमारे (मुखा) मुखो को (सुरभि) ऐश्वर्ययुक्त (करत्) करे और (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनो को (प्र तारिषत्) बढ़ावे ॥३॥

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।

पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥४॥

पदार्थ—(सुतासः) निचोड़े हुए, (मधुमत्तमाः) अत्यन्त ज्ञान करनेवाले, (मन्दिनः) आनन्द देनेवाले, (पवित्रवन्तः) शुद्ध व्यवहारवाले (सोमाः) सोम [तत्त्व रस] (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] के लिए (अक्षरन्) बहे हैं, (मदाः) वे आनन्द देनेवाले [तत्त्व रस] (वः) तुम (देवान्) विद्वानो को (गच्छन्तु) पहुँचें ॥४॥

इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् ।

वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥५॥

पदार्थ—(इन्दुः) सोम [तत्त्व रस] (इन्द्राय) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले मनुष्य] के लिये (पवते) शुद्ध होता है, (वाचः पतिः) वेदवाणी का स्वामी [परमात्मा] (ओजसा) अपने सामर्थ्य से (विश्वस्य) सब का (ईशानः) राजा होकर (मखस्यते) पुरुषार्थ चाहता है—(इति) ऐसा (देवासः) विद्वानों ने (अब्रुवन्) कहा है ॥५॥

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।

सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥६॥

पदार्थ—(सहस्रधारः) सहस्रो धाराओंवाला (समुद्रः) समुद्र [जैसे], (वाचमीङ्खयः) विद्याओं का प्रवर्तक, (रयीणाम्) धनों का (पतिः) स्वामी, (इन्द्रस्य) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] का (सखा) मित्र (सोमः) सोम [तत्त्व रस] (दिवेदिवे) दिन दिन (पवते) शुद्ध होता है ॥६॥

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।

आवत् तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥७॥

पदार्थ—(द्रप्सः) घमंडी, (कृष्णः) कौवा [के समान निन्दित लुटेरा शत्रु] (दशभिः सहस्रैः) दस सहस्र [बड़ी सेना] के साथ (इयानः) चलता हुआ (अंशुमतीम्) विभाग वाली [सीमा वाली नदी] पर (अव अतिष्ठत्) ठहरा है। (नृमणाः) नरो के समान मनवाले (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े प्रतापी शूर] ने (तम् धमन्तम्) उस हाँफते हुए को (शच्या) बुद्धि से (आवत्) बचाया है और (स्नेहितीः) अपनी मारू सेनाओं को (अप अधत्त) हटा लिया है ॥७॥

द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः ।

नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥८॥

पदार्थ—(द्रप्सम्) घमंडी को (अंशुमत्याः) विभागवाली [सीमावाली] (नद्याः) नदी के (उपह्वरे) समीप मे (विषुणे) विरुद्ध आचरण [अन्याय] के बीच में (चरन्तम्) विचरते हुए, (नभः) आकाश से (अवतस्थिवांसम्) उतरे हुए (कृष्णम् न) कौवे के समान (अपश्यम्) मैं ने देखा है, (वृषणः) हे ऐश्वर्यवाले वीरो ! (वः) तुम को (इष्यामि) मैं प्रेरणा करता हूँ (आजौ) संग्राम में (युध्यत) युद्ध करो ॥८॥

अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत् तन्वं तित्विषाणः ।

विशो अदेवीरभ्याचरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥९॥

पदार्थ—(अध) फिर (तित्विषाणः) भड़कीले (द्रप्सः) घमंडी ने (अंशुमत्याः) विभागवाली [सीमावाली नदी] के (उपस्थे) समीप मे (तन्वम्) अपने शरीर को (अधारयत्) पुष्ट किया। [तब] (युजा) अपने मित्र (बृहस्पतिना) बृहस्पति [बड़ी विद्याओं के स्वामी] के साथ (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े प्रतापी राजा] ने (अभि) सब ओर (आचरन्तीः) घूमती हुई, (अदेवीः) कुव्यवहारवाली (विशः) प्रजाओं को (ससाहे) जीत लिया ॥९॥

त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।

गूळ्हे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥१०॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र [महाप्रतापी राजन्] (त्यत् ह) तभी (जायमानः) प्रकट होता हुआ (त्वम्) तू (अशत्रुभ्यः) अशत्रु [बिना वैरवाले, आपस मे मित्र] (सप्तभ्यः) सातो [कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका पाच ज्ञान इन्द्रिय, मन और बुद्धि] के हित के लिए (शत्रुः) [दुष्टो का] शत्रु (अभवः) हुआ है। (गूळ्हे) [अज्ञान के कारण] ढके हुए (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि को (अनु) अनुक्रम से (अविन्दः) तू ने पाया है और (विभुमद्भ्यः) महत्त्व वाले (भुवनेभ्यः) लोको को (रणम्) रमण [आनन्द] (धाः) तू ने दिया है ॥१०॥

त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन् धृषितो जघन्थ ।

त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैस्त्वं गा इन्द्र शच्येदविन्दः ॥११॥

पदार्थ—(वज्रिन्) हे वज्रधारी (इन्द्र) इन्द्र ! [महाप्रतापी राजन्] (धृषितः) निर्भय (त्वम्) तू ने, (त्वम्) तू ने (ह) ही (शुष्णस्य) सुखाने वाले वैरी के (त्यत्) उस (अप्रतिमानम्) अनुपम (ओजः) बल को (वज्रेण) वज्र से और (वधत्रैः) हथियारो से (जघन्थ) नष्ट कर दिया है और (अव अतिरः) नीचे किया है, (त्वम्) तू ने (गाः) उस की भूमियों को (शच्या) अपनी बुद्धि से (इत्) ही (अविन्दः) पाया है ॥११॥

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥१२॥

पदार्थ—(तम्) उस (इन्द्रम्) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले राजा] को (महे) बड़े (वृत्राय) रोकनेवाले वैरी के (हन्तवे) मारने को (वाजयामसि) हम बलवान् करते हैं [उत्साही बनाते हैं] (सः) वह (वृषा) पराक्रमी (वृषभः) श्रेष्ठ वीर (भुवत्) होवे ॥१२॥

इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः ।

द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥१३॥

पदार्थ—(सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला राजा] (दामने) दान करने के लिए और (सः) वह (मदे) आनन्द देने के लिए (ओजिष्ठः) महाबली और (हितः) हितकारी (कृतः) बनाया गया है, (सः) वह (द्युम्नी) अन्नवाला और (श्लोकी) कीर्तिवाला (सोम्यः) पुरुष ऐश्वर्य के योग्य है ॥१३॥

गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः ।

ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥१४॥

पदार्थ—(गिरा) वाणी से (संभृतः) पुष्ट किया गया, (सबलः) सबल, (अनपच्युतः) न गिरनेयोग्य, (ऋष्वः) गतिवाला, और (अस्तृतः) बेरोक सेनापति (वज्रः न) बिजुली के समान (ववक्षे) रिस होवे ॥१४॥

卐 सूक्तम् ॥१३८॥ 卐

१—३ वत्स । इन्द्र । गायत्री ।

महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥१॥

पदार्थ—(यः) जो (महान्) महान् [पूजनीय] (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला राजा] (ओजसा) अपने बल से (वृष्टिमान्) मेंह वाले (पर्जन्यः इव) बादल के समान है, [वह] (वत्सस्य) शास्त्रों को कहनेवाले [आचार्य आदि] के (स्तोमैः) उत्तम गुणों के व्याख्यानो से (वावृधे) बढ़ा है ॥१॥

प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद् भरन्त वह्नयः । विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥२॥

पदार्थ—(ऋतस्य) सत्य धर्म का (पिप्रतः) पालन करते हुए (वह्नयः) ले चलने वाले [नेता लोग] (प्रजाम्) प्रजा को (यत्) जब (प्र) अच्छे प्रकार (भरन्त) पुष्ट करते हैं, [तब] (विप्राः) बुद्धिमान् लोग (ऋतस्य) सत्य धर्म के (वाहसा) प्राप्त करानेवाले [होते हैं] ॥२॥

कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् । जामि ब्रुवत आयुधम् ॥३॥

पदार्थ—(कण्वाः) बुद्धिमानों ने (यत्) जब (इन्द्रम्) इन्द्र [महाप्रतापी मनुष्य] को (स्तोमैः) उत्तम गुणों के व्याख्यानों से (यज्ञस्य) यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण और दान] का (साधनम्) सिद्ध करनेवाला (अकृत) बनाया है, [तभी उस को] (आयुधम्) मनुष्यों का पोषण करनेवाला (जामि) बन्धु (ब्रुवते) कहते हैं ॥३॥

卐 सूक्तम् १३९ 卐

१—५ शशकर्णः । अश्विनौ । १ अनुष्टुप्, २-३गायत्री, ४ बृहती, ५ ककुप् ।

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे ।

प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दिर्युयुतं या अरातयः ॥१॥

पदार्थ—(अश्विना) हे दोनों अश्वी [चतुर माता पिता अथवा राजा और मन्त्री] (युवाम्) तुम दोनों (वत्सस्य) निवास करनेवाले [प्रजा जन] की उसको (अवसे) रक्षा के लिये (नूनम्) अवश्य (आ गन्तम्) आओ और (अस्मै) (अवृकम्) बिना भेड़ियेवाला [भेड़िये के समान चोर डाकू के बिना], (पृथु) चौड़ा (छर्दिः) घर (प्र यच्छतम्) दो और (याः) जो (अरातयः) कर न देने वाली प्रजाएँ हैं, [उन्हें] (युयुतम्) अलग करो ॥१॥

यदन्तरिक्षे यद् दिवि यत् पञ्च मानुषाँ अनु ।

नृम्णं तद् धत्तमश्विना ॥२॥

पदार्थ—(यत्) जो [धन] (अन्तरिक्षे) आकाश में, (यत्) जो (दिवि) सूर्य आदि के प्रकाश में और (यत्) जो (पञ्च) पाँच [पृथिवी आदि पाँच तत्वों से] सम्बन्ध वाले (मानुषान् अनु) मनुष्यों में है, (अश्विना) हे दोनो अश्वी ! [चतुर माता पिता] (तत्) उस (नृम्णम्) धन को (धत्त) दान करो ॥२॥

ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः ।

एवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥३॥

पदार्थ—(अश्विना) हे दोनों अश्वी ! [चतुर माता-पिता] (वाम्) तुम दोनों के (दंसांसि) कर्मों को (ये) जिन (विप्रास.) बुद्धिमानों ने (परिमामृशुः) विचारा है, (एव इत्) वैसे ही [उनके बीच] (काण्वस्य) बुद्धिमान् के किये कर्म का (बोधतम्) तुम दोनो ज्ञान करो ॥३॥

अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते ।

अयं सोमो मधुमान् वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः ॥४॥

पदार्थ—(अश्विना) हे दोनों अश्वी ! [चतुर माता पिता गुरुजनों] (वाम्) तुम दोनो का (अयम्) यह (घर्मः) पसीना (स्तोमेन) स्तुतियोग्य कर्म के साथ (परि सिच्यते) सिचता है [बहता है], (वाजिनीवसू) हे बहुत वेगवाली वा बहुत अन्न वाली क्रियाओं में निवास करनेवाले दोनों ! (अयम्) यह [पसीना] (मधुमान्) उत्तम ज्ञानवाला (सोमः) सोम [तत्त्व रस] है, (येन) जिस [तत्त्व रस] से (वृत्रम्) रोकनेवाले शत्रु को (चिकेतथः) तुम दोनों जान लेते हो ॥४॥

यदप्सु यद् वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम् ।

तेन माविष्टमश्विना ॥५॥

पदार्थ—(पुरुदंससा) हे बहुत कर्मोंवाले दोनो ! (यत्) जो कुछ (कृतम्) क्रियाफल (अप्सु) जल में है, (यत्) जो (वनस्पतौ) वनस्पति [वृक्षों] में है, और (यत्) जो (ओषधीषु) ओषधियों [जो चावल आदि] में है, (अश्विना) हे दोनों अश्वी ! [चतुर माता-पिता] (तेन) उस [क्रियाफल] से (मा) मेरी (अविष्टम्) रक्षा करो ॥ ५ ॥

卐 सूक्तम् ॥ १४० 卐

१—५ शशकर्णः । अश्विनौ । अनुष्टुप्, १ बृहती, ५ त्रिष्टुप् ।

यन्नासत्या भुरण्यथो यद् वा देव भिषज्यथः । अयं वां

वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथः ॥१॥

पदार्थ—(नासत्या) हे असत्य न रखनेवाले दोनो ! [दिन-रात्रि] (यत्) क्योंकि (भुरण्यथः) तुम पोषण करते हो, (वा) और, (देवा) हे व्यवहारकुशल दोनों ! (यत्) क्योंकि (भिषज्यथः) तुम औषध करते हो । (अयम्) यह (वत्सः) बोलने वाला (वाम्) तुम दोनों को (मतिभिः) अपनी बुद्धियों से (न) नहीं (विन्धते) पाता है, (हविष्मन्तम्) भक्ति रखनेवाले को (हि) ही (गच्छथः) तुम दोनो मिलते हो ॥१॥

आ नूनमश्विनोर्ऋषि स्तोमं चिकेत वामया ।

आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ॥२॥

पदार्थ—(ऋषिः) ऋषि [विज्ञानी पुरुष] (अश्विनोः) दोनों अश्वी [व्यापक दिन-रात्रि] के (स्तोमम्) स्तुतियोग्य कर्म को (वामया) उत्तम बुद्धि से (नूनम्) अवश्य (आ) सब ओर से (चिकेत) जाने । और (मधुमत्तमम्) अत्यन्त ज्ञानवाले और (घर्मम्) प्रकाशवाले (सोमम्) सोम [तत्त्व रस] को (अथर्वणि) निश्चल [जिज्ञासु] पर (आ) भले प्रकार (सिञ्चात्) सींचे ॥२॥

आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना ।

आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥३॥

पदार्थ—(अश्विना) हे दोनो अश्वी ! [व्यापक दिन-रात्रि] (रघुवर्तनिम्) हलके घूमनेवाले [अति शीघ्रगामी] (रथम्) रथ पर (नूनम्) अवश्य (आ तिष्ठाथः) तुम चढ़ते हो, (मम) मेरे (इमे) यह (स्तोमाः) स्तुति के वचन (वाम्) तुम दोनों को (नभः न) मेघ के समान [शीघ्र] (आ) सब ओर से (चुच्यवीरत) [हमें] प्राप्त कराते हैं ॥३॥

यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि ।

यद् वा वाणीभिरश्विनेवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥४॥

पदार्थ—(नासत्या) हे सदा सत्य स्वभाव वाले दोनो ! [दिन-रात्रि], (अद्य) आज (यत्) जैसे (उक्थैः) कहनेयोग्य शास्त्रों से, (वा) अथवा (यत्) जैसे (वाणीभिः) अपनी वाणियों से (वाम्) तुम दोनो को (आचुच्युवीमहि) हम लावें, (अश्विना) हे दोनो अश्वी ! [व्यापक दिन-रात्रि] (एव इत्) वैसे ही (काण्वस्य) बुद्धिमान् के किये कर्म का (बोधतम्) तुम दोनो ज्ञान करो ॥४॥

यद् वां कक्षीवाँ उत यद् व्यश्व ऋषिर्यद् वां दीर्घतमा जुहाव ।

पृथी यद् वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ॥५॥

पदार्थ—(यत्) जैसे (वाम्) तुम दोनो को (कक्षीवान्) गति वाले [वा शासन वाले] पुरुष ने, (उत) और (यत) जैसे (व्यश्व.) विविध वेग वाले ने और (यत्) जैसे (वाम्) तुम दोनो को (दीर्घतमा) दीर्घतमा [लंबा हो गया है, चला गया है अन्धकार जिस से ऐसे] (ऋषिः) ऋषि [विज्ञानी] ने, (यत्) जैसे (वाम्) तुम दोनो को (वैन्यः) बुद्धिमानो के पास रहनेवाले (पृथी) विस्तारवाले पुरुष ने (सदनेषु) अपने स्थानो मे (जुहाव) ग्रहण किया है (अश्विना) हे दोनो अश्वी ! [व्यापक दिन-रात्रि] (एव इत्) वैसे ही (अतः) इस [मेरे वचन को] (चेतयेथाम्) जानो ॥५॥

卐 सूक्तम् १४१ 卐

१—५ शशकर्णः । अश्विनौ । १विराट्; २ जगती, ३ अनुष्टुप् ४-५ बृहती ।

यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा ।

वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥१॥

पदार्थ—[हे दिन रात्रि दोनो !] (छर्दिष्पौ) घर के रक्षक होकर (यातम्) आओ, (उत) और (नः) हमारे बीच (परस्पा) पालनीयों के पालक, (जगत्पा) जगत् के रक्षक (उत) और (नः) हमारे (तनूपा) शरीरों के बचाने वाले (भूतम्) होओ, और (तोकाय) सन्तान और (तनयाय) पुत्र के हित के लिये (वर्तिः) [हमारे] घर (यातम्) आओ ॥१॥

यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद् वा वायुना भवथः समोकसा ।

यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद् वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः ॥२॥

पदार्थ—(अश्विना) हे दोनों अश्वी ! [व्यापक दिन-रात्रि] (यत्) चाहे (इन्द्रेण) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले सूर्य] के साथ (सरथम्) एक रथ में चढ़कर (याथः) तुम चलते हो, (वा) अथवा (यत्) चाहे (वायुना) पवन के साथ (समोकसा) एक घर वाले (भवथः) होते हो । (यत्) चाहे (आदित्येभिः) अखण्ड व्रतधारी (ऋभुभिः) बुद्धिमानो के साथ (सजोषसा) एक-सी प्रीति करते हुए, (वा) अथवा (यत्) चाहे (विष्णोः) सर्वव्यापक परमात्मा के (विक्रमणेषु) पराक्रमो में (तिष्ठथः) ठहरते हो [वहाँ से दोनो आओ] ॥२॥

यदद्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये ।

यत् पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥३॥

पदार्थ—(यत्) जब (अद्य, अश्विनौ) दोनो अश्वी [व्यापक दिन-रात्रि] को (वाजसातये) विज्ञान के लाभ के लिये (अहम्) मैं (हुवेय) बुलाऊँ । और (पृत्सु) वह संग्रामों के बीच (तुर्वणे) शत्रुओं के मारने में (यत्) जो (सहः) बल है, (तत्) (अश्विनोः) दोनों अश्वी [व्यापक दिन-रात्रि] की (श्रेष्ठम्) अति उत्तम (अवः) रक्षा [होवे] ॥३॥

आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता ।

इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ ॥४॥

पदार्थ—(अश्विना) हे दोनों अश्वी ! [व्यापक दिन-रात्रि] (नूनम्) अवश्य (आ यातम्) आओ, (इमा) यह (हव्यानि) ग्राह्य द्रव्य (वाम्) तुम दोनो के लिये (हिता) रक्खे हैं । (इमे) यह (सोमासः) सोम रस [तत्त्व रस] (तुर्वशे) हिंसकों को वश मे करनेवाले, (यदौ) यत्नशील मनुष्य मे (अथ) और (इमे) यह [तत्त्व रस] (कण्वेषु) बुद्धिमानो मे (वाम्) तुम दोनों के (अधि) अधिकता से है ॥४॥

यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।

तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ॥५॥

पदार्थ—(नासत्या) हे सदा सत्य स्वभाववाले दोनों ! [दिन-रात्रि] (यत्) जो (भेषजम्) औषध (परावके) दूर में और (अर्वाके) समीप में (अस्ति) है। (प्रचेतसा) हे उत्तम ज्ञान करानेवाले दोनो (तेन) उस [औषध] के साथ (नूनम्) अवश्य करके (विमदाय) निरहंकारी [वा अदीन] (वत्साय) शास्त्रों के कहनेवाले पुरुष को (छर्दिः) घर (यच्छतम्) दान करो ॥५॥

सूक्तम् ॥ १४२ ॥

१—६ शशकर्णः । अश्विनौ । १—४ अनुष्टुप्, ५—६ गायत्री ।

अबुध्रमु त्य इन्द्रवन्तो अग्नयः । [sic: printed as] **अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः ।**
व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥१॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (देव्या) उत्तम गुणवाली (वाचा साकम्) वाणी के साथ (अश्विनोः) दोनों अश्वी [व्यापक दिन-रात्रि] के बीच (उ) अवश्य (प्र अभुत्सि) जागा हूँ। (देवि) हे देवी ! [प्रकाशमान उषा] तू ने (आ) आकर (मर्त्येभ्यः) मनुष्यों के लिये (मतिम्) बुद्धि और (रातिम्) धन को (वि) विशेष करके (वि आवः) खोल दिया है ॥१॥

प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि ।
प्र यज्ञहोतरानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥२॥

(उषः) हे उषा ! [प्रभात बेला] (अश्विना) दोनों अश्वी [व्यापक दिन-रात्रि] को (प्र बोधय) जगादे, (देवि) हे देवी ! [व्यवहार कुशल] (सूनृते) हे अन्नवाली ! (महि) हे पूजनीया ! [उषा] (प्र—प्रबोधय) जगा दे। (यज्ञहोतः) हे उत्तम संगति देनेवाले ! [विद्वान्] (आनुषक्) लगातार (प्र) जगादे, (बृहत्) बड़े (श्रवः) यश के लिए और (मदाय) आनन्द के लिये (प्र) जगादे ॥२॥

यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे ।
आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥३॥

पदार्थ—(उषः) हे उषा ! [प्रभात बेला] (यत्) जब तू (भानुना) प्रकाश के साथ (यासि) चलती है, [तब] तू (सूर्येण) सूर्य के साथ (सम्) ठीक प्रकार से (रोचसे) रुचती है [प्रिय लगती है] [तभी] (अश्विनोः) दोनों अश्वी [व्यापक दिन-रात्रि] का (अयम्) यह (रथः) रथ (ह) भी (नृपाय्यम्) नरों [नेताओं] से पालने योग्य (वर्तिः) घर पर (आ याति) आता है ॥३॥

यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः ।
यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना ॥४॥

प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे । प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥५॥

यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः । यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या ॥६॥

पदार्थ—(यत्) जब (आपीतासः) अच्छे प्रकार पीये हुए (अंशवः) बटे हुए सोमरस [तत्त्व रस] (दुह्रे) दुहे जाते हैं, (गावः न) जैसे गौएँ (ऊधभिः) लवाओं [अयना, थनों के स्थानों] से [दूध दुहती हैं] । (वा) और (यत्) जब (देवयन्तः) दिव्य गुण चाहनेवाले लोग (वाणीः) वाणियों से (अश्विना) दोनों अश्वी [व्यापक दिन-रात्रि] को (प्र) अच्छे प्रकार (अनूषत) सराहते हैं ॥४॥ [तब] (प्रचेतसा) हे उत्तम ज्ञान देनेवाले ! तुम दोनों (द्युम्नाय) चमकते हुए यश के लिए (प्र—प्रभवथः) समर्थ होते हो, (शवसे) बल के लिए (प्र) समर्थ होते हो, (नृषाह्याय) मनुष्यों को सहारा देनेवाले (शर्मणे) शरण [घर आदि] के लिए (प्र) समर्थ होते हो, और (दक्षाय) चतुराई [कार्य कुशलता] के लिए (प्र) समर्थ होते हो ॥५॥ (यत्) क्योंकि (नूनम्) अवश्य, (उक्थ्या) हे बड़ाई योग्य (अश्विना) दोनों अश्वी [व्यापक दिन-रात्रि] (धीभिः) कर्मों के साथ (वा) और (यत्) क्योंकि (सुम्नेभिः) अनेक सुखों के साथ (पितुः) पालन करनेवाले पुरुष के (योना) घर में (निषीदथः) दोनों बैठते हो ॥६॥

सूक्तम् १४३

(१-९) १-७ पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ, ८ वामदेवः, ९ मेध्यातिथिमेधातिथी । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः ।
यः सूर्यां वहति बन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥१॥

पदार्थ—(अश्विना) हे दोनों अश्वी ! [चतुर राजा और मन्त्री] (वयम्) हम (अद्य) आज (वाम्) तुम दोनों के (पृथुज्रयम्) बड़ी गतिवाले, (गोः) पृथिवी की (संगतिम्) संगति करनेवाले, (गिर्वाहसम्) विज्ञान से चलने वाले, (पुरुतमम्) अत्यन्त बड़े, (वसूयुम्) बहुत धनवाले (तम्) उस (रथम्) रमणीय रथ को (हुवेम) ग्रहण करें, (यः) जो (बन्धुरायुः) यन्त्रों के बन्धनों वाला [रथ] (सूर्याम्) सूर्य की धूप को (वहति) प्राप्त होता है [रखता है] ॥१॥

युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् ककुहासो रथे वाम् ॥२॥

पदार्थ—(दिवः) हे व्यवहार के (नपाता) न गिराने वाले (अश्विना) दोनों अश्वी ! [चतुर राजा और मन्त्री] (देवता) दिव्य गुणवाले (युवम्) तुम दोनों (शचीभिः) बुद्धियों से (ताम्) उस (श्रियम्) लक्ष्मी का (वनथः) सेवन करते हो, (यत्) जिस [लक्ष्मी] के लिए (पृक्षः) अनेक अन्न (युवोः) तुम दोनों के (वपुः) शरीर को (अभि) सब ओर से (सचन्ते) सींचते हैं और [जिसके लिये] (ककुहासः) बड़े विद्वान् लोग (वाम्) तुम दोनों को (रथे) रमणीय रथ में (वहन्ति) ले चलते हैं ॥२॥

को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः ।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥३॥

पदार्थ—(अश्विना) हे दोनों अश्वी ! [चतुर राजा और मन्त्री] (रातहव्यः) देने योग्य को दिये हुए (कः) कौन पुरुष [अर्थात् प्रत्येक मनुष्य] (ऊतये) रक्षा के लिये (वा वा) और (सुतपेयाय) निचोड़े हुए सोम [तत्त्व रस] पीने के लिये (वाम्) तुम दोनों के निमित्त (अर्कैः) सत्कारों के साथ (अद्य) आज (करते) कर्म करता है, (वा) और (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (पूर्व्याय) प्राचीनों में रहने वाले (वनुषे) सेवन के लिये (नमः) अन्न को (येमानः) खींचता हुआ [कौन अर्थात् प्रत्येक मनुष्य] (आ ववर्तत्) वर्ताव करता है ॥३॥

हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥४॥

पदार्थ—(पुरुभू) हे पालन व्यवहारों के विचारनेवाले ! (नासत्या) हे सदा सत्य स्वभाववाले दोनों ! [राजा और मन्त्री] (हिरण्ययेन) ज्योति रखनेवाले [अग्नि आदि प्रकाश बल से चलनेवाले] (रथेन) रमणीय रथ से (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ [देवपूजा, संगतिकरण और दान-व्यवहार] को (उप) आदर से (यातम्) प्राप्त होओ, और (मधुनः) उत्तम ज्ञान के (सोम्यस्य) सोम [तत्त्व रस] में उत्पन्न रस का (इत्) अवश्य (पिबाथः) पान करो और (विधते) पुरुषार्थ करते हुए (जनाय) मनुष्य के लिए (रत्नम्) रत्न [सुन्दर धन] (दधथः) दान करो ॥४॥

आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः सं यद् ददे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥५॥

पदार्थ—[हे राजा और मन्त्री !] (दिवः) आकाश से और (पृथिव्याः) भूमि से (हिरण्ययेन) ज्योति रखनेवाले [अग्नि आदि प्रकाश बल से चलनेवाले], (सुवृता) शीघ्र घूमनेवाले [चमकने वाले] (रथेन) रमणीय रथ [विमान आदि वाहन] द्वारा (अच्छ) अच्छे प्रकार (नः) हम को (आ यातम्) दोनों प्राप्त होओ, (अन्ये) अन्य (देवयन्तः) पीड़ा देते हुए लोग (वाम्) तुम दोनों को (मा नि यमन्) न रोकें (यत्) क्योंकि (पूर्व्या) पुरानी (नाभिः) बन्धुता ने (वाम्) तुम दोनों को (सं ददे) बाँधा है ॥५॥

नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे ।
नरो यद् वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीळ्हासो अग्मन् ॥६॥

पदार्थ—(दस्रा) हे दर्शन योग्य (अश्विना) दोनों अश्वी ! [चतुर राजा और मन्त्री] (नः) हमारे लिये [अर्थात्] (उभयेषु) दोनों राजजन और प्रजाजन वाले (अस्मे) हम लोगों में (पुरुवीरम्) बहुत वीरों के प्राप्त करानेवाले (बृहन्तम्) बड़े (रयिम्) धन को (नु) शीघ्र (मिमाथाम्) मापो [दो] । (यत्) क्योंकि (नरः) नरों [नेता लोगों] ने (वाम्) तुम दोनों के लिए (स्तोमम्) प्रशंसा की (आवन्) रक्षा की है, और (आजमीळ्हासः) उन घृत आदि पदार्थों और सुवर्ण आदि धनवालों ने (सधस्तुतिम्) परस्पर कीर्ति (अग्मन्) पाई है ॥६॥

इहेह यद् वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥७॥

पदार्थ—(वाजरत्ना) हे ज्ञान और धन रखनेवाले दोनों ! [राजा और मन्त्री] (इहेह) यहां [राज्य में] ही (यत्) जो (सुमतिः) सुमति [उत्तम बुद्धि] (समना) एक से मनवाले (वाम्) तुम दोनों को (पपृक्षे) छूती है, (सा इयम्) वही [सुमति] (अस्मे) हम में [होवे] । (नासत्या) हे सदा सत्य स्वभाववाले ! [धर्मात्माओ] (युवम्) तुम दोनों (ह) ही (जरितारम्) गुणों की व्याख्या करने वाले की (उरुष्यतम्) रक्षा करो, (श्रितः) [तुम्हारा] आश्रय लिए हुए (कामः) मेरा मनोरथ (युवद्रिक्) तुम दोनों की ओर देखनेवाला है ॥७॥

मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥८॥

पदार्थ—(नः) हमारे लिये (ओषधीः) ओषधियाँ [चावल जौ आदि अन्न], (द्यावः) सूर्य आदि के प्रकाश, (आपः) जल [मेह, कूए, नदी आदि के] (मधुमतीः) मधुर आदि गुणवाले [होवें], (अन्तरिक्षम्) आकाश (मधुमत्) मधुर आदि गुण वाला (भवतु) होवे । (क्षेत्रस्य पतिः) खेत का स्वामी [किसान] (नः) हमारे लिए (मधुमान्) मधुर आदि गुणवाला (अस्तु) होवे, (अरिष्यन्तः) बिना कष्ट उठाये हुए (एनम् अनु) इस [किसान] के पीछे-पीछे (चरेम) चलें ॥८॥

पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वाँ इत् ताँ उप याता पिबध्यै ॥९॥

पदार्थ—(अश्विना) हे दोनों अश्वी ! [चतुर राजा और मन्त्री] (तत्) वह (वाम्) तुम दोनों का (कृतम्) काम (पनाय्यम्) बड़ाई योग्य है [कि] (पृथिव्याः) पृथिवी के और (रजसः) आकाश के (दिवः) व्यवहार के (वृषभः = वृषभौ) दोनों शासक [हो] । (उत) और (गविष्टौ) विद्या की प्राप्ति में (ये) जो (सहस्रम्) सहस्र (शंसाः) प्रशंसनीय गुण हैं, (तान् सर्वान्) उन सब को (इत्) ही (पिबध्यै) [सोम अर्थात् तत्त्व रस] पीने के लिए (उप) आदर से (यात) तुम सब लोग प्राप्त करो ॥९॥

इति नवमोऽनुवाकः

महाशासन काण्ड नाम बीसवाँ काण्ड पूरा हुआ ॥

अथर्ववेद संहिता भी पूरी हुई ॥

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

वेदोद्धारक, धर्म रक्षक, मानवमात्र के मार्ग-दर्शक

महर्षि दयानन्द सरस्वती
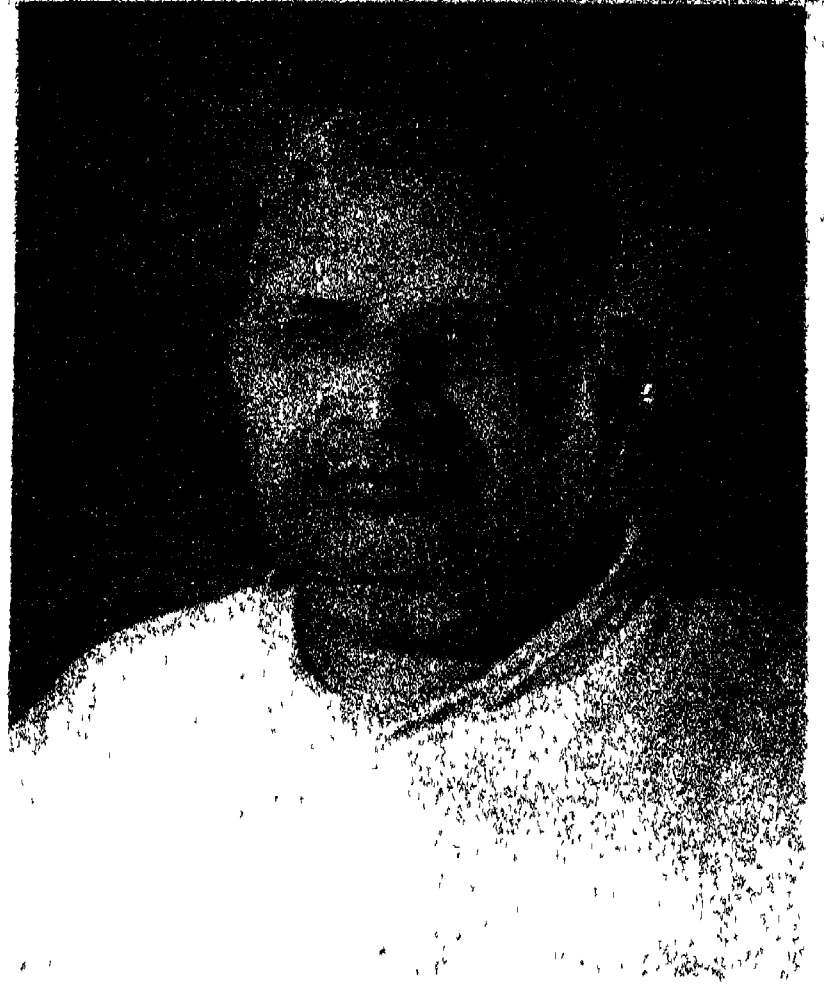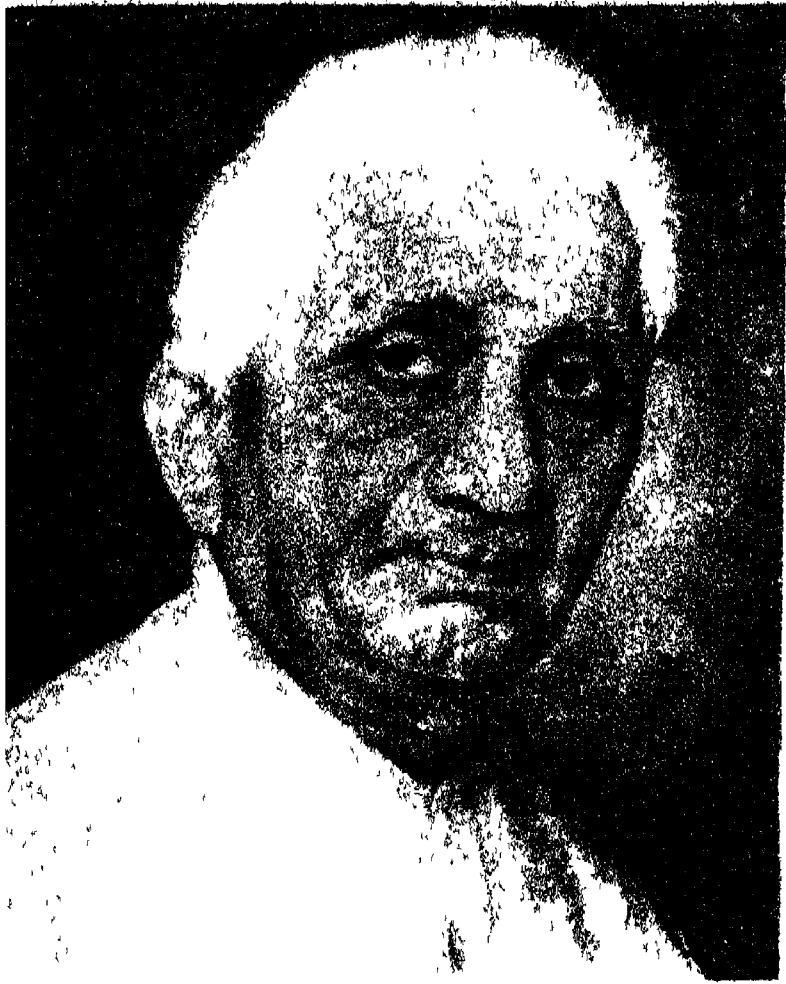
सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान्
स्व० श्री पं० दामोदर जी सातवलेकर
जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन "वेद" ज्ञान के प्रसारार्थ अर्पित किया

धरती के प्रत्येक परिवार में प्रभु की अमर वाणी "वेद"
पहुँचाने के लिये कृत संकल्प
पं. भारतेन्द्र नाथ अध्यक्ष दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली-५

५०१) की आहुति देकर वेद-ज्ञान-प्रकाशन-यज्ञ की सफलता का पुण्य प्राप्त करने वाले वेद-भक्त

१ श्रीमती सावित्री जी सिन्हा, पिपलानी भोपाल
२ श्री जयनारायण जी—कानपुर
३. श्री कालूराम जी माली—मोगपुर (देहरादून)
४. श्री ललितकुमार जी—मुज्जफरपुर
५ श्री मन्त्री जी आर्यसमाज—जामनगर (गुजरात)
६ श्री आसाराम पूरणमल—नारायण पेठ
७ श्री हरि नारायण मल्होत्रा (रुड़की)
८ श्री सुभाषचन्द प्रभाषचन्द्र—जसपुर
(स्व० माता सुशीलादेवी की स्मृति में)
(पत्नी श्री आनन्द प्रिय)
९. श्रीमती भगवतीदेवी जी पत्नी पं० रामस्वरूप जी—जींद
१० श्री पं० रामस्वरूप जी पुत्र पं० देवनराम जी—जींद
११ श्री पं० हरिश्चन्द्र जी—जींद
१२ श्री मास्टर बद्रीप्रसाद जी—जींद
१३ आर्यसमाज जींद शहर
१४ श्री मायाराम भगवानदास—तिनसुकिया (आसाम)
१५ श्री बनारसीदास जी गुप्ता – दिल्ली
१६ श्री सूर्यकान्त जी—रुड़की
१७. श्री एच० पी० आर्य—बेलगाछी
१८ श्री किशनलाल रामचन्द्र जी—हैदराबाद
१९ श्री बलदेव जी वानप्रस्थी—चांदपुर
२०. श्री रामविलास जी—सूरत
२१ श्री शिवदत्त राय फतेहचन्द—हिसार
२२ श्रीमती सावित्री दत्ता—दिल्ली
२३ श्री भगवानशरण प्रेमवती जी—मुरादाबाद
२४ श्री डूगरसी सुन्दरम् ठक्कर—झरिया
२५ श्री बेलीराम जी—पटपड़गंज, दिल्ली
२६ श्री लोडाभाई लक्ष्मणभाई—अंकलेश्वर
२७ श्रीमती माता जानकी देवी तथा श्रीकिशनदास जी—दिल्ली की स्मृति में
२८ श्री डा० जगन्नाथ जी व श्रीमती भगवतीदेवी की स्मृति में
२९ श्री ला० बेलीराम जी—करनाल
३० श्री शत्रुघ्न गुप्त, राँची (बिहार)
३१ स्व- मधुलता गर्ग की स्मृति में श्री मूलचन्द गर्ग
३२ श्री जगदीश चौधरी - मुज्जफरपुर / बम्बई द्वारा
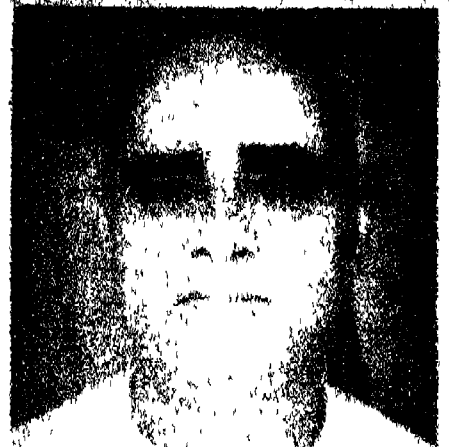
वेदभाष्य प्रकाशन की सूत्रधार
पंडिता राकेश रानी

आचार्य जगदीश विद्यार्थी एम० ए०

श्री स्वामी चन्द्रकिरण जी
महाराज कानपुर

कु० शर्मिष्ठा पुत्री डा० एस० एल०
कश्यप (जोधपुर)

स्व० श्रीमती मधुबाला की स्मृति
में श्री जुगलकिशोर आत्रेय
(नई दिल्ली)

श्रीमती विद्यावती जोहरी, आगरा

तपस्विनी माता पार्वती देवी जी
आगरा

स्व० दयालचन्द्र जी पुग्गू (डगेह)
की स्मृति में पुत्र श्री रामलाल जी द्वारा

स्व० साहू हरस्वरूप जैन की स्मृति
में (पत्नी श्रीमती लक्ष्मीदेवी जी) चांदपुर (बिजनौर)

श्री जमुनादास जी कुम्हार
(बीकानेर)

स्व० श्री ओमप्रकाश जी अग्रवाल
गाजियाबाद की पावन स्मृति में
पुत्र श्री चिरंजीव अरुणकुमार
अग्रवाल द्वारा

प्रकाशक:-

दयानन्द-संस्थान

नई दिल्ली-५

दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली-५
ओ३म्
दयानन्द संस्थान